निर्मितं तु समर्पयेत्" इति । अर्थात् ब्राह्मण सात्विकको सत्वगुणी बलि देनी, कालीपुराणमें कहा है सिंहव्याघ्रादि देने से आत्मवधको प्राप्त होता है मद्य देनेसे ब्रह्मत्वसे हीन होता है जहां अवश्यही विधान है वहां पिष्टका पशु बनाय बलि देनी अथवा घृतकी आहुति देनी ॥ ३२ ॥ देवीके आगे निहत हुए पशु स्वर्गको जाते हैं कारण कि, ब्रह्मविद्या जीवदशाकी निहंत्री है हे पापरहित! इस कारण वहां पशु मारनेकी हिंसा नहीं हैं ॥ ३३ ॥ सब शास्त्रोंमें यह निर्णय है कि, वह यज्ञका हनन हिंसा नहीं है सो यह क्षत्रियके उद्देशमें ही बलिको छोड़कर अन्यत्र न करै इस न्यूनताके ही निमित्त है. कारण कि, इस उद्देशसे देवताके उद्देशसे बलि किये पशु स्वर्ग जाते हैं ॥ ३४ ॥ होमके निमित्त त्रिकोण कुण्ड बनावै, अथवा त्रिकोणके ही परिमाणसे स्थण्डिल (समस्थान) करै. [अर्थात् हवनकी सामग्रीके अनुसार एक हाथसे

देव्यग्रेनिहतायांतिपशवःस्वर्गमव्ययम् ॥ नहिंसापशुजातत्रनिघ्नतांतत्कृतेऽनघ ॥ ३३ ॥ अहिंसायाज्ञिकीप्रोक्तासर्वशास्त्रविनिर्णये ॥ देवतार्थेविसृष्टानां पशूनांस्वर्गतिर्ध्रुवा ॥ ३४ ॥ होमार्थंचैवकर्तव्यंकुंडंचैवत्रिकोणकम् ॥ स्थंडिलंवाप्रकर्तव्यंत्रिकोणंमानतःशुभम् ॥३५॥ त्रिकालंपूजनंनित्यंनानाद्रव्यैर्मनोहरैः ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्चकर्तव्यश्चमहोत्सवः ॥ ३६॥ नित्यंभूमौचशयनंकुमारीणांचपूजनम् ॥ वस्त्रालंकरणैर्दिव्यैर्भोजनैश्चसुधामयैः ॥ ३७ ॥ एकैकांपूजयेन्नित्यमेकवृद्ध्यातथापुनः ॥ द्विगुणंत्रिगुणंवाऽपिप्रत्येकंनवकंचवा ॥ ३८॥ विभवस्यानुसारेणकर्तव्यंपूजनंकिल ॥ वित्तशाठ्यंनकर्तव्यंराजञ्छक्तिमखेसदा ॥ ३९ ॥ एकवर्षानकर्तव्याकन्यापूजाविधौनृप ॥ परमज्ञातुभोगानांगंधादीनांचबालिका ॥ ४० ॥ कुमारिकातुसाप्रोक्ताद्विवर्षायाभवेदिह ॥ त्रिमूर्तिश्चत्रिवर्षाचकल्याणीचतुरब्दिका ॥ ४१ ॥ रोहिणीपंचवर्षाचषड्वर्षाकालिकास्मृता ॥ चंडिकासप्तवर्षास्यादष्टवर्षाचशांभवी ॥४२॥

दश हाथतकका निर्माण करै ५० आहुतिमें मुष्टिमात्र शतहोममें अरत्निमात्र करै. ऐसा शारदातिलकमें कहा है.]॥ ३५॥ तीनों कालमें अनेक मनोहर द्रव्योंसे पूजन करै गीत वादित्र और नृत्यपूर्वक महोत्सव करना चाहिये ॥ ३६ ॥ नित्य पृथ्वीमें शयन करै. कुमारीपूजन करै उनको दिव्य वस्त्र अलंकार और अमृतमय भोजन दे ॥ ३७ ॥ [illegible] नित्यप्रति एकका पूजन करै अथवा एक वृद्धिसे पूजनकरै अथवा दूनी तिगुनी वृद्धि करै, अथवा प्रतिदिन नौका पूजनकरै ॥ ३८॥ हे राजन् ! शक्तियज्ञमें सहित [illegible]चता करनी [illegible] उचित नहीं. ऐश्वर्यके अनुसार पूजनकरै॥ ३९॥ हे राजन् ! कन्यापूजनमें एकवर्षकी कन्याका पूजन न करै. कारण कि, वह भोग और गंधादि ज्ञानमें भरतने माताका[illegible] कुमारी [illegible] इसको कहते हैं जो दो वर्षकी हो तीन वर्षकी त्रिमूर्ती और चार वर्षकी कल्याणी कहाती है ॥ ४१ ॥ पांच वर्षकी रोहिणी और छः वर्षकी

... वर्षकी चंडिका और आठ वर्षकी शांभवी है॥ ४२ ॥ नौ वर्षकी दुर्गा दश वर्षकी सुभद्रा होती है. इससे अधिक कुमारीपूजामें न लेना ! आगे सब ...हते है ॥ ४३॥ इन नामोंसे विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये. इन नौ नामोंसे पूजा करनेका फल कहता हूं ॥ ४४ ॥ पूजित हुई कुमारी दुःख दारिद्यका नाश ... है. शत्रुक्षय धन आयुष्य बलकी वृद्धि करती है ॥ ४५ ॥ त्रिमूर्तिके पूजनसे आयु और त्रिवर्गका फल होता है. धन धान्यका आगम पुत्रपौत्रकी वृद्धि होती है ॥ ४६ ॥ विद्यार्थी विजयकी इच्छावाला और जो राजा जयकी इच्छावाला है और सुखार्थी अवश्यही सब कामना देनेवाली कल्याणीका पूजनकरै ॥ ४७ ॥ और शत्रुओंके नाश करनेके निमित्त कल्याणीका पूजनकरै, ऐश्वर्य और धनकी कामनासे चण्डिकाको पूजनकरै ॥ ४८ ॥ और संमोहनके निमित्त शांभवीका

नववर्षाभवेद्दुर्गासुभद्रादशवार्षिकी ॥ अतऊर्ध्वंनकर्तव्यासर्वकार्यविगर्हिता ॥ ४३ ॥ एभिश्चनामभिःपूजाकर्तव्याविधिसंयुता ॥ तासांफलानिवक्ष्यामिनवानांपूजनेसदा ॥ ४४ ॥ कुमारीपूजिताकुर्याद्दुःखदारिद्र्यनाशनम् ॥ शत्रुक्षयंधनायुष्यंबलवृद्धिंकरोतिवै ॥४५॥ त्रिमूर्तिपूजनादायुस्त्रिवर्गस्यफलंभवेत् ॥ धनधान्यागमश्चैवपुत्रपौत्रादिवृद्धयः ॥ ४६ ॥ विद्यार्थीविजयार्थीचराज्यार्थीयश्चपार्थिवः ॥ सुखार्थीपूजयेन्नूनंकल्याणींसर्वकामदाम् ॥ ४७ ॥ कालिकांशत्रुनाशार्थंपूजयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥ ऐश्वर्यधनकामश्चचंडिकांपरिपूजयेत् ॥ ४८ ॥ पूजयेच्छांभवींनित्यंनृपसंमोहनायच ॥ दुःखदारिद्र्यनाशायसंग्रामेविजयायच ॥४९॥ क्रूरशत्रुविनाशार्थंतथोग्रकर्मसाधने॥दुर्गांचपूजयेद्भक्त्यापरलोकसुखायच ॥५०॥ वांच्छितार्थस्यसिद्ध्यर्थंसुभद्रांपूजयेत्सदा॥ रोहिणींरोगनाशायपूजयेद्विधिवन्नरः ॥ ५१॥ श्रीरस्त्वितिचमंत्रेणपूजयेद्भक्तितत्परः ॥ श्रीयुक्तमंत्रैरथवाबीजमंत्रैरथापिवा॥५२॥कुमारस्यचतत्त्वानियासृजत्यपिलीलया ॥ कादीनपिचदेवांस्तान्कुमारींपूजयाम्यहम् ॥५३॥ सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्यातैर्हिनानास्वरूपिणी ॥ त्रिकालव्यापिनीशक्तिस्त्रिमूर्तिंपूजयाम्यहम् ॥ ५४ ॥

पूजन करै. इस पूजनसे दुःख दारिद्यका नाश और संग्राममें विजय होती है ॥४९॥ क्रूर शत्रुके नाशार्थ तथा उग्रकर्मके साधनके निमित्त तथा परलोकसुखके निमित्त दुर्गादेवीका पूजनकरै ॥ ५० ॥ और सुभद्राके पूजनेसे वांछितार्थकी सिद्धि होती है रोगनाशके निमित्त रोहिणीका पूजन करै ॥ ५१ ॥ भक्तिमें तत्पर होकर 'श्रीरस्तु' इस मंत्रसे पूजनकरै. श्रीयुक्त मंत्रों अथवा दूसरे मंत्रोंसे पूजनकरै ॥ ५२ ॥ जो कुमार 'षण्मुख' के तत्वोंको लीलासेही सृजन करते हैं ब्रह्मादिदेवता और कुमारीको मैं पूजनकरता हूं ॥ ५३ ॥ जो सत्वादि त्रिमूर्तिसे नानास्वरूपिणी है त्रिकालव्यापिनीशक्ति त्रिमूर्तिकी मैं पूजाकरता हूं ॥ ५४ ॥

कल्याणकारिणी नित्य भक्तोंसे पूजितहुई सब कामनादायिनी है इससे भक्तिपूर्वक कल्याणीको पूजनकरता हूं ॥ ५५ ॥ जो प्राग्जन्मके संचित कर्मोंकी अंकुरित करती है. जो देवी सब प्राणियोंको अंकुरित करती है. उस रोहिणीको पूजनकरताहूं ॥ ५६ ॥ कालिका चराचर सब ब्रह्माण्डको कलितकरती है. प्रलय करती है उस कालिकाका मैं पूजन करता हूं ॥ ५७ ॥ चण्डिका चण्डरूपा चण्डमुण्डकी नाशक कठिनपापकी दूर करनेवाली चण्डिकाका पूजन करता हूं ॥ ५८ ॥ अकारणसेही समुत्पत्ति जिसके स्वरूपोंकी कहीगई है उस सबकी सुखदायक शांभवीदेवीको मैं पूजनकरता हूं ॥ ५९ ॥ जो दुर्गा भक्तोंकी रक्षा करनेवाली दुर्गति नाशनेवाली है जो सबदेवताओंको दुर्ज्ञेय है उस दुर्गाको मैं पूजनकरता हूं ॥ ६० ॥ जो पूजित हुई सदा भक्तोंके भद्र (कल्याण) करती है. उस अभद्रनाशिनी सुभद्रादेवीको

कल्याणकारिणीनित्यंभक्तानांपूजिताऽनिशम् ॥ पूजयामिचतांभक्त्याकल्याणींसर्वकामदाम् ॥ ५५ ॥ रोहयंतीचबीजानिप्राग्जन्मसंचितानिवै ॥ यादेवीसर्वभूतानांरोहिणींपूजयाम्यहम् ॥ ५६ ॥ कालीकालयतेसर्वंब्रह्मांडंसचराचरम् ॥ कल्पांतसमयेयातांकालिकांपूजयाम्यहम् ॥ ५७ ॥ चंडिकां चंडरूपांचचंडमुंडविनाशिनीम् ॥ तांचंडपापहरिणींचंडिकांपूजयाम्यहम् ॥ ५८ ॥ अकारणात्समुत्पत्तिर्यन्मयैःपरिकीर्तिता ॥ यस्यास्तांसुखदांदेवींशांभवींपूजयाम्यहम् ॥ ५९ ॥ दुर्गात्रायतिभक्तंयासदादुर्गार्तिनाशिनी ॥ दुर्ज्ञेयासर्वदेवानांतांदुर्गांपूजयाम्यहम् ॥ ६० ॥ सुभद्राणिचभक्तानांकुरुते पूजितासदा ॥ अभद्रनाशिनींदेवींसुभद्रांपूजयाम्यहम् ॥ ६१ ॥ एभिर्मं[illegible]ः पूजनीयाःकन्यकाःसर्वदाबुधैः ॥ वस्त्रालंकरणैर्माल्यैर्गंधैरुच्चावचैरपि ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० तृतीयस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ हीनांगींवर्जयेत्कन्यांकुष्ठयुक्तांव्रणांकिताम् ॥ गंधस्फुरितहीनांगींविशालकुलसंभवाम् ॥ १ ॥ जात्यंधांकेकरांकाणींकुरूपांबहुरोमशाम् ॥ संत्यजेद्रोगिणींकन्यांरक्तपुष्पादिनाऽकिताम् ॥ २ ॥ क्षामांगर्भसमुद्भूतां गोलकांकन्यकोद्भवाम् ॥ वर्जनीयाःसदाचैताःसर्वपूजादिकर्मसु ॥ ३ ॥ अरोगिणींसुरूपांगींसुंदरींव्रणवर्जिताम् ॥ एकवंशसमुद्भूतांकन्यांसम्यक्प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥

पूजन करता हूं ॥ ६१ ॥ पंडितोंको इन मंत्रोंसे सदा कन्याओंको पूजन करना चाहिये. वस्त्र अलंकार माला और उच्चावच गन्धोंसे पूजन करना चाहिये ॥ ६२ ॥ [illegible] श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले जो कन्या कुष्ठयुक्त व्रणोंसे अंकित, गंधसे स्फुरित हीनांगी दुष्ट सहित [illegible]हो उसको पूजन न करै ॥ १ ॥ तथा जातिअंधी एकहातवाली कानी कुरूपा बहुत रोमवाली रोहिणी रक्तपुष्पादिसे अंकित हो उसे त्यागदे ॥ २ ॥ भरतने माताक[illegible]थोडे दिनकी हुई विधवासे उत्पन्न अविवाहित कन्यासे उत्पन्न यह कन्यायें सदा पूजादि कर्मोंमें त्यागदेनी चाहिये ॥ ३ ॥ रोगरहित सुरूपवती

...व्रणसे रहित शुद्ध माता पितासे उत्पन्न कन्याको भलीप्रकारसे पूजनकरै ॥ ४ ॥ सब कार्योंमें ब्राह्मणी, जयकार्योंमें क्षत्रिया, लाभके निमित्त वैश्यवं... अथवा शूद्रवंशकी कन्याका पूजनकरै ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंको ब्राह्मणकी पूजनी क्षत्रियोंको ब्रह्मक्षत्रियकी,वैश्यको ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यकी कन्या पूज्य है. और शूद्रोंको ...रों वर्णकी कन्या पूजनीय है ॥ ६ ॥ शिल्पियोंको अपने वंशकी कन्या पूजनीय है. यह भक्तिपूर्वक नवरात्रके विधानसे कार्य करना चाहिये ॥ ७ ॥ यदि नवरात्रमें निरन्तर पूजा करनेमें अशक्य हो तो अष्टमीको विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये ॥ ॥ ८ ॥ कारण कि, पहले दक्षका यज्ञ नाशकरनेवाली भद्रकाली करोडों योगिनियों सहित अष्टमीकोही प्रगटहुई है ॥ ९ ॥ इस कारण विशेषरूपसे अष्टमीको पूजन करना चाहिये । अनेक प्रकारके उपहार और गंधमालासे अर्चित करै ॥ १० ॥

ब्राह्मणीसर्वकार्येषुजयार्थेनृपवंशजा ॥ लाभार्थेवैश्यवंशोत्थामतावाशूद्रवंशजा ॥ ५ ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मजाःपूज्याराजन्यैर्ब्रह्मवंशजाः ॥ वैश्यैस्त्रिवर्गजाःपूज्याश्चतस्रःपादसंभवैः ॥ ६ ॥ कारुभिश्चैववंशोत्थाययथायोग्यंप्रपूजयेत् ॥ नवरात्रविधानेनभक्तिपूर्वसदैवहि ॥ ७ ॥ अशक्तोनियतंपूजांकर्तुंचेन्नवरात्रके ॥ अष्टम्यांचविशेषेणकर्तव्यंपूजनंसदा ॥ ८ ॥ पुराऽष्टम्यांभद्रकालीदक्षयज्ञविनाशिनी ॥ प्रादुर्भूतामहाघोरायोगिनीकोटिभिःसह ॥ ९ ॥ अतोऽष्टम्यां विशेषेणकर्तव्यंपूजनंसदा ॥ नानाविधोपहारैश्चगंधमाल्यानुलेपनैः ॥ १० ॥ पायसैरामिषैर्होमैर्ब्राह्मणानांचभोजनैः ॥ फलपुष्पोपहारैश्चतोषयेज्जगदंबिकाम् ॥ ११ ॥ उपवासेह्यशक्तानांनवरात्रव्रतेपुनः ॥ उपोषणत्रयंप्रोक्तंयथोक्तफलदंनृप ॥ १२ ॥ सप्तम्यांचतथाऽष्टम्यांनवम्यांभक्तिभावतः ॥ त्रिरात्रकरणात्सर्वफलंभवतिपूजनात् ॥ १३ ॥ पूजाभिश्चैवहोमैश्चकुमारीपूजनैस्तथा ॥ संपूर्णतद्व्रतंप्रोक्तंविप्राणांचैवभोजनैः ॥ १४ ॥ व्रतानियानि चान्यानिदानानिविविधानिच ॥ नवरात्रव्रतस्यास्यनैवतुल्यानिभूतले ॥ १५ ॥ धनधान्यप्रदंनित्यंसुखसंतानवृद्धिदम् ॥ आयुरारोग्यदंचैवस्वर्गदंमोक्षदंतथा ॥ १६ ॥ विद्यार्थीवाधनार्थीवापुत्रार्थीवाभवेन्नरः ॥ तेनेदंविधिवत्कार्यंव्रतंसौभाग्यदंशिवम् ॥ १७ ॥

पायस खीरसे होमकरै क्षत्रिय मांसकीभी बलिप्रदान करसक्ते हैं, ब्राह्मणभोजन करा फल पुष्पोंकी भेंटसे जगदम्बाको सन्तुष्ट करै ॥ ११ ॥ यदि नवरात्रके उपवासमें समर्थ न हो तो हे राजन् ! तीन उपवासभी विशेष फल देते हैं ॥ १२ ॥ सप्तमी अष्टमी नवमीको भक्तिभावसे तीन रात व्रत पूजन करनेसे पूर्ण फल मिलता है॥ १३ ॥ पूजा होम और कुमारीव्रत करनेसे तथा ब्राह्मणभोजनसे व्रत पूर्ण होताहै॥ १४ ॥ जो और व्रत दान अनेकप्रकारके हैं वे कोईभी पृथ्वीमें नवरात्रव्रतकी समान नहीं है॥ १५ ॥ यह नित्य धनधान्यका दाता सुख सन्तान और वृद्धिका देनेवाला आयु आरोग्य और स्वर्ग मोक्षका देनेवाला है ॥ १६ ॥ विद्यार्थी धनार्थी पुत्रार्थी मनुष्यको यह सौभा

ग्यदायक व्रत अवश्य करना चाहिये ॥ १७ ॥ इस व्रतके साधनसे विद्यार्थी सब विद्याओंको प्राप्त होता है. और राज्यभ्रष्ट राजा सब प्रकारके राज्यको प्राप्त करता है ॥ १८॥ जिन्होंने पूर्वजन्ममें यह श्रेष्ठ व्रत नहीं किया है. वेही मनुष्य व्याधियुक्त दरिद्र और पुत्रहीन होते हैं ॥ १९॥ जो स्त्री वन्ध्या विधवा धनवर्जित हो यह अनुमान कर लो कि इसने यह व्रत नहीं किया है ॥ २० ॥ यह नवरात्रव्रत जिन्होंने भूतलमें नहीं किया है वे ऐश्वर्यको प्राप्त हो किसप्रकार स्वर्गमें आनंद करेंगे ? ॥ २१ ॥ रक्तचन्दनयुक्त कोमल बेलपत्रसे जिन्होंने भवानीका पूजन किया है वही भूमिका राजा होगा ॥ २२ ॥ जिसने दुःखनाशक सिद्धिकारक जगत्में श्रेष्ठ सनातनी शिवाका आराधन नहीं किया है. वही नर भूतलमें दुःख और शत्रुसे युक्त हुआ अवश्य दरिद्री होता है ॥ २३ ॥ जिसको विष्णु इन्द्र हर ब्रह्मा अग्निकुबेर

विद्यार्थीसर्वविद्यांवैप्राप्नोतिव्रतसाधनात् ॥ राज्यभ्रष्टोनृपोराज्यंसमवाप्नोतिसर्वथा ॥ १८ ॥ पूर्वजन्मनियैर्नूनंनकृतंव्रतमुत्तमम् ॥ तेव्याधिनोदरिद्राश्चभवंतिपुत्रवर्जिताः ॥ १९ ॥ वंध्याचयाभवेन्नारीविधवाधनवर्जिता ॥ अनुमातत्रकर्तव्यानेयंकृतवतीव्रतम् ॥ २० ॥ नवरात्रव्रतंप्रोक्तंनकृतंयेनभूतले ॥ सकथंविभवंप्राप्यमोदतेचतथादिवि ॥ २१ ॥ रक्तचंदनसंमिश्रैःकोमलैर्बिल्वपत्रकैः ॥ भवानीपूजितायेनसभवेन्नृपतिःक्षितौ ॥ २२ ॥ नाराधितायेन शिवासनातनीदुःखार्तिहासिद्धिकरीजगद्वरा ॥ दुःखावृतःशत्रुयुतश्चभूतलेनूनंदरिद्रोभवतीहमानवः ॥ २३ ॥ यांविष्णुरिंद्रोहरपद्मजौतथावह्निःकुबेरो वरुणोदिवाकरः ॥ ध्यायंतिसर्वार्थसमाप्तिनंदितास्तांकिंमनुष्यानभजंतिचंडिकाम् ॥ २४ ॥ स्वाहास्वधानाममनुप्रभावैस्तृप्यंतिदेवाःपितरस्तथैव ॥ यज्ञेषुसर्वेषुमुदाहरंतियन्नामयुग्मश्रुतिभिर्मुनींद्राः ॥ २५ ॥ यस्येच्छयासृजतिविश्वमिदंप्रजेशोनानावतारकलनंकुरुतेहरिश्च ॥ नूनंकरोतिजगतः किलभस्मशंभुस्तांशर्मदांनभजतेनुकथंमनुष्यः ॥ २६ ॥ नैकोऽस्तिसर्वभुवनेषुतयाविहीनोदेवोनरोऽथविहगःकिलपन्नगोवा ॥ गंधर्वराक्षसपिशाचनगेषुनूनंयःस्पंदितुंभवतिशक्तियुतोयथेच्छम् ॥ २७ ॥

वरुण सूर्य सर्वार्थकी प्राप्तिके निमित्त प्रसन्न होकर ध्यान करते हैं ! मनुष्य उस चण्डिकादेवीका भजन क्यों नहीं करते ॥ २४ ॥ सब यज्ञोंमें स्वाहा और [illegible]के नामसेही सब देवता पितर तृप्त होते हैं. और बड़े मुनि प्रसन्न होकर सब यज्ञोंमें यही नाम उच्चारण करते हैं ॥ २५ ॥ जिसकी इच्छासे प्रजापति इस सहित [illegible]चनाकरते भगवान् हरि अनेक अवतार धारण करते हैं अन्तमें शंकर सबका लय करते हैं उस कल्याणदायिनीका मनुष्य क्यों नहीं भजन करते हैं [illegible]रतने माताक[illegible]र्गोमें भगवतीके विना देवता मनुष्य विहंग सर्प गंधर्व राक्षस पिशाच नग (पर्वत) ऐसा नहीं है जो उसकी शक्तिके विना स्पन्दित होनेको समर्थ हो॥ २७॥

यह वचन सुनकर वह वैश्य उस ब्राह्मणको गुरु करके माया बीजको ग्रहणकरता हुआ ॥ ५४ ॥ और परमभक्तिसे नवरात्रतक जप करता हुआ
[अ]नेक प्रकारके उपहारोंसे आदरसे पूजता हुआ ॥ ५५ ॥ इस प्रकार नौवर्षतक मायाबीजमें परायण हुए नौवें वर्षके अन्तमें महाअष्टमीको भगवतीने ॥ ५६ ॥
[आ]धीरातको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अनेक वरदानसे उसको कृतकृत्यकिया ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः
॥ २७ ॥ जन्मेजय बोले रामचंद्रने किस प्रकार देवीका व्रत किया, वह कैसे राज्यभ्रष्ट हुए और कैसे सीता हरण हुआ ॥ १ ॥ व्यासजी बोले ! श्रीमान् राजा दशरथ

॥ व्यासउवाच ॥ इतिविप्रवचःश्रुत्वासवैश्यस्तंद्विजंगुरुम् ॥ कृत्वाजग्राहसन्मंत्रंमायाबीजाभिधंनृप ॥ ५४ ॥ जजापपरयाभक्त्यानवरात्रमतंद्रितः ॥
नानाविधोपहारैश्चपूजयामाससादरम् ॥ ५५ ॥ नवसंवत्सरंचैवमायाबीजपरायणः ॥ नवमेवत्सरांतेतुमहाष्टम्यांमहेश्वरी ॥ ५६ ॥ अर्धरात्रेतुसंजाते
प्रत्यक्षंदर्शनंददौ ॥ नानावरप्रदानैश्चकृतकृत्यंचकारतम् ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥
जनमेजयउवाच ॥ कथंरामेणतच्चीर्णंव्रतंदेव्याःसुखप्रदम् ॥ राज्यभ्रष्टःकथंसोऽथकथंसीताहृतापुनः ॥१॥ व्यासउवाच ॥ राजादशरथःश्रीमानयोध्याधि
पतिःपुरा ॥ सूर्यवंशवरश्चासीद्देवब्राह्मणपूजकः ॥ २ ॥ चत्वारोजज्ञिरेतस्यपुत्रालोकेषुविश्रुताः ॥ रामलक्ष्मणशत्रुघ्नाभरतश्चेतिनामतः ॥ ३ ॥ राज्ञः
प्रियकराःसर्वेसदृशागुणरूपतः ॥ कौसल्यायाःसुतोरामःकैकेय्याभरतःस्मृतः ॥ ४ ॥ सुमित्रातनयौजातौयमलौद्वौमनोहरौ ॥ तेजातावैकिशोराश्चधनु
र्बाणधराःकिल ॥ ५ ॥ सूनवःकृतसंस्काराभूपतेःसुखवर्धकाः ॥ कौशिकेनतदाऽऽगत्यप्रार्थितोरघुनंदनः ॥ ६ ॥ राघवंमखरक्षार्थंसूनुंषोडशवार्षिकम् ॥
तस्मैसोऽयंददौरामंकौशिकायसलक्ष्मणम् ॥ ७ ॥ तौसमेत्यमुनिंमार्गेजग्मतुश्चारुदर्शनौ ॥ ताटकानिहतामार्गेराक्षसीघोरदर्शना ॥ ८ ॥

अयोध्याके पति थे, यह सूर्यवंशमें श्रेष्ठ देवता और ब्राह्मणोंके पूजक थे ॥ २ ॥ इनके लोकविख्यात चार पुत्र हुए, जिनके राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, नाम थे ॥ ३ ॥
यह अपने गुणरूपमें समान सब राजाके प्रिय करनेवाले थे कौशल्याके पुत्र राम कैकयीके भरत थे ॥ ४ ॥ सुमित्राके दो पुत्र बडे मनोहर हुए,वे किशोर अवस्थामें
धनुष बाण धारण करनेवाले थे ॥ ५ ॥ यह संस्कार कियेहुए राजाके सुख बढाने वाले थे तब विश्वामित्रने आनकर रामचन्द्रको माँगा ॥ ६ ॥ यज्ञकी रक्षा करनेको
माँगा, जब कि यह सोलहवर्षके लगभग थे राजाने विश्वामित्रको लक्ष्मण सहित रामको दिया ॥ ७ ॥ वे सुन्दर दर्शनवाले मुनिके सहित मार्गमें जाते हुए, मार्गमें घोर

दर्शनवाली ताडकाको वध किया ॥ ८ ॥ उस मुनियोंके ुःख देनेवालीको रामने एकही बाणसे मारडाला, आश्रममें जाकर यज्ञकी रक्षा की, सुबाहु दैत्यको मारा ॥ ९ ॥ और मारी
चकोभी मृतककी समान बाणवेगसे दूर फेंकदिया, इसप्रकार यज्ञपरिरक्षणरूप महत्कर्म करके ॥ १० ॥ राम और लक्ष्मण विश्वामित्रके साथ मिथिलामें आये, शापसे अहल्याको
मुक्तकर उसको निष्पाप किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार मुनिके साथ वह विदेहनगरमें प्राप्तहुए और पणीभूत जनकके स्थापित शिवधनुका भंग किया ॥ १२ ॥ और
लक्ष्मीके अंशसे प्रगट जानकीको वरण किया और अपनी और सुपुत्री उर्मिलाको राजाने लक्ष्मणसे विवाहदिया ॥ १३ ॥ इसी प्रकार दोनों भाइयोंने कुशध्वजकी
कन्याओंको प्राप्तकिया. यह सुशील भरत और शत्रुघ्नको विवाहीगई ॥ १४ ॥ इसप्रकार मिथिलापुरीमें विधिपूर्वक चारों भाइयोंकी दारक्रिया हुई ॥ १५ ॥ घर

रामेणैकेनबाणेनमुनीनांदुःखदासदा ॥ यज्ञरक्षाकृतातत्रसुबाहुर्निहतःशठः ॥ ९ ॥ मारीचोऽथमृतप्रायोनिक्षिप्तोबाणवेगतः ॥ एवंकृत्वामहत्कर्मयज्ञस्यपरिर
क्षणम् ॥ १० ॥ गतास्तेमिथिलांसर्वेरामलक्ष्मणकौशिकाः ॥ अहल्यामोचिताशापान्निष्पापासाकृताऽबला ॥ ११ ॥ विदेहनगरेतौतुजग्मतुर्मुनिनासह ॥
बभंजशिवचापंचजनकेनपणीकृतम् ॥ १२ ॥ उपयेमेततःसीतांजानकींचरमांशजाम् ॥ लक्ष्मणायददौराजापुत्रीमेकांतथोर्मिलाम् ॥ १३ ॥ कुशध्वज
सुतेकन्येप्रापतुर्भ्रातराबुभौ ॥ तथाभरतशत्रुघ्नौसुशीलौशुभलक्षणौ ॥ १४ ॥ एवंदारक्रियास्तेषांभ्रातॄणांचाभवन्नृप ॥ चतुर्णांमिथिलायांतुयथाविधिवि
धानतः ॥ १५ ॥ राज्ययोग्यंसुतंदृष्ट्वाराजादशरथस्तदा ॥ राघवायधुरंदातुंमनश्चक्रेनिजायवै ॥ १६ ॥ संभारंविहितंदृष्ट्वाकैकेयीपूर्वकल्पितौ ॥ वरौ
संप्रार्थयामासभर्तारंवशवर्तिनम् ॥ १७ ॥ राज्यंसुतायचैकेनभरतायमहात्मने ॥ रामायवनवासंचचतुर्दश समास्तथा ॥ १८ ॥ रामस्तुवचनात्तस्याः
सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ जगामदंडकारण्यंराक्षसैरुपसेवितम् ॥ १९ ॥ राजादशरथःपुत्रविरहेणप्रपीडितः ॥ जहौप्राणानमेयात्मापूर्वशापमनुस्मरन् ॥
॥ २० ॥ भरतःपितरंदृष्ट्वामृतंमातृकृतेनवै ॥ राज्यमृद्धंनजग्राहभ्रातुःप्रियचिकीर्षया ॥ २१ ॥ पंचवट्यांवसन्रामोरावणावरजांवने ॥ शूर्पणखांविरूपांवै
चकारातिस्मरातुराम् ॥ २२ ॥

आकर राजा दशरथने रामचंद्रको राज्यके योग्य देखकर उनको राज्य देनेका विचार किया ॥ १६ ॥ उस संभारको होता देखकर कैकयीने अपने पूर्वकल्पित दो वरोंको
अपने वशवर्ती राजासे मांगा ॥ १७ ॥ एकसे भरतको राज्य और दूसरेसे रामको १४ वर्षका वनवास ॥ १८ ॥ रामचंद्र इस प्रकार माताके वचनसे सीता लक्ष्मणके
सहित राक्षसोंसे भरे दण्डकवनको गये ॥ १९ ॥ इधर अमेयात्मा राजा दशरथ पुत्रके विरहसे पीडित हो श्रवणका शाप स्मरणकर प्राण त्यागनकरतेहुए ॥ २० ॥
भरतने माताकी करतूतसे पिताको मृतक देख रामके प्रियकी इच्छासे समृद्ध राज्यको ग्रहण न किया ॥ २१ ॥ इधर पंचवटीमें रहतेहुए रामने रावणकी बहन कामसे

व्याकुल शूर्पणखाको विरूप करदिया ॥ २२ ॥ उसकी छिन्ननासिका देखकर खरादिराक्षस महातेजस्वी रामसे बड़ा संग्राम करनेलगे ॥ २३ ॥ रामने बड़े बली खरादिराक्षसोंका वध किया और सत्यपराक्रमी रामने मुनियोंके हितकी इच्छा की ॥ २४ ॥ तब दूषितहुई शूर्पणखाने लंकामें जाकर रावणसे रामद्वारा खरदूषणका वध सुनाया ॥ २५ ॥ वह दुष्टभी शूर्पणखासे खरादिका विनाश सुनकर बड़ाक्रोधित हुआ और रथपर चढकर मारीचके आश्रमपर गया ॥ २६ ॥ और सुवर्णका मृग करके उसे रामके आश्रममें भेजा, वह मायावी सीताके लुभानेको चला ॥ २७ ॥ वह मायावी चित्रविचित्र अंगवाला सोनेका मृग बनकर सीताके सन्मुख हुआ और समीपमें विचरनेलगा ॥ २८ ॥ उसे देख दैवसे प्रेरित हो जानकी रामसे बोली, जैसे स्वाधीनपतिका बोलतीहै हेकान्त आप इसका चर्मलाइये॥ २९ ॥

खरादयस्तुतांदृष्ट्वाछिन्ननासांनिशाचराः ॥ चक्रुःसंग्राममतुलंरामेणामिततेजसा ॥ २३ ॥ सजघानखरादींश्चदैत्यानतिबलान्वितान् ॥ मुनीनां हितमन्विच्छन्रामःसत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥ गत्वाशूर्पणखालंकांखरदूषणघातनम् ॥ दूषिताकथयामासरावणायचराघवात् ॥ २५ ॥ सोऽपि श्रुत्वाविनाशंतंजातःक्रोधवशःखलः ॥ जगामरथमारुह्यमारीचस्याऽऽश्रमंतदा ॥ २६ ॥ कृत्वाहेममृगंनेतुंप्रेषयामासरावणः ॥ सीताप्रलोभनार्थायमायाविनमसंभवम् ॥ २७ ॥ सोऽथहेममृगोभूत्वासीतादृष्टिपथंगतः ॥ मायावीचातिचित्रांगश्चरन्प्रबलमंतिके ॥ २८ ॥ तंदृष्ट्वाजानकीप्राह राघवंदैवनोदिता ॥ चर्मानयस्वकांतेतिस्वाधीनपतिकायथा ॥ ॥ २९ ॥ अविचार्याथरामोऽपितत्रसंस्थाप्यलक्ष्मणम् ॥ सशरंधनुरादायययौमृगपदानुगः ॥ ३० ॥ सारंगोऽपिहरिंदृष्ट्वामायाकोटिविशारदः ॥ दृश्यादृश्योबभूवाथजगामचवनांतरम् ॥ ३१ ॥ मत्वाहस्तगतंरामःक्रोधाकृष्टधनुःपुनः ॥ जघानचातितीक्ष्णेनशरेणकृत्रिमंमृगम् ॥ ३२ ॥ सहतोतिबलात्तेनचुक्रोशभृशदुःखितः ॥ हालक्ष्मणहतोऽस्मीतिमायावीनश्वरःखलः ॥ ३३ ॥ सशब्दस्तुमुलस्तावज्जानक्यासंश्रुतस्तदा ॥ राघवस्येतिसामत्वादीनादेवरमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ गच्छलक्ष्मणतूर्णंत्वंहतोऽसौरघुनंदनः ॥ त्वामाह्वयतिसौमित्रेसाहाय्यं कुरुसत्वरम् ॥ ३५ ॥

रामभी कुछ विचार न करके वहां लक्ष्मणको स्थापनकर शर और धनु लेकर मृगके पीछे हुए ॥ ३० ॥ वह मृगभी भगवान्को देखकर अनेक मायामें चतुर दीखता अन्तर्हित होता इस वनसे उस वनमें गया ॥ ३१ ॥ फिर रामचन्द्रने उसको अपने धनुषके मार्गमें प्राप्तहुआ जान क्रोधसे धनुष चढाय उस तीक्ष्ण बाणसे कृत्रिम मृगको मारा ॥ ३२ ॥ वह बलपूर्वक मरतेसमय दुःखसे शब्द करनेलगा, हा लक्ष्मण ! मैं मरा ऐसा उस मायावी दुष्टने शब्द किया ॥ ३३ ॥ वह तुमुल शब्द जानकीने सुन और उसे रामका मानकर दुःखी हो देवरसे बोली ॥ ३४ ॥ हे लक्ष्मण ! बहुत शीघ्र जाओ रघुनन्दनपर कष्ट है, तुमको बुलाते हैं शीघ्र सहायता करो ॥ ३५ ॥

तब लक्ष्मण बोले हे माता ! मैं तो यहांसे रामके हतहोनेपरभी असहाय आश्रममें तुमको छोड़ नहींजासक्ता, फिर इस मायाके शब्दसे तो कैसे छोडकर चलाजाऊं ॥ ३६ ॥ हे माता ! मुझे रामचन्द्रकी यहां रहनेकी आज्ञा है, उसको त्यागके डरसे मैं तुमको नहीं छोड़सक्ता ॥ ३७ ॥ मैंने देखा कि, वह मायावी दैत्य रामको दूर लेगया है, हे शुचिस्मिते ! मैं तुमको छोड़कर एक पदभी नहीं जासक्ता ॥ ३८ ॥ तुम धैर्य धारणकरो रामको मारनेवाला कोईभी पृथ्वीपर नहीं है, रामके कथनको उल्लंघनकर मैं तुमको छोड़कर नहीं जासक्ता॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले, तब वह सुदती विधातासे प्रेरित हो सरल होकरभी रोतीहुई शुभलक्षणवाले लक्ष्मणसे क्रूर वचन बोली ॥ ४० ॥ हे लक्ष्मण ! मैं जान्ती हूं तुम मुझमें अनुराग करते हो, मेरे निमित्तही तुमको भरतने भेजदिया है ॥ ४१ ॥ हे अश्रेष्ठ ! मैं कुलटा नारी नहीं हूं रामके न रहनेपर मैं कामसे

तत्राऽऽहलक्ष्मणःसीतामंवरामवधादपि ॥ नाहंगच्छेऽद्यमुक्त्वात्वामसहायामिहाश्रमे ॥ ३६ ॥ आज्ञामेराघवस्यात्रतिष्ठेतिजनकात्मजे ॥ तद तिक्रमभीतोऽहंनत्यजामितवांतिकम् ॥ ३७ ॥ हृतंवैराघवंद्दष्ट्वावनेमायाविनाकिल ॥ त्यक्त्वात्वांनाधिगच्छामिपदमेकंशुचिस्मिते ॥ ३८ ॥ कुरुधैर्यंनमन्येऽद्यरामंहंतुंक्षमंक्षितौ ॥ नाहंत्यक्त्वागमिष्यामिविलंघ्यरामभाषितम् ॥ ३९ ॥ व्यासउवाच ॥ रुदतीसुदतीप्राहतंतदाविधिनोदिता ॥ अक्रू रावचनंक्रूरंलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ ४० ॥ अहंजानामिसौमित्रेसानुरागंचमांप्रति ॥ प्रेरितंभरतेनैवमदर्थमिहसंगतम् ॥ ४१ ॥ नाहंतथाविधानारीस्वैरि णीकुहकाधम ॥ मृतेरामेपतिंत्वांनकर्तुमिच्छामिकामतः ॥ ४२ ॥ नागमिष्यतिचेद्रामोजीवितंसंत्यजाम्यहम् ॥ विनातेननजीवामिविधुरादुःखिताभृश म् ॥ ४३ ॥ गच्छवातिष्ठसौमित्रेनजानेऽहंतवेप्सितम् ॥ क्वगतंतेऽत्रसौहार्दंज्येष्ठेधर्मरतेकिल ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यालक्ष्मणोदीनमानसः ॥ प्रोवा चरुद्धकंठस्तुतांतदाजनकात्मजाम् ॥ ४५ ॥ किमात्थक्षितिजेवाक्यंमयिक्रूरतरंकिल ॥ किंवदस्यत्यनिष्टंतेभाविजानेधियाह्यहम् ॥ ४६ ॥ इत्युक्त्वा निर्ययौवीरस्तांत्यक्त्वाप्ररुदन्भृशम् ॥ अग्रजस्ययथौपश्यञ्छोकार्तःपृथिवीपते ॥ ४७ ॥

अन्य पति नहीं करसक्ती ॥ ४२ ॥ यदि रघुनाथ न आवेंगे तो अभी शरीर त्यागन करूंगी, उनके विना विधुरा दुःखी होकर मैं नहीं जिऊंगी ॥ ४३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम रहो वा जाओ, मैंने तुम्हारी इच्छा न जानी, वह जो ज्येष्ठभ्रातामें तुम्हारा सौहार्द धर्मपूर्वक था सो कहाँ गया ? ॥ ४४ ॥ जानकीके यह वचन सुन लक्ष्मण अतिदीन मनसे गद्गदकंठ हो जानकीसे बोले ॥ ४५ ॥ हे भूमिजे ! यह अत्यन्त कठोर वचन हमसे क्यों कहती हो, ऐसा कहनेसे विदित होता है तुमपर कोई भारी अनिष्ट आनेवाला है ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! ऐसा कह वह वीर रोते हुए जानकीको छोड़ चलेगये और शोकार्त हो रामको देखनेको गये ॥ ४७ ॥

लक्ष्मणके जातेही वह कपटकी आकृतिवाला रावण भिक्षुका वेष धारण कर आश्रममें प्रविष्ट हुआ ॥ ४८ ॥ जानकीने उसको यति मान आदरसे वनसम्बन्धी अर्घ्य देकर दुरात्मा रावणके निमित्त भिक्षा समर्पणकी ॥ ४९ ॥ वह दुष्टात्मा नम्रतापूर्वक उनसे पूँछने लगा, हे पद्मपलाशाक्षि ! तुम कौन हो और हे प्रिये ! यहां वनमें इकली क्यों ? ॥ ५० ॥ हे वामोरु ! तुम्हारे पिता भ्राता और पति कौन हैं हे वरवर्णिनि ! यहां तुम मूढ (मार्गभ्रष्ट) की समान स्थित हो ॥ ५१ ॥ हे प्रिये ! तुम महलमें रहने योग्यहो सो इस निर्जनवनमें पर्णशालामें मुनिपत्नीकी समान क्यों स्थित हो तुम्हारी देव कन्याके समान कांति है॥ ५२ ॥ व्यासजी बोले यह वचनसुनकर जानकी उस मन्दोदरीके पतिको प्रारब्धवश यति मान्ती हुई बोली ॥ ५३ ॥ श्रीमान् महाराजा दशरथ अयोध्याके राजा हैं उनके चार पुत्र हैं उनमें बड़े पुत्र रामचन्द्रजी

गतेऽथलक्ष्मणेतत्ररावणःकपटाकृतिः ॥ भिक्षुवेषंततःकृत्वाप्रविवेशतदाश्रमे ॥ ४८ ॥ जानकीतंयतिंमत्वादत्वार्घंवन्यमादरात् ॥ भैक्ष्यंसमर्पयामासरावणायदुरात्मने ॥ ४९ ॥ तांपप्रच्छसदुष्टात्मानम्रपूर्वंमृदुस्वरम् ॥ काऽसिपद्मपलाशाक्षिवनेचैकाकिनीप्रिये ॥ ५० ॥ पिताकस्तेऽथवामोरुभ्राताकः कःपतिस्तव ॥ मूढेवैकाकिनीचात्रस्थिताऽसिवरवर्णिनि ॥ ५१ ॥ निर्जनेविपिनेकिंत्वंसौधार्हात्वमासिप्रिये ॥ उटजेमुनिपत्नीवदेवकन्यासमप्रभा॥५२॥ व्यासउवाच ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वाप्रत्युवाचविदेहजा ॥ दिव्यंदिष्टचायतिंज्ञात्वामंदोदर्याः पतिंतदा ॥ ५३ ॥ राजादशरथःश्रीमांश्चत्वारस्तस्यवैसुताः ॥ तेषांज्येष्ठःपतिर्मेऽस्तिरामनामेतिविश्रुतः ॥ ५४ ॥ विवासितोऽथकैकेय्याकृतेभूपतिनावरे ॥ चतुर्दशसमारामोवसतेऽत्रसलक्ष्मणः ॥ ५५ ॥ जनकस्य सुताचाहंसीतानाम्नीतिविश्रुता ॥ भंक्त्वाशैवंधनुःकामंरामेणाहंविवाहिता ॥ ५६ ॥ रामबाहुबलेनात्रवसामोनिर्भयावने ॥ कांचनंमृगमालोक्यहंतुंमेनिर्गतः पतिः ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणोऽपिपुनःश्रुत्वारवंभ्रातुर्गतोऽधुना ॥ तयोर्बाहुबलादत्रनिर्भयाऽहंवसामिवै ॥ ५८ ॥ मयेदंकथितंसर्ववृत्तांतंवनवासके ॥ तेऽत्रागत्यार्हणांतेवैकरिष्यंतियथाविधि ॥ ५९ ॥ यतिर्विष्णुस्वरूपोऽसितस्मात्त्वंपूजितोमया ॥ आश्रमोविपिनेघोरेकृतोऽस्तिरक्षसांकुले ॥ ६० ॥

मेरे पति हैं ॥ ५४ ॥ उन राजाने कैकयीके निमित्त इनको वनमें भेजदिया है और वह लक्ष्मणके साथ चौदहवर्ष वनमें रहेंगे ॥ ५५ ॥ मैं सीतानामक जनकपुत्री हूं शिवका धनुष तोडकर रामने मुझे विवाहा है ॥ ५६ ॥ मैं रामके बाहुबलसे इस वनमें निर्भय निवास करती हूं सुवर्णका मृग देख हमारे पति उसे मारने गये हैं ॥ ५७ ॥ और लक्ष्मण भी भ्राताका शब्द सुनकर अभी गये हैं इन दोनोंहीके भुजबलसे मैं यहां रहती हूं ॥ ५८ ॥ मैंने यह सब अपने वनवासका वृत्तान्त कहा, और भ्रातासहित हमारे स्वामी आकर तुम्हारा सत्कार करेंगे ॥ ५९ ॥ यति विष्णु स्वरूप है, इस कारण मैंने तुम्हारा पूजन किया, हमने राक्षसोंसे आकुल घोरवनमें

आश्रम किया ॥ ६० ॥ इस कारण मैं तुमसे पूँछती हूं, मेरे समान सत्य कहो तुम त्रिदंडीके रूपसे वनमें क्यों विचरतेहो ? ॥ ६१ ॥ रावण बोला हे अरालाक्षि ! मैं लंकेश मन्दोदरीपति हूं. हे शोभने ! तुम्हारेही निमित्त मैंने यह यतिका रूप बनाया है ॥ ६२ ॥ हे वरारोहे ! बहिनीकी प्रेरणासे मैं यहां आया हूं, जब सुना कि जनस्थानमें खर और दूषण मृतक होगये ॥ ६३ ॥ इन मानुषपतिको छोड़कर मुझ राजाको अपना पति बनाओ, तुम्हारे पति राज्यलक्ष्मीसे हीन होकर निर्बल वनवासी हैं ॥ ६४ ॥ तुम मन्दोदरीके ऊपर मेरी पटरानी हो, हे तन्वंगी ! मैं तुम्हारा दास हूं, तुम मेरी स्वामिनी हो ॥ ६५ ॥ मैं लोकपालोंका जीतनेवाला तुम्हारे चरणोंमें पड़ता हूं. हे जानकी ! तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे सनाथ करो ॥६६॥ मैंने पहले तुमको तुम्हारे पितासेभी माँगा था, पर जनकने कहा मैंने पण

तस्मात्त्वांपरिपृच्छामिसत्यंब्रूहिममाग्रतः ॥ कोऽसित्रिदंडिरूपेणविपिनेत्वंसमागतः ॥६१॥ रावणउवाच ॥ लंकेशोऽहंमरालाक्षिश्रीमान्मंदोदरीपतिः ॥ त्वत्कृतेतुकृतंरूपंमयेत्थंशोभनाकृते ॥ ६२ ॥ आगतोऽहंवरारोहेभगिन्याप्रेरितोऽत्रवै ॥ जनस्थानेहतौश्रुत्वाभ्रातरौखरदूषणौ ॥ ६३॥ अंगीकुरुनृपंमां त्वंत्यक्तातंमानुषंपतिम् ॥ हृतराज्यंगतश्रीकंनिर्बलंवनवासिनम् ॥ ६४ ॥ पट्टराज्ञीभवत्वंमेमंदोदर्युपरिस्फुटम् ॥ दासोऽस्मितवतन्वंगिस्वामिनीभवभा मिनि ॥६५॥ जेताऽहंलोकपालानांपतामितवपादयोः ॥ करंगृहाणमेऽद्यत्वंसनाथंकुरुजानकि ॥६६ ॥ पितातेयाचितःपूर्वंमयावैत्वत्कृतेऽबले ॥ जनको मामुवाचेत्थंपणबंधोमयाकृतः ॥ ६७ ॥ रुद्रचापभयान्नाहंसंप्रातस्तुस्वयंवरे ॥ मनोमेसंस्थितंतावन्निमग्नंविरहातुरम् ॥ ६८॥ वनेऽत्रसंस्थितांश्रुत्वापूर्वा नुरागमोहितः ॥ आगतोऽस्म्यसितापांगिसफलंकुरुमेश्रमम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेअष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ तदाकर्ण्यवचोदुष्टंजानकीभयविह्वला ॥ वेपमानास्थिरंकृत्वामनोवाचमुवाचह ॥ १ ॥ पौलस्त्यकिमसद्वाक्यंत्वमात्थस्मरमोहितः ॥ नाहंवैस्वैरिणीकिंतुजनकस्यकुलोद्भवा ॥ २ ॥ गच्छलंकांदशास्यत्वंरामस्त्वांवैहनिष्यति ॥ मत्कृतेमरणंतत्रभविष्यतिनसंशयः ॥ ३ ॥

लगाया है ॥ ६७ ॥ तब रुद्रचापके भयसे मैं स्वयंवरमें नहीं गया, पर मेरा मन तुममेंही स्थित है मैं विरहातुर हो रहा हूं ॥ ६८ ॥ इस वनमें तुम्हारा रहना सुनकर पूर्व अनुरागसे मोहित हुआ मैं हे अनवद्यअंगवाली ! यहां आया हूं तुम मेरा श्रम सफल करो ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले यह दुष्टवचन सुनतेही जानकी भयसे विह्वल होगई और काँप गई फिर मनको स्थिर कर वचन बोली ॥ १ ॥ हे पुलस्त्यकी सन्तान ! कामसे मोहित हो क्यों असत्य वचन बोलते हो ? मैं स्वैरिणी स्त्री नहीं किन्तु जनकके कुलमें उत्पन्न हूं ॥ २ ॥ हे रावण ! तुम लंकाको चले जाओ नहीं तो रामचन्द्र तुमको मारेंगे,

और मेरे निमित्त तुम्हारा मरण होगा; इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर जानकी पर्णशालामें अग्निके समीप चलीगई और लोकोंके डरानेवाले रावणसे कहा जा जा॥ ४॥तब रावण अपना रूप प्रगट कर कुटीके समीप गया तब भयसे व्याकुल रोती हुई उस बालाको उसने बलसे ग्रहण किया॥ ५॥उस समय राम२ लक्ष्मण२ ऐसा कहती हुई रोनेलगी और पापी उनको रथमें बैठाय ले चला ॥ ६ ॥ मार्गमें जाते अरुणपुत्र जटायुने उसको रोंका, उन दोनोंका वनान्तरमें बड़ा संग्राम हुआ ॥ ७ ॥ वह राक्षस जटायुको मार जानकीको लेगया, वह कुररीकी समान रुदन करती लंकाको गई ॥ ८॥ राक्षसियोंके पहरेमें अशोकवाटिकामें रावणने स्थापित की और सामदानादिके प्रयोगसे भी वह अपने चरित्रसे चलायमान न हुई ॥ ९ ॥ रामचंद्र भी उस दैत्यको मारकर लौटे और लक्ष्मणको आता देखकर बोले हेअनुज!

इत्युक्त्वापर्णशालायांगतासावह्निसन्निधौ ॥ गच्छगच्छेतिवदतीरावणंलोकरावणम् ॥ ४॥ सोऽथकृत्वानिजंरूपंजगामोटजमंतिकम् ॥ बलाज्जग्राहतां बालांरुदतींभयविह्वलाम् ॥५॥ रामरामेतिक्रंदंतींलक्ष्मणेतिमुहुर्मुहुः ॥ गृहीत्वानिर्गतःपापोरथमारोप्यसत्वरः ॥ ६ ॥ गच्छन्नरुणपुत्रेणमार्गेरुद्धोजटायुषा ॥ संग्रामोऽभून्महारौद्रस्तयोस्तत्रवनांतरे ॥७॥ हत्वातंतांगृहीत्वाचगतोऽसौराक्षसाधिपः ॥ लंकायांक्रंदतीतातकुररीवदुरात्मना ॥८॥ अशोकवनिकायांसास्थापितारक्षसीयुता ॥ स्ववृत्तान्नैवचलितासामदानादिभिःकिल॥९॥रामोऽपितंमृगंहत्वाजगामाऽऽदायनिर्वृतः॥ आयांतंलक्ष्मणंवीक्ष्यकिंकृतंतेऽनुजासमम् ॥१०॥ एकाकिनींप्रियांहित्वाकिमर्थंत्वमिहागतः ॥ श्रुत्वास्वनंतुपापस्यराघवस्त्वब्रवीदिदम् ॥ ११ ॥ सौमित्रिस्त्वब्रवीद्वाक्यंसीतावाग्बाणताडितः ॥ प्रभोऽत्राहंसमायातःकालयोगान्नसंशयः ॥ १२ ॥ तदातौपर्णशालायांगत्वावीक्ष्यातिदुःखितौ ॥ जानक्यन्वेषणेयत्नमुभौकर्तुंसमुद्यतौ ॥ १३ ॥ मार्गमाणौतुसंप्राप्तौयत्रासौपतितःखगः ॥ जटायुःप्राणशेषस्तुपतितःपृथिवीतले ॥ १४ ॥ तेनोक्तंरावणेनाद्यहृताऽसौजनकात्मजा ॥ मया निरुद्धःपापात्मापातितोऽहंमृधेपुनः ॥ १५ ॥

यह तुमने क्या विषम बातकी ? ॥ १० ॥ इकली प्रियाको छोड़कर तुम यहाँ कैसे आये? क्या उस पापीका शब्द सुनकर आगये ? यह रामने कहा ॥ ११॥ लक्ष्मण बोले हे प्रभो ! मैं सीताके वाग्बाणसे पीडित होकर कालयोगसे यहां चलाआया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२॥ तब उन्होंने पर्णशालामें जाकर देखा तौ जानकी नहीं हैं, खाली आश्रम देखकर दुःखी हुए और दोनों जानकीके खोजनेका यत्न करनेलगे ॥ १३ ॥ खोजते २ वहां आये जहां वह पक्षी पतित हुआ था.उस समय पृथ्वीपर पड़े जटायुके प्राणमात्र शेष थे॥ १४॥उसने कहा जानकीको रावण हरकर लेगया. मैंने उस पापात्माको युद्धमें रोका, सो वह मुझे मारगया ॥ १५ ॥

ऐसा कहनेपर उसके प्राण निकलगये, रामचन्द्रने उसका और्ध्वदेहिक संस्कार कर लक्ष्मणसहित आगे गमन किया ॥ १६ ॥ और कबंधको मारकर उसे शापसे मुक्तकिया. उसके वचनसे रामने सुग्रीवसे मित्रता की ॥ १७ ॥ रामचन्द्रने वीर वालीको मारकर किष्किंधाका राज्य जानकीके लानेकी प्रतिज्ञासे सुग्रीवको दिया ॥ १८ ॥ वहीं प्रवर्षणपर आप लक्ष्मणसहित वर्षके चार महीने रहे और रावणसे हरीहुई जानकीको चित्तमें विचारतेरहे ॥ १९ ॥ सीताके विरहसे पीडित हुए राम लक्ष्मणसे बोले हे लक्ष्मण ! अब कैकेयी पूर्णमनोरथ हुई ॥ २० ॥ यदि जानकी न मिली तो मैं उनके विना न जिऊंगा जानकीके विना मैं अयोध्या न जाऊंगा ॥ २१ ॥ राज्य गया, वनमें, वासकरना पड़ा, पिताका मरण और प्रियाकाहरण हुआ, वह दुष्टात्मा दैव मुझको पीडित करता है जाने आगे दैव क्या करैगा ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण !

इत्युक्त्वाऽसौगतप्राणःसंस्कृतोराघवेणवै ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकंरामलक्ष्मणौनिर्गतौततः ॥ १६ ॥ कवंधंघातयित्वासौशापाच्चामोचयत्प्रभुः ॥ वचनात्तस्यहरिणासख्यंचक्रेऽथराघवः ॥ १७ ॥ हत्वाचवालिनंवीरंकिष्किंधाराज्यमुत्तमम् ॥ सुग्रीवायददारामःकृतसंख्यायकार्यतः ॥ १८ ॥ तत्रैववार्षिकान्मासांस्तस्थौलक्ष्मणसंयुतः ॥ चिंतयञ्जानकींचित्तेदशाननहृतांप्रियाम् ॥ १९ ॥ लक्ष्मणंप्राहरामस्तुसीताविरहपीडितः ॥ सौमित्रेकैकयसुताजातापूर्णमनोरथा ॥ २० ॥ नप्राप्ताजानकीनूनंनाहंजीवामितांविना ॥ नागमिष्याम्ययोध्यायामृतेजनकनंदिनीम् ॥ २१ ॥ गतंराज्यंवनेवासोमृतस्तातोहृताप्रिया ॥ पीडयन्मांसदुष्टात्मादैवोग्रेकिंकरिष्यति ॥ २२ ॥ दुर्ज्ञेयंभवितव्यंहिप्राणिनांभरतानुज ॥ आवयोःकागतिस्तातभविष्यतिसुदुःखदा ॥ २३ ॥ प्राप्यजन्ममनोर्वंशेराजपुत्रावुभौकिल ॥ वनेऽतिदुःखभोक्तारौजातौपूर्वकृतेनच ॥ २४ ॥ त्यक्त्वात्वमपिभोगांस्तुमयासहविनिर्गतः ॥ दैवयोगाच्चसौमित्रेभुंक्ष्वदुःखंदुरत्ययम् ॥ २५ ॥ नकोप्यस्मत्कुलेपूर्वमत्समोदुःखभाङ्नरः ॥ अकिंचनोऽक्षमःक्लिष्टोनभूतोनभविष्यति ॥ २६ ॥ किंकरोम्यद्यसौमित्रेमग्नोऽस्मिदुःखसागरे ॥ नचास्तितरणोपायोह्यसहायस्यमेकिल ॥ २७ ॥ नवित्तंनबलंवीरत्वमेकःसहचारकः ॥ कोपंकस्मिन्करोम्यद्यभोगेऽस्मिन्स्वकृतेनुज ॥ २८ ॥ गतंहस्तगतंराज्यंक्षणादिंद्रसभोपमम् ॥ वनेवासस्तुसंप्राप्तःकोवेदविधिनिर्मितम् ॥ २९ ॥

प्राणियोंको भवितव्य नहीं जाना जाता, हे तात ! न जाने दुःखरूप हमारी क्या गति होगी? ॥ २३ ॥ हम दोनों राजपुत्र मनुके वंशमें जन्म प्राप्त कर अपने पूर्वकृतके अनुसार वनमें दुःखभागी हुए ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! तुमभी दैवयोगसे भोग छोड़कर मेरे साथ चले आये, अब दुःख भोगो ॥ २५ ॥ हमारे कुलमें हमारी समान कोई दुःखभागी न हुआ होगा, मुझसा अकिंचन निःक्षम न कोई हुआ न होगा ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण ! दुःखसागरमें मग्न हुआ मैं क्या करूं? मुझ असहायके तरनेका कोई उपाय नहीं है ॥ २७ ॥ हे वीर ! हमको धन और बल नहीं है आपही एक सहायक हो इस अपने कियेके भोगमें किसपर क्रोध करूं ? ॥ २८ ॥ क्षणमें इन्द्रकी

समान राज्य चलागया और वनवास प्राप्त हुआ विधाताकी विधि कौन जानसक्ता है? ॥ २९ ॥ बालभावसे जानकी भी हमारे साथ चली आई दुष्ट प्रारब्धने उसको कठिन दुःखमें प्राप्त करदिया ॥ ३० ॥ रावणके यहां उस अबलाको कितना दुःख हुआ होगा, वह पतिव्रता सुशीला मुझमें अधिक प्रीति करती है ॥ ३१ ॥ हे लक्ष्मण ! जानकी कभी रावणके वशीभूत न होगी, वह वरारोहा जनकात्मजा कभी स्वच्छन्दचारिणी न होगी ॥ ३२॥ बल करनेपर जानकी अवश्य प्राण त्यागदेगी, यह तो निश्चय है रावणके वशीभूत न होगी ॥ ३३ ॥ हे वीर ! यदि जानकी मरगई तो मैं अवश्य प्राण त्यागदूंगा, यदि वह न रही तो मेरे देहसे क्या होगा ? ॥ ३४॥ इस प्रकारसे विलाप करते कमललोचन रामसे धर्मात्मा लक्ष्मण समझाते मधुर वाणीसे बोले ॥ ३५॥ हे महाबाहो ! कातरताको छोड़कर धैर्य करो, मैं उस राक्षसाधमको मार

बालभावाच्चवैदेहीचलिताचावयोःसह ॥ नीतादैवेनदुष्टेनदशामादुःखतरांदशाम् ॥ ३० ॥ लंकेशस्यगृहेऽद्यामाकथंदुःखंभविष्यति ॥ पतिव्रतासुशीलाचमयिप्रीतियुताभृशम् ॥ ३१ ॥ नचलक्ष्मणवैदेहीसातस्यवशगाभवेत् ॥ स्वैरिणीववरारोहाकथंस्याज्जनकात्मजा ॥ ३२ ॥ त्यजेत्प्राणान्प्रियंतृत्वे मैथिलीभरतानुज ॥ नरावणस्यवशगाभवेदितिसुनिश्चितम् ॥ ३३ ॥ मृताचेज्जानकीवीरप्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ मृताचेदसितापांगीकिंमेदेहेनलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ एवंविलपमानंतंरामंकमललोचनम् ॥ लक्ष्मणःप्राहधर्मात्मासांत्वयन्नृतयागिरा ॥ ३५ ॥ धैर्यंकुरुमहाबाहोत्यक्त्वाकातरतामिह ॥ आनयिष्यामिवैदेहींहत्वातंराक्षसाधमम् ॥ ३६ ॥ आपदिसंपदितुल्याधैर्याद्भवंतितेधीराः ॥ अल्पधियस्तुनिमग्नाःकष्टेभवंतिविभवेऽपि ॥३७॥ संयोगो विप्रयोगश्चदैवाधीनावुभावपि ॥ शोकस्तुकीदृशस्तत्रदेहेनाऽऽत्मानिचक्वचित् ॥ ३८ ॥ राज्याद्यथावनेवासोवैदेह्याहरणंयथा ॥ तथाकालेसमीचीनेसंयोगोऽपिभविष्यति ॥ ३९ ॥ प्राप्तव्यंसुखदुःखानांभोगान्निर्वर्तनंक्वचित् ॥ नान्यथाजानकीजानेतस्माच्छोकंत्यजाधुना ॥ ४० ॥ वानराःसंतिभूयांसोगमिष्यंतिचतुर्दिशम् ॥ शुद्धिंजनकनंदिन्याआनयिष्यंतितेकिल ॥ ४१ ॥ ज्ञात्वामार्गस्थितिंतत्रगत्वाकृत्वापराक्रमम् ॥ हत्वातंपापकर्माणमानयिष्यामिमैथिलीम् ॥ ४२ ॥

कर जानकीको लाऊंगा ॥ ३६ ॥ आपत्ति और सम्पत्तिमें जो समानधीरतासे रहते हैं वही धीर हैं और अल्पबुद्धिवाले तो विभव होनेपरभी थोड़ेही कष्टमें व्याकुल होजाते हैं ॥ ३७ ॥ संयोग वियोग दोनोंही दैवाधीन हैं, जब यह देह आत्मा है ही नहीं तो शोक किस बातका है? ॥ ३८॥ राज्यसे जैसे वनवास और जानकीका हरण हुआ इसीप्रकार कुछ कालमें संयोगभी होगा ॥ ३९ ॥ हे जानकीके पति ! प्राप्त होनेवाले सुखदुःखोंका कभी निर्वर्तन नहीं होता; इस कारण तुम दुःख त्यागदो ॥ ४० ॥ सेनामें बड़े बन्दर हैं यह चारों दिशाओंको जायँगे, वे अवश्य जानकीकी सुधि लावेंगे ॥ ४१ ॥ मार्गकी स्थिति जानकर पूर्ण पराक्रम कर वहां जाय

उस पापकर्माको मार जानकीको लावेंगे ॥ ४२ ॥ अथवा सेनासहित भरत और शत्रुघ्नको बुलाकर हम शत्रुको मारेंगे हे स्वामिन् ! आप क्यों वृथा शोक धारण करते हो ॥ ४३ ॥ रघुने एकही रथसे सर्व दिशा जीती थीं, हे राघव ! उनके वंशमें प्रगट होकर आप क्यों शोक करतेहो? ॥ ४४ ॥ मैं इकलाही सब सुरअसुरोंके जीतनेमें समर्थ हूं, फिर आपकी सहायतायुक्त होकर कुलपांसु रावणका मारना क्या बड़ीबात है? ॥ ४५ ॥ हे रघुनन्दन ! अथवा जनकको हम सहायताको बुलावेंगे और सुरोंको कंटकरूप दुराचारी उसरावणको मारेंगे ॥ ४६ ॥ सुखके उपरान्त दुःख दुःखके उपरान्त सुखहोता है हेराम ! यह चक्रकी नेमिसे समान घुमते हैं ॥ ४७ ॥ जिसका मन बहुत कातर है यह दुःखसुखमें शोकसागरमें मग्न होजाता है और कभी सुखी नहीं होता ॥ ४८ ॥ हेराम ! एक समय इन्द्रको भी दुःख हुआ था उस समय सब देवताओंने इन्द्रके पदमें नहुषको स्थापित किया था ॥ ४९ ॥ और इन्द्र अपना पद त्यागकर अज्ञातवास करते हुए बहुत वर्षोंतक कमलनालमें रहे ॥ ५० ॥ और फिर कुछ समयके उपरान्त अपने पदपर स्थित हुए और शापसे अजगर हो नहुष पृथ्वीपर गिरा ॥ ५१ ॥ इन्द्राणीकी इच्छाकरने और ब्राह्मणोंके तिरस्कार करनेसे अगस्त्यके क्रोधसे राजाको सर्पकी देह प्राप्त हुई ॥ ५२ ॥ हे राम! इससे दुःख प्राप्त होनेपर शोक न करो, बुद्धिमान्को उद्यममें चित्त लगाकर स्थित होना चाहिये ॥ ५३ ॥ हे महाभाग ! आप समर्थ और सर्वज्ञ हो, प्राकृतकी समान आत्माको क्यों शोकयुक्त करते हो ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले इसप्रकार लक्ष्मणने रामको समझाया तब शोकत्यागन कर रामचन्द्र स्वस्थ हुए ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले इसप्रकारसे यह दोनों वार्ता करके जब मौन हुए उसी समय

ससैन्यंभरतंवाऽपिसमाहूयसहानुजम् ॥ हनिष्यामोवयंशत्रुंकिंशोचसिवृथाग्रज ॥४३॥ रघुणैकरथेनैवजिताःसर्वादिशःपुरा ॥ तद्वंशजःकथंशोकंकर्तुमर्हसिराघव ॥ ४४ ॥ एकोऽहंसकलाञ्जेतुंसमर्थोऽस्मिसुरासुरान् ॥ किंपुनःससहायोवैरावणंकुलपांसनम् ॥ ४५ ॥ जनकंवासमानीयसाहाय्येरघुनंदन ॥ हनिष्यामिदुराचारंरावणंसुरकंटकम् ॥ ४६ ॥ सुखस्याऽऽनंतरंदुःखंदुःखस्याऽनंतरंसुखम् ॥ चक्रनेमिरिवैकंतन्नभवेद्रघुनंदन ॥ ४७ ॥ मनोऽतिकातरंयस्यसुखदुःखसमुद्भवे ॥ सशोकसागरेमग्नोनसुखीस्यात्कदाचन ॥ ४८ ॥ इंद्रेणव्यसनंप्राप्तंपुरावैरघुनंदन ॥ नहुषःस्थापितोदेवैःसर्वैर्मघवतःपदे ॥४९॥ स्थितःपंकजमध्येचबहुवर्षगणानपि ॥ अज्ञातवासंमघवाभीतस्त्यक्त्वानिजंपदम् ॥ ५० ॥ पुनःप्राप्तंनिजस्थानंकालेविपरिवर्तिते ॥ नहुषःपतितोभूमौशापादजगराकृतिः ॥ ५१ ॥ इंद्राणींकामयानस्तुब्राह्मणानवमन्यच ॥ अगस्तिकोपात्संजातःसर्पदेहोमहीपतिः ॥५२॥ तस्माच्छोकोनकर्तव्योव्यसनेसतिराघव ॥ उद्यमेचित्तमास्थायस्थातव्यंवैविपश्चिता ॥ ५३ ॥ सर्वज्ञोऽसिमहाभागसमर्थोऽसिजगत्पते ॥ किंप्राकृतइवात्यर्थंकुरुषेशोकमात्मनि ॥५४॥ व्यासउवाच ॥ इतिलक्ष्मणवाक्येनबोधितोरघुनंदनः ॥ त्यक्त्वाशोकंतथाऽत्यर्थंबभूवविगतज्वरः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभा० म० तृ० एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ एवंतौसंविदंकृत्वायावत्तूष्णींबभूवतुः ॥ आजगामतदाऽऽकाशान्नारदोभगवानृषिः ॥ १ ॥

आकाश मार्गसे देवर्षि नारदजी आये ॥ १ ॥ स्वर ग्रामसे विभूषित महती वीणाको बजाते तथा बृहद्रथन्तर सामगायन करते प्राप्त हुए ॥ २ ॥ रघुनाथजीने महर्षिको आया देख सुन्दर धर्मरूप वृष दिया और महाद्युतिमान्ने उनको अर्घ्यपाद्य और आसन दिया ॥ ३ ॥ और परमपूजा कर हाथ जोड़कर उपस्थित हुए और मुनिसे सत्कृत हो रामचन्द्रभगवान् उनके समीप बैठे ॥ ४ ॥ अनुजसहित बैठे मनमें दुःखी रामचन्द्रसे मुनिश्रेष्ठ नारदजी कुशल पूँछनेलगे ॥५॥ हे राम! साधारण मनुष्यकी समान क्यों शोककरतेहो, मैं जानता हूं दुरात्मा रावण जानकीको हरकर लेगया है ॥ ६ ॥ मैं ने देवलोकमेंही यह वार्ता सुनी थी कि, दुरात्मा रावणने अपनी मृत्युके निमित्तही जानकी हरण की है ॥ ७ ॥ हे राम! तुम्हारा जन्म रावणके वधके निमित्तही है. हे नराधिप ! इसीकारण जानकीका

रणयन्महतींवीणांस्वरग्रामविभूषिताम् ॥ गायन्बृहद्रथंसामतदातमुपतस्थिवान् ॥ २ ॥ दृष्ट्वातंरामउत्थायददावथवृषंशुभम् ॥ आसनंचार्घपाद्यंचकृतवानमितद्युतिः ॥ ३ ॥ पूजांपरमिकांकृत्वाकृतांजलिरुपस्थितः ॥ उपविष्टःसमीपेतुकृताज्ञोमुनिनाहरिः ॥ ४ ॥ उपविष्टंतदारामंसानुजंदुःखमानसम् ॥ पप्रच्छनारदःप्रीत्याकुशलंमुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ कथंराघवशोकार्तोयथावैप्राकृतोनरः ॥ हृतांसीतांचजानामिरावणेनदुरात्मना ॥ ६ ॥ सुरसद्मगतश्चाहंश्रुतवाञ्जनकात्मजाम् ॥ पौलस्त्येनहृतांमोहान्मरणंस्वमजानता ॥ ७ ॥ तवजन्मचकाकुत्स्थपौलस्त्यनिधनायवै ॥ मैथिलीहरणंजातमेतदर्थंनराधिप ॥ ८ ॥ पूर्वजन्मनिवैदेहीमुनिपुत्रीतपस्विनी ॥ रावणेनवनेदृष्टातपस्यंतीशुचिस्मिता ॥ ९ ॥ प्रार्थितारावणेनासौभवभार्येतिराघव ॥ तिरस्कृतस्तयासौवैजग्राहकवरंबलात् ॥ १० ॥ शशापतत्क्षणंरामरावणंतापसीभृशम् ॥ कुपितात्यक्तुमिच्छंतीदेहंसंस्पर्शदूषितम् ॥ ११ ॥ दुरात्मंस्तवनाशार्थंभविष्यामिधरातले ॥ अयोनिजावरानारीत्यक्त्वादेहंजहावपि ॥१२॥ सेयंरमांशसंभूतागृहीतातेनरक्षसा ॥ विनाशार्थंकुलस्यैवव्यालीस्रगिवसंभ्रमात् ॥१३॥

हरण हुआ है ॥ ८ ॥ पूर्वजन्ममें यह वैदेही मुनिकी पुत्री बड़ी तपस्वीनी थीं, इन मनोहराको वनमें तप करते रावणने देखा था ॥ ९ ॥ हे राघव ! रावणने भार्या होनेकी प्रार्थना की जब उसने तिरस्कार किया तब रावणने बलसे केश ग्रहण किये ॥ १० ॥ हे राम ! उसीसमय उस तापसीने इसके स्पर्शसे दूषित देहको त्यागनेकी इच्छासे क्रोध कर उसी समय रावणको शाप दिया ॥ ११ ॥ हे दुरात्मन् ! मैं [illegible] नाशके निमित्त फिर भूमिमें अवतार लूंगी, उस अयोनिज वरा नारीने अपना शरीर त्यागन किया ॥ १२ ॥ वही यह लक्ष्मीके अंगसे प्रगट होकर उस राक्षससे गृहीत हुई है. उसने कुलनाशके निमित्तही मालाके भ्रमसे सर्पिणी ग्रहण की [illegible] ॥ १३ ॥

हे राम ! तुम्हारा जन्म निशाचरोंके नाशके निमित्तही है और देवताओंकी प्रार्थनासे अजन्मा हरिरूप आपने जन्म लिया है ॥ १४ ॥ हे महाबाहो ! तुम धैर्य धारण करो वहां वह अवश सती धर्ममें तत्पर सीता निरन्तर आपका ध्यान करती है ॥ १५ ॥ स्वयं इन्द्रने कामधेनुका दूध पात्रमें जानकीके पानके निमित्त प्रदान किया ॥ १६ ॥ कामधेनुके दुग्धपानसे वह भूख प्याससे वर्जित हुई ! स्थित कमलपत्राक्षी मैं ने देखी है ॥ १७ ॥ हे राम ! मैं उस दैत्यके नाशका उपाय कहता हूं. तुम श्रद्धा पूर्वक आश्विनमासमें व्रत करो ॥ १८ ॥ नवरात्रका उपवास और भगवतीका पूजन करो, हे राम ! जप होमके विधानसे सब सिद्धि होगी ॥ १९ ॥ मेध्य पशुओंकी भगवतीको बलि दो और दशांश हवन करके तुम अधिक समर्थ होंगे॥ २० ॥ इस व्रतको पहले विष्णु और महादेवने किया था तथा ब्रह्माजीनेभी किया और स्वर्गमें

तवजन्मचकाकुत्स्थतस्यनाशायचामरैः ॥ प्रार्थितस्यहरेरंशादजवंशेप्यजन्मनः ॥१४॥ कुरुधैर्यमहाबाहोतत्रसावर्ततेवशा ॥ सतीधर्मरतासीतात्वांध्यायंतीदिवानिशम् ॥१५॥ कामधेनुपयःपात्रेकृत्वामघवतास्वयम् ॥ पानार्थंप्रेषितंतस्याःपीतंचैवामृतंतथा॥१६॥सुरभीदुग्धपानात्साक्षुत्तृड्दुःखविवर्जिता ॥ जाताकमलपत्राक्षीवर्ततेवीक्षितामया ॥१७॥ उपायंकथयाम्यद्यतस्यनाशायराघव॥व्रतंकुरुष्वश्रद्धावानाश्विनेमासिसांप्रतम् ॥१८॥ नवरात्रोपवासंचभगवत्याःप्रपूजनम् ॥ सर्वसिद्धिकरंरामजपहोमविधानतः ॥१९॥ मेध्यैश्चपशुभिर्देव्याबलिंदत्वाविशंसितैः॥दशांशंहवनंकृत्वासुशक्तस्त्वंभविष्यसि ॥२०॥ विष्णुनाचरितंपूर्वंमहादेवेनब्रह्मणा ॥ तथामघवताचीर्णंस्वर्गमध्यस्थितेनवै ॥२१॥ सुखिनाराामकर्तव्यंनवरात्रव्रतंशुभम् ॥ विशेषेणचकर्तव्यंपुंसाकष्टगतेनवै ॥ २२ ॥ विश्वामित्रेणकाकुत्स्थकृतमेतन्नसंशयः ॥ भृगुणाऽथवसिष्ठेनकश्यपेनतथैवच ॥ २३ ॥ गुरुणाहृतदारेणकृतमेतन्महाव्रतम् ॥ तस्मात्त्वं कुरुराजेंद्ररावणस्यवधायच ॥ २४ ॥ इंद्रेणवृत्रनाशायकृतंव्रतमनुत्तमम् ॥ त्रिपुरस्यविनाशायशिवेनापिपुराकृतम् ॥ २५ ॥ हरिणामधुनाशायकृतं मेरौमहामते ॥ विधिवत्कुरुकाकुत्स्थव्रतमेतदतंद्रितः ॥ २६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कादेवीकिंप्रभावासाकुतोजाताकिमाह्वया ॥ व्रतंकिंविधिवद्ब्रूहि सर्वज्ञोऽसिदयानिधे ॥ २७ ॥

स्थित इन्द्रनेभी इस व्रतको किया था ॥ २१ ॥ हे राम ! सुखी पुरुषोंकोभी नवरात्रका सुन्दर व्रत करना चाहिये और कष्टमें प्राप्त हुए पुरुषोंको तो अवश्य व्रत करना चाहिये ॥ २२ ॥ हे राम ! निःसंदेह यह व्रत विश्वामित्रने किया था, भृगु वसिष्ठ और कश्यपनेभी यह व्रत किया था ॥ २३ ॥ बृहस्पतिने दारहरणमें यही व्रत किया था, हे राजेन्द्र ! तुमभी रावणवधके निमित्त यह व्रत करो ॥ २४ ॥ इन्द्रने वृत्रासुरके नाशको और शंकरने त्रिपुरनाशके निमित्त पहले यह व्रत किया था ॥ २५ ॥ हरिने मधुनाशके निमित्त मेरुमें यह व्रत किया था, हे राम ! तुमभी सावधान होकर इसे करो ॥ २६ ॥ श्रीराम बोले वह कौन देवी? क्या उसका प्रभाव है?

कहांसे हुई? क्या नाम है? हे दयानिधे! उनका व्रत कैसा है? आप सर्वज्ञ हो कहिये॥ २७ ॥ नारदजी बोले हे राम ! सुनो ! वह विद्या आद्या सनातनी शक्ति है, वह सब कामनादायक देवी पूजनसे सब दुःख नाशनेवाली है, आद्या कहनेसे सबकी कारणभूत ब्रह्मरूपा तथा आदिसिद्ध जड़रूप मायावाली अग्निमें अग्निशक्तिकी समान ब्रह्ममें स्थित है, यह दोनों मायाविशिष्टरूप देवीपदवाच्य हैं. वही जगत्कारण माया शरीरमें प्रविष्ट होकर अनेकरूपवाली होती है, यह प्रथम प्रश्नका उत्तर हुआ, यही बृहदारण्यके गार्गिब्राह्मणमें स्पष्टस्वरूपसे कहा है, [यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्यादिवो यदवाक्पृथिव्यामंतराइत्यादि] यह पूँछनेपर कि यह जगत् किससे ओतप्रोत है, तब इसी विषयका उत्तर है [एत द्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति इत्यादि] यह जो पूँछा कि, क्या प्रभाववाली है? इसपर कहते हैं.सबका कर्तृत्वही इसका प्रभाव

नारदउवाच ॥ शृणुरामसदानित्याशक्तिराद्यासनातनी ॥ सर्वकामप्रदादेवीपूजितादुःखनाशिनी ॥ २८ ॥ कारणंसर्वजंतूनांब्रह्मादीनांरघूद्वह ॥ तस्याः शक्तिंविनाकोऽपिस्पंदितुंनक्षमोभवेत् ॥ २९ ॥ विष्णोःपालनशक्तिःसाकर्तृशक्तिःपितुर्मम ॥ रुद्रस्यनाशशक्तिःसात्वन्यशक्तिःपराशिवा ॥ ३० ॥ यच्चकिंचित्क्वचिद्वस्तुसदसद्भुवनत्रये ॥ तस्यसर्वस्ययाशक्तिस्तदुत्पत्तिःकुतोभवेत् ॥ ३१ ॥ नब्रह्मानयदाविष्णुर्नरुद्रोनदिवाकरः ॥ नचेंद्राद्याःसुराःसर्वे नधरानधराधराः ॥ ३२ ॥ तदासाप्रकृतिःपूर्णापुरुषेणपरेणवै ॥ संयुताविहरत्येवयुगादौनिर्गुणाशिवा ॥३३॥ साभूत्वासगुणापश्चात्करोतिभुवनत्रयम् ॥ पूर्वंसंसृज्यब्रह्मादीन्दत्त्वाशक्तीश्चसर्वशः ॥ ३४ ॥ तांज्ञात्वामुच्यतेजंतुर्जन्मसंसारबंधनात् ॥ साविद्यापरमाज्ञेयावेदाद्यावेदकारिणी ॥ ३५ ॥

है [तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम् इति श्रुतेः] ॥ २८ ॥ हे राम ! वह सब जन्तु और ब्रह्मादिका कारण है. उसकी शक्तिके विना कोईभी गमन करनेको समर्थ नहीं है ॥ २९ ॥ विष्णुमें पालनरूप हमारे पिता ब्रह्मामें कर्तृरूप और रुद्रमें संहाररूपसे निवास करती है॥ ३०॥ कौन है? इस पर कहते हैं. जो कुछ त्रिलोकीमें सद् असद्रूप है उस सबकी जो शक्ति है उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हो सक्ती है ? ॥ ३१ ॥ जिस समय रुद्र ब्रह्मा विष्णु सूर्य इन्द्रादिदेवता भूमि पर्वत कुछ न थे ॥ ३२ ॥ तब उस परमपुरुषसे यह प्रकृति पूर्ण होकर उससे युक्तही युगादिमें निर्गुण शिवा शक्ति विहार करती है ॥ ३३ ॥ पीछे यही सगुणा होकर जगत् उत्पन्नकरती है, पहले ब्रह्मादिको प्रगट करके और उनको सब प्रकार शक्ति देकर सम्पन्न करती है ॥ ३४॥ उसीको जानकर यह प्राणी संसारबंधनसे मुक्त होजाता है वह विद्या वेदकी

आया वेदकी करनेवाली जात्री चाहिये ॥ ३५॥ उसके असंख्य नाम ब्रह्मादिने गुणकर्मके विधानसे कहे हैं, उनसे कहाँतक कहैं ॥ ३६ ॥ अकारसे लेकर क्षकार सब स्वर वर्णोंसे युक्त हे रघुनन्दन ! उसके अनेक नाम होते हैं ॥ ३७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले हे नारदजी ! आप संक्षेपसे इस व्रतका विधान कहिये अभी मैं श्र पूर्वक देवीका आराधन करूंगा ॥ ३८ ॥ नारदजी बोले हे राम ! समस्थानमें सिंहासन स्थापन कर उसपर भगवतीको स्थापनकर विधिपूर्वक नवरात्रव्रत कीजिये ॥ ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! आपके इस कार्यमें आचार्य मैं हूंगा, देवकार्य विधानके निमित्तमुझको भी उत्साह है ॥ ४० ॥ व्यासजी बोले यह सत्य उनके वचन सुनकर प्रताप

असंख्यातानिनामानितस्याब्रह्मादिभिःकिल ॥ गुणकर्मविधानैस्तुकल्पितानिचकिंब्रुवे ॥ ३६ ॥ अकारादिक्षकारांतैःस्वरैर्वर्णैस्तुयोजितैः ॥ असं ख्येयानिनामानिभवंतिरघुनंदन ॥ ३७ ॥ रामउवाच ॥ विधिंमेब्रूहिविप्रर्षेव्रतस्यास्यसमासतः ॥ करोम्यद्यैवश्रद्धावाञ्छ्रीदेव्याःपूजनंतथा ॥ ३८ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ पीठंकृत्वासमेस्थानेसंस्थाप्यजगदंबिकाम् ॥ उपवासान्नवैवत्वंकुरुरामविधानतः ॥ ३९ ॥ आचार्योऽहंभविष्यामिकर्मण्यस्मिन्महीपते ॥ देवकार्यविधानार्थमुत्साहंप्रकरोम्यहम् ॥ ४० ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंसत्यंमत्वारामःप्रतापवान् ॥ कारयित्वाशुभंपीठंस्थापयित्वांऽविकांशिवाम् ॥ ४१ ॥ विधिवत्पूजनंतस्याश्चकारव्रतवान्हरिः ॥ संप्राप्तेचाश्विनेमासितस्मिन्गिरिवरेतदा ॥ ४२ ॥ उपवासपरोरामःकृतवान्व्रतमुत्तमम् ॥ होमंचविधिवत्तत्रबलिदानंचपूजनम् ॥ ४३ ॥ भ्रातरौचक्रतुःप्रेम्णाव्रतंनारदसंमतम् ॥ अष्टम्यांमध्यरात्रेतुदेवीभगवतीहिसा ॥ ४४ ॥ सिंहारूढाददौ तत्रदर्शनंप्रतिपूजिता ॥ गिरिशृंगेस्थितोवाचराघवंसानुजंगिरा ॥४५॥ मेघगंभीरयाचेदंभक्तिभावेनतोषिता ॥ देव्युवाच ॥ रामराममहाबाहोतुष्टास्म्यद्यव्रतेनते ॥ ४६ ॥ प्रार्थयस्ववरंकामंयत्तेमनसिवर्तते ॥ नारायणांशसंभूतस्त्वंवंशेमानवेऽनघे ॥ ४७ ॥

वान् रामचन्द्र सुन्दर सिंहासन करवाय उसपर शिवाको स्थापनकर ॥ ४१ ॥ व्रतपूर्वक भगवानने विधिसे पूजनकिया, आश्विनमासके उस गिरिवरपर प्राप्त होनेपर ॥ ४२ ॥ उपवासमें तत्पर होकर रामने उत्तमव्रत किया, होम बलिदान और विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ४३ ॥ प्रेमपूर्वक दोनों भ्राताओंने नारदजीकी सम्मतिसे किया. अष्टमीके दिन आधी रातको देवी भगवती ॥ ४४ ॥ पूजित होकर सिंहपर आरूढ हो दर्शन देतीहुई और पर्वतशृंगपर स्थित हो सानुज रामसे बोली ॥ ४५ ॥ भक्तिभावसे सन्तुष्ट हो मेघगंभीर भावसे देवी बोली. हेराम ! महाबाहो ! मैं तुम्हारे व्रतसे सन्तुष्ट हुई हूं ॥ ४६ ॥ जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको माँगो, आप मनुवंशमें

नारायणअंशसे प्रगट हुएहो ॥ ४७ ॥ रावणके वधके निमित्तही देवताओंने तुम्हारी प्रार्थना की है, पहले तुमने मत्स्यरूप धारण कर घोररूप राक्षसको मार ॥ ४८ ॥ देवताओंके हितकी इच्छासे वेदोंकी रक्षा की, कच्छपरूप धारणकर मंदरपर्वतको धारण किया ॥ ४९ ॥ और समुद्रका मथनकर देवताओंको सन्तुष्ट किया और वाराहरूप धारणकर अपने दांतोंके अग्रभागपर ॥ ५० ॥ मेदिनीको धारणकर हिरण्याक्षको मारा और इसीप्रकार पूर्वमें नृसिंहशरीर धारण करके हिरण्यकशिपुको मार ॥ ५१ ॥ हे राघव ! तुमने प्रह्लादकी रक्षाकी, वामनरूप धारणकर बलिको छला ॥ ५२ ॥ यह आप देवकार्यसिद्धिके निमित्त इन्द्रके अनुज हुए थे, तुमही

रावणस्यवधायैवप्रार्थितस्त्वमरैरसि॥पुरामत्स्यतनुंकृत्वाहत्वाघोरंचराक्षसम् ॥४८॥त्वयावैरक्षितावेदाःसुराणांहितमिच्छता॥भूत्वाकच्छपरूपस्तुधृतवान्मंदरंगिरिम् ॥ ४९ ॥ अकूपारंप्रमंथानंकृत्वादेवानपोषयः ॥ कोलरूपंपुराकृत्वादशनाग्रेणमेदिनीम् ॥५०॥ धृतवानसियद्रामहिरण्याक्षंजघानच ॥ नारसिंहींतनुंकृत्वाहिरण्यकशिपुंपुरा ॥ ५१ ॥ प्रह्लादंरामरक्षित्वाहतवानसिराघव ॥ वामनंवपुरास्थायपुराछलितवान्बलिम् ॥ ५२ ॥ भूत्वेंद्रस्यानुजःकामंदेवकार्यप्रसाधकः ॥ जमदग्निसुतस्त्वंमेविष्णोरंशेनसंगतः ॥५३॥ कृत्वांऽतंक्षत्रियाणांतुदानंभूमेरदाद्विजे ॥ तथेदानींतुकाकुत्स्थजातोदशरथात्मजः ॥ ५४ ॥ प्रार्थितस्तुसुरैःसर्वैरावणेनातिपीडितैः ॥ कपयस्तेसहायावैदेवांशाबलवत्तराः ॥५५॥ भविष्यंतिनरव्याघ्रमच्छक्तिसंयुताह्यमी ॥ शेषांशोप्यनुजस्तेऽयंरावणात्मजनाशकः ॥ ५६ ॥ भविष्यतिनसंदेहःकर्तव्योऽत्रत्वयानघ ॥ वसंतेसेवनंकार्यंत्वयातत्रातिश्रद्धया ॥ ५७ ॥ हत्वाऽथरावणंपापंकुरुराज्यंयथासुखम् ॥ एकादशसहस्राणिवर्षाणिपृथिवीतले ॥ ५८ ॥ कृत्वाराज्यंरघुश्रेष्ठगंतासित्रिदिवंपुनः ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधेदेवी रामस्तुप्रीतमानसः ॥ ५९ ॥

विष्णुके अंश होकर जमदग्निके पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ और क्षत्रियोंका नाश कर ब्राह्मणोंको भूमि प्रदान की,इसीप्रकार हे काकुत्स्थ ! अब आप दशरथके पुत्र हुएहो ॥ ५४ ॥ रावणसे पीडित हुए देवतोंने आपकी प्रार्थना की यह देवांशसे हुए बली वानर आपकी सहायता करैंगे ॥ ५५ ॥ हे नरव्याघ्र ! यह हमारी शक्तिसे संयुक्त हैं और शेषके अंशसे यह तुम्हारे अनुज लक्ष्मण हैं, यह रावणके पुत्रको मारैंगे ॥ ५६ ॥ हे पापरहित ! इसमें कुछभी सन्देह नहीं है और वसन्तमें भी श्रद्धापूर्वक मेरा सेवन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ पापिष्ठ रावणको मारकर यथायोग्य राज्य करना. ग्यारह सहस्र वर्षतक पृथ्वीमें सुख भोगकर ॥ ५८ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! फिर राज्य कर स्वर्गलोकको जाओगे. व्यासजी कहते

बोले ऐसा कह देवी अन्तर्धान हुई और रघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए॥५९॥ और उसव्रतको समाप्त कर दशमीके दिन उन्होंने प्रयाण किया,विजया दशमीका पूजनकर अनेक दान दिये ॥ ६० ॥ सुग्रीवकी सेनासे युक्त अनुजसहित रामचन्द्र परमशक्तिसे प्रेरितहो पूर्णकामनासे सागरके समीप जाय पुल बाँधकर पार हो अमरशत्रु अर्थात् देव शत्रु रावणको मारकर कीर्तिमान् हुए ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे देवीका चरित्र सुन्ते हैं वे अनेक भोग भोगकर परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ दूसरे पुराणभी बड़े विस्तारयुक्त हैं परन्तु वे इस भागवतकी समान नहीं ऐसी मेरी मति है ॥ ६३ ॥ इति श्रीशैवकुलोत्पन्नमहामहिमकान्यकुब्जपण्डितसुखानन्दमिश्रात्मजपण्डितज्वाला

समाप्यतद्व्रतंचक्रेप्रयाणंदशमीदिने ॥ विजयापूजनंकृत्वादत्त्वादानान्यनेकशः ॥ ६० ॥ कपिपतिबलयुक्तःसानुजःश्रीपतिश्चप्रकटपरमशक्त्याप्रेरितःपूर्णकामः ॥ उदधितटगतोसौसेतुबंधंविधायात्यहनदमरशत्रुंरावणंगीतकीर्तिः ॥ ६१ ॥ यःशृणोतिनरोभक्त्यादेव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ सभुक्त्वा विपुलान्भोगान्प्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ ६२ ॥ संत्यन्यानिपुराणानिविस्ताराणिबहूनिच ॥ श्रीमद्भागवतस्यास्यनतुल्यानीतिमेमतिः ॥ ६३ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणेष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांतृतीयस्कंधेत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ छ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

देव्याभागवतस्यास्यतृतीयस्कंधविस्तरम् ॥ सार्धैःषडब्धिशैलेंदु १७४६ पद्यैर्व्यासोव्यरीरचत् ॥

प्रसादमिश्रकृते देवीभागवतव्याख्याने तृतीयस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीरस्तु ॥ इस तृतीयस्कन्धमें व्यासजीने ॥ १७४६ श्लोक रचे हैं जो अतिश्रेष्ठ हैं ॥ दोहा—जगतजननिके पदकमल, प्रेमसहित मन लाय । एहि तृतीयस्कन्धकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥ बसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । तहाँ भजन अम्बा करत, द्विज ज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥ ॥ शुभमस्तु ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९५८, शके १८२३.

दो०—जेहि उन्मेषनिमेषते, प्रलय जगत पुनि होय। भुवनेशानीसच्चिदा, नंदरूपिणीजोय ॥ १ ॥ ताकेयुगपदकमलको, वंदौं वारंवार। नेक ध्यानकेकियेते, छुटतबंधसंसार ॥ २ ॥
जनमेजय बोले हे सर्वज्ञाननिधे! हे प्रभो! हे विमलात्मन्! हे मुनिवर व्यासदेव! आप सदाही मेरे कलकी मंगलकामना करते हैं, मैं आपसे कई प्रश्न पूँछनेकी इच्छा करता
हूं ॥ १ ॥ हे मुनिवर! मैंने पूर्वमें सुना है कि, स्वयं भगवान् हरि जिनके पुत्रभावको प्राप्त हुए थे, वे प्रतापवान् ॥ २ ॥ आनकदुन्दुभि देवतागणोंकेभी पूजनीय श्रीमान्
शूरसेनके पुत्र वसुदेव सदा धर्ममें निरत रहकरभी कंसके कारागारमें बन्दी हुए थे इसका क्या कारण है? ॥ ३ ॥ देवकी भार्याके सहित उन्होंने क्या अपराध किया था?
किसलिये ययातिकुलनन्दन कंसराजने देवकीके छे बाल पुत्रोंका विनाश किया था? ॥ ४ ॥ किसलिये भगवान् हरिने वसुदेवजीके पुत्र होकर कारागारमें जन्म ग्रहण किया
था? ॥ ५ ॥ किसलिये सात्वतकुलपति भगवान् वासुदेव गोकुलमें लायेगये थे? क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर किसकारण वे लोकमें गोपालकुलज कहकर विख्यात

श्रीगणेशायनमः ॥ जनमेजयउवाच ॥ ॥ वासवेयमुनिश्रेष्ठसर्वज्ञाननिधेऽनघ॥प्रष्टुमिच्छाम्यहंस्वामिन्नस्माकंकुलवर्धन ॥१॥ शूरसेनसुतःश्रीमान्वसुदे
वःप्रतापवान् ॥ श्रुतंमयाहरिर्यस्यपुत्रभावमवाप्तवान् ॥ २ ॥ देवानामपिपूज्योऽभून्नाम्नाचाऽऽनकदुंदुभिः ॥ कारागारेकथंबद्धःकंसस्यधर्मतत्परः ॥ ३ ॥
देवक्याभार्ययासार्धंकिमागःकृतवानसौ ॥ देवक्यावालषट्कस्यविनाशश्चकृतःपुनः ॥ ४ ॥ तेनकंसेनकस्माद्वैययातिकुलजेनच ॥ कारागारेकथंजन्म
वासुदेवस्यवैहरेः ॥५॥ गोकुलेचकथंनीतोभगवान्सात्वतांपतिः ॥ गतोजन्मांतरंकस्मात्पितरौनिगडेस्थितौ ॥६॥ देवकीवसुदेवौचकृष्णस्याऽमिततेजसः ॥
कथंनमोचितौवृद्धौपितरौहरिणाऽमुना॥७॥जगत्कर्तुंसमर्थेनस्थितेनजनकोदरे ॥ प्राक्तनंकिंतयोःकर्मदुर्विज्ञेयंमहात्मभिः॥८॥जन्मवैवासुदेवस्ययत्राऽऽसी
त्परमात्मनः ॥ केतेपुत्राश्चकावालायाकंसेनविपोथिता ॥९॥ शिलायांनिर्गताव्योम्निजातात्वष्टभुजापुनः ॥ गार्हस्थ्यंचहरेर्ब्रूहिवहुभार्यस्यचानघ ॥१०॥

हुए थे ॥ ६ ॥ अपरिमिततेजसम्पन्न श्रीकृष्णके मातापिता वसुदेव और देवकीको किस कारण बेड़ियें पहिराई गई थीं? जो जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलय करनेमें
समर्थ हैं उन अपरिमित प्रभाव भगवान् हरिने जननीके जठरमें अवस्थित होकरभी किस कारण निगड़बद्ध पितामाताको तत्काल कारागारसे नहीं छुड़ाया ॥ ७ ॥
वे जो महात्मागणोंके पक्षमेंभी दुर्जय अपने अपने प्राक्तनकर्मके फलसे कारावंधनको प्राप्त हुए थे, यह नहीं कहसक्के ॥ ८ ॥ क्योंकि परमपुरुष श्रीकृष्णने जिस
स्थानमें जन्म ग्रहण किया था. उस स्थानमें क्या फिर प्राक्तनकर्मका फलभोग होसक्ता है? और वसुदेवके औरस एवं देवकीके गर्भसे उत्पन्न होकर अन्तमें जो
कंसके हाथसे वालक मारे गये वे पूर्वजन्ममें कौन थे? ॥ ९ ॥ जो कन्या कंसके हाथसे शिलापर पटकी जाकर तत्काल अष्टभुजा होकर आकाशमार्गमें चलीगई थी,

वह कौन थी ? हे विमलात्मन् ! जिन्होंने अनेकों स्त्रियोंका पाणिग्रहण किया था, उन श्रीहरिने किसप्रकार गृहस्थधर्मका आचरण किया ॥ १० ॥ और उन्होंने उस जन्ममें जो जो कर्म करके जिसप्रकार देह त्याग किया, वह सब विषय मुझसे वर्णन कीजिये । मैंने किंवदन्तीसे जो जो सुना है, वह सब मे रे मनको मोहित किये डालता है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! उसमें सुना है कि, वासुदेवके चरित्र कभी ईश्वरकीसमान और कभी सामान्य जीवके समान हैं, अत एव वे ईश्वर हैं, अथवा सामान्य मनुष्य हैं इस प्रकार संशयविजृम्भित मोहमें मेरा मन व्याकुल होगया है, आप भगवान् वासुदेवके चरित्र यथार्थ रीतिसे वर्णन करके मेरा यह मोह दूर कीजिये ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! पूर्व कालमें धर्मपुत्र महात्मा पुरातन मुनि ऋषिश्रेष्ठ नर नारायण नामक दो देवताओंने पवित्र बद्रिकाश्रममें अनेकों वर्षतक अतिउत्तम तपस्या की थी ॥ १३ ॥ ये दोनों मुनि विष्णुके अंश थे, इन्होंने जगत्‌का कल्याण साधनेके लिये निःस्पृह जितेन्द्रिय और निराहार हो, काम क्रोधादि

कार्याणितत्रतान्येवदेहत्यागंचतस्यवै ॥ किंवदंत्याश्रुतंयत्तन्मनोमोहयतीवमे ॥ ११ ॥ चरितंवासुदेवस्यत्वमाख्याहियथातथम् ॥ नरनारायणौदेवौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ १२ ॥ धर्मपुत्रौमहात्मानौतपश्चेरतुरुत्तमम् ॥ यौमुनीबहुवर्षाणिपुण्येबदरिकाश्रमे ॥ १३ ॥ निराहारौजिताऽऽत्मानौनिः स्पृहौजितषड्गुणौ ॥ विष्णोरंशौजगत्स्थेम्नेतपश्चेरतुरुत्तमम् ॥ १४ ॥ तयोरंशावतारौहिजिष्णुकृष्णौमहाबलौ ॥ प्रसिद्धौमुनिभिःप्रोक्तौसर्वज्ञै र्नारदादिभिः ॥ १५ ॥ विद्यमानशरीरौतौकथंदेहांतरंगतौ ॥ नरनारायणौदेवौपुनःकृष्णार्जुनौकथम् ॥ १६ ॥ यौचक्रतुस्तपश्चोग्रंमुक्त्यर्थंमुनिसत्तमौ ॥ तौकथंप्रापतुर्देहौप्राप्तयोगौमहातपौ ॥ १७ ॥ शूद्रःस्वधर्मनिष्ठस्तुदेहांतेक्षत्रियस्तुसः ॥ शुभाऽऽचारोमृतोयोवैसशूद्रोब्राह्मणोभवेत् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणो निःस्पृहःशांतोभवरोगाद्विमुच्यते ॥ विपरीतामिदंभातिनरनारायणौचतौ ॥ १९ ॥

शत्रुओंको परास्त कर अति उत्तम तपस्या की थी ॥ १४ ॥ सर्वज्ञानयुक्त नारदादिमुनिगण कहते हैं कि, सुप्रसिद्ध महाबल अर्जुन और कृष्ण पूर्वोक्त पुरातन दोनों मुनियोंके अंशावतार थे ॥ १५ ॥ वह नर नारायण दोनों देवता पूर्वदेहके विद्यमान रहते भी किस प्रकार देहान्तर ग्रहणपूर्वक कृष्णार्जुन होकर उत्पन्न हुए थे ॥ १६ ॥ और जिन दोनों मुनीन्द्रोंने मुक्तिके लिये उग्र तपस्या करके योगसिद्धि लाभ की थी उन्होंने किसप्रकार देह धारण किया था ? ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने सुना है, स्वधर्मनिरत शूद्रदेहान्तमें वैश्य होकर जन्म ग्रहण करता है. इसी प्रकार वैश्य सदाचारनिष्ठ होनेसे क्षत्रियकुलमें जन्म लेता है और सदाचारसंपन्न क्षत्रिय देह त्यागकर ब्राह्मणके कुलमें जन्म ग्रहण करता है ॥ १८ ॥ और ब्राह्मण यदि निःस्पृह और शान्त यथावलम्बी हो तो संसारकी यंत्रणासे छूट जाता है. हे भगवन् ! वे

नर नारायण तपस्याद्वारा शरीर सुखाकरभी जो क्षत्रिय हुए थे यह विषय मुझे नियमके विरुद्ध बोध होता है ॥ १९ ॥ उन्होंने योगी होकर भी किस कर्मके द्वारा
पुनर्वार जन्म ग्रहण किया था ? अथवा वे ब्राह्मण हो शापवशतःही क्षत्रिय होकर उत्पन्न हुए थे॥ २०॥ जो हो हे मुने ! आप मेरे निकट इसका कारण कहकर संशय दूर
कीजिये. मैं ने सुना है कि ब्रह्मशापसे यदुकुलध्वंस हुआ॥ २१॥ और श्रीकृष्ण ईश्वरावतार होकरभी गान्धारीके शापसे उनका कुलक्षय हुआ था ! असुरराज शम्बरने किस
लिये प्रद्युम्नको हरणकिया था? ॥ २२ ॥ देवदेव वासुदेव जनार्दनके विद्यमान रहतेभी सूतिकागृहसे पुत्रका हरण अत्यन्त दुर्घट बोध होता है ॥ २३ ॥ शम्बरासुर दुरति
क्रम्य द्वारकामध्यस्थित हरिके गृहसे प्रद्युम्नको जब हरण करके लेगया. तब वासुदेव दिव्यचक्षुद्वारा क्यों नहीं देखसके? ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन् ! वासुदेवके देहत्याग करनेपर
दस्युगणोंने जो उनकी पत्नीको लूटलिया था, इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है ॥२५॥ हे मुनिसत्तम ! देवदेव वासुदेवके स्वर्गगमन करतेही उक्त

तपसाशोषितात्मानौक्षत्रियौतौबभूवतुः ॥ केनतौकर्मणाशांतौजातौशापेनवापुनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणौक्षत्रियौजातौकारणंतन्मुनेवद ॥ यादवानांविनाशश्चब्र
ह्मशापादितिश्रुतः ॥२१॥ कृष्णस्याऽपिहिगांधार्याःशापेनैवकुलक्षयः॥ प्रद्युम्नहरणंचैवशंबरेणकथंकृतम् ॥२२॥ वर्तमानेवासुदेवेदेवदेवेजनार्दने॥पुत्रस्य
सूतिकागेहाद्धरणंचाऽतिदुर्घटम् ॥२३॥ द्वारकादुर्गमध्याद्वैहरिवेश्माद्दुरत्ययात् ॥ नज्ञातंवासुदेवेनतत्कथंदिव्यचक्षुषा ॥२४॥ संदेहोऽयंमहान्ब्रह्मन्निःसंदे
हंकुरुप्रभो ॥ यत्पत्न्योवासुदेवस्यदस्युभिर्लुंठिताहृताः ॥२५॥ स्वर्गतेदेवदेवेतुतत्कथंमुनिसत्तम ॥ संशयोजायतेब्रह्मंश्चित्तांदोलनकारकः॥२६॥विष्णो
रंशःसमुद्भूतःशौरिर्भूभारहारकृत् ॥ सकथंमथुराराज्यंभयात्त्यक्त्वाजनार्दनः ॥ २७ ॥ द्वारवत्यांगतःसाधोससैन्यःससुहृद्गणः ॥ अवतारोहरेःप्रोक्तोभूभा
रहरणायवै ॥ २८ ॥ पापात्मनांविनाशायधर्मसंस्थापनायच ॥ तत्कथंवासुदेवेनचौरास्तेनानिपातिताः ॥ २९ ॥ यैर्हृतावासुदेवस्यपत्न्यःसंलुंठिताश्च
ताः ॥ स्तेनास्तेकिंनविज्ञाताःसर्वज्ञेनसतापुनः ॥ ३० ॥ भीष्मद्रोणवधः कामंभूभारहरणेमतः ॥ अविताश्चमहात्मानःपांडवाधर्मतत्पराः ॥ ३१ ॥

व्यापार क्यों संघटित हुआ ? हे ब्रह्मन् ! इसके अतिरिक्त मुझे और एक बड़ा संशय है. जो मनमें उदय होकर चित्तको चंचल करता है ॥ २६ ॥ हे साधो ! श्रीकृष्ण
विष्णुके अंशसे उत्पन्न हैं. मुनिगणभी कहते हैं कि, भूभारहरण करनेके लिये भगवान् हरि पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए थे, उन्हीं श्रीकृष्णने जरासन्धके भयसे मथुराका राज्य परि
त्यागन करके॥ २७॥ सैन्य और सुहृद्गणोंके सहित द्वारका नगरीमें गमन किया था इस विषयमें मुझको आश्चर्यही बोध होता है और देखो यदि अमेयात्मा वासुदेव पृथ्वीका
भारहरण ॥ २८ ॥ पापात्मा गणोंका विनाश और धर्मस्थापनके लिये अवतीर्ण हुए थे, तो जिन दुष्ट तस्कारोंने उनकी पत्नियोंका लुंठन कर लिया था, उनका पहिले
उन्होंने विनाश क्यों नहीं किया? ॥ २९ ॥ वे सर्वज्ञ होकर भी क्या उन चारोंको नहीं जानते थे ॥ ३० ॥ यद्यपि उन्होंने धर्मनिरत महात्मा पांडव गणोंकी रक्षाकी थी

किन्तु अतिमहात्मा धर्मपरायण भीष्म द्रोणादिको भूभार विचारकर किस प्रकार उनका वधसाधन किया था ? इस विषयमें मुझको महान् संशय उत्पन्न रहता है ॥ ३१ ॥ युधिष्ठिर इत्यादि पांडुपुत्रगण सदाचार देवांशसंभूत कृष्णभक्त थे. उन्होंने भक्तिभावसे विधिपूर्वक राजसूय महायज्ञ सम्पादन करके॥ ३२ ॥ ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणा प्रदान पूर्वक वासुदेवके आश्रित हुये थे॥ ३३ ॥ तथापि हे मुने! उन्होंने किस प्रकार घोरतर दुःख पाया था? उनकी पुण्यराशि कहां हरण होगई थी? हे मुनिवर ! उन्होंने ऐसा क्या घोर पापकिया था. जिससे उनको सदाही क्लेश भोगना पड़ा था? ॥ ३४ ॥ महाभागा द्रौपदी वेदीके मध्यसे उत्पन्नहुई थी. वह लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न साध्वी और कृष्णभक्तियुक्त थी ॥ ३५ ॥ वह किसलिये वारंवार अतुलनीय घोरतर दुःखको प्राप्तहुई थी? हाय ! द्रौपदी दुःशासनके केशाकर्षण करनेसे अत्यंत पीड़ित ॥ ३६ ॥ एवं रजस्वला एकवस्त्रा और भीत होनेपरभी उस दुष्ट दुःशासनद्वारा राजसभामें लाईगयी थी, वह विराटनगरके मत्स्यराजाकी दासी ॥ ३७ ॥

कृष्णभक्ताःसदाचारायुधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ तेकृत्वाराजसूयंचयज्ञराजंविधानतः ॥ ३२ ॥ दक्षिणाविविधादत्त्वाब्राह्मणेभ्योऽतिभावतः ॥ पांडुपुत्रास्तु देवांशावासुदेवाश्रितामुने ॥ ३३ ॥ घोरंदुःखंकथंप्राप्ताःक्वगतंसुकृतंचतत् ॥ किंतत्पापंमहारौद्रंयेनतेपीडिताःसदा ॥ ३४ ॥ द्रौपदीचमहा भागावेदीमध्यात्समुत्थिता ॥ रमांशजाचसाध्वीचकृष्णभक्तियुतातथा ॥ ३५ ॥ साकथंदुःखमतुलंप्रापघोरंपुनःपुनः ॥ दुःशासनेनसाकेशेगृही तापीडिताभृशम् ॥ ३६ ॥ रजस्वलासभायांतुनीताभीतैकवाससा ॥ विराटनगरेदासीजातामत्स्यस्यसापुनः ॥ ३७ ॥ धर्षिताकीचकेनाथरु दतीकुररीयथा ॥ हृताजयद्रथेनाऽथक्रंदमानाऽतिदुःखिता ॥ ३८ ॥ मोचितापांडवैःपश्चाद्बलवद्भिर्महात्मभिः ॥ पूर्वजन्मकृतंपापंकितंयेनचपीडिताः ॥ ॥ ३९ ॥ दुःखान्यनेकान्याप्तास्तेकथयाऽद्यमहामते ॥ राजसूयंक्रतुवरंकृत्वातेममपूर्वजाः ॥४०॥ दुःखंमहत्तरंप्राप्ताःपूर्वजन्मकृतेनवै ॥ देवांशानांकथं तेषांसंशयोऽयंमहान्हिमे ॥ ४१ ॥ सदाचारैस्तुकौंतेयैर्भीष्मद्रोणादयोहताः ॥ छलेनधनलोभार्थंजानानैर्नश्वरंजगत् ॥ ४२ ॥

और कुररीकी समान रोदन करनेपरभी कीचकद्वारा धर्षिता और अपमानिता हुई. हाय ! उस द्रौपदीके अत्यन्त दुःखित होकर क्रंदन करनेपरभी वह जयद्रथके द्वारा हरी जाकर ॥ ३८ ॥ अन्तमें बलवान् महात्मा पांडवगणोंसे छुड़ाईगई थी, हे मुनिवर ! पूर्वजन्ममें उन पांडवगणोंने ऐसा क्या पाप किया था, जिसके द्वारा उनको इस प्रकारके घोरतर महाक्लेशमें पड़ना हुआ था? ॥ ३९ ॥ हे महामते ! मेरे पूर्वपुरुषगणोंने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करकेभी किस कारण इसप्रकार अनेकभांतिके दुःख भोग किये थे? यह आप मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ ४० ॥ यदि कहो कि उन्होंने पूर्वजन्ममें किये कर्मके वश अत्यन्त महत् दुःख पाया था. यह संभव नहीं होसक्ता, क्योंकि वे देवांश थे, अतएव उनको इस प्रकार दुःख भोग किसलिये उपस्थित हुआ था ? इस विषयमें मुझको महासंशय रहता है॥ ४१ ॥ कुन्तीके पुत्रोंने

सदाचारसंपन्न होकर और इस जगत्को नाशमान जान करभी धनके लोभसे किस कारण छलपूर्वक भीष्मद्रोणादिका वध किया था ॥ ४२ ॥ उन्होंने, परमात्म स्वरूप महात्मा वासुदेव हरिकर्तृक घोरतर पापकार्यमें प्रेरित होकर अपने कुलका क्षय किया था, इसका भी मुझे महाआश्चर्य है ॥ ४३ ॥ हे साधो ! वरन् भिक्षा टनभी अच्छा, नीवारकणिकासे प्राणधारणभी अच्छा और शिल्पकर्मद्वारा जीवनयात्रा निर्वाह करना भी अच्छा है, किन्तु लोभके वशीभूत हो अन्याययुद्धमें योधाओंका वध करना कभी कर्तव्य नहीं है ॥ ४४ ॥ हे मुनिसत्तम ! आपनेही, अतुलपराक्रमी समस्त गोलक पुत्रोंको उत्पन्न करके इस विच्छिन्न वंशकी रक्षा की थी ॥ ४५ ॥ और उस्से सत्कुलोत्पन्न उत्तरात्मज महानुभाव पिताने अकस्मात् किस कारण तपस्वी ब्राह्मणके गलेमें मरा हुआ सर्प डाला था ? इस विषयमें मुझको बड़ाही आश्चर्य है ॥ ४६ ॥ क्षत्रियकुलोत्पन्न कोई व्यक्ति भी ब्राह्मणके प्रति द्वेष प्रकाश नहीं करता, पिताने क्या मौनव्रतधारी तापसके प्रति इसप्रकार आचरण

प्रेरितावासुदेवेनपापेघोरेमहात्मना॥कुलंक्षयितवंतस्तेहरिणापरमात्मना॥४३॥वरंभिक्षाटनंसाधोर्नीवारैर्जीवनंवरम्॥ योधान्नहत्वालोभेनशिल्पेनजीवनंव रम्॥४४॥विच्छिन्नस्तुत्वयावंशोरक्षितोमुनिसत्तम॥समुत्पाद्यसुतानाऽऽशुगोलकाञ्छत्रुनाशनान्॥४५॥सोऽल्पेनैवतुकालेनविराटतनयासुतः॥तापसस्यग लेसर्पन्यस्तवान्कथमद्भुतम् ॥ ४६ ॥ नकोऽपिब्राह्मणंद्वेष्टिक्षत्रियस्यकुलोद्भवः ॥ तापसंमौनसंयुक्तंपित्राकिंतत्कृतंमुने ॥४७॥ एतैरन्यैश्चसंदेहैर्विकलंमेम नोऽधुना ॥ स्थिरंकुरुपितःसाधोसर्वज्ञोऽसिदयानिधे ॥४८॥ इति श्रीदे० म० चतुर्थस्कंधेजनमेजयप्रश्नोनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ एवंपृष्टः पुराणज्ञोव्यासःसत्यवतीसुतः ॥ परीक्षितसुतंशांतंततोवैजनमेजयम् ॥ १ ॥ उवाचसंशयच्छेत्तृवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ व्यासउवाच ॥ राजन्किमेतद्व क्तव्यंकर्मणांगहनागतिः ॥ २ ॥ दुर्ज्ञेयाकिलदेवानांमानवानांचकाकथा ॥ यदासमुत्थितंचैतद्ब्रह्मांडंत्रिगुणात्मकम् ॥ ३ ॥

किया था ? आप क्या इस विषयको निश्चय करके कह सक्ते हैं? ॥ ४७ ॥ हे मुनिवर ! इन सब और अन्यान्य अनेक संदेहजालोंमें मेरा मन जटित होकर इस समय अत्यन्त विकल और व्याकुल होता है । हे दयानिधे ! हे साधो ! आप सर्वज्ञ हैं, अत एव कृपा करके मेरे इस चंचल मनको स्थिर कीजिये ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतजी बोले अनन्तर सत्यवतीपुत्र पुराणविद् वाक्यविशारद व्यासदेव इसप्रकार पूंछे जानेपर परीक्षित्पुत्र शान्तचित्त जनमेजयसे ॥ १ ॥ संशयछेदन करनेवाले वचन कहनेलगे—हे राजन् ! इस विषयमें और अधिक कहना क्या है? आप जानते हैं कि, इस संसारमें कर्मकी गति सहजमें नहीं जानी जाती॥ २॥ इसकी विचित्र गतिको देवता लोगभी जाननेमें समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्यगणोंके पक्षमें क्या कहूं?जिस समय

यह त्रिगुणात्मक जगत् उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥ तब कर्मके द्वारा ही सबकी उत्पत्ति होती है इसमें सन्देह नहीं. कर्मरूपी बीजसे उत्पन्न हुए समस्त जीवोंका आदि और अन्त नहीं है ॥ ४ ॥ वे इस कर्मबीजद्वाराही अनेक प्रकारको योनिमें वारंवार जन्मग्रहण करते हैं और वारंवार मृत्युको प्राप्त होते हैं, क्योंकि कर्मोंका क्षय होनेसे जीवको कभी फिर देहके सहित संयुक्त होना नहीं पड़ता है ॥ ५ ॥ जीवगणोंके कर्म शुभ, अशुभ और मिश्र हैं, तिनमें सात्विक कर्म शुभ, तामस कर्म अशुभ और राजसिक कर्म मिश्रित हैं. तत्वदर्शी पण्डितगणोंने जीवगणोंके कर्म ये तीन प्रकार कहकर निरूपण किये हैं ॥ ६ ॥ उक्त तीन प्रकारके कर्म फिर सञ्चित भविष्य और प्रारब्ध भेदसे तीन प्रकारमें विभक्त है यह तीन प्रकारके कर्म जीवके देहमें सदा विद्यमान रहते हैं ॥ ७ ॥ हे नृपते ! ब्रह्मादि समस्तही इन कर्मोंके वशीभूत हैं और सुख दुःख, बुढापा, मृत्यु हर्ष, शोकादि ॥८॥ और काम, क्रोध और लोभादि देहगत समस्त गुण कर्म जनित अदृष्टके वशवर्ती होकर प्रादुर्भूत होते

कर्मणैवरामुत्पत्तिःसर्वेषांनात्रसंशयः ॥ अनादिनिधनाजीवाःकर्मबीजसमुद्भवाः ॥ ४ ॥ नानायोनिषुजायंतेम्रियंतेचपुनःपुनः ॥ कर्मणारहितोदेहसंयोगो नकदाचन ॥ ५ ॥ शुभाशुभैस्तथामिश्रैःकर्मभिर्वेष्टितंत्विदम् ॥ त्रिविधानिहितान्याहुर्बुधास्तत्त्ववदिश्चये ॥ ६ ॥ संचितानिभविष्याणिप्रारब्धानितथापु नः ॥ वर्तमानानिदेहेऽस्मिंस्त्रैविध्यंकर्मणांकिल ॥ ७ ॥ ब्रह्मादीनांचसर्वेषांतद्वशत्वंनराधिप ॥ सुखदुःखजरामृत्युहर्षशोकादयस्तथा ॥ ८ ॥ कामक्रोधौ चलोभश्चसर्वेदेहगतागुणाः ॥ दैवाधीनाश्चसर्वेषांप्रभवंतिनराधिप ॥ ९ ॥ रागद्वेषादयोभावाःस्वर्गेपिप्रभवंतिहि ॥ देवानांमानवानांचतिरश्चांचतथापु नः ॥ १० ॥ विकाराःसर्वएवैतेदेहेनसहसंगताः ॥ पूर्ववैरानुयोगेनस्नेहयोगेनवैपुनः ॥ ११ ॥ उत्पत्तिःसर्वजंतूनांविनाकर्मनविद्यते ॥ कर्मणाभ्रमतेसूर्यः शशांकःक्षयरोगवान् ॥ १२ ॥ कपालीचतथारुद्रःकर्मणैवनसंशयः ॥ अनादिनिधनंचैतत्कारणंकर्मसंभवे ॥ १३ ॥ तेनेहशाश्वतंसर्वंजगत्स्थावरजंगम म् ॥ नित्यानित्यविचारेऽत्रनिमग्नामुनयःसदा ॥ १४ ॥ नजानंतिकिमेतद्वैनित्यंवाऽनित्यमेवच ॥ मायायांविद्यमानायांजगन्नित्यंप्रतीयते ॥ १५ ॥

हैं ॥ ९ ॥ अत एव रागद्वेषादि शारीरक संपूर्ण धर्म समानभावसे प्रभुता करते हैं देवता, मनुष्य और तिर्यग्जातिका ॥ १० ॥ पूर्व वैरानुयोगसे क्रोध ईर्षा द्वेषादि और स्नेह योगसे दया दाक्षिण्यादि समस्त प्रकारके विकार देहके सहित कर्मसूत्रमें बँध रहे हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! कर्मके विना किसी जीवकी भी उत्पत्ति नहीं होसक्ती ? कर्मके द्वाराही सूर्यदेव आकाशमंडलमें भ्रमण करते हैं, कर्मकेही द्वारा चंद्रमा राजयक्ष्मा रोगसे ग्रसित हुए हैं ॥ १२ ॥ और रुद्रदेवने कर्मद्वाराही कपालमाला धारणकी है । अत एव इस कर्मका आदिभी नहीं और मोक्षके पूर्वक्षणपर्यन्त विनाश भी नहीं है. इस कर्मकोही जगत्की उत्पत्तिके विषयमें एक मात्र कारण जानना चाहिये ॥ १३ ॥ इसी कारण स्थावर जंगमात्मक यह सब जगत् नित्य है, किन्तु मुनिगण इसके नित्यानित्यविचारमें सर्वदा निमग्न रहते हैं ॥ १४ ॥ यह जगत् नित्य

है, वा अनित्य. यह वे भलीभांति नहीं जानसक्ते. जहां माया विद्यमान है वहां जगत् नित्य प्रतीत होता है ॥ १५॥ क्यों कि जहां कारण सर्वतोभावसे वर्त्तमान है वहां कार्याभाव किस प्रकार कहसक्ते हैं ? माया नित्य और सर्वदाही सबके कारणरूपमें विद्यमान रहती है ॥ १६ ॥ अतएव हे राजन् ! पण्डितगण कर्मबी जको नित्य कहकर विवेचना करते हैं हे नृप ! यह संपूर्ण जगत् कर्मद्वारा नियन्त्रित निबद्ध होकर सदाही परिवर्त्तित होता है ॥ १७ ॥ हे राजेंद्र ! अमिततेज विष्णुकी इच्छासे नानाविध धर्ममय अनेकप्रकारकी योनियोंमें जन्मग्रहण करता है. हे नृपते ! यदि अमितपराक्रमशाली विष्णुका जन्म इच्छामात्रसेही होता है ॥ १८ ॥ तो उन्होंने किसनिमित्त अधर्ममय अनेक योनियोंमें जन्म ग्रहणकिया है? किस निमित्त भगवान् विष्णुने युगयुगमें अनेकानेक नीचयोनिमें जन्म ग्रहण किया है? कौन स्वतंत्र पुरुष वैकुंठवास और अनेक प्रकारके सुख भोग छोड़कर ॥ १९ ॥ विष्ठामूत्रपरिपूरित मंदिरमें वास करनेकी इच्छा करता है? कौन बुद्धिमान् फूल तोडनेकी लीला

कार्याभावःकथंवाच्यःकारणेसतिसर्वथा ॥ मायानित्याकारणंचसर्वेषांसर्वदाकिल ॥ १६ ॥ कर्मबीजंततोनित्यंचिंतनीयंसदाबुधैः ॥ भ्रमत्येवजगत्सर्वं राजन्कर्मनियंत्रितम् ॥ १७ ॥ नानायोनिषुराजेंद्रनानाधर्ममयेषुच ॥ इच्छयाचभवेज्जन्मविष्णोरमिततेजसः ॥ १८ ॥ युगेयुगेष्वनेकासु नीचयोनिषुतत्कथम् ॥ त्यक्त्वावैकुंठसंवासंसुखभोगाननेकशः ॥ १९ ॥ विण्मूत्रमंदिरेवासंसंत्रस्तःकोऽभिवांछति ॥ पुष्पावचयलीलाचजलकेलिः सुखासनम् ॥ २० ॥ त्यक्त्वागर्भगृहेवासंकोऽभिवांछतिबुद्धिमान् ॥ तूलिकांमृदुसंयुक्तांदिव्यांशय्यांविनिर्मिताम् ॥ २१ ॥ त्यक्त्वाऽधोमुखवासं चकोऽभिवांछतिपंडितः ॥ गीतंनृत्यंचवाद्यंचनानाभावसमन्वितम् ॥ २२ ॥ मुक्त्वाकोनरकेवासंमनसाऽपिविचिंतयेत् ॥ सिंधुजाद्भुतभावानांरसंत्य क्त्वासुदुस्त्यजम् ॥२३॥ विण्मूत्ररसपानंचकइच्छेन्मतिमान्नरः ॥ गर्भवासात्परोनास्तिनरकोभुवनत्रये ॥ २४ ॥ तद्भीताश्चप्रकुर्वंतिमुनयोदुस्तरंतपः ॥ हित्वाभोगंचराज्यंचवनेयांतिमनस्विनः ॥ २५ ॥ यद्भीतास्तुविमूढात्माकस्तंसेवितुमिच्छति ॥ गर्भेतुदंतिक्रिमयोजठराग्निस्तपत्यधः ॥ २६ ॥

विलास जलकेलि और सुखासन छोड़कर ॥ २० ॥ गर्भगृहमें वास करनेकी अभिलाषा करेगा ? रुईपूर्ण कोमल मनोरम दिव्य शय्या छोड़कर कौन बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ अधोमुखसे गर्भवास करनेका अभिलाषी होगा ? हे नरेन्द्र ! अनेकप्रकारके हावभावपरिपूर्ण नृत्य गीत और वाद्य (बाजा) ॥ २२ ॥ परित्यागपूर्वक कौन नरकमें वास करनेकी मनमें भी चिन्ता करसक्ता है? हेराजेन्द्र! लक्ष्मीके अनुपम मनोरम अद्भुत दुस्त्यज अद्भुतभावको त्यागकर॥२३॥विष्ठामूत्रका रसपान करनेमें किस बुद्धिमान् की प्रवृत्ति उत्पन्न होसक्ती है ? हे जनमेजय ! इन तीनों भुवनोंमें गर्भवासकी समान अन्य नरक कुछ नहीं है ॥ २४ ॥ इसकेही भयसे भीत होकर मुनिगण कठिन तपस्या करते हैं, मुनिगण जिसके भयसे भीत हो राज्य और विषयभोगको त्यागकर वनमें चले जाते हैं ॥ २५ ॥ फिर ऐसा मूढ़ कौन है. जो उसी नरककी सेवा कर

नेके लिये इच्छापूर्वक कामना करेगा? देखो गर्भवासके समय कृमिगण दंशन करते हैं और जठराग्नि अधोभागमें ताप देती है ॥ २६ ॥ उसमें फिर गर्भवेष्टन मांसद्वारा सदाही निर्दयरूपमें बँधकर रहना होता है.हे राजेन्द्र! उसमें कुछभी तो सुख दिखाई नहीं देता यद्यपि कारागृहमें वास और बेडियोंसे बँधा रहनाभी अच्छाहै।।२७।।किन्तु अल्पक्षणमात्रभी गर्भवास शुभकर नहीं है. प्रथम तो दशमास गर्भवासमें॥ २८॥ और फिर दारुण योनियन्त्रद्वारा निकलनेके समयभी जीवको महादुःख अनुभव करना पड़ता है. बाल्यावस्थामें वचन कहनेका जमाव और अज्ञानताके कारण ॥ २९ ॥ भूख प्यासके जतानेमें असमर्थ होता है. मुतरां पराधीन और अतिशय कातर होकर जीव दुःख पाते हैं फिर जब बालक भूखा होकर रोता है, तिसको सुनकर माताभी चिन्तातुर होती है ॥ ३० ॥ तब वह बालकके रोगकी यातना अधिकतर जानकर

वपासंवेष्टनंक्रूरंकिंसुखंतत्रभूपते ॥ वरंकारागृहेवासोबंधनंनिगडैर्वरम् ॥ २७ ॥ अल्पमात्रंक्षणंनैवगर्भवासःक्वचिच्छुभः ॥ गर्भवासेमहद्दुःखदशमासनिवासनम् ॥ २८ ॥ तथानिःसरणेदुःखंयोनियंत्रेऽतिदारुणे ॥ बालभावेतथादुःखंमूकाज्ञभावसंयुतम् ॥२९॥ क्षुत्तृडावेदनाशक्तःपरतंत्रोऽतिकातरः ॥ क्षुधितेरुदितेबालेमाताचिंतातुरातदा ॥ ३० ॥ भेषजंपातुमिच्छंतीज्ञात्वाव्याधिव्यथांदृढाम् ॥ नानाविधानिदुःखानिबालभावेभवंतिवै ॥ ३१ ॥ किंसुखंविबुधाद्दृष्ट्वाजन्मवांछंतिचेच्छया ॥ संग्राममरैःसार्धंसुखंत्यक्त्वानिरंतरम् ॥३२॥ कर्तुमिच्छेच्चकोमूढःश्रमदंसुखनाशनम् ॥ सर्वैथैवनृपश्रेष्ठसर्वेब्रह्मादयःसुराः ॥ ३३ ॥ कृतकर्मविपाकेनप्राप्नुवंतिसुखाऽसुखे ॥ अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाऽशुभम् ॥ देहवद्भिर्नृभिर्देवैस्तिर्यग्भिश्चनृपोत्तम ॥ ॥ ३४ ॥ तपसादानयज्ञैश्चमानवश्चेंद्रतांव्रजेत् ॥ क्षीणेपुण्येऽथशक्रोऽपिपतत्येवनसंशयः ॥ ३५ ॥

औषधि पान करनेकी इच्छा करती है, इसीप्रकार बाल्यावस्थामेंभी अनेकप्रकारके दुःख उपस्थित होते हैं ॥ ३१ ॥ अत एव देवगण क्या सुख देखकर इस घोरतर दुःखसंकुल संसारमें अपनी इच्छानुसार जन्मग्रहण करनेकी इच्छा करेंगे ? हे नृप ! निरंतर संतोष सुख परित्यागकरके कौन मूढ़ देवताओंके संग श्रमदायक और सुख नाशक संग्राम करनेकी इच्छा करेगा? हे नृपेन्द्र!ब्रह्मादिदेवतागण सभी॥ ३२॥ ३३॥ कृतकर्मका विपाक हेतु सर्वतोभावमें सुखदुःखभोग करते हैं. हे नृपोत्तम ! क्या देवता क्या मनुष्य क्या तिर्यग्जाति जो कोई देहधारी मात्र क्यों नहीं, सबकोही अपने अपने किये कर्मका शुभाशुभ फल अवश्य भोगना होगा. इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ ३४ ॥ हे पार्थिव ! मनुष्य तपस्या दान और यज्ञद्वारा इन्द्रत्वको प्राप्त होसक्ता है. किन्तु पुण्य क्षीण होनेपर इन्द्रभी अपने स्थानसे पतित होता है ॥ ३५॥

देखो, रामावतारके समय देवताओंने उनकी सहायता करनेके लिये वानर होकर और कृष्णअवतारमें गोप व यादव होकर जन्म ग्रहण किया था ॥ ३६ ॥ इसीप्रकार युगयुगमें ब्रह्माजीके द्वारा प्रेरित होकर भगवान् विष्णु धर्मकी रक्षाके लिये पृथ्वीमंडलमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ३७ ॥ हे पृथ्वीन्द्र ! इस प्रकार भगवान् हरि रथचक्रकी समान परिवर्त्तित होकर अनेक योनियोंमें अनेकबार अद्भुतरूपसे वारंवार अवतीर्ण हुए थे ॥ ३८ ॥ अमेयात्मा हरि स्वयं अंशांशसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर दैत्यसंहार रूप कर्तव्य कर्म संपादन करते हैं ॥ ३९ ॥ अत एव मैं तुमसे वह कल्याणदायक कृष्णकथाही कहूंगा वह भगवान् विष्णुही यदुकुलमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! कश्यपमुनिके अंशसे उत्पन्न प्रभावसंपन्न वसुदेवजी पूर्व शापके कारण जन्म ग्रहणकर पशुपालनवृत्तिद्वारा जीविकानिर्वाह करते थे ॥ ४१ ॥

रामावतारयोगेनदेवावानरतांगताः ॥ तथाकृष्णसहायार्थंदेवायादवतांगताः ॥ ३६ ॥ एवंयुगेयुगेविष्णुरवताराननेकशः ॥ करोतिधर्मरक्षार्थंब्रह्मणाप्रेरितोभृशम् ॥ ३७ ॥ पुनःपुनर्हरेरेवंनानायोनिषुपार्थिव ॥ अवताराभवंत्यन्येरथचक्रवदद्भुताः ॥ ३८ ॥ दैत्यानांहननंकर्मकर्तव्यंहरिणास्वयम् ॥ अंशांशेनपृथिव्यांवैकृत्वाजन्ममहात्मना ॥ ३९ ॥ तदहंसंप्रवक्ष्यामिकृष्णजन्मकथांशुभाम् ॥ सएवभगवान्विष्णुरवतीर्णोयदोःकुले ॥ ४० ॥ कश्यपस्यमुनेरंशोवसुदेवःप्रतापवान् ॥ गोवृत्तिरभवद्राजन्पूर्वशापानुभावतः ॥ ४१ ॥ कश्यपस्यचद्वेपत्न्यौशापादत्रमहीतले ॥ अदितिःसुरसाचैवमासतुःपृथिवीपते ॥ ॥ ४२ ॥ देवकीरोहिणीचोभेभगिन्यौभरतर्षभ ॥ वरुणेनमहाञ्छापोदत्तःकोपादितिश्रुतम् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ किंकृतंकश्यपेनाऽऽगोयेनशप्तोमहानृषिः ॥ सभार्यःसकथंजातस्तद्वदस्वमहामते ॥ ४४ ॥ कथंचभगवान्विष्णुस्तत्रजातोऽस्तिगोकुले ॥ वासीवैकुंठनिलयेरमापतिरखंडितः ॥ ४५ ॥ निदेशात्कस्यभगवान्वर्ततेप्रभुरव्ययः ॥ नारायणःसुरश्रेष्ठोयुगादिःसर्वधारकः ॥ ४६ ॥ सकथंसदनंत्यक्त्वाकर्मवानिवमानुषे ॥ करोतिजननंकस्मादत्रमेसंशयोमहान् ॥ ४७ ॥

हे नृपवर ! कश्यप ऋषिकी दोनों पत्नी अदिति और सुरसाने शापके वश ॥ ४२ ॥ देवकी और रोहिणी दो भगिनी रूपमें जन्म ग्रहण किया था. हे भरतर्षभ ! मैंने इसप्रकार सुना है कि, जलाधिपति वरुणजीने किसी समय क्रोधमें भरकर उनको शाप दिया था ॥ ४३ ॥ जनमेजय बोले हे महामते ! महर्षि कश्यपजीने क्या अपराध किया था जिसके द्वारा उन्होंने भार्याके सहित पशुजीवी होकर जन्मग्रहण किया था ॥ ४४ ॥ वैकुण्ठवासी अखंडितात्मा विष्णुने किस निमित्त गोकुलमें जन्म ग्रहण किया था ? यह मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४५ ॥ जो भगवान् और नारायण हैं जो सुर श्रेष्ठ और निग्रहानुग्रहमें समर्थ हैं जो सर्वाधार और अव्यय हैं उन सर्व युगादि वैकुण्ठवासी हृषीकेशने ॥ ४६ ॥ किस कारण अपना भवन परित्यागपूर्वक नरलोकमें जन्मग्रहण करके मानुषीकर्म किये थे ? इस विषयमें मुझको महान्

संदेह रहता है ॥ ४७ ॥ उन्होंने मनुष्यदेहधारण करके अनेक प्रकारकी विडम्बना भोग और अनेकप्रकारके दुष्टभाव अनुभव किये थे ॥ ४८ ॥ क्योंकि मनुष्यजन्ममें कभी काम, क्रोध, अमर्ष, शोक और वैर कभी प्रीति ॥ ४९ ॥ कभी सुख, कभी दुःख, कभी मानवतासुलभ दीनता, सुकृत, दुष्कृत, वचन और हनन, पोषण और चलन, ताप, विमर्श (विचार) और श्लाघा ॥ ५० ॥ लोभ: दम्भ और मोह (कपट) और शोच मनुष्योंमेंही यह सब और अन्यान्य अनेक प्रकारके भाव उत्पन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ अत एव उन भगवान् विष्णुने नित्य सुख परित्याग करके किसलिये इस सब दुष्टभारसे युक्त मनुष्यजन्मको ग्रहण किया था ? ॥ ५२ ॥ हे मुनिवर ! पृथ्वीतलपर मानुषजन्म ग्रहण करनेमें ऐसा क्या सुख है ? कि उन साक्षात् हरिने भी जिसके लिये गर्भवास स्वीकार किया था ॥ ५३ ॥ हे मुनीन्द्र ! जिस मनुष्यजन्ममें गर्भवासमें, उत्पत्तिकालमें, बालभाव और यौवनमें भी दुःख एवं गार्हस्थ आचरणमें तो दुःखकी सीमा नहीं है ॥ ५४ ॥ हे द्विजसत्तम ! तो फिर वे भगवान् विष्णु

प्राप्यमानुषदेहंतुकरोतिचविडंबनम्॥ भावान्नानाविधांस्तत्रमानुषेदुष्टजन्मनि॥४८॥कामःक्रोधोऽमर्षशोकौवैरंप्रीतिश्चकर्हिचित्॥ सुखंदुःखंभयंनृणांदैन्यमार्जवमेवच॥४९॥दुष्कृतंसुकृतंचैववचनंहननंतथा॥पोषणंचलनंतापोविमर्शश्चविकत्थनम्॥५०॥लोभोदंभस्तथामोहःकपटंशोचनंतथा॥एतेचान्येतथा भावामानुष्येसंभवंतिहि॥५१॥सकथंभगवान्विष्णुस्त्यक्त्वासुखमनश्वरम्॥करोतिमानुषंजन्मभावैरेतैरभिद्रुतम्॥५२॥किंसुखंमानुषंप्राप्यभुविजन्ममुनीश्वर ॥ किंनिमित्तंहरिःसाक्षाद्गर्भवासंकरोतिवै ॥ ५३ ॥ गर्भेदुःखंजन्मदुःखंबालभावेतथापुनः ॥ यौवनेकामजंदुःखंगार्हस्थ्येऽतिमहत्तरम् ॥ ५४ ॥ दुःखान्येतान्यवाप्नोतिमानुषेद्विजसत्तम ॥ कथंसभगवान्विष्णुरवतारान्पुनःपुनः ॥५५॥ प्राप्यरामाऽवतारंहिहरिणाब्रह्मयोनिना ॥ दुःखंमहत्तरंप्राप्तंवनवासेऽतिदारुणे ॥ ५६ ॥ सीताविरहजंदुःखंसंग्रामश्चपुनःपुनः ॥ कांतात्यागोऽप्यनेनैवमनुभूतोमहात्मना ॥५७॥ तथाकृष्णाऽवतारेऽपिजन्मरक्षागृहेपुनः ॥ गोकुलेगमनंचैवगवांचारणमित्युत ॥ ५८ ॥ कंसस्यहननंकष्टाद्द्वारकागमनंपुनः ॥ नानासंसारदुःखानिभुक्तवान्भगवान्कथम् ॥ ५९ ॥ स्वेच्छयाकःप्रतीक्षेतमुक्तोदुःखानिज्ञानवान् ॥ संशयंछिंधिसर्वज्ञममचित्तप्रशांतये ॥ ६० ॥ इति श्रीदे०महापुराणेचतुर्थस्कंधेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

किस लिये वारंवार मनुष्य जन्ममें अवतीर्ण हुये थे ? ॥ ५५ ॥ देखो वेही ब्रह्मसंभव हरि रामावतारको प्राप्त होकर दारुण वनवासमें अत्यन्त महत् दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ ५६ ॥ उन महात्माने जनकात्मजाके विरहजनित दुःख वारंवार संग्राम प्रियतम कान्ता (स्त्री) के वियोग इत्यादि महादुःखदायक समस्त विषय अनुभव किये थे ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार कृष्णावतारके समय कारागृहमें जन्म ले गोकुलमें गमन और गोचारण ॥ ५८ ॥ कंसनाश, अतिकष्टसे द्वारकामें गमन इत्यादि अनेकप्रकारके संसारदुःख क्यों भोग किये थे ? ॥ ५९ ॥ हे भगवन् ! आप सभी जानते हैं अत एव कहिये कौन ज्ञानवान् मुक्त पुरुष दुःखलाभकी आकांक्षा करता है? आप मेरे चित्तकी शान्तिके निमित्त यह महासंशय छेदन करके मुझपर दया प्रकाश कीजिये ॥ ६० ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा—एहि तृतीयअध्यायमें, शिवा शम्भु मन लाय । अदितिशापकी कथाको, वर्णत हैं मन लाय ॥ १ ॥

व्यासजी बोले हे महाराज ! इन हरिके अवतार और सम्पूर्ण देवतागणोंके अंशावतारमें अनेक कारण दिखाई देते हैं ॥ १ ॥ इस समय आप वसुदेव देवकी और रोहिणीके अवतारका कारण भलीभाँति श्रवण कीजिये ॥ २ ॥ एक दिन श्रीमान् कश्यप ऋषि यज्ञके लिये वरुण देवकी कामधेनु हरणकरलाये. अनन्तर वरुणदेवके इस धेनुके लिये वारंवार प्रार्थना करनेपरभी उन्होंने इनको वह उत्तम धेनु नहीं दी ॥ ३ ॥ तब वरुणदेव अत्यन्त दुःखित हुए और जगत्प्रभु ब्रह्माजीके निकट जाय विनय सहित अपना दुःख निवेदन करके उन्होंने कहा ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! महर्षि कश्यप इस समय प्रायः उन्मत्त हैं. उन्होंने किसीप्रकारभी मुझको धेनु नहीं दी, मैंने माताके विरहमें अत्यन्त दुःखित वत्सगणोंकी रोदनध्वनि सुनकर उनको यह कहकर शाप दिया है कि, तुम नरलोकमें गोपाल होकर जन्म ग्रहण करो और

व्यासउवाच॥कारणानिबहून्यत्राप्यवतारेहरेःकिल ॥ सर्वेषांचैवदेवानामंशाऽवतरणेष्वपि ॥ १ ॥ वसुदेवावतारस्यकारणंशृणुतत्त्वतः ॥ देवक्याश्चैवरोहिण्याअवतारस्यकारणम् ॥२॥ एकदाकश्यपःश्रीमान्यज्ञार्थंधेनुमाहरत् ॥ याचितोऽयंबहुविधंनददौधेनुमुत्तमाम् ॥३॥ वरुणस्तुततोगत्वाब्रह्माणंजगतःप्रभुम्॥प्रणम्योवाचदीनात्मास्वदुःखंविनयान्वितः ॥४॥ किंकरोमिमहाभागमत्तोऽसौनददातिगाम् ॥ शापोमयाविसृष्टोऽस्मैगोपालोभवमानुषे ॥५॥ भार्येद्वेअपितत्रैवभवेतांचातिदुःखिते ॥ यतोवत्सारुदंत्यत्रमातृहीनाःसुदुःखिताः ॥ ६ ॥ मृतवत्साऽदितिस्तस्माद्भविष्यतिधरातले ॥ कारागारनिवासाचतेनापिबहुदुःखिता ॥ ७ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्ययादोनाथस्यपद्मभूः ॥ समाहूयमुनिंतत्रतमुवाचप्रजापतिः ॥ ८ ॥ कस्मात्त्वयामहाभागलोकपालस्यधेनवः ॥ हृताःपुनर्नदत्ताश्चकिमन्यायंकरोषिवै ॥ ९ ॥ जानन्न्यायंमहाभागपरवित्तापहारणम् ॥ कृतवान्कथमन्यायंसर्वज्ञोऽसिमहामते ॥ ॥ १० ॥ अहोलोभस्यमहिमामहतोऽपिनमुंचति ॥ लोभंनरकदंनूनंपापाकरमसंमतम् ॥ ११ ॥

तुम्हारी दोनों भार्या अतिशय दुःखको प्राप्त होकर उसी स्थानमें जन्मलाभ करें ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वत्सगणोंका वह कष्ट देख अत्यन्त क्रोधमें भर फिर अदितिसे कहा कि, तुम पृथ्वीतलमें मृतवत्सा, कारावासिनी और अत्यन्तदुःखकी भागिनी होगी ॥ ७ ॥ हे जनमेजय ! पद्मयोनि ब्रह्माजीने वरुणके यह वचन सुन कश्यपजीको बुलाकर कहा ॥८॥ हे महाभाग ! आपने किसलिये लोकपाल वरुणदेवकी धेनुहरण की है ? और किसलिये पुनर्वार वह धेनु न देकर अन्याय किया है ? ॥९॥ हे भगवन् ! आप सर्वज्ञ और मतिमान् होकर एवं न्यायका मर्म जानकरभी परधन हरणकरके किसलिये अन्यायकार्यमें प्रवृत्त हुए हैं ? ॥ १० ॥ अहो ! लोभकी क्या अपूर्व महिमा है ? महतपुरुषभी लोभके हाथसे मुक्त होनेमें समर्थ नहीं होते. लोभ पापकी खानि है, वह सज्जनगणोंके असम्मत और निःसंदेह नरकप्रद होताहै ॥ ११ ॥

कश्यपभी त्यागनेको समर्थ नहीं तो मैं अब क्या करूं? इससमय मैं ने सब प्रकार देवसे भी लोभको अधिक प्रभावयुक्त जाना ॥ १२ ॥ जिन महर्षिगणोंने शान्तिपरायण शान्तचित्त और प्रतिग्रहसे पराङ्मुख और वैखानस वृत्ति अवलम्बन करके लोभको पराजित किया है वेही धन्य हैं ॥ १३ ॥ संसारमें लोभही बलवान् शत्रु है, लोभकी समान अपवित्र और घृणित वस्तु संसारमें दूसरी नहीं है, हाय ! उसी लोभने महर्षि कश्यपको भी सामान्य स्नेहमें बद्ध और दुराचारी कर डाला. यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है, इसमें संदेह नहीं ॥ १४ ॥ अनन्तर प्रजापति ब्रह्माजीने भी न्याय और धर्मकी रक्षा करनेके लिये अपने परम प्रियतम पौत्र कश्यपजीको शाप देकर कहा कि ॥ १५ ॥ तुम पृथ्वीतलपर यदुकुलमें जन्मग्रहण कर मायाके सहित मिलित हो गोपालनकार्य संपादन करो॥ १६ ॥ हे महाराज !

कश्यपोऽपिनतंत्यक्तुंसमर्थःकिंकरोम्यहम् ॥ सर्वदैवाधिकस्तस्माल्लोभोवैकलितोमया ॥ १२ ॥ धन्यास्तेमुनयःशांताजितोयैर्लोभएवच ॥ वैखानसैःशम परैःप्रतिग्रहपराङ्मुखैः ॥ १३ ॥ संसारेबलवाञ्छत्रुर्लोभोऽमेध्यवरःसदा ॥ कश्यपोऽपिदुराचारःकृतस्नेहोदुरात्मना ॥ १४ ॥ ब्रह्मापितंशशापाऽथक श्यपंमुनिसत्तमम् ॥ मर्यादारक्षणार्थंहिपौत्रंपरमवल्लभम् ॥ १५ ॥ अंशेनत्वंपृथिव्यांवैप्राप्यजन्मयदोःकुले ॥ भार्याभ्यांसंयुतस्तत्रगोपालत्वंकरिष्यसि ॥ १६ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंशप्तःकश्यपोऽसौवरुणेनचब्रह्मणा ॥ अंशावतरणार्थायभूभारहरणायच ॥ १७ ॥ तथादित्याऽदितिःशप्ताशोकसंतप्तयाभृश म् ॥ जाताजाताविनश्येरंस्तवपुत्रास्तुसप्तवै ॥ १८ ॥ जनमेजयउवाच ॥ कस्मादित्याचभगिनीशप्तेंद्रजननीमुने ॥ कारणंवदशापेचशोकस्तुमुनिसत्तम ॥ १९ ॥ सूतउवाच ॥ पारिक्षितेनपृष्टस्तुव्यासःसत्यवतीसुतः ॥ राजानंप्रत्युवाचेदंकारणंसुसमाहितः ॥ २० ॥ व्यासउवाच ॥ राजन्दक्षसुतेद्वेतुदिति श्चाऽदितिरुत्तमे ॥ कश्यपस्यप्रियेभार्येबभूवतुरुरुक्रमे ॥ २१ ॥ अदित्यामघवापुत्रोयथाऽभूदतिवीर्यवान् ॥ तदातुताद्दशंपुत्रंचकमेदितिरोजसा ॥ २२ ॥

अंशावतार और भूभारहरण करनेके लिये ब्रह्मा और वरुणजीने महर्षि कश्यपजीको इस प्रकार शाप दिया ॥ १७ ॥ और दितिने अत्यन्त शोकसंतप्त होकर अदितिको यह कहकर शाप दिया था कि, तुम्हारे सात पुत्र जन्मते जन्मते नाशको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिसत्तम ! दितिने इन्द्रजननी भगिनी अदितिको किस कारण शाप दिया था ? उसके शापका कारण क्या है ? सो मुझसे कहिये. यह विषय सुनकर मेरे अन्तःकरणमें शोक उदय होता है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले हे ऋषिगण ! परीक्षितपुत्र जनमेजयके सत्यवतीपुत्र व्यासदेवसे इसप्रकार पूँछनेपर महर्षि समाहित हो राजासे उसीप्रकार उन विषयोंका कारण कहनेलगे ॥ २० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! दिति और अदितिनामक प्रजापति दक्षकी दो कन्या थीं ? यह दोनों सुव्रता कन्या महर्षि कश्यपजीकी प्रियभार्या हुईं ॥ २१ ॥ अदितिके

गर्भसे अत्यन्त वीर्यवान् देवराज इन्द्र उत्पन्न हुए. तब दितिनेभी अपने इसीप्रकार वीर्यवान् और तेजसंपन्न पुत्रकी कामना की ॥ २२ ॥ उस असितापाङ्गी दितिने पतिको संबोधन देकर कहा हे स्वामिन्! आप सबकोही मान देते हैं. अतएव प्रार्थना करती हूं. मुझको इन्द्रकी समान बलशाली, वीर, धीर, धर्मिष्ठ और वीर्यवान् पुत्र दो ॥ २३ ॥ महर्षिजी बोले हे कान्ते! सावधान होओ, मैं तुझसे जिस व्रताचरणका विषय कहता हूं उस व्रतके समापन करनेसेही तुम इन्द्रकी समान पुत्र लाभ करोगी ॥ २४ ॥ आप जो आज्ञा करते हैं मैं वही करूंगी यह कहकर दितिके उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करनेपर महर्षि कश्यपने उसके उदरमें गर्भ स्थापन किया. दिति वह गर्भ यथानियम धारण करने लगी ॥ २५ ॥ वरवर्णिनी दिति नियमान्वित और पवित्र रहकर एकाग्र चित्तसे पयोव्रतके अनुष्ठान पूर्वक भूमिमें शयन करने लगी ॥ २६ ॥ इसप्रकार वह तेजसंपन्न गर्भ जब परिपूर्ण होगया तब अदिति दितिको श्वेतवर्ण और दीप्ताङ्गी देखकर दुःखित

पतिमाहाऽसितापांगीपुत्रंमेदेहिमानद ॥ इंद्रतुल्यबलंवीरंधर्मिष्ठंवीर्यवत्तमम् ॥ २३ ॥ तामुवाचमुनिःकांतेस्वस्थाभवमयोदिते ॥ व्रतांतेभवितातुभ्यंश तक्रतुसमःसुतः ॥ २४ ॥ सातथेतिप्रतिश्रुत्यचकारव्रतमुत्तमम् ॥ निषिक्तंमुनिनागर्भंबिभ्राणासुमनोहरम् ॥ २५ ॥ भूमौचकारशयनंपयोव्रतपरायणा ॥ पवित्राधारणायुक्ताबभूववरवर्णिनी ॥ २६ ॥ एवंजातःसुसंपूर्णोयदागर्भोऽतिवीर्यवान् ॥ शुभ्रांशुमतिदीप्तांगींदितिंदृष्ट्वातुदुःखिता ॥ २७ ॥ मघवत्सदृशः पुत्रोभविष्यतिमहाबलः ॥ दित्यास्तदाममसुतस्तेजोहीनोभवेत्किल ॥ २८ ॥ इतिचिंतापरापुत्रमिंद्रंचोवाचमानिनी ॥ शत्रुस्तेऽद्यसमुत्पन्नोदितिगर्भेऽतिवीर्यवान् ॥ २९ ॥ उपायंकुरुनाशायशत्रोरद्यविचिंत्यच ॥ उत्पत्तिरेवहंतव्यादित्यागर्भस्यशोभन ॥ ३० ॥ वीक्ष्यतामसितापांगींसपत्नीभावमास्थिताम् ॥ दुनोतिहृदयेचिंतासुखमर्मविनाशिनी ॥ ३१ ॥ राजयक्ष्मेवसंवृद्धोनष्टोनैवभवेद्रिपुः ॥ तस्मादंकुरितंहन्याद्बुद्धिमानहितंकिल ॥ ३२ ॥

चित्तसे चिन्ता करने लगी कि ॥ २७ ॥ जब दितिके इन्द्रकी समान महाबल पुत्र उत्पन्न होगा, तब निःसंदेह मेरा पुत्र तेजहीन होजायगा ॥ २८ ॥ अभिमानिनी अदितिने इसप्रकार चिन्तातुर होकर अपने पुत्र अमरराजसे कहा-हे वत्स! अतिशय वीर्यवान् तुम्हारा एक शत्रु इस समय दितिके गर्भमें विद्यमान है ॥ २९ ॥ तुम अभीसे शत्रुविनाशके लिये उपाय विचारो. हे सुशोभन! दितिका गर्भ जिससे उत्पन्न होनेके पहिलेही नाशको प्राप्त होजाय इस विषयमें तुम यत्नवान् होओ ॥ ॥ ३० ॥ सपत्नीभावमें गर्विता उस असितापाङ्गी दितिको देखकर सुखनाशिनी और मर्मघातिनी चिन्ता मेरे हृदयको अत्यन्त तापित करती है ॥ ३१ ॥ देखो, शत्रु राजयक्ष्माकी समान बद्धमूल होनेसे फिर उसका विनाश नहीं किया जाता अत एव बुद्धिमान् शत्रुगणको अंकुरित अवस्थामें ही विनाश करे ॥ ३२ ॥

हे शतक्रतो ! दितिका गर्भ लोहेकी शंकु कीलकी समान मेरे हृदयमें निक्षिप्त हुआ है, तुम जिस किसी उपायसे इसका विनाश करो ॥ ३३ ॥ हे महाभाग ! यदि तुम मेरी प्रिय कामना करते हो तो साम दानादि अथवा बलद्वारा दितिके गर्भका नाश करके मेरे सन्तापित चित्तको शीतल करो ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! अमरराज इन्द्र माताके वचन सुन मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता कर विमाताके निकट गये ॥ ३५ ॥ वे पापमति विनयान्वित हो दितिके चरणवंदन पूर्वक विषगर्भित मधुरवचन द्वारा उससे कहनेलगे ॥ ३६ ॥ हे मातः ! तुम व्रताचरणसे क्षीणदेह और अत्यन्तदुर्बल होगई हो. मैं तुम्हारी सेवाके लिये आया हूं. इस समय क्या करूं ? आज्ञा कीजिये ॥ ३७ ॥ हे पतिव्रते ! मैं तुम्हारे चरणोंकी सेवा करना चाहता हूं, क्योंकि गुरुकी सेवा करनेसे पुण्य और अक्षयगति लाभ होती है

लोहशंकुरिवक्षिप्तोगर्भोवैहृदयेमम ॥ येनकेनाऽप्युपायेनपातयाद्यशतक्रतो ॥ ३३ ॥ सामदामबलेनापिहिंसनीयस्त्वयासुतः ॥ दित्यागर्भोमहाभागममचेदिच्छसिप्रियम् ॥ ३४ ॥ व्यासउवाच ॥ श्रुत्वामातृवचःशक्रोविचिंत्यमनसाततः ॥ जगामापरमातुःससमीपममराधिपः ॥ ३५ ॥ ववंदेविनयात्पादौदित्याःपापमतिर्नृप ॥ प्रोवाचविनयेनाऽसौमधुरंविषगर्भितम् ॥ ३६ ॥ इंद्रउवाच ॥ मातस्त्वंव्रतयुक्ताऽसिक्षीणदेहाऽतिदुर्बला ॥ सेवार्थमिहसंप्राप्तःकिंकर्तव्यंवदस्वमे ॥३७॥ पादसंवाहनंतेऽहंकरिष्यामिपतिव्रते ॥ गुरुशुश्रूषणात्पुण्यंलभतेगतिमक्षयाम् ॥३८ ॥ नमेकिमपिभेदोऽस्तितथादित्याशपेकिल ॥ इत्युक्त्वाचरणौस्पृष्ट्वासंवाहनपरोऽभवत् ॥ ३९ ॥ संवाहनसुखंप्राप्यनिद्रामापसुलोचना ॥ श्रांताव्रतकृशासुप्ताविश्वस्तापरमासती ॥ ॥ ४० ॥ तांनिद्रावशमापन्नांविलोक्यप्राविशत्तनुम् ॥ रूपंकृत्वाऽतिसूक्ष्मंचशस्त्रपाणिःसमाहितः ॥४१॥ उदरंप्रविवेशाऽऽशुतस्यायोगबलेनवै ॥ गर्भंचकर्तवज्रेणसप्तधापविनायकः ॥ ४२ ॥ रुरोदचतदाबालोवज्रेणाभिहतस्तथा ॥ मारुदेतिशनैर्वाक्यमुवाचमघवानमुम् ॥४३॥ शकलानिपुनःसप्तसप्तधाकर्तितानिच ॥ तदाचैकोनपंचाशन्मरुतश्चाभवन्नृप ॥ ४४ ॥

॥ ३८ ॥ हे माता ! मैं शपथकरके कहता हूं कि मेरे अन्तःकरणमें अदिति और तुममें कुछ भेदबुद्धि नहीं है यह कह चरणोंका स्पर्शकर पैर दावने लगे ॥ ३९ ॥ व्रतसे थकी कृश सुलोचना दिति पैर दावनेके सुखको प्राप्त हो और इन्द्रके वचनमें विश्वास कर गाढ़निद्रामें निमग्न हुई ॥ ४० ॥ वज्रपाणि इन्द्रने उसको सोती देख, अत्यन्त सूक्ष्मरूप धारणकर ॥४१॥ सावधानीसे योगबलके द्वारा उसके उदरमें शीघ्र प्रवेश किया और वज्रद्वारा छेदनकरके उसके गर्भको सातभागमें विभक्त कर डाला ॥ ४२ ॥ उदरमें स्थितहुए बालक वज्रद्वारा आहत होकर रोनेलगे. इन्द्र 'रोओ मत, रोओ मत' ऐसा कहकर बालककी वारंवार सांत्वना करनेलगे ॥ ४३ ॥ किन्तु बालकको निवृत्त हुआ न देखकर इस सतखंडमेंके प्रत्येकखण्डकोही पुनर्वार सातसातभागमें विभक्त किया. हे नृपवर ! उससेही उनचास मरुद्गणोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ४४ ॥

सुमति दितिने तब जागकर जाना कि कपटाचारी इन्द्रने मेरा गर्भ छेदन किया है. इससे वह अतिदुःखित और क्रोधित हुई ॥ ४५॥ यह सब कार्य अपनी बहनका किया जानकर सत्यवादिनी पतिपरायणा दितिने अदिति और इन्द्रको क्रोधसे ॥ ४६ ॥ शाप दिया कि, तेरे पुत्रने छलपूर्वक जिसप्रकार मेरा गर्भ काटा है. इसीप्रकार उसका त्रिभुवनराज्य नष्ट होगा ॥ ४७ ॥ और पापाचारिणी अदितिने जिसप्रकार गुप्तरीतिसे मेरा गर्भ निपात कराय मेरे पुत्रका नाश किया है ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार इसके पुत्र जन्मते जन्मते वारंवार नाशको प्राप्त हों. पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर होकर कारागारमें वास करै ॥ ४९ ॥ और जन्मान्तरमेंभी मृतवत्सा हो.

तदाप्रबुद्धासुदतीज्ञात्वागर्भंतथाकृतम् ॥ इंद्रेणच्छलरूपेणचुकोपभृशदुःखिता ॥ ४५ ॥ भगिनीकृतंतुसाबुद्धाशशापकुपितातदा ॥ अदितिंमघवंतंचसत्यव्रतपरायणा ॥ ४६ ॥ यथामेकर्तितोगर्भस्तवपुत्रेणछद्मना ॥ तथातन्नाशमायातुराज्यंत्रिभुवनस्यतु ॥ ४७ ॥ यथागुप्तेनपापेनममगर्भोनिपातितः ॥ अदित्यापापचारिण्यायथामेघातितःसुतः ॥ ४८ ॥ तस्याःपुत्रास्तुनश्यंतुजाताजाताःपुनःपुनः ॥ कारागारेवसत्वेषापुत्रशोकातुराभृशम् ॥ ४९ ॥ अन्यजन्मनिचाऽप्येवंमृतापत्याभविष्यति ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युत्सृष्टंतदाश्रुत्वाशापंमरीचिनंदनः ॥५०॥ उवाचप्रणयोपेतोवचनंशमयन्निव ॥ माकोपंकुरुकल्याणिपुत्रास्तेबलवत्तराः ॥ ५१ ॥ भविष्यंतिसुराःसर्वेमरुतोमघवत्सखाः ॥ शापोऽयंतववामोरुत्वष्टाविंशेऽथद्वापरे ॥ ५२ ॥ अंशेनमानुषंजन्मप्राप्यभोक्ष्यतिभामिनी ॥ वरुणेनाऽपिदत्तोऽस्तिशापःसंतापितेनच ॥ ५३ ॥ उभयोःशापयोगेनमानुषायभविष्यति ॥ व्यासउवाच ॥ पतिनाऽऽश्वासितादेवीसंतुष्टासाऽभवत्तदा ॥ ५४ ॥

व्यासजी बोले हे महाराज ! मरीचिनन्दन महर्षि कश्यप इस शापके वचनको सुन ॥ ५० ॥ प्रणयवचनद्वारा उसका कोप शान्त करके कहनेलगे हे कल्याणि ! तुम कोप मत करो. तुम्हारे पुत्र अत्यन्त बलवान् ॥ ५१ ॥ और मरुतनामक देवतागण होकर इन्द्रके सखा होंगे. हे वामोरु ! तुम्हारा वह शाप विफल नहीं होगा. अट्ठाईसवें मन्वन्तरके समय द्वापरयुगके अन्तमें इसका फल फलेगा ॥ ५२ ॥ तिसकाल ईर्षाकलुषित कोपना अदिति अंशद्वारा मनुष्यजन्मको प्राप्त होकर इसका फल भोगकरेगी. वरुणजीनेभी संतापित होकर इसको शाप दिया था ॥५३॥ तुम्हारे दोनोंके शापवशतः यह अदिति मानुषी होकर जन्म ग्रहण करेगी. हे महाराज ! तब

वरवर्णिनी देवी दितिने पतिद्वारा आश्वासित होकर संतोषलाभ किया ॥ ५४ ॥ फिर और कुछ अप्रिय वचन न कहे. हे राजन् ! यह मैंने तुम्हारे निकट पूर्ण शाप का कारण वर्णन किया ॥ ५५ ॥ हे नृपसत्तम ! इस प्रकार अदितिने अपने अंशसे देवकी होकर जन्म ग्रहण किया था ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ दोहा–एहि चतुर्थ अध्यायमें, जग अधर्ममय होय । सो सब वर्णन करहिंगे, जेहि जानत कोइकोय ॥ १ ॥ राजाने कहा हे महाभाग ! यह उपाख्यान सुनकर मैं विस्मित हुआ हूं. हे महामते ! मैं देखता हूं यह संसारही पाप स्वरूप है तो जीवगण संसारमें आनकर किस प्रकार मुक्तिलाभ करेंगे ? इस विषयमें आशा तो कुछ हो नहीं सक्ती ॥ १ ॥ क्योंकि जिन्होंने परमपवित्र कश्यप ऋषिके वीर्यसे जन्म ग्रहण किया और त्रैलोक्य

नोवाचविप्रियंकिंचित्ततःसावरवर्णिनी ॥ इतितेकथितंराजन्पूर्वशापस्यकारणम् ॥५५॥ अदितिर्देवकीजातास्वांशेननृपसत्तम ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेचतुर्थस्कंधेतृतीयोऽध्यायः ॥३॥ राजोवाच ॥ विस्मितोऽस्मिमहाभागश्रुत्वाऽऽख्यानंमहामते ॥ संसारोऽयंपापरूपःकथंमुच्येतबंधनात् ॥१॥ कश्यपस्याऽपिदायादस्त्रिलोकीविभवेसति ॥ कृतवानीदृशंकर्मकोनकुर्याज्जुगुप्सितम् ॥ २॥ गर्भेप्रविश्यबालस्यहननंदारुणंकिल ॥ सेवामिषेणमातुश्च कृत्वाशपथमद्भुतम् ॥ ३ ॥ शास्ताधर्मस्यगोप्ताचत्रिलोक्याःपतिरप्युत ॥ कृतवानीदृशंकर्मकोनकुर्यादसांप्रतम् ॥ ४ ॥ पितामहामेसंग्रामेकुरुक्षेत्रेऽति दारुणम् ॥ कृतवंतस्तथाऽऽश्चर्यदुष्टंकर्मजगद्गुरो ॥ ५॥ भीष्मोद्रोणःकृपःकर्णोधर्मांशोऽपियुधिष्ठिरः ॥ सर्वेविरुद्धधर्मेणवासुदेवेननोदिताः ॥ ६ ॥

जिनका विभव है उन देवराज इन्द्रनेभी जब इस प्रकार गर्हित (नीच) कार्यकिया तब फिर कौन व्यक्ति गर्हित कार्यमें प्रवृत्त नहीं होगा? ॥ २ ॥ सेवा करनेके छलसे भारी शपथ कर माताके गर्भमें प्रवेशपूर्वक बालकका प्राणनाश करना निःसंदेह अत्यन्त दारुण कार्य है ॥ ३ ॥ जो सबके शासक और धर्मके रक्षक हैं जो त्रैलोक्यके अधिपति हैं जब उन्होंनेभी इस प्रकार घृणित कार्य किया, तब फिर कौन गर्हित और दूषित कार्यमें प्रवृत नहीं होगा ? ॥ ४ ॥ हे जगद्गुरो ! मेरे पितामहगणोंने कुरुक्षेत्रके संग्रामस्थलमें अत्यन्त दारुण निन्दित कार्य किये थे, यह भी अत्यन्त आश्चर्यका विषय बोध होता है ॥ ५ ॥ देखो भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अधिक क्या धर्मके अंशावतार युधिष्ठिर भी उसी निन्दित कार्यमें लिप्त हुए थे. उन सबने देवांश, धर्मनिरत और बुद्धिमान् होकर एवं संसारकी असारता

जानकर भी वासुदेवकर्तृक ॥ ६ ॥ गुरुवधादिरूप विशुद्ध धर्ममें प्रेरित होकर किस प्रकार घृणित कर्मका आचारण किया ॥ ७ ॥ हे विप्रकुलेन्द्र ! ऐसे महान् पुरुषोंका जब धर्मके विषयमें इस प्रकार आचरण है, तब धर्मकी अवस्थितिके विषयमें आस्था वा श्रद्धा क्या है? और तिस विषयमें निश्चित प्रमाणही क्या है ? हे मुनींद्र ! यह सब आख्यान सुनकर मेरा चित्त अत्यन्तही विचलित हुआ है ॥ ८ ॥ यदि आप्तवाक्यही धर्मके विषयका प्रमाण कहै, तो श्रेष्ठ देहधारी आपही कौन हैं ? संपूर्ण विषयासक्त पुरुषगण सम्यक् प्रकार विषयमें अनुरागी होते हैं अत एव वे आप्त नहीं होसक्ते ॥ ९ ॥ मैं ने निश्चित प्रकारसे समझा है कि, स्वार्थनाश होनेसेही राग और द्वेष उत्पन्न होता है और स्वार्थसिद्धिके लिये उसी द्वेषसे असत्य वचन कहे जाते हैं ॥ १० ॥ सत्वमूर्ति श्रीकृष्णने जरासन्धके वधार्थ जान सनकर भी

असारतांविजानंतःसंसारस्यसुमेधसः॥देवांशाश्चकथंचक्रुर्निंदितंधर्मतत्पराः ॥७॥ काऽऽस्थाधर्मस्यविप्रेंद्रप्रमाणंकिंविनिश्चितम्॥चलचित्तोऽस्मिसंजातः श्रुत्वाचैतत्कथानकम् ॥ ८ ॥ आप्तवाक्यंप्रमाणंचेदाप्तःकःपरदेहवान् ॥ पुरुषोविषयासक्तोरागीभवतिसर्वथा ॥९॥ रागोद्वेषोभवेन्नूनमर्थनाशादसंशयम्॥ द्वेषादसत्यवचनंवक्तव्यंस्वार्थसिद्धये ॥ १० ॥ जरासंधविघातार्थंहरिणासत्त्वमूर्तिना ॥ छलेनरचितंरूपंब्राह्मणस्यविजानता ॥ ११ ॥ तदाप्तःकःप्रमाणं किंसत्त्वमूर्तिरपीदृशः ॥ अर्जुनोऽपितथैवाऽत्रकार्येयज्ञविनिर्मिते ॥ १२ ॥ कीदृशोऽयंकृतोयज्ञःकिमर्थंशमवर्जितः ॥ परलोकपदार्थंवायशसेवाऽन्यथा किल ॥ १३ ॥ धर्मस्यप्रथमःपादःसत्यमेतच्छ्रुतेर्वचः ॥ द्वितीयस्तुतथाशौचंदयापादस्तृतीयकः ॥ १४ ॥ दानंपादश्चतुर्थश्चपुराणज्ञावदंतिवै ॥ तैर्विहीनःकथंधर्मस्तिष्ठेदिहसुसंमतः ॥ १५ ॥ धर्महीनंकृतंकर्मकथंतत्फलदंभवेत् ॥ धर्मेस्थिरामतिः क्वापिनकस्यापिप्रतीयते ॥ १६ ॥

छलपूर्वक ब्राह्मणका वेष धारण किया था ॥ ११ ॥ सात्विकमूर्ति वासुदेवने जिस प्रकार स्वार्थसाधनके लिये छलका अवलम्बन किया अर्जुनने भी इसी प्रकार यज्ञ कार्य साधनके लिये छलका आश्रय लिया था? तब आप्त कौन है? और प्रमाण क्याहै ? ॥१२॥ जिस स्थानमें शिशुपालवधादिरूप अनर्थकी उत्पत्ति हुई वह यज्ञ कैसा था ? यह यज्ञ किसलिये शान्तिरहित हुआ ? यह परलोकप्राप्तिके लिये, वा यशके लिये अथवा अन्य किसी अभिप्रायसाधनके लिये हुआ था ? ॥ १३ ॥ पुराणवित् पण्डितगण कहते हैं कि सत्य धर्मका प्रथम पाद शौच दूसरा पाद दया तीसरा पाद ॥ १४ ॥ और दान चौथा पाद है. यह श्रुतिवाक्य है यह पादविहीन धर्म, सबका सम्मत होकर इस संसारमें उत्तम प्रकारसे अवस्थिति नहीं कर सक्ता ॥ १५ ॥ पांडवगणोंने सत्य और दयादिरहित होकर यज्ञकार्य संपादन किया था अत एव

वह किस प्रकार फलदायक होसक्ता है ? धर्मके विषयमें जो कहीं भी किसीकी मति स्थिर थी, ऐसा प्रतीत नहीं होता, अत एव उन्होंने दंभपूर्ण होकरही यज्ञ किया था, तब वे किस प्रकार आप्त होसक्ते हैं ? ॥ १६ ॥ जगत्‌विभु विष्णु छल करनेके लियेही वामनावतार हुये थे, उसीके अनुसार इस वामनरूपसे बलिराजाको छला था हे मुने ! जब भगवान् विष्णुनेही इस प्रकार छलका अवलम्बन किया था, तब फिर कौन आप्त होनेके लिये शेष रहा? ॥ १७ ॥ बलिराजा शतयज्ञका अनुष्ठानकर्त्ता वेदकी आज्ञाका प्रतिपालक धर्मिष्ठ दानशील सत्यवादी और जितेन्द्रिय था ॥ १८ ॥ जगत्‌प्रभविष्णु विष्णुने इस प्रकार अनेकस द्गुणयुक्तको अकस्मात् स्थानभ्रष्ट किया. हे द्विजोत्तम ! उन दोनोंमें क्या बलिकी जय अथवा वामनकी जय हुई? ॥ १९ ॥ क्या छलकर्मके जाननेवाले वामनने बलिको जीता. अथवा वंचनासे वंचित किये हुए बलिने वामनको जीता. इस विषयमें मुझकोबड़ा संदेह है, हे द्विजोत्तम ! आप सत्य कहो ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तम ! आप धर्मज्ञ

छलार्थंचयदाविष्णुर्वामनोऽभूज्जगत्प्रभुः ॥ येनवामनरूपेणवंचितोऽसौबलिर्नृपः ॥ १७ ॥ विहर्ताशतयज्ञस्यवेदाऽज्ञापरिपालकः ॥ धर्मिष्ठो दानशीलश्चसत्यवादीजितेंद्रियः ॥ १८ ॥ स्थानात्प्रभ्रंशितोऽकस्माद्विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ जितंकेनतयोःकृष्णबलिनावामनेनवा ॥ १९ ॥ छलकर्मविदाचाऽयंसंदेहोऽत्रमहान्मम ॥ वंचयित्वावंचितेनसत्यंवदद्विजोत्तम ॥ २० ॥ पुराणकर्तात्वमसिधर्मज्ञश्चमहामतिः ॥ व्यासउवाच ॥ जितंवै बलिनाराजन्दत्तायेनचमेदिनी ॥ २१ ॥ त्रिविक्रमोऽपिनाम्नायःप्रथितोवामनोऽभवत् ॥ छलनार्थमिदंराजन्वामनत्वंनराधिप ॥ २२ ॥ संप्राप्तंहरिणाभू योद्वारपालत्वमेवच ॥ सत्यादन्यतरन्नास्तिमूलंधर्मस्यपार्थिव ॥ २३ ॥ दुःसाध्यंदेहिनाराजन्सत्यंसर्वात्मनाकिल ॥ मायाबलवतीभूपत्रिगुणाबहुरूपिणी ॥ ॥ २४ ॥ ययेदंनिर्मितंविश्वंगुणैःशबलितंत्रिभिः ॥ तस्माच्छलवतासत्यंकुतोऽविद्धंभवेन्नृप ॥ २५ ॥

पुराणकर्ता महामति हो, व्यासजीने कहा हे महाराज ! बलिराजाने भूमिदान करनेकी जो प्रतिज्ञा की थी उसका प्रतिपालनपूर्वक सत्यकी रक्षा करनेसे बलिराजाकी ही जय हुई थी ॥ २१ ॥ हे नरेन्द्र ! त्रिविक्रम जो वामन कहकर विख्यात हैं उन्होंनेही छलावलम्बी होकर वामनमूर्ति धारणकी थी अर्थात् अपने शरीरके द्वाराही छलाव लम्बका क्षुद्रत्व प्रकाश किया था ॥ २२ ॥ हे पार्थिव ! सत्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ मूलधर्म दूसरा कुछ नहीं है, आप देखिये वेही सत्यापहारी हरि छलके फलसे बलिका द्वारपालत्व लाभ करनेमें बाध्य हुए थे ॥ २३ ॥ अत एव हे राजन् ! सम्यक् प्रकारसे सत्यकी रक्षा देहधारियोंके पक्षमें दुःसाध्य जाननी चाहिये. हे राजन् ! त्रिगुणात्मिका बहुरूपिणी अघटितघटनापटीयसी माया जाननेमें नहीं आती है ॥ २४ ॥ मायाही बलवती है, उसी मायाने अपने विमिश्रित तीनों गुणोंके द्वारा इस विश्व

को निर्माण किया है इसकारण छलावलंबी किस प्रकार सत्यकी भलीभाँति रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ २५ ॥ यह विश्व मिश्रगुणमें अर्थात् रजोगुणद्वारा निर्मित है अत एव रजोगुणात्मक इस संसारमें केवल निर्मल सत्य दुर्लभ है. हे राजन् ! इसको ही सनातनी मर्यादा अर्थात् विधिनिर्दिष्ट नित्यकार्य जानना चाहिये. यदि कहैं कि वैखानस मुनिगण निर्मल सत्यकी मर्यादा रक्षा करते हैं यद्यपि यह सत्य है किन्तु वह निःसंग निष्परिग्रह॥ २६ ॥ सत्ययुक्त विगतराग और श्रमरहित हैं और दृष्टान्त दिखानेके लिये निर्मित हुए हैं अत एव उनकी बात स्वतंत्र है ॥ २७ ॥ उक्त मुनिगणोंके अतिरिक्त सबही त्रिगुणसमन्वित हैं अत एव मुनिगणोंके सहित अपरकी तुलना नहीं होसकी. हे नृपसत्तम ! गुणवानोंके बनाये पुराणादि और साङ्गवेदमें और धर्मशास्त्रमें एक प्रकारकी उक्ति नहीं होती. बनानेवालोंके गुणोंकी विभिन्नतासे भिन्नभिन्न होगई है क्योंकि सगुणपुरुष सगुणकार्य करते हैं, किन्तु निर्गुण सगुणकार्य नहीं करते ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ समस्त गुण मिलित होनेपर कभी पृथक्भाव अवलंबन नहीं करते. वे जिस

मिश्रेणजनितश्चैवस्थितिरेषासनातनी ॥ वैखानसाश्चमुनयोनिःसंगानिष्प्रतिग्रहाः ॥ २६ ॥ सत्ययुक्ताभवंत्यत्रवीतरागागततृषः ॥ दृष्टांतदर्शनार्था यन्निर्मितास्तेचताद्दशाः ॥ २७ ॥ अन्यत्सर्वंशबलितंगुणैरेभिस्त्रिभिर्नृप ॥ नैकंवाक्यंपुराणेषुवेदेषुनृपसत्तम ॥ २८ ॥ धर्मशास्त्रेषुचांगेषुसगु णैरचितेष्विह ॥ सगुणःसगुणंकुर्यान्निर्गुणोनकरोतिवै ॥ २९ ॥ गुणास्तेमिश्रिताःसर्वेनपृथग्भावसंगताः ॥ निर्व्यलीकेस्थिरेधर्मेमतिःकस्यापि नस्थिरा ॥ ३० ॥ भवोद्भवेमहाराजमाययामोहितस्यवै ॥ इंद्रियाणिप्रमाथीनितदासक्तंमनस्तथा ॥ ३१ ॥ करोतिविविधान्भावान्गुणैस्तैःप्रेरितोभृशम् ॥ ब्रह्मादिस्तंवपर्यंताःप्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥ ३२ ॥ सर्वेमायावशाराजन्साऽनुक्रीडतितैरिह ॥ सर्वान्वैमोहयत्येषाविकुर्वत्यनिशंजगत् ॥ ३३ ॥ असत्यो जायतेराजन्कार्यवान्प्रथमंनरः ॥ इंद्रियार्थाश्चितयानोनप्राप्नोतियदानरः ॥ ३४ ॥

जिस गुणके सहित परस्पर मिलते हैं. उसीउस गुणका भाव प्रकाश करते हैं. हे महाराज ! इस संसारमें जन्म ग्रहणकरके सभी मायाके द्वारा मोहित होते हैं. अत एव छलादि रहित निर्मल और अटल धर्ममें किसीकीभी मति स्थिर नहीं रहसक्ती ॥ ३० ॥ इन्द्रियें बुद्धिको मलीन विपरीत करके भोगमार्गमें विचरण करातीं हैं. मन उन इन्द्रियों मेंही आसक्त है. अत एव तीनों गुणोंके द्वारा निरन्तर भावसे प्रेरित होकर ॥ ३१ ॥ अनेकभावमें विचरण करता है हे राजन् ! ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरजंगमपर्यन्त ॥ ३२ ॥ सभी प्राणीही मायाके वशीभूत हैं वह माया उनको लेकर अनेक प्रकारकी क्रीडा करती है यह मायाही सबको मोहित करती है और सदा जगत्की विकृति साधन करती है ॥ ३३ ॥ हे नरेन्द्र ! मनुष्यगण प्रथम कार्यके वश असत्यका आश्रय करते हैं वे जब इन्द्रियोंके लिये भोगादिकी चिन्ता करके उसको नहीं पाते ॥ ३४ ॥

तव छलअवलंबन करते हैं और इसी कारण पापमें प्रवृत्त होते हैं काम क्रोध और लोभ यह प्राणिगणोंके अतिशय बलवान् शत्रु हैं ॥ ३५ ॥ जीवगण इनके वशीभूत होकर कार्य अकार्यका विचार करनेमें समर्थ नहीं होते. विभवके विद्यमान होनेपर अहंकार प्रबल होता है ॥ ३६ ॥ उस अहंकारसे मोह और मोहसे अंतमें मृत्यु होती है संसारमें जीवगणोंके मनमें अनेक संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ ईर्षा असूया और द्वेषादि उत्पन्न होते हैं फिर आशा तृष्णा दैन्य (दीनता) दंभ और विषयगामिनी बुद्धि ॥ ३८ ॥ यह सब मोहसे उत्पन्नहोकर प्राणीगणोंके ऊपर प्रभुत्व करते हैं ॥ ३९ ॥ पुरुषगण अहंकारसे ग्रसित होकरही दिनदिन यज्ञ, दान, तीर्थसेवा, व्रत और नियमादिका अनुष्ठान करते हैं. यह सब यज्ञादि अहंकारभावके द्वारा अनुष्ठित होनेसे ॥ ४० ॥ शौचादिके समान मालिन्य दूर कर

तदर्थंछलमादत्तेछलात्पापेप्रवर्तते॥ कामःक्रोधश्चलोभश्चवैरिणोबलवत्तराः ॥ ३५ ॥ कृताकृतंनजानंतिप्राणिनस्तद्वशंगताः ॥ विभवेसत्यहंकारःप्रबलः प्रभवत्यपि ॥ ३६ ॥ अहंकाराद्भवेन्मोहोमोहान्मरणमेवच ॥ संकल्पाबहवस्तत्रविकल्पाःप्रभवंतिच ॥ ३७ ॥ ईर्ष्यासूयातथाद्वेषःप्रादुर्भवतिचेतसि ॥ आशातृष्णातथादैन्यंदंभोऽधर्ममतिस्तथा ॥ ३८ ॥ प्राणिनांप्रभवंत्येतेभावामोहसमुद्भवाः ॥ यज्ञदानानितीर्थानिव्रतानिनियमास्तथा ॥ ३९ ॥ अहंकाराभिभूतस्तुकरोतिपुरुषोऽन्वहम् ॥ अहंभावकृतंसर्वंप्रभवेद्धैनशौचवत् ॥ ४० ॥ रागलोभात्कृतंकर्मसर्वांगंशुद्धिवर्जितम् ॥ प्रथमंद्रव्यशुद्धिश्चद्रष्टव्याविबुधैःकिल ॥ ४१ ॥ अद्रोहेणार्जितंद्रव्यंप्रशस्तंधर्मकर्मणि ॥ द्रोहार्जितेनद्रव्येणयत्करोतिशुभंनरः ॥ ४२ ॥ विपरीतंभवेत्तत्तुफलकालेनृपोत्तम ॥ मनोऽतिनिर्मलंह्यस्यससम्यक्फलभाग्भवेत् ॥ ४३ ॥ तस्मिन्विकारयुक्तेतुनयथार्थफलंलभेत् ॥ कर्तारःकर्मणांसर्वे आचार्यर्त्विजादयः ॥ ४४ ॥ स्युस्तेविशुद्धमनसस्तदापूर्णंभवेत्फलम् ॥ देशकालक्रियाद्रव्यकर्तॄणांशुद्धतायदि ॥ ४५ ॥ मंत्राणांचतदापूर्णंकर्मणांफलमश्नुते ॥ शत्रूणांनाशमुद्दिश्यस्ववृद्धिंपरमांतथा ॥ ४६ ॥

नेमें समर्थ नहीं होता. विशेषतः राग वा लोभके वश होकर कोईभी कार्य करनेसे वह सर्वाङ्गशुद्ध नहीं होता अत एव यज्ञादिकार्यका अनुष्ठान करना हो तो प्रथम उसकी द्रव्यशुद्धिको देखनाही पण्डितगणोंका कर्त्तव्य है ॥ ४१ ॥ हिंसादि न करके जो द्रव्य उपार्जन किया जाय वह द्रव्य धर्मकार्यमें श्रेष्ठ है. हे नृपोत्तम! मनुष्यगणोंके द्रोहार्जित द्रव्यद्वारा शुभकार्यका अनुष्ठान करनेपर ॥ ४२ ॥ वह फल देनेके समय विपरीत फल प्रदानकरता है. जिसका मन अत्यन्त निर्मल है, वही भलीभाँति शुभ फल लाभ करता है ॥ ४३ ॥ विकारयुक्त मनवाले यथार्थ फललाभ करनेमें समर्थ नहीं होते. यदि कार्यके समय आचार्य, ऋत्विक् इत्यादि कार्यकर्तागण ॥ ४४ ॥ शुद्धमन हों और यदि देश, काल, क्रिया, द्रव्य, यजमान और मंत्र यह सब शुद्ध हों ॥ ४५ ॥ तभी कर्मका फल भली भाँतिसे होसक्ता है

शत्रुनाश और अपनी उन्नतिके उद्देशसे ॥ ४६ ॥ क्रिया करनेपर वह विपरीत फल प्रदान करती है. अत एव पराये विनाशके लिये कर्म करना उचित नहीं है. स्वार्थ निरत पुरुष शुभाशुभ कर्मके विचारमें समर्थ नहीं होते ॥४७॥ वे दैवके अधीन होकर पापही करते हैं, पुण्यकर्मके करनेमें समर्थ नहीं होते. सब देवता और असुरग णोंने प्रजापतिसेही जन्म ग्रहण किया है ॥ ४८ ॥ यह सभी स्वार्थनिरत होनेसे परस्पर विरोध करते हैं. वेदमें कहा गया है कि देवताओंने सत्वगुणसे मनुष्यगणोंने रजोगुणसे ॥ ४९ ॥ और तिर्यग्गणोंने तमोगुणसे जन्म ग्रहण किया है. हे राजन् ! यदि सतोगुणसे उत्पन्न हुए देवतागणही परस्पर सदा वैर करैं ॥ ५० ॥ तो तिर्य ग्गणोंकी जो जातिवैरिता संघटित हो तो इस विषयमें विचित्रत्व क्या है ? जब कि देवतागण सदाही असंतुष्ट द्वेषकलुषित परस्परविरोधी और पराये तपमें विघ्न

करोतिसुकृतंतद्वद्विपरीतंभवेत्किल ॥ स्वार्थसक्तःपुमान्नित्यंनजानातिशुभाऽशुभम् ॥ ४७ ॥ दैवाऽधीनःसदाकुर्य्यात्पापमेवनसत्कृतम् ॥ प्राजापत्याः सुराःसर्वेह्यसुराश्चतदुद्भवाः ॥४८॥ सर्वेतेस्वार्थनिरताःपरस्परविरोधिनः ॥ सत्त्वोद्भवाःसुराःसर्वेप्युक्तावेदेषुमानुषाः ॥ ४९ ॥ रजोद्भवास्तामसास्तुति र्यचःपरिकीर्तिताः ॥ सत्त्वोद्भवानांतैर्वैरंपरस्परमनारतम् ॥५०॥ तिरश्चामत्रकिंचित्रंजातिवैरसमुद्भवे ॥ सदाद्रोहपरादेवास्तपोविघ्नकरास्तथा ॥५१॥ असंतुष्टाद्वेषपराःपरस्परविरोधिनः ॥ अहंकारसमुद्भूतःसंसारोऽयंयतोनृप ॥५२॥ रागद्वेषविहीनस्तुसकथंजायतेनृप ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुरा णे चतुर्थस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ॥ व्यासउवाच ॥ अथकिंवहुनोक्तेनसंसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ॥ धर्मात्माद्रोहबुद्धिस्तुकश्चिद्भवतिकर्हिचित् ॥ १ ॥ रागद्वेषावृतंविश्वंसर्वस्थावरजंगमम् ॥ आद्येयुगेऽपिराजेंद्रकिमद्यकलिदूषिते ॥ २ ॥ देवाःसेर्ष्याश्चसद्रोहाश्छलकर्मरताःसदा ॥ मानुषाणांतिरश्चां चकावार्तानृपगण्यते ॥ ३ ॥

करनेवाले हैं तो निःसंदेह जानिये कि, यह संसार अहंकारसेही उत्पन्न है. अतएव किसप्रकार वह रागद्वेषादिरहित होसक्ता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ॥ दोहा—मायामय जगकथन कर, एहि पंचम अध्याय । नारायणकी कथाको, वर्णन करहिं सुभाय ॥ १ ॥ द्वैपायनने कहा हे नृपसत्तम ! बहुत वाक्य कहनेका क्या प्रयोजन है ? केवल इतनाही कहना ठीक होगा कि, इस संसारमें हिंसा द्वेष जनित कलुषित बुद्धिका परित्याग कर धर्मपरायण हों, ऐसे पुरुष बहुत थोड़े हैं ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! सत्ययुगमें भी यह स्थावरजंगमात्मक विश्व, राग द्वेषादिसे व्याप्त था. इस समय कलुषित कलि काल उपस्थित है. इस समय जो संसार रागद्वेषादिसे व्याप्त हो, इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? ॥ २ ॥ हे नृपवर ! देवतागण जब द्वेष और ईर्षायुक्त एवं छलपरायण

हैं. तब फिर तिर्यग् और मनुष्यगणोंकी बात क्या कहूं? ॥ ३ ॥ हे पृथ्वीपते ! द्रोह करनेवाले जीवसे द्रोह करै, क्योंकि इस विषयमें समानता दिखाई देती है. किन्तु हिंसारहित शान्त जीवसे द्वेष करनेपर दुष्टता है॥ ४॥ जिस किसी व्यक्तिके शान्त, तापस, जपपरायण और ध्याननिमग्न होनेपर अमरराज उसकी तपस्यामें विघ्न डालते हैं अत एव इन्द्रकी खलता स्पष्ट ही दिखाई देती है ॥५॥ हे राजन् ! सब युगोंमें ही साधु असाधु और मध्यम, इन तीन प्रकारोंके मनुष्य दिखाई देते हैं. तिनमें जो साधु हैं उनको सर्वदाही सत्ययुग है जो असाधु हैं तिनको सदा कलियुग है और जिस जिस युगमें क्रिया और योग व्यवस्थित है वह द्वापरात्मक और त्रेतात्मक युगही सदा मध्यम गणोंके लिये निर्दिष्ट रहता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! आप जानते हैं कि, कभी कोई भी सत्यधर्मका अनुसरण करता है यह न करके भिन्न भिन्न युगके सब प्राणी ही उस उस युगधर्मका अनुवर्तन करते हैं ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! धर्मस्थितिविषयमें सर्वत्रही वासनाको कारण कहकर अवगति करते हैं उस वासनाके मलीन होनेपर

द्रोहपरेद्रोहपरोभवेदितिसमानता ॥ अद्रोहिणितथाशांतेविद्वेषःखलतास्मृता ॥ ४ ॥ यःकश्चित्तापसःशांतोजपध्यानपरायणः ॥ भवेत्तस्यजपेविघ्नकर्तावैमघवापरम् ॥ ५ ॥ सतांसत्ययुगंसाक्षात्सर्वदैवाऽसतांकलिः ॥ मध्यमोमध्यमानांतुक्रियायोगौयुगेस्मृतौ ॥ ६ ॥ कश्चित्कदाचिद्भवतिसत्यधर्मानुवर्तकः ॥ अन्यथाऽन्ययुगानांवैसर्वेधर्मपरायणाः ॥ ७ ॥ वासनाकारणंराजन्सर्वत्रधर्मसंस्थितौ ॥ तस्यांवैमलिनायांतुधर्मोऽपिमलिनोभवेत् ॥ ८ ॥ मलिनावासनासत्यंविनाशायेतिसर्वथा॥ब्रह्मणोहृदयाज्जातःपुत्रोधर्मइतिस्मृतः ॥९॥ ब्राह्मणःसत्यसंपन्नोवेदधर्मरतःसदा॥दक्षस्यदुहितारोहिवृतादशमहात्मना॥१०॥विवाहविधिनासम्यङ्मुनिनागृहधर्मिणा ॥ तास्वजीजनयत्पुत्रान्धर्मःसत्यवतांवरः ॥ ११ ॥ हरिंकृष्णंनरंचैवतथानारायणंनृप ॥ योगाभ्यासरतोनित्यंहरिःकृष्णोबभूवह ॥ १२ ॥ नरनारायणौचैवचेरतुस्तपउत्तमम् ॥ प्रालेयाद्रिंसमागत्यतीर्थेबदरिकाश्रमे ॥ १३ ॥

धर्मभी मलीन होता है ॥ ८ ॥ आप जानते हैं कि, शुद्ध वासना पुराणसाध्य होनेसे वह अल्पही होती है और मलिनवासना स्वभावसेही अधिकतर होती है, यह मलीनवासनाही जीवगणोंको सम्यक्प्रकारसे नष्ट करती है, अतएव इसका आचरण कभी कर्तव्य नहीं है । हे नृपोत्तम ! इन सब वचनोंके द्वारा कृष्ण और इन्द्रादिका छल और अधर्माचरण एवं पांडवगणोंकी अधर्मशीलताका कारण समझ लीजिये. अब मुक्तिके लिये तपाचरणशील नरनारायणकी देहान्तरप्राप्तिकी कथा सुनिये. ब्रह्माके हृदयसे धर्मनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ९ ॥ वह ब्रह्मज्ञाननिष्ठ सत्यसंपन्न और सदाही वेदधर्ममें अनुरक्त था उस महात्मा गृहस्थ धर्मावलम्बी मुनिवर धर्मने प्रजापति दक्षकी दश कन्याओंसे यथाविधि विवाह कियाथा. सत्यनिष्ठगणोंमें अग्रणी उस धर्मने उनके गर्भसे हरि कृष्ण नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न किये थे, तिनमें हरि और कृष्ण सदाही योगाभ्यासमें रत होकर रहते थे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ नर और नारायण भी हिमालय पर्वतपर

आय बदरिकाश्रमतीर्थमें अति उत्तम तपस्या करने लगे ॥ १३ ॥ वह तपस्वी प्रधान पुराण दोनों मुनि गंगाके प्रशस्त तटपर गायत्रीसंज्ञक परब्रह्मके मंत्रका जप करने लगे ॥ १४ ॥ हरिके अंशसे उत्पन्न नर नारायण नामक दोनों ऋषियोंने पूर्णहजार वर्ष पर्यन्त उस स्थानमें उत्तम तपस्या करी॥ १५॥ उनके तप सम्बन्धी तेजसे चराचर संपूर्ण जगत् तप्त हो उठा और देवराज इन्द्रभी संक्षोभित होगये ॥ १६॥ सहस्रलोचन चिन्तायुक्त होकर मनमनमें कल्पना करने लगे कि, वे दोनों धर्मपुत्र तपोनिरत और ध्यानपरायण हुए हैं ॥ १७ ॥ यह तपसिद्ध होनेपर मेरे इस अति उत्तम राज्य आसनपर अधिकार करसकेंगे. तो इस समय इनकी तपस्या भंग करनेके लिये किसप्रकारसे विघ्न उत्पादन करूं ? ॥ १८॥ देवराज इन्द्रने इस अभिप्रायसे काम, क्रोध और अतिदारुण लोभको उत्पन्न कर, ऐरावतपर

तपस्विधुधुरीणौतौपुराणौमुनिसत्तमौ ॥ गृणंतौतत्परंब्रह्मगंगायाविपुलेतटे ॥ १४ ॥ हरेरंशौस्थितौतत्रनरनारायणावृषी ॥ पूर्णवर्षसहस्रंतुचक्राते तपउत्तमम् ॥ १५ ॥ तापितंचजगत्सर्वंतपसासचराचरम् ॥ नरनारायणाभ्यांचशक्रःक्षोभंतदाययौ ॥ १६ ॥ चिंताविष्टःसहस्राक्षोमनसासमकल्पयत् ॥ किंकर्तव्यंधर्मपुत्रौतापसौध्यानसंयुतौ ॥ १७ ॥ सिद्धार्थौसुभृशंश्रेष्ठमासनंनग्रहीष्यतः ॥ विघ्नःकथंप्रकर्तव्यस्तपोयेनभवेन्नहि ॥ १८ ॥ उत्पाद्यकामं क्रोधंचलोभंवाऽप्यतिदारुणम् ॥ इत्युद्दिश्यसहस्राक्षःसमारुह्यगजोत्तमम् ॥ १९ ॥ विघ्नकामस्तुतरसाजगामगंधमादनम् ॥ गत्वातत्राऽश्रमेपुण्येतावपश्य च्छतक्रतुः ॥ २० ॥ तपसादीप्तदेहौतुभास्कराविवचोदितौ ॥ ब्रह्मविष्णूकिमेतौवैप्रकटौवाविभावसू ॥ २१ ॥ धर्मपुत्रावृषीएतौतपसाकिंकरिष्यतः ॥ इतिसंचिंत्यतौदृष्ट्वातदोवाचशचीपतिः ॥ २२ ॥ किंवांकार्यंमहाभागौब्रूतंधर्मसुतौकिल ॥ ददामिवांवरंश्रेष्ठंदातुंयातोऽस्म्यहंऋषी ॥ २३ ॥ अदेयमपि दास्यामितुष्टोस्मितपसाकिल ॥ व्यासउवाच ॥ एवंपुनःपुनःशक्रस्तावुवाचपुरःस्थितः ॥ २४ ॥ नोचतुस्तावृषीध्यानसंस्थितौदृढचेतसौ ॥ ततोवैमो हिनींमायांचकारभयदांवृषः ॥ २५ ॥

चढ़ ॥ १९ ॥ विघ्नाचरण करनेके लिये गंधमादन पर्वतपर जाय, उस पुण्याश्रममें उपस्थित हो उन पुरातन दोनों ऋषियोंका दर्शन किया ॥ २० ॥ उनको तपके तेजसे सूर्यकी समान दीप्तिमान् देखकर देवराज विचार करने लगे कि ये ब्रह्मा हैं, वा विष्णु है, अथवा सूर्य हैं ॥ २१ ॥ ये धर्मपुत्र और ऋषि हैं. ये तपस्याद्वारा क्या करेंगे ? इस प्रकार चिन्ता करके शचीनाथ उनके समीप जाय कहने लगे ॥ २२ ॥ हे महाभाग ! धर्मतनय दोनों ऋषियो ! आपलोगोंका कार्य वा प्रार्थना क्या है ? कहो, मैं तुमको उत्तम वर देनेके लिये यहां आया हूं, मैं तुम्हारी तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं अत एव आप जो प्रार्थना करेंगे वह अदेय होनेपरभी मैं प्रदान करूंगा. व्यासजी बोले कि, इन्द्र उनके सन्मुख खड़े होकर वारंवार इसप्रकार कहने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ किन्तु दोनों ऋषि दृढचित्त और ध्यानमें मग्न थे,

इस कारण उन्होंने कुछ न कहा. यह देख अमरराजने अत्यन्त भयदायक मोहिनी मायाकी कल्पना करी ॥ २५ ॥ सिंह, व्याघ्र, वृक, इत्यादि समस्त हिंसक जन्तु और वृष्टि, पवन, अग्नि इत्यादि वारंवार उत्पन्न करके भय दिखाने लगे ॥ २६ ॥ यद्यपि शत्रुमोहिनी मायाको प्रगट करके भय दिखाया, किन्तु इसके द्वाराभी उन धर्मपुत्र दोनों मुनियोंको वशमें न करसके ॥ २७ ॥ उन नर नारायण दोनों मुनियोंको वरग्रहणमें लुब्ध अथवा सिंहादि वा अग्निपवनादिसे डराहुआ न देखकर ॥ २८ ॥ देवराज इन्द्र अपने स्थानको चले गये. अनन्तर इन्द्र घर जाय दुःखित होकर चिन्ताकरने लगे कि, जब ये दोनों मुनि सिंह व्याघ्रादिके द्वारा आक्रान्त होकर भी अपने आसनसे विचलित न हुए ॥ २९ ॥ तब कोई इनका ध्यानभंग करनेमें समर्थ नहीं होगा. ये दोनों मुनि भय लोभादिसे विचलित न हुए ॥ ३० ॥ ये आदिशक्ति महा

वृकान्सिंहांश्चव्याघ्रांश्चसमुत्पाद्याऽविभीषयत् ॥ वर्षंवातंतथावह्निंसमुत्पाद्यपुनःपुनः ॥ २६ ॥ भीषयामासतौशक्रोमायांकृत्वाविमोहिनीम् ॥ भयतोऽपि वशंनीतौनतौधर्मसुतौमुनी ॥ २७ ॥ नरनारायणौदृष्ट्वाशक्रःस्वभवनंगतः ॥ वरदानेप्रलुब्धौननभीतौवह्निवायुतः ॥ २८ ॥ व्याघ्रसिंहादिभिःक्रांतौच लितौनाश्रमात्स्वकात् ॥ नतयोर्ध्यानभंगंवैकर्तुंकोऽपिक्षमोऽभवत् ॥ २९ ॥ इंद्रोऽपिसदनंगत्वाचिंतयामासदुःखितः ॥ चलितौभयलोभाभ्यांनैमौमुनि वरोत्तमौ ॥ ३० ॥ चिंतयंतौमहाविद्यामादिशक्तिंसनातनीम् ॥ ईश्वरींसर्वलोकानांपरांप्रकृतिमद्भुताम् ॥ ३१ ॥ ध्यायतांकःक्षमोलोकेबहुमायावि दप्युत ॥ यन्मूलाःसकलामायादेवासुरकृताःकिल ॥ ३२ ॥ तेकथंबाधितुंशक्ताध्यायंतिगतकल्मषाः ॥ वाग्बीजंकामबीजंचमायाबीजंतथैवच ॥ ३३ ॥ चित्तेयस्यभवेत्तंतुबाधितुंकोऽपिनक्षमः ॥ माययामोहितःशक्रोभूयस्तस्यप्रतिक्रियाम् ॥ ३४ ॥

विद्या सनातनी त्रिलोकेश्वरी अद्भुतरूपिणी परप्रकृति श्रीभुवनेश्वरीका ध्यान करते हैं. इस समय अनेक मायाका जाननेवाला होकरभी ऐसा कौन है जो इनका ध्यानभंग करनेमें समर्थ हो ? क्योंकि जो परमाशक्ति देवासुरकृत सब मायाकी मूल है ॥ ३१ ॥ इस योगमाया महाशक्तिके ध्यानपरायण होकर जो पापके हाथसे मुक्त रहते हैं. इस त्रैलोक्यमें ऐसा कौन है जो उनका ध्यानभंग करनेमें समर्थ हो ? ॥ ३२ ॥ जो सरस्वतीबीज, कामबीज और मायाबीज जपकर निष्पाप और विशुद्धात्मा हुए हैं ॥ ३३ ॥ जिनके चित्तक्षेत्रमें भुवनेश्वरीबीज प्रगट हुआ है उनके विघ्नाचरण करनेमें कौन समर्थ होगा ? हे महाराज ! मायाका क्या प्रभाव है ? देखिये शाक्तगणोंके अत्याचारमें कोई समर्थ नहीं होता यह जानकरभी देवराज मायासे मोहित हो पुनर्वार उनका प्रतीकार ॥ ३४ ॥

करनेके लिये मन्मथ (कामदेव) और वसंतको बुलाकर कहने लगे हे मनोभव! तुम इससमय वसंत और रतिके सहित मिल और अप्सराओंको संग ले शीघ्र गंधमादन पर्वतपर जाओ. उस स्थानमें नर नारायणनामक पुरातन दो ॥ ३५॥ ३६॥ ऋषि बद्रिकाश्रममें एकान्त बैठकर तपस्या करते हैं. हे मन्मथ! तुम उनके निकट जाय अपने बाणोंके प्रभावसे ॥ ३७॥ उनका चित्त कामातुर करके मेरा यह कार्य संपादन करो. तुम अपने शराघातसे उनको मोहित और उच्चाटित करो॥ ३८॥ कभी इससे कुंठित मत होओ. हे महाभाग! इस प्रकार तुम उन धर्मपुत्र दोनों मुनियोंको वशीभूत करो. हे कन्दर्प! इस संपूर्ण संसारमें देवता दैत्य वा मनुष्यगणोंमें ऐसा कौन है?॥ ३९॥ जो ताडित होकर तुम्हारे बाणके वशीभूत न हुआ हो. ब्रह्मा मैं गिरिजानाथ(शिव) चंद्रमा और अग्निभी जब तुम्हारे बाणसे मोहित हैं॥ ४०॥ तो तुम्हारा बाण उन ऋषियोंके

कर्तुंकामवसंतौतुसमाहूयाऽब्रवीद्वचः ॥ मनोभववसंतेनरत्यायुक्तोव्रजाधुना ॥३५॥ अप्सरोभिःसमायुक्तस्तरसागंधमादनम् ॥ नरनारायणौतत्रपुराणावृषिसत्तमौ ॥ ३६ ॥ कुरुतस्तपएकांतेस्थितौबदरिकाऽऽश्रमे ॥ गत्वातत्रसमीपेतुतयोर्मन्मथमार्गणैः ॥ ३७ ॥ चित्तंकामातुरंकार्यंकुरुकार्यंममाऽधुना ॥ मोहयित्वोच्चाटयित्वाविशिखैस्ताडयाऽऽशुच ॥ ३८॥ वशीकुरुमहाभागमुनीधर्मसुतावपि ॥ कोह्यस्मिन्सर्वसंसारेदेवोदैत्योऽथमानवः ॥ ३९ ॥ यस्तेबाणवशंप्राप्तोनयातिभृशताडितः ॥ ब्रह्माऽऽहंगिरिजानाथश्चंद्रोवह्निर्विमोहितः ॥ ४० ॥ गणनाकाऽनयोःकामत्वद्बाणानांपराक्रमे ॥ वारांगनागणोऽयंतेसहायार्थंमयेरितः ॥ ४१ ॥ आगमिष्यतितत्रैवरंभादीनांमनोरमः ॥ एकातिलोत्तमारंभाकार्यंसाधयितुंक्षमा ॥ ४२ ॥ त्वमेवैकःक्षमःकामंमिलितैःकस्तुसंशयः ॥ कुरुकार्यंमहाभागददामितववांछितम् ॥ ४३ ॥ प्रलोभितौमयाऽत्यर्थंवरदानैस्तपस्विनौ ॥ स्थानान्नचलितौशांतौवृथाऽयंमेगतःश्रमः ॥ ४४ ॥ तथावैमाययाकृत्वाभीषितौतापसौभृशम् ॥ तथाऽपिनोत्थितौस्थानाद्देहरक्षापरौनतौ ॥ ४५ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाशक्रंप्राहमनोभवः ॥ वासवाऽद्यकरिष्यामिकार्यंतेमनसेप्सितम् ॥ ४६ ॥

प्रति पराक्रम प्रकाश करनेमें क्यों न समर्थ हो? फिर क्या विचार करना चाहिये? तुम्हारी सहायताकरनेके लिये इन वाराङ्गनाओंको तुम्हारे संग भेजताहूं ॥ ४१ ॥ यह रंभादि समस्त मनोरम अप्सरागणभी उस स्थानमें जाँय, तिलोत्तमा रंभा अथवा तुम अकेले ही कार्यसाधनमें समर्थ हो॥ ४२॥ फिर सब मिलकर जो कार्यसाधन करोगे तो इसमें संदेह ही क्या है? हे महाभाग! तुम कार्यसाधन करो मैं तुमको वांछित अर्थ प्रदानकरूंगा॥ ४३॥ हे मन्मथ! मैं ने दोनों तपस्वियोंको वरदान देनेका लोभ दिखाया था किन्तु वे शान्तात्मा दोनों तपस्वी अपने निश्चितार्थसे विचलित न हुए इससे मेरा यत्न और परिश्रम सभी विफल होगया है॥ ४४॥ फिर मैं ने इन दोनों तपस्वियोंको माया के द्वारा अत्यन्त भय दिखाया था तोभी वे अपने स्थानसे न उठे अतएव बोध होता है कि, वे देहकी रक्षामें यत्नवान् नहीं हैं ॥ ४५॥ व्यासदेवने कहा, कामदेवने देवराज

इन्द्रके इस प्रकार वचन सुनकर उनसे कहा हे देवेन्द्र! अभी मैं आपका अभिलषित कार्य संपादन करूंगा ॥ ४६ ॥ किन्तु एक बात यह है कि यदि वे दोनों तपस्वी विष्णु महेश्वर, ब्रह्मा वा दिवाकरके ध्यानपरायण हों तब मैं उनको वशीभूत करनेमें समर्थ हूंगा॥ ४७॥ नहीं तो जो पुरुष कामराज महाबीजमंत्रके चिन्तनमें निरत है, मैं उस देवीभक्त पुरुषको वशीभूत करनेमें कभी समर्थ नहीं हूं ॥ ४८ ॥ यदि दोनों तपस्वियोंने उसी महाशक्ति महादेवीका भक्तिभावसे आश्रय किया है तब वे मेरे शरके गोचरीभूत नहीं होंगे ॥ ४९ ॥ इन्द्रने कहा हे महाभाग! तुम कार्य साधनोद्यत अनुचरगणोंके सहित जाओ मेरे इस दुःसाध्य हितकर कार्यका साधन करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है ॥ ५० ॥ व्यासजीने कहा इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाय उन सबने ही जहां वे दोनों धर्मके पुत्र नर नारायण

यदिविष्णुंमहेशंवाब्रह्माणंवादिवाकरम् ॥ ध्यायंतौतौतदाऽस्माकंभवितारौवशौमुनी ॥४७॥ देवीभक्तंवशीकर्तुंनाऽहंशक्तःकथंचन ॥ कामराजंमहाबीजं चिंतयंतंमनस्यलम् ॥ ४८ ॥ तांदेवींचेन्महाशक्तिंसंश्रितौभक्तिभावतः ॥ नतदाममबाणानांगोचरौतापसौकिल ॥ ४९ ॥ इंद्रउवाच ॥ गच्छत्वंचमहाभागसर्वैस्तत्रससुद्यतैः ॥ कार्यममाऽतिदुःसाध्यंकर्ताहितमनुत्तमम् ॥ ५० ॥ व्यासउवाच ॥ इतितेनसमादिष्टाययुःसर्वेसमुद्यताः ॥ यत्रतौधर्मपुत्रौ द्वौतेपातेदुष्करंतपः ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ व्यासउवाच ॥ प्रथमंतत्रसंप्राप्तोवसंतःपर्वतोत्तमे ॥ पुष्पिताःपादपाःसर्वेद्विरेफालिविराजिताः ॥ १ ॥ आम्राश्चबकुलारम्यास्तिलकाःकिंशुकाःशुभाः ॥ सालास्तालास्तमालाश्चमधूकाःपुष्पिताबभुः ॥ २ ॥ बभूवुःकोकिलाऽऽलापावृक्षाग्रेषुमनोहराः ॥ वल्ल्योऽपिपुष्पिताःसर्वाआलिलिंगुर्नगोत्तमान् ॥ ३ ॥ प्राणिनःस्वासुभार्यासुप्रेमयुक्ताःस्मराऽऽतुराः ॥ बभूवुश्चातिमत्ताश्चक्रीडासक्ताःपरस्परम् ॥ ४ ॥ ववुर्मंदाःसुगंधाश्चसुस्पर्शादक्षिणाऽनिलाः ॥ इंद्रियाणिप्रमाथीनिमुनीनामपिचाऽभवन् ॥५॥

दुष्कर तपस्या करते थे वहां गमन किया ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! प्रथम ऋतुराज वसंत उस मनोहर पर्वतके ऊपर प्रगट हुआ, तिसकाल सब वृक्ष पुष्पित और भ्रमरसमूहोंसे शोभायमान होगये ॥ ॥ १ ॥ मनोहर आम बकुल तिलक और शोभायमान किंशुक शाल ताल तमाल और मधुकादि तरुराजिने कुसुममालासे विराजित होकर अनुपम शोभा धारण की ॥ २ ॥ वृक्षोंके ऊपर कोकिलाओंका मधुर शब्द सुनाई आने लगा. सब लताओंने पुष्पित होकर वनस्पतियोंका आलिंगन किया ॥ ३ ॥ प्राणिगण कामातुर होकर अपनी २ भार्याओंसे प्रेमयुक्त और परस्पर क्रीडासक्त हो अत्यन्त उन्मत्त होगये ॥ ४ ॥ मंद सुगंध और

सुखस्पर्श दक्षिण पवन बहने लगा, सब इन्द्रियें बलवान् होकर फिर मुनिगणोंके वशमें न रहीं ॥ ५ ॥ तब मीनकेतन (कामदेव) रतिके सहित मिलित हो, पंचबाण धारण कर उस बदरिकाश्रममें शीघ्र जाय वास करने लगा ॥ ६ ॥ संगीतमें चतुर रंभा और तिलोत्तमादि प्रधान प्रधान सब अप्सरा उस मनोहर आश्रममें जाकर स्वर, ताल और लयके सहित गान करने लगीं ॥ ७ ॥ वह मधुर संगीत, कोकिलाओंका मनोहर कूजन और भौंरोंकी मधुर कलध्वनि सुनकर वे दोनों मुनि जागरित हुए ॥ ८ ॥ नर नारायण दोनों ऋषि अकालमें ऋतुराज वसन्तका उदय और वनपादपोंका पुष्पोदय देखकर चिन्ता करने लगे ॥ ९ ॥ नियमके विना इस समय किसप्रकार वसन्त ऋतुका उदय हुआ? और इस समय सबही प्राणी अत्यन्त कामातुर तथा विह्वल दिखाई देते हैं ॥ १० ॥ कालधर्मका विपरीत होना अतिदुर्घट है, किस प्रकार वह संघटित हुआ? इसके उपरान्त नारायण विस्मयोत्फुल्लनेत्रद्वारा नर नामक ऋषिसे कहने लगे ॥ ११ ॥ नारायण बोले हे भ्राता !

रतियुक्तस्ततःकामःपूरयन्पंचमार्गणान् ॥ चकारत्वरितस्तत्रवासंबदरिकाऽऽश्रमे ॥ ६ ॥ रंभातिलोत्तमाद्याश्चगत्वातत्रवराऽश्रमे ॥ गानंचक्रुःसुगीतज्ञाः स्वरतानसमन्वितम् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वामधुरोद्गीतंकोकिलानांचकूजितम् ॥ भ्रमरालिविरावंचप्रबुद्धौतौमुनीश्वरौ ॥ ८ ॥ ऋतुराजमकालेतुदृष्ट्वातौपुष्पितंवनम् ॥ जातौचिंतापरौतत्रनरनारायणावृषी ॥९॥ किमद्यशिशिरापायःसंवृतःसमयंविना ॥ प्राणिनोविह्वलाःसर्वेलक्ष्यंतेऽतिस्मराऽऽतुराः ॥१०॥ कालधर्मविपर्यासःकथमद्यदुरासदः ॥ नरंनारायणःप्राहविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ११ ॥ नारायणउवाच ॥ पश्यभ्रातरिमेवृक्षाःपुष्पिताःप्रतिभांतिवै ॥ कोकिलाऽऽलापसंघुष्टाभ्रमरालिविराजिताः ॥ १२ ॥ शिशिरंभीममातंगंदारयन्स्वखरैर्नखैः ॥ वसंतकेसरीप्राप्तःपलाशकुसुमैर्मुने ॥ १३ ॥ रक्ताऽशोककरातन्वीदेवर्षेकिंशुकांघ्रिका ॥ नीलाऽशोककचाश्यामाविकासिकमलाऽऽनना ॥ १४ ॥ नीलेंदीवरनेत्राऽसाविल्ववृक्षफलस्तनी ॥ प्रोत्फुल्लकुंदरदनामंजरीकर्णशोभिता ॥ १५ ॥ बंधुजीवाऽधराशुभ्रासिंधुवारनखाद्भुता ॥ पुंस्कोकिलस्वरापुण्याकदंबवसनाशुभा ॥ १६ ॥

देखो, ये सब वृक्ष पुष्पित होकर शोभायमान् हो रहे हैं कोकिलकी कलध्वनि सुनाई आरही है, संपूर्ण भौंरे मधुरध्वनि करके इधर उधर विचरण कर रहे हैं ॥ १२ ॥ यह देखो, वसंतकेसरी पलाशकुसुमरूप अपने खर नखोंसे शिशिर रूप भयंकर मातंगको विदारित करके उपस्थित हुआ है ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! देखो, किस प्रकार मनोहर सुषमासंपन्न वसन्तलक्ष्मी बदरिकाश्रममें उदित हुई है. हे देवर्षे ! लाल अशोकइसका करतल है, किंशुककुसुम इसके मनोहर चरण, नील अशोक इसके श्याम केशकलाप, विकसित कमल इसका वदन ॥ १४ ॥ नीलकमल इसके नेत्र, बिल्वफल इसके मनोहर पयोधर, प्रफुल्ल कुन्दकुसुम इसके दशन, मंजरी इसका मनोहर कर्णफूल है ॥ १५ ॥ बंधुजीव इसका अधर, सिंधुवार अद्भुत नख, पुंस्कोकिलकी कलध्वनि इसका कंठस्वर, कदम्बकुसुम इसके वसन ॥ १६ ॥

मोरगण इसका भूषण, सारसस्वर इसकी मयूरध्वनि, कुसुमदाम इसका चन्द्रहार, मत्तहंसकी गतिही इसका गमन ॥ १७ ॥ कदम्बकेशर इसकी रोमराजि है। हे ऋषिवर! इन सबके द्वारा वसन्तलक्ष्मीने क्या अपूर्व शोभा धारणकी है? ॥ १८ ॥ यह अकालमें उपनीत क्यों हुई ? इस विषयमें इस समय मुझको आश्चर्य उत्पन्न होता है तुम विचारकर देखो यह निश्चय तपस्यामें विघ्न करनेवाली है॥ १९॥ यह सुनो देवताओंकी स्त्रियें कैसा मनमोहन ध्यानविनाशक गान करती हैं! बोध होता है, हमारी तपस्याका भंग करनेके लिये देवराज इन्द्रने सब उपाय किये हैं ॥ २० ॥ ऋतुराज असमयमें क्यों प्रीति उत्पन्न कराते हैं? इससे स्पष्ट विदित होता है कि, असुरारि इन्द्रने हमारी तपस्यासे डरकर तपस्याभंग करनेके उपायस्वरूप ये सब विघ्ननियोजित किये हैं ॥ २१ ॥ देखो, शीतल सुगंध और मनोहर पवन प्रवाहित होता

बर्हिवृंदकलापाचसारसस्वननूपुरा ॥ वासंतीवद्धरशनामत्तहंसगतिस्तथा ॥ १७ ॥ पुत्रजीवांशुकन्यस्तरोमराजिविराजिता ॥ वसंतलक्ष्मीःसंप्राताब्रह्मन्ब दरिकाश्रमे ॥ १८ ॥ अकालेकिमियंप्रातावि्स्मयोऽयंममाऽधुना ॥ तपोविघ्नकरानूनंदेवर्षेपरिचिंतय ॥ १९ ॥ श्रूयतेसुरनारीणांगानंध्यानविनाशनम् ॥ आवयोस्तपिभंगायकृतंमघवताकिल ॥ २० ॥ ऋतुराडन्यथाकालेप्रीतिंसंजनयेत्कथम् ॥ विघ्नोऽयंविहितोभातिभीतेनाऽसुरशत्रुणा ॥ २१ ॥ वाताः सुगंधाःशीताश्चसमायांतिमनोहराः ॥ नान्यत्कारणमस्तीहशतक्रतुकृतिंविना ॥२२॥ इति ब्रुवतिविप्राऽग्र्येदेवेनारायणेविभौ ॥ सर्वेदृष्टिपथंप्राप्तामन्मथ प्रमुखास्तदा ॥ २३ ॥ ददर्शभगवान्सर्वान्नारायणस्तथा ॥ विस्मयाऽऽविष्टमनसौबभूवतुरुभावपि ॥ २४ ॥ मन्मथंमेनकांचैवरंभांचैवतिलोत्तमाम् ॥ पुष्पगंधांसुकेशींचमहाश्वेतांमनोरमाम् ॥२५॥ प्रमद्वरांघृताचींचगीतज्ञांचारुहासिनीम् ॥ चंद्रप्रभांचसोमांचकोकिलाऽऽलापमंडिताम् ॥२६॥ विद्युन्मा लांबुजाक्षींचतथाकांचनमालिनीम् ॥ एताश्चान्यावरारोहादृष्टास्ताभ्यांतदाऽतिके ॥ २७ ॥ तासांद्व्यष्टसहस्राणिपंचाशदधिकानिच ॥ वीक्ष्यतौविस्मितौ जातौकामसैन्यंसुविस्तरम् ॥ २८ ॥ प्रणम्याऽग्रेस्थिताःसर्वादेववारांगनास्तदा ॥ दिव्याऽऽभरणभूषाढ्यादिव्यमाल्योपशोभिताः ॥ २९ ॥

है इन्द्रके कार्यके अतिरिक्त इसमें दूसरा कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ २२ ॥ विप्रवर विभु देव नारायण ये सब वचन कहते ही थे कि इसी समय मन्मथादि सब उनको दिखाई दिये ॥ २३ ॥ भगवान् नर और नारायण दोनों ही उनको देखकर आश्चर्यमें हुए ॥ २४ ॥ फिर उन्होंने मनोभव मेनका रंभा तिलोत्तमा पुष्पगंधा सुकेशी महाश्वेता मनोरमा ॥ २५ ॥ प्रमद्वरा चारुहासिनी संगीतकी जाननेवाली घृताची, चन्द्रप्रभा, कोकिलभाषिणी, सोमा ॥ २६ ॥ अम्बुजाक्षी, कांचनमालिनी, विद्युन्माला, इन सब और अन्यान्य वरारोहा अप्सराओंको सन्मुख देखा ॥ २७॥ आठ हजार पांचसौ अप्सरागण और कामकी विस्तृत सेनाको देखकर दोनों मुनि विस्मित हुए ॥ २८ ॥ तब दिव्यमालासे शोभायमान दिव्याभरणयुक्त देवताओंकी स्त्रियें दोनों मुनियोंको प्रणाम कर सन्मुख अवस्थिति करने लगीं ॥ २९ ॥

फिर उन सब अप्सराओंने पृथ्वीतलमें दुर्लभ और कामदेवका बढ़ानेवाला स्वर्गीय संगीत आरंभ किया ॥ ३० ॥ भगवान् विष्णुस्वरूप नर नारायण दोनों मुनियोंने वह संगीत सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा ॥ ३१ ॥ हे शोभनमध्यमा ! अप्सरागण ! तुम स्वर्गसे अतिथिधर्ममें यहां आई हो तुम इस स्थानमें सुखपूर्वक रहो हम भलीभाँतिसे तुम्हारा अतिथिसत्कार करेंगे ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! देवराज इन्द्रने तपस्यामें विघ्न करनेकी इच्छासे निःसंदेह इन अप्सराओंको भेजा है यह चिन्ता कर नर नारायण दोनों मुनियोंने अभिमानमें पूर्ण हो विचारा ॥ ३३ ॥ कि ये सब अप्सरा सामान्यरूपसंपन्न और जघन्य निकृष्ट हैं. हम इससमय इनसेभी श्रेष्ठ दिव्यरूपसंपन्न नूतन अप्सराओंको उत्पन्न करके अपने तपोबलको दिखावें ॥ ३४ ॥ मनमें इसप्रकार विचार करद्वारा उरुताड़न करके

जगुश्छलेनताः सर्वाः पृथिव्यामतिदुर्लभम् ॥ तत्तथाऽवस्थितंदिव्यंमन्मथादिविवर्धनम् ॥ ३० ॥ शुश्रावभगवान्विष्णुर्नरोनारायणस्तदा ॥ श्रुत्वाप्रोवाचतास्तत्रप्रीत्यानारायणोमुनिः ॥३१॥ आस्यतांसुखमत्रैवकरोम्यातिथ्यमद्भुतम् ॥ भवंत्योऽतिथिधर्मेणप्राप्ताःस्वर्गात्सुमध्यमाः॥३२॥व्यासउवाच ॥ साभिमानस्तुसंजातस्तदानारायणोमुनिः ॥ इंद्रेणप्रेषितानूनंतथाविघ्नचिकीर्षया ॥ ३३ ॥ वराक्यःकाइमाःसर्वाःसृजाम्यद्यनवाःकिल ॥ एताभ्योदिव्यरूपाश्चदर्शयामितपोबलम् ॥ ३४ ॥ इतिसंचिंत्यमनसाकरेणोरुंप्रताड्यवै ॥ तरसोत्पादयामासनारींसर्वांगसुंदरीम् ॥३५॥ नारायणोरुसंभूताह्युर्वशीतिततःशुभा ॥ ददृशुस्ताःस्थितास्तत्रविस्मयंपरमंययुः ॥ ३६ ॥ तासांचपरिचर्यार्थंतावतीश्चातिसुंदरीः ॥ प्रादुश्चकारतरसातदामुनिरसंभ्रमः ॥ ३७ ॥ गायंत्यश्चहसंत्यश्चनानोपायनपाणयः ॥प्रणेमुस्तामुनीसर्वाःस्थिताःकृत्वांऽजलिंपुरः ॥ ३८॥ तांवीक्ष्यविभ्रमकरींतपसोविभूतिंदेवांगनाहिमुमुहुःप्रविमोहयंत्यः ॥ ऊचुश्चतौप्रमुदिताऽऽननपद्मशोभारोमोद्गमोल्लसितचारुनिजांगवल्ल्यः ॥ ३९ ॥

शीघ्रही एक सर्वाङ्गसुंदरी नारी उत्पन्न करी ॥ ३५ ॥ वह शुभानना मुनिवरके उरुस्थलसे उत्पन्न होनेसे उर्वशी नामसे विख्यात हुई. अनन्तर वे सब अप्सरा इसको देखकर अत्यन्त अचंभेमें हुईं ॥ ३६ ॥ अनन्तर नारायण मुनिने इन्द्रकी भेजी अप्सराओंकी सेवा करनेको उनकी अपेक्षाभी सुंदरी उतनीही स्त्रियें सहसा उत्पन्न करीं ॥ ३७ ॥ उन उत्पन्न हुई समस्त अप्सराओंने अनेक भाँतिके उपहार द्रव्य हाथमें लिये गान और हास्य करते करते, अंजलि बाँध दोनों मुनियोंके आगे स्थित हो प्रणाम किया ॥३८॥ इन्द्रकी भेजी देवाङ्गना अन्यको मोहित करनेवालीहोकरभी अपने मनको भ्रम करनेवाली तपस्याके फल सम्पत्ति स्वरूपिणी सर्वाङ्ग सुंदरी उर्वशीको देखकर मोहित हुई और उनके सब अंग रोमांचसे उत्फुल्ल होगये. तब वे अपने अपने वदनकमलकी परमशोभा विस्तारित करके दोनों मुनियोंसे कहने लगीं ॥ ३९ ॥

हे देवयुगल ! हम बाला हैं. हमको कुछभी ज्ञान नहीं है. आपकी तपस्याका महत्व और आपका धैर्य देखकर हम किसप्रकार आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हों, अहो ! हमारे कटाक्षरूप विषदग्ध बाणसे जो दग्ध न हो ऐसा पुरुष पृथ्वीतलमें दिखाई नहीं देता. किन्तु उससे आपके मनमें कुछभी विकार दिखाई नहीं देता, अतएव आपका माहात्म्य अतिआश्चर्यजनक है ॥ ४० ॥ हम जानती हैं आप दोनोंही विष्णुके अंशस्वरूप देव और मननशील तथा शमदमादिही आपके निधिस्वरूप हैं. आपकी सेवाके लिये हम इस स्थानमें नहीं आई हैं. वरन् आपकी तपस्यामें विघ्नसंपादनरूप देवराज इन्द्रका कार्य साधनके लियेही हम इस स्थानमें आई हैं ॥ ४१ ॥ हमारे इस प्रकार दुर्जन होनेपर भी हमारे किसी संचित भाग्यकेफलसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ. उससे हम अवगत नहीं हैं और हमारी समान अपराध करनेवाले व्यक्तिके प्रति शापादिप्रदान करनेमें समर्थ होकर भी अपना जनजान जो आपने शापादिप्रदान न करके मनस्ताप दूर किया. इससे आपका क्षमागुण

कुर्युःकथंस्तुतिमहोतपसोमहत्त्वंधैर्यंतथैवभवतामभिवीक्ष्यबालाः ॥ अस्मत्कटाक्षविषदिग्धशरेणदग्धःकोवानतत्रभवतांमनसोव्यथान ॥ ४० ॥ ज्ञातौ युवांनरहरेःपरमांशभूतौदेवौमुनीशमदमादिनिधीसदैव ॥ सेवानिमित्तमिहनोगमनंनकामंकार्यंहरेःशतमखस्यविधातुमेव ॥ ४१ ॥ भाग्येनकेनयुवयोः किलदर्शनंनःसंपादितंनविदितंखलुसंचितंतत् ॥ चित्तंक्षमंनिजजनेविहितंयुवाभ्यामस्मद्विधेकिलकृतागसितापमुक्तम् ॥ ४२ ॥ कुर्वंतिनैवविबुधास्तपसो व्ययंवैशापेनतुच्छफलदेनमहानुभावाः ॥ व्यासउवाच ॥ इत्थंनिशम्यवचनंसुरकामिनीनांतावूचतुर्मुनिवरौविनयानतानाम् ॥ ४३ ॥ प्रीतौप्रसन्नवदनौ जितकामलोभौधर्मात्मजौनिजतपोरुचिशोभितांगौ ॥ नरनारायणावूचतुः ॥ ब्रुवंतुवांछितान्कामान्ददावस्तुष्टमानसौ ॥ ४४ ॥ यांतुस्वर्गंगृहीत्वेमामुर्वशींचारुलोचनाम् ॥ उपायनमियंबालागच्छत्वद्यमनोहरा ॥ ४५ ॥ दत्ताऽऽवाभ्यांमघवतःप्रीणनायोरुसंभवा ॥ स्वस्त्यस्तुसर्वदेवेभ्योयथेष्टंप्रव्रजंतुच ॥ ४६ ॥

अत्यन्त प्रशंसनीय हुआ. हम जानती हैं ॥ ४२ ॥ महानुभव पण्डितगण तुच्छफलप्रद शापादिसे अपनी तपस्याका व्यय नहीं करते. व्यासजी बोले हे राजन् ! काम और लोभके जीतनेवाले वे धर्मपुत्र दोनों महर्षि विनयावनत सुरकामिनीगणोंके इस प्रकारके वचन सुनकर ॥ ४३ ॥ प्रीत और प्रसन्नवदन हुए और अपने तपकी प्रभासे प्रदीप्ताङ्ग हो उनसे कहने लगे. नर नारायण बोले हे रमणीगण ! हम तुम्हारे प्रति संतुष्ट हुए हैं. तुम अभिलषित वर मांगो. हम इसीसमय वह प्रदान करेंगे ॥ ४४ ॥ फिर तुम इस शोभायमान नेत्रवाली उर्वशीको लेकर स्वर्गमें चली जाओ. यह मनोरमा बालिका उर्वशी देवराजका उपहारस्वरूप तुम्हारे संग गमन करे ॥ ४५ ॥ हमने अमरराजकी प्रीतिके लिये उरुसे उत्पन्न हुई इस उर्वशीको प्रदान किया. इस समय सब देवताओंका कल्याण हो. तुम अपने अपने इष्ट स्थानमें जाओ.

इसके पीछे फिर किसीकी तपस्यामें विघ्न न करना ॥ ४६ ॥ अप्सरागणोंने कहा हे नारायण ! हे सुरश्रेष्ठ ! हम परमभक्तिवशतः आपके चरणकमलोंको प्राप्त होकर अत्यन्त आह्लादित हुई हैं. हम इस समय कहां जायँ ॥ ४७ ॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हे कमललोचन ! आप यदि सन्तुष्ट होकर हमको वांछित वर देते हैं. तो अपने मनोरथ आपसे कहतीं हैं सुनिये ॥ ४८ ॥ हे देवेश ! आप जगत्के पति हैं. अतएव आप हमारे पति हूजिये. हे परंतप ! हम प्रसन्नचित्तसे आपकी सेवामें सदा नियुक्त रहेंगी ॥ ४९ ॥ आपने जिन सब नारियोंको उत्पन्न किया है वे शोभायमान नेत्रवाली रमणीगणभी इस स्थानमें विद्यमान हैं. इस समय उर्वशी इत्यादि ॥ ५० ॥ नारीगण सभी आपकी आज्ञासे स्वर्गमें गमन करें और हम सोलह हजार पांचसौ रमणी इस स्थानमें आपकी सेवा करती रहैं

"नकस्यापितपोविघ्नंप्रकर्तव्यमतःपरम्"॥ देव्यऊचुः ॥ क्वगच्छामोमहाभागप्राप्तास्तेपादपंकजम् ॥ नारायणसुरश्रेष्ठभक्त्यापरमयामुदा ॥४७॥ वांछितंचेद्वरंनाथददासिमधुसूदन॥तुष्टःकमलपत्राक्षब्रवीमोमनसेप्सितम्॥४८॥पतिस्त्वंभवदेवेशवरमेनंपरंतप॥भवामःप्रीतियुक्तास्त्वांसेवितुंजगदीश्वर॥४९॥ त्वयाचोत्पादितानार्यःसंत्यन्याश्चारुलोचनाः॥ उर्वश्याद्यास्तथायांतुस्वर्गंवैभवदाज्ञया ॥५०॥ स्त्रीणांषोडशसाहस्रंतिष्ठत्वत्रशतार्धकम् ॥ सेवांतेऽत्रकरिष्यामोयुवयोस्तापसोत्तमौ ॥ ५१ ॥ वांछितंदेहिदेवेशसत्यवाग्भवमाधव ॥ आशाभंगोहिनारीणांहिंसनंपरिकीर्तितम् ॥ ५२ ॥ कामार्तानांचमुनिभिर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ भाग्ययोगादिहप्राप्ताःस्वर्गात्प्रेमपरिप्लुताः ॥ ५३॥ त्यक्तुंनार्हसिदेवेशसमर्थोऽसिजगत्पते ॥ नारायणउवाच ॥ पूर्णवर्षसहस्रंतुतपस्तप्तंमयाऽत्रवै ॥ ५४॥ जितेंद्रियेणचार्वंग्यःकथंभंगंकरोम्यतः ॥ नेच्छाकामेसुखेकाचित्सुखधर्मविनाशके ॥५५॥ पशूनामपिसाधर्म्यैरमेतमतिमान्कथम् ॥ अप्सरसऊचुः ॥ शब्दादीनांचपंचानांमध्येस्पर्शसुखंवरम् ॥ ५६ ॥

॥ ५१ ॥ हे माधव ! आप देवतागणोंके प्रभु हैं अतएव हमको वांछित वर देकर आप सत्यभाषी हूजिये. तत्वदर्शी धर्मके जाननेवाले मुनियोंने कहा है कि, कामातुर स्त्रियोंकी आशाका भंग करनेसे हिंसाजनित पापमें लिप्त होना पड़ता है ॥ ५२ ॥ हम भाग्यवशतः स्वर्गसे इस स्थानमें आकर प्रेममें निमग्न हुई हैं ॥ ५३ ॥ हे देवेश ! आप जगत्के स्वामी हैं, आप सभी कार्यमें समर्थ हैं अत एव आप हमको परित्याग नहीं कीजिये. नारायणने कहा हे तन्वंगी अप्सराओ ! मैंने इस स्थानमें पूर्ण हजारवर्षपर्यन्त जितेन्द्रिय होकर तपस्या करी है ॥ ५४ ॥ इस समय किसप्रकार विषयसंगमें लिप्त होकर उस तपस्याका भंग कर सक्ता हूं ? परमानन्द और धर्मके विनाशक विषयसंभोग सुखमें हमारी वासना नहीं होती ॥ ५५ ॥ क्योंकि कौन मतिमान् पशुके समान विषयसंभोग धर्ममें प्रवृत्त होसक्ता है अप्सरागणोंने कहा

हे मुनिवर ! शब्दादिपाँचोंमें स्पर्शसुख हो॥ ५६॥ आनंदरसमूलक और श्रेष्ठ है इसके समान श्रेष्ठ सुख दूसरा और कुछ नहीं है अतएव आप हमारे वचनानुसार कार्य करके आनंदरसभोग कीजिये ॥ ५७॥ आप इस गंधमादनपर्वतमें अत्यन्त सुख प्राप्त करके विचरण कीजिये आप यदि स्वर्गकी कामना करते हैं तो जानिये कि गंधमादनसे श्रेष्ठ स्वर्ग दूसरा नहीं है ॥ ५८ ॥ आप इस परम मनोहर शोभायमान स्थानमें सुराङ्गनागणोंके सहित परमसुखसे विहार करके परमानंदरस अनुभव कीजिये॥ ५९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! महत् प्रभावसंपन्न धर्मनन्दन नारायण उन अप्सराओंके इस प्रकार वचन सुनकर अपने कर्त्तव्यकार्यकी चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ यदि मैं इस समय विषयासङ्गमें प्रवृत्त हूं तो मुनिगणोंमें अवश्यही उपहासका भाजन हूंगा और अहंकारही धर्मविनाशका आदि और प्रधानमूल है अहंकारसेही जो यह दुःख उपस्थित हुआ है इस विषयके विचारमें अब प्रयोजन नहीं है ॥ २ ॥

आनंदरसमूलंवैनान्यदस्तिसुखंकिल ॥ अतोऽस्माकंमहाराजवचनंकुरुसर्वथा ॥ ५७ ॥ निर्भरंसुखमासाद्यचरस्वगंधमादने ॥ यदिवांछसिनाकंत्वंनाऽधिकोगंधमादनात् ॥ ५८ ॥ रमस्वाऽत्रशुभेस्थानेप्राप्यसर्वाःसुरांगनाः ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तासांधर्मपुत्रःप्रतापवान् ॥ विमर्शमकरोच्चित्तेकिंकर्तव्यंमयाऽधुना ॥१॥ "हास्योऽहंमुनिवृन्देषुभविष्याम्यद्यसंगमात्" ॥ अहंकारादिदंप्राप्तंदुःखंनाऽत्रविचारणा ॥ मूलंधर्मविनाशस्यप्रथमंयदहंकृतिः ॥ २ ॥ मूलंसंसारवृक्षस्ययतःप्रोक्तोमहात्मभिः ॥ दृष्ट्वामौनंसमाधायनस्थितोऽहंसमागतम् ॥ ३ ॥ वारांगनागणंज्रुष्टंतेनाऽऽसंदुःखभाजनम् ॥ उत्पादितास्तथानार्योमयाधर्मव्ययेनवै ॥ ४ ॥ तास्तुमांबाधितुंवृत्ताःकामार्ताःप्रमदोत्तमाः ॥ ऊर्णनाभिरिवाद्याऽहंजालेनस्वकृतेनवै ॥ ५ ॥ बद्धोऽस्मिसुदृढेनाऽत्रकिंकर्तव्यमितःपरम् ॥ यदिचिंतांसमुत्सृज्यसंत्यजाम्यबलाइमाः ॥ ॥ ६ ॥ शप्त्वाप्रष्टाव्रजिष्यंतिसर्वाभग्नमनोरथाः ॥ मुक्तोऽहंसंचरिष्यामिविजनेपरमंतपः ॥ ७ ॥

महात्मा महर्षिगण कहते हैं कि, अहंकारही संसाररूपी वृक्षकी जड़ है मैंने वाराङ्गनागणोंको देखकर मौनावलम्बनपूर्वक अवस्थान न किया ॥ ३ ॥ बरन् उनसे बात चीत इत्यादि की है इसीसे दुःखका भाजन हुआ विशेषतः धर्मव्यय करके स्त्रियोंको उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ इन्द्रकी भेजी यह उत्तम और मनोहर प्रमदागण कामातुर होकर तपोधर्षण तपके नाश करनेमें प्रवृत्त हुई हैं यदि अहंकारसे इनको उत्पन्न नकरता तो मुझको यह दुःख उपस्थितही नहीं होता ! इस समय मैं ऊर्णनाभ (मकरी) के समान अपने बनाये दृढजालमें स्वयंही बँध गया अब मुझको क्या करना चाहिये ॥ ५॥ इन तपके नाशनेवाली स्त्रियोंके त्याग करनेमें क्या चिन्ता है यह विचारकर यदि इन अबलागणोंको परित्याग करूँ ॥ ६ ॥ तो यह भग्नमनोरथ हो केवल शाप देकर चली जाँयगी तो शीघ्र भारी विपदसे छूटकर विजनस्थानके मध्य

उत्तम तपस्या करनेमें समर्थ हूंगा ॥ ७ ॥ अतएव क्रोध प्रगट करके इन सुन्दरीगणोंको परित्यागकरूं व्यासजी बोले हे राजन् ! नारायणमुनि ॥ ८ ॥ सुखोत्पादनसाधनार्थ इसप्रकार चिन्ता करके फिर मनमें विचारने लगे कि यह दूसरा महाशत्रु क्रोध त्रैलोक्यमें अत्यन्त सन्ताप दायक है ॥ ९ ॥ यह कामसेभी अधिक बलवान् और लोभसे भी अत्यन्त दारुण है मनुष्यगण क्रोधयुक्त होकर प्राण विनाशिनी हिंसा करते हैं ॥ १० ॥ यह हिंसा नरकका बगीचा भूमिको दीर्घिकारूपिणी (बावड़ी) है और सब जीवोंको दुःख देनेवाली है जिस प्रकार वृक्षोंके संघर्षणसे अग्नि उत्पन्न होकर अपनी उत्पत्तिके कारण वृक्षोंकोही जलाती है ॥ ११ ॥ इसीप्रकार दारुण क्रोधभी देहसे उत्पन्न होकर देहकोही जलाता है. द्वैपायनने कहा नरनामक धर्मके छोटे पुत्रने भ्राताको इसप्रकार चिन्तातुर और दीनमन देखकर ॥ १२ ॥ यथार्थ वचन कहे

तस्मात्क्रोधंसमुत्पाद्यत्यक्ष्यामिसुंदरीगणम् ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंचिंत्यमनसामुनिर्नारायणस्तदा ॥८॥ विमर्शमकरोच्चित्तेसुखोत्पादनसाधने ॥ द्वितीयोऽयंमहाशत्रुःक्रोधःसंतापकारकः ॥ ९ ॥ कामादप्यधिकोलोकेलोभादपिचदारुणः ॥ क्रोधाभिभूतःकुरुतेहिंसांप्राणविघातिनीम् ॥ १० ॥ दुःखदांसर्वभूतानांनरकारामदीर्घिकाम् ॥ यथाऽग्निर्घर्षणाज्जातःपादपंप्रदहेत्तथा ॥ ११ ॥ देहोत्पन्नस्तथाक्रोधोदेहंदहतिदारुणः ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंचिंत्यमानंतंभ्रातरंदीनमानसम् ॥ १२ ॥ उवाचवचनंतथ्यंनरोधर्मसुतोऽनुजः ॥ नरउवाच ॥ नारायणमहाभागकोपंयच्छमहामते ॥ १३ ॥ शांतंभावंसमाश्रित्यनाशयाऽहंकृतिंपराम् ॥ पुराऽहंकारदोषेणतपोनष्टंकिलाऽऽवयोः ॥ १४ ॥ संग्रामश्चाभवत्ताभ्यांभावाभ्यामसुरेणह ॥ दिव्यवर्षसहस्रंतुप्रह्लादेनमहाऽद्भुतम् ॥१५॥ दुःखंबहुतरंप्राप्तंतत्राऽऽवाभ्यांसुरोत्तम ॥ तस्मात्क्रोधंपरित्यज्यशांतोभवमुनीश्वर ॥१६॥ "शांतत्वंतपसोमूलंमुनिभिःपरिकीर्तितम् ॥" व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाशांतोऽभूद्धर्मनंदनः ॥ जनमेजयउवाच ॥ संशयोऽयंमुनिश्रेष्ठप्रह्लादेनमहात्मना ॥ १७ ॥ विष्णुभक्तेनशांतेनकथंयुद्धंकृतंपुरा ॥ कृतवंतौकथंयुद्धंनरनारायणावृषी ॥ १८ ॥

नर बोले हे नारायण ! आप महाभाग और महामति हैं ॥ १३ ॥ अतएव क्रोधभावको दूरकर शान्तभाव अवलम्बन पूर्वक दुर्द्धर्ष अहंकारका विनाश कीजिये आपको क्या स्मरण नहीं है कि पूर्वमें अहंकारके दोषसे ही हमारी तपस्या नष्ट हुई थी ॥ १४ ॥ और दिव्यसहस्र वर्षपर्यन्त असुरेन्द्र प्रह्लादके संग अत्यन्त अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ था ॥ १५ ॥ हे सुरोत्तम ! उसमें हमने अत्यन्त दुःख पाया था अतएव हे मुनीन्द्र ! आप क्रोधभावको छोड़कर शान्त भावका अवलम्बन कीजिये ॥ १६ ॥ "मुनिगण कहते हैं कि, शान्तिही तपस्याकी एकमात्र मूल है" व्यासजी बोले हे राजन् ! नरऋषिके ये सब वचन सुनकर धर्मनन्दन नारायणने शान्तभावका अवलम्बन किया जन्मेजयने कहा हे मुनीश्वर ! महात्मा प्रह्लाद विष्णुभक्त और शान्तचित्त थे ॥ १७ ॥ पूर्वकालमें उनके संग किसप्रकार

युद्ध उपस्थित हुआ था ? नर नारायण दोनों ऋषियोंने किसप्रकार उनसे युद्ध किया था ? इस विषयमें मुझको अत्यन्त संशय उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ दोनों धर्मपुत्र तापस और शान्तचित्त थे इनके सहित दैत्यसुतका समागम किस प्रकार हुआ था ॥ १९ ॥ उन महात्माके संग दोनों ऋषियोंने किसप्रकार संग्राम किया था ? प्रह्लादजी अत्यन्त धार्मिक ज्ञानवान् और एकान्त विष्णुपरायण थे ॥ २० ॥ नरनारायण भी सत्वगुणसंपन्न तापस थे. अतएव प्रह्लादके संग यदि नरनारायणका वैरभाव उत्पन्न हुआ था ॥ २१ ॥ तो पहिले सतयुगके समयभी तपस्या धर्ममें केवल श्रममात्रही दिखाई देता है तथा जप और तप सभी वृथा बोध होता है ॥ २२ ॥ ऐसे तपस्वी भी क्रोधावृत और अहंकाराच्छन्न चित्तको नहीं जीतसके! क्योंकि अहंकारके अंकुर विना क्रोध और मात्सर्य कभी उत्पन्न नहीं होसक्ता॥ २३॥

तापसौधर्मपुत्रौद्वौसुशांतमानसावुभौ ॥ समागमःकथंजातस्तयोर्दैत्यसुतस्यच ॥ १९ ॥ संग्रामस्तुकथंताभ्यांकृतस्तेनमहात्मना ॥ प्रह्लादोऽप्यतिधर्मात्माज्ञानवान्विष्णुतत्परः ॥ २० ॥ नरनारायणौतद्वत्तापसौसत्त्वसंस्थितौ ॥ तेनताभ्यांसमुद्भूतंवैरंयदिपरस्परम् ॥ २१ ॥ तदातपसिधर्मेचश्रमएवहिकेवलम् ॥ क्वजपःक्वतपश्चर्यापुरासत्ययुगेपिच ॥ २२ ॥ तादृशैर्नजितंचित्तंक्रोधाऽहंकारसंवृतम् ॥ नक्रोधोनचमात्सर्यमहंकारांकुरंविना ॥२३॥ अहंकारात्समुत्पन्नाःकामक्रोधादयःकिल ॥ वर्षकोटिसहस्रंतुतपःकृत्वाऽतिदारुणम् ॥ २४ ॥ अहंकारांकुरेजातेव्यर्थंभवतिसर्वथा ॥ यथासूर्योदयेजातेतमोरूपंनतिष्ठति ॥ २५ ॥ अहंकारांकुरस्याऽग्रेतथापुण्यंनतिष्ठति ॥ प्रह्लादोऽपिमहाभागहरिणासमयुध्यत ॥ २६ ॥ तदाव्यर्थंकृतंसर्वंसुकृतंकिलभूतले ॥ नरनारायणौशांतौविहायपरमंतपः ॥ २७ ॥ कृतवंतौयदायुद्धंक्वशमःसुकृतंपुनः ॥ ईदृग्भ्यांसत्त्वयुक्ताभ्यामजेयायद्यहंकृतिः ॥ २८ ॥ मादृशानांचकावार्तामुनेऽहंकारसंक्षये ॥ अहंकारपरित्यक्तःकोऽप्यस्तिभुवनत्रये ॥ २९ ॥

अहंकारसेही काम क्रोधादि उत्पन्न होते हैं, कोटिसहस्रवर्ष कठिन तपस्या करके भी ॥ २४ ॥ यदि अहंकारका अंकुर उत्पन्न हो तो वह संपूर्ण तप व्यर्थ होजाता है. जिसप्रकार सूर्यके उदय होनेपर अन्धकारका लेशमात्रभी नहीं रहसक्ता ॥ २५ ॥ इसीप्रकार अहंकारके अंकुरका अग्रभाग उदित होनेसे किंचित् भी पुण्य नहीं रहता प्रह्लादने भी यदि बलवान् हरिके संग युद्ध किया था ॥ २६ ॥ तब तो पृथ्वीमें सुकृत सभी विफल होगया है, शान्तचित्त नर नारायण दोनों ऋषियोंने परम पदार्थ तपस्याको त्यागकर जब युद्ध किया था ॥ २७ ॥ तब शान्ति और सुकृति कहां रही ? जब कि इस प्रकार सत्वगुणसंपन्न दोनों ऋषि अहंकारको नहीं जीतसके ॥ २८ ॥ तो मेरे समान असारचित्त पुरुषोंके अहंकार नाश विषयमें फिर क्या कहना है ? इसप्रकार महान् व्यक्तिगण जब अहंकारसे मुक्त नहीं थे. तब तीनों भुवनोंमें

अहंकाररहित और कौन होसक्ता है ॥ २९ ॥ मैं निश्चय जानता हूं. इस विश्वमें अहंकारमुक्त कोई न हुआ न होगा. लोहेकी बेड़ी वा काष्ठकी बेड़ीसेभी मनुष्य मुक्त हो सक्ता है ॥ ३० ॥ किन्तु एकवार अहंकारसे बांधनेपर फिर कभी उससे मुक्त नहीं होसक्ता यह स्थावर जंगमात्मक संपूर्ण जगत् अहंकारसे आवृत होकर ॥ ३१ ॥ विष्ठामूत्रप्रदूषित इस संसारमें भ्रमण करता है अतएव इस मोहसे ढकेहुए संसारमें ब्रह्मज्ञान कहां है ? ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत ! मीमांसकगणोंका कर्मप्रधान मतही संगत और समीचीन दिखाई देता है. हे मुने ! जब प्रधान प्रधान पुरुषभी सदा काम क्रोधादिसे ग्रसित हुए हैं ॥ ३३ ॥ तब कलियुगमें मेरे समान लघुचित्तकी फिर बातही क्या है ? व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण ! कार्य कारणसे भिन्न है. यह किसप्रकार कह सक्ते हैं॥ ३४ ॥ कटक और कुंडल उपाधिभेदसे भिन्न होनेपरभी दोनोंही

नभूतोभवितानैवयस्त्यक्तस्तेनसर्वथा ॥ मुच्यतेलोहनिगडैर्बद्धःकाष्ठमयैस्तथा ॥ ३० ॥ अहंकारनिबद्धस्तुनकदाचिद्विमुच्यते॥अहंकाराऽऽवृतंसर्वंजगत्स्थावरजंगमम्॥३१॥भ्रमत्येवहिसंसारेविष्ठामूत्रप्रदूषिते ॥ ब्रह्मज्ञानंकुतस्तावत्संसारेमोहसंवृते ॥ ३२॥ मतंमीमांसकानांवैसंमतंभातिसुव्रत ॥ महांतोऽपिसदायुक्ताःकामक्रोधादिभिर्मुने ॥ ३३ ॥ मादृशानांकलावस्मिन्काकथामुनिसत्तम ॥ व्यासउवाच ॥ कार्यंवैकारणाद्भिन्नंकथंभवतिभारत॥३४॥कटकंकुंडलंचैवसुवर्णसदृशंभवेत् ॥ अहंकारोद्भवंसर्वंब्रह्मांडंसचराचरम् ॥ ३५ ॥ पटस्तंतुवशःप्रोक्तस्तद्वियुक्तःकथंभवेत्॥मायागुणैस्त्रिभिःसर्वंरचितंस्थिरजंगमम् ॥ ३६ ॥ सतृणंस्तंबपर्यंतंकातत्रपरिदेवना ॥ ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रस्तेचाऽहंकारमोहिताः ॥ ३७ ॥ भ्रमंत्यस्मिन्महागाधेसंसारेनृपसत्तम ॥ वसिष्ठनारदाद्याश्चमुनयोज्ञानिनःपरम् ॥ ३८ ॥ तेऽभिभूताःसंसरंतिसंसारेऽस्मिन्पुनःपुनः ॥ नकोप्यस्तिनृपश्रेष्ठत्रिषुलोकेषुदेहभृत् ॥ ३९॥ एभिर्मायागुणैर्मुक्तःशांतआत्मसुखेस्थितः ॥ कामक्रोधौतथालोभोमोहोऽहंकारसंभवः ॥ ४० ॥

अपने कारण सुवर्णके समान हैं. यह सब चराचर ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न है ॥ ३५॥ वस्त्रका कारण तन्तु है अतएव वस्त्र जिस प्रकार तन्तुसे अभिन्न नहीं हो सक्ता, इसी प्रकार चराचरके सहित यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न होकर किस प्रकार उससे मुक्त होसक्ता है?छोटे तृणसे लेके स्तम्बपर्यन्त स्थावर जंगमात्मक यह संपूर्ण जगत् मायाके तीनगुणोंसे विरचित है ॥ ३६॥ अतएव उसके मिथ्या होनेपर ज्ञानीगणोंको उससे दुःखादि क्या है ? हे नृपसत्तम ! ब्रह्मा विष्णु और महादेवभी अहंकारसे मोहित होकर ॥ ३७ ॥ इस अगाध संसार समुद्रमें भ्रमण करते हैं, वसिष्ठ नारदादि महाज्ञानी मुनियोंने भी ॥ ३८ ॥ इस संसारमें वारंवार जन्म ग्रहण किया है और करते हैं. हे राजेन्द्र ! इस त्रैलोक्यमंडलमें ऐसा कोई भी देहधारी नहीं है ॥ ३९ ॥ जो मायाके गुणोंसे एकवारही मुक्त तथा शान्त और परमात्मसुखमें

अवस्थित होसके. हे नृपोत्तम! काम, क्रोध, लोभ और मोह सभी अहंकारसे उत्पन्न हैं ॥ ४० ॥ यह देहधारियोंमें किसीकोभी परित्याग नहीं करते: संपूर्ण वेद शास्त्र अध्ययन और सब पुराणोंकी आलोचना ॥ ४१ ॥ तीर्थपर्यटन, दान, ध्यान और देवार्चना करके भी मनुष्यगण विषयासक्त होकर तस्करके समान सभी कर्म करते हैं ॥ ४२ ॥ वे कामान्ध मोहान्ध और मदान्ध होकर प्रथम कुछ भी विचार करनेमें समर्थ नहीं होते. हे कुरुनन्दन! इस संसारमें सत्य त्रेता और द्वापर ॥ ४३ ॥ इन तीनों युगोंमें ही धर्मविद्ध और क्षत विक्षत हुआ.है अब कलिकालकी बात फिर क्या कहूं? इस कलियुगमें सदाही द्रोह लोभ और अमर्षादि वर्तमान रहता है॥ ४४॥ अतएव यह काल जो अतिशय दूषित होगा इसमें फिर बातही क्या है? इस कालमें मत्सरहीन क्रोधजित् अमर्षजित् साधुपुरुष अत्यन्त विरल हैं ॥ ४५ ॥ केवल आदश दिखानेके कोई कोई शान्तचित्त व्यक्ति वर्त्तमान रहते हैं. राजाने कहा हे मुने! जो मोहरहित जितेन्द्रिय और सदाचार संपन्न हैं वेही धन्य और पुण्य

नमुंचंतिनरंसर्वदेहवंतंनृपोत्तम ॥ अधीत्यवेदशास्त्राणिपुराणानिविचिंत्यच ॥ ४१ ॥ कृत्वातीर्थाऽटनंदानंध्यानंचैवसुराऽर्चनम् ॥ करोतिविषयासक्तः सर्वकर्मचचौरवत् ॥ ४२ ॥ विचारयतिनोपूर्वकाममोहमदान्वितः ॥ कृतेयुगेऽपित्रेतायांद्वापरेकुरुनंदन ॥ ४३ ॥ विद्धोऽत्राऽस्तिचधर्मोऽपिकाकथाऽद्यकलौपुनः ॥ स्पर्धासदैवसद्रोहालोभामर्षौचसर्वदा ॥४४॥ एवंविधेऽस्तिसंसारेनाऽत्रकार्याविचारणा ॥ साधवोविरलालोकेभवंतिगतमत्सराः ॥४५॥ जितक्रोधाजितामर्षादृष्टांतार्थंव्यवस्थिताः ॥ राजोवाच ॥ तेधन्याःकृतपुण्यास्तेमदमोहविवर्जिताः ॥ ४६ ॥ जितेंद्रियाःसदाचाराजितंतैर्भुवनत्रयम् ॥ दुनोमिपातकंस्मृत्वापितुर्ममहात्मनः ॥ ४७ ॥ कृतस्तपस्विनःकंठेमृतसर्पोह्यघंविना ॥ अतस्तस्यमुनिश्रेष्ठभविताकिंममाग्रतः ॥ ४८ ॥ नजानेबुद्धिसंमोहात्किंवाकार्यंभविष्यति ॥ मधुपश्यतिमूढात्माप्रपातंनैवपश्यति ॥ ४९ ॥ करोतिनिंदितंकर्मनरकान्नबिभेतिच ॥ कथंयुद्धंपुरावृत्तंविस्तराद्वदस्वमे ॥ ५० ॥ प्रह्लादेनयथाचोग्रंनरनारायणस्यवै ॥ प्रह्लादस्तुकथंयातःपातालात्तद्वदस्वमे ॥ ५१ ॥

वान् हैं ॥ ४६ ॥ उन्होंनेही त्रैलोक्यको जीता है. हे मुनिवर! मेरे महात्मा पितानेजो कार्य किया इससे मैं दुःखी हूं ॥ ४७ ॥ विना अपराध तपस्वीके गलेमें मराहुआ सर्प डाला था, उनका वह पापकार्य स्मरण करके मैं अत्यन्त दुःखी और क्लिष्ट होता हूं. अतएव हे मुने! आप कहिये मैं उसका क्या प्रतीकार कर सक्ता हूं? ॥ ४८ ॥ हे भगवन्! बुद्धिदोषसे इस विषयमें क्या संघटित होगा सो मैं नहीं कह सक्ता? मूढात्मा मधुके लालचसे मधुही देखते हैं. सन्मुख जो प्राणसंहारक पर्वत पड़ा रहता है उसको वे बुद्धिके दोषसे कभी नहीं देखसक्ते ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सब लोग निन्दितकर्म करते हैं और सन्मुख जो घोरतर भयंकर नरक रहता है उसको वे मोहके वशीभूत होकर नहीं देखते, अतएव उससे डरते भी नहीं सो जो हो हे मुनीन्द्र! पूर्वकालमें किसप्रकार युद्ध हुआ? सो कहो ॥ ५० ॥ प्रह्लादके संग

नरनारायणका घोर युद्ध उपस्थित हुआ था ? यह आप विस्तारसहित मुझसे वर्णन कीजिये. प्रह्लाद पातालतलसे सारस्वतमहातीर्थमें तथा पुण्यकर और पवित्र बदरिकाश्रममें किसलिये आये थे ? यह आप मुझसे कहिये. हे मुने ! शान्तचित्त मुनिवर नरनारायणने ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ किसकारण प्रह्लादसे युद्ध किया था? धन संपत्तिके लिये वा स्त्रीके लिये स्वभावसेही परस्पर विवाद होता है ॥ ५३ ॥ उक्त दोनों महर्षि वासनारहित थे तो किस लिये घोर संग्राममें प्रवृत्त हुए थे ? और प्रह्लादभी धर्मात्मा थे. वे जानते थे कि, नर नारायण दोनों मुनि सनातन देवता हैं ॥ ५४ ॥ तब उन्होंने किस कारण उनसे युद्ध किया था ? हे ब्रह्मन् ! इसका कारण विस्तारसहित सुननेकी मुझको अत्यन्त वासना उत्पन्न हुई है ॥ ५५ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
सूतजी बोले हे तापसगण ! परीक्षितके पुत्र जन्मेजयके इसप्रकार पूँछनेपर सत्यवतीके पुत्र विप्रोत्तम व्यासदेवजीने उन सब विषयोंको विस्तारसहित कहा था

सारस्वतेमहातीर्थेपुण्येबदरिकाश्रमे ॥ नरनारायणौशांतौतापसौमुनिसत्तमौ ॥ ५२ ॥ कृतवंतौतथायुद्धंहेतुनाकेनमानद ॥ वैरंभवतिवित्तार्थंदारार्थंवाप रस्परम् ॥ ५३ ॥ एषणारहितौकस्माच्चक्रतुःप्रधनंमहत् ॥ प्रह्लादोऽपिचधर्मात्माज्ञात्वादेवौसनातनौ ॥ ५४ ॥ कृतवान्सकथंयुद्धंनरनारायणौमुनी ॥ एतद्विस्तरतोब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामिकारणम् ॥ ५५ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ सूतउवाच ॥ इतिपृष्टस्तदा विप्रोराज्ञापारिक्षितेनवै ॥ उवाचविस्तरात्सर्वंव्यासःसत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ जनमेजयोऽपिधर्मात्मानिर्वेदंपरमंगतः ॥ चित्तंदुश्चरितंमत्वावैराटीतनयस्यवै॥ ॥ २ ॥ तस्यैवोद्धरणार्थायचकारसततंमनः ॥ विप्रावमानपापेनयमलोकंगतस्यवै ॥ ३ ॥ पुन्नामनरकाद्यस्मात्त्रायतेपितरंस्वकम् ॥ पुत्रेतिनामसार्थंस्यात्ते नतस्यमुनीश्वराः ॥ ४ ॥ सर्पदष्टंनृपंश्रुत्वाहर्म्योपरिमृतंतथा ॥ विप्रशापादौत्तरेयंस्नानदानविवर्जितम् ॥ ५ ॥ पितुर्गतिंनिशम्याऽसौनिर्वेदंगतवान्नृपः ॥ पारिक्षितोमहाभागः संतप्तोभयविह्वलः ॥ ६ ॥ पप्रच्छाऽथमुनिंव्यासंगृहागतमनिंदितः ॥ नरनारायणस्येमांकथांपरमविस्तृताम् ॥ ७ ॥

॥ १ ॥ धर्मात्मा जन्मेजय उन सबको सुन, अपने पिता उत्तरातनय परीक्षित्का दुश्चरित समझ अत्यन्त दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ २ ॥ उनके पिताने ब्राह्मणकी अपमानतास्वरूप पापाचरणके कारण यमलोकमें गमन किया. तिनका उद्धार करनेके लिये वह सदाही मनमें चिन्ता करते थे ॥ ३ ॥ हे ऋषिगण ! पुन्नामक नरकसे पिताकी रक्षा करनेके कारण आत्मजका पुत्र यह नाम हुआ है, अतएव जिस किसी उपायसे पिताकी रक्षा करनेसे आत्मजका "पुत्र" नाम सार्थक होता है ॥ ४ ॥ उत्तराके पुत्र राजा परिक्षित्ने ब्राह्मणके शापसे स्नानदानरहित हो महलके ऊपर प्राण परित्याग किया है ॥ ५ ॥ पिताकी इस प्रकार दुर्गति सुनकर परिक्षित्पुत्र महाभाग नरपति जन्मेजय अत्यन्त संतप्त और भयसे विह्वल हो दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ ६ ॥ फिर ऋषिश्रेष्ठ निर्मलात्मा व्यासदेवजीके घर आनेपर उन्होंने उनसे नरनारायणकी

यह अत्यन्त विस्तृत कथा पूँछी थी ॥ ७ ॥ ऋषिवर व्यासदेवजी जन्मेजयके प्रश्न सुनकर कहने लगे हे नृपते! जब अत्यन्त उग्रवीर्य असुरराज हिरण्यकशिपु मारागया तब प्रह्लादनामक उसका पुत्र उस राज्यमें अभिषिक्त हुआ ॥ ८ ॥ देवता और ब्राह्मणोंका पूजनेवाला वह दैत्यश्रेष्ठ राज्यशासन करने लगा, तब पृथ्वीतलमें वास करनेवाले राजागण श्रद्धायुक्त हो अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करने लगे ॥ ९ ॥ उसके राजत्वकालमें ब्राह्मणगण तपस्या धर्म और तीर्थयात्रामें निरत, वैश्यगण व्यापारादि अपने अपने कार्यमें आसक्त और शूद्रगण सेवामें मन लगाते हुए ॥ १० ॥ हरिके अवतार नृसिंहदेवने दैत्यराज प्रह्लादको पातालतलमें स्थापित किया था, प्रह्लाद उस स्थानपरही प्रजापालनमें निरत रहकर राज्य करते थे ॥ ११ ॥ किसी समय भृगुके पुत्र महातपा च्यवन मुनि नर्मदाके जलमें स्नान करनेको व्याहृतीश्वर नामक तीर्थमें गये थे ॥ १२ ॥ उस स्थानमें महानदी रेवाको देखकर उसमें उतर रहे थे इसी समयमें एक भयानक

व्यासउवाच ॥ सयदानिहतोरौद्रोहिरण्यकशिपुर्नृप ॥ अभिषिक्तस्तदाराज्येप्रह्लादोनामतत्सुतः ॥८॥ तस्मिञ्छासतिदैत्येंद्रेदेवब्राह्मणपूजके ॥ मखैर्भूम्यांनृपतयोयजंतःश्रद्धयान्विताः ॥९॥ ब्राह्मणाश्चतपोधर्मतीर्थयात्राश्चकुर्वते ॥ वैश्याश्चस्वस्ववृत्तिस्थाःशूद्राःशुश्रूषणेरताः ॥ १० ॥ नृसिंहेनचपाताले स्थापितःसोऽथदैत्यराट् ॥ राज्यंचकारतत्रैवप्रजापालनतत्परः ॥ ११ ॥ कदाचिद्भृगुपुत्रोऽथच्यवनाख्योमहातपाः ॥ जगामनर्मदांस्नातुंतीर्थेव्याहृतीश्वरम् ॥ १२ ॥ रेवांमहानदींदृष्ट्वाततस्तस्यामवातरत् ॥ उत्तरंतंप्रजग्राहनागोविषभयंकरः ॥ १३ ॥ गृहीतोभयभीतस्तुपातालेमुनिसत्तमः ॥ सस्मारमनसाविष्णुंदेवदेवंजनार्दनम् ॥ १४ ॥ संस्मृतेपुंडरीकाक्षेनिर्विषोऽभून्महोरगः ॥ नप्रापच्यवनोदुःखंनीयमानोरसातलम् ॥ १५ ॥ द्विजिह्वेनमुनिस्त्यक्तोनिर्विण्णेनाऽतिशंकिना ॥ मांशपेतमुनिःक्रुद्धस्तापसोऽयंमहानिति ॥ १६ ॥ चचारनागकन्याभिःपूजितोमुनिसत्तमः ॥ विवेशाप्यथनागानांदानवानांमहत्पुरम् ॥१७॥ कदाचिद्भृगुपुत्रंतंविचरंतंपुरोत्तमे ॥ ददर्शदैत्यराजोऽसौप्रह्लादोधर्मवत्सलः ॥ १८ ॥ दृष्ट्वातंपूजयामासमुनिंदैत्यपतिस्तदा ॥ पप्रच्छकारणंकिंतेपातालगमनेवद ॥ १९ ॥

सर्पने आनकर उनको ग्रहण किया ॥ १३ ॥ उन मुनिसत्तमने नागद्वारा ग्रसित हो, पातालतलमें पहुँच अत्यन्त भयसे मनमें भगवान् देवदेव जनार्दन विष्णुका स्मरण किया था ॥ १४ ॥ पुण्डरीकाक्षका स्मरण करनेसे वह महासर्प निर्विष होगया था, इसलिये मुनिवर पातालमें पहुँच करभी विषजनित किसीप्रकारके दुःखको प्राप्त नहीं हुए थे ॥ १५ ॥ तब सर्पराजने मुनिवरके प्रभावको जाना "फिर ये तपस्वी मुझको शाप देंगे" इस भयसे अत्यन्त शंकित और दुःखयुक्त हो उनको छोड़ दिया ॥ १६ ॥ मुनिसत्तम च्यवन नागकन्याओंसे पूजित वहां विचरण करने लगे. फिर एक समय नाग और दानवगणोंके परममनोहर पुरमें गये ॥ १७ ॥ भृगुनंदन च्यवन किसी समय अन्तःपुरमें विचरण कर रहे थे. इसी समयमें दैत्यराज धर्मवत्सल प्रह्लादने उनको देखा ॥ १८ ॥ दैत्यराजने उनको

देखकर उस समय उनकी पूजा करी और फिर उनसे पातालमें आनेका कारण पूछा ॥ १९ ॥ प्रल्हादने उनसे कहा हे द्विजोत्तम! आप क्या इन्द्रके भेजे यहां आये हैं? सो सत्य कहिये. मुझको बोध होता है कि दैत्यविद्वेषी इन्द्रनेही आपको मेरा राज्य देखनेके लिये भेजा है ॥ २० ॥ च्यवनने कहा हे राजन्! इन्द्रके संग मेरा कोई भी कार्य और संगति नहीं है, उनका भेजा दूतकार्य करनेके लिये मैं आपकी नगरीमें क्यों आऊंगा? ॥ २१ ॥ आप मुझको धर्मतत्पर ज्ञाननेत्र भृगुका पुत्र च्यवन जानिये. हे दैत्येन्द्र! इन्द्रका भेजा हुआ जानकर किसी प्रकारकी शंका नकीजिये ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र! मैंने स्नान करनेके लिये नर्मदाके पवित्रतीर्थमें जाय नदीके जलमें उतर रहा था, इसी अवसरमें एक सर्पने मुझको पकड़लिया ॥ २३ ॥ तब मैंने विष्णुका स्मरण किया. विष्णुका स्मरण करनेसे सर्पने निर्विष होकर मुझे

प्रेषितोऽसिकिमिंद्रेणसत्यंब्रूहिद्विजोत्तम ॥ दैत्यविद्वेषयुक्तेनममराज्यदिदृक्षया ॥ २० ॥ च्यवनउवाच ॥ किंमेमघवताराजन्यदहंप्रेषितःपुनः ॥ दूतकार्यं प्रकुर्वाणःप्राप्तवान्नगरेतव ॥ २१ ॥ विद्धिमांभृगुपुत्रंतंस्वनेत्रंधर्मतत्परम् ॥ माशंकांकुरुदैत्येंद्रवासवप्रेषितस्यवै ॥ २२ ॥ स्नानार्थंनर्मदांप्राप्तःपुण्यतीर्थे नृपोत्तम ॥ नद्यामेवावतीर्णोऽहंगृहीतश्चमहाऽहिना ॥२३॥ जातोऽसौनिर्विषःसर्पोविष्णोःसंस्मरणादिव ॥ मुक्तोऽहंतेननागेनप्रभावात्स्मरणस्यवै ॥२४॥ अत्राऽऽगतेनराजेंद्रमयाऽऽप्तंतवदर्शनम् ॥ विष्णुभक्तोऽसिदैत्येंद्रतद्भक्तंमांविचिंतय ॥ २५ ॥ व्यासउवाच ॥ तन्निशम्यवचःश्लक्ष्णंहिरण्यकशिपोःसुतः ॥ पप्रच्छपरयाप्रीत्यातीर्थानिविविधानिच ॥ २६ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ पृथिव्यांकानितीर्थानिपुण्यानिमुनिसत्तम ॥ पातालेचतथाऽऽकाशेतानिनोवदविस्त रात् ॥ २७ ॥ च्यवनउवाच ॥ मनोवाक्कायशुद्धानांराजंस्तीर्थंपदेपदे ॥ तथामलिनचित्तानांगंगापिकीकटाऽधिका ॥ २८ ॥ प्रथमंचेन्मनःशुद्धंजातं पापविवर्जितम् ॥ तदातीर्थानिसर्वाणिपावनानिभवंतिवै ॥ २९ ॥ गंगातीरेहिसर्वत्रवसंतिनगराणिच ॥ व्रजाश्चैवाकराग्रामाःसर्वेखेटास्तथापरे ॥ ३० ॥

छोड़ दिया है ॥ २४ ॥ हे राजेन्द्र! यहां आनकर आपका दर्शन पाया. आप विष्णुके भक्त हैं मुझको भी उन्हीं विष्णुका भक्त जानिये ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रल्हादने उनके इस प्रकार मीठे वचन सुनकर परम प्रीतिसहित उनसे अनेक तीर्थोंका विषय पूछा ॥ २६ ॥ प्रल्हादने कहा हे मुनि सत्तम! पृथ्वीतलमें, पातालमें, अथवा आकाशमंडलमें कौन कौन तीर्थ पुण्यदायक हैं? उन सबका मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥ च्यवनने कहा हे राजेन्द्र! जिसका देह, वाक्य और मन विशुद्ध होगया है, उसको पदपदमें ही तीर्थ हैं, जिसका चित्त मलीन है. उसको गंगाभी कीकटदेशसे अधिक कही गई हैं ॥ २८ ॥ यदि प्रथम मन पापरहित और विशुद्ध हो. तो उसके पक्षमें सब तीर्थही पवित्रकर होते हैं ॥ २९ ॥ हे दैत्यसत्तम! गंगातीरमें अनेक नगर, वसति, व्रज वा गोष्ठ, आकर,

ग्राम, क्षुद्रपल्ली, छोटे गाम ॥ ३० ॥ निषादनिवास और कैवर्त्तनिवास हूण, म्लेच्छ जाति वङ्गजाति खस(जातिविशेष)अधिक क्या म्लेच्छगणोंके अनेक वासस्थान रहते हैं ॥ ३१ ॥ वहांके निवासी मनुष्यगण अपनी इच्छानुसार सदाही ब्रह्मोपम गंगाजल पान करते हैं. और उसी जलमें स्नानादि करते हैं ॥ ३२ ॥ हे राजेन्द्र ! उन सबमें कोई भी विशुद्धात्मा नहीं हो सकता तो देखिये जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त है, सुतरां जो विनष्टचित्त होरहा है उसको फिर तीर्थका क्या फल होसकता है ? ॥ ३३ ॥ तीर्थादि धर्मकर्मविषयमें मनको ही प्रधान कारण जानना चाहिये. अन्य कुछभी नहीं है जो शुद्धिकी कामना करते हैं मनको शुद्ध करनाही उनका प्रधान कर्त्तव्य है ॥ ३४ ॥ तीर्थवासी पुरुषगण तीर्थ स्थानमें अन्यव्यक्तिको छलकर महापापी होते हैं. तीर्थस्थानमें पापाचरण करनेपर वह फिर

निषादानांनिवासाश्चकैवर्तानांतथापरे ॥ हूणवंगखसानांचम्लेच्छानांदैत्यसत्तम ॥ ३१ ॥ पिबंतिसर्वदागांगंजलंब्रह्मोपमंसदा ॥ स्नानंकुर्वंतिदैत्येंद्रत्रिकालंस्वेच्छयाजनाः ॥ ३२ ॥ तत्रैकोऽपिविशुद्धात्मानभवत्येवमारिष ॥ किंफलंतर्हितीर्थस्यविषयोपहतात्मसु ॥ ३३ ॥ कारणंमनएवाऽत्रनान्यद्राजन्विचिंतय ॥ मनःशुद्धिःप्रकर्तव्यासततंशुद्धिमिच्छता ॥३४॥ तीर्थवासीमहापापीभवेत्तत्रान्यवंचनात् ॥ तत्रैवाऽऽचरितंपापमानंत्यायप्रकल्पते ॥३५॥ यथेंद्रवारुणंपक्वंमिष्टंनैवोपजायते ॥ भावदुष्टस्तथातीर्थेकोटिस्नातोनशुध्यति ॥ ३६ ॥ प्रथमंमनसःशुद्धिःकर्तव्याशुभमिच्छता ॥ शुद्धेमनसिद्रव्यस्यशुद्धिर्भवतिनान्यथा ॥ ३७ ॥ तथैवाऽऽचारशुद्धिःस्यात्ततस्तीर्थंप्रसिध्यति ॥ अन्यथातुकृतंसर्वंव्यर्थंभवतितत्क्षणात् ॥३८॥ "हीनवर्णस्यसंसर्गंतीर्थेगत्वासदात्यजेत् ॥" भूतानुकंपनंचैवकर्तव्यंकर्मणाधिया ॥ यदिपृच्छसिराजेंद्रतीर्थंवक्ष्याम्यनुत्तमम् ॥३९॥ प्रथमंनैमिषंपुण्यंचक्रतीर्थंचपुष्करम् ॥ अन्येषांचैवतीर्थानांसंख्यानास्तिमहीतले ॥ ४० ॥

नष्ट नहीं होता वरन वह पाप अनन्त और अक्षय होता है ॥ ३५ ॥ जिसप्रकार इन्द्रवारुणीका फल पकनेपर भी मीठा नहीं होसक्ता, इसीप्रकार जिसके चित्तका भाव दूषित है वह करोड़वार तीर्थके जलमें स्नान करनेसेभी शुद्ध नहीं होता ॥ ३६ ॥ जो कल्याणकी कामना करते हैं पहिले मन शुद्ध करनाहीं उनका कर्त्तव्य है, मन शुद्ध होनेपर फिर द्रव्यशुद्धि ॥ ३७ ॥ तदनन्तर आचार शुद्धि और तदुपरान्त तीर्थभ्रमण सिद्ध होता है. इसके अन्यथा होनेसे तत्काल समस्त व्यर्थ हो जाता है ॥ ३८ ॥ तीर्थमें जाकर हीनवर्णके सहित संसर्ग छोड़ बुद्धि और कर्मद्वारा जीवगणोंके प्रति दया प्रकाश करनी चाहिये. हे राजेन्द्र ! आपने पुण्यतीर्थकी कथा पूछी है अतएव मैं अतिउत्तम सब तीर्थोंकी कथा आपसे कहताहूं श्रवण कीजिये ॥ ३९ ॥ हे नृप ! पुण्यदायक नैमिषारण्यही प्रथम

है फिर चक्रतीर्थ और तदुपरान्त पुष्करतीर्थ है इनके अतिरिक्त पृथ्वीतलमें अन्यान्य अनेक तीर्थ हैं, उनकी गिनती नहीं है ॥ ४० ॥ हे नृपोत्तम ! इनके अतिरिक्त भूमण्डलमें अनेक पवित्र स्थान भी विद्यमान हैं, व्यासजी बोले हे राजन् ! दैत्यराज प्रल्हादने उनका यह वचन सुन नैमिषारण्यमें जानेके लिये उद्यत हो ॥ ॥ ४१ ॥ प्रसन्नतापूर्वक दैत्यगणोंसे चलनेको कहा. प्रल्हाद बोले हे महाभागगण ! तुमलोग सब उठो हम सब अभी नैमिषारण्यमें जायँगे ॥ ४२ ॥ पुण्डरीकाक्ष पीतवासा अच्युतदेवके दर्शन कर चारितार्थ होंगे. व्यासजीने कहा हे राजन् ! विष्णुभक्त प्रह्लादने जब इसप्रकार कहा तब सब दानवगण मुदितमन हो ॥ ४३ ॥ उनके संग पातालसे निकले उन महाबल दैत्य और दानवगणोंने मिलकर ॥ ४४ ॥ प्रसन्नचित्तसे वहाँ जाय स्नान किया था प्रह्लादने उस तीर्थमें दैत्यगणोंके सहित विचरण करते

पावनानिचस्थानानिबहूनिनृपसत्तम ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराजानैमिषंगंतुमुद्यतः ॥ ४१ ॥ नोदयामासदैत्यान्वैहर्षनिर्भरमानसः ॥ प्रह्लादउवाच ॥ उत्तिष्ठंतुमहाभागागमिष्यामोऽद्यनैमिषम् ॥ ४२ ॥ द्रक्ष्यामःपुंडरीकाक्षंपीतवाससमच्युतम् ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्ताविष्णुभक्तेनसर्वेतेदानवास्तदा ॥ ४३ ॥ तेनैवसहपातालान्निर्ययुःपरयामुदा ॥ तेसमेत्यचदैतेयादानवाश्चमहाबलाः ॥ ४४ ॥ नैमिषारण्यमासाद्यस्नानंचक्रुर्मुदान्विताः ॥ प्रह्लादस्तत्रतीर्थेषुचरन्दैत्यैःसमन्वितः ॥ ४५ ॥ सरस्वतींमहापुण्यांददर्शविमलोदकाम् ॥ तीर्थेतत्रनृपश्रेष्ठप्रह्लादस्यमहात्मनः ॥ ४६ ॥ मनःप्रसन्नंसंजातंस्नात्वासारस्वतेजले ॥ विधिवत्तत्रदैत्येंद्रःस्नानदानादिकंशुभे ॥ ४७ ॥ चकारातिप्रसन्नात्मातीर्थेपरमपावने ॥ इति श्रीदे० भा० म० चतुर्थस्कंधेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ कुर्वस्तीर्थविधिंतत्रहिरण्यकशिपोःसुतः ॥ न्यग्रोधंसुमहच्छायमपश्यत्पुरतस्तदा ॥ १ ॥ ददर्शबाणानपरान्नानाजातीयकांस्तदा ॥ गृध्रपक्षयुतांस्तीव्राञ्छिलाधौतान्महोज्ज्वलान् ॥ २ ॥ चिंतयामासमनसायस्येमेविशिखास्त्विह ॥ ऋषीणामाश्रमेपुण्येतीर्थेपरमपावने ॥ ३ ॥ एवंचिंतयताऽनेनकृष्णाजिनधरौमुनी ॥ समुन्नतजटाभारौदृष्टौधर्मसुतौतदा ॥ ४ ॥

करते ॥ ४५ ॥ महापुण्यदायक निर्मल जलवाली सरस्वती नदीका दर्शन किया. हे नरेन्द्र ! सरस्वतीके विमल जलमें ॥ ४६ ॥ स्नानकरके महात्मा प्रल्हादका मन प्रसन्न हुआ. दैत्यराजने प्रसन्न होकर उस कल्याणप्रद परमपवित्र तीर्थमें स्नान दानादि कर्म विधिपूर्वक समापनकिया था ॥ ४७ ॥ इस तीर्थमें प्रल्हाद बहुत प्रसन्नतासे सब कार्य करते हुए ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रल्हादने उस स्थानमें विधिपूर्वक तीर्थक्रिया करते करते पुरोभागमें छायाप्रधान एक वटका वृक्ष देखा ॥ १ ॥ फिर वहां गृध्रपक्षयुक्त, शाणित (धारवाले), सुतीक्ष्ण, महोज्वल, बाणोंको सुसज्जित देख ॥ २ ॥ मनमें चिन्ता करने लगे कि, इस परमपवित्र पुण्यतीर्थरूप ऋषियोंके आश्रममें किसके शर रक्षित हैं ॥ ३ ॥ प्रल्हाद मनमें इसप्रकार चिन्ता करतेही

थे कि इसी समय उन्होंने कृष्णाजिनधारी, ऊंची जटाआदि धारण किये धर्मपुत्र दोनों मुनि नरनारायणको ॥ ४ ॥ और उनके अग्रभागमें शास्त्रोक्तलक्षणयुक्त सुशोभित शार्ङ्ग और आजगवनामक दो धनुष तथा अक्षय तरकस रक्खे हुए देखे ॥५॥ धर्मपुत्र महाभाग नर नारायण दोनों ऋषि ध्यानमें स्थित थे. असुरपालक प्रल्हाद उस समय उनको देख ॥ ६ ॥ क्रोधसे लाल लाल नेत्र करके कहने लगे हे दोनों तपस्वियो ! तुम्हारे मनमें क्या धर्मविनाशक दम्भने प्रवेश किया है ? ॥ ७ ॥ आपने कभी देखा वा सुना नहीं है कि, इस संसारमें सतयुगके समय तपाचरण और उग्रशरासन धारण ॥ ८ ॥ इन दोनोंका अत्यन्त विरोध है, यह कलिकालके उपयुक्त है. सतयुगमें इन दोनोंका अनुष्ठान किसप्रकार संगत होसक्ता है ? तपाचरण ही ब्राह्मणके उपयुक्त धर्म है. तब आप चाप क्यों धारण करते हैं? ॥ ९ ॥ मस्तकमें जटा-भार धारण करना कहां ? और विडम्बनास्वरूप धनुष बाण धारण करना कहां ? अतएव आपको दिव्यभावयुक्त होकर धर्मका आचरण करना ही युक्तिसंगत बोध होता

तयोरग्रेधृतेशुभ्रेधनुषीलक्षणान्विते ॥ शार्ङ्गमाजगवंचैवतथाऽक्षय्यौमहेषुधी ॥ ५ ॥ ध्यानस्थौतौमहाभागौनरनारायणावृषी ॥ दृष्ट्वाधर्मसुतौतत्रदैत्यानामधिपस्तदा ॥ ६ ॥ क्रोधरक्तेक्षणस्तौतुप्रोवाचाऽसुरपालकः ॥ किंभवद्भ्यांसमारब्धोदंभोधर्मविनाशनः ॥ ७ ॥ नश्रुतंनैवदृष्टंहिसंसारेऽस्मिन्कदांऽपिहि ॥ तपसश्चरणंतीव्रंतथाचापस्यधारणम् ॥ ८ ॥ विरोधोऽयंयुगेचाऽऽद्येकथंयुक्तंकलिप्रियम् ॥ ब्राह्मणस्यतपोयुक्तंतत्रकिंचापधारणम् ॥ ९ ॥ क्वजटाधारणंदेहेक्वेषुधीचविडंबनौ ॥ धर्मस्याऽऽचरणंयुक्तंयुवयोर्दिव्यभावयोः ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वानरःप्रोवाचभारत ॥ कातेचिंताऽत्रदैत्येंद्रवृथातपसिचाऽऽवयोः॥ ११ ॥सामर्थ्येसतियःकुर्यात्तत्संपद्येततस्यहि ॥ आवांकार्यद्वयेमंदसमर्थौलोकविश्रुतौ ॥ १२ ॥ युद्धेतपसिसामर्थ्यंत्वंपुनःकिंकरिष्यसि ॥ गच्छमार्गेयथाकामंकस्मादत्रविकत्थसे ॥ १३ ॥ ब्राह्मंतेजोदुराराध्यंनत्वंवेदविमोहितः ॥ विप्रचर्चानकर्तव्या प्राणिभिःसुखमीप्सुभिः ॥ १४ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ तापसौमंदबुद्धीस्थोमृषावांगर्वमोहितौ ॥ मयितिष्ठतिदैत्येंद्रेधर्मसेतुप्रवर्तके ॥ १५ ॥

है ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे भरतकुलभूषण ! मुनिवर नरने प्रह्लादके इस प्रकार वचन सुनकर कहा हे दैत्येन्द्र ! हमारी इस तपस्याके विषयमें तुमको वृथा इतनी चिन्ता क्यों हुई है? ॥ ११ ॥ जिसको सामर्थ्य है वह सबसे ही संपन्न होता है । हेमन्दबुद्धे ! हम इन दोनों कार्योंमें ही भली भाँति समर्थ हैं, यह तीनों लोकमें ही विख्यात है ॥ १२ ॥ हमको युद्ध और तपस्या इन दोनों कार्योंमें ही सामर्थ्य है, तुम इस विषयमें क्या करोगे ? यह मार्ग स्वच्छ पड़ा है, जहां इच्छा हो, वहां चले जाओ. इस स्थानमें किस कारण श्लाघा प्रकाश करते हो? ॥ १३ ॥ तुम मूढबुद्धि होकर ब्रह्मतेजको किस प्रकार जानसक्ते हो ? तुमको जानना चाहिये कि जो सुखलाभ करनेकी अभिलाषा करते हैं, उनको ब्राह्मणसंबंधीय किसी विषयका विचार करना कभी उचित नहीं है ॥ १४ ॥ प्रह्लादने कहा हे दोनों तपस्वियो ! तुम मंदबुद्धि

और वृथागर्वसे मोहित हो, धर्मसेतुके प्रवर्त्तक दैत्यराज मेरे इस तीर्थमें विद्यमान रहते ॥ १५ ॥ यहां अधर्माचरण युक्तियुक्त नहीं होसक्ता हे तपोधन ! तुम्हारी युद्धके विषयमें क्या शक्ति है ? वह अभी मुझको दिखाओ ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! मुनिवर नरने प्रह्लादके यह वचन सुनकर कहा. यदि तुम्हारी इसी प्रकार बुद्धि उत्पन्न हुई है. तो मुझसे अभी युद्ध करो ॥ १७ ॥ हे असुराधम ! अभी युद्ध करके मैं तेरा मस्तक विदीर्ण कर डालूंगा. तो फिर तेरी कभी युद्ध करनेकी अभिलाषा नहीं होगी. व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाबलशाली दैत्यराज प्रह्लादने उनका वचन सुन, कुपित हो ॥ १८ ॥ यह प्रतिज्ञा करी कि जिस किसी उपायसे इन तपस्वी नर नारायण ॥ १९ ॥ दोनों ऋषियोंको युद्धमें पराजित करूंगा. व्यासजी बोले तदनन्तर दैत्यराजने शरासन ग्रहण कर ॥ २० ॥ शीघ्र आकर्षणपूर्वक

नयुक्तमेतत्तीर्थेऽस्मिन्नधर्माऽऽचरणंपुनः॥काशक्तिस्तवयुद्धेऽस्तिदर्शयाऽद्यतपोधन॥१६॥व्यासउवाच॥तदाऽऽकर्ण्यवचस्तस्यनरस्तंप्रत्युवाचह॥युध्यस्वाऽद्यमयासार्धंयदितेमतिरीदृशी ॥१७॥ अद्यतेस्फोटयिष्यामिमूर्धानमसुराधम ॥ "युद्धेश्रद्धानतेपश्चाद्भविष्यतिकदाचन ॥" व्यासउवाच ॥ तन्निशम्यवचस्तस्यदैत्येंद्रःकुपितस्तदा ॥ १८ ॥ प्रह्लादोबलवानत्रप्रतिज्ञामारुरोहसः ॥ येनकेनाप्युपायेनजेष्यामिताबुभावपि ॥१९॥ नरनारायणौदांतावृषीतापसमन्वितौ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वावचनंदैत्यःप्रतिगृह्यशरासनम् ॥२०॥आकृष्यतरसाचापंज्याशब्दंचचकारह ॥ नरोपिधनुरादायशरांस्तीव्राञ्छिलाशितान् ॥ २१ ॥ मुमोचबहुशःक्रोधात्प्रह्लादोपरिपार्थिव ॥२२॥ तान्दैत्यराजस्तपनीयपुंखैश्चिच्छेदबाणैस्तरसासमेत्य ॥ समीक्ष्यछिन्नांश्चनरःस्वसृष्टानन्यान्मुमोचाऽऽशुरुषान्वितोवै ॥ २३ ॥ दैत्याऽधिपस्तानपितीव्रवेगैश्छित्त्वाजघानोरसितंमुनींद्रम् ॥ नरोऽपितंपंचभिराशुगैश्चक्रुद्धोहनद्दैत्यपतिंबाहुदेशे ॥ २४ ॥ सेंद्राःसुरास्तत्रतयोर्हियुद्धंद्रष्टुंविमानैर्गगनस्थिताश्च ॥ नरस्यवीर्येयुधिसंस्थितस्यतेतुष्टुवुर्दैत्यपतेश्चभूयः ॥२५॥ववर्षदैत्याधिपआत्तचापःशिलीमुखानंबुधरोयथाऽपः ॥ आदायशार्ङ्गंधनुरप्रमेयंमुमोचबाणाञ्छितहेमपुंखान् ॥ २६ ॥

प्रत्यंचाका शब्द किया, हेराजेन्द्र ! तिस काल ऋषिवर नर भी शरासन ग्रहण कर क्रोधयुक्त हो अनेक शिलापर पैनाये ॥ २१ ॥ सब अस्त्र प्रह्लादके ऊपर निक्षेप करने लगे ॥ २२ ॥ अनन्तर दैत्यपति प्रह्लादने शीघ्रतासहित स्वर्णपुंखबाणोंसे नरके चलाये सब बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला । तब ऋषिवर नर अपने चलाये सब बाणोंको कटता देखकर क्रोधयुक्त हुए और अन्यान्य अनेक बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २३ ॥ तब दैत्याधिपति प्रह्लादने तीव्रवेगी बाणोंसे उन सब बाणोंको काटकर उन मुनिवरके उरस्थलमें आघात किया और नरने भी क्रोधित होकर पांच बाणोंसे दैत्यराजकी दोनों भुजा विंध डालीं ॥ २४ ॥ उनका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रादि देवतागण विमानमें बैठ आकाशमण्डलमें स्थिति कर कभी नर ऋषिकी और कभी प्रह्लादकी प्रशंसा करने लगे ॥ २५ ॥ दैत्यराज चाप ग्रहण कर, मेघ

जिसप्रकार पर्वतके शृंगपर जलकी वर्षा करते हैं. इसीप्रकार नरके ऊपर अत्यन्त क्रोधयुक्त हो अनेक भांतिके अस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा. हे महाराज ! उस समय मुनिवर नर प्रह्लादके बाणोंसे विद्ध होकर अत्यन्त ग्लानियुक्त हुए. तब नारायण नरको क्लांत देखकर अत्यन्त रुष्ट हुए और अप्रमेय शार्ङ्ग शरासन धारण कर स्वर्ण पुंख बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २६ ॥ हे पृथ्वीन्द्र ! तिसकाल परस्पर जयकी इच्छा करनेवाले नारायण और प्रह्लादका तुमुल संग्राम उपस्थित हुआ. देवतागण आकाशमार्गमें अवस्थिति करके उनके ऊपर प्रसन्नचित्तसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ दैत्यराज प्रह्लाद अत्यन्त कुपित होकर अत्यन्त तीव्र वेगसे अस्त्रोंका निक्षेप करने लगा. धर्मपुत्र नारायणने धनुषसे छोड़े हुए तीक्ष्ण अस्त्रोंके द्वारा तत्काल उन सब अस्त्रोंको काट डाला ॥ २८ ॥ तदनन्तर प्रह्लाद तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा युद्धमें अटल उन वीरवर धर्मपुत्र नारायणपर बाण बरसाने लगे. नारायणनेभी शिलापर पैनाये बाणोंको वेगसहित चलाकर॥ २९ ॥ आगे स्थित दैत्यपतिको पीड़ित

बभूवयुद्धंतुमुलंतयोस्तुजयैषिणोःपार्थिवदेवदैत्ययोः ॥ ववर्षुराकाशपथेस्थितास्तेपुष्पाणिदिव्यानिप्रहृष्टचित्ताः ॥२७॥ चुकोपदैत्याधिपतिर्हरौसमुमोचवाणानतितीव्रवेगान् ॥ चिच्छेदतान्धर्मसुतःसुतीक्ष्णैर्धनुर्विमुक्तैर्विशिखैस्तदाऽऽशु ॥ २८ ॥ ततोनारायणंबाणैःप्रह्लादश्चाऽतिकर्षितैः ॥ ववर्षसुस्थितंवीरंधर्मपुत्रंसनातनम् ॥ नारायणोऽपितंवेगान्मुक्तैर्बाणैःशिलाशितैः ॥ २९ ॥ तुतोदाऽतीवपुरतोदैत्यानामधिपंस्थितम् ॥ सन्निपातोऽभवत्तत्रदिदृक्षूणांबभूवह ॥ ३० ॥ देवानांदानवानांचकुर्वतांजयघोषणम् ॥ उभयोःशरवर्षेणच्छादितेगगनेतदा ॥ ३१ ॥ दिवाऽपिरात्रिसदृशंबभूवतिमिरंमहत् ॥ ऊचुःपरस्परंदेवादैत्याश्चातीवविस्मिताः ॥ ३२ ॥ अदृष्टपूर्वंयुद्धंवैवर्ततेऽद्यसुदारुणम् ॥ देवर्षयोऽथगंधर्वायक्षकिन्नरपन्नगाः ॥ ३३ ॥ विद्याधराश्चारणाश्चविस्मयंपरमंययुः ॥ नारदःपर्वतश्चैवप्रेक्षणार्थंस्थितौमुनी ॥ ३४ ॥ नारदःपर्वतंप्राहनेदृशंचाभवत्पुरा ॥ तारकासुरयुद्धंचतथावृत्रासुरस्यच ॥ ३५ ॥ मधुकैटभयोर्युद्धंहरिणाचेदृशंकृतम् ॥ प्रह्लादःप्रबलःशूरोयस्मान्नारायणेनच ॥ ३६ ॥

और अस्थिर किया. इस युद्धको देखनेके लिये आकाशमें ॥ ३० ॥ देवता और दैत्यगणोंका समूह उपस्थित हुआ. उसके बीचबीचमें दोनोंके जयकी घोषणा करने लगे दोनोंके शरवर्षणसे गगनतल आच्छादित होकर ॥ ३१ ॥ दिवाभाग भी रात्रिके समान अंधकारमय हो उठा । तब देवता और दैत्यगणोंने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर परस्पर कहा कि ॥ ३२ ॥ इस प्रकारका दारुण युद्ध हमने पहिले कभी नहीं देखा. तिस काल देवर्षिगण, गंधर्वगण, यक्षगण, किन्नरगण, सर्पगण ॥ ३३ ॥ विद्याधरगण और चारणगण, सभी अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए थे. नारद और पर्वत ऋषि भी इस युद्धको देखनेकेनिमित्त उपस्थित हुए थे ॥ ३४ ॥ देवर्षि नारदने पर्वतसे कहा पहिले कभी इस प्रकार युद्ध उपस्थित नहीं हुआ था । तारकासुर और वृत्रासुरका युद्ध ॥ ३५ ॥ तथा हरिका मधुकैटभके संग जो युद्ध हुआ था, वे सब युद्ध भी ऐसे नहीं

थे, बोध होता है कि प्रह्लाद अतिशय वीर्यवान् है, क्योंकि सिद्ध पुरुष ॥ ३६ ॥ अद्भुतकर्मा नारायणके सहित अभीतक समान ही युद्ध कर रहा है. व्यासजी बोले हे राजन्! तिसकाल दिनरातमें वारंवार ॥ ३७ ॥ वह दैत्य और तापस नारायण ये दोनों वारंवार अत्यन्त घोरसंग्रामकरने लगे तब नारायणने शीघ्रतासहित एकही बाणसे प्रह्लादका शरासन काट डाला ॥ ३८ ॥ फिर प्रह्लादने भी दूसरा धनुष ग्रहणकिया. लघुहस्त नारायणने शीघ्रतासहित दूसरा बाण चलाकर ॥ ३९ ॥ उस धनुषका मध्यभाग काट डाला. इसप्रकार वारंवार धनुष कटनेपर प्रह्लाद भी वारंवार उसको ग्रहण करनेलगा ॥ ४० ॥ नारायण भी क्रोधकर अस्त्रसे उनको वारंवार काटने लगे. इसप्रकार सब धनुषोंके कटनेपर फिर दैत्यराजने परिघ ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ और अत्यन्त कुपित होकर नारायणकी बाहुमें शीघ्रतासहित निक्षेप किया. बलवीर्य

करोतिसदृशंयुद्धंसिद्धेनाऽद्भुतकर्मणा ॥ व्यासउवाच ॥ दिनेदिनेतथारात्रौकृत्वाकृत्वापुनःपुनः ॥ ३७ ॥ चक्रतुःपरमंयुद्धंतौतदादैत्यतापसौ ॥ नारायण स्तुचिच्छेदप्रह्लादस्यशरासनम् ॥ ३८ ॥ तरसैकेनबाणेनसचाऽन्यद्धनुराददे ॥ नारायणस्तुतरसामुक्त्वाऽन्यंचशिलीमुखम् ॥ ३९ ॥ तदैवमध्यतश्चा पंचिच्छेदलघुहस्तकः ॥ छिन्नंछिन्नंपुनर्दैत्योधनुरन्यत्समाददे ॥ ४० ॥ नारायणस्तुचिच्छेदविशिखैराशुकोपितः ॥ छिन्नेषधनुषिदैत्येंद्रःपरिघंसुसमाददे॥ ॥ ४१ ॥ जघानधर्मजंतूर्णंबाहोर्मध्येऽतिकोपनः ॥ तमायांतंसबलवान्मार्गणैर्नवभिर्मुनिः ॥ ४२ ॥ चिच्छेदपरिघंघोरंदशभिस्तमताडयत् ॥ गदामादा यदैत्येंद्रःसर्वायसमयींदृढाम् ॥ ४३ ॥ जानुदेशेजघानाऽऽशुदेवंनारायणंरुषा ॥ गदयाचापिगिरिवत्संस्थितःस्थिरमानसः ॥ ४४ ॥ धर्मपुत्रोऽतिबलवान्मुमोचाऽऽ शुशिलीमुखान् ॥ गदांचिच्छेदभगवांस्तदादैत्यपतेर्दृढाम् ॥ ४५ ॥ विस्मयंपरमंजग्मुःप्रेक्षकागगनेस्थिताः ॥ सतुशक्तिंसमादायप्रह्लादःपरवीरहा ॥ ४६ ॥

वान् भगवान् नारायणने उस घोर परिघको आताहुआ देख ॥ ४२ ॥ शीघ्रतासहित बाण चलाय उसको काट डाला और दशबाणोंसे प्रह्लादको विद्ध किया अनन्तर प्रह्लादने लोहेकी दृढ गदा उठाय ॥ ४३ ॥ क्रोधमें भर नारायणके जानुदेशको लक्ष्य कर वेगसहित चलाई. अत्यन्त बलवान् धर्मनन्दनने, गदा देखकर भी स्थिरमन और पर्वतके समान अचल भावसे खड़े रहकर ॥ ४४ ॥ शीघ्रतासहित अपने बाणोंके द्वारा दैत्यपतिकी उस दृढ गदाको काट डाला ॥ ४५ ॥ तिस काल आकाशमें स्थित दर्शकगण अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए थे. इसके उपरान्त शत्रुविनाशी प्रह्लादने अत्यन्त कुपित हो शक्तिग्रहण

पूर्वक ॥ ४६ ॥ शीघ्र नारायणके उरस्थलको लक्ष्य करके तीव्रवेगसे चलाई । उस शक्तिको आती हुई देखकर नारायणने लीलापूर्वक ही एक बाणसे काटकर ॥ ४७ ॥ सात टुकड़े कर दिये और सात बाणोंसे शीघ्र उसको बींधडाला. इस प्रकार उस आश्रममें प्रह्लाद और नारायणका दिव्यसहस्रवर्षपर्यन्त ॥ ४८ ॥ सर्वजीवोंको परमाश्चर्यदायक घोर युद्ध हुआ था, तब पीतवासा चतुर्भुज गदाधरने शीघ्रता सहित ॥ ४९ ॥ प्रह्लादके निकट आय उसको बुलाया । हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादने, चतुर्भुज, रमाकान्त, पद्मधारी चक्रधर नारायणको ॥ ५० ॥ उस स्थानमें आया देख, परमभक्तिसहित प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहा. प्रह्लाद बोले हे देवदेव ! आप जगन्नाथ और भक्तवत्सल हैं ॥ ५१ ॥ हे माधव ! मैंने दिव्य पूर्ण सौवर्षतक संग्राम किया तो भी इन दोनों तपस्वियोंको किस कारण मैं समरमें परास्त न करसका ॥ ५२ ॥ इस विषयमें मुझको महान् आश्चर्यउत्पन्न हुआ विष्णुजीने कहा हे क्षमाशील यह दोनों " सिद्ध मेरे अंश हैं इसमें

चिक्षेपतरसाक्रुद्धोबलान्नारायणोरसि ॥ तामापतंतींसंवीक्ष्यबाणेनैकेनलीलया ॥ ४७ ॥ सप्तधाकृतवानाशुसप्तभिस्तंजघानह ॥ दिव्यवर्ष सहस्रंतुतद्युद्धंपरमंतयोः ॥ ४८ ॥ जातंविस्मयदंराजन्सर्वेषांतत्रचाश्रमे ॥ तदाजगामतरसापीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ४९ ॥ प्रह्लादस्याऽऽश्रमंतत्रजगा दृचगदाधरः ॥ चतुर्भुजोरमाकांतोरथांगदरपद्मभृत् ॥ ५० ॥ दृष्ट्वातमागतंतत्रहिरण्यकशिपोःसुतः ॥ प्रणम्यपरयाभक्त्याप्रांजलिःप्रत्युवाचह ॥ प्रह्ला दउवाच ॥ देवदेवजगन्नाथभक्तवत्सलमाधव ॥ ५१ ॥ कथंनजितवानाजावहमेतौतपस्विनौ ॥ संग्रामस्तुमयादेवकृतःपूर्णशतंसमाः ॥ ५२ ॥ सुराणांन जितौकस्मादितिमेविस्मयोमहान् ॥ विष्णुरुवाच ॥ सिद्धाविमौमदंशौचविस्मयःकोऽत्रमारिष ॥ ५३ ॥ तापसौनजितात्मानौनरनारायणौजितौ ॥ ग च्छत्वंवितलंराजन्कुरुभक्तिममाऽचलाम् ॥ ५४ ॥ नाऽऽभ्यांकुरुविरोधंत्वंतापसाभ्यांमहामते ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याऽऽज्ञप्तोदैत्यराजोनिर्ययावसुरैःसह ॥ ५५ ॥ नरनारायणौभूयस्तपोयुक्तौबभूवतुः ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ छ ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ संदेहोऽयंमहानत्रपाराशर्यकथानके ॥ नरनारायणौशांतौवैष्णवांशौतपोधनौ ॥ १ ॥

विस्मय क्या है ? ॥ ५३ ॥ यह नर नारायण दोनों ऋषि तापस जितात्मा हैं इसलिये तुम इनको पराजय नहीं करसके हे राजेन्द्र ! तुम अब पातालमें जाओ मेरे प्रति उसीप्रकार अचलभक्ति करो ॥ ५४ ॥ हे महामते ! तुम दोनों तपस्वियोंसे फिर विरोध न करना." व्यासजीने कहा हे राजन् ! दैत्यराज प्रह्लाद भगवान् विष्णुसे इसप्रकार आज्ञा पाय असुरगणोंके सहित वहांसे चलेगये ॥ ५५ ॥ और दोनों नर नारायणने भी फिर तपस्यामें मन लगाया ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा—कहत दशम अध्यायमें, भृगुमहर्षिके शाप ॥ देहधारि श्रीकृष्णने, दूर किये सन्ताप ॥ जन्मेजय बोले हे पराशरनन्दन ! आपके पूर्वोक्त वचन सुनकर मुझको महान् संशय उत्पन्न होता है. धर्मपुत्र

नरनारायण दोनों तपोधन, शान्त, विष्णुके अंश, तीर्थाश्रयी, सत्वगुणसंपन्न, सदा वनके फलमूलादिका आहार करने वाले, महात्मा, तापस और सत्यनिष्ठ होकर ॥ १ ॥ २ ॥ किसप्रकार संग्राममें ऐसे अनुरागी हुए थे ? और किस निमित्त परमकल्याणकारी तपस्याको छोड़कर ॥ ३ ॥ पूर्ण दिव्य सहस्रवर्षतक प्रह्लादके संग युद्ध किया था ? किसकारण वे शान्तिसुखको परित्यागकर ऐसे दुःखदायक युद्धमें प्रवृत हुए थे ? ॥ ४ ॥ हे महाभाग मुनिवर ! किसलिये उन्होंने प्रह्लादसे युद्ध किया था? आप उस विग्रहका कारण मुझसे विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ स्त्री, सुवर्ण वा दूसरे किसी विषयका कार्य विग्रहका कारण होता है, किन्तु नर नारायण दोनों मुनि सब विषयोंमें विरागी थे, उनका इन सब विषयोंमें कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता, तो उनको युद्धकी बुद्धि क्यों उत्पन्न

तीर्थाश्रयौसत्त्वयुक्तौवन्याशनपरौसदा ॥ धर्मपुत्रौमहात्मानौतापसौसत्यसंस्थितौ ॥ २ ॥ कथंरागसमायुक्तौजातौयुद्धेपरस्परम् ॥ संग्रामंचक्रतुः कस्मात्त्यक्त्वातपिमनुत्तमाम् ॥ ३ ॥ प्रह्लादेनसमंपूर्णंदिव्यवर्षशतंकिल ॥ हित्वाशांतिसुखंयुद्धंकृतवंतौकथंमुनी ॥ ४ ॥ कथंतौचक्रतुर्युद्धंप्रह्लादेनसमंमुनी ॥ कथयस्वमहाभागकारणंविग्रहस्यवै ॥ ५ ॥ "कामिनीकनकंकार्यंकारणंविग्रहस्यवै ॥" युद्धबुद्धिःकथंजातातयोश्चतद्विरक्तयोः ॥ तथा विधंतपस्तत्तंताभ्यांचकेनहेतुना॥६॥मोहार्थंसुखभोगार्थंस्वर्गार्थंवापरंतप ॥ कृतमत्युत्कटंताभ्यांतपःसर्वफलप्रदम् ॥ ७॥ मुनिभ्यांशांतचित्ताभ्यांप्राप्तं किंफलमद्भुतम् ॥ तपसापीडितोदेहःसंग्रामेणपुनःपुनः॥८॥दिव्यवर्षशतंपूर्णंश्रमेणपरिपीडितौ ॥ नराज्यार्थेधनेवाऽपिनदारेषुगृहेषुच ॥९॥ किमर्थंतुकृतं युद्धंताभ्यांतेनमहात्मना॥निरीहःपुरुषःकस्मात्प्रकुर्याद्युद्धमीदृशम्॥१०॥दुःखदंसर्वथादेहेजानन्धर्मंसनातनम्॥सुबुद्धिःसुखदानीहकर्माणिकुरुतेसदा ११॥

हुई थी ? हे तपोधन ! उन्होंने किस निमित्त ऐसी तपस्याका अनुष्ठान किया? ॥ ६ ॥ हे मुनिवर ! उन्होंने औरको मोहित करनेके निमित्त अथवा सुखभोगके निमित्त या स्वर्ग प्राप्त करनेके निमित्त यह उत्कट सर्वफलदायक कठोर तपस्या करी थी ॥ ७ ॥ और यह शान्तचित्त दोनों मुनि तपस्याके किस अद्भुत फलको प्राप्त हुए थे ? वे क्या तपस्यासे कृश देह होकरभी संग्राममें ॥ ८ ॥ पूर्ण दिव्य सहस्रवर्ष वारंवार संग्राम करके श्रमद्वारा पीडित नहीं हुए थे ? राज्यके लाभ करनेके निमित्त वा धनलाभके निमित्त वा स्त्रीलाभके निमित्त इस प्रकारके संग्राममें प्रवृत्त नहीं हुए ॥ ९ ॥ तो किस निमित्त वाउन्होंने उस महात्मा प्रह्लादसे युद्ध किया था ? निरीह पुरुष कौन ऐसा करेगा ॥ ॥ १० ॥ धर्मको सनातन जानकर भी किसकारण ऐसे देह–दुःखप्रद युद्धमें सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्त हुए. हे धर्मज्ञ ! श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष सदाही सुखदायक कर्म करतेहैं ११ ॥

वे कभी दुःखदायक कर्म नहीं करते यही सनातनी संसारमर्यादा प्रतिष्ठित है दोनों धर्मके पुत्र हरिके अंश, सर्वज्ञ और सर्व सम्पदासे विभूषित थे ॥ १२ ॥ तो वे दुःखकर और धर्मनाशक संग्राममें क्यों प्रवृत्त हुए थे. हे महर्षे ! इस संसारमें मूर्ख मनुष्यभी ऐसे सुख और आनंदजनक तथा सर्वफलदायक तपस्या और समाधि छोड़कर ॥ १३ ॥ दारुण दुःखदायक युद्धकी कामना नहीं करते, मैं ने सुना है किपृथ्वीपति ययाति स्वर्गसे च्युत हुएथे ॥ १४ ॥ यह यज्ञ दान और धर्मनिरत राजा होकरभी अहंकारजनित पापके कारण स्वर्गसे परिच्युत हो पृथ्वीमें गिरे थे ॥ १५ ॥ मैं अश्वमेधादि यज्ञका अनुष्ठान कर्ता हूं इत्यादि अहंकार सूचक शब्दके उच्चारण करतेही वज्रपाणि इन्द्रने उसको पतित किया था, अतएव अहंकारके विना युद्ध उपस्थित नहीं होता यही स्थिर निश्चय है ॥ १६ ॥ हे मुने ! मुनियोंको देह बल नहीं है अतएव उनको तपोबलसेही युद्ध करना होता है, सुतरां मुनियोंके युद्ध करनेसे तपनाशके अतिरिक्त और उससे क्या फल होसक्ता है ? व्यासजी बोले

नदुःखदानिधर्मज्ञास्थितिरेषासनातनी ॥ धर्मपुत्रौहरेरंशौसर्वज्ञौसर्वभूषितौ ॥१२॥ कृतवंतौकथंयुद्धंदुःखंधर्मविनाशकम् ॥ त्यक्त्वाततःसमाधींतंसुखारामं महत्फलम् ॥ १३ ॥ संयुगंदारुणंकृष्णनैवमूर्खोऽपिवांछति ॥ श्रुतोमयाययातिस्तुच्युतःस्वर्गान्महीपतिः ॥ १४॥ अहंकारभवात्पापात्पातितःपृथिवी तले ॥ यज्ञकृद्दानकर्ताचधार्मिकःपृथिवीपतिः ॥ १५ ॥ शब्दोच्चारणमात्रेणपातितोवज्रपाणिना ॥ अहंकारमृतेयुद्धंनभवत्येवनिश्चयः ॥ १६ ॥ किंफलं तस्ययुद्धस्यमुनेःपुण्यविनाशनम् ॥ व्यासउवाच ॥ राजन्संसारमूलंहित्रिविधःपरिकीर्तितः ॥ १७ ॥ अहंकारस्तुसर्वज्ञैर्मुनिभिर्धर्मनिश्चये ॥ सकथंमु निनात्यक्तुंयोग्योदेहभृताकिल ॥ १८ ॥ कारणेनविनाकार्यंनभवत्येवनिश्चयः ॥ तपोदानंतथायज्ञाःसात्त्विकात्प्रभवंतिते ॥ १९ ॥ राजसाद्वामहाभाग तामसात्कलहस्तथा ॥ क्रियास्वल्पाऽपिराजेंद्रनाऽहंकारंविनाक्वचित् ॥ २० ॥ शुभावाऽप्यशुभावाऽपिप्रभवत्यपिनिश्चयः ॥ अहंकाराद्बंधकारीनान्यो ऽस्तिजगतीतले ॥ २१ ॥ तेनेदंरचितंविश्वंकथंतद्रहितंभवेत् ॥ ब्रह्मारुद्रस्तथाविष्णुरहंकारयुतास्त्वमी ॥ २२ ॥

हे राजन् ! संसारका मूल तीन प्रकारका है ॥ १७ ॥ धर्ममें निश्चित मति सर्वज्ञमुनिगण सात्विक राजस और तामस, इन त्रिविध अहंकारको ही संसारका कारण कहते हैं इस कारण मुनिगण देहधारी होकर उस अहंकारको परित्याग करनेमें किसप्रकार समर्थ हों॥ १८॥ कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती. यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये. हे महाभाग! सात्विक अहंकारसे तपस्या दान और यज्ञ॥ १९॥ तथा राजस वा तामस अहंकारसे कलहकी उत्पत्ति होती है. हे राजेन्द्र ! अहंकारके विना इस संपूर्ण ब्रह्माण्डके किसी स्थानमें स्वल्पमात्रभी क्रिया उत्पन्न नहीं होती ॥ २०॥ शुभ हो, वा अशुभ हो अहंकारसेही वह उत्पन्न होती है, यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये. इस जगत्में अहंकारके अतिरिक्त दूसरी कोईभी बंधनकारक वस्तु नहीं है ॥ २१ ॥ अहंकारसेही यह विश्व रचागया है, अतएव ये किसप्रकार अहंकार रहित

होसक्ते हैं ? हे राजन् ! जब ब्रह्मा विष्णु और रुद्र यह भी अहंकारयुक्त हैं ॥ २२ ॥ तब इनके सिवाय सामान्य मुनिगण जो अहंकारयुक्त हों तो फिर इस विषयमें बातही क्या है अहंकारसे आवृत होकर यह चराचर विश्व भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ पुनर्जन्म और पुनर्मृत्यु इत्यादि सबही कर्मवशतः होती है. हे महीन्द्र ! देवता, तिर्यक् और मनुष्यगण इस संसारमें ॥ २४ ॥ रथके पहियोंके समान सदाही भ्रमण करते हैं इस विस्तीर्ण संसारके मध्य—उत्तम मध्यम और अधम योनियोंमें भगवान् विष्णुके अवतारोंकी संख्या कौन जान सक्ता है ? साक्षात् नारायणहरिने मत्स्य कूर्म अवतार धारण किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ शूकर. नृसिंह और वामनदेहका आश्रय किया था वासुदेव जगन्नाथ जनार्दन युगयुगमें ॥ २७ ॥ ब्रह्मासे प्रेरित हो असंख्य रूपोंसे अवतीर्ण होते रहते हैं. हे महाराज ! वैवस्वतनामक सातवें मन्वन्तरमें

अन्येषांचैवकावार्तामुनीनांवसुधाधिप ॥ अहंकाराऽऽवृतंविश्वंभ्रमतीदंचराचरम् ॥२३॥ पुनर्जन्मपुनर्मृत्युःसर्वंकर्मवशाऽनुगम् ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणां संसारेऽस्मिन्महीपते ॥ २४ ॥ रथांगवदसर्वार्थंभ्रमणंसर्वदास्मृतम् ॥ विष्णोरप्यवताराणांसंख्यांजानातिकःपुमान् ॥ २५ ॥ विततेऽस्मिंस्तुसंसारउत्त माधमयोनिषु ॥ नारायणाहरिःसाक्षान्मात्स्यंवपुरुपाश्रितः ॥ २६ ॥ कामठंसौकरंचैवनारसिंहंचवामनम् ॥ युगेयुगेजगन्नाथोवासुदेवोजनार्दनः ॥२७॥ अवतारानसंख्यातान्करोतिविधियंत्रितः ॥ वैवस्वतेमहाराजसप्तमेभगवान्हरिः ॥ २८ ॥ मन्वंतरेऽवतारान्वैचक्रेताञ्छृणुतत्त्वतः ॥ भृगुशापान्महाराज विष्णुर्देववरःप्रभुः ॥ २९ ॥ अवतारानेनेकांस्तुकृतवानखिलेश्वरः ॥ राजोवाच ॥ संदेहोऽयंमहाभागहृदयेममजायते ॥ ३० ॥ भृगुणाभगवान्विष्णुः कथंशप्तःपितामह ॥ हरिणाचमुनेस्तस्यविप्रियंकिंकृतंमुने ॥३१॥ यद्रोषाद्भृगुणाशप्तोविष्णुर्देवनमस्कृतः ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिभृगोः शापस्यकारणम् ॥ ३२ ॥ पुराकश्यपदायादोहिरण्यकशिपुर्नृपः ॥ यदातदासुरैःसार्धंकृतंसंख्यंपरस्परम् ॥ ३३ ॥ कृतेसंख्येजगत्सर्वंव्याकुलं समजायत ॥ हतेतस्मिन्नृपेराजाप्रह्लादसमजायत ॥ ३४ ॥

भगवान् हरिके ॥ २८ ॥ जो सब अवतार हुए थे वह सब यथातत्व सुनो. हे राजेन्द्र ! देवताओंमें श्रेष्ठ ईश्वर विभु विष्णु भृगुके शापसे अनेकवार पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ॥ २९ ॥ इसप्रकार उन्होंने अनेक अवतार धारण किये. राजाने कहा हे महाभाग ! मेरे हृदयमें और एक महासंशय उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ भगवान् भृगुने विष्णुको किस कारण शाप दिया था ? हे मुने ! भगवान् हरिने उनका क्या अनिष्ट किया था ॥ ३१ ॥ जिससे देवतागणोंके नमस्कार करनेयोग्य जनार्दन विष्णु भगवान् भृगुसे शापित हुए थे ? व्यासजी बोले हे राजन् ! भृगुके शाप देनेका कारण कहता हूं सुनो ॥ ३२ ॥ पूर्वकालमें कश्यपका पुत्र राजा हिरण्य कशिपु जबतब देवताओंसे संग्राम करता ॥ ३३ ॥ इसप्रकार सदा संग्रामसे सब जगत् व्याकुल हो उठा था तदुपरान्त दैत्यपतिके नृसिंहद्वारा मारे जानेपर शत्रु

तापन प्रह्लाद राजा होकर ॥ ३४ ॥ पितृशत्रुदेवताओंको पीडित करने लगा तिसकाल देवराज और दैत्यराजका संग्राम ॥ ३५ ॥ सौवर्षपर्यन्त लोकोंको आश्चर्यदायक होतारहा ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें देवताओंनेही उग्रतर युद्ध करके जयलाभ किया था ॥ ३६ ॥ और प्रह्लाद पराजित हुआ था तिसकाल प्रह्लाद अत्यन्त दुःखको प्राप्त हो सनातन धर्मको श्रेष्ठ जान विरोचनके पुत्र बलिको राज्य दे ॥ ३७ ॥ तपस्या करनेके निमित्त गंधमादनपर गया. बलिभी राज्यको प्राप्त हो देवताओंसे वैर करने लगा ॥ ३८ ॥ अनन्तर परस्परमें घोरतर संग्राम होनेसे देवताओंने असुरोंको पराजित किया. हे राजेन्द्र ! अनन्तर अमिततेजा इन्द्रके ॥ ३९ ॥ विष्णुकी सहायतासे दैत्यगणोंको राज्यभ्रष्ट करनेपर पराजित दैत्यगणोंने कुलगुरु शुक्राचार्यजीकी शरणागत हो ॥ ४० ॥ उनसे कहा हे ब्रह्मन् ! आप तपोबलसंपन्न और प्रतापवान् हैं. आप दैत्यगणोंकी

देवान्सपीडयामासप्रह्लादःशत्रुकर्षणः ॥ संग्रामोह्यभवद्घोरःशक्रप्रह्लादयोस्तदा ॥ ३५ ॥ पूर्णवर्षशतंराजँल्लोकविस्मयकारकम् ॥ देवैर्युद्धंकृतं चोग्रंप्रह्लादस्तुपराजितः ॥ ३६ ॥ निर्वेदंपरमंप्राप्तोज्ञात्वाधर्मंसनातनम् ॥ विरोचनसुतंराज्येप्रतिष्ठाप्यबलिंनृप ॥ ३७ ॥ जगामसतपस्तप्तुं पर्वतेगंधमादने ॥ प्राप्यराज्यंबलिःश्रीमान्सुरैर्वैरंचकारह ॥ ३८ ॥ ततःपरस्परंयुद्धंजातंपरमदारुणम् ॥ ततःसुरैर्जितादैत्याइंद्रेणाऽमिततेजसा ॥ ॥ ३९ ॥ विष्णुनाचसहायेनराज्यभ्रष्टाःकृतानृप ॥ ततःपराजितादैत्याःकाव्यस्यशरणंगताः ॥ ४० ॥ किंत्वंनकुरुषेब्रह्मन्साहाय्यंनःप्रतापवान् ॥ स्था तुंनशक्नुमोह्यत्रप्रविशामोरसातलम् ॥ ४१ ॥ यदित्वंनसहायोऽसित्रातुंमंत्रविदुत्तमः ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तःसोऽब्रवीद्दैत्यान्काव्यःकारुणिकोमुनिः ॥ ॥ ४२ ॥ माभैष्टधारयिष्यामितेजसास्वेनभोःसुराः ॥ मंत्रैस्तथौषधीभिश्चसाहाय्यंवःसदैवहि ॥ ४३ ॥ करिष्यामिकृतोत्साहाभवंतुविगतज्वराः ॥ व्या सउवाच ॥ ततस्तेनिर्भयाजातादैत्याः काव्यस्यसंश्रयात् ॥ ४४ ॥ देवैःश्रुतस्तुवृत्तांतःसर्वश्चारमुखात्किल ॥ तत्रसंमंत्र्यतेदेवाःशक्रेणचपरस्परम् ॥ ४५ ॥ मंत्रंचक्रुःसुसंविग्नाःकाव्यमंत्रप्रभावतः ॥ योत्स्यामहेतूर्णंयावन्नच्यावयंतिवै ॥ ४६ ॥

सहायता क्यों नहीं करते? तो हम फिर पृथ्वीतलमें वास करनेको समर्थ नहीं होसकेंगे, हमको शीघ्रही रसातलमें प्रवेश करना पड़ेगा ॥ ४१ ॥ यदि मंत्रजाननेवालोंमें उत्तम आप हमारी सहायता न करोगे. व्यासजी बोले हे राजन् ! दैत्यगणोंके इसप्रकार कहनेपर उन परमकरुणामय मुनिवर गुरु शुक्राचार्यने उनसे कहा ॥ ४२ ॥ हे दैत्यगण ! तुमलोग भय मत करो मैं अपने तेजसे तुम्हारी रक्षा करूंगा तथा मंत्र और औषधिसे तुम्हारी सहायता करूंगा ॥ ४३ ॥ तुम उत्साहयुक्त होकर मनसे दुःख और संताप दूर करो. व्यासजीने कहा हे राजन् ! इसके उपरान्त दैत्यगण शुक्राचार्यका आश्रय पाय निर्भय हुए ॥ ४४ ॥ फिर देवताओंने यह सब वृत्तान्त दूतके मुखसे जाना और इन्द्रके सहित परामर्श करके यह ॥ ४५ ॥ स्थिर किया कि, जबतक दैत्यगण शुक्राचार्यके मंत्रके प्रभावसे राज्यच्युत न करें. तबतक हम अतिशीघ्र

उनसे युद्ध करनेको चलें ॥ ४६ ॥ इसप्रकार सहसा आक्रमण कर विनाश करते हुए बचे असुरोंको पातालतलमें भेज देंगे. देवतागण इसप्रकार परामर्श कर अस्त्र शस्त्र धारणपूर्वक क्रोधयुक्त हो दैत्यगणोंसे युद्ध करनेको गये ॥ ४७ ॥ और इन्द्रकी आज्ञा पाय विष्णुके सहित दैत्योंका विनाश करने लगे. इस प्रकार जब देवताओंने दैत्योंका वध करना आरंभ किया; तब वे भीत और त्रसित हो ॥ ४८॥ "हे प्रभु! रक्षा करो रक्षा करो" यह कहते हुए शुक्राचार्यजीकी शरणमें आये. शुक्राचार्यजीने उन महाबलवान् दैत्योंको देवताओंसे पीडित देखकर ॥ ४९ ॥ मंत्रौषधिके प्रभाव द्वारा "भय नहीं, भय नहीं" यह वचन ऊंचे स्वरसे कहा. अनन्तर देवता शुक्राचार्य जीको देख, असुरोंको छोड़ अपने अपने स्थानको चलेगये ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥छ॥
व्यासजीने कहा हे राजन् ! जब देवतागण शुक्राचार्यको देख समर छोड़ चले गये, तब शुक्राचार्यजीने दानवगणोंसे कहा हे दनुजगण ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जो कहा

प्रसह्यहत्वाशिष्टांस्तुपातालंप्रापयामहे॥ दैत्याजग्मुस्ततोदेवाःसंरुष्टाःशस्त्रपाणयः ॥ ४७॥ जग्मुस्तान्विष्णुसहितादानवान्हरिणोदिताः ॥ वध्यमाना स्तुतेदैत्याःसंत्रस्ताभयपीडिताः ॥ ४८ ॥ काव्यस्यशरणंजग्मूरक्षरक्षेतिचाऽब्रुवन् ॥ ताञ्छुक्रःपीडितान्दृष्ट्वादेवैर्दैत्यान्महाबलान् ॥ ४९ ॥ माभैष्टेतिवचःप्राहमंत्रौषधबलाद्विभुः ॥ दृष्ट्वाकाव्यंसुराःसर्वेत्यक्त्वातान्प्रययुःकिल ॥ ५० ॥ ॥ इतिश्रीदे० म० चतुर्थस्कंधेदशमोऽध्यायः॥१०॥ छ ॥
व्यासउवाच ॥ तथागतेषुदेवेषुकाव्यस्तान्प्रत्युवाचह ॥ ब्रह्मणापूर्वमुक्तंयच्छृणुध्वंदानवोत्तमाः ॥ १ ॥ विष्णुर्दैत्यवधेयुक्तोहनिष्यतिजनार्दनः ॥ वाराहरूपंसंस्थायहिरण्याक्षोयथाहतः ॥ २ ॥ यथानृसिंहरूपेणहिरण्यकशिपुर्हतः ॥ तथासर्वान्कृतोत्साहोहनिष्यतिनचाऽन्यथा ॥ ३ ॥ नमेमंत्रबलं सम्यक्प्रतिभातियथाहरिम् ॥ जेतुंयूयंसमर्थाःस्मभयात्रातासुरानथ ॥ ४ ॥ तस्मात्कालंप्रतीक्षध्वंकियंतंदानवोत्तमाः ॥ अहमद्यमहादेवंमंत्रार्थंप्रव्रजा मिवै ॥ ५ ॥ प्राप्यमंत्रान्महादेवादागमिष्यामिसांप्रतम् ॥ युष्मभ्यंतान्प्रदास्यामियथार्थंदानवोत्तमाः ॥ ६ ॥

है, वह मैं तुमसे कहता हूं सुनो ॥ १ ॥ जनार्दन विष्णु दैत्योंके मारनेमें नियुक्त होकर संपूर्ण दैत्यगणोंकाही विनाश करेंगे, इसमें संदेह नहीं. पूर्वमें उन्होंने वराह रूप धारण कर असुरश्रेष्ठ हिरण्याक्षको संहार किया था ॥ २ ॥ नृसिंहमूर्ति धारण करके हिरण्यकशिपुका जिसप्रकार वध किया था, इस समय वैसे ही उत्साहयुक्त हो सब दैत्यगणोंका विनाश करेंगे, इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ इस समय मेरे मंत्रका बल हरिके निकट भलीभांति फलदायक नहीं होगा. और जब मैं तुम्हारी रक्षा कर लूंगा फिर तुम देवताओंके जीतनेमें समर्थ होगे ॥ ४ ॥ अतएव हे दानवोत्तमो ! कुछ कालतक प्रतीक्षा करो मैं अभी मंत्रप्राप्तिके लिये महादेवजीके निकट जाता हूं ॥ ५ ॥ अनन्तर फिर मैं उस स्थानसे मंत्र प्राप्त करके शीघ्रही लौटता हूं, हे दानवोत्तम ! मैं उस मंत्रके बलसे तुम्हारी भलीभांति रक्षा करूंगा ॥ ६ ॥

दैत्यगणोंने कहा हे मुनिवर! हम पराजित और दुर्बल होगये हैं इस समय हम पृथ्वीमें कैसे रह सक्ते हैं? उतने कालतक प्रतीक्षा करनेमें किस प्रकार समर्थ होंगे? ॥ ७॥ हममें जो महाबलशाली थे वे सभी निहत होगये हैं,हम इस समय थोड़ेसे दानव शेष हैं, ऐसी अवस्थामें हमारा समरमें रहना युक्तिसंगत और शुभकर बोध नहीं होता८॥ शुक्राचार्यजीने कहा मैं श्रीमहादेवजीके निकटसे मंत्रविद्या ग्रहण करके जबतक न आऊं, तबतक तुम शान्तियुक्त और तपस्यामें नियुक्त होकर अवस्थिति करो ॥ ९॥ पण्डितगणोंने कहा है कि, वीरगण साम, दान, भेद और दंड, इन चार प्रकारके उपायोंके अनुसार देश, काल, बल और सामर्थ्यका विचारकर प्रयोग करैं ॥ १०॥ कल्याणकी कामना करनेवाले पुरुषगण समयकी गतिके अनुसार शत्रुओंकी भी सेवा करैं, किन्तु जब देखें कि, अपनी शक्ति सम्यक् प्रकारसे बढ गई है, तब शत्रु

दैत्याऊचुः ॥ पराजिताःकथंस्थातुंपृथिव्यांमुनिसत्तम ॥ शक्ताभवामोप्यबलास्तावत्कालंप्रतीक्षितुम् ॥७॥ निहताबलिनःसर्वेकेचिच्छिष्टाश्चदानवाः ॥ नाऽध्ययुक्ताश्चसंग्रामेस्थातुमेवंसुखावहाः ॥८॥ शुक्रउवाच ॥ यावदहंमंत्रविद्यामानयिष्यामिशंकरात् ॥ तावद्भवद्भिःस्थातव्यंतपोयुक्तैःशमान्वितैः ॥९॥ सामदानादयःप्रोक्ताविद्वद्भिःसमयोचिताः॥देशंकालंबलंवीरैर्ज्ञात्वाशक्तिबलंबुधैः ॥१०॥ सेवाऽथसमयेकार्याशत्रूणांशुभकाम्यया॥स्वशक्त्युपचयेकालेहंतव्यास्तेमनीषिभिः॥ ११॥ तद्यविनयंकृत्वासामपूर्वंछलेनवै ॥ तिष्ठध्वंस्वनिकेतेषुमदागमनकांक्षया ॥ १२ ॥ प्राप्यमंत्रान्महादेवादागमिष्यामि दानवाः ॥ युध्यामहेपुनर्देवान्मांत्रमास्थायवैबलम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाऽथभृगुस्तेभ्योजगामकृतनिश्चयः ॥ महादेवंमहाराजमंत्रार्थंमुनिसत्तमः ॥ १४ ॥ दानवाःप्रेषयामासुःप्रह्लादंसुरसन्निधौ ॥ सत्यवादिनमव्यग्रंसुराणांप्रत्ययप्रदम् ॥ १५ ॥ प्रह्लादस्तुसुरान्प्राहप्रश्रयावनतोनृपः ॥ असुरैःसहितस्तत्रवचनंनम्रतायुतम् ॥ १६ ॥

ओंका विनाश करनेकी चेष्टा करैं ॥ ११ ॥ अतएव इस समय विनयसहित छल प्रकाश पूर्वक साम अवलम्बन करके मेरे आनेकी प्रतीक्षा कर अपने घरमें रहो ॥ १२ ॥ हे दानवगण! जब महादेवजीसे मंत्रग्रहण करके आऊं तब मंत्रके बलसे युक्त होकर पुनर्वार देवताओंसे युद्ध आरंभ करो ॥ १३ ॥ हे राजन्! शुक्राचार्यजी इस प्रकार कहकर मंत्र लानेमें कृतनिश्चय हो महादेवजीके निकट गये ॥ १४ ॥ इधर दानवगणोंने संधि (मेल) करनेके लिये सत्यवादी, स्थिरचित्त, विशेष कर देवताओंके विश्वासप्रद प्रह्लादको देवताओंके पास भेजा ॥ १५ ॥ राजवर प्रह्लादने असुरोंके सहित विनयावनत होकर अत्यन्त विनयसे देवताओंसे इस प्रकार वचन

कहे ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! इस समय हम सबनेही अस्त्र और वर्म (कवच) का त्याग किया है, अब हम वल्कलधारण करके तपका अनुष्ठान करेंगे, यही हमारी इच्छा है ॥ १७ ॥ देवता प्रह्लादके यह सत्य वचन सुनकर युद्धसे निवृत्त हुए और संग्रामजनित दुःख सन्ताप छोड़कर आनन्दित हुए ॥ १८ ॥ दैत्यगणोंके शस्त्रपरित्याग करनेपर देवता युद्धसे निवृत्त हो विश्वस्तचित्तसे घर जाय चित्तको स्थिर कर आमोद प्रमोदमें रत हुए ॥ १९ ॥ दैत्यलोगभी दंभअवलम्बन करके तपमें निरत तपस्वी हो शुक्राचार्यजीके आनेकी इच्छासे कश्यपजीके आश्रममें वास करने लगे ॥ २० ॥ इधर शुक्राचार्यजीने कैलासमें जाकर श्रीमहादेवजीको प्रणाम किया. तब महादेवजीने उनसे आनेका कारण पूँछा ॥ २१ ॥ तब शुक्राचार्यने कहा. जो मंत्र देवताओंके

न्यस्तशस्त्रावयंसर्वेनिःसन्नाहास्तथैवच ॥ देवास्तपश्चरिष्यामःसंवृतावल्कलैर्युताः ॥ १७ ॥ प्रह्लादस्यवचःश्रुत्वासत्याऽभिव्याहृतंतुतत् ॥ ततोदेवान्यवर्तंतविज्वरामुदिताश्चते ॥ १८ ॥ न्यस्तशस्त्रेषुदैत्येषुविनिवृत्तास्तदासुराः ॥ विश्रब्धाःस्वगृहान्गत्वाक्रीडासक्ताःसुसंस्थिताः ॥ १९ ॥ दैत्यादंभंसमालंब्यतापसास्तपिसंयुताः ॥ कश्यपस्याऽऽश्रमेवासंचक्रुःकाव्याऽऽगमेच्छया ॥ २० ॥ काव्योगत्वाऽथकैलासंमहादेवंप्रणम्यच ॥ उवाचविभुनापृष्टःकिंतेकार्यमितिप्रभुः ॥ २१ ॥ मंत्रानिच्छाम्यहंदेवयेनसंतिबृहस्पतौ ॥ पराजयायदेवानामसुराणांजयायच ॥ २२ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यसर्वज्ञःशंकरःशिवः ॥ चिंतयामासमनसाकिंकर्तव्यमतःपरम् ॥ २३ ॥ सुरेषुद्रोहबुद्ध्याऽसौमंत्रार्थमिहसांप्रतम् ॥ प्रातःकाव्योगुरुस्तेषांदैत्यानांविजयायच ॥ २४ ॥ रक्षणीयामयादेवाइतिसंचिंत्यशंकरः ॥ दुष्करंव्रतमत्युग्रंतमुवाचमहेश्वरः ॥ २५ ॥ पूर्णंवर्षसहस्रंतुकणधूममवाक्छिराः ॥ यदिपास्यसिभद्रंतेततोमंत्रानवाप्स्यसि ॥ २६ ॥

पास नहीं है मैं देवताओंकी पराजय और असुरोंकी जीतके लिये उन्हीं सब मंत्रोंको ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! कल्याणप्रद सर्वज्ञ महादेवजीने उनका यह वचन सुनकर मनमें विचार किया कि अब क्या करना चाहिये ॥ २३ ॥ फिर उन्होंने मनमें स्थिर किया कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य देवताओंके प्रति विद्रोहाचरण करेंगे. इसप्रकार बुद्धियुक्त हो. असुरोंकी विजयकेलिये मेरे पास मंत्र लेनेको आये हैं ॥ २४ ॥ क्योंकि देवताओंकी रक्षा करना हमारा अत्यन्त कर्तव्य है. उन्होंने इसप्रकार विचार कर काव्यको एक कठिन व्रतके अनुष्ठान करनेका उपदेश दिया ॥ २५ ॥ कि पूरे हजार वर्षतक ऊर्ध्वपद (ऊंचे पैर) और

नीचेको शिर होकर यदि कणधूम (तुषका धुआं) पान करसको तो तुम्हारी कामना पूर्ण होगी और उसके द्वारा मंत्रलाभ करसकोगे ॥ २६ ॥ शुक्राचार्य इसप्रकार सुन महादेवजीको प्रणाम कर "हे सुरेश्वर ! आप जो अनुमति देते हैं. मैं उसी प्रकार उस व्रतका अनुष्ठान करूंगा" यह कहकर उसको स्वीकार किया ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुक्राचार्य महादेवजीसे इस प्रकार स्वीकार कर मंत्रकेलिये कृतनिश्चय हुए और शमगुणअवलंबन कर धूम्रपानमें निरत हो. उस कठोरतर अत्युत्तम व्रतका अनुष्ठान करने लगे ॥ २८ ॥ तदनन्तर देवतालोग शुक्राचार्यको व्रतमें निरत और दैत्यगणोंको दंभयुक्त देखकर मंत्रण (सलाह) में तत्पर हुए ॥ २९ ॥ हे नरेन्द्र ! देवता मनहीमनमें विचारकर जिस स्थानमें दानवप्रवरगण वास करते थे. अस्त्र शस्त्र धारणपूर्वक समरमें उद्यत हो उसी

इत्युक्तोऽसौप्रणम्येशंबाढमित्यब्रवीद्वचः ॥ व्रतंचराम्यहंदेवत्वयाऽऽज्ञप्तःसुरेश्वर ॥ २७ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाशंकरंकाव्यश्चकारव्रतमुत्तमम् ॥ धूमपानरतःशांतोमंत्रार्थंकृतनिश्चयः ॥ २८ ॥ ततोदेवाःपरिज्ञात्वाकाव्यंव्रतरतंतदा ॥ दैत्यान्दंभरतांश्चैवबभूवुर्मंत्रतत्पराः ॥ २९ ॥ विचार्यमनसासर्वे संग्रामायोद्यतानृप ॥ ययुर्धृतायुधास्तत्रयत्रतेदानवोत्तमाः ॥ ३० ॥ तानागतान्समीक्ष्याऽथसायुधान्दंशितांस्तथा ॥ आसंस्तेभयसंविग्नादैत्यादेवान्समंततः ॥ ३१ ॥ उत्पेतुःसहसातेवैसन्नद्धान्भयकर्शिताः ॥ अब्रुवन्वचनंतथ्यंतेदेवान्बलदर्पितान् ॥ ३२ ॥ न्यस्तशस्त्रेभयवतिआचार्येव्रतमास्थिते ॥ दत्त्वाभयं पुरादेवाःसंप्राप्तानोजिघांसया ॥ ३३ ॥ सत्यंवःक्वगतंदेवाधर्मश्चश्रुतिनोदितः ॥ न्यस्तशस्त्रानहंतव्याभीताश्चशरणंगताः ॥ ३४ ॥ देवाऊचुः ॥ भवद्भिःप्रेषितः काव्योमंत्रार्थंकुहकेनच ॥ तपोज्ञातंहियुष्माकंतेनयुध्यामएवहि ॥ ३५ ॥

स्थानमें गये ॥ ३० ॥ दैत्यगण देवताओंको आयुध और कवच धारण किये चारोंओरसे आया देखकर भयसे अत्यन्त उद्विग्न होगये ॥ ३१ ॥ वे देवताओंको सहसा अस्त्रशस्त्रोंसे सजाहुआ देखकर चकित हुए और भयसे कातर हो बलदर्पित देवताओंसे नीतिगर्भ वचन कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे देवताओ ! हमने अस्त्र त्याग किया है. हमारे आचार्य देवव्रतमें निरत हुए हैं. और आपने पूर्वमें हमको अभय दिया है. तो किस निमित्त इस समय हमको मारनेके निमित्त सुसज्जित होकर उपस्थित हुए हो ॥ ३३ ॥ हे देवतालोगो ! तुम्हारा सत्य और श्रुतिविहित धर्म कहाँ गया? श्रुतिमें कहा है कि शस्त्रत्यागी भीत और शरणागतका विनाश न करै. उस धर्मका आपने क्यों परित्याग किया ? ॥ ३४ ॥ देवताओंने कहा तुमने मंत्रशिक्षाके निमित्त शुक्राचार्यजीको छलपूर्वक भेजा है. तुम्हारी दुष्टभावयुक्त तपस्याको हमने जानलिया

है. अतएव इस समय हम तुम्हारे संग निःसंदेह युद्ध करेंगे ॥ ३५ ॥ तुम इस समय युद्ध करनेके लिये अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके सज्जित होओ. देखो छिद्रपाते ही शत्रुको मारना चाहिये. यही सनातन धर्म है ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! दैत्यलोग देवताओंके ये वचन सुन आपसमें विचारकर सभी भयसे विह्वल हुए और उस स्थानसे निकलकर भागे ॥ ३७ ॥ दानवलोग डरकर शुक्राचार्यकी माताके शरणमें गये। तब शुक्रजननीने उनको भयसे अत्यन्त संतप्त देख अभय देकर कहा ॥ ३८ ॥ तुमको भय नहीं हे दानवगणों! तुम भयका परित्याग करो. तुम जब मेरे समीप अवस्थान करते हो तब फिर भयका विषय कुछ भी नहीं है. निर्भय इस स्थानमें वास करो ॥ ३९ ॥ असुरगण उनका यह वचन सुनकर उद्वेगहीन हुए और आयुधरहित होकर भी उस स्थानमें भय छोड़कर वास करने लगे

सज्जाभवंतुयुद्धायसंरब्धाःशस्त्रपाणयः ॥ शत्रुश्छिद्रेण हंतव्यएषधर्मःसनातनः ॥ ३६॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदैत्याविचार्यचपरस्परम्॥पलाय नपराः सर्वेनिर्गताभयविह्वलाः ॥३७॥ शरणंदानवाजग्मुस्त्रतास्तेकाव्यमातरम् ॥ दृष्ट्वातानातिसंतप्तानभयंचददावथ ॥३८॥ काव्यमातोवाच॥नभेतव्यं नभेतव्यंभयंत्यजतदानवाः ॥ मत्सन्निधौवर्तमानान्नभीर्भवितुमर्हति ॥ ३९ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदैत्याःस्थितास्तत्रगतव्यथाः ॥ निरायुधाह्यसंभ्रांतास्तत्राऽऽ श्रमवरेऽसुराः ॥४०॥ देवास्तान्विद्रुतान्वीक्ष्यदानवांस्तेपदानुगाः ॥ अभिजग्मुःप्रसह्यैतानविचार्यबलाबलम् ॥ ४१ ॥ तत्राऽऽगताःसुराःसर्वेहंतुंदैत्यान्स मुद्यताः ॥ वारिताःकाव्यमात्राऽपिजघ्नुस्तानाश्रमस्थितान् ॥ ४२ ॥ हन्यमानान्सुरैर्दृष्ट्वाकाव्यमाताऽतिवेपिता ॥ उवाचसर्वान्सनिद्रांस्तपसावैकरो म्यहम् ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वाप्रेरितानिद्रातानागत्यपपातच ॥ सेंद्रानिद्रावशंयातादेवामूकवदास्थिताः ॥ ४४ ॥ इंद्रंनिद्राजितंदृष्ट्वादीनंविष्णुरभाषत ॥ मांत्वंप्रविशभद्रंतेनयेत्वांचसुरोत्तम ॥ ४५ ॥

॥४०॥ इधर देवतागण दानवोंको भागता देख उनके पीछे पीछे दौड़े और बलाबल न विचार कर. उस आश्रममें जाय दैत्योंका हनन करनेमें उद्यत हुए ॥४१ ॥ तब शुक्राचार्यकी माताने निवारण किया किन्तु उनके निवारण करनेपर भी देवतालोग उनका वचन न सुन आश्रमस्थित दैत्योंको हनन करने लगे ॥ ४२ ॥ देवताओंको असुरोंका वध करता देख शुक्रमाताने अत्यन्त रुष्ट होकर कहा मैं तपोबलसे अभी देवताओंको निद्रित करती हूं ॥ ४३ ॥ उसने यह कहकर निद्राको प्रेरण किया. निद्राने जाय देवताओंको मोहित कर भूमिमें गिरा दिया. तब देवता इन्द्रके सहित निद्रामें अभिभूत होकर मूककी समान अवस्थिति करने लगे ॥ ४४ ॥ भगवान् विष्णुने इन्द्रको निद्रासे ग्रसित और दीन देखकर कहा हे सुरोत्तम! तुम मुझमें प्रवेश करो. इसमें तुम्हारा मंगल होगा. मैं तुमको अन्यत्र

लेजाऊंगा ॥ ४५ ॥ इन्द्रने इसप्रकार सुनकर विष्णुके शरीरमें प्रवेश किया तब हरिसे रक्षित हो इन्द्र निद्रारहित और निर्भय हुए ॥ ४६ ॥ देवराज इन्द्रको हरिसे रक्षित और व्यथारहित हुआ देखकर शुक्रमाता क्रुद्ध होकर इसप्रकार कहनेलगी ॥ ४७ ॥ हे इन्द्र ! मैं आज तपोबलसे विष्णुके सहित तुमको भक्षण करूंगी सब देवतालोग यह देखें. हे इन्द्र ! तुम मेरा तपोबल इसी प्रकार जानो ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुक्राचार्यजीकी माताके इसप्रकार कहनेपर विष्णु और इन्द्र दोनों ही योगविद्यामें अभिभूत और स्तब्ध होकर रहे ॥ ४९ ॥ देवतागण उनको अत्यन्त अभिभूत और पीड़ित देखकर अतिशय विस्मित हुए और अत्यन्त दीनमन होकर हाहाकार करने लगे ॥ ५० ॥ शचीपति इन्द्रने देवताओंको आर्त्तनाद करताहुआ देखकर विष्णुसे कहा. हे मधुसूदन ! मैं आपकी अपेक्षा विशेष

एवमुक्तस्ततोविष्णुंप्रविवेशपुरंदरः ॥ निर्भयोगतनिद्रश्चबभूवहरिरक्षितः ॥४६॥ रक्षितंहरिणादृष्ट्वाशक्रंतत्रगतव्यथम् ॥ काव्यमातातत क्रुद्धावचनंचेदम ब्रवीत् ॥ ४७ ॥ मघवंस्त्वांभक्षयामिसविष्णुंवैतपोबलात् ॥ पश्यतांसर्वदेवानामीदृशंमेतपोबलम् ॥ ४८ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तौतुतयादेवौवि ष्णिवद्रौयोगविद्यया ॥ अभिभूतौमहात्मानौस्तब्धौतौसंबभूवतुः ॥ ४९ ॥ विस्मितास्तुतदादेवादृष्ट्वातावतिबाधितौ ॥ चक्रुःकिलकिलाशब्दंततस्तेदी नमानसाः ॥ ५० ॥ क्रोशमानान्सुरान्दृष्ट्वाविष्णुंप्राहशचीपतिः ॥ विशेषेणाऽभिभूतोऽस्मित्वत्तोऽहंमधुसूदन ॥ ५१ ॥ जह्येनांतरसाविष्णोयावन्नौनदहे त्प्रभो॥ तपसादर्पितांदुष्टांमाविचारयमाधव ॥ ५२ ॥ इत्युक्तोभगवान्विष्णुःशक्रेणप्रार्थितेनच ॥ चक्रंसस्मारतरसाघृणांत्यक्त्वाऽथमाधवः ॥ ५३ ॥ स्मृतमात्रंतुसंप्राप्तंचक्रंविष्णुवशानुगम् ॥ दधारचकरेक्रुद्धोवधार्थंशक्रनोदितः ॥ ५४ ॥ गृहीत्वातत्करेचक्रंशिरश्चिच्छेदरंहसा ॥ हतांदृष्ट्वातुतांशक्रोमु दितश्चाभवत्तदा ॥ ५५ ॥ देवाश्चाऽतीवसंतुष्टाहरिंजयजयेतिच ॥ तुष्टुवुर्मुदिताःसर्वेसंजाताविगतज्वराः ॥ ५६ ॥

अभिभूत हुआ हूं ॥ ५१ ॥ हे माधव ! अब विचारका प्रयोजन नहीं है. यह तपोदर्पिता दुष्टा जबतक हमको दग्ध न करै. तबतक शीघ्र इसका विनाश करो ॥ ५२ ॥ भगवान् विष्णुने अतिपीड़ित शत्रुसे इसप्रकार अभिहित होकर स्त्रीवधजनित घृणाका परित्याग करके शीघ्र सुदर्शनका स्मरण किया ॥ ५३ ॥ विष्णुका वशीभूत चक्र स्मरण करतेही उपस्थित हुआ. तब इन्द्रकी प्रेरणासे क्रोधित होकर भगवान्ने चक्रधारण किया ॥ ५४ ॥ और फिर क्रोधयुक्त हो वेगसहित निक्षेप करके शुक्राचार्यकी माताका शिर काटडाला. यह देखकर इन्द्र अतिशय आनंदित हुए ॥ ५५ ॥ देवतालोग भी संतापरहित होकर जयजयशब्दसे हरिका स्तव करने लगे ॥ ५६ ॥

इन्द्र और विष्णु तिसकाल सब क्लेशसे छूट गये. किन्तु भृगुके दारुण दुरतिक्रमणीय शापकी बात मनमें विचार कर अत्यन्त शंका करने लगे ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा पुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज जन्मेजय ! अनन्तर भगवान् भृगु विष्णुका स्त्रीवध रूप दारुण पापकार्य देखकर क्रोधसे काँपने लगे और अत्यन्त दुःखार्त होकर मधुसूदनसे बोले ॥ १ ॥ भृगु बोले हे मधुसूदन ! तुम अतिशय बुद्धिमान् हो और जानसुनकर भी ऐसा अकार्य किया. क्या आश्चर्य है ? इस विप्रकन्याका वध एक बार मनमें धारण करनेको भी समर्थ नहीं हुआ जाता और तुमने उसको साक्षात संपादन किया ॥ २ ॥ हे देव ! महर्षिगण तुमको सत्वगुणसंपन्न, ब्रह्माको रजोगुणयुक्त और शंभुको तमोगुणयुक्त कहते हैं. तब इस समय उसके विपरीत क्यों हुआ

इंद्राविष्णूतुसंजातौतत्क्षणाद्धृदयव्यथौ ॥ स्त्रीवधाच्छंकमानौतुभृगोःशापंदुरत्ययम् ॥ ५७ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेएकादशोध्यायः ॥ ११ ॥ छ ॥ व्यासउवाच ॥ तंदृष्ट्वातुवधंघोरंचुक्रोधभगवान्भृगुः ॥ वेपमानोऽतिदुःखार्तःप्रोवाचमधुसूदनम् ॥ १ ॥ भृगुरुवाच ॥ अकृतं तेकृतंविष्णोजानन्पापंमहामते ॥ वधोऽयंविप्रजातायामनसाकर्तुमक्षमः ॥ २ ॥ आख्यातस्त्वंसत्वगुणःस्मृतोब्रह्माचराजसः ॥ तथाऽसौतामसःशंभु र्विपरीतंकथंस्मृतम् ॥ ३ ॥ तामसस्त्वंकथंजातःकृतंकर्मातिनिंदितम् ॥ अवध्यास्त्रीत्वयाविष्णोहताकस्मान्निरागसा ॥ ४ ॥ शपामित्वांदुराचारंकि मन्यत्प्रकरोमिते ॥ विधुरोऽहंकृतःपापत्वयाऽहंशक्रकारणात् ॥ ५ ॥ नशपेऽहंतथाशक्रंशपेत्वांमधुसूदन ॥ सदाछलपरोऽसित्वंकीटयोनिर्दुराशयः ॥ ॥ ६ ॥ येचत्वांसात्विकंप्राहुस्तेमूर्खामुनयःकिल ॥ तामसस्त्वंदुराचारःप्रत्यक्षंमेजनार्दन ॥ ७ ॥ अवतारामृत्युलोकेसंतुमच्छापसंभवाः ॥ प्रायो गर्भभवंदुःखंभुंक्ष्वपापाज्जनार्दन ॥ ८ ॥

॥ ३ ॥ तुमने किसलिये तमोगुणयुक्त होकर अतिनिन्दित कर्म किया ? हे विष्णु ! स्त्रीजाति अवध्य अर्थात् मारनेयोग्य नहीं है. तो विना अपराध इस अबला नारीका क्यों विनाश किया ॥ ४ ॥ तुमने अत्यन्त निन्दित कार्यका आचरण किया है. इस समय मैं तुम्हारा क्या करूं ? तुमको शाप देनाही युक्तिसंगत विचारता हूं. हे पापिष्ठ ! तुमने इन्द्रके लिये मुझको अत्यन्त दुःखान्वित और कातर किया है ॥ ५ ॥ मैं इन्द्रको शाप नहीं दूंगा. तुम सदाही कपटभावअवलंबन और काले सर्पकी समान व्यवहार करते हो. तुम अत्यन्त दुष्टाशय हो. मैं तुमकोही शाप देता हूं ॥ ६ ॥ जो मुनिगण तुमको सत्वगुणसंपन्न कहते हैं. वे अत्यन्त मूर्ख हैं. तुम जो अति शय दुराचारी हो. वह मैंने आज प्रत्यक्ष जाना ॥ ७ ॥ हे विष्णु ! तुम मेरे शापसे मर्त्यलोकमें अनेकबार अवतीर्ण होकर पापकर्मका फलस्वरूप प्रायःगर्भकी यंत्रणाभोग करोगे इसमें

संदेह नहीं॥ ८॥ हे राजन्! भगवान् विष्णु उसीशापके वश धर्म नष्ट होनेसे लोकोंका हित करनेकेलिये इस मनुष्य लोकमें वारंवार अवतीर्ण होते हैं ॥ ९ ॥ जन्मेजयने कहा हे मुनिवर ! तेजपुंजशाली चक्रद्वारा भृगुकी भार्याके वहां निहत होनेपर उन महात्माका पुनर्वार गार्हस्थ्य धर्म किसप्रकार संपादित हुआ था? ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! कार्यविद् भृगुजीने क्रोधयुक्त हो हरिको इसप्रकार शाप दे फिर उस छिन्नमस्तकको ग्रहणपूर्वक शीघ्र देहके ऊपर लगाकर कहा ॥ ११ ॥ हे देवि! इस समय विष्णुने तुमको मारा है, मैं तुमको अभी जीवित करता हूं यदि मैं सब धर्मोंको जानता हूं; यदि मैं धर्मका आचरण करता हूं॥ १२॥ यदि मैं सदाही सत्य कहता हूं तो उस धर्मके बलसे तुम जीवन लाभ करो सब देवता लोग मेरा तपोबल देखें॥ १३॥ यदि सत्यही मेरा वेदाध्ययन और वेदज्ञान है, यदि मेरा तपोबल है, तो तुमको

व्यासउवाच ॥ ततस्तेनाऽथशापेननष्टेधर्मेपुनःपुनः ॥ लोकस्यचहितार्थायजायतेमानुषेष्विह ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ भृगुभार्याहतातत्रचक्रेणामिततेजसा ॥ गार्हस्थ्यंचपुनस्तस्यकथंजातंमहात्मनः ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ इतिशप्त्वाहरिंरोषात्तदादायाशिरस्त्वरन्॥ कायेसंयोज्यतरसाभृगुःप्रोवाचकार्यवित् ॥ ११ ॥ अद्यत्वांविष्णुनादेविहतांसंजीवयाम्यहम् ॥ यदिकृत्स्नोमयाधर्मोज्ञायतेचरितोऽपिवा ॥ १२ ॥ तेनसत्येनजीवेतयदिसत्यंब्रवीम्यहम् ॥ पश्यंतुदेवताःसर्वाममतेजोबलंमहत् ॥१३॥ अद्भिस्त्वांप्रोक्ष्यशीताभिर्जीवयामितपोबलात् ॥ सत्यंशौचंतथावेदायदिमेतपसोबलम् ॥ १४ ॥ व्यासउवाच ॥ अद्भिःसंप्रोक्षितादेवीसद्यःसंजीवितातदा ॥ ॥ उत्थितापरमप्रीताभृगोर्भार्याशुचिस्मिता ॥ १५ ॥ ततस्तांसर्वभूतानिदृष्ट्वासुप्तोत्थितामिव ॥ साधुसाध्वितितंतांतुतुष्टुवुःसर्वतोदिशम् ॥ १६ ॥ एवंसंजीवितातेनभृगुणावरवर्णिनी ॥ विस्मयंपरमंजग्मुर्देवाःसेंद्राविलोक्यतत् ॥ १७ ॥ इंद्रःसुरानथोवाचमुनिनाजीवितासती ॥ काव्यस्तस्वातपोघोरंकिंकरिष्यतिमंत्रवित् ॥१८॥ व्यासउवाच ॥ गतानिद्रासुरेन्द्रस्यदेहेऽक्षेममभून्नृप ॥ स्मृत्वाकाव्यस्यवृत्तांतंमंत्रार्थमतिदारुणम् ॥ १९ ॥

अभिमंत्रित शीतल जलसे प्रोक्षितकरके तपोबलके द्वारा इसी समय जीवित करता हूं ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! भृगुद्वारा जलसे संप्रोक्षित होकर भृगुभार्या तत्काल जीवनलाभ करके उठी और परमप्रीतिलाभ करके कुछेक हंसनेलगी ॥ १५ ॥ तिसकाल सब जीवगणोंने उसको सोते हुएकी समान उठी देखकर भृगुको और उसको चारों ओरसे "साधु साधु" कहकर स्तव किया था ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार उस वरवर्णिनीके भृगुसे जीवनलाभ करनेपर इन्द्रादि देवता उसको देख अत्यन्त विस्मित हुए ॥ १७ ॥ तब इन्द्रने देवताओंसे कहा हे देवताओ ! इस समय तो शुक्रजननीने भृगुद्वारा जीवन लाभ किया किन्तु शुक्राचार्य घोरतर तपस्या करके मंत्रलाभ करनेपर न जाने हमारा क्या अनिष्ट करेंगे ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे नरेन्द्र ! तिसकाल देवरा

जकी वह निद्रारूपिणी माया दूर होनेपरभी शुक्राचार्यकी मंत्रप्राप्तिके लिये उस अतिदारुण तपस्याका वृत्तान्त सुनकर उनके देहमें दुःखका संचार हुआ ॥ १९ ॥ अनन्तर सुरपति इन्द्रने मनमें विचार करके अपनी कन्या तन्वङ्गी जयन्तीसे सस्मित वचनसे कहा ॥ २० ॥ हे तनये ! मैं तुमको शुक्राचार्यकी सेवामें नियोजित करता हूं हे तन्वङ्गी ! वहां जाकर मेरा कार्य साधनके निमित्त उस तपश्चारी शुक्रकी आराधना करके वशीभूत कर ॥ २१ ॥ उस उत्तम आश्रममें शीघ्र जाकर जिस जिस कार्यसे मुनिका मन परितुष्ट हो, उसी उसी प्रिय कार्यके अनुष्ठानसे तुम उनकी आराधना करके मेरा भय दूर करो ॥ २२ ॥ उस विशालाक्षी मनोरमा जयन्तीने पिताका वचन सुनकर वहां गमन किया और वहां देखा कि शुक्राचार्य आश्रममें तपोनिरत होकर धूम्रपान करते हैं ॥ २३ ॥ शुक्राचार्यके देहको

विमृश्यमनसाशक्रोजयंतींस्वसुतांतदा ॥ उवाचकन्यांचार्वंगींस्मितपूर्वमिदंवचः ॥ २० ॥ गच्छपुत्रिमयादत्ताकाव्यायत्वंतपस्विने ॥ समाराधयतन्वंगिमत्कृतेतंवशंकुरु ॥ २१ ॥ उपचारैर्मुनिंतैस्तैःसमाराध्यमनःप्रियैः ॥ भयंमेतरसागत्वाहरतत्रवराश्रमे ॥ २२ ॥ सापितुर्वचनंश्रुत्वातत्राऽगच्छन्मनोरमा ॥ तमपश्यद्विशालाक्षीपिबंतंधूममाश्रमे ॥ २३ ॥ तस्यदेहंसमालोक्यस्मृत्वावाक्यंपितुस्तदा ॥ कदलीदलमादायवीजयामासतंमुनिम् ॥ २४ ॥ निर्मलंशीतलंवारिसमानीयसुवासितम् ॥ पानायकल्पयामासभक्त्यापरमयालघु ॥ २५ ॥ छायांवस्त्राऽऽतपत्रेणभास्करेमध्यगेसति॥रचयामासतन्वंगीस्वयंधर्मेस्थितासती ॥ २६ ॥ फलान्यानीयदिव्यानिपक्वानिमधुराणिच ॥ मुमोचाग्रेमुनेस्तस्यभक्ष्यार्थंविहितानिच ॥ २७॥ कुशाःप्रादेशमात्राहिहरिताःशुकसन्निभाः ॥ दधाराऽग्रेऽथपुष्पाणिनित्यकर्मसमृद्धये ॥ २८ ॥ निद्रार्थंकल्पयामाससंस्तरंपल्लवान्वितम् ॥ तस्मिन्मुनौचाऽऽदरस्थाचकारव्यजनंशनैः ॥ २९ ॥ हावभावादिकंकिंचिद्विकारजननंचतत् ॥ नचकारजयंतीसाशापभीतामुनेस्तदा ॥ ३० ॥

देख और पिताका वचन स्मरण कर जयन्ती केलेके पत्ते लाय उनकी बयार करने लगी ॥ २४ ॥ बुद्धिशालिनी जयन्ती अव्यग्र रहकर निर्मल, सुशीतल और सुवासित जल लाकर परमभक्तिसहित उनके पान करनेकेलिये धीरे धीरे रख देती ॥ २५ ॥ वह सुंदरी जयन्ती स्वयं धर्ममें नियुक्त रहकर इसप्रकार शुक्राचार्यकी सेवा करनेलगी जब मार्त्तण्डदेव मस्तकपर गमन करते तब वस्त्रद्वारा उनके मस्तकपर छत्रकी रचना करके छाया करदेती ॥ २६ ॥ मुनिके भक्षण करनेको शास्त्रविहित दिव्य पके हुए और मधुर फल लाकर उनके सन्मुख रख देती ॥ २७ ॥ उनके नित्यकर्म समाधानार्थ तोतेके शरीरकी समान हरिद्वर्णप्रादेशप्रमाण कुश और पुष्प उनके आगे रख देती ॥ २८ ॥ मुनिकी निद्राके लिये कोमल पल्लवोंसे शय्याकी रचना कर रखती और उस मुनिके प्रति भक्तियुक्त स्थित हो बयार करती ॥ २९ ॥ जयन्ती मुनिके शापदेनेके

भयसे भीत होकर कभी हावभावादि मनोविकारजनक कुछभी कार्य नहीं करती ॥ ३० ॥ वह सुभाषिणी कृशाङ्गी प्रीतिकर और अनुकूल वचनोंसे महात्मा शुक्राचार्यकी स्तुति करती ॥ ३१ ॥ मुनिके जागरित होनेपर उनके आचमनके लिये जल लाकर सन्मुख रखती इस प्रकार मुनिके मनके अनुकूल आचरण करके जयन्ती उस स्थानमें वास करनेलगी ॥ ३२ ॥ भयातुर इन्द्रभी उस मुनिकी प्रवृत्ति जाननेके लिये वहां सेवकगणोंको भेजतेथे ॥ ३३ ॥ इसप्रकार क्रोधरहित और ब्रह्मचर्य परायण इन्द्रतनया जयन्ती बहुत कालतक शुक्राचार्यकी सेवामें नियुक्त रही ॥ ॥ ३४ ॥ क्रमक्रमसे हजार वर्ष पूर्ण होनेपर श्रीमहादेवजी परितुष्ट और प्रसन्नमन हो वर देनेके निमित्त शुक्राचार्यसे कहने लगे ॥ ३५ ॥ शिवजी बोले हेभृगुनंदन ब्रह्मन्! इस विश्वसंसारमें जो कुछ विद्यमान है तुम नेत्रोंसे जो कुछ देखतेहो और जो किसीके

स्तुतिंचकारतन्वंगीगीर्भिस्तस्यमहात्मनः॥सुभाषिण्यनुकूलाभिःप्रीतिकर्त्रीभिरप्युत ॥३१॥ प्रबुद्धेजलमादायदधाराचमनायच ॥ मनोनुकूलंसततंकुर्वतीव्यचरत्तदा ॥ ३२ ॥ इंद्रोऽपिसेवकांस्तत्रप्रेषयामासचातुरः ॥ प्रवृत्तिज्ञातुकामोवैमुनेस्तस्यजितात्मनः ॥३३॥ एवंबहूनिवर्षाणिपरिचर्यापराभवत् ॥ निर्विकाराजितक्रोधाब्रह्मचर्यपरासती ॥३४॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतुपरितुष्टोमहेश्वरः॥ वरेणच्छंदयामासकाव्यंप्रीतमनाहरः ॥३५॥ ईश्वरउवाच ॥ यच्चकिंचित्पित्रह्मन्विद्यतेभृगुनंदन ॥ प्रतिपश्यसियत्सर्वंयच्चवाच्यंनकस्यचित् ॥३६॥ सर्वाभिभावकत्वेनभविष्यसिनसंशयः ॥ अवध्यःसर्वभूतानांप्रजेशश्चद्विजोत्तमः ॥३७॥ व्यासउवाच ॥ एवंदत्त्वावरान्शंभुस्तत्रैवांतरधीयत ॥ काव्यस्तामथसंवीक्ष्यजयंतींवाक्यमब्रवीत् ॥३८॥ काऽसिकस्याऽसिसुश्रोणिब्रूहिकिंतेचिकीर्षितम् ॥ किमर्थमिहसंप्राप्ताकार्यंवदवरोरुमे ॥ ३९ ॥ किंवांछसिकरोम्यद्यदुष्करंचेत्सुलोचने ॥ प्रीतोऽस्मित्वत्कृतेनाऽद्यवरंवरयसुव्रते ॥ ४० ॥

वचनगोचरभी नहीं है ॥ ३६ ॥ तुम उस सबके अभिभावक जीतनेवाले होकर प्रभुत्व करोगे,इसमें संदेह नहीं.इसके अतिरिक्त तुम सबजीवगणोंसे अवध्य प्रजाओंके ईश्वर और द्विजश्रेष्ठ होंगे इसमें संदेह नहीं है ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! देवदेव शम्भु इसप्रकार वर देकर उसी स्थानमें अन्तर्हित होगये. तब शुक्राचार्य जयन्तीको देखकर कहने लगे ॥ ३८ ॥ हे सुश्रोणी ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ? तुम्हारे मनकी अभिलाषा क्या है ? किस निमित्त तुम यहां आई हो ? हे वामोरु ! तुम्हारा क्या कार्य है ? वह कहो ॥ ३९ ॥ हेसुलोचने ! मैं तुम्हारे कार्यसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, तुम मेरे निकट क्या वांछा करती हो ? हे सुव्रते ! तुम वर मांगो वह मैं अत्यन्त दुष्कर

होनेपरभी तुमको दूंगा ॥ ४० ॥ यह सुनकर जयन्तीका मुखकमल प्रफुल्लित हुआ, तब सुव्रता बालाने विनयनम्र वचनद्वारा तपोधनसे कहा, हे भगवन् ! मेरा मनोरथ आप तपोबलसे जान लीजिये ॥ ४१ ॥ शुक्राचार्यजीने कहा मैं ने तुम्हारे मनका भाव जान लिया है तो भी तुम भलीभांति समझाकर कहो, सर्वथा तुम्हारा मंगल संपादन करूंगा मैं तुम्हारी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न और परितुष्ट हुआ हूं ॥ ४२ ॥ जयन्तीने कहा हे ब्रह्मन् ! मैं इन्द्रकी कन्या जयन्तकी छोटी बहन हूं, पिताने मुझको आपके समर्पण किया है ॥ ४३ ॥ मैं आपसे सकामा हुई हूं इस समय आप मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये हे महाभाग ! मैं धर्मानुसार प्रीतिपूर्ण हृदयसे आपके संग रमण करूं यही मेरी इच्छा है ॥ ४४ ॥ शुक्राचार्यजी बोले हे नितम्बिनी ! तुम दशवर्षपर्यन्त सब भूतोंसे अदृश्य हो अपनी

ततःसातुमुनिंप्राहजयंतीमुदितानना ॥ चिकीर्षितंमेभगवंस्तपसाज्ञातुमर्हसि ॥ ४१ ॥ काव्यउवाच ॥ ज्ञातंमयातथाऽपित्वंब्रूहियन्मनसेप्सितम् ॥ करोमिसर्वथाभद्रंप्रीतोऽस्मिपरिचर्यया ॥ ४२ ॥ जयंत्युवाच ॥ शक्रस्याऽहंसुताब्रह्मन्पित्रातुभ्यंसमर्पिता ॥ जयंतीनामतश्चाऽहंजयंताऽवरजामुने ॥ ४३ ॥ सकामाऽस्मित्वयिविभोवांछितंकुरुमेऽधुना ॥ रंस्येत्वयामहाभागधर्मतःप्रीतिपूर्वकम् ॥ ४४ ॥ शुक्रउवाच ॥ मयासहत्वंसुश्रोणिदशवर्षाणिभामिनि ॥ सर्वैर्भूतैरदृश्याचरमस्वेहयदृच्छया ॥ ४५ ॥ व्यासउवाच ॥ एवमुक्त्वागृहंगत्वाजयंत्याःपाणिमुद्वहन् ॥ तयासहावसद्देव्यादशवर्षाणिभार्गवः ॥ ४६ ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांमाययासंवृतःप्रभुः ॥ दैत्यास्तमागतंश्रुत्वाकृतार्थंमंत्रसंयुतम् ॥ ४७ ॥ अभिजग्मुर्गृहेतस्यमुदितास्तेदिदृक्षवः ॥ नापश्यन्रममाणंतेजयंत्यासहसंयुतम् ॥ ४८ ॥ तदाविमनसःसर्वेजाताभग्नोद्यमाश्चते ॥ चिंतापराऽतिदीनाश्चवीक्षमाणाः पुनःपुनः ॥ ४९ ॥ अदृष्ट्वातंतुसंवृतंप्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ स्वगृहान्दैत्यवर्यास्तेचिंताविष्टाभयाऽऽतुराः॥५०॥रममाणंतथाज्ञात्वाशक्रःप्रोवाचतंगुरुम् ॥ बृहस्पतिंमहाभागंकिंकर्तव्यमितःपरम् ॥५१॥

इच्छानुसार मेरे संग रमण करो ॥ ४५ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! भार्गवश्रेष्ठ शुक्राचार्यजीने इस प्रकार कह घर आय जयन्तीका पाणिग्रहण किया और मायासे संयुक्त होकर तथा जीवगणोंसे अदृश्य हो उस देवीके सहित दशवर्षपर्यन्त वास करने लगे ॥ ४६ ॥ इधर शुक्राचार्य मंत्रलाभ करके घर आये हैं यह सुनकर दैत्यगण अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ४७ ॥ और उनका दर्शन करनेके निमित्त उनके घर आये किन्तु वह जयन्तीके संग रमण करते थे इस कारण असुरगण उनको न देख सके ॥ ४८ ॥ तब वह अत्यन्त विमन और भग्नोद्यम हुए चिन्तायुक्त और दीन होकर वारंवार उनको ढूंढने लगे ॥ ४९ ॥ मायासंवृत शुक्राचार्यके न देखनेपर दैत्यगण चिन्तायुक्त और भयातुर हो अपने अपने घरको लौट आये ॥ ५० ॥ इधर शुक्राचार्यको जयन्तीके संग क्रीडासक्त जानकर देव

राजने महाभाग देवताओंके गुरु बृहस्पतिजीसे कहा हे गुरू ! अब हमको क्या करना चाहिये सो कहिये ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप इस समय दानवलोगोंके पास जाइये हे मानद ! जिस कार्यसे मानकी रक्षा हो वह कीजिये आप दैत्यगणोंको मायाजालसे मोहित करके भलीभाँति विचारपूर्वक मेरा कार्य कीजिये ॥ ५२ ॥ बृहस्पतिजी इन्द्रके वचन सुन और शुक्राचार्यको मायासे मोहित तथा जयन्तीके सहित रमणासक्त जान शुक्राचार्यका रूप धारणकर दैत्योंके निकट गये ॥ ५३ ॥ उस स्थानमें जाय, बृहस्पतिजीने अत्यन्त आदरपूर्वक दैत्योंको बुलाया । तब दैत्यलोगोंने आनकर शुक्राचार्यको सन्मुख देखा ॥ ५४ ॥ वे अत्यन्त आह्लादसे मोहित हो, उनको शुक्राचार्य जान; प्रणाम करके आगे खडे रहे. किन्तु वह जो शुक्ररूपधारिणी बृहस्पतिकी माया थी.

गच्छाऽद्यदानवान्ब्रह्मन्माययात्वंप्रलोभय ॥ अस्माकंकुरुकार्यंत्वंबुद्ध्यासंचिंत्यमानद ॥ ५२ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंकाव्यंरममाणंसुसंवृतम् ॥ ज्ञात्वाशतद्रूपमास्थायदैत्यान्प्रतिययौगुरुः ॥ ५३ ॥ गत्वातत्राऽतिभक्त्याऽसौदानवान्समुपाऽऽह्वयत् ॥ आगतास्तेऽसुराःसर्वेददृशुःकाव्यमग्रतः ॥५४॥ प्रणम्यसंस्थिताःसर्वेकाव्यंमत्वाऽतिमोहिताः ॥ नविदुस्तेगुरोर्मायांकाव्यरूपविभाविनीम् ॥५५॥ तानुवाचगुरुःकाव्यरूपःप्रच्छन्नमायया॥ स्वागतंममयाज्यानांप्राप्तोऽहंवोहितायवै ॥ ५६ ॥ अहंवोबोधयिष्यामिविद्यांप्राप्तामभायया ॥ तपसातोषितःशंभुर्युष्मत्कल्याणहेतवे ॥ ५७ ॥ तच्छ्रुत्वाप्रीतमनसोजातास्तेदानवोत्तमाः ॥ कृतकार्यंगुरुंमत्वाजहृषुस्तेविमोहिताः ॥ ५८ ॥ प्रणेमुस्तेमुदायुक्तानिरातंकागतव्यथाः ॥ देवेभ्यश्चभयंत्यक्त्वातस्थुःसर्वेनिरामयाः ॥ ५९ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥छ॥ राजोवाच ॥ किंकृतंगुरुणापश्चाद्भृगुरूपेणवर्तता॥ छलेनैवहिदैत्यानांपौरोहित्येनधीमता ॥ १ ॥

उसको वे नहीं जानसके ॥ ५५ ॥ तब मायासे प्रच्छन्न शुक्ररूपी देवताओंके गुरुने दैत्योंसे कहा-आप लोगोंकी कुशल तो है ? मैं तुम्हारे हितकेही लिये आया हूं ॥ ५६ ॥ तुम्हारे कल्याणार्थ मैंने कठिन तपस्यासे शंभुको संतुष्ट करके जो विद्याप्राप्त की है. वह तुम्हें निष्कपटतापूर्वक समझाये देता हूं ॥५७॥ यह सुनकर दानवोत्तम प्रसन्न हुए और गुरुजीके द्वारा कार्य हुआ समझ आह्लादसे मोहित हुए॥ ५८ ॥ उन्होंने प्रसन्न होकर उनको प्रणाम किया और निरातङ्क (निर्भय) तथा व्यथाहीन होकर देवताओंसे भयकी शंका छोड़ स्वच्छन्द मनसे वास करने लगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
राजा बोले हे ऋषिवर ! बुद्धिमान् बृहस्पतिजीने असुरोंके गृहोंमें शुक्राचार्यके रूपसे वास करके और छलपूर्वक दैत्यगणोंके पौराहित्यमें व्रती होकर

क्या किया था ? ॥ १ ॥ हे मुने ! बृहस्पति देवताओंके गुरु हैं वे सदाही वेदादिकी आलोचना करते रहते हैं विशेषकरके वे अङ्गिरामुनिके पुत्र और स्वयं मुनि हैं इन गुणोंसे युक्त होकर भी उन्होंने किसप्रकार छल अवलम्बन किया था ? ॥ २ ॥ मुनिगणोंने सभी धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि, सत्यही धर्मका कारण और सत्यसेही परमात्माकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ तब बृहस्पतिजीने जब दैत्यगणोंके निकट मिथ्यावचन कहे थे तब संसारमें कौन गृहाश्रमी सत्यवक्ता होगा ? हे मुनिवर ! इस विषयमें विचार कर मैं कुछ स्थिर नहीं करसकता ॥ ४ ॥ यदि कहैं कि, लोभके वशीभूत होकर लोक असत् कार्यमें प्रवृत्त होतेहैं किन्तु यहभी यथार्थ बोध नहीं होता, क्योंकि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें यदि किसीके ऐश्वर्य हो तोभी उसका आहार पूर्तिके अतिरिक्त अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता अतएव इस लोभकेलिये मुनिगण क्यों मिथ्यामें प्रवृत्त होंगे ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वर ! पुरातन शिष्ट मुनिगण जो शब्दप्रयोगकरगये हैं. उसका वाचक पदार्थ अवश्य ही

गुरुःसुराणामनिशंसर्वविद्यानिधिस्तथा॥सुतोऽगिरसएवाऽसौसकथंछलकृन्मुनिः ॥२॥ धर्मशास्त्रेषुसर्वेषुसत्यंधर्मस्यकारणम्॥कथितंमुनिभिर्येनपरमात्माऽपिलभ्यते ॥ ३ ॥ वाचस्पतिस्तथामिथ्यावक्ताचेद्दानवान्प्रति ॥ कःसत्यवक्तासंसारेभविष्यतिगृहाश्रमी ॥ ४ ॥ आहारादधिकंभोज्यंब्रह्मांडविभवेऽपि न ॥ तदर्थंमुनयोमिथ्याप्रवर्ततेकथंमुने ॥ ५ ॥ शब्दप्रमाणमुच्छेदंशिष्टाभावेगतंनकिम् ॥ छलकर्मप्रवृत्तेवाऽविगीतत्वंगुरौकथम् ॥ ६ ॥ देवाःसत्त्वसमुद्भूताराजसामानवाःस्मृताः ॥ तिर्यंचस्तामसाःप्रोक्ताउत्पत्तौमुनिभिःकिल ॥ ७ ॥ अमराणांगुरुःसाक्षान्मिथ्यावादीस्वयंयदि ॥ तदाकःसत्यवक्तास्याद्राजसस्तामसःपुनः ॥ ८ ॥ क्वस्थितिस्तस्यधर्मस्यसंदेहोऽयंममाऽऽत्मनः ॥ कागतिःसर्वजंतूनांमिथ्याभूतेजगत्त्रये ॥ ९ ॥ हरिर्ब्रह्माशचीकांतस्तथाऽन्येसुरसत्तमाः ॥ सर्वेछलविधौदक्षामनुष्याणांचकाकथा ॥ १० ॥

है. इसप्रकारके विश्वाससे पण्डितगण प्रमाणमें शिष्टताके कारण शब्दको एक प्रमाण कहकर अव धारण करते हैं. इस समय देखा जाता है कि, शिष्ट व्यक्तिके अभावमें वह शब्द-प्रमाण उच्छिन्न होगया है ? क्योंकि छलकार्यमें निरत बृहस्पतिमें गर्हित कार्य वर्त्तमान रहनेसे उनका फिर शिष्टत्व कहां है? ॥ ६ ॥ उत्पत्तिके विषयमें मुनिगण कहते हैं कि, देवतागण सत्वगुणसे, मनुष्यगण रजोगुणसे और तिर्यग्गण तमोगुणसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥ तो वही सत्वगुणाश्रित जो देवताओंके साक्षात् गुरु हैं वेभी यदि स्वयं मिथ्यावादी हुए तब फिर राजस और तमोगुणमें कौन सत्यवादी होगा ॥ ८ ॥ क्या आश्चर्य है ? यदि संपूर्ण विश्वही मायामें आच्छन्न हो तो सनातनधर्मका स्थान कहाँ है ? और संपूर्ण जीवगणोंकी क्या गति है ? हे मुनिवर ! इस विषयमें मुझको महासंशय उपस्थित हुआ है॥ ९ ॥ जब कि, भगवान् हरि ब्रह्मा शचीपति और अन्यान्य सुरसत्तमगण सभी कपट—कर्ममें चतुर हुए हैं तब स्वल्पसत्व और अल्पबुद्धि मनुष्योंकी फिर क्या बात है ॥ १० ॥

हे मानद ! जब कि-सब देवतागण, वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र और बृहस्पति इत्यादि तपोधन मुनिगणभी काम क्रोधमें अभिभूत लोभमें विनष्टचित्त छलक र्ममें दक्ष और पापमें निरत हैं तब धर्मकी फिर क्या गति है ? ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ हाय ! जब कि, इन्द्र अग्नि चंद्रमा और विधाता यह भी कामके उत्कट लोभमें अभिभूत होकर परदारासक्त हुए तब इस संपूर्णभुवनमें फिर शिष्टता कहाँ रही ? ॥ १३ ॥ हे विमलात्मन् ! जब संपूर्ण देवतागण और मुनिगण लोभमें ग्रसित हुए तो फिर किसका वचन उपदेशस्वरूपमें ग्रहण करें ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! इन्द्र हों बृहस्पति हो ब्रह्मा हो विष्णु हो वा महादेव हों, जो देहधारण करेगा उसकोही पूर्वोक्त अहंकार और लोभादि विकार दोषमें लिप्त होना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! ब्रह्मा,

कामक्रोधाभिसंतप्तालोभोपहतचेतसः ॥ छलेदक्षाःसुराःसर्वेमुनयश्चतपोधनाः ॥ ११ ॥ वसिष्ठोवामदेवश्चविश्वामित्रोगुरुस्तथा ॥ एतेपापरताःकात्रगतिर्धर्मस्यमानद ॥ १२ ॥ इंद्रोग्निश्चंद्रमावेधाःपरदाराभिलंपटाः ॥ आर्यत्वंभुवनेष्वेषुस्थितंकुत्रमुनेवद ॥ १३ ॥ वचनंकस्यमंतव्यमुपदेशधियाऽनघ ॥ सर्वेलोभाऽभिभूतास्तेदेवाश्चमुनयस्तदा ॥ १४ ॥ व्यासउवाच ॥ किंविष्णुःकिंशिवोब्रह्मामघवाकिंबृहस्पतिः ॥ देहवान्प्रभवत्येवविकारैःसंयुतस्तदा ॥ १५ ॥ रागीविष्णुःशिवोरागीब्रह्माऽपिरागसंयुतः ॥ "रागवान्किमकृत्यंवैनकरोतिनराधिप ॥ " रागवानपिचातुर्याद्विदेहइवलक्ष्यते ॥ १६ ॥ संप्राप्तेसंकटेसोऽपिगुणैःसंबाध्यतेकिल ॥ कारणाद्रहितंकार्यंकथंभवितुमर्हति ॥ १७ ॥ ब्रह्मादीनांचसर्वेषांगुणाएवहिकारणम् ॥ पंचविंशत्समुद्भूतादेहास्तेषांनचान्यथा ॥ ॥ १८ ॥ कालेमरणधर्मास्तेसंदेहःकोऽत्रतेनृप ॥ परोपदेशेविस्पष्टंशिष्टाःसर्वेभवंतिच ॥ १९ ॥

विष्णु और शिव यह सभी विषयानुरागी हैं, अतएव अनुरागी व्यक्ति क्या अकार्य नहीं कर सक्ता ॥ १६ ॥ हे नरेन्द्र ! अनुरागी व्यक्ति चातुर्य वशसे केवल मुक्तकी समान दीखते हैं किन्तु संकट स्थल उपस्थित होनेपर तिस समय स्वस्वगुणसे उनकी धूर्तता प्रकाशित होजाती है, तब वह गुणोंके वशीभूत होकर कार्य करते हैं, अतएव इस विषयमें तीनों गुणोंकोही कारण जानना चाहिये, क्योंकि कारणके विना कभी कार्यकी उत्पत्तिका संभव नहीं होसक्ता ॥ १७ ॥ ब्रह्मादि देवताओंके भी तीनों गुणही कारण हैं. कारण कि, उन सबके देहभी प्रधान महत्तत्वादि पचीस तत्वसे उत्पन्न हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ ॥ १८ ॥ हे नृपवर ! ब्रह्मादिभी मरण धर्मशील अर्थात् नाशवान् हैं, अतएव इसमें फिर आपको संदेह क्या है ? आप जानिये कि, सभी दूसरेको उपदेश

देनेके समय भलीभाँति शिष्टता प्रकाश करते हैं ॥ १९ ॥ किन्तु अपना कार्य उपस्थित होनेपर स्वभावका विप्लव होजाता है. तब वह काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, अहंकार और मात्सर्यादि सबमें उपस्थित होकर कार्य करते हैं॥ २०॥ कोई देहधारी पुरुष उनको परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता. हे महाराज ! महर्षिगण कहते हैं. यह संसार सदा इसीप्रकार चला आता है ॥ २१ ॥ यह शुभाशुभमय संसार कभी अन्यभावको प्राप्त नहीं होता. इसीप्रकार चला आता है. देखो, भगवान् विष्णु कभी दारुण तपश्चरण करते हैं ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रभी कभी अनेक भाँतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं और देखो परमप्रभु लीलामय विष्णु कभी कमलाके कमनीय विलासतरंगरंगमें रंजितचित्त होकर ॥ २३ ॥ वैकुंठमें विहार करते हैं और कभी करुणासिन्धु होकरभी दुर्जय दानवगणोंके संग अत्यन्त दारुण युद्ध

विप्लुतिर्ह्यविशेषेणस्वकार्येसमुपस्थिते ॥ कामःक्रोधस्तथालोभद्रोहाऽहंकारमत्सराः॥२०॥देहवान्कःपरित्यक्तुमीशोभवतितान्पुनः॥संसारोऽयंमहाराजस दैवैवंविधःस्मृतः ॥२१॥ नाऽन्यथाप्रभवत्येवशुभाऽशुभमयःकिल ॥ कदाचिद्भगवान्विष्णुस्तपश्चरतिदारुणम् ॥२२॥ कदाचिद्विविधान्यज्ञान्वितनोति सुराधिपः ॥ कदाचित्तुरमारंगरंजितःपरमेश्वरः ॥ २३ ॥ रमतेकिलवैकुंठेतद्वशस्तरुणोविभुः ॥ कदाचिद्दानवैःसार्धंयुद्धंपरमदारुणम् ॥ २४ ॥ करोति करुणासिंधुस्तद्बाणाऽऽपीडितोभृशम् ॥ कदाचिज्जयमाप्नोतिदैवात्सोऽपिपराजयम् ॥२५॥ सुखदुःखाऽभिभूतोऽसौभवत्येवनसंशयः ॥ शेषेशेतेकदाचि द्वैयोगनिद्रासमावृतः ॥ २६ ॥ कालेजागर्तिविश्वात्मास्वभावप्रतिबोधितः ॥ शर्वोब्रह्माहरिश्चैतइंद्राद्यायेसुरास्तथा ॥ २७॥ मुनयश्चविनिर्माणैःस्वायुषो विचरंतिहि ॥ निशाऽवसानेसंजातेजगत्स्थावरजंगमम् ॥२८॥ म्रियतेनात्रसंदेहोनृपकिंचित्कदाऽपिच॥स्वायुषोंऽतेपद्मजाद्याःक्षयमृच्छंतिपार्थिव ॥२९॥

करके उनके॥ २४ ॥शरजालसे अत्यन्त पीडित होते हैं तथा कभी जय प्राप्त करते हैंऔर कभी दैववशतः पराजितभी होते हैं ॥ २५ ॥ इससे वह निःसंदेह सुखदुःखके वशीभूत होते हैं. हे महाराज! वही नारायण कभी विश्वसंसारको अपनी कुक्षिमें रक्षा कर योगनिद्रामें अभिभूत हो, शेष शय्यापर शयन करते हैं ॥ २६ ॥ फिर यथा समयमें प्रकृतिद्वारा प्रतिबोधित होकर जागरित होते हैं. हे राजन् ! अधिक क्या कहूं इस विश्व संसारमें महादेव, ब्रह्मा, हरि इत्यादि देवतागण ॥ २७ ॥ और मुनिगण सभी अपनी अपनी आयुके परिमाण कालतक जीवित रहकर विचरण करते हैं. प्रलय कालका अवसान होनेपर नष्ट प्राय यह स्थावर जंगमात्मक जगत् ॥ २८ ॥ फिर उत्पन्न होता है इसमें कुछभी संदेह नहीं है. हे राजन् ! अपनी अपनी आयुके अन्तमें ब्रह्मादि सभी नाशको प्राप्तहोते हैं,

इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ फिर यथासमयमें विष्णु और महादेव इत्यादि देवतागण देहधारी होकर वह सब कामादि भाव लाभ करतेहैं ॥ ३० ॥ हेपार्थिव ! आप इस विषयमें विस्मित न हूजिये यह संसार काम क्रोधादिसे संयुक्त होकर सदाही भ्रमण करता है ॥ ॥ ३१ ॥ हेराजन् ! इस संसारमें कामादिसे मुक्त परमार्थके जाननेवाले पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं. जो व्यक्ति इस संसारसे डरते हैं. वे स्त्रीग्रहण न करते॥ ३२ ॥ इसकारण वह सब प्रकार विषयासंगसे मुक्त और शंकाहीन होकर विचरण करते हैं इसकारणही चंद्रमाने बृहस्पतिकी भार्याको हरण किया था ॥ ३३ ॥ गुरुने भी अपने छोटे भ्राताकी भार्याको हरण किया था. इस प्रकार इस संसारचक्रमें समस्त जीवही सदा रागलोभादिसे आवृत रहते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! गार्हस्थ्य अवलम्बन करनेपर मनुष्यगण किसीप्रकार मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते, अतएव सर्व

प्रभवंतिपुनर्विष्णुहरशक्रादयःसुराः ॥ तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते ॥३०॥ नाऽत्रतेविस्मयःकार्यःकदाचिदपिपार्थिव ॥ संसारोऽयंतुसंदिग्धःकामक्रोधादिभिर्नृप ॥ ३१ ॥ दुर्लभस्तद्विनिर्मुक्तःपुरुषःपरमार्थवित् ॥ योबिभेतीहसंसारेसदारान्नकरोत्यपि ॥ ३२ ॥ विमुक्तःसर्वसंगेभ्योविचरत्यविशंकितः ॥ तस्माद्बृहस्पतेर्भार्याशशिनालंभितापुनः ॥३३॥ गुरुणालंभिताभार्यातथाभ्रातुर्यवीयसः ॥ एवंसंसारचक्रेऽस्मिन्रागलोभादिभिर्वृतः ॥३४॥ गार्हस्थ्यंचसमास्थायकथंमुक्तोभवेन्नरः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनहित्वासंसारसारताम् ॥३५॥ आराधयेन्महेशानींसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ तन्मायागुणतश्छन्नंजगदेतच्चराचरम् ॥ ३६ ॥ भ्रमत्युन्मत्तवत्सर्वंमदिरामत्तवन्नृप ॥ तस्याआराधनेनैवगुणान्सर्वान्विमृद्यच ॥३७॥ मुक्तिंभजेतमतिमान्नान्यःपंथास्त्वितःपरः ॥ आराधितामहेशानीनयावत्कुरुतेकृपाम् ॥ ३८ ॥ तावद्भवेत्सुखंकस्मात्कोन्योऽस्तिदययायुतः ॥ करुणासागरामेतांभजेत्तस्मादमायया ॥३९॥ यस्यास्तुभजनेनैवजीवन्मुक्तत्वमश्नुते ॥ मानुष्यंदुर्लभंप्राप्यसेवितानमहेश्वरी ॥ ४० ॥ निःश्रेणिकाग्रात्पतिताअधइत्येववि‌द्महे ॥ अहंकाराऽऽवृतंविश्वंगुणत्रयसमन्वितम् ॥ ४१ ॥

प्रयत्नसे संसारकी सारताका विचार छोड़ ॥ ३५ ॥ सच्चिदानन्दरूपिणी महेशानीकी आराधना करनी चाहिये. यह चराचर जगत् उनकेही मायागुणमें आच्छन्न होकर ॥ ३६ ॥ मदिरामत्तकी समान अथवा उन्मत्तकी समान सदा भ्रमण करता है बुद्धिमान् पुरुष उनको आराधनासेही सब गुणोंको पददलित करके ॥ ३७ ॥ मुक्तिलाभ करते हैं. हे राजेन्द्र ! इसके अतिरिक्त मुक्तिलाभका दूसरा कोई मार्ग नहीं है. महेशानीकीआराधना करके जबतक उनकी करुणा प्राप्त न होसके ॥ ३८ ॥ तबतक सुख कहाँ है ! उनके अतिरिक्त दूसरे किसीकी प्रकृत दयादृष्टि नहीं होती अतएव विशुद्धचित्त होकर उन करुणामयीका भजन करना उचित है ॥ ३९ ॥ क्योंकि उनकी आराधना करनेसेही पुरुष जीवन्मुक्त होसकता है. जिस व्यक्तिने मनुष्य शरीरको पाकर महेश्वरीकी सेवा न करी ॥ ४० ॥ वह सोपानश्रेणीके ऊपरिभागसे नीचे

गिरगया यही मेरा विचार है. यह त्रिगुणयुक्त विश्व अहंकारमें आवृत ॥ ४१ ॥ और असत्यमें सम्बद्ध है अतएव उन सर्वेश्वरीकी आराधनाके अतिरिक्त फिर किसप्रकार मुक्तिलाभ होसक्ता है ? हे राजन् ! सब विषयोंका परित्याग करके उन भुवनेश्वरीकी सेवा करनाही सबका एकान्त कर्त्तव्य है ॥ ४२ ॥ जन्मेजय बोले हे मुने ! शुक्ररूपधारि देवगुरुने तिससमय क्या किया था ? और शुक्राचार्य कितने दिन पीछे दैत्योंके समीप आये थे ? यह मुझसे भलीभाँति कहिये ॥ ४३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! शुक्रवेष धारी महात्मा बृहस्पतिने उस समय जो किया था वह मैं कहताहूं सुनिये ॥ ४४ ॥ देवगुरुके भलीभाँति समझा देनेपर दैत्यगण उनकोही अपना गुरु शुक्राचार्य जान सम्यक् प्रकार विश्वास करके तत्परायण हो उनके आज्ञावर्त्ती हुए ॥ ४५ ॥ बृहस्पतिकी मायासे मोहित और प्रतारित दैत्यगण विद्याप्राप्तिके

असत्येनाऽपिसंबद्धंमुच्यतेकथमन्यथा॥ हित्वासर्वंततःसर्वैःसंसेव्याभुवनेश्वरी ॥४२॥ राजोवाच॥ किंकृतंगुरुणातत्रकाव्यरूपधरेणच ॥ कदाशुक्रःसमायातस्तन्मेब्रूहिपितामह ॥ ४३ ॥ व्यासउवाच॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामियत्कृतंगुरुणातदा॥ कृत्वाकाव्यस्वरूपंचप्रच्छन्नेनमहात्मना ॥ ४४ ॥ गुरुणावोधितादैत्यामत्वाकाव्यंस्वकंगुरुम् ॥ विश्वासंपरमंकृत्वावभूवुस्तन्मयास्तदा ॥ ४५ ॥ विद्यार्थंशरणंप्राप्ताभृगुंमत्वाऽतिमोहिताः ॥ गुरुणाविप्रलब्धास्ते लोभात्कोवानमुह्यति॥ ४६ ॥ दशवर्षात्मकेकालेसंपूर्णसमयेतदा ॥ जयंत्यासहक्रीडित्वाकाव्योयाज्यानचिंतयत् ॥ ४७ ॥ आशयाममार्गंतेपश्यंतः संस्थिताःकिल ॥ गत्वातान्वैप्रपश्येऽहंयाज्याननतिभयातुरान् ॥४८॥ मादेवेभ्योभयंतेषांमद्भक्तानांभवेदिति ॥ संचिंत्यबुद्धिमास्थायजयंतींप्रत्युवाचह ॥ ॥ ४९ ॥ देवानेवोपसंयांतिपुत्रामेचारुलोचने ॥ समयस्तेऽद्यसंपूर्णोजातोऽयंदशवार्षिकः ॥ ५० ॥ तस्माद्गच्छाम्यहंदेविद्रष्टुंयाज्यान्सुमध्यमे ॥ पुनरेवाऽऽगमिष्यामितवांतिकमनुद्रुतः ॥ ५१ ॥

लिये शुक्राचार्य जानकर उनकी शरणागत हुए क्योंकि इस संसारमें लोभके वशीभूतहो सभी मोहित होते हैं ॥ ४६ ॥ इस ओर जब दश वर्ष पूर्ण हुए तब दैत्यगुरु जयन्तीके संग क्रीडा समापनपूर्वक यजमान गणोंका स्मरण करने लगे ॥ ४७ ॥ वह विचार करने लगे कि, दैत्यगण हमारे आनेका मार्ग देखतेहुए अवस्थित हैं मैं जाकर उन भयातुर असुरोंको अवलोकन करूं ॥ ४८ ॥ वे मेरे भक्त हैं अत एव देवताओंके द्वारा जिससे उनको भय न हो वह करना उचित है. इसप्रकार चिन्ताकरके जयन्तीसे कहा॥ ४९ ॥ हे चारुलोचने ! मेरे पुत्रोंने देवताओंकी शरणली है, तुम्हारा दशवर्षका समय आज संपूर्ण हुआ ॥ ५० ॥ अतएव हे सुमध्यमे! मैं इस समय अपने

यजमानोंको देखनेके निमित्त जाताहूं फिर शीघ्रही तुम्हारे निकट आऊंगा ॥ ५१ ॥ पतिव्रता जयन्तीने तथास्तु कह उनके जानेमें सम्मति प्रदान करके कहा हे धर्मज्ञ ! आपकी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाइये । मैं आपका धर्मलुप्त करनेकी इच्छा नहीं करती हूं ॥ ५२ ॥ शुक्राचार्य ने उसका वचन सुन शीघ्र दानवगणोंके समीप उपस्थित होकर देखा कि, दानवगणोंके समीप छलवेषधारी सौम्याकृति बृहस्पतिजी विराजमान हैं ॥ ५३ ॥ वह निजप्रणीत जैनधर्म छलपूर्वक समझा रहे हैं और हिंसादि दोष दिखलाकर यज्ञकी निन्दा करते हैं ॥ ५४ ॥ वह कहते हैं अहो ! देव वैरी गण ! मैं तुम्हारे हितकर सत्य वचन कहता हूं ? अहिंसाही परमधर्म है अधिक क्या ? आततायी लोगोंका मारना भी उचित नहीं है ॥ ५५ ॥ तुमको निश्चय जानना चाहिये कि, भोगनिरत ब्राह्मणोंनेही अपनी अपनी रसना चारे

तथेतितमुवाचाऽथजयंतीधर्मवित्तमा ॥ यथेष्टंगच्छधर्मज्ञनतेधर्मंविलोपये ॥५२॥ तच्छ्रुत्वावचनंकाव्योजगामत्वरितस्ततः ॥ अपश्यद्दानवानांसपार्श्वे वाचस्पतिंतदा ॥ ५३ ॥ छद्मरूपधरंसौम्यंबोधयंतंछलेनतान् ॥ जैनंधर्मंकृतंस्वेनयज्ञनिंदापरंतथा ॥ ५४ ॥ भोदेवरिपवःसत्यंब्रवीमिभवतांहितम् ॥ अहिंसापरमोधर्मोऽहंतव्याह्याततायिनः ॥ ५५ ॥ द्विजैर्भोगरतैर्वेदेदर्शितंहिंसनंपशोः ॥ जिह्वास्वादपरैःकाममहिंसैवपरामता ॥५६॥ एवंविधानिवाक्यानि वेदशास्त्रपराणिच ॥ ब्रुवाणंगुरुमाकर्ण्यविस्मितोऽसौभृगोःसुतः ॥ ५७ ॥ चिंतयामाससमनसाममद्वेष्योगुरुःकिल ॥ वंचिताःकिलधूर्तेनयाज्यामेनाऽत्रसंशयः ॥५८॥ धिग्लोभंपापबीजंवैनरकद्वारमूर्जितम् ॥ गुरुरप्यनृतंब्रूतेप्रेरितोयेनपाप्मना ॥ ५९ ॥ प्रमाणंवचनंयस्यसोऽपिपाखंडधारकः ॥ गुरुःसुराणां सर्वेषांधर्मशास्त्रप्रवर्तकः ॥ ६० ॥ किंकिंनलभतेलोभान्मलिनीकृतमानसः ॥ अन्योऽपिगुरुरप्येवंजातःपाखंडपंडितः ॥ ६१ ॥

तार्थ करनेकोही वेदमें पशुहिंसाका मार्ग दिखाया है, किन्तु अहिंसाकी समान श्रेष्ठ परमधर्म दूसरा कुछ नहीं है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! देवगुरुको वेदशास्त्रकी निन्दा करतेहुए यह वचन सुनकर भृगुपुत्र अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५७ ॥ और मनमें चिन्ता करने लगे, यह गुरु निस्संदेह मेरा विद्वेषी है इस धूर्त्तके द्वारा मेरे यजमानगण छले गये हैं. इसमें संदेह नहीं ॥ ५८ ॥ पापके एकमात्र कारणस्वरूप जो लोभद्वाराप्रेरित होकर यह गुरुभी मिथ्या कहते हैं उस पापबीज और नरकके द्वार स्वरूप लोभको धिक्कार है ॥ ५९ ॥ क्या आश्चर्य है ! जो सब देवताओंके गुरु और धर्मशास्त्रके प्रवर्त्तक हैं. जिनका वचन प्रमाण कहकर ग्राह्य होता है, उन्होंने भी आज पाखंड मत धारण किया । अहो ! लोभकी क्या अनिर्वचनीय महिमा है ॥ ६० ॥ लोभके वशीभूत होकर सुर गुरु भी जब पाखंड पण्डित हुए तो

लोभके वशीभूत हो मलिनमन मूढ़बुद्धि पुरुष क्या अकार्य न करेंगे? ॥ ६१ ॥ आज यह सुरगुरु ब्राह्मण होने पर भी नटकी समान समस्त चेष्टा ग्रहण करके मूढबुद्धि मेरे यजमान दैत्यगणोंको छलते हैं ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–दिशावेद अध्यायमें, गुरु पायो जिमि जान ॥ सो सब वर्णहि सुमिरि श्री,–शिवाचरण सुखदान॥ व्यासजी बोले हे राजन्! शुक्राचार्य मनही मनमें इस प्रकार चिन्ता कर दैत्यगणोंसे हँसते हुए कहने लगे हे दैत्यगण! तुम मेरे रूपधारी सुरगुरु बृहस्पति द्वारा कैसे वञ्चित हुये? ॥ १ ॥ मैं शुक्राचार्य हूं और तुम मेरे यजमान हो, यह देवताओं का कार्य साधन करनेवाले सुरगुरु बृहस्पति हैं, इन्होंने निःसंदेह तुम लोगोंको छला है ॥ २ ॥ इस दांभिकने मेरा आकार धारण किया है, तुम इसके वचनमें कभी श्रद्धा न करना. हे दैत्यगण! तुम लोग मेरे यजमान हो, अतएव मेरे अनुवर्त्ती होओ, इस बृहस्पतिको परित्याग करो ॥ ३ ॥ दैत्यगण उनका यह वचन सुन और उन

शैलूषवेष्टितंसर्वंपरिगृह्यद्विजोत्तमः ॥ वंचयत्यतिसंमूढान्दैत्यान्याज्यान्ममाऽप्यसौ ॥६२॥ ॥ इति श्रीदे०म०चतुर्थस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥छ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंचिंत्यमनसातानुवाचहसन्निव ॥ वंचितामत्स्वरूपेणदैत्याःकिंगुरुणाकिल ॥ १ ॥ अहंकाव्योगुरुश्चाऽयंदेवकार्यप्रसाधकः ॥ अनेनवंचितायूयंमद्याज्यानाऽत्रसंशयः ॥२॥ माश्रद्धद्ध्वंवचोऽस्याऽऽर्यादांभिकोऽयंमदाकृतिः ॥ अनुगच्छतमांयाज्यास्त्यजतैनंबृहस्पतिम् ॥३॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्यदृष्ट्वातौसदृशौपुनः ॥ विस्मयंपरमंजग्मुःकाव्योयमितिनिश्चिताः ॥ ४ ॥ सतान्वीक्ष्यसुसंभ्रांतान्गुरुर्वाक्यमुवाचह ॥ गुरुर्वोवंचयत्येवमद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥ ५ ॥ प्राप्तोवंचयितुंयुष्मान्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ माविश्वासंवचस्यस्यकुरुध्वंदैत्यसत्तमाः ॥ ६ ॥ प्राप्ताविद्यामयाशंभोर्युष्मानध्यापयामिताम् ॥ देवेभ्योविजयंनूनंकरिष्यामिनसंशयः ॥ ७ ॥ इतिश्रुत्वागुरोर्वाक्यंकाव्यरूपधरस्यते ॥ विश्वासंपरमंजग्मुःकाव्योऽयमितिनिश्चयात् ॥ ८ ॥ काव्येनबहुधातत्रबोधिताःकिलदानवाः ॥ बुबुधुर्नगुरोर्मायामोहिताःकालपर्ययात् ॥ ९ ॥

दोनोंकी समान आकृति देख अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए और उपस्थित व्यक्तिकोही शुक्राचार्य ऐसा निश्चय किया ॥ ४ ॥ तिस समय बृहस्पतिने उनको सरल स्वभावयुक्त और मायासे मोहित देखकर कहा, यही देवगुरु बृहस्पति हैं, इस समय मेरा रूप धारण करके तुमको छलनाही इनका अभिप्राय है ॥ ५ ॥ यह देवताओंका कार्य साधनेके लिये तुम्हारे छलनेको इस स्थानमें आये हैं, हे असुरप्रवरगण! तुम लोग इनके वचनमें कभी विश्वास न करना ॥ ६ ॥ मैं ने शिवके निकटसे जो विद्या प्राप्त की है तुमको वही अध्ययन कराता हूं. मैं देवताओंके सहित युद्धमें तुमको निःसंदेह विजयी करूंगा ॥ ७ ॥ तब शुक्ररूपधारी गुरुके इसप्रकार वचन सुन दैत्यगणोंने "यही शुक्राचार्य हैं" यह निश्चय करके उन्हींके वचनमें अतिशय विश्वास किया ॥ ८ ॥ जो हो उस काल दानवगुरु शुक्राचार्यने यद्यपि दानवलोगोंको

भलीभाँति समझाया था, किन्तु तोभी उन्होंने बृहस्पतिकी मायासे मोहित हो विपरीत कालकी विचित्रताके कारण वह सब कुछभी न समझे ॥ ९ ॥ तब उन्होंने स्थिर निश्चय होकर महात्मा शुक्राचार्यसे कहा, यही हमारे बुद्धिप्रद और हितनिरत गुरु हैं ॥ १० ॥ इन्हीं धार्मिक चूडामणि भार्गवने दशवर्षतक हमको उपदेश दिया है, तुम हमारे गुरु नहीं हो बरन् मायावी बोध होते हो, अतएव इस स्थानसे चले जाओ ॥ ११ ॥ मूढबुद्धि दैत्यगणोंने भार्गवसे इस प्रकार कह और वारंवार भर्त्सना कर शुक्ररूपी सुरगुरुको प्रणाम और अभिवादनपूर्वक प्रसन्न मनसे उनको ही गुरु समझकर ग्रहण किया ॥ १२ ॥ इधर शुक्राचार्यने दैत्योंको सुरगुरुका अत्यन्त अनुवर्त्ती देख और बृहस्पतिके वचनमें विश्वास करनेके कारण वंचित हुआ स्थिर कर क्रोधयुक्त हो उनको यह शापदिया कि ॥ १३ ॥ जब मेरे

एवंतेनिश्चयंकृत्वाततोभार्गवमब्रुवन् ॥ अयंगुरुर्नोधर्मात्माबुद्धिदश्चहितेरतः ॥ १० ॥ दशवर्षाणिसततमयंनःशास्तिभार्गवः ॥ गच्छत्वंकुहकोभासिनाऽस्माकंगुरुरप्युत ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वाभार्गवंमूढानिर्भर्त्स्यचपुनःपुनः ॥ जगृहुस्तंगुरुंप्रीत्याप्रणिपत्याऽभिवाद्यच ॥१२॥ काव्यस्तुतन्मयान्दृष्ट्वाचुकोपाऽथशशापच ॥ दैत्यान्विबोधितान्मत्वागुरुणाचातिवंचितान् ॥ १३ ॥ यस्मान्मयाबोधितावैगृह्णीयुर्नचमेवचः ॥ तस्मात्प्रनष्टसंज्ञावैपराभवमवाप्स्यथ ॥ ॥ १४ ॥ मदवज्ञाफलंकामंस्वल्पेकालेह्यवाप्स्यथ ॥ तदाऽस्यकपटंसर्वंपरिज्ञातंभविष्यति ॥ १५ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाऽसौजगामाऽऽशुभार्गवः क्रोधसंयुतः ॥ बृहस्पतिर्मुदंप्राप्यतस्थौतत्रसमाहितः ॥ १६ ॥ ततःशप्तान्गुरुर्ज्ञात्वादैत्यांस्तान्भार्गवेणहि ॥ जगामतरसात्यक्त्वास्वरूपंस्वंविधायच ॥ ॥ १७ ॥ गत्वोवाचतदाशक्रंकृतंकार्यंमयाध्रुवम् ॥ शप्ताःशुक्रेणतेदैत्यामयात्यक्ताःपुनःकिल ॥१८॥ निराधाराःकृतानूनंयतध्वंसुरसत्तमाः ॥ संग्रामार्थंमहाभागशापदग्धामयाकृताः ॥ १९ ॥

समझाने पर भी तुमने मेरा वचन ग्रहण नहीं किया, तब तुम संज्ञाहरण होकर पराभव को प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥ तुम लोगों ने मेरी जो अवज्ञा की है, उसका फल अल्प कालमेंही प्राप्त होगा और उस समय इन सुरगुरुका कपट भाव भलीभाँति अनुभव करसकोगे ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! इस प्रकार कहकर शुक्राचार्य क्रोधमें भरे हुए शीघ्र चले गये और बृहस्पति हृष्ट तथा स्थिर चित्त होकर उस स्थानमें कुछ काल अवस्थिति करने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर दैत्योंको भार्गवके शापसे अभिशप्त हुआ जान उन्होंने उस स्थानको त्याग किया और अपना रूप धारण पूर्वक ॥ १७ ॥ शीघ्र इन्द्रके समीप आनकर उनसे कहा, मैं ने इस समय निश्चयही कार्य साधन किया है, क्योंकि भार्गवने दैत्योंको शाप दिया है और मैं ने भी इस समय उनको परित्याग किया है ॥ १८ ॥ वह निराश्रय हुए हैं,

हे महाभाग ! सुरसत्तमगण ! मैं ने दैत्यगणोंको शापदग्ध किया है, तुम इस समय उनके संग युद्ध करनेकी चेष्टा करो ॥ १९ ॥ देवराज इन्द्र सुरगुरु बृहस्पतिजीका इस प्रकार वचन सुनकर प्रसन्न चित्त हुए और संपूर्ण देवतागणोंने संतुष्ट हो बृहस्पतिकी पूजा करी ॥ २० ॥ और पुनर्वार निर्जनमें परामर्श कर संग्रामके निमित्त उद्योग करनेलगे इसके पीछे देवता मिलित हो संग्रामको असुरगणोंके सन्मुख अग्रसर हुए ॥ २१ ॥ महाबलशाली देवताओंको उद्योगसहित संग्रामके निमित्त आता जान और गुरुदेवको अन्तर्धान हुआ जान दैत्यगण अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए ॥ २२ ॥ उसकाल परस्परमें कहने लगे. अहो ! हम उन सुरगुरुकी मायासे मोहित हुए हैं. महात्मा शुक्राचार्यने क्रुद्ध होकर हमको परित्याग किया है. इस समय उनको प्रसन्न करना हमारा एकान्त कर्त्तव्य है ॥ २३ ॥ वह मायामय भ्रातृभार्यागामी, अन्तर्मलिन, बहिःशुचि और कपटपण्डित सुरगुरु हमको निस्संदेह छल कर इस समय अन्तर्धान हुआ है ॥ २४ ॥

इतिश्रुत्वागुरोर्वाक्यंमघवासुदमातवान् ॥ जहृषुश्चसुराःसर्वेप्रतिपूज्यबृहस्पतिम् ॥ २० ॥ संग्रामायमतिंचक्रुःसंविचार्यमिथःपुनः ॥ निर्ययुर्मिलिताःसर्वे दानवाऽभिमुखाःसुराः ॥ २१ ॥ सुरान्समुद्यताञ्ज्ञात्वाकृतोद्योगान्महाबलान् ॥ अंतर्हितंगुरुंचैवबभूवुश्चिंतयाऽन्विताः ॥ २२ ॥ परस्परमथोचुस्तेमोहितास्तस्यमायया ॥ संप्रसाद्योमहात्माचयातोऽसौरुष्टमानसः ॥ २३ ॥ वंचयित्वागतःपापोगुरुःकपटपंडितः ॥ भ्रातृस्त्रीलंभनःप्रायोमलिनोंऽतर्बहिः शुचिः ॥ २४ ॥ किंकुर्मःक्वचगच्छामःकथंकार्व्यंप्रकोपितम् ॥ कुर्वीमहिसहायार्थप्रसन्नंहृष्टमानसम् ॥ २५ ॥ इतिसंचिंत्यतेसर्वेमिलिताभयकंपिताः ॥ प्रह्लादंपुरतःकृत्वाजग्मुस्तेभार्गवंपुनः ॥ २६ ॥ प्रणेमुश्चरणौतस्यमुनेर्मौनभृतस्तदा ॥ भार्गवस्तानुवाचाथरोषसंरक्तलोचनः ॥ २७ ॥ मयाप्रबोधितायूयंमोहितागुरुमायया ॥ नगृहीतंवचोयोग्यंतदायाज्याहितंशुचि ॥ २८ ॥ तदाऽवगणितश्चाऽहंभवद्भिस्तद्वशंगतैः ॥ प्राप्तंनूनंमदोन्मत्तैर्ममाऽवमानजं फलम् ॥ २९ ॥ तत्रगच्छतसद्भ्रष्टायत्रासौकपटाकृतिः ॥ वंचकःसुरकार्यार्थीनाऽहंतद्वद्धिवंचकः ॥ ३० ॥

अब हम क्या करें ? कहां जायँ ? किस प्रकार उन क्रोधित शुक्राचार्यजीको अपनी सहायताके निमित्त प्रसन्न करें ? ॥ २५ ॥ दैत्यलोग इसप्रकार चिन्ता कर सब मिलित हो. भयसे व्याकुलचित्त हुए प्रह्लादको आगे किये शुक्राचार्यजीके समीप गये ॥ २६ ॥ भार्गव शुक्राचार्यजी दैत्यगणोंको देखकर चुप रहे. जब दैत्योंने उनके चरणकमलोंमें प्रणाम किया.तब वह क्रोधितहो लाल नेत्र कर उनसे कहने लगे॥ २७॥ जब कि मेरे समझादेनेपर भी तुमने कपटगुरुकी मायासे मोहित हो, मेरा पवित्र हितकर और ज्ञानगर्भ वचन नहीं सुना ॥ २८ ॥ वरन् उनके वशवर्ती और मदसे उन्मत्त होकर मेरी अवज्ञा करी, तब तुम उसका फल अवश्य पाओगे ॥ २९ ॥ तुम इस समय कल्याणसे भ्रष्ट हुए हो, अर्थात् अपने आपही अपना सर्वनाश किया है, अब जहाँ वह कपटरूपी. सुरकार्यार्थी वंचक पण्डित है, वहीं जाओ, मुझको उसकी

समान छली मत जानो ॥ ३० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! शुक्राचार्यजीके इसप्रकार संदिग्धवचन कहनेपर प्रह्लाद उस समय उनके चरण पकडकर यह वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ प्रह्लादने कहा हे गुरुदेव भार्गव ! हम इस समय कातरभावसे आपके निकट आये हैं. हे सर्वज्ञ ! हम आपके यजमान हितकर पुत्रके समान हैं, अतएव आप हमारा परित्याग न कीजिये ॥ ३२ ॥ आपके मंत्रलाभार्थ गमन करनेपर, अवसर पाय उस नटरूपी आपका वेषधारी दुरात्मा बृहस्पतिने मधुरालापद्वारा हमको छला है ॥ ३३ ॥ आपसे अधिक क्या कहैं ! धीरचित्त महात्मा अज्ञानकृत अपराधसे कुपित नहीं होते, आप सर्वज्ञ हैं, हमारा चित्त जो आपमें ही एकान्त आसक्त है. यह आप जानते ही हैं ॥ ३४ ॥ हे महाबुद्धे ! आप तपोबलके प्रभावसे हमारे मनका भाव जानकर कोपका परित्याग कीजिये. मुनिगण कहते हैं कि, साधुगणोंका

व्यासउवाच ॥ एवंब्रुवंतंशुक्रंतुवाक्यंसंदिग्धयागिरा॥प्रन्हादस्तंतदोवाचगृहीत्वाचरणौततः ॥३१॥ प्रह्लादउवाच ॥ भार्गवाऽद्यसमायातान्याज्यानस्मांस्तथाऽऽतुरान् ॥ त्यक्तुंनार्हसिसर्वज्ञत्वद्धितांस्तनयान्हिनः ॥३२॥ गतेत्वयितुमंत्रार्थंशैलूषेणदुरात्मना ॥ त्वद्वेषमधुराऽऽलापैर्वयंतेनप्रवंचिताः ॥३३॥ अज्ञानकृतदोषेणनैवकुप्यतिशांतिमान् ॥ सर्वज्ञस्त्वंविजानासिचित्तंनःप्रवणंत्वयि ॥ ३४ ॥ ज्ञात्वानस्तपसाभावंत्यजकोपंमहामते ॥ ब्रुवंतिमुनयःसर्वेक्षणकोपाहिसाधवः ॥ ३५ ॥ जलंस्वभावतःशीतंवह्न्यातपसमागमात् ॥ भवत्युष्णंवियोगाच्चशीतत्वमनुगच्छति ॥ ३६ ॥ क्रोधश्चांडालरूपोवैत्यक्तव्यःसर्वथाबुधैः ॥ तस्माद्रोषंपरित्यज्यप्रसादंकुरुसुव्रत ॥ ३७ ॥ यदिनत्यजसिक्रोधंत्यजस्यस्मान्सुदुःखितान् ॥ त्वयात्यक्तामहाभागगमिष्यामोरसातलम् ॥ ३८ ॥ व्यासउवाच ॥ प्रह्लादस्यवचःश्रुत्वाभार्गवोज्ञानचक्षुषा ॥ विलोक्यसुमनाभूत्वातानुवाचहसन्निव ॥ ३९ ॥ नभेतव्यंनगंतव्यंदानवावारसातलम् ॥ रक्षयिष्यामिवोयाज्यान्मंत्रैरवितथैःकिल ॥४०॥ हितंसत्यंब्रवीम्यद्यशृणुध्वंतत्तुनिश्चयम् ॥ वचनंममधर्मज्ञाःश्रुतंयद्ब्रह्मणःपुरा ॥४१॥

कोप चिरस्थायी नहीं है॥ ३५॥ हे मुने ! जल स्वभावसे ही शीतल है यद्यपि अग्निके द्वारा तापसे वह उष्ण होता है,किन्तु क्षण काल पीछे ताप दूरहोनेसे फिर शीतल हो जाता है ॥ ३६ ॥ हेसुव्रत ! क्रोध चण्डालकी समान है, अतएव पण्डितगण उसको परित्याग करते हैं.आपके निकट प्रार्थना है कि,आप हमारे प्रति कोप दूर करके प्रसन्न हूजिये ॥ ३७ ॥ यदि आप क्रोधका परित्याग न करके इसप्रकार घोरदुःखाभिभूत हमलोगोंका परित्याग करेंगे, हे महाभाग ! तो आपसे परित्यक्त होकर हम रसातलमें प्रवेश करेंगे ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुक्राचार्य प्रह्लादके वचन सुन ज्ञाननेत्रसे देख प्रसन्नचित्त हुए और कुछ एक हँसकर कहने लगे ॥ ३९ ॥ तुमको अब भय करना वा रसातलमें प्रवेश करना नहीं पड़ेगा, तुम हमारे यजमान हो, मैं तुम्हारी अमोघमंत्रके प्रभावसे अवश्य रक्षा करूंगा ॥ ४० ॥ हे धर्मज्ञगण ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जो

कहा था उसीके अनुसार हमारे यह सत्य, हितकर और निश्चित वचन सुनो ॥ ४१ ॥ जो अवश्य होनेवाली बात है वह शुभ हो वा अशुभ हो, अवश्यही होगी पृथ्वीतलमें कोई भी दैवके विरुद्ध नहीं करसक्ता ॥ ४२ ॥ तुमलोग इस समय कालकी गतिसे निःसंदेह हीनबल हुए हो, अतएव इस समय तुमको देवताओंके प्रभावसे पराभूत होकर एक बार पातालतलमें गमन करना पड़ेगा ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजीने कहा है कि, जब तुम्हारा त्रैलोक्य राजभोग करनेका पर्याय काल उपस्थित हुआ था तब तुमने समृद्धिपरिपूर्ण इस त्रैलोक्यका आधिपत्य सुख भोगाहै ॥ ४४ ॥ तुमने दैवबलसे देवताओंको आक्रमण कर उनके मस्तकपर चरणधर पूर्ण दश युगपर्यन्त निर्विघ्न त्रैलोक्य सुख संभोग किया है ॥ ४५ ॥ सावर्णिक मन्वन्तरमें यह राज्य फिर तुम्हारे अधिकारमें होगा ! उसकालमें बलिनामक तुम्हारे वंशमें त्रैलोक्यविजयी प्रह्लादका पौत्र राज्यको प्राप्त

अवश्यंभाविनोभावाःप्रभवंतिशुभाऽशुभाः ॥ दैवंनचाऽन्यथाकर्तुंक्षमःकोऽपिधरातले ॥ ४२ ॥ अद्यमंदबलायूयंकालयोगादसंशयम् ॥ देवैर्जिताःसकृच्चाऽपिपातालंप्रतिपत्स्यथ ॥४३॥ प्राप्तःपर्यायकालोवइतिब्रह्माऽभ्यभाषत ॥ भुक्तंराज्यंभवद्भिश्चपूर्णंसर्वसमृद्धिमत् ॥४४॥ युगानिदशपूर्णानिदेवानाक्रम्यमूर्धनि ॥ दैवयोगाच्चयुष्माभिर्भुक्तंत्रैलोक्यमूर्जितम् ॥ ४५ ॥ सावर्णिकेमनौराज्यंपुनस्तत्तुभविष्यति ॥ पौत्रस्त्रैलोक्यविजयीराज्यंप्राप्स्यतितेबलिः ॥४६॥ यदावामनरूपेणहृतंदेवेनविष्णुना ॥ तदैवचभवत्पौत्रःप्रोक्तोदेवेनजिष्णुना ॥ ४७ ॥ हृतंयेनबलेराज्यंदेववांछार्थसिद्धये ॥ त्वमिंद्रोभविताचाग्रेस्थितेसावर्णिकेमनौ ॥ ४८ ॥ भार्गवउवाच ॥ इत्युक्तोहरिणापौत्रस्तवप्रह्लादसांप्रतम् ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांगुप्तश्चरतिभीतवत् ॥ ४९ ॥ एकदावासवेनासौबलिर्गर्दभरूपभाक् ॥ शून्येगृहेस्थितःकामंभयभीतःशतक्रतोः ॥५०॥पृष्टश्चबहुधातेनवासवेनबलिस्तदा ॥ किमर्थंगार्दभंरूपंकृतवान्दैत्यपुंगव ॥ ५१ ॥ भोक्तात्वंसर्वलोकस्यदैत्यानांचप्रशासिता ॥ "नलज्जाखररूपेणतवराक्षससत्तम ॥" तस्यतद्वचनंश्रुत्वादैत्यराजोबलिस्तदा ॥ ५२ ॥

होकर विशेष ख्यातिलाभ करेगा ॥ ४६ ॥ वैकुण्ठनाथ हरिने जब वामनरूपसे बलिका राज्य हरण किया था तब भगवान् जनार्दन विष्णुने दैत्यराज बलिसे कहा था ॥ ४७ ॥ कि मैंने देवताओंकी वांछितार्थ सिद्धिके लिये छलसे तुम्हारा राज्य हरण किया आगामी सावर्णिक मन्वन्तर उपस्थित होनेपर तुम्हीं इन्द्र होंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ हे प्रह्लाद ! भगवान् हरिके वचनानुसार तुम्हारा पुत्र बलि इस समय सब भूतोंसे अदृश्य रहकर अत्यन्त भीतकी समान अवस्थिति करता है ॥ ॥ ४९ ॥ वह इन्द्रके भयसे भीत होकर गर्दभरूप धारणपूर्वक शून्यगृहमें अवस्थित है ॥ ५० ॥ इसीसमय एक दिन देवराजने उसको देखकर अनेक प्रकार उससे गर्दभ देहधारण करनेका कारण पूँछा ॥ ५१ ॥ हे दैत्यवर ! तुम सदा सर्वलोकसुखभोग करते और तुम्हीं दैत्यगणोंके शासनकर्त्ता थे हे दैत्यसत्तम ! सब लोकोंके ऊपर

तुम्हारा अचल आधिपत्य था अतएव गर्दभरूप धारण करनेमें तुमको लज्जा उत्पन्न क्यों नहीं होती ? दैत्यराज बलिने उनका यह वचन सुनकर कहा ॥ ५२ ॥ हे शक्र ! इस विषयमें शोक वा दुःख क्या है ? जब कि महातेजा विष्णुनेभी मत्स्यकच्छपका रूप धारण किया है ॥५३॥ तो मैं जो कालवशतः खराकार धारण करके रहता हूं इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? आप ब्रह्महत्याके पीछे जिसप्रकार मानससरोवरमें कमलके मध्य संलीन होकर स्थित थे ॥ ५४ ॥ इसीप्रकार मैंभी इस समय कातर हो गर्दभरूप धारण कर स्थित रहता हूं. हे पाकशासन ! दैवाधीन पुरुषव्यक्तिको सुख दुःख क्या है ? उसके पक्षमें सभी समान हैं ॥ ५५ ॥ क्योंकि काल जब जिसप्रकार इच्छा करता है तब वह उसके प्रति निःसंदेह उसी प्रकार कार्य करता है. भार्गव शुक्राचार्य बोले हे प्रह्लाद ! बलि और देवराज आपसमें इसप्रकार वार्तालाप

प्रोवाचवचनंशक्रंकोऽत्रशोकःशतक्रतो ॥ यथाविष्णुर्महातेजामत्स्यकच्छपतांगतः ॥ ५३ ॥ तथाऽहंखररूपेणसंस्थितःकालयोगतः ॥ यथात्वं कमलेलीनःसंस्थितोब्रह्महत्यया ॥ ५४ ॥ पीडितश्चतथाद्यद्यस्थितोऽहंखररूपधृक् ॥ दैवाधीनस्यकिंदुःखंकिंसुखंपाकशासन ॥ ५५ ॥ कालःकरोतिवैनूनंयदिच्छतियथातथा ॥ भार्गवउवाच ॥ ॥ इतितौबलिदेवेशौकृत्वासंविदमुत्तमाम् ॥५६॥ प्रबोधंप्रापतुःकामंयथास्थानंचजग्मतुः ॥ इत्येतत्तेसमाख्यातमयादैववलिष्ठता ॥५७॥ दैवाऽऽधीनंजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥
॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाभार्गवस्यमहात्मनः ॥ प्रह्लादस्तुसुसंहृष्टोबभूवनृपनंदनः ॥१॥ ज्ञात्वादैवंबलिष्ठंचप्रह्लादस्तानुवाचह ॥ कृतेऽपियुद्धेनजयोभविष्यतिकदाचन ॥२॥ तदातेजयिनःप्रोचुर्दानवामदगर्विताः॥संग्रामस्तुप्रकर्तव्योदैवंकिंनविदामहे ॥ ३ ॥ निरुद्यमानांदैवंहिप्रधानमसुराऽधिप ॥ केनदृष्टंक्वादृष्टंकीदृशंकेननिर्मितम् ॥ ४ ॥

करके ॥५६॥ दोनों प्रबोधको प्राप्त हुए और दोनों यथेच्छ स्थानको चले गये. हे असुरसत्तम ! मैंने दैवकी बलवानताके विषयमें यह उपाख्यान तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥५७॥ सुर असुर और मनुष्यसहित यह संपूर्ण जगत् दैवकेही आधीन जानना चाहिये ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
दोहा—देवासुरके युद्धकी,शान्ति भई जेहि भाय॥ कहब पंचदशमें कथा,सुमिरि शिवा सुखदाय॥ व्यासजी बोले हे महाराज जन्मेजय ! प्रह्लाद महात्मा भार्गवके पूर्वोक्त वचन सुनकर आनन्दित हुए ॥ १ ॥ तब उन्होंने दैवको बलवान् जानकर दैत्योंसे कहा हे दैत्यलोगो ! देवताओंसे युद्ध करनेपर भी कभी हमारी जीत न हो ॥ २ ॥ फिर विजयी मदगर्वित दानवोंने प्रह्लादसे कहा संग्राम हमारा अवश्य कर्त्तव्य है. दैव किसको कहते हैं सो हम नहीं जानते ॥ ३ ॥ हे असुरेन्द्र ! जो उद्योगहीन अर्थात्

अकर्मण्य हैं देव उनकाही प्रधान आश्रय है देव किसप्रकार है ? उसको किसने बनाया है ? और किसने उसको कहाँ देखा है ॥ ४ ॥ जो हो हम इस समय बल अवलम्बन करके युद्धमें प्रवृत्त होंगे. हे दैत्यप्रवर ! आप अतिशय बुद्धिशाली और सर्वज्ञ हैं अतएव हमारे प्रधान नायक होकर इस समय युद्धकार्य संपादन कीजिये ॥ ५ ॥ हे राजन् ! दैत्यलोगोंके इसप्रकार कहनेपर प्रबल–वैरि–विनाशन प्रह्लादने दैत्यकुलके सेनापति होकर देवताओंको युद्धमें बुलाया ॥६॥ देवता असुरोंको युद्धमें उपस्थित देख अस्त्र शस्त्र धारण कर सुसज्जित हो उनसे संग्राम करने लगे ॥७॥ तिस काल प्रह्लाद और इन्द्रका पूर्ण सौवर्षपर्यन्त भयंकर संग्राम हुआ इस युद्धके देखनेसे मुनियोंको भी आश्चर्य उत्पन्न हुआ था॥८॥ हे राजन् ! उस उपस्थित दारुण संग्राममें शुक्राचार्यके अनुगत प्रह्लाद प्रमुख दैत्यगणोंकी जीत हुई ॥ ९ ॥ तब इन्द्र सुरगुरुके वचनानुसार सर्वदुःखविनाशिनी मुक्तिप्रदा परात्परा कल्याणदायिनी भुवनेश्वरीको मनमें स्मरण करके स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १० ॥ इन्द्रने कहा हे महामाये देवी !

तस्माद्युद्धंकरिष्यामोबलमास्थायसांप्रतम्॥भवाग्रेदैत्यवर्यत्वंसर्वज्ञोऽसिमहामते ॥५॥ इत्युक्तस्तैस्तदाराजन्प्रह्लादःप्रबलारिहा ॥ सेनानीश्चतदाभूत्वादेवान्युद्धेसमाह्वयत् ॥ ६ ॥ तेऽपितत्रासुरान्दृष्ट्वासंग्रामेसमुपस्थितान् ॥ सर्वेसंभृतसंभारादेवास्तान्समयोधयन् ॥ ७ ॥ संग्रामस्तुतदाघोरःशक्रप्रह्लादयोर्भवत् ॥ पूर्णंवर्षशतंतत्रमुनीनांविस्मयावहः ॥ ८ ॥ वर्तमानेमहायुद्धेशुक्रेणप्रतिपालिताः ॥ जयमापुस्तदादैत्याःप्रह्लादप्रमुखान्नृप ॥ ९ ॥ तदैवेंद्रोगुरोर्वाक्यात्सर्वदुःखविनाशिनीम् ॥ सस्मारमनसादेवींमुक्तिदांपरमांशिवाम् ॥ १० ॥ इंद्रउवाच ॥ जयदेविमहामायेशूलधारिणिचांबिके ॥ शंखचक्रगदापद्मखड्गहस्तेऽभयप्रदे ॥११॥ नमस्तेभुवनेशानिशक्तिदर्शननायिके॥दशतत्त्वात्मिकेमातर्महाबिंदुस्वरूपिणि ॥१२॥ महाकुंडलिनीरूपेसच्चिदानंदरूपिणि ॥ प्राणाग्निहोत्रविद्येतेनमोदीपशिखात्मिके॥ १३ ॥ पंचकोशांतरगतेपुच्छब्रह्मस्वरूपिणि ॥ आनंदकलिकेमातःसर्वोपनिषदर्चिते ॥ १४ ॥

हे शूलधारिणि अम्बिके ! आप सब विश्वको अभय देनेको शंख चक्र गदा पद्म और कृपाण धारण करतीहैं ॥ ११ ॥ हे भुवनेशानि ! आपको नमस्कार है आपही शक्तिके प्रधान प्रतिपादक दर्शनशास्त्रकी नायिका और शैव शाक्त तथा वैष्णवादि मतसे अनेकभाँति तत्वोंकी भिन्नता रहनेपरभी आप दशतत्वात्मिका हैं. हे मातः ! आपही महाविद्याबिंदुस्वरूपिणी हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥ हे मातः ! आपही आधार पद्ममें स्थित महाकुण्डलिनी हैं आपही सच्चिदानंदस्वरूपिणी हैं आपही प्राण और अग्निहोत्र यागस्वरूपिणी अर्थात् आपही उक्त दोनों यागोंकी अधिदेवता हैं मेघोंके उदयहोनेपर जिसप्रकार बिजली प्रकाश पाती है वैसेही आप हृदयाकाशमें सर्वदा अग्निके शिखाकी समान दीप्तिको प्राप्त होती हैं हे माता ! आपको नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥ हे जननि ! आपही अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय इन पंचकोषमें अवस्थित रही हैं. आपही आनन्दमयकोशमें ब्रह्मस्वरूपिणी हैं. हे माता ! आपही आनन्दकलिका और परा ब्रह्म

विद्यारूप सब उपनिषद्की परिपूजिता हैं. हे जननि ! आपको नमस्कार करता हूं ॥ १४ ॥ हे मातः ! आप हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये हम दैत्योंसे पराजित और हीन तेज हुए हैं आप हमारी रक्षा कीजिये । हे सर्वशक्तिसंपन्ने देवि ! केवल आपही इस भुवनमें आश्रयदायिनी होकर हमारा दुःख दूर करनेमें समर्थ होती हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! जो सदा आपका ध्यान करते हैं वेही प्रकृत सुखी हैं और जो आपका ध्यान नहीं करते उनका शोक और भय दूर नहीं होता. सुतरां वे केवल दुःखही भोगते हैं जो मोक्षार्थी सदा आपका ध्यान धारण करते हैं वे सज्जनगण अभिमानरहित और निःसंग होकर संसारसमुद्रका अपारपार देखते हैं इस विषयमें कुछ संदेह नहीं है ॥ १६ ॥ हे विश्वजननि देवि ! विश्वकी रक्षाके लिये आपका प्रभाव विख्यात है. कहैं क्या ? आपके प्रभावसे दुःखी पुरुषकी पीड़ा दूर होती है आपही इस संपूर्ण संसारका संहार करनेको, कालरूपिणी होकर रहती हैं. हे अम्ब ! मंदमतिमनुष्योंमें कौन आपका आचरित जना सक्ता है ! ॥ १७ ॥ सूर्य, मैं, यम, वरुण,

मातःप्रसादसुमुखीभवहीनसत्त्वांस्त्रायस्वनोजननिदैत्यपराजितान्वै ॥ त्वंदेविनःशरणदाभुवनेप्रमाणाशक्ताऽसिदुःखशमनेऽखिलवीर्ययुक्ते ॥ १५ ॥ ध्यायंतियेऽपिसुखिनोनितरांभवंतिदुःखान्वितावि गतशोकभयास्तथाऽन्ये ॥ मोक्षाऽर्थिनोविगतमानविमुक्तसंगाःसंसारवारिधिजलंप्रतरंतिसंतः ॥ १६ ॥ त्वंदेविविश्वजननिप्रथितप्रभावासंरक्षणार्थमुदिताऽर्तिहरप्रतापा ॥ संहर्तुमेतदखिलंकिलकालरूपाकोवेत्तितेऽबचरितंननुमंदबुद्धिः ॥ १७ ॥ ब्रह्माहरश्च हरिदश्वरथोहरिश्चइंद्रोयमोऽथवरुणोऽग्निसमीरणौच ॥ ज्ञातुंक्षमानमुनयोऽपिमहानुभावायस्याःप्रभावमतुलंनिगमाऽऽगमाश्च ॥ १८ ॥ धन्यास्तएवत वभक्तिपरामहांतःसंसारदुःखरहिताःसुखसिंधुमग्नाः ॥ येभक्तिभावरहितानकदापिदुःखांभोधिंजनिक्षयतरंगयुमेतरंति ॥ १९ ॥ येवीज्यमानाःसितचा मरैश्चक्रीडंतिधन्याःशिविकाधिरूढाः ॥ तैःपूजितात्वंकिलपूर्वदेहेनानोपहारैरितिचिंतयामि ॥ २० ॥ येपूज्यमानावरवारणस्थाविलासिनीवृंदविलासयु क्ताः ॥ सामंतकैश्चोपनतैर्व्रजंतिमन्येहितैस्त्वंकिलपूजिताऽसि ॥ २१ ॥

अग्नि, पवन, महानुभाव मुनिगण, आगम, निगम, अधिक क्या ! ब्रह्मा विष्णु और महादेवभी आपका अतुल प्रभाव जाननेमें समर्थ नहीं हैं. हे माता! मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥ हे उमे ! जो आपके प्रति भक्तिपरायण हैं वेही धन्य और वेही महान् हैं वे संसारके दुःखसे रहित होकर सदा सुखसागरमें मग्न रहतेहैं और जो आपके प्रति भक्तिविहीन हैं वे जन्ममृत्यु स्वरूप तरंगयुक्त दुःखसमुद्रके पार होनेमें किसीप्रकार समर्थ नहीं होते ॥ १९ ॥ हे देवि ! जो सदा श्वेत चामरसे वीज्यमान होता है और जो पालकीमें चढ़कर जाता आता है उसने निस्संदेह पूर्व जन्ममें अनेक प्रकारके उपहारसे आपकी पूजा की थी. अतएव इस जन्ममें उसके अनुरूप फल पायाहै. यही मैं विचारता हूं ॥ २० ॥ जो मनुष्यमण्डलमें सदाही पूज्य हैं, जो श्रेष्ठ हाथीपर चढ़कर गमन करते हैं, जो विलासिनीगणोंके विलास

रसमें निमग्न होकर आनंदअनुभव करते हैं, जो अधीनस्थ सामन्तगणोंसे परिवेष्टित होकर गमन करते हैं. हे देवि! मैं विचारता हूं कि, उन्हों ने पूर्वजन्ममें आपकी पूजा की थी, तिसीके फलसे इस सब सुखसंपत्तिलाभके अधिकारी हुए हैं ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! देवराज इन्द्र इसप्रकार स्तव कर रहे थे. इसी समयमें देवी सिंहपर चढी सहसा प्रगट हुई ॥ २२ ॥ उनकी चारों भुजा शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित थीं. उनके तीनों नेत्र अत्यन्त मनोहर, परिधान लाल वस्त्र और गलदेश दिव्य मालासे विभूषित था ॥ २३ ॥ देवीने प्रसन्नवदन हो देवताओंसे कहा हे देवताओ! तुम भयका परित्याग करो. इस समय मैं तुम्हारा मंगल करूंगी ॥ २४ ॥ वह दिव्य सुंदरी सिंहपर चढ़ी देवी देवताओंसे उक्त वचन कहकर जिस स्थानमें मदमत्त असुरगण स्थित थे, उसी स्थानमें चलीं गईं ॥ २५ ॥ तब प्रह्लाद इत्यादि असुरगण देवीको आगे स्थित देख भयभीत हो परस्पर कहने लगे. इस समय क्या करना चाहिये ॥ २६ ॥ यह चण्डिका देवताओंकी रक्षा करनेको इस स्थानमें आई हैं.

व्यासउवाच ॥ एवंस्तुतामघवतादेवीविश्वेश्वरीतदा ॥ प्रादुर्बभूवतरसासिंहारूढाचतुर्भुजा ॥ २२ ॥ शंखचक्रगदापद्मान्बिभ्रतीचारुलोचना ॥ रक्तांबरधरादेवीदिव्यमाल्यविभूषणा ॥ २३ ॥ तानुवाचसुरान्देवीप्रसन्नवदनागिरा ॥ भयंत्यजंतुभोदेवाःशंविधास्येकिलाऽधुना ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वासातदा देवीसिंहाऽऽरूढाऽतिसुंदरी ॥ जगामतरसातत्रयत्रदैत्यामदान्विताः ॥ २५ ॥ प्रह्लादप्रमुखाःसर्वेदृष्ट्वादेवींपुरःस्थिताम् ॥ ऊचुःपरस्परंभीताःकिंकर्तव्यमितस्तदा ॥ २६ ॥ देवंनारायणंचाऽत्रसंप्राप्ताचंडिकाकिल ॥ महिषांतकरीनूनंचंडमुंडविनाशिनी ॥ २७ ॥ निहनिष्यतिनःसर्वानंविकानाऽत्रसंशयः ॥ वक्रदृष्ट्याययापूर्वंनिहतौमधुकैटभौ ॥ २८ ॥ एवंचिंताऽऽतुरान्वीक्ष्यप्रह्लादस्तानुवाचह ॥ योद्धव्यंनाऽथगंतव्यंपलाय्यदानवोत्तमाः ॥ २९ ॥ नमुचिस्तानुवाचाऽथपलायनपरानिह ॥ हनिष्यतिजगन्मातारुषिताकिलहेतिभिः ॥ ३० ॥ तथाकुरुमहाभागयथादुःखंनजायते ॥ व्रजामोऽद्यैवपातालंतांस्तुत्वातदनुज्ञया ॥ ३१ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ स्तौमिदेवींमहामायांसृष्टिस्थित्यंतकारिणीम् ॥ सर्वेषांजननींशाक्तभक्तानामभयंकरीम् ॥ ३२ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाविष्णुभक्तस्तुप्रह्लादःपरमार्थवित् ॥ तुष्टावजगतांधात्रींकृतांजलिपुटस्तदा ॥ ३३ ॥

इसनेही महिषासुर और चण्डमुण्डको विनाश किया है ॥ २७ ॥ इसनेही वक्रदृष्टिसे पूर्वमें मधुकैटभको संहार किया था. अब वही अम्बिका हम सबका विनाश करेगी. इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥ प्रह्लादने दानवोंको इस प्रकार चिन्तातुर देखकर कहा हे दानवगण! इस समय युद्ध न करके भागनाही उचित है ॥ २९ ॥ तब नमुचिनामक दैत्य भागते हुए दानवोंसे बोला कि, तुम्हारे पलायन करनेपर यह जगन्माता हस्त धृत अस्त्रद्वारा क्या तुमको विनाश करेंगी? ॥ ३० ॥ जो हो जिससे दोनों पक्षोंकी रक्षा हो, वही करना हमारा कार्य है. हम भुवनेश्वरीकी स्तुति कर, उनकी आज्ञा ले, अभी पातालतलमें गमन करेंगे मैं ने यही स्थिर किया है ॥ ३१ ॥ तब प्रह्लादने कहा मैं सृष्टि, स्थिति, प्रलय करनेवाली सबकी जननी सर्वजनोंको अभय देनेवाली महामायाका स्तवन करता हूं ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले कि, इसप्रकार

कह परमार्थतत्वके जाननेवाले विष्णुभक्त प्रह्लाद हाथ जोड़ देवीका जगद्धात्रीका स्तवन करने लगे ॥ ३३ ॥ मालाके देखनेसे जिसप्रकार सर्पका भय होता है. इसी प्रकार जिनके आश्रयसे यह चराचर शोभा पाता है. जो इस अखिलको अधिष्ठानस्वरूप है. उन्हीं ह्रींकारबीजमूर्त्ति भुवनेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३४ ॥ हे देवि ! आपसेही स्थावर जंगमादि इस संपूर्ण विश्वकी उत्पत्ति हुई है. ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि कर्त्ता निमित्तमात्र हैं. वास्तवमें आपनेही सृष्टि इत्यादि कार्यके निमित्त उनको उत्पन्न किया है ॥ ३५ ॥ हे महामाये ! मैं आपको नमस्कार करता हूं आप सबकी जननी हैं. जब सुर और असुरगण सभी आपसे उत्पन्न हैं, तब फिर आपकी दृष्टिमें देवता और दैत्यगणोंमें भेद किसप्रकार संभवित है? ॥ ३६ ॥ जब उत्तम और अधम पुत्रमें माताकी भेदबुद्धि दिखाई नहीं देती. तो देवतालोग और हमलोगोंको भेदभावसे नहीं देखिये. यही हमारी प्रार्थना है ॥ ३७ ॥ हे देवि ! आप सब पुराणोंमें विश्वजननी कहकर कीर्त्तित हुई हैं. अतएव हे मातः ! देवतालोग

मालासर्पवदाभातियस्यांसर्वंचराचरम् ॥ सर्वाधिष्ठानरूपायैतस्यैह्रींमूर्तयेनमः ॥ ३४ ॥ त्वत्तःसर्वमिदंविश्वंस्थावरंजंगमंतथा ॥ अन्येनिमित्तमात्रास्तेकर्तारस्तवनिर्मिताः ॥ ३५ ॥ नमोदेविमहामायेसर्वेषांजननीस्मृता ॥ कोभेदस्तवदेवेषुदैत्येषुस्वकृतेषुच ॥३६॥ मातुःपुत्रेषुकोभेदोऽप्यशुभेषुशुभेषुच ॥ तथैवदेवेष्वस्मासुनकर्तव्यस्त्वयाऽधुना ॥ ३७ ॥ यादृशास्तादृशामातःसुतास्तेदानवाःकिल॥यतस्त्वंविश्वजननीपुराणेषुप्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ तेऽपिस्वार्थपरानूनंतथैववयमप्युत ॥ नांतरंदैत्यसुरयोर्भेदोऽयंमोहसंभवः ॥ ३९ ॥ धनदारादिभोगेषुवयंसक्तादिवानिशम् ॥ तथैवदेवादेवेशिकोभेदोऽसुरदेवयोः ॥ ४० ॥ तेपिकश्यपदायादावयंतत्संभवाःकिल ॥ कुतोविरोधसंभूतिर्जातामातस्तवाऽधुना ॥ ४१ ॥ नतथाविहितंमातस्त्वयिसर्वसमुद्भवे ॥ साम्यतैव त्वयास्थाप्यादेवेष्वस्मासुचैवहि ॥ ४२ ॥ गुणव्यातिकरात्सर्वेसमुत्पन्नाःसुराऽसुराः ॥ गुणान्विताभवेयुस्तेकथंदेहभृतोऽमराः ॥ ४३ ॥

जिसप्रकार आपके पुत्र हैं. हमभी उसीप्रकार हैं ॥ ३८ ॥ हे जननि ! वह जिसप्रकार स्वार्थमें तत्पर हैं. हमारा स्वार्थभी उसीप्रकार है. सुतरां दैत्य और देवताओंमें कोईभी भेद नहीं है. यदि कोई भेदबुद्धि करे तो वह भ्रान्तिमूलक है ॥ ३९ ॥ हे देवि ! धन स्त्री इत्यादि विषयभोगमें हम जिसप्रकार आसक्त हैं देवताभी इसीप्रकार हैं. हे देवेशि ! तो असुरगणोंके सहित देवताओंमें क्या भेद है ? ॥ ४० ॥ हे मातः ! वहभी महर्षि कश्यपजीके पुत्र हैं और हमभी उन्हींके आत्मज हैं. अतएव इस विषयमें आपके स्नेहका विपरीतभाव किसप्रकार होसक्ता है ॥ ४१ ॥ हे विश्वजननि ! आपमें ऐसा विरोध कहींभी दिखाई नहीं देता. इस कारण आप देवता और असुरगणोंको समान जानिये ॥४२॥ देवतागण और असुरगण सभी गुणोंके संयोगसे उत्पन्न हुए हैं. तो देवतागण देहधारी होकर किसप्रकार अधिक

गुणयुक्त होसक्ते हैं ॥ ४३ ॥ संपूर्ण देहमेंही काम, क्रोध और लोभ इत्यादिका अधिकार है. तब कौन व्यक्ति अविरोधी होसक्ता है ? ॥ ४४ ॥ मैं जानता हूं कि, आपनेही कौतुकवशतः युद्ध देखनेको हमारा परस्पर भेद कराकर यह विरोध उपस्थित किया है ॥ ४५ ॥ नहीं तो हे चामुण्डे ! यदि हमारा कलह देखनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं होती, तो हम भ्रातालोग परस्पर विरोध क्यों करते ? ॥ ४६ ॥ हे देवि ! हम धर्मकोभी जानते हैं. शतक्रतुकोभी जानते हैं. तथापि विषय संभोगकेलिये हमारा सदाही कलह होता है ॥ ४७ ॥ हे अम्बिके ! इस संपूर्ण संसारमें तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई सबका शासन कर्त्ता दिखाई नहीं देता । जो स्पृहा वान् हैं, उनका वचन प्रतिपालन करनेमें कौन पंडित समर्थ होसक्ता है? ॥ ४८ ॥ हे मातः ! किसी समयमें देवता और असुरोंने मिलकर समुद्रका मथन किया था, तब विष्णुने सुधा, रत्नबाँटनेके मिषसे देवता और असुरोंमें परस्पर भेद करादिया था ॥ ४९ ॥ हे मातः ! आपने जिनको जगद्गुरु और जगत्का पालनकर्त्ता

कामःक्रोधश्चलोभश्चसर्वदेहेषुसंस्थिताः ॥ वर्ततेसर्वदातस्मात्कोऽविरोधीभवेज्जनः ॥ ४४ ॥ त्वयामिथोविरोधोऽयंकल्पितःकिलकौतुकात् ॥ मन्यामहे विभेदेननूनंयुद्धदिदृक्षया ॥ ४५ ॥ अन्यथाखलुभ्रातॄणांविरोधःकीदृशोऽनवे ॥ त्वंचेन्नेच्छसिचामुंडेवीक्षितुंकलहंकिल ॥ ४६ ॥ जानामिधर्मंधर्मज्ञेवै भ्रिचाऽहंशतक्रतुम् ॥ तथाऽपिकलहोऽस्माकंभोगार्थंदेविसर्वदा ॥ ४७ ॥ एकःकोऽपिनशास्ताऽस्तिसंसारेत्वांविनाऽम्बिके ॥ स्पृहावतस्तुकःकर्तुंक्षमते वचनंबुधः ॥४८॥ देवाऽसुरैरयंसिंधुर्मथितःसमयेक्वचित् ॥ विष्णुनाविहितोभेदःसुधारत्नच्छलेनवै ॥४९ ॥ त्वयाऽसौकल्पितःशौरिःपालकस्त्वेजगद्गुरुः॥ तेनलक्ष्मीःस्वयंलोभाद्गृहीताऽमरसुंदरी ॥ ५० ॥ ऐरावतस्तथेंद्रेणपारिजातोऽथकामधुक् ॥ उच्चैःश्रवाःसुरैःसर्वंगृहीतंवैष्णवेच्छया ॥५१॥ अनयंतादृशं कृत्वाजातादेवास्तुसाधवः ॥ "अन्यायिनःसुरान्नूनंपश्यत्वंधर्मलक्षणम् ॥ " संस्थापिताःसुरान्नूनंविष्णुनाबहुमानिना ॥५२॥ नूनंदैत्याःपराभूवन्पश्यत्वं धर्मलक्षणम् ॥ क्वधर्मःकीदृशोधर्मःक्वकार्यंक्वचसाधुता ॥ ५३ ॥

किया है, उन्होंनेही लोभके वशीभूत हो अमरसुंदरी लक्ष्मी देवीको ग्रहण किया था ॥ ५० ॥ देवराज इन्द्रने ऐरावत, पारिजात, कामधेनु, तथा उच्चैःश्रवा को ग्रहण किया था । इसीप्रकार विष्णुकी इच्छासे अन्यान्य देवताओंने उत्तम उत्तम सामग्री ग्रहण करी थी ॥ ५१ ॥ क्या आश्चर्य है ! इस प्रकार अन्याय कार्य करनेपर भी देवता साधु हुए, वास्तवमें देवताही अन्यायकारी हैं इसमें संदेह नहीं । हे देवि ! आप इस विषयमें यथार्थ धर्म क्या है ? सो अवलोकन कीजिये. बहुमानी विष्णुने देवताओंको स्वपदमें स्थापित और दैत्योंको पराभूत किया है । हे देवि ! आप इस विषयमें धर्मका लक्षण अवलोकन कीजिये धर्म कहां है ? किस प्रकारका है ? धर्मका कार्य क्या है ? साधुता किस प्रकार है ? यह आप भली भाँति विचार करके देखिये, किसके धर्मकी रक्षा हुई है. किस की साधुता प्रकाशित हुई है, किसकी जीत वा हार होनी उचित है ? क्योंकि इन सब बातोंके विचारनेमें आप भलीभाँति समर्थ हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

हाय मीमांसकगणोंका सिद्धान्त किसके सन्मुख प्रकाश करूं? विचार करके देखनेसे यह जगत् विवादका क्षेत्र है. क्योंकि तार्किकगण युक्तिपथके पक्षपाती और वेदवादी विधिमार्गके अनुवर्त्ती हैं ॥ ५४ ॥ यह सब स्थूलबुद्धिगण इस संसारको एक जनके कर्तृत्वसे उत्पन्न और पालित स्वीकार करते हैं, तथा आपसमें विरोध करते हैं ॥ यदि इस अनन्त विस्तृत संसारमें एकही जन कर्त्ता हो तो एक कार्यमें परस्परका मतभेद और विरोध क्यों होता है? वेदमें किस कारण एकमत दिखाई नहीं देता? और सब शास्त्रोंका मतभी किस निमित्त पृथक् २ है? ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ वेदविद्गणोंके अभिप्रायका भी अनैक्य क्यों देखा जाता है? हे देवि! यह स्थावर जंगमात्मक सब जगत् स्वार्थपरायण है, इसकारणही उक्त प्रकारका मतभेद हुआ है, इसमें संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ इस संसारमें स्पृहाहीन पुरुष न है, न होगा

कथयामिचकस्याऽग्रेसिद्धंमैमांसिकंमतम् ॥ तार्किकायुक्तिवादज्ञाविधिज्ञावेदवादकाः ॥ ५४ ॥ उक्ताःसकर्तृकंविश्वंविवदंतेजडात्मकाः ॥ कर्ताभवति चेदस्मिन्संसारेविततेकिल ॥ ५५ ॥ विरोधःकीदृशस्तत्रचैककर्मणिवैमिथः ॥ वेदेनैकमतिःकस्माच्छास्त्रेष्वपितथापुनः ॥ ५६ ॥ नैकवाक्यंवचस्तेषामपिवेदविदांपुनः ॥ यतःस्वार्थपरंसर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ ५७ ॥ निःस्पृहःकोऽपिसंसारेनभवेन्नभविष्यति ॥ शशिनाऽथगुरोर्भार्याहृताज्ञात्वाबलादपि ॥ ५८ ॥ गौतमस्यतथेंद्रेणजानताधर्मनिश्चयम् ॥ गुरुणाऽनुजभार्याचभुक्तागर्भवतीबलात् ॥ ५९ ॥ शतोगर्भगतोबालःकृतश्चांधस्तथापुनः ॥ विष्णुनाचशिरश्छिन्नंराहोश्चक्रेणवैबलात् ॥ ६० ॥ अपराधंविनाकामंतदासत्त्ववतांविके ॥ पौत्रोधर्मवतांशूरःसत्यव्रतपरायणः ॥ ६१ ॥ यज्वादानपतिःशांतःसर्वज्ञःसर्वपूजकः ॥ कृत्वाऽथवामनंरूपंहरिणाछलवेदिना ॥ ६२ ॥ वंचितोऽसौबलिःसर्वंहृतंराज्यंपुराकिल ॥ तथाऽपिदेवान्धर्मस्थान्प्रवदंतिमनीषिणः ॥ ६३ ॥ वदंतिचाटुवादांश्चधर्मवादाञ्जयंगताः ॥ एवंज्ञात्वाजगन्मातर्यथेच्छसितथाकुरु ॥ ६४ ॥

देखो, चन्द्रमाने जानकर तथा सुनकरभी बलपूर्वक गुरुकी भार्याका हरण किया ॥ ५८ ॥ इन्द्रने धर्मके तत्त्वको निश्चय जानकरभी गौतमकी भार्याका हरण किया, देवगुरुने अनुजकी भार्यासे बलपूर्वक रमण किया और ज्येष्ठकी गर्भवती भार्यासे ॥ ५९ ॥ बलात्कार करके गर्भगत बालकको शाप देकर अंधा किया। अधिक क्या? सत्वगुणयुक्त विष्णुनेभी विना अपराध बलपूर्वक राहुका मस्तक काटा ॥ ६० ॥ हे अम्बिके! धार्मिकगणोंमें अग्रणी, सत्यव्रतपरायण, यज्ञशील, वदान्य, शान्त, सर्वज्ञ मेरा पौत्र बलि, जो सबके मानकी रक्षा करता था छलावलम्बी हरिने वामनरूप धारणपूर्वक ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उसको छलकर उसके संपूर्ण राज्यका हरण कर लिया. हाय! तोभी मुनिगण देवताओंको धर्मका स्थापन कर्ता कहकर व्याख्या करते हैं ॥ ६३ ॥ क्या आश्चर्य है! इस जगत्में जो

चाटुकार "बनावटी" कहते हैं, उनकीही जय और जो यथार्थधर्मवादी हैं, उनकाही क्षय होता है ॥ हे देवि ! आप जगत्‌की माता है, यह सब विचार कर जो इच्छा हो वही कीजिये ॥ ६४ ॥ सब दानवोंको अपनीही शरणागत जानो अब उनका वध वा रक्षा, जो उचित हो, सो करो. देवों ने कहा हे दानव लोगो ! तुम सब पातालको जाओ और समरजनित क्रोध छोड़कर निर्भय रहो वहां इच्छानुसार वास करते रहो तुम लोग इस समय शुभ और अशुभ प्राप्तिके कारण स्वरूपकालकी प्रतीक्षा करो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ जो निर्वेदपरायण संसारसे पृथक् और विरागी हैं उनको सर्वदा सब स्थानोंमेंही सुख विद्यमान है और जिनका मन लोभाक्रष्ट है उनको त्रैलोक्यका राज्य प्राप्त होनेपरभी सुख नहीं होता ॥ ६७ ॥ अधिक क्या सत्ययुगमेंभी लोभपरायण पुरुष फल प्राप्त होनेपरभी सुखलाभ नहीं करसके ॥६८॥ अतएव तुम लोग पृथ्वी छोड़कर पातालको जाओ तुम विगतपाप हो मेरी आज्ञा मस्तकपर धारण करके पातालतलमें गमन

शरणादानवाःसर्वेजहिवारक्षवापुनः ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वेगच्छतपातालंतत्रवासंयथेप्सितम् ॥ ६५ ॥ कुरुध्वंदानवाःसर्वेनिर्भयागतमन्यवः ॥ कालःप्रतीक्ष्योयुष्माभिःकारणंसशुभेऽशुभे ॥ ६६॥ सुनिर्वेदपराणांहिसुखंसर्वत्रसर्वदा ॥ त्रैलोक्यस्यचराज्येऽपिनसुखंलोभचेतसाम् ॥ ६७ ॥ कृतेऽपिनसुखंपूर्णंसस्पृहाणांफलैरपि ॥ तस्मात्त्यक्त्वामहीमेतांप्रयांत्वद्यमहीतलम् ॥६८॥ ममाऽऽज्ञांपुरतःकृत्वासर्वेविगतकल्मषाः ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदेव्यास्तथेत्युक्त्वारसातलम् ॥ ६९ ॥ प्रणम्यदानवाःसर्वेगताःशक्त्याऽभिरक्षिताः ॥ अंतर्दधेततोदेवीदेवाःस्वभुवनंगताः ॥ ७० ॥ त्यक्त्वावैरंस्थिताःसर्वेतदादेवदानवाः ॥ एतदाख्यानमखिलंयःशृणोतिवदत्यथ ॥ ७१ ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तःप्रयातिपदमुत्तमम् ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेचतुर्थस्कंधेपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ भृगुशापान्मुनिश्रेष्ठहरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवताराःकथंजाताःकस्मिन्मन्वंतरेविभो॥१॥विस्तराद्वदधर्मज्ञअवतारकथांहरेः ॥ पापनाशकरींब्रह्मञ्छ्रुतांसर्वसुखावहाम् ॥ २ ॥

करो. व्यासजी बोले दानवोंने देवीका यह वचन सुनकर शिरोधारणकर ॥ ६९ ॥ और उनको प्रणाम कर तथा उनके द्वारा प्रतिपालित हो पातालतलमें चले गये इसके उपरान्त देवी अन्तर्धान होगई और देवता अपने अपने भवनको चले गये ॥ ७० ॥ इस प्रकार देवता और दानव लोग आपसका वैरभाव छोड़कर वास करने लगे हे महाराज ! जो कोई इस आख्यानको पढ़ते हैं वा सुनते हैं ॥ ७१ ॥ वे सब प्रकारके दुःखोंसे छूटकर भगवान्‌के परमपदको पाते हैं ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ जन्मेजय बोले हे विभो ! भृगुशापके कारण विचित्रकर्मा हरि किस मन्वन्तरमें किस अवतारमें किस प्रकार अवतीर्ण हुए थे ? ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ ! आप पापनाशिनी सर्वसुखदायिनी और कल्याणविधायिनी उन्हीं हरिके अवतारकी कथाका

विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे नरेन्द्र! जिस २ मन्वन्तर और जिस जिस युगमें भगवान् अवतीर्ण हुए थे, वह सब वर्णन करता हूं सुनो ॥ ३॥ भगवान् नारायणने जो जो आकार धारण करके जो जो कार्यसाधन किये थे. इस सम्भव में संक्षेपसे वे सब तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, श्रवण करो ॥ ४ ॥ चाक्षुषमन्वन्तरमें धर्मका अवतार प्रकाशित हुआ. तिसमें नरनारायणनामक दो धर्मके पुत्र अवतीर्ण होकर पृथ्वीतलमें विख्यात हुए थे ॥५॥ फिर वर्त्तमान वैवस्वत मनुके अधिकार समय दूसरे युगमें भगवान् हरि अत्रिऋषिके पुत्र होकर दत्तात्रेयनामसे अवतीर्ण हुए थे ॥ ६ ॥ अत्रिकी अनसूयाने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, इन तीन प्रधान देवताओंको संतानरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा की. उसीके अनुसार उन्होंने ऋषिपत्नीकी कामना पूर्ण करनेको उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया ॥ ७ ॥ अनसूया सती स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी. इस कारण केवल उसके प्रार्थना करते ही ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरने उसके पुत्र होना स्वीकार किया ॥ ८ ॥ तिनमें ब्रह्मा सोमरूपसे,

॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिअवतारान्हरेर्यथा ॥ यस्मिन्मन्वंतरेजातायुगेयस्मिन्नराधिप ॥ ३ ॥ येनरूपेणयत्कार्यंकृतंनारायणेनवै ॥ तत्सर्वंनृपवक्ष्यामिसंक्षेपेणतवाऽधुना ॥ ४ ॥ धर्मस्यैवाऽवतारोऽभूच्चाक्षुषेमनुसंभवे ॥ नरनारायणौधर्मपुत्रौख्यातौमहीतले ॥ ५ ॥ अथवैवस्वताख्येऽस्मिन्द्वितीयेतुयुगेपुनः ॥ दत्तात्रेयोऽवतारोऽत्रेःपुत्रत्वमगमद्धरिः ॥ ६ ॥ ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रस्त्रयोऽमीदेवसत्तमाः ॥ पुत्रत्वमगमन्देवास्तस्याऽत्रेर्भार्ययावृताः ॥ ७ ॥ अनसूयाऽत्रिपत्नीचसतीनामुत्तमासती ॥ ययासंप्रार्थितादेवाःपुत्रत्वमगमंस्त्रयः ॥ ८ ॥ ब्रह्माऽभूत्सोमरूपस्तुदत्तात्रेयोहरिःस्वयम् ॥ दुर्वासारुद्ररूपोऽसौपुत्रत्वंतेप्रपेदिरे ॥ ९ ॥ नृसिंहस्याऽवतारस्तुदेवकार्यार्थसिद्धये ॥ चतुर्थेतुयुगेजातोद्विधारूपोमनोहरः ॥ ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपोःसम्यग्वधायभगवान्हरिः ॥ चक्रेरूपंनारसिंहंदेवानांविस्मयप्रदम् ॥ ११ ॥ बलेर्नियमनार्थायश्रेष्ठेत्रेतायुगेतथा ॥ चकाररूपंभगवान्वामनंकश्यपान्मुनेः ॥ १२ ॥ छलयित्वामखेभूपंराज्यंतस्यजहारह ॥ पातालेस्थापयामासबलिंवामनरूपधृक् ॥ १३ ॥ युगेचैकोनविंशेऽथत्रेताख्ये भगवान्हरिः ॥ जमदग्निसुतोजातोरामोनाममहाबलः ॥ १४ ॥ क्षत्रियांतकरःश्रीमान्सत्यवादीजितेंद्रियः ॥ दत्तवान्मेदिनींकृत्स्नांकश्यपायमहात्मने ॥१५॥

स्वयं हरि दत्तात्रेयरूपसे और रुद्रदेव दुर्वासारूपसे प्रादुर्भूत हुए थे ॥ ९ ॥ चौथे युगमें भगवान् देवताओंका कार्य साधनके निमित्त मनोहर द्विरूप अर्थात् मृगेन्द्रमुख और अवशिष्टांग नराकार धारण करके नृसिंहरूपसे अवतीर्ण हुए थे ॥ १० ॥ वे हिरण्यकशिपुको मारनेकेलियेही देवतागणोंको भी विस्मित कर नृसिंहमूर्तिमें अवतीर्ण हुए ॥ ११ ॥ भगवान् हरिने बलिका प्रभाव प्रशमित करनेके युगश्रेष्ठ त्रेतामें महर्षि कश्यपके और सपुत्र होकर वामनरूप धारण किया था ॥ १२ ॥ उन्हीं वामनरूपधारी हरिने यज्ञस्थलमें छलपूर्वक बलिका राज्य ग्रहण करके उसको पातालमें स्थापित किया था ॥ १३ ॥ फिर त्रेतानामक एकोनविंश युगमें भगवान् हरि जमदग्नि ऋषिके महाबल पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण कर परशुराम नामसे विख्यात हुए ॥ १४ ॥ वे रूपवान् सत्यवादी

और जितेन्द्रिय थे ! उनसेही क्षत्रियकुल निर्मूल हुआ और उन्होंनेही महात्मा कश्यप ऋषिको संपूर्ण पृथ्वीका राज्य समर्पण किया था ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र ! उन्हीं अद्भुतकर्मा हरिका परशुराम नामक पापविनाशक अवतार है ॥ १६ ॥ अनन्तर भगवान् हरि त्रेतायुगके समय रघुकुलमें रामनामसे दशरथके पुत्ररूपमें प्रादुर्भूत हुए थे ॥ १७ ॥ अनन्तर अष्टाविंशतिद्वापरयुगमें नरनारायणके अंशसे महाबलअर्जुन और कृष्णरूपसे पृथ्वीतलमें जन्म ग्रहण किया इन कृष्ण और अर्जुनने भूमिके भारका नाश करनेकेलिये जन्म ग्रहण करके ॥ १८ ॥ कुरुक्षेत्रमें अत्यन्तदारुण संग्राम उपस्थित किया । हे राजन् ! इसप्रकार युगयुगमें ॥ १९ ॥ हरिकी प्रकृतिके अनुरूप अनेक अवतार होते हैं. हे राजेन्द्र ! यह अखिल तीनों जगत प्रकृतिके वशमें अवस्थित रहते हैं ॥ २० ॥ यह प्रकृति जिसप्रकार

योवैपरशुरामाख्योहरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारस्तुराजेंद्रकथितःपापनाशनः ॥ १६ ॥ त्रेतायुगेरघोर्वंशेरामोदशरथात्मजः ॥ नरनारायणांशौद्वौजातौभुवि महाबलौ ॥ १७ ॥ अष्टाविंशेयुगेशस्तौद्वापरेऽर्जुनशौरिणौ ॥ धराभाराऽवतारार्थंजातौकृष्णाऽर्जुनौभुवि ॥ १८ ॥ कृतवंतौमहायुद्धंकुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम् ॥ एवंयुगेयुगेराजन्नवताराहरेःकिल ॥ १९ ॥ भवंतिबहवःकामंप्रकृतेरनुरूपतः ॥ प्रकृतेरखिलंसर्ववशमेतज्जगत्त्रयम् ॥ २० ॥ यथेच्छतितथैवेयंभ्रामयत्यनिशंजगत् ॥ पुरुषस्यप्रियार्थंसारचयत्यखिलंजगत् ॥ २१ ॥ सृष्ट्वापुराहिभगवाञ्जगदेतच्चराचरम् ॥ सर्वादिःसर्वगश्चाऽसौदुर्ज्ञेयःपरमोऽव्ययः ॥ २२ ॥ निरालंबोनिराकारोनिःस्पृहश्चपरात्परः ॥ उपाधितस्त्रिधाभातियस्याःसाप्रकृतिःपरा ॥ २३ ॥ उत्पत्तिकालयोगात्साभिन्नाभातिशिवातदा ॥ साविश्वंकुरुतेकामंसापालयतिकामदा ॥ २४ ॥ कल्पांतेसंहरत्येवत्रिरूपाविश्वमोहिनी ॥ तयायुक्तोऽसृजद्ब्रह्माविष्णुःपातितयाऽन्वितः ॥ २५ ॥ रुद्रःसंहरतेकामंतयासंमिलितःशिवः ॥ साचैवोत्पाद्यकाकुत्स्थंपुरावैनृपसत्तमम् ॥ २६ ॥

इच्छा करती है. उसीप्रकार जगत्को निरंतर भ्रमण कराती है प्रकृतिपुरुषका प्रिय साधन करनेके लियेही निरन्तर इस अखिलजगत्की रचना करती है ॥ २१ ॥ जिस मायाकी उपाधिसे परात्पर, सर्वादि, सर्वगत, दुर्ज्ञेय, परम, अव्यय, निरवलम्ब निराकार निस्पृह भगवान् इस चराचर जगत्की सृष्टि करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वररूपसे अथवा सात्विक, राजस और तामस रूपसे प्रतिभात हुए हैं. उस मायाकोही परमाप्रकृति जानना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥ वह शिवा प्रकृति,उत्पत्ति और कालयोगसे भिन्न भिन्न रूपमें प्रतिभात होती है. वह त्रिरूपा विश्वमोहिनीही विश्वकी सृष्टि और पालनकरतीं हैं ॥ २४ ॥ और कल्पान्तमें संहार करतीं हैं. हे राजन् ! इस प्रकृतिके सहित संयुक्त होनेसेही ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु पालन ॥ २५ ॥ और कल्याणमय महादेव संहार कार्य साधन करते हैं. उन्होंनेही पूर्वकालमें नृपसत्तम काकुत्स्थके उत्पन्न करके ॥ २६ ॥

दानवगणोंकी जयको किसी स्थानमें स्थापित किया था. हे महाराज! इसप्रकार प्राणिगण इस संसारमें विधिनियमसे आबद्ध होकर कभी सुखी और कभी दुःखी होकर विचरण करते हैं ॥ २७ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥

दोहा—सुरललनाको गमन जिमि, नारायणके गेह । भयो सप्तदशमें सकल, वर्णहिं सहित सनेह ॥ जन्मेजयने कहा हे मुनिवर! आपने कहा है कि, नरनारायणके आश्रममें स्वर्गकी अप्सराओंने कामातुर होकर शान्तचित्त एकमात्र नारायणकीही कामना की थी ॥ १ ॥ उस समय नारायण मुनि उनको शाप देनेको उद्यत हुए तब उनके भ्राता नरऋषिने उनको निवारण किया था ॥ २ ॥ इस समय पूँछता हूं इसप्रकार संकटका समय उपस्थित होनेपर नारायण मुनिने क्या किया था ? अमरनाथ इन्द्रने जिन

कुत्रचित्स्थापयामासदानवानांजयायच ॥ एवमस्मिंश्चसंसारेसुखदुःखान्विताःकिल ॥ भवंतिप्राणिनःसर्वेविधितंत्रनियंत्रिताः ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ ॥ वारांगनास्त्वयाख्यातानरनारायणाऽऽश्रमे ॥ एकंनारायणंशांतंकामयानाःस्मरातुराः ॥ १ ॥ शप्तुकामस्तदाजातोमुनिर्नारायणश्चताः ॥ निवारितोनरेणाऽथभ्रात्राधर्मविदानृप ॥ २ ॥ किंकृतंमुनिनातेनव्यसनेसमुपस्थिते ॥ ताभिःसंकल्पितेनाऽर्थकामार्थाभिर्भृशंमुने ॥ ३ ॥ शक्रेणोत्पादिताभिश्चबहुप्रार्थनयापुनः ॥ याचितेनविवाहार्थंकिंकृतंतेनजिष्णुना ॥ ४ ॥ इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामिचरितंतस्यमोक्षदम् ॥ नारायणस्यमेब्रूहिविस्तरेणपितामह ॥५॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामियथातस्यमहात्मनः ॥ धर्मपुत्रस्यधर्मज्ञविस्तरेणवदामिते ॥ ६ ॥ शप्तुकामस्तुसंदृष्टोनरेणाऽथयदाहरिः ॥ वारितोऽसौसमाश्वास्यमुनिर्नारायणस्तदा ॥ ७ ॥ शांतकोपस्तदोवाचतास्तपस्वीमहामुनिः ॥ स्मितपूर्वमिदंवाक्यंमधुरंधर्मनंदनः ॥८॥ अस्मिञ्जन्मनिचार्वंग्यःकृतसंकल्पवानहम् ॥ आवाभ्यांचनकर्तव्यःसर्वथादारसंग्रहः ॥९॥

सब कामाभिलाषी सुरवाराङ्गनाओंको भेजा था ॥ ३ ॥ उनके अनेकबार परिणय प्रार्थना करनेपर उन विष्णु नारायणऋषिने क्या किया ? ॥ ४ ॥ हे पितामह ! उन नारायणके ये मोक्षप्रद संपूर्ण पवित्र चरित्र श्रवण करनेकी हमारी अत्यन्त वासना उत्पन्न हुई है. आप उनको विस्तारसहित वर्णन करके हमारी अभिलाषा पूर्ण कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! उन महात्मा धर्मपुत्रके आचरणोंका मैं तुम्हारे निकट विस्तारसहित वर्णन करता हूं तुम सुनो ॥ ६ ॥ नारायण हरिने जब शाप देनेकी इच्छाकी, तब नरऋषिने यह देख उनको सांत्वना शान्तिपूर्वक निवारण किया ॥ ७ ॥ तब महामुनि तपोधन धर्मनन्दनने अपना क्रोध भाव छोड़ कुछेक हँसकर उनसे मधुर वचनद्वारा कहा ॥ ८ ॥ हे सब सुन्दरियो ! इस जन्ममें हमने तपश्चरणका संकल्प किया है. सुतरां इस अवस्थामें हमको स्त्रीग्रहण करना किसी

प्रकार उचित नहीं है ॥ ९ ॥ इसकारण तुम हमपर कृपा करके स्वर्गको जाओ. देखो जो धर्मज्ञ हैं, वह कभी दूसरेका व्रतभंग करनेकी अभिलाषा नहीं करते ॥ १० ॥ हे सुलोचनागणो! शृंगाररसमें रतिही स्थायीभावसे कही गई है, हममें इस समय उसका अभाव है, अतएव हम किसप्रकार उस संबंधकी संयोजना कर सक्ते हैं? ॥ ११ ॥ कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती यह स्थिर निश्चय है, कवियोंने शास्त्रमें रसकोही स्थायीभाव कहा है ॥ १२ ॥ जो हो, हमारे अंग प्रत्यङ्ग सब निश्च यही सुशोभन हैं, मैंही पृथ्वीतलमें धन्य और सौभाग्यवान् हूं नहीं तो मैं तुम्हारा अकृत्रिमप्रणयास्पद क्यों होता! ॥ १३ ॥ तुम सौभाग्यवती हो. इसकारण कृपा करके हमारे व्रतकी रक्षा करो. मेरी यही प्रार्थना है कि, जन्मान्तरमें तुम्हारा पति हूं ॥ १४ ॥ हे विशालाक्षी सब सुंदरीगणो? अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें देवताओंकी कार्य

तस्माद्गच्छंतुत्रिदिवंकृपांकृत्वाममोपरि ॥ धर्मज्ञानप्रकुर्वंतिव्रतभंगंपरस्यवै ॥ १० ॥ शृंगारेऽस्मिन्रसेनूनंस्थायीभावोरतिःस्मृतः ॥ कथंकरोमि संबंधंतदभावेसुलोचनाः ॥ ११ ॥ कारणेनविनाकार्यंनभवेदितिनिश्चयः ॥ कविभिःकथितंशास्त्रेस्थायीभावोरसःकिल ॥ १२ ॥ धन्यःसुचारुसर्वांगःस भाग्योऽहंधरातले ॥ प्रीतिपात्रंयतोजातोभवतीनामकृत्रिमम् ॥ १३ ॥ भवतीभिःकृपांकृत्वारक्षणीयंव्रतंमम ॥ भविष्यामिमहाभागाःपतिरप्यन्यजन्म नि ॥ १४ ॥ अष्टाविंशेविशालाक्ष्योद्वापरेऽस्मिन्धरातले ॥ देवानांकार्यसिद्ध्यर्थंप्रभविष्यामिसर्वथा ॥ १५ ॥ तदाभवत्योमद्दाराःप्राप्यजन्मपृथक्पृथ क् ॥ भूपतीनांसुताभूत्वापत्नीभावंगमिष्यथ ॥ १६ ॥ इत्याश्वास्यहरिस्तास्तुप्रतिश्रुत्यपरिग्रहम् ॥ व्यसर्जयत्सभगवाञ्जग्मुश्चविगतज्वराः ॥ १७ ॥ एवं विसर्जितास्तेनगताःस्वर्गंतदांगनाः ॥ शक्रायकथयामासुःकारणंसकलंपुनः ॥ १८ ॥ आश्रुत्यमघवांस्ताभ्योवृत्तांतंतस्यविस्तरात् ॥ तुष्टावतंमहात्मा नंनारीर्दृष्ट्वातथोर्वशीः ॥ १९ ॥

सिद्धिके निमित्त मैं पृथ्वीतलमें निःसंदेह अवतीर्ण हूंगा ॥ १५ ॥ तिस समय तुम भी सब पृथ्वीतलमें राजकन्यारूपसे पृथक् पृथक् जन्म ग्रहण करके हमारे पत्नीभावको प्राप्त होंगी ॥ १६ ॥ नारायणने इसप्रकार भरोसा दे, विवाह करना स्वीकार कर उनको विदा किया ॥ १७ ॥ वे भी मनकी उत्कंठा छोड़कर सुरपुरमें चलीं गईं और इन्द्रके निकट जायकर आदिसे अंततक सब वृत्तान्त उन्होंने कहा ॥ १८ ॥ सुरपति इन्द्र सुरांगनागणोंके मुखसे उन दोनों ऋषियोंका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनकर और नारायण ऋषिके ऊरुसे उत्पन्न हुई उर्वशी इत्यादि सुंदरियोंको देखकर महात्मा नारायणके गुणकीर्त्तन करने लगे ॥ १९ ॥

इन्द्रने कहा–अहो! मुनिकी क्या आश्चर्य धैर्य शक्ति है! क्या चमत्कारी तपका प्रभाव है! अहो! उन्होंने तपोबलसे उर्वशी इत्यादि इन सब अनुपम सुंदरीगणोंको अपने ऊरु देशसे उत्पन्न किया है ॥ २० ॥ सुरराज इस प्रकार उनके गुणकीर्त्तन करके निरुद्वेग हुए, इधर धर्मात्मा नारायणभी अपनी तपस्यामें निरत हुए ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र! यह मैंने तुमसे महामुनि नारायणका अद्भुत संपूर्ण वृत्तान्त सम्यक्प्रकार वर्णन किया ॥ २२ ॥ हे भरतकुलभूषण! वही नर नारायण भृगु शापके कारण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये कृष्ण और अर्जुन नामक वीरस्वरूपमें अवतीर्ण हुए थे ॥ २३ ॥ राजाने कहा हे मानद! हे मुने! इस समय कृष्णावतारके चरित्र विस्तारसहित कहकर मेरे मनका संदेह दूर कीजिये ॥ २४॥ हे मुनिवर! महाबल हरि और अनन्तने जिनका

॥ इंद्रउवाच ॥ अहोधैर्यंमुनेःकामंतथैवचतपोबलम् ॥ येनोर्वश्यःस्वतपसाताद्दग्रूपाःप्रकल्पिताः ॥ २० ॥ इतिस्तुत्वाप्रसन्नात्माबभूवसुरराट्ततः ॥ नारायणोऽपिधर्मात्मातपस्याभिरतोऽभवत् ॥ २१ ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातंमुनेर्वृत्तांतमद्भुतम् ॥ नारायणस्यसकलंनरस्यचमहामुने ॥२२॥ तौहिकृष्णाऽर्जुनौवीरौभूभारहरणायच ॥ जातौतौभरतश्रेष्ठभृगोःशापवशादिह ॥२३॥ राजोवाच ॥ कृष्णाऽवतारचरितंविस्तरेणवदस्वमे ॥ संदेहोममचित्तेऽस्ति तंनिवारयमानद ॥२४॥ ययोःपुत्रत्वमापन्नौहर्यनंतौमहाबलौ ॥ देवकीवसुदेवौतौदुःखभाजौकथंमुने ॥ २५ ॥ कंसेननिगडेबद्धौपीडितौबहुवत्सरान् ॥ ययोःपुत्रोहरिःसाक्षात्तपसातोषितोऽभवत् ॥ २६ ॥ जातोऽसौमथुरायांतुगोकुलेसकथंगतः ॥ कंसंहत्वाद्वारवत्यांनिवासंकृतवान्कथम् ॥ २७ ॥ पित्रादिसेवितंदेशंसमृद्धंपावनंकिल ॥ त्यक्त्वादेशांतरेऽनार्येगतवान्सकथंहरिः ॥ २८ ॥ कुलंचद्विजशापेनकथमुत्सादितंहरेः ॥ भाराऽवतारणंकृत्वावासुदेवःसनातनः ॥ २९ ॥

पुत्रत्व स्वीकार किया था, वे वसुदेव और देवकी दुःखके भाजन क्यों हुए ॥ २५ ॥ तपस्यासे संतुष्ट होकर साक्षात् भगवान् जनार्दन जिनके पुत्र हुए थे, वे बहुत काल पर्यन्त कंसके कारागारमें निगडबद्ध क्यों रहे? इसका क्या तात्पर्य है ॥ २६ ॥ कृष्ण मथुरामें जन्म लेकर गोकुलमें क्यों गये और कंसको मारकर किसकारण समुद्र मध्यवर्तिनी द्वारावती नगरीमें वास किया? ॥ २७ ॥ उनके माता पिता और आत्मीयवर्ग समृद्धिसंपन्न जिस समृद्धिसंपन्न देशमें वास करते थे, उसका परित्याग करके दूसरे जघन्य देशान्तमें वास करनेका क्या कारण है? ॥ २८ ॥ किस कारण ब्राह्मणके शापसे यदुपतिका निज–कुलक्षय हुआ? किसप्रकार सनातन वासुदेव पृथ्वीका भार उतार ॥ २९ ॥

देहपरित्यागपूर्वक स्वर्गमें गये ? पापिष्ठ लोगोंके भारसे पृथ्वी व्याकुल हुई थी ॥ ३० ॥ वे पापीगण ! अमितकर्मा कृष्ण और अर्जुनके हाथसे मारेगये थे किन्तु जिन्होंने हरिकी पत्नियोंको लूटा था उन दुष्टोंको न मारनेका क्या तात्पर्य है ? ॥ ३१ ॥ भीष्म, द्रोण, कर्ण, नरपति बाह्लीक, विराट्, विकर्ण, धृष्टद्युम्न ॥ ३२ ॥ राजा सोमदत्त इत्यादि प्रधान प्रधान पुरुषोंको मारकर भूमिका भार हरण किया गया, किन्तु तस्करलोगोंको मारकर उनका भार हरण क्यों न हुआ ? ॥ ३३ ॥ पतिव्रता कृष्णकी पत्नियोंने किसकारण अंतमें दुःख पाया ? इस विषयको जानकर मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हुआ है ॥ ३४ ॥ धर्मात्मा वसुदेवने पुत्रके दुःखसे तापित होकर किस निमित्त प्राणपरित्याग किया और किस कारण उनको अपमृत्यु हुई ॥ ३५॥

देहंमुमोचतरसाजगामचदिवंहरिः ॥ पापिष्ठानांचभारेणव्याकुलाऽभूच्चमेदिनी ॥ ३० ॥ तेहतावासुदेवेनपार्थेनामितकर्मणा ॥ लुंठितार्यैर्हरेः पत्न्यस्तेकथंननिपातिताः ॥ ३१ ॥ भीष्मोद्रोणस्तथाकर्णोबाह्लीकोप्यथपार्थिवः ॥ वैराटोऽथविकर्णश्चधृष्टद्युम्नश्चपार्थिवः ॥ ३२ ॥ सोमदत्तादयःसर्वेनिहताःसमरेनृप ॥ तेषामुत्तारितोभारश्चौराणांनहृतःकथम् ॥३३॥ कृष्णपत्न्यःकथंदुःखंप्राप्ताःप्रांतेपतिव्रताः ॥ संदेहोऽयंमुनिश्रेष्ठचित्तेमेपरिवर्तते ॥३४॥ वसुदेवस्तुधर्मात्मापुत्रदुःखेनतापितः॥त्यक्तवान्सकथंप्राणानपमृत्युंजगामह ॥३५॥ पांडवाधर्मसंयुक्ताःकृष्णेचनिरताःसदा ॥ तेकथंदुःखभोक्तारोह्यभवन्मुनिसत्तम ॥ ३६ ॥ द्रौपदीचमहाभागाकथंदुःखस्यभागिनी॥वेदीमध्याच्चसंजातालक्ष्म्यंशसंभवाकिल ॥३७॥ सभायांचसमानीतारजोदोपसमन्विता ॥ बालादुःशासनेनाऽथकेशग्रहणकर्शिता ॥३८॥ पीडितासिंधुराज्ञाऽथवनमध्यगतासती ॥ तथैवकीचकेनाऽपिपीडितारुदतीभृशम् ॥३९॥ पुत्राःपंचैवतस्यास्तुनिहताद्रौणिनागृहे॥सुभद्रायाःसुतोयुद्धेबालएवनिपातितः ॥ ४० ॥ तथाचदेवकीपुत्राःषट्कंसेननिषूदिताः ॥ समर्थेनाऽपिहरिणादैवंनकृतमन्यथा ॥ ४१ ॥

हेमुनिसत्तम ! पाण्डवगण कृष्णनिरत और धर्मज्ञ थे तब उनके इतना दुःख भोगनेका क्या कारण है ? ॥ ३६ ॥ जो द्रौपदी लक्ष्मीके अंशसे संभूत और यज्ञकी वेदीसे उत्पन्न हुई थी, उसने किस कारण इतना दुःख भोगा ? ॥ ३७॥ उस बालाके रजस्वला होनेपरभी दुःशासन उसके केश पकडकर सभास्थलमें क्यों लाया ? ॥ ३८॥ और किसकारण वनवास कालमें सिंधुराज जयद्रथने उसको अत्यन्त मर्मपीड़ा दी थी ? उस भामिनी पाण्डवगेहिनीके रोदन करनेपरभी किसकारण कीचकने उसको उत्पीड़न और अपमानित किया था ? ॥ ३९॥ किसकारण उसके गृह-स्थित पाँचों पुत्रोंको अश्वत्थामाने मारा था? सुभद्राके बालक पुत्रने युद्धस्थलमें प्राणपरित्याग किया, इसका क्या कारण है ? ॥ ४० ॥ कंसराजने किसकारण देवकीके छे बालकोंको मारा था ? किसनिमित्त भगवान् हरिने दैवके अन्यथा करनेमें समर्थ होकर भी उसको

न किया ? ॥ ४१ ॥ क्या आश्चर्य है ! यादवगणोंके प्रति ब्रह्मशाप होकर प्रभासमें उनका निधन, एकबार हो यदुकुलका ध्वंस और उनकी पत्नियोंका लुटना इन सब भारी विषयोंमें भी क्या उन्होंने देवकी उपेक्षा करी थी ? ॥ ४२ ॥ यदि वे सबके ईश्वर और स्वयं नारायण थे तो उन्होंने सर्वदा उग्रसेनके प्रति दासकी समान व्यवहार क्यों किया ? ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! उन नारायण मुनिके प्रति यह संदेह होता है कि, उनका व्यवहार निरंतरही साधारण जीवके समान था ॥ ४४ ॥ उनके हर्ष शोकादि सब भाव किस कारण साधारण मनुष्योंके समान थे ! यदि वह नारायण हरि परमेश्वर थे ! तो क्यों उनका भाव ऐश्वरिक न होकर साधारण जन्तुकी समान हुआ था ॥ ४५ ॥ अतएव लोकातीत प्रभाव हरिने पृथ्वीतलमें जो जो कर्म किये थे, आप वे सब और उनकी दिव्य लीलाभी विस्तार सहित कहिये ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम ! आयुके क्षय होनेपर ही जीवका जीवन नष्ट होता है तो अत्यन्त कष्ट स्वीकार करके दैत्योंके मारनेमें ईश्वर हरिका क्या ऐश्वर्य प्रकाशित हुआ !

यादवानांतथाशापःप्रभासेनिधनंपुनः ॥ कुलक्षयस्तथातीव्रस्तत्पत्नीनांचलुंठनम् ॥ ४२ ॥ विष्णुनाचेश्वरेणापिसाक्षान्नारायणेनच ॥ उग्रसेनस्यसेवावै दासवत्सततंकृता ॥ ४३ ॥ संदेहोऽयंमहाभागतत्रनारायणेमुनौ ॥ सर्वजंतुसमानत्वंव्यवहारेनिरंतरम् ॥ ४४ ॥ हर्षशोकादयोभावाःसर्वेषांसदृशाः कथम् ॥ ईश्वरस्यहरेर्जाताकथमप्यन्यथागतिः ॥ ४५ ॥ तस्माद्विस्तरतोब्रूहिकृष्णस्यचरितंमहत् ॥ अलौकिकेनहरिणाकृतंकर्ममहीतले ॥ ४६ ॥ हताआयुःक्षयेदैत्याःक्लेशेनमहतापुनः ॥ कैश्वर्यशक्तिःप्रथिताहरिणामुनिसत्तम ॥ ४७ ॥ रुक्मिणीहरणेनूनंगृहीत्वाऽथपलायनम् ॥ कृतंहिवासुदेवे नचौरवच्चरितंतदा ॥ ४८ ॥ मथुरामंडलंत्यक्त्वासमृद्धंकुलसंमतम् ॥ जरासंधभयात्तेनद्वारकागमनंकृतम् ॥ ४९ ॥ तदाकेनाऽपिनज्ञातोभगवान्हरिरीश्वरः ॥ किंचित्प्रब्रूहिमेब्रह्मन्कारणंव्रजगोपनम् ॥ ५० ॥ एतेचान्येचबहवःसंदेहावासवीसुत ॥ नाशयाऽद्यमहाभागसर्वज्ञोऽसिद्विजोत्तम ॥ ५१ ॥ गोप्यस्तथैकःसंदेहोहृदयान्ननिवर्तते ॥ पांचाल्याःपंचभर्तृत्वंलोकेकिंनजुगुप्सितम् ॥ ५२ ॥

॥ ४७ ॥ रुक्मिणीके हरणकालमें भगवान् रुक्मिणीको ग्रहण करके भागे थे, तो उनका वह आचरण चोरकी समान हुआ था, इसमें संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ जरासन्धके भयसे महासमृद्धिसंपन्न कुलसम्मत मथुरामंडलपरित्याग करके उनके द्वारकामें भागनेका उद्देश क्या था ? ॥ ४९ ॥ जब कि उन्होंने यह सब कार्य किये. तब क्या उनको कोई ईश्वर भगवान् हरि जान सक्ताहै ! हे ब्रह्मन् ! यदि वह स्वयं भगवान् होते तो व्रजमें छिपेहुए क्यों रहते ? इसका क्या कारण है सो आप मुझसे कहिये ॥ ५० ॥ हे मुने ! वह सब और अन्यान्य अनेक संदेह मेरे हृदयमें सदा विद्यमान रहते हैं, आप द्विजोत्तम सर्वज्ञ और महाभाग हैं, आपके निकट प्रार्थना है कि, मेरे यह सब संदेह दूर कीजिये ॥ ५१ ॥ हे तपोधन ! मेरे मनमें और एक अत्यन्त गोपनीय संदेह वर्तमान रहता है, वह किसीसे दूर नहीं होता । हे मुनिवर !

पांचालीके जो पांच पति हुए थे, वे क्या लोकसमाजमें घृणाकर और लज्जाजनक नहीं हैं ॥ ५२ ॥ पण्डितगण सदाचारकोही धर्मका प्रमाण कहकर निर्देश करते हैं, तब उन पांडवगणोंने सम्यक्प्रकारसे समर्थ होकर भी किसकारण पशुधर्मका आचरण किया था! ॥ ५३ ॥ पृथ्वीतलमें देवरूपसे वास करके भीष्मने क्या किया? मैं आपसे पूँछताहूं कि, गोलक दो पुत्र उत्पन्न करके वंशकी रक्षा करना क्या उनके सदृश कार्य हुआ है! ॥ ५४ ॥ मुनियोंने "जिस किसी उपायसे हो पुत्र उत्पन्न करे" इस प्रकार व्यवस्था देकर जो धर्मका निर्णय किया है उनके उस धर्मनिर्णयको धिक्कार है ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! कृष्णके विस्तृत चरित्र और अवतारकी कथा तथा देवी भुवनेश्वरीके विचित्र चरित्रादिका विषय वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १ ॥ किसी समयमें पृथ्वी दुष्ट राजाओंके भारसे आक्रान्त होकर अत्यन्त पीडित और

सदाचारंप्रमाणंहिप्रवदंतिमनीषिणः ॥ पशुधर्मःकथंतैस्तुसमर्थैरपिसंश्रितः ॥ ५३ ॥ भीष्मेणापिकृतंकिंवादेवरूपेणभूतले ॥ गोलकौतौसमुत्पाद्य यत्तुवंशस्यरक्षणम् ॥५४॥ धिग्धर्मनिर्णयःकामंमुनिभिःपरिदर्शितः ॥ येनकेनाप्युपायेनपुत्रोत्पादनलक्षणः ॥५५॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थ स्कंधेसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ छ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिकृष्णस्यचरितंमहत् ॥ अवतारकारणंचैवदेव्याश्चरितमद्भुतम् ॥१॥ धरैकदाभरा क्रांतारुदतीचातिकर्शिता ॥ गोरूपधारिणीदीनाभीताऽगच्छत्रिविष्टपम् ॥२॥ पृष्टाशक्रेणकिंतेऽद्यवर्ततेभयमित्यथ ॥ केनवैपीडिताऽसित्वंकिंतेदुःखंवसुं धरे ॥३॥ तच्छ्रुत्वेलातदोवाचशृणुदेवेशमेऽखिलम् ॥ दुःखंपृच्छसियत्त्वंमेभाराक्रांताऽस्मिमानद ॥ ४ ॥ जरासंधोमहापापीमागधेषुपतिर्मम ॥ शिशुपा लस्तथाचैद्यःकाशिराजःप्रतापवान् ॥५॥ रुक्मीचबलवान्कंसोनरकश्चमहाबलः ॥ शाल्वःसौभपतिःक्रूरःकेशीधेनुकवत्सकौ ॥६॥ सर्वधर्मविहीनाश्चपरस्प रविरोधिनः ॥ पापाचारामदोन्मत्ताःकालरूपाश्चपार्थिवाः ॥७॥ तैरहंपीडिताशक्रभाराक्रांताऽक्षमाविभो ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिचिंतामेमहतीस्थिता ॥८॥

भीत हुई थी तब वह गौका रूप धारण कर रोदन करती करती दीन मनसे देवलोकमें गई ॥ २ ॥ देवराजने उससे पूँछा हे वसुंधरे! इस समय तुम्हारे भयका क्या कारण है? किसने तुमको पीड़ित किया है तुमको क्या दुःख उपस्थित हुआ है? यह सब मुझसे कहो ॥ ३ ॥ पृथ्वीने इन्द्रका यह वचन सुनकर कहा हे मानद! आप यदि मेरे दुःख और पीड़ाका कारण पूँछते हैं, तो मैं आपसे सब बात कहती हूं. सुनिये मैं इस समय अत्यन्तभारसे दबी जाती हूं ॥ ४ ॥ घोर पापी मगधराज पृथ्वीमें राजत्व करता है! इसी प्रकार चेदि पति शिशुपाल, दुर्दान्तकाशीराज ॥ ५ ॥ रुक्मी, बलवान् कंस, महाबल नरक, सौभपतिशाल्व, क्रूरमति केशी, धेनुक और वत्सक ॥ ६ ॥ ये सभी राज्यपदमें प्रतिष्ठित हुए हैं. हे देवराज! अधिक क्या कहूं! यह सभी राजालोग धर्महीन परस्परविरोधी मदोन्मत्त और पापाचारमें रत हैं. यह कालस्वरूपराजा होकर ॥ ७ ॥ मुझको निरंतर पीड़ित करते हैं. मैं उनका भार वहन नहीं कर सक्ती. इस समय कहां जाऊं! क्या करूं! यह महती चिन्ता मेरे

अन्तःकरणमें उदित रहकर मुझको निरन्तरही पीडा देती है ॥८॥ हे वासव! कहूंक्या प्रभावशाली वराहरूपी विष्णुही मेरे कष्टके कारण हुए हैं. हे शक्र! इससेही मैं दुःखके ऊपर दुःखमें गिरीहूं ॥ ९ ॥ क्योंकि जब कश्यपके पुत्र दुष्ट दैत्य हिरण्याक्षने मुझको हरणकर महार्णवमें डुबोकर रक्खा था ॥ १० ॥ तिसकाल विष्णुने वराहरूप धारणपूर्वक उसको मार मेरा उद्धार कर स्थिरभावसे रक्षाकी थी ॥ ॥ ११ ॥ वे यदि उस समय मेरा उद्धार न करते तो मैं रसातलके गर्भमें सुखपूर्वक काल व्यतीत करती। हे देवेन्द्र! मैं इस समय उक्त दुरात्माओंका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं होती हूं ॥ १२ ॥ हे सुरेन्द्र! शीघ्रही सामने दुष्ट अट्ठाईसवाँ कलि युग आता है उसका जिसप्रकार प्रभाव है उससे बोध होता है कि, उसी समय मुझको पीड़ित होकर रसातलमें जाना पड़ेगा ॥ १३ ॥ अतएव हे देवेश्वर! मैं

पीडिताऽहंवराहेणविष्णुनाप्रभविष्णुना॥ शक्रजानीहिहरिणादुःखाद्दुःखतरंगता॥९॥यतोऽहंदुष्टदैत्येनकश्यपस्याऽऽत्मजेनवै॥हृताऽहंहिरण्याक्षेणमग्नात स्मिन्महार्णवे॥१०॥तदासूकररूपेणविष्णुनानिहतोऽप्यसौ॥उद्धृताऽहंवराहेणस्थापिताहिस्थिराकृता॥११॥ नोचेद्रसातलेस्वस्थास्थितास्यांसुखशायि नी॥नशक्ताऽस्म्यद्यदेवेशभारंवोढुंदुरात्मनाम् ॥१२॥ अग्रेदुष्टःसमायातिह्यष्टाविंशस्तथाकलिः ॥ तदाऽहंपीडिताशक्रगंताऽस्म्याऽऽशुरसातलम्॥१३॥ तस्मात्त्वंदेवदेवेशदुःखरूपार्णवस्यच ॥ पारदोभवभारंमेहरपादौनमामिते ॥ १४ ॥ इंद्रउवाच ॥ इलेकिंकेतकरोम्यद्यब्रह्माणंशरणंव्रज ॥ अहंतत्राऽऽगमि ष्यामिसतेदुःखंहरिष्यति ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वात्वरितापृथ्वीब्रह्मलोकंगतातदा ॥ शक्रोऽपिपृष्ठतःप्राप्तःसर्वदेवपुरःसरः ॥ १६ ॥ सुरभीमागतांतत्रदृष्ट्वोवाच प्रजापतिः ॥ महींज्ञात्वामहाराजध्यानेनसमुपस्थिताम् ॥१७॥ कस्माद्रुदसिकल्याणिकिंतेदुःखंवदाऽधुना ॥ पीडिताऽसिचकेनत्वंपापाचारेणभूर्वद ॥ ॥ १८ ॥ धरोवाच ॥ कलिरायातिदुष्टोऽयंविभेमितद्भयादहम् ॥ पापाचाराःप्रजास्तत्रभविष्यंतिजगत्पते ॥ १९ ॥

आपके चरणकमलमें प्रणाम करती हूं आप मेरा भार हरण करके इस अपार दुःखके समुद्रसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ १४ ॥ सुरपति इन्द्रने कहा हे पृथ्वी! मैं तुम्हारा क्या करूं? तुम ब्रह्माजीके निकटजाय उनकी शरण ग्रहण करो मैंभी वहां जाता हूं उनसेही तुम्हारा दुःख दूर होगा ॥ १५ ॥ तब पृथ्वी इन्द्रका वचन सुनकर तत्काल ब्रह्मलोकमें गई और इधर इन्द्रभी सब देवताओंके सहित पृथ्वीके पीछे पीछे ब्रह्मलोकमें उपस्थित हुए ॥ १६ ॥ हे महाराज! पितामह ब्रह्माजीने पृथ्वीको आती हुई देख ध्यानयोगसे उसके आनेका कारण जान लिया और कहा ॥ १७ ॥ हे कल्याणि! तुम क्यों रोती हो? तुमको इस समय क्या दुःख हुआ है? किस दुराचारीने तुमको पीड़ित किया है? कहो ॥ १८ ॥ पृथ्वी बोली हे जगतीपते! दुष्ट कलि सम्मुखही आ रहा है. इसके प्रभावमें सब प्रजा घोर पापाचारा

होगी, अतएव मैं कलिके भयसे अत्यन्त शंकित हुई हूं ॥ १९ ॥ इस कलिके प्रारम्भमें राजरूपसे अवतीर्ण पूर्ववैरी असुरगण अत्यन्त दुराचारी, परस्परविरोधी, और चोरीके कार्यमें चतुर हैं. इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥ हे पितामह ! इस समय इन दुर्वृत्त राजाओंको मारकर मेरा भार हरण कीजिये ! हे महाप्रभो ! मैं उन राजाओंकी सेनाके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुई हूं ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने कहा हे देवि ! इन्द्रकी समान मैं भी तुम्हारा भार हरण करनेमें समर्थ नहीं हूं चलो हम दोनों जने चक्रधारी विष्णुके पास चलें ॥ २२ ॥ वह जनार्दन ही तुम्हारा भार हरण करेंगे मैंने प्रथमही चिन्ता करके तुम्हारा कार्य विचार रक्खा है ॥ २३ ॥ सो जनार्दनके निकट गमन करना चाहिये व्यासजी बोले इसप्रकार वे कहकर वेदकर्त्ता ब्रह्माजी पृथ्वी और देवताओंको आगे कर ॥ २४ ॥ अपने

राजानश्चदुराचाराःपरस्परविरोधिनः ॥ चौरकर्मरताःसर्वेराक्षसाःपूर्णवैरिणः ॥ २० ॥ तान्हत्वानृपतीन्भारंहरमेऽद्यपितामह ॥ पीडिताऽस्मिमहाराजसैन्यभारेणभूभृताम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नाऽहंशक्तस्तथादेविभारावतरणेतव ॥ गच्छावःसदनंविष्णोर्देवदेवस्यचक्रिणः ॥ २२ ॥ सतेभारापनोदंवै करिष्यतिजनार्दनः ॥ पूर्वमयाऽपितेकार्यंचिंतितंसुविचार्यच ॥ २३ ॥ तत्रगच्छसुरश्रेष्ठयत्रदेवोजनार्दनः ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वावेदकर्ताऽसौपुरस्कृत्यसुरांश्चगाम् ॥ २४ ॥ जगामविष्णुसदनंहंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ तुष्टाववेदवाक्यैश्चभक्तिप्रवणमानसः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सहस्रशीर्षात्वमसिसहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ त्वंवेदपुरुषःपूर्वदेवदेवःसनातनः ॥ २६ ॥ भूतपूर्वंभविष्यच्चवर्तमानंचयद्विभो ॥ अमरत्वंत्वयादत्तमस्माकंचरमापते ॥ २७ ॥ एतावान्महिमातेऽस्तिकोनवेत्तिजगत्त्रये ॥ त्वंकर्ताऽप्यविताहंतात्वंसर्वगतिरीश्वरः ॥ २८ ॥ व्यासउवाच ॥ इतीडितःप्रभुर्विष्णुःप्रसन्नोगरुडध्वजः ॥ दर्शनंचददौ तेभ्योब्रह्मादिभ्योऽमलाशयः ॥ २९ ॥

वाहन हंसपर चढ़ विष्णुके समीप गये और भक्तिभावसहित वेदवाक्यद्वारा उन देवदेव जनार्दनका स्तव करने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले आप सहस्रशीर्षा अर्थात् असंख्यमस्तक, आपही सहस्राक्षा अर्थात् असंख्यनेत्र, आपही सहस्रपात् अर्थात् असंख्य चरण और आपही वेदपुरुष देवदेव तथा सनातन हैं ॥ ॥ २६ ॥ हे विभो ! जो अतीत हैं जो भविष्यत् और वर्त्तमान हैं वह सब आपही हैं हेरमापते ! आपनेही मुझको अमरत्व प्रदान किया है ॥ २७ ॥ आपही इस जगत्के करनेवाले पालनेवाले और संहारकरनेवाले हैं आपही जगत्की एकमात्र गति और ईश्वर हैं, आपमें जो यह सब महिमा विद्यमान है सो त्रिभुवनमें कौन नहीं जानता ! ॥ २८ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! ब्रह्माजीके इसप्रकार स्तवन करनेपर गरुडध्वज विष्णु प्रसन्न हुए और उन्होंने उन ब्रह्मादिदेवताओंके सामने

प्रगट होकर उनको दर्शन दिया ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त भगवान्‌ने उनका स्वागतकरके उनके आनेका कारण सम्यक् प्रकारसे पूँछा ॥ ३० ॥ तब ब्रह्माजीने उनको प्रणाम करके धरणीके समस्त दुःखका कारण स्मरण पूर्वक कहा हे प्रभो ! इस समय आपको पृथ्वीका भार हरण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे दयानिधे ! द्वापर युगका शेषभाग समागत होनेपर आप पृथ्वीतलमें अवतीर्ण हो, दुष्टराजाओंको मारकर पृथ्वीका भार हरण कीजिये ॥ ३२ ॥ विष्णुने कहा मैं इस विषयमें स्वाधीन नहीं हूं, केवल मैंही क्या ? ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, यम, विश्वकर्मा, सूर्य और वरुण इत्यादि देवताओंमें भी कोई स्वाधीन नहीं है ॥ ३३ ॥ यह सब स्थावरजंगमात्मक जगत् योगमायाके वशीभूत रहता है और ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त सभी उनके गुणसूत्रमें ग्रथित रहते हैं ॥ ३४ ॥

पप्रच्छस्वागतंदेवान्प्रसन्नवदनोहरिः ॥ ततस्त्वागमनेतेषांकारणंचसविस्तरम् ॥ ३० ॥ तमुवाचाब्जजोनत्वाधरादुःखंचसंस्मरन् ॥ भाराऽवतरणंविष्णोकर्तव्यंतेजनार्दन ॥ ३१ ॥ भुविधृत्वाऽवतारंत्वंद्वापरांतेसमागते ॥ हत्वादुष्टान्नृपानुर्व्याहरभारंदयानिधे ॥ ३२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नाऽहंस्वतंत्रएवाऽत्रनब्रह्मानाशिवस्तथा ॥ नेंद्रोऽग्निर्नयमस्त्वष्टानसूर्योवरुणस्तथा ॥ ३३ ॥ योगमायावशेसर्वमिदंस्थावरजंगमम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतंग्रथितंगुणसूत्रतः ॥३४॥ यथासास्वेच्छयापूर्वंकर्तुमिच्छतिसुव्रत ॥ तथाकरोतिसुहितावयंसर्वेऽपितद्वशाः ॥ ३५ ॥ यद्यहंस्यांस्वतंत्रोवैविंचितयंतुधियाकिल ॥ कुतोऽभवंमत्स्यवपुःकच्छपोवामहार्णवे ॥ ३६ ॥ तिर्यग्योनिषुकोभोगःकाकीर्तिःकिंसुखंपुनः ॥ किंपुण्यंकिंफलंतत्रक्षुद्रयोनिगतस्यमे ॥ ३७ ॥ कोलोवाऽथनृसिंहोवावामनोवाऽभवंकुतः ॥ जमदग्निसुतःकस्मात्संभवेयंपितामह ॥ ३८ ॥ नृशंसंवाकथंकर्मकृतवानस्मिभूतले ॥ क्षतजैस्तुह्रदान्सर्वान्पूरयेयंकथंपुनः ॥ ३९ ॥ तत्कथंजमदग्नेश्चपुत्रोभूत्वाद्विजोत्तमः ॥ क्षत्रियान्हतवानाजौनिर्दयोगर्भगानपि ॥ ४० ॥

हे सुव्रत ! वही हितकारिणी इच्छामयी अपनी इच्छासे जो करनेकी अभिलाषा करें वही कर सक्ती हैं हम सबकोही उनके वशीभूत जानो ॥ ३५ ॥ तुम मनमें विचार करके देखो, यदि मैं स्वाधीन होता तो क्यों महार्णवमें वास करके मत्स्य और कच्छप देह धारण करता ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! तिर्यग्योनिमें संभोग, कीर्ति, सुख क्या है ? क्षुद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करके मुझको क्या पुण्य वा फलकी प्राप्ति है ॥ ३७ ॥ किस कारण मैं सूकर देह धारी होता ? क्यों नृसिंहरूप और वामन देह धारण करता ? किसकारण जमदग्निका पुत्र होकर जन्मग्रहण करता ? ॥ ३८ ॥ भूतलमें क्यों नृशंसकर्म करके क्षत्रियोंके रुधिरसे कुंड पूर्ण करता ॥ ३९ ॥ विशेषकरके ऐसे महात्माका पुत्र और द्विजोत्तम होकर भी क्यों ऐसा नृशंस कार्य करता ? मैं ने निर्दयी होकर क्षत्रियोंका तथा विशेषकर उनकी गर्भस्थित संतानका संहार किया है, यदिमैं

स्वाधीन होता तो क्यों ये सबका कठोर और बीभत्स कार्य करता ॥ ४० ॥ हे देवेन्द्र! देखो, मैंने रामावतारके समय दण्डकवनमें प्रवेश कर चीर, जटा और वल्कल धारणपूर्वक ॥ ४१ ॥ असहाय और पाथेयरहित होकर पयादेही भयंकर निर्जनवनमें निर्लज्जकी समान पशुहननादिरूप व्याधका कार्य करके निरं तर भ्रमण किया है ॥ ४२ ॥ मैं मायासे मोहित होकर सुवर्णके मृगका स्वरूप नहीं जान सका, इस कारण पर्णशालामें जानकीको छोड, वहांसे निकलकर उस मृगके पदका अनुसरण किया ॥ ४३ ॥ मेरे बहुत बार समझाने पर भी लक्ष्मणने प्रकृतिके गुणसे मोहित होकर जानकीको परित्याग कर मेरा अनुसरण किया था ॥ ४४ ॥ तब कपटमूर्ति राक्षसराज रावणने भिक्षुकका वेश धारणकर शोकसे क्षीण हुई जनक तनयाको बलपूर्वक हरण किया था ॥ ४५ ॥ मैं प्रियाके विरह जनित दुःखसे अत्यन्त कातर हो वनवनमें रुदन करता फिरा हूं और कार्यके वशीभूत हो वानरराज सुग्रीवसे मित्रता की थी ॥ ४६ ॥ मैंने अन्याय

रामोभूत्वाऽथदेवेंद्रप्राविशद्दंडकंवनम्।पदातिश्चीरवासाश्चजटावल्कलवान्पुनः॥४१॥असहायोह्यपाथेयोभीषणेनिर्जनेवने॥कुर्वन्नाखेटकंतत्रव्यचरंविगतत्र पः॥४२॥नज्ञातवान्मृगंहैमंमाययापिहितस्तदा॥उटजेजानकींत्यक्त्वानिर्गतस्तत्पदानुगः॥४३॥लक्ष्मणोऽपिचतांत्यक्त्वानिर्गतोमत्पदानुगः॥वारितोऽपि मयाऽत्यर्थमोहितःप्राकृतैर्गुणैः॥४४॥ भिक्षुरूपंततःकृत्वारावणःकपटाकृतिः ॥जहारतरसारक्षोजानकींशोककर्शिताम् ॥४५॥ दुःखार्तेनमयातत्ररुदितंच वनेवने ॥ सुग्रीवेणचमित्रत्वंकृतंकार्यवशान्मया ॥ ४६ ॥ अन्यायेनहतोवालीशापाच्चैवनिवारितः ॥ सहायान्वानरान्कृत्वालंकायांचलितंपुनः ॥ ४७ ॥ बद्धोऽहंनागपाशैश्चलक्ष्मणश्चममानुजः ॥ विसंज्ञौपतितौदृष्ट्वावानराविस्मयंगताः ॥ ४८ ॥ गरुडेनतदाऽऽगत्यमोचितौभ्रातरौकिल ॥ चिंतामेमहतीजा तादैवंकिंवाकरिष्यति ॥४९॥ हृतंराज्यंवनेवासोमृतस्तातःप्रियाहृता ॥ युद्धंकष्टंददात्येवमग्रेकिंवाकरिष्यति ॥५०॥ प्रथमंतुमहादुःखमराज्यस्यवना श्रयम् ॥ राजपुत्र्याऽन्वितस्यैवधनहीनस्यमेसुराः ॥ ५१ ॥ वराटिकाऽपिपित्रामेनदत्तावननिर्गमे ॥ पदातिरसहायोऽहंधनहीनश्चनिर्गतः ॥ ५२ ॥

पूर्वक वानरराज वालीको मारकर उसको शापसे छुडाया है फिर वानरोंको सहाय करके लंकामें गया हूं॥ ४७॥ जिस समय अनुज लक्ष्मण और मैं दोनों जने नागपाशमें बँधे और चेतनारहित होकर गिरगये, तिसकाल वानरगण अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए थे ॥ ४८ ॥ फिर गरुड़ने आनकर हम दोनों भाइयोंको नागपाशसे छुड़ाया, तब मैं वह चिन्ता करने लगा कि, नहीं जानता दैवने हमारे अदृष्टमें किस अमंगलकी संयोजना की है ॥ ४९ ॥ मेरा राज्य हरण हुआ, वनमें वास हुआ, पिता परलोक गये, जानकी हरी गई, इस समय दारुणयुद्धमें अतिशय क्लेश होता है; नहीं जानता दैव मुझको और भी किस घोर कष्टमें निपतित करेगा? ॥ ५० ॥ हे देवताओ! इसकी अपेक्षा अधिक दुःखका दूसरा क्या विषय है कि, मैं प्रथमही राज्यहीन और वनगमनपूर्वक राजपुत्री सीताके सहित वनाश्रयी हूं ॥ ५१ ॥ वनगमनकालमें पिताने मुझको

एक वराटिका भी नहीं दी, मैं धनहीन और असहाय होकर पैरोंही अयोध्यासे निकला था ॥ ५२ ॥ मैं ने महावनमें जाय अन्य उपाय न देख क्षत्रियधर्म छोड़ा व्याधवृत्ति अवलम्बन कर चौदह वर्ष विताये थे ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त दैवके अनुग्रहसेही उस महाअसुर रावणको मारकर युद्धमें जयी हुआ और सीताको पुनर्वार अयोध्यामें लाया ॥ ५४ ॥ वहां कोशलनिवासी प्रजा शासनकर्त्ता होकर कितनेही वर्ष संसारका सुख अनुभव करके पूर्ण राज्यको प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें सीताहरणादि व्यापार संघटित हुआ था. इसके पीछेही राज्य प्राप्त हुआ. फिर मनुष्यगण सीताको निन्दित कहकर अपमान करने लगे तब मैं ने अत्यन्त भीत होकर उसको वनवास करनेको त्याग दिया ॥ ५६ ॥ उस समय मुझको दूसरी बार पत्नीके विरहका कठिन दुःख भोगना पड़ा था. इसके उपरान्त धरात्मजा धरातल भेद करके पातालमें चली गई ॥ ५७ ॥ हे देवताओ ! रामावतारमें मैं ने भी जब पराधीनहोकर निरंतर दुःख भोगा है. तब फिर दूसरा कौन पुरुष स्वाधीन है. सो कहो ॥ ५८ ॥

चतुर्दशैववर्षाणिनीतानिचतदामया ॥ क्षात्रंधर्मंपरित्यज्यव्याधवृत्त्यामहावने ॥ ५३ ॥ दैवाद्युद्धेजयःप्राप्तोनिहतोऽसौमहासुरः ॥ आनीताचपुनःसीताप्राप्ताऽयोध्यामयातथा ॥५४॥ वर्षाणिकतिचित्तत्रसुखंसंसारसंभवम् ॥ प्राप्तंराज्यंचसंपूर्णंकोसलानधितिष्ठता ॥५५॥ पुरैवंवर्तमानेनप्राप्तराज्येनवैतदा ॥ लोकापवादभीतेनत्यक्तासीतावनेमया ॥ ५६ ॥ कांताविरहजंदुःखंपुनःप्राप्तंदुरासदम् ॥ पातालंसागतापश्चाद्धरांभित्त्वाधरात्मजा ॥ ५७ ॥ एवंरामावतारेऽपिदुःखंप्राप्तंनिरंतरम् ॥ परतंत्रेणमेनूनंस्वतंत्रःकोभवेत्तदा ॥५८॥ पश्चात्कालवशात्प्राप्तःस्वर्गोमेभ्रातृभिःसह ॥ परतंत्रस्यकावार्तावक्तव्याविबुधेनवै॥५९॥ परतंत्रोस्म्यहंनूनंपद्मयोनेनिशामय ॥ तथात्वमपिरुद्रश्चसर्वेचान्येसुरोत्तमाः॥६०॥इतिश्रीदे०महापुराणेचतुर्थस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुःपुनराहप्रजापतिम् ॥ यन्मायामोहितःसर्वस्तत्त्वंजानातिनोजनः॥१॥वयंमायावृताःकामंनस्मरामोजगद्गुरुम् ॥ परमंपुरुषंशांतंसच्चिदानंदमव्ययम् ॥२॥ अहंविष्णुरहंब्रह्माशिवोऽहमितिमोहिताः ॥ नजानीमोवयंधातःपरंवस्तुसनातनम् ॥ ३ ॥

तदुपरान्त कालके वश हो भ्राताओंके सहित मैं स्वर्गको गया था. जो हो पराधीन पुरुषके पक्षमें कितनी दुर्घटना होती है. उसके कहनेमें बुद्धिमान् पण्डितगणही समर्थ होते हैं॥५९॥हे पद्मासन ! तुम मेरा वचन सुनो मैं निःसंदेह पराधीन हूं और केवल मैंही क्या इसीप्रकार तुम और रुद्र तथा संपूर्ण सुरोत्तमगणभी पराधीन हैं ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! भगवान् विष्णु फिर प्रजापति ब्रह्माजीसे कहने लगे हे ब्रह्मन् ! सभी उन भगवती महामायाकी मायासे मोहित होकर परमतत्वको नहीं जानसक्ते ॥ १ ॥ मैंभी माया द्वारा मोहित होनेसे शान्त परमपुरुष जगद्गुरु सच्चिदानन्दमय अव्यय परमात्माको किसीप्रकार नहीं जान सक्ता ॥ २ ॥ हे विधाता ! मैंही विष्णु, मैंही ब्रह्मा, मैंही रुद्र इसप्रकारके गर्वमें मोहित रहकर

सनातन परमवस्तुको नहीं पहँचान सक्ता ॥ ३ ॥ जैसे काठकी पुतली इन्द्रजालिकके वशमें रहकर उसकी इच्छानुसार नृत्य इत्यादि करती हैं. मैं भी इसीप्रकार परमात्माकी मायासे मोहित होकर पराधीनभावमें सदाही भ्रमण करता हूं ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! कल्पादिमें मैं ने तुमने तथा महादेवजीने मंदारवृक्ष शोभित रासक्रीड़ाके स्थानस्वरूप मणिद्वीप तथा देवताओंके समाजमें परमात्माकी उस अनिर्वचनीय मूर्तिका दर्शन किया था ॥ ५॥ मैं ने फिर एकवार और भी सुधार्णवमें उस अद्भुतमूर्त्तिका दर्शन किया. किन्तु आश्चर्यका विषय यही है कि, जिस समय तक उसका दर्शन नहीं किया था. तबतक उसका विषय कुछ भी नहीं सुना ॥ ६ ॥ इससे हे देवताओ ! अब तुम लोग परमात्माकी आद्याशक्ति शिवरूपिणी शक्ति का स्मरण करो. वही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगी ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! भगवान् हरिके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्मादिदेवताओंने उन सनातनी योगमाया भुवनेश्वरी देवीको मनहीमनमें स्मरण किया ॥ ८ ॥ स्मरण करतेही रक्त

यन्मायामोहितश्चाहंसदावर्तेपरात्मनः ॥ परवान्दारुपांचालीमायिकस्ययथावशे ॥ ४ ॥ भवताऽपितथादृष्टाविभूतिस्तस्यचाऽद्भुता ॥ कल्पाऽऽदौ भवयुक्तेनमयाऽपिचसुधार्णवे ॥ ५ ॥ मणिद्वीपेथमंदारविटपेरासमंडले ॥ समाजेतत्रसादृष्टाश्रुतानवचसापिच ॥ ६ ॥ तस्मात्तांपरमांशक्तिंस्मरं त्वद्यसुराःशिवाम् ॥ सर्वकामप्रदांमायामाद्यांशक्तिंपरात्मनः ॥ ७ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्ताहरिणादेवाब्रह्माद्याभुवनेश्वरीम् ॥ सस्मरुर्मनसादेवींयो गमायांसनातनीम् ॥ ८ ॥ स्मृतमात्रातदादेवीप्रत्यक्षंदर्शनंददौ ॥ पाशांकुशवराभीतिधरादेवीजपारुणा ॥ दृष्ट्वाप्रमुदितादेवास्तुष्टुवुस्तांसुदर्शनाम् ॥ ९ ॥ देवाऊचुः ॥ ऊर्णनाभाद्यथातंतुर्विस्फुलिंगाविभावसोः ॥ तथाजगद्यदेतस्यानिर्गतंतांनतावयम् ॥ १० ॥ यन्मायाशक्तिसंक्लृप्तंजगत्सर्वंचराचरम् ॥ तांचितंभुवनाधीशांस्मरामःकरुणार्णवाम् ॥ ११ ॥ यदज्ञानाद्भवोत्पत्तिर्यज्ज्ञानाद्भवनाशनम् ॥ संविद्रूपांचतांदेवींस्मरामःसाप्रचोदयात् ॥ १२ ॥ महालक्ष्म्यैचविद्महेसर्वशक्त्यैचधीमहि ॥ तन्नोदेवीप्रचोदयात् ॥ १३ ॥

जपा (गुड हरफूल) की समान अरुणवर्णा देवीभुवनेश्वरी पाश अंकुश वर और अभय धारण किये प्रत्यक्षरूपसे प्रगट हुई तब देवतालोग देवीका दर्शन करके उनका स्तव करने लगे ॥ ९ ॥ जिसप्रकार ऊर्णनाभसे तन्तु और विभावसु अग्निसे विस्फुलिंग (चिनगारे) निकलते हैं, इसीप्रकार जिनसे यह संपूर्ण जगत् निकला है हम भक्तिनम्रहृदयसे उनको प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥ जिनकी मायाशक्तिके प्रभावसे यह चराचर जगन्मण्डल विरचित हुआहै उन्हीं चितस्वरूप करुणार्णवरूपिणी भुवनेश्वरी देवीको हम नमस्कार करतेहैं ॥ ११ ॥ जिनके स्वरूपका तत्व न जाननेसेही यह जगत प्रतिभात होता है और जिनके स्वरूपका तत्व जाननेसेही यह संपूर्ण जगत मिथ्याभ्रमसे नष्ट होता है उन्हीं सम्वितस्वरूपिणी देवीको हम स्मरण करतेहैं वहभी हमको इस स्मरण और ध्यानमें नियोग करें ॥ १२ ॥ हम उन्हीं महालक्ष्मीको जानने

की वासना करते हैं और उन्हीं शक्तिस्वरूपिणीका ध्यान करते हैं वह देवी कृपा करके हमको अपने ध्यानादिविषयमें प्रेरण करें ॥ १३ ॥ हे संपूर्ण दुःखविनाशिनी जननी ! हम आपको नमस्कार करते हैं आप प्रसन्न हूजिये। हे करुणामयी ! आप यह कार्य संपादन करके हमारा कल्याण कीजिये. हे विश्वेश्वरि ! आप असुरोंको मार पृथ्वीका भार हरणकर हमारा मंगल कीजिये ॥ १४ ॥ हे कमललोचने ! आप यदि देवताओंपर दयाप्रकाश न करेंगी तो वह रणस्थलमें अस्त्रशस्त्रोंसे शत्रुओंको प्रहार करनेमें कभी समर्थ नहीं होंगे. हे देवि ! आपने यक्षरूप धारण पूर्वक "हे हुताशन ! तुम यह तृण भस्म करो" इत्यादि वचनसे उसको भलीभाँति प्रकाशित किया है ॥ १५ ॥ हे मातः ! कंस, भौम, कालयवन, केशी, बृहद्रथतनय जरासंध, बक, पूतना, खर और शाल्व इत्यादि तथा अन्यान्य अनेक

मातर्नताःस्मभुवनार्तिहरेप्रसीदशंनोविधेहिकुरुकार्यमिदंदयार्द्रे ॥ भारंहरस्वविनिहत्यसुरारिवर्गमद्यामहेश्वरिसतांकुरुशंभवानि ॥१४॥ यद्यंबुजाक्षिदयसे नसुरान्कदाचित्किंतेक्षमारणमुखेऽसिशरैःप्रहर्तुम् ॥ एतत्त्वयैवगदितंननुयक्षरूपंधृत्वातृणंदहहुताशपदाभिलापैः ॥१५॥ कंसःकुजोऽथयवनेंद्रसुतश्चकेशी बार्हद्रथोबकबकीखरशाल्वमुख्याः ॥ येऽन्येतथानृपतयोभुविसंतितांस्त्वंहत्वाहरस्वजगतोभरमाशुमातः ॥ १६ ॥ येविष्णुनाननिहताःकिलशंकरेणयेवा विगृह्यजलजाक्षिपुरंदरेण ॥ तेतेमुखंसुखकरंसुसमीक्षमाणास्संख्येशरैर्विनिहतानिजलीलयाते ॥ १७ ॥ शक्तिंविनाहरिहरप्रमुखाःसुराश्चनैवेश्वराविच लितुंतवदेवदेवि ॥ किंधारणाविरहितःप्रभुरप्यनंतोधर्तुंधरांचरजनीशकलावतंसे ॥ १८ ॥ ॥ इंद्रउवाच ॥ वाचाविनाविधिरलंभवतीहविश्वंकर्तुंहरिः किमुरमारहितोऽथपातुम् ॥ संहर्तुमीशउमयोज्झितईश्वरःकिंतेताभिरेवसहिताःप्रभवःप्रजेशाः ॥ १९ ॥

पापिष्ठ राजालोग पृथ्वीतलमें वास करते हैं आप उनको मारकर पृथ्वीका भार हरणकीजिये॥ १६॥ हे कमललोचने मातः ! जो असुरगण इन्द्र विष्णु और महादेवजीके हाथसे नहीं मरे, आपने उनको लीलापूर्वकही मारा है और उन्होंने तिस कालमें आपका सुख कर आनन अवलोकन करते करते जीवनलीला संवरण परिपूर्ण करी है ॥ १७ ॥ हे चन्द्रशेखरे देवि ! हरिहर ब्रह्मादि देवतागण शक्तिके विना पदमात्र चलनेमेंभी समर्थ नहीं हैं. हे देवि ! अधिक बात क्या है ! धारण शक्ति न होनेसे नागराज अनन्त कभी क्षणमात्र पृथ्वीधारण करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा हे भगवति ! सरस्वतीके विना ब्रह्मा क्या विश्व रचनेमें कभी समर्थ होते ? रमाके विना क्या देवदेव विष्णु विश्वका पालन करसक्ते थे ? उमाके विना क्या महादेव विश्वका संहार करनेमें समर्थ होते ? कभी नहीं ये महाप्रभु तीनों देवता

अपने अंशरूप सरस्वती इत्यादि शक्तिसे युक्त होकरही विश्वका कार्य चलानेमें समर्थहोते हैं ॥ १९ ॥ विष्णुने कहा हे विमले ! आपकी शक्तिसे रहित होकर ब्रह्मा जगत्के उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते और मैंभी जगत्का पालन करनेमें कभी समर्थ नहीं होता तथा महेश्वरभी विश्वका संहार करनेमें समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि ! आपही विश्व वैभवकी ईश्वरी होकर विश्वमें विराजित रहती हैं ॥ २० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! देवताओंके इस प्रकार भुवनेश्वरीकी स्तुति करनेपर देवीने उनसे कहा हे सुरोत्तमगण ! तुमलोग निश्चिन्त होओ तुम्हारा क्या कार्य है ? कहो ॥ २१ ॥ क्योंकि इसलोकमें अत्यन्त असाध्य होनेपरभी जो देवताओंका अभिलषित कार्य होगा वह निःसंदेह करूंगी, अब अपने और पृथ्वीके दुःखका कारण कहो ॥ २२ ॥ देवताओंने कहा कि, दुष्ट

॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ कर्तुंप्रभुर्नद्रुहिणोनकदाचनाऽहंनाऽपीश्वरस्तवकलारहितास्त्रिलोक्याः ॥ कर्तुंप्रभुत्वमनघेऽत्रतथाविहर्तुंत्वंवैसमस्तविभवेश्वरिभासिनूनम् ॥ २० ॥ व्यासउवाच ॥ एवंस्तुतातदादेवीतानाहविबुधेश्वरान् ॥ किंतत्कार्यंवदंत्वद्यकरोमिविगतज्वराः ॥ २१ ॥ असाध्यमपिलोकेऽस्मिंस्तत्करोमिसुरेप्सितम् ॥ शंसंतुभवतांदुःखंधरायाश्चसुरोत्तमाः ॥ २२ ॥ देवाऊचुः ॥ वसुधेयंभराक्रांतासंप्राप्ताविबुधान्प्रति ॥ रुदतीवेपमानाचपीडितादुष्टभूभुजैः ॥ २३ ॥ भारापहरणंचास्याःकर्तव्यंभुवनेश्वरि ॥ देवानामीप्सितंकार्यमेतदेवाऽधुनाशिवे ॥ २४ ॥ घातितस्तुपुरामातस्त्वयामहिषरूपभृत् ॥ दानवोऽतिबलाक्रांतस्तत्सहायाश्चकोटिशः ॥ २५ ॥ तथाशुंभोनिशुंभश्चरक्तबीजस्तथापरः ॥ चंडमुंडौमहावीर्यौतथैवधूम्रलोचनः ॥ २६ ॥ दुर्मुखोदुःसहश्चैवकरालश्चातिवीर्यवान् ॥ अन्येचबहवःक्रूरास्त्वयैवचनिपातिताः ॥ २७ ॥ तथैवचसुरारींश्चजहिसर्वान्महीश्वरान् ॥ "भारंहरधरायाश्चदुर्धरंदुष्टभूभुजाम्" ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तासातदादेवीदेवानाहांबिकाशिवा ॥ २८ ॥

राजाओंने इस पृथ्वीको अत्यन्त पीडित किया है, अब पृथ्वी उनकी भारवहन नहींकर सक्ती, इसीसे रोदन पूर्वक काँपती काँपती देवताओंके समीप आई है ॥ २३ ॥ हे भुवनेश्वरि ! इस समय आपको इस पृथ्वीका भार हरण करना चाहिये हे शिवे ! इस समय इसी कार्यको देवताओंका अभीष्ट जानिये ॥ २४ ॥ हे मातः ! आपने पूर्वकालमें महिषरूपी अत्यन्त बलवान् दानवको करोड करोड सहायकके सहित माराहै ॥ २५ ॥ अधिक क्या शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, महाबलवान् चण्ड, मुण्ड, धूम्रलोचन, दुर्मुख, दुःसह, अतिवीर्यवान् कराल और अन्यान्य अनेक क्रूर दानवोंको संहार किया है ॥ २६ ॥ अबभी उसी प्रकार देवताओंके वैरी राजाओंको मारकर उनके भारी बोझसे पृथ्वीकी रक्षा कीजिये. व्यासजी बोले देवताओंके देवीसे इसप्रकार कहनेपर कल्याणरूपिणी ॥ २७ ॥ असितापाङ्गी देवी अम्बिकाने हँसकर मेघकी

समान गंभीरस्वरसे कहा देवी बोली हे देवताओ! मैंने विचारलिया है जिससे अंशावतार ॥ २८ ॥ और दुष्टराजाओंका भार हरण होगा, वह मैंने पहिलेही विचार लिया है मैं इन सब अधर्मी राजाओंको मारूंगी ॥ २९ ॥ ३० ॥ मगधराज जरासंध इत्यादि महैश्वर्यशाली जो असुरांशसंभूत राजा प्रदीप्त हुए हैं मैं उन सबकोही अपनी शक्तिके द्वारा हीन बल करके मारूंगी हे देवताओ! तुमलोग भी अपने अपने अंशसे ॥ ३१ ॥ पृथ्वीमें मेरी शक्तिसहित अवतीर्ण होकर भारहरण करोगे देव प्रजापति महर्षि कश्यपने प्रथमही भार्याके सहित ॥ ३२ ॥ यदुकुलमें आनकदुन्दुभी वसुदेव होकर जन्म ग्रहण किया है ॥ अव्ययात्मा भगवान् विष्णुभी भृगुशापके कारण ॥ ३३ ॥ वसुदेवके पुत्र होकर अंशसे अवतीर्ण होंगे हेदेवताओ! उसी समय मैंभी गोकुलमें यशोदाके जठरसे जन्मग्रहण कर ॥ ३४ ॥

संप्रहस्याऽसितापांगीमेघगंभीरयागिरा ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ मयेदंचिंतितंपूर्वमंशावतरणंसुराः ॥ २९ ॥ भारावतरणंचैवयथास्याद्दुष्टभूभुजाम् ॥ मयासर्वे निहंतव्यादैत्येशायेमहीभुजः ॥ ३० ॥ मागधाद्यामहाभागाःस्वशक्त्यामंदतेजसः॥ भवद्भिरपिस्वैरंशैरवतीर्यधरातले ॥ ३१॥ मच्छक्तियुक्तैःकर्तव्यं भाराऽवतरणंसुराः॥ कश्यपोभार्ययासार्धंदिविजानांप्रजापतिः ॥ ३२ ॥ यादवानांकुलेपूर्वंभविताऽऽनकदुंदुभिः ॥ तथैवभृगुशापाद्वैभगवान्विष्णुरव्ययः ॥ ३३ ॥ अंशेनभवितातत्रवसुदेवसुतोहरिः ॥ तदाऽहंप्रभविष्यामियशोदायांचगोकुले ॥ ३४॥ कार्यंसर्वंकरिष्यामिसुराणांसुरसत्तमाः॥ कारागारेगतं विष्णुंप्रापयिष्यामिगोकुले ॥३५॥ शेषंचदेवकीगर्भात्प्रापयिष्यामिरोहिणीम् ॥ मच्छक्त्योपचितौतौचकर्तारौदुष्टसंक्षयम् ॥ ३६॥ दुष्टानांभूभुजांकामं द्वापरांतेसुनिश्चितम् ॥ इंद्रांशोऽप्यर्जुनःसाक्षात्करिष्यतिबलक्षयम् ॥ ३७॥ धर्मांशोऽपिमहाराजोभविष्यतियुधिष्ठिरः ॥ वाय्वंशोभीमसेनश्चाऽश्विन्यं शौचयमावपि ॥ ३८ ॥ वसोरंशोऽथगांगेयःकरिष्यतिबलक्षयम् ॥ व्रजंतुचभवंतोऽद्यधराभवतुसुस्थिरा ॥ ३९ ॥ भाराऽवतरणंनूनंकरिष्यामिसुरोत्तमाः ॥ कृत्वानिमित्तमात्रांस्तान्स्वशक्त्याऽहंनसंशयः ॥ ४० ॥

देवताओंके संपूर्ण कार्यसंपादन करूंगी कारागारसे विष्णुको गोकुलमें ॥ ३५ ॥ और देवकीके गर्भसे अनन्तदेवको रोहिणीके गर्भमें प्रेरण करूंगी वे दोनों मेरी शक्तिसे वर्द्धित होकर द्वापरके अंतमें दुष्ट राजाओंको संहार करेंगे इसमें संदेह नहीं॥ ३६॥ द्वापरके अन्तमें अवश्य दुष्टराजाओंका क्षय होगा इन्द्रके अंशसे उत्पन्न अर्जुनभी उन दुर्वृत्त राजाओंके बलका क्षय करेगा॥ ३७॥ तिसकाल धर्मके अंशसे महाराज युधिष्ठिर, वायुके अंशसे भीमसेन, दोनों अश्विनी कुमारके अंशसे नकुल और सहदेव॥ ३८॥ तथा वसुके अंशसे गंगापुत्र भीष्मदेव जन्मग्रहण करके उनके बलको नष्ट करेंगे हे देवताओ! इस समय तुम स्थिर चित्त होकर जाओ ॥ ३९ ॥ पृथ्वीभी स्थिर होवे तुम

निश्चय जानो कि, मैं अवश्यही पृथ्वीका भार हरण करूंगी ॥ ४० ॥ मैं उनको निमित्तमात्र करके अपनी शक्तिके द्वारा निस्संदेह कुरुक्षेत्रमें क्षत्रियगणोंको संहार करूंगी॥ ४१ ॥ असूया (निन्दा) ईर्षा दुर्मति तृष्णा ममता अभिमान स्पृहा जयेच्छामदन और मोह इन सब दोषोंसे यादवगण नाशको प्राप्त होंगे. ब्राह्मणोंके शापसेही यदुकुलध्वंस होगा ॥ ४२ ॥ भगवान्भी शापके वशीभूत हो कलेवर परित्याग करेंगे अब तुमभी अपने अंशसे अवतीर्ण होकर भगवानकी सहायताको ॥ ४३ ॥ स्त्रियोंके सहित गोकुल और मथुरामें जन्म ग्रहण करो. व्यासजी बोले यह सब बातें कहकर परमात्माकी माया स्वरूपिणी भुवनेश्वरी देवी अन्तर्धान होगई ॥ ४४ ॥ देवतालोग और पृथ्वी अपने अपने स्थानको चलेगये । हे राजन् जन्मेजय ! तिसकाल पृथ्वीदेवी देवीके वचनसे संतुष्ट और स्थिर होकर ॥ ४५ ॥ भाँति

कुरुक्षेत्रेकरिष्यामिक्षत्रियाणांचसंक्षयम् ॥ असूयेर्ष्यामतिस्तृष्णाममताभिमतास्पृहा ॥४१॥ जिगीषामदनोमोहोदोषैर्नंक्ष्यंतियादवाः॥ब्राह्मणस्यचशापेनवंशनाशोभविष्यति ॥ ४२ ॥ भगवानपिशापेनत्यक्ष्यत्येतत्कलेवरम् ॥ भवंतोऽपिनिजांशैश्वसहायाःशार्ङ्गधन्वनः॥ ४३ ॥ प्रभवंतुसनारीकामथुरायांचगोकुले॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधेदेवीयोगमायापरात्मनः ॥ ४४ ॥ सधरावैसुराःसर्वेजग्मुःस्वान्यालयानिच ॥ धराऽपिसुस्थिरराजातातस्यावाक्येनतोषिता ॥४५॥ औषधीवीरुधोपेताबभूवजनमेजय ॥ प्रजाश्वसुखिनोजाताद्विजाश्वापुर्महोदयम् ॥४६॥ संतुष्टामुनयःसर्वेबभूवुर्धर्मतत्पराः ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुभारतवक्ष्यामिभाराऽवतरणंतथा ॥ कुरुक्षेत्रेप्रभासेचक्षपितंयोगमायया ॥ १ ॥ यदुवंशेसमुत्पत्तिर्विष्णोरमिततेजसः ॥ भृगुशापप्रतापेनमहामायाबलेनच ॥ २ ॥ क्षितिभारसमुत्तारनिमित्तमितिमेमतिः ॥ माययाविहितोयोगोविष्णोर्जन्मधरातले ॥ ३ ॥

भाँतिकी औषधि और वीरुध गुल्मवृक्षद्वारा पवित्र होकर अवस्थिति करने लगी उस काल प्रजालोग जिसप्रकार सुखी हुए ब्राह्मणोंके जिसप्रकार सुख समृद्धिकी वृद्धि हुई ॥ ४६ ॥ मुनिगणभी तदनुरूप संतुष्ट होकर धर्मकर्ममें तत्परहुए ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण ! मैं तुम्हारे निकट पृथ्वीका भार उतारना कुरुक्षेत्र और प्रभास तीर्थमें सैन्यगणोंका संहार ॥ १ ॥ एवं भृगुशापसे अमिततेजा भगवान् हरिने महामायाके प्रभावसे जिसप्रकार यदुकुलमें जन्म ग्रहण किया वह समस्तही कहता हूं श्रवण करो ॥ २ ॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णुने जो पृथ्वीतलमें जन्मग्रहण किया मेरे विचारमें वह मायाकृत योगके सिवाय और कुछ नहीं है.मायाहीने पृथ्वीका भार उतारनेको इसप्रकार किया था. यही मेरा स्थिर सिद्धान्तहै॥ ३॥

हे नृपते ! जो त्रिगुणा माया देवी ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवगणोंकोभी नचाती रहती हैं. वह जो अन्यको मोहित करे तो फिर इस विषयमें आश्चर्य्यही क्याहै ? ॥ ४ ॥ हे राजन् ! उस महामायाकी लीला तो प्रसिद्धही है. अधिक क्या उसने विष्णुकोभी भलीभाँतिसे विष्ठा मूत्र और स्नायु परिपूरित गर्भमें वास कराकर दुःख दिया था ॥ ५ ॥ पूर्वकालके समय रामअवतारमें उसने देवगणोंकोभी वानर किया था. हे राजन् ! मैं मेरा इसप्रकार मायापाशमें बँधकर भगवान् विष्णुने जो कि दुःख भोगा था. वह तो तुम भलीभाँति जानते हो ॥ ६ ॥ इसीसे अहं ममताके पाशमें बँधताहै मुक्तसङ्ग मुमुक्षु योगीगण मुक्तिलाभकी आशासे ॥ ७॥ उसी विश्वरूपिणी विश्वेश्वरी देवीकी उपासना करते हैं. हे राजन् ! जिसकी भक्तिलेशका करणामात्र प्राप्त करके ॥ ८ ॥ जीवगणोंको मुक्ति प्राप्त होती हैं. कौन प्राणी उसकी

किंचित्रंनृपदेवीसाब्रह्मविष्णुसुरानपि ॥ नर्तयत्यनिशंमायात्रिगुणानपरान्किमु ॥ ४ ॥ गर्भवासोद्भवंदुःखंविण्मूत्रस्नायुसंयुतम् ॥ विष्णोरापादितंसम्यग्यया विगतलीलया ॥५॥ पुरारामाऽवतारेऽपिनिर्जरावानराःकृताः॥विदितंतेयथाविष्णुर्दुःखपाशेनमोहितः ॥६॥ अहंममेतिपाशेनसुदृढेननराधिप ॥ योगिनो मुक्तसंगाश्चमुक्तिकामामुमुक्षवः ॥ ७ ॥ तामेवसमुपासंतेदेवींविश्वेश्वरींशिवाम् ॥ यद्भक्तिलेशलेशांशलेशलेशलवांशकम् ॥ ८ ॥ लब्ध्वामुक्तोभवेज्जंतुस्तांनसेवेतकोजनः ॥ भुवनेशीत्येववक्रेददातिभुवनत्रयम् ॥ ९ ॥ मांपाहीत्यस्यवचसोदेयाभावादृणान्विता ॥ विद्याऽविद्येतितस्याद्वेरूपेजानीहिपार्थिव ॥ १० ॥ विद्ययामुच्यतेजंतुर्बध्यतेऽविद्ययापुनः ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चसर्वेतस्यावशानुगाः ॥ ११ ॥ अवताराःसर्वएवयंत्रिताइवदामभिः ॥ कदाचित्सुखंभुंक्तेवैकुंठेक्षीरसागरे ॥ १२ ॥ कदाचित्कुरुतेयुद्धंदानवैर्बलवत्तरैः ॥ हरिःकदाचिद्यज्ञान्वैविततान्प्रकरोतिच ॥१३॥ कदाचिच्चतपस्तीव्रंतीर्थेचरतिसुव्रत ॥ कदाचिच्छयनेशेतेयोगनिद्रामुपाश्रितः ॥ १४ ॥

सेवा नहीं करता है मनुष्योंमें यदि कोई "भुवनेश्वरी" यह नाम उच्चारण करे तो वह उसको त्रिभुवनप्रदान करती है ॥ ९ ॥ और कोई यदि "मेरी रक्षा करो" यह वचन कहता है तो विश्वेश्वरी विश्वब्रह्माण्डमें देनेयोग्य वस्तु न देखकर उसके निकट ऋणी होती हैं. इसमें सन्देह नहीं है. हे पार्थिव ! उसके विद्या और अविद्या यह दो प्रकारके रूप जानने चाहिये ॥ १० ॥ जीवगण इस विद्यासे मुक्ति और अविद्यासे बन्धनको प्राप्त होते हैं ब्रह्मा विष्णु रुद्र ॥ ११ ॥ और उनके अवतारगण रस्सीमें बँधे हुएकी समान उसके अधीनमें अवस्थित रहते हैं. भगवान् हरि कभी वैकुण्ठमें कभी क्षीरसमुद्रमें अवस्थान करके सुख भोगते हैं ॥ १२ ॥ कभी बलवान् दानवगणोंके सहित युद्ध, किसी समय बहुत विस्तृत यज्ञका अनुष्ठान ॥ १३ ॥ कभी तीव्रतर तपस्याका आचरण करते हैं और कभी योगमायाके आश्रयमें

शयन करते हैं ॥ १४ ॥ अतएव भगवान् मधुसूदन किसी समय स्वाधीनतालाभ करनेमें समर्थ नहीं होते. हे राजन्! विष्णुकी समान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, यम ॥१५॥ कुबेर, अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र और अन्यान्य देवताश्रेष्ठगण, सनकादि मुनिगण, एवं वसिष्ठादि ऋषिगण ॥ १६ ॥ सबही नाचनेवाली पुतलीके समान सदाही उस भुवनेश्वरीके वशीभूत होते हैं नथाहुआ बलवान् बैल जिसप्रकार मनुष्यके वशीभूत होकर विचरण करता है ॥ १७ ॥ इसीप्रकार सम्पूर्ण देवतागण कालपाशमें नियन्त्रित हो रहे हैं. हे राजेन्द्र! हर्ष, शोक, निद्रा, तन्द्रा और आलस्यादि समस्त भाव ॥ १८ ॥ सर्वदाही देहीमात्रके देह, का आश्रय करके रहते हैं ग्रन्थकारगणोंने देवतागणोंको अमर अर्थात् मरणधर्म्मरहित और निर्ज्जर अर्थात् जरा धर्म्मविहीन कहा है ॥ १९ ॥ किन्तु वह नाममात्रही प्रकाश पाते हैं. वास्तवमें

नस्वतंत्रःकदाचिच्चभगवान्मधुसूदनः ॥ तथाब्रह्मातथारुद्रस्तथेंद्रोवरुणोयमः ॥ १५ ॥ कुबेरोऽग्नीरवींदूचतथाऽन्येसुरसत्तमाः ॥ मुनयःसनकाद्या श्चवसिष्ठाद्यास्तथाऽपरे ॥ १६ ॥ सर्वेऽवावशगानित्यंपांचालीवनरस्यच ॥ नसिप्रोतायथागावोविचरंतिवशानुगाः ॥ १७ ॥ तथैवदेवताःसर्वाःकालपाश नियंत्रिताः ॥ हर्षशोकादयोभावानिद्रातंद्रालसादयः ॥१८॥ सर्वेषांसर्वदाराजन्देहिनांदेहसंश्रिताः ॥ अमरानिर्जराःप्रोक्तादेवाश्चग्रंथकारकैः ॥ १९ ॥ अ भिधानतश्चार्थतोनतेनूनंताहशाःक्वचित ॥ उत्पत्तिस्थितिनाशाख्याभावायेषांनिरंतरम् ॥ २० ॥ अमरास्तेकथंवाच्यानिर्जराश्चकथंपुनः ॥ कथंदुःखा भिभूतावाजायंतेविबुधोत्तमाः ॥ २१ ॥ कथंदेवाश्चवक्तव्याव्यसनेक्रीडनंकथम् ॥ क्षणादुत्पत्तिनाशश्चदृश्यतेऽस्मिन्नसंशयः ॥ २२ ॥ जलजानांचकीटा नांमशकानांतथापुनः ॥ उपमानकथंचैषामायुषोंऽतेमराःस्मृताः ॥ २३ ॥ ततोवर्षायुषश्चापिशतवर्षायुषस्तथा ॥ मनुष्यास्त्वमरादेवास्तस्माद्ब्रह्मापरःस्मृ तः ॥ २४ ॥ रुद्रस्तथातथाविष्णुःक्रमशश्चभवंतिहि ॥ नश्यंतिक्रमशश्चैववर्धंतिचोत्तरोत्तरम् ॥ २५ ॥

अर्थगत वह कभी नहीं होसक्ते क्योंकि जिनका उत्पत्ति स्थिति और विनाशधर्म सदाही रहता है ॥ २० ॥ उनको किसप्रकार अमर और निर्ज्जर कहा जासक्ता है दुःखयुक्त विबुध कैसे होते हैं ॥ २१ ॥ क्योंकि विपद् उपस्थित होनेपरभी किसप्रकार क्रीडा होसक्ती है देखनेमें आता है कि, इस संसारमें कमलकीट और मशकगण उत्पन्न होकर क्षणमेंही नष्ट होते हैं. इसप्रकार देवतागणोंकोभी आयुके शेषमें मरण धर्म प्राप्त होता है. तो देवतागण इन सम्पूर्ण मरणधर्म्मशील जीवगणके उपमास्थल क्यों न हों? क्यों उनका "मर" यह नाम न हो ॥ २२ ॥ २३ ॥ जन्मादि विकारवान् होनेसे मनुष्योंमें कोई एक वर्ष कोई सौवर्ष कालकी आयुलाभ करते हैं. और फिर देवतागण मनुष्यसे; प्रजापति ब्रह्मा देवतागणोंसे ॥ २४ ॥ रुद्रदेव ब्रह्मासे, और विष्णु रुद्रसे अधिकतर आयुको प्राप्त होते हैं. इसप्रकार क्रमक्रमसे समस्तही नष्ट

और बराबर बढ़ते हैं ॥ २५ ॥ जो देहधारण करता है निश्चयही उसका विनाश होता है हे राजन् ! इसप्रकार इस संसारमें सम्पूर्ण जीवही चक्रकी समान सदा भ्रमण करते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ जीवगण मोहजालमें आच्छन्न हैं. वह कभी मुक्तिलाभ नहीं करसक्ते जबतक माया विद्यमान रहती है तबतक मोहजाल दूर नहीं होता ॥ २७ ॥ हे नृप ! सृष्टिकालमें ब्रह्मादि समस्त वस्तुओंकी यथाक्रमसे उत्पत्ति और प्रलयकालमें नाश होता है ॥ २८ ॥ इससे जिसके नाशविषयमें जो कारण होता है वह उसको विनाश करता है भगवतीकी इच्छासे विधाता जो रचना करते हैं वह फिर अन्यथा नहीं होती ॥ २९ ॥ इस संसारमें यही स्थिर सिद्धान्त जानना चाहिये विधाताके नियति अनुसार सम्पूर्ण जीवगणोंका जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःख अथवा सुख यह समस्त व्यापारही सम्पादित होता है कभी इसके अन्यथा

नूनंदेहवतोनाशोमृतस्योत्पत्तिरेवच ॥ चक्रवद्भ्रमणंराजन्सर्वेषांनाऽत्रसंशयः ॥ २६ ॥ मोहजालाऽऽवृतोजंतुर्मुच्यतेनकदाचन ॥ मायायांविद्यमानायां मोहजालंननश्यति ॥ २७ ॥ उत्पित्सुकालउत्पत्तिःसर्वेषांनृपजायते ॥ तथैवनाशःकल्पांतेब्रह्मादीनांयथाक्रमम् ॥ २८ ॥ निमित्तंयस्तुयन्नाशेसघातय तितंनृप ॥ नान्यथातद्भवेन्नूनंविधिनानिर्मितंतुयत् ॥ २९ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखंवासुखमेववा ॥ तत्तथैवभवेत्कामंनान्यथेहविनिर्णयः ॥ ३० ॥ सर्वेषांसुखदौदेवौप्रत्यक्षौशशिभास्करौ ॥ ननश्यतितयोःपीडाक्वचित्तद्वैरिसंभवा ॥ ३१ ॥ भास्करस्यसुतोमंदःक्षयीचंद्रःकलंकवान् ॥ पश्यराजन्विधेःसूत्रंदुर्वारंमहतामपि ॥ ३२ ॥ वेदकर्ताजगद्धर्ताबुद्धिदस्तुचतुर्मुखः ॥ सोऽपिविक्लवतांप्राप्तोदृष्ट्वापुत्रींसरस्वतीम् ॥ ३३ ॥ शिवस्याऽपिमृताभार्यासतीदग्ध्वा कलेवरम् ॥ सोऽभवद्दुःखसंततःकामार्तश्चजनार्तिहा ॥ ३४ ॥ कामाग्निदग्धदेहस्तुकालिंद्यांपतितःशिवः ॥ साऽपिश्यामजलाजातातन्निदाघवशान्नृप ॥ ३५ ॥

नहीं होता ॥ ३० ॥ देखो प्रत्यक्ष देवता चन्द्र और सूर्य सबकोही सुखप्रदान करते हैं किन्तु इनकी वैरिकृत पीड़ा कभी नष्ट नहीं होती ॥ ३१ ॥ सूर्यके पुत्र सदाही अपकारी होनेसे उनका "मन्द" नाम हुआ है, चन्द्रमा राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त और कलङ्की है. हे राजन् ! सामान्य व्यक्तिके सम्बन्धमें और क्या कहूं ? महद्व्यक्तिगणोंके प्रति भी विधिनियतिका इसप्रकार प्रभाव दिखाई देता है ॥ ३२ ॥ जगत्को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा वेदकर्त्ता और बुद्धिप्रद हैं वेभी अपनी कन्या सरस्वतीको देखकर कामातुर हुए थे ॥ ३३ ॥ शिवकी भार्या सतीके प्राणत्याग करनेपर महादेव सम्पूर्ण दुःखनाशन होनेपर भी अत्यन्त कामार्त्त हो अतिदुःखसे सन्तप्त हुए थे ॥ ३४ ॥ उस समय वह कामाग्निसे दग्धदेह हो कालिन्दीके जलमें पतितहुए उनके सन्तापसे तापिताही यह नदी भी श्यामवर्ण होगई ॥ ३५ ॥

हे राजन्! महादेव जिस समय कामार्त्त और नग्न हो भृगुके वनमें जा रमणकर रहे थे। उस समय तपोधन भृगुने उनको इस अवस्थामें देखकर तुम अत्यन्त निर्लज्ज हो॥ ३६॥ अतएव "इस समय तुम्हारा लिङ्ग पतित हो" यह कहकर उनके प्रति दारुण शाप दिया तब महादेवजीने आनन्द भोगके लिये दानवगणोंका बनाया हुआ अमृत दीर्घिका जल पान किया ॥ ३७ ॥ देवराज इन्द्रभी पृथिवीतलमें बैल होकर ककुत्स्थ राजा के वाहन हुए थे अधिक क्या सम्पूर्ण लोकके आदिभूत विवेकी भगवान् विष्णुकी ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञता और प्रभुशक्तिही कहां गई थी! क्या आश्चर्य्यका विषय है कि, वह स्वर्णके मृगके विषयमें कुछ भी नहीं जानसके॥ ३९॥ हे राजेन्द्र! आप योगमायाका बल अवलोकन कीजिये रामचन्द्रजीने कामसे मोहितऔर सीताके विरहानलमें सन्तप्त एवं अत्यन्त कातर हो अतिरोदन किया था ॥ ४० ॥ उन्होंने अत्यन्त मोहित हो उच्चस्वरसे रोदन करते करते वृक्षगणोंसे पूँछा था जनकात्मजा सीता कहाँ गई है? क्या उनको हिंस्र जन्तुगण भक्षण करगये?

कामातोरममाणस्तुनग्नःसोऽपिभृगोर्वनम् ॥ गतःप्राप्तोऽथभृगुणाशप्तःकामातुरोभृशम् ॥ ३६ ॥ पतत्वद्यैवतेलिंगंनिर्लज्जेतिभृशंकिल ॥ पपौ चामृतवापींचदानवैर्निर्मितांमुदे ॥ ३७ ॥ इंद्रोऽपिचवृषोभूत्वावाहनत्वंगतःक्षितौ ॥ आद्यस्यसर्वलोकस्यविष्णोरेवविवेकिनः ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञत्वंगतंकुत्रप्रभुशक्तिःकुतोगता ॥ यद्धेममृगविज्ञानंनज्ञातंहरिणाकिल॥ ३९॥ राजन्मायाबलंपश्यरामोहिकाममोहितः ॥ रामोविरहसंतप्तोरुरोदभृशमातुरः॥४०॥ योपृच्छत्पादपान्मूढःक्वगताजनकात्मजा ॥ भक्षितावाहृताकेनरुदन्नुच्चतरंततः ॥४१॥ लक्ष्मणाऽहंमरिष्यामिकांताविरहदुःखितः ॥ त्वंचापिममदुःखेन मरिष्यसिवनेऽनुज ॥ ४२ ॥ आवयोर्मरणंज्ञात्वामातामममरिष्यति ॥ शत्रुघ्नोऽप्यतिदुःखार्तःकथंजीवितुमर्हति ॥ ४३ ॥ सुमित्राजीवितंजह्यात्पुत्रव्यसनकर्शिता ॥ पूर्णकामाऽथकैकेयीभवेत्पुत्रसमन्विता ॥ ४४ ॥ हासीतेक्वगताऽसित्वंमांविहायस्मरातुरा ॥ एह्येहिमृगशावाक्षिमांजीवयकृशोदरि ॥ ॥ ४५ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामित्वदधीनंचजीवितम् ॥ समाश्वासयदीनंमांप्रियंजनकनंदिनि ॥ ४६ ॥

अथवा कोई दुर्वृत्त उनको हरण कर लेगया? ॥ ४१ ॥ हे भ्रातृ लक्ष्मण! मैं प्रियाके विरहानलमें दग्ध हो इस समय प्राणत्याग करूंगा हाय! फिर तुमभी मेरी विरहवह्निमें जीवन विसर्जन करोगे ॥ ४२ ॥ मेरा मृत्यु सम्वाद सुनकर माता भी जीवन विसर्ज्जन करेगी शत्रुघ्नभी अत्यन्त दुःखसे कातर हो जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ ४३ ॥ सुमित्रा माता भी पुत्रमरणकी शोकानलमें प्राणत्याग करेगी तब भरतके सहित कैकयीका मनोरथ निःसन्देह पूर्ण होगा ॥ ४४ ॥ हा सीते! मैं कामबाणसे पीड़ित होता हूं तुम मुझको त्यागकर कहां चलीं गई. हे मृगलोचने! हे कृशोदरि! तुम आओ और शीघ्र मुझको प्राणदान दो ॥ ४५ ॥ मैं क्या करूं? कहां जाऊं? मेरा जीवन तुम्हारेही अधीन है हे जनकनन्दिनि! मैं तुम्हारा प्रियहूं इस समय तुम्हारे विरहमें अत्यन्त

दीन हुआ हूं तुम आकर मुझको समझाओ ॥ ४६ ॥ अलौकिक प्रभावसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार विलाप करते करते वनवनमें भ्रमण किया था किन्तु जनकतनयाको नहीं देखसके ॥ ४७ ॥ क्या आश्चर्य्य है ! कि कमललोचन श्रीरामचन्द्र सम्पूर्णलोकोंकी शरण देनेवाले थे उन्होंने मायामें मोहित होकर वानरगणोंका आश्रय ग्रहण किया था ॥ ४८ ॥ और उनकी सहायतासे समुद्रमें पुल बाँध महोदर वीरवर कुम्भकर्ण और रावणका विनाश किया था ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सीताको अपने समीप लाय स्वयं सर्वज्ञ होकर भी दुरात्मा रावणने सीताका हरण किया है यह जानकर उसको दिव्य कराया था ॥ ५० ॥ हे महाराज ! योगमायाका बल अत्यन्त महत् है उसके प्रभावकी बात क्या कहूं यह समस्त विश्वमण्डल उसके द्वारा चलायमान हो निरन्तर भ्रमण करता है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार अनेक अवतारमें

एवंविलपतातेनरामेणाऽमिततेजसा ॥ वनेवनेचभ्रमतानेक्षिताजनकात्मजा ॥ ४७ ॥ शरण्यःसर्वलोकानांरामःकमललोचनः ॥ शरणंवानराणां सगतोमायाविमोहितः ॥ ४८ ॥ सहायान्वानरान्कृत्वाबबंधवरुणालयम् ॥ जघानरावणंवीरंकुंभकर्णमहोदरम् ॥ ४९ ॥ आनीयचततःसीतांरामोदि व्यमकारयत् ॥ सर्वज्ञोऽपिहृतांमत्वारावणेनदुरात्मना ॥ ५० ॥ किंब्रवीमिमहाराजयोगमायाबलंमहत् ॥ ययाविश्वमिदंसर्वंभ्रामितंभ्रमतेकिल ॥५१॥ एवंनानाऽवतारेऽत्रविष्णुःशापवशंगतः ॥ करोतिविविधाश्चेष्टादैवाधीनःसदैवहि ॥ ५२ ॥ तवाऽहंकथयिष्यामिकृष्णस्याऽपिविचेष्टितम् ॥ प्रभवंमानुषे लोकेदेवकार्यार्थसिद्धये ॥ ५३ ॥ कालिंदीपुलिनेरम्येह्यासीन्मधुवनंपुरा ॥ लवणोमधुपुत्रस्तुतत्राऽसीद्दानवोबली ॥ ५४ ॥ द्विजानांदुःखदःपापो वरदानेनगर्वितः ॥ निहतोऽसौमहाभागलक्ष्मणस्यानुजेनवै ॥५५॥ शत्रुघ्नेनाथसंग्रामेतंनिहत्यमदोत्कटम् ॥ वासितामथुरानामपुरीपरमशोभना ॥५६॥ सतत्रपुष्कराक्षौद्वौपुत्रौशत्रुनिषूदनः ॥ निवेश्यराज्येमतिमान्कालेप्राप्तेदिवंगतः ॥ ५७ ॥

भगवान् विष्णु शापके वशीभूत और दैवके आधीन हो सदाही अनेकप्रकारके कार्य्य करते हैं॥ ५२ ॥ हे राजन् ! मैं इस समय देवतागणोंका कार्यसाधनके लिये श्रीकृष्णकी मनुष्यलोकमें उत्पत्ति और उनके चरित्रकी कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५३ ॥ पूर्वकालके समय कालिन्दीके मनोहर तटपर मधुवननामक एक स्थान था मधुका पुत्र लवण नामक एक महाबलवान् दानव उस स्थानमें वास करता था ॥ ५४ ॥ वह पापाशय वरलाभसे गर्वित हो ब्राह्मणगणोंको अत्यन्त दुःख देता. इसके उपरान्त लक्ष्मणके भ्राता शत्रुघ्नने उस कठिनतासे मारने योग्य दैत्यको संग्राममें दलित कर उसी स्थानमें मथुरानामक परम मनोहर एक पुरी बनाई ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ शत्रु विनाशन मतिमान् शत्रुघ्नने अपने (पुष्कर) और अक्ष इन दोनों पुत्रोंको उस राज्यमें अभिषिक्त करके मरनेका समय उपस्थित होनेपर स्वर्गमें गमन किया ॥ ५७ ॥

फिर सूर्यवंशकी क्षीणदशा हुई ययाति कुलमें उत्पन्न हुए यादवगणोंने उस मुक्तिदेनेवाली मथुरापुरीपर अधिकार किया ॥ ५८ ॥ हे राजेन्द्र ! शूरसेन नामक शूरवर एक यादवनृपति उस स्थानमें राजा हो मथुराके ऐश्वर्यका भोग करता रहा ॥ ५९ ॥ वहां वरुणके शापके निमित्त कश्यपके अंशसे वसुदेवनामक विख्यात शूरसेनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६० ॥ वह वैश्यवृत्ति अर्थात् खेतीकार्य्यादिमें तत्पर हुआ उस मथुरापुरीमें उग्रसेनके पिताकी मृत्यु होनेपर श्रीमान् उग्रसेनने मथुराका आधिपत्य लाभ किया कुछ काल व्यतीत होनेपर कंसनामक उसके एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६१ ॥ इधर देवक राजाके अदितिके अंशसे देवकी नामक एक कन्याने वरुणके शापसे जन्म ग्रहण किया कश्यपकी अनुगामिनी ॥ ६२ ॥ महात्मा देवक राजाने अपनी कन्याके संग वसुदेवका विवाह किया यह विवाह कार्य्य होचुकनेपर ॥ ६३ ॥ कंसके प्रति यह आकाशवाणी हुई कि, हे महाभाग कंस! इस देवकीके गर्भसे आठवीं सन्तान तेरे मारनेवाली होगी ॥ ६४ ॥ महाबल कंस

सूर्यवंशक्षयेतांतुयादवाःप्रतिपेदिरे ॥ मथुरांमुक्तिदांराजन्ययातितनयाःपुरा ॥ ५८ ॥ शूरसेनाभिधःशूरस्तत्राभून्मेदिनीपतिः ॥ माथुराञ्छूरसेनांश्चबुभुजे विषयान्नृप ॥ ५९ ॥ तत्रोत्पन्नःकश्यपांशःशापाच्चवरुणस्यवै ॥ वसुदेवोऽतिविख्यातःशूरसेनसुतस्तदा ॥ ६० ॥ वैश्यवृत्तिरतःसोऽभून्मृतेपितरिमाधवः ॥ उग्रसेनोबभूवाथकंसस्तस्याऽऽत्मजोमहान् ॥ ६१ ॥ अदितिर्देवकीजातादेवकस्यसुतातदा ॥ शापाद्वैवरुणस्याऽथकश्यपाऽनुगताकिल ॥ ६२ ॥ दत्तासाव सुदेवायदेवकेनमहात्मना ॥ विवाहेरचितेतत्रवागभूद्गगनेतदा ॥ ६३ ॥ कंसकंसमहाभागदेवकीगर्भसंभवः ॥ अष्टमस्तुसुतःश्रीमांस्तवहंताभविष्यति ॥ ६४ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंकंसोविस्मितोऽभून्महाबलः ॥ देववाचंतुतांमत्वासत्यांचिंतामवापसः ॥ ६५ ॥ किंकरोमीतिसंचिंत्यविमर्शमकरोत्तदा ॥ निहत्यैनांनमेमृत्यु र्भवेदद्यैवसत्वरम् ॥ ६६ ॥ उपायोनान्यथाचास्मिन्कार्येमृत्युभयावहे ॥ इयंपितृष्वसापूज्याकथंहन्मीत्यचिंतयत् ॥ ६७ ॥ पुनर्विचारयामासमरणंमेस्त्वहो स्वसा ॥ पापेनाऽपिप्रकर्तव्यादेहरक्षाविपश्चिता ॥ ६८ ॥ प्रायश्चित्तेनपापस्यशुद्धिर्भवतिसर्वदा ॥ प्राणरक्षाप्रकर्तव्याबुधैरप्येनसातथा ॥ ६९ ॥

उस आकाशवाणीको सुन आश्चर्ययुक्त हो और उसको सत्य जानकर अत्यन्त चिन्तामें मग्न हुआ ॥ ६५ ॥ तिस समय कंस क्या करूं ! इसप्रकार चिन्ता करके मनमें विचारने लगा एकबार यह विचार किया कि, अब शीघ्र इसको मारडालूं तो फिर मैं न मरूंगा ॥ ६६ ॥ क्योंकि इस मृत्युजनक कार्य्यका अन्य कोई उपाय नहीं दीखता फिर विचारा कि,यह मेरे पिताके स्थानापन्नदेवककी कन्या अतएव मेरी भगिनीहै तथा पूजनीयहै इसको किसप्रकार मारूं? ॥ ६७ ॥ अन्तमें यह निश्चय किया कि यह मेरी पूजनीय भगिनी होनेपरभी मेरी मृत्युरूपिणी हुई है अतएव इसके मारनेसे मुझको पाप स्पर्श नहीं करसक्ता क्योंकि पंडितगण कहते हैं कि, पापकार्यद्वाराभी अपनी देहकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ६८ ॥ प्रायश्चित्तसे सर्वदाही पापकी शुद्धि होती है अतएव पापकार्य्य करकेभी अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ६९ ॥

पापाशय कंसने मनमें इसप्रकार चिन्ता करके शीघ्र खड्गधारणपूर्वक उसके केशग्रहण किये ॥ ७० ॥ और वरारोहा देवकीके विनाशकी इच्छासे मियानसे खड्ग खींचकर सबके सामने उस नवविवाहिता कामिनीका आकर्षण करनेलगा ॥ ७१ ॥ कंसको देवकीके मारनेमें उद्यत देखकर सभी महाकोलाहल करनेलगे तब वसुदेवके वशमें रहनेवाले वीरोंने शरासन संयोजित किया ॥ ७२ ॥ वह अद्भुत साहसशाली वीरगण देवकीको छोड़नेके लिये वारंवार कंससे कहनेलगे फिर उन्होंने दया करके देवमाता देवकीको दुरात्मा कंसके हाथसे छुड़ालिया ॥ ७३ ॥ तब महाबलवान् कंससे उन वसुदेवके सहायक वीरोंका घोर युद्ध हुआ ॥ ७४ ॥ फिर दारुण लोमहर्षण युद्ध होता देख बूढे यादवोंने कंसको निवारण करके कहा ॥ ७५ ॥ यह देवकी तुम्हारी बहन है. इसका तुमको सन्मान

विचिंत्यमनसाकंसःखड्गमादायसत्वरः ॥ जग्राहतांवरारोहांकेशेष्वाकृष्यपापकृत् ॥७०॥ कोशात्खड्गमुपाकृष्यहंतुकामोदुराशयः ॥ पश्यतांसर्वलोकानांनवोढांतांचकर्षह ॥७१॥हन्यमानांचतांदृष्ट्वाहाहाकारोमहानभूत् ॥वसुदेवानुगावीरायुद्धायोद्यतकार्मुकाः ॥७२॥मुंचमुंचेतिप्रोचुस्तंतेतदाद्भुतसाहसाः ॥ कृपयामोचयामासुर्देवकींदेवमातरम् ॥७३॥तद्युद्धमभवद्घोरंधीराणांचपरस्परम् ॥ वसुदेवसहायानांकंसेनचमहात्मना ॥७४॥ वर्तमानेतथायुद्धेदारुणेलोमहर्षणे ॥ कंसंनिवारयामासुर्वृद्धायेयदुसत्तमाः ॥७५॥ पितृष्वसेयंतेवीरपूजनीयाचबालिशा ॥ नहंतव्यात्वयावीरविवाहोत्सवसंगमे ॥ ७६ ॥ स्त्रीहत्या दुःसहावीरकीर्तिघ्नीपापकृत्तमा ॥ भूतभाषितमात्रेणनकर्तव्याविजानता ॥ ७७ ॥ अंतर्हितेनकेनाऽपिशत्रुणातवचाऽस्यवा ॥ उदितेतिकुतोनस्याद्रागनर्थकरीविभो ॥७८॥ यशसस्तेविघातायवसुदेवगृहस्यच ॥ अरिणारचितावाणीगुणमायाविदानृप ॥ ७९ ॥ बिभेषिवीरस्त्वंभूत्वाभूतभाषितभाषया ॥ यशोमूलविघातार्थमुपायस्त्वरिणाकृतः ॥ ८० ॥

करना उचित है. किन्तु तुम जो इसको मारोगे. यह बात इस बालिकाने विचारी भी नहीं है. अतएव हे वीर ! इस विवाहके उत्सवकालमें इसका वध करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है ॥ ७६ ॥ हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! स्त्रीकी हत्यासे यशका नाश और घोरतर पाप होता है, एवं वह मनुष्यके पक्षमें अत्यन्त असहनीय है और ज्ञानी पुरुषका सामान्य आकाशवाणीके ऊपर विश्वास करके स्त्रीहत्या करना कभी उचित नहीं है ॥ ७७ ॥ ज्ञात होता है तुम्हारे अथवा वसुदेवके किसी शत्रुने छिपकर यह अनर्थकर वचन कहा है. ऐसा न होनेसे कोईभी कारण संभव नहीं होसक्ता ॥ ७८ ॥ हमको बोध होता है. तुम्हारे यशका नाश और वसुदेवके गृहका नाश करनेकोही इन्द्रजालिक मायाविद्याविशारद किसी शत्रुने यह आकाशवाणी रची है ॥ ७९ ॥ हे नृप ! तुम वीरवर होकरभी भूत वाक्यसे भय करते हो ! हमको

निश्चय बोध होता है, तुम्हारे यशरूपी वृक्षकी जड़ उखाड़नेके लिये ही शत्रुओंने इस प्रकार उपाय किया है. इसमें संदेह नहीं ॥ ८० ॥ हे महाराज ! भवितव्यके अन्यथा कभी नहीं होता. इस कारण विवाहकालमें इस पूजनीय बहनका वध करना उचित नहीं है ॥ ८१ ॥ हे राजन् जन्मेजय ! वृद्धयादवोंके समझानेपर भी जब कंसराज निवृत्त नहीं हुआ. तब नीतिशास्त्रके जाननेवाले वसुदेवने उससे कहा ॥ ८२ ॥ हे कंस ! यह त्रिभुवन सत्यमेंही प्रतिष्ठित है. मैं सत्य कहता हूं कि, देवकीके गर्भसे मेरे जितनी संतान उत्पन्न होगी. उत्पन्न होतेही वह सब मैं आपको समर्पण करूंगा ॥ ८३ ॥ जो सब पुत्र उत्पन्न होंगे. वे उत्पन्न होतेही यदि सब तुमको न दूं. तो मेरे पूर्वपुरुषगण कुंभीपाकनरकमें गिरें ॥ ८४ ॥ सामने खड़े पुरुवंशी लोगोंने वसुदेवका इसप्रकार सत्य वचन सुन वारंवार साधुवाद देकर कंससे कहा ॥ ८५ ॥ वसुदेव महाशय पुरुष हैं. यह किसी समय भी मिथ्यावचन नहीं कहते अतएव हे महाभाग ! अब देवकीके केशकलाप छोडकर हत्याके पापसे मुक्त

पितृष्वसानहंतव्याविवाहसमयेपुनः॥ भवितव्यंमहाराजभवेच्चकथमन्यथा ॥ ८१ ॥ एवंतैर्बोध्यमानोसौनिवृत्तोनाऽभवद्यदा ॥ तदातंवसुदेवोऽपिनीतिज्ञःप्रत्यभाषत ॥ ८२ ॥ कंससत्यंब्रवीम्यद्यसत्याधारंजगत्त्रयम् ॥ दास्यामिदेवकीपुत्रानुत्पन्नांस्तववर्शशः ॥ ८३ ॥ जातंजातंसुतंतुभ्यंनदास्यामियदिप्रभो ॥ कुंभीपाकेतदाघोरेपतंतुममपूर्वजाः ॥ ८४ ॥ श्रुत्वाऽथवचनंसत्यंपौरवायेपुरःस्थिताः ॥ ऊचुस्तेतंवरिताःकंसंसाधुसाधुपुनःपुनः ॥ ८५ ॥ नमिथ्याभापतेक्काऽपिवसुदेवोमहामनाः ॥ केशंमुंचमहाभागस्त्रीहत्यापातकंतथा ॥ ८६ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंप्रबोधितःकंसोयदुवृद्धैर्महात्मभिः ॥ क्रोधंत्यक्त्वास्थितस्तत्रसत्यवाक्याऽनुमोदितः ॥ ततोदुंदुभयोनेदुर्वादित्राणिचसस्वनुः ॥ ८७ ॥ "जयशब्दस्तुसर्वेषामुत्पन्नस्तत्रसंसदि ॥ " प्रसाद्यकंसंप्रतिमोच्यदेवकींमहायशाःशूरसुतस्तदानीम् ॥ जगामगेहंस्वजनानुवृत्तोनवोढयावीतभयस्तरस्वी ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ छ ॥ व्यासउवाच ॥ अथकालेतुसंप्राप्तेदेवकीदेवरूपिणी ॥ गर्भंदधारविधिवद्वसुदेवेनसंगता ॥१॥ पूर्णेऽथदशमेमासेसुषुवेसुतमुत्तमम् ॥ रूपावयवसंपन्नंदेवकीप्रथमंयदा ॥ २ ॥

होओ ॥ ८६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जब महात्मा बूढ़े यादवोंने कंसको इसप्रकार समझाया. तब वह वसुदेवके सत्य वाक्यका अनुमोदन कर क्रोधपरित्याग पूर्वक खड़ा रहा. तिसकाल दुन्दुभीकी ध्वनि और वादित्रस्वरसे वह स्थान पूर्ण होगया ॥ ८७ ॥ "और सबका धन्य धन्य जयशब्द उच्चारित होने लगा " तब शूरसेनके पुत्र महायशा वसुदेवने इसप्रकार कंसराजको प्रसन्न करके देवकीको छुड़ाया और फिर स्वजनगणोंसे परिवृत हो नवोढ़ा (नई व्याही) वधूके सहित निर्भय अपने घरकी ओर शीघ्र प्रस्थान किया ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! अनन्तर देवरूपिणी देवकीने वसुदेवके संग यथानियमसे मिलित हो गर्भधारण किया ॥ १ ॥ फिर दशमास पूर्ण होनेपर देवकीका

स्वरूप शोभनाकृति प्रथमपुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ उस समय महाभाग वसुदेव कंसके निकट प्रतिज्ञाके सत्यवाक्य और भवितव्यता स्मरण करके अदितिके अंशोत्पन्न देवकीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे सुंदरी ! मैंने तुम्हारे विवाहकालमें कंससे " देवकीके गर्भसे जो संतान जन्मग्रहण करेगी, उत्पन्न होतेही तुमको दूंगा " यह कह शपथ कर तुम्हारी उसके हाथसे रक्षा करी है. सो तुम जानती ही हो. अब कंसके हाथमें पुत्रको समर्पण करनेका वही समय उपस्थित है ॥ ४ ॥ हे सुकेशी ! इस समय इस पुत्रको तुम्हारे पितृव्यपुत्रअर्थात् भ्राता कंसके हाथमें समर्पण करूंगा हे देवि ! देखो अत्यन्त खल कंस और दैवके विषयमें पुत्रके नाशार्थ क्या उपाय करोगी? यह मैं कहनहीं सकता. हे महाभागे ! इसविषयमें तुम्हारी वा मेरी क्या सामर्थ्य है । कर्मका परिणाम अतिशय विचित्र है साधारण मनुष्य उसको नहीं जानसक्ते ॥ ५ ॥ सम्पूर्णही जीव कालपाशके वशीभूत हो अपने किये अच्छे बुरे कर्मका फल भोगते हैं ॥ ६ ॥ जीवगणोंका प्रारब्ध अर्थात् कर्माधीन फल भोग विधि निर्मित जानकर इस

तदाऽऽहवसुदेवस्तांसत्यवाक्यानुमोदितः ॥ भावित्वाच्चमहाभागोदेवकींदेवमातरम् ॥ ३ ॥ वरोरुसमयंमेत्वंजानासिस्वसुतार्पणे ॥ मोचितात्वंमहाभागे शपथेनमयातदा॥४॥इमंपुत्रंसुकेशांतिदास्यामिभ्रातृसूनवे॥"खलेकंसेविनाशार्थंदैवेकिंवाकरिष्यसि ॥" विचित्रकर्मणांपाकोदुर्ज्ञेयोह्यकृतात्मभिः ॥ ५ ॥ सर्वेषांकिलजीवानांकालपाशानुवर्तिनाम् ॥ भोक्तव्यंस्वकृतंकर्मशुभंवायदिवाऽशुभम् ॥६॥ प्रारब्धंसर्वथैवाऽत्रजीवस्यविधिनिर्मितम् ॥ देवक्युवाच॥स्वामिन्पूर्वकृतंकर्मभोक्तव्यंसर्वथानृभिः ॥७॥ तीर्थैस्तपोभिर्दानैर्वाकिंनयातिक्षयंहितत् ॥ लिखितोधर्मशास्त्रेषुप्रायश्चित्तविधिर्नृप ॥ ८ ॥ पूर्वार्जितानांपापानांविनाशायमहात्मभिः॥ब्रह्महाहेमहारीचसुरापोगुरुतल्पगः ॥ ९ ॥ द्वादशाब्दव्रतेचीर्णेशुद्धिंयातियतस्ततः ॥ मन्वादिभिर्यथोद्दिष्टंप्रायश्चित्तंविधानतः ॥ १० ॥ तथाकृत्वानरःपापान्मुच्यतेवानवाऽनघ ॥ विगीतवचनास्तेकिंमुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥११॥याज्ञवल्क्यादयःसर्वेधर्मशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ भवितव्यंभवत्येवयद्येवंनिश्चयःप्रभो ॥ १२ ॥ आयुर्वेदःसमिथ्यैवमंत्रवादास्तथाऽखिलाः ॥ उद्यमस्तुवृथासर्वमेवंचेद्दैवनिर्मितम् ॥ १३ ॥

विषयका अनुमोदन करो । देवकी बोली हे स्वामिन् ! मनुष्योंको अवश्यही पूर्वकृतकर्मोंका फल भोगना होता है॥ ७॥ किन्तु वह क्या तीर्थवास, तपस्या, अथवा दानसे वह पाप ध्वंस नहीं होता, महात्मा महर्षिगणोंने धर्मशास्त्रमें पूर्वार्जित पापविनाशके निमित्त प्रायश्चित्तकी विधि कही है ॥ ८ ॥ ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुराने वाले, मदिरा पीनेवाले और गुरुकी स्त्रीका हरण करनेवाले इत्यादि पातकी ॥ ९ ॥ द्वादशवार्षिक व्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होते हैं, मनु इत्यादि मुनियोंने जिस प्रकारसे प्रायश्चित्त विधान किया है ॥ १० ॥ यदि मनुष्यगण उसीके अनुसार क्रियाका अनुष्ठान करें तो क्या पापसे मुक्त न हों ? यदि प्रायश्चित्त को शुद्धिका कारण स्वीकार न किया जाय तो क्या धर्मशास्त्रके प्रवर्त्तक याज्ञवल्क्यादि तत्त्वदर्शी महर्षिगणोंके वचनको मिथ्या और गर्हित कहैं । हे प्रभो ! जो भवितव्य अर्थात् होनहार है वह अवश्यही होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ यह यदि निश्चित ही है, तो सम्पूर्ण आयुर्वेद और मंत्रवाद मिथ्या हुआ जाता है, यदि सम्पूर्ण कार्यही दैव संघटित

हों तो किसी उद्यमसे कोईभी फललाभ नहीं होता, अतएव उन सबको ही वृथा मानना होगा ॥ १३ ॥ और जो भवितव्य है वही होगा. यदि यह बात स्वीकार कीजाय तो कर्ममें प्रवृत्ति और अग्निष्टोमादि स्वर्गसाधक सब यज्ञ निरर्थक हुए जाते हैं ॥ १४ ॥ विचार करके देखो, यदि दैवकीही प्रबलता स्वीकार की जाय, तो परमेश्वरके कहे सम्पूर्ण वेदही मिथ्या हुए जाते हैं यदि वेदका प्रमाण मिथ्या हो तो धर्मकाभी नाश क्यों न होगा ? ॥ १५ ॥ जब कि उद्यम करनेसेही फलसिद्धि प्रत्यक्ष देखी जाती है तो कार्यसाधनके लिये विचारपूर्वक किसी उपायका अवलम्बन करना चाहिये ॥ १६ ॥ अतएव जिससे मेरे सद्योजात बालकका मंगल हो, विचार करके इसका कोई अच्छा उपाय स्थिर करो. पंडितगण कहते हैं कि, यदि किसी जीवकी रक्षा इत्यादि मंगलाकांक्षासे कदाचित् झूठ बोले ॥ १७ ॥ तो वह दोषमें

भवितव्यंभवत्येवप्रवृत्तिस्तुनिरर्थिका ॥ अग्निष्टोमादिकंव्यर्थंनियतंस्वर्गसाधनम् ॥१४॥ यदातदाप्रमाणंहिवृथैवपरिभाषितम् ॥ वितथेतत्प्रमाणेतुधर्मोच्छेदः कुतोनहि॥१५॥उद्यमेचकृतेसिद्धिःप्रत्यक्षेणैवसाध्यते ॥ तस्मादत्रप्रकर्तव्यःप्रपंचश्चिंतकल्पितः ॥१६॥ यथायंबालकःक्षेमंप्राप्नोतिममपुत्रकः ॥ मिथ्यायदिप्रकर्तव्यंवचनंशुभमिच्छता ॥ १७ ॥ नतत्रदूषणंकिंचित्प्रवदंतिमनीषिणः ॥ वसुदेवउवाच ॥ निशामयमहाभागेसत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥१८॥ उद्यमःखलुकर्तव्यःफलंदैववशानुगम् ॥ त्रिविधानीहकर्माणिसंसारेत्रपुराविदः ॥१९॥ प्रवदंतीहजीवानांपुराणेष्वागमेषुच ॥ संचितानिचजीर्णानिप्रारब्धानिसुमध्यमे ॥ २० ॥ वर्तमानानिवामोरुत्रिविधानीहदेहिनाम् ॥ शुभाऽशुभानिकर्माणिबीजभूतानियानिच ॥ २१ ॥ बहुजन्मसमुत्थानिकालेतिष्ठंतिसर्वथा ॥ पूर्वदेहंपरित्यज्यजीवःकर्मवशानुगः ॥ २२ ॥ स्वर्गवानरकंवाऽपिप्राप्नोतिस्वकृतेनवै ॥ दिव्यंदेहंचसंप्राप्ययातनादेहमर्थजम् ॥ २३ ॥ भुनक्तिविविधान्भोगान्स्वर्गेवानरकेऽथवा ॥ भोगांतेचयदोत्पत्तेःसमयस्तस्यजायते ॥ २४ ॥

नहीं गिना जाता यह महात्माओंका कथन है । वसुदेवजी बोले हे महाभागे ! मैं तुमसे सत्यका विषय कहता हूं सुनो ॥ १८ ॥ यद्यपि उद्यम मनुष्यका अवश्यकर्तव्य है, किन्तु उसका फल दैवके आधीन जानना चाहिये । पुरातन तत्त्ववादी इस संसारमें तीन प्रकारके कर्म कहते हैं ॥ १९ ॥ पुराण और आगम (शास्त्र) में कहा है कि, इस संसारमें जीवोंके कर्म तीन प्रकार हैं हे सुमध्यमे ! पूर्वकृत संचित कर्म, प्रारब्धकर्म ॥ २० ॥ और वर्तमान अनेक जन्मोंके किये बीजस्वरूप जो शुभाशुभ (अच्छेबुरे) कर्म हैं ॥ २१ ॥ वह सभी जन्मान्तरोंके समयमें अवस्थित रहते हैं उन कर्मोंके वशीभूत होकरही जीव पूर्व देह छोड़कर अपने कर्मसे ॥ २२ ॥ स्वर्ग वा नरक भोगते हैं, जीवगण अपने अपने शुभाशुभ कर्मानुसार पुण्यजनित दिव्यदेह अथवा पापजनित यातनामय देह धारण करके ॥ २३ ॥ स्वर्ग वा नरकमें पुण्यपापसे

उत्पन्न विविधप्रकारके भोग भोग करते हैं इन कर्मोंके भोगनेपर फिर जब उसके देह धारण करनेका समय आता है ॥ २४ ॥ तब लिंगदेहके सहित जीवसंज्ञाको प्राप्त होकर जन्मग्रहण करता है। लिंगदेहके आविर्भाव समयमें परमेश्वर जीवके संचित कर्मसमूहसे परिपक्व कर्मसमूह ॥ २५ ॥ इस जीवमें योजित करते हैं. इस कारण संचित शुभाशुभ कर्मसमूह जीवदेहमें निरन्तर वर्तमान रहते हैं ॥ २६ ॥ हे सुलोचने ! प्रारब्धकर्मका फल जीवोंको अवश्यही भोगना होता है. हे भामिनी ! यथाविधि प्रायश्चित्त अनुष्ठानसे जीवोंके वर्तमान सब कर्म नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥ इसीप्रकार संचित भी और प्रारब्ध भोगद्वाराही क्षय होता है ! प्रायश्चित्त वा अन्य किसीप्रकारसे उसका क्षय नहीं होता ॥ २८ ॥ अतएव कंसराजको तुम्हारा यह पुत्र अवश्य देनाचाहिये। हे देवि ! इस संसारमें जिससे लोकनिन्दा वा मिथ्या बात प्रकाशित हो मैं

लिंगदेहेनसहितंजायतेजीवसंज्ञितम् ॥ तदैवसंचितेभ्यश्चकर्मभ्यःकर्मभिःपुनः ॥ २५ ॥ योजयत्येवतंकालंकर्माणिप्राक्तनानिच ॥ देहेनानेनभाव्यानिशुभानिचाऽशुभानिच ॥ २६ ॥ प्रारब्धानिचजीवेनभोक्तव्यानिसुलोचने ॥ प्रायश्चित्ते ननश्यंतिवर्तमानानिभामिनि ॥ २७ ॥ संचितानितथैवाऽऽशुयथार्थविहितेनच ॥ प्रारब्धकर्मणांभोगात्संक्षयोनान्यथाभवेत् ॥२८॥ तेनायंतेकुमारोवैदेयःकंसायसर्वथा ॥ नमिथ्यावचनंमेऽस्तिलोकनिंदाऽभिदूषितम् ॥ २९ ॥ अनित्येऽस्मिंस्तुसंसारेधर्मसारेमहात्मनाम् ॥ दैवाधीनंहिसर्वेषांमरणंजननंतथा ॥ ३० ॥ तस्माच्छोकोनकर्तव्योदेहिनाहिनिरर्थकः ॥ सत्यंयस्यगतंकांतवृथातस्यैवजीवितम् ॥ ३१ ॥ इहलोकोगतोयस्मात्परलोकःकुतस्ततः ॥ अतोदेहिसुतंसुभ्रुकंसायप्रददाम्यहम् ॥ ३२ ॥ सत्यसंस्तरणादेविशुभमग्रेभविष्यति ॥ कर्तव्यंसुकृतंपुंभिःसुखेदुःखेसतिप्रिये ॥ ३३ ॥ "सत्यसंरक्षणादेविशुभमेवभविष्यति ॥" व्यासउवाच ॥ इत्युक्तवतिकांतेसादेवकीशोकसंयुता ॥ ददौपुत्रंप्रसूतंचवेपमानामनस्विनी ॥ ३४ ॥

कभी वह नहीं करूंगा ॥ २९ ॥ इससे तुम सत्यकी रक्षा करके कंसके हाथमें कुमारको समर्पण करो। हे देवकी ! इस असार संसारमें धर्मही सार वस्तु है महात्मालोगोंका जीवन मरण दैवके आधीन है ॥ ३० ॥ इसकारण जीवोंको निरर्थक शोकप्रकाश करना कभी कर्त्तव्य नहीं है. हे जीवनाधिके ! अधिक क्या कहूं। जिसका सत्य नष्ट होजाताहै उसका जीवनही वृथा है ॥ ३१ ॥ हे सुभ्रू। जिसका यह लोक नष्ट हुआ इससे फिर परलोकका क्या कार्य साधित हो सक्ता है कहो। अतएव हे देवि ! बालकको दो, मैं कंसके हाथमें इसको समर्पण करूं ॥ ३२ ॥ हे प्रिये ! सत्यपार होनेपर फिर अवश्यही हमारा मंगल होगा जिस स्थानमें जीवका सुखदुःख निश्चितरहता है, उस स्थानमें सुकृत साधन ही उचित है ॥ ३३ ॥ "सत्यकी रक्षा करनेसे अवश्य ही शुभ फल होगा, इसमें संदेह नहीं"

व्यासजी बोले अपने स्वामी वसुदेवके यह सब वचन कहनेपर शोकयुक्त मनस्विनी देवकीने कंपितकलेवर हो सद्यःप्रसूत उस पुत्रको वसुदेवके हाथमें समर्पण किया ॥ ३४ ॥ धर्मात्मा वसुदेव उस बालक पुत्रको लेकर कंसके भवनकी ओर चले। मार्गमें मनुष्य उनके इस अद्भुत कार्यको देख प्रशंसा करके कहने लगे ॥ ३५ ॥ लोक बोले हे जनगण! वसुदेवकी मनस्विता देखो, यह अपने सत्य वचनकी रक्षाके निमित्त निज बालक पुत्रको ग्रहण करके कंसके घर जा रहे हैं ॥ ३६ ॥ यह सत्यवादी असूयारहित पुरुषप्रधान वसुदेव अपने पुत्रको मृत्युके कराल कवलमें देनेके अभिलाषी हुए हैं तुम लोग इनका यह अद्भुत धैर्य देखो. अहो! इस महापुरुषका ही जीवन सार्थक है ॥ ३७ ॥ यह कालरूप कंसको पुत्र देने जाते हैं व्यासजी बोले हे पृथ्वीन्द्र! वसुदेव इस प्रकार स्तूयमान होकर कंसके गृहमें पहुँचे ॥ ३८ ॥ और तुर्तके हुए उस देवरूपी पुत्रको कंसके हाथमें समर्पण किया उनका इस प्रकार धैर्य देखकर कंसराजकोभी अत्यन्त अचंभा हुआ ॥ ३९ ॥

वसुदेवोपिधर्मात्माआदायस्वसुतंशिशुम् ॥ जगामकंससदनंमार्गेलोकैरभिष्टुतः ॥ ३५ ॥ लोकाऊचुः ॥ पश्यंतुवसुदेवंभोलोकाएवंमनस्विनम् ॥ स्ववाक्यमनुरुध्यैवबालमादाययात्यसौ ॥ ३६ ॥ मृत्यवेदातुकामोऽयसत्यवागनसूयकः ॥ सफलंजीवितंचाऽस्यधर्मंपश्यंतुचाऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ यःपुत्रंयातिकंसायदातुंकालात्मनेऽपिहि ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंस्तूयमानस्तुप्राप्तःकंसालयंनृप ॥ ३८ ॥ ददावस्मैकुमारंतंजातमात्रममानुषम् ॥ कंसोपिविस्मयंप्राप्तोदृष्ट्वाधैर्यंमहात्मनः ॥ ३९ ॥ गृहीत्वाबालकंप्राहस्मितपूर्वमिदंवचः ॥ धन्यस्त्वंशूरपुत्राऽद्यज्ञातःपुत्रसमर्पणात् ॥ ४० ॥ ममृत्युर्नचायंवैगिराप्रोक्तस्तुचाऽष्टमः ॥ नहंतव्योमयाकामंबालोऽयंयातुतेगृहम् ॥ ४१ ॥ अष्टमस्तुप्रदातव्यस्त्वयापुत्रोमहामते ॥ इत्युक्त्वावसुदेवायददावाशुखलःशिशुम् ॥ ४२ ॥ गच्छत्वयंगृहेबालःक्षेमंव्याहृतवान्नृपः ॥ तमादायतदाशौरिर्जगामस्वगृहंमुदा ॥ ४३ ॥ कंसोऽपिसचिवानाऽऽहवृथाकिंघातयेशिशुम् ॥ अष्टमादेवकीपुत्रान्ममृत्युरुदाहृतः ॥ ४४ ॥ अतःकिंप्रथमंबालंहत्वापापंकरोम्यहम् ॥ साधुसाध्वितितेप्युक्त्वासंस्थितामंत्रिसत्तमाः ॥ ४५ ॥

तब उसने बालकको ले कुछेक हँसकर कहा हे शूरपुत्र! तुम इस समय मुझको पुत्र देकर धन्य हुए ॥ ४० ॥ किन्तु वह आकाशवाणी हुई है कि तुम्हारा आठवां पुत्रही मेरा कालस्वरूप है, तुम्हारा यह प्रथम पुत्र मेरा मृत्यु स्वरूप नहीं है इससे मैं इस बालकको नहीं मारूंगा, यह बालक तुम्हारे घर जाय ॥ ४१ ॥ हे महामते! जब तुम्हारा आठवां पुत्र जन्म ले, तब तुम वह पुत्र मुझको अवश्य प्रदान करना, क्रूरात्मा कंसने यह कह वसुदेवके हाथमें उस बालकको फेर दिया ॥ ४२ ॥ और कहा कि हे वसुदेव! इस पुत्रको निर्विघ्न घर ले जाओ कंसराजके इस प्रकार कहनेपर शूरसेनके पुत्र वसुदेव पुत्रको लेकर अपने घर चले गये ॥ ४३ ॥ तब कंसराजने भी अपने मंत्रियोंसे कहा जब आकाशवाणी हुई है कि, देवकीका आठवां पुत्र ही मेरा मृत्युस्वरूप होगा तब इस बालकको वृथा क्यों मारूं ॥ ४४ ॥ प्रथम पुत्रको मार कर

पापग्रहण करनेका क्या प्रयोजन है ? मंत्रीलोग कंसका यह वचन सुन साधु साधु कह उसकी बहुत प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ अनन्तर कंसराजके उनको बिदा देनेपर वह अपने अपने घर गये तदुपरान्त मुनिसत्तम नारदजी आनकर कंसके समीप उपस्थित हुए ॥ ४६ ॥ तब उग्रसेनके पुत्र कंसने उठ पाद्य और अर्घ्यादि दे, उनकी पूजा और कुशल प्रश्नकर उनके सहसा आनेका कारण पूँछा ॥ ४७ ॥ तब महर्षि नारदने कुछेक हँस, आदर पूर्वक कंससे कहा हे महाभाग ! मैं घटना उपस्थित होनेपर सुमेरुपर्वतमें गया था ॥ ४८ ॥ वहां ब्रह्मादि देवता लोग मिलित होकर यह परामर्श करते थे कि वसुदेवकी भार्या देवकीके गर्भसे सुरसत्तम ॥ ४९ ॥ विष्णु कंसके मारनेको जन्मग्रहण करैं तुमसे पूछता हूं कि तुम नीतिशास्त्रमें पण्डित हो. विशेष करके देववाणीका मर्मभी जानते हो. किन्तु तोभी वसुदेवके पुत्रको न मारनेका कारण क्या है ॥ ५० ॥ कंसने कहा मैं आकाशवाणीके अनुसार आठवेंही पुत्रको मारूंगा नारदजीने कहा हे नृपवर ! जान पड़ता है. तुम

विसर्जितास्तुकंसेनजग्मुस्तेस्वगृहान्प्रति ॥ गतेषुतेषुसंप्राप्तोनारदोमुनिसत्तमः॥४६॥अभ्युत्थानाऽर्घ्यपाद्यादिचकारोग्रसुतस्तदा॥पप्रच्छकुशलंराजात्राऽऽगमनकारणम् ॥ ४७ ॥ नारदस्तंतदोवाचस्मितपूर्वमिदंवचः ॥ कंसकंसमहाभागगतोऽहंहेमपर्वतम् ॥ ४८ ॥ तत्रब्रह्मादयोदेवामंत्रंचक्रुःसमाहिताः ॥ देवक्यांवसुदेवस्यभार्यायांसुरसत्तमः ॥ ४९ ॥ वधार्थंतवविष्णुश्चजन्मचाऽत्रकरिष्यति ॥ तत्कथंनहतःपुत्रस्त्वयानीतिंविजानता ॥ ५० ॥ कंसउवाच ॥ अष्टमंचहनिष्येऽहंमृत्युंमेदेवभाषितम् ॥ नारदउवाच ॥ नजानासिनृपश्रेष्ठराजनीतिंशुभाऽशुभम् ॥ ५१ ॥ मायाबलंचदेवानांनत्वंवेत्सिवदामिकिम् ॥ रिपुरल्पोपिशूरेणनोपेक्ष्यःशुभमिच्छता ॥ ५२॥ संमेलनक्रियायांतुसर्वेतेह्यष्टमाःस्मृताः ॥ मूर्खस्त्वमरिसंत्यागःकृतोऽयंजानतात्वया॥५३॥ इत्युक्त्वाऽऽशुगतःश्रीमान्नारदोदेवदर्शनः ॥ गतेऽथनारदेकंसःसमाहूयाऽथबालकम् ॥ ५४॥ पाषाणेपोथयामाससुखंप्रापचमंदधीः ॥ ॥ इतिश्रीदे०म०च०एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ जनमेजयउवाच ॥ किंकृतंपातकंतेनबालकेनपितामह ॥ योजातमात्रोनिहतस्तथातेनदुरात्मना ॥ १ ॥

शुभाशुभ भूल कर नीतिको कुछ नहीं जानते ॥ ५१ ॥ विशेष कर देवताओंकी माया किसप्रकार है, उसको जब तुम नहीं जानते. तब फिर तुमसे क्या कहूं ! कल्याणकी इच्छा करनेवाले शूरगण अत्यन्त छोटे शत्रुकीभी उपेक्षा नहीं करते ॥ ५२ ॥ तुमसे अधिक और क्या कहूं आप अष्टम शब्दका अर्थ भलीभांतिसे नहीं समझसके, प्रथमसे आरंभ करके अष्टमपर्यन्त जो संतान हो. गणनाप्रणालीसे वह सब आठवीं होसक्ती है शत्रुको छोड़ना नहीं चाहिये. यह तुम जानते ही हो. तो फिर क्यों हाथमें लेकर उस शत्रुको छोड़ दिया ? इसमें तुम्हारी मूर्खता प्रकाशके सिवाय और क्या होसक्ता है॥ ५३ ॥ यह कहकर श्रीमान् देवप्रतिम महर्षि नारदजी तत्काल चलेगये तब मंदबुद्धि कंस बालकको उसी समय बुलाय ॥ ५४ ॥ पत्थरपर पटक. उसका प्राणसंहार कर स्थिरचित्त हुआ.॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः॥ २१ ॥ जन्मेजय पूछने लगे हे पितामह ! उस बालकने ऐसा क्या पापकार्य किया था जो उत्पन्न होतेही कंसने उसका विनाश किया ॥ १ ॥

विशेष करके महर्षि नारद मुनियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मविद्‌गणोंमें अग्रणी, सदा धर्ममें तत्पर और ज्ञानवान् होकर ऐसे पापकार्यमें प्रवृत्त क्यों हुए ॥ २ ॥ पण्डितगण कहते हैं कि पापकार्यका कहनेवाला और उसमें प्रवृत्त करानेवाला. दोनोंही समान पापके भागी हैं. तो मुनिश्रेष्ठ नारदने किसकारण उस खल कंसको शिशुवधमें प्रवृत्त किया ॥ ३ ॥ इस विषयमें मुझको घोर संदेह उपस्थित हुआ है हे मुनीन्द्र! जो कर्मविपाकके कारण वह बालक मृत्युको प्राप्त हुआ हो. यह आप विस्तारसहित मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले. देवर्षि नारद सदा कलहप्रिय हैं, अतएव सर्वदाही कौतुक देखना अच्छा समझते हैं. विशेष कर वह देवताओंका कार्य साधनके निमित्त ही कंसके निकट आकर इस प्रकार कार्यमें प्रवृत्त हुए थे ॥ ५ ॥ वास्तवमें उनके कभी मिथ्या कहनेका अभिप्राय नहीं है. वह सत्यवक्ता पवित्रचेता और देवताओंके कार्यसाधनमें

नारदोपिमुनिश्रेष्ठोज्ञानवान्धर्मतत्परः ॥ कथमेवंविधंपापंकृतवान्ब्रह्मवित्तमः ॥ २ ॥ कर्ताकारयितापापेतुल्यपापौस्मृतौबुधैः ॥ सकथंप्रेरयामासमुनिः कंसंखलंतदा ॥ ३ ॥ संशयोऽयंमहान्मेत्रब्रूहिसर्वंसविस्तरम् ॥ येनकर्मविपाकेनबालकोनिधनंगतः ॥ ४ ॥ व्यासउवाच ॥ नारदःकौतुकप्रेक्षीसर्वदाकलहप्रियः ॥ देवकार्यार्थमागत्यसर्वमेतच्चकारह ॥ ५ ॥ नमिथ्याभाषणेबुद्धिर्मुनेस्तस्यकदाचन ॥ सत्यवक्तासुराणांसकर्तव्येनिरतःशुचिः ॥ ६ ॥ एवंषड्बालकास्तेनजाताजातानिपातिताः ॥ षड्गर्भाःशापयोगेनसंभूयमरणंगताः ॥ ७ ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामितेषांशापस्यकारणम् ॥ स्वायंभुवेंऽतरेपुत्रामरीचेःषण्महाबलाः ॥ ८ ॥ ऊर्णायांचैवभार्यायामासन्धर्मविचक्षणाः ॥ ब्रह्माणंजहसुर्वीक्ष्यसुतांयभितुमुद्यतम् ॥ ९ ॥ शशापतांस्तदाब्रह्मादैत्ययोनिंविशंत्वधः ॥ कालनेमिसुताजातास्तेषड्गर्भाविशांपते ॥ १० ॥ अवतारेपरेतेतुहिरण्यकशिपोःसुताः ॥ जातास्तेज्ञानसंयुक्ताःपूर्वशापभयान्नृप ॥ ११ ॥

सदा तत्पर हैं ॥ ६ ॥ जो हो इसीप्रकार क्रमानुसार देवकीके छे पुत्र उत्पन्न हुए कंसने भी उत्पन्न होतेही उन छओं बालकोंका क्रमशः विनाश किया वे गर्भ छे बालक शापके कारण जन्मतेही नष्ट हुए ॥ ७ ॥ हे राजन्! उनके शापका कारण कहता हूं सुनो. स्वायम्भुव मनुके अधिकार कालमें महर्षिमरीचिकी ॥ ८ ॥ ऊर्णानाम्नी पत्नीके गर्भसे धर्मनिरत महाबलवान् छे पुत्र उत्पन्न हुए किसी समय प्रजापति ब्रह्मा कामबाणसे मोहित हो. अपनी कन्याके संग रमण करनेमें उद्यत हुए. तब वे इनको देखकर हँसे ॥ ९ ॥ इसकारण ब्रह्माने उनको यह कहकर शाप दिया कि तुम शीघ्र असुरयोनिमें जन्म ग्रहण करो हे राजन्! तदनन्तर उसी षड्गर्भने प्रथम कालनेमिके पुत्र होकर जन्म ग्रहण किया था ॥ १० ॥ दूसरे जन्ममें वह हिरण्यकशिपुके पुत्ररूपमें प्रादुर्भूत हुए इस बार वह पूर्वके शापभयसे ज्ञानविच्युत नहीं हुए ॥ ११ ॥

इस जन्ममें वे शान्त और सावधान होकर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए. इससे ब्रह्माजीने प्रसन्नता पूर्वक उनको वर देनेमें उद्यत होकर कहा ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुत्रगण ! मैं ने पूर्वमें क्रोधित होकर तुमको शाप दिया था किन्तु अब मैं तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रसन्न और संतुष्ट हुआ हूं तुम लोग वांछित वर मांगो ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले अनन्तर वह सभी ब्रह्माजीका वचन सुन अपने कार्यसाधनमें तत्पर हुए और प्रसन्नमन हो प्रजापतिसे कहा ॥ १४ ॥ हे पितामह ! आप अब हमारे प्रति प्रसन्न हुए हैं तो इस समय हमको वांछित वर दीजिये । हे पितामह ! हम सब देवता मानव महोरग॥ १५॥गंधर्व और सिद्धपतिगणोंसे अवध्य हों यही हमारी प्रार्थना है व्यासजी बोले उनके यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले तुमने जो प्रार्थना की वह सिद्ध होगी ॥ १६॥हे महाभाग ! तुम लोग जाओ यह वर सत्य होगा इसमें संशय नहीं है

तस्मिञ्जन्मनिशांताश्चतपश्चक्रुःसमाहिताः ॥ तेषांप्रीतोऽभवद्ब्रह्मापड्गर्भाणांवरान्ददौ ॥१२॥ ब्रह्मोवाच ॥ शप्तायूयंमयापूर्वंक्रोधयुक्तेनपुत्रकाः ॥ तुष्टोऽस्मिवोमहाभागाब्रुवंतुवांछितंवरम् ॥ १३ ॥ व्यासउवाच ॥ तेतुश्रुत्वावचस्तस्यब्रह्मणःप्रीतमानसाः ॥ ब्रह्माणमब्रुवन्कामंसर्वेकार्यार्थतत्पराः ॥१४॥ ॥ गर्भाऊचुः ॥ पितामहाऽद्यतुष्टोऽसिदेहिनोवांछितंवरम् ॥ अवध्यादेवतैःसर्वैर्मानवैश्चमहोरगैः ॥ १५ ॥ गंधर्वसिद्धपतिभिर्वधोमाभूत्पितामह ॥ व्यासउवाच ॥ तानुवाचततोब्रह्मासर्वमेतद्भविष्यति ॥ १६ ॥ गच्छंतुवोमहाभागाःसत्यमेवनसंशयः ॥ दत्त्वावरंततोब्रह्मामुदितास्तेतदाऽभवन् ॥ १७ ॥ हिरण्यकशिपुःक्रुद्धस्तानुवाचकुरूद्वह ॥ यस्माद्विहायमांपुत्रास्तोपितोवैपितामहः ॥ १८ ॥ वरेणप्रार्थितोऽत्यर्थंवलवंतोयतोऽभवन् ॥ युष्माभिर्हापितःस्नेहस्ततोयुष्मांस्त्यजाम्यहम् ॥ १९ ॥ यूयंव्रजंतुपातालेषड्गर्भाविश्रुताभुवि ॥ पातालेनिद्रयाविष्टास्तिष्ठंतुवहुवत्सरान् ॥ २० ॥ ततस्तुदेवकीगर्भेवर्षेवर्षेपुनःपुनः ॥ पितावःकालनेमिस्तुतत्रकंसोभविष्यति ॥ २१ ॥ सएवजातमात्रान्वोवधिष्यतिसुदारुणः ॥ व्यासउवाच ॥ एवंशप्तास्तदातेनगर्भेजातान्पुनःपुनः ॥ २२ ॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार वर देनेसे वे अत्यन्त प्रसन्न हुये और ब्रह्माजी अपने स्थानको चले गये ॥ १७ ॥ हिरण्यकशिपुके पुत्रगणभी अभिलाषित वर पाकर अत्यन्त आनंदित हुए हे कुरुसत्तम ! हिरण्यकशिपुने "पुत्रोंने मुझको छोड़ पितामहको संतुष्ट किया" यह जान अत्यन्त क्रोधित होकर उनसे कहा.॥ १८॥ तुम लोग वरके प्रभावसे अत्यन्त दर्पित हुए हो विशेष करके तुमने जब मेरे प्रति स्नेहत्याग किया, तो मैं भी तुम्हारात्याग करता हूं ॥ १९ ॥ अब तुम पातालमें जाओ, तुम पृथ्वी तलमें षड्गर्भ नामसे विख्यात होगे और तुम पातालमें जाकर सदा निद्रामें पड़े हुए अनेक वर्ष पर्यन्त वास करते रहो ॥ २० ॥ फिर तुम जिस समय देवकीके गर्भसे वर्ष २ में जन्म ग्रहण करोगे, उंसी समय मैं तुम्हारा पूर्व पिता कालनेमि कंसरूपमें प्रगट होगा ॥ २१ ॥ वह नृशंसचित्त कंस तुमको उत्पन्न होते ही वध करेगा

व्यासजी बोले उनको इस प्रकार शाप हुआ था, इसकारण ही उन्होंने वारंवार जन्मग्रहण किया ॥ २२ ॥ और कंसने भी उसी शापसे देवकीके गर्भोत्पन्न पुत्रोंको जन्मते ही विनाश किया जब देवकीके सातवें गर्भमें अनन्त देव आये ॥ २३ ॥ तब योगमायाने योगवलसे इस गर्भका आकर्षण कर रोहिणीके गर्भमें स्थापन किया ॥ २४ ॥ फलतः तिसकाल देवकीका गर्भ पांचवें महीनेमें गिरगया यही लोकमें प्रचरित है कंसने भी जानलिया कि देवकीका गर्भ गिरगया ॥ २५ ॥ यह सुखदायक संवाद सुनकर उस दुष्टात्माके संतोषकी सीमा न रही किन्तु इधर भक्तजन प्रतिपालक भगवान्नेभी इसी समय देवताओंका कार्यसाधन ॥ २६ ॥ और पृथ्वीका भारहरण करनेको देवकीके अष्टमगर्भमें वास किया राजाने कहा हे मुनिवर ! आपने केवल कश्यपके अंश वसुदेव और पृथ्वीकी प्रार्थनानुसार

जघानदेवकीपुत्रान्षड्गर्भाञ्छापनोदितः ॥ शेषांशःसप्तमस्तत्रदेवकीगर्भसंस्थितः ॥ २३ ॥ विस्रंसितश्चगर्भोऽसौयोगेनयोगमायया ॥ नीतश्चरोहिणीगर्भेकृत्वासंकर्षणंवलात् ॥ २४ ॥ पतितःपंचमेमासिलोकख्यातिंगतस्तदा ॥ कंसोऽपिज्ञातवांस्तत्रदेवकीगर्भपातनम् ॥ २५ ॥ मुदंप्रापसदुष्टात्माश्रुत्वावार्तांसुखावहाम् ॥ अष्टमेदेवकीगर्भेभगवान्सात्वतांपतिः ॥ २६ ॥ उवासदेवकार्यार्थंभाराऽवतरणायच ॥ राजोवाच ॥ वसुदेवःकश्यपांशः शेषांशश्चतदाऽभवत् ॥ २७ ॥ हरेरंशस्तथाप्रोक्तोभवतामुनिसत्तम ॥ अन्येचयेंऽशादेवानांतत्रजातास्तुतान्वद ॥ २८ ॥ भाराऽवतरणार्थंवैक्षितेः प्रार्थनयाऽनघ ॥ व्यासउवाच ॥ सुराणामसुराणांचयेयेंऽशाभुविविश्रुताः ॥ २९ ॥ तानहंसंप्रवक्ष्यामिसंक्षेपेणशृणुष्वतान् ॥ वसुदेवःकश्यपांशोदेवकी चतथाऽदितिः ॥ ३० ॥ वलदेवस्त्वनंतांशोवर्तमानेषुतेषुच ॥ योऽसौधर्मसुतःश्रीमान्नारायणइतिश्रुतः ॥ ३१ ॥ तस्यांशोवासुदेवस्तुविद्यमानेमुनौतदा ॥ नरस्तस्यानुजोयस्तुतस्यांशोर्जुनएवच ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरस्तुधर्मांशोवाय्वंशोभीमइत्युत ॥ अश्विन्यंशौततःप्रोक्तौमाद्रीपुत्रौमहावलौ ॥ ३३ ॥

भारहरण करनेको अनन्त ॥ २७ ॥ और विष्णु देवके अंशावतारकोही विषय कहा किन्तु क्रमसे किसी अंशावतारका विषय न कहा अतएव अब अन्यान्य देवता जो जिसरूपमें अपने अपने अंशसे आनकर ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें भार उतारनेको उत्पन्न हुए थे, आप यह सब वर्णन कीजिये व्यासजी बोले देवता और असुरोंके जो सब अंश पृथ्वीमें जिस नामसे विख्यात हुए थे ॥ २९ ॥ मैं वह विवरण संक्षेपसे कहता हूं, सुनो वसुदेव कश्यपके अंश, देवकी अदितिका ॥ ३० ॥ वलदेव अनन्तका अंश, धर्मके पुत्र श्रीमान् नारायण ऋषि कहकर विख्यात हैं ॥ ३१ ॥ उनके अद्यापि पूर्व शरीरमें विद्यमान रहनेपर भी वासुदेव कृष्ण उनके अंश हैं, जो नारायणके अनुज नरनामसे विख्यात हैं, अर्जुन उनकाही अंश है ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार धर्मका अंश युधिष्ठिर, वायुका अंश भीमसेन, महा

बलवान् माद्रीके दोनों पुत्र दोनों अश्विनीकुमारका अंश ॥ ३३ ॥ कुन्तीगर्भजात महावीर कर्ण दिनपति सूर्य देवका अंश और परम तत्त्वके जाननेवाले महात्मा विदुरको साक्षात् धर्मराज यमका अवतार जानना चाहिये. कुरु पाण्डवोंके आचार्य द्रोणमहाशय बृहस्पतिके अंश हैं, उनका पुत्र अश्वत्थामा रुद्र देवका अंश है, ॥ ३४ ॥ समुद्रके अंश शन्तनु, उनकी भार्या मानवरूपधारिणी गंगा है । पुराणमें कथित है कि, देवकनृपति गंधर्वपतिका अंश है. ॥ ३५ ॥ कौरव-पितामह शूराग्रगण्य भीष्मदेव साक्षात् वसुका अवतार है. मत्स्यपति विराट मरुद्गणोंका अंश. दैत्य अरिष्टनेमि पुत्र हंसके अंशसे धृतराष्ट्र उत्पन्न हैं ॥ ३६ ॥ कृप और कृतवर्मा मरुद्गणोंका अंश. दुर्योधन कलिका और शकुनि द्वापरयुगका अंश है ॥ ३७ ॥ सोमपुत्र सुवर्चाख्य सोमप्ररुनामसे विख्यात हुआ था. धृष्टद्युम्न अग्नि और शिखंडी राक्ष

सूर्यांशः कर्णआख्यातोधर्मांशोविदुरःस्मृतः ॥ द्रोणोबृहस्पतेरंशस्तत्सुतस्तुशिवांशजः ॥ ३४ ॥ समुद्रःशंतनुःप्रोक्तोगंगाभार्यामताबुधैः ॥ देवकस्तु समाख्यातोगंधर्वपतिरागमे ॥ ३५ ॥ वसुर्भीष्मोविराटस्तुमरुद्गणइतिस्मृतः ॥ अरिष्टस्यसुतोहंसोधृतराष्ट्रःप्रकीर्तितः ॥ ३६ ॥ मरुद्गणःकृपःप्रोक्तःकृतवर्मा तथापरः ॥ दुर्योधनःकलेरंशःशकुनिंविद्धिद्वापरम् ॥३७॥ सोमपुत्रःसुवर्चाख्यःसोमप्ररुरुदाहृतः ॥ पावकांशोधृष्टद्युम्नःशिखंडीराक्षसस्तथा॥३८॥सनत्कुमारस्यांशस्तुप्रद्युम्नःपरिकीर्तितः ॥ द्रुपदोवरुणस्यांशोद्रौपदीचरमांशजा ॥ ३९ ॥ द्रौपदीतनयाःपंचविश्वेदेवांशजाःस्मृताः ॥ कुंतिःसिद्धिर्धृतिर्माद्रीमति र्गांधारराजजा ॥ ४० ॥ कृष्णपत्न्यस्तथासर्वादेववारांगनाःस्मृताः ॥ राजानश्चतथासर्वेअसुराःशक्रनोदिताः ॥ ४१ ॥ हिरण्यकशिपोरंशःशिशुपालउदाहृतः ॥ विप्रचित्तिर्जरासंधःशल्यःप्रह्लादइत्यपि ॥ ४२ ॥ कालनेमिस्तथाकंसःकेशीहयशिरास्तथा ॥ अरिष्टोवलिपुत्रस्तुककुद्मीगोकुलेहतः ॥ ४३ ॥ अनुह्रादोधृष्टकेतुर्भगदत्तोऽथबाष्कलः ॥ लंबःप्रलंबसंजातःखरोऽसौधेनुकोऽभवत् ॥ ४४ ॥

सका अंश है॥ ३८॥ प्रद्युम्न सनत्कुमारका अंश. द्रुपदराजा वरुणका अंश. द्रौपदी लक्ष्मीका अंश ॥ ३९ ॥ द्रौपदीके पांच पुत्र विश्वेदेवाओंके अंश. कुन्ती सिद्धिरूपिणी. माद्री धृतिरूपिणी गान्धारी मतिरूपिणी है॥ ४०॥ कृष्णपत्नीगण स्वर्गवाराङ्गना है इसप्रकार संपूर्ण देवता इन्द्रसे प्रेरित होकर राजाआदि अपने२अंशसे उत्पन्न हुए थे॥ ४१ ॥ असुरोंमें स्वयं हिरण्यकशिपु शिशुपाल रूपमें अवतीर्ण हुआ था. इसीप्रकार जरासंध विप्रचित्तिके, शल्य प्रह्लादके, ॥ ४२॥ कंस कालनेमिके और केशी हयशिराके अंशसे उत्पन्न है. अरिष्टनामक वृषभरूपधारी जो असुर गोकुलमें कृष्णके हाथसे मारागया वह बलिका पुत्र था ॥ ४३ ॥ धृष्टकेतु अनुह्लादके, भगदत्त बाष्क

लके, लम्ब प्रलम्बके और धेनुक खरके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥ ४४ ॥ वाराह और किशोरनामक जो अत्यन्तदारुण दो दैत्य थे चाणूर और मुष्टिक नामक दोनें मल्ल इन्हीं दोनोंके अंशसे उत्पन्न हैं ॥ ४५ ॥ कुवलयनामक कंसका हाथी अरिष्टनामक दितिपुत्रके अंशसे उत्पन्न है बकी बलिकी कन्या बक उसका अनुज ॥ ४६ ॥ द्रोणाचार्यका महाबलवान् पुत्र अश्वत्थामा यद्यपि केवल रुद्रांश कहकर विख्यात है किन्तु वास्तविक यम, रुद्र, काम और क्रोध इन चारके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥ ४७ ॥ पृथ्वीके भारावतरणको अंशावतारसे जो जो दैत्य और राक्षसगण उत्पन्न हुए थे. वह सभी असुरगणोंका अंश हैं ॥ ४८ ॥ हे नृप ! पुराणमें सुर और असुरगणोंका अंशावतार कथित है. वह मैंने तुमसे सब वर्णन किया ॥ ४९ ॥ ब्रह्मादि देवता जिस समय प्रार्थनाके उद्देशसे विष्णुके निकट

वाराहश्चकिशोरश्चदैत्यौपरमदारुणौ ॥ मल्लौतावेवसंजातौख्यातौचाणूरमुष्टिकौ ॥ ४५ ॥ दितिपुत्रस्तथाऽरिष्टोगजःकुवलयाभिधः ॥ बलिपुत्रीबकीख्यातावकस्तदनुजःस्मृतः ॥ ४६ ॥ यमोरुद्रस्तथाकामःक्रोधश्चैवचतुर्थकः ॥ तेषामंशैस्तुसंजातोद्रोणपुत्रोमहाबलः ॥ ४७ ॥ अंशावतरणेपूर्वंदैतेयाराक्षसास्तथा ॥ जाताःसर्वेऽसुरांशास्तेक्षितिभारावतारणे ॥ ४८ ॥ एतेषांकथितंराजन्नंशावतरणंनृप ॥ सुराणांचासुराणांचपुराणेषुप्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥ यदाब्रह्मादयोदेवाःप्रार्थनार्थंहरिंगताः ॥ हरिणाचतदादत्तौकेशौखलुसिताऽसितौ ॥ ५० ॥ श्यामवर्णस्ततःकृष्णःश्वेतःसंकर्षणस्तथा ॥ भारावतारणार्थंतौजातौदेवांशसंभवौ ॥ ५१ ॥ अंशावतरणंचैतच्छृणोतिभक्तिभावतः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोमोदतेस्वजनैर्वृतः ॥ ५२ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेद्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ हतेषुषट्सुपुत्रेषुदेवक्याऔग्रसेनिना ॥ सप्तमेपतितेगर्भेवचनान्नारदस्यच ॥ १ ॥ अष्टमस्यचगर्भस्यरक्षणार्थमतंद्रितः ॥ प्रयत्नमकरोद्राजामरणंस्वंविचिंतयन् ॥ २ ॥

गये थे. तिसकाल हरिने उनको एक अपना श्वेतवर्ण और एक कृष्णवर्ण यह दो केश दिये थे ॥ ५० ॥ उनमेंसे श्यामवर्ण केशसे कृष्णकी और शुभ्र (सफेद) केशसे संकर्षण बलदेवजी की उत्पत्ति हुई. उन दोनोंने ही भूमिका भार हरण करनेके लिये विष्णुके अंशसे जन्मग्रहण किया था ॥ ५१ ॥ जो पुरुष भक्तिभावसे इस अंशावतारकी कथा सुनता है. वह सब पापोंसे छूट स्वजनगणोंके संग प्रमोदसहित कालव्य तीत करता है. इसमें संदेह नहीं ॥ ५२ ॥ यह केशादिशब्द अंशवाचक जानने चाहिये इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले उग्रसेन तनय कंसके देवकीके छेपुत्रोंका इसप्रकार विनाश करने पर और सातवें गर्भके गिरजानेपर ॥ १ ॥ फिर जब आठवें गर्भका संचार हुआ तब कंस नारदजीके वचनानुसार अपने मरणकी चिन्ता करके सावधानीसे उस गर्भकी

रक्षा करनेके लिये अतियत्न करने लगा ॥ २ ॥ इस और उसी समय भगवान् हरिने अंशद्वारा प्रथम तो वसुदेवके देहका आश्रयकर यथाक्रमसे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया ॥ ३ ॥ इसीअवसरमें देवी योगमायाने देवताओंका कार्यसाधनके लिये अपनी इच्छासे यशोदाके गर्भमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ वसुदेवकी रोहिणीनामक स्त्री कंसके भयसे उद्विग्न होकर नन्दगोकुलमें वास करती थी अंश बलरामने उनके पुत्र होकर उसी स्थानमें जन्म ग्रहण किया ॥ ॥ ५ ॥ तदुपरान्त कंसने देवपूज्य देवकीको कारागारमें डाल कर उसकी रक्षाकेलिये सेवकोंको नियुक्त कर दिया ॥ ६ ॥ वसुदेव अपनी प्रियतमा भार्याके प्रेमसूत्रमें बँध और अपने पुत्रोत्पत्तिके विषयकी चिन्ता कर भार्यादेवकीके सहित कारागारमें प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥ इस ओर देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त देवकीके गर्भागारमें प्रविष्ट देवदेव विष्णु देवतागणोंसे नित्य स्तूयमान होकर यथानियम वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥ ८ ॥ फिर जब देवकीके गर्भका दशवाँ महीना पूर्ण

समयेदेवकीगर्भेप्रवेशमकरोद्धरिः ॥ अंशेनवसुदेवेतुसमागत्ययथाक्रमम् ॥ ३ ॥ तदेयंयोगमायाचयशोदायांयथेच्छया ॥ प्रवेशमकरोद्देवीदेवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४ ॥ रोहिण्यास्तनयोरामोगोकुलेसमजायत ॥ यतःकंसभयोद्विग्नासंस्थितासाचकामिनी ॥ ५ ॥ कारागारेततःकंसोदेवकींदेवसंस्तुताम् ॥ स्थापयामासरक्षार्थंसेवकान्समकल्पयत् ॥ ६ ॥ वसुदेवस्तुकामिन्याःप्रेमतंतुनियंत्रितः ॥ पुत्रोत्पत्तिंचसंचिंत्यप्रविष्टःसहभार्यया ॥ ७ ॥ देवकीगर्भगोविष्णुर्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ संस्तुतोऽमरसंघैश्चव्यवर्धतयथाक्रमम् ॥ ८ ॥ संजातेदशमेतत्रमासेऽथश्रावणेशुभे ॥ प्राजापत्यर्क्षसंयुक्तेकृष्णपक्षेऽष्टमीदिने ॥ ९ ॥ कंसस्तुदानवान्सर्वानुवाचभयविह्वलः ॥ रक्षणीयाभवद्भिश्चदेवकीगर्भमंदिरे ॥ १० ॥ अष्टमोदेवकीगर्भःशत्रुर्मेप्रभविष्यति ॥ रक्षणीयःप्रयत्नेनमृत्युरूपःसबालकः ॥ ११ ॥ हत्वैनंबालकंदैत्याःसुखंस्वप्स्यामिमंदिरे ॥ निवृत्तिवर्जितेदुःखेनाशितेचाऽष्टमेसुते ॥ १२ ॥ खड्गप्रासधराःसर्वेतिष्ठंतुधृतकार्मुकाः ॥ निद्रातंद्राविहीनाश्चसर्वत्रनिहितेक्षणाः ॥ १३ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्यादिश्याऽसुरगणान्कृशोऽतिभयविह्वलः ॥ मंदिरंस्वंजगामाऽऽशुनलेभेदानवःसुखम् ॥ १४ ॥

हुआ. तब उस जगन्मंगलजनक श्रावणमास, कृष्णपक्ष रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथिके दिन ॥ ९ ॥ कंसने अत्यन्त भयसे विह्वल हो अनुचर दानवोंसे कहा.तुम सब लोग कारागारके भीतर स्थित देवकीकी यत्नपूर्वक रक्षा करो ॥ १० ॥ देवकीका यह आठवां गर्भही मेरा परमशत्रु है.अतएव मेरे उसी मृत्युस्वरूप बालककी यत्नपूर्वक रक्षा करो जिससे वसुदेव वा देवकी किसीप्रकारसे उस बालकको स्थानान्तरित न करसकें ॥ ११ ॥ हे दैत्यगण ! अपने निरन्तर उद्वेगकारी और अशेष दुःखदायक देवकीके अष्टम पुत्रको विनाश करकेही मैं निर्विघ्न अपने घर नींदले सकता हूं ॥ १२ ॥ तुम सभी खड्ग प्रास (शस्त्रविशेष) और धनुर्धारण करके निद्रा तन्द्रा परित्याग पूर्वक सब ओर दृष्टि रखकर स्थित रहो ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले अनन्तर सदा चिन्तासे कृश कंसराज असुरगणोंको इस प्रकार आज्ञा दे भयसे विह्वलचित्त हो शीघ्रही निज

मंदिरमें चलागया, किन्तु किसी प्रकार मनमें सुख लाभ न करसका ॥ १४ ॥ इधर देवकीने उस कारागारमें अर्धरात्रिके समय वसुदेवसे कहा हे महाराज ! मेरा प्रसवकाल उपस्थित है क्या करूं ॥ १५॥ यहां अनेक भयंकर रक्षपाल नियुक्त हैं अब मैं क्या करूं पूर्वमें नन्दपत्नी यशोदाने मेरा वचन सुनकर इस प्रकार कहा था ॥ १६ ॥ हे मानिनी ! तुम्हारा चित्त शोक तापसे जर्ज्जरित होगया है इस कारण तुम मेरे घर अपने पुत्रको भेज देना. मैं भलीभाँति उसका लालन पालन करूंगी॥ १७॥ विशेषकर कंसकी प्रतीतिके निमित्त मैं भी तुमको एक सन्तान दूंगी हे नाथ ! इस समय विषमसंकट उपस्थित है. अब क्या कर्त्तव्य है ? कहिये ॥ १८ ॥ ऐसे स्थलमें आप किसप्रकार सन्तानके बदलनेमें समर्थ होंगे ? जो हो, हे नाथ ! इस समय मुझको अधिकतर लज्जा उपस्थित हुई है. अतएव आप दूरही रहो ॥ १९ ॥ हे स्वामि !

निशीथेदेवकीतत्रवसुदेवमुवाचह ॥ किंकरोमिमहाराजप्रसवावसरोमम ॥ १५ ॥ बहवोरक्षपालाश्चतिष्ठंत्यत्रभयानकाः ॥ नंदपत्न्यामयासार्धंकृतोऽस्तिसमयःपुरा ॥ १६ ॥ प्रेषितव्यस्त्वयापुत्रोमंदिरेममामानिनि ॥ पालयिष्याम्यहंतत्रतवाऽतिमनसाकिल ॥ १७ ॥ अपत्यंतेप्रदास्यामिकंसस्यप्रत्ययायवै ॥ किंकर्तव्यंप्रभोचाऽद्यविषमेसमुपस्थिते ॥ १८॥ व्यत्ययःसंततेःशौरेकथंकर्तुंक्षमोभवेः ॥ दूरेतिष्ठस्वकांताऽद्यलज्जामेऽद्यदुरत्यया॥ ॥ १९ ॥ परावृत्त्यमुखंस्वामिन्नन्यथाकिंकरोम्यहम् ॥ इत्युक्तातंमहाभागंदेवकीदेवसंमतम् ॥ २० ॥ बालकंसुषुवेतत्रनिशीथेपरमाद्भुतम् ॥ तंदृष्ट्वाविस्मयंप्रापदेवकीबालकंशुभम् ॥ २१ ॥ पतिंप्राहमहाभागाहर्षोत्फुल्लकलेवरा ॥ पश्यपुत्रमुखंकांतदुर्लभंहितवप्रभो ॥ २२ ॥ अद्यैनंकालरूपोऽसौघातयिष्यतिभ्रातृजः ॥ वसुदेवस्तथेत्युक्त्वातमादायकरेसुतम् ॥२३॥ अपश्यच्चाऽऽननंतस्यसुतस्याद्भुतकर्मणः ॥ वीक्ष्यपुत्रमुखंशौरिश्चिंताविष्टोबभूवह ॥ ॥२४ ॥ किंकरोमिकथंनस्याद्दुःखमस्यक्कृतेमम ॥ एवंचिंताऽऽतुरेतस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥ २५ ॥ वसुदेवंसमाभाष्यगगनेविशदाक्षरा ॥ वसुदेवगृहीत्वैनंगोकुलंनयसत्वरः ॥ २६ ॥

आप मुँह फेरकर बैठिये. नहीं तो मैं क्या करूं दूसरा उपाय कोई नहीं है देवकीनें देवपूजित महाभाग वसुदेवसे यह कह ॥ २० ॥ आधी रातके समय उस कारागारमेंही एक अद्भुत पुत्ररत्न उत्पन्न किया उस शोभनदर्शन बालकको देखकर महाभाग देवकी आश्चर्ययुक्त हुई ॥ २१ ॥ और प्रफुल्लित कलेवर हो उसने पतिसे कहा हेनाथ ! तुम दुर्लभ पुत्रका मुख देखो ॥ २२ ॥ हाय ! मेरे पिताका भ्रातृपुत्र कालरूप कंस अभी मेरे इस बालकका विनाश करेगा वसुदेव " कंस तो यही करेगा " यह कह पुत्रको ग्रहण कर ॥ ॥ २३ ॥ उस अद्भुत कर्म्मा बालकका मुख देखने लगे वसुदेव पुत्रका मुख देखकर मनमें चिन्ता करने लगे मैं क्या करूं ॥ २४ ॥ क्या करनेसे मुझको यह पुत्रनाशका दुःख भोगना न हो वसुदेव इसप्रकार चिन्तातुर हो रहे थे इसी समय अशरीरिणी वाणी हुई ॥ २५ ॥ वसुदेवसे संभाषण कर गगनमें स्पष्टा

क्षरसे आकाशवाणी हुई. हे "वसुदेव! तुम शीघ्र इस बालकको ग्रहण करके गोकुलमें जाओ ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण रक्षपालोंको मैंने मायानिद्रासे मोहित किया है दृढ अष्ट धातके किंवाड खोल दिये हैं तुम जंजीर खोलकर॥ २७॥ इस पुत्रको नन्दके घर रख वहांसे योगमायाको ले आओ" उस कारागारमें स्थित वसुदेवने इस आकाशवाणीको सुन ॥ २८ ॥ द्वारकी ओर दृष्टि करके देखा कि, दर्वाजा खुला है हे राजेन्द्र! तबवह शीघ्र उस पुत्रको ले सम्पूर्ण द्वारपालोंसे छिपकर बाहर हुए ॥ २९ ॥ और यमुनातटपर जाय कलिन्दकन्याका तीव्रप्रवाह बहता देख चिन्तातुर हुए किन्तु वह सरिद्वरा यमुना तत्काल कमरकी बराबर हुई ॥ ३० ॥ तब वसुदेव योगमायाके प्रभावसे यमुनापार हो निर्जनमार्गद्वारा गमन कर निशीथ समय गोकुलमें पहुँचे ॥ ३१ ॥ और नन्दके द्वारमें उपस्थित होकर उनका गौमहिषादि ऐश्वर्य देखने लगे इसी समय

रक्षपालास्तथासर्वेमयानिद्राविमोहिताः॥विवृतानिकृतान्यष्टकपाटानिचशृंखलाः॥२७॥मुक्त्वैनंनंदगेहेत्वंयोगमायांसमानय॥श्रुत्वैवंवसुदेवस्तुतस्मिन्कारागृहेगतः ॥ २८ ॥ विवृतंद्वारमालोक्यबभूवतरसानृप ॥ तमादाययया वाशुद्वारपालैरलक्षितः ॥ २९॥ कालिंदीतटमासाद्यपूरंदृष्ट्वासुनिश्चितम्॥ तदैवकाटिदघ्नीसाबभूवाऽऽशुसरिद्वरा ॥ ३० ॥ योगमायाप्रभावेणतताराऽऽनकदुंदुभिः ॥ गत्वातुगोकुलंशौरिर्निशीथेनिर्जनेपथि ॥ ३१ ॥ नंदद्वारेस्थितःपश्यन्विभूतिंपशुसंज्ञिताम् ॥ तदैवतत्रसंजातायशोदागर्भसंभवा ॥ ३२ ॥ योगमायांशजादेवीत्रिगुणादिव्यरूपिणी ॥ जातांतांबालिकांदिव्यांगृहीत्वाकरपंकजे ॥ ३३ ॥ तत्राऽऽगत्यददौदेवीसैरंध्रीरूपधारिणी ॥ वसुदेवःसुतंदत्त्वासैरंध्रीकरपंकजे ॥ ३४ ॥ तामादाययौशीघ्रंबालिकांमुदिताऽऽशयः ॥ कारागारेततोगत्वादेवक्याःशयनेसुताम् ॥ ३५ ॥ निक्षिप्यसंस्थितःपार्श्वेचिंताविष्टोभयाऽऽतुरः ॥ रुरोदसुस्वरंकन्यातदैवाऽऽगतसंज्ञकाः ॥ ३६ ॥ उत्तस्थुःसेवकाराज्ञःश्रुत्वातद्रुदितंनिशि ॥ तमूचुर्भूपतिंगत्वात्वरितास्तेतिविह्वलाः ॥३७॥ देवक्याश्चसुतोजातःशीघ्रमेहिमहामते ॥ तदाकर्ण्यवचस्तेषांशीघ्रंभोजपतिर्ययौ ॥ ३८ ॥

उस स्थानमें यशोदाके गर्भसे ॥ ३२ ॥ त्रिगुणात्मिका दिव्यरूपिणी महादेवी योगमायाने अपने अंशसे जन्मग्रहण किया तब महादेवी योगमायाने उस प्रगट बालिकाको ॥ ३३ ॥ सैरन्ध्रीका रूप धारण करके करकमलमें ग्रहणपूर्वक उस स्थानमें आय वसुदेवके हाथमें अर्पण किया ॥ ३४ ॥ वसुदेवभी पुत्रको देवीके करकमलमें समर्पणकर बालिकाको ग्रहणपूर्वक प्रसन्न चित्तसे शीघ्र चले इसके उपरान्त कारागारमें जाय देवकीकी शय्यापर ॥ ३५ ॥ उस कन्याको स्थापन कर भयातुर और चिन्तायुक्त हो देवकीके निकटमें बैठ रहे किन्तु शयन करातेही वह कन्या उच्चस्वरसे रोनेलगी ॥ ३६ ॥ तब राजाके रक्षक गण जागे और वह रोनेकी ध्वनि सुनकर भयसे अतिविह्वल हो शीघ्र जाय राजाके निकट उपस्थित हुए और बोले ॥ ३७ ॥ हे महाराज! शीघ्र जाइये, देवकीके पुत्र उत्पन्न हुआ है भोजनृपति उनका यह वचन सुन वहां शीघ्र गया ॥ ३८ ॥

और द्वार खुला देख वसुदेवको बुलाकर कहा. कंस बोला हे महामते! मेरा मृत्युस्वरूप देवकीका आठवाँ पुत्र लाओ ॥ ३९ ॥ मैं उस हरिसंज्ञक वैरीको अभी विनाश करूंगा व्यासजी ने कहा हे महाराज ! वसुदेवने कंसका यह वचन सुन भयसे व्याकुलनेत्र ॥ ४० ॥ और विह्वल हो काँपते काँपते उस कन्याको कंसके हाथमें समर्पण किया राजा कंस देवकीकी कन्या सन्तान देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ॥ ४१ ॥ और चिन्ता करने लगा कि देववाणी और नारदकी वाणी वृथा हुई वसुदेव इस स्थानमें रहकर दुःखरूपी संकटमें भी अन्यायकार्य्य करनेमें किस प्रकार समर्थ होंगे ॥ ४२ ॥ विशेष कर मेरे रक्षकगण निःसन्देह सावधानीसे रहते थे यह कन्या यहां किसप्रकार आई ! और वह अष्टमगर्भोत्पन्न पुत्र कहां गया ॥ ४३ ॥ इस विषयमें सन्देह करना उचित नहीं क्योंकि कालकी गति अत्यन्त विषम है इसप्रकार

प्रावृतंद्वारमालोक्यवसुदेवमथाह्वयत् ॥ कंसउवाच ॥ सुतमानयदेवक्यावसुदेवमहामते ॥ ३९ ॥ मृत्युर्मेंचाऽष्टमोगर्भस्तन्निहन्मिरिपुंहरिम् ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ श्रुत्वाकंसवचःशौरिर्भयत्रस्तविलोचनः ॥ ४० ॥ तामादायसुतांपाणौददौचाऽऽश्रुरुदन्निव ॥ दृष्ट्वाऽथदारिकांराजाविस्मयं परमंगतः ॥ ४१ ॥ देववाणीवृथाजातानारदस्यचभाषितम् ॥ वसुदेवःकथंकुर्यादनृतंसंकटेस्थितः ॥ ४२ ॥ रक्षपालाश्चमेसर्वेसावधानानसंशयः ॥ कुतोऽत्रकन्यकाकामंक्वगतःसमुतःकिल ॥ ४३ ॥ संदेहोऽत्रनकर्तव्यःकालस्यविषमागतिः ॥ इतिसंचिंत्यतांबालांगृहीत्वापादयोःखलः ॥ ४४ ॥ पोथयामासपाषाणेनिर्घृणःकुलपांसनः ॥ साकरान्निःसृताबालाययावाकाशमंडलम् ॥ ४५ ॥ दिव्यरूपातदाभूत्वातमुवाचमृदुस्वना ॥ किंमयाहतयापापजातस्तेबलवान्रिपुः ॥ ४६ ॥ हनिष्यतिदुराराध्यःसर्वथात्वांनराधमम् ॥ इत्युक्त्वासागताकन्यागगनंकामगाशिवा ॥ ४७ ॥ कंसस्तुविस्मयाऽऽविष्टोगतो निजगृहंतदा ॥ आनाय्यदानवान्सर्वानिदंवचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥ बकधेनुकवत्सादीन्क्रोधाविष्टोभयाऽऽतुरः ॥ गच्छंतुदानवाःसर्वेममकार्यार्थसिद्धये ॥ ४९ ॥

चिन्ताकरके उस निर्दयी कुलनाशक खल भूपाल कंसने कन्याके दोनों पैर पकड़ ॥ ४४ ॥ पत्थरपर पटकनेके लिये उसको आकाशमें उठा लिया तिसकाल वह कन्या इसके हाथसे छूटकर आकाशमंडलमें गई ॥ ४५ ॥ और दिव्यरूप धारण कर मीठी वाणी द्वारा कंसराजसे बोली मेरे मारनेसे तुझको क्या होगा? तेरे बलवान् शत्रुने जन्म ग्रहण किया है ॥ ४६ ॥ रेनराधम ! वह दुराराध्य पुरुषश्रेष्ठ तुझको निश्चयही मारेंगे इसमें सन्देह नहीं यह कहकर वह शिवरूपिणी कामगामिनी कन्या गगनतलमें गई ॥ ४७ ॥ कंसभी आश्चर्ययुक्त होकर घर गया और क्रोध तथा भयसे अधीर हो दानवोंको बुलाय बोला ॥ ४८ ॥ बक धेनुक वत्स इत्यादि दानवोंसे कहने लगा

हे दानवगण ! तुमलोग सभी मेरे कार्य्यसिद्धिको जाओ ॥ ४९ ॥ तुम जिसकिसी स्थानमें ही बालकको उत्पन्न होता देखकर हनन करो यह बालकघातिनी पूतना अभी नन्दके गोकुलमें जाय ॥ ५० ॥ मेरी आज्ञासे उत्पन्न हुए बालकमात्रकोही विनाश करे धेनुक वत्सक केशी प्रलम्ब और बकादि ॥ ५१ ॥ तुम सब लोगभी मेरा कार्य्यसाधन करनेके लिये उस गोकुलमें वास करते रहो खल भूपाल कंस असुरगणोंको इसप्रकार आज्ञा दे अपने घर जाय ॥ ५२ ॥ निरन्तर इस विषयकी चिन्ता कर अत्यन्त भयातुर और दीन होने लगा ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! इधर प्रातःकालके समय नन्दके घर पुत्रजन्मका महोत्सव आरम्भ हुआ तदनन्तर कंसराजने किम्वदन्ती और दूतके द्वारा जाना कि ॥ १ ॥

जातमात्राश्चहंतव्याबालकायत्रकुत्रचित् ॥ पूतनैषाव्रजत्वद्यबालघ्नीनंदगोकुलम् ॥ ५० ॥ जातमात्रान्विनिघ्नंतीशिशूंस्तत्रममाऽऽज्ञया ॥ धेनुकोवत्सकःकेशीप्रलंबोबकएवच ॥ ५१ ॥ सर्वेतिष्ठंतुतत्रैवममकार्यचिकीर्षया ॥ इत्याऽऽज्ञाप्याऽसुरान्कंसोययौनिजगृहंखलः ॥ ५२॥ चिंताविष्टो ऽतिदीनात्माचिंतयित्वैवतंपुनः ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेत्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ ॥ व्यासउवाच ॥ प्रातर्नंदगृहेजातःपुत्रजन्ममहोत्सवः ॥ किंवदंत्यथकंसेनश्रुताचारमुखादपि ॥ १ ॥ जानातिवसुदेवस्यदारास्तत्रवसंतिहि ॥ पशवोदासवर्गश्चसर्वेतेनंदगोकुले ॥ २॥ तेनशंकासमाविष्टोगोकुलंप्रतिभारत ॥ नारदेनाऽपितत्सर्वंकथितंकारणंपुरा ॥३॥ गोकुलेयेचनंदाद्यास्तत्पत्न्यश्चसुरांशजाः ॥ देवकीवसुदेवाद्याःसर्वेतेशत्रवःकिल ॥ ४ ॥ इतिनारदवाक्येनबोधितोऽसौकुलाऽधमः ॥ जातःकोपमनाराजन्कंसःपरमपापकृत् ॥ ५ ॥ पूतनानिहतातत्रकृष्णेनाऽमिततेजसा ॥ बकोवत्सासुरश्चाऽपिधेनुकश्चमहाबलः ॥ ६ ॥ प्रलंबोनिहतस्तेनतथागोवर्धनोधृतः ॥ श्रुत्वैतत्कर्मकंसस्तुमेनेमरणमात्मनः ॥ ७ ॥

नन्दके गोकुलमें पुत्रजन्मके कारण महोत्सव आरम्भ हुआ है इससे पहले वह जानता था कि वसुदेवकी पत्नी पशुगण और दासगण सभी गोकुलमें नन्दके घर वास करते हैं ॥ २॥ हे राजन् ! इन सब कारणोंसे कंसराज गोकुलपर सन्देह करता था विशेष करके देवर्षि नारदने भी पूर्वमें उससे इस प्रकार कहा था कि ॥ ३ ॥ नन्दादि जो जो गोपगण गोकुलमें वास करते हैं वे और उनकी सब पत्नी तथा देवकी और वसुदेव इत्यादि सब ही देवताओंके अंशसे उत्पन्न हैं अतएव वे सभी तुम्हारे शत्रु हैं ॥ ४ ॥ नारदके इन सब वचनोंसे प्रबोधित होकर वह परम पापाचारी कुलाधम कंस अत्यन्त क्रोधित हुआ था ॥ ५ ॥ और पूतना बक वत्स धेनुक तथा प्रलम्ब इत्यादि महा बलशाली दुर्दान्त दानवोंको गोकुलमें भेजा था । अमितपराक्रमशाली कृष्णने उन सबको ही विनाश किया ॥ ६ ॥ प्रलम्बको मार गोप और महिषादिकी रक्षाके निमित्त

गोवर्द्धनपर्वत धारण किया यह सब वृत्तान्त सुनकर कंसने अपना मरण निश्चय जाना॥ ७ ॥ इसके उपरान्त जब सुना कि केशी दैत्यभी मारागया है तब अत्यन्त उदास हो धनुर्यज्ञके बहाने बलराम और कृष्ण दोनों भाइयोंको मथुरामें बुलानेके लिये उद्योग करने लगा ॥ ८ ॥ अनन्तर उस पापमति कंसने अमितविक्रम रामकृष्णका विनाश करनेके निमित्त उनको मथुरामें बुलानेके अर्थ अक्रूरको गोकुलमें भेजा॥ ९॥ गान्दिनी पुत्र अक्रूर कंसकी आज्ञानुसार गोकुलमें जाय उन दोनों गोपालोंको रथमें चढ़ाय मथुरामें ले आये ॥ १० ॥ राम और कृष्णने मथुरामें आय प्रथम तो धनुष तोड़ा, फिर रजक, कुवलयापीड हाथी एवं चाणूर मुष्टिक ॥ ११ ॥ शल और तोशल इत्यादि मल्लोंको मारकर सर्व देवेश्वर हरिने कंसके केश खैंचकर लीलापूर्वकही उसको मार डाला ॥ १२ ॥ दोहा—"कंस मार भूभार हर, उग्रसेन करि भूप । कहाँ हमारे मातु पितु, तब बोले सुखरूप" ॥ शत्रुओंके मारनेवाले कृष्णने मातापिताको कारागारसे मुक्तकर उनके मनमें गड़े

तथाविनिहतःकेशीज्ञात्वाकंसोऽतिदुर्मनाः ॥ धनुर्यागमिषेणाऽऽशुतावानेतुंप्रचक्रमे ॥ ८ ॥ अक्रूरंप्रेषयामासक्रूरःपापमतिस्तदा ॥ आनेतुंरामकृष्णौ चवधायाऽमितविक्रमौ ॥ ९ ॥ रथमारोप्यगोपालौगोकुलाद्गांदिनीसुतः ॥ आगतोमथुरायांतुकंसादेशेस्थितःकिल ॥ १० ॥ तावागत्यतदातत्रधनुर्भंगं चचक्रतुः ॥ हत्वाऽथरजकंकामंगजंचाणूरमुष्टिकम् ॥ ११ ॥ शलंचतोशलंचैवनिजघानहरिस्तदा ॥ जघानकंसंदेवेशःकेशेष्वाकृष्यलीलया ॥ १२ ॥ पितरौमोचयित्वाऽथगतदुःखौचकारह ॥ उग्रसेनायराज्यंतद्ददावरिनिषूदनः ॥ १३ ॥ वसुदेवस्तयोस्तत्रमौंजीबंधनपूर्वकम् ॥ कारयामासविधिवद्व्रतबंधंमहामनाः ॥ १४ ॥ उपनीतौतदातौतुगतौसांदीपनालयम् ॥ विद्याःसर्वाःसमभ्यस्यमथुरामागतौपुनः ॥१५॥ जातौद्वादशवर्षीयौकृतविद्यौमहाबलौ ॥ मथुरायांस्थितौवीरौसुतावानकदुंदुभेः॥ १६॥ मागधस्तुजरासंधोजामातृवधदुःखितः ॥ कृत्वासैन्यसमाजंसमथुरामागतःपुरीम्॥ १७॥ सप्तदशवारंतुकृष्णेनकृतबुद्धिना ॥ जितःसंग्राममासाद्यमधुपुर्यानिवासिना ॥१८॥ पश्चाच्चप्रेरितस्तेनसकालयवनाऽभिधः॥ सर्वम्लेच्छाधिपःशूरोयादवानांभयंकरः ॥१९॥

दुःखरूपी बाणका निकाला और उग्रसेनको मथुराका राज्य दिया ॥ १३ ॥ अनन्तर महामना वसुदेवने उस स्थानमें मौंजी मेखला यज्ञोपवीतके निमित्त बांध, राम और कृष्णको उपनयन प्रदानकर व्रत धारण कराया ॥ १४ ॥ वह उपनीत अर्थात् जनेऊ होनेपर सान्दीपन मुनिके पवित्र गृहमें विद्या सीखनेके अर्थ उपस्थित हो शीघ्र सब विद्याका अभ्यासकर फिर मथुरामें आये ॥ १५ ॥ आनकदुन्दुभीके वे दोनों पुत्र मथुरामें वास करते करते जब उनकी अवस्था बारह वर्षकी हुई तब वे सब विषयमें चतुर और महाबलशाली होगये ॥ १६ ॥ इसी समय मगधराज जरासंध जमाईके मरनेसे अत्यन्त दुःखित हो, असंख्य सेना इकट्ठीकर मथुरामें आया ॥ १७ ॥ मगधराजने इस प्रकार सत्रह बार मथुरा नगरीपर आक्रमण कियाथा, किन्तु कृतबुद्धि महामति मधुपुरनिवासी कृष्णने अपनी बुद्धिसे सत्रहों बार उसको पराजित किया ॥ १८ ॥ अन्तमें जरासंधने यादवोंको भयावह समस्त म्लेच्छके अधिपति वीर्य सम्पन्न कालयवनको मथुरामें आक्रमण करनेको भेज दिया ॥ १९ ॥

मधुसूदन कृष्ण यवनको आता सुन संपूर्ण यादव सत्तम और बलदेवजीको बुलाकर कहने लगे, हे महाभागगण ! ॥ २० ॥ इस समय हमारे घोर शत्रु जरासंधसे महाभय उत्पन्न होता है, अब कालयवन आता है, अतएव क्या करना चाहिये ? ॥ २१ ॥ गृह, भवन, धन और सेना परित्याग करके प्राण रक्षा ही कर्त्तव्य है आप जानते हैं. जिस स्थानमें सुखसे वास किया जाय वही पैतृक स्थान है ॥ २२ ॥ जिस स्थानमें वास करनेसे सदा उद्वेग (दुचिताई) उपस्थित हो, वह स्थान कुलोचित होनेसे भी उसमें वास करना उचित नहीं है. इस कारण सुखसहित वास करनेकी इच्छा हो तो पर्वत और सागर-निकटवर्त्ती प्रदेशमें वास करना चाहिये ॥ २३ ॥ जिस स्थानमें वैरीका भय नहीं होता. पण्डितगण उसी स्थानमें वास करते हैं. भगवान् हरि शेषशय्याका आश्रय करके समुद्रके भीतर सुखपूर्वक शयन करते हैं ॥ २४ ॥ बोध होता है, त्रिपुरारी महादेवजी भी इसी कारण कैलासपर्वतमें वासकर रहे हैं कि शत्रुभय न हो मैंभी इस स्थानमें शत्रुसे दुःखी हुआ हूं. इसकारण अब

श्रुत्वायवनमायांतंकृष्णःसर्वान्यदूत्तमान् ॥ आनाय्यचतथारामसुवाचमधुसूदनः ॥ २० ॥ भयंनोऽत्रसमुत्पन्नंजरासंधान्महाबलात् ॥ किंकर्तव्यंमहाभागायवनःसमुपैतिवै ॥२१॥ प्राणत्राणंप्रकर्तव्यंत्यक्त्वागेहंबलंधनम् ॥ सुखेनस्थीयतेयत्रसदेशःखलुपैतृकः ॥२२॥ सदोद्वेगकरःकामंकिंकर्तव्यःकुलोचितः ॥ शैलसागरसान्निध्येस्थातव्यंसुखमिच्छता ॥२३॥ यत्रवैरिभयंनस्यात्स्थातव्यंतत्रपंडितैः ॥ शेषशय्यांसमाश्रित्यहरिःस्वपितिसागरे ॥२४॥ तथैवचभयाद्वीतःकैलासेत्रिपुरार्दनः ॥ तस्मान्नाऽत्रैवस्थातव्यमस्माभिःशत्रुतापितैः ॥२५॥ द्वारवत्यांगमिष्यामःसहिताःसर्वएववै ॥ कथितागरुडेनाऽद्यरम्याद्वारवतीपुरी ॥ २६ ॥ रेवताचलसांनिध्येसिंधुकूलेमनोहरा ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतथ्यंसर्वेयादवपुंगवाः ॥ २७ ॥ गमनायमतिंचक्रुःसकुटुंबाःसवाहनाः ॥ शकटानितथोष्ट्राश्चवाम्यश्चमहिषास्तथा ॥२८॥ धनपूर्णानिकृत्वातेनिर्ययुर्नगराद्बहिः ॥ रामकृष्णौपुरस्कृत्यसर्वेतेसपरिच्छदाः ॥२९॥ अग्रेकृत्वाप्रजाःसर्वाश्चेलुःसर्वेयदूत्तमाः ॥ कतिचिद्दिवसैःप्रापुःपुरींद्वारवतींकिल ॥३०॥ शिल्पिभिःकारयामासजीर्णोद्धारंहिमाधवः ॥ संस्थाप्ययादवांस्तत्रतावेतौबलकेशवौ ॥ ३१ ॥

इस स्थानमें मेरा रहना युक्तिसंगत नहीं है ॥ २५ ॥ हम स्वजन और धनादिसंग लेकर द्वारावती नगरीमें जाय पक्षिराज गरुड़ने मुझको उस द्वारावतीका विषय भलीभाँति विदित किया है ॥ २६ ॥ वह मनोहर नगरी रैवतक नामक पर्वतके समीप समुद्रके तटपर वसी हुई है व्यासजी बोले प्रधान प्रधान यादवगणोंने श्रीकृष्णके इसप्रकार हितकर वचन सुन ॥ २७ ॥ संपूर्ण स्वजन और वाहनोंके सहित उस स्थानमें जानेकी इच्छा की तब उनके जो सब ऊंट घोड़े और महिषादि थे ॥ २८ ॥ उनको इकट्ठा कर और संपूर्ण शकटों (गाडियों) को धन रत्नादिसे भर नगरसे बाहर हुए राम और कृष्ण आगे आगे चलने लगे ॥ २९ ॥ पीछे पीछे सब यादवगण और आगे २ प्रजागणके झुंडके झुंड चले वे कुछ दिनों चलकर द्वारावती पहुँचे ॥ ३० ॥ अनन्तर द्वारकाके जो जो स्थान पुराने और नष्ट होगये थे श्रीकृष्णने शिल्पकारोंसे उन

सब स्थानोंका संस्कार कराया बलराम और केशव यादवोंको उस स्थानमें रख ॥ ३१ ॥ आप दोनों जन शीघ्र मथुरामें आय उस जनशून्य पुरीमें वास करने लगे. इस ओर महाबलशाली यवनराज उसी समय मथुरामें आनकर उपस्थित हुआ ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्ण यवनपतिके आनेका वृतान्त जानकर नगरके बाहर निकले जनार्दन भगवान् मधुसूदन॥ ३३॥ पीतवसनमें सुसज्जित होकर हँसते हँसते पैदलही कालयवनके सन्मुख उपस्थित हुए. क्रूरमति यवनपतिने कमल लोचन श्रीकृष्णको सन्मुख उपस्थित देख ॥ ३४ ॥ पकड़नेको पैदलही उनका अनुसरण किया तब भगवान् मधुसूदन जिस स्थानमें महाबल राजर्षि मुचुकुन्द गाढ़ निद्रामें मग्न था ॥ ३५ ॥ कालयवनको लेकर क्रमक्रमसे उसी स्थानमें जाकर उपस्थित हुए श्रीकृष्ण मुचुकुन्दको देखतेही उसी स्थानमें छिपगये ॥ ३६॥ तब यवनरा

तरसामथुरामेत्यसंस्थितौनिर्जनांपुरीम् ॥ तदातत्रैवसंप्रातोबलवान्यवनाधिपः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वैनमागतंकृष्णोनिर्ययौनगराद्बहिः ॥ पदातिरग्रेत स्याऽभूद्यवनस्यजनार्दनः ॥ ३३॥ पीतांबरधरःश्रीमान्प्रहसन्मधुसूदनः ॥ तंदृष्ट्वापुरतोयांतंकृष्णंकमललोचनम् ॥ ३४ ॥ यवनोऽपिपदातिःसन्पृष्ठतो ऽनुगतःखलः ॥ प्रसुप्तोयत्रराजर्षिर्मुचुकुंदोमहाबलः॥३५॥ प्रययौभगवांस्तत्रसकालयवनोहरिः ॥ तत्रैवांतर्दधेविष्णुर्मुचुकुंदंसमीक्ष्यच॥३६॥ तत्रैवयवनः प्राप्तःसुप्तभूतमपश्यत ॥ मत्वातंवासुदेवंसपादेनाताडयन्नृपम् ॥३७॥ प्रबुद्धःक्रोधरक्ताक्षस्तंददाहमहाबलः॥ तंदग्ध्वामुचुकुंदोऽथददर्शकमलेक्षणम् ॥३८॥ वासुदेवंसुदेवेशंप्रणम्यप्रस्थितोवनम् ॥ जगामद्वारकांकृष्णोबलदेवसमन्वितः ॥ ३९ ॥ उग्रसेनंनृपंकृत्वाविजहारयथारुचि ॥ अहरद्रुक्मिणींकामंशिशुपा लस्वयंवरात् ॥ ४० ॥ राक्षसेनविवाहेनचक्रेदारविधिंहरिः ॥ ततोजांबवतींसत्यांमित्रविंदांचभामिनीम् ॥ ४१ ॥

जने भी वहाँ पहुँच उस निद्राभिभूत राजर्षिको देखा उस क्रूरमति यवनने उनको वासुदेव जान उनके अंगपर पदाघात किया॥ ३७॥ महाबल नृपति मुचुकुन्द जागरितहो क्रोधसे लोहितलोचन हुए और तत्काल उस पापिष्ठ यवनको दृष्टिसे भस्म कर दिया यवनको भस्म करके नृपति मुचुकुन्दने कमललोचन श्रीकृष्णका दर्शन किया ॥ ३८ ॥ फिर वह देवप्रवर वासुदेवको प्रणाम करके वनमें चला गया इसके उपरान्त श्रीकृष्ण बलदेवजीके सहित द्वारका नगरीमें आय ॥ ३९ ॥ उग्रसेनको राजा कर यथेच्छ विहार करने लगे. फिर कुछ काल बीतने पर जनार्दनने शिशुपालके विवाहमें विदर्भराज भवनमें जो स्वयंवरसभाका आडम्बर हुआ था. वहांसे रुक्मिणीको हरण करके ॥ ४० ॥ राक्षस विधिके अनुसार उसका पाणिग्रहण किया. हे महाराज! इसके उपरान्त उन्होंने जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रविन्दा ॥ ४१ ॥

कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा और नाग्नजिती (नग्नजित राजाकी कन्या) इनको भिन्न भिन्न समयमें लाय विवाह किया ॥ ४२ ॥ यह आठ स्त्रियेंही श्रीकृष्णकी परमशोभना महिषी थीं प्रथम रुक्मिणीके प्रियदर्शन प्रद्युम्न नामक पुत्रको उत्पन्न करनेपर ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्णने उसका जातकर्मादि समापन किया इसके उपरान्त शम्बरनामक बलवान्दानव सूतिकागृहसे उस बालक पुत्रको हरण कर ॥ ४४ ॥ अपनी नगरीमें ले जाय मायावतीके हाथमें समर्पण किया. वासुदेव श्रीकृष्ण पुत्रको हरण हुआ जान अति शोकातुर हुए ॥ ४५ ॥ और भक्तियुक्त मनसे भगवतीकी शरणागत हुए जिन्होंने लीलापूर्वकही वृत्रासुर इत्यादि दैत्योंको निहत किया है ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्ण परमम हत अक्षर संयुक्त कल्याणदायक मधुरस्वरसे उन्ही योगमायाकी स्तुति करने लगे ॥ ४७ ॥ हे जननि ! मैं ने पूर्वजन्ममें धर्मपुत्र होकर बदरीवनमें तपस्या करके आपको

कालिंदींलक्ष्मणांभद्रांतथानाग्नजितींशुभाम् ॥ पृथक्पृथक्समानीयाऽप्युपयेमेजनार्दनः ॥ ४२ ॥ अष्टावेवमहीपालपत्न्यःपरमशोभनाः ॥ प्रासूतरुक्मिणी पुत्रंप्रद्युम्नंचारुदर्शनम् ॥४३॥ जातकर्मादिकंतस्यचकारमधुसूदनः ॥ हृतोसौसूतिकागेहाच्छंबरेणबलीयसा ॥४४॥ नीतश्चस्वपुरींबालोमायावत्यैसम र्पितः ॥ वासुदेवोहृतंदृष्ट्वापुत्रंशोकसमन्वितः ॥ ४५ ॥ जगामशरणंदेवींभक्तियुक्तेनचेतसा ॥ वृत्रासुरादयोदैत्यालीलयैवययाहताः ॥ ४६ ॥ ततोऽसौयोगमा यायाश्चकारपरमांस्तुतिम् ॥ वचोभिःपरमोदारैरक्षरैःस्तवनैःशुभैः ॥४७॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ मातर्मयातितपसापरितोषितात्वंप्राग्जन्मनिप्रसुमनादिभिरर्चि ताऽसि ॥ धर्मात्मजेनबदरीवनखंडमध्येकिंविस्मृतोजननितेत्वयिभक्तिभावः ॥४८॥ सूतीगृहादपहृतःकिमुबालकोमेकेनाऽपिदुष्टमनसाऽप्यथकौतुकाद्वा ॥ मानापहारकरणायममाद्यनूनंलज्जातवांबखलुभक्तजनस्ययुक्ता ॥ ४९ ॥ दुर्गोमहानतितरांनगरीसुगुप्तातत्राऽपिमेऽतिसदनंकिलमध्यभागे ॥ अंतःपुरेच पिहितंननुसूतिगेहंबालोहृतःखलुतथाऽपिममैवदोषात् ॥ ५० ॥

सन्तुष्ट किया है और अनेक भाँतिके उपहारोंसे आपका पूजन किया है. हे मातः ! आपके प्रति मेरा जो भक्तिभाव है वह क्या आप भूलगई हैं ? ॥ ४८ ॥ हे अम्ब ! क्या कोई दुराशय शत्रु सूतिकागारसे मेरे शिशु सन्तानको हरण करके ले गया है वा कौतुक देखनेके लियेही यह कार्य हुआ है ? किन्तु मुझको बोध होता है कि, निःसंदेह कोई शत्रुपक्षीय पुरुष अपमानित करनेके निमित्त बालकको हरण करके लेगया है जो हो हे मातः ! आपके भक्तजनोंकी लज्जा जानी इसप्रकार कभी उपयुक्त नहीं है ॥ ४९ ॥ हे मातः ! मेरी यह द्वारावती अत्यन्त रक्षित है इसमें महान् दुर्गबने हुए हैं जिसमें फिर मेरा घर इसके मध्यभागमें अवस्थित है फिर अन्तःपुरमें

सूतिकागृह है तोभी अदृष्टदोषसेही मेरा यह बालक पुत्र हृत हुआ है यही कहना चाहिये ॥ ५० ॥ हे जननि ! मैं शत्रुपुरीमें भी नहीं गया यादवगणभी वहां नहीं गये; यह द्वारावती श्रेष्ठ योधाओंसे रक्षित है तो किसप्रकार मेरी बालकसंतान हरी गई. हे जननी ! मुझको ज्ञात होता है यह आपहीकी मायाका कार्य है हे देवी ! आपकी मायाका ऐसा प्रभाव तो तीनों लोकमेंही होता है ॥ ५१ ॥ हे देवि ! जब मैं ही आपके गुह्यतम चरित्र नहीं जानता तब देहाभिमानी तुच्छबुद्धि जीवोंमें ऐसा कौन है ? जो आपके चरित्र जाननेमें समर्थ हो ? मेरा बालक पुत्र कहां गया ? किसने उसको हरण किया ? मेरे रक्षकोंने कुछ नहीं देखा. हे अम्बिके ! जानपड़ता है यह आपकीही कल्पित मायाजवनिका मात्र है ॥ ५२ ॥ हे जननि ! आपके पक्षमें यह आश्चर्यका विषय नहीं है क्योंकि पतिव्रता रोहिणी देवीके दूर देशमें अवस्थित और पुरुषसंगसे हीन होनेपर भी आपने मेरे सामने पंचममासमेंही मेरी माताके गर्भसे पुत्रको मायाद्वारा सञ्चलित करके फिर बलदेवको प्रसव कराया था

नाऽहंगतः परपुरंनचयादवाश्चरक्षावतीचनगरीकिलवीरवर्यैः ॥ मायातवैवजननिप्रकटप्रभावामेबालकः परिहृतः कुहकेनकेन ॥ ५१ ॥ नोवेद्म्यहंजननितेच रितंसुगुप्तंकोवेदमंदमतिरल्पविदेवदेही ॥ क्वाऽसौगतोममभटैर्नचवीक्षितोवाहर्ताऽविकेजवनिकातवकल्पितेयम् ॥ ५२ ॥ चित्रंनतेऽत्रपुरतोममभातृगर्भानी तस्त्वयाऽर्धसमयेकिलमाययाऽसौ ॥ यंरोहिणीहलधरंसुषुवेप्रसिद्धंदूरस्थितापतिपरामिथुनंविनाऽपि ॥ ५३ ॥ सृष्टिंकरोषिजगतामनुपालनंचनाशंतथै वपुनरप्यनिशंगुणैस्त्वम् ॥ कोवेदतेंऽबचरितंदुरितांतकारिप्रायेणसर्वमखिलंविहितंत्वयैतत् ॥ ५४ ॥ उत्पाद्यपुत्रजननप्रभवंप्रमोदंदत्त्वापुनर्विरहजंकिलदुः खभारम् ॥ त्वंक्रीडसेसुललितैःखलुतैर्विहारैर्नोचेत्कथंममसुतातिरतिर्वृथास्यात् ॥ ५५ ॥ माताऽस्यरोदितिभृशंकुररीवबालादुःखंतनोतिममसन्निधि गासदैव ॥ कष्टंनवेत्सिललितेप्रमितप्रभावेमातस्त्वमेवशरणंभवपीडितानाम् ॥ ५६ ॥ सीमासुखस्यसुतजन्मतदीयनाशोदुःखस्यदेविभवनेविबुधावदंति ॥ तत्किंकरोमिजननिप्रथमेप्रनष्टेपुत्रेममाऽद्यहृदयंस्फुटतीवमातः ॥ ५७ ॥

सो भी प्रसिद्ध है ॥ ५३ ॥ हे मातः ! आपही सदा गुणोंके द्वारा इस संपूर्ण जगत्‌की सृष्टि पालन और विनाश करती हैं. हे अम्ब ! आपके अप्रमेय पापहारक चरित्र कौन जानसक्ता है. हे मातः ! आप बाहुल्यरूपसे इस अखिलके अखिल कार्यका निर्वाह करती हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ५४ ॥ आपही प्रथम मनुष्यको पुत्रजन्मका आनंद उत्पन्न कराय फिर पुत्र–विरहका दुःख देकर ललितविहार द्वारा सदाही क्रीडा करती हैं नहीं तो मेरे यहां पुत्रउत्सव वृथा क्यों होता ॥ ५५ ॥ इस बालककी माता दिन रात कुररीके समान रोती है वह नित्य मेरे समीप आनकर अपने मनकी वेदना कहती है. हे रूपामयी ! आप अपरिमित प्रभावसंपन्न होकरभी क्या मेरा यह कष्ट नहीं जान सक्ती? क्योंकि हे मातः! आपही भवपीडित जनका एक मात्र आश्रय हैं इसमें संशय नहीं ॥ ५६ ॥ हे देवि ! तत्त्वके जाननेवाले मुनिलोग कहते हैं कि मनुष्यके घर पुत्रजन्मही सुखकी सीमा है और पुत्रका विनाश ही दुःखकी परम अवस्था है अतएव हे जननि ! अब मैं इस विषयमें

क्या करूं? अधिक क्या प्रथम पुत्रके नष्ट होनेसे इस समय मेरा हृदय विदीर्ण हुआहै ॥ ५७ ॥ हे मातः ! मैं आपके तुष्टिकर यज्ञ व्रत और पूजा इत्यादि संपूर्ण देवकार्यका अनुष्ठान करूंगा आप मेरा दुःख दूर कीजिये. हे जननि ! यदि मेरा पुत्र बचा हो तो एक बार मुझको दिखाओ हे मातः ! आपके अतिरिक्त शोक नष्ट करनेमें दूसरा कोई समर्थ नहीं है ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले जो लीलापूर्वक ही भूभारहरणादि देवतागणोंसे भी असाध्य संपूर्ण कार्य संपादन करते हैं. उन जगद्गुरु श्रीकृष्णने जब देवीका इस प्रकार स्तव किया. तब वह प्रगट होकर उनसे कहने लगी ॥ ५९ ॥ हे देवेश ! अब शोक मत करो. पूर्वमें तुम्हारे प्रति एक शाप था, इसी कारण शम्बरने अपनी आसुरी मायाके प्रभावसे तुम्हारे पुत्रका हरण किया है ॥ ६० ॥ अतएव तुम्हारापुत्र जब सोलह वर्षका होगा, तब वह मेरे प्रसादसे शम्बरदैत्यको बलपूर्वक मारकर आवेगा. इसमें संदेह नहीं है ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चण्डविक्रमा देवी चण्डिका इसप्रकार आश्वासप्रद वचनोंसे समुझाकर अन्तर्धान होगई तब

यज्ञंकरोमितवतुष्टिकरव्रतंवादैवंचपूजनमथाऽखिलदुःखहात्वम् ॥ मातःसुतोऽत्रयदिजीवतिदर्शयाऽऽशुत्वंवैक्षमासकलशोकविनाशनाय ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ एवंस्तुतातदादेवीकृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥प्रत्यक्षदर्शनाभूत्वातमुवाचजगद्गुरुम् ॥५९॥श्रीदेव्युवाच॥ शोकंमाकुरुदेवेशशापोऽयंतेपुरातनः॥तस्य योगेनपुत्रस्तेशंवरेणहृतोबलात् ॥६०॥ अतस्तेषोडशेवर्षेहत्वातंशंबरंबलात् ॥ आगमिष्यतिपुत्रस्तेमत्प्रसादान्नसंशयः॥६१॥व्यासउवाच॥ इत्युक्त्वां ऽतर्दधेदेवीचंडिकाचंडविक्रमा ॥ भगवानपिपुत्रस्यशोकंत्यक्त्वाऽभवत्सुखी ॥६२॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेचतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ राजोवाच ॥ संदेहोमेमुनिश्रेष्ठजायतेवचनात्तव ॥ वैष्णवांशेभगवतिदुःखोत्पत्तिंविलोक्यच ॥ १ ॥ नारायणांशसंभूतोवासुदेवःप्रतापवान् ॥ कथंसस्रू तिकागाराद्धृतोबालोहरेरपि ॥ २ ॥ सुगुप्तनगरेरम्येगुप्तेऽथसूतिकागृहे ॥ प्रविश्यतेनदैत्येनगृहीतोऽसौकथंशिशुः ॥ ३ ॥ नज्ञातोवासुदेवेनचित्रमेतन्ममा द्भुतम् ॥ जायतेमहदाश्चर्यंचित्तेसत्यवतीसुत ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण भी पुत्रशोकको छोड़ सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! विष्णुके अंशस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी दुःखोत्पत्तिका विषय सुनकर आपकी बातमें मुझको संशय उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥ देखो, भगवान् वासुदेव साक्षात् नारायणके अंशसे उत्पन्न थे. तो फिर शम्बरासुरने सूतिकागृहसे किसप्रकार उनके पुत्रकाभी हरण किया? ॥ २ ॥ एक तो मनोरम द्वारका नगरी भलीभांति रक्षित थी, तिसपरभी फिर सूतिकागृह उसके मध्यमें स्थित था, ऐसे स्थानमें इस दैत्यने किसप्रकार प्रवेश करके पुत्रका हरण किया ?॥ ३ ॥ हे सत्यवतीतनय ! वासुदेव क्यों उसको नहीं जानसके ? यह विषय मुझको अद्भुत बोध होता है और मनमें परम आश्चर्यरसका उदय होता है ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मन्! केशवमूर्तिके द्वारकामें उपस्थित रहनेपर भी किसप्रकार सूतिकागृहसे बालकका हरण हुआ? और किसलिये वह उसको नहीं जान सके इसका कारण वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजीबोले हे राजन्! मनुष्योंकी बुद्धिको मोहित करनेवाली शाम्भवी मायाही इस विषयका कारण है. यह लोकमें विख्यात है. इस संसारमें ऐसा कौन है? जो मायासे मोहित न हो ॥ ६ ॥ जीवगण जब मनुष्यजन्मको प्राप्त होते हैं तब उनमें सब मनुष्योंकेही गुण वर्तमान रहते हैं. कुछ देवता वा असुरोंके गुण वर्त्तमान नहीं रहते ॥ ७ ॥ हे नराधिप! मनुष्योंके देहधारण करनेपरही भूंख, प्यास, निद्रा, भय, तन्द्रा, मोह, शोक, संशय हर्ष, अभिमान, जरा, मरण, अज्ञान, ज्ञान, अप्रीति, ईर्षा, असूया, मद और भ्रम यह सब देहजात भाव उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ देखो श्रीरामचन्द्र निशाचर मारीचके मायाबलसे हेममय मृगरूप धारण करके सम्मुख उपस्थित होनेपर भी कुछ

ब्रूहितत्कारणंब्रह्मन्नज्ञातंकेशवेनयत् ॥ हरणंतत्रसंस्थेनशिशोर्वासूतिकागृहात् ॥ ५ ॥ व्यासउवाच ॥ मायाबलवतीराजन्नराणांबुद्धिमोहिनी ॥ शांभवी विश्रुतालोकेकोवामोहंनगच्छति ॥ ६ ॥ मानुषंजन्मसंप्राप्यगुणाःसर्वेऽपिमानुषाः ॥ भवंतिदेहजाःकामंनदेवानाऽसुरास्तदा ॥ ७ ॥ क्षुत्तृण्निदाभयंतंद्रा व्यामोहःशोकसंशयः ॥ हर्षश्चैवाऽभिमानश्चजरामरणमेवच ॥ ८ ॥ अज्ञानंग्लानिरप्रीतिरीर्ष्यासूयामदःश्रमः ॥ एतेदेहभवाभावाःप्रभवंतिनराधिप ॥ ॥ ९ ॥ यथाहेममृगंरामोनबुबोधपुरोगतम् ॥ जानक्याहरणंचैवजटायुमरणंतथा ॥ १० ॥ अभिषेकदिनेरामोवनवासंनवेदच ॥ तथानज्ञातवान्रामःस्व शोकान्मरणंपितुः ॥ ११ ॥ अज्ञवद्विचचाराऽसौपश्यमानोवनेवने ॥ जानकींनविवेदाऽथरावणेनहृतांबलात् ॥ १२ ॥ सहायान्वानरान्कृत्वाहत्वाशक्रसु तंबलात् ॥ सागरेसेतुबंधंचकृत्वोत्तीर्यसरित्पतिम् ॥ १३ ॥ प्रेषयामाससर्वासुदिक्षुतान्कपिकुंजरान् ॥ संग्रामंकृतवान्घोरंदुःखंप्रापरणाऽजिरे ॥ १४ ॥ बंधनंनाग पाशेनप्रापरामोमहाबलः ॥ गरुडान्मोक्षणंपश्चादन्वभूद्रघुनंदनः ॥ १५ ॥ अहनद्रावणंसंख्येकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ मेघनादंनिकुंभंचकुपितोरघुनंदनः ॥ १६ ॥

नहीं जानसके. फिर सीताहरण और जटायुमरण ॥ १० ॥ तथा अभिषेक के दिव वनगमन और उनके शोकमें पितृमरण. इन सब बातको भी कुछ नहीं जानसके ॥ ११ ॥ रावणने जब बलपूर्वक जानकीको हरण किया. तब वह इसके पहले कुछ नहीं जान सके, केवल वन वनमें अज्ञानीके समान ढूंढते हुए फिरे थे ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त वह वानरगणोंकी सहायतासे इन्द्रपुत्र बालीको मारकर समुद्रमें पुल बाँध उसके पार हुए थे ॥ १३ ॥ उन्होंने सीताको ढूंढनेके लिये प्रधान प्रधान वानरगणोंको सब ओर भेजा था और रणांगणमें घोरतर युद्ध करके महत् दुःखभोगकिया था ॥ १४ ॥ महाबलशाली रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी नागपाशमें बँधगये थे, फिर गरुड़ने आनकर उनको मुक्त किया ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त उन्होंने कुपित होकर कुंभकर्ण, निकुंभ, मेघनाद और रावणका विनाश किया ॥ १६ ॥

उन जनार्दन श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी निर्दोषता न जानकर उनको शुद्ध कराया और विशेष परीक्षा लेनेके लिये अग्निमें प्रवेश कराया था ॥ १७ ॥ तदनन्तर दशरथ तनय श्रीरामचंद्रजीने लोकापवादके भयसे दोषरहित प्रेयसी सीताको दूषित जानकर त्याग किया ॥ १८ ॥ वनमें लवकुशनामक उनके जो दो पुत्र उत्पन्न हुए उनको वह नहीं जान सके फिर महर्षिवाल्मीकिके कह देनेपर वह जान सके थे ॥ १९ ॥ और देखो, रामचंद्र जानकीके पाताल जानेका विषय कुछ भी नहीं जान सके और वे एक समय कुपित होकर भ्राताके मारनेमें उद्यत हुए थे ॥ २० ॥ खर निशाचरके मारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी कालपुरुषके आनेका वृत्तान्त नहीं जानसके और उन्होंने मनुष्यदेह धारण करके मनुष्योंकेही कर्म किये थे । इसी प्रकार यदुनंदन श्रीकृष्णने भी मनुष्यजन्म ग्रहण करके संपूर्ण कार्य मनुष्यकेही किये थे, इस विषयमें फिर संदेह क्या है ? ॥ २१ ॥

अदूष्यत्वंचजानक्यानविवेदजनार्दनः ॥ दिव्यंचकारयामासज्वलितेऽग्नौप्रवेशनम् ॥ १७ ॥ लोकाऽपवादाच्चपरंततस्तत्याजतांप्रियाम् ॥ अदूष्यांदूषितांमत्वासीतांदशरथात्मजः ॥ १८ ॥ नज्ञातौस्वसुतौतेनरामेणचकुशीलवौ ॥ मुनिनाकथितौतौतुतस्यपुत्रौमहाबलौ ॥ १९ ॥ पातालगमनंचैवजानक्याज्ञातवान्नच ॥ राघवःकोपसंयुक्तोभ्रातरंहंतुमुद्यतः ॥ २० ॥ कालस्याऽऽगमनंचैवनविवेदखरांतकः ॥ मानुषंदेहमाश्रित्यचक्रेमानुषचेष्टितम् ॥ ॥ २१ ॥ तथैवमानुषान्भावान्नाऽत्रकार्याविचारणा ॥ पूर्वंकंसभयात्प्राप्तोगोकुलेयदुनंदनः ॥ २२ ॥ जरासंधभयात्पश्चाद्द्वारवत्यांगतोहरिः ॥ अधर्मकृतवान्कृष्णोरुक्मिण्याहरणंचयत् ॥ २३ ॥ शिशुपालहृतायाश्चजानन्धर्मंसनातनम् ॥ शुशोचबालकंकृष्णःशंबरेणहृतंबलात् ॥ २४ ॥ मुमोदजानन्पुत्रंतंहर्षशोकयुतस्ततः ॥ सत्यभामाऽऽज्ञयायत्तुयुयुधेस्वर्गतःकिल ॥ २५ ॥ इंद्रेणपादपार्थंतुस्त्रीजितत्वंप्रकाशयन् ॥ जहारकल्पवृक्षंयःपराभूयशतक्रतुम् ॥ ॥ २६ ॥ मानिनीमानरक्षार्थंहरिश्चित्रधरःप्रभुः ॥ बद्ध्वावृक्षेहरिंसत्यानारदायददौपतिम् ॥ २७ ॥

देखो कृष्ण प्रथमही कंसके भयसे गोकुलमें चले गये थे, फिर जरासंधके भयसे द्वारावती नगरीमें भागे ॥ २२ ॥ और उन्होंने सनातनधर्म जानकर भी शिशुपालकी वरी रुक्मिणीका हरण किया था, इस कार्यमें उनका अत्यन्त अधर्म हुआ था ॥ २३ ॥ शम्बर दैत्यके बालक पुत्रको हरण करनेपर उन्होंने शोक किया था, फिर भगवतीसे उसको जानकर हर्षयुक्त हुए थे, तो भलीभांति जाना जाता है कि, साधारण मनुष्योंके समान सम्पत् विपद्में उनको भी हर्ष विषाद उपस्थित होता था ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त पारिजात वृक्षके निमित्त स्वर्गमें जाय सत्यभामाकी आज्ञासे इन्द्रके संग जो युद्ध किया था, इससे वे स्त्रीके वशीभूत थे, यह स्पष्टही प्रकाशित होता है ॥ २५ ॥ इस युद्धमें चक्रधर हरिने देवराज इन्द्रको पराजित करके मानिनीकी मानरक्षाके निमित्त कल्पवृक्ष हरण किया था ॥ २६ ॥ किन्तु सत्यभामाने फिर

हरिको वृक्षमें बाँधकर नारदको दिया इसप्रकार हरिने उसके मानकी रक्षाकी ॥ २७ ॥ फिर उसी भामिनीने कनक देकर उनको छुड़ाया था अनेक गुणसंपन्न प्रद्युम्न इत्यादि रुक्मिणीके पुत्रोंको देखकर ॥ २८ ॥ जाम्बवन्तीने अतिदीनभावसे उनके निकट शोभायमान सन्ततिके निमित्त प्रार्थना की श्रीकृष्ण उसके पुत्रार्थ तपस्याका निश्चय होकर पर्वतपर गये ॥ २९ ॥ जिस स्थानमें शिवभक्त उपमन्यु मुनि वास करते थे, उसी स्थानमें गये, वह हरि, पुत्रकामनासे उपमन्युको दीक्षागुरु कर ॥ ३० ॥ पाशुपतमंत्र ग्रहण और मस्तक मुंडन पूर्वक दंडीहुए और वहां प्रथम मासमें फलमात्र आहार करके ॥ ३१ ॥ शिवध्यान परायण और शिवमंत्र जपमें निरत होकर उन्होंने उग्रतर तपस्याकी थी दूसरे महीनेमें जलमात्र पान करके एक चरणसे खड़े रहे ॥ ३२ ॥ तीसरे महीनेमें केवल वायुभक्षण पूर्वक

दत्त्वाथकानकंकृष्णंमोचयामासभामिनी ॥ दृष्ट्वापुत्रान्पुरुगुणान्प्रद्युम्नप्रमुखानथ ॥ २८ ॥ कृष्णंजांबवतीदीनाययाचेसंततिंशुभाम् ॥ सययौपर्वतंकृष्णस्तपस्याकृतनिश्चयः ॥ २९ ॥ उपमन्युर्मुनिर्यत्रशिवभक्तःपरंतपः ॥ उपमन्युंगुरुंकृत्वादीक्षांपाशुपतींहरिः ॥ ३० ॥ जग्राहपुत्रकामस्तुमुंडीदंडीबभूवह ॥ उग्रंतत्रतपस्तेपेमासमेकंफलाशनः ॥ ३१ ॥ जजापशिवमंत्रंतुशिवध्यानपरोहरिः ॥ द्वितियेतुजलाहारस्तिष्ठन्नेकपदाहरिः ॥ ३२ ॥ तृतीयेवायुभक्षस्तुपादांगुष्ठाऽग्रसंस्थितः ॥ षष्ठेतुभगवान्रुद्रःप्रसन्नोभक्तिभावतः ॥ ३३ ॥ दर्शनंचददौतत्रसोमःसोमकलाधरः ॥ आजगामवृषारूढः सुरैरिंद्रादिभिर्वृतः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मविष्णुयुतःसाक्षाद्यक्षगंधर्वसेवितः ॥ संबोधयन्वासुदेवंशंकरस्तमुवाचह ॥ ३५ ॥ तुष्टोऽस्मिकृष्णतपसातवोग्रेणमहामते ॥ ददामिवांछितान्कामान्ब्रूहियादवनंदन ॥ ३६ ॥ मयिदृष्टेकामपूरेकामशेषोनसंभवेत् ॥ व्यासउवाच ॥ तंदृष्ट्वाशंकरंतुष्टंभगवान्देवकीसुतः ॥ ३७ ॥

पादांगुष्ठके अग्रभागसे खड़े होकर तपस्या करने लगे इसप्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर छठे महीनेमें इन्दुमौलि भगवान् रुद्रदेवने उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर ॥ ३३ ॥ उस स्थानमें उनको दर्शन दिया महादेवजीने बैलपर चढ़ देवतोंसे युक्त ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा और विष्णुके सहित इन्द्रादि देवताओंसे परिवृत यक्ष तथा गंधर्व गणोंसे सेवित हुए वहां आय वासुदेवसे कहा ॥ ३५ ॥ हे महामते यदुनंदन कृष्ण ! मैं तुम्हारी उग्र तपस्यासे बहुत संतुष्ट हुआ हूं. अब तुम अपना वांछित वर मांगो मैं वही दूंगा ॥ ३६ ॥ मैं संपूर्ण भक्तगणोंकी अभिलाषा पूर्णकारी हूं, मेरा साक्षात्कार प्राप्तहोनेसे ऐसी क्या कामना है जो पूर्ण न हो व्यासजी बोले भगवान् देवकीतनय शंकर

देवको प्रसन्न देखकर ॥ ३७ ॥ प्रेमाकुलित चित्तसे उनके चरणकमलोंमें दण्डके समान गिरपड़े और वही सुरेश्वर सनातन वासुदेव शंभुके आगे खड़े होकर मेघके समान स्वरसे उनकी स्तुति करने लगे. श्रीकृष्ण बोले हे देव देव ! हे जगन्नाथ !! आपही सब जीवोंकी दुर्गतिविनाश करते हैं॥ ३८॥ ३९॥ हे असुरनाशन ! आपही इस विश्वके उत्पन्न कर्त्ता और कारणस्वरूप हैं, अतएव आपको नमस्कार करता हूं. हे नीलकंठ ! आपको प्रणाम करता हूं हे शूलधारिन् ! आपको मैं वारं वार नमस्कार करता हूं ॥ ४० ॥ हे शैलजावल्लभ ! आपही दक्षयज्ञके विनाशक हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं, आपका दर्शन करके मैं धन्य और कृतकृत्य हुआ ॥ ४१ ॥ हे सुव्रत ! आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ. हे अखिलगुरो ! हे त्रिलोचन ! मैं कामिनीमय पाशसे इस संसारमें बँध रहा हूं ॥ ४२ ॥ अब रक्षा पानेको आपकी शरणागत हुआहूं. हे दुःख विनाशन ! मैं मनुष्यजन्म पाकर अत्यन्त खिन्न (दुःखी) हुआ हूं

पपातपादयोस्तस्यदंडवत्प्रेमसंयुतः ॥ स्तुतिंचकारदेवेशोमेघगंभीरयागिरा ॥३८॥ स्थितस्तुपुरतःशंभोर्वासुदेवःसनातनः॥कृष्णउवाच॥देवदेवजगन्नाथ सर्वभूताऽऽर्तिनाशन ॥३९॥ विश्वयोनेसुरारिघ्ननमस्त्रैलोक्यकारक॥नीलकंठनमस्तुभ्यंशूलिनेतेनमोनमः ॥ ४० ॥ शैलजावल्लभायाऽथयज्ञघ्नायनमो स्तुते ॥ धन्योऽहंकृतकृत्योऽहंदर्शनात्तवसुव्रत ॥४१॥ जन्ममेसफलंजातंनत्वातेपादपंकजम् ॥ बद्धोऽहंस्त्रीमयैःपाशैःसंसारेऽस्मिञ्जगद्गुरो ॥४२॥ शरणं तेऽद्यसंप्राप्तोरक्षणार्थंत्रिलोचन ॥ संप्राप्यमानुषंजन्मखिन्नोऽहंदुःखनाशन ॥ ४३ ॥ त्राहिमांशरणंप्राप्तंभवभीतंभवाऽधुना ॥ गर्भवासेमहद्दुःखंप्राप्तंमदन दाहक ॥४४॥ जन्मतःकंसभयजमनुभूतंचगोकुले ॥ जातोऽहंनंदगोपालोवल्लवाज्ञाकरस्तथा ॥ ४५ ॥ गोरजःकीर्णकेशस्तुभ्रमन्वृंदावनेघने ॥ म्लेच्छ राजभयत्रस्तोगतोद्वारवतींपुनः॥४६॥त्यक्त्वापित्र्यंशुभंदेशंमाथुरंदुर्लभंविभो ॥ ययातिशापबद्धेनतस्मैदत्तंभयाद्विभो ॥ ४७॥ राज्यंसुपुष्टमपिचधर्मर क्षापरेणच ॥ उग्रसेनस्यदास्यत्वंकृतंवैसर्वदामया ॥ ४८ ॥ राजाऽसौयादवानांवैकृतोनःपूर्वजैःकिल ॥ गार्हस्थ्यंदुःखदंशंभोस्त्रीवश्यंधर्मखंडनम् ॥४९॥

॥ ४३ ॥ हे भव ! संसारके भयसे डरकर आपकी शरण ग्रहण की है अब आप मेरी रक्षा कीजिये. हे मदनदाहन ! मैंने गर्भवासके समय महादुःख पाया है॥ ४४ ॥ फिर कंसके भयसे नन्दके गोकुलमें जाकर निरंतर दुःखभोग किया है वहां गोपोंकी आज्ञासे गोचारणपूर्वक नंदका गोपालहो ॥ ४५॥ और गोधूलिद्वारा धूसरित केश हो सदाही वृन्दावनके निविड़वनमें घूमता फिरा हूं हे विभो ! मैंने म्लेच्छराज कालयवनके भयसे अत्यन्त त्रसित हो द्वारावतीमें गमन किया ॥ ४६ ॥ दुर्लभ पितृस्थान मथुरापुरी छोड़ा. हे प्रभो ! ययातिके शापके कारण धर्मकी रक्षाके निमित्त मैं ने उत्कृष्ट ॥ ४७ ॥ पुष्ट राज्यभी उग्रसेनको देदिया है. मैं उनको राज्य दे उनका दासत्व (सेवा) करता हूं ॥ ४८ ॥ मेरे पूर्वजगणोंने उनकोही यादवोंका राजा किया था. हे शम्भो ! गार्हस्थ्य आश्रम अत्यन्त

दुःखदायक, स्त्री-वश्य और धर्मनाशक है ॥ ४९ ॥ इससे सदा पराधीनता है. संसार-बंधन छूटनेकी वार्त्ता उसमें अत्यन्तही दुर्लभ है. हेमदनान्तक ! जाम्ववतीनामक मेरी एक भार्या ने रुक्मिणीके पुत्रको देखकर ॥ ५० ॥ सुशोभन संतानलाभ करनेको मुझे तपस्या करने भेजा है. हे देवेश ! हे जगद्गुरो ! मैं इस समय कामनाके वशीभूत हूं पुत्रके निमित्त तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं ॥ ५१ ॥ हे देव ! इस पुत्रकी प्रार्थनासे मुझको अत्यन्त लज्जाबोध होती है आप भक्तवत्सल. मुक्तिप्रद और सब देवताओंके ईश्वर हैं. आराधनाद्वारा ॥ ५२ ॥ आप को प्रसन्न करके कौन मूढ विनाशशील तुच्छ फलकी प्रार्थना करैगा. हे जगतीपते ! हे विभो ! आपको साक्षात् मुक्तिदाता स्वरूप जानकर भी मायासे मोहित हो स्त्रीकीप्रलोभनासे मोक्षतत्त्वको त्यागकर पुत्रसुखकी प्रार्थना करता हूं इससे मेरे समान मूढ

पारतंत्र्यंसदाबंधोमोक्षवार्ताऽत्रदुर्लभा ॥ रुक्मिण्यास्तनयान्दृष्ट्वाभार्याजांववतीमम ॥ ५० ॥ प्रेरयामासपुत्रार्थंतपसेमदनांतक ॥ सकामेनमयातप्तंतपः पुत्रार्थमद्यवै ॥ ५१ ॥ लज्जाभवतिदेवेशप्रार्थनायांजगद्गुरो ॥ कस्त्वामाराध्यदेवेशंमुक्तिदंभक्तवत्सलम् ॥ ५२ ॥ प्रसन्नंयाचतेमूढःफलंतुच्छंविनाशियत् ॥ सोऽयंमायाविमूढात्मायाचेपुत्रसुखंविभो ॥ ५३ ॥ कामिन्याप्रेरितःशंभोमुक्तिदंत्वांजगत्पते ॥ जानामिदुःखदंशंभोसंसारंदुःखसाधनम् ॥ ५४ ॥ अनित्यंनाशधर्माणंतथाऽपिविरतिर्नमे ॥ शापान्नारायणांशोऽहंजातोऽस्मिन्क्षितिमंडले ॥ ५५ ॥ भोक्तुंबहुतरंदुःखंमायापाशेनयंत्रितः ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तवंतंगोविंदंप्रत्युवाचमहेश्वरः ॥ ५६ ॥ बहवस्तेभविष्यंतिपुत्राःशत्रुनिषूदन ॥ स्त्रीणांषोडशसाहस्रंभविष्यतिशतार्धकम् ॥ ॥ ५७ ॥ तासुपुत्रादशदशभविष्यंतिमहाबलाः ॥ इत्युक्त्वोपरराामाऽऽशुशंकरःप्रियदर्शनः ॥ ५८ ॥ उवाचगिरिजादेवीप्रणतंमधुसूदनम् ॥ कृष्णकृष्ण महाबाहोसंसारेऽस्मिन्नराधिप ॥ ५९ ॥ गृहस्थप्रवरोलोकेभविष्यतिभवानिह ॥ ततोवर्षशतांतेतुद्विजशापाज्जनार्दन ॥ ६० ॥

दूसरा कौन है. हे शंकर ! संसारदुःखका घर, संसार दुःखका कारण ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ संसार अनित्य और विनाशधर्मशील है यद्यपि मैं यह सब जानता हूं, किन्तु तौभी मैं संसारसे विरत नहीं होता. मैं ने नारायणके अंशरूपी होकर भी शापके वशीभूत हो पृथ्वीमेंजन्म लिया ॥ ५५ ॥ माया—पाशमें बँध, अनेक दुःख भोगनेको आया हूं व्यासजी बोले हे महाराज ! शत्रुघातन गोविन्दके इसप्रकार स्तव करनेपर देव देव महादेवने उनसे कहा ॥ ५६ ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारे अनेक पुत्र होंगे तुम्हारी एक शत सोलहहजार स्त्री होंगी ॥ ५७ ॥ उन सब स्त्रियोंमें प्रत्येकके गर्भसे दश दश महाबलयुक्त पुत्र उत्पन्न होंगे. इसमेंसंदेह नहीं प्रियदर्शन शंकर जब यह कहकर मौन हुए ॥ ५८ ॥ तब श्रीकृष्णने गिरिजाके चरणोंमें प्रणाम किया. तब देवी पार्वतीने वारंवार वासुदेवसे कहा हे महाबाहो ! कृष्ण ! हे नरश्रेष्ठ ! इस संसारमें ॥ ५९ ॥ तुम सब गृहस्थगणोंके आदर्शस्वरूप

होगे. फिर सावर्ष व्यतीत होनेपर विप्रशाप ॥ ६० ॥ और गान्धारीके शापसे तुम्हारा कुलक्षय होगा. तुम्हारे पुत्रगण और अन्यान्य यादवगण मदिरापानसे मोहितहो ॥ ६१ ॥ युद्धस्थलमें परस्पर प्रहार करके नाशको प्राप्त होंगे. इसके उपरान्त फिर तुम बलभद्रके सहित देहपरित्याग करके स्वर्गमें जाओगे ॥ ॥ ६२ ॥ हे विभो ! तुम इस भवितव्य (होनहार) विषयमें कदापि शोक न करना तुमको जानना चाहिये कि भवितव्यताका प्रतीकार नहीं है ॥ ६३ ॥ अतएव इस विषयमें शोक करना उचित नहीं है यही मेरा सदा मत है. हे मधुसूदन ! महर्षि अष्टावक्रके शापसे तुम्हारे मरनेके पीछे तुम्हारी भार्याओंको ॥ ६४ ॥ दुर्दान्तदस्युगण हरण करेंगे इसमें संदेह नहीं है. व्यासजी बोले हे राजन् ! देवी पार्वतीके इस प्रकार वचन कहनेपर शंभु देवताओंके सहित अन्तर्धान होगये ॥

गांधार्याश्चतथाशापाद्भवितातेकुलक्षयः ॥ परस्परंनिहत्याऽजौपुत्रास्तेशापमोहिताः ॥ ६१ ॥ गमिष्यंतिक्षयंसर्वेयादवाश्चतथापरे ॥ सानुजस्त्वं तथादेहंत्यक्त्वायास्यसिवैदिवम् ॥ ६२ ॥ शोकस्तत्रनकर्तव्योभवितव्यंप्रतिप्रभो ॥ अवश्यंभाविभावानांप्रतीकारोनविद्यते ॥ ६३ ॥ तत्रशोको नकर्तव्योनूनंममसतंसदा ॥ अष्टावक्रस्यशापेनभार्यास्तेमधुसूदन ॥६४॥ चौरेभ्योग्रहणंकृष्णगमिष्यंतिमृतेत्वयि॥व्यासउवाच॥इत्युक्त्वांऽतर्दधेशंभुः सोमःससुरमंडलः ॥ ६५ ॥ उपमन्युंप्रणम्याऽथकृष्णोऽपिद्वारकांययौ ॥ तस्माद्ब्रह्मादयोराजन्संतियद्यप्यधीश्वराः ॥ ६६ ॥ तथापिमायाकल्लोलयोगसं क्षुभितांतराः ॥ तदधीनाःस्थिताः सर्वेकाष्ठपुत्तलिकोपमाः ॥ ६७ ॥ यथायथापूर्वभवंकर्मतेषांतथातथा ॥ प्रेरयत्यनिशंमायापरब्रह्मस्वरूपिणी ॥६८॥ नवैषम्यंननैर्घृण्यंभगवत्यांकदाचन ॥ केवलंजीवमोक्षार्थंयततेभुवनेश्वरी ॥ ६९ ॥ यदिसानैवसृज्येतजगदेतच्चराचरम् ॥ तदामायाविनाभूतंजडं स्यादेवनित्यशः ॥ ७० ॥

॥ ६५ ॥ और श्रीकृष्णजी उपमन्युको प्रणामकरके द्वारकामें गये. हे राजेन्द्र ! यद्यपि ब्रह्मा इत्यादि देवता जगतके अधीश्वर कहकर विख्यात हैं ॥ ६६ ॥ किन्तु तोभी वह माया सिंधुकी कल्लोलमालासे क्षुभित होते हैं वह काठकी पुतलीके समान मायाके अधीन होकर अवस्थित रहते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ६७ ॥ उनके जैसे जैसे पूर्वजन्म कृतकर्म हैं परब्रह्मरूपिणी महामाया उनको उसी उसी रूपमें प्रेरणा करती है ॥ ६८ ॥ वह विषम वा करुणारहित नहीं हैं वह भुवनेश्वरी जीवोंकी मुक्तिके निमित्त सदा यत्न करती रहती हैं ॥ ६९ ॥ यदि वह भुवनेश्वरी इस चराचर जगत्को उत्पन्न न करतीं और कूटस्थ चैतन्य रूपमें जीवोंकी अधिष्ठात्री न होतीं

तो यह संपूर्ण जगत् जड़वत् होकर तामसी मायामें विलीन होजाता इसमें संदेह नहीं॥ ७० ॥ अतएव देवी भुवनेश्वरी करुणावशसे इस जीवादिसंपूर्ण जगत्को उत्पन्न कर प्रत्येकजीवमें अधिष्ठात्री रह उनके कर्मानुसार उनको प्रेरणा करती हैं ॥ ७१ ॥ इसकारण ब्रह्मादि भी जो मायामें मोहित रहते हैं इसमें फिर संदेहही क्या है ? क्योंकि सुर और असुरादि सबही मायाके अन्तर्गत और मायाके अधीन हैं ॥ ॥ ७२ ॥ अतएव हे राजन् ! यह निश्चय जानना चाहिये कि, केवल वह महादेवी भगवतीही अपनी इच्छानुसार विहार और विचरण करती हैं ! वह किसीके अधीन नहीं हैं इस कारण सर्वान्तःकरणसे महेश्वरीकी सेवा करनी चाहिये ॥ ७३ ॥ इस त्रिभुवनमें उनकी अपेक्षा अधिक तर वा उत्कृष्टतर वस्तु दूसरी कुछ नहीं है, अतएव उन परमाशक्तिके चरणोंका विना स्मरण किये जन्मकी सफलता नहीं

तस्मात्कारुण्यमाश्रित्यजगज्जीवादिकंचयत् ॥ करोतिसततंदेवीप्रेरयत्यनिशंचतत् ॥ ७१ ॥ तस्माद्ब्रह्मादिमोहेऽस्मिन्कर्तव्यःसंशयोनहि ॥ मायांतःपातिनःसर्वेमायाधीनाःसुराऽसुराः ॥ ७२ ॥ स्वतंत्रासैवदेवेशीस्वेच्छाचारविहारिणी ॥ तस्मात्सर्वात्मनाराजन्सेवनीयामहेश्वरी ॥ ७३ ॥ नातःपरतरंकिंचिदधिकंभुवनत्रये ॥ एतद्विजन्मसाफल्यंपराशक्तेःपदस्मृतिः ॥ ७४ ॥ माभूत्तत्रकुलेजन्मयत्रदेवीनदैवतम् ॥ अहंदेवीनचान्योऽस्मिब्रह्मैवाऽहंनशोकभाक् ॥ ७५ ॥ इत्यभेदेनतांनित्यांचिंतयेज्जगदंबिकाम् ॥ ज्ञात्वागुरुमुखादेनांवेदांतश्रवणादिभिः ॥ ७६ ॥ नित्यमेकाग्रमनसाभावयेदात्मरूपिणीम् ॥ मुक्तोभवतितेनाऽऽशुनाऽन्यथाकर्मकोटिभिः ॥ ७७ ॥ श्वेताश्वतरादयःसर्वेऋषयोनिर्मलाशयाः ॥ आत्मरूपांहृदाज्ञात्वाविमुक्ताभवबंधनात् ॥ ॥ ७८ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादयस्तद्वद्गौरीलक्ष्म्यादयस्तथा ॥ तामेवसमुपासंतेसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ७९ ॥

होसक्ती ॥ ७४ ॥ "वह देवी जिस कुलकी अभीष्ट देवता नहीं हैं, उस कुलमें जन्म न हो मैंही वह देवी भगवती हूं, अन्य नहीं. मैं ही ब्रह्म हूं; मैं शोकभागी नहीं" ॥ ७५ ॥ इस प्रकार अभेद ज्ञानसे उन नित्या जगदम्बिकाकी चिन्ताकरे प्रथम गुरुमुखसे फिर वेदान्तश्रवणादि द्वारा भगवतीको जानकर ॥ ७६ ॥ प्रतिदिन एकाग्रमनसे उन आत्मरूपिणीका ध्यान करनेसे शीघ्रही मुक्तिलाभ होगा अन्यथा करोड़ कर्म द्वारा भी मुक्ति प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ ७७ ॥ श्वेताश्वतरादि निर्मलाशय ऋषिगणों ने इन आत्मरूपिणीकी हृदयमें चिन्ता करके भवबंधनसे मुक्तिलाभ कीथी ॥ ७८ ॥ ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवतागण और गौरी तथा लक्ष्मी इत्यादि

देवीगणभी उन सच्चिदानंदरूपिणीकी उपासना करती हैं ॥ ७९ ॥ हे विमलात्मन् ! राजेन्द्र ! तुमने संसारभयसे त्रसित होकर जो जो पूँछाथा वह सबही मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा करते हो ? ॥ ८० ॥ हे राजन् ! यह मैंने तुमसे सब प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला पुण्यप्रद परमअद्भुत पुराणाख्यान वर्णन किया ॥ ८१ ॥ जो पुरुष प्रतिदिन इस वेद तुल्य भागवत पुराणकी कथा सुनता है वह सबप्रकारके पापोंसे छूटकर देवीलोकमें जाय महामहिमासे काल

इतितेकथितंराजन्यद्यत्पृष्टंत्वयानघ ॥ प्रपंचतापत्रस्तेनकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ८० ॥ एतत्तेकथितंराजन्मयाख्यानमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यंपुराणं परमाद्भुतम् ॥८१॥ यइदंशृणुयान्नित्यंपुराणंवेदसंमितम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोदेवीलोकेमहीयते ॥ ८२ ॥ सूतउवाच ॥ एतन्मयाश्रुतंव्यासात्कथ्यमानं सविस्तरम् ॥ पुराणंपंचमंनूनंश्रीमद्भागवताऽभिधम् ॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ स्कंधश्चायं समाप्तः ॥ ॥ छ ॥ ॥ अर्धाधिकैर्वसुविधुयुगविश्वंभरा (१४१८) भिधैः ॥ पद्यैश्चतुर्थस्कंधोऽयंकथितोव्यासनिर्मितैः ॥ ॥

व्यतीत करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ८२ ॥ सूतजी बोले हे ऋषिगण ! व्यासदेवने यह श्रीमद्भागवतनामक पंचमपुराण पूर्वमें किर्त्तन किया था, मैंने उनसे जिस प्रकार सुना था, आपके निकट भी उसी प्रकार वर्णन किया॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः॥ २५॥ १४१८ श्लोकोंमें यह चतुर्थस्कन्ध पूर्ण हुआ. श्रीजगदम्बा मंगल करैं ॥ शुभमस्तु ॥ ॥ छ ॥ ॥ ॥ छ ॥ ॥ ॥ छ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रितम्। संवत् १९५८,
शके १८२३, सन् १९०१ ई०

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते चतुर्थस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते पञ्चमस्कंधः प्रारभ्यते ॥

दोहा—दुस्तर भवसागरहरण, अजा कोटिरविज्योति ॥ मन्दहँसनके चरणयुग, वन्दत मंगल होति ॥ १ ॥ सकलकामप्रद भक्तहित, धरत सदा अवतार ॥ जगदम्बाके चरण भज, जो चाहत निस्तार ॥ २ ॥ श्रीरघुपतिकोमलचरण, बार बार मन लाय ॥ यहि पंचमस्कन्धकी, भाषा लिखत बनाय ॥ ३ ॥

ऋषिगण बोले हे सूत! तुमने श्रीकृष्णके उपाख्यानविषयमें उनके अद्भुत अलौकिक और संपूर्ण पापोंके विध्वंस करनेवाले पवित्र चरित्रोंकी कथा वर्णनकी है ॥ १ ॥ किन्तु हे महाभाग! तुमने महाप्राज्ञ होकरभी वासुदेव-विषयक कथा संक्षेपसे वर्णन करी. इसलिये हमारे अन्तरमें अनेक संशय उपस्थित हुए हैं ॥ २ ॥ प्रथम तो विष्णुके अंशावतार वासुदेव पुत्रकी कामनासे वनमें जाय कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हो शक्ति सहित शिवकी आराधनाको सर्वोत्तम जान उनकी ही आराधनामें रत हुए ॥ ३ ॥ दूसरे जगज्जननी परा प्रकृति श्रीदेवीके अंशरूप होकर भी देवी पार्वती और महादेवजीने वासुदेवको वर दिया ॥ ४ ॥

ऋषयऊचुः ॥ भवताकथितंसूतमहदाऽऽख्यानमुत्तमम् ॥ कृष्णस्यचरितंदिव्यंसर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ संदेहोऽत्रमहाभागवासुदेवकथानके ॥ जाय तेनःप्रोच्यमानेविस्तरेणमहामते ॥ २ ॥ वनेगत्वातपस्ततंवासुदेवेनदुष्करम् ॥ विष्णोरंशाऽवतारेणशिवस्याऽऽराधनंकृतम् ॥ ३ ॥ वरप्रदानंदेव्या चपार्वत्यायत्कृतंपुनः ॥ जगन्मातुश्चपूर्णायाःश्रीदेव्याअंशभूतया ॥ ४ ॥ ईश्वरेणाऽपिकृष्णेनकुतस्तौसंप्रपूजितौ ॥ न्यूनतावाकिमस्त्यस्यतदेवंसंशयो मम ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ शृणुध्वंकारणंतत्रमयाव्यासश्रुतंचयत् ॥ प्रब्रवीमिमहाभागाःकथांकृष्णगुणान्विताम् ॥ ६ ॥ वृत्तांतंव्यासतःश्रुत्वावैराटी सुतजस्तदा ॥ पुनःपप्रच्छमेधावीसंदेहंपरमंगतः ॥ ७ ॥ जनमेजयउवाच ॥ सम्यक्सत्यवतीसूनोश्रुतंपरमकारणम् ॥ तथाऽपिमनसोवृत्तिःसंशयंनवि मुंचति ॥ ८ ॥ कृष्णेनाराधितःशंभुस्तपस्तप्त्वाऽतिदारुणम् ॥ विस्मयोऽयंमहाभागदेवदेवेनविष्णुना ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णने ईश्वर होकर भी क्यों उनकी पूजा की? तो क्या श्रीकृष्ण हर पार्वतीकी अपेक्षा हीनप्रभाव हैं? यही हमारा संशय है ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे महाभाग! महर्षिगण! श्रीकृष्णके शिवकी आराधना करनेका कारण जो श्रीव्यासदेवजीसे मैंने सुना है सो सुनो—मैं आपके निकट उन्हीं श्रीकृष्णके गुणोंकी गाथा वर्णन करता हूं ॥ ६ ॥ परीक्षितपुत्र बुद्धिमान् जन्मेजयने जब व्यासजीसे यह वृत्तान्त सुना तब उन्होंने भी उक्त विषयमें अत्यन्त संदेहयुक्त होकर उनसे पूँछा था ॥ ७ ॥ जन्मेजयने कहा हे सत्यवतीतनय! आपसे परमकारणस्वरूप भगवतीकी अनेकानेक तत्त्वकथा सुनकरभी मेरे मनका संशय दूर नहीं होता। हे महाभाग! श्रीकृष्णने स्वयं देवादिदेव विष्णुका अवतार होकर भी जो अतिकठोर तपानुष्ठान करके शंभुकी आराधना की थी यही मेरे आश्चर्यका विषय है ॥ ८ ॥ ९ ॥

जो सब जीवोंके आत्मा जगतके एक मात्र अधीश्वर और संपूर्ण सिद्धिप्रदानकरनेमें समर्थ हैं उन प्रभु हरिने प्राकृत मनुष्यके समान किस कारण घोर तपस्याका अनुष्ठान किया ॥ १० ॥ जो श्रीकृष्ण स्थावरजंगममय विश्वकी सृष्टि पालन वा संहार सभी करनेमें समर्थ हैं उन्होंने किसकारण ये कठोर तपका आचरण किया ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! तुमने जो कहा सो सत्य है यद्यपि दानवनिषूदन वासुदेव जनार्दन देवताओंकी भी सृष्टि और पालनादि सब कार्यमें समर्थ हैं ॥ १२ ॥ किन्तु तोभी उन परमेश्वरने मनुष्यदेहधारी होनेसे मनुष्योंके अवलम्बित वर्ण और आश्रमधर्मका अनुष्ठान किया था ॥ १३ ॥ देखो बूढे मनुष्योंकी पूजा, गुरुजनोंके पदवंदन, ब्राह्मणकी सेवा, देवताओंकी आराधना ॥ १४ ॥ शोकके समयमें शोकका उदय हर्षके समयमें हर्षका उदय अपवाद वा दीनता प्रकाश अथवा स्त्रियोंके सहित रतिक्रीडादि ॥

यःसर्वात्माऽपिसर्वेशःसर्वसिद्धिप्रदःप्रभुः ॥ सकथंकृतवान्घोरंतपःप्राकृतवद्धरिः ॥ १० ॥ जगत्कर्तुंक्षमःकृष्णस्तथापालयितुंक्षमः ॥ संहर्तुमपिकस्मात्स दारुणंतपआचरत् ॥ ११ ॥ व्यासउवाच ॥ सत्यमुक्तंत्वयाराजन्वासुदेवोजनार्दनः ॥ क्षमःसर्वेषुकार्येषुदेवानांदैत्यसूदनः ॥ १२ ॥ तथाऽपिमानुषेदेहमाश्रितः परमेश्वरः ॥ कृतवान्मानुषान्भावान्वर्णाऽऽश्रमसमाश्रितान् ॥ १३ ॥ वृद्धानांपूजनंचैवगुरुपादाऽभिवंदनम् ॥ ब्राह्मणानांतथासेवादेवताराधनंतथा ॥ १४ ॥ शोकेशोकाऽभियोगश्चहर्षेहर्षसमुन्नतिः ॥ दैन्यंनानाऽपवादाश्चस्त्रीषुकामोपसेवनम् ॥ १५ ॥ कामःक्रोधस्तथालोभःकालेकालेभवंतिहि ॥ तथागुणमयेदेहे निर्गुणत्वंकथंभवेत् ॥ १६ ॥ सौबलीशापजाद्दोषात्तथाब्राह्मणशापजात् ॥ निधनंयादवानांतुकृष्णदेहस्यमोचनम् ॥ १७ ॥ हरणंलुंठनंतद्वत्तत्पत्नीनांनरा धिप ॥ अर्जुनस्याऽस्त्रमोक्षेचक्लीवत्वंतस्करेषुच ॥ १८ ॥ अज्ञत्वंहरणेगेहात्तत्प्रद्युम्नाऽनिरुद्धयोः ॥ एवंमानुषदेहेऽस्मिन्मानुषंखलुचेष्टितम् ॥ १९ ॥ विष्णो रंशाऽवतारेऽस्मिन्नारायणमुनेस्तथा ॥ अंशजेवासुदेवेऽत्रकिंचित्रंशिवसेवने ॥ २० ॥

॥ १५ ॥ अधिक क्या कहूं ? तात्पर्य यह है कि समय समयमें काम क्रोध वा लोभ इत्यादि वे सब कार्यही मनुष्यमात्रसे देह–धर्मके कारण होते हैं अतएव श्रीकृष्ण स्वरूपसे विशुद्धसत्व प्रधान होनेपरभी गुणमय मनुष्यदेहधारण करके फिर किसप्रकारनिर्गुणभाव अवलंबन करते ॥ १६ ॥ हे नरनाथ ! सुबल–तनया गांधारी और ब्राह्मणोंके शापसे यादवकुलके ध्वंस होनेपर श्रीकृष्णने देहत्याग किया ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त उन आभीरजातीय तस्करोंके मार्गमें उनकी पत्नियोंको हरण और धन रत्नादि लूटनेपर अर्जुन उनको निवारण नहीं कर सके उन्होंने इस समय निर्वीर्यपुरुषके समान केवल आँसू बहाये थे ॥ १८ ॥ कामदेव और अनिरुद्ध इनके द्वारका गृहसे हरण होनेपर वे जो कुछभी नहीं जानसके वह केवल इस मनुष्यदेहकाही व्यवहार धर्म है ॥ १९ ॥ विशेषतः विष्णुके अंशावतार नारायणऋषि और उनके अंशावतार वासुदेव हैं, अतएव

इन वासुदेवने जो शिवकी आराधना की, इसमें फिर आश्चर्यही क्या है ? ॥ २० ॥ सुषुप्तिका आधार भूत जो कारण अपना शरीर है सर्वेश्वर शिव उसका रण देहके अधिष्ठाता स्वरूप हैं, इससे वे विष्णुकेभी जनक हैं अतएव स्वयं विष्णु भी इसीकारण उनकी पूजा करते हैं ॥ २१ ॥ राम कृष्ण इत्यादि संपूर्ण अवतार उन विष्णुका अंशमात्र हैं. फिर वे क्यों शिवकी पूजा न करें ? अकार भगवान् ब्रह्मा, उकार साक्षात् हरि ॥ २२ ॥ मकार स्वयं भगवान् रुद्र, और अर्द्धमात्राही माहेश्वरी है. इसीसे पण्डितोंने ब्रह्माकी अपेक्षा विष्णुका विष्णुकी अपेक्षा रुद्रका और रुद्रकी अपेक्षा तुरीयरूपिणी महेश्वरीका श्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया है ॥ २३ ॥ जो अर्द्धमत्रा किसीसे भी उच्चारित नहीं होती. वही नित्यरूपा देवी उसका स्वरूप है. अतएव संपूर्ण शास्त्रोंमें ही उसका सबकी अपेक्षा श्रेष्ठत्व प्रतिपादित हुआ है ॥ २४ ॥ ब्रह्मासे विष्णु प्रधान, विष्णुसे रुद्रप्रधान हैं. अतएव कृष्णने जो शिवकी पूजा की इसमें फिर संशय करना उचित नहीं है ॥ २५ ॥ शिवकी इच्छानुसार ब्रह्माको

सहिसर्वेश्वरोदेवोविष्णोरपिचकारणम् ॥ सुषुप्तस्थाननाथःसविष्णुनाचप्रपूजितः ॥ २१ ॥ तदंशभूताःकृष्णाद्यास्तैःकथंनसपूज्यते ॥ अकारोभगवा न्ब्रह्माप्युकारःस्याद्धरिःस्वयम् ॥ २२ ॥ मकारोभगवान्रुद्रोप्यर्धमात्रामहेश्वरी ॥ उत्तरोत्तरभावेनाऽप्युत्तमत्वंस्मृतंबुधैः ॥ २३ ॥ अतःसर्वेषुशास्त्रे षुदेवीसर्वोत्तमास्मृता ॥ अर्धमात्रास्थितानित्यायानुच्चार्याऽविशेषतः ॥ २४ ॥ विष्णोरप्यधिकोरुद्रोविष्णुस्तुब्रह्मणोऽधिकः ॥ तस्मान्नसंशयः कार्यःकृष्णेनशिवपूजने ॥ २५ ॥ इच्छयाब्रह्मणोवक्राद्वरदानार्थमुद्भवौ ॥ मूलरुद्रस्यांशभूतोरुद्रनामाद्वितीयकः ॥ २६ ॥ सोऽपिपूज्योऽस्तिसर्वे षांमूलरुद्रस्यकाकथा ॥ देवीतत्वस्यसान्निध्यादुत्तमत्वंस्मृतंशिवे ॥ २७ ॥ अवताराहरेरेवंप्रभवंतियुगेयुगे ॥ योगमायाप्रभावेननाऽत्रकार्याविचारणा ॥ ॥ २८ ॥ यानेत्रपक्ष्मपरिसंचलनेनसम्यग्विश्वंसृजत्यवतिहंतिनिगूढभावा ॥ सैषाकरोतिसततंद्रुहिणाऽच्युतेशान्नानाऽवतारकलनेपरिभूयमानान् ॥ २९ ॥ सूतीगृहाद्व्रजनमप्यनयानियुक्तंसंगोपितश्चभवनेपशुपालराज्ञः ॥ संप्रापितश्चमथुरांविनियोजितश्चश्रीद्वारकाप्रणयनेननुभीतचित्तः ॥ ३० ॥

वरदेनेको ब्रह्माके ललाटसे मूलरुद्रके अंश दूसरे रुद्र उत्पन्न हुए थे ॥ २६ ॥ मूलरुद्रकी बात तो दूर रहे. वे भी सबके पूजनीय हैं. हे राजन् ! परमात्मस्वरूपिणी देवीके प्रभावसे शिवका उत्कर्ष प्रतिपादित हुआ है ॥ २७ ॥ योगमायाके प्रभावसे युगयुगमें विष्णुके इसीप्रकार अनेक अवतार होते हैं. इस विषयमें विचार करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ २८ ॥ केवल अच्युतकोही नहीं. वह ईश्वरी ब्रह्मा और महादेवकोभी सदा अनेक अवतारोंके निमित्त क्लेशप्रदान करती है अधिक क्या वही प्रच्छन्न भावसे नेत्रनिमेषमात्रमें सर्वप्रकारसे विश्व संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहार करती हैं ॥ २९ ॥ योगमायाने श्रीकृष्णको सूति कागृहसे ब्रजमें भेजकर पशुपालपति नंदके घर भलीभाँतिसे रक्षाकी. फिर कंसका विनाश करनेकी इच्छासे कृष्णको मथुरामें लेगई उस स्थानमें जरासंधसे

भीत होनेपर फिर द्वारावतीमें प्रेरण किया था ॥ ३० ॥ अधिक क्या. उन्होंने सोलह हजार पांचसौ रमणी और अपने अंशसे प्रधान आठ नायिका उत्पन्न करके अनन्तके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको उनके विलासभोगके वशीभूत दासस्वरूप किया था ॥ ३१ ॥ स्त्री अकेली होनेपर भी जब दृढ लोहेकी शृङ्खला [जंजीर] के समान मायाजालमें पुरुषको बांध सक्ती हैं. तब पचास अधिक षोड़श सहस्र रमणी जो उन कृष्णको पालित शुकके समान सब कार्यमें प्रयोग करें. फिर इससे आश्चर्यही क्या है ॥ ३२॥ श्रीकृष्ण सत्यभामाके इस प्रकार वशीभूत हुए थे कि उसकी आज्ञासे अत्यानंदसहित पारिजात पुष्प लेने इन्द्रालयमें गये फिर सुरपतिसे संग्राम करके पारिजात तरु हरणपूर्वक उसको प्रियतमा सत्यभामाके आलयमें महार्ह भूषणस्वरूप करदिया था ॥ ३३ ॥ देखो. उन्हीं श्रीकृष्णने संपूर्ण धर्मकार्यके विधानाभिलाषसे अपने बाहुबलद्वारा शिशुपाल इत्यादिको पराजित कर भीष्मकी कन्या रुक्मिणीका हरणपूर्वक फिर स्वीयधर्मपत्नीरूपमें ग्रहण किया.

निर्मायषोडशसहस्रशतार्धकास्तानार्योऽष्टसंमततराःस्वकलासमुत्थाः ॥ तासांविलासवशगंतुविधायकामंदासीकृतोहिभगवाननयाप्यनंतः ॥ ३१ ॥
एकाऽपिबंधनविधौयुवतीसमर्थापुंसोयथासुदृढलोहमयंतुदाम ॥ किंनामषोडशसहस्रशताऽर्धकाश्चतंस्वीकृतंशुकमिवाऽतिनिबंधयंति ॥ ३२ ॥
सात्राजितीवशगतेनमुदान्वितेनप्राप्तंसुरेंद्रभवनंहरिणातदानीम् ॥ कृत्वामृधंमघवताविहृतस्तरूणामीशःप्रियासदनभूषणतांयआप ॥ ३३ ॥
योभीमजांहिहृतवाञ्छिशुपालकादीञ्जित्वाविधिंनिखिलधर्मकृतंविधित्सुः ॥ जग्राहतांनिजबलेनचधर्मपत्नींकोऽसौविधिःपरकलत्रहृतौविजातः ॥ ३४ ॥
अहंकारवशः प्राणिकरोतिचशुभाऽशुभम् ॥ विमूढोमोहजालेनतत्कृतेनाऽतिपातिना ॥३५॥ अहंकाराद्धिसंजातमिदंस्थावरजंगमम् ॥ मूलाद्धरिहरादीनासुग्रात्प्रकृतिसंभवात् ॥ ३६ ॥ अहंकारपरित्यक्तोयदाभवतिपद्मजः ॥ तदाविमुक्तोभवतिनोचेत्संसारकर्मकृत् ॥३७॥ तन्मुक्तस्तुविमुक्तोहिबद्धस्तद्वशतांगतः ॥ ननारीनधनंगेहंनपुत्रानसहोदराः ॥ ३८ ॥ बंधनंप्राणिनांराजन्नहंकारस्तुबंधकः ॥ अहंकर्तामयाचेदंकृतंकार्यंबलीयसा ॥ ३९ ॥

अतएव पराई स्त्री ग्रहण करनेसे जो पाप होता है. वह विधि कहाँ रही ? ॥ ३४ ॥ बोध होता है. देह धारणमात्रसे प्राणीगण एकवारही प्रकृतिके कारण अहंकारके दास होजाते हैं. सुतरां तब उसी अधःपातनकारी भीषण मोहसे मोहित होकर शुभ वा अशुभ कार्यका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३५ ॥ मूलप्रकृतिसे ब्रह्मा विष्णु तथा हर और प्रकृतिसंभव तामस अहंकारसे स्थावर जंगममय विश्व संसार उत्पन्न हुआ है ॥ ३६ ॥ कमलयोनि पितामह जब अहंकारसे वियुक्त होते हैं. तभी विमुक्त रहते हैं. यह न होनेसे संसार कार्य करते हैं ॥ ३७ ॥ अहंकारका त्याग करनेसे ही जीव विमुक्त होता है. तब गृह, धन, स्त्री, पुत्र और सहोदर किसीका बंधन नहीं रहता. किन्तु अहंकारमें बँधनेसे ही जीव उनके वशमें हो जाता है ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! अहंकार प्राणीमात्रकाही बंधनकारक है. सुतरां

अहंबुद्धिसेही "मैंने अपनी सामर्थ्यसे यह कार्य किया है, करता हूं ॥ ३९ ॥ वा करूंगा" इत्यादि ज्ञानसे जीव स्वयंही बँधता है मिट्टीके पिंडविना घट उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार कारणके विना कभी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होसक्ती सुतरां विष्णुअहंकारमें बंधकरही विश्वसंसारका पालन करते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ मनुष्यमात्रही अहंकारमें बँधकर सर्वदा चिन्तासागरमें डूबे रहते हैं, किन्तु जब अहंकारसे मुक्त होते हैं तो फिर चिन्तामें मग्न क्यों रहेंगे ॥ ४२ ॥ अहंकारसे मोह उत्पन्न होता है. मोहसे संसार इत्यादि होता है, नहीं तो वह मंगलमय हरि अनेक योनियोंमें अवतीर्णक्यों हों ? ॥ ४३ ॥ अहंकारहीन पुरुषको मोह नहीं होता, इसकारण संसारमें भी प्रवृत्ति नहीं रहती हे महाराज ! अहंकार गुणप्रभेदसे तीन हैं, सात्विक, राजसिकऔर तामसिक ॥ ४४ ॥ वह तीनों अहंकारही सृष्टयादि कार्यानुसार क्रमसे ब्रह्मा,

करिष्यामिकरोम्येवंस्वयंबध्नातिप्राणभृत्॥कारणेनविनाकार्यंनसंभवतिकर्हिचित् ॥ ४० ॥ यथानदृश्यतेजातोमृत्पिंडेनविनाघटः ॥ विष्णुःपालयिताविश्वस्याऽहंकारसमन्वितः ॥४१॥ अन्यथासर्वदाचिंतांबुधौमग्नःकथंभवेत् ॥ अहंकारविमुक्तस्तुयदाभवतिमानवः ॥४२॥ अवतारप्रवाहेषुकथंमज्जेच्छुभाशयः॥मोहमूलमहंकारःसंसारस्तत्समुद्भवः ॥४३॥ अहंकारविहीनानांनमोहोनचसंसृतिः॥त्रिविधःपुरुषःप्रोक्तःसात्त्विकोराजसस्तथा ॥४४॥ तामसस्तु महाराजब्रह्मविष्णुशिवादिषु ॥ त्रिविधस्त्रिपुराजेंद्रकाऽजेशादिषुसर्वदा ॥ ४५ ॥ अहंकारःसदाप्रोक्तोमुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ अहंकारेणतेनैवबद्धाएतेन संशयः ॥ ४६ ॥ मायाविमोहितामंदाःप्रवदंतिमनीषिणः ॥ करोतिस्वेच्छयाविष्णुरवतारानने‌कशः ॥ ४७॥ मंदोऽपिदुःखगहनेगर्भवासेऽतिसंकटे ॥ न करोतिमतिंविद्वान्कथंकुर्यात्सचक्रभृत् ॥ ४८॥ कौसल्यादेवकीगर्भेविष्ठामलसमाकुले ॥ स्वेच्छयाप्रवदंत्यद्धागतोहिमधुसूदनः ॥४९॥ वैकुंठसदनंत्यक्तागर्भवासेसुखंनुकिम् ॥ चिंताकोटिसमुत्थानेदुःखदेविषसंमिते ॥ ५० ॥

विष्णु और महादेवमें विराजमान हैं. हे राजेन्द्र ! यह जो केवल मैं ही कहता हूं, ऐसानहीं है प्रजापति, हरि और हर इन प्रत्येकमें ॥ ४५ ॥ जो विविध अहंकार सदा वर्त्तमान रहते हैं, वह तत्त्वज्ञानी महर्षि मात्रही सदा कहते हैं. अतएव उस अहंकारसेही जो यह बद्ध हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ४६ ॥ मन्दबुद्धि पण्डितजन भी मायासे मोहित होकर कहते हैं कि, विष्णु अपनी इच्छासे नाना अवताररूपमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४७ ॥ किन्तु जब कि मूर्ख लोगभी अत्यन्त क्लेशकारी गर्हित अतिशय संकट स्थल गर्भवासकी अभिलाषा नहीं करते तब चक्रधारी विष्णु किसकारण गर्भवासकीअभिलाषा करेंगे ? ॥ ४८ ॥ मधुसूदन कौशल्या और देवकीके मलादिसे दूषित गर्भमें अपनी इच्छासे आये थे, वैष्णवलोग यही बात कहते हैं ॥ ४९ ॥ किन्तु क्लेशकर विषके समान उस गर्भमें शत शत चिन्ता उदय होती हैं, अतएव हरि

वैकुण्ठवास त्यागकर जो गर्भमें वास करें तो उसमें सुख क्या है? ॥ ५० ॥ विशेष करके देखा जाता है कि, पुरुष दुःसहगर्भवासके क्लेशसे छूटनेको ही तपस्या यज्ञ और अनेक प्रकारके दान करते हैं ॥ ५१ ॥ भगवान् विष्णु क्या स्वाधीन हैं ? यदि वे अपने स्वाधीन होते तो कभी गर्भमें वास करनेकी कामना नहीं करते ॥ ५२ ॥ अतएव हे महाराज ! यह एक प्रकार स्थिर जानिये कि देवता, मनुष्य, तिर्यक् अधिक क्या, ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त समस्त जगन्मण्डल उन्हीं योगमायाके अधीन हैं ॥ ५३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और हर इत्यादि सभी उनकी मायारूप तन्तुसे बँधे हैं, अतएव मायासे बँधकर ही ऊर्णनाभके समान वह क्रीड़ाकी वासनासे अनेक योनियोंमें भ्रमण और बंधन लाभ करते हैं ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ छ ॥ ॥

तपस्तस्त्वाक्रतून्कृत्वादत्वादानान्यनेकशः ॥ नवांछंतियतोलोकागर्भवासंसुदुःखदम् ॥ ५१ ॥ सकथंभगवान्विष्णुःस्ववशश्चेज्जनार्दनः ॥ गर्भवासरुचिर्भूयाद्भवेत्स्ववशतायदि ॥ ५२ ॥ जानीहित्वंमहाराजयोगमायावशेजगत् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतंदेवमानुषतिर्यगम् ॥ ५३ ॥ मायातंत्रीनिबद्धायेब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ भ्रमंतिबंधमायांतिलीलयाचोर्णनाभिवत् ॥ ५४ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ योगेश्वर्याःप्रभावोऽयंकथितश्चातिविस्तरात् ॥ ब्रूहितच्चरितंस्वामिञ्छ्रोतुंकौतूहलंमम ॥ १ ॥ महादेवीप्रभावंवैश्रोतुंकोनाऽभिवांछति ॥ योजानातिजगत्सर्वंतदुत्पन्नंचराचरम् ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिविस्तरेणमहामते ॥ श्रद्दधानायशांतायनब्रूयात्सतुमंदधीः ॥ ३ ॥ पुरायुद्धमभूद्घोरंदेवदानवसेनयोः ॥ पृथिव्यांपृथिवीपालमहिषाख्येमहीपतौ ॥४॥ महिषोनामराजेंद्रचकारतपउत्तमम् ॥ गत्वाहेमगिरौचोग्रंदेवविस्मयकारकम् ॥५॥

राजाने कहा हे प्रभो ! आपने महामाया योगेश्वरीका प्रभाव विस्तारपूर्वक वर्णन किया, अब उनके चरित्रकी कथा सुननेको मेरे हृदयमें अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है, आप उसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ उन महेश्वरीसेही यह चराचर संपूर्ण जगत् उत्पन्न है, यह जानकर कौन उस महादेवीके प्रभावकी कथा सुननेकी वासना नहीं करता है ? ॥ २ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो मैं तुम्हारे निकट यह विषय विस्तारसहित वर्णन करूंगा, श्रद्धायुक्त और शान्तके निकट जो उसका वर्णन नहीं करते, उनका अन्तःकरण अत्यन्त हीन है; इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ हे भूपते ! पूर्वमें पृथ्वीमें महिषासुरके महीपति होनेपर देवता और दानवोंकी सेनामें घोर संग्राम उपस्थित हुआ था ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र ! अपनी मनोरथ सिद्धिके निमित्त वह महिष सुमेरु पर्वतपर जाय देवताओंको विस्मय कर उत्कृष्ट और कठोरतर तपस्या करने लगा ॥ ५ ॥

हे महाराज ! हृदयमें इष्टदेवताका ध्यान करते करते उसको दशहजार वर्ष पूर्ण हुए तब सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी उसपर संतुष्ट हुए ॥ ६ ॥ चतुराननने हंसपर चढ़ उस स्थानमें आकर महिषासुरसे कहा हे धर्मात्मन् ! तुम अपने अभिलाषितवरकी प्रार्थना करो, मैं वही दूंगा ॥ ७ ॥ महिषने कहा हे प्रभो ! कमलयोने ! मैं अमर होनेकी वासना करता हूं, अतएव हे देवदेव पितामह ! जिससे मुझको मृत्युका भय न रहे आप वही कीजिये ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने कहा हे महिष ! उत्पत्ति होनेपर मरण और मरण होनेपर उत्पत्ति, यही जीवगणोंका सनातन धर्म है अतएव जन्म लेनेसे मृत्यु और मृत्यु होनेपर जन्म अवश्यही होगा. इसमें संदेह नहीं। ॥ ९ ॥ हे दानवपते ! अधिक क्या ? कालसे महागिरि, महासागर और संपूर्ण प्राणीगण सर्वथा विलीन होंगे ॥ १० ॥ हे महीपाल ! तुम साधु हो, अतएव अमर होनेके अतिरिक्त तुम्हारे मनमें जो

वर्षाणामयुतंपूर्णंचिंतयन्हृदिदेवताम् ॥ तस्यतुष्टोमहाराजब्रह्मालोकपितामहः ॥ ६ ॥ तत्राऽऽगत्याऽब्रवीद्वाक्यंहंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ वरंवरयधर्मात्मन्ददामि तववांछितम् ॥ ७ ॥ महिषउवाच ॥ अमरत्वंदेवदेववांछामिद्रुहिणप्रभो ॥ यथामृत्युभयंनस्यात्तथाकुरुपितामह ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्पन्नस्यध्रुवंमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥ सर्वथामरणोत्पत्तिसर्वेषांप्राणिनांकिल ॥ ९ ॥ नाशःकालेनसर्वेषांप्राणिनांदैत्यपुंगव ॥ महामहीधराणांचसमुद्राणांचसर्वथा ॥ १० ॥ एकंस्थानंपरित्यज्यमरणस्यमहीपते ॥ प्रब्रूहितंवरंसाधोयस्तेमनसिवर्तते ॥ ११ ॥ महिषउवाच ॥ नदेवान्मानुषाद्दैत्यान्मरणंमेपितामह ॥ पुरुषान्नचमे मृत्युर्योषामांकाहनिष्यति ॥ १२ ॥ तस्मान्मेमरणंनूनंकामिन्याःकुरुपद्मज ॥ अबलाहंतमांहंतुंकथंशक्ताभविष्यति ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदाकदाऽपिदैत्येंद्रनार्यास्तेमरणंध्रुवम् ॥ ननरेभ्योमहाभागमृतिस्तेमहिषाऽसुर ॥ १४ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंदत्त्वावरंतस्मैययौब्रह्मानिजाऽऽलयम् ॥ सोऽपि दैत्यवरःप्रापनिजंस्थानंमुदान्वितः ॥ १५ ॥

अभिलाषा हो सो कहो मैं वही प्रदान करूंगा ॥ ११ ॥ महिषने कहा हे पितामह ! देव दानव और मनुष्य जाति पुरुषसे मेरी मृत्यु नहीं होवे स्त्रियोंको मैं गिनता नहीं अबलाओंमें कोई मुझको नहीं मारसक्ती ॥ १२ ॥ अतएव हे पद्मयोने ! कामिनीसेही मेरी मृत्यु स्थिर कीजिये, कामिनीयोंका बल बहुत थोड़ा है अतएव वह मुझको किसप्रकार मारनेमें समर्थ होंगी ? ॥ १३ ॥ पितामहने कहा हे दानवेन्द्र ! किसी समय नारीसेही अवश्य तुम्हारी मृत्यु होगी, किसी पुरुषजातिसे तुमको मृत्युका भय नहीं है । हे महिष ! तुमने सौभाग्यशाली होनेसेही यह वर प्राप्त किया ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! ब्रह्माजी

उसको इसप्रकार वर देकर अपने स्थानमें चले आये और वह दानवेन्द्रभी हर्षसहित अपने स्थानको चला गया ॥ १५ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! महाबल महिषासुर किसका पुत्र था ? किसप्रकार जन्मग्रहण किया था ? और किसप्रकार उसने महात्मा होकर भी महिष देह प्राप्त किया ? ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! रंभ और करम्भनामक दनुके दो पुत्र हुए. यह श्रेष्ठदानवयुगल भूमण्डलमें विख्यात हैं ॥ १७ ॥ हे महाराज ! उनके पुत्र नहीं हुआ. सुतरां अभिलाषित पुत्रकी कामनासे वह पंचनदके पवित्र जलमें जाय अनेक वर्षपर्यन्त तपस्या करनेलगे ॥ १८ ॥ इनमें करम्भ जलमें निमग्न होकर महत्‌तपस्याके अनुष्ठानमें निरत हुआ और रम्भ यक्षिणीका स्थान रसालवटवृक्षअवलम्बनपूर्वक अग्निकी आराधना करने लगा ॥ १९ ॥ रंभ पंचाग्निसाधनामें निरत हुआहै. शचीपति यह वृत्तान्त जान दुःखित चित्त हो दोनों दानवोंके समीप गये ॥ २० ॥ वासवने पंचनदमें जाय कुंभीर (ग्राह) रूप धारणपूर्वक करम्भदानवके दोनों पैर पकड़ उसका विनाश किया ॥ २१ ॥ वृत्रनिषूदन वासवने

राजोवाच ॥ महिषःकस्यपुत्रोऽसौकथंजातोमहाबली ॥ कथंचमाहिषंरूपंप्राप्तंतेनमहात्मना ॥ १६ ॥ व्यासउवाच ॥ दनोःपुत्रौमहाराजविख्यातौक्षितिमंडले ॥ रंभश्चैवकरंभश्चद्वावास्तांदानवोत्तमौ ॥ १७ ॥ तावपुत्रौमहाराजपुत्रार्थंतेपतुस्तपः ॥ बहून्वर्षगणान्कामंपुण्येपंचनदेजले ॥ १८ ॥ करंभस्तुजलेमग्नश्चकारपरमंतपः ॥ वृक्षंरसालवटंप्राप्यसरंभोऽग्निमसेवत ॥ १९ ॥ पंचाग्निसाधनासक्तःसरंभस्तुयदाऽभवत् ॥ ज्ञात्वाशचीपतिर्दुःखमुद्ययौदानवौप्रति ॥ २० ॥ गत्वापंचनदेतत्रग्राहरूपंचकारह ॥ वासवस्तुकरंभंतंतदाजग्राहपादयोः ॥ २१ ॥ निजघानचतंदुष्टंकरंभंवृत्रसूदनः ॥ भ्रातरंनिहतंश्रुत्वारंभःकोपंपरंगतः ॥ २२ ॥ स्वशीर्षंपावकेहोतुमैच्छच्छित्त्वाकरेणह ॥ केशपाशेगृहीत्वाऽऽशुवामेनक्रोधसंयुतः ॥ २३ ॥ दक्षिणेनकरेणोग्रंगृहीत्वाखड्गमुत्तमम् ॥ छिनत्तिशीर्षंतत्तावद्वह्निनाप्रतिबोधितः ॥ २४ ॥ उक्तश्चदैत्यमूर्खोऽसिस्वशीर्षंछेत्तुमिच्छसि ॥ आत्महत्याऽतिदुःसाध्याकथंत्वंकर्तुमुद्यतः ॥ २५ ॥ वरंवरयभद्रंतेयस्तेमनसिवर्तते ॥ माम्रियस्वमृतेनाऽद्यकिंतेकार्यंभविष्यति ॥ २६ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंरंभःपावकस्यसुभाषितम् ॥ ततोऽब्रवीद्वचोरंभस्त्यक्त्वाकेशकलापकम् ॥ २७ ॥

उसी प्रकार दुष्ट करंभको मारा रम्भ भ्राताकी मरणवार्त्ता सुनकर अत्यन्त कुपित हुआ ॥ २२ ॥ तब रंभने क्रोधसे तत्काल वामहस्तमें केश ग्रहणपूर्वक अपना मस्तक छेदन करके अग्निमें होम करनेकी अभिलाषा की ॥ २३ ॥ फिर दक्षिण हाथमें तीक्ष्ण खड्ग लेकर जैसेही मस्तक काटनेमें उद्यत हुआ. उसी समयमें अग्निने उसको ज्ञान दानपूर्वक निषेध करके कहा ॥ २४ ॥ रे मूर्ख दानव ! तू अपना मस्तक छेदन करनेकी अभिलाषा करता है ? आत्महत्या अतिदुष्कर्म है, किसी प्रकार उससे छूटनेका उपाय नहीं है, अतएव ऐसे कार्यमें क्यों उद्यत हुआ है ? ॥ २५ ॥ तू इस समय प्राणत्याग मत करै, मरनेसे तेरा क्या कार्य सिद्ध होगा ? अतएव तू अपने मनका अभिलषित वर मांग, मंगल होगा ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! पावकके यह मधुर वचन सुनकर रंभने केशसमूहत्याग करके कहा ॥ २७ ॥

हे देवेश ! यदि आप संतुष्ट हुए हैं तो मुझको अभिलाषित वरप्रदान कीजिये, जिससे त्रैलोक्यविजयी शत्रुबल विनाशक मेरे एक पुत्र हो ॥ २८ ॥ वह पुत्र सबप्रकार देव, दानव और मनुष्यसे अजय महावीर्यवान् कामरूपी और सबसे सन्मानित हो ॥ २९ ॥ पावकने कहा हे महाभाग ! तुमको वांछितपुत्र प्राप्त होगा. अत एव मरनेकी इच्छा छोड़ दो ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! रंभ तुम जिस स्त्रीकी इच्छा करोगे, उससेही तुम्हारे अधिक बलवान् पुत्र होगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उस दानवश्रेष्ठ रंभने अग्निका मनोरंजन वचन सुन उनको प्रणामकर ॥ ३२ ॥ यक्षगणोंसे परिवृत शोभायमान रमणीय स्थानमें प्रस्थान किया, तब एक सुदृश्यमत्तमहिषी 'दानवश्रेष्ठके दृष्टिगोचर हुई' फिर उसने अन्यरमणी परित्याग पूर्वक उससे ही रमण करनेकी अभिलाषा की ! महिषीने भी सहर्ष हो समागमकी वासनासे तत्काल उसकी कामना करी ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ रंभके भी भवितव्यताके वश हो उससे संगम करनेपर महिषी उसके वीर्यसे

यदितुष्टोऽसिदेवेशदेहिमेवांछितंवरम् ॥ त्रैलोक्यविजयीपुत्रःस्यान्मःपरबलाऽर्दनः ॥ २८ ॥ अजेयःसर्वथासस्यादेवदानवमानवैः ॥ कामरूपीमहावीर्यः सर्वलोकाभिवंदितः ॥ २९ ॥ पावकस्तंतथेत्याहभविष्यतितवेप्सितम् ॥ पुत्रस्तवमहाभागमरणाद्विरमाऽधुना ॥ ३० ॥ यस्यांचित्तंतुरंभत्वंप्रमदायां करिष्यसि ॥ तस्यांपुत्रोमहाभागभविष्यतिबलाऽधिकः ॥ ३१ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तोवह्निनारंभोवचनंचित्तरंजनम् ॥ श्रुत्वाप्रणम्यप्रययौवह्निंतं दानवोत्तमः ॥ ३२ ॥ यक्षैःपरिवृतंस्थानंरमणीयंश्रियान्वितम् ॥ दृष्ट्वाचक्रेतदाभावंमहिष्यांदानवोत्तमः ॥ ३३ ॥ मत्तायांरूपपूर्णायांविहायाऽन्यांचयोषितम् ॥ सासमागाच्चतरसाकामयंतीमुदान्विता ॥ ३४ ॥ रंभोऽपिगमनंचक्रेभवितव्यप्रणोदितः ॥ सातुगर्भवतीजातामहिषीतस्यवीर्यतः ॥ ३५ ॥ तांगृहीत्वाऽथपातालंप्रविवेशमनोहरम् ॥ महिषेभ्यश्चतांरक्षन्प्रियामनुमतांकिल ॥ ३६ ॥ कदाचिन्महिषश्चान्यःकामार्तस्तामुपाद्रवत् ॥ स्वयमागत्य तंहंतुंदानवःसमुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥ स्वरक्षार्थंसमागम्यमहिषंसमताडयत् ॥ सोऽपितंनिजघानाऽऽशुशृंगाभ्यांकाममोहितः ॥ ३८ ॥ ताडितस्तेनतीक्ष्णाभ्यां शृंगाभ्यांहृदयेभृशम् ॥ भूमौपपाततरसासममारचविमूर्छितः ॥ ३९ ॥ मृतेभर्तरिसादीनाभयार्ताविद्रुताभृशम् ॥ सावेगात्तंवटंप्राप्ययक्षाणांशरणंगता ॥ ४० ॥

गर्भवती हुई ॥ ३५ ॥ दानवने भी मनोमत प्रियतमाकी रक्षा करनेके लिये उसको लेकर मनोहर पातालपुरमें प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ अनन्तर किसीसमय अन्य एकमहिषने कामसे पीड़ित होकर उक्त महिषीको आक्रमण किया, तब दानव स्वयं उपस्थित होकर उसका विनाश करनेमें उद्यत हुआ ॥ ३७ ॥ दानवने अपनी पत्नीकी रक्षा करनेके निमित्त वेगसहित आनकर उस महिषको आघात किया फिर उस काममोहित महिषने भी तत्कालसिंगोंसे रंभपर आघात किया ॥ ३८ ॥ महिषने दोनों तीक्ष्ण सींगोंसे उसके हृदयमें ऐसा दारुण प्रहार किया कि, रम्भ उसके आघातसे सहसा पृथ्वीतलमें गिरकर मूर्च्छित और अन्तमें मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ स्वामीकी मृत्यु होनेपर महिषी कातर हो भयसे तत्काल भाग गई वह शीघ्रतासहित जाय वटवृक्षके समीप यक्षगणोंके शरणागत हुई ॥ ४० ॥

किन्तु वह कामातुर महिष बलवीर्यके मदसे उद्धूत हो महिषीकी कामना करता हुआ उसके पीछे पीछे दौड़ा ॥ ४१ ॥ यक्षोंने देखा कि महिषी भयके कारण कातर होकर दीनभावसे अत्यन्त रोदन करती है और कामवृत्तिको चरितार्थ करनेकी इच्छासे महिष उसके पीछे दौड़ रहा है, यह देख यक्षगण महिषीकी रक्षा करनेके लिये आये ॥ ४२ ॥ महिषके संग यक्षोंका घोरतर संग्राम उपस्थित हुआ, फिर महिष उनके बाणोंसे आहत होकर सहसा पृथ्वीमें गिरगया॥ ४३ ॥ रम्भ यक्षोंका परमप्रिय पात्र था, इसकारण उन्होंने उसका देह शुद्ध करनेकी इच्छासे उसका मृतक देह लेकर अग्निमें जलाया पतिको चितामें रखता हुआ देखकर महिषीने उसके सहित पावकमें प्रवेश करनेकी इच्छा की ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ यक्षोंके निवारण करनेपर भी वह साध्वी प्रियतमा पतिको लेकर शिखासमाकुल हुताशनमें प्रविष्ट हुई ॥ ४६ ॥

पृष्ठतस्तुगतस्तत्रमहिषःकामपीडितः ॥ कामयानस्तुतांकामीबलवीर्यमदोद्धतः ॥ ४१ ॥ रुदतीसाभृशंदीनादृष्टायक्षैर्भयातुरा ॥ धावमानंचतंवीक्ष्ययक्षास्त्रातुंसमाययुः ॥ ४२ ॥ युद्धंसमभवद्घोरंयक्षाणांचहयाऽरिणा ॥ शरेणताडितस्तूर्णंपपातधरणीतले ॥ ४३ ॥ मृतंरंभंसमानीययक्षास्तेपरमंप्रियम् ॥ चितायांरोपयामासुस्तस्यदेहस्यशुद्धये ॥ ४४ ॥ महिषीसापतिंदृष्ट्वाचितायांरोपितंतदा ॥ प्रवेष्टुंसामतिंचक्रेपतिनासहपावकम् ॥ ४५ ॥ वार्यमाणाऽपि यक्षैःसाप्रविवेशहुताशनम् ॥ ज्वालामालाकुलंसाध्वीपतिमादायवल्लभम् ॥ ४६ ॥ महिषस्तुचितामध्यात्समुत्तस्थौमहाबलः ॥ रंभोप्यन्यद्वपुःकृत्वानिःसृतःपुत्रवत्सलः ॥ ४७ ॥ रक्तबीजोऽप्यऽसौजातोमहिषोऽपिमहाबलः ॥ अभिषिक्तस्तुराज्येऽसौहयाऽरिरसुरोत्तमैः ॥ ४८ ॥ एवंसमाहिषोजातोरक्तबीजश्चवीर्यवान् ॥ अवध्यस्तुसुरैर्दैत्यैर्मानवैश्चनृपोत्तम ॥ ४९ ॥ इत्येतत्कथितंराजञ्जन्मतस्यमहात्मनः ॥ वरप्रदानंचतथाप्रोक्तंसर्वंसविस्तरम् ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवतेम०पंचमस्कंधेमहिषाऽसुरोत्पत्तिर्नामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंसमहिषोनामदानवोवरदर्पितः ॥ प्राप्यराज्यंजगत्सर्वंवशेचक्रेमहाबलः ॥ १ ॥

महिषीके मरनेपर तब महाबलवान् महिष मातृगर्भपरित्याग करके चिताके मध्यसे उत्थित हुआ. फिर रम्भ भी पुत्रके प्रति वात्सल्यके कारण रूपान्तरधारण करके बहिर्गत हुआ ॥ ४७ ॥ रम्भ रूपान्तरको प्राप्त होकर रक्तबीज नामसे विख्यात हुआ तिसके पुत्र महाबलवान् दानवने इसप्रकार जन्म ले महिष नाम ग्रहण किया, तब प्रधान प्रधान दानवोंने महिषको राज्यमें अभिषिक्त किया ॥ ४८ ॥ हे नृपवर ! महावीर्यवान् रक्तबीज और महिषदानव इसप्रकार जन्मग्रहण करके देवता, दानव और मनुष्यगणोंसे अवध्य हुए थे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! वह मैंने तुमसे उस महात्मा महिषदानवका जन्म और उसके वरलाभका वृत्तान्त संपूर्ण विस्तारसहित वर्णन किया ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यासजी बोले उस बलदर्पित महाबलवान् महिषासुरने राज्यलाभ करके संपूर्ण

जगत्को अपने वशमें कर लिया॥ १॥ महिषासुर जब बाहुबलसे सागरसहित भूमण्डल को जीतकर शासन करने लगा, तिसकाल उस राज्यमें छत्रधारी दूसरे किसी राजा वा वैरियोंका गर्व तथा किसी भयका कारण नहीं था ॥ २ ॥ तिस समय अतीव वीर्यवान् मदोद्धत चिक्षुर उसके सेनापतिकार्यमें नियुक्त था और ताम्र बहुसंख्यक सेनाके सहित धनकी रक्षामें नियोजित हुआ ॥ ३ ॥ असिलोमा, बिडाल, उदर्क, बाष्कल, त्रिनेत्र और कालबंधक इत्यादि बलदर्पित ॥ ४॥ सेनानायक दानवलोग तिसकाल अपनी २ सेनासहित सागरसहित समृद्धिशाली पृथ्वीमंडल को आवृत करके वास करने लगे. हेराजन् ! जिन सब पराक्रान्त राजाओंने क्षत्रियधर्मके अनुसार पलायन न करके युद्ध किया, महिषने उनको निहत किया और उनमें बचेहुए पुरातन महीपालोंको करद किया अर्थात् उनसे कर लेनेलगा ॥ ५॥ पृथ्वीमण्डलके ब्राह्मणलोग महिषके वशीभूत

पृथिवींपालयामाससागरांतांभुजार्जिताम् ॥ एकच्छत्रांनिरातंकांवैरिवर्गविवर्जिताम् ॥ २ ॥ सेनानीश्चिक्षुरस्तस्यमहावीर्योमदोत्कटः ॥ धनाध्यक्षस्तथाताम्रःसेनाऽयुतसमावृतः ॥ ३॥ असिलोमातथोदर्कोविडालाख्यश्चबाष्कलः ॥ त्रिनेत्रोऽथतथाकालबंधकोबलदर्पितः ॥ ४ ॥ एतेसैन्ययुताःसर्वेदानवामेदिनींतदा ॥ आवृत्यसंस्थिताःकाममृद्धांसागरमेखलाम् ॥ ५ ॥ करदाश्चकृताःसर्वेभूमिपालाःपुरातनाः ॥ निहतायेबलोदग्राःक्षात्रधर्मव्यवस्थिताः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणवशगाजातायज्ञभागसमर्पकाः ॥ महिषस्यमहाराजनिखिलेक्षितिमंडले ॥ ७ ॥ एकातपत्रंतद्राज्यंकृत्वासमहिषासुरः ॥ स्वर्गंजेतुंमनश्चक्रेवरदानेनगर्वितः ॥ ८॥ प्रणिधिंप्रेषयामासहयारिस्तुशचीपतिम् ॥ ससंदेशहरंशीघ्रमाहूयोवाचदैत्यराट् ॥ ९ ॥ गच्छवीरमहाबाहोदूतत्वंकुरुमेऽनघ ॥ ब्रूहिशक्रंदिवंगत्वानिःशंकःसुरसन्निधौ ॥ १० ॥ मुंचस्वर्गंसहस्राक्षयथेष्टंगच्छमाचिरम् ॥ सेवांवाकुरुदेवेशमहिषस्यमहात्मनः॥ ॥ ११ ॥ सत्वांसंरक्षयेन्नूनंराजाशरणमागतम् ॥ तस्मात्त्वंशरणंयाहिमहिषस्यशचीपते ॥ १२ ॥ नोचेद्वज्रंगृहाणाऽऽशुयुद्धायबलसूदन ॥ पूर्वैर्जितोऽसिचाऽस्माकंजानामितवपौरुषम् ॥ १३ ॥

होकर उसको यज्ञभाग देने लगे॥ ६॥ ७॥ इसप्रकार भूमण्डलमें महिषका राज्य हुआ.एक छत्र राज्य करके भी महिषने वरलाभसे गर्वित होकर स्वर्गका राज्य जीतनेकी इच्छा की ॥ ८ ॥ तब दानवराज महिषने शचीपतिके निकट दूत भेजनेका निश्चय कर शीघ्रवार्त्तावाहकको बुलाकर कहा॥ ९॥ कि तुम सत्यनिष्ठ वीर हो, अतएव तुम मेरा दूतकार्य करो,तुम निःशंक चित्तसे सुरालयमें जाय देवताओंके समीप इन्द्रसे कहो कि॥ १०॥ हे सहस्रलोचन ! तुम स्वर्ग छोड़कर जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ, अब विलम्ब मत करो, अथवा महात्मा महिषकी सेवा करो ॥ ११ ॥ वह राजा हैं इसकारण तुम्हारे शरणागत होनेपर अवश्यही तुम्हारी रक्षा करेंगे. अतएव हे शचीनाथ ! तुम महिषका आश्रय ग्रहण करो ॥ १२ ॥ हे बलसूदन ! यदि ऐसा करनेकी तुम्हारी इच्छा न हो तो शीघ्र युद्धके लिये वज्र ग्रहण करो. तुम मेरे पूर्वपुरुषोंसे

पराजित हुए थे अतएव मैं तुम्हारे पुरुषत्वको जानता हूं ॥ १३ ॥ हे सुरपते ! तुम अहल्याके जार हो सुतरां तुम्हारा बल स्त्री आकर्षणमें ही उपयुक्त है यह मैं भलीभांति जानता हूं इससे यदि इच्छा हो तो युद्ध करो नहीं तो राज्यत्याग करके जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले हे नृपवर ! दानवके दूतने सुरपतिके निकट उपस्थित होकर महिषासुरके कहे सब वचन कहे तब शक्रने उसके वचनसे कुपित हो कुछेक हँसकर कहा ॥ १५ ॥ रे निर्बोध ! तू मदके गर्वसे दर्पित हुआ है इसीसे मुझको नहीं जानता, अतएव तेरे प्रभु महिषासुरको इस रोगकी औषधी शीघ्रही प्रदान करूंगा ॥ १६ ॥ अब इसको समूल निर्मूल करूंगा. नीतिके जाननेवाले पुरुष दूतको नहीं मारते, मैं इसीकारण तुझको छोड़ता हूं.अतएवहे दूत ! मैं तुझसे जो कहता हूं, दुरात्मा महिषासुरके पास जाकर वह सब कह दे। हे महिषीपुत्र ! यदि तुझे युद्धकी वासना हुई है तो शीघ्र आ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे महिष ! तू तृणभक्षक और जडाकृति है, अतएव तेरा बल विक्रम हमसे छिपा

अहल्याजारविज्ञातंबलंतेसुरसंचप ॥ युध्यस्ववव्रजवाकामंयत्रतेरमतेमनः ॥ १४ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यशक्रःक्रोधसमन्वितः ॥
उवाचतंनृपश्रेष्ठस्मितपूर्वंवचस्तदा ॥ १५ ॥ नजानेऽहंसुमंदात्मन्यतस्त्वंमदर्पितः ॥ चिकित्सांसंकरिष्यामिरोगस्याऽस्यप्रभोस्तव ॥ १६ ॥
अतःपरंकरिष्यामिमूलस्याऽस्यनिमूलनम् ॥ गच्छदूततथाब्रूहितस्याऽग्रेममभाषितम् ॥ १७ ॥ शिष्टैर्दूतानहंतव्यास्तस्मात्त्वांविसृजाम्यहम् ॥
युद्धेच्छाचेत्समागच्छत्वरितोमहिषीसुत ॥ १८ ॥ हयारेत्वद्बलंज्ञातंतृणादस्त्वंजडाकृतिः ॥ शृंगयोस्तेकरिष्यामिसुदृढंचशरासनम् ॥ १९ ॥
दर्पःशृंगबलात्तेऽस्तिविदितंकारणंमया ॥ विषाणेपरिच्छित्त्वातेसंहरिष्यामितद्बलम् ॥ २० ॥ यद्बलेनाऽतिपूर्णस्त्वंजातोऽसिबलदर्पितः ॥ कुशलस्त्वंतदाघाते
नयुद्धेमहिषाऽधम ॥ २१ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तोऽसौसुरेंद्रेणसदूतस्त्वरितोगतः ॥ जगाममहिषंमत्तंप्रणम्यप्रत्युवाचह ॥ २२ ॥ दूतउवाच ॥ राजन्देवाऽधिपः
कामंनत्वांविगणयत्यसौ ॥ मन्यतेस्वबलंपूर्णंदेवसैन्यसमावृतः ॥ २३ ॥ यदुक्तंतेनमूर्खेणकथमन्यद्ब्रवीम्यहम् ॥ प्रियंसत्यंचवक्तव्यंभृत्येनपुरतःप्रभोः ॥ २४ ॥

नहीं है, सुतरां संग्राममें आते ही तेरे सींग लेकर दृढ शरासन बनाऊंगा ॥ १९ ॥ तू सींगोंके बलसे ही दर्प करता है, यह मैं भलीभांति जानता हूं. रे महिषाधम ! तू सींगोंसे ही आघात करनेमें चतुर है युद्धका विषय कुछ भी नहीं जानता. अतएव तू जिन सींगोंके बलसे पूर्ण होकर बलका दर्प करता है, मैं वही दोनों सींग काटकर तेरा संपूर्ण बलवीर्य नष्ट करूंगा ॥ २० ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले दूत सुरपतिके इसप्रकार वचन सुनकर शीघ्र उस स्थानसे चला फिर प्रमत्त महिषासुर दानवके सन्मुख जाय प्रणाम करके कहने लगा ॥ २२ ॥ हे राजन् ! देवाधिपति इन्द्रने देवसेनासे परिवेष्टित हो अपनेकोही पूर्ण बलसे युक्त समझा है । आपकी उपयुक्त प्रतिद्वन्द्वीमें गणना नहीं की ॥ २३ ॥ प्रभुके सन्मुख भृत्यको प्रिय वा सत्य बातही कहनी चाहिये. उस मूर्ख सुरपतिने जो

कहा है वह मैं आपसे किसप्रकार कहूं ? ॥ २४ ॥ विशेष कर हे महाराज ! हिताभिलाषी भृत्य प्रभुके समीप प्रिय और सत्य वचन कहै यह मंगलविधायिनी नीति जागरित रहती है ॥ २५ ॥ यदि केवल तृप्तिकर बातही कहूं तो आपका कार्य नहीं होगा और शुभाभिलाषी भृत्यको कभी परुष वचन कहना भी उचित नहीं है ॥ २६ ॥ हे नाथ ! शत्रुके मुखसे जिसप्रकार विषकी समान परुष वचन निकले हैं वैसे कठोर वचन भृत्यके मुखसे किसप्रकार निकलेंगे ॥ २७ ॥ हे महीपते ! सुरपतिने जैसे वचन कहे हैं मेरी जिह्वा कभी वैसेवचन कहनेमें समर्थ नहीं होगी ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले वार्त्तावहके उक्त प्रकारके हेतुयुक्त वचन सुन तृणभोजी महिष दानव अत्यन्त कुपित हो ॥ २९ ॥ पूंछको पीठमें स्थापन कर मूत्रत्याग करने लगा, फिर क्रोधसे दोनों नेत्र लाल कर दानवोंको

प्रियंसत्यंचवक्तव्यंप्रभोरग्रेशुभेच्छुना ॥ इतिनीतिर्महाराजजागर्तिशुभकारिणी ॥२५॥ केवलंचेत्प्रियंब्रूयान्नतेकार्यंभविष्यति ॥ परुषंचनवक्तव्यंकदाचिच्छुभमिच्छता ॥ २६ ॥ यथारिपुमुखाद्वाचःप्रसरंतिविषोपमाः ॥ तथाभृत्यमुखान्नाथनिःसरंतिकथंगिरः ॥ २७ ॥ यादृशानीहवाक्यानितेनोक्तानि महीपते ॥ तादृशानिनमेजिह्वावक्तुमर्हतिकर्हिचित् ॥ २८ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यहेतुगर्भंतृणाशनः ॥ भृशंकोपपरीतात्माबभूवमहिषासुरः ॥ २९ ॥ समाहूयाऽब्रवीद्दैत्यान्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ लांगूलंपृष्ठदेशेचकृत्वामूत्रंपरित्यजन् ॥ ३० ॥ भोभोदैत्याःसुरेंद्रोऽसौयुद्धकामोऽस्तिसर्वथा ॥ बलोद्योगंकुरुध्वंवैजेतव्योऽसौसुराधमः ॥ ३१ ॥ मदग्रेकोभवेच्छूरःकोटिशश्चेत्तथाविधाः ॥ नबिभेम्येकतःकामंहनिष्याम्यद्यसर्वथा ॥ ३२ ॥ शूरःशांतिष्वसौनूनंतपस्विषुबलाधिकः ॥ बलकर्ताहिकुहकोलंपटःपरदारहृत ॥ ३३ ॥ अप्सरोबलसंमत्तस्तपोविघ्नकरःखलः ॥ छिद्रप्रहरणःपापोनित्यंविश्वासघातकः ॥ ३४ ॥

बुलाय उनसे कहा ॥ ३० ॥ हे दानवलोगो ! सुरेन्द्रने युद्धके लिये सबप्रकार निश्चय किया है, अतएव तुम सेना इकट्ठी करो उस सुराधमको जीतना होगा ॥ ३१ ॥ मेरी अपेक्षा कौन वीर है ? यदि सुरेन्द्रकी समान करोड़ करोड़ वीर आवें, तो उनमें मैं किसीका भी भय नहीं करता. हे दानवो ! उस सुरपतिको आज सब प्रकारसे निहत करूंगा ॥ ३२ ॥ वह इन्द्र केवल शान्त और निरीह पुरुषोंके निकट ही शूर और तपसे कृश हुए तपस्वीगणोंके निकटही बलवान् है, किन्तु मेरी समानके समीप उसमें किसी विक्रमके प्रकाश करनेकी सामर्थ्य नहीं है, वह लंपट है सुतरां अन्यायबलका प्रयोग कर छलसे पराई स्त्रीका हरण करता है ॥ ३३ ॥ वह अत्यन्त खल पापपरायण और छिद्रान्वेषी है, नहीं तो अप्सराओंके सौन्दर्यबलसे मत्त होकर तपस्यामें विघ्न उत्पादन क्यों करते ? उसने अत्यन्त विश्वास

घातक होनेसे ॥ ३४ ॥ प्रथम तो भीत हो अनेकप्रकारसे शपथ करके महात्मा नमुचिके सहित संधि की. फिर अवसर पाय उस दुरात्माने संधि तोड़कर कपटता पूर्वक उनको मारा ॥ ३५ ॥ किन्तु वीर्यवान् विष्णु कपटव्यवहारके आचार्य शपथके आकर स्वरूप और अपना गर्व करनेमेंही चतुर और पण्डित हैं वह माया द्वारा इच्छानुसार अनेक रूप धारण करते हैं ॥ ३६ ॥ इन्हीं सब कारणोंसे विष्णुने शूकराकृति होकर हिरण्याक्षको और नृसिंहमूर्ति धारण करके हिरण्यकशिपुको मारा था ॥ ३७ ॥ हे दानवलोगो ! मैं कभी उस विष्णुके वशीभूत नहीं हूंगा. क्योंकि मैं देवताओंका किसी वचन वा कार्यमें कभी विश्वास नहीं करता ॥ ३८ ॥ जब कि अत्यन्त बलवान् रुद्र युद्धके मध्य मेरे प्रतिकूल आचरण करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब इन्द्र वा विष्णु मेरा क्या करेंगे ? ॥ ३९ ॥ मैं अभी इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर

नमुचिर्निहतोयेनकृत्वासंधिंदुरात्मना ॥ शपथान्विविधानादौकृत्वाभीतेनछद्मना ॥ ३५ ॥ विष्णुस्तुकपटाचार्यःकुहकःशपथाकरः ॥ नानारूपधरः कामंबलकृद्दंभपंडितः ॥ ३६ ॥ कृत्वाकोलाऽऽकृतिंयेनहिरण्याक्षोनिपातितः ॥ हिरण्यकशिपुर्येननृसिंहेनचघातितः ॥ ३७ ॥ नाऽहंतद्वशगोनूनंभवेयंदनुनंदनाः ॥ विश्वासंनैवगच्छामिदेवानांकुत्रकर्हिचित् ॥ ३८ ॥ किंकरिष्यतिमेविष्णुरिंद्रोवाबलवत्तरः ॥ रुद्रोवाऽपिनमेशक्तःप्रतिकर्तुरणांगणे ॥ ३९ ॥ त्रिविष्टपंग्रहीष्यामिजित्वेंद्रंवरुणंयमम् ॥ धनदंपावकंचैवचंद्रसूर्यौविजित्यच ॥ ४० ॥ यज्ञभागभुजःसर्वेभविष्यामोऽद्यसोमपाः ॥ जित्वादेवसमूहंचविहरिष्यामिदानवैः ॥ ४१ ॥ नमेभयंसुरेभ्यश्चवरदानेनदानवाः ॥ मरणंननरेभ्यश्चनारीकिंमेकरिष्यति ॥ ४२ ॥ पातालपर्वतेभ्यश्चसमाहूयवरान्वरान् ॥ दानवान्ममसैन्येशान्कुर्वंतुत्वरिताश्चराः ॥ ४३ ॥ एकोऽहंसर्वदेवेशान्विजेतुंदानवाःक्षमः ॥ शोभार्थंवःसमाहूयनयामिसुरसंगमे ॥ ४४ ॥

पावक, चंद्र और सूर्यको पराजित करके स्वर्गका राज्य ग्रहण करूंगा ॥ ४० ॥ देवताओंको जीतकर हम सभी यज्ञका भाग ग्रहण और सोमपान करके दानवोंसे विहार करेंगे ॥ ४१ ॥ हे दानवगण ! वरलाभके कारण देवताओंसे हमको किंचिन्मात्रभी भय नहीं है. विशेषकर पुरुषसे तो मुझको मृत्यु—भय है ही नहीं. केवल स्त्रीसेही मुझको मरनेका भय है; किन्तु स्त्रियें मेरा क्या कर सकेंगी ? ॥ ४२ ॥ हे दूतलोगो ! अभी पाताल और पर्वतसे प्रधान २ दानवोंको बुलाकर मेरे सेनाध्यक्ष पदमें नियुक्त करो ॥ ४३ ॥ हे दानवो ! मैं अकेलाही संपूर्ण प्रधान प्रधान देवताओंको पराजित करसक्ता हूं. केवल युद्धकी शोभाके लिये ही तुमको बुलाकर देवता

ओंके संग्राममें लिये जाता हूं॥ ४४॥ वरप्रभावके कारण देवताओंसे हमको कोई भय नहींहै. अतएव सींग और खुरोंके प्रहारसेही उनको मार डालेंगे॥ ४५॥ सुर, असुर वा दानव सबसेही मैं अवध्य हूं, अतएव देवलोकको जीतनेके लिये तुमलोग सज्जित होओ ॥ ॥ ४६ ॥ हे दानवलोको ! सुरालयको जीत पारिजातकी मालासे विभूषित हो हमलोग देवाङ्गनाओंके संग नन्दनवनमें विहार करेंगे ॥ ४७ ॥ हम उस समय कामधेनुके दुग्धपान और सुधापानसे उल्लासित होकर देवता और गंधर्वोंके नृत्य गीत और वाद्य दर्शन तथा श्रवण करेंगे ॥ ४८ ॥ उर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा ॥ ४९ ॥ विप्रचित्ति इत्यादि नृत्यगीतविशारद स्वर्गकी वेश्याओंसे नानाविध मद्यनिषेवणद्वारा तुम सबका ही चित्त प्रसन्न करूंगा ॥ ५० ॥ अतएव यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम पवित्र माङ्गल्य

शृंगाभ्यांचखुराभ्यांचहनिष्येऽहंसुरान्किल ॥ नमेभयंसुरेभ्यश्चवरदानप्रभावतः॥४५॥अवध्योऽहंसुरगणैरसुरैर्मानवैस्तथा ॥ तस्मात्सज्जाभवंत्वद्यदेवलोकजयायवै॥४६॥जित्वासुरालयंदैत्याविहरिष्यामिनंदने ॥ मंदारकुसुमापीडादेवयोषित्समन्विताः ॥ ४७ ॥ कामधेनुपयोत्सिक्ताःसुधापानप्रमोदिताः ॥ देवगंधर्वगीतादिनृत्यलास्यसमन्विताः ॥ ४८॥ उर्वशीमेनकारंभाघृताचीचतिलोत्तमा॥प्रमद्वरामहासेनामिश्रकेशीमदोत्कटा ॥४९॥ विप्रचित्तिप्रभृतयो नृत्यगीतविशारदाः ॥ रंजयिष्यंतिवःसर्वान्नानाऽऽसवनिषेवणैः ॥५०॥ सर्वेसज्जाभवंत्वद्यरोचतांगमनंदिवि॥संग्रामार्थंसुरैःसार्धंकृत्वामंगलमुत्तमम् ॥५१॥ रक्षणार्थंचसर्वेषांभार्गवंमुनिसत्तमम्॥ समाहूयचसंपूज्यस्थाप्ययज्ञेगुरुंपरम् ॥५२॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंदिश्यदैत्येन्द्रान्महिषःपापधीस्तदा ॥ जगामत्वरितोराजन्भवनंस्वंमुदान्वितः॥५३॥इतिश्रीदेवीभागवतेम०पंचमस्कंधेभगवतीमाहात्म्येदैत्यसैन्योद्योगोनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ गते दूतेसुरेंद्रोऽपिसमाहूयसुरानथ ॥ यमवायुधनाध्यक्षवरुणानिदमूचिवान्॥ १॥महिषोनामदैत्येंद्रोरंभपुत्रोमहाबलः॥वरदर्पमदोन्मत्तोमायाशतविचक्षणः॥२॥

कार्यका अनुष्ठान करके देवताओंके संग संग्राम करनेके लिये अभी सज्जित होओ ॥ ५१ ॥ और दैत्यगुरु मुनिसत्तम भृगुनंदन पवित्रात्मा शुक्राचार्यजीको बुलाय उनकी पूजा करके सब दैत्योंकी रक्षाके लिये विजयकी कामनासे उनको यज्ञ करनेमें नियोजित करो ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! पापबुद्धि महिषने उसकाल प्रधान प्रधान दानवोंको इसप्रकार आज्ञा दे प्रसन्न चित्तसे अपने घरमें प्रवेश किया॥ ५३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! दानवदूतके चले जानेपर देवराज इन्द्रने यम, वायु, वरुण और कुबेर इत्यादि देवताओंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ हे देवताओ ! रम्भपुत्र

महाबलवान् महिष इस समय दानवोंका राजा है. विशेषकर वह शतशत मायाओंमेंचतुर और वरके दर्पसे दर्पित होरहा है ॥ २ ॥ हे देवताओ ! महिषने स्वर्गकी कामनासे दूत भेजा है. उसके दूतने अभी मेरे निकट आनकर इसप्रकार कहा है. ॥ ३ ॥ हे शक्र ! सुरालय त्याग करके जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ, अथवा दानवपति महात्मा महिषासुरकी सेवामें तत्पर होओ ॥ ४ ॥ विपक्षके भृत्यकी समान बनेपर दानवपति उसके प्रति कभी कुपित नहीं होते. जब तुम उनकी सेवामें प्रवृत्त होंगे तब वह दयाके वश हो तुम्हारी वृत्ति नियत कर देंगे ॥ ५ ॥ हे देवेश! यह बात यदि तुम्हें स्वीकार न हो, तो युद्धके लिये स्वयं सेना इकट्ठी करो, इस स्थानसे मेरे लौटतेही दानव पति महिष अभी युद्धके लिये उपस्थित होगा ॥ ६ ॥ दुष्टप्रकृति उस दानवका दूत यह अभी कहकर गया है, अतएव हे सुरोत्तमगण ! अब क्या करना चाहिये इस विषयका विचार करो ? ॥ ७ ॥ हे देववृन्द ! देखो स्वयं बलवान् होनेपर भी

तस्यदूतोऽद्यसंप्राप्तःप्रेषितस्तेनभोःसुराः ॥ स्वर्गकामेनलुब्धेनमामुवाचेदृशंवचः ॥ ३ ॥ त्यजदेवालयंशक्रयथेच्छंव्रजवासव ॥ सेवांवाकुरुदैत्यस्यमहिषस्यमहात्मनः ॥४॥ दयावान्दानवेंद्रोऽसौसतेवृत्तिंविधास्यति॥नतेषुभृत्यभूतेषुनकुप्यतिकदाचन॥५॥नोचेद्युद्धायदेवेशसेनोद्योगंकुरुस्वयम् ॥ गते मयिसदैत्येंद्रस्त्वरितःसमुपेष्यति ॥६॥ इत्युक्त्वासगतोदूतोदानवस्यदुरात्मनः ॥ किंकर्तव्यमतःकार्यंचिंतयध्वंसुरोत्तमाः ॥ ७ ॥ दुर्बलोऽपिनचोपेक्ष्यः शत्रुर्बलवतासुराः ॥ विशेषेणसदोद्योगीबलवान्बलदर्पितः॥८॥उद्यमःकिलकर्तव्योयथाबुद्धियथाबलम् ॥ दैवाऽधीनोभवेन्नूनंजयोवाऽथपराजयः ॥ ९ ॥ संधियोगोनचात्राऽस्तिखलेसंधिर्निरर्थकः ॥ सर्वथासाधुभिःकार्यविचार्यचपुनःपुनः ॥ १० ॥ यानमप्यधुनानैवकर्तव्यंसहसापुनः ॥ प्रेक्षकाःप्रेषणीयाश्चशीघ्रगाःसुप्रवेशकाः ॥ ११ ॥ इंगितज्ञाश्चनिःसंगानिःस्पृहाःसत्यवादिनः ॥ सेनाऽभियोगंप्रस्थानंबलसंख्यांयथार्थतः ॥ १२ ॥

शत्रुको दुर्बल जानकर उपेक्षा करनी उचित नहीं है । विशेष करके जो शत्रु बलवान्बाहुबलसे दर्पित और सर्वदाही उद्यमशील है उसकी तो कभी उपेक्षा न करे॥ ८ ॥ अपने अपने बल और बुद्धिके अनुसार उद्योग करना एकान्त कर्त्तव्य है, फिर जीत हो वा हार हो, सो नितान्तही दैवके आधीन है ॥९॥ खलके संग संधि करना निरर्थक है, इसकारण इसके संग संधि करना किसीप्रकार उचित नहीं है. तुमलोग साधु हो और वह दानव अत्यन्त खल है इस कारण वारंवार भलीभांति विचारकर जो अच्छा विचार हो वही करो ॥ १० ॥ शत्रुका बलाबल न जानकर सहसा इस समय युद्धयात्रा करना भी अनुचित है अतएव जिसका शत्रुपक्षीय किसीके संग कुछ संबंध नहीं है और जो सहजसेही शत्रुके दलमें प्रवेश कर उसका बलाबल जानले ॥ ११ ॥ ऐसे इङ्गितज्ञ (चेष्टाके जाननेवाले) सत्यवादी निःस्पृह और द्रुत

गामी दूतको भेजना चाहिये. वह सेनाका स्थान उसकी गति और संख्याको ठीक ठीक जान ले ॥ १२ ॥ और उनका कौन कैसा वीर है? उनकी संख्या कितनी है ? यह भी जानकर शीघ्रतासहित यहां लौट आवे, पहिले तो उस दानवपतिकी सैन्यका बलाबल जान ॥ १३ ॥ फिर तत्काल युद्धमें यात्रा करेंगे अथवा दुर्गका आश्रय लेंगे. बुद्धिमान् पुरुषको सर्वदा विचारकर कार्य करना चाहिये, सहसा कोई कार्य करनेसे वह क्लेशदायी होता है ॥ १४ ॥ इसकारण विज्ञपुरुष विचारकर कार्य करै, तो सब विषय सुखदायक होते हैं. सब दानवलोग एक प्राण और एकचित्त हैं, अतएव उनमें भेदप्रयोग करना किसी प्रकार न्यायसंगत नहीं है ॥ १५ ॥ वे सब एकचित्त हैं अतएव हमारे दूत वहां जायँ, उनके बलाबलको जान जब यहां आवें, तब उनके मुखसे संपूर्ण वृत्तान्त जानकर विचारपूर्वक ॥ १६ ॥ कार्यतत्पर दानवोंके प्रति विधिवत् नीतिका प्रयोग करना चाहिये. नीतिके विरुद्ध कार्य होनेसे ॥ १७ ॥ वह अज्ञात औषधकी समान सब प्रकार

वीराणांचपरिज्ञानंकृत्वायांतुत्वरान्विताः ॥ ज्ञात्वादैत्यपतेस्तस्यसैन्यस्यचबलाबलम् ॥ १३ ॥ करिष्यामिततस्तूर्णयानंवादुर्गसंग्रहम् ॥ “विचार्यखलु कर्तव्यंकार्यंबुद्धिमतासदा ॥ ”सहसाविहितंकार्यंदुःखदंसर्वथाभवेत् ॥ १४ ॥ तस्माद्विमृश्यकर्तव्यंसुखदंसर्वथाबुधैः ॥ नाऽत्रभेदविधिर्न्याय्योदानवेषुचसर्वथा ॥ १५ ॥ एकचित्तेषुकार्येऽस्मिस्तस्माच्चाराव्रजंतुवै ॥ ज्ञात्वाबलाबलंतेषांपश्चान्नीतिर्विचार्यच ॥ १६ ॥ विधेयाविधिवत्तज्ज्ञैस्तेषुकार्यपरेषुच ॥ अन्यथाविहितंकार्यंविपरीतफलप्रदम् ॥ १७ ॥ सर्वथातद्भवेन्नूनमज्ञातमौषधंयथा ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंचिंत्यतैःसर्वैःप्रणिधिंकार्यवेदिनम् ॥ १८ ॥ प्रेषयामासदेवेंद्रःपरिज्ञानायपार्थिवः ॥ दूतस्तुत्वरितोगत्वासमागम्यसुराधिपम् ॥ १९ ॥ निवेदयामासतदासर्वंसैन्यबलाबलम् ॥ ज्ञात्वातद्बलमुद्योगंतुराषाडतिविस्मितः ॥ २० ॥ देवानचोदयत्तूर्णंसमाहूयपुरोहितम् ॥ मंत्रंमंत्रविदांश्रेष्ठंचकारत्रिदशेश्वरः ॥ २१ ॥ उवाचांगिरसश्रेष्ठंसमासीनंवरासने ॥ इंद्रउवाच ॥ भोभोदेवगुरोविद्वन्किंकर्तव्यंवदस्वनः ॥ २२ ॥ सर्वज्ञोऽसिसमुत्पन्नेकार्येत्वंगतिरद्यनः ॥ दानवोमहिषोनाममहावीर्योमदान्वितः ॥ २३ ॥

विपरीत फलप्रदान करता है, इसमें संदेह नहीं. व्यासजी बोले हे राजन् ! सुरपति इन्द्रने देवताओंसे इसप्रकार परामर्श कर कार्यज्ञानके ॥ १८ ॥ संपूर्ण वृत्तान्तको जाननेकी इच्छासे कार्यदक्ष दूतको भेजा. दूतनेभी शीघ्र दानवालयमें जाय, भलीभांति अनुसंधान कर फिर आय सुरपतिसे ॥ १९ ॥ संपूर्ण दानवसैन्यका बलाबल निवेदन किया, तब इन्द्र दानवसेनाके उद्योगका विषय जानकर अत्यन्त अचंभेमें हुए ॥ २० ॥ फिर देवताओंको शीघ्र युद्धके उद्योगमें नियोजित कर त्रिदशनाथ मंत्रकुशल पुरोहितको बुलाय परामर्श करने लगे ॥ २१ ॥ आङ्गिरस श्रेष्ठ बृहस्पतिके उत्तम आसनमें बैठनेपर सुरपतिने पूंछा हे देवगुरो ! इस समय हमको क्या करना चाहिये ॥ २२ ॥ यह मुझसे कहिये ? आप सर्वज्ञ हैं इसकारण आपसे कोई विषय छिपा नहीं है. सम्प्रति जो महिषनामक दानव अत्यन्त पराक्रमशाली

और मदसे गर्वित हुआ है ॥ २३ ॥ वह दानवदलसे युक्त होकर मेरे संग संग्राम करनेको आता है, आप मंत्रविशारद हैं अतएव आप इस समय इसका प्रतिविधान कीजिये ॥ २४ ॥ शुक्राचार्य जिसप्रकार असुरोंके विघ्न हरण करते हैं आपभी हमारे उसी प्रकार विघ्नहर्त्ता ही रहे हैं यह मैं भलीभांति जानताहूं. व्यासजी बोले हे राजन् ! बृहस्पतिने वासवका वचन सुन ॥ २५ ॥ कार्यसाधनकी वासनासे मनमें भलीभांति अभिलषित विषयकी आलोचना करके उनसे कहा. बृहस्पति बोले हे सुरेन्द्र ! तुम सबके माननीय हो, अतएव धैर्यअवलम्बन करके प्रकृतिमें स्थितहोओ ॥ २६ ॥ व्यसन उपस्थित होनेसे सहसा धैर्यका त्याग करना उचित नहीं है. हे सुराध्यक्ष ! जय वा पराजय सर्वथा दैवके ही आधीन है ॥ २७ ॥ इससे बुद्धिमानोंको सर्वदा धैर्यका अवलम्बन करके रहना उचित है. हे शतक्रतो ! जो होनहार है, वह

योद्धुकामःसमायातिबहुभिर्दानवैर्वृतः ॥ तत्रप्रतिक्रियाकार्यात्वयामंत्रविदाऽधुना ॥ २४ ॥ तेषांगुरुस्तथात्वंमेविघ्नहर्तासुसंमतः ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनं प्राहतुरासाहंबृहस्पतिः ॥ २५ ॥ विचिंत्यमनसाकामंकार्यसाधनतत्परः ॥ गुरुरुवाच ॥ स्वस्थोभवसुरेंद्रत्वंधैर्यमालंब्यमारिष ॥ २६ ॥ व्यसनेचसमुत्पन्नेनत्याज्यंधैर्यमाशुवै ॥ जयाऽजयौसुराध्यक्षदैवाधीनौसदैवहि ॥ २७ ॥ स्थातव्यंधैर्यमालंब्यतस्माद्बुद्धिमतासदा ॥ भवितव्यंभवत्येवजानन्नेवशतक्रतो ॥ २८ ॥ उद्यमःसर्वथाकार्योयथापौरुषमात्मनः ॥ मुनयोऽपिहिमुक्त्यर्थमुद्यमैकरताःसदा ॥ २९ ॥ दैवाधीनंचजानंतोयोगध्यानपरायणाः ॥ तस्मात्सदैवकर्तव्यो व्यवहारोदितोद्यमः ॥ ३० ॥ सुखंभवतुवामावादैवेकापरिदेवना ॥ विनापुरुषकारेणकदाचित्सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ अंधवत्पंगुवत्कामंनतथामुदमाव हेत् ॥ कृतेपुरुषकारेऽपियदिसिद्धिर्नजायते ॥ ३२ ॥ नतत्रदूषणंतस्यदैवाधीनेशरीरिणि ॥ कार्यसिद्धिर्नसैन्येऽस्तिनमंत्रेनचमंत्रणे ॥ ३३ ॥ नरथेनाऽऽयुधे नूनंदैवाधीनासुराधिप ॥ बलवान्क्लेशमाप्नोतिनिर्बलःसुखमश्नुते ॥ ३४ ॥

अवश्यही होगा ॥ २८ ॥ यह निश्चय जानकर सदा अपने पौरुषके अनुरूप उत्साहकरे, संपूर्ण कार्य दैवके आधीन है यह जानकर मुनिलोग मुक्तिलाभकी आशासे एक मात्र उद्योगमेंही निरत रहकर ॥ २९ ॥ योग और ध्यानमें मग्न रहते हैं. सब दैवाधीन नजान्ते हैं अतएव व्यवहारशास्त्रका बताया उद्यम करना अवश्य है ॥ ३० ॥ फिर सुख हो वा दुःख हो,दैवविषयमें परिताप अकर्त्तव्य है. यद्यपि पुरुषकारके विना कभी सिद्धिप्राप्त होजाय अर्थात् ॥ ३१ ॥ अंध और पंगुकी समान कदाचित् सिद्धिलाभ होती है, किन्तु उसमें अत्यन्त हर्षित होना उचित नहीं है. शरीर मात्रही दैवके आधीन है,अतएव पुरुषकार का अवलम्बन करनेसेभी यदि कार्यसिद्धि न हो ॥ ३२ ॥ इसमें पुरुषका कुछ दोष नहीं है कारण कि, शरीर दैवाधीन है. हेसुराधिप ! क्या सैन्य, क्या मंत्र, क्या मंत्रणा ॥ ३३ ॥ क्या रथ, क्या आयुध, किसीसे कार्यसिद्धि नहीं होती;

केवल दैवके द्वाराही निःसंदेह कार्यसिद्धि होती है. संसार दवके आधीन है, अतएव बलवान् पुरुष दैवके बलसे ही क्लेश पाता है, दुर्बल पुरुषभी सुखलाभ करता है ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् पुरुषभी क्षुधित होकर शयन करता है, निर्बुद्धिपुरुष भोगवान् होता है, कातर पुरुषभी जयलाभ करता है, शूरकी भी पराजय होती है ॥ ३५॥ इसमें परितापका क्या विषय है ? हे सुरनाथ ! उद्यममें सुख हो वा दुःखहो भवितव्यता अवश्यही उसमें नियोजित करेगी॥ ३६ ॥ अर्थात् वह उद्योग सुखदायक वा दुःखदायक होगा प्रथमही इसप्रकार विचार न करे. संपूर्ण लोग दुःखके समय दुःखकी अधिकताही देखते हैं, सुखके समय सुखकी अधिकता देखते हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु हर्ष और शोकमें अभिभूत होकर शत्रुके मुखमें आत्मसमर्पण करना उचित नहीं है, हर्षशोकमें पंडितोंको धैर्य धारण करना चाहिये॥ ३८॥ अधैर्य होनेसे जिसप्रकार क्लेश होता है. धैर्यअवलम्बन करनेसे वैसा क्लेश नहीं होता, सुख वा दुःखके समय उसका सहन कठिन है ॥ ३९ ॥ अतएव बुद्धिकी निश्चयताके कारण जिससे हर्ष और

बुद्धिमान्क्षुधितःशेतेनिर्बुद्धिर्भोगवान्भवेत् ॥ कातरोजयमाप्नोतिशूरोयातिपराजयम् ॥ ३५॥ दैवाऽधीनेतुसंसारेकामंकापरिदेवना ॥ उद्यमेयोजयेन्नूनंभवितव्यंसुराधिप ॥ ३६ ॥ दुःखदेसुखदेवाऽपितत्रतौनविंचिंतयेत् ॥ दुःखेदुःखाऽधिकान्पश्येत्सुखेपश्येत्सुखाऽधिकान् ॥ ३७ ॥ आत्मानंहर्षशोकाभ्यांशत्रुभ्यामिवनार्पयेत् ॥ धैर्यमेवावगंतव्यंहर्षशोकोद्भवेबुधैः ॥ ३८ ॥ अधैर्याद्याहशंदुःखंनतुधैर्येऽस्तितादृशम् ॥ दुर्लभंसहनत्वंवैसमयेसुखदुःखयोः ॥ ॥ ३९ ॥ हर्षशोकोद्भवोयत्रनभवेद्बुद्धिनिश्चयात् ॥ किंदुःखंकस्यवादुःखंनिर्गुणोऽहंसदाऽव्ययः ॥ ४० ॥ चतुर्विंशाऽतिरिक्तोऽस्मिकिंमेदुःखंसुखंच किम् ॥ प्राणस्यक्षुत्पिपासेद्वेमनसःशोकमूर्च्छने ॥ ४१ ॥ जरामृत्यूशरीरस्यषडूर्मिरहितःशिवः ॥ शोकमोहौशरीरस्यगुणौकिंमेऽत्रचिंतने ॥ ४२ ॥ शरीरंनाहमथवातत्संबंधीनचाऽप्यहम् ॥ सप्तैकषोडशादिभ्योविभिन्नोऽहंसदासुखी ॥ ४३ ॥ प्रकृतिर्विकृतिर्नाऽहंकिंमेदुःखंसदापुनः ॥ इतिमत्वासुरेशत्वंमनसाभवनिर्ममः ॥ ४४ ॥ उपायःप्रथमोऽयंतेदुःखनाशेशतक्रतो ॥ ममतापरमंदुःखंनिर्ममत्वंपरंसुखम् ॥ ४५ ॥

शोकका उदय न हो, वही करना कर्त्तव्य है. मैं निरंतर अव्यय और निर्गुण हूं, अतएव दुःख किसको है? और वह दुःख क्या है ? तब इसप्रकार करना चाहिये ॥ ४० ॥ मैं चौवीस तत्वोंसे अतिरिक्त हूं अतएव मुझको सुख वा दुःख क्या है ? प्राणका धर्म क्षुधा और पिपासा (भूंख प्यास) मनका धर्म शोक और मूर्च्छा ॥ ४१ ॥ शरीरका धर्म जरा और मृत्यु इन छे व्याधियोंसे मुक्त होकर मैं शिव हूं. शोक और मोह यह शरीरके गुण हैं सुतरां इनकी चिन्तासे मेरा क्या प्रयोजन है?॥ ४२ ॥ मैं शरीरका धर्म वा उसके संबंधसे जीवभी नहीं हूं. मैं महदादि सप्त विकृति प्रकृति और सोलह विकृतिसे पृथक् हूं अतएव मैं सदाही सुखी हूं ॥ ४३ ॥ मैं प्रकृति वा विकृति नहीं अतएव मुझको सदा दुःख क्यों होगा ? हे सुरेश ! तुम अपने मनमें इस प्रकार विचार करके निर्मोह हो ॥ ४४ ॥ हे शतक्रतो ! मोहही परम दुःखका कारण और

निर्ममताही परम सुखका मूल है, इसलिये निर्ममताही तुम्हारे दुःखनाशका प्रधान उपाय है ॥ ४५ ॥ हे शचीपते ! संतोषसे अधिक सुखका विषय दूसरा कोई नहीं है अथवा ममतानाश विषयमें यदि तुमको ज्ञान न हो ॥ ४६ ॥ तो भवितव्य (होनहार) विषयमें विवेक करना चाहिये हे सुराधिप ! भोग न होनेसे कभी प्रारब्ध कार्यका नाश दिखाई नहीं देता ॥ ४७ ॥ हे सुरसत्तम ! तुम्हारा बुद्धिबल हो सहाय हो अथवा सब देवता सहाय हों, तुम्हारा जो होनेवाला है वह अवश्यही होगा, अतएव सुख वा दुःखमें फिर तुमको क्या चिन्ता है? ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! पुराणपुण्यक्षयके लिये सुख और पापक्षयके लिये दुःख होता है, अतएव सुखके क्षय होनेपर पण्डितगणोंको भलीभांतिसे हर्ष प्रकाश करना उचित है ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! इस समय मंत्रणा करके यथाविधि यत्न करो किन्तु यत्न करनेपर भी जो भवितव्य है वह होगा ॥ ५० ॥

संतोषादपरंनाऽस्तिसुखस्थानंशचीपते ॥ अथवायदिनज्ञानंममत्वनाशनेकिल ॥ ४६ ॥ ततोविवेकःकर्तव्योभवितव्येसुराधिप ॥ प्रारब्धकर्मणांनाशो नाऽभोगाल्लक्ष्यतेकिल ॥ ४७ ॥ यद्भावितद्भवत्येवकाचिंतासुखदुःखयोः ॥ सुरैःसर्वैःसहायैर्वाबुद्ध्यावातवसत्तम ॥ ४८ ॥ सुखंक्षयायपुण्यस्यदुःखंपापस्यमारिष ॥ तस्मात्सुखक्षयेहर्षःकर्तव्यःसर्वथाबुधैः ॥ ४९ ॥ अथवामंत्रयित्वाऽद्यकुरुयत्नंयथाविधि ॥ कृतेयत्नेमहाराजभवितव्यंभविष्यति ॥ ५० ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेम० पंचमस्कंधेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिश्रुत्वासहस्राक्षःपुनराहबृहस्पतिम् ॥ युद्धोद्योगंकरिष्यामिहयारेर्नाशनायवै ॥ १ ॥ नोद्यमेनविनाराज्यंनसुखंनचवैयशः ॥ निरुद्यमंनशंसंतिकातरानचसोद्यमाः ॥ २ ॥ यतीनांभूषणंज्ञानंसंतोषोहिद्विजन्मनाम् ॥ उद्यमःशत्रुहननंभूषणंभूतिमिच्छताम् ॥ ३ ॥ उद्यमेनहतस्त्वाष्ट्रोनमुचिर्वलएवच ॥ तथैनंनिहनिष्यामिमहिषंमुनिसत्तम ॥ ४ ॥ बलंदेवगुरुस्त्वंमेवज्रमायुधमुत्तमम् ॥ सहायस्तुहरिर्नूनंतथोमापतिरव्ययः ॥ ५ ॥

॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! सहस्रलोचन इन्द्रने यह वचन सुनकर बृहस्पतिसे फिर कहा कि महिषासुरके मारनेको युद्धका उद्योग करो ॥ १ ॥ उद्यमके विना राज्यलाभ सुख वा यश कुछ नहीं होता, जो कातर हैं, वही निरुद्यमकी प्रशंसा करते हैं, और जो पराक्रान्त हैं, वे उसकी प्रशंसा नहीं करते ॥ २ ॥ यतीलोगोंका ज्ञान और ब्राह्मणोंका संतोषही परम भूषण है किन्तु जो ऐश्वर्यकी अभिलाषा करते हैं उनका उद्यम और शत्रुसंहारक पराक्रम ही उत्तम भूषण है ॥ ३ ॥ हे मुनिसत्तम! मैंने उद्यमसे जिसप्रकार वृत्र नमुचि और बलासुरको मारा है इसीप्रकार उद्यमसे महिषासुरको मारूंगा ॥ ४ ॥ आप देवताओंके गुरु हैं, अतएव आप और उत्तम आयुध वज्र ये दोनोंही मेरा उत्तम बल हैं और फिर इसपरभी अव्यय हरि और उमापति

हर अवश्यही मेरी सहायता करेंगे ॥ ५ ॥ हे गुरो ! जिससे मेरी मानरक्षा हो वही कीजिये, इस समय मेरी मंगलकामनासे विघ्ननाशक मंत्रपाठ कीजिये मैं महिष दानवके उद्देशसे स्वीयसेनासन्निवेशपूर्वक युद्धका उद्योग करता हूं ॥ ६ ॥ श्रीव्यासजी बोले बृहस्पतिने देवराज इन्द्रका वचन सुननेके पीछे कुछेक हँसकर युद्धमें अनुरक्त सुरेन्द्रसे कहा ॥ ७ ॥ बृहस्पति बोले हे इन्द्र ! युद्ध करनेसे जीत वा हारका निश्चय नहीं है मैं इस सन्दिग्ध विषयमें तुमको प्रेरणभी नहीं करता और निवारणभी नहीं करता ॥ ८ ॥ हे शचीपते ! भवितव्य विषयमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है इसमें यदि सुख विहित हो तो सुख होगा और यदि इसमें दुःख विहित हो तो दुःख होगा हे वासव ! तुमको युद्धमें सुख वा दुःख होगा ॥९॥ इस भविष्यतविषयको मैं नहीं जानता क्योंकि पूर्वमें जब मेरी भार्या हृत हुई तब मैं ने जो क्लेश

रक्षोघ्नान्पठमेसाधोकरोम्यद्यसमुद्यमम् ॥ स्वसैन्याऽभिनिवेशंचमहिषंप्रतिमानद ॥ ६ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तोदेवराजेनवाचस्पतिरुवाचह ॥ सुरेंद्रंयुद्धसंरक्तंस्मितपूर्ववचस्तदा ॥७॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ प्रेरयामिनचाहंत्वांनचनिवारयाम्यहम् ॥ संदिग्धेत्रजयेकामंयुध्यतश्चपराजये ॥८॥ नतेत्रदूषणंकिंचिद्भवितव्येशचीपते॥सुखंवायदिवादुःखंविहितंचभविष्यति॥९॥नमयातत्परिज्ञातंभाविदुःखंसुखंतथा॥यद्भार्याहरणेप्राप्तंपुरावासववेत्सिहि ॥१०॥ शशिनामेहृताभार्यामित्रेणाऽमित्रकर्शन ॥ स्वाऽऽश्रमस्थेनसंप्राप्तंदुःखंसर्वसुखाऽपहम् ॥ ११ ॥ बुद्धिमान्सर्वलोकेषुविदितोऽहंसुराऽधिप ॥ क्वमेगतातदाबुद्धिर्यदाभार्याहृताबलात् ॥ १२ ॥ तस्मादुपायःकर्तव्योबुद्धिमद्भिःसदानरैः ॥ कार्यसिद्धिःसदानूनंदैवाऽधीनासुराऽधिप ॥ १३ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंसत्यंगुरोःसार्थंशचीपतिः ॥ ब्रह्माणंशरणंगत्वानत्वावचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥ पितामहसुराऽध्यक्षदैत्योमहिषसंज्ञकः ॥ ग्रहीतुकामःस्वर्गमेवलोद्योगंकरोत्यलम् ॥ १५ ॥

अनुभव किया है तुम उसको जानते हो अतएव मुझको भविष्यत् ज्ञान नहीं है यदि वह होता, तो फिर दुःख क्यों पाता ? ॥ १० ॥ हे शत्रुनाशन ! चन्द्रमाने मेरी भार्याका हरण किया, इस कारण मेरे संपूर्ण सुखका विनाश हुआ मैं अपने आश्रममें अवस्थित होकर अत्यन्तही दुःख पाने लगा. ॥ ११ ॥ हे सुरनाथ ! मैं सब लोकोंमें बुद्धिमान् कहकर विख्यात हूं, किन्तु जब चन्द्रमाने बलपूर्वक भार्याका हरण किया था, तब मेरी बुद्धि कहां गई थी ? ॥ १२ ॥ हे सुराधिप ! मुझको बोध होता है कार्यसिद्धि सब प्रकारसे दैवके आधीन है, तथापि बुद्धिमान् लोगोंको सर्वदा उपाय अवलम्बन करना चाहिये ॥ १३ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन् ! शचीपति गुरुके इसप्रकार सत्य वचन सुन, उनके संग ब्रह्मलोकमें जाय पितामहकी शरणागत हो प्रणामपूर्वक कहने लगे ॥ १४ ॥ हे पितामह ! महिष

दानव मेरा स्वर्गराज्य छीननेकी अभिलाषासे अधिकतर सेना इकट्ठी करता है ॥ १५ ॥ अन्यान्य दानवगण सभी संग्रामके अभिलाषी होकर उसकी सैन्यमें उपस्थित हुए हैं वह सभी युद्धविशारद और अत्यन्त वीर्यशाली हैं ॥ १६ ॥ इससे मैं अत्यन्त डरकर आपके निकट आया हूं. हे महाप्राज्ञ! आप सर्वज्ञ हैं इसलिये आप मेरी सहायता कीजिये ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हम सब अभी कैलासमें जायँ वहांसे शंकरको संग लेकर विष्णुके निकट चलें ॥ १८ ॥ वहां सब देवताओंके एकत्र होनेपर मंत्रणा करनेके पीछे देश और कालका विचार करके युद्ध करना उचित है वा नहीं यह स्थिर किया जायगा ॥ १९ ॥ क्योंकि जो पुरुष अपना बलाबल न जान और विचार न कर किसी कार्यके करनेमें शीघ्रता करता है वह अपनी अवनतिकाही लाभ करता है

अन्येचदानवाःसर्वेतत्सैन्यंसमुपस्थिताः ॥ योद्धुकामामहावीर्याःसर्वेयुद्धविशारदाः ॥ १६ ॥ तेनाऽहंभीतभीतोऽस्मित्वत्सकाशमिहाऽऽगतः ॥ सर्वज्ञोऽसिमहाप्राज्ञसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गच्छामःसर्वएवाऽद्यकैलासंत्वरितावयम् ॥ शंकरंपुरतःकृत्वाविष्णुंचबलिनांवरम् ॥ १८ ॥ ततोयुद्धंप्रकर्तव्यंसर्वैःसुरगणैःसह ॥ मिलित्वामंत्रमाधायदेशंकालंविचिंत्यच ॥१९॥ बलाबलमविज्ञायविवेकमपहायच ॥ साहसंतुप्रकुर्वाणोनरःपतनमृच्छति ॥ २० ॥ व्यासउवाच ॥ तन्निशम्यसहस्राक्षःकैलासंनिर्जगामह ॥ ब्रह्माणंपुरतःकृत्वालोकपालसमन्वितः ॥२१॥ तुष्टावशंकरंगत्वावेदमंत्रैर्महेश्वरम् ॥ प्रसन्नंपरतःकृत्वाययौविष्णुपुरंप्रति ॥२२॥ स्तुत्वातंदेवदेवेशंकार्यंप्रोवाचचात्मनः॥महिषात्तद्भयंचोग्रंवरदानमदोद्धतात् ॥२३॥ तदाकर्ण्यभयंतस्यविष्णुर्देवानुवाचह ॥ करिष्यामोवयंयुद्धंहनिष्यामस्तुदुर्जयम् ॥ २४ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितेनिश्चयंकृत्वाब्रह्मविष्णुहरीश्वराः ॥स्वानिस्वानिसमारुह्यवाहनानिययुःसुराः ॥ २५ ॥

॥ २० ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन्! सहस्रलोचन इन्द्र यह बात सुन ब्रह्माको आगे कर लोकपालोंके सहित कैलासकी ओर चले ॥ २१ ॥ अनन्तर शंकरके समीप उपस्थित हो वेदमंत्रसे उनका स्तव करनेलगे. महेश्वरके प्रसन्न होनेपर उनको आगे करके विष्णुपुर वैकुंठमें गये ॥ २२ ॥ सुरपति देवदेवेशने विष्णुका स्तव करके कहा कि महिषदानव वर पानेसे अत्यन्त उद्धत हुआ है. इसकारण अब उससे हमको अतिशय भय उपस्थित है. आप उसके वधका उपाय कीजिये ॥ २३ ॥ तब विष्णुने उनके भयका विवरण जानकर देवताओंसे कहा कि, हम संग्राम करके उस दुर्जय असुरको मारेंगे ॥ २४ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु, शिव और

इन्द्र इत्यादि देवता स्थिर निश्चय कर अपने अपने वाहनपर चढ़ चलेगये ॥ २५ ॥ जिसकाल ब्रह्मा हंसपर, विष्णु गरुड़पर, शंकर बैलपर, देवराज ऐरावतपर ॥ २६ ॥ स्कन्द मोरपर और यम भैंसेपर चढ़कर समस्त देवताओंकी सेनाके सहित निकले ॥ २७ ॥ उसी समय अस्त्र शस्त्र युक्त महिषसे पालित दानवोंका सेनादल सन्मुख हुआ. तब देवता और दानवोंकी सेनाका घोर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ २८ ॥ बाण, खड्ग, प्रास (साँग) मूशल, परशु, गदा, पट्टिश (अस्त्र विशेष), शूल, चक्र, शक्ति, तोमर ॥ २९ ॥ मुद्गर, भिन्दिपाल, लाङ्गल (कूंड) और अन्यान्य अनेक दारुण अस्त्रोंसे वह परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ॥ ३० ॥ तब महिषके सेनापति महाबलवान् चिक्षुरने अत्यन्त तीक्ष्ण पांच बाणोंसे वासवको ताडित किया ॥ ३१ ॥ लघुहस्त इन्द्रने भी शीघ्र बाणोंसे उन सब

ब्रह्माहंससमारूढोविष्णुर्गरुडवाहनः ॥ शंकरोवृषभारूढोवृत्रहागजसंस्थितः ॥२६॥ मयूरवाहनःस्कंदोयमोमहिषवाहनः ॥ कृत्वासैन्यसमायोगंययावत्ते निर्ययुःसुराः ॥ २७ ॥ तावदैत्यबलंप्राप्तंदृप्तंमहिषपालितम् ॥ तत्राभूत्तुमुलंयुद्धंदेवदानवसैन्ययोः ॥ २८ ॥ बाणैःखड्गैस्तथाप्रासैर्मुसलैश्चपरश्वधैः ॥ गदाभिःपट्टिशैःशूलैश्चक्रैश्चशक्तितोमरैः ॥ २९ ॥ मुद्गरैर्भिंदिपालैश्चहलैश्चैवाऽतिदारुणैः ॥ अन्यैश्चविविधैरस्त्रैर्निजघ्नुस्तेपरस्परम् ॥ ३० ॥ सेनानी श्चिक्षुरस्तस्यगजारूढोमहाबलः ॥ मघवंतंपंचभिस्तैःसायकैःसमताडयत् ॥ ३१ ॥ तुराषाडपितांश्छित्त्वाबाणैर्बाणांस्त्वरान्वितः ॥ हृदयेचार्धचंद्रे णताडयामासतंकृती ॥ ३२ ॥ बाणाऽऽहतस्तुसेनानीःप्रापमूर्च्छांगजोपरि ॥ करिणंवज्रघातेनसजघानकरेततः ॥ ३३ ॥ तद्वज्राभिहतोनागोभग्नःसै न्यंजगामह ॥ दृष्ट्वातंदैत्यराट्क्रुद्धोबिडालाऽऽख्यमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ गच्छवीरमहाबाहोजहींद्रंमदगर्वितम् ॥ वरुणादीन्परान्देवान्हत्वाऽऽगच्छममां तिकम् ॥ ३५ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छुत्वावचनंतस्यबिडालाऽऽख्योमहाबलः ॥ आरुह्यवारणंमत्तंजगामत्रिदशाऽधिपम् ॥ ३६ ॥

बाणोंको काटकर अर्द्धचन्द्र बाणद्वारा उसके हृदयमें प्रहार किया ॥ ३२ ॥ सेनापतिके शराहत होकर गजपृष्ठमें मूर्च्छित होनेपर वासवने उस हाथीकी सूंडमें वज्रप्रहार किया ॥ ३३ ॥ तब वह हाथी उनके वज्रसे सब प्रकारसे आहत और भग्न होकर अपनी सेनासे भागा। दानवपतिने यह देख, कुपित हो बिडालना मक दानवसे कहा ॥ ३४ ॥ हे वीर ! तुम अत्यन्त बलशाली हो, अतएव तुम जाकर प्रथम मदगर्वित इन्द्रको मारो, फिर वरुण इत्यादि अन्यान्य देवता ओंको मारकर मेरे निकट आओ ॥ ३५ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन् ! बिडालनामक महाबली असुर दानवपतिका यह वचन सुन मतवाले

हाथीपर चढ़ त्रिदशाधिपति इन्द्रके निकट आया ॥ ३६ ॥ वासवने उसको आता देखकर क्रोधसहित आय विषकी समान प्रभावशाली भयंकर बाणसे उसपर आघात किया ॥ ३७ ॥ परन्तु उसनेभी चापनिस्सृत बाणोंके द्वारा शीघ्रतासहित उनके सब बाण काट पांचसो शिलीमुख चलाकर वासवपर सहसा प्रहार किया ॥ ३८ ॥ इन्द्रनेभी उन सब बाणोंको काटकर क्रोधसहित फिर सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर आघात किया ॥ ३९ ॥ और धनुषके छूटेहुए अपने बाणोंसे उसके बाणोंको खंड खंड करके तत्काल उसके हाथीकी सूंडमें गदा मारी ॥ ४० ॥ हाथी अपनी सूंडमें आघात लगनेके कारण आर्तस्वरसे वारंवार चीत्कार शब्द करने लगा. तब वह भयातुर हो फिर आते आते दानवोंकी सेनाकाही विनाश करने लगा ॥ ४१ ॥ सेनापति बिडालाख्य रणस्थलसे हाथीको भागता देख, मनोहर

वासवस्तंसमायांतंदृष्ट्वाक्रोधसमन्वितः ॥ जघानविशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ३७ ॥ सतुछित्त्वाशरांस्तूर्णंस्वशरैश्चापनिःसृतैः ॥ पंचाशद्भिर्जघानाऽऽशुवासवंचशिलीमुखैः ॥ ३८ ॥ तथेंद्रोऽपिचतान्बाणांश्छित्त्वाकोपसमन्वितः ॥ जघानविशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ३९ ॥ सतुच्छित्त्वाशरांस्तूर्णंस्वशरैश्चापनिःसृतैः ॥ गदयाताडयामासगजंतस्यकरोपरि ॥ ४० ॥ स्वकरेनिहतोनागश्चकाराऽर्तस्वरंमुहुः ॥ परिवृत्यजघानाऽऽशुदैत्यसैन्यंभयाऽऽतुरम् ॥ ४१ ॥ दानवस्तुगजंवीक्ष्यपरावृत्त्यगतंरणात् ॥ समाविश्यरथेरम्येजगामाऽऽशुसुरान्रणे ॥ ४२ ॥ तुराषाडपितंवीक्ष्यरथस्थंपुनरागतम् ॥ अहनद्विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ४३ ॥ सोऽपिक्रुद्धश्चकारोग्रांबाणवृष्टिंमहाबलः ॥ बभूवतुमुलंयुद्धंतयोस्तत्रजयैषिणोः ॥ ४४ ॥ इंद्रस्तुबलिनंदृष्ट्वाकोपेनाऽऽकुलितेंद्रियः ॥ जयंतमग्रतःकृत्वायुयुधेतेनसंयुतः ॥ ४५ ॥ जयंतस्तुशितैर्बाणैस्तंजघानस्तनांतरे ॥ पंचभिःप्रबलाऽऽकृष्टैरसुरंमदगर्वितम् ॥ ॥ ४६ ॥ सबाणाऽभिहतस्तावन्निपपातरथोपरि ॥ अतिवाह्यरथंसूतोनिर्जगामरणाजिरात् ॥ ४७ ॥ तस्मिन्विनिर्गतेदैत्येबिडालाऽऽख्येऽथमूर्छिते ॥ जयशब्दोमहानासीद्दुंदुभीनांचनिःस्वनः ॥ ४८ ॥ सुराःप्रमुदिताःसर्वेतुष्टुवुस्तंशचीपतिम् ॥ जगुर्गंधर्वपतयोननृतुश्चाऽऽप्सरोगणाः ॥ ४९ ॥

रथमें बैठ तत्काल युद्धस्थलमें देवताओंके सन्मुख हुआ ॥ ४२ ॥ सुरपतिने रथमें चढ़ दानवको फिर आता देख आशीविष (सर्प) के समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया ॥ ४३ ॥ वह महाबलवान् दानव भी कुपित होकर भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा, तब जयाभिलाषी वासव और दानवका तुमुल संग्राम होने लगा ॥ ४४ ॥ दानवको बलवान् देखकर क्रोधके मारे इन्द्रकी सब इन्द्रिय आकुल होगईं, तब अपने पुत्र जयन्तको संग ले दोनों संग्राममें प्रवृत्त हुए ॥ ४५ ॥ जयन्तने पांच शाणित बाण बलसे खैंच मदगर्वित दानवकी छातीमें मारे ॥ ४६ ॥ दानव बाणोंके द्वारा आहत होकर रथके नीड़में गिरगया, तब सारथी रथ लेकर रणाङ्गणसे चला गया ॥ ४७ ॥ उस बिडालनामक दानवके मूर्च्छित होकर चलेजानेपर देवताओंकी दुन्दुभिका निःस्वन और महान् जयशब्द होनेलगा ॥ ४८ ॥ देवता हर्षमें भर शचीपतिका

स्तव करने लगे, गंधर्वपतिगण गान और अप्सरागण नृत्य करने लगीं ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! महिषने उस समय देवताओंका उच्चारित जयशब्द सुन कुपित हो शक्रगर्वहारी ताम्रनामक दानवको संग्राममें भेजा ॥ ५० ॥ ताम्र रणस्थलमें उपस्थित और अनेकानेक प्रतिपक्ष योधाओंके सन्मुख हो मेघके सागरपर जलवर्षणकी समान बाण बरसाने लगा ॥ ५१ ॥ तब वरुण पाश उद्यत करके चले. यमभी भैंसेपर चढ़ दण्ड हाथमें ले धावमान हुए ॥ ५२ ॥ बाण, खड्ग, मूशल, शक्ति और परशुद्वारा देवता और दानवोंका परस्पर घोर युद्ध होने लगा ॥५३॥ यमने हाथसे दण्ड उद्यत करके ताम्रको प्रहार किया, महाबाहु ताम्र यमदण्डसे ताडित होकर भी तिसकाल रणस्थलसे विचलित न हुआ ॥ ५४ ॥ बरन् उसने वेगसहित धनुष खैंचकर तीक्ष्णबाणोंसे रणाङ्गणमें इन्द्र इत्यादि देवता

चुकोपमहिषःश्रुत्वाजयशब्दंसुरैःकृतम्॥प्रेषयामासतत्रैवताम्रंपरमदापहम्॥५०॥ताम्रस्तुबहुभिःसार्धंसमागम्यरणाजिरे॥शरवृष्टिंचकाराशुतडित्वानिवसागरे॥५१॥ वरुणःपाशमुद्यम्यजगामत्वरितस्तदा ॥ यमश्चमहिषारूढोदंडमादायनिर्ययौ॥५२॥ तत्रयुद्धमभूद्घोरंदेवदानवयोर्मिथः ॥ बाणैःखड्गैश्चमुसलैः शक्तिभिश्चपरश्वधैः ॥५३॥ दंडेननिहतस्ताम्रोयमहस्तोद्यतेनच ॥ नचचालमहाबाहुःसंग्रामांगणतस्तदा ॥ ५४॥ चापमाकृष्यवेगेनमुक्त्वातीव्राञ्छिलीमुखान् ॥ इंद्रादीनहनत्तूर्णंताम्रस्तस्मिन्रणाजिरे॥ ५५॥ तेऽपिदेवाःशरैर्दिव्यैर्निशितैश्चशिलाशितैः ॥ निजघ्नुर्दानवान्क्रुद्धास्तिष्ठतिष्ठेतिचुक्रुशुः॥५६॥ निहतस्तैःसुरैर्दैत्योमूर्च्छामापरणांगणे ॥ हाहाकारोमहानासीद्दैत्यसैन्येभयाऽऽतुरे ॥ ५७॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेदैत्यसैन्यपराजयोनामपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ताम्रेऽथमूर्छितेदैत्येमहिषःक्रोधसंयुतः ॥ समुद्यम्यगदांगुर्वीदेवानुपजगामह ॥ १ ॥ तिष्ठंत्वद्यसुराःसर्वेहन्म्यहंगदयाकिल ॥ सर्वेबलिभुजःकामंबलहीनाःसदैवहि ॥२॥ इत्युक्त्वाऽसौगजाऽऽरूढंसंप्राप्यमदगर्वितः ॥जघानगदयातूर्णंबाहुमूलेमहाभुजः ॥ ३॥

ओंको शीघ्र प्रहार किया॥५५॥देवता भी कुपित होकर शिलापर पैनाये तीक्ष्ण और दिव्य बाणोंसे दानवोंको आघात करके ठहरो ठहरो यह कहकर आक्रोश प्रकाश करने लगे ॥ ५६ ॥ देवताओंके बाणोंसे आहत होकर दानव ताम्र रणस्थलमें मूर्च्छित हुआ, तब दानवोंकी सेना भयातुर होकर महान् हाहाकार शब्द करने लगी ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन् ! सेनापति ताम्रके मूर्च्छित होनेपर महिषने क्रोधमें भर, भारी गदा तान देवताओंके समीप उपस्थित होकर ॥ १॥ कहा हे देवताओ ! तुम काककी समान सदा ही बलहीन हो अतएव रहो, अभी तुमको गदाघातसे मारता हूं ॥ २ ॥ मदगर्वित महाबलवान् महिषने ऐरावतारूढ इन्द्रको सन्मुख पाय गदासे तत्काल उसके बाहुमूलमें आघात किया ॥ ३ ॥

इन्द्रनेभी उसी समय घोरतर वज्रके प्रहारसे उस गदाको खंड खंड कर डाला और उसपै प्रहार करनेकी अभिलाषा करके सहसा उसके समीपमें हुए ॥ ४ ॥ तब महिषभी क्रोधके वशीभूत होकर दीप्तिमान् खड्ग ग्रहण कर महावीर्यवान् इन्द्रको मारनेके निमित्त उनके निकट आया ॥ ५ ॥ फिर अनेक आयुधोंके वर्षणसे उन दोनोंका जो युद्ध हुआ उससे संपूर्ण लोकोंको भय और मुनिलोगोंको विस्मय उत्पन्न हुआ॥ ६ ॥ तिस समय इस दानवने सब लोकोंका विनाश करनेवाली अधिक क्या मुनियोंको भी मोहउत्पन्न करनेवाली शाम्बरी माया फैलाई॥ ७॥ तब रणस्थलमें महिषकी समान रूपयुक्त, और पराक्रमशाली करोड़ करोड़ महिष दिखाई देनेलगे, वह सभी आयुध लेकर देवताओंकी सेनाका संहार करनेमें प्रवृत्त हुए॥ ८॥ इस दानवकृत मोहकरी मायाको देख इन्द्र विस्मित और अत्यन्त भयके कारण उद्विग्न हुए॥ ९॥ वरुण,

सोऽपिवज्रेणघोरेणचिच्छेदाशुगदांचताम्॥ प्रहर्तुकामस्त्वरितोजगाममहिषंप्रति ॥ ४ ॥ हयारिरपिकोपेनखड्गमादायसुप्रभम्॥ ययाविंद्रंमहावीर्यंप्रहरिष्य न्निवांतिकम् ॥ ५ ॥ बभूवचतयोर्युद्धंसर्वलोकभयाऽऽवहम् ॥ आयुधैर्विविधैस्तत्रमुनिविस्मयकारकम् ॥ ६ ॥ चकाराऽऽशुतदादैत्योमायांमोहकरींकिल ॥ शांबरींसर्वलोकघ्नींमुनीनामपिमोहिनीम् ॥ ७ ॥ कोटिशोमहिषास्तत्रतद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ददृशुःसायुधाःसर्वेनिघ्नंतोदेववाहिनीम्॥ ८॥ मघवाविस्मित स्तत्रदृष्ट्वातांदैत्यनिर्मिताम्॥ बभूवातिभयोद्विग्नोमायांमोहकरींकिल ॥ ९ ॥ वरुणोपिसुसंत्रस्तस्तथैवधननायकः॥ यमोहुताशनःसूर्यःशीतरश्मिर्भयातुरः ॥ १० ॥ पलायनपराःसर्वेबभूवुर्मोहिताःसुराः॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानांस्मरणंचक्रुरुद्यताः ॥ ११ ॥ तत्राजग्मुश्चकाजेशाःस्मृतमात्राःसुरोत्तमाः ॥ हंसताक्ष्य वृषारूढास्त्रातुकामावरायुधाः ॥ १२ ॥ शौरिस्तांमोहिनींदृष्ट्वासुदर्शनमथोज्ज्वलम्॥ मुमोचतत्तेजसैवमायासाविलयंगता ॥ १३ ॥ वीक्ष्यतान्महिषस्तत्रसृ ष्टिस्थित्यंतकारिणः॥ योद्धुकामःसमादायपरिघंसमुपाद्रवत्॥ १४॥महिषाख्योमहावीरःसेनानीश्चिक्षुरस्तथा॥उग्रास्यश्चोग्रवीर्यश्चदुद्रुवुर्युद्धकामुकाः १५॥

धनपति,यम,अग्नि, चन्द्र, सूर्य इत्यादि सब देवता भयार्त होकर ॥ १० ॥ भागे, तब देवता मायाजालसे मोहित हो मनमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेवको स्मरण करने लगे ॥ ११ ॥ स्मरण करतेही सुरवर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव, हंस, गरुड और बैलपर चढ़, उत्तम उत्तम आयुध धारण पूर्वक उनकी रक्षा करनेको आये ॥१२॥ शौरिने उस मोहिनी मायाको देखकर उज्ज्वल सुदर्शन चक्र चलाया, तब सुदर्शनके तेजके प्रभावसे ही वह माया तिरोहित हुई ॥ १३॥ महिष सृष्टिकारी ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और प्रलयकारी महेश्वरको वहां देख युद्धकी अभिलाषासे परिघ लेकर दौड़ा ॥ १४ ॥ फिर सेनापति चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य, चले ॥ १५ ॥

असिलोमा, त्रिनेत्र, बाष्कल, अन्धक और अन्यान्य योद्धा सभी युद्धकी इच्छासे निकले ॥ १६ ॥ उन मदोद्धत दानवगणने वर्म (कवच) धारे और धनुष बाण लिये रथमें चढ़ क्षुद्रव्याघ्र जिसप्रकार सुकुमार वत्सगणोंपर आक्रमण करता है, इसीप्रकार देवताओंका वेष्टन किया ॥ १७ ॥ अनन्तर उन मदगर्वित दानवोंने बाणवर्षा आरंभ की और देवता भी परस्पर मारनेकी इच्छासे उसीप्रकार बाणवृष्टि करने लगे ॥ १८ ॥ सेनापति अन्धकने हरिके समीपस्थ हो अत्यन्त बलसे कानोंपर्यन्त खैंचकर विषके बुझे शिलापर पैनाये पांच बाण चलाये ॥ १९ ॥ तब शत्रुनाशक वासुदेवने भी स्वप्रेरित बाणद्वारा उन सब बाणोंके सन्मुख न आते आतेही तत्काल काटकर फिर पांच बाण छोड़े ॥ २० ॥ तब हरि और दानवपक्षके बाण, असि, चक्र, मूशल, गदा, शक्ति और परशुद्वारा परस्परको आघात करने लगे ॥ २१ ॥ इस ओर महादेव और

असिलोमात्रिनेत्रश्चबाष्कलोंधकएवच ॥ एतेचाऽन्येचबहवोयुद्धकामाविनिर्ययुः ॥ १६ ॥ सन्नद्धाधृतचापास्तेरथारूढामदोद्धताः ॥ परिवव्रुः सुरान्सर्वान्वृकाइवसुवत्सकान् ॥ १७ ॥ बाणवृष्टिंततश्चक्रुर्दानवामदगर्विताः ॥ सुराश्चाऽपितथाचक्रुःपरस्परजिघांसवः ॥ १८ ॥ अंधकोहरिमासाद्यपंचबाणाञ्छिलाशितान् ॥ मुमोचविषसंदिग्धान्कर्णाऽऽकृष्टान्महाबलान् ॥ १९ ॥ वासुदेवोऽप्यसंप्राप्तान्विशिखानाशुगैस्तदा ॥ चिच्छेदतान्पुनःपंचमुमोचारिपुनाशनः ॥ २० ॥ तयोःपरस्परंयुद्धंबभूवहरिदैत्ययोः ॥ बाणासिचक्रमुसलैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥ २१ ॥ महेशांधकयोर्युद्धंतुमुलंलोमहर्षणम् ॥ पंचाशद्दिनपर्यंतंबभूवचपरस्परम् ॥ २२ ॥ इंद्रबाष्कलयोस्तद्वन्महिषासुररुद्रयोः ॥ यमत्रिनेत्रयोस्तद्वन्महाहनुधनेशयोः ॥ २३ ॥ असिलोमवरुणयोर्युद्धंपरमदारुणम् ॥ गरुडंगदयादैत्योजघानहरिवाहनम् ॥ २४ ॥ सगदापातखिन्नांगोनिःश्वसन्नवतिष्ठत ॥ शौरिस्तंदक्षिणेनाऽऽशुहस्तेनपरिसांत्वयन् ॥ २५ ॥ स्थिरंचकारदेवेशोवैनतेयंमहाबलम् ॥ समाकृष्यधनुःशार्ङ्गंमुमोचविशिखान्बहून् ॥ २६ ॥ अंधकोपरिकोपेनहंतुकामोजनार्दनः ॥ दानवोऽपिचतान्बाणांश्चिच्छेदस्वशरैःशितैः ॥ २७ ॥ पंचाशद्भिर्हरिंकोपाज्जघानचशिलाशितैः ॥ वासुदेवोऽपितांस्तूर्णंवंचयित्वाशरोत्तमान् ॥ २८ ॥

अंधकका परस्पर पचास दिनपर्यन्त लोमहर्षण तुमुल युद्ध हुआ था ॥ २२ ॥ इसीप्रकार बाष्कलके संग इन्द्रका, महिषके संग रुद्रका, त्रिनेत्रके संग यमका, महाहनुके संग धनपतिका, और असिलोमाके संग वरुणका अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा ॥ २३ ॥ महिषने हरिके वाहन गरुडको गदासे आघात किया तब गरुड गदाप्रहारसे अति कातर हो श्वास छोड़ता हुआ गिरगया ॥ २४ ॥ तिस समय देवपति शौरिने दाहिने हाथसे सान्त्वना आश्वासन करके विनतानंदन महाबल गरुडको स्थिर किया ॥ २५ ॥ जनार्दनने कोपवशसे अन्धकका संहार करनेकी इच्छाकर शार्ङ्ग धनुष खैंच उसके ऊपर अनेक बाण चलाये ॥ २६ ॥ प्रथम तो दानवने अपने तीक्ष्ण शरजालसे उनके उन सब बाणोंको खंड खंड कर डाला ॥ २७ ॥ फिर कोपसहित शिलापर पैनाये पचास बाणोंसे हरिपर आघात

किया, वासुदेवनेभी तत्काल उन उत्तम२ सब बाणोंको विफल करके ॥२८॥ सहस्रअरोंसे युक्त सुदर्शन चक्र वेगसहित छोड़ा. हे महाराज ! अन्धकने अपने चक्रसे सुदर्शनचक्रका निवारण करके ॥ २९ ॥ ऐसी गर्जना करी कि उस समय उससे समस्त देवता मोहको प्राप्त हुए, शार्ङ्गधर वासुदेवके चक्रको विफल हुआ देख ॥ ३० ॥ देवता शोकाकुल हुए और दानवोंको हर्ष प्राप्त हुआ वासुदेवभी देवताओंको शोकाकुल देख ॥ ३१ ॥ कौमोदकी गदा ग्रहणकर दानवके सामने दौड़े तब हरिने उस मायावी दानवके मस्तकमें गदाप्रहार किया ॥ ३२ ॥ तिसकाल वह गदाघातसे मूर्छित हो पृथ्वीमें गिरगया अतिकोपनस्वभाव महिषदानव अंधकको गिरा देख ॥ ३३ ॥ गंभीर गर्जनशब्दसे रमानाथको त्रसित करता हुआ आया उसको क्रोधसे अधीर होकर आया देख वासुदेवने ॥ ३४ ॥ धनुर्ज्या [प्रत्यंचा]

चक्रंमुमोचवेगेनसहस्राऽरंसुदर्शनम् ॥ त्यक्तंसुदर्शनंदूरात्स्वचक्रेणन्यवारयत् ॥ २९ ॥ ननादचमहाराजदेवान्संमोहयन्निव ॥ दृष्ट्वातुविफलंजातंचक्रं देवस्यशार्ङ्गिणः ॥ ३० ॥ जग्मुःशोकंसुराःसर्वेजहर्षुर्दानवास्तथा ॥ वासुदेवोऽपितरसादृष्ट्वादेवाञ्छुचाऽऽवृतान् ॥ ३१ ॥ गदांकौमोदकींधृत्वादानवंसमुपाद्रवत् ॥ तंजघानातिवेगेनमूर्ध्निमायाविनंहरिः ॥ ३२ ॥ सगदाऽभिहतोभूमौनिपपाताऽतिमूर्च्छितः ॥ तंतथापतितंवीक्ष्यहयारिरतिकोपनः ॥३३॥ आजगामरमानाथंत्रासयन्नतिगर्जितैः ॥ वासुदेवोऽपितंदृष्ट्वासमायांतंक्रुधान्वितम् ॥ ३४ ॥ चापज्यानिनदंचोग्रंचकारनंदयन्सुरान् ॥ शरवृष्टिंचकाराऽऽशुभगवान्महिषोपरि ॥ ३५ ॥ सोऽपिचिच्छेदबाणौघैस्ताञ्छरान्गगनेरितान् ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन्परस्परभयावहम् ॥ ३६ ॥ गदयाताडयामासकेशवोमस्तकोपरि ॥ सगदाभिहतोमूर्ध्निपपातोर्व्यांसुमूर्छितः ॥ ३७ ॥ हाहाकारोमहानासीत्सैन्येतस्यसुदारुणः ॥ सविहायव्यथांदैत्योमुहूर्तादुत्थितःपुनः ॥ ३८ ॥ गृहीत्वापरिघंशीर्षेजघानमधुसूदनम् ॥ परिघेणाऽऽहतस्तेनमूर्च्छामापजनार्दनः ॥३९॥ मूर्च्छितंतमुवाहाऽऽशुजगामगरुडोरणात् ॥ परावृत्तेजगन्नाथेदेवाइंद्रपुरोगमाः ॥ ४० ॥ भयंप्रापुःसुदुःखार्ताश्चुक्रुशुश्चरणाजिरे ॥ क्रंदमानान्सुरान्वीक्ष्यशंकरःशूलभृत्तदा ॥ ४१ ॥

का ऐसा भयंकर शब्द किया कि, उससे देवताओंको हर्षका उदय हुआ तब भगवानने महिषके ऊपर बाणोंकी वर्षा करी ॥३५॥ किन्तु महिषने अपने बाणोंसे आकाशमार्गमें ही उन सब बाणोंको काट डाला. हे राजन् ! फिर उनके परस्पर भयावह युद्धका आरंभ हुआ ॥ ३६ ॥ केशवने गदासे उसके मस्तकमें आघात किया वह गदाप्रहारसे मस्तकमें आहत होकर पृथ्वीमें गिरगया ॥ ३७ ॥ तब उसकी सेनामें दारुण हाहाकारशब्द होनेलगा वह दानव मुहूर्त्तमात्रमें व्यथारहित होकर उठा ॥ ३८ ॥ तब उसने फिर परिघ लेकर मधुसूदनके मस्तकमें प्रहार किया उस परिघसे आहत होकर जनार्दन मूर्छित हुए ॥ ३९ ॥ तब गरुड उनको मूर्छित अवस्थामें लेकर तत्काल रणस्थलसे चले गये जगन्नाथके फिर जानेसे इन्द्रआदि देवता॥४०॥भीत और अतिशय कातर होकर आर्त्तनाद करने लगे. शंकरने देवताओंका रुदन

करना सुन शूल ले ॥ ४१ ॥ सरोष चित्तसे शीघ्र महिषके निकट जाय उसपर शूलसे प्रहार किया दुष्टस्वभाव महिषने भी उनका त्रिशूल विफल करके गर्जना की
और शक्ति लेकर शंकरके वक्षःस्थलमें मारी तब शंकर वक्षस्थलमें आघात लगनेसे भी कुछ व्यथित नहीं हुए ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वरन क्रोधसे लाललालनेत्र कर उन्होंने
फिर त्रिशूलसे उसपर आघात किया दुरात्मा महिषके संग शंकरको समरमें प्रवृत्त हुआ देख ॥ ४४ ॥ हरिभी प्रहारजनित मूर्च्छा छोड़कर वहां आये महावीर्य देवदेव
चक्रधर हरि और शूलधारी शंकरको संग्रामकी वासनासे समरस्थलमें उपस्थित हुआ देख महिष अतिशय कुपित हुआ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब महिष देहधारण कर
अपनी विशाल पूँछ इधर उधर संचालित करता हुआ समरकी इच्छासे उनके सन्मुख हुआ ॥ ४७ ॥ उस महाकाय भयानक महिषने दोनों सींग कम्पित करके

महिषंतरसाऽभ्येत्यप्राहरद्रोषसंयुतः॥सोऽपिशक्तिमुमोचाऽथशंकरस्योरसिस्फुटम् ॥४२॥ जगर्जसचदुष्टात्मावंचयित्वात्रिशूलकम्॥शंकरोऽपितदापीडां
नप्रापोरसिताडितः ॥ ४३ ॥ तंजघानत्रिशूलेनकोपादरुणलोचनः ॥ संलग्नंशंकरंदृष्ट्वामहिषेणदुरात्मना ॥ ४४ ॥ आजगामहरिस्तावत्त्यक्त्वामूर्च्छांप्र
हारजाम् ॥ महिषस्तुतदावीक्ष्यसंप्राप्तौहरिशंकरौ ॥४५॥ युद्धकामौमहावीर्यौचक्रशूलधरौवरौ ॥ कोपयुक्तोबभूवाऽसौदृष्ट्वातौसमुपागतौ ॥ ४६ ॥ जगा
मसंमुखस्तावत्संग्रामार्थंमहाभुजः॥माहिषंवपुरास्थायधुन्वन्पुच्छंसमुत्कटम् ॥४७॥चकारभैरवंनादंत्रासयन्नमरानपि॥ धुन्वञ्छृंगेमहाकायोदारुणोजलदो
यथा ॥ ४८ ॥ शृंगाभ्यांपार्वताञ्छृंगांश्चिक्षेपभृशमुत्कटान् ॥ दृष्ट्वातौतुमहावीर्यौदानवंदेवसत्तमौ ॥ ४९ ॥ चक्रतुर्बाणवृष्टिंचदानवोपरिदारुणाम् ॥
कुर्वाणौबाणवृष्टिंतौदृष्ट्वाहरिहरौहरिः ॥ ५० ॥ चिक्षेपगिरिशृंगंतुपुच्छेनाऽऽवृत्त्यदारुणम् ॥ आपतंतंगिरिंवीक्ष्यभगवान्सात्वतांपतिः ॥ ५१ ॥ विशिखैः
शतधाचक्रेचक्रेणाऽऽशुजघानतम् ॥ हरिचक्राऽऽहतःसंख्येमूर्च्छामापसदैत्यराट् ॥ ५२ ॥ उत्तस्थौचक्षणान्नूनंमानुषंवपुरास्थितः ॥ गदापाणिर्महाघोरो
दानवःपर्वतोपमः ॥ ५३ ॥ मेघनादंननादोच्चैर्भीषयन्नमरानपि ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्विष्णुःपांचजन्यंसमुज्ज्वलम् ॥ ५४ ॥

मेघकी समान इसप्रकार गंभीर गर्जना करी कि उससे देवतालोगभी त्रसित हुए ॥ ४८ ॥ वह दोनों सींगोंसे विशाल२ पर्वतके शिखरोंका निरन्तर निक्षेप करनेलगा
महावीर्य देवसत्तम हरि और हर दानवको देखकर ॥ ४९ ॥ दारुण बाणोंकी वर्षा करने लगे. हरि और हर दोनोंको बाणवृष्टि करता देख ॥ ५० ॥ महिष पूँछसे
दारुण गिरिशृंग लपेटकर चलाने लगा. पर्वतके शिखरको गिरता हुआ देखकर भगवान् हरिने ॥ ५१ ॥ बाणोंसे उसके शतखंड (सौटुकड़े) करके तत्काल चक्रसे
उसको प्रहार किया. हरिके चक्रसे आहत होकर दानवपति रणमें मूर्छित होगया॥ ५२ ॥ किन्तु क्षणमात्रमें ही फिर मनुष्यदेह धारण करके उठा तब पर्वतकी समान वह
भयंकर दानव हाथमें गदा लेकर ॥ ५३ ॥ देवताओंको भय दिखाता मेघकी समानगंभीर शब्दसे गर्जने लगा, भगवान् विष्णुनेभी उस शब्दके सुनतेही समुज्ज्वल पाञ्च

जन्य शंख लेकर ॥ ५४ ॥ पूर्ण कर गंभीर और घोरतर शब्द किया शंखके उस शब्दको सुनकर दानवलोग भयसे चकित हुए ॥ ५५ ॥ तथा तपोधन ऋषि और देवता आनन्दित हुए ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! उस समय महिषने दानवोंको व्याकुल देखकर महिषरूप छोड़ सिंहमूर्त्ति धारण की॥ १ ॥ और अपनी विशाल जटाओंको विस्तार कर घोर गर्जना करता हुआ देवताओंकी सेनामें टूटा, तब देवता उसके तीक्ष्ण नख देखकर अत्यन्त त्रसित हुए ॥ २ ॥ उस सिंहरूपधारी महिषासुरने प्रथम तो गरुडके इसप्रकार नखाघात किया कि, उसका शरीर रुधिरस्रावसे प्लावित होगया इसके पीछे फिर विष्णुके बाहुमूलमें नखसे प्रहार किया ॥ ३ ॥ वासुदेव हरिने भी उस दानवको देख क्रोधसे चक्र उद्यत कर उसको मारनेकी इच्छासे वेगसहित

पूरयामासतरसाशब्दंकर्तुंखरस्वरम् ॥ तेनशब्देनशंखस्यभयत्रस्ताश्चदानवाः ॥ ५५ ॥ बभूवुर्मुदितादेवाऋषयश्चतपोधनाः ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेम हा०पं०षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ असुरान्महिषोदृष्ट्वाविषण्णमनसस्तदा॥त्यक्त्वातन्माहिषंरूपंबभूवमृगराडसौ ॥१॥ कृत्वानादंमहाघो रंविस्तार्यचमहासटाम् ॥ पपातसुरसेनायांत्रासयन्नखदर्शनैः ॥ २ ॥ गरुडंचनखाऽऽघातैःकृत्वारुधिरविप्लुतम् ॥ जघानचभुजेविष्णुंनखाऽऽघातेनकेस री ॥ ३ ॥ वासुदेवोऽपितंदृष्ट्वाचक्रमुद्यम्यवेगवान् ॥ हंतुकामोहरिःकाममवापाऽऽशुक्रुधान्वितः ॥४॥ यावद्धयरिपुंवेगाच्चक्रेणाभिजघानतम् ॥ तावत्सो ऽतिबलःशृंगीशृंगाभ्यांन्यहनद्धरिम् ॥ ५ ॥ वासुदेवोविषाणाभ्यांताडितोरसिविह्वलः ॥ पलायनपरोवेगाज्जगामभुवनंनिजम् ॥ ६ ॥ गतंदृष्ट्वाहरिंकामं शंकरोपिभयान्वितः ॥ अवध्यंतंपरंमत्वाययौकैलासपर्वतम् ॥ ७ ॥ ब्रह्माऽपिचनिजंधामत्वरितःप्रययौभयात् ॥ मघवावज्रमालंब्यतस्थावाजौमहाब लः ॥ ८ ॥ वरुणःशक्तिमालंब्यधैर्यमालंब्यसंस्थितः ॥ यमोपिदंडमादायतत्तःसमरतत्परः ॥ ९ ॥ ततोयक्षाधिपःकामंबभूवरणतत्परः ॥ पावकःशक्ति मादायतत्राऽभूद्युद्धमानसः ॥ १० ॥ नक्षत्राधिपतिःसूर्यःसमवेतौस्थितावुभौ ॥ वीक्ष्यतंदानवश्रेष्ठंयुद्धायकृतनिश्चयौ ॥ ११ ॥

आक्रमण किया ॥ ४ ॥ जैसेही हरिने महिष दानवपर अतिवेगसे चक्रप्रहार किया, वैसेही उस महाबलवान् दानवने भी तत्काल सिंहरूप त्याग महिषरूप धारणकर दोनों सींगोंसे हरिपर आघात किया ॥ ५ ॥ वासुदेव सींगोंसे वक्षस्थलमें ताडित हो विह्वल चित्तसे वेगसहित वहांसे अपने वैकुण्ठ धाममें चलेगये ॥ ६ ॥ हरिके चले जानेपर शंकरभी उसको नितान्त अवध्य विचार कर भयसे कैलास पर्वतको चले गये ॥ ७ ॥ ब्रह्माभी भयके कारण शीघ्र अपने आलयकी ओर दौड़े किन्तु महाबलवान् वासव धैर्य अवलम्बन करके समरमें स्थिर रहे ॥ ८॥ वरुण शक्ति ले धैर्य धारण कर समरकी प्रतीक्षामें रहे; यमभी दंडग्रहण किये समरमें तत्पर होकर रहे ॥ ९ ॥ इसी प्रकार यक्षपति कुवेरभी अतिशय संग्राममें व्यग्र रहे, पावक शक्ति ग्रहण करके वहां युद्धकी अभिलाषसे स्थित रहे ॥ १० ॥ दानवश्रेष्ठ महि

षको देखकर नक्षत्रपति चन्द्र और सूर्य दोनों एकत्र युद्धके लिये कृतनिश्चय होकर रहे॥ ११ ॥ हे महाराज ! इसी अवसरमें दानवसैन्य कुपित होकर कठिन विषहरकी समान बाण वर्षण करती हुई चारों ओरको दौड़ी ॥ १२ ॥ तब दानवराजभी महिषरूप धारण करके उसमें स्थिति करने लगा इसी समय देवता और दानवोंके योधाओंका तुमुलशब्द उत्थित हुआ ॥ १३ ॥ देवता और दानवसेनाके घोरतर संग्राम समयमें मेघके शब्दकी समान ज्याघात (प्रत्यंचाशब्द) का और करतला घातका शब्द समुत्थित होने लगा ॥ १४ ॥ ॥ तिस समय महाबल दानव मदगर्वित होकर सींगोंसे पहाड़ोंके शिखर चलाकर देवताओंका संहार करने लगा ॥ १५॥ वह अति अद्भुत महिष क्रोधयुक्त होकर किसी किसी देवताको खुरप्रहारसे और किसी किसीको पूँछके घुमानेसे मारने लगा ॥ १६ ॥ तब देवता और गंधर्व बहुत

एतस्मिन्नंतरेक्रुद्धंदैत्यसैन्यंसमभ्यगात् ॥ विसृजन्बाणजालानिक्रूराहिसदृशानिच॥१२॥कृत्वाहिमाहिषंरूपंभूपतिःसंस्थितस्तदा ॥ देवदानवयोधानांनि नादस्तुमुलेऽभवत् ॥ १३ ॥ ज्याघातश्चतलाघातोमेघनादसमोभवत् ॥ संग्रामेसुमहाघोरेदेवदानवसेनयोः ॥ १४ ॥ शृंगाभ्यांपार्वताञ्छृंगांश्चिक्षेपचम हाबलः ॥ जघानसुरसंघांश्चदानवोमदगर्वितः ॥ १५ ॥ खुरघातैस्तथादेवान्पुच्छस्यभ्रमणेनच ॥ सजघानरुषाविष्टोमहिषःपरमाऽद्भुतः ॥ १६॥ ततोदे वाःसगंधर्वाभयमाजग्मुरुद्यताः ॥ मघवामहिषंदृष्ट्वापलायनपरोऽभवत् ॥१७॥ संगरंसंपरित्यज्यगतेशक्रेशचीपतौ ॥ यमोधनाधिपःपाशीजग्मुःसर्वेभया ऽऽतुराः॥ १८॥महिषोऽतिजयंमत्वाजगामस्वगृहंततः ॥ ऐरावतंगजंप्राप्यत्यक्तमिंद्रेणगच्छता ॥१९॥ तथोच्चैःश्रवसंभानोःकामधेनुंपयस्विनीम् ॥ स्वसै न्यसंवृतस्तूर्णंस्वर्गंगंतुंमनोदधे ॥२०॥ तरसादेवसदनंगत्वासमहिषासुरः ॥ जग्राहसुरराज्यंवैत्यक्तंदेवैर्भयाऽऽतुरैः ॥२१॥ इंद्राऽऽसनेतथारम्येदानवःसमु पाविशत् ॥ दानवान्स्थापयामासदेवानांस्थानकेपुसः ॥ २२ ॥ एवंवर्षशतंपूर्णंकृत्वायुद्धंसुदारुणम् ॥ अवापैंद्रपदंकामंदानवोमदगर्वितः ॥ २३ ॥

डरे, यही क्या ? बरन महिषको देखतेही इन्द्रको भी भागना पड़ा ॥ १७ ॥ जब शची पति इन्द्र संग्राम त्यागकर चलेगये तब यम, कुबेर और वरुण, यह भी सब भयसे आर्त हो रणस्थल छोड़कर चले गये ॥ १८ ॥ इन्द्र ऐरावत हाथी और उच्चैःश्रवा घोड़ेको छोड़कर भागे थे, सुतरां महिष वह हाथी घोड़ा और भास्करकी कामदुहा गौ हरणकर महाजय हुई विचार अपने गृहको चलागया. फिर शीघ्र अपनी सेनासे युक्त हो स्वर्गधाममें जानेकी इच्छा करी ॥ १९॥२० ॥ महिषने तत्काल देवसदनमें जाय भयातुर देवताओंके छोडे हुए सुरराज्यको ग्रहण किया ॥ २१ ॥ फिर दानवराजने इन्द्रके रमणीय आसनमें बैठकर अन्यान्य दानवोंको देवताओंके स्थानमें स्थापित किया ॥ २२ ॥ इस प्रकार पूरे सौ वर्ष युद्ध करके उस मदगर्वित दानवने अभिलषित इन्द्रपद प्राप्त किया ॥ २३ ॥

जब उसने देवताओंको स्वर्गलोकसे निकाल दिया, तब वे सब पीडित होकर उसी प्रकार बहुत वर्षपर्यन्त पर्वतकी गुहाओंमें घूमते फिरे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तब देवता दुःखी होकर रजोमूर्त्ति चतुर्मुख प्रजापति ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ २५ ॥ तिस समय वेदगर्भ जगत्पति कमलासनपर आसीन थे उनके चारोंओर वेदवेदांगके पारगामी शान्तचित्त उनके मनसे प्रगट मरीचि इत्यादि मुनिगण ॥ २६ ॥ सिद्धगण, गन्धर्वगण, किन्नरगण, चारणगण, उरगगण और पन्नगगण, दण्डायमान थे. इसी अवसरमें वे भयभीत देवतालोग देवदेव जगद्गुरु ब्रह्माका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २७ ॥ देवता बोले हे कमलयोने ! आप जगत्का संपूर्ण क्लेश निवारण करते हैं किन्तु दानवपतिसे पराजित होकर हम स्थानभ्रष्ट हुए हैं, अधिक क्या ? हमलोग पर्वतके गुहाओंमें वास करके अत्यन्त क्लेश भोग करते हैं, तो हमारी यह अवस्था देखकर भी

निर्जरानिर्गतानाकात्तेनसर्वेऽतिपीडिताः ॥ एवंबहूनिवर्षाणिबभ्रमुर्गिरिगह्वरे॥२४॥श्रांताःसर्वेतदाराजन्ब्रह्माणंशरणंययुः ॥ प्रजापतिंजगन्नाथंरजोरूपंचतुर्मुखम् ॥ २५ ॥ पद्मासनंवेदगर्भंसेवितंमुनिभिःस्वजैः ॥ मरीचिप्रमुखैःशांतैर्वेदवेदांगपारगैः ॥ २६ ॥ किन्नरैःसिद्धगंधर्वैश्चारणोरगपन्नगैः ॥ तुष्टुवुर्भयभीतास्तेदेवदेवंजगद्गुरुम् ॥ २७ ॥ देवाऊचुः ॥ धातःकिमेतदखिलाऽऽर्तिहरांबुजन्मजन्माऽभिवीक्ष्यनदयांकुरुषेसुरान्यत् ॥ संपीडितान्रणजितानसुराधिपेनस्थानच्युतान्गिरिगुहाकृतसन्निवासान् ॥ २८ ॥ पुत्रान्पिताकिमपराधशतैःसमेतान्संत्यज्यलोभरहितःकुरुतेऽतिदुःस्थान् ॥ यस्त्वंसुरांस्तवपदांबुजभक्तियुक्तान्दैत्यार्दितांश्चकृपणान्यदुपेक्षसेऽद्य ॥ २९ ॥ अमरभुवनराज्यंतेनभुक्तंनितांतंमखहविरपियोग्यंब्राह्मणैराददाति ॥ सुरतरुवरपुष्पंसेवतेऽसौदुरात्माजलनिधिनिधिभूतांगामसौसेवतेताम् ॥ ३० ॥ किंवागृणीमःसुरकार्यमद्भुतंजानासिदेवेशसुराऽरिचेष्टितम् ॥ ज्ञानेनसर्वंत्वमशेषकार्यवित्तस्मात्प्रभोतेप्रणताःस्मपादयोः ॥ ३१ ॥ यत्राऽपिकुत्राऽपिगतान्सुरानसौनानाचरित्रैःखलुपापमानसः ॥ पीडांकरोत्येवसदुष्टचेष्टितस्त्राताऽसिदेवेशविधेहिशंविभो ॥ ३२ ॥

क्यों आपको दया नहीं होती ? ॥ २८ ॥ हे धातः ! पुत्र शतअपराधका अपराधी होनेपर भी लोभरहित पिता क्या उसको छोड़कर अतिशय क्लेश देते हैं ? हमलोग दानवोंसे पीडित हुए हैं और विशेषकर आपके चरणकमलोंमें एकान्तभक्ति परायण हैं किन्तु, तो भी इन दीन लोगोंकी आज आप उपेक्षा करते हैं ॥ २९ ॥ वह दुरात्मा सब प्रकारसे देवताओंका राज्य भोग करता है. यज्ञीयहविका योगभाग ब्राह्मणोंसे बलपूर्वक ग्रहण करता है. पारिजात पुष्पोंका उपभोग करता है और जलनिधिकी निधिस्वरूप कामधेनु लेकर उसका भी भोग करता है ॥ ३० ॥ असुरगणोंके अद्भुत कार्यके विषयमें और क्या कहें हे देवेश ! आप देवताओंके शत्रुओंकी सबही चेष्टा जानते हैं. क्योंकि आपको ज्ञानके द्वारा सब कार्य विदित होते हैं. अतएव हे प्रभो ! हम आपके चरणोंमें प्रणत हैं ॥ ३१ ॥ दानवपतिके चरित्र

अपवित्र और उसका मन पापसे कलुषित है. अतएव देवता जिस किसी स्थानमें जाते हैं, वहीं वह अनेक प्रकारसे क्लेश देता है. हे देवेश! आपही एकमात्र रक्षक हैं. अतएव हे विभो! हमारा मंगलविधान कीजिये ॥ ३२ ॥ आप देवताओंको अभीष्ट प्रदान करते हैं. आपही सबके आदि प्रजापति और विधाता हैं. अतएव आप यदि मंगल न करेंगे, तो हम दारुण दावानलमें पीडित हो आपको छोड़ अन्य किस अमिततेज मंगलमय शान्तिकर्त्ताकी शरणमें जाँयगे? ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! संपूर्ण देवताओंने इस प्रकार स्तव करके अत्यन्त मलीन वदनसे हाथ जोड़ प्रजापतिको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ लोकपितामह उन देवताओंकी ऐसी अवस्था देख मधुरवचनसे सुख उत्पादन कर कहने लगे ॥ ३५ ॥ हे देवताओ! मैं क्या करूं? वह दानव वर पानेके

नोचेद्वयंदावमहाऽग्निपीडिताःकंशांतिकर्तारमनंततेजसम् ॥ यामःप्रजेशंशरणंसुरेष्टंधातारमाद्यंपरिमुच्यकंशिवम् ॥ ३३ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ इतिस्तुत्वासुराःसर्वेप्रणेमुस्तंप्रजापतिम् ॥ बद्धांजलिपुटाःसर्वेविषण्णवदनाभृशम् ॥ ३४ ॥ तांस्तथापीडितान्दृष्ट्वातदालोकपितामहः ॥ उवाच श्लक्ष्णयावाचासुखंसंजनयन्निव ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किंकरोमिसुराःकामंदानवोवरदर्पितः ॥ स्त्रीवध्योऽसौनपुंवध्योविधेयंतत्रकिंपुनः ॥ ३६ ॥ व्रजामोऽद्यसुराःसर्वेकैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ शंकरंपुरतःकृत्वासर्वकार्यविशारदम् ॥ ३७ ॥ ततोव्रजामवैकुंठंयत्रदेवोजनार्दनः ॥ मिलित्वादेवकार्यंचवि मृशामोविशेषतः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वाहंसमारुह्यब्रह्माकार्यसमुच्चये ॥ देवांश्चपृष्ठतःकृत्वाकैलासाभिमुखोययौ ॥ ३९ ॥ तावच्छिवोऽपितरसाज्ञात्वाध्या नेनपद्मजम् ॥ आगच्छंतंसुरैःसार्धंनिर्गतःस्वगृहाद्बहिः ॥ ४० ॥ दृष्ट्वापरस्परंतौतुकृताऽभिवादनौभृशम् ॥ प्रणतौचसुरैःसर्वैःसंतुष्टौसंबभूवतुः ॥ ४१ ॥

कारण अत्यन्त दर्पित है. वह स्त्रीसे मरेगा. पुरुषसे नहीं मरेगा. अतएव इसका उपायक्या है? ॥ ३६ ॥ इस कारण हे देवताओ! हम सब मिलकर पर्वतश्रेष्ठ कैलासको चलें, वहांसे देवकार्यविशारद शंकरको आगे करके ॥ ३७ ॥ वैकुण्ठमें देवदेव जनार्दनके निकट चलें. वहां सब मिलित होकर देवकार्यसाधनके लिये विशेष परामर्श करेंगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कार्यकी आज्ञा करके ब्रह्मा हंसपर चढ़ देवताओंके सहित कैलासपर्वतकी ओर चले ॥ ३९ ॥ शिवभी ध्यानयोगसे देवताओंके सहित पद्मयोनिका आगमन वृत्तान्त जान अपने गृहसे शीघ्र निकल कर आगे हुए ॥ ४० ॥ फिर दोनोंका साक्षात् होनेपर शिव और ब्रह्मा आपसमें प्रणाम कर अत्यन्त संतो

षको प्राप्त हुए. तब देवताओंने उनको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ देवताओंको पृथक् पृथक् आसनप्रदान करनेपर वे उनपर बैठे. पार्वतीपतिभी अपने आसनपर विराजमान हुई ॥ ४२ ॥ वृषध्वजने ब्रह्मा और देवताओंसे कुशल प्रश्न कर उनके कैलासआनेका कारण पूँछा ॥ ४३ ॥ शिवजी बोले हे ब्रह्मन् ! इन्द्र इत्यादि देवताओंके सहित आप किस कारण इस स्थानमें आये हैं ? हे महाभाग ! इसका कारण क्या है ? उसको आप कहिये ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवदेव ! महिष दानव स्वर्गवासी देवताओंको पीडित करता है, इसकारण देवता इन्द्रके सहित भयसे त्रसित हो पर्वतोंकी गुहाओंमें भ्रमण करते हैं ॥४५॥ महिष और अन्यान्य दानव यज्ञभागका भोग करते हैं. अतएव लोकपाल पीडित होकर आज आपकी शरणागत हुए हैं ॥ ४६ ॥ हे शम्भो ! कार्यके भारी होनेसे मैं उनको आपके स्थानमें ले आया हूं.

आसनानिपृथग्दत्वादेवेभ्योगिरिजापतिः ॥ उपविष्टेषुतेष्वेवनिषसादाऽऽसनेस्वके ॥ ४२ ॥ कृत्वातुकुशलप्रश्नंब्रह्माणंवृषभध्वजः ॥ पप्रच्छकारणंदेवान्कैलासाऽऽगमनेविभुः ॥ ४३ ॥ शिवउवाच ॥ किमत्राऽऽगमनंब्रह्मन्कृतंदेवैःसवासवैः ॥ भवताचमहाभागब्रूहितत्कारणंकिल ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ महिषेणसुरेशानपीडिताःस्वर्निवासिनः ॥ भ्रमंतिगिरिदुर्गेषुभयत्रस्ताःसवासवाः ॥ ४५ ॥ यज्ञभुग्महिषोजातस्तथाऽन्येसुरशत्रवः ॥ पीडितालोकपालाश्चत्वामद्यशरणंगताः ॥ ४६ ॥ मयातेभवनंशंभोप्रापिताःकार्यगौरवात् ॥ यद्युक्तंतद्विधत्स्वाद्यसुरकार्यंसुरेश्वर ॥ ४७ ॥ त्वयिभारोऽस्तिसर्वेषांदेवानांभूतभावन ॥ व्यासउवाच ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वाशंकरःप्रहसन्निदम् ॥ ४८ ॥ वचनंश्लक्ष्णयावाचाप्रोवाचपद्मजंप्रति ॥ शिवउवाच ॥ भवतैवकृतंकार्यंवरदानात्पुराविभो ॥ ४९ ॥ अनर्थदंचदेवानांकिंकर्तव्यमतःपरम् ॥ ईदृशोबलवाञ्छूरःसर्वदेवभयप्रदः ॥ ५० ॥ कासमर्थावरानारीतंहंतुंमददर्पितम् ॥ नमेभार्यानतेभार्यासंग्रामंगंतुमर्हति ॥ ५१ ॥ गत्वैवंतेमहाभागेयुयुधातेकथंपुनः ॥ इंद्राणीचमहाभागनयुद्धकुशलाऽस्तिहि ॥ ५२ ॥ काऽन्याहंतुंसमर्थाऽस्तितंपापंमददर्पितम् ॥ ममेदंमतमद्यैवगत्वादेवंजनार्दनम् ॥ ५३ ॥

इसकारण हे सुरेश्वर ! जिससे देवताओंका कार्य युक्ति अनुसार सिद्ध हो आप वही कीजिये ॥ ४७॥ हे भूतभावन ! सब देवताओंका भार आपमेंही (स्थित) है. व्यासजी बोले हे राजन् ! शंकर यह बात सुन कुछेक हँसते हुए ॥४८॥ मधुरवचन द्वारा कमलयोनिसे कहने लगे. शिवजी बोले हे विभो ! वर देनेसे आपनेही पहिले ॥ ४९ ॥ देवताओंका अनर्थ कर कार्य किया है, अब फिर क्या करना चाहिये ? वह ऐसा बलवान् और शूर है कि सब देवताओंको भी उसने भय उत्पादन किया है ॥ ५० ॥ अतएव कौन ऐसी उत्तम स्त्री है, जो उस मदगर्वित दानवके मारनेमें समर्थहोगी ? तुम्हारी भार्या वा मेरी भार्या संग्राममें जानेको समर्थ नहीं होंगी ॥ ५१ ॥ और जो वे दोनों महाभागा समरमें जायँ तो वह किसप्रकार युद्ध करेंगी ? सौभाग्यशालिनी इन्द्राणी भी समरमें कुशल नहीं हैं ॥ ५२ ॥ अतएव अन्य कौन स्त्री उस पापबुद्धि

मदगर्वित दानवके मारनेमें समर्थ होगी? अतएव मेरा अभिप्राय यही है कि अभी जनार्दनके समीप जाय ॥ ५३ ॥ उनका स्तव कर देवकार्यके निमित्त शीघ्र उनको नियोजित करैं. विष्णु बुद्धिमानोंमें अग्रणी हैं, इस कारण सब प्रयोजन संपादन विषयमेंसमर्थ हैं ॥ ५४ ॥ वासुदेवके सहित मिलित होकर कार्यका विचार करना चाहिये, वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे परामर्श स्थिर कर कार्यसाधन करेंगे॥ ५५॥ व्यासजी बोले हेराजन्! ब्रह्मादि सुरसत्तमगण रुद्रके इसप्रकार वचन सुन "यही हो" ऐसा कहकर शिवके सहित शीघ्र उठे ॥ ५६ ॥ तिस समय कार्यसिद्धिके निमित्त सब प्रसन्नचित्त हो उत्तम शकुन देखकर अपने अपने वाहनपर चढ़ विष्णुपुरीको चले ॥ ५७ ॥ तब शीतस्पर्श सुगंधित वायु अनुकूलभावसे मन्द मन्द बहने लगा और पक्षीगण मार्गमें सर्वत्र ही मंगलध्वनि करने लगे ॥ ५८ ॥ आकाश निर्मल और सब दिशाएं निर्मल

स्तुत्वातंदेवकार्यायप्रेरयामःसुसत्वरम्॥ सोऽतिबुद्धिमतांश्रेष्ठोविष्णुःसर्वार्थसाधने॥५४॥मिलित्वावासुदेवेनकर्तव्यंकार्यचिंतनम्॥प्रपंचेनचबुद्ध्यासंवि धास्यतिसाधनम् ॥ ५५ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिरुद्रवचःश्रुत्वाब्रह्माद्याःसुरसत्तमाः ॥ उत्थितास्तेतथेत्युक्त्वाशिवेनसहसत्वराः ॥५६ ॥ स्वकीयैर्वाहनैः सर्वेययुर्विष्णुपुरंप्रति ॥ मुदिताःशकुनान्दृष्ट्वाकार्यसिद्धिकराञ्छुभान् ॥ ५७ ॥ ववुर्वाताःशुभाःशांतासुगंधाःशुभशंसिनः ॥ पक्षिणश्चशिवावाचस्तत्रो चुःपथिसर्वशः ॥ ५८ ॥ निर्मलंचाऽभवद्व्योमदिशश्चविमलास्तथा ॥ गमनेतत्रदेवानांसर्वंशुभमिवाभवत् ॥५९॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुरा णे पंचमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ तरसातेऽथसंप्राप्यवैकुंठंविष्णुवल्लभम् ॥ ददृशुःसर्वशोभाढ्यंदिव्यगृहविराजितम् ॥ १ ॥ स रोवापीसरिद्भिश्चसंयुतंसुखदंशुभम् ॥ हंससारसचक्राह्वैःकूजद्भिश्चविराजितम् ॥ २ ॥ चंपकाऽशोककह्लारमंदारबकुलाऽऽवृतैः ॥ मल्लिकातिलकाऽऽम्रा तयुतैःकुरबकादिभिः ॥ ३ ॥

हुईं, अधिक क्या देवताओंके गमनसमयमें समस्तही शुभकर होगया ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले देवता शीघ्रतासहित विष्णु पालित वैकुण्ठमें पहुँच उसका अनिर्वचनीय सौन्दर्य देखने लगे कि, स्थान स्थानमें शोभायमान गृह विराजमान हैं ॥ १ ॥ उनके सन्मुख सरोवर और दीर्घिका कह्लार पुष्पसे शोभित हैं, कहीं नदियें बह रहीं हैं, तिनमें हंस सारस और चक्रवाकादि जलचर पक्षीगण श्रवणमनोहर ध्वनि करते करते विचरण करते हैं॥ २॥ कहीं मनोहर उपवन हैं. उनमें चंपक, अशोक, मन्दार, बकुल, आम्रातक, तिलक, कुरबक और मल्लिका इत्यादि पुष्पतरु शोभायमान थे ॥ ३ ॥

तहां स्थान स्थानमें कोकिल और भ्रमरगण मनोहर झङ्कार शब्द और मोर नृत्य करतेथे ॥ ४ ॥ मध्यस्थलमें हरिका गगनस्पर्शी प्रासाद (महल) उसके सब दूसर महल मनोहर स्थान स्थानमें रत्नखचित और विचित्र चित्रसे अलंकृत थे उसके मध्य मणिमय आसनपर विष्णु विराजमान हैं, सुनन्द और नन्दन इत्यादि पार्षदगण उनके ऐसे भक्त हैं कि, उनके चित्तकी वृत्ति अन्य कहींभी आसक्त नहीं होती. अतएव वे एकान्तचित्तसे उनकी भक्तिपरायण होकर उनका स्तव करते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ उस स्थानमें अप्सराओंके नृत्य और देवगंधर्व तथा किन्नरगण मनोहर मधुर स्वरसे संगीत करते हैं ॥ ७ ॥ जो वेदपाठमें आदर करते हैं. ऐसे शान्त स्वभाव मुनि वेदसूक्तपाठ करके उनका स्तव करते हैं ॥ ८ ॥ सुन्दराकृति द्वारपाल जय और विजय स्वर्णयष्टि धारण करके द्वारपर स्थित हैं. देवताओंने विष्णु

कोकिलारावसन्नादैः शिखंडैर्नृत्यरंजितैः ॥ भ्रमरारावरम्यैश्च दिव्यैरुपवनैर्युतम् ॥ ४ ॥ सुनंदनंदनाद्यैश्च पार्षदैर्भक्तितत्परैः ॥ संस्तुवद्भिर्युतं भक्तैरनन्यभववृत्तिभिः ॥ ५ ॥ प्रासादै रत्नखचितैः कांचनैश्चित्रमंडितैः ॥ अभ्रंलिहैर्विराजद्भिः संयुतं शुभसद्मकैः ॥ ६ ॥ गायद्भिर्देवगंधर्वैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः ॥ रंजितं किन्नरैः शश्वद्रक्तकंठैर्मनोहरैः ॥ ७ ॥ मुनिभिश्च तथा शांतैर्वेदपाठकृताऽऽदरैः ॥ स्तुवद्भिः श्रुतिसूक्तैश्च मंडितं सदनं हरेः ॥ ८ ॥ तेचविष्णुगृहं प्राप्य द्वारपालौ शुभाऽऽकृती ॥ वीक्ष्योचुर्जयविजयौ हेमयष्टिधरौ स्थितौ ॥ ९ ॥ गत्वैकोऽप्युभयोर्मध्ये निवेदयतु संगतान् ॥ द्वारस्थान्ब्रह्मरुद्रादीन्विष्णुदर्शनलालसान् ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ विजयस्तद्वचः श्रुत्वा गत्वाऽथ विष्णुसन्निधौ ॥ सर्वान्समागतान्देवान्प्रणम्योवाच सत्वरः ॥ ११ ॥ विजयउवाच ॥ देवदेव महाराज रमाकांत सुरारिहन् ॥ समागताः सुराः सर्वे द्वारि तिष्ठंति वै विभो ॥ १२ ॥ ब्रह्मारुद्रस्तथेंद्रश्च वरुणः पावको यमः ॥ स्तुवंति वेदवाक्यैस्त्वाममरा दर्शनाऽर्थिनः ॥ १३ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्विजयस्य रमापतिः ॥ निर्जगाम गृहात्तूर्णं सुरान्समधिकोत्सवः ॥ १४ ॥

पुरके समीप पहुँच उनका अवलोकन करके कहा ॥ ९ ॥ तुम दोनोंमेंसे एक जन विष्णुके समीप जाकर निवेदन करो कि, ब्रह्मा और रुद्रादि देवता मिलित होकर आपके दर्शनकी लालसासे द्वारपर खड़े हैं ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! विजयने उनका वचन सुन शीघ्र विष्णुके समीप जाय प्रणाम कर संपूर्ण देवताओंके आनेका वृत्तान्त निवेदन करके कहा ॥ ११ ॥ हे महाराज! संपूर्ण सुरशत्रु संहार करनेसे आप संपूर्ण देवताओंके परमाराध्य देवता हैं. अतएव हे रमानाथ ! इस समय सब देवता आनकर आपके द्वारपर खड़े हुए हैं ॥ १२ ॥ हे विभो ! ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, पावक और यम इत्यादि देवतालोग आपके दर्शनकी लालसासे वेद वाक्य द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! रमापति विष्णु विजयके वचन सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए और देवताओंसे भेंट करनेके लिये

उत्सुक होकर तत्काल गृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ तब हरिने उनके निकट जाय द्वारपर खड़े हुए देवताओंको अतिदुःखी तथा श्रमसे कातर देख प्रीतिपूर्ण अनुकूल दृष्टिसे मनको प्रसन्न किया ॥ १५ ॥ तिसकाल संपूर्ण देवता उन वेदविदित दैत्यारि देवदेव जगन्नाथको प्रणाम करके स्तव करने लगे ॥ १६ ॥ देवता बोले हे देवदेव ! आप सृष्टि स्थिति और संहारकारक होकरभी दयाके सागर और जगत्के एकमात्र आश्रय हैं. हे महाराज ! हम आपकी शरणागत हैं, इस कारण आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥ देवताओंका इस प्रकार स्तव सुनकर विष्णुने कहा हे देवताओ ! तुम आसनपर बैठकर अपना अपना कुशलवृतान्त कहो, सबके मिलित होकर इस स्थानमें आनेका क्या कारण है ? ॥ १८ ॥ तुम दीनचित्त दुःखसे व्याकुल और इतने चिन्तातुर क्यों हुए हो ? हे देवताओ ! तुम किस कार्यके लिये ब्रह्मा और रुद्रके

गत्वावीक्ष्यहरिर्देवान्द्वारस्थाञ्छ्रमकर्शितान्॥प्रीतिप्रवणयादृष्ट्याप्रीणयामासदुःखितान्॥१५॥प्रणेमुस्तेसुराःसर्वेदेवदेवंजनार्दनम्॥तुष्टुवुश्चसुरारिंतंवा ग्भिर्वेदविनिश्चितम् ॥ १६ ॥ देवाऊचुः ॥ देवदेवजगन्नाथसृष्टिस्थित्यंतकारक ॥ दयासिंधोमहाराजत्राहिनःशरणाऽऽगतान् ॥ १७॥ विष्णुरुवाच ॥ विशं तुनिर्जराःसर्वेकुशलंकथयंतुवः ॥ आसनेषुकिमर्थंवैमिलिताः समुपागताः ॥ १८॥ चिंताऽऽतुराःकथंजाताविषण्णादीनमानसाः ॥ ब्रह्मरुद्रेणसहिताःका र्यंप्रब्रूतसत्वरम् ॥ १९ ॥ देवाऊचुः ॥ महिषेणमहाराजपीडिताःपापकर्मणा ॥ असाध्येनाऽतिदुष्टेनवरदृप्तेनपापिना ॥ २० ॥ यज्ञभागानसौभुंक्तेब्राह्मणैः प्रतिपादितान् ॥ अमरागिरिदुर्गेषुभ्रमंतिचभयाऽऽतुराः ॥ २१ ॥ वरदानेनधातुःसदुर्जयोमधुसूदन ॥ तस्मात्त्वांशरणंप्राप्ताज्ञात्वातत्कार्यगौरवम् ॥२२॥ समर्थोऽसिसमुद्धर्तुंदैत्यमायाविशारद ॥ कुरुकृष्णवधोपायंतस्यदानवमर्दन ॥ २३ ॥ धात्रातस्मैवरोदत्तोह्यवध्योऽसिनरैःकिल ॥ कास्त्रीत्वेवंविधाबाला याहन्यात्तंशठंरणे ॥ २४ ॥

सहित मिलित होकर इस स्थानमें आये हो ? सो शीघ्र कहो ॥ १९ ॥ देवता बोले हे महाराज ! महिषासुर अति दुष्टस्वभाव और विशेषकर सदाही पापकार्यमें निरत है, अब वह पापिष्ठ वर पानेके कारण अत्यन्त उद्धत होकर हमको निरन्तर क्लेश देता है ॥ २० ॥ अधिक क्या ? ब्राह्मणलोग जो यज्ञ संपन्न करते हैं वह उन सब यज्ञोंका भाग भोग करता है, अतएव हम उसके भयसे कातर होकर गिरिदुर्गमें भ्रमण करते हैं ॥ २१ ॥ हे मधुसूदन ! विधाताके वरदानसे वह दुर्जय है, इसलियेही हम उस कार्यके भारी विचार कर आपकी शरणमें आये हैं ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! आपही दैत्योंकी संपूर्ण माया जानते हैं कारण आपही दानवोंका विनाश करते हैं, अत एव इस विपदसे हमको उद्धार करनेमें आपही समर्थ हैं, आपही उसके वधका उपाय विचारिये ॥ २३ ॥ विधाताने उसको यह वर दिया है कि, तू पुरुषसे अवध्य होगा,

अतएव उस शठको समरमें निहत करसके, ऐसी बलशालिनी स्त्री कौन है ? ॥ २४ ॥ महिष वरदानके बलसे अति दुरात्मा हुआ है. अतएव उमा, लक्ष्मी, शची, वा विद्या कौन स्त्री उसको मार सकेगी ? ॥ २५ ॥ अतएव हे भक्तवत्सल ! आपही भुवनके रक्षक हैं इस समय बुद्धिसे भलीभाँति इसकी मृत्युका कारण विचारकर जिससे देवताओंका कार्य सिद्ध हो, वही कीजिये ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! विष्णुने इस प्रकार उनके वचन सुनकर हँसते हँसते उनसे कहा, मैंने पहिले संग्राम किया था, किन्तु यह असुर उसमेंभी न मरा ॥ २७ ॥ यदि इस समय देवताओंकी निजनिज शक्तिके अंश और रूपसे कोई वरारोहा रमणी उत्पन्न हो तो वह ललना बल पूर्वक उसका विनाश करे ॥ २८ ॥ हम लोगोंकी शक्तिके अंशसे नारीके निर्मित होनेपर वह शतशत माया विशारद बलदर्पित महिषका संहार करसकेगी ॥ २९ ॥

उमामावाशचीविद्याकासमर्थाऽस्यघातने॥महिषस्याऽतिदुष्टस्यवरदानबलादपि॥२५॥विचिंत्यबुद्ध्यायत्सर्वंमरणस्याऽस्यकारणम्॥कुरुकार्यंचदेवानां भक्तवत्सलभूधर ॥२६॥ व्यासउवाच ॥ श्रुत्वातद्वचनंविष्णुस्तानुवाचहसन्निव॥युद्धंकृतंपुराऽस्माभिस्तथाऽपिनमृतोह्यसौ॥२७॥ अद्यसर्वसुराणांवैतेजोभीरूपसंपदा ॥ उत्पन्नाचेद्वरारोहासाहन्यात्तंरणेबलात् ॥२८॥ हयारिंवरदृप्तंचमायाशतविशारदम् ॥ हंतुंयोग्याभवेन्नारीशक्त्यंशैर्निर्मिताहिनः ॥२९॥ प्रार्थयंतुचतेजोंशान्स्त्रियोऽस्माकंतथापुनः ॥ उत्पन्नैस्तैश्चतेजोंशैस्तेजोराशिर्भवेद्यथा ॥ ३० ॥ आयुधानिवयंदद्मःसर्वेरुद्रपुरोगमाः ॥ तस्यैसर्वाणिदिव्यानित्रिशूलादीनियानिच ॥ ३१ ॥ सर्वाऽऽयुधधरानारीसर्वतेजःसमन्विता ॥ हनिष्यतिदुरात्मानंतंपापंमदगर्वितम् ॥ ३२ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तवतिदेवेशेब्रह्मणोवदनात्ततः ॥ स्वयमेवोद्भभौतेजोराशिश्चातीवदुःसहः ॥ ३३ ॥ रक्तवर्णंशुभाकारंपद्मरागमणिप्रभम् ॥ किंचिच्छीतंतथाचोष्णंमरीचिजालमंडितम् ॥ ३४ ॥

अतएव तुमलोग अपनी अपनी स्त्रीके संग मिलकर तैजस अंशके निकट प्रार्थना करो कि, उत्पन्न हुआ सब तेज मिलकर स्त्रीरूप हो ॥ ३० ॥ तब रुद्रादि देवताओंके त्रिशूल इत्यादि जो सब दिव्य अस्त्र हैं; हम सब वह सब आयुध उनको देंगे ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त वह नारी संपूर्ण तेजःपुंजसे परिपूर्ण होकर संपूर्ण आयुध धारणपूर्वक मदगर्वित दुष्टस्वभाव पापिष्ठ असुरको विनाश करेगी ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले देवेश विष्णुके इस प्रकार कहतेही ब्रह्माजीके मुखमण्डलसे स्वयंही अतिदुःसह तेजोराशि प्रादुर्भूत हुई ॥ ३३ ॥ यह तेज पद्मरागमणिके समान रक्तवर्ण, कुछेक शीतल और उष्ण सुंदर अवयव (अंग) युक्त और मरीचिमालासे मण्डित था ॥ ३४ ॥

महाराज ! विपुलविक्रम महात्मा हरि और हरभी उस निकले हुए तेजको देखकर आश्चर्यमें हुए ॥ ३५ ॥ इसके पीछे फिर शंकरके शरीरसे जो अतिअद्भुत विपुलतेज निकला वह रौप्यवर्ण, भयानक, दुःसह और अत्यन्त कष्टसेभी नहीं देखा जाता था ॥ ३६ ॥ वह पर्वतके शिखरकी समान विशाल और दूसरे तमोगुणकी समान भयंकर था, उसको देखनेसे देवताओंको आश्चर्य और दैत्योंको भय उदय हुआ ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त नीलवर्ण सत्वगुणयुक्त महाद्युति अपर तेजोराशिके समान विष्णुके शरीरसे निकली ॥ ३८ ॥ फिर सुरपति वासवके शरीरसे जो दुःसह तेज निकला. वह अतिसुंदर और त्रिगुणमय था, अतएव वह विचित्रवर्ण था ॥ ३९ ॥ कुबेर, यम अग्नि और वरुणके शरीरसे एकवारही महत् तेजःपुञ्ज प्रादुर्भूत हुआ ॥ ४० ॥ और अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी अत्यन्त भास्वर (प्रकाशमान) तेज

निःसृतंहरिणादृष्टंहरेणचमहात्मना ॥ विस्मितौतौमहाराजबभूवतुरुरुक्रमौ ॥ ३५ ॥ शंकरस्यशरीराच्चुनिःसृतंमहदद्भुतम् ॥ रौप्यवर्णमभूत्तीव्रंदुर्दर्शंदारुणंमहत् ॥ ३६ ॥ भयंकरंचदैत्यानांदेवानांविस्मयप्रदम् ॥ घोररूपंगिरिप्रख्यंतमोगुणमिवाऽपरम् ॥ ३७ ॥ ततोविष्णुशरीरात्तुतेजोराशिमिवाऽपरम् ॥ नीलंतत्त्वगुणोपेतंप्रादुरासमहाद्युति ॥ ३८ ॥ ततश्चेंद्रशरीराच्चचित्ररूपंदुरासदम् ॥ आविरासीत्सुसंवृत्तंतेजःसर्वगुणाऽऽत्मकम् ॥ ३९ ॥ कुबेरयमवह्नीनांशरीरेभ्यःसमंततः ॥ निश्चक्राममहत्तेजोवरुणस्यतथैवच ॥४०॥ अन्येषांचैवदेवानांशरीरेभ्योऽतिभास्वरम् ॥ निर्गतंतन्महातेजोराशिरासीन्महोज्वलः ॥ ४१ ॥ तंदृष्ट्वाविस्मिताःसर्वेदेवाविष्णुपुरोगमाः ॥ तेजोराशिंमहादिव्यंहिमाचलमिवाऽपरम् ॥ ४२ ॥ पश्यतांतत्रदेवानांतेजःपुंजसमुद्भवा ॥ बभूवाति वरानारीसुंदरीविस्मयप्रदा ॥४३॥ त्रिगुणासामहालक्ष्मीःसर्वदेवशरीरजा ॥ अष्टादशभुजारम्यात्रिवर्णाविश्वमोहिनी ॥४४॥ श्वेताऽऽननाकृष्णनेत्रासंरक्ताऽधरपल्लवा ॥ ताम्रपाणितलाकांतादिव्यभूषणभूषिता ॥ ४५ ॥ अष्टादशभुजादेवीसहस्रभुजमंडिता ॥ संभूताऽसुरनाशाय तेजोराशिसमुद्भवा ॥ ४६ ॥

निकला. तिसकाल उस महातेजका समूह मिलकर अतिउज्वल होगया ॥ ४१ ॥ दूसरे हिमाचलकी समान वह महान् दिव्यतेजोराशि देखकर विष्णु इत्यादि संपूर्ण देवतालोग विस्मित हुए ॥ ४२ ॥ देवता इकटक नेत्रोंसे देख रहे थे, इसी अवसरमें उस तेजःपुंजसे एक अद्वितीय सुंदरी स्त्रीने उत्पन्न होकर उनको आश्चर्यउत्पादन किया ॥ ४३ ॥ सब देवताओंके शरीरसे जो त्रिगुण रमणीय शक्ति उत्पन्न हुई वह साक्षात् महालक्ष्मी थीं. उन त्रिवर्णधारिणी विश्वमोहिनीके अठारह बाहु ॥ ॥ ४४ ॥ मुखमण्डल श्वेतवर्ण नयन कृष्णवर्ण अधरपल्लव रक्तवर्ण और हथेली ताम्रवर्ण थीं । उन्होंने दिव्यभूषणोंसे भूषित होकर मनोहर कान्ति धारण की थी ॥ ॥ ४५ ॥ देवी परा शक्तिके हजार बाहु होनेपर भी इस समय वह असुरोंको मारनेके लिये तेजोराशिसे अठारहही भुजायुक्त होकर प्रगट हुई ॥ ४६ ॥

जन्मेजयने कहा हे मुनिसत्तम कृष्ण ! आप सब प्रकार सौभाग्यमें परिपूर्ण और सर्वज्ञ हैं अतएव आपसे कोई बात छिपी नहीं है इस कारण उनके शरीरकी उत्पत्तिका विषय विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ ४७ ॥ हे देव ! सब देवताओंका तेज क्या इकट्ठा हुआ था ? अथवा पृथक् पृथक् था और उसके सब अंग क्या तेजोमय हुए थे? ॥ ४८ ॥ मुख नासिका नेत्र इत्यादि सब अंग क्या पृथक् पृथक् तेजके विभागसे वा संपूर्ण तेजके मिलित होनेसे उत्पन्न हुए थे? ॥ ४९ ॥ शरीर और अंगकी उत्पत्ति विस्तारसहित कहिये और जिस जिस देवताओंके तैजस अंशसे जो जो अंग उत्पन्नहुएथे, यह भी कहिये ॥ ५० ॥ देवताओंने उसके अंगमें जो जो आभरण और आयुध दिया था, आपके मुखकमलसे उस वृत्तान्तके सुननेकी अत्यन्त इच्छाहै ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं आपके मुखकमलसे निकला हुआ महालक्ष्मीका चरित्ररूप

जनमेजयउवाच ॥ कृष्णदेवमहाभागसर्वज्ञमुनिसत्तम ॥ विस्तरंब्रूहितस्यास्त्वंशरीरस्यसमुद्भवम् ॥ ४७ ॥ एकीभूतंचसर्वेषांतेजःकिंवापृथक्स्थितम् ॥ अंगानिचैवतस्यास्तुसर्वतेजोमयानिवा ॥ ४८ ॥ भिन्नभागविभागेनजातान्यंगानियानितु ॥ मुखनासाऽक्षिभेदेनसर्वत्रैकभवानिच ॥ ४९ ॥ ब्रूहितद्वि स्तरंव्यासशरीरांगसमुद्भवम् ॥ बभूवयस्यदेवस्यतेजसोंऽगंयदद्भुतम् ॥ ५० ॥ आयुधाऽऽभरणादीनिदत्तानियैर्यथायथा ॥ तत्सर्वंश्रोतुकामोऽस्मित्व न्मुखांबुजनिर्गतम् ॥ ५१ ॥ नहितृप्याम्यहंब्रह्मन्सुधामयरसंपिबन् ॥ चरितंचमहालक्ष्म्यास्त्वन्मुखांभोजनिःसृतम् ॥ ५२ ॥ सूतउवाच ॥ इति तस्यवचःश्रुत्वाराज्ञःसत्यवतीसुतः ॥ उवाचमधुरंवाक्यंप्रीणयन्निवभूपतिम् ॥ ५३ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्महाभागविस्तरेणब्रवीमिते ॥ यथामति कुरुश्रेष्ठतस्यादेहसमुद्भवम् ॥ ५४ ॥ नब्रह्मानहरिःसाक्षान्नरुद्रोनचवासवः ॥ याथातथ्येनतद्रूपंवक्तुमीशःकदाचन ॥ ५५ ॥ कथंजानाम्यहंदेव्यायद्रूपं यादृशंयतः ॥ वाचारंभणमात्रंतदुत्पन्नेतिब्रवीमियत् ॥ ५६ ॥ सानित्यासर्वदेवास्तेदेवकार्यार्थसिद्धये ॥ नानारूपात्वेकरूपाजायतेकार्यगौरवात् ॥ ५७ ॥

सुधामय रसपान करके तृप्तिलाभ नहीं करसकता ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले सत्यवतीतनय श्रीवेदव्यासजी राजाके यह वचन सुन उनको मधुरवचनोंसे प्रसन्न करके कहने लगे ॥ ५३ ॥ हे कुरुवर ! आप अतिभाग्यवान् हैं, नहीं तो आपकी इस प्रकार प्रवृत्ति क्यों होती ? इस कारण अपनी बुद्धिके अनुसार विस्तारपूर्वक उनके देहकी उत्पत्तिका विषय तुमसे कहता हूं सुनो ॥ ५४ ॥ साक्षात् रुद्र, क्या ब्रह्मा, क्या हरि, क्या इन्द्र, कभी यथायोग्य उनके रूपका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५५ ॥ तुमसे पहिलेही कहा है कि, वचनके आरंभमात्रमें ही वह उत्पन्न हुई इस निमित्त देवीका रूप वा सादृश्यका विषय किसप्रकार जान सक्ता हूं ॥ ५६ ॥ वह नित्या हैं अतएव सदाही सत्स्वरूप हैं, वह एक रूपा होकर भी देवताओंका भारी कार्य सिद्ध करनेके लिये अनेकरूप धारण करती हैं ॥ ५७ ॥ स्वभावतः नटका रूप

एक होनेपरभी वह जिसप्रकार मनुष्योंका चित्त प्रसन्न करनेके निमित्त अनेक रूपमें दिखाई देता है, इसीप्रकार स्वभावसे एकरूप होकर ॥ ५८ ॥ यह निर्गुणा देवी अरूपा होकर देवताओंका कार्य संपादन करनेको अपनी लीलासे सत्वादिगुणयुक्त अनेक रूप धारण करती हैं ॥ ५९ ॥ कहीं कार्यके अनुसार कहीं कर्मानुसार धातुका अर्थ, और गुणयुक्त मुख्य तथा गौण उनके अनेक नाम होते हैं॥ ६० ॥ इस कारण हेनराधिप ! तेजसे जिसप्रकार उनका मनोहर रूप प्रगट हुआ था, मैं अपने ज्ञानानुसार आपके निकट उसीका वर्णन करता हूं ॥ ६१ ॥ शंकरके तेजसे उनका विमल श्वेतवर्ण और मनोहर मुखकमल उत्पन्न हुआ था ॥ ६२ ॥ उनके चिकने केश यमके तेजसे उत्पन्न हुए, यह केश जानुपर्य्यन्त लम्बित कुटिलाग्र कृष्णवर्ण और मनोहर थे ॥ ६३ ॥ उनके तीनों नेत्र पावकके तेजसे उत्पन्न थे. इन सबके

यथानटोरंगगतोनानारूपोभवत्यसौ ॥ एकरूपस्वभावोऽपिलोकरंजनहेतवे ॥ ५८ ॥ तथैषादेवकार्यार्थमरूपाऽपिस्वलीलया ॥ करोतिबहुरूपाणि निर्गुणासगुणानिच ॥५९॥ कार्यकर्मोऽनुसारेणनामानिप्रभवंतिहि ॥ धात्वर्थगुणयुक्तानिगौणानिसुबहून्यपि॥६०॥तद्बुद्ध्यनुसारेणप्रब्रवीमिनराधिप ॥ यथातेजःसमुद्भूतंरूपंतस्यामनोहरम् ॥६१॥ शंकरस्यचयत्तेजस्तेनतन्मुखपंकजम् ॥ श्वेतवर्णशुभाकारमजायतमहत्तरम् ॥ ६२ ॥ केशास्तस्यास्तथा स्निग्धायाम्येनतेजसाऽभवन् ॥ वक्राऽग्राश्चाऽतिदीर्घाश्चमेचवर्णामनोहराः ॥ ६३ ॥ नयनत्रितयंतस्याजज्ञेपावकतेजसा ॥ कृष्णंरक्तंतथाश्वेतंवर्णत्रयविभूषितम् ॥ ६४ ॥ वक्रेस्निग्धेकृष्णवर्णेसंध्ययोस्तेजसाभ्रुवौ ॥ जातेदेव्याःसुतेजस्केकामस्यधनुषीवते ॥ ६५ ॥ वायोश्चतेजसाशस्तौश्रवणौसंबभूवतुः॥ नाऽतिदीर्घौनाऽतिह्रस्वौदोलाविवमनोभुवः ॥ ६६ ॥ तिलपुष्पसमाऽऽकारानासिकासुमनोहरा ॥ संजातास्निग्धवर्णाचधनदस्यचतेजसा ॥ ६७ ॥ दंताः शिखरिणःश्लक्ष्णाःकुंदाग्रसदृशाःसमाः ॥ संजाताःसुप्रभाराजन्प्राजापत्येनतेजसा ॥ ६८ ॥

तारा कृष्णवर्ण, मध्यस्थल श्वेतवर्ण और प्रान्तभाग रक्तवर्णका था ॥ ६४ ॥ देवीकी कृष्णवर्ण दोनों भौं हैं दोनों संध्याओंके तेजसे उत्पन्न हुई थीं. ये दोनों भौंहें चिकनी, वक्र और कामकार्मुककी समान तेजस्कर थीं ॥ ६५ ॥ वायुके तेजसे उनके दोनों कान उत्पन्न हुए. बहुत बड़े और बहुत छोटेभी नहीं थे. कामदेवके दोला [तराजूके पल्ले] की समान अत्यन्त मनोहर थे ॥ ६६ ॥ धनदके तेजसे उनकी नासिका उत्पन्न हुई. वह तिलकुसुमकी समान स्निग्धवर्ण और अत्यन्त मनोरम थी ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! उनके सब दांत दक्षादिके तेजसे उत्पन्न हुए. वह कुन्दकुसुमकी समान श्रेणीबद्ध. मसृण (चिकने) और

द्युतिशाली थे ॥ ६८ ॥ उनके अत्यन्त रक्तवर्ण अधर अरुणके तेजसे और मनोहर ओष्ठ कार्तिकके तेजसे उत्पन्न हुए ॥ ६९ ॥ उनकी अठारह बाहु विष्णुके तेजसे और रक्तवर्ण सब अंगुलियें वसुगणोंके तेजसे उत्पन्न हुई ॥ ७० ॥ उनके उत्तम दोनों स्तन सोमके तेजसे और त्रिवलीयुक्त मध्यस्थल इन्द्रके तेजसे उत्पन्न हुआ ॥ ७१ ॥ उनकी जंघा और दोनों ऊरु वरुणके तेजसे और विपुल नितम्ब पृथ्वीके तेजसे उत्पन्न हुए ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार देवताओंके तेजःपुंजसे यह नारी उत्पन्न हुई. उनके सब अंग सुंदर, रूप अनुपम और स्वर अतीव मधुर था ॥ ७३ ॥ अधिक क्या ? उस चारुलोचनाके सभी अवयव मनोहर थे; महिषासुरसे पीड़ित देवता उस शोभना देवीको देखकर हर्षित हुए ॥ ७४ ॥ तिस समय विष्णुने देवताओंसे कहा हे देवताओ ! तुम इनको शुभदायक सब आयुध और

अधरश्चाऽतिरक्तोस्याःसंजातोरुणतेजसा ॥ उत्तरोष्ठस्तथारम्यःकार्तिकेयस्यतेजसा॥६९॥अष्टादशभुजाकाराबाहवोविष्णुतेजसा॥ वसूनांतेजसांगुल्यो रक्तवर्णास्तथाऽभवन् ॥७०॥ सौम्येनतेजसाजातंस्तनयोर्युग्ममुत्तमम् ॥ ऐंद्रेणाऽस्यास्तथामध्यंजातंत्रिवलिसंयुतम् ॥७१॥ जंघोरूवरुणस्याऽथतेजसा संबभूवतुः ॥ नितंबःसतुसंजातोविपुलस्तेजसाभुवः ॥ ७२ ॥ एवंनारीशुभाकारासुरूपासुस्वराभृशम् ॥ समुत्पन्नातथाराजंस्तेजोराजिसमुद्भवा ॥ ७३ ॥ तांदृष्ट्वासुदृष्टसर्वांगींसुदतींचारुलोचनाम् ॥ मुदंप्रापुःसुराःसर्वेमहिषेणप्रपीडिताः ॥ ७४ ॥ विष्णुस्त्वाहसुरान्सर्वान्भूषणान्यायुधानिच ॥ प्रयच्छंतुशुभान्यस्यैदेवाःसर्वाणिसांप्रतम् ॥ ७५ ॥ स्वायुधेभ्यःसमुत्पाद्यतेजोयुक्तानिसत्वराः ॥ समर्पयंतुसर्वेऽद्यदेव्यैनानाऽऽयुधानिवै ॥७६॥ ॥ इति श्रीदे०म०पंचमस्कंधेदेवीमाहात्म्येस्वरूपोद्भवोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ देवाविष्णुवचःश्रुत्वासर्वेप्रमुदितास्तदा ॥ ददुश्चभूषणान्याऽऽशुवस्त्राणिस्वायुधानिच ॥१॥ क्षीरोदश्चांबरेदिव्येरक्तेसूक्ष्मेतथाऽजरे ॥ निर्मलंचतथाहारंप्रीतस्तस्यैसुमंडितम् ॥२॥ ददौचूडामणिंदिव्यंसूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कुंडलेचतथाशुभ्रेकटकानिभुजेषुवै ॥ ३ ॥

आभरण प्रदान करो ॥ ७५ ॥ तुम सब अभी अपने अपने आयुधसे तेजःसंपन्न अनेक आयुध उत्पन्न करके देवीको समर्पण करो ॥ ७६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ८ ॥ ॥ व्यासजी बोले देवता विष्णुके वचन सुन संतुष्ट हो तत्काल भूषण, वस्त्र और अपने अपने आयुध देने लगे ॥ १ ॥ क्षीरोद समुद्रने प्रसन्न होकर उनको सुसज्जित विमल हार और अजय सूक्ष्म रक्तवर्ण दिव्य दो वस्त्र दिये ॥ २ ॥ विश्वकर्माने प्रसन्नचित्त होकर उनको मस्तकमें करोड सूर्यकी समान प्रभावशाली दिव्य चूडामणि, कर्णमें शुभ्र वर्ण कुंडल, हाथमें वलय (कंकण) ॥ ३ ॥

केयूर (बाजूबंद) और अनेकप्रकारके रत्नसे खचित कङ्कण ॥ ४ ॥ तथा सुंदर पैरोंमें शब्दायमान रत्न भूषित विमलकान्ति, सूर्यके समान उज्ज्वल, दो नूपुर दिये ॥ ५ ॥ महार्णवकी समान अगाध बुद्धिशाली उस सुरशिल्पीने उनको रमणीय ग्रीवाभूषण और परमज्योतिर्मय रत्नखचित उत्तम उत्तम सब अंगुलीयक, (अँगूठी) प्रदान किये ॥ ६ ॥ जो कमल किसी समयभी नहीं कुँभलाते गंधमें भरकर अंध हो भौंरे जिसका अनुगमन करते हैं. वरुणने वही कमलमाला और वैजयन्ती माला अर्पण करी ॥ ७ ॥ हिमवानने संतुष्ट होकर उनको नानाविध रत्न और सवारीके लिये कनकवर्ण मनोहर सिंह प्रदान किया ॥ ८ ॥ तिसकाल वह वरारोहा सर्वलक्षणसंपन्ना प्रधाना कल्याण दायिनी कामिनी दिव्यभूषणोंसे भूषित होकर सिंहके ऊपर शोभा पाने लगी ॥ ९ ॥ उस समय विष्णुनेभी अपने चक्रसे अपर एक असुरशिरोहर सहस्रार तेजोमय चक्र

केयूरान्कंकणान्दिव्यान्नानारत्नविराजितान् ॥ ददौतस्यैविश्वकर्माप्रसन्नेंद्रियमानसः ॥ ४ ॥ नूपुरौसुस्वरौकांतौनिर्मलौरत्नभूषितौ ॥ ददौसूर्यप्रतीकाशौ त्वष्टातस्यैसुपादयोः ॥५॥ तथाग्रैवेयकंरम्यंददौतस्यैमहार्णवः ॥ अंगुलीयकरत्नानितेजोवंतिचसर्वशः ॥६॥ अम्लानपंकजांमालांगंधाढ्यांभ्रमराऽनुगाम् ॥ तथैववैजयंतींचवरुणःसंप्रयच्छत ॥ ७ ॥ हिमवानथसंतुष्टोरत्नानिविविधानिच ॥ ददौचवाहनंसिंहंकनकाभंमनोहरम् ॥ ८ ॥ भूषणैर्भूषितादिव्यैःसाररा जवराशुभा ॥ सिंहारूढावरारोहासर्वलक्षणसंयुता ॥ ९ ॥ विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्यददावस्यैरथांगकम् ॥ सहस्राऽरंसुदीप्तंचदेवाऽरिशिरसांहरम् ॥ १० ॥ स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्यशंकरःशूलमुत्तमम् ॥ ददौदेव्यैसुरारीणांकृंतनंभयनाशनम् ॥ ११ ॥ वरुणश्चप्रसन्नात्माददौशंखंसमुज्ज्वलम् ॥ घोषवंतंस्वशं खात्तुसमुत्पाद्यसुमंगलम् ॥ १२ ॥ हुताशनस्तथाशक्तिंशतघ्नींसुमनोजवाम् ॥ प्रायच्छत्तुप्रसन्नात्मातस्यैदैत्यविनाशिनीम् ॥ १३ ॥ इषुधिंबाणपूर्णं चचापंचाद्भुतदर्शनम् ॥ मारुतोदत्तवांस्तस्यैदुराकर्षंखरस्वरम् ॥ १४ ॥ स्ववज्राद्वज्रमुत्पाद्यददाविंद्रोऽतिदारुणम् ॥ घंटांचैरावतात्तूर्णंसुशब्दांचाऽति सुंदराम् ॥ १५ ॥ ददौदंडंयमःकामंकालदंडसमुद्भवम् ॥ येनांतंसर्वभूतानामकरोत्कालआगते ॥ १६ ॥

उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १० ॥ शंकरने अपने शूलसे देवताओंका भयनाशक और असुरनाशक एक उत्तम शूल उत्पन्न करके देवीको दिया ॥ ११ ॥ वरुणने प्रसन्नचित्त हो अपने शंखसे मंगलमय घोररव अतिउज्वल शंख उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १२ ॥ जो शतघ्नी शक्ति यमके समान अत्यन्त वेगसे दैत्योंका विनाश करती है. हुताशनने प्रसन्नचित्तसे उनको वही शक्ति दी ॥ १३ ॥ जो अति कठिनतासे खेंचाजाय और जिसका शब्द अत्यन्त कठोर है. ऐसा अद्भुत दर्शन चाप और बाणपूर्ण तरकस अमरप्रवर मारुतने उनको दिया ॥ १४ ॥ इन्द्रने अपने वज्रसे अतिदारुण वज्र उत्पन्न करके और ऐरावतसे शब्दायमान घंटा लेकर तत्काल उनको दिया ॥ १५ ॥ कालपूर्ण होनेपर जिस दण्डसे सब भूतोंका विनाश करते हैं, यमने उसी कालदंडसे मनोहर दण्ड

उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १६ ॥ ब्रह्माजीने हर्षमें भरकर गंगाजलपूर्ण दिव्यकमण्डलु और वरुणने पाश दिया ॥ १७ ॥ हे नराधिप ! कालने खड्ग और चर्म व विश्वकर्माने उनको तीक्ष्ण परशु दिया ॥ १८ ॥ धनपतिने सुवर्णमय सुरापूर्ण पानपात्र और वरुणने दिव्य मनोहर पंकज अर्पण किया ॥ १९ ॥ जिसमें शतशत घंटा लगे हुए और जो देवताओंके शत्रुओंका विनाश करती है, विश्वकर्माने प्रसन्न होकर वही कौमोदकी गदा ॥ २० ॥ अभेद्य कवच और अनेक प्रकारके सब अस्त्र उनको दिये. दिवाकरने जगन्माताको अपनी रश्मि प्रदानकी ॥ २१ ॥ आयुध और अलंकारोंसे उनको भूषित देखकर देवता विस्मितभावसे उन त्रैलोक्यमोहिनी शिवा देवीका स्तव करने लगे ॥ २२ ॥ देवता बोले हे देवि ! तुम शिवा और कल्याणी हो, तुमको नमस्कार है, तुम्हीं शान्ति और पुष्टि हो, तुमको वारंवार नमस्कार

ब्रह्माकमंडलुंदिव्यंगंगावारिप्रपूरितम् ॥ ददावस्यैमुदायुक्तोवरुणःपाशमेवच ॥ १७ ॥ कालःखड्गंतथाचर्मप्रायच्छत्तुनराधिप ॥ परशुंविश्वकर्माचतीक्ष्णमस्यै ददावथ ॥ १८ ॥ धनदस्तुसुरापूर्णपानपात्रंसुवर्णजम् ॥ पंकजंवरुणश्चादाद्देव्यैदिव्यंमनोहरम् ॥ १९ ॥ गदांकौमोदकींत्वष्टाघंटाशतनिनादिनीम् ॥ अदात्तस्यैप्रसन्नात्मासुरशत्रुविनाशिनीम् ॥ २० ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाऽभेद्यंचदंशनम् ॥ ददौत्वष्टाजगन्मात्रेनिजरश्मीन्दिवाकरः ॥ २१ ॥ सायुधां भूषणैर्युक्तांदृष्ट्वातेविस्मयंगताः ॥ तुष्टुवुस्तांसुरादेवींत्रैलोक्यमोहिनींशिवाम् ॥ २२ ॥ देवाऊचुः ॥ नमःशिवायैकल्याण्यैशांत्यैपुष्ट्यैनमोनमः ॥ भगवत्यै नमोदेव्यैरुद्राण्यैसततंनमः ॥ २३ ॥ कालरात्र्यैतथांबायैइंद्राण्यैतेनमोनमः ॥ सिद्ध्यैबुद्ध्यैतथावृद्ध्यैवैष्णव्यैतेनमोनमः ॥ २४ ॥ पृथिव्यांयास्थितापृथ्व्यानज्ञातापृथिवींचया ॥ अंतःस्थितायमयतिवंदेतामीश्वरींपराम् ॥ २५ ॥ मायायांयास्थिताज्ञातामाययानचतामजाम् ॥ अंतःस्थिताप्रेरयतिप्रेरयित्रींनुमःशिवाम् ॥ २६ ॥

करते हैं. तुम्हीं देवी भगवती और रुद्राणी हो, हम तुमको सर्वदा नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ तुम्हीं कालरात्रि, तुम्हीं इन्द्राणी, तुम्हीं अम्बा हो, तुमको वारंवार प्रणाम करते हैं, तुम्हीं सिद्धि, तुम बुद्धि, तुम्हीं वृद्धि और तुम्हीं वैष्णवी हो, तुमको हम वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥ जो पृथ्वीके अन्तरमें वास करती हैं, किन्तु तोभी पृथ्वी जिनको नहीं जानसक्ती और पृथ्वीके अन्तर रहकर जो अपना कार्य होनेसे उसको नियमित करती हैं, उन्हींपर देवता ईश्वरीकी वंदना करते हैं ॥ २५ ॥ जो मायामें वास करतीं हैं, तोभी माया जिनको नहीं जानती, किन्तु मायाके अन्तरवर्तिनी होकर जो उस अजा [अजन्मा] को कार्यमें

नियुक्त करती हैं उन्हीं प्रेरयित्री शिवाको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ हे मातः ! तुम कल्याण करो, हम शत्रुसे पीडित हुए हैं, अतएव हमारी रक्षा करो. तुम अपने तेजके प्रभावसे मोहित करके पापी महिषका संहार करो ॥ २७ ॥ वह स्त्रीवध्य, खल, शठ, भयंकर और वरदर्पित है और मायासे अनेक रूप धारण करके सब देवताओंको क्लेश देता है ॥ २८ ॥ हे भक्तवत्सले ! सब देवताओंकी तुम्हीं एक मात्र आश्रयस्थान हो. हे देवि ! हम इस दानवसे पीडित हैं, अतएव इस समय तुम हमारी रक्षा करो, हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले जब देवताओंने देवीका इसप्रकार स्तव किया, तब सर्वसुखदात्री महादेवी हँसते हँसते उनसे मंगलमय वचन कहने लगीं ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! मन्दमति महिषको मोहित करके अभी समरमें संहार करूंगी ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले देवी देवताओंसे इस

कल्याणंकुरुभोमातस्त्राहिनःशत्रुतापितान् ॥ जहिपापंहयाऽरिंत्वंतेजसास्वेनमोहितम् ॥ २७ ॥ खलंमायाविनंघोरंस्त्रीवध्यंवरदर्पितम् ॥ दुःखदंसर्वदेवानां नानारूपधरंशठम् ॥ २८ ॥ त्वमेकासर्वदेवानांशरणंभक्तवत्सले ॥ पीडितान्दानवेनाऽद्यत्राहिदेविनमोऽस्तुते ॥ २९ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंस्तुतातदादेवीसुरैःसर्वसुखप्रदा ॥ तानुवाचमहादेवीस्मितपूर्वंशुभंवचः ॥ ३० ॥ देव्युवाच ॥ भयंत्यजंतुगीर्वाणामहिषान्मंदचेतसः ॥ हनिष्यामिरणेऽद्यैववरदृप्तंविमोहितम् ॥ ॥ ३१ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वासासुरान्देवीजहासातीवसुस्वरम् ॥ चित्रमेतच्चसंसारेभ्रममोहयुतंजगत् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याःसेंद्राश्चाऽन्येसुरास्तथा ॥ कंपयुक्ताभयत्रस्तावर्ततेमहिषात्किल ॥ ३३ ॥ अहोदैवबलंघोरंदुर्जयंसुरसत्तमाः ॥ कालःकर्ताऽस्तिदुःखानांसुखानांप्रभुरीश्वरः ॥ ३४ ॥ सृष्टिपालनसंहारेसमर्थाअपितेयदा ॥ मुह्यंतिक्लेशसंतप्तामहिषेणप्रपीडिताः ॥ ३५ ॥ इतिकृत्वास्मितंदेवीसाऽट्टहासंचकारह ॥ उच्चैःशब्दंमहाघोरंदानवानांभयप्रदम् ॥ ३६ ॥

प्रकार कहकर मधुरस्वरसे हँसने लगीं. हे राजन् ! जगत् भ्रम और मोहसे पूर्ण है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और इन्द्र इत्यादि अन्यान्य देवता महिषके भयसे त्रसित होकर काँपते हैं, संसारमें यह अत्याश्चर्यका विषय है ॥ ३३ ॥ क्या आश्चर्य है, दैवबल अति भयंकर है और वह सुरसत्तमगणोंको भी दुरतिक्रमणीय है. हेराजन् ! कालही सुखका प्रभु और दुःखका कर्त्ता है, अतएव वही ईश्वर है ॥ ३४ ॥ क्योंकि, जो सृष्टि, स्थिति और संहार करसक्ते हैं, वे भी महिषसे पीडित होकर क्लेशसंतापसे मोहित हुए ॥ ३५ ॥ देवी इसप्रकार जान कुछेक हँसतीहुई अत्यन्त उच्चशब्दसे अट्टहास करने लगीं, उस महाघोर शब्दसे दानवोंको भय उपस्थित हुआ ॥ ३६ ॥

उस समय उस अद्भुत शब्दको सुनकर पृथ्वी कंपित, पर्वत चंचल और वीर्यवान् अक्षोभ्य समुद्रभी क्षुभित हुआ ॥ ३७ ॥ अधिक क्या उस शब्दसे सब दिशायें पूर्ण और मेरु पर्वतभी चलायमान हुआ, तब दानव उस महत् शब्दको सुनकर अत्यन्त भीत हुए ॥ ३८ ॥ देवताओंने अत्यन्त हर्षित चित्त होकर देवीसे कहा. हे देवि ! आपकी जय हो. आप हमारी रक्षा कीजिये मदगर्वित महिष भी यह शब्द सुनकर कुपित हुआ ॥ ३९ ॥ महिषने शब्द सुन शंकित हो दैत्योंसे पूँछा हे दूतो ! तुम शब्द उत्पत्तिका कारण जाननेके लिये शीघ्र जाओ ॥ ४० ॥ कानोंको क्लेशकर यह भयंकर शब्द किसने किया ? देव दानव वा जो कोई शब्द करता हो ॥ ४१ ॥ तुम उस दुरात्माको लेकर मेरे निकट आओ मैं अहंकारसे मत्त गर्जनकारी इस दुराचारीका संहार करूंगा ॥

चकंपेवसुधातत्रश्रुत्वातच्छब्दमद्भुतम् ॥ चेलुश्चपर्वताःसर्वेचुक्षोभाऽब्धिश्चवीर्यवान्॥३७॥मेरुश्चचालशब्देनदिशःसर्वाःप्रपूरिताः॥ भयंजग्मुस्तदाश्रुत्वा दानवास्तंस्वनंमहत् ॥ ३८ ॥ जयपाहीतिदेवास्तामूचुःपरमहर्षिताः ॥ महिषोऽपिस्वनंश्रुत्वाचुकोपमदगर्वितः ॥ ३९ ॥ किमेतदितितान्दैत्यान्पप्रच्छ स्वनशंकितः ॥ गच्छंतुत्वरितादूताज्ञातुंशब्दसमुद्भवम् ॥ ४० ॥ कृतःकेनाऽयमत्युग्रःशब्दःकर्णव्यथाकरः ॥ देवोवादानवोवाऽपियोभवेत्स्वनकारकः॥ ॥ ४१ ॥ गृहीत्वातंदुरात्मानंमत्समीपंनयंत्विह ॥ हनिष्यामिदुराचारंगर्जंतंस्मयदुर्मदम् ॥ ४२ ॥ क्षीणायुष्यंमंदमतिंनयामियमसादनम् ॥ पराजिताः सुराःकामंनगर्जंतिभयाऽऽतुराः ॥४३॥ नाऽसुराममवश्यास्तेकस्येदंमूढचेष्टितम् ॥ त्वरितामामुपायांतुज्ञात्वाशब्दस्यकारणम् ॥४४॥ अहंगत्वाहनिष्या मितंपापंवितथश्रमम् ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तास्तेनतेदूतादेवींसर्वांगसुंदरीम् ॥ ४५ ॥ अष्टादशभुजांदिव्यांसर्वाभरणभूषिताम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नां वरायुधधरांशुभाम् ॥ ४६ ॥

॥ ४२ ॥ क्षीण आयु उस मंदमतिको नष्ट करूंगा देवता पराजित होकर भयार्त्त हुए हैं इसकारण वह कभी गर्जन नहीं करेंगे ॥ ४३ ॥ और असुर तो हमारे वशीभूत हैं अतएव वहभी गर्जना नहीं करसक्ते तो फिर यह मूढकी समान किसका कार्य है ? तुम अभी शब्दका कारण जानकर मेरे निकट आओ ॥ ४४ ॥ फिर मैं जाकर उस वृथा शब्दकारी पापमतिका संहार करूंगा. व्यासजी बोले महिषके यह वचन सुनते ही दूतोंने देवीके समीप जाकर देखा कि ॥ ४५ ॥ उनके सब अंग सुंदर, बाहु अठारह, सब अवयव अनेक प्रकारके गहनोंसे विभूषित, शरीरमें सर्वसुलक्षण देदीप्यमान और हाथोंमें उत्तम अस्त्र हैं ॥ ४६ ॥

वह शुभप्रदा मनोरमादेवी हाथमें चषक [पानपात्र] लेकर वारंवार मधुपान करती हैं, उन्होंने देवीका इसप्रकार रूप देख भीत हो शंकितचित्तसे तत्काल भाग ॥ ४७॥ महिषासुरके समीप जाय शब्दका कारण कहा. दैत्योंने कहा हे दैत्येश्वर ! हमने एक प्रौढ़ा अपरिचिता अंगनाको देखा॥ ४८॥ उस देवीके सब अंग गहनोंसे भूषित और रत्नोंसे सुसज्जित हैं.वह नारी मानुषी वा आसुरी नहीं है किन्तु उसका रूप अलौकिकऔर मनोहर है ॥ ४९ ॥ वह प्रधाना नारी सिंहके ऊपर चढ़ी अठारह भुजाओंमें आयुध धारण किये गर्जना कर रही है, वह सुरापानमें रत है अतएव वह मदगर्विता बोध होती है ॥ ५० ॥ हमको निश्चय बोध होता है कि, उसका स्वामी नहीं है. देवता आकाशमें टिकेहुए हर्षसहित यह कहकर उसका स्तव करते हैं ॥ ५१ ॥ कि तुम्हारी जय हो, तुम शत्रुका संहार करके हमारी

दधतींचषकंहस्तेपिबंतींचमुहुर्मधु॥संवीक्ष्यभयभीतास्तेजग्मुस्त्रस्ताःसुशंकिताः॥४७॥सकाशेमहिषस्याऽऽशुतमूचुःस्वनकारणम् ॥ दूताऊचुः ॥ देवीदैत्येश्वरप्रौढादृश्यतेकाचिदंगना ॥४८॥ सर्वांगभूषणानारीसर्वरत्नोपशोभिता ॥ नमानुषीनाऽसुरीसादिव्यरूपामनोहरा ॥ ४९ ॥ सिंहारूढाऽऽयुधधराचाऽष्टादशकरावरा॥सानादंकुरुतेनारीलक्ष्यतेमदगर्विता ॥५०॥सुरापानरताकामंजानीमोनसभर्तृका॥अंतरिक्षस्थितादेवास्तांस्तुवंतिमुदान्विताः ॥५१॥ जयेतिपाहिनश्चेतिजहिशत्रुमितिप्रभो ॥ नजानेकावरारोहाकस्यवासापरिग्रहः ॥ ५२ ॥ किमर्थमागताचाऽत्रकिंचिकीर्षतिसुंदरी ॥ द्रष्टुंनैवसमर्थाःस्मस्तत्तेजःपरिधर्षिताः ॥ ५३ ॥ शृंगारवीरहासाढ्यारौद्राऽद्भुतरसान्विता ॥ दृष्ट्वैवंविधांनारीमसंभाष्यसमागताः ॥ ५४ ॥ वयंत्वदाज्ञयाराजन्किंकर्तव्यमतःपरम् ॥ महिषउवाच ॥ गच्छवीरमयादिष्टोमंत्रिश्रेष्ठबलान्वितः ॥ ५५ ॥ सामादिभिरुपायैस्त्वंसमानयशुभाऽऽननाम् ॥ नाऽऽयातियदिसानारीत्रिभिःसामादिभिस्त्विह ॥ ५६ ॥ अहत्वातांवरारोहांत्वमानयममांतिकम् ॥ करोमिपट्टमहिषींतामरालभ्रुवंमुदा ॥ ५७ ॥

रक्षा करो. हे प्रभो ! वह वरारोहा सुंदरी कौन है ? किसकी पत्नी है? ॥५२॥ किसकारण यहां आई,है ? और उसकी अभिलाषा क्या है ? यह हम कुछ नहीं जानते. शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र और अद्भुत रस उसमें देदीप्यमान हैं, अतएव हम उसके तेजप्रभावसे पीडित होकर उसके देखनेमेंभी समर्थ नहीं हुए हे महाराज ! ऐसी नारीको देखतेही हम आपकी आज्ञानुसार बातचीत न करके लौट आये हैं ॥५३॥॥ ५४ ॥ अब क्या करैं ? सो आज्ञा दीजिये. महिषने कहा हे मंत्रिश्रेष्ठ वीर ! मेरी आज्ञासे तुम सेनासहित जाकर ॥ ५५ ॥ सामादि उपायसे उस चन्द्रवदनाको मेरे निकट लाओ. साम, दान, भेद इन तीन उपायोंसे वह नारी यदि यहां न आवे॥ ५६॥ तो वरारोहाका जिससे जीवन नष्ट न हो, ऐसा दंड देकर उसको मेरे समीप ले आओ मैं उस कुटिलकेशी रमणीको हर्षसहित पटरानी करूंगा ॥ ५७ ॥

यदि वह मृगलोचना प्रीतिसहित चली आवे तो जिससे रसभंग न हो, तदनुसार मेरा अभिलाषित कार्य करो ॥ ५८ ॥ मैं उसके सौन्दर्य संपद्का विषय सुनकर मोहित हुआ हूं. व्यासजी बोले मंत्रिसत्तम महिषके उत्तम वचन सुन ॥ ५९ ॥ हाथी, घोड़े और रथ लेकर शीघ्र अभिलाषित स्थानमें गये. मंत्री देवीके समीप उपस्थित हो दूरसे ही ॥ ६० ॥ विनयावनत वचन द्वारा उनसे मधुर वचन कहने लगा. प्रधानने कहा हे मधुरालापे ! तुम कौन हो ? तुम्हारे यहां आनेका क्या कारण है ? ॥ ६१ ॥ हे महाभागे ! मेरे प्रभुने मेरे मुखद्वारा तुमसे यह बात पूँछी है, वह सब देवता और मनुष्योंसे अवध्य हैं और सर्वलोकविजयीहैं ॥ ॥ ६२ ॥ हे चारुलोचने ! वह बलवान् दैत्येश्वर ब्रह्माके वरदानसे गर्वित हो सदा अपनी इच्छानुसार रूप धारणकरते हैं ॥ ६३ ॥ हमारे राजा महिषनामक पृथ्वीप

प्रीतियुक्तासमायातियदिसामृगलोचना ॥ रसभंगोयथानस्यात्तथाकुरुममेप्सितम् ॥५८॥ श्रवणान्मोहितोऽस्म्यद्यतस्यारूपस्यसंपदा ॥ व्यासउवाच ॥ महिषस्यवचःश्रुत्वापेशलंमंत्रिसत्तमः ॥५९॥ जगामतरसाकामंगजाऽश्वरथसंयुतः ॥ गत्वादूरतरंस्थित्वातामुवाचमनस्विनीम् ॥६०॥ विनयाऽवनतःश्लक्ष्णं मंत्रीमधुरयागिरा ॥ प्रधानउवाच ॥ कासित्वंमधुराऽऽलापेकिमत्राऽऽगमनंकृतम् ॥६१॥ पृच्छतित्वांमहाभागेमन्मुखेनममप्रभुः ॥ सजेतासर्वदेवानामवध्य स्तुनरैःकिल ॥६२॥ ब्रह्मणोवरदानेनगर्वितश्चारुलोचने ॥ दैत्येश्वरोऽसौबलवान्कामरूपधरःसदा ॥६३॥ श्रुत्वात्वांसमुपायातांचारुवेषांमनोहराम् ॥ द्रष्टु मिच्छतिराजामेमहिषोनामपार्थिवः ॥ ६४ ॥ मानुषंरूपमादायत्वत्समीपंसमेष्यति ॥ यथारुच्येतचार्वंगितथामन्यामहेवयम् ॥ ६५ ॥ तद्व्रजेहिमृग शावाक्षिसमीपंतस्यधीमतः ॥ नोचेदिहानयाम्येनंराजानंभक्तितत्परम् ॥ ६६ ॥ तथाकरोमिदेवेशियथातेमनसेप्सितम् ॥ वशगोऽसौतवाऽत्यर्थंरूपसं श्रवणात्तव ॥ ६७ ॥ करभोरुवदाऽऽशुत्वंसंविधेयंमयातथा ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे देवीमहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाप्रहस्यप्रमदोत्तमा ॥ तमुवाचमहाराजमेघगंभीरयागिरा ॥ १ ॥

तिने तुम्हारे मनोहर रूप और वेषका वृत्तान्त सुनकर तुम्हारे देखनेकी इच्छा की है ॥ ६४ ॥ हे चार्वङ्गी ! वह मनुष्यरूप धारण करके तुम्हारे समीप आवेंगे, अथवा तुम्हारी जैसी इच्छा होगी हम उसीके अनुसार कार्य करेंगे ॥ ६५ ॥ अतएव हे मृगलोचने ! उन बुद्धिमान् महाराजके निकट चलो, यदि तुम न चलोगी तो हम भक्तिपरायण राजाको तुम्हारे पास लावेंगे ॥ ६६ ॥ हे सुरेश्वरी ! तुम्हारे रूपलावण्यका विषय सुनकर राजा तुम्हारे अत्यन्त वशीभूत हुए हैं. इस कारण तुम्हारी जैसी इच्छा हो, हम वही करें ॥ ६७ ॥ अतएव हे करभोरु ! तुम्हारी जिसप्रकार इच्छा हो सो कहो हम उसीके अनुसार शीघ्र कार्य करेंगे ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उन प्रमदोत्तमा महामायाने महिषके मंत्रीका इस प्रकार

वचन सुन, कुछेक हँस मेघकी समान गंभीरवचन द्वारा उससे कहा ॥ १ ॥ हे मंत्रिवर! मुझको देवताओंकी जननी जानना चाहिये. मेरा नाम महालक्ष्मी है. मैंही संपूर्ण दैत्योंका संहार करती हूं ॥ २ ॥ दानवपतिने देवताओंको पीडित करके यज्ञभागसे वंचित किया है, इसकारण उन सबने मिलकर महिषासुरका वध करनेके लिये मेरी प्रार्थना की है ॥ ३ ॥ अतएव हे सचिवसत्तम! उसका वध करनेमें उद्यत हो सेना संग न लेकर आज अकेलीही इस स्थानमें आई हूं ॥ ४ ॥ हे अनघ! तुमने जो मेरा सन्मान करके मधुरवचनोंसे आदरपूर्वक स्वागत पूंछा, इससे मैं संतुष्ट हुई हूं ॥ ५ ॥ यदि तुम ऐसा व्यवहार न करते, तो कालाग्निकी समान दृष्टिसे तुमको निःसंदेह भस्म कर देती. हे मंत्रिन्! मीठी बात किसको प्रीतिकर नहीं होती? ॥ ६ ॥ तुम महिषके निकट जाकर मैंने जो कहा है, वह सब वचन उससे कहो कि, रे पापी! यदि तुझे जीवनकी इच्छा है, तो इस समय रसातलमें चला जा॥ ७॥ इसके अन्यथा करनेसे उस अपराधी दुष्टको समराङ्गणमें संहार करूंगी अधिक क्या?

देव्युवाच ॥ मंत्रिवर्यसुराणांवैजननींविद्धिमांकिल।।महालक्ष्मीमितिख्यातांसर्वदैत्यनिषूदिनीम् ॥२॥ प्रार्थिताऽहंसुरैःसर्वैर्महिषस्यवधायच॥पीडितैर्दानवेंद्रेणयज्ञभागवहिष्कृतैः ॥३॥ तस्मादिहाऽऽगताऽस्म्यद्यतद्वधार्थंकृतोद्यमा ॥ एकाकिनीनसैन्येनसंयुतामंत्रिसत्तम॥४॥यत्त्वयाऽहंसामपूर्वंकृत्वास्वागतमादरात् ॥ उक्तामधुरयावाचातेनतुष्टाऽस्मितेऽनघ ॥ ५ ॥ नोचेद्धन्मिदृशात्वांवैकालाग्निसमयाकिल ॥ कस्यप्रीतिकरंनस्यान्माधुर्यवचनंखलु ॥ ६ ॥ गच्छत्वंमहिषंपापवदमद्वचनादिदम् ॥ गच्छपातालमधुनाजीवितेच्छायदस्तिते ॥ ७ ॥ नोचेत्कृताऽऽगसंदुष्टंहनिष्यामिरणांगणे ॥ मद्बाणक्षुण्णदेहस्त्वंगंतासियमसादनम् ॥ ८ ॥ दयालुत्वंममेदंत्वंविदित्वागच्छसत्वरम् ॥ हतेत्वयिसुरामूढस्वर्गंप्राप्स्यंतिसत्वरम् ॥ ९ ॥ तस्माद्गच्छस्वत्यक्त्वेकोमेदिनींचससागराम् ॥ पातालंतरसामंदयावद्बाणानमेऽपतन् ॥ १० ॥ युद्धेच्छाचेन्मनसितेतद्धैहित्वरितोऽसुर ॥ वीरैर्महाबलैःसर्वैर्नयामियमसादनम् ॥ ११ ॥ युगेयुगेमहामूढहतास्त्वत्सदृशाःकिल ॥ असंख्यातास्तथात्वांवैहनिष्यामिरणांगणे ॥ १२ ॥ साफल्यंकुरुशस्त्राणांधारणेतुश्रमोऽन्यथा ॥ तद्युद्धचस्वमयासार्धंसमरेस्मरपीडितः ॥ १३ ॥ मागर्वंकुरुदुष्टात्मन्यन्मेऽस्तित्रह्मणोवरः ॥ स्त्रीवध्यत्वेत्वयामूढपीडिताःसुरसत्तमाः ॥ १४ ॥

मेरे शरजालसे छिन्न भिन्न कलेवर हो शमनसदनमें जाना होगा ॥ ८ ॥ रे मूढ! मैंतुझपर दया प्रकाश करकेही कहती हूं, तू यह जानकर शीघ्र पातालमें चला जा और देवता अभी स्वर्गका राज्यग्रहण करें ॥ ९ ॥ रे मन्द! जबतक मेरे बाण पतित न हों, उससे पहिलेही तू एकाकी समसागरभूमण्डल छोड़कर शीघ्र पातालमें प्रवेश कर ॥ १० ॥ हे असुरवर! यदि तेरे मनमें युद्धकी इच्छा हो तो महाबलवान् वीरोंके सहित शीघ्र आ. मैं सबको ही शमनसदनमें प्रेरण करनेको प्रस्तुत हूं ॥ ॥ ११ ॥ हे महामूढ! तेरी समान असंख्य असुरोंको जिस प्रकार युगयुगमें निहत किया है. इसीप्रकार तुमको भी समरमें निहत करूंगी ॥ १२ ॥ हे कामार्त्त! तू मेरे सहित संग्राममें प्रवृत्त होकर मेरे शस्त्रधारणके श्रमको सफल कर नहीं तो वह निष्फल होगा ॥ १३ ॥ रे मूढ! तैंने स्त्रीवध्य होनेसे पूज्यतम देवताओंको पीड़ित

किया है. किन्तु रे दुष्टात्मन् ! तू स्त्रीवध्य होनेसे ब्रह्माके इस वरका गर्व मत कर ॥ १४ ॥ विधाताका वचन पालन करना चाहिये. यह विचार कर मैं अतुलनीय स्त्रीरूपधारण कर पापिष्ठ होनेसे तुझको मारनेके लिये यहां आई हूं॥ १५॥ रे मूढ ! यदि तू जीवनकी इच्छा करता है तो स्वर्गका राज्य छोड़ पन्नगोंसे युक्त पाताल वा जहां तेरी इच्छा हो वहां चला जा ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि देवीके इस प्रकार वचन सुनकर उस बलयुक्त सचिवप्रवरने हेतुयुक्त वचनसे उत्तर दिया॥ १७॥ हे देवी ! तुम मदगर्वित होकर ऐसे वचन कहती हो तुम स्त्री हो और दैत्यपति वीर है, अतएव तुम दोनोंका युद्ध किसप्रकार होगा ? यह मुझको अत्यन्त असंभव बोध होता है॥ १८॥ तुम कोमलाङ्गी नवयौवना और बाला हो, विशेष करके अकेली हो और महिष महाकाय है सुतरां तुम्हारा समर असंभव है ॥ १९ ॥ विशेष कर उनके हाथी,

कर्तव्यंवचनंधातुस्तेनाऽहंत्वामुपागता ॥ स्त्रीरूपमतुलंकृत्वासत्यंहंतुंकृताऽऽगसम् ॥१५॥ यथेच्छंगच्छवामूढपातालंपन्नगाऽऽवृतम् ॥ हित्वाभूसुरसद्माऽद्यजीवितेच्छायदस्तिते ॥१६॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तःसततोदेव्यामंत्रिश्रेष्ठोवलान्वितः॥प्रत्युवाचनिशम्याऽसौवचनंहेतुगर्भितम्॥१७॥देविस्त्रीसदृशंवाक्यंब्रूषेत्वंमदगर्विता ॥ काऽसौकत्वंकथंयुद्धमसंभाव्यमिदंकिल ॥ १८ ॥ एकाकिनीपुनर्वालाप्रारब्धयौवनामृदुः ॥ महिषोऽसौमहाकायोदुर्विभाव्यंहिसंगतम् ॥ १९ ॥ सैन्यंबहुविधंतस्यहस्त्यश्वरथसंकुलम् ॥ पदातिगणसंविद्धंनानाऽऽयुधविराजितम् ॥ २० ॥ कःश्रमःकरिराजस्यमालतीपुष्पमर्दने ॥ मारणेतववामोरुमहिषस्यतथारणे ॥ २१ ॥ यदित्वांपरुषंवाक्यंब्रवीमिस्वल्पमप्यहम् ॥ शृंगारेतद्विरुद्धंहिरसभंगाद्बिभेम्यहम् ॥ २२ ॥ राजाऽस्माकंसुररिपुर्वर्ततेत्वयिभक्तिमान् ॥ साममेवमयावाच्यंदानयुक्तंतथावचः ॥ २३ ॥ नोचेद्धन्म्यहमद्यैववाणेनत्वांमृषावदाम् ॥ मिथ्याऽभिमानचतुरांरूपयौवनगर्विताम् ॥ २४ ॥ स्वामीममेमोहितःश्रुत्वारूपंतेभुवनातिगम् ॥ तत्प्रियार्थंप्रियंकामंवक्तव्यंत्वयियन्मया ॥ २५ ॥

घोड़े, रथ और पैदल इत्यादि विविध आयुधधारी असंख्य सैन्य है॥ २०॥ अतएव हे वामोरु ! गजराजको जिसप्रकार मालतीपुष्प मर्दन करनेमें कुछ क्लेश नहीं होता, इसी प्रकार तुमको समरमें विनाश करनेमें उनको किंचित् मात्रभी श्रम नहीं होगा ॥ २१ ॥ किन्तु यदि कुछभी तुमसे परुष वचन कहूं, तो यह शृंगार रसके विरुद्ध होगा, इस कारण रसभंगके भयसे कोई कठोर वचन कहनेमें समर्थ नहीं हूं ॥ २२ ॥ यद्यपि हमारे राजा देवताओंके शत्रु हैं, किन्तु तोभी तुम्हारे अत्यन्त भक्त हुए हैं अतएव साम वा दानयुक्तही वचन कहना चाहिये ॥ २३ ॥ ऐसा न होकर तुम जिसप्रकार वृथा अभिमान और रूपयौवनका गर्व तथा चतुरताप्रकाश करके मिथ्या वचन कहती हो इसकारण मैं वाणोंसे अभी तुमको निहत करता ॥ २४ ॥ किन्तु तुम्हारा भुवनातीत रूप सुनकर हमारे प्रभु

मोहित हुए हैं. सुतरां उनकी प्रियकामनासे तुमको यथेष्ट प्रिय वचन कहनाही हमको उचित है ॥ २५ ॥ हे विशालनयने ! राज्य और समस्त धनही तुम्हारा है अधिक क्या महिषभी तुम्हारा दास होगा इसकारण अपना मरणदायक क्रोध त्यागकर उनके प्रति सद्भाव स्थापन करो ॥ २६ ॥ हे शुचिस्मिते ! मैं तुम्हारे चरणोंमें गिरता हूं तुम अभी जाकर महाराजकी पटरानी होओ ॥ २७ ॥ हे भामिनि ! तुम्हारे महिषकी पत्नी होनेपर त्रैलोक्यके संपूर्ण विमल विभव और संसारजनित असीम सुख यहां सभी प्राप्त होंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ देवीने कहा हे सचिव ! तुम्हारे वाक्चातुर्यका विषय विचारकर शास्त्रदृष्ट पथानुसार तुमसे सारगर्भ उत्तम वचनही कहती हूं. सुनो ॥ २९ ॥ सम्प्रति तुम्हारे वचनानुसार मैंने बुद्धिसे विचार कर जाना कि, तुम महिषके प्रधान कर्मचारी पुरुष हो.

राज्यंतवधनंसर्वंदासस्तेमहिषःकिल॥कुरुभावंविशालाक्षित्यक्त्वारोषंमृतिप्रदम् ॥२६॥पतामिपादयोस्तेऽहंभक्तिभावेनभामिनि॥पट्टराज्ञीमहाराज्ञोभवशी घ्रंशुचिस्मिते॥२७॥ त्रैलोक्यविभवंसर्वंप्राप्स्यसित्वमनाविलम् ॥ सुखंसंसारजंसर्वंमहिषस्यपरिग्रहात् ॥२८॥ देव्युवाच॥शृणुसाचिववक्ष्यामिवाक्यानां सारमुत्तमम् ॥ शास्त्रदृष्टेनमार्गेणचातुर्यमनुचिंत्यच ॥२९॥ महिषस्यप्रधानस्त्वंमयाज्ञातंधियाकिल ॥ पशुबुद्धिस्वभावोऽसिवचनात्तवसांप्रतम् ॥३०॥ मंत्रिणस्त्वादृशायस्यसकथंबुद्धिमान्भवेत् ॥ उभयोःसदृशोयोगःकृतोयंऽविधिनाकिल ॥ ३१ ॥ यदुक्तंस्त्रीस्वभावाऽसितद्विचारयमूढकिम्॥पुमान्नाऽहंत त्स्वभावाऽभवंस्त्रीवेषधारिणी ॥३२॥ याचितंमरणंपूर्वंस्त्रियात्वत्प्रभुणायथा ॥ तस्मान्मन्येऽतिमूर्खोऽसौनवीररसवित्तमः ॥३३॥ कामिन्यामरणंक्लीवरति दं शूरदुःखदम्॥प्रार्थितंप्रभुणातेनमहिषेणाऽऽत्मबुद्धिना ॥३४॥ तस्मात्स्त्रीरूपमाधायकार्यंकर्तुमुपागता॥कथंबिभेमित्वद्वाक्यैर्धर्मशास्त्रविरोधकैः॥३५॥

अतएव तुम्हारा स्वभाव और बुद्धि पशुकी समान है ॥३०॥ जिसके मंत्री तुम्हारे समान हैं. वह किसप्रकार बुद्धिमान् होगा ? तुम दोनोंका इसप्रकार सदृशयोग निस्सं देह विधाताने किया है ॥ ३१ ॥ रे मूढ ! तैंने जो मुझको स्त्रीस्वभाव कहा. यह क्या विचार कर देखा है ? यद्यपि मैं वास्तवमें पुरुष नहीं हूं किन्तु वह परमपुरुष स्वभावा केवल स्त्रीवेष धारिणी मात्र हूं ॥ ३२ ॥ तेरे प्रभुने पूर्वमें ब्रह्माजीके निकट स्त्रीसे मरनेकी प्रार्थना की है. इसकारण मैं विचारती हूं कि, वह अत्यन्त मूर्ख और वीररसका अनभिज्ञ है ॥ ३३ ॥ क्योंकि स्त्रीके हाथसे मरण वीरको क्लेशदायक और क्लीबको संतोषजनक है. देखो तुम्हारे प्रभु महिषने आत्म बुद्धिके अनुसार कामिनीके हाथसे मरनेकी प्रार्थना की है ॥ ३४ ॥ इसलियेही मैं स्त्रीरूप धारण करके कार्यसाधनके निमित्त आई हूं. अतएव शास्त्रविरोधी

तुम्हारे वचनोंसे मैं क्यों भय करूं ? ॥ ३५ ॥ जब दैव प्रतिकूल होता है तिस समय तृणभी कुलिशकी समान होता है और विधाताके अनुकूल होनेपर वह वज्रभी फिर रुईकी समान कोमल होजाता है ॥ ३६ ॥ विपुलसैन्य आयुध अथवा अतिविस्तृत दृढ़ दुर्गकाही आश्रय करनेसे क्या होसक्ता है मरण जिसका समीपवर्त्ती है उसका सैन्यसे क्या फलोदय होगा ? ॥ ३७ ॥ कालयोगसे जब इसजीवका देहसम्बन्ध होता है तिसी समय सुख दुःख और मृत्यु यह सब लिखी जाती हैं ॥ ३८ ॥ जिसकी जिसप्रकार मृत्यु दैवने निर्दिष्ट की है उसकी उसी प्रकार मृत्यु होगी इससे अन्यथा कभी न होगा यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये॥ ॥ ३९ ॥ ब्रह्मादि देवताओंका जिसप्रकार यथासमयमें नाश और उत्पत्ति विहित हुई है तुम्हाराभी अवश्य उसी प्रकार होगा, अन्यके विचारसे प्रयोजन क्या है ? ॥ ४० ॥ जो मृत्युधर्मके एकान्तवशवर्ती हैं उनके वरदानसे दर्पित होकर जो मनमें विचारे कि " मैं नहीं मरूंगा " वह मूढ और अत्यन्त मन्द बुद्धि है ॥ ४१ ॥

विपरीतंयदादैवंतृणंवज्रसमंभवेत्॥विधिश्चेत्सुमुखःकामंकुलिशंतूलवत्तदा॥३६॥किंसैन्यैरायुधैःकिंवाप्रपंचैर्दुर्गसेवनैः ॥ मरणंसांप्रतंयस्यतस्यसैन्यैस्तुकिं फलम्॥३७॥यदाऽयंदेहसंबंधोजीवस्यकालयोगतः॥तदैवलिखितंसर्वंसुखंदुःखंतथामृतिः ॥३८॥ यस्ययेनप्रकारेणमरणंदैवनिर्मितम् ॥ तस्यतेनैवजायेत नाऽन्यथेतिविनिश्चयः॥३९॥ब्रह्मादीनांयथाकालेनाशोत्पत्तीविनिर्मिते॥तथैवभवतःकामंकिमन्येषांविचार्यते॥४०॥येमृत्युधर्मिणस्तेषांवरदानेनदर्पिताः॥ मरिष्यामोनमन्यंतेतेमूढामंदचेतसः॥४१॥तस्माद्गच्छनृपंब्रूहिवचनंममसत्वरम् ॥ यदाऽऽज्ञापयतेभूपस्तत्कर्तव्यंत्वयाकिल ॥४२॥ मघवास्वर्गमाप्नोतुदेवाःसंतुहविर्भुजः॥यूयंप्रयातपातालंयदिजीवितुमिच्छथ ॥४३॥ अन्यथाचेन्मतिर्मंदमहिषस्यदुरात्मनः ॥तद्युध्यस्वमयासार्धंमरणायकृताऽऽदरः॥४४॥ मन्यसेसंगरेभग्नादेवाविष्णुपुरोगमाः ॥ दैवंहिकारणंतत्रवरदानंप्रजापतेः॥४५॥व्यासउवाच ॥ इतिदेव्यावचःश्रुत्वाचिंतयामासदानवः ॥ किंकर्तव्यंमया युद्धंगंतव्यंवानृपंप्रति ॥ ४६ ॥ विवाहार्थमिहाऽऽज्ञप्तोराज्ञाकामाऽऽतुरेणवै ॥ तत्कथंविरसंकृत्वागच्छेयंनृपसन्निधौ ॥ ४७ ॥

इसकारण तुम अभी नृपके समीप जाकर मेरे वचन कहो. फिर भूपति जो आज्ञा दें. तुम वह अवश्य पालन करो ॥ ४२ ॥ यदि जीवन रखनेकी इच्छा हो तो पातालपुरमें प्रवेश करो और इन्द्र स्वर्गराज्य व देवता यज्ञीय हविर्लाभ करें ॥ ४३ ॥ यदि दुरात्मा महिषकी अन्यथा मति हो तो मरनेके निमित्त उत्सुक होकर मेरे संग संग्राम करे ॥ ४४ ॥ यदि मनमें जानते हो कि, विष्णु इत्यादि देवता समर छोड़कर भाग गये हैं. इसमें तुम्हारा किंचिन्मात्रभी पुरुषार्थ नहीं है केवल प्रजापतिका वर दान और दैव उसका कारण है ॥ ४५ ॥ व्यासजी बोले देवीके इसप्रकार वचन सुनकर दानव चिन्ता करने लगा कि, मुझको क्या युद्ध करना उचित है ? वा महिषके निकट हो जाना चाहिये ॥ ४६ ॥ राजाने कामातुर होकर विवाहके निमित्त मुझको इस कार्यमें नियुक्त किया है. वह कार्य रसहीन करके मैं किसप्रकार राजाके

समीप जाऊं ? ॥ ४७ ॥ इस समय युद्ध न करके राजाके निकट जानाही उचित है. अतएव जिसप्रकार आया हूं उसीप्रकार शीघ्र जाकर राजासे सब वृत्तान्त निवेदन करूं ॥ ४८ ॥ राजा अद्वितीय बुद्धिमान् और विशेषकरके हमारे प्रभु हैं इसकारण वह चतुर मंत्रियोंके संग विचार करके इस विषयमें जो उचित होगा. वही करेंगे ॥ ४९ ॥ अतएव इसके संग सहसा संग्राम करना मुझको उचितनहीं है. क्योंकि जय वा पराजय दोनों बातेंही राजाके अप्रिय होंगी ॥ ५० ॥ यदि यह सुंदरी मुझको मार डाले अथवा मैं ही इसको निहत करूं तो जिसकिसी प्रकार हो राजा अवश्यही मेरे ऊपर कुपित होंगे ॥ ५१ ॥ अतएव देवीने इस समय जो कहा मैं वहां जाकर राजासे वह कहूं फिर उनकी जो रुचि हो सो करें ॥ ५२ ॥ व्यासजी बोले वह बुद्धिमान् मंत्रीका पुत्र इसप्रकार विचार करके राजाके समीप गया फिर प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहने लगा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! वह वरारोहा भुवनमोहिनी मनोरमा देवी अठारह भुजाओंमें उत्तम आयुध

इयंबुद्धिःसमीचीनायद्व्रजामिकलिंविना ॥ यथाऽऽगतंतथाशीघ्रंराज्ञेसंवेदयाम्यहम् ॥४८॥ सप्रमाणंपुनःकार्यंराजामतिमतांवरः ॥ करिष्यतिविचार्यैवसचिवैर्निपुणैःसह ॥ ४९ ॥ सहसानमयायुद्धंकर्तव्यमनयासह ॥ जयेपराजयेऽवापिभूपतेरप्रियंभवेत् ॥ ५० ॥ यदिमांसुंदरीहन्यादहंवाहन्मितांपुनः ॥ येनकेनाऽप्युपायेनसकुप्येत्पार्थिवःकिल ॥ ५१ ॥ तस्मात्तत्रैवगत्वाऽहंबोधयिष्यामितंनृपम् ॥ यथाऽद्याऽभिहितंदेव्यायथारुचिकरोतुसः ॥ ५२ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंचिंत्यमेधावीजगामनृपसन्निधौ ॥ प्रणम्यतमुवाचेदंकृतांजलिरमात्यजः ॥ ५३ ॥ मंत्र्युवाच ॥ राजन्देवीवरारोहासिंहस्योपरिसंस्थिता ॥ अष्टादशभुजारम्यावराऽऽयुधधरापरा ॥ ५४ ॥ सामयोक्तामहाराजमहिषंभजभामिनि ॥ महिषीभवराज्ञस्त्वंत्रैलोक्याऽधिपतेःप्रिया ॥ ५५ ॥ पट्टराज्ञीत्वमेवाऽस्यभवितानाऽत्रसंशयः ॥ सतवाऽऽज्ञाकरोजातोवशवर्तीभविष्यति ॥ ५६ ॥ त्रैलोक्यविभवंभुक्त्वाचिरकालंवरानने ॥ महिषंपतिमासाद्ययोषितांसुभगाभव ॥ ५७ ॥ इतिमद्वचनंश्रुत्वासास्मयावेशमोहिता ॥ मामुवाचविशालाक्षीस्मितपूर्वमिदंवचः ॥ ५८ ॥ महिषीगर्भसंभूतंपशूनामधमंकिल ॥ बलिंदास्याम्यहंदेव्यैसुराणांहितकाम्यया ॥ ५९ ॥ कामूढाकामिनीलोकेमहिषंवैपतिंभजेत् ॥ मादृशीमंदबुद्धेकिंपशुभावंभजेदिह ॥ ६० ॥

धारण करके सिंहके ऊपर चढ़ीहुई है ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! "हे भामिनी! तुम महिषा सुरसे प्रीति करो तो त्रैलोक्याधिपति राजाकी प्रियतमा महिषी होगी ॥ ५५ ॥ तुम्हीं उनकी पटरानी होगी इसमें संदेह नहीं. वह तुम्हारे वशवर्ती आज्ञाकर दास होकर जीवन व्यतीत करेंगे ॥ ५६ ॥ हे वरानने ! महिषको पति करनेसे तीनों लोकके संपूर्ण विभव भोगकर तुम स्त्रियोंमें सौभाग्यवती होगी" ॥ ५७ ॥ मेरे इसप्रकार वचनसुनकरभी अहंकारसे मोहित हो उस विशालाक्षीने कुछेक हँसते हँसते मुझसे कहा कि ॥ ५८ ॥ वह महिषीके गर्भसे उत्पन्न और पशुओंमें अधम है, इस कारण मैं देवताओंके हितकी कामनासे उसको देवीके सन्मुख बलिदान दूंगी ॥ ५९ ॥ इस लोकमें ऐसी मन्दबुद्धि स्त्री कौन है जो महिषको पतिरूपसे वरण करेगी ? रे मन्दबुद्धे ! मेरी समान स्त्री क्या पशुभावकी अभिलाषा करती है ? ॥ ६० ॥ महिषी

शृंगसंयुक्त है, अतएव वह शृंगारमदसे प्रमत्त होकर अव्यक्तशब्द करते करते सशृंग महिषको पति कर सक्ती है, किन्तु मैं उसकी समान वा मूढस्वभाव नहीं हूं जो उसको पति करूं ॥ ६१ ॥ रे दुष्ट ! समराङ्गणमें युद्ध करके उस देवताओंके अप्रियकारी असुरका संहार करूंगी, यदि उसको जीवनकी इच्छा हो तो पातालमें भाग जाय ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! उसने मत्त होकर इसप्रकार कर्कशवचनकहे, मैं उनको सुनकर प्रतीकारका विचार करते करते आपके पास आया हूं॥६३॥ हे महाराज ! रसभंग होनेकी आशंकासे मैं ने युद्ध नहीं किया. विशेष कर आपकी आज्ञाके विना अत्यन्त निरर्थक उत्साह किसप्रकार करता ? ॥ ६४॥ हे महीपाल ! वह भामिनी अपने बलके मदसे अत्यन्त उन्मत्त हो रही है, जाना नहीं जाता कि क्या होनहार है ? वा जो होनहार है सो अवश्यही होगा ॥ ६५ ॥ इस विषयमें

महिषीमहिषंनाथंसशृंगाशृंगसंयुतम् ॥ कुरुतेक्रंदमानावैनाऽहंतत्सदृशीशठा॥६१॥ करिष्येऽहंमृधेयुद्धंहनिष्येत्वांसुराऽप्रियम् ॥ गच्छवादुष्टपातालंजीवितेच्छायदस्तिते ॥ ६२ ॥ परुषंतुतयावाक्यमित्युक्तंनृपमत्तया ॥ तच्छ्रुत्वाऽहंसमायातःप्रतिचिंत्यपुनःपुनः ॥ ६३ ॥ रसभंगंविचिंत्यैवनयुद्धंतुमयाकृतम् ॥ आज्ञांविनातवात्यंतंकथंकुर्यांवृथोद्यमम् ॥ ६४॥ साऽतीवचबलोन्मत्तावर्ततेभूपभामिनी ॥ भवितव्यंनजानामिकिंवाभाविभविष्यति ॥६५॥ कार्येऽस्मिंस्त्वंप्रमाणंनोमंत्रोऽतीवदुरासदः ॥ युद्धंपलायनंश्रेयोनजानेऽहंविनिश्चयम् ॥६६॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहा० पंचमस्कंधेदशमोऽध्यायः॥१०॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इति तस्यवचःश्रुत्वामहिषोमदविह्वलः ॥ मंत्रिवृद्धान्समाहूयराजावचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ मंत्रिणःकिंचकर्तव्यंविश्रब्धंब्रूतमाचिरम् ॥ आगतादेवविहितामायेयंशांबरीवकिम् ॥ २ ॥ कार्येऽस्मिन्निपुणायूयमुपायेषुविचक्षणाः ॥ सामादिषुचकर्तव्यःकोऽत्रमह्यंब्रुवंतुच ॥ ३ ॥

आपही एकमात्र प्रभु हैं अतएव आप जो कहैं हम वही करैं, किन्तु इसकी मंत्रणा अत्यन्त कठिन है सुतरां युद्ध करना अच्छा वा भागना अच्छा इसका मैं कुछ निश्चय नहीं करसकता ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥ व्यासजी बोले कि, मदमोहित राजा महिषासुरने दूतके इस प्रकार वचनसुन बूढे मंत्रियोंको बुलाकर कहा ॥१॥ हे मंत्रियो ! इस समय मुझको क्या करना चाहिये ? आप उसको निश्चय करके शीघ्र कहिये. क्या यह देवी शम्बरासुरकी मायाके समान देवताओंसे विरचित होकर यहां आई है ? ॥ २ ॥ आपलोग सामादि चारों प्रकारके उपाय प्रयोग करनेमें विचक्षण हैं और उपस्थित मंत्रणा कार्यमें भी निपुण हैं, अतएव इस समय साम, दान, भेद और दंड इन चार उपायोंमें किस उपायका अवलम्बन करना चाहिये ? यह मुझसे कहो ॥ ३ ॥

अकेलाही चंडिकासे युद्ध करने जाऊंगा और मैंही उसको मारूंगा आप अब निर्भयचित्त होकर रहिये ॥ १४ ॥ हे राजन् ! आप मेरा पराक्रम देखिये मैं सेनासहित जाकर अनेक अस्त्र शस्त्रोंसे उस चंडविक्रमा दुर्भदा चण्डिकाका वध करूंगा ॥ १५॥ वा सर्पमय पाशसे बांधकर आपके पास लेआऊंगा तो वह निरुपाय स्त्री सदा आपके वशीभूत होकर रहेगी इसमें संदेह नहीं ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले—विरूपाक्षके इस प्रकार वचन सुनकर दुर्द्धरने कहा हे राजन् ! विरूपाक्ष अत्यन्त बुद्धिमान् है अतएव इसने जो कहा है वह युक्तिसंगत और सत्य है ॥१७॥ हे राजन् ! आप बुद्धिमान् हैं इसकारण मेरा भी यथार्थ वचन सुनिये मैंने अनुमानसे उस सुदती रमणीको कामातुर जाना है ॥ १८ ॥ क्योंकि उस नितम्बिनीने भय दिखलाकर आपको वशीभूत करनेकी इच्छा की है. विशेषकर प्रायः रूपगर्विता नायिका कामातुर होकर इसी प्रकार व्यवहार करती है ॥ १९ ॥ मानिनीके ऐसे व्यवहारको हाव कहते हैं. जो अत्यन्त रसज्ञ हैं, वेही इसको जानसक्ते हैं. स्त्रियोंकी यह वक्रोक्ति ही प्रियपुरुषोंके

सेनावृतोऽहंगत्वातांशस्त्रास्त्रैर्विविधैःकिल ॥ निषूदयामिदुर्मर्षांचंडिकांचंडविक्रमाम् ॥ १५ ॥ बद्ध्वासर्पमयैःपाशैरानयिष्येतवांतिकम् ॥ वश गातुसदातेस्यात्पश्यराजन्बलंमम ॥ १६ ॥ व्यासउवाच ॥ विरूपाक्षवचःश्रुत्वादुर्धरोवाक्यमब्रवीत् ॥ सत्यमुक्तंवचोराजन्विरूपाक्षेणधीमता ॥ १७॥ ममाऽपिवचनंश्लक्ष्णंश्रोतव्यंधीमतात्वया ॥ कामातुरैषासुदतीलक्ष्यतेऽप्यनुमानतः ॥ १८ ॥ भवत्येवंविधाकामंनायिकारूपगर्विता ॥ भीषयित्वावरारो हात्वांवशेकर्तुमिच्छति ॥ १९ ॥ हावोऽयंमानिनीनांवैतंवेत्तिरसवित्तमः ॥ वक्रोक्तिरेषाकामिन्याःप्रियंप्रतिपरायणम् ॥ २० ॥ वेत्तिकोऽपिनरःकामंका मशास्त्रविचक्षणः ॥ यदुक्तंनामवाणैस्त्वांवधिष्येरणमूर्धनि ॥ २१ ॥ हेतुगर्भमिदंवाक्यंज्ञातव्यंहेतुवित्तमैः ॥ बाणास्तुमानिनीनांवैकटाक्षाएवविश्रुताः ॥ २२ ॥ पुष्पांजलिमयाश्चान्येव्यंग्यानिवचनानिच ॥ काशक्तिरन्यबाणानांप्रेरणेत्वयिपार्थिव ॥ २३ ॥ तादृशीनांनसाशक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु ॥ ययो क्तंनेत्रवाणैस्त्वांहनिष्येमंदपार्थिवम् ॥ २४ ॥ विपरीतंपरिज्ञातंतेनाऽरसविदाकिल ॥ पातयिष्यामिशय्यायांरणमय्यांपतितव ॥ २५ ॥

आकर्षणविषयमें प्रधान कारण होती है॥ २०॥ जो पुरुष कामशास्त्रमें चतुर हैं, उनमें कोई कोई पुरुष केवल इस विषयको भलीभांति जानसक्ते हैं. हे राजन् ! उस कामिनीने कहा है " तुमको सन्मुख समरमें बाणोंसे मारूंगी ॥ २१ ॥ इसका तात्पर्य पृथक् है. जो पण्डित लोग हेतुविद्यामें निपुण हैं, वेही उस हेतुगर्भ वाक्यको जानसक्ते हैं. देखो, मानिनीगणोंका दूसरा कोई बाण नहीं है. केवल कटाक्षबाणही प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ और अभिप्रायके प्रगट करनेवाले मर्मार्थ वचनहीं पुष्पमय दूसरा बाण है. हे पार्थिव ! आपके ऊपर बाण चलानेकी ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमेंभी शक्ति नहीं है ॥ २३ ॥ अतएव तादृशी शृङ्गारवती अबला कामिनीमें प्रकृत बाण चलानेकी क्या सामर्थ्य है ? हे राजन् ! उस स्त्रीने कहा है "रे मन्द ! तुम्हारे राजाको नयनबाणसे निहत करूंगी " ॥२४॥ किन्तु दूतको रसज्ञान नहीं है, इस कारण

शृंगसंयुक्त है, अतएव वह शृंगारमदसे प्रमत्त होकर अव्यक्तशब्द करते करते सशृंग महिषको पति कर सक्ती है, किन्तु मैं उसकी समान वा मूढस्वभाव नहीं हूं जो उसको पति करूं ॥ ६१ ॥ रे दुष्ट ! समराङ्गणमें युद्ध करके उस देवताओंके अप्रियकारी असुरका संहार करूंगी, यदि उसको जीवनकी इच्छा हो तो पातालमें भाग जाय ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! उसने मत्त होकर इसप्रकार कर्कशवचनकहे, मैं उनको सुनकर प्रतीकारका विचार करते करते आपके पास आया हूं ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! रसभंग होनेकी आशंकासे मैं ने युद्ध नहीं किया. विशेष कर आपकी आज्ञाके विना अत्यन्त निरर्थक उत्साह किसप्रकार करता ? ॥ ६४ ॥ हे महीपाल ! वह भामिनी अपने बलके मदसे अत्यन्त उन्मत्त हो रही है, जाना नहीं जाता कि क्या होनहार है ? वा जो होनहार है सो अवश्यही होगा ॥ ६५ ॥ इस विषयमें

महिषीमहिषंनाथंसशृंगाशृंगसंयुतम् ॥ कुरुतेक्रंदमानावैनाऽहंतत्सदृशीशठा ॥ ६१ ॥ करिष्येऽहंमृधेयुद्धंहनिष्येत्वांसुराऽप्रियम् ॥ गच्छवादुष्टपातालंजीवितेच्छायदस्तिते ॥ ६२ ॥ परुषंतुतयावाक्यमित्युक्तंनृपमत्तया ॥ तच्छ्रुत्वाऽहंसमायातःप्रतिचिंत्यपुनःपुनः ॥ ६३ ॥ रसभंगंविचिंत्यैवनयुद्धंतुमया कृतम् ॥ आज्ञांविनातवात्यंतंकथंकुर्यांवृथोद्यमम् ॥ ६४ ॥ साऽतीवचबलोन्मत्तावर्ततेभूपभामिनी ॥ भवितव्यंनजानामिकिंवाभाविभविष्यति ॥ ६५ ॥ कार्येऽस्मिंस्त्वंप्रमाणंनोमंत्रोऽतीवदुरासदः ॥ युद्धंपलायनंश्रेयोनजानेऽहंविनिश्चयम् ॥ ६६ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहा० पंचमस्कंधेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इति तस्यवचःश्रुत्वामहिषोमदविह्वलः ॥ मंत्रिवृद्धान्समाहूयराजावचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ मंत्रिणःकिंचकर्तव्यंविश्रब्धंब्रूतमाचिरम् ॥ आगतादेवविहितामायेयंशांबरीवकिम् ॥ २ ॥ कार्येऽस्मिन्निपुणायूयमुपायेषुविचक्षणाः ॥ सामादिषुचकर्तव्यःकोऽत्रमह्यंब्रुवंतुच ॥ ३ ॥

आपही एकमात्र प्रभु हैं अतएव आप जो कहैं हम वही करैं, किन्तु इसकी मंत्रणा अत्यन्त कठिन है सुतरां युद्ध करना अच्छा वा भागना अच्छा इसका मैं कुछ निश्चय नहीं करसक्ता ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यासजी बोले कि, मदमोहित राजा महिषासुरने दूतके इस प्रकार वचनसुन बूढे मंत्रियोंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ हे मंत्रियो ! इस समय मुझको क्या करना चाहिये ? आप उसको निश्चय करके शीघ्र कहिये. क्या यह देवी शम्बरासुरकी मायाके समान देवताओंसे विरचित होकर यहां आई है ? ॥ २ ॥ आपलोग सामादि चारों प्रकारके उपाय प्रयोग करनेमें विचक्षण हैं और उपस्थित मंत्रणा कार्यमें भी निपुण हैं, अतएव इस समय साम, दान, भेद और दंड इन चार उपायोंमें किस उपायका अवलम्बन करना चाहिये ? यह मुझसे कहो ॥ ३ ॥

उसने विपरीत ज्ञान किया है, इसमें संदेह नहीं है. उस कामनिपुणा कामिनीने और भी कहा है कि तुम्हारे पतिको रणशय्यापर निपातित करूंगी ॥ २५॥ यह निश्चय ही विपरीतरतिक्रीडाके अभिप्रायसे कहा गया है, इसमें संदेह नहीं. उस सुन्दरीने कहा है कि, उसका प्राणहरण करूंगी ॥ २६॥ हे राजन् ! इस विषयमें भी विचार करके देखो कि वीर्यही प्राण कहागया है,अतएव वह स्त्री आपको वीर्यहीन करेगी;इसी अभिप्रायसे कहा है;दूसरा कोई अभिप्राय नहीं है. हे नृप ! उत्तम स्त्रियें व्यङ्ग्य वचनोंसेही प्रियपुरुषको वरण करती हैं ॥ २७ ॥ मैंने जो कहा रतिशास्त्रमें चतुर पण्डितलोग विचार करके यह जानसक्ते हैं. हे महाराज ! आप इसको जानकर उस कामिनीके प्रति सरस व्यवहार कीजिये ॥ २८ ॥ हे भूपते ! साम और दानके अतिरिक्त उसको बाध्य करनेका दूसरा उपाय नहीं है. वह मानिनी गर्वित हो वा रुष्ट हो, इससे अवश्य वशीभूत होगी ॥ २९ ॥ हे राजन् ! मुझको अधिक वचन कहनेका प्रयोजन नहीं है. मैं अभी जाकर ऐसे मधुरवचनोंसे उसको आपके समीप

विपरीतरतिक्रीडाभाषणंज्ञेयमेवतत् ॥ करिष्येविगतप्राणंयदुक्तंवचनंतया ॥२६॥ वीर्यंप्राणाइतिप्रोक्तंतद्विहीनंनचाऽन्यथा ॥ व्यंग्योधिक्यनवाक्येनव रयत्युत्तमानृप ॥ २७ ॥ तद्वैविचारतोज्ञेयंरसग्रंथविचक्षणैः ॥ इतिज्ञात्वामहाराजकर्तव्यंरससंयुतम् ॥ २८ ॥ सामदानद्वयंतस्यानान्योपायोऽस्तिभूप ते ॥ रुष्टावागर्वितावाऽपिवशगामानिनीभवेत् ॥ २९ ॥ तादृशैर्मधुरैर्वाक्यैरानयिष्येतवांतिकम् ॥ किंबहूक्तेनमेराजन्कर्तव्यावशवर्तिनी ॥ ३० ॥ गत्वा मयाऽधुनैवेयंकिंकरीवसदैवते ॥ व्यासउवाच ॥ इत्थंनिशम्यतद्वाक्यंताम्रस्तत्वविचक्षणः ॥३१॥ उवाचवचनंराजन्निशामयमयोदितम् ॥ हेतुमद्धर्मसहि तंरसयुक्तंनयान्वितम् ॥ ३२ ॥ नैषाकामाऽऽतुरावालानानुरक्ताविचक्षणा ॥ व्यंग्यानिनैववाक्यानितयोक्तानितुमानद ॥ ३३ ॥ चित्रमत्रमहाबाहोय देकावरवर्णिनी ॥ निरालंबासमायातिचित्ररूपामनोहरा ॥३४॥ अष्टादशभुजानारीनश्रुतानचवीक्षिता ॥ केनाऽपित्रिषुलोकेषुपराक्रमवतीशुभा ॥३५॥

लाऊंगा ॥ ३० ॥ अधिक क्या उसको किङ्करीके समान सदा आपके वशीभूत करदूंगा. व्यासजी बोले दुर्द्धरके इसप्रकार वचन सुनकर कार्यकुशल ताम्रने कहा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! मैं हेतुयुक्त सरस और धर्मसम्मत नीति वचन कहता हूं. सुनो ॥ ३२ ॥ हे मानद ! वह बुद्धिमती रमणी कामातुर वा आपके प्रति अनुरक्त नहीं है और उस रमणीने आपके प्रति व्यंग्य वचन भी प्रयोग नहीं किये हैं ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वह विचित्ररूपा मनोहारिणी वरवर्णिनी रमणी जो निराश्रय होकर अकेली ही इस स्थानमें युद्धकी इच्छासे आई है. यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है ॥ ३४ ॥ स्त्रियोंके दो भुजा होती हैं, किन्तु इस स्त्रीके अठारह भुजा हैं,

और उन अठारह भुजाओंमें उत्तमोत्तम अस्त्र धारण करके पराक्रमप्रकाशमें उद्यत है. हे महाराज! ऐसी स्त्री त्रैलोक्यमें कभी नहीं देखी और कहीं सुनी भी नहीं ॥ ३५॥ अतएव यह सब कालका विपरीत कार्य प्रतीत होता है ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! मैं रात्रिमें दुर्निमित्त स्वप्न देखता हूं, इससे मुझको निश्चय बोध होता है कि निकट ही घोर विपद् उपस्थित है ॥ ३७ ॥ मैंने उषःकालमें स्वप्न देखा है कि एक स्त्री काले वस्त्र पहन कर घरमें रोती है. इससे बोध होता है कि, आपका अमंगल उपस्थित होगा ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! रात्रिकालके समय पक्षीगण घरघर विकट शब्दसे चीत्कार करते हैं और सभी गृहोंमें अनेक उत्पात प्रादुर्भूत होते हैं ॥ ३९ ॥ विशेष कर इस समय यह बाला युद्धके लिये दृढ़प्रतिज्ञा होकर आपको बुलाती है. इससे अनुमान करता हूं कि इसका अवश्यही कोई गूढ कारण है ॥ ४० ॥ हे विभो ! यह रमणी मानवी वा गंधर्वकामिनी अथवा असुरपत्नी नहीं है. केवल हमको मोह उत्पन्न करानेके लियेही देवताओंने इस मायारूपिणीको निर्माण किया है ॥ ४१ ॥

आयुधान्यपितावंतिधृतानिबलवंतिच ॥ विपरीतमिदंमन्येसर्वंकालकृतंनृप ॥ ३६ ॥ स्वप्नानिदुर्निमित्तानिमयादृष्टानिवैनिशि ॥ तेनजानाम्यहंनूनंवैशसंसमुपागतम् ॥ ३७ ॥ कृष्णांबरधरानारीरुदतीचगृहांगणे ॥ दृष्टास्वप्नेप्युषःकालेचिंतितव्यस्तदत्ययः ॥३८॥ विकृताःपक्षिणोरात्रौरोरुवंतिगृहेगृहे ॥ उत्पाताविविधाराजन्प्रभवंतिगृहेगृहे ॥ ३९ ॥ तेनजानाम्यहंनूनंकारणंकिंचिदेवहि ॥ यत्त्वांप्रार्थयतेबालायुद्धायकृतनिश्चया ॥ ४० ॥ नैषाऽस्तिमानुषीनोवागांधर्वीनतथाऽऽसुरी ॥ देवैःकृतेयंज्ञातव्यामायामोहकरीविभो॥४१॥कातरत्वंनकर्तव्यंममैतन्मतमित्यलम् ॥ कर्तव्यंसर्वथायुद्धंयद्भाव्यंतद्भविष्यति॥४२॥कोवेददैवकर्तव्यंशुभंवाऽप्यशुभंतथा॥अवलंब्यधियाधैर्यंस्थातव्यंवैविचक्षणैः ॥४३॥ जीवितंमरणंपुंसां दैवाधीनंनराधिप॥कोपिनैवान्यथाकर्तुंसमर्थोभुवनत्रये॥४४॥महिषउवाच॥गच्छताम्रमहाभागयुद्धायकृतनिश्चयः॥तामानयवरारोहांजित्वाधर्मेणमानिनीम्॥४५॥नभवेद्वशगानारीसंग्रामेयदिसातव॥हंतव्यानान्यथाकामंमाननीयाप्रयत्नतः॥४६॥वीरस्त्वमसिसर्वज्ञकामशास्त्रविशारदः॥येनकेनाप्युपायेनजेतव्यावरवर्णिनी॥४७॥

हे राजेन्द्र ! कातरता अवलम्बन करना उचित नहीं है. सब प्रकारसे युद्धही करना उचित है, जो होनहार है, वह अवश्यही होगा. यह मेरा निश्चित अभिप्राय है ॥ ४२ ॥ शुभ हो वा अशुभ हो. देवताओंका कार्य कोई नहीं जानसक्ता. इसकारण बुद्धिमान् पुरुषोंको विशेष विचारपूर्वक धैर्य अवलम्बन करके स्थिर रहनाही उचित है ॥ ४३॥ हे नराधिप ! पुरुषका जीवन वा मरण दैवाधीन है.इसकारण त्रिभुवनमें कोई भी उसके अन्यथा करनेंमें समर्थ नहीं है ॥ ४४ ॥ यह बात सुनकर महिषासुरने कहा हे महाभाग ताम्र ! तुम युद्धके लिये कृतनिश्चय होकर उस रमणीके निकट जाओ और उस वरारोहा मानिनीको धर्मानुसार जीतकर मेरे समीप लाओ॥ ४५॥ यदि वह नारी संग्राममें तुम्हारे वशीभूत न हो, तो उसका संहार करो और यदि वशीभूत हो तो वध न करके यत्नसहित यथेष्ट सन्मान करो ॥ ४६॥ हे सर्वज्ञ ! तुम वीर और

मंत्री बोले हे नृपसत्तम ! सदा सत्य और प्रियवचन कहना चाहिये, उसमें जो हितकारी है पण्डितलोग विचार करके उसीको स्वीकार करें ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इसलोकमें औषधी जिसप्रकार मनुष्योंको अप्रिय होनेपर भी रोगविनाश करती है इसीप्रकार सत्यवचन अप्रिय होनेपर भी हितकर हैं, किन्तु केवल प्रियवचन अहितकर होता है ॥ ५ ॥ हे पृथ्वीपते ! जो सत्यवचनको सुनते हैं और जो अनुमोदन करते हैं. इन दोनों प्रकारके पुरुषही दुर्लभ हैं, और सत्यवक्ता पुरुष भी अत्यन्त दुर्लभ है. क्योंकि लोकमें चाटुवादीही (मीठी बातोंवाले) अधिक दिखाई देते हैं ॥ ॥ ६ ॥ हे नरनाथ ! शुभ वा अशुभ क्या है ? इस त्रैलोक्यमें उसको कौन जानता है ? इस दुरूह [कठिन] विचारके विषयका निर्णय हम किसप्रकारसे कहैं ? ॥ ७ ॥ राजाने कहा—आप लोग अपनी बुद्धिके अनुसार जिसका जो अभिप्राय हो वह

मंत्रिणऊचुः ॥ सत्यंसदैववक्तव्यंप्रियंचनृपसत्तम ॥ कार्यंहितकरंनूनंविचार्यविबुधैःकिल ॥ ४ ॥ सत्यंचहितकृद्राजन्प्रियचाहितकृद्भवेत् ॥ यथौषधंनृणांलोकेह्यप्रियंरोगनाशनम् ॥ ५ ॥ सत्यस्यश्रोतामंताचदुर्लभःपृथिवीपते ॥ वक्ताऽपिदुर्लभःकामंबहवश्चाटुभाषकाः ॥ ६ ॥ कथंब्रूमोऽत्रनृपतेविचारेगहनेत्विह ॥ शुभंवाऽप्यशुभंवाऽपिकोवेत्तिभुवनत्रये ॥७॥ राजोवाच ॥ स्वस्वमत्यनुसारेणब्रुवंत्वद्यपृथक्पृथक् ॥ येषांहियादृशोभावस्तच्छ्रुत्वाचिंतयाम्यहम् ॥ ८ ॥ बहूनांमतमाज्ञायविचार्यचपुनःपुनः ॥ यच्छ्रेयस्तद्धिकर्तव्यंकार्यंकार्यविचक्षणैः ॥९॥ व्यासउवाच ॥ तस्यैवंवचनंश्रुत्वाविरूपाक्षोमहाबलः ॥ उवाचतरसावाक्यंरंजयन्पृथिवीपतिम् ॥ १० ॥ विरूपाक्षउवाच ॥ राजन्नारीवराकीयंसाब्रूतेमदगर्विता ॥ विभीषिकामात्रमिदंज्ञातव्यंवचनंत्वया ॥ ११ ॥ कोबिभेतिस्त्रियोवाक्यैर्दुरुक्तैरणदुर्मदैः ॥ अनृतंसाहसंचेतिजानन्नारीविचेष्टितम् ॥ १२ ॥ जित्वात्रिभुवनंराजन्नद्यकांताभयेनवै ॥ दीनत्वेऽप्ययशोनूनंवीरस्यभुवनेभवेत् ॥१३॥ तस्माद्याम्यहमेकाकीयुद्धायचंडिकांप्रति॥हनिष्येतांमहाराजनिर्भयोभवसांप्रतम्॥ १४॥

पृथक् पृथक् कहो, वह सब सुनकर फिर मैं विचार करूंगा ॥८॥ क्योंकि सब पुरुषोंका मत भलीभांतिसे जान वारंवार विचार कर जो श्रेष्ठ हो कार्यकुशल पुरुष उसी कार्यको कर्तव्य जाने ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले—उसके इसप्रकार वचन सुनकरमहाबल विरूपाक्ष शीघ्र राजासे मनोरंजन वचन कहने लगा ॥ १० ॥ विरूपाक्ष बोला—हे राजन् ! आप निश्चय जानिये कि उस सामान्य नारीने मदसे गर्वित होकर जो कहा है वह विभीषिका [डरावनी] मात्र है ॥ ११ ॥ स्त्रियोंकी चेष्टा और साहस निरर्थक होता है इस बातको मनुष्यमात्र जानता है अतएव कौन पुरुष स्त्रीके रणश्लाघाकर कटुवचनोंसे डरता है ? ॥ १२ ॥ हे राजन् ! आपने वीरताके दर्पसे त्रिभुवनको जीता है किन्तु इस समय यदि अबला कामिनीके भयसे आप हीनता स्वीकार करेंगे तो संसारमें आपका बहुतही अयश होगा ॥ १३ ॥ अतएव हे महाराज ! मैं

अकेलाही चंडिकासे युद्ध करने जाऊंगा और मैंही उसको मारूंगा आप अब निर्भयचित्त होकर रहिये ॥ १४ ॥ हे राजन्! आप मेरा पराक्रम देखिये मैं सेनासहित जाकर अनेक अस्त्र शस्त्रोंसे उस चंडविक्रमा दुर्भदा चण्डिकाका वध करूंगा ॥ १५॥ वा सर्पमय पाशसे बांधकर आपके पास लेआऊंगा तो वह निरुपाय स्त्री सदा आपके वशीभूत होकर रहेगी इसमें संदेह नहीं ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले–विरूपाक्षके इस प्रकार वचन सुनकर दुर्द्धरने कहा हे राजन्! विरूपाक्ष अत्यन्त बुद्धिमान् है अतएव इसने जो कहा है वह युक्तिसंगत और सत्य है ॥ १७॥ हे राजन्! आप बुद्धिमान् हैं इसकारण मेरा भी यथार्थ वचन सुनिये मैं ने अनुमानसे उस सुदती रमणीको कामातुर जाना है ॥ १८ ॥ क्योंकि उस नितम्बिनीने भय दिखलाकर आपको वशीभूत करनेकी इच्छा की है. विशेषकर प्रायः रूपगर्विता नायिका कामातुर होकर इसी प्रकार व्यवहार करती है ॥ १९ ॥ मानिनीके ऐसे व्यवहारको हाव कहते हैं. जो अत्यन्त रसज्ञ हैं, वेही इसको जानसक्ते हैं. स्त्रियोंकी यह वक्रोक्ति ही प्रियपुरुषोंके

सेनावृतोऽहंगत्वातांशस्त्रास्त्रैर्विविधैःकिल ॥ निषूदयामिदुर्मर्षांचंडिकांचंडविक्रमाम् ॥ १५ ॥ बद्ध्वासर्पमयैःपाशैरानयिष्येतवांतिकम् ॥ वश गातुसदातेस्यात्पश्यराजन्बलंमम ॥ १६ ॥ व्यासउवाच ॥ विरूपाक्षवचःश्रुत्वादुर्धरोवाक्यमब्रवीत् ॥ सत्यमुक्तंवचोराजन्विरूपाक्षेणधीमता ॥ १७॥ ममाऽपिवचनंश्लक्ष्णंश्रोतव्यंधीमतात्वया ॥ कामातुरैषासुदतीलक्ष्यतेऽप्यनुमानतः ॥ १८ ॥ भवत्येवंविधाकामंनायिकारूपगर्विता ॥ भीषयित्वावरारो हात्वांवशेकर्तुमिच्छति ॥ १९ ॥ हावोऽयंमानिनीनांवैतंवेत्तिरसवित्तमः ॥ वक्रोक्तिरेषाकामिन्याःप्रियंप्रतिपरायणम् ॥ २० ॥ वेत्तिकोऽपिनरःकामंका मशास्त्रविचक्षणः ॥ यदुक्तंनामबाणैस्त्वांवधिष्येरणमूर्धनि ॥ २१ ॥ हेतुगर्भमिदंवाक्यंज्ञातव्यंहेतुवित्तमैः ॥ बाणास्तुमानिनीनांवैकटाक्षाएवविश्रुताः ॥ २२ ॥ पुष्पांजलिमयाश्चान्येव्यंग्यानिवचनानिच ॥ काशक्तिरन्यबाणानांप्रेरणेत्वयिपार्थिव ॥ २३ ॥ तादृशीनांनसाशक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु ॥ ययो क्तंनेत्रबाणैस्त्वांहनिष्येमंदपार्थिवम् ॥ २४ ॥ विपरीतंपरिज्ञाततेनाऽरसविदाकिल ॥ पातयिष्यामिशय्यायांरणमय्यांपतितव ॥ २५ ॥

आकर्षणविषयमें प्रधान कारण होती है॥ २०॥ जो पुरुष कामशास्त्रमें चतुर हैं, उनमें कोई कोई पुरुष केवल इस विषयको भलीभांति जानसक्ते हैं. हे राजन्! उस कामिनीने कहा है "तुमको सन्मुख समरमें बाणोंसे मारूंगी ॥ २१ ॥ इसका तात्पर्य पृथक् है. जो पण्डित लोग हेतुविद्यामें निपुण हैं, वेही उस हेतुगर्भ वाक्यको जानसक्ते हैं. देखो, मानिनीगणोंका दूसरा कोई बाण नहीं है. केवल कटाक्षबाणही प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ और अभिप्रायके प्रगट करनेवाले मर्मार्थ वचनहीं पुष्पमय दूसरा बाण है. हे पार्थिव! आपके ऊपर बाण चलानेकी ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमेंभी शक्ति नहीं है ॥ २३ ॥ अतएव तादृशी शृंङ्गारवती अबला कामिनीमें प्रकृत बाण चलानेकी क्या सामर्थ्य है? हे राजन्! उस स्त्रीने कहा है "रे मन्द! तुम्हारे राजाको नयनबाणसे निहत करूंगी" ॥ २४॥ किन्तु दूतको रसज्ञान नहीं है, इस कारण

कामशास्त्रमें सुपण्डित हो. अतएव जिस किसी उपायसे हो, तुम उस वरवर्णिनीको जीतो ॥ ४७ ॥ हे महाबाहो ! वीरवर ताम्र ! तुम महती सेनाके सहित उस स्थानमें जल्दी जाकर वारंवार विचार कर उसका मनोगत भाव जानो ॥ ४८ ॥ वह स्त्री कामभावसे वा वैरभावसे या अन्य किसी प्रयोजनसे आई है ? अथवा किसीकी माया है? तुम इन सबका कारण भलीभांतिसे जानो ॥ ४९ ॥ प्रथम तो इन सब विषयोंका निश्चय करके उसका चिकीर्षित [इच्छित] विषय जानना चाहिये. फिर बल और सामर्थ्यके अनुसार उससे संग्राम करना उचित है ॥ ५० ॥ देखो, कातरता दिखाना भी उचित नहीं है और निर्दय व्यवहार करना भी उचित नहीं है. उस रमणीका जैसा अभिप्राय हो, उसीप्रकार तुमको व्यवहार करना चाहिये ॥ ५१ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! ताम्र कालके नितान्त वशीभूत हो नरपतिके इसप्रकार वचन सुनतेही उनको प्रणाम करके सेनासहित बाहर निकला ॥ ५२ ॥ यह दुरात्मा गमन करते करते मार्गमें यममार्गके प्रदर्शक

त्वरन्वीरमहाबाहोसैन्येनमहतावृतः ॥ तत्रगत्वात्वयाज्ञेयाविचार्यचपुनःपुनः ॥ ४८ ॥ किमर्थमागताचेयंज्ञातव्यंतद्धिकारणम् ॥ कामाद्वावैरभावाच्च मायाकस्येयमित्युत ॥ ४९ ॥ आदौतन्निश्चयंकृत्वाज्ञातव्यंतच्चिकीर्षितम् ॥ पश्चाद्युद्धंप्रकर्तव्यंयथायोग्यंयथावलम् ॥ ५० ॥ कातरत्वंनकर्तव्यंनिर्दयत्वंतथानच ॥ यादृशंहिमनस्तस्याःकर्तव्यंतादृशंत्वया ॥ ५१ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितद्भाषितंश्रुत्वाताम्रःकालवशंगतः ॥ निर्गतःसैन्यसंयुक्तःप्रणम्य महिषंनृपम् ॥ ५२ ॥ गच्छन्मार्गेदुरात्माऽसौशकुनान्वीक्ष्यदारुणान् ॥ विस्मयंचभयंप्रापयममार्गप्रदर्शकान् ॥ ५३ ॥ सगत्वातांसमालोक्यदेवींसिंहोपरिस्थिताम् ॥ स्तूयमानांसुरैःसर्वैःसर्वायुधविभूषिताम् ॥ ५४ ॥ तामुवाचविनीतःसन्वाक्यंमधुरयागिरा ॥ सामभावंसमाश्रित्यविनयाऽवनतःस्थितः ॥ ५५ ॥ देविदैत्येश्वरःशृंगीत्वद्रूपगुणमोहितः ॥ स्पृहांकरोतिमहिषस्त्वत्पाणिग्रहणायच ॥ ५६ ॥ भावंकुरुविशालाक्षितस्मिन्नमरदुर्जये ॥ पतिंतंप्राप्यमृद्धंगिनंदनेविहराऽद्भुते ॥ ५७ ॥ सर्वांगसुंदरंदेहंप्राप्यसर्वसुखाऽऽस्पदम् ॥ सुखंसर्वात्मनाग्राह्यंदुःखंहेयमितिस्थितिः ॥ ५८ ॥

दारुण दुर्निमित्त (दुःशकुन) देखकर विस्मित और भीत हुआ ॥ ५३ ॥ उसने क्रमानुसार वहां उपस्थित हो उस देवीको देखा कि वह देवी सब आयुधोंसे विभूषित हो सिंहके ऊपर विराजमान हैं और सब देवतालोग उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ तब ताम्र विनयावनत हो प्रथम सामभाव अवलम्बन पूर्वक मधुर वचनद्वारा उनसे कहने लगा ॥ ५५ ॥ हे देवि ! दैत्येश्वर महिष आपके रूप और गुणोंसे मोहित होकर पाणिग्रहणके लिये अभिलाषी हुए हैं ॥ ५६ ॥ हे सुन्दरि ! तुम इस सुरविजयी महिषासुरके सहित प्रीति स्थापन करो. हे कोमलाङ्गि ! उसको पति बनाकर तुम परमानन्दसे अलौकिक नन्दनवनमें विहार करो ॥ ५७ ॥ देखो, संपूर्ण सुखका आस्पद सर्वाङ्गसुन्दर शरीर धारण करके सब प्रकारसे सुखग्रहण और दुःखका त्याग करनाही उचित है. यह रीति

चिरकालसे प्रसिद्ध है ॥ ५८ ॥ हे करभोरु ! तुम्हारे कमलकी समान कोमल करकमल पुष्पनिर्मित कन्दुक (गेंद) क्रीडाके योग्य हैं, तो तुमने आयुध किस कारण ग्रहण किये हैं? ॥ ५९ ॥ आपके पास युगलभ्रूचापके विद्यमान रहते सामान्य धनुषका क्या प्रयोजन है ? कटाक्षरूप बाणोंके विद्यमान रहते साधारण बाण धारण करनेका फिर क्या प्रयोजन है ? ॥ ६० ॥ संसारमें युद्ध अत्यन्त क्लेशदायक है, जो इस बातको जानते हैं, उनको युद्ध करना उचित नहीं है. लोभासक्त मनुष्यही परस्पर युद्ध करते हैं॥६१॥ निश्चित बाणकी बात तो दूर रहै, पुष्पद्वारा भी युद्ध नहीं करना चाहिये, क्यों कि हे देवि ! अपने देहके विद्ध होनेसे किस पुरुषको सुख होता है ? ॥६२॥ इस कारण हे कोमलाङ्गी ! तुम प्रसन्नचित्त होकर देवता और दानवोंसे पूजित महीपति मेरे स्वामी महिषका भजन करो॥६३॥तो वह तुम्हारा सब अभिलाषित

करभोरुकिमर्थंतेगृहीतान्यायुधान्यलम् ॥ पुष्पकंदुकयोग्यास्तेकराःकमलकोमलाः ॥५९॥ भ्रूचापेविद्यमानेऽपिधनुषाकिंप्रयोजनम्॥कटाक्षाविशिखाः संतिकिंबाणैर्निष्प्रयोजनैः ॥ ६० ॥ संसारेदुःखदंयुद्धंनकर्तव्यंविजानता ॥ लोभाऽऽसक्ताःप्रकुर्वंतिसंग्राममंचपरस्परम् ॥ ६१ ॥ पुष्पैरपिनयोद्धव्यंकिंपुन र्निशितैःशरैः ॥ भेदनंनिजगात्राणांकस्यतज्जायतेमुदे ॥६२॥ तस्मात्त्वमपितन्वंगिप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ भर्तारंभजमेनाथंदेवदानवपूजितम् ॥ ६३ ॥ सते ऽत्रवांछितंसर्वंकरिष्यतिमनोरथम्॥ त्वंपट्टमहिषीराज्ञः सर्वथानाऽत्रसंशयः ॥६४॥ वचनंकुरुमेदेविप्राप्स्यसेसुखमुत्तमम् ॥ संग्रामेजयसंदेहःकष्टंप्राप्य नसंशयः ॥ ६५ ॥ जानासिराजनीतिंत्वंयथावद्वरवर्णिनि ॥ भुंक्ष्वराज्यसुखंपूर्णंवर्षाणामयुताऽयुतम् ॥ ६६ ॥ पुत्रस्तेभविताकांतःसोऽपिराजाभवि ष्यति ॥ यौवनेक्रीडयित्वांतेवार्द्धक्येसुखमाप्स्यसि ॥ ६७ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेदेवीमाहात्म्येएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ तन्निशम्यवचस्तस्यताम्रस्यजगदंबिका ॥ मेघगंभीरयावाचाहसंतीतमुवाचह ॥ १ ॥

मनोरथ पूर्ण करेंगे, अधिक क्या ? तुम्हीं सब प्रकारसे राजाकी पटरानी होगी इसमें सन्देह नहीं ॥६४॥ हे देवि ! अत्यंत कष्ट करनेपरभी संग्रामके जयविषयमें सन्देह रहता है, इसमें संशय नहीं, इसकारण मेरा कहना मानो तो उत्तम सुख पाओगी ॥ ६५ ॥ हे सुन्दरि ! तुम राजनीतिका यथार्थ तात्पर्य जानती हो, अतएव अनेक वर्षतक भलीभांति राज्यसुख भोगो ॥ ६६ ॥ और महिषासुरका पाणिग्रहण करनेसे तुम्हारे अति मनोहर पुत्र होगा और वह पुत्र भी राजा होगा, तो यौवनकालमें क्रीडा करके तुम वार्द्धक्य कालमें भी सुख लाभ करोगी, इसमें संदेह नहीं है ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जगदम्बिका दुर्गा ताम्रके इसप्रकार वचन सुनकर कुछेक हँसती हुई मेघकी समान गंभीर वचन द्वारा उससे कहने लगी ॥ १ ॥

हे ताम्र! तेरे प्रभु अतिकामातुर और मूढ हैं नहीं तो कार्य अकार्यके ज्ञानसे रहित क्यों होते? चित्तकी विचित्रता देखनेसे बोध होता है कि उनका मरणसमय उपस्थित हुआ है. तुम जाकर उस मन्दमति महिषसे कहो कि तेरी प्रौढा माता जिसप्रकार लम्बपुच्छा (लंबी पूँछवाली) सींगयुक्त और महोदरी महिषी है, मैं उसकी जातिकी नहीं हूं. वह जिसप्रकार तृणादि भक्षण करती है, मैं उस भांति नहीं करती इस कारण मेरी इच्छा करना उसका अत्यन्त अन्याय है ॥ २ ॥ ३ ॥ देवेश, विष्णु, शंकर, ब्रह्मा, कुबेर, वरुण वा पावक ॥ ४ ॥ इनमेंसे मैं किसीकी अभिलाषा नहीं करती. इन सब देवताओंको छोड़कर किस गुणसे पशुको वरण करूंगी? यदि वरण करूं तो लोकमें मेरी अत्यन्त निन्दा होगी ॥ ५ ॥ विशेष कर मैं फिर पतिकी अभिलाषा नहीं करती क्यों कि मेरा पति वर्त्तमान है. वह सबके निग्रहानुग्रहमें समर्थ

देव्युवाच ॥ गच्छताम्रपतिंब्रूहिमुमूर्षुमंदचेतसम् ॥ महिषंचाऽतिकामार्तंमूढंज्ञानविवर्जितम् ॥ २ ॥ यथातेमहिषीमाताप्रौढायवसभक्षिणी ॥ नाऽहंतथाशृंगवतीलंबपुच्छामहोदरी ॥ ३ ॥ नकामयेऽहंदेवेशंनैवविष्णुंनशंकरम् ॥ धनदंवरुणंनैवब्रह्माणंनचपावकम् ॥४॥ एतान्देवगणान्हित्वापशुंकेनगुणेनवै॥ वृणोम्यहंवृथालोकेगर्हणामेभवेदिति ॥ ५ ॥ नाऽहंपतिंवरानारीवर्ततेमेपतिःप्रभुः ॥ सर्वकर्तासर्वसाक्षीह्यकर्तानिःस्पृहःस्थिरः ॥६॥ निर्गुणोनिर्ममोऽनंतोनिराऽऽलंबोनिराश्रयः ॥ सर्वज्ञःसर्वगःसाक्षीपूर्णःपूर्णाशयःशिवः ॥ ७ ॥ सर्वावासःक्षमःशांतःसर्वदृक्सर्वभावनः ॥ तंत्यक्त्वामहिषंमंदंकथंसेवितुमुत्सहे ॥८॥ प्रबुध्ययुध्यतांकामंकरोमियमवाहनम् ॥ अथवामनुजानांवैकरिष्येजलवाहकम् ॥ ९ ॥ जीवितेच्छाऽस्तिचेत्पापगच्छपातालमाशुवै ॥ समस्तैर्दानवैर्युक्तस्त्वन्यथाहन्मिसंगरे ॥ १० ॥ कामंसदृशयोर्योगःसंसारेसुखदोभवेत् ॥ अन्यथादुःखदोभूयादज्ञानाद्यदिकल्पितः ॥ ११ ॥

है, वह समस्त कार्योंके कर्त्ता होकर भी अकर्त्ता हैं. और वह सबके साक्षीस्वरूप निश्चल और निस्पृह ॥६॥ निर्गुण, निर्मम, अनन्त, निराश्रय निरावलम्ब, सर्वज्ञ, सर्वगामी, पूर्ण और पूर्णाशय शिव हैं ॥७॥ वह सबके आवासस्वरूप सब कार्योंमें समर्थ शान्त सर्वभावन और सर्वदृक् हैं. मैं उनको त्यागकर किसप्रकार मन्दमति महिषकी सेवा करनेका यत्न करूं?॥८॥ वह ऐसा समझकर युद्ध करता है कि, मैं उसको युद्धमें जीतकर यमका वाहन करूंगी, वा मनुष्योंका जलवाहक करूंगी॥९॥ उस पाखंडको यदि जीनेकी इच्छा हो तो अभी सब दानवोंके सहित पातालमें भाग जाय नहीं तो मैं समरमें उसको मारूंगी ॥ १० ॥ क्योंकि परस्पर समानवस्तुका संयोग ही संसारमें

विशेष सुखदायक होता है, किन्तु यदि अज्ञानतासे इसके विपरीत घटना हो; तो निःसंदेह क्लेशकर होती है ॥ ११ ॥ तुमने अभी कहा कि हे भामिनी ! तुम मेरे पतिकी सेवा करो, इस कारण बोध होता है तुम भी अत्यन्त निर्बोध और मूर्ख हो, क्योंकि मेरा यह रूप लावण्य और महिष शृंगवान्, अतएव किसप्रकार हम दोनोंका संबंध होगा ? ॥ १२॥ तुम चले जाओ वा इच्छा हो तो युद्ध करो उसमें मैं तुमको बांधवों सहित विनाश करूंगी और यदि तुमलोग यज्ञभाग और देवलोक परित्याग करो, तो सुखी होसक्ते हो ॥ १३ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! उस देवीने यह वचन कहकर ऐसी अद्भुत गर्जना करी कि कल्पान्त कालके समान उस घोर शब्दसे दानवोंको भय उत्पन्न हुआ॥ १४॥ तब उस भयंकर गर्जन शब्दसे पर्वतों सहित पृथ्वी कांपने लगी, अधिक क्या उससे दानवोंकी स्त्रियोंके गर्भ भी गिरगये ॥ १५॥

मूर्खस्त्वमसियद्रूपेपतिंमेभजभामिनि ॥ क्वाऽहंक्कमहिषःशृंगीसंबंधःकीदृशोद्वयोः ॥ १२ ॥ गच्छयुध्यस्ववाकामंहनिष्येऽहंसबांधवम् ॥ यज्ञभागंदेवलोकंनोचेत्त्यक्त्वासुखीभव ॥१३॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वासातदादेवीजगर्जभृशमद्भुतम् ॥ कल्पांतसदृशंनादंचक्रेदैत्यभयावहम् ॥१४॥ चकंपेवसुधाचेलुस्तेनशब्देनभूधराः ॥ गर्भाश्चदैत्यपत्नीनांसस्रंसुर्गर्जितस्वनात् ॥ १५ ॥ ताम्रःश्रुत्वाचतंशब्दंभयत्रस्तमनास्तदा ॥ पलायनंततःकृत्वाजगाममहिषांतिकम् ॥ १६ ॥ नगरेतस्ययेदैत्यास्तेऽपिचिंतामवाप्नुवन् ॥ बधिरीकृतकर्णाश्चपलायनपरानृप ॥१७॥ तदाक्रोधेनसिंहोऽपिननादभृशमुत्सटः ॥ तेननादेनदैतेयाभयंजग्मुरपिस्फुटम् ॥ १८ ॥ ताम्रंसमागतंदृष्ट्वाहयारिरपिमोहितः ॥ चिंतयामाससचिवैःकिंकर्तव्यमतःपरम् ॥ १९॥ दुर्गग्रहोवाकर्तव्योयुद्धंनिर्गत्यवापुनः ॥ पलायनेकृतेश्रेयोभवेद्वादानवोत्तमाः ॥ २० ॥ बुद्धिमंतोदुराधर्षाःसर्वेशास्त्रविशारदाः ॥ मंत्रःखलुप्रकर्तव्यःसुगुप्तःकार्यसिद्धये ॥२१॥ मंत्रमूलंस्मृतंराज्यंयदिसस्यात्सुरक्षितः॥ मंत्रिभिश्चसदाचारैर्विधेयःसर्वथाबुधैः ॥ २२ ॥

ताम्र उस शब्दको सुन, भयसे चंचलमन हो महिषके निकट भागगया॥ १६ ॥ हे नृप ! उसके नगरमें तिसकाल जो दानव उपस्थित थे,वे बधिर (बहरे) होकर भागे और उस विषयकी चिन्तामें निमग्न हुए॥ १७॥ फिर सिंहभी क्रोधसे जटा ऊर्ध्वमें उत्क्षिप्त करता हुआ घोरतर उत्कट गर्जना करने लगा. उस शब्दसे दानव बहुत डरे ॥ १८॥ महिषासुर ताम्रको लौट आया देखकर विमोहित हुआ और फिर क्या करना चाहिये ? मंत्रियोंके संग इस विषयकी चिन्ता करने लगा ॥ १९ ॥ महिषने कहा हे दानवोत्तमगण! अब दुर्गका आश्रय लेना चाहिये अथवा बाहर निकलकर युद्ध करना उचित है!वा भागनेसे मंगल होसक्ता है ॥ २० ॥ तुमलोग सभी बुद्धिमान् और सर्वशास्त्रोंमें सुपण्डित हो. तथा शत्रुओंसे अजीत हो इसकारण कार्यसिद्धिके लिये अत्यन्त गुप्तभावसे इस विषयकी मंत्रणा करो ॥ २१ ॥क्योंकि मंत्रही राज्यका मूल है यदि

स्त्रीके सन्मुखसे कौन पुरुष भागेगा ? ॥ ४१ ॥ अतएव समरमें जय हो अथवा मरण हो युद्ध करना अवश्य कर्त्तव्य है. जो होनहार है वह अवश्यही होगा इसको विचारकर आज चिन्ता करनेकी क्या बात है ? ॥ ४२ ॥ समरमें मृत्यु होनेसे यशका लाभ और जीवन रहनेसे सुख होता है,इन दोनों विषयोंको मनमें स्थिर करके अब युद्धही करना चाहिये ॥ ४३ ॥ आयुका क्षय होनेपर ही मरण होगा और भागनेसे यशकी हानि होगी इसकारण जीवन वा मरणविषयमें वृथा शोक करना उचित नहीं है ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! दुर्मुखकी बात सुनकर वाक्यविशारद बाष्कल प्रणत हो हाथ जोड़ राजासे कहने लगा ॥ ४५॥ बाष्कल बोला– हे राजन् ! मैं अकेला उस चंचललोचना चण्डीको मारूंगा. हे महाराज! इस अप्रियकार्यमें कातरभावसे चिन्ता करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ४६॥ हे नृपसत्तम! वीररसका

तस्माद्युद्धंप्रकर्तव्यंमरणंवारणेजयः ॥ यद्भावितद्भवत्येवकाऽत्रचिंताविपश्यतः ॥४२ ॥ मरणेऽत्रयशःप्राप्तिर्जीवनेचतथासुखम् ॥ उभयंमनसाकृत्वाकर्तव्यंयुद्धमद्यवै ॥ ४३ ॥ पलायनेयशोहानिर्मरणंचाऽऽयुषःक्षये ॥ तस्माच्छोकोनकर्तव्योजीवितेमरणेवृथा ॥ ४४ ॥ व्यासउवाच ॥ दुर्मुखस्यवचः श्रुत्वावाष्कलोवाक्यमब्रवीत् ॥ प्रणतःप्रांजलिर्भूत्वाराजानंवाक्यकोविदः ॥ ४५ ॥ बाष्कलउवाच ॥ राजंश्चिंतानकर्त्तव्याकार्येऽस्मिन्कातराऽप्रिये ॥ अहमेकोहनिष्यामिचंडींचंचललोचनाम् ॥ ४६ ॥ उत्साहस्तुप्रकर्तव्यःस्थायीभावोरसस्यच ॥ भयानकोभवेद्वैरीवीररस्यनृपसत्तम ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्यक्त्वाभयंभूपकरिष्येयुद्धमद्भुतम् ॥ नयिष्यामिनरेंद्राऽहंचंडिकांयमसादनम् ॥ ४८ ॥ नबिभेमियमादिंद्रात्कुबेराद्वरुणादपि ॥ वायोर्वह्नेस्तथाविष्णोःशंकराच्छशिनोरवेः ॥ ४९ ॥ एकाकिनीतथानारीकिंपुनर्मदगर्विता ॥ अहंतांनिहनिष्यामिविशिखैश्चशिलाशितैः ॥ ५० ॥ पश्यबाहुबलंमेऽद्यविहरस्वयथासुखम् ॥ भवताऽत्रनगंतव्यंसंग्रामेऽप्यनयासमम् ॥ ५१ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंब्रुवतिराजेंद्रवाष्कलेमदगर्विते ॥ प्रणम्यनृपतिंतत्रदुर्धरोवाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥ दुर्धरउवाच ॥ महिषाऽहंविजेष्यामिदेवींदेवविनिर्मिताम् ॥ अष्टादशभुजांरम्यांकारणाच्चसमागताम् ॥ ५३ ॥

स्थायीभाव उत्साह फिर भयानक उसका वैरी है इसकारण उत्साहअवलम्बन करना हमारा अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! भय छोड़कर हम घोरतर युद्ध करेंगे अधिक क्या हम समरमें उस चण्डिकाको यमसदन प्रेरण करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ क्या यम क्या इन्द्र क्या कुबेर क्या वायु क्या अग्नि क्या विष्णु क्या शंकर क्या चन्द्रमा क्या हरि मैं किसीका भी भय नहीं करता ॥ ४९ ॥ उस अकेली मदगर्वित स्त्रीकी तो बातही क्या है. मैं शिलाशाणित बाणोंसे उस अबला ललनाको निहत करूंगा ॥ ५० ॥ आज आप मेरा बाहुबल देखकर सुखपूर्वक विहार कीजिये. उसके संग युद्ध करनेमें आपको संग्राममें नहीं जाना होगा ॥ ५१ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! बाष्कलके मदगर्वित होकर महीपति महिषसे इसप्रकार कहने पर फिर दुर्द्धर उसको प्रणाम करके कहने लगा ॥ ५२ ॥ दुर्द्धर बोला–हे महीन्द्र ! दैवनिर्मि

अष्टादशभुजायुक्त रमणीय देवी जिस किसी कार्यसे यहां आई हो. मैं उसका पराजय करूंगा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! मुझको बोध होता है. आपको भय दिखानेके लिये ही देवताओंने उस मायारमणीको बनाया है. अतएव इसको विभीषिका (भयदात्री) जानकर आप मनका मोह दूर कीजिये॥ ५४ ॥ हे राजन् ! राजनीति इसीप्रकार है. अब मंत्रियोंके कार्यादिका विषय सुनो. हे दानवनाथ ! इस लोकमें मंत्री तीन प्रकारके हैं. कोई सात्विक,कोई राजसिक और कोई तामसिक होते हैं. जो मंत्री सत्वगुण प्रधान हैं. वे अपनी शक्तिके अनुसार प्रभुका कार्य करते हैं ॥५५॥५६॥सात्विक मंत्रीलोग मंत्रशास्त्रविशारद और धर्मपरायण होकर एकाग्रचित्तसे प्रभुके कार्यकी हानि न करके अपना कार्य करते हैं ॥ ५७ ॥ और जो राजस हैं उनका चित्त अन्यप्रकारका है. वे सदाही आत्मकार्यमें निरत होते हैं और कभी कभी इच्छानुसार

राजन्भीषयितुंत्वंवैमायैषानिर्मितासुरैः ॥ विभीषिकेयंविज्ञायत्यजमोहंमनोगतम् ॥ ५४ ॥ राजनीतिरियंराजन्मंत्रिकृत्यंतथाशृणु ॥ सात्विकाराजसाः केचित्तामसाश्चतथापरे ॥५५॥ मंत्रिणस्त्रिविधालोकेभवंतिदानवाऽधिप ॥ सात्विकाःप्रभुकार्याणिसाधयंतिस्वशक्तिभिः ॥५६॥ आत्मकृत्यंप्रकुर्वंतिस्वामिकार्याऽविरोधतः॥एकचित्ताधर्मपरामंत्रशास्त्रविशारदाः ॥५७॥ राजसाभिन्नचित्ताश्चस्वकार्यनिरताःसदा॥कदाचित्स्वामिकार्यंतेप्रकुर्वंतियदृच्छया ॥ ॥ ५८ ॥ तामसालोभनिरताःस्वकार्यनिरताःसदा ॥ प्रभुकार्यंविनाश्यैवस्वकार्यंसाधयंतिते ॥ ५९ ॥ समयेतेविभिद्यंतेपरैस्तुपरिवंचिताः ॥ स्वच्छिद्रं शत्रुपक्षीयान्निर्दिशंतिगृहस्थिताः ॥ ६० ॥ कार्यभेदकरानित्यंकोशगुप्ताऽसिवत्सदा ॥ संग्रामेऽथसमुत्पन्नेभीषयंतिप्रभुंसदा ॥ ६१ ॥ विश्वासस्तुनकर्तव्यस्तेषांराजन्कदाचन ॥ विश्वासेकार्यहानिःस्यान्मंत्रहानिःसदैवहि ॥ ६२ ॥ खलाःकिंकिंनकुर्वंतिविश्वस्तालोभतत्पराः ॥ तामसाःपापनिरताबुद्धिहीनाःशठास्तथा ॥ ६३ ॥

प्रभुका कार्यभी करते हैं ॥ ५८ ॥ तामस मंत्री लोग सदा लोभके वशीभूत होकर अपने कार्यमें निरत होते हैं इसकारण वे प्रभुका कार्य नष्ट करके भी अपना कार्य संपादन करते हैं ॥ ५९ ॥ वही विग्रहादिसमयमें शत्रुके दिये द्रव्यसे वंचित होकर भेदको प्राप्त होते हैं. सुतरां गृहमें रहकर अपने छिद्र शत्रुपक्षीय लोगोंको दिखा देते हैं ॥ ६० ॥ उनके कोषमें रुद्ध हुई तलवारके समान निरन्तर कार्यभेद करते हैं अधिक क्या युद्धकाल उपस्थित होनेपर प्रभुको सदा भय दिखाते हैं ॥ ॥ ६१ ॥ अतएव हे महाराज ! उनका कभी विश्वास न करै. उनका विश्वास करनेसे सर्वदा कार्य और मंत्रणाकी हानि होती है ॥ ६२ ॥ जो खल, लोभतत्पर,बुद्धिहीन,

वह मंत्र भलीभांतिसे रक्षित हो तो राज्यभी रक्षित होता है इसकारण सदाचारसंपन्न मंत्रीगणद्वारा उस मंत्रणाको सब प्रकारसे रक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ ॥ २२ ॥ मंत्रणाके प्रकाशित होनेसे राज्य और भूपतिका विनाश होता है अतएव अभ्युदयके अभिलाषी मनुष्योंको भेदभयसे अवगत मंत्रणा अत्यन्त गुप्त रखनी चाहिये ॥ २३ ॥ हे मंत्रियो ! इस समय देश और कालके अनुसार नीतिविषयका निर्णय करके इस विषयमें जो हित और हेतुयुक्त हो वही कहो ॥ २४ ॥ देवताओंसे निर्मित होकर जो प्रबला बाला अकेली निराश्रय इस स्थानमें आई है. पहले उसका कारण खोजना चाहिये ॥ २५ ॥ वह बाला संग्रामकी प्रार्थना करती है इससे अधिक दूसरा आश्चर्यका विषय क्या है ? इसमें श्रेयोलाभ (कल्याण) होगा वा उसके विपरीत होगा त्रिभुवनमें इसको कौन कहसक्ता है ? ॥ २६ ॥ अनेक पुरुषोंकी जय नहीं होती और एक पुरुषकी पराजय भी नहीं होती इस कारण जय और पराजयको सर्वथा दैवके आधीन जानना चाहिये ॥ २७ ॥

मंत्रभेदेविनाशःस्याद्राज्यस्यभूपतेस्तथा ॥ तस्माद्भेदभयाद्गुप्तःकर्तव्योभूतिमिच्छता ॥ २३ ॥ तदत्रमंत्रिभिर्वाच्यंवचनंहेतुमद्धितम् ॥ कालदेशाऽनुसारेणविचिंत्यनीतिनिर्णयम् ॥ २४ ॥ यायोषाऽत्रसमायाताप्रबलादेवनिर्मिता ॥ एकाकिनीनिरालंबाकारणंतद्विचिंत्यताम् ॥ २५ ॥ युद्धंप्रार्थयते बालाकिमाश्चर्यमतःपरम् ॥ श्रेयोऽत्रविपरीतंवाकोवेत्तिभुवनत्रये ॥ २६ ॥ नबहूनांजयोऽप्यस्तिनैकस्यचपराजयः ॥ दैवाऽधीनौसदाज्ञेयौयुद्धेजयपराजयौ ॥ २७ ॥ उपायवादिनःप्राहुर्दैवंकिंकेनवीक्षितम् ॥ अदृष्टमितियन्नामप्रवदंतिमनीषिणः ॥ २८ ॥ तत्सत्त्वेऽपिप्रमाणंकिंकातराशाऽवलंबनम् ॥ नसमर्थजनानांहिदैवंकुत्राऽपिलक्ष्यते ॥ २९ ॥ उद्यमोदैवमेतौहिशूरकातरयोर्मतम् ॥ विचिंत्याऽद्यधियासर्वंकर्तव्यंकार्यमादरात् ॥ ३० ॥ व्यासउवाच ॥ इतिराज्ञोवचःश्रुत्वाहेतुगर्भंमहायशाः ॥ विडालाख्योमहाराजमित्युवाचकृतांजलिः ॥ ३१ ॥

जो दोनोंके पक्षपाती हैं वे कहते हैं दैव क्या है ? पण्डितलोग जिसका नाम अदृष्ट कहते हैं, उस अदृष्टको क्या किसीने कभी देखा है ? अतएव जयलाभके लिये उचित उपाय अवलम्बन करना अत्यन्त कर्त्तव्य है ॥ २८ ॥ यदि कहो कि दैव होनेपर भी होसक्ता है तो इसमें प्रमाण क्या है ? यह केवल कातरपुरुषकी आशाका अवलम्बमात्र है और जो अपना कार्य सम्पादन करनेमें समर्थ हैं, ऐसे पुरुषोंने दैवका आश्रय किया हो यह कहीं दिखाई नहीं देता ॥ २९ ॥ अतएव उद्यम शूर पुरुषोंके अभिमत और दैव कातर पुरुषोंके सम्मत है यही निश्चय है. अतएव आज इन सब विषयोंको बुद्धिसे विचार कर यत्नसहित कार्य संपादन करना चाहिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले नृपति महिषासुरके हेतुपूर्ण वचन सुनकर महायश विडालाक्ष हाथ जोड़कर कहनेलगा ॥ ३१ ॥

हे राजन्! यह विशालनयना बाला किसकी पत्नी और कहांसे किस लिये आई है? प्रथम यह सब विषय यत्नसहित जानकर फिर इसका विचार करना चाहिये ॥ ३२ ॥ मुझको बोध होता है कि स्त्रीसेही आपका मरण होगा. देवताओंने यह वृत्तान्त जानकर आन्तरिक यत्नसहित अपने तेजसे इस कमलनयना कामिनीको उत्पन्न करके भेजा है ॥ ३३ ॥ और वह सभी युद्ध करनेकी इच्छासे संग्रामदर्शनके अभिलाषी होकर आकाशमण्डलमें गुप्तभावसे स्थिति करते हैं यथा समयमें सभी उस कामिनीकी सहायता करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ३४ ॥ संग्राम उपस्थित होनेपर विष्णु इत्यादि देवतालोग उस कामिनीको आगे करके हम सबका विनाश करेंगे और वह देवी आपका वध करेगी ॥ ३५ ॥ हे नरनाथ! वही उसकी एकान्तवासना है, यह मैंने प्रथमही जान लिया है किन्तु भवितव्य क्या होगा? यह

राजन्नेषाविशालाक्षीज्ञातव्यायत्नतःपुनः॥किमर्थमिहसंप्राप्ताकुतःकस्यपरिग्रहः॥३२॥मरणंतेपरिज्ञायस्त्रियाःसर्वात्मनासुरैः॥प्रेषितापद्मपत्राक्षीसमुत्पाद्य स्वतेजसा ॥ ३३ ॥ तेऽपिछन्नाःस्थिताःखेऽत्रसर्वेयुद्धदिदृक्षवः ॥ समयेऽस्याःसहायास्तेभविष्यंतियुयुत्सवः ॥ ३४ ॥ पुरतःकामिनींकृत्वातेवैविष्णुपुरोगमाः ॥ वधिष्यंतिचनःसर्वान्सात्वांयुद्धेहनिष्यति ॥ ३५ ॥ एतच्चिकीर्षितंतेषांमयाज्ञातंनराधिप ॥ भवितव्यस्यनज्ञानंवर्ततेममसर्वथा ॥ ३६ ॥ योद्धव्यंनत्वयाऽद्येतिनाऽहंवक्तुंक्षमःप्रभो ॥ प्रमाणंत्वंमहाराजकार्येऽत्रदेवनिर्मिते ॥ ३७ ॥ त्वदर्थेऽस्माभिरनिशंमर्तव्यंकार्यगौरवात् ॥ विहर्तव्यंत्वयासार्धमेषधर्मोऽनुजीविनाम् ॥ ३८ ॥ विचारोऽत्रमहानस्तियदेकाकामिनीनृप ॥ युद्धंप्रार्थयतेऽस्माभिःससैन्यैर्बलदर्पितैः ॥ ३९ ॥ दुर्मुखउवाच ॥ राजन्युद्धेजयोनोऽद्यभवितावेद्म्यहंकिल ॥ पलायनंनकर्तव्यंयशोहानिकरंनृणाम् ॥ ४० ॥ इंद्रादीनांसंयुगेऽपिनकृतंयज्जुगुप्सितम् ॥ एकाकिनींस्त्रियंप्राप्यकोहि कुर्यात्पलायनम् ॥ ४१ ॥

मैं नहीं कहसकता ॥ ३६ ॥ हे प्रभो! इस समय हमको युद्ध करना उचित नहीं है. इस बातको कहनेमें मैं समर्थ नहीं हूं अतएव इस देवकृत कार्यमें आपका जो विचार हो वही कीजिये ॥ ३७ ॥ महाराजके कार्यके गौरवअनुसार हमको जीवनत्यागना चाहिये और विहारके समय आपके संग विहार करना उचित है यही अनुजीवियोंका यथार्थ धर्म है ॥ ३८ ॥ किन्तु हे नृपवर! वह कामिनी अकेली होनेपरभी जब बलदर्पित सेनासमेत हमसे संग्रामकी प्रार्थना करती है तब इसमें भलीभांति विचार करना अवश्य कर्तव्य है ॥ ३९ ॥ दुर्मुखने कहा हे राजन्! मैं निश्चय जानता हूं कि युद्धमें हमारी जीत नहीं होगी किन्तु तोभी भागना उचित नहीं है क्योंकि इसमें पुरुषके यशकी हानि होती है ॥ ४० ॥ विशेषकर इन्द्रादि देवताओंके समरमें भी हमने जब ऐसा (निन्दित) कार्य नहीं किया तो असहाय

शठ और सदा पापकार्यमें तत्पर हैं. वे तामसमंत्रीगण विश्वासपात्र होकर क्या अकार्य नहीं करते हैं॥ ६३ ॥ इसलिये हे नृपसत्तम ! मैं समरमें जाकर आपका कार्य करूंगा. सुतरां आपको कुछ चिन्ता करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ६४ ॥ उस दुष्टचारिणी रमणीको लेकर मैं अभी आता हूं. मैं अपनी शक्ति और बलके अनुसार आपका कार्य करूंगा. अतएव आप स्थिरचित्त होकर मेरा बल, धैर्य और पराक्रम देखिये॥ ६५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः १२॥ अनन्तर अस्त्रशस्त्रविद्यामें पारदर्शी महाबाहु दानवश्रेष्ठ बाष्कल और दुर्मुख वीर मदसे मत्त हो संग्रामके सन्मुख चले ॥ १ ॥ उन मदमत्त दोनों दानवोंने समराङ्गणमें जाय मेघके समान गंभीर वाणी द्वारा देवीसे कहा ॥ २॥ हे वरारोहे देवी ! जिस महात्मा महिषासुरने देवताओंको जीता है. तुम सब दैत्योंके अधिपति उस नरपतिका वरण करो

तस्मात्कार्यंकरिष्यामिगत्वाऽहंरणमस्तके॥ चिंतात्वयानकर्तव्यासर्वथानृपसत्तम ॥ ६४ ॥ गृहीत्वातांदुराचारामागमिष्यामिसत्वरः ॥ पश्यमेऽद्यबलंधैर्यंप्रभुकार्यंस्वशक्तितः ॥ ६५ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कं० द्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वातौ महाबाहूदैत्यौबाष्कलदुर्मुखौ ॥ जग्मतुर्मदादिग्धांगौसर्वशस्त्राऽस्त्रकोविदौ ॥१॥ तौगत्वासमरेदेवीमूचतुर्वचनंतदा ॥ दानवौचमदोन्मत्तौमेघगंभीरयागिरा ॥ २ ॥ देविदेवाजितायेनमहिषेणमहात्मना ॥ वरयत्वंवरारोहेसर्वदैत्याऽधिपंनृपम् ॥ ३ ॥ सकृत्वामानुषंरूपंसर्वलक्षणसंयुतम् ॥ भूषितंभूषणैर्दिव्यैस्त्वामेष्यतिरहःकिल ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यविभवंकामंत्वमेष्यसिशुचिस्मिते ॥ महिषेपरमंभावंकुरुकांतमनोगतम् ॥ ५ ॥ कृत्वापतिंमहावीरंसंसारसुखमद्भुतम् ॥ त्वंप्राप्स्यसिपिकाऽऽलापेयोषितांखलुवांछितम् ॥६॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जाल्मत्वंकिंविजानासिनारीयंकाममोहिता ॥ मंदबुद्धिर्बलात्यर्थंभजेयंमहिषंशठम् ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ वह सर्वलक्षणसमन्वित मानुषरूपधारणपूर्वक मनोहर गहनोंसे विभूषित होकर गुप्त भावसे आपके समीप आवेंगे ॥ ४ ॥ हे शुचिस्मिते ! तुम उस मनोहर महिषासुरमें अपना मनोगत परम भाव स्थापन करो, तो इस त्रैलोक्यके संपूर्ण विभव इच्छानुसार लाभ कर सकोगी ॥ ५ ॥ हेचारुभाषिणि ! अधिक और क्या कहैं, उस महावीर महिषासुरको पतित्वमें वरण करनेसे स्त्री जिस अतुलसंसारसुखकी अभिलाषा करेगी, वह आपही प्राप्त होगा ॥ ६॥ बाष्कल और दुर्मुखके इस प्रकार वचन सुनकर देवीने कहा रे मूढ ! तैंने क्या मुझको काममोहित विचारा है ? मुझको क्या बुद्धि और बल नहीं है, जो मैं उस शठ महिषका पतिरूपमें भजन

करूं ? ॥ ७ ॥ क्योंकि जो पुरुष कुल, शील और गुणमें समान हो, वा जो रूप, चतुरता, बुद्धि, शील और क्षमादिगुणमें अधिक हो, कुलाङ्गना उसीका भजन करती हैं ॥ ८ ॥ अतएव कौन देवरूपिणी नारी कामातुर होकर पशुगणोंमें अधम पशुरूपी महिषका भजन करेगी ? ॥ ९ ॥ हे असुरद्वय ! तुम अभी गजतुल्य कलेवर और विषाण [सींग] धारी उस भूपति महिषके निकट जाओ और उससे कहो कि ॥ १० ॥ तू पातालमें प्रवेश कर वा मेरे संग आनकर संग्राममें प्रवृत्त हो, युद्धउपस्थित होनेपर देवराज अवश्यही निर्भय होंगे, इसमें संदेह नहीं ॥ ११ ॥ रे दुर्बुद्धे ! मैं तुझको संहार करके तब जाऊंगी. मेरा आना कभी विफल नहीं होगा, अतएव यह जानकर जो इच्छा हो सो कर ॥ १२ ॥ रे पशु ! मुझको विना जीते क्या स्वर्ग, क्या भूभाग क्या पर्वतकी कन्दरा, कहीं तेरा स्थान नहीं होगा, यह निश्चय जानना चाहिये ॥ १३ ॥

कुलशीलगुणैस्तुल्यंतंभजंतिकुलस्त्रियः ॥ अधिकंरूपचातुर्यबुद्धिशीलक्षमादिभिः ॥ ८ ॥ कानुकामाऽऽतुरानारीभजेच्चपशुरूपिणम् ॥ पशूनामधमंनूनंमहिषंदेवरूपिणी ॥ ९ ॥ गच्छतंमहिषंतूर्णभूपंवाष्कलदुर्मदौ ॥ वदतंमद्वचोदैत्यंगजतुल्यंविषाणिनम् ॥ १० ॥ पातालंगच्छवाऽभ्येत्यसंग्रामंकुरुवामया ॥ रणेजातेसहस्राक्षोनिर्भयःस्यादितिध्रुवम् ॥ ११ ॥ हत्वाऽहंत्वांगमिष्यामिनाऽन्यथागमनंमम ॥ इत्थंज्ञात्वासुदुर्बुद्धेयथेच्छसितथाकुरु ॥ १२ ॥ मामनिर्जित्यभूभागेनस्थानंतेकदाचन ॥ भविष्यतिचतुष्पाददिविवागिरिकंदरे ॥ १३ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तौतौतयादैत्यौकोपाऽऽकुलितलोचनौ ॥ धनुर्बाणधरौवीरौयुद्धकामौवभूवतुः ॥ १४ ॥ कृत्वासुविपुलंनादंदेवीसानिर्भयास्थिता ॥ उभौचचक्रतुस्तीव्रांबाणवृष्टिंकुरूद्वह ॥ १५ ॥ भगवत्यपिबाणौघान्मुमोचदानवौप्रति ॥ कृत्वाऽतिमधुरंनादंदेवकार्यार्थसिद्धये ॥ १६ ॥ तयोस्तुबाष्कलस्तूर्णसंमुखोभूद्रणांगणे ॥ दुर्मुखःप्रेक्षकस्तत्रदेवीमभिमुखःस्थितः ॥ १७ ॥ तयोर्युद्धमभूद्घोरंदेवीबाष्कलयोस्तदा ॥ बाणाऽसिपरिघाऽऽघातैर्भयदंमंदचेतसाम् ॥ १८ ॥ ततःक्रुद्धाजगन्मातादृष्ट्वातंयुद्धदुर्मदम् ॥ जघानपंचभिर्बाणैःकर्णाऽऽकृष्टैःशिलाशितैः ॥ १९ ॥ दानवोऽपिशरान्देव्याश्चिच्छेदनिशितैःशरैः ॥ सप्तभिस्ताडयामासदेवींसिंहोपरिस्थिताम् ॥ २० ॥

व्यासजी बोले, देवीके इसप्रकार वचन सुनकर वे वीरवर दोनों दानव कोपसे रक्तनेत्र हो धनुर्बाण धारण करके युद्धके लिये कृतनिश्चय हुए ॥ १४ ॥ हे कुरुकुलधुरन्धर ! तब वह देवी घोर गर्जना करके निर्भय वहां अवस्थित रही तब वे दोनों दानव बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ भगवती भी देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये मधुरशब्द करके दोनों दानवोंपर बाण वर्षाने लगी ॥ १६ ॥ उनमें प्रथम बाष्कल शीघ्र रणस्थलमें उनके सन्मुख हुआ, किन्तु दुर्मुख उस समय देखनेवाला होकर देवीके सन्मुख अवस्थित रहा ॥ १७ ॥ तिस समय उस देवी और बाष्कलका घोर संग्राम उपस्थित हुआ बाण, असि और परिघके आघातसे वह युद्ध मंदबुद्धि लोगोंको भयदायक हुआ ॥ १८ ॥ अनन्तर जगन्माताने युद्धदुर्मद बाष्कलको देख क्रोधके वश हो शिलाशाणित पांच बाण कानों पर्यन्त खैंचकर मारे ॥ १९ ॥ दानवने भी

निशित वाणोंसे देवीके वाणोंको काटकर सात वाणोंसे उस सिंहवाहिनीपर आघात किया ॥ २० ॥ देवीने भी उसके वाणोंको काटकर दश सुशाणित तीक्ष्ण वाणोंसे उस खलपर प्रहार किया. और वारंवार हास्य करने लगी ॥ २१ ॥ फिर अर्द्धचन्द्रवाणसे उसका शरासन काट डाला. तब बाष्कल गदा लेकर देवीको मारनेकी इच्छासे दौड़ा ॥ २२ ॥ उस मदगर्वित दानवको गदा हाथमें लिये आता देख चण्डिकाने अपनी गदाके प्रहारसे उसको पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २३॥ प्रचंडपराक्रम बाष्कलने पृथ्वीमें गिरकर मुहूर्त्तमात्रमें ही फिर उठा और देवीके ऊपर गदा चलाई ॥ २४ ॥ देवीने उसको पुनर्वार आता देखकर क्रोधसहित शूलग्रहण कर उसके हृदयको विद्ध किया तब बाष्कलने उस प्रहारसे गिरकर प्राणत्याग किया ॥ २५ ॥ जब बाष्कल समरमें गिर गया. तब उस दुरात्माकी सब सेना युद्ध छोड़कर भागने लगी और तिस

साऽपितंदशभिस्तीक्ष्णैःसुपीतैःसायकैःखलम् ॥ जघानतच्छरांश्छित्त्वाजहासचमुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥ अर्धचंद्रेणबाणेनचिच्छेदचशरासनम् ॥ बाष्कलोऽपिगदांगृह्यदेवींहंतुमुपाययौ ॥ २२ ॥ आगच्छंतंगदापाणिंदानवंमदगर्वितम् ॥ चंडिकास्वगदापातैःपातयामासभूतले ॥ २३ ॥ बाष्कलःपतितोभूमौ मुहूर्तादुत्थितःपुनः ॥ चिक्षेपचगदांसोऽपिचंडिकांचंडविक्रमः ॥ २४ ॥ तमागच्छंतमालोक्यदेवीशूलेनवक्षसि ॥ जघानबाष्कलंक्रुद्धापपातचममारसः ॥ २५ ॥ पतितेबाष्कलेसैन्यंभग्नंतस्यदुरात्मनः ॥ जयेतिचमुदादेवाश्चुक्रुशुर्गगनेस्थिताः ॥ २६ ॥ तस्मिंश्चनिहतेदैत्येदुर्मुखोऽतिबलान्वितः ॥ आजगामरणेदेवींक्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २७ ॥ तिष्ठतिष्ठाबलेसोऽपिभाषमाणःपुनःपुनः ॥ धनुर्बाणधरःश्रीमान्रथस्थःकवचाऽऽवृतः ॥ २८ ॥ तमागच्छंतमालोक्यदेवीशंखमवादयत् ॥ कोपयंतीदानवंतंज्याघोषंचचकारह ॥ २९ ॥ सोऽपिबाणान्मुमोचाऽऽशुतीक्ष्णानाशीविषोपमान् ॥ स्वबाणैस्तान्महामायाचिच्छेदचननादच ॥ ३० ॥ तयोःपरस्परंयुद्धंबभूवतुमुलंनृप ॥ बाणशक्तिगदाघातैर्मुसलैस्तोमरैस्तथा ॥ ३१ ॥

काल देवतालोग आनन्दित होकर आकाशसे जयशब्द उच्चारण करनेलगे ॥ २६ ॥ उस दैत्यके मरजानेपर दुर्मुख क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर अधिक सेनाको संग ले संग्राम करनेके लिये देवीके समीप आया ॥ २७॥ "हे अबले ! ठहर ठहर" इसप्रकार बार बार कहते हुए सर्वाङ्ग कवचसे आच्छादित कर धनुर्वाणधारणपूर्वक श्रीमान् दुर्मुख रथमें चढ़ देवीके समीप आया॥ २८॥ देवीने उसको आता देखकर शंखध्वनि करी और उस दानवको कोपान्वित करनेके लिये ज्याशब्द करने लगी ॥ २९ ॥ तब असुरने (सर्पराज) के समान तीक्ष्ण बाण चलाये. महामाया उनको अपने बाणोंसे काटकर सिंहनाद करने लगी॥ ३०॥ हे नरनाथ ! तिसकाल बाण, शक्ति, गदा, मूशल और तोमरादि वर्षण

दे०भा० ॥ ३६ ॥ (२७८)

द्वारा उन दोनोंका परस्पर तुमुल संग्राम उपस्थित हुआ ॥ ३१ ॥ तब रणभूमिमें रुधिरप्रवाहिनी नदियें बहनेलगीं उनके तटोंपर पड़े हुये मस्तक ऐसे दिखाई देनेलगे।। ३२।। मानों नूतन सन्तरणशिक्षामें प्रवृत्त यमकिंकरोंके दलपति लोग वैतरणी नदीमें सन्तरण करनेके लिये आनन्दित हृदयसे तुम्बीफल लाते हैं ।। ३३ ।। तिसकाल घोरतर रणभूमि अतीव दुर्गम हुई कहीं शरीर पृथ्वीमें पड़े हैं. वृक इत्यादि जीव उनका मांस भक्षणकरतेहैं ।।३४॥ कहीं शृगाल, कुक्कुर, कंक, काक, अयोमुख, गृध्र, श्येन इत्यादि मांसभोजी पशु और पक्षी उन दुरात्माओंके शरीरको भक्षण करते हैं ।। ३५ ।। तिससमय वायु मृत पुरुषोंके देहस्पर्शसे दुर्गन्ध होकर बहनेलगा. और मांसभोजी पक्षियोंका किलकिलाशब्द होने लगा ॥ ३६ ॥ तब दुष्टस्वभाव दुर्मुख कालसे विमोहित हो क्रोधसे दक्षिण हाथ उठाय गर्वसहित देवीसे कहने लगा ।। ३७ ॥ हे चण्डिके !

रणभूमौतदाजातारुधिरौघवहानदी ॥ पतितानितदातीरेशिरांसिप्रवभुस्तदा ॥ ३२॥ यथासंतरणार्थाययमकिंकरनायकैः ॥ तुंबीफलानिनीतानिनवशिक्षापरैर्मुदा ॥३३॥ रणभूमिस्तदाघोराबभूवाऽतीवदुर्गमा॥शरीरैःपतितैर्भूमौखाद्यमानैर्वृकादिभिः ॥३४॥ गोमायुसारमेयाश्वकाकाःकंकाअयोमुखाः ॥ गृध्राःश्येनाश्चखादंतिशरीराणिदुरात्मनाम् ॥३५॥ ववौवायुश्चदुर्गंधेमृतानांदेहसंगतः॥अभूत्किलकिलाशब्दःखगानांपलभक्षिणाम् ॥३६॥ तदाचुकोपदुष्टात्मादुर्मुखःकालमोहितः ॥ देवीमुवाचगर्वेणकृत्वाचोर्ध्वंकरंशुभम् ॥३७॥ गच्छचंडिहनिष्यामित्वामद्यैवसुबालिशे ॥ दैत्यंवाभजवामोरुमाहिषंमदगर्वितम् ॥३८॥ देव्युवाच ॥ आसन्नमरणःकामंप्रलपस्यद्यमोहितः॥ अद्यैवत्वांहनिष्यामियथाऽयंबाष्कलोहतः॥३९॥गच्छवातिष्ठवामंदमरणंयदिरोचते॥ हत्वात्वांवैवधिष्यामिबालिशंमाहिषीसुतम् ॥४०॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यादुर्मुखोमर्तुमुद्यतः ॥ मुमोचबाणवृष्टिंतुचंडिकांप्रतिदारुणाम् ॥ ४१ ॥ साऽपितां तरसाछित्त्वाबाणवृष्टिंशितैःशरैः ॥ जघानदानवंक्रुद्धावृत्रंवज्रधरोयथा ॥ ४२ ॥ तयोःपरस्परंयुद्धंसंजातंचाऽतिकर्कशम् ॥ भयदंकातराणांचशूराणांबलवर्धनम् ॥ ४३ ॥

तुमको दुर्बुद्धि उपस्थित हुई है तुम इस समय भाग जाओ नहीं तो तुम्हारा संहार करूंगा. और यदि ऐसा न हो तो तुम मदगर्वित दैत्यवर महिषका भजनकरो ।।३८॥ देवी बोली रे दुष्ट! आज तेरी मृत्यु निकट उपस्थित है. इसीकारण तू मोहित होकर प्रलापवाक्य कहता है. अतएव बाष्कलके समान अभी तेरा विनाश करूंगी ॥ ॥ ३९ ॥ रे मन्द ! तू पलायन कर वा यदि मरनेकी अभिलाषा हो तो ठहर. प्रथम तुझको मारकर फिर महिषीसुत मूढमति महिषका विनाश करूंगी ॥ ४० ॥ देवीके इसप्रकार वचन सुनकर दुर्मुख मरनेमें उद्यत हो चंडिकाके ऊपर दारुण बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४१ ॥ देवीने भी तत्काल उसके बाणोंको काटकर वृत्रासुरके प्रति वज्रधरके समान शाणित बाणोंसे क्रोधित हो दानवको विद्ध किया ॥ ४२ ॥ उन दोनोंका परस्पर दारुण संग्राम उपस्थित हुआ. हे राजन् ! इस युद्धको देखनेसे

भा०टी०पं० अ० १३ ॥ ३६ ॥

कातर पुरुषका भय और शूरोंको उत्साह होने लगा ॥ ४३ ॥ तब देवीने शीघ्रतासहित उसके हाथमें स्थित धनुषको काटडाला और पांच बाणोंसे उसका उत्तम रथ तोड़ दिया ॥ ४४ ॥ रथ टूटनेपर महाबाहु दुर्मुख दुर्द्धर्ष गदा ले पैदल वेगसे देवीके सन्मुख दौड़ा ॥ ४५ ॥ उसने सिंहके मस्तकमें विषम बलसहित गदाप्रहार की. किन्तु महाबल सिंह ताडित होकर भी उस स्थानसे कुछ विचलित नहीं हुआ ॥ ॥ ४६ ॥ असुरको गदा हाथमें लिये सन्मुख खड़ा देख अम्बिकाने शितधार खड्गसे उसका मस्तक काटडाला ॥ ४७ ॥ मस्तक कटनेसे मृत होकर दुर्मुख पृथ्वीमें गिरगया तब देवता आनंदित होकर घोरतर जयजयशब्द उच्चारण करने लगे ॥ ४८॥ दुर्मुखके मारे जानेपर देवतालोग आकाशमें स्थित रहकर देवीका स्तव, पुष्पवृष्टि, और जयघोषणा करने लगे॥ ४९ ॥ ऋषिगण, सिद्धगण, गंधर्वगण, विद्याधरगण और किन्न

देवीचिच्छेदतरसाधनुस्तस्यकरेस्थितम् ॥ तथैवपंचभिर्बाणैर्बभंजरथमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ रथेभग्नेमहाबाहुःपदातिर्दुर्मुखस्तदा ॥ गदांगृहीत्वा दुर्धर्षाजगामचंडिकांप्रति ॥ ४५ ॥ चकारसगदाघातंसिंहमौलौमहाबलात् ॥ नचचालहरिःस्थानात्ताडितोऽपिमहाबलः ॥४६॥ अंबिकातंसमालोक्यग दापाणिंपुरःस्थितम् ॥ खड्गेनाशितधारेणशिरश्चिच्छेदमौलिमत् ॥ ४७ ॥ छिन्नेचमस्तकेभूमौपपातदुर्मुखोमृतः ॥ जयशब्दंतदाचक्रुर्मुदितानिर्जराभृश म् ॥४८॥ तुष्टुवुस्तांतदादेवींदुर्मुखेनिहतेऽमराः ॥ पुष्पवृष्टिंतथाचक्रुर्जयशब्दंनभःस्थिताः॥४९॥ऋषयःसिद्धगंधर्वाःसविद्याधरकिन्नराः ॥ जहृषुस्तंहतं दृष्ट्वादानवंरणमस्तके ॥५० ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ छ ॥ व्यासउवाच ॥ दुर्मुखंनिहतंश्रुत्वामहिषः क्रोधमूर्छितः ॥ उवाचदानवान्सर्वान्किंजातमितिचाऽसकृत् ॥१॥ निहतौदानवौशूरौरणेदुर्मुखबाष्कलौ ॥ तन्व्यातत्परमाश्चर्यंपश्यंतुदैवचेष्टितम् ॥२॥ कालोहिबलवान्कर्तासततंसुखदुःखयोः ॥ नराणांपरतंत्राणांपुण्यपापाऽनुयोगतः ॥ ३ ॥ निहतौदानवश्रेष्ठौकिंकर्तव्यमतःपरम् ॥ ब्रुवंतुमिलिताःसर्वेय द्युक्तंकार्यसंकटे ॥ ४ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंब्रुवतिराजेंद्रमहिषेऽतिबलाऽन्विते ॥ चिक्षुराख्यस्तुसेनानीस्तमुवाचमहारथः ॥ ५ ॥

रगणोंने समराङ्गणमें उस दानवको निहत देखकर अत्यन्त संतोष प्राप्त किया ॥५०॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! महिषासुर दुर्मुखकी मरणवार्त्ता सुनकर क्रोधसे अंधा होगया और दानवोंसे " यह क्या हुआ. यह क्या हुआ. " इसप्रकार कहने लगा ॥ ॥ १ ॥ हाय ! उस क्षीणाङ्गी रमणीने दानववीर दुर्मुख और बाष्कलको समरमें निहत किया है. हे असुरो ! इस समय इस परमआश्चर्यकर दैवकार्यको अवलोकन करो ॥ २ ॥ पुण्य और पापके योगानुसार मनुष्य पराधीन हैं. सुतरां बलवान् काल तदनुसार ही उनके सुख और दुःखका विधान करता है ॥ ३ ॥ दो प्रधान दानव मारे गये हैं. अब हमको क्या करना चाहिये ? इस विषम विपद्कालमें जो युक्ति संगत हो. तुम लोग सब मिलकर वही कहो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् !

जब उस बलशाली महिषने यह बात कही. तब सेनापति महारथ चिक्षुराख्यने उससे कहा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! एक अबलाको मारनेके लिये आपको क्या चिन्ता है ? मैंही उसको निहत करूंगा. यह कह कर उसने अपनी सेनासहित रथपर चढ़ समरमें प्रस्थान किया ॥ ६ ॥ महाबल ताम्र उसका पार्श्वरक्षक होकर सहचर हुआ. तब उसकी महासेनाके कोलाहलसे आकाश और सब दिशायें पूर्ण होगई ॥ ७ ॥ मंगलदायिनी देवी भगवतीने उसको आताहुआ देखकर अतिअद्भुत शंखध्वनि, ज्या शब्द. और घंटानाद किया ॥ ८ ॥ उस शब्दको सुनकर सब देवताओंके शत्रु भयसे त्रसित हुए और यह क्या ? यह कहते कहते भयसे कंपित कलेवर हो भयसे भागने लगे ॥ ९ ॥ तब चिक्षुराख्यने उनको भागताहुआ देख अत्यन्त क्रोधित होकर कहा हे दानवो ! अब क्या तुमको भय

राजन्नहंहनिष्यामिकाचिंतास्त्रीविहिंसने ॥ इत्युक्त्वास्वबलैर्युक्तःप्रययौरथसंयुतः ॥ ६ ॥ द्वितीयंपार्ष्णिरक्षंतुकृत्वाताम्रंमहाबलम् । महतासैन्यघोषेणपूरयन्गगनंदिशः ॥ ७ ॥ तमागच्छंतमालोक्यदेवीभगवतीशिवा ॥ चकारशंखज्याघोषंघंटानादंमहाऽद्भुतम् ॥ ८ ॥ तत्रसुस्तेनशब्देनतेचसर्वेसुरारयः ॥ किमेतदितिभाषंतोदुद्रुवुर्भयकंपिताः ॥ ९ ॥ चिक्षुराख्यस्तुतान्दृष्ट्वापलायनपरायणान् ॥ उवाचाऽतीवसंक्रुद्धःकिंभयंवःसमागतम् ॥ १० ॥ अद्यैवाऽहंहनिष्यामिबाणैर्बालांमदोन्नताम् ॥ तिष्ठंत्वत्रभयंत्यक्त्वादैत्याःसमरमूर्धनि ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वादानवश्रेष्ठश्चापपाणिर्बलान्वितः ॥ आगत्यसंगरेदेवीमित्युवाचगतव्यथः ॥ १२ ॥ किंगर्जसिविशालाक्षिभीषयन्कातरान्नरान् ॥ नाऽहंबिभेमितन्वंगिश्रुत्वातेऽद्यविचेष्टितम् ॥ १३ ॥ स्त्रीवधेदूषणंज्ञात्वातथैवाऽकीर्तिसंभवम् ॥ उपेक्षांकुरुतेचित्तंमदीयंवामलोचने ॥ १४ ॥ स्त्रीणांयुद्धंकटाक्षैश्चतथाहावैश्चसुंदरि ॥ नशस्त्रैर्विहितंक्वापित्वादृशीनांकदाचन ॥ १५ ॥

उपस्थित हुआ है ॥ १० ॥ समरमें बाणोंसे इस मदोन्मत्ता कामिनीको अभी मारूंगा. इसकारण तुम भय छोड़कर समरमें स्थिर होकर रहो ॥ ११ ॥ यह कहकर दानवश्रेष्ठ चिक्षुर धनुर्बाणधारण करके सेनासहित समरमें आया और निश्शंक होकर देवीसे कहा ॥ १२ ॥ हे विशाललोचने ! दुर्बल मनुष्योंको डरानेके लिये किसलिये गर्जना करती हो ? हे कृशाङ्गी ! तुम्हारा कार्यकलाप सुना है, किन्तु उससे मैं डरा नहीं हूं ॥ १३ ॥ हे वामलोचने ! स्त्रीके मारनेसे दोष और अकीर्त्ति होती है, यह मैं जानता हूं, इसकारण मेरा चित्त स्त्री वधमें उपेक्षा करता है ॥ १४ ॥ हे सुन्दरी ! कटाक्षविक्षेप और हावभावद्वारा ही स्त्रियोंका युद्ध होता है, किन्तु तुमसी

स्त्रियोंका शस्त्रद्वारा युद्ध किसी समयमें कहीं विहित नहीं है ॥ १५ ॥ तुम्हारी समान सुन्दरी स्त्रियोंके शरीरमें मालतीदल भी पीड़ा देता है, अतएव निशित बाणोंकी बात दूर रहे पुष्पके द्वारा भी तुमसे संग्राम करना उचित नहीं है ॥ १६ ॥ जो क्षात्रधर्मकेअनुसार जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं मनुष्य लोकमें उनके जन्म लेनेको धिक्कार है हाय ! यत्नपूर्वक लालित और प्रियदेह जिस धर्मसे शितशरनिकरद्वारा छिन्न हो, कौन पुरुष उस धर्मकी प्रशंसा कर सकता है? ॥ १७ ॥ मिष्टान्न भोजन, तैलमर्दन और पुष्पगंधि वायुसे वनद्वारा यह प्रिय देह प्रतिपालित हुआ है, इसकारण इसको क्या कभी शत्रुके बाणोंसे नष्ट करना उचित है ? ॥ १८ ॥ मनुष्यगण तलवारसे देह छिन्न करके फिर धनवान् होते हैं, अतएव प्रथम तो जो धन दुःखका मूल है;वह क्या फिर कभी सुख देनेमें समर्थ होता है ? यदि यह भी हो तो भी उस धनको धिक्कार

पुष्पैरपिनयोद्धव्यंकिंपुनर्निशितैःशरैः ॥ भवादृशीनांदेहेषुदुनोतिमालतीदलम् ॥ १६ ॥ धिग्जन्ममानुषेलोकेक्षात्रधर्माऽनुजीविनाम् ॥ लालितोऽयंप्रियोदेहःकृंतनीयःशितैःशरैः ॥ १७ ॥ तैलाभ्यंगैःपुष्पवातैस्तथामिष्टान्नभोजनैः ॥ पोषितोऽयंप्रियोदेहोघातनीयःपरेषुभिः ॥१८॥ देहंछित्त्वाऽसिधाराभिर्धनभृज्जायतेनरः ॥ धिग्धनंदुःखदंपूर्वपश्चात्किंसुखदंभवेत् ॥१९॥ त्वमप्यज्ञैववामोरुयुद्धमाकांक्षसेयतः ॥ सुखंसंभोगजंत्यक्त्वाकंगुणंवेत्सिसंगरे ॥२०॥ खड्गपातंगदाघातंभेदनंचशिलीमुखैः ॥ मरणांतेतुसंस्कारोगोमायुमुखकर्षणम् ॥२१॥ तस्यैवकविभिर्धूर्तैःकृतंचाऽतीवशंसनम् ॥ रणेमृतानांस्वःप्राप्तिरर्थवादोऽस्तिकेवलः ॥ २२ ॥ तस्माद्गच्छवरारोहेयत्रतेरमतेमनः ॥ भजवाभूपतिंनाथंहयारिंसुरमर्दनम् ॥ २३ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंब्रुवाणंतंदैत्यंप्रोवाच जगदंबिका ॥ किंमृषाभाषसेमूढबुद्धिमानिवपंडितः ॥ २४ ॥

है ॥ १९ ॥ हे वामोरु ! तुम ज्ञानहीन बोध होती हो, क्योंकि संभोगजनित सुख छोड़कर युद्धकी अभिलाषा करती हो. हे सुन्दरी ! तुम समरमें क्या गुण देखकर ऐसी अभिलाषा करती हो ? ॥ २० ॥ जिस युद्धमें खड्गपात, गदाघात और शिलीमुख अस्त्रप्रहारसे शरीर छिन्न भिन्न होता है और जिसमें मृत्यु होनेपर गोमायुगण मुखसे खैंचकर संस्कार करते हैं, उसमें क्या गुण दिखाई देता है ? ॥ २१ ॥ धूर्त्त कविगणही केवल उसकी अतिशय प्रशंसा करते हैं. वेही कहते हैं. मरे मनुष्योंको स्वर्गलाभ होता है. हे सुन्दरी ! यह उक्ति केवल स्तुतिवादमात्र है. इसमें संदेह नहीं ॥ २२ ॥ इसकारण हे वरारोहे ! तुम्हारी जहां अभिलाषा हो, उसी स्थानमें चली जाओ अथवा सुरमर्दन महिषका स्वामीरूपमें भजन करो ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चिक्षुर दानवके इस प्रकार कहनेपर जगदम्बिकाने उससे

कहा. रे मूढ ! बुद्धिमान् पण्डितोंके समान क्यों वृथा वचन कहता है. तू नीतिशास्त्र वा आन्वीक्षिकी विद्या नहीं जानता. तैंने बूढे पुरुषोंकी सेवा भी नहीं की, तेरी धर्ममें भी मति नहीं है ॥ २४ ॥ २५ ॥ तू मूर्खकी सेवा करता है, इस कारण तू भी अत्यन्त मूर्ख है, तू राजधर्म नहीं जानता, तथापि मेरे निकट क्या कहता है? ॥ २६ ॥ मैं समरमें महिषासुरको निहत करूंगी, उसके रक्तसे पृथ्वीको कर्दम युक्त कर तिसके द्वारा यशस्तम्भ सुदृढ करती हुई सुखपूर्वक अपने स्थानको चली जाऊंगी ॥ २७ ॥ मैं देवताओंके क्लेशदाता दुराचारी मदगर्वित उस दानवको निःसंदेह निहत करूंगी, तू स्थिर होकर युद्ध कर ॥ २८ ॥ तुझे और महिषको यदि जीवन धारणकी इच्छा हो, तो सब दानवोंके संग मिलकर पातालमें चले जाओ ॥ २९ ॥ और यदि तुम्हारे चित्तमें मृत्युकी वासना हो, तो शीघ्र युद्ध करो, मैं इसी समय सबका वध

नीतिशास्त्रंनजानासिविद्यांचान्वीक्षिकींतथा ॥ नसेवितास्त्वयावृद्धानधर्मेमतिरस्तिते ॥ २५ ॥ मूर्खसेवापरोयस्मात्तस्मात्त्वंमूर्खएवहि ॥ राजधर्मं नजानासिकिंब्रवीषिममाऽग्रतः ॥ २६ ॥ संग्रामेमहिषंहत्वाकृत्वारुधिरकर्दमम् ॥ यशःस्तंभंस्थिरंकृत्वागमिष्यामियथासुखम् ॥ २७ ॥ देवानांदुःखदातारंदानवंमदगर्वितम् ॥ हनिष्येऽहंदुराचारंयुद्धंकुरुस्थिरोभव ॥ २८ ॥ जीवितेच्छाऽस्तिचेन्मूढमहिषस्य तथातव ॥ तदागच्छंतुपातालंदानवाः सर्वएवते ॥ २९ ॥ मुमूर्षायदिवश्चित्तेयुद्धंकुर्वंतुसत्वराः ॥ सर्वानेववधिष्यामिनिश्चयोऽयंममाऽधुना ॥ ३० ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यादानवोबलदर्पितः ॥ मुमोचबाणवृष्टिंतांघनवृष्टिमिवाऽपराम् ॥ ३१ ॥ चिच्छेदतस्यसाबाणान्स्वबाणैर्निशितैस्तदा ॥ जघानतंतथाघोरैराशीविषसमैःशरैः ॥ ३२ ॥ युद्धंपरस्परंतत्रबभूवविस्मयप्रदम् ॥ गदयाघातयामासतंरथाज्जगदंबिका ॥ ३३ ॥ मूर्च्छांप्रापसदुष्टात्मागदयाऽभिहतोभृशम् ॥ मुहूर्तद्वयमात्रंतुरथोपस्थइवाऽचलः ॥ ३४ ॥ तंतथामूर्च्छितंदृष्ट्वाताम्रःपरबलाऽर्दनः ॥ आजगामरणेयोद्धुंचंडिकांप्रतिचापलात् ॥ ३५ ॥

करूंगी. यही मेरा स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! देवीके यह वचन सुनकर बलदर्पित दानव तत्काल उनके ऊपर दूसरे घनवृष्टिके समान बाणवृष्टि करने लगे ॥ ३१ ॥ तब देवी निशित बाणोंसे उनके सब बाणोंको खंड खंडकरके आशीविषके समान घोर बाणोंसे उसपर प्रहार करने लगी ॥ ३२ ॥ तिस समय परस्पर उनका संग्राम सर्व साधारणको विस्मयकारक हुआ, इसी अवसरमें जगदम्बिकाने गदाप्रहार द्वारा उसको रथसे गिरा दिया ॥ ३३ ॥ तब वह दुष्टस्वभाव गदासे ताडित होकर भी अचलके समान रथके समीप दो मुहूर्त्ततक मूर्च्छित अवस्थामें पड़ा रहा ॥ ३४ ॥ शत्रुविमर्दन ताम्र उसको ऐसी अवस्थामें देखकर चपलतासे

संग्राम करनेके लिये चण्डिकाके समीप आया ॥ ३५ ॥ देवी चण्डिकाने उसको आता देखकर हँसते हँसते कहा—हे दानवश्रेष्ठ ! आओ आओ ! ! तुमको अभी यम लोकमें प्रेरित करती हूं ॥ ३६ ॥ अथवा तुम्हारे आनेका प्रयोजन क्या है ? तुम लोग ऐसे दुर्बल हो कि तुम्हारा जीवन नहीं कहना चाहिये. वह मूढ़ महिष क्या इस समय गृहमें रहकर जीवनका उपाय करता है ? ॥ ३७ ॥ तुम अत्यन्त दुर्बल हो इस कारण तुमको विनाश करनेसे मुझे क्या फल होगा ? उस दुष्टस्वभाव सुरशत्रु पापमति महिषके नहीं मरनेसे मेरा सब परिश्रम विफल होगा ॥ ३८ ॥ अतएव तुम घर जाकर अपने राजा महिषको इस स्थानमें भेजो वह दुष्टस्वभाव मुझको जिस प्रकार देखनेकी वासना करता है. मैंभी उसीप्रकार अवस्थिति करती हूं ॥ ३९ ॥ ताम्र उनके वचनसे कुपित हो कानोंपर्यन्त धनुषको खैंचकर चण्डिकाके

आगच्छंतंतुतंवीक्ष्यहसंतीप्राहचंडिका ॥ एह्येहिदानवश्रेष्ठयमलोकंनयाम्यहम् ॥ ३६ ॥ किंभवद्भिःसमायातैरबलैश्चगतायुषः ॥ महिषःकिंगृहेमूढः करोतिजीवनोद्यमम् ॥ ३७ ॥ किंभवद्भिर्हतैर्मंदैर्ममाऽपिविफलःश्रमः ॥ अहतेमहिषेपापेसुरशत्रौदुरात्मनि ॥ ३८ ॥ तस्माद्यूयंगृहंगत्वामहिषंप्रे षयंत्विह ॥ पश्येन्मांसोऽपिमंदात्मायादृशींतादृशींस्थिताम् ॥ ३९ ॥ ताम्रस्तद्वचनंश्रुत्वाबाणवृष्टिंचकारह ॥ चंडिकांप्रतिकोपेनकर्णाऽऽकृष्टश रासनः ॥ ४० ॥ भगवत्यपिताम्राक्षीसमाकृष्यशरासनम् ॥ बाणान्मुमोचतरसाहंतुकामासुराऽहितम् ॥ ४१ ॥ चिक्षुराख्योऽपिबलवान्मूर्च्छां त्यक्त्वोत्थितःपुनः ॥ गृहीत्वासशरंचापंतस्थौतत्संमुखःक्षणात् ॥ ४२ ॥ चिक्षुराख्यश्चताम्रश्चद्वावप्यतिबलोत्कटौ ॥ युयुधातेमहावीरौसहदेव्यारणां गणे ॥ ४३ ॥ कुपिताचमहामायाववर्षशरसंततिम् ॥ चकारदानवान्सर्वान्बाणक्षततनुच्छदान् ॥ ४४ ॥ असुराःक्रोधसंमूढाबभूवुःशरताडिताः ॥ चिक्षिपुःशरजालानिदेवींप्रतिरुषान्विताः ॥ ४५ ॥ बभुस्तेराक्षसास्तत्रकिंशुकाइवपुष्पिणः ॥ शिलीमुखक्षताःसर्वेवसंतेचवनेरणे ॥ ४६ ॥

ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४० ॥ भगवतीने भी क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर धनुषको खैंचा और सुरशत्रुको मारनेकी इच्छासे शीघ्रतासहित बाण चलाने लगी ॥ ४१ ॥ इसी अवसरमें बलवान् चिक्षुराख्य मूर्च्छा त्यागकर उठा और क्षणमात्रमेंही फिर कार्मुक ग्रहण करके देवीके सन्मुख स्थिति करने लगा ॥ ४२ ॥ महावीर चिक्षुराख्य और ताम्र दोनों अत्यन्त उग्रभावसे देवीके संग रणभूमिमें युद्ध करने लगे ॥ ४३ ॥ तब महामाया कुपित होकर शीघ्रतासहित इसप्रकार शरवर्षण करनेलगी कि उन बाणोंसे सब दानवोंके वख्तर छिन्नभिन्न होगये ॥ ४४ ॥ वह शरविद्ध असुर कोपसे अत्यन्त विमोहित होकर क्रोधसहित देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४५ ॥ वसन्तकालमें पुष्पित किंशुक जिस प्रकार शोभा पाता है. शिलीमुखद्वारा क्षत विक्षत होकर दानवलोग रणस्थलमें उसीप्रकार शोभा पाने

लगे ॥ ४६ ॥ तब ताम्रके सहित भगवतीका इसप्रकार तुमुल संग्राम हुआ कि दर्शकभावसे अवस्थित देवता भी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ४७ ॥ ताम्र लोहमय दृढ़ दारुण मूशल ले सिंहके मस्तकमें प्रहार करके हास्य और गर्जन करने लगा ॥ ४८ ॥ उसको गर्जता हुआ देखकर देवीने कुपित होकर शितधार खड्गसे शीघ्र उसका मस्तक काट डाला ॥ ४९ ॥ मस्तक कटजानेपर बलवान् ताम्र मस्तकहीन होकर भी क्षणकालमें मूशल धारण पूर्वक भ्रमण करके रणस्थलमें गिरगया ॥५०॥ महाबल चिक्षुराख्य ताम्रको गिरा देखते ही तत्काल खड्ग लेकर चण्डिकाकी ओर दौडा ॥ ५१ ॥ चिक्षुराख्य खड्ग हाथमें लेकर जब समीप आया तब यह देखकर भगवतीने पांच बाणोंसे उसको प्रहार किया ॥ ५२ ॥ एक बाणसे उसका खड्ग और दूसरेसे उसका हस्त काटकर अवशिष्ट बाणोंके द्वारा उसका कंठसे मस्तक

बभूवतुमुलंयुद्धंताम्रेणसहसंयुगे॥ विस्मयंपरमंजग्मुर्देवायेप्रेक्षकाःस्थिताः॥४७॥ताम्रोमुसलमादायलोहजंदारुणंदृढम्॥जघानमस्तकेसिंहंजहासचननर्दच ॥४८॥ नर्दमानंतदातंतुदृष्ट्वादेवीरुषान्विता ॥ खड्गेनशितधारेणशिरश्चिच्छेदसत्वरा ॥ ४९ ॥ छिन्नेशिरसिताम्रस्तुविशीर्षोमुसलीबली ॥ बभ्रामक्षणमात्रं तुपपातरणमस्तके ॥५०॥ पतितंताम्रमालोक्यचिक्षुराख्योमहाबलः॥खड्गमादायतरसादुद्रावचंडिकांप्रति॥५१॥भगवत्यपितंदृष्ट्वाखड्गपाणिमुपागतम्॥ दानवंपंचभिर्बाणैर्जघानतरसारणे ॥ ५२ ॥ एकेनपतितंखड्गंद्वितीयेनतुतत्करः ॥ कंठाच्चमस्तकंतस्यकृंतितंचाऽपरैःशरैः ॥ ५३ ॥ एवंतौनिहतौक्रूरौरा क्षसौरणदुर्मदौ ॥ भग्नंसैन्यंतयोस्तूर्णंदिक्षुसंत्रस्तमानसम् ॥५४॥ देवाश्चमुदिताःसर्वेदृष्ट्वातौनिहतौरणे ॥ पुष्पवृष्टिंमुदाचक्रुर्जयशब्दंनभःस्थिताः॥५५॥ ऋषयोदेवगंधर्वावैतालाःसिद्धचारणाः ॥ ऊचुस्तेजयदेवीतिचांबिकेतिपुनःपुनः ॥५६॥ ॥इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ तौतयानिहतौश्रुत्वामहिषोविस्मयान्वितः ॥ प्रेषयामासदैतेयांस्तद्वधार्थंमहाबलान् ॥ १ ॥

काटडाला ॥ ५३ ॥ रणदुर्मद क्रूर उन दोनों असुरोंके इसप्रकार मरनेपर उनकी सेना भीत हो तत्काल चारों ओर को भागगई ॥५४॥ तब देवतालोग समरमें उनको गिराहुआ देखकर आनन्दित हुए और आकाशसे प्रसन्नतापूर्वक पुष्पवृष्टि करते हुए.जयशब्द उच्चारण करनेलगे ॥ ५५॥ इधर ऋषिगण, गंधर्वगण, वेतालगण, सिद्धगण और चारणगण आनन्दित होकर हे अम्बिके ! तुम्हारी जय हो. हे देवि ! तुम्हारी जय हो. यह वचन वारंवार उच्चारण करने लगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवीके हाथसे दोनों दैत्योंकी मरणवार्त्ता सुन महि

भासुरने देवीका विनाश करनेकी इच्छासे महाबली ॥ १ ॥ असिलोमा और बिडालाख्य इत्यादि दानवोंको समरमें भेजा. तब उन युद्धविशारद दानवोंने आयुध और युद्धसाजसे सज्जित होकर महासेनाके सहित संग्रामस्थलमें प्रस्थान किया ॥ ॥ २ ॥ उन्होंने वहाँ उपस्थित होकर देखा कि, वह अष्टादशभुजा दिव्यरूपधारिणी देवी खड्ग और खेटकधारण करके सिंहके ऊपर विराजमान है ॥ ३ ॥ तब शान्त स्वभाव असिलोमाने कुछेक हँसकर उनके सन्मुख जाय दैत्यवधमें उद्यता देवीसे विनयपूर्वक कहा ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे देवी ! तुम किसकारण यहां आई हो ? और किसलिये निरपराधदैत्योंको संहार करती हो ? हे सुन्दरी ! आप यह सब विषय मुझसे सत्य सत्य कहिये. हे नितम्बिनी ! हम आपके संग संधि स्थापन करेंगे. अतएव इस समय आपके यहां आनेका क्या कारण हैसो कहिये ? काञ्चन रत्न मणि और अन्य उत्तम द्रव्य इनमेंसे जो

असिलोमविडालाख्यप्रमुखान्युद्धदुर्मदान् ॥ सैन्येनमहतायुक्तान्सायुधान्सपरिच्छदान्॥२॥तेतत्रददृशुर्देवींसिंहस्योपरिसंस्थिताम्॥अष्टादशभुजांदिव्यां खड्गखेटकधारिणीम्॥३॥ असिलोमाऽग्रतोगत्वातामुवाचहसन्निव ॥ विनयावनतःशांतोदेवींदैत्यवधोद्यताम्॥४॥असिलोमोवाच ॥ देविब्रूहिवचःसत्यंकिमर्थमिहसुंदरि ॥ आगताऽसिकिमर्थंवाहंसिदैत्यान्निरागसः ॥५॥ कारणंकथयाऽद्यत्वंत्वयासंधिंकरोम्यहम् ॥ कांचनंमणिरत्नानिभाजनानिवराणिच ॥ ॥ ६ ॥ यानीच्छसिवरारोहेगृहीत्वागच्छमाचिरम् ॥ किमर्थंयुद्धकामाऽसि दुःखसंतापवर्धनम्॥ ७॥ कथयंतिमहात्मानोयुद्धंसर्वसुखाऽपहम् ॥ कोमलेतीवतेदेहेपुष्पघाताऽसहेभृशम् ॥८॥ किमर्थंशस्त्रसंपातान्सहसीतिविसिस्मिये ॥ चातुर्यस्यफलंशांतिःसततंसुखसेवनम् ॥९॥ तत्किमर्थंदुःखहेतुंसंग्रामंकर्तुमिच्छसि ॥ संसारेऽत्रसुखंग्राह्यंदुःखंहेयमितिस्थितिः॥१०॥तत्सुखंद्विविधंप्रोक्तंनित्यानित्यप्रभेदतः ॥ आत्मज्ञानंसुखंनित्यमनित्यंभोगजंस्मृतम्॥११॥

आपकी इच्छा हो वह लेकर तुम अभी चली जाओ ॥ ५ ॥ ६ ॥ महानुभव पुरुष कहते हैं कि, युद्ध करनेसे सब सुख नष्ट होजाता है. केवल दुःख और संतापकी वृद्धि होती है. इसकारण तुम किसलिये युद्धकी इच्छा करती हो ? तुम्हारा देह अत्यन्तकोमल है अधिक क्या वह पुष्पका आघात सहनेमें भी समर्थ नहीं है॥ ७ ॥ ८ ॥ अतएव आप किसलिये इस देहमें शस्त्राघात सहन करतीं हैं. यह विचार कर मैं अतिशय विस्मित होता हूं. देखो, शान्तिही चतुरताका फल है. क्योंकि इससे सदाही सुखसेवा होती है ॥ ९ ॥ अतएव दुःखका हेतु संग्राम करनेकी क्यों अभिलाषा करती हो ? इस संसारमें सुख ग्राह्य और दुःख त्याज्य है. यही मर्यादा प्रतिष्ठित हुई है ॥ १० ॥ वह सुख नित्य और अनित्यभेदसे दो प्रकारका है. आत्मज्ञानजनितजो सुख है, वही नित्य और भोगजनित जो सुख है, वही अनित्य है ॥ ११ ॥

जोवेदशास्त्रका यथार्थतत्व जानते हैं वे इस विनाशशील संभोगसुखको ही त्याग करते हैं. हे वरानने ! यदि तुम सुगत बुद्धलोगोंकी समान "परलोक नहीं है" यह स्वीकार करो ॥ १२ ॥ तो युद्ध त्यागकर इस लोकमें यावनलाभ करके उत्तमोत्तम भोग्यवस्तुओंको भोगो. हे कृशोदरी ! यदि आपको परलोकमें सन्देह हो ॥ १३ ॥ तोभी युद्ध छोड़कर आप इस पृथ्वीमें सदा स्वर्गभोगके प्रतिपादक कर्मादिका अनुष्ठान कीजिये क्योंकि यौवन अनित्य है इसको जानकर सदाही पुण्यकार्य करना ॥ १४ ॥ और परपीडन त्याग करना पण्डित लोगोंका कर्त्तव्य है और इसी प्रकार धर्म अर्थ और कामके परस्पर अविरोधभावसे उन सबकी सेवा करना अतिउचित है ॥ १५ ॥ अतएव हे कल्याणी ! आपभी सदा धर्ममें मति कीजिये. हे अम्बिके ! विना अपराध दैत्योंको किसलिये संहार करती हो ? ॥ १६ ॥ क्योंकि इस पुरुषके देहमें दयारूप धर्म विद्यमान है और सब प्राणीभी सत्यमें प्रतिष्ठित हैं अर्थात् सत्यद्वारा रक्षणीय हैं अतएव दया

नाशात्मकंतुतत्त्याज्यंवेदशास्त्रार्थचिंतकैः ॥ सौगतानांमतंचेत्त्वंस्वीकरोषिवरानने ॥ १२ ॥ तथाऽपियौवनंप्राप्यभुंक्ष्वभोगाननुत्तमान् ॥ परलोकस्यसंदेहोयदितेऽस्तिकृशोदरि ॥ १३ ॥ स्वर्गभोगपरानित्यंभवभामिनिभूतले ॥ अनित्यंयौवनंदेहेज्ञात्वेतिसुकृतंचरेत् ॥ १४ ॥ परोपतापनंकार्यं वर्जनीयंसदाबुधैः ॥ अविरोधेनकर्तव्यंधर्मार्थकामसेवनम् ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वमपिकल्याणिमतिंधर्मेसदाकुरु ॥ अपराधंविनादैत्यान्कस्मान्मारयसेऽबिके ॥ १६ ॥ दयाधर्मोऽस्यदेहोऽस्तिसत्येप्राणाः प्रकीर्तिताः ॥ तस्माद्दयातथासत्यंरक्षणीयंसदाबुधैः ॥ १७ ॥ कारणंवदसुश्रोणिदानवानांवधेतव ॥ देव्युवाच ॥ त्वयापृष्टंमहाबाहोकिमर्थमिहचागता ॥ १८ ॥ तदहंसंप्रवक्ष्यामिहननेचप्रयोजनम् ॥ विचरामिसदादैत्यसर्वलोकेषुसर्वदा ॥ १९ ॥ न्यायान्यायौचभूतानांपश्यंतीसाक्षिरूपिणी ॥ नमेकदाऽपिभोगेच्छानलोभोनचवैरिता ॥ २० ॥ धर्मार्थंविचराम्यत्रसंसारेसाधुरक्षणम् ॥ व्रतमेतत्तुनियतं पालयामिनिजंसदा ॥ २१ ॥ साधूनांरक्षणंकार्यंहंतव्यायेऽप्यसाधवः ॥ वेदसंरक्षणंकार्यमवतारैरनेकशः ॥ २२ ॥

और धर्मकी बुद्धिमानोंको सदा रक्षा करनी चाहिये ॥ १७ ॥ हे सुश्रोणी ! दानवोंके मारनेमें तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? यह आप प्रकाश करके कहिये. देवीने कहा हे महाबाहो ! तुमने पूँछा कि तुम्हारे यहां आनेका क्या प्रयोजन है ? १८ ॥ सो हे वीरवर ! मेरे इस स्थलमें आनेका और दैत्यसंहारका जो प्रयोजन है वह कहती हूं सुनो. हे दैत्यवर ! मैं साक्षिरूपिणी होकर जीवोंका न्याय और अन्याय सदा देखती हुई समस्त लोकमें विचरण करती हूं. मुझको कभी भोगकी इच्छा नहीं है वा किसी विषयमें लोभ नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ और किसीसे शत्रुताभी नहीं है. केवल धर्मकी रक्षाकेलिये ही इस संसारमें विचरण करती हूं. साधुओंकी रक्षा करनाही मेरा व्रत है. इसकोमैं सदाही पालन करती हूं ॥ २१ ॥ साधुओंकी रक्षा और असाधुओंका विनाशही मेरा कार्य जानना चाहिये. युगयुगमें अनेक अवतार लेकर वेदकी रक्षा करनी होतीहै ॥ २२ ॥

इसकारण मैं ही युगयुगमें अवतीर्ण होती हूं. इस समय दुरात्मा महिष देवताओंका विनाश करनेमें उद्यत है ॥ २३ ॥ यह जानकर उसको मारनेके लिये मैं यहां आई हूं, इस दुराचारी देवताओंके शत्रु महाबल महिषासुरको निहत करूंगी ॥ २४ ॥ यह तुमसे मैं ने सत्यही कहा है. इस कारण यदि तुम्हारी इच्छा हो तो ठहरो. नहीं तो चले जाओ वा उस दुष्टस्वभाव राजा महिषासुरसे कहो ॥ २५ ॥ कि, दूसरे असुरोंको क्यों भेजता है ? तू स्वयं आनकर युद्ध कर. तुम्हारे राजाको यदि मेरे संग संधि करनेकी इच्छा हो ॥ २६ ॥ तो देवताओंसे वैर छोड़ सब मिलकर सुखपूर्वक पाताल-तलमें चले जाओ रणमें देवताओंको जीतकर जो कुछ देवद्रव्य हरण किया है ॥ २७ ॥ वह सब देवताओंको देकर पातालके जिस स्थानमें प्रह्लाद वास करता है, उसी स्थलमें प्रवेश करो. व्यासजी बोले हे महाराज !

युगेयुगेतानेवाऽहमवतारान्बिभर्मिच॥महिषस्तुदुराचारोदेवान्वैहंतुमुद्यतः॥२३॥ज्ञात्वाऽहंतद्वधार्थंभोःप्राप्ताऽस्मिराक्षसाऽधुना॥ तंहनिष्येदुराचारंसुरशत्रुं महाबलम् ॥ २४ ॥ गच्छवातिष्ठकामंत्वंसत्यमेतदुदाहृतम्॥ब्रूहिवातंदुरात्मानंराजानंमहिषीसुतम्॥२५॥किमन्यान्प्रेषयस्यत्रस्वयंयुद्धंकुरुष्वह॥ संधिश्चे त्कर्तुमिच्छाऽस्तिराज्ञस्तवमयासह ॥ २६ ॥ सर्वेगच्छंतुपातालंवैरंत्यक्त्वायथासुखम् ॥ देवद्रव्यंतुयत्किंचिद्धृतंजित्वारणेसुरान् ॥२७॥ तद्दत्वायांतुपा तालंप्रह्लादोयत्रतिष्ठति ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदेव्याअसिलोमापुरःस्थितः ॥ २८ ॥ बिडालाख्यंमहावीरंपप्रच्छप्रीतिपूर्वकम् ॥ असिलोमोवा च ॥ श्रुतंतेऽद्यबिडालाख्यभवान्याकथितंचयत् ॥ २९ ॥ एवंगतेकिंकर्तव्योविग्रहःसंधिरेववा ॥ बिडालाख्यउवाच ॥ नसंधिकामोऽस्तिनृपोऽभिमानी युद्धेचमृत्युंनियतंहिजानन् ॥३०॥ दृष्ट्वाहतान्प्रेरयतेतथाऽस्मान्दैवंहिकोऽतिक्रमितुंसमर्थः ॥ "दुःसाध्यएवास्त्विहसेवकानांधर्मःसदामानविवर्जितानाम्॥ आज्ञापराणांवशवर्तिकानांपांचालिकानामिवसूत्रभेदात् ॥" गत्वाकथंतस्यपुरस्त्वयाचमयाऽपिवक्तव्यमिदंकठोरम् ॥ ३१ ॥

असिलोमाने देवीके इस प्रकार वचन सुनकर सन्मुख स्थित ॥ २८ ॥ महावीर बिडालाख्य असुरसे प्रीतिपूर्वक पूछा. असिलोमा बोला हे बिडालाख्य ! इस समय देवीने जो कहा वह तो सुना ॥ २९ ॥ अब इस अवस्थामें संधि करना कर्त्तव्य है अथवा विग्रह? बिडालाख्य बोला युद्धमें अवश्य ही मृत्यु होगी यह जानकर भी राजा अपने स्वाभाविक अभिमानसे संधि करनेमें सम्मत नहीं हैं ॥ ३० ॥ उन्होंने प्रतिदिन दानवोंकी मृत्यु देखकर भी हमको रणमें भेजा है अतएव दैवका अतिक्रम करनेमें कौन पुरुष समर्थ होता है ? सूत्रके तारतम्यानुसार नृत्य करनेवाली पुतली जिसप्रकार नचानेवालेके वशवर्त्ती होती है इसीप्रकार सेवकलोगभी प्रभुके वशवर्ती और

आज्ञाधीन हैं अतएव सदा मानादि छोड़कर प्रभुका कार्य करना होता है, इस्से संसारमें सेवकका कार्य अतिदुःसाध्य है, हम उनके सामने यह कठोरवचन जाकर कैसे कहेंगे कि॥ ३१ ॥ "आप देवताओंको धन रत्न देकर यहांसे सब असुरोंके सहित पातालमें प्रवेश करो. देखो असत्यवचनही प्रिय होता है किन्तु जो हितकर है वह कभी प्रिय नहीं होता ! सत्य और प्रिय ऐसे वचन संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हैं इसकारण इस प्रकारके स्थलमें बुद्धिमान् पुरुषको मौनावलम्बन करके ही रहना उचित है " ॥ और विशेषकरके अपने वचनोंसे राजाको लुभाकर वशीभूत करना वीरपुरुषोंका कर्त्तव्य नहीं है, यही नीतिशास्त्रका सार मर्म है ॥ ३२ ॥ इसकारण राजासे सादर हितकी बात कहने वा हितकी बात पूछनेको हमारा वहां जाना कभी उचित नहीं है. क्योंकि ऐसा कहनेसे राजा निस्संदेह कुपित होंगे ॥ ३३ ॥ अतएव इसप्रकार

गच्छंतुपातालमितश्च सर्वेदत्वाऽथरत्नानिधनंसुराणाम् ॥ "प्रियंहिवक्तव्यमसत्यमेवनचप्रियंस्याद्धितकृत्तुभाषितम् ॥ सत्यंप्रियंनोभवतीहकामंमौनंततो बुद्धिमतांप्रतिष्ठितम्" ॥ नफल्गुवाक्यैःप्रतिबोधनीयोराजातुवीरैरितिनीतिशास्त्रम् ॥३२॥ ननूनंतत्रगंतव्यंहितंवावक्तुमादरात् ॥ प्रष्टुंवाऽपिगतेराजाको पयुक्तोभविष्यति ॥ ३३ ॥ इतिसंचिंत्यकर्तव्यंयुद्धंप्राणस्यसंशये ॥ स्वामिकार्यंपरंमत्वामरणंतृणवत्तथा ॥ ३४ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंचिंत्यतौवी रौसंस्थितौयुद्धतत्परौ ॥ धनुर्बाणधरौतत्रसन्नद्धौरथसंगतौ ॥ ३५ ॥ प्रथमंतुबिडालाख्यःसप्तबाणान्मुमोचह ॥ असिलोमास्थितोदूरेप्रेक्षकःपरमाऽस्त्र वित् ॥ ३६ ॥ चिच्छेदतांस्तथाप्राप्तानंबिकास्वशरैःशरान् ॥ बिडालाख्यंत्रिभिर्बाणैर्जघानचशिलाशितैः ॥ ३७ ॥ प्राप्यबाणव्यथांदैत्यःपपातसमरां गणे ॥ मूर्छितोऽथममाराऽऽशुदानवोदैवयोगतः ॥ ३८ ॥ बिडालाख्यंहतंदृष्ट्वारणेशक्तिशरोत्करैः ॥ असिलोमाधनुष्पाणिःसंस्थितोयुद्धतत्परः ॥३९॥

जीवनसंशयके स्थलमें भी प्रभुका कार्यसंपादन करना ही कर्त्तव्य है. इसभांति विचार और मरणको तृणकी समान जानकर युद्ध करनाही अतिउत्तम है ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! इसप्रकार विचार करनेके पीछे वे दोनों वीर बखतर पहर धनुष बाण धारणकर रथमें चढ़ संग्राम करनेके लिये वहां स्थिति करने लगे ॥ ३५ ॥ प्रथम बिडालाख्यने सात बाण छोड़े. तिस समय परमास्त्रवेत्ता असिलोमा दर्शक होकर दूर स्थित रहा ॥ ३६ ॥ उस बाणके आतेही अम्बिकाने अपने बाणोंसे खंड खंड करके शिलाशाणित तीन बाणोंसे बिडालाख्यको प्रहार किया ॥ ३७ ॥ दैत्य बिडालाख्य बाणवेदनासे मूर्छित होकर रणस्थलमें गिरगया और क्षणकालो परान्तही दैवयोगसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ शक्तिके बाणोंसे बिडालाख्यको समरमें निहत हुआ देख असिलोमा धनुषबाणधारण करके युद्धके लिये आया ॥ ३९॥

तब यह वीरवर बांई भुजा उठाय देवीसे कहने लगा कि हे देवी ! दुष्टस्वभाव दानवोंकी मृत्यु होगी यह मैं जानता हूं ॥ ४० ॥ किन्तु यह जानकर भी मुझको समरमें प्रवृत्त होना पड़ा है क्योंकि मैं पराधीन हूं और महिषासुर अत्यन्त मन्दबुद्धि है इसकारण वह प्रियअप्रियको नहीं जानता ॥ ४१ ॥ उसके निकट हितकर अप्रिय वचन कभी न कहे अतएव अच्छा हो वा बुरा हो मैं राजधर्मके अनुसार युद्धमें प्राणपरित्याग करूंगा ॥ ४२ ॥ दानवलोग तुम्हारे बाणोंके प्रहारसे आहत होकर तत्क्षण भूतलमें गिरते हैं यह देखकर मैं दैवको ही प्रधान जानता हूं. पुरुषकारसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, इसकारण पौरुषको धिक्कार है ॥ ४३ ॥ यह कहकर वह दानवश्रेष्ठ असिलोमा बाणोंकी वर्षा करने लगा. तब देवीजी उन बाणोंको निकट आते आते ही अपने बाणोंसे खंड खंड करने लगी ॥ ४४ ॥ और फिर क्रोधमें भरकर अन्य

ऊर्ध्वसव्यंकरंकृत्वातामुवाचमितंवचः ॥ देविजानामिमरणंदानवानांदुरात्मनाम् ॥ ४० ॥ तथाऽपियुद्धंकर्तव्यंपराधीनेनवैमया ॥ महिषोमंदबुद्धिश्चन जानातिप्रियाऽप्रिये ॥४१॥ तदग्रेनैववक्तव्यंहितंचैवाऽप्रियंमया ॥ मर्तव्यंवीरधर्मेणशुभंवाऽप्यशुभंभवेत् ॥४२॥ दैवमेवपरंमन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ पतंतिदानवास्तूर्णंतवबाणहताभुवि ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वाशरवृष्टिंसचकारदानवोत्तमः ॥ देवीचिच्छेदतान्बाणैरप्राप्तांस्तुनिजांतिके ॥ ४४ ॥ अन्यैर्विव्या धतंतूर्णमसिलोमानमाशुगैः ॥ वीक्षिताऽमरसंघैश्चकोपपूर्णाननातदा ॥ ४५ ॥ शुशुभेदानवःकामंबाणैर्विद्धतनुःकिल ॥ स्रवद्रुधिरधारःसप्रफुल्लःकिंशु कोयथा ॥ ४६ ॥ असिलोमागदांगुर्वीलौहीमुद्यम्यवेगतः ॥ दुद्रावचंडिकांकोपात्सिंहंमूर्ध्निजघानह ॥ ४७ ॥ सिंहोऽपिनखराघातैस्तंददारभुजांतरे ॥ अगणय्यगदाघातंकृतंतेनबलीयसा ॥ ४८ ॥ उत्पत्यतरसादैत्योगदापाणिःसुदारुणः ॥ सिंहमूर्ध्निसमारुह्यजघानगदयांबिकाम् ॥ ४९ ॥ कृतंतेनप्रहारं तुवंचयित्वाविशांपते॥खड्गेनशितधारेणशिरश्चिच्छेदकंठतः॥५०॥छिन्नेशिरसिदैत्येंद्रःपपाततरसाक्षितौ॥हाहाकारोमहानासीत्सैन्येतस्यदुरात्मनः॥५१॥

बाणोंसे उसको शीघ्रतासहित बींधडाला. उस समय देवता आकाशमें टिकेहुए देवीका यह सब कार्य देखने लगे ॥ ४५ ॥ बाणोंके लगनेसे देह क्षत विक्षत होगया और उससे रुधिरकी धारा निकलने लगी. इसकारण वह दानव प्रफुल्ल किंशुकवृक्षकी समान शोभा पाने लगा ॥ ४६ ॥ तब असिलोमाने लोहमय भारी गदा उठाकर वेगसहित चंडिकाकी ओर दौड़ा और क्रोधयुक्त हो सिंहके मस्तकमें आघात किया ॥ ४७ ॥ प्रबल असुरके उस गदाघातसे न गिरकर सिंहने नखाघातसे उसकी बाहु विदारण की ॥ ४८ ॥ फिर उस दारुण दैत्यने गदा हाथमें ले सिंहके कंधेपर चढ़ अम्बिकाको महावेगसे प्रहार किया ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! तब देवीने असुरके किये प्रहारको व्यर्थ करके शितधार खड्गसे उसका मस्तक काट डाला ॥ ५० ॥ मस्तकके कटनेसे दैत्यपति वेगसहित पृथ्वीमें गिरगया. यह देखकर

उस दुरात्माकी सेनामें महान् हाहाकार शब्द होनेलगा ॥ ५१ ॥ इस ओर "देवीकी जय हो." यह कहकर देवता उन जगदम्बिकाका स्तव करने लगे. देवदुन्दुभि बजने लगीं और गंधर्वलोग महानन्दसे संगीत करने लगे ॥ ५२ ॥ दोनों दानव निहत होकर समरस्थलमें गिरगये. यह देखकर केसरीने बलपूर्वक बचीहुई सेनामें कितनोंको निहत और ॥ ५३ ॥ कितनोहीको भक्षण करके उसने रणस्थल खाली कर डाला, तिनमें कोई कोई भागकर दुःखित चित्तसे महिषासुरके निकट चलेगये ॥ ५४ ॥ भागीहुई सेना "रक्षा करो, रक्षा करो" यह कहकर चीत्कार करने लगी और रोती हुई बोली हे नृपसत्तम ! असिलोमा और बिडालाख्य मारे गये ॥ ५५ ॥ और जो अन्यान्य सैनिक थे, उनको सिंहने भक्षण कर लिया. उन्होंने महिषराजसे यह बात कहकर उसको दुःख

जयदेवीतिदेवास्तांतुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ देवदुंदुभयोनेदुर्जगुश्चनृपकिन्नराः ॥ ५२ ॥ निहतौदानवौवीक्ष्यपतितौचरणांगणे ॥ निहताः सैनिकाःसर्वेतत्रकेसरिणाबलात् ॥ ५३ ॥ भक्षिताश्चतथाकेचिन्निःशेषंतद्रणंकृतम् ॥ भग्नाःकेचिद्गतामंदामहिषंप्रतिदुःखिताः ॥ ५४ ॥ चुक्रुशूरुरुदुश्चै वत्राहित्राहीतिभाषणैः ॥ असिलोमबिडालाख्यौनिहतौनृपसत्तम ॥ ५५ ॥ अन्येयेसैनिकाराजन्सिंहेनभक्षिताश्चते ॥ एवंब्रुवंतोराजानंतदाचक्रुश्चवैश सम् ॥ ५६ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषांमहिषोदुर्मनास्तदा ॥ बभूवचिंताकुलितोविमनादुःखसंयुतः ॥ ५७ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेपंच दशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥छ॥ ॥व्यासउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाक्रोधयुक्तोनराधिपः ॥ दारुकंप्राहतरसारथमानयमेद्भुतम् ॥ १ ॥ सहस्र खरसंयुक्तंपताकाध्वजभूषितम् ॥ आयुधैःसंयुतंशुभ्रंसुचक्रंचारुकूबरम् ॥ २ ॥ सूतोऽपिरथमानीयतमुवाचत्वरान्वितः ॥ राजन्रथोऽयमानीतो द्वारितिष्ठतिभूषितः ॥ ३ ॥

सागरमें डाल दिया ॥ ५६ ॥ महिषासुर उनके वचन सुनकर दुःखसे विमन हुआ; तब अन्यमनस्क दुश्चित्तसा होकर व्याकुलभावसे चिन्ता करने लगा ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! उनके वचन सुन नृपति महिषासुरने कोपसहित दारुक नामक सारथीसे कहा, मेरा वह अद्भुत रथ शीघ्र लाओ ॥ १ ॥ हे राजन् ! ध्वजा पाताकाओंसे शोभित अनेक अस्त्रशस्त्रोंसे सज्जित, सुंदर चक्रयुक्त और शोभायमान युगन्धर जुएसे अलंकृत वह रथ उत्तमोत्तम सहस्र अश्वोंसे चलायमान ॥ २ ॥ सारथीने भी शीघ्र वह रथ लाकर उससे कहा हे राजन् ! आपके उस शोभायमान रथको लाकर

द्वारे खड़ाकिया है ॥ ३ ॥ वह उत्तम आभरण और अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित है महाबलवान् असुरपति रथको आया जान ॥ ४ ॥ "मुझको सींगयुक्त महिष और मेरा कुत्सित मुखमंडल देखकर देवी अत्यन्त विमन होगी" मनमें इसप्रकार विचारकर मनुष्य देहधारणपूर्वक समरमें जानेको उद्यत हुआ कारण कि सुंदरता और चतुरता स्त्रियोंको प्रिय है ॥ ५॥६॥ इस कारण रूप और चतुरता अवलम्बनकरके उसके निकट जाऊं क्योंकि वह बाला मुझको देखकर जिससे मेरे ऊपर प्रीति करै ॥ ७ ॥ उससे ही मुझको सुख होगा, अन्य किसी प्रकार सुख प्राप्त नहीं होगा. महाबलवान् दानवने मनमें इसप्रकार विचार कर ॥ ८ ॥ महिषरूप त्यागपूर्वक सुंदर मनुष्यरूप धारण किया वह दैत्यपति सब आयुध ले केयूर और अंगदादि मनोहर अलंकार ॥ ९ ॥ तथा दिव्य वस्त्र पहन और गलेमें पुष्पोंकी माला धारण कर दूसरे कामदेवकी समान शोभा पाने लगा, तब सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके धनुष ले रथमें चढ़े ॥ १० ॥ सेनासहित मदके गर्वसे उत्कंठित होकर देवीके समीप

सर्वायुधसमायुक्तोवरास्तरणसंयुतः ॥ आनीतंतंरथंज्ञात्वादानवेंद्रोमहाबलः ॥ ४ ॥ मानुषंदेहमास्थायसंग्रामेगंतुमुद्यतः ॥ विचार्यमनसाचेतिदेवीमां प्रेक्ष्यदुर्मुखम् ॥ ५ ॥ शृंगिणंमहिषंनूनंविमनासाभविष्यति ॥ नारीणांचप्रियंरूपंतथाचातुर्यमित्यपि ॥ ६ ॥ तस्माद्रूपंचचातुर्यंकृत्वायास्यामितांप्रति ॥ यथामांवीक्ष्यसाबालाप्रेमयुक्ताभविष्यति ॥ ७ ॥ ममाऽपिचतदैवस्यात्सुखंनान्यस्वरूपतः ॥ इतिसंचिंत्यमनसादानवेंद्रोमहाबलः ॥ ८ ॥ त्यक्त्वातन्माहिषंरूपंवभूवपुरुषःशुभः ॥ सर्वायुधधरःश्रीमांश्चारुभूषणभूषितः ॥ ९ ॥ दिव्यांबरधरःकांतःपुष्पबाणइवापरः ॥ रथोपविष्टःकेयूरस्रग्वी बाणधनुर्धरः ॥ १० ॥ सेनापरिवृतोदेवींजगाममदगर्वितः ॥ मनोज्ञंरूपमास्थायमानिनीनांमनोहरम् ॥ ११ ॥ तमागतंसमालोक्यदैत्यानामधिपंतदा ॥ बहुभिःसंवृतंवीरैर्देवीशंखमवादयत् ॥ १२ ॥ सशंखनिनदंश्रुत्वाजनविस्मयकारकम् ॥ समीपमेत्यदेव्यास्तुतामुवाचहसन्निव ॥ १३ ॥ देविसंसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानोजनःकिल ॥ नरोवाऽथतथानारीसुखंवांछतिसर्वथा ॥ १४ ॥ सुखंसंयोगजंनृणांनासंयोगेभवेदिह ॥ संयोगोबहुधाभिन्नस्तान्ब्रवीमिशृणुष्वह ॥ १५ ॥ भेदान्सुप्रीतिहेतूत्थान्स्वभावोत्थाननेकशः ॥ तत्रप्रीतिभवानादौकथयामियथामति ॥ १६ ॥

गया. दानवोंका अधिपति महिषासुर मानिनीगणोंका अतिमनोहर सुंदररूप धारण कर ॥ ११ ॥ और अनेक वीरोंसे परिवृत हो आरहा है, देवी भगवतीने यह देखकर शंखध्वनि करी ॥ १२ ॥ उस काल वह असुरराज सर्वजनविस्मयकर शंखनादको सुन देवीके सन्मुख उपस्थित हो कुछेक हँसकर उनसे कहने लगा ॥ १३ ॥ हे देवि ! इस संसारचक्रमें जो सब लोग विद्यमान हैं,वे नर(पुरुष) हों,वा नारी (स्त्री)हों सब सदा सुखकी अभिलाषा करते हैं॥ १४॥ वह सुख इस संसारमें मनुष्योंका परस्पर संमिलन होनेसे ही उत्पन्न होता है, संमिलनका अभाव होनेपर वह कभी उत्पन्न नहीं होता, हे देवि ! वह संमिलनभी अनेक प्रकारका है अतएव मैं उसको कहता हूं सुनो ॥ ॥ १५ ॥ संमिलन प्रीतिहेतुक और स्वभावहेतुक भेदसे अनेक प्रकारका है तिनमें प्रथम प्रीतिसंभव संयोगका विषय आपसे बुद्धिके अनुसार कहता हूं ॥ १६ ॥

पितामाताका पुत्रके संग जो संमिलन होता है वह प्रीतिके कारण उत्पन्न है अतएव यही उत्तम कहागया है और भाईके संग भाईका जो मिलन है वह उपकारसे होता है इसकारण इसको मध्यम कहना चाहिये ॥ १७ ॥ फलतः जो मिलन उत्तम सुखप्रदान करे वही उत्तम कहकर प्रतिपादित होता है और जो उसकी अपेक्षा अल्पसुखप्रदान करे वही मध्यम कहागया है ॥ १८॥ और देखो नाविकलोग नानादेशमें नानाकार्योंके लिये व्याकुल हृदय हो प्रसङ्गाधीन कार्यान्तरमें लगे रहते हैं अतएव इनका जो परस्परसंयोग है पण्डितलोग उसको स्वाभाविक संयोग कहते हैं ॥ १९ ॥ इस संयोगके अति अल्पसुख देनेसे पण्डितोंने उसका निकृष्टत्व प्रतिपादन किया है इस्से इस संसारमें जो अतिउत्तम मिलन है वही प्रकृतसुखदायक है इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥ हे कान्ते ! समान अवस्थावाले स्त्री पुरुषोंका जो निरन्तर संयोग

मातापित्रोस्तुपुत्रेणसंयोगस्तूत्तमःस्मृतः ॥ भ्रातुर्भ्रात्रातथायोगःकारणान्मध्यमोमतः ॥ १७ ॥ उत्तमस्यसुखस्यैवदातृत्वादुत्तमः स्मृतः ॥ तस्मादल्पसुखस्यैवप्रदातृत्वाच्चमध्यमः ॥ १८ ॥ नाविकानांतुसंयोगःस्मृतःस्वाभाविकोबुधैः ॥ विविधावृतचित्तानांप्रसंगपरिवर्तिनाम् ॥ १९ ॥ अत्यल्पसुखदातृत्वात्कनिष्ठोऽयंस्मृतोबुधैः ॥ अत्युत्तमस्तुसंयोगःसंसारेसुखदःसदा ॥ २० ॥ नारीपुरुषयोःकांतिसमानवयसोःसदा ॥ संयोगोयःसमाख्यातःसएवाऽत्युत्तमःस्मृतः ॥ २१ ॥ अत्युत्तमसुखस्यैवदातृत्वात्सतथाविधः ॥ चातुर्यरूपवेषाद्यैःकुलशीलगुणैस्तथा ॥ २२ ॥ परस्परसमुत्कर्षःकथ्यतेहिपरस्परम् ॥ तंचेत्करोषिसंयोगंवीरेणचमयासह ॥२३॥ अत्युत्तमसुखस्यैवप्राप्तिःस्यात्तेनसंशयः ॥ नानाविधानिरूपाणिकरोमिस्वेच्छयाप्रिये॥ ॥ २४ ॥ इंद्रादयःसुराःसर्वेसंग्रामेविजितामया ॥ रत्नानियानिदिव्यानिभवनेऽस्मिन्ममाधुना ॥ २५ ॥ भुंक्ष्वत्वंतानिसर्वाणियथेष्टंदेहिवायथा ॥ पट्टराज्ञीभवाद्यत्वंदासोऽस्मितवसुंदरि ॥ २६ ॥ वैरंत्यजेऽहंदेवैस्तुतववाक्यान्नसंशयः ॥ यथात्वंसुखमाप्नोषितथाऽहंकरवाणिवै ॥ २७ ॥

होता है उसकोही अतिउत्तम जानना चाहिये क्योंकि यह मिलनही अत्युत्तम सुखप्रदान करता है ॥ २१ ॥ इसकारण इसको अतिउत्तम संमिलन कहते हैं अत्युत्तम मिलन होनेसे कुल, शील, गुण, रूप ॥ २२ ॥ चातुर्य और वेष सब विषयमें ही स्त्री वा पुरुष परस्परके श्रेष्ठताका विषय वर्णन करते हैं अतएव हे प्रिये ! तुम यदि मेरे संग उसी प्रकार संयोग करो ॥ २३ ॥ तो तुमको अतिउत्तम सुख प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं है, विशेष कर मैं अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारके रूप धारण करूंगा इससे तुमको कोई चिन्ता नहीं है ॥ २४ ॥ मैंने इन्द्रादि देवताओंको समरमें जीतकर जो दिव्यरत्न हरण कर लिये हैं वे संपूर्ण मेरे घर विद्यमान हैं ॥ ॥ २५ ॥ तुम मेरी पटरानी होकर वे सब रत्नोंका इच्छानुसार दान वा भोग करो हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूं ॥ २६ ॥ इसकारण मैं तुम्हारे वचनानुसार देवता

ऐसे शत्रुता परित्याग करूंगा इसमें संदेह नहीं, अधिक क्या? तुम्हे जिससे सुख मिले मैं वही करूंगा ॥ २७ ॥ हे चारुभाषिणि ! हे विशाललोचने ! तुम्हारे रूपसे मेरा चित्त मोहित हुआ है. इसकारण जो तुम आज्ञा करोगी, मैं उसीके अनुसार कार्य करूंगा ॥ २८ ॥ हे नितम्बिनि! मैं आतुर होकर तुम्हारी शरणागत हुआ हूं. हे रम्भोरु ! मैं कामबाणसे पीड़ित होकर दुःखी हुआ हूं, अतएव तुम मेरी रक्षा करो ॥ २९ ॥ क्योंकि शरणागत पुरुषकी रक्षा करना सब धर्मोंसे उत्तम धर्म है, हे असितापाङ्गि ! हे कृशोदरि ! मैं तुम्हारा सेवक होकर काल व्यतीत करूंगा ॥ ३० ॥ और प्राणान्त होनेपर भी तुम्हारा वचन अन्यथा नहीं करूंगा. उसको सत्य जानो अब मैं सब आयुध त्यागकर तुम्हारे चरणोंमें गिरता हूं ॥ ३१ ॥ हे विशालनयने ! मैं कामबाणसे अत्यन्त कातर हुआ हूं. इसकारण तुम मुझपर दया

आज्ञापयविशालाक्षितथाहंप्रकरोम्यथ ॥ चित्तंमेतवरूपेणमोहितंचारुभाषिणि ॥ २८ ॥ आतुरोऽस्मिवरारोहेप्राप्तस्तेशरणंकिल ॥ प्रपन्नंपाहिरंभोरुकामबाणैःप्रपीडितम् ॥ २९ ॥ धर्माणामुत्तमोधर्मःशरणागतरक्षणम् ॥ त्वदीयोस्म्यसितापांगिसेवकोहंकृशोदरि ॥ ३० ॥ मरणांतंवचःसत्यंनाऽन्यथाप्रकरोम्यहम् ॥ पादौनतोऽस्मितन्वंगित्यक्त्वानानायुधानिते ॥ ३१ ॥ दयांकुरुविशालाक्षितप्तोऽस्मिकाममार्गणैः ॥ जन्मप्रभृतिचार्वंगिदैन्यंनाचरितंमया ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादीनीश्वरान्प्राप्यत्वयितद्विदधाम्यहम् ॥ चरितंममजानंतिरणेब्रह्मादयःसुराः ॥ ३३ ॥ सोऽप्यहंतवदासोऽस्मिमन्मुखंदृश्यभामिनि ॥ व्यास उवाच ॥ इतिब्रुवाणंतंदैत्यंदेवीभगवतीहिसा ॥ ३४ ॥ प्रहस्यसस्मितंवाक्यमुवाचवरवर्णिनी ॥ देव्युवाच ॥ नाहंपुरुषमिच्छामिपरमंपुरुषंविना ॥ ३५ ॥ तस्यचेच्छास्म्यहंदैत्यसृजामिसकलंजगत् ॥ समांपश्यतिविश्वात्मातस्याहंप्रकृतिःशिवा ॥ ३६ ॥

करो हे सुन्दरि ! मैंने जन्मसे अबतक ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादिदेवताओंके निकट कभी दीनता स्वीकार नहीं की, किन्तु आज तुम्हारे निकट स्वीकार की और वह ब्रह्मादि देवतालोग भी संग्रामस्थलमें मेरा चरित जानते हैं ॥ ३३ ॥ मैंने उन सबकोही जीत लिया है. किन्तु हे भामिनि ! मैं ऐसा पराक्रमशाली होकर भी अब तुम्हारा दास हुआ, तुम मेरा मुख देखकर मुझपर कृपा करो. व्यासजी बोले हे महाराज ! दैत्यपति महिषासुरके इसप्रकार कहनेपर उन वरवर्णिनी भगवती देवीने ॥ ३४ ॥ उचहास्य कर सम्मित वचनसे कहा. देवी बोली मैं परमपुरुषके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषकी इच्छा नहीं करती ॥ ३५ ॥ हे दैत्य ! मैं उनकी इच्छाशक्ति हूं. इसकारण मैं

ही सब जगत्को उत्पन्न करती हूं, मैं उनकी शिवा प्रकृति हूं, वह विश्वात्मा मेरा दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ उनकी निकटतासे ही शाश्वत चैतन्य विश्वरूपसे मुझमें वर्त्तमान रहता है, अयस्कान्तकी समीपतासे लोहा जिसप्रकार सचेष्ट होता है इसी प्रकार मैं स्वाभाविक जड़ होकर भी उक्त चैतन्यके संयोगसे सचेतन होकर कार्य करती हूं. मुझे कभी इन्द्रियसुखकी अभिलाषा नहीं होती ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे मन्दात्मन् ! जब कि तू स्त्रीसंगकी इच्छा करता है, तो तू निस्संदेह अत्यन्त मूर्ख है, क्योंकि स्त्रीजाति मनुष्योंको बांधनेके लिये शृङ्खलास्वरूप कही गई है ॥ ३९ ॥ लोहबद्ध मनुष्य तो कदापि छूट सकता है, किन्तु स्त्रीबद्ध मनुष्य कभी नहीं छूट सकता. रे मूर्ख ! तू मूत्रागारकी सेवा करनेमें अभिलाषी हुआ है ॥ ४० ॥ सुखके लिये शान्तिअवलंबन कर. शान्तिसेही सुख पावेगा स्त्रीसंगमसे महादुःख उत्पन्न होता

तत्सान्निध्यवशादेवचैतन्यंमयिशाश्वतम् ॥ जडाऽहंतस्यसंयोगात्प्रभवामिसचेतना ॥ ३७ ॥ अयस्कांतस्यसान्निध्यादयसश्चेतनायथा ॥ नग्राम्यसुखवांछामेकदाचिदपिजायते ॥ ३८ ॥ मूर्खस्त्वमसिमंदात्मन्यत्स्त्रीसंगंचिकीर्षसि ॥ नरस्यबंधनार्थायशृंखलास्त्रीप्रकीर्तिता ॥ ३९ ॥ लोहबद्धोऽपिमुच्येतस्त्रीबद्धोनैवमुच्यते ॥ किमिच्छसिचमंदात्मन्मूत्रागारस्यसेवनम् ॥ ४० ॥ शमंकुरुसुखायत्वंशमात्सुखमवाप्स्यसि ॥ नारीसंगेमहद्दुःखंजानन्कित्वंविमुह्यसि ॥ ४१ ॥ त्यजवैरंसुरैःसार्धंयथेष्टंविचराऽवनौ ॥ पातालंगच्छवाकामंजीवितेच्छायदस्तिते ॥ ४२ ॥ अथवाकुरुसंग्रामंबलवत्यस्मिसांप्रतम् ॥ प्रेषिताऽहंसुरैःसर्वैस्तवनाशायदानव ॥ ४३ ॥ सत्यंब्रवीमियेनाद्यत्वयावचनसौहृदम् ॥ दर्शितंतेनतुष्टाऽस्मिजीवन्गच्छयथासुखम् ॥ ४४ ॥ सतांसप्तपदीमैत्रीतेनमुंचामिजीवितम् ॥ मरणेच्छाऽस्तिचेद्युद्धंकुरुवीरयथासुखम् ॥ ४५ ॥

है. तू यह जानकर भी क्यों मोहित होता है? ॥ ४१ ॥ तू देवताओंसे वैर छोड़ इच्छानुसार पृथ्वीमण्डलमें विचरण कर वा तुझे यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो पातालमें चला जा ॥ ४२ ॥ नहीं तो मेरे संग युद्ध कर किन्तु मैं तुझसे अधिकबलवती हूं, इस बातको जान लेना. हे दानव ! तुम लोगोंको मारनेके लिये देवताओंने मिलकर मुझको भेजा है ॥ ४३ ॥ मैं तुझसे यह सत्य ही कहती हूं, क्यों कि सौहृद्य "साम" वचन कहनेसे मैं तुझपर संतुष्ट हुई हूं, इसकारण तू जीवित अवस्थामें सुखपूर्वक चला जा ॥ ४४ ॥ देख केवल सातवार मात्र वाक्यकथन होनेसे ही साधु पुरुषोंकी मैत्री स्थापित होती है, हमारा वह होगया है, इसकारण तेरे संग मेरी मित्रता उदय हुई है, अतएव मैं अब तेरा जीवन ग्रहण नहीं करूंगी. हे वीरवर ! यदि तेरी मरनेकी इच्छा हो, तो सुखसे संग्राम कर ॥ ४५ ॥

हे महाबाहो! मैं तुझको संहार करूंगी इसमें सन्देह नहीं है. व्यासजी बोले कि, हेराजन्! दानवने भगवतीके इसप्रकार वचन सुन काममोहित हो॥ ४६॥ मनोहर मधुरवाणीसे कहा हेवरारोहे! तुम्हारे सब अंग मनोहर और कोमलहैं, ऐसी ललनाके देखनेसे मनुष्यमात्रही मोहित होताहै. इसकारण हे चारुवदने! तुम्हारे प्रहारकरनेमें मुझे अतिशंका उत्पन्न होती है. हे कमललोचने! मैं ने हरि हर इत्यादि देवता और सब लोकपालोंको जीता है॥ ४७॥ ४८॥ अतएव तुमसे युद्ध करना क्या मुझको उचित है? हे सुन्दरी! यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तो विवाह करके मेरा भजन करो ॥ ४९ ॥ नहीं तो तुम जिस स्थानसे आई हो उसी स्थानको चली जाओ. तुमने मुझसे मित्रता करी है, इसी कारण तुमको प्रहार करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ५० ॥ यह मैं ने तुमसे हित और मंगलकर वचन कहे अतएव तुम सुखसे प्रस्थान करो. हे वरानने! तुम

हनिष्यामिमहाबाहोत्वामहंनात्रसंशयः॥ व्यासउवाच॥ इतितस्यावचःश्रुत्वादानवःकाममोहितः॥ ४६॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचामधुरंवचनंततः॥ बिभेम्यहंवरारोहेत्वांप्रहर्तुंवरानने॥ ४७॥ कोमलांचारुसर्वांगींनारींनरविमोहिनीम्॥ जित्वाहरिहरादींश्चलोकपालांश्चसर्वशः॥ ४८॥ किंत्वया सहयुद्धंमेयुक्तंकमललोचने॥ रोचतेयदिचार्वंगिविवाहंकुरुमांभज॥ ४९॥ नोचेद्गच्छयथेष्टंतेदेशंयस्मात्समागता॥ नाहंत्वांप्रहरिष्यामियतोमैत्री कृतात्वया॥ ५०॥ हितमुक्तंशुभंवाक्यंतस्माद्गच्छयथासुखम्॥ काशोभामेभवेद्देतहत्वात्वांचारुलोचनाम्॥ ५१॥ स्त्रीहत्याबालहत्याचब्रह्महत्या दुरत्यया॥ गृहीत्वात्वांगृहंनूनंगच्छाम्यद्यवरानने॥ ५२॥ तथाऽपिमेफलंनस्याद्बलाद्भोगसुखंकुतः॥ प्रब्रवीमिसुकेशित्वांविनयाऽवनतोयतः॥ ५३॥ पुरुषस्यसुखंनस्याद्दतेकांतामुखांबुजात्॥ तत्तथैवहिनारीणांनस्याच्चपुरुषंविना॥ ५४॥ संयोगेसुखसंभूतिर्वियोगेदुःखसंभवः॥ कांतासिरूपसंप न्नासर्वाऽऽभरणभूषिता॥ ५५॥

सुलोचना ललना हो तुमको मारकर अन्तमें मेरी क्या प्रशंसा होगी?॥ ५१॥ हेकृशोदरि! स्त्रीहत्या, बालहत्या और ब्रह्महत्याका फल अवश्यही भोगना पड़ता है. मैं तुमको नहीं मारूंगा वरन् ग्रहण करके घर लेजाऊँगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५२ ॥ किन्तु बलप्रयोग करनेसे कहीं सुख नहीं होता इसकारण उससे भी मुझको फललाभ नहीं होगा. हे सुकेशी! मैं विनयपूर्वक तुमसे कहता हूं कि ॥ ५३ ॥ कामिनीके मुखपंकज विना पुरुषको सुख नहीं होता इसी प्रकार पुरुषके मुखकमलविना स्त्रियोंको सुख नहीं होता ॥ ५४ ॥ क्योंकि दोनोंका सुसंयोग होनेसे ही सुखकी परा काष्ठा होती है, और वियोग होनेसे ही क्लेश होता है. यद्यपि तुम मनोहर सब आभरणोंसे विभूषित

हो ॥ ५५ ॥ किन्तु तुममें चतुरता दिखाई नहीं देती. क्योंकि तुम मेरा भजन नहीं करतीं, तुमको भोगपरित्याग करनेका क्या किसीने उपदेश दिया है? ॥ ५६ ॥ हे मधुरभाषिणी ! यदि ऐसा हुआ हो, तो किसी शत्रुने तुमको इस विषयमें छला है इसमें संदेह नहीं. हे कान्ते ! तुम यह आग्रह छोड़कर सुशोभन ॥ ५७ ॥ विवाह कार्य संपादन करो तो हम दोनोंको ही परम सुख लाभ होगा. विशेषकर विष्णु कमलाके संग, ब्रह्मा सावित्रीके संग ॥ ५८ ॥ रुद्र पार्वतीके संग और इन्द्र शचीके संग जिसप्रकार शोभा पाते हैं मैं भी तुम्हारे संग इसीप्रकार शोभाको प्राप्त हूंगा, इसमें संदेह नहीं. पतिहीन कौन स्त्री निरन्तर सुख लाभ करसक्ती है?॥ ५९ ॥ इसमेंभी फिर तुम अतिउत्तम पति पाकर स्वीकार नहीं करती. हे कान्ते! मन्दबुद्धि काम इस समय कहां गयाहै?वह उन्माद कर ॥ ६० ॥ सुकोमल पांच बाणोंसे तुमको अत्यन्त पीड़ित क्यों नहीं

चातुर्यंत्वयिकिंनास्तियतोमांनभजस्यहो ॥ तवोपदिष्टंकेनेदंभोगानांपरिवर्जनम् ॥ ५६ ॥ वंचिताऽसिप्रियालापेवैरिणाकेनचित्त्विह ॥ मुंचाग्रहमिमं कांतेकुरुकार्यंसुशोभनम् ॥ ५७ ॥ सुखंतवममाऽपिस्याद्विवाहेविहितेकिल ॥ विष्णुर्लक्ष्म्यासहाभातिसावित्र्याचसहात्मभूः ॥ ५८ ॥ रुद्रो भातिचपार्वत्याशच्याशतमखस्तथा ॥ कानारीपतिहीनाचसुखंप्राप्नोतिशाश्वतम् ॥ ५९ ॥ येनत्वमसितापांगिनकरोषिपतिंशुभम् ॥ कामः क्वाद्यगतःकांतियस्त्वांबाणैःसुकोमलैः ॥ ६० ॥ मादनैःपंचभिःकामंनताडयतिमंदधीः ॥ मन्येऽहमिवकामोऽपिदयावांस्त्वयिसुंदरि ॥ ६१ ॥ अब लेतिचमन्वानोनप्रेरयतिमार्गणान् ॥ मनोभवस्यवैरंवाकिमप्यस्तिमयासह ॥ ६२ ॥ तेनचत्वय्यरालाक्षिनमुंचतिशिलीमुखान् ॥ अथवामेऽहितैर्देवैर्वा रितोऽसौझषध्वजः ॥६३॥ सुखविध्वंसिभिस्तेनत्वयिनप्रहरत्यपि ॥ त्यक्त्वामांमृगशावाक्षिपश्चात्तापंकरिष्यसि ॥६४॥ मंदोदरीवतन्वंगिपरित्यज्यशुभं नृपम् ॥ अनुकूलंपतिंपश्चात्साचकारशठंपतिम् ॥६५॥ कामार्ताचयदाजातामोहेनव्याकुलांतरा ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेदेवीचरित्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यदेवीपप्रच्छदानवम् ॥ कासामंदोदरीनारीकोऽसौत्यक्तोनृपस्तया ॥ १ ॥

करता? हे सुंदरी ! बोध होता है मदन मेरी समान तुम्हारे प्रति सदय हो॥ ६१ ॥ और तुमको अबला जानकर ही बाणप्रयोग नहीं करता. अथवा हे कुटिलनयने ! जान पडता है मनोभवकी मेरे संग कुछ शत्रुता है ॥ ६२ ॥ इससे ही तुमपर बाण नहीं छोड़ता वा मेरे सुखघातक वैरी देवताओंने कामको निवारण किया है ॥ ६३ ॥ कारण कि यह देवता मेरा सुखविध्वंस करनेवाले हैं, इसीकारण कामने तुमपर प्रहार नहीं किया. हे मृगलोचनी! तुम मुझे छोड़कर पश्चात्ताप करोगी॥ ६४ ॥ हे तन्वंगी! जैसे मन्दोदरीने अनुकूल और सुन्दर राजाको त्याग एक शठको अपना पति किया ॥ ६५ ॥ और मोहसे व्याकुल हो कामार्त हुई यही दशा तुम्हारी होगी ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! फिर देवीने इस प्रकार महिषासुरके वचन सुन

कर उससे पूँछा—वह मन्दोदरी स्त्री कौन थी ? और उसने जिसको पहिले छोड़ दियाथा, वह राजा कौन था? ॥ १ ॥ और फिर जिस शठ नृपतिको पति बनाया था वह नर पति कौन था? और उस वनिताने पीछे किसप्रकार दुःखानुभव किया ? यह सब मुझसे विस्तारसहित वर्णन कर ॥ २ ॥ देवीकी यह बात सुनकर महिषासुर कहने लगा हे देवी ! इस पृथ्वीमंडलमें सिंहलदेश अति प्रसिद्ध स्थान है. वह स्थान अनेक तरुराजिसे शोभायमान और धनधान्यसमृद्धिशाली था ॥ ३ ॥ चन्द्रसेन नामक एक धर्मपरायण राजा उस स्थानमें वास करता. वह शान्त सत्यवादी वीरवर दयालु धैर्यशाली क्षमावान् नीतिशास्त्रमें सागरकी समान ज्ञानसंपन्न शास्त्रवित् सर्वधर्मज्ञ और धनुर्वेदमें अत्यन्त निपुण था, वह प्रजापालनमें तत्पर होकर न्यायानुसार दंडविधान करता ॥ ४ ॥ ५ ॥ मनोहर रूपसौन्दर्यशालिनी गुणवती नाम उसके एक नितम्बिनी भार्या

शठःकोवानृपःपश्चात्तन्मेब्रूहिकथानकम् ॥ विस्तरेणयथाप्राप्तंदुःखंवनितयापुनः ॥ २ ॥ महिषउवाच ॥ सिंहलोनामदेशोऽस्तिविख्यातःपृथिवीतले ॥ वनपादपसंयुक्तोधनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥ चंद्रसेनाऽभिधस्तत्रराजाधर्मपरायणः ॥ न्यायदंडधरःशांतःप्रजापालनतत्परः ॥ ४ ॥ सत्यवादीमृदुःशूर स्तितिक्षुर्नीतिसागरः ॥ शास्त्रवित्सर्वधर्मज्ञोधनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः ॥ ५ ॥ तस्यभार्यावरारोहासुंदरीशुभगाशुभा ॥ सदाचाराऽतिसुमुखीपतिभक्तिपरायणा ॥ ६ ॥ नाम्नागुणवतीकांतासर्वलक्षणसंयुता ॥ सुषुवेप्रथमेगर्भेपुत्रींसाचातिसुंदरीम् ॥ ७ ॥ पिताचातीवसंतुष्टःपुत्रींप्राप्यमनोरमाम् ॥ मंदोदरीतिनामास्याःपिताचक्रेमुदान्वितः ॥ ८ ॥ इंदोःकलेवचात्यर्थंववृधेसादिनेदिने ॥ दशवर्षायदाजाताकन्याचातिमनोहरा ॥ ९ ॥ वरार्थंनृपतिश्चिंतामवापचादिने दिने ॥ मद्रदेशाधिपःशूरःसुधन्वानामपार्थिवः ॥ १० ॥ तस्यपुत्रोऽतिमेधावीकंबुग्रीवोऽतिविश्रुतः॥ब्राह्मणैःकथितोराज्ञेसयुक्तोऽस्यावरःशुभः ॥ ११ ॥

थी, वह पतिकी भक्तिमें परायण होकर नियत सदाचारमें रत रहती ॥ ६ ॥ उसका नाम गुणवती. वह सब लक्षणोंसे सम्पन्न थी. उस सब सुलक्षणयुक्त कान्ताने प्रथम गर्भसेही एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न करी ॥ ७ ॥ पिता चन्द्रसेन भूपति कन्याको पाकर अतिसन्तुष्ट हुए और परमानन्दसे उस कन्याका मन्दोदरी नाम रक्खा ॥ ८ ॥ वह कन्या चंद्रमाकी कलाके समान दिन दिन बढ़ने लगी जब कन्याकी अवस्था दशवर्षकी पूर्ण हुई तब वह कन्या अत्यन्त मनोहारिणी होगई ॥ ९ ॥ नरपति कन्याको देखकर उसके वरके लिये प्रतिदिन चिन्ता करने लगे. इसी समयमें ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि, मद्रदेशाधिपति महावीर सुधन्वा राजाका ॥ १० ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् कम्बुग्रीव नामक

एक पुत्र है, यह कुमार सर्वराजलक्षणोंसे विभूषित और सर्वविद्याओंका पारदर्शी है अतएव वह राजपुत्रही इस कन्याका उपयुक्त और सुशोभन वर होगा. तब राजाने अपनी प्यारी गुणवतीसे पूँछा॥ ११ ॥ १२ ॥ कि मैं यह वरवर्णिनी कन्या कम्बुग्रीवको देना चाहताहूं ? राजमहिषीने पतिके वे वचन सुनकर अपनी कन्या मन्दोदरीसे पूँछा कि ॥ १३ ॥ तुम्हारे पिता मद्रराजपुत्र कम्बुग्रीवके संग तुम्हारा विवाह करनेकी इच्छा करते हैं. मन्दोदरीने जननीका यह वचन सुनकर उससे कहा ॥ १४ ॥ हे जननि ! विवाहकी मेरी इच्छा नहीं है मैं पतिका ग्रहण नहीं करूंगी मैं सम्यक् प्रकारसे कौमारव्रत अवलम्बन करके काल व्यतीत करूंगी॥ १५॥ हे मातः! इस संसार सागरमें पराधीनताकी अपेक्षा अतिदुःखकर विषय दूसरा नहीं है. इसकारण मैं स्वाधीनभावसे सदा कठोर तपस्या करनेकी इच्छा करती हूं ॥ १६ ॥ शास्त्रका

सर्वलक्षणसंपन्नःसर्वविद्यार्थपारगः ॥ राज्ञापृष्टातदाराज्ञीनाम्नागुणवतीप्रिया ॥ १२ ॥ कंबुग्रीवायकन्यांस्वांदास्यामिवरवर्णिनीम् ॥ सातुप त्युर्वचःश्रुत्वापुत्रींपप्रच्छसादरम् ॥ १३ ॥ विवाहंतेपिताकर्तुंकंबुग्रीवेणवांछति ॥ तच्छ्रुत्वामातरंप्राहवाक्यंमंदोदरीतदा ॥ १४ ॥ नाऽहंपतिंकरिष्यामिनेच्छामेऽस्तिपरिग्रहे ॥ कौमारंव्रतमास्थायकालंनेष्यामिसर्वथा ॥ १५ ॥ स्वातंत्र्येणचरिष्यामितपस्तीव्रंसदैवहि ॥ पारतंत्र्यंपरंदुःखंमातःसंसारसागरे ॥ १६ ॥ स्वातंत्र्यान्मोक्षमित्याहुःपंडिताःशास्त्रकोविदाः ॥ तस्मान्मुक्ताभविष्यामिपत्यामेनप्रयोजनम् ॥ १७॥ विवाहेवर्तमानेतुपावकस्य चसन्निधौ ॥ वक्तव्यंवचनंसम्यक्त्वदधीनाऽस्मिसर्वदा ॥ १८ ॥ श्वश्रूदेवरवर्गाणांदासीत्वंश्वशुरालये ॥ पतिचित्ताऽनुवर्तित्वंदुःखाद्दुःखतरंस्मृतम् ॥ ॥ १९ ॥ कदाचित्पतिरन्यांवाकामिनींचभजेद्यदि ॥ तदामहत्तरंदुःखंसपत्नीसंभवंभवेत् ॥ २० ॥ तदेर्ष्याजायतेपत्यौक्लेशश्चाऽपिभवेदथ ॥ संसारेक्वसुखंमातर्नारीणांचविशेषतः ॥ २१ ॥ स्वभावात्परतंत्राणांसंसारेस्वप्नधर्मिणि ॥ श्रुतंमयापुरामातरुत्तानचरणात्मजः ॥ २२ ॥

तत्व जाननेवाले पंडित कहते हैं कि, स्वतंत्रता अवलम्बन करनेसेही मोक्ष होती है. अतएव मैं उससे मुक्त हूंगी, पतिसे मेरा प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ विवाहकालके समय अग्निके समीप कहना होता है कि, मैं सब प्रकारसे सदा तुम्हारे अधीन रहूंगी ॥ १८ ॥ और देखो. श्वशुरके घर जाय श्वशुर और देवरकी दासी होकर समय बिताना होता है. विशेष कर पतिके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होकर उसके चित्तके अनुसार कार्य करना पड़ता है, यह दुःखसे भी दुःखतर है ॥ १९ ॥ और यदि किसी समय पति दूसरी किसी स्त्रीसे विवाह करे तो उस समय सपत्नीजनित महादुःख उपस्थित होता है ॥ २० ॥ हे माता ! तब पतिसे ईर्षा होती है. इस कारण अनेक क्लेश भोगने पड़ते हैं अतएव स्वप्नकी समान इस संसारमें क्या सुख है ? ॥ २१ ॥ विशेषकर इसमें स्वाभाविक पराधीन स्त्रियोंको तो कोई भी सुख नहीं है.

हे जननि! मैं ने सुना है कि पूर्वकालमें उत्तानपादके पुत्र ॥ २२ ॥ धर्मज्ञ उत्तम ध्रुवसे छोटे भी राजा हुए थे और उत्तानपाद राजाने पतिभक्तिपरायण धर्मरूपिणी साध्वी ॥ २३ ॥ प्रियतमा कान्ताको विना अपराधही वनमें छोड़ दिया था स्वामीके विद्यमान रहनेपरभी स्त्रियोंको अनेक दुःख अनुभव करने पड़ते हैं ॥ २४ ॥ और यदि कालवश पति परलोकगामी हो तो स्त्रियें अनन्त दुःख पाती हैं क्योंकि वैधव्यदशा स्त्रियोंके एक मात्र दुःख शोक और संतापका कारण है ॥ २५ ॥ और पतिके विदेश चले जानेपर भी स्त्रियोंका देह कामाग्निमें दग्ध होता है इससे उनके घरमें अधिक दुःख होता है फिर पतिसंगका क्या सुख है? ॥ २६ ॥ इसकारण क्या जीवित अवस्था क्या मृतअवस्था किसी समय भी पतिलाभमें सुख नहीं है. अतएव मेरे विचारसे पति स्वीकार करना कभी उचित नहीं है. तब माताने कन्याकी यह बात सुनकर पतिसे कहा ॥ २७ ॥ कि मन्दोदरी कौमारव्रत अवलम्बन करेगी उसको विवाह करनेकी इच्छा नहीं है वह पतिग्रहण करनेमें अनेक

उत्तमःसर्वधर्मज्ञोध्रुवादवरजोनृपः ॥ पत्नींधर्मपरांसाध्वींपतिभक्तिपरायणाम् ॥ २३ ॥ अपराधंविनाकांतांत्यक्तवान्विपिनेप्रियाम् ॥ एवंविधानिदुःखानि विद्यमानेतुभर्तरि ॥२४॥ कालयोगान्मृतेतस्मिन्नारीस्याद्दुःखभाजनम् ॥ वैधव्यंपरमंदुःखंशोकसंतापकारकम् ॥ २५ ॥ परोषितपतित्वेऽपिदुःखंस्याद धिकंगृहे ॥ मदनाऽग्निविदग्धायाःकिंसुखंपतिसंगजम् ॥ २६ ॥ तस्मात्पतिर्नकर्तव्यःसर्वथेतिमतिर्मम ॥ एवंप्रोक्तातदामातापतिंप्राहनृपात्मजा ॥२७॥ नचवांछतिभर्तारंकौमारव्रतधारिणी॥व्रतजाप्यपरानित्यंसंसाराद्विमुखीसदा॥२८॥नकांक्षतिपतिंकर्तुंबहुदोषविचक्षणा॥भार्यायाभाषितंश्रुत्वातथैवसंस्थि तोनृपः ॥ २९ ॥ विवाहोनकृतःपुत्र्याज्ञात्वाभावविवर्जिताम् ॥ वर्तमानागृहेष्वेवंपित्रामात्राचरक्षिता ॥ ३० ॥ यौवनस्यांकुराजातानारीणांकामदीप काः ॥ तथाऽपिसावयस्याभिःप्रेरिताऽपिपुनःपुनः ॥ ३१ ॥ चकमेनपतिंकर्तुंज्ञानार्थपदभाषिणी ॥ एकदोद्यानदेशेसाविहर्तुंबहुपादपे ॥ ३२ ॥ जगा मसुमुखीप्रेम्णासैरंध्रीगणसेविता ॥ रेमेकृशोदरीतत्रापश्यत्कुसुमिताल्लताः ॥ ३३ ॥

दोष दिखलाकर संसारसे विमुख हो व्रत और जपका अनुष्ठान करती हुई ॥ २८ ॥ अकेली काल बितावेगी, वह पतिग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करती. राजाने भार्याकी यह बात सुन जान लिया कि, कन्याका विवाहमें अनुराग नहीं है.तब उसका विवाह न करके उसी अवस्थामें काल व्यतीत करने लगे ॥ २९ ॥ इसी कारण राजाने उसका पतिमें भाव न देख विवाह न किया। इसप्रकार कन्या पितामातासे रक्षित होकर घरमें वास करने लगी ॥ ३० ॥ इसी समयमें उस राजकन्यामें स्त्रियोंका कामोद्दीपक यौवनाङ्कुरका उदय हुआ राजकन्याकी सखियोंने पतिग्रहण करनेके लिये यद्यपि वारंवार प्रार्थना करी ॥ ३१ ॥ किन्तु तोभी उस बालाने अनेकप्रकारके ज्ञानयुक्त वचन कहकर पतिग्रहणकी अभिलाषा प्रकाश नहीं की. एकसमय वह सुमुखी अनेक पादपोंसे शोभित उद्यानमें॥ ३२ ॥ विहार करनेको गई, वह

कृशोदरी वहां वयस्या सैरंध्री सखियोंके सहित अनेक प्रकारके पुष्प मनोहर पुष्पित लताओंको देखतीहुई क्रीड़ा करनेलगी ॥ ३३ इसी अवसरमें जब कि वह सखियोंके सहित फूल तोड़ रही थी. कोशलाधिपति महावीर ॥ ३४ ॥ वीरसेननामक अतिप्रसिद्ध राजा दैवात् उसी मार्गसे आये. एक मात्र वह अकेले कुछेक सेवकोंके सहित रथपर चढ़ उस उद्यानके निकट उपस्थित हुए ॥ ३५ ॥ पीछे धीरे धीरे उनकी सेना आती थी, तब उसकी वयस्या सखियोंने दूरसे उन राजाको देखकर ॥ ३६ ॥ मन्दोदरीसे कहा हे सखी ! दूसरे कामदेवकी समान रूपवान् महाबाहु एक पुरुष रथपर चढाहुआ मार्गमें आ रहा है ॥ ३७ ॥ मुझको जान पड़ता है कि, कोई राजा हमारे भाग्यसे इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं. इसप्रकार कहतेही कोशलपति वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥ वह नरपति असितापाङ्गी

पुष्पाणिचिन्वतीरम्यावयस्याभिःसमावृता ॥ कोसलाधिपतिस्तत्रमार्गेदैववशात्तदा ॥ ३४ ॥ आजगाममहावीरोवीरसेनोऽतिविश्रुतः ॥ एकाकीरथमारूढःकातिचित्सेवकैर्वृतः ॥३५॥ सैन्यंचपृष्ठतस्तस्यसमायातिशनैःशनैः ॥ दृष्टस्तस्यावयस्यातुदूरतःपार्थिवस्तदा ॥ ३६ ॥ मंदोदर्यैतथाप्रोक्तंसमायातिनरःपथि ॥ रथारूढोमहाबाहूरूपवान्मदनोऽपरः ॥ ३७ ॥ मन्येऽहंनृपतिःकश्चित्प्राप्तोभाग्यवशादिह ॥ एवंब्रुवत्यांतत्राऽसौकोसलेंद्रःसमागतः ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वातामसितापांगींविस्मयंप्रापभूपतिः ॥ उत्तीर्यसरथात्तूर्णंपप्रच्छपरिचारिकाम् ॥ ३९ ॥ केयंबालाविशालाक्षीकस्यपुत्रीवदाऽऽशुमे ॥ एवंपृष्टातुसैरंध्रीतमुवाचशुचिस्मिता ॥ ४० ॥ प्रथमंब्रूहिमेवीरपृच्छामित्वांसुलोचन ॥ कोऽसित्वंकिमिहाऽऽयातःकिंकार्यंवदसांप्रतम् ॥ ४१ ॥ इतिपृष्टस्तुसैरंध्र्यातामुवाचमहीपतिः ॥ कोसलोनामदेशोऽस्तिपृथिव्यांपरमाद्भुतः ॥ ४२ ॥ तस्यपालयिताचाहंवीरसेनाऽभिधःप्रिये ॥ वाहिनीपृष्ठतःकामंसमायातिचतुर्विधा ॥ ४३ ॥ मार्गभ्रमादिहप्राप्तंविद्धिमांकोसलाधिपम् ॥ सरंध्र्युवाच ॥ चंद्रसेनसुताराजन्नाम्नामंदोदरीकिल ॥ ४४ ॥

राजनन्दिनीको देखकर विस्मित हुए और तत्काल रथसे उतर परिचारिका (दासी)से उन्होंने पूँछा ॥ ३९ ॥ हे भद्रे ! यह विशालनेत्रोंवाली बाला कौन है ? और किसकी कन्या है ? यह तुम मुझसे शीघ्र कहो. शुचिस्मिता सैरन्ध्रीसे इसप्रकार पूँछनेपर उसने कहा ॥ ४० ॥ हे सुलोचन वीर ! प्रथम हम आपसे पूँछतीं हैं कि, आप कौन हैं ? किसलिये आप आये हैं ? और आपका प्रयोजन क्या है ? सो कहिये ॥ ४१ ॥ सैरन्ध्रीके यह पूँछनेपर महीपतिने उससे कहा पृथ्वीमें कोशल नामक अतिसुन्दर परमविस्मयकर एक देश है ॥ ४२ ॥ मैं उस देशका अधिपति हूं, मेरा नाम वीरसेन है. मेरी चतुर्विध सेना इच्छानुसार पीछे आती है ॥ ४३ ॥ मैं मार्ग भूलकर यहां आगया हूँ, मुझको कोशलदेशका अधिपति जानना चाहिये. सैरन्ध्री बोली—हे राजन् ! यह कमलनयना चन्द्रसेन राजाकी कन्या है और इसका नाम

मन्दोदरी है ॥ ४४ ॥ यह क्रीडा करनेकी इच्छासे इस उद्यानमें आई है. राजाने सैरन्ध्रीका यह वचन सुनकर उससे कहा ॥ ४५ ॥ हे सैरन्ध्री ! मैं तुमको चतुर जानता हूं अतएव मैं जो कहता हूं वह तुम राजपुत्रीको भलीभाँति समझा दो. हे चारुलोचने ! मैं ककुत्स्थवंशोत्पन्न राजा हूं ॥ ४६ ॥ हे कामिनी ! गांधर्व विवाहकी विधिसे मुझको पतित्वमें वरण करो. हे नितम्बिनी ! मेरे दूसरी कोई भार्या नहीं है ॥ ४७ ॥ और तुम रूपवती कामिनी सद्वंशोत्पन्न और वयसानुसार यौवनको प्राप्त हो इसकारण मैं तुमको लाभ करनेकी इच्छा करता हूं, वा तुम्हारे पिता मुझको विधिपूर्वक देभी सक्ते हैं॥ ४८ ॥ तो मैं तुम्हारा अनुकूल पति हूंगा, इसमें सन्देह नहीं. महिषने कहा हे देवी ! उनकी यह बात सुनकर कामशास्त्रमें पण्डित वह सैरन्ध्री ॥ ४९ ॥ हँसते हँसते मधुर वचन द्वारा राजकन्यासे कहने लगी. हे मन्दोदरी ! मनोहर

उद्यानेरंतुकामेयंप्राप्ताकमललोचना ॥ श्रुत्वातद्भाषितंराजाप्रत्युवाचप्रसाधिकाम् ॥ ४५ ॥ सैरंध्रिचतुराऽसित्वंराजपुत्रींप्रबोधय ॥ ककुत्स्थवंशजश्चाऽहंराजाऽस्मिचारुलोचने ॥ ४६ ॥ गांधर्वेणविवाहेनपतिंमांकुरुकामिनि ॥ नमेभार्याऽस्तिसुश्रोणिवयसोद्भुतयौवनाम् ॥ ४७ ॥ वांछामिरूपसंपन्नांसुकुलां कामिनींकिल ॥ अथवातेपितामह्यंविधिनादातुमर्हति ॥ ४८ ॥ अनुकूलपतिश्चाऽहंभविष्यामिनसंशयः ॥ महिषउवाच ॥ इत्याऽऽकर्ण्यवचस्तस्यसैरंध्रीप्राहतांतदा ॥ ४९ ॥ प्रहस्यमधुरंवाक्यंकामशास्त्रविशारदा ॥ मंदोदरिनृपःप्राप्तःसूर्यवंशसमुद्भवः ॥ ५० ॥ रूपवान्बलवान्कांतोवयसात्वत्समःपुनः ॥ प्रीतिमान्नृपतिर्जातस्त्वयिसुंदरिसर्वथा ॥ ५१ ॥ पिताप्रितेविशालाक्षिपरितप्यतिसर्वथा ॥ विवाहकालंतेज्ञात्वात्वांचवैराग्यसंयुताम् ॥ ५२ ॥ इत्याहाऽस्मान्सनृपतिर्विनिःश्वस्यपुनःपुनः ॥ पुत्रींप्रबोधयंत्वेतांसैरंध्र्यःसेवनेरताः ॥ ५३ ॥ वक्तुंशक्तावयंनत्वांहठधर्मरतांपुनः ॥ भर्तुःशुश्रूषणंस्त्रीणांपरोधर्मोऽब्रवीन्मनुः ॥ ५४ ॥ भर्तारंसेवमानावैनारीस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ तस्मात्कुरुविशालाक्षिविवाहंविधिपूर्वकम् ॥ ५५ ॥

कान्तियुक्त सूर्यवंशीय एक नरपति आये हैं ॥ ५० ॥ वे रूपवान्, बलवान् और तुम्हारी समान वयस्क हैं. हे सुन्दरी ! वह नृपति तुम्हारे प्रति सम्यक्प्रकार प्रीतिपरायण हुए हैं ॥ ५१ ॥ हे विशाललोचने ! तुम्हारा विवाह काल उपस्थित है किन्तु तो भी तुमने विवाह नहीं किया, बरन इस विषयमें तुमको बहुत वैराग्य है. तुम्हारे पिता यह जानकर निरन्तर दुःख करते हैं ॥ ५२ ॥ देखो तुम्हारे पिताने वारंवार श्वास छोड़कर हमसे कहा है हे सैरन्ध्रियो ! तुम इसकी सेवामें तत्पर रहकर इसको समझाओ ॥ ५३ ॥ किन्तु तुम हठधर्ममें निरत हो रही हो इसकारण हम तुमसे कुछ नहीं कहसक्तीं, मुनियोंने कहा है कि, स्वामीकी शुश्रूषा करनाही स्त्रियोंका परमधर्म है ॥ ५४ ॥ हे विशालनयने ! स्वामीकी सेवा करनेसे ही स्त्रियें स्वर्गको प्राप्त करतीं हैं इससे तुम विधिपूर्वक

विवाह करो ॥ ५५ ॥ मन्दोदरी बोली, मैं विवाह न करके अद्भुत तपस्याका अनुष्ठान करूंगी. हे बाले ! तुम नरपतिसे निवारण करके कह दो कि, वह निर्लज्ज होकर क्यों मुझको देखते हैं ॥ ५६ ॥ सैरन्ध्री बोली—हे देवि ! काम अत्यन्त दुर्जय है और कालभी दुरतिक्रमणीय है, अतएव हे सुन्दरी! मेरे वचनको पथ्यस्व रूप जानकर प्रतिपालन करो ॥ ५७ ॥ और यदि इसके अन्यथा करोगी तो निःसंदेह तुमको विपत् उपस्थित होगी । मन्दोदरीने सैरन्ध्रीके इसप्रकार वचन सुनकर उससे कहा ॥ ५८ ॥ हे परिचारिके ! दैवयोगसे जो होनहार है वह अवश्य होगा इसमें संशय नहीं. किन्तु इस समय मैं किसीप्रकार विवाह नहीं करूंगी ॥ ५९ ॥ महिषने कहा—सैरन्ध्रीने उसका इसप्रकार निश्चय जानकर राजासे कहा हे राजन् ! यह कामिनी सत्पति प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करती,

मंदोदर्युवाच ॥ नाऽहंपतिंकरिष्यामिचरिष्येतपमद्भुतम् ॥ निवारयनृपंबालेकिंमांपश्यतिनिस्त्रपः ॥५६॥ सैरंध्र्युवाच ॥ दुर्जयोदेविकामोऽसौकालस्तुदुरतिक्रमः ॥ तस्मान्मेवचनंपथ्यंकर्तुमर्हसिसुंदरि ॥५७॥ अन्यथाव्यसनंनूनमापतेदितिनिश्चयः ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वाकन्योवाचाथतांसखीम् ॥ ५८ ॥ यद्यद्भवेत्तद्भवतुदैवयोगादसंशयम् ॥ नविवाहंकरिष्येऽहंसर्वथापरिचारिके ॥५९॥ महिषउवाच ॥ इतितस्यास्तुनिर्बंधंज्ञात्वाप्राहनृपंपुनः॥ गच्छराजन्यथाकामंनेयमिच्छतिसत्पतिम् ॥ ६० ॥ नृपस्तुतद्वचःश्रुत्वानिर्गतःसहसेनया ॥ कोशलान्विमनाभूत्वाकामिनींप्रतिनिःस्पृहः ॥ ६१ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥ ॥ छ ॥ महिषउवाच ॥ तस्यास्तुभगिनीकन्यानाम्नाचेंदुमतीशुभा॥ विवाहयोग्यासंजातासुरूपाऽवरजायदा ॥ १ ॥ तस्याविवाहःसंवृत्तःसंजातश्चस्वयंवरः ॥ राजानोबहुदेशीयाःसंगतास्तत्रमंडपे ॥ २ ॥ तयावृतोनृपःकश्चिद्बलवान्रूपसंयुतः ॥ कुलशीलसमायुक्तःसर्वलक्षणसंयुतः ॥ ३ ॥ तदाकामातुराजाताविटंवीक्ष्यनृपंतुसा ॥ चकमेदैवयोगात्तुशठंचातुर्यभूषितम् ॥ ४ ॥

आपकी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाइये ॥ ६० ॥ राजाने उसकी यह बात सुन कामिनीसे मोह छोड़दिया और विमन हो सेनासहित कोशल देशकी ओर प्रस्थान किया ॥ ६१ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥ महिषने कहा हे देवि! उस मन्दोदरीकी इन्दुमती नामक सुलक्षणसंपन्न अविवाहिता एक बहन थी कालक्रमसे वह विवाहके योग्य हुई ॥ १ ॥ तब उसके विवाहार्थ स्वयंवरसभा रची गई. अनन्तर उस सभामण्डपमें जब अनेक देशोंके राजा आये ॥ २ ॥ तब उस कन्याने उनमें कुलशीलसंपन्न सर्वसुलक्षणसंयुक्त बलशाली और रूपवान् एक नरपतिको वरण किया ॥ ३ ॥ उस समय मन्दोदरीने भी दैवके अनिर्वचनीय प्रभावसे

धूर्त, चातुर्यमय और शठ मद्रपतिको देख कामातुर हो, उससेही विवाह करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ तब उस कृशाङ्गीने अपने पितासे कहा हे पितः ! इस सभामें मद्रराजको देखकर इनसे विवाह करनेको मेरी इच्छा हुई है. अतएव आप इस समय मेरा विवाहकार्य कीजिये ॥ ५ ॥ अपनी कन्याके एकान्तमें इसप्रकार कहनेपर राजा चंद्रसेन यह सुन अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो कन्याके विवाहमें तत्पर हुए ॥ ६ ॥ उन्होंने उस राजाको घर बुलाय विवाहकार्यके नियमानुसार उसको अनेक धन यौतुकके सहित अपनी मन्दोदरी कन्या प्रदान करी ॥ ७ ॥ मद्रपति चारुदेष्ण उस सुन्दरीको पाय प्रफुल्लचित्तसे स्त्रीके सहित अपने घर गया॥ ८॥ उस नृपवरने कामिनीके संग बहुत कालतक क्रीडा की फिर किसी समय वह दासपत्नियोंसे निर्जनमें क्रीडामें आसक्त हुआ ॥ ९ ॥ तब एक परिचारिकाने यह वृत्तान्त जान मन्दोदरीसे कहा. मन्दोदरीने पतिकी यह अवस्था देख कुपित हो कुछेक हास्यवदनसे तिरस्कार किया ॥ १० ॥ अनन्तर एक समय राजा किसी सामान्यरूपवती रमणीके सहित

पितरंप्राहतन्वंगीविवाहंकुरुमेपितः ॥ इच्छामेऽद्यसमुद्भूताद्दष्ट्वामद्राधिपंत्विह ॥ ५ ॥ चंद्रसेनोऽपितच्छ्रुत्वापुत्र्यायद्भाषितंरहः ॥ प्रसन्नेनैवमनसातत्कार्ये तत्परोऽभवत् ॥ ६ ॥ तमाहूयनृपंगेहेविवाहविधिनाददौ ॥ कन्यांमंदोदरींतस्मैपारिबर्हंतथाबहु ॥ ७ ॥ चारुदेष्णोपितांप्राप्यसुंदरींमुदितोऽभवत् ॥ जगामस्वगृहंतुष्टोराजाऽपिसहितःस्त्रिया ॥ ८ ॥ रेमेनृपतिशार्दूलःकामिन्याबहुवासरान् ॥ कदाचिद्दासपत्न्यासरममाणोरहःकिल ॥ ९ ॥ सैरंध्र्याकथितं तस्यैतयादृष्टःपतिस्तथा ॥ उपालंभंददौतस्मैस्मितपूर्वंरुषान्विता ॥ १० ॥ कदाचिदपिसामान्यांरहोरूपवतींनृपः ॥ क्रीडयल्लाँलयन्दृष्टःखेदंप्रापतदै वसा ॥ ११ ॥ नज्ञातोऽयंशठःपूर्वंयदादृष्टःस्वयंवरे ॥ किंकृतंतुमयामोहाद्वंचिताऽहंनृपेणह ॥ १२ ॥ किंकरोम्यद्यसंतापंनिर्लज्जेनिर्घृणेशठे ॥ काप्रीतिरीदृशेपत्यौधिगद्यममजीवितम् ॥ १३ ॥ अद्यप्रभृतिसंसारेसुखंत्यक्तंमयाखलु ॥ पतिसंभोगजंसर्वंसंतोषोऽद्यमयाकृतः ॥ १४ ॥ अकर्तव्यंकृतंकार्यं तज्जातंदुःखदंमम ॥ देहत्यागःक्रियतेचेद्धत्याऽतीवदुरत्यया ॥ १५ ॥

पुनर्वार इच्छानुसार क्रीड़ामें रत होकर आमोद कर रहे थे. इसी समय मन्दोदरीने यह देखा और अत्यन्त दुःखित होकर मनमें विचारा॥ ११ ॥ प्रथम जब स्वयंवरमें इसको देखा तब इसको शठ नहीं जानसकी, इस राजाने मुझको छला है हाय ! मोहके वश होकर मैंने क्या अन्यायकार्य किया है ॥ १२ ॥ यह राजा शठ और इसको किसी प्रकारकी घृणा और लज्जा नहीं है. अतएव इसके लिये अब सन्ताप करना वृथा है. ऐसे पतिसे किसप्रकार प्रीति हो सक्ती है ? इस कारण अब मेरे जीवनधारण करनेको धिक्कार है ॥ १३ ॥ अब मैंने पतिसम्भोगजनित संसारका सबही सुख त्यागकर केवलमात्र संतोषअवलम्बन किया ॥ १४ ॥ मैंने अकर्त्तव्य कार्य किया है इस कारण वह अब मुझको अति दुःखदायक हुआ है, यदि इस समय मैं देहत्याग करूं तो आत्महत्याका पाप मुझको कभी नहीं छोड़ेगा

अवश्यही उसका फल भोगना होगा ॥ १५ ॥ और यदि पिताके घर जाऊं तो वहां भी मुझको सुख नहीं होगा क्योंकि सखियें मेरी ऐसी अवस्था देखकर दिनरात हँसी करेंगी इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ अतएव कामसुखपरित्याग कर वैराग्य अवलम्बनपूर्वक कालकी कुटिलतासे इसी स्थानमें वास करना मुझको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ १७ ॥ महिषने कहा हे देवी ! वह स्त्री शोकसंतप्त हृदयसे इसप्रकार विलाप और परिताप करके स्वामीका शयनगृह और सांसारिक सुख एकही बार छोड़ वहां वास करनेलगी ॥ १८ ॥ अतएव हे कल्याणी ! मैं राजा हूं, तो भी तुम मेरा अनादर करती हो किन्तु अन्तमें तुमभी उस मन्दोदरीके समान कामार्त्त होकर अन्य किसी मूर्ख पुरुषका आश्रय करोगी इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ इस समय तुम स्त्रियोंके हितकर और पथ्यस्वरूप मेरे वचनोंका पालन करो नहीं तो

पितृगेहंव्रजाम्याशुतत्राऽपिनसुखंभवेत् ॥ हास्ययोग्यासखीनांतुभवेयंनाऽत्रसंशयः ॥ १६ ॥ तस्मादत्रैवसंवासोवैराग्ययुतयामया ॥ कर्तव्यःकालयोगे नत्यक्त्वाकामसुखंपुनः ॥ १७ ॥ महिषउवाच ॥ इतिसंचिंत्यसानारीदुःखशोकपरायणा ॥ स्थितापतिगृहंत्यक्त्वासुखंसंसारजंततः ॥१८॥ तस्मात्त्व मपिकल्याणिमामनादृत्यभूपतिम् ॥ अन्यंकापुरुषंमंदंकामार्तासंश्रयिष्यसि ॥ १९ ॥ वचनंकुरुमेतथ्यंनारीणांपरमंहितम् ॥ अकृत्वापरमंशोकंलप्स्य सेनाऽत्रसंशयः ॥२०॥ देव्युवाच ॥ मंदात्मन्गच्छपातालंयुद्धंवाकुरुसांप्रतम् ॥ हत्वात्वामसुरान्सर्वान्गमिष्यामियथासुखम् ॥२१॥ यदायदाहिसाधूनां दुःखंभवतिदानव ॥ तदातेषांचरक्षार्थंदेहंसंधारयाम्यहम् ॥ २२ ॥ अरूपायाश्चमेरूपमजन्मायाश्चजन्मच ॥ सुराणांरक्षणार्थायविद्धिदैत्यविनिश्चित म् ॥२३॥ सत्यंब्रवीमिजानीहिप्रार्थिताऽहंसुरैःकिल ॥ त्वद्वधार्थंहयारेत्वांहत्वास्थास्यामिनिश्चला ॥२४॥ तस्माद्युध्यस्ववागच्छपातालमसुरालयम् ॥ सर्वथात्वांहनिष्यामिसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २५ ॥

अन्तमें परमशोकको प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ महिषासुरके यह वचन सुनकर देवीने कहा हे मन्दात्मन् ! तू पातालमें भाग जा. वा इस समय युद्धमें प्रवृत्त हो. मैं तुझको और सब असुरोंको मारकर सुखपूर्वक चली जाऊंगी ॥ २१ ॥ जब जब साधुपुरुषोंको क्लेश उपस्थित होता है तब तब मैं उनकी रक्षाके लिये देहधारण करती हूं ॥ २२ ॥ हे दैत्यवर ! मेरा रूप और जन्म नहीं है. केवल देवताओंकी रक्षा करनेके लिये ही समय समयमें रूपधारण और जन्मग्रहण करती हूं. तुम यह बात निश्चय जानो ॥ २३ ॥ रे दुराचार महिष ! तेरे मारनेकेलिये देवताओंने मेरे निकट प्रार्थना की है. इसकारण मैं तेरा संहार करके स्थिर हूंगी. हे महिष ! मैंने जो कहा इस सबको सत्यही जान ॥ २४ ॥ अब तू असुरालय पातालमें भाग जा वा युद्ध कर मैं तुझको सबप्रकारसे विनाश करूंगी यह

मैं ने तुझसे सत्यही कहा है ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! देवीके इसप्रकार वचन सुन दानव धनुष ग्रहण कर युद्धकी अभिलाषासे उस रणभूमिमें अवस्थित हुआ ॥ २६ ॥ और कानोंपर्यन्त खैंचकर शिलाशाणित बाण शीघ्रतासहित छोड़ने लगा. तब देवी भी क्रोधित हो लोहफलके बाण छोड़कर उसके बाणोंको खंड खंड करने लगी॥ २७॥ तब उनका आपसमें इसप्रकार तुमुल संग्राम होने लगा कि परस्परजयकी इच्छा करनेवाले देवता और दानवोंको उससे भय उत्पन्न हुआ ॥ २८॥ घोर संग्राम होरहा था उसी समय दुर्द्धर संग्रामस्थलमें आया और देवीको कुपित करके विषलिप्त दारुण शिलीमुख बाणोंको उनके ऊपर छोड़ने लगा ॥ २९॥ तब भगवतीने कुपित होकर तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया. दुर्द्धर उस प्रहारसे प्राणहीन होकर पर्वतके शिखरकी समान पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ ३० ॥ तब महास्त्रवित् त्रिनेत्र उसको

व्यासउवाच ॥ इत्युक्तःसतयादेव्याधनुरादायदानवः ॥ युद्धकामःस्थितस्तत्रसंग्रामांगणभूमिषु॥२६॥ मुमोचतरसाबाणान्कर्णाऽऽकृष्टाञ्छिलाशितान्॥ देवीचिच्छेदतान्बाणैःक्रोधान्मुक्तैरयोमुखैः ॥ २७ ॥ तयोःपरस्परंयुद्धंसंबभूवभयप्रदम् ॥ देवानांदानवानांचपरस्परजयैषिणाम् ॥ २८ ॥ मध्येदुर्धरआगत्यमुमोचचशिलीमुखान् ॥ देवींप्रतिविषासक्तान्कोपयन्नतिदारुणान् ॥ २९ ॥ ततोभगवतीक्रुद्धातंजघानशितैःशरैः ॥ दुर्धरस्तुपपातोर्व्यांगतासुर्गिरिशृंगवत् ॥ ३० ॥ तंतथानिहतंदृष्ट्वात्रिनेत्रःपरमाऽस्त्रवित् ॥ आगत्यसप्तभिर्बाणैर्जघानपरमेश्वरीम् ॥ ३१ ॥ अनागतांस्तुचिच्छेददेवीतान्विशिखैःशरान् ॥ त्रिशूलेनत्रिनेत्रंतुजघानजगदंबिका ॥ ३२ ॥ अंधकस्त्वाजगामाशुहतंदृष्ट्वात्रिलोचनम् ॥ गदयालोहमय्याऽऽशुसिंहंविव्याधमस्तके ॥३३॥ सिंहस्तुनखघातेनतंहत्वाबलवत्तरम् ॥ चखादतरसामांसमंधकस्यरुषान्वितः ॥ ३४ ॥ तान्रणेनिहतान्वीक्ष्यदानवोविस्मयंगतः ॥ चिक्षेपतरसाबाणानतितीक्ष्णाञ्छिलाशितान् ॥ ३५ ॥

निहत देख समरमें उपस्थित हुआ और सात बाणोंसे परमेश्वरीको प्रहार किया ॥ ३१ ॥ उन बाणोंके आते आतेही देवीने विशिखद्वारा उनको काट डाला और फिर उन जगदम्बिकाने त्रिशूलसे उस त्रिनेत्रका विनाश किया ॥ ३२ ॥ इसप्रकार त्रिनेत्रके मरनेपर अन्धक यह देख शीघ्रतासहित समरमें आया और लोहमय गदा लेकर सिंहके मस्तकमें वेगसे उसको प्रहार किया ॥ ३३ ॥ तब सिंहभी नखाघातसे अत्यन्त बलशाली उस अंधकको निहत करके अति क्रोधित हो उसका मांसभक्षण करने लगा ॥ ३४ ॥ जब समरमें यह सब असुर मारे गये तब यह देख महिषासुर अतिआश्चर्यमें हो, शिलाशाणित बाणोंको वेगसहित छोड़ने लगा ॥ ३५ ॥

देवी अम्बिकाने उन बाणोंके न आतेही शिलीमुखसे द्विखंड करके गदाद्वारा दैत्यके वक्षःस्थलमें प्रहार किया ॥ ३६ ॥ वह देवताओंको पीडा देनेवाला दुरात्मा महिषासुर गदाघातसे मूर्च्छित हुआ, किन्तु कुछ कालोपरान्तही प्रहारकी वेदना सह फिर आय ॥ ३७ ॥ महाक्रोधसे गदाद्वारा सिंहके मस्तकमें प्रहार किया, तब सिंहने भी घातसखाने उस महाअसुरको विदीर्ण किया ॥ ३८ ॥ तब महिषासुरने भी पुरुषरूप छोड़ सिंहरूप धारण कर नखरद्वारा देवीके मदोत्कट सिंहको क्षत विक्षत किया ॥ ३९ ॥ महिषासुरको सिंहरूप धारण किये देख देवीने कुपित होकर कठिन आशीविषकी समान तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा की ? ॥ ४० ॥ तब महिषासुर सिंहरूप छोड़ मदस्रावी हाथीका रूप धारणकर सूंडसे पर्वतके शिखर ग्रहणपूर्वक देवीके ऊपर निक्षेप करनेलगा ॥ ४१ ॥ देवी जगदम्बिका पर्वतके शिखरोंको आता हुआ

द्विधाचक्रेशरान्देवीतानप्राप्ताञ्छिलीमुखैः ॥ गदयाताडयामासदैत्यंवक्षसिचांबिका ॥ ३६ ॥ सगदाऽभिहतोमूर्छामवापाऽमरबाधकः ॥ विषह्यपीडांपापात्मापुनरागत्यसत्वरः ॥ ३७ ॥ जघानगदयासिंहंमूर्ध्निक्रोधसमन्वितः ॥ सिंहोऽपिनखघातेनतंददारमहाऽसुरम् ॥ ३८ ॥ विहायपौरुषंरूपंसोऽपिसिंहोबभूवह ॥ नखैर्विदारयामासदेवीसिंहंमदोत्कटम् ॥ ३९ ॥ तंचकेसरिणंवीक्ष्यदेवीकुद्धाह्ययोमुखैः ॥ शरैरवाकिरत्तीक्ष्णैःक्रूरैराशीविषैरिव ॥ ४० ॥ त्यक्त्वासहरिरूपंतुगजोभूत्वामदस्रवः ॥ शैलशृंगंकरेकृत्वाचिक्षेपचंडिकांप्रति ॥ ४१ ॥ आगच्छंतंगिरेःशृंगंदेवीबाणैःशिलाशितैः ॥ चकारतिलशःखंडाञ्जहासजगदंबिका ॥ ४२ ॥ उत्पत्यचतदासिंहस्तस्यमूर्ध्निव्यवस्थितः ॥ नखैर्विदारयामासमहिषंगजरूपिणम् ॥ ४३ ॥ विहायगजरूपंचबभूवाऽष्टापदीतथा ॥ हंतुकामोहरिंकोपाद्दारुणोबलवत्तरः ॥ ४४ ॥ तंवीक्ष्यशरभंदेवीखड्गेनचरुषान्विता ॥ उत्तमांगेजघानाऽऽशुसोऽपितांप्राहरत्तदा ॥ ४५ ॥ तयोःपरस्परंयुद्धंबभूवातिभयप्रदम् ॥ माहिषंरूपमास्थायशृंगाभ्यांप्राहरत्तदा ॥ ४६ ॥ पुच्छप्रभ्रमणेनाशुशृंगाऽऽघातैर्महासुरः ॥ ताडयामासतन्वंगींघोररूपोभयानकः ॥ ४७ ॥ पुच्छेनपर्वताञ्छृंगेगृहीत्वाभ्रामयन्बलात् ॥ प्रेषयामासपापात्माप्रहसन्परयामुदा ॥ ४८ ॥

देख शिलाशाणित बाणोंसे उनको तिलप्रमाण खंड खंड कर हास्य करने लगी ॥ ४२ ॥ इधर सिंहने कूदकर उसके मस्तकमें प्राप्त होकर गजरूपी महिषासुरको नखरद्वारा विदीर्ण किया ॥ ४३ ॥ तब उसने सिंहको संहार करनेकी इच्छासे हाथीका रूप छोड़ सिंहसे भी अधिक बलवान् भयंकर शरभ अष्टापद रूप धारण किया ॥ ४४ ॥ देवीने उस शरभको देखकर क्रोधसे कुपित हो खड्गद्वारा उसके मस्तकमें प्रहार किया तब शरभने भी तत्काल देवीको प्रहार किया ॥ ४५ ॥ उस समय उसका परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध होनेलगा तब महिषासुरने महिषरूप धारण करके सींगोंसे भगवतीको प्रहार किया ॥ ४६ ॥ वह घोररूप भयानक असुर पुच्छभ्रमण और दोनों सींगोंके आघातसे उन कृशाङ्गी देवीपर प्रहार करने लगा ॥ ४७ ॥ वह दुर्द्धर्ष असुर लांगूलद्वारा पर्वतके शिखरोंको ग्रहण करके

बलपूर्वक घुमाय घुमाय फेंकनेलगा तब पापात्मा बलोन्मत्तताके कारण अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हँसता हुआ ॥ ४८ ॥ देवीसे कहने लगा हे देवी ! रणस्थलमें स्थिर होओ रूप और यौवनके सहित अभी तुमको समरमें निहत करूंगा ॥ ४९ ॥ तुम मदमत्त होकर मुझसे युद्ध करती हो तुमको कुछ ज्ञान नहीं है तुम अत्यन्त मोहके वशीभूत हुई हो, तुम अपनेको अत्यन्त बलवान् विचार कर जो अभिमान करती हो उसको मिथ्या जानो ॥ ५० ॥ जो शठ नारीको सन्मुख करके हमको जीतनेकी इच्छा करते हैं पहिले तुमको मारकर फिर उन कपटपण्डित देवताओंका संहारकरूंगा ॥ ५१ ॥ देवी बोली हे दुरात्मन् ! गर्व मत करे रणाङ्गणमें स्थिर हो अभी मैं तेरा विनाश करके उन सुरसत्तम गणोंको निर्भय करूंगी ॥ ५२ ॥ हे अधम ! त पापिष्ठ है तू देवताओंको दुःख देता रहता है और मुनियोंको भय दिखाता है मैं

तामुवाचबलोन्मत्तस्तिष्ठदेविरणांगणे ॥ अद्याहंत्वांहनिष्यामिरूपयौवनभूषिताम् ॥ ४९ ॥ मूर्खोऽसिमदमत्ताऽद्ययन्मयासहसंगरम् ॥ करोषिमोहिताऽतीवमृषाबलवतीखरा ॥ ५० ॥ हत्वात्वांनिहनिष्यामिदेवान्कपटपंडितान् ॥ येनारींपुरतःकृत्वाजेतुमिच्छंतिमांशठाः ॥ ५१ ॥ देव्युवाच ॥ मा गर्वंकुरुमंदात्मंस्तिष्ठतिष्ठरणांगणे ॥ करिष्यामिनिरातंकान्हत्वात्वांसुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥ पीत्वाऽद्यमाधवींमिष्टांशातयामिरणेऽधम ॥ देवानांदुःखदंपापंमुनीनांभयकारकम् ॥ ५३ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वाचषकंहैमंगृहीत्वासुरयायुतम् ॥ पपौपुनःपुनःक्रोधाद्धंतुकामामहासुरम् ॥ ५४ ॥ पीत्वा द्राक्षासमंमिष्टंशूलमादायसत्वरा ॥ दुद्रावदानवंदेवीहर्षयन्देवतागणान् ॥ ५५ ॥ देवास्तांतुष्टुवुःप्रेम्णाचक्रुःकुसुमवर्षणम् ॥ जयजीवेतितेप्रोचुर्दुंदुभीनांचनिःस्वनैः ॥ ५६ ॥ ऋषयःसिद्धगंधर्वाःपिशाचोरगचारणाः ॥ किन्नराःप्रेक्ष्यसंग्रामंमुदितागगनेस्थिताः ॥ ५७ ॥ सोऽपिनानाविधान्देहान्कृत्वाकृत्वा पुनःपुनः ॥ मायामयाञ्जघानाजौदेवींकपटपंडितः ॥ ५८ ॥ चंडिकाऽपिचतंपापंत्रिशूलेनबलाद्धृदि ॥ ताडयामासतीक्ष्णेनक्रोधादरुणलोचना ॥ ५९ ॥

सुमिष्ट माधवी सुराका पान करके तुझको समराङ्गणमें निहत करूंगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवी इसप्रकार कह क्रोधकर महिषासुरको मारनेकी इच्छासे सुरापूर्ण सोनेका कटोरा ग्रहण कर वारंवार सुरारस पान करने लगी ॥ ५४ ॥ फिर सुमिष्ट द्राक्षारस पान करके देवी शूलग्रहणपूर्वक दानवकी ओर दौड़ी. यह देखकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५५ ॥ और प्रीतिसहित उन देवीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करके स्तव करने लगे और "जय जीव" यह कह दुन्दुभिके शब्दसे उनकी जय घोषणा करी ॥ ५६ ॥ ऋषिगण, सिद्धगण, गंधर्वगण, पिशाचगण, उरगगण और किन्नरगण आकाशमण्डलसे संग्राम देखकर परमप्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥ इधर वह कपटपण्डित महिषासुर वारंवार मायामय अनेक प्रकारके देहधारण करके देवीपर वारंवार प्रहार करने लगा ॥ ५८ ॥ तब चण्डिकाने क्रोधसे

लाल लाल नेत्र कर तीक्ष्ण शूलसे उस पापमति महिषासुरके हृदयमें बलपूर्वक प्रहारकिया ॥ ५९ ॥ असुर शूलाघातकी वेदनासे मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिरगया किन्तु मुहूर्त्तकालमें ही फिर उठकर चण्डिकाके ऊपर वेगसहित दोनों चरणोंका प्रहार किया ॥ ६० ॥ उस महासुरने देवीको पदद्वारा प्रहार करके वारंवार हँसकर ऐसा भयंकर चीत्कार शब्द किया कि, उस शब्दसे देवता बहुत डरे ॥ ६१ ॥ तब देवीने सुनाभवाले सहस्रार उत्तम चक्रको हाथमें ले सन्मुख स्थित असुरसे उच्चस्वरसे कहा ॥ ६२ ॥ रे मूढ ! देख. यह चक्र आज तेरे कंठका छेदन करेगा. क्षणकाल मात्र ठहर अभी तुझको यमलोक भेजती हूं ॥ ६३ ॥ जगदम्बिकाने यह कहतेही दारुण चक्र छोड़ा, तब तत्काल उस चक्रने दानवका मस्तक काट डाला ॥ ६४ ॥ गेरुका झरा अरुणवर्ण विशाल निर्भय प्रवाह जिसप्रकार पर्वतसे निकलता है. इसी

ताडितोऽसौपपातोर्व्यांमूर्च्छामापमुहूर्तकम् ॥ पुनरुत्थायचामुंडांपद्भ्यांवेगादताडयत् ॥ ६० ॥ विनिहत्यपदाघातैर्जहासचमुहुर्मुहुः ॥ ररावदारुणंशब्दंदेवानांभयकारकम् ॥ ६१ ॥ ततोदेवीसहस्रारंसुनाभंचक्रमुत्तमम् ॥ करेकृत्वाजगादोच्चैःसंस्थितंमहिषासुरम् ॥ ६२ ॥ पश्यचक्रंमदांधाऽद्यतवकंठनिकृंतनम् ॥ क्षणमात्रंस्थिरोभूत्वायमलोकंव्रजाऽधुना ॥६३॥ इत्युक्त्वादारुणंचक्रंमुमोचजगदंबिका ॥ शिरश्छिन्नंरथांगेनदानवस्यतदारणे ॥६४॥ सुस्रावरुधिरंचोष्णंकंठनालाद्गिरेर्यथा ॥ गैरिकाद्यरुणंप्रौढंप्रवाहमिवनैर्झरम् ॥ ६५ ॥ कबंधस्तस्यदैत्यस्यभ्रमन्वैपतितःक्षितौ ॥ जयशब्दश्चदेवानांबभूवसुखवर्धनः ॥ ६६ ॥ सिंहस्त्वतिबलस्तत्रपलायनपरानथ ॥ दानवान्भक्षयामासक्षुधार्तइवसंगरे ॥ ६७ ॥ मृतेचमहिषेक्रूरेदानवाभयपीडिताः ॥ मृतशेषाश्चयेकेचित्पातालंतेययुर्नृप ॥६८॥ आनंदंपरमंजग्मुर्देवास्तस्मिन्निपातिते ॥ मुनयोमानवाश्चैवयेचान्येसाधवःक्षितौ ॥ ६९ ॥ चंडिकाऽपिरणंत्यक्त्वाशुभेदेशेऽथसंस्थिता ॥ देवास्तत्राऽऽययुःशीघ्रंस्तोतुकामाःसुखप्रदाम् ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेमहिषाऽसुरवधोनामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥छ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ अथप्रमुदिताःसर्वेदेवाइंद्रपुरोगमाः ॥ महिषंनिहतंदृष्ट्वातुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ १ ॥

प्रकार उसके कंठनालसे उष्ण रुधिरकी धारा निकलने लगी ॥ ६५ ॥ उस असुरका मस्तकहीन देह क्षणकाल इधर उधर घूमकर पृथ्वीमें गिरगया देवता आनन्दवर्द्धन जयशब्द उच्चारण करने लगे ॥ ६६ ॥ अत्यन्त बलशाली सिंह रणस्थलमें भागतेहुए दानवोंको क्षुधार्त्तकी समान भक्षण करने लगा ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! क्रूरप्रकृति महिषासुरके निहत होनेपर मृतावशिष्ट जो दानव थे. वे डरकर पातालमें भाग गये ॥ ६८ ॥ उस पापमति असुरके मारेजानेपर देवता ऋषि और मनुष्य तथा पृथ्वीतलमें अन्यान्य जो जो साधुलोग थे. वे सब अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ६९ ॥ भगवती चंडिका भी समरपरित्याग करके पवित्र स्थानमें स्थिति करने लगी. अनन्तर देवता सुखप्रदा देवीका स्तव करनेकी इच्छासे वहां आये ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज !

अनन्तर इन्द्र इत्यादि देवतागण महिषासुरका मरण देख आनन्दित हो देवीका स्तव करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे भगवति ! तुम्हारीही शक्तिके बलसे ब्रह्मा जगत्की सृष्टि, विष्णु जगत्का पालन और महेश्वर प्रलयकालमें जगत्का संहार करते हैं. किन्तु तुम्हारी शक्तिविहीन होनेसे वे कभी इस विश्वकी सृष्टि स्थिति और संहार करनेमें समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि ! आपही इस अखिल जगत्की स्थिति नाशका एक मात्र कारण हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ हे देवि ! आपही सब जगत्का कारणस्वरूप हैं. अतएव सभी आपमें अधिष्ठित रहते हैं. इस विश्वसंसारमें कीर्ति, मति, स्मृति, गति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, मंत्ररूपा, अजपा, पुष्टि, कला, विजया, जया, तुष्टि, प्रभा, बुद्धि, रमा ॥ ३ ॥ विद्या, क्षमा, कान्ति, मेधा, अधिक क्या रुद्रशक्ति गिरिजा और ईश्वरशक्ति उमा इत्यादि जो सब शक्तियां विद्यमान हैं. वे सब आपही हैं यह बात त्रिभुवनमें किसीसे छिपी नहीं है. आपकी इन शक्तियोंके विना कभी कोई कार्य

देवाऊचुः ॥ ब्रह्मासृजत्यवतिविष्णुरिदंमहेशःशक्त्यातवैवहरतेननुचांतकाले ॥ ईशानतेऽपिचभवंतितयाविहीनास्तस्मात्त्वमेवजगतःस्थिति नाशकर्त्री ॥ २ ॥ कीर्तिर्मतिःस्मृतिगतीकरुणादयात्वंश्रद्धाधृतिश्चवसुधाकमलाजयाच ॥ पुष्टिःकलाऽथविजयागिरिजाजयात्वंतुष्टिःप्रमात्वमसिबुद्धिरुमा रमाच ॥३॥ विद्याक्षमाजगतिकांतिरपीहमेधासर्वंत्वमेवविदिताभुवनत्रयेऽस्मिन्॥आभिर्विनातवतुशक्तिभिराशुकर्तुंकोवाक्षमःसकललोकनिवासभूमे ॥४॥ त्वंधारणाननुनचेदसिकूर्मनागौधर्तुंक्षमौकथमिलामपितौभवेताम् ॥ पृथ्वीनचेत्त्वमसिवागगनेकथंस्थास्यत्येतदंबनिखिलंबहुभारयुक्तम् ॥ ५ ॥ येवास्तुवंतिमनुजाअमरान्विमूढामायागुणैस्तवचतुर्मुखविष्णुरुद्रान् ॥ शुभ्रांशुवह्नियमवायुगणेशमुख्यान्किंत्वामृतेजननितेप्रभवंतिकार्ये ॥ ६ ॥ येजुह्वतिप्रविततेऽल्पधियोंबयज्ञेवह्नौसुरान्समधिकृत्यहविःसमृद्धम् ॥ स्वाहानचेत्त्वमसितेकथमापुरद्धात्वामेवकिंनहियजंतिततोहिमूढाः ॥ ७ ॥

नहीं करसक्ता ॥ ४ ॥ हे भगवति ! यदि आप धारणशक्ति न होतीं तो कूर्म अनन्तदेव किसप्रकार पृथ्वी धारण करनेमें समर्थ होते ? हे जननि ! आप यदि पृथ्वी न होतीं तो यह बहुभारपूर्ण सब जगत् क्या कभी अन्तरिक्ष (आकाश) में रहसक्ता ॥ ५ ॥ हे जननि ! जो मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्र, अग्नि, यम, वायु और गणेश इत्यादि देवताओंका स्तव करते हैं. वे निःसन्देह आपकी मायाके बलसे मोहित हैं. हे देवि ! ये देवता क्या आपकी शक्तिके विना किसी कार्यके करनेमें समर्थ हो सक्ते हैं ॥ ६ ॥ हे मातः ! जो विस्तृत यज्ञमें देवताओंके उद्देशसे विपुल हवि आहुति देता है. वह अत्यन्त अल्पबुद्धि है. क्योंकि आप यदि स्वाहा न होतीं तो देवतालोग क्या तत्काल उस हुत हविको प्राप्त हो सक्ते थे ? हे देवि ! वे सबलोक आपकी पूजा न करनेसे निःसन्देह मूढ हैं

इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ हे जननि ! आपही प्रकृतिकी सप्त विकृति और षोडशविकार यह त्रयोविंशतितत्वरूप स्वीय अंशद्वारा प्राणियोंके प्रारब्धकर्मभोगके लिये जीवनदान करतीं हैं और आप अनुगत देवताओंको इस जगत्में जिसप्रकार पोषण करती है, वैसेही असुरोंको भी कर्मानुसार भोग और जीवन दानसे पालन करती हो. अतएव हे भगवति ! आपही इन चराचर मनुष्योंको भोग प्रदान करतीं हैं इसमें फिर संशय क्या है ॥ ८ ॥ हे मातः ! चित्तविनोदनके लिये उद्यानमें मनोहर वृक्ष रोपण करनेपरभी यदि स्वाभाविक गुणसे किसीमें फल वा किसीमें पत्ते न हो. या किसी वृक्षका रस कड़वा हो. तोभी विज्ञ पुरुष कभी उसको स्वयं नहीं काटते. हे देवि ! आपभी इसी प्रकार निकृष्ट कर्मानुसार दैत्योंको उत्पन्न करके आपही उनका पालन करतीं हैं ॥ ९ ॥ हे भगवति ! आपका हृदय करुणारसमें इतना आकृष्ट है कि, देवाङ्गनाओंको सुरताभिलाषी जानकर तामसप्रकृति दैत्यगण यागादिद्वारा स्वर्गलाभ नहीं कर सक्ते. अतएव वह मेरे

भोगप्रदाऽसिभवतीहचराचराणांस्वांशैर्ददासिखलुजीवनमेवनित्यम् ॥ स्वीयान्सुराञ्जननिपोषयसीहयद्वत्तद्वत्परानपिचपालयसीतिहेतोः ॥ ८ ॥
मातःस्वयंविरचितान्विपिनेविनोदाद्वंध्यान्पलाशरहितांश्चकटूंश्चवृक्षान् ॥ नोच्छेदयंतिपुरुषानिपुणाःकथंचित्तस्मात्त्वमप्यतितरांपरिपासिदैत्यान् ॥९॥
यत्त्वंतुहंसिरणमूर्ध्निशरैररातीन्देवांगनासुरतकेलिमतीन्विदित्वा ॥ देहांतरेऽपिकरुणारसमाददानातत्तेचरित्रमिदमीप्सितपूरणाय ॥ १० ॥ चित्रंत्वमीयदसुभीरहितानसंतित्वंवंचितितेनदनुजाःप्रथितप्रभावाः ॥ येषांकृतेजननिदेहनिबंधनंतेक्रीडारसस्तवनचाऽन्यतरोऽत्रहेतुः ॥ ११ ॥ प्राप्तेकलावहहदुष्टतरेचकालेनत्वांभजंतिमनुजाननुवंचितास्ते ॥ धूर्तैःपुराणचतुरैर्हरिशंकराणांसेवापराश्चविहितास्तवनिर्मितानाम् ॥ १२ ॥ ज्ञात्वासुरांस्तववशानसुरार्दितांश्चयेवैभजंतिभुविभावयुताविभग्नान् ॥ धृत्वाकरेसुविमलंखलुदीपकंतेकूपेपतंतिमनुजाविजलेऽतिघोरे ॥ १३ ॥

बाणोंसे प्राणत्याग करनेपर देहावसानके समय स्वर्गलोकमें जाकर देवाङ्गनाओंके सहित सुरतक्रीडामें रत हो, आपने इस अभिप्रायके कारणही उन शत्रुओंको बाणोंसे समरमें विनाश किया है, अतएव आपका यह व्यवहार उनका मनोरथ सिद्धकरनेके लिये था; कुछ वधके लिये नहीं ॥ १० ॥ हे जननि ! आपने जिसका विनाश करनेकी इच्छासे शरीर धारण किया है, सो आपके संकल्पमात्रसेही जो उन विख्यातप्रभाव असुरोंके प्राण न गये, यह अत्यन्त आश्चर्य जान पड़ता है. आपका देहधारण करनेकी लीलाके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं है ॥ ११ ॥ हे देवि ! इस घोर कलियुगमें जो मनुष्य आपका भजन न करके अन्यान्य देवताओंका भजन करते हैं. पुराणचतुरोंने निस्सन्देह उनको छलकर आपके बनाये हरिहरादिकी सेवामें परायण किया है. हाय ! इससे इन मनुष्योंका क्या दुर्भाग्य ही संघटित हुआ है ॥ १२ ॥ हे देवि ! असुरनिपीडित ये देवतालोग आपके अधीन हैं, यह जानकर भी जो मनुष्य अनुरागपरायण हो पृथ्वीमें उन देवताओंकी पूजा

करते हैं, वह निःसन्देह विमल दीपक हाथमें धारण करके भी निविड़ अन्धकाराच्छन्न निर्जल कूपमें गिरते हैं ॥ १३ ॥ हे मातः ! आपही चित्स्वरूपिणी विद्या हैं, सुतरां सुख अर्थात् मुक्ति प्रदान करती हैं, आपही अविद्या अर्थात् माया हैं, सुतरां असुख अर्थात् संसार क्लेश प्रदान करतीं हैं. हे देवि ! जो आपकी पूजा करते हैं, आप उन मनुष्योंका जन्म क्लेश हरण करती हैं मोक्षाभिलाषी मुनिलोगही आपकी आराधना करते हैं और लोभपरायण मन्दमति अज्ञानी पुरुषही आपकी आराधनासे विरत होते हैं ॥ १४ ॥ अधिक क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और अपरापर देवता लोग सदा आपके आराध्य चरणकमलोंकी अर्चना करते हैं, किन्तु जो अल्पबुद्धि भ्रान्तमनुष्य मनमें आपके चरणकमलोंका ध्यान नहीं करते वह सदा इस भवसागरमें गिरते हैं ॥ १५ ॥ हे चंडिके ! आपके चरणकमलोंसे उठी हुई रजके प्रसादसे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इस विश्वसंसारकी सृष्टि पालन और संहार करते हैं. अतएव हे देवि ! जो मनुष्य आपकी सेवा नहीं करते वे अत्यन्त भाग्यहीन हैं, इसमें

विद्यात्वमेवसुखदाऽसुखदाऽप्यविद्यामातस्त्वमेवजननार्तिहरानराणाम् ॥ मोक्षार्थिभिस्तुकलिताकिलमंदधीभिर्नाऽऽराधिताजननिभोगपरैस्तथाऽज्ञैः ॥ ॥ १४ ॥ ब्रह्माहरश्चहरिरप्यनिशंशरण्यंपादांबुजंतवभजंतिसुरास्तथान्ये ॥ तद्वैनयेऽल्पमतयोमनसाभंजतिभ्रांताःपतंतिसततंभवसागरेते ॥ १५ ॥ चंडित्वदंघ्रिजलजोत्थरजःप्रसादैर्ब्रह्माकरोतिसकलंभुवनंभवादौ ॥ शौरिश्चपातिखलुसंहरतेहरस्तुत्वांसेवतेनमनुजस्त्विहदुर्भगोऽसौ ॥ १६ ॥ वाग्देवता त्वमसिदेविसुराऽसुराणांवक्तुंनतेऽमरवराःप्रभवंतिशक्ताः ॥ त्वंचेन्मुखेवससिनैवयदैवतेषांयस्माद्भवंतिमनुजानहितद्विहीनाः ॥ १७ ॥ शप्तोहरिस्तुभृगुणाकुपितेनकामंमीनोबभूवकमठःखलुसूकरस्तु ॥ पश्चान्नृसिंहइतियश्छलकृद्धरायांतान्सेवतांजननिमृत्युभयंनकिंस्यात् ॥ १८ ॥ शंभोःपपातभुविलिंगमिदंप्रसिद्धंशापेनतेनचभृगोर्विपिनेगतस्य ॥ तंयेनराभुविभजंतिकपालिनंतुतेषांसुखंकथमिहाऽपिपरत्रमातः ॥ १९ ॥

सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ हे जगदम्बिके ! आपही सुर और असुरोंकी वाग्देवता हैं. अतएव आप यदि उनके मुखमंडलमें विराजमान न होतीं तो वह किसीप्रकारसे कुछ उच्चारण करनेमें समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि ! मनुष्यलोग आपसे रहित होकरभी किसप्रकार बात कहनेमें समर्थ होंगे ! ॥ १७ ॥ हे जननि ! प्रकुपित भृगुमुनिके शापसेही हरि पृथ्वीमें मीन, कूर्म, शूकर, नृसिंह और वंचनातत्पर वामन इत्यादिका रूप धारण करके अवतीर्ण हुये थे, इसमें उनकी पराधीनता स्पष्टही प्रतीत होती है. जो उन पराधीन अवतारोंकी सेवा करते हैं, उनको किसलिये मृत्युका भय नहीं होगा ? ॥ १८ ॥ हे मातः ! सतीके वियोगसे महादेवके अरण्यमध्यस्थ ऋषियोंके आश्रममें गमन करनेपर भृगुमुनिके शापसे उनका लिंग पृथ्वीमें गिरा, यह तो सर्वत्र ही प्रसिद्ध है. अतएव जो अपने लिंगकी रक्षा करनेमें भी समर्थ नहीं हैं, विशेष कर

१ यहां उत्कर्षता दिखानेको ऐसा कहा है भजनआदिका निषेध न जानना, यह स्तुतिवाद है भगवत्का उत्कर्ष है कारण कि, इनमें सब देवताओंका सत्व है ।

जो स्पर्श करनेके अयोग्य नरकपाल इत्यादि धारण करते हैं, उन शंभुको जो मनुष्य भजते हैं, उनको इस काल और परकालमें किस प्रकार सुख होगा? ॥ १९ ॥ हे देवि! जिन गणाधिपति गजाननने पूर्वोक्त महेशसे जन्म ग्रहण किया है, जो मनुष्य उन गणपतिकी पूजा करते हैं वे अत्यन्त भ्रान्त हैं, विशेष कर वे निःसन्देह चतुर्वर्गप्रदानमें समर्थ इस विश्व ब्रह्माण्डकी जननीस्वरूप सुखाराध्य आपको नहीं जानते ॥ २० ॥ हे देवि! आपने दयार्द्रताके वश होकरही शत्रुओंको शित बाणोंसे समरमें निहत करके स्वर्गलोकमें भेज दिया है. यदि ऐसा न करतीं तो वे निःसन्देह अपने कर्मोंके फलसे नरककी अधिकतर आपदामें गिरते, इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ ब्रह्मा, हरि और हर तथा अन्यान्य देवता भी आपका प्रभाव जाननेमें समर्थ नहीं हैं तो आपके अमित प्रभाव सत्वादि गुणसे मोहित सामान्य मनुष्यगण किसप्रकार तुम्हारा प्रभाव जाननेमें समर्थ हों? ॥ २२ ॥ हे मातः! जो विचारके अगोचर आपके चरणकमलोंकी पूजा नहीं करते और दृश्यमान

योभूद्गजाननगणाधिपतिर्महेशात्तंयेभजंतिमनुजावितथप्रपन्नाः ॥ जानंतितेनसकलार्थफलप्रदात्रींत्वांदेविविश्वजननींसुखसेवनीयाम् ॥ २० ॥ चित्रं त्वयाऽरिजनतापिदयार्द्रभावाद्धत्वारणेशितशरैर्गमिताद्युलोकम् ॥ नोचेत्स्वकर्मनिचितेनिरयेनितांतंदुःखाऽतिऽदुःखगतिमापदमापतेत्सा ॥ २१ ॥ ब्रह्माहरश्चहरिरप्युतगर्वभावाज्जानंतितेऽपिविबुधानतवप्रभावम् ॥ केऽन्येभवंतिमनुजाविदितुंसमर्थाःसंमोहितास्तवगुणैरमितप्रभावैः ॥ २२ ॥ क्लिश्यंतिते ऽपिमुनयस्तवदुर्विभाव्यंपादांबुजंनहिभजंतिविमूढचित्ताः ॥ सूर्याग्निसेवनपराःपरमार्थतत्त्वंज्ञातंनतैःश्रुतिशतैरपिवेदसारम् ॥ २३ ॥ मन्येगुणास्तवभुविप्रथितप्रभावाःकुर्वंतियेहिविमुखान्नुभक्तिभावात् ॥ लोकान्स्वबुद्धिरचितैर्विविधाऽऽगमश्चविष्णवीशभास्करगणेशपरान्विधाय ॥ २४ ॥ कुर्वंतियेतवपदाद्विमुखान्नराग्र्यान्स्वोक्तागमैर्हरिहरार्चनभक्तियोगैः ॥ तेषांनकुप्यसिदयांकुरुषेऽविकेत्वंतान्मोहमंत्रनिपुणान्प्रथयस्यलंच ॥ २५ ॥ तुर्येयुगेभवतिचाऽतिवलंगुणस्यतुर्यस्यतेनमथितान्यसदागमानि ॥ त्वांगोपयंतिनिपुणाःकवयःकलौवैत्वत्कल्पितान्सुरगणानपिसंस्तुवंति ॥ २६ ॥

सूर्य भी अनलकी सेवामें निरत हैं, वे शतशत श्रुतिद्वारा प्रतिपादित वेदका सार परमतत्व न जानकरही मोहित चित्तसे केवल क्लेशोंका भोग करते रहते हैं ॥ २३ ॥ हे जननि! मैं विचारता हूं कि, आपके सत्व रज और तमोगुणका प्रभाव भूमण्डलमें विस्तृत रहता है. वही सब गुण पुरुष बुद्धिविरचित नाना विध मोहकर तंत्रादि शास्त्रद्वारा सब मनुष्योंको विष्णु महेश्वर सूर्य और गणेश इत्यादि देवताओंकी उपासनामें प्रवृत्त करके आपकी भक्तिभावसे विमुख करदेते हैं ॥ २४ ॥ हे अम्बिके! जो हरिहरादिके अर्चनाविषयक भक्तियोगप्रतिपादित आगमशास्त्रद्वारा ब्राह्मणोंको आपके चरणकमलोंसे विमुख करते हैं आप उनके प्रति कुपित नहीं होतीं बरन् वश्याकर्षणादि मोहमंत्रनिपुण उन मनुष्योंको भलीभाँति विख्यात करके उनके प्रति दया प्रकाश करती हो ॥ २५ ॥ सत्ययुगमें विशुद्धसत्वगुणही अधिक बलवान् था इससे ही असत्शास्त्रोंका प्रभाव संकुचित था किन्तु कलिकालमें उसके अभावसे अविशुद्धगुणकी प्रधानता हुई है सुतरां

पण्डिताभिमानी निपुण मनुष्य आपकी उपासना न करके आपके बनाये हरिहरादि देवताओंकी पूजा करते हैं ॥ २६ ॥ हे मातः ! आपही चित्स्वरू
पिणी विद्या हैं आपही योगसिद्धि होनेपर भक्तोंको मुक्तिका फलप्रदान करतीं हैं. इसलिये विशुद्धसत्वगुणप्रधान मुनिलोग आपकाही ध्यान करते किन्तु हैं
जो मनुष्य आपमें लीन हुए हैं वेही धन्य हैं अधिक क्या उनको फिर जननीके जठरमें दुःख भोगना नहीं पड़ता ॥ २७ ॥ हे जननि ! आपही चित्शक्ति
रूपसे परमात्मामें वास करतीं हैं. इसकारण परमात्मा भी इस जगन्मंडलमें विशेष रूपसे व्यक्त होकर जगत् प्रपंचकी सृष्टि स्थिति और संहारकर्त्ता विदित होते हैं ?
हे देवि ! तुम्हारी शक्तिसे विहीन होकर कौन पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार इस जगत्प्रपंचमें कर्म करने विहार करने अथवा विचरण करनेमें समर्थ होता है ? ॥
॥ २८ ॥ हे भगवति ! आपसेही यह विश्व संसार रचागया है अतएव आपही विश्वजननी हैं. महदादि चौवीस तत्व जड़ हैं, सुतरां तुम्हारी चिच्छक्तिसे रहित

ध्यायंतिमुक्तिफलदांभुवियोगसिद्धांविद्यांपरांचमुनयोऽतिविशुद्धसत्त्वाः ॥ तेनाप्नुवंतिजननीजठरेतुदुःखंधन्यास्तएवमनुजास्त्वयियेविलीनाः ॥ २७ ॥
चिच्छक्तिरस्तिपरमात्मनितेनसोपिव्यक्तोजगत्सुविदितोभवकृत्यकर्ता ॥ कोन्यस्त्वयाविरहितःप्रभवत्यमुष्मिन्कर्तुंविहर्तुमपिसंचलितुंस्वशक्त्या ॥२८॥
तत्त्वानिचिद्विरहितानिजगद्विधातुंकिंवाक्षमाणिजगदंबयतोजडानि ॥ किंचेंद्रियाणिगुणकर्मयुतानिसंतिदेवित्वयाविरहितानिफलंप्रदातुम् ॥ २९ ॥
देवामखेष्वपिहुतंमुनिभिःस्वभागंगृह्णीयुरंबविधिवत्प्रतिपादितंकिम् ॥ स्वाहानचेत्त्वमसितत्रनिमित्तभूतातस्मात्त्वमेवनुपालयसीवविश्वम् ॥ ३० ॥
सर्वत्वयेदमखिलंविहितंभवादौत्वंपासिवैहरिहरप्रमुखान्दिगीशान् ॥ कालेऽसिविश्वमपितेचरितंभवाब्यंजानंतिनैवमनुजाःक्वनुमंदभाग्याः ॥ ३१ ॥
हत्वाऽसुरंमहिषरूपधरंमहोग्रंमातस्त्वयासुरगणःकिलरक्षितोऽयम् ॥ कांतिस्तुतिंजननिमंदधियोविदामोवेदागतिंतवयथार्थतयानजग्मुः ॥ ३२ ॥

होकर वे जगतके बनानेमें किसप्रकार समर्थ होसक्ते हैं?हे देवि ! गुणकर्मयुक्त जो सबइन्द्रियें विद्यमान हैं वे भी तुम्हारी शक्तिसे हीन होकर संसारका कार्यविधान वा फल
देनेमें कभी समर्थ नहीं होतीं ॥ २९ ॥ आप यदि स्वाहारूप होकर यज्ञकी निमित्तभूत न होतीं तो देवता क्या मुनिगणकर्तृक यथाविधि प्रतिपादित यज्ञमें
आहुत हविका स्वस्वभाग ग्रहण कर सक्ते ? अतएव हे देवि ! आपही इस विश्वसंसारका पालन करतीं हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ हे भगवति !
भवसागरके प्रथम आपनेही इस सब जगत्को उत्पन्न किया है. हरि हर इत्यादि देवता और दिक्पालोंकी आपही रक्षा करतीं हैं. आपही अंतकालमें इस विश्वसंसा
रका संहार करती हैं. अतएव हे भवानि ! आपका चरित्र देवतालोग भी नहीं जानते फिर मंदभाग्य मनुष्य लोग किसप्रकार उसको जान सक्ते हैं ॥ ३१ ॥ हे मातः !
महिषरूपधारी भयंकर असुरको मारकर आपने इन देवताओंकी रक्षा की है. हे जननि ! संपूर्ण वेदभी आपकी गति यथार्थरूपसे नहीं जान सक्ते. फिर हम मंद

बुद्धि होकर आपकी क्या स्तुति करें ॥ ३२ ॥ हे जननि ! आपने हमारे वैरी अभावनीय भुवनकंटक दुष्टदानवका दलन करके हमारा कार्य साधन किया है. इससे आपकी कीर्ति जगत्‌में विस्तीर्ण हुई है. अतएव हे विदितप्रभावे ! आपही जगत्‌की माता हैं. कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! जब देवताओंने इसप्रकार स्तुति करी, तब देवीने उनसे मधुर वचन द्वारा कहा हे सुरसत्तमगण ! तुम्हारा अपर दुःसाध्य कार्य क्या है ? सो कहो ॥ ३४ ॥ जब तुम्हारा अत्यन्त दुर्घट कोई कार्य उपस्थित हो उसी समय मेरा स्मरण करो. मैं तत्काल उस आपदाको विनष्ट करूंगी ॥ ३५ ॥ देवता बोले हे देवि ! आपने इस समय जो हमारे शत्रु महिषासुरको मारा है इससेही हमारा सब कार्य होगया है ॥ ३६ ॥ अब जिससे आपके चरणकमलोंका सदा स्मरण करसकें और जिससे आपके प्रति अचल

कार्यंकृतंजगतिनोयदसौदुरात्मावैरीहतोभुवनकंटकदुर्विभाव्यः ॥ कीर्तिःकृताननुजगत्सुकृपाविधेयाप्यस्मांश्चपाहिजननिप्रथितप्रभावे ॥३३॥ व्यासउवाच ॥ एवंस्तुतासुरैर्देवीतानुवाचमृदुस्वरा ॥ अन्यत्कार्यंचदुःसाध्यंब्रुवंतुसुरसत्तमाः ॥ ३४ ॥ यदायदाहिदेवानांकार्यंस्यादतिदुर्घटम् ॥ स्मर्तव्याऽहंतदाशीघ्रंनाशयिष्यामिचाऽऽपदम् ॥ ३५ ॥ देवाऊचुः ॥ सर्वंकृतंत्वयादेविकार्यंनःखलुसांप्रतम् ॥ यदयंनिहतःशत्रुरस्माकंमहिषासुरः ॥ ३६ ॥ स्मरिष्यामोयथातेवसदेवपदपंकजम् ॥ तथाकुरुजगन्मातर्भक्तिंत्वय्यप्यचंचलाम् ॥३७॥ अपराधसहस्राणिमातैवसहतेसदा ॥ इतिज्ञात्वाजगद्योनिंनभजंतेकुतोजनाः ॥ ३८ ॥ द्वौसुपर्णौतुदेहेऽस्मिंस्तयोःसख्यंनिरंतरम् ॥ नान्यःसखातृतीयोऽस्तियोपराधंसहेतहि ॥ ३९ ॥ तस्माज्जीवःसखायंत्वांहित्वाकिंनुकरिष्यति ॥ पापात्मामंदभाग्योऽसौसुरमानुषयोनिषु ॥ ४० ॥ प्राप्यदेहंसुदुष्प्रापंनस्मरेत्त्वांनराधमः ॥ मनसाकर्मणावाचाब्रूमःसत्यंपुनःपुनः ॥ ४१ ॥ सुखेवाप्यथवादुःखेत्वंनःशरणमद्भुतम् ॥ पाहिनःसततंदेविसर्वैस्तववरायुधैः ॥ ४२ ॥

भक्ति रहे आप वही कीजिये ॥ ३७ ॥ माताही पुत्रके हजार हजार अपराध सहती है मनुष्य यह जानकर भी किसकारण जगन्माताकी अर्चना नहीं करते सो कह नहीं सकते ॥ ३८ ॥ इस देहमें जीवात्मा और परमात्मारूप दो विहंगम (पक्षी) सदा वास करते हैं उन दोनोंका ऐसा सख्य (मित्रभाव) है कि, कभी उनका वियोग नहीं होता किन्तु उनके अपराधको सहे ऐसा और तीसरा सखा कोई नहीं है ॥ ३९ ॥ अतएव जो जीव सखा स्वरूप आपको परित्याग करता है वह फिर क्या करेगा ? वह कभी कल्याणलाभ नहीं करसकता वह पापात्मा देवता और मनुष्योंमें मन्दभाग्य है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य दुर्लभ देह पाकर वचन मन और कर्मसे आपका वारंवार स्मरण नहीं करता, वह निःसंदेह नराधम है, यह हम वारंवार सत्य कहते हैं ॥ ४१ ॥ हे देवि ! सुखके समय हो,

वा दुःखके समय हो, आपही हमारी रक्षा करनेवाली हैं, अतएव आपही उत्तमोत्तम अस्त्रोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ४२ ॥ हे देवि ! तुम्हारी चरणरेणुके विना हमारी रक्षाका दूसरा कोई उपाय नहीं है. श्रीव्यासजी बोले हे जनमेजय ! जब देवता इसप्रकार भगवतीका स्तव करचुके तब देवी भगवती उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई ॥ ४३ ॥ देवता देवीका अन्तर्धान होना देखकर बहुत अचंभेमें हुए ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ जनमेजय बोले हे ऋषिवर ! भगवतीके इस परम पवित्र जगत्के हितकर अद्भुत चारित्रका विषय तो मैंने जाना, किन्तु आपके मुखकमलसे निकला कथामृत श्रवण कर इस समय भी मैं तृप्त नहीं हुआ ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! भवानीके अन्तर्धान होनेपर उन प्रधान प्रधान देवताओंने तिसकाल क्या किया ? यह आप कहिये. हे भगवन् ! जिन जीवोंके पुण्यका बल अतिथोड़ा है वे कभी देवीके इस परम पवित्र चरित्रको नहीं जान सक्ते ॥ २ ॥ हे मुने ! अल्पभाग्य

अन्यथाशरणंनास्तित्वत्पदांबुजरेणुतः ॥ व्यासउवाच ॥ एवंस्तुतासुरैर्देवीतत्रैवांतरधीयत ॥ ४३ ॥ विस्मयंपरमंजग्मुर्देवास्तांवीक्ष्यनिर्गताम् ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेएकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ जनमेजयउवाच॥अथाऽद्भुतंवीक्ष्यमुनेप्रभावंदेव्याजगच्छांतिकरंवरंच ॥ नतृप्तिरस्तिद्विजवर्यशृण्वतःकथाऽमृतंतेमुखपद्मजातम् ॥ १ ॥ अंतर्हितायांचतदाभवान्यांचक्रुश्चकिंदेवपुरोगमास्ते ॥ देव्याश्चरित्रंपरमंपवित्रंदुराऽऽपमेवाल्पपुण्यैर्नराणाम् ॥ २ ॥ कस्तृप्तिमाप्नोतिकथाऽमृतेनभिन्नोऽल्पभाग्यात्पटुकर्णरंध्रः ॥ पीतेनयेनाऽमरतांप्रयातिधिक्तान्नरान्येनपिबंतिसादरम् ॥३॥ लीलाचरित्रंजगदंबिकायारक्षान्वितंदेवमहामुनीनाम् ॥ संसारवार्धेस्तरणंनराणांकथंकृतज्ञाहिपरित्यजेयुः ॥ ४ ॥ मुक्ताश्चयेचैवमुमुक्षवश्चसंसारिणोरोगयुताश्चकेचित् ॥ तेषांसदाश्रोत्रपुटैश्चपेयंसर्वार्थदंवेदविदोवदंति ॥ ५ ॥ तथाविशेषेणमुनेनृपाणांधर्मार्थकामेषुसदारतानाम् ॥ मुक्ताश्चयस्मात्खलुतत्पिबंतिकथंनपेयंरहितैश्चतेभ्यः ॥ ६ ॥

मनुष्यकी बात तो दूर रहे जिसके कर्णविवर कथामृत सुननेमें निपुण हैं वे महात्माभी क्या देवीके चरितामृत पीनेसे तृप्त होसक्ते हैं ? जिस वचनामृतके पान करनेसे मनुष्य अमरत्वको प्राप्त होता है वह सर्वसार वाक्यामृत जो नहीं पीते उनको धिक्कार है ॥ ३ ॥ जगदम्बिकाके लीलाचरित्र देवता और महामुनियोंकी रक्षा करने वाले व मनुष्यादिको संसारसमुद्रको नौकास्वरूप हैं अतएव कृतज्ञ पुरुष उनको किसप्रकार छोड़सक्ते हैं ॥ ४ ॥ वेदके जाननेवाले पण्डित कहते हैं कि देवीके चरित्र सब अभिलाषित प्रदान करनेमें समर्थ हैं अतएव क्या मुक्त, क्या मुमुक्षु, क्या संसारी, क्या रोगी सबकोही श्रवणपुटद्वारा सदा उनको पान करना चाहिये ॥ ५ ॥ विशेषकर धर्म अर्थमें और कामभोगमें निरत राजाओंको भी इस चरितामृतका पान करना चाहिये. हे मुने! मुक्त पुरुष भी जब देवीके चरितामृतका पान करते हैं, तब उनके अतिरिक्त अन्यान्य

सामान्य पुरुषोंको जो उसका पान करना कर्त्तव्य है, इसमें फिर संदेह क्या है ? ॥ ६ ॥ हे मुनिवर ! भोगी राजा और दुःखी दरिद्रोंको देखकर इसप्रकार अनुमान करना चाहिये कि, जिन्होंने पूर्व जन्ममें सुन्दर कुन्दपुष्प, चम्पकपुष्प और बिल्वदलद्वारा भवानीकी अर्चना की है वही भूलोकमें राजा होकर भोग सुख अनुभव करते हैं ॥ ७ ॥ और जिसने भारतभूमिभागमें दुष्प्राप्य मनुष्यदेह धारण करके भक्तिहीनताके कारण उनकी पूजा नहीं की वही रोगी धन, धान्य और सम्पत्ति लाभसे वञ्चित तथा सन्तानहीन होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥८॥ अधिक क्या ? वे केवलभारवाही आज्ञाकारी दास होकर दिन रात भ्रमण करते हैं, किन्तु दिनरात स्वार्थको खोजकर भी उदर पूर्त्तिमात्र द्रव्यलाभमें समर्थ नहीं होते ॥ ९ ॥ अंधे, गूंगे, बहरे, खंज और कुष्ठरोगी इत्यादि जो भूलोकमें दुःख भोगते हैं, उनको देखकर पण्डितलोग अनुमान करैं कि इन्हों ने कभी भवानीकी आराधना नहीं की ॥ १० ॥ जो समृद्धिशाली और अनेक अनुचरोंसे भलीभाँति सेवित होकर राजयोग्य भोग भोगते हैं जो

यैःपूजितापूर्वभवेभवानीसत्कुंदपुष्पैरथचंपकैश्च ॥ बैल्वैर्दलैस्तेभुविभोगयुक्तानृपाभवंतीत्यनुमेयमेवम् ॥ ७ ॥ येभक्तिहीनाःसमवाप्यदेहंतंमानुषंभारत भूमिभागे॥यैर्नार्चितातेधनधान्यहीनारोगान्विताःसंततिवर्जिताश्च ॥ ८ ॥ भ्रमंतिनित्यंकिलदासभूताआज्ञाकराःकेवलभारवाहाः ॥ दिवानिशंस्वा र्थपराःकदाऽपिनैवाप्नुवंत्यौदरपूर्तिमात्रम् ॥ ९ ॥ अंधाश्चमूकावधिराश्चखंजाःकुष्ठान्वितायेभुविदुःखभाजः ॥ तत्रानुमानंकविभिर्विधेयंनाराधितातैः सततंभवानी ॥ १० ॥ येराजभोगान्वितऋद्धिपूर्णाःसंसेव्यमानाबहुभिर्मनुष्यैः ॥ दृश्यंतियेवाविभवैःसमेतास्तैःपूजितांवेत्यनुमेयमेव ॥ ११ ॥ तस्मात्स त्यवतीसूनोदेव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ कथयस्वकृपांकृत्वादयावानसिसांप्रतम् ॥ १२ ॥ हत्वातंमहिषंपापंसंस्तुतासंपूजितासुरैः ॥ क्वगतासामहालक्ष्मीःसर्व तेजःसमुद्भवा ॥ १३ ॥ कथितंतेमहाभागगतांतर्धानमाशुसा ॥ स्वर्गेवामृत्युलोकेवासंस्थिताभुवनेश्वरी ॥ १४ ॥ लयंगतावातत्रैववैकुंठेवासमाश्रिता ॥ अथवाहेमशैलेसातत्त्वतोमेवदाऽधुना ॥ १५ ॥ व्यासउवाच ॥ पूर्वंमयातेकथितंमणिद्वीपंमनोहरम् ॥ क्रीडास्थानंसदादेव्यावल्लभंपरमंस्मृतम् ॥ १६ ॥

धनवान् दिखाई देते हैं उन्होंने निःसन्देह जगदम्बिकाके चरणकमलोंकी पूजा की थी यह अनुमान करना चाहिये ॥ ११ ॥ अतएव हे सत्यवतीतनय आप दयालु हैं इस कारण अब कृपा करके मेरे निकट देवीकी अनुत्तम चारित्रगाथा वर्णन कीजिये ॥ १२ ॥ हे मुनिवर ! सब देवताओंके तेजःपुंजसे उत्पन्न वह महालक्ष्मी पापिष्ठ महिषासुरको मारकर तथा देवताओंसे पूजित और संस्तुत होकर कहाँ गई॥ १३ ॥ हे महाभाग ! आपने कहा है कि, वह अन्तर्धान होगई अब मैं जानना चाहता हूं कि वह भुवनेश्वरी अन्तर्धान होकर स्वर्गलोकमें वा मृत्युलोकमें अवस्थिति करतीं हैं॥ १४ ॥ वह उसी स्थानमें लीन होगई या उन्होंने वैकुण्ठका आश्रय किया वा सुमेरुपर्वतमें चली गई ? हे मुनिवर ! आप यह सब विवरण यथार्थरूपसे मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! मैं ने पहिलेही आपके निकट मनोहर मणिद्वीपका विषय

वर्णन किया है. यह द्वीप देवीभगवतीका क्रीड़ास्थान और परमप्रिय है ॥ १६ ॥ इस स्थानमें ही ब्रह्मा, विष्णु और महादेव स्त्रीभावको प्राप्त होते हैं. फिर पुरुषत्व लाभ करके अपने अपने कार्यमें नियुक्त होते हैं ॥ १७ ॥ यह स्थान परमशोभायमान और सुधासिंधुके मध्यदेशमें स्थित है. अम्बिका देवी अनेकप्रकारके रूप धारण करके सदा उस स्थानमें विहार करती हैं ॥ १८ ॥ परब्रह्मस्वरूपिणी सनातनी भगवती भुवनेश्वरी जिस स्थानमें सदा क्रीड़ा करतीं हैं. देवताओंके पूजा और स्तव करनेपर तदंशसंभूत यह शिवा देवी भी उसी मणिद्वीपमें जाती हैं ॥ १९ ॥ उन सर्वेश्वरी देवीके अन्तर्धान होनेपर देवतालोगोंने सर्वलक्षणसम्पन्न सूर्यवंशीय बली ॥ २० ॥ अयोध्यापति महाबल वीरप्रवर शत्रुघ्ननामक नरपतिको महिषासुरके सिंहासनपर बैठाकर साम्राज्यका अधीश्वर किया ॥ २१ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता

यत्रब्रह्माहरिःस्थाणुःस्त्रीभावंतेप्रपेदिरे ॥ पुरुषत्वंपुनःप्राप्यस्वानिकार्याणिचक्रिरे ॥ १७॥ यःसुधासिंधुमध्येऽस्तिद्वीपः परमशोभनः ॥ नानारूपैःसदात्रविहारंकुरुतेंबिका ॥ १८ ॥ स्तुतासंपूजितादेवैःसातत्रैवगताशिवा ॥ यत्रसंक्रीडतेनित्यंमायाशक्तिःसनातनी ॥ १९ ॥ देवास्तांनिर्गतांवीक्ष्यदेवींसर्वेश्वरींतथा ॥ रविवंशोद्भवंचक्रुर्भूमिपालंमहाबलम् ॥ २० ॥ अयोध्याऽधिपतिंवीरंशत्रुघ्नंनामपार्थिवम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नंमहिषस्यासनेशुभे ॥ २१ ॥ दत्त्वाराज्यंतदातस्मैदेवाइंद्रपुरोगमाः ॥ स्वकीयैर्वाहनैःसर्वेजग्मुःस्वान्यालयानिते ॥ २२ ॥ गतेषुतेषुदेवेषुपृथिव्यांपृथिवीपते ॥ धर्मराज्यंवभूवाऽथप्रजाश्चसुखितास्तथा ॥ २३ ॥ पर्जन्यःकालवर्षीचधराधान्यगुणाऽऽवृता ॥ पादपाःफलपुष्पाढ्याबभूवुःसुखदाःसदा ॥ २४ ॥ गावश्चक्षीरसंपन्नाघटोध्नयःकामदानृणाम् ॥ नद्यःसुमार्गगाःस्वच्छाःशीतोदाःखगसंयुताः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणवेदतत्त्वाश्चयज्ञकर्मरतास्तथा ॥ क्षत्रियाधर्मसंयुक्तादानाऽध्ययनतत्पराः ॥ २६ ॥ शस्त्रविद्यारतानित्यंप्रजारक्षणतत्पराः ॥ न्यायदंडधराःसर्वेराजानः शमसंयुताः ॥ २७ ॥

उनको राज्य दे अपने अपने वाहनपर चढ़ स्वस्वस्थानको चले गये ॥ २२ ॥ हे महाराज ! देवताओंके चले जानेपर पृथ्वीमें धर्मानुसार राज्यपालन होने लगा. इसकारण प्रजा सुख व स्वच्छन्दतासे समय व्यतीत करने लगीं ॥ २३ ॥ उस समय मेघके यथासमयमें वर्षा करनेपर धरामंडल धनधान्यसे परिपूर्ण होगया और वृक्ष सब फलपुष्पसे परिपूर्ण होकर सदा सबके सुखदायक हुए ॥ २४ ॥ घटकी समान ऐनवाली गायें ऐसी दुग्धवती हुईं कि, मनुष्य इच्छानुसार दुहने लगे. नदियें स्वच्छ और शीतल जलसे पूर्ण होकर सुमार्गमें वहने लगीं और उनके चारोंओर खग आदि स्थिति करने लगे ॥ २५ ॥ ब्राह्मणलोग वेदतत्वपरायण होकर यज्ञकार्यमें निरत हुए और क्षत्रिय अपने धर्ममें तत्पर होकर दान और अध्ययनमें प्रवृत्त हुए ॥ २६ ॥ राजा न्याय दंडधारण करके प्रजाकी रक्षामें तत्पर हुए. हे राजन् !

इस समय राजा अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंमें रत होकर भी सभी शान्तिपरायण हुए ॥ २७ ॥ इसीप्रकार फिर जीवोंका परस्पर विरोध न हुआ, आकर (खानें) मनुष्योंको बहुत धन देने लगीं. गाय चरानेके सब स्थान गायोंके यूथोंसे पूर्ण होगये ॥ २८ ॥ हे नृपसत्तम ! इस समय धरातलस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी देवीके प्रति भक्तिपरायण हुए ॥ २९ ॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय इतने अधिक यज्ञ करने लगे कि, जिनसे पृथ्वीके सब स्थानोंमें ही मनोहर यज्ञयूप और यज्ञमण्डप विराजमान होने लगे ॥ ३० ॥ सब स्त्रियें सुशील और सत्यपरायण होकर पतिव्रताधर्मका अनुष्ठान करने लगीं. पुत्र धर्मनिष्ठ होकर पिताके प्रति भक्तिपरायण हुए ॥ ॥ ३१ ॥ पृथ्वीके सब स्थानोंसे ही नास्तिकता वा अधर्मका अनुष्ठान एकवारही दूर होगया. शुद्ध तर्क वितर्करहित होकर केवल वेदानुयायी शास्त्रका वादानुवाद

अविरोधस्तुभूतानांसर्वेषांसंवभूवह ॥ आकराधनदातॄणांव्रजागोयूथसंयुताः ॥ २८ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चनृपसत्तम॥देवीभक्तिपराःसर्वेसं बभूवुर्धरातले ॥ २९ ॥ सर्वत्रयज्ञयूपाश्चमंडपाश्चमनोहराः ॥मखैःपूर्णाधराश्चासन्ब्राह्मणैःक्षत्रियैःकृतैः ॥ ३० ॥ पतिव्रतधरानार्यःसुशीलाःसत्यसं युताः ॥ पितृभक्तिपराःपुत्राआसन्धर्मपरायणाः ॥ ३१ ॥ नपाखंडंनवाऽधर्मःकुत्राऽपिपृथिवीतले ॥ वेदवादाःशास्त्रवादानान्येवादास्तथाऽभवन् ॥ ॥ ३२ ॥ कलहोनैवकेषांचिन्नदैन्यंनाऽशुभामतिः ॥ सर्वत्रसुखिनोलोकाःकालेचमरणंतथा ॥ ३३ ॥ सुहृदांनवियोगश्चनापदश्चकदाचन ॥ नाऽना वृष्टिर्नदुर्भिक्षंनमारीदुःखदानृणाम् ॥ ३४ ॥ नरोगोनचमात्सर्यंनविरोधःपरस्परम् ॥ सर्वत्रसुखसंपन्नानरानार्यःसुखान्विताः ॥ ३५ ॥ क्रीडंतिमानवाः सर्वेस्वर्गेदेवगणाइव ॥ नचौरानैवपाखंडावंचकादंभकास्तथा ॥ ३६ ॥ पिशुनालंपटाःस्तब्धानवभूवुस्तदानृप ॥ नवेदद्वेषिणःपापामानवाःपृथिवीप ते ॥ ३७ ॥ सर्वधर्मरतानित्यंद्विजसेवापरायणाः ॥ त्रिधात्वात्सृष्टिधर्मस्यत्रिविधाब्राह्मणास्ततः ॥ ३८ ॥

होने लगा ॥ ३२ ॥ किसी पुरुषको किसीके संग कलहमति न रही. दीनता वा अशुभकार्यमें मति न रहनेसे संपूर्ण लोग सर्वत्र सुखपूर्वक वास करने लगे. तिसकाल अकालमृत्यु न होनेसे ॥ ३३ ॥ कभी किसीको सुहृद्गणोंसे वियोग और आपदा उपस्थित न हुई. अनावृष्टि, दुर्भिक्ष वा मनुष्योंको क्लेशदायक मारीभय न रहा ॥ ॥ ३४ ॥ अधिक क्या किसी जीवके रोगपर्यन्त भी दिखाई नहीं देता था. परस्पर विरोध वा मात्सर्यभाव दूर हुआ नर नारी परस्पर सुखपूर्वक स्थित थे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! स्वर्गस्थ देवताओंकी समान नर, नारी परमसुखपूर्वक क्रीड़ा करने लगे अधिक क्या उस समय चोर, पाखंड, वंचक, दाम्भिक ॥ ३६ ॥ खल, लम्पट चुगल, जड़, वेदविद्वेषी, पापपरायण मनुष्य कोई नहीं था ॥ ३७ ॥ हे पृथ्वीपते ! उसकाल सब मनुष्यही धर्ममें अतिअनुरक्त होकर सदा ब्राह्मणोंकी सेवामें

तत्पर रहे सृष्टिधर्मके त्रिविध होनेसे सब ब्राह्मण भी तीन प्रकारके हैं ॥ ३८ ॥ वे सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे त्रिविध हैं, सात्विक ब्राह्मण वेदवित् दक्ष और सत्यव्यवहारमें निरत हैं ॥ ३९ ॥ वे दयावान्, चतुर और किसीके निकटसे कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते वे धर्ममें तत्पर होकर सात्विक अन्न द्वारा ॥ ४० ॥ पुरोडाश विधानसे यज्ञ करते हैं, किन्तु पशुद्वारा कभी यज्ञ नहीं करते. हे नरपाल! जो सात्विक ब्राह्मण हैं वे दान, अध्ययन और यजन ॥ ४१ ॥ इन तीन कार्योंमें निरत हैं राजसी ब्राह्मण वेदविद् और क्षत्रियोंके पुरोहित होकर ॥ ४२ ॥ विधिपूर्वक मांसभक्षण करते हैं. वे यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह ॥ ४३ ॥ अध्ययन और वेदका अध्यापन इन छेः कार्योंमें निरत हैं. तामस ब्राह्मण क्रोध राग और द्वेषपरायण होते हैं ॥ ४४ ॥ वे किंचिन्मात्र वेदाध्ययन करके सदा राजाओंके कार्य करते

सात्त्विकाराजसाश्चैवतामसाश्चतथापरे ॥ सर्वेवेदविदोदक्षाःसात्त्विकाःसत्त्ववृत्तयः ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रहविहीनाश्चदयादमपरायणाः ॥ यज्ञांस्तेसात्त्विकैरन्नैः कुर्वाणाधर्मतत्पराः ॥ ४० ॥ पुरोडाशविधानैश्चपशुभिर्नकदाचन ॥ दानमध्ययनंचैवयजनंतुतृतीयकम् ॥ ४१ ॥ त्रिकर्मरसिकास्तेवैसात्त्विकाब्राह्मणा नृप ॥ राजसावेदविद्वांसःक्षत्रियाणांपुरोहिताः ॥ ४२ ॥ षट्कर्मनिरताःसर्वेविधिवन्मांसभक्षकाः ॥ यजनंयाजनंदानंतथैवचप्रतिग्रहः ॥ ४३ ॥ अध्ययनंतुवेदानांतथैवाऽध्यापनंतुषट् ॥ तामसाःक्रोधसंयुक्तारागद्वेषपराःपुनः ॥ ४४ ॥ राज्ञांकर्मकरानित्यंकिंचिदध्ययनेरताः ॥ महिषेनिहतेसर्वे सुखिनोवेदतत्पराः ॥ ४५ ॥ बभूवुर्व्रतनिष्णातादानधर्मपरास्तथा ॥ क्षत्रियाःपालनेयुक्तावैश्यावणिजवृत्तयः ॥४६॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदवृत्तयः परे ॥ एवंप्रमुदितोलोकोमहिषेविनिपातिते ॥ ४७ ॥ अनुद्वेगःप्रजानांवैसंबभूवधनाऽऽगमः ॥ बहुक्षीराःशुभागावोनद्यश्चैवबहूदकाः ॥ ४८ ॥ वृक्षाब हुफलाश्चाऽऽसन्मानवारोगवर्जिताः ॥ नाऽऽधयोनेतयःक्वाऽपिप्रजानांदुःखदायकाः ॥ ४९ ॥

हैं. हे महाराज! महिषासुरके मरनेपर सब ब्राह्मणही सुखी वेदशास्त्रानुसारी ॥ ४५ ॥ और व्रतपरायण होकर दानधर्मका अनुष्ठान करने लगे. क्षत्रियलोग प्रजा पालन, वैश्यगण वणिग्वृत्ति ॥ ४६ ॥ और अपर जातिके लोग खेती, वाणिज्य; गौरक्षा और कुसीद (व्याज) व्यवहार करने लगे. महिषासुरके मारे जानेपर मनुष्य इसप्रकार संतुष्टचित्त हुए थे ॥ ४७ ॥ तब प्रजालोग निरुद्वेग होकर धन संचय करने लगे. संपूर्ण गाय सुलक्षण युक्त और बहुदुग्धवती हुई ॥ ४८ ॥ सब नदियें जलपूर्ण वृक्ष अनेक फलोंसे शोभायमान और मनुष्य रोगरहित हुए. उस समय किसी मनुष्य मानसिक क्लेश और बहुकष्टदायक अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभ,

मूषिक, खग और राजविद्रोह कुछ वर्त्तमान नहीं था ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! उस समय प्राणी कालमेंही अकालकवलित न हुए, बरन् सदा निरोगी रहकर सब विभवके अधिकारी होने लगे. विशेष करके सब कोई निगमविहित धर्ममें तत्पर होकर चण्डिकाके चरणकमलोंकी सेवामें एकाग्र चित्त होकर समय व्यतीत करने लगे ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जिनके सुननेसे प्राणियोंके सब पाप नष्ट होकर सुख प्राप्त होता है मैं देवीके वही पवित्र चरित्र वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १ ॥ पूर्वकालमें शुंभ और निशुम्भ नामक असुरप्रवर महावीर दो भाई थे, वह अतिशय वीर्यवान् और पुरुषसे अवध्य थे ॥ २ ॥ यह दुराचारी दोनों असुर असंख्य दानवदलसे परिवृत होनेसे अत्यन्त मदोन्मत्त होगये थे. इस कारण असीम सैन्यदलसहित

ननिधनमुपयांतिप्राणिनस्तेऽप्यकालेसकलविभवयुक्तारोगहीनाःसदैव ॥ निगमविहितधर्मैतत्पराश्चंडिकायाश्चरणसरसिजानांसेवनेदत्तचित्ताः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिदेव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ सुखदंसर्वजंतूनां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यथाशुंभोनिशुंभश्चभ्रातरौबलवत्तरौ ॥ बभूवतुर्महावीरावबध्यौपुरुषैःकिल ॥ २ ॥ बहुसेनावृतौशूरौदेवानांदुःखदौसदा ॥ दुराचारौमदोत्सिक्तौबहुदानवसंयुतौ ॥ ३ ॥ हतावंबिकयातौतुसंग्रामेऽतीवदारुणे ॥ देवानांचहितार्थायसर्वैःपरिचरैःसह ॥ ४ ॥ चंडमुंडौमहाबाहूर क्तबीजोऽतिदारुणः ॥ धूम्रलोचननामाचनिहतास्तेरणांगणे ॥ ५ ॥ तान्निहत्यसुराणांसाजहारभयमुत्तमम् ॥ स्तुतासंपूजितादेवैर्गिरौहेमाऽचलेशुभे ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ कावेतावसुरावादौकथंतौबलिनांवरौ ॥ केनवास्थापितौचेहस्त्रीवध्यत्वंकुतोगतौ ॥ ७ ॥ तपसावरदानेनकस्यजातौमहाबलौ ॥ कथंच निहतौसर्वंकथयस्वसविस्तरम् ॥ ८ ॥

देवताओंको सदाही क्लेश देते ॥ ३ ॥ तब अम्बिका देवीने देवताओंके हितकी कामनासे अत्यन्त दारुण संग्राममें सब अनुचरोंके सहित उस शुम्भ और निशुम्भको मारा था ॥ ४ ॥ रणस्थलमें उनके प्रधान सहचर महाबाहु चण्ड, मुण्ड, अत्यन्त भयंकर रक्तबीज और धूम्रलोचनकोभी विनाश किया था ॥ ५ ॥ देवीके द्वारा उन सब दानवोंके मरनेपर देवताओंका भय दूर हुआ था. तब देवताओंने शोभायमान सुमेरुपर्वतमें जाकर उनका स्तव और पूजा की थी ॥ ६ ॥ जनमेजयने शुम्भ और निशुम्भकी कथा सुनकर पूँछा हे मुनिवर ! वे दोनों असुर कौन थे? किसप्रकार अद्वितीय बलवान् हुये थे किस पुरुषने इनको यहां स्थापित किया? किस कारणसे स्त्रीवध्य हुए ॥ ७ ॥ किसकी तपस्या और वरके प्रभावसे वे महाबलशाली हुए ? किसनिमित्त देवी भगवतीने इनको मारा ? आप इस सब वृत्तान्तको मुझसे विस्तार

पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवीके पवित्र चरित्र युक्त मनोहर उपाख्यान वर्णन करता हूं, सुनो इस मंगलमय पवित्र कथाके सुननेसे संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं और सब अभिलषित फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ पूर्वकालमें शुंभ और निशुंभ नामक दोनों भाई पातालसे भूमण्डलपर आये थे ॥ १० ॥ अनन्तर वे दोनों असुर यौवनकाल प्राप्त होनेपर भुवनमें परम पवित्र पुष्कर तीर्थमें अन्न और जल त्याग कठिन तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ११ ॥ उन्होंने योगविद्यामें ऐसी निपुणता लाभ की थी कि, एक स्थानमें ही एकासनपर अयुतवर्ष पर्यन्त दुश्चर तपस्या की ॥ १२ ॥ तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी उनकी तपस्यासे संतुष्ट हो हंसकी पीठपर चढ़कर उस स्थानमें आये ॥ १३ ॥ विधाताने उनको ध्यानमें मग्न देखकर कहा कि, मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुआ हूं अतएव तुम

व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्यांसर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ देव्याश्चरितसंयुक्तांसर्वार्थफलदांशुभाम् ॥९॥ पुराशुंभनिशुंभौद्वावसुरौभूमिमंडले ॥ पातालतश्चसंप्राप्तौभ्रातरौशुभदर्शनौ ॥१०॥ तौप्राप्तयौवनौचैवचेरतुस्तपउत्तमम् ॥ अन्नोदकंपरित्यज्यपुष्करेलोकपावने ॥ ११ ॥ वर्षाणामयुतंयावद्योगविद्यापरायणौ॥एकत्रैवाऽऽसनंकृत्वातेपातेपरमंतपः॥१२॥ तयोस्तुष्टोऽभवद्ब्रह्मासर्वलोकपितामहः ॥ तत्राऽऽगतश्चभगवानारुह्यवरटापतिम्॥१३॥तावुभौचजगत्स्रष्टादृष्ट्वाध्यानपरौस्थितौ ॥ उत्तिष्ठतंमहाभागौतुष्टोऽहंतपसाकिल ॥१४॥ वांछितंवावरंकामंददामिब्रुवतामिह ॥ कामदोऽहंसमायातोदृष्ट्वावांतपसोबलम् ॥ १५ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यप्रबुद्धौतौसमाहितौ ॥ प्रदक्षिणक्रियांकृत्वाप्रणामंचक्रतुस्तदा ॥१६॥ दंडवत्प्राणिपातंचकृत्वातौदुर्बलाकृती ॥ ऊचतुर्मधुरांवाचंदीनौगद्गदयागिरा ॥ १७ ॥ देवदेवदयासिंधोभक्तानामभयप्रद ॥ अमरत्वंचनौब्रह्मन्देहितुष्टोऽसिचेद्विभो ॥१८॥

उठो ॥ १४ ॥ मैं सब लोकोंकी मनोकामना पूर्ण करता हूं इस समय तुम्हारा तपोबल देखनेसे संतुष्ट होकर यहां आया हूं तुम मुझसे अभिलषित वर मांगो मैं वही तुमको दूंगा ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुंभ और निशुंभ पितामहके इसप्रकार वचन सुनकर ध्यानसे निवृत्त हुए और उन्होंने समाहितचित्तसे उनकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया ॥ १६ ॥ तपस्याके क्लेशसे क्षीणकलेवर दीन दोनों असुर दण्डकी समान प्रणाम करके गद्गदस्वर मधुरवचनसे कहने लगे ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप भक्तोंको अभयप्रद देवताओंकेभी देवता और विशेष कर दयाके सागर हैं आप इच्छानुसार सबही करसक्ते हैं. अतएव आप यदि हमारे प्रति संतुष्ट हुए हैं

तो हमको अमर होनेका वर दीजिये ॥ १८ ॥ पृथ्वीमें मरनेके अतिरिक्त गुरुतर दूसरा कोई भय नहीं है. अतएव हम उस महाभयसे डरकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ १९ ॥ हेविश्वात्मन्! आप क्षमागुणके आधार, देवताओंके भी ईश्वर और विशेषकर जगत्के निर्माता हैं. अतएव मरणजनित भयनिवारण करके हमको अभय प्रदान कीजिये ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा क्या तुम्हारा यही प्रार्थनीय है ? यह तो सब प्रकारसे विपरीत बोधहोता है. क्योंकि यह त्रिभुवनमें कोई किसीको नहीं देसक्ता ॥ २१ ॥ जन्म लेने पर अवश्यही मृत्यु है और मृत्यु होनेपर अवश्यही जन्म होगा. यह नियम विश्वनियन्ताने पूर्वकालके समय इस लोकमें स्थापन किया है ॥ २२ ॥ अतएव सब प्राणी अवश्यही मरेंगे इसमें कुछ संशय नहीं है. इसलिये तुम दूसरा कोई वर मांगो मैं वह दूंगा ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! दोनों दानव ब्रह्माके इसप्रकार वचन सुन

मरणादपरंकिंचिद्भयंनाऽस्तिधरातले ॥ तस्माद्भयाच्चसंत्रस्तौयुष्माकंशरणंगतौ ॥ १९ ॥ त्राहित्वंदेवदेवेशजगत्कर्तःक्षमानिधे ॥ परिस्फोटयविश्वात्मन्नद्योमरणजंभयम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमिदंप्रार्थनीयंवोविपरीतंतुसर्वथा ॥ अदेयंसर्वथासर्वैःसर्वेभ्योभुवनत्रये ॥ २१ ॥ जातस्यहिध्रुवंमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥ मर्यादाविहितालोकेपूर्वंविश्वकृताकिल ॥ २२ ॥ नर्तव्यंसर्वथासर्वैःप्राणिभिर्नात्रसंशयः ॥ अन्यंप्रार्थयतंकामंददामियच्चवांछितम् ॥ ॥२३॥ व्यासउवाच ॥ तदाकर्ण्यवचस्तस्यसुविमृश्यचदानवौ ॥ ऊचतुःप्रणिपत्याऽथब्रह्माणंपुरतःस्थितम् ॥२४॥ पुरुषैरमराद्यैश्चमानवैर्मृगपक्षिभिः ॥ अवध्यत्वंकृपासिंधोदेहिनौवांछितंवरम् ॥ २५ ॥ नारीबलवतीकाऽस्तियानौनाशंकरिष्यति ॥ नबिभीवःस्त्रियःकामंत्रैलोक्येसचराचरे ॥ २६ ॥ अवध्यौभ्रातरौस्यातांनरेभ्यःपंकजोद्भव ॥ भयंनस्त्रीजनेभ्यश्चस्वभावादबलाहिसा ॥ २७ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिश्रुत्वात्तयोर्वाक्यंप्रददौवांछितंवरम् ॥ ब्रह्माप्रसन्नमनसाजगामाथस्वमालयम् ॥ २८ ॥ गतेऽथभवनेतस्मिन्दानवौस्वगृहंगतौ ॥ भृगुंपुरोहितंकृत्वाचक्रतुःपूजनंतदा ॥ २९ ॥

कर विशेष विचारपूर्वक सन्मुख स्थित प्रजापतिको प्रणाम करके कहने लगे ॥ २४ ॥ हे दयामय ! अमरसे मनुष्य और मृग पक्षी पर्यन्त जितने पुरुष हैं हम उन सबसे अवध्य हों यही हमारी अभिलाषा है अतएव आप हमको यही वर दीजिये ॥ ॥ २५ ॥ हमारा विनाश करसके ऐसी बलवती नारी कौन है ? हम सचराचर त्रैलोक्यमें स्त्रियोंसे कभी भय नहीं करते ॥ २६ ॥ हे कमलयोने ! हम दोनों भाई पुरुषसे अवध्य हों स्त्रियें स्वभावसेही अबला हैं अतएव स्त्रियोंसे हमको कोई भयका कारण नहीं है ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उनके इसप्रकार वचन सुन पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हृदयसे उनको अभिलषित वर देकर अपने स्थानको चले गये ॥ २८ ॥ ब्रह्माजीके निजगृह चलेजानेपर वे दोनों असुरभी घर गये तब वह दैत्यगुरु भृगुमुनिको पुरोहित करके उनकी पूजा करने लगे ॥ २९ ॥

मुनिवर भृगुने शुभदिन और शुभनक्षत्रमें स्वर्णमय सुन्दर मनोहर सिंहासन निर्माण कराकर राज्यकेलिये प्रदान किया ॥ ३० ॥ शुम्भके ज्येष्ठ होनेसे उसकोही राज्यासन प्रदान किया तब असुरवर शुम्भकी सेवा करनेको प्रधान बलशाली असुर शीघ्र उसके निकट उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ बलदर्पित महावीर चंड मुंड नामक दोनों भाई रथ अश्व और गजसमाकुल सैन्यमें परिवृत होकर उसके समीप आये ॥ ३२ ॥ इसीप्रकार प्रचंड पराक्रमशाली धूम्रलोचन नामक असुर शुंभका राजा होना सुन अपनी सेनासहित उसके समीप आया ॥ ३३ ॥ इसी समय वरप्राप्तिके कारण अत्यन्त बलशाली महावीर रक्तबीजनामक असुरभी दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर उसके संग मिलित हुआ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस रक्तबीजकी दुर्जयताका एक प्रधान कारण था वह सुनो ! इस असुरके शस्त्रद्वारा आहत

शुभेदिनेसुनक्षत्रेजातरूपमयंशुभम् ॥ कृत्वासिंहासनंदिव्यंराज्यार्थंप्रददौमुनिः ॥ ३० ॥ शुंभायज्येष्ठभूतायददौराज्यासनंशुभम् ॥ सेवनार्थं तदेवाशुसंप्राप्तादानवोत्तमाः ॥ ३१ ॥ चंडमुंडौमहावीरौभ्रातरौबलदर्पितौ ॥ संप्राप्तौसैन्यसंयुक्तौरथवाजिगजान्वितौ ॥ ३२ ॥ धूम्रलोचननामाचतद्रूपश्चंडविक्रमः ॥ शुंभंचभूपतिंश्रुत्वातदाऽगाद्बलसंयुतः ॥३३॥ रक्तबीजस्तथाशूरोवरदानबलाधिकः ॥ अक्षौहिणीभ्यांसंयुक्तस्तत्रैवागत्यसंगतः ॥ ३४ ॥ तस्यैकंकारणंराजन्संग्रामेयुध्यतःसदा ॥ देहाद्रुधिरसंपातस्तस्यशस्त्राहतस्यच ॥ ३५ ॥ जायतेचयदाभूमावुत्पद्यंतेह्यनेकशः ॥ तादृशाःपुरुषाःक्रूरावहवःशस्त्रपाणयः ॥ ३६ ॥ संभवंतितदाकारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ युद्धंपुनस्तेकुर्वंतिपुरुषारक्तसंभवाः ॥३७॥ अतःसोऽपिमहावीर्यःसंग्रामेऽतीवदुर्जयः ॥ अवध्यःसर्वभूतानांरक्तबीजोमहासुरः ॥ ३८ ॥ अन्येचवहवःशूराश्चतुरंगसमन्विताः ॥ शुंभंचनृपतिंमत्वाबभूवुस्तस्यसेवकाः ॥ ३९ ॥ असंख्यातातदाजातासेनाशुंभनिशुंभयोः ॥ पृथिव्याःसकलंराज्यंगृहीतंबलवत्तया ॥ ४० ॥ सेनायोगंतदाकृत्वानिशुंभःपरवीरहा ॥ जगामतरसास्वर्गंशचीपतिजयायच ॥ ४१ ॥ चकाराऽसौमहायुद्धंलोकपालैःसमंततः ॥ वृत्रहावज्रपातेनताडयामासवक्षसि ॥ ४२ ॥

होनेपर इसके शरीरसे पृथ्वीमें जब रुधिरकी बूंदें गिरती ॥ ३५ ॥ उसी समय उसकी समान क्रूरस्वभाव शस्त्रपाणि असंख्य असुर उत्पन्न होते ॥ ३६ ॥ वे रुधिरसे उत्पन्न हुए असुरगण उसीकी समान आकृतिसंपन्न और पराक्रमशाली होते और उत्पन्न होतेही फिर युद्ध करते ॥ ३७ ॥ इसकारणही वह महावीर्य महासुर रक्तबीज संग्राममें नितान्त अजेय और सब प्राणियोंसे अवध्य हुआ ॥ ३८ ॥ अन्यान्य असुर भी तिस समय शुंभको नृपति जानकर चतुरंग सेना सहित वहां आनकर उसके भृत्य हुए ॥ ३९ ॥ तब शुंभ और निशुंभकी सेना अगणित होगई. अतएव पृथ्वीमें जितने राजा थे उन्होंने बलपूर्वक सबको ग्रहण किया ॥ ४० ॥ इसी समय शत्रुहन्ता निशुंभ शचीपतिका पराजय करनेकी इच्छासे बहुतसी सेनाको संग ले सहसा स्वर्गमें गया ॥ ४१ ॥ निशुंभ लोकपालोंके सहित

चारोंओर भयंकर युद्ध करने लगा. उस संग्रामके समय शचीपति इन्द्रने उसके वक्षस्थलमें वज्रप्रहार किया ॥ ४२ ॥ वह दानवराजानुज वज्रप्रहारसे आहत होकर भूमिमें गिरगया, तब उसकी सेना रणमें पराजित होकर भागने लगी ॥ ४३ ॥ शत्रुबलविनाशक शुम्भ भ्राताकी मूर्च्छाका वृत्तान्त सुनतेही संग्रामस्थलमें उप स्थित हो बाणोंसे सब देवताओंको प्रहार करने लगा ॥ ४४ ॥ अक्लिष्टकर्मा शुंभने ऐसा महाघोर संग्राम किया कि, जिससे इन्द्र इत्यादि सब देवता और दि क्पालगण पराजित हुए ॥ ४५ ॥ तब कल्पवृक्ष और कामधेनु इत्यादि इन्द्रका जिन सब श्रेष्ठ वस्तुओंके ऊपर अधिकार था शुंभने बलपूर्वक वह सब वस्तु ग्रहण करीं ॥ ४६ ॥ अधिक क्या उस महात्मा असुरने त्रैलोक्यराज्य और सब यज्ञभागहरण किया असुरप्रवर नन्दनकाननमें पहुँच अत्यन्तही आनन्द प्राप्त कर ॥

सवज्राऽभिहतोभूमौपपातदानवाऽनुजः ॥ भग्नंबलंतदातस्यनिशुंभस्यमहात्मनः ॥ ४३ ॥ भ्रातरंमूर्च्छितंश्रुत्वाशुंभःपरबलार्दनः ॥ तत्राऽऽगत्यसुरान्सर्वा स्ताडयामाससायकैः ॥४४॥ कृतंयुद्धंमहत्तेनशुंभेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ निर्जितास्तुसुराःसर्वेसेंद्राःपालाश्चसर्वशः ॥४५॥ ऐंद्रंपदंतदातेनगृहीतंबलवत्तया ॥ कल्पपादपसंयुक्तंकामधेनुसमन्वितम् ॥४६॥ त्रैलोक्यंयज्ञभागाश्चहृतास्तेनमहात्मना ॥ नंदनंचवनंप्राप्यमुदितोभून्महासुरः ॥ ४७ ॥ सुधायाश्चैवपाने नसुखमापमहाऽसुरः ॥ कुबेरंसचनिर्जित्यतस्यराज्यंचकारह ॥ ४८ ॥ अधिकारंतथाभानोःशशिनश्चचकारह ॥ यमंचैवविनिर्जित्यजग्राहतत्पदंतथा ॥ ४९ ॥ वरुणस्यतथाराज्यंचकारवह्निकर्मच ॥ वायोःकार्यंनिशुंभश्चचकारस्वबलान्वितः ॥५० ॥ ततोदेवाविनिर्धूताहृतराज्याहृतश्रियः ॥ संत्यज्यनं दनंसर्वेनिर्ययुर्गिरिगह्वरे ॥ ५१ ॥ हृताधिकारास्तेसर्वेबभ्रमुर्विजनेवने ॥ निरालंबानिराधारानिस्तेजस्कानिरायुधाः ॥ ५२ ॥ विचेरुरमराःसर्वे पर्वतानांगुहासुच ॥ उद्यानेषुचशून्येषुनदीनांगह्वरेषुच ॥ ५३ ॥

॥ ४७ ॥ सुधापानसे परमसुखका अनुभव करने लगा. फिर दानववर कुबेरको रणमें पराजय कर उनका राज्य ग्रहणपूर्वक शासन करने लगा ॥ ४८ ॥ चन्द्र सूर्य और यमको पराजित करके उनके पदमें अधिकार किया ॥ ४९ ॥ निशुंभ अपने बलसे परिवृत हो वरुण, अनल और वायुका राज्य ग्रहणकर उनका कार्य करने लगा ॥ ५० ॥ तब राज्यभ्रष्ट और श्रीभ्रष्ट होनेसे देवता त्रसित हो नंदन वन छोड़ पर्वतकी गुहामें भाग गये ॥ ५१ ॥ समस्त अधिकारके छीन जानेपर वे सब आयुधविहीन तेजविहीन आलयविहीन और स्थानभ्रष्ट होकर निर्जन वनमें विचरण करने लगे ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! लोकपाल देवता व्याकुल हृदयसे

जनशून्य स्थानमें, पर्वत, गुहा और नदी इत्यादि स्थानोंमें विचरण करने लगे ॥ ५३ ॥ किन्तु स्थानभ्रष्ट होनेसे कहीं भी सुख न मिला. क्योंकि सुख तो सदा दैवके अधीन है ॥ ५४ ॥ हे नरनाथ! जो बड़े ज्ञानी हैं, जिनके बल और धन हैं, वे महाभाग पुरुष भी कालके वश होकर दुःख और दरिद्रताको प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥ हे महाराज! कालकी क्या विचित्र गति है? काल राजाको भिक्षुक, दाताको याचक, बलवानको दुर्बल, पण्डितको मूर्ख और शूरको अत्यन्त कातर करदेता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे महाराज! वासव इन्द्रने शत अश्वमेध यज्ञ कर उत्तम सिंहासनके पानेपरभी फिर बहुत दुःख पाया. अतएव कालकी गति ऐसीही जाननी चाहिये ॥ ५८ ॥ कालही पुरुषको ज्ञानरत्नप्रदान करके धर्मिष्ठ करता है और फिर कालही उसको ज्ञानरत्नसे वंचित करके पापिष्ठ

नप्रापुस्तेसुखंक्काऽपिस्थानभ्रष्टाविचेतसः ॥ लोकपालामहाराजदैवाधीनंसुखंकिल ॥ ५४ ॥ बलवंतोमहाभागावहुज्ञाधनसंयुताः ॥ कालदुःखंतथादैन्यमाप्नुवंतिनराऽधिप ॥ ५५ ॥ चित्रमेतन्महाराजकालस्यैवविचेष्टितम् ॥ यःकरोतिनरंतावद्राजानंभिक्षुकंततः ॥ ५६ ॥ दातारं याचकंचैवबलवंतंतथाबलम् ॥ पंडितंविकलंकामंशूरंचाऽतीवकातरम् ॥ ५७ ॥ मखानांचशतंकृत्वाप्राप्येंद्रासनमुत्तमम् ॥ पुनर्दुःखंपरंप्राप्तं कालस्यगतिरीदृशी ॥ ५८ ॥ कालःकरोतिधर्मिष्ठंपुरुषंज्ञानसंयुतम् ॥ तमेवाऽतीवपापिष्ठंज्ञानलेशविवर्जितम् ॥ ५९ ॥ नविस्मयोऽत्रकर्तव्यःसर्वथा कालचेष्टिते ॥ ब्रह्मविष्णुहरादीनामपीदृक्कष्टचेष्टितम् ॥ ६० ॥ विष्णुर्जननमाप्नोतिसूकरादिषुयोनिषु ॥ हरःकपालीसंजातःकालेनैवबलीयसा ॥६१॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेभगवतीमाहात्म्येएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ पराजिताःसुराःसर्वेराज्यंशुंभः शशासह ॥ एवंवर्षसहस्रंतुजगामनृपसत्तम ॥ १ ॥ भ्रष्टराज्यास्ततोदेवाश्चिंतामापुःसुदुस्तराम् ॥ गुरुंदुःखातुरास्तेतुपप्रच्छुरिदमादृताः ॥ २ ॥

कर देता है ॥ ५९ ॥ भगवान् विष्णुने बलवान् कालके वशीभूत होकर शूकर इत्यादि नीचयोनिमें जन्म ग्रहण किया और महादेवजीने भी जिसका स्पर्श नहीं करना चाहिये, ऐसा नरकपाल धारण किया. जब कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इत्यादिको भी ऐसे कष्टकर कार्य करने पडे तो कालके इन सब कार्योंमें किसी प्रकार अचंभा करना उचित नहीं है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ व्यासजी बोले हे नृपसत्तम! जब संपूर्ण देवता पराजित होगये तब शुंभ उनके सब राज्यका शासन करने लगा. इसप्रकार हजार वर्ष बीत गये ॥ १ ॥ तब देवता राज्यभ्रष्ट होनेके कारण अतीव दुस्तर चिन्तासागरमें निमग्न हुए अन्तमें दुःखसे अत्यन्त कातर हो आदरसहित अपने गुरु बृहस्पतिजीसे पूँछने लगे ॥ २ ॥ हे गुरो!

आप मुनियोंमें अग्रणी और विशेषकर सर्वज्ञ हैं. अतएव इस समय हमको क्या करनाचाहिये? हे महाराज! उपस्थित महादुःखनिवारणका यदि कोई उपाय हो तो आप उसको कहिये॥ ३॥ हजारों वेदमंत्र हैं, किन्तु वे सब यथाविधि अनुष्ठानसापेक्ष हैं, यदि वे सूत्रद्वारा भलीभाँति लक्षित हों तो वांछित फलप्रदान करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४॥ हे मुनिवर! संपूर्ण मनोवांछित प्रदान करें, ऐसे अनेक यज्ञोंका विषय वेदमें कहा है. आप निःसन्देह वह सब कार्य जानते हैं, अतएव उन सब यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये ॥ ५ ॥ वेदमें शत्रुविनाशके लिये जिसप्रकारकी विधि निर्दिष्ट हुई है. आप उसी विधिके अनुसार कार्य कीजिये, हे आङ्गिरस! जिससे शीघ्र हमारा क्लेश नष्ट हो॥ ६॥ आप दानवोंको मारनेके लिये ज्ञानानुसार वैसेही अभिचार क्रियाका अनुष्ठान कीजिये जिससे दुःखका नाश हो ॥ ७ ॥ बृहस्पतिजी बोले हे सुराधिप! वेदोक्त समस्त मंत्र दैवके अधीन होकरही फलप्रदान करते हैं. कुछ वह स्वाभाविक फलप्रद नहीं हैं, केवल नियममें बाध्यहोनेके कारणही फल देते हैं ॥ ८ ॥ तुम्हीं

किंकर्तव्यंगुरोब्रूहिसर्वज्ञस्त्वंमहामुनिः ॥ उपायोऽस्तिमहाभागदुःखस्यविनिवृत्तये॥३॥उपचारपरानूनंवेदमंत्राःसहस्रशः॥वांछितार्थकरानूनंसूत्रैःसंलक्षिताःकिल ॥ ४ ॥ इष्टयोविविधाःप्रोक्ताःसर्वकामफलप्रदाः ॥ ताःकुरुष्वमुनेनूनंत्वंजानासिचतत्क्रियाः ॥ ५ ॥ विधिःशत्रुविनाशाययथोद्दिष्टःसदागमे ॥ तंकुरुष्वाऽद्यविधिवद्यथानोदुःखसंक्षयः ॥ ६ ॥ भवेदांगिरसाऽद्यैवतथात्वंकर्तुमर्हसि ॥ दानवानांविनाशायअभिचारंयथामति ॥७॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ सर्वेमंत्राश्चवेदोक्तादैवाधीनफलाश्चते ॥ नस्वतंत्राःसुराधीशतथैकांतफलप्रदाः ॥ ८ ॥ मंत्राणांदेवतायूयंतेतुदुःखैकभाजनम् ॥ जाताःस्मकालयोगेन किंकरोमिप्रसाधनम् ॥ ९ ॥ इंद्राग्निवरुणादीनांयजनंयज्ञकर्मसु ॥ तेयूयंविपदंप्राप्ताःकरिष्यंतिकिमिष्टयः ॥ १० ॥ अवश्यंभाविभावानांप्रतीकारोनविद्यते ॥ उपायस्त्वथकर्तव्यइतिशिष्टानुशासनम् ॥ ११ ॥ दैवंहिबलवत्केचित्प्रवदंतिमनीषिणः ॥ उपायवादिनोदैवंप्रवदंतिनिरर्थकम् ॥ १२ ॥ दैवं चैवाऽप्युपायश्चद्वावेवाऽभिमतौनृणाम् ॥ केवलंदैवमाश्रित्यनस्थातव्यंकदाचन ॥ १३ ॥

सब मंत्रोंकी अधिष्ठात्री देवता हो, किन्तु कालके वशीभूत होकर इस समय तुम्हीं एकमात्र दुःखके भाजन हुए हो. अतएव मैं इसमें क्या उपाय करूं? ॥ ९ ॥ देखो, यज्ञकार्यमें इन्द्र, अग्नि और वरुण इत्यादि देवताओंका यजन होता है, किन्तु तुम्हीं सब महाविपदमें पड़े हो सुतरां फिर सब यज्ञ क्या करेंगे? ॥ १० ॥ अतएव जिन सब कार्योंमें अवश्यंभावित्व विद्यमानहैं, उनका प्रतीकार नहीं है. किन्तु शिष्ट पुरुषोंने अनुशासन किया है कि, ऐसे स्थलमें उपायका अवलम्बन करना चाहिये ॥ ११ ॥ कोई कोई पण्डित कहते हैं कि, दैवही बलवान् है, किन्तु उपायवादी लोग कहते हैं कि, दैव अनर्थक है, उपाय वा पुरुषार्थसेही सब कार्य सिद्ध होसक्ते हैं ॥ १२॥ किन्तु हे सुरराज! जीवोंको दैव और उपाय, इन दोनोंका अवलम्बन करना चाहिये. केवल दैवको आश्रय करके रहना कभी उचित नहीं है ॥ १३॥

अतएव अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करके भलीभाँति उपाय करना चाहिये. हे देवताओ ! मैं वारंवार विशेष विचारपूर्वक तुमसे कहता हूं, सुनो. ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें भगवतीने प्रसन्न होकर महिषासुरका वध किया था. तिसकाल जब तुमने देवीका स्तव किया. तब उन्होंने प्रसन्न होकर वर दिया था, ॥ १५ ॥ कि तुम्हारे स्मरण करते ही मैं सर्वकाल तुम्हारी आपदा नष्ट करूंगी ! हेदेवताओ ! जिस जिस समय तुमको दैवजनित कोई विपद उपस्थित हो ॥ १६ ॥ तब तुम अवश्यही मेरा स्मरण करना तो मैं तुम्हारा परम विपत्सागरसे उद्धार करूंगी ॥ १७ ॥ इसकारण तुम परमपवित्र, अतिमनोहर हिमालयपर्वतमें जाकर प्रीति सहित परमाराध्य चण्डिका देवीकी उपासना करो ॥ १८ ॥ तुम मायाबीजके विधानको जानकर उसके पुरश्चरणमें प्रवृत्त होओ मैं योगबलसे जानता हूं कि, वह

उपायःसर्वथाकार्योविचार्यस्वधियापुनः ॥ तस्माद्ब्रवीमिवःसर्वान्संविचार्यपुनःपुनः ॥ १४ ॥ पुराभगवतीतुष्टाजघानमहिषासुरम् ॥ युष्माभिस्तुस्तु तादेवीवरदानंददावथ ॥ १५ ॥ आपदंनाशयिष्यामिसंस्मृतावःसदैवहि ॥ यदायदावोदेवेशाआपदोदैवसंभवाः ॥ १६ ॥ प्रभवंतितदाकामंस्मर्तव्या हंसुरैःसदा ॥ स्मृताहंनाशयिष्यामियुष्माकंपरमापदः ॥ १७ ॥ तस्माद्धिमाचलेगत्वापर्वतेसुमनोहरे ॥ आराधनंचंडिकायाःकुरुध्वंप्रेमपूर्वकम् ॥ ॥ १८ ॥ मायाबीजविधानज्ञास्तत्पुरश्चरणेरताः ॥ जानाम्यहंयोगबलात्प्रसन्नासाभविष्यति ॥ १९ ॥ दुःखस्यांतोऽद्ययुष्माकंदृश्यतेनाऽत्रसंशयः ॥ त स्मिञ्छैलेसदादेवीतिष्ठतीतिमयाश्रुतम् ॥ २० ॥ स्तुतासंपूजितासद्योवांछितार्थान्प्रदास्यति ॥ निश्चयंपरमंकृत्वागच्छध्वंवैहिमालयम् ॥ २१ ॥ सुराःस र्वाणिकार्याणिसावःकामंविधास्यति ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादेवास्तेप्रययुर्गिरिम् ॥ २२ ॥ हिमालयंमहाराजदेवीध्यानपरायणाः ॥ माया बीजंहृदानित्यंजपंतःसर्वएवहि ॥ २३ ॥

तुम्हारे प्रति प्रसन्न होंगी ॥ १९ ॥ मुझको बोध होता है कि, अभी तुम्हारी विपद्का अंत होगा. इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है. मैंने सुना है कि, उस हिमाचलमें देवी सदा वास करती है ॥ २० ॥ उनकी पूजा और स्तुति करनेसे वह तुमको अवश्य अभिलषित वर देंगी. अतएव तुम सब स्थिरनिश्चय होकर उस हिमालयमें जाओ ॥ २१ ॥ हे देवताओ ! वे तुम्हारे अवश्य सब कार्यका सम्पादन करके उपस्थित विपद्को दूर करेंगी. व्यासजी बोले हे महाराज ! उनके यह वचन सुन सब देवता हिमालय पर्वतमें गये ॥ २२ ॥ और वे सब भगवतीकी आराधनामें निमग्न होकर भक्तिसहित निरन्तर हृदयमें मायाबीजका जप करने लगे ॥ २३ ॥

वह भक्तोंको अभय देनेवाली ब्रह्मरूपिणी महामायाको प्रणाम करके परमभक्तिसहित स्तोत्रमन्त्रद्वारा उनका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २४ ॥ हे देवि! आप विश्वेश्वरी और विश्वजननी हैं. सुतरां जीवनकी भी ईश्वरी हैं आपही सदानन्दस्वरूपिणी हैं. अतएव आप देवताओंका भी आनन्द बढ़ाती हैं इस कारण आपको नमस्कार करते हैं. आपनेही दानवोंका दलन किया है, आपही मनुष्योंको अभीष्ट प्रदान करती हैं, आपका स्वरूप भक्तिद्वारा ही जाना जाता है. अतएव हे देवि! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २५ ॥ हे सर्वदेवस्वरूपे! कोई आपको रूपका निश्चय नहीं करसक्ता और आपके नामकी भी कोई संख्या नहीं कर सक्ता. प्राणियोंके सृजन और संहारकालमें अधिक क्या सब कार्योंमेंही आप सदा शक्तिस्वरूपसे वास करती हैं ॥ २६ ॥ हे देवि! आपही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि, आधाररूपा, कान्ति, शांति,

नमश्चक्रुर्महामायांभक्तानामभयप्रदाम् ॥ तुष्टुवुःस्तोत्रमंत्रैश्चभक्त्यापरमयायुताः ॥२४॥ नमोदेविविश्वेश्वरिप्राणनाथेसदानंदरूपेसुरानंददे ते॥नमोदानवांतप्रदेमानवानामनेकार्थदेभक्तिगम्यस्वरूपे ॥ २५ ॥ नतेनामसंख्यांनतेरूपमीदृक्तथाकोऽपिवेदादिदेवादिरूपे ॥ त्वमेवाऽसिसर्वेषुशक्तिस्वरूपाप्रजासृष्टिसंहारकालेसदैव ॥ २६ ॥ स्मृतिस्त्वंधृतिस्त्वंत्वमेवाऽसिबुद्धिर्जरापुष्टितुष्टीधृतिःकांतिशांती ॥ सुविद्यासुलक्ष्मीर्गतिःकीर्तिर्मेधेत्वमेवाऽसिविश्वस्यबीजंपुराणम् ॥ २७ ॥ यदायैःस्वरूपैःकरोषीहकार्यंसुराणांचतेभ्योनमामोऽद्यशांत्यै ॥ क्षमायोगनिद्रादयात्वंविवक्षास्थितासर्वभूतेषुशस्तैःस्वरूपैः ॥ ॥ २८ ॥ कृतंकार्यमादौत्वयायत्सुराणांहतोऽसौमहारिर्मदांधोहयारिः ॥ दयातेसदासर्वदेवेषुदेविप्रसिद्धापुराणेषुवेदेषुगीता ॥ २९ ॥ किमत्राऽस्तिचित्रंयदंबासुतंस्वंमुदापालयेत्पोषयेत्सम्यगेव ॥ यतस्त्वंजनित्रीसुराणांसहायाकुरुष्वैकचित्तेनकार्यंसमग्रम् ॥ ३० ॥

सुविद्या सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति और मेधा हैं और आपही विश्वकी अव्यक्तबीजस्वरूपहैं॥ २७ ॥ आप जिस समय जिन रूपोंसे इस लोकमें देवताओंका कार्य सम्पादन करतीं हैं. हम इस समय शान्तिकी कामनासे उन उन रूपोंको नमस्कार करते हैं. आपही क्षमा, आपही योग निद्रा, आपही दया, आपही विवक्षा इन सब रूपोंसे सब जीवोंमें वास करती हैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! आपनेही मदान्ध महाशत्रु महिषासुरको मारकर पहिलेही देवताओंका कार्यसंपादन किया है.अतएव हे देवि ! आपकी दया सब देवताओंमें सदा प्रसिद्ध है. अधिक क्या आपकी वह दया पुराण और वेदमें भी वर्णित हुई है ॥ २९ ॥ आपही देवताओंको उत्पन्न करनेवाली हैं. इसकारण यदि माता अपने पुत्रोंका आनन्दसहित सदा पालन और पोषण करैं. इसमें फिर विचित्रता क्या है ? विशेष करके आप देवताओंको सहायकारिणी हैं.

अतएव आप एकाग्रचित्तसे संपूर्ण कार्यका संपादन कीजिये ॥ ३० ॥ हे देवि ! आपके गुणोंकी सीमा वा आपके स्वरूपको हम नहीं जानते. हे देवि ! विश्व संसारके संपूर्ण लोकही आपकी पूजा करते हैं. काम विपद्के समय रक्षा करनेमें भलीभाँति समर्थ हैं. इसकारण हमको कृपापात्र विचारकर इस उपस्थित विपद्से हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥ आप बाणपात, मुष्टिप्रहार, शूल, खड्ग, शक्ति, दंड, वा अन्यान्यशस्त्रोंका विना प्रहार किये सहजमेंही इच्छानुसार शत्रुका विनाश करसक्ती हैं. किन्तु तोभी विनोद और लोकपालोंका उपकार करनेके लिये अवतीर्ण होकर युद्धादिद्वारा लीला करती हैं ॥ ३२ ॥ जन्ममरणके परिणामवशसे मूढलोग भी जानते हैं कि, यह जगत् नित्य नहीं है. कारणके विना कभी कार्य नहीं होसक्ता यह भी वे जानते हैं. अतएव आपही इस विश्वसंसारका कारण है. हमने अनुमान प्रमाण द्वारा यही कल्पना की है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता, विष्णु पालनकर्त्ता और महादेव संहारकर्त्ता पुराणोंमें प्रसिद्ध है. आपने इन तीनोंको युगादिमें उत्पन्न किया है. अतएव

नवातेगुणानामियत्तास्वरूपंवयंदेविजानीमहेविश्ववंद्ये॥कृपापात्रमित्येवमत्वातथाऽस्मान्भयेभ्यःसदापाहिपातुंसमर्थे ॥३१॥ विनाबाणपातैर्विनामुष्टिघातै र्विनाशूलखड्गैर्विनाशक्तिदंडैः॥ रिपून्हंतुमेवाऽसिशक्ताविनोदात्तथाऽपीहलोकोपकारायलीला ॥३२॥ इदंशाश्वतंनैवजानंतिमूढानकार्यंविनाकारणंसंभवे द्वा॥वयंतर्कयामोऽनुमानंप्रमाणंत्वमेवाऽसिकर्ताऽस्यविश्वस्यचेति॥३३॥अजःसृष्टिकर्तामुकुंदोऽविताऽयंहरोनाशकृद्वैपुराणेप्रसिद्धः॥ नकिंत्वत्प्रसूतास्त्रय स्तेयुगादौत्वमेवाऽसिसर्वस्यतेनैवमाता ॥ ३४ ॥ त्रिभिस्त्वंपुराराधितादेविदत्तात्वयाशक्तिरुग्राचतेभ्यःसमग्रा ॥ त्वयासंयुतास्तेप्रकुर्वंतिकामंजगत्पाल नोत्पत्तिसंहारमेव ॥ ३५ ॥ तेकिंनमंदमतयोयतयोविमूढास्त्वांयेनविश्वजननींसमुपाश्रयंति ॥ विद्यांपरांसकलकामफलप्रदांतांमुक्तिप्रदांविबुधवृंदसुवं दितांत्रिम् ॥ ३६ ॥ येवैष्णवाःपाशुपताश्चसौरादंभास्तएवप्रतिभांतिनूनम् ॥ ध्यायंतिनत्वांकमलांचलज्जांकांतिंस्थितिंकीर्तिमथाऽपिपुष्टिम् ॥ ३७ ॥ हरिहरादिभिरप्यथसेवितात्वमिहदेववरैरसुरैस्तथा ॥ भुविभजंतिनयेऽल्पधियोनराजननितेविधिनाखलुवंचिताः ॥ ३८ ॥

आप सबकी जननी हैं. इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥ हे देवि ! पूर्वमें इन तीन देवताओंने ही आपकी आराधना की, तब आपने प्रसन्न होकर संपूर्ण उत्कृष्ट शक्तियें उनको दीं थीं. आपकी शक्तियोंसे संयुक्त होकरही भलीभाँति जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं ॥ ३५ ॥ देवतालोग जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं. जिनकी अर्चना करनेसे संपूर्ण अभीष्टफल प्राप्त होता है जो उन मुक्ति देनेवाली विश्वजननी चित्स्वरूपिणीकी अर्चना नहीं करते. वे यति होनेपर भी क्या मन्दमति मूढ नहीं हैं? ॥ ३६ ॥ जो कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति, पुष्टिस्वरूप आपका ध्यान नहीं करते. वे सब सौर (सूर्योपासक) पाशुपत (पशुपतिनिष्ठ) और वैष्णव निःसंदेह भेदबुद्धिसे दाम्भिक जान पड़ते हैं ॥ ३७ ॥ हे जननि ! असुरगण और हरि हर इत्यादि प्रधान प्रधान देवता भी इस लोकमें आपकी सेवा करते हैं. अतएव

जो सामान्यबुद्धि मनुष्य पृथ्वीमें आपकी पूजा नहीं करते. विधाताने उनको निस्संदेह वञ्चित किया है ॥ ३८ ॥ हे देवि ! हरि लाक्षारसके द्वारा कमलाके चरणकमलोंको स्वयं रञ्जित करते हैं. त्रिलोचन महादेवजी भी पार्वतीके चरणकमलोंको पराग (रज) का सेवन करनेमें अत्यन्त उत्सुक हैं कमला और पार्वती आपकी अंशमात्र हैं. इस कारण उनकी सेवा करनेसे आपकी सेवा होती है ॥ ३९ ॥ अन्यान्यमनुष्योंकी तो बात दूर रहे. जो सदसद्विचार करके कार्य कर सक्ते हैं. और जिन्होंने विषयानुराग तथा घर छोड़ दिया है. ऐसे मुनिलोग भी आपके अंशरूप क्षमा और दयाकी सेवा करते हैं. अतएव आपके चरणकमलोंकी कौन सेवा नहीं करता है ॥ ४० ॥ हे देवि ! जो मनुष्य आपके चरणकमलोंकी सेवामें अनुरक्त नहीं हैं वे सुखसे वञ्चित होकर संसाररूपी घोर कूपमें

जलधिजापदपंकजरंजनंजतुरसेनकरोतिहरिःस्वयम् ॥ त्रिनयनोऽपिधराधरजांघ्रिपंकजपरागनिषेवणतत्परः ॥ ३९ ॥ किमपरस्यनरस्यकथानकैस्तवपदाब्जयुगंनभजंतिके ॥ विगतरागगृहाश्चदयांक्षमांकृतधियोमुनयोपिभजंतिते ॥ ४० ॥ देवित्वदंघ्रिभजनेनजनारतायेसंसारकूपपतिताःपतिताःकिलामी ॥ तेकुष्ठगुल्मशिरआधियुताभवंतिदारिद्र्यदैन्यसहितारहिताःसुखौघैः ॥ ४१ ॥ येकाष्ठभारवहनेयवसावहारेकार्येभवंतिनिपुणाधनदाररहीनाः ॥ जानीमहेऽल्पमतिभिर्भवदंघ्रिसेवापूर्वेभवेजननितैर्नकृताकदाऽपि ॥ ४२ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंस्तुतासुरैःसर्वैरंबिकाकरुणान्विता ॥ प्रादुर्बभूवतरसारूपयौवनसंयुता ॥ ४३ ॥ दिव्यांबरधरादेवीदिव्यभूषणभूषिता ॥ दिव्यमाल्यसमायुक्तादिव्यचंदनचर्चिता ॥ ४४ ॥ जगन्मोहनलावण्यासर्वलक्षणलक्षिता ॥ अद्वितीयस्वरूपासादेवानांदर्शनंगता ॥ ४५ ॥ जाह्नव्यांस्नातुकामासानिर्गतागिरिगह्वरात् ॥ दिव्यरूपधरादेवीविश्वमोहनमोहिनी ॥ ४६ ॥

गिरते हैं. अधिक क्या ! वे पतित मनुष्य कुष्ठ, गुल्म (उदररोग) शिरकी पीड़ासे युक्त हो दीनता और दरिद्रता इत्यादि महाक्लेशको भोगते हैं ॥ ४१ ॥ हे जननि ! जो लोग धन और स्त्रीविहीन होकर काष्ठभारवहन, तृणहरण इत्यादि कार्योंमें निपुणता प्रकाशित करते हैं. उन अल्पबुद्धि मनुष्योंने पूर्वजन्ममें कभी आपके पद-पंकजकी सेवा नहीं की यह हम भलीभाँति जानते हैं ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! संपूर्ण देवताओंके इसप्रकार स्तवन करतेही रूपयौवनसंपन्न अम्बिका देवी करुणाके वश हो तत्काल उस स्थानमें प्रगट हुई ॥ ४३ ॥ वह अलौकिकरूपलावण्यवती सर्वसुलक्षणसंपन्न भगवती दिव्यवस्त्रभूषणमाल्य और चंदनादिसे विभूषित होकर देवताओंकी दृष्टिमें उपस्थित हुईं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ विश्वको मोहित करनेवाला कामदेवभी जिससे मोहित होता है ऐसा मनोहर दिव्यरूप धारण

करके देवी गंगा स्नान करनेकी इच्छासे पर्वतकी गुहासे निकलीं ॥ ४६ ॥ कोकिलकी समान मधुरभाषिणी वह देवी प्रीतिसहित कुछेक हँसकर मेघकी समान गंभीर स्वरद्वारा स्तुतिपरायण देवताओंसे बोली ॥ ४७ ॥ देवी बोली हे सुरसत्तमगण ! तुम निरन्तर यहाँ किसकी स्तुति करते हो? तुम्हारा प्रयोजन क्या है ? तुम ऐसे चिन्ताकुल क्या हो?यह सब विस्तारसहित मुझसे कहो ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! देवता प्रथम तो उनका रूपलावण्य देखकर मोहित हुए फिर उनके मधुरवचनोंसे उत्साहित हो प्रीतिपूर्वक उनसे कहने लगे ॥ ४९ ॥ देवता बोले हे देवि ! तुम इस विश्वसंसारकी ईश्वरी और विशेष करके कृपासागर हो, अतएव आपको प्रणाम करके स्तव करते हैं. हे देवि ! हम दैत्योंके उपद्रव तापित होकर अत्यन्त भीत हुये हैं, अतएव आप हमारी सब दुःखोंसे रक्षा कीजिये ॥ ५० ॥ हे भगवति ! आपने पूर्वमें सबके कंटक

देवान्स्तुतिपरानाहमेघगंभीरयागिरा ॥ प्रेमपूर्वंस्मितंकृत्वाकोकिलामंजुवादिनी ॥४७॥ देव्युवाच ॥ भोभोःसुरवराःकाऽत्रभवद्भिःस्तूयतेभृशम् ॥ किमर्थंब्रूतवःकार्यंचिंताविष्टाःकुतःपुनः ॥ ४८ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाभाषितंतस्यामोहितारूपसंपदा ॥ प्रेमपूर्वंहृदुत्साहास्तामूचुःसुरसत्तमाः ॥ ४९ ॥ देवाऊचुः ॥ देविस्तुमस्त्वांविश्वेशिप्रणताःस्मकृपार्णवे ॥ पाहिनःसर्वदुःखेभ्यःसंविग्नान्दैत्यतापितान् ॥ ५० ॥ पुरात्वयामहादेविनिहत्यासुरकंटकम् ॥ महिषंनोवरोदत्तःस्मर्तव्याऽहंसदाऽऽपदि ॥ ५१ ॥ स्मरणाद्दैत्यजांपीडांनाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ तेनत्वंसंस्मृतादेविनूनमस्माभिरित्यपि ॥ ५२ ॥ अद्यशुंभनिशुंभौद्वावसुरौघोरदर्शनौ ॥ उत्पन्नौविघ्नकर्तारावहन्यौपुरुषैःकिल ॥ ५३ ॥ रक्तबीजश्चबलवांश्चंडमुंडौतथाऽसुरौ ॥ एतैरन्यैश्चदेवानांहृतंराज्यंमहाबलैः ॥ ५४ ॥ गतिरन्यानचास्माकंत्वमेवाऽसिमहाबले ॥ कुरुकार्यंसुराणांवैदुःखितानांसुमध्यमे ॥ ५५ ॥ देवास्त्वदंघ्रिभजनेनिरताःसदैवतेदानवैरतिबलैर्विपदंसुनीताः ॥ तान्देविदुःखरहितान्कुरुभक्तियुक्तान्मातस्त्वमेवशरणंभवदुःखितानाम् ॥ ५६ ॥

महिषासुरको मारकर हमको वर दिया है कि, आपत्काल उपस्थित होनेपर तुम मेरा स्मरण करना ॥ ५१ ॥ स्मरण करतेही मैं तुम्हारे सब दैत्यकृत क्लेश विनष्ट करूंगी इसमें सन्देह नहीं है. हे देवि ! हम इसकारण ही इस समय आपका स्मरण करते हैं ॥ ५२ ॥ इस समय शुंभ और निशुंभ नामक घोरदर्शन दो असुर उत्पन्न होकर विषम उपद्रव कर रहे हैं. किन्तु यह दोनों असुर पुरुषसे नितान्त अवध्य है ॥ ५३ ॥ बलवान् रक्तबीज और चंड मुंड इत्यादि अन्यान्य असुरोंने मिलित होकर देवताओंका संपूर्ण राज्य हरण किया है ॥ ५४ ॥ आपही हमारी एकमात्र गति हैं. आपके अतिरिक्त हमारा अन्यउपाय नहीं है अतएव हेसुमध्यमे ! आप इन एकान्त संतापित देवताओंका कार्य संपादन कीजिये ॥ ५५ ॥ हे देवि ! आपके चरणकमलोंकी सेवामें देवता सदा निरत रहते हैं तोभी अतिबलवान् दानव उनको विपदमें

हे जननि ! दानव अपने बलके मदसे गर्वित होकर पृथ्वीमें अनेक प्रकारके उपद्रव कर रहे हैं आपने युगादिसमयमें इस विश्वसंसारको स्वयं उत्पन्न किया है यह जानकर इस समय सब भुवनोंकी रक्षा करना आपका अवश्य कर्त्तव्य है॥ ५७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥ व्यासजी बोले हे महाराज! शत्रु-संतापित देवताओंके इसप्रकार स्तव करनेपर देवीने अपने शरीरसे एक परमरूपको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ अम्बिका देवी पार्वतीके शरीरकोषसे निकली इसकारण उनका नाम सब लोकोंमें कौशिकी विख्यात हुआ ॥ २ ॥ पार्वतीके शरीरसे कौशिकीके निकलने पर उन पार्वतीका शरीर परिणामवशसे कृष्णवर्ण होकर कालिका नामसे प्रसिद्ध

डालते हैं. हे मातः ! आप दुःखी पुरुषोंकी रक्षा करनेवाली हैं अतएव भक्तिपरायण देवताओंकी दुःखसे रक्षा कीजिये ॥ ५६ ॥

जननिजगतिपीडांदानवादर्पयुक्ताःस्वबलमदसमेतास्तेप्रकुर्वंतिमातः ॥५७॥ सकलभुवनरक्षादेविकार्यात्वयाऽद्यस्वकृतमितिविदित्वाविश्वमेतद्युगादौ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ एवंस्तुतातदादेवीदेवतैःशत्रुतापितैः ॥ स्वशरीरात्परंरूपं प्रादुर्भूतंचकारह ॥ १ ॥ पार्वत्यास्तुशरीराद्वैनिःसृताचांबिकायदा ॥ कौशिकीतिसमस्तेषुततोलोकेषुपठ्यते ॥ २ ॥ निःसृतायांतुतस्यांसापार्वती तनुव्यत्ययात् ॥ कृष्णरूपाऽथसंजाताकालिकासाप्रकीर्तिता ॥ ३ ॥ मषीवर्णामहाघोरादैत्यानांभयवर्धिनी ॥ कालरात्रीतिसाप्रोक्तासर्वकामफलप्रदा ॥ ४ ॥ अंबिकायाःपरंरूपंविरराजमनोहरम् ॥ सर्वभूषणसंयुक्तंलावण्यगुणसंयुतम् ॥ ५ ॥ ततोंबिकातदादेवानित्युवाचहसास्मिता ॥ तिष्ठंतुनिर्भयायू यंहरिष्यामिरिपूनिह ॥ ६ ॥ कार्यंवःसर्वथाकार्यंविहरिष्याम्यहंरणे ॥ निशुंभादीन्वधिष्यामियुष्माकंसुखहेतवे ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वासातदादेवीसिंहारूढा मदोत्कटा ॥ कालिकांपार्श्वतःकृत्वाजगामनगरेरिपोः ॥ ८ ॥

हुई ॥ ३ ॥ उनकी वह भयंकर मूर्त्ति देखकर दैत्योंको भय बढ़ने लगा. हे राजन् ! यही देवी इस लोकमें सर्व मनोरथ पूर्णकारिणी कालरात्रिके नामसे विख्यात हुई ॥ ४ ॥ तब अम्बिकाका संपूर्ण गहनोंसे सुसज्जित वह मनोहर लावण्यमय रूप सुशोभित होने लगा ॥ ५ ॥ फिर अम्बिका देवीने कुछेक हँसकर देवताओंसे कहा तुम निर्भय होकर अवस्थान करो मैं तुम्हारे शत्रुओंका अभी विनाश करूंगी ॥ ६ ॥ तुम्हारा कार्यसंपादन करना मेरा कर्त्तव्य है. अतएव तुम्हारे सुखसाधनके लिये समराङ्गणमें अवतीर्ण होकर निशुंभ इत्यादि असुरोंका वध करूंगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ देवी भगवतीने यह कह मदके गर्वसे उद्धत हो सिंहकी

पीठपर चढ कालिकाको संगले देवशत्रु शुंभके नगरमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥ अम्बिका कालिकाके सहित उस नगरके उपवनमें जाय जगत्को मोहित करने वाला कामदेव भी जिसके सुननेसे मोहित हो, ऐसे मनोहर मधुरस्वरसे गान करने लगी ॥ ९ ॥ अधिक क्या उस मनोहर गानके सुननेसे पशुपक्षी भी मोहित होगये तब देवता आकाशमंडलमें अतिआनन्दको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ इसी अवसरमें शुंभके अनुचर चण्ड मुण्ड नामक दो असुरोंने क्रीडा करते करते इच्छानुसार वहां आनकर देखा कि ॥ ११ ॥ वह मनोहर रूपवती अम्बिका देवी गान कर रही हैं और कालिका देवी उनके सन्मुख विराजमान हैं ॥ १२ ॥ हे नृपसत्तम ! चण्ड मुंड भगवतीका वह अलौकिक रूपलावण्य देख आश्चर्यमें हो तत्काल शुंभके समीप गये ॥ १३ ॥ वह घरमें बैठे दैत्यपतिके निकट जाय, मस्तक झुकाय प्रणामपूर्वक उनसे मधुर वचन द्वारा कहने लगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! हिमालयसे अपनी इच्छानुसार एक कामिनी सिंहपर चढ़कर यहां आई है, उसके सब अंग प्रत्यङ्ग सुलक्षण

सागत्वोपवनेतस्थावंबिकाकालिकान्विता ॥ जगावथकलंतत्रजगन्मोहनमोहनम् ॥९॥श्रुत्वातन्मधुरंगानंमोहमीयुःखगामृगाः॥मुदंचपरमांप्रापुरमरागगने स्थिताः॥१०॥तस्मिन्नवसरेतत्रदानवौशुंभसेवकौ ॥ चंडमुंडाभिधौवीरौरममाणौयदृच्छया॥११॥आगतौददृशातेतुतांतदादिव्यरूपिणीम्॥अंबिकांगान संयुक्तांकालिकांपुरतःस्थिताम् ॥ १२ ॥ दृष्ट्वातांदिव्यरूपांचदानवौविस्मयान्वितौ ॥ जग्मतुस्तरसापार्श्वेशुंभस्यनृपसत्तम ॥१३॥ तौगत्वातौसमासीनं दैत्यानामधिपंगृहे ॥ ऊचतुर्मधुरांवाणींप्रणम्यशिरसानृपम् ॥ १४ ॥ राजन्हिमालयात्कामंकामिनीकाममोहिनी ॥ संप्राप्तासिंहमारूढासर्वलक्षणसंयुता ॥ १५ ॥ नेदृशीदेवलोकेऽस्तिनगंधर्वपुरेतथा ॥ नदृष्टानश्रुताक्वाऽपिपृथिव्यांप्रमदोत्तमा ॥१६॥ गानंचतादृशंराजन्करोतिजनरंजनम् ॥ मृगास्तिष्ठंति तत्पार्श्वेमधुरस्वरमोहिताः ॥१७॥ ज्ञायतांकस्यपुत्रीयंकिमर्थमिहचागता ॥ गृह्यतांराजशार्दूलतवयोग्याऽस्तिकामिनी ॥१८॥ ज्ञात्वानयगृहेभार्यांकुरु कल्याणलोचनाम् ॥ निश्चितंनास्तिसंसारेनारीत्वेवंविधाकिल॥१९॥देवानांसर्वरत्नानिगृहीतानित्वयानृप॥कस्मान्नेमांवरारोहांप्रगृह्णासिनृपोत्तम ॥२०॥

विराजमान हैं, यही क्या ? उसका रूप देखकर रतिपति भी मोहित होते हैं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! ऐसी सुन्दरी स्त्री देवलोक गंधर्वलोक और भूलोकमें भी विद्यमान नहीं है, ऐसी स्त्री हमने कभी नहीं देखी और कहीं सुनी भी नहीं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! वह रमणी ऐसा लोकरंजन मनोहर संगीत गान करती है कि, सब मृग भी उसके मधुर स्वरसे मोहित होकर उसके पार्श्वमें खड़े रहते हैं ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! यह स्त्री आपके ही योग्य है, अतएव वह कामिनी किसकी कन्या है ? और किसलिये यहां आई है ? प्रथम यह जानकर फिर इसको ग्रहण कीजिये ॥ १८ ॥ आप निश्चय जानिये कि, ऐसी रूपवती नारी संसारमें दूसरी कोई नहीं है. इसकारण आप उस सुलोचनाको घर लाकर उसका पाणिग्रहण कीजिये ॥ १९ ॥ हे महाराज ! हे नरपाल ! आपने देवताओंके सभी रत्न ग्रहण किये हैं तो फिर किस का

रण यह स्त्रीरत्न ग्रहण नहीं करते ? ॥ २० ॥ हे राजन् ! आपने इन्द्रका परम सुन्दर ऐरावत हाथी, पारिजातवृक्ष, सप्तास्य उच्चैःश्रवा अश्व इत्यादि संपूर्ण रत्न बलपूर्वक ग्रहण किये हैं ॥ २१ ॥ हे नृपवर ! मरालध्वज चिह्नित विधाताका रत्नस्वरूप दिव्यविमान भी आप बलपूर्वक ले आये हैं ॥ २२॥ कुवेरका पद्मनिधि और जलपति वरुणका शुभ्रछत्र आपने बलात्कारसे ग्रहण किया है ॥ २३ ॥ हे नृपोत्तम ! वरुणके पराजित होनेपर आपके भ्राता निशुम्भने बलपूर्वक उनका पाशा स्त्र ले लिया है ॥ २४ ॥ हे महाराज ! समुद्रने डरकर आपको अनेक प्रकारके रत्न और जिसके कमल कभी म्लान नहीं होते, ऐसी कमलमाला देकर सन्मानि त किया है ॥ २५ ॥ हे नृपवर ! अधिक और क्या कहूं ? आपने मृत्युको जीत कर उसकी शक्ति और यमको पराजित करके उनका वह दारुण दंडग्रहण

इंद्रस्यैरावतःश्रीमान्पारिजाततरुस्तथा ॥ गृहीतोऽश्वःसप्तमुखस्त्वयानृपबलात्किल ॥ २१ ॥ विमानंवैधसंदिव्यंमरालध्वजसंयुतम् ॥ त्वयाऽऽत्तंरत्नभूतंतद्बलेननृपचाद्भुतम् ॥ २२ ॥ कुवेरस्यनिधिःपद्मस्त्वयाराजन्समाहृतः ॥ छत्रंजलपतेःशुभ्रंगृहीतंतत्त्वयाबलात् ॥ २३ ॥ पाशश्चाऽपिनिशुंभेनभ्रात्रातवनृपोत्तम ॥ गृहीतोस्तिहठात्कामंवरुणस्यजितस्यच ॥ २४ ॥ अम्लानपंकजांतुभ्यंमालांजलनिधिर्ददौ ॥ भयात्तवमहाराजरत्नानिविविधानिच ॥ २५ ॥ मृत्योःशक्तिर्यमस्याऽपिदंडःपरमदारुणः ॥ त्वयाजित्वाहृतः कामंकिमन्यद्वर्ण्यतेनृप ॥ २६ ॥ कामधेनुर्गृहीताऽद्यवर्ततेसागरोद्भवा ॥ मेनकाद्यावशेराजंस्तवतिष्ठंतिचाऽप्सराः ॥ २७ ॥ एवंसर्वाणिरत्नानित्वयाऽऽत्तानिबलादपि ॥ कस्मान्नगृह्यतेकांतारत्नमेषावरांगना ॥ २८ ॥ सर्वाणितेगृहस्थानिरत्नानिविशदान्यथ ॥ अनयासंभविष्यंतिरत्नभूतानिभूपते ॥ २९ ॥ त्रिषुलोकेषुदैत्येंद्रनेदृशीवर्ततेप्रिया ॥ तस्मात्तामानयाऽऽशुत्वंकुरुभार्यांमनोहराम् ॥ ३० ॥ व्यासउवाच ॥ इतिश्रुत्वातयोर्वाक्यंमधुरंमधुराक्षरम् ॥ प्रसन्नवदनःप्राहसुग्रीवंसन्निधौस्थितम् ॥ ३१ ॥

किया है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जो कामधेनु समुद्रसे निकली थी, आप उसको ले आये हैं, वह कामधेनु अब भी आपके पास विद्यमान है,अधिक क्या मेनका इत्यादि अप्सरायें आपके वशीभूत रहती हैं ॥ २७॥ इसप्रकार आपने पराक्रम प्रकाश करके संपूर्ण रत्नग्रहण किये हैं।यह वराङ्गना भी रमणीरत्न है,अतएव इसको किसलिये ग्रहण नहीं करते ? ॥ २८॥ हे भूपते ! आपके घरमें जो सब रत्न हैं वह इस स्त्री रत्नद्वारा विशद होकर यथार्थरत्नस्वरूपता प्राप्त करेंगे. इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ हे दैत्येंन्द्र ! तीनों लोकोंमें ऐसी प्रियतमा ललना दूसरी नहीं है, इसकारण आप शीघ्र उस मनोरमा स्त्रीको लाकर उसका भोग कीजिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् !

दैत्याधिराज शुंभने चंडमुंडके इसप्रकार कोमलाक्षर मधुर वचन सुनकर समीप स्थित सुग्रीवसे कहा ॥ ३१ ॥ हे सुग्रीव ! तुम सब कार्योंमें चतुर हो. अतएव इस समय मेरा दूतकार्य संपादन करो । जिससे वह कृशोदरी मेरे समीप आवे, तुम उससे वैसेही वचन कहो ॥ ३२ ॥ शृङ्गाररसमें चतुर सुधीगण कहते हैं कि, स्त्रियोंके प्रति साम और दान, यह दोनों प्रकारके उपाय प्रयुक्त करने चाहिये ॥ ३३ ॥ क्योंकि भेद प्रयोग करनेमें अवश्य कपटताका प्रयोजन होता है. सुतरां कपट व्यवहारसे रसाभास होता है और निग्रह करनेसे रसभंग होता है, इसकारण पण्डितोंने इन दोनों उपायोंको दूषित कहा है ॥ ३४ ॥ हे दूतवर ! साम और दानयुक्त मधुरवचन कहनेपर कौन स्त्री कामबाणसे पीडित होकर वशीभूत नहीं होती ॥ ३५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! सुग्रीव शुंभके इसप्रकार चातुर्यता गर्भित वचन सुनकर तत्काल जगन्माता अम्बिकाके समीप गया ॥ ३६ ॥ अनन्तर वह सिंहपर चढ़ी सुवदना कान्ता जगदम्बिकाको देखकर प्रणतिपूर्वक

गच्छसुग्रीवदूतत्वंकुरुकार्यविचक्षण ॥ वक्तव्यंचतथातत्रयथाऽभ्येतिकृशोदरी ॥ ३२ ॥ उपायौद्वौप्रयोक्तव्यौकांतासुसुविचक्षणैः ॥ सामदानावितिप्राहुः शृंगाररसकोविदाः ॥ ३३ ॥ भेदेप्रयुज्यमानेऽपिरसाऽभासस्तुजायते ॥ निग्रहेरसभंगःस्यात्तस्मात्तौदूषितौबुधैः ॥ ३४ ॥ सामदानमुखैर्वाक्यैःश्लक्ष्णै र्नर्मयुतैस्तथा ॥ कानयातिवशेदूतकामिनीकामपीडिता ॥ ३५ ॥ व्यासउवाच ॥ सुग्रीवस्तुवचःश्रुत्वाशुंभोक्तंसुप्रियंपटु ॥ जगामतरसातत्रयत्राऽऽस्ते जगदंबिका ॥ ३६ ॥ सोऽपश्यत्सुमुखींकांतांसिंहस्योपरिसंस्थिताम् ॥ प्रणम्यमधुरंवाक्यमुवाचजगदंबिकाम् ॥ ३७ ॥ दूतउवाच ॥ वरोरुत्रिदशारा तिःशुंभःसर्वांगसुंदरः ॥ त्रैलोक्याऽधिपतिःशूरःसर्वजिद्राजतेनृपः ॥ ३८ ॥ तेनाऽहंप्रेषितःकामंत्वत्सकाशंमहात्मना ॥ त्वद्रूपश्रवणासक्तचित्तेनाति विदूयता ॥ ३९ ॥ वचनंतस्यतन्वंगिशृणुप्रेमपुरःसरम् ॥ प्रणिपत्ययथाप्राहदैत्यानामधिपस्त्वयि ॥ ४० ॥ देवामयाजिताःसर्वेत्रैलोक्याधिपतिस्त्व ऽहम् ॥ यज्ञभागानऽहंकांतेगृह्णामीहस्थितःसदा ॥४१॥ हृतसाराकृतानूनंद्यौर्मयारत्नवर्जिता ॥ यानिरत्नानिदेवानांतानिचाऽऽहृतवानहम् ॥ ४२ ॥

मधुर वचनसे कहने लगा ॥ ३७ ॥ दूतबोला हे सुंदरि ! महाराज सुरशत्रु शुंभ सर्वाङ्गसुन्दर और वीरपुरुष हैं वे नरपाल सबको पराजित कर तीनों लोकोंके अधिपति हो परमसुखसे काल व्यतीत करते हैं ॥ ३८ ॥ वे महात्मा आपके रूपलावण्यका वृत्तान्त सुन आपके प्रति अतिशय आसक्त हुएहैं इसकारण उन्होंने अत्यन्त सन्तप्त होकर आपके प्रति अपनी अभिलाषा प्रकाशित करनेके लिये मुझको भेजा है ॥ ३९ ॥ हे कृशाङ्गी ! उन दैत्यपतिने प्रणत होकर आपसे जो कहा है आप उनके वे प्रेममय वचन सुनिये ॥ ४० ॥ हे कान्ते ! मैं सब देवताओंका पराजय करके त्रैलोक्यका अधिपति हुआ हूं. विशेष कर मैं घरमें रहकरही नित्य संपूर्ण यज्ञभाग ग्रहण करता हूं ॥ ४१ ॥ देवताओंके जो सब धन, रत्न थे मैं वह सब हरण करके ले आया हूं अतएव रत्नोंका हरण होजानेसे अमर

भवन निस्संदेह सारविहीन होगया है ॥ ४२ ॥ हे सुन्दरि ! तीनों लोकोंमें जो सब धन रत्न हैं वे उन सबका भोग करता हूं. अधिक क्या संपूर्ण सुर असुर और मनुष्यलोग मेरे एकान्त अनुगत होकर काल व्यतीत करते हैं ॥ ४३ ॥ किन्तु तुम्हारे गुणग्राम मेरे कर्णविवरद्वारा हृदयमें प्रवेश करके मुझको बलात्कार तुम्हारे अधीन करते हैं. इसकारण मैं तुम्हारा किंकर स्वरूप हुआ हूं, अतएव अब मैं क्या करूं ॥ ४४ ॥ हे सुन्दरि ! तुम जो आज्ञा करो गी, मैं तुम्हारे वशवर्ती होकर वही करूंगा. हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूं, इसलिये मेरी कामबाणसे रक्षा करो ॥ ४५ ॥ हे हंसगमने ! मैं तुम्हारे नितान्त अधीन हूं, विशेषकर कामबाणसे अत्यन्त व्याकुल हुआ हूं, अतएव तुम मेरा भजन करो तो तुम तीनों लोकोंकी अधीश्वरी होकर अनुपम भोग्य वस्तुओंका भोग करोगी ॥ ४६ ॥ हे नितम्बिनी ! तुम मेरे मरनेकी शंका मत करो, क्योंकि मैं देवता असुर और मनुष्योंसे अवध्य हूं,मैं सदा तुम्हारा आज्ञाकारी दास

भोक्ताऽहंसर्वरत्नानांत्रिषुलोकेषुभामिनि ॥ वशाऽनुगाःसुराःसर्वेममदैत्याश्चमानवाः ॥ ४३ ॥ त्वद्गुणैःकर्णमागत्यप्रविश्यहृदयांतरम् ॥ त्वदधीनः कृतःकामंकिंकरोस्मिकरोमिकिम् ॥ ४४ ॥ त्वमाज्ञापयरंभोरुतत्करोमिवशाऽनुगः ॥ दासोऽहंतवचार्वंगिरक्षमांकामबाणतः ॥ ४५ ॥ भजमां त्वंमरालाक्षितवाधीनंस्मराऽऽकुलम् ॥ त्रैलोक्यस्वामिनीभूत्वाभुंक्ष्वभोगाननुत्तमान् ॥ ४६ ॥ तवचाऽऽज्ञाकरःकांतेभवाभिमरणावधि ॥ अवध्योऽस्मिवरारोहेसदेवासुरमानुषैः ॥ ४७ ॥ सदासौभाग्यसंयुक्ताभविष्यसिवरानने ॥ यत्रतेरमतेचित्तंतत्रक्रीडस्वसुंदरि ॥ ४८ ॥ ॥ इतितस्यवचश्श्रित्वाविमृश्यमदमंथरे ॥ वक्तव्यंयद्भवेत्प्रेम्णातद्ब्रूहिमधुरंवचः ॥ ४९ ॥ शुंभायचंचलापांगितद्ब्रवीम्यहमाशुवै ॥ व्यासउवाच ॥ तद्दूतवचनंश्रुत्वास्मितंकृत्वासुपेशलम् ॥ ५० ॥ तंप्राहमधुरांवाचंदेवीदेवार्थसाधिका ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जानाम्यहंनिशुंभंचशुंभंचाऽतिबलंनृपम् ॥ ५१ ॥ जेतारंसर्वदेवानां हंतारंचैवविद्विषाम् ॥ राशिंसर्वगुणानांचभोक्तारंसर्वसंपदाम् ॥५२॥ दातारंचाऽतिशूरंचसुंदरंमन्मथाकृतिम् ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तमवध्यंसुरमानुषैः॥५३॥

होकर रहूंगा ॥ ४७ ॥ हे वरानने ! मेरा वचन प्रतिपालन करनेसे तुम सौभाग्यवती होगी. हे सुन्दरी ! तुम जहाँ अभिलाषा करोगी, उसी स्थानमें विहार करता फिरूंगा ॥ ४८ ॥ हे देवि ! उन दैत्यपतिके यह सब वचन मनमें विचार कर, जो आपको कहना हो, आप प्रीतिसहित तादृश मधुरवचन कहिये ॥ ४९ ॥ हे चंचलापाङ्गि ! मैं अभी जाकर यह सब वृत्तान्त महाराज शुंभसे कहताहूं. व्यासजी बोले हे राजन् ! देवकार्यमें तत्पर भगवतीने दूतके यह वचन सुन कुछेक हँसकर ॥ ५० ॥ मधुर वचनद्वारा कहा. देवी बोली हे दूत ! शुंभ और निशुंभको मैं भलीभाँति जानती हूं ॥ ५१ ॥ वह असुरराज शुंभ अतिबलवान् है वह शुंभ देवताओंको पराजित करके अतुल ऐश्वर्यभोग करता है ॥ ५२ ॥ वह सब गुणोंकी खान है अत्यन्त शूर दाता और रतिपतिकी समान सुन्दर है वह दैत्यवर बत्तीस सुलक्षण संभूषित हैं विशेष कर

देवता और मनुष्यसे अवध्य है ॥ ५३ ॥ हे दूतवर ! यह जानकरही मैं उस महासुर शुंभको देखनेकेलिये यहां आई हूं. देखो रत्न अपनी अधिक शोभा बढ़ानेके लिये जिसप्रकार सुवर्णके निकट आनकर मिलते हैं ॥ ५४ ॥ इसीप्रकार मैं अपने पतिको देखनेके लिये दूरसे यहां आई हूं. मैंने संपूर्ण देवता गंधर्व राक्षस भूतलस्थ विख्यात मनुष्य इत्यादि अत्यन्त प्रियदर्शन पुरुषोंको देखकर जानलिया है कि, वह सब शुंभके भयसे भीत और विचेतन होकर कंपित हो रहे हैं ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ अतएव शुंभको यह सब गुणग्राम सुनकर उनके देखनेके लिये यहां आई हूं. हे दूत! तुम अत्यन्त सौभाग्यवान् हो, अब तुम शुंभके निकट जाकर एकान्तमें ॥ ५७ ॥ उस महाअसुर शुंभसे मेरे वचनानुसार मधुरवचन कहो कि, आप बलवानोंमें अग्रणी हैं, सुंदरसे भी सुन्दर हैं ॥ ५८ ॥ सर्वविद्याविशारद, शूर, गुणी,

ज्ञात्वासमागतास्म्यत्रद्रष्टुकामामहाऽसुरम् ॥ रत्नंकनकमायातिस्वशोभाधिकवृद्धये ॥ ५४ ॥ तत्राऽहंस्वपतिंद्रष्टुंदूरादेवाऽऽगताऽस्मिवै ॥ दृष्टामयासुराःसर्वेमानवाभुविमानदाः ॥ ५५ ॥ गंधर्वाराक्षसाश्चाऽन्येयेचाऽतिप्रियदर्शनाः ॥ सर्वेशुंभभयाद्भीतावेपमानाविचेतसः ॥ ५६ ॥ श्रुत्वाशुंभगुणानत्रप्राप्तास्म्यथदिदृक्षया ॥ गच्छदूतमहाभागब्रूहिशुंभंमहाबलम् ॥ ५७ ॥ निर्जनेश्लक्ष्णयावाचावचनंवचनान्मम ॥ त्वांज्ञात्वाबलिनांश्रेष्ठंसुंदराणांचसुंदरम् ॥ ५८ ॥ दातारंगुणिनंशूरंसर्वविद्याविशारदम् ॥ जेतारंसर्वदेवानांदक्षंचोग्रंकुलोत्तरम् ॥ ५९ ॥ भोक्तारंसर्वरत्नानांस्वाधीनंस्वबलोन्नतम् ॥ पतिकामास्म्यहंसत्यंतवयोग्यानराधिप ॥ ६० ॥ स्वेच्छयानगरेतेऽत्रसमायातामहामते ॥ ममाऽस्तिकारणंकिंचिद्विवाहेराक्षसोत्तम ॥ ६१ ॥ बालभावाद्वृतंकिंचित्कृतंराजन्मयापुरा ॥ क्रीडंत्याचवयस्याभिःसहैकांतेयदृच्छया ॥ ६२ ॥ स्वदेहबलदर्पेणसखीनांपुरतोरहः ॥ मत्समानबलःशूरोरणेमांजेष्यतिस्फुटम् ॥ ६३ ॥ तंवरिष्याम्यहंकामंज्ञात्वातस्यबलाऽबलम् ॥ जहसुर्वचनंश्रुत्वासख्योविस्मितमानसाः ॥ ६४ ॥

दाता, चतुर, सत्कुलसंभूत, तेजस्वी और देवताओंके जीतनेवाले हैं ॥ ५९ ॥ विशेषकर अपने बाहुबलसे उन्नत और स्वाधीन होकर सब रत्न उपभोग करते हैं अतएव हे नरनाथ ! मैं तुम्हारे इन समस्त गुणोंको जानकर निःसन्देह पतिप्राप्तिकी अभिलाषासे ॥ ६० ॥ इच्छापूर्वक तुम्हारे नगरमें आई हूं. हे महात्मन्! मैंही तुम्हारे योग्य स्त्री हूं. हे दैत्यवर ! परन्तु मेरे विवाहमें किंचित् मात्र प्रतिबन्धक है ॥ ६१ ॥ पूर्वकालके समय एकान्तमें वयस्या सखियोंके सहित क्रीडा करते करते इच्छानुसार बालस्वभावसे ॥ ६२ ॥ और अपने शरीरके बलसे दर्पित होकर सखियोंके सामने एक प्रतिज्ञा करी है कि, मेरी समान बलशाली कोई पुरुष यदि मुझको रणमें पराजित कर सके ॥ ६३ ॥ तो मैं उसका बलाबल जानकर अवश्य उसका वरण करूंगा. सखियोंने मेरा यह वचन सुनकर हँसी की थी और आश्चर्यमें होकर कहाथा ॥ ६४ ॥

कि, इस बालिकाने किसलिये ऐसी अद्भुत कठोर प्रतिज्ञा करी. अतएव हे राजेन्द्र! आपभी मेरा इसप्रकार बल जानकर ॥ ६५ ॥ अपने पराक्रमसे मुझको पराजित कर अपना अभिलषित कीजिये. हे सर्वाङ्गसुंदर! आप वा आपके छोटे भाई समरस्थलमें आय ॥ ६६ ॥ मुझको पराजित कर विवाहकार्य संपादन करैं ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! देवीके यह वचन सुनकर दूतने आश्चर्ययुक्त चित्तसे कहा सुन्दरी! तुम स्त्रियोंके स्वभावसे भलीभाँति विचार न करके यह क्या कहती हो? ॥ १ ॥ हे देवि! तुम व्यर्थ अभिमानसे गर्वित हुई हो, जिस शुंभने इन्द्रादि देवता और अपरापर अनेक दैत्योंको पराजित किया है, तुम उसको किसप्रकार समरमें जीतनेकी इच्छा करती हो? ॥ २ ॥ हे कमलनयने! तुम तो दैत्यराज शुंभके

किमेतयाकृतंक्रूरंव्रतमद्भुतमाशुवै ॥ तस्मात्त्वमपिराजेंद्रज्ञात्वामेहीदृशंबलम् ॥ ६५ ॥ जित्वामांस्वबलेनाऽत्रवांछितंकुरुचात्मनः ॥ त्वंवातवाऽनुजो भ्रातासमेत्यसमरांगणे ॥ ६६ ॥ जित्वामांसमरेणाऽत्रविवाहंकुरुसुंदर ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापु० पंचमस्कंधेत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ देव्यास्तद्वचनंश्रुत्वासदूतःप्राहविस्मितः ॥ किंब्रूषेरुचिरापांगिस्त्रीस्वभावाद्धिसाहसात् ॥१॥ इंद्राद्यानिर्जितायेनदेवादैत्यास्तथाऽपरे ॥ तंकथंसमरेदेविजेतुमिच्छसिभामिनि ॥२॥ त्रैलोक्येताहृशोनास्तियःशुंभंसमरेजयेत्॥कात्वंकमलपत्राक्षितस्याग्रेयुधिसांप्रतम् ॥३॥ अविचार्यनवक्तव्यं वचनंकाऽपिसुंदरि ॥ बलंस्वपरयोर्ज्ञात्वावक्तव्यंसमयोचितम् ॥४॥ त्रैलोक्याधिपतिःशुंभस्तवरूपेणमोहितः ॥ त्वांचप्रार्थयतेराजाकुरुतस्येप्सितंप्रिये॥ ॥ ५ ॥ त्यक्त्वामूर्खस्वभावंत्वंसंमान्यवचनंमम॥भजशुंभंनिशुंभंवाहितमेतद्ब्रवीमिते ॥६॥ शृंगारःसर्वथासर्वैःप्राणिभिःपरयामुदा ॥ सेवनीयोबुद्धिमद्भिर्न वानामुत्तमोयतः ॥ ७ ॥

सन्मुख अति तुच्छ पदार्थ दिखाई देगी जो शुंभको युद्धमें पराजय करसके इस त्रिलोकीमें ऐसा कोई वीर नहीं हैं ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी! विना विचारे कहीं किसी वचनको नहीं कहना चाहिये. अपना और दूसरे का बल जानकर समयानुसार वचन कहने चाहिये ॥ ४ ॥ तीनों लोकोंका अधिपति राजा शुंभ तुम्हारे रूपलावण्यसे मोहित होकर तुम्हारी प्रार्थना करता है. इसकारण तुम प्रणयिनी होकर उसकी इच्छानुसार कार्य करो ॥ ५ ॥ तुम अब मूर्खस्वभावको छोड़ कर शुंभ वा निशुंभका भजन करो. यह मैं तुमसे हितके वचनही कहता हूं. अतएव मेरे वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ६ ॥ नवप्रकारके रसोंमें शृंगाररस सर्वोत्तम है.

इस कारण परमानन्दसहित उस शृंगाररसका सेवन करना समस्त बुद्धिमान् प्राणियोंका कर्त्तव्य है ॥ ७ ॥ और यदि तुम बाल्यस्वभावके कारण शुंभके समीप नहीं चलोगी तो वह पृथ्वीपति कुपित हो आज्ञाकारी दूतोंको भेज अभी तुमको बलपूर्वक ले जायँगे ॥ ८ ॥ हे सुन्दरी! वे बलदर्पित दानवलोग तुम्हारे केशाकर्षण करके अभी शुंभके समीप लेजायँगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ९ ॥ हे कृशाङ्गी! तुम सब प्रकारसे साहस छोड़कर अपनी मानरक्षा करो. तुम सन्मानको पात्र हो. इस कारण सन्मानित होकरही उसके समीप चलो ॥ १० ॥ देखो! निशित बाणोंसे देह छेदन कराकर युद्ध और रति जनित सुख. इन दोनोंमें कितना अन्तर है? यह दोनों परस्पर अतिशय भिन्न हैं, इसकारण सारासार विचारकर मेरे इन हितकर वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ११ ॥ शुंभ वा निशुंभका भजन करनेसे तुम अत्यन्त

नागमिष्यसिचेद्बालेसक्रुद्धःपृथिवीपतिः ॥ अन्यानाज्ञाकरान्प्रेष्यबलान्नेष्यतिसांप्रतम् ॥ ८ ॥ केशेष्वाकृष्यतेनूनंदानवाबलदर्पिताः ॥ त्वांनयिष्यंति वामोरुतरसाशुंभसन्निधौ ॥ ९ ॥ स्वलज्जांरक्षतन्वंगिसाहसंसर्वथात्यज ॥ मानितागच्छतत्पार्श्वेमानपात्रंयतोऽसिवै ॥ १० ॥ क्वयुद्धंनिशितैर्बाणैःक्वसुखं रतिसंगजम् ॥ साराऽसारंपरिच्छिद्यकुरुमेवचनंपटु ॥ ११ ॥ भजशुंभंनिशुंभंवालब्धासिपरमंशुभम् ॥ देव्युवाच ॥ सत्यंदूतमहाभागप्रवक्तुंनिपुणोह्य सि ॥१२॥ निशुंभशुंभौजानामिबलवंतावितिध्रुवम् ॥ प्रतिज्ञामेकृतावाल्यादन्यथासाकथंभवेत् ॥१३॥ तस्माद्ब्रूहिनिशुंभंचशुंभंवाबलवत्तरम् ॥ विना युद्धंनमेभर्ताभविताकोऽपिसौष्ठवात् ॥ १४ ॥ जित्वामांतरसाकामंकरंगृह्णातुसांप्रतम् ॥ युद्धेच्छयासमायातांविद्धिमामबलांनृप ॥ १५ ॥ युद्धंदेहिसम र्थोऽसिवीरधर्मंसमाचर ॥ बिभेषिममशूलाच्चेत्पातालंगच्छमाचिरम् ॥ १६ ॥

सुख पाओगी इसमें सन्देह नहीं. देवीने कहा हे दूत! तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो, सुतरां सत्य कहनेमें बड़े निपुण हो ॥ १२ ॥ शुंभ और निशुंभको मैं भलीभाँति बलवान् जानती हूं किन्तु बाल्यस्वभावके वश होकर मैं ने जो पूर्वमें प्रतिज्ञा की है, उसके अन्यथा किसप्रकार करूं? ॥ १३ ॥ अतएव तुम अत्यन्त बलशाली उन शुंभ वा निशुंभसे कहो कि, विना युद्ध किये सौन्दर्य वशसे कोई मेरा स्वामी नहीं होसकेगा ॥ १४ ॥ इसलिये तुम अभी मुझको जीतकर इच्छानुसार मेरा पाणि ग्रहण करो मैं अबला होकर भी युद्धकी इच्छासे यहां आई हूं ॥ १५ ॥ यह निश्चय जानो. अतएव यदि समर्थ हो तो युद्धदान करके वीरधर्मका आचरण करो और यदि मेरे शूलके देखनेसे तुमको भय होता हो, अथवा यदि तुमको जीवनकी इच्छा होतो स्वर्ग और धरातलपरित्याग करके अभी पातालमें चले जाओ. हे दूत! तुम अभी

अपने प्रभुके समीप जाय आदर सहित मेरे यह सब वचन कहो ॥ १६ ॥ १७ ॥ फिर वह महाबलवान् दानवपति विचार करके जो उचित बोध होगा वही करेंगे. हे धर्मज्ञ ! इस संसारमें शत्रु वा स्वामीके निकट सत्यवचन कहनाही दूतका धर्म है ॥ १८ ॥ इसमें सन्देह नहीं. इसकारण तुम शीघ्र अपने प्रभुके निकट जाकर सत्य वचन कहो. व्यासजी बोले हे राजन् ! तब वह दूत देवीके इसप्रकार नीतिसम्मत बलयुक्त ॥ १९ ॥ हेतुयुक्त बलमदगर्वित प्रगल्भ (तीक्ष्ण) वचन सुननेसे आश्चर्य युक्त होकर चलागया. फिर दैत्यपतिके निकट जाय उनके चरणकमलोंमें प्रणाम कियाऔर वारंवार विचारकर विनीतभावसे नीतिसंयुक्त कोमल प्रियवचन कहने लगा ॥ २० ॥ २१ ॥ दूत बोला हे राजेन्द्र ! प्रभुके निकट सत्य और प्रियवचन कहने चाहिये. किन्तु सत्य और प्रियवचन अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २२ ॥ पक्षान्तरमें कर्ण—कठोर अप्रियवचन कहनेसे राजा अत्यन्त कुपित होते हैं. इसी कारण अब मैं अतिचिन्तान्वित हुआ हूं. हे राजेन्द्र ! वह अबला नारी क्या

त्रिदिवंचधरांत्यक्त्वाजीवितेच्छायदस्तिते ॥ इतिदूतवदाऽऽशुत्वंगत्वास्वपतिमादरात् ॥ १७ ॥ सविचार्ययथायुक्तंकरिष्यतिमहाबलः ॥ संसारेदूतधर्मो ऽयंयत्सत्यंभाषणंकिल ॥ १८॥ शत्रौपत्यौचधर्मज्ञतथात्वंकुरुमाचिरम् ॥ व्यासउवाच ॥ अथतद्वचनंश्रुत्वानीतिमद्बलसंयुतम् ॥ १९ ॥ हेतुयुक्तं प्रगल्भंचविस्मितःप्रययौतदा ॥ गत्वादैत्यपतिंदूतोविचार्यचपुनःपुनः ॥ २० ॥ प्रणम्यपादयोःप्रह्वःप्रत्युवाचनृपंचतम् ॥ राजनीतिकरंवाक्यंमृदुपूर्वं प्रियंवचः ॥ २१ ॥ दूतउवाच ॥ सत्यंप्रियंचवक्तव्यंतेनचिंतापरोह्यहम् ॥ सत्यंप्रियंचराजेंद्रवचनंदुर्लभंकिल ॥२२॥ अप्रियंवदतांकामंराजाकुप्यतिसर्व था ॥ साक्षात्कुतःसमायाताकस्यवाकिंबलाऽबला ॥ २३ ॥ नज्ञानगोचरंकिंचित्किंब्रवीमिविचेष्टितम् ॥ युद्धकामामयादृष्टागर्विताकटुभाषिणी ॥ २४ ॥ तयायत्कथितंसम्यक्तच्छृणुष्वमहामते ॥ मयाबाल्यात्प्रतिज्ञेयंकृतापूर्वविनोदतः ॥ २५ ॥ सखीनांपुरतःकामंविवाहंप्रतिसर्वथा ॥ योमांयुद्धेजये द्दर्पाद्दर्पंचविधुनोतिवै ॥ २६ ॥ तंवरिष्याम्यहंकामंपतिंसमबलंकिल ॥ नमेप्रतिज्ञामिथ्यासाकर्तव्यानृपसत्तम ॥ २७ ॥

बलवती है ? वह कहांसे इस स्थानमें आई है ॥ २३ ॥ और वह किसकी रमणी है ? यह सब विषय मैं कुछभी नहीं जानसक्ता. अतएव उसके व्यवहारका विषय किसप्रकार कहूं ? किन्तु तोभी उस कटुभाषिणी रमणीको देखकर इतना समझा है कि, वह अत्यन्तगर्वित होकर संग्राम करनेकी इच्छासे यहां आई है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! आप अत्यन्त बुद्धिमान् हैं, अतएव उस स्त्रीने आपसे जो कहा है वह सब सुनकर जो कर्त्तव्य हो सो कीजिये. उस स्त्रीने कहा है कि, मैंने पूर्वकालके समय बाल्यस्वभावसे क्रीडा करते करते सखियोंके सामने विवाहके विषयमें यह प्रतिज्ञा की है कि, जो कोई वीर मुझको भलीभाँति युद्धमें पराजित करके सहसा मेरा गर्व खर्व करेगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उस समबल पुरुषको अवश्य पति बनाऊंगी. हे नृपवर ! आप तो धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं इसकारण मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या करना

आपको उचित नहीं है ॥ २७ ॥ संग्राम करके मुझको अपने वशीभूत करो. हे महाराज ! उसके कहे यह वचन सुनकर मैं लौट आया हूं ॥२८॥ अब आपको जो प्रिय हो इच्छानुसार वही करो. वह स्त्री युद्धकेलिये कृतनिश्चय होकर अनेक प्रकारके आयुध धारण किये सिंहके पीठपर बैठी हुई है ॥ २९॥ वह बड़ी दृढ़ है. अब इस विषयमें जो कर्तव्य हो वही कीजिये. व्यासजी बोले हे राजन् ! नरपति शुंभने सुग्रीवके इसप्रकार वचन सुनकर ॥ ३० ॥ समीप स्थित वीरवर अपने भ्राता निशुंभसे पूंछा शुंभ बोला हे भाई ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो, अतएवइस विषयमें क्या करना चाहिये ? यह सत्य कहो ॥ ३१ ॥ अकेली स्त्री युद्धकी अभिलाषासे इस समय हमको बुलाती है इस कारण मैं संग्राममें जाऊं वा तुम सेनाको संग लेकर युद्धमें जाओगे ॥ ३२ ॥ इसमें तुम्हारी जो रुचि हो मैं वही

तस्माद्युद्धंचस्वधर्मज्ञजित्वामांस्ववशंकुरु ॥ तयेतिव्याहृतंवाक्यंश्रुत्वाऽहंसमुपागतः ॥२८॥ यथेच्छसिमहाराजतथाकुरुतवप्रियम् ॥ सायुद्धार्थंकृतमतिःसायुधासिंहगामिनी ॥ २९ ॥ निश्चलावर्ततेभूपयद्योग्यंतद्विधीयताम् ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यसुग्रीवस्यनराधिपः ॥ ३० ॥ पप्रच्छ भ्रातरंशूरंसमीपस्थंमहाबलम् ॥ शुंभउवाच ॥ भ्रातःकिमत्रकर्तव्यंब्रूहिसत्यंमहामते ॥ ३१ ॥ नार्येकायोद्धुकामाऽस्तिसमाह्वयतिसांप्रतम् ॥ अहं गच्छामिसंग्रामेत्वंवागच्छबलान्वितः ॥ ३२ ॥ यद्रोचतेनिशुंभाऽद्यतत्कर्तव्यंमयाकिल ॥ निशुंभउवाच ॥ नमयानत्वयावीरगंतव्यंरणमूर्धनि ॥ ३३ ॥ प्रेषयस्वमहाराजत्वरितंधूम्रलोचनम् ॥ सगत्वातांरणेजित्वागृहीत्वाचारुलोचनाम् ॥३४॥ आगमिष्यतिशुंभाऽत्रविवाहःसंविधीयताम् ॥ व्यासउवाच ॥ तन्निशम्यवचस्तस्यशुंभोभ्रातुःकनीयसः ॥ ३५ ॥ कोपात्संप्रेषयामासपार्श्वस्थंधूम्रलोचनम् ॥ शुंभउवाच ॥ धूम्रलोचनगच्छाऽऽशुसैन्येनमहताऽऽवृतः ॥ ३६ ॥ गृहीत्वाऽऽनयतांमुग्धांस्ववीर्यमदमोहिताम् ॥ देवोवादानवोवाऽपिमनुष्योवामहाबलः ॥ ३७ ॥ तत्पार्ष्णिग्राहतांप्राप्तोहंतव्यस्तरसात्वया ॥ तत्पार्श्ववर्तिनींकालींहत्वासंगृह्यतांपुनः ॥ ३८ ॥

करूंगा. निशुंभने कहा हे महाराज ! संग्रामस्थलमें आपका वा मेरा जाना उचित नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव धूम्रलोचनको शीघ्र समरमें भेजो यह वीर वहां जाकर उस चारुलोचना ललनाको रणमें जीतकर यहां ले आवे ॥ ३४ ॥ तो फिर आप उससे विवाह कीजिये. व्यासजी बोले शुंभने कनिष्टभ्राताकी यह बात सुन ॥ ॥ ३५ ॥ तत्काल क्रोधित होकर पार्श्वस्थित धूम्रलोचनको युद्धके लिये भेजा. शुंभने कहा हे धूम्रलोचन ! तुम बहुतसी सेनासहित अभी रणमें जाओ ॥ ३६ ॥ और वीर्यके मदसे गर्विता उस मुग्धा स्त्रीको ले आओ और यदि देवदानव वा मनुष्योंमें ॥ ३७ ॥ कोई भी महाबलवान् पुरुष उसका पृष्ठरक्षक हो तो तुम तत्काल

उसका विनाश करो उसके पार्श्ववर्तिनी कालीको मारकर उसको ग्रहण करो ॥ ३८ ॥ हे वीरवर ! तुम यह सब महत् कार्य संपादन करके शीघ्र यहाँ आओ. उस कृशाङ्गी साध्वीका शरीर अतिशय कोमल है. अतएव जिससे वह रमणी विनष्ट न हो, तुम अत्यन्त यत्नसहित उसी प्रकारके कोमल बाण परित्याग करो ॥ ३९ ॥ हे वीर ! इसमें यत्न रखना. कारण कि, उस कृशोदरीका कोमल शरीर है किन्तु जो शस्त्रधारण करके उसका सहायक हो उसका संहार करो ॥ ४० ॥ फलतः उस कामिनीको किसीप्रकार निहत न करके उसकी यत्नसहित रक्षा करो. व्यासजी बोले हे राजन् ! धूम्रलोचन राजाकी इस प्रकार आज्ञा पाते ही ॥ ४१ ॥ दैत्यपति शुंभको प्रणाम कर छेः हजार दानवोंके सहित शीघ्र संग्राममें गया ॥ ४२ ॥ और उस स्थानमें उपस्थित होकर देखा कि, वह देवी मनोहर उपवनमें बैठी हुई है. तब धूम्रलो

शीघ्रमत्रसमागच्छकृत्वाकार्यमनुत्तमम् ॥ रक्षणीयात्वयासाध्वीमुंचंतीमृदुमार्गणान् ॥ ३९ ॥ यत्नेनमहतावीरमृदुदेहाकृशोदरी ॥ तत्सहायाश्चहंतव्यायेरणेशस्त्रपाणयः ॥ ४० ॥ सर्वथासानहंतव्यारक्षणीयाप्रयत्नतः ॥ व्यासउवाच ॥ इत्यादिष्टस्तदाराज्ञातरसाधूम्रलोचनः ॥४१॥ प्रणम्यशुंभंसैन्येनवृतःशीघ्रंययौरणे ॥ असाधूनांसहस्राणांषट्चातेषांवृतस्तथा ॥४२॥ सददर्शततोदेवींरम्योपवनसंस्थिताम् ॥ दृष्ट्वातांमृगशावाक्षींविनयेनसमन्वितः ॥४३॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णंहेतुमद्रसभूषितम् ॥ शृणुदेविमहाभागेशुंभस्त्वद्विरहाऽऽतुरः ॥ ४४ ॥ दूतंप्रेषितवान्पार्श्वेतवनीतिविशारदः ॥ रसभंगभयोद्विग्नःसामपूर्वत्वयिस्वयम् ॥ ४५ ॥ तेनाऽऽगत्यवचःप्रोक्तंविपरीतंवरानने ॥ वचसातेनमेभर्ताचिंताविष्टमनानृपः ॥ ४६ ॥ बभूवरसमार्गज्ञेशुंभःकामविमोहितः ॥ दूतेनतेनतज्ज्ञातंहेतुगर्भंवचस्तव ॥ ४७ ॥ योमांजयतिसंग्रामेयदुक्तंकठिनंवचः ॥ नज्ञातस्तेनसंग्रामोद्विविधःखलुमानिनि ॥ ४८ ॥ रतिजोऽथोत्साहजश्चपात्रभेदेविवक्षितः ॥ रतिजस्त्वयिवामोरुशत्रोरुत्साहजःस्मृतः ॥ ४९ ॥

चन उस मृगनयनीको देख विनयसहित ॥ ४३ ॥ हेतुपूर्ण मधुर और सरस वचनसे कहने लगा हे देवि ! तुम अतिसौभाग्यवती हो. क्योंकि दैत्यपति शुंभ तुम्हारे विरहमें कातर हुए हैं ॥ ४४ ॥ उन नीतिविशारद राजाने रसभंगके भयसे उद्विग्न होकर तुम्हारे निकट प्रीतिवचन कहकर स्वयंही दूतभेजा था ॥ ४५ ॥ किन्तु हे वरानने ! उस दूतने जाकर राजाके निकट सब विपरीत वचन कहे हैं. इससे महाराज दुःखी हुए ॥ ४६ ॥ हे रसज्ञे ! इससे कामातुर मेरे प्रभु महाराज शुंभ चिन्तामें निमग्न हुए हैं. वह दूत तुम्हारे वचनोंका गूढ़ तात्पर्य नहीं जान सका ॥ ४७ ॥ हे मानिनि "जो पुरुष संग्राममें मुझको जीतेगा" तुम्हारे इस कठोरवचनका तात्पर्य गूढ़ होनेसे तुम्हारे अभिलषित संग्रामके अर्थको नहीं जानसका ॥ ४८ ॥ हे वामोरु ! रतिजनित और उत्साहजनित संग्राम पात्रभेदसे दो प्रकारका है. रतिजनित

संग्राम तुममें ही शोभा पाता है और उत्साहजनित संग्राम शत्रुके प्रति प्रयुक्त होता है ॥ ४९ ॥ इन दोनों संग्राममें रतिजनित संग्राम सुखदायक है. और शत्रु जनित संग्रामको क्लेशदायक जानना चाहिये. हे नितम्बिनि ! तुम्हारे मनका भाव मैं भलीभाँति समझ गया हूं ॥ ५० ॥ तुम्हारे हृदयमें रति जनित संग्रामका भावही देदीप्यमान रहता है. नरपति शुंभने इस समय इस विषयमें मुझको विशेषज्ञ जानकर ॥ ५१ ॥ विपुलसैन्यसहित मुझको ही तुम्हारे पास भेजा है. हे भाग्यवति ! तुम चतुर हो, अतएव मेरे वचनोंका तात्पर्य सहजमेंही समझ सक्ती हो. अब मेरे हितकर वचन सुनो ॥ ५२ ॥ देखो, शुंभ देवताओंका दर्पदलन करके तीनों लोकोंके अधीश्वर हुए हैं. तुम उनसे विवाह करो तो तुम उनकी प्रियतमा पटरानी होकर अनेक भोग करोगी ॥ ५३ ॥ और वह महाबाहु शुंभ कामरणका प्रकृत अर्थ

सुखदःप्रथमःकांतिदुःखदश्चाऽरिजःस्मृतः ॥ जानाम्यहंवरारोहेभवत्यामानसंकिल ॥ ५० ॥ रतिसंग्रामभावस्तेहृदयेपरिवर्तते ॥ इतितज्ज्ञंविदित्वामां त्वत्सकाशंनराऽधिपः ॥ ५१ ॥ प्रेषयामासशुंभोऽद्यबलेनमहताऽऽवृतम् ॥ चतुराऽसिमहाभागेशृणुमेवचनंमृदु ॥ ५२ ॥ भजशुंभंत्रिलोकेशंदे वदर्पनिबर्हणम् ॥ पट्टराज्ञीप्रियाभूत्वाभुंक्ष्वभोगाननुत्तमान् ॥ ५३ ॥ जेष्यतित्वांमहाबाहुःशुंभःकामबलार्थवित् ॥ विचित्रान्कुरुहावांस्त्वंसोऽपि भावान्करिष्यति ॥ ५४ ॥ भविष्यतिकालिकेयंतत्रवैनर्मसाक्षिणी ॥ एवंसंगरयोगेनपतिर्मेंपरमार्थवित् ॥ ५५ ॥ जित्वात्वांसुखशय्यायांपरिश्रांतांक रिष्यति ॥ रक्तदेहांनखाघातैर्दंतैश्चखंडिताधराम् ॥५६॥ स्वेदक्लिन्नांप्रभग्नांत्वांसंविधास्यतिभूपतिः ॥ भवितामानसःकामोरतिसंग्रामजस्तव ॥ ५७ ॥ दर्शनाद्वश्यएवाऽऽस्तेशुंभःसर्वात्मनाप्रिये ॥ वचनंकुरुमेपथ्यंहितकृच्चाऽपिपेशलम् ॥ ५८ ॥ भजशुंभंगणाध्यक्षंमाननीयातिमानिनी ॥ मंदभाग्याश्चते नूनंह्यस्त्रयुद्धप्रियाश्चये ॥ ५९ ॥

जानते हैं, अतएव वह तुमको अनायास ही जीतेंगे तुम्हारे विचित्रभाव और मनोगतभावप्रदर्शन करनेपर वह भी भावप्रकाश करेंगे ॥ ५४ ॥ और यह कालिका तुम्हारी नर्मक्रीडाकी सहचरी होकर उसी स्थानमें वास करेगी. कामशास्त्रवित् दैत्यपति शुंभकेसहित रतियुद्धमें प्रवृत्त होनेसे ॥ ५५ ॥ वह तुमको जीतकर सुखशय्यापर परिश्रांत थकित करेंगे, वह तुम्हारा शरीर नखाघातसे शोणितसिक्त और अधरदंतद्वारा खंड खंड कर डालेंगे ॥ ५६ ॥ तब वह स्वेदयुक्त शरीर करके तुमको कामरणमें पराजित कर देंगे. तुम्हारी मानसिक रतिजनित संग्रामलालसा इसीप्रकार पूर्ण होगी ॥ ५७ ॥ हे प्रणयिनि ! तुम्हारे दर्शनमात्रसेही शुंभ सर्व अन्तःकरणसे तुम्हारे वशीभूत होंगे. अतएव तुम मेरे हितकर मनोहर वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ५८ ॥ तुम अतिशयमानिनी हो, इसकारण शुंभसे विवाह करके सबकी माननीय होगी, इसमें सन्देह

नहीं. जो शस्त्रयुद्धको प्रिय जानते हैं, वह अत्यन्त मंदभाग्य हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५९ ॥ हे कान्ते ! सुरतही तुमको सदा प्रिय है, अतएव शस्त्रादिसे संग्राम करना तुम्हारे उपयुक्त नहीं है. हे देवि ! अधिक और क्या कहूं ? पदाघातसे राजाको ऐसे अशोक करो ॥ ६० ॥ बकुल और कुरबक तरु मुख मदिराद्वारा उत्सिक्त होनेपर जिसप्रकार विकसित होते हैं और अशोकवृक्ष स्त्रियोंके पदप्रहारसे जिसप्रकार विकसित होते हैं तुमभी उसीप्रकार मुखमदिरासे और पदाघातसे राजाका अन्तःकरण प्रफुल्लित करके उसको शोकरहित करो ॥ ६१ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥छ॥ ॥ व्यासजी बोले हे जन्मेजय ! धूम्रलोचनके इसप्रकार कहकर चुप होनेपर कालिका देवीने उत्कट हास्यकर ललितवचनसे कहा ॥ १ ॥ रे मूढ ! तू चाटुकारी वचन कहनेमें निपुण होनेसे नटकी समान वचन कहता है. तैंने मनमें जाना है कि, मधुरवचनकहनेसेही मनोरथ पूर्ण होगा, किन्तु यह अत्यन्त असंभव है ॥ २ ॥ हे मूढमते !

नतदर्हासिकांतेत्वंसदासुरतवल्लभे ॥ अशोकंकुरुराजानंपादघातविकासितम् ॥ ६० ॥ बकुलंसीधुसेकेनतथाकुरुबकंकुरु ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कन्धेदेवीमाहात्म्येचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाविररामाऽसौवचनंधूम्रलोचनः ॥ प्रत्युवाचतदाकालीप्रहस्यललितंवचः ॥ १ ॥ विदूषकोऽसिजाल्मत्वंशैलूषइवभाषसे ॥ वृथामनोरथांश्चित्तेकरोषिमधुरंवदन् ॥ २ ॥ बलवान्बलसंयुक्तःप्रेषितोऽसिदुरात्मना ॥ कुरुयुद्धंवृथावादंमुंचमूढमतेऽधुना ॥ ३ ॥ हत्वाशुंभनिशुंभंचत्वदन्यान्वाबलाऽधिकान् ॥ देवीक्रुद्धाशराऽऽघातैर्व्रजिष्यतिनिजालयम् ॥ ४ ॥ क्वाऽसौमंदमतिःशुंभःक्वावाविश्वविमोहिनी ॥ अयुक्तःखलुसंसारेविवाहविधिरेतयोः ॥ ५ ॥ सिंहीकिंत्वतिकामार्ताजंबुकंकुरुतेपतिम् ॥ करिणीगर्दभंवापिगवयंसुरभिःकिमु ॥ ६ ॥ गच्छशुंभंनिशुंभंचवदसत्यंवचोमम ॥ कुरुयुद्धंनचेद्याहिपातालंतरसाऽधुना ॥ ७ ॥

तू बलवान् है और विशेषकर उस दुरात्माकी अनुमतिके अनुसार बहुतसी सेना संगलेकर यहां आया है, अब व्यर्थ वाक्यव्यय छोड़कर युद्ध कर ॥ ३ ॥ यह देवी कुपित होकर तुझे शुंभ और निशुंभको तथा अन्यान्य सेनापतियोंको बाणोंसे संहार करके फिर अपने स्थानको जायगी ॥ ४ ॥ देखो, शुंभ मन्दमति और यह देवी विश्वमोहिनी है, सुतरां इन दोनोंमें अधिक अंतर है. अतएव इस संसारमें इन दोनोंकी परस्पर विवाह विधि अत्यन्त अयोग्य है ॥ ५ ॥ रे मूढ ! तू विचार देख, सिंही यदि अत्यन्त कामातुर हो तथापि वह क्या कभी सामान्य शृगालको वा हाथिनी क्या गधेको वा गाय क्या गवय गोसदृश को पति करसक्ती है ? ॥ ६ ॥ तू इसी समय शीघ्र शुंभ और निशुंभके समीप जाकर मेरे यह सत्यवचन कह कि, वह अभी युद्धके लिये तैयार हों; नहीं तो अभी पातालमें भागकर अपने प्राणोंकी रक्षा करें ॥ ७ ॥

व्यासजी बोले हे महाभाग ! वह दानव धूम्रलोचन कालिकाके इसप्रकार वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो लाल लाल नेत्र कर उनसे कहने लगा ॥ ८ ॥ हे कुत्सिताङ्गी ! आज तुझको और इस मदगर्वित सिंहको समरमें निहत करके इस सुन्दरीको राजाके निकट लेजाऊंगा ॥ ९ ॥ हे काली ! केवल रसभंगके भयसे अवतक यह कार्य नहीं करसका. हे कलहप्रिये ! यदि ऐसा न होता तो अभी तुमको निशित बाणोंसे मार डालता, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ कालिकाने धूम्रलोचनकी यह बात सुनकर कहा रे मूढ ! तू क्यों मिथ्या आत्मश्लाघा करता है, यह धनुर्धारी वीरोंका धर्म नहीं है, तू अब अपनी शक्तिके अनुसार बाण छोड़ मैं अभी तुझको शमन सदनको प्रेरण करती हूं ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! देवीके इसप्रकार वचन सुन दानव धूम्रलोचन दृढकार्मुक ग्रहण कर कालिकाके

व्यासउवाच ॥ कालिकायावचःश्रुत्वासदैत्योधूम्रलोचनः ॥ तामुवाचमहाभागक्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ८ ॥ दुर्दर्शेत्वांनिहत्याऽऽजौसिंहं चमदगर्वितम् ॥ गृहीत्वैनांगमिष्यामिराजानंप्रत्यहंकिल ॥ ९ ॥ रसभंगभयात्कालिबिभेमितिवहसांप्रतम् ॥ नोचेत्त्वांनिशितैर्बाणैर्हन्म्यद्यकलहप्रिये ॥ १० ॥ कालिकोवाच ॥ किंविकत्थसिमंदात्मन्नायंधर्मोधनुष्मताम् ॥ स्वशक्त्यामुंचविशिखान्गंतासियमसंसदि ॥ ११ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदैत्यःसंगृह्यकार्मुकंदृढम् ॥ कालिकांतांशराऽऽसारैर्ववर्षाऽतिशिलाशितैः ॥ १२ ॥ देवास्तुप्रेक्षकास्तत्रविमानवरसंस्थिताः ॥ तांस्तुवंतोजयेत्यूचुर्देवींशक्रपुरोगमाः ॥ १३ ॥ तयोः परस्परंयुद्धंप्रवृत्तंचाऽतिदारुणम् ॥ बाणखड्गगदाशक्तिमुसलादिभिरुत्कटम् ॥ १४ ॥ कालिकाबाणपातैस्तुहत्वापूर्वंखरानथ ॥ बभंजतद्रथंव्यूढंजहासचमुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ सचाऽन्यंरथमारूढःकोपेनप्रज्वलन्निव ॥ बाणवृष्टिंचकारोग्रांकालिकोपरिभारत ॥ १६ ॥ साऽपिचिच्छेदतरसातस्यबाणानसंगतान् ॥ मुमोचाऽन्यांस्तुग्रवेगान्दानवोपरिकालिका ॥ १७ ॥ तैर्बाणैर्निहतास्तस्यपार्ष्णिग्राहाःसहस्रशः ॥ बभंजचरथंवेगात्सूतंहत्वाखरानपि ॥ १८ ॥

ऊपर शाणित सायकोंकी वर्षा करने लगा ॥ १२ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता उत्तम उत्तम विमानोंमें बैठकर युद्धको देखते हुए "जयहो जयहो" इसप्रकार कहकर देवीका स्तव करने लगे ॥ १३ ॥ तब बाण, खड्ग, गदा, शक्ति और मूशल इत्यादि अनेक प्रकारके अस्त्रवर्षणद्वारा उनका परस्पर घोरतर दारुण युद्ध होने लगा ॥ १४ ॥ कालिकाने बाणोंके प्रहारसे प्रथम तो उसके रथवाहक खचर नष्ट कर डाले. फिर उसका विशाल रथ तोड़कर वारंवार हास्य करने लगी ॥ १५ ॥ हे भारत ! तब धूम्रलोचन दूसरे रथमें चढ़. क्रोधसे प्रज्वलित हो कालिकाके ऊपर घोर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १६ ॥ कालिका देवीने भी उन सब बाणोंके आते आतेही तत्काल खंड खंड कर डाले और दानवोंके ऊपर सवेग अपने बाणोंको छोड़ने लगी ॥ १७ ॥ उन बाणोंसे उसके हजार हजार पार्श्वरक्षक निहत हुए, अधिक क्या ?

उन्होंने उन सब बाणोंसे उसके वाहक खर और सारथीको मारकर रथतोड़ डाला ॥ १८ ॥ सर्पकी समान वेगशाली बाणोंसे उसके धनुषको काटकर शंखध्वनि करी. यह देखकर देवतागण अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ १९ ॥ धूम्रलोचन विरथ होतेही कुपित हो लोहमय दृढ परिघ ले रथके समीप आया ॥ २० ॥ तब कालकी समान भयंकर दानव देवीकी भर्त्सना करके कहने लगा. हे कुत्सिताङ्गी ! पिंगललोचने कालि ! मैं अभी तुमको मारूंगा ॥ २१ ॥ यह कहकर सहसा उनके निकट जाय परिघनिक्षेप करनेमें उद्यत हुआ, तभी अम्बिका देवीने हुंकारशब्दसे उसको भस्म कर डाला ॥ २२ ॥ धूम्रलोचनको भस्म हुआ देख उसकी सब सेना भयसे विह्वल हो मार्गमें हा तात ! हा तात ! कह रोदन करती करती तत्काल भाग गई ॥ २३ ॥ देवता धूम्रलोचनको निहत देखकर प्रफुल्ल अन्तःकरण हो आकाशमण्ड

चिच्छेदतद्धनुःसद्योबाणैरुरगसन्निभैः ॥ मुदंचक्रेसुराणांसाशंखनादंतथाऽकरोत् ॥ १९ ॥ विरथःपरिघंगृह्यसर्वंलोहमयंदृढम् ॥ आजगामरथोपस्थंकुपितोधूम्रलोचनः ॥ २० ॥ वाचानिर्भर्त्सयन्कालींकरालःकालसन्निभः ॥ अद्यैवत्वांहनिष्यामिकुरूपेपिंगलोचने ॥ २१ ॥ इत्युक्त्वासहसाऽऽगत्यपरिघंक्षिपतेयदा ॥ हुंकारेणैवतंभस्मचकारतरसांबिका ॥ २२ ॥ दृष्ट्वाभस्मीकृतंदैत्यंसैनिकाभयविह्वलाः ॥ चक्रुःपलायनंसद्योहातातेत्यब्रुवन्पथि ॥ २३ ॥ देवास्तंनिहतंदृष्ट्वादानवंधूम्रलोचनम् ॥ मुमुचुःपुष्पवृष्टिंतेमुदितागगनेस्थिताः ॥ २४ ॥ रणभूमिस्तदाराजन्दारुणासमपद्यत ॥ निहतैर्दानवैरश्वैःखरैश्ववारणैस्तथा ॥ २५ ॥ गृध्राःकाकावटाःश्येनावरफाजंबुकास्तथा ॥ ननृतुश्चुक्रुशुःप्रेतान्पतितात्रणभूमिषु ॥ २६ ॥ अंबिकातद्रणस्थानंत्यक्त्वादूरंस्थलांतरे ॥ गत्वाचकारचाऽप्युग्रंशंखनादंभयप्रदम् ॥ २७ ॥ तंश्रुत्वादरशब्दंतुशुंभःसद्मनिसंस्थितः ॥ दृष्ट्वाऽथदानवान्भग्नानागतान्रुधिरोक्षितान् ॥ २८ ॥ छिन्नपादकराक्षांश्चमंचकारोपितानपि ॥ भग्नपृष्ठकटिग्रीवान्क्रंदमानाननेकशः ॥ २९ ॥

लसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! उस समय किसी स्थानमें निहत दानवलोग, किसीस्थानमें घोडे, किसीस्थानमें हाथी और किसीस्थानमें खरों (गधों) के गिरनेसे रणभूमिने भयंकर मूर्ति धारण करी ॥ २५ ॥ गृध्र, काक, श्येन (पक्षी) वढवरकादि एकप्रकारके पिशाच और जम्बुक इत्यादि मांसलोभी जीव रणस्थलमें पड़े हुए प्रेतोंको देखकर नृत्य और विकट कोलाहलशब्द करने लगे ॥ २६ ॥ तब अम्बिकादेवीने वह रणस्थल छोड़, दूरवर्ती स्थानमें जाय ऐसी भयदायक प्रचण्ड शंखध्वनि करी ॥ २७ ॥ कि शुम्भने अपने स्थानमें बैठेहुए भी उस भयजनित शंखनादको सुना फिर कुछ कालोपरान्त ही देखा कि, दानव रणमें पीठ दे रोदन करते करते रणस्थलसे आरहे हैं. उनमें किसीका सर्वाङ्ग शरीर रुधिरकी धारामें डूबा हुआ ॥ २८ ॥ किसीका पद छिन्न, किसीके बाहु छिन्न, कोई

नेत्रविहीन, किसीकी पीठ टूटी हुई, किसीकी कमर टूटी हुई, किसीकी ग्रीवा टूटी हुई. और कोई शय्यापर सोया हुआ है ॥ २९ ॥ शुंभ और निशुंभने इनको देखकर पूँछा कि धूम्रलोचन इस समय कहां है ? तुम किसलिये रणमें पीठ दिखाकर लौट आये हैं ? और किसलिये उस सुवदना स्त्रीको नहीं लाये ॥ ३० ॥ अन्यान्य सब सेना कहां हैं और यह जो भयवर्द्धक शंखका शब्द कर्णविवरमें प्रविष्ट होता है यह शंखध्वनि किसकी है ? रे मूढो ! तुम इन सब बातोंका यथार्थ विवरण शीघ्र कहो ॥ ३१ ॥ सेनाने शुंभके यह वचन सुनकर कहा हे राजन् ! कालिका देवीने धूम्रलोचनको निहत और संपूर्ण सेनाको मारकर रणस्थलमें अलौकिक कार्य किया है ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! जिस शंखका शब्द कर्णविवरमें प्रविष्ट होकर दानवोंके हृदयमें भयसंचार कर देवताओंके हृदयमें आनन्द बढाताहुआ आकाशमंडलमें प्रतिध्वनित होता है यह अम्बिकाके शंखका नाद हैं ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! देवीने निरन्तर बाणवर्षा कर जिससमय दानवश्रेष्ठ धूम्रलोचनका रथ भग्न और घोड़ोंको मार

वीक्ष्यशुंभोनिशुंभश्चक्कगतोधूम्रलोचनः ॥ कथंभग्नाःसमायातानाऽऽनीताकिंवरानना ॥ ३० ॥ सैन्यंकुत्रगतंमंदाःकथयंतुयथोचितम् ॥ कस्याऽयंशंखनादोऽद्यश्रूयतेभयवर्धनः ॥ ३१ ॥ गणाऊचुः ॥ बलंचपातितंसर्वंनिहतोधूम्रलोचनः ॥ कृतंकालिकयाकर्मरणभूमावमानुषम् ॥ ३२ ॥ शंखनादोंबिकायास्तुगगनंव्याप्यराजते ॥ हर्षदःसुरसंघानांदानवानांचशोककृत् ॥ ३३ ॥ यदानिपातिताःसर्वेतेनकेसरिणाविभो ॥ रथाभग्नाहयाश्चैवबाणपातैर्विनाशिताः ॥ ३४ ॥ गगनस्थाःसुराश्चक्रुःपुष्पवृष्टिंमुदान्विताः ॥ दृष्ट्वाभग्नंबलंसर्वंपातितंधूम्रलोचनम् ॥ ३५ ॥ निश्चयस्तुकृतोऽस्माभिर्जयोनैवभवेदिति ॥ विचारंकुरुराजेंद्रमंत्रिभिर्मंत्रवित्तमैः ॥ ३६ ॥ विस्मयोऽयंमहाराजयदेकाजगदंबिका ॥ भवद्भिःसहयुद्धायसंस्थितासैन्यवर्जिता ॥ ३७ ॥ निर्भयैकाकिनीबालासिंहारूढामदोत्कटा ॥ चित्रमेतन्महाराजभासतेऽद्भुतमंजसा ॥ ३८ ॥ संधिर्वाविग्रहोवाऽद्यस्थानंनिर्याणमेवच ॥ मंत्रयित्वामहाराजकुरुकार्ययथारुचि ॥ ३९ ॥

कर उनको भी मारडाला. वह केसरी जब सेनाका विनाश करने लगा ॥ ३४ ॥ जब धूम्रलोचन रणशय्यामें शयन कर गये. जब सब सेना भग्न होगई. तब देवतालोग यह सब देख हर्षसहित आकाशमण्डलसे फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! हमको जय प्राप्त नहीं होगी. हमने इसप्रकार निश्चय कर लिया है. इसकारण अब आप मंत्रण कुशल मंत्रियोंके संग विचार करके जो कर्त्तव्य हो. वही करो ॥ ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! जगदम्बिका सेनाकी सहायता न लेकर भी आपके संग संग्राम करनेकी इच्छासे जो अकेली अपेक्षा करतीं है यही हमारे आश्चर्यकी बात है ॥ ३७ ॥ हेमहाराज! मदके गर्वसे गर्विता वह बाला निर्भय हो अकेली सिंहके पीठपर विराजमान है. हेराजेंद्र! यह सब तुमको अद्भुत बोध होताहै ॥ ३८ ॥ हे महाराज! संधिविग्रह पलायन वा उदासीनभावमें अवस्थिति,इनमें जो आपकी अभिलाषा हो मंत्रण करके उसी कार्य

का अनुष्ठान कीजिये ॥ ३९ ॥ हे शत्रुसंतापन! हमको बोध होता है कि, यद्यपि देवीके पास सेना नहीं है किन्तु तोभी आपद्कालके समय सब देवतालोग उसके पार्श्वरक्षक होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ यथासमय हरि और हर दोनों उसके समीप उपस्थित होंगे; इस समय लोकपालगण गगनमंडलका आश्रय करके उसके समीप ही वर्त्तमान रहते हैं ॥ ४१ ॥ हे सुरतापन! आप यह जानिये कि गंधर्व किन्नर और मनुष्य लोग सभी यथासमयमें उसके सहायक होंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज! हम अनुमानसे यही विचारते हैं कि, वस्तुतः वह अम्बिका किसीको सहायताकी आशा नहीं करती वा कोई उनका कार्य करै, वहयह आशा नहीं करती ॥ ४३ ॥ आप निश्चय जानिये कि, वह अकेलीही चराचरके सहित संपूर्ण जगन्मण्डलका विनाश कर सक्ती हैं, फिर सब दानवोंकी बात क्या कहें?

तत्सन्निधौबलंनाऽस्तितथाऽपिशत्रुतापन ॥ पार्ष्णिग्राहाःसुराःसर्वेभविष्यंति किलाऽऽपदि ॥४०॥ समयेतत्समीपस्थौज्ञातौचहरिशंकरौ॥लोकपालाःसमीपेऽद्यवर्ततेगगनेस्थिताः ॥४१॥ रक्षोगणाश्चगंधर्वाःकिन्नरामानुषास्तथा ॥ तत्सहायाश्चमंतव्याःसमयेसुरतापन ॥४२॥ अस्माकंमतिमानेनज्ञायतेसर्वथेदृशम् ॥ अंबिकायाःसहायाऽऽशातत्कार्याशानकाचन ॥४३॥ एकानाशयितुंशक्ताजगत्सर्वंचराचरम् ॥ काकथादानवानांतुसर्वेषामितिनिश्चयः ॥४४॥ इतिज्ञात्वामहाभागयथारुचितथाकुरु ॥ हितंसत्यंमितंवाक्यंवक्तव्यमनुयायिभिः ॥ ४५ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषांशुंभःपरबलार्दनः ॥ कनीयांसंसमानीयपप्रच्छरहसिस्थितः ॥ ४६ ॥ भ्रातःकालिकयाऽद्यैवनिहतोधूम्रलोचनः ॥ बलंचशातितंसर्वंगणाभग्नाःसमागताः ॥ ४७ ॥ अंबिकाशंखनादंवैकरोतिमदगर्विता ॥ ज्ञानिनांचैवदुर्ज्ञेयागतिःकालस्यसर्वथा ॥ ४८ ॥ तृणंवज्रायतेनूनंवज्रंचैवतृणायते ॥ बलवान्बलहीनःस्याद्दैवस्यगतिरीदृशी ॥ ४९ ॥ पृच्छामित्वांमहाभागकिंकर्तव्यमितःपरम् ॥ अभोग्याचांबिकानूनंकारणादत्रवागता ॥ ५० ॥

॥ ४४ ॥ हे महाभाग! यह सब वृत्तान्त जानकर आपकी जो रुचि हो, वही कीजिये. हित और परिमित सत्यवचनही भृत्यको कहना चाहिये, इसी कारण आपसे यह सब बात कही ॥ ४५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! परबलविमर्दक शुंभने उनके इसप्रकार वचन सुन छोटे भाईको निर्जनमें बुलाकर कहा ॥ ४६ ॥ हे भैया! अकेली कालिकाने आज धूम्रलोचनको मारकर सब सेनाका नाश किया है, शेष सेना भागकर हमारे पास चली आई है॥ ४७॥ इस समय अम्बिका मदगर्वित होकर शंखध्वनि करती है, कालकी गतिका जानना ज्ञानियोंके पक्षमें भी सहज नहीं है॥ ४८॥ देखो, कालकी गतिसे तृण कहीं वज्रकी समान, कहीं वज्र तृणकी समान और कहीं बलवान् भी बलहीन होता है, अतएव दैवकी गति इसी प्रकार जाननी चाहिये ॥ ४९ ॥ हे महाभाग! तुमसे पूँछता हूँ, अब हमारा क्या कर्त्तव्य है? इस समय

कारणसे आई अम्बिका भोग करनेको अशक्य है ॥ ५० ॥ वा यहांसे भागना चाहिये? या युद्ध करना ठीक है ? तुम यह शीघ्र कहो, यद्यपि तुम मेरे छोटे भाई हो, किन्तु संकटस्थलके समय मैं तुमको बड़ा समझता हूं ॥ ५१ ॥ निशुंभने शुंभकी ऐसी बातें सुनकर कहा हे पापहीन ! भागना वा दुर्गका आश्रय ग्रहण करना युक्ति संगत नहीं है, इसके संग युद्ध करनाही सबप्रकारसे श्रेष्ठ होगा ॥ ५२ ॥ मैं प्रधान प्रधान योधा और सेनासहित समरमें जाय उस अबलाका संहार करके शीघ्र आऊंगा ॥ ५३ ॥ वा यदि दैवकी प्रबलतासे इसके अन्यथा हो तो मेरे मरनेपर आप वारंवार विचार कर जो उचित हो वह कीजिये ॥५४॥ शुंभने छोटे भाईके इस प्रकार वचन सुनकर कहा "तुम अपेक्षा करो, इस सेना समूहको संग लेकर चंड और मुंड दोनों जायँ ॥ ५५ ॥ क्योंकि खरगोशके पकड़नेको गजेन्द्रका भेजना उचित नहीं

युक्तंपलायनंवीरयुद्धंवावदसत्वरम् ॥ लघुंज्येष्ठंविजानामित्वामहंकार्यसंकटे ॥ ५१ ॥ निशुंभउवाच ॥ नवापलायनंयुक्तंनदुर्गग्रहणंतथा ॥ युद्धमेव परंश्रेयःसर्वथैवाऽनयाऽनव ॥ ५२ ॥ ससैन्योऽहंगमिष्यामिरणेतुप्रवराश्रितः ॥ हत्वातामागमिष्यामितरसात्वबलामिमाम् ॥ ५३ ॥ अथवाबलव द्दैवादन्यथाचेद्भविष्यति ॥ मृतेमयित्वयाकार्यंविमृश्यचपुनःपुनः ॥ ५४ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाशुंभःप्रोवाचचाऽनुजम् ॥ तिष्ठत्वंचंडमुंडौद्वौगच्छेतांब लसंयुतौ ॥ ५५ ॥ शशकग्रहणायाऽत्रनयुक्तंगजमोचनम् ॥ चंडमुंडौमहावीरौतांहंतुंसर्वथाक्षमौ ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वाभ्रातरंशुंभंसंभाष्यचमहाबलौ ॥ उवाचवचनंराजाचंडमुंडौपुरःस्थितौ ॥ ५७ ॥ गच्छतंचंडमुंडौद्वौस्वसैन्यपरिवारितौ ॥ हंतुंतामबलांशीघ्रंनिर्लज्जांमदगर्विताम् ॥ ५८ ॥ गृहीत्वाऽथनि हत्याऽऽजौकालिकांपिंगलोचनाम ॥ आगम्यतांमहाभागौकृत्वाकार्यमहत्तरम् ॥ ५९ ॥ सानाऽऽयातिगृहीताऽपिगर्विताचांबिकायदि ॥ तदाबाणैर्महा तीक्ष्णैर्हंतव्याऽऽहवमंडिता ॥ ६० ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपं० पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याज्ञप्तौतदावीरौचंडमुंडौ महाबलौ ॥ जग्मतुस्तरसैवाऽऽजौसैन्येनमहताऽन्वितौ ॥१॥ दृष्ट्वातत्रस्थितांदेवींदेवानांहितकारिणीम् ॥ ऊचतुस्तौमहावीर्यौतदासामान्वितंवचः ॥२॥

है, यह अतिसामान्य विषय है. महावीर चंड और मुंड उसका विनाश करनेमें सम्यक्प्रकारसे समर्थ होंगे॥ ५६ ॥ राजा शुंभने भाईसे यह कहकर सन्मुख स्थित महावीर चण्ड मुण्डसे कहा ॥५७॥ हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम मदगर्विता लज्जाहीनउस अबला ललनाको मारनेके लिये शीघ्र अपनी सेना सहित जाओ ॥ ५८ ॥ हे वीरयुगल ! उस पिंगलनयना कालिकाको संग्रामस्थलमें मारकर और उस अम्बिकाको ग्रहणपूर्वक यह बड़ा काम करके शीघ्र आओ ॥ ५९ ॥ और यदि वह गर्वित अम्बिका गृहीत होनेपरभी न आवे तो पैने बाणोंसे रणभूषणरूप दुर्गाकोभी मार डालो ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः॥ २५॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! तब महावीर चंड और मुंड शुंभकी यह आज्ञा पातेही महती सेनाके सहित उसी समय समरमें गये ॥ १ ॥ वह अत्यन्त बलवान् दोनों

दानव समरस्थलमें देवताओंकी हितकारिणी देवीको देख सामसंयुक्त मधुर वचनोंसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे बाले ! तुम क्या इस बातको नहीं जानती हो कि, महाबल पराक्रमी असुरराज शुंभ और निशुंभने देवताओंकी सब सेनाको पीडित किया है और सुरपति इन्द्रको पराजित करके विजयके मदसे उन्मत्त हुए हैं ॥ ३ ॥ हे नितम्बिनी ! तुमको दुर्बुद्धि उपस्थित हुई है इसमें सन्देह नहीं. नहीं तो किसलिये तुम अकेली केवलमात्र कालिका और सिंहको सहाय करके सब सेनाके सहित शुंभको परास्त करनेकी इच्छा करतीं ॥ ४ ॥ मुझको जान पड़ता है जो तुमको सुबुद्धि प्रदान करैं, ऐसा पुरुष वा स्त्री कोई नहीं है ? देवताओंने तुम्हारे विनाशकेलियेही तुमको रणस्थलमें भेजा है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५ ॥ हे कृशाङ्गी ! अपना और दूसरेका बलाबल विचार कर कार्यमें प्रवृत्त होओ और यदि अपने अठारह बाहुद्वारा अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र चलाकर युद्धमें जय प्राप्त करूंगी मनमें इस प्रकार गर्व करती हो. वह अत्यन्त निष्फल है ॥६॥ क्योंकि वह सुरविजयी शुंभ जब संग्राम करनेमें

बालेत्वंकिंनजानासिशुंभंसुरबलार्दनम् ॥ निशुंभंचमहावीर्यंतुराषाड्विजयोद्धतम् ॥ ३ ॥ त्वमेकासिवरारोहेकालिकासिंहसंयुता ॥ जेतुमिच्छसिदुर्बुद्धेशुंभंसर्वबलान्वितम् ॥ ४ ॥ मतिदःकोऽपितेनाऽस्तिनारीवाऽपिनरोऽपिवा ॥ देवास्त्वांप्रेरयंत्येवविनाशायतवैवते ॥ ५ ॥ विमृश्यकुरुतन्वंगिकार्यंस्वपरयोर्बलम् ॥ अष्टादशभुजत्वात्त्वंगर्वंचकुरुषेमृषा ॥ ६ ॥ किंभुजैर्बहुभिर्व्यर्थैरायुधैःकिंश्रमप्रदैः॥शुंभस्याऽग्रेसुराणांवैजेतुःसमरशालिनः ॥७॥ ऐरावतकरच्छेत्तुर्दंतिदारणकारिणः ॥ जयिनःसुरसंघानांकार्यंकुरुमनोगतम् ॥ ८ ॥ वृथागर्वायसेकांतेकुरुमेवचनंप्रियम् ॥ हितंतवविशालाक्षिसुखदंदुःखनाशनम् ॥ ९ ॥ दुःखदानिचकार्याणित्याज्यानिदूरतोबुधैः ॥ सुखदानिचसेव्यानिशास्त्रतत्त्वविशारदैः ॥ १० ॥ चतुरासिपिकालापेपश्यशुंभबलंमहत् ॥ प्रत्यक्षंसुरसंघानांमर्दनेनमहोदयम् ॥ ११ ॥ प्रत्यक्षंचपरित्यज्यवृथैवाऽनुमितिःकिल ॥ संदेहसहितेकार्येनविपश्चित्प्रवर्तते ॥ १२ ॥

प्रवृत्त होंगे. तब तुम्हारी सब बाहु और आयुध उनका क्या करैंगे ? यह सब केवल धारण परिश्रममात्र होगा. किन्तु उससे किसी फलके प्राप्त होनेकी आशा नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥ जिस वीरश्रेष्ठने ऐरावतकी सूंडैं छेदन की हैं. जिन्होंने हाथियोंके दांत उखाड़े हैं. और जिन्होंने सब देवताओंको पराजित किया है. तुम उन शुंभका अभिलषित कार्य करो ॥ ८ ॥ हे कान्ते ! तुम वृथा गर्विताके समान व्यवहार करती हो. हे विशालनयने ! मेरे प्रियवचनोंका प्रतिपालन करो मेरे यह हितवचन सुननेसे तुम्हारा क्लेश दूर होकर सुखका उदय होगा. इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ९ ॥ जिन कार्योंके करनेसे क्लेश होता है. शास्त्रतत्त्वविशारद पण्डितगण वह कार्य नहीं करते. बरन वह सदासुखदायक कार्यही करते हैं ॥ १० ॥ हे मधुरभाषिणी ! तुम चतुर हो. अतएव शुंभने देवताओंको पीडित करके अपने महत् बलसे कितनी श्रीवृद्धि कीहै यह तुम प्रत्यक्ष देखो ॥ ११ ॥ और यदि तुम देवताओंकी सेनाको महत्तर अनुमान करती हो. सो मिथ्या है. क्योंकि पण्डितगण प्रत्यक्षप्रमाण

छोड़कर कभी सन्देहयुक्त अनुमानकार्यमें प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥ १२ ॥ समरदुर्जय शुंभ देवताओंका परमशत्रु है, अतएव दानवपतिसे देवताओंने पीडित होकर ही तुमको इस स्थानमें भेजा है ॥ १३ ॥ हे शुचिस्मिते ! तुम इसीकारण देवताओंके मधुर वचनोंसे वञ्चित हुई हो. देवताओंने अपने कार्यसाधनकी अभिलाषासे तुमको क्लेश देनेके लियेही ऐसा उपदेश दिया है ॥ १४ ॥ कार्यवशसे जो मित्र हो. उसको छोड़कर धर्मके कारण जो मित्र हो. उसको ही आश्रय करना चाहिये. देखो मैं तुमसे निश्चय कहता हूं. कि देवतालोग अत्यन्त स्वार्थपरायण हैं. वह अपना कार्य साधन करनेके लियेही तुम्हारे परममित्र हुए हैं ॥ १५ ॥ शुंभ देवताओंको जीत कर त्रिभुवनके अधीश्वर हुए हैं विशेष कर वह शूर, सुन्दर, चतुर और कामशास्त्रमें विशारद हैं. इसकारण अब तुम उनकी ही भजना करो ॥ १६ ॥ देखो त्रैलोक्यमें जो सब

शत्रुःसुराणांपरमःशुंभःसमरदुर्जयः ॥ तस्मात्त्वांप्रेरयंत्यत्रदेवादैत्येशपीडिताः ॥ १३ ॥ तस्मात्तद्वचनैःस्निग्धैर्वंचिताऽसिशुचिस्मिते ॥ दुःखायतवदेवानां शिक्षास्वार्थस्यसाधिका ॥ १४ ॥ कार्यमित्रंपरिक्षिप्यधर्ममित्रंसमाश्रयेत् ॥ देवाःस्वार्थपराःकामंत्वामहंसत्यमब्रुवम् ॥ १५ ॥ भजशुंभंसुरेशानंजेतारं भुवनेश्वरम् ॥ चतुरंसुंदरंशूरंकामशास्त्रविशारदम् ॥ १६ ॥ ऐश्वर्यंसर्वलोकानांप्राप्स्यसेशुंभशासनात् ॥ निश्चयंपरमंकृत्वाभर्तारंभजशोभनम् ॥ १७ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाचंडस्यजगदंबिका ॥ मेघगम्भीरनिनदंजगर्जपुनरब्रवीत् ॥ १८ ॥ गच्छजाल्ममृषाकिंत्वंभाषसेवंचकंवचः ॥ त्यक्त्वा हरिहरादींश्चशुंभंकस्माद्भजेपतिम् ॥ १९ ॥ नमेकश्चित्पतिःकार्योनकार्यंपतिनासह ॥ स्वामिनीसर्वभूतानामहमेवनिशामय ॥ २० ॥ शुंभामेबहवो दृष्टानिशुंभाश्चसहस्रशः ॥ घातिताश्चमयापूर्वंशतशोदैत्यदानवाः ॥ २१ ॥ ममाऽग्रेदेववृंदानिविनष्टानियुगेयुगे ॥ नाशंयास्यंतिदैत्यानांयूथानिपुनरद्यवै ॥ २२ ॥

ऐश्वर्य है शुंभके शासनसे वह तुम सब प्राप्त करोगी. अतएव तुम स्थिरनिश्चय करके उसी सुशोभनभर्त्ता शुंभका भजन करो ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले हेमहाराज! जगदम्बिका चण्डके इसप्रकार वचन सुन. मेघके समान गंभीर स्वरसे गर्जन कर पुनर्वार कहने लगीं ॥ १८ ॥ रे जाल्म ! तू क्यों मिथ्या छलयुक्त वचन कहता है तू अभी चलाजा विष्णु महादेव इत्यादि देवताओंको छोड़ कर मैं शुंभको किसलिये पति करूं ॥ १९ ॥ रे मूर्ख ! मेरा पतिसे कोई कार्य नहीं है. अतएव किसीको भी पति बनानेका प्रयोजन नहीं है. मैंही सब जीवोंकी स्वामिनी होकर इस अखिल ब्रह्माण्ड स्थित प्राणियोंका प्रतिपालन करती हूं. यह निश्चय कर ॥ २० ॥ मैंने पूर्वमें हजार हजार निशुंभ व शुंभको देखा और विनाश किया है एवं शत शत दैत्य दानवोंको यमसदनमें भेजा है ॥ २१ ॥ मेरे सामने युग युगमें सैकड़ों देवता विनष्ट हुए हैं. अब फिर यह सब

दानवयूथ क्षयको प्राप्त होगा ॥ २२ ॥ अब दैत्योंका संहारक काल आनकर उपस्थित हुआ है. इस कारण तू अपने दलबलकी रक्षाके लिये अब क्यों वृथा यत्न करता है ॥ २३ ॥ तू निर्बुद्धि विदित नहीं होता. अतएव वीर धर्मकी रक्षाके लिये अब युद्धमें प्रवृत्त हो मरना अवश्यही होगा. कोई कभी उससे रक्षा नहीं पावेगा. अतएव महात्माओंके यशकी रक्षा करना ही सब भांतिसे कर्त्तव्य है ॥ २४ ॥ दुरात्मा शुंभ और निशुंभसे तेरा क्या प्रयोजन है ? अब श्रेष्ठ वीरधर्मका अवलम्बन करके स्वर्गमें जा ॥ २५ ॥ शुंभ निशुंभ और तेरे अन्यान्य बांधव सब तेरे अनुगामी होकर अभी इस स्थानमें आवेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ रे मूढ ! आज मैं क्रमशः सब दानवोंका क्षय करूंगी, अतएव तू विषाद छोडकर युद्धमें प्रवृत्त हो ॥ २७ ॥ मैं अभी तुझे और तेरे भाईको मारूंगी, फिर मदमत्त रक्तबीज निशुंभ शुंभ ॥ २८ ॥

कालएवाऽऽगतोस्त्यत्रदैत्यसंहारकारकः ॥ वृथात्वंकुरुषेयत्नंरक्षणायाऽऽत्मसंततेः ॥ २३ ॥ कुरुयुद्धंवीरधर्मरक्षायैत्वंमहामते ॥ मरणं भाविदुस्त्याज्यंयशोरक्ष्यंमहात्मभिः ॥ २४ ॥ किंतेकार्यंनिशुंभेनशुंभेनचदुरात्मना ॥ वीरधर्मंपरंप्राप्यगच्छस्वर्गंसुरालयम् ॥ २५ ॥ शुंभोनिशुंभश्चै वाऽन्येयेचाऽत्रतवबांधवाः ॥ सर्वेतवाऽनुगाःपश्चादागमिष्यंतिसांप्रतम् ॥ २६ ॥ क्रमशःसर्वदैत्यानांकरिष्याम्यद्यसंक्षयम् ॥ विषादंत्यजमंदात्मन्कुरु युद्धंविशांपते ॥ २७ ॥ त्वामहंनिहनिष्यामिभ्रातरंतवसांप्रतम् ॥ ततःशुंभंनिशुंभंचरक्तबीजंमदोत्कटम् ॥ २८ ॥ अन्यांश्चदानवान्सर्वान्हत्वाऽहंसम रांगणे ॥ गमिष्यामियथास्थानंतिष्ठवागच्छवाद्रुतम् ॥ २९ ॥ गृहाणाऽस्त्रंवृथापुष्टकुरुयुद्धंमयाऽधुना ॥ किंजल्पसिमृषावाक्यंसर्वथाकातरप्रियम् ॥ ३० ॥ व्यासउवाच ॥ तयेत्थंप्रेरितौदैत्यौचंडमुंडौक्रुधाऽन्वितौ ॥ ज्याशब्दंतरसाघोरंचक्रतुर्बलदर्पितौ ॥ ३१ ॥ सापिशंखस्वनंचक्रेपूरयंतीदिशोद श ॥ सिंहोपिकुपितस्तावन्नादंसमकरोद्बली ॥ ३२ ॥

और अन्यान्य दानवोंको समरस्थलमें मारकर अभीष्टस्थानको चली जाऊंगी, अब यदि तेरी इच्छा हो तो रह, नहीं तो भाग जा ॥ २९ ॥ तू वृथा पुष्ट हुआ है क्योंकि युद्ध करनेसे डरता है. अब कातरपुरुषोंके प्रिय निष्फल वचन कहनेसे क्या होगा ? मेरे वचनानुसार यह सब वृथा वचन छोड़. अस्त्रग्रहण कर मेरे संग युद्धमें प्रवृत्त हो ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! बलदर्पित चण्ड और मुंडने देवीके इसप्रकार वचनोंसे उत्साहित और कुपित होकर अत्यन्त वेगसे घोर ज्याशब्द किया ॥ ३१ ॥ तब देवीनेभी ऐसी शंखध्वनि करी कि उस शब्दसे दशों दिशा परिपूर्ण होगई. इसी अवसरमें बलवान् सिंहनेभी कुपित होकर घोरतर नाद किया ॥ ३२ ॥

उस शब्दको सुनकर इन्द्र इत्यादि देवतागण, मुनिगण, यक्षगण, सिद्धगण, साध्यगण और किन्नरगण आनन्दित हुए ॥ ३३ ॥ तब बाण, खड्ग और गदासे चण्डिका और चंडका परस्पर कातर पुरुषोंको भयावह घोर युद्ध आरंभ हुआ ॥ ३४ ॥ चण्डिका देवीने उग्रमूर्ति हो निशित बाणोंसे चण्डके छोड़ेहुए सब बाणोंको खंड खंडकर तत्काल सर्पके समान अन्यान्य बाण उसपर छोड़े ॥ ३५ ॥ तब किसानोंको भयावह शलभ (टीडी) जिसप्रकार मेघमंडलको ढकलेते हैं. इसी प्रकार रणस्थलमें परस्परके छूटेहुए बाणोंसे आकाशमंडल ढकगया ॥ ३६ ॥ इसी अवसरमें अत्यन्त भयंकर मुंडभी सेनासहित समरमें उपस्थित हुआ. और क्रोधसे अधीर होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३७ ॥ उस महत् शर जालको देखकर अम्बिका अत्यन्त कुपित हुई. तब कोपके कारण उनका वदनमंडल कृष्णवर्ण होगया

तेननादेनशक्राद्याजहर्षुरमरास्तदा ॥ मुनयोयक्षगंधर्वाः सिद्धाःसाध्याश्चकिन्नराः ॥ ३३ ॥ युद्धंपरस्परंतत्रजातंकातरभीतिदम् ॥ चंडिकाचण्डयोस्तीव्रंबाणखड्गगदादिभिः ॥ ३४ ॥ चंडमुक्ताञ्छरान्देवीचिच्छेदनिशितैःशरैः ॥ मुमोचपुनरुग्रासाचंडिकापन्नगानिव ॥ ३५ ॥ गगनंछादितंतत्रसंग्रामेविशिखैस्तदा ॥ शलभैरिवमेघांतेकर्षकाणांभयप्रदैः ॥ ३६ ॥ मुंडोपिसैनिकैःसार्धंपपाततरसारणे ॥ मुमोचबाणवृष्टिंवैक्रुद्धःपरमदारुणः ॥ ३७ ॥ बाणजालंमहद्दृष्ट्वाक्रुद्धातत्रांबिकाभृशम् ॥ कोपेनवदनंतस्यावभूवघनसन्निभम् ॥ ३८ ॥ कदलीपुष्पनेत्रंचभृकुटीकुटिलंतदा ॥ निष्क्रांताचतदाकालीललाटफलकाद्द्रुतम् ॥ ३९ ॥ व्याघ्रचर्मांबराक्रूरागजचर्मोत्तरीयका ॥ मुंडमालाधराघोराशुष्कवापीसमोदरा ॥ ४० ॥ खड्गपाशधराऽतीवभीषणाभयदायिनी ॥ खट्वांगधारिणीरौद्राकालरात्रिरिवाऽपरा ॥४१॥ विस्तीर्णवदनाजिह्वांचालयंतीमुहुर्मुहुः ॥ विस्तारजघनावेगाज्जघानाऽसुरसैनिकान् ॥ ४२ ॥ करेकृत्वामहावीरांस्तरसासारुषान्विता ॥ मुखेचिक्षेपदैतेयान्पिपेषदशनैःशनैः ॥ ४३ ॥

॥ ३८ ॥ भृकुटिद्वारा कुटिल और कृष्णवर्ण एवं नेत्र कदली पुष्पके समान लालवर्ण होगये. इसी अवसरमें उनके ललाट फलकसे सहसा काली निकली ॥ ३९ ॥ उन क्रूरप्रकृति घोराकृति देवीके परिधानवस्त्र व्याघ्राजिनरचित, उत्तरीय वस्त्र गजचर्म निर्मित, जंघा विशाल, उदर शुष्क वापीके समान गंभीर ॥ ४० ॥ वदन विस्तीर्ण जीभ लाल, गलेमें मुंडमाला, हाथमें खड्ग पाश और खट्वाङ्ग, अधिक क्या ?उनकी मूर्ति कालरात्रिके समान अत्यन्त रौद्र थी ॥ ४१ ॥ वह देवी वारंवार जीभचलाती हुई अत्यन्त भीषणमूर्त्ति धारण कर पुरुषोंको भयप्रदान करने लगीं और महावेगसे असुरोंकी सेनामें प्रविष्ट हो उनको वध करनेमें प्रवृत्त हुईं॥ ४२ ॥ तिसकाल वह क्रोधित,

हो वेगसहित महावीर दानवोंको हाथसे पकड़ पकड़, मुखमें डालती हुई दांतोंसे क्रमानुसार चर्वण करने लगीं ॥ ४३ ॥ वह रणस्थलमें बाहुबलसे घंटोंके सहित हाथियोंको पकड़कर मुखमें डालने लगी और फिर आरोही (सवार) के सहित उनको भक्षण करके अट्टहास किया ॥ ४४ ॥ इसप्रकार घोड़े ऊंट और सारथियोंके सहित रथोंको मुखमें डालकर दांतोंके द्वारा भयंकर रीतिसे चावने लगीं ॥ ४५ ॥ हे महाराज! तब महाअसुर चण्ड और मुण्डने अपनी सेनाको नष्ट होता हुआ देख निरन्तर बाणोंकी वर्षाकर देवीको ढक दिया ॥ ४६ ॥ चंडसूर्यके समान प्रभायुक्त सुदर्शनचक्रके सदृश चक्र ले बलपूर्वक देवीपर चलाय वारंवार गर्जन करने लगा ॥ ४७ ॥ कालीने उसको गर्जता और रविके समान दीप्तिशाली चक्रको आता हुआ देखकर केवल एकही बाणसे उस सुदर्शनके समान

गजान्घंटान्वितान्हस्तेगृहीत्वानिदधौमुखे ॥ सारोहान्भक्षयित्वाजौसाट्टहासंचकारह ॥ ४४ ॥ तथैवतुरगानुष्ट्रांस्तथासारथिभिःसह ॥ निक्षिप्यवक्रेदशनैश्चर्वयंत्यतिभैरवम् ॥ ४५ ॥ हन्यमानंबलंप्रेक्ष्यचंडमुंडौमहासुरौ ॥ छादयामासतुर्देवींबाणाऽऽसारैरनंतरैः ॥ ४६ ॥ चंडश्चंडकरच्छायंचक्रंचक्रधराऽऽयुधम् ॥ चिक्षेपतरसादेवींननादचमुहुर्मुहुः ॥ ४७॥ नदंतंवीक्ष्यतंकालीरथांगंचरविप्रभम् ॥ बाणेनैकेनचिच्छेदसुप्रभंतत्सुदर्शनम् ॥४८॥ तंजघानशरैस्तीक्ष्णैश्चंडंचंडीशिलाशितैः ॥ मूर्छितोऽसौपपातोर्व्यांदेवीबाणार्दितोभृशम् ॥ ४९ ॥ पतितंभ्रातरंवीक्ष्यमुंडोदुःखार्दितस्तदा ॥ चकारशरवृष्टिंचकालिकोपरिकोपतः ॥ ५० ॥ चंडिकामुंडनिर्मुक्तांशरवृष्टिंसुदारुणाम् ॥ इषीकास्त्रैर्बलान्मुक्तैश्चकारतिलशःक्षणात् ॥५१॥ अर्धचंद्रेणबाणेनताडयामासतंपुनः ॥ पतितोऽसौमहावीर्योमेदिन्यांमदवर्जितः ॥५२॥ हाहाकारोमहानासीद्दानवानांबलेतदा ॥ जहर्षुरमराःसर्वेगगनस्थागतव्यथाः ॥५३॥

प्रभावाले चक्रको काट डाला ॥ ४८ ॥ और शिलाशाणित तीक्ष्णबाणोंसे उसपर प्रहार किया तब वीरवर चण्ड देवीके बाणोंसे अत्यन्त पीडित और मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिरगया ॥ ४९ ॥ महाबल मुण्ड भाईको गिरता हुआ देखकर दुःखसे अत्यन्त कातर हुआ और फिर तत्काल क्रोधित होकर देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५० ॥ तब चण्डिकाने बलपूर्वक इषीकास्त्र निक्षेप करके मुण्डके छोड़े हुए संपूर्ण दारुण बाणोंको क्षणमात्रमें तिल तिल कर डाला ॥ ५१ ॥ और अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसपर फिर प्रहार किया तब महाबलवान् असुर मदका गर्व परित्याग कर पृथ्वीमें गिरगया ॥ ५२ ॥ मुंडके गिरते ही दानवोंकी सेनामें महा हाहा

कार शब्द हुआ आकाशमें टिकेहुए देवतालोग उस शब्दको सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ५३ ॥ इसी अवसरमें चण्डने मूर्च्छासे जाग गुर्वी गदा ग्रहण कर कालिका की दाहिनी भुजामें वेगसहित प्रहार किया ॥ ५४ ॥ कालिकाने गदाघातको विफल करके तत्काल मंत्रपूत पाशास्त्रसे उस महाअसुरको बांध लिया ॥ ५५ ॥ किन्तु मुंड उठतेही अनुज चंडकी बंधनअवस्था देख वर्म्म (बख्तर) द्वारा सुरक्षित हो दृढशक्ति हाथमें लेकर आया ॥ ५६ ॥ उस दानवको आता हुआ देखते ही कालीने तत्काल दूसरे भ्राता मुंडको भी दृढ रूपसे बाँध लिया ॥ ५७ ॥ तब काली उन महाबलवान् चण्ड और मुण्डको शशकके समान ग्रहण करके विपुलहास्य करते करते अम्बिकाके निकट आई ॥ ५८ ॥ कालिकाने अम्बिकाके निकट जाकर उनसे कहा मैं रणयज्ञके लिये रणदुर्जय दानवरूप इन प्रशस्त दोनों पशुओंको लाई हूं आप इनको ग्रहण कीजिये ॥ ५९ ॥ वृकयुगलके समान उन दोनों दानवोंको लाया देख अम्बिकाने कालिकासे मधुर वचन द्वारा कहा ॥ ६० ॥ हे रणप्रिये !

विहायमूर्च्छांचंडस्तुसंगृह्यमहतींगदाम् ॥ तरसाताडयामासकालिकांदक्षिणेभुजे ॥ ५४ ॥ वंचयित्वागदाघातंतंबबंधमहासुरम् ॥ तरसावाण पाशेनमंत्रमुक्तेनकालिका ॥५५॥ उत्थितस्तुतदामुंडोबद्धंदृष्ट्वानुजंबलात् ॥ आजगामसुसन्नद्धःशक्तिंकृत्वाकरेदृढाम् ॥ ५६ ॥ आगच्छंतंतदाकालीदा नवंवीक्ष्यसत्वरम् ॥ बबंधतरसातंतुद्वितीयंभ्रातरंभृशम् ॥ ५७ ॥ गृहीत्वातौमहावीर्यौचंडमुंडौशशाविव ॥ कुर्वतीविपुलंहासमाजगामांबिकांप्रति ॥ ॥ ५८ ॥ आगत्यतामथोवाचगृहाणेमौपशूप्रिये ॥ रणयज्ञार्थमानीतौदानवौरणदुर्जयौ ॥ ५९ ॥ तावानीतौतदावीक्ष्यचंडिकातौवृकाविव ॥ अंबिकाका लिकांप्राहमाधुरीसंयुतंवचः ॥ ६० ॥ वधंमाकुरुमामुंचचतुरासिरणप्रिये ॥ देवानांकार्यसंसिद्धिःकर्तव्यातरसात्वया ॥ ६१ ॥ व्यासउवाच ॥ इति तस्यावचःश्रुत्वाकालिकाप्राहतांपुनः ॥ युद्धयज्ञेऽतिविख्यातेखड्गयूपेप्रतिष्ठिते ॥ ६२ ॥ आलंभंचकरिष्यामियथाहिंसानजायते ॥ इत्युक्त्वासा तदादेवीखड्गेनशिरसीतयोः ॥ ६३ ॥ चकर्ततरसाकालीपपौचरुधिरंमुदा ॥ एवंदैत्यौहतौदृष्ट्वामुदितोवाचचांबिका ॥६४॥

तुम अतीव चतुर हो अतएव इनकी हिंसा मत करो और इनको छोड़ना भी उचित नहींहै किन्तु मेरे वचनका तात्पर्य विचार कर जिससे देवताओंका कार्य भलीभांति सिद्ध हो वह तुमको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ६१ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! अम्बिकाके इसप्रकार वचन सुन कालिकाने उससे फिर कहा हे देवि ! अतिविख्यात इस युद्धयज्ञमें खड्गरूपी यूप प्रतिष्ठित रहता है ॥ ६२ ॥ इनको उससे ही इसप्रकार मारूंगी कि उसमें हिंसा नहीं होगी अर्थात् यज्ञस्थलमें वध करनेसे वह हिंसा हिंसामें नहीं गिनी जाती. इसकारण रणयज्ञमें पशुविवेचना कर देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये इनकी बलि दूंगी. यह कहतेही वह कालिका देवी खड्गप्रहारसे उनका शिर काटकर ॥ ६३ ॥ तत्काल आनंन्दसहित रुधिरपान करने लगी इस प्रकार दोनों दानवोंको निहत देखकर अम्बिका देवी प्रीतिसहित कहने लगी ॥ ६४ ॥

हे कालिके ! तुमने देवताओंको कार्य संपादन किया है इस कारण मैं तुमको एक उत्तम वर देती हूं हे कालिके ! तुमने चंडमुंडको निहत किया है. इसलिये॥ ६५॥ इस पृथ्वीमें तुम्हारा नाम चामुण्डा विख्यात होगा ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! चण्डमुंडके निहत होनेपर मृत्युसे बचेहुए सैनिक लोग भागकर शुंभके निकट जानेलगे ॥ १ ॥ उनमें शरप्रहारसे किसीके अंग क्षत, विक्षत किसीके बाहु छिन्न और किसीका देह रुधिरधारामें डूबाहुआ था, वे ऐसी अवस्थामें रुदन करते करते नगरकी ओर जाने लगे ॥ २ ॥ वे दानव पतिके समीप जाय वारंवार बुम्बाशब्द (करमुखसंयोगसे विपदसूचक शब्द) करते करते उनसे कहने लगे हे महाराज ! आज कालिका सबकाही भक्षण करती

कृतंकार्यंसुराणांतेददाम्यद्यवरंशुभम् ॥ चंडमुंडौहतौयस्मात्तस्मात्तेनामकालिके ॥६५॥ चामुंडेतिसुविख्यातंभविष्यतिधरातले॥ इतिश्रीदे०म०पंचमस्कंधेचंडमुंडवधेषड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ व्यासउवाच ॥ हतौतौदानवौदृष्ट्वाहतशेषाश्चसैनिकाः ॥ पलायनंततःकृत्वाजग्मुःसर्वेनृपंप्रति ॥ १ ॥ भिन्नांगाविशिखैःकेचित्केचिच्छिन्नकरास्तथा॥ रुधिरस्रावदेहाश्चरुदंतोऽभिययुःपुरे॥२॥ गत्वादैत्यपतिंसर्वेचक्रुर्बुंबारवंमुहुः॥रक्षरक्षमहाराजभक्षयत्यद्यकालिका ॥ ३ ॥ तयाहतौमहावीरौचंडमुंडौसुरार्दनौ ॥ भक्षिताःसैनिकाःसर्वेवयंभग्नाभयाऽऽतुराः ॥ ४ ॥ भीतिदंचरणस्थानंकृतंकालिकयाप्रभो ॥पातितैर्गजवाजीराश्वैर्दासेरकपदातिभिः ॥ ५ ॥ शोणितौघवहाकुल्याकृतामांसाऽतिकर्दमा ॥ केशशैवलिनीभग्नरथचक्रविराजिता ॥६॥ छिन्नबाह्वादिमत्स्याढ्याशीर्षतुंबीफलान्विता ॥ भयदाकातराणांवैसुराणांमोदवर्धिनी ॥ ७ ॥ कुलंरक्षमहाराजपातालंगच्छसत्वरम् ॥ क्रुद्धादेवीक्षयंसद्यःकरिष्यतिनसंशयः ॥ ८ ॥

है अतएव आप हमारी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥ उस कालीने देवताओंको पीडित करनेवाले महावीर चंडमुंडको मार डाला है. और प्रायः सबही सैनिकोंका भक्षण किया है. हमलोग यह देख भयसे कातर हो रणसे भागकर चले आयेहैं ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! कालिकाने उस रणस्थानको हाथी, घोड़े, ऊंट, वीर और पैदलोंके गिरेहुए शरीरसे भयावह करदिया है ॥ ५ ॥ उस संग्रामस्थलमें शोणितधारा प्रवाहित होकर एक नदी होगई है. सेनाका मांसही उस नदीका प्रचुर पंक केशकलाप, शैवाल, भग्नरथचक्रही आवर्त्त ॥ ६ ॥ छिन्नबाहु और चरण मत्स्यकुल और मस्तक सब तुम्बी फल हैं, हे राजन् ! इस समय इस नदीके देखनेसे कातर दैत्योंको भयसंचार और देवताओंको आनन्दवर्द्धन होता है॥ ७॥हे महाराज ! अभी पातालमें भागकर कुलकी रक्षा कीजिये देवी कुपित होकर अभी दानवोंका क्षय कर डालेगी

इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ हे दनुजेश्वर ! अधिक और क्या कहूं ? वह सिंहभी समरस्थलमें दानवोंका भक्षण करता है और कालिका देवी बाणोंसे असंख्य दानवोंको निहत करती हैं ॥ ९ ॥ अतएव हे राजेन्द्र ! आप मनमें क्या आशा करते हैं, हमको बोध होता है, आप सहोदर निशुंभके सहित निरर्थक मरनेके लिये वासना करते हैं ॥ १० ॥ और यदि आपकी जय हो तो आप जिसके लिये बांधवोंका संहारकरनेकी वासना को करते हैं, वह क्रूरप्रकृति कुलविनाशिनी नारी आपका क्या मंगल करेगी ? ॥ ११ ॥ हे महाराज ! इस लोकमें जय और पराजय दैवके आधीन हैं, इसकारण बुद्धिमान् पुरुष सामान्य प्रयोजन साधनके लिये महत्दुःखजनक कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! यह जगन्मंडल जिसके आधीन है, उस विधाताका विचित्र कार्य अवलोकन कीजिये क्या आश्चर्य है ? उस एकमात्र स्त्रीने सब दानवोंको मार डाला ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आपने सेना सहित लोकपालोंको भी पराजित किया है, किन्तु अब वह बाला अकेली होकर भी आपको

सिंहोऽपिभक्षयत्याजौदानवान्दनुजेश्वर ॥ तथैवकालिकादेवीहंतिबाणैरनेकधा ॥ ९ ॥ तस्मात्त्वमपिराजेंद्रमरणायमृषामतिम् ॥ करोषिसहितोभ्रात्राशुंभेन कुपिताशयः ॥ १० ॥ किंकरिष्यतिनार्येषाक्रूराकुलविनाशिनी ॥ यस्याहेतोर्महाराजहंतुमिच्छसिबांधवान् ॥ ११ ॥ दैवाधीनौमहाराजलोकेजयपराजयौ ॥ अल्पार्थायमहद्दुःखंबुद्धिमान्नप्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ चित्रंपश्यविधेःकर्मयदधीनंजगत्प्रभो ॥ निहताराक्षसाःसर्वेस्त्रियापश्यैकयानया ॥ १३ ॥ जेतात्वंलोकपालानांसैन्ययुक्तोहिसांप्रतम् ॥ एकाप्रार्थयतेबालायुद्धायेतिसुसंभ्रमः ॥ १४ ॥ पुरात्वयातपस्तप्तंपुष्करेदेवतायने ॥ वरदानायसंप्राप्तोब्रह्मालोकपितामहः ॥ १५ ॥ धात्रोक्तस्त्वंमहाराजवरंवरयसुव्रत ॥ तदात्वयामरत्वंचप्रार्थितंब्रह्मणःकिल ॥ १६ ॥ देवदैत्यमनुष्येभ्योनभवेन्मरणंमम ॥ सर्पकिन्नरयक्षेभ्यःपुंलिंगवाचकादपि ॥ १७ ॥ तस्मात्त्वांहंतुकामैषाप्राप्तायोषिद्वराप्रभो ॥ युद्धंमाकुरुराजेंद्रविचार्यैवंधियाऽधुना ॥ १८ ॥ देवीह्येषामहामायाप्रकृतिःपरमामता ॥ कल्पांतकालेराजेंद्रसर्वसंहारकारिणी ॥ १९ ॥ उत्पादयित्रीलोकानांदेवानामीश्वरीशुभा ॥ त्रिगुणातामसीदेवीसर्वशक्तिसमन्विता ॥ २० ॥

युद्धके लिये बुलाती है, यह अति आश्चर्यकी बात है ॥ १४ ॥ हे महाराज ! आपने पूर्वकालके समय देवताओंके वासस्थान परम पवित्र पुष्करतीर्थमें तपस्या की थी सर्वलोक पितामह ब्रह्माजीने वर देनेके लिये उस स्थानमें उपस्थित होकर ॥ १५ ॥ आपसे वर मांगनेके लिये कहा था तब आपने ब्रह्माजीसे अमर होनेका वर मांगा था ॥ १६ ॥ किन्तु जब ब्रह्माजीने अमर होनेका वर देना अस्वीकार किया, तब आपने उनसे देव, दानव, मनुष्य, नाग, किन्नर, यक्ष इत्यादि किसी पुरुषसे मृत्यु न हो, यह वर ग्रहण किया था ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! इसलिये ही बोध होता है कि, आपको मारनेकी इच्छासे यह ललना आई है हे दानवेन्द्र ! आप एकाग्र चित्तसे ऐसा विचारकर अब इस युद्धसे विरत हूजिये ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! यह देवीही महामाया परमा प्रकृति हैं अतएव यही कल्पान्तके समयमें सब जगत्का संहार करती हैं ॥ १९ ॥ इन्हीं शुभदायिनी देवीने सब लोक और देवताओंको उत्पन्न किया है यही सबकी अधीश्वरी और रक्षा करनेवाली हैं एवं यही तामसी

अर्थात् संहार करनेवाली हैं फलतः यह देवीही त्रिगुणा और सर्वशक्तिसमन्विता हैं ॥ २० ॥ यह देवीही अजेया, अक्षरा, नित्या, संध्यास्वरूप और देवताओंका आश्रयस्वरूप हैं, यही वेदमाता गायत्रीस्वरूप और अधिक क्या यही सदा प्रकाशमान हो सब विषयही जीवोंके ज्ञानगोचर करती हैं ॥ २१ ॥ यही अव्यय निर्गुण होकर भी कभी सगुण होती हैं, यही स्वयंसिद्धस्वरूप और आराधित होकर सब लोकोंको सिद्धिप्रदान करती हैं, यही आनन्दमयी होकर भक्तोंको आनंद देती हैं, अधिक क्या कहैं, यह गौरीही देवताओंको अभय देनेवाली हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ हे महाराज ! आप इन सब बातोंको जानकर इनसे वैरभाव छोड़ दीजिये हे राजेन्द्र ! आप इनके शरणागत हूजिये, तो देवी आपकी अवश्यही रक्षा करेगी ॥ २३ ॥ आप उनके आज्ञाकारी होकर अपने कुलकी रक्षा कीजिये तो मृत्युसे बचे हुए दानवलोग चिरजीवनलाभ कर सकेंगे ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! सुरबलविमर्दन शुंभ उनके इस प्रकार वचन सुन वीरोचित वचनोंसे यथार्थ वचन

अजय्याचाक्षयानित्यासर्वज्ञाचसदोदिता ॥ वेदमाताचगायत्रीसंध्यासर्वसुरालया ॥ २१ ॥ निर्गुणासगुणासिद्धासर्वसिद्धिप्रदाऽव्यया ॥ आनंदाऽऽनंददागौरीदेवानामभयप्रदा ॥ २२ ॥ एवंज्ञात्वामहाराजवैरभावंत्यजाऽनया ॥ शरणंव्रजराजेंद्रदेवीत्वांपालयिष्यति ॥२३॥ आज्ञाकरोभवैतस्याः संजीवयनिजंकुलम् ॥ हतशेषाश्चयेदैत्यास्तेभवंतुचिरायुषः ॥२४॥ व्यासउवाच॥इतितेषांवचःश्रुत्वाशुंभःसुरबलार्दनः॥उवाचवचनंतथ्यंवीरवर्यगुणान्वितम्॥२५॥शुंभउवाच ॥ मौनंकुर्वंतुभोमंदायूयंभग्नारणाजिरात्॥शीघ्रंगच्छतपातालंजीविताशाबलीयसी ॥ २६ ॥ दैवाधीनंजगत्सर्वंकाचिंतात्रजयेमम ॥ देवास्तथैवब्रह्माद्यादैवाधीनावयंयथा ॥ २७ ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रोयंयमोग्निर्वरुणस्तथा ॥ सूर्यश्चंद्रस्तथाशक्रःसर्वेदैववशाःकिल ॥२८॥काचिंतातर्हिमेमंदायद्भावितद्भविष्यति ॥ उद्यमस्तादृशोभूयाद्यादृशीभवितव्यता॥२९॥सर्वथैवंविचार्यैवनशोचंतिबुधाःक्वचित् ॥ स्वधर्मनत्यजंतीहज्ञानिनोमरणाद्भयात् ॥३०॥सुखंदुःखंतथैवायुर्जीवितंमरणंनृणाम् ॥ कालेभवतिसंप्राप्तेसर्वथादैवनिर्मितम् ॥ ३१ ॥

कहने लगा ॥ २५ ॥ शुंभने कहा रे मूर्खगण ! तुम मौन हो रहो तुमको जीवनकी आशा बलवती है, इसीकारण रणस्थलसे भाग आये हो, अतएव तुम अभी पातालमें चले जाओ ॥ २६ ॥ यह जगत् दैवके आधीन है, सुतरां मुझको जयके विषयमें क्या चिन्ता है ? ब्रह्मादि देवता भी जिस प्रकार दैवके आधीन हैं हम भी उसीप्रकार दैवके आधीन हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्र और शक्र सबही दैवके नितान्त वशीभूत हैं ॥ २८ ॥ रे मूर्खगण ! जो होनेवाला है, वह अवश्य होगा जिसप्रकार भवितव्यता है इस लोकमें उसीप्रकार उद्यम होता है, अतएव मुझको उस विषयमें चिन्ता करनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ २९ ॥ पण्डितलोग इस प्रकार विचार करकेही कभी शोक नहीं करते विशेष कर ज्ञानीलोग मरनेके भयसे इस लोकमें स्वधर्मपरित्याग करना स्वीकार नहीं करते ॥ ३० ॥ जीवोंका सुख दुःख

आयु,जीवन और मरणकाल प्राप्त होनेपरही दैवकर्तृक विहित होता है॥ ३१ ॥ क्योंकिस्वीयकालका अवसान होनेपर ब्रह्मा, विष्णु और पार्वतीपति महादेवका भी पतन होता है आयुके अवसानमें इन्द्र इत्यादि सब देवताभी नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसीप्रकार मैंभी भलीभाँति कालके वशीभूत हूं अतएव इस समय स्वधर्म पालन करके जय अथवा विनाशको प्राप्त हूंगा इसमें संशय क्या है ? ॥ ३३ ॥ यह अवला इच्छानुसार मुझको युद्धकेलिये बुलाती है अतएव मैं भागकर किसप्रकार शत शत वर्ष जीवन धारण करनेमें समर्थ हूंगा ? ॥ ३४ ॥ मैं आज संग्राम करूंगा जो होनहार है सो हो. इसमें जय हो वा मृत्यु ही हो मैं दोनों ही स्वीकार करूंगा ॥ ॥ ३५ ॥ उद्यमवादी पण्डितगण दैवको मिथ्या कहते हैं जो उनके वचनका सार मर्म जान सक्ते हैं वही उनके वचनको युक्तिसंगत जानते हैं ॥ ३६ ॥ उद्यमके

ब्रह्मापततिकालेस्वेविष्णुश्चपार्वतीपतिः ॥ नाशंगच्छन्त्यायुषोंतेसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ ३२ ॥ तथाऽहमपिकालस्यवशगःसर्वथाऽधुना ॥ नाशंजयंवागं तास्मिस्वधर्मपरिपालनात् ॥ ३३ ॥ आहूतोप्यनयाकामंयुद्धायाऽवलयाकिल ॥ कथंपलायनपरोजीवेयंशरदांशतम् ॥ ३४ ॥ करिष्याम्यद्यसंग्रामं यद्भावितद्भवत्विह ॥ जयोवामरणंवाऽपिस्वीकरोमियथातथा ॥ ३५ ॥ दैवंमिथ्येतिविद्वांसोवदंत्युद्यमवादिनः ॥ युक्तियुक्तंवचस्तेषांयेजानंत्यभिभाषि तम् ॥ ३६ ॥ उद्यमेनविनाकामंनसिध्यंतिमनोरथाः ॥ कातराएवजल्पंतियद्भाव्यंतद्भविष्यति ॥ ३७ ॥ अदृष्टंबलवन्मूढाःप्रवदंतिनपंडिताः ॥ प्रमाणं तस्यसत्त्वेकिमदृश्यंदृश्यतेकथम् ॥३८॥ अदृष्टंक्वाऽपिदृष्टंस्यादेषामूर्खविभीषिका ॥ अविलंवंविनैवैषादुःखेचित्तस्यधारणा ॥३९॥ चक्रीसमीपेसंविष्टासं स्थितापिष्टकारिणी ॥ उद्यमेनविनापिष्टंनभवत्येवसर्वथा ॥४०॥ उद्यमेचकृतेकार्यसिद्धिर्यात्येवसर्वथा ॥ कदाचित्तस्यन्यूनत्वेकार्यनैवभवेदपि ॥ ४१ ॥ देशंकालंचविज्ञायस्ववलंशत्रुजंबलम् ॥ कृतंकार्यभवत्येवबृहस्पतिवचोयथा ॥ ४२ ॥

विना कभी मनोरथ सिद्ध नहीं होता कातर मनुष्य जो होनेवाला है वह अवश्य होगा, इसप्रकार कल्पना करते हैं ॥ ३७ ॥ मन्दबुद्धि मनुष्यही अदृष्टको बलवान् कहते हैं किन्तु पण्डितलोग नहीं कहते अदृष्ट है वा नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि जो अदृष्ट अदृश्य है वह किसप्रकार दृश्य होगा ? ॥ ३८ ॥ अदृष्ट क्या कभी दिखाई दिया है?यह मूर्खलोगोंकी विभीषिका मात्र है सुतरां यह अज्ञ मनुष्योंकीदुःखावस्थामें अवलम्बनके अतिरिक्त चित्त धारणका उपाय मात्र है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥ चक्कीके समीप रहनेपर भी कोई वस्तु पुरुषके उद्यम विना किसी प्रकार नहीं पिस सक्ती ॥ ४० ॥ अतएव कार्यानुरूप उद्यम करनेसे वह कार्य अवश्यही सिद्ध होता है कार्यकी अपेक्षा यदि उद्यम अल्प हो, तो वह कार्य कभी सम्पन्न नहीं होता ॥ ४१ ॥ देश, काल, शत्रु और अपने बलको भलीभांति जानकर

कार्य करनेसे वह सिद्ध होता है यह बात बृहस्पतिने कही है ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! शुंभने इसप्रकार निश्चय कर बहुतसी सेनासहित महावीर रक्तबीजको संग्रामस्थलमें भेजनेके लिये उससे कहा ॥ ४३ ॥ शुंभ बोला हे रक्तबीज ! तुम अतिबलवान् हो इसकारण तुम्हीं समरस्थलमें जाओ हे महाभाग ! वहां जाकर तुम्हारा जैसा बल है उसीके अनुसार युद्ध करो ॥ ४४ ॥ रक्तबीज बोला कि, हे महाराज ! आप इस विषयमें किंचिन्मात्रभी चिन्ता न कीजिये मैं निस्सन्देह उसको मारूंगा वा आपके वशमें कर दूंगा ॥ ४५ ॥ मेरी युद्धचतुरता आप देखिये वह सुरप्रिया बाला अतिसामान्य है मैं इसको बलसहित अभी जीतकर आपकी दासी कर दूंगा ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले हे कुरुश्रेष्ठ ! महावीर रक्तबीजने यह कहकर अपनी सेनासहित रथमें चढ़ रणमें प्रस्थान किया ॥ ४७ ॥ हाथी, घोडे, रथ और

व्यासउवाच ॥ इतिनिश्चित्यदैत्येंद्रोरक्तबीजंमहाऽसुरम् ॥ प्रेषयामाससंग्रामेसैन्येनमहतावृतम् ॥ ४३ ॥ शुंभउवाच ॥ रक्तबीजमहाबाहोगच्छत्वंसमरांगणे ॥ कुरुयुद्धंमहाभागयथातेबलमाहितम् ॥ ४४ ॥ रक्तबीजउवाच ॥ महाराजनतेकार्याचिंतास्वल्पतरापिवा ॥ अहमेनांहनिष्यामिकरिष्यामिवशेतव ॥ ॥ ४५ ॥ पश्यमेयुद्धचातुर्यंक्वेयंबालासुरप्रिया ॥ दासींतेहंकरिष्यामिजित्वेमांसमरेबलात् ॥४६॥ व्यासउवाच ॥ इत्याभाष्यकुरुश्रेष्ठरक्तबीजोमहासुरः ॥ जगामरथमारुह्यस्वसैन्यपरिवारितः ॥४७॥ हस्त्यश्वरथपादातवृंदैश्चपरिवेष्टितः ॥ निर्जगामरथारूढोदेवींशैलोपरिस्थिताम् ॥४८॥ तमागतंसमालोक्यदेवीशंखमवादयत् ॥ भयदंसर्वदैत्यानांदेवानांमोदवर्धनम् ॥ ४९ ॥ श्रुत्वाशंखस्वनंचोग्रंरक्तबीजोतिवेगवान् ॥ गत्वासमीपेचामुंडांबभाषेवचनंमृदु ॥५०॥ रक्तबीजउवाच ॥ बालेकिंमांभीषयसिमत्वात्वंकातरंकिल ॥ शंखनादेनतन्वंगिवेत्सिकिंधूम्रलोचनम् ॥ ५१ ॥ रक्तबीजोस्मिनाम्नाऽहंत्वत्सकाशमिहागतः ॥ युद्धेच्छाचेत्पिकालापेसज्जाभवभयंनमे ॥ ५२ ॥

पैदल इस चतुरङ्गिणी सेनामें परिवेष्टित हो रथमें चढ़ शैलपर बैठी हुई देवीसे युद्धको नगरसे निकला ॥ ४८ ॥ अनन्तर देवीने उसको आया देखकर शंखध्वनि करी उस शब्दसे दानवोंको भयसंचार और देवताओंको आनन्द बढ़ने लगा ॥ ४९ ॥ रक्तबीज उस शंखकी ध्वनि सुनतेही अत्यन्त वेगसे चामुण्डाके निकट जाय उनसे कोमल वचन कहने लगा ॥ ५० ॥ रक्तबीज बोला हे बाले ! क्या मुझको कातर जानकर शंखनादसे भय दिखलाती हो ? हे कृशाङ्गी ! क्या मुझको धूम्रलोचन जानती हो ? ॥५१॥ हे मधुरभाषिणि ! मेरा नाम रक्तबीज है मैं तुम्हारेकारण इस स्थानमें आया हूं यदि तुम्हारी युद्धकी इच्छा हो तो सज्जित होओ

मुझको उससे कुछ भय नहीं है ॥ ५२ ॥ हे कान्ते ! जो युद्धसे कातर हैं तुमने उनको ही देखा है मैं उस श्रेणीके अन्तर्गत नहीं हूं अतएव तुम्हारी जैसी इच्छा हो उसी प्रकार युद्ध करो तो मेरा बल प्रत्यक्ष देखोगी ॥ ५३ ॥ हे सुन्दरी ! तुमने यदि पूर्वमें वृद्धजनोंकी सेवा की है नीतिशास्त्र सुना है अर्थविज्ञान अध्ययन किया है पण्डितोंकी सभामें मिलित हुई हो ॥ ५४ ॥ अथवा साहित्य और तंत्र विषयमें यदि तुमको विज्ञान हो तो प्रमाणसह सत्य और पथ्य मेरे वचन सुनो ॥ ५५ ॥ नौ प्रकारके रसोंमें विद्वानोंकी सभामें शृंगार और शान्त यह दो प्रकारके रसही प्रधान कहे गये हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु इन दोनों रसोंमें शृंगाररसही प्रथम राजभावमें प्रतिष्ठित रहता है अधिक क्या इस रसमें आसक्त होकर विष्णु कमलाके सहित, ब्रह्मा सावित्रीके सहित ॥ ५७ ॥ इन्द्र शचीके सहित और शंकर उमाके संग वास

पश्याऽद्यमेबलंकांतदृष्टायेकातरास्त्वया ॥ नाऽहंपंक्तिगतस्तेषांकुरुयुद्धंयथेच्छसि ॥ ५३ ॥ वृद्धाश्चसेविताःपूर्वंनीतिशास्त्रंश्रुतंत्वया ॥ पठितंचार्थविज्ञानंविद्वद्गोष्ठीकृताऽथवा ॥ ५४ ॥ साहित्यतंत्रविज्ञानंचेदस्तितवसुंदरि ॥ शृणुमेवचनंपथ्यंतथ्यंप्रमितिबृंहितम् ॥ ५५ ॥ रसानांचनवानांवैद्वावेवमुख्यतांगतौ ॥ शृंगारकःशांतिरसोविद्वज्जनसभासुच ॥ ५६ ॥ तयोःशृंगारएवादौनृपभावेप्रतिष्ठितः ॥ विष्णुर्लक्ष्म्यासहाऽऽस्ते वैसावित्र्याचतुराननः ॥ ५७ ॥ शच्येंद्रःशैलसुतयाशंकरःसहशेरते ॥ वल्ल्यावृक्षोमृगोमृग्याकपोत्याचकपोतकः ॥ ५८ ॥ एवंसर्वेप्राणभृतःसंयोगरसिका भृशम् ॥ अप्राप्तभोगविभवायेचाऽन्येकातरानराः ॥ ५९ ॥ भवंतियतयस्तेवैमूढादैवेनवंचिताः ॥ असंसाररसज्ञास्तेवंचितावंचनापरैः ॥ ६० ॥ मधुरालापनिपुणैरताःशांतिरसेहिते ॥ क्वज्ञानंक्वचवैराग्यंवर्तमानेमनोभवे ॥ ६१ ॥ लोभेक्रोधेचदुर्धर्षेमोहेमतिविनाशके ॥ तस्मात्त्वमपिकल्याणिकुरुकांतं मनोहरम् ॥ ६२ ॥

करते हैं वृक्ष लताके सहित, मृग मृगीके सहित और कबूतर कबूतरीके सहित मिलित होता है ॥ ५८ ॥ इसीप्रकार संपूर्ण प्राणीसंयोग रसमें अत्यन्त आसक्त होते हैं जो पीडाके कारण कातर होकर भोग विभव उपभोग नहीं करसक्ते ॥ ५९ ॥ वह मूढ़ मनुष्यही दैवकी विडंबनासे वंचित हो यति होते हैं जो संसाररसको नहीं जानते, वही वंचकोंके ॥ ६० ॥ मधुर वचनोंसे वंचित हुए शान्तिरसमें निरत होते हैं. कामके उदय होनेमें ज्ञानवैराग्यकहां ? ॥ ६१ ॥ बुद्धि विनाशक मोह क्रोध लोभ बड़ा दुर्धर्ष है. अतएव हे कल्याणि ! तुम मनोहर पति करो अर्थात् सुरविजयी मनोहर शुंभ वा महाबली निशुंभको पति बनाओ. व्यासजी बोले हे महाराज !

जब रक्तबीज देवीके सामने यह सब कहकर मौन हुआ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ तब कालिका अम्बिका और चामुण्डा यह सुनकर हँसने लगीं ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ व्यासजी बोले हे नरपते ! देवी रक्तबीजके इस प्रकारके वचन सुन हँसती हुई मेघकी समान गंभीरस्वरद्वारा उससे इसप्रकार युक्तिसंगत वचन कहने लगीं ॥ १ ॥ हे मन्दात्मन् ! मैं ने प्रथमही दूतसे यथोचित वचन कहे हैं, इसकारण अब क्यों व्यर्थ श्लाघा करता है? ॥ २ ॥ त्रिभुवनमें यदि कोई पुरुष रूप, बल और विभवमें मेरे समान हो तो मैं उसको ही पति बनाऊंगी ॥ ३ ॥ तुम शुंभ और निशुंभके समीप जाकर उनसे कहो कि, मैं ने पूर्वमें यही प्रतिज्ञा की है,अतएव मुझे युद्धमें जीत कर विधिपूर्वक विवाह करो ॥ ४ ॥ तुम दैत्यपति शुंभकी आज्ञानुसार उनका

शुंभंसुराणांजेतारंनिशुंभंवामहाबलम् ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वारक्तबीजोऽसौविरराममपुरःस्थितः ॥ ६३ ॥ श्रुत्वाजहासचामुंडाकालिकाचांविकातथा ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ कृत्वाहास्यंततोदेवीतमुवाचविशांपते ॥ मेघगंभीरयावाचायुक्तियुक्तमिदंवचः ॥ १ ॥ पूर्वमेवमयाप्रोक्तंमंदात्मन्किंविकत्थसे ॥ दूतस्याऽग्रेयथायोग्यंवचनंहितसंयुतम् ॥ २ ॥ सदृशोममरूपेणबलेनविभवेनच ॥ त्रिलोक्यांयदिकोऽपिस्यात्तंपतिंप्रवृणोम्यहम् ॥ ३ ॥ ब्रूहिशुंभंनिशुंभंचप्रतिज्ञामेपुराकृता ॥ तस्माद्युद्धंचस्वजित्वामांविवाहंविधिवत्कुरु ॥ ४ ॥ त्वंवैतदाऽऽज्ञयाप्राप्तस्तस्यकार्यार्थसिद्धये ॥ संग्रामंकुरुपातालंगच्छवापतिनासह ॥ ५ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदेव्याःसदैत्योऽमर्षपूरितः ॥ मुमोचतरसाबाणान्सिंहस्योपरिदारुणान् ॥ ६ ॥ अंबिकाताञ्छरान्वीक्ष्यगगनेपन्नगोपमान् ॥ चिच्छेदसायकैस्तीक्ष्णैर्लघुहस्ततयाक्षणात् ॥ ॥ ७ ॥ अन्यैर्जघानविशिखैरक्तबीजंमहासुरम् ॥ अंबिकाचापनिर्मुक्तैःकर्णाकृष्टैःशिलाशितैः ॥ ८ ॥ देवीबाणहतःपापोमूर्च्छामापरथोपरि ॥ पतितेरक्तबीजेतुहाहाकारोमहानभूत् ॥ ९ ॥ सैनिकाश्चुक्रुशुःसर्वेहताःस्मइतिचाऽब्रुवन् ॥ ततोबुंबारवंश्रुत्वाशुंभःपरमदारुणम् ॥ १० ॥

कार्य करनेके लिये यहां आये हो, अतएव होसके तो संग्राममें प्रवृत्त होओ नहीं तो अपने प्रभुके सहित पातालमें भाग जाओ ॥ ५ ॥ व्यासजीबोले हे महाराज ! देवीके इसप्रकार वचन सुन वह दानव क्रोधमें भरगया और तत्काल सिंहके ऊपर दारुण बाण छोड़ने लगा ॥ ६ ॥ तब अम्बिकाने आकाशमार्गमें सर्पकी समान उस शरजालको देखकर लघुहस्तता प्रयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे क्षणमात्रमेंही उन सब बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ७ ॥ और अपना धनुष कानोंपर्यन्त खैंच शिलापर पैनाये अन्यान्य बाणोंको छोड़कर महावीर रक्तबीजको प्रहार किया ॥ ८ ॥ तब वह पापिष्ठ देवीके शराघातसे मूर्छित होकर रथपर गिरपड़ा. रक्तबीजके गिरनेपर उसकी सेनामें महान् हाहाकार शब्द होने लगा ॥९॥ और हाय ! हाय ! हम मारे गये, यह कहकर सेना रुदन करने लगी. फिर

असुरराज शुंभने दारुण बुम्बारव (करमुखसंयोगसे विपद्सूचक आर्त्तनाद) सुनकर ॥ १० ॥ संपूर्ण दानवसेनाको रणसाजसे सज्जित होनेकी आज्ञा दी. शुंभने कहा इसी समय सब दानव, कम्बोजगण ॥ ११ ॥ और अन्यान्य सेनापतिगण अपनी अपनी सेनासहित युद्धमें जाय विशेष कर कालिकेयगण शूर और अत्यन्त बलवान् हैं, अतएव वे भी सेनासहित समरमें जायँ. व्यासजी बोले हे महाराज ! शुंभकी आज्ञापातेही हाथी घोड़े पैदल और रथी. यह चतुरंगिणी सेना ॥ १२ ॥ मदमत्त होकर देवीके संग्रामस्थलमें चली. चंडिका देवी दानवोंकी सेनाको समीप आती हुई देख ॥ १३ ॥ तत्काल वारंवार भीषण और भयप्रद घंटाध्वनि करने लगी. फिर जगदम्बिकाने भी ज्याशब्द और शंखनाद किया ॥ १४ ॥ तब कालीभी अपना मुँह फैलाय उस शब्दके संगही संग तदनुरूप घोरशब्द करने लगी. अनन्तर देवीके वाहन बलवान् सिंहने भी ॥ १५ ॥ उस घोरशब्दको सुन ऐसी गर्जना करी कि, जिससे दानवोंको अद्भुत भय हुआ. तब महाबलवान् दानव उस शब्दको सुनकर क्रोधसे अधीर हो ॥ १६ ॥ देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे. उस रोमहर्षण विस्मयकर दारुण युद्धके आरंभ होनेपर ॥ १७ ॥ ब्रह्मादि देवताओंकी सब शक्तियाँ चण्डिका देवीके निकट आने लगीं. जिस देवताका जैसा रूप जिस प्रकारके भूषण और जैसे वाहन थे ॥ १८ ॥ उन उन देवताओंकी शक्ति यें उसी प्रकार रूपधारण कर तदनुयायी वाहन पर चढ़ और वैसेही भूषणोंसे विभूषित होकर समरमें आने लगीं. हंसकी पीठपर चढ़ अक्ष सूत्र और कमण्डलु लेकर ॥ १९ ॥ ब्रह्माजीकी विख्यात ब्रह्माणी शक्ति आई. पीतवसना वैष्णवी गरुडपर चढ़ शंख चक्र गदा ॥ २० ॥ और पद्म हाथमें धारण करके आई. शिवरमणी शाङ्करी देवी वृषभारूढ हो त्रिशूल लिये ॥ २१ ॥ ललाटमें अर्द्धचन्द्र हाथमें सर्पवलयचूडी धारण करके आई. चारुवदना कौमारी देवी मोरपर चढ़ शक्ति ले ॥ २२ ॥ कार्तिकेयकी समानरूप

उद्योगंसर्वसैन्यानांदैत्यानामादिदेशह ॥ शुंभउवाच ॥ निर्यांतुदानवाःसर्वेकांबोजाःस्वबलैर्वृताः ॥ ११ ॥ अन्येऽप्यतिबलाःशूराःकालकेयाविशेषतः ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याज्ञप्तंबलंसर्वंशुंभेनचचतुर्विधम् ॥ १२ ॥ निर्जगाममदाविष्टंदेवीसमरमंडले ॥ तमागतंसमालोक्यचंडिकादानवंबलम् ॥ १३ ॥ घंटानादंचकाराशुभीषणंभयदंमुहुः ॥ ज्यास्वनंशंखनादंचचकारजगदंबिका ॥ १४ ॥ तेननादेनसाजाताकालीविस्तारितानना ॥ श्रुत्वातन्निनदंघोरंसिंहोदेव्याश्ववाहनम् ॥ १५ ॥ जगर्जसोऽपिबलवाञ्जनयन्भयमद्भुतम् ॥ तन्निनादमुपश्रुत्यदानवाःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥ सर्वेचिक्षिपुरस्त्राणिदेवींप्रतिमहाबलाः ॥ तस्मिन्नेवाऽऽयतेयुद्धेदारुणेलोमहर्षणे ॥ १७ ॥ ब्रह्मादीनांचदेवानांशक्तयश्चंडिकांययुः ॥ यस्यदेवस्ययद्रूपंयथाभूषणवाहनम् ॥ १८ ॥ तादृग्रूपास्तदादेव्यःप्रययुःसमरांगणे ॥ ब्रह्माणीवरटारूढासाक्षसूत्रकमंडलुः ॥ १९ ॥ आगताब्रह्मणःशक्तिर्ब्रह्माणीतिप्रतिश्रुता ॥ वैष्णवीगरुडारूढाशंखचक्रगदाधरा ॥ २० ॥ पद्महस्तासमायातापीतांबरविभूषिता ॥ शांकरीतुवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी ॥ २१ ॥ अर्धचंद्रधरादेवीतथाऽहिवलयाशिवा ॥ कौमारीशिखिसंरूढाशक्तिहस्तावरानना ॥ २२ ॥ युद्धकामासमायाताकार्तिकेयस्वरूपिणी ॥ इंद्राणीसुष्टुवदनासुश्वेतगजवाहना ॥ २३ ॥

धारणपूर्वक युद्ध करनेकी इच्छासे रणस्थलमें आई. सुमुखी इन्द्राणी श्वेतहाथीपर चढ़ी ॥ २३ ॥ संपूर्ण अंग प्रत्यङ्गको विविधभूषणोंसे भूषित कर हाथमें वज्र लिये युद्धकी अभिलाषासे रणस्थलमें आई. शूकर रूपिणी वाराही अतिऊंचे प्रेतासनपर विराजमान हो रणस्थलमें उपस्थित हुई ॥ २४ ॥ नारसिंही नृसिंहके समान देहधारण करके वहां आई. यमकी शक्ति यमके समान भयानक रूप धारण कर भैंसेकी पीठपर चढ़ हाथमें दंड लिये ॥ २५ ॥ कुछेक हँसती हुई समरस्थलमें आई. इसीप्रकार मदोन्मत्ता कौबेरी शक्ति, वारुणी शक्ति ॥ २६ ॥ और अन्यान्य सब शक्तियाँ तदनुयायी रूप वाहन और भूषणोंसे सज्जित हो अपनी सेनाके सहित समरमें आने लगीं. देवी उनको आयी हुई देखकर अत्यानन्दित हुई ॥ २७ ॥ देवता भी स्वस्थचित्त होकर हर्ष प्रकाश करने लगे. किन्तु

वज्रहस्तातिरोषाढ्यासंग्रामाभिमुखीययौ ॥ वाराहीसूकराकाराप्रौढप्रेतासनामता ॥ २४ ॥ नारसिंहीनृसिंहस्यबिभ्रतीसदृशंवपुः ॥ याम्या चमहिषारूढादंडहस्ताभयप्रदा ॥ २५ ॥ समायाताऽथसंग्रामेयमरूपाशुचिस्मिता ॥ तथैववारुणीशक्तिःकौबेरीचमदोत्कटा ॥ २६ ॥ एवंविधास्तथा कारायुधःस्वस्ववलैर्वृताः ॥ आगतास्ताःसमालोक्यदेवीमुदमवापच ॥ २७ ॥ स्वस्थामुमुदिरेदेवादैत्याश्चभयमाययुः ॥ ताभिःपरिवृतस्तत्रशंकरोलो कशंकरः ॥ २८ ॥ समागम्यचसंग्रामेचंडिकामित्युवाचह ॥ हन्यंतामसुराःशीघ्रंदेवानांकार्यसिद्धये ॥२९॥ निशुंभंचैवशुंभंचयेचाऽन्येदानवाःस्थिताः ॥ हत्वादैत्यबलंसर्वंकृत्वाचनिर्भयंजगत् ॥ ३० ॥ स्वानिस्वानिचधिष्ण्यानिसमागच्छंतुशक्तयः ॥ देवायज्ञभुजःसंतुब्राह्मणायजनेरताः ॥ ३१ ॥ प्राणिनःसंतुसंतुष्टाःसर्वेस्थावरजंगमाः ॥ शमंयांतुतथोत्पाताईतयश्चतथापुनः ॥ ३२ ॥ घनाःकालेप्रवर्षंतुकृषिर्बहुफलातथा ॥ व्यासउवाच ॥ एवं ब्रुवतिदेवेशेशंकरेलोकशंकरे ॥ ३३ ॥

दानव यह देखकर बहुत भयभीत हुए. सब लोकोंके मंगलकारक शंकरने तिसकाल उन शक्तियोंको संग ले ॥ २८ ॥ समरस्थलमें उपस्थित हो चण्डिका देवीसे कहा. शुंभ निशुंभ तथा और जो सब दानव इस समरमें आये हैं, देवताओंका कार्य साधनकरनेके लिये उन असुरोंका शीघ्र संहार करो. संपूर्ण दानवकुलका विनाश करके जगतको भयसे रक्षा कर ॥ २९ ॥ ३० ॥ शक्तियें अपने अपने स्थानको जाय देवता यज्ञभोजी ब्राह्मण लोग यजन कार्यमें निरत ॥ ३१ ॥ और स्थावर जंगम इत्यादि सब प्राणी परम संतुष्ट हो उत्पात और अतिवृष्टि अनावृष्टि इत्यादि सब ईति शलभादिभय दूर हो ॥ ३२ ॥ मेघ नियमित समयमें जलवृष्टि करैं और

कृषिकार्यमें बहुत सस्य उत्पन्न हो. व्यासजी बोले हे महाराज! सर्व लोकोंके मंगलदायक देवेश शंकरने जब इसप्रकार कहा ॥ ३३ ॥ तब चंडिका देवीके शरीरसे एक अतिअद्भुत शक्ति निकली उसकी आकृति अत्यन्त भीषण और प्रचंड थी उसके चारोंओर शत शत शिवा घोरतर भीषण शब्द करनेलगीं ॥ ३४ ॥ तब उस घोररूपा शक्तिने कुछेक हँसते हँसते पञ्चाननसे कहा हे देवदेव! आप दैत्योंके अधिपति शुंभके निकट अभी जाइये॥ ३५॥ हे कामनाशन! आप मेरे दूतकार्यमें तत्पर हूजिये. हे शंकर! मेरे वचनानुसार मदगर्वित कामातुर दैत्यपति शुंभ और निशुंभसे कहिये कि॥ ३६॥ तुम देवताओंका राज्य छोड़कर अभी पातालमें प्रवेश करो. देवता स्वर्गमें जाकर सुखपूर्वक वास करें इन्द्र अपने सुशोभित आसनको प्राप्त हो ॥ ३७॥ और अधिकक्या कहूं! देवता स्वर्गस्थान और अपना अपना यज्ञभाग पावें और यदि तुमको जीवनकी

चंडिकायाःशरीरात्तुनिर्गताशक्तिरद्भुता॥ भीषणाऽतिप्रचंडाचाशिवाशतनिनादिनी॥ ३४॥ घोररूपाऽथपंचास्यमित्युवाचस्मितानना॥ देवदेवव्रजाशुत्वं दैत्यानामधिपंप्रति ॥३५॥ दूतत्वंकुरुकामारेब्रूहिशुंभंस्मराकुलम्॥ निशुंभंचमदोत्सिक्तंवचनान्ममशंकर ॥३६॥ मुक्त्वात्रिविष्टपंयातयूयंपातालमाशुवै॥ देवाःस्वर्गेसुखंयांतुतुराषाट्स्वासनंशुभम् ॥३७॥ प्राप्नोतुत्रिदिवंस्थानंयज्ञभागांश्चदेवताः॥ जीवितेच्छाचयुष्माकंयदिस्यात्तुमहत्तरा ॥३८॥ तर्हिगच्छतपातालंतरसायत्रदानवाः॥ अथवाबलमास्थाययुद्धेच्छामरणायचेत् ॥ ३९॥ तदाऽगच्छंतुतृप्यंतुमच्छिवाःपिशितेनवः॥ व्यासउवाच॥ तच्छ्रुत्वा वचनंतस्याःशूलपाणिस्त्वरान्वितः ॥ ४० ॥ गत्वाऽऽहदैत्यराजानंशुंभंसदसिसंस्थितम्॥ शिवउवाच॥ राजन्दूतोहमंबायास्त्रिपुरांतकरोहरः ॥४१॥ त्वत्सकाशमिहाऽऽयातोहितंकर्तुंतवाऽखिलम्॥ त्यक्त्वास्वर्गंतथाभूमिंयूयंगच्छतसत्वरम्॥४२॥ पातालंयत्रप्रह्लादोबलिश्चबलिनांवरः॥ अथवामरणेच्छा चेत्तर्ह्याऽऽगच्छेतसत्वरम्॥ ४३॥ संग्रामेवोहनिष्यामिसर्वानेवाहमाशुवै॥ इत्युवाचमहाराज्ञीयुष्मत्कल्याणहेतवे॥ ४४॥

नितान्त वासना हो॥ ३८॥ तो जहां दानवलोग वास करते हैं, तुम अभी उस पातालमें प्रवेश करो. नहीं तो यदि मरनेके लिये तुम्हारी सेनासहित संग्राम करनेकी इच्छा है तो शीघ्र रणस्थलमें आओ ॥ ३९ ॥ तुम्हारा मांस भक्षण करके मेरी शिवागण तृप्त हों. व्यासजी बोले हे महाराज! उनके इसप्रकार वचन सुन शूलपाणिने शीघ्रतासे ॥ ४० ॥ उसी समय सभामें बैठेहुए दानवराज शुंभके निकट जाकर कहा. शिव बोले हे राजन्! मैं त्रिपुरासुरका अन्तक स्वयं हर हूं, इस समय अम्बिका देवीका दूत होकर ॥ ४१ ॥ तुम्हारे सब विषयोंमें हित साधन करनेकेलियेही तुम्हारे पास आया हूं. वीरवर बलि और प्रह्लाद जिस स्थानमें वास करते हैं, तुम स्वर्गराज्य और मर्त्यलोक राज्यको त्यागकर अभी उस पातालपुरमें चले जाओ अथवा यदि मृत्युकी इच्छा हो तो युद्धमें आओ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तो मैं तुम सबको अभी

समरमें विनष्ट करूंगी. हे राजन्! तुम्हारे कल्याणकी कामनासे महाराणी अम्बिका देवीने यह सब कहकर मुझको भेजा है ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! वे शूलधारी शंकर देवीके अमृतमय हितकर वे वचन प्रधान प्रधान दानवोंको सुनाकर मौन होगये ॥ ४५ ॥ जिस शक्तिने शंभुको दूत बनाकर दानवोंके पास भेजा था. संपूर्ण त्रिभुवनमें वह शिवदूतीके नामसे विख्यात हुई ॥ ४६ ॥ तब दैत्यलोग देवीके वे दुष्कर वचन शंकरके मुखसे सुन, कवच बांध और धनुष बाण धारण करके युद्धकी इच्छासे शीघ्र निकले ॥ ४७ ॥ दानवलोग वेगसहित रणस्थलमें आय आकर्णआकृष्ट शिलाशाणित तीक्ष्णबाणोंसे चण्डिकापर प्रहार करने लगे ॥ ४८ ॥ तब कालिका देवी किसीको शूलाघातसे किसीको शक्तिप्रहारसे और किसीको गदाघातसे विदीर्ण करके उनको भक्षण करतीं हुई रणस्थलमें विचरण करने लगीं ॥

व्यासउवाच ॥ इतिदैत्यवरान्देवीवाक्यममृतसन्निभम् ॥ हितकृच्छ्रावयित्वासप्रत्यायातश्चशूलभृत् ॥ ४५ ॥ ययासौप्रेरितःशंभुर्दूतत्वेदानवान्प्रति ॥ शिवदूतीतिविख्याताजातात्रिभुवनेखिले ॥ ४६ ॥ तेऽपिश्रुत्वावचोदेव्याःशंकरोक्तंतुदुष्करम् ॥ युद्धायनिर्ययुःशीघ्रंदंशिताःशस्त्रपाणयः ॥ ४७ ॥ तरसारणमागत्यचंडिकांप्रतिदानवाः ॥ निर्जघ्नुश्चशरैस्तीक्ष्णैःकर्णाकृष्टैःशिलाशितैः ॥ ४८ ॥ कालिकाशूलपातैस्तान्गदाशक्तिविदारितान् ॥ कुर्वती व्यचरत्तत्रभक्षयंतीचदानवान् ॥ ४९ ॥ कमंडलुजलाक्षेपगतप्राणान्महाबलान् ॥ ब्रह्माणीचाऽकरोत्तत्रदानवान्समरांगणे ॥ ५० ॥ माहेश्वरीवृषारूढा त्रिशूलेनाऽतिरंहसा ॥ जघानदानवान्संख्येपातयामासभूतले ॥ ५१ ॥ वैष्णवीचक्रपातेनगदापातेनदानवान् ॥ गतप्राणांश्चकाराऽऽशुचोत्तमांगविवर्जितान् ॥ ५२ ॥ ऐंद्रीवज्रप्रहारेणपातयामासभूतले ॥ ऐरावतकराघातपीडितान्दैत्यपुंगवान् ॥ ५३ ॥ वाराहीतुंडघातेनदंष्ट्राग्रपातनेनच ॥ जघानक्रोधसंयुक्ताशतशोदैत्यदानवान् ॥ ५४ ॥ नारसिंहीनखैस्तीव्रैर्दारितान्दैत्यपुंगवान् ॥ भक्षयंतीचचाराऽऽजौननादचमुहुर्मुहुः ॥ ५५ ॥

॥ ४९ ॥ ब्रह्माणी समराङ्गणमें महाबल दानवोंके शरीरमें कमण्डलके जलका सिंचन करके उनके प्राण विनष्ट करने लगी ॥ ५० ॥ माहेश्वरी बैलपर चढ़ी अतिवेगसे त्रिशूलद्वारा दानवोंको प्रहार करके पृथ्वीमें गिराने लगीं ॥ ५१ ॥ वैष्णवीगदाघातसे अनेक दैत्योंका प्राणविनाश और चक्रप्रहारसे अनेक दैत्योंके मस्तक काटने लगीं ॥ ५२ ॥ इन्द्राणी ऐरावतके करप्रहारसे पीड़ित प्रधान प्रधान दानवोंपर वज्रप्रहार करके उनको पृथ्वीपर गिराने लगीं ॥ ५३ ॥ वाराही क्रोधके वशीभूत हो दाँतोंके अग्रभाग और तुण्डप्रहारसे शत शत दैत्य दानवोंको शमन–सदनमें प्रेरण करने लगीं ॥ ५४ ॥ नारसिंही तीक्ष्ण नखोंके द्वारा दानवश्रेष्ठोंको विदीर्ण

करके भक्षण करती हुई समरस्थलमें विचरण और वारंवार घोर शब्द करने लगीं ॥ ५५ ॥ शिवदूती अट्टहास द्वारा दानवोंको जैसेही पृथ्वीपर गिराती थीं वैसेही कालिका और चंडिका तत्काल उनको भक्षण करने लगीं ॥ ५६ ॥ देवताओंके हितकी कामनासे उस समरमें कौमारी मयूरपर चढ़ी शिलापर पैनाये बाण कर्णपर्यन्त आकर्षण कर शत्रुसंहार करने लगीं ॥ ५७ ॥ वारुणी शक्ति सन्मुख संग्राममें दैत्योंको पाशद्वारा बांधकर गिराने लगीं. इससे वह चेतना रहित और मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरने लगे॥ ५८॥ हे राजन्! इस प्रकार मातृकागणोंने जब दानवोंकी सेनाको विमर्दित किया तब वह अत्यन्त वीर्यवान् पराक्रान्त दानवोंकी सेना डरकर भागने लगी ॥ ५९ ॥ तब उस सेनारूपी सागरमें महान् विपद्सूचक बुम्बारव होने लगा. इधर उस समय सब देवता देवियोंके ऊपर फूलोंकी

शिवदूतीसाट्टहासैःपातयामासभूतले ॥ तांश्चखादाऽथचामुंडाकालिकाचत्वरान्विता ॥५६॥ शिखिसंस्थाचकौमारीकर्णाकृष्टैःशिलाशितैः ॥ निजघानर णेशत्रून्देवानांचहितायवै॥५७॥वारुणीपाशसंबद्धान्दैत्यान्समरमस्तके ॥ पातयामासतत्पृष्ठेमूर्च्छितान्गतचेतनान् ॥ ५८ ॥ एवंमातृगणेनाऽऽजावतिवी र्यपराक्रमम् ॥ मर्दितंदानवंसैन्यंपलायनपरंह्यभूत् ॥५९॥ बुंबारवस्तुसुमहानभूत्तत्रबलार्णवे॥पुष्पवृष्टिंतदादेवाश्चक्रुर्देव्यागणोपरि ॥६०॥ तच्छुत्वानिन दंघोरंजयशब्दंचदानवाः ॥ रक्तबीजश्चुकोपाशुदृष्ट्वादैत्यान्पलायितान् ॥६१॥ गर्जमानांस्तथादेवान्वीक्ष्यदैत्योमहाबलः॥रक्तबीजस्तुतेजस्वीरणमभ्या ययौतदा ॥६२॥ सायुधोरथसंविष्टःकुर्वञ्ज्याशब्दमद्भुतम् ॥ आजगामतदादेवींक्रोधरक्तेक्षणोद्यतः॥६३॥इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेऽष्टाविं शोऽध्यायः ॥२८॥ ॥ व्यासउवाच ॥ वरदानमिदंतस्यदानवस्याशिवार्पितम् ॥ अत्यद्भुततरंराजञ्छृणुतत्प्रब्रवीम्यहम् ॥१॥तस्यदेहाद्रक्तबिंदुर्यदापत तिभूतले ॥ समुत्पतंतिदैतेयास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ २ ॥

वर्षा करने लगे ॥ ६० ॥ असुरोंका घोरतर आर्त्तनाद और देवताओंकी जयध्वनि सुनकर दानवश्रेष्ठ रक्तबीज अत्यन्त कुपित हुआ ॥ ६१ ॥ विशेषकर तिस समय दानवोंकी सेनाको भागता और देवताओंको गर्जता देख वह महाबलवान् तेजस्वी दानव क्रोधमें भर शीघ्र समरमें आया ॥ ६२ ॥ तिसकाल रक्तबीज क्रोधसे लाल लाल नेत्रकर, अनेक अस्त्रशस्त्रोंके सहित रथमें बैठ अद्भुत ज्याशब्द करता हुआ. समरकी इच्छासे देवीके समीप आया ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! देवदेव महादेवजीने महावीर रक्तबीजको जिसप्रकार अद्भुत वर दिया था उस विषयको कहता हूं, आप मन लगाकर सुनिये ॥ १ ॥ जिससमय इस महावीरके शरीरसे रक्तबिन्दु गिरेंगे उसी समय उस रक्तसे उसीकी समान

रूपवान् ॥ २ ॥ और पराक्रमशाली असंख्य दानव उत्पन्न होंगे. पूर्वकालमें रुद्रदेवने उसको यह अद्भुत वर दिया था ॥ ३ ॥ वही दानव इस वरके प्रभावसे दर्पित हो कालिकाके सहित अम्बिका देवीको मारनेके लिये क्रोधित हो महावेगसे संग्रामस्थलमें आया ॥ ४ ॥ उस दैत्यवरने कमलनयना वैष्णवी शक्तिको गरुडपर विराजमान देख उसपर शक्तिसे प्रहार किया ॥ ५ ॥ तब वैष्णवीने शक्तिके सहित गदाद्वारा उस शक्तिको निवारण करके महाअसुर रक्तवीजपर सुदर्शन चक्रसे प्रहार किया ॥ ६ ॥ उसका देह चक्रप्रहारसे आहत होनेपर वज्राहत गिरिशृंगसे जिस प्रकार गेरूकी धारा निकलती है इसीप्रकार उसके देहसे शोणितकी धारा निकलने लगी ॥ ७ ॥ उस समय उसके रक्तकी बूँदें पृथ्वीके जिस स्थानमें गिरीं उसी स्थानमें तदाकार हजार हजार पुरुष तत्काल उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ इन्द्राणीने क्रोधित होकर उस

असंख्यातामहावीर्यादानवारक्तसंभवाः ॥ प्रभवंतिवितिरुद्रेणदत्तोस्त्यत्यद्भुतोवरः ॥ ३ ॥ सतेनवरदानेनदर्पितःक्रोधसंयुतः ॥ अभ्यगात्तरसासंख्येहंतुंदेवींसकालिकाम् ॥ ४ ॥ सदृष्ट्वावैष्णवींशक्तिंगरुडोपरिसंस्थिताम् ॥ शक्त्याजघानदैत्येंद्रःकरांबैकमललोचनाम् ॥ ५ ॥ गदयावारयामासशक्तिंसाशक्तिसंयुता ॥ अताडयच्चचक्रेणरक्तबीजंमहासुरम् ॥ ६ ॥ रथांगाहतदेहात्तुबहुसुस्रावशोणितम् ॥ वज्राहतगिरेःशृंगान्निर्झराइवगैरिकाः ॥ ७ ॥ यत्रयत्रयदाभूमौपतंतिरक्तबिंदवः ॥ समुत्तस्थुस्तदाकाराःपुरुषाश्चसहस्रशः ॥ ८ ॥ ऐंद्रीतमसुरंघोरंवज्रेणाभिजघानच ॥ रक्तबीजंक्रुधाविष्टानिःससारचशोणितम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्क्षतजाज्जातारक्तबीजाह्यनेकशः ॥ तद्वीर्याश्चतदाकाराःसायुधायुद्धदुर्मदाः ॥ १० ॥ ब्रह्माणीब्रह्मदंडेनकुपिताह्यहनद्भृशम् ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेनदारयामासदानवम् ॥ ११ ॥ नारसिंहीनखाघातैस्तंविव्याधमहासुरम् ॥ अहनत्तुंडघातेनक्रुद्धातंराक्षसाधमम् ॥ १२ ॥ कौमारीचतथाशक्त्यावक्षस्येनमताडयत् ॥ सोऽपिक्रुद्धःशरासारैर्बिभेदनिशितैश्चताः ॥ १३ ॥

भयंकर रक्तवीज असुरको वज्रसे प्रहार किया, तब उसके उस देहसे शोणितकी धारा निकलने लगी ॥ ९ ॥ रक्तके गिरतेही उसके शरीरकी समान वीर्यवान् रूपसंपन्न आयुधधारी युद्धदुर्मद अनेक रक्तवीज रुधिरसे उत्पन्न होने लगे ॥ १० ॥ तब ब्रह्माणीने कुपित होकर ब्रह्मदण्डसे उसको अतिवलसहित प्रहार किया. माहेश्वरीने शूलप्रहार करके दानवोंको विदीर्ण किया ॥ ११ ॥ नारसिंहीने नखाघातसे उस महासुरको विद्ध किया. वाराहीने क्रोधित होकर तुण्डाघातसे उस दानवाधमको आहत किया ॥ १२ ॥ इसीप्रकार कौमारीनेभी इसके वक्षस्थलमें शक्तिप्रहार किया, तब दानवप्रवर क्रोधित हो निशित वाणोंकी वर्षा कर उन सबकोही विद्ध करनेलगा ॥ १३ ॥

इस महाअसुरने गदा शक्ति इत्यादि अस्त्रोंके प्रहारसे सब मातृकाओंको पृथक् पृथक् विद्ध किया, तब शक्तियें भी उससे प्रकोपित होकर बाणोंके प्रहारसे उसको विद्ध करने लगी ॥ १४ ॥ चण्डिका देवीने कुपित होकर शित बाणोंसे उसके बाणोंको खंड खंड कर अपने बाणोंसे उसपर दारुण प्रहार किया ॥ १५ ॥ हे महाराज ! ऐसे भारी प्रहारसे उसके शरीरसे जैसेही अधिक समान सहस्र सहस्र असुर उस रुधिरसे प्रादुर्भूत हुए ॥ १६ ॥ अधिक क्या उस शोणितके प्रहारसे जो रक्तबीज उत्पन्न हुए उनसे संपूर्ण जगन्मण्डल आच्छन्न होगया. तब वह भी सब कवचसे अंगोंको ढक आयुध ग्रहण कर अत्यन्त अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ १७ ॥ अब अनेक रक्तबीज उत्पन्न होकर देवीको प्रहार करने लगे. तब देवता यह देखकर अति डरते हुए शोकसे अत्यन्त कातर होगये ॥ १८ ॥ और

गदाशक्तिप्रहारैस्तुमातृःसर्वाःपृथक्पृथक् ॥ शक्तयस्तंशराघातैर्विविधुस्तत्प्रकोपिताः ॥ १४ ॥ तस्यशस्त्राणिचिच्छेदचंडिकास्वशरैःशितैः ॥ जघानान्यैश्चविशिखैस्तंदेवीकुपिताभृशम् ॥ १५ ॥ तस्यदेहाच्चसुस्रावरुधिरंबहुधातुयत् ॥ तस्मात्तत्सदृशाःशूराःप्रादुरासन्सहस्रशः ॥ १६ ॥ रक्तबीजैर्जगद्व्याप्तंरुधिरौघसमुद्भवैः ॥ सन्नद्धैःसायुधैःकामंकुर्वद्भिर्युद्धमद्भुतम् ॥ १७ ॥ प्रहरंतश्चतान्दृष्ट्वारक्तबीजाननेकशः ॥ भयभीताःसुरास्त्रेसुर्विषण्णाःशोककर्शिताः ॥ १८ ॥ कथमद्यक्षयंदैत्यागमिष्यंतिसहस्रशः ॥ महाकायामहावीर्यादानवारक्तसंभवाः ॥ १९ ॥ एकैवचंडिकाऽत्राऽस्तितथाकालीचमातरः ॥ एताभिर्दानवाःसर्वेजेतव्याःकष्टमेवतत् ॥ २० ॥ निशुंभोवाऽथशुंभोवासहसाबलसंवृतः ॥ आगमिष्यतिसंग्रामेततोनर्थोमहान्भवेत् ॥ ॥ २१ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंदेवाभयोद्विग्नाश्चिंतामापुर्महत्तराम् ॥ यदातदांबिकाप्राहकालींकमललोचनाम् ॥ २२ ॥ चामुंडेकुरुविस्तीर्णंवदनंत्वरिताभृशम् ॥ मच्छस्त्रपातसंभूतंरुधिरंपिबसत्वरा ॥ २३ ॥ भक्षयंतीचररणेदानवानद्यकामतः ॥ हनिष्यामिशरैस्तीक्ष्णैर्गदासिमुसलैस्तथा ॥ २४ ॥

दुःखितचित्त हो आपसमें कहने लगे कि; यह रुधिरोत्पन्न महाकाय हजार हजार दानव दिखाई देते हैं. यह सब महावीर्यशाली हैं. अतएव यह इस समय किसप्रकार मरेंगे ? ॥ १९ ॥ मातृका कालिका और अकेली चण्डिका इस समरस्थलमें वर्त्तमान हैं, यह इन सब दानवोंको जीतेंगी सो यह अत्यन्त कष्टकर बात है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ और यदि इसी समय शुंभ वा निशुंभ सेना लेकर सहसा युद्धमें आजाय तो महाअनर्थ उपस्थित होगा इसमें संशय नहीं है ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवता जब इसप्रकार भयसे उद्विग्न हो चिन्ता करनेलगे तब अम्बिका देवीने कमलनयना कालीसे कहा ॥ २२ ॥ हे चामुण्डे ! तुम शीघ्र मुख फैलाओ मैं जब अस्त्रसे रक्तबीजपर प्रहार करूं तब उससे जैसेही रक्तकी बूंदें निकलें तुम तत्काल उनको पान करो ॥ २३ ॥ मैं तीक्ष्ण बाण गदा शक्ति और मूशलके

प्रहारसे रक्तोत्पन्न दानवोंको अभी हनन करूंगी. तुम उन दानवोंको इच्छानुसार भक्षणकरके इस रणस्थलमें विचरण करती रहो ॥ २४ ॥ हे विशाललोचने ! अधिक और क्या कहूं तुम उसके रुधिरकी धारा इस प्रकार पीना कि, एक बूंदमात्र भी पृथ्वीमें न गिरै ॥ २५ ॥ ऐसा होनेसेही इस दानवको भक्षित होनेपर फिर अपर दानव उत्पन्न नहीं होसकेंगे. अतएव इसप्रकारही यह अवश्य नाशको प्राप्त होगा. इसके अन्यथा होनेसे यह कभी नहीं मरेगा ॥ २६ ॥ मैं रक्तबीजको प्रहार करती हूं और तुम शत्रुके मारनेमें यत्नवान् होकर तत्काल सब रुधिर पान करो ॥ २७ ॥ हे चामुण्डे ! इस प्रकार दैत्यदलनिर्मूल कर इन्द्रको निष्कण्टक स्वर्गका राज्य दे फिर स्थिर हो हम सब सुखपूर्वक प्रस्थान करैं ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चण्डविक्रमा चामुण्डा देवी अम्बिकाके इसप्रकार वचन सुनतेही रक्तबीजके देहसे निकली रुधिरधारा पान करने लगी ॥ २९ ॥ अम्बिका देवी मूशल और खड्गसे उसके शरीरको खंड खंड करनेलगी और वह कृशोदरी चामुण्डा

तथाकुरुविशालाक्षिपानंतद्रुधिरस्यच॥बिंदुमात्रंयथाभूम्यांनपतेदपिसांप्रतम् ॥२५॥ भक्ष्यमाणास्तदादैत्यानचोत्पत्स्यंतिचाऽपरे ॥ एवमेषांक्षयोनूनंभविष्यतिनचाऽन्यथा ॥२६॥ घातयिष्याम्यहंदैत्यंत्वंभक्षयचसत्वरा ॥ पिबंतीक्षतजंसर्वंयतमानाऽरिसंक्षये॥२७॥इत्थंदैत्यक्षयंकृत्वादत्त्वाराज्यंसुरालयम् ॥ इंद्रायसुस्थिरंसर्वेगमिष्यामोयथासुखम् ॥ २८ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तांबिकयादेवीचामुंडाचंडविक्रमा ॥ पपौचक्षतजंसर्वंरक्तबीजशरीरजम् ॥ ॥ २९ ॥ अंबिकातंजघानाऽऽशुखड्गेनमुसलेनच ॥ चखाददेहशकलांश्चामुंडातान्कृशोदरी ॥ ३० ॥ सोऽपिक्रुद्धोगदाघातैश्चामुंडांसमघातयत् ॥ तथापिसापपावाशुक्षतजंतमभक्षयत् ॥ ३१ ॥ येऽन्येरुधिरजाः क्रूरारक्तबीजामहाबलाः ॥ तेऽपिनिष्पातिताःसर्वेभक्षितागतशोणिताः ॥ ३२ ॥ कृत्रिमाभक्षिताःसर्वेयस्तुस्वाभाविकोऽसुरः ॥ सोऽपिप्रपातितोहत्वाखड्गेनाऽतिविखंडितः ॥ ३३ ॥ रक्तबीजेहतेरौद्रेयेचान्येदानवारणे ॥ पलायनंततःकृत्वागतास्तेभयकंपिताः ॥ ३४ ॥ हाहेतिविब्रुवंतस्तेशुंभंप्रोचुःसुविह्वलाः ॥ रुधिरारक्तदेहाश्चविगतास्त्राविचेतसः ॥ ३५ ॥

भी उस खंडितदेहको तत्काल भक्षण करने लगी ॥ ३० ॥ तब रक्तबीजभी कुपित हो गदाघातसे चामुण्डाको प्रहार करने लगा. चामुण्डा इसप्रकार गुरुतर आहत होकर भी रुधिरकी धारा पान करके उसके अंग प्रत्यङ्गको भक्षण करने लगी ॥ ३१ ॥ हेमहाराज ! जो सब क्रूर प्रकृति महाबलवान् दानव रक्तबीजके रुधिरसे उत्पन्न हुए थे कालिका देवीने उनका रुधिर पान किया और अम्बिकाने उनको निपतित किया ॥ ३२ ॥ इसप्रकार शोणितसम्भूत दानवोंके भक्षित होनेपर जो प्रकृत रक्तबीज था अम्बिका देवीने उसको भी खड्गसे खंड खंड करके गिरा दिया ॥ ३३ ॥ तब उस महासुर रक्तबीजको समरमें देवीके हाथसे निहत हुआ देख अन्यान्य दानवलोग भयसे कंपितकलेवर हो भागने लगे ॥ ३४ ॥ अस्त्र शस्त्रहीन विचेतन प्रायः रुधिराक्तकलेवर उस संपूर्ण सेनाने अत्यन्त विह्वलहो "हाय

क्या हुआ ??? " इस प्रकार आर्त्तनाद करते करते दैत्यपति शुंभसे जाकर कहा ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! अम्बिका देवीने रक्तवीजको मार डाला है और चामुण्डाने उसका सभी रक्त पान किया है ॥ ३६ ॥ प्रचण्डवेगशाली देवीके वाहन सिंहने अन्यान्य वीर्यशाली दानवोंको निहत किया है. और कालीने बची हुई सेनाको जीत लिया है ॥ ३७ ॥ हे दानवेन्द्र ! युद्धका यह सब वृत्तान्त और चण्डिका देवीके समराङ्गणके वे अद्भुत चरित्र कहनेकेलियेही हम भागकर आपके पास आये हैं ॥ ३८॥ हे महाराज ! हमारे विचारसे क्या दैत्य, क्या दानव, क्या गंधर्व, क्या असुर, क्या यक्ष, क्या पन्नग, क्या चारण, क्या राक्षस, क्या उरग कोई इस रमणीके जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकेगा ।। ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्राणी इत्यादि अपर सब शक्तियें उस समरस्थलमें आई हैं वह अपने अपने वाहनपर चढ़ कर अनेक प्रकारके आयुधोंसे युद्ध करती हैं ॥ ४० ॥ हे दानवेन्द्र ! अधिक और क्या कहें उन सबने एकत्र मिलकर उत्तमोत्तम आयुधोंसे सब दानवोंकी सेना

राजन्नंबिकयारक्तवीजोऽसौविनिपातितः ॥ चामुंडातस्यदेहात्तुपपौसर्वंचशोणितम् ॥ ३६ ॥ येचाऽन्येदानवाःशूरावाहनेनाऽतिरंहसा ॥ सिंहेननिहताः सर्वेकाल्याचभक्षिताःपरे ॥ ३७ ॥ वयंत्वांकथितुंराजन्नागतायुद्धचेष्टितम् ॥ चरितंचतथादेव्याःसंग्रामेपरमाद्भुतम् ॥ ३८ ॥ अजेयेयंमहाराजसर्वथादैत्यदानवैः ॥ गंधर्वाऽसुरयक्षैश्चपन्नगोरगराक्षसैः ॥ ३९ ॥ अन्यास्तत्रागतादेव्यइंद्राणीप्रमुखाभृशम् ॥ युध्यमानामहाराजवाहनैरायुधैर्युताः ॥ ४० ॥ ताभिःसर्वंहतंसैन्यंदानवानांवरायुधैः ॥ रक्तवीजोऽपिराजेंद्रतरसाविनिपातितः ॥ ४१ ॥ एकापिदुःसहादेवीकिंपुनस्ताभिरन्विता ॥ सिंहोऽपिहंतिसंग्रामे राक्षसानमितप्रभः ॥ ४२॥ अतोविचार्यसचिवैर्यद्युक्तंतद्विधीयताम् ॥ नवैरमनयायुक्तंसंधिरेवसुखप्रदः ॥४३॥ आश्चर्यमेतदखिलंयन्नारीहंतिराक्षसान् ॥ रक्तबीजोऽपिनिहतःपीतंतस्याऽपिशोणितम् ॥ ४४ ॥ अन्येनिपातितादैत्याःसंग्रामेंबिकयानृप ॥ चामुंडयाचमांसंवैभक्षितंसकलंरणे ॥४५॥ वरंपातालगमनंतस्याःसेवाऽथवावरा॥नतुयुद्धंमहाराजकार्यमंबिकयासह ॥४६॥ ननारीप्राकृताह्येपादेवकार्यार्थसाधिनी॥मायेयंप्रबलादेवीक्षपयंतीयमुत्थिता ॥ ४७ ॥

और उस रक्तवीजको भी विना विलम्ब मार डाला है ॥ ४१ ॥ उस अमित प्रभावसिंहने भी समरमें अनेक दानवोंको निहत किया है. हे राजन् ! एक मात्र उस देवीका ही भार सहना कठिन था इसपर भी अब वह देवताओंकी शक्तियोंसे मिलित होकर युद्ध करती है ॥ ४२ ॥ अतएव मंत्रियोंके संग परामर्श करके जो युक्तिसंगत हो वही करो. हमारे विचारमें उससे शत्रुता छोड़कर संधि करनाही तुम्हारे पक्षमें अतिउत्तम है ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! विचार कर देखिये कि, उस रमणीने सब दानवोंको मार फिर रक्तवीजका सब शोणित पान कर उसको भी मार डाला. इसकी अपेक्षा आश्चर्यका विषय और क्या है ? ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! अम्बिका देवीने अपरापर सब दैत्योंकोही रणस्थलमें विनष्ट किया है व चामुंडाने उनका रुधिर और मांस सभी भक्षण किया है ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! यह सब देखकर विचार होता है कि, अम्बिका देवीकी सेवा या पातालपुरमें भागना यह दोनों कार्य हमारे पक्षमें श्रेष्ठ हैं. किन्तु उससे युद्ध करना कभी बोध नहीं होता ॥ ४६ ॥ यह सामान्य

स्त्री नहीं है, वरन् निस्संदेह महामाया है. केवल देवताओंका प्रयोजन सिद्ध करनेको ही प्रगट होकर असुरकुलक्षय करती हैं ॥ ४७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! दैत्यपति शुंभ कालकी मायासे मोहित होनेके कारण मुमूर्षु हुआ था, इसलिये उनके इस प्रकार प्रकृत वचन सुनकर भी क्रोधसे कंपिताधर हो उसने इसप्रकार उत्तर दिया ॥ ४८ ॥ तुम भयातुर होकर चंडिकाकी शरणमें जाओ. अथवा पातालमें भागो, किन्तु मैं उद्योगी होकर उसका अभी विनाश करूंगा ॥ ४९ ॥ मैंने सब देवताओंको जीतकर विपुल साम्राज्य भोग किया है. अब क्या एक सामान्य नारीके भयसे उद्विग्न होकर पातालमें प्रवेश करूं? ॥ ५० ॥ मैंने अपने सेवक रक्तबीजादि प्रधान प्रधान वीरोंको समरमें संहार कराया. विशेष कर अपने उस विपुल यशको छोड इस समय अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये किसप्रकार भागूं? ॥ ५१ ॥ क्योंकि कालसे कल्पित प्राणियोंकी मृत्यु अनिवार्य है. जन्मग्रहण करतेही जीवको मरणभय उपस्थित होता है, तो कौन पुरुष मृत्युके भयसे दुर्लभ यशके त्यागनेमें समर्थ

व्यासउवाच ॥ इतितेषांवचस्तथ्यंश्रुत्वाकालविमोहितः॥मुमूर्षुःप्रत्युवाचेदंशुंभःप्रस्फुरिताधरः ॥४८॥ शुंभउवाच ॥ यूयंगच्छतपातालंशरणंवाभयातुराः ॥ हनिष्याम्यहमद्यैवतांचताश्चसमुद्यतः ॥४९॥ जित्वासर्वान्सुरानाजौकृत्वाराज्यंसुपुष्कलम् ॥ कथंनारीभयोद्विग्नःपातालंप्रविशाम्यहम् ॥ ५० ॥ निहत्यपार्षदान्सर्वान्रक्तबीजमुखान्रणे ॥ प्राणत्राणायगच्छामिहित्वाकिंविपुलंयशः ॥ ५१ ॥ मरणंत्वनिवार्यंवैप्राणिनांकालकल्पितम् ॥ तद्भयंजन्मनोपात्तंत्यजेत्कोदुर्लभंयशः ॥५२॥ निशुंभाहंगमिष्यामिरथारूढोरणाजिरे ॥ हत्वातामागमिष्यामिनागमिष्यामिचाऽन्यथा ॥५३॥ त्वंतुसेनायुतोवीरपार्ष्णिग्राहोभवस्वमे ॥ तरसातांशरैस्तीक्ष्णैर्नारींनययमालये ॥५४॥ निशुंभउवाच ॥ अहमद्यहनिष्यामिगत्वादुष्टांचकालिकाम् ॥ आगमिष्याम्यहंशीघ्रंगृहीत्वातामथांबिकाम् ॥५५॥ माचिंतांकुरुराजेंद्रवराकायास्तुकारणे॥कैषाबालाक्रमेबाहुवीर्यविश्ववशंकरम् ॥५६॥ त्यक्त्वार्तिंविपुलांभ्रातर्भुंक्ष्वभोगाननुत्तमान् ॥ आनयिष्याम्यहंकामंमानिनींमानसंयुताम् ॥५७॥ मयितिष्ठतितेराजन्नयुक्तंगमनंरणे ॥ गत्वाऽहमानयिष्यामितवाऽर्थेवैजयश्रियम् ॥५८ ॥

होता है? ॥ ५२ ॥ हे निशुंभ! मैं रथमें चढ़कर अभी समरमें जाता हूं और युद्धमें उसको मारकर लौटूंगा और यदि उसको संग्राममें नहीं मारसका तो फिर लौटकर नहीं आऊंगा ॥५३॥ हे वीरवर! तुम सेना सहित समरमें मेरे पार्ष्णिरक्षक होओ और अतिवेगसे तीक्ष्णबाण प्रहार कर उस स्त्रीको यमसदनमें प्रेरण करो ॥ ५४ ॥ निशुंभने कहा मैं अभी समरमें जाकर प्रथम उस दुष्टा कालिकाको मारता हूं. और फिर उस अम्बिकाको लेकर अभी आऊंगा ॥ ५५ ॥ हे राजेन्द्र! मेरे बाहुबलसे विश्व (संसार) वशीभूत हुआ है.सुतरां मेरे सन्मुख वह बाला अतिसामान्य है, अतएवआप इस तुच्छ रमणीके लिये वृथा चिन्ता न कीजिये ॥ ५६ ॥ हे भ्राता! उस मानिनी स्त्रीको मैं यथेष्ट सन्मानसहित ले आऊंगा आप कठिन मानसिक व्यथा त्यागकरअनुत्तम भोग, भोग कीजिये॥ ५७॥ हे राजन्! मेरे रहते आपको समरमें जाना उचित

नहीं है मैं युद्धमें जाकर अभी आपके लिये जयलक्ष्मी लाऊंगा ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! छोटे भाई निशुंभने अपने बाहुबलसे गर्वित हो, बड़े भ्राता शुंभसे इस प्रकार कहकर कवचद्वारा शरीरआच्छादन किया और अनेकप्रकारके आयुध इत्यादि युद्धकी सब सामग्रीसे सुसज्जित हो विशालरथमें बैठकर ॥ ५९ ॥ शीघ्र युद्धमें गया। तब बंदी और सूतगण उसकी स्तुति करने लगे और अनेक प्रकारके माङ्गल्यकार्य होने लगे ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां ऊनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥ व्यासजी बोले हे महाराज! तब वह पराक्रमशाली निशुंभ युद्धमें जीत हो वा नहो, मृत्यु होगी यह स्थिरकर अतिउत्साहसहित सब सेनाको संग ले देवीसे संग्राम करनेके लिये गया॥ १॥ इधर दैत्यपति शुंभ भी अपनी सेनासहित निशुंभके पीछे आया। शुंभ धर्मयुद्धमें अति पण्डित था, इसकारण उसकाल स्वयं युद्ध न करके केवल उनका युद्ध देखने लगा ॥ २॥ इन्द्र इत्यादि देवता और यक्षगण उस घोरतर समर देखनेकी इच्छा कर मेघमालमें आच्छन्न हो आकाशमंडलमें अवस्थिति

व्यासउवाच॥इत्युक्त्वाभ्रातरंज्येष्ठंकनीयान्बलगर्वितः॥रथमास्थायविपुलंसन्नद्धःस्वबलावृतः॥५९॥जगामतरसातूर्णंसंगरेकृतमंगलः॥संस्तुतोबंदिसूतैश्च सायुधःसपरिष्करः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यासउवाच ॥ निशुंभोनिश्चयंकृत्वामरणायजया यवा ॥ सोद्यमःसबलःशूरोरणेदेवीमुपाययौ ॥ १ ॥ तमाजगामशुंभोपिस्वबलेनसमावृतः ॥ प्रेक्षकोभूद्रणेराजासंग्रामरसपंडितः ॥ २॥ गगनेसंस्थितादे वास्तदाभ्रपटलावृताः ॥ दिदृक्षवस्तुसंग्रामेसेंद्रायक्षगणास्तथा ॥ ३ ॥ निशुंभोऽथरणेगत्वाधनुरादायशार्ङ्गकम् ॥ चकारशरवृष्टिंसभीषयञ्जगदंबिकाम् ॥ ४ ॥ मुंचंतंशरजालानिनिशुंभंचंडिकारणे ॥ वीक्ष्याऽऽदायधनुःश्रेष्ठंजहाससुस्वरंमुहुः ॥५॥ उवाचकालिकांदेवीपश्यमूर्खत्वमेतयोः॥ मरणायागतौ कालिमत्समीपमिहाऽधुना ॥ ६ ॥ दृष्ट्वादैत्यवधंघोरंरक्तबीजात्ययंतथा ॥ जयाशांकुरुतस्त्वेतौमोहितौमममायया ॥ ७ ॥ आशाबलवतीह्येषानजहा तिनरंक्वचित् ॥ भग्नंहतबलंनष्टंगतपक्षंविचेतनम् ॥ ८ ॥ आशापाशनिबद्धौद्वौयुद्धायसमुपागतौ ॥ निहंतव्यौमयाकालिरणेशुंभनिशुंभकौ ॥ ९ ॥

करने लगे ॥ ३ ॥ अनन्तर निशुंभ रणस्थलमें उपस्थित हो शृंगनिर्मित दृढ़ धनुष ग्रहणकर जगदम्बिकाको भय दिखाय बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४ ॥ चण्डिका निशुंभको श्रेष्ठ धनुष ले बाणोंकी वर्षा करता हुआ देखकर मृदु मन्दस्वरसे वारंवार हास्य करने लगी ॥ ५ ॥ और फिर कालिकासे कहा हे काली! इसकी मूर्खता देखो. यह मृत्युकी इच्छा करकेही इस समय मेरे निकट आया है ॥ ६ ॥ यह मेरी मायासे ऐसा मोहित है कि, दानवोंका यह घोरतर क्षय और रक्तबीजका निधन देख अब भी जयकी आशा करता है ॥ ७ ॥ आशा ऐसीही बलवती है कि,वह कभी प्राणियोंको नहीं छोड़ती। क्या आश्चर्य है? स्वपक्षीय बलमेंसे कितनेही भग्न, कितनेही नष्ट, कितनेही चेतनारहित और कितनेही बलहीन हुए हैं ॥८॥ यह प्रत्यक्ष देखकर भी यह जयाशारूपी पाशसे बँधकर मरनेके लिये आये हैं. हे काली!

अब मैं समरमें निःसन्देह इस शुंभ और निशुंभको वध करूंगी ॥ ९ ॥ इनका मृत्यु निकटवर्ती है, अतएव यह दैवमायासे मोहित होकरही मेरे निकट उपस्थित हुए हैं. इसकारण अब सब देवताओंके सामनेही मैं इनको निहत करूंगी ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! चण्डीने कालिकासे यह बात कहतेही सहसा कानों पर्यन्त धनुषको खैंच मारे बाणोंके पुरोवर्त्ती शुंभको ढकदिया ॥ ११ ॥ निशुंभने भी तत्काल शाणित बाणोंसे उनके वह सब बाण काट दिये। तब इसप्रकार उनका परस्पर अत्यन्त भयानक युद्ध होनेलगा ॥ १२ ॥ इसी समयमें भगवतीके सिंहने, केशर कंपायमान करतेहुए बलवान् हाथी जिसप्रकार सरोवरमें प्रवेश करता है, इसीप्रकार उस सेनारूपी समुद्रमें अवगाहन किया ॥ १३ ॥ तिसकाल जो जो दानव उसके सामने पड़ने लगे, वैसेही वह नख और दाँतोंके प्रहारसे उनके सब

आसन्नमरणावेतौसंप्राप्तौदैवमोहितौ ॥ पश्यतांसर्वदेवानांहनिष्याम्यहमद्यतौ ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाकालिकांचंडीकर्णाकृष्टशरोत्करैः ॥ छादयामासतरसानिशुंभंपुरतःस्थितम् ॥ ११ ॥ दानवोऽपिशरांस्तस्याश्चिच्छेदनिशितैःशरैः ॥ तयोःपरस्परंयुद्धंबभूवाऽतिभयानकम् ॥ १२ ॥ केसरीकेशजालानिधुन्वानःसैन्यसागरम् ॥ गाहयामासवलवान्सरसींवारणोयथा ॥ १३ ॥ नखैर्दंतप्रहारैस्तुदानवान्पुरतःस्थितान् ॥ चखादचविशीर्णांगान्गजानिवमदोत्कटान् ॥ १४ ॥ एवंविमथ्यमानेतुसैन्येकेसरिणातदा ॥ अभ्यधावन्निशुंभोऽथविकृष्टवरकार्मुकः ॥ १५ ॥ अन्येऽपिक्रुद्धादैत्येंद्रादेवींहंतुमुपाययुः ॥ संदष्टदंतरसनारक्तनेत्राह्यनेकशः ॥ १६ ॥ तत्राजगामतरसाशुंभःसैन्यसमावृतः ॥ निहत्यकालिकांकोपाद्ग्रहीतुंजगदंबिकाम् ॥ १७ ॥ तत्राऽगत्यददर्शाऽऽजावंबिकांचपुरःस्थिताम् ॥ रौद्ररसयुतांकांतांशृंगाररससंयुताम् ॥ १८ ॥ तांवीक्ष्यविपुलापांगींत्रैलोक्यवरसुंदरीम् ॥ सुरक्तनयनांरम्यांक्रोधरक्तेक्षणांतथा ॥ १९ ॥ विवाहेच्छांपरित्यज्यजयाशांदूरतस्तथा ॥ मरणेनिश्चयंकृत्वातस्थावाहितकार्मुकः ॥ २० ॥

अंगोंको विदीर्ण कर मदमत्त हाथीकी समान उनका भक्षण करने लगा ॥ १४ ॥ उसके शरीरके इसप्रकार सैन्यविमर्दन करनेपर फिर निशुंभ उत्कृष्ट धनुषको ग्रहण करके दौडा ॥ १५ ॥ तब अन्यान्य शत शत दानव पतिभी क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर दाँतोंसे होठोंको काटते हुए देवीको मारनेके लिये वहां आये ॥ १६ ॥ इधर शुंभ कालिकाको निहत कर जगदम्बिकाको ग्रहण करनेकी इच्छासे सेनाको संग ले अत्यन्त वेगसहित वहां आया ॥ १७ ॥ शुंभने रणस्थलमें आकर देखा कि, जगदम्बिका सन्मुख हो विराजमान है, वह शृंगाररसोचित कमनीय कान्तिधारण करने परभी रौद्ररसमें परिपूर्ण हो रही हैं ॥ १८ ॥ उन त्रिभुवनसुन्दरी विपुल अपांगवाली भगवतीके दोनों नेत्र स्वाभाविक रक्तवर्ण होनेपरभी उसकाल कोपके कारण अत्यन्त लोहित होगये थे ॥ १९ ॥ शुंभने उनका ऐसा रूपलावण्य देखकर भी

विवाहकी इच्छा और जयेच्छाको त्याग किया और मरनेमें स्थिरनिश्चय हो धनुष धारण कर स्थिति करने लगा॥ २०॥ तब देवी समरस्थलमें दानवको इस प्रकार स्थित देखकर कुछेक हास्यसहित संपूर्ण दानवोंके सन्मुख कहने लगी ॥ २१ ॥ रे पामरगण! यदि तुमको जीवित रहनेकी इच्छा हो तो इसी स्थानमें सब अस्त्र शस्त्र छोड़कर पाताल अथवा समुद्रमें भाग जाओ ॥ २२ ॥ वा मेरे बाणोंके प्रहारसे रणस्थलमें विनष्ट हो, स्वर्गसुख प्राप्त कर निर्भय क्रीडारसका अनुभव करो ॥ २३ ॥ एक समय वा एकाधारमें किसी प्रकारसे कातरता और वीरता प्रकाशित नहीं होती. इस कारण मैं सबकोही अभय देती हूं, अब जिस स्थानमें सुख हो उसी स्थानमें चले जाओ ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! वह मदगर्वित निशुंभ देवीके इसप्रकार वचन सुन निशित खड्ग और अष्टचन्द्रक शोभायमान चर्म ढाल लेकर दौड़ा ॥ २५ ॥ और प्रथम तो असिद्वारा मदमत्त सिंहके मस्तकमें वेगसहित प्रहार किया और फिर वह असि अत्यन्त बलपूर्वक घुमाय जगदम्बिकाके ऊपर चलाई ॥

तंतथादानवंदेवीस्मितपूर्वमिदंवचः ॥ बभाषेशृण्वतांतेषांदैत्यानांरणमस्तके ॥२१॥ गच्छध्वंपामरायूयंपातालंवाजलार्णवम् ॥ जीविताशांस्थिरांकृत्वात्यक्त्वाऽत्रैवायुधानिच ॥२२॥ अथवामच्छराघातहतप्राणारणाजिरे ॥ प्राप्यस्वर्गसुखंसर्वेक्रीडंतुविगतज्वराः ॥२३॥ कातरत्वंचशूरत्वंनभवत्येवसर्वथा ॥ ददाम्यभयदानंवैयांतुसर्वेयथासुखम् ॥२४॥ व्यासउवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यानिशुंभोमदगर्वितः ॥ निशितंखड्गमादायचर्मचैवाऽष्टचंद्रकम् ॥२५॥ धावमानस्तुतरसाऽसिनासिंहमदोत्कटम् ॥ जघानाऽतिबलान्मूर्ध्निभ्रामयञ्जगदंबिकाम् ॥२६॥ ततोदेवीस्वगदयावंचयित्वासिपातनम् ॥ ताडयामासतंबाहोर्मूलेपरशुनातदा ॥२७॥ खड्गेननिहतःसोऽपिबाहुमूलेमहामदः ॥ संस्तभ्यवेदनांभूयोजघानचंडिकांतदा ॥२८॥ साऽपिघंटास्वनंघोरंचकारभयदंनृणाम् ॥ पपौपुनःपुनःपानंनिशुंभंहंतुमिच्छती ॥२९॥ एवंपरस्परंयुद्धंबभूवाऽतिभयप्रदम् ॥ देवानांदानवानांचपरस्परजयैषिणाम् ॥३०॥ पलादाःपक्षिणःक्रूराःसारमेयाश्चजंबुकाः ॥ ननृतुश्चाऽतिसंतुष्टागृध्राःकंकाश्चवायसाः ॥३१॥ रणभूर्भातिभूयिष्ठपतिताऽसुरवर्ष्मकैः ॥ रुधिरस्रावसंयुक्तैर्गजाश्वदेहसंकुला ॥ ३२ ॥

॥ २६ ॥ तब देवीने अपनी गदासे असिका आघात निवारण करके परशुद्वारा उसके बाहुमूलमें प्रहार किया ॥ २७ ॥ वीरवर निशुंभने बाहुमूलमें आहत होकर भी उस वेदनाको सहकर फिर चण्डिकाको खड्गद्वारा प्रहार किया ॥ २८ ॥ तब देवीने ऐसी घोर घंटाध्वनि करी कि, उससे संपूर्ण दैत्य डरगये। फिर उन्होंने निशुंभको मारनेकी इच्छासे वारंवार मधुपान किया ॥ २९ ॥ हे महाराज! इस प्रकार परस्पर जयाभिलाषी देवता और दानवोंका अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा॥ ॥ ३० ॥ तिसकाल मांसभक्षक क्रूरप्रकृति सारमेय (श्वानसमूह) जम्बुक, गृध्र, कंक (पक्षिविशेष) और वायस इत्यादि पक्षीगण अत्यन्त संतुष्ट होकर रणस्थलमें नाचने लगे ॥ ३१ ॥ असंख्य दानव हाथी और घोड़ोंके देह रुधिर धारणमें भीजकर समरमें गिरनेसे रणभूमिने अत्यन्त भयंकर आकार धारण किया ॥ ३२ ॥

तब निशुंभ दानवोंको गिरता हुआ देखकर अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हुआ और दारुणगदा लेकर तत्काल चण्डिकाके निकट दौड़ा ॥ ३३ ॥ उस मदगर्वित असुरने प्रथम तो सिंहके मस्तकमें गदाप्रहार करके हास्य किया और उसी गदासे देवीपर प्रहार किया ॥ ३४ ॥ देवीने भी पुरोवर्त्ती निशुंभको प्रहार करते देख अत्यन्त कुपित होकर कहा ॥ ३५ ॥ रे मन्दमते ! जबतक मैं इस खड्गसे तेरा गला नहीं काटती हूं तबतक अपेक्षा कर, अब तू शीघ्रही छिन्नस्कन्ध होकर शमनभवनमें जायगा ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चण्डिका देवीने यह बात कहतेही अत्यन्त सावधानीसे कृपाणद्वारा तत्काल उस निशुंभका मस्तक काट डाला ॥ ३७॥ देवीके प्रहारसे मस्तक कटजानेपर वह अतिदारुण कबंध गदा हाथमें लेकर प्रचण्ड वेगसे भ्रमण करने लगा. तब देवता उसकी ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त भीत हुए ॥ ३८ ॥ फिर देवीने शाणित बाणोंसे उस कबंधके हाथ और पाँव काट डाले, तब वह पापिष्ठ जीवनविहीन होकर पर्वतकी समान पृथ्वीमें गिरगया ॥ ३९ ॥ उस भीमप

पतितान्दानवान्दृष्ट्वानिशुंभोऽतिरुषान्वितः ॥ प्रययौचंडिकांतूर्णंगदामादायदारुणाम् ॥३३॥ सिंहंजघानगदयामस्तकेमदगर्वितः ॥ प्रहृत्यचस्मितंकृत्वापुनर्देवीमताडयत् ॥ ३४ ॥ साऽपितंकुपिताऽतीवनिशुंभंपुरतःस्थितम् ॥ प्रहरंतंसमीक्ष्याऽथदेवीवचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ देव्युवाच ॥ तिष्ठमंदमतेतावद्यावत्खड्गमिदंतव ॥ ग्रीवायांप्रेरयाम्यस्माद्गंतासियमसादनम् ॥ ३६ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वातरसादेवीकृपाणेनसमाहिता ॥ चिच्छेदमस्तकंतस्यनिशुंभस्याऽथचंडिका ॥ ३७ ॥ सच्छिन्नमस्तकोदेव्याकबंधोऽतीवदारुणः ॥ बभ्रामचगदापाणिस्त्रासयन्देवतागणान् ॥३८॥ देवीतस्यशितैर्बाणैश्चिच्छेदचरणौकरौ ॥ पपातोर्व्यांततःपापीगतासुःपर्वतोपमः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्निपतितेदैत्येनिशुंभेभीमविक्रमे ॥ हाहाकारोमहानासीत्तत्सैन्येभयकंपिते॥ ॥४०॥त्यक्त्वाऽऽयुधानिसर्वाणिसैनिकाःक्षतजाऽऽप्लुताः ॥ जग्मुर्वुंवारवंसर्वेकुर्वाणाराजमंदिरम् ॥४१॥ तानागतान्सुसंप्रेक्ष्यशुंभःशत्रुनिषूदनः ॥ पप्रच्छक्वनिशुंभोऽसौकथंभग्नाःपलायिताः॥४२॥ तच्छ्रुत्वावचनंराज्ञस्तेप्रोचुःप्रणताभृशम् ॥ राजंस्तेनिहतोभ्राताशेतेसमरमूर्धनि॥४३॥तयानिपातिताःशूरायेचतेऽप्यनुजाऽनुगाः ॥ वयंत्वांकथितुंसर्ववृत्तांतंसमुपागताः ॥४४॥ निशुंभोनिहतस्तत्रतयाचंडिकयाधुना॥नहियुद्धस्यकालोऽद्यतवराजन्रणांगणे ॥४५॥

राक्रम दानव निशुंभके मरनेपर उसकी भय कंपित सेनामें महान् हाहाकार शब्द हुआ ॥ ४० ॥ तब सब सैनिक रुधिरकी धारामें प्लावित होकर समस्त आयुध परित्यागपूर्वक आर्त्तनाद करते करते असुरराज शुंभके समीप भागकर गये ॥ ॥ ४१ ॥ उस शत्रुनिषूदन शुंभने उनको आया हुआ देखकर पूँछा हे दैत्यगण ! इस समय निशुंभ कहां है ? तुम किसलिये रणसे भागकर चले आये हो ? ॥४२॥ उन सैनिकोंने शुंभके इसप्रकार वचन सुनकर प्रणामपूर्वक कहा हे राजन् ! आपके भाई निशुंभने निहत होकर रणभूमिमें शयन किया है ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! जो सब वीर दानव तुम्हारे भ्राताके अनुगामी हुए थे, देवीने उनको भी मारडाला है, केवल हमलोग ही आपसे यह वृत्तान्त कहनेके लिये यहां आये हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! सम्प्रति देवीके शस्त्रप्रहारसे निशुंभ मृत्युको प्राप्त हुए हैं। इसकारण अब

आपके उस संग्रामस्थलमें जानेका उपयुक्त समय नहीं है, यही हमको बोध होता है ॥ ४५ ॥ देवकार्यके मिषसे सबकी कारणरूपिणी कोई उत्कृष्ट रमणी दानव कुलका संहार करनेको आई है, यह आप निश्चय जानिये ॥ ४६ ॥ यह देवी कभी सामान्य रमणी नहीं है. यह निस्सन्देह परमाशक्ति हैं, इनके चरित्रचिन्ताके अगोचर हैं. अधिक क्या इन अनुत्तमा शक्तिको देवतालोगभी कभी जाननेमें समर्थ नहीं होते ॥४७॥ जितनी माया हैं, यह देवी भलीभाँति उनका मूल जानती हैं. अतएव उसी मायाके बलसे इस समय नानाप्रकारके रूप धारण किये हैं । उन मंगलमयीने विचित्रभूषणोंसे भूषित होकर समस्त आयुध धारण किये हैं ॥ ४८ ॥ यह देखनेसे दूसरी कालरात्रिकी समान भयंकर बोध होती है. इनके चरित्रोंका जानना अत्यन्त कठिन है, सर्वसुलक्षणोंसे विभूषित यह पूर्णा प्रकृति कठिन कार्यके करनेमें भी समर्थ हैं ॥ ४९ ॥ अधिक क्या कहैं ? अद्भुत स्वभावा वह देवी देवताओंका कार्य साधन करती हैं. और देवतालोग आकाशमें टिकेहुए निडर होकर उनका स्तव करते हैं ॥ ५० ॥

देवकार्यसमुद्दिश्यकाऽपीयंपरमांगना ॥ हंतुंदैत्यकुलंनूनंप्राप्तेतिपरिचिंतय ॥ ४६ ॥ नैषाप्राकृतयोषैवदेवीशक्तिरनुत्तमा ॥ अचिंत्यचरिताज्ञाऽपिदुर्ज्ञेयादैवतैरपि ॥४७॥ नानारूपधरातीवमायामूलविशारदा ॥ विचित्रभूषणादेवीसर्वायुधधराशुभा ॥४८॥ गहनागूढचरिताकालरात्रिरिवापरा ॥ अपारपारगापूर्णासर्वलक्षणसंयुता॥४९॥अंतरिक्षस्थितादेवास्तांस्तुवंत्यकुतोभयाः॥देवकार्यंचकुर्वाणांश्रीदेवींपरमाद्भुताम् ॥५०॥ पलायनंपरोधर्मःसर्वथादेहरक्षणम् ॥ रक्षितेकिलदेहेस्मिन्कालेस्मत्सुखतांगते॥५१॥संग्रामेविजयोराजन्भवितातेनसंशयः ॥ कालःकरोतिबलिनंसमयेनिर्बलंक्वचित् ॥५२॥ तंपुनःसबलंकृत्वाजयायोपदधातिहि ॥ दातारंयाचकंकालःकरोतिसमयेक्वचित् ॥५३॥ भिक्षुकंधनदातारंकरोतिसमयांतरे ॥ विष्णुःकालवशेनूनंब्रह्मावापार्वतीपतिः ॥ ५४ ॥ इंद्राद्यानिर्जराःसर्वेकालएवप्रभुःस्वयम् ॥ तस्मात्कालंप्रतीक्षस्वविपरीतंतवाऽधुना ॥ ५५ ॥ संमुखोदेवतानांचदैत्यानांनाशहेतुकः ॥ एकैवचगतिर्नास्तिकालस्यकिलभूपते ॥ ५६ ॥ नानारूपधराऽप्यस्तितज्ज्ञातव्यंतस्यचेष्टितम्॥कदाचित्संभवोनृणांकदाचित्प्रलयस्तथा ॥५७॥

हे महाराज ! अब देहकी रक्षा करनाही प्रधान धर्म है. क्योंकि इस देहकी रक्षा होनेसेही फिर जब समय हमारे अनुकूल होगा ॥ ५१ ॥ तब आपकी भी समरमें जय होगी. इसमें सन्देह नहीं. देखो, काल किसी समय बलवान्‌को दुर्बल करता है ॥ ५२ ॥ और समयान्तरमें उसकोही सबल करके विजयके निमित्त उद्यत करता है । काल किसी समय दाताको भिक्षुक ॥ ५३ ॥ और समयान्तरमें उसभिक्षुकको धनदाता करता है अधिक क्या ? ब्रह्मा विष्णु, महेश्वर ॥ ५४ ॥ और इन्द्रादि देवता सभी कालके वशीभूत हैं. अतएव कालही स्वयं सब विषयोंका प्रभु है. इसकारण हे महाराज ! आप कालकी प्रतीक्षा कीजिये इसका समय काल देवताओंके अनुकूल और आपके प्रतिकूल है ॥ ५५ ॥ इस लियेही देवताओंके सन्मुख हो वह काल अब दैत्योंका नाश करता है किन्तु हे भूपते ! कालकी गति कभी एक प्रकारकी नहीं है ॥ ५६ ॥ वरन् उसके कार्य नानाप्रकारके होते हैं, यह आप निश्चय जानिये. काल कभी मनुष्योंको उत्पन्न करता है और कभी उनका

संहार करता है ॥ ५७ ॥ हेमहाराज ! उत्पत्तिका काल एक और नाशका एक दूसराहै यह तो आपने प्रत्यक्षही देवी और इन्द्रादि विषयमें देखा है ॥ ५८ ॥ क्योंकि जब काल आपके अनुकूल था. तब आपने इन्द्रादि सब देवताओंको करद किया था, अब वह कालही आपके प्रतिकूल हुआ है; इस कारण एक सामान्य अवला नारी भी बलवान् असुरोंको निहत करती है ॥ ५९ ॥ अतएव काल सदाही शुभ वा अशुभ करता है. सनातन देवता अथवा वह काली इसका कारण नहीं है ॥ ६० ॥ हे राजन् ! वर्त्तमान काल आपके और दानवोंके अनुकूल नहीं है, अतएव आप इसको जानकर जो इच्छा हो सो कीजिये ॥ ६१ ॥ देखो, पूर्वकालके समय इन्द्र, विष्णु, रुद्र, वरुण, यम इत्यादि प्रधान प्रधान देवता भी आयुधत्यागपूर्वक रणमें पीठ दिखाय आपके सन्मुखसे भागे थे ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार आपभी अब जगत्को कालके वशीभूत जान रणसे भागकर शीघ्र पातालमें प्रवेश कीजिये । क्योंकि जीवित रहनेपर पुनर्वार

उत्पत्तिहेतुःकालोऽन्यःक्षयहेतुस्तथाऽपरः ॥ प्रत्यक्षंतेमहाराजदेव्याःसर्वेसवासवाः ॥ ५८ ॥ करदास्तेकृताःपूर्वकालेनसंमुखेनच ॥ तेनैवविमुखेनाऽद्यब लिनोऽबलयाऽसुराः ॥ ५९ ॥ निहतानितरांकालःकरोतिचशुभाशुभम् ॥ नैवात्रकारणंकालीनैवदेवाःसनातनाः ॥ ६० ॥ यथातेरोचतेराजंस्तथाकुरु विमृश्यच ॥ कालोऽयंनाऽत्रहेतुस्तेदानवानांतथापुनः ॥ ६१ ॥ त्वदग्रतोगतःशक्रोभग्नःसंख्येनिरायुधः ॥ तथाविष्णुस्तथारुद्रोवरुणोधनदोयमः ॥ ॥ ६२ ॥ तथात्वमपिराजेंद्रवीक्ष्यकालवशंजगत् ॥ पातालंगच्छतरसाजीवन्भद्रमवाप्स्यसि ॥ ६३ ॥ मृतेत्वयिमहाराजशत्रवस्तेमुदान्विताः ॥ मंग लानिप्रगायंतोविचरिष्यंतिसर्वतः ॥ ६४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिते षांवचःश्रुत्वाशुंभोदैत्यपतिस्तथा ॥ उवाचसैनिकानाशुकोपाकुलितलोचनः ॥ १ ॥ शुंभउवाच ॥ जाल्माःकिंब्रूतदुर्वाच्यंकृत्वाजीवितुमुत्सहे ॥ निहत्यस चिवान्भ्रातॄन्निर्लज्जोविचरामिकिम् ॥ २ ॥ कालःकर्ताशुभानांवाऽशुभानांबलवत्तरः ॥ कांचितामममदुर्वारेतस्मिन्नीशेऽप्यरूपके ॥ ३ ॥

सब सुख प्राप्त होंगे ॥ ६३ ॥ और यदि आप मृत्युके कराल गालमें गिरगये तो वह आपके शत्रु आनंदित हो, मंगलसूचक गान करते हुए निर्भय सर्वत्र विचरण करेंगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! दानवपति शुंभ उन सैन्यगणोंके इसप्रकार वचन सुन क्रोधसे इधर उधर नेत्र चलाय तत्काल उनसे कहने लगा ॥ १ ॥ रे मूढगण ! तुमक्या कहते हो ? मैं क्या यह अकथनीय घृणित कार्य करके जीवन धारण करनेकी इच्छा करसकता हूं ? कहो, मैं मंत्री और भ्राताओंको निहत करके अब निर्लज्ज हो किसप्रकार विचरण करनेमें समर्थ हूंगा ? ॥ २ ॥ कालही अच्छे वा बुरे कार्यका प्रधान कर्त्ता है, अतएव वह रूपविहीन कालही यदि अच्छा वा बुरा करनेका अलंघनीय प्रभु है तो फिर मेरे चिन्ता करनेसे क्या फल होगा ? ॥ ३ ॥

जो होनहार है वह हो, जो करनेवाला है वह करै, मुझको मरण वा जीवन किसी बातकी चिन्ता नहीं है ॥ ४ ॥ विशेष कर वह काल आराधित हैने परभी मरण अथवा जीवनके अन्यथा करनेमें कभी समर्थ नहीं होता । देखो, मेघ वर्षाकालमें वर्षा करके भी कभी कभी श्रावण मासमें वर्षा नहीं करते ॥ ५ ॥ और कभी कभी अगहन पौष माघ अथवा फाल्गुन इत्यादि अकालमेंभी अत्यन्त वर्षा करते हैं, अतएव स्पष्टजानाजाता है कि, मुख्यता नहीं है ॥ ६ ॥ वरन् काल केवल निमित्तमात्र है और दैवही कालकी अपेक्षा बलवान् है अतएव दैवनेही सब विश्व संसारको बनाया है. यह किसी प्रकारसे अन्यथा नहीं है ॥ ७ ॥ मैं दैवकोही श्रेष्ठ विचारता हूं. निरर्थक पुरुषाकारको धिक्कार है क्योंकि जिस निशुंभने सब देवताओंको जीत लिया था, अब उसकोही एक सामान्य

यद्भवतितद्भवतुयत्करोतिकरोतुतत् ॥ नमेचिंताऽस्तिकुत्राऽपिमरणाज्जीवनात्तथा ॥ ४ ॥ सकालोऽप्यन्यथाकर्तुंभावितोनेशतेक्वचित् ॥ नवर्षतिचपर्जन्यःश्रावणेमासिसर्वथा ॥ ५ ॥ कदाचिन्मार्गशीर्षेवापौषेमाघेऽथफाल्गुने ॥ अकालेवर्षतीवाऽऽशुतस्मान्मुख्योनचास्त्ययम् ॥ ६ ॥ कालोनिमित्तमात्रंतुदैवंहिबलवत्तरम् ॥ दैवेननिर्मितंसर्वंनाऽन्यथाभवतीत्यदः ॥ ७ ॥ दैवमेवपरंमन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ जेतायःसर्वदेवानांनिशुंभोऽप्यनयाहतः ॥ ८ ॥ रक्तबीजोमहाशूरःसोऽपिनाशंगतोयदा ॥ तदाऽहंकीर्तिमुत्सृज्यजीविताशांकरोमिकिम् ॥ ९ ॥ प्राप्तेकालेस्वयंब्रह्मापरार्धद्वयसंमिते ॥ निधनंयातितरसाजगत्कर्तास्वयंप्रभुः ॥ १० ॥ चतुर्युगसहस्रंतुब्रह्मणोदिवसेकिल ॥ पतंतिभवनात्पंचनवचेंद्रास्तथापुनः ॥ ११ ॥ तथैवाद्विगुणेविष्णुर्मरणायोपकल्पते ॥ तथैवाद्विगुणेकालेशंकरः शांतिमेतिच ॥ १२ ॥ कांचितामरणेमूढानिश्चलेदैवनिर्मिते ॥ महीमहीधराणांचनाशःसूर्यशशांकयोः ॥ १३ ॥

रमणी ने मार डाला ॥ ८ ॥ हाय ! यह महावीर रक्तबीजभी जब मृत्युको प्राप्त हुआ है. तब मैं कीर्त्ति विसर्जन करके किसप्रकार जीवनकी आशा करूं ? ॥ ९ ॥ जिन्होंने स्वयं विश्व (संसार) बनाया है, वे ब्रह्माभी अपनी आयुका अंतिम कालउपस्थित होनेपर तत्काल मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ देखो, ब्रह्माके एक दिनमें चार हजार युग होते हैं और उस एक दिनमें ही चौदह इन्द्रोंका पतन होता है ॥ ११ ॥ इसीप्रकार इनका द्विगुण समय बीतनेपर विष्णुकी परमायु शेष होती है, और उनका द्विगुण काल बीतनेपर महादेवभी शान्तिलाभ करते हैं ॥ १२ ॥ इस दृश्यमान पृथ्वी, पर्वत, चन्द्र और सूर्य सबकाही विनाश होगा. विशेषकर देवने

सबकाही मरण स्थिर कर रक्खा है. अतएव रे मूढगण ! उस विषयमें मुझको कुछ भी चिन्ता नहीं है ॥ १३ ॥ जीवके जन्म लेनेपर अवश्यही उसकी मृत्यु होगी और जीवका मरण होनेपर भी उसका फिर जन्म होगा इसमें सन्देह नहीं. अतएव इस नाशवान् शरीरसे स्थिर यशकी रक्षा करनाही मनुष्यका कर्त्तव्य है ॥ १४ ॥ मेरा रथ सज्जित करो, अब दैववशतः युद्धमें जय हो अथवा मरण हो, मैं शीघ्रही रणस्थलमें जाता हूं ॥ १५ ॥ अनन्तर शुंभ सैनिकोंसे इसप्रकार कह, रथमें चढ़ हिमालय पर्वतके जिस स्थानमें अम्बिका देवी विराजमान थी, उसी स्थानमें गया ॥ १६ ॥ तब हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों सहित चार प्रकारकी असंख्य सेना आयुध धारण करके उसके संग चली ॥ १७ ॥ शुंभने हिमाचलमें जाकर उस जगदम्बिकाको देखा कि, वह हिमाचलके एक प्रदेशमें सिंहके ऊपर चढ़ी त्रिभुवन

जातस्यहिध्रुवंमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥ अध्रुवेऽस्मिञ्छरीरेतुरक्षणीयंयशःस्थिरम् ॥ १४ ॥ रथोमेकल्प्यतांशीघ्रंगमिष्यामिरणाजिरे ॥ जयोवामरणंवापिभवत्वद्यैवदैवतः ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वासैनिकाञ्छुंभोरथमास्थायसत्वरः ॥ प्रययावंबिकायत्रसंस्थितातुहिमाचले ॥ १६ ॥ सैन्यंप्रचलितंतस्यसंगेतत्रचतुर्विधम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातिसंयुतंसायुधंबहु ॥ १७ ॥ तत्रगत्वाऽचलेशुंभःसंस्थितांजगदंबिकाम् ॥ त्रैलोक्यमोहिनींकांतामपश्यत्सिंहवाहिनीम् ॥ १८ ॥ सर्वाभरणभूषाढ्यांसर्वलक्षणसंवृताम् ॥ स्तूयमानांसुरैःखस्थैर्गंधर्वयक्षकिन्नरैः ॥ १९ ॥ पुष्पैश्चपूज्यमानांचमंदारपादपोद्भवैः ॥ कुर्वाणांशंखनिनदंघंटानादंमनोहरम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वातांमोहमगमच्छुंभःकामविमोहितः ॥ पंचबाणाऽऽहतःकाममनसासमचिंतयत् ॥ २१ ॥ अहोरूपमिदंसम्यगहोचातुर्यमद्भुतम् ॥ सौकुमार्यंचधैर्यंचपरस्परविरोधियत् ॥ २२ ॥ सुकुमाराऽतितन्वंगीसद्यःप्रकटयौवना ॥ चित्रमेतदसौबालाकामभावविवर्जिता ॥ २३ ॥

मोहिनी कान्ति धारण करके विराजमान हैं ॥ १८ ॥ उनके अंग प्रत्यंग अनेक प्रकारके अलंकारोंसे सुसज्जित और संपूर्ण शरीरमें सुलक्षण देदीप्यमान हैं; आकाशमें स्थित देवता, गंधर्व, यक्ष और किन्नरगण ॥ १९ ॥ पारिजातके पुष्पोंसे उनकी पूजा करके स्तव करते हैं और वह देवी जयसूचक मनोहर घंटानाद और शंखध्वनि करती हैं ॥ २० ॥ शुंभ उनको देखतेही कामसे मोहित होगया और मन्मथशरसे विद्ध होकर मनमें चिन्ता करने लगा ॥ २१ ॥ अहो ! यह अत्याश्चर्यका रूप लावण्य है ! ! इसका चातुर्य भी अद्भुत और विस्मयकर है ! ! क्या आश्चर्य है ! सुकुमारता और समरसहिष्णुताका परस्पर विरोध होनेपर भी इसमें दोनोंही विद्यमान हैं ॥ २२ ॥ इसका शरीर अत्यन्त कोमल और अंग प्रत्यंग सब कृश हैं, तिसपरभी सम्प्रति नवीन यौवनका उदय हुआ है, तथापि इस बालाको किंचिन्मात्र

कामभाव नहीं है, यह अत्याश्चर्यका विषय है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ कामकामिनीकी समान अत्यन्त सुन्दरी और समस्त सुलक्षणोंसे विभूषित होकर भी प्रमोदादि त्यागकर यह अम्बिका इन महाबलवान् असुरोंका संहार करती हैं, यह अति आश्चर्यका विषय है इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ जो हो, अब जिससे यह स्त्री मेरे वशीभूत हो, मुझको वही उपाय अवलम्बन करना चाहिये. इस मरालनयनाको वशमें करनेके लिये वशीकरणमंत्र भी मेरे निकट नहीं है ॥ २५ ॥ अथवा मेरे पास मंत्र रहनेसेभी क्या होगा ? यह मदगर्विता बाला समस्त मंत्र स्वरूप है, अतएव उसी बलसे सब लोकोंको मोहित करती है, सुतरां यह वरवर्णिनी सुन्दरी किसप्रकार मेरे वशीभूत होगी ? ॥ २६ ॥ साम, दान और भेदसे यह वीराङ्गना वशमें होनेवाली नहीं है और अब समरस्थलसे भागकर पातालमें जाना भी

कामकांतासमारूपेसर्वलक्षणलक्षिता ॥ अंविकेयंकिमेतत्तुहंतिसर्वान्महाबलान् ॥ २४ ॥ उपायःकोऽत्रकर्तव्योयेनमेवशगाभवेत् ॥ नमंत्रावामरालाक्षी साधनेसन्निधौमम ॥ २५ ॥ सर्वमंत्रमयीह्येषामोहिनीमदगर्विता ॥ सुंदरीयंकथंमेस्याद्वशगावरवर्णिनी ॥ २६ ॥ पातालगमनंमेऽद्यनयुक्तंसमरांगणात् ॥ सामदानविभेदैश्चनेयंसाध्यामहाबला ॥ २७ ॥ किंकर्तव्यंक्वगंतव्यंविषमेसमुपस्थिते ॥ मरणंनोत्तमंचाऽत्रस्त्रीकृतंतुयशोपहृत् ॥ २८ ॥ मरणंऋषिभिःप्रोक्तंसंगरेमंगलास्पदम् ॥ यत्तत्समानबलयोर्योधयोर्युध्यतोःकिल ॥ २९ ॥ प्रोतेयंदैवरचितानारीनरशतोत्तमा ॥ नाशायाऽस्मत्कुलस्येहसर्वथाऽतिबलाबला ॥ ३० ॥ वृथाकिंसामवाक्यानिमयायोज्यानिसांप्रतम् ॥ हननायागताह्येषाकिंतुसाम्नाप्रसीदति ॥ ३१ ॥

युक्तिसंगत नहीं है ॥ २७ ॥ अतएव इस समय मेरा विषम समय उपस्थित है, अब क्या कर्तव्य है ? कहां जाऊं ? और यदि समर करनेपर इस स्त्रीके हाथसे मृत्यु हुई तो वह मृत्यु भी उत्तम नहीं है, वरन् उसमें यशकी हानिही होगी ॥ २८ ॥ क्योंकि वीरगण सन्मुख समबलके सहित परस्पर युद्ध करके जो मृत्युको प्राप्त होते हैं, ऋषियोंने उसी मरणको मङ्गलास्पद कहा है ॥ २९ ॥ देवताओंने इस स्त्रीको शतपुरुषोंकी अपेक्षा भी बलवती करके निर्माण किया है सुतरां यह नाममात्रकी अबला है कार्यमें इसके बलकी सीमा नहीं है. अतएव यह नारी हमारे कुलका क्षय करनेकेलियेही यहां आई है इसमें संदेह नहीं ॥ ३० ॥ अब सामवचन कहनेसे क्या फल होगा ? क्योंकि यह नारी हमारा विनाश करनेकोही आई है अतएव यह क्या सामवाक्योंसे प्रसन्न होगी ? ॥ ३१ ॥

यह रमणी अब अनेक प्रकारके अस्त्र और शस्त्रोंसे सुसज्जित रहती है तो दानद्वारा इसको वशीभूत करना कभी संभव नहीं है और सब देवता जब इसके वशीभूत हैं तो भेद अवश्यही विफल होगा ॥ ३२ ॥ इस कारण पलायन न करके समरमें मरनाही श्रेष्ठ है. अब दैववश जय हो वा मरण हो इसमें हमारे चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! शुंभ मनमें इसप्रकार विचार कर बलप्रकाश करनेमें उद्यत हुआ और युद्धके लिये स्थिर निश्चय हो सामने खड़ी देवीसे कहने लगा ॥ ३४॥ हे देवि ! तुम्हारे युद्ध करनेसे हानि नहीं है किन्तु हे कोमलाङ्गि ! तुम्हारा यह श्रम करना विफल होता है तुमको कुछ ज्ञान नहीं है क्योंकि जो नारीका धर्म नहीं है तुम उसकाही आचरण करती हो ॥ ३५ ॥ क्योंकि स्त्रियोंके दोनों नेत्रही बाण भ्रूयुगल शरासन, हावभाव शस्त्र और शृङ्गार-रसविचक्षण पुरुषही लक्ष्यस्थानीय है ॥ ३६ ॥ उनका अंगरागही युद्धका कवच, मनोरथही रथ और मृदु मधुरवाक्यालापही भेरी शब्द है. इनके अतिरिक्त स्त्रियोंके

नदानैश्चालितुंयोग्यानानाशस्त्रविभूषिता ॥ भेदस्तुविकलःकामंसर्वदेववशानुगा ॥ ३२ ॥ तस्मात्तुमरणंश्रेयोनसंग्रामेपलायनम् ॥ जयोवा मरणंवाऽद्यभवत्येवयथाविधि ॥ ३३ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंचिंत्यमनसाशुंभःसत्त्वाश्रितोभवत् ॥ युद्धायसुस्थिरोभूत्वातामुवाचपुरःस्थिताम् ॥ ॥ ३४ ॥ देवियुध्यस्वकांतेऽद्यवृथाऽयंतेपरिश्रमः ॥ मूर्खाऽसिकिलनारीणांनाऽयंधर्मःकदाचन ॥ ३५ ॥ नारीणांलोचनेबाणाभ्रुवावेवशरासनम् ॥ हावभावास्तुशस्त्राणिपुमाँल्लक्ष्यंविचक्षणः ॥ ३६ ॥ सन्नाहश्चांगरागोऽत्ररथश्चाऽपिमनोरथः ॥ मंदप्रजल्पितंभेरीशब्दोनाऽन्यःकदाचन॥३७॥ अन्यास्त्रधारणंस्त्रीणांविडंबनमसंशयम् ॥ लज्जैवभूषणंकांतेनचधाष्टर्यंकदाचन ॥३८॥ युध्यमानावरानारीकर्कशेवाऽभिदृश्यते ॥ स्तनौसंगोपनीयौवाधनुषःकर्षणे कथम् ॥ ३९ ॥ क्वमंदगमनंकुत्रगदामादायधावनम् ॥ बुद्धिदाकालिकातेऽत्रचामुंडापरनायिका ॥ ४०॥ चंडिकामंत्रमध्यस्थालालनेऽसुस्वराशिवा ॥ वाहनंमृगराडास्तेसर्वसत्त्वभयंकरः ॥४१॥ वीणानादंपरित्यज्यघंटानादंकरोषियत् ॥ रूपयौवनयोःसर्वविरोधिवरवर्णिनि ॥ ४२॥

युद्धका दूसरा साज नहीं है ॥ ३७ ॥ अतएव हे कान्ते ! स्त्रीका अन्य अस्त्रधारण करना केवल विडम्बनामात्र है, इसमें सन्देह नहीं. स्त्रीका लज्जाही भूषण है किन्तु धृष्टता उसका भूषण कभी नहीं होसकता ॥ ३८ ॥ परमसुन्दरी स्त्रीभी यदि समरमें निहत हो तो वहभी कर्कशकी समान दिखाई देती है विशेष कर तुम जब धनुष खैंचोगी तब तुम्हारे दोनों स्तन किस प्रकारसे गुप्त रहेंगे ॥ ३९ ॥ जब गदा लेकर दौड़ोगी तो तुम्हारी मन्थरगति कहाँ रहेगी ? हे सुन्दरि ! तुमको परामर्श देनेवाली कालिका और चामुंडा चतुर नहीं है ॥ ४० ॥ चण्डिका तुमको मंत्रणा देतीहै उसका स्वर अत्यन्त कर्कश है. अतएव वह किसप्रकार तुम्हारा लालन पालन करेगी ? इसके अतिरिक्त सब प्राणियोंको भयप्रद मृगराज तुम्हारा वाहन है. अतएव हे कान्ते ! तुम इन सबको छोड़कर मेरे निकट आओ ॥ ४१ ॥ हे वरवर्णिनि !

वीणाध्वनि त्यागकर तुम जो घंटाध्वनि करती हो यह तुम्हारे रूप और यौवनके अतिशय विरुद्ध है ॥ ४२ ॥ हे अभिमानिनि ! यदि तुमको समरकी इच्छा हो तो तुम कुत्सितरूप धारण करो. तुम्हारी आकृति क्रूर, वर्ण काककी समान काला हो विलोचती हो ॥ ४३ ॥ लम्बे दोनों पाँव, दीर्घ नख, कुत्सित दांत, विकट दोनों नेत्र, बिडालकी समान पिंगलवर्ण होवें. हे देवि ! तुम ऐसा कुत्सितरूपधारण करके स्थिरभावसे समरमें रहो ॥ ४४ ॥ हे मृगलोचने ! तुम प्रथम मुझसे कर्कश वचन कहो फिर मैं युद्ध करूंगा. तुमको रतिकी समान सुन्दरी देखकर मेरा हाथ रणाङ्गणमें तुम्हारे ऊपर प्रहार करनेको अग्रेसर नहीं होता ॥ ४५ ॥ हे मृगलोचने ! रतिकी समान तुमको कैसे मारूं ? व्यासजी बोले हे भारतोत्तम ! जब शुंभने इसप्रकार वचनकहे तब जगदम्बिकाने उसको कामार्त्त देख ॥ ४६ ॥ कुछेक हँसकर यह बात कही देवी बोली रे मन्दात्मन् ! कामबाणोंसे मोहित होकर क्यों विषाद करता है ॥ ४७ ॥ मूढ ! यदि मुझको प्रहार करनेमें तेरा हाथ अग्रेसर नहीं होता तो इस कुरूपा कालिकाके

यदितेसंगरेच्छास्ति कुरूपाभवभामिनि॥लंबोष्ठीकुनखीक्रूराध्वांक्षवर्णाविलोचना॥४३॥लंबपादाकुदंतीचमार्जारनयनाकृतिः ॥ ईदृशंरूपमास्थायतिष्ठयुद्धेस्थिराभव॥४४॥ कर्कशंवचनंब्रूहिततोयुद्धंकरोम्यहम् ॥ ईदृशींसुदतींदृष्ट्वानमेपाणिःप्रसीदति॥४५॥ हंतुंत्वांमृगशावाक्षिकामकांतोपमेमृधे ॥ व्यास उवाच॥इतिब्रुवाणंकामार्तंवीक्ष्यतंजगदंबिका ॥४६॥ स्मितपूर्वमिदंवाक्यमुवाचभरतोत्तम ॥देव्युवाच ॥ किंविषीदसिमंदात्मन्कामबाणविमोहित॥४७॥ प्रेक्षिकाऽहंस्थितामूढकुरुकालिकयामृधम् ॥ चामुंडयावाकुर्वैतेतवयोग्येरणांगणे ॥ ४८ ॥ प्रहरस्वयथाकामंनाऽहंत्वांयोद्धुमुत्सहे ॥ इत्युक्त्वाकालिकांप्राहदेवीमधुरयागिरा॥४९॥जघ्नेनंकालिकेक्रूरेकुरूपप्रियमाहवे॥व्यासउवाच॥इत्युक्ताकालिकाकालप्रेरिताकालरूपिणी ॥५०॥गदांप्रगृह्यतरसातस्थावाजौकृतोद्यमा ॥ तयोःपरस्परंयुद्धंबभूवातिभयानकम् ॥५१॥ पश्यतांसर्वदेवानांमुनीनांचमहात्मनाम् ॥ गदामुद्यम्यशुंभोऽथजघानकालिकांरणे ॥ ५२ ॥

संग अथवा चामुण्डके संग युद्ध कर ॥ ४८ ॥ यही समराङ्गणमें तेरे उपयुक्त है. सुतरां यही तुझसे युद्ध करेंगी मैं केवल देखती रहूंगी तेरी जैसी इच्छा हो वैसाही प्रहार कर किन्तु मैं तेरे संग युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करती. देवी भगवतीने उससेइसप्रकार कह फिर कालिकासे मधुरवचनद्वारा कहा ॥ ४९ ॥ हे कालिके ! तुम्हारे अवयव (अंग) कठिन हैं और यह शुंभ भी समरमें कुरूपको बहुत अच्छा समझता है. इसकारण तुमही इसका संहार करो. व्यासजी बोले हे महाराज ! वह कालरूपिणी कालिका देवीकी यह आज्ञा पाते ही ॥ ५० ॥ तत्काल गदा ले कालप्रेरितकी समान समरमें उद्यत होकर स्थिति करने लगी. उनका परस्पर अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा ॥ ५१ ॥ देवता और मुनी देखने लगे प्रथम तो शुम्भने गदा उद्यत करके समरस्थलमें उस कालिकाको प्रहार किया ॥ ५२ ॥

और फिर कालिकाने भी दैत्यराजको गदासे अत्यन्त पीड़ित किया फिर अत्यन्त क्रोधित हो, घोर चीत्कार कर उस गदाघातसे उसका सुवर्णमण्डित उज्वल रथ तत्काल तोड डाला ॥ ५३ ॥ और फिर उसके रथवाहक सब खर खिचर मारकर सारथीको भी यमसदनमें प्रेरण किया. तब शुंभ गुरुभार युक्त महती गदा ग्रहण कर पादचारीहो क्रोध सहित ॥ ५४ ॥ कालिकाके हृदयमें प्रहार करके हँसने लगा. इसी अवसरमें कालिकाने उसका गदाघात विफल कर तत्काल खड्ग ग्रहण किया ॥ ५५ ॥ और और अस्त्र शस्त्रसे विभूषित चन्दन चर्चित उसकी वाम भुजा काट डाली. तब वाम भुजाके कटजानेसे उसका सब शरीर रुधिर धारामें डूबगया ॥ ५६ ॥ तो भी उसने गदा हाथमें लिये सहसा आनकर कालिकाको प्रहार किया. कालिकाने भी हँसते हँसते खड्गसे उनकी दक्षिण भुजा काट डाली ॥

कालिकादैत्यराजानंगदयान्यहनद्भृशम् ॥ बभंजाऽस्यरथंचंडीगदयाकनकोज्वलम् ॥ ५३ ॥ खरान्हत्वाजवानाऽऽशुदारुकंदारुणस्वना ॥ सपदातिर्गदांगुर्वीसमादायक्रुधान्वितः ॥ ५४ ॥ कालिकाभुजयोर्मध्येप्रहसन्प्रहनत्तदा ॥ वंचयित्वागदापातंखड्गमादायसत्वरा ॥५५॥ चिच्छेदाऽस्यभुजंसव्यंसायुधंचंदनार्चितम् ॥ सच्छिन्नबाहुर्वीरथोगदापाणिःपरिप्लुतः ॥ ५६ ॥ रुधिरेणसमागम्यकालिकामहनत्तदा ॥ कालीचकरवालेनभुजंतस्याऽथ दक्षिणम् ॥ ५७ ॥ चिच्छेदप्रहसंतीसासगदंकिलसांगदम् ॥ कर्तुंपादप्रहारंसकुपितःप्रययौजवात् ॥ ५८ ॥ कालीचिच्छेदचरणौखड्गेनाऽस्यत्वरान्विता ॥ सच्छिन्नकरपादोऽपितिष्ठतिष्ठेतिचब्रुवन् ॥ ५९ ॥ धावमानोययावाशुकालिकांभीषयन्निव ॥ तमागच्छंतमालोक्यकालिकाकमलोपमम् ॥ ६० ॥ चकर्तमस्तकंकंठाद्रुधिरौघवहंभृशम् ॥ छिन्नेऽसौमस्तकेभूमौपपातगिरिसन्निभः ॥ ६१ ॥ प्राणाविनिर्ययुस्तस्यदेहादुत्क्रम्यसत्वरम् ॥ गतासुंपतितंदैत्यंदृष्ट्वा देवाःसवासवाः ॥ ६२ ॥

॥ ५७ ॥ जब हँसते २ उसकी अंगद सहित भुजा काट डाली तब शुंभ कुपित होकर पादप्रहार करनेके लिये वेगसे दौड़ा ॥ ५८ ॥ फिर कालीने भी शीघ्रता सहित खड्गसे उसके दोनों चरण काट डाले. हाथ और पैर कटजाने पर भी वह दैत्य “ठहर ठहर” कहकर ॥ ५९ ॥ कालिकाको डराता हुआ तत्काल दौडता हुआ उनके समीप आया. कालिकाने उसको आता हुआ देखकर उसका मस्तक कंठसे कमलकी सामान ॥ ६० ॥ काट डाला. तब उससे अनर्गल रुधिरकी धारा बहने लगी. हे महाराज! शुंभका मस्तक कटजानेपर वह पर्वतकी समान पृथ्वीमें गिरगया ॥ ६१ ॥ और तत्काल उसका प्राण

वायुदेहसे बहिर्गत होकर चलागया. इन्द्रादि देवता उस दानवको गतासु हो गिरता हुआ देख ॥ ६२ ॥ उन देवी भगवती चामुण्डा और कलिकाका स्तव करने लगे. तिस काल वायु सुखस्पर्श होकर बहने लगा. सबदिशायें अतीव निर्मल होगई ॥ ६३ ॥ और हुताशन होमकालमें प्रदक्षिण शिखावाला होकर शुभ कथन कनेवाला चलनेलगा. इधर उस समय जो दैत्य मरनेसे बचे थे वह अस्त्र शस्त्र त्यागकर जगदम्बिकाको प्रणामकर ॥ ६४ ॥ अस्त्रत्याग पातालमें चले गये यह सब तुमसे देवीका चरित्र कहा ॥ ६५ ॥ हे महाराज! शुंभ इत्यादि असुरोंको मारकर देवीने जिसप्रकार देवताओंकी रक्षा की थी मैंने वह सब पवित्र चरित्र तुमसे वर्णन किया. पृथ्वीमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक यह उपाख्यान आद्योपान्त पाठ ॥ ६६ ॥ वा नित्य श्रवण करते हैं, उनकी सब अभिलाषा पूर्ण होती हैं, इसमें संदेह नहीं है.

तुष्टुवुस्तांतदादेवींचामुंडांकालिकांतथा ॥ ववुर्वाताःशिवास्तत्रदिशश्चविमलाभृशम् ॥ ६३ ॥ बभूवुश्चाऽग्नयोहोमेप्रदक्षिणशिखाःशुभाः ॥ हतशेषाश्चयेदैत्याःप्रणम्यजगदंबिकाम् ॥ ६४ ॥ त्यक्त्वाऽऽयुधानितेसर्वेपातालंप्रययुर्नृप ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंदेव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ शुंभादीनांवधंचैवसुराणांरक्षणंतथा ॥ एतदाख्यानकंसर्वेपठंतिभुविमानवाः ॥ ६६ ॥ शृण्वंतिचसदाभक्त्यातेकृतार्थाभवंतिहि ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रान्नि र्धनश्चधनंबहु ॥ ६७ ॥ रोगीचमुच्यतेरोगात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ शत्रुतोनभयंतस्ययइदंचरितंशुभम् ॥ शृणोतिपठतेनित्यंमुक्तिमाप्नोयतेनरः ॥ ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे शुंभवधोनामएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ ॥ महिमावर्ण्यतेसम्यक्चंडिका यास्त्वयामुने ॥ केनचाराधितापूर्वंचरित्रत्रययोगतः ॥ १ ॥ प्रसन्नाकस्यवरदाकेनप्राप्तंफलंमहत् ॥ आराध्यकामदांदेवींकथयस्वकृपानिधे ॥ २ ॥

हे राजन् ! जिसके पुत्र नहीं है, वह पुत्र प्राप्त करता है, जिसके धन नहीं है, उसको बहुत धन मिलता है ॥ ६७ ॥ रोगी रोगसे छूट जाता है. अधिक क्या ? जो पुरुष देवीका यह सब माहात्म्य सुनता है वह सब कामना प्राप्त करसक्ता है. हे महाराज ! जो मनुष्य इस पवित्र चरित्रको नित्य पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह शत्रुसे कभी नहीं डरता, विशेषकर मृत्युके पीछे मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां शुंभवधो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ जनमेजय बोले हे मुनिवर! आपने सम्यक प्रकारसे चण्डिकाकी महिमा वर्णन किया है. किन्तु मधुकैटभ नाशादि तीनों चरित्र पाठ और श्रवण करके किस पुरुषने पूर्वमें उनकी आराधना की थी? ॥ १ ॥ किस पुरुषने उस अभीष्ट प्रदायिनी देवीकी उपासना करके महत्फल प्राप्त किया है ? किस समयमें उन्होंने किसके प्रति प्रसन्न

होकर वरदान किया था ? हे कृपानिधे ! आप कृपा करके वह समस्त वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप उन महादेवीकी उपासना विधि, पूजाप्रणाली और होमविधि विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले हे ऋषिगण ! सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायनराजा जन्मेजयके इस प्रकार वचन सुनकर परम प्रसन्न हो उनसे महामाया भगवतीकी पूजाविधि कहने लगे ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! पूर्वकालके समय स्वारोचिषमन्वन्तरमें अतीव उदार प्रकृति और प्रजापालनपरायण सुरथ नामक एक राजा थे ॥ ५ ॥ वह सत्यवादी कार्यदक्ष और गुरुके प्रति भक्तिमान् थे. वह सदा ब्राह्मणोंकी सेवा करते और अपनी धर्मपत्नीके अतिरिक्त कभी किसी स्त्रीके संग सहवास नहीं करते ॥ ६ ॥ वह दाता अग्रगण्य और धनुर्विद्यामें अतिनिपुण थे, वह किसीके संग विरोध नहीं करते. हे राजन् ! वह राजा सुरथ इसप्रकार निर्विघ्न राज्य पालन करते थे, इसी अवसरमें पर्वतवासी म्लेच्छगण ॥ ७ ॥ उनके शत्रु होगये ! यह मदमत्त कोला

उपासनाविधिंब्रह्मंस्तथापूजाविधिंवद ॥ विस्तरेणमहाभागहोमस्यचविधिंपुनः ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ इतिभूपवचःश्रुत्वाप्रीतःसत्यवतीसुतः ॥ प्रत्युवाचनृपंकृष्णोमहामायाप्रपूजनम् ॥ ४ ॥ व्यासउवाच ॥ स्वारोचिषेंतरेपूर्वंसुरथोनामपार्थिवः ॥ बभूवपरमोदारःप्रजापालनतत्परः ॥ ५ ॥ सत्यवादीकर्मपरो ब्राह्मणानांचपूजकः ॥ गुरुभक्तिरतोनित्यंस्वदारगमनेरतः ॥ ६ ॥ दानशीलोऽविरोधीचधनुर्वेदैकपारगः ॥ एवंपालयतोराज्यंम्लेच्छाःपर्वतवासिनः ॥ ७ ॥ बलाच्छत्रुत्वमापन्नाःसैन्यंकृत्वाचतुर्विधम ॥ हस्त्यश्वरथपादातिसहितास्तेमदोत्कटाः ॥ ८ ॥ कोलाविध्वंसिनःप्राप्ताःपृथ्वीग्रहणतत्पराः ॥ सुरथःसैन्यमादायसंमुखःसमपद्यत ॥ ९ ॥ युद्धंसमभवद्धोरंतस्यतैरतिदारुणैः ॥ म्लेच्छानांतुबलंस्वल्पंराज्ञस्तद्बलमद्भुतम् ॥ १० ॥ तथापितैर्जितोयुद्धेदैवाद्राजापराजितः ॥ भग्नश्चस्वपुरंप्राप्तःसुरक्षंदुर्गमंडितम् ॥ ११ ॥ चिंतयामासमेधावीराजानीतिविचक्षणः ॥ प्रधानान्विमनाद्दृष्ट्वाशत्रुपक्षसमाश्रितान् ॥ १२ ॥

नगर विध्वंशी म्लेच्छगण युद्ध नीतिका अनुसरण न करके केवल बलपूर्वक समस्त (पृथ्वी) ग्रहण करनेकी अभिलाषासे हाथी घोड़े रथ और पैदल इस चार प्रकारकी सेनाके सहित ॥ ८ ॥ सुरथ राजाका राज्य ग्रहण करनेके लिये आये. सुरथराजा भी अपनी सेनाको संगलेकर उनके सन्मुख हुए ॥ ९ ॥ तब उन परम दारुण म्लेच्छोंके संग उनका घोर युद्ध हुआ. हे महाराज ! तिसकाल म्लेच्छोंका सैन्यबल सामान्यमात्र और राजा सुरथका सैन्यबल अधिक था ॥ १० ॥ किन्तु तोभी म्लेच्छोंने दैववश युद्धमें जयलाभ की. तब राजा रणमें पराजित हो पलायनपूर्वक दुर्गद्वारा सुरक्षित अपने नगरमें चले आए ॥ ११ ॥ वह नीतिविशारद राजा मंत्रियोंको शत्रुओंके पक्षमें मिला देख अत्यन्त विमन होकर चिन्ता करने लगे कि, अब प्रधानमंत्री विमन होकर शत्रुके पक्षमें होगये हैं ॥ १२ ॥

अवपरिखा वेष्टित आकारसे सम्पन्न खाईसे व्याप्त विपुल स्थानका आश्रय लेकर समयकीप्रतीक्षा करनी चाहिये अथवा युद्ध करना उत्तम है ?॥ १३॥ राजा मनहीमनमें और भी चिन्ता करने लगे कि, इस समय मंत्रीलोग शत्रुके वशीभूत हैं, इसकारण उनसे मंत्रण करना कभी उचित नहीं है. अतएव अब मुझको क्या कर्त्तव्य है ? ॥ १४ ॥ उन्होंने जब विपक्षका आश्रय ग्रहण किया है, तब वह विपरीत कार्य करनेमें कभी कुण्ठित नहीं होगे. यह पापिष्ठ मंत्रीगण यदि किसी समय मुझको ग्रहण करके शत्रुओंके हाथमें दे दें तो फिर मैं क्या उपाय करूंगा ? ॥ १५ ॥ जो मनुष्य लोभके वशीभूत हैं, उनको अकार्य कुछ नहीं है अतएव उन पापबुद्धियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥ लोकमें लोभके वशीभूत होकर पिता, माता, भ्राता, मित्र, सुहृद्, बांधव, गुरु और पूज्य ब्राह्मणोंसे भी सदा

स्थानंगृहीत्वाविपुलंपरिखादुर्गमंडितम् ॥ कालप्रतीक्षाकर्तव्याकिंवायुद्धंवरंमतम् ॥ १३ ॥ मंत्रिणःशत्रुवशगामंत्रयोग्यानतेकिल ॥ किंकरोमीतिमनसाभूपतिःसमचिंतयत् ॥ १४ ॥ कदाचित्तेगृहीत्वामांपापाचाराःपराश्रिताः ॥ शत्रुभ्योऽथप्रदास्यंतितदाकिंवाभविष्यति ॥ १५ ॥ पापबुद्धिषु विश्वासोनकर्तव्यःकदाचन ॥ किंनतैवप्रकुर्वंतियेलोभवशगानराः ॥ १६ ॥ भ्रातरंपितरंमित्रंसुहृदंबांधवंतथा ॥ गुरुंपूज्यंद्विजेंद्रंद्वेष्टिलोभाविष्टःस दानरः ॥ १७ ॥ तस्मान्मयानकर्तव्योविश्वासःसर्वथाऽधुना ॥ मंत्रिवर्गेऽतिपापिष्ठेशत्रुपक्षसमाश्रिते ॥ १८ ॥ इतिसंचिंत्यमनसाराजापरमदुर्मनाः ॥ एकाकीहयमारुह्यनिर्जगामपुरात्ततः ॥ १९ ॥ असहायोऽथनिर्गत्यगहनंवनमाश्रितः ॥ चिंतयामासमेधावीक्वगंतव्यंमयापुनः ॥ २० ॥ योजनत्रयमात्रेतुमुनेराश्रममुत्तमम् ॥ ज्ञात्वाजगामभूपालस्तापसस्यसुमेधसः ॥ २१ ॥ बहुवृक्षसमायुक्तंनदीपुलिनसंश्रितम् ॥ निर्वैरश्वापदाकीर्णंकोकिलारावमंडितम् ॥ २२ ॥

द्वेष करते हैं ॥ १७ ॥ मंत्रीलोग जब शत्रुसे मिलगये हैं, तब वह निस्सन्देह पापिष्ठ हैं, अब इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ राजा मनहीमनमें इस प्रकारसे अनेक चिन्ता करके अत्यन्त विमन हुए किन्तु उपाय न देख घोड़ेपर चढ़कर अकेले उस पुरीसे निकले ॥ १९ ॥ वह सहाय विहीन बुद्धिमान् राजा नगरसे निकल गहन वनमें जाकर चिन्ता करने लगे कि, अब मैं कहां जाऊं ? ॥ २० ॥ अनन्तर उस स्थानसे तीन योजन अन्तर पर तापसप्रवर सुमेधा ऋषिका पवित्र आश्रम विद्यमान है, यह जानकर उस आश्रममें गये ॥ २१ ॥ हे महाराज ! उस आश्रमके शोभाकी सीमा नहीं थी. वह नदीके तटपर स्थापित है, इसके स्थान स्थानमें अनेक प्रकारके वृक्ष विराजमान थे और उनके ऊपर कोकिला मधुर रव करतीं थीं. स्थान स्थानमें हिंसक जंतु विचरण करते थे, किन्तु उनका परस्पर वैर

भाव नहीं था॥ २२॥ कही सैकड़ों मृगोंके दल विचरण करते थे. कहीं पादपोंने कुसुमित होकर अपूर्व श्री धारण की थी, कहीं वृक्ष फलोंके भारसे झुक रहे थे, कहीं पकाहुआ नीवार मुनिअन्न स्थापित है, कहीं शिष्योंकी अध्ययन ध्वनि॥ २३॥ और कहीं अत्यन्त मनोहर वेदध्वनि होरही थी, कहीं होमके धुएँकी सुगंध सदा प्राणियोंकी प्रीति वर्धन करती थी.अधिक क्या? उस तपोवनको देखनेपर वह स्वर्गसे भी अतिमनोहर जान पड़ता था ॥ २४ ॥ राजा सुरथ ऐसा आश्रम देखकर आनन्दसागरमें निमग्न हुए और भय त्यागकर द्विजवरके इस आश्रममें विश्राम करनेकी इच्छा की ॥ २५॥ तदनन्तर राजाने वृक्षकी जड़में घोड़ेको बांध, विनीत भावसे उन ऋषिके निकट जाकर देखा कि मुनिवर शालवृक्षकी घनी छायामें मृगचर्मपर विराजमान होरहे हैं ॥ २६ ॥ तपस्याके क्लेशसे उनका शरीर कृश और सरल है, वह शीत वा उष्णसे

शिष्याध्ययनशब्दाढ्यंमृगयूथशतावृतम् ॥ नीवारान्नसुपक्काढ्यंसुपुष्पफलपादपम् ॥ २३ ॥ होमधूमसुगंधेनप्रीतिदंप्राणिनांसदा ॥ वेद ध्वनिसमाक्रांतंस्वर्गादपिमनोहरम् ॥ २४ ॥ दृष्ट्वातमाश्रमंराजावभूवाऽसौमुदान्वितः॥ भयंत्यक्त्वामतिंचक्रेविश्रामायद्विजाश्रमे ॥ २५ ॥ आसज्यपाद पेऽश्वंतुजगामविनयान्वितः ॥ दृष्ट्वातंमुनिमासीनंसालच्छायासुसंश्रितम् ॥२६॥ मृगाजिनासनंशांतंतपसातिकृशंऋजुम् ॥ अध्यापयंतंशिष्यांश्ववेदशा स्त्रार्थदर्शिनम् ॥२७॥ रहितंक्रोधलोभाद्यैर्द्वंद्वातीतंविमत्सरम्॥आत्मज्ञानरतंसत्यवादिनंशमसंयतम् ॥२८॥ तंवीक्ष्यभूपतिर्भूमौपपातदंडवत्तदा ॥ तद श्रुजलापूर्णनयनःप्रेमसंयुतः ॥२९॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रंतेतमुवाचतदामुनिः॥ शिष्योददौबृसींतस्मैगुरुणानोदितस्तदा॥३०॥उत्थायनृपतिस्तस्यांसमा सीनस्तदाज्ञया ॥ अर्घ्यपाद्यार्हणंचक्रेसुमेधाविधिपूर्वकम्॥३१॥पप्रच्छाऽत्रकुतःप्राप्तःकस्त्वंचिंतापरःकथम्॥कथयस्वयथाकामंसंवृत्तंकारणंत्विह ॥३२॥

तिरस्कृत नहीं हैं. उनका क्रोध, लोभ और मोह इत्यादि कोई शत्रु नहीं है. अतएव शान्त, सत्यवादी और मत्सर विहीन हैं. विशेषतः आत्मज्ञानमें निरत होकर अतीन्द्रियको निग्रह किया है. वह वेदशास्त्रार्थपारदर्शी मुनिवर तिस समय शिष्यों को वेद पढ़ा रहे थे ॥२७॥२८॥ राजाके दोनों नेत्र उनको देखतेही जलसे परिपूर्ण होगये और भक्ति सहित उनके सन्मुख दण्डकी समान पृथ्वीमें गिर गये ॥ २९ ॥ तब मुनिवरने उनकी ऐसी अवस्था देखकर कहा हे वत्स! उठो ! उठो !! तुम्हारा मंगल तो है ? फिर गुरुकी आज्ञानुसार एक शिष्यने उनको कुशासन दिया ॥ ३० ॥ राजा उठकरके उनकी आज्ञानुसार उस आसन पर विराजमान हुए. तब मुनिवर सुमेधाने विधिपूर्वक पाद्य और अर्घ्यद्वारा उनकी पूजा करके ॥ ३१ ॥ पूँछा कि, तुम कौन हो ? किसलिये यहां आये हो ? किस

कारण चिन्तामें निमग्न हो ? इन सबका कारण गुप्त हो रहा है, अतएव यह समस्त मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ तुम्हारे आनेका उद्देश क्या है ? तुम अपने मनका अभिप्राय प्रकाश करके कहो यदि वह मेरे असाध्य भी होगा तोभी मैं तुम्हारा कार्य संपादन करूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ३३ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! मैं सुरथनामक राजा हूं. शत्रुसे पराजित होकर राज्य गृह और भार्या परित्याग करके आपकी शरणागत हुआ हूं ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप जो आज्ञा करेंगे मैं भक्तिसहित वही करूंगा. आपके अतिरिक्त पृथ्वीतलमें मेरी रक्षा करने वाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ३५ ॥ इस समय शत्रुसे मुझको घोर भय उपस्थित है मैं इसी लिये आपके निकट आया हूं. हे मुनिवर ! आप शरणागतवत्सल हैं इसकारण मैं आपकी शरणागत हूं आप मेरी विपदसे रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥

किमागमनकृत्यंतेब्रूहिकार्यमनोगतम् ॥ करिष्येवांछितंकाममसाध्यमपियत्तव ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ सुरथोनामराजाऽहंशत्रुभिश्चपराजितः ॥ त्यक्त्वाराज्यंगृहंभार्यामहंतेशरणंगतः ॥३४॥ यदाज्ञापयसेब्रह्मंस्तदहंभक्तितत्परः ॥ करिष्यामिनमेत्रातात्वदन्यःपृथिवीतले॥३५॥ शत्रुभ्योमेभयंघोरं प्राप्तोऽस्म्यद्यतवांतिकम् ॥ त्रायस्वमुनिशार्दूलशरणागतवत्सल ॥ ३६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ निर्भयंवसराजेंद्रनाऽत्रतेशत्रवःकिल ॥ आगमिष्यंतिबलिनो निश्चयंतपसोबलात् ॥ ३७ ॥ नाऽत्रहिंसाप्रकर्तव्यावनवृत्त्यानृपोत्तम ॥ कर्तव्यंजीवनंशस्तैर्नीवारफलमूलकैः ॥ ३८ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचः श्रुत्वानिर्भयःसनृपस्तदा ॥ उवासाऽऽश्रमएवाऽसौफलमूलाशनःशुचिः ॥ ३९ ॥ कदाचित्सनृपस्तत्रवृक्षच्छायांसमाश्रितः ॥ चिंतयामासचिंतार्तो गृहएवगताशयः ॥ ४० ॥ राज्यंमेशत्रुभिःप्राप्तंम्लेच्छैःपापरतैःसदा ॥ संपीडिताःस्युर्लोकास्तैर्दुराचारैर्गतत्रपैः ॥ ४१ ॥

महर्षिने कहा हे राजेन्द्र ! तुम इस स्थानमें निर्भय होकर वास करो तुम्हारे शत्रु बलवान् होनेपर भी तपोबलके प्रभावसे वह यहां नहीं आसकेंगे ॥ ३७ ॥ हे नृपोत्तम ! इस स्थानमें हिंसा नहीं करसकोगे केवल वनवृत्तिके अनुसार नीवार फल और मूल इत्यादि प्रशस्त खाद्य द्रव्यद्वारा जीवनयात्रा निर्वाह करनी होगी ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! राजा सुरथ उनके इसप्रकार वचन सुन फल मूल भक्षण करते हुए पवित्रभावसे निर्भय उस आश्रममें वास करने लगे ॥ ॥ ३९ ॥ किसीसमय आश्रमके वृक्षोंकी छायामें बैठकर अनेक प्रकारकी चिन्ता करते करते अपने घरकी बात मनमें उदय होतेही विचार करने लगे ॥ ४० ॥ कि, मेरा राज्य शत्रुओंने ले लिया है किन्तु वह म्लेच्छ दुराचारी और लज्जाविहीन हैं विशेष कर सदा पापकार्यमें रत हैं. अतएव वह प्रजाको सदाही पीड़ित करते हैं

इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ मेरे हाथी घोड़े अब नियमित प्रकारसे आहार नहीं पाते. अतएव वह दुर्लभ होकर शत्रुके निकट अत्यन्त कष्ट पाते हैं ॥ ४२ ॥ मैंने जिन सेवकोंको पूर्वमें पालन किया है अब वह सब शत्रुके वशीभूत होकर दुःखभोग करते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ४३ ॥ वह दुराचारी शत्रुगण असत्कार्यमें धन व्यय करते हैं सुतरां मेरा संचित धन उन्होंने द्यूतक्रीडा मद्य और वेश्याके निमित्त व्यय करके अवश्यही क्षय करडाला होगा ॥ ४४ ॥ उन म्लेच्छोंकी और मेरे मंत्रियोंकी मति सदाही पापकार्यमें रत है. वह दानके पात्र अपात्रको विचारकर दान करना नहीं जानते अतएव संपूर्ण कोष व्यसनद्वाराही क्षय करडाला होगा. इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ वृक्षकी जड़में बैठे राजा जब इसप्रकार चिन्ता कर रहे थे तब कोई एक वैश्य कातर होकर उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥ ४६ ॥ राजाने

गजाश्वतुरगाःसर्वेदुर्बलाभक्ष्यवर्जिताः ॥ जाताःस्युर्नोऽत्रसंदेहःशत्रुणापरिपीडिताः ॥ ४२ ॥ सेवकाममसर्वेतेशत्रूणांवशवर्तिनः ॥ दुःखिताएवजाताःस्युःपालितायेमयापुरा ॥ ४३ ॥ धनंमेसुदुराचारैरसद्व्ययपरैःपरैः ॥ द्यूतासवभुजिष्यादिस्थानेस्यात्प्रापितंकिल ॥ ४४ ॥ कोशःक्षयंकरिष्यंतिव्यसनैःपापबुद्धयः ॥ नपात्रदाननिपुणाम्लेच्छास्तेमंत्रिणोऽपिमे ॥ ४५ ॥ इतिचिंतापरोराजावृक्षमूलस्थितोयदा ॥ तदाजगामवैश्यस्तुकश्चिदार्तिपरस्तथा ॥ ॥ ४६ ॥ नृपेणपुरतोदृष्टःपार्श्वेतत्रोपवेशितः ॥ पप्रच्छतंनृपःकोऽसिकुतएवाऽऽगतोवनम् ॥४७॥ कोऽसिकस्माच्चदीनोऽऽसिहरिणःशोकपीडितः ॥ ब्रूहि सत्यंमहाभागमैत्रीसाप्तपदीमता ॥ ४८ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराज्ञस्तमुवाचविशोत्तमः ॥ उपविश्यस्थिरोभूत्वामत्वासाधुसमागमम् ॥ ॥ ४९ ॥ वैश्यउवाच ॥ मित्राऽहंवैश्यजातीयःसमाधिर्नामविश्रुतः ॥ धनवान्धर्मनिपुणःसत्यवागनसूयकः ॥ ५० ॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽहंधनलुब्धैरसाधुभिः ॥ "कृपणेतिमिषंकृत्वात्यक्त्वामायांसुदुस्त्यजाम्" ॥ स्वजनेनचसंत्यक्तःप्राप्तोऽस्मिवनमाशुवै ॥ ५१ ॥

उसको सन्मुख देखतेही अपने पार्श्वमें बैठाया और फिर उस वैश्यके बैठनेपर राजाने उससे पूँछा हे महाभाग ! तुम कौन जातीय हो ? किस देशसे इस वनमें आये हो ॥ ४७ ॥ तुम्हारा नाम क्या है ? किसलिये तुम शोकसे कातर होकर मलीन और पांडुवर्ण हुए हो? हे महाभाग ! परस्पर सात बात कहतेही मित्रता होती है उसीके अनुसार मैं तुम्हारा मित्र हूं इस कारण यह सब वृत्तान्त मुझसे सत्य कहो ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले वैश्यवर राजाके इसप्रकार वचन सुन श्रम अपनयनपूर्वक स्थिरभावसे बैठ "साधुके संग समागम हुआ" यह विचारकर उनसे कहने लगा ॥ ४९ ॥ हे मित्र ! मैं वैश्यजातीय हूं मेरा नाम समाधि है. मैं धनवान् था कभी किसीसे असूया नहीं करता सदा सत्य वचन कहकर धर्मकार्यमें निरत रहता था ॥ ५० ॥ मेरी स्त्री और पुत्रगण धनलोलुप हैं और असाधु हैं

अतएव उन्होंने अतीव दुस्त्यज्य मायाका त्याग कर "यह कृपण हैं" इसप्रकार छलअवलम्बनकर मुझको घरसे निकाल दिया है आत्मीय स्वजनोंसे त्यागा जाकर मैं अब वनमें आया हूं ॥ ५१ ॥ आप भाग्यवान्की समान दिखाई देते हैं. अतएव हे प्रियवर ! इससमय अनुग्रह करके मुझको अपना परिचय दीजिये. यह वचन सुनकर राजाने उससे कहा मैं सुरथनामक राजा हूं सम्प्रति दस्युगणोंसे पीड़ित हुआ हूं ॥ ५२ ॥ इसपरभी फिर मुझे मंत्रियोंने छला है अतएव राज्यभ्रष्ट होकर इस तपोवनमें उपस्थित हुआ हूं. हे विशोत्तम ! सौभाग्यसेही आज तुम मेरे परम मित्ररूपसे उपस्थित हुए हो ॥ ५३ ॥ हम दोनों मनोहर वृक्षोंसे मंडित इस वनमें परम सुखसे विहार करें. हे महाबुद्धे ! अब शोक त्यागकर सावधान होओ ॥ ५४ ॥ और इच्छानुसार मेरे संग इस स्थानमें परमसुखसे वास करो. वैश्यने कहा हे राजन् ! मेरे बांधवलोग मेरे न होनेसे निराश्रय होकर अतिदुःखित होंगे. विशेषकर व्याधि और शोकसे संतापित होकर उनके चिन्ताकी सीमा न रहेगी॥ ५५॥ हे राजन् ! इस

कोऽसित्वंभाग्यवान्भासिकथयस्वप्रियाऽधुना ॥ राजोवाच ॥ सुरथोनामराजाऽहंदस्युभिःपीडितोऽभवम् ॥ ५२ ॥ प्राप्तोऽस्मिगतराज्योऽत्रमंत्रिभिः परिवंचितः ॥ दिष्ट्यात्वमत्रमित्रंमेमिलितोऽसिविशोत्तम ॥५३॥ सुखेनविहरिष्यावोवनेऽत्रशुभपादपे ॥ शोकंत्यजमहाबुद्धेस्वस्थोभवविशोत्तम ॥५४॥ "अत्रैवचयथाकामंसुखंतिष्ठमयासह" ॥ वैश्यउवाच ॥ कुटुंबंमेनिरालंबंमयाहीनंसुदुःखितम् ॥ भविष्यतिचचिंतार्तंव्याधिशोकोपतापितम् ॥ ५५ ॥ भार्यादेहेसुखंनोवापुत्रेदेहेनवासुखम् ॥ इतिचिंतातुरंचेतोनमेशाम्यतिभूमिप ॥ ५६॥ कदाद्रक्ष्येसुतंभार्यांगृहंस्वजनमेवच ॥ स्वस्थंनमन्मनोराजन्गृहचिंताकुलंभृशम् ॥ ५७ ॥ राजोवाच ॥ यैर्निरस्तोऽसिपुत्राद्यैरसद्वृत्तैःसुबालिशैः ॥ तान्दृष्ट्वाकिंसुखंतेऽद्यभविष्यतिमहामते ॥ ५८ ॥ हितकारीवरःशत्रुर्दुःखदाःसुहृदःकुतः ॥ तस्मात्स्थिरंमनःकृत्वाविहरस्वमयासह ॥ ५९ ॥ वैश्यउवाच ॥ मनोमेनस्थिरंराजन्भवत्यद्यसुदुःखितम् ॥ चिंतयाऽत्रकुटुंबस्यदुस्त्यजस्यदुरात्मभिः ॥ ६० ॥

समय मेरी भार्या और पुत्र सुखसे वा दुःखसे काल व्यतीत करते हैं, इस चिन्तासे कातर होकर मेरा हृदय शान्तिलाभ नहीं करसक्ता ॥ ५६ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं पुत्र, कलत्र, स्वजन, बंधु, बांधव और घर, इन सबको फिर देखूं मेरा मन सदा इस चिन्तामें व्याकुल रहता है. किसीसे सावधान नहीं होता ॥ ५७ ॥ राजाने कहा हे महामते ! तुम्हारे असदाचारी मूर्ख पुत्र और कपटाचारी आत्मीय स्वजनोंने तुमको घरसे बाहर निकाल दिया है, अतएव ऐसे पुत्र इत्यादि आत्मीय पुरुषोंको देखकर तुम्हें क्या सुख होगा ? ॥ ५८ ॥ शत्रुगण यदि हितका अनुष्ठान करैं तो वह शत्रुभी श्रेष्ठ हैं. किन्तु जो क्लेश दे, वह फिर किसप्रकार सुहृद् होसक्ता है. अतएव तुम मन स्थिर करके मेरे संग परम सुखसे विहार करते रहो ॥ ५९ ॥ वैश्यने कहा हे राजन् ! दुरात्मालोग भी जिस कुटुम्बके छोडनेमें समर्थ नहीं होते

आज मेरा मन उसी कुटुम्बके देखनेको अत्यन्त दुःखित होता है किसी प्रकार स्थिर नहीं होता ॥ ६० ॥ राजा बोले मुझको भी राज्यके लिये इसीप्रकार दुःख उपस्थित होकर निरन्तर चित्तको संतापित करताहै अतएव आओ हम दोनोंही आजमुनिवरसे इस शोक विनाशकी औषधीके विषयमें पूँछे ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! राजा सुरथ और वैश्यवर इसप्रकार स्थिर करके शोकका कारण पूँछनेकी इच्छासे अति दीनभावयुक्त हो मुनिके निकट गये ॥ ६२ ॥ फिर राजा उनके समीप जाय प्रणाम पूर्वक आसनपर बैठ सुखासीन प्रशान्तचित्त मुनिवरसे शान्तिसहित पूँछने लगे ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सुरथने कहा हे मुनिवर ! इस वैश्यके पुत्र कलत्रने एकत्र मिलित होकर इसको घरसे बाहर कर दिया है. इसी कारण यह अपना घर त्यागकर अब इस तपोवनमें उपस्थित हुआ है यह इस समय मेरे सहित मिलित होनेसे मेरा परम मित्र हुआ है ॥ १ ॥ हे ऋषिवर ! यह आत्मीय स्वजनोंके विरहसे अत्यन्त विमन होकर अति

राजोवाच॥ ममाऽपिराज्यजंदुःखंदुनोतिकिलमानसम् ॥ पृच्छावोद्यमुनिंशांतंशोकनाशनमौषधम् ॥ ६१ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिकृत्वामतिंतौतुराजावैश्यश्चजग्मतुः ॥ मुनिंतौविनयोपेतौप्रष्टुंशोकस्यकारणम् ॥ ६२ ॥ गत्वातंप्रणिपत्याहराजाऋषिमनुत्तमम् ॥ आसीनंसम्यगासीनःशांतंशांतिमुपागतः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ मुनवेश्योऽयमधुनावनेमेमित्रतांगतः ॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽयंप्राप्तोऽत्रममसंगमम् ॥ १ ॥ “कुटुंबविरहेणाऽसौदुःखितोऽतीवदुर्मनाः ॥ नशांतिमुपयात्येषतथाऽपिममसांप्रतम् ॥ गतराज्यस्यदुःखेनशोकार्तोऽस्मिमहामते” ॥ निष्कारणंचमेचिंताहृदयान्ननिवर्तते ॥ हयामेदुर्बलाःस्युःकिंगजाःशत्रुवशंगताः ॥ २ ॥ भृत्यवर्गस्तथादुःखीजातःस्यात्तुमयाविना ॥ कोशक्षयंकरिष्यंतिरिपवोऽतिबलात्क्षणात् ॥ ३ ॥ इत्येवंचिंतयानस्यनमेनिद्रातनौसुखम् ॥ जानामीदंजगन्मिथ्यास्वप्नवत्सर्वमेवहि ॥ ४ ॥ जानतोऽपिमनोभ्रांतंनस्थिरंभवतिप्रभो ॥ कोऽहंकेऽश्वागजाःकेमीनतेमेचसहोदराः ॥ ५ ॥

शय क्लेश अनुभव करता है. किसीसे भी शान्तिलाभ नहीं करसक्ता. हे महामते ! इसीकी समान मैंभी इस समय अपहृत् राज्यके लिये दुःख और शोकसे अत्यन्त कातर हुआ हूं. यह अकारणचिन्ता किसी प्रकार मेरे हृदयसे दूर नहीं होती. मेरे हाथी और घोड़े शत्रुके अधीन होकर क्या अब दुर्बल होगये हैं ? ॥ २ ॥ मुझको न देखनेसे क्यों भृत्यलोग अतिशय क्लेशभोग करते हैं. शत्रुगण क्षणकालमें बलसहित सब धन व्यय करके कोषका क्षय करेंगे ॥ ३ ॥ हे ऋषिवर! इस प्रकारकी चिन्ता करनेसे मेरे हृदयमें कुछ सुख नहीं है, अधिक क्या ? इसी विचारमें मुझको नींदतकभी नहीं आती. हे प्रभो ! यद्यपि मैं जानता हूं कि, यह संपूर्ण जगत् संसार स्वप्नकी समान मिथ्या है, किन्तु तोभी मेरा मन ॥ ४ ॥ ऐसा भ्रान्त है कि, किसीप्रकार स्थिर नहीं होता मैं कौन हूं ? हाथी और घोड़ेसे मेरा क्या संबंध है ? वस्तुतः

वह मेरे सहोदर ॥ ५ ॥ पुत्र वा मित्र नहीं हैं, किन्तु तोभी उनके दुःखसे मेरा अन्तःकरण व्यथित होता है मोह नहीं त्यागता इसमें क्या अद्भुत कारण है ? हे ऋषिवर ! यह सब भ्रमकार्य है ऐसा मैं जानता हूं, तथापि मेरे मन से ॥ ६ ॥ मोह दूर नहीं होता, यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है. अतएव इसका क्या कारण है ? हे स्वामिन् ! आपसे कोई बात नहीं छिपी है, आप सब विषयका संशय छेदनकरनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥ इस कारण हे दयासागर ! कृपा करके आप मेरे और वैश्यके मोहका कारण कहिये व्यासजी बोले हे महाराज ! जब राजा सुरथने मुनिसत्तम सुमेधासे इसप्रकार पूँछा ॥ ८ ॥ तब वह जिससे शोक और मोह दूर हो, ऐसे परम ज्ञानजनक वचन उनसे कहने लगे. ऋषि बोले हे राजन् ! बंधन और मोक्षके कारणका विषय आपसे कहता हूं आप मन लगाकर वह सब सुनिये ॥ ९ ॥ देखो सत, रज और तम इन तीन गुणोंकी साम्य अवस्थाही मूल प्रकृति है वही महामाया नामसे विख्यात है वह महामायाही इस लोकमें सब प्राणि

नपुत्रानचमित्राणियेषांदुःखंदुनोतिमाम् ॥ भ्रमोऽयमितिजानामितथापिममानसः ॥ ६ ॥ मोहोनैवाऽपसरतिकिंतत्कारणमद्भुतम् ॥ स्वामिंस्त्वमसिसर्वज्ञःसर्वसंशयनाशकृत् ॥ ७ ॥ कारणंब्रूहिमोहस्यममाऽस्यचदयानिधे ॥ व्यासउवाच ॥ इतिपृष्टस्तदाराज्ञासुमेधामुनिसत्तमः ॥ ८ ॥ तमुवाचपरंज्ञानंशोकमोहविनाशनम् ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिकारणंबंधमोक्षयोः ॥ ९ ॥ महामायेतिविख्यातासर्वेषांप्राणिनामिह ॥ ब्रह्माविष्णुस्तथेशानस्तुराषाड्वरुणोनिलः ॥ १० ॥ सर्वेदेवामनुष्याश्चगंधर्वोरगराक्षसाः ॥ वृक्षाश्वविविधावल्ल्यःपशवोमृगपक्षिणः ॥ ११ ॥ मायाधीनाश्वतेसर्वेभाजनंबंधमोक्षयोः ॥ तयासृष्टमिदंसर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ १२ ॥ तद्वशेवर्ततेनूनंमोहजालेनयंत्रितम् ॥ त्वंकियान्मानुषेष्वेकःक्षत्रियोरजसाऽऽविलः ॥ १३ ॥ ज्ञानिनामपिचेतांसिमोहयत्यनिशंहिसा ॥ ब्रह्मेशवासुदेवाद्याज्ञानेसत्यपिशेषतः ॥ १४ ॥ तेऽपिरागवशाल्लोकेभ्रमंतिपरिमोहिताः ॥ पुरासत्ययुगेराजन्विष्णुर्नारायणःस्वयम् ॥ १५ ॥ श्वेतद्वीपंसमासाद्यचकारविपुलंतपः ॥ वर्षाणामयुतंयावद्ब्रह्मविद्याप्रसक्तये ॥ १६ ॥

योंके बंधन और मुक्तिका कारण है अधिक क्या, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, वरुण, वायु ॥ १० ॥ और अन्यान्य सब देवतागण, गंधर्वगण, नागगण, राक्षसगण मनुष्यगण, मृगगण, पशु, पक्षी, वृक्ष और अनेक जाति लता ॥ ११ ॥ इत्यादि सभी इस मायाके आधीन होकर बंधन और मुक्तिलाभ करते हैं. यह स्थावर जंगमात्मक सब जगत उसकाही सृष्ट उत्पन्न किया पदार्थ है ॥ १२ ॥ सब जीव मोहरूपी जालमें बँधकर उसीके वशीभूत रहते हैं. हे महाराज ! आप क्षत्रिय हैं, इसकारण आपका चित्त रजोगुणसे कलुषित हो रहा है ॥ १३ ॥ देखो जो मायाके बलसे ज्ञानियोंके मनको भी सदा मोहित करती है, उसके निकट आप तो अतिसामान्य मनुष्य हैं, अधिक क्या ब्रह्मा, विष्णु और महादेव असीम ज्ञानी होनेपर भी ॥ १४ ॥ वह भी मायाबलसे विषयानुरागके कारण सम्यक्प्रकार मोहित होकर त्रिभुवनमें भ्रमण करते हैं. हे राजन् ! पूर्वकालके समय सत्ययुगमें नारायण विष्णु ॥ १५ ॥ श्वेतद्वीपमें जाकर स्वयं विपुलतपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए थे, उन्होंने अखंड आनन्द

लाभ करनेकी इच्छासे ब्रह्मविद्याकी स्थिरताके लिये दश हजार वर्ष ध्यानमें बिताये थे ॥ १६ ॥ जिससे अखण्ड सुख मिले हे राजेन्द्र ! ब्रह्माजी भी एक निर्जन परम अद्भुत स्थानमें ॥ १७ ॥ मोह क्षय करनेकी इच्छासे उस आद्या शक्तिकी तपस्यामें निरत हुएथे किसी समयमें उन्हीं वासुदेव हरिने दूसरे स्थानमें जानेकी इच्छा की ॥ १८ ॥ तब वह उस स्थानसे उठकर अन्य स्थान देखनेकी अभिलाषासे गये, इधर ब्रह्मा भी विष्णुकी समान अपने पूर्वस्थानसे बहिर्गत हुए ॥ १९ ॥ अनन्तर मार्गमें उनका परस्पर साक्षात् होनेपर वह आपसमें "तुम कौन हो २" इसप्रकार कहकर पूँछने लगे ॥ २० ॥ तब प्रजापतिने कहा मैं जगत्कर्त्ता ब्रह्मा हूं, विष्णुने ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर कहा रे मूर्ख ! मैं अच्युत विष्णु हूं ॥ २१ ॥ इसकारण मैंही जगत्कर्त्ता हूं. तुममें रजोगुणकी अधिकता होनेसे तुम मेरी अपेक्षा बलहीन हो तुम मुझको सत्वगुण प्रधान सनातन वासुदेव जानो ॥ २२ ॥ तुमको क्या स्मरण नहीं है कि मैंने दारुण युद्ध करके तुम्हारी रक्षाकी है. तुम जब मधु और कैटभनामक

अनश्वरसुखायाऽसौचिंतयानस्ततःपरम् ॥ एकस्मिन्निर्जनेदेशेब्रह्माऽपिपरमाद्भुते ॥१७॥ स्थितस्तपसिराजेंद्रमोहस्यविनिवृत्तये ॥ कदाचिद्वासुदेवोऽसौ स्थलांतरमतिर्हरिः ॥ १८ ॥ तस्माद्देशात्समुत्थायजगामाऽन्यद्दिदृक्षया ॥ चतुर्मुखोऽपिराजेंद्रतथैवनिःसृतःस्थलात् ॥ १९ ॥ मिलितौमार्गमध्येतुचतुर्मुखचतुर्भुजौ ॥ अन्योन्यंपृष्टवंतौतौकस्त्वंकस्त्वमितिस्मह ॥२०॥ ब्रह्माप्रोवाचतंदेवंकर्ताऽहंजगतःकिल ॥ विष्णुस्तमाहभोमूर्खजगत्कर्ताऽहमच्युतः॥ ॥ २१ ॥ त्वंकियान्बलहीनोऽसिरजोगुणसमाश्रितः ॥ सत्त्वाश्रितंहिमांविद्धिवासुदेवंसनातनम् ॥ २२ ॥ मयात्वंरक्षितोऽद्यैवकृत्वायुद्धंसुदारुणम् ॥ शरणंमेसमायातोदानवाभ्यांप्रपीडितः ॥ २३ ॥ मयातौनिहतौकामंदानवौमधुकैटभौ ॥ कथंगर्वायसेमंदमोहोऽयंत्यजसांप्रतम् ॥ २४ ॥ नमत्तोऽप्यधिकःकश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवंप्रवदमानौतौब्रह्मविष्णूपरस्परम् ॥ २५ ॥ स्फुरदोष्ठौवेपमानौलोहिताक्षौबभूवतुः ॥ प्रादुर्बभूवसहसातयोर्विवदमानयोः ॥२६॥ मध्येलिंगंसुधाश्वेतंविपुलंदीर्घमद्भुतम् ॥ आकाशेतरसातत्रवागुवाचाऽशरीरिणी ॥२७॥ तौसंबोध्यमहाभागौविवदंतौपरस्परम् ॥ ब्रह्मन्विष्णोविवादंमाकुरुतांवांपरस्परम् ॥२८॥ लिंगस्यास्यपरंपारमधस्तादुपरिध्रुवम् ॥ योयातियुवयोर्मध्येसश्रेष्ठोवांसदैवहि ॥ २९ ॥

दो दानवोंसे पीड़ित होकर मेरी शरणागत हुए ॥ २३ ॥ तब मैंने उसी समय उनको मारा तुम अब किसप्रकार गर्व प्रकाश करते हो. हे मन्दात्मन् ! तुम अभी इस मोहको छोड़ दो ॥ २४ ॥ मैं अधिक क्या कहूं ? इस विस्तीर्ण विश्व संसारमें मेरीअपेक्षा श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है. ऋषिने कहा हे राजन् ! जब ब्रह्मा और विष्णु परस्पर इसप्रकार विवादमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ तब उन दोनोंका शरीर काँपने लगा और नेत्र लोहितवर्ण होगये व ओष्ठाधर प्रस्फुरित होने लगे तब उन विवाद करते हुए दोनों देवताओंके मध्यमें सहसा ॥ २६ ॥ सुधासदृश श्वेतवर्ण विशाल और दीर्घाकार एक अद्भुत लिंग प्रादुर्भूत हुआ उसी समय अशरीरिणी वाणी आकाशसे उद्भूत होकर ॥ २७ ॥ उन परस्परविवाद करतेहुए महाभाग ब्रह्मा और विष्णुको संबोधन देकर कहने लगी हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो आप दोनों विवाद क्यों करते हैं ॥ २८ ॥ इस लिंगके ऊपर हो

अधोभागमें हो जो इसके परंपार जासके वही आपमें श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ इसकारण एक जन पातालमें जाय और एक जन आकाशमें जाय आपको इस विवादके समयमें एक जनको मध्यस्थ करना अवश्य है. अतएव आप अनर्थक विवाद त्यागकर मेरा वचनप्रमाणस्वरूप ग्रहण करो. ऋषि बोले हे महाराज ! यह दिव्य वचन सुनकर वे दोनों सुसज्जित और उत्साहित हो ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ उस सन्मुख स्थित अद्भुत लिंगका परिमाण करनेको गये अपने अपने महत्ववृद्धिकी इच्छासे लिंगका परिमाण करनेके लिये विष्णु पाताल और ब्रह्मा आकाशमें गये विष्णु कुछेक देशोंमें जाकर थक गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और जब सम्यक्प्रकारसे यत्न करके भी लिंगका अन्त न पाया तब लौटकर अपने स्थानमें उपस्थित हुए इस ओर ब्रह्मा आकाशमार्गमें जाते थे. इसी अवसरमें शिव

एकःप्रयातुपातालमाकाशमपरोऽधुना ॥ प्रमाणंमेवचःकार्यंत्यक्त्वावादंनिरर्थकम् ॥ ३० ॥ मध्यस्थःसर्वदाकार्योविवादेऽस्मिन्द्वयोरिह ॥ ऋषिरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदिव्यंसज्जीभूतौकृतोद्यमौ ॥३१॥ जग्मतुर्मातुमग्रस्थंलिंगमद्भुतदर्शनम् ॥ पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माप्याकाशमेवच ॥ ३२ ॥ परिमातुंमहालिंगंस्वमहत्त्वविवृद्धये ॥ विष्णुर्गत्वाकियद्देशंश्रांतःसर्वात्मनायतः ॥ ३३ ॥ नप्रापांतंसलिंगस्यपरिवृत्त्यययौस्थलम् ॥ ब्रह्मागच्छत्ततश्चोर्ध्वंपतितंकेतकीदलम् ॥३४॥ शिवस्यमस्तकात्प्राप्यपरावृत्तोमुदावृतः ॥ आगत्यतरसाब्रह्माविष्णवेकेतकीदलम् ॥३५॥ दर्शयित्वाचवितथमुवाचमदमोहितः ॥ लिंगस्यमस्तकादेतद्गृहीतंकेतकीदलम्॥३६॥अभिज्ञानायचाऽऽनीतंतवचित्तप्रशांतये ॥ श्रुत्वातद्ब्रह्मणोवाक्यंदृष्ट्वाचकेतकीदलम् ॥३७॥ हरिस्तंप्रत्युवाचेदंसाक्षीकःकथयाऽधुना ॥ यथार्थवादीमेधावीसदाचारःशुचिःसमः ॥ ३८ ॥ साक्षीभवतिसर्वत्रविवादेसमुपस्थिते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दूरदेशात्समायातिसाक्षीकःसमयेऽधुना ॥ ३९ ॥ यत्सत्यंतद्वचःसेयंकेतकीकथयिष्यति ॥ इत्युक्त्वाप्रेरितातत्रब्रह्मणाकेतकीस्फुटम् ॥ ४० ॥

मस्तकसे गिरा हुआ एक केतकीदल ॥ ३४ ॥ शिवके ऊपरसे गिरता पाया तब वह अत्यन्त आनन्दित हो, उसको ग्रहण करके लौट आये. ब्रह्माने मदमोहित होकर तत्काल लौट वह दल विष्णुको ॥ ३५ ॥ दिखाय कर मिथ्यावचन कहा हे विष्णो ! लिंगके मस्तकसे यह केतकीदल गृहीत हुआ है ॥ ३६ ॥ यह केवल अभिज्ञान और तुम्हारे चित्तकी शान्तिके लिये लाया हूं. ब्रह्माजीने उनका इस प्रकार वचन सुन और केतकी देखकर ॥ ३७ ॥ उनसे कहा हे ब्रह्मन् ! इस बातमें तुम्हारा साक्षी कौन है ? जो सत्य वचन कहता है, जिसका सबके प्रति समभाव है, जो बुद्धिमान् शुचि और सदाचारी है ॥ ३८ ॥ विवाद उपस्थित होनेपर वही पुरुष साक्षी होसकता है ब्रह्माजीने कहा इस समय उस दूरदेशसे कौन साक्षी यहां आवे ॥ ३९ ॥ अतएव जो सत्य है, वह यह केतकीही कहेगी यह बात कहकर

लाभ करनेकी इच्छासे ब्रह्मविद्याकी स्थिरताके लिये दश हजार वर्ष ध्यानमें विताये थे॥ १६ ॥ जिससे अखण्ड सुख मिलै हे राजेन्द्र! ब्रह्माजी भी एक निर्जन परम अद्भुत स्थानमें॥ १७॥ मोह क्षय करनेकी इच्छासे उस आद्या शक्तिकी तपस्यामें निरत हुएथे किसी समयमें उन्हीं वासुदेव हरिने दूसरे स्थानमें जानेकी इच्छा की ॥ १८ ॥ तब वह उस स्थानसे उठकर अन्य स्थान देखनेकी अभिलाषासे गये, इधर ब्रह्मा भी विष्णुकी समान अपने पूर्वस्थानसे बहिर्गत हुए ॥ १९ ॥ अनन्तर मार्गमें उनका परस्पर साक्षात् होनेपर वह आपसमें "तुम कौन हो २" इसप्रकार कहकर पूँछने लगे ॥ २० ॥ तब प्रजापतिने कहा मैं जगत्कर्त्ता ब्रह्मा हूं, विष्णुने ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर कहा रे मूर्ख! मैं अच्युत विष्णु हूं ॥ २१ ॥ इसकारण मैंही जगत्कर्त्ता हूं. तुममें रजोगुणकी अधिकता होनेसे तुम मेरी अपेक्षा बलहीन हो तुम मुझको सत्वगुण प्रधान सनातन वासुदेव जानो ॥ २२ ॥ तुमको क्या स्मरण नहीं है कि मैंने दारुण युद्ध करके तुम्हारी रक्षाकी है. तुम जब मधु और कैटभनामक

अनश्वरसुखायाऽसौचिंतयानस्ततःपरम् ॥ एकस्मिन्निर्जनेदेशेब्रह्माऽपिपरमाद्भुते ॥१७॥ स्थितस्तपसिराजेंद्रमोहस्यविनिवृत्तये ॥ कदाचिद्वासुदेवोऽसौ स्थलांतरमतिर्हरिः ॥ १८ ॥ तस्माद्देशात्समुत्थायजगामाऽन्यादिदृक्षया ॥ चतुर्मुखोऽपिराजेंद्रतथैवनिःसृतःस्थलात् ॥ १९ ॥ मिलितौमार्गमध्येतुचतुर्मुखचतुर्भुजौ ॥ अन्योन्यंपृष्टवंतौतौकस्त्वंकस्त्वमितिस्मह ॥२०॥ ब्रह्माप्रोवाचतंदेवंकर्ताऽहंजगतःकिल ॥ विष्णुस्तमाहभोमूर्खजगत्कर्ताऽहमच्युतः॥ ॥ २१ ॥ त्वंकियान्बलहीनोऽसिरजोगुणसमाश्रितः ॥ सत्त्वाश्रितंहिमांविद्धिवासुदेवंसनातनम् ॥ २२ ॥ मयात्वंरक्षितोऽद्यैवकृत्वायुद्धंसुदारुणम् ॥ शरणंमेसमायातोदानवाभ्यांप्रपीडितः ॥ २३ ॥ मयातौनिहतौकामंदानवौमधुकैटभौ ॥ कथंगर्वायसेमंदमोहोऽयंत्यजसांप्रतम् ॥ २४ ॥ नमत्तोऽप्यधिकःकश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवंप्रवदमानौतौब्रह्मविष्णूपरस्परम् ॥ २५ ॥ स्फुरदोष्ठौवेपमानौलोहिताक्षौबभूवतुः ॥ प्रादुर्बभूवसहसातयोर्विवदमानयोः ॥२६॥ मध्येलिंगंसुधाश्वेतंविपुलंदीर्घमद्भुतम् ॥ आकाशेतरसातत्रवागुवाचाऽशरीरिणी ॥२७॥ तौसंबोध्यमहाभागौविवदंतौपरस्परम् ॥ ब्रह्मन्विष्णोविवादंमाकुरुतांवांपरस्परम् ॥२८॥ लिंगस्यास्यपरंपारमधस्तादुपरिध्रुवम् ॥ योयातियुवयोर्मध्येसश्रेष्ठोवांसदैवहि ॥ २९ ॥

दो दानवोंसे पीड़ित होकर मेरी शरणागत हुए ॥ २३ ॥ तब मैंने उसी समय उनको मारा तुम अब किसप्रकार गर्व प्रकाश करते हो. हे मन्दात्मन्! तुम अभी इस मोहको छोड़ दो ॥ २४ ॥ मैं अधिक क्या कहूं? इस विस्तीर्ण विश्व संसारमें मेरीअपेक्षा श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है. ऋषिने कहा हे राजन्! जब ब्रह्मा और विष्णु परस्पर इसप्रकार विवादमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ तब उन दोनोंका शरीर काँपने लगा और नेत्र लोहितवर्ण होगये व ओष्ठाधर प्रस्फुरित होने लगे तब उन विवाद करते हुए दोनों देवताओंके मध्यमें सहसा॥ २६ ॥ सुधासदृश श्वेतवर्ण विशाल और दीर्घाकार एक अद्भुत लिंग प्रादुर्भूत हुआ उसी समय अशरीरिणी वाणी आकाशसे उद्भूत होकर॥ २७॥ उन परस्परविवाद करतेहुए महाभाग ब्रह्मा और विष्णुको संबोधन देकर कहने लगी हे ब्रह्मन्! हे विष्णो आप दोनों विवाद क्यों करते हैं॥ २८॥ इस लिंगके ऊपर हो

अधोभागमें हो जो इसके परंपार जासके वही आपमें श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ इसकारण एक जन पातालमें जाय और एक जन आकाशमें जाय आपको इस विवादके समयमें एक जनको मध्यस्थ करना अवश्य है. अतएव आप अनर्थक विवाद त्यागकर मेरा वचनप्रमाणस्वरूप ग्रहण करो. ऋषि बोले हे महाराज ! यह दिव्य वचन सुनकर वे दोनों सुसज्जित और उत्साहित हो ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ उस सन्मुख स्थित अद्भुत लिंगका परिमाण करनेको गये अपने अपने महत्ववृद्धिकी इच्छासे लिंगका परिमाण करनेके लिये विष्णु पाताल और ब्रह्मा आकाशमें गये विष्णु कुछेक देशोंमें जाकर थक गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और जब सम्यक्प्रकारसे यत्न करके भी लिंगका अन्त न पाया तब लौटकर अपने स्थानमें उपस्थित हुए इस ओर ब्रह्मा आकाशमार्गमें जाते थे. इसी अवसरमें शिव

एकःप्रयातुपातालमाकाशमपरोऽधुना ॥ प्रमाणंमेवचःकार्यंत्यक्त्वावादंनिरर्थकम् ॥ ३० ॥ मध्यस्थःसर्वदाकार्योविवादेऽस्मिन्द्वयोरिह ॥ ऋषिरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदिव्यंसज्जीभूतौकृतोद्यमौ ॥३१॥ जग्मतुर्मातुमग्रस्थंलिंगमद्भुतदर्शनम् ॥ पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माप्याकाशमेवच ॥ ३२ ॥ परिमातुंमहालिंगंस्वमहत्त्वविवृद्धये ॥ विष्णुर्गत्वाकियद्देशंश्रांतःसर्वात्मनायतः ॥ ३३ ॥ नप्रापांतंसलिंगस्यपरिवृत्त्यययौस्थलम् ॥ ब्रह्मागच्छत्ततश्चोर्ध्वंपतितंकेतकीदलम् ॥३४॥ शिवस्यमस्तकात्प्राप्यपरावृत्तोमुदावृतः ॥ आगत्यतरसाब्रह्माविष्णवेकेतकीदलम् ॥३५॥ दर्शयित्वाचवितथमुवाचमदमोहितः ॥ लिंगस्यमस्तकादेतद्गृहीतंकेतकीदलम्॥३६॥अभिज्ञानायचाऽऽनीतंतवचित्तप्रशांतये ॥ श्रुत्वातद्ब्रह्मणोवाक्यंदृष्ट्वाचकेतकीदलम् ॥३७॥ हरिस्तंप्रत्युवाचेदंसाक्षीकःकथयाऽधुना ॥ यथार्थवादीमेधावीसदाचारःशुचिःसमः ॥ ३८ ॥ साक्षीभवतिसर्वत्रविवादेसमुपस्थिते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दूरदेशात्समायातिसाक्षीकःसमयेऽधुना ॥ ३९ ॥ यत्सत्यंतद्वचःसेयंकेतकीकथयिष्यति ॥ इत्युक्त्वाप्रेरितातत्रब्रह्मणाकेतकीस्फुटम् ॥ ४० ॥

मस्तकसे गिरा हुआ एक केतकीदल ॥ ३४ ॥ शिवके ऊपरसे गिरता पाया तब वह अत्यन्त आनन्दित हो, उसको ग्रहण करके लौट आये. ब्रह्माने मदमोहित होकर तत्काल लौट वह दल विष्णुको ॥ ३५ ॥ दिखाय कर मिथ्यावचन कहा हे विष्णो ! लिंगके मस्तकसे यह केतकीदल गृहीत हुआ है ॥ ३६ ॥ यह केवल अभिज्ञान और तुम्हारे चित्तकी शान्तिके लिये लाया हूं. ब्रह्माजीने उनका इस प्रकार वचन सुन और केतकी देखकर ॥ ३७ ॥ उनसे कहा हे ब्रह्मन् ! इस बातमें तुम्हारा साक्षी कौन है ? जो सत्य वचन कहता है, जिसका सबके प्रति समभाव है, जो बुद्धिमान् शुचि और सदाचारी है ॥ ३८ ॥ विवाद उपस्थित होनेपर वही पुरुष साक्षी होसकता है ब्रह्माजीने कहा इस समय उस दूरदेशसे कौन साक्षी यहां आवे ॥ ३९ ॥ अतएव जो सत्य है, वह यह केतकीही कहेगी यह बात कहकर

ब्रह्माजीने केतकीको वह कहनेके लिये सविशेष अनुरोध किया ॥ ४० ॥ केतकी भी उनकी आज्ञानुसार शीघ्र विष्णुके प्रबोधार्थ बोली हे विष्णो ! मैं महादेवके मस्तकमें थी, ब्रह्माजी मुझको वहांसे लेकर इस स्थानमें चले आये हैं ॥ ४१ ॥ अतएव इस विषयमें कभी आपको संदेह नहीं करना चाहिये, शिवभक्तिपरायण किसी पुरुषने मुझको उनके मस्तकमें समर्पण किया था, ब्रह्माजी भी मुझको पाकर ले आये हैं, अतएव ब्रह्मा जो इसकी शेषसीमातक गये थे, इसमें संदेह नहीं है, इस विषयमें मेरे वचनको ही प्रमाण जानना चाहिये विष्णुने केतकीका यह वचन सुन आश्चर्ययुक्त होकर कहा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ मैं तुम्हारी बातका विश्वास नहीं करसक्ता, यह महादेव स्वयं यह बात कहैं तो इसका प्रमाण होसक्ता है. ऋषि बोले हे राजन् ! सनातन महादेवने हरिके यह वचन सुन ॥ ४४ ॥ कुपित होकर केतकीसे कहा रे मिथ्यावादिनि ! तू ऐसे मिथ्या वचन मत कहे मेरे मस्तकसे तू गिरी थी ब्रह्माने जाते जाते मार्गमें तुझको पाया है ॥ ४५ ॥ अतएव जब तू मिथ्या

वचनंप्राहतरसाशार्ङ्गिणंप्रत्यबोधयत् ॥ शिवमूर्ध्निस्थितांब्रह्मागृहीत्वामांसमागतः ॥ ४१ ॥ संदेहोऽत्रनकर्तव्यस्त्वयाविष्णोकदाचन ॥ ममवाक्यंप्रमाणंहिब्रह्मापारंगतोऽस्यह ॥ ४२ ॥ गृहीत्वामांसमायातःशिवभक्तैःसमर्पिताम् ॥ केतक्यावचनंश्रुत्वाहरिराहस्मयन्निव ॥ ४३ ॥ महादेवःप्रमाणंमेयद्यसौवचनंवदेत् ॥ ऋषिरुवाच ॥ तदाऽऽकर्ण्यहरेर्वाक्यंमहादेवःसनातनः ॥ ४४ ॥ कुपितःकेतकींप्राहमिथ्यावादिनिमावद ॥ गच्छतोमध्यतःप्राप्तापतितामस्तकान्मम ॥ ४५ ॥ मिथ्याभिभाषिणीत्यक्तामयात्वंसर्वदैवहि ॥ ब्रह्मालज्जापरोभूत्वाननाममधुसूदनम् ॥ ४६ ॥ शिवनेकेतकीत्यक्तातद्दिनात्कुसुमेषुवै ॥ एवंमायाबलंविद्धिज्ञानिनामपिमोहदम् ॥ ४७ ॥ अन्येषांप्राणिनांराजन्कावार्ताविभ्रमंप्रति ॥ देवानांकार्यसिद्ध्यर्थंसर्वदैवरमापतिः ॥ ॥ ४८ ॥ दैत्यान्वंचयतेचाऽऽशुत्यक्त्वापापभयंहरिः ॥ अवतारकरोदेवोनानायोनिषुमाधवः ॥ ४९ ॥ त्यक्त्वानंदसुखंदैत्ययुद्धंचैवाऽकरोद्विभुः ॥ नूनंमायाबलंचैतन्माधवेऽपिजगद्गुरौ ॥ ५० ॥

वचन कहती है तब मैं तुझे कभी ग्रहण न करूंगा आजसे मैंने तुझको त्याग दिया तब ब्रह्माजीने अत्यन्त लज्जित होकर मधुसूदनको प्रणाम किया ॥ ४६ ॥ और श्रीमहादेवजीने उस दिनसे कुसुममें केतकीको त्याग दिया. हे महाराज ! माया बलको इसीप्रकार प्रबल जानना चाहिये क्योंकि जब वह ब्रह्मा विष्णु इत्यादि ज्ञानियोंको भी मोहित करती है ॥ ४७ ॥ तब अन्यान्य साधारण प्राणियोंके मोहकी तो बातही क्या कहूं ? देखो रमापति विष्णु देवकार्यसिद्धिके निमित्त ॥ ४८ ॥ मोहके वश हो पापभय छोड़ सदा दैत्योंको छलते हैं अधिक क्या वह सब विषयके प्रभु होकर भी आनन्दसुख त्याग अनेक योनिमें अवतीर्ण होकर ॥ ४९ ॥ दैत्योंसे संग्राम करते हैं हे. भूपते ! विष्णु सर्वज्ञ और जगत्के गुरू एवं विशेषकर देवताओंकी सृष्टिकार्यके एकमात्र अधीश्वर हैं अतएव जब उनके ऊपरही मायाका इतना बलहै

तब अपर प्राणी जो मायासे मोहित हो इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? हे महाराज ! वह परमा प्रकृति ज्ञानियोंके चित्तको ॥ ५० ॥ ५१ ॥ बलपूर्वक आकर्षण करके मोह–सागरमें निमग्न करती हैं वह भगवती इस चराचर विश्वसंसारमें व्याप्त रहकर ॥ ५२ ॥ मोहप्रदानपूर्वक बंधन करती हैं और फिर वही ज्ञान देकर मुक्ति देती हैं. राजा बोले हे ब्रह्मन् ! उनका स्वरूप किस प्रकार है ? तथा उत्तम बल कैसा है ? ॥ ५३ ॥ उत्पत्तिका कारण क्या है ? और उनका परम स्थान कहां है ? आप यह सब विषय मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये. ऋषिने कहा हे नरपाल ! वह आनादि हैं इसकारण उनकी उत्पत्ति कभी नहीं है ॥ ५४ ॥ वह परमा प्रकृति नित्या और वही सदा सबके कारणका भी कारण होती हैं अतएव उनके समान बलवान् और कौन हो सक्ता है. हे राजन् ! वह शक्तिरूपसे सब पदार्थमें ही सम्यक्

सर्वज्ञेदेवकार्याशेकावार्ताऽन्यस्यभूपते ॥ ज्ञानिनामपिचेतांसिपरमाप्रकृतिःकिल ॥ ५१ ॥ बलादाकृष्यमोहायप्रयच्छतिमहीपते ॥ ययाव्याप्त मिदंसर्वंभगवत्याचराचरम् ॥ ५२ ॥ मोहदाज्ञानदासैवबंधमोक्षप्रदासदा ॥ राजोवाच ॥ भगवन्ब्रूहिमेतस्याःस्वरूपंबलमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ उत्पत्ति कारणंवापिस्थानंपरमकंचयत् ॥ ऋषिरुवाच ॥ नचोत्पत्तिरनादित्वान्नृपतस्याःकदाचन ॥ ५४ ॥ नित्यैवसापरादेवीकारणानांचकारणम् ॥ वर्ततेसर्व भूतेषुशक्तिःसर्वात्मनानृप ॥ ५५ ॥ शववच्छक्तिहीनस्तुप्राणीभवतिसर्वथा ॥ चिच्छक्तिःसर्वभूतेषुरूपंतस्यस्तदेवहि ॥ ५६ ॥ आविर्भाव तिरोभावोदेवानांकार्यसिद्धये ॥ यदास्तुवंतितां देवामनुजाश्चविशांपते ॥ ५७ ॥ प्रादुर्भवतिभूतानांदुःखनाशायचांबिका ॥ नानारूपधरादेवी नानाशक्तिसमन्विता ॥ ५८ ॥

प्रकारसे विराजमान रहती हैं ॥ ५५ ॥ सुतरां जीव शक्तिविहीन होनेसे शवकी समान निश्चल होता है इस चराचर विश्वमण्डलमें जो सब पदार्थ विद्यमान हैं वह सब चित् स्वरूप ब्रह्म हैं अतएव उनकी शक्ति भी सब प्राणियोंमें स्थिर रहती है. सुतरां इस शक्तिका रूप भी ब्रह्म है इसमें सन्देह नहीं क्योंकि अग्निकी शक्तिका अग्निके अतिरिक्त दूसरा रूप दिखाई नहीं देता ॥ ५६ ॥ तब केवल देवताओंका कार्य करनेके लियेही समय समयमें उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता है. हे राजन् ! देवता और मनुष्यलोग जब उनका स्तव करतेहैं ॥ ५७ ॥ तभी अम्बिका प्राणियोंका क्लेश निवारण करनेके लिये प्रादुर्भूत होती हैं वह परमेश्वरी देवी अनेक रूप धारणकर नानाप्रकारकी

शक्तियोंके सहित ॥ ५८ ॥ अपनी इच्छानुसार ही देवकार्यके लिये आविर्भूत होती हैं. हे नृपवर ! काल और दैव उनसे ही उत्पन्न है इसकारण वह देवताओंकी समान ॥ ५९ ॥ दैव वा कालके अधीन नहीं हैं. वरन् वह पुरुषार्थके अनुसार जीवोंको सदा कार्यमें प्रवृत्त करती है पुरुष कार्य नहीं करता केवल सबके साक्षीरूपमें विद्यमान रहता है ॥ ६० ॥ यह सब जगत् दृश्य है, वह देवी इस सबका कार्य और कारण स्वरूप है, अतएव उन्होंने ही इस सब दृश्यमान विश्वको उत्पन्न किया है वह अकेली ही यह ब्रह्माण्डनाटक प्रगट करके ॥ ६१ ॥ पुरुषको रंजित करती हैं और पुरुषके रंजित होनेपर फिर अतिशीघ्र उसका संहार करती हैं ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता हैं ॥ ६२ ॥ यह लोकप्रवाद मात्र है, वास्तवमें वह सृष्टि स्थिति और संहारके निमित्त मात्र हैं, प्रकृत प्रस्तावमें भगवतीने लीलाके लिये इनको कल्पना करके स्व स्व कार्यमें नियुक्त कर रक्खा है भगवतीने अपना अंश समर्पण करके ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेवको

आविर्भवतिकार्यार्थंस्वेच्छयापरमेश्वरी ॥ दैवाधीनानसादेवीयथासर्वेसुरानृप ॥ ५९ ॥ नकालवशगानित्यंपुरुषार्थंप्रवर्तिनी ॥ अकर्तापुरुषोद्रष्टाद्दश्यंसर्वमिदंजगत् ॥ ६० ॥ दृश्यस्यजननीसैवदेवीसदसदात्मिका ॥ पुरुषंरंजयत्येकाकृत्वाब्रह्मांडनाटकम् ॥६१॥ रंजितेपुरुषेसर्वंसंहरत्यतिरंहसा ॥ तयानिमित्तभूतास्तेब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ६२ ॥ कल्पिताःस्वस्वकार्येषुप्रेरितालीलयात्वमी ॥ स्वांशंतेषुसमारोप्यकृतास्तेबलवत्तराः ॥६३॥ दत्ताश्चशक्तयस्तेभ्योगीर्लक्ष्मीर्गिरिजातथा ॥ तेतांध्यायंतिदेवेशाःपूजयंतिपरांमुदा ॥ ६४ ॥ ज्ञात्वासर्वेश्वरींशक्तिंसृष्टिस्थितिविनाशिनीम् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ ममबुद्ध्यनुसारेणनांतंजानामिभूपते ॥ इति श्रीदेवीभागवते म०पंचमस्कंधे त्रयस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्ब्रूहिमेसम्यक्तस्याआराधनेविधिम् ॥ पूजाविधिंचमंत्रांश्चतथाहोमविधिंवद ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामितस्याःपूजाविधिंशुभम् ॥ कामदंमोक्षदंनृणांज्ञानदंदुःखनाशनम् ॥ २ ॥

अपनी शक्ति सरस्वती लक्ष्मी और गिरिनन्दिनी देकर उनको बलशाली किया है वह देवता महाशक्तिको जानकर उनका ध्यान पूजन करते हैं ॥ ६४ ॥ सृष्टि, स्थिति और संहारकारिणी देवीको जानकर आनन्दसहित उनका ध्यान धरते हैं. हे भूपते ! मैंने ज्ञान और बुद्धिके अनुसार देवीका पवित्र माहात्म्य आनुपूर्विक तुमसे वर्णनकिया किन्तु इसका अन्त मैं भी नहीं जान सक्ता ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! आप भगवतीकी आराधना विधि, पूजाविधि, होमविधि और मंत्र इत्यादि सब विषयका विवरण मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ ऋषिने कहा हे राजन् ! मैं उन देवीकी पूजाविधि कहता हूं सुनो. विधिपूर्वक भगवतीकी पूजा करनेसे मनुष्योंको अभीष्ट सिद्धि, दुःखविनाश, ज्ञानलाभ और

मोक्षप्राप्ति इत्यादि समस्त मंगल लाभ होता है ॥ २ ॥ मनुष्य प्रथम तो स्नान करै और फिर सफेद वस्त्र पहर वैदिक संध्या और तान्त्रिक संध्या करै इसके उपरान्त प्रयत चित्तसे आचमन करके अपना शुभ स्थान निर्वाचन करले ॥ ३ ॥ फिर वह स्थान गोबर आदिसे लीपकर उसमें पवित्र आसन बिछावे तदुपरान्त प्रसन्न चित्तसे उस आसनपर बैठे विधिपूर्वक तीन बार आचमन करे ॥ ४ ॥ इसके पीछे अपनी शक्तिके अनुसार पूजाकी सामग्री संग्रहपूर्वक यथायोग्य स्थानमें स्थापन कर प्राणायाम करता हुआ भूत शुद्धिसे मातृकान्यास पर्यन्त सब कार्य करे ॥ ५ ॥ अनन्तर मास तिथि इत्यादिका उल्लेखपूर्वक संकल्प करके यथाविधि मातृकान्यासादि मंत्रन्यासपर्यन्त करै फिर अपने देहमें पीठकल्पना कर अन्तर्याग करके बाह्य पूजा करै इसके उपरान्त प्राणप्रतिष्ठापूर्वक पूजाकी सब सामग्री अस्त्रमंत्रद्वारा अथवा फट्कार द्वारा पोषण करके यथाविधि उत्सर्ग करै ॥ ६ ॥ फिर ताम्रमय शुभ्र पात्रमें श्वेत चन्दन अथवा अष्टविध गंधद्वारा षट्कोण यंत्र अङ्कित करके उसके बाहर अष्टपत्र और भूपुर यंत्र भी लिखे ॥ ७ ॥ फिर प्रत्येक दलमें नवाक्षर मन्त्रका एक एक बीज अक्षर लिख कर नवम अक्षरको कर्णिकामें लिखै तदुपरान्त

आदौस्नानविधिंकृत्वाशुचिःशुक्लांबरोनरः ॥ आचम्यप्रयतःकृत्वाशुभमायतनंनिजम् ॥ ३ ॥ ततोऽवलितभूम्यांतुसंस्थाप्याऽऽसनमुत्तमम् ॥ तत्रोपविश्यविधिवत्त्रिराचम्यमुदान्वितः ॥ ४ ॥ पूजाद्रव्यंसुसंस्थाप्ययथाशक्त्यनुसारतः ॥ प्राणायामंततःकृत्वाभूतशुद्धिंविधायच ॥५॥ कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठांतुसंभारंप्रोक्ष्यमंत्रतः ॥ कालज्ञानंततःकृत्वान्यासंकुर्याद्यथाविधि ॥६॥ शुभेताम्रमयेपात्रेचंदनेनसितेनच ॥ षट्कोणंविलिखेद्यंत्रंचाऽष्टकोणंततोबहिः ॥७॥ नवाक्षरस्यमंत्रस्यवीजानिविलिखेत्ततः ॥ कृत्वायंत्रप्रतिष्ठांचवेदोक्तांसंविधायच ॥ ८ ॥ अर्चांवाधातवींकुर्यात्पूजामंत्रैःशिवोदितैः ॥ पूजनंपृथिवीपाल भगवत्याःप्रयत्नतः ॥ ९ ॥ कृत्वावाविधिवत्पूजामागमोक्तांसमाहितः ॥ जपेन्नवाक्षरंमंत्रंसततंध्यानपूर्वकम् ॥ १० ॥ होमंदशांशतःकुर्याद्दशांशेनचतर्पणम् ॥ भोजनंब्राह्मणानांचतद्दशांशेनकारयेत् ॥ ११ ॥ चरित्रत्रयपाठंचनित्यंकुर्याद्विसर्जयेत् ॥ नवरात्रव्रतंचैवविधेयंविधिपूर्वकम् ॥ १२ ॥

प्राणप्रतिष्ठाके मंत्रसे अथवा वेदमंत्रसे यन्त्रकी प्रतिष्ठा करके कर्णिकामें आधारशक्तिसे पीठमंत्र पर्यन्त पूजा करै इसके पीछे देवीको आवाहन कर मूलमंत्र द्वारा आसनादि यथायोग्य उपचारसे अर्चना पूर्वक षट्कोणमें षडङ्ग पूजा और भूपुरमें इन्द्रादि एवं वज्रादिकी पूजा करता हुआ यंत्रपूजा करै ॥ ८ ॥ हे महाराज ! पूर्वोक्त यंत्रके अभावमें भगवतीकी धातुमयी मूर्त्ति बनाकर शिवोक्त तंत्रविहित मंत्र द्वारा यत्न सहित उनकी पूजा करै ॥ ९ ॥ अथवा वैदिक मंत्रद्वारा समाहित चित्तसे उनकी यथाविधि पूजा कर, फिर ध्यानमें निमग्न रह नवाक्षर मंत्रका जप करे ॥ १० ॥ जप दो प्रकारके हैं नित्य और पौरश्चरणिक नित्य जपका नित्य होम होता है और नैमित्तिकका पुरश्चरणके जपका दशांश होम, होमका दशांश अभिषेक, अभिषेकका दशांश तर्पण और तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार जप समापन पूर्वक नित्य देवीके चरित्रत्रयमूलक चण्डीपाठ करके फिर देवीको विसर्जन करै. हे नरनाथ ! मनुष्योंको शास्त्रकी

विधिके अनुसार अवश्य नवरात्रिवत करना चाहिये ॥ १२ ॥ जो मंगलकी इच्छा करैं उनको आश्विन और चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रिव्रतका उपवास करना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ १३ ॥ जिस मंत्रका जप करै उसी मंत्रसे सुसंस्कृत पायसमें घृत मधु और शर्करा मिलाकर बहुसंख्यक होम करै ॥ १४ ॥ अथवा छागमांस या पवित्र विल्वपत्रलाल करवीरका पुष्प अथवा शर्करामिश्रित तिलद्वारा होम करै ॥ १५ ॥ प्रति तिथिमेंही पूजाके विधिकी व्यवस्था होनेपर भी अष्टमी नवमी और चतुर्दशीमें देवीकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ १६ ॥ हे नरनाथ ! इसप्रकार महादेवीकी पूजा करनेसे निर्धन मनुष्य धन पाता है रोगी रोगसे छूट जाता है और अपुत्र मनुष्य वशवर्त्ती और गुणवान् पुत्र प्राप्त करता है ॥ १७ ॥ राजा राज्यभ्रष्ट हो तो देवीकी पूजा करनेसे सार्वभौ

आश्विनेचतथाचैत्रेशुक्लेपक्षेनराधिप ॥ नवरात्रोपवासोवैकर्तव्यःशुभमिच्छता ॥ १३ ॥ होमःसुविपुलःकार्योजप्यमंत्रैःसुपायसैः ॥ शर्कराघृतमिश्रैश्चमधुयुक्तैःसुसंस्कृतैः ॥ १४ ॥ छागमांसेनवाकार्योविल्वपत्रैस्तथाशुभैः ॥ हयारिकुसुमैरक्तैस्तिलैर्वाशर्करायुतैः ॥ १५ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचविशेषतः ॥ कर्तव्यंपूजनंदेव्याब्राह्मणानांचभोजनम् ॥ १६ ॥ निर्धनोधनमाप्नोतिरोगीरोगात्प्रमुच्यते ॥ अपुत्रोलभतेपुत्राञ्छुभांश्चवशवर्तिनः ॥ १७ ॥ राज्यभ्रष्टोनृपोराज्यंप्राप्नोतिसार्वभौमिकम् ॥ शत्रुभिःपीडितोहंतिरिपुंमायाप्रसादतः ॥ १८ ॥ विद्यार्थीपूजनंयस्तुकरोतिनियतेंद्रियः ॥ अनवद्यांशुभांविद्यांविंदतेनाऽत्रसंशयः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रोवाभक्तिसंयुतः ॥ पूजयेज्जगतांधात्रींससर्वसुखभाग्भवेत् ॥ २० ॥ नवरात्रव्रतंकुर्यान्नरनारीगणश्चयः ॥ वांछितंफलमाप्नोतिसर्वदाभक्तितत्परः ॥ २१ ॥ आश्विनेशुक्लपक्षेतुनवरात्रव्रतंशुभम् ॥ करोतिभावसंयुक्तःसर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ विधिवन्मंडलंकृत्वापूजास्थानंप्रकल्पयेत् ॥ कलशंस्थापयेत्तत्रवेदमंत्रविधानतः ॥ २३ ॥

मराज्यको प्राप्त होते हैं और पहिले जिन शत्रुओंसे परास्त होगये हो महामायाके प्रसादसे उनको भी संहार कर सक्ते हैं ॥ १८ ॥ विद्याभिलाषी पुरुष यदि जितेन्द्रिय होकर उनकी पूजा करै तो वह अनवद्या मंगलप्रदा विद्यालाभ कर सक्ता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वा शूद्र जो कोई हो भक्तिपरायण होकर जगद्धात्रीकी पूजा करनेसे संपूर्ण सुखका अधिकारी होसक्ता है ॥ २० ॥ सदा भक्तिमें तत्पर होकर मनुष्य वा स्त्रियोंमें जो कोई नवरात्रव्रत करता है वह अपना अभिलाषित फल पाता है ॥ २१ ॥ जो आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें मनलगाय पवित्र नवरात्र व्रत करता है वह संपूर्ण काम्यवस्तुको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ हे महाराज ! अब नवरात्रव्रतकी विधि कहता हूं सुनो विधिके अनुसार चारों ओर मण्डल बनाकर पूजास्थानकी रचना करै फिर वेदके मंत्र और

विधानानुसार उसके ऊपर कलश स्थापन करै ॥ २३ ॥ पूर्वोक्त नियमानुसार सुंदर यंत्र निर्माण करके उसके ऊपर कलश रक्खे और कलशके चारों ओर वेष्टन करके सुन्दर यव बिखेरै ॥ २४ ॥ पूजास्थानका ऊपरीभाग चन्द्रातप और पुष्पमालासे सुशोभित करके चण्डिकाके गृहमें धूप और दीप प्रदान कर ॥ २५ ॥ हे महाराज ! अपनी शक्तिके अनुसार उस पूजागृहमें भगवती देवीकी प्रातःकाल, मध्याह्नकालमें पूजा करनी चाहिये किन्तु किसीप्रकार वित्तकी शठता वा कृपणता करना उचित नहीं है ? ॥ २६ ॥ वहां धूप, दीप, मनोहर नैवेद्य, पुष्प और नानाप्रकारके फल उपहारमें देकर उनकी पूजा करे. विशेष कर स्तोत्रपाठ, वेदपारायण, गीतवाद्य और अनेक प्रकारके बाजों द्वारा उत्सव करना चाहिये ॥ २७ ॥ अधिकतर चंदन भूषण वस्त्र अनेक भाँतिके खाद्य सुगंधित तेल और मनोहर मालासे यथाविधि कुमारीकी पूजा करनी ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसप्रकार उनकी पूजा करके अष्टमी वा नवमी तिथिमें पूर्वोक्त होमद्रव्यसे विधानानुसार होम करावे ॥ ३० ॥ अंतमें

यंत्रंसुरुचिरंकृत्वास्थापयेत्कलशोपरि ॥ वापयित्वायवांश्चारून्पार्श्वतःपरिवर्तितान् ॥ २४ ॥ कृत्वोपरिवितानंचपुष्पमालासमावृतम् ॥ धूपदीपसुसंयुक्तंकर्तव्यंचंडिकागृहम् ॥ २५ ॥ त्रिकालंतत्रकर्तव्यापूजाशक्त्यनुसारतः ॥ वित्तशाठ्यंनकर्तव्यंचंडिकायाश्चपूजने ॥ २६ ॥ धूपैर्दीपैःसुनैवेद्यैःफलपुष्पैरनेकशः ॥ गीतवाद्यैःस्तोत्रपाठैर्वेदपारायणैस्तथा ॥ २७ ॥ उत्सवस्तत्रकर्तव्योनानावादित्रसंयुतैः ॥ कन्यकानांपूजनंचविधेयंविधिपूर्वकम् ॥ २८ ॥ चंदनैर्भूषणैर्वस्त्रैर्भक्ष्यैश्चविविधैस्तथा ॥ सुगंधतैलमाल्यैश्चमनसोरुचिकारकैः ॥ २९ ॥ एवंसंपूजनंकृत्वाहोमंमंत्रविधानतः ॥ अष्टम्यांवानवम्यांवाकारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ३० ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पारणंदशमीदिने ॥ कर्तव्यंशक्तितोदानंदेयंभक्तिपरैर्नृपैः ॥ ३१ ॥ एवंयःकुरुतेभक्त्यानवरात्रव्रतंनरः ॥ नारीवासधवाभक्त्याविधवावापतिव्रता ॥ ३२ ॥ इहलोकेसुखंभोगान्प्राप्नोतिमनसेप्सितान् ॥ देहांतेपरमंस्थानंप्राप्नोतिव्रततत्परः ॥ ३३ ॥ जन्मांतरेंबिकाभक्तिर्भवत्यव्यभिचारिणी ॥ जन्मोत्तमकुलेप्राप्यसदाचारोभवेद्धिसः ॥ ३४ ॥ नवरात्रव्रतंप्रोक्तंव्रतानामुत्तमंव्रतम् ॥ आराधनंशिवायास्तुसर्वसौख्यकरंपरम् ॥ ३५ ॥

विधिपूर्वक ब्राह्मणभोजन कराकर दशमीके दिन स्वयं पारण करै फिर भक्तिमें तत्पर होकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको अनेक वस्त्रदान करै ॥ ३१ ॥ हे महाराज इस प्रकार भक्तिसहित जो कोई पुरुष वा जो कोई पतिव्रता साध्वी या विधवा नारी उक्त विधिके अनुसार नवरात्र व्रतका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३२ ॥ वह इस लोकमें मनकी सब अभिलषित वस्तु भोगकर असीम सुख पाते हैं और देहके अन्तमें परमस्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ और यदि किसी कारणसे जन्म ग्रहण करना पड़े तो जन्मान्तरमें वह मनुष्य उत्तम कुलमें जन्म पाकर सदाचारसंपन्न होता है और अम्बिकाके प्रति उसकी अचला भक्ति होती है ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! मैंने आपसे इस नवरात्रव्रतकी विधि कही यह सब व्रतोंसे उत्तम है इससे महामाया शिवाकी आराधनाके कारण परम सुख प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

हे राजन् ! आप इसी विधिके अनुसार चण्डिकाकी भलीभाँति आराधना कीजिये तो उनके प्रसादसे सब शत्रुओंको पराजित करके अकंटक अतिउत्तम राज्यको प्राप्त होगे और अपने घर पुत्र व स्त्रीके सहित मिलकर इस देहमें ही पुनर्वार परमसुख लाभ कर सकेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे वैश्यवर ! जो इच्छामात्रसे ही सृष्टि और संहार करतीं हैं जिनकी पूजा करनेसे सब अभिलाषापूर्ण होती हैं तुमभी उन्हीं विश्वेश्वरी महामायाकी आराधना करो ॥ ३८ ॥ तो तुम घर जाकर अभिलषित सांसारिक सुखको प्राप्त हो स्वजनोंके मान्य होंगे ॥ ३९ ॥ और फिर अन्तमें पवित्र देवीलोकमें वास पाओगे, इसमें संशय नहीं. क्योंकि जो भगवतीकी आराधना नहीं करते, वही नरकमें जाते हैं ॥ ४० ॥ और अधिकतर इस लोकमें अनेक प्रकारके रोगोंसे वारंवार पीड़ित होकर सदा क्लेश भोगते हैं जो

अनेनविधिनाराजन्समाराधयचंडिकाम् ॥ जित्वारिपूनस्खलितंराज्यंप्राप्स्यस्यनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ सुखंचपरमंभूपदेहेऽस्मिन्स्वगृहेपुनः ॥ पुत्रदारान्समासाद्यलप्स्यसेनाऽत्रसंशयः ॥ ३७ ॥ वैश्योत्तमत्वमेवाऽद्यसमाराधयकामदाम् ॥ देवींविश्वेश्वरींमायांसृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ ३८ ॥ स्वजनानांचमान्यस्त्वंभविष्यासिगृहेगतः ॥ सुखंसांसारिकंप्राप्ययथाभिलषितंपुनः ॥ ३९ ॥ देवीलोकेशुभेवासोभवितातेनसंशयः ॥ नाऽऽराधिताभगवतीयैस्तेनरकभागिनः ॥ ४० ॥ इहलोकेऽतिदुःखार्तानानारोगैःप्रपीडिताः ॥ भवंतिमानवाराजञ्छत्रुभिश्चपराजिताः ॥ ४१ ॥ निष्कलत्राह्यपुत्राश्चतृष्णार्ताःस्तब्धबुद्धयः ॥ बिल्वीदलैःकरवीरैःशतपत्रैश्चचंपकैः ॥ ४२ ॥ अर्चिताजगतांधात्रीयैस्तेऽतीवविलासिनः ॥ भवंतिकृतपुण्यास्तेशक्तिभक्तिपरायणाः ॥ ४३ ॥ धनविभवसुखाढ्यामानवामानवंतःसकलगुणगणानांभाजनंभारतीशाः ॥ निगमपठितमंत्रैःपूजितायैर्भवानीनृपतितिलकमुख्यास्तेभवंतीहलोके ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादुःखितौवैश्यपार्थिवौ ॥ प्रणिपत्यमुनिंप्रीत्याप्रश्रयावनतौभृशम् ॥ १ ॥

मनुष्य देवीकी पूजासे विमुख हैं. वही मनुष्य शत्रुसे पराभूत ॥ ४१ ॥ स्त्रीपुत्रविहीन, जड़बुद्धि और तृष्णासे कातर होकर क्लेश भोग करते हैं और जो बिल्वदल, करवीर, कनेर, शतपत्र (कमल) और चम्पककुसुमद्वारा ॥ ४२ ॥ जगद्धात्रीकी पूजा करते हैं वह पुण्यवान् देवी भक्तिपरायण मनुष्यही अतिशय विलासी होते हैं ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! अधिक और क्या कहूं ? जिन्होंने निगम शास्त्र अनुमोदित मंत्रसे भगवतीकी पूजा करी है वे मनुष्यही इस लोकमें धन और विभवसुखसे पूर्ण होकर संसारमें सन्मानके भाजन होते हैं फलतः वह संपूर्ण गुणग्रामके एक मात्र आश्रय होकर इस लोकके मध्य राजाओंमें अग्रणी होते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! राजा सुरथ और वैश्यवर समाधि अत्यन्त

दुःखित मनसे समय व्यतीत करते थे किन्तु इस समय मुनिके इसप्रकार वचन सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए और अत्यन्त विनयसहित मस्तक झुकाय कर प्रणाम किया ॥ ॥ १ ॥ तब उनका अन्तःकरण भक्तिरससे अभिषिक्त और दोनों नेत्र प्रफुल्लित होगये तब वचन कहनेमें चतुर शान्तस्वभाव वैश्य तथा राजा दोनोंही हाथ जोड़ कर उनसे कहने लगे ॥२॥ हे महाभाग! हम दीन और शोकयुक्त हो शान्तभावसे आपके आश्रममें थे, किन्तु भगीरथने जिसप्रकार गंगाद्वारा जगत्को पवित्र किया था, इसीप्रकार आज आपने भी हमको परमपावन वचनोंसे पवित्र किया ॥ ३ ॥ स्वाभाविक गुणग्रामसे विभूषित साधुजन पराये उपकारमें निरत हो सब देहधा रियोंको जिससे सुख हो वही कार्य करते हैं॥ ४॥हे महाभाग! हमको निस्सन्देह पूर्वजन्मके किये हुए पुण्यसे आपका यह पवित्र आश्रम प्राप्त हुआ था और इसीकारण आज हमारे अत्यन्त क्लेश दूर हुए ॥५॥ इस पृथ्वीके ऊपर स्वार्थसाधनमें तत्पर अनेक मनुष्य दिखाई देते हैं, किन्तु जो पराये हितका साधन करनेमें समर्थ हों ऐसे आपकी

हर्षेणोत्फुल्लनयनावूचतुर्वाक्यकोविदौ ॥ कृतांजलिपुटौशांतौभक्तिप्रवणचेतसौ ॥ २ ॥ भगवन्पावितावद्यशांतौदीनौशुचान्वितौ ॥ तवसूक्तसरस्वत्यागंगयेवभगीरथः ॥ ३ ॥ साधवःसंभवंतीहपरोपकृतितत्पराः॥ अकृत्रिमगुणारामाःसुखदाःसर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ पूर्वपुण्यप्रसंगेनप्राप्तोऽयमाश्रमःशुभः ॥ तवाऽऽवाभ्यांमहाभागमहादुःखविनाशकः ॥५॥ भवंतिमानवाभूमौबहवःस्वार्थतत्पराः ॥ परार्थसाधनेदक्षाःकेचित्क्वापिभवादृशाः ॥ ६ ॥ दुःखितोऽहंमुनिश्रेष्ठवैश्योऽयंचाऽतिदुःखितः ॥ उभौसंसारसंतप्तौतवाऽऽश्रमपदेमुदा ॥ ७ ॥ दर्शनादेवहेविद्वन्गतंदुःखमिहाऽऽवयोः ॥ देहजंमानसंवाक्यश्रवणादेवसांप्रतम् ॥ ८ ॥ धन्यावावांकृतकृत्यौजातौसूक्तिसुधारसात् ॥ पावितौभवताब्रह्मन्कृपयाकरुणार्णव ॥ ९ ॥ गृहाणाऽस्मत्करौसाधोनयपारंभवार्णवे ॥ मग्नौश्रांतावितिज्ञात्वामंत्रदानेनसांप्रतम् ॥ १० ॥ तपःकृत्वाऽतिविपुलंसमाराध्यसुखप्रदाम् ॥ संप्राप्यदर्शनंभूयोयास्यावोनिजमंदिरम् ॥ ॥ ११ ॥ वदनात्तवसंप्राप्यदेवीमंत्रंनवाक्षरम् ॥ स्मरणंचकरिष्यावोनिराहारौधृतव्रतौ ॥ १२ ॥

समान पुरुष कदाचितही दिखाई देते हैं ॥ ६ ॥ हे मुनिवर! मैं तो दुखी हूं ही, परन्तु मुझसे भी अधिक यह वैश्य दुःखी है, हम दोनोंही संसार तापसे तापित हो शान्तिलाभके लिये प्रसन्न मनसे आपके आश्रममें आये थे ॥ ७ ॥ और इस स्थानमें आय केवल आपके दर्शन करनेसेही हमारे दैहिक दुःख दूर होगये. किन्तु अब आपके मनोहर वचन सुननेसे हमारा सब मानसिक क्लेश भी दूर होगया ॥ ८॥हे ब्रह्मन्! आपके अमृतकी समान वचनोंसे अभिषिक्त हो हम धन्य और कृतकृत्य हुए. हे करुणासागर! अधिक और क्या कहैं, आपने ही कृपा करके आज हमको पवित्र किया है ॥ ९ ॥ हे साधो! हम भवसागरमें निमग्न होकर थक गये हैं, आप यह जान मंत्रदान पूर्वक हमारा हाथ पकड़कर संसार सागरसे पार ले चलिये ॥ १०॥ पहिले हम अत्यन्त विपुल तपस्या करके सुख देनेवाली भगवतीकी आराधना करेंगे फिर उनका दर्शन लाभ कर तब अपने घरको जायँगे ॥ ११ ॥ इस समय आपके मुखमंडलसे देवीका नवाक्षर मंत्रलाभ कर नवरात्रिव्रत अवलंबन पूर्वक

निराहार रहकर उनका स्मरण करेंगे ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले वैश्य और राजाके इसप्रकार प्रार्थना करनेपर मुनिसत्तम सुमेधाने उनको ध्यान और बीजसहित वह मंगलदायक मंत्र दिया ॥ १३ ॥ अनन्तर वह वैश्य और राजा मुनिसे मंत्रके ऋषि बीज छन्द शक्ति और देवता प्राप्त कर गुरुको आमंत्रण पूर्वक उसकी आज्ञा ले पवित्र नदीके तटपर गये ॥ १४ ॥ अत्यन्त कृशोदर स्थिर बुद्धि वैश्य और राजा वहां एकान्त निर्जन स्थानमें आसन ग्रहण कर उसके ऊपर विराजमान हुए ॥ १५ ॥ उस शान्तचित्त वैश्य और राजाने देवीके ध्यानमें निमग्न हो उनका मंत्रजप और तीनों चरित्रोंका पाठ करते २ उसी स्थानमें एक महीना बिताया॥ १६॥ केवल इस महीनेही व्रतका अनुष्ठान करनेसे उनको भगवतीके चरणकमलोंमें अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हुआ विशेष कर उनकी मति अतिस्थिर होगयी ॥ १७ ॥ वह इस समय

व्यासउवाच ॥ इतिसंचोदितस्ताभ्यांसुमेधामुनिसत्तमः ॥ ददौमंत्रंशुभंताभ्यांध्यानबीजपुरःसरम् ॥ १३ ॥ तौचप्राप्यमुनेर्मंत्रंसंमंत्र्यगुरुदैवतौ ॥ जग्मतुर्वैश्यराजानौनदीतीरमनुत्तमम् ॥ १४॥ एकांतेविजनेस्थानेकृत्वासनपरिग्रहम् ॥ उपविष्टौस्थिरप्रज्ञौतावतीवकृशोदरौ ॥ १५॥ मंत्रजाप्यरतौशांतौचरित्रत्रयपाठकौ ॥ निन्यतुर्मासमेकंतुतत्रध्यानपरायणौ ॥१६॥ तयोर्मासव्रतेनैवजाताप्रीतिरनुत्तमा ॥ पादांबुजेभवान्यास्तुस्थिराबुद्धिस्तथाप्यलम् ॥१७॥ कदाचित्पादयोर्गत्वामुनेस्तस्यमहात्मनः ॥ कृतप्रणामावागत्यतस्थतुश्चकुशासने ॥ १८॥ नान्यकार्यपरौक्वापिबभूवतुःकदाचन ॥ देवीध्यानपरौनित्यंजपमंत्ररतौसदा ॥१९॥एवंजातेतदापूर्णेतत्रसंवत्सरेनृप॥बभूवतुःफलाहारंत्यक्त्वापर्णाशनौनृप॥२०॥वर्षमेकंतपस्तत्रचक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ॥शुष्कपर्णाशनौदांतौजपध्यानपरायणौ ॥२१॥ पूर्णेवर्षद्वयेजातेकदाचिद्दर्शनंचतौ ॥ प्रापतुःस्वप्नमध्येतुभगवत्यामनोहरम् ॥२२॥ रक्तांबरधरांदेवींचारुभूषणभूषिताम्॥ कदाचिन्नृपतिःस्वप्नेऽप्यपश्यज्जगदंबिकाम् ॥ २३ ॥ वीक्ष्यस्वप्नेचतौदेवींप्रीतियुक्तौबभूवतुः ॥ जलाहारैस्तृतीयेतुस्थितौसंवत्सरेतुतौ ॥ २४ ॥

अन्यकार्यमें रत नहीं होते, केवल प्रति दिन एक बार महात्मा मुनिवरके चरण कमलोंके सन्मुख जाय और उनको प्रणाम प्रत्यागमन पूर्वक अपने अपने कुशासन पर बैठते और देवीके ध्यानमें निमग्न हो सदा मंत्र जप कार्यमें निरत रहते ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार संवत्सरके पूर्ण होनेपर फिर उन्होंने फलाहार त्याग कर पत्ते भक्षण करना प्रारंभ किया॥ २०॥ इस प्रकार उन दोनोंने तप और ध्यानमें निरत हो सूखे पत्ते भक्षण कर वहां एक वर्ष तपस्या करी॥ २१॥ हे महाराज ! इन दो वर्षोंके पूर्ण होनेपर उन्होंने किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहर दर्शन पाया वह राजा और वैश्य किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहर दर्शन प्राप्त करते हुए ॥ २२ ॥ वह राजा और वैश्य किसी समय भूषणोंसे भूषित लाल वस्त्र धारे अम्बिका देवीको ॥ २३ ॥ स्वप्नमें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए. स्वप्न देखकर

दोनोंही प्रसन्न हुये और फिर जलाहारसे तीसरे वर्ष तप किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार तीन वर्ष तपस्या करके भी जब प्रत्यक्ष दर्शन नहीं पाया, तब वैश्य और राजा देवीके
दर्शनकी इच्छासे मनहीमनमें चिन्ता करने लगे ॥ २५ ॥ कि जिससे मनुष्योंको परम श्रेय प्राप्त होता है, हमको उनका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त नहीं हुआ अतएव अब
हम अत्यन्त दुःखसे कातर होकर प्राणत्याग करेंगे ॥ २६ ॥ राजाने मनमें इसप्रकार चिन्ता करके एक हाथकी बराबर सुंदर दृढ एक त्रिकोण कुण्ड बनाया
॥ २७ ॥ और उसमें अग्निस्थापन करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने गात्रसे वारंवार मांस काटकर होम करने लगा ॥ २८ ॥ तब वैश्य भी इसी प्रकार अग्निस्थापन
कर जलती हुई अग्निमें अपने मांसको डालने लगा. हे महाराज ! इसप्रकार वे दोनोंही उत्साहित हो देवीको रुधिरकी बलि देने लगे ॥ २९ ॥ तब भगवती उनको अत्यन्त

एवंवर्षत्रयंकृत्वाततस्तौवैश्यपार्थिवौ ॥ चक्रतुस्तौतदाचिंतांचित्तेदर्शनलालसौ ॥ २५ ॥ प्रत्यक्षदर्शनंदेव्यानप्राप्तंशांतिदंनृणाम् ॥ देहत्यागंकरिष्यावोदुः
खितौभृशमातुरौ॥२६॥इतिसंचिंत्यमनसाराजाकुंडंचकारह ॥ त्रिकोणंसुस्थिरंसौम्यंहस्तमात्रप्रमाणतः ॥ २७ ॥ संस्थाप्यपावकंराजातथावैश्योऽतिभ
क्तिमान् ॥ जुहावाऽसौनिजंमांसंछित्त्वाछित्त्वापुनःपुनः ॥ २८ ॥ तथावैश्योऽपिदीतेग्नौस्वमांसंप्राक्षिपत्तदा ॥ रुधिरेणबलिंचाऽस्यैददतुस्तौकृतोद्यमौ
॥२९॥ तदाभगवतीदत्त्वाप्रत्यक्षंदर्शनंतयोः ॥ प्राहप्रीतिभरोद्भ्रांतौदृष्ट्वातौदुःखितौभृशम् ॥ ३० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरंवरयभोराजन्यत्तेमनसिवां
छितम् ॥ तुष्टाऽहंतपसातेऽद्यभक्तोऽसित्वंमतोमम ॥ ३१ ॥ वैश्यंप्राहतदादेवीप्रसन्नाऽहंमहामते ॥ किंतेऽभीष्टंददाम्यद्यप्रार्थयाऽऽशुमनोगतम् ॥ ३२ ॥
॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराजातामुवाचमुदान्वितः ॥ देहिमेऽद्यनिजंराज्यंहतशत्रुबलंबलात् ॥ ३३ ॥ तमुवाचतदादेवीगच्छराजन्निजंगृहम् ॥
शत्रवःक्षीणसत्त्वास्तेगमिष्यंतिपराजिताः ॥ ३४ ॥

दुःखित और भक्तिरसमें व्याकुलचित्त देख प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहने लगी ॥ ३० ॥ देवी बोली हे राजन् ! तुम मेरे परमप्रिय भक्त हो मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुई हूं
अतएव तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो वह प्रार्थना करो मैं तुमको वही वर दूंगी ॥ ३१ ॥ फिर उन्होंने वैश्यसे भी कहा हे महामते ! मैं प्रसन्न हुई हूं, अतएव
तुम्हारी क्या इच्छा है ? शीघ्र कहो मैं अब तुमको अभीष्ट वर दूंगी ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! राजा सुरथ देवीके इस प्रकार वचन सुन, आनन्दित
होकर उनसे कहने लगे हे देवि ! बलपूर्वक शत्रुओंको मारकर अभी अपने राज्यको प्राप्त करूं मुझको यही वर दीजिये ॥ ३३ ॥ तब देवीने उनसे कहा हे राजन् !

तुम अपने घर जाओ, तुम्हारे शत्रु क्षीणबल होकर अवश्य पराजित होंगे ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे मंत्रीगण आय चरणोंमें गिरकर तुम्हारे वशीभूत होंगे अतएव तुम अपने नगरमें जाकर सुखसहित राज्य पालन करो ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार तुम अयुतवर्ष १०००० विशाल राज्य शासनपूर्वक फिर देह त्याग सूर्यसे जन्मग्रहण कर सावर्णिनामक मनु होंगे ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उस पवित्र स्वभाव वैश्यने भी हाथ जोड़कर उनसे कहा हे देवि ! गृह, पुत्र अथवा धनसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३७॥ हे जननि ! गृह पुत्र और धन, यह सब संसारके बंधन स्वरूप और स्वप्नकी समान नाशवान् हैं, अतएव जिससे संसारबंधन टूटकर मुक्ति प्राप्त होती है, ऐसा विशद ज्ञान मुझको दीजिये ॥ ३८॥ ज्ञानविहीन मूढ पामरगणही इस असार संसारसागरमें निमग्न होते हैं पण्डितलोग कभी संसारकी

मंत्रिणस्तेसमागम्यतेपतिष्यंतिपादयोः ॥ कुरुराज्यंमहाभागनगरेस्वंयथासुखम् ॥ ३५ ॥ कृत्वाराज्यंसुविपुलंवर्षाणामयुतंनृप ॥ देहांतेजन्मसंप्राप्यसूर्याच्चभवितामनुः ॥ ३६ ॥ व्यासउवाच ॥ वैश्यस्तामप्युवाचेदंकृतांजलिपुटःशुचिः ॥ नमेगृहेणकार्यंवैनपुत्रेणधनेनवा ॥ ३७ ॥ सर्वेबंधकरंमातःस्वप्नवन्नश्वरंस्फुटम् ॥ ज्ञानंमेदेहिविशदंमोक्षदंबंधनाशनम् ॥ ३८ ॥ असारेस्मिंश्चसंसारेमूढामज्जंतिपामराः ॥ पंडिताःसंतरंतीहतस्मान्नेच्छंतिसंसृतिम् ॥ ३९ ॥ व्यासउवाच ॥ तदाऽऽकर्ण्यमहामायावैश्यंप्राहपुरःस्थितम् ॥ वैश्यवर्यतवज्ञानंभविष्यतिनसंशयः ॥ ४० ॥ इतिदत्वावरंताभ्यांतत्रैवांतरधीयत ॥ अदर्शनंगतायांतुराजातंमुनिसत्तमम् ॥ ४१ ॥ प्रणम्यहयमारुह्यगमनायमनोदधे ॥ तदैवतस्यसचिवास्तत्राऽऽगत्यनृपंप्रजाः ॥ ॥४२॥ प्रणेमुर्विनयोपेतास्तमूचुःप्रांजलिस्थिताः ॥ राजंस्तेशत्रवःसर्वेपापाच्चनिहतारणे ॥ ४३ ॥ राज्यंनिष्कंटकंभूपकुरुष्वपुरमास्थितः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराजानत्वातंमुनिसत्तमम् ॥ ४४ ॥ आपृच्छ्यचनिर्ययौतत्रमंत्रिभिःपरिवारितः ॥ संप्राप्यचनिजंराज्यंदारान्स्वजनबांधवान् ॥ ४५ ॥

इच्छा नहीं करते, अतएव वही इससे पार होते हैं ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! यह वचन सुनकर महामाया सन्मुख स्थित वैश्यसे कहने लगीं हे वैश्यवर ! तुमको ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ देवी उनको इस प्रकार वर देकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगईं, देवीके अन्तर्धान होनेपर राजाने उन मुनिको ॥ ४१ ॥ प्रणाम कर, घोड़ेपर चढ़ घर जानेकी इच्छा की उस समय उनके मंत्रीगण और प्रजागणोंने सामने जाय ॥ ४२ ॥ विनय भावसे उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़ खड़े होगये फिर बोले हे राजन् ! शत्रुओंने अत्यन्त पापाचरण किया था, इसकारण वह सबही समरमें मृत्युको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ अब आप नगरमें वास करके निष्कण्टक राज्यशासन कीजिये राजाने मंत्रियोंका इसप्रकार वचन सुननेके पीछे उन मुनिवरको प्रणाम कर ॥ ४४ ॥ अनुमति ग्रहणपूर्वक मंत्रियोंसे

परिवेष्टित हो अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया इसके उपरान्त अपना राज्य स्त्री आत्मीय और बांधवगणोंको प्राप्त हो ॥ ४५ ॥ समुद्रसे घिरे हुए सब पृथ्वीमण्डलको भोग करने लगे इस और वैश्य भी ज्ञानलाभ करतेही भलीभाँति संगरहित हो संसारसे छूटगया ॥ ४६ ॥ अनन्तर वह जीवन्मुक्त वैश्य वर अनेकानेक तीर्थोंमें विचरण और देवीका गुणगान करते करते समय विताने लगा ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! मैंने आपसे देवीका परम अद्भुत चारित्र राजा और वैश्यको देवीकी आराधनासे फलप्राप्ति ॥ ४८ ॥ दानवोंका संहार और उनके कल्याणजनक आविर्भावका सब विषय भलीभाँति वर्णन किया. हे राजन् ! आप उन भक्तोंको अभय देनेवाली देवीका प्रभाव इसीप्रकार जानिये ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य देवीभगवतीका चरित्र उपाख्यान सदा सुनते हैं उन श्रेष्ठमनुष्योंको संसारका अद्भुत पवित्र सुख प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इस अद्भुत उपाख्यानके सुननेसे मनुष्य ज्ञान मुक्ति कीर्त्ति सुख और पवित्रता लाभ करनेमें समर्थ होते हैं इसमें सन्देह नहीं

बुभुजेपृथिवींसर्वांततःसागरमेखलाम् ॥ वैश्योऽपिज्ञानमासाद्यमुक्तसंगःसमंततः ॥ ४६ ॥ कालाऽतिवाहनंतत्रमुक्तबंधश्चकारह ॥ तीर्थेषुविचरन्गायन्भगवत्यागुणानथ ॥ ४७ ॥ एतत्तेकथितंदेव्याश्चरितंपरमाद्भुतम् ॥ आराधनफलप्राप्तिर्यथावद्भूपवैश्ययोः ॥ ४८ ॥ दैत्यानांहननंप्रोक्तंप्रादुर्भावस्त ...शुभः ॥ एवंप्रभावासादेवीभक्तानामभयप्रदा ॥ ४९ ॥ यःशृणोतिनरोनित्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ॥ सप्राप्नोतिनरःसत्यंसंसारसुखमद्भुतम् ॥ ५० ॥ ज्ञानदंमोक्षदंचैवकीर्तिदंसुखदंतथा ॥ पावनंश्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम् ॥ ५१ ॥ अखिलार्थप्रदंनूणांसर्वधर्मसमावृतम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांका...णंपरमंमतम् ॥ ५२ ॥ सूतउवाच ॥ जनमेजयेनराज्ञाऽसौपृष्टःसत्यवतीसुतः ॥ उवाचसंहितांदिव्यांव्यासःसर्वार्थतत्त्ववित् ॥ ५३ ॥ चरितंचंडिकाया... ...भदैत्यवधाश्रितम् ॥ कथयामासभगवान्कृष्णःकारुणिकोमुनिः ॥ ५४ ॥ इति वःकथितः सारःपुराणानांमुनीश्वराः ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापु...ऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायांपंचमस्कंधे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

व्योमांकाभ्रद्विसंख्यातैः २०९० श्लोकैर्व्यासेनधीमता ॥ देवीभागवतस्याऽस्यपंचमस्कंधईरितः ॥

॥ ५१ ॥ इस उपाख्यानमें ... धर्मोंका तत्व स्थिर हुआ है यही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका परम कारण है विशेष कर यह मनुष्योंको सब अभीष्ट प्रदान करता है ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले हे ...यो ! राजा जन्मेजयने जब सत्यवतीतनय व्यासदेवजीसे पूँछा तब सर्वतत्वके जाननेवाले उन महर्षिने यह दिव्य संहिता उनके निकट कीर्त्तन की थी ॥ ५३ ॥ परमकारुणि... भगवान् श्रीवेदव्यासजीने शुंभादि दानवोंके वध संघटित चण्डिकाके चारित्र इस प्रकारही वर्णन किये थे. हे मुनिवरगण ! मैंने भी आपसे इस पुराणका सारसंग्रह वर्णन किया ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां ... पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ २०९० श्लोकोंमें पांचवाँ स्कंध पूर्ण हुआ । शुभमस्तु ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

दे०भा० तुम अपने

॥१००॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रितम्। संवत् १९५८,
शके १८२३, सन् १९०१ ई०

तुम अपने

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते पञ्चमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते षष्ठस्कंधः प्रारभ्यते ॥

दोहा—दीर्घनैन शृंगाररस, सागर छवि गुणऐन ॥ भजहुँ नित्य जगदम्बिका, गुणागार सुखदैन ॥ १ ॥

नैमिषारण्यमें वास करनेवाले ऋषिगण सूतजीसे कहने लगे हे महाभाग ! तुम्हारे मुखचन्द्रसे निकला हुआ महर्षि द्वैपायनकथित कल्याणकर वचनामृत हमको अत्यन्त मीठा बोध होता है इसलिये हम उसे पान करके भी भलीभाँति तृप्तिलाभ नहीं करसक्के ॥ १ ॥ हे सूतजी ! जो प्रसिद्ध पापनाशन और मनोहर तथा वेदमें भी जो कथित है हम उसी शुभकर पुराणकी कथा पुनर्वार तुमसे पूँछनेकी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ वृत्रासुर नामक विख्यात अत्यन्त वीर्यवान् विश्वकर्माका एक पुत्र था इन्द्रने महात्मा होकर भी युद्धमें उसको किसप्रकार मारा ॥ ३ ॥ विश्वकर्म्मा देवताओंका पक्षपाती था उसका पुत्र वीर्य्यवान् और महाबल तथा ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न था अतएव इन्द्रने देवताओंका राजा होकर भी उसका किसकारण विनाश किया ॥ ४ ॥ पुराणके जाननेवाले और आगमवादी पंडितगण कहते हैं कि, देवता सत्वगुणसे, मनुष्य रजोगुणसे और सब तिर्य्यग्जाति तमोगुणसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५ ॥ किन्तु वृत्रासुरके विनाशसे उसका महत्वविरोध दिखाई देता है, क्योंकि इन्द्रने शत

ऋषयऊचुः ॥ सूतसूतमहाभागमिष्टंतेवचनामृतम् ॥ नतृप्ताःस्मोवयंपीत्वाद्वैपायनकृतंशुभम् ॥ १ ॥ पुनस्त्वांप्रष्टुमिच्छामःकथांपौराणिकींशुभाम् ॥ वेदेपिकथितांरम्यांप्रसिद्धांपापनाशिनीम् ॥ २ ॥ वृत्रासुरइतिख्यातोवीर्यवांस्त्वष्टुरात्मजः ॥ सकथंनिहतःसंख्येवासवेनमहात्मना ॥ ३ ॥ त्वष्टावैसुरपक्षीयस्तत्पुत्रोबलवत्तरः ॥ शक्रेणघातितःकस्माद्ब्रह्मयोनिर्महाबलः ॥ ४ ॥ देवाःसत्त्वगुणोत्पन्नामानुषाराजसाःस्मृताः ॥ तिर्यञ्चस्तामसाःप्रोक्ताःपुराणागमवादिभिः ॥ ५ ॥ विरोधोऽत्रमहान्भातिनूनंशतमखेनह ॥ छलेनबलवान्वृत्रःशक्रेणविनिपातितः ॥ ६ ॥ विष्णुःप्रेरयितातत्रसतुसत्त्वधरःपरः ॥ प्रविष्टःपविमध्येसच्छद्मनाभगवान्प्रभुः ॥ ७ ॥ संधिंविधायसद्योवंमंत्रितोऽसौमहाबलः ॥ हरिभ्यांसत्यमुत्सृज्यजलफेनेनशातितः ॥ ८ ॥ कृतमिंद्रेणहरिणा ॥ किमेतत्सूतसाहसम् ॥ महांतोपिचमोहेनवंचिताःपापबुद्धयः ॥ ९ ॥ अन्यायवर्तिनोऽत्यर्थंभवंतिसुरसत्तमाः ॥ सदाचारेणयुक्तेनदेवाःशिष्टत्वमागताः ॥ १० ॥ एवंविशिष्टधर्मेणशिष्टत्वंकीदृशंपुनः ॥ हत्वावृत्रंतुविश्वस्तंशक्रेणच्छद्मनापुनः ॥ ११ ॥ प्राप्तंपापफलंनोवाब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥ किंचत्वयापुराप्रोक्तंवृत्रासुरवधःकृतः ॥ १२ ॥

यज्ञकारी सत्वगुणसम्पन्न होकर भी छलसे बलवान् वृत्रासुरका विनाश किया था ॥ ६ ॥ और सत्वगुणधारी विष्णुने उसको इसकार्य्यमें प्रवर्तित किया और उन भगवान् प्रभु विष्णुने वृत्रासुरके वधार्थ छलपूर्वक वज्रमें प्रवेश किया था ॥ ७ ॥ महाबलवान् वृत्रासुर मिलाप करके निश्चिन्त था किन्तु इन्द्र और विष्णुने सत्य त्यागकर जल फेनसे मारा ॥ ८ ॥ इसप्रकार साहस किया यह अत्यन्त आश्चर्य्यका विषय है ! जो हो मैं समझगया महत् महत् जनभी मोहद्वारा वञ्चित होकर पापबुद्धि होते हैं ॥ ९ ॥ प्रधान प्रधान देवतागण अत्यन्त अन्यायकारी हैं केवल शास्त्रानुमत सदाचारद्वारा उनको शिष्ट कहा जाता है ॥ १० ॥ इसप्रकार केवल सदाचारसे कैसे शिष्टता होती है ? यह मैं नहीं समझसक्का वास्तवमें इसप्रकारकी शिष्टता शिष्टतानहीं है सो जो हो इन्द्रने छलसे वृत्रासुरको मारकर ॥ ११ ॥ ब्रह्महत्याजनित कोई फल

पाया था वा नहीं ? हे सूतजी ! तुमने पहले कहा है कि, देवी भगवतीने वृत्रासुरको मारा था ॥ १२ ॥ किन्तु इन्द्र वृत्रासुरका मारनेवाला है यह सर्वत्र प्रसिद्ध है अतएव कौन विषय यथार्थ है उसको स्थिर न करसकनेसे इस समय हमारा मन मोहित हुआ जाता है, सूतजीने कहा हे मुनिगण ! वृत्रासुरके वधका वृत्तान्त सुनो ॥ १३ ॥ और देवराज इन्द्रने जिसप्रकार ब्रह्महत्याजनित दुःख भोग किया था वह कहता हूं, परीक्षितके पुत्र महाराज जन्मेजयने पहले यह कथा पूँछी थी तब ॥ १४ ॥ सत्यवतीके पुत्र व्यासदेवजीने जो कहा था मैं वही आपके निकट वर्णन करताहूं सुनो. जन्मेजयने कहा हे मुनिवर ! पहले सत्वगुणसम्पन्न सुरपति इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे वृत्रासुरको किसप्रकार मारा ? अथवा श्रीदेवीजीने किसनिमित्त इस दैत्य श्रेष्ठको मारा था ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे मुनीन्द्र ! दो व्यक्ति एक जनको मारें यह किसप्रकार सम्भव है ? इसको सुननेके लिये मेरे मनमें अत्यन्त कुतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ १७ ॥ कौन मनुष्य महत् पुरुषोंके चरित्रकी कथा सुननेसे विरत होगा, आप

श्रीदेव्याइतितच्चाऽपिचित्तंमोहयतीहनः ॥ सूतउवाच ॥ शृण्वंतुमुनयोवृत्तंवृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ १३ ॥ यथेंद्रेणचसंप्राप्तंदुःखंहत्यासमुद्भवम् ॥ एवमेवपुरापृष्टोव्यासःसत्यवतीसुतः ॥ १४ ॥ पारिक्षितेनराज्ञाऽपिसयदाहचतद्ब्रुवे ॥ जनमेजयउवाच ॥ कथंवृत्रासुरःपूर्वंहतोमघवतामुने ॥ १५ ॥ सहायंविष्णुमासाद्यछद्मनासात्त्विकेनह ॥ कथंचदेव्यानिहतोदैत्योऽसौकेनहेतुना ॥ १६ ॥ कथमेकवधोद्वाभ्यांकृतःस्यान्मुनिपुंगव ॥ तदेतच्छ्रोतुमिच्छामिपरंकौतूहलंहिमे ॥ १७ ॥ महतांचरितंशृण्वन्कोविरज्येतमानवः ॥ कथयांबावैभवंत्वंवृत्रासुरवधाश्रितम् ॥ १८ ॥ व्यासउवाच ॥ धन्योऽसिराजंस्तवबुद्धिरीदृशीजातापुराणश्रवणेऽतिसादरा ॥ पीत्वाऽमृतंदेववरास्तुसर्वथापानेवितृष्णाःप्रभवंतिवैपुनः ॥ १९ ॥ दिनेदिनेतेऽधिकभक्तिभावःकथासुराजन्महनीयकीर्तेः ॥ श्रोतायदैकप्रवणःशृणोतिवक्तातदाप्रीतमनाब्रवीति ॥ २० ॥ युद्धंपुरावासववृत्रयोर्यद्देदेप्रसिद्धंचतथापुराणे ॥ दुःखंसुरेंद्रेणतथैवलब्धंहत्वारिपुंत्वाष्ट्रमपापमेव ॥ २१ ॥

शक्तिरूपिणी जगज्जननीके वृत्रासुरवधसंघटित वैभवकी कथा वर्णनकर मेरे श्रवण और मनको चरितार्थ कीजिये ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! सुरश्रेष्ठ अमृतपान कर तिसके पीनेसे भी तृष्णारहित होते हैं किन्तु आप अवतक पुराणोंकी कथासे तृष्णारहित नहीं हुए वरन् पुराणोंके सुननेमें आपका आदर दिन दिन बढ़ता है आपकी बुद्धि पुराणपीयूषरसमें निमग्न हुई है अतएव हे राजेन्द्र ! आप धन्य हैं ॥ १९ ॥ हे नृपवर ! पृथ्वीमें आपकी कीर्त्ति प्रशंसनीय है पुराणकी कथामें आपका भक्तिभाव दिन दिन बढ़ता है अतएव मैंभी आपके निकट पुराणकी कथा कीर्त्तन कर परमप्रीतिलाभ करता हूं क्योंकि श्रोता यदि एक मनसे तद्गतचित्त कथा सुने तो वक्ता भी आनन्दित हो यत्नपूर्वक कथा कहता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ हे पृथ्वीन्द्र ! पूर्वकालमें वृत्रासुर और

इन्द्रका जो युद्ध हुआ था और इन्द्रने विश्वकर्म्माके पुत्रको मारकर जो दुःख पायाथा वह वेद और पुराणमें भलीभाँति वर्णित है ॥ २१ ॥ हे राजन्! जब मायाके बलसे मोहित हो मुनिगण पापका भय करके भी निन्दित कर्म्म करते हैं तो विष्णु और इन्द्रने जो छलसे त्रिशिरा और वृत्रासुरको मारा फिर विचित्रता हो क्या है ॥ २२ ॥ विष्णु सत्वमूर्ति होकर भी जब मायासे मोहित हो सर्वदाही कपटचतुरता दिखाय दैत्यगणोंको मारते हैं तब कौन उस सर्वजनमोहकारिणी मायास्वरूपिणी भगवती भवानीको मनसे भी जीतनेमें समर्थ है ॥ २३ ॥ हे नृप! इस मायाके संयोगसे भगवान् अनन्तस्वरूप नरसखा नारायण सहस्र युगमें मत्स्यादि योनिमें इस संसारके बीच उत्पन्न होकर कभी विहित और कभी अविहित कर्म करते हैं ॥ २४ ॥ देवता और मनुष्य सब जीवगण मायाद्वारा विकल और विह्वल होनेसे

चित्रंकिमत्रनृपतेहरिवज्रभृद्भ्यांयच्छद्मनाविनिहतास्त्रिशिरोऽथवृत्रः ॥ मायाबलेनमुनयोऽपिविमोहितास्तेचक्रुश्चनिंद्यमनिशंकिलपापभीताः ॥ २२ ॥
विष्णुःसदैवकपटेनजघानदैत्यान्सत्त्वात्ममूर्तिरपिमोहमवाप्यकामम् ॥ कोन्योऽस्तितांभगवतींमनसापिजेतुंशक्तःसमस्तजनमोहकरींभवानीम् ॥ २३ ॥
मत्स्यादियोनिषुसहस्रयुगेषुसद्यःसाक्षाद्भवत्यपिययाविनियोजितोऽत्र ॥ नारायणोनरसखोभगवाननंतःकार्यंकरोतिविहिताविहितंकदाचित् ॥ २४ ॥
देहंधनंगृहमिदंस्वजनामदीयंपुत्राःकलत्रमितिमोहमुपेत्यसर्वः ॥ पुण्यंकरोत्यथचपापचयंकरोतिमायागुणैरतिबलैर्विकलीकृतोयत् ॥ २५ ॥ नजातुमोहंक्षपितुंनरःक्षमःकश्चिद्भवेद्भूपपरावरार्थवित् ॥ विमोहितस्तैस्त्रिभिरेवमूलतोवशीकृतात्माजगतीतलेभृशम् ॥ २६ ॥ अथतौमाययाविष्णुवासवौमोहितौभृशम् ॥ जघ्नतुश्छद्मनावृत्रंस्वार्थसाधनतत्परौ ॥ २७ ॥ तदहंसंप्रवक्ष्यामिवृत्तांतमवनीपते ॥ कारणंपूर्ववैरस्यवृत्रवासवयोर्मिथः ॥ २८ ॥ त्वष्टाप्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठोमहातपाः ॥ देवानांकार्यकर्ताचनिपुणोब्राह्मणप्रियः ॥ २९ ॥

देह, धन, गृह, पुत्र, कलत्र और स्वजन "यह सब मेरे हैं" इसप्रकार मोहको प्राप्त हो कभी पुण्य और कभी पापकर्म करते हैं ॥ २५ ॥ हे महाराज! इस प्रकार पृथ्वीवासमें कोई कार्य और कारणवित् पुरुष मोहसे छुटकारा पानेमें समर्थ नहीं होता वह पहलेही मायाके तीनों गुणोंसे मोहित हो उसीके वशीभूत होता है ॥ २६ ॥ अतएव उन विष्णु और इन्द्र दोनोंने ही मायासे मोहित और स्वार्थसाधनमें तत्पर हो छलपूर्वक वृत्रासुरको मारा था ॥ २७ ॥ हे राजन्! मैं यह वृत्तान्त और वृत्रासुर तथा इन्द्रकी परस्पर शत्रुताका कारण आपसे कहता हूं सुनो ॥ २८ ॥ देवप्रवर विश्वकर्मा प्रजापति महातपस्वी ब्राह्मणोंके अत्यन्तप्रिय और देवतागणोंके चतुर

शिल्पकार थे ॥ २९ ॥ उन्होंने इन्द्रके प्रति विद्वेषके कारण परमरूपवान् त्रिशिराविश्वरूप नामक एक पुत्र उत्पन्न किया था ॥ ३० ॥ उस पुत्रके परमसुन्दर तथा मनोहर तीन मुख थे विश्वरूप इन तीनोंसे पृथक् पृथक् मुखसे भिन्न २ कार्य निर्वाह करते ॥ ३१ ॥ उनमें एकसे वेद पढ़ते, एकसे सुरापान और अन्यसे सब दिशाओंको देखते ॥ ३२ ॥ मुनिवर त्रिशिरा मृदु चतुर और धर्मशील हो विषयवासना त्यागकर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ३३ ॥ वे ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्नि तापते और वृक्षके ऊपर पैर बांध अधोमुख होकर स्थिति और हेमन्त शिशिर तथा शीतके समय जलमें वास करते ॥ ३४ ॥ इसप्रकार आहार त्याग और आत्माको जीतकर सब विषयसंगपरित्यागपूर्वक मन्दबुद्धियोंको दुष्कर ऐसी कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ३५ ॥ शचीपति उनको इसप्रकार तपस्या करते देखकर अत्यन्त खेद और विषादको प्राप्त हुए और जिससे वे इन्द्रपदलाभ करसके इसप्रकारकी इच्छा करने लगे ॥ ३६ ॥ पाकशासन इन्द्र उस अमिततेजा तपस्वीका तपोवीर्य

सपुत्रंवैत्रिशिरसमिंद्रद्वेषात्किलाऽसृजत् ॥ विश्वरूपेतिविख्यातंनाम्नारूपेणमोहनम् ॥ ३० ॥ त्रिभिःसवदनैःश्रेष्ठैर्व्यरोचतमनोहरैः ॥ त्रिभिर्भिन्नानिकार्याणिमुखैःसमकरोन्मुनिः ॥ ३१ ॥ वेदानेकेनसोधीतेसुरांचैकेनसोऽपिबत् ॥ तृतीयेनदिशःसर्वायुगपच्चनिरीक्षते ॥ ३२ ॥ त्रिशिराभोगमुत्सृज्यतपश्चक्रेसुदुष्करम् ॥ तपस्वीसमृदुर्दांतोधर्ममेवसमाश्रितः ॥ ३३ ॥ पंचाग्निसाधनंकालेपादपाग्रेनिवेशनम् ॥ जलमध्येनिवासंचहेमंतेशिशिरेतथा ॥ ३४ ॥ निराहारोजितात्माऽसौत्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ तपश्चचारमेधावीदुष्करंमंदबुद्धिभिः ॥ ३५ ॥ तंचदृष्ट्वातपस्यंतंखेदमापशचीपतिः ॥ विषादमगमत्तत्रशक्रोऽयंमास्मभूदिति ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वातस्यतपोवीर्यंसत्यंचामिततेजसः ॥ चिंतांचमहतींप्रापद्यनिशंपाकशासनः ॥ ३७ ॥ विवर्धमानस्त्रिशिरामामयंशातयिष्यति ॥ नोपेक्ष्यःसर्वथाशत्रुर्वर्धमानबलोबुधैः ॥ ३८ ॥ तस्मादुपायःकर्तव्यस्तपोनाशायसांप्रतम् ॥ कामस्तुतपसांशत्रुःकामान्नश्यतिवैतपः ॥ ३९ ॥ तथैवाऽद्यप्रकर्तव्यंभोगासक्तोभवेद्यथा ॥ इतिसंचिंत्यमनसाबुद्धिमान्बलमर्दनः ॥ ४० ॥ आज्ञापयत्सोप्सरसस्त्वष्टृपुत्रप्रलोभने ॥ उर्वशींमेनकांरंभांघृताचींचतिलोत्तमाम् ॥ ४१ ॥ समाहूयाऽब्रवीच्छक्रस्तास्तदारूपगर्विताः ॥ प्रियंकुरुध्वंमेसर्वाःकार्येऽद्यसमुपस्थिते ॥ ४२ ॥

और स्थिर अनुराग देखकर अत्यन्त चिन्ता करने लगे ॥ ३७ ॥ कि त्रिशिरा तपोबलसे दिन दिन बलवान् होता है अतएव यह मुझको मारसकेगा क्योंकि जिस शत्रुका बल दिन दिन बढ़ता है पंडितगण कभी उसकी उपेक्षा नहीं करते ॥ ३८ ॥ अतएव इस समय इसकी तपस्याके विनाशका उपाय करना मुझको अवश्य कर्तव्य है. इसप्रकार चिन्ता कर निश्चित किया कि, कामही तपस्याका शत्रु है कामसेही तपस्याका नाश होता है ॥ ३९ ॥ अतएव वे जिसमें भोगासक्त हो मुझको वही करना उचित है. बुद्धिमान् इन्द्रने इसप्रकार चिन्ता कर ॥ ४० ॥ विश्वकर्माके पुत्र त्रिशिराको लुभानेके लिये उर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची और तिलोत्तमा इत्यादि रूपगर्वित अप्सरागणोंको बुलाकर कहा ॥ ४१ ॥ हे अप्सरागणो ! इस समय मेरा एक भारी कार्य्य उपस्थितहुआ है तुम इस विषयमें मेरा प्रिय कार्य साधन करो ॥ ४२ ॥

इस समय मेरा एक दुर्ज्जय महान् शत्रु प्रगट हो तपस्या करता है तुम विलम्ब न करके शीघ्र जाय कार्य्यसाधनका यत्न करो ॥ ४३ ॥ तुम शृङ्गारवेश धारण कर देहसे हावभावादि अनेक चेष्टासे उसको लुभाओ तुम्हारा मंगल हो तुम उसको लुभाकर मेरे हृदयका ज्वर दूर करो॥ ४४ ॥हे अप्सरागणो ! अधिक और क्या कहूं मैं उसका तपोवल जानकर किसीप्रकारसेही स्वाथ्यलाभ नहीं करसक्ता. हे अवलागणो ! वह बलवान् तपस्वी शीघ्रही मेरा आसन ग्रहण करेगा ॥ ४५॥ मुझको यही भय उपस्थित हुआ है. अतएव तुम शीघ्रही वह भय दूर करो इस समय यह कार्य्य उपस्थित है तुम सब मिलकर हमारा उपकार करो ॥ ४६॥ अप्सरागण उनका यह वचन सुन प्रणामपूर्व्वक कहने लगीं हे देवेश्वर ! आप भय न कीजिये, हम उस तपस्वीके लुभानेको भलीभाँति यत्न करेंगी ॥ ४७॥ हे महाद्युते ! उस मुनिको लुभानेके निमित्त

यत्तामेद्येमहाञ्छत्रुस्तपस्तपतिदुर्जयः ॥ कार्यंकुरुतगच्छध्वंप्रलोभयतमाचिरम् ॥ ४३ ॥ शृंगारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः ॥ प्रलोभयतभद्रंवःशमयध्वं ज्वरंमम॥४४॥अस्वस्थोऽहंमहाभागास्तस्यज्ञात्वातपोवलम् ॥ बलवानासनंमेऽद्यग्रहीष्यत्यविलंबितः ॥४५॥ भयंमेसमुपायातंक्षिप्रंनाशयताऽबलाः ॥ उपकुर्वंतुसहिताःकार्येऽद्यसमुपस्थिते॥४६॥तच्छ्रुत्वावचनंनार्यऊचुस्तंप्रणताःपुरः ॥ माभयंकुरुदेवेशयतिष्यामःप्रलोभने ॥४७॥ यथानस्याद्भयंतस्मा त्तथाकार्यंमहाद्युते॥ नृत्यगीतविहारैश्चमुनेस्तस्यप्रलोभने॥४८॥कटाक्षैरंगभेदैश्चमोहयित्वामुनिंविभो॥लोलुपंवशमस्माकंकरिष्यामोनियंत्रितम्॥४९॥ व्यासउवाच ॥ इत्याभाष्यहरिंनार्योययुस्त्रिशिरसोंतिकम् ॥ कुर्वंत्योविविधान्भावान्कामशास्त्रोचितानपि ॥५०॥ गायंत्यस्तालभेदैस्तान्नृत्यंत्यःपुरतो मुनेः ॥ तंप्रलोभयितुंचक्रुर्नानाभावान्वरांगनाः ॥ ५१ ॥ नाऽपश्यत्ससतपोराशिरंगनानांविडंबनम् ॥ इंद्रियाणिवशेकृत्वामूकांधबधिरःस्थितः ॥ ५२ ॥ दिनानिकतिचित्तस्थुर्नार्यस्तस्याऽऽश्रमेवरे ॥ कुर्वंत्योगाननृत्यादिप्रपंचानतिमोहदान् ॥ ५३ ॥

नृत्य गीत और विहारादि कर जिससे आपका भय दूर हो हम वही करेंगी॥ ४८ ॥हे देवराज ! उस मुनिको कटाक्ष अंगभंग और द्वारा मोहित चलायमान चित्त तथा नियन्त्रित कर अपने वशीभूत करेंगी ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! अप्सरागण देवराज इन्द्रसे यह कह त्रिशिराके पास गई और कामशास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार हावभाव प्रकाश करने लगीं ॥ ५० ॥ वे मुनिके सामने कभी गान तथा कभी भिन्न भिन्न तालसहित नृत्य करने लगीं बहुत क्या वे देवताओंकी स्त्रियें उन मुनिको लुभानेके निमित्त अनेक प्रकारके हावभाव प्रकाश करने लगीं ॥ ५१ ॥ किन्तु तपःप्रभावयुक्त उन महर्षि त्रिशिराने अङ्गनागणोंकी अङ्गभङ्गरूप विडम्बनाको देखा भी नहीं वरन् वह इन्द्रियगणोंको वशीभूत कर गूँगे अन्धे और बहरेकी समान स्थिति करने लगे ॥ ५२ ॥ अङ्गनागणोंने मुनिके उस मनोहर आश्रममें अत्यन्त

मनको मोहित करनेवाले संगीत और नृत्यादि अनेक प्रकारकी कामकला फैलाकर कुछ दिनतक वहां वास किया ॥ ५३ ॥ किन्तु जब वह त्रिशिरामुनि कुछभी ध्यानसे विचलित न हुए तब अप्सरागण ॥ ५४ ॥ विश्रान्त (थककर) दीनभावयुक्त हो लौटकर इन्द्रके सामने उपस्थित हुईं और सबही भयसे त्रसित हो हाथ जोड़कर कहने लगीं ॥ ५५ ॥ महाराज! हमने अत्यन्त यत्न किया किन्तु किसीसे भी उन दुर्धर्ष मुनिवरको ध्यानसे न छुटासकीं ॥ ५६ ॥ हे पाकशासन! इस समय आप दूसरा उपाय कीजिये उस जितेन्द्रिय तपस्वीके ध्यानच्युत करनेमें हम समर्थ न हुईं ॥ ५७ ॥ हमारे भाग्यसेही अग्निकी समान तपःप्रभावयुक्त उन मुनिवरने हमको शाप न दिया ॥ ५८ ॥ अनन्तर अप्सरागणोंको विदा कर मन्दबुद्धि पापमति इन्द्र अत्यन्त अन्याय होनेपरभी उस मुनिके मारनेकी इच्छा करने

नचचालयदाकामंध्यानाच्चत्रिशिरामुनिः ॥ परावृत्त्यतदादेव्यःपुनःशक्रमुपस्थिताः ॥ ५४ ॥ कृतांजलिपुटाःसर्वादेवराजमथाऽब्रुवन् ॥ श्रांतादीनाभय त्रस्ताविवर्णवदनाभृशम् ॥ ५५ ॥ देवदेवमहाराजयत्नश्चपरमःकृतः ॥ नसशक्योदुराधर्षोधैर्याच्चालयितुंविभो ॥ ५६ ॥ उपायोऽन्यःप्रकर्तव्यःसर्वथा पाकशासन ॥ नाऽस्माकंबलमेतस्मिंस्तापसेविजितेंद्रिये ॥५७॥ दिष्ट्यावयंनशप्ताःस्मयदनेनमहात्मना॥मुनिनावह्नितुल्येनतपसाद्योतितेनहि ॥५८॥ विसृज्याऽप्सरसःशक्रश्चिंतयामाससमंदधीः ॥ तस्यैवचवधोपायंपापबुद्धिरसांप्रतम् ॥ ५९ ॥ विसृज्यलोकलज्जांसतथापापभयंभृशम् ॥ चकारपापबुद्धिं तुतद्वधायमहीपते ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥छ॥ व्यासउवाच ॥ अथसलोभमुपेत्यसुराधिपःसमधिगम्य गजासनसंस्थितः ॥ त्रिशिरसंप्रतिदुष्टमतिस्तदामुनिमपश्यदमेयपराक्रमम् ॥१॥ तमभिवीक्ष्यदृढासनसंस्थितंजितगिरंसुसमाधिवशंगतम् ॥ रविविभा वसुसन्निभमोजसासुरपतिःपरमापदमभ्यगात् ॥ २ ॥ कथमसौविनिहंतुमहोमयामुनिरपापमतिःकिलसंमतः ॥ रिपुरयंसुसमिद्धतपोबलःकथमुपेक्ष्यइहा ऽऽसनकामुकः ॥ ३ ॥

लगे ॥ ५९ ॥ हे महाराज! उन अमरराज इन्द्रने लोकलज्जा और पापभय विसर्ज्जनकर उनको मारनेके निमित्त अतिनिन्दित पापबुद्धि स्थिर की ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! अनन्तर सुरपति इन्द्रने त्रिशिराके मारनेका संकल्प कर ऐरावतके ऊपर चढ उन अमितपराक्रम मुनिवरके सामने जाय देखा कि ॥ १ ॥ वह मुनिवर वाक्यसंयतकर दृढ आसनपर विराजमान रहकर एकाग्रचित्तसे समाधि कर रहे हैं तिसकाल उनके शरीरसे इसप्रकार तेज निकल रहा था कि, वह सूर्य्य और अग्निकी समान बोध होते थे. इन्द्र त्रिशिराको इसप्रकार देखकर अत्यन्त खेद और विषादको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ तब उन्होंने विचारा कि, यह निर्म्मलचित्त मुनिवर प्रदीप्त तपोबलयुक्त हैं, मैंने इनको मारनेकी इच्छाकी यह अत्यन्त

धर्म्मविरुद्ध है, किन्तु यह मेरा सिंहासन ग्रहण करनेके अभिलाषी हुए हैं अतएव किसप्रकार ऐसे शत्रुकी उपेक्षा करूं ? ॥ ३ ॥ देवराज इन्द्रने इस प्रकार विचार कर स्वयं उस तपस्यामें बैठे चन्द्र और सूर्यकी समान दीपमान मुनिवर त्रिशिराके प्रति शीघ्रगामी अपना अमोघ अस्त्र वज्रनिक्षेप किया ॥ ४ ॥ तब पर्वतका विशालशिखर वज्रसे आहत होकर जिसप्रकार पृथ्वीमें गिरता है इसीप्रकार तपस्वीप्रवर त्रिशिरा भी वज्रसे आहत हो पृथ्वीमें गिरपड़े और तत्काल प्राणत्याग किया ॥ ५ ॥ इन्द्र उनको मारकर अत्यन्त प्रसन्न हुए किन्तु वहां बैठे मुनिगण " हा हतोस्मि " हाय क्या हुआ ? यह कह आर्तस्वरसे शब्द कर उठे और ऊंचे स्वरसे कहने लगे हाय पापमति ! इन्द्रने आज क्या दुष्कर्म किया ॥ ६ ॥ हाय दुरात्मा पापमति शचीपतिने विना अपराध इन तपोनिधि मुनिवरको मारा ? अतएव यह

इतिविचिंत्यपविंपरमायुधंप्रतिमुमोचमुनिंतपसिस्थितम् ॥ शशिदिवाकरसन्निभमाशुगंत्रिशिरसंसुरसंघपतिःस्वयम् ॥ ४ ॥ तदभिघातहतःसधरातले किलपपातममारचतापसः ॥ शिखरिणःशिखरंकुलिशार्दितंनिपतितंभुविवाऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ तंनिहत्यमुदमापसुरेशश्चुक्रुशुश्चमुनयस्तुसंस्थिताः ॥ हाहतेतिभृशमार्तनिःस्वनाःकिंकृतंशतमखेनपापिना ॥ ६ ॥ विनापराधंतपसांनिधिर्हतःशचीपतिःपापमतिर्दुरात्मा ॥ फलंकिलाऽयंतरसाकृतस्यप्राप्नोतुपापीहननोद्भवस्य ॥ ७ ॥ तंनिहत्यतरसासुरराजोनिर्जगामनिजमंदिरमाशु ॥ सहतोऽपिविरराजमहात्माजीवमानइवतेजसांनिधिः॥ ॥ ८ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौजीवंतमिववृत्रहा ॥ चिंतामापाऽतिखिन्नांगःकिंवाजीवेदयंपुनः ॥ ९ ॥ विमृश्यमनसाऽतीवतक्षाणंपुरतःस्थितम् ॥ मघवावीक्ष्यतंप्राहस्वकार्यसदृशंवचः ॥ १० ॥ तक्षंश्छिंधिशिरांस्यस्यकुरुष्ववचनंमम ॥ माजीवतुमहातेजाभातिजीवन्निवस्वयम् ॥ ११ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यतक्षोवाचविगर्हयन् ॥ तक्षोवाच ॥ महास्कंधोभृशंभातिपरशुर्नतरिष्यति ॥ १२ ॥

पापात्मा मुनिके हत्याजनित पाप फलको शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ ७ ॥ अनन्तर देवराजइन्द्र उनको मारकर शीघ्र अपने स्थानको चलेगये इधर वह महात्मा तपोनिधि हत होकर भी अपने शरीरकी प्रभासे जीवितकी समान स्थिति करने लगे ॥ ८ ॥ तब वृत्रासुरके नाश करनेवाले इन्द्र उनको जीवितकी समान पड़ाहुआ देखकर " यह मुनिवर जीवित होसक्ते हैं " इसप्रकार चिन्ता कर अत्यन्त दुःखसे सन्तापित होने लगे ॥ ९ ॥ फिर मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता कर सामने खड़े काष्ठच्छेदक तक्षासे स्वार्थसाधनके अनुरूप वचन कहने लगे ॥ १० ॥ हे शिल्पवर ! तुम इनका मस्तक काटकर मेरा वचन प्रतिपालन करो यह महातेजा महर्षि जीवितकी समान बोध होते हैं अतएव जब तुम उनका मस्तक काटडालोगे तब यह जीवित नहीं हो सकेंगे ॥ ११ ॥ तब तक्षाने इन्द्रका यह वचन सुन उस कार्यकी निन्दा कर उनसे

कहा तक्षा बोले हे देवराज ! इन मुनिवरका कण्ठ अत्यन्त स्थूल है अतएव अच्छेद्य है मेरा यह कुठार उनका मस्तक छेदन करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ १२ ॥ विशेष कर यह नीचकार्य नहीं करूंगा आपने गणोंके पक्षमें जो अत्यन्त नीच है वह अधर्म कार्य किया है ॥ १३ ॥ किन्तु मैं पापका भय करता हूं अतएव इन मरेहुए मुनिवरके अंगमें फिर आघात नहीं करूंगा यह मुनि मरेहुए पड़े हैं इनके मस्तक काटनेका क्या प्रयोजन है ? ॥१४॥ हे पाकशासन ! इस विषयमें आपके भयका क्या कारण है सो कहो ? इन्द्रने कहा हे शिल्पवर ! यह मुनि हमारे परम शत्रु हैं इनकादेह इस समय जीवितकी समान प्रभावयुक्त बोध होता है ॥ १५ ॥ अतएव यह फिर जीवित होजायँगे मैं इसी कारण डरता हूं तक्षाने कहा आप सब विषयको जानकर भी इस नृशंस कर्म्म करनेमें क्या लज्जाबोध नहीं करते ? ॥ १६ ॥ इन ऋषि पुत्रकोमारकर ब्रह्महत्याका भय नहीं करते ? इन्द्रने कहा मैं पाप दूर करनेके निमित्त फिर प्रायश्चित्त करूंगा ॥ १७॥ किन्तु इस समय इस शत्रुका मारना मुझको अवश्य

ततोनाहंकरिष्यामिकार्यमेतद्विगर्हितम् ॥ त्वयावैनिंदितंकर्मकृतंसाद्विर्विगर्हितम् ॥ १३ ॥ अहंबिभेमिपापाद्वैमृतस्यैवचमारणे ॥ मृतोयंमुनिरस्त्येवाशिर सःकृंतनेनकिम्॥ १४॥भयंकिंतेऽत्रसंजातंपाकशासनकथ्यताम् ॥ इंद्रउवाच ॥ सजीवइवदेहोऽयमाभातिविशदाकृतिः ॥१५॥ तस्माद्बिभेमिमाजीवेन्मु निःशत्रुरयंमम ॥ तक्षोवाच ॥ नाऽत्रकिंत्रपसेविद्वन्क्रूरेणाऽनेनकर्मणा ॥१६॥ ऋषिपुत्रमिमंहत्वाब्रह्महत्याभयंनकिम् ॥ इंद्रउवाच ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्या मिपश्चात्पापक्षयायवै ॥१७॥शत्रुस्तुसर्वथावध्यश्छलेनाऽपिमहामते ॥ तक्षोवाच ॥ त्वंलोभाभिहतःपापंकरोषिमघवन्निह ॥ १८ ॥ तंविनाऽहंकथंपापंक रोमिवदमेविभो ॥ इंद्रउवाच ॥ मखेषुखलुभागंतेकरिष्यामिसदैवहि ॥ १९ ॥ शिरःपशोस्तुतेभागंयज्ञेदास्यंतिमानवाः ॥ शुल्केनाऽनेनछिंधित्वंशिरां स्यस्यकुरुप्रियम् ॥२०॥ व्यासउवाच ॥ एतच्छ्रुत्वामहेंद्रस्यवचस्तक्षामुदान्वितः ॥ कुठारेणशिरांस्यस्यचकर्तसुदृढेनहि॥२१॥छिन्नानित्रीणिशीर्षाणि पतितानियदाभुवि॥तेभ्यस्तुपक्षिणःक्षिप्रंविनिष्पेतुःसहस्रशः॥२२॥कलविंकास्तित्तिरयस्तथैवचकपिंजलाः॥पृथक्पृथग्विनिष्पेतुर्मुखतस्तरसातदा २३॥

है. हे महामते ! नीतिके जाननेवाले पंडितगण कहते हैं कि, छलकरके भी सर्वप्रकार शत्रुको मारना. तब तक्षाने इन्द्रका यह वचन सुनकर कहा हे मघवन् ! आपने लोभके वशीभूत होकर यह पापकार्य किया है ॥ १८ ॥ किन्तु हे विभो ! मुझको लोभका कारण कुछ नहीं है. अतएव उसके विना मैं किसप्रकार इस पापकार्य्यके करनेमें प्रवृत्त हूं. इन्द्रने कहा हे तक्षन् ! मैं यज्ञस्थलमें तुम्हारा भाग दूंगा ॥१९॥ मनुष्योंके यज्ञमें दिया हुआ पशुका मस्तक सदा तुमको दूंगा अब तुम इस नियमा नुसार इनका मस्तक काटकर मेरा प्रियकार्य्य करो ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह तक्षा इन्द्रका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुआ और दृढ कुठारसे इन मुनिके सब मस्तक काटडाले ॥२१॥ हे महाराज ! उनके तीनों मस्तक काटकर पृथिवीमें गिरपड़े उनसे हजारों पक्षी वेगसहित निकलने लगे ॥२२॥ कलविङ्क, तित्तिर और

कपिञ्जल यह तीन प्रकारके पक्षी पृथक् पृथक् मुखसे पृथक् पृथक् रूपमें शीघ्रही निकलने लगे ॥ २३ ॥ हे नृपवर! वह तीव्रतेजा मुनिवर जिस मुखसे वेदाध्ययन और सोमपान करते हैं उनसे सब कपिञ्जल पक्षी ॥ २४ ॥ और जिसमुखसे दिशाओंको पान करनेकी समान देखते उससे सब तित्तिरपक्षी ॥ २५ ॥ तथा जिससे सुरापान करते उससे सब कैलविङ्कपक्षी[1] निकलने लगे ॥ २६ ॥ देवराज इन्द्र पक्षिगणोंको उनके मुखविवरसे निकलता हुआ देखकर मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए और तत्काल स्वर्गमें गमन किया ॥ २७ ॥ हे महाराज! इन्द्रके अपने नगरमें जानेपर तक्षाभी शीघ्र अपने घरको चलागया और यज्ञका भाग प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ २८ ॥ देवराज इंद्र शत्रुको मारकर अपने घर जायकर अपनेको कृतार्थ जानने लगे किन्तु ब्रह्महत्याके विषयमें कुछ चिन्ता न की ॥ २९ ॥ अनन्तर विश्वकर्माने सुना कि, मेरा

येनवेदानधीतेस्मसोमंचपिबतेतथा ॥ तस्माद्वक्त्रात्किलोत्पेतुःसद्यएवकपिंजलाः ॥ २४ ॥ येनसर्वादिशःकामंपिबन्निवनिरीक्षते ॥ तस्मात्तुतित्तिरास्तत्रनिःसृतास्तिग्मतेजसः ॥२५॥ यत्सुरापंतुतद्वक्त्रंतस्माच्चुचटकाःकिल ॥ विनिष्पेतुस्त्रिशिरसएवंतेविहगानृप॥२६॥एवंविनिःसृतान्दृष्ट्वातेभ्यःशक्रस्तदांऽजान्॥मुमोदमनसाराजञ्जगामात्रिदिवंपुनः ॥२७॥ गतेशक्रेतुतक्षाऽपिस्वगृहंतरसाययौ ॥ यज्ञभागंपरंलब्ध्वामुदमापमहीपते ॥२८॥ इंद्रोऽथस्वगृहंगत्वाहत्वाशत्रुंमहाबलम् ॥ मेनेकृतार्थमात्मानंब्रह्महत्यामचिंतयन् ॥ २९ ॥ तंश्रुत्वानिहतंत्वष्टापुत्रंपरमधार्मिकम् ॥ चुकोपाऽतीवमनसावचनंचेदमब्रवीत् ॥३०॥ अनागसंमुनिंयस्मात्पुत्रंनिहतवान्मम ॥ तस्मादुत्पादयिष्यामितद्वधार्थंसुतंपुनः ॥ ३१ ॥ सुराःपश्यंतुमेवीर्यंतपसश्चबलंतथा॥जानातुसर्वंपापात्मास्वकृतस्यफलंमहत् ॥३२॥ इत्युक्त्वाऽग्निंजुहावाऽथमंत्रैराथर्वणोदितैः ॥ पुत्रस्योत्पादनार्थायत्वष्टाक्रोधसमाकुलः ॥३३॥ कृतेहोमेऽष्टरात्रंतुसंदाताञ्चविभावसोः ॥ प्रादुर्बभूवतरसापुरुषःपावकोपमः ॥ ३४ ॥ तंदृष्ट्वाऽग्रेसुतंत्वष्टातेजोबलसमन्वितम् ॥ वेगात्प्रकटितंवह्नेर्दीप्यमानमिवानलम् ॥३५॥ उवाचवचनंत्वष्टासुतंवीक्ष्यपुरःस्थितम् ॥ इंद्रशत्रोविवर्धस्वप्रतापात्तपसोमम ॥ ३६ ॥

परम धार्मिक पुत्र मरा है तब वह मनमें अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे कि ॥ ३० ॥ जब इन्द्रने मेरे गुणवान् और तपस्यामें निरत पुत्रको निरपराध मारा है, तब मैं उसके मारनेको फिर दूसरा पुत्र उत्पन्न करूंगा ॥ ३१ ॥ देवतागण मेरा वीर्य और तपकाबल देखें और वह दुरात्मा इन्द्र भी अपने किये हुए कार्यका महत् फल अनुभव करै ॥ ३२ ॥ विश्वकर्मा यह कह क्रोधसे अत्यन्त आकुल हुए और अथर्ववेदमें कहे हुए विधानानुसार पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त अग्निमें होम करने लगे ॥ ३३ ॥ आठ रात्रि होम करनेपर उस जलती हुई अग्निसे दूसरे अग्निके समान दीप्तिमान् एक पुरुष शीघ्र प्रगट हुआ ॥ ३४ ॥ विश्वकर्माने अनलसे निकले हुए तेज और बलसे युक्त दीप्यमान अग्निके समान ॥ ३५ ॥ उस पुत्रको सामने देखकर कहा हे इन्द्रशत्रो! तुम मेरे तपोबलसे वर्धित होओ ॥ ३६ ॥

---

१ गौरैया ।

विश्वकर्माके क्रोधसे प्रज्वलित हो यह वचन कहनेपर अग्निकी समान दीप्तिशाली वह पुत्र आकाशमण्डलस्तब्ध करता हुआ बढ़ने लगा ॥ ३७॥ क्षणकालमें ही वह पुरुष कालान्तक शमनकी समान पर्वताकार हो अपने तेजसे स्थिति करने लगा और अत्यन्त कातर हुए अपने पिता विश्वकर्मासे कहा ॥ ३८॥ हे प्रभो ! आप मेरा नामकरण कीजिये. हे तात ! मैं आपका क्या कार्य साधन करूं ? आप किसीनिमित्त चिन्तातुर और शोकातुर हुए हैं इसका सब कारण कहिये ॥ ३९ ॥ मैं आपका शोक दूर करूंगा. यह मेरा इस समय निश्चित विषय है. हे पितः ! जो पुत्र पिताका दुःख दूर करनेमें समर्थ नहीं होता उस पुत्रके उत्पन्न होनेका क्या फल है ॥४०॥ हे पितः ! मैं इस समय सब सागर पान करूंगा, समस्त पर्वत चूर्णकर डालूंगा, उदयशील तेजस्वी सूर्यको निवारण करूंगा ॥ ४१ ॥ अथवा सब देवतागणोंके सहित इन्द्रको यमको

इत्युक्तेवचनेत्वष्ट्राक्रोधप्रज्वलितेनच ॥ सोऽवर्धतदिवंस्तब्ध्वावैश्वानरसमद्युतिः ॥ ३७ ॥ जातःसपर्वताकारःकालमृत्युसमःस्वराट् ॥ किंकरोमीतितंप्राह पितरंपरमातुरम् ॥ ३८ ॥ कुरुमेनामकंनाथकार्यंकथयसुव्रत ॥ चिंतातुरोऽसिकस्मात्त्वंब्रूहिमेशोककारणम् ॥ ३९ ॥ नाशयाम्यद्यतेशोकमितिमेव्रतमा हितम् ॥ तेनजातेनकिंभूयःपिताभवतिदुःखितः ॥ ४० ॥ पिबामिसागरंसद्यश्चूर्णयामिधराधरान् ॥ उद्यंतंवारयाम्यद्यतरणिंतिग्मतेजसम् ॥ ४१ ॥ ह न्मींद्रंससुरंसद्योयमंवादेवतांतरम् ॥ क्षिपामिसागरेसर्वान्समुत्पाट्यचमेदिनीम् ॥ ४२ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यत्वष्टापुत्रस्यपेशलम् ॥ प्रत्युवाचाऽतिमुदि तस्तंसुतंपर्वतोपमम् ॥ ४३ ॥ वृजिनात्त्रातुमधुनायस्माच्छक्तोऽसिपुत्रक ॥ तस्माद्वृत्रइतिख्यातंतवनामभविष्यति ॥ ४४ ॥ भ्रातातवमहाभागत्रिशिरा नामतापसः ॥ त्रीणितस्यचशीर्षाणिह्यभवन्वीर्यवंतिच ॥ ४५ ॥ वेदवेदांगतत्त्वज्ञःसर्वविद्याविशारदः ॥ संस्थितस्तपसिप्रायस्त्रिलोकीविस्मयप्रदे ॥४६॥

वा अन्य जो कोई देवता हो उसका विनाश करूंगा और पृथ्वीको उखाड़कर सब जीवगणोंको समुद्रके जलमें डुबा दूंगा ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! विश्वकर्माने उस पुत्रके इसप्रकार मनोहर वचन सुनकर प्रसन्न हो उस पर्वतोपम पुत्रसे कहा ॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! तुम इस समय वृजिन अर्थात् दुःखसे रक्षा करनेमें समर्थ हो उसीकारण तुम वृत्रनामसे विख्यात होंगे ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे भ्राता त्रिशिरानामक तपस्वी थे उनके तीनों मस्तक वीर्यवान् अर्थात् उत्तम कर्म करनेमें समर्थ थे॥ ४५॥ वह वेद और वेदांगशास्त्रका तत्व जाननेवाले और सर्वविद्याविशारद हो सदाही त्रिलोककी आश्चर्ययुक्त तपस्यामें निरत रहते थे ॥ ४६ ॥

इन्द्रने हमारे उसी गुणवान् पुत्रको वज्रसे मारा है उस पापात्मा इन्द्रने विना अपराधही उसके तीनों मस्तक काट डाले ॥ ४७ ॥ अतएव हे पुरुष श्रेष्ठ ! तुम उस अपराध करनेवाले ब्रह्महत्याके पापसे युक्त पापस्वरूप निर्लज्ज शठ और दुष्टमति इन्द्रका संहार करो ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! पुत्रशोकसे व्याकुल विश्वकर्माने इसप्रकार कह अनेकप्रकारके सब दिव्य आयुध उत्पन्न किये ॥ ४९ ॥ उन्होंने इन्द्रके मारनेको विशेष कार्यमें समर्थ उत्तम उत्तम खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमरादि ॥ ५० ॥ और शार्ङ्गधनुष, वाण, परिघ, पट्टिश, सुदर्शनकी समान प्रभायुक्त सहस्र आरेवाला दिव्यचक्र ॥ ५१ ॥ दिव्य अक्षय दो तरकस, सुन्दर कवच, मेघकी समान प्रभायुक्त दृढ़वायुके समान वेगवान् रथ यह सम्पूर्ण निर्माण करके पुत्रको दिये ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! क्रोधयुक्त शिल्पवर विश्वकर्माने इसप्रकार युद्धकी सब सामग्री बनाय वह सब

शक्रेणतुहतःसोऽद्यवज्रपातेनसांप्रतम् ॥ विनाऽपराधंसहसाछिन्नानिमस्तकानिच ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वंपुरुषव्याघ्रजहिशक्रंकृतागसम् ॥ ब्रह्महत्यायुतंपापंनिस्त्रपंदुर्मतिंशठम् ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वाचतदात्वष्टापुत्रशोकसमाकुलः ॥ आयुधानिचदिव्यानिचकारविविधानिच ॥ ४९ ॥ ददावस्मैसहस्राक्षवधाय प्रबलानिच ॥ खड्गशूलगदाशक्तितोमरप्रमुखानिवै ॥ ५० ॥ शार्ङ्गंधनुस्तथाबाणंपरिघंपट्टिशंतथा ॥ चक्रंदिव्यंसहस्रारंसुदर्शनसमप्रभम् ॥ ५१ ॥ तूणीरौचाक्षयौदिव्यौकवचंचाऽतिसुंदरम् ॥ रथंमेघप्रतीकाशंदृढंभारसहंजवम् ॥ ५२ ॥ युद्धोपकरणंसर्वंकृत्वापुत्रायपार्थिव ॥ दत्त्वाऽसौप्रेरयामासत्वष्टा क्रोधसमन्वितः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ कृतस्वस्त्ययनोवृत्रोब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ निर्जगामरथारूढोहंतुंशक्रंमहाबलः ॥ १ ॥ तदैवराक्षसाःक्रूराःपुरादेवपराजिताः ॥ समाजग्मुश्चसेवार्थंवृत्रंज्ञात्वामहाबलम् ॥ २ ॥ इंद्रदूतास्तु तंदृष्ट्वायुद्धायतुसमागतम् ॥ वेगादागत्यवृत्तांतंशशंसुस्तस्यचेष्टितम् ॥ ३ ॥

अपने पुत्र वृत्रासुरको प्रदानपूर्वक इन्द्रके मारनेको भेजा ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! महावलवान् वृत्रासुर वेदके जाननेवाले ब्राह्मणगणोंसे स्वस्त्ययन कराय रथपर चढ़कर देवराज इन्द्रको मारनेके निमित्त निकला ॥ १ ॥ पहले देवतागणोंने जिन सब दानवगणोंको पराजित किया था इस समय वह वृत्रासुरको बलवान् जानकर उसकी सेवा और सहायताको उसके निकट आय उपस्थित हुए ॥ २ ॥ इन्द्रके दूतने उन सबको युद्धके निमित्त उपस्थित देख शीघ्रतासहित आय देवराज इन्द्रसे उनका कार्य और सब वृत्तान्त निवेदन कर कहा ॥ ३ ॥

दूत बोला हे प्रभो ! विश्वकर्माने पुत्रके मारे जानेसे सन्तप्त और क्रोधयुक्त हो आपको मारनेके निमित्त अभिचारकर्मसे जो पुत्र उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ वह दुःसह वृत्रासुरनामक असुर आपका दारुण शत्रु है वह इस समय रथपर चढकर असुरगणोंसे परिवृत हो युद्धके कारण इस स्थानमें आरहा है ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! यह शत्रु सुमेरु और मंदराचलकी समान अत्यन्त दारुण है वह इस समय घोरतर शब्द करता हुआ शीघ्र आरहा है आप भलीभाँति यत्न कीजिये ॥ ६ ॥ हे महाराज ! देवराज इन्द्र दूतका वचन सुनहीरहे थे इसी समयमें देवतागण भयभीत और त्रस्त हो आनकर कहनेलगे ॥ ७ ॥ देवता गण बोले हे सुरपते ! इस समय देवतागणोंके भवनमें अनेक अमंगलशब्द दिखाई देते हैं. पक्षीगण जिसप्रकार ध्वनि करते हैं उससे जाना जाता है कि, शीघ्रही अनिष्टपात होगा ॥ ८ ॥ काक, गृध्र, श्वेत और कंक

दूताऊचुः॥स्वामिञ्छीघ्रमिहाऽऽयातिवृत्रोनामरिपुस्तव ॥ बलवांस्स्यदनेरूढस्त्वष्ट्राचोत्पादितःकिल ॥ ४ ॥ अभिचारेणनाशार्थंतवक्रोधान्वितेनवै ॥ पुत्राघाताभितप्तेनदुःसहोराक्षसैर्युतः ॥ ५ ॥ यत्नंकुरुमहाभागशीघ्रमायातिसांप्रतम् ॥ मेरुमंदरसंकाशोघोरशब्दोऽतिदारुणः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रभीतादेवगणाभृशम् ॥ आगत्योचुःसुरपतिंशृण्वंतंदूतभाषितम् ॥ ७ ॥ गणाऊचुः ॥ मघवन्दुर्निमित्तानिभवंतित्रिदशालये ॥ बहूनिभयशंसीनिपक्षिणांविरुतानिच ॥ ८ ॥ काकगृध्रास्तथाश्येनाःकंकाद्यादारुणाःखगाः ॥ रुदंतिविकृतैःशब्दैरुत्कारैर्भवनोपरि ॥ ९ ॥ चीचीकूचीतिनिनदान्कुर्वंतिविहगाभृशम् ॥ वाहनानांचनेत्रेभ्योजलधाराःपतंत्यधः ॥ १० ॥ श्रूयतेतिमहाञ्छब्दोरुदतीनांनिशासुच ॥ राक्षसीनांमहाभागभवनोपरिदारुणः ॥ ११ ॥ प्रपतंतिध्वजास्तूर्णंविनावातेनमानद ॥ प्रभवंतिमहोत्पातादिविभूम्यंतरिक्षजाः ॥ १२ ॥ कृष्णांबरधरानार्योभ्रमंतिचगृहेगृहे ॥ यांतुयांतुगृहात्तूर्णंब्रुवंत्योविकृताननाः ॥ १३ ॥ रात्रौस्वप्नेषुकांतानांसुतानांनिजमंदिरे ॥ केशाँल्लुनंतिराक्षस्योभीषयंत्योभृशातुराः ॥ १४ ॥

इत्यादि सब दारुण पक्षीगण भवनके ऊपर विकृत और ऊंचे शब्दसे रोते हैं ॥ ९ ॥ अन्यान्य पक्षीगण सदाही चींचीं कूचीं इत्यादि शब्द करते हैं वाहनोंकी आँखोंसे आँसू गिरते हैं ॥ १० ॥ हे महाभाग ! अधिक और क्या कहैं ? रात्रिके समय भवनके ऊपर रोतेहुए राक्षसीगणोंका भयंकर तथा दारुण शब्द सुनाई आता है ॥ ॥ ११ ॥ हे मानद ! विना पवनके ही रथस्थित समस्त ध्वजा टूटकर गिरती है इसप्रकार स्वर्गमें भूमिजात और अंतरिक्षजात सम्पूर्ण उत्पात प्रादुर्भूत होते हैं ॥ १२ ॥ हे देवराज ! इस समय देवतागणोंके स्थानमें विकृतमुखवाली स्त्रियें काले वस्त्र पहनकरघरघरमें भ्रमणपूर्वक "घरसे शीघ्र जाओ शीघ्र जाओ" यह वचन सदाही कहती हैं ॥ १३ ॥ देवतागणोंकी स्त्रियें अपने अपने घरमें निद्रित रहकरभी स्वप्नमें देखती हैं कि भयंकर राक्षसी आनकर उनके, केशकलाप छिन्नकर उनको भय दिखाती हैं ॥ १४ ॥

हे देवेन्द्र ! इस समय सब अशुभ लक्षण और भूमिकम्प तथा उल्कापातादि उत्पात संघटित होते हैं अधिक क्या? आँग रात्रिकालके समय गीदड़ घरके आँगनमें आनकर घोर हृदयको क्षोभित करनेवाले दारुणशब्दसे रोते हैं ॥ १५ ॥ अनेक ककलास (गिरगिट) घरघरमें भ्रमण करते फिरते हैं और अनेकानेक अङ्ग फड़ कना इत्यादि सब अमंगल लक्षण सदाही प्रकाशित होते हैं ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए और सुरगुरु बृहस्पतिजीको बुलाकर पूँछने लगे॥ १७॥ इन्द्र बोले हे ब्रह्मन् ! घोरतर सब अनिष्ट प्रकाशित होते हैं दारुण पवन चलता है और आकाशसे उल्कासमूह गिरते हैं यह सब क्या है ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! आप बुद्धिमान् शास्त्रके जाननेवाले देवतागणोंके गुरु विशेषकर सर्वज्ञ और विघ्ननाश करनेके सब उपाय जानते हैं॥ १९॥ अतएव आप शत्रुके विनाश करनेवाली शान्तिका अनुष्ठान कीजिये जिससे मुझे दुख न हो सो करो ॥ २० ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे सहस्रलोचन ! मैं क्या करूं तुमने

एवंविधानिदेवेशभूकंपोल्कादयस्तथा ॥ गोमायवोरुदंतिस्मनिशायांभवनांगणे ॥१५॥ सरटानांचजालानिप्रभवंतिगृहेगृहे ॥ अंगप्रस्फुरणादीनिदुर्नि मित्तानिसर्वशः॥१६॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाचिंतामापसुरेश्वरः॥बृहस्पतिंसमाहूयपप्रच्छचमनोगतम्॥१७॥इंद्रउवाच ॥ ब्रह्मन्किमुतघो राणिनिमित्तानिभवंतिवै ॥ वाताश्चदारुणावांतिप्रपतंत्यलकाःखतः ॥१८॥ सर्वज्ञोऽसिमहाभागसमर्थोविघ्ननाशने ॥ बुद्धिमाञ्छास्त्रतत्त्वज्ञोदेवतानांगुरु स्तथा ॥ १९ ॥ कुरुशांतिविधानञ्चशत्रुक्षयविधायिनीम् ॥ यथामेनभवेदुःखंतथाकार्यंविधीयताम् ॥ २० ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किंकरोमिसहस्राक्षत्व याऽद्यदुष्कृतंकृतम् ॥ अनागसंमुनिंहत्वाकिंफलंसमुपार्जितम् ॥२१॥ अत्युग्रंपुण्यपापानांफलंभवतिसत्वरम् ॥ विचार्यखलुकर्तव्यंकार्यंतद्भूतिमिच्छता॥ ॥ २२ ॥ परोपतापनंकर्मनकर्तव्यंकदाचन ॥ नसुखंविंदतेप्राणीपरपीडापरायणः ॥ २३॥ मोहाल्लोभाद्ब्रह्महत्याकृताशक्रत्वयाऽधुना ॥ तस्यपापस्य सहसाफलमेतदुपागतम् ॥ २४ ॥ अवध्यःसर्वदेवानांजातोऽसौवृत्रसंज्ञकः ॥ हंतुंत्वांससमायातिदानवैर्बहुभिर्वृतः ॥ २५ ॥ आयुधानिचसर्वाणिवज्रतु ल्यानिवासव ॥ त्वष्ट्रादत्तानिदिव्यानिगृहीत्वासमुपस्थितः॥२६॥समागच्छतिदुर्धर्षोरथारूढःप्रतापवान् ॥ देवेंद्रप्रलयंकुर्वन्नास्यमृत्युर्भविष्यति॥२७॥

पहले अत्यन्त पापकर्म किया है उन निरपराध मुनिको मारकर तुमने अतिकुत्सितफल उपार्जन किया है ॥ २१ ॥ अत्यन्त उग्र पाप और पुण्यका फल शीघ्रही फलता है. अतएव कल्याणकी कामना करनेवालोंको विचारकरही कर्म करना चाहिये ॥ २२ ॥ जिससे दूसरेको अतिसन्ताप हो इसप्रकारका कर्म कभी करना उचित नहीं है. जो प्राणी दूसरेको दुःख देनेमें रत हैं वे कभी सुखलाभ नहीं करसक्ते॥ २३ ॥ हे शक्र ! तुमने उस समय लोभ और मोहके वशीभूत होकर ब्रह्महत्या की है उसी पापका यह फल सहसा आनकर उपस्थित हुआ है ॥२४॥ हे सुरराज ! इस वृत्रासुरनामक असुरने सब देवतागणोंसे अवध्य हो जन्म ग्रहण किया है वह दुर्द्धर्ष असुरवर अनेक दानवगणोंसे परिवृत हो और विश्वकर्माके दियेहुए वज्रकी समान सबदिव्य अस्त्र ग्रहण कर ॥ २५ ॥ २६ ॥ रथपर चढ तुम्हारे मारनेको मानो प्रलयकाल

उपस्थित करता हुआ आरहा है इन तीनों लोकोंमें उसको मारसके ऐसा कोई नहीं है अतएव इसकी मृत्यु भी नहीं होगी ॥ २७॥ बृहस्पतिजी इसप्रकार कहही रहे थे कि इसी समयमें एक महाकोलाहल शब्द उठा इस समय गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, तपोधन, मुनिगण॥ २८॥ और अन्यान्य सब अमरगण अपने २ घरको छोड़ भागने लगे देवराज इन्द्र सुर गणोंको भागता हुवा देखकर अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए ॥ २९ ॥ और तत्काल सबसेनाका उद्योग करनेके निमित्त सब सेवकगणोंको आज्ञा देकर कहा कि, तुम वसुगण, रुद्रगण दोनों अश्विनीकुमार आदित्यगण॥ ३०॥ पूषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण और यम इत्यादि सुरगणोंको बुला लाओ शत्रु प्रायः उपस्थित हुआ है अतएव वे देवतागण अपने अपने आयुध ले विमानोंपर चढ़कर शीघ्र इस स्थानमें आवें ॥ ३१ ॥ शीघ्र आवे शत्रु आचुका है अमरराज इन्द्र इसप्रकार आज्ञा दे गजराजपर चढ़ ॥ ३२ ॥

कोलाहलस्तदाजातस्तथाब्रुवतिवाक्पतौ ॥ गंधर्वाःकिन्नरायक्षामुनयश्चतपोधनाः ॥ २८ ॥ सदनानिविहायैवाऽमराःसर्वेपलायिताः ॥ तद्दृष्ट्वाम हदाश्चर्यंशक्रश्चिंतापरायणः ॥ २९ ॥ आज्ञापयामासतदासेनोद्योगायसेवकान् ॥ आनयध्वंवसून्रुद्रानश्विनौचादिवाकरान् ॥ ३० ॥ पूषणंचभगंवायुंकुबेरंवरुणंयमम् ॥ विमानेषुसमारुह्यसायुधाःसुरसत्तमाः ॥ ३१ ॥ समागच्छंतुतरसाशत्रुरायातिसांप्रतम् ॥ इत्याज्ञाप्यसुरपतिःसमारु ह्यगजोत्तमम् ॥३२॥ बृहस्पतिंपुरोधायनिर्गतोनिजमंदिरात् ॥ तथैवत्रिदशाःसर्वेस्वंस्वंवाहनमास्थिताः॥३३॥युद्धायकृतसंकल्पानिर्ययुःशस्त्रपाणयः ॥ वृत्रोऽथदानवैर्युक्तःसंप्राप्तोमानसोत्तरम् ॥ ३४ ॥ पर्वतंदेवतावासंरम्यंपादपशोभितम् ॥ इंद्रोप्यागत्यसंग्राममंचकारमानसोत्तरे ॥ ३५ ॥ पर्वतेदेवतायुक्तो वाचस्पतिपुरःसरः ॥ तत्राऽभूद्दारुणंयुद्धंवृत्रवासवयोस्तदा ॥३६॥ गदासिपरिघैःपाशैर्बाणैःशक्तिपरश्वधैः ॥ मानुषेणप्रमाणेनसंग्रामःशरदांशतम्॥३७॥

सुरगुरुको आगे कर अपने घरसे निकले इसी प्रकार सम्पूर्ण देवतागण भी अपने अपने वाहनोंपर चढ ॥ ३३ ॥ युद्धके निमित्त कृतसंकल्प हो अपने अपने अस्त्र शस्त्रसे लेकर चले इधर वृत्रासुरभी दानवोंसे परिवृत हो मानससरोवरके उत्तर स्थित ॥ ३४ ॥ वृक्षोंकी कतारसे शोभायमान मनोहर पर्वतमें आनकर उपस्थित हुआ हे राजन्! यह मनोहर स्थानही देवतागणोंका निवासस्थान था इन्द्र भी बृहस्पतिजीको आगे कर देवतागणोंके सहित मानससरोवरके उत्तर स्थित उसी पर्वतमें उप. स्थित हुए वहां इन्द्र और वृत्र संग्राम करने लगे ॥ ३५॥ ३६॥ उस स्थानमें वृत्रासुर और इन्द्रका—गदा, असि, परिघ, पाश, बाण, शक्ति और परशु इत्यादिसे दारुण युद्ध होने लगा नियतात्मा ऋषिगणों और मनुष्योंको भय देनेवाला घोरतर वह संग्राम मनुष्योंके परिमाणसे सौ वर्षतक हुआ था तदनन्तर प्रथम वरुण फिर वायुगण॥ ३७॥

॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त यम, विभावसु और इन्द्र इस प्रकार क्रमानुसार सबही रणमें पीठ दे भाग गये. तब वृत्रासुर इन्द्र इत्यादि देवतागणोंको भागता हुआ देख ॥ ३९ ॥ आश्रमस्थित प्रसन्नचित्त पिताके निकट जाय प्रणाम पूर्व्वक कहने लगा हे पितः ! मैं ने आपकी आज्ञानुसार कार्य्यसाधन किया ॥ ४० ॥ इन्द्र इत्यादि सब देवता गणोंको संग्राममें पराजित किया है सिंहके निकटसे मृग और हाथीगण जिसप्रकार भागते हैं इसीप्रकार वह सब अपने अपने स्थानोंको भाग गये ॥ ४१ ॥ मैं ने देवराज इन्द्रका हाथीछीन लिया है वह पैरोंही भाग गये. हे भगवन् ! मैं इस गजवर ऐरावतको ले आया हूं आप लीजिये ॥ ४२ ॥ हे पिता ! डरेहुएको मारना अनुचित है, इस कारण मैं ने उनको नहीं मारा इस समय आप आज्ञा कीजिये कि पुनर्व्वार आपका क्या अभीष्ट साधन करूं ? ॥ ४३ ॥ सब देवतागण भयसे भीत और श्रमातुर हो

बभूवभयदोनृणामृषीणांभावितात्मनाम् ॥ वरुणःप्रथमंभग्नस्ततोवायुगणःकिल ॥ ३८ ॥ यमोविभावसुःशक्रःसर्वेतेनिर्गतारणात् ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वादेवानिंद्रपुरोगमान् ॥ ३९ ॥ वृत्रोऽपिपितरंप्रागादाश्रमस्थंमुदान्वितम् ॥ प्रणम्यप्राहत्वष्टारंपितुःकार्यंमयाकृतम् ॥ ४० ॥ देवाविनिर्जिताःसर्वेसेंद्राःसमरसंस्थिताः ॥ विद्रुतास्तेगताःस्थानंयथासिंहान्मृगागजाः ॥ ४१ ॥ इंद्रःपदातिरगमन्मयाऽऽनीतोगजोत्तमः ॥ ऐरावतोयंभगवन्गृहाणद्विरदोत्तमम् ॥ ४२ ॥ नहतास्तेमयातस्मादयुक्तंभीतमारणम् ॥ आज्ञापयपुनस्तातकिंकरोमितवेप्सितम् ॥ ४३ ॥ निर्जरानिर्गताःसर्वेभयभीताःश्रमातुराः ॥ इंद्रोऽप्यैरावतंत्यक्त्वाभयभीतःपलायितः ॥ ४४ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिपुत्रवचःश्रुत्वात्वष्टाप्राहमुदान्वितः ॥ पुत्रवानद्यजातोऽस्मिसफलंममजीवितम् ॥ ४५ ॥ त्वयाऽहंपावितःपुत्रगतोमेमानसोज्वरः ॥ निश्चलंमेमनोजातंदृष्ट्वावीर्यंतवाऽद्भुतम् ॥ ४६ ॥ शृणुवक्ष्याम्यहंपुत्रहितंतेऽद्यनिशामय ॥ तपःकुरुमहाभागसावधानःस्थिरासनः ॥ ४७ ॥ विश्वासोनैवकर्तव्यःकेषांचित्पाकशासनः ॥ शत्रुस्तेछलकर्ताऽस्तिनानाभेदविशारदः ॥ ४८ ॥ तपसाप्राप्यतेलक्ष्मीस्तपसाराज्यमुत्तमम् ॥ तपसाबलवृद्धिःस्यात्संग्रामेविजयस्तथा ॥ ४९ ॥ आराध्यद्रुहिणंदेवंलब्ध्वावरमनुत्तमम् ॥ जहिशक्रंदुराचारंब्रह्महत्यासमावृतम् ॥ ५० ॥

संग्रामस्थलसे भाग गये अधिक क्या इन्द्रभी भीत और संत्रस्तहो ऐरावतको छोड भागगये ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! विश्वकर्म्मा उस पुत्रका यह वचन सुन प्रसन्नचित्त हुए और कहने लगे कि, आज मैं यथार्थ पुत्रवान् हुआ और मेरा जीवन भी सफल हुआ ॥ ४५ ॥ हे पुत्र ! तुमने आज मुझको पवित्र किया. इस समय अब मेरा चित्तरूपी ज्वर दूर हुआ. तुम्हारा अद्भुतवीर्य्य देखकर मेरा मनभी स्थिर हुआ ॥ ४६ ॥ हे वत्स ! मैं इससमय जो कहता हूं वह मनलगाकर सुनो. हे महाभाग ! तुम सावधान हो स्थिर आसनपर बैठकर तपस्या करो ॥ ४७ ॥ तुम कभी किसीका विश्वास नहीं करना क्योंकि छलका ढूँढनेवाला वेदविशारद इन्द्र तुम्हारा प्रधान शत्रु विद्यमान् है ॥ ४८ ॥ हे पुत्र ! तपस्या साधारणवस्तु नहीं है तपस्यासे लक्ष्मी, उत्तम राज्य, बलकी वृद्धि और संग्राममें विजय प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ अतएव तुम हिरण्यगर्भकी

आराधना कर उत्तम वरलाभ करनेपर ब्रह्महत्यापापयुक्त दुराचारी इन्द्रका संहार करो ॥ ५० ॥ सावधान और स्थिरही कल्याणके देनेवाले विधाताका भजन करो तो चतुरानन संतुष्ट हो तुमको इच्छानुसार वर देंगे ॥ ५१ ॥ तुम पहले अप्रमितप्रभावयुक्त विश्वयोनि विधाताको संतुष्ट कर अमरत्वलाभ करनेपर उस अपराध करनेवाले शत्रुका संहार करो ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! पुत्र हत्याजनित वैरभाव मेरे मनमें सदाही विद्यमान रहता है इस कारण मैं सुखसे नहीं सो सक्ता. और किसीप्रकार मुझको शान्तिलाभ नहीं होसक्ती ॥ ५३ ॥ पापिष्ठ इन्द्रने मेरे तपस्वीपुत्रको निरपराध मारा है. हे वृत्र ! मैं तुमको और क्या विदित करूं. मैं दुःख सागरमें निमग्न हुआ हूं इस समय तुम मुझको उद्धार करो ॥ ५४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वृत्रासुर पिताके वह वचन सुनकर क्रोधयुक्त हुआ और उनकी आज्ञा ग्रहण कर तपस्याका अनुष्ठान करनेके निमित्त प्रसन्न चित्तसे चला गया ॥ ५५ ॥ अनन्तर उस गन्धमादनपर्व्वतपर जाय कल्याणदायिनी पुण्यप्रद मंदाकिनीमें स्नान कर

सावधानःस्थिरोभूत्वाधातारंभजशंकरम् ॥ वांछितंसवरंदद्यात्संतुष्टश्चतुराननः ॥ ५१ ॥ तोषयित्वाविश्वयोनिंब्रह्माणममितौजसम् ॥ अविनाशित्वमासाद्यजहिशक्रंकृतागसम् ॥ ५२ ॥ वैरंमनसिमेपुत्रवर्ततेसुतघातजम् ॥ नशांतिमनुगच्छामिनस्वपामिसुखेनह ॥ ५३ ॥ तापसोमेहतःपुत्रोनिरागाःपाप्मनायतः ॥ नर्विंदामिसुखंवृत्रत्वंमामुद्धरदुःखितम् ॥ ५४ ॥ व्यासउवाच ॥ तदाकर्ण्यपितुर्वाक्यंवृत्रःक्रोधयुतस्तदा ॥ आज्ञामादायचपितुर्जगामतपसेमुदा ॥ ५५ ॥ गंधमादनमासाद्यपुण्यांदेवधुनींशुभाम् ॥ स्नात्वाकुशासनंकृत्वासंस्थितश्चस्थिरासनः ॥ ५६ ॥ त्यक्त्वान्नंवारिपानंचयोगाभ्यासपरायणः ॥ ध्यायन्विश्वसृजंचित्तेसोपविष्टःस्थिरासने ॥ ५७ ॥ मघवातंतपस्यंतंज्ञात्वाचिंतातुरोह्यभूत् ॥ गंधर्वान्प्रेषयामासविघ्नार्थंपाकशासनः ॥ ५८ ॥ यक्षांश्चपन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः ॥ विद्याधरानप्सरसोदेवदूताननेकशः ॥ ५९ ॥ उपायास्तैःकृताःसम्यक्तपोविघ्नायमायिभिः ॥ नचचालततोध्यानात्त्वाष्ट्रःपरमतापसः ॥ ६० ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ निर्गतास्तेपरावृत्तास्तपोविघ्नकराःसुराः ॥ निराशाःकार्यसंसिद्धचैतंदृष्ट्वादृढचेतसम् ॥ १ ॥

तपस्या करनेके निमित्त स्थिर आसन बनाय कुशासनपर बैठा ॥ ५६ ॥ क्रमानुसार अन्नभोजन और जलपान छोड़कर योगाभ्यासमें निरत हो स्थिर आसनपर बैठ निरन्तर विश्वस्रष्टा प्रजापतिका ध्यान करने लगा ॥ ५७ ॥ इधर देवराज इन्द्र वृत्रासुरको तपस्यामें निरत जानकर अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए और उसकी तपस्यामें विघ्न करनेके निमित्त अमितप्रभावयुक्त गन्धर्व्व ॥ ५८ ॥ यक्ष, पन्नग, किन्नर, विद्याधर, अप्सरा और अन्यान्य देवतागणोंके दूतोंको भेज दिया ॥ ५९ ॥ वह मायावी गन्धर्व इत्यादि देवयोनि तपस्यामें विघ्न करनेके निमित्त अनेक उपायसे अनेक प्रकारकी चेष्टा और यत्न करने लगे किन्तु परमतपस्वी त्वष्टाका पुत्र अपने ध्यानयोगसे किसीप्रकार विचलित न हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! वृत्रासुरको दृढचित्त देखकर तपस्यामें विघ्न करने

वाले देवतागण कार्य्यसिद्धिके विषयमें निराश होगये और वहांसे निकलकर पुनर्वार अपने अपने स्थानको चले आये ॥ १ ॥ अनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर लोकपितामह चतुरानन ब्रह्माजीने हँसपर चढ उस स्थानमें ॥ २ ॥ आनकर कहा हे वृत्रासुर! तुमसुखी होओ इस समय ध्यान त्यागकर वरकी प्रार्थना करो मैं तुमको इच्छानुसार वर दूंगा ॥ ३ ॥ हे वत्स ! तपस्यासे तुम्हारा देह अत्यन्त क्षीण होगया है तुम्हारी इस उत्कट तपस्याको देखकर मैं इस समय अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं तुम्हारा कल्याण हो इस समय अभिलषित वरकी प्रार्थना करो ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वृत्रासुर जगत्कर्त्ता ब्रह्माके अत्यन्त स्पष्टाक्षरयुक्त अमृतकी समान भरेहुए वचन सुनकर योगपरित्याग आनन्दके आँसू गिराता हुआ सहसा खड़ा होगया॥ ५॥ तब ब्रह्माजीके सामने जाय विनय सहित मस्तक झुकाय उनके दोनों चरणों में प्रणाम किया

जातेवर्षशतेपूर्णेब्रह्मालोकपितामहः ॥ तत्राऽऽजगामतरसाहंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ २ ॥ आगत्यतमुवाचेदंत्वङ्गपुत्रसुखीभव ॥ त्यक्त्वाध्यानंवरंब्रूहिदद्दामितववांच्छितम् ॥ ३ ॥ तपसातेऽद्यतुष्टोऽस्मित्वांदृष्ट्वाचाऽतिकर्शितम् ॥ वरंवरयभद्रंतेमनोभिलषितंतव ॥ ४ ॥ व्यासउवाच ॥ वृत्रस्तदाऽतिविशदांपुरतोनिशम्यवाचंसुधासमरसांजगदेककर्तुः ॥ संत्यज्ययोगकलनांसहसोदतिष्ठत्संजातहर्षनयनाश्रुकलाकलापः॥५॥ पादौप्रणम्यशिरसाप्रणयाद्विधातुर्वद्धांजलिःपुरतएवसमाससाद ॥ प्रोवाचतंसुवरदंतपसाप्रपन्नंप्रेम्णाऽतिगद्गदगिराविनयेननम्रः ॥ ६ ॥ प्राप्तंमयासकलदेवपदंप्रभोऽद्ययद्दर्शनंतवसुदुर्लभमाशुजातम् ॥ वाञ्छाऽस्तिनाथमनसिप्रवणेदुरापातांप्रब्रवीमिकमलासनवेत्सिभावम् ॥ ७ ॥ मृत्युश्चमाभवतुमेकिललोहकाष्ठशुष्कार्द्रवंशनिचयैरपरैश्चशस्त्रैः ॥ वृद्धिंप्रयातुममवीर्यमतीवयुद्धेयस्माद्भवामिसबलैरमरैरजेयः ॥ ८ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्थंसंप्रार्थितोब्रह्मातमाहप्रहसन्निव ॥ उत्तिष्ठगच्छभद्रंतेवांछितंसफलंसदा ॥ ९ ॥ नशुष्केणनचाऽऽर्द्रेणनपाषाणेनदारुणा ॥ भविष्यतिचतेमृत्युरितिसत्यंब्रवीम्यहम् ॥ १० ॥

और विनयनम्र हो तथा हाथ जोड उन तपस्यासे प्रसन्न वरप्रद ब्रह्माजीसे गद्गद वचन कहने लगा ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त करतेही अब तुझको सब देवताओंका पद प्राप्त हुआ. हे कमलासन ! मेरे मनमें एक दुष्पूरणीय वासना उपस्थित रहती है आप सर्व्वज्ञ हैं सबही जान सक्ते हैं तथापि मैं उसको कहता हूं सुनिये ॥ ७ ॥ हे नाथ ! लोहा, काष्ठ, सूखी वा गीली वस्तु और बांस तथा अन्यान्य शस्त्रसमूह द्वारा मेरी मृत्यु नहीं हो और युद्धमें मेरी वीरता अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो और मैं सैन्यसहित सब देवतागणोंसे अजय हूं ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जब वृत्रासुरने ब्रह्माके निकट इस प्रकार प्रार्थना करी तब कमलासन कुछेक हँसते हुए कहने लगे हे वत्स ! उठकर इच्छानुसार स्थानमें जाओ तुम्हारा मंगल हो ॥ ९ ॥ तुमने जो प्रार्थनाकी वह तुम्हारा मनोरथ सर्व्वदाही सफल होगा सूखी वा गीली वस्तुसे

अथवा पत्थर तथा अन्याय काष्ठादि द्वारा तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी यह मैंने तुम्हारे निकट सत्यही कहा है ॥ १० ॥ प्रजापति वृत्रासुरको इसप्रकार वर देकर ब्रह्मलोकको चलेगये वृत्रासुरभी वर प्राप्तकर प्रसन्न हो घरको चलागया ॥ ११ ॥ अनन्तर वृत्रासुरने पिताके निकट इस वर प्राप्त करनेकी वार्त्ता निवेदन की विश्वकर्म्मा पुत्रके वरप्राप्तकरनेकी वार्त्ता सुन प्रसन्न सन्तुष्ट होकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारा मंगल हो तुम मेरे परम शत्रु शतक्रतुको मारो उस त्रिशिराके मारनेवाले पापात्मा इन्द्रको मारकर फिर इस स्थानमें आओ ॥ १३ ॥ तुम संग्रामजीत देवताओंके अधीश्वर होकर मेरी पुत्रजनित अत्यन्त मनोव्यथा दूर करो ॥ १४ ॥ पिता जब जीवित हो तब उनकी आज्ञा पालन, मृत्युदिवस श्राद्धदिनमें भोजनदान और गयामें पिण्डदान इन तीन कार्य्योंसेही पुत्रका पुत्रत्व होता है ॥ १५ ॥ अतएव हे पुत्र ! तुम मेरे वचनकी रक्षा करके मेरा दुःख दूर करनेमें यत्नवान् होओ तुम निश्चयही जानो कि, त्रिशिरा मेरे मनसे कभी दूर नहीं होता ॥ १६ ॥

इतिदत्त्वावरंब्रह्माजगामभुवनंपरम् ॥ वृत्रस्तुतंवरंलब्ध्वामुदितःस्वगृहंययौ ॥ ११ ॥ शशंसपितुरग्रेतद्वरदानंमहामतिः ॥ त्वष्टातुमुदितःप्राप्तंपुत्रंप्राप्तवरंतदा ॥ १२ ॥ स्वस्तितेस्तुमहाभागजहिशक्रंरिपुंमम ॥ हत्वागच्छत्रिशिरसोहंतारंपापसंयुतम् ॥ १३ ॥ भवत्वंत्रिदशाधीशःसंप्राप्यविजयंरणे ॥ ममाधिंछिंधिविपुलंपुत्रनाशसमुद्भवम् ॥ १४ ॥ जीवतोवाक्यकरणात्क्षयाहेभूरिभोजनात् ॥ गयायांपिंडदानाच्चत्रिभिःपुत्रस्यपुत्रता ॥ १५ ॥ तस्मात्पुत्रममाऽत्यर्थंदुःखंनाशितुमर्हसि ॥ त्रिशिराममचित्तात्तुनाऽपसर्पतिकर्हिंचित् ॥ १६ ॥ सुशीलःसत्यवादीचतापसोवेदवित्तमः ॥ अपराधंविनातेननिहतःपापबुद्धिना ॥ १७ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वावृत्रःपरमदुर्जयः ॥ रथमारुह्यतरसानिर्जगामपितुर्गृहात् ॥ १८ ॥ रणदुंदुभिनिर्घोषंशंखनादंमहाबलम् ॥ कारयित्वाप्रयाणंसचकारमदगर्वितः ॥ १९ ॥ निर्ययौनयसंयुक्तःसेवकानितिसंवदन् ॥ हत्वाशक्रंग्रहीष्यामिसुरराज्यमकंटकम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वानिर्जगामाऽऽशुस्वसैन्यपरिवारितः ॥ महतासैन्यनादेनभीषयन्नमरावतीम् ॥ २१ ॥ तमागच्छंतमाज्ञायतुराषाडपिसत्वरः ॥ सेनोद्योगंभयत्रस्तःकारयामासभारत ॥ २२ ॥

वह त्रिशिरा सुशील सत्यवादी तपस्वी और वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्यथा. हाय ! मेरे उसी गुणवान् प्रियपुत्रको पापबुद्धि इन्द्रने विना अपराधही मारा है ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वह अत्यन्त दुर्ज्जय वृत्रासुर उनका यह वचन सुन रथपर चढ़कर शीघ्र पिताके घरसे निकला ॥ १८ ॥ उस मदसे गर्वित असुरने जब अपनी महती सेनाके सहित रणके उद्देशसे गमन किया तब रणदुन्दुभिका शब्द और शंखनाद होनेलगा ॥ १९ ॥ वह नीतिसम्पन्न वृत्रासुर चलनेके समय अपनी सेनासे कहनेलगा आज देवताओंके राजा इन्द्रको मारकर अकण्टक देवताओंका राज्य ग्रहण करूंगा ॥ २० ॥ हे राजन् ! असुरराज यह कह सैन्यसमूहसे परिवृतहो महान् सेनाके शब्दसे अमरावतीको भय उत्पन्न कराता हुआ शीघ्र निकला ॥ २१ ॥ हे भारत ! देवराज इन्द्र उसको आताहुआ जान भयसे संत्रस्त हो शीघ्र सेनागणोंका

उद्योग करके कहनेलगे ॥ २२ ॥ और शीघ्रही सब लोकपालगणोंको बुलाय युद्धके निमित्त प्रेरणाकर स्थिति करनेलगे ॥ २३ ॥ वह महाद्युति शत्रुतापन पाकशासन (इन्द्र)गृध्रव्यूह (गृध्रपक्षीके समान सेनाविशेष) बनाय अवस्थिति करने लगे इधर शत्रुओंका मारनेवाला वृत्रासुर वेगसहित आय उसी स्थानमें उपस्थित हुआ॥ २४॥ इसके उपरान्त देवता और दानवगणोंका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ विजयकी इच्छा करनेवाले वृत्रासुर और इन्द्र घोरयुद्ध करने लगे ॥ २५ ॥ इसप्रकार उस भयंकर युद्धकी अग्निको प्रदीप्त हुआ देख देवतागण विमर्ष और दैत्यगण हर्षको प्राप्तहुए ॥ २६ ॥ देवता और दैत्यगण तोमर, भिन्दिपाल, खड्ग, परशु, पट्टिश इत्यादि अपने अपने शस्त्रोंसे परस्पर प्रहार करनेलगे ॥ २७ ॥ इसीप्रकार दारुण लोमहर्षण युद्ध उपस्थित हुआ. क्रोधयुक्त वृत्रासुरने इन्द्रको सहसा ग्रहण करलिया॥ २८॥ और

सर्वानाहूयतरसालोकपालानरिंदमः॥ युद्धार्थंप्रेरयन्सर्वान्व्यरोचतमहाद्युतिः ॥ २३ ॥ गृध्रव्यूहंततःकृत्वासंस्थितःपाकशासनः ॥ तत्राऽऽजगामवेगात्तुवृत्रःपरबलार्दनः ॥ २४ ॥ देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ॥ वृत्रवासवयोःसंख्येमनसाविजयैषिणोः ॥ २५ ॥ एवंपरस्परंयुद्धेसंदीप्तेभयदेभृशम् ॥ आकूतंदेवताःप्रापुर्दैत्याश्चपरमांमुदम् ॥ २६ ॥ तोमरैर्भिंदिपालैश्चखड्गैःपरशुपट्टिशैः॥ जघ्नुःपरस्परंदेवदैत्याःस्वस्ववरायुधैः ॥२७॥एवंयुद्धेवर्तमानेदारुणेलोमहर्षणे ॥ शक्रंजग्राहसहसावृत्रःक्रोधसमन्वितः ॥ २८ ॥ अपावृत्यमुखेक्षिप्त्वास्थितोवृत्रःशतक्रतुम् ॥ मुदितोभून्महाराजपूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २९ ॥ शक्रेग्रस्तेऽथवृत्रेणसंभ्रांतानिर्जरास्तदा ॥ चुक्रुशुःपरमार्तास्तेहाशक्रेतिमुहुर्मुहुः ॥ ३० ॥ अपावृतंमुखेशक्रंज्ञात्वासर्वेदिवौकसः ॥ बृहस्पतिंप्रणम्योचुर्दीनाव्यथितचेतसः ॥३१॥ किंकर्तव्यंद्विजश्रेष्ठत्वमस्माकंगुरुःपरः ॥ शक्रोग्रस्तस्तुवृत्रेणरक्षितोदेवतांतरैः ॥३२॥ विनाशक्रेणकिंकुर्मःसर्वेहीनपराक्रमाः ॥ अभिचारंकुरुविभोसत्वरःशक्रमुक्तये ॥ ३३ ॥

कवच तथा वस्त्रादि आवरणरहित कर मुखमें डाल ग्रासपूर्वक पहलेकी शत्रुता स्मरणकर अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे स्थिति करनेलगा ॥ २९ ॥ वृत्रासुरके इन्द्रका ग्रास करनेपर देवतागण अत्यन्त संत्रस्त और कातर हो हा इन्द्र ! हाइन्द्र ! कह बारबार चीत्कार करने लगे ॥ ३० ॥ देवतागण इन्द्रको कवचादिरहित और वृत्रासुरके मुखमें स्थित जानकर दीन और व्यथितमन हो बृहस्पतिजीको प्रणामकर कहनेलगे ॥ ३१ ॥ हे द्विजेन्द्र ! आप हमारे परमगुरु हैं, इससमय क्या कर्त्तव्य है ? देवतागणोंकी रक्षा करनेपरभी वृत्रासुरने इन्द्रको ग्रास किया है ॥ ३२ ॥ हम सभी हीनपराक्रमहैं अतएव हम इन्द्रके विना क्या करेंगे? हे विभो ! आप इन्द्रको छुड़ानेका

शीघ्र विचार कीजिये ॥ ३३ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवतागणो ! देवराज इन्द्र वृत्रासुरके मुखमें पड़े हैं वृत्रासुरने उनको अवसन्न किया है किन्तु वह जीवित रहकरभी शत्रुके कोष्ठमें स्थित हैं अतएव जीवितावस्थामें निकालनेकी चेष्टा करनाही उचित है ॥ ३४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवराज इन्द्रको उस अवस्थामें देखकर देवतागण अत्यन्त चिन्तातुर हुए और शीघ्र इन्द्रको छुड़ानेके निमित्त भलीभाँति विचारपूर्वक यत्न करनेलगे ॥ ३५ ॥ अनन्तर उन्होंने महासत्वसम्पन्न वैरिविनाशिनी जँभाईको उत्पन्न किया तब वृत्रासुरको जँभाईलेनेपर उसका मुख खुलगया ॥ ३६ ॥ और बलविनाशन इन्द्र उसी अवकाशमें अपने सम्पूर्ण अंग सकोड़कर जँभाई लेतेहुए वृत्रासुरके मुखसे निकलपड़े ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! जबहींसे जँभाई लोकके बीच प्राणीगणोंके देहमें स्थित रहती है तदनन्तर देवतागण इन्द्रको

बृहस्पतिरुवाच ॥ किंकर्तव्यंसुराःक्षितोमुखमध्येऽस्तिवासवः ॥ वृत्रेणोत्सादितोजीवन्नस्तिकोष्ठांतरेरिपोः ॥ ३४ ॥ व्यासउवाच ॥ देवाश्चिंतातुराःसर्वे तुरासाहंतथाकृतम् ॥ दृष्ट्वाविमृश्यतरसाचक्रुर्यत्नंविमुक्तये ॥ ३५ ॥ असृजंतमहासत्वांजृंभिकारिपुनाशिनीम् ॥ ततोविजृंभमाणःसव्यावृतास्योबभूवह ॥ ३६ ॥ विजृंभमाणस्यततोवृत्रस्याऽऽस्यादवापतत् ॥ स्वान्यंगान्यपिसंक्षिप्यनिष्क्रांतोबलसूदनः ॥ ३७ ॥ ततःप्रभृतिलोकेषुजृंभिकाप्राणिसंस्थिता ॥ जहृषुश्चसुराःसर्वेशक्रंदृष्ट्वाविनिर्गतम् ॥ ३८ ॥ ततःप्रववृतेयुद्धंतयोर्लोकभयप्रदम् ॥ वर्षाणामयुतंयावद्दारुणंलोमहर्षणम् ॥ ३९ ॥ एकतश्चसुराः सर्वेयुद्धा यसमुपस्थिताः ॥ एकतोबलवांस्त्वाष्ट्रःसंग्रामेसमवर्तत ॥ ४० ॥ यदाव्यवर्धतरणेवृत्रोवरमदावृतः ॥ पराजितस्तदाशक्रस्तेजसातस्यधर्षितः ॥ ४१ ॥ विव्यथेमघवायुद्धेततःप्राप्यपराजयम् ॥ विषादमगमन्देवादृष्ट्वाशक्रंपराजितम् ॥ ४२ ॥ जग्मुस्त्यक्त्वारणंसर्वेदेवाइंद्रपुरोगमाः ॥ गृहीतंदेवसदनंवृत्रेणागत्यरंहसा ॥ ४३ ॥

निकलाहुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ इस प्रकार इन्द्रके निकलनेपर फिर वृत्रासुर और इन्द्रका १०००० वर्ष पर्यन्त दारुण लोमहर्षण भयंकर संग्राम हुआ ॥ ३९ ॥ इधर सम्पूर्ण देवतागण युद्धको उपस्थित हुए, उधर विपुलविक्रम त्वष्टृनन्दन वृत्रासुर संग्राम करनेलगा ॥ ४० ॥ वृत्रासुर जब वरके मदसे मत्त हो रणमें वर्द्धित हुआ तब इन्द्र उसके तेजसे धर्षित हो पराजित हुए ॥ ४१ ॥ अनन्तर देवराज इन्द्र युद्धमें हारकर अति व्यथित हुए, देवतालोगभी उनको हाराहुआ देखकर अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ जब इन्द्र इत्यादि सब देवतागण रणको त्यागकर भागगये तब वृत्रासुरने शीघ्र जाकर त्रिदशालयपर अधिकार

करलिया ॥ ४३ ॥ वह दानवप्रवर बलपूर्वक सब देवोद्यान भोग करनेलगा और गजराज ऐरावतको भी लेलिया ॥ ४४ ॥ उस त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरने सब विमान और घोड़ोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा ॥ ४५ ॥ कामधेनु पारिजात अप्सरागण इत्यादि सब स्वर्गके रत्न ग्रहण करलिये ॥ ४६ ॥ इधर सम्पूर्ण देवता स्थानभ्रष्ट हो पर्वतके दुर्गमें वास करनेलगे, वह यज्ञके भागसे वञ्चित और सुरालयसे भ्रष्टहो अत्यन्त क्लेश भोगनेलगे॥ ४७॥ वृत्रासुर देवताओंके राज्यको प्राप्त हो मदके गर्वसे गर्वित हुआ, विश्वकर्माभी उस समय अत्यन्त सुखी हो पुत्रके सहित आमोद करनेलगे ॥ ४८ ॥ हे भारत ! तदनन्तर देवता मुनिगणोंके सहित मिलित हो अपने हितकर विषयकी परामर्श करनेलगे और क्या करना चाहिये इस विषयकी चिन्ता कर भयसे मोहित होगये॥ ४९॥ अनन्तर देवता इन्द्रको संग ले कैलासाचलमें महादेवके सामने गये और

देवोद्यानानिसर्वाणिभुंक्तेऽसौदानवोबलात् ॥ ऐरावतोऽपिदैत्येनगृहीतोऽसौगजोत्तमः ॥ ४४ ॥ विमानानिचसर्वाणिगृहीतानिविशांपते ॥ उच्चैःश्रवाह यवरोजातस्तस्यवशेतदा ॥ ४५ ॥ कामधेनुःपारिजातोगणश्चाप्सरसांतथा ॥ गृहीतंरत्नमात्रंतुतेनत्वष्टृसुतेनह ॥४६॥ स्थानभ्रष्टाःसुराःसर्वेगिरिदुर्गेषुसं स्थिताः ॥ दुःखमापुःपरिभ्रष्टायज्ञभागात्सुरालयात् ॥ ४७ ॥ वृत्रःसुरपदंप्राप्यबभूवमदगर्वितः ॥ त्वष्टाऽतीवसुखंप्राप्यमुमोदसुतसंयुतः ॥ ४८ ॥ अ मंत्रयन्हितंदेवामुनिभिःसहभारत ॥ किंकर्तव्यमितिप्राप्तेविचिंत्यभयमोहिताः ॥ ४९ ॥ जग्मुःकैलासमचलंसुराःशक्रसमन्विताः ॥ महादेवंप्रणम्योचुःप्र ह्वाःप्रांजलयोभृशम् ॥ ५० ॥ देवदेवमहादेवकृपासिंधोमहेश्वर ॥ रक्षाऽस्मान्भयभीतांस्तुवृत्रेणाऽतिपराजितान् ॥ ५१ ॥ गृहीतंदेवसदनंतेनदेवबलीय सा ॥ किंकर्तव्यमतःशंभोब्रूहिसत्यंशिवाऽद्यनः ॥ ५२ ॥ किंकुर्मःक्वचगच्छामःस्थानभ्रष्टामहेश्वर ॥ दुःखस्यनाऽधिगच्छामोविनाशोपायमीश्वर ॥५३॥ साहाय्यंकुरुभूतेशव्यथिताःस्मकृपानिधे ॥ वृत्रंजहिमदोत्सिक्तंवरदानबलाद्विभो ॥ ५४ ॥

अत्यन्त विनीत तथा हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम करतेहुए कहनेलगे॥ ५०॥ हे देवदेव महादेव ! आप महेश्वर और करुणारसके अपाररुद्रस्वरूप हैं हम वृत्रासुरसे हारकर अत्यन्त डरे हैं आप हमारी रक्षा कीजिये ॥५१॥ हे शम्भो ! आप सबका मंगल करते हैं अतएव उस बलवान् दानवने स्वर्गका राज्य छीनलिया है इससमय हमको क्या करना चाहिये ? वह आप सत्य कहिये ॥५२॥ हे महेश ! हम स्थानभ्रष्ट होकर क्याकरैं कहांजांय? हमको तो दुःख दूरहोनेका कोई उपाय नहीं दीखता ॥५३॥ हे भूतभावन ! हम अत्यन्त व्यथितहुए हैं, आप हमारी सहायता कीजिये.हे दयामय ! वरदानके बलसे वह वृत्रासुर मदमत्त हुआ है, आप उसको मारिये॥ ५४॥

शंकरने कहा हे देवतागणो ! हम ब्रह्माको आगेकर हरिके घर जाय उनके सहित उस दुर्वृत्त वृत्रासुरके वधकी चिन्ता करैंगे ॥ ५५ ॥ जनार्दन वासुदेव सब कार्य्योंमें समर्थ हैं. बलवान् छलज्ञ अत्यन्तबुद्धिमान् दयानिधि और सब जनोंके शरण देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ उन देवदेवके विना कार्य्यसिद्धिकी संभावना नहीं है, अतएव सर्वकार्यसिद्धिके निमित्त हम सबको उसी स्थानमें जाना चाहिये ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रादिदेवतागण शंकर और ब्रह्माके सहित इसप्रकार स्थिरकर सबही भगवान्के निवासमें जाय उन सर्वजन शरण्य भक्तवत्सल ॥ ५८ ॥ जगद्गुरु हरिका वेदोक्त पुरुषसूक्तसे स्तव करने लगे ॥ ५९ ॥ तब वह कमलापति जगत्प्रभुजनार्दन उनके प्रत्यक्षहुए और देवतागणोंका सन्मानकर उनके संमुख स्थित हो कहनेलगे ॥ ६० ॥ हे लोकेश गण ! तुम शंकर और ब्रह्माकेसहित किसकारण

शिवउवाच ॥ ब्रह्माणंपुरतःकृत्वावयंसर्वेहरेःक्षयम् ॥ गत्वासमेत्यतंविष्णुंचिंतयामोवधोद्यमम् ॥ ५५ ॥ सशक्तश्चछलज्ञश्चबलवान्बुद्धिमत्तरः ॥ शरण्यश्चदयाब्धिश्चवासुदेवोजनार्दनः ॥ ५६ ॥ विनातंदेवदेवेशंनार्थसिद्धिर्भविष्यति ॥ तस्मात्तत्रचगंतव्यंसर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ ५७॥ व्यासउवाच ॥ इतिसंचिंत्यतेसर्वेब्रह्माशक्रःसशंकरः ॥ जग्मुर्विष्णोःक्षयंदेवाःशरण्यंभक्तवत्सलम् ॥ ५८॥ गत्वाविष्णुपदंदेवास्तुष्टुवुःपरमेश्वरम् ॥ हरिंपुरुषसूक्तेनवेदोक्तेनजगद्गुरुम् ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्षोभूज्जगन्नाथस्तेषांसकमलापतिः ॥ संमान्यचसुरान्सर्वानित्युवाचपुरःस्थितः ॥६०॥ किमागताःस्मलोकेशाहरब्रह्मसमन्विताः ॥ कारणंकथयध्वंवःसर्वेषांसुरसत्तमाः ॥ ६१ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिश्रुत्वाहरेर्वाक्यंनोचुर्देवारमापतिम् ॥ चिंताविष्टाःस्थिताःप्रायःसर्वेप्रांजलयस्तथा ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेम० षष्ठस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ तथाचिंतातुरान्वीक्ष्यसर्वान्सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ प्राहप्रेमभरोद्भ्रांतान्माधवोमेदिनीपते ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किंमौनमाश्रितायूयंब्रुवंतुकारणंसुराः ॥ सदसद्वाऽपियच्छ्रुत्वायतिष्येतन्निवारणे ॥ २ ॥

आएहो हे सुरसत्तमगण ! तुम्हारे आनेका क्या कारण है वह मुझसे कहो? ॥ ६१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवता हरिके यह वचन सुनकर रमापतिके कुछ न कहसके और प्रायः सबही चिन्तायुक्तहो हाथजोड़े खड़ेरहे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! सर्वार्थतत्वके जाननेवाले लक्ष्मीपति नारायण देवताओंको चिन्तातुर और अत्यन्तअनुगत देखकर उनसे कहनेलगे ॥ १ ॥ हे सुरगण! तुम मानभाव अवलम्बन क्यों कर रहे हो ? तुम मेरे पास किसकारण आए हो? अबअच्छा हो अथवा बुरा हो शीघ्र कहो क्योंकि मैं उसको सुनकर फिर तुम्हारे क्लेश दूर

करनेका यत्न करूंगा ॥ २ ॥ देवताओंने कहा हे प्रभो ! त्रिभुवनमें आपसे क्या छिपाहै?आप सब कार्य जानते हैं तो किस कारण हमसे वारंवार पूँछते हैं ॥ ३ ॥ पूर्वकालके समय आपने वामनरूप धारणकर तीन चरणोंसे त्रिभुवन आक्रमण किया था और बलिराजाको बांधकर इन्द्रको देवाधिकार दिया था ॥ ४ ॥ हे विभो! आपनेही दैत्यगणोंको मोहित कर अमृत हरणकिया था और आपनेही उनको शमनभवनमें प्रेरण किया था. अतएव हे देव ! आपही देवताओंके सर्वप्रकार विपद् निवारणके एकभाव प्रभु रहे हैं ॥ ५ ॥ विष्णु–देवताओंके यह वचन सुनकर कहनेलगे हे सुरगण ! भय नहीं है जिससे वह दैत्यवर विनष्ट होगा मुझको वही एक सर्व संमत उपाय विदित है. इस समय वही तुम्हारे निकट कहता हूं सुनो. हे देवताओ ! इससेही तुमको सुख प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ देखो

देवाऊचुः ॥ किमज्ञातंतवविभोत्रिषुलोकेषुवर्तते ॥ सर्ववेदभवान्कार्यंकिंपृच्छसिपुनःपुनः ॥ ३ ॥ त्वयापूर्वंबलिर्बद्धःशक्रोदेवाधिपःकृतः ॥ वामनं वपुरास्थायक्रांतंत्रिभुवनंपदैः ॥ ४ ॥ अमृतंत्वाहृतंविष्णोदैत्याश्चविनिपातिताः ॥ त्वंप्रभुःसर्वदेवानांसर्वापद्विनिवारणे ॥ ५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नभेतव्यंसुरवरावेद्म्युपायंसुसंमतम् ॥ तद्वधायप्रवक्ष्यामियेनसौख्यंभविष्यति ॥ ६ ॥ अवश्यंकरणीयंमेभवतांहितमात्मना ॥ बुद्ध्यावलेनचार्थेनयेनकेनच्छलेनवा ॥७॥ उपायाःखलुचत्वारःकथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ सामादयःसुहृत्स्वेवदुर्हृदेषुविशेषतः ॥ ८ ॥ ब्रह्मणाऽस्यवरोदत्तस्तपसाराधितेनच ॥ दुर्जयत्वंचसंप्राप्तंवरदानप्रभावतः ॥ ९ ॥ अजेयःसर्वभूतानांत्वष्ट्रासमुपपादितः ॥ ततोबलेनवृद्धिंसप्राप्तःपरपुरंजयः ॥ १० ॥ दुःसाध्योऽसौसुराःशत्रुर्विनासामप्रतारणम् ॥ प्रलोभ्यवशमानेयोहंतव्यस्तुततःपरम् ॥ ११ ॥ गच्छध्वंसर्वगंधर्वायत्राऽसौबलवत्तरः ॥ सामतस्यप्रयुंजध्वं ततएनंविजथष्य ॥ १२ ॥

बुद्धिबल अर्थ वा छलसे अथवा अन्य जिस किसी प्रकारसे हो तुम्हारा हित करना मुझको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ७ ॥ तत्त्वके जाननेवाले पंडितगणोंने मित्रोंके विशेषकर शत्रुगणोंके प्रति प्रयोग करनेके लिये साम, दान, भेद और दण्ड यह चार प्रकारके उपाय निर्द्धारित किये हैं ॥ ८ ॥ तपस्यासे आराधित होकर ब्रह्माजीने उसको वर दिया है और उसी वरके प्रभावसे वह दुर्जय हुआ है ॥ ९ ॥ विशेष कर विश्वकर्म्माने अग्निसे उसको उत्पन्न किया है अतएव इन सब कारणोंसेही वह परपुरञ्जय वृत्रासुर अत्यन्त बलवान् हो सब जीवगणोंको अजय हुआ हो ॥ १० ॥ हे सुरगण ! पहले सामप्रयोग इसके उपरान्त प्रतारणके विना इस शत्रुको जीतना कठिन है. अतएव पहले लोभ दिखाय अपने वशीभूत कर तदनन्तर उसका विनाश करना उचित है ॥ ११ ॥ इस समय जिस स्थानमें वह बलवान् शत्रु वृत्रासुर वास करता

है पहले उसी स्थानमें गन्धर्व और ऋषिगणोंके सहित जाय उसके संग सन्धि स्थापन करो, तदनन्तर उसका पराजय करो ॥ १२ ॥ वहां जानेपर वह जो कहे उसी नियमानुसार शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करो. पहले विश्वास उत्पन्न करो और तदनन्तर बन्धुत्व स्थापन करो. फिर यथासमयमें उस प्रवल शत्रुको मारो ॥ १३ ॥ हे सुरगण! मैं भी इन्द्रके उत्कृष्ट आयुध वज्रमें अदृश्यभावसे प्रवेश कर यथासमयमें उनकी सहायता करूंगा ॥ १४ ॥ देखो! तुम समयकी प्रतीक्षा करो सम्यक् प्रकार उसकी आयुका कालशेष होगा, नहीं तो किसी प्रकार उसकी मृत्यु नहीं होगी ॥ १५ ॥ इस समय गन्धर्व और ऋषिगणोंके सहित उस असुरके निकट जायकर कपटता पूर्वक केवल वचनसे उसके संग मित्रत्व स्थापन करो ॥ १६ ॥ जब उसको विश्वास उत्पन्न होजाय तबहीं प्रतारण करनी चाहिये मैं दृढ आच्छादित वज्रमें गुप्तभावसे

संगम्यशपथान्कृत्वाविश्वास्यसमयेनहि ॥ मित्रत्वंचसमाधायहंतव्यःप्रबलोरिपुः ॥ १३ ॥ अदृश्यःसंप्रवेक्ष्यामिवज्रमस्यवरायुधम् ॥ साहाय्यंचकरिष्यामिशक्रस्याऽहंसुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ समयंचप्रतीक्षध्वंसर्वथैवाऽऽयुषःक्षये ॥ मरणंविबुधास्तस्यनाऽन्यथासंभविष्यति ॥ १५ ॥ गच्छध्वमृषिभिःसार्धंगंधर्वाःकपटावृताः ॥ इंद्रेणसहमित्रत्वंकुरुध्वंवाक्यदानतः ॥ १६ ॥ यथासयातिविश्वासंतथाकार्यंप्रतारणम् ॥ गुप्तोऽहंसंप्रवेक्ष्यामिपविंसंछादितंदृढम् ॥ १७ ॥ विश्वस्तंमघवाशत्रुंहनिष्यतिनचाऽन्यथा ॥ विश्वासस्यकृतेपापंकृत्वाशक्रस्तुपृष्ठतः ॥ १८ ॥ मत्सहायोऽथवज्रेणशातयिष्यति पापिनम् ॥ नदोषोऽत्रशठेशत्रौशाठ्यमेवप्रकुर्वतः ॥ १९ ॥ नाऽन्यथावलवान्वध्यःशूरधर्मेणजायते ॥ वामनंरूपमाधायमयाऽयंवंचितोवलिः ॥ २० ॥ कृत्वाचमोहिनींवेषंदैत्याःसर्वेऽपिवंचिताः ॥ भवंतःसहिताःसर्वेदेवींभगवतींशिवाम् ॥ २१ ॥

प्रविष्ट हूंगा ॥ १७ ॥ इन्द्र जब उसको विश्वस्त जानसके तबहीं उस वज्रके प्रहारसे उसका विनाश करें अन्यथा किसीप्रकार उसको नहीं मारसकेंगे. देवराज विश्वासघात जनित पापको इस समय पीछेकर ॥ १८ ॥ मेरी सहायतासे उस पापात्मा असुरको वज्रसे मारें. देखो शठशत्रुके प्रति शठताचरणदोषका कारण नहीं होता ॥ १९ ॥ विशेषकर शठताके विना मात्र केवल वीरधर्म्मसे बलवान् शत्रु कभी नहीं माराजाता पूर्व्वम मैंने भी वामनरूप धारण करके वलिको ॥ २० ॥ और मोहिनी वेशसे सब दैत्यगणोंको वंचित किया है अतएव बलवान् शठ शत्रुके प्रति शठताचरण कदापि दोषका विषयक नहीं जानना. हे देवगण! इस समय तुम सब एकत्र मिलित होकर

स्तोत्र मंत्रादिसे देवी शिवा भगवतीकी ॥ २१ ॥ आराधना कर उनकी शरणागत होओ तो वह योगमाया तुम्हारी सहायता करेंगी ॥ २२ ॥ हे देवगण ! जो स्वयं कामनारूपिणी होकर भक्तगणोंकी सब कामना पूर्ण करती है जिनकी आराधनासे सबकार्योंकी सिद्धि होती है पूतात्मा योगीगणोंके अतिरिक्त उनको कोई प्राप्त नहीं करसक्ता मैंभी उन्हीं सत्वगुणस्वरूपिणी प्रकृतिरूपिणी परात्परा देवीकी वन्दना करता हूं ॥ २३ ॥ अतएव इन्द्रभी उनकी आराधना करके निश्चय रणमें शत्रुका संहार करनेमें समर्थ होंगे. कारण कि, वह मोहजननी महामाया पूजित होकर उस दानवको मोहित करेंगी ॥ २४ ॥ वृत्रासुरकी मायासे मोहित होनेपर इन्द्र उसको अनायासही मारनेमें समर्थ होंगे, इसमें सन्देह नहीं. अधिक क्या उन परात्परा अम्बिकाके प्रसन्न होनेपर सर्वकार्य्यकी सिद्धि होगी ॥२५॥ वह अन्तर्य्यामिस्वरूपिणी और सब कार्य्योंका

गच्छध्वंशरणंभावैःस्तोत्रमंत्रैःसुरोत्तमाः ॥ साहाय्यंसायोगमायाभवतांसंविधास्यति ॥२२॥ वंदामहेसदादेवींसात्त्विकींप्रकृतिंपराम् ॥ सिद्धिदांकामदां कामांदुरापामकृतात्मभिः ॥ २३ ॥ इंद्रोऽपितांसमाराध्यहनिष्यतिरिपुंरणे ॥ मोहिनीसामहामायामोहयिष्यतिदानवम् ॥ २४ ॥ मोहितोमाययावृत्रः सुखसाध्योभविष्यति ॥ प्रसन्नायांपरांबायांसर्वंसाध्यंभविष्यति ॥ २५ ॥ नोचेन्मनोरथावाप्तिर्नकस्याऽपिभविष्यति ॥ अंतर्यामिस्वरूपासासर्वकारण कारणा ॥ २६ ॥ तस्मात्तांविश्वजननींप्रकृतिंपरमादृताः ॥ भजध्वंसात्त्विकैर्भावैःशत्रुनाशायसत्तमाः ॥ २७ ॥ पुरामयाऽपिसंग्राममंकृत्वापरमदारुणम् ॥ पंचवर्षसहस्राणिनिहतौमधुकैटभौ ॥ २८ ॥ स्तुतामयातदात्यर्थंप्रसन्नाप्रकृतिःपरा ॥ मोहितौतौतदादैत्यौछलेनचमयाहतौ ॥ २९ ॥ विप्रलब्धौमहा बाहूदानवौमदगर्वितौ॥तथाकुरुध्वंप्रकृतेर्भजनंभावसंयुताः ॥३०॥ सर्वथाकार्यसिद्धिंसाकरिष्यतिसुरोत्तमाः॥एवंतेदत्तमतयोविष्णुनाप्रभविष्णुना॥३१॥

कारण है उनकी आराधनाके विना किसीको भी ऋद्धिकी संभावना नहीं है ॥ २६ ॥ अतएव हे सुरसत्तमगण ! शत्रुविनाशके निमित्त परम आदर सहित सात्विक भावसे उन्हीं विश्वजननी प्रकृति देवीकी आराधना करो ॥ २७ ॥ देखो पूर्वमें मैंने पाँच हजार वर्ष अत्यन्त दारुण युद्धकर मधुकैटभनामक दोनों असुरोंको संहार किया था ॥ २८ ॥ तब मैंने उन्हीं महामाया पराप्रकृतिकी स्तुति करी थी, इससेही उन्होंने प्रसन्न होकर इन दोनों असुरोंको मोहित किया था इससेही यह मदगर्वित महाबाहु दोनों असुर प्रतारित हुए. कारण कि, मैं छलपूर्वक उन भयंकर दोनों दैत्योंको संहार करनेमें समर्थ हुआ था. अतएव हे सुरगण ! तुम लोगभी भक्तिभावसे उसीप्रकार पराप्रकृतिकी आराधना करो ॥२९॥ ॥३०॥ तो वह भलीभाँतिसे तुम्हारा कार्य्य सिद्ध करेंगी. हे महाराज ! प्रभावशाली

विष्णुके देवतागणोंको इसप्रकार बुद्धिप्रदान करनेपर ॥ ३१ ॥ उन्होंने मन्दारतरुसे शोभायमान् सुमेरुके शिखरमें गमन किया और एकान्तमें उपस्थित रहकर जप और तपस्यामें निरत तथा ध्यानपरायण होकर ॥ ३२ ॥ उन सृष्टिस्थिति संहारकारिणी भक्तगणोंको अभीष्ट प्रदान करनेवाली संसारका क्लेश नाश करनेवाली जगज्जननी जगद्धात्रीका स्तव करनेलगे ॥ ३३ ॥ देवता बोले हे परब्रह्मस्वरूपिणि देवि! आप दीनदुःखी प्राणीगणोंकी आधिव्याधि विनाशकरती है इसकारण हमने आपके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण की. हे भगवति! हम वृत्रासुरसे समरमें पराजित होकर अत्यन्त सन्तप्त और पीड़ित हुए हैं, आप इससमय हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये और हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३४ ॥ आपही सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं हमभी इस शत्रुसंकटमें पतितहुए हैं अतएव इस समय हमारी पुत्रकी समान रक्षा कीजिये. हेमातः! त्रिभुवनमें आपसे कुछ नहीं छिपा है हम असुरगणोंके प्रतापरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तप्त हुए हैं अतएव आप हमारी किस कारण उपेक्षा करती हैं ? ॥ ३५ ॥ हे जननि ! आपही

जग्मुस्तेमेरुशिखरंमंदारद्रुममंडितम् ॥ एकांतेसंस्थितादेवाःकृत्वाध्यानंजपंतपः ॥ ३२ ॥ तुष्टुवुर्जगतांधात्रींसृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ भक्तकामदुघामंबांसंसारक्लेशनाशिनीम् ॥ ३३ ॥ देवाऊचुः ॥ देविप्रसीदपरिपाहिसुरान्प्रतप्तान्वृत्रासुरेणसमरेपरिपीडितांश्च ॥ दीनार्तिनाशनपरेपरमार्थतत्त्वेप्राप्तांस्त्वदंघ्रिकमलंशरणंसदैव ॥ ३४ ॥ त्वंसर्वविश्वजननीपरिपालयाऽस्मान्पुत्रानिवाऽतिपतितान्रिपुसंकटेऽस्मिन् ॥ मातर्नतेऽस्त्यविदितंभुवनत्रयेऽपिकस्मादुपेक्षसिसुरानसुरप्रतप्तान् ॥ ३५ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलंविहितंत्वयैवब्रह्माहरिःपशुपतिस्तववासनोत्थाः ॥ कुर्वंतिकार्यमखिलंस्ववशानतेतेभ्रूभंगचालनवशाद्विहरंतिकामम् ॥ ३६ ॥ मातासुतान्परिभवात्परिपातिदीनान्रीतिस्त्वयैवरचिताप्रकटापराधान् ॥ कस्मान्नपालयसिदेविविनापराधानस्मांस्त्वदंघ्रिशरणान्करुणारसाब्धे ॥ ३७ ॥ नूनंमदंघ्रिभजनात्पदाःकिलैतेभक्तिंविहायविभवेसुखभोगलुब्धाः ॥ नेमेकटाक्षविषयाइतिचेन्नचैषारीतिःसुतेजननकर्तरिचाऽपिदृष्टा ॥ ३८ ॥

इस त्रिभुवनमण्डलकी सृष्टिस्थिति और संहार करती हैं ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आपकीही इच्छामात्रसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण कार्य्यसम्पादन करते हैं. हे जननि ! वह स्वाधीन नहीं हैं आपकेही भ्रूभङ्गसे परिचालित होकर इच्छानुसार विहार करते हैं ॥ ३६ ॥ अनेकप्रकारके अपराधसे अपराधी होनेपरभी माता दीन पुत्रगणकी क्लेशसे रक्षा करती है. हे जननि ! आपनेही इस रीतिकी रचना करी है तो हे दया मयि ! किसकारणसे निरपराध और अपने चरणकमलोंकी शरणागत जानकर भी हमारी रक्षा नहीं करती ? ॥ ३७ ॥ हे देवी ! यदि आप समझती हैं कि, यह जब मेरे अनुग्रहसे प्राप्त हुआ ऐश्वर्य्य भोग करेंगे तो उसमेंही अत्यन्त आसक्त रहकर मेरेप्रति भक्ति करना एकबारही भूल जाँयगे. अतएव उस समय यह मेरे करुणाकटाक्षके वशीभूत नहीं होसकेंगे यद्यपि यह सत्य है किन्तु हे मातः ! पुत्रके प्रति जन

नीका इस प्रकार भाव कहींभी दिखाई नहीं देता अतएव हम सदाही आपकी करुणाकटाक्षके पात्र हैं इसमें अब सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ और एक बात है कि, आपकी आराधना त्यागकर जिस ऐश्वर्यभोगमें निमग्न होंगे इस विषय में हमारा कोई भी दोष बोध नहीं होता क्योंकि आपने जो मोहकी रचना कर रक्खी है वह मोह अपना प्रभाव प्रकाश करके हमको मोहित कर रखता है. हे जननि! आप स्वभावसेही करुणामयी हैं अतएव यह जानकर भी किसकारण हमारे प्रति दया प्रकाश नहीं करतीं ॥ ३९ ॥ हे देवि ! आपने पर्वमें हमारे निमित्तही सब लोकोंको भयावह बलवान् दैत्यपति महिषासुरका संग्राममें विनाश किया है. अतएव इस समय किस कारण इस भयावह वृत्रासुरको नहीं मारतीं ? ॥ ४० ॥ आपनेही अत्यन्त बलशाली शुम्भ और तदनुज निशुम्भ नामक दोनों भ्राताओंका संहार किया है और अनुगामी अन्यान्य दैत्यगणोंको भी मारा है. हे करुणामयि ! इस समय उसीप्रकार खल और प्रबल वृत्रासुरका विनाश कीजिये. हे मातः ! जिससे वह फिर कुछभी प्रभाव प्रकाश

दोषोननोऽत्रजननिप्रतिभातिचित्तेयत्तेविहायभजनंविभवेनिमग्नाः॥मोहस्त्वयाविरचितःप्रभवत्यसौनस्तस्मात्स्वभावकरुणेदयसेकथंन॥३९॥पूर्वंत्वयाजननिदैत्यपतिर्बलिष्ठोव्यापादितोमहिषरूपधरःकिलाऽऽजौ॥अस्मत्कृतेसकललोकभयावहोऽसौवृत्रंकथंनभयदंविधुनोषिमातः॥४०॥ शुंभस्तथाऽतिबलवाननुजोनिशुंभस्तौभ्रातरौतदनुगानिहताहतौच ॥ वृत्रंतथाजहिखलंप्रबलंदयार्द्रेमत्तंविमोहयतथानभवेद्यथाऽसौ ॥ ४१ ॥ त्वंपालयाऽद्यविबुधानसुरेणमातःसंतापितानतितरांभयविह्वलांश्च ॥ नाऽन्योऽस्तिकोऽपिभुवनेषुसुरार्तिहंतायःक्लेशजालमखिलंनिदहेत्स्वशक्त्या ॥ ४२ ॥ वृत्रेदयातवयदिप्रथितातथापिजह्येनमाशुजनदुःखकरंखलंच ॥ पापात्समुद्धरभवानिशरैःपुनानानोचेत्प्रयास्यतितमोननुदुष्टबुद्धिः ॥४३॥ तेप्रापिताःसुरवनंविबुधारयोयेहत्वारणेऽपिविशिखैःकिलपावितास्ते ॥ त्रातानकिंनिरयपातभयाद्दयार्द्रेयच्छत्रवोऽपिनहिकिंविनिहंसिवृत्रम् ॥ ४४ ॥

न करसके आप उसी प्रकार इस मदमत्त वृत्रासुरको मोहित कीजिये ॥ ४१ ॥ हम असुरगणोंके प्रभावसे अत्यन्त सन्तापित और उनके भयसे अतिशय विह्वल हुए हैं आप हमारी रक्षा कीजिये क्योंकि आपके विना तीनों लोकोंमें अपनी शक्तिसे देवतागणोंका क्लेश दूर करसके इस प्रकार का दूसरा मार्ग नहीं है ॥ ४२ ॥ हेमातः ! यद्यपि आपने वृत्रासुरके प्रति दयाप्रकाश कीहै तथापि जनगणोंको दुःखदायक और क्रूर स्वभाव उस असुर का शीघ्रविनाश कीजिये. हे भवानि! अपने बाणोंसे पवित्र करके उसको पापसे उद्धार कीजिये, नहीं तो वह दुष्टबुद्धि निःसन्देहही घोरनरकमें प्रवेश करेगा. अतएव उसकेही,कल्याणार्थ उसको मारना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ४३ ॥ पूर्वमें जो देवतागणोंका शत्रु था आपने उसकोही संग्रामस्थलमें अस्त्रद्वारा पवित्र कर स्वर्गस्थ नन्दनवनमें प्रेरणकिया है. हे करुणामयि ! उसके शत्रु होनेपरभी आपने क्या उसकी नरकके भयसे रक्षा

नहीं करी है ? तो किसकारण इस समयभी वृत्रासुरको नहीं मारतीं? ॥ ४४ ॥ हम निश्चयही कहते हैं कि, यह असुर आपका शत्रु है, सेवक नहीं है क्योंकि यह पापबुद्धि हमको सदाही पीड़ित करता है. हे जननि ! जो आपके चरणकमलोंकी सेवामें निरत हैं जो पुरुष उन देवताओंको पीड़ित करता है वह किसप्रकार आपका भक्त होसक्ता है ? ॥ ४५ ॥ हे मातः ! हम आपकी पूजा किसप्रकार करें ? पुष्पादि जो कुछ पूजाके द्रव्य दिखाई देते हैं आपहीने तो वह सब बनाये हैं विशेषकर हम और मंत्र इत्यादि पूजाके जो कुछ योग्यपदार्थ हैं वह सबही आपकी शक्ति स्वरूप हैं. अतएव हे भवानि! हम केवल मात्र प्रणामसेही आपकी पूजा करते हैं आप प्रसन्न हूजिये ॥ ४६ ॥ जो संसारके नौकास्वरूप आपके चरणारविन्दोंका भक्तिभावसे भजन करते हैं वेही मनुष्यगण धन्य हैं. हे देवि ! जो योगीगण विषयानुराग विकार मोह त्यागकर मोक्षकी कामना करते हैं वेभी आपके उन्हीं चरणकमलोंका सदा स्मरण करके सिद्धिलाभ करते हैं ॥ ४७ ॥ जो सब वेदोंका तत्त्व जानने

जानीमहेरिपुरसौतवसेवकोनप्रायेणपीडयतिनःकिलपापबुद्धिः ॥ यस्तावकस्त्विहभवेदमरानसौकिंत्वत्पादपंकजरतान्ननुपीडयेद्वा ॥ ४५ ॥ कुर्मः कथंजननिपूजनमद्यतेवपुष्पादिकंतवविनिर्मितमेवयस्मात् ॥ मंत्रावयंचसकलंपरशक्तिरूपंतस्माद्भवानिचरणेप्रणताःस्मनूनम् ॥ ४६ ॥ धन्यास्तएवमनुजाहिभजंतिभक्त्यापादांबुजंतवभवाब्धिजलेषुपोतम् ॥ यंयोगिनोऽपिमनसासततंस्मरंतिमोक्षार्थिनोविगतरागविकारमोहाः ॥ ४७ ॥ येयाज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपिनूनंत्वांसंस्मरंतिसततंकिलहोमकाले ॥ स्वाहांतुतृप्तिजननीमसुरेश्वराणांभूयःस्वधांपितृगणस्यचतृप्तिहेतुम् ॥ ४८ ॥ मेधाऽसिकांतिरसिशांतिरपिप्रसिद्धाबुद्धिस्त्वमेवविशदार्थकरीनराणाम् ॥ सर्वत्वमेवविभवंभुवनत्रयेऽस्मिन्कृत्वाददासिभजतांकृपयासदैव ॥ ४९ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंस्तुतासुरैर्देवीप्रत्यक्षासाऽभवत्तदा ॥ चारुरूपधरातन्वीसर्वाभरणभूषिता ॥५०॥ पाशांकुशवराभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ रणत्किंकिणिकाजालरशनाबद्धसत्कटिः ॥ ५१ ॥

वाले और याज्ञिक हैं वहभी यज्ञके आहुतिकालके समय देवतागणोंकी तृप्तिजननी स्वाहास्वरूपिणी और पितृगणोंको परम तृप्त करनेवाली स्वधास्वरूपिणी आपकी सदाही चिन्ता करते हैं ॥ ४८ ॥ हे मातः ! आपही बुद्धि, आपही कांति, आपहीशान्ति, आपही पुरुषगणोंकी विशदार्थकारिणी प्रसिद्ध बुद्धि और आपही त्रिभुवनके सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यस्वरूप हैं. हे देवि ! जो आपका भजन करता है आप दयापूर्वक किसीप्रकार उसको यह विभवप्रदान करती हैं ॥४९॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवताओंके इसप्रकार स्तव करनेपर देवी भगवती सम्पूर्णआभरणोंसे विभूषित हो मनोहररूप धारणकरके देवताओंके सन्मुख प्रगट हुई ॥ ५० ॥ उनके चारों बाहु पाश अंकुश और वरदानसौन्दर्य और अभयमुद्रासे शोभायमान थे, शोभायमानकटितटमें रशना कौंधनी (बँधीहुई) किंकिणीकी कलध्वनिसे शोभित ॥ ५१ ॥

और चरणयुगल कङ्कण-स्थित नूपुरके शब्दसे रंजित थे उनका मधुर सुर अत्यन्त कमनीयललाट चन्द्रखण्डसे शोभित और मस्तक उज्वल रत्नोंके मुकुटसे विराजितथा ॥ ५२ ॥ उनका मुखारविन्द स्मितशोभासे और कमलकी समान तीनों नेत्रोंसे भूषित था, उनके अंगकी कान्ति पारिजात कुसुमके समान मनोहर ॥ ५३ ॥ रक्तवर्ण अंगप्रत्यंग सब रक्तचन्दनमें रंजित और पहरनेके वस्त्रभी रक्तवर्ण थे, इस प्रकार प्रसन्नमुखी करुणाकी सागर देवी ॥ ५४ ॥ उस समय समस्तशृङ्गारवेशधारिणी बोध होतींथीं. हे महाराज ! अखिलब्रह्माण्डकी जननी सर्वज्ञ सर्वकर्त्री और सम्पूर्णकी अधिष्ठान स्वरूपिणी ॥ ५५ ॥ वेदान्तमतसिद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपिणी सुप्रसन्न दयामयी भगवती भुवनेश्वरी इसप्रकार देवतागणोंके सन्मुख उपस्थित हुई देवताओंने उनको सन्मुख स्थित देखकर प्रणाम किया ॥ ५६ ॥ तब उन जगदम्बिकानेभी प्रणत हुए देवता

कलकंठीरवाकांताक्रणत्कंकणनूपुरा ॥ चंद्रखंडसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता ॥ ५२ ॥ मंदस्मिताऽरविंदास्यानेत्रत्रयविभूषिता ॥ पारिजातप्रसूनाच्छनालवर्णसमप्रभा ॥ ५३ ॥ रक्तांबरपरीधानारक्तचंदनचर्चिता ॥ प्रसादसुमुखीदेवीकरुणारससागरा ॥ ५४ ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्यासर्वद्वैतारणिः परा ॥ सर्वज्ञासर्वकर्त्रीचसर्वाधिष्ठानरूपिणी ॥ ५५ ॥ सर्ववेदांतसंसिद्धासच्चिदानंदरूपिणी ॥ प्रणेमुस्तांसमालोक्यसुरादेवींपुरःस्थिताम् ॥ ५६ ॥ तानाहप्रणतानंवाकिंवःकार्यंब्रुवंतुमाम् ॥ देवाऊचुः ॥ मोहयैनंरिपुंवृत्रंदेवानामतिदुःखदम् ॥ ५७ ॥ यथाविश्वसतेदेवांस्तथाकुरुविमोहितम् ॥ आयुधेचबलंदेहितःस्याद्येनवारिपुः ॥ ५८ ॥ व्यासउवाच ॥ तथेत्युक्त्वाभगवतीतत्रैवांतरधीयत ॥ स्वानिस्वानिनिकेतानिजग्मुर्देवामुदान्विताः ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे षष्ठस्कंधे देवीमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंप्राप्तवरादेवाऋषयश्चतपोधनाः ॥ ॥ " जग्मुःसर्वेचसंमंत्र्यवृत्रस्याश्रमसुत्तमम् ॥ " ददृशुस्तत्रतंवृत्रंज्वलंतमिवतेजसा ॥ १ ॥

ऐसे कहा हे देवगण ! तुम किसकारण मेरा स्तव करतेहो वह मुझसे कहो ? देवताओंने कहा हे भगवती ! वृत्रासुर देवतागणोंको अत्यन्त दुःख देता है आप उस देवताओंके शत्रुको मोहित कीजिये ॥ ५७ ॥ हे देवि ! जिससे वह देवताओंका विश्वास करै आप उसको उसीप्रकार मोहित कीजिये और जिससे वह परमशत्रु विनष्ट हो हमारे अस्त्रमें उसीप्रकार बलप्रदान कीजिये ॥ ५८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अनन्तर देवीभगवती तथास्तु कहकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई, देवतागण भी आनन्दित हो घरको चलेगये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! तपप्रभावयुक्त सम्पूर्ण ऋषि और देवतागण देवी भगवतीके निकट इसप्रकार वर प्राप्तकर सब एकत्र मिलित हो परामर्श करनेलगे,

और इसके उपरान्त वृत्रासुरके उत्तम आश्रममें जाकर देखा कि, वृत्रासुर अपने तेजसे प्रज्वलित हो ॥ १ ॥ त्रिभुवन भस्म करने और अमरगणोंको ग्रास करनेके निमित्त ही मानो विराजमान है तब ऋषिगण उसके निकट जाकर ॥ २ ॥ देवतागणोंकी कार्य्यसिद्धिके निमित्त सामयुक्त रसात्मक प्रियवचन उससे कहनेलगे. ऋषि बोले हे महाभाग वृत्र ! सम्पूर्ण लोकही तुमसे भय करते हैं ॥ ३ ॥ तुमने विश्व ब्रह्माण्ड संपूर्ण स्थलोंमेंही अपना अधिपत्य फैलाया है, किन्तु इन्द्रके सहित तुम्हारी जो शत्रुता है उससे तुम्हारे सुखमें विघ्न होता है ॥ ४ ॥ इसमें सन्देह नहीं इस समय यह वैर तुम दोनोंकोही अत्यन्त चिन्ताकी वृद्धि करता है इसकारण यह अत्यन्त दुःखदायक है तुमभी सन्तुष्ट हो सोनेमें समर्थ नहीं होते और इन्द्रभी सुखसे नहीं सोसक्ते ॥ ५ ॥ क्योंकि तुम दोनोंकेही मनमें वैरका भय सदा जागरित रहता है और देखो तुम्हारे युद्धको समाप्त हुए बहुत काल व्यतीत हुआ ॥ ६ ॥ किन्तु देवता असुर और मनुष्य इत्यादि प्रजावर्ग सबही पीड़ा पाते हैं, इस संसार सुखही

धक्ष्यंतमिवलोकांस्त्रीन्ग्रसंतमिवचाऽमरान् ॥ ऋषयोऽथततोऽभ्येत्यवृत्रमूचुःप्रियंवचः ॥२॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंसामयुक्तंरसात्मकम् ॥ ऋषयऊचुः ॥ वृत्रवृत्रमहाभागसर्वलोकभयंकर ॥३॥ व्याप्तंत्वयैतत्सकलंब्रह्मांडमखिलंकिल ॥ शक्रेणतववैरंयत्तत्तुसौख्यविघातकम् ॥४॥ युवयोर्दुःखदंकामंचिंतावृद्धिकरं परम् ॥ नत्वंस्वपिषिसंतुष्टोनचाऽपिमघवातथा ॥५॥ सुखंस्वपितिचिंतार्तोद्वयोर्वैरिजंभयम् ॥ युवयोर्युध्यतोःकालोव्यतीतस्तुमहानिह ॥६॥ पीड्यंतेचप्रजाः सर्वाःसदेवासुरमानवाः ॥ संसारेऽत्रसुखंग्राह्यंदुःखंहेयमितिस्थितिः ॥७॥ नसुखंकृतवैरस्यभवतीतिविनिर्णयः ॥ संग्रामरसिकाःशूराःप्रशंसंतिनपंडिताः ॥ ॥८॥ युद्धंशृंगारचतुराइंद्रियार्थविघातकम् ॥ पुष्पैरपिनयोद्धव्यंकिंपुनर्निशितैःशरैः ॥ ९ ॥ युद्धेविजयसंदेहोनिश्चयंबाणताडनम् ॥ दैवाधीनमिदंविश्वं तथाजयपराजयौ ॥ १० ॥ दैवाधीनाविति ज्ञात्वानयोद्धव्यंकदाचन ॥ कालेऽथभोजनंस्नानंशय्यायांशयनंतथा ॥ ११ ॥ परिचर्यापराभार्यासंसारेसुख साधनम् ॥ किंसुखंयुध्यतःसंख्येबाणवृष्टिभयंकरे ॥ १२ ॥ खड्गपातातिरौद्रेचतथाऽरातिसुखप्रदे ॥ संग्रामेमरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरितिस्फुटम् ॥१३॥

जीवगणोंको ग्रहणकरने योग्य और दुःख त्यागने योग्य है ॥७॥ यही सनातन मर्य्यादाजाननी चाहिये. परन्तु जो शत्रुता करता है उसको कभी सुख नहींहोता यह पंडितगणों ने भलीभाँति निश्चय किया है. संग्रामरसिक शूरगणही युद्धकी प्रशंसा करते हैं किन्तु शान्तिपरायण ॥ ८ ॥ शृङ्गारचतुर पंडितगण कभी इन्द्रियसुखके विनाशक युद्धकी प्रशंसा नहीं करते बरन् वह कहते हैं कि, शाणित (तीक्ष्ण पैने) शरादिकी बात दूर रहे सामान्य पुष्पादिसेभी युद्ध न करैं ॥ ९ ॥ और देखो युद्धमें विजय प्राप्त करनेके विषयमें सन्देह होता है किन्तु बाणकी ताड़ना निश्चयही होती है. हे दैत्यराज ! यह सम्पूर्ण विश्व दैवकेही आधीन है अतएव जयपराजयभी ॥ १० ॥ दैवके अधीन जानकर युद्ध करना कभी उचित नहीं है उपयुक्तकालमें स्नान भोजन उत्तम शय्यापर शयन ॥ ११ ॥ और सेवानिरत पतिव्रता भार्या इन कई एकको संसारसुखका साधन जानना चाहिये और युद्धमें केवल बाणवृष्टि ॥ १२ ॥ तथा उग्रतर खड्गपात होता है अतएव इनमें क्या सुख है बरन् इससे शत्रुसुखही होताहै.

है यदि कहो मुनिगण कहते हैं कि, संग्राममें मरण होनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ वह केवल प्रलोभका प्रवर्तक वचनमात्र है वस्तुतः उससे कुछभी फल नहीं और यदि देह छेदन कर वेदनाको प्राप्त हो और शृगाल काकादिको अपने शरीरका मांस भोजन कराय ॥ १४ ॥ अन्तमें सुखप्राप्तही हो तो बुद्धिमान्‌की बात दूर रहे कौन मन्द बुद्धि उसकी इच्छा करता है. अतएव हे वृत्र ! इन्द्रके सहित तुम्हारी सदाकाल मित्रता हो ॥ १५ ॥ इससे तुम और इन्द्र सदा सुख प्राप्तकरसकोगे. विशेषकर यदि तुम्हारी शत्रुता शान्त होजायगी तो हम सब तापसगण और गन्धर्वगण अपने अपने आश्रममें ॥ १६ ॥ सुखपूर्वक वास करेंगे इसमें सन्देह नहीं. हे वीर ! तुम्हारे संग्रामके सदाही विद्यमान रहनेसे ॥ १७ ॥ मुनिगण, गन्धर्वगण, किन्नरगण और समस्त नरगण दिनरात पीड़ाको प्राप्तहोते हैं. हम वनवासी मुनिगण सम्पूर्ण शान्तिकाम

प्रलोभनपरंवाक्यंनोदनार्थंनिरर्थकम् ॥ छित्त्वादेहंव्यथांप्राप्यशृगालकरटादिभिः ॥ १४ ॥ पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिंकोवावांछतिमंदधीः ॥ सख्यंभवतुते वृत्रशक्रेणसहनित्यदा ॥ १५ ॥ अवाप्स्यसिसुखंत्वंचशक्रश्चाऽपिनिरंतरम् ॥ वयंचतापसाःसर्वेगंधर्वाश्चनिजाश्रमे ॥ १६ ॥ सुखवासंगमिष्यामःशांतेवै रेऽधुनैववाम् ॥ संग्रामेयुवयोर्धीरवर्तमानेदिवानिशम् ॥ १७ ॥ पीडयंतेमुनयःसर्वेगंधर्वाःकिन्नरानराः ॥ सर्वेषांशांतिकामानांसख्यमिच्छामहेवयम् ॥ ॥ १८ ॥ मुनयस्त्वंचशक्रश्चप्राप्नुवंतुसुखंकिल ॥ मध्यस्थाश्चवयंवृत्रयुवयोःसख्यकारणे ॥ १९ ॥ शपथंकारयित्वाऽत्रयोजयामोमिथःप्रियम् ॥ शक्रस्तुशपथान्कृत्वायथोक्तांश्चतवाऽग्रतः ॥ २० ॥ चित्तंतेप्रीतिसंयुक्तंकरिष्यतितुसांप्रतम् ॥ सत्याधाराधरानूनंसत्येनचदिवाकरः ॥ २१ ॥ तपत्ययं यथाकालंवायुःसत्येनवात्यथ ॥ उदन्वानपिमर्यादांसत्येनैवनमुंचति ॥ २२ ॥ तस्मात्सत्येनसख्यंवांभवत्वद्ययथासुखम् ॥ एकत्रशयनंक्रीडाजलकेलिः सुखासनम् ॥ २३ ॥ युवाभ्यांसर्वथाकार्यंकर्तव्यंसख्यमेत्यच ॥ व्यासउवाच ॥ महर्षिवचनंश्रुत्वातानुवाचमहामतिः ॥ २४ ॥

पुरुषोंके सुखनिमित्तही तुम्हारे बन्धुत्वकी इच्छा करते हैं ॥ १८ ॥ तुमको और इन्द्रको तथा समस्त जीवगणोंको सुख प्राप्त हो यही हमारी एकान्त वासना है. हे वृत्र ! तुम्हारे संमिलनमें हम मध्यस्थ हैं ॥ १९ ॥ हम इस विषयमें शपथ कराकर परस्परके प्रियकार्यमें दोनोंको नियोजित करेंगे तुम जिसप्रकार कहोगे इस समय इन्द्र तुम्हारे सामने इसी प्रकार शपथ कर ॥ २० ॥ तुम्हारे चित्तमें प्रीति उत्पन्न करेंगे तुम निश्चयही जानना कि, सत्यके ऊपरही पृथ्वी प्रतिष्ठित है सत्यहीके कारण सूर्य उदय होते हैं ॥ २१ ॥ सत्यहीके बलसे वायु सदा चलताहै और सत्यहीके कारण अपार समुद्र अपनी वेलारूप मर्य्यादाको कभी अतिक्रम नहीं करता ॥ २२ ॥ अतएव सत्यहीसे इस समय तुम्हारा बन्धुत्वहो यथासुखसे तुम मित्रतापाशसे बद्धही एकत्र शयन, एकत्र क्रीडा, एकत्र जलकेलि और एकत्र सुखसे बैठो ॥ २३ ॥ यह तुमको मित्रता

पूर्वक करना चाहिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! महामति वृत्रासुर महर्षिगणोंका वचन सुनकर कहने लगा ॥ २४ ॥ हे ऋषिगण ! आप ज्ञानादिसम्पन्न और तपस्वी हैं अतएव हमारे माननीय हैं आप मुनि हैं सुतरां कहीं भी मिथ्या नहीं कहते ॥ २५ ॥ आप सदाचार और शान्त हैं अतएव छलका कारण नहीं जानतें. वैरी, शठ, लम्पट, बुद्धिरहित, कीर्तिशून्य और निर्लज्ज इन सब ॥ २६ ॥ पुरुषोंके सहित विशेषकर शत्रुके सहित मित्रता स्थापन करना बुद्धिमानगणोंका कर्त्तव्य नहीं है यह दुराचार इन्द्र निर्लज्ज शठ और लम्पट तथा ब्रह्मघातक है ॥ २७ ॥ अतएव इसकी समान पुरुषोंके प्रति विश्वास करना उचित नहीं है. आप साधु और सर्व्वसद्गुणव सम्पन्न हैं अतएव आपकी मति पराये अनिष्टकी चिन्तामें नहीं दौडती ॥ २८ ॥ आपका चित्त शान्त होनेसे आप कपटाचारियोंका मन नहीं समझसक्के अतएव

अवश्यंभगवंतोमेमाननीयास्तपस्विनः ॥ भवंतोमुनयःक्काऽपिनमिथ्यावादिनोभृशम् ॥ २५ ॥ सदाचाराःसुशांताश्चनविदुश्छलकारणम् ॥ कृतवैरेशठेस्तब्धेकामुकेचगतत्विषि ॥ २६ ॥ निर्लज्जेनैवकर्तव्यंसख्यंमतिमतासदा ॥ निर्लज्जोऽयंदुराचारोब्रह्महालंपटःशठः ॥ २७ ॥ नविश्वासस्तुकर्तव्यः सर्वथैवेदृशेजने ॥ भवंतोनिपुणाःसर्वेनद्रोहमतयःसदा ॥ २८ ॥ अनभिज्ञास्तुशांतत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम् ॥ मुनयऊचुः ॥ जंतुःकृतस्यभोक्तावै शुभस्यत्वशुभस्यच ॥ २९ ॥ द्रोहंकृत्वाकुतःशांतिमाप्नुयान्नष्टचेतनः ॥ विश्वासघातकर्तारोनरकंयांतिनिश्चयम् ॥ ३० ॥ दुःखंचसमवाप्नोतिनूनंविश्वासघातकः ॥ निष्कृतिर्ब्रह्महंतॄणांसुरापानांचनिष्कृतिः ॥ ३१ ॥ विश्वासघातिनांनैवमित्रद्रोहकृतामपि ॥ समयंब्रूहिसर्वज्ञयथातेचेतसिध्रुवम् ॥ ३२ ॥ तेनैवसमयेनाद्यसंधिःस्यादुभयोःकिल ॥ वृत्रउवाच ॥ नशुष्केणनचार्द्रेणनाश्मनानचदारुणा ॥ ३३ ॥ नवज्रेणमहाभागनदिवानिशिनैवच ॥ वध्योभवेयंविप्रेंद्राःशक्रस्यसहदैवतैः ॥ ३४ ॥

दुष्टजनोंका मध्यस्थ होना आपको उचित नहीं है. मुनिगणोंने कहा हे राजन् ! जन्तुगण निश्चयही अपने किये पाप पुण्यका फल भोग करते हैं ॥ २९ ॥ तब नष्ट बुद्धि द्रोहाचरण करके किसप्रकार शान्तिलाभ करनेमें समर्थ होंगे ? विश्वासघातकोंको निःसन्देह नरक प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ और सदाही दुःख भोगते हैं इसमें सन्देह नहीं वरन् ब्रह्मघातक और सुरापान करनेवालोंकी निष्कृति है ॥ ३१ ॥ किन्तु विश्वासघातक और मित्रद्रोही गणोंकी कुछभी निष्कृति नहीं है इनको अवश्य नरक भोगना होगा. अतएव हे सर्व्वज्ञ ! तुम्हारे मनमें जो निश्चित है वह नियम प्रकाशकरके कहो ॥ ३२ ॥ उसीके द्वारा तुम दोनोंकी सन्धि स्थापन होगी. वृत्रासुरने कहा हे महाभाग मुनिगणो ! इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके सहित सूखी वा गीली वस्तुसे अथवा ! दारुण काष्ठ पत्थर ॥ ३३ ॥ तथा वज्रद्वारा रात्रि अथवा दिनमें मुझको न मारे

हे महाभागो! यह मेरा नियम है ॥ ३४ ॥ मैं इसी नियमानुसार उनके सहित सन्धिस्थापन करसक्ता हूं नहीं तो अन्य किसी प्रकारभी नहीं करसक्ता. व्यासजीने कहा हे राजन्! ऋषिगणोंने उसका वह वचन आदरपूर्व्वक स्वीकार किया ॥ ३५ ॥ और सुरराजको उसी स्थानमें बुलाकर सन्धिके नियम सुनाये इन्द्रनेभी वहां मुनिगणोंके सामने अग्निको साक्षीकर शपथ करी और चिन्तारूपी विषम ज्वरसे मुक्त हुए वृत्रासुर तब इन्द्रके वचनमें विश्वास कर ॥ ३६ ॥ ३७॥ उनके सहित मित्रतास्थापनपूर्व्वक एकत्र विहारकरने लगा वह दोनों मिलित हो कभी गन्धमादनमें ॥ ३८ ॥ कभी समुद्रके तटपर आमोद अनुभवकर विचरण करने लगे. दोनों इस प्रकार संधिबन्धनपूर्वक मिलन होनेपर असुरराज वृत्रासुर अत्यन्त आनन्दित हुआ ॥ ३९ ॥ किन्तु देवराज इन्द्र उसको मारनेकी इच्छासे उस विषयके सम्पूर्ण उपायकी चिन्ता करने लगे. इन्द्रने अत्यन्त उद्विग्नचित्तसे उसका छिद्र ढूंढते ढूंढते ॥ ४० ॥ कुछ काल व्यतीत किया इसप्रकार सन्धि स्थापन करनेपर कई एक वर्ष

एवंमेरोचतेसंधिःशक्रेणसहनान्यथा ॥ व्यासउवाच ॥ ऋषयस्तंतदाप्राहुर्बाढमित्येवचादृताः ॥ ३५ ॥ समयंश्रावयामासुस्तत्रानीयसुरेश्वरम् ॥ इंद्रोपिशपथांस्तत्रचकारविगतज्वरः ॥ ३६ ॥ साक्षिणंपावकंकृत्वामुनीनांसन्निधौकिल ॥ वृत्रस्तुवचनैस्तस्यविश्वासमगमत्तदा ॥ ३७॥ बभूवमित्रवच्छक्रेसहचर्यापरायणः॥कदाचिन्नंदनेचोभौकदाचिद्गंधमादने॥३८॥कदाचिदुदधेस्तीरेमोदमानौविचेरतुः॥एवंकृतेचसंधानेवृत्रःप्रमुदितोभवत्॥३९॥ शक्रोऽपिवधकामस्तुतदुपायानचिंतयत् ॥ रंध्रान्वेषीसमुद्विग्नस्तदासीन्मघवाभृशम् ॥ ४० ॥ एवंचिंतयतस्तस्यकालःसमभिवर्तत॥ विश्वासंपरमंप्राप वृत्रःशक्रेऽतिदारुणे ॥ ४१ ॥ एवंकतिचिदब्दानिगतानिसमयेकृते ॥ वृत्रस्यमरणोपायान्मनसींद्रोप्यचिंतयत् ॥४२॥ त्वष्टैकदासुतंप्राहविश्वस्तंपाकशासने ॥ पुत्रवृत्रमहाभागशृणुमेवचनंहितम्॥४३॥नविश्वासस्तुकर्तव्यःकृतवैरेकथंचन ॥ मघवाकृतवैरस्तेसदाऽसूयापरःपरैः ॥ ४४ ॥ लोभान्मत्तोद्वेषपरःपरदुःखोत्सवान्वितः ॥ परदारलंपटःसपापबुद्धिःप्रतारकः॥४५॥रंध्रान्वेषीद्रोहपरोमायावीमदगर्वितः ॥ यःप्रविश्योदरेमातुर्गर्भच्छेदंचकारह ॥४६ ॥

व्यतीत हुए तब सरलचित्त वृत्रासुर अतिदारुण इन्द्रके प्रति अत्यन्त विश्वास करने लगा किन्तु इन्द्र उसके मारनेका उपाय विचारने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एक दिन विश्वकर्म्माने अपनी सन्तान वृत्रासुरको पाकशासन इन्द्रके प्रति विश्वस्तचित्त जानकर कहा हे वत्स! वृत्र! तुम मेरा हितकर वचन सुनो ॥ ४३ ॥ देखो! जिसके साथ एकवार शत्रुता होगई उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये इन्द्र तुम्हारा परम शत्रु है वह सदा तुम्हारे अनिष्टकी चिन्ता करता है अतएव उसका अब विश्वास न करना ॥ ४४ ॥ वह इन्द्र सर्वदाही लोभनिरत द्वेषरत परपीडा देनेमें उत्साहयुक्त परदारलम्पट पापबुद्धि प्रतारक ॥ ४५ ॥ छिद्रका ढूँढनेवाला हिंसक मायावी और मदगर्वित है. हे वत्स! अधिक और क्या कहूं उस पापिष्ठने लीलाक्रमसेही पापभयत्यागपूर्व्वक माताके उदरमें प्रवेशकर गर्भछेदन किया ॥ ४६ ॥ उसके

गर्भस्थित रोते हुए बालकके प्रथम सातभाग इसके उपरान्त उन सातभागोंके प्रत्येकको फिर सात भाग इस प्रकार (उनचास)भागमें छेदन किया. अतएव हे पुत्र ! उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥ जो सर्वदाही पापकार्य में प्रवृत्त है उसको पुनर्वार पापकार्य्य करनेमें क्या लज्जा है. व्यासजीने कहा हे राजन् ! वृत्रासुरका मरणकाल उपस्थित हुआथा इससे वह पिताके हेतुयुक्त वचनसे प्रबोधित होनेपरभी उसको शुभकर नहीं समझसका अनन्तर एकदिन समुद्रके तटपर असुरको देखा ॥४८॥४९॥ संध्याके समय अति दारुण मुहूर्त उपस्थित होनेपर इन्द्रने उस महासुर वृत्रासुरको देख ब्रह्माके वरदानविषयकी चिन्ताकरी ॥ ५० ॥ कि, इस समय यह भयंकर संध्या उपस्थित हुई है इस समय दिनभी नहीं रात्रिभी नहीं और यह दैत्यभी अकेला निर्ज्जनस्थानमें यथा समय उपस्थित हुआ है अतएव इस

सप्तकृत्वःसप्तकृत्वःक्रंदमानमनातुरः ॥ तस्मात्पुत्रनकर्तव्योविश्वासस्तुकथंचन ॥४७॥ कृतपापस्यकालज्जापुनःपुत्रप्रकुर्वतः ॥ व्यासउवाच ॥ एवंप्रबोधितःपित्रावचनैर्हेतुसंयुतैः ॥ ४८ ॥ नबुबोधतदावृत्रआसन्नमरणःकिल ॥ सकदाचित्समुद्रांतेतमपश्यन्महासुरम् ॥ ४९ ॥ संध्याकालउपावृत्तेमुहूर्तेऽतीवदारुणे ॥ ततःसंचिंत्यमघवावरदानंमहात्मनाम् ॥ ५० ॥ संध्येयंवर्ततेरौद्रानरात्रिर्दिवसोनच ॥ हंतव्योऽयंमयाचाऽद्यबलेनैवनसंशयः ॥ ५१ ॥ एकाकीविजनेचाऽत्रसंप्राप्तःसमयोचितः ॥ एवंविचार्यमनसासस्मारहरिमव्ययम् ॥ ५२ ॥ तत्राऽऽजगामभगवानदृश्यःपुरुषोत्तमः ॥ वज्रमध्येप्रविश्याऽसौसंस्थितोभगवान्हरिः ॥५३॥ इंद्रोबुद्धिंचकाराऽऽशुतदावृत्रवधंप्रति ॥ इतिसंचिंत्यमनसाकथंहन्म्यांरिपुंरणे ॥ ५४ ॥ अजेयंसर्वथासर्वैर्देवैश्चदानवैस्तथा ॥ यदिवृत्रंनहन्म्यद्यवंचयित्वामहाबलम् ॥ ५५ ॥ नश्रेयोममनूनंस्यात्सर्वथारिपुरक्षणात् ॥ अपांफेनंतदापश्यत्समुद्रेपर्वतोपमम् ॥ ५६ ॥ नाऽयंशुष्कोनचार्द्रोऽयंनचशस्त्रमिदंतथा ॥ अपांफेनंतदाशक्रोजग्राहकिललीलया ॥ ५७ ॥

समय बलपूर्व्वकही इसको मारना चाहिये इसमें अब संशय नहीं इन्द्रने इसप्रकार मनमें विचारकर अव्ययात्मा हरिको स्मरण किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ भगवान् पुरुषोत्तम हरिभी उस स्थानमें अदृश्यभावसे आय वज्रमें प्रविष्ट हुए ॥५३ ॥ तब इन्द्र शीघ्रही वृत्रासुरको मारनेके निमित्त स्थिरचित्त हुआ किन्तु चिन्ता करने लगा कि ॥ ५४ ॥ देव दानवगणोंको सर्व्वथा अजेय इस शत्रुको रणमें किसप्रकार मारूं और यदि इस महाबलवान् शत्रुको छलकर इस समय न मारूं ॥ ५५ ॥ तो इस दुरन्त शत्रुके वर्तमान रहनेपर हमारा कुछभी मंगल नहीं. इन्द्रने चिन्ता करते करते समुद्रके जलमें पर्व्वतकी समान फेन देखा ॥ ५६ ॥ तिस समय उसको सूखाभी

नहीं गीलाभी नहीं और शस्त्रभी नहीं यह विचारकर उसको लीलापूर्वकही ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ और तत्काल परमभक्तिसहित पराशक्ति भुवनेश्वरीको स्मरण किया भगवतीने स्मरणमात्रसेही अपना अंश फेनमें स्थापन किया ॥ ५८ ॥ इधर नारायणाधिष्ठित वज्रभी उस फेनपिण्डसे ढकगया तब इन्द्रने वह फेनसे ढकाहुआ वज्र वृत्रासुरको मारा ॥ ५९ ॥ तब तत्काल वृत्रासुर उस वज्रसे आहत होकर अचलकी समान गिरपड़ा वृत्रासुरके निहत होनेपर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए ॥ ६० ॥ ऋषिगणभी अनेक स्तवद्वारा उनकी स्तुति करनेलगे देवतोंसहित इन्द्र प्रसन्न हुए ॥ ६१ ॥ अनन्तर जिनके अनुग्रहसे शत्रु मारागया देवराज इन्द्रने देवतागणोंके सहित उन्हीं देवीकी पूजा करी और अनेक प्रकारके स्तवसे उनको प्रसन्न किया ॥ ६२ ॥ फिर नन्दनवनमें परमशक्तिकी पद्मरागमयी मूर्ति इन्द्रने स्थापन करी ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! तबसेही सब देवतालोग तीनों संध्याओंमें देवीकी पूजा करने लगे और तबसेही श्रीदेवी देवतागणोंकी कुल

परांशक्तिंचसस्मारभक्त्यापरमयायुतः ॥ स्मृतमात्रातदादेवीस्वांशंफेनेन्यधापयत् ॥ ५८ ॥ वज्रंतदावृतंतत्रचकारहरिसंयुतम् ॥ फेनावृतंपवितत्रशक्रश्चिक्षेपतंप्रति ॥ ५९ ॥ सहसानिपपाताऽऽशुवज्राहतइवाचलः ॥ वासवस्तुप्रहृष्टात्माबभूवनिहतेतदा ॥ ६० ॥ ऋषयश्चमहेंद्रंतमस्तुवन्विविधैःस्तवैः ॥ हतशत्रुःप्रहृष्टात्मावासवःसहदैवतैः ॥६१॥ देवींसंपूजयामासयत्प्रसादाद्धतोरिपुः ॥ प्रसादयामासतदास्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥ ६२ ॥ देवोद्यानेपराशक्तेःप्रासादमकरोद्धरिः ॥ पद्मरागमयींमूर्तिंस्थापयामासवासवः ॥ ६३ ॥ त्रिकालंमहतींपूजांचक्रुःसर्वेऽपिनिर्जराः ॥ तदाप्रभृतिदेवानांश्रीदेवीकुलदैवतम् ॥ ६४ ॥ विष्णुंत्रिभुवनश्रेष्ठंपूजयामासवासवः ॥ ततोहतेमहावीर्येवृत्रेदेवभयंकरे ॥ ६५ ॥ प्रववौचशिवोवायुर्जहृषुर्देवतास्तथा ॥ हतेतस्मिन्सगंधर्वायक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ६६ ॥ इत्थंवृत्रःपराशक्तिप्रवेशयुतफेनतः ॥ तयाकृतविमोहाच्चशक्रेणसहसाहतः ॥६७॥ ततोवृत्रनिहंत्रीतिदेवीलोकेषुगीयते ॥ शक्रेणनिहतत्वाच्चशक्रेणहतउच्यते ॥ ६८ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ अथतंपतितंदृष्ट्वाविष्णुर्विष्णुपुरींययौ ॥ मनसाशंकमानस्तुतस्यहत्याकृतंभयम् ॥ १ ॥

देवता हुई ॥ ६४ ॥ उसी समय इन्द्रने तीनों भुवनोंमें श्रेष्ठ विष्णुकी पूजा करी. अनन्तर महावीर्य्य भयंकर वृत्रासुके मारे जानेपर ॥ ६५ ॥ मन्द मन्द शुभकर पवन चलने लगा. देवगण, गन्धर्व, राक्षस और किन्नरगण महानन्दमें विचरण करने लगे ॥ ६६ ॥ हे महाराज ! वृत्रासुर भगवतीकी मायासे मोहित हुआ था और उसी पराशक्तिके फेनमें प्रवेशकरनेसे इन्द्र उस असुरको सहसा मारनेमें समर्थ हुए थे ॥ ६७ ॥ और इसी कारणसे देवी भुवनेश्वरी "वृत्रनिहन्त्री" नामसे त्रिलोकमें विख्यात हुई किन्तु इन्द्रने उसको बाह्यदृष्ट फेनद्वारा विनाश किया था इस कारण इन्द्रसे मारागया है यही लोक कहते हैं ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ छ ॥ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अनन्तर देवदेव विष्णुने वृत्रासुरको पड़ा हुआ

देख मनहीमनमें उसके हत्याजनित भयकी शंका करते करते वैकुण्ठपुरमें गमन किया ॥ १ ॥ इधर इन्द्रभी परमशत्रु वृत्रासुरके मारेजानेपर पापके भयसे डरकर अमर पुरको चलेगये तिससमय मुनिगणभी अत्यन्त उद्विग्न हो चिन्ता करनेलगे कि ॥२॥ हमनेही वृत्रासुरको छलकर क्या पाप कर्म किया है हाय ! देवराज इन्द्रके संग दोषसे आज हमारा "मुनि" यह नाम वृथा हुआ ॥ ३ ॥ वृत्रासुरने हमारे वचनसेही इन्द्रका विश्वास किया था अतएव विश्वासघातकके संग दोषसे आज हम भी विश्वासघातक हुए ॥ ४ ॥ ममताही सम्पूर्ण अनर्थोंका मूल है अतएव उस ममताको धिक्कार है. क्योंकि ममताकी पाशमें बद्ध होकरही हमने छलपूर्वक शपथसे वृत्रासुरको छला है ॥ ५ ॥ स्वयं पापकार्य्य न करकेभी जो पाप कार्य्य करनेकी दूसरेके संग परामर्श करें वा उस विषयमें बुद्धिप्रदान करें अथवा उस कार्य्यके करनेमें प्रेरणकरें वा जिस किसीभी प्रकारसे उसका पक्षका आश्रय करें वहभी निःसन्देह पापके भागी होते हैं ॥ ६ ॥ विष्णु सत्त्वप्रधान होनेपरभी उन्होंने वज्रमें

इंद्रोऽपिभयसंत्रस्तोययाविंद्रपुरींततः ॥ मुनयोभयसंविग्नाह्यभवन्निहतेरिपौ ॥ २ ॥ किमस्माभिःकृतंपापंयदसौवंचितःकिल ॥ मुनिशब्दोवृथाजातःसुरेशस्यचसंगमात् ॥ ३॥ अस्माकंवचनाद्वृत्रोविश्वासमगमत्किल ॥ विश्वासघातिनःसंगाद्वयंविश्वासघातकाः ॥४ ॥ धिगियंममतापापमूलमेवमनर्थकृत् ॥ यदस्माभिश्छलंकृत्वाशपथैर्वंचितोऽसुरः ॥ ५ ॥ मंत्रकृद्बुद्धिदाताचप्रेरकःपापकारिणाम् ॥ पापभाक्सभवेन्नूनंपक्षकर्तातथैवच ॥ ६॥ विष्णुनाऽपिकृतंपापंयत्साहाय्यमवाप्तवान् ॥ वज्रंप्रविश्ययेनाऽसौपातितःसत्त्वमूर्तिना ॥ ७ ॥ नूनंस्वार्थपरःप्राणीनपापात्रासमश्नुते ॥ हरिणाहरिसंगेनसर्वथादुष्कृतंकृतम् ॥ ८ ॥ द्वावेवस्तःपदार्थानांद्वावेवानिधनंगतौ ॥ प्रथमश्चतुरीयश्चयौत्रिलोक्यांतुदुर्लभौ ॥ ९ ॥ अर्थकामौप्रशस्तौद्वौसर्वेषांसंमतौप्रियौ ॥ धर्मधर्मेतिवाग्वादोदंभोऽयंमहतामपि ॥ १० ॥ मुनयोऽपिमनस्तापमेवंकृत्वापुनःपुनः ॥ जग्मुःस्वानाश्रमानेवविमनस्काहतोद्यमाः ॥ ११ ॥

प्रवेशपूर्वक इन्द्रकी सहायताकर वृत्रासुरका विनाशकिया है तो वहभी पापके भागी हुए हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७॥ जब भगवान् विष्णुनेभी इन्द्रके सहित सम्मिलित, होकर इस प्रकार पापाचरण किया तब निःसन्देह बोध होता है कि, मनुष्यके स्वार्थमें रत होनेपर पापसे फिर भय प्राप्त नहीं होता ॥ ८ ॥ बोध होता है कि इससमय धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारपदार्थोंमें त्रिभुवन दुर्लभ प्रथम और चतुर्थ धर्म्म तथा मोक्ष एकवारही विनष्ट हुए हैं॥९॥ और अर्थ तथा कामही श्रेष्ठ कहकर प्रिय हुआ है तो "धर्म्मधर्म्म" यह वचन केवल वचनमात्र है तो इस समय महत् पंडित गणोंकोभी दम्भका कारण हुआ है वास्तवमें निष्ठापरायण होकर भक्तिभावसे कोई धर्म्मका अनुष्ठान नहीं करता ॥ १० ॥ हेराजन् ! मुनिगण वारम्वार इस प्रकार मनस्तापकर विमन हुए और हतउद्योग हो अपने अपने आश्रममें चलेगये ॥ ११ ॥

इधर विश्वकर्म्मा इन्द्रसे अपना पुत्र माराहुआ सुनकर शोकसन्तप्त हृदयसे रोदन करनेलगे और मनमें अत्यन्त दुःखको प्राप्तहुए ॥ १२ ॥ अनन्तर वृत्रासुर जिस स्थानमें पडाथा उन्होंने वहां जाय उसको इस अवस्थामें देख अत्यन्त दुःखित हृदयसे उसका दाहादिसंस्कार और पारलौकिक क्रिया यथाविधिसे करी ॥ १३ ॥ और स्नानके अनन्तर इसका तर्पण तथा और्ध्वदेहिक क्रिया कर अत्यन्त शोकार्त्त हृदयसे मित्रघाती पापिष्ठ इन्द्रको शाप दिया कि ॥ १४ ॥ इन्द्रने जिसप्रकार मेरे पुत्र को शपथद्वारा लुभायकर निहत किया है इस प्रकार वहभी विधाताके दिये हुए अत्यन्तभारी दुःखको प्राप्तहो ॥ १५ ॥ हे राजन् ! पुत्रशोकसे सन्तप्त विश्वकर्म्मा सुरेश्वरको इसप्रकार शाप दे मेरुपर्व्वतके शिखरका आश्रयकर अत्यन्तकठिन तपस्याका अनुष्ठान करनेलगे ॥ १६ ॥ जनमेजयने कहा हे पितामह ! सुरराज

त्वष्टातुनिहतंश्रुत्वापुत्रमिंद्रेणभारत ॥ रुरोदुदुःखसंतप्तोनिर्वेदमगमत्पुनः ॥ १२ ॥ यत्राऽसौपतितस्तत्रगत्वावीक्ष्यतथागतम् ॥ संस्कारंकारयामासविधिवत्पारलौकिकम् ॥ १३ ॥ स्नात्वाऽस्यसलिलंदत्वाकृत्वाचैवौर्ध्वदेहिकम् ॥ शशापेंद्रंसशोकार्तःपापिष्ठंमित्रघातकम् ॥ १४ ॥ यथामेनिहतःपुत्रःप्रलोभ्यशपथैर्भृशम् ॥ तथेंद्रोपिमहद्दुःखंप्राप्नोतुविधिनिर्मितम् ॥ १५ ॥ इतिशप्त्वासुरेशानंत्वष्टातापसमन्वितः ॥ मेरोःशिखरमास्थायतपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ १६ ॥ जनमेजयउवाच ॥ हत्वात्वाष्ट्रंसुरेशोऽथकामवस्थामवाप्तवान् ॥ सुखंवादुःखमेवाऽग्रेतन्मेब्रूहिपितामह ॥ १७ ॥ व्यासउवाच ॥ किंपृच्छसिमहाभाग संदेहःकीदृशस्तव ॥ अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाऽशुभम् ॥ १८ ॥ बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वाऽपिस्वल्पंवाबहुवाकृतम् ॥ सर्वथैवहिभोक्तव्यंसदेवासुरमानुषैः ॥ ॥ १९ ॥ शक्रायेत्थंमतिर्दत्ताहरिणावृत्रघातिने ॥ प्रविष्टोऽथपविंविष्णुःसहायःप्रत्यपद्यत ॥ २० ॥ नचाऽऽपदिसहायोभूद्वासुदेवःकथंचन ॥ समयेस्वजनःसर्वःसंसारेऽस्मिन्नराधिप ॥ २१ ॥ दैवेविमुखतांप्राप्तेनकोऽप्यस्तिसहायवान् ॥ पितामातातथाभार्याभ्रातावाऽथसहोदरः ॥ २२ ॥

इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरको मारकर सुख पायाथा वा दुःख ? पहले वह आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! आप क्या पूँछते हैं ? आपका सन्देह किस प्रकार है ? आप निःसन्देह जानिये कि, जीवगणोंको अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोका फल अवश्यही भोगना होगा ॥ १८ ॥ बलवान् हो अथवा दुर्बल हो और देवता असुर अथवा मनुष्यादि जो कोई हो सबकोही अपने कियेहुए पापपुण्यका अल्प वा अधिक होनेपरभी भलीभाँति उसका फल भोगना होगा ॥ १९ ॥ इन्द्रने जब वृत्रासुरको मारनेकी चेष्टाकीथी विष्णुने तभी उनको बुद्धिदानकर और वज्रमें प्रविष्ट हो उनकी सहायता कीथी ॥ २० ॥ किन्तु विपदके समयमें विष्णुने किसीप्रकारभी इन्द्रकी सहायता नहींकी अतएव हे नरेन्द्र ! इस संसारमें सम्पूर्ण समयपरही स्वजन होतेहैं ॥ २१ ॥ किन्तु दैवके

प्रतिकूल होनेपर कोईभी फिर सहायता करनेवाला दिखाई नहीं देता अधिक क्या दैवके प्रतिकूल होनेपर पिता माता भार्य्या वा सहोदर ॥ २२॥ सेवक मित्र अथवा औरसपुत्र कोईभी दैवके प्रतिकूल होनेपर सहायता लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ वास्तवमें जो पाप वा पुण्य करता है वही उसका फल भोग कर ताहै ! वृत्रासुरके मारेजानेपर फिर सब अपने अपने स्थानको चलेगये किन्तु ब्रह्महत्याके पापप्रभावसे शचीपति इन्द्र अत्यन्त तेजहीन होगये ॥ २४ ॥ तब सब देवता ब्रह्मघातक कहकर उनकी निन्दा करनेलगे. वह और भी कहने लगे कि,कौन पुरुष शपथपूर्वक सत्य कहकर ॥ २५ ॥ विश्वस्त मित्रभावको प्राप्तहुए मुनिवरको मारनेकी इच्छा करता है ? हे महाराज ! तिस समय देवतागणोंकी गोष्ठी में, सुरोद्यानमें, गन्धर्वगणोंके सम्मिलनमें ॥ २६ ॥ अधिक क्या सब स्थानोंमें ही इस बातकी चर्चा होनेलगी कि, इन्द्रने विश्वास कियेहुए वृत्रासुरको मुनिगणोंसे धोका दिलाय छलपूर्वक स्वयं निहतकर क्या दुष्कर कार्य किया है उन्होंने वेदका

सेवकोवाऽपिमित्रंवापुत्रश्चैवतथौरसः ॥ प्रतिकूलेगतेदैवेनकोऽप्येतिसहायताम्॥२३॥ भोक्तापापस्यपुण्यस्यकर्ताभवतिसर्वथा ॥ वृत्रंहत्वागताःसर्वेनिस्ते जस्कःशचीपतिः ॥ २४ ॥ शेपुस्तंत्रिदशाः सर्वेब्रह्महेत्यब्रुवञ्छनैः ॥ कोनामशपथान्कृत्वासत्यंदत्वावचःपुनः ॥२५॥ जिघांसतिसुविश्वस्तंमुनिंमित्रत्व मागतम्॥देवगोष्ठ्यांसुरोद्यानेगंधर्वाणांसमागमे ॥२६॥ सर्वत्रैवकथातस्यविस्तारमगमत्किल॥ किंकृतंदुष्कृतंकर्मशक्रेणाऽद्यजिघांसता ॥२७॥ वृत्रंछले नविश्वस्तंमुनिभिश्चप्रतारितम् ॥ वेदप्रमाणमुत्सृज्यस्वीकृतंसौगतंमतम्॥२८॥यदयंनिहतःशत्रुर्वंचयित्वाऽतिसाहसात्॥ कोनामवचनंदत्त्वाविपरीतमथा ऽऽचरेत् ॥२९॥ विनाशकंहरिंवाऽपियथाऽयंविनिपातितः ॥ एवंविधाःकथाश्चाऽन्याःसमाजेष्वभवन्भृशम् ॥३०॥ शुश्रावेंद्रोऽपिविविधाःस्वकीर्तेर्हानिका रकाः ॥ यस्यकीर्तिर्हतालोकेधिक्तस्यैवकुजीवितम् ॥३१॥ यंदृष्ट्वापथिगच्छंतंशत्रुःस्मेरमुखोभवेत् ॥ इंद्रद्युम्नोऽपिराजर्षिःपतितःकीर्तिसंक्षयात् ॥३२॥ स्वर्गादकृतपापोऽसौपापकृत्किंनपात्यते ॥ स्वल्पेऽपराधेऽपिनृपोययातिःपतितःकिल ॥ ३३ ॥

सनातन प्रमाण छोड़कर लीलापूर्वकही वृत्रासुरको निहतकर सौगत अर्थात् बौद्धमतका आश्रय कियाहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ जिसप्रकार वृत्रासुरको निहत कियाहै इसी प्रकार वचन देकर कौन पुरुष अन्यथा करेगा ॥ २९ ॥ विष्णु और इन्द्रके सिवाय और कौन उसका विपरीताचरण करसक्ता है? तिस काल इस प्रकार अनेक बातें अनेक समाजोंमें अधिकतासे होनेलगीं ॥ ३० ॥ इधर इन्द्रनेभी अपनी कीर्त्तिमें हानिकर यह सब बातें सुनी. हे महाराज ! लोकमें जिसकी कीर्त्ति नष्ट होगई उसके उस निन्दित जीवनको धिक्कार है ॥ ३१ ॥ हाय ! विनष्टकीर्त्ति मनुष्यको मार्गमें जाताहुआ देखकर शत्रु हँसतेहैं जब राजर्षि इन्द्रद्युम्न निष्पाप होनेपर भी कीर्त्तिक्षय होनेके कारण स्वर्गसे गिरेथे ॥ ३२ ॥ तब पापाचारी गण किस प्रकार न गिरेंगे ? नरपति ययाति अत्यन्त अल्प अपराधमेंभी स्वर्गसे गिरकर ॥ ३३ ॥

शिरश्छेदन करनेपर ॥ ३४ ॥ ब्रह्मशापसे वराहमकरादि अठारहयुगपर्य्यन्त कर्कटयोनिको प्राप्त हुए थे अधिक क्या भगवान् स्वयं हरिनेभी भृगुकी स्त्रीका
योनिमें जन्म ग्रहणकिया था उन्होंने सर्वव्यापी होनेपरभी क्षुद्र वामनरूप धारण कर याचना करनेकेलिये वलिके गृहमें गमन किया था ॥ ३५ ॥ अतएव पापकारी
पुरुषगण इनकी अपेक्षा अब क्या अत्यन्त दुःखको प्राप्त न होंगे ? हे भरतभूषण ! रामचन्द्र भी भृगुके शापसे वनवासमें सीताके विरहसे ॥ ३६ ॥ अत्यन्त भारी
दुःखको प्राप्त हुए थे इसी प्रकार इन्द्रभी ब्रह्महत्याजनित पापसे ऐसे भीत हुए थे ॥ ३७ ॥ सम्पूर्णऐश्वर्ययुक्त होकर भी घरमें उनको सन्तोष न हुआ तब इन्द्राणी
उनको हीनतेजयुक्त देखकर वोली ॥ ३८ ॥ जो कि वारंवार श्वास लेते भयसे व्याकुल नष्टसंज्ञा और चेतनाहीन थे उनसे कहा हे स्वामी ! अब क्यों भयभीत हो?

विष्णुश्चवामनोभूत्वा नृपः कर्कटतांप्राप्तोयुगानष्टादशैवतु ॥ भृगुपत्नीशिरश्छेदाद्भगवान्हरिरच्युतः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मशापात्पशोर्योनौसंजातोमकरादिषु ॥
याचनार्थंवलेर्गृहे ॥ ३५ ॥ गतः किमपरंदुःखंप्राप्नोतिदुष्कृतीनरः ॥ रामोऽपिवनवासेषुसीताविरहजंवहु ॥ ३६ ॥ दुःखंचप्राप्तवान्घोरंभृगुशापेनभार
त ॥ तथेंद्रोऽपिब्रह्महत्याकृतंप्राप्यमहद्भयम् ॥ ३७ ॥ नस्वास्थ्यंप्रापगेहेऽसौसर्वसिद्धिसमन्विते ॥ पौलोमीतंसभाहीनंदृष्ट्वाप्रोवाचवासवम् ॥ ३८ ॥ निः
श्वसंतंभयत्रस्तंनष्टसंज्ञंविचेतनम् ॥ किंप्रभोऽद्यभयार्तोऽसिमृतस्तेदारुणोरिपुः ॥ ३९ ॥ कांचितावर्ततेकांततवशत्रुनिषूदन ॥ कस्माच्छोचसिलोकेशनिः
श्वसन्प्राकृतोयथा ॥ ४० ॥ नाऽन्योऽस्तिवलवाञ्छत्रुर्येनचिंतापरोभवान् ॥ इंद्रउवाच ॥ नाऽरातिर्वलवान्मेऽस्तिनशांतिर्नसुखंतथा ॥ ४१ ॥ ब्रह्मह
त्याभयाद्राज्ञिविभेमिसततंगृहे ॥ नंदनंनसुखाकारंनाऽमृतंनगृहंवनम् ॥ ४२ ॥ गंधर्वाणांतथागेयंनृत्यमप्सरसांपुनः ॥ नत्वंसुखकरानारीनानाचसुरयोषितः ॥ ४३ ॥

तुम्हारा दारुण शत्रु मरगया है ॥ ३९ ॥ हे शत्रुनाशी स्वामिन् ! कहिये अब आपको क्या चिन्ता है ? हे लोकेश! आप साधारण पुरुषोंकी समान वारंवार श्वास लेते
क्या शोच रहे हैं? ॥ ४० ॥ अब तो कोई आपका ऐसा बलवान् शत्रु नहीं है जिसकी आपको चिन्ता हो, तब इन्द्रने कहा हे प्रिये! न तो मेरा कोई बलवान् शत्रु है
पर तोभी मुझे शान्ति और सुख नहीं है ॥ ४१ ॥ हे महारानी ! मैं घरमें स्थित हुआभी ब्रह्महत्याके भयसे निरन्तर भयभीत हूं. हे देवि ! नन्दनवन अलकाभवन अमृत
वन ॥ ४२ ॥ गन्धर्वगणोंका मनोरम सङ्गीत, और अप्सरागणोंका मनोहर नृत्य यह सम्पूर्णही मुझको सुखदायक बोध नहीं होते अधिक क्या तुम्हारी समान

त्रिभुवनसुन्दरी नारी और अन्यान्यसुरसुन्दरीगण ॥ ४३ ॥ तथा कामधेनु, मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन इत्यादि देवतागणोंके वृक्षभी मुझको सुखदायक बोध नहीं होते, इससमय मैं क्या करूं? कहां जाऊं? कहां जानेसे सुख हो? ॥ ४४ ॥ हे प्रिये! इसप्रकार चिन्तातुर होकरही मैं अपने चित्तमें सुख लाभ नहीं करसक्ता. व्यासजीने कहा हे राजन्! मूढ़ इन्द्र परमकातर हुई प्रिया शचीसे इस प्रकार वचन कह कर ॥ ४५ ॥ गृहसे निकले और परममनोहर मानससरोवरमें गये देवराज इन्द्र वहां भय और शोकसे क्षीणदेह हो पद्मनालमें प्रविष्ट होकर रहे ॥ ४६ ॥ किन्तु वह घोरतर पापमें अभिभूत हुए थे, इसीकारण उस समय उनको कोई नहीं पहँचानसका वह निश्चल सर्पकी समान ॥ ४७ ॥ आहारविहारशील चिन्तार्त असहाय और विकलेन्द्रिय होकर उसी जलमें गुप्तरूपसे वास करनेलगे अनन्तर देवराज इन्द्रके ब्रह्महत्याभयसे पीड़ित हो प्रस्थान करनेपर ॥ ४८ ॥ देवतागण अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए क्योंकि उस समय

नतथाकामधेनुश्चदेववृक्षःसुखप्रदः ॥ किंकरोमिक्कगच्छामिकशर्ममजायते ॥ ४४ ॥ इतिचिंतापरःकांतेनलभेसुखमात्मनि ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वावचनंशक्रःप्रियांपरमकातराम् ॥ ४५ ॥ निर्जगामगृहान्मंदोमानसंसरउत्तमम् ॥ पद्मनालेप्रविष्टोसौभयार्तःशोककर्षितः ॥ ४६ ॥ नप्राज्ञायतदेवेंद्रस्त्वभिभूतश्चकल्मषैः ॥ प्रतिच्छन्नोवसत्यप्सुचेष्टमानइवोरगः ॥४७॥ असहायस्तुराषाडैश्चिंतार्तोविकलेंद्रियः॥ततःप्रनष्टेदेवेंद्रेब्रह्महत्याभयार्दिते ॥४८॥ सुराश्चिंतातुराश्चासन्नुत्पाताश्चाऽभवन्नथ॥ऋषयःसिद्धगंधर्वाभयार्ताश्चाऽभवन्भृशम् ॥ ४९ ॥ अराजकंजगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः ॥ अवर्षणंतदाजातंपृथिवीक्षीणवैभवा ॥ ५० ॥ विच्छिन्नस्रोतसोनद्यःसरांस्यनुदकानिवै ॥ एवंत्वराजकेजातेदेवतामुनयस्तथा ॥ ५१ ॥ विचार्यनहुषंचक्रुःशक्रंसर्वेदिवौकसः ॥ संप्राप्यनहुषोराजाधर्मिष्ठोऽपिरजोबलात् ॥ ५२ ॥ बभूवविषयासक्तःपंचबाणशराहतः ॥ अप्सरोभिर्वृतःक्रीडन्देवोद्यानेषुभारत ॥ ॥५३॥ शक्रपत्नीगुणाञ्छ्रुत्वाचकमेतांसपार्थिवः ॥ ऋषीनाहकिमिंद्राणीनोपगच्छतिमांकिल ॥ ५४ ॥

सर्वत्रही अनेकप्रकारके उत्पात होनेलगे ऋषिगण सिद्ध और गन्धर्वगण अत्यन्त भयार्त हुए ॥ ४९ ॥ क्योंकि तिसकाल सम्पूर्ण जगत् अराजक होनेपर अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे अभिभूत होनेलगा तब अनावृष्टिके कारण पृथ्वीमें अल्पधान्य ॥ ५० ॥ नदीयोंमें अत्यन्त अल्पजल, और सम्पूर्ण सरोवर जलहीन हुए इसप्रकार अराजकता उपस्थित होनेपर स्वर्गवासी समस्त देवतागण और ऋषिगणोंने ॥५१॥ विचार करके नहुषराजाको इन्द्रके पदमें अभिषिक्त किया. हे महाराज! नहुष धार्मिक होनेपरभी रजोगुणके प्रभावसे ॥ ५२॥ कामबाणसे हत होकर अत्यन्त विषयासक्त हुए तिस समय वह नरपति अप्सरागणोंके सहित हो देवोद्यानमें क्रीड़ा करनेलगे ॥ ५३ ॥ एक दिन उन्होंने इन्द्रपत्नी शचीकी गुण माधुरी श्रवण करके उसको प्राप्त करनेकी अभिलाषा की अनन्तर उन्होंने ऋषिगणोंसे कहा कि इन्द्राणी

क्यों नहीं आती? ॥ ५४ ॥ आपने और सम्पूर्ण देवताओंने मिलित होकर मुझको इन्द्रत्वपदमें वरण किया है, किन्तु अबतकभी इन्द्राणी मेरे निकट क्यों नहीं आई ? हे देवताओ! बहुत शीघ्र शचीको सेवाके निमित्त मेरे समीप लाओ ॥५५॥ यदि आपको मेरा प्रिय करना है तो यह कार्य करो. मैं इस समय इन्द्र हूं इससे देवतागण और सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर हुआ हूं ॥ ५६ ॥ अतएव अब शीघ्रही इन्द्राणी मेरे भवनमें आवे देवतागण और देवर्षिगण नहुषका यह वचन सुनकर ॥ ॥ ५७ ॥ चिन्तातुर हुए और शचीके निकट जाय मस्तक झुकाकर कहनेलगे हे इन्द्रपत्नि! दुराचार नहुष आपकी इच्छा करता है ॥ ५८ ॥ उसने कुपित होकर हमसे कहा कि शचीको शीघ्र इस स्थानमें लाओ, हे देवि ! हमने उसकोही इन्द्र किया है और हम उसकेही आधीन हुए हैं अतएव हम इस समय क्या करें? ॥ ॥ ५९ ॥ इन्द्रपत्नी शची उनका यह वचन सुन अत्यन्त दुर्मन हुई और बृहस्पतिजीसे कहने लगीं हे ब्रह्मन् ! मैं आपकी शरणागत हूं मेरी दुराचार नहुषके हाथसे

भवद्भिश्चामरैःसर्वैःकृतोऽहंवासवस्त्विह ॥ प्रेषयध्वंसुराःकामंसेवार्थंममवैशचीम् ॥ ५५ ॥ प्रियंचेन्ममकर्तव्यंसर्वथामुनयोऽमराः ॥ अहमिंद्रोऽद्यदेवानां लोकानांचतथेश्वरः ॥ ५६ ॥ आगच्छतुशचीमह्यंक्षिप्रमद्यनिवेशनम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादेवादेवर्षयस्तथा ॥ ५७ ॥ गत्वाचिंतातुराःप्रोचुःपौलोमीं प्रणतास्ततः ॥ इंद्रपत्निदुराचारोनहुषस्त्वामिहेच्छति ॥५८॥कुपितोऽस्मानुवाचेदंप्रेषयध्वंशचीमिह॥किंकुर्मस्तदधीनाःस्मयेनेंद्रोऽयंकृतःकिल॥५९॥ तच्छ्रुत्वादुर्मनादेवीबृहस्पतिमुवाचह ॥ रक्षमांनहुषाद्ब्रह्मंस्तवाऽस्मिशरणंगता ॥ ६० ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ नभेतव्यंत्वयादेविनहुषात्पापमोहितात् ॥ नत्वांदास्याम्यहंवत्सेत्यक्त्वाधर्मंसनातनम् ॥ ६१ ॥ शरणागतमार्तंचयोददातिनराधमः ॥ सएवनरकंयातियावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६२ ॥ स्वस्थाभवपृथु श्रोणिनत्यक्ष्येत्वांकदाचन ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेवृत्रवधेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ छ ॥ व्यासउवाच ॥ नहुषस्त्वथतांश्रुत्वागुरो स्तुशरणंगताम् ॥ चुक्रोधस्मरवाणार्तस्तमांगिरसमाशुवै ॥ १ ॥ देवानाहांगिरासूनुर्हंतव्योऽयंमयाकिल ॥ इतींद्राणींगृहेमूढोरक्षतीतिमयाश्रुतम् ॥ २ ॥

रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥ तब बृहस्पतिजीने कहा हे देवि ! पापमोहित नहुषसे तुम डर मत करो, हे वत्से ! सनातन धर्म परित्याग कर मैं तुमको नहुषके हाथमें नहीं दूंगा ॥६१॥ जो नराधम शरणागत कातर पुरुषको पराये हाथमें देता है वह प्रलय कालपर्यन्त दुर्विपाक नरक भोगता है इसमें सन्देह नहीं हे नितम्बिनि ! तुम सावधान होओ मैं तुमको कभी त्याग नहीं करूंगा ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रपत्नी देवगुरुकी शरणापन्न हुई है यह सुनकर कामसे व्याकुल नहुषराज बृहस्पतिजीके प्रति अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ १ ॥ और देवतागणोंसे कहनेलगे हे देवताओ ! मैंने सुना है कि, उस मूढ अङ्गिराके पुत्रने इन्द्राणीकी अपने घरमें रक्षा की है अतएव मैं उसको शीघ्रही मारूंगा ॥ २ ॥

देवतागण और ऋषिगण उस समय उसको इसप्रकार कुपित देख उस भीषणमूर्ति नहुषसे शान्तिपूर्वक कहने लगे॥ ३॥हे राजेन्द्र ! आप क्रोध दूर कीजिये हे प्रभो ! इस समय इस पापमतिको त्याग कीजिये देखो सम्पूर्ण ऋषिगण धर्मशास्त्रमें परस्त्रीगमनको महापाप कहकर निन्दा करते हैं ॥ ४ ॥ आप विचार कीजिये कि पुलोमन न्दिनी सदाही साध्वी सुशील और पतिव्रता है पतिके विद्यमान रहनेपर किसप्रकार फिर दूसरा पति ग्रहण करैं ? ॥५॥ हे प्रभो ! आप इस समय तीनो भुवनोंके अधि पति हैं इस कारणही धर्म्मके रक्षक हुए हैं अतएव आपकी समान पुरुष यदि अधर्म्माचरण करैं तो सम्पूर्णही प्रजा नष्ट होजाय ॥ ६ ॥ सर्वदा शिष्टाचारकी रक्षा करनाही प्रभुगणोंका अवश्य कर्त्तव्य है और देखो इस स्वर्गमें शचीकी समान अनेक सुन्दरी विद्यमान हैं आप उनकेही द्वारा इन्द्रिय चरितार्थ कीजिये ॥ ७॥ महात्मा गण परस्परके प्रति परस्परके अनुरागकोही शृङ्गाररसका कारण कहते हैं, अतएव बलात्कारद्वारा रसकी हानि होती है ॥ ८ ॥ हे पार्थिवोत्तम ! यदि दोनोंका समान

इतितंकुपितंदृष्ट्वादेवाःसर्षिपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्नहुषंघोरंसामपूर्वंवचस्तदा ॥ ३ ॥ क्रोधंसंहरराजेंद्रत्यजपापमतिंप्रभो ॥ निंदंतिधर्मशास्त्रेषुपरदाराभिमर्शनम् ॥ ४ ॥ शक्रपत्नीसदासाध्वीजीवमानेपतौपुनः ॥ कथमन्यंपतिंकुर्यात्सुभगाऽतिपतिव्रता ॥ ५ ॥ त्रिलोकीशस्त्वमधुनाशास्ताधर्मस्यवैविभो ॥ त्वादृशोऽधर्ममातिष्ठेत्तदानश्येत्प्रजाध्रुवम् ॥ ६ ॥ सर्वथाप्रभुणाकार्यंशिष्टाचारस्यरक्षणम् ॥ वारमुख्याश्चशतशोवर्ततेऽत्रशचीसमाः ॥ ७ ॥ रतिस्तुकारणंप्रोक्तंशृंगारस्यमहात्मभिः ॥ रसहानिर्बलात्कारेकृतेसतितुजायते॥ ८ ॥ उभयोःसदृशंप्रेमयदिपार्थिवसत्तम ॥ तदावैसुखसंपत्तिरुभयोरुपजायते ॥ ९ ॥ तस्माद्भावमिमंमुंचपरदाराभिमर्शने ॥ सद्भावंकुरुदेवेंद्रपदंप्राप्तोस्यनुत्तमम् ॥ १० ॥ ऋद्धिक्षयस्तुपापेनपुण्येनाऽतिविवर्धनम् ॥ तस्मात्पापंपरित्यज्यसन्मतिंकुरुपार्थिव ॥ ११ ॥ नहुषउवाच ॥ गौतमस्ययदाभुक्तादाराःशक्रेणदेवताः ॥ वाचस्पतेस्तुसोमेनक्वयूयंसंस्थितास्तदा ॥१२॥ परोपदेशेकुशलाःप्रभवंतिनराःकिल ॥ कर्ताचैवोपदेष्टाचदुर्लभःपुरुषोभवेत्॥१३॥मामागच्छतुसादेवीहितंस्याद्द्भुतंहिवः ॥ एतस्याःपरमंदेवाःसुखमेवंभविष्यति ॥१४॥

प्रेम हो तो उससे दोनोंकोही सुख सम्पत्ति उत्पन्न होसक्ती है ॥ ९॥ हे राजन् ! इस समय आपको इन्द्रपद प्राप्त हुआ है अतएव इस परदाराभिमर्षणकलुषित भावको दूरकर साधुभावका उदय कीजिये ॥ १०॥ पापद्वारा समृद्धिका विनाश होता है, तथा पुण्यद्वारा समृद्धिकी अत्यन्त वृद्धि होती है अतएव हे पार्थिव ! आप कलुषित भावको त्यागकर चित्तको सन्मार्गमें लाइये ॥ ११ ॥ नहुषने कहा हे देवगण ! इन्द्रने जब गौतमकी स्त्री हरणकी चन्द्रमाने जब बृहस्पतिकी स्त्री हरण की तब तुम कहां थे ? ॥ १२ ॥ देखो अन्यको उपदेश देनेमें अनेक कुशल और समर्थ हैं किन्तु स्वयं कार्य्यानुष्ठानकर पराये प्रति इसप्रकार उपदेश प्रदान करसके ऐसे पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ १३॥ हे देवगण ! उस गुणवती देवीको मेरे निकट लाओ, इससे तुम्हारा परमहित होगा और उस देवीकोभी परमसुख प्राप्तहोगा इसमें सन्देह नहीं ॥ १४॥

मैं तुमसे सत्यही कहताहूं अन्य किसीप्रकार मैं संतुष्ट नहीं हूंगा विनयसे हो अथवा बलसे हो तुम शीघ्र इन्द्राणीको इस स्थानमें लाओ ॥ १५ ॥ तब देवतागण और मुनिगण मदनवाणसे पीड़ित नहुषराजका इसप्रकार वचन सुन अत्यन्त भीतहुए और उनसे कहनेलगे ॥ १६ ॥ हम कोमलभावसे सम्मत करके इन्द्राणीको आपके निकट लावेंगे वह नहुषसे यह कहकर बृहस्पतिजीके घर चलेगये॥ १७॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवताजन बृहस्पतिजीके घर जाय हाथ जोड़कर कहनेलगे हे गुरु ! इन्द्राणीने आपके गृहका आश्रय ग्रहण किया है यह हम जानते हैं॥ १८॥ किन्तु अब उसे नहुषराजाको देनाहोगा क्योंकि हम सबने मिलकरही उनको इन्द्रके पदमें वरण किया है. हे गुरु ! यह सर्वाङ्गसुन्दरी वरवर्णिनी इससमय उनको वरण करे ॥ १९ ॥ बृहस्पतिजीने देवताओंका यह दारुण वचन सुनकर उनसे कहा हे देवताओ

अन्यथानहितुष्येऽहंसत्यमेतद्ब्रवीमिवः ॥ विनयाद्वाबलाद्वाऽपितामाशुप्रापयंत्विह ॥१५॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादेवाश्चमुनयस्तथा ॥ तमूचुश्चाऽतिसंत्रस्ता नहुषंमदनातुरम् ॥१६॥ इंद्राणीमानयिष्यामःसामपूर्वंतवांतिकम् ॥ इत्युक्त्वाततदाजग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम् ॥ १७॥ व्यासउवाच ॥ तेगत्वांगिरसःपुत्रं प्रोचुःप्रांजलयःसुराः॥जानीमःशरणंप्राप्तामिंद्राणींतववेश्मनि॥१८॥सादेयानहुषायाऽद्यवासवोऽसौकृतोयतः॥वृणोत्वियंवरारोहापतित्वेवरवर्णिनी ॥१९॥ बृहस्पतिःसुरानाहतच्छ्रुत्वादारुणंवचः ॥ नाऽहंत्यक्ष्येतुपौलोमींसतींचशरणागताम् ॥ २० ॥ देवाऊचुः ॥ उपायोऽन्यःप्रकर्तव्योयेनसोऽद्यप्रसीदति ॥ अन्यथाकोपसंयुक्तोदुराराध्योभविष्यति ॥ २१ ॥ गुरुरुवाच ॥ तत्रगत्वाशचीभूपंप्रलोभ्यवचसाभृशम् ॥ करोतुसमयंबालापतिंज्ञात्वामृतंभजे ॥२२॥ इंद्रेजीवतिमेकांतेकथमन्यंकरोम्यहम् ॥ अन्वेषणार्थंगंतव्यंमयातस्यमहात्मनः ॥ २३ ॥ इतिसासमयंकृत्वावंचयित्वाचभूपतिम् ॥ भर्तुरानयनेयत्नंकरोतुममवाक्यतः ॥ २४ ॥ इतिसंचिंत्यतेसर्वेबृहस्पतिपुरोगमाः ॥ नहुषंसहिताजग्मुरिंद्रपत्न्यादिवौकसः ॥ २५ ॥

यह पतिव्रता शची इससमय मेरी शरणागत हुई है अतएव मैं कभी इसको त्याग नहीं करसक्ता ॥ २० ॥ देवताओंने कहा हे गुरु ! आप यदि शचीको त्यागनकरै तो इससमय जिससे नहुषराज प्रसन्न हो इस प्रकार कोई उपाय कीजिये नहीं तो उनके कुपित होनेसे किसीसेभी उनको प्रसन्न नहीं कियाजायगा ॥ २१ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवताओ ! शची इससमय वहां जाय राजानहुषको वचनसे प्रलोभित करके इसप्रकार नियमकरे कि " पतिके विनाशका निश्चय होनेपर फिर आपकी भजना करूंगी " ॥ २२ ॥ अपने पति इन्द्रके जीवित रहनेपर किसप्रकार दूसरे पतिको ग्रहण करूं ? अतएव इससमय मैं उन महात्माको ढूँढनेको जाती हूं ॥ २३ ॥ शची मेरे वाक्यानुसार इसप्रकार नियमबन्धन पूर्वक उस भूपतिको छलकर पतिको लानेके लिये यत्न करे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! अनन्तर बृहस्पति इत्यादि सम्पूर्ण

देवतागण ही इसप्रकार परामर्शकर इन्द्राणीको लेकर नहुषके निकटगये॥ २५॥ तब कृत्रिम इन्द्र नहुषने उसको आताहुआ देख हृष्ट और सन्तुष्टहो आनन्दसे इन्द्राणीको अवलोकन कर कहा॥ २६॥ हे कान्ते! अब मैं यथार्थही इन्द्र हुआ हे चारुलोचने! तुम मेरी पतिके समान भजनाकरो देखो इससमय देवताओंने मुझको सर्वलोकोंका आराध्यकिया है॥ २७॥ नहुषके इसप्रकार कहनेपर शचीदेवीने अत्यन्त लज्जितहो कांपते कांपते राजासे कहा हे सुरेश्वर! मैं आपसे एकवर प्राप्त करनेकी इच्छाकरतीहै॥ २८॥ इन्द्र जीवित है या नहीं, मैं जबतक यह निर्णय नकरसकूं आप उसी थोडेकालतक प्रतीक्षा कीजिये वह हैं या नहीं. इसप्रकार सन्देह मेरे हृदयमें रहता है ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र ! जबतक इसविषयमें मैं कुछ स्थिर नकरसकूं आप तबतक मुझको क्षमाकीजिये मैं अपने मनमें यह निश्चयकर तदनन्तर आपकी भजनाकरूंगी यह सत्यही जानना चाहिये ॥ ३० ॥ इन्द्र इससमय नष्टहुआ है या स्थानान्तरमें चलागया है यह कुछ नहीं जानाजाता शचीदेवीके इसप्रकार कहनेपर नहुष अत्यन्त प्रसन्नहुए

तानागतान्समीक्ष्याऽहतदाकृत्रिमवासवः ॥ जहर्षचमुदायुक्तस्तांवीक्ष्यमुदितोऽब्रवीत् ॥२६॥ अद्याऽस्मिवासवःकांतेभजमांचारुलोचने॥ पतिस्त्वेसर्वलोकस्यपूज्योऽहंविहितःसुरैः ॥ २७ ॥ इत्युक्तासानृपंप्राहवेपमानात्रपायुता ॥ वरमिच्छाम्यहंराजंस्त्वत्तःप्राप्तुंसुरेश्वर ॥ २८ ॥ किंचित्कालंप्रतीक्षस्वयावत्कुर्वेविनिर्णयम् ॥ इंद्रोऽस्तीतिनवाऽस्तीतिसंदेहोमेहृदिस्थितः ॥ २९ ॥ ततस्त्वांसमुपस्थास्येकृत्वानिश्चयमात्मनि ॥ तावत्क्षमस्वराजेंद्रसत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ३० ॥ नहिविज्ञायतेशक्रोनष्टःकिंवाक्कवागतः ॥ एवमुक्तःसइंद्राण्यानहुषःप्रीतिमानभूत् ॥ ३१॥ व्यसर्जयत्सतांदेवींतथेत्युक्त्वामुदान्वितः ॥ साविसृष्टानृपेणाऽऽशुगत्वाप्राहसुरान्सती॥३२॥इंद्रस्याऽऽगमनेयत्नंकुरुताऽद्यकृतोद्यमाः ॥ श्रुत्वातद्वचनंदेवाइंद्राण्यारसवच्छुचि॥३३॥ मंत्रयामासुरेकाग्राःशक्रार्थंनृपसत्तम ॥ तेगत्वावैष्णवंधामतुष्टुवुःपरमेश्वरम् ॥ ३४ ॥ आदिदेवंजगन्नाथंशरणागतवत्सलम् ॥ ऊचुश्चैनंसमुद्विग्नावाक्यंवाक्यविशारदाः ॥ ३५ ॥ देवदेवःसुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांक्कापितिष्ठतिवासवः ॥ ३६ ॥ त्वद्धियानिहतेविप्रेब्रह्महत्यावृतःप्रभो ॥ त्वंगतिस्तस्यभगवन्नस्माकंचतथैवहि ॥ ३७ ॥

॥ ३१ ॥ और यही हो इसप्रकार कहकर आनन्दित चित्तसे उसको बिदाकिया पतिव्रता शची उनसे बिदाहो शीघ्र जाय देवताओंसे कहने लगी कि ॥ ३२ ॥ आप इन्द्रको लानेका उद्योग और भलीभांति यत्न कीजिये. हे राजेन्द्र ! देवतागण इन्द्राणीका वह श्रवणमनोहर पवित्र वचन सुनकर ॥ ३३ ॥ एकाग्र चित्तसे इन्द्रके लानेकी परामर्श करने लगे अनन्तर उन्होंने वैकुण्ठमें जाय ॥ ३४ ॥ शरणागतवत्सल आदिदेव जगन्नाथ परमेश्वर विष्णुका स्तवकिया वाक्यविशारद देवताओंने समुद्विग्नचित्तहो विष्णुसे कहा ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! देवदेव सुरपति इन्द्र ब्रह्महत्याके पापसे पीडित हैं इससमय वह सम्पूर्ण भूतोंसे अदृश्य हो किसस्थानमें वास करते हैं ॥ ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! वह आपकी बुद्धिसेही विप्रवर वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्याके पापमें अभिभूत हुए हैं. हे विभो ! आपही उनकी और हमारी एकमात्रगति हैं ॥ ३७ ॥

हम इससमय परम आपदामें पतित हुए हैं आप इस विपद छुड़ाने और इन्द्रकी मुक्तिका उपाय निर्देश कीजिये. देवताओंके यह कातर वाक्य सुनकर विष्णुने कहा ॥ ३८॥ इन्द्र पापसे रक्षा पाने निमित्त अश्वमेध यज्ञ करैं तो इन्द्र इस पापविनाशक यज्ञसे पवित्र हो ॥ ३९॥ सब प्रकार भयसे रहित हो फिर इन्द्रत्वको प्राप्तहोंगे इसमें सन्देह नहीं. विशेषकर अश्वमेधयज्ञ करनेसे अम्बिका देवी सन्तुष्ट हो॥ ४०॥ वह सम्पूर्ण ब्रह्महत्याका पाप नष्टकरेंगी यह निश्चय जानना चाहिये. देखो जिनके स्मरणमात्रसेही पापसमूह नष्ट होते हैं ॥ ४१ ॥ अश्वमेधयज्ञसे यदि उनको प्रसन्न कियाजाय तो उसके द्वारा घोरतरपापभी नष्ट होगा इसमें फिर क्या आश्चर्य्य है और इन्द्राणी नित्यभगवतीकी पूजा करें ॥ ४२ ॥ तो उन मंगलमयीकी आराधनासे अवश्य सुख प्राप्त होगा. विशेषकर नहुषभी उस जगन्माताकी मायाद्वारा मोहित होकर ॥ ४३ ॥ अपने कियेहुए पापसे अत्यन्तशीघ्र विनष्ट होगा और शतक्रतु इन्द्रभी अश्वमेधयज्ञसे पवित्रहोकर

त्राहिनः परमापन्नान्मोक्षंतस्यविनिर्दिश ॥ देवानांवचनंश्रुत्वाकातरंविष्णुरब्रवीत् ॥ ३८ ॥ यजतामश्वमेधेनशक्रपापनिवृत्तये ॥ पुण्येनहयमेधेनपावितःपाकशासनः ॥३९॥ पुनरेष्यतिदेवानामिंद्रत्वमकुतोभयः ॥ हयमेधेनसंतुष्टादेवीश्रीजगदंबिका ॥४०॥ ब्रह्महत्यादिपापानिनाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ यस्याःस्मरणमात्रेणपापजालंविनश्यति ॥ ४१ ॥ किंपुनर्वाजिमेधेनतत्प्रीत्यर्थंकृतेनच ॥ इंद्राणीकुरुतान्नित्यंभगवत्याःप्रपूजनम् ॥ ४२ ॥ आराधनंशिवायास्तुसुखकारिभविष्यति ॥ नहुषोऽपिजगन्मातुर्माययामोहितःकिल ॥ ४३ ॥ विनाशंस्वकृतेनाऽऽशुगमिष्यत्येनसासुराः ॥ पावितश्चाऽश्वमेधेनतुराषाडपिवैभवम् ॥ ४४ ॥ प्राप्स्यत्यचिरकालेनस्वमासनमनुत्तमम् ॥ तेतुश्रुत्वाशुभांवाणींविष्णोरमिततेजसः ॥४५॥ जग्मुस्तंदेशमनिशंयत्राऽऽस्तेपाकशासनः ॥ तमाश्वास्यसुराःशक्रंबृहस्पतिपुरोगमाः ॥४६॥ कारयामासुरखिलंहयमेधंमहाक्रतुम् ॥ विभज्यब्रह्महत्यांतुवृक्षेषुचनदीषुच ॥ ॥ ४७ ॥ पर्वतेषुपृथिव्यांचस्त्रीषुचैवाऽक्षिपद्विभुः ॥ तांविसृज्यचभूतेषुविपाप्मःपाकशासनः ॥ ४८ ॥ विज्वरःसमभूद्भूयःकालाकांक्षीस्थितोजले ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांपद्मनालेव्यतिष्ठत ॥ ४९ ॥ देवास्तुनिर्गताःस्थानेकृत्वाकार्यंतदद्भुतम् ॥ पौलोमीतुगुरुंप्राहदुःखिताविरहाकुला ॥ ५० ॥

शीघ्रही ॥ ४४ ॥ अपने आसनस्वरूप परमवैभवको प्राप्तहोंगे. हे राजन् ! देवता अमिततेजा विष्णुकी कल्याणदायिनी मनोहारिणी यह वाणी सुनकर ॥ ४५ ॥ जिस स्थानमें पाकशासन वास करतेथे उसी स्थानमें गये बृहस्पति इत्यादि सुरगणने दुर्दशायुक्त देवताओंके इन्द्रको आश्वासितकर ॥ ४६ ॥ भलीभाँति महायज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठानकराया तब देवताओंके प्रभु इन्द्रने ब्रह्महत्याके पापको त्यागकर वृक्ष नदी ॥ ४७॥ और पर्वत समूहमें स्त्रियोंमें तथा पृथ्वीमें निक्षेप किया इसकारण भूतसमूहमें ब्रह्महत्याका पाप विसर्जनकर पाकशासन इन्द्र फिर पापहीन ॥ ४८ ॥ और ज्वरहीन हो कालके आनेकी प्रतीक्षामें उसी जलमें सर्वभूतोंसे अदृश्य हो पद्मनालमें वासकरनेलगे ॥ ४९ ॥ देवता उस अद्भुत कार्य्यको कर उस स्थानसे निकल अपने अपने स्थानको चलेगये तब विरहसे आकुलहुई पुलोमनन्दिनी

अत्यन्त दुःखित हो देवगुरु बृहस्पतिजीसे कहनेलगी ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! हमारे स्वामी इन्द्र अश्वमेधयज्ञ करकेभी किसकारण अदृश्य रहते हैं मैं उनको किसप्रकार देखूंगी आप मुझसे इसका उपाय कहिये ॥ ५१ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवि ! तुम कल्याणमयी भगवतीकी आराधनाकरो तो वही तुम्हारे पतिको निष्पापकर तुमको दिखावेंगी ॥ ५२ ॥ उन्हीं जगद्धात्री अम्बिकाकी आराधना करनेपर वह नहुष राजाको अन्यान्यकार्यसे हरावेंगी और वही उसको मायासे मोहितकर स्वर्गके पदसे निपतित करेंगी ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! बृहस्पतिजीके इसप्रकार कहनेपर पुलोमतनयाने उनके निकटसे देवीका सिद्धिसाधन—युक्त मन्त्र ग्रहण किया ॥ ५४ ॥ शचीदेवी गुरुके निकटसे मंत्र प्राप्त कर बलि और पुष्पइत्यादि उपहारकी सामग्री द्वारा श्रीदेवी भुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकार आराधना करनेलगी ॥ ५५ ॥ इन्द्राणी पतिके दर्शनकी इच्छासे सम्भोग्यवस्तु त्याग

कृतयज्ञोऽपिमेभर्ताकिमदृश्यःपुरंदरः ॥ कथंद्रक्ष्येप्रियंस्वामिंस्तमुपायंवदस्वमे ॥ ५१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ त्वमाराधयपौलोमिदेवींभगवतींशिवाम् ॥ दर्शयिष्यतितेनाथंदेवीविगतकल्मषम् ॥ ५२ ॥ आराधिताजगद्धात्रीनहुषंवारयिष्यति ॥ मोहयित्वानृपंस्थानात्पातयिष्यतिचांबिका ॥ ५३ ॥ इत्युक्तासातदातेनपुलोमतनयानृप ॥ जग्राहमंत्रंविधिवद्गुरोर्देव्याःससाधनम् ॥ ५४ ॥ विद्यांप्राप्यगुरोर्देवीदेवींश्रीभुवनेश्वरीम् ॥ सम्यगाराधयामासबलिपुष्पार्चनैःशुभैः ॥ ५५ ॥ त्यक्तान्यभोगसंभारातापसीवेषधारिणी ॥ चकारपूजनंदेव्याःप्रियदर्शनलालसा ॥ ५६ ॥ कालेनकियतातुष्टाप्रत्यक्षंदर्शनंददौ ॥ सौम्यरूपधरादेवीवरदाहंसवाहिनी ॥ ५७ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशाचंद्रकोटिसुशीतला ॥ विद्युत्कोटिसमानाभाचतुर्वेदसमन्विता ॥ ५८ ॥ पाशांकुशाभयवरान्दधतीनिजबाहुभिः ॥ आपादलंबिनींस्वच्छांमुक्तामालांचबिभ्रती ॥ ५९ ॥ प्रसन्नस्मेरवदनालोचनत्रयभूषिता ॥ आब्रह्मकीटजननीकरुणामृतसागरा ॥ ६० ॥

और तापसीका वेषधारणकर देवीकी पूजा करनेलगीं ॥ ५६ ॥ कुछकाल व्यतीत होनेपर वह देवी परितुष्ट हो शान्तमूर्तिसे हंसकी पीठपर चढकर वर देनेके निमित्त उसके सामने प्रगट हुई ॥ ५७ ॥ तिससमय उनके अङ्गकी कान्ति करोड़ करोड़ सूर्यकी समान प्रदीप्त होनेपरभी करोड़ करोड़ चन्द्रमाके समान शीतल थी उनकी लावण्यछटा करोड़ करोड़ स्थिर बिजलीके समान प्रकाशित होनेलगी और मूर्तिमान् चारोंवेद चारों ओर उनका स्तव करने लगे ॥ ५८ ॥ उनके चारों हाथ पाश अंकुश वर और अभयदान सौन्दर्यसे शोभायमान थे. तथा कण्ठसे चरणोंपर्य्यन्त लम्बायमान निर्म्मल मोतियोंकी माला धारण कररहीं थी ॥ ५९ ॥ उनका मुखमण्डल कुछेक हास्य और प्रसन्नतासे

शोभायमान था. वही करुणामयी त्रिनयनी कीटसे ब्रह्मपर्य्यन्त जीवगणोंकी जननी हैं ॥ ६० ॥ उनके दोनों स्थूल स्तन शान्ति इत्यादि अनन्त पीयूषरससे परिपूर्ण थे वही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डकी ईश्वरी ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरी तथा परमेश्वरी सर्वज्ञानसम्पन्न कूटस्थित अक्षरकी साक्षी चैतन्यरूपिणी है वही भुवनेश्वरी देवी आराधनामें तत्पर हुई अमरेश्वरी शचीसे॥६२॥मेघके समान गम्भीरस्वरसे उसके आनन्द देनेवाले वचन कहने लगीं. हे शक्रवल्लभे ! तुम वांछितवर ग्रहण करो ॥ ६३ ॥ मैं तुम्हारी पूजासे अत्यन्त प्रसन्न हुई हूं हे सुश्रोणि! मैं वर देनेकोही तुम्हारे निकट आई हूं मेरा दर्शन सहजमेंही प्राप्त नहीं होता ॥६४॥ करोड़ करोड़ जन्मार्जित पुण्यसे मेरा दर्शन प्राप्त होता है तब देवीके इस प्रकार वचन सुनकर ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नी शचीदेवी साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके अनन्तर उन प्रसन्न हुई परमेश्वरी भगवतीसे कहने

अनंतकोटिब्रह्मांडनायिकापरमेश्वरी ॥ सौम्यानंतरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरीचसर्वज्ञाकूटस्थाक्षररूपिणी ॥ तामुवाचप्रसन्नासाशक्रपत्नींकृतोद्यमाम् ॥ ६२ ॥ मेघगंभीरशब्देनमुदमाददतीभृशम् ॥ देव्युवाच ॥ वरंवरयसुश्रोणिवांछितंशक्रवल्लभे ॥ ६३ ॥ ददाम्यद्यप्रसन्नास्मिपूजितासुभृशंत्वया ॥ वरदाऽहंसमायातादर्शनंसहजंनमे ॥ ६४ ॥ अनेककोटिजन्मोत्थपुण्यपुंजैर्हिलभ्यते ॥ इत्युक्तासातदादेवींतामाहप्रणतापुरः ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नीभगवतींप्रसन्नांपरमेश्वरीम् ॥ वांछामिदर्शनंमातःपत्युःपरमदुर्लभम् ॥६६॥ नहुषाद्भयनाशंचस्वपदप्रापणंतथा ॥ देव्युवाच ॥ गच्छत्वमनयादूत्यासार्द्धंश्रीमानसंसरः ॥ ६७ ॥ यत्रमेमूर्तिरचलाविश्वकामाभिधामता ॥ तत्रपश्यसिशक्रंत्वंदुःखितंभयविह्वलम् ॥ ६८ ॥ मोहयिष्यामिराजानंकालेनकियतापुनः ॥ स्वस्थाभवविशालाक्षिकरोमितवचेप्सितम् ॥ ६९ ॥ भ्रंशयिष्यामिभूपालंमोहितंत्रिदशासनात् ॥ व्यासउवाच ॥ देवीदूतींतांगृहीत्वाशक्रपत्नींत्वरान्विता ॥ ७० ॥

लगीं हे मातः ! मैं आपके निकटसे परमदुर्लभ पतिका दर्शन ॥ ६६ ॥ और नहुष राजासे भय विनाश तथा इन्द्रको फिर पद प्राप्त होनेकी इच्छा करतीं हूं. देवीने कहा हे सुरेश्वरी ! तुम मेरी इस दूतीके संग मानससरोवरमें जाओ ॥ ६७ ॥ उस स्थानमें मेरी विश्वकामा नामक अचलामूर्ति प्रतिष्ठित है शतक्रतु इन्द्र उसी स्थानमें महादुःखित और भयसे विह्वल हो वास करते हैं तुम उनको देखोगी॥६८॥ और कुछकालमेंही मैं नहुषराजाको मायासे मोहित करूंगी हे विशालाक्षि! तुम सावधान होओ मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूंगी ॥ ६९ ॥ मैं शीघ्रही उस भूपतिको मोहितकर देवताओंके सिंहासनसे भ्रष्ट करूंगी व्यासजीने कहा भगवतीकी दूती सुरेश्वरीने शक्रपत्नीको

संग लेजाकर शीघ्र॥७०॥उसके पति इन्द्रके सामने उपस्थित किया तिसकाल वाला पुलोमजा गुप्तभावसे स्थित ॥ ७१ ॥ चिरवांछित अपने पति इन्द्रको देखकर अत्यन्त आनन्दितहुई॥ ७२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! देवराज इन्द्रने प्रियभार्या विशालनयना शोकान्वित शचीको निर्जनमें देखकर आश्चर्ययुक्त चित्तसे कहा ॥ १ ॥ हे कान्ते ! मैं सम्पूर्ण जीवगणोंसे अदृश्य होकर इस निर्ज्जनस्थानमें अकेला वास करताहूं हे शुभानने ! तुमने इस स्थानको किसप्रकार जाना ? और किसप्रकार इस स्थानमें आई ॥ २ ॥ शचीने कहा हे सुरेश्वर ! मैं ने देवी भगवतीके चरणप्रसादसे आपका निवासस्थान जाना, और उन्हींके प्रसादसे मैं आपको प्राप्तहुई ॥ ३ ॥ देवताओं और मुनिगणोंने मिलकर नहुषनामक नृपतिको आपके सिंहासनमें स्थापित किया

प्रापयामाससान्निध्यंस्वपत्युःपरमेश्वरीम् ॥ साहृष्ट्वातंपतिंबालासुरेशंगुप्तसंस्थितम् ॥ ७१ ॥ मुदिताभूद्द्रंवीक्ष्यबहुकालाभिवांछितम् ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे शक्रदर्शनंनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ छ ॥ व्यासउवाच ॥ तांवीक्ष्यविपुलापांगींरहःशोकसमन्विताम् ॥ आखंडलः प्रियांभार्यांविस्मितश्चाऽब्रवीत्तदा ॥ १ ॥ कथमत्राऽगताकांतेकथंज्ञातस्त्वयाह्यहम् ॥ दुर्ज्ञेयःसर्वभूतानांसंस्थितोऽस्मिशुभानने ॥ २ ॥ शच्युवाच ॥ देवदेव्याःप्रसादेनज्ञातोऽस्यद्यभवानिह ॥ पुनस्तस्याःप्रसादेनप्राप्तास्मित्वांदिवस्पते ॥ ३ ॥ नहुषोनामराजर्षिःस्थापितोभवदासने ॥ त्रिदशैर्मुनिभिश्चैवसमांबाधतिनित्यशः ॥ ४ ॥ पतिंमांकुरुचार्वंगितुरासाहंसुराधिपम् ॥ एवंवदतिमांपाप्माकिंकरोमिवलार्दन ॥ ५ ॥ इंद्रउवाच ॥ कालाकांक्षीवरारोहेसंस्थितोऽस्मियदृच्छया ॥ तथात्वमपिकल्याणिसुस्थिरंस्वमनःकुरु ॥ ६ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तातेनसादेवीपतिनाऽतिप्रशंसिना ॥ निःश्वसंत्याहतंशक्रंवेपमानाऽतिदुःखिता ॥ ७ ॥ कथंतिष्ठेमहाभागपापात्मामांवशानुगाम् ॥ करिष्यतिमदोन्मत्तोवरदानेनगर्वितः ॥ ८ ॥

है वह कहते हैं हे सुशोभने ! मैं इन्द्रके सिंहासनमें अधिष्ठित हुआ हूं अतएव तुम मेरी पतिके रूपमें भजनकरो इसप्रकार वह निरन्तर मुझको पीड़ित करता है ॥ ॥ ४ ॥ हे बलविनाशन ! वह पापात्मा मुझसे इसप्रकार कहता है अतएव मैं अबला हूं उसका क्या करसक्ती हूं ॥ ५ ॥ इन्द्रने कहा हे वरवर्णिनी ! मैं कालकी प्रतीक्षा करके इसस्थानमें वास करता हूं हे कल्याणि ! तुम भी अपने मनको स्थिरकर कालकी प्रतीक्षासे वहां वास करतीरहो॥६॥व्यासजीने कहा हेराजन् ! बुद्धिमान् इन्द्रके यह वचन कहनेपर फिर शची देवी अत्यन्त दुःखितहोकर दीर्घश्वास त्यागपूर्वक कांपते कांपते कहने लगी ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! मैं किसप्रकार उस स्थानमें

वास करसकूंगी वह पापात्मा मदोन्मत्त और वरदानसे गर्वित होकर मुझको वशीभूत करेगा ॥ ८ ॥ देवता और मुनिगण उसके भयसे व्याकुल होकर मुझसे कहते हैं हे शोभने ! सुरपति इन्द्र इस समय तुम्हारे निमित्त कामबाणसे अत्यन्त कातर हुए हैं अतएव तुम उनका भजन करो ॥ ९ ॥ हे परन्तप ! विप्रवर बृहस्पति बलहीन और देवतागणोंके वशीभूत होकर मेरी किसप्रकार रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ १० ॥ हेप्रभो ! इससे अत्यन्त चिन्ता रहती है देखो मैं अनाथ अबला नारी हूं अतएव सर्वदाही पुरुषके वशीभूत हूं विधाता इस समय प्रतिकूल हुआ है इससे मैं किस प्रकार धर्म्मकी रक्षा करनेमें समर्थ हूंगी ? ॥ ११ ॥ मैं पतिव्रता हूं कुलटा नहीं हूं मेरा चित्त तुममेंही अत्यन्त आसक्त है वहां मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है मुझको वहां दुःख होनेसे कौन मेरी रक्षा करेगा ? ॥ १२ ॥ इन्द्रने कहा हे वरानने ! मैं तुमको इस समय एक उपाय बताये देता हूं उसका अवलम्बन करनेसे दुःखके समयमें तुम्हारा सुचरित्रही रक्षित होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ नारीजाति करोड़

देवाश्चमुनयःसर्वेमामूचुस्तद्भयाकुलाः ॥ तंभजस्ववरारोहेदेवराजंस्मरातुरम् ॥ ९ ॥ बृहस्पतिस्तुशत्रुघ्नवाडवोबलवर्जितः ॥ कथंमांरक्षितुंशक्तोभवेद्देवानुगःसदा ॥ १० ॥ तस्माच्चिंताऽस्तिमहतीनार्यहंवशवर्त्तिनी ॥ अनाथाकिंकरिष्यामिविपरीतेविधौविभो ॥ ११ ॥ नार्यस्म्यहंनकुलटात्वच्चित्तातिपतिव्रता ॥ नास्तिमेशरणंतत्रयोमांरक्षतिदुःखिताम् ॥ १२ ॥ इंद्रउवाच ॥ उपायंप्रब्रवीम्यद्यतंकुरुष्ववरानने ॥ शीलंतेदुःस्थितेकालेपरित्रातंभविष्यति ॥ १३ ॥ परेणरक्षितानारीनभवेच्चपतिव्रता ॥ उपायैःकोटिभिःकामभिन्नचित्ताऽतिचंचला ॥ १४ ॥ शीलमेवहिनारीणांसदारक्षतिपापतः ॥ तस्मात्त्वंशीलमास्थायस्थिराभवशुचिस्मिते ॥ १५ ॥ यदात्वांनहुषोराजाबलादाकर्षयेत्खलः ॥ तदात्वंसमयंकृत्वागुप्तंवंचयभूपतिम् ॥ १६ ॥ एकांते तत्समीपेत्वंगत्वावदमदालसे ॥ ऋषियानेनदिव्येनमामुपैहिजगत्पते ॥ १७ ॥ एवंतववशेप्रीताभविष्यामीतिमेव्रतम् ॥ इतितंवदसुश्रोणितदातुपरिमोहितः ॥ १८ ॥ कामांधःसमुनीन्यानेयोजयिष्यतिपार्थिवः ॥ अवश्यंतापसोभूपंशापदग्धंकरिष्यति ॥ १९ ॥

करोड़ उपायसे रक्षित होनेपरभी वह पतिव्रता नहीं होसक्ती क्योंकि काम उसका चंचल मन भेदकरके असत् मार्गमें चलाता है ॥ १४ ॥ स्त्रीगणोंकी सच्चरित्रताही उनकी पापसे रक्षा करती है अतएव हे शुचिस्मिते ! तुम सत्शीलता अवलम्बनपूर्वक स्थिर होकर वास करो ॥ १५ ॥ यदि वह दुर्म्मति खल नृपति नहुष तुमको बलपूर्वक पकड़े तो तुम समयकी अवधिकर गुप्तभावसे उसको छलना ॥ १६ ॥ हे मदालसे ! तुम अकेलेमें उसके पास जाकर कहना "हे जगत्पते ! आप ऋषियोंसे वाहित दिव्य विमानपर चढकर मेरे पास आओ ॥ १७ ॥ तो मैं सन्तुष्ट हो प्रसन्नमनसे तुम्हारे वशीभूत हूंगी यह मेरा निश्चित व्रत जानिये" हेसुश्रोणि ! तुम्हारे इस प्रकार कहनेपर फिर वह नृपति कामसे अन्ध और मोहित हो ॥ १८ ॥ मुनिगणोंको यानवहनमें नियोजित करेगा तब तपस्वीलोग क्रोधित हो शापाग्निद्वारा अवश्यही

उसको भस्म करेंगे ॥ १९ ॥ और भगवती जगदम्बिका तुम्हांरी सहायता करेगी इसमें सन्देह नहीं जो कोई जगदम्बिकाके चरणकमलोंको स्मरण करता है उसको कभी संकट उपस्थित नहीं होता ॥ २० ॥ यदि उपस्थित हो तो उसको उसके मंगलार्थही जानना चाहिये अतएव तुम गुरुके वाक्यकी अनुवर्तिनी रहकर सम्य क्प्रकार यत्नसे उन मणिद्वीपनिवासिनी ॥ २१ ॥ जगज्जननी भुवनेश्वरीका भजनकरो व्यासजीने कहा हे महाराज! शचीदेवी इन्द्रका यह वचन सुन यही हो इसप्रकार कहकर विश्वस्तचित्तसे भावी कार्यमें उद्योगिनी हो नहुषके निकट गई नहुष शची देवीको देखकर अत्यन्त आनन्दित हो कहनेलगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे सत्यभाषिणि! तुम्हारी कुशल तो है? हे कामिनि! मैं तुम्हारे आधीन हूं तुमने मेरा वाक्य प्रतिपालन किया है ॥ २४ ॥ अतएव सत्यही कहता हूं मैं

साहाय्यंजगदंबातेकरिष्यतिनसंशयः॥जगदंबापदस्मर्तुःसंकटंनकदाचन ॥२०॥ यदिजायेततत्त्वाऽपिज्ञेयंतत्स्वस्तयेकिल ॥तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥ २१ ॥ भजत्वंभुवनेशानींगुरुवाक्यानुसारतः ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याख्याताशचीतेनजगामनहुषंप्रति ॥ २२ ॥ तथेत्युक्त्वाऽतिविश्वस्ता भाविकार्येकृतोद्यमा ॥ नहुषस्तांसमालोक्यमुदितोवाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥ स्वागतंसत्यवचनैस्त्वदधीनोस्मिकामिनि ॥ दासोऽहंतवसत्येनपालितंवचनंत्वया ॥२४॥ यदागतासमीपेमेतुष्टोस्मिमितभाषिणि ॥ नचव्रीडात्वयाकार्याभक्तंमांभजसुस्मिते ॥२५॥ कार्यंवदविशालाक्षिकरिष्यामितवप्रियम् ॥ शच्युवाच ॥ सर्वंकृतंत्वयाकार्यममकृत्रिमवासव ॥ २६ ॥ मनोरथोऽस्तिमेदेवशृणुचित्तेऽधुनाविभो ॥ वांछितंकुरुकल्याणत्वद्वशाऽहमतःपरम् ॥२७॥ ब्रवीमिमानसोत्साहंत्वंतंकर्तुमिहार्हसि ॥ नहुषउवाच ॥ कार्यंत्वंब्रूहिचंद्रास्येकरोमितववांछितम् ॥ २८ ॥

तुम्हारा दास हुआ हे मितभाषिणि! जब तुम मेरे सामने आई हो तो मैं तुमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं हे शुचिस्मिते! तुम लज्जा मत करो मैं तुम्हारा भक्त हूं तुम मेरा भजन करो ॥ २५ ॥ हे विशालाक्षि! तुम्हारा क्या प्रिय कार्य्य करना होगा कहो मैं इस समय वह पूर्ण करूंगा शचीने कहा हे प्रभो वासव! आप सम्पूर्ण कार्य्यही सम्पादन करते हैं ॥ २६ ॥ इस समय मेरे हृदयमें एक मनोरथ विद्यमान है आप मेरा वह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण कीजिये इसके उपरान्त मैं आपकी वशवर्त्तिनी हूंगी ॥ २७ ॥ हे कल्याणमय! इस समय मैं अपने मनकी अभिलाषा प्रकाशित करती हूं आप उसका सम्पादन कीजिये नहुषने कहा हे

चन्द्रानने ! तुम्हारा क्या कार्य्य है कहो मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा ॥ २८ ॥ हे सुभ्रु ! तुम कहो वह यदि दुर्लभ भी हो तथापि मैं वह तुमको दूंगा शचीने कहा हे राजेन्द्र ! कैसे करूं आपकी मुझको प्रतीति नहीं होती ॥ २९ ॥ आप मेरा प्रिय कार्य्य करैं तो शपथ कीजिये हे राजन् ! पृथिवीतलमें सत्यवादी राजा दुर्लभ हैं ॥ ३० ॥ मैं सत्यपाशमें आपको बंधाहुआ जानकर फिर अपना मनोरथ कहूंगी हे भूपते ! यदि आप मेरा वांछित सम्पादन करेंगे तो मैं सदा आपकी वशवर्त्तिनी हूंगी ॥ ३१ ॥ यह मैं सत्यही आपके निकट कहतीहूं नहुषने कहा हे सुन्दरि! मैं सब करूंगा ॥ ३२ ॥ अपने यज्ञ और दानादिसे अर्जित संपूर्ण पुण्यकी शपथ करके कहता हूं कि, तुम्हारा वाक्य अवश्य ही पूर्ण करूंगा शचीने कहा इन्द्रका उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी ॥ ३३ ॥ और वासुदेवका गरुड़, यमका भैंसा, शंकरका बैल, ब्रह्माका

अलभ्यमपिदास्यामितुभ्यंसुभ्रुवदस्वमाम् ॥ शच्युवाच ॥ कथंब्रवीमिराजेंद्रप्रत्ययोनास्तिमेतव ॥२९॥ शपथंकुरुराजेंद्रयत्करोमिप्रियंतव ॥ राजानः सत्यवचसोदुर्लभाएवभूतले ॥ ३० ॥ पश्चाद्ब्रवीम्यहंराजञ्ज्ञात्वासत्येनयंत्रितम् ॥ कृतेचेद्वांछितेभूपसदातेवशवर्तिनी ॥ ३१ ॥ भविष्यामितुराजेंद्र सत्यमेतद्वचोमम ॥ नहुषउवाच ॥ अवश्यमेवकर्तव्यंवचनंतवसुंदरि ॥ ३२ ॥ शपामिसुकृतेनाऽहंयज्ञदानकृतेनवै ॥ शच्युवाच॥इंद्रस्यहरयोवाहागजश्चैवरथस्तथा ॥ ३३ ॥ गरुडोवासुदेवस्ययमस्यमहिषस्तथा ॥ वृषभःशंकरस्याऽपिब्रह्मणोवरटापतिः ॥ ३४ ॥ मयूरःकार्तिकेयस्यगजास्यस्यतुमूषकः॥ इच्छाम्यहमपूर्वंवैवाहनंतेसुराधिप ॥ ३५ ॥ यन्नविष्णोर्नरुद्रस्यनाऽसुराणांनरक्षसाम् ॥ वहंतुत्वांमहाराजमुनयःसंशितव्रताः ॥ ३६ ॥ सर्वेशिबिकया राजन्नेतद्धिममवांछितम् ॥ सर्वदेवाधिकंत्वांवैजानामिवसुधाधिप ॥ ३७ ॥ तेनतेतेजसोवृद्धिंवांछाम्यहमतंद्रिता ॥ व्यासउवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा प्रहस्यज्ञानदुर्बलः ॥ ३८ ॥ मोहितस्तुमहादेव्याकृतमोहेनतत्क्षणम् ॥ उवाचवचनंभूपःसंस्तुवन्वासवप्रियाम् ॥ ३९ ॥ नहुषउवाच ॥ सत्यमुक्तंत्वया तन्विवाहनंरुचिरंमम ॥ करिष्यामिसुकेशांतेवचनंतवसर्वथा ॥ ४० ॥

राजहंस ॥ ३४ ॥ षडाननका मोर और गणेशजीका मूँसा वाहन देखाजाता है किन्तु हे सुराधिप! मैं तुम्हारा अपूर्व वाहन देखना चाहती हूं ॥ ३५ ॥ जो विष्णुका भी नहीं देवताओंका भी नहीं राक्षसोंकाभी नहीं है, हे महाराज ! वह व्रतके धारण करनेवाले मुनिगण तुम्हारे वाहन हों ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! मुनिगण आपको पालकी द्वारा कंधेपर चढ़ावें यही मेरा मनोवांछित जानिये हे वसुधाधिप ! मैं आपको सब देवताओंसे श्रेष्ठ जानती हूं ॥ ३७ ॥ उसके द्वारा आपके तेजकी वृद्धि हो इसकी मेरे मनमें अत्यन्त कामना है व्यासजीने कहा हे महाराज ! ज्ञानदुर्बल नहुष शचीका यह वचन सुनकर हसनेलगा ॥ ३८ ॥ और तत्काल देवीकृत मोहसे मोहित होकर वासव-प्रियाकी प्रशंसा कर कहनेलगा ॥ ३९ ॥ नहुषने कहा हेतन्वङ्गि ! तुमने सत्यही मेरे उत्तमवाहनका विषय कहा हे सुकेशि ! शीघ्रही मैं तुम्हारे वचनानुसार कार्य

सम्पादन करूंगा ॥ ४० ॥ हे चारुहासिनि जो पुरुष अल्पवीर्य है वह मुनिगणोंको कभी वाहन करनेमें समर्थ नहीं होता, मैं मुनिगणोंको वाहन कर विमानपर चढ़ तुम्हारे निकट आऊंगा, इससे मेरा अतुलवीर्य प्रकाशित होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ सप्तर्षिगण और सम्पूर्ण देवर्षिगण मुझको त्रिलोकमें सर्वकी अपेक्षा समर्थ और तपस्याद्वारा श्रेष्ठ जानकर वहन करेंगे इसमें संशय क्या है ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! तब नरपति नहुषने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर यह कह इन्द्राणीको बिदाकिया और कामाकुलितचित्तसे सम्पूर्ण मुनिगणोंको बुलाकर कहा ॥ ४३ ॥ नहुष बोले भो विप्रवर ! मैं इस समय सर्वशक्तियुक्त देवराज इन्द्र हुआ हूं, आप आश्चर्य न करके मेरा कार्यसाधन कीजिये ॥ ४४ ॥ मैं इन्द्रासनको प्राप्त हुआ हूं किन्तु इन्द्राणी मेरे समीप नहीं आती जब मैंनें उसको बुलाया तब उसने

नह्यल्पवीर्यो भवतियोवाहान्कुरुतेमुनीन् ॥ अहमारुह्ययानेनत्वामेष्यामिशुचिस्मिते ॥ ४१ ॥ सप्तर्षयोमांवक्ष्यंतिसर्वेदेवर्षयस्तथा ॥ समर्थंत्रिषुलोकेषुज्ञात्वामांतपसाऽधिकम् ॥ ४२ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वातांसुसंतुष्टोविससर्जहरिप्रियाम् ॥ मुनीनाहूयसर्वांस्तानित्युवाचस्मरान्वितः ॥ ४३ ॥ नहुषउवाच ॥ अहमिंद्रोऽद्यभोविप्राःसर्वशक्तिसमन्वितः ॥ कार्यमत्रप्रकुर्वंतुभवंतोविगतस्मयाः ॥ ४४ ॥ इंद्रासनंमयाप्राप्तंनेंद्राणीमामुपैतिच ॥ आकारिताचमांब्रूतेप्रेमपूर्वमिदंवचः ॥ ४५ ॥ मुनियानेनदेवेंद्रमामुपैहिसुराधिप ॥ देवदेवमहाराजमत्प्रियंकुरुमानद ॥ ४६ ॥ एतत्कार्यंमुनिश्रेष्ठाममाऽत्यंतंदुरासदम् ॥ भवद्भिस्तुप्रकर्तव्यंसर्वथैवदयालुभिः ॥४७॥ मनोदहतिमेकामःशक्रपत्न्यांप्रवर्तितम् ॥ भवंतःशरणंमेऽद्यकुरुध्वंकार्यमद्भुतम् ॥४८॥ अगस्तिप्रमुखास्तस्यश्रुत्वावाक्यमसत्करम् ॥ अंगीचक्रुश्चभावित्वात्कृपयापरमर्षयः ॥ ४९ ॥ अंगीकृतेऽथतद्वाक्येमुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥ मुदंप्रापनृपःकामंपौलोमीकृतमानसः ॥ ५० ॥

मेरा अभिलाष जानकर प्रणामपूर्वक ॥ ४५ ॥ यह वचन कहा कि, हे देवेन्द्र ! हे मानद ! आप मुनिवाह्य विमानपर चढ़ मेरी निकट आय मेरा प्रियकार्य करो ॥ ॥ ४६ ॥ हे महर्षिगण ! यह कार्य सम्पादन करना मेरे पक्षमें अत्यन्त दुष्कर है, तथापि आप दया करके मेरा यह कार्य कीजिये ॥ ४७ ॥ मेरा मन इन्द्रपत्नीमें अत्यन्त आसक्त होकर कामबाणसे निरन्तर भस्म होता है, आप मेरे आश्रयस्थान होकर यह अद्भुत कार्य सम्पादन कीजिये ॥ ४८ ॥ अगस्त्य इत्यादि महर्षिगणोंने उसका यह असत् और अपमान करनेवाला वचन सुनकर और अवश्यम्भावि दैववशसे करुणार्द्रचित्तसे उसमें सम्मति दी ॥ ४९ ॥ नहुषका मन इन्द्राणीमें अत्यन्त

आसक्त हुआ था, तत्वदर्शी ऋषिगणोंके यह वचन स्वीकार करनेपर वह अत्यन्त आनन्दित हुआ ॥ ५० ॥ और शीघ्र मनोहर पालकीपर चढ मुनिगणोंको वाहन कर चलते चलते कहने लगा सर्पसर्प (चलोचलो) ॥ ५१ ॥ तब उस नहुष राजाने अत्यन्त कामार्त्त होकर चरणोंसे मुनिका मस्तक स्पर्श किया और जो मुनि अगस्त्य तपस्वियोंमें श्रेष्ठ लोपामुद्राके पति ॥ ५२ ॥ वातापी राक्षसके भक्षणकर्ता सागरके शोषनेवाले थे कामसे मोहित हो राजाने उनको कोड़ा मारा ॥ ५३ ॥ और इन्द्राणीमें चित्त लगा होनेसे सर्प सर्प (चलोचलो) ऐसा मुनिसे कहा, तब मुनिने कशाघातसे क्रोधित हो उसे शाप दिया ॥ ५४ ॥ हे दुराचारी तू सर्प २ कह कर हमको ताडन करता है इस कारण तू घोर वनमें बडा शरीरवाला सर्प होकर वहीं निवास करता रह. अपने वीर्यवशसे विचरण कर. अनेक हजार वर्ष व्यतीत होने

आरुह्यशिविकांरम्यांसंस्थितस्त्वरयान्वितः ॥ वाहान्कृत्वामुनीन्दिव्यान्सर्पसर्पेतिचाब्रवीत् ॥ ५१ ॥ कामार्तःसोऽस्पृशन्मूढःपादेनमुनिमस्तकम् ॥ अगस्तितापसश्रेष्ठंलोपामुद्रापतिंतदा ॥ ५२ ॥ वातापिभक्षकर्तारंसमुद्रस्याऽपिशोषकम् ॥ कशयाताडयामासपंचबाणशराहतः ॥ ५३ ॥ इंद्राणीहृतचित्तोऽसौसर्पेतिप्रब्रुवन्मुनिम् ॥ तंशशापमुनिःक्रुद्धःकशाघातमनुस्मरन् ॥ ५४ ॥ सर्पोभवदुराचारवनेघोरवपुर्महान् ॥ बहुवर्षसहस्राणियत्रक्लेशोमहान्भवेत् ॥ ५५ ॥ विचरिष्यसिवीर्येणपुनःस्वर्गमवाप्स्यसि ॥ दृष्ट्वायुधिष्ठिरंनामतवमोक्षोभविष्यति ॥ ५६ ॥ प्रश्नानामुत्तरंश्रुत्वाधर्मपुत्रमुखात्ततः ॥ व्यासउवाच ॥ एवंशप्तःसराजर्षिःस्तुत्वातंमुनिसत्तमम् ॥ ५७ ॥ स्वर्गात्पपातसहसासर्परूपधरोऽभवत् ॥ बृहस्पतिस्ततोगत्वातरसामानसंप्रति ॥ ५८ ॥ इंद्रायसर्ववृत्तांतंकथयामासविस्तरात् ॥ तच्छ्रुत्वामघवाराज्ञःस्वर्गात्प्रच्यवनादिकम् ॥ ५९ ॥ मुदितोऽभून्महाराजःस्थितस्तत्रैववासवः ॥ देवाश्चमुनयोदृष्ट्वानहुषंपतितंभुवि ॥ ६० ॥

पर जब अत्यन्त क्लेश भोगेगा ॥ ५५ ॥ तब फिर स्वर्गको प्राप्त होगा तू जब युधिष्ठिरनामक नरपतिका दर्शन करेगा ॥ ५६ ॥ उसी समय उस धर्मपुत्रके मुखसे सम्पूर्ण प्रश्नोंका उत्तर सुनकर बंधनसे छूट जायगा व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसप्रकार शापको प्राप्त हो राजर्षि नहुष उन मुनिसत्तमका स्तव करते करते ॥ ५७ ॥ सहसा स्वर्गसे पतित हुआ और तत्काल सर्पका आकार धारण किया अनन्तर देवगुरु बृहस्पतिजीने शीघ्र मानससरोवरमें जाय ॥ ५८ ॥ देवराज इन्द्रसे यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा सुरपति, नहुषनृपतिकी स्वर्गच्युति इत्यादि समस्त वृत्तान्त श्रवण कर ॥ ५९ ॥ अत्यन्त आनन्दित हुए और प्रसन्नचित्तसे उसी स्थानमें वास करने

लगे देवता और मुनिगण नहुषको पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर ॥ ६० ॥ जिस स्थानमें इन्द्र वास करते थे उसी मानससरोवरमें गय तब मुनिगण और देवता सब मिलित होकर इन्द्रको समझाय ॥ ६१ ॥ और सन्मानित कर फिर स्वर्गमें ले आये फिर सम्पूर्ण देवता और ऋषिगणने आये हुए इन्द्रको ॥ ६२ ॥ स्वर्गके सिंहासनपर स्थापित कर तिसके उपरान्त अभिषेकक्रिया सम्पादन की इन्द्रभी अपने सिंहासनको प्राप्त हो प्रणयिनी शचीके सहित सुरालयके ॥ ६३ ॥ मनोहर वनमें क्रीड़ा करने लगे व्यासजीने कहा हे राजन् ! कामरूप महर्षि असुरेश्वर विश्वरूपको मारकर इन्द्र इसप्रकार अत्यन्त दारुण दुःख भोगकर तदनन्तर देवीके प्रसादसे अपने आसनको प्राप्त हुए थे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूँछा था मैंने वही वृत्रासुरका वधवृत्तान्त रूप अत्युत्तम उपाख्यान आपके निकट कीर्त्तन किया ॥

जग्मुःसर्वेऽपितत्रैवयत्रेंद्रःसरसिस्थितः ॥ तमाश्वास्यसुराःसर्वेमुनिभिःसहितास्तदा ॥ ६१ ॥ स्वर्गेसमानयामासुर्मानपूर्वंशचीपतिम् ॥ समागतंततः शक्रंसर्वेतेमुनयःसुराः ॥ ६२ ॥ स्थापयित्वाऽऽसनेपश्चादभिषेकंदधुःशिवम् ॥ इंद्रोऽपिस्वासनंप्राप्यशच्यासहसुरालये ॥ ६३ ॥ चिक्रीडनंदनेरम्येकाननेप्रेमयुक्तया ॥ व्यासउवाच ॥ एवमिंद्रेणसंप्राप्तंदुःखंपरमदारुणम् ॥ ६४ ॥ हत्वासुरंकामरूपंविश्वरूपंमहामुनिम् ॥ पुनर्देव्याःप्रसादेनस्वस्थानंप्राप्तवान्नृप ॥ ६५ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंवृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ यत्पृष्टोऽहंत्वयाराजन्कथानकमनुत्तमम् ॥ ६६ ॥ यादृशंकुरुतेकर्मतादृशंफलमाप्नुयात् ॥ अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाशुभम् ॥ ६७ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेवृत्रवधोनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ छ ॥ जनमेजयउवाच ॥ कथितंचरितंब्रह्मञ्छक्रस्याऽद्भुतकर्मणः ॥ स्थानभ्रंशस्तथादुःखप्राप्तिरुक्ताविशेषतः ॥ १ ॥ यत्रदेवाधिदेव्याश्चमहिमाऽतीववर्णितः ॥ संदेहोऽत्रममाऽप्यस्तियच्छक्रोपिमहातपाः ॥ २ ॥ देवाधिपत्यमासाद्यदुःखहंदुःखमन्वभूत् ॥ मखानांतुशतंकृत्वाप्राप्तंस्थानमनुत्तमम् ॥ ३ ॥

॥ ६६ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! आप निश्चय जानिये कि जीवगण जिसप्रकार कर्म करते हैं उसीप्रकार फलको प्राप्त होते हैं, कियाहुआ कर्म शुभ हो अथवा अशुभ हो अवश्यही उसका फल भोगना होगा, इसमें सन्देह नहीं इसीप्रकार इन्द्रनेभी ब्रह्महत्या रूप अपने किये हुए कर्मका फल भोगा था ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥ ॥छ॥ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने अद्भुतकर्मा इन्द्रका अद्भुत चारित्र और उनका स्थानभ्रंश तथा दुःखकी प्राप्ति भलीभाँति वर्णन की ॥ १ ॥ और उनके प्रसङ्गमें देवाधिदेवी भुवनेश्वरीकी महिमा भी विशेषरूपसे वर्णन की किन्तु इस बातका मेरे मनमें एक सन्देह उपस्थित हुआ है कि इन्द्र महातपस्वी थे॥ २॥ उन्होंने दुःखनाशक देवाधिपत्यको प्राप्त होकर भी दुःख अनुभव क्यों किया था वह सो अश्वमेधयज्ञका

अनुष्ठान करके देवाधिपत्य और उत्तम स्थानको प्राप्त होकर भी ॥ ३ ॥ किसकारण उस स्थानसे भ्रष्ट हुए ? हे करुणानिधे ! आप दया करके यह सम्पूर्ण कारण मेरे प्रति वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ आप सर्वज्ञ मुनिश्रेष्ठ और पुराणसमूहके प्रवर्तक हैं. मैं आपका श्रद्धान्वित शिष्य हूं ऐसे प्रियशिष्यके निकट महत्पुरुषोंका न कहनेयोग्य कुछ भी नहीं है ॥ ५ ॥ अतएव हे महाभाग ! आप कृपाकरके मेरा यह सब संशय दूर कीजिये. सूतजीने कहा जनमेजयके सत्यवतीपुत्र व्यासदेवजीसे इसप्रकार पूँछनेपर ॥ ६ ॥ उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नमनसे यथाक्रमसहित उसका उत्तर दिया. व्यासजीने कहा हे नृपवर ! आप उसका सम्पूर्ण अद्भुत कारण सुनिये ॥ ७ ॥ तत्वके जाननेवाले पुरुष कहते हैं कि, कर्मकी गति संचित, वर्तमान और प्रारब्धभेदसे तीनप्रकारकी है ॥ ८ ॥ इसके प्रत्येककी फिर सात्विक, राजसिक और तामसिक

देवेशत्वंचसंप्राप्यभ्रष्टःस्थानादसौकथम् ॥ एतत्सर्वसमाचक्ष्वकारणंकरुणानिधे ॥ ४ ॥ सर्वज्ञोऽसिमुनिश्रेष्ठपुराणानांप्रवर्तकः ॥ नाऽवाच्यंमहतांकिंचिच्छिष्येचश्रद्धयाऽन्विते ॥५॥ तस्मात्कुरुमहाभागमत्संदेहापनोदनम् ॥ सूतउवाच ॥ इतिपृष्टःसराज्ञावैतदासत्यवतीसुतः॥६॥तमाहाऽतिप्रसन्नात्मायथानुक्रमसुत्तरम् ॥ व्यासउवाच ॥ निबोधनृपतिश्रेष्ठकारणंपरमाद्भुतम् ॥७॥ कर्मणस्तुत्रिधाप्रोक्तागतिस्तत्त्वविदांवरैः ॥ संचितंवर्तमानंचप्रारब्धमितिभेदतः ॥८॥ अनेकजन्मसंजातंप्राक्तनंसंचितंस्मृतम् ॥ सात्त्विकंराजसंकर्मतामसंत्रिविधंपुनः ॥९॥ शुभंवाऽप्यशुभंभूपसंचितंबहुकालिकम् ॥ अवश्यमेवभोक्तव्यंसुकृतंदुष्कृतंतथा ॥ १० ॥ जन्मजन्मनिजीवानांसंचितानांचकर्मणाम् ॥ निःशेषस्तुक्षयोनाऽभूत्कल्पकोटिशतैरपि ॥११॥ क्रियमाणंचयत्कर्मवर्तमानंतदुच्यते ॥ देहंप्राप्यशुभंवाऽपिह्यशुभंवासमाचरेत् ॥ १२ ॥ संचितानांपुनर्मध्यात्समाहृत्यकियान्किल ॥ देहारंभेचसमयेकालःप्रेरयतीवतत् ॥ १३ ॥

भेदसे तीन तीन प्रकार जाननी चाहिये अनेक जन्ममें उत्पन्न किये हुए प्राक्तनकर्मको संचित कहते हैं॥ ९ ॥ हे भूपते ! सञ्चित कर्म शुभ हो वा अशुभहो अथवा बहुत कालका हो प्राणीगणोंको अवश्यही उस अच्छे बुरे कर्मका फल भोगना पड़ेगा ॥ १० ॥ जीवगण जन्म जन्ममें किये संचित कर्मोंका फल भोगे विना वह सौकरोड़ कल्पमेंभी नष्ट नहीं होता ॥ ११ ॥ जो कर्म करना आरम्भ किया है इस समयभी वह नष्ट नहीं होता, इसकोही वर्तमान कर्म कहते हैं. जीव देहधारण करके शुभ हो अथवा अशुभ हो यह वर्तमानकर्म सम्पादन करते हैं ॥ १२ ॥ देहारम्भके समय कल्पपूर्वमें किये हुए संचितकर्मोंमें कुछेक अंश हरण करके भोगके निमित्त प्रेरण करता है ॥ १३ ॥

इसकोही प्रारब्ध कर्म्म कहते हैं, फलके भोगनेसे वह नष्ट होता है प्राणियोंको अवश्यही यह प्रारब्ध कर्म्म भोगना पड़ेगा ॥ १४ ॥ हे महाराज ! देवता हो वा मनुष्य हो असुर हो वा यक्ष हो गन्धर्व हो अथवा किन्नर हो पूर्वमें कियेहुए धर्म्म अधर्म्म का फल अवश्यही भोगना पड़ेगा, यही स्थिरनिश्चय जानना चाहिये ॥ १५ ॥ पूर्वमें कियाहुआ कर्महीं देव मनुष्य यक्ष गन्धर्व किन्नर कोई हो सबके देहारम्भका कारण होता है ॥ १६ ॥ कर्मका क्षय होनेसे प्राणियोंका जन्म नष्ट होता है इसमें संशय नहीं है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र और सुरगण ॥ १७ ॥ तथा दानव यक्ष गन्धर्वादि सबही कर्म्मके वशीभूत हैं. हे नृप ! कर्म्मके विना देहीगणोंके सुख दुःख भोगनेका कारणस्वरूप देहसम्बन्ध किसप्रकार उपस्थित हो सक्ता है ? अतएव हे राजेन्द्र ! कालके परिपाकसे अनेक जन्मजनित सञ्चित कर्मोंमें ॥ १८ ॥ १९ ॥ किसी

प्रारब्धंकर्मविज्ञेयंभोगात्तस्यक्षयःस्मृतः ॥ प्राणिभिःखलुभोक्तव्यंप्रारब्धंनाऽत्रसंशयः ॥ १४ ॥ पुराकृतानिराजेंद्रह्यशुभानिशुभानिच ॥ अवश्यमेवकर्माणिभोक्तव्यानीतिनिश्चयः ॥ १५ ॥ देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ कर्मैवहिमहाराजदेहारंभस्यकारणम् ॥ १६ ॥ कर्मक्षयेजन्मनाशःप्राणिनांनाऽत्रसंशयः ॥ ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रइंद्राद्याश्चसुरास्तथा ॥ १७ ॥ दानवायक्षगंधर्वाःसर्वेकर्मवशाःकिल ॥ अन्यथादेहसंबंधःकथंभवतिभूपते ॥ १८ ॥ कारणंयस्तुभोगस्यदेहिनःसुखदुःखयोः ॥ तस्मादनेकजन्मोत्थसंचितानांचकर्मणाम् ॥ १९ ॥ मध्येवेगःसमायातिकस्यचित्कालपाकतः ॥ तत्प्रारब्धवशात्पुण्यंकरोतिचयथातथा ॥ २० ॥ पापंकरोतिमनुजस्तथादेवादयोऽपिच ॥ तथानारायणोराजन्नरश्चधर्मजावुभौ ॥ २१ ॥ जातौकृष्णार्जुनौकाममंशौनारायणस्यतौ ॥ पुराणपीठिकेयंवैमुनिभिःपरिकीर्तिता ॥ २२ ॥ देवांशःसतुविज्ञेयोयोभवेद्विभवाधिकः ॥ नाऽनृषिःकुरुतेकाव्यनाऽरुद्रोरुद्रमर्चते ॥ २३ ॥

कर्मका वेग उपस्थित होता है जिसका वेग उपस्थित हो वही प्रारब्ध है. इसी प्रारब्धवशसे मनुष्य तथा देवादि सबही जिसप्रकार पुण्य करते हैं ॥ २० ॥ इसीप्रकार पापकार्य्य भी करते हैं, इससे आप जानिये कि इन्द्रने पुण्यसे जिसप्रकार देवाधिपत्य प्राप्त किया था उसी प्रकार पाप प्रारब्धसे ब्रह्महत्या कर अपने पदसे भ्रष्ट हुए थे इसमें फिर संदेहका क्या विषय है ? हे राजेन्द्र ! केवल इन्द्रही कर्मके वशीभूत नहीं है धर्म्मपुत्र नर और नारायणनेभी कर्मके वशीभूत हो ॥ २१ ॥ जन्मग्रहण किया था इसमें नर और नारायणके अंशसे अर्ज्जुन और कृष्ण दोनोंही कर्मवशसे नारायणके अंशसे अवतीर्ण हुए थे मुनिगण इनको ही पुराणोंकी पीठिका अर्थात् क्रमरूपसे वर्णन किया है यही प्रमाण है सो वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥ जो अतुल ऐश्वर्यवान् हैं उनको देवांश जानना चाहिये, जो मुनि नहीं हैं वे ज्ञान

प्रतिपादक शास्त्र प्रणयन नहीं करते जो रुद्र नहीं है वे रुद्रकी अर्चना नहीं करते ॥ २३ ॥ जो देवताओंके अंशसे नहीं है वे अन्नदान नहीं करते जो विष्णुका अंश नहीं हैं वे पृथिवीपति नहीं होते. हे पृथिवीन्द्र ! इन्द्र, अग्नि, यम, विष्णु और धनदसे ॥ २४ ॥ प्रभुत्व प्रभाव कोप और पराक्रम ग्रहण कर जीवोंका शरीर बनता है यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ २५ ॥ लोकमें जो कोई पुरुष बलवान् भाग्यवान् भोगवान् विद्यावान् अथवा दानशील है वही पुरुष देवांश कहा जाता है ॥ २६ ॥ हे वसुधाधिप ! इसीप्रकार पाण्डवोंको देवांश और नारायणके समान प्रभावशाली वासुदेवको तो देवरूप ही जानना चाहिये ॥ २७ ॥ हेराजन् ! आप निश्चय जानिये कि, प्राणीगणोंका शरीर सुखदुःख भोगनेका स्थान है यह शरीरधारी जीवगण सदाही सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुखभोग करते आतेहैं ॥ २८ ॥ कोईभी देही (जीवात्मा) स्वाधीन नहीं है सदाही दैवके आधीन हैं वे अपने वशमें न रहकर दैवके वशीभूत हो जन्म, मृत्यु सुख और दुःख पाते हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! दैव जो सबकी अपेक्षा बलवान्

नाऽदेवांशोददात्यन्नंनाऽविष्णुःपृथिवीपतिः ॥ इंद्रादग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादितिभूपते ॥ २४ ॥ प्रभुत्वंचप्रभावंचकोपंचैवपराक्रमम् ॥ आदायक्रियतेनूनंशरीरमितिनिश्चयः ॥ २५ ॥ यःकश्चिद्बलवाँल्लोकेभाग्यवानथभोगवान् ॥ विद्यावान्दानवान्वाऽपिसदेवांशःप्रपठ्यते ॥ २६ ॥ तथैवैतेसमाख्याताःपांडवाःपृथिवीपते ॥ देवांशोवासुदेवोऽपिनारायणसमद्युतिः ॥ २७ ॥ शरीरंप्राणिनांनूनंभाजनंसुखदुःखयोः ॥ शरीरीप्राप्नुयात्कामंसुखंदुःखमनंतरम् ॥ २८ ॥ देहीनास्तिवशःकोपिदैवाधीनःसदैवहि ॥ जननंमरणंदुःखंसुखंप्राप्नोतिचावशः ॥ २९ ॥ पांडवास्तेवनेजाताःप्राप्तास्तुस्वगृहंपुनः ॥ स्वबाहुबलतःपश्चाद्राजसूयंक्रतूत्तमम् ॥ ३० ॥ वनवासंपुनःप्राप्तावहुदुःखकरंपरम् ॥ अर्जुनेनतपस्तप्तंदुष्करंह्यजितेंद्रियैः ॥ ३१ ॥ संतुष्टैस्तुसुरैर्दत्तंवरदानंपुनःशुभम् ॥ नरदेहकृतंपुण्यंक्वगतंवनवासजम् ॥ ३२ ॥ नरदेहेतपस्तप्तंचोग्रंवदरिकाश्रमे ॥ नार्जुनस्यशरीरेतत्फलदंसंबभूवह ॥ ३३ ॥ प्राणिनांदेहसंबंधेगहनाकर्मणोगतिः ॥ दुर्ज्ञेयासर्वथादेवैर्मानवानांतुकाकथा ॥ ३४ ॥ वासुदेवोऽपिसंजातःकारागारेऽतिसंकटे ॥ नीतोऽसौवसुदेवेननंदगोपस्यगोकुलम् ॥ ३५ ॥

हे इस विषयका निदर्शन देखिये पाण्डवोंने प्रथम वनमें जन्म ग्रहण कर तिसके उपरान्त अपने घर गये थे. अनन्तर अपने बाहुबलसे राजसूयमहायज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ३० ॥ फिर कठोर दुःखदायक वनवासको प्राप्त हुए तदनन्तर अर्ज्जुनने कठिन तपस्या की जो अजितेन्द्रियोंको दुर्लभ है ॥ ३१ ॥ देवताओंने सन्तुष्ट हो उसको कल्याणदायक वर प्रदान किया तथापि उसने दुःखके कठोर हाथसे रक्षा नहीं पाई नरदेहमें किया हुआ वनवासजनित पुण्य कहाँ चलागया ॥ ३२ ॥ उसने पूर्वजन्ममें नरनामक धर्मपुत्र हो बदरिकाश्रममें जो भारी तपस्याकी थी इस समय अर्ज्जुन देहमें वह फलदायक नहीं हुई ? ॥ ३३ ॥ प्राणीगणोंके देहसम्बन्धमें कर्मकी गति अत्यन्त दुर्जय है देवताभी जब उसको नहीं जानसक्ते तब मनुष्योंके सम्बन्धमें फिर क्या बात है ॥ ३४ ॥ भगवान् वासुदेवने भी अत्यन्त संकटके स्थल कारागारमें जन्म ग्रहण

कर अन्तमें वसुदेवसे नन्दगोपके गोकुलमें आय ॥ ३५ ॥ वहां ग्यारह वर्ष वास कर तथा फिर मथुरामें आय बलपूर्वक उग्रसेनके पुत्र कंसको मारा था ॥ ३६ ॥ अनन्तर उन्होंने अत्यन्त दुःखित पिता माताको बन्धनसे छुडाय और उग्रसेनको मथुरापुरीका राजा किया था ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उन्होंने म्लेच्छराज कालयवनके भयसे द्वारकापुरीको गमन किया इस प्रकार जनार्दन कृष्णने दैवके वशीभूत हो द्वारावती नगरीमें अनेक कार्य साधनकरके महत् पुरुषार्थसाधनके अनन्तर कुटुम्ब गणोंके सहित प्रभासतीर्थमें देहपरित्याग कर वैकुण्ठको गमन किया था॥ ३८ ॥ ३९ ॥ प्रभासतीर्थमें विप्रके शापसे सम्पूर्ण यादवगण, पुत्र, पौत्र, सुहृद्, भाई, बहन तथा कुलकामिनी गणोंके सहित मृत्युको प्राप्त हुए थे॥ ४० ॥ हे राजन्! यह मैंने आपके निकट कर्म्मकी गहनगतिविषय वर्णन किया अधिक और क्या कहूं इस कर्मके वशीभूत हो स्वयं

एकादशैववर्षाणिसंस्थितस्तत्रभारत ॥ पुनःसमथुरांगत्वाजघानोग्रसुतंबलात् ॥३६॥ मोचयामासपितरौबंधनाद्भृशदुःखितौ ॥ उग्रसेनंचराजानंचका रमथुरापुरे॥ ३७॥ जगामद्वारवत्यांसम्लेच्छराजभयात्पुनः॥सर्वंभाविवशात्कृष्णःकृतवान्पौरुषंमहत्॥ ३८॥कृत्वाकार्याण्यनेकानिद्वारवत्यांजनार्दनः॥देहं त्यक्त्वाप्रभासेतुसकुटुंबोदिवंगतः॥ ३९॥पुत्राःपौत्राश्चसुहृदोभ्रातरोजामयस्तथा॥प्रभासेयादवाःसर्वेविप्रशापात्क्षयंगताः॥ ४०॥एवंतेकथिताराजन्कर्मणो गहनागतिः ॥ वासुदेवोऽपिव्याधस्यबाणेननिधनंगतः ॥४१॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥जनमेजयउवाच॥ भारावतरणार्थायकथितंजन्मकृष्णयोः ॥ संशयोऽयंद्विजश्रेष्ठहृदयेममतिष्ठति ॥ १ ॥ पृथिवीगोस्वरूपेणब्रह्माणंशरणंगता ॥ द्वापरांऽतेतिदीनाऽऽर्तागुरु भारप्रपीडिता ॥ २ ॥ वेधसाप्रार्थितोविष्णुःकमलापतिरीश्वरः ॥ भूभारोत्तरणार्थायसाधूनांरक्षणायच ॥ ३ ॥ भगवान्भारतेखंडेदेवैःसहजनार्दनः ॥ अ वतारंगृहाणाशुवसुदेवगृहेविभो ॥ ४ ॥ एवंसंप्रार्थितोधात्राभगवान्देवकीसुतः ॥ बभूवसहरामेणभूभारोत्तरणायवै ॥ ५ ॥

वासुदेवभी व्याधके बाणसे मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ जनमेजयने कहा हे द्विजेन्द्र! आपने कहा है कि, पृथिवीका भार हरण करनेके निमित्त राम और कृष्णने जन्मग्रहण किया था इस विषयका मेरे हृदयमें बड़ा संशय उपस्थित हुआ है ॥ १ ॥ वह आप सुनिये, द्वापरयुगके अवसानमें पृथिवी भारी पापसे आक्रान्त और कातर हो गोरूपधारण कर ब्रह्माजीकी शरणागत हुई थी ॥ २ ॥ तब ब्रह्माजी पृथिवीके सहित भूभारहरण और साधुओंकी रक्षाके निमित्त ॥ ३ ॥ कमलापति प्रभु विष्णुके निकट जाय प्रार्थना कर कहने लगे हे विभो! आप पृथिवीमें वसुदेवके घर अवताररूपसे शीघ्र जन्मग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीकी इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवानने पृथिवीका भार हरण

करनेके निमित्त बलरामके सहित देवकीके पुत्ररूपसे जन्मग्रहण किया था ॥ ५ ॥ उन्होंने इस पृथिवीमें अनेक अनेक दुष्टस्वभाव पुरुषोंको और अनेकानेक राजाओंको पापबुद्धि और दुराचारी जानकर उनको मार कुछेक पृथिवीका भार दूर किया था ॥ ६ ॥ इसमें भीष्म, द्रोण, विराट, द्रुपद, बाह्लीक, सोमदत्त और सूर्यका पुत्र कर्ण भी मारे गये थे ॥ ७ ॥ किन्तु जिन्होंने धन लूटा तथा हरीकी रमणीगणोंको हरण किया था वह सम्पूर्ण करोड़ करोड़ आभीर शक म्लेछ और निषादगण पृथ्वीमें शेष रहे बुद्धिमान् कृष्णने यदि उनको न मारा तो उनका पृथिवीका भार दूर करना किस प्रकार हुआ ? ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! कलिकालमें संपूर्ण प्रजाको पापनिरत देखकर यह महा संशय मेरे चित्तसे किसी प्रकार दूर नहीं होता ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! कालके वशीभूत हो जिस युगमें जिसप्रकार स्वभावादि युक्त

कियानुत्तारितोभारोहत्वादुष्टाननेकशः ॥ ज्ञात्वासर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह ॥ ६ ॥ हतोभीष्मोहतोद्रोणोविराटोद्रुपदस्तथा ॥ बाह्लीकःसोमदत्तश्चकर्णोवैकर्तनस्तथा ॥ ७ ॥ यैर्लुंठितंधनंसर्वंहृताश्चहरियोषितः ॥ कथंननाशितादुष्टायेस्थिताःपृथिवीतले ॥ ८ ॥ आभीराश्चशकाम्लेच्छानिषादाः कोटिशस्तथा ॥ भारावतरणंकिंतत्कृतंकृष्णेनधीमता ॥ ९ ॥ संदेहोऽयंमहाभागननिवर्ततिचित्ततः ॥ कलावस्मिन्प्रजाःसर्वाःपश्यतःपापनिश्चयाः ॥ ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ राजन्यस्मिन्युगेयादृक्प्रजाभवतिकालतः ॥ नाऽन्यथातद्भवेन्नूनंयुगधर्मोऽत्रकारणम् ॥ ११ ॥ येधर्मरसिकाजीवास्तेवै सत्ययुगेऽभवन् ॥ धर्मार्थरसिकायेतुतेवैत्रेतायुगेऽभवन् ॥ १२ ॥ धर्मार्थकामरसिकाद्वापरेचाऽभवन्युगे ॥ अर्थकामपराःसर्वेकलावस्मिन्भवंतिहि॥१३॥ युगधर्मस्तुराजेंद्रनयातिव्यत्ययंपुनः ॥ कालःकर्तास्तिधर्मस्यह्यधर्मस्यचवैपुनः ॥ १४ ॥

प्रजा उत्पन्न होती है अन्यथा भाव कभी नहीं होता युगधर्मको ही इस विषयका उसका विशेष कारण जानना चाहिये ॥ ११ ॥ तब युगधर्मके अनुसार जो दुष्ट अथवा दुराचारी हैं उन सबको मारनेपर सम्पूर्ण प्रजा एकवार उच्छेद (नाश) होजाती है इससे सृष्टि स्थिति प्रलयरूप सनातन जगत् प्रवाह विनष्ट होता है इसी कारण भगवान् कृष्णने पृथिवीके भारस्वरूप दानव और दुराचारी क्षत्रियवर्गोंका विनाश किया था अन्योंका नहीं. हे राजन् ! जो धर्मपरायण हैं वह सत्ययुगमें और जो धर्म तथा अर्थपरायण हैं वह त्रेतायुगमें ॥ १२ ॥ जो धर्म और अर्थ तथा काम परायण हैं वह द्वापर युगमें और अर्थ तथा कामपरायण हैं वह इस कलिकालमें जन्मग्रहण करते हैं ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आप निश्चय जानिये कि, युगधर्मका व्यत्यय (विपरीत) कभी नहीं होता और काल धर्म

तथा अधर्म करनेवाले सदाही विद्यमान हैं ॥ १४ ॥ राजाने कहा हे महाभाग ! सत्ययुगमें जिन सब धर्मपरायण महात्माओंने जन्म ग्रहण किया था वह पुण्यशाली मनुष्य इससमय कहां है ? ॥ १५ ॥ हे पितामह ! जो त्रेता अथवा द्वापर युगमें दानव्रतपरायण थे वह मुनिगणभी इससमय कहां है ॥ १६ ॥ और इस वर्त्तमान कलियुगमें जो सम्पूर्ण दयारहित तथा निर्लज्ज मनुष्य विद्यमान हैं वह पापिष्ठ देव और गुरुनिन्दक गण सत्ययुगके समय कहां जायँगे ॥ १७ ॥ हे महामते ! मैं यह सम्पूर्ण धर्मनिर्णयको सुननेके निमित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ हूं आप कृपाकरके इन सबका गूढ़तत्त्व विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जो मनुष्य सत्ययुगमें इस पृथ्वीके ऊपर जन्मग्रहण करता है वह पुण्यजनित कर्मोंके अनुष्ठानसे देवलोकको जाता है ॥ १९ ॥ हे नृपसत्तम ! विप्रवर्ग क्षत्रिय वैश्य और शूद्रगण अपने अपने

॥ राजोवाच ॥ येतुसत्ययुगेजीवाभवंतिधर्मतत्पराः ॥ कुत्रतेऽद्यमहाभागतिष्ठंतिपुण्यभागिनः ॥ १५ ॥ त्रेतायुगेद्वापरेवायेदानव्रतकारकाः ॥ वर्ततेमुनयःश्रेष्ठकुत्रब्रूहिपितामह ॥ १६ ॥ कलावद्यदुराचारायेऽत्रसंतिगतत्रपाः ॥ आद्येयुगेक्कधास्यंतिपापिष्ठादेवनिंदकाः ॥ १७ ॥ एतत्सर्वसमाचक्ष्वविस्तरेण महामते ॥ सर्वथाश्रोतुकामोऽस्मियदेतद्धर्मनिर्णयम् ॥ १८ ॥ व्यासउवाच ॥ येवैकृतयुगेराजन्संभवंतीहमानवाः ॥ कृत्वातेपुण्यकर्माणिदेवलोकान्व्रजंतिवै ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चनृपसत्तम ॥ स्वधर्मनिरतायांतिलोकान्कर्मजितान्किल ॥ २० ॥ सत्यंदयातथादानंस्वदारगमनंतथा ॥ अद्रोहःसर्वभूतेषुसमतासर्वजंतुषु ॥ २१ ॥ एतत्साधारणंधर्मंकृत्वासत्ययुगेपुनः ॥ स्वर्गंयांतीतरेवर्णाधर्मतोरजकादयः ॥ २२ ॥ तथात्रेतायुगेराजन्द्वापरेऽथयुगेतथा ॥ कलावस्मिन्युगेपापानरकंयांतिमानवाः ॥ २३ ॥ तावत्तिष्ठंतितेतत्रयावत्स्याद्युगपर्ययः ॥ पुनश्चमानुषेलोकेभवंतिभुविमानवाः ॥ २४ ॥ यदासत्ययुगस्यादिःकलेरंतश्चपार्थिव ॥ तदास्वर्गात्पुण्यकृतोजायंतेकिलमानवाः ॥ २५ ॥ यदाकलियुगस्यादिर्द्वापरस्यक्षयस्तथा ॥ नरकात्पापिनःसर्वेभवंतिभुविमानवाः ॥ २६ ॥

धर्मकार्यमें निरत रहकर अपने अपने कर्मार्जित लोकमें जाते हैं ॥ २० ॥ सत्य, दया, दान, स्वदारगमन, अहिंसा और सब जीवोंके प्रति समान भावसे दया ॥ २१ ॥ यह सब साधारण धर्मका आचरण करके वह धर्मके बलसे सम्पूर्ण रजकादि नीचवर्ण भी स्वर्गको जाते हैं ॥ २२ ॥ इसीप्रकार त्रेता और द्वापर युगमेंभी अपने अपने धर्मार्जित पुण्यके बलसे मनुष्यगण स्वर्गमें जाते हैं ॥ २३ ॥ किन्तु इस कलियुगमें पापासक्तमनुष्यगण नरकमें जाकर युगके विपर्यय (समाप्ति) पर्यन्त उस घोर नरकमें वासकर तदनन्तर फिर इस पृथ्वीमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २४ ॥ हे महाराज ! जब सत्ययुगका आदि और कलियुगका अन्त होता है उसी समय पुण्यवान् महात्मा मनुष्य स्वर्गसे पृथ्वीमें जन्मग्रहण करते हैं ॥ २५ ॥ और जब कलियुगका आदि और द्वापरयुगका अन्त उपस्थित होता है उसी समय

पापीगण नरकसे पृथ्वीमें फिर मनुष्यजन्म ग्रहण करते हैं ॥ २६ ॥ हे महाराज कालका आचार इसीप्रकार जानना चाहिये, कभी उसके अन्यथा नहीं होता देखो कलियुग असत्कार्य करनेवाला है इसीकारणसे कलियुगकी सब प्रजाभी उसीके अनुरूप पापाचारी होती है ॥ २७ ॥ कभी कभी दैवयोगसे इन प्राणियोंके जन्म ग्रहणकी विपरीतता होती है इसीकारण कलिकालमें जो सदाचरण करता है वह द्वापरयुगका मनुष्य होता है ॥ २८ ॥ इसीप्रकार सत्कार्य करके द्वापरके युगका मनुष्य त्रेतायुगमें और त्रेताका मनुष्य सत्ययुगमें जन्म ग्रहण करता है और जो सत्ययुगमें दुष्ट है वह क्रमानुसार कलियुगकाही मनुष्य होता है ॥ २९ ॥ जीवगण अपने किये कर्मफलके प्रभावसे असुख भोगकरभी युगधर्मके कारण फिर इसीप्रकार कर्म करके उस फलका अत्यन्त कष्टभोगते हैं॥ ३० ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आप भलीभाँति युगधर्मका विषय कहिये कि, सत्ययुगमें किसप्रकार धर्म था उसके सुननेकी मैं अत्यन्त अभिलाषा करता हूं ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! मैं

एवंकालसमाचारोनाऽन्यथाऽभूत्कदाचन ॥ तस्मात्कलिरसत्कर्तातस्मिंस्तुतादृशीप्रजा ॥ २७ ॥ कदाचिद्दैवयोगात्तुप्राणिनांव्यत्ययोभवेत् ॥ कलौयेसाधवःकेचिद्द्वापरेसंभवंतिते ॥ २८ ॥ तथात्रेतायुगेकेचित्केचित्सत्ययुगेतथा ॥ दुष्टाःसत्ययुगेयेतुतेभवंतिकलावपि ॥ २९ ॥ कृतकर्मप्रभावेणप्राप्नुवंत्यसुखानिच ॥ पुनश्चतादृशंकर्मकुर्वंतियुगभावतः ॥ ३० ॥ जनमेजयउवाच ॥ युगधर्मान्महाभागब्रूहिसर्वानशेषतः ॥ यस्मिन्वै यादृशोधर्मोज्ञातुमिच्छामितंतथा ॥ ३१ ॥ व्यासउवाच ॥ निबोधनृपशार्दूलदृष्टांतंतेब्रवीम्यहम् ॥ साधूनामपिचेतांसियुगभावाद्भ्रमंतिहि ॥ ३२ ॥ पितुर्यथातेराजेंद्रबुद्धिर्विप्रावहेलने ॥ कृतावैकलिनाराजन्धर्मज्ञस्यमहात्मनः ॥ ३३ ॥ अन्यथाक्षत्रियोराजाययातिकुलसंभवः ॥ तापसस्यगलेसर्पंमृतं कस्मादयोजयत् ॥ ३४ ॥ सर्वेयुगबलंराजन्वेदितव्यंविजानता ॥ प्रयत्नेनहिकर्तव्यंधर्मकर्मविशेषतः ॥ ३५ ॥ नूनंसत्ययुगेराजन्ब्राह्मणावेदपारगाः ॥ पराशक्त्यर्चनरतादेवीदर्शनलालसाः ॥ ३६ ॥

आपके निकट युगधर्मका विषय विस्तारपूर्वक कहता हूं आप मनलगाकर सुनिये. हे नृपवर ! युगधर्मके अनुसार साधुगणोंका मन विचलित होता है ॥ ३२ ॥ देखो ! आपके पिता महात्मा और धर्मात्मा थे तथापि दुष्टमति कलिने उनके चित्तकी वृत्तिको कलुषित करके उनको ब्राह्मणोंके अपमानार्थ प्रवर्तित किया था ॥ ॥ ३३ ॥ उन्होंने क्षत्रियप्रवर और ययाति कुलमें उत्पन्न राजा होकरभी तपस्वीके गलेमें मराहुआ सर्प क्यों डाला था?॥ ३४ ॥ अतएव हे महाराज ! सम्पूर्ण कार्य युगधर्मके बलसेही होते हैं, यह पंडितगणभी स्वीकार करते हैं आप विशेष यत्नसे धर्मकार्यका अनुष्ठान करें इससे युगकी प्रबलता होनेपरभी चेष्टासे कुछेक धर्म कर्म अनुष्ठित होसक्ता है ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! पुण्यमय सत्ययुगके समय वेदपारग ब्राह्मण देवीके दर्शनकी इच्छासे सदाही परमशक्तिकी अर्चन में निरत॥ ३६॥

गायत्री और प्रणव मन्त्रमें तथा गायत्री ध्यानमें आसक्त रहकर एक मात्र मायाबीज मंत्रका जप करते ॥ ३७ ॥ समस्तही विप्रगण अपने अपने ग्राममें महामाया अम्बिकाका मन्दिर बनानेमें उत्सुक हो सत्य शौच और दयायुक्त मनसे अपने अपने कर्मोंमें निरत रहते ॥ ३८ ॥ तत्त्व ज्ञानमें निपुण क्षत्रियगण सदाही त्रयीविहित (तीनों वेदोंमें कहे) कर्मका अनुष्ठान करके प्रजाके प्रति पालन करनेमें तत्पर रहते ॥ ३९ ॥ वैश्यगण कृषि वाणिज्य और गोसेवामें अनुरक्त तथा शूद्रगणभी सदाही ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंकी सेवामें निरत रहते ॥ ४० ॥ इसप्रकार सत्ययुगमें सम्पूर्ण वर्णही परमशक्ति अम्बिका देवीकी पूजामें अनुरक्त रहते किन्तु त्रेतायुगमें उक्तधर्म की मर्यादा कुछेक कम हुई थी ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार द्वापरयुगमें सत्ययुगकी धर्ममर्यादा भलीभाँति न्यूनताको प्राप्त

गायत्रीप्रणवासक्तागायत्रीध्यानकारिणः ॥ गायत्रीजपसंसक्तामायावीजैकजापिनः ॥ ३७ ॥ ग्रामेग्रामेपरांबायाःप्रासादकरणोत्सुकाः ॥ स्वकर्मनिरताःस वैंसत्यशौचदयान्विताः ॥ ३८ ॥ त्रय्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञानविशारदाः ॥ अभवन्क्षत्रियास्तत्रप्रजाभरणतत्पराः ॥ ३९ ॥ वैश्यास्तुकृषिवाणिज्यगोसे वानिरतास्तथा ॥ शूद्राःसेवापरास्तत्रपुण्येसत्ययुगेनृप ॥ ४० ॥ परांबापूजनासक्ताःसर्वेवर्णाःपरेयुगे ॥ तथात्रेतायुगेकिंचिन्न्यूनाधर्मस्यसंस्थितिः ॥ ४१ ॥ द्वापरेचविशेषेणन्यूनासत्ययुगस्थितिः ॥ पूर्वयेराक्षसाराजंस्तेकलौब्राह्मणाःस्मृताः ॥ ४२ ॥ पाखंडनिरताःप्रायोभवंतिजनवंचकाः ॥ असत्यवादिनःसर्वे वेदधर्मविवर्जिताः ॥ ४३ ॥ दांभिकालोकचतुरामानिनोवेदवर्जिताः ॥ शूद्रसेवापराःकेचिन्नानाधर्मप्रवर्तकाः ॥ ४४ ॥ वेदनिंदाकराःक्रूराधर्मभ्रष्टातिवादु काः ॥ यथायथाकलिर्वृद्धिंयातिराजंस्तथातथा ॥ ४५ ॥ धर्मस्यसत्यमूलस्यक्षयःसर्वात्मनाभवेत् ॥ तथैवक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चधर्मवर्जिताः ॥ ४६ ॥ असत्यवादिनःपापास्तथावर्णेतराःकलौ ॥ शूद्रधर्मरताविप्राःप्रतिग्रहपरायणाः ॥ ४७ ॥

होगई जो पूर्वके युगमें राक्षस थे वही कलियुगमें ऐसे ब्राह्मण हुए ॥ ४२ ॥ जो पाखण्डमें निरत बहुधा जनोंके छलनेवाले असत्यवादी गूढ वेदके धर्मसे रहित ॥ ४३ ॥ दाम्भिक लोकवार्त्तामें बड़े चतुर मानी वेदवादवर्जित शूद्रोंकी सेवामें तत्पर नानाप्रकारके धर्मके चलानेवाले ॥ ४४ ॥ वेदकी निन्दा करनेवाले क्रूरधर्म भ्रष्ट मुँह देखी कहनेवाले हुए हे राजन्! जैसे जैसे कलियुग वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ तैसे तैसे सत्यही है मूल जिस धर्मका उसका क्षय होजाता है तिसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य शूद्रभी धर्म वर्जित होगये ॥ ४६ ॥ और शेष अंत्यज महाझूंठे पापी हुए. कलियुगमें ब्राह्मण शूद्रोंके धर्ममें परायण दान लेनेमें निपुण होंगे ॥ ४७ ॥

हे नृपसत्तम ! कलियुगकी वृद्धिमें यह सब होगा स्त्री काम लोभ और मोहयुक्त होकर अत्यन्त प्रबल अपनी इच्छानुसार चलनेवाली ॥ ४८ ॥ पापका आचरण करनेवाली और मिथ्या बोलनेवाली होकर लोकसमाजको महाक्लेश करनेवाली होती है और अपनेको धर्म भाषणमें परम पंडित जानकर उपदेश देनेमें तत्पर और पतिको छलनेमें प्रवृत्त ॥ ४९ ॥ और अत्यन्त पापिष्ठ होतीं हैं. हे नृपसत्तम ! आहारकी शुद्धि चित्तकी शुद्धि होती है ॥५०॥ इससे धर्म भलीभाँति प्रकाशित होता है. वर्णाश्रमधर्मके आचारके संकर दोषसेही ॥५१॥ धर्मसंकर दोषकीउत्पत्ति होती है. धर्मसंकरके उपस्थित होनेपर वर्णसंकर दोषकी उत्पत्ति होती है हे राजन् ! इसप्रकार कलियुगमें क्रमानुसार सब धर्मोका लोप होनेसे ॥ ५२ ॥ अपने वर्णके धर्मकी बात फिर कहीं भी नहीं सुनीजाती. हे नृपवर ! इस युगमें धर्मके

भविष्यंतिकलौराजन्युगेवृद्धिंगताःकिल ॥ कामचाराःस्त्रियःकामलोभमोहसमन्विताः ॥४८॥ पापामिथ्याभिवादिन्यःसदाक्लेशरतानृप ॥ स्वभर्तृवंचका नित्यंधर्मभाषणपंडिताः ॥ ४९ ॥ भवंत्येवंविधानार्यःपापिष्ठाश्चकलौयुगे ॥ आहारशुद्ध्यानृपतेचित्तशुद्धिस्तुजायते ॥५०॥ शुद्धेचित्तेप्रकाशःस्याद्धर्म स्यनृपसत्तम ॥ वृत्तसंकरदोषेणजायतेधर्मसंकरः ॥५१॥ धर्मस्यसंकरेजातेनूनंस्याद्वर्णसंकरः ॥ एवंकलियुगेभूपसर्वधर्मविवर्जिते॥५२॥स्ववर्णधर्मवार्तै पानकुत्राऽप्युपलभ्यते ॥ महांतोऽपिचधर्मज्ञाअधर्मंकुर्वतेनृप ॥ ५३ ॥ कलिस्वभावएवैषपरिहार्योनकेनचित् ॥ तस्मादत्रमनुष्याणांस्वभावात्पापका रिणाम् ॥५४॥ निष्कृतिर्नहिराजेंद्रसामान्योपायतोभवेत् ॥ जनमेजयउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञसर्वशास्त्रविशारद ॥५५॥ कलावधर्मबहुलेनराणांकाग तिर्भवेत् ॥ यद्यस्तितदुपायश्चेद्दययातंवदस्वमे ॥५६॥ व्यासउवाच॥ एकएवमहाराजतत्रोपायोऽस्तिनाऽपरः॥सर्वदोषनिरासार्थंध्यायेद्देवीपदांबुजम्॥५७॥

जाननेवाले महान् पुरुष भी अधर्ममें प्रवृत्त होते हैं ॥ ५३ ॥ कलिका स्वभावही इसप्रकार है उसको त्याग करनेमें कोई समर्थ नहीं होते. अतएव हे राजेन्द्र ! इससमय मनुष्य स्वभावके नियमानुसारही पापकार्यमें नियुक्त होते हैं ॥ ५४ ॥ इसीकारण सामान्य उपायसे उनकी निष्कृति नहीं होसक्ती. जन्मेजयने कहा हे भगवन् ! आप संपूर्ण धर्मोके जाननेवाले और सर्वशास्त्र विशारद हैं ॥ ५५ ॥ इस अधर्मवाले कलियुगमें नरगणोंकी गति किसप्रकार होगी ? यदि कोई उपाय हो तो आप कृपाकरके वह मुझसे कहिये ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! कलियुगके उपायोंसे निस्तार पानेके लिये एकमात्र उपाय विद्यमान है और दूसराकोई

नहीं है जीवगण सम्पूर्ण पाप और दोषके दूर करनेके लिये महादेवीके चरणकमलोंका ध्यान करैं ॥ ५७ ॥ हे नरेंद्र! महादेवीके पापदाहक नाममें जितनी शक्ति है इस सम्पूर्ण संसारमें उतना पाप नहीं है. अतएव इसमें फिर भयका कारण कहां है ? ॥ ५८ ॥ वह नाम अज्ञानद्वारा लीलापूर्वक उच्चारण होनेपरभी वह क्या क्या अनिर्वचनीय फल प्रदान करती हैं उसको विष्णु तथा रुद्र इत्यादिभी जाननेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५९ ॥ हे राजन्! श्रीदेवीके नामको स्मरण करनेसेही पापोंका प्रायश्चित्त होता है, अतएव कलिसे डरेहुए मनुष्यगण पुण्यक्षेत्रमें वासकरके ॥ ६० ॥ सदाही परमादेवीका नाम स्मरणकरैं. इस सम्पूर्ण जगत्में वास करनेवाले जीवगणोंका छेदभेद और विनाशकरकेभी ॥ ६१ ॥ जो देवीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करताहै वह मनुष्य पापमें लिप्तनहींहोता. हे राजन्! मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंका गूढ़तत्व कीर्तन किया ॥ ६२ ॥ यह सब विषय भलीभाँति विचारकर आप सदाही देवीके चरणकमलोंका ध्यान कीजिये सम्पूर्ण जीवगण अजपानामक गायत्रीका सदाही जप करते हैं ॥ ६३ ॥ किन्तु उसकी महिमा नहीं

नसंत्यघानितावंतियावंतीशक्तिरस्तिहि ॥ नाम्निदेव्याःपापदाहेतस्माद्भीतिःकुतोनृप ॥ ५८ ॥ अवशेनाऽपियन्नामलीलयोच्चारितंयदि ॥ किंकिंददातितज्ज्ञातुंसमर्थानहरादयः ॥ ५९ ॥ प्रायश्चित्तंतुपापानांश्रीदेवीनामसंस्मृतिः ॥ तस्मात्कलिभयाद्राजन्पुण्यक्षेत्रेवसन्नरः ॥ ६० ॥ निरंतरंपरांवायानामसंस्मरणंचरेत् ॥ छित्त्वाभित्त्वाचभूतानिहत्वासर्वमिदंजगत् ॥ ६१ ॥ देवींनमतिभक्त्यायोनसपापैर्विलिप्यते ॥ रहस्यंसर्वशास्त्राणांमयाराजन्नुदीरितम् ॥ ॥ ६२ ॥ विमृश्यैतदशेषेणभजदेवीपदांबुजम् ॥ अजपांनामगायत्रींजपंतिनिखिलाजनाः ॥ ६३ ॥ महिमानंनजानंतिमायायावैभवंमहत् ॥ गायत्रींब्राह्मणाःसर्वेजपंतिहृदयांतरे ॥ ६४ ॥ महिमानंनजानंतिमायायावैभवंमहत् ॥ एतत्सर्वंसमाख्यातंयत्पृष्टंतत्त्वयानृप ॥ ६५ ॥ युगधर्मव्यवस्थायांकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ ॥ राजोवाच ॥ तीर्थानिभुविपुण्यानिब्रूहिमेमुनिसत्तम ॥ गम्यानिमानवैर्देवैःक्षेत्राणिसरितस्तथा ॥ १ ॥ फलंचयादृशंयत्रतीर्थेषुस्नानदानतः ॥ विधिंतुतीर्थयात्रायांनियमांश्चविशेषतः ॥ २ ॥

जानते. हे राजन्! इससे मायाका महत्वैभवही प्रतिपादित होता है. ब्राह्मण हृदयके भीतर गायत्रीमन्त्रका जप करते हैं ॥ ६४ ॥ किन्तु उसकी महिमाको नहीं जान्ते हैं. हे नृपवर! इससेभी मायाका महत्प्रभाव मात्रही प्रकाशितहोता है. हे राजन्! आपने युगधर्मकी व्यवस्थाके विषयमें जो पूँछा था वह सम्पूर्ण कहा ॥ ६५ ॥ इससमय आप और क्या सुननेकी अभिलाषा करते हैं ? ॥ ६६ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर! पृथिवीमें देवता और मनुष्यगणोंके गमन योग्य पवित्र क्षेत्र और नदी इत्यादि जो संपूर्ण पुण्यतीर्थ विद्यमान हैं आप उन सबके नाम ॥ १ ॥ उन सब तीर्थोंमें स्नानादि करनेसे जो फल होता है और उन संपूर्ण तीर्थों की यात्राके विधि नियम किसप्रकार हैं वह सब भलीभाँति कहिये ॥ २ ॥

व्यासजीनेकहा हे राजन्! अनेकप्रकारके तीर्थोंकाविषय और जिन सब तीर्थोंमें देवीके श्रेष्ठमन्दिर विद्यमान है वह सब कहता हूं सुनो॥ ३॥ सम्पूर्ण नदियोंमें गंगा, यमुना सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा ॥ ४ ॥ कावेरी, चन्द्रभागा, वेत्रवती, चर्म्मण्वती, सरयू, तापी और साबरमती यह सब नदियाँ प्रधान और पवित्र हैं॥ ॥ ५ ॥ इनके अतिरिक्त शत शत नदी पृथ्वीमें विद्यमान हैं उनमें जो सम्पूर्ण नदी समुद्रमें गिरतीं हैं वह सबही अत्यन्त पवित्र हैं और जो नदियें समुद्रमें नहींजातीं वह उनकी अपेक्षा अल्पपवित्र हैं ॥ ६ ॥ और समुद्रगामिनी नदियोंमें जो सर्वदाही प्रबलप्रवाहसे प्रवाहित होती हैं उनको अत्यन्त पवित्र जानना चाहिये, किन्तु श्रावण और भाद्र इन दो महीनोंमें वह सम्पूर्ण नदी रजस्वला होती हैं ॥ ७ ॥ और कितनीएक नदियें वृष्टिसे प्रवाहित होकर ग्रामोपयोगी जलमात्र वहन करतीं हैं. हे राजन्!

व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामितीर्थानिविविधानिच ॥ येषुतीर्थेषुदेवीनांप्रशस्तान्यायनानिच ॥३॥ नदीनांजाह्नवीश्रेष्ठायमुनाचसरस्वती॥ नर्मदागं डकीसिंधुर्गोमतीतमसातथा॥४॥ कावेरीचंद्रभागाचपुण्यावेत्रवतीशुभा ॥ चर्मण्वतीचसरयूस्तापीसाभ्रमतीतथा ॥५॥ एताश्चकथिताराजन्नन्याश्चशतशः पुनः ॥ तासांसमुद्रगाः पुण्याः स्वल्पपुण्याह्यनब्धिगाः ॥ ६ ॥ समुद्रगानांताः पुण्याः सर्वदौघवहास्तुयाः ॥ मासद्वयंश्रावणादौताश्चसर्वारजस्वलाः ॥ ७ ॥ भवंतिवृष्टियोगेनग्राम्यवारिवहास्तथा ॥ पुष्करंचकुरुक्षेत्रंधर्मारण्यंसुपावनम् ॥ ८॥ प्रभासंचप्रयागंचनैमिषारण्यमेवच ॥ विश्रुतंचार्बुदारण्यंशैलाश्चपा वनास्तथा ॥९॥ श्रीशैलश्चसुमेरुश्चपर्वतोगंधमादनः ॥ सरांसिचैवपुण्यानिमानसंसर्वविश्रुतम् ॥ १० ॥ तथाबिंदुसरःश्रेष्ठमच्छोदंनामपावनम् ॥ आश्र मास्तुतथापुण्यासुनीनांभावितात्मनाम् ॥ ११ ॥ विश्रुतस्तुसदापुण्यःख्यातोबदरिकाश्रमः ॥ नरनारायणौयत्रतेपातेतौमुनीतपः ॥ १२ ॥ वामना श्रमआख्यातःशतयूपाश्रमस्तथा ॥ येनयत्रतपस्तप्तंतस्यनाम्नाऽतिविश्रुतः ॥ १३ ॥

पुष्कर, कुरुक्षेत्र, पवित्र, धर्मारण्य ॥ ८ ॥ प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य और अर्बुदारण्य यह सम्पूर्ण क्षेत्रही पुण्यदाता विख्यात है ॥ ९ ॥ हे महाराज! पर्वतोंमें श्रीशैल सुमेरु और गन्धमादन यह समस्तही पवित्र हैं पुण्यदायक सरोवरोंमें परमपवित्र सर्वत्रविख्यात मानस ॥ १० ॥ बिन्दुसरोवर और अक्षोद भलीभाँति कहे हैं उदारात्मा मुनिगणोंके सम्पूर्ण आश्रमही पुण्यजनक हैं ॥ ११ ॥ तिनमें सदा पुण्यदायकबदरिकाश्रम सबकी अपेक्षा विख्यात है. इस स्थानमें नरनारायणनामकपुरातन दोनों मुनियोंने तपस्या की थी ॥ १२ ॥ और वामनाश्रम तथा शतयूपाश्रमभी भलीभाँति विख्यात है. इसप्रकार जिसने जिस स्थानमें तपस्या करी थी उसकेही नामानुसार वह आश्रम

विख्यात हुआ ॥ १३ ॥ हे महाराज ! मुनिगणोंके पृथिवीमें इसप्रकार असंख्य असंख्य परमपावन सम्पूर्ण स्थान कहे ॥ १४ ॥ इन सम्पूर्ण पुण्यस्थानोंमें सर्वत्र देवीके स्थान विद्यमान् हैं उन सब स्थानोंका दर्शन करनेसे पापसमूह नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ उन्हीं स्थानोंमें देवीके भक्तगण नियम अवलम्बन करके वास करतेहैं इन सब स्थानोंमें कितने एक विषय प्रसङ्ग क्रमानुसार फिर वर्णन करूंगा. हे नृपवर ! तीर्थ, दान, व्रत, यज्ञ ॥ १६ ॥ तपस्या और सम्पूर्ण पुण्यकर्म परस्पर सापेक्ष हैं द्रव्य शुद्धि क्रियाशुद्धि और चित्तशुद्धिकी अपेक्षा करके ॥ १७ ॥ तीर्थ तपस्या और व्रत सम्पूर्णपुण्यदायक होते हैं द्रव्य शुद्धि और क्रियाशुद्धि किसीकोभी कदाचित् होसक्ती है ॥ १८ ॥ किन्तु सबके पक्षमें चित्तशुद्धि अत्यन्त दुर्लभहै. हे नृपवर ! मन सर्वदाही अनेक प्रकार भिन्न भिन्न विषयका आश्रय करताहै अतएव सर्वदाही चंचल

एवंपुण्यानिस्थानानिह्यसंख्यातानिभूतले ॥ मुनिभिःपरिगीतानिपावनानिमहीपते ॥ १४ ॥ एषुस्थानेषुसर्वत्रदेवीस्थानानिभूपते ॥ दर्शनात्पापहारीणिवसंतिनियमेनच ॥ १५ ॥ कथयिष्यामितान्यग्रेप्रसंगेनचकानिचित् ॥ तीर्थानिनृपदानानिव्रतानिचमखास्तथा ॥ १६ ॥ तपांसिपुण्यकर्माणिसापेक्षाणिमहीपते ॥ द्रव्यशुद्धिंक्रियाशुद्धिंमनःशुद्धिमपेक्ष्यच ॥ १७ ॥ पावनानिहितीर्थानितपांसिचव्रतानिच ॥ कदाचिद्द्रव्यशुद्धिःस्यात्क्रियाशुद्धिःकदाचन ॥ ॥ १८ ॥ दुर्लभामनसःशुद्धिःसर्वेषांसर्वदानृप ॥ मनस्तुचंचलंराजन्ननेकविषयाश्रितम् ॥ १९ ॥ कथंशुद्धंभवेद्राजन्नानाभावसमाश्रितम् ॥ कामक्रोधौतथालोभोह्यहंकारोमदस्तथा ॥ २० ॥ सर्वविघ्नकराह्येतेतपस्तीर्थव्रतेषुच ॥ अहिंसासत्यमस्तेयंशौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ २१ ॥ स्वधर्मपालनंराजन्सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गेसंसर्गदोषतः ॥ २२ ॥ व्यर्थंतीर्थाधिगमनंपापमेवाऽवशिष्यते ॥ क्षालयंतिहितीर्थानिसर्वथादेहजंमलम् ॥ २३ ॥ मानसंक्षालितुंतानिनसमर्थानिवैनृप ॥ शक्तानियदिचेत्तानिगंगातीरनिवासिनः ॥ २४ ॥ मुनयोद्रोहसंयुक्ताःकथंस्युर्भावितेश्वराः ॥ वसिष्ठसदृशाःब्रह्मविश्वामित्रादयःकिल ॥ २५ ॥

है ॥ १९ ॥ इस कारण अनेक प्रकार भावयुक्त मनकी विशुद्धता सहजमेंही किसप्रकार होसक्ती है ? काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और मद ॥ २० ॥ यह तप तीर्थ और व्रतादिमें सब प्रकार विघ्न करते हैं. हे महाराज ! अहिंसा सत्य (चोरी न करना) पवित्रता इन्द्रियनिग्रह ॥ २१ ॥ और अपना धर्मपालन यह सम्पूर्ण समस्त तीर्थोंका फलप्रदान करते हैं तीर्थयात्राके समय मार्गमें नित्यकर्म्म त्याग और संसर्ग दोषके कारण ॥ २२ ॥ तीर्थगमन वृथा होकर वह केवल पापमात्रही होता है और तीर्थका जल केवल देहका मलही धोसक्ता है ॥ २३ ॥ किन्तु कभी मानसिक मल धोनेमें समर्थ नहीं होता. यदि तीर्थके जलसे मानसिक मल धुलसक्ता तो क्यों गंगाके तटपर वास करनेवाले मुनिगण ॥ २४ ॥ ईश्वरपरायण होकर भी परस्पर द्रोहमें निरत होते. वसिष्ठकी समान नम्रशील मुनिगण और विश्वामित्रादि

ऋषिगण भी ॥ २५ ॥ सर्वदा राग द्वेषम निरत और कामक्रोधसे अधीर होते हैं. अतएव चित्तशुद्धिरूप तीर्थ गंगादितीर्थसे भी अधिक पवित्रतासम्पादन करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह अवश्य स्वीकार्य है कि, यदि दैवयोगसे ज्ञाननिष्ठका भलीभाँति सत्संग उपस्थित हो तो निश्चयही उसके मनकी मलीनता धुलसक्ती है ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र! वेद वा शास्त्र व्रत किंवा तपस्या यज्ञ अथवा दान इनमें कोई भी चित्तशुद्धिका कारण नहीं होसक्ता ॥ २८॥ देखो ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठ वेदविशारद और गंगावासी होकर भी रागद्वेषके वशीभूत हुये थे ॥ २९ ॥ विश्वामित्र और वसिष्ठके निरर्थक विद्वेषसे देवतागणोंको आश्चर्य देनेवाला आडीबक नामक घोर महायुद्ध उपस्थित हुआ था ॥ ३० ॥ इससे परमतपस्वी विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रके कारण वसिष्ठसे शापित होकर बगलेके रूपमें जन्म ग्रहण किया था ॥ ३१ ॥ वसिष्ठऋषिने भी विश्वामित्रसे शापित होकर शरारीनामक विहंग देह धारण करी थी इस प्रकार प्रभावशाली दोनों ऋषिगण आडीबकरूपसें जन्म

रागद्वेषरताःसर्वेकामक्रोधाकुलाःसदा ॥ चित्तशुद्धिमयंतीर्थंगंगादिभ्योऽतिपावनम् ॥ २६ ॥ यदिस्याद्दैवयोगेनक्षालयत्यांतरंमलम् ॥ विशेषेणतुसत्सं गोज्ञाननिष्ठस्यभूपते ॥ २७ ॥ नवेदानचशास्त्राणिनव्रतानितपांसिन ॥ नमखानचदानानिचित्तशुद्धेस्तुकारणम् ॥ २८ ॥ वसिष्ठोब्रह्मणः पुत्रोवेदविद्याविशारदः ॥ रागद्वेषान्वितःकामंगंगातीरसमाश्रितः ॥ २९ ॥ आडीबकंमहायुद्धंविश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ जातंनिरर्थकंद्वेषाद्देवा नांविस्मयप्रदम् ॥ ३० ॥ विश्वामित्रोबकस्तत्रजातःपरमतापसः ॥ शप्तःसतुवसिष्ठेनहरिश्चंद्रस्यकारणात् ॥ ३१ ॥ कौशिकेनवसिष्ठोऽपिशप्त्वाऽऽडीदेह भाक्कृतः ॥ शापादाडीबकौजातौतौमुनीविशदप्रभौ ॥ ३२ ॥ निवासंप्रापतुस्तीरेसरसोमानसस्यच ॥ चक्रतुर्दारुणंयुद्धंनखचंचुप्रताडनैः ॥ ३३ ॥ वर्षाणा मयुतंयावत्तावृषीरोषसंयुतौ ॥ युयुधातेमदोन्मत्तौसिंहाविवपरस्परम् ॥ ३४ ॥ राजोवाच ॥ कथंतौमुनिशार्दूलौतापसौधर्मतत्परौ ॥ परस्परंवैरपरौसंजा तौकेनहेतुना ॥ ३५ ॥ शापंपरस्परंकेनकारणेनमहामती ॥ दत्तवंतौमिथःक्लेशकारकौदुःखदौनृणाम् ॥ ३६ ॥ व्यासउवाच ॥ हरिश्चंद्रोनृपश्रेष्ठस्त्रिशंकु तनयःपुरा ॥ बभूवरविवंशीयोरामचंद्रस्यपूर्वजः ॥ ३७ ॥ अनपत्यःसराजर्षिर्वरुणायमहाक्रतुम् ॥ प्रतिजज्ञेपुत्रकामोनरमेधंदुरासदम् ॥ ३८ ॥

ग्रहणकर ॥ ३२ ॥ मानससरोवरके तटपर वास करते थे और अत्यन्त क्रोधयुक्त मदोन्मत्त सिंहकी समान नख चोंच और चरणोंके प्रहारसे ॥ ३३ ॥ अयुतवर्ष १०००पर्यन्त घोर युद्ध किया था जैसे परस्पर दो सिंह युद्ध करते हो ॥ ३४॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! किसकारण वह दोनों महर्षि धर्मतत्पर और तपस्वी होकर भी परस्पर शत्रुताके आचरणमें प्रवृत्त हुए थे ? ॥ ३५ ॥ वे दोनोंही बुद्धिमान् अतएव शापको मनुष्यका दुःखदायक जानकर भी किस कारणसे परस्परको क्लेशकर शाप दिया था ॥ ३६ ॥ व्यासजीने कहा हे नृपवर ! पूर्वकालके समय त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्रने सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया वह राजाओंमें श्रेष्ठ और रामचन्द्रसे पहले हुए थे ॥ ३७ ॥ उन राजर्षिने अपुत्र होनेके कारण वरुणके निकट प्रार्थना की. हे जलाधिपते ! यदि मेरे पुत्र हो तो मैं आपको प्रसन्न करनेके निमित्त उसी

पुत्रसे नरमेधयज्ञका अनुष्ठान करूंगा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार यज्ञके निमित्त प्रतिज्ञा करनेपर वरुण उनपर सन्तुष्ट हुये अनन्तर राजाकी परमसुन्दरी भार्याने शीघ्रही गर्भधारण किया ॥ ३९ ॥ राजा भार्याको गर्भवती देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उसके गर्भसंस्कारके निमित्त सम्पूर्ण कर्म सम्पादन किये ॥ ४० ॥ हे राजन्! फिर राजपत्नीके सर्वलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न करनेपर राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त आनन्दित होकर ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक जातकर्मादि संस्कार कराया और ब्राह्मणोंको बहुतसा स्वर्ण और दूध देनेवाली गायें दान करी ॥ ४२ ॥ इस प्रकार राजगृहमें यथासमय अधिकतर पुत्र जन्मका उत्सव हुआ फिर जलाधिपति वरुण विप्रवेष धारणपूर्वक राजभवनमें आये ॥ ४३ ॥ राजाभी उनकी विधिपूर्वक पूजा कर और आसन दे कार्य पूँछने लगा. उन्होंने उनसे कहा हे राजन्! मैं

वरुणस्तस्यसंतुष्टोयज्ञस्यनियमेकृते॥दधारगर्भंराज्ञस्तुभार्यापरमसुंदरी॥३९॥राजावभूवसंतुष्टोदृष्ट्वाभार्यांसदोहदाम्॥चकारविधिवत्कर्मगर्भसंस्कारकारकम् ॥ ४० ॥ सुषुवेतनयंनारीसर्वलक्षणसंयुतम् ॥ मुदंप्रापनृपस्तत्रपुत्रेजातेविशांपते ॥ ४१ ॥ कृतवाञ्जातकर्मादिसंस्कारविधिमुत्तमम् ॥ ददौहिरण्यंगादोग्ध्रीर्ब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥ ४२ ॥ जन्मोत्सवेऽतिसंवृत्तेगेहेवैयादसांपतिः ॥ आजगाममहाराजविप्रवेषधरस्तथा ॥ ४३ ॥ पूजितःपार्थिवेनाऽथदत्वाविधिवदासनम् ॥ कार्येपृष्टेब्रवीद्वाक्यंवरुणोऽस्मीतिभूपतिम् ॥ ४४ ॥ कुरुयज्ञंसुतंकृत्वापशुंपरमपावनम् ॥ सत्यवाग्भवराजेंद्रसंकल्पस्तुत्वयाकृतः ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराजाविह्वलोऽतिव्यथाकुलः ॥ संस्तभ्याऽऽधिंनृपःप्राहवरुणंसत्कृतांजलिः ॥ ४६ ॥ स्वामिन्करोमितंयज्ञंसर्वथाविधिपूर्वकम् ॥ मयातेयत्प्रतिज्ञातंभवामिसत्यवागहम् ॥ ४७ ॥ पूर्णेमासेविशुद्धचेतधर्मपत्नीसुरोत्तम ॥ विशुद्धायांतुभार्यायांकर्तव्यःसपशुर्मखः ॥ ४८ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तेवचनेराज्ञावरुणःस्वगृहंगतः ॥ राजावभूवसंतुष्टःकिंचिच्चिंतातुरस्तथा ॥ ४९ ॥

जलाधिपति वरुण हूं ॥ ४४ ॥ आपने पूर्वमें प्रतिज्ञा की थी कि, मैं अपने पुत्रको पशुरूपमें बलिदान कर परमपवित्र नरमेध यज्ञका अनुष्ठान करूंगा उसीके अनुसार वह सम्पूर्ण कार्य पूरा करके सत्यवादी हूजिये॥ ४५॥ राजा उनके यह वचन सुनकर विह्वल और मर्माहित हुये और कुछ कालोपरान्त मानसिक दुःख दूरकर और हाथ जोड़ वरुणदेवजीसे कहने लगे॥ ४६॥ हे प्रभो! मैं ने आपके निकट पूर्वमें जो प्रतिज्ञा की है उसी अनुसार वह यज्ञ विधिपूर्वक करके आपके निकट सत्यवादी हूंगा ॥ ॥ ४७ ॥ किन्तु हे सुरसत्तम! एक महीना पूर्ण होनेपर मेरी धर्मपत्नी सूतिकाशौचसे शुद्ध होगी. तदनन्तर अपनी भार्याके शुद्ध होनेपर मैं वह नरमेधयज्ञ करूंगा ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! वरुण राजा हरिश्चन्द्रका यह वचन सुनकर अपने गृहको चलेगये राजा भी उनके जानेसे सन्तुष्ट हुए परन्तु

१ वरुण देवता केवल राजाकी परीक्षा देखनेको आये हैं कि, इसकी दृढता कैसी है?

पुत्रके विनाशकी शङ्कासे किञ्चित् चिन्तातुर हुए ॥ ४९ ॥ फिर एक महीनेपर पाशधर प्रियवादी, वरुण परमपवित्र ब्राह्मणका वेश धर राजाकी परीक्षा लेनेके निमित्त फिर राजगृहमें आये ॥ ५० ॥ तब राजाने उनकी पूजा कर आसन दिया और विनयसहित हेतुपूर्ण वचन कहने लगे ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! मेरा पुत्र इस समय संस्काररहित है उसको किसप्रकार यूपकाष्ठमें बांधूं ? इसकारण उसको संस्कारसे क्षत्रियकरके फिर उस उत्तमयज्ञका अनुष्ठानकरूंगा ॥ ५२ ॥ हे देव ! यदि आप मुझको दीन और अपना सेवक जानकर मेरे प्रति करुणा प्रकाश करें तो मैं कृतार्थ हूं. देखो असंस्कृत बालकका किसी विषयमें अधिकार नहीं है, इस कारण आप कुछकाल प्रतीक्षा कीजिये ॥ ५३ ॥ वरुणजीने कहा हे राजन् ! तुम मुझको धोका देकर फिर फिर समय निर्द्धारित करते हो. मैं समझ गया कि, अपुत्र होनेसे इस समय तुमसे

पूर्णेमासिपुनःपाशीपरीक्षार्थंनृपालये ॥ आजगामद्विजोभूत्वासुवेषःसुष्ठुभाषकः ॥ ५० ॥ कृतार्हणंसुखासीनंभूपतिस्तंसुरोत्तमम् ॥ उवाचविनयोपेतोहेतुगर्भंवचस्तदा ॥ ५१ ॥ असंस्कृतंसुतंस्वामिन्यूपेबध्नामितंकथम् ॥ संस्कृत्यक्षत्रियंकृत्वायजेऽहंयज्ञमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ दयसेयदिदेवत्वंज्ञात्वादीनंस्वसेवकम् ॥ असंस्कृतस्यबालस्यनाऽधिकारोऽस्तिकुत्रचित् ॥ ५३ ॥ वरुणउवाच ॥ प्रतारयसिराजेंद्रकृत्वासमयमग्रतः ॥ दुस्त्यजस्तवजानामिसुतस्नेहोह्यपुत्रिणः ॥ ५४ ॥ गृहंव्रजामिभूपालवचनात्तवकोमलात् ॥ कियत्कालंप्रतीक्ष्याहमागमिष्यामितेगृहम् ॥ ५५ ॥ भवितव्यंत्वयाताततदासत्यवचोन्वितम् ॥ अन्यथात्वयिमुंचामिकोपंशापसमन्वितम् ॥ ५६ ॥ राजोवाच ॥ समावर्तनकर्मांतेसर्वथायादसांपते ॥ कृत्वापुत्रंपशुंयज्ञेयजिष्येविधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराज्ञोवरुणःप्रीतमानसः ॥ तथेत्युक्त्वाययौतूर्णंनृपस्तुसुस्थितोऽभवत् ॥ ५८ ॥ रोहिताख्यइतिख्यातःसुतस्तस्याविवृद्धिमान् ॥ संजातश्चतुरःसर्वविद्यानांचविशारदः ॥ ५९ ॥ यज्ञस्यकारणंयेनज्ञातंसर्वंसविस्तरम् ॥ भयभीतस्ततःसोऽपिमत्वामरणमात्मनः ॥ ६० ॥

पुत्रका स्नेह नहीं छूटसक्ता ॥ ५४ ॥ जो हो हे भूपाल ! तुम्हारे कातर वचनसे इससमय मैं घरको जाता हूं किन्तु कुछ काल प्रतीक्षा करके फिर तुम्हारे घर आऊंगा ॥ ५५ ॥ हे वत्स ! तिस समय तुम्हारा वाक्य सत्य हो और यदि इसके अन्यथा होगा तो मैं निःसन्देह तुम्हारे ऊपर शापयुक्त कोपाग्नि निक्षेप करूंगा ॥ ५६ ॥ राजाने कहा हे जलाधिपते ! समावर्त्तनकर्मसमापन करनेके पीछे मैं अपने पुत्रको पशुकर विधिपूर्वक महायज्ञका अनुष्ठान करूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा वरुण राजाके वचन सुनकर प्रीतिपूर्ण मनसे तथास्तु कह शीघ्र चलेगये, तब राजा भी स्थिर हुए ॥ ५८ ॥ इधर राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र रोहित नामसे विख्यात हुआ और आयुवृद्धिके सहित क्रमानुसार चतुर और सर्वविद्याविशारद हुआ ॥ ५९ ॥ वह बालक क्रमक्रमसे यज्ञका सब कारण विस्तारसहित जानकर अपना मरण निश्चय

कर भयसे भीत हुआ ॥ ६० ॥ और शीघ्र राजाके निकटसे भागकर अगम्य पर्वतकी गुहामेंत मनसे वास करने लगा ॥ ६१ ॥ अनन्तर यथासमय उपस्थित होनेपर वरुण यज्ञार्थी हो राजाके घरजाय भूपतिसे कहने लगे हे राजन् ! इस समय नियमितसमय उपस्थित है अतएव अपने संकल्पित यज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ६२ ॥ तब राजा यह वचन सुनकर अत्यन्त व्यथित हुए और अतिमलीन वदनसे कहने लगे हे सुरसत्तम ! इस समय मैं क्या करूं मेरा पुत्र प्राणोंके भयसे कहीं भाग गया है ॥ ॥ ६३ ॥ वरुणजी राजाके वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए और शाप दिया कि, हे असत्यवादिन् ॥ ६४ ॥ तू कपटपंडित है इस कारण मुझको वारंवार धोखा देता है अतएव तेरे देहमें जलोदरनामक व्याधि उत्पन्न हो ॥ ६५ ॥ पाशधारी वरुणजी इसप्रकार शाप देकर अपने घरको गये राजाभी व्याधिपीड़ित और

कृत्वापलायनंवीरोगतोसौगिरिगह्वरे ॥ अगम्येनृपतेःस्थानेस्थितस्तत्रभयातुरः ॥ ६१ ॥ प्राप्तेकालेऽथवरुणोयज्ञार्थीनृपतेर्गृहम् ॥ गत्वा तमाहभूपालंकुरुयज्ञंविशांपते ॥ ६२ ॥ प्रम्लानवदनोराजातमाहव्यथितेंद्रियः ॥ किंकरोमिगतःक्वाऽपिसुतोमेसुरसत्तम ॥ ६३ ॥ श्रुत्वातद्वचनंराज्ञः कुपितोयादसांपतिः ॥ शशापतंनृपंकोपादसत्यवादिनंभृशम् ॥ ६४ ॥ जलोदराभिधोव्याधिर्देहेभवतुतेनृप ॥ यतःप्रतारितश्चाऽहंकृत्वाकपटपंडित ॥ ॥ ६५ ॥ इतिशप्त्वाययौधामस्वकंपाशधरस्तदा ॥ राजाचिंतातुरस्तस्थौभवनेव्याधिपीडितः ॥ ६६ ॥ यदाऽतिव्याधितोराजारोगेणशापजेनह ॥ तदाशुश्रावपुत्रोऽपिपितरंव्याधिपीडितम् ॥ ६७ ॥ पांथिकःप्राहपुत्रंहिपितातेभृशदुःखितः ॥ जलोदरविकारेणशापजेननृपात्मज ॥ ६८ ॥ विनष्टंजीवितंतेऽद्यवृथाजातस्यदुर्मते ॥ यत्त्यक्त्वापितरंदुःस्थंप्रातोऽसिगिरिगह्वरम् ॥ ६९ ॥ किमनेनशरीरेणप्राप्तंतेजन्मनःफलम् ॥ देहदंदुःखितंकृत्वास्थितोऽस्यत्रसुताधम ॥ ७० ॥

चिन्तातुर होकर अपने गृहमें वास करने लगे ॥ ६६ ॥ जब राजा हरिश्चन्द्र शाप जनित रोगसे अत्यन्त पीड़ित होने लगे तब उनके पुत्र रोहितने सुना कि, मेरे पिता जलोदररोगसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं ॥ ६७ ॥ किसी दिन एक पथिकने उससे कहा हे नृपनन्दन ! तुम्हारे पिता शापके कारण जलोदर रोगसे अतिपीड़ित और दुःखित हुए हैं ॥ ६८ ॥ तुम्हारी निश्चय ही दुर्मति हुई है तुमने वृथाही जन्म ग्रहण किया तुम्हारा जीवन वृथाही नष्ट हुआ क्योंकि तुम अत्यन्त दुःखित पिताको त्यागकर इस समय पर्वतकी गुहामें स्थिति करते हो ॥ ६९ ॥ तुम निश्चयही कुपुत्र हो तुम्हारे इस शरीरका प्रयोजन क्या है तुम्हारे जन्म प्राप्त करनेका क्या

फल हुआ ? जिनसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है तुम उन्हीं पिताको त्यागकर इस निर्ज्जन पर्वतकी गुहामें स्थित रहते हो ॥ ७० ॥ तुम निश्चय जानना कि, पिताके कार्यमें प्राण त्याग करना ही सत्पुत्रका कार्य है अतएव इस समय अधिक और क्या कहूं तुम्हारे पिता राजा हरिश्चन्द्र व्याधिपीड़ित होकर तुम्हारे निमित्त दुःखसे अत्यन्त रोदन करते हैं ॥ ७१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! नृपनन्दन रोहितने पथिकके मुखसे धर्म संगत यह वचन सुनकर जब व्याधिपीड़ित और दुःखित पिताको देखनेकेलिये उनके समीप जानेकी इच्छा करी ॥ ७२ ॥ तब इन्द्र ब्राह्मणका वेष धारण कर उसके निकट उपस्थित हुए और निर्ज्जनमें दयावानकी समान हितकर वचन कहने लगे ॥ ॥ ७३ ॥ हे राजपुत्र ! तुम मूर्ख हो तुम इस समय इस स्थानमें रहकर तुम्हारे पिता व्यथित हुए हैं कि नहीं ? उसको भलीभाँति नहीं जानते तो वृथा क्यों उस स्थानमें जानेकी इच्छा करते हो ? ॥ ७४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥छ॥

प्राणास्त्याज्याःपितुःकार्येसत्पुत्रेणेतिनिश्चयः ॥ त्वदर्थेदुःखितोराजाक्रंदतिव्याधिपीडितः ॥ ७१ ॥ व्यासउवाच ॥ तदाकर्ण्यवचस्तथ्यंपांथिकाद्धर्म संयुतम् ॥ यदाचक्रेमनोगंतुंद्रष्टुंतातंव्यथातुरम् ॥ ७२ ॥ तदाविप्रवपुर्भूत्वावासवस्तमुपागमत् ॥ रहःप्राहहितंवाक्यंदयावानिवभारत ॥ ७३ ॥ मूर्खोसिराजपुत्रत्वंगमनायमतिंवृथा ॥ करोषिपितरंत्वद्यनजानासिव्यथायुतम् ॥ ७४ ॥ इतिश्रीदे० भा० महापु० षष्ठस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ इंद्रउवाच ॥ साहसंकृतवान्राजापूर्वंयत्कथितोमखः ॥ वरुणायप्रतिज्ञातःपुत्रंकृत्वापशुंप्रियम् ॥ १ ॥ गतेत्वयिपितापुत्रंबद्ध्वायूपेऽघृणःपुनः ॥ पशुं कृत्वामहाबुद्धेवधिष्यतिव्यथातुरः ॥ २ ॥ इत्थंनिषिद्धस्तत्पुत्रःशक्रेणाऽमिततेजसा ॥ स्थितस्तत्रैवमायेशीमाययामोहितोभृशम् ॥ ३ ॥ यदापुनःपुनः श्रुत्वापितरंरोगपीडितम् ॥ गमनायमतिंचक्रेतदेंद्रःप्रत्यषेधयत् ॥ ४ ॥ हरिश्चंद्रोऽतिदुःखार्तःपप्रच्छगुरुमंतिके ॥ स्थितंवसिष्ठमेकांतेसर्वज्ञंहिततत्परम् ॥ ५ ॥

इन्द्रने कहा हे नृपनन्दन ! पूर्वकालके समय राजा हरिश्चन्द्रने वरुणके प्रति प्रतिज्ञा की है कि, मैं आपको प्रसन्न करनेके निमित्त अपने प्रियपुत्रको पशु बनाकर नरमेधमहायज्ञका अनुष्ठान करूंगा उनकी इसप्रकार प्रतिज्ञा करना अत्यन्त साहसका कार्य है ॥ १ ॥ हे नृपनन्दन ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो. तुम क्या नहीं समझते हो कि, तुम्हारे वहाँ जानेपर तुम्हारे व्याधिपीड़ित और कातर पिता उस समय दयारहित हो तुमको पशुकर यूपमें बांधकर वध करेंगे ॥ २ ॥ अमिततेजा इन्द्रके उसको इसप्रकार निषेध करनेपर वह राजपुत्र महामायाकी मायासे मोहित होकर उसी स्थानमें वास करने लगे ॥ ३ ॥ हेमहाराज ! इसप्रकार जबहीं वह वारंवार अपने पिताको अत्यन्त पीड़ित सुनकर उनके समीप जानेकी इच्छा करता तभी इन्द्र वहां आकर उसको निषेध करते ॥ ४ ॥ इधर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखार्त्त हो सर्वज्ञ

और हितसाधक कुलगुरु वसिष्ठदेवको पास बैठेहुए देखकर पूँछने लगे ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! इस समय मैं क्या करूं मैं व्याधिकी यातनासे आकुल तथा कातर और इस महाव्याधिके भयसे अत्यन्त आतुर और दुःखित हुआ हूं इस समय सदुपदेश देकर प्राण रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥ वसिष्ठजीने कहा हे राजन् ! आपका रोगविनाश करनेके निमित्त उत्तम उपाय विद्यमान है. देखो धर्मशास्त्रमें कहा है कि औरस, क्षेत्रज, दत्रिम, कृत्रिम और क्रीतादिभेदसे पुत्र तेरह प्रकारके हैं ॥ ७ ॥ अतएव आप यथोचित मूल्य देकर एक उत्तम ब्राह्मणका बालक क्रय कीजिये और उसके द्वारा उसी उत्तम यज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ८ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार करनेसे फिर वरुणदेव प्रसन्न हो सुखी होंगे और उनके प्रसन्न होनेपर आपका रोगभी अवश्यही नष्ट हो जायगा ॥ ९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चन्द्र वसिष्ठजीके यह वचन सुन मंत्रीसे कहने लगे हे मंत्रिवर ! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण है अतएव तुमही परमयत्नसहित हमारे राज्यमें एक ब्राह्मणके बालकको ढूँढो ॥ १० ॥ यदि कदाचित् कोई भी

॥ राजोवाच ॥ भगवन्किंकरोम्यद्यकातरोऽस्मिव्यथाकुलः ॥ त्राहिमांदुःखमनसंमहाव्याधिभयातुरम् ॥ ६ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ शृणुराजन्नुपायोऽस्तिरोगनाशंप्रतिस्तुतः ॥ त्रयोदशविधाःपुत्राःकथिताधर्मसंग्रहे॥७॥तस्मात्क्रीतंसुतंकृत्वायजस्वमखमुत्तमम् ॥ द्रव्यंदत्वायथोद्दिष्टमानयस्वद्विजोत्तमम् ॥ ८ ॥ एवंकृतेमखेभूपरोगनाशोभविष्यति ॥ वरुणोऽपिप्रसन्नात्माभविष्यतियथासुखम् ॥ ९ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाराजाप्रोवाच मंत्रिणम् ॥ अन्वेषयमहाबुद्धेविषयेष्वतियत्नतः ॥ १० ॥ कदाचित्कोऽपिलोभार्थींददातिस्वसुतंपिता ॥ समानयधनंदत्त्वायावत्प्रार्थयतेऽप्यसौ ॥ ११ ॥ सर्वथैवसमानेयोयज्ञार्थेद्विजबालकः ॥ नकार्याकृपणाबुद्धिस्त्वयामत्कार्यहेतवे ॥ १२ ॥ प्रार्थनीयस्त्वयापुत्रःकस्यचिद्द्विजवादिनः॥द्रव्येणदेहियज्ञार्थे कर्तव्योऽसौपशुःकिल ॥ १३ ॥ इतिसंचोदितस्तेनसचिवःकार्यहेतवे ॥ अन्वेषयामासपुरेग्रामेग्रामेगृहेगृहे ॥ १४ ॥ एवमन्वेषतस्तस्यविषयेकाश्चिदातुरः ॥ निर्धनस्त्रिसुतश्चासीदजीगर्तेतिनामतः ॥ १५ ॥ तस्यपुत्रंशुनःशेपंमध्यमंमंत्रिसत्तमः ॥ आनयामासदत्वार्थंप्रार्थितंयद्धनंतदा ॥ १६ ॥

दरिद्र ब्राह्मण अर्थके लोभसे अपने पुत्रको दे और वह जितने धनकी प्रार्थना करे तो उतनाही देकर उसके पुत्रको लेआओ ॥ ११ ॥ हे मंत्रिवर ! तुम जिसकिसीप्रकारसे हो यज्ञके निमित्त ब्राह्मणके बालकको अवश्यही ले आओ विशेष कर मेरा कार्य साधनके निमित्त कभी कृपणता और आलस्य न करना ॥ १२ ॥ तुम किसी ब्राह्मणसे इसप्रकार प्रार्थना करो कि, धन लेकर यज्ञके निमित्त अपने पुत्रको दो हम इस बालकको यज्ञमें पशुरूपसे बलि देकर आहुती प्रदान करेंगे ॥ १३ ॥ मंत्री राजाकी इसप्रकार यज्ञकी आज्ञा पाकर नगर नगर ग्राम ग्राम और घरघरमें ब्राह्मणके बालकको ढूँढने लगा ॥ १४ ॥ इसप्रकार ढूँढते ढूँढते जाना कि, उसके अधिकारमें अजीगर्त्तनामक एक आतुर दरिद्र ब्राह्मणके तीन पुत्र हैं ॥ १५ ॥ अनन्तर मन्त्री उस ब्राह्मणको मुँहमाँगा धन देकर उसके शुनःशेप नामक मध्यम पुत्रको क्रय कर ले

आया ॥ १६ ॥ कार्यकुशल सचिवने शुनःशेपको राजाके निकट लाय "यह ब्राह्मणका पुत्र पशुयोग्य है" यह कहकर समर्पण किया ॥ १७ ॥ तब राजा अत्यन्त प्रसन्न हो यज्ञ करनेके निमित्त उत्तम उत्तम वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय सम्पूर्ण यज्ञकी सामग्री मँगाई ॥ १८ ॥ जब यज्ञ आरंभ हुआ उसी समय महामुनि विश्वामित्रने शुनःशेपको बँधा हुआ देखकर राजाको निषेध कर कहा हे महाराज! इसको बलिदान करनेका साहस न करना ॥ १९ ॥ इस ब्राह्मणके बालकको छोड़ दो हे आयुष्मन्! मैं अब आपके निकट इस विषयकी प्रार्थना करता हूं आपके ऐसा करनेपर फिर आपका अवश्यही मंगल होगा इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र! यह शुनःशेप रोता है इससें मेरे मनमें अत्यन्त करुणा उत्पन्न होकर मुझको अत्यन्त व्यथित करती है हे राजेन्द्र! आप मेरा वचन सुन दया करके इस ब्राह्मणके बालकको छोड़ दीजिये ॥ २१ ॥ देखो पूर्वकालके समय शुद्धशील क्षत्रिय राजागण स्वर्गकी इच्छा करके पराये देहकी रक्षाके निमित्त

समानीयशुनःशेपंसचिवःकार्यतत्परः॥राज्ञेनिवेदयामासपशुयोग्यंद्विजात्मजम्॥१७॥राजाऽतिमुदितस्तेनविप्रानानीयसर्वतः॥कारयामाससंभारान्यज्ञार्थं वेदवित्तमान् ॥ १८ ॥ प्रारब्धेतुमखेतत्रविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ बद्धंदृष्ट्वाशुनःशेपंनिषिषेधनृपंतदा ॥ १९ ॥ राजन्मासाहसंकार्षीर्मुंचैनंद्विजबालकम् ॥ प्रार्थयाम्यहमायुष्मन्सुखंतेऽद्यभविष्यति ॥ २० ॥ क्रंदत्ययंशुनःशेपःकरुणामांदुनोत्यपि ॥ दयावान्भवराजेंद्रकुरुमेवचनंनृप ॥ २१ ॥ परदेहस्यरक्षायैस्वदेहंयेदयापराः ॥ ददतिक्षत्रियाःपूर्वंस्वर्गकामाःशुचिव्रताः ॥ २२ ॥ तंस्वदेहस्यरक्षार्थंहंसिद्विजसुतंबलात् ॥ पापंमाकुरुराजेंद्रदयावान्भवबालके ॥ २३ ॥ सर्वेषांसदृशीप्रीतिर्देहेवेत्सिस्वयंनृप ॥ मुंचैनंबालकंतस्मात्प्रमाणंयदिमेवचः ॥ २४ ॥ व्यासउवाच ॥ अनादृत्यचतद्वाक्यंराजा दुःखातुरोभृशम्॥नमुमोचमुनिस्तस्मैचुकोपाऽतीवतापसः॥२५॥उपदेशंददौतस्मैशुनःशेपायकौशिकः ॥ मंत्रपाशधरस्याऽथदयावान्वेदवित्तमः ॥२६॥

अपना देह दे देते थे ॥ २२ ॥ और आप इस समय अपने देहकी रक्षाके लिये ब्राह्मणके बालकको मारते हो यह कितना पापकार्य होता है सो आप स्वयंही विचार देखिये विशेषकर इसप्रकार पापाचरण न करके आप इस बालकपर दया कीजिये ॥ २३ ॥ हे महाराज! सम्पूर्ण मनुष्योंको अपने २ देहमें समान प्रीति विद्यमान है यह आप स्वयंही अनुभव करते हैं, अतएव इस समय यदि मेरा वचन प्रमाण जानो तो इस ब्राह्मणके पुत्रका त्याग कीजिये ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा हरिश्चन्द्रने व्याधिद्वारा अत्यन्त पीड़ित होनेसे उसकाल उनके वचनमें अनादरपूर्वक उस ब्राह्मणके बालकका त्याग किया इससे परमतपस्वी विश्वामित्रभी राजासे अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ २५ ॥ तब वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य कुशिकनंदन विश्वामित्रने शुनःशेपपर दया प्रकाश कर उसको वरुणमंत्रका उपदेश दिया॥ २६॥

शुनःशेपभी प्राणोंके भयसे अत्यन्त कातर हो वरुणका स्मरणकर ऊंचे स्वरसे उस मंत्रको वारंवार उच्चारण करने लगा ॥ २७ ॥ करुणासमुद्र वरुणने ब्राह्मणके पुत्रको स्तव करता हुआ जानकर उसी स्थानमें आय शुनःशेपको बन्धनसे छुड़ा दिया ॥ २८ ॥ और राजाको रोगरहित कर अपने स्थानको चलेगये, इसप्रकार महर्षि विश्वामित्र उस मुनिकुमारको मृत्युके मुखसे रक्षा करके परम आनन्दित हुए ॥ २९ ॥ जब राजा हरिश्चन्द्रने महात्मा विश्वामित्रका वचन पालन नहीं किया तबसेही गाधिपुत्र मनमें उस राजासे रुष्ट रहे ॥ ३० ॥ एकदिन राजा हरिश्चन्द्रने घोडेपर चढ वनमें जाय मध्याह्नकालके समय कौशिकी नदीके तटपर एक शूकरको मारनेकी इच्छा की ॥ ३१ ॥ तबही विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणके वेषसे राजाको छलकर प्रार्थनापूर्वक उनका सर्वस्व और सम्पूर्ण राज्य लेलिया ॥ ३२ ॥ अपने

शुनःशेपोऽपितंमंत्रमसकृद्वधकाङ्क्षितः ॥ प्लुतस्वरेणचुक्रोशसंस्मरन्वरुणंभृशम् ॥ २७ ॥ स्तुवंतंमुनिपुत्रंतंज्ञात्वावैयादसांपतिः ॥ तत्राऽऽगत्यशुनःशेपंमुमोचकरुणार्णवः ॥ २८ ॥ रोगहीनंनृपंकृत्वावरुणःस्वगृहंययौ ॥ विश्वामित्रस्तुतंपुत्रंकृतवान्मोचितंमृतेः ॥ २९ ॥ नकृतंवचनंराज्ञाकौशिकस्यमहात्मनः ॥ रोषंदधारमनसाराजोपरिसगाधिजः ॥ ३० ॥ एकस्मिन्समयेराजाहयारूढोवनंगतः ॥ सूकरंहंतुकामस्तुमध्याह्नेकौशिकीतटे ॥ ३१ ॥ वृद्धब्राह्मणवेषेणविश्वामित्रेणवंचितः ॥ सर्वस्वंप्रार्थितंतस्यगृहीतंराज्यमद्भुतम् ॥ ३२ ॥ पीडितोऽसौहरिश्चंद्रोयजमानोयतोभृशम् ॥ वसिष्ठःकौशिकंप्राहवनेप्राप्तंयदृच्छया ॥ ३३ ॥ क्षत्रियाधमदुर्बुद्धेवृथाब्राह्मणवेषभृत् ॥ बकधर्मन्वृथाकिंत्वंगर्वंवहसिदांभिक ॥ ३४ ॥ कस्मात्त्वयानृपश्रेष्ठोयजमानोममाप्यसौ ॥ अपराधंविनाजाल्मगमितोदुःखमद्भुतम् ॥ ३५ ॥ बकध्यानपरोयस्मात्तस्मात्त्वंवैबकोभव ॥ इतिशप्तोवसिष्ठेनकौशिकःप्राहतंपुनः ॥ ३६ ॥ त्वमप्याडिर्भवाऽऽयुष्मन्बकोऽहंयावदेवहि ॥ व्यासउवाच ॥ एवंपरस्परंदत्वाशापंतौक्रोधपीडितौ ॥ ३७ ॥

यजमान राजा हरिश्चन्द्रको अत्यन्त कष्ट पाते हुए देखकर महर्षि वशिष्ठ मनमें दुःखित और व्यथित हुए और एक दिन वनमें विश्वामित्रसे भेट होनेपर उनसे कहा ॥ ३३ ॥ रे दुर्बुद्धि ! क्षत्रियकुलाधम ! तैं ने वृथाही ब्राह्मणका वेष धारण किया है तेरा धर्म बगुलेकी समान है तू दाम्भिक है तथा वृथाही गर्व करता रहता है ॥ ३४ ॥ हमारे यजमान राजा श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र हैं उनका कोई अपराध नहीं. रे मूढ ! तथापि तैं ने उनको क्यों इतना कष्ट दिया ॥ ३५ ॥ तू बगुलेकी समान ध्यानपरायण है अतएव बगुला होकर जन्म ग्रहणकर. विश्वामित्रने वशिष्ठसे इस प्रकार शापित हो उनसे भी कहा ॥ ३६ ॥ हे वशिष्ठ ! मैं जबतक बगुला होकर रहूं तू भी तबतक आडि अर्थात्

शरालिनामक पक्षी होकर अवस्थिति करता रह. व्यासजीने कहा हे महाराज ! वह क्रोधित दोनों मुनि परस्पर इस प्रकार शाप दे ॥ ३७ ॥ दोनोंनेही सरोवरमें आडि और बकपक्षी हो जन्म ग्रहण किया बकरूपधारी विश्वामित्र मानससरोवरमें एक वृक्षके ऊपर नीड़ (घोसला) निर्माण पूर्वक वास करने लगे वशिष्ठ भी आडिरूप धारण कर दूसरे वृक्षमें कुलाय (घोसला) रचना कर वास करने लगे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वे दोनों पक्षी द्वेषके कारण क्रोधित हो उच्चस्वरसे घोरतर सर्वलोकोंको पीडाप्रद कठोर चीत्कार कर प्रतिदिन संग्राम करने लगे वह आपसमें चोंच और पक्ष प्रहार तथा नखाघातसे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ क्षत विक्षत और रुधिरमें डूबकर पुष्पित किंशुकवृक्षकी समान प्रकाशमान हुए पक्षिरूपधारी दोनों ऋषि शापसे दुःखित हो इस प्रकार बहुत दिन रहे ॥ ४२ ॥ परस्पर युद्ध करते करते उसी स्थानमें बहुत वर्ष बीत गये

अंडजौतरसाजातौसरस्याडीबकौमुनी ॥ एकस्मिन्पादपेनीडंकृत्वाऽसौबकरूपभाक् ॥ ३८ ॥ विश्वामित्रःस्थितस्तत्रदिव्येसरसिमानसे ॥ अन्यस्मिन्पादपेकृत्वावसिष्ठोनीडमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ आडीरूपधरस्तस्थावन्योन्यंद्वेषतत्परौ ॥ दिनेदिनेतौसंग्रामंचक्रतुःक्रोधसंयुतौ ॥ ४० ॥ दुःखदंसर्वलोकानांक्रंदमानावुभौभृशम् ॥ चंचुपक्षप्रहारैस्तुनखाघातैःपरस्परम् ॥ ४१ ॥ जघ्नतूरुधिरक्लिन्नौपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ एवंबहूनिवर्षाणिपक्षिरूपधरौमुनी ॥ ४२ ॥ स्थितौतत्रमहाराजशापपाशेनयंत्रितौ ॥ राजोवाच ॥ कथंमुक्तौमुनिश्रेष्ठौशापाद्वसिष्ठकौशिकौ ॥ ४३ ॥ तन्ममाचक्ष्वविप्रर्षेपरंकौतूहलंहिमे ॥ व्यासउवाच ॥ युध्यमानावुभौदृष्ट्वाब्रह्मालोकपितामहः ॥ ४४ ॥ तत्राऽऽजगामाऽनिमिषैर्वृतःसर्वैर्दयापरैः ॥ तावाश्वास्यजगत्कर्तायुद्धतोविनिवार्यच ॥ ४५ ॥ शापंसंमोचयामासतयोःक्षिप्तंपरस्परम् ॥ ततोजग्मुःसुराःसर्वेस्वानिधिष्ण्यानिपद्मभूः ॥ ४६ ॥ सत्यलोकंजगामाशुहंसारूढः प्रतापवान् ॥ विश्वामित्रोऽप्यगाचूर्णंवसिष्ठःस्वाश्रमंगतः ॥ ४७ ॥ मिथःस्नेहंततःकृत्वाप्रजापत्युपदेशतः ॥ मैत्रावरुणिनाप्येवंकृतंयुद्धमकारणम् ॥ ४८ ॥

जनमेजयने कहा हे विप्रवर ! वे वशिष्ठ और कौशिक नामक दोनों ऋषि किसप्रकार शापसे मुक्त हुए ॥ ४३ ॥ वह मुझसे कहो हे ऋषिवर ! यह वृत्तान्त श्रवण करनेके लिये मेरे मनमें अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है. व्यासजीने कहा लोकपितामह ब्रह्मा उन दोनोंको युद्धमें निरत देख ॥ ४४ ॥ दयार्द्रचित्त हो देवतागणोंके सहित उसी स्थानमें गये पद्मासनने दोनोंको युद्धसे निवारित और आश्वासित कर ॥ ४५ ॥ परस्परके दिये हुए शापसे दोनोंको छुड़ा दिया अनन्तर देवता अपने अपने स्थान और प्रभावशाली पद्मासन ॥ ४६ ॥ हँसपर चढ़ सत्यलोकको चलेगये. इसके उपरान्त महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र ॥ ४७ ॥ प्रजापतिके उपदेशानुसार परस्पर

प्रणय और मित्रता कर अपने अपने आश्रमको चलेगये. हे राजन् ! आप देखिये कि, इस समय मित्रावरुणतनय महर्षि वसिष्ठने भी ॥ ४८ ॥ विश्वामित्रसे अकारण ही दुःखप्रद युद्ध किया था अतएव इस अखिलसंसारमें कौन मनुष्य दानव वा देवता॥ ४९ ॥ अहङ्कार जय करके सर्वदा सुखभागी होसक्ता है ? हे पार्थिव ! चित्तकी शुद्धि महत्पुरुषोंको भी दुर्लभ है ॥ ५० ॥ परमयत्नके सहित उसका साधन करना होता है. चित्तशुद्धिविहीन मनुष्यगणोंका तीर्थ, दान, तपस्या, सत्य और जो कुछ धर्मसाधन है वह संपूर्णही निरर्थक जानना चाहिये ॥ ५१ ॥ " हे राजन् ! देहिगणोंके धर्मकर्मविषयमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी श्रद्धा कही गई हैं. १ तिनमें सात्विकी श्रद्धा सम्पूर्ण फल तथा लोकमें प्रायः दुर्लभ है विहित राजसी श्रद्धा उससे अर्द्धफलदायक है. २ और तामसी श्रद्धा निष्फल तथा अकीर्ति करनेवाली है, कामक्रोधसे युक्त पुरुषोंको ही तामसी श्रद्धा उत्पन्न होती है" ३ अतएव हे राजन् ! सत्संग अवलम्बनपूर्वक वेदान्त

कौशिकेनसमंभूपदुःखदंचपरस्परम् ॥ कोनाममानवोलोकेदेवोवादानवोऽपिवा ॥ ४९ ॥ अहंकारजयंकृत्वासर्वदासुखभाग्भवेत् ॥ तस्माद्राजं श्चित्तशुद्धिर्महतामपिदुर्लभा ॥ ५० ॥ यत्नेनसाधनीयासातद्विहीनंनिरर्थकम् ॥ तीर्थदानतपःसत्यंयत्किंचिद्धर्मसाधनम् ॥ ५१ ॥ "श्रद्धात्रिविधाप्रोक्तासात्त्विकीराजसीतथा ॥ तामसीसर्वदेहेषुदेहिनांधर्मकर्मसु ॥ १ ॥ सात्त्विकीदुर्लभालोकेयथोक्तफलदासदा ॥ तदर्धफलदाप्रोक्ताराजसी विधिसंयुता ॥ २ ॥ तामसीत्वफलाराजन्नतुकीर्तिकरीपुनः ॥ कामक्रोधाभिभूतानांजनानांनृपसत्तम ॥ ३ ॥ " वासनारहितंकृत्वातच्चित्तंश्रवणादिना ॥ तीर्थादिषुवसेन्नित्यंदेवीपूजनतत्परः ॥ ५२ ॥ देवीनामानिवचसागृह्णंस्तस्यागुणान्स्तुवन् ॥ ध्यायंस्तस्याःपदांभोजंकलिदोषभयार्दितः ॥ ५३ ॥ एवंतुकुर्वतस्तस्यनकदाचित्कलेर्भयम् ॥ अनायासेनसंसारान्मुच्यतेपातकीजनः ॥५४॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥ जनमेजयउवाच ॥ मैत्रावरुणिरित्युक्तंनामतस्यमुनेःकथम् ॥ वसिष्ठस्यमहाभागब्रह्मणस्तनुजस्यह ॥ १ ॥ किमसौकर्मतोनामप्राप्तवान्गुणतस्तथा ॥ ब्रूहि मेवदतांश्रेष्ठकरणंतस्यनामजम् ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ निबोधनृपतिश्रेष्ठवसिष्ठोब्रह्मणःसुतः ॥ निमिशापात्ततुंत्यक्त्वापुनर्जातोमहाद्युतिः ॥ ३ ॥

श्रवणादिसे चित्तकी वासना दूरकर देवीकी पूजामें अत्यन्त निरत हो तीर्थादि स्थलमें वास करै ॥ ५२ ॥ कलिदोषके कारण भयातुर मनुष्यगण देवीका नाम ग्रहण और उनके गुणकी स्तुति तथा उनके चरणकमलोंका ध्यान कर कालव्यतीत करैं ॥ ५३ ॥ इस प्रकार करनेसे फिर जीवगणोंको कलिका भय नहीं रहसक्ता और पातकी मनुष्य भी संसारबन्धसे सहजमें ही मुक्तिलाभ करसक्ते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! महर्षि वशिष्ठ ब्रह्माके मानसपुत्र थे तो आपने किस कारणसे उनका मैत्रावरुणि नाम कीर्त्तन किया ॥ १ ॥ वे कर्मद्वारा अथवा अन्य किसी गुणसे इस नामको प्राप्त हुए हैं. हे वक्तृप्रवर ! आप मुझको उनके इस नामका कारण भलीभाँति वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र !

यद्यपि प्रभावशाली वशिष्ठ ब्रह्माके पुत्र थे, किन्तु उन्होंने नरपति निमिके शापसे तनु त्यागकर मित्रावरुणसे जन्मलाभ किया ॥ ३ ॥ इस कारण लोकमें सर्वत्रही मैत्रावरुणि नामसे विख्यात हुए थे ॥ ४ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! ब्रह्माके पुत्र धर्मात्मा वह मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ किस कारणसे निमिके शापको प्राप्त हुए ? उन क्षत्रिय नृपतिका दारुण शाप मुनिको भी भोगना पड़ा इस विषयमें मुझको आश्चर्य बोध होता है॥ ५॥ हे धर्मज्ञ ! उस राजाने निरपराध मुनिको किसकारण शाप दिया ? उसे सुननेके निमित्त मुझको अत्यन्त कौतूहल हुआ है. अतएव आप उस शापका कारण वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! पहले मैं ने आपसे इन सबका कारण भलीभाँति कहा है. यह संसार सत्व, रज, तम तीन मायाके गुणसे व्याप्त है॥ ७॥ राजालोग धर्माचरण ही करैं और सम्पूर्ण तपस्वी तपाचरण ही करैं

मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मात्तन्नामविश्रुतम् ॥ मैत्रावरुणिरित्यस्मिँल्लोकेसर्वत्रपार्थिव ॥४॥ राजोवाच ॥ कस्माच्छप्तःसधर्मात्माराज्ञाब्रह्मात्मजोमुनिः ॥ चित्रमेतन्मुनिर्लग्नोराज्ञःशापोऽतिदारुणः ॥ ५ ॥ अनागसंमुनिंराजाकिमसौशप्तवान्मुने ॥ कारणंवदधर्मज्ञतस्यशापस्यमूलतः ॥ ६ ॥ व्यासउवाच ॥ कारणंतुमयाप्रोक्तंतवपूर्वंविनिश्चितम् ॥ संसारोऽयंत्रिभिर्व्याप्तोराजन्मायागुणैःकिल ॥ ७ ॥ धर्मंकरोतुभूपालश्चरंतुतापसास्तपः ॥ सर्वेषांतुगुणैर्विद्धंनो ज्वलंतद्भवेदिह ॥८॥ कामक्रोधाभिभूताश्चराजानोमुनयस्तथा ॥ लोभाहंकारसंयुक्ताश्चरंतिदुश्चरंतपः ॥ ९ ॥ यजंतिक्षत्रियाराजन्रजोगुणसमावृताः ॥ ब्राह्मणास्तुतथाराजन्नकोऽपिसत्त्वसंयुतः ॥१०॥ ऋषिणाऽसौनिमिःशप्तस्तेनशप्तोमुनिःपुनः ॥ दुःखाद्दुःखतरंप्राप्तावुभावपिविधेर्बलात् ॥११॥ द्रव्यशुद्धिःक्रियाशुद्धिर्मनसःशुद्धिरुज्वला ॥ दुर्लभाप्राणिनांभूपसंसारेत्रिगुणात्मके ॥ १२ ॥ पराशक्तिप्रभावोऽयंनोल्लंघ्यःकेनचित्क्वचित् ॥ यस्याऽनुग्रह मिच्छेत्सामोचयत्येवतंक्षणात् ॥ १३ ॥

उनका वे समस्त धर्मादि मायागुणसे विद्ध होकर उज्ज्वलता लाभ नहीं करसक्ता॥ ८॥ राजा लोग और मुनिगण काम क्रोधमें अभिभूत और लोभ तथा अहङ्कारयुक्त होकर दुष्कर तपस्याका आचरण करते हैं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! क्षत्रियगण अथवा ब्राह्मण सबही रजोगुणयुक्त हो यागादि करते हैं. वास्तविक उनमें कोई सत्वगुणयुक्त होकर कार्यका अनुष्ठान नहीं करता ॥१०॥ निमिराज ऋषिद्वारा और ऋषि राजनिमिसे शापित हो दोनोंही प्रारब्धप्रेरित तमोगुणसे दुःखको प्राप्त हुए थे॥ ११ ॥ हे महाराज ! इस त्रिगुणात्मक संसारमें प्राणीगणोंके पक्षमें द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और निर्मल प्रकारसे चित्तशुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इसकोही परमाशक्ति जगदम्बिकाका प्रभाव जानना चाहिये. कोई पुरुष इसके उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं होता परन्तु वह जिसके प्रति अनुग्रह करनेकी अभिलाषा करती हैं उसको क्षणमें

उन गुणोंके बन्धनसे छुड़ा देतीं हैं ॥ १३ ॥ अधिक क्या विष्णु रुद्र और ब्रह्मा इत्यादि महान् देवतागण भी उनके अनुग्रहके विना नहीं छूट सक्ते, किन्तु उनका अनुग्रह होनेसे सत्यव्रत इत्यादिकी समान पामरगणभी मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होतेहैं ॥ १४ ॥ उनके हृदयमें जो है उसको त्रिभुवनमें कोई नहीं जानसक्ता, परन्तु वह जो भक्तके वशीभूत होती हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ अतएव दोषको नष्ट करनेके निमित्त सात्विकी भक्ति अवलम्बन करनी उचित है किन्तु रागदम्भादि युक्त भक्ति मनुष्यगणोंको अनिष्ट करनेवाली होती है इसकारण उसका त्याग करना अत्यन्त श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हे महाराज! इक्ष्वाकुके बारहवें पुत्र निमिनामक नृपति रूपवान्, गुणसम्पन्न, धर्मज्ञ, लोकरञ्जन ॥ १७ ॥ सत्यवादी, दानशील, याजक, शुद्धाचार, प्रजाके पालनमें तत्पर बुद्धिमान् और ज्ञान

महांतोऽपिनमुच्यंतेहरिब्रह्महरादयः ॥ पामराअपिमुच्यंतेयथासत्यव्रतादयः ॥ १४ ॥ तस्यास्तुहृदयंकोऽपिनवेत्तिभुवनत्रये ॥ तथापिभक्तवश्येयंभव त्येवसुनिश्चितम् ॥ १५ ॥ तस्मात्तद्भक्तिरास्थेयादोषनिर्मूलनायच ॥ रागदंभादियुक्ताचेत्साभक्तिर्नाशिनीभवेत् ॥ १६ ॥ इक्ष्वाकुकुलसंभूतोनिमिर्ना मनराधिपः ॥ रूपवान्गुणसंपन्नोधर्मज्ञोलोकरंजकः ॥ १७॥ सत्यवादीदानपरोयाजकोज्ञानवाञ्छुचिः ॥ द्वादशस्तनयोधीमान्प्रजापालनतत्परः ॥१८॥ पुरंनिवेशयामासगौतमाश्रमसन्निधौ ॥ जयंतुपुरसंज्ञंतुब्राह्मणानांहितायसः ॥ १९ ॥ बुद्धिस्तस्यसमुत्पन्नायजेयमितिराजसी ॥ यज्ञेनबहुकालेनद क्षिणासंयुतेनच॥ २० ॥ इक्ष्वाकुंपितरंदृष्ट्वायज्ञकार्यायपार्थिव ॥ कारयामाससंभारंयथोद्दिष्टंमहात्मभिः ॥ २१ ॥भृगुमंगिरसंचैववामदेवंचगौतमम् ॥ वसिष्ठंचपुलस्त्यंचऋचीकंपुलहंक्रतुम् ॥ २२ ॥ मुनीनामंत्रयामाससर्वज्ञान्वेदपारगान् ॥ यज्ञविद्याप्रवीणांश्चतापसान्वेदवित्तमान् ॥ २३ ॥ राजासं भृतसंभारःसंपूज्यगुरुमात्मनः ॥ वसिष्ठंप्राहधर्मज्ञोविनयेनसमन्वितः ॥ २४ ॥ यजेयंमुनिशार्दूलयाजयस्वकृपानिधे ॥ गुरुस्त्वंसर्ववेत्तासिकार्य मेकुरुसांप्रतम् ॥२५॥

युक्त थे ॥ १८ ॥ उन महात्माने ब्राह्मणोंके हितार्थ गौतमके आश्रमके निकट जयन्तुपुरनामक एक नगर वसाया ॥ १९ ॥ कुछ काल व्यतीत होनेपर उनको इसप्रकार राजसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि मैं " विपुलदक्षिणायुक्त बहुत कालपर्यन्त एकयज्ञका अनुष्ठान करूं " ॥ २० ॥ अनंतर अपने पिता इक्ष्वाकुकी आज्ञा ग्रहणकर यज्ञकार्यके निमित्त महात्मा पुरुषोंसे सम्पूर्ण कहीहुई सामग्री मँगाई ॥ २१ ॥ भृगु,अङ्गिरा, वामदेव, गौतम, वशिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह, क्रतु ॥ २२ ॥ इत्यादि वेदके जाननेवाले यज्ञविद्याविशारद सर्वज्ञ तपस्वी मुनिगणोंको निमंत्रण देकर बुलाया ॥ २३ ॥ उस धार्मिक नरपति निर्मित यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्री संग्रह कर अपने गुरु वशिष्ठदेवकी पूजापूर्वक उनसे विनयसे नम्र हो वचन कहा ॥ २४ ॥ हे मुनिवर ! मैं यज्ञ करूंगा आप कृपा करके मेरी यज्ञक्रिया सम्पादन कीजिये, आप

गुरु हैं अतएव मेरा सब जानते हैं इस कारण इस समय मेरा यज्ञ कार्य निर्वाह कीजिये ॥ २५ ॥ यज्ञकी सब सामग्री मँगाकर सजाई गई है. हे गुरो ! मैं पांचहजार वर्षपर्यन्त यज्ञमें दीक्षित हूंगा यही मेरा सङ्कल्प जानिये ॥ २६ ॥ इस यज्ञमें जगदम्बिका देवीकी आराधना करूंगा, उनको प्रसन्न करनेको मैं विधिपूर्वक इस यज्ञका अनुष्ठान करता हूं ॥ २७ ॥ वसिष्ठजीने राजा निमिका यह वचन सुनकर कहा हे नृपोत्तम ! देवराजइन्द्रने मुझको पहलेही यज्ञके निमित्त वरण किया है ॥ २८ ॥ इस समय पाकशासन इन्द्र पराशक्तिकी प्रीतिके निमित्त यज्ञ करनेमें उद्यत हुए हैं मैं ने भी पंद्रह वर्षके लिये उनको दीक्षित किया है ॥ २९ ॥ अतएव हे पार्थिव ! जबतक इन्द्रका यज्ञ संपूर्ण न हो आपको तबतक प्रतीक्षा करनी होगी. इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर इनका समस्त कार्य कर ॥ ३० ॥ तिसके उपरान्त इस स्थानमें

यज्ञोपकरणंसर्वंसमानीतंसुसंस्कृतम्॥ पंचवर्षसहस्रंतुदीक्षांकर्तुमतिश्च मे ॥२६॥यस्मिन्यज्ञेसमाराध्योदेवीश्रीजगदंबिका॥ तत्प्रीत्यर्थमहंयज्ञंकरोमिविधिपूर्वकम् ॥२७॥ तच्छ्रुत्वाऽसौनिमेर्वाक्यंवसिष्ठःप्राहभूपतिम्॥इंद्रेणाऽहंवृतःपूर्वंयज्ञार्थंनृपसत्तम॥२८॥पराशक्तिमखंकर्तुमुद्युक्तःपाकशासनः॥सदीक्षांगमितोदेवःपंचवर्षशतात्मिकाम्॥२९॥तस्मात्त्वमंतरंतावत्प्रतिपालयपार्थिव ॥ इंद्रयज्ञेसमाप्तेऽत्रकृत्वाकार्यंदिवस्पतेः ॥३०॥ आगमिष्याम्यहंराजंस्तावत्त्वंप्रतिपालय ॥ ॥ राजोवाच ॥ मयानिमंत्रिताश्चान्येमुनयोयज्ञकारणात् ॥ ३१ ॥ संभाराःसंभृताःसर्वेपालयामिकथंगुरो ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेब्रह्मन्गुरुस्त्वंवेदवित्तमः ॥३२॥ कथंत्यक्त्वाऽद्यमेकार्यमुद्यतोगंतुमाशुवै ॥ नतेयुक्तंद्विजश्रेष्ठयदुत्सृज्यमखंमम ॥ ३३ ॥ गंतासिधनलोभेनलोभाकुलितचेतनः॥ निवारितोऽपिराज्ञासजगामेंद्रमखंगुरुः ॥ ३४ ॥ राजाऽपिविमनाभूत्वागौतमंप्रत्यपूजयत् ॥ इयाजहिमवत्पार्श्वेसागरस्यसमीपतः ॥ ३५ ॥

आऊंगा. अतएव हे महाराज ! आप तबतक प्रतीक्षा कीजिये राजाने कहा हे मुनिवर ! मैं ने यज्ञके निमित्त अन्यान्य मुनिगणोंको निमंत्रण दिया है॥ ३१ ॥ और सम्पूर्ण सामग्री मँगाली है. तब किस प्रकार इस समय प्रतीक्षा करसक्ता हूं ? हे ब्रह्मन् ! आप वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य और इक्ष्वाकुवंशियोंके कुलगुरु होकर ॥ ॥ ३२ ॥ इस समय किसप्रकार मेरा कार्य त्यागकर अन्यत्र जानेमें उद्यत हुए हैं? हे द्विजोत्तम ! आप धनके कठिन लोभसे ज्ञानरहित होकर मेरा यज्ञ त्यागकर जाते हैं ॥ ३३ ॥ यह आपको उचित नहीं. हे राजन् ! निमिराजके इसप्रकार निवारण करनेपर भी वशिष्ठ ऋषि इन्द्रके यज्ञमें गये ॥ ३४ ॥ तब राजानेभी

विमन होकर गौतमऋषिको यज्ञकार्यमें वरण किया तब उन्होंने हिमाचलके पार्श्वमें सागरके समीपमें यज्ञ आरंभ करके ॥ ३५॥ ब्राह्मणगणोंको बहुत दक्षिणा दी. इस यज्ञमें निमिराज पांच सहस्र वर्षपर्यन्त दीक्षित हुए थे ॥ ३६ ॥ और इसमें ऋत्विग्गण पूर्ण धन और गोदानसे परिपूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए थे अनन्तर देवराजका पांच हजार वर्षव्यापी यज्ञ समाप्त होनेपर ॥ ३७ ॥ वशिष्ठऋषि निमिराजका यज्ञ देखनेको राजासे भेंट करनेके निमित्त उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥ राजा तिस समय निद्रामें अत्यन्त व्याप्त थे इस कारण सेवकगण उनको न जगासके अतएव राजा भी ऋषिके निकट न आये॥ ३९॥ इस कारण अपमान बोध होनेसे महर्षि वशिष्ठके अन्तःकरणमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई वह राजाको न देखकर क्रोधित हुए ॥ ४०॥ और अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हो निमिराजको यह

दक्षिणाबहुलादत्ताविप्रेभ्योमखकर्मणि॥निमिनापंचसाहस्रीदीक्षातत्रकृतानृप॥३६॥ऋत्विजःपूजिताःकामंधनैर्गोभिर्मुदायुताः॥शक्रयज्ञेसमाप्तेतुपंचवर्षशतात्मके ॥३७॥ आजगामवसिष्ठस्तुराज्ञःसत्रदिदृक्षया ॥ आगत्यसंस्थितस्तत्रदर्शनार्थंनृपस्यच ॥ ३८॥ तदाराजाप्रसुप्तस्तुनिद्रयाऽपहृतोभृशम्॥नासौप्रबोधितोभृत्यैर्नागतस्तुमुनिंनृपः ॥ ३९ ॥ वसिष्ठस्यततोमन्युःप्रादुर्भूतोऽवमानतः ॥ अदर्शनान्निमेस्तत्रचुकोपमुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ शापंचदत्तवांस्तस्मैराज्ञेमन्युवशंगतः ॥ यस्मात्त्वंमांगुरुंत्यक्त्वाकृत्वान्यंगुरुमात्मनः ॥४१॥ दीक्षितोसिबलान्मंदमामवज्ञायपार्थिव ॥ वारितोऽपिमयातस्माद्विदेहस्त्वंभविष्यसि ॥ ४२ ॥ पतत्विदंशरीरंतेविदेहोभवभूपते ॥ व्यासउवाच ॥ इतितद्व्याहृतंश्रुत्वाराज्ञस्तुपरिचारकाः ॥ ४३ ॥ सद्यःप्रबोधयामासुर्मुनिमाहुःप्रकोपितम् ॥ कुपितंतंसमागत्यराजाविगतकल्मषः ॥ ४४ ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णंहेतुगर्भंचयुक्तिमत् ॥ ममदोषोनधर्मज्ञगतस्त्वंतृष्णयाकुलः ॥ ४५ ॥

कह शाप दिया कि, तू अत्यन्त मन्दमति राजा है, मेरे चिरगुरु रहते और विशेष कर मेरे तुमको निवारण करनेपर भी तुमने जब मुझको त्याग दूसरेको वरण कर॥ ॥ ४१ ॥ बलपूर्वक दीक्षित हो मेरा कहा न माना इससे तो तुम विदेह (देहरहित) होओ ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा यह शरीर अभी निपतित हो अर्थात् तुम विदेह होओ व्यासजीने कहा हे राजन् ! सेवकगणोंने वशिष्ठजीके यह शापयुक्त वाक्य सुनकर ॥४३॥ राजाको तत्काल जगाया कि, वशिष्ठ ऋषि आपकी भेंट न होनेसे अत्यन्त प्रकुपित हुए हैं, यह विषय निवेदन किया पापरहित निमिराजने प्रकुपित वशिष्ठके सामने जाय ॥ ४४ ॥ विनय नम्रभावसे हेतुपूर्ण और युक्तिसंगत

वचन कहा हे धर्मज्ञ ! मैं आपका यजमान हूं मेरे वारंवार प्रार्थना करनेपर भी आपने लोभकी तृष्णामें व्याकुल होकर॥ ४५॥ मुझको त्याग अन्यत्र गमन किया अतएव इसमें मेरा कुछ दोष नहीं आप ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य होकर और सन्तोषी ब्राह्मणोंका सारधर्म जानकर भी इसप्रकार नीचकार्य करनेमें लज्जित नहीं होते ? ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणका सन्तोषही धर्म है आप ब्रह्माके पुत्र और वेदवेदाङ्गपारग होकरभी ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठतर ब्राह्मणधर्मकी सूक्ष्मगति नहीं जानते आप अपना निजदोष मेरे ऊपर आरोपित करके मुझको शाप देनेकी वृथा अभिलाषा करते हैं ॥ ४८ ॥ क्रोध चण्डालसे भी अधिकतर दूषणीय अतएव स्वजनगणोंको इसका परित्याग करनाही उचित है आप जब अकारण ही क्रोधानलमें प्रज्वलित हो मुझको शाप देते हैं ॥ ४९ ॥ तब मैं भी आपको इस समय शाप देता हूं कि,

हित्वामांयजमानंवैप्रार्थितोऽपिमयाभृशम् ॥ नलज्जसेद्विजश्रेष्ठकृत्वाकर्मजुगुप्सितम् ॥ ४६ ॥ संतोषेब्राह्मणश्रेष्ठजानन्धर्मस्यनिश्चयम् ॥ पुत्रोऽऽसिब्रह्मणःसाक्षाद्वेदवेदांगवित्तमः ॥ ४७ ॥ नवेत्सिविप्रधर्मस्यगतिंसूक्ष्मांदुरत्ययाम् ॥ आत्मदोषंमयिज्ञात्वामृषामांशप्तुमिच्छसि ॥ ४८ ॥ त्याज्यस्तुसुजनैःक्रोधश्चंडालादधिकोयतः ॥ वृथाक्रोधपरीतेनमयिशापःप्रपातितः ॥ ४९ ॥ तवाऽपिचपतत्वद्यदेहोयंक्रोधसंयुतः ॥ एवंशप्तोमुनीराज्ञाराजाचमुनिनातथा ॥ ५० ॥ परस्परंप्राप्यशापंदुःखितौतौवभूवतुः ॥ वसिष्ठस्त्वतिचिंतार्तोब्रह्माणंशरणंगतः ॥ ५१ ॥ निवेदयामासतथाशापंभूपकृतंमहत् ॥ वसिष्ठउवाच ॥ राज्ञाशप्तोऽस्मिदेहोऽयंपतत्वद्यतवेतिवै ॥ ५२॥ किंकरोमिपितःप्राप्तंकष्टंकायप्रपातजम् ॥ अन्यदेहसमुत्पत्तौजनकंवदसांप्रतम् ॥५३॥ तथामेदेहसंयोगःपूर्ववत्समपद्यताम् ॥ यादृशंज्ञानमेतस्मिन्देहेतत्राऽस्तुतत्पितः ॥ ५४ ॥ समर्थोऽसिमहाराजप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ वसिष्ठस्यवचःश्रुत्वाब्रह्माप्रोवाचतंसुतम ॥ ५५ ॥

आपकी यह क्रोधयुक्त देह निपतित हो. हे महाराज ! इसप्रकार राजा मुनिवर ॥ ५० ॥ और मुनिवर राजाको शाप दे दोनोंही अत्यन्त दुःखित हुए तब वशिष्ठ अत्यन्त चिन्ताकुल हो ब्रह्माकी शरणागत हुए ॥ ५१ ॥ और निमिके दिये हुए महत् शापके विषय निवेदन कर कहा हे पितः ! " अभी तुम्हारा यह देह पतित हो " यह कहकर निमिराजाने मुझको शाप दिया है ॥ ५२ ॥ इस समय देहपातजनित महत्कष्ट उपस्थित हुआ है अतएव मैं क्या करूं ? हे पितः ! कौन पुरुष मुझे जन्म देगा यह आप मुझसे कहिये ॥५३॥ और जिससे मुझको पूर्वकी समान देह प्राप्त हो उसका भी उपाय कीजिये और मेरे इस देहमें जिसप्रकार ज्ञान रहता है उस देहमें भी जिससे इसीप्रकार ज्ञान रहे ॥ ५४ ॥ आप प्रसन्न होकर अपने असीमप्रभावसे उसीप्रकार कीजिये क्योंकि आप उसके करनेमें भलीभाँति समर्थ

हैं. हे राजन्! वशिष्ठके वाक्य श्रवण कर ब्रह्माने अपने उस प्रियपुत्रसे कहा ॥ ५५ ॥ तुम मित्रावरुणके तेजमें प्रवेश कर स्थिरचित्तसे वास करो इससे तुम यथाकालमें अयोनिज देह प्राप्त कर फिर ॥ ५६ ॥ धर्मयुक्त, सत्यनिष्ठ, वेदज्ञ सर्वज्ञ और सबके पूजित होंगे इसमें कोई भी संशय नहीं ॥ ५७ ॥ ब्रह्माके इसप्रकार कहनेपर फिर महर्षि वशिष्ठ पितामहको प्रणाम और प्रदक्षिणा कर वरुणालयमें गये ॥ ५८ ॥ अनन्तर उन्होंने अपना अत्युत्तम देह परित्याग कर सूक्ष्मदेहरूप अपने जीवांशद्वारा मित्रावरुणके देहमें प्रवेश किया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर किसी समयमें परमरूपलावण्यवती उर्वशी अपने सखियोंके संग इच्छानुसार वरुणालयमें आनकर

मित्रावरुणयोस्तेजस्त्वंप्रविश्यस्थिरोभव ॥ तस्मादयोनिजःकालेभवितात्वंनसंशयः ॥ ५६ ॥ पुनर्देहंसमासाद्यधर्मयुक्तोभविष्यसि ॥ भूतात्मावेदवित्कामंसर्वज्ञःसर्वपूजितः ॥ ५७ ॥ एवमुक्तस्तदापित्राप्रययौवरुणालयम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंप्रीत्याप्रणम्यचपितामहम् ॥ ५८ ॥ विवेशसतयोर्देहेमित्रावरुणयोःकिल ॥ जीवांशेनवसिष्ठोऽथत्यक्त्वादेहमनुत्तमम् ॥ ५९ ॥ कदाचिदुर्वशीराजन्नागतावरुणालयम् ॥ यदृच्छयावरारोहासखीगणसमावृता ॥ ६० ॥ दृष्ट्वातामप्सरांदिव्यांरूपयौवनसंयुताम् ॥ जातौकामातुरौदेवौतदातामूचतुर्नृप ॥ ६१ ॥ विवशौचारुसर्वांगींदेवकन्यांमनोरमाम् ॥ आवांत्वमनवद्यांगिवरयस्वसमाकुलौ ॥ ६२ ॥ विहरस्वयथाकामंस्थानेऽस्मिन्वरवर्णिनि ॥ तथोक्तासाततोदेवीताभ्यांतत्रस्थितावशा ॥ ६३ ॥ कृत्वाभावंस्थिरंदेवीमित्रावरुणयोर्गृहे ॥ सागृहीत्वातयोर्भावंसंस्थिताचारुदर्शना ॥ ६४ ॥ तयोस्तुपतितंवीर्यंकुंभेदैवादनावृते ॥ तस्माज्जातौमुनीराजन्द्वावेवाऽतिमनोहरौ ॥ ६५ ॥

उपस्थित हुई ॥ ६० ॥ मित्रावरुण दोनों देवतारूप यौवनसम्पन्न उस अप्सराको देखकर अत्यन्त कामातुर हुए ॥ ६१ ॥ और कामबाणसे मोहित और विवश हो उस सर्वाङ्गसुन्दरी मनोरमा देवकन्या उर्वशीसे कहने लगे हे वरवर्णिनी! हम तुमको देखकर कामबाणसे अत्यन्त व्याकुल हुए हैं ॥ ६२ ॥ हे सुन्दरि! तुम हमको वरण कर इस स्थानमें इच्छानुसार विहार करती रहो. उनके इसप्रकार कहनेपर फिर उर्वशी देवी तिसकाल उनके प्रति अनुरागिनी और उनकी वशवर्त्तिनी होकर ॥ ६३ ॥ उन मित्रावरुणके गृहमें वास करने लगी. उर्वशीके उनके प्रति परमअनुरागके सहित वहां स्थिति करनेपर ॥ ६४ ॥ उनका वीर्य एक उघडे कुम्भमें पतित हुआ उससे

अत्यन्त मनोहर दो ऋषिकुमारोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ६५ ॥ तिनमें अगस्त्य प्रथम और वशिष्ठ दूसरे हुए. इसप्रकार मित्रावरुणके वीर्यसे तपस्वी दो ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६६ ॥ प्रथम अगस्त्य बाल्यकालमेंही तपस्वी होकर वनको चले गये और राजश्रेष्ठ इक्ष्वाकुने बालक वशिष्ठको पुरोहितमें वरण किया ॥ ६७ ॥ हे राजन्! इक्ष्वाकुने उनके वंशके कल्याणार्थ उनको पालन किया विशेषकर वह उनको वशिष्ठ मुनि जानकर उनके प्रति प्रसन्न हुए थे ॥ ६८ ॥ हे जनमेजय! यह मैंने तुमसे निमिके शापसे वशिष्ठकी देहान्तर प्राप्तिका और मित्रावरुणके कुलमें उनकी उत्पत्तिका विवरण सम्पूर्णही वर्णन किया ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर! आपने महर्षि वशिष्ठदेवकी देहान्तरप्राप्तिका

अगस्तिःप्रथमस्तत्रवसिष्ठश्चाऽपरस्तथा ॥ मित्रावरुणयोर्वीर्यात्तापसावृषिसत्तमौ ॥ ६६ ॥ प्रथमस्तुवनंप्राप्तोबालएवमहातपाः ॥ इक्ष्वाकुस्तुवसिष्ठंतंबालंवव्रेपुरोहितम् ॥ ६७ ॥ वंशस्याऽस्यसुखार्थंतेपालयामासपार्थिव ॥ विशेषेणमुनिंज्ञात्वाप्रीत्यायुक्तोबभूवह ॥ ६८ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंवसिष्ठस्यचकारणम् ॥ शापादेहांतरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोःकुले ॥ ६९ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्यकथिताभवताकिल ॥ निमिःकथंपुनर्देहंप्राप्तवानितिमेवद ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ वसिष्ठेनचसंप्राप्तःपुनर्देहोनराधिप ॥ निमिनानतथाप्राप्तोदेहःशापादनंतरम् ॥ २ ॥ यदाशप्तोवसिष्ठेनतदातेब्राह्मणाःक्रतौ ॥ ऋत्विजोयेवृताराज्ञातेसर्वेसमचिंतयन् ॥ ३ ॥ किंकर्तव्यमहोऽस्माभिःशापदग्धोमहीपतिः ॥ अस्मिन्यज्ञेत्वसंपूर्णेदीक्षायुक्तश्चधार्मिकः ॥ ४ ॥ किंकर्तव्यंकार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल ॥ अवश्यंभाविभावत्वादशक्ताःस्मनिवारणे ॥ ५ ॥

विषय वर्णन किया किन्तु निमिराज किसप्रकार फिर देहको प्राप्त हुए थे? यह वर्णन नहीं किया इस समय यह विषय कीर्त्तन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! वशिष्ठ ऋषि फिर देहको प्राप्त हुए थे किन्तु निमिराजको वशिष्ठके शाप देनेपर फिर देह प्राप्त नहीं हुई ॥ २ ॥ जब वशिष्ठ ऋषिने उनको शाप दिया, तिस समय यज्ञकार्यमें नियुक्त ऋत्विक् ब्राह्मणगण चिन्ता करने लगे कि ॥ ३ ॥ क्या आश्चर्य है इस यज्ञके सम्पूर्ण न होते होतेही दीक्षित धार्मिक महीपति निमि शापसे ग्रस्त हुए ॥ ४ ॥ यह कार्य विपरीत होगया हम क्या करैं जो होनहार है वह अवश्यही होगा. अतएव हम क्या करके इसको निवारण करैं ॥ ५ ॥

तब उन्होंने उस महात्माकी किंचित् स्वांशयुक्त देहकी अनेक मंत्रोंसे रक्षा की ॥ ६ ॥ और माल्य गन्धादिसे वारंवार पूजाकर अनेक यत्नसे मंत्रशक्ति द्वारा स्तम्भित और विकार हितकर राजाको उक्त देहधारण कराई ॥ ७ ॥ अनन्तर उक्त यज्ञके समाप्त होनेपर ऋषिगण देवताओंका स्तव करने लगे इससे देवता प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर उस स्थानमें आये ॥ ८ ॥ तिस समय मुनिगण राजाकी समस्त अवस्था जानकर दुःखित राजासे कहने लगे हे सुव्रत ! हम आपके यज्ञानुष्ठानसे प्रसन्न हुए हैं इस समय आप हमसे वांछित वर माँगिये ॥ ९ ॥ हे नृपवर ! इस यज्ञके अनुष्ठान फलसे आपका श्रेष्ठ जन्म होना उचित है अतएव आप देवदेह अथवा नरदेह जिसकी अभिलाषा करैं वही कहिये ॥ १० ॥ अतएव आपका पुरोहित जिसप्रकार पूर्वदेह परित्यागकर उसीकी समान दूसरा देहधारण पूर्वक गर्वित हो मृत्युलोकमें अवस्थिति करता है आप इच्छा होनेसे भी इसप्रकार प्रार्थना करसक्ते हैं हे. महाराज ! देवताओंके इसप्रकार कहनेपर फिर निमिराजकी आत्मा

मंत्रैर्बहुविधैर्देहंतदातस्यमहात्मनः ॥ रक्षितंधारयामासुःकिंचिच्छ्वसनसंयुतम् ॥ ६ ॥ गंधैर्माल्यैश्चविविधैःपूज्यमानंमुहुर्मुहुः ॥ मंत्रशक्त्याप्रतिष्टभ्यनिर्विकारंसुपूजितम् ॥ ७ ॥ समाप्तेचक्रतौतत्रदेवाःसर्वेसमागताः ॥ ऋत्विग्भिस्तुस्तुताःसर्वेसुप्रीताश्चाऽभवन्नृप ॥८॥ विज्ञप्तामुनिभिःस्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवन् ॥ प्रसन्नाःस्ममहीपालवरंवरयसुव्रत ॥ ९ ॥ यज्ञेनाऽनेनराजर्षेवरंजन्मविधीयते ॥ देवदेहंनृदेहंवायत्तेमनसिवांछितम् ॥ १० ॥ दृप्तःकामंपुरोधास्तेमृत्युलोकेयथासुखम् ॥ एवमुक्तोनिमेरात्मासंतुष्टस्तानुवाचह ॥११॥ नदेहेममवांछाऽस्तिसर्वदैवविनश्वरे ॥ वासोमेसर्वसत्त्वानांदृष्टावस्तुसुरोत्तमाः॥ ॥ १२ ॥ नेत्रेषुसर्वभूतानांवायुभूतश्चराम्यहम् ॥ एवमुक्ताःसुरास्तत्रनिमेरात्मानमब्रुवन् ॥ १३ ॥ प्रार्थयत्वंमहाराजदेवींसर्वेश्वरींशिवाम् ॥ मखेनाऽनेनसंतुष्टासातेऽभीष्टंविधास्यति ॥ १४ ॥ सदेवैरेवमुक्तस्तुप्रार्थयामासदेवताम् ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्यागद्गदयागिरा ॥१५॥ प्रसन्नासातदादेवीप्रत्यक्षंदर्शनंददौ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशंरूपंलावण्यदीपितम् ॥ १६ ॥ दृष्ट्वाप्रमुदिताःसर्वेकृतकृत्याश्चचेतसि ॥ प्रसन्नायांदेवतायांराजावव्रेवरंनृप ॥ १७॥

अत्यन्त सन्तुष्ट हो उनसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे सुरसत्तमगण ! जो देह सर्वदाही विनष्ट होता है इसमें मेरी अभिलाषा नहीं है अतएव जीवगणोंके दोनों नेत्रोंके उपरि भागमें मेरा वास हो ॥ १२ ॥ मैं समस्त प्राणियोंके नेत्रोपरि वायुरूपसे विचरण करूं यही मेरी प्रार्थना है निमिराजके इस प्रकार कहनेपर फिर देवताओंने निमिकी आत्मासे कहा ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आप विश्वरूपिणी सर्वेश्वरी देवीके निकट प्रार्थना कीजिये, वह यज्ञसे सन्तुष्ट हुई हैं अतएव अवश्य ही आपका अभीष्ट सिद्ध करेंगी ॥ १४ ॥ निमिराज देवताओंके यह वचन सुनकर भक्तिभावयुक्त गद्गद वाक्यसे अनेकप्रकारके स्तोत्रद्वारा देवीके निकट प्रार्थना करनेलगे ॥ १५ ॥ तब देवी प्रसन्न हो उनके सन्मुख आय उपस्थित हुई उनकी करोड़ सूर्यकी समान ज्योति और रूपलावण्य देखकर ॥ १६ ॥ सम्पूर्णही आनन्दित और प्रफुल्लित होकर

मनहीमनमें अपनेको कृतकृत्य बोध करने लगे. तब राजाने भगवती देवीको प्रसन्न जानकर उनके निकट इस वरकी प्रार्थना की ॥ १७ ॥ हे देवि ! जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है मुझको वही विमल तत्वज्ञान प्रदान कीजिये और जिससे सम्पूर्ण जीवोंके नेत्रोपरि मेरा वास हो आप वह भी कीजिये ॥ १८ ॥ अनन्तर प्रसन्न हुई सुरेश्वरी जगदम्बिका देवीने कहा हे नृपवर ! प्रारब्धकार्यके शेष होनेपर तुमको विमल ज्ञान प्राप्त ॥ १९ ॥ और समस्त जीवगणोंके नेत्रोपरि वायुरूपसे तुम्हारा वास होगा तुम्हारे अधिष्ठानसेही देहीगणोंके दोनों नेत्र निमेषयुक्त होंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे वासके कारणही मनुष्यगण पशुगण और पतङ्गगणोंके नेत्रोपरि निमेष होगा किन्तु अमरगण अनिमेष रहेंगे ॥ २१ ॥ परमेश्वरी भगवती उनको इसप्रकार वरप्रदानपूर्वक सम्पूर्ण मुनिगणोंसे सम्भाषण कर उसीस्थानमें अन्तर्धान हुई ॥ २२ ॥ देवीके अन्तर्धान होनेपर

ज्ञानंतद्विमलंदेहियेनमोक्षोभवेदपि ॥ नेत्रेषुसर्वभूतानांनिवासोमेभवेदिति ॥ १८ ॥ ततःप्रसन्नादेवेशीप्रोवाचजगदंबिका ॥ ज्ञानंतेविमलंभूयात्प्रारब्धस्याऽवशेषतः ॥ १९ ॥ नेत्रेषुसर्वभूतानांनिवासोपिविष्यति ॥ निमिषंयांतिचक्षूंषित्वत्कृतेनैवदेहिनाम् ॥ २० ॥ तववासात्सनिमिषामानवाःपशवस्तथा ॥ पतंगाश्चभविष्यंतिपुनश्चाऽनिमिषाःसुराः ॥ २१ ॥ इतिदत्त्वावरंतस्मैतदाश्रीवरदेवता ॥ आमंत्र्यचमुनीन्सर्वांस्तत्रैवांतर्हिताऽभवत् ॥ २२ ॥ अंतर्हितायांदेव्यांतुमुनयस्तत्रसंस्थिताः ॥ विचिंत्यविधिवत्सर्वेनिमेर्देहंसमाहरन् ॥२३॥ अरणिंतत्रसंस्थाप्यममंथुर्मंत्रवत्तदा ॥ मंत्रहोमैर्महात्मानःपुत्रहेतोर्निमेरथ ॥ २४ ॥ अरण्यांमथ्यमानायांपुत्रःप्रादुरभूत्तदा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नःसाक्षान्निमिरिवाऽपरः ॥ २५ ॥ अरण्यामथनाज्जातस्तस्मान्मिथिरितिस्मृतः ॥ येनाऽयंजनकाज्जातस्तेनाऽसौजनकोभवत् ॥ २६ ॥ विदेहस्तुनिमिर्जातोयस्मात्तस्मात्तदन्वये ॥ समुद्भूतास्तुराजानोविदेहाइतिकीर्तिताः ॥२७॥

तत्रस्थित मुनिगणोंने अनेक प्रकारसे चिन्ताकरके विधिपूर्वक मथन करनेकेलिये निमिकी देहको ग्रहण किया ॥ २३ ॥ महात्मा मुनिगण निमिपुत्रके निमित्त होम करके तदुपरान्त उनकी देहमें अरणि (मन्थन काष्ठ) स्थापनपूर्वक मंत्र उच्चारण कर मन्थन करने लगे ॥२४॥ इसप्रकार अरणिद्वारा मथित होनेपर सर्व सुलक्षणयुक्त साक्षात् दूसरे निमिके समान एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ इस पुत्रने अरणिके मथनेसे जन्म ग्रहण किया इस कारण मिथिनामसे और जनकके अङ्गसे जन्म लेनेपर जनक नामसे विख्यात हुआ ॥ २६ ॥ हेराजन् ! निमिराज वशिष्ठके शापसे विदेह अर्थात् देहरहित हुएथे इसी कारण उनके वंशमें उत्पन्न सबही विदेहकहकर कीर्तित होते हैं ॥ २७ ॥

इसप्रकार निमिके पुत्र जनकनामसे विख्यात हुए थे उन्होंने गंगाके तटपर मनोरमा एक नगरी निर्माण की ॥ २८ ॥ उन्हींके नामानुसार यह नगरी मिथिला नामसे विख्यात हुई. जनकराजने इस नगरीको दुर्ग तोरण हट्टशाला बडेस्थान और अनेक अटारियोंसे शोभायमान कर धनधान्यादिसे परिपूर्ण किया था ॥ २९ ॥ हे राजन्! इस वंशके सम्पूर्ण राजागणही जनक कहकर विख्यात और समस्तही ज्ञानयुक्त तथा विदेह कहकर कीर्त्तित होते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! शापके वशीभूत हो जिनको विदेहत्व प्राप्त हुआ था मैंने इस निमिराजका अति उत्तम उपाख्यान आपके निकट विस्तारपूर्वक कीर्त्तन किया ॥ ३१ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! आपने निमिशापका कारण कीर्त्तन किया, उसको सुनकर मेरा मन अत्यन्त संशययुक्त और अतिचंचल होगया ॥ ३२ ॥ वशिष्ठ ऋषि ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और ब्रह्माके पुत्र हैं

एवंनिमिसुतोराजाप्रथितोजनकोऽभवत् ॥ नगरीनिर्मितातेनगंगातीरेमनोहरा ॥ २८ ॥ मिथिलेतिसुविख्यातागोपुराट्टालसंयुता ॥ धनधान्यसमायुक्ताहट्टशालाविराजिता ॥ २९ ॥ वंशेऽस्मिन्येऽपिराजानस्तेसर्वेजनकास्तथा ॥ विख्याताज्ञानिनः सर्वेविदेहाःपरिकीर्तिताः ॥ ३० ॥ एतत्तेकथितंराजन्निमेराख्यानमुत्तमम् ॥ शापाद्यस्यविदेहत्वंविस्तरादुदितंमया ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्भवताप्रोक्तंनिमिशापस्यकारणम् ॥ श्रुत्वासंदेहमापन्नंमनोमेऽतीवचंचलम् ॥ ३२ ॥ वसिष्ठोब्राह्मणःश्रेष्ठोराज्ञश्चैवपुरोहितः ॥ पुत्रःपंकजयोनेस्तुराज्ञाशप्तःकथंमुनिः ॥ ३३ ॥ गुरुंचब्राह्मणंज्ञात्वानिमिनानकृताक्षमा ॥ यज्ञकर्मशुभंकृत्वाकथंक्रोधमुपागतः ॥ ३४ ॥ ज्ञात्वाधर्मस्यविज्ञानंकथमिक्ष्वाकुसंभवः ॥ क्रोधस्यवशमापन्नःशप्तवान्ब्राह्मणंगुरुम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ क्षमाऽतिदुर्लभाराजन्प्राणिभिरजितात्मभिः ॥ क्षमावान्दुर्लभोलोकेसुसमर्थोविशेषतः ॥ ३६ ॥ सर्वसंगपरित्यागैर्मुनिर्भिर्भवतुतापसः ॥ निद्राक्षुधोर्विजेताचयोगाभ्यासेसुनिष्ठितः ॥ ३७ ॥ कामःक्रोधस्तथालोभोह्यहंकारश्चतुर्थकः ॥ दुर्ज्ञेयादेहमध्यस्थारिपवस्तेनसर्वथा ॥ ३८ ॥

विशेषकर राजाके पुरोहित थे अतएव वह किसलिये राजासे शापित हुए ॥ ३३ ॥ निमिराजने उनको गुरु और ब्राह्मण जानकर भी क्षमा क्यों नहीं की ? वह इसप्रकार मंगलजनक यज्ञकार्य करके भी क्यों क्रोधके वशीभूत हुए ? ॥ ३४ ॥ उन्होंने इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न और धर्मका तत्व जानकर भी किसकारणसे क्रोधके वशीभूत होकर आपने गुरु ब्राह्मणको शाप दिया ? ॥ ३५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! अजितेन्द्रिय प्राणीगणोंके पक्षमें क्षमा अत्यन्त दुर्लभ है, विशेषकर सामर्थ्यवान् होनेपर भी क्षमावान् हो इसप्रकारके मनुष्य त्रिलोकीमें अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ ३६ ॥ जो समस्त संग परित्याग क्षमा और निद्राको जीतकर सर्वदा योगाभ्यासमें निरत हैं ॥ ३७ ॥ वे तपोधन मुनि काम, क्रोध, लोभ और अहङ्कार इत्यादि देहमध्यस्थित शत्रुगणोंको भलीभाँति नहीं जीतसक्ते ॥ ३८ ॥

जो इन शत्रुओंको जीतसक्ता है इस सम्पूर्ण संसारमें ऐसा पुरुष पूर्वमें कोई नहीं था इस समय भी विद्यमान नहीं और फिर भी उत्पन्न न होगा ॥ ३९ ॥ इन शत्रुओंको पराजित करसक्ता हो ऐसा कोई पुरुष पृथ्वी स्वर्ग वा ब्रह्मलोक अथवा वैकुण्ठमें अधिक क्या कैलासमें भी विद्यमान नहीं ॥ ४० ॥ जब ब्रह्माके पुत्र महर्षिगण और अन्यान्य तापसोत्तम ऋषिगण समस्तही सत्व रज और तमोगुणसे बँधे हैं तब पृथ्वीमें वास करनेवाले सामान्य मनुष्यकी फिर क्या बात है ? ॥ ४१ ॥ देखो कपिल सांख्यवेत्ता योगाभ्यासनिरत और पवित्र आत्मा थे. उन्होंने भी दैववशतः क्रोधित होकर राजा सगरके पुत्रोंको दग्ध किया था ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! अहंकारसे वह त्रिभुवन उत्पन्न हुआ है अतएव संपूर्ण संसार और अहंकार परस्पर कार्य कारण भावसे बँधे हैं तो इस संसारमें उत्पन्न हुए जीवगण किसप्रकार उस अहंका

नभूतपूर्वःसंसारेनचैववर्ततेऽधुना ॥ भवितानपुमान्कश्चिद्योजयेतारिपूनिमान् ॥ ३९ ॥ नस्वर्गेनचभूलोकेब्रह्मलोकेहरेःपदे ॥ कैलासेनेदृशःकश्चिद्योजयेत रिपूनिमान् ॥ ४० ॥ मुनयोब्रह्मपुत्राश्चतथाऽन्येतापसोत्तमाः ॥ तेऽपिगुणत्रयाविद्धाःकिंपुनर्मानवाभुवि ॥ ४१ ॥ कपिलःसांख्यवेत्ताचयोगाभ्यासरतःशुचिः ॥ तेनापिदैवयोगाद्धिप्रदग्धाःसगरात्मजाः ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्नहंकारात्संजातंभुवनत्रयम् ॥ कार्यकारणभावात्तुतद्वियुक्तंकथंभवेत् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मागुणत्रयाविष्टोविष्णुश्चैवाऽथशंकरः ॥ प्रभवंतिशरीरेषुतेषांभावाःपृथक्पृथक् ॥ ४४ ॥ मानवानांचकावार्तासत्त्वैकांतव्यवस्थितौ ॥ गुणानांसंकरोराजन्सर्वत्रसमवस्थितः ॥ ४५ ॥ कदाचित्सत्त्ववृद्धिःस्यात्कदाचिद्रजसःकिल ॥ कदाचित्तमसोवृद्धिःसमभावःकदाचन ॥ ४६ ॥ निर्गुणःपरमात्माऽसौनिर्लेपःपरमोऽव्ययः ॥ अलक्ष्यःसर्वसत्त्वानामप्रमेयःसनातनः ॥ ४७ ॥ तथैवपरमाशक्तिर्निर्गुणाब्रह्मसंस्थिता ॥ दुर्ज्ञेयाचाऽल्पमतिभिःसर्वभूतव्यवस्थितिः ॥ ४८ ॥ परात्मनस्तथाशक्तेस्तयोरैक्यंसदैवहि ॥ अभिन्नंतद्वपुर्ज्ञात्वामुच्यतेसर्वदोषतः ॥ ४९ ॥

रसे छूट सक्ते हैं ? ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर यह भी तीनों गुणद्वारा युक्त हैं उनके शरीरमें भी पृथक् पृथक् भावका आविर्भाव होता है ॥ ४४ ॥ तब मनुष्यगणोंको देहमें जो सत्वगुणका वास नहीं होता इस विषयमें फिर कहना ही क्या है ? क्योंकि मिलेहुए तीनों गुणोंका सर्वत्रही वास होता है ॥ ४५ ॥ अतएव कभी सत्वगुणकी कभी रजोगुणकी और कभी तमोगुणकी वृद्धि होती है और कभी इनकी समभावसे अवस्थित होती है ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! केवल वही सनातन परम पुरुष अव्यय और निर्लेप एवं समस्त भूतोंके अप्रमेय और अलक्ष्य है ॥ ४७ ॥ वही परात्पर परमात्मा निर्गुण हैं और जो सब जीवोंमें वास करते हैं जो अल्पबुद्धि मनुष्योंको दुर्लभ हैं उन्हीं ब्रह्मरूपिणी परमाशक्तिकोभी निर्गुण जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ परमात्मा और परमात्माशक्तिकी कथा सर्वदाही विद्यमान है उनकी

मूर्ति अभिन्न है जब इसप्रकार ज्ञानका उदय होता है तबही जीवगण संपूर्ण प्रकारके दोषसे छूटजाते हैं ॥ ४९ ॥ "इसी ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होता है" वेदान्तशास्त्रमें यह (नगाड़ेके शब्द) की समान घोषण है जो उसको जानता है वह इस त्रिगुणात्मक संसारसे छूटजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ हे महाराज ! ज्ञान दो प्रकारका है तिनमें शाब्दिक ज्ञान प्रथम है वेदशास्त्रार्थविज्ञानसे बुद्धियोगद्वारा उस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ ५१ ॥ इसमें मनुष्यगणोंके बुद्धिकल्पित अनेक वितर्क दिखाई देते हैं तिनमें कितनेही एक कुतर्कद्वारा कल्पित और कितनेही सुतर्क कल्पित हैं इस वितर्कसे प्राणीगणोंके भ्रमकी उत्पत्ति होती है भ्रमसे बुद्धि नष्ट और बुद्धि नष्टसे ज्ञान नष्ट होता है. हे राजन् ! दूसरे ज्ञानका नाम अनुभव वा अपरोक्ष ज्ञान है यह ज्ञान प्राणीगणोंके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ जानना चाहिये ॥ ५२ ॥ जब अनुभवकर्त्ता सद्गुरुके

तज्ज्ञानादेवमोक्षःस्यादितिवेदांतडिंडिमः ॥ योवेदसविमुक्तोऽस्मिन्संसारेत्रिगुणात्मके ॥ ५० ॥ ज्ञानंतुद्विविधंप्रोक्तंशाब्दिकंप्रथमंस्मृतम् ॥ वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्तद्भवेद्बुद्धियोगतः ॥ ५१ ॥ विकल्पास्तत्रबहवोभवंतिमतिकल्पिताः ॥ "कुतर्ककल्पिताःकेचित्सुतर्ककल्पिताःपरे ॥ वितर्कैर्विभ्रमोत्पत्तिर्विभ्रमाद्बुद्धिभ्रंशता ॥ बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशःप्राणिनांपरिकीर्तितः ॥" अनुभवाख्यंद्वितीयंतुज्ञानंतद्दुर्लभंनृप ॥ ५२ ॥ तत्तदाप्राप्यतेतस्यवेत्तुःसंगो यदाभवेत् ॥ शब्दज्ञानान्नकार्यस्यसिद्धिर्भवतिभारत ॥ ५३ ॥ तस्मान्नानुभवज्ञानंसंभवत्यतिमानुषम् ॥ अंतर्गतंतमश्छेत्तुंशाब्दबोधोहिनक्षमः ॥ ५४ ॥ यथाननश्यतितमःकृतयादीपवार्तया ॥ तत्कर्मयन्नबंधायसाविद्यायाविमुक्तये ॥ ५५ ॥ आयासायापरंकर्मविद्याऽन्याशिल्पनैपुणम् ॥ शीलंपरहितत्वंचकोपाभावःक्षमाधृतिः ॥ ५६ ॥ संतोषश्चेतिविद्यायाःपरिपाकोज्ज्वलंफलम् ॥ विद्ययातपसावाऽपियोगाभ्यासेनभूपते ॥ ५७ ॥

सहित संग होता है तबही वह ज्ञान प्राप्त होसक्ता है क्योंकि शब्दज्ञानसे कार्यसिद्धि नहीं होती है ॥ ५३ ॥ अतएव इससे अलौकिक अनुभव ज्ञान (अपरोक्ष) की उत्पत्ति भी नहीं होसक्ती है. इसी कारण इस ज्ञानके निमित्त महत् परिश्रमका प्रयोजन है. हे राजन् ! जिसप्रकार दीपक न जलाकर उसकी बातसेही अन्धकार नष्ट नहीं होता इसीप्रकार शब्दका बोधमात्र अन्तरका अन्धकार नाश करनेमें समर्थ नहीं होता. जो बन्धनका कारण है उसकोही यथार्थ कर्म और जिससे युक्ति प्राप्त होती उसकोही यथार्थ विद्या कहा जासक्ता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अपर सम्पूर्ण कर्म परिश्रमनिमित्त और अपर विद्याके बल शिल्पनैपुण्य मात्र होती हैं. शीलता, परोपकार अक्रोध, क्षमा, धैर्य ॥ ५६ ॥ और संतोष यह सब विद्यावल्लीके उज्वल और सुन्दर फल हैं. हे राजन् ! विद्या, तपस्या और योगाभ्यासके विना ॥ ५७ ॥

कभी कामादि सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश नहीं होता. जीवगणोंका मन स्वभावसेही चंचल और दुर्गन्ध है. प्राणीगण सब प्रकारसे मनकेवशीभूत हैं. अतएव वह उत्तम, मध्यम और अधम होकर इस संसारमें विचरण करते हैं. काम क्रोधादि समस्तभाव मनसेही उत्पन्न होते हैं ॥ ५८॥ जब मनको जीत लिया जाता है, तब सम्पूर्ण भाव उत्पन्न नहीं होते इस कारण राजासे क्षमा न हुई ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! पूर्वमें शुक्राचार्यके अपराध करनेपर ययातिने जिसप्रकार उनको क्षमा किया था निमिराज वशिष्ठऋषिके प्रति उस प्रकार क्षमा करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ नृपसत्तम ययातिने भृगुनन्दन शुक्रचार्यसे शापित होकर क्रोधके वशीभूत उन मुनिको शाप न देकर ॥६०॥ आपही जरा (बुढापा) ग्रहण किया था. हे नराधिप ! स्वभावके वशीभूत कोई राजा शान्तभावयुक्त और कोई राजा क्रूर स्वभावयुक्त होताहै॥ ६१ ॥ अतएव इस विषयमें

विनाकामादिशत्रूणां नैवनाशःकदाचन ॥ "मनस्तुचंचलंराजन्स्वभावादतिदुर्ग्रहम् ॥ तद्वशःसर्वथाप्राणीत्रिविधोभुवनत्रये ॥ " कामक्रोधादयोभावा श्चित्तजाःपरिकीर्तिताः ॥ ५८ ॥ तेतदानभवंत्येवयदावैनिर्जितंमनः ॥ तस्मात्तुनिमिनाराजन्नक्षमाविहितामुनौ ॥ ५९ ॥ यथाययातिनापूर्वंकृताशुक्रे कृतागसि ॥ भृगुपुत्रेणशप्तोपिययातिर्नृपसत्तमः ॥ ६० ॥ नशशापमुनिंक्रोधाज्जरांराजागृहीतवान् ॥ कश्चित्सौम्योभवेत्कश्चित्क्रूरोभवतिपा र्थिवः ॥ ६१ ॥ स्वभावभेदान्नृपतेकस्यदोषोऽत्रकल्प्यते ॥ हैहयाभार्गवान्पूर्वंधनलोभात्पुरोहितान् ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणान्मूलतःसर्वांश्चिच्छिदुःक्रोधमू र्च्छिताः ॥ पातकंपृष्ठतःकृत्वाब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेपंचदशोऽध्यायः ॥१५॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ कुले कस्यसमुत्पन्नाःक्षत्रियाहैहयाश्चये ॥ ब्रह्महत्यामनादृत्यनिजघ्नुर्भार्गवांश्चये ॥ १ ॥ वैरस्यकारणंतेषांकिमेब्रूहिपितामह ॥ निमित्तेनविनाक्रोधंकथंकुर्वं तिसत्तमाः ॥ २ ॥

किसका दोष कहा जासक्ता हैदेखो पूर्वकालके समय हैहयगणोंने धनलोभके वशीभूत और क्रोधसे मूर्च्छित होकर भृगुवंशीयपुरोहित ब्राह्मणगणोंको जड़सहित नष्ट किया था ॥६२॥ अधिक क्या उन क्षत्रियगणोंने ब्रह्महत्याके पापको न देखकर अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हो उन ब्राह्मणोंके गर्भमें स्थित बालकोंको भी छेदन किया था॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! हैहय नाम जिन क्षत्रियगणोंने ब्रह्महत्याके पापको न देखकर भार्गवगणोंको निहत किया था उन्होंने किसके वंशमें जन्मग्रहण किया था ॥ १ ॥ हे पितामह ! सज्जनगण भारी कारणके विना क्रोध नहीं करते, अतएव

आप उनके क्रोधका कारण क्या है यह कहिये ? ॥ २॥ पुरोहित गणोंके सहित उनकी शत्रुता क्यों हुई ? मुझको बोध होता है कि, सामान्य कारणसे क्षत्रियगणोंकी यह शत्रुता नहीं होती ॥ ३ ॥ तो वह निरपराध पूजनीय ब्राह्मणोंको किस कारण निहत करते हैं ? क्षत्रियगण बलवान् होनेपरभी उनके पापसे क्यों नहीं डरते ? ॥ ४ ॥ हे मुनिवर ! कौन क्षत्रियश्रेष्ठ सामान्य अपराधके कारण परमपूज्य विप्रवर्गका विनाश करते हैं ? अतएव हे मुनीन्द्र ! मुझको इस विषयमें संशय उपस्थित हुआ है आप इस कारण वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! जनमेजयके सत्यवती पुत्र व्यासदेवजीसे इसप्रकार पूँछनेपर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और मनमें हैहयका वृत्तान्त स्मरण कर वह उपाख्यान वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ उन्होंने कहा हे परीक्षिततनय ! जो मैंने

वैरंपुरोहितैःसार्धंकस्मात्तेषामजायत ॥ नाऽल्पहेतोर्हितद्वैरंक्षत्रियाणांभविष्यति ॥ ३ ॥ अन्यथाब्राह्मणान्पूज्यान्कथंजघ्नुरनागसः ॥ बाहुजाबलवंतोपिपापभीताःकथंनते ॥ ४ ॥ स्वल्पेपराधेकोहन्याद्ब्राडवान्क्षत्रियर्षभः ॥ संदेहोमेमुनिश्रेष्ठकारणंवक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ इतिपृष्टस्तदातेनराज्ञासत्यवतीसुतः ॥ उवाचपरमप्रीतःकथांसंस्मृत्यचेतसा ॥ ६ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुपारिक्षितेवार्तांक्षत्रियाणांपुरातनीम् ॥ आश्चर्यकारिणींसम्यग्विदितांचपुरामया ॥ ७ ॥ कार्तवीर्येतिनाम्नाभूद्धैहयःपृथिवीपतिः ॥ सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनोधर्मतत्परः ॥ ८ ॥ दत्तात्रेयस्यशिष्योभूदवतारोहरेरिव ॥ सिद्धः सर्वार्थदःशाक्तोभृगूणांयाज्यएवसः ॥९॥ यज्वापरमधर्मिष्ठःसदादानपरायणः ॥ ददौवित्तंभृगुभ्योऽसौक्रत्वायज्ञाननेकशः ॥ १० ॥ धनिनस्तेद्विजाजाताभृगवोनृपदानतः ॥ हयरत्नसमृद्धयाढ्याःसंजाताःप्रथिताभुवि॥ ११॥स्वर्यातेनृपशार्दूलेकार्तवीर्यार्जुनेपुनः ॥ हैहयानिर्धनाजाताःकालेनमहतानृप ॥१२॥

पूर्वमें भलीभाँति जाना है क्षत्रियोंका वह अत्यन्त आश्चर्ययुक्त पुरातन उपाख्यान वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७ ॥ पूर्वकालके समय हैहयवंशमें उत्पन्न सहस्राबाहु, बलवान् धर्मतत्पर कार्तवीर्यार्जुननामक एक राजा थे ॥ ८ ॥ वह हरिके अवतार महर्षिदत्तात्रेयके शिष्य और परमाशक्तिके उपासक थे वह योगसिद्ध कहकर सर्वत्र विख्यात और अत्यन्त दान करनेवाले थे किन्तु यह नृपश्रेष्ठ भृगुवंशीय ब्राह्मणगणोंके यजमान थे ॥ ९ ॥ वह यज्ञ करनेवाले परम धर्मनिष्ठ और सर्वदा ही दानपरायण थे. उसीके अनुसार अनेकवार यज्ञ करके भार्गवगणोंको बहुत धन दिया था ॥ १० ॥ कार्तवीर्यके दानप्रभावसे वह विप्रगण बहुत अश्व और रत्नादि अनेक ऐश्वर्यसे पृथ्वीमें धनशाली कहकर विख्यात हुए थे ॥ ११ ॥ हे क्षितीन्द्र ! नृपतिश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनके स्वर्ग जानेपर फिर कालके दुरतिक्रमणीय

प्रभावसे हैहयगण एकबारही निर्धन होगये ॥ १२ ॥ अनन्तर किसी समय हैहयगणोंको बहुत धनवाला कोई कार्य्य उपस्थित हुआ उन्होंने भार्गवगणोंके निकट आय विनयसहित बहुत धनकी प्रार्थना की ॥ १३ ॥ किन्तु विप्रगणोंने अत्यन्त लोभार्त हो "नहीं नहीं" यह कहकर कुछभी उनको धनदान नहीं किया ॥ १४ ॥ परन्तु क्षत्रिय बलपूर्वक धन लेंगे इस शंकासे कीसी किसीने उत्तम उत्तम बहुमूल्य धन पृथ्वीमें दबा दिया और किसी किसीने ब्राह्मणोंको देदिया ॥ १५ ॥ धनलोभी भार्गवगण भयसे विह्वल होकर अपने अपने सम्पूर्ण द्रव्य इसप्रकार स्थानान्तरकलितकर अपना अपना घर छोड़ पर्वतादिमें चले गये ॥ १६ ॥ लोभसे मोहित ब्राह्मणोंने यजमानोंको दुःखित देखकर भी धन न दिया किन्तु भयसे सभी गिरिदुर्गका आश्रय कर वास करने लगे ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त क्षत्रियश्रेष्ठ हैहयगणोंने दुःखित हो

धनकार्येसमुत्पन्नेहैहयानांकदाचन ॥ याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूंस्तेहैहयानृप ॥१३॥ विनयंक्षत्रियाःकृत्वाऽप्ययाचंतधनंबहु ॥ नददुस्तेऽतिलाभो तोंनास्तिनास्तीतिवादिनः ॥ १४ ॥ भूमौचनिदधुःकेचिद्भृगवोधनमुत्तमम् ॥ ददुःकेचिद्द्विजातिभ्योज्ञात्वाक्षत्रियतोभयम् ॥ १५ ॥ कृत्वास्थानांतरेद्र व्यंब्राह्मणाभयविह्वलाः ॥ त्यक्त्वाऽऽश्रमान्ययुःसर्वेभृगवस्तृष्णयाऽन्विताः ॥ १६ ॥ याज्यांश्चदुःखितान्दृष्ट्वानददुर्लोभमोहिताः ॥ पलायित्वागताःसर्वे गिरिदुर्गानुपाश्रिताः ॥ १७ ॥ ततस्तेहैहयास्तातदुःखिताःकार्यगौरवात् ॥ भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थंक्षत्रियर्षभाः ॥ १८ ॥ भृगूंस्तुनिर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्त्यक्त्वागृहानथ॥चखनुर्भूतलंतत्रद्रव्यार्थंहैहयाभृशम्॥१९॥खनताऽधिगतंवित्तंकेनचिद्भृगुवेश्मनि॥ददृशुःक्षत्रियाःसर्वेतद्वित्तंश्रमकर्शिताः ॥२०॥ यत्रतत्रसमुत्पन्नंभूरिद्रव्यंमहीतलात् ॥ तदातेपार्श्वभोगस्थब्राह्मणानांगृहाण्यपि ॥ २१ ॥ निर्भिद्यहैहयाद्रव्यंददृशुर्धनलिप्सया ॥ ब्राह्मणाश्चुक्रुशुःसर्वेभी ताश्चशरणंगताः ॥ २२ ॥ अतिचिन्वत्सुविप्राणांभवनान्निःसृतंबहु ॥ निजघ्नुस्ताञ्छरैःकोपाद्गाडवाञ्छरणागतान् ॥ २३ ॥

महत्कार्यके अनुरोधसे धन लेनेके निमित्त भार्गवगणोंके गृहमें जाकर ॥ १८ ॥ देखा कि, भार्गवगण घर छोड़ भाग गये हैं और उनके सम्पूर्ण घर शून्यहुए पड़े हैं. तब वह धनप्राप्त होनेके लिये उनके सम्पूर्ण घर खोदने लगे ॥ १९ ॥ और किसी किसीको भार्गवगणोंके घरसे धन प्राप्त हुआ अनन्तर समस्त क्षत्रियोंको धन प्राप्ति की आशासे इसप्रकार परिश्रम करनेपर ॥ २० ॥ जब पृथ्वीसे अनेकानेक धन प्राप्त होने लगा तब पड़ोसी अन्य अन्य ब्राह्मणोंके घरोंको भी ॥ २१ ॥ खोद और विदारण कर धन ढूँढ़ने लगे. तब सम्पूर्ण ब्राह्मणगण निरुपाय हो रोते रो ते उनकी शरणागत हुए ॥ २२ ॥ क्षत्रियगणोंके भलीभाँति ढूँढनेपर ब्राह्मणोंके

वरसे बहुत धन प्राप्त हुआ तब उन्होंने मिथ्या कहनेके अपराधसे क्रोधित होकर उन शरणागत ब्राह्मणोंको शरोंसे निहत किया॥ २३॥ हे महाराज ! तिसकाल हैहयगण इसप्रकार क्रोधित हुए थे और जिस स्थानमें सम्पूर्ण भार्गव वास करते थे क्षत्रियगण भी उसी स्थानमें गये और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके गर्भमें स्थित बालकोंको विदारण कर पृथ्वीमें विचरण करने लगे ॥ २४ ॥ हैहयगण ब्राह्मणोंमें क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध जिस कीसीको देखते ब्रह्महत्याके पापको परित्यागकर तत्काल तीक्ष्ण बाणोंसे उसको मार डालते ॥ २५ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंके मूलसहित नष्ट होनेपर हैहयगण उनकी गर्भिणी स्त्रियोंको पकड़ उनका गर्भ विनाश करने लगे ॥ २६ ॥ पापबुद्धि क्षत्रियोंके गर्भघात करनेपर स्त्रियें दुःखसे कुररीकी समान रोने लगीं ॥ २७ ॥ तब तीर्थवासी अन्यान्य मुनिगण उन हैहयगणोंको क्रोधसे

ययुस्तेगिरिदुर्गांश्चयत्रवैभृगवःस्थिताः ॥ आगर्भादनुकृंतंतश्चेरुश्चैवमहीमिमाम् ॥२४॥ प्राप्तान्प्राप्तान्भृगून्सर्वान्निजघ्नुर्निशितैःशरैः ॥ आबालवृद्धानपरा नवमन्यचपातकम् ॥ २५ ॥ एवमुत्पाद्यमानेषुभार्गवेषुयतस्ततः ॥ हन्युर्गर्भांश्चनारीणांगृहीत्वाहैहयाभृशम् ॥ २६ ॥ रुरुदुस्ताःस्त्रियःकामंकुररयइवदुः खिताः ॥ गर्भांश्चकृंतितायासांक्षत्रियैःपापनिश्चयैः ॥ २७ ॥ अन्येऽप्याहुश्चतान्दृष्ट्वामुनयस्तीर्थवासिनः ॥ मुंचंतुक्षत्रियाःक्रोधंब्राह्मणेषुभयावहम् ॥ ॥ २८ ॥ अयुक्तमेतदारब्धंभवद्भिःकर्मगर्हितम् ॥ यद्गर्भान्भृगुपत्नीनांनिहन्युःक्षत्रियर्षभाः ॥ २९ ॥ अत्युग्रपुण्यपापानामिहैवफलमाप्नुयात् ॥ तस्मा ज्जुगुप्सितंकर्मत्यक्तव्यंभूतिमिच्छता ॥ ३० ॥ तानाहुर्हैहयाःक्रुद्धामुनीनथदयापरान् ॥ भवंतःसाधवःसर्वेनार्थज्ञाःपापकर्मणाम् ॥ ३१ ॥ एभिर्हृ तंधनंसर्वंपूर्वजानांमहात्मनाम् ॥ वंचयित्वाछलाभिज्ञैर्मार्गेपाटच्चरैरिव ॥ ३२ ॥ एतेप्रतारकादंभास्ताद्दशावकवृत्तयः ॥ उत्पन्नेचमहाकार्येप्रार्थिताविनयेनते ॥ ३३ ॥

उद्दीप्त देखकर कहने लगे हे क्षत्रियो ! तुम ब्राह्मणोंके प्रति जो भयानक क्रोध करते हो वह त्याग करो ॥ २८ ॥ तुम क्षत्रियश्रेष्ठ होकरभी भार्गवगणोंकी स्त्रियोंका गर्भपात करते हो इससे तुम अत्यन्त अयुक्त और अतिनीच कार्यमें प्रवृत्त हुए हो इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ तुम जानते हो कि, जीवगणोंको अत्यन्त भारी पाप और पुण्यकर्मका फल इस लोकमें ही प्राप्त होता है. अतएव कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्योंको अत्यन्त घृणित कर्म त्याग करनाही उचित है ॥ ३० ॥ अनन्तर परमक्रोधित हैहयगण करुणायुक्त तपोधनोंसे कहने लगे आप सभी साधु हैं अतएव पापकर्मका यथार्थ अर्थ नहीं जानते ॥ ३१ ॥ इन छलके जाननेवाले भार्गवगणोंने हमारे उदारात्मा पूर्वपुरुषगणोंसे छल करे मार्गमें चोरकी समान सम्पूर्ण धनहरण किया है ॥ ३२ ॥ यह प्रतारक छली और दाम्भिक तथा बगुलेकी समान धर्मशील

हैं देखो हमारा महत्कार्य उपस्थित होनेसे ॥ ३३ ॥ हमने पादपरिमाण वृद्धिदान सवायादेना अंगीकार करके भी विनयपूर्वक धनकी प्रार्थना की थी तथापि इन्होंने वह न दिया वरन् यजमानोंको अत्यन्त दुःखित देखकर भी "नहीं नहीं" यह कहकर चुप हो गये ॥ ३४ ॥ यद्यपि इन्होंने कार्त्तवीर्यसे धन प्राप्त किया है किन्तु किसकारण उस धनकी रक्षा की है ? उससे यज्ञ क्यों नहीं किया ? किसनिमित्त याचकगणोंको बहुतसा दान न किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणोंको किसी समय कहीं भी धन इकट्ठा करना उचित नहीं है विधिपूर्वक दान और सुखसे भोगनाही उचित है ॥ ३६ ॥ हे द्विजगण ! धनसे चोरभय राजभय और अत्यन्त अग्नि भय विशेषकर भयानक धूर्त्तभय विद्यमान रहता है ॥ ३७ ॥ धनका ऐसाही धर्म जानना चाहिये. धन जिसकीसी उपायसेही अपने रक्षकको परित्याग करता है और

नददुःप्रार्थितंविप्राःपादवृद्ध्याऽपियाचिताः॥नास्तीतिवादिनःस्तब्धादुःखितान्वीक्ष्ययाज्यकान् ॥३४॥ धनंप्राप्तंकार्तवीर्याद्रक्षितंकेनहेतुना ॥ नकृताः क्रतवःकिंतैर्दानंचाऽर्थिषुभूरिशः ॥३५॥ नसंचितव्यंविप्रैस्तुधनंक्वापिकदाचन ॥ यष्टव्यंविधिवद्देयंभोक्तव्यंचयथासुखम् ॥३६॥ द्रव्येचौरभयंप्रोक्तंतथा राजभयंद्विजाः ॥ वह्नेर्भयंमहाघोरंतथाधूर्तभयंमहत् ॥ ३७ ॥ येनकेनाऽप्युपायेनधनंत्यजतिरक्षकम् ॥ अथवाऽसौमृतोयातिद्रव्यंत्यक्त्वाह्यसद्गतिम् ॥ ॥ ३८ ॥ पादवृद्ध्यातथाऽस्माभिःप्रार्थितंविनयान्वितैः ॥ तथापिलोभसंदिग्धैर्नदत्तंनःपुरोहितैः ॥ ३९ ॥ दानंभोगस्तथानाशोधनस्यगतिरीदृशी ॥ दानभोगौकृतीनांचनाशःपापात्मनांकिल ॥ ४० ॥ नदातानचयोभोक्ताकृपणोगुप्तितत्परः ॥ राज्ञाऽसौसर्वथादंड्योवंचकोदुःखभाङ्नरः ॥ ४१ ॥

भी देखो धनकी रक्षा करनेवाला व्यक्ति जब मरजाता है तब उनको अवश्यही वह त्याग करना पड़ता है ॥ ३८ ॥ यदि धनवान् प्राणत्याग करनेके पहले उपार्ज्जित धनसे सद्गतिसाधक यागादिका अनुष्ठान करे तो अवश्यही सद्गति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है. किन्तु ऐसा न करनेसे वह विफल धन त्यागपूर्वक असद्गति लाभ करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ हमने पादपरिमाण कुसीद सवाया व्याज दान करना स्वीकारकरके विनय सहित महत्कार्यके निमित्त प्रार्थनाकी तथापि लोभके वशीभूत हो हमारे पुरोहितोंने हमको वह न दिया ॥ ३९ ॥ हे महर्षिगण ! दान भोग और विनाशधनकी यह तीन गति हैं तिनमें पुण्यवान् मनुष्य दान और भोगसे धनकी सफलता प्राप्त करते हैं और पापात्माओंका धन वृथाही नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥ जो दाताभी नहीं और भोगता भी नहीं केवल धनकी रक्षा करनेमें तत्पर और कृपण हैं

राजा लोग उन दुःखभोगनेवाले आत्मवंचक मनुष्योंको भलीभाँति दण्ड दें ॥ ४१ ॥ हम इसी कारण गुरु होनेपरभी इन वंचक ब्राह्मणाधमगणोंको विनाश करनेमें प्रवृत्त हुए हैं. हे महर्षिगण ! आप महात्मा हैं अतएव यह सम्पूर्ण जानकर उससे क्रोध न कीजिये ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा, हैहयगण मुनियोंको इसप्रकार हेतुयुक्त वाक्यसे समझाकर भार्गवोंकी स्त्रियोंको ढूँढते विचरण करने लगे ॥ ४३ ॥ भार्गवोंकी स्त्रियें भयसे कातर और अत्यन्त कृशाङ्गी हो काँपते काँपते और रोते रोते हिमाचलमें जाय वास करने लगीं ॥ ४४ ॥ इसीप्रकार वह विप्रगण अर्थलोलुप क्रोधसे उद्दीप्त पापबुद्धि हैहयगणोंसे अत्यन्त पीडित होकर मरने लगे ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! पूर्वमुनि कहते हैं कि, लोभही मनुष्योंके देहमें स्थित महान् महान् शत्रु है. लोभही समस्त दुःखोंकी खान है.

तस्माद्वयंगुरूनेतान्वंचकान्ब्राह्मणाधमान् ॥ हंतुंसमुद्यताःसर्वेनक्रोद्धव्यंमहात्मभिः ॥ ४२ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाहेतुमद्वाक्यैतानाश्वास्यमुनीनथ ॥ विचेरुश्चविचिन्वानाभृगुदाराननेकशः ॥ ४३ ॥ भयार्ताभृगुपत्न्यस्तुहिमवंतंधराधरम् ॥ प्रपेदिरेरुदंत्यश्चवेपमानाःकृशाभृशम् ॥ ४४ ॥ एवंतेहैहयैर्विप्राःपीडिताधनकामुकैः ॥ निहताश्चयथाकामंसंरब्धैःपापकर्मभिः ॥ ४५ ॥ लोभएवमनुष्याणांदेहसंस्थोमहारिपुः ॥ सर्वदुःखाकरःप्रोक्तो दुःखदःप्राणनाशकः ॥ ४६ ॥ सर्वपापस्यमूलंहिसर्वदातृष्णयान्वितः ॥ विरोधकृत्त्रिवर्णानांसर्वार्तेःकारणंतथा ॥ ४७ ॥ लोभात्त्यजंतिधर्मंवैकुलधर्मंतथैवहि ॥ मातरंभ्रातरंहंतिपितरंबांधवंतथा ॥४८॥ गुरुंमित्रंतथाभार्यांपुत्रंचभगिनींतथा ॥ लोभाविष्टोनकिंकुर्यादकृत्यंपापमोदितः ॥४९॥ क्रोधात्कामादहंकाराल्लोभएवमहारिपुः ॥ प्राणांस्त्यजतिलोभेनकिंपुनःस्यादनावृतम् ॥५०॥ पूर्वजास्तेमहाराजधर्मज्ञाःसत्पथेस्थिताः ॥ पांडवाःकौरवाश्चैवलोभेन निधनंगताः ॥ ५१ ॥

लोभही सम्पूर्ण पापोंकी जड है. लोभही सम्पूर्ण दुःखोंका कारण और लोभहीसे प्राण नष्ट होनेकी सम्भावना है ॥ ४६ ॥ लोभहीके कारण ब्राह्मणादि वर्णोंमें सदा विरोध उपस्थित होता है और लोभहीके द्वारा मनुष्यगण विषयकी तृष्णासे, व्याकुल होते हैं ॥ ४७ ॥ मनुष्यगण लोभहीके कारण धर्म कर्म और कुल क्रमागत आचार व्यवहार परित्याग करते हैं और लोभहीके कारण पिता, माता, भ्राता, बन्धु, गुरु ॥ ४८ ॥ मित्र, पुत्र, भगिनी और भगिनीपति इत्यादिको विनाश करते हैं बहुत क्या लोभयुक्तको पापसे मोहित होनेपर उनको अकार्य नहीं रहता ॥ ॥४९॥ क्रोध काम और अहंकार इनसे भी लोभ प्रबल महान् शत्रु है. हे राजन् ! लोभी जीवगण प्राणपर्यन्त त्याग करते हैं. इस लोभका अनिष्टकारित्व विषयमें कहनेका फिर क्या शेष रहा ! ॥५०॥ हे महाराज ! आपके पूर्वपुरुष पांडव और

कौरवगण धार्मिक और सत्पथावलम्बी थे किन्तु लोभके वशीभूत होकर वह मृत्युकोप्राप्त हुए॥ ५१॥ देखो जिस स्थानमें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, वाह्लिक, भीमसेन, युधिष्ठिर, अर्जुन और केशव यह सब महात्मा थे॥ ५२॥ उस स्थानमें भी लोभके कारण परस्पर अत्यन्त घोर युद्ध और कुटुम्बका नाश हुआ था ॥ ५३॥ इससे भीष्म द्रोण और पाण्डवगणोंके पुत्रगण भ्रातृगण और पितृगण सबही युद्धमें निहत हुए थे॥ ५४॥ अतएव लोभके वशीभूत हो मनुष्यगण क्या कार्य नहीं करते हैं ? हे राजन्! इसी लोभके कारण पापबुद्धि हैहयगणोंने भृगुवंशीयगणोंको मारा था ॥ ५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर! उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने किस प्रकार इस अपार दुःखसागरसे निस्तारपाया और किसप्रकार उन ब्राह्मणोंका वंश पुनर्वार पृथ्वीमें प्रतिष्ठित

यत्रभीष्मश्चद्रोणश्चकृपःकर्णश्चवाह्लिकः ॥ भीमसेनोधर्मपुत्रस्तथैवाऽर्जुनकेशवौ ॥ ५२ ॥ तथापियुद्धमत्युग्रंकृतंतैश्चपरस्परम् ॥ कुटुंबकदनंभूरिकृतंलोभातुरैरिह ॥५३॥ हतोद्रोणोहतोभीष्मस्तथैवपांडवात्मजाः ॥ भ्रातरःपितरःपुत्राःसर्वेवैनिहतारणे ॥५४॥ तस्माल्लोभाभिभूतस्तुकिंनकुर्यान्नरःकिल ॥ हैहयैर्निहताःसर्वेभृगवःपापबुद्धिभिः ॥ ५५ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेषोडशोऽध्यायः ॥१६॥ छ ॥ जनमेजयउवाच ॥ कथंताश्चस्त्रियःसर्वाभृगूणांदुःखसागरात् ॥ मुक्तावंशःपुनस्तेषांब्राह्मणानांस्थिरोऽभवत् ॥ १ ॥ हैहयैःकिंकृतंकार्यंहत्वातान्ब्राह्मणानपि ॥ क्षत्रियैर्लोभसंयुतैःपापाचारैर्वदस्वतत् ॥२॥ नतृप्तिरस्तिमेब्रह्मन्पिबतस्तेकथामृतम् ॥ पावनंसुखदंनृणांपरलोकेफलप्रदम् ॥३॥ व्यासउवाच॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिकथांपापप्रणाशिनीम् ॥ यथास्त्रियस्तुतामुक्तादुःखात्तस्माद्दुरत्ययात् ॥४॥ भृगुपत्न्योयदाराजन्हिमवंतंगिरिंगताः ॥ भयत्रस्तानिभग्नाशाहैहयैःपीडिताभृशम् ॥ ५ ॥ गौरींतत्रतुसंस्थाप्यमृन्मयींसरितस्तटे ॥ उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयंमरणंप्रति ॥ ६ ॥

हुआ ॥ १ ॥ उन पापाचारी क्षत्रियाधम लोभके वशीभूत हुए हैहयगणोंने ब्राह्मणोंका विनाश करके फिर क्या किया आप यह सम्पूर्ण विषय वर्णन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ २ ॥ हे तपोनिधे! मनुष्यगणोंको इस लोकमें सुखप्रद और परलोकमें पुण्यफलका देनेवाला अतिपवित्र आपका वचनामृत श्रवणाञ्जलि पुटसे पान करके मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! भृगुपत्नीगणोंने जिसप्रकार उस कठोर दुस्तर दुःखसागरसे छुटकारा पाया था मैं आपके निकट उसी पापनाशक पवित्र उपाख्यानको वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ हैहयगणोंके ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको अत्यन्त पीड़ित करनेपर फिर वह भयसे विह्वल और हताशहोकर हिमाचलमें चलीं गईं ॥ ५ ॥ तब उन सबोंने उस पर्वतमें गंगाके तटपर मृण्मयी गौरीकी मूर्ति बनाय उनकी पूजा की और मनमें मरना निश्चय कर

उपवास करनेलगीं ॥ ६ ॥ अनन्तर जगदम्बिका देवीने उन धर्मपरायण स्त्रियोंके सामने स्वप्नमें प्रगट होकर कहा कि, तुममें किसीके ऊरुसे मेरे अंश सम्भूत एक सन्तान उत्पन्न होगी ॥ ७ ॥ वह पुरुष तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य करेगा देवी भगवती यह कहकर अन्तर्धान होगई ॥ ८ ॥ अनन्तर वह स्त्रियें जागरित हो अतिहर्षको प्राप्त हुईं उनमेंसे एक अतिचतुर कामिनीने क्षत्रियोंके भयसे उद्विग्न हो ॥ ९ ॥ कुलकी वृद्धिके निमित्त एक उरुसे गर्भ धारण किया अनन्तर उसकी देह तेजसे प्रदीप्त होगई तब उसने भयसे विह्वल हो भागनेकी इच्छा की ॥ १० ॥ क्षत्रियगण उस ब्राह्मणोंको देखकर अतिवेगसे उसके पीछे दौड़े और कहने लगे कि, देखो यह गर्भवती ब्राह्मणकी स्त्री शीघ्र भागी जाती है इसको पकड़ और इसका प्राण नष्ट करो ॥ ११ ॥ वह सभी यह कह खड्गधारणपूर्वक उसके निकट उपस्थित हुए तब वह कामिनी उनको आता हुआ देख भयसे रोने लगी ॥ १२ ॥ वह भयातुर हो गर्भकी रक्षाके निमित्त जब चीत्कार करने लगी तब गर्भस्थित

स्वप्नेगत्वातदादेवीप्राहताःप्रमदोत्तमाः ॥ युष्मासुमध्येकस्याश्चिद्भविताचोरुजःपुमान् ॥ ७ ॥ मदंशशक्तिसंभिन्नःसवःकार्यंविधास्यति ॥ इत्यादिश्यपरांवासापश्चादंतर्हिताभवत् ॥ ८ ॥ जागृतास्तुततःसर्वामुदमापुर्वरांगनाः ॥ काचित्तासांभयोद्विग्नाकामिनीचतुराभृशम् ॥ ९ ॥ दधारचोरुणैकेनगर्भंसाकुलवृद्धये ॥ पलायनपराद्दृष्टाक्षत्रियैर्ब्राह्मणीयदा ॥ १० ॥ विह्वलातेजसायुक्तातदातेदुद्रुवुर्भृशम् ॥ गृह्यतांवध्यतांनारीसगर्भायातिसत्वरा ॥ ११ ॥ इतिब्रुवंतःसंप्राप्ताःकामिनींखड्गपाणयः ॥ साभयार्तातुतान्दृष्ट्वारुरोदसमुपागतान् ॥ १२ ॥ गर्भस्यरक्षणार्थंसाचुक्रोशाऽतिभयातुरा ॥ रुदतींमातरंश्रुत्वादीनांत्राणविवर्जिताम् ॥ १३ ॥ निराधारांक्रंदमानांक्षत्रियैर्भृशतापिताम् ॥ गृहीतामिवसिंहेनसगर्भांहरिणींतथा ॥ १४ ॥ साश्रुनेत्रांवेपमानांसंक्रुध्यबालकस्तदा ॥ भित्त्वोरुंनिर्जगामाऽऽशुगर्भःसूर्यइवाऽपरः ॥ १५ ॥ मुष्णन्दृष्टीःक्षत्रियाणांतेजसाबालकःशुभः ॥ दर्शनाद्बालकस्याऽऽशुसर्वेजाताविलोचनाः ॥ १६ ॥ बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषुजन्मांधाइवक्षत्रियाः ॥ चिंतितंमनसासर्वैःकिमेतदितिसांप्रतम् ॥ १७ ॥ सर्वेचक्षुर्विहीनायज्जाताःस्मबालदर्शनात् ॥ ब्राह्मण्यास्तुप्रभावोऽयंसतीव्रतबलंमहत् ॥ १८ ॥ क्षणाद्वामोघसंकल्पाःकिंकरिष्यंतिदुःखिताः ॥ इतिसंचिंत्यमनसानेत्रहीनानिराश्रयाः ॥ १९ ॥

बालक निराश्रय दीन कातर ॥ १३ ॥ अश्रुनयना और भयसे कम्पायमान जननीको रक्षकविहीन और अत्यन्त क्षत्रियोंसे पीड़ित देखकर और सिंहसे आक्रान्त गर्भवती हरिणीकी समान ॥ १४ ॥ रोते हुए सुनकर क्रोधपूर्ण जननीका ऊरुदेश विदीर्ण कर दूसरे सूर्यके समान सहसा निकला ॥ १५ ॥ उस शोभायमान बालकने अपने तेजसे क्षत्रियोंकी दर्शनशक्ति लोप करदी तब हैहयगण उस बालकको देखकर तत्काल सभी अन्धे होगये ॥ १६ ॥ अनन्तर वह जन्मान्धकी समान पर्वतकी खोहमें विचरण करने लगे और मनमें चिन्ता करके कहने लगे कि, हमको एक दैवदुर्विपाक प्रारब्धका फल उपस्थित हुआ ॥ १७ ॥ बालकको देखतेही हम सब अन्धे होगये अहो ! इन स्त्रियोंका प्रभाव और इनके पातिव्रत्य धर्मका महत् फल है इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ हमने ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको पीडित

किया है इससे वे अत्यन्त दुःखित हुई हैं अब नहीं जानते कि यह सत्यसंकल्प स्त्रियें हमारा और क्या अनिष्ट करेंगी ? वह भ्रान्तचित्त नेत्रहीन और निराश्रय क्षत्रियगण मनमें इसप्रकार चिन्ताकर ॥ १९ ॥ उन्हीं स्त्रियोंकी शरणागत हुए वह स्त्रियें फिर उनको आता हुआ देख अत्यन्त भीत हुई किन्तु वह उन पतिव्रता स्त्रियोंको हाथ जोड प्रणाम कर ॥ २० ॥ अपनी दृष्टिकी प्राप्तिके निमित्त कहने लगे हे मातः ! हम आपके सेवक हैं आप प्रसन्न हूजिये ॥ २१ ॥ हे कल्याणि ! हम पापिष्ठ क्षत्रिय हैं हमने आपके बहुत अपराध किये हैं. हे सुन्दरि ! हम आपके केवल दर्शनमात्रसेही अन्धे हुए हैं ॥ २२ ॥ हे कोपने ! हम जन्मान्धकी समान आपका मुखकमल नहीं देखसके हे जननि ! आपका तपोवीर्य अद्भुत है हम पापकारी हैं अतएव किसी प्रकार इस विषयका प्रतीकार करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ २३ ॥ इस कारण अब केवल

ब्राह्मणींशरणंजग्मुर्हैहयागतचेतसः ॥ प्रणेमुस्तांभयत्रस्तांकृतांजलिपुटाश्चते ॥२०॥ ऊचुश्चैनांभयोद्विग्नांदृष्ट्यर्थंक्षत्रियर्षभाः ॥ प्रसीदसुभगेमातःसेवकास्तेवयंकिल ॥ २१ ॥ कृतापराधारंभोरुक्षत्रियाःपापबुद्धयः ॥ दर्शनात्तवतन्वंगिजाताःसर्वेविलोचनाः ॥२२॥ मुखंतेनैवपश्यामोजन्मांधाइवभामिनि ॥अद्भुतंतेतपोवीर्यंकिंकुर्मःपापकारिणः ॥ २३ ॥ शरणंतेप्रपन्नाःस्मदेहिचक्षूंषिमानदे ॥ अंधत्वंमरणाद्दुग्रंकृपांकर्तुंत्वमर्हसि ॥ २४ ॥ पुनर्दृष्टिप्रदानेनसेवकान्क्षत्रियान्कुरु ॥ उपरम्यचगच्छेमसहिताःपापकर्मणः ॥ २५ ॥ अतःपरंनकर्तव्यमीदृशंकर्मकर्हिचित् ॥ भार्गवाणांतुसर्वेषांसेवकाःस्मवयंकिल ॥२६॥ अज्ञानाद्यत्कृतंपापंक्षंतव्यंतत्त्वयाऽधुना ॥ वैरंनातःपरंकाऽपिभृगुभिःक्षत्रियैःसह ॥ २७ ॥ कर्तव्यंशपथैःसम्यग्वर्तितव्यंतुहैहयैः ॥ सपुत्राभवसुश्रोणिप्रणताःस्मवयंचते ॥२८॥ प्रसादंकुरुकल्याणिनद्विष्यामःकदाचन ॥ व्यासउवाच ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाब्राह्मणीविस्मयान्विता ॥ २९ ॥

आपहीकी शरणागत हुए हैं आप हमको नेत्रप्रदान कर हमारे मानकी रक्षा कीजिये. हे मातः! अन्धत्व मरनेकी अपेक्षा भी भारी है अतएव आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये ॥ २४ ॥ आप फिर देखनेकी शक्ति दानकर क्षत्रियोंको अनुग्रहपूर्वक दास कीजिये. हम दृष्टिशक्तिके प्राप्त होनेपर सभी इस पापकर्मसे विरत हो घरको चले जायँगे ॥ २५ ॥ अभीसे फिर हम ऐसा नीचकर्म कभी न करेंगे अबसे हम सभी ब्राह्मणोंके सेवक होकर रहेंगे ॥ २६ ॥ हमने अज्ञानवश जो सम्पूर्ण पाप किये हैं आप वह समस्त क्षमा कीजिये हम प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि, आजसे ब्राह्मणोंके संग फिर क्षत्रियोंकी कुछ भी शत्रुता नहीं रहेगी ॥ २७ ॥ हे नितम्बिनि ! आप पुत्रके सहित सुखपूर्वक काल व्यतीत कीजिये हम आपके निकट सदाही प्रणत हैं ॥ २८ ॥ हे कल्याणि ! आप प्रसन्न हूजिये हम अब कभी विद्वेषभाव नहीं करेंगे

व्यासजीने कहा हे महाराज ! ब्राह्मणोंकी स्त्रियें उनके यह वचन सुन आश्चर्ययुक्त चित्तसे ॥ २९ ॥ उन दुर्दशायुक्त प्रणत अन्धे क्षत्रियगणोंको समझाकर कहने लगीं क्षत्रियगण ! हमने तुम्हारी दृष्टि हरण नहीं की॥ ३०॥अथवा हम तुम्हारे प्रति सन्तुष्टभी नहीं हुईं तुम इस समय इसका यथार्थ कारण सुनो यह ऊरुजात भृगुकुलोत्पन्न सन्तान तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रकुपित हुई है ॥ ३१ ॥ इसी कारण इस क्रोधपूर्वकबालकने तुम्हारे सम्पूर्ण नेत्र स्तम्भित किये हैं तुमने धनकी इच्छासे इस बालकके परम आत्मीय निरपराध धर्मतत्पर तापसगणोंको और गर्भमें स्थित भार्गवगणोंको भी निहत किया है वह यह बालक जानगया है ॥ ३२ ॥ हे वत्सगण ! जब तुमने भृगुवंशीय गर्भस्थित बालकगणोंको भी विनाश करना आरम्भ किया था ॥ ३३ ॥ तब मैंने ऊरुदेशमें इस बालकको सौ वर्षपर्यन्त धारण किया था इस बालकने गर्भमें स्थित होकर भृगुवंशकी वृद्धिके निमित्त थोड़ेही समयमें षडंगसमस्त वेदअध्ययन किये हैं ॥ ३४ ॥ यह वंशवृद्धिको गर्भमें रहा है इस समय यह भृगु

तानाहप्रणतान्दुःस्थानाश्वास्यगतलोचनान् ॥ गृहीतानमयादृष्टिर्युष्माकंक्षत्रियाःकिल ॥ ३० ॥ नाऽहंरुषान्वितासत्यंकारणंशृणुताऽद्यवत् ॥ अयं चभार्गवोनूनमूरुजःकुपितोऽद्यवः ॥३१॥ चक्षूंषितेनयुष्माकंस्तंभितानिरुषावता ॥ स्ववंधून्निहताञ्ज्ञात्वागर्भस्थानपिक्षत्रियैः ॥ ३२ ॥ अनागसोधर्म परांस्तापसान्धनकाम्यया ॥ गर्भानपियदायूयंभृगूनघ्नंस्तुपुत्रकाः ॥ ३३ ॥ तदायमूरुणागर्भोमयावर्षशतंधृतः ॥ षडंगश्चाखिलोवेदोगृहीतोनेनचां जसा ॥ ३४ ॥ गर्भस्थेनाऽपिबालेनभृगुवंशविवृद्धये ॥ सोपिपितृवधान्नूनंक्रोधद्वोहंतुमिच्छति ॥ ३५ ॥ भगवत्याःप्रसादेनजातोऽयंममबालकः ॥ तेजसायस्यादिव्येनचक्षूंषिमुषितानिच ॥ ३६ ॥ तस्मादौर्वसुतंमेऽद्ययाचध्वंविनयान्विताः ॥ प्रणिपातेनतुष्टोऽसौदृष्टिंवःप्रतिमोक्ष्यति ॥ ३७ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्याहैहयास्तुष्टुवुश्चतम् ॥ प्रणेमुर्विनयोपेताऊरुजंमुनिसत्तमम् ॥ ३८ ॥ ससंतुष्टोबभूवाऽथतानुवाचविचक्षुषः ॥ गच्छध्वं स्वगृहान्भूपाममाख्यानकृतंवचः ॥ ३९ ॥ अवश्यंभाविभावास्तेभवंतिदेवनिर्मिताः ॥ नाऽत्रशोकस्तुकर्तव्यःपुरुषेणविजानता ॥ ४० ॥

सन्तान पितृवधके क्रोधसे प्रदीप्त हो तुम्हारे विनाशके लिये उद्यत हुई है ॥ ३५ ॥ जिसके दिव्यतेजसे तुम्हारी दृष्टिशक्ति नष्ट हुई है वही यह हमारा पुत्र भगवती भुवनेश्वरीके प्रसादसे उत्पन्न हुआ है, अतएव इस बालकको सामान्य नहीं जानना चाहिये ॥ ३६ ॥ इस समय तुम विनययुक्त होकर मेरे इस और्व (उरुजात) पुत्रके निकट याचना करो यह सन्तान प्रणिपात द्वारा सन्तुष्ट होकर तुमको दृष्टि प्रदान करेगी ॥ ३७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हैहयगण ब्राह्मणीका यह वचन सुननेके पश्चात् भार्गवसन्तानका स्तव करने लगे उन्होंने विनयान्वित हो उरुजात उस मुनिसत्तमको प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ तब और्वऋषिने सन्तुष्ट हो उन नेत्रहीन हैहयगणोंसे कहा तुम अपने अनपे घर जाओ. हे भूपालगण ! तुम मेरे इस उपाख्यानसे प्राप्त वक्ष्य माण वचनका पाठ करना ॥३९॥ जो देवनिर्मित और अवश्यम्भावी है यहअवश्यही होगा यह जानकर किसीको भी इस विषयमें शोक करना उचित नहीं है॥ ४०॥

तुम पूर्वकी समान दृष्टि प्राप्त कर क्रोध त्यागपूर्वक यथासुखसे अपने अपने घर जाओ और अबसे ऋषिगण भी पूर्वकी समान सुखको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ महर्षि और्वके इसप्रकार आज्ञा करनेपर हैहयगण नेत्र प्राप्त कर इच्छानुसार अपने अपने घरको चले गये ॥ ४२ ॥ इधर ब्राह्मणी भी उस तेजस्वी दिव्य पुत्रको लेकर अपने आश्रममें जाय सावधानतासे उसको पालने लगी ॥ ४३ ॥ हे राजन्! यह मैं ने आपके निकट भार्गवगणोंके विनाशका वृत्तान्त और लोभयुक्त क्षत्रियगणों ने जिसप्रकार पापकर्म किया था वह सम्पूर्ण वर्णन किया ॥ ४४ ॥ जनमेजयने कहा हे तपोधन! मैं ने क्षत्रियोंका अत्यन्त दारुण कर्मका विषय श्रवण कर जाना कि, इस विषयमें एक मात्र लोभही कारण है और लोभसेही दोनोंको इसीप्रकार दुःख हुआ है ॥ ४५ ॥ हे मुनीन्द्र! मैं आपसे इस विषयमें कुछ पूँछनेकी इच्छा करता हूं यह राजपुत्र पृथ्वीमें हैहय नामसे क्यों विख्यात हुए? ॥ ४६ ॥ क्षत्रियगणोंमें कितनेही एक यदुकुलोत्पन्न कहकर यादव और कितनेही एक भरतोत्पन्न कहकर भारतनामसे विख्यात हुए हैं किन्तु इनके

पूर्ववद्दृषयःसर्वेप्राप्नुवंतुयथासुखम् ॥ व्रजंतुविगतक्रोधाभवनानियथासुखम् ॥ ४१ ॥ इतितेनसमादिष्टाहैहयाःप्राप्तलोचनाः ॥ और्वमामंत्र्यजग्मुस्तेसदनानि यथारुचि ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणीतंसुतंदिव्यंगृहीत्वास्वाश्रमंगता ॥ पालयामासभूपालंतेजस्विनमतंद्रिता ॥ ४३ ॥ एवंतेकथितंराजन्भृगूणांतुविनाशनम् ॥ लोभाविष्टैःक्षत्रियैश्चयत्कृतंपातकंकिल ॥ ४४ ॥ जनमेजयउवाच ॥ श्रुतंमयामहत्कर्मक्षत्रियाणांचदारुणम् ॥ कारणंलोभएवाऽत्रदुःखदश्चोभयोस्तुसः ॥ ॥ ४५ ॥ किंचित्प्रष्टुमिहेच्छामिसंशयंवासवीसुत ॥ हैहयास्तेकथंनाम्नाख्याताभुविनृपात्मजाः ॥ ४६ ॥ यदोस्तुयादवाःकामंभरताद्भारतास्तथा ॥ हैहयःकोऽपिराजाभूत्तेषांवंशेप्रतिष्ठितः ॥ ४७ ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामिकारणंकरुणानिधे ॥ हैहयास्तेकथंजाताःक्षत्रियाःकेनकर्मणा ॥ ४८ ॥ व्यासउवाच ॥ हैहयानांसमुत्पत्तिंशृणुभूपसविस्तराम् ॥ पुरातनांसुपुण्यांचकथांपापप्रणाशिनीम् ॥ ४९ ॥ कस्मिंश्चित्समयेभूपसूर्यपुत्रःसुशोभनः ॥ रेवंतेतिचविख्यातोऽपवानमितप्रभः ॥ ५० ॥ उच्चैःश्रवसमारुह्यहयरत्नंमनोहरम् ॥ जगामविष्णुसदनंवैकुंठंभास्करात्मजः ॥ ५१ ॥ भगवद्दर्शनाकांक्षीहयारूढोयदागतः ॥ हयस्थस्तुतदादृष्टोलक्ष्म्याऽसौरविनंदनः ॥ ५२ ॥ रमावीक्ष्यहयंदिव्यंभ्रातरंसागरोद्भवम् ॥ रूपेणविस्मितातस्यतस्थौस्तंभितलोचना ॥ ५३ ॥

वंशमें हैहयनामक किस राजाने जन्म लिया था ॥ ४७ ॥ अथवा यह क्षत्रियगण अन्य किसी कर्मद्वारा हैहय नामसे विख्यातहुए, मैं उसका कारण सुननेकी अत्यन्त इच्छा करताहूं आप कृपाकरके वह वर्णन कीजिये ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे भूपते! मैं आपके निकट हैहयगणोंकी उत्पत्तिका वृतान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं श्रवण करो इस पुरातन कथाके सुननेसे पापसमूह नष्ट होकर पुण्यका उदय होताहै ॥ ४९ ॥ हे राजन्! किसीसमय अपरिमितप्रभावयुक्त रूपवान् और सुशोभन रेवन्त नामक ॥ ५० ॥ सूर्यके पुत्र मनोहर घोडोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवापर चढ़कर विष्णुके घर वैकुण्ठधाममें गये थे ॥ ५१ ॥ वह जब भगवान्के दर्शनाभिलाषी होकर गये तब लक्ष्मीदेवीने इस सूर्यके पुत्रको देखा ॥ ५२ ॥ क्षीराब्धितनया रमादेवी सागरोत्पन्न सहोदर अश्वश्रेष्ठके मनोहररूपको अवलोकनपूर्वक आश्चर्ययुक्त

हो इकटक देखती रहीं ॥ ५३ ॥ निग्रहानुग्रहमें समर्थ भगवान् विष्णु मनोहररूपयुक्त रेवन्तको घोड़ेपर चढ़ेहुए आता देखकर विनय सहित लक्ष्मीसे पूँछनेलगे ॥ ॥ ५४ ॥ हे सुन्दरि ! दूसरे कामदेवकी समान कौन पुरुषश्रेष्ठ त्रिभुवनको मोहित करता घोड़ेपर चढ़ाहुआ आरहा है ॥ ५५ ॥ तिस समय लक्ष्मीदेवी दैवयोगसे एकाग्रमनसे देखरहीं थीं इसप्रकार भगवान्के वारम्वार पूँछनेपरभी उन्होंने कोई उत्तर न दिया ॥ ५६ ॥ चंचलादेवी लक्ष्मी अश्वको अति आसक्त चित्त और अत्यन्त मोहित हो परमप्रेमके वशीभूत स्थिरनेत्रसे देख रहीं हैं ॥ ५७ ॥ भगवान् यह देखकर कुपितहुए और उनसे कहा कि हे सुलोचने! क्या देखती हो ! तुम अश्वको देखकर

भगवानपितंदृष्ट्वाहयारूढंमनोहरम्॥आगच्छंतंरमांविष्णुःपप्रच्छप्रणयात्प्रभुः॥५४॥कोऽयमायातिचार्वंगिहयारूढइवाऽपरः॥स्मरतेजस्तनुःकांतेमोहयन् भुवनत्रयम् ॥ ५५ ॥ प्रेक्षमाणातदालक्ष्मीस्तच्चित्तादैवयोगतः ॥ नोवाचवचनंकिंचित्पृष्टाऽपिचपुनःपुनः ॥ ५६ ॥ व्यासउवाच ॥ अश्वासक्तमतिंवीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम् ॥ पश्यंतींपरमप्रेम्णाचंचलाक्षींचचंचलाम् ॥ ५७ ॥ तामाहभगवान्क्रुद्धःकिंपश्यसिसुलोचने ॥ मोहिताचहरिंदृष्ट्वापृष्टानैवाऽभि भाषसे ॥ ५८ ॥ सर्वत्ररमसेयस्माद्रमातस्माद्भविष्यसि ॥ चंचलत्वाच्चलेत्येवंसर्वथैवनसंशयः ॥ ५९ ॥ प्राकृताचयथानारीनूनंभवतिचंचला ॥ तथात्व मपिकल्याणिस्थिरानैवकदाचन ॥ ६० ॥ त्वंहयंमत्समीपस्थासमीक्ष्ययदिमोहिता ॥ वडवाभववामोरुमर्त्यलोकेऽतिदारुणे ॥ ६१ ॥ इतिशप्तार मादेवीहरिणादैवयोगतः ॥ रुरोदवेपमानासाभयभीताऽतिदुःखिता ॥ ६२ ॥ तमुवाचरमानाथंशंकिताचारुहासिनी ॥ प्रणम्यशिरसादेवंस्वपतिं विनयान्विता ॥ ६३ ॥

इसप्रकार मोहित हुई हो कि मेरे पूँछनेपरभी बात नहीं कहती ॥ ५८ ॥ तुम सर्वत्ररमण करती हो इसकारण रमानामसे और तुम्हारा मन अत्यन्त चंचलहै इस कारण चंचलनामसे विख्यात होगी॥५९॥ हे कल्याणि ! प्राकृत स्त्रियें जिसप्रकार चंचल हैं तुमभी उसीप्रकार चंचल होगी, कहीं कभी स्थिर न रहसकोगी ॥ ६० ॥ तुम मेरे समीप अवस्थित होकरभी जिसप्रकार घोड़ेको देखकर मोहित हुई हो तब तुम दारुण क्लेशयुक्त मर्त्यलोकमें घोडी हो जन्म ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ रमादेवी दैवयोगसे हरिसे इसप्रकार शाप पाय भय और दुःखसे कम्पायमान हो रोनेलगी ॥६२॥ तब चारुहासिनी रमादेवी शङ्कित और विनययुक्त हो प्रणामपूर्वक अपने पति नारायणसे

कहने लगी ॥ ६३ ॥ हे देवदेव ! हे गोविन्द ! आप जगत्के नाथ और दयाके समुद्र हैं अल्प अपराधहीके कारण मुझको क्यों यह शाप दिया ? ॥६४॥ हे प्रभो ! मैं ने आपको ऐसा क्रोध पहले कभी नहीं देखा हाय ! मेरेप्रति आपका जो नाशरहित सहज स्नेह था वह इस समय कहां गया ? ॥ ६५ ॥ हे नाथ ! वज्रपात स्वजनोंके प्रति न करके शत्रुओंके प्रति करनाही उचित है मैं सदा आपके वरदेनके योग्यपात्र हूं इस समय आपने मुझको शापके योग्य क्यों किया ? ॥ ६६ ॥ हे गोविन्द ! मैं आपके सामनेही प्राणत्याग करूंगी, मैं आपके विरहानलसे सन्तापित होकर कभी जीवन धारण नहीं करसक्ती ॥ ६७ ॥ हे विभो ! प्रसन्न होकर कहिये मैं इसदारुण शापसे मुक्त होकर फिर कब अत्यन्त सुखकर आपके सम्मिलनको प्राप्त हूंगी ॥ ६८ ॥ भगवान्ने कहा हे प्रिये ! जब मर्त्यलोकमें मेरे समान तुम्हारे

देवदेवजगन्नाथकरुणाकरकेशव ॥ स्वल्पेऽपराधेगोविंदकस्माच्छापंददासिमे ॥ ६४॥ नकदाचिन्मयादृष्टःक्रोधस्तेहीदृशःप्रभो ॥ क्वगतस्तेमयिस्नेहःसहजोनतुनश्वरः ॥ ६५ ॥ वज्रपातस्तुशत्रौवैकर्तव्योनसुहृज्जने ॥ सदाऽहंवरयोग्यातेशापयोग्याकथंकृता ॥६६॥ प्राणांस्त्यक्ष्यामिगोविंदपश्यतोऽद्यतवाऽग्रतः ॥ कथंजीवेत्वयाहीनाविरहानलतापिता ॥ ६७ ॥ प्रसादंकुरुदेवेशशापादस्मात्सुदारुणात् ॥ कदामुक्तासमीपंतेप्राप्नोमिसुखदंविभो ॥ ६८ ॥ हरिरुवाच ॥ यदातेभवितापुत्रःपृथिव्यांमत्समःप्रिये ॥ तदामांप्राप्यतन्वंगिसुखितात्वंभविष्यसि ॥६९॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ ॥छ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ इतिशप्ताभगवतासिंधुजाकोपयोगतः॥कथंसावडवाजातारेवंतेनचकिंकृतम् ॥१॥ कस्मिन्देशेऽब्धिजादेवीवडवारूपधारिणी ॥ संस्थितैकाकिनीबालापरोपित्पतिकायथा ॥ २ ॥ कालंकियंतमायुष्मन्वियुक्तापातिनारमा ॥ संस्थिताविजनेरण्ये किंकृतंचतयापुनः ॥ ३ ॥

पुत्र होगा तब तुम फिर मुझको प्राप्त होकर सुखी होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥६९॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! भगवान् विष्णुके कोपके वशीभूत हो इसप्रकार शाप देनेपर फिर उन्होंने किसप्रकार घोडी हो जन्म ग्रहण किया था और रेवन्तने तिससमय क्या किया था ॥ १॥क्षीरोदनन्दिनी लक्ष्मी देवीने किसदेशमें घोडीका रूपधारण कर परदेशमें स्थित पतिवाली बालाके समान अकेले किसप्रकार वास किया था? ॥ २॥हे मुनिवर ! उस कमलादेवीने पतिरहित होकर कितने समय पर्यन्त किसनिर्जन स्थानमें वास किया और तिसकाल उन्होंने क्या किया था ॥ ३ ॥

और किससमय फिर वासुदेवसे मिलीं थी जब उन्होंने नारायणसे वियोगको प्राप्त हो वास कियाथा तब किसप्रकार पुत्र प्राप्त हुआ था ॥ ४ ॥ हे आर्यप्रवर ! आप यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये. इस अत्युत्तम उपाख्यानके सुननेकी मुझको अत्यन्त अभिलाषा उत्पन्न हुई है ॥५॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! जनमेजयके वेद व्यासजीसे इसप्रकार पूँछनेपर फिर द्वैपायनमुनि इस उपाख्यानको विस्तारपूर्वक वर्णनकरने लगे ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जिसके द्वारा मनुष्यगण पवित्र हो कल्याण लाभ करते हैं मैं आपके निकट वह शिवदाक्षरयुक्त श्रुति मधुर पौराणिक पुरातन कथा वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ ७ ॥ देवदेव वासुदेवने कमलादेवीको शाप प्रदान किया, भास्करतनय रेवन्त यह देखकर भयार्त्त हुए और जगत्पति जनार्दनको प्रणामकर दूर चलेगये ॥ ८ ॥ उन्होंने जगत्पति विष्णुका कोप देखकर

समागमंकदाप्राप्तावासुदेवस्याब्धिजा ॥ पुत्रःकथंतयाप्राप्तोनारायणवियुक्तया ॥ ४ ॥ एतद्वृत्तांतमार्येशकथयस्वसविस्तरम् ॥ श्रोतुकामोऽस्मि विप्रेंद्रकथाख्यानमनुत्तमम् ॥५॥ सूतउवाच ॥ इतिपृष्टस्तदाव्यासः परिक्षित्तनयेनवै ॥ कथयामासभोविप्राःकथामेतांसुविस्तराम् ॥ ६ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिकथांपौराणिकींशुभाम् ॥ पावनींसुखदांकर्णेविशदाक्षरसंयुताम् ॥७॥ रेवंतस्तुरमांदृष्ट्वाशप्तां देवेनकामिनीम् ॥ भयार्तःप्रययौदूरात्प्रणम्यजगतांपतिम् ॥ ८ ॥ पितुःसकाशंत्वरितोवीक्ष्यकोपंजगत्पतेः ॥ निवेदयामासकथांभास्करायसशापजाम् ॥९॥ दुःखितासारमादेवीप्रणम्यजगदीश्वरम् ॥ आज्ञतामानुषंलोकंप्राप्ताकमललोचना ॥ १० ॥ सूर्यपत्न्यातपस्तप्तंयत्रपूर्वंसुदारुणम् ॥ तत्रैवसाययावाशुवडवारूपधारिणी ॥ ११ ॥ कालिंदीतमसासंगेसुपर्णाक्षस्यचोत्तरे ॥ सर्वकामप्रदेस्थानेसुरम्यवनमंडिते ॥ १२ ॥ तत्रस्थितामहादेवंशंकरंवांछितप्रदम् ॥ दध्यौचैकेनमनसाशूलिनंचंद्रशेखरम् ॥ १३ ॥

शीघ्र पिताके निकट जाय उनसे कमलाके प्रति नारायणके शाप देनेका वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ९ ॥ इधर कमललोचना कमलादेवी शापके अनन्तर नारायणसे आज्ञा लेकर दुःखित चित्त हो उनके चरणोंमें प्रणामपूर्वक मनुष्यलोकमें चलीं गईं ॥ १० ॥ पहले सूर्यपत्नीने जिस स्थानमें तपस्याकी थी कमलादेवी घोड़ीका रूप धारणकर उसी स्थानमें चलीं गईं ॥ ११ ॥ यह स्थान मनोहर वनसे विभूषित, और सर्वकामप्रद सुवर्णाक्ष पर्वतके उत्तरदेशमें कालिन्दी और तमसाके संगम स्थानमें वासकर शोभाको प्राप्त हुआ था ॥१२॥ रमादेवी उसी स्थानमें वासकर एकाग्र चित्तसे वाञ्छितप्रद और कल्याणके देनेवाले महादेवका इसप्रकार ध्यान करने

लगीं कि, महादेव हाथमें त्रिशूल धारणकररहे हैं, उनके ललाटदेशमें मनोरम शीतलचन्द्रमाकी कला शोभायमान होरही है ॥ १३ ॥ उनके पांच मुखोंमें तीन तीन नेत्र विद्यमान होरहे हैं कण्ठदेश नीलवर्ण रञ्जित, उनकी दशभुजा कलेवर कर्पूरके समान गौर ॥ १४ ॥ परिधान व्याघ्रचर्म गजचर्म उत्तरीय और नागगण उनके उपवीत (जनेऊ) हैं उन्होंने गौरीके देहका अर्धभाग धारण किया है उनके गलदेशमें कपालमाला शोभा पारही है ? ॥ १५ ॥ सिन्धुसुता लक्ष्मीदेवी मनोहर घोडीका रूप धारणकर उस तीर्थमें कठोर तपस्या करने लगीं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उन्होंने वैराग्यका आश्रयकर परमदेव महादेवका ध्यान करते करते उसी स्थानमें दिव्य हजार वर्ष विताये ॥ १७ ॥ तदनन्तर परमप्रभु देवदेव त्रिलोचन महेश्वरने बैलपर चढ पार्वतीके सहित उसीस्थानमें आय कमलादेवीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया

पंचाननंदशभुजंगौरीदेहार्धधारिणम् ॥ कर्पूरगौरदेहाभंनीलकंठंत्रिलोचनम् ॥ १४ ॥ व्याघ्राजिनधरंदेवंगजचर्मोत्तरीयकम् ॥ कपालमाल्लाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ १५ ॥ सागरस्यसुताकृत्वाहयीरूपंमनोहरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थेरमादेवीचकारदुश्चरंतपः ॥ १६ ॥ ध्यायमानापरंदेवंवैराग्यंसमुपाश्रिता ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंतुगतंतत्रमहीपते ॥ १७ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवोवृषारूढस्त्रिलोचनः ॥ प्रत्यक्षोऽभून्महेशानःपार्वतीसहितःप्रभुः ॥ १८ ॥ तत्रैत्यसगणःशंभुस्तामाहहरिवल्लभाम् ॥ तपस्यंतींमहाभागामाश्विनीरूपधारिणीम् ॥ १९ ॥ किंतपस्यसिकल्याणिजगन्मातर्वदस्वमे ॥ सर्वार्थदःपतिस्तेऽस्तिसर्वलोकविधायकः ॥ २० ॥ हरिंत्यक्त्वाऽद्यमांकस्मात्स्तौषिदेविजगत्पतिम् ॥ वासुदेवंजगन्नाथंभुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥२१॥ वेदोक्तंवचनंकार्यंनारीणांदेवतापतिः ॥ नान्यस्मिन्तसर्वथाभावःकर्तव्यःकर्हिचित्कचित् ॥२२॥ पतिशुश्रूषणंस्त्रीणांधर्मएषसनातनः ॥ यादृशस्तादृशःसेव्यःसर्वथाशुभकाम्यया ॥ २३ ॥

॥ १८ ॥ महादेवने उसीस्थानमें गणोंके सहित आनकर अश्वरूपिणी तपस्विनी उस हरिवल्लभाकमलासे कहा ॥ १९ ॥ हे कल्याणि ! तुम सम्पूर्ण जगत्की जननी और तुम्हारे पति समस्त लोकके विधाता तथा सर्वार्थप्रदान करनेमें समर्थ हैं, उनके विद्यमान् रहते तुम तपस्या करती हो इसका क्या कारण है ? ॥ २० ॥ हे देवि ! तुम जगत् पालक जगन्नाथ भोग मोक्षके देनेवाले वासुदेव श्रीहरिको त्यागकर किसकारण मेरी स्तुति करती हो ? ॥ २१ ॥ हे देवि ! वेदमें कहे हुए वचनके अनुसारही कार्य करना उचित हैं वेदमें कहा है कि, पतिही स्त्रियोंका देवता है अतएव कभी किसीप्रकार अन्यके प्रति भलीभाँति मनका भाव बन्धन करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥ पतिकी सेवा करनाही स्त्रियोंका सनातन धर्म है पति साधुहो अथवा असाधुहो मंगलकी इच्छा करनेवाली स्त्रियें भलीभाँति उसकी सेवा करें ॥ २३ ॥

हे सिन्धुतनये ! तुम्हारे पति नारायण सबके सेवनीय और सम्पूर्ण अर्थ दान करनेमें समर्थ हैं तुम उन्ही देवदेव गोलोकपतिको त्यागकर किसकारण मेरी आराधना करती हो ? ॥ २४ ॥ लक्ष्मीने कहा हे देवदेव ! हे कल्याणालय ! आप सेवकके प्रति शीघ्रही सन्तुष्ट होते हैं यह मैं जानती हूं, मेरे पतिने मुझको शाप दिया है हे दयानिधे ! आप मुझको दया करके इस शापसे उद्धार कीजिये ॥ २५ ॥ हे शम्भो ! मैं ने जब उनसे विनय सहित वचनसे मनका दुःख कहा तब उन्हेंने अनुग्रह करके करुणान्वित चित्तसे शापके छूटनेका उपाय कहा ॥ २६ ॥ हे कमले ! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा तबही शाप छूटकर फिर तुम्हारा वैकुण्ठमें वास होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ उनके मुझको इसप्रकार कहनेपर फिर मैं तपस्या करनेके लिये इस तपोवनमें आनकर भगवान् भवानीपति

नारायणस्तुसर्वेषां सेव्योयोग्यःसदैवहि ॥ तंत्यक्त्वादेवदेवेशंकिंमांध्यायसिसिंधुजे ॥ २४ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ आशुतोषमहेशानशप्ताऽहंपतिनाशिव ॥ मांसमुद्धरदेवेशशापादस्माद्दयानिधे ॥ २५ ॥ तदोक्तंहरिणाशंभोशापानुग्रहकारणम् ॥ विज्ञतेनमयाकामंदयायुक्तेनविष्णुना ॥ २६ ॥ यदातेभवितापुत्रस्तदाशापस्यमोक्षणम् ॥ भविष्यतिचवैकुंठवासस्तेकमलालये ॥२७॥ इत्युक्ताऽहंतपस्तप्तुमागताऽस्मितपोवने ॥ आराधितोमयादेवत्वंसर्वार्थप्रदायकः ॥ २८ ॥ पतिसंगंविनापुत्रंदेवदेवलभेकथम् ॥ सतुतिष्ठतिवैकुंठेत्यक्त्वावामामनागसम्॥२९॥ वरंमेदेहिदेवेशयदितुष्टोऽसिशंकर॥ तवतस्यद्विधाभावोनास्तिनूनंकदाचन ॥३०॥ मयैतद्गिरिजाकांतज्ञातंपत्युःपुरोहर ॥ यस्त्वंसोऽसौपुनर्योऽसौसत्वंनास्त्यत्रसंशयः ॥३१॥ एकत्वंचमयाज्ञात्वामयातेस्मरणंकृतम् ॥ अन्यथाममदोषस्त्वामाश्रयंत्याभवेच्छिव ॥ ३२ ॥ शिवउवाच ॥ कथंज्ञातस्त्वयादेविममतस्यचसुंदरि ॥ ऐक्यभावोहरेर्नूनंसत्यमेवदसिंधुजे ॥ ३३ ॥

आपको सर्वेश्वर और सर्वार्थ देनेवाले जानकर आपकी आराधनामें प्रवृत्त हुई हूं ॥ ॥ २८ ॥ हे देवेन्द्र ! पतिके संगविना किसप्रकार पुत्र प्राप्त करूंगी मेरे निरपराधिनी होने परभी वह मुझको त्यागकर वैकुण्ठमें वास करते हैं ॥ २९ ॥ हे महेश्वर ! आप सम्पूर्ण लोकोंका मंगल करते हैं यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हुए हैं तो मुझको वर दीजिये. हे प्रभो ! मैं निश्चय जानती हूं कि आपमें और उनमें कुछ भिन्नभाव नहींहै ॥ ३० ॥ हे गिरिजाकान्त ! मैंने अपने पतिसे जाना हैं. हे हर ! जो आप हैं सोई वह हैं और वह जो हैं सोई आप हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३१ ॥ हे मंगलमय ! मैं आप दोनोंका अभेदभाव जानकरही आपका ध्यान करती हूं, ऐसा न होनेसे आपका आश्रय करना मुझको दोष होता इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ शङ्करने कहा हे देवि सिन्धुतनय ! मेरा और उन हरिका तुमने एकभाव किसप्रकार

जाना वह मुझसे सत्य कहो ॥ ३३ ॥ देवगण मुनिगण और वेदके जाननेवाले महर्षिगण कुतर्कसे हतबुद्धि हो हम दोनोंमें अभेद नहीं जानसक्के ॥ ३४ ॥ तुम प्रायः देखतीहो कि, हमारे भक्तोंमें बहुतसे मनुष्य वासुदेवके और विष्णुके भक्तोमेंसे अनेक मेरी निन्दा करतेहैं ॥ ३५॥ विशेषकर कलिकालमें कलिमाहात्म्यके वशीभूत हो अतिद्वेषी होंगे सो जो हो हे कल्याणि ! उदारात्मा पुरुषोंको भी जो कठिन है ॥ ३६ ॥ वह विषय तुमने किसप्रकार जाना मेरी और हरिकी एकताका जानना अत्यन्त दुर्लभ है व्यासजीने कहा हे महाराज ! आशुतोषके सन्तुष्ट हो इसप्रकार पूँछनेपर फिर हरिवल्लभा ॥ ३७ ॥ कमला प्रसन्नवदनसे पूँछे हुए विषयका सार महादेवके सामने कहने लगी ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीने कहा हे देवदेव ! एकदिन भगवान् विष्णुको निर्जनमें पद्मासन ग्रहणकर तपस्या करते करते ध्यान परायण देखकर मैं ॥ ३९ ॥ अत्यन्त आश्चर्य

एकत्वंचनजानंतिदेवाश्चमुनयस्तथा ॥ ज्ञानिनोवेदतत्त्वज्ञाःकुतर्कोपहताःकिल ॥ ३४ ॥ मद्भक्तावासुदेवस्यनिंदकाबहवस्तथा ॥ विष्णुभक्तास्तुवहवोममनिंदापरायणाः ॥३५॥ भवंतिकालभेदेनकलौदेविविशेषतः ॥ कथंज्ञातस्त्वयाभद्रेदुर्ज्ञेयोह्यकृतात्मभिः ॥३६॥ सर्वथात्वैक्यभावस्तुहरेर्मम चदुर्लभः ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसाशंभुनापृष्टातुष्टेनहरिवल्लभा॥३७॥वृत्तांतंतस्यविज्ञातंप्रवक्तुमुपचक्रमे॥ शिवंप्रतिरमातत्रप्रसन्नवदनाभृशम् ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ एकदादेवदेवेशविष्णुर्ध्यानपरोरहः॥ दृष्टोमयातपःकुर्वन्पद्मासनगतोयदा ॥ ३९ ॥ तदाऽहंविस्मितादेवंतमपृच्छंपतिंकिल ॥ प्रबुद्धंसुप्रसन्नंचज्ञात्वाविनयपूर्वकम् ॥ ४० ॥ देवदेवजगन्नाथयदाऽहंनिर्गताऽर्णवात् ॥ मथ्यमानात्सुरैर्दैत्यैःसर्वैर्ब्रह्मादिभिःप्रभो ॥ ४१ ॥ वीक्षिताश्चमयासर्वे पतिकामनयातदा ॥ वृतस्त्वंसर्वदेवेभ्यःश्रेष्ठोऽसीतिविनिश्चयात् ॥ ४२ ॥ त्वंकंध्यायसिसर्वेशसंशयोऽयंमहान्मम ॥ प्रियोऽसिकैटभारेमेकथय स्वमनोगतम् ॥ ४३ ॥

युक्त हुई अनन्तर ध्यान त्यागकर प्रसन्न चित्तसे बैठे हुए देख मैं ने उनसे पूँछा ॥ ४० ॥ हे देवदेव ! आपही तो जगत्के अधिनाथ और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके प्रभु हैं इस समय मैं आपसे पूँछती हूं कि, ब्रह्मादि देवगण और असुरादिगणोंके मिलित हो समुद्र मथनेपर जब मैं उससे निकली ॥ ४१ ॥ तब मैं ने पतिकी इच्छासे सबहीको देखा था किन्तु हे नाथ ! आप सम्पूर्ण देवताओंसे श्रेष्ठ हैं यह निश्चय करके आपको वरण किया था ॥ ४२ ॥ हे सर्वेश ! इस समय आप फिर किसका ध्यान करते हैं इससे मुझको महान संशय उपस्थित हुआ है. हे भगवन् ! आप मेरे अत्यन्त प्रिय हैं इस समय आप मुझसे अपने मनका भाव प्रकाशकरके कहिये ॥ ४३ ॥

विष्णुने कहा हे कान्ते ! मैं जिनका ध्यान करता हूं वह तुमसे कहता हूं श्रवण करो मैं उन्हीं आशुतोष महेश्वर सुरसत्तम गिरिजावल्लभका हृदयकमलमें ध्यान करता हूं॥ ॥ ४४ ॥ वह अमितप्रभावदेवदेव महादेव कभी मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैंभी उन सुरेश्वर त्रिपुरान्तक शङ्करका ध्यान करता हूं ॥ ४५ ॥ मैं शङ्करको प्राणोंकी समान प्रिय हूं और शंकर मुझको भी इसीप्रकार प्रिय हैं, हम दोनोंका चित्त गूढ़भावसे परस्पर आसक्त है अतएव उनमें हममें कुछभी भेद नहीं है ॥ ४६ ॥ हे विशालाक्षि ! जो मनुष्य मेरा भक्त होकर शिवसे विद्वेष करते हैं, वह निश्चयही नरकभागी होते हैं, यह मैंने तुमसे सत्यही कहा ॥ ४७ ॥ हे महेश्वर ! मेरे एकान्तमें

विष्णुरुवाच ॥ शृणुकांतेप्रवक्ष्यामियंध्यायामिसुरोत्तमम् ॥ आशुतोषंमहेशानंगिरिजावल्लभंहृदि ॥४४॥ कदाचिद्देवदेवोमांध्यायत्यमितविक्रमः ॥ ध्यायाम्यहंचदेवेशंशंकरंत्रिपुरांतकम् ॥४५॥ शिवस्याऽहंप्रियःप्राणःशंकरस्तुतथामम ॥ उभयोरंतरंनास्तिमिथःसंसक्तचेतसोः ॥४६॥ नरकंयांतितेनूनंयेद्विषंतिमहेश्वरम् ॥ भक्तामम विशालाक्षिसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥४७॥ इत्युक्तंदेवदेवेनविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ एकांतेकिलपृष्टेनमयाशैलसुताप्रिय ॥४८॥ तस्मात्त्वांवल्लभंविष्णोर्ज्ञात्वाध्यातवतीह्यहम् ॥ तथाकुरुमहेशानयथामेप्रियसंगमः ॥ ४९ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिश्रियोवचःश्रुत्वाप्रत्युवाचमहेश्वरः ॥ तामाश्वास्यप्रियैर्वाक्यैर्यथार्थवाक्यकोविदः ॥ ५० ॥ स्वस्थाभवपृथुश्रोणितुष्टोऽहंतपसातव ॥ समागमस्तेपतिनाभविष्यतिनसंशयः ॥ ५१ ॥ अत्रैवहयरूपेणभगवाञ्जगदीश्वरः ॥ आगमिष्यतितेकामंपूर्णकर्तुंमयेरितः ॥ ५२ ॥ तथाऽहंप्रेरयिष्यामितंदेवंमधुसूदनम् ॥ यथाऽसौहयरूपेणत्वामेष्यतिमदातुरः ॥ ५३ ॥

पूँछनेपर उन देवदेव परमप्रभु विष्णुने मुझसे इसप्रकार कहा था ॥ ४८ ॥ इसीकारण आपको उनका प्रिय जानकर मैंने आपका ध्यान किया. हे महेश ! जिससे मेरे प्रियका मिलनहो आप वही उपाय कीजिये ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वाक्यविशारद महादेव लक्ष्मीका यह वचन सुनकर प्रियवचनसे उनको समझाकर कहने लगे ॥ ५० ॥ हे नितम्बिनि ! तुम सावधानहोओ मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं पतिसे तुम्हारा शीघ्रही मिलनहोगा इसमें संशय नहीं ॥ ५१ ॥ मेरे भगवान् जगतपतिको प्रेरण करनेपर फिर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके निमित्त अश्वरूप धारणकर इसस्थानमें आवेंगे ॥५२॥ मैं उन देवदेव मधुसूदनको इसप्रकार

भेजूंगा कि वह अश्वरूप धारणकर मदातुर होकर तुम्हारे पास आवेंगे ॥ ५३ ॥ हे सुभ्रु ! उनसे तुम्हारे नारायणकी समान एकपुत्र उत्पन्न होगा और वह पृथ्वीमें राजा होकर सर्वलोकोंका पूजनीय होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥ हे महाभागे ! तुम पुत्रके प्राप्त होनेपर फिर नारायणसहित वैकुण्ठमें जाय और उनकी प्रिया होकर उसीस्थानमें वास करोगी ॥ ५५ ॥ तुम्हारा वह पुत्र एकवीरनामसे विख्यात और उससे पृथ्वीतलमें हैहयवंश विस्तारित होगा ॥ ५६ ॥ हे कमले ! तुम ऐश्वर्य मदसे अन्ध और मत्तचित्त होकर हृदयस्थित परमेश्वरीको भूलगई हो इसीकारण तुम इसप्रकारके फलको प्राप्त हुई ॥ ५७ ॥ अतएव उसी दोषको दूर करनेके निमित्त हृदयस्थित पर देवताकी शरण ग्रहण करो ॥ ५८ ॥ हे देवि ! यदि तुम्हारा चित्त आनन्दरूपिणी भगवतीके प्रति आसक्त रहता तो कभी तुम्हारा चित्त उच्चैःश्रवाके प्रति न दौड़ता

पुत्रस्तेभवितासुभ्रुनारायणसमःक्षितौ ॥ भविष्यतिसभूपालःसर्वलोकनमस्कृतः ॥ ५४ ॥ सुतंप्राप्यमहाभागेत्वंतेनपतिनासह ॥ गंतासिदिवि वैकुंठंप्रियातस्यभविष्यासि ॥ ५५ ॥ एकवीरेतिनाम्नाऽसौख्यातिंयास्यतितेसुतः ॥ तस्माच्चुहैहयोवंशोभुविविस्तारमेष्यति ॥ ५६ ॥ परंतुविस्मृताऽसि त्वंहृदिस्थांपरमेश्वरीम् ॥ मदांधामत्तचित्ताचतेनतेफलमीदृशम् ॥५७॥ अतस्तद्दोषशांत्यर्थंहृदिस्थांपरदेवताम् ॥ शरणंयाहिसर्वात्मभावेनजलधेःसु ते ॥ ५८ ॥ अन्यथातवचित्तंतुकथंगच्छेद्धयोत्तमे ॥ व्यासउवाच ॥ इतिदत्त्वावरंदेव्यैभगवाञ्छैलजापतिः ॥ ५९ ॥ अंतर्धानंगतःसाक्षादुमयासहितः शिवः ॥ सापितत्रैवचार्वंगीसंस्थिताकमलासना ॥ ६० ॥ ध्यायंतीचरणांभोजंदेव्याःपरमशोभनम् ॥ देवासुरशिरोरत्ननिघृष्टनखमंडलम् ॥६१ ॥ प्रेम गद्गदयावाचातुष्टावचमुहुर्मुहुः ॥ प्रतीक्षमाणाभर्तारंहयरूपधरंहरिम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासउवाच ॥ तस्यैदत्वावरंशंभुःकैलासंत्वरितोययौ ॥ रम्यंदेवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्चमंडितम् ॥ १ ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज ! पार्वतीपति भगवान् महादेव कमलादेवीको इसप्रकार वर दे ॥ ५९ ॥ उमाके सहित लक्ष्मीके सामनेही अन्तर्धान होगये. शोभायमान् अंगवाली कमलादेवी भी उसी स्थानमें रहकर ॥ ६० ॥ जिनका नखमण्डल सुरासुर गणोंके शिरोरत्नसे सर्वदाही संघर्षित होता है अम्बिकाके उन्हीं चरण कमलोंको स्मरण करने लगी ॥ ६१ ॥ और हयरूपधारी अपने प्रिय हरिकी प्रतीक्षामें प्रेमगद्गदवचनसे वारम्वार महादेवीका स्तव करनेलगी ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवदेव शंकरने कमलाको वरदान दे अप्सरागणोंसे

विभूषित और देवताओं द्वारा परिसेवित मनोहर कैलासाचलमें जाय ॥ १ ॥ चित्ररूप नामक कार्य विशारद एक गणश्रेष्ठको लक्ष्मीकी कार्य सिद्धिके निमित्त वैकुण्ठधाममें भेजा ॥ २ ॥ जानेके समय शिवजीने उससे कह दिया कि, हे चित्ररूप ! तुम हरिके निकट जाय जिससे वह दुःखित अपनी कान्ता समुद्रदुहिताको विरहरूपी शोकबाणसे उद्धारकरें तुम मेरे वचनानुसार उनसे इसीप्रकार कहना ॥ ३ ॥ महादेवकी इसप्रकार आज्ञा पाय चित्ररूप शीघ्रके लाभसे निकल वैष्णवोंसे व्याप्त परमधाम वैकुण्ठ लोकमें गया ॥ ४ ॥ वह स्थान अनेक दिव्य वृक्षोंसे घिरा हुआ शतशत मनोहारिणी दीर्घिकाओंसे सुशोभित हंस, कारण्डव, मोर, शुक और कोकिल इत्यादिसे युक्त ॥ ५ ॥ अनेक प्रकार विहंगमगणोंके श्रवण सुखकर कण्ठरवसे शब्दायमान और पताकावलिसे अलंकृत, तथा अटारियोंसे विम

तत्रगत्वाचित्ररूपंगणंकार्यविशारदम् ॥ प्रेषयामासवैकुंठेलक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये ॥ २ ॥ शिवउवाच ॥ चित्ररूपहरिंगत्वाब्रूहित्वंवचनान्मम ॥ यथाऽसौदुःखितांपत्नींविशोकांचकरिष्यति ॥ ३ ॥ इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथनिर्जगामत्वरान्वितः ॥ वैकुंठंपरमंस्थानंवैष्णवैश्चगणैर्वृतम् ॥ ४ ॥ नानाद्रुमगणाकीर्णवापीशतविराजितम् ॥ संजुष्टंहंसकारंडमयूरशुककोकिलैः ॥५॥ उच्चप्रासादसंयुक्तंपताकाभिरलंकृतम् ॥ नृत्यगीतकलापूर्णमंदारद्रुमसंयुतम् ॥ ६ ॥ बकुलाशोकतिलकचंपकालिविमंडितम् ॥ कूजितैर्विहगानांतुकर्णाह्लादकैर्युतम् ॥ ७ ॥ संवीक्ष्यभवनंविष्णोर्द्वास्थौप्राहप्रणम्यच ॥ जयविजयनामानौवेत्रपाणीस्थितावुभौ ॥ ८ ॥ चित्ररूपउवाच ॥ भोनिवेदयतंशीघ्रंहरयेपरमात्मने ॥ दूतंप्राप्तंहरस्याऽत्रप्रेरितंशूलपाणिना ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यजयःपरमबुद्धिमान् ॥ गत्वाहरिंप्रणम्याऽऽहकृतांजलिपुटःपुरः ॥ १० ॥ देवदेवरमाकांतकरुणाकरकेशव ॥ द्वारितिष्ठतिदूतोऽत्रशंकरस्यसमागतः ॥ ११ ॥

ण्डित नृत्य गीतादि अनेक प्रकार मनोहर कलासमूहसे परिपूर्ण उसमें नयनाञ्जन, बकुल, अशोक, तिलक, चम्पक इत्यादि वृक्षोंसे विराजित और मनोहर मन्दारतरुने दिगन्तव्यापी अपनी पुष्पगन्ध विस्तारित कर परम शोभाधारण की है ॥६॥ ७ ॥ चित्ररूपने विष्णुका नयन मनोहर सुन्दर भवन देखकर द्वारे स्थित जय विजय नामक वेत्रपाणि दोनों पुरुषोंको प्रणाम कर कहा ॥ ८ ॥ चित्ररूप बोला अहो ! तुम शीघ्र जाय परमात्मा हरिसे निवेदन करो कि, भगवान् शूलपाणिका भेजा हुआ एक जन दूत इस स्थानमें आय द्वारमें प्रतीक्षा कर रहा है ॥ ९ ॥ उसका वचन सुनकर परम बुद्धिमान् जय हरिके सन्मुख आय प्रणामपूर्वक हाथ जोड कहने लगा ॥ १० ॥ हे करुणाकर ! हे केशव ! हे देवदेव ! रमाकान्त ! भवानीपतिका चित्ररूप नाम दूतश्रेष्ठ इस स्थानमें आनकर द्वारस्थित है कार्य

गौरव नहीं जानता उसको आपके निकट लाऊं कि नहीं आज्ञा कीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ जयकी बात सुनतेही अन्तर्यामी हरिने अन्तरका कारण जानकर कहा हे जय ! तुम आयेहुए रुद्रके दूतको भवनमें लाओ ॥ १३ ॥ यह सुनकर जयने उस रमणीयमूर्त्ति शिवके सेवकको बुलाय ॥ १४॥ जनार्दनके सामने उपस्थित किया विचित्राकार चित्ररूप नारायणको दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड खडा रहा ॥ १५॥ भगवान् विहगेन्द्रवाहन नारायण उस चित्ररूपधारी विनयान्वित शिव सेवकको देखकर आश्चर्ययुक्त हुए ॥ १६ ॥ अनन्तर कमलापतिने कुछेक हँसकर चित्ररूपसे पूँछा हे विमलमते ! परिजनोंके सहित देवदेव महादेवके सर्वाङ्गीन कुशलता है ? ॥ १७ ॥ तुमको किसकारण यहां भेजा है ? महेश्वरका क्या कार्य है सो कहो अथवा यदि देवतागणोंका कोई कार्य उपस्थित हुआ है वह भी मुझसे ॥ १८॥ कहो

आज्ञापयप्रवेष्टव्योनवेतिगरुडध्वज ॥ चित्ररूपधरोऽप्यस्तिनजानेकार्यगौरवम् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्यहरिःप्राहजयंप्रज्ञातकारणः ॥ प्रवेशयाऽत्ररुद्रस्यभृत्यंसमयसंस्थितम् ॥ १३ ॥ इत्याकर्ण्यजयस्तूर्णंगत्वातंपरमाद्भुतम् ॥ एहीत्याकारयामासजयःशंकरसेवकम् ॥ १४ ॥ प्रवेशितोजयेनाऽथचित्ररूपस्तथाकृतिः ॥ प्रणम्यदंडवद्विष्णुंकृतांजलिपुटःस्थितः ॥१५॥ दृष्ट्वातंविस्मयंप्रापभगवान्गरुडध्वजः ॥ चित्ररूपधरंशंभोःसेवकंविनयान्वितम् ॥ १६॥ पप्रच्छतंस्मितंकृत्वाचित्ररूपंरमापतिः ॥ कुशलंदेवदेवस्यसकुटुंबस्यचाऽनघ ॥१७॥ कस्मात्त्वंप्रेषितोऽस्यत्रब्रूहिकार्यंहरस्यकिम् ॥ अथवादेवतानांचकिंचित्कार्यंसमुत्थितम् ॥ १८ ॥ दूतउवाच ॥ किमज्ञातंतवाऽस्तीहसंसारेगरुडध्वज ॥ वर्तमानंत्रिकालज्ञयदहंप्रब्रवीमिवै ॥ १९ ॥ प्रेषितोऽस्मिभवेनाऽत्रविज्ञप्तुंत्वांजनार्दन ॥ हरस्यवचनाद्वाक्यंप्रब्रवीमित्वयिप्रभो ॥ २० ॥ तेनोक्तमेतद्देवेशभार्यातेकमलालया ॥ तपस्तपतिकालिंदीतमसासंगमेविभो ॥२१॥ हयीरूपधरादेवीसर्वार्थसिद्धिदायिनी ॥ ध्यातुंयोग्याऽमरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः ॥२२॥ विनातयानरःकोपिसुखभागीभवेद्भुवि ॥ तांत्यक्त्वापुंडरीकाक्षप्राप्नोषिकिंसुखंहरे ॥ २३ ॥ दुर्बलोऽपिस्त्रियंपातिनिर्धनोऽपिजगत्पते ॥ विनाऽपराधंचविभोकिंत्यक्ताजगदीश्वरी ॥ २४ ॥

दूतने कहा हे अन्तर्यामिन् ! जब कि, इस संसारमें आपसे कोई विषय नहीं छिपा है तो उपस्थित विषय जो मैं कहूंगा वह क्या आपसे छिपा है ? ॥ १९ ॥ हे त्रिकालज्ञ ! तथापि भगवान् भवानीपतिने आपसे तो विषय कहनेके लिये मुझको आपकेपास भेजा है उनके वचनानुसार मैं वह आपसे निवेदन करता हूं ॥ २० ॥ उन्होंने कहा है हे विभो ! देवी कमलालया आपकी प्रेयसी भार्या है वह सर्वसिद्धिप्रदायीनी सिंधुनन्दिनी यक्ष, किन्नर, नर और देवताओंके ध्यानयोग होकर भी वडवारूप धारण कर कलिन्दकन्या यमुना और तमसाके संगमस्थलमें कठोर तपस्या करती हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ उन सर्वार्थदायिनी लोकजननीके विना इस त्रिकोलमें कौन पुरुष सुखभागी होसक्ता है ? हे पुण्डरीकाक्ष ! उनको त्याग करके आपको क्या सुख प्राप्त होता है ? ॥ २३ ॥ हे विभो ! निर्धन अथवा दुर्बल भी अपनी भार्याका

प्रतिपालन करता है आप जगत्पति होकर भी विना अपराध उन जगत्की आराधना करने योग्य भार्याका क्यों त्याग करते हैं? ॥ २४ ॥ हे जगद्गुरो ! आपको मैं क्या उपदेश दूं ? इस संसारमें जिसकी भार्याको दुःख है उसकी शत्रुओंमें अत्यन्त निन्दाहोती है. हे विभो ! उसके ऐसे जीवनको धिक्कार है ॥ २५ ॥ हे लोकनाथ ! उनको अत्यन्त दुःखित देखकर इस समय आपके शत्रुओंकी कामना पूर्ण हुई. हे देवि ! केशवने तुमको परित्याग किया है अतएव इस समय हमारे संग तुम सुखसे काल व्यतीत करो, यह कहकर शत्रु दिन रात आपकी हँसी करते हैं ॥ २६ ॥ अतएव हे सुरेश्वर ! आप रमा देवीका चित्त प्रसन्न कीजिये इस सर्वलक्षणयुक्त उपमारहित रूपवती सुशील कमलाको फिर अपनी गोदीमें बैठाइये ॥ २७ ॥ हे देव ! आप उस चारुहासिनी प्राणवल्लभाको ग्रहण कर सुखी हूजिये. भगवान् शङ्करने और भी कहा है कि, मैं इस समय यदि विरहातुर नहीं हूं तथापि जगदम्बिकाके उस विरह दुःखका स्मरण कर अत्यन्त कष्ट अनुभव करता हूं ॥ २८ ॥ हे कमललोचन !

दुःखंप्राप्नोतिसंसारेयस्यभार्याजगद्गुरो॥धिक्तस्यजीवितंलोकेनिंदितंत्वरिमंडले॥२५॥सकामारिपवस्तेऽद्यदृष्ट्वातांदुःखितांभृशम्॥ त्वांवियुक्तंचरमयाहसिष्यंतिदिवानिशम् ॥२६॥ रमांरमयदेवेशत्वदुत्संगगतांकुरु ॥ सर्वलक्षणसंपन्नांसुशीलांचसुरूपिणीम्॥२७॥सुखितोभवतांप्राप्यवल्लभांचारुहासिनीम् ॥ कांताविरहजंदुःखंस्मराम्यहमनातुरः ॥ २८ ॥ ममभार्यामृताविष्णोदक्षयज्ञेसतीयदा॥ तदाऽहंदुःसहंदुःखंभुक्तवानंबुजेक्षण॥२९॥संसारेऽस्मिन्नरःकोपिमाभून्मत्सदृशोपरः॥मनसाकरवंशोकंतस्याविरहपीडितः॥३०॥कालेनमहताप्राप्तामयागिरिसुतापुनः॥तपस्तप्त्वातिदुःसाध्यंयादग्धातुरुषाऽध्वरे ॥३१॥ हरेकिंसुखमापन्नंत्वयासंत्यज्यकामिनीम् ॥ एकाकीतिष्ठताकालंसहस्रवत्सरात्मकम् ॥ ३२ ॥ गत्वाऽऽश्वास्यमहाभागांसमानयनिजालयम् ॥ माभूत्कोऽपीहसंसारेविमुक्तोरमयातया ॥ ३३ ॥ कृत्वातुरगरूपंत्वंभजतात्कमलालयाम् ॥ उत्पाद्यपुत्रमायुष्मंस्तामानयशुचिस्मिताम् ॥ ३४ ॥

मेरी प्रियतमा भार्या सती देवीने जब दक्षके गृहमें जीवन विसर्ज्जन किया तब मैंने दुःसह दुःख अनुभव किया है ॥ २९ ॥ हे केशव ! इस संसारमें अन्य किसीको ऐसा दुःख न हो ! ! उसके विरहमें मुझको जो शोक और मनमें पीड़ा हुई थी वह मैं इस समय केवल मनहीमनमें स्मरण करता हूं किसीके निकट प्रकाश नहीं करता ॥ ३० ॥ जिसने दक्षके यज्ञमें मेरी निन्दाजनित दीप्त रोषानलमें दग्ध होकर जीवन विसर्जन किया था मैं ने अत्यन्त कठिन तपस्या कर बहुत कालोपरान्त फिर उस देवीको गिरिजारूपसे प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ हे मुरारे ! प्रणयिनी भार्याको परित्याग कर सहस्रसम्वत्सर अकेले रहकर आपको क्या सुख प्राप्त हुआ है ? ॥ ३२ ॥ आप उस सौभाग्यवती सुदती युवतीको समझाकर अपने घर लाइये. हे भगवन् ! उन भवभावन भवानीपतिने अन्तमें आपसे यह बात कह दी है कि हे कंसारे ! संसारमें कोई भी उस परमा देवी रमाके विना मुहूर्त्तमात्र भी नहीं ठहर सक्ता ॥ ३३ ॥ हे आयुष्मन् ! आप घोड़ेका रूप धारण करउस कमलाका भजन

करो अनन्तर उस शुचिस्मितां जायाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न कर उसको अपने घर लाओ ॥ ३४ ॥ व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण! भगवान् हरि उस चित्ररूपका यह वचन सुन "भगवान् भूतपतिने जो कहा है मैं वही करूंगा" यह कहकर उस दूतको शंकरके पास भेज दिया॥ ३५॥ ३६॥ दूतके चलेजानेपर फिर भगवान् मनोहर घोड़ेका रूप बनाय सकाम होकर तत्काल वैकुण्ठसे जिस स्थानमें कमला देवी घोड़ीका रूप धारणकर तपश्चरण करती थी उसी स्थानमें गये वहां आनकर देखा कि विमला देवी घोड़ीका रूप धारण कर बैठी है ॥ ३७ ॥ वह साध्वी भी अश्वरूप धारी अपने पति गोविन्दको देखतेही जानगई और फिर अन्यत्र न गई बरन् उनको देखकर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त चित्तमें उसी स्थानमें बैठी रही किन्तु मनोदुःखसे उनके दोनों विशालनेत्रोंद्वारा बराबर अश्रुधारा गिरने लगी ॥ ३८ ॥ अनन्तर

व्यासउवाच॥हरिराकर्ण्यतद्वाक्यंचित्ररूपस्यभारत ॥ तथेत्युक्त्वातुतंदूतंप्रेषयामासशंकरम् ॥३५॥ गतेदूतेथभगवान्वैकुंठात्कामसंयुतः ॥ जगामधृत्वा तत्राऽऽशुवाजिरूपंमनोहरम् ॥३६॥ यत्रसावडवारूपंकृत्वातपतिसिंधुजा ॥ विष्णुस्तंदेशमासाद्यतामपश्यद्धर्यीस्थिताम् ॥ ३७ ॥ साऽपितंवीक्ष्यगोविंदंहयरूपधरंपतिम् ॥ ज्ञात्वावीक्ष्यस्थितासाध्वीविस्मितासाश्रुलोचना ॥३८॥ तयोस्तुसंगमस्तत्रप्रवृत्तोमन्मथार्तयोः ॥ कालिंदीतमसासंगेपावनेलोकविश्रुते ॥ ३९ ॥ सगर्भासातदाजातावडवाहरिवल्लभा ॥ सुषुवेसुंदरंबालंतत्रैवसगुणोत्तरम् ॥ ४० ॥ तामाहभगवान्वाक्यंप्रहस्यसमयाश्रितम् ॥ त्यजाऽद्यवाडवंदेहंपूर्वदेहाभवाऽधुना ॥ ४१ ॥ गमिष्यावःस्ववैकुंठमावांकृत्वानिजंवपुः ॥ तिष्ठत्वत्रकुमारोऽयंत्वयाजातःसुलोचने ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ स्वदेहसंभवंपुत्रंकथंहित्वाव्रजाम्यहम् ॥ स्नेहःसुदुस्त्यजःकामंस्वात्मजस्यसुरर्षभ ॥ ४३ ॥ कागतिःस्यादमेयात्मन्बालस्याऽस्यनदीतटे ॥ अनाथस्याऽसमर्थस्यविजनेऽल्पतनोरिह ॥ ४४ ॥

इस कालिन्दी और तमसाके लोकविख्यात संगम स्थानमें उन दोनोंका परस्पर संगमहुआ ॥ ३९ ॥ तब वड़वारूपधारिणी हरिवल्लभाने गर्भवती हो यथासमय उस स्थानमें रूपसम्पन्न गुणवान् एक पुत्र किया था ॥ ४० ॥ तब भगवान्ने हँसकर उससे समयोचित वचन कहा हे प्रिये! इस समय घोड़ीका देह त्याग कर पहला देह ग्रहण कीजिये ॥ ४१ ॥ हे सुलोचने! हम दोनों अपना अपना देह धारण कर अपने घर वैकुण्ठधामको चलें और तुम्हारी उत्पन्न हुई यह सन्तान वह उसी स्थानमें वास करे ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीने कहा हे नाथ! अपनी जठरजात सन्तानको त्यागकर कैसे चलूं? हे सुरेश्वर! आत्मजात सन्तानका स्नेह अत्यन्त कठिनतासे छोडने योग्य है ॥ ४३ ॥ हे महात्मन्! यह बालक अतिशिशु और अत्यन्त क्षुद्रतनु है अभी अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें सदा

असमर्थ है इसको नदीके तटपर त्याग करनेपर जब यह अनाथ होगा तब इसकी क्या गति होगी ? ॥ ४४ ॥ हे कमललोचने ! हे स्वामिन् ! स्नेहरससे मेरा मन व्याप्त है निराश्रय शिशुसन्तानको त्यागकर चलनेमें किसप्रकार समर्थ होगा ? ॥ ४५ ॥ अनन्तर लक्ष्मी और नारायणके पूर्वकी समान दिव्यदेहधारणपूर्वक उत्तम विमानमें चढ़नेपर फिर देवता उनका स्तव करने लगे ॥ ४६ ॥ नारायणके जानेकी इच्छा करनेपर कमलाने कहा हे नाथ ! आप इस पुत्रको ग्रहण कीजिये मैं इसको त्यागकर जानेमें समर्थ नहीं होती ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! हे मधसूदन ! यह पुत्रमुझको प्राणोंकी अपेक्षा भी प्रिय है. देखो यह देहकान्तिसे सब प्रकार आपकेही समान है अतएव मैं इस पुत्रको लेकर वैकुण्ठमें जाऊंगी ॥ ४८ ॥ हरिने कहा हे प्रिये ! तुम विषाद मत करो यह बालक इस स्थानमें सुखपूर्वक वास करे मैंने इसकेही

अनाश्रयंसुतंत्यक्त्वाकथंगंतुंमनोमम ॥ समर्थंसदयंस्वामिन्भवेदंबुजलोचन ॥ ४५ ॥ दिव्यदेहौततोजातौलक्ष्मीनारायणावुभौ ॥ विमानवरसं विष्टौस्तूयमानौसुरैर्दिवि ॥ ४६ ॥ गंतुकामंपतिंप्राहकमलाकमलापतिम् ॥ गृहाणेमंसुतंनाथनाऽहंशक्ताऽस्मिहापितुम् ॥ ४७ ॥ प्राणप्रियो ऽस्तिमेपुत्रःकांत्यात्वत्सदृशःप्रभो ॥ गृहीत्वैनंगमिष्यामिवैकुंठंमधुसूदन ॥ ४८ ॥ हरिरुवाच ॥ माविषादंप्रियेकर्तुंत्वमर्हासिवरानने ॥ तिष्ठत्वयंसुखेना ऽत्ररक्षामेविहितात्विह ॥ ४९ ॥ कार्यंकिमपिवामोरुवर्ततेमहदद्भुतम् ॥ निबोधकथयाम्यद्यसुतस्याऽत्रविमोचने ॥ ५० ॥ तुर्वसुर्नामविख्यातोययातित नुजोभुवि ॥ हरिवर्मेतिपित्राऽस्यकृतंनामसुविश्रुतम् ॥ ५१ ॥ सराजापुत्रकामोऽद्यतपस्तपतिपावने ॥ तीर्थेवर्षशतंजातंतस्यवैकुर्वतस्तपः ॥ ५२ ॥ तस्या ऽर्थेनिर्मितःपुत्रोमयाऽयंकमलालये ॥ तत्रगत्वानृपंसुभ्रुप्रेरयिष्यामिसांप्रतम् ॥ ५३ ॥ तस्मैदास्याम्यहंपुत्रंपुत्रकामस्यकामिनि ॥ गृहीत्वास्वगृहंराजा प्रापयिष्यतिबालकम् ॥ ५४ ॥

रक्षाके निमित्त उपाय किया है ॥ ४९ ॥ हे वामोरु ! इस पृथ्वीमें कोई एक महत् अद्भुत कार्य है वह तुम्हारे इस पुत्रसेही होगा इसकारण मैं इसको इसी स्थानमें छोड़ता हूं इस समय तुम्हारे निकट यह विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५० ॥ तुर्वसु नामक विख्यात ययाति राजाके एक पुत्र है उसके पिताने फिर उसका नाम हरिवर्मा रक्खा वह उसी नामसे विख्यात हुआ है ॥ ५१ ॥ वह राजा इस समय पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छासे पवित्र तीर्थमें शतवर्ष हुए तपस्या करता है ॥ ५२ ॥ हे कमले ! उनके निमित्तही मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है. हे सुभ्रु ! मैं इस समय वहां जाकर उस राजाको भेजूंगा ॥ ५३ ॥ हे वरानने ! उस पुत्रकी इच्छा करने

वाले राजाको मैं यह पुत्र दूंगा वह इस बालकको लेकर फिर घर जायगा ॥ ५४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! भगवान् इसप्रकार पद्मालया प्रियाको समझायकर और बालकको उसी स्थानमें रख उत्तम विमानपर चढ़ कमलाके सहित स्वर्गको चलेगये॥ ५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥
जनमेजयने कहा हे भगवन् ! इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है, लक्ष्मी और नारायणके उस सद्योजात असहाय बालक सन्तानको निर्ज्जनवनमें त्याग करनेपर फिर उसको किसने ग्रहण किया ॥ १ ॥ अहो ! उस तत्कालके उत्पन्न हुए बालककी क्या गति हुई? सिंह व्याघ्रादि हिंसक जन्तुगणोंने क्यों उसको

व्यासउवाच ॥ इत्याश्वास्यप्रियांपद्मांकृत्वारक्षांचबालके ॥ विमानवरमारुह्यप्रययौप्रियया सह ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९॥ जनमेजयउवाच ॥ संशयोऽयंमहानत्रजातमात्रःशिशुस्तथा ॥ मुक्तःकेनगृहीतोऽसावेकाकीविजनेवने॥ १॥कागतिस्तस्यबालस्यजातासत्यवतीसुत ॥ व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्रैर्गृहीतोनाऽतिबालकः ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ लक्ष्मीनारायणौतस्मात्स्थानाच्चचलितौयदा ॥ तदैवतत्रचंपाख्यःप्राप्तोविद्याधरःकिल ॥ ३ ॥ विमानवरमारूढःकामिन्यासहितोनृप ॥ मदनालसयाकामंक्रीडमानोयदृच्छया ॥ ४ ॥ विलोक्यतंशिशुंभूमावेकाकिनमनुत्तमम्।देवपुत्रप्रतीकाशंरममाणंयथासुखम् ॥ ५ ॥ विमानात्तरसोत्तीर्यचंपकस्तंशिशुंजवात् ॥ जग्राहचमुदंप्रापनिधिंप्राप्ययथाऽधनः ॥ ६ ॥ गृहीत्वाचंपकःप्रादाद्देव्यैतंमदनोपमम् ॥ मदनालसायैतंबालंजातमात्रंमनोहरम् ॥ ७ ॥ सागृहीत्वाशिशुंप्रेम्णासरोमांचासंविस्मया ॥ मुखंचुचुंबबालस्यकृत्वातुहृदयेभृशम् ॥ ८ ॥

भक्षण न किया ? ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! लक्ष्मी और नारायणके उस स्थानसे चले जानेपर चम्पकनामक विद्याधर ॥ ३॥ मनोहर विमानपर चढ़ मदनालसानामक स्त्रीके संग क्रीड़ा करते करते इच्छानुसार वहां आनकर उपस्थित हुआ ॥ ४ ॥ देवपुत्रकी समान मनोहर कान्ति परमसुन्दर उस बालकको पृथ्वीमें अकेला सुखपूर्वक क्रीडा करते देखकर ॥ ५ ॥ चम्पकने शीघ्र विमानसे उतर उसको ग्रहणकिया निर्धन पुरुष जिसप्रकार निधि पानेसे प्रसन्न होता है मनोहर पुत्रको प्राप्त कर विद्याधर भी उसीप्रकार आनन्दित हुआ॥ ६॥ चम्पकने उस सद्योजात मनोहर कामदेवकी समान बालकको ग्रहण कर मदनालसा देवीको दिया॥ ७॥ मदनालसा बालकको

ग्रहण कर आश्चर्ययुक्त और पुलकित हुई और हृदयसे लगाय मुखचुम्बनकरने लगी ॥ ८ ॥ हे भारत ! मदनालसा बालकको पुत्रभावसे गोदीमें ले आलिङ्गन और चुम्बन कर परमप्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त दोनों बालकोंको ले परमानन्दसे विमानपर चढ़े अनन्तर तन्वङ्गी मदनालसा हँसकर पतिसे पूँछने लगी ॥ १० ॥ हे नाथ ! यह बालक किसका है इसको वनमें कौन छोड़गया है ? बोध होता है कि, देवदेव पिनाकपाणिने मुझको यह पुत्र दान किया है ॥ ११ ॥ चम्पकने कहा यह बालक देव,दानव, अथवा गन्धर्वकी सन्तान है, यह मैं उन सर्वज्ञ शचीपतिइन्द्रसे अभी जाकर पूँछूंगा ॥ १२ ॥ उनकी आज्ञा करनेपर फिर इस वनमें प्राप्त हुए को वेदमंत्रद्वारा संस्कृत कराय पुत्रत्वमें ग्रहण करूंगा. विशेष कर विना जाने हठात् कोई कार्य करना मुझको उचित नहीं है ॥ १३ ॥ चम्पक अपनी स्त्री

आलिंगितश्चुंबितश्चतयाऽसौप्रीतिपूर्वकम् ॥ उत्संगेचकृतस्तन्व्यापुत्रभावेनभारत ॥ ९ ॥ कृत्वांकेतौसमारूढौविमानंदंपतीमुदा ॥ पतिं पप्रच्छचार्वंगीप्रहस्यमदनालसा ॥ १० ॥ कस्याऽयंबालकःकांतत्यक्तःकेनचकानने ॥ पुत्रोऽयंममदेवेनदत्तरुद्रंवकपाणिना ॥ ११ ॥ चंपकउवाच ॥ प्रियेगत्वाऽद्यपृच्छेयंशक्रंसर्वज्ञमाशुवै ॥ देवोवादानवोवाऽपिगंधर्वोवाशिशुःकिल ॥ १२ ॥ तेनाऽऽज्ञप्तःकरिष्यामिपुत्रंप्राप्तंवनादमुम् ॥ अदृष्ट्वानैवकर्तव्यं कार्यंकिंचिन्मयाध्रुवम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वातांगृहीत्वातंविमानेनाऽथचंपकः ॥ ययौशक्रपुरंतूर्णंहर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥ १४ ॥ प्रणम्यपादयोःप्रीत्याचंप कस्तुशचीपतिम् ॥ निवेद्यबालकंप्राहकृतांजलिपुटःस्थितः ॥१५॥ देवदेवमयालब्धस्तीर्थेपरमपावने ॥ कालिंदीतमसासंगेबालकोयंस्मरप्रभः ॥१६॥ कस्याऽयंबालकःकांतःकथंत्यक्तःशचीपते ॥ आज्ञाचेत्तवदेवेशकुर्वेऽहंबालकंसुतम् ॥ १७ ॥ अतीवसुंदरोबालःप्रियायावल्लभःसुतः ॥ कृत्रिमस्तुसुतः प्रोक्तोधर्मशास्त्रेषुसर्वथा ॥ १८ ॥ इंद्रउवाच ॥ पुत्रोऽयंवासुदेवस्यवाजिरूपधरस्यह ॥ हैहयोऽयंमहाभागलक्ष्म्यांजातःपरंतपः ॥ १९ ॥

मदनालसासे यह कह बालकको ग्रहणपूर्वक हर्षोत्फुल्ल लोचनसे शीघ्र इन्द्रपुरमें गया ॥ १४ ॥ चम्पकने प्रीतिपूर्वक शचीपति इन्द्रके चरणोंमें प्रणामकर बालक विवरण सुनाय हाथ जोड़कर कहा ॥ १५ ॥ हे देवेन्द्र ! मैंने कालिन्दी और तमसाके संगमरूप परमपवित्र तीर्थस्थलमें इस कामदेवके समान बालकको प्राप्त किया है ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! हे शचीकान्त ! वह पुत्र किसका है ? और इसको कौन छोड़ गया ? यदि आपका विचार हो तो मैं इस बालकको पुत्ररूपमें ग्रहण करूं ॥ १७ ॥ यह बालक अत्यन्त सुन्दर और मेरी स्त्रीको अति प्रिय है धर्म्मशास्त्रमें भी कृत्रिमपुत्रकी विधि कही गई है अतएव मेरी अत्यन्त इच्छा है कि, इस बालकको वेदमंत्रद्वारा संस्कार कराय पुत्ररूपसे ग्रहणकरूं ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा हे महाभाग ! भगवान वासुदेवने अश्वरूपधारणपूर्वक

कमलाके गर्भसे उत्पन्न किया है यह हैहयनामक है ॥ १९ ॥ वह ययातितनय तुर्वसुको यह शत्रुसंहारक्षम बालक प्रदान कर भलीभाँति कार्यसाधन करेंगे ॥ २० ॥ वह धार्म्मिक राजा हरिसे प्रेरित अभी पुत्रके निमित्त उस मनोहर पवित्र तीर्थमें आवेंगे ॥ २१ ॥ जबतक वह देवदेव विष्णुसे प्रेरित हो उस स्थानमें न आवे उससे पहलेही तुम शीघ्र वहां जाय इस रमणीय मूर्ति बालकको उसी स्थानमें रख दो॥ २२॥ हे विद्याधरप्रवर! तुम अब महूर्त्तमात्र भी विलम्ब मत करो राजा बालकको न देखकर अत्यन्त दुःखित होंगे ॥ २३ ॥ अतएव हे चम्पक! तुम इस बालककी ममता त्यागकरो राजा इस पुत्रको ग्रहण करे यह बालक पृथ्वीतलमें एकवीर नामसे विख्यात होगा ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! इन्द्रके यह वचन सुनकर चम्पक पुत्रको ले तत्काल वहां जाय ॥ २५ ॥ उसको उसी स्थानमें रख विमानपर चढ़ अपने

उत्पादितोभगवताकार्यार्थेकिलबालकः ॥ दातुंनृपतयेनूनंययातितनयायच ॥ २० ॥ हरिणाप्रेरितःसोऽद्यराजापरमधार्मिकः ॥ आगमिष्यतिपुत्रार्थेतीर्थेतास्मिन्मनोरमे ॥ २१ ॥ तावत्त्वंगच्छतत्रैवगृहीत्वाबालकंशुभम् ॥ यावन्नयातिनृपतिर्ग्रहीतुंहरिणेरितः ॥२२॥ गत्वातत्रविमुंचैनंविलंबंमाकृथावर ॥ अदृष्ट्वाबालकंराजादुःखितश्चभविष्यति ॥ २३ ॥ तस्माच्चंपकमुंचैनंराजाप्राप्नोतुपुत्रकम् ॥ एकवीरेतिनाम्नाऽयंख्यातःस्यात्पृथिवीतले ॥ २४ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाचंपकस्त्वरयान्वितः ॥ जगामपुत्रमादायस्थलेतस्मिन्महीपते ॥ २५ ॥ मुमोचबालकंतत्रयत्रपूर्वंस्थितोह्यभूत् ॥ आरुह्यस्वविमानंतुययौस्वाश्रममंडलम् ॥ २६ ॥ तदैवकमलाकांतोलक्ष्म्यासहजगद्गुरुः ॥ विमानवरमारूढोजगामनृपतिंप्रति ॥ २७ ॥ दृष्टस्तदातेननृपेणविष्णुः समुत्तरंस्तत्रविमानमुख्यात् ॥ जहर्षराजाहरिदर्शनेनपपातभूमौखलुदंडवच्च॥२८॥उत्तिष्ठवत्सेतिहरिःपतंतमाश्वासयद्भूमिगतंस्वभक्तम् ॥ सोऽप्युत्सुकोवासुदेवंपुरःस्थंतुष्टावभक्त्यामुखरीकृतोऽथ ॥ २९ ॥ देवाधिदेवाऽखिललोकनाथकृपानिधेलोकगुरोरमेश ॥ मंदस्यमेतेकिलदर्शनंयत्सुदुर्लभंयोगिजनैरलभ्यम् ॥ ३० ॥

वरको चलागया ॥ २६ ॥ उसी समय त्रैलोक्यनाथ कमलाकान्त प्रभासे कान्तिमान् विमानपर चढ़ राजाके निकट गये ॥ २७ ॥ भगवान् विमानसे उतरतेही थे उसी समय राजा तुर्वसु उनको देखते ही प्रसन्न हुए और पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत प्रणाम किया ॥ २८ ॥ हे वत्स! उठो मनकी मलीनता दूर करो यह कहकर नारायणने उस पृथ्वीमें पड़ेहुए अपने भक्त राजाको समझाया राजा भी उत्सुक और भक्तियुक्तचित्तसे सामने स्थित वासुदेवकी स्तुति करनेके लिये वचन कहने लगा ॥ २९॥ हे रमेश! आप देवताओंके अधिदेवता, सम्पूर्णलोकमण्डलके नाथ करुणाके समुद्र और सब मनुष्योंको उपदेश देनेवाले हैं हे प्रभो! आपका दर्शन योगिगणोंकोभी अत्यन्त दुर्ले

स्थित हुए राजाने पुरीमें प्राप्त हो आएहुए सम्पूर्ण मनुष्योंको स्नेहदृष्टिसे देख और मधुरसम्भाषणद्वारा समझाया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर पौरगणोंसे पूजित हो पुत्रके सहित नगरीमें प्रवेश किया राजा जब राजमार्गमें जानेलगे तव पौरगणोंने उनके ऊपर पुष्प और लाज (खीलैं) बरसाये ॥ ४७ ॥ अनन्तर राजाने दोनों हाथोंसे पुत्रका ग्रहण कर मंत्रीगणोंके सहित अपनी समृद्धिसम्पन्न गृहमें प्रवेश किया तदनन्तर तुर्वसुने उस सद्यःप्रसूत कामदेवकी समान मनोहर पुत्रको अपनी महिषीके हाथोंमें समर्पण किया ॥ ४८ ॥ मनोरमा राजपत्नी अभिनव सन्तानको ग्रहण कर राजासे पूंछने लगी हे राजन् ! यह मन्मथमूर्ति सुजात पुत्र कहां पाया ॥ ४९ ॥ किसने आपको यह प्रदान किया ? हे नाथ ! आप शीघ्र कहिये यह बालक मेरा मन हरण करता है तब राजाने आनन्दित होकर कहा हे प्रिये ! कृपानिधि कमलापतिने मुझको यह पुत्र प्रदान किया है ॥ ५० ॥ हे चपलनयने ! यह सन्तान नारायणके अंश और कमलाके गर्भसे उत्पन्न है हे देवि ! इस सन्तानमें बल वीर्य धैर्य गम्भीरता

सपूजितःपौरजनेनराजाविवेशपुत्रेणयुतोनगर्याम् ॥ मार्गेषुलाजैःकुसुमैःसमंताद्विकीर्यमाणोनृपतिर्जगाम ॥ ४७ ॥ गृहंसमृद्धंसचिवैःसमेतः सुतंसमादायमुदाकराभ्याम् ॥ राज्ञ्यैददौचाऽथसुतंमनोज्ञंसद्यःप्रसूतंचमनोभवाभम् ॥ ४८ ॥ राज्ञीगृहीत्वाऽभिनवंतनूजंपप्रच्छराजानमनिंदितासा ॥ राजन्कुतश्चैषसुतःसुजन्माप्राप्तस्त्वयामन्मथतुल्यरूपः ॥ ४९ ॥ केनैषदत्तःकथयाऽऽशुकांतचेतोमदीयंप्रहृतंसुतेन ॥ नृपस्तदोवाचमुदान्वितोऽसौप्रियेरमेशेनसुतोहिमह्यम् ॥ ५० ॥ लोलाक्षिदत्तःकमलासमुत्थोजनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः ॥ सातंगृहीत्वामुदमापराज्ञीराजाचकारोत्सवमद्भुतंच ॥ ५१ ॥ ददौचदानंकिलयाचकेभ्योगीतानिवाद्यानिबहूनिनेदुः ॥ कृत्वोत्सवंभूपतिरात्मजस्यनामैकवीरेतिचकारविश्रुतम् ॥ ५२ ॥ सुखंचसंप्राप्यमुदान्वितोऽसौनंनंददेवाधिपतुल्यवीर्यः ॥ पुत्रंहरेरूपगुणानुरूपंसंप्राप्यवंशस्यऋणाच्चमुक्तः ॥ ५३ ॥ इतिसकलसुराणामीश्वरेणाऽर्पितंतंसकलगुणगणाढ्यंपुत्रमासाद्यराजा ॥ विविधसुखविनोदैर्भार्ययासेव्यमानोव्यहरतनिजगेहेशक्रतुल्यप्रतापः ॥ ५४ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ छ ॥

इत्यादि समस्त गुण विद्यमान हैं इसमें सन्देह नहीं तव महिषीने उस बालक सन्तानको ग्रहण कर अपरिमेय आनन्द प्राप्त किया अनन्तर राजा तुर्वसुने राजभवनमें अद्भुत उत्सव आरम्भ किया ॥ ५१ ॥ और याचकगणोंको दान किया राजभवनमें अनेक प्रकारके गीत और बाजोंकी ध्वनि होने लगी भूपति तुर्वसुने पुत्र होनेमें उत्सव कर उसका नाम एकवीर रख दिया ॥ ५२ ॥ इन्द्रकी समान वीर्यवान् वह नरपति भगवान् हरिकी समानरूप और गुणयुक्त पुत्रको प्राप्त हो सुखी हुए और वंशके ऋणदायसे छूटकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! इन्द्रकी समान पराक्रमशाली वह राजा इसप्रकार समस्त देवताओंके अधिपति नारायणके दिये सर्वगुणालंकृत उस पुत्रको पाय प्रियतमासे सुखसेवित और उसके सहित अनेक विनोद और राजभोगमें निरन्तर निरत रह अपने घर विहार करने लगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! उसी अवसरमें नरपति तुर्वसुने पुत्रका जातकर्मादि संस्कार कराया क्रमानुसार बालक लालित पालित हो दिन दिन बढ़नेलगा ॥ १ ॥ राजा उस पुत्रजनित संसारके सुखको प्राप्त हो " इस उदारात्मा पुत्रद्वारा मैं पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋणसे छूटा " मनमें इसप्रकार विचारने लगा ॥ २ ॥ अनन्तर छठे मासमें विधिपूर्वक उसका अन्नप्राशन और तीसरे वर्षमें सम्यक्प्रकार चूडाकरणादि क्रिया सम्पादन की ॥ ३ ॥ उन समस्त क्रियाओंमें राजाने ब्राह्मण गणोंको अनेक द्रव्य, धन और गोदान तथा अन्य याचकगणोंको भी अनेकप्रकारके द्रव्य देकर सन्तुष्ट किया ॥ ४ ॥ ग्यारवें वर्षमें उसका मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) इत्यादि उपनयनकर्म साधनकर धनुर्वेद अध्ययनमें उसको नियुक्त किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर पुत्रको वेदाध्ययनमें पारदर्शी और राजधर्ममें विशारद हुआ देख राजाने

॥ व्यासउवाच ॥ जातकर्मादिसंस्कारांश्चकारनृपतिस्तदा ॥ दिनेदिनेजगामाशुवृद्धिंबालःसुलालितः ॥ १ ॥ नृपःसंसारजंप्राप्यसुखंपुत्रसमुद्भवम् ॥ ऋण त्रयविमोक्षंचमेनेतेनमहात्मना ॥ २ ॥ षष्ठेन्नप्राशनंतस्यकृत्वामासियथाविधि ॥ तृतीयेऽथतथावर्षेचूडाकरणमुत्तमम् ॥ ३ ॥ चकारब्राह्मणान्द्रव्यैःसंपू ज्यविविधैर्धनैः ॥ गोभिश्चविविधैर्दानैर्याचकानितरानपि ॥ ४ ॥ वर्षेचैकादशेतस्यमौंजीबंधनकर्मवै ॥ कारयित्वाधनुर्वेदमध्यापयतपार्थिवः ॥ ५ ॥ अधीतवेदंपुत्रंतंराजधर्मविशारदम् ॥ दृष्ट्वातस्याऽभिषेकायमतिंचक्रेजनाधिपः ॥ ६ ॥ पुष्यार्कयोगसंयुक्तेदिवसेनृपसत्तमः ॥ कारयामाससंभारान भिषेकार्थमादरात् ॥ ७ ॥ द्विजानाहूयवेदज्ञान्सर्वशास्त्रविचक्षणान् ॥ अभिषेकंचकाराऽसौविधिवत्स्वात्मजस्यह ॥ ८ ॥ जलमानीयती र्थेभ्यःसागरेभ्यश्चपार्थिवः ॥ स्वयंचकारविधिवदभिषेकंशुभेदिने ॥ ९ ॥ धनंदत्त्वाऽथविप्रेभ्योराज्यंपुत्रेनिवेश्यसः ॥ जगामवनमेवाऽऽशुस्व र्गकामःसभूपतिः ॥ १० ॥ एकवीरंनृपंकृत्वासंमान्यसचिवानथ ॥ भार्ययासहभूपालःप्रविवेशवनंवशी ॥ ११ ॥ मैनाकशिखरेराजाकृत्वातार्तीयमा श्रमम् ॥ नित्यंपत्रफलाहारश्चिंतयामासपार्वतीम् ॥ १२ ॥ एवंसनृपतिःकृत्वादिष्टांतेसहभार्यया ॥ मृतोऽसौवासवंलोकंगतःपुण्येनकर्मणा ॥ १३ ॥

उसका अभिषेक करनेकी इच्छा की ॥ ६ ॥ नृपतिसत्तम तुर्वसुने आदरपूर्वक पुष्य और अर्कयोगयुक्त दिनमें अभिषेकके निमित्त सम्पूर्ण सामग्री मंगाई ॥ ॥ ७ ॥ वह सर्वशास्त्रोंमें निपुण वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय यथाविधि पुत्रकी अभिषेकक्रियामें प्रवृत्त हुए ॥ ८ ॥ तीर्थ और सागरसे जल मँगाय शुभ दिनमें राजाने स्वयंही पुत्रकी अभिषेकक्रिया सम्पादनकी ॥ ९ ॥ अभिषेकके समाप्त होनेपर शीघ्रही वह राजा ब्राह्मणगणोंको भूरि भूरि धनदानपूर्वक पुत्रको राज्यभार दे स्वर्गप्राप्ती की इच्छासे वनको चलेगये ॥ १० ॥ नृपति तुर्वसुने एकवीरको राजासनपर बैठाय मंत्रीगणोंका सन्मान कर संयतेन्द्रिय हो भार्याके सहित वनमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ अनन्तर वह मैनाक पर्वतके शिखरमें तृतीयाश्रम (वानप्रस्थधर्म) अवलम्बनपूर्वक प्रतिदिन पत्ते और फलादि आहार कर पार्वतीका ध्यान करने लगे ॥ १२ ॥ इसप्रकार उनके प्रारब्धकर्मका

अवसान होनेपर वह भार्याके सहित मृत्युको प्राप्त हो पुण्यकर्मद्वारा इन्द्रलोकको गये ॥ १३ ॥ राजाको स्वर्ग गया सुनकर एकवीर हैहयने उनकी वेदनिर्दिष्ट और्ध्व देहिक क्रिया सम्पादनकी ॥ १४ ॥ राजपुत्र बुद्धिमान् हैहय पिताकी सम्पूर्ण उत्तर क्रियाओंका अनुष्ठान कर पिताका दिया निष्कण्टक राज्य पालन करने लगा ॥ १५ ॥ धर्मात्मा राजा एकवीर राज्य प्राप्त होनेके अनन्तर मंत्रीगणोंके विचारसे अनेक उत्तम २भोग्य द्रव्योंके सम्भोग करने लगा ॥ १६॥ वह प्रतापवान् नरपति एकदिन घोडेपर चढ मन्त्रीके पुत्रोंके सहित गंगाके तटपर गया ॥ १७ ॥ वहां विचरणकरते करते उसने देखा कि कोकिलाओंकी मधुरध्वनिसे युक्त भौरोंकी मनोहर गुंजारसे झांकारित फलपुष्पोंसे शोभित वृक्षमाला मनोहर शोभा धारण कर रहीहै ॥ १८ ॥ समीपही मुनियोंके दिव्य आश्रमोंमें वेदकी ध्वनि होरही है आकाशमें

इंद्रलोकंपिताप्राप्तइतिश्रुत्वाऽथहैहयः॥चकारवेदनिर्दिष्टंकर्मचैवौर्ध्वदेहिकम् ॥१४ ॥ कृत्वोत्तराःक्रियाःसर्वाःपितुःपार्थिवनंदनः ॥ राज्यंचकारमेधावीपि त्रादत्तंसुसंमतम् ॥१५॥ एकवीरोऽथधर्मज्ञःप्राप्यराज्यमनुत्तमम् ॥ बुभुजेविविधान्भोगान्सचिवैश्वसुमानितः ॥ १६ ॥ एकस्मिन्दिवसेराजामंत्रिपुत्रैःसम न्वितः ॥ जगामजाह्नवीतीरेहयारूढःप्रतापवान् ॥ १७ ॥ संपश्यन्पादपान्रम्यान्कोकिलालापसंयुतान् ॥ पुष्पितान्फलसंयुक्तान्षट्पदालिविराजिता न् ॥ १८ ॥ मुनीनामाश्रमान्दिव्यान्वेदध्वनिनिनादितान् ॥ होमधूमावृताकाशान्मृगशावसमावृतान् ॥ १९ ॥ केदाराञ्छालिसंपक्वान्गोपिकाभिःसु रक्षितान् ॥ प्रफुल्लपंकजारामान्निकुंजांश्चमनोरमान् ॥ २० ॥ प्रेक्षमाणःप्रियालांस्तुचंपकान्पनसद्रुमान् ॥ बकुलांस्तिलकान्नीपान्मंदारांश्चप्रफुल्लितान् ॥ २१ ॥ शालांस्तालतमालांश्चजंबुचूतकदंबकान् ॥ सगच्छञ्जाह्नवीतोयेप्रफुल्लंशतपत्रकम् ॥ २२ ॥ पंकजंचाऽतिगंधाढ्यमपश्यदवनीपतिः ॥ दक्षि णेजलजस्याऽथपार्श्वेकमललोचनाम् ॥ २३ ॥ कनकाभांसुकेशींचकंबुग्रीवांकृशोदरीम्॥बिंबोष्ठींसुंदरींकिंचित्समुद्यत्सुपयोधराम् ॥ २४ ॥

होमका धुआं छा रहा है मृगोंके बच्चे फिर रहे हैं ॥ १९ ॥ क्षेत्र क्यारियोंमें पके धान खडे हैं गोपी उनकी रक्षा करती हैं खिले कमलवाले सरोवरोंयुक्त बगीचे मनोहर निकुंजोंमें॥ २० ॥देखनेवालोंका मन हर जाता है प्रियाल, चम्पक, पनस,बकुल,तिलक, नीप, फूलेमंदार ॥ २१ ॥ शाल, ताल, तमाल, जामन, आम, कदम्ब देखता हुआ गंगाजलमें सौ पखुरीवाले फूले कमलको ॥ २२ ॥ जिसमें बडी गंध आती थी राजाने देखा और इस कमलके दक्षिणपार्श्वमें एक परम मनोहर कमललोचना ॥ २३ ॥ कन्याको देखा उसके अङ्गकी प्रभा सुवर्णकी समान सुशोभित केशकलाप आकुंचित और दीर्घ ग्रीवा कम्बुकी समान, उदर कृश ओष्ठ बिम्बके फलकी समान

मनोहर, सम्पूर्ण अङ्ग सौन्दर्यसम्पन्न और सुगठित स्तन कुछेक उठे हुए ॥ २४ ॥ नासिका मनोहर और सर्वाङ्ग अत्यन्त सुन्दर उस मुकुलितयौवना कामिनीको अपनी सखियोंके विरहजनित दुःखसे कातर ॥ २५ ॥ और विह्वल हुई निर्जनमें कुररीकी समान रोदन करते देखकर राजाने उससे शोकका कारण पूंछकर कहा ॥ ॥ २६ ॥ हे सुनासिके ! तुम कौन हो हे सुमुखी ! तुम किसकी पुत्री हो गंधर्वी वा देवकन्या कौन हो जो अकेली रोती हो ॥ २७ ॥ हे कोकिलकण्ठि ! तुम बाला हो तुमको अकेला किसने छोड़ दिया है हे प्रियदर्शने ! इस समय तुम्हारे पति अथवा पिता कहां चलेगये तुम मुझसे कहो ॥ २८ ॥ हे कुटिलनयने ! तुमको क्या दुःख है इस समय वह मुझसे कहो हे कृशोदरि ! मैं भली प्रकार तुम्हारा दुःख नष्ट करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ हे चारुसर्वाङ्गि ! मेरे राज्यमें कोई किसीको पीड़ा नहीं देता हे सुदर्शने ! मेरे राज्यमें चौरभय वा राक्षसभय कुछ भी नहीं है ॥ ३० ॥ मेरे शासनसमयमें पृथ्वीपर उत्पात और सिंहभय अथवा व्याघ्रभय

सुनासांचारुसर्वांगीमपश्यत्कन्यकांनृपः ॥ रुदतींतांसखींत्यक्त्वाविह्वलांदुःखपीडिताम् ॥२५॥ साश्रुनेत्रांक्रंदमानांविजनेकुररीमिव॥संवीक्ष्यराजापप्रच्छ कन्यकांशोककारणम् ॥२६॥ सुनसेब्रूहिकाऽसित्वंकस्यपुत्रीशुभानने ॥ गंधर्वीदेवकन्याऽथकथंरोदिषिसुंदरि॥२७॥कथमेकाकिनीबालेत्यक्ताकेनपिक स्वरे ॥ पतिस्तेक्वगतःक्वांतेपितावाब्रूहिसांप्रतम् ॥ २८ ॥ किंतेदुःखमरालभ्रुकथयाऽद्यममांतिके ॥ करोमिदुःखनाशंतेसर्वथैवकृशोदरि ॥ २९ ॥ नरा ज्येममतन्वंगिपीडांकोऽपिकरोत्यलम् ॥ नभयंचौरजंकां तेनराक्षसभयंतथा ॥ ३० ॥ मयिशासतिभूपालेनोत्पातादारुणाभुवि ॥ भयंनव्याघ्रसिंहे भ्योनभयंकस्यचिद्भवेत् ॥ ३१ ॥ वदवामोरुकस्मात्त्वंविलापंजाह्नवीतटे ॥ करोषित्राणहीनाऽत्रकिंतेदुःखंवदस्वमे ॥ ३२ ॥ हन्म्यहंदुः खमत्युग्रंप्राणिनांपृथिवीतले ॥ दैवंचमानुषंकांतेव्रतमेतन्ममाऽद्भुतम् ॥ ३३ ॥ विशाललोचनेब्रूहिकरोमितवचिंतितम् ॥ इत्युक्तेवचनेराज्ञाश्रु त्वोवाचमृदुस्वना ॥ ३४ ॥ शृणुराजेंद्रवक्ष्यामिममशोकस्यकारणम् ॥ विपत्तिरहितःप्राणीकथंरुदतिभूपते ॥ ३५ ॥ प्रब्रवीमिमहाबाहोयदर्थंरुदतीत्वह म् ॥ तवराज्यादन्यदेशेराजापरमधार्मिकः ॥ ३६ ॥ रम्योनाममहाराजःसंतानरहितोभृशम् ॥ तस्यभार्यासुविख्यातारुक्मरेखेतिनामतः ॥ ३७॥

इत्यादि किसी प्रकारके भयकी सम्भावना नहीं ॥ ३१ ॥ हे वामोरु ! तुम गंगाके निर्जन तटपर रक्षकविहीन अकेली विलापकरती हो तुमको क्या दुःख है वह मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ हे विमले ! मैं पृथ्वीमें प्राणीगणोंके देव अथवा मनुष्यजात दोनोंप्रकारके दुःख अत्यन्त उग्रतर होनेपरभी दूर करसक्ताहूं यही मेरा प्रधान व्रत है ॥ ॥ ३३ ॥ हे आयतनेत्रे ! तुम्हारे मनमें क्या इच्छा है कहो मैं इस समय वही करूंगा राजाके इस प्रकार कहनेपर फिर वह मनोरमा कामिनी मृदुस्वरसे कहने लगी ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! मैं शोकका कारण कहती हूं सुनो हे भूपते ! प्राणीगणोंको विपत्ति उपस्थित न होनेसे वह व्यर्थ क्यों रोवेंगे ॥ ३५ ॥ हे महाबाहो ! मैं जिस कारण रोदन करतीहूं वह इस समय कहतीहूं हेमहाराज ! आपके देशसे अन्यतर देशमें ॥ ३६ ॥ रम्यनामक परमधार्मिक एक राजा प्रथम निःसन्तान थे रुक्मरेखा

नामक उनकी परमसुन्दरी भार्य्या थी ॥ ३७ ॥ वह चतुर साध्वी और सर्व्वसुलक्षणयुक्त थी किन्तु वह पुत्रहीन होनेसे दुःखसे दुःखित हो अपने पति रभ्यराजाके प्रति कातरस्वरसे कहनेलगी ॥ ३८ ॥ हे नाथ ! मैं पुत्रहीन हूं इस कारण मेरे मनमें कुछभी सुख नहीं है पृथ्वीमें मेरा जीवन वृथा है फिर इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ३९ ॥ राजमहिषीके दुःखित चित्तसे इस प्रकार कहनेपर राजाने वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय विधिपूर्वक उत्तमयज्ञ आरम्भ किया ॥ ४० ॥ उन्होंने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे शास्त्रमें कहेहुए अनेकानेक द्रव्य दिये जब अनेकानेक घृतराशिकी आहुति दी जानेलगी तब उस प्रदीप्त अग्निसे सर्वाङ्गसुन्दरी सर्वसुलक्षण युक्त एक कन्या प्रगट हुई ॥ ४१ ॥ उस कन्याके दातोंकी पंक्ति अत्यन्त मनोहर दोनों भौंये अतिशोभायमान मुख पूर्णचन्द्रमाकी समान बिम्बासे होठ ॥ ४२ ॥

सुरूपाचतुरासाध्वीसर्वलक्षणसंयुता ॥ अपुत्रादुःखिताकांतमित्युवाचपुनःपुनः ॥ ३८ ॥ किंजीवितेनमेनाथधिग्वृथाजीवितंमम॥वंध्यायाःसुखहीनायाह्य पुत्रायाधरातले ॥ ३९ ॥ इत्येवंभार्ययाभूपःप्रेरितोमखमुत्तमम् ॥ चकारब्राह्मणांस्तज्ज्ञानाहूयविधिवत्तदा ॥ ४० ॥ पुत्रकामोधनंभूरिददावथयथोदि तम् ॥ हूयमानेघृतेऽत्यर्थंपावकादतिसुप्रभात् ॥ ४१ ॥ आविर्बभूवचार्वंगीकन्यकाशुभलक्षणा ॥ बिंबोष्ठीसुदतीसुभ्रूःपूर्णचंद्रनिभानना ॥ ४२ ॥ कन काभासुकेशांतारक्तपाणितलामृदुः ॥ सुरक्तनयनातन्वीरक्तपादतलाभृशम् ॥ ४३ ॥ हुताशनात्समुद्भूताहोत्रासास्वीकृतातदा ॥ होताप्रोवाचराजानंगृ हीत्वातांसुमध्यमाम् ॥ ४४ ॥ राजन्पुत्रींगृहाणेमांसर्वलक्षणसंयुताम् ॥ एकावलीवसंभूताहूयमानाद्धुताशनात् ॥ ४५ ॥ नाम्नाचैकावलीलोकेख्याता पुत्रीभविष्यति ॥ सुखितोभवभूपालपुत्र्यापुत्रसमानया ॥४६॥ संतोषंकुरुराजेंद्रदत्तादेवेनविष्णुना॥होतुर्वाक्यंनृपःश्रुत्वादृष्ट्वातांकन्यकांशुभाम् ॥४७॥

अंगप्रभा कनककी समान मनोहर, केश सूक्ष्म और घुंघराले, कर और चरण लाल वर्ण, दोनों नेत्र लालकमलकी समान और सम्पूर्ण अङ्गप्रत्यङ्ग अत्यन्त कोमल थे ॥ ४३ ॥ अग्निसे उत्पन्न होनेपर होताने उस सुमध्यमा क्षीणाङ्गी कन्याको दोनों हाथोंमें लेकर राजासे कहा ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! इस सर्वसुलक्षण कन्याको ग्रहण करो होमके समय अग्निसे एकावली मालाकी समान उत्पन्न हुई है ॥ ४५ ॥ अतएव यह कन्या पृथ्वीमें एकावलीनामसे विख्यात होगी. हे पृथ्वीपालक ! इस पुत्रकी समान सुलक्षण कन्याको ग्रहणकर आप सुखी हूजिये ॥४६॥ हे राजेन्द्र ! देवदेव विष्णुने आपको यह कन्यारत्न दिया है इससे आप सन्तोष प्राप्त

कीजिये राजाने होताका वचन सुन इस शोभायमान कन्याको देखकर ॥ ४७ ॥ प्रसन्नचित्त हो उनके हाथसे उस मनोहर कन्याको लेलिया अनन्तर उस वरानना कन्याको लेकर अपनी स्त्री देवी रुक्मरेखाके निकट जाकर कहा ॥ ४८ ॥ हेसुभगे ! इस कन्याको ग्रहणकर राज्ञी रुक्मरेखा उस कमलके समान नेत्रोंवाली मनोरम कन्याको ले ॥ ४९ ॥ पुत्रप्राप्तिकी समान सुख अनुभव करनेलगी अनन्तर राजाने कन्याके जातकर्मादि मंगलकारी सम्पूर्ण कर्म्म ॥ ५० ॥ औरस पुत्रजन्मके समान किये राजा अपना यज्ञ समाप्त कर ब्राह्मणगणोंको अनेक दक्षिणा ॥ ५१ ॥ प्रदानपूर्वक विदाकर अत्यन्त आनन्दित हुए वह असितापाङ्गी कन्या पुत्रवत् वृद्धिको प्राप्त हो लालित और पालित हुई दिनदिन बढ़नेलगी॥ ५२॥ राजाकी स्त्री रुक्मरेखा उस कन्याको प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्नहुई, उस दिनही पुत्रज

जग्राहपरमप्रीतोहोत्रादत्तांसुसंमताम् ॥ गृहीत्वानृपतिस्तांतुददौपत्न्यैवराननाम् ॥ ४८ ॥ आभाष्यरुक्मरेखायैगृहाणसुभगेसुताम् ॥ सा तांकमलपत्राक्षींप्राप्यकन्यांमनोरमाम् ॥ ४९ ॥ जहर्षमुदिताराज्ञीपुत्रंप्राप्ययथासुखम् ॥ चकारमंगलंकर्मजातकर्मादिकंशुभम् ॥ ५० ॥ पुत्रजन्मसमुत्थंयत्तत्सर्वंविधिवत्ततः ॥ समाप्यचमखंराजाद्विजेभ्योदक्षिणांशुभाम् ॥ ५१ ॥ दत्वाविसृज्यविप्रेंद्रान्मुदंप्रापमहीपतिः ॥ दिनेदिनेऽसितापांगीपुत्रवृद्ध्याभृशंबभौ ॥ ५२ ॥ मुदंचपरमांप्रापनृपभार्यासुतान्विता ॥ उत्सवस्तद्दिनेतस्यप्रवृत्तःसुतजन्मजः ॥५३॥ पुत्रीपुत्रसमाऽत्यर्थंबभूववल्लभाकिल ॥ राज्ञोमंत्रिसुताचाऽहंसुबुद्धेमन्मथाकृते ॥ ५४ ॥ यशोवतीचमेनामसमानंवयआवयोः ॥ वयस्याऽहंकृताराज्ञाक्रीडनायतयासह ॥ ५५ ॥ सदासहचरीजाताप्रेमयुक्तादिवानिशम् ॥ एकावलीगंधवंतियत्रपद्मानिपश्यति ॥ ५६ ॥ तत्रसारमतेवालानान्यत्रसुखमाप्नुयात् ॥ सुदूरेजाह्नवीतीरेभवंतिकमलान्यपि ॥ ५७ ॥

न्मोत्सवकी समान उत्सव आरम्भ हुआ ॥ ५३ ॥ वह कन्या पुत्रकी समान अत्यन्तप्रिय हो बढ़नेलगी और सबकी प्रिय हुई हेमन्मथमूर्त्ते ! आप राजा और अत्यन्त बुद्धिमान् है मैं आपके समीप सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करूंगी श्रवण कीजिये मैं उसी राजाके मंत्रीकी कन्या हूं ॥ ५४ ॥ और मेरा नाम यशोवती है वह एकावली और मैं समानरूप और समान वयसवाली थी, अत एव राजाने क्रीड़ाके निमित्त मुझको उसकी वयस्या सखी बनादिया था ॥ ५५ ॥ मैं दिनरात उसकी प्रियसखी हो समय व्यतीत करती थी एकावली जिस स्थानमें गंधयुक्त कमलको देखती ॥ ५६ ॥ उसी स्थानमें रहना और क्रीडा करना अच्छा समझती अन्य कहीं उसको सुख प्राप्त

नहीं होता दूरस्थित गंगाके तटपर अनेक कमल उत्पन्न होते हैं॥५७॥एकावली मेरे और अन्यान्य सखियोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक वहां जाती मैंने एकदिन राजासे कहा हेराजन्! आपकी एकावली प्रतिदिन ॥ ५८ ॥ दूर निर्ज्जनवनमें कमलसरोवर देखनेको जाती है अनन्तर राजानें उसको निषेधकिया और अपने घरमें जलाशय बनाय उसमें अनेक कमलिनी लाय आरोपित की ॥ ५९ ॥ क्रमानुसार जब उसमें सम्पूर्ण कमल खिले तब सब भ्रमरगण आय उसमें मधुपान करने लगे तथापि वह कमलप्राप्त होनेकी इच्छासे बाहर जानेलगी ॥ ६० ॥ तब राजा उसके संग सम्पूर्ण शस्त्रधारी रक्षकगण भेजनेलगे वह कृशाङ्गी नृपनन्दिनी रक्षकगणसे रक्षित हो और अन्यान्य सखियोंके सहित ॥ ६१ ॥ क्रीड़ाके निमित्त गंगाके जलमें प्रतिदिन आती फिर क्रीड़ा समाप्त होनेपर घरको जाती ॥ ६२ ॥

रममाणातत्रयातामत्समेतासखीयुता ॥ मयानिवेदितंराजन्पुत्रीतेकमलाकरान् ॥ ५८ ॥ प्रेक्षमाणाऽतिदूरेसाप्रयातिनिर्जनेवने ॥ निषेधिताऽथपित्राऽसौगृहेकृत्वाजलाशयान् ॥ ५९ ॥ कमलान्वापयित्वाऽथपुष्पितान्भ्रमरावृतान् ॥ तथापिनिर्ययौबालाकमलासक्तचेतना ॥ ६० ॥ तदाराज्ञारक्षपालाःप्रेरिताःशस्त्रपाणयः ॥ एवंरक्षायुतातन्वीमत्समेतासखीयुतां ॥ ६१ ॥ क्रीडार्थंजान्हवीतोयेनित्यमायातियातिच ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ छ ॥ यशोवत्युवाच ॥ प्रातरुत्थायतन्वंगीचलिताचसखीयुता ॥ चामरैर्वीज्यमानासारक्षितावहुरक्षिभिः ॥ १ ॥ सायुधैश्चाऽतिसन्नद्धैःसहितावरवर्णिनी ॥ क्रीडार्थमत्रराजेंद्रसंप्राप्तानलिनींशुभाम् ॥ २ ॥ अहमप्यनयासार्धंगंगातीरेसमागता ॥ अप्सरोभिःसमेताचकमलैःक्रीडमानया ॥ ३ ॥ एकावलीतथाचाऽहंजातेक्रीडापरेयदा ॥ सहसैवतदायातोदानवोबलसंयुतः ॥ ४ ॥ कालकेतुरितिख्यातोराक्षसैर्वहुभिर्युतः ॥ परिघासिगदाचापवाणतोमरपाणिभिः ॥५॥ दृष्ट्वैकावलीतेनरूपयौवनशालिनी ॥ द्वितीयाकामपत्नीवक्रीडमानासुपंकजैः ॥६॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ यशोवतीने कहा हे राजेन्द्र ! एकदिन एकावली प्रातःकालके समय उठकर सखियोंके सहित गंगातटको चली सखियें उसको चँवर व्यजन करनेलगीं ॥ १ ॥ रक्षकगण वस्त्र पहन भांतिभांति अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर उसके संग संग गये क्रमानुसार वह क्रीड़ा करनेके लिये इस स्थानमें शोभायमान कमलोंके निकट उपस्थित हुई॥ २ ॥ मैंभी उसके संग कमल लेकर खेलतेखेलते गंगातटपर आई और दोनों जनी अप्सराओंके सहित कमल लेकर क्रीड़ा करनेलगीं ॥ ३ ॥ जब हम दोनों क्रीड़ामें अत्यन्त आसक्त हुई तब कालकेतुनामक विख्यात एक बलवान् दानव परिघ असि गदा चाप बाण और तोमर ॥ ४ ॥ इत्यादि अस्त्रधारी अनेकराक्षसोंके सहित सहसा उस स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ ॥ ५ ॥ एकावली उत्तमउत्तम कमल लेकर क्रीड़ा कररहीथी

इसी समयमें कालकेतुने उसको इसप्रकार रूपयौवनसम्पन्न कामदेवकी रतिके समान देखा ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मैंने तब एकावलीसे कहा देखो यह एक कौन दैत्य आनकर उपस्थित हुआ हे अम्बुजेक्षणे ! इस समय चलो हम रक्षकगणोंके मध्यस्थलमें प्रवेश करैं ॥ ७ ॥ हे नृपनन्दन ! तब सखी और मैं दोनों इस प्रकार परामर्श कर भयसे तत्काल अस्त्रधारी रक्षकगणोंके मध्यभागमें गईं ॥ ८ ॥ कालकेतु उस मनोमोहिनी तरुणी कामिनीको देखतेही कामबाणसे पीड़ित हो गुर्वी गदा ग्रहण पूर्वक शीघ्रतासहित हमारे सामने आनकर उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ और रक्षकगणोंको अलग करके उस कमलकी समान नेत्रोंवाली कृशोदरी सखीको पकड़लिया तब वह बाला भयसे कांपतेकांपते रोनेलगी ॥ १० ॥ उसको देखकर मैंने उस दानवसे कहा इसे छोड़ मुझको पकड़ वह कामार्त्त दानव मुझको छोड़ सखीको

मयोक्तैकावलीराजन्कोऽयंदैत्यःसमागतः ॥ गच्छावोरक्षपालानांमध्येपंकजलोचने ॥ ७ ॥ विमृश्यैवंसखीचाऽहंत्वरयैवगतेभयात् ॥ मध्येवैसैनिकानांतुसायुधानांनृपात्मज ॥ ८ ॥ कालकेतुस्तुतांदृष्ट्वामोहिनींमदनातुरः ॥ गदांगुर्वीगृहीत्वातुधावमानःसमागतः ॥ ९ ॥ रक्षकान्दूरतःकृत्वाजग्राहांबुजलोचनाम् ॥ त्रस्तांवेपथुसंयुक्तांक्रंदमानांकृशोदरीम् ॥ १० ॥ त्यजैनांमांगृहाणेतिमयाचोक्तोपिदानवः ॥ नमांजग्राहकामार्तस्तांगृहीत्वाविनिःसृतः ॥ ११ ॥ तिष्ठतिष्ठेतिभाषंतोरक्षकास्तंमहाबलम् ॥ प्रतिषिध्यतुसंग्रामंचक्रुर्विस्मयकारकम् ॥ १२ ॥ तस्याऽपिराक्षसाःक्रूराःसर्वतःशस्त्रपाणयः ॥ युयुधूरक्षकैःसार्धंस्वामिकार्येकृतोद्यमाः ॥ १३ ॥ संग्रामस्तुतदाजातःकालकेतोस्तथारणे ॥ निहत्यरक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनांमहाबलः ॥ १४ ॥ युक्तोराक्षससैन्येननिर्जगामपुरंप्रति ॥ वीक्ष्यतांरुदतींबालांगृहीतांदानवेनतु ॥ १५ ॥ पृष्ठतोऽहंगतातत्रयत्रनीतासखीमम ॥ विक्रोशंतीयथासामांपश्येदितिपदानुगा ॥ १६ ॥

लेजानेलगा ॥ ११ ॥ रक्षकगण " ठहर ठहर कन्याको लेकर मत भाग तुझको विलक्षण शिक्षा देते हैं " यह कह उस महाबली दानवको लौटार उसके संग घोरतर आश्चर्ययुक्त संग्राममें प्रवृत्त हुए ॥ १२ ॥ उसके समान बलयुक्त क्रूरतर सम्पूर्ण राक्षससेना स्वामीका कार्य साधनकरनेको उत्साहित हो रक्षकगणोंके सहित युद्ध करनेलगी ॥ १३ ॥ महाबल कालकेतु फिर स्वयंभी उस भीषण संग्राममें प्रवृत्त हो रक्षकगणोंको रणस्थलमें मार सखीको ले राक्षस सैन्यगणोंके सहित अपने नगरको जानेलगा ॥ १४ ॥ उस बालाको दानवसे पकड़ाहुआ भयसे रोतेहुए देख मैं भी सखीके पीछेपीछे जानेलगी ॥ १५ ॥ जिससे वह मुझको देखसके ऐसे मार्गसे

चीत्कार करती हुई कांपतेकांपते चलनेलगी ॥ १६ ॥ सखीभी मुझको देखकर कुछेक स्वस्थ हुई मैं फिर उसके समीप पुकारते पुकारते गई ॥ १७ ॥ सखी अत्यन्त दुःखसे कातर हुई थी मुझको निकट देख स्तम्भित और स्वेदजलमें प्लुवित हो मेरा कण्ठ पकड़ अधिकतर दुःखित हो रोनेलगी ॥ ॥ १८ ॥ तब कालकेतु मेरे प्रति प्रीति प्रकाशकर कहनेलगा कि तुम्हारी यह चञ्चलनेत्रोंवाली सखी अत्यन्त डरी है तुम इसको समझाओ ॥ १९ ॥ हे प्रिये! मेरी नगरी देवलोककी समान है उसमें तुम अभी चलोगी और मैंभी अभीसे तुम्हारी प्रणयमें बंधकर तुम्हारा दास हुआ तुम कातर होकर रोओ मत सावधान हो ॥ २० ॥ हे सुलोचने! मेरे इस वचनसे समझाकर तुम प्रियसखीसे कहो यह कहकर उस दुष्टने मुझको उस मनोहर रथमें चढ़ाय ॥ २१ ॥ अपने पार्श्वमें

साऽपिमामागतांवीक्ष्यकिंचित्स्वस्थाऽभवत्तदा ॥ गताऽहंतत्समीपेतुतामाभाष्यपुनःपुनः ॥ १७ ॥ सामांप्राप्याऽतिदुःखार्तास्तंभस्वेदसमाकुला ॥ कंठेगृहीत्वामांभूपरुरोदभृशदुःखिता ॥ १८ ॥ समामाहकालकेतुःप्रीतिपूर्वमिदंवचः ॥ समाश्वासयभीतांत्वंसखींचंचललोचनाम् ॥ ॥ १९ ॥ प्रातंममाऽद्यनगरंदेवलोकसमंप्रिये ॥ दासोऽस्मितवरत्याहिकस्मात्त्वंदसिकातरा ॥२०॥ कथयैनांसखींतेऽद्यस्वस्थाभवसुलोचने ॥ इत्युक्त्वा मांसखीपार्श्वेसमारोप्यरथोत्तमे ॥ २१ ॥ जगामतरसादुष्टःपुरेस्वस्यमनोहरे ॥ सैन्येनमहतायुक्तःप्रफुल्लवदनांबुजः ॥ २२ ॥ एकावलींतथामांचसंस्थाप्यधवलेगृहे ॥ राक्षसान्गृहरक्षार्थंकल्पयामासकोटिशः ॥ २३ ॥ द्वितीयेदिवसेसोऽथमामुवाचरहोनृपः ॥ प्रबोधयसखींबालांशोचंतींविरहातुराम् ॥ ॥ २४ ॥ पत्नीमेभवसुश्रोणिसुखंभुंक्ष्वयथेप्सितम् ॥ राज्यंत्वदीयंचंद्रास्येसेवकोऽहंसदातव ॥ २५ ॥ पुनरुक्तंमयावाक्यंश्रुत्वातद्भाषितंखरम् ॥ नाऽहंक्षमाऽप्रियंवक्तुंत्वमेनांकथयप्रभो ॥ २६ ॥ इत्युक्तेवचनेदुष्टोमदनक्षतमानसः ॥ उवाचविनयादेनांसखींक्षामोदरींप्रियाम् ॥ २७ ॥

बैठाय महासेनाके सहित प्रफुल्लमुखसे अपने मनोहर पुरमें शीघ्र गमन किया ॥ २२ ॥ अनन्तर दोनो सखियोंको सुधाधवलित मनोहर घरमें रखकर हमारी रक्षाके निमित्त करोड़ करोड़ राक्षस नियुक्त करदिये ॥ २३ ॥ दूसरे दिन उस दैत्यने मुझसे निर्ज्जनमें पुकारकर कहा तुम्हारी सखी पिता माताके विरहसे अत्यन्त कातर होकर शोक करतीहै तुम इसको समझाकर सावधान करो ॥ २४ ॥ हे सुश्रोणि! तुम पत्नी होकर यथाभिलाष सुख भोगकरो, हेचन्द्रानने! यह राज्य तुम्हाराही है और मैं तुम्हारा निरन्तर दास हूं मेरे इन सब वचनोंसे अपनी सखीको समझादो ॥ २५ ॥ मैंने उसके यह सुननेके अयोग्य कर्कश वचन सुनकर कहा हे प्रभो! मैं इससे अप्रिय वचन नहीं कहसक्ती, तुम स्वयंही उससे समझाकर कहो ॥ २६ ॥ मेरे इस प्रकार कहनेपर फिर दुष्ट दानवने कामबाणसे व्याकुलचित्त हो उस कृशोदरी प्रियसखीसे

विनयवचनद्वारा कहा ॥ २७ ॥ हे प्रिये! तुमने इस समय मुझपर वशीकरण मंत्रका प्रयोग किया है, हे कान्ते! इसीकारण मेरा हृदय तुम्हारे एकान्तवशीभूत हुआ है ॥ २८ ॥ इससेही मुझको तुम्हारे दासत्वमें बद्ध किया है. मैंभी तुम्हारा दास हुआ, यह मेरा स्थिरनिश्चय जानो हे प्रेयसि! अब मैं मन्मथशरसे अत्यन्त पीड़ित और विवश होगया हूं अतएव हे कृशोदरि! तुम इस समय मुझको भजो ॥ २९ ॥ हे रम्भोरु! यौवन अत्यन्त दुर्लभ और चञ्चल वस्तु है हे कल्याणि! तुम अब मुझको पतिभावसे आलिङ्गनकरके उसको सफलकरो ॥ ३० ॥ एकावलीने कहा हे महाभाग! पहले राजाने मुझे एक राजाके पुत्रको देनेकी कल्पना की थी मैंने भी उस हैहय राजाको पतिरूपमें वरण किया है॥ ३१॥ आप भी तो शास्त्रके निश्चयको जानते हैं इस समय मैं सनातनधर्म और कन्याधर्म त्यागकर किसप्रकार दूसरे पतिको आलिङ्गन करूं ॥ ३२ ॥ पिता जिसको दान करते हैं कन्या उसीको पतिरूपमें ग्रहणकरती है कन्या सर्वदाही पराधीन है वह कभी स्वत

कृशोदरित्वया मंत्रोनिक्षितोऽस्तिममोपरि ॥ तेनमेहृदयंकांतेहृतंतेवशतांगतम् ॥ २८ ॥ तेनाऽहंतवदासोऽद्यक्तोऽस्मीतिविनिश्चयः ॥ भजमां कामबाणेनपीडितांविवशंभृशम् ॥ २९ ॥ यौवनंयातिरंभोरुचंचलंदुर्लभंतथा ॥ सफलंकुरुकल्याणिपतिंमांपरिरभ्यच॥ ३० ॥ एकावल्युवाच ॥ पित्राऽहंकल्पितापूर्वंदातुंराजसुतायवै ॥ हैहयस्तुमहाभागसमयामनसावृतः ॥ ३१ ॥ कथमन्यंभजेकांतंत्यक्त्वाधर्मंसनातनम् ॥ कन्याधर्मंविहायाऽद्यवेत्सिशास्त्रविनिश्चयम् ॥ ३२ ॥ यस्मैदद्यात्पिताकामंकन्यातंपतिमाप्नुयात् ॥ परतंत्रासदाकन्यानस्वातंत्र्यंकदाचन ॥ ३३ ॥ इत्युक्तोऽपितयापापीविरराम नमोहितः ॥ नमुमोचविशालाक्षींमांचपार्श्वेस्थितांतथा ॥ ३४ ॥ पातालविवरेतस्यपुरंपरमसंकटे ॥ राक्षसैरक्षितंदुर्गंमंडितंपरिखावृतम् ॥३५॥ तत्रतिष्ठतिदुःखार्तासखीमेप्राणवल्लभा ॥ तेनाऽहंविरहेणाऽत्ररारटीमिसुदुःखिता ॥३६॥ एकवीरउवाच ॥ कथंत्वमत्रसंप्राप्तापुरात्तस्यदुरात्मनः ॥ विस्मयोमेमहानत्रतत्त्वंब्रूहिवरानने ॥ ३७ ॥ त्वयाचकथितंवाक्यंसंदिग्धंभातिभामिनि ॥ हैहयार्थेकल्पितासापित्रेतिममसांप्रतम् ॥ ३८ ॥

न्त्रता प्राप्त नहीं करसक्ती ॥ ३३ ॥ एकावलीके इसप्रकार कहनेपरभी वह पापिष्ठ दैत्य कामबाणसे मोहित हो शान्त नहींहुआ और उस विशालाक्षी सखीको तथा उसके पास बैठनेवाली मुझको भी न छोड़ा ॥ ३४ ॥ उसका पुर पातालविवरके मध्यमें अत्यन्त संकटस्थानमें अधिष्ठित है, सदा राक्षसगण उसकी रक्षा करते हैं परिखा (खाई) से युक्त मनोहर दुर्ग बना है ॥ ३५ ॥ मेरी प्राणवल्लभा प्रियसखी उसी स्थानमें दुःखित चित्तसे वास करती है मैं इस स्थानमें उसके विरहदुःखसे अत्यन्त कातर और अस्थिर होकर फिरती हूं ॥ ३६ ॥ एकवीरने कहा हे वरानने! तुम उस दुरात्माके पुरसे इस स्थानमें किस प्रकार आई इस विषयमें मुझको महान् आश्चर्य उत्पन्न होता है, तुम मुझसे शीघ्र इसका कारण कहो ॥ ३७ ॥ हे भामिनि! तुम जो कुछ कहती हो उससे मुझको संशय उत्पन्नहोताहै तुम्हारी प्रियसखीको

उसके पिताने हैहयके हाथमें समर्पणकरनेके निमित्त स्थिर कर रखाहै ॥ ३८ ॥ मेराही नाम हैहय और मैंही हैहय नामक राजा हूं, इस समय पृथ्वीमें हैहयनामक दूसरा कोई राजा विद्यमान नहीं है तुम्हारी वह सुलोचना प्रियसखी क्या मेरे निमित्त ही कल्पित हुई है ॥ ३९॥ हे भामिनि ! तुम मेरा यह संशयजाल छुड़ाओ मैं उस राक्षसाधमको मारकर इसी स्थानमें तुम्हारी प्रियसखीको लाऊंगा इसमें सन्देह नहीं॥ ४०॥हे सुव्रते ! यदि तुम जानतीहो तो शीघ्र मुझको वह स्थान दिखाओ वह जो इतना दुःख पाती है वह क्या उसके पितासे किसीने न कहा ॥ ४१ ॥ यह जिसकी प्रियकन्या है उनकी वह प्रियकन्या हरण हुई है सो क्या वह नहीं जानते ? और उस राक्षसाधमके हाथसे उसको छुड़ानेके निमित्त क्या किसी प्रकारका उद्योग किया है ? ॥ ४२ ॥ अपनी कन्याको बन्दी हुआ जानकरभी वह राजा

हैहयोनामराजाऽहंनान्योऽस्तिपृथिवीपतिः ॥ मदर्थेकथितासाकिंसखीतवसुलोचना ॥ ३९ ॥ एतन्मेसंशयंसुभ्रुच्छेत्तुमर्हसिभामिनि ॥ अहंतामानयिष्यामितंहत्वाराक्षसाधमम् ॥ ४० ॥ स्थानंदर्शयमेतस्ययदिजानासिसुव्रते ॥ राज्ञेनिवेदितंकिंवाततिपित्रेचाऽतिदुःखिता ॥ ४१ ॥ यस्यैषावल्लभापुत्रीनकिंजानातितांहृताम् ॥ नोद्यमःकिंकृतस्तेनततोमोचनहेतवे ॥४२॥ बंदीकृतांसुतांज्ञात्वाकथंतिष्ठतिसुस्थिरः ॥ असमर्थोनृपःकिंवाकारणंब्रूहिसत्वरम् ॥ ॥ ४३ ॥ त्वयामेऽपहृतंचेतोगुणानुक्त्वाह्यमानुषान् ॥ सख्याःपंकजपत्राक्षिकृतःकामवशोभृशम् ॥ ४४ ॥ कदापश्यामितांकांतांमोचयित्वाऽतिसंकटात् ॥ इतिमेहृदयंचाऽद्यकरोत्यतिमनोरथम् ॥ ४५ ॥ ब्रूहिमेगमनोपायंपुरेतस्याऽतिदुर्गमे ॥ कथंत्वमागतातस्मात्संकटादत्रतद्वद ॥ ४६ ॥ यशोवत्युवाच ॥ बालभावान्मयामंत्रोभगवत्याविशांपते ॥ प्राप्तोऽस्तिब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः ॥ ४७ ॥ तत्राऽवस्थितयाराजन्मयाचित्तेविचारितम् ॥ आराधयामिसततंचंडिकांचंडविक्रमाम् ॥ ४८ ॥

किसप्रकार स्थिर हो रहेहैं ? अथवा वह राजा क्या उसके छुड़ानेमें असमर्थ हैं ? तुम शीघ्र इन सब विषयोंका कारण कहो ॥ ४३ ॥ हे सरोजाक्षि ! तुमने अपनी प्रियसखीके अलौकिक गुणकीर्त्तन करके मेरा मन हरण किया है और मुझको कामदेवके अत्यन्त वशीभूत किया है ॥ ४४ ॥ हाय ! मैं कब उस मनोरमा कान्ताको अत्यन्त संकटसे छुडाकर प्रीतिप्रफुल्लितनेत्रोंसे देखूंगा ! हे प्रियसखि ! मेरा हृदय इसप्रकार उच्च मनोरथमें आरोपित किया ॥ ४५ ॥ हे सुभाषिणि ! मैं किस उपायसे उस अत्यन्त दुर्गमपुरीमें जासकूंगा ! अथवा तुम किस प्रकार उस संकट स्थानसे इस स्थानमें आई वह मुझसे कहो ॥ ४६ ॥ यशोवतीने कहा हेराजन ! मैंने बाल्यावस्थाके समय एक सिद्ध ब्राह्मणसे बीज और ध्यानके सहित भगवतीका मंत्र प्राप्तकिया है ॥ ४७ ॥ उस स्थानमें अवस्थित होकर मनमें विचार किया

कि, इस समय मैं सर्व्वदा उन्ही चण्डविक्रमा शीघ्र मनोरथकी देनेवाली चण्डिकाकी आराधना करूं ॥ ४८ ॥ भक्तपर कृपा करनेवाली उन्हीं सर्व्वार्थसाधिनी शक्तिकी आराधना करनेसे अवश्यही वह मेरी प्रियसखीको बन्धनसे छुड़ावेंगी ॥ ४९ ॥ वही देवी भगवती स्वरूपसे निराकार होकरभी और किसीका आश्रय ग्रहण नकरके केवल अपनी शक्तिसेही इस विश्व ब्रह्माण्डकी सृष्टि और पालन तथा कल्पान्तकालमें संहार करती है ॥ ५० ॥ मनमें इस प्रकार चिन्ताकर उन्हीं कल्याणस्वरूपिणी रक्तवसना और लोहितलोचना विश्वेश्वरी देवीका ध्यान और मनमनमें उनके रूपको स्मरणकर मंत्र जपने लगी ॥ ५१ ॥ मेरे केवल एकमास समाधिअवलम्बनपूर्वक देवीकी उपासना करनेपर चण्डिका देवी मेरे भक्तिभावसे ॥ ५२ ॥ स्वप्नमें प्रगट हो अमृतवचनद्वारा मुझसे कहने

सादेवीसेविताकामंबंधमोक्षंकरिष्यति ॥ भक्तानुकंपिनीशक्तिःसमर्थासर्वसाधने ॥ ४९ ॥ याविश्वंसृजतेशक्त्यापालयत्येवसापुनः ॥ कल्पांतेसंहरत्येव निराकारानिराश्रया ॥ ५० ॥ इतिसंचिंत्यमनसादेवींविश्वेश्वरींशिवाम् ॥ ध्यात्वारक्तांबरांसौम्यांसुरक्तनयनांहृदि ॥ ५१ ॥ संस्मृत्यमनसारूपं मंत्रजाप्यपराऽभवम् ॥ उपासितामयादेवीमासमेकंसमाधिना ॥ ५२ ॥ स्वप्नेममसमायाताभक्तिभावेनतोषिता ॥ मामाहाऽमृतयावाचा किंसुप्तासीतिचंडिका ॥ ५३ ॥ उत्तिष्ठयाहितरसागंगातीरंमनोहरम् ॥ आगमिष्यतितत्राऽसौहैहयोनृपपुंगवः ॥ ५४ ॥ एकवीरोमहाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः ॥ दत्तात्रेयेणमन्मंत्रोमहाविद्याभिधःपरः ॥ ५५ ॥ दत्तोऽस्मैसोऽपिसततंमामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ मय्यासक्तमतिर्नित्यंमम पूजापरायणः ॥ ५६ ॥ मामेवसर्वभूतेषुध्यायन्नास्तेचमत्परः ॥ सतेदुःखविनाशंवैकरिष्यतिमहामतिः ॥ ५७ ॥ मासुतोविहरंस्तत्रतवत्राताभविष्यति ॥ हत्वातंराक्षसंघोरंमोचयिष्यतिमानिनीम् ॥ ५८ ॥

लगी तू सोरही है ॥ ५३ ॥ उठ शीघ्र उस मनोहर गंगाके तटपर जा वह शत्रुओंका नाश करनेवाले महाबाहु एकवीर राजा श्रेष्ठ हैहय उस स्थानमें आवेंगे महामुनीश्वर दत्तात्रेयने उनको महाविद्या नामक मेरा मंत्र दिया है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ राजा भी उस मंत्रद्वारा सदा भक्तिभावसे मेरी पूजा करते हैं उनका मन मुझमेंही अत्यन्त आसक्त और सदा मेरीही पूजामें निरत रहता है अधिक ॥ ५६ ॥ क्या वह राजा मत्परायण होकर सर्वजीवोंके अन्तर्यामिरूपसे मेराही ध्यान करते हैं वही महाबुद्धि रमापुत्र गंगाके तटपर विहारार्थ आनकर तुम्हारा दुःख दूर करेंगे ॥ ५७ ॥ सर्व शास्त्रके जाननेवाले राजा एकवीर घोरसमरमें राक्षसोंको मार एकावलीको छुडावेंगे

वह तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५८ ॥ अन्तमें उन्होंने मुझसे कहदिया है कि तदनन्तर उस सर्वसुलक्षणयुक्त विद्वान् सुशोभन राजपुत्रको तुम्है पतित्वमें वरण करना उचित है ॥ ५९ ॥ यह कह उनके अन्तर्धान होनेपर मैं तत्काल जागरित हुई तदनन्तर कमलनयना प्रियसखीसे उस स्वप्नका वृत्तान्त और देवीकी आराधनाका विषय कहा ॥ ६० ॥ यह सुनकर उसका वदन प्रफुल्लित हुआ वह शुचिस्मिता एकावली अत्यन्त सन्तुष्ट हो मुझसे भलीभांति कहने लगी ॥ ६१ ॥ हे प्रियसखि ! कार्यसिद्धिके निमित्त तुम शीघ्र जाओ वह सत्यभाषिणी भगवती अम्बिका देवी मुझको बन्धनसे छुडावेगी॥६२॥मेरी उस प्रणयिनी सखीनें जब मुझको इसप्रकार आज्ञा दी तब मैं उसी स्वप्नके कारण उस स्थानसे निकलना उचित समझ शीघ्र निकली ॥ ६३ ॥ हे नृपनन्दन ! महादेवीके प्रसादसे मुझको मार्गज्ञान और

एकावलीमेकवीरःसर्वशास्त्रविशारदः ॥ पश्चात्सैवपतिःकार्यस्त्वयाराजसुतःशुभः ॥ ५९ ॥ इत्युक्त्वांतर्दधेदेवीप्रबुद्धाऽहंतदैवहि ॥ कथितंस्वप्नवृत्तांतंदेव्याश्चाऽऽराधनंतथा ॥ ६० ॥ प्रसन्नवदनाजाताश्रुत्वासाकमलेक्षणा ॥ विशेषेणचसंतुष्टामामुवाचशुचिस्मिता ॥ ६१ ॥ गच्छतत्रत्वरायुक्ताकुरुकार्यंममप्रिये ॥ सत्यवाक्याभगवतीसाऽऽवांमोक्षंविधास्यति ॥६२॥ इत्याज्ञप्तातयाचाऽहंसख्यावैप्रेमयुक्तया ॥ मत्वोपसरणंयुक्तंतस्मात्स्थानात्तदानृप ॥६३॥ चलिताऽहंततःशीघ्रंमहादेवीप्रसादतः ॥ मार्गज्ञानंशीघ्रगतिर्मयाप्राप्तानृपात्मज ॥ ६४ ॥ इत्येतत्कथितंसर्वंकारणंममदुःखजम् ॥ कस्त्वंकस्यसुतश्चेतिवदवीरयथातथा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥छ॥ व्यासउवाच ॥ तस्यास्तुवचनंश्रुत्वारमापुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रफुल्लवदनांभोजस्तामुवाचविशांपते ॥१॥ राजोवाच ॥ रंभोरुयस्त्वयापृष्टोवृत्तांतोविशदाक्षरः ॥ हैहयोऽहंचैकवीरनाम्नासिंधुसुतासुतः॥२॥ मनोमेयत्त्वयानूनंपरतंत्रंकृतंकिल ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिविरहेणाऽतिपीडितः ॥ ३ ॥

द्रुतगति प्राप्त हुई ॥ ६४ ॥ यह मैं ने आपसे अपने दुःखका कारण वर्णन किया हे वीर ! आप कौन हैं और किसके पुत्र हैं ? वह आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह प्रतापयुक्त कमलापुत्र हैहय यशोवतीका यह वचन सुन प्रसन्न हो उससे कहनेलगे ॥ १ ॥ हे रम्भोरु ! तुमने जो ललित वृत्तान्त पूंछा वह मैं कहता हूं सुनो मैं सिन्धुसुता लक्ष्मीका पुत्र हैहय हूं मैं पृथ्वीमें एकवीर नामसे विख्यात हुआ हूं ॥ २ ॥ इससमय तुमने मेरा मन पराधीन करदिया मैं तुम्हारी प्रियसखीके विरहमें अत्यन्त पीड़ित हो इस समय क्या करूं? कहां जाऊं ॥ ३ ॥

तुमने पहले उसका अलौकिक रूप वर्णन किया उससे मन कामबाणद्वारा आहत हो विह्वल हुआ है ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त फिर तुमने उसका गुण वर्णन किया इससे मेरा मन एकवारही मोहित हुआ है अनन्तर जब तुमने फिर राक्षसका कहा हुआ वचन मुझसे कहा तब मेरे मनमें अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ तुम्हारी प्रियसखी एकावलीने उस दुष्टदानवके सम्मुख कहा था कि "मैंने पहले हैहयनामक राजाको वरणकिया है उनके अतिरिक्त अन्य किसीकोभी वरण नहीं करूंगी यही मेरा स्थिर निश्चय है" ॥ ६ ॥ हे सुन्दरि ! तुमने मुझसे यह वचन कहकर इस समय मुझको उसका भृत्य करदिया हे सुकेशि ! इस समयमें तुम्हारा क्या कार्य साधनकरूं सो मुझसे कहो ॥ ७ ॥ मैं उस दुरात्मा राक्षसका वासस्थान नहीं जानता मैं कभी उसकी पुरीमें नहीं गया हे सुलोचने ! तुम मुझको उस

प्रथमंरूपमाख्यातंसर्वलोकातिगंत्वया ॥ तेनमेविह्वलंजातंकामबाणाहतंमनः ॥ ४ ॥ ततस्तस्यागुणाःप्रोक्तास्तैस्तुचित्तंहृतंपुनः ॥ यत्त्वयोक्तंपुनर्वाक्यंतेनमेविस्मयोऽभवत् ॥ ५ ॥ एकावल्यावचःप्रोक्तंदानवाग्रेमयावृतः ॥ हैहयस्तंविनानाऽन्यंवृणोमीतिविनिश्चयः ॥ ६ ॥ तेनवाक्येनतन्वंगिभृत्योऽहमधुनाकृतः ॥ त्वयातस्याःसुकेशांतेब्रूहिकिंकरवाणिवाम् ॥७॥ स्थानंतस्यनजानामिराक्षसस्यदुरात्मनः ॥ गतिर्मेनास्तिगमनेपुरेतस्मिन्सुलोचने॥८॥ वदमांत्वंविशालाक्षितत्रप्रापयितुंक्षमा ॥ प्रापयाशुसखीतेसायत्रतिष्ठतिसुंदरी ॥ ९ ॥ हत्वातंराक्षसंक्रूरंमोचयिष्यामिसांप्रतम् ॥ विवशांशोकसंतप्तांराजपुत्रींतवप्रियाम् ॥ १० ॥ विमुक्तदुःखांकृत्वाऽऽशुप्रापयिष्यामितेपुरम् ॥ पित्रेचाऽस्याःप्रदास्यामिकन्यामेकावलीमहम् ॥ ११ ॥ पश्चाद्विवाहंकर्ताऽसौराजापुत्र्याःपरंतपः ॥ एवंतेमनसःकामोममचापिप्रियंवदे ॥ १२ ॥

स्थानमें जानेका उपाय बतादो॥८॥ क्यों कि तुम्ही मुझको उस स्थानमें लेचलनेको समर्थ होगी, अतएव जिस स्थानमें तुम्हारी वह सर्वाङ्गसुन्दरी सखी वास करती है तुम शीघ्र उसी स्थानमें मुझको लेचलो ॥ ९ ॥ तुम्हारी प्रियसखी राजनन्दिनी अत्यन्त शोकसे सन्तप्त हुई है मैं उस दुराचारी राक्षसको मार शीघ्रही उसको छुड़ाऊंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ हेकल्याणी ! मैं तुम्हारी प्रियसखीको छुड़ाकर तुम्हारी नगरीमें लेजाऊंगा और उसको उसके पिताको हाथमें समर्पण करूंगा ॥ ११ ॥ तदनन्तर, यह शत्रुनाशन राजा अपनी कन्याका विवाह कार्य सम्पादन करेंगे बोध होता है कि यही तुम्हारी इच्छा है हेप्रियंवदे! मेरी भी इसीप्रकार वासना जानो? ॥ १२ ॥

हे वरवर्णिनि ! इस समय तुम्हारे उद्यमसे यह मनोरथ पूर्ण होगा तुम शीघ्र मुझको उसकी पुरी दिखाय मेरा पराक्रम देखो ॥ १३ ॥ हे चन्द्रानने ! तुम्ही मेरा प्रिय कार्य साधन करनेमें समर्थ होगी कारण कि बोध होता है जिससे मैं उस दुराचारी पराई स्त्रीके हरनेवाले राक्षसको मारनेमें समर्थ हूं तुम इसीप्रकारके कार्यका विधान करो ॥ १४ ॥ इस समय तुम उस राक्षसकी दुर्गम पुरीका मार्ग दिखादो व्यासजीने कहा हे महाराज ! यशोवती राजपुत्रका वह प्रिय वचन सुनकर आनन्दित हुई ॥ १५ ॥ और आदरपूर्वक उस कमलापुत्र हैहय राजासे राक्षसकी पुरीमें जानेका उपाय कहने लगी हे राजेन्द्र ! आप भगवतीका सिद्धिप्रद मंत्र ग्रहण कीजिये ॥ १६ ॥ तो मैं अभी आपको उसकी वह राक्षसरक्षित पुरी दिखा दूं हे राजन् ! मेरे संग चलनेके निमित्त आप अपनी महती सेनाके सहित सुसज्जित हूजिये ॥ १७ ॥

भविष्यतिससंपूर्णःसाधनेनतवाऽधुना ॥ दर्शयाऽऽशुपुरंतस्यपश्यमेत्वंपराक्रमम् ॥ १३ ॥ यथाहन्मिदुराचारंपरदारापहारकम् ॥ तथाकुरुप्रियंकर्तुंशक्ताऽसिवरवर्णिनि ॥ १४ ॥ मार्गंदर्शयतस्याऽद्यपुरस्यदुर्गमस्यच ॥ व्यासउवाच ॥ तन्निशम्यप्रियंवाक्यंमुदिताचयशोवती ॥ १५ ॥ तमुवाचरमापुत्रंगमनोपायमादरात् ॥ मंत्रंगृहाणराजेंद्रभगवत्यास्तुसिद्धिदम् ॥ १६ ॥ दर्शयिष्यामितस्याऽद्यपुरंराक्षसपालितम् ॥ सज्जोभवमहाभागगमनायमयासह ॥ १७ ॥ सैन्येनमहतायुक्तस्तत्रयुद्धंभविष्यति ॥ कालकेतुर्महावीरोराक्षसैर्बलिभिर्वृतः ॥ १८ ॥ तस्मान्मंत्रंगृहीत्वात्वंव्रजतत्रमयासह ॥ दर्शयिष्यामितेमार्गंपुरस्याऽस्यदुरात्मनः ॥ १९ ॥ हत्वातंपापकर्माणंमोचयाऽऽशुसखींमम ॥ श्रुत्वातद्वचनंवीरोमंत्रंजग्राहसत्वरः ॥ २० ॥ दत्तात्रेयाद्दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानिवराच्छुभात् ॥ योगेश्वरीमहामंत्रंत्रिलोकीतिलकाभिधम् ॥ २१ ॥ तेनसर्वज्ञताजातासर्वांतश्चारितातथा ॥ तयासहजगामाऽऽशुपुरंतस्यसुदुर्गमम् ॥ २२ ॥

कारण कि उस स्थानमें जातेही आपको उसके सहित युद्ध करना होगा कालकेतु स्वयं महावीर और बलविक्रमशाली राक्षसगणोंसे परिवृत है ॥ १८ ॥ अतएव आप भगवतीका मंत्र ग्रहणकर मेरे संग चलिये मैं आपको उस दुरात्माके पुरका मार्ग दिखाये देती हूं ॥ १९ ॥ आप उस पापाचारी राक्षसाधमको मारकर मेरी प्रिय सखीको छुडाइये हैहय एकवीरने यशोवतीका वह वचन सुन प्राणिगणोंके हितकर ज्ञानिप्रवर देवयोगसे आए हुए महर्षि दत्तात्रेयके निकटसे त्रिलोकीतिलक नामक योगेश्वरीका महामंत्र ग्रहण किया ॥ २० ॥ २१ ॥ तव नृपवरको उस मंत्रके प्रभावसे सम्पूर्ण विषय जाननेकी और अप्रतिहत प्रभावसे सर्वत्र जानेकी शक्ति

प्राप्त हुई तब उसके सहित उस दुर्गम पुरको चले ॥ २२ ॥ अनन्तर हैहय राजा यशोवतीके सहित बड़ी सेनासे युक्त हो पन्नगगणोंसे युक्त पातालपुरीकी समान घोरतर राक्षससैन्यसे रक्षित उस राक्षसकी दुर्गम पुरीमें शीघ्रतासे गये ॥ २३ ॥ तब राक्षसराजके दूतगण राजाको आते हुए देख भयातुर हुए और चीत्कार करते करते शीघ्रतासे कालकेतुके निकट गये ॥ २४ ॥ कालकेतु कामबाणसे मोहित हो एकावलीके समीप बैठाहुआ अनेकप्रकारके विनययुक्त वचन कहरहा था ॥ २५ ॥ दूतगणोंने इसीसमय सहसा आनकर उससे कहा हेराजन्! इस कामिनीकी सखी यशोवती एक ससैन्य राजकुमारके सहित इस स्थानमें आती है ॥ २६ ॥ हे महाराज! वह राजकुमार जयन्त है अथवा कार्त्तिकेय है यह मैं निश्चय नहीं कहसक्ता जो हो वह अपने वाहनके सहित बलोन्मत्त हो आते हैं ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र! संग्राम उपस्थित हुआ है, इस समय आप भलीभांति बलवान् हो देवपुत्रके सहित युद्ध कीजिये अथवा इस कमलेक्षणा कामिनीका त्याग

रक्षितंराक्षसैर्घोरैःपातालमिवपन्नगैः ॥ यशोवत्याचसैन्येनमहतासंयुतोनृपः ॥ २३ ॥ तमायांतंसमालोक्यदूतास्तस्यभयातुराः ॥ क्रोशंतोऽभि ययुःपार्श्वंकालकेतोस्तरस्विनः ॥ २४ ॥ तमूचुःसहसामत्वाराक्षसंकाममोहितम् ॥ एकावलीसमीपस्थंकुर्वंतंविनयान्बहून् ॥ २५ ॥ दूताऊचुः ॥ राजन्यशोवतीनारीकामिन्याःसहचारिणी ॥ आयातिसहसैन्येनराजपुत्रेणसंयुता ॥ २६ ॥ जयंतोवामहाराजकार्तिकेयोऽथवानुकिम् ॥ आगच्छतिबलोन्मत्तोवाहिनीसहितःकिल ॥ २७ ॥ संयत्तोभवराजेंद्रसंग्रामःसमुपस्थितः ॥ देवपुत्रेणयुध्यस्वत्यजवाकमलेक्षणाम् ॥ २८ ॥ इतोदूरेऽस्तिसैन्यंतद्योजनत्रयमात्रतः ॥ सज्जोभवमहीपालदुंदुभिघोषयाऽऽशुवै ॥ २९ ॥ व्यासउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसःक्रोधमूर्च्छितः ॥ राक्षसान्प्रेरयामाससायुधान्सबलान्बहून् ॥ ३० ॥ गच्छध्वंराक्षसाःसर्वेसम्मुखाःशस्त्रपाणयः ॥ तानाज्ञाप्यकालकेतुःपप्रच्छप्रणयान्वितः ॥ ३१ ॥ एकावलींसमीपस्थांविवशांभृशदुःखिताम् ॥ कोऽयमायातितन्वंगिपितातेवापरःपुमान् ॥ ३२ ॥ त्वदर्थेसैन्यसंयुक्तोब्रूहिसत्यंकृशोदरि ॥ पितातेयदिसंप्राप्तोनेतुंत्वांविरहातुरः ॥ ३३ ॥ ज्ञात्वातेपितरंसम्यक्संग्रामंनकरोम्यहम् ॥ आनयित्वागृहेपूजांरत्नैर्वस्त्रैर्हयैःशुभैः ॥ ३४ ॥

कीजिये ॥ २८ ॥ हे राजन्! इस स्थानसे तीन योजन पर्य्यन्त वह सैन्य स्थित है इस समय आप सज्जित हूजिये शीघ्र दुन्दुभिके घोषसे युद्धकी घोषणा कीजिये ॥ २९ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! दूतोंका यह वचन सुन कालकेतुने क्रोधसे मूर्छित हो अनेक बलवान् शस्त्रधारी राक्षसोंको भेजा ॥ ३० ॥ और उनसे कहा कि हे राक्षसगण! तुम शस्त्रपाणि हो शीघ्र उनके सन्मुख होओ कालकेतुने उनको इस प्रकार आज्ञा देकर विनयपूर्वक ॥ ३१ ॥ पास बैठी हुई अत्यन्त दुःखित एकावलीसे पूंछा हे कृशोदरि! यह कौन आता है? तुम्हारा पिता अथवा अन्य कोई पुरुष तुमको छुड़ानेके निमित्त सैन्यगणोंके सहित आता है ॥ ३२ ॥ यह तुम मुझसे सत्य कहो यदि तुम्हारे विरहसे कातर हो तुमको लेनेको तुम्हारे पिता आते हैं ॥ ३३ ॥ यह यदि मैं भलीभांति जानलूं तो मैं उनके संग संग्राममें प्रवृत्त न हूंगा

बरन उनको घरमें लाय उत्तम उत्तम अश्वरत्न और वस्त्रादिसे उनकी पूजा करूंगा ॥ ३४ ॥ और गृहमें आनेपर यथाविधि उनका आतिथ्य सत्कार करूंगा और यदि अन्य कोई पुरुष आता है तो शाणित शरसे उसका प्राणसंहार करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ तुम निश्चय जानो कि अन्य कोई जो तुमको छुडानेको आता है तो मरनेके निमित्त सर्व्वसंहारक कालने उसको मेरे निकट लाकर उपस्थित किया है अतएव हे विशालाक्षि ! मुझको महाबलवान् और दुर्द्धर्ष कालरूप न जानकर कौन मन्दबुद्धि पुरुष आताहै सो तुम मुझसे कहो ॥ ३६ ॥ एकावलीने कहा हे महाभाग ! यह कौन पुरुष शीघ्र वेगसे इस स्थानमें आता है वह मैं नहीं जानती हेमहाराज! मैं आपके बन्धनमें रहकर उसको किसप्रकार जानसक्ती हूं ? ॥ ३७ ॥ किन्तु तोभी यह पुरुष मेरा पिता अथवा भ्राता नहीं है अन्य कोई

करोमितस्यचाऽऽतिथ्यंगृहेप्राप्तस्यसर्वथा ॥ अन्यश्चेद्यदिसंप्राप्तस्तंहन्मिनिशितैःशरैः ॥३५॥ आनीतःकिलकालेनमरणायमहात्मना ॥ तस्माद्वदविशालाक्षिकोयमायातिमंदधीः ॥ ३६ ॥ अज्ञात्वामांदुराधर्षकालरूपंमहाबलम् ॥ एकावल्युवाच ॥ नजानेऽहंमहाभागकोऽयमायातिसत्वरः ॥ ३७॥ नमेऽस्तिविदितःकोऽपिस्थितायास्तवबंधने ॥ नाऽयंपितामेनभ्राताकोऽप्यन्योऽस्तिमहाबलः ॥ ३८ ॥ किमर्थमिहचायातिनाऽहंवेदविनिश्चयम् ॥ दैत्यउवाच ॥ एवंवदंत्यमीदूतावयस्यातेयशोवती ॥ ३९ ॥ समानीयचतंवीरमागतेतिकृतोद्यमा ॥ क्वगतासासखीकांतेविदग्धाकार्यनिश्चये ॥ ४० ॥ नाऽन्यःकोऽपिममारातिर्योमेप्रतिबलोभवेत् ॥ व्यासउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेदूतास्तत्राऽन्येवैसमागताः ॥४१॥ तेहोचुस्त्वरिताभीताःकालकेतुंगृहेस्थितम् ॥ किंस्वस्थोऽसिमहाराजसमीपेसैन्यमागतम् ॥ ४२ ॥ निर्गच्छनगरात्तूर्णंसैन्येनमहतावृतः ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाकालकेतुर्महाबलः ॥ ४३ ॥

महाबल पुरुष होगा ॥ ३८ ॥ वह किस कारण इस स्थानमें आता है वह मैं निश्चय नहीं जानती दैत्यने कहा हमारे दूतगण इस प्रकार कहते हैं कि तुम्हारी वयस्या सखी यशोवती ॥ ३९ ॥ उस वीरको संगलिये अत्यन्त उद्यमके सहित इस स्थानमें आती है चतुर कार्य्यमें निपुण तुम्हारी वह प्रियसखी इस समय कहां गई है? ॥ ४० ॥ हे कमलनयने ! मेरे विरुद्धतासे युद्ध करनेमें समर्थ हो इस त्रिभुवनमें मेरा इसप्रकार कोई शत्रु नहीं है व्यासजीने कहा हेराजन् ! इसी समयमें अन्यअन्य दूत भीत और त्वरान्वित हो उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥ और घरमें बैठे कालकेतुसे कहने लगे हे महाराज ! नगरके समीप सेना आगई है आप इस समयभी किस कारण निश्चिन्त और स्थिर घरमें बैठे हैं ॥ ४२ ॥ शीघ्र महती सेनाको संग लेकर नगरीसे निकलिये तब महाबल कालकेतु उनका यह वचन सुन ॥ ४३ ॥

रथपर चढ़ शीघ्र अपनी नगरीसे निकला इधर मनोरमा कामिनीके विरहसे व्याकुल हैहयराजा भी घोड़ेपर चढ़ सहसा उस स्थानमें आनकर उपस्थित हुए तब उस स्थानमें दोनोंका घोर वृत्र इन्द्रकी समान संग्राम आरम्भ हुआ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ दोनोंही परस्परके ऊपर तीक्ष्ण सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्र निक्षेपकरनेलगे, उससे दिङ्मण्डल प्रदीप्त हो उठा तब भीरुगणोंको भयंकर घोर युद्ध होनेमें ॥ ४६ ॥ सिन्धुजाके पुत्र हैहयने भयंकर गदाद्वारा दैत्यराजपर आघात किया अनन्तर उस दैत्यपतिने वज्रसे आहत पर्वतकी समान पृथ्वीमें गिरकर प्राणत्याग किया ॥ ४७ ॥ तब सम्पूर्ण राक्षस भीत हो चारोंओरको भागनेलगे तदनन्तर यशोवती अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो अतिवेगसे एकावलीके निकट जाय ॥ ४८ ॥ आश्चर्ययुक्त प्रियसखीसे मधुरवचन कहनेलगी हे सखि ! हे सखि ! आओ आओ वह दानव मरगया

रथमारुह्यत्वरितोनिर्ययौस्वपुराद्बहिः ॥ एकवीरोऽपिसहसाहयारूढःप्रतापवान् ॥४४॥ आगतस्तत्रकामिन्याविरहेणसमाकुलः ॥ युद्धंतयोरभूत्तत्रवृत्रवासवयोरिव॥४५॥शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगंतरम् ॥ वर्तमानेतदायुद्धेकातराणांभयावहे॥४६॥ गदयाताडयामासदैत्यंसिंधुसुतासुतः॥सगतासुःपपातोर्व्यांवज्राहतइवाऽचलः ॥ ४७ ॥ पलायित्वागताःसर्वेराक्षसाभयपीडिताः ॥ यशोवतीततोगत्वावेगादेकावलींतदा ॥ ४८ ॥ उवाचमधुरांवाणींविस्मितांमुदिताभृशम् ॥ एह्यालिनृपपुत्रेणदानवोऽसौनिपातितः ॥ ४९ ॥ एकवीरेणधीरेणयुद्धंकृत्वासुदारुणम् ॥ स्कंधावारेऽप्यसौराजातिष्ठत्यद्यश्रमातुरः ॥ ५० ॥ दर्शनंकांक्षमाणस्तेश्रुतरूपगुणस्तव ॥ पश्यतंकुटिलापांगिमनोभवसमंनृपम् ॥ ५१ ॥ कथितात्वंमयापूर्वंतस्याऽग्रेजान्हवीतटे ॥ पूर्णानुरागःसंजातस्तेनाऽसौविरहातुरः ॥ ५२ ॥ वांछतित्वांचारुरूपांद्रष्टुंनृपतिनंदनः ॥ सातस्यावचनंश्रुत्वागमनायमनोदधे ॥ ५३ ॥

॥ ४९ ॥ नृपतिपुत्र वीरवर एकवीरने दारुण युद्धकर दैत्यपतिको मारा है वह राजा श्रमातुर हो इस समय सैन्यमें स्थिति करते हैं ॥ ५० ॥ उन्होंने पहले मुझसे तुम्हारा समस्तरूप और गुण श्रवण किया है इससे अब वह तुम्हारा दर्शन प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं हे कुटिलनयने ! इस समय तुम उस कामदेवकी समान महीपालको देखकर नेत्र और मन चारितार्थ करो ॥ ५१ ॥ मैं ने पहले गंगाके तटपर उनसे तुम्हारा रूपगुणादि वर्णन किया है, इसकारण तुम्हारे प्रति उनको अनुराग उत्पन्न हुआ है इस कारण अब वह विरहातुर हो ॥ ५२ ॥ तुम्हारा मनोहर रूप देखनेकी इच्छा करते हैं एकावलीने प्रियसखीका यह वचन सुन उनके निकट जानेके

निमित्त मनमें निश्चय किया ॥ ५३ ॥ किन्तु कुमारी सुलभ भयसे भीत और लज्जित होनेलगी उसने जाना कि मैं कुमारी हूं किसप्रकार उस नृपनन्दनका मुख देखूं ॥ ५४ ॥ वह कामार्त्त हो मुझको पकड़ेंगे इस प्रकार चिन्तामें आकुल हो वह मलिनमूर्ति और मलिनाम्बरधारिणी नृपनन्दिनी एकावली यशोवतीके सहित नरयान पर चढ़कर स्कन्धावार (छावनी) में गई उस विशालाक्षी राजकन्याको आताहुआ देख राजपुत्रने कहा ॥ ५५॥५६॥ हे सुन्दरी ! मेरे दोनों नेत्र तुमको देखनेकेलिये तृषित हो रहे हैं तुम दर्शन देकर मेरे नेत्र और मनको चरितार्थ करो नृपतिपुत्रको कामातुर और राजकुमारीको अत्यन्त लज्जित देखकर ॥५७॥ शिष्टाचारवेदिनी नीतिज्ञानसम्पन्न यशोवतीने राजपुत्रसे कहा हेनृपनन्दन ! प्रियसखीके पिताने इसको आपके हाथमें प्रदान करनेकी इच्छा की है ॥ ५८ ॥ और यहभी आपके वशीभूत है अत

लज्जमानाभृशंभीत्याकौमारप्राप्तयातया ॥ कथंतस्यमुखंद्रक्ष्येकुमारीह्यवशाभृशम् ॥ ५४ ॥ समांगृह्णातिकामार्तइतिचिंताकुलासती ॥ यशोवत्यायुतातत्रनरयानस्थिताययौ ॥ ५५ ॥ स्कंधावारेऽतिमलिनामलिनांबरधारिणी ॥ तामागतांविशालाक्षींदृष्ट्वाराजसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥ दर्शनंदेहितन्वंगितृषितेनयनेमम ॥ कामातुरंचतंवीक्ष्यतांचलज्जाभरावृताम् ॥ ५७ ॥ नीतिज्ञाशिष्टमार्गज्ञातमुवाचयशोवती ॥ राजपुत्रपिताऽप्यस्यास्त्वामेनांदातुमिच्छति ॥ ५८ ॥ एषाऽपित्वद्वशानूनंभवितासंगमस्तव ॥ कालंप्रतीक्ष्यराजेंद्रनयैनांपितुरंतिकम् ॥ ५९ ॥ सविवाहविधिंकृत्वादास्यतीतिविनिश्चयः ॥ सतस्यावचनंतथ्यंमत्वासैन्यसमन्वितः ॥ ६० ॥ समेतःकामिनिभ्यांतुययौतत्पितुराश्रमम् ॥ राजपुत्रींतथायातांश्रुत्वाप्रेमसमन्वितः ॥ ६१ ॥ प्रययौसम्मुखस्तूर्णंसचिवैःपरिवेष्टितः ॥ बहुभिर्दिवसैर्दृष्टापुत्रीसामालिनांबरा ॥ ६२ ॥ यशोवत्यातुवृत्तांतःकथितोविस्तरात्पुनः ॥ एकवीरंमिलित्वाऽसौगृहमानीयचादरात् ॥ ६३ ॥ पुण्येऽह्निकारयामासविवाहंविधिपूर्वकम् ॥ पारिबर्हंततोदत्वासंपूज्यविधिवत्तदा ॥ ६४ ॥

एव इसके सहित आपका मिलन अवश्यही होगा हेराजेन्द्र ! आप कालकी प्रतीक्षा कीजिये इसको पिताके निकट लेचलिये ॥५९ ॥ वह इसकी विवाहविधि सम्पन्न कर इसे आपको प्रदान करेंगे यह स्थिर निश्चय जानिये राजा उसका वचन यथार्थ और निश्चय जानकर सैन्यके सहित ॥६० ॥ उन दोनों कामिनियोंको एकावलीके पिताके घर लेगये एकावलीके पिता अपनी पुत्रीको आताहुआ सुन प्रथम पुलकित हुए॥६१॥और मंत्रीगणोंके सहित परिवेष्टित हो शीघ्र उसके सन्मुख गये राजा बहुत दिनोंके उपरान्त मलिनवसना कन्याको देखकर अत्यन्त प्रसन्नहुए ॥६२॥ अनन्तर यशोवतीने राजासे वह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णनकिया तब राजा मंत्रीगणोंके सहित मिलित हो राजपुत्रको आदरपूर्वक घर लेआये ॥ ६३ ॥ और शुभदिनमें विधिपूर्वक उनके सहित एकावलीका विवाहकार्य्य सम्पादनकिया तदनन्तर वसनभूष

णरत्न अलङ्कार और गृहोपकरण इत्यादि अनेकसामग्री सम्भारदान और विधिपूर्वक पूजा कर ॥ ६४ ॥ पुत्रीको हैहयके संग भेजदिया राजाके मंत्रीनेभी नृपनन्दनके सहित अपनी नन्दिनीकी पारिणयक्रिया सम्पादनकर उनके संग भेजदिया इस प्रकार विवाहकार्य सम्पन्न होनेपर फिर सिन्धुजापुत्र अत्यन्त आनन्दित हो॥ ६५॥ घर जाय प्रियाके सहित अनेकप्रकार सुखसम्भोगमें निरत हुए अनन्तर एकावलीके गर्भसे हैहयराजाके कृतवीर्यनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ६६ ॥ इस कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य नामसे विख्यात है. हे महाराज ! यह मैंने आपसे हैहयवंशकी उत्पत्तिका विवरण वर्णनकिया ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आपके मुखकमलसे निकलाहुआ अमृतके समान दिव्यकथारूप मधुररस पान करके मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ १॥ आपने मुझसे हैहयवं

पुत्रींविसर्जयमासयशोवत्यासमन्विताम् ॥ एवंविवाहेसंवृत्तेरमापुत्रोमुदान्वितः ॥ ६५ ॥ गृहंप्राप्यबहून्भोगान्बुभुजेप्रिययासमम् ॥ बभूवतस्यांपुत्रस्तुकृतवीर्याभिधःकिल ॥ ६६ ॥ तत्सुतःकार्तवीर्यस्तुवंशोऽयंकथितोमया ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेम० षष्ठस्कंधेत्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वन्मुखांभोजाच्च्युतंदिव्यकथारसम् ॥ नतृप्तिमधिगच्छामिपिबंस्तुसुधयासमम्॥१॥विचित्रमिदमाख्यानंकथितंभवतामम॥हैहयानांसमुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा ॥ २ ॥ परंकौतूहलंमेऽत्रयद्विष्णुःकमलापतिः ॥ देवदेवोजगन्नाथःसृष्टिस्थित्यंतकारकः ॥३॥ सोऽप्यश्वभावमापन्नोभगवान्हरिरच्युतः ॥ परतंत्रःकथंजातःस्वतंत्रःपुरुषोत्तमः॥४॥एतन्मेसंशयंब्रह्मंश्छेत्तुमर्हसिसांप्रतम् ॥ सर्वज्ञस्त्वंमुनिश्रेष्ठब्रूहिवृत्तांतमद्भुतम् ॥५॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिसंदेहस्याऽस्यनिर्णयम् ॥ यथाश्रुतंमयापूर्वंनारदान्मुनिसत्तमात् ॥ ६ ॥

शकी उत्पत्तिका विचित्र और विस्मयप्रद उपाख्यान विस्तारपूर्वक वर्णनकिया ॥२॥ किन्तु हे मुनिवर ! इस विषयमें मेरे हृदयमें एक परम कौतूहल उत्पन्न हुआ है देखो कमलापति भगवान् विष्णुने देवतागणोंकेभी देवता और सम्पूर्ण जगत्के अधिनाथ तथा सृष्टि स्थिति प्रलयके कर्त्ता थे ॥ ३ ॥ तो भी उन पुरुषोत्तम भगवान हरिनेभी अश्वरूप धारणकिया वह अच्युत और स्वतन्त्र होकरभी किसकारण परतंत्र हुए ॥ ४ ॥ आप इस समय मेरे हृदयका यह संशय छेदन कीजिये हे मुनिवर ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव यह अद्भुत वृत्तान्त कहकर मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! पहले मैंने मुनिसत्तम नारदसे इस संदेहके

निराकरणविषयमें जिसप्रकार सुनाथा इससमय मैं आपसे उसीप्रकार कहता हूं सुनो ॥ ६ ॥ ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि नारद तपोबलसे सर्वत्रगामी सर्वज्ञ शान्तप्रकृति सर्वलोकोंके प्रिय और कवि हैं ॥ ७ ॥ एक समय वह श्रेष्ठ ऋषि स्वरतानयुक्त वीणा बजातेबजाते इस पृथ्वीपर भ्रमण करनेलगे ॥ ८ ॥ एकदिन बृहद्रथंतरादि [सामगानके मंत्र] सामवेदके अनेकानेक विशेषविषय और मोक्षप्रद अमृतस्यन्दिनी गायत्री गानकरतेकरते मेरे आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ हेराजन्! सरस्वती नदीके तटपर शम्याप्रास नामक ज्ञानप्रद सुखद अतिपवित्र एक महातीर्थ है तहां अनेक महर्षि वास करते हैं उसी स्थानमें मेरा आश्रम था ॥ १० ॥ तब मैं उन तेजःपुञ्ज कलेवर पितामहके पुत्र ऋषिवर नारदको आताहुआ देखकर उठा और विधिपूर्वक पाद्य तथा अर्घ्यादिसे पूजा की ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्यविधिके अनन्तर उन

ब्रह्मणोमानसःपुत्रोनारदोनामतापसः ॥ सर्वज्ञःसर्वगःशांतःसर्वलोकप्रियःकविः ॥ ७ ॥ सचैकदामुनिश्रेष्ठोविचरन्पृथिवीमिमाम् ॥ वादयन्महतींवीणां स्वरतानसमन्विताम् ॥ ८ ॥ बृहद्रथंतरादीनांसाम्नांभेदाननेकशः ॥ गायन्गायत्रममृतंसंप्राप्तोऽथममाऽऽश्रमम् ॥ ९ ॥ शम्याप्रासंमहातीर्थंसरस्वत्याः सुपावनम् ॥ निवासंमुनिमुख्यानांशर्मदंज्ञानदंतथा ॥ १० ॥ तमागतमहंप्रेक्ष्यब्रह्मपुत्रंमहाद्युतिम् ॥ अभ्युत्थानादिकंसर्वंकृतवानर्चनादिकम् ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्यविधिंकृत्वातस्याऽऽसनस्थितस्यच ॥ उपविष्टःसमीपेऽहंमुनेरमिततेजसः ॥ १२ ॥ दृष्ट्वाविश्रमिणंशांतंनारदंज्ञानपारदम् ॥ तमपृच्छमहंराजन्यत्पृष्टोऽहंत्वयाऽधुना ॥ १३ ॥ असारेऽस्मिन्स्तुसंसारेप्राणिनांकिंसुखंमुने ॥ नपश्यामिविनिश्चित्यकदाचित्कुत्रचित्क्वचित् ॥१४॥ द्वीपेजातोजनन्याहंसंत्यक्तस्तत्क्षणादपि ॥ अनाश्रयोवनेवृद्धिंप्राप्तःकर्मानुसारतः ॥१५॥ तपस्ततंमयाचोग्रंपर्वतेबहुवार्षिकम्॥पुत्रकामेनदेवर्षेशंकरःसमुपासितः ॥१६॥ ततोमयाशुकःप्राप्तःपुत्रोज्ञानवतांवरः ॥ पाठितस्तुमयासम्यग्वेदानांसारआदितः ॥ १७ ॥

अमिततेजा मुनिवरके आसनमें बैठनेपर फिर मैंभी उनके निकट बैठगया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन ज्ञानप्रद नारदको विश्रान्त और शान्त देखकर तुमने इस समय मुझसे जो पूछा मैंनेभी उनसे इसी प्रकार पूँछा ॥ १३ ॥ हे मुनिवर ! इस असारसंसारमें प्राणीगणोंको जन्मग्रहण करके क्या सुख है ? मैं निश्चयकर कभी किसी स्थल तथा किसी विषयमें वह सुख नहीं देखता तथापि बड़े बडे पुरुषभी किसकारण संसारमें मोहित हो कर्म करते हैं ? ॥ १४ ॥ देखो द्वीपमें मेरा जन्म हुआ और जन्मतेही जननीने मुझको परित्यागकिया मैं वनमें निराश्रय होकर कर्मानुसार बढ़नेलगा ॥ १५ ॥ अनन्तर पुत्रप्राप्तिकी कामनासे पर्व्वतमें स्थित हो बहुत वर्ष पर्य्यंत देवदेव महादेवकी उग्रतर तपस्या की ॥ १६ ॥ इससे ज्ञानिगणोंके अग्रगण्य शुकको पुत्ररूपसे प्राप्तहो उसको आदिसे सम्पूर्ण वेदोंका सार भाग भलीभाँति पाठ कराया ॥ १७ ॥

हे देवर्षे ! मेरा वह पुत्र आपकेही वचनसे ज्ञानको प्राप्त हुआ मेरे उसके विरहमें अत्यन्त कातर हो रोनेपरभी मुझको छोड़ इस लोकसे लोकान्तरको चलागया ॥ १८ ॥ तदनन्तर पुत्रशोकसे अत्यन्त सन्तप्त हो महागिरि सुमेरुको परित्याग किया तब मैं पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर और पुत्रके स्नेहसे अतिकृशाङ्ग हो इस संसारको मिथ्या जानकर भी मायापाशमें बँध माताको स्मरण करते हुए कुरुजंगलमें उपस्थितहुआ ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर राजा शन्तनुने कल्याणिनी जननीका विवाह किया है यह सुनकर इस सरस्वतीके पवित्र तटपर आश्रम बनाय वास करने लगा ॥ २१ ॥ शन्तनु राजाके परलोक जानेपर साध्वी जननी दो पुत्रोंके सहित वास करने लगी तब भीष्म उनका प्रतिपालन करने लगे ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् गंगापुत्रने चित्राङ्गदको राज्यपदमें स्थापित किया कुछ कालोपरान्त वह कामदेवकी समान

सत्यक्त्वामांगतः क्वाऽपिरुदंतंविरहातुरम्॥ लोकाल्लोकांतरंसाधोवचनात्तवबोधितः ॥ १८ ॥ ततोऽहंपुत्रसंततस्त्यक्त्वामेरुंमहागिरिम् ॥ मातरंमनसा कृत्वासंप्राप्तःकुरु जांगलम् ॥ १९ ॥ पुत्रस्नेहादतितरांकृशांगःशोकसंयुतः ॥ जानन्मिथ्येतिसंसारंमायापाशनियंत्रितः ॥ २० ॥ ततोराज्ञावृतांज्ञात्वामा तरंवासवींशुभाम् ॥ स्थितोऽत्रैवाऽऽश्रमंकृत्वासरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ २१ ॥ शंतनुःस्वर्गतिंप्राप्तोविधुराजननीस्थिता ॥ पुत्रद्वययुतासाध्वीभीष्मेणप्र तिपालिता ॥ २२ ॥ चित्रांगदःकृतोराजागंगापुत्रेणधीमता ॥ कालेनसोऽपिमेभ्रातामृतःकामसमद्युतिः ॥ २३ ॥ ततःसत्यवतीमातानिमग्नाशो कसागरे ॥ चित्रांगदंमृतंपुत्रंरुरोदभृशमातुरा ॥ २४ ॥ संप्राप्तोऽहंमहाभागज्ञात्वातांदुःखितांसतीम् ॥ आश्वासितामयात्यर्थंभीष्मेणचमहात्मना ॥ २५ ॥ विचित्रवीर्यस्त्वपरोवीर्यवान्पृथिवीपतिः ॥ कृतोभीष्मेणभ्रातावैस्त्रीराज्यविमुखेनह ॥ २६ ॥ काशिराजसुतेरम्येविजित्यपृथिवीपतीन् ॥ भीष्मेणाऽऽनी यस्ववलात्कन्यकेद्वे समर्पिते ॥ २७ ॥ सत्यवत्यैशुभेकालेविवाहःपरिकल्पितः ॥ भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्यतदाऽहंसुखितोभवम् ॥ २८ ॥

मनोहर कान्ति भ्राता कालके ग्रासमें पतित हुए ॥ २३ ॥ माता सत्यवती इसप्रकार पुत्रके शोकसागरमें निमग्न हो पुत्र चित्राङ्गदके निमित्त अत्यन्त कातर हो रोदन करने लगी ॥ २४ ॥ हे महाराज ! तिस कालमें जननीको दुःखित जानकर उसके निकट उपस्थित हुआ अनन्तर मैंने और भीष्मने उसको सान्त्वना प्रदान कर समझाया ॥ २५ ॥ भीष्मदेवने दारपरिग्रह और राज्यपालनसे विमुख हो कनिष्ठभ्राता वीर्यवान् विचित्रवीर्यको राज्य प्रदान किया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! भीष्मने अपने वीर्यसे राजाओंको पराजित कर काशिराजकी दो कन्या लाय विचित्रवीर्यको प्रदान करनेके निमित्त सत्यवतीको समर्पणकी ॥ २७ ॥ अनन्तर शुभदिन और शुभलग्नमें भ्राता

विचित्रवीर्यका विवाह होनेपर तब मैं सुखी हुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर यक्ष्मारोगसे पीडितहो उस अपुत्रक युवा धनुर्द्धर भ्राता विचित्रवीर्यनेभी प्राण परित्याग किया इससे माता अत्यन्त दुःखित होगई ॥ २९ ॥ पतिको मरा हुआ देख काशिराजकी कन्या उन दोनों बहिनों ने पतिव्रत धर्मकी रक्षामें तत्पर होकर अत्यन्त दुःखित ॥ ३० ॥ और रोदनशील प्राप्त सतीदेवीसे कहा हम दोनोंजनी अग्निमें पतिकी सहगामिनी होंगी ॥ ३१ ॥ देवि ! हम तुम्हारे पुत्रके संग स्वर्गमें जाय दोनों बहिने मिल उनके सहित नन्दनवनमें विहारकरेंगी ॥ ३२ ॥ जननीने स्नेहभावका आश्रय कर भीष्मकी अनुमति ग्रहणपूर्वक दोनों बहुओंको इस महाउद्यमसे निवारित किया ॥ ३३ ॥ विचित्रवीर्यकी सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक क्रिया सम्पादित होनेपर फिर भीष्मसे परामर्शकर जननीने हस्तिनानगरमें मुझको स्मरणकिया ॥ ३४ ॥ स्मरणकरतेही जननीके मनका भाव जान मैं शीघ्र हस्तिनानगरमें आया ॥ ३५ ॥ और मस्तक झुकाय उसके चरणोंमें प्रणाम करे हाथ जोड़ उस पुत्ररूपी शोकानलसे सन्तप्त हुई मातासे कहा ॥

पुनःसोपिमृतोभ्रातायक्ष्मणापीडितोभृशम् ॥ अनपत्योयुवाधन्वीमातामेदुःखिताऽभवत् ॥ २९ ॥ काशिराजसुतेद्वेतुमृतंदृष्ट्वापतिंतदा ॥ पतिव्रताधर्मपरेभगिन्यौसंबभूवतुः ॥ ३० ॥ तेऊचतुःसतींश्वश्रूंरुदतींभृशदुःखिताम् ॥ पतिनासहगामिन्यौभविष्यावोहुताशने ॥ ३१ ॥ पुत्रेणसहतेश्वश्रुस्वर्गंगत्वाऽथनंदने ॥ सुखेनविहरिष्यावःपतिनासहसंयुते ॥३२॥ निवारितेतदामात्रावध्वौतस्मान्महोद्यमात् ॥ स्नेहभावंसमाश्रित्यभीष्मस्यवचनात्तदा ॥ ३३ ॥ गांगेयेनचमात्रामेसंमंत्र्यचपरस्परम् ॥ कृत्वौर्ध्वदेहिकंसर्वंसंस्मृतोऽहंगजाह्वये ॥ ३४ ॥ स्मृतमात्रस्तुमात्रावैज्ञात्वाभावंमनोगतम् ॥ तरसैवाऽऽगतश्चाऽहंनगरंनागसाह्वयम् ॥३५॥ प्रणम्यमातरंमूर्ध्नासंस्थितोऽथकृतांजलिः ॥ तामब्रुवंसुततप्तांगींपुत्रशोकेनकर्शिताम् ॥ ३६ ॥ मातस्त्वयाकिमाहूतोमनसाऽहंतपस्विनि ॥ आज्ञापयमहत्कार्यंदासोऽस्मिकरवाणिकिम् ॥३७॥ त्वंमेतीर्थंपरंमातर्देवश्चप्रथितःपरः ॥ आगतश्चितितश्चाऽत्रब्रूहिकृत्यंतवप्रियम् ॥३८॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाऽहंस्थितस्तत्रमातुरग्रेयदामुने ॥ तदासामामुवाचेदंपश्यंतीभीष्ममंतिके ॥ ३९ ॥ पुत्रतेऽग्रजमृतोभ्रातापीडितोराजयक्ष्मणा ॥ तेनाऽहंदुःखिताजातावंशच्छेदभयादिह ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वमद्यमेधाविन्मयाऽऽहूतःसमाधिना ॥ गांगेयस्यमतेनात्रपाराशर्यार्थसिद्धये ॥ ४१ ॥

॥ ३६ ॥ हे जननि ! मुझको मनहीमनमें स्मरण करके क्यों बुलाया है ? तुमको इस समय अत्यन्त दुःखित हुआ देखता हूं मैं आपका दास हूं आज्ञा कीजिये तुम्हारा क्या कर्म सम्पादन करूं ॥ ३७ ॥ हे मातः ! आपही मेरा परम तीर्थ और आपही मेरी परम देवता हैं. मैं इस स्थानमें उपस्थित होकर अत्यन्त उत्कण्ठित होरहाहूं क्या आपका प्रिय कार्य है वह मुझसे कहो ॥ ३८ ॥ व्यासजीने कहा हे मुनीश्वर ! मैं यह कहकर जब माताके सामने खडारहा तब उन्होंने समीप बैठे भीष्मकी ओर देखकर मुझसे कहा ॥ ३९ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे भ्राता विचित्रवीर्य राजयक्ष्मारोगसे पीड़ित हो करालकालके ग्रासमें पतित हुए हैं इसीकारण वंश नष्ट होनेके भयसे मैं अत्यन्त दुःखित होरही हूं ॥ ४० ॥ हे मेधाविन् ! इसी प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त गंगापुत्रकी अनुमति लेकर अब मैंने तुमको बुलाया है ॥ ४१ ॥

हे पराशरनन्दन ! शन्तनुके नामार्थ तुम प्रायः नष्ट हुआ वंश पुनर्वार स्थापन करो. हे व्यासदेव ! तुम शीघ्र मेरी वंशोच्छेदजनित दुःखसे रक्षा करो ॥ ४२ ॥ रूपयौवनसम्पन्न साधुशील काशिराजकी दोनों कन्या तुम्हारे कनिष्ठ भ्राता विचित्रवीर्यकी भार्या हैं ॥ ४३ ॥ हे महामते ! तुम उनके सहित संगम करके पुत्रोत्पादन पूर्वक भारत वंशकी रक्षा करो इससे तुमको कोई दोष स्पर्श नहीं करेगा ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे देवर्षे ! माताके यह वचन सुनकर मैं अत्यन्त चिन्तित हुआ और लज्जाकुलित चित्तसे विनयपूर्वक उनसे कहा ॥ ४५ ॥ हे मातः ! पराई स्त्रीको स्पर्शकरना अत्यन्त पापकर कर्म है, मैं धर्मका मार्ग भलीभाँति जानकर किसप्रकार यह कार्य आदरपूर्वक करूं ? ॥ ४६ ॥ और भी देखो. महर्षिगण कहते हैं कि कनिष्ठ भ्राताकी भार्या कन्याकी समान है, मैं सम्पूर्ण वेदशास्त्र

कुलंस्थापयनष्टंत्वंशंतनोर्नामकारणात् ॥ रक्षमांदुःखतःकृष्णवंशच्छेदोद्भवाद्भुतम् ॥ ४२॥ काशिराजसुतेभार्येभ्रातुस्तवयवीयसः ॥ साधोर्विचित्रवीर्यस्यरूपयौवनभूषिते॥४३॥ ताभ्यांसंगम्यमेधाविन्पुत्रोत्पादनकंकुरु।।रक्षस्वभारतंवंशंनात्रदोषोऽस्तिकर्हिचित् ॥४४॥ व्यासउवाच ॥ इतिमातुर्वचःश्रुत्वाजातश्चिंतातुरोह्यहम् ॥ लज्जयाऽऽकुलचित्तस्तामब्रुवंविनयानतः ॥ ४५ ॥ मातःपापाधिकंकर्मपरदाराभिमर्शनम् ॥ ज्ञात्वाधर्मपथंसम्यक्करोमिकथमादरात् ॥४६॥ तथायवीयसोभ्रातुर्वधूःकन्याप्रकीर्तिता ॥ व्यभिचारंकथंकुर्यामधीत्यनिगमानहम् ॥४७॥ अन्यायेननकर्तव्यंसर्वथाकुलरक्षणम् ॥ नतरंतिहिसंसारात्पितरःपापकारिणः ॥४८॥ लोकानामुपदेष्टायःपुराणानांप्रवर्तकः ॥ सकथंकुत्सितंकर्मज्ञात्वाकुर्यान्महाद्भुतम् ॥४९॥ पुनरुक्तोह्यहंमात्रारुदत्याभृशमंतिके ॥ पुत्रशोकातितप्तायावंशरक्षणकाम्यया ॥५०॥ पाराशर्यनतेदोषोवचनान्ममपुत्रक।।गुरूणांवचनंतथ्यंसदोषमपिमानवैः॥५१॥

अध्ययन करके किसप्रकार ऐसा व्यभिचार कर्म करनेमें समर्थ हूं ? ॥ ४७ ॥ अन्याय कर्मसे कुलकी रक्षा करना किसीके मतसे कर्त्तव्य नहीं है. क्योंकि पाप करनेवालेके पितृगण संसारसागरसे पार होनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ४८ ॥ जो पुरुष संपूर्णलोकोंका उपदेष्टा और पुराणोंका प्रवर्त्तक है वह समस्त जान सुनकर इस अत्यन्त अद्भुत कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त होसक्ता है ? ॥ ४९ ॥ माता पुत्रशोकसे अत्यन्त सन्तप्त हुई थी इस कारण उन्होंने कुलके रक्षा करनेकी इच्छासे रोदन करते करते मेरे निकट आनकर पुनर्वार कहा ॥ ५० ॥ हे पराशरपुत्र ! यदि तुम मेरे वचनके अनुवर्त्ती होकर कार्य करोगे तो तुमको कुछभी दोष नहीं होगा.

हेपुत्र ! गुरुजनोंके युक्तियुक्त वचन सदोष होने परभी न विचार कर ॥ ५१ ॥ शिष्टाचारप्रमाणसे कार्य सम्पादन करना मनुष्यगणोंको अत्यन्त उचित है. अतएव हे पुत्र ! तुम मेरा वचन प्रतिपालन करके मेरे मानकी रक्षा करो इसे तुमको कुछ दोष नहीं होगा ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! तुम भलीभाँति विचार करके देखो कि तुम्हारी जननी अत्यन्त सन्तप्त और शोकसागरमें निमग्न हुई है अतएव कुलपुत्र उत्पादन करके उसको सुखी करना तुमको अवश्य उचित है ॥ ५३ ॥ मैं जननीका इस प्रकार कहना सुनकर सूक्ष्म धर्मके निर्णय विषयमें विशेषज्ञ गंगानन्दन भीष्म मुझसे कहने लगे ॥ ५४ ॥ हे द्वैपायन ! तुम सर्वप्रकार निष्पाप हो अतएव इसविषयमें तुमको विचार करना उचित नहीं है तुम माताका वचन प्रतिपालन कर सुखपूर्वक विहारकरो ॥ ५५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन और माताकी प्रार्थना सुन मैं निःशङ्कचित्तसे उस अत्यन्त घृणित कार्यमें प्रवृत्त हुआ ॥ ५६ ॥ अम्बिकाके ऋतुस्नान करनेपर मैं रात्रिकालके समय

कर्तव्यमविचार्यैवशिष्टाचारप्रमाणतः ॥ वचनंकुरुमेपुत्रनतेदोषोऽस्तिमानद ॥ ५२ ॥ पुत्रस्यजननंकृत्वासुखिनींकुरुमातरम् ॥ विशेषेणतु संतप्तांमग्नांशोकार्णवेसुत ॥ ५३ ॥ इतितांब्रुवतींश्रुत्वातदासुरनदीसुतः ॥ मामुवाचविशेषज्ञःसूक्ष्मधर्मस्यनिर्णये ॥ ५४ ॥ द्वैपायनविचारोऽत्रनकर्तव्यस्त्वयाऽनघ ॥ मातुर्वचनमादायविहरस्वयथासुखम् ॥ ५५ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वामातुश्चप्रार्थनंतथा ॥ निःशंकोऽहंतदाजातःकार्येतस्मिञ्जुगुप्सिते ॥ ५६ ॥ अंबिकायांप्रवृत्तोऽहमृतुमत्यांमुदानिशि ॥ मयिविमनसायांतुतापसेकुत्सितेभृशम् ॥ ५७ ॥ शप्ता मयासासुश्रोणीप्रसंगेप्रथमेतदा ॥ अंधस्तेभवितापुत्रोयतोनेत्रेनिमीलिते ॥ ५८ ॥ द्वितीयेह्निमुनिश्रेष्ठपृष्टोमात्रारहःपुनः ॥ भविष्यतिसुतःपुत्रकाशिराजसुतोदरे ॥ ५९ ॥ मयोक्ताजननीतत्रव्रीडानम्रमुखेनह ॥ विनेत्रोभवितापुत्रोमातःशापान्ममैवहि ॥ ६० ॥ तयानिर्भर्त्सितस्तत्रकठोरवचसामुने ॥ कथंपुत्रत्वयाशप्ता पुत्रस्तेंधोभविष्यति ॥ ६१ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ वासवीचकिताजाताश्रुत्वामे वाक्यमीदृशम् ॥ दाशेयीमामुवाचेदंपुत्रार्थेभृशमातुरा ॥ १ ॥

उसके सहवासमें प्रवृत्तहुआ, किन्तु उस युवतीने मेरा कुत्सित तापसरूप देखकर मुझसे अनुराग न किया ॥ ५७ ॥ तब मैंने उस नितम्बिनीको शाप दिया जब कि, तुमने मेरे सहित प्रथम सहवासमें ही नेत्र बंदकर लिये अतएव तुम्हारा पुत्र अन्धा होकर जन्मग्रहण करेगा ॥ ५८ ॥ हे मुनिवर ! दूसरे दिन माता मुझसे निर्ज्जनमें पूँछने लगी हे द्वैपायन ! काशिराजकी कन्याके उदरसे पुत्र उत्पन्न होगा ? ॥ ५९ ॥ तब मैंने लज्जासे झुके हुए मुखद्वारा कहा हे मातः ! मेरेही शापसे वह पुत्र जन्मान्ध होगा ॥ ६० ॥ तब जननीने मुझसे कठोर वचनद्वारा भर्त्सनाकर कहा हे पुत्र ! अम्बिकाके पुत्र अन्ध होगा यह कहकर तुमने उसको किसकारण शाप दिया ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! मेरे यह वचन सुन माता चकित होगई

और पुत्रके अर्थ अत्यन्त आतुर हो मुझसे कहने लगी ॥ १ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे भ्राताकी भार्या विधवा शोकसंयुक्त काशिराजकी कन्या अम्बालिका ॥ २ ॥ सर्वसुलक्षण सम्पन्न रूपयौवनशालिनी और सम्पूर्ण गुणोंसे विभूषित है तुम उसके सँहित सहवासकरके श्रेष्ठपुरुषोंके सम्मत उत्तम पुत्र उत्पन्न करो ॥ ३ ॥ जन्मान्ध पुरुष राज्यको अधिकारी नहीं होता अतएव तुम मेरे वचनसे राजकन्यामें एक मनोहर पुत्र उत्पन्न करके मेरे मानकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे मुनिवर ! तिसकालमें माताके यह वचन सुन जबतक काशिराजकी कन्या अम्बालिका ऋतुमती नहो तबतक मैं हस्तिनापुरमें वासकरनेलगा ॥ ५ ॥ अनन्तर यथासमय उपस्थित होनेपर कुटिलकेशी राज कन्या सासकी आज्ञासे निर्जन शयनागारमें मेरे समीप आय अत्यन्त लज्जान्वित हुई ॥ ६ ॥ मुझको जटिलतापस और रसवर्जित देखकर उसके मुखपर

अंबालिकावधूर्धन्याकाशिराजसुतासुत ॥ भार्याविचित्रवीर्यस्यविधवाशोकसंयुता ॥ २ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नारूपयौवनशालिनी ॥ तस्यां जनयसंगंत्वंकृत्वापुत्रंसुसंमतम् ॥ ३ ॥ नांधोराज्याधिकारीस्यात्तस्मात्पुत्रंमनोहरम् ॥ उत्पादयराजपुत्र्यांवचनान्ममानद ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽहंतदामात्रास्थितस्तत्रगजाह्वये ॥ यावदृतुमतीजाताकाशिराजसुतामुने ॥ ५ ॥ एकांतेशयनागारेप्राप्तासाममसन्निधौ ॥ लज्जमानासु केशांतास्वश्वश्रूवचनात्तदा ॥ ६ ॥ दृष्ट्वामांजटिलंदांततापसंरसवर्जितम् ॥ सास्वेदवदनाजातापांडुराविमनाभृशम् ॥ ७ ॥ कुपितोऽहं तदादृष्ट्वाकामिनींनिशिसंगताम् ॥ वेपमानांस्थितांपार्श्वेह्यब्रवंतामहंरुषा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वामांयदिगर्वेणपांडुवर्णासमावृता ॥ अतस्तेतनयःपांडुर्भवि ष्यतिसुमध्यमे ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा निशितत्रैवस्थितोंबालिकयायुतः ॥ भुक्त्वातांनिशिनिर्यातःस्थानमापृच्छ्यचमातरम् ॥ १० ॥ ततस्ताभ्यांसुतौकालेप्रसू तावंधपांडुरौ ॥ धृतराष्ट्रश्चपांडुश्चप्रथितौसंबभूवतुः ॥ ११ ॥ मातामेविमनाजातातादृशौवीक्ष्यतौसुतौ ॥ ततःसंवत्सरस्यांतेमामाहूयतदाब्रवीत् ॥ १२ ॥ द्वैपायनसुतौजातौराज्ययोग्यौनतादृशौ ॥ अन्यंमनोहरंपुत्रंसमुत्पादयमेप्रियम् ॥ १३ ॥

पसीना आगया देह उसकी पाण्डुवर्ण और मन विरस होगया ॥ ७ ॥ मैंने रात्रिके समय पार्श्वमें बैठी हुई उस कामिनीको कांपता और पाण्डुवर्ण देखकर क्रोधयुक्त हो कहा ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमे ! तुम जब मुझको देखकर अपने सौन्दर्यके गर्वसे पाण्डुवर्ण हुई तब तुम्हारा पुत्र पाण्डुवर्ण होगा ॥ ९ ॥ यह कह उसी स्थानमें अम्बालिकाके संग रात्रि बिताई. इसप्रकार मैं उस कामिनीके संग रतिसम्भोगकर मातासे आज्ञा ले अपने स्थानको गया ॥ १० ॥ तदनन्तर उन दोनों राजकन्याओंने यथासमयमें अन्ध और पाण्डुवर्ण दो पुत्र उत्पन्न किये अम्बिकाका पुत्र धृतराष्ट्र नामसे और अम्बालिकाका पुत्र पाण्डुवर्ण होनेपर पाण्डुनामसे विख्यात हुआ ॥ ११ ॥ माता उन दोनों पुत्रोंको ऐसा देखकर विमन हुई तदनन्तर संवत्सरके उपरान्त मुझको बुलाकर कहा ॥ १२ ॥ हे द्वैपायन ! यह दोनों पुत्र सेए

राज्यके योग्य नहीं हैं अतएव मेरा प्रिय और मनोहर अन्य अब एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ १३ ॥ मेरे उनकी बातमें सम्मत होनेपर फिर उन्होंने आनन्दित हो यथासमय अम्बिकाकी प्रार्थना करके कहा ॥१४॥ हे पुत्रि ! व्यासको आलिङ्गन करके अद्भुत गुणयुक्त कुरुराज वंशके योग्य कुलरक्षक एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ १५ ॥ वधूने लज्जासे उस समय कुछ न कहा मैंने माताकी आज्ञानुसार रात्रिकालके समय जब शयनागारमें गमन किया ॥ १६ ॥ तिससमय अम्बिकाने रूपयौवनसम्पन्न विचित्रवीर्यकी एक दासीको अनेक प्रकारके वसनभूषणोंसे भूषित करके मेरे समीप भेजदिया ॥ १७ ॥ वह हंसगामिनी सुकेशी दासी रक्तचन्दन और पुष्पमालासे विभूषित हो हावभावसहित आनकर ॥ १८ ॥ मुझको पलँगपर बैठाय स्वयं प्रेमरसमें डूबकर बैठ गई. हे मुनिवर ! मैंने उसके भाव और विलाससे

तथेतिसामयाप्रोक्तामुदिताजननीतदा ॥ अंबिकांप्रार्थयामाससुतार्थेकालआगते ॥ १४ ॥ पुत्रिव्यासंसमालिंग्यपुत्रमुत्पादयाऽद्भुतम्॥कुरुवंशस्यकर्तारं राज्ययोग्यंवरानने ॥ १५ ॥ वधूर्लज्जान्वितांकिंचिन्नोवाचवचनंतदा ॥ गतोऽहंशयनागारेमातुस्तद्वचनान्निशि ॥ १६॥ दासींविचित्रवीर्यस्यरूपयौवन संयुता ॥ प्रेषितांबिकयात्वत्रविचित्राभरणांबरा ॥ १७॥ चंदनारक्तदेहासापुष्पमालाविभूषिता ॥ आयाताहावसंयुक्तासुकेशीहंसगामिनी ॥ १८॥ प र्येकेमांसमावेश्यसंस्थिताप्रेमसंयुता ॥ प्रसन्नोऽहंतदातस्याविलासेनाऽभवंमुने ॥१९॥ रात्रौसंक्रीडितंप्रेम्णातयासहमयाभृशम् ॥ वरोदत्तःपुनस्तस्यैप्र सन्नेनतुनारद ॥ २० ॥ सुभगेभवितापुत्रःसर्वलक्षणसंयुतः ॥ सुरूपःसर्वधर्मज्ञःसत्यवादीशमेरतः ॥ २१ ॥ सतदाविदुरोजातस्त्रयःपुत्रामयाऽभवन् ॥ मा यावृद्धिंगतासाधोपरक्षेत्रोद्भवेमम ॥ २२ ॥ विस्मृतःशुकसंबंधीविरहःशोककारणम् ॥ दृष्ट्वात्रीन्स्वसुतान्कामंवीर्यवान्वीर्यसंमतान् ॥ २३ ॥ मायाबल वतीब्रह्मन्दुस्त्यजाह्यकृतात्मभिः ॥ अरूपाचनिरालंबाज्ञानिनामपिमोहिनी ॥ २४ ॥

प्रसन्न होकर ॥ १९ ॥ रात्रिकालके समय प्रेमान्वितचित्तसे उसके संग अनेक क्रीडा की इसके उपरान्त प्रसन्न मनसे उसको वर देकर कहा ॥ २० ॥ हे सुभगे ! मेरे औरउसे तुम्हारे सर्व सुलक्षणयुक्त सुरूप सम्पूर्ण धर्मोका जाननेवाला शान्त और सत्यवादी एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ अनन्तर यथा समयमें उसके विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ परक्षेत्रमें इसप्रकार मुझसे तीन पुत्रकी उत्पत्ति होनेपर यह मेरे पुत्र हैं इसप्रकार जानकर मेरे मनमें मायाकी वृद्धि होने लगी ॥२२॥ तब मैं उन तीनों पुत्रोंको वीर्यवान् और वीरसंमत देखकर अपने शोकका एक मात्र कारण शुकविरह भूलगया ॥२३॥ हे द्विजेन्द्र ! माया अत्यन्त बलवती और अजितेन्द्रिय पुरुषोंको अत्यन्त कठिनतासे छोड़ने योग्य है यह माया आकार और अवलम्बनशून्य होनेपरभी ज्ञानीगणोंको मोहित करती है ॥ २४ ॥

माताके स्नेहमें बंध और पुत्रके प्रति आसक्त होकर मेरा मन वनमेंभी शान्तिलाभ न करसका ॥ २५ ॥ हे मुनिवर! तब मेरा चित्त तराजूपर आरूढकी समान अन्दोलित होने लगा इससे मैं कभी हस्तिनामें और कभी सरस्वतीके तटमें वास करने लगा एक स्थानमें स्थिर होकर न रह सका ॥ २६ ॥ कभी कभी विचारद्वारा इस प्रकार ज्ञान मेरे मनमें प्रतिभात होने लगा कि, यह पुत्र किसके हैं? यह स्नेह केवल मोहमात्र है अन्य कुछ नहीं है मेरे मरनेपर यह मेरे श्राद्धाधिकारी नहीं होंगे॥ २७॥ यह पुत्र व्यभिचारद्वारा उत्पन्न हुए हैं यह मुझको क्या सुख देंगे? हे मुनिवर! इसप्रकार बलवती मायाही मेरे मनमें मोह विस्तार करती है ॥ २८ ॥ इस संसारको मिथ्या जानकरभी मैं मोहान्धकूपमें पतित हुआ हूं मैंने कभी कभी निर्जनमें समाहित चित्तसे इस विषयकी चिन्ता करके परिताप किया था ॥ २९॥

मातरिस्नेहसंबद्धंतथापुत्रेषुसंवृतम् ॥ नमेचित्तंवनेशांतिमगान्मुनिवरोत्तम ॥ २५ ॥ दोलारूढंमनोजातंकदाचिद्धस्तिनापुरे ॥ पुनःसरस्वतीतीरेनचैकत्रव्यवस्थितिः ॥ २६ ॥ कदाचिच्चिंतयञ्ज्ञानंमानसेप्रतिभातिवै ॥ केऽमीपुत्राःक्वमोहोऽयंनश्राद्धार्हामृतस्यमे ॥ २७ ॥ व्यभिचारोद्भवाःकिंमेसुखदाःस्युःसुताःकिल ॥ मायाबलवतीमोहंवितनोतिहिमानसे ॥ २८ ॥ जानन्मोहांधकूपेऽस्मिन्पतितोऽहंमृषामुने ॥ इत्यकुर्वंरहस्तापंकदाचित्सुसमाहितः ॥ २९ ॥ राज्यंप्रापततःपांडुर्बलवान्भीष्मसंमतः ॥ तदाममम्नोजातंप्रसन्नंसुतकारणात् ॥ ३० ॥ कुंतीमाद्रीसुरूपेद्वेभार्येतस्यबभूवतुः ॥ शूरसेनसुता कुंतीमद्रराजसुतापरा ॥ ३१ ॥ सशापंद्विजतःप्राप्यकामिनीद्वयसंयुतः ॥ पांडुर्निर्वेदमापन्नस्त्यक्त्वाराज्यंवनंगतः ॥ ३२ ॥ तदामामाविशच्छोकःश्रुत्वापुत्रंवनेस्थितम् ॥ गतोहंतत्रयत्राऽसौभार्याभ्यांसहसंस्थितः ॥३३॥ तमाश्वास्यवनेपांडुंपुनःप्रातोगजाह्वये॥धृतराष्ट्रंसमाभाष्यह्यगमंब्रह्मजातटे॥३४॥

तदनन्तर भीष्मकी परामर्शसे बलवीर्ययुक्त पाण्डु राज्यको प्राप्त हुआ तबभी पुत्रकी समृद्धि देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ. हे मुनिवर! यहभी उसी मायाका कार्य है॥ ॥ ३० ॥ शूरसेनराजाकी कन्या कुन्ती और मद्रराजाकी कन्या माद्री यह दोनों सुस्वरूपा कामिनी पाण्डुकी भार्या हुई ॥ ३१ ॥ स्त्रीसंग करनेसे तुम्हारी मृत्यु होगी इस प्रकार विप्रशापसे दुःखको प्राप्त हो पाण्डु राज्यपरित्यागकर दोनों भार्याओंके संग वनको चलेगये॥ ३२॥ उस पुत्र पाण्डुको वनमें वास करता हुआ सुन मेरे हृदयमें शोक उदय हुआ तब मैं दोनों भार्याओंके सहित अवस्थित उस पाण्डुके निकट जाय॥ ३३॥ और उसको समझाकर फिर हस्तिनापुरमें आया और धृतराष्ट्रके संग कथो

पकथनकर सरस्वतीके तटपर आय उपस्थित हुआ॥ ३४॥पाण्डुने वनाश्रममें उपस्थित होकर वहाँ धर्म, वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमारोंसे पांच क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराये॥ ३५॥ कुन्तीसे युधिष्ठिर भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र क्रमानुसार धर्म अग्नि और इन्द्रके उरसे ॥ ३६ ॥ और माद्रीसे नकुल और सहदेव दोनों अश्विनीकुमारके उरसे उत्पन्न हुए अनन्तर किसी समय पाण्डु निर्ज्जनमें स्थित रूपलावण्यवती माद्रीको आलिङ्गनकर ॥ ३७ ॥ शापके कारण मृत्युको प्राप्त हुए तब वहांके वास करनेवाले मुनिगणोंने अग्निमें उनके देहका संस्कार किया चिताकी अग्नि प्रज्वलित होनेपर पतिव्रता माद्री पतिके संग उसमें प्रविष्ट हो मृत्युको प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ कुन्तीने पुत्रोंका प्रतिपालन करनेके लिये निवारित हो चिताकी अग्निमें प्रवेश न किया तब मुनिगणने शूरसेनकी कन्या ॥ ३९ ॥ पुत्रापतिहीन

क्षेत्रजान्पंचपुत्रान्ससमुत्पाद्यवनाश्रमे ॥ धर्मतोवायुतःशक्रादश्विभ्यांपंचपांडवान् ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिरोभीमसेनस्तथैवाऽर्जुनइत्यपि॥ कुंतीपुत्राःसमाख्याताधर्मानिलसुरेशजाः ॥ ३६ ॥ नकुलःसहदेवश्चमद्रराजसुतासुतौ ॥ कदाचित्तुरहोमाद्रींसमालिंग्यमहीपतिः ॥३७॥ मृतःशापात्तुमुनिभिःसंस्कृतोहुतभुङ्मुखे ॥ माद्रीतत्रसतीभूत्वाप्रविष्टापतिनासह ॥ ३८ ॥ स्थितापुत्रयुताकुंतीज्वलितेजातवेदसि ॥ मुनयःसुतसंयुक्तांशूरसेनसुतांतदा ॥३९ ॥ दुःखितांपतिहीनांतामानिन्युर्गजसाह्वये ॥ समर्पिताऽथभीष्मायविदुरायमहात्मने ॥ ४० ॥ श्रुत्वाऽहंसुखदुःखाभ्यांपीडितस्तुपरात्मभिः ॥ भीष्मेणपालिताःपुत्राःपांडोरितिविचिंत्यते ॥४१॥ विदुरेणतथाप्रीत्याधृतराष्ट्रेणधीमता ॥ दुर्योधनादयस्तस्यपुत्रायेक्रूरमानसाः ॥ ४२ ॥ एकत्रस्थितिमापन्नाविरोधंचक्रुरद्भुतम्॥द्रोणाचार्यस्तुसंप्राप्तस्तत्रभीष्मेणमानितः॥४३॥अध्यापनायपुत्राणांपुरेतस्मिन्निवासितः॥कर्णःकुंत्यापरित्यक्तोजातमात्रःशिशुर्यदा ॥४४॥

दुःखित कुन्तीको संग ले हस्तिनामें जाय महात्मा भीष्म और विदुरको समर्पण किया ॥ ४० ॥ यह सुनकर मेरा मन पराये देहके निमित्त सुख दुःख सहित पीडित होने लगा बुद्धिमान् भीष्म और विदुर धृतराष्ट्र युधिष्ठिरादिको परम प्रियतम पाण्डुके पुत्र जानकर परम प्रीतिसहित उनका प्रतिपालन करने लगे दुर्योधनादि धृतराष्ट्रके क्रूरमन निष्ठुरपुत्रगण ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एकत्र हो पांचों पाण्डवोंके संग अद्भुतरूप विरोध करने लगे द्रोणाचार्यके दैवात् वहां आनेपर भीष्मने उनका सन्मान करके ॥ ४३ ॥ कुरुपुत्रगणोंको पढानेके निमित्त हस्तिनापुरमें उनको वास कराया जिस समय कुन्तीने उत्पन्न होतेही बालक कर्णको त्याग दिया था ॥ ४४॥

उस नदीमें बहे जातेको लेकर सूतने पाललिया था कर्ण शूरगणोंमें अग्रगण्य होनेसे दुर्योधनको अत्यन्त प्रिय था ॥ ४५॥ क्रमानुसार भीम और दुर्योधनादिमें परस्पर विरोध होगया धृतराष्ट्रने उन सम्पूर्ण पुत्रोंके क्लेशकी चिन्ता करके ॥ ४६ ॥ विरोधकी शान्तिके निमित्त वारणावत नगरमें पाण्डवोंका निवासस्थान बनादिया ॥ ४७ ॥ दुर्योधनने विद्वेष बुद्धिके वशीभूत हो अपने सुहृद् पुरोचनको भेजकर मनोहर जतुगृह बनवाया ॥ ४८ ॥ हे मुनिवर ! पृथाके सहित पांचों पाण्डवोंको जतुगृहमें दग्धहुआ सुन पुत्रभावसे मैं दुःखसागरमें निमग्न हुआ ॥ ४९ ॥ अत्यन्त शोकातुर हो निर्ज्जन वनमें दिनरात ढूँढकर एकचक्रानगरीमें दुःखसे दुःखित अत्यन्त कृश और परिपीड़ित पाण्डवगणोंको देखा ॥ ५० ॥ मैंने उनके दर्शन लाभसे परितुष्ट हो उनको द्रुपदराजाकी नगरीमें शीघ्र भेजा ॥ ५१ ॥

सूतेनपालितोनद्यांप्राप्तश्चाऽधिरथेनह ॥ दुर्योधनप्रियश्चाऽभूत्कर्णःशूरतमस्तथा ॥ ४५ ॥ परस्परंविरोधोभूद्भीमदुर्योधनादिषु ॥ धृतराष्ट्रस्तुसंचिन्त्यक्लेशंपुत्रेषुतेषुच ॥ ४६ ॥ निवासंकल्पयामासपांडवानांमहात्मनाम् ॥ विरोधशमनायैवनगरेवारणावते ॥४७॥ दुर्योधनेनतत्रैवद्रोहाज्जतुगृहाणिवै ॥ कारितानिचदिव्यानिप्रेष्यमित्रंपुरोचनम् ॥ ४८ ॥ श्रुत्वाजतुगृहेदग्धान्पांडवान्पृथयायुतान् ॥ पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठमग्नोऽहंव्यसनार्णवे ॥ ॥ ४९ ॥ शोकातुरोभृशंशून्येवनेपश्यन्नहर्निशम् ॥ दृष्टामयैकचक्रायांपांडवादुःखकर्शिताः ॥५० ॥ ततस्तुष्टमनाश्चाऽहंजातःपार्थान्विलोक्यच ॥ प्रेरितास्तेमयातूर्णंद्रुपदस्यपुरंप्रति ॥ ५१ ॥ तेगतास्तत्रदुःखार्ताविप्रवेषधराःकृशाः ॥ मृगचर्मपरीधानाःसभायांसंस्थितास्तदा ॥५२॥ कृत्वापराक्रमंजिष्णुःसजित्वाद्रुपदात्मजाम् ॥ चक्रुर्विवाहंमानिन्याःपंचैवमातृवाक्यतः ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वाविवाहंतेषांतुमुदितोऽहंभृशंतदा ॥ ततोनागाह्वयेप्राप्ताःपांचालीसंहितामुने ॥ ५४ ॥ निवासंखांडवप्रस्थंधृतराष्ट्रेणकल्पितम् ॥ पांडवानांद्विजश्रेष्ठवसुदेवसुतेनवै ॥ ५५॥ तर्पितःपावकस्तत्रविष्णुनासहजिष्णुना ॥ राजसूयःकृतोयज्ञस्तदाहंमुदितोभवम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वाथविभवंतेषांतथामयकृतांसभाम् ॥ दुर्योधनोतिसंतप्तोदुरोदरमथाकरोत् ॥ ५७ ॥

उनके दुःखसे कातर होकर मृगचर्म पहनकर विप्रवेषसे जाय राजसभासे विनीतभावसे वास करनेलगे ॥ ५२ ॥ अर्जुनने पराक्रमप्रकाशपूर्वक लक्ष्य भेदकर द्रुपदराजाकी कन्या द्रौपदीको प्राप्त करनेपर माताकी आज्ञासे पांचों पाण्डवोंने उस मानिनी राजकन्यासे पाणिग्रहण किया ॥ ५३॥ हे मुनिवर ! मैं तिस समय उनका विवाहहुआ देख अत्यन्त आनन्दित हुआ अनन्तर पाण्डवगण पाञ्चालीके सहित फिर हस्तिनापुरमें उपस्थित हुए ॥ ५४ ॥ तब धृतराष्ट्रने खाण्डवप्रस्थमें पाण्डवोंका वासस्थान नियत किया तदनन्तर वसुदेवके पुत्र ॥ ५५ ॥ विष्णु अर्जुनके संग मिलित हो अग्निको तृप्त किया उसके उपरान्त पाण्डवगणोंको राजसूययज्ञका अनुष्ठान करता हुआ देखकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ ॥ ५६ ॥ पाण्डवोंका विभव और शिल्पिराज मयकी बनाई सभा देखकर दुर्योधनादि अत्यन्त सन्तप्त हुए और

अनर्थकर द्यूतक्रीड़ाका आरम्भ किया ॥ ५७ ॥ शकुनि छलद्यूतमें अत्यन्त चतुर था, धर्मपुत्र अक्षक्रीड़ामें निपुण नहीं थे अतएव दुर्योधनने शकुनिद्वारा द्यूतक्रीड़ा कराय धर्मराजका सर्वस्व हर लिया और राजा द्रुपदकी कन्या याज्ञसेनीको राजसभामें अत्यन्त अपमानित कर अति क्लेश दिया था ॥ ५८ ॥ अनन्तर पांचालीके सहित पाण्डवगण बारहवर्ष वनमें वास करनेके निमित्त चलेगये इससे मैं अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ ५९ ॥ हे मुनिवर ! मैं सनातनधर्म जानकर भी भ्रमवश इसप्रकार सुखदुःखात्मक संसारसागरमें निमग्न हुआ हूं ॥ ६० ॥ मैं कौन हूं ? यह सब पुत्र किसके हैं और कौन माता है अथवा सुख किस प्रकार है ? यह सब विचार कर मेरा मन दिनरात भ्रमण करता है ॥ ६१ ॥ हे मुनिवर ! मैं क्या करूं ! कहां जाऊं किसीसे मुझको सन्तोष प्राप्त नहीं होता मेरा मन मानो दोला [तराजू] में

दुर्द्यूतवेदीशकुनिरनक्षज्ञश्चधर्मजः ॥ हृतंराज्यंधनंसर्वंयाज्ञसेनीचक्लेशिता ॥ ५८ ॥ वनेद्वादशवर्षाणिपांडवास्तेविवासिताः ॥ पांचालीसहितास्तेनदुःखं मेजनितंभृशम् ॥ ५९ ॥ एवंनारदसंसारेसुखदुःखात्मकेभृशम् ॥ निमग्नोऽहंभ्रमेणैवजानन्धर्मंसनातनम् ॥६०॥ कोऽहंकस्यसुतास्तेऽमीकामाताकिंसुखं पुनः ॥ येनमेहृदयंमोहाद्भ्रमतीतिदिवानिशम् ॥ ६१ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिसंतोषोनाऽधिगच्छति ॥ दोलारूढंमनोमेऽत्रचंचलंनस्थिरंभवेत् ॥ ६२ ॥ सर्वज्ञोऽसिमुनिश्रेष्ठसंदेहंमेनिवर्तय ॥ तथाकुरुयथाऽहंस्यांसुखितोविगतज्वरः ॥ ६३ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेपंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिमेवचनंश्रुत्वानारदःपरमार्थवित् ॥ मामाहचस्मितंकृत्वापृच्छंतंमोहकारणम् ॥१॥ नारदउवाच ॥ पाराशर्यपुराणज्ञकिंपृच्छसिसु निश्चयम् ॥ संसारेऽस्मिन्विनामोहंकोऽपिनास्तिशरीरवान् ॥२॥ ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रःसनकःकपिलस्तथा॥माययावेष्टिताःसर्वेभ्रमंतिभववर्त्मनि ॥३॥

आरूढ़ होकर आन्दोलित होता है कभी स्थिर नहीं होता ॥ ६२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव आप मेरा सन्देह निवारण कीजिये जिससे मेरे मनका ज्वर दूर हो और जिससे मैं सुखी होसकूं आप वही कीजिये ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! मेरे इसप्रकार मोहका कारण पूँछनेपर मेरे इसप्रकार वचन सुन परमार्थतत्त्वके जाननेवाले महर्षि नारद कुछेक हास्यकर कहने लगे ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे पराशरतनय ! तुम सब पुराणोंको जानते हो तब तुम मुझसे मोहका निश्चित कारण क्यों पूछते हो ? इस संसारमें मोहके अतिरिक्त कोई भी शरीरधारी जीव नहीं ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि देवगण जनक तथा कपिलादिऋषिगण यह सभी मायासे परिवेष्टित हो संसारमार्गमें भ्रमण करते हैं ॥ ३ ॥

मनुष्य मुझको ज्ञानी कहतेहैं किन्तु मैं भी साधारण प्राकृतमनुष्यकी समान भ्रान्त हूं अपने मायाके मोहका पहला वृत्तान्त निश्चित प्रकारसे कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ हे वासवीनन्दन ! मैं ने पहले भार्याके निमित्त अपने किये हुए मोहसे महादुःख अनुभव किया है ॥ ५ ॥ एक दिन मैं और पर्वतनामक देवर्षि दोनों मिलकर भारत नामक विख्यात अत्युत्तम भूमिखण्ड देखनेके निमित्त देवलोकसे मृत्युलोकमें आए ॥ ६ ॥ हम दोनों मिलकर पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करते करते तीर्थ और परम पवित्र स्थान तथा मुनिगणोंके सम्पूर्ण मनोहर आश्रम देखते हुए विचरण करने लगे ॥ ७॥ भ्रमण करनेको चलनेके पहलेही देवलोकमें हमने परामर्श करके निश्चयपूर्वक परस्पर नियम बन्धन किया था कि ॥ ८ ॥ पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करनेके समय जिसकी जिसप्रकार चित्तकी वृत्तिका उदय हो अच्छा हो अथवा बुरा हो वह उसको कभी न

ज्ञानिनंमांजनोवेत्तिभ्रांतोऽहंसर्वलोकवत् ॥ शृणुमेपूर्ववृत्तांतंप्रब्रवीमिसुनिश्चितम् ॥४॥ दुःखंमयायथापूर्वमनुभूतंमहत्तरम् ॥ स्वकृतेनचमोहेनभार्यार्थेवा सवीसुत ॥ ५ ॥ एकदापर्वतश्चाऽहंदेवलोकान्महीतलम् ॥ प्राप्तौविलोकनार्थायभारतंखंडमुत्तमम् ॥ ६ ॥ भ्रमंतौसहितावुर्व्यांपश्यंतौतीर्थमंडलम् ॥ पावनानिचस्थानानिमुनीनामाश्रमाञ्छुभान् ॥ ७ ॥ शपथंदेवलोकात्तुकृत्वापूर्वंपरस्परम् ॥ चलितौसमयंचेमंसंमंत्र्यनिश्चयेनवै ॥ ८ ॥ चित्तवृत्तिस्तुव क्व्यायादृशीयस्यजायते ॥ शुभावाऽप्यशुभावाऽपिनगोप्तव्याकदाचन ॥ ९ ॥ भोजनेच्छाधनेच्छाऽपिरतीच्छावाभवेदपि ॥ यादृशीयस्यचित्तेतुकथ नीयापरस्परम् ॥ १० ॥ इत्यावांसमयंकृत्वास्वर्गाद्भूलोकमागतौ ॥ एकचित्तौमुनीभूतौविचरंतौयथेच्छया ॥ ११ ॥ एवंभ्रमंतौलोकेऽ स्मिन्ग्रीष्मांतेसमुपागते ॥ संजयस्यपुरंरम्यंसंप्राप्तौनृपतेःपुनः ॥ १२ ॥ तेनसंपूजितौभक्त्याराज्ञासंमानितौभृशम् ॥ स्थितौतत्रगृहे तस्यचातुर्मास्यंमहात्मनः ॥ १३ ॥ वार्षिकाश्चतुरोमासादुर्गमाःपथिसर्वदा ॥ तस्मादेकत्रविबुधैःस्थातव्यमितिनिश्चयः ॥१४॥ अष्टौमासांस्तुप्रवसेत्स दाकार्यवशाद्द्विजः ॥ वर्षाकालेनगंतव्यंप्रवासेसुखमिच्छता ॥ १५ ॥

छिपावे ॥ ९ ॥ भोजनकी इच्छा धन प्राप्त करनेकी इच्छा अथवा रमणकी इच्छा हो जिसके मनमें जिस प्रकारके भावका उदय हो वह उसको प्रकाश करके कहैं ॥ ॥ १० ॥ हम दोनों इस प्रकार नियम कर एकान्तचित्तसे मुनिवरोंके आचरणमें स्थित हो इच्छानुसार भूलोकभ्रमणमें प्रवृत्त हुए ॥ ११ ॥ इस प्रकार पृथ्वीमें भ्रमण करते करते ग्रीष्मका अन्त होनेपर वर्षाकाल आगया हम सञ्जयनामक राजाके मनोहरपुरमें उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ राजाने भक्तिसहित हमारा अत्यन्त सन्मान करके हमारी पूजा कीं तब हमने चार मास पर्यन्त उन महात्माके गृहमें वास किया ॥ १३ ॥ वर्षाके चार महीनोंमें समस्त मार्ग सदाही अत्यन्त दुर्गम रहते हैं अतएव इस समयमें एक स्थानपरही वास करना बुद्धिमानोंका कर्तव्य है ॥ १४ ॥ ब्राह्मणगण आठमहीने कार्यवश सदाही प्रवास करें सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुष

वर्षाकालके समय परदेशको न जाय ॥ १५ ॥ यह सब विचारकर हम दोनों जनोंने वहां सञ्जयराजाके गृहमें वास किया ॥ १६ ॥ उन महीपतिके दमयन्ती नामक सुदती और परमरूपवती एक कन्या थी राजाने उसको हमारी सेवा करनेके निमित्त नियुक्त करदिया ॥ १७ ॥ वह विशालनयना विवेकवती राजपुत्री भलीभाँति उद्यमशील थी वह दिनरात हम दोनोंकी सेवा करने लगी ॥ १८ ॥ यथासमयमें स्नानके लिये जल स्वच्छ अत्युत्तम भोजन ताम्बूलादि जो कुछ इष्ट वस्तु हैं वह उन सबको देने लगी ॥ १९ ॥ वह राजकन्या व्यजन आसन और शय्या इत्यादि जो कुछ वाञ्छित द्रव्य है वह सब हमको प्रस्तुत कररखती ॥ २० ॥ इसप्रकार राजकन्या हमारी सेवा करने लगी मैंभी वेद अध्ययन और वेदोक्त व्रतकार्यमें निरत रहता ॥ २१ ॥ हे द्वैपायन! मैं तिससमय करमें वीणा धारण

इतिसंचिंत्यमनसासंजयस्यगृहेतदा ॥ संस्थितौमानितौराज्ञाकृतातिथ्यौमहात्मना ॥ १६ ॥ दमयंतीतिविख्यातातस्यपुत्रीमहीपतेः ॥ आज्ञप्ताप रिचर्यार्थंसुदतीसुंदरीभृशम् ॥ १७ ॥ विवेकज्ञाविशालाक्षीराजपुत्रीकृतोद्यमा ॥ सेवनंसर्वकालेचव्यदधादुभयोरपि ॥ १८ ॥ स्नानार्थ मुदकंकालेभोजनंमृष्टमायतम् ॥ मुखवासंतथाचाऽन्यंयदिष्टंतद्ददातिसा ॥ १९ ॥ मनोभिलषितान्कामानुभयोरपिकन्यका ॥ व्यजनासनशय्यादी न्वांछितानप्यकल्पयत् ॥ २० ॥ एवंसंसेव्यमानौतुस्थितौराज्ञोगृहेकिल ॥ वेदाध्ययनसंशीलावावांवेदव्रतेरतौ ॥ २१ ॥ अहंवीणां करेकृत्वासाधयित्वास्वरोत्तमम् ॥ गायत्रंसामसुस्वादमगांकर्णरसायनम् ॥ २२ ॥ राजपुत्रीतुतच्छुत्वासामगानंमनोहरम् ॥ बभूवम यिरागाढ्याप्रीतियुक्ताविशारदा ॥ २३ ॥ दिनेदिनेनुरागोऽस्यामयिवृद्धिंगतःपरः ॥ ममाऽपिप्रीतियुक्तायांमनोजातंस्पृहापरम् ॥ २४ ॥ ममतस्यच साकन्याभोजनादिषुकर्हिचित् ॥ अकरोदंतरंकिंचित्सेवाभेदंरसान्विता ॥ २५ ॥ स्नानायोष्णजलंमह्यंपर्वतायचशीतलम् ॥ दधिमह्यंतथातक्रंपर्वताया ऽप्यकल्पयत् ॥ २६ ॥

कर उत्तम उत्तम स्वर निकालकर कर्णरसायन मनोहर सामगायन करने लगा ॥ २२ ॥ गीतिरसज्ञा राजकन्या यह मनका मोहित करनेवाला सामगान सुनकर मुझमें अनुरागिणी और प्रीतिमती होने लगी ॥ २३ ॥ मेरे प्रति राजकन्याका अनुराग दिन दिन बढ़ने लगा उसको अपनेप्रति प्रीतियुक्त हुआ देखकर उस राज कन्यामें मुझको भी मोह उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ इसप्रकार राजकन्या मुझमें रतिरसयुक्त होकर मेरे और पर्वतके भोजनादिविषयमें कुछ कुछ प्रभेद करके सेवाका वैल क्षण्य करने लगी ॥ २५ ॥ मुझको स्नान करनेके लिये उष्णजल और पर्वतको शीतल जल भोजनके लिये मुझको उत्तम दधि और पर्वतको तक्र अर्थात् मठा ॥ २६ ॥

शयनकरनेके लिये मुझको सुविमल शुभ्र शय्या, पर्वतको मलिन बिछौना प्रदान करनेलगी. इसप्रकार राजकन्या परम प्रीतिसहित मेरी सेवा करने लगी किन्तु पर्वतकी इसप्रकार सेवा नहीं की ॥ २७ ॥ वह सुन्दरी मुझको प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे देखनेलगी। किन्तु पर्वतको इसप्रकार नहीं देखती. पर्वत राजकन्याका इसप्रकार प्रेमकारण देखकर ॥ २८ ॥ आश्चर्ययुक्त हो यह क्या हुआ इसप्रकार मनमें चिन्ता करने लगा. अनन्तर निर्जनमें मुझसे पूँछा हे नारद ! तुम भलीभांति सम्पूर्ण विवरण मुझसे कहो ॥ २९ ॥ राजकन्या प्रीतिमती होकर तुममें अत्यन्त प्रेमप्रकाश करती है और स्नेहयुक्त भक्ष्य भोज्य देती है ॥ ३० ॥ किन्तु मुझसे इसप्रकार नहीं करती इसप्रकार सेवाका प्रभेद देखकर मेरे मनमें सन्देह होता है. बोध होता है कि, सञ्जयराजाकी कन्या तुमको पति करनेके निमित्त भलीभाँति इच्छा करती है ॥ ॥ ३१ ॥ तुम्हारे भी मनका भाव इसीप्रकार है यह मैं ने लक्षणद्वारा जानलिया नेत्र और मुखके विकारसे प्रीतिका लक्षण जाना जाता है ॥ ३२ ॥ जो हो हे

शयनास्तरणंशुभ्रंमदर्थेपर्यकल्पयत् ॥ प्रीत्यापरमयायद्वत्पर्वतायनतादृशम् ॥ २७ ॥ विलोकयतिमांप्रेम्णासुंदरीनचपर्वतम् ॥ ततोऽस्यास्तादृशंदृष्ट्वापर्वतःप्रेमकारणम् ॥ २८ ॥ मनसाचिंतयामासकिमेतदितिविस्मितः ॥ पप्रच्छमांरहःसम्यग्ब्रूहिनारदसर्वथा ॥ २९ ॥ राजपुत्री त्वयिप्रेमकरोतिमुदिताभृशम् ॥ ददातिभक्षभोज्यानिस्नेहयुक्तासमंततः ॥ ३० ॥ नतथामयिभेदोऽत्रसंदेहंजनयत्यसौ ॥ मन्यतेत्वांपतिंकर्तुंसर्वथासंजयात्मजा ॥ ३१ ॥ तवाऽपितादृशंभावंजानामिलक्षणैरहम् ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्चज्ञायतेप्रीतिकारणम् ॥ ३२ ॥ सत्यंवदनतेमिथ्यावक्तव्यंवचनंमुने ॥ स्वर्गतःसमयंकृत्वाचलितौसंस्मराऽधुना ॥ ३३ ॥ नारदउवाच ॥ पृष्टोऽहंपर्वतेनेदंकारणंतुहठाद्यदा ॥ तदाऽहंह्रिसमाक्रांतःसंजातश्चाऽब्रुवंपुनः ॥ ३४ ॥ पर्वतैषाविशालाक्षीपतिंमांकर्तुमुद्यता ॥ ममाऽपिमानसोभावोवर्ततेऽस्यांविशेषतः ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंसत्यंपर्वतःकोपसंयुतः ॥ मामुवाचमुनिर्वाक्यंधिग्धिगितिपुनःपुनः ॥ ३६ ॥ प्रथमंशपथान्कृत्वावंचितोऽहंत्वयायतः ॥ भववानरवक्त्रस्त्वंशापान्ममममित्रध्रुक् ॥ ३७ ॥ इतिशप्तस्तुतेनाऽहंकुपितेनमहात्मना ॥ सहसाह्यभवंक्रूरःशाखामृगमुखस्तदा ॥ ३८ ॥

मुनिवर ! तुम मुझसे सत्य कहो कभी झूंठ नहीं कहना हमने स्वर्गसे निकलनेके पहलेही जो नियम किया है उसको स्मरण कर सत्य कहो ॥ ३३ ॥ नारदजीने कहा पर्वत जब मुझसे हठात् इसप्रकार कारण पूँछने लगा तब मैंने अत्यन्त लज्जित होकर कहा ॥ ३४ ॥ हे पर्वत ! यह विशालाक्षी राजकन्या मुझको पति करनेके निमित्त उद्यत हुई है मेरे भी मनका भाव राजकन्यामें भलीभाँति बद्ध हुआ है ॥ ३५ ॥ पर्वत मेरा यह वचन सुनकर अत्यन्त कुपित हुआ और धिक् नारद धिक् नारद यह वचन वारंवार कहने लगा ॥ ३६ ॥ तुमने पहले अनेक शपथ करके मुझको छला है अतएव हे मित्रद्रोहिन् ! मेरे शापसे तुम्हारा वानरकी समान मुख हो ॥ ३७ ॥ महात्मा पर्वतने कुपित होकर इसप्रकार शाप दिया तो मेरा मुख तत्काल वानरकी समान कुटिल और विकृताकार हो गया ॥ ३८ ॥

मैं ने भगिनीका पुत्र जानकर भी उसको क्षमा न किया कोपान्वित होकर शाप दिया कि, तेरी भी स्वर्गलोकमें गति नहीं होगी ॥ ३९ ॥ हे पर्वत ! अल्प अपराधसेही तैंने मुझको शाप दिया है इससे तेरी बुद्धि अत्यन्त हीन दिखाई देती हैजो हो उस समय मर्त्यलोकमें तेरा वास होगा ॥ ४० ॥ अनन्तर पर्वत अत्यन्त विमन होकर उस नगरसे निकला मेराभी तत्काल मर्कटकी समान मुख हो गया ॥ ४१ ॥ मेरा वानरकी समान कुटिल मुख देखकर राजकन्या विमन होगई उसको फिर पहलेकी समान प्रफुल्लित नहीं देखा किन्तु वीणा सुननेकी इच्छा पहलेकी समान नहीं दीखने लगी ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा हे मुनिवर ! इसके उपरान्त फिर क्या हुआ आपने किस प्रकार शापसे छूटकर फिर मनुष्यकी समान मुख प्राप्त किया ॥ ४३ ॥ पर्वतऋषि कहाँ गये ? और किस प्रकार कब किस स्थानमें आपका पुनर्वार मिलन हुआ यह सम्पूर्ण विवरण मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४४ ॥ नारदजीने कहा हे महाभाग ! मैं मायाका महच्चरित्र अब क्या कहूं ? पर्वतके

मयाऽपिनकृतातस्मिन्क्षमातुभागिनीसुते ॥ सोऽपिज्ञातोऽतिकोपाद्वैमास्वर्गेतेगतिःकिल ॥ ३९ ॥ स्वल्पेऽपराधेयस्मान्मांशप्तवानासपर्वत ॥ तस्मात्तवापिमंदात्मन्मृत्युलोकेस्थितिःकिल ॥ ४० ॥ पर्वतस्तुगतस्तस्मान्नगराद्विमनाभृशम् ॥ अहंवानरवक्रस्तुसंजातस्तत्क्षणादपि ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वामांवानरंक्रूरंराजपुत्रीविलक्षणा ॥ विमनाऽतीवसंजातावीणाश्रवणलालसा ॥ ४२ ॥ व्यासउवाच ॥ ततःकिमभवद्ब्रह्मन्कथंशापान्निवर्तितः ॥ मानुषास्यःपुनर्जातोभवान्ब्रूहियथाविधि ॥ ४३ ॥ पर्वतःक्कगतोभूयःसंगमोयुवयोरभूत् ॥ कदाकुत्रकथंसर्वविस्तरेणवदस्वह ॥ ४४ ॥ नारदउवाच ॥ किंब्रवीमिमहाभागमायायाश्चरितंमहत् ॥ दुःखितोऽहंभृशंतत्रपर्वतेरुषितेगते ॥ ४५ ॥ पुनःसेवापरात्यर्थंराजपुत्रीममाऽभवत् ॥ गतेऽथपर्वतेकामंस्थितस्तत्रैवसद्मनि ॥ ४६ ॥ अहंदुःखान्वितोदीनस्तथावानरवन्मुखः ॥ विशेषेणतुचिंतार्तःकिंमेस्यादितिचिंतयन् ॥ ४७ ॥ संजयोऽथसुतांदृष्ट्वाकिंचित्प्रकटयौवनाम् ॥ विवाहार्थंराजसुतामपृच्छत्सचिवंतदा ॥ ४८ ॥ विवाहकालःसंप्राप्तःसुतायाममसांप्रतम् ॥ योग्यंवरंममब्रूहिराजपुत्रंसुसंमतम् ॥ ४९ ॥ रूपौदार्यगुणैर्युक्तंशूरंसुकुलसंभवम् ॥ विवाहंविधिवत्पुत्र्याःकरोमिकिलसांप्रतम् ॥ ५० ॥ प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन्राजपुत्राह्यनेकशः ॥ वर्ततेभुविपुत्र्यास्तेयोग्याःसर्वगुणान्विताः ॥ ५१ ॥

कुपित होकर चले जानेपर फिर मैं अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ ४५ ॥ राजकन्या फिर मेरी अधिक सेवा करने लगी पर्वतके चले जानेपर भी मैं उसी स्थानमें वास करने लगा ॥ ४६ ॥ वानरकी समान मुख होनेसे मैं अत्यन्त दीन और दुःखित हुआ और इसके उपरान्त मेरा क्या होगा यह जानकर मैं भलीभाँति चिन्तासे अत्यन्त कातर होगया ॥ ४७ ॥ अनन्तर राजासञ्जयने अपनी कन्या दमयन्तीको यौवनकुसुम कुछेक विकसित हुई देखकर उसके विवाहके निमित्त प्रधान मन्त्रीसे पूँछा ॥ ४८ ॥ कन्याका विवाह करनेका समय उपस्थित हुआ है इस समय विधिपूर्व्वक उसका विवाह करो मनोमत वरके योग्यरूप, गुण और औदार्ययुक्त धीर तथा वीर एवं सत्कुलोत्पन्न राजपुत्र कौन है ? वह तुम मुझसे भलीभाँति कहो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ मन्त्रीने कहा हे राजन् ! सर्व्व

विधि गुणयुक्त आपकी कन्याके वर योग्य अनेक राजपुत्र पृथ्वीमण्डलमें विद्यमान है ॥ ५१ ॥ जिस राजपुत्रको आपकी इच्छा हो उसकोही बुलाकर हाथी, घोडा, रथ और धन रत्नादिके सहित कन्याप्रदान कीजिये ॥ ५२ ॥ नारदजी बोले तदनन्तर दमयन्तीने पिताका अभिप्राय जानकर अपनी अभिलाषा धात्रीके मुखद्वारा राजासे निवेदन की ॥ ५३ ॥ धात्रीने जाकर कहा हे महाराज! आपकी कन्या दमयन्तीने मुझसे कहा है कि, हे धात्रि! जब मेरे पिता सुस्थचित्तसे स्थित हों तब तुम उनसे एकान्तमें मेरा वचन निवेदन करके कहना कि ॥ ५४ ॥ मैंने वीणाके नादरूप मोहनसे मोहित होकर महती नाम्नी वीणाके बजानेमें विशारद बुद्धिमान् नारदमहर्षिको वरण किया है अन्य कोई मुझको प्रिय नहीं होगा ॥ ५५ ॥ हेतात! नारदके संग मेरा विवाह कर मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण कीजिये. हे धर्म्मज्ञ! मैं नारदके अतिरिक्त अन्य किसीको भी पतित्वमें वर्त्ता वरण नहीं करूंगी ॥ ५६ ॥ हे पितः! मैं नक्र तिमिङ्गिलादि (नाके घडियालादिक) मुक्त सुखविघातक

यस्मिन्नुचिस्तेराजेंद्रतमाहूयनृपात्मजम् ॥ देहिकन्यांधनंभूरिहस्त्यश्वरथसंयुतम् ॥ ५२ ॥ नारदउवाच ॥ पितुश्चिकीर्षितंज्ञात्वादमयंतीतदा नृपम् ॥ धात्र्यामुखेनवाक्यज्ञातमुवाचरहःस्थितम् ॥ ५३ ॥ धात्र्युवाच ॥ दमयंतीमहाराजपुत्रीतेमामथाऽब्रवीत् ॥ पितरंब्रूहिधात्रेयिवचनान्मेसुखान्वितम् ॥ ५४ ॥ मयावृतोऽथमेधावीनारदोमहतीयुतः ॥ नादमोहितयाकामंनाऽन्यःकोऽपिप्रियोमम ॥ ५५ ॥ कुरुमेवांछितंतातविवाहंमुनिनासह ॥ नाऽन्यंवरिष्येधर्मज्ञनारदंतुपतिंविना ॥ ५६ ॥ मग्नाऽहंनादसिंधौवैनक्रहीनेरसात्मके ॥ अक्षारेसुखसंपूर्णेतिमिंगिलविवर्जिते ॥ ५७ ॥ इतिः श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ तत्पुत्र्यावचनंश्रुत्वाराजाधात्रीमुखात्ततः ॥ भार्यांप्रोवाचकैकेयींसमीपस्थां सुलोचनाम् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ यदुक्तंवचनंकांतेधात्र्यातत्तुत्वयाश्रुतम् ॥ वृताऽयंनारदःकाममंमुनिर्वानरवक्त्रभाक् ॥ २ ॥ किमिदंचिंतितंपुत्र्याबुद्धिहीनंविचेष्टितम् ॥ कथमस्मैमयादेयाकन्याहरिमुखायसा ॥ ३ ॥ क्वाऽसौभिक्षुःकुरूपःक्वदमयंतीममाऽऽत्मजा ॥ विपरीतमिदंकार्यंनविधेयंकदाचन ॥ ४ ॥

पदार्थ विवर्ज्जित लवण विहीन सुमधुर आनन्दरसात्मक सुखपरिपूर्ण नादसिन्धुमें निमग्न हुई हूं अन्य किसीसेभी मेरा मन सन्तुष्ट नहीं होगा ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ नारदजीने कहा राजाने धात्रीके मुखसे कन्याका इसप्रकार सुनकर समीप बैठी हुई सुलोचना कैकेयी नामक महिषीसे कहा ॥ १ ॥ हे कान्ते! धात्रीने जो कहा वह तुमने सुना? दमयन्तीने उस वानरवदन नारदमुनिको मनमें पति किया है ॥ २ ॥ दमयन्तीने क्या विचार कर यह निश्चय किया है जो हो यह अत्यन्त बुद्धिहीनका कार्य हुआ है इसमें सन्देह नहीं उसका वदन बन्दरकी समान है मैं उसको किस प्रकार वह भुवनधन्यकन्यारत्न प्रदान करूं? ॥ ३ ॥ कुरूप और भिक्षुक नारद मुनिकहां और नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मेरी कन्या दमयन्ती कहां यह कार्य समस्तही

विपरीत है यह कभी कर्त्तव्य नहीं है ॥ ४ ॥ हे सुकेशि ! तुम निर्ज्जनमें बुलाकर शास्त्रीय और वृद्धजनसम्मत युक्तिद्वारा उसको इस हटकारिताके कार्यसे निवारित करो ॥५॥ पतिके यह वचन सुनकर दमयन्तीकी माताने उसको निर्ज्जनमें बुलाकर कहा हे वत्से ! तुम्हारा यह भुवनमोहनरूप कहाँ ? और धनहीन बन्दरमुख नारद मुनि कहाँ ? ॥ ६ ॥ तुम चतुर हो तो उस भिक्षुकके प्रति तुम्हारा इसप्रकार मोहभाव किसकारण हुआ ? हे वत्से ! देखो तुम राजकन्या हो तुम्हारा देह अत्यन्त कोमल लताकी समान है और वह सदा भस्म मलते रहते हैं इससे उन मुनिका देह अत्यन्त रूक्ष होगया है ॥ ७ ॥ हे विमले ! तुम उस बन्दरमुख मुनिसे किसप्रकार बातचीत करोगी ? तुम किसकारण कुत्सित पुरुषके प्रति अनुरागिणी होती है ? इससे तुमको क्या प्रीति प्राप्त होगी ? ॥ ८ ॥ उत्तम पुरुष राजपुत्रके संग तुम्हारा

तामेकांतेसुकेशांतेनिवारयहठात्सुताम् ॥ युक्त्यामुनिरतांमुग्धांशास्त्रवृद्धानुसारया ॥ ५ ॥ इतिभर्तृवचःश्रुत्वाजननीतामथाऽब्रवीत् ॥ क्वतेरूपंमुनिः क्वाऽसौवानरास्योऽधनःपुनः ॥ ६ ॥ कथंमोहमवाप्ताऽसिभिक्षुकेचतुरापुनः ॥ लताकोमलदेहात्वंभस्मरूक्षतनुस्त्वयम् ॥ ७ ॥ वार्तावानरवक्त्रेणकथंयुक्तातवाऽनघे ॥ काप्रीतिःकुत्सितेपुंसिभविष्यतिशुचिस्मिते ॥८॥ वरस्तेराजपुत्रोऽस्तुमाकुरुत्वंवृथाहठम् ॥ पितातेदुःखमाप्नोतिश्रुत्वाधात्रीमुखाद्वचः ॥ ॥ ९ ॥ लग्नांबुबूलवृक्षेणकोमलांमालतीलताम् ॥ दृष्ट्वाकस्यमनःखेदंचतुरस्यनगच्छति ॥ १० ॥ दासेरकायतांबूलीदलानिकोमलानिकः ॥ ददातिभक्षणार्थायमूर्खोऽपिधरणीतले ॥ ११ ॥ वीक्ष्यत्वांकरसंलग्नांनारदस्यसमीपतः ॥ विवाहेवर्तमानेतुकस्यचेतोनदह्यति ॥ १२ ॥ कुमुखेनसमंवार्तानरुचिंजनयत्यतः ॥ आमरणात्तुकथंकालःक्षपितव्यस्त्वयाऽमुना ॥ १३ ॥ नारदउवाच ॥ इतिमातुर्वचःश्रुत्वादमयंतीभृशातुरा ॥ मातरंप्राहतन्वंगीमयिसाकृतनिश्चया ॥ १४ ॥

विवाह होगा. तुम इसप्रकार हठकारिताका कार्य कभी मत करो. तुम्हारे पिता धात्रीके मुखसे यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखित हुए हैं ॥९॥ हे कोमलाङ्गि ! तुम मनमें विचार कर देखो कि, कण्टकी वृक्षमें कोमल मालती लता लगी हुई देखकर कौनबुद्धिमान् पुरुषके अन्तःकरणमें दुःख उदय न होगा? ॥ १० ॥ इस पृथ्वीमें मूर्ख पुरुषभी कण्टकलम्पट ऊंटको कोमल ताम्बूलीदल भक्षण करनेके लिये नहीं देगा ॥ ११ ॥ जब तुम्हारा विवाहकाल उपस्थित होगा तब तुम नारदके निकट जाओगी तब तुमको उनके कर लग्न देखकर किसका मन दुःखानलसे दग्ध न होगा ? ॥ १२ ॥ कुमुख पुरुषके संग बातचीत करनेमें किसीकी भी रुचि नहीं होती, तुम उनके संग मरणकाल पर्यन्त किस प्रकार समय व्यतीत करोगी ॥ १३ ॥ नारदजीने कहा माताके इस प्रकार वचन सुनकर मुझमें अत्यन्त कृतनिश्चय वह सुकुमारी दमयन्ती अत्यन्त

कातर हो मातासे कहने लगी ॥ १४ ॥ हे जननि! जो पुरुष रसमार्गका पथिक और जो रसका जाननेवाला नहीं है उसके मुख और रूपसे क्या हो सक्ता है! उस नैपुण्य विहीन मूर्ख पुरुषके धन और राज्यसे क्या होगा ॥ १५ ॥ वनमें विचरण करनेवाली हरिणियें नादरससे मोहित होकर गायकगणोंको प्राणतक भी दे देती हैं अतएव वहभी धन्य हैं किन्तु अरसज्ञ मूर्ख मनुष्योंको धिक्कार है ॥ १६ ॥ हेमातः! नारदऋषि जो सप्तस्वरात्मिक संगीतविद्या जानते हैं स्वयं आशुतोषशिवके अतिरिक्त अन्य कोई तीसरा पुरुष उसको नहीं जानता ॥ १७ ॥ मूर्ख पुरुषके सहित सहवास करनेसे क्षणक्षणमें मरण आनकर उपस्थित होता है गुणहीन पुरुषके धनवान अथवा परम रूपवान् होनेपरभी उसको सर्वदा त्याग करना श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ वृथा मदगर्वसे भरे मूर्ख राजाओंकी मित्रतामें धिक्कार

किंमुखेनचरूपेणमूर्खस्यचधनेनकिम् ॥ किंराज्येनाऽविदग्धस्यरसमार्गाविदोऽस्यच ॥ १५ ॥ हरिण्योऽपिवनेधन्यायानादेनविमोहिताः ॥ मातःप्राणान्प्रयच्छंतिधिङ्मूर्खान्मानुषान्भुवि ॥ १६ ॥ नारदोवेत्तियांविद्यांमातःसप्तस्वरात्मिकाम् ॥ तृतीयःकोऽपिनोवेदशिवादन्यःपुमान्क्व ॥ १७ ॥ मूर्खेणसहसंवासोमरणंतत्क्षणेक्षणे ॥ रूपवान्धनवांस्त्याज्योगुणहीनोनरःसदा ॥ १८ ॥ धिङ्मैत्रींमूर्खभूपालेवृथागर्वसमन्विते ॥ गुणज्ञेभिक्षुकेश्रेष्ठावचनात्सुखदायिनी ॥ १९ ॥ स्वरज्ञोग्रामवित्कामंमूर्च्छनाज्ञानभेदभाक् ॥ दुर्लभःपुरुषश्चाष्टरसज्ञोदुर्बलोऽपिवै ॥ २० ॥ यथानयतिकैलासंगंगा चैवसरस्वती ॥ तथानयतिकैलासंस्वरज्ञानविशारदः ॥ २१ ॥ स्वरमानंतुयोवेदसदेवोमानुषोपिसन् ॥ सप्तभेदंनयोवेदसपशुःसुरराडपि ॥ २२ ॥

है गुणज्ञपुरुषके भिक्षुक होनेपर उसके संग मित्रता करना सब प्रकारसे श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें अन्य बात दूर रहे उसके संग बातचीत करनेमेंही परम सुख प्राप्त होता है॥ १९॥ षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम पञ्चम, धैवत और निषाद इन सातों स्वरोंका जाननेवाला ग्रामोंका जाननेवाला अर्थात स्वरोंका आरोह (चढाव) अवरोहरूप (उतार) क्रमज्ञ और जिससे स्वरसमूह मूर्च्छित होकर रागत्वको प्राप्त होते हैं वह ग्रामसम्भवमूर्च्छनावित् और अष्टविध रसज्ञ पुरुष दुर्बल होनेपरभी इस पृथ्वीतलमें वह अत्यन्त दुर्लभ है इसमें और सन्देह क्या है ? ॥ २० ॥ जिसप्रकार गंगा और सरस्वती अपने माहात्म्यसे कैलासधाम देती हैं इसी प्रकार स्वरज्ञानविशारद पुरुषभी कैलासलोकमें ले जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ जो पुरुष स्वरमान जानता है वहमनुष्य होकरभी देवतारूप है जो पुरुष स्वरके षड्जादि सप्त भेद नहीं जानता वह सुर

राज होकरभी पशुकी समान है॥ २२॥ जो पुरुष मूर्च्छना और सप्तविधस्वरसे समुत्थित और मूर्च्छनादि मिश्रितता न सुनकर प्रमोदित नहीं होता उसको पशु जानना चाहिये हरिणगणोंको पशु नहीं जानना चाहिये क्योंकि वह संगीत सुनकर मुग्ध होते हैं ॥ २३ ॥ विषधर सर्पगण कर्णरहित होकरभी चक्षुद्वारा मनोहर स्वरनाद सुनकर प्रसन्न होते हैं उनकी भी प्रशंसा कीजाती है किन्तु जो नादस्वर सुनकर प्रसन्न नहीं होते उन कर्णवान् मनुष्योंको धिक्कार है ॥ २४ ॥ सुस्वर संगीत सुनकर बालकगणभी प्रफुल्लित होते हैं, किन्तु जो वृद्धगण उस संगीतको नहीं जानते उनको शतवार धिक्कार है ॥ २५ ॥ पिता क्या नारदमहर्षिके अनेक गुणोंको नहीं जानते इस त्रिलोकमें उनकीसमान सामगायक और कौन है ? ॥ २६ ॥ इसीलिये मैंने उनको पहलेही पतित्वमें वरण किया है इसके उपरान्त शापके कारण उन गुणाकर मुनिवरका वानरकी समान मुख हुआ है ॥ २७ ॥ संगीतविद्या विशारद किन्नरगणोंका मुख घोड़ेकी समान होनेपरभी वह किसको प्रिय नहीं हुए थे उनके उत्तम मुखका प्रयो

मूर्च्छनातानमार्गंतुश्रुत्वामोदंनयातियः ॥ सपशुःसर्वथाज्ञेयोहरिणाःपशवोनहि॥२३॥ वरंविषधरःसर्पःश्रुत्वानादंमनोहरम् ॥ अश्रोत्रोऽपिमुदंयातिधिक्सकर्णांश्चमानवान् ॥२४॥ बालोऽपिसुस्वरंगेयंश्रुत्वामुदितमानसः॥जायतेकिंतुतेवृद्धानजानंतिधिगस्तुतान्॥२५॥पितामेकिंनजानातिनारदस्यगुणान्बहून् ॥ द्वितीयःसामगोनास्तित्रिषुलोकेषुतत्समः॥२६॥तस्मादसौमयानूनंवृतःपूर्वंसमागमात्॥पश्चाच्छापवशाज्जातोवानरास्योगुणाकरः॥२७॥ किन्नरानप्रियाःकस्यभवंतितुरगाननाः॥गानविद्यासमायुक्ताःकिंमुखेनवरेणह॥२८॥पितरंब्रूहिमेमातर्वृतोऽयंमुनिसत्तमः॥तस्मात्त्वमाग्रहंत्यक्त्वादेहितस्मैचमांमुदा२९॥ ॥ नारदउवाच ॥ इतिपुत्र्यावचःश्रुत्वाराज्ञीराज्ञेन्यवेदयत् ॥ आग्रहंसुंदरीज्ञात्वासुतायानारदेमुने ॥ ३० ॥ विवाहंकुरुराजेंद्रदमयंत्याःशुभेदिने ॥ मुनिनासचसर्वज्ञोवृतोऽसौमनसाऽनया ॥ ३१ ॥ नारदउवाच ॥ इतिसंचोदितोराज्ञ्यासंजयःपृथिवीपतिः ॥ चकारविधिवत्सर्वंविधिंवैवाहिकंततः ॥ ३२ ॥

जन क्या ? वह मनमोहन मधुर संगीतस्वरसे देवतागणोंकोभी मोहित करते हैं ॥ २८ ॥ हे जननि ! तुम अनुग्रहकरके पितासे कहना कि, मैंने पहलेही उन मुनिसत्तम नारद महर्षिको पतित्वमें वरण किया है अतएव अन्य आग्रह न करके सन्तुष्ट चित्तसे मुझको उनके हाथमें समर्पण कीजिये॥ २९॥ नारदजीने कहा अपनी कन्या दमयन्तीके यह वचन सुनकर वह अनिन्दिता सञ्जयराजमहिषी मेरे प्रति अपनी कन्याका अत्यन्त अनुराग जानकर राजासे कहने लगी ॥ ३० ॥ हे नृपसत्तम ! शुभदिन और शुभलग्नमें मुनिवरके संग दमयन्तीका शुभविवाहकार्य सम्पादन कीजिये कन्याने कहा है कि, मैंने उन सर्व ज्ञानसम्पन्न मुनिवरको पहले पतित्वमें वरण किया है इसके अब अन्यथा नहीं होगा ॥ ३१ ॥ महिषीसे इसप्रकार सुनकर पृथ्वीपति सञ्जयने कन्याका विवाह कार्य भलीभाँति विधिपूर्वक सम्पादन किया॥ ३२॥

हे ऋषिवर! मैं इसे विवाहकर वानरवदन धारणपूर्वक मनमें दग्ध होकर उसी स्थानमें वास करने लगा ॥ ३३ ॥ राजनन्दिनी जब मेरी सेवाके निमित्त जब निकट आती तब वानरमुख स्मरण करके मैं अत्यन्त दुःखित और सन्तप्त होता ॥ ३४ ॥ किन्तु मुझको देखकर दमयन्तीका वदनकमल प्रफुल्लित हो जाता मेरा मुख वानरकीसमान होनेसे वह कभीशोक सन्तप्त और दुःखित नहीं होती ॥ ३५ ॥ इसप्रकार काल व्यतीत होने लगा एक दिन पर्वतमुनि अनेकानेक तीर्थोंमें पर्यटन कर मेरे निकट आनकर उपस्थित हुए ॥ ३६ ॥ मैंने प्रेमसे उनका बडा सत्कार किया वह मुझको उत्तम आसनपर बैठा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित

एवंदारग्रहंकृत्वावानरास्यःपरंतप ॥ स्थितस्तत्रैवमनसादह्यमानेनचान्वहम् ॥३३॥ यदागच्छद्राजसुतासेवार्थंममसन्निधौ ॥ अभवंदुःखसंततस्तदाऽहंवान राननः ॥ ३४ ॥ दमयंतीतुमांवीक्ष्यप्रफुल्लवदनांबुजा ॥ शोकंवानरवक्त्रत्वान्नचकारकदाचन ॥३५॥ एवंगच्छतिकालेतुसहसापर्वतोमुनिः ॥ कुर्वस्तीर्था न्यनेकानिद्रष्टुंमांसमुपागतः ॥३६॥ मयाऽतिमानितःप्रेम्णापूजितश्चयथाविधि ॥ आसीनआसनेदिव्येवीक्ष्यमांदुःखितोह्यभूत् ॥ ३७ ॥ कृतदारंवानरा स्यंदीनंचितातुरंभृशम् ॥ दयावान्मामुवाचेदंपर्वतोमातुलंकृशम् ॥ ३८ ॥ मयानारदकोपात्त्वंशप्तोऽसिमुनिसत्तम ॥ निष्कृतिंतस्यशापस्यकरोम्यद्यनि शामय ॥ ३९ ॥ भवत्वंचारुवदनोममपुण्येननारद ॥ दृष्ट्वाराजसुतांचित्तेकृपाजाताममाऽधुना ॥ ४० ॥ नारदउवाच ॥ मयाऽपिप्रवणंचित्तंकृत्वा श्रुत्वाऽस्यभाषितम् ॥ अनुग्रहःकृतःसद्यस्तस्यशापस्यतत्क्षणात् ॥ ४१ ॥ भागिनेयतवाप्यस्तुगमनंसुरसद्मनि ॥ शापस्याऽनुग्रहःकामंकृतोऽयं पर्वताऽधुना ॥ ४२ ॥

हुए ॥ ३७ ॥ मैं उसका मामाहूं मेरा स्त्रीग्रहण करना देख तथा मेरा बन्दरकीसमान मुख होनेसे मुझे दीन अत्यन्त चिन्तातुर और कृश देखकर उनके हृदयमें करुणाका संचार हुआ तब उसने मुझसे कहा ॥ ३८ ॥ हे मुनिवर! मैंने कुपित होकर जो तुमको शाप दिया है उस शापका प्रतिमोचन करता हूं सुनो ॥ ३९ ॥ हे महर्षे! मेरे पुण्यसे आपका मुख पूर्वकीसमान उत्तम हो राजकन्याको देखकर इस समय मेरे अन्तःकरणमें करुणाका सञ्चार हुआ है ॥ ४० ॥ उसका यह वचन सुनकर मेरा चित्तभी कोमल होगया मैंनेभी तत्काल उसका शापमोचन करनेके निमित्त इच्छुक होकर कहा ॥ ४१ ॥ नारद बोले हे भागिनेय! तुम भी सुरपुरमें जाओ हे पर्वत! मैंने

इस समय तेरे प्रति शापके विषयमें भलीभाँति अनुग्रह प्रकाश किया ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन ! उसके वाक्यानुसार देखते देखते मेरा वदन सुचारु और पहले की समान शोभायमान होगया. तब राजपुत्री दमयन्तीने अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपनी माताके निकट जाकर कहा ॥ ४३ ॥ हे जननि ! महामुनि पर्वतके वचनानुसार तुम्हारे जामाताका शापमोचन होकर उनका मुख पहलेकी समान सुन्दर और शोभायमान हो गया इससेही उनके देहकी कान्ति वर्धित हुई है ॥ ४४ ॥ राजमहिषी दमयन्तीके वचन सुनकर परम आह्लादसे पुलकित हुई और तत्काल जाकर राजासे निवेदन किया. नरपति, सञ्जय तब अत्यन्त प्रीतिसहित मुनिवरको देखनेके निमित्त वहां गये ॥ ४५ ॥ तब महामति महीपतिने परम सन्तुष्ट हो मुझको और भागिनेय पर्वतको विवाहके कौतुकमें अनेक धन और रत्नादि प्रदान किये ॥ ४६ ॥

नारदउवाच ॥ जातोऽहंचारुवदनोवचनात्तस्यपश्यतः ॥ राजपुत्रीतुसंतुष्टामातरंप्राहसत्वरम् ॥ ४३ ॥ मातस्तेसुमुखोजातोजामाताचमहाद्युतिः ॥ वचनात्पर्वतस्याऽद्यमुक्तशापोमुनेरभूत् ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराज्ञ्याकथितंतत्सुराजनि ॥ ययौद्रष्टुंमुनिंतत्रसंजयःप्रीतिमांस्तदा ॥ ४५ ॥ धनंसमर्पितं राज्ञासंतुष्टेनतदामहत् ॥ मह्यंचभागिनेयायपारिबर्हंमहात्मना ॥ ४६ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंवर्तनंयत्पुरातनम् ॥ मायायाबलमाहात्म्यंह्यनुभूतंयथामया ॥ ॥ ४७ ॥ संसारेऽस्मिन्महाभागमायागुणकृतेनृते ॥ तनुभृत्तुसुखीनास्तिनभूतोनभविष्यति ॥ ४८ ॥ कामक्रोधौतथालोभोमत्सरोममतातथा ॥ अहंकारोमदःकेनजिताःसर्वेमहाबलाः ॥ ४९ ॥ सत्त्वंरजस्तमश्चैवगुणास्त्रयइमेकिल ॥ कारणंप्राणिनां देहसंभवेसर्वथामुने ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चित्समयेव्यासवनेऽहंविष्णुनासह ॥ गच्छन्हास्यविनोदेनस्त्रीभावंगमितःक्षणात् ॥ ५१ ॥

हे द्वैपायन ! मैंने पहले मायाका बल माहात्म्य जिसप्रकार अनुभव किया था इस समय तुमसे वह पुरातन समस्त वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! इन्द्रजालकीसमान मायाके मिथ्या गुणोंके कारण देहधारी मात्रही इस संसारमें पहले कोई कभी सुखी नहीं हुआ वर्त्तमानमें भी कोई सुखी नहीं और भविष्यतमेंभी कोई कभी सुखी नहीं हो सक्ता ॥ ४८ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मात्सर्य, ममता, अहङ्कार और मद, यह सभी प्रत्येकको महाबलवान् हैं इनको जीतनेमें कोई समर्थ नहीं होता ॥ ४९ ॥ हे मुनिवर ! सत्त्व, रज और तम यह तीन गुणही प्राणीगणोंके देहकी उत्पत्तिके विषयमें भलीभाँति कारण होते हैं ॥ ५० ॥ हे द्वैपायन ! मैं किसी

समय भगवान् विष्णुके हास्यपरिहासादि विनोद सेवनमें जा रहा था, दैवात्क्षणमेंही मैं स्त्री होगया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर मायाके बलसे मोहित होकर राजपत्नी हुआ और उन नृपतिके गृहमें अवस्थित होकर अनेक पुत्र उत्पन्न किये थे॥ ५२॥ व्यासजीने कहा हे देवर्षे ! आपके वचन सुनकर मुझको महान् संशय उत्पन्न हुआ है हे मुनिवर ! आप अत्यन्त ज्ञानवान् होकर भी किस प्रकार नारीभावको प्राप्तहुए थे ? ॥ ५३ ॥ और किस प्रकार फिर पुरुषत्वलाभ किया था? किस राजाके गृहमें स्थिति कर किस प्रकार पुत्र उत्पन्न किये थे यह सब विषय विस्तारपूर्वक वर्णन करके मेरा कौतूहलचरितार्थ कीजिये॥ ५४॥ जिसके द्वारा यह स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है आप उसी मायाका अति अद्भुत चरित्रकीर्त्तन कीजिये ॥५५॥ हे मुनिवर ! समस्त ग्रन्थार्थतत्व संयुक्त सब प्रकारके संशयका नाश करने

राजपत्नीत्वमापन्नोमायाबलविमोहितः ॥ पुत्राःप्रसूताबहवोगेहेतस्यनृपस्यह ॥ ५२ ॥ व्यासउवाच ॥ संशयोऽयंमहान्साधोश्रुत्वातेवचनंकिल ॥ कथंनारीत्वमापन्नस्त्वंमुनेज्ञानवान्भृशम् ॥ ५३ ॥ कथंचपुरुषोजातोब्रूहिसर्वमशेषतः ॥ कथंपुत्रास्त्वयाजाताःकस्यराज्ञोगृहेञ्जसा ॥ ५४ ॥ एतदाख्याहिचरितंमायायामहदद्भुतम् ॥ मोहितंचययासर्वमिदंस्थावरजंगमम् ॥५५॥ नतृप्तिमधिगच्छामिशृण्वंस्तवकथामृतम् ॥ सर्वग्रंथार्थतत्त्वंचसर्वसंशयनाशनम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ छ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ निशामयमुनिश्रेष्ठगदतोममसत्कथाम् ॥ मायाबलंसुदुर्ज्ञेयंमुनिभिर्योगवित्तमैः ॥ १ ॥ माययामोहितंसर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतमजयादुर्विभाव्यया ॥ २ ॥ कदाचित्सत्यलोकाद्वैश्वेतद्वीपमनोहरे ॥ गतोऽहंदर्शनाकांक्षीहरेरद्भुतकर्मणः ॥३॥ वादयन्महतींवीणांस्वरतानविभूषिताम् ॥ गायन्त्रंगायमानस्तुसामसप्तस्वरान्वितम् ॥ ॥ ४ ॥ दृष्टोमयादेवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्कोमेघश्यामश्चतुर्भुजः ॥ ५ ॥

वाला आपका वचनामृत श्रवणाञ्जलिपुटसे पान करके मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ नारदजीने कहा हे तपोधन ! मैं वह सम्पूर्ण सत्कथा कहता हूं सावधान होकर सुनो. हे मुनिवर ! योगके जाननेवालोंमें जो श्रेष्ठतम है यह मायाबल उनको भी दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ १ ॥ स्थावर जङ्गमात्मक ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त यह सम्पूर्ण जगत् उसी अजय और अचिन्तनीय मायासे मोहित होता है अतएव उस मायाके हाथसे कोई छुटने नहीं पाता ॥ २ ॥ मैं एक दिन अद्भुतकर्मा हरिके दर्शनकी इच्छा करके स्वरतान मनोरम वीणा बजाता हुआ और सप्तस्वरयुक्त सामगायन गान करते करते सत्यलोकसे मनोरम श्वेतद्वीपमें गया था ॥ ३ ॥ ४ ॥ मैंने वहां जाकर देवदेव चतुर्भुज चक्रपाणि गदाधरका दर्शन किया उनकी नवीन मेघकी समान श्याम मूर्ति हृदयमें

स्थित कौस्तुभप्रभासे प्रकाशित हो रही है ॥ ५ ॥ वह पीताम्बर पहर रहे हैं मस्तकमें परमप्रभासे उज्वल मुकुटशोभा पा रहा है, वह भगवान् नारायण विलास शालिनी पयोधिनन्दिनी अर्थात् लक्ष्मीके सहित परम प्रसन्नतापूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठतम प्रियदर्शन कनकप्रभा सर्वसुलक्षणयुक्त सर्व भूषणोंसे विभूषित रूपयौवनगर्वित वासुदेवप्रिया कमलादेवी मुझको देखते ही जनार्दनके समीपसे अन्तर्धान हो गई ॥ ७ ॥ ८ ॥ सिन्धुजा देवीके स्तनादि वस्त्रोंमें सभी दीखते थे अतएव उन्होंने शीघ्रही अन्तर्गृहमें गमन किया. यह देखकर मैंने वनमालाधारी जगत्प्रभु देवदेव जनार्दनसे पूँछा ॥ ९ ॥ हे सुरघातन! हे भगवन्! हेपद्मनाथ! लोकमाता कमलादेवी मुझको आता हुआ देखकर आपके समीपसे किस लिये उठगई? ॥ १० ॥ हेजगद्गुरो! मैं विट (जार) और धूर्त नहीं हूं मैं इन्द्रिय और क्रोध जीतकर तपस्वी हुआ हूं मैंने मायाको भी जीत लिया है. अतएव हे देव! कमलादेवीके चलेजानेका क्या कारण है! आप कृपा

पीतांबरपरीधानोमुकुटांगदराजितः ॥ लक्ष्म्यासहविलासिन्याक्रीडमानोमुदायुतः ॥ ६ ॥ वीक्ष्यमांकमलादेवीगतांतर्धानमंतिकात् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नासर्वभूषणभूषिता ॥ ७ ॥ नारीणांप्रवराकांतारूपयौवनगर्विता ॥ सुप्रियावासुदेवस्यवरचामीकरप्रभा ॥ ८॥ अंतर्गृहंगतांदृष्ट्वासिंधुजांव्यंजनान्विताम् ॥ मयापृष्टोदेवदेवोवनमालीजगत्प्रभुः ॥ ९ ॥ भगवन्देवदेवेशपद्मनाभमुरारिहन् ॥ कथंचमागतादृष्ट्वामामागच्छंतमंतिकात् ॥ १० ॥ नाऽहंविटोनवाधूर्तस्तापसोऽहंजगद्गुरो॥जितेंद्रियोजितक्रोधोजितमायोजनार्दन ॥११॥ नारदउवाच ॥ निशम्यवचनंकिंचिद्गर्वयुक्तंजनार्दनः ॥ उवाचमांस्मितंकृत्वावीणावन्मधुरांगिरम् ॥ १२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नारदैवंविधानीतिर्नस्थातव्यंकदाचन ॥ पतिंविनाऽन्यसान्निध्येकस्याचिद्योषयाक्वचित् ॥ १३ ॥ मायासुदुर्जयाविद्वन्योगिभिर्जितमारुतैः ॥ सांख्यविद्भिर्निराहारैस्तापसैश्चजितेंद्रियैः ॥ १४ ॥ देवैश्चमुनिशार्दूलयत्त्वयोक्तंवचोऽधुना ॥ जितमायोऽस्मिगीतज्ञनैवंवाच्यंकदाचन ॥ १५ ॥ नाऽहंशिवोनवाब्रह्माजेतुंतांप्रभवोऽप्यजाम् ॥ मुनयःसनकाद्याश्चकस्त्वंकेऽन्येक्षमाजये ॥ १६ ॥

करके वह मुझसे कहिये॥ ११ ॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन! जनार्दन मेरे यह गर्वयुक्त वचन सुनकर कुछेक हास्यसहित वीणाध्वनिकी समान मधुरस्वरसे कहने लगे ॥ १२ ॥ भगवान् बोले हेनारद! इस विषयकी विधि इसीप्रकार है कि, किसी पुरुषकी स्त्री क्यों न हो पतिके अतिरिक्त अन्य किसीके भी सामने बैठना उचित नहींहै ॥ १३ ॥ हे नारद! मायाको जीतना अत्यन्त कठिन कार्य है, जिन्होंने प्राणायामसे प्राण, पवन, आहार और इन्द्रियजय की हैं वह सांख्ययोगिलोग॥ १४ ॥ और देवता भी मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते. तुम कहते हो कि, मैंने मायाको जीतलिया है यह तुम्हारे योग्य वचन नहीं है. क्योंकि गीतज्ञानसे अनुमान होता है कि, तुम अवश्यही सङ्गीत शब्दसे मोहित होते हो ॥ १५ ॥ मैं, शिव, ब्रह्मा और मुनिलोग कोईभी उस अजय मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते. तुम अथवा अन्य कोईभी पुरुष उसको पराजय

करै यह कभी सम्भवभी नहीं हो सक्ता ॥ १६ ॥ देवदेह, नरदेह अथवा तिर्यग्देह ही हो जो जीव शरीर धारण करता है उनमेंसे कोई इस अजयमायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होता ॥ १७ ॥ वेदके जाननेवाले, योगके जाननेवाले, सर्वज्ञ अथवा जितेन्द्रिय हों तीनों गुणयुक्त कोई भी पुरुष मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ कोई कोई कहते हैं कि, यह सम्पूर्ण जगत् स्वयं निराकार होनेपर भी साकारकारी कालके आधीन है. किन्तु हे नारद! वह कालभी मायाका एक रूप है. क्या उत्तम विद्वान् क्या मध्यम और अधम मूर्ख सम्पूर्ण जीवही उस कालके वशीभूत हुए हैं ॥ १९ ॥ स्वभावसे अथवा कर्मसेही हो काल धर्मज्ञ पुरुषको भी कभी विकल कर डालता है. अतएव उसका कार्य अत्यन्त दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ २० ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन! यह कह विष्णुके मौन होनेपर मैं अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो उन सनातन वासुदेव देवदेव जगन्नाथसे पूँछने लगा ॥ २१ ॥ हे रमापते! मायाका रूप किसप्रकार है? माया कैसी है? उसके बलका

देवदेहंनृदेहंवातिर्यग्देहमथाऽपिवा ॥ बिभृयाद्यःशरीरंचसकथंतांजयेदजाम् ॥ १७ ॥ त्रियुतस्तांकथंमायांजेतुंशक्तःपुमान्भवेत् ॥ वेदविद्योगविद्वाऽपि सर्वज्ञोविजितेंद्रियः ॥१८॥ कालोऽपितस्यारूपंहिरूपहीनःस्वरूपकृत् ॥ तद्वशेवर्ततेदेहीविद्वान्मूर्खोऽथमध्यमः ॥ १९ ॥ कालःकरोतिधर्मज्ञंकदाचिद्विकलंपुनः ॥ स्वभावात्कर्मतोवाऽपिदुर्ज्ञेयंतस्यचेष्टितम् ॥ २० ॥ नारदउवाच ॥ इत्युक्त्वाविरतोविष्णुरहंविस्मयमानसः ॥ तमब्रवंजगन्नाथंवासुदेवंसनातनम् ॥ २१ ॥ रमापतेकथंरूपामायासाकीदृशीपुनः ॥ कियद्बलाक्कसंस्थानाकस्याधारावदस्वमे॥२२॥द्रष्टुकामोऽस्मितांमायांदर्शयाऽऽशुमहीधर॥ ज्ञातुमिच्छामितांसम्यक्प्रसादंकुरुमापते ॥ २३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्रिगुणासाऽखिलाधारासर्वज्ञासर्वसंमता ॥ अजेयानेकरूपाचसर्वव्याप्यस्थिताजगत ॥ २४ ॥ दिदृक्षायदितेचित्तेनारदारोहणंकुरु ॥ गरुडेमत्समेतोऽद्यगच्छावोऽन्यत्रसांप्रतम् ॥२५॥ दर्शयिष्यामितेमायांदुर्जयामजितात्मभिः ॥ दृष्ट्वातांब्रह्मपुत्रत्वंमाविषादेमनःकृथाः ॥२६॥ इत्युक्त्वादेवदेवोमांसस्मारविनतासुतम् ॥ स्मृतमात्रस्तुगरुडस्तदागाद्धरिसान्निधौ ॥ २७ ॥

परिमाण कितना है? उसका स्थान कहां है? वह किसका आधार है? सो आप मुझसे कहिये ॥ २२ ॥ हे जगतीपालक! मैं मायाको देखनेकेलिये अत्यन्त अभिलाषी हूं आप शीघ्र वह मुझको दिखाईये. हे रमापते! मेरी मायाको जाननेकी अत्यन्त इच्छा हुई है आप प्रसन्न होकर मायाके वैभवका वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ विष्णुने कहा त्रिगुणात्मिक सम्पूर्णके आधारस्वरूप, सर्वज्ञा सर्वसम्मता अजेया अनेकरूपा माया सम्पूर्ण जगतमें व्याप्त होकर स्थित रहती है ॥ २४ ॥ हे नारद! यदि तुम देखनेकी इच्छा करते हो तो शीघ्र मेरे संग गरुडपर चढो हम दोनों यहांसे दूसरे स्थानको गमन करेंगे ॥ २५ ॥ और अजितात्मा मनुष्यगणोंको कठिनतासे जानने योग्य उस मायाको दिखाऊंगा. हे ब्रह्मपुत्र! तुम मायाको देखकर व्याकुल मत होना ॥ २६ ॥ जनार्दनने मुझसे यह कह विनतानन्दन गरुडको स्मरण किया स्मरण

करतेही वह हरिके समीप उपस्थित हुआ ॥ २७ ॥ जनार्दन गरुडको आया देखकर उसके ऊपर चढ मुझको ले जानेके निमित्त आदरपूर्वक उसीकी पीठपर चढाया ॥ २८ ॥ भगवानने जिस वनमें जानेकी इच्छा की थी गरुड उनसे प्रेरित होकर वैकुण्ठसे वायुवेगकी समान वहांको चला ॥ २९ ॥ हम गरुडपर चढकर मनोहर वन, दिव्य सरोवर, सरित, पुर, ग्राम, खेट (किसानोंके गांव) खर्वट (पर्वत समीपस्थ गांव) गोव्रज गोठ ॥ ३० ॥ मुनियोंके मनोहर आश्रम शोभायमान दीर्घिका (बावडी) पल्वल छोटे सरोवर और विशालपंकजभूषित ह्रद ॥ ३१ ॥ मृगयूथ, वराहवृन्द यह सम्पूर्ण देखते देखते कान्यकुब्जदेशके समीप जायकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ उस स्थानमें एक मनोहर दिव्य सरोवर देखा उसमें परम मनोहर सम्पूर्ण कमल खिले हुए, हंस और कारंडवोंसे युक्त, चकवोंसे शोभित ॥ ३३ ॥

आगतंगरुडंवीक्ष्यआरुरोहजनार्दनः ॥ समारोप्यचमांपृष्ठेगमनायकृतादरः॥२८॥चलितोविनतापुत्रोवैकुंठाद्वायुवेगवान्॥प्रेरितोयत्रकृष्णेनगंतुकामेनकाननम्॥२९॥महावनानिदिव्यानिसरांसिसरितस्तथा ॥ पुरग्रामाकरादींश्चखेटखर्वटगोव्रजान् ॥ ३० ॥ मुनीनामाश्रमान्रम्यान्वापीश्चसुमनोहराः ॥ पल्वलानिविशालानिह्रदान्पंकजभूषितान् ॥ ३१ ॥ मृगाणांचवराहाणांवृंदान्यप्यवलोक्यच ॥ गतावावांकान्यकुब्जसमीपंगरुडासनौ ॥ ३२ ॥ तत्ररम्यंसरोदिव्यंदृष्टंपंकजमंडितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णंचक्रवाकोपशोभितम्॥३३॥नानावर्णैःप्रफुल्लैश्चपंकजैरुपरंजितम् ॥ शुचिमिष्टजलंभृंगयूथनादविराजितम्॥३४॥मामाहभगवान्वीक्ष्यतडागंपरमाद्भुतम् ॥ स्पर्धकंचोदधेःक्षीरंमिष्टंवारिविशेषतः॥३५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पश्यनारदगंभीरसरःसारसनादितम् ॥ सर्वत्रपंकजैश्छन्नंस्वच्छनीरप्रपूरितम् ॥ ३६ ॥ अत्रस्नात्वागमिष्यावःकान्यकुब्जंपुरोत्तमम् ॥ इत्युक्त्वागरुडादाशुमामुत्तार्यव्यतारयत् ॥३७॥

जहाँ खिलेकमल शोभा औरसुगन्ध विस्तार करते हैं. और सम्पूर्ण भौंरे कलगुंजनसे श्रवण और अन्तःकरण हरण करते हैं, अनेकप्रकारके फलपुष्प शोभा पाते हैं, उसका जल दूधकी समान मीठा ॥ ३४ ॥ और वह सरोवर मानो समुद्रकी भी स्पर्द्धा करता है, अत्यन्त अद्भुत उस तडागको देखकर भगवानने मुझसे कहा ॥ ॥ ३५ ॥ भगवान् बोले हे नारद! देखो देखो विमलजलपूरित सर्वत्र कमलोंसे ढका हुआ गभीर सरोवर किस प्रकार शोभा पाता है इसमें कलकण्ठ सारसगण मधुर शब्द करते फिरते हैं ॥ ३६ ॥ इसमें स्नान करके हम कान्यकुब्ज नामक पुरमें जायँगे यह कहकर शीघ्र मुझको गरुड़से उतार स्वयं उतरे ॥ ३७ ॥

अनन्तर भगवानने हँसकर मेरी तर्ज्जनी अंगुली पकडी और उस सरोवरकी वारंवार प्रशंसा करके मुझको उसके तटपर लेगये॥ ३८ ॥ शीतल छायायुक्त मनोहर तटपर बैठकर कुछ काल विश्राम करनेके उपरान्त भगवान्‌ने मुझसे कहा हे मुनिवर! इसके विमलजलमें तुम पहले स्नान करो ॥ ३९ ॥ तदन्तर मैं इस परमपवित्र तडागमें स्नान करूंगा. हे नारद! देखो देखो! यह जल साधुओंके चित्तकी समान किस प्रकार निर्म्मल है? ॥ ४० ॥ इसने कमलोंके परागसे सुवासित होकर किसप्रकार सुगन्ध धारण की है? जब भगवान् वासुदेवने मुझसे यह वचन कहा तब मैं वीणा और मृगाजिन त्यागकर॥ ४१ ॥ प्रसन्न हो स्नानकी इच्छासे सरोवरके किनारे गया. हाथ, पाँव, धोकर शिखाबन्धन और कुशग्रहण कर ॥ ४२ ॥ आचमनपूर्वक शुचिहो उस जलमें अवगाहन किया. मैं स्नान कररहा था, हरि मुझको देख रहे थे॥ ४३ ॥ इसी समय जलमें

विहस्यभगवांस्तत्रजग्राहममतर्जनीम् ॥ स्तुवन्सरोवरंभूयस्तीरेमामनयत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ विश्रम्यतटभागेतुस्निग्धच्छायेमनोहरे ॥ मामुवाचमुनेस्नानंकुरु त्वंविमलेजले ॥ ३९ ॥ पश्चादहंकरिष्यामितडागेऽस्मिन्सुपावने ॥ साधूनामिवचेतांसिजलानिनिर्मलानिच ॥ ४० ॥ सुरभीणिपरागैस्तुपंकजानांविशेष तः ॥ इत्युक्तोऽहंभगवतामुक्त्वावीणांमृगाजिनम् ॥ ४१ ॥ स्नानायकृतधीस्तीरेगतःप्रेमसमन्वितः ॥ पादौप्रक्षाल्यहस्तौचशिखांबद्धाकुशग्रहम् ॥ ४२ ॥ कृत्वाचम्यशुचिस्तोयेस्नातवानास्मितज्जले ॥ यदातस्मिञ्जलेरम्येस्नातोऽहंपश्यतोहरेः ॥ ४३ ॥ विहायपौरुषंरूपंप्राप्तःस्त्रीत्वमनुत्तमम् ॥ हरिर्गृहीत्वावी णांमितथाकृष्णाजिनंशुभम् ॥ ४४ ॥ आरुह्यगगनंतूर्णंजगामस्वगृहंक्षणात् ॥ ततोऽहंस्त्रीत्वमापन्नश्चारुभूषणभूषितः ॥ ४५ ॥ तत्क्षणान्मनसाजातापूर्व देहस्यविस्मृतिः ॥ विस्मृतोसौजगन्नाथोमहतीविस्मृतापुनः ॥ ४६ ॥ संप्राप्यमोहिनीरूपंतडागान्निर्गतोबहिः ॥ अपश्यंनलिनीजुष्टंसरस्तद्विमलोदकम् ॥ ॥ ४७ ॥ किमेतदितिमनसाऽकरवंविस्मयंमुहुः ॥ एवंचिंतयमानस्यनारीरूपधरस्यमे ॥ ४८ ॥ सहसाहक्पथंप्राप्तस्तत्रतालध्वजोनृपः ॥ गजाश्वरथवृंदै श्चसंवृतोरथसंस्थितः ॥ ४९ ॥ युवाभूषणसंवीतोदेहवानिवमन्मथः ॥ वीक्ष्यमांभूपतिस्तत्रदिव्यभूषणभूषिताम् ॥ ५० ॥

निमग्नहो निकलकर देखा कि, मैं पुरुषरूप त्यागकर मनोहरस्त्रीरूप होगया हूं. तब हरि मेरा मृगचर्म और वीणा ग्रहण कर ॥ ४४ ॥ गरुडपर चढ आकाशमार्गसे तत्काल अपने गृहको चले गये. मैं शोभायमान भूषणोंसे भूषित नारी देहको प्राप्त हो॥ ४५ ॥ तत्काल पहले देहको भूलगया वीणा और भगवानको भी भूलगया ॥ ४६ ॥ अनन्तर वह मनमोहन रमणीरूप धारण करके तडागसे निकल कमलोंसे युक्त निर्मल जलपूरित दिव्यसरोवरको देखने लगा ॥ ४७ ॥ उसको देखकर यह क्या है? मनहीमनमें इस प्रकार आश्चर्य उत्पन्न होनेलगा. मैं स्त्रीरूप धारण कर मनहीमनमें इसीप्रकार चिन्ता कर रहा था ॥ ४८ ॥ इसी समयमें अनेक हाथी और घोडोंसे युक्त तालध्वज नामक एक राजा रथपर चढ सहसा आनकर उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥ ४९ ॥ वह राजा मूर्तिमान् कामदेवकी समान थे. उनके सम्पूर्ण अङ्ग अनेक प्रकारके आभ

रणोंसे विभूषित थे. युवा राजाने उसी स्थानमें आनकर मुझको देखा. दिव्य आभरणोंसे भूषित मेरा देह ॥ ५० ॥ और पूर्णचन्द्रमाके समान मुख देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो पूँछने लगे हे कल्याणि ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ॥ ५१ ॥ तुम मनुष्य कन्या ? नागकन्या ? गन्धर्वनन्दिनी अथवा किसी देवताकी कन्या हो ! तुमको रूपयौवनसम्पन्नबाला देखता हूं तुम इस स्थानमें अकेली क्यों बैठी हो ? ॥ ५२ ॥ हे सुलोचने ! किसी सौभाग्यवान् पुरुषने क्या तुम्हारा पाणिग्रहण किया है अथवा इस समय भी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है यह तुम मुझसे सत्य कहो. हे सुकेशि ! इस सरोवरमें तुम क्या देखती हो ॥ ५३ ॥ हे मन्मथमोहिनि ! तुम्हारे मनमें क्या इच्छा है सो कहो? हे कुटिलनयने ! तुम्हारे कोकिलकी समान कण्ठस्वरसे मेरा मन मोहित हुआ है. हे कृशोदरि ! तुम मुझको पतिरूपमें वरणकरके मेरे संग अनेक प्रकारके अभिलषित मनोरम भोग्य वस्तु भोग करो ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥

राकाचंद्रमुखींयोषांविस्मयंपरमंगतः ॥ पप्रच्छकाऽसिकल्याणिकस्यपुत्रीसुरस्यवा ॥ ५१ ॥ मानुषस्यचवाकांतेगंधर्वस्योरगस्यच ॥ एकाकिनीकथं बालारूपयौवनभूषिता ॥ ५२ ॥ विवाहिताऽथकन्यावासत्यंवदसुलोचने ॥ किंपश्यसिसुकेशांतेतडागेऽस्मिन्सुमध्यमे ॥ ५३ ॥ चिकीर्षितंपिकालापेब्रूहि मन्मथमोहिनि ॥ भुंक्ष्वभोगान्मरालाक्षिमयासहकृशोदरि ॥ वांछितान्मनसानूनंकृत्वामांपतिमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधे ऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ छ ॥ नारदउवाच ॥ इत्युक्तोऽहंतदातेनराज्ञातालध्वजेनच ॥ विमृश्यमनसात्यर्थंतमुवाचविशांपते ॥ १ ॥ राजन्नाहंविजाना मिपुत्रीकस्येतिनिश्चयम् ॥ पितरौक्वचमेकेनस्थापिताचसरोवरे ॥ २ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकथंमेसुकृतंभवेत् ॥ निराधाराऽस्मिराजेंद्रचिंतयामिचिकी र्षितम् ॥ ३ ॥ दैवमेवपरंराजन्नास्त्यत्रपौरुषंमम ॥ धर्मज्ञोसिमहीपालयथेच्छसितथाकुरु ॥ ४ ॥ तवाऽधीनास्म्यहंभूपनमेकोप्यस्तिपालकः ॥ नपितानचमाताचनस्थानंनचबांधवाः ॥ ५ ॥

नारदजीने कहा हे द्वैपायन ! राजा तालध्वजने जब मुझसे इस प्रकार कहा तब फिर मैं ने मनमें अनेक विचारकर कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! मैं किसकी कन्या हूं यह मैं नहीं जानती और मेरे पितामाता कहा हैं यहभी मैं निश्चय नहीं कहसक्ती. एक पुरुष मुझको यह सरोवर दिखाकर कहीं चला गया है ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं अनाथ और निराश्रय हुई हूं इस समय क्या करूं कहां जाऊं कौन कार्य करनेसे मेरा कल्याण होगा इस विषयमें निरन्तर चिन्ता करती हूं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दैवही बलवान् है इस विषयमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं. आप धर्मज्ञ और राजा हैं इस समय आपका जो अभिप्राय हो आप वही कीजिये ॥ ४ ॥ हे नृपवर ! मेरा पालनकरनेके निमित्त बन्धु, माता, पिता, बान्धव कोई नहीं है और दूसरा कोई आश्रयस्थानभी नहीं है. अतएव मैं इस समय आपके अधीन हूं ॥ ५ ॥

मेरे इस प्रकार वचन कहनेपर फिर मेरा मुखकमल बडेनेत्र देखकर राजाका मन कामबाणसे व्याकुल होगया तब उन्होंने अनुचरोंसे कहा ॥ ६ ॥ तुम इसके चढ़नेको रेशमके वस्त्रोंके बिछौनेसे युक्त चतुरपुरुषोंसे वाहित नरयान पालकी लाओ ॥ ७ ॥ जो मोतियोंके जालसे सुशोभित सुवर्णसे जड़ित चौकोन औ विस्तृत हो ॥ ८ ॥ राजाके वचन सुनतेही सेवकलोग शीघ्र जाय मेरे निमित्त वस्त्रयुक्त अत्यन्त मनोहर नरयान ले आये ॥ ९ ॥ मैं राजाके प्रियसाधनकी इच्छासे उसपर चढ़ा, राजाने भी प्रसन्नहो मुझको गृहमें लेजाकर ॥ १० ॥ विवाहकी विधिकेअनुसार शुभदिन और शुभलग्नमें अग्निके समीप मेरा पाणिग्रहण किया ॥ ११ ॥ मैं उनको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हुआ. राजाने आदरपूर्वक मेरा सौभाग्यसुन्दरी नाम रख दिया ॥ १२ ॥ वह राजा कामशास्त्रोक्त अनेक प्रकारके भोगविलास

इत्युक्तोऽसौमयाराजाबभूवमदनातुरः ॥ मांनिरीक्ष्यविशालाक्षींसेवकानित्युवाचह ॥ ६ ॥ नरयानमानयध्वंचतुर्वाह्यंमनोहरम् ॥ आरोहणार्थमस्या स्तुकौशेयांबरवेष्टितम् ॥ ७ ॥ मृद्वास्तरणसंयुक्तंमुक्ताजालविभूषितम् ॥ चतुरस्रंविशालंचसुवर्णरचितंशुभम् ॥ ८ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभृत्याःसत्वरगा मिनः ॥ आनिन्युःशिबिकांदिव्यांमदर्थेवस्त्रवेष्टिताम् ॥ ९ ॥ आरूढाऽहंतदातस्यांतस्यप्रियचिकीर्षया ॥ मुदितोऽसौगृहेनीत्वामांतदापृथिवीपतिः ॥ ॥ १० ॥ विवाहविधिनाराजाशुभेलग्नेशुभेदिने ॥ उपयेमेचमांतत्रहुतभुक्सन्निधौततः ॥ ११ ॥ तस्याऽहंवल्लभाजाताप्राणेभ्योऽपिगरीयसी ॥ सौभा ग्यसुंदरीत्येवंनामतत्रकृतंमम ॥ १२ ॥ रममाणोमयासार्धंसुखमापमहीपतिः ॥ नानाभोगविलासैश्चकामशास्त्रोदितैस्तथा ॥ १३ ॥ राजकार्याणिसं त्यज्यक्रीडासक्तोदिवानिशम् ॥ नाऽसौविवेदगच्छंतंकालंकामकलारतः ॥ १४॥ उद्यानेषुचरम्येषुवापीषुचगृहेषुच॥हर्म्येषुवरशैलेषुदीर्घिकासुवरासुच॥ ॥ १५ ॥ वारुणीमदमत्तोऽसौविहरन्काननेशुभे ॥ विसृज्यसर्वकार्याणिमदधीनोबभूवह ॥ १६॥ व्यासाऽहंतेनसंसक्ताक्रीडारसवशीकृता ॥ स्मृतवान्पू र्वदेहंनपुंभावंमुनिजन्मच ॥ १७ ॥ ममैवाऽयंपतिर्योषाऽहंपत्नीषुप्रियासती ॥ पट्टराज्ञीविलासज्ञासफलंजीवितंमम ॥ १८ ॥

सहित मेरे संग अनेक प्रकार विहार और क्रीड़ा कर प्रमोद और अनेक प्रकार सुख अनुभव करने लगे ॥ १३ ॥ तब वह राजकार्य त्यागकर दिनरात मेरे संग कामक्रीडामें आसक्त रहे वह महीपाल कामकलामें इस प्रकार निरत हुए थे कि, बहुत कालव्यतीत होनेपर भी वह उसको नहीं जान सके ॥ १४ ॥ वह वारुणी मदिरा पानकरके राजकार्य त्याग मनोहर उद्यान सुरम्य दीर्घिका मनोहर हर्म्य (महल) शोभायमान गृह रमणीय शैल श्रेष्ठ वन उन सब स्थलोंमें विहार करते करते भली भाँति मेरे अधीन होगये ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे द्वैपायन ! उस राजाके संग क्रीड़ारसमें निरन्तर आसक्त और उसकेही वशीभूत रहकर मुझको पूर्व देह पुरुषभाव अथवा मुनिजन्म कुछ भी स्मरण न हुआ ॥ १७ ॥ यह राजा मेरेही प्रति अनुरक्त थे सम्पूर्ण स्त्रियोंमें मैंही उनकी प्रिय स्त्री था. वह सदाही मुझमें निरत रहते थे

मैंही उनकी विलासिनी पटरानी हूं मेराजीवन सफल है ॥ १८ ॥ इस प्रकार चिन्ताकर दिनरात उनके प्रेममें आबद्ध और सुखप्राप्त करनेके निमित्त उनकेही वशीभूत होकर निरन्तर क्रीड़ामें आसक्त रहता ॥ १९ ॥ उन्हींमें मेरा मन अत्यन्त आसक्त हुआ था शाश्वत ब्रह्मज्ञान और धर्मशास्त्रका ज्ञान सम्पूर्णही भूलगया था ॥ ॥ २० ॥ हे मुनिवर ! इस प्रकार कामक्रीड़ामें आसक्त रहकर अनेक प्रकार विहार करते करते बारह वर्ष क्षणकालकी समान बीत गये ॥ २१ ॥ किन्तु मैं उनको कुछभी नहीं जान सका, तदनन्तर मैं गर्भवतीहुआ. यह देखकर राजाने अत्यन्त प्रसन्न हो मेरी सम्पूर्ण गर्भसंस्कारक्रिया सम्पादनकी ॥ २२ ॥ राजा मेरा मन सन्तुष्ट करके सर्वदाही गर्भदोहद "मेरे मनोरथ की बात" वारम्वार पूंछते, मैं उससे अत्यन्त लज्जित होता इससे राजा और भी प्रीतिमान् होजाते ॥ २३ ॥ इस

इतिचिंतयतीतास्मिन्प्रेमबद्धादिवानिशम् ॥ क्रीडासक्तासुखेलुब्धातंस्थितावशवर्तिनी ॥ १९ ॥ विस्मृतंब्रह्मविज्ञानंब्रह्मज्ञानंचशाश्वतम् ॥ धर्मशास्त्रपरिज्ञानंतदासक्तमनाःस्थिता ॥ २० ॥ एवंविहरतस्तत्रवर्षाणिद्वादशैवतु ॥ गतानिक्षणवत्कामक्रीडासक्तस्यमेमुने ॥ २१ ॥ जातागर्भवतीचाऽहंमुदंप्रापनृपस्तदा ॥ कारयामासविधिवद्गर्भसंस्कारकर्मच ॥ २२ ॥ अपृच्छद्दोहदंराजाप्रीणयन्मांपुनःपुनः ॥ नाऽब्रुवंलज्जमानाऽहंनृपंप्रीतमनाभृशम् ॥ २३ ॥ संपूर्णेदशमेमासिपुत्रोजातस्ततोमम ॥ शुभेह्निग्रहनक्षत्रलग्नताराबलान्विते ॥ २४ ॥ बभूवनृपतेर्गेहेपुत्रजन्ममहोत्सवः ॥ राजापरमसंतुष्टोबभूवसुतजन्मतः ॥ २५ ॥ सूतकांतेसुतंवीक्ष्यराजामुदमवापह ॥ अहंभूमिपतेश्चासंप्रियाभार्यापरंतप ॥ २६ ॥ ततोवर्षद्वयांतेवैपुनर्गर्भोमयाधृतः ॥ द्वितीयस्तुसुतोजातःसर्वलक्षणसंयुतः ॥ २७ ॥ सुधन्वेतिसुतस्याऽथनामचक्रेनृपस्तदा ॥ वीरवर्मेतिज्येष्ठस्यब्राह्मणैःप्रेरितस्स्वयम् ॥ २८ ॥ एवंद्वादशपुत्राश्चप्रसूताभूपसंमताः ॥ मोहितोऽहंतदातेषांप्रीत्यापालनलालने ॥ २९ ॥

प्रकार दश मास पूर्ण होनेपर शुभ ग्रह शुभ नक्षत्र शुभ लग्न और शुभ तारावलयुक्त शुभ दिननें मैंने एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ राजा पुत्रजन्म होनेसे अत्यन्त आनन्दित हुए और पुत्रजन्मका महामहोत्सव आरम्भ किया ॥ २५ ॥ हे द्वैपायन ! जातशौच होनेपर राजा पुत्रका मुख देखकर अत्यम्त प्रसन्न हुए. तदनन्तर मैं उन्हीं महीपालकी प्रियतम भार्या होकर रहा ॥ २६ ॥ तदनन्तर दो वर्ष पीछे फिर मेरे गर्भरहा उससेभी सर्वप्रकारके लक्षणोंसे युक्त दूसरा पुत्र उत्पन्न किया ॥ २७ ॥ राजाने दूसरे पुत्रका नाम सुधन्वा रक्खा और ब्राह्मणोंके आदेशसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम वीरवर्मा रखदिया ॥ २८ ॥ इसप्रकार क्रमानुसार राजाके सम्मत द्वादश पुत्र

उत्पन्न करके तब उनके लालन पालनमेंही मोहित होकर रहा ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त फिर क्रमानुसार आठ पुत्र मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए इस प्रकार मेरी सुखसम्पन्न गृहस्थली समृद्धिसे पूर्ण होगई ॥ ३० ॥ राजाने उन सम्पूर्ण पुत्रोंका यथोचित रूपसे विवाहकार्य सम्पादन किया उससे पुत्रवधू और पुत्रोंसे मेरा परिवार अत्यन्त बृहत् होगया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर मेरे कितनेही पौत्र हुए उनके अनेक प्रकारके क्रीड़ारसमें मेरा मन मोह और भी वर्धित होने लगा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कभी सुख और ऐश्वर्य एवं कभी पुत्रोंके रोगजनित आश्चर्यजनक दुःख अनुभव करने लगा. इससे मेरा देह अत्यन्त सन्तप्त होने लगा ॥ ३३ ॥ कभी पुत्रोंका परस्पर घोरतर विरोध, कभी पुत्रोंका परस्पर दारुण कलह, इस दुर्घटनासे मेरे मनमें दारुण सन्ताप उत्पन्न होने लगा ॥ ३४ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैं सुख दुःखात्ममिथ्याचारमय

पुनरष्टसुताःकालेकालेजाताःस्वरूपिणः ॥ गार्हस्थ्यंमेततःपूर्णंसंपन्नंसुखसाधनम् ॥ ३० ॥ तेषांदारक्रियाःकालेकृताराज्ञायथोचिताः ॥ स्नुषाभिश्चतथा पुत्रैःपरिवारोमहानभूत् ॥ ३१ ॥ ततःपौत्रादिसंभूतास्तेपिक्रीडारसान्विताः ॥ आसन्नानारसोपेतामोहवृद्धिकराभृशम् ॥ ३२ ॥ कदाचित्सुखमैश्वर्यंक दाचिद्दुःखमद्भुतम् ॥ पुत्रेषुरोगजनितंदेहसंतापकारकम् ॥ ३३ ॥ परस्परंकदाचित्तुविरोधोभूत्सुदारुणः ॥ पुत्राणांवावधूनांचतेनसंतापसंभवः ॥ ३४ ॥ सुखदुःखात्मकेघोरेमिथ्याचारकरेभृशम् ॥ संकल्पजनितेक्षुद्रेमग्नोऽहंमुनिसत्तम ॥ ३५ ॥ विस्मृतंपूर्वविज्ञानंशास्त्रज्ञानंतथागतम् ॥ योषाभावेविलीनो ऽहंगृहकार्येषुसर्वथा ॥ ३६ ॥ अहंकारस्तुसंजातोभृशंमोहविवर्धकः ॥ एतेमेबलिनःपुत्राःस्नुषाःस्वकुलसंभवाः ॥ ३७ ॥ एतेपुत्राःसुसन्नद्धाःक्रीडंतिमम वेश्मसु ॥ धन्याऽहंखलुनारीणांसंसारेऽस्मिन्नहोभृशम ॥ ३८ ॥ नारदोऽहंभगवतोवंचितोमाययाकिल ॥ नकदाचिन्मयाप्येवंचिंतितंमनसाकिल ॥ ३९ ॥ राजपत्नीशुभाचाराबहुपुत्रापतिव्रता ॥ धन्याऽहंकिलसंसारेकृष्णैवंमोहितस्त्वहम् ॥ ४० ॥ अथकश्चिन्नृपःकामंदूरदेशाधिपोमहान् ॥ अरातिभावमाप न्नःपतिनासहमानद ॥ ४१ ॥ कृत्वासैन्यसमायोगंरथैश्ववारणैर्युतम् ॥ आजगामकान्यकुब्जेपुरेयुद्धमाचिंतयत् ॥ ४२ ॥

संकल्पजनित ऐसे मायाके संकटसागरमें निमग्न था ॥ ३५ ॥ अतएव पूर्वविज्ञान और वह शास्त्रज्ञान भूलकर स्त्रीभावसे गृहकार्यमें निरत होकर रहा ॥ ३६ ॥ मेरे इतनी पुत्र वधू हुई हैं यह सम्पूर्ण बलवान् पुत्र एकत्र मिलित होकर मेरे गृहमें क्रीड़ा करते हैं अहो ! इससंसारमें मैं सम्पूर्ण स्त्रियोंमें धन्य और पुण्यवति हुई हूं तब मुझको इस प्रकार मोहवर्द्धक अहङ्कार भी उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ मै नारदहूं भगवानूने मुझको मायासे छला है ऐसा भाव मेरे मनमें कभी उदय नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ हे कृष्णद्वैपायन ! मैं सदाचारनिरतराजपत्नी और पतिव्रता हूं मेरे इतने पुत्र उत्पन्न हुए हैं मैं इस संसारमें धन्य हूं. इस प्रकार ऐश्वर्य आदिकी चिन्ता करके मैं मायासे मोहित होकर काल व्यतीत करने लगा ॥ ४० ॥ अनन्तर दूरदेशके अधिपति कोईएक महान् राजा मेरे पतिके संग बद्ध वैर हो ॥

युद्धके निमित्त रथ और वाणादि चतुरङ्गिणी सेनाके सहित कान्यकुब्जनगरमें आया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जब उस राजाने सेनासे नगरको घेरलिया तब मेरे पुत्र और पौत्र नगरसे बाहरहो ॥ ४३ ॥ रणस्थलमें जाय उसके संग तुमुल संग्राम करने लगे किन्तु कालके प्रभावसे वैरीने मेरे सम्पूर्ण पुत्रोंको मार डाला॥ ४४ ॥ राजा रणसे भाग अपने गृहमें आगये फिर मैंने सुना कि, मेरे सम्पूर्ण पुत्र उस भयङ्कर संग्राममें मारे गये ॥ ४५ ॥ वह बलवान् राजा मेरे पुत्र पौत्रोंको मारकर अपनी सेनाके सहित अपने नगरको चला गया तब मैं विलाप करती हुई उस संग्राम स्थलमें शीघ्र जाकर उपस्थित हुई ॥ ४६ ॥ हे आयुष्मन् ! मैं उन दारुण दुःखपीडित पुत्र और पौत्रोंको भूमिमें पडा हुआ देखकर शोकसागरमें निमग्न हुआ और उच्चस्वरसे विलापकरने लगा ॥ ४७ ॥ हे पुत्रगण ! तुम मुझको त्यागकर कहां चले गये. हाय ! अत्यन्त बलवान् अतिसन्तापदायक और दुर्निवार दुरात्मा दैवने आज मुझको निहत किया ॥ ४८ ॥ इसी समयमें भगवान् मधुसूदन शोभायमान वृद्ध ब्राह्मणका वेश

वेष्टितंनगरंतेनराज्ञासैन्ययुतेनच ॥ ममपुत्राश्चपौत्राश्चनिर्गतानगरात्तदा ॥ ४३ ॥ संग्रामस्तुमुलस्तत्रकृतस्तैस्तेनपुत्रकैः ॥ हतारणेसुताःसर्वेवैरिणाकालयोगतः ॥ ४४ ॥ राजाभग्नस्तुसंग्रामादागतःस्वगृहंपुनः ॥ श्रुतंमयामृताःपुत्राःसंग्रामेभृशदारुणे ॥ ४५ ॥ सहत्वामेसुतान्पौत्रान्गतोराजाबलान्वितः ॥ क्रंदमानाह्यहंतत्रगतासमरमंडले ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वातान्पतितान्पुत्रान्पौत्रांश्चदुःखपीडिता ॥ विललापाहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लुवे ॥ ४७ ॥ हापुत्राःक्वगतामेऽद्यहाहतास्मिदुरात्मना ॥ दैवेनाऽतिबलिष्ठेनदुर्वारेणाऽतितापिना ॥ ४८ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रभगवान्मधुसूदनः ॥ कृत्वारूपंद्विजस्याऽगाद्वृद्धःपरमशोभनः ॥ ४९ ॥ सुवासावेदवित्कामंमत्समीपंसमागतः ॥ मामुवाचाऽतिदीनांसक्रंदमानांरणाजिरे ॥ ५० ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ किंविषीदसितन्वंगिभ्रमोऽयंप्रकटीकृतः ॥ मोहेनकोकिलालापेपतिपुत्रगृहात्मके ॥ ५१ ॥ कात्वंकस्याःसुताःकेऽमीचिंतयाऽऽत्मगतिंपराम् ॥ उत्तिष्ठरोदनंत्यक्त्वास्वस्थाभवसुलोचने ॥ ५२ ॥ स्नानंचतिलदानंचपुत्राणांकुरुकामिनि ॥ परलोकगतानांचमर्यादारक्षणायवै ॥ ५३ ॥ कर्तव्यंसर्वथातीर्थेस्नानंतुनगृहेक्वचित् ॥ मृतानांकिलबंधूनांधर्मशास्त्रस्यनिर्णयः ॥ ५४ ॥

धारण कर उसी स्थानमें मेरे निकट आये ॥ ४९ ॥ उनके वसन पवित्र और मनोहर थे वह वेदज्ञ बोध होते थे मुझको रणस्थलमें दीनभावसे रोता हुआ देखकर कहने लगे ॥ ५० ॥ ब्राह्मण बोले हे देवि ! तुम्हारा शब्द कोकिलकी समान है तुम पतिपुत्रवती और समृद्ध शालिनी गृहस्वामिनी बोध होती हो ॥ ५१ ॥ किन्तु तुम विचारो कि, यह सम्पूर्ण केवल मोहाजनित भ्रम मात्र है तुम किसलिये रोती हो? किस कारण दुःखित होती है ? हे सुलोचने! विचार कर देखो तुम कौन हो ? अथवा यह पुत्र किसके हैं ? आपकी उत्तम गति कैसे होगी इसकीही तुम चिन्ता करो इस समय रोदन त्याग उठकर सावधान होओ ॥ ५२ ॥ हे देवि ! परलोकमें गये हुए पुरुषोंकी मर्यादाके रक्षार्थ उनको जल और तिल दान करो ॥ ५३ ॥ मरे हुए पुरुषोंके बन्धुगणोंको तीर्थमें स्नान करना चाहिये

वरमें स्नान करना कभी उचित नहीं यह धर्मका स्थिर निश्चय जानना चाहिये॥ ५४॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन ! उन वृद्धविप्रवरके इस प्रकार समझानेपर फिर मैं और राजा बन्धुगणोंसे परिवृत हो उठे ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणरूपधारी भूतभावन भगवान् मधुसूदन आगे आगे चलने लगे मैं शीघ्र उनके पीछे पीछे उस परम पवित्र तीर्थमें चलने लगा ॥ ५६ ॥ द्विजरूपधारी जनार्दनभगवान् हरि मुझको उस पुंतीर्थनामकसरोवरमें ले जाकर कृपाप्रकाशपूर्वक कहने लगे ॥ ५७ ॥ हे गजेन्द्रगामिनि ! तुम इस परम पवित्र तड़ागके जलमें स्नान करो व्यर्थ शोक त्याग करो, इस समय तुम्हारे पुत्रोंकी क्रियाका समय उपस्थित हुआ है ॥ ५८ ॥ तुम विचार कर देखो कि, जन्मजन्मान्तरमें तुम्हारे करोड करोड पुत्र कन्या हुई हैं और करोड करोड पुत्र कन्याओंने प्राण त्याग किया है और करोड़ करोड पिता पति भ्राता जामाता प्राप्त

नारदउवाच ॥ इत्युक्त्वातेनविप्रेणवृद्धेनप्रतिबोधिता ॥ उत्थिताऽहंनृपेणाऽथयुक्ताबंधुभिरावृता ॥ ५५ ॥ अग्रतोद्विजरूपेणभगवान्भूतभावनः ॥ चलिताऽहंततस्तूर्णंतीर्थंपरमपावनम् ॥ ५६ ॥ हरिर्मांकृपयातत्रपुंतीर्थेसरसिप्रभुः ॥ नीत्वाऽऽहभगवान्विष्णुर्द्विजरूपीजनार्दनः ॥ ५७ ॥ स्नानं कुरुतडागेऽस्मिन्पावनेगजगामिनि ॥ त्यजशोकंक्रियाकालःपुत्राणांचनिरर्थकम् ॥ ५८ ॥ कोटिशस्तेमृताःपुत्राजन्मजन्मसमुद्भवाः ॥ पितरः पतयश्चैवभ्रातरोजामयस्तथा ॥ ५९ ॥ केषांदुःखंत्वयाकार्यंभ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे ॥ वितथेस्वप्नसदृशेतापदेदेहिनामिह ॥ ६० ॥ नारदउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वातीर्थेपुरुषसंज्ञके ॥ प्रविष्टास्नातुकामाऽहंप्रेरितातत्रविष्णुना ॥ ६१ ॥ मज्जनादेवतीर्थेपुपुमाञ्जातःक्षणादपि ॥ हरिर्वीणांकरेकृत्वा स्थितस्तीरेस्वदेहवान् ॥ ६२ ॥ उन्मज्ज्यचमयातीरेदृष्टःकमललोचनः ॥ प्रत्यभिज्ञातदाजाताममचित्तेद्विजोत्तम ॥ ६३ ॥ संचिंतितंमयातत्रनारदोऽह मिहाऽऽगतः ॥ हरिणासहस्त्रीभावंप्राप्तोमायाविमोहितः ॥६४॥ इतिचिंतापरश्चाऽहंयदाजातस्तदाहरिः ॥ मामाहनारदागच्छकिंकरोपिजलेस्थितः ॥६५॥

हुए हैं ॥ ५९ ॥ फिर उनको छोडा है. हे देवि ! मैं कहता हूं देखो इनमें किसके निमित्त तुम इस समय दुःख करोगी? यह केवल मनका भ्रम मात्र है. यह संसार मोहमय इन्द्रजालकी समान मिथ्या और स्वप्नकी समान है, इससे देही पुरुषोंको सन्ताप मात्रही उत्पन्न होता है ॥ ६० ॥ नारदजीने कहा मैं उन विष्णुका वचन सुनकर उनसे प्रेरित हो स्नान करनेकी इच्छासे उस पुंतीर्थके जलमें प्रविष्ट हुआ ॥ ६१ ॥ तब निमग्न हो निकलकर देखा कि क्षणमात्रमेंही मैं पुरुष हुआ निजदेह धारी भगवान् हरि करमें वीणा धारण कर तटपर खडे हैं॥६२॥ हेद्विजोत्तम ! मैंने उछलकर जब तीरमें स्थित कमललोचन कृष्णको देखा तब मेरे चित्तमें पूर्ण ज्ञानका उदय हुआ॥६३॥तब विचार किया मैं नारद हूं इस स्थानमें आयाहूं और हरिकी मायासे मोहित होकर स्त्रीभावको प्राप्त हुआ था ॥६४॥मैं इस प्रकार चिन्ता करता

था तब भगवान् हरिने मुझसे कहा हे नारद! उठकर आओ जलमें खडे क्या करते हो ॥ ६५ ॥ मैं आश्चर्ययुक्त हो अपने दारुण स्त्री भावको स्मरण करै पुनर्वार किस कारण पुरुषभावको प्राप्त हुआ यही विचारने लगा ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नारदजीने कहा हे मुनिवर! उस जलमें स्त्रीरूपसे निमग्न हो विप्रवर नारदरूपसे निकला हुआ देखकर वह महीपति अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो मनमें इसप्रकार चिन्ता करने लगे कि, मेरी वह प्रियतमा भार्या कहां गई और मुनि सत्तम नारदही सहसा कहांसे उपस्थित हुए ॥ १ ॥ राजा प्रियतमा भार्याको न देखकर हा प्रिये! मुझको छोडकर तुम कहाँ चली गई? मैं तुम्हारे विरहमें अत्यन्त व्याकुल होता हूं शीघ्र आनकर मुझको दर्शन दो, यह कहकर वारंवार विलाप करने लगे ॥ २ ॥ वह कान्ताके विरहमें अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगे हे कमलनयने! तुम्हारे विना मेरा जीवन और राज्यादि विफल है. हे शुचिस्मिते! तुम्हारे अभावसे मेरा समस्त

विस्मितोऽहंतदास्मृत्वास्त्रीभावंदारुणंभृशम् ॥ पुनःपुरुषभावश्चसंपन्नःकेनहेतुना ॥ ६६ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेएकोनत्रिंशो ऽध्यायः ॥ २९ ॥ छ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ मांदृष्ट्वानारदंविप्रंविस्मितोऽसौमहीपतिः ॥ क्वगताममभार्यासाकुतोऽयंमुनिसत्तमः ॥ १ ॥ विललापनृप स्तत्रहाप्रियेतिमुहुर्मुहुः ॥ क्वगतामांपरित्यज्यविलपंतंवियोगिनम् ॥ २ ॥ विनात्वांविपुलश्रोणिवृथामेजीवितंगृहम् ॥ राज्यंकमलपत्राक्षिकिंकरोमिशुचि स्मिते ॥ ३ ॥ नप्राणामेवहिर्यांतिविरहेणतवाऽधुना ॥ गतोवैप्रीतिधर्मस्तुत्वामृतेप्राणधारणात् ॥ ४ ॥ विलपामिविशालाक्षिदेहिप्रत्युत्तरंप्रियम् ॥ क्वग तासामयिप्रीतिर्याभूत्प्रथमसंगमे ॥ ५ ॥ विमग्नाकिंजलेसुभ्रूर्भक्षितामत्स्यकच्छपैः ॥ गृहीतावरुणेनाशुममदौर्भाग्ययोगतः ॥ ६ ॥ धन्यासुचारुसर्वांगि यात्वंपुत्रैःसमागता ॥ अकृत्रिमस्तुपुत्रेषुस्नेहस्तेऽमृतभाषिणि ॥ ७ ॥ नयुक्तमधुनायन्मांविहायत्रिदिवंगता ॥ विलपंतंपतिंदीनंपुत्रस्नेहेनयंत्रिता ॥ ८ ॥

गृह शून्यमय है ॥ ३ ॥ हे पृथुश्रोणि! तुम्हारे विरहमें इस समय भी मेरे प्राण क्यों नहीं निकलते? हे जीवितेश्वरि! तुम्हारे निमित्त यावज्जीवन मेरा प्रीतिरूप धर्म भ्रष्ट हुआ है! मेरी प्रीति इस समय कहां गई जो मैं जीता हूं ॥ ४ ॥ हे मृगशावाक्षि! मैं तुम्हारे वियोगसे कातर होकर विलाप करता हूं तुम उसका उत्तर देकर मेरे मन और प्राणको शीतल करो. हे प्रिये! प्रथम मिलनेके समय तुमने मेरे प्रति जिसप्रकार प्रीतिप्रकाश की थी. इस समय वह कहां चली गई? ॥ ५ ॥ हे सुभ्रु! मेरे दुर्भाग्यवशसेही क्या तुमने जलमें निमग्न होकर प्राणत्याग किया? क्या तुमको मत्स्यकच्छपादि जलचर जन्तुओंने भक्षण करलिया. अथवा जलाधिपति वरुणदेवने तुमको आग्रहसहित ग्रहण कर लिया ॥ ६ ॥ हे अमृतभाषिणी! तुमने पुत्रोंके संग गमन किया, अतएव तुम धन्य हो आहा! पुत्रोंके प्रति जो तुम्हारा अकृत्रिम स्नेह था वह भी तुमने इस समय प्रकाश किया ॥ ७ ॥ हे चारु सर्वाङ्गि! मैं तुम्हारे विरहमें विलाप करता हूं तुम पुत्रस्नेहमें आकृष्ट हो मुझको परित्याग कर

स्वर्गमें चली गई यही क्या तुम्हारा कर्त्तव्य है ? ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! देखो मैं ने पुत्र और प्राणवल्लभा प्रिया इन दोनोंको छोड़ दिया तोभी मेरे प्राण नहीं निकले. अत एव मेरे प्राण निःसन्देह कुटिल हैं ॥९॥ जो मनोरमा पतिव्रता प्रियाकी विरहवेदनाजानते हैं वह रघुकुलतिलक रामचन्द्रजी इस समय पृथ्वीमें स्थित नहीं करते तो इस समय मैं यह वेदना प्रकाशकरने को कहां जाऊं क्या करूं वह मैं स्थिर नहीं करसक्ता ॥ १० ॥ सुख और दुःखमें जिसके मनका भाव समान है इस प्रकार दम्पतिका मरण भिन्न भिन्न रूपसे निर्दिष्ट करके निष्ठुर विधाताने अत्यन्त विपरीत कार्य किया ॥ ११ ॥ मुनियोंने धर्मशास्त्रमें पतिके संग पतिव्रता स्त्रियोंकी सह मरण विधि निर्द्धारित कर उनका विशेष उपकार साधन किया है किन्तु उन्होंने पुरुषोंका स्त्रियोंके संग अग्निप्रवेशका विधान क्यों नहीं किया ? वह भी उत्तम होता इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ राजाको इस प्रकार विलाप करता हुआ देखकर भगवान् हरिने उसको युक्तियुक्त वचनोंसे निवारित करके कहा ॥ १३ ॥ भगवान् बोले

उभयंमेगतंकांतिपुत्रास्त्वंप्राणवल्लभा ॥ तथापिमरणंनास्तिदुःखितस्यभृशंप्रिये ॥ ९ ॥ किंकरोमिक्कगच्छामिरामोनास्तिमहीतले ॥ रामाविरहजंदुःखं जानातिरघुनंदनः ॥ १० ॥ विधिनानिष्ठुरेणाऽत्रविपरीतंकृतंभुवि ॥ दंपत्योर्मरणंभिन्नंसर्वथासमचित्तयोः ॥ ११ ॥ उपकारस्तुनारीणांमुनिभिर्विहितः किल ॥ यदुक्तंधर्मशास्त्रेषुज्वलनंपतिनासह ॥१२॥ एवंविलपमानंतंराजानंभगवान्हरिः ॥ निवारयामासतदावचनैर्युक्तियोजितैः ॥ १३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किंविषीदसिराजेंद्रक्कगतातेप्रियांगना ॥ नश्रुतंकित्वयाशास्त्रंनकृतोऽसौबुधाश्रयः ॥ १४ ॥ कासाकस्त्वंक्कसंयोगोवियोगःकीदृशस्तव ॥ प्रवाहरूपसंसारेनृणांनौतरतामिव ॥ १५ ॥ गृहेगच्छनृपश्रेष्ठवृथातेरुदितेनकिम् ॥ संयोगश्चवियोगश्चदैवाधीनःसदानृणाम् ॥१६॥ अनयासहतेराजन्संयोगस्त्विहसंवृतः ॥ भुक्तात्वयाविशालाक्षीसुंदरीतनुमध्यमा ॥१७॥ नदृष्टौपितरावस्यास्त्वयाप्राप्तासरोवरे ॥ काकतालीप्रसंगेनयद्भूतंतत्तथागतम् ॥१८॥

हे राजन् ! तुम इतना विषाद क्यों करते हो ? तुम्हारी प्रियस्त्री कहाँ गई है ? तुमने क्या कभी शास्त्र श्रवण अथवा बुद्धिमानोंका आश्रय ग्रहण नहीं किया ? ॥ १४ ॥ तुम्हारी वह प्रिया कौन है ? और तुम कौन हो ? तुम्हारा संयोग किस प्रकार है ? और वह कहां हुआ था. हे राजन् ! नौकामें नदीपारजानेको जिस प्रकार मनुष्योंका क्षण काल मिलन होता है इस प्रवाहरूप संसारमें स्त्रीपुत्रोंका मिलनभी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ १५ ॥ अतएव हे नृपवर ! इस समय तुम घरको जाओ वृथा रोनेसे क्या फल है मनुष्योंका संयोग और वियोग सर्वदाही दैवके अधीन है. अतएव उसके लिये विलाप करना बुद्धिमान् मनुष्योंका कर्त्तव्य नहीं है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इस स्त्रीके संग तुम्हारा मिलन इसी स्थानमें हुआ था और तुमने उस विशालाक्षी कृशोदरी सुन्दरीको इसी स्थानमें छोडा है ॥ १७ ॥ तुमने उसके पितामाताको नहीं देखा काकतालीकी समान इस सरोवरमेंही प्राप्त हुई है. वह जिस प्रकार तुम्हारी हुई थी. इसी प्रकार फिर तुमको छोड़ गई उसके लिये विलाप करना तुमको उचित नहीं है ॥ १८ ॥

---

१ काकतालीयन्याय वह है कि, कोई कौआ दैवात् तालवृक्षपर आकर बैठा और वह तालका फल उसके बैठनेसे नीचे गिरा और वहाँ बैठे पुरुषको फल अकस्मात् प्राप्त होगया.

हे राजेन्द्र ! तुम अब वृथा शोक मत करो कालको अतिक्रम करनेमें कोई समर्थ नहीं होता तुम घर जाकर कालयोगमें पहलेकी समान सम्पूर्ण भोग्यवस्तु भोग करो ॥ १९ ॥ वह वरवर्णिनी रमणी जिस प्रकार आई थी उसी प्रकार चली गई तुम भी इसी प्रकार सबके प्रभु रहकर अपने राज्यमें पहले जिस प्रकार राजकार्य करते थे इस समय भी उसी प्रकार कार्य करो. क्योंकि यही तुम्हारा एकान्त कर्तव्य है ॥ २० ॥ हे राजन् ! तुम विचारकर देखो कि, तुम्हारे दिनरात रोदन करनेपर भी वह रमणी फिर नहीं आवेगी. हे पृथ्वीन्द्र ! तब तुम क्यों वृथा शोक करते हो जाओ मेरे वचनसे योगमार्गमें मन समर्पणकर काल व्यतीत करते रहो ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण भोग्य वस्तु कालवशसेही उपस्थित होती हैं और कालवशसेही चली जाती हैं. अतएव इस निष्फल संसारमार्गमें शोक करना कभी ज्ञानियोंको उचित नहीं है ॥ २२ ॥ एकत्र सुखसंयोग और एकत्र दुःखसंयोग सर्वदा नहीं होता. अतएव इस संसारमें सुख और दुःख स्थिर न रहकर घटिकायन्त्रकी समान

माशोकंकुरुराजेंद्रकालोहिदुरतिक्रमः ॥ कालयोगंसमासाद्यभुंक्ष्वभोगान्गृहेयथा ॥ १९ ॥ यथागतागतासातुतथैववरवर्णिनी ॥ यथापूर्वं तथातत्रगच्छकार्यंकुरुप्रभो ॥ २० ॥ रुदितेनतवाऽद्यैवनागमिष्यतिकामिनी ॥ वृथाऽशोचसिपृथ्वीशयोगयुक्तोभवाऽधुना ॥ २१ ॥ भोगः कालवशादेतितथैवप्रतियातिच ॥ नात्रशोकस्तुकर्तव्योनिष्फलेभववर्त्मनि ॥ २२ ॥ नैकत्रसुखसंयोगोदुःखयोगस्तुनैकतः ॥ घटिकायंत्रवत्कामंभ्रमणं सुखदुःखयोः ॥ २३ ॥ मनःकृत्वास्थिरंभूपकुरुराज्यंयथासुखम् ॥ अथवान्यस्यदायादेवनंसेवयसांप्रतम् ॥ २४ ॥ दुर्लभोमानुषोदेहःप्राणिनांक्षणभंगुरः ॥ तस्मिन्प्राप्तेतुकर्तव्यंसर्वथैवात्मसाधनम् ॥ २५ ॥ जिह्वोपस्थरसोराजन्पशुयोनिषुवर्तते ॥ ज्ञानंमानुषदेहेवैनान्यासुचकुयोनिषु ॥ २६ ॥ तस्माद्गच्छगृहंत्यक्त्वाशोकंकांतासमुद्भवम् ॥ मायेयंभगवत्यास्तुययासंमोहितंजगत् ॥ २७ ॥ नारदउवाच ॥ इत्युक्तोहरिणाराजाप्रणम्यकमलापतिम् ॥ कृत्वा स्नानविधिंसम्यग्जगामनिजमंदिरम् ॥ २८ ॥ दत्त्वाराज्यंस्वपौत्रायप्राप्यनिर्वेदमद्भुतम् ॥ वनंजगामभूपालस्तत्त्वज्ञानमवापच ॥ २९ ॥

सदाही भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ अतएव हे नृपवर ! मन स्थिर करके तुम यथा सुखसे राज्य करते रहो अथवा अपनी सन्तानको राज्यका भार समर्पण कर वनको चले जाओ ॥ २४ ॥ यह प्राणियोंको क्षणभंगुर मनुष्यदेह दुर्लभ है इसके प्राप्त होनेमें सदा आत्मसाधन करना चाहिये ॥ २५ ॥ हे राजन् ! लिङ्ग और रसनादि इन्द्रियोंसे पशुभी विषयरस आस्वादन करते हैं किन्तु एक मात्र ज्ञान मनुष्यदेहमें अधिक दिखाई देता है अन्य कुत्सित योनिमें वह दिखाई नहीं देता ॥ २६ ॥ इसी ज्ञानके अनुसार कांताका शोक त्यागन कर घरको जाओ यह भगवतीकी माया है जिसने सब जगत् मोहित कर रक्खा है ॥ २७ ॥ नारदजी बोले भगवान् हरिके यह वचन सुनकर राजा देवदेव कमलापतिको प्रणाम कर स्नानादि विधि पूर्ण कर अपने मन्दिरको गये ॥ २८ ॥ अपने पौत्रको राज्य देकर वैराग्यको प्राप्त हो

राजाने वनको जाकर तत्वज्ञानकी प्राप्ति की ॥ २९ ॥ राजाके गमन करनेपर भगवान् अच्युत मेरी ओर वारंवार देखकर हँसते थे यह देखकर मैंने उन देव देव जगन्नाथसे कहा ॥ ३० ॥ हे देव! आपने मुझको छला है मायाका बल अत्यन्त महत् है वह मैंने इस समय जान लिया. हे जनार्दन ! मैंने स्त्रीरूप होकर जो सब कार्य किये इस समय वह सब स्मरण करता हूं ॥ ३१ ॥ हे हरे ! मेरे सरोवरके जलमें प्रविष्ट हो स्नान करतेही मेरा पूर्वज्ञान क्यों दूर हुआ ? ॥ ३२ ॥ और जब मैंने नारीदेहको प्राप्त हो शचीदेवीको इन्द्र प्राप्तिके समान राजाको पतिरूपसे प्राप्त किया तब मैं मोहित क्यों हुआ ? ॥ ३३ ॥ मेरा वही पूर्वकामना वही पुरातन जीवात्मा और वही पुरातन सूक्ष्म देह यह सभी विद्यमान थे तब क्यों मेरी स्मृतिका नाश हुआ ? ॥ ३४ हे प्रभो ! इस ज्ञाननाशके विषयमें मुझको महान् संशय उत्पन्न होता है हे रमानाथ ! आप आज इसका यथार्थ कारण वर्णन करके मेरा सन्देह दूर कीजिये ॥ ३५॥ मैंने स्त्रीभावको प्राप्त हो अनेक भोग्य वस्तु भोग की हैं और

गतेराजन्यहंवीक्ष्यभगवंतमधोक्षजम् ॥ तमब्रुवंजगन्नाथंहसंतंमांपुनःपुनः ॥ ३० ॥ वंचितोऽहंत्वयादेवज्ञातंमायाबलंमहत् ॥ स्मरामिचरितं सर्वस्त्रीदेहेयत्कृतंमया ॥ ३१ ॥ ब्रूहिमेदेवदेवेशप्रविष्टोऽहंसरोवरे ॥ विगतंपूर्वविज्ञानंस्नानादेवकथंहरे ॥३२॥ योषिद्देहंसमासाद्यमोहितोऽहंजगद्गुरो ॥ पतिंप्राप्यनृपश्रेष्ठंपुलोमीवासवंयथा ॥ ३३ ॥ मनस्तदेवतच्चित्तंदेहःसचपुरातनः ॥ लिंगंतदेवदेवेशस्मृतेर्नाशःकथंहरे ॥ ३४ ॥ विस्मयोऽयंमहान्मेत्रज्ञाननाशंप्रतिप्रभो ॥ कथयाऽद्यरमाकांतकारणंपरमंचयत् ॥ ३५ ॥ नारीदेहंमयाप्राप्यभुक्ताभोगाह्यनेकशः ॥ सुरापानंकृतंनित्यंविधिहीनंचभोजनम् ॥ ॥३६॥ मयातदेवनज्ञातंनारदोहमितिस्फुटम् ॥ जानाम्यद्ययथासर्वविविक्तंनतथातदा ॥३७॥ विष्णुरुवाच ॥ पश्यनारदमायावीविलासोऽयंमहामते ॥ देहेषुसर्वजंतूनांदशाभेदाह्यनेकशः ॥३८॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्चतुरीयादेहिनांदशा ॥ तथादेहांतरेप्राप्तेसंदेहःकीदृशःपुनः ॥ ३९ ॥ सुप्तोनरोनजानातिन शृणोतिवदत्यपि ॥ पुनःप्रबुद्धोजानातिसर्वज्ञानमशेषतः ॥४०॥ निद्रयाचाल्यतेचित्तंभवंतिस्वप्नसंभवाः ॥ नानाविधामनोभेदामनोभावाह्यनेकशः॥४१॥

सुरापान तथा अहित द्रव्य भी भोजन किया है हे मधुसूदन ! इन सबका क्या कारण है ? ॥ ३६ ॥ तब मैंने अपनेको नारद नहीं जानसका मैं इस समय जिस प्रकार भलीभाँति समस्त जानसका हूं उस समय वह कुछ भी क्यों नहीं जान सका ? ॥ ३७ ॥ केशवने कहा हे बुद्धिमान् नारद ! यह सब मायावी ईश्वरकी मायाका विलास मात्र है तुमको जानना चाहिये कि, सम्पूर्ण जन्तुओंके देहकी अनेक प्रकार अवस्था होती है ॥ ३८ ॥ यदि देहीगणोंके केवल देहकीही जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय यह चार प्रकारकी दशा होती है तो देहान्तर प्राप्त होनेसे जो दशा विपर्याय होता है इसमें तुम सन्देह क्यों करते हो ? ॥ ३९॥ मनुष्य जब सोता है तब कोई विषय नहीं जानसक्ता सुनभी नहीं सक्ता और कहभी नहीं सक्ता किन्तु फिर जानकर सब विषय भलीभाँति जान सक्ता है ॥४० ॥ निद्रासे चित्त

चलायमान होता है तब स्वप्नसे मनकी अनेक प्रकार अवस्थाका भेद और मनोभावका अनेक भाँति प्रकार भेद होता है ॥ ४१ ॥ मत्त हाथी मुझको मारता हुआ आता है मैं भागनेमें समर्थ नहीं होता क्या करूं कहा जाऊं मुझको शीघ्र भागनेका स्थान नहीं है स्वप्नावस्थामें ऐसा अनेक प्रकार मनका भाव होता है ॥ ४२ ॥ और कभी स्वप्नमें दिखाई देता है कि, हमारे मृतपितामह हमारे घर आये हैं उनको मैं देखता हूं और उनके संग अनेक बातचीत करता हूं वरन उनके संग एकत्र भोजन भी करता हूं ॥ ४३ ॥ स्वप्नमें सुखदुःख जो कुछ अनुभव होता है मनुष्य जागकर वह सब जान सक्ता है और स्वप्नका वृत्तान्त स्मरण कर विस्तारपूर्वक कह सक्ता है ॥ ४४ ॥ हे नारद ! स्वप्न देखनेके समय स्वप्नमें दीखे सब विषय भ्रमयुक्त होनेसे कोई इस प्रकार निश्चितरूपसे नहीं जान सक्ता मायाका प्रभाव भी इसी प्रकार दुर्ज्ञेय जानना

गजोमांहंतुमायातिनशक्तोऽस्मिपलायने ॥ किंकरोमिनमेस्थानंयत्रगच्छामिसत्वरः ॥ ४२ ॥ मृतंपितामहंस्वप्नेपश्यतिस्वगृहागतम् ॥ संयोगस्तेनवार्ताचभोजनंसहमन्यते ॥ ४३ ॥ प्रबुद्धःखलुजानातिस्वप्नेदृष्टंसुखासुखम् ॥ स्मृत्वासर्वंजनेभ्यस्तुविस्तरात्प्रवदत्यपि ॥ ४४ ॥ स्वप्नेकोऽपिनजानातिभ्रमोऽयमितिनिश्चयः ॥ यथातथैवविभवोमायायादुर्गमःकिल ॥ ४५ ॥ नाऽहंनारदजानामिपारंपरमदुर्घटम् ॥ गुणानांकिलमायायानैवशंभुर्नपद्मजः ॥ ४६ ॥ कोऽन्योज्ञातुंसमर्थोभून्मानतोमंदधीःपुनः ॥ मायागुणपरिज्ञानंनकस्याऽपिभवेदिह ॥ ४७ ॥ गुणत्रयकृतंसर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ विनागुणैर्नसंसारोवर्ततेकिंचिदप्यदः ॥ ४८ ॥ अहंसत्त्वप्रधानोऽस्मिरजस्तमःसमन्वितः ॥ नकदाचित्त्रिभिर्हीनोभवामिभुवनेश्वरः ॥ ४९ ॥ तथाब्रह्मापितातेऽत्ररजोमुख्यःप्रकीर्तितः ॥ तमःसत्त्वसमायुक्तोनताभ्यामुज्झितःकिल ॥ ५० ॥

चाहिये ॥ ४५ ॥ हे मुनिवर ! मायाके तीनों गुण परम दुर्गम प्रभावका परिमाण है ? जब मैं शम्भु और ब्रह्मा कोई नहीं जान सक्के ॥ ४६ ॥ तब दूसरा कौन मन्दबुद्धि मनुष्य उनकी सीमा जान सक्ता है. अतएव हे नारद ! इस संसारके बीच मायाका गुण जाननेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ ४७ ॥ यह स्थावर जंगमात्मक जगत् मायाके गुणसे निर्मित है अर्थात् बना है माया गुणके विना यह संसार किंचिन्मात्र भी वर्त्तमान नहीं रह सक्ता ॥ ४८ ॥ मैं सत्वगुण प्रधान हूं और तमोगुण मुझमें विद्यमान रहता है मैं भुवनेश्वर होकर भी इन तीनों गुणोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे पिता प्रजापति रजःप्रधान हैं किन्तु सत्व और तमोगुण

कभी त्यागकरनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ५० ॥ और महादेव तमप्रधान हैं किन्तु उनमें भी सत्व और रजोगुण सदाही विद्यमान रहता है. अतएव कोई पुरुषभी इन
तीनों गुणोंसे अलग होकर नहीं रह सक्के यह मैंनें श्रुतिमें निर्दिष्ट कर रक्खा है ॥ ५१ ॥ अतएव हे मुनिवर ! मायानिर्मित परम दुर्घट इस अपार संसारमें मोह
त्यागकर ब्रह्मरूपिणी भगवती की उपासना करनी ही उचित है ॥ ५२ ॥ हे महाभाग ! तुमने इस समय तो मायाका प्रभाव देखा है, मायाजनित अनेक प्रकारके
भोग्य द्रव्य भी भोग किये हैं और मायाका चरित्र जो कि अद्भुत है वह भी जान गये हो तो फिर इस विषयमें मुझसे क्यों पूँछते हो ॥ ५३ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ व्यासजीने कहा हे महाभाग ! मैंने पहले महर्षि नारदसे मायाका माहात्म्य जिस
प्रकार सुना है वह सम्पूर्ण आपसे भलीभाँति प्रकाश करके कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ मैंने नारदका नारीदेह प्राप्तिविषयक उपाख्यान सुनकर उन

शिवस्तथातमोमुख्योरजःसत्त्वसमावृतः ॥ गुणत्रयविहीनस्तुनैवकोऽपिमयाश्रुतः ॥ ५१ ॥तस्मान्मोहोनकर्तव्यःसंसारेऽस्मिन्मुनीश्वर ॥ मायाविनिर्मि
तेऽसारेऽपारेपरमदुर्घटे ॥ ५२ ॥ दृष्टामायात्वयाऽद्यैवभुक्ताभोगाह्यनेकशः ॥ किंपृच्छसिमहाभागतस्याश्चरितमद्भुतम् ॥५३॥ इतिश्रीदेवीभागवतेम०
षष्ठस्कंधेत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ निशामयमहाराजब्रवीमिविशदाक्षरम् ॥ माहात्म्यंखलुमायायानारदात्तुमयाश्रुतम् ॥ १ ॥ मयापु
नर्मुनिःपृष्टोनारदःसर्ववित्तमः ॥ श्रुत्वाकथांमुनेस्तस्यनारीदेहसमुद्भवाम् ॥२॥ ब्रूहिनारदपश्चात्किंकथितंहरिणातदा ॥ क्वगतश्चजगन्नाथोभवतासहमाध
वः ॥ ३ ॥ नारदउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे ॥ आरुह्यगरुडंगंतुंवैकुंठेचमनोदधे ॥ ४ ॥ मामुवाचरमाकांतोयथेष्टंगच्छनारद ॥
एहिवाममलोकंस्वंयथारुचितथाकुरु ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोकंगतश्चाऽहमापृच्छ्यचमधुसूदनम् ॥ भगवानपिदेवेशस्तत्क्षणाद्गरुडासनः ॥६॥ वैकुंठमगमत्तूर्णमा
मादिश्ययथासुखम् ॥ ततोऽहंपितृसदनंगतोयातेजनार्दने ॥७॥ चिंतयन्सकलंदुःखंसुखंचपरमाद्भुतम् ॥ गत्वाप्रणम्यपितरंस्थितोयावत्पुरःपितुः ॥ ८ ॥

सर्व विद्वज्जनोंके अग्रगण्य महर्षिसे पूँछा था ॥ २ ॥ हे मुनिवर! तदनन्तर हरिने आपसे क्या कहा और आपके संग वह देवदेव लक्ष्मीपति कहां चले गये ॥ ३ ॥
नारदजीने कहा उस मनोहर सरोवरमें भगवान्‌ने मुझसे यह सब कह गरुड़पर चढ़ वैकुण्ठधाममें जाने की इच्छा की ॥ ४ ॥ तब उन कमलापतिने मुझसे कहा कि,
तुम भी अपने अभिलषित स्थानमें जाओ अथवा यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे संग गोलोकधाममें भी चल सक्के हो ॥ ५ ॥ तब मैं प्रणाम
और सम्भाषण कर ब्रह्मलोकको चला गया और भगवान् भी तत्काल गरुड़पर चढ़ ॥ ६ ॥ सुखपूर्वक वैकुण्ठमें चले गये जनार्दनके चलेजानेपर फिर
मैं भी मनमें सब प्रकार ॥७॥ अद्भुत सुख और दुःखकी चिन्ता करते करते ब्रह्मलोकमें पिताके समीप गया अनन्तर प्रणाम कर जैसेही उनके सामने खडा हुआ ॥ ८ ॥

वैसेही पिताने मुझको चिन्तातुर देखकर पूँछा ब्रह्मा बोले हे महाभाग ! तुम कहाँ गये थे ? और तुमको चिन्तातुर क्यों देखता हूं ॥ ९ ॥ हे मुनिसत्तम ! आज मैं तुम्हारा मन सावधान नहीं देखता मुझको बोध होता है कि, किसीने तुमको छला है अथवा तुमने कोई अद्भुत वस्तु देखी है ॥ १० ॥ हे पुत्र ! आज मैं तुमको व्याकुल और ज्ञानहीनकी समान क्यों देखता हूं नारदजी बोले हे द्वैपायन ! पिताके मुझसे इस प्रकार पूँछनेपर फिर मैंने कुशासनपर बैठ ॥ ११ ॥ माया माहात्म्य जनित अपना समस्त वृत्तान्त उनसे कहा हे पितः ! मैं महाप्रभावशाली विष्णुसे छला गया हूं ॥ १२ ॥ उन्होंने मुझको स्त्रीभाव देकर अनेक वर्ष उसी भावमें रक्खा था उसमें भी मैंने पुत्रशोकका महा दुःख अनुभव किया है ॥ १३ ॥ अनन्तर उन्होंनेही मुझको माधुर्यमय वचनामृतसे फिर ज्ञान प्रदान किया है फिर

तावत्पृष्टोमुनेपित्रावीक्ष्यचिंतातुरंतुमाम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्वगतोऽसिमहाभागकस्माच्चिंतातुरःसुत ॥ ९ ॥ स्वस्थंनैवाऽद्यपश्यामिमनस्तेमुनिसत्तम ॥ केनापिवंचितोऽसित्वंदृष्टंवाकिंचिदद्भुतम् ॥ १० ॥ विषण्णंगतविज्ञानंपश्यामित्वांकथंसुत ॥ नारदउवाच ॥ इतिपृष्टस्तदापित्राबृस्यांसमुपवेश्यच ॥ ॥ ११ ॥ तमब्रुवंस्ववृत्तांतंमायाबलसमुद्भवम् ॥ वंचितोऽहंपितःकामंविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १२ ॥ स्त्रीभावंगमितःकामंवर्षाणिसुबहून्यपि ॥ अनुभूतं महद्दुःखंपुत्रशोकसमुद्भवम् ॥ १३ ॥ प्रबोधितोऽहंतेनैवमृदुवाक्यामृतेनच ॥ पुनःसरोवरेस्नात्वाजातोऽहंनारदःपुमान् ॥ १४ ॥ किमेतत्कारणंब्रह्मन्यन्मोह मगमंतदा ॥ विस्मृतंपूर्वविज्ञानंतन्मयस्तरसाकृतः ॥ १५ ॥ एतन्मायाबलंब्रह्मन्नजानेऽहंदुरत्ययम् ॥ ज्ञानहानिकरंजातंमूलंमोहस्यविस्फुटम् ॥ १६ ॥ अनुभूतंमयासम्यग्ज्ञातंसर्वंशुभाशुभम् ॥ कथंत्वंजितवांस्तातततमुपायंवदस्वमे ॥ १७ ॥ नारदउवाच ॥ विज्ञप्तोऽसौमयाधाताप्रीतिपूर्वमतःपरम् ॥ मामु वाचस्मितंकृत्वापितामेवासवीसुत ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दुर्जयैषासुरैःसर्वैर्मुनिभिश्चमहात्मभिः ॥ तापसैर्ज्ञानयुक्तैश्चयोगिभिःपवनाशनैः ॥ १९ ॥

सरोवरमें स्नान करके यह पुरुषरूपी नारद हुआ हूं ॥ १४ ॥ हे पितः ! मैं जो ऐसे मोहको प्राप्त हुआ था उसका क्या कारण है और मैं पूर्वज्ञान भूल एवं बलप्रेरित हो तत्काल मोहमयभावको प्राप्त क्यों हुआ ॥ १५ ॥ हे तात ! मायाका बल जो इस प्रकार कठिनतासे छूटने योग्य है वह मैं पहले नहीं जानता था मायाके बलसेही ज्ञानकी हानि होती है मायाबलही मोहका मूल है यह मैंने भलीभाँति अनुभव किया है ॥ १६ ॥ और उसमें मङ्गल अथवा अमङ्गल जो कुछ है वह भी जान गया हूं. हे पितः ! आपने उस दुर्घट अचिन्त्य मायाको किस प्रकार जीता है वह आप मुझसे भी कहिये ॥ १७ ॥ नारदजी बोले हे तपोधन ! मेरे इस प्रकार कहनेपर फिर पिताने मेरी चिन्ताका कारण जानकर तदनन्तर मुझसे प्रीतिपूर्ण वचनोंद्वारा कुछेक हँसकर कहा ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्स !

देवतालोग, महात्मा, मुनि, ज्ञानी, तापस और वायुभोजी योगी भी इस मायाके जय करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १९ ॥ हे नारद ! मायाका बल ऐसा महत् है कि, मैं विष्णु और उमापति शम्भु इत्यादि ॥ २० ॥ कोई उस मायाके जाननेमें समर्थ नहीं होते कालकर्म और स्वभावादिके कारण वह महामायाही इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती है ॥ २१ ॥ हे वत्स ! तुम उसको अत्यन्त दुर्ज्ञेय जानो. हे मेधाविन् ! तुम शोक मत करो और उस मायाके महत् बलविषयमें भी आश्चर्य करना तुमको उचित नहीं है क्योंकि उसमें हम सम्पूर्ण ही मोहित हो रहे हैं ॥ २२ ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन ! पिताके मुझसे इस प्रकार कहनेपर फिर मेरा आश्चर्य दूर होगया. तदनन्तर मैं पिता पद्मयोनीकी आज्ञा लेकर तीर्थोंमें विचरण करनेको निकला क्रमानुसार सम्पूर्ण प्रधान प्रधान तीर्थ देखते देखते अब

नाहंतांसर्वथाज्ञातुंशक्तोमायांमहाबलाम् ॥ विष्णुर्ज्ञातुंनशक्तश्चतथाशंभुरुमापतिः ॥२०॥ दुर्ज्ञेयासामहामायासृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ कालकर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता ॥२१॥ शोकंमाकुरुमेधाविंस्तत्रमायामहाबले ॥ नचैवविस्मयःकार्योवयंसर्वेविमोहिताः ॥२२॥ नारदउवाच ॥ पित्रेत्युक्तस्तदाव्यासतमापृच्छ्यगतस्मयः ॥ आगतोऽस्म्यत्रपश्यन्वैतीर्थानिचवराणिच ॥ २३ ॥ तस्मात्त्वमपिसंत्यज्यमोहंकौरवनाशजम् ॥ कालक्षयंसुखासीनःस्थानेऽस्मिन्कुरुसत्तम ॥ २४ ॥ अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाशुभम् ॥ निश्चयंहृदयेकृत्वाविचरस्वयथासुखम् ॥ २५ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वानारदोराजन्गतोमांप्रतिबोध्यच ॥ अहंतच्चिंतयन्वाक्यंयदुक्तंमुनिनातदा ॥ २६ ॥ स्थितःसरस्वतीतीरेकल्पेसारस्वतेवरे ॥ कालातिवाहनायैतत्कृतंभागवतंमया ॥ ॥ २७ ॥ पुराणमुत्तमंभूपसर्वसंशयनाशनम् ॥ नानाख्यानसमायुक्तंवेदप्रामाण्यसंश्रितम् ॥ २८ ॥ संदेहोऽत्रनकर्तव्यःसर्वथानृपसत्तम ॥ यथेंद्रजालिकःकश्चित्पांचालींदारवींकरे ॥ २९ ॥

इस स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ हूं ॥ २३ ॥ अतएव हे मुनिसत्तम ! तुम भी कुरुकुलनाशजनित शोक त्याग कर इस स्थानमें परम आनन्द सहित वास कर समय बिताते रहो ॥ २४ ॥ अपने किये शुभाशुभ कर्म अवश्यही भोगने होते हैं. हृदयमें यह स्थिर निश्चय करके सुखपूर्वक विचरण करो ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! महर्षि नारद यह कह मुझे तत्त्वबोध उदय कराय यथेच्छ स्थानमें चले गये मैं तब नारदजीके कहे उन सब वचनोंकी मनमें चिन्ता करने लगा ॥ २६ ॥ मैंने सरस्वतीके तटपर वास कर अत्युत्तम सारस्वतकल्पमें काल व्यतीत करनेके निमित्त यह देवीभागवत बनाई थी ॥ २७ ॥ यह महापुराण अत्युत्तम है इससे सम्पूर्ण संशय नष्ट होते हैं. क्योंकि यह वेदके प्रमाणसे रचित है इसमें अनेक प्रकारके उपाख्यान वर्णित हैं ॥ २८ ॥ अतएव हे नृपवर ! इसमें कभी संदेह करना

उचित नहीं है जिसप्रकार इन्द्रजालिक मनुष्य काठकी पुतलीको हाथमें लेकर ॥ २९ ॥ अपने इच्छानुसार नचाता है यह जगमोहिनी मायाभी ब्रह्मादिस्तम्ब-पर्यन्त देव और मनुष्यके सहित इस स्थावरजङ्गमात्मक जगत्को इसी प्रकार नचाती है. हे राजन् ! पञ्चेन्द्रिययुक्त जो मन चित्तके अनुसार वर्तता है ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इसमें मायाके तीनों गुण हैं उनको सर्वथा कारण जानना चाहिये. क्योंकि इनसेही कार्यकी उत्पत्ति है यह भलीभाँति निश्चय हुआ है ॥ ॥ ३२ ॥ तब अनेक प्रकार मायाके गुणोंसे जो भिन्न भिन्न स्वभावयुक्त जीवोंकी उत्पत्ति होगी इसमें फिर क्या सन्देह है? उस मायाके गुणसे अनेक प्रकार इसी कारण संसारमें कोई शान्त कोई घोरतर मूर्ख होता है ॥ ३३ ॥ वह जब कि, मायाके गुणसे उत्पन्न है तब किस प्रकार उनको छोड़ सक्ता है? जिस प्रकार तन्तुके

कृत्वानर्तयतेकामंस्वेच्छयावशवर्तिनीम् ॥ तथानर्तयतेमायाजगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतसंदेवासुरमानुषम् ॥ पंचेंद्रियसमायुक्तंमनश्चित्तानुवर्तनम् ॥ ३१ ॥ गुणास्तुकारणंराजन्सर्वेषांसर्वथात्रयः ॥ कार्यकारणसंयुक्तंभवतीतिविनिश्चयः ॥ ३२ ॥ भिन्नभिन्नस्वभावास्तेगुणामायासमुद्भवाः ॥ शांतोघोरस्तथामूढस्त्रयस्तुविविधायतः ॥ ३३ ॥ तत्समेतःपुमान्नित्यंतद्विहीनःकथंभवेत् ॥ नभवत्येवसंसारेरहितस्तंतुभिःपटः ॥ ३४ ॥ तथागुणैस्त्रिभिर्हीनोनदेहीतिविनिश्चयः ॥ देवदेहोमनुष्योवातिरश्चोवानराधिप ॥ ३५ ॥ गुणैर्विरहितोनस्यान्मृद्विहीनोघटोयथा ॥ ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रस्त्रयश्चामीगुणाश्रयाः ॥ ३६ ॥ कदाचित्प्रीतियुक्तास्तेतथाप्रीतियुताःपुनः ॥ तथाविषादयुक्तास्तेभवंतिगुणयोगतः ॥ ३७ ॥ ब्रह्माकदाचित्सत्त्वस्थस्तदाशांतःसमाधिमान् ॥ प्रीतियुक्तोभवेत्सर्वभूतेषुज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ पुनःसत्त्वविहीनस्तुरजोगुणसमावृतः ॥ तदाभवेद्घोररूपःसर्वत्राऽप्रीतिसंयुतः ॥ ॥ ३९ ॥ यदातमोगुणाविष्टोबाहुल्येनभवेद्विधिः ॥ तदाविषादसपन्नोमूढोभवतिनाऽन्यथा ॥ ४० ॥

विना वस्त्रकी उत्पत्ति असंभव है ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार इस संसारमें मायाके तीनों गुण विना मनुष्योंकी उत्पत्ति भी असंभव है यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये. इसी प्रकार देवदेह नरदेह अथवा तिर्यग्देह हो ॥ ३५ ॥ गुणरहित होकर कोई भी उत्पन्न नहीं हो सक्ता जैसे मृत्तिकाके विना घट नहीं होता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह तीनों भी तीनों गुणोंका आश्रय करते हैं ॥ ३६ ॥ इसी कारण वह कभी प्रसन्न कभी अप्रसन्न और कभी विषादयुक्त होते हैं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा जब सत्वगुणमें स्थित होते हैं तब वह ज्ञानयुक्त और प्रीतियुक्त एवं शान्त तथा समाधिमान् होते हैं ॥ ३८ ॥ और जब सत्वगुण रहित तथा रजोगुण युक्त होते हैं तब सर्वत्र अप्रीति युक्त घोररूप धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ और जब वह भलीभाँति तमोगुण युक्त होते हैं, तब विषादयुक्त हो मूढ़ताको प्राप्त होते हैं. इसमें

सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ माधव भी जब सत्वगुणका आश्रय करते हैं, तब वह शान्त प्रसन्न और ज्ञानयुक्त होते हैं ॥ ४१ ॥ आर रजोगुणकी अधिकता होनेसे वह प्रीतिरहित होकर सब भूतोंके प्रति घोररूप धारण करते हैं ॥ ४२ ॥ रुद्रदेव भी जब सत्वगुण युक्त होते हैं. तब प्रसन्न और शान्त होते हैं और रजोगुण होनेसे वह भी फिर प्रीति छोड़ कर घोररूप धारण करते हैं ॥ ४३ ॥ और जब वह तमोगुणका आश्रय ग्रहण करते हैं, तब मूढ़ और विषादसंपन्न होते हैं. हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव यह भी जब गुणोंके अधीन हैं ॥ ४४ ॥ तथा सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय राजालोग युगयुगमें मनुआदि चौदह मन्वन्तरोंके अधिपति हैं ॥ ४५ ॥ जब यह भी सब मायाके अधीन हुए तो अन्यान्य साधारण मनुष्यादि जीवोंके पक्षमें उस विषयका क्या कहना है? हे नृपवर ! सुरनरादि समन्वित यह सब

माधवोऽपिसदासत्त्वसंश्रितःसर्वथाभवेत् ॥ यदाशांतःप्रीतियुक्तोभवेज्ज्ञानसमन्वितः ॥ ४१ ॥ सएवरजआधिक्यादप्रीतिसंयुतोभवेत् ॥ घोरश्चसर्व भूतेषुगुणाधीनोरमापतिः ॥ ४२ ॥ रुद्रोऽपिसत्त्वसंयुक्तःप्रीतिमाञ्छांतिमान्भवेत् ॥ रजोनिमीलितःसोऽपिघोरःप्रीतिविवर्जितः ॥ ४३ ॥ तमोगुणयुतः सोऽपिमूढोविषादयुग्भवेत् ॥ एतेयदिगुणाधीनाब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ ४४ ॥ सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवाअपि ॥ मन्वादयश्चयेप्रोक्ताश्चतुर्दशयुगे युगे ॥ ४५ ॥ अन्येषांचैवकावार्तासंसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ॥ मायाधीनंजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ ४६ ॥ तस्माद्राजन्नकर्तव्यःसंदेहोऽत्रकदाचन ॥ देहीमायापराधीनश्चेष्टतेतद्वशानुगः ॥ ४७ ॥ साचमायापरेतत्त्वेसंविद्रूपेऽस्तिसर्वदा ॥ तदधीनाप्रेरिताचतेनजीवेषुसर्वदा ॥ ४८ ॥ ततोमायाविशिष्टांतां संविदंपरमेश्वरीम् ॥ मायेश्वरींभगवतींसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ४९ ॥ ध्यायेत्तथाराधयेच्चप्रणमेच्चजपेदपि ॥ तेनसासदयाभूत्वामोचयत्येवदेहिनम् ॥ ॥ ५० ॥ स्वमायांसंहरत्येवस्वानुभूतिप्रदानतः ॥ भुवनंखलुमायास्यादीश्वरीतस्यनायिका ॥ ५१ ॥

जगत् मायाके अधीन है ॥ ४६ ॥ इस विषयमें कभी सन्देह नहीं करना चाहिये. संपूर्ण देहधारी मायाके अधीन हैं और मायाके वशमें होकरही सब कार्य करते हैं. कभी स्वाधीन होकर कार्य करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ४७ ॥ वही माया फिर संवित् रूपसे परतत्त्वमें सदाही स्थित है. माया उन संवित् रूपिणी परमेश्वरीके अधीन और उनसे प्रेरित होकरही जीवोंके अन्तरमें निरन्तर समवाय संबंधसे अनुसम्बद्ध होकर रहती है ॥ ४८ ॥ अतएव कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषगण उस मायाविशिष्ट मायाकी ईश्वरी सच्चिदानन्दस्वरूपिणी परब्रह्मरूपिणी संवित् रूप भगवतीका ॥ ४९ ॥ ध्यान आराधना और सदा उनका मंत्र जप करनेसे वह उसके प्रति दयायुक्त हो अपनी माया संहार ॥ ५० ॥ और अपनी अनुभषितप्रदानपूर्वक उस देही पुरुषको संसारके बन्धनसे छुड़ा देती हैं यह सम्पूर्ण भुवन मायामय हैं

इसी कारण वह ब्रह्मरूपिणी संवित् इनकी ईश्वरी हैं ॥ ५१ ॥ इस कारण वह त्रैलोक्य सुन्दरी भगवती भुवनेश्वरीनामसे विख्यात हुई हैं ॥ हे भूमिपते ! यदि जीवोंका चित्त इस संवित् रूपमें आसक्त हो ॥ ५२ ॥ तो सद् असत् रूप माया कुछभी करनेमें समर्थ नहीं होती. अतएव सच्चिदानन्दरूपिणी भुवनेश्वरीके सिवाय दूसरे कोई देवता मायाके दूर करनेमें समर्थ नहीं होते. हे राजन् ! तुम कभी तमोराशि नाश करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ सूर्यप्रभा, चन्द्रप्रभा, विद्युत्प्रभा, इत्यादिही उसके नाशमें समर्थ होती हैं. अतएव मायाका गुण निवृत्त होनेके निमित्त प्रीतिपूर्वक उन मायाकी ईश्वरी स्वयंप्रभा सम्वितरूपिणी अम्बिकाकी ॥ ५५ ॥ आराधना करनी चाहिये. हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूँछा था वह वृत्रासुर वधादिके वृत्तान्तकी सब कथा वर्णन की ॥ ५६ ॥ अब और किस विषयके सुननेकी इच्छा करते हो ? यह

भुवनेशीततःप्रोक्तादेवीत्रैलोक्यसुंदरी ॥ तद्रूपेयदिसक्तंस्याच्चित्तंभूमिपतेसदा ॥ ५२ ॥ माययाकिंभवेत्तत्रसदसद्रूतयानृप ॥ तस्मान्मायानिरासार्थंनान्यद्देवतांतरम् ॥ ५३ ॥ समर्थंतुविनादेवींसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ तमोराशिंनाशयितुंशक्तंनैवतमोभवेत् ॥ ५४ ॥ किंतुभानुप्रभाचंद्रविद्युद्वह्निप्रभादयः ॥ तस्मान्मायेश्वरीमेवांस्वप्रकाशांतुसंविदम् ॥ ५५ ॥ आराधयेदतिप्रीत्यामायागुणनिवृत्तय ॥ इतिसम्यग्मयाख्यातंवृत्रासुरवधादिकम् ॥ ५६ ॥ यत्पृष्टंराजशार्दूलकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ पूर्वार्धोऽयंपुराणस्यकथितस्तवसुव्रत ॥ ५७ ॥ यत्रदेव्यास्तुमहिमाविस्तरेणोपपादितः ॥ एतद्रहस्यंश्रीमातुर्नदेयंयस्यकस्यचित् ॥ ५८ ॥ देयंभक्तायशांतायदेवीभक्तिरतायच ॥ शिष्यायज्येष्ठपुत्रायगुरुभक्तियुतायच ॥ ५९ ॥ इदमखिलकथानांसारभूतंपुराणंनिखिलनिगमतुल्यंसत्प्रामाणानुविद्धम् ॥ पठतिपरमभावाद्यःशृणोतीहभक्त्यासभवतिधनवान्वैज्ञानवान्मानवोऽत्र ॥ ६० ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेभगवतीमाहात्म्येएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ वेदाष्टवसुभूसंख्यैः (१८८४) पद्यैर्व्यासकृतैःशुभैः ॥ देवीभागवतस्याऽस्यषष्ठस्कंधःसमाप्तवान् ॥ १ ॥

पुराणका पूर्वभाग तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ५७ ॥ जिसमें देवीकी महिमा विस्तारपूर्वक वर्णन कीगई है. यह भवानी माताका रहस्य जिस किसीको न देना चाहिये ॥ ५८ ॥ परन्तु भक्त शान्त देवीकी भक्तिमें तत्पर शिष्य ज्येष्ठपुत्र गुरुभक्तिमें तत्परको देना चाहिये ॥ ५९ ॥ यह पुराण सब कथाओंका सारभूत है यह सब शास्त्रोंकी समान सत्प्रमाणससे युक्त है जो इसको परम भावसे पढते हैं सुन्ते हैं वे पुरुष धनवान् और ज्ञानवान् होते हैं ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भगवतीमाहात्म्ये पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥ १८८४ श्लोकोंमें यह षष्ठस्कंध पूर्ण हुआ.

दोहा—श्रीमाताके पदकमल, युगल भलीविधिध्याय । भाषा षष्ठस्कन्धकी, सुन्दर लिखी बनाय ॥ १ ॥
वसतराम गंगानिकट, नगर मुरादावाद । भजन करत हरिको सदा, जनज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रितम्। संवत् १९५८,
शके १८२३, सन् १९०१ ई०

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते षष्ठस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते सप्तमस्कंधः प्रारभ्यते ॥

दोहा—श्रीजगदम्बापदकमल, प्रेमसहित मन लाय। भाषा सप्तमस्कन्धकी, बहुविधि लिखत बनाय ॥ १ ॥
भुवनेशीगौरीशिवा, सकलसुमंगलमूल। श्रोता वक्ता पर रहहि, जगन्मात अनुकूल ॥ २ ॥

सूतजीने कहा हे तापसगण ! परीक्षितके पुत्र धर्मात्मा राजा जनमेजयने चन्द्र और सूर्यवंशका दिव्य उपाख्यान सुन आनन्दित हो व्यासदेवजीसे फिर पूँछा ॥ १ ॥ जनमेजय बोले हे प्रभु ! चन्द्रवंशीय और सूर्यवंशीय राजाओंके वंशका विस्तार सुननेकी मुझको अत्यन्त इच्छा हुई है ॥ २ ॥ हे अनघ ! आप सब विषय जानते हैं अतएव चन्द्र और सूर्यवंशका पापनाशन पवित्र आख्यान और राजाओंका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ वह चन्द्र और सूर्यवंशीय राजा पराशक्ति भगवतीके अत्यन्तभक्त थे यह मैंने सुना है. हे मुनिवर ! देवीके भक्तोंकी चरित्रकथा सुनकर कौन मनुष्य विरक्त होता है ? ॥ ४ ॥ राजर्षिके यह कथा पूँछनेपर फिर सत्यवतीके

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीभगवत्यैनमः ॥ सूतउवाच ॥ श्रुत्वैतांतापसादिव्यांकथांराजामुदान्वितः ॥ व्यासंपप्रच्छधर्मात्मापरिक्षितसुतःपुनः ॥ १ ॥ जनमेजयउवाच ॥ स्वामिन्सूर्यान्वयानांचराज्ञांवंशस्यविस्तरम् ॥ तथासोमान्वयानांचश्रोतुकामोऽस्मिसर्वथा ॥ २ ॥ कथयाऽनवसर्वज्ञकथांपापप्रणाशिनीम् ॥ चरितंभूपतीनांचविस्तराद्वंशयोर्द्वयोः ॥ ३ ॥ तेहिसर्वेपराशक्तिभक्ताइतिमयाश्रुतम् ॥ देवीभक्तस्यचरितंशृण्वन्कोऽस्तिविरक्तिभाक् ॥ ४॥ इतिराजर्षिणापृष्टोव्यासःसत्यवतीसुतः ॥ तमुवाचमुनिश्रेष्ठःप्रसन्नवदनोमुनिः ॥ ५ ॥ व्यासउवाच ॥ निशामयमहाराजविस्तराद्गदतोमम ॥ सोमसूर्यान्वयानांचतथाऽन्येषांसमुद्भवम् ॥ ६ ॥ विष्णोर्नाभिसरोजाद्वैब्रह्माऽभूच्चतुराननः ॥ तपस्तप्त्वासमाराध्यमहादेवींसुदुर्गमाम् ॥ ७ ॥ तयादत्तवरोधाताजगत्कर्तुंसमुद्यतः ॥ नाशकन्मानुषींसृष्टिंकर्तुंलोकपितामहः॥८॥विचिंत्यबहुधाचित्तेसृष्ट्यर्थंचतुराननः॥नविस्तारंजगामाऽऽशुरचितापिमहात्मना॥९॥

पुत्र मुनिवर कृष्णद्वैपायनने प्रीतिसे प्रफुल्लितमन हो उनसे कहा ॥ ५ ॥ हे महाराज ! मैं चन्द्र और सूर्य वंशीय राजा और इनके प्रसंगसे अन्यान्य राजाओंकी उत्पत्तिका विवरण विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं आप सावधान होकर सुनिये ॥ ६ ॥ विष्णुकी नाभिकमलसे चतुरानन ब्रह्मा उत्पन्न हुए वह तपस्यामें निरत हो एकान्त दुर्ज्ञेया जो जाननेमें न आवे उन महादेवी दुर्गाकी आराधना करने लगे ॥ ७ ॥ महादेवीने आराधनासे सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजीको वरदिया यद्यपि वह सर्वलोकपितामह ब्रह्मा वर पाय जगत्को उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए किन्तु वह सहसा मनुष्योंको उत्पन्न करनेमें समर्थ न हुए ॥ ८ ॥ तात्पर्य यह है कि, यह सृष्टि परमात्मरूपिणी भगवतीकर्तृक नित्यरूपसे रचित होनेपर चतुरानन ब्रह्मा मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता करके भी शीघ्र उसका विस्तार न करसके ॥ ९ ॥

अतएव प्रजापति ब्रह्माने प्रथम सात मानस पुत्र उत्पन्न किये. उनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ. यह सात मानस पुत्र कहकर विख्यात है ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन प्रजापतिके रोषसे रुद्र, उत्संगसे नारद और दक्षिण अंगुष्ठसे दक्ष उत्पन्न हुए. इस प्रकार सनकादिऋषिलोग भी उनके मानस पुत्र थे ॥ ११ ॥ हे महीपते ! प्रजापतिके वाम अंगुष्ठसे दक्षकी स्त्री उत्पन्न हुई. वह सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या वीरिणी और असिक्नीनामसे सम्पूर्ण पुराणोंमें विख्यात है ॥ १२ ॥ देवर्षिप्रवर नारदने समयान्तरमें उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया वह असिक्नी नामसे विख्यात थी ॥ १३ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने कहा है कि, तपस्वी नारदने दक्षके उरसे और वीरिणीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था इसमें मुझको संशय उत्पन्न

"ससर्जमानसान्पुत्रान्सप्तसंख्यान्प्रजापतिः ॥" मरीचिरंगिराऽत्रिश्चवसिष्ठःपुलहःक्रतुः ॥ पुलस्त्यश्चेतिविख्याताःसप्तैतेमानसाःसुताः ॥ १० ॥ रुद्रोरोषात्समुत्पन्नोऽप्युत्संगान्नारदोऽभवत् ॥ दक्षोंगुष्ठात्तथाऽन्येपिमानसाःसनकादयः ॥ ११ ॥ वामांगुष्ठाद्दक्षपत्नीजातासर्वांगसुंदरी ॥ वीरिणीनाम विख्यातापुराणेषुमहीपते ॥ १२ ॥ असिक्नीतिचनाम्नासायस्यांजातोऽथनारदः ॥ देवर्षिप्रवरःकामंब्रह्मणोमानसःसुतः ॥ १३ ॥ जनमेजयउवाच ॥ अत्रमेसंशयोब्रह्मन्यदुक्तंभवतावचः ॥ वीरिण्यांनारदोजातोदक्षादितिमहातपाः ॥१४ ॥ कथंदक्षस्यपत्न्यांतुवीरिण्यांनारदोमुनिः ॥ जातोहिब्रह्मणःपुत्रो धर्मज्ञस्तापसोत्तमः ॥ १५ ॥ विचित्रमिदमाख्यातंभवतानारदस्यच ॥ दक्षाज्जन्माऽस्यभार्यायांतद्वदस्वसविस्तरम् ॥ १६ ॥ पूर्वदेहःकथंमुक्तःशापात्कस्यमहात्मना ॥ नारदेनबहुज्ञेनकस्माज्जन्मकृतंमुने ॥ १७॥ व्यासउवाच ॥ ब्रह्मणाऽसौसमादिष्टोदक्षःसृष्ट्यर्थमादितः ॥ प्रजाःसृजेतिसुभृशंवृद्धिहेतोःस्वयंभुवा ॥ १८ ॥

हुआ है ॥ १४ ॥ नारदमुनि एक तो ब्रह्माके पुत्र हैं विशेषकर धर्मज्ञानयुक्त और तपस्वी लोगोंमें अग्रगण्य हैं. अतएव उन्होंने दक्षकी पत्नी वीरिणीके गर्भसे किस प्रकार जन्म ग्रहण किया ? ॥ १५ ॥ अच्छा, यदि यही हो तो दक्षसे उनकी भार्याके गर्भमें नारदजीने जो जन्म ग्रहण किया था आप वही विचित्र कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ हे मुने ! महात्मा नारदजीने अनेक प्रकार ज्ञानयुक्त होकर भी किसके शापसे पूर्वदेह त्यागकर फिर कैसे जन्मग्रहण किया ॥ ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा "जगतको बढ़ानेके लिये असंख्य प्रजा उत्पन्नकरो" स्वयंभू ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे यह कहकर प्रथम दक्षको आज्ञादी ॥ १८ ॥

दक्षप्रजापतिने पिताकी आज्ञा ले वीरिणीके गर्भसे बड़े बली वीर्यवान् पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १९ ॥ उन सम्पूर्ण दक्षके पुत्रोंको प्रजाके बढ़ानेमें अभिलाषी देखकर देवर्षिनारदने कालसे प्रेरित होकर हँसते हँसते कहा ॥ २० ॥ तुमने पृथ्वीका परिणाम न जानकर किस प्रकार प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा की है? अतएव तुम साधारणलोकोंमें हास्यके पात्र होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ परन्तु पृथ्वीका परिमाण जानकर सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त होनेसे वह सिद्ध होगा. किन्तु इसके अन्यथा करनेसे कभी कार्य सिद्धि नहीं होगी, यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ २२ ॥ हाय! तुम अत्यन्त अज्ञानी हो!! पृथ्वीका वृत्तान्त न जानकर प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए हो अतएव तुम्हारा कार्य किसप्रकार सिद्ध होगा? ॥ २३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! दैवयोगसे सहसा नारदजीका यह वचन सुनकर वह हर्यश्व

ततःपंचसहस्रांश्चजनयामासवीर्यवान् ॥ दक्षःप्रजापतिःपुत्रान्वीरिण्यांबलवत्तरान् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वातान्नारदःपुत्रान्सर्वान्वर्धयिषून्प्रजाः ॥ उवाचप्रहसन्वाचं देवर्षिःकालनोदितः ॥ २० ॥ भुवःप्रमाणमज्ञात्वास्रष्टुकामाःप्रजाःकथम् ॥ लोकानांहास्यतांयूयंगमिष्यथनसंशयः ॥ २१ ॥ पृथिव्यावैप्रमाणं तुज्ञात्वाकार्यःसमुद्यमः ॥ कृतोऽसौसिद्धिमायातिनाऽन्यथेतिविनिश्चयः ॥ २२ ॥ बालिशावतयूयंवैयदज्ञात्वाभुवस्तलम् ॥ समुद्यताःप्रजाःकर्तुंकथंसि द्धिर्भविष्यति ॥ २३ ॥ व्यासउवाच ॥ नारदेनैवमुक्तास्तेहर्यश्वादैवयोगतः ॥ अन्योन्यमूचुःसहसासम्यगाहमुनिःकिल ॥ २४ ॥ ज्ञात्वाप्रमाणमुर्व्या स्तुसुखंस्रक्ष्यामहेप्रजाः ॥ इतिसंचिंत्यतेसर्वेप्रयाताःप्रेक्षितुंभुवः ॥ २५ ॥ तलंसर्वपरिज्ञातुंवचनान्नारदस्यच ॥ प्राच्यांकेचिद्गताःकामंदक्षिणस्यांतथाप रे ॥ २६ ॥ प्रतीच्यामुत्तरस्यांतुकृतोत्साहाःसमंततः ॥ दक्षःपुत्रान्गतान्दृष्ट्वापीडितस्तुशुचाभृशम् ॥ २७ ॥ अन्यानुत्पादयामासप्रजार्थंकृतनिश्चयः ॥ तेऽपितत्रोद्यताःकर्तुंप्रजार्थमुद्यमंसुताः ॥ २८ ॥

इत्यादि पुत्र परस्पर कहने लगे कि, यह मुनिवर जो बात कहते हैं सो सत्य है ॥ २४ ॥ पृथ्वीका परिमाण जानकर हम सुखपूर्वक प्रजाको उत्पन्न करेंगे. वह सब इस प्रकार विचारकर पृथ्वीको देखनेके लिये चलेगये ॥ २५ ॥ वह नारदजीके वचनसे उत्साहित हो सब पृथ्वी देखते देखते कोई पूर्वकी ओर और कोई दक्षिणकी ओर ॥ २६ ॥ कोई उत्तरकी ओर और कोई पश्चिमकी ओर इच्छानुसार चले गये. पुत्रोंके चलेजानेपर दक्ष उनको न देखकर अत्यन्त शोकातुर हुए ॥ २७ ॥ परन्तु उन्होंने प्रजाकी इच्छासे कृतसंकल्प हो फिर अन्यान्य पुत्र उत्पन्न किये उनके वह सब पुत्र भी फिर प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए ॥ २८ ॥

नारद मुनिने उनको देखकरभी पहलेकी समान कहा कि, तुम अत्यन्त अज्ञानी हो ! ! पृथ्वीका परिमाण न जानकर ॥ २९ ॥ किसकारणसे प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए हो ? नारदजीका वचन सत्यविचार मोहित हो ॥ ३० ॥ पहले भ्राता जिसप्रकार चलेगये थे वहभी इसी प्रकार चलेगये. दक्षप्रजापतिने उन पुत्रोंको न देखकर कुपित हो॥ ३१ ॥ पुत्रशोकसे प्रगटहुए क्रोधद्वारा नारदजीको शाप दिया. दक्षने कहा हे दुर्बुद्धे ! तुमने मेरे पुत्रोंको नष्ट किया है अतएव नाशको प्राप्त हो॥ ३२ ॥ फलतः मेरे पुत्र नष्ट होनेके पापसे तुमको गर्भमें वास करना होगा और अधिक क्या कहूं तुमने मेरे पुत्रोंको स्थानभ्रष्ट किया है अतएव तुम अवश्य मेरे पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥

नारदःप्राहतान्दृष्ट्वापूर्ववद्वचनंमुनिः ॥ बालिशावतयूयंवैयदज्ञात्वाभुवःकिल ॥२९॥ प्रमाणंतुप्रजाःकर्तुंप्रवृत्ताःकेनहेतुना ॥ श्रुत्वावाक्यंमुनेस्तेऽपिमत्वासत्यंविमोहिताः ॥ ३० ॥ जग्मुःसर्वेयथापूर्वंभ्रातरश्चलितास्तथा ॥ तान्सुतान्प्रस्थितान्दृष्ट्वादक्षःकोपसमन्वितः ॥ ३१ ॥ शशापनारदंरोषात्पुत्रशोकसमुद्भवात् ॥ दक्षउवाच ॥ नाशितामेसुतायस्मात्तस्मान्नाशमवाप्नुहि ॥ ३२ ॥ पापेनाऽनेनदुर्बुद्धेगर्भवासंव्रजेतिच ॥ पुत्रोमेभवकामंत्वंयतोमेभ्रंशिताःसुताः ॥ ३३ ॥ इतिशप्तस्ततोजातोवीरिण्यांनारदोमुनिः ॥ षष्टिर्भूयोऽसृजत्कन्यावीरिण्यामितिनःश्रुतम् ॥ ३४ ॥ शोकंविहायपुत्राणांदक्षःपरमधर्मवित् ॥ तासांत्रयोदशप्रादात्कश्यपायमहात्मने ॥ ३५ ॥ दशधर्मायसोमायसप्तविंशतिभूपते ॥ द्वेचैवभृगवेप्रादाच्चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ ३६ ॥ द्वेचैवांगिरसेकन्येतथैवांगिरसेपुनः ॥ तासांपुत्राश्चपौत्राश्चदेवाश्चदानवास्तथा ॥ ३७ ॥ जाताबलसमायुक्ताःपरस्परविरोधकाः ॥ रागद्वेषान्विताःसर्वेपरस्परविरोधिनः ॥ सर्वेमोहावृताःशूराह्यभवन्नतिमायिनः ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

नारदजीने इस प्रकार शापित हो वीरिणीके गर्भसे जन्मग्रहण किया. इस प्रकार सुना है कि, इसके उपरान्त प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्या उत्पन्न की ॥ ॥ ३४ ॥ हेभूपते ! तब परमधर्मको जाननेवाले दक्षने पुत्रशोक त्यागकर उनमेंसे तेरह महात्मा कश्यपको॥ ३५ ॥ दश धर्मको, चन्द्रमाको सत्ताईस, भृगुको दो, अरिष्टनेमिको चार, कृशाश्वको दो और शेष दो कन्या अङ्गिराको दीं. उनके पुत्र और पौत्र देवता तथा दानव ॥ ३६ ॥ बलयुक्त हो परस्पर विरोधी हुए वह सभी शूर और अत्यन्त मायावी थे. अतएव राग और द्वेषसे मोहित होकर परस्पर विरोध करने लगे ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा हे महाभाग ! भलीभाँति ज्ञानयुक्त जिन सब राजाओंने सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया था आप उनका वंश विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे भारत ! पहले ऋषिसत्तम नारदके मुखसे सूर्यवंशका विस्तारसहित वृत्तान्त जिसप्रकार सुना है, अब मैं वही अविकल वर्णन करता हूं सुनो ॥ २ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि इच्छानुसार भ्रमण करते करते शोभायमान् सरस्वतीके तटपर मेरे पवित्र आश्रममें आये ॥ ३ ॥ उनको देख मैं उनके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाय प्रणामकर सन्मुख खड़ाहुआ फिर उनको आसनपर बैठाय आदरसहित उनकी पूजा की ॥ ४ ॥ इसप्रकार यथाविधानसे पूजाकर उनसे कहा हे मुनिवर ! आप विश्वके पूजनीय हैं अतएव आपके आनेसे मेरा आश्रम पवित्र हुआ ॥ ५ ॥ हे सर्वज्ञ ! आप

जनमेजयउवाच ॥ ममाऽऽख्याहिमहाभागराज्ञांवंशंसुविस्तरम् ॥ सूर्यान्वयप्रसूतानांधर्मज्ञानांविशेषतः ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुभारतवक्ष्यामिरविवंशस्यविस्तरम् ॥ यथाश्रुतंमयापूर्वंनारदादृषिसत्तमात् ॥ २ ॥ एकदानारदःश्रीमान्सरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ आजगामाऽऽश्रमेपुण्येविचरन्स्वेच्छयामुनिः ॥ ३ ॥ प्रणम्यशिरसापादौतस्याऽग्रेसंस्थितस्तदा ॥ ततस्तस्याऽऽसनंदत्वाकृत्वाऽर्हणमथाऽऽदरात् ॥ ४ ॥ विधिवत्पूजयित्वातमुक्तवान्वचनंत्विदम् ॥ पावितोहंमुनिश्रेष्ठपूज्यस्यागमनेनवै ॥ ५ ॥ कथांकथयसर्वज्ञराज्ञांचरितसंयुताम् ॥ राजानोयेसमाख्याताःसप्तमेऽस्मिन्मनोःकुले ॥ ६ ॥ तेषामुत्पत्तिरतुलाचरितंपरमाद्भुतम् ॥ श्रोतुकामोऽस्म्यहंब्रह्मन्सूर्यवंशस्यविस्तरम् ॥ ७ ॥ समाख्याहिमुनिश्रेष्ठसमासव्यासपूर्वकम् ॥ इतिपृष्टोमयाराजन्नारदःपरमार्थवित् ॥ ८ ॥ उवाचप्रहसन्प्रीतःसमाभाष्यमुदाऽन्वयम् ॥ नारदउवाच ॥ शृणुसत्यवतीसूनोराज्ञांवंशमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ पावनंकर्णसुखदंधर्मज्ञानादिभिर्युतम् ॥ ब्रह्मापूर्वंजगत्कर्तानाभिपंकजसंभवः ॥ १० ॥ विष्णोरितिपुराणेषुप्रसिद्धःपरिकीर्तितः ॥ सर्वज्ञःसर्वकर्तासौस्वयंभूःसर्वशक्तिमान् ॥ ११ ॥

राजाओंके चारित्रयुक्त उपाख्यान कहिये. सातवें मनुके वंशमें जो सब राजा विख्यात हैं ॥ ६ ॥ उनकी उत्पत्तिके विषयमें तुलना नहीं है और उनके चारित्रभी अत्यन्त अद्भुत हैं ॥ ७ ॥ हे मुनिवर ! आप स्थलविशेषसे कभी संक्षेप और कभी विस्तारसहित उनका वर्णन कीजिये. हे राजन् ! मेरे इस प्रकार पूँछनेपर परमार्थवित् नारदजी ॥ ॥ ८ ॥ प्रीतिसहित हँसते हँसते मुझसे प्रसन्नमन हो सूर्यवंका वृत्तान्त वर्णन करनेलगे. नारदजी बोले हे सत्यवतीतनय ! राजाओंके वंश वृत्तान्त अत्यन्त पवित्र ॥ ९ ॥ और कानोंको सुखदायक है विशेषकर इस अत्युत्तम वृत्तान्तके कर्णमें प्रविष्ट होनेसे धर्म और ज्ञान प्राप्त होता है अतएव आप उसको सुनिये. पूर्व कालमें ब्रह्माने विष्णुकी नाभिकमलसे उत्पन्न होकर ॥ १० ॥ जगत्को उत्पन्न किया, यह कथा पुराणमात्रमें प्रसिद्ध वर्णित है उन विश्वसंसारके आत्मस्वरूप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ॥ ११ ॥

सृष्टिकर्ता स्वयंभूने सृष्टिके आरम्भसमयमें दशहजार वर्ष तपस्या की. उस तपस्याके प्रभावसे वह सृष्टि करनेकी विशेषशक्ति प्राप्तकर सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त हुए. उन्होंने सृष्टिकी इच्छासे देवीकी आराधना करके जिसप्रकार अत्युत्तम शक्ति प्राप्त की ॥ १२ ॥ वैसेही प्रथम शुभलक्षणयुक्त मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया उनमें मरीचि सृष्टिकार्यमें प्रसिद्ध हुए थे ॥ १३ ॥ उनके पुत्र कश्यप भी सबके सन्मानित और विख्यात थे. उनकी तेरह भार्या और वह सभी दक्ष प्रजापतिकी कन्या थीं ॥ १४ ॥ देवता, दैत्य, यक्ष, पन्नग, पशु और पक्षी सभी उनसे उत्पन्नहुये इसीलिये उसको काश्यपी सृष्टि कहते हैं ॥ १५ ॥ देवताओंमें सूर्य विशेष विख्यात हैं. उनका दूसरा एक नाम विवस्वान् हैं विवस्वतके पुत्र वैवस्वतमनु हैं ॥ १६ ॥ उन्होंने राजा होकर अत्यन्त सुख्याति प्राप्त की. इनके सिवाय मनुके नौ पुत्र उत्पन्न

तपस्तप्त्वासविश्वात्मावर्षाणामयुतंपुरा ॥ सृष्टिकामःशिवांध्यात्वाप्राप्यशक्तिमनुत्तमाम् ॥ १२ ॥ पुत्रानुत्पादयामासमानसाञ्छुभलक्षणान् ॥ मरीचिःप्रथितस्तेषामभवत्सृष्टिकर्मणि ॥ १३ ॥ तस्यपुत्रोऽतिविख्यातःकश्यपःसर्वसंमतः ॥ त्रयोदशैवतस्याऽऽसन्भार्यादक्षसुताःकिल ॥ १४ ॥ देवाःसर्वेसमुत्पन्नादैत्यायक्षाश्चपन्नगाः ॥ पशवःपक्षिणश्चैवतस्मात्सृष्टिस्तुकाश्यपी ॥ १५ ॥ देवानांप्रथितःसूर्योविवस्वान्नामतस्यतु ॥ तस्य पुत्रःसविख्यातोवैवस्वतमनुर्नृपः ॥ १६ ॥ तस्यपुत्रस्तथेक्ष्वाकुःसूर्यवंशविवर्धनः ॥ नवाऽभवन्सुतास्तस्यमनोरिक्ष्वाकुपूर्वजाः ॥ १७ ॥ तेषांनामा निराजेंद्रशृणुष्वैकमनाःपुनः ॥ इक्ष्वाकुरथनाभागोधृष्टःशर्यातिरेवच ॥ १८ ॥ नरिष्यंतस्तथाप्रांशुर्नृगोदिष्टश्चसप्तमः ॥ करूषश्चपृषध्रश्चनवैतेमानवाः स्मृताः ॥ १९ ॥ इक्ष्वाकुस्तुमनोःपुत्रःप्रथमःसमजायत ॥ तस्यपुत्रशतंचाऽऽसीज्ज्येष्ठोविकुक्षिरात्मवान् ॥ २० ॥ नवानांवंशविस्तारंसंक्षेपेणनिशाम य ॥ शूराणांमनुपुत्राणांमनोरंतरजन्मनाम् ॥ २१ ॥ नाभागस्यतुपुत्रोभूदंबरीषःप्रतापवान् ॥ धर्मज्ञःसत्यसंधश्चप्रजापालनतत्परः ॥ २२ ॥ धृष्टा तुधार्ष्टकंक्षत्रंब्रह्मभूतमजायत ॥ संग्रामकातरंसम्यग्ब्रह्मकर्मरतंतथा ॥ २३ ॥

हुए थे ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! उनके नाम एकाग्र होकर सुनिये. नाभाग, धृष्ट, शर्याति ॥ १८ ॥ नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, करुष, पृषध्र, यह नौ मनुके पुत्र हैं॥ १९ ॥ मनुके दूसरे पुत्र इक्ष्वाकुने प्रथम जन्म ग्रहण किया उनके सौ पुत्र हुए उनमें आत्मवान् विकुक्षिही बड़े पुत्र थे ॥ २० ॥ मनुके अनन्तर उत्पन्न हुए नौ पुत्रोंमेंसे कितनोंहीका वंशविस्तार संक्षेपसे वर्णन करताहूं सो सुनो॥ २१ ॥ नाभागके पुत्र अम्बरीष वह अत्यन्त सत्यसन्ध पराक्रमी और धर्मज्ञानी हुए थे. अतएव वह सर्वदा न्यायके अनुसार प्रजाका पालनकरते ॥ २२ ॥ धृष्टसे धार्ष्ट उत्पन्न हुए उन्होंने क्षत्रिय होकरभी ब्रह्मस्वरूपता प्राप्त की. वह स्वभावसेही संग्राममें कातर थे और सदा ब्रह्मकार्यका

अनुष्ठान करते रहते ॥ २३ ॥ शर्याति आनर्त्तनामसे विख्यात पुत्र और रूप लावण्यवती सुकन्यानामसे एक कन्याने जन्म ग्रहण किया ॥ २४ ॥ राजा शर्यातिने वह सुन्दरी कन्या अन्धे च्यवनऋषिको दी. किन्तु मुनिने अन्धे होकर भी कन्याके चरित्र गुणसे सुन्दरनेत्र प्राप्त किये थे ॥ २५ ॥ मैंने सुना है कि, सूर्यके दोनों पुत्र अश्विनीकुमारों ने फिर दृष्टिशक्ति दी थी. जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन्! इस कथामें मुझको बड़ा सन्देह है ॥ २६ ॥ राजा शर्यातिने सुलोचना कन्या सुकन्या दृष्टिशक्ति विहीन च्यवन ऋषिको दी थी. कन्या यदि कुरूप गुणहीन अथवा स्त्रियोंके लक्षणसे रहित हो ॥ २७ ॥ तो राजाको वह कन्या अन्धेको देनी संगत होसक्ती है. किन्तु राजा शर्यातिने ऐसी सुमुखी कन्या उस ऋषिको अन्धा जानकर भी क्यों दी? ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं आपका सदा कृपापात्र हूं अतएव आप इसका कारण

शर्यातेस्तनयश्चाऽभूदानर्तोनामविश्रुतः ॥ सुकन्याचतथापुत्रीरूपलावण्यसंयुता ॥ २४ ॥ च्यवनायसुतादत्ताराज्ञाप्यंधायसुंदरी ॥ मुनिःसुलोचनो जातस्तस्याःशीलगुणेनह ॥ २५ ॥ विहितोरविपुत्राभ्यामश्विभ्यामितिनःश्रुतम् ॥ जनमेजयउवाच ॥ संदेहोऽयंमहान्ब्रह्मन्कथायांकथितस्त्वया ॥ ॥ २६ ॥ यद्राज्ञासुनयेंधायदत्तापुत्रीसुलोचना ॥ कुरूपागुणहीनावानारीलक्षणवर्जिता ॥ २७ ॥ पुत्रीयदाभवेद्राजातदांधायप्रयच्छति ॥ ज्ञात्वांधंसुमुखींकस्माद्दत्तवान्नृपसत्तमः ॥ २८ ॥ कारणंब्रूहिमेब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मिसर्वदा ॥ सूतउवाच ॥ इतिराज्ञोवचःश्रुत्वापरिक्षितसुतस्यवै ॥ २९ ॥ द्वैपायनःप्रसन्नात्मातमुवाचहसन्निव ॥ व्यासउवाच ॥ वैवस्वतसुतःश्रीमाञ्छर्यातिर्नामपार्थिवः ॥ ३० ॥ तस्यस्त्रीणांसहस्राणिचत्वार्यासन्परिग्रहाः ॥ राजपुत्र्यः सरूपाश्चसर्वलक्षणसंयुताः ॥ ३१ ॥ पत्न्यःप्रेमयुताःसर्वाःप्रियाराज्ञःसुसंमताः ॥ एकापुत्रीतुतासांवैसुकन्यानामसुंदरी ॥ ३२ ॥ पितुःप्रियाचमातॄणां सर्वासांचारुहासिनी ॥ नगरान्नातिदूरेभूत्सरोमानससन्निभम् ॥ ३३ ॥ बद्धसोपानमार्गंचस्वच्छपानीयपूरितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णंचक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३४ ॥

कहिये. सूतजीने कहा परीक्षित्के पुत्र राजश्रेष्ठ जनमेजयका इस प्रकार वचन सुन ॥ २९ ॥ प्रसन्न हो द्वैपायन मुनिने हँसते हँसते कहा. व्यासजीने कहा वैवस्वतके पुत्र शर्यातिके ॥ ३० ॥ चार हजार विवाहिता स्त्रियें वह सब सुलक्षणोंसे भूषित सुन्दरी और सभी राजकन्या थीं ॥ ३१ ॥ विशेषकर वह सब राजपत्नियें पतिके प्रति प्रीति दिखाकर उनके मनोमत और प्रियपात्र हुई थीं. परन्तु उन सब राजसीमन्तिनियोंमें सुकन्या नामक एक सुन्दरी कन्या थी ॥ ३२ ॥ उस चारुहासिनी पुत्रीको पिता और माता सभी प्यार करते थे. नगरके कुछेक दूर निर्मल जलसे पूर्ण मानसकी समान एक मनोहर सरोवर था ॥ ३३ ॥ उसके उतरनेका मार्ग सोपान

श्रेणियोंसे आवद्ध था. हंस, कारण्डव, चक्रवाक ॥ ३४ ॥ दात्यूह, सारस और अन्यान्य पक्षी उसके जलमें क्रीडा करते पाँच प्रकारके कमल उसमें खिले हुए थे और भौंरे उसमें विराजमान थे ॥ ३५ ॥ पार्श्वमें जाल, तमाल, सरल, पुन्नाग, अशोक ॥ ३६ ॥ वट, अश्वत्थ, कदम्ब, कदली, श्रेणी, जम्बीरी, खर्जूर, पनस ॥ ॥ ३७ ॥ गुवाक, पूगवृक्ष नारियल, केतक, कांचन इत्यादि अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त और उनके बीचबीचमें शुभ्र वर्ण यूथिका और शल्लिका इत्यादि लता तथा सम्पूर्ण गुल्म शोभायमान थे ॥ ३८॥ विशेषकर उस बीचमें जम्बु, आम्र, तिन्तिड़ी, इमली, करञ्ज, कुटक, पलाश, निम्ब, खदिर बिल्व और आमलेके वृक्ष शोभायमान थे ॥ ३९ ॥ उस स्थानमें मोर केकारव और कोकिलामें मनोहर कण्ठध्वनि करती थीं उसके समीप वृक्षोंसे युक्त पवित्र स्थानमें ॥ ४० ॥ शान्तचित्त तपस्वीप्रधान भृगुके पुत्र च्यवनमुनि वास करते थे. वह स्थान निर्जन था. इस स्थानमें तपस्या करनेसे कोई विघ्न नहीं होता था ॥ ४१ ॥ मुनिवर इस प्रकार मनमें विचार

दात्यूहसारसाकीर्णसर्वपक्षिगणावृतम् ॥ पंचधाकमलोपेतंचंचरीकसुसेवितम् ॥ ३५ ॥ पार्श्वतश्चद्रुमाकीर्णवेष्टितंपादपैःशुभैः ॥ सालैस्तमालैः सरलैःपुन्नागाशोकमंडितम् ॥ ३६ ॥ वटाश्वत्थकदंबैश्चकदलीखंडराजितम् ॥ जंबीरैर्बीजपूरैश्चखर्जूरैःपनसैस्तथा ॥ ३७ ॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्चकेतकैः कांचनद्रुमैः ॥ यूथिकाजालकैःशुभ्रैःसंवृतंमल्लिकागणैः ॥ ३८ ॥ जंब्वाम्रैतिंतिणीभिश्चकरंजकुटकावृतम् ॥ पलाशनिंबखादिरबिल्वामलकमंडितम् ॥ ॥ ३९ ॥ बभूवकोकिलारावकेकास्वनविराजितम् ॥ तत्समीपेशुभेदेशेपादपानांगणावृते ॥४० ॥ भार्गवश्च्यावनःशांतस्तापसःसंस्थितोमुनिः ॥ ज्ञात्वा ऽसौविजनंस्थानंतपस्तेपेसमाहितः ॥ ४१ ॥ कृत्वादृढासनंमौनमाधायजितमारुतः ॥ इंद्रियाणिचसंयम्यत्यक्ताहारस्तपोनिधिः ॥ ४२ ॥ जलपानादि रहितोध्यायन्नास्तेपरांबिकाम् ॥ सवल्मीकोभवद्राजँल्लताभिःपरिवेष्टितः ॥ ४३ ॥ कालेनमहताराजन्समाकीर्णःपिपीलिकैः ॥ तथाससंवृतोधीमान्मृत्पिंडइवसर्वतः ॥ ४४ ॥ कदाचित्समहीपालःकामिनीगणसंवृतः ॥ आजगामसरोराजन्विहर्तुमिदमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ शर्यातिःसुंदरीवृंदसंयुतःसलिलेऽमले ॥ क्रीडासक्तोमहीपालोबभूवकमलाकरे ॥ ४६ ॥ सुकन्यावनमासाद्यविजहारसखीवृता ॥ सुमनांसिविचिन्वंतीचञ्चलाचंचलोपमा ॥ ४७ ॥

दृढ आसनपर बैठ और समाहित हो मौनावलम्बन तथा वायुनिरोधपूर्वक तपानुष्ठानमें निरत थे ॥ ४२ ॥ फलतः तपोनिधि भार्गव इन्द्रियें संयत और आहार तथा जलपानादि त्यागकर निरन्तर उन सच्चिदानन्दरूपिणी भगवतीके ध्यानमें निमग्न थे. हे राजन्! इसप्रकार ध्यान करते करते उनके शरीरपर वल्मीक होगई यह वल्मीक सर्वत्र लतासे ढकगई ॥ ४३ ॥ हे राजन्! बहुतकाल व्यतीत होनेपर पिपीलिकाओंसे ढ़कगई और अधिक क्या कहूं तिस काल वह बुद्धिमान् मुनिवर भलीभाँति आवृतहो मट्टीके पिण्डकी समान स्थित रहे ॥ ४४ ॥ हे राजन्! एक समय महीपाल शर्याति उपवनमें विहार करनेकी इच्छासे कामिनियोंके सहित इस अत्युत्तम सरोवरमें आये अवनीपति शर्याति सुन्दर स्त्रियोंसे युक्त हो कमलों करके अतिविमल जलके मध्य क्रीड़ा करनेमें एकान्त आसक्त हुए ॥ ४५ ॥ ४६॥ इधर चपलाकी समान

रूपयौवनसम्पन्न चञ्चला राजकन्या सुकन्या वनमें आय अपनी सखियोंके सहित इधर पुष्प वीनते वीनते विहार करने लगी ॥ ४७ ॥ सुकन्या सम्पूर्ण अलङ्कारोंसे सज्जित होकर चरणस्थित नूपुरके मनोहर रुनझुनशब्दसहित भ्रमण करतीहुई क्रमानुसार च्यवनऋषिकी वल्मीकके समीप उपस्थित हुई ॥ ४८ ॥ वह क्रीड़ामें आसक्त उस वल्मीकके समीप बैठगई. बैठतेही वल्मीकमेंसे खद्योतके समान ज्योतिःपदार्थ देखा ॥ ४९ ॥ यह क्या है? इसप्रकार मनमें विचार कर उस कृशोदरीने इसको उखाड़नेकी इच्छासे काँटा ग्रहण किया और तत्काल उसको उखाड़नेके लिये अत्यन्त व्यग्र हुई ॥ ५० ॥ क्रमानुसार उसके निकट जाय जैसेही काँटा छेदनेमें उद्यत हुई वैसेही मुनिवरने कामदेवकी स्त्रीके समान उस रूपवती सुकेशी बालाको देखा ॥ ५१ ॥ तपोनिधि भार्गवने उस

सर्वाभरणसंयुक्तारणच्चरणनूपुरा ॥ चंक्रममाणावल्मीकंच्यवनस्यसमासदत् ॥ ४८ ॥ क्रीडासक्तोपविष्टासावल्मीकस्यसमीपतः ॥ ददर्शचाऽस्यरंध्रेवैख द्योतइवज्योतिषी ॥ ४९ ॥ किमेतदितिसंचिंत्यसमुद्धर्तुमनोदधे ॥ गृहीत्वाकंटकंतीक्ष्णंत्वरमाणाकृशोदरी ॥ ५० ॥ साद्दष्टामुनिनाबालासमीपस्थाकृ तोद्यमा ॥ विचरंतीसुकेशांतामन्मथस्येवकामिनी ॥५१॥ तांवीक्ष्यसुदतींतत्रक्षामकंठस्तपोनिधिः ॥ तामभाषतकल्याणींकिमेतदितिभार्गवः ॥ ५२ ॥ दूरंगच्छविशालाक्षितापसोऽहंवरानने ॥ माभिंदस्वाद्यवल्मीकंकंटकेनकृशोदरि ॥ ५३ ॥ तेनेदंप्रोच्यमानाऽपिसाचाऽस्यनशृणोतिवै ॥ किमुखल्विद मित्युक्त्वानिर्बिभेदाऽस्यलोचने ॥ ५४ ॥ दैवेननोदिताभित्त्वाजगामनृपकन्यका ॥ क्रीडंतीशंकमानासाकिंकृतंतुमयेतिच ॥ ५५ ॥ चुक्रोधसतथा विद्धनेत्रःपरममन्युमान् ॥ वेदनाभ्यर्दितःकामंपरितापंजगामह ॥ ५६ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोभूत्सैनिकानांतुतत्क्षणात् ॥ विशेषेणतुभूपस्यसामा त्यस्यसमंततः ॥ ५७ ॥

कल्याणी सुदतीको देखकर क्षीणकण्ठसे कहा तुम क्या करतीहो? ॥ ५२ ॥ हे वरानने! मैं तपस्वी हूं अतएव तुम इस स्थानसे दूर चली जाओ. हे कृशोदरि! तुम्हारे ऐसे विशाललोचन हैं तोभी मुझको नहीं देखसक्ती? अतएव मैं निषेधकरता हूं कि, काँटेसे वल्मीकको भेदन मत करो ॥ ५३ ॥ उस मुनिवरके इस प्रकार कहनेपरभी उस कन्याने उनका वचन न सुनकर "यह क्या है?" इस प्रकार कहकर उनके दोनों नेत्र वींध डाले ॥ ५४ ॥ दैवके वशीभूत होकर राजकन्याने क्रीड़ा करते करते उनके चक्षु छेदन किये किन्तु मैंने क्या किया इसप्रकार शंका युक्त होकर वहांसे लौटी ॥ ५५ ॥ किन्तु नेत्रोंके छिदजानेसे मुनिवर अत्यन्त यंत्रणाके कारण कुपित हुए विशेषकर वेदनासे नितान्त कातर हो निरन्तर परिताप करनेलगे ॥ ५६ ॥ तब राजा, मंत्री, सैनिकलोग, हाथी, घोड़े, ऊंट और यही क्या वहांके समस्त

प्राणियोंका क्षणमात्रमें मलमूत्र रुकगया दैवात् इस प्रकार मलमूत्र रुकाहुआ देखकर नरपति शर्याति अत्यन्त दुःखित और चिन्तातुर हुए॥ ५७ ॥ ५८॥ विशेषकर इस समय सैनिकोंके मलमूत्र रुकनेका विषय राजासे निवेदन करनेपर भूपाल दुःख होनेके कारणकी चिन्ता करनेलगे ॥ ५९ ॥ इसप्रकार चिन्ता करते करते राजा गृहमें आये अन्तमें चिन्तासे कातर हो सैनिकों और स्वजनोंसे पूँछा कि, तुममेंसे किसी मनुष्यने कोई दुष्कार्य्य किया है ? ॥ ६० ॥ सरोवरके पश्चिम भागस्थित वनमें महर्षि महात्मा च्यवन कठिन तपस्या करतेहैं ॥ ६१ ॥ मुझको अनुमान होता है कि, किसी मनुष्यने उन अनलप्रभ तापसराजका अवश्य अपकार किया होगा इससेही हमको यह पीड़ा उपस्थित हुई है यही मेरा स्थिर निश्चय है ॥ ६२ ॥ महात्मा भृगुनन्दन वृद्ध हैं और विशेषकर तपस्यामें प्रवीण हो सबसे श्रेष्ठ हुएहैं

गजोष्ट्रतुरगाणांचसर्वेषांप्राणिनांतदा ॥ ततोरुद्धेशकृन्मूत्रेशर्यातिर्दुःखितोऽभवत् ॥ ५८ ॥ सैनिकैःकथितंतस्मैशकृन्मूत्रनिरोधनम् ॥ चिंतयामासभूपालःकारणंदुःखसंभवे ॥ ५९ ॥ विचिंत्याऽऽहततोराजासैनिकान्स्वजनांस्तथा ॥ गृहमागत्यचिंतार्तःकेनेदंदुष्कृतंकृतम् ॥ ६० ॥ सरसःपश्चिमेभागेवनमध्येमहातपाः ॥ च्यवनस्तापसस्तत्रतपश्चरतिदुश्चरम् ॥ ६१ ॥ केनाऽप्यपकृतंतत्रतापसेऽग्निसमप्रभे ॥ तस्मात्पीडासमुत्पन्नासर्वेषामितिनिश्चयः ॥ ६२ ॥ तपोवृद्धस्यवृद्धस्यवरिष्ठस्यविशेषतः ॥ केनाप्यपकृतंमन्येभार्गवस्यमहात्मनः ॥६३॥ ज्ञातंवायदिवाऽज्ञातंतस्येदंफलमुत्तमम् ॥ कैश्चदुष्टैः कृतंतस्यहेलनंतापसस्यह ॥ ६४ ॥ इतिपृष्टास्तमूचुस्तेसैनिकावेदनार्दिताः ॥ मनोवाक्कायजनितंनविद्मोऽपकृतंवयम् ॥ ६५ ॥ ॥इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिपप्रच्छतान्सर्वान्राजाचिंताकुलस्तथा ॥ पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गंसाम्नाचोग्रतयाऽपिच ॥ १ ॥

अतएव मैं विचार करताहूं कि, अवश्यही उन महात्माका कोई अपकार किया होगा ॥ ६३ ॥ किसी दुष्ट मनुष्यने उनकी अवज्ञा की है यदि जानूँ अथवा न जानूं किन्तु उसकाही यह समुचित फल है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६४ ॥ यह वचन सुन सैनिकलोग वेदनासे कातर हो कहनेलगे हममेंसे किसीने मन, वचन अथवा शरीरसे उनका कोई अपकार नहीं कियाहै यह हम भलीभाँतिसे जानतेहैं ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा शर्यातिने चिन्ताकुल हृदयसे क्रोधितहो सैनिक लोगोंसे इसप्रकार पूँछकर फिर सुहृद्वर्गोंसे मधुरवचन द्वारा पूँछा ॥ १ ॥

तब राजकन्याने पिताको दुःखित और सैनिक लोगोंको कातर देखकर स्वयं जिस काँटेसे महर्षिके दोनों नेत्र वींधे थे यह बात मनमें विचार अपने पितासे कहा ॥ २॥ हे पिता! मैं ने उस वनमें क्रीड़ा करते करते लतागुल्मसे ढ़की हुई एक बँबई देखी. वह बँबई दृढ थी और उसमें दो छिद्र दिखाई दिये ॥ ३ ॥ हे महाराज! उन दोनों छिद्रोंमेंसे खद्योत (पटवीजना) की समान एक दीप्तिमान् ज्योतिःपदार्थ देख खद्योत विचार मैंने उसको काँटेसे छेदा ॥ ४ ॥ हे पितः !! इसी समय "हाय! मैं मरगया" बँबईमेंसे इसप्रकार मृदु मन्द शब्द सुनाई आनेलगा. तिस काल मैं ने उस काँटेको निकालकर देखा कि, वह जलसे भीगाहुआ है ॥ ५ ॥ यह क्या है " तब मैं इस संशयसे आश्चर्यमें हुई परन्तु मैं ने उस बँबईको क्यों वींधा" यह मैं नहीं जानसकी ॥ ६ ॥ राजा शर्यातिने अपनी कन्याका इस प्रकार कोमल वचन सुनकर विचार

पीडचमानंजनंवीक्ष्यपितरंदुःखितंतथा ॥ विचिंत्यशूलभेदंसासुकन्याचेदमब्रवीत् ॥ २ ॥ वनेमयापितस्तत्रवल्मीकोवीरुधावृतः ॥ क्रीडं त्यासुदृढोदृष्टश्छिद्रद्वयसमन्वितः ॥३॥ तत्रखद्योतवद्दीप्तज्योतिषीवीक्षितेमया ॥ सूच्याविद्धेमहाराजपुनःखद्योतशंकया ॥४॥ जलक्लिन्नातदासूचीमयाहृ ष्टापितःकिल ॥ हाहेतिचश्रुतःशब्दोमंदोवल्मीकमध्यतः ॥५॥ तदाहंविस्मिताराजन्किमेतादितिशंकया ॥ नजानेकिंमयाविद्धंतस्मिन्वल्मीकमंडले॥६॥ राजाश्रुत्वातुशर्यातिःसुकन्यावचनंमृदु ॥ मुनेस्तद्धेलनंज्ञात्वावल्मीकंक्षिप्रमभ्यगात् ॥ ७ ॥ तत्राऽपश्यत्तपोवृद्धंच्यवनंदुःखितंभृशम् ॥ स्फोटयामास वल्मीकंमुनिदेहावृतंभृशम् ॥ ८ ॥ प्रणम्यदंडवद्भूमौराजातंभार्गवंप्रति ॥ तुष्टावविनयोपेतस्तमुवाचकृतांजलिः ॥ ९ ॥ पुत्र्याममममहाभागक्रीडंत्यादुष्कृतं कृतम् ॥ अज्ञानाद्बालयात्रब्रह्मन्कृतंतत्क्षंतुमर्हसि ॥ १० ॥ अक्रोधनाहिमुनयोभवंतीतिमयाश्रुतम् ॥ तस्मात्त्वमपिबालायाःक्षंतुमर्हसिसाम्प्रतम् ॥ ११ ॥

किया कि, इससेही मुनिवरका अपमान हुआ है इसमें सन्देह नहीं. यह विचार तत्काल बँबईके समीप गये ॥ ७ ॥ वहीं जाकर मुनिवरकी देहरोधक, बँबईको तोडकर वेदनासे अत्यन्त कातर तपोवृद्ध च्यवन मुनिको देखा॥८॥तव राजा शर्यातिने पृथ्वीमें दण्डवत् प्रणामकर हाथ जोड भृगुनन्दन च्यवनकी विनीत भावसे स्तुति करके कहा ॥ ९ ॥ हे महाराज! मेरी कन्याने क्रीडा करते करते यह दुष्कार्य कियाहै अतएव हे महात्मन्! उस बालिकाने अज्ञानसे यह कार्य्य किया है आप उसको अपने उदारगुणसे क्षमा कीजिये॥ १०॥मैंने सुना है कि तपस्वीलोग सदाही कोपरहित हैं इसकारण आपकोभी उस अबोध बालिकाका अपराध क्षमा करना होगा॥ ११ ॥

व्यासजीने कहा महर्षिच्यवने राजाके इस प्रकार वचन सुन विशेषकर उनको विनीत और कातरभाव युक्त देखकर कहा ॥ १२ ॥ हेराजन् ! मैंने कभीभी अणुमात्र क्रोध नहीं किया है तुम्हारी कन्याने मुझको पीडित किया है तोभी कुपित होकर इस समय तुमको शाप नहीं दिया ॥ १३ ॥ किन्तु देखो मैं निरपराधी हूं और नेत्रोंकी पीड़ासे अत्यन्त दुःख उपस्थित हुआ है. हे महीपते ! बोध होताहै कि तुम उसी पापसे दुःखित और सन्तप्त हुए हो ॥ १४ ॥ यदि शिवभी स्वयं रक्षक हों तथापि देवीके भक्तका थोड़ा अपराध करकेभी कोई पुरुष सुखप्राप्तकरनेमें समर्थ नहीं होसक्ता ! ॥ १५ ॥ हे महीपाल ! एक मैं तो बुढापेसे जीर्ण हूं इसपरभी मैं नेत्रविहीन हुआ अब क्या उपाय करूं हे पार्थिव ! कौन पुरुष इस अन्धेकी अब सेवा करेगा ? सो आप मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! तपस्वीलोगोंका क्रोध क्षणस्थाई है आपभी तपस्यामें निरत हैं इसलिये आपका क्रोध असम्भव है अतएव आप दयाकरके उस बालिकाका अपराध क्षमा कीजिये. मेरे अनेक सेवक हैं वह आपकी

व्यासउवाच ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यच्यवनोवाक्यमब्रवीत् ॥ विनयोपनतंदृष्ट्वाराजानंदुःखितंभृशम् ॥ १२ ॥ च्यवनउवाच ॥ राजन्नाऽहंकदाचिद्वैकरोमिक्रोधमण्वपि ॥ नभयाऽद्यैवशप्तस्त्वंदुहित्रापीडनेकृते ॥ १३ ॥ नेत्रेपीडासमुत्पन्नाममचाऽद्यनिरागसः ॥ तेनपापेनजानामिदुःखितस्त्वंमहीपते ॥ ॥ १४ ॥ अपराधंपरंकृत्वादेवीभक्तस्यकोजनः ॥ सुखंलभेतयदपिभवेत्राताशिवःस्वयम् ॥ १५ ॥ किंकरोमिमहीपालनेत्रहीनोजरावृतः ॥ अंधस्यपरिचर्यांचकःकरिष्यतिपार्थिव ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ सेवकाबहवःसेवांकरिष्यंतितवाऽनिशम् ॥ क्षमस्वमुनिशार्दूलस्वल्पक्रोधाहितापसाः ॥ १७ ॥ च्यवनउवाच ॥ अंधोऽहंनिर्जनोराजंस्तपस्तप्तुंकथंक्षमः ॥ त्वदीयाःसेवकाःकिंतेकरिष्यंतिममाप्रियम् ॥ १८ ॥ क्षमापयसिचेन्मांत्वंकुरुमेवचनंनृप ॥ देहिमेपरिचर्यार्थंकन्यांकमललोचनाम् ॥ १९ ॥ तुष्येऽनयामहाराजपुत्र्यातवमहामते ॥ करिष्यामितपश्चाऽहंसामेसेवांकरिष्यति ॥ २० ॥ एवंकृतेसुखंमेस्यात्तवचैवभविष्यति ॥ संतुष्टेमयिराजेंद्रसैनिकानांनसंशयः ॥ २१ ॥ विचिंत्यमनसाभूपकन्यादानंसमाचर ॥ नचाऽत्रदूषणंकिंचित्तापसोऽहंयतव्रतः ॥ २२ ॥

निरन्तर सेवा करैंगे ॥ १७ ॥ च्यवनने कहा हेराजन् ! एक तो मेरा आत्मीय कोई निकट नहीं है इसपरभी अन्धा हुआहूं इस समय मैं किस प्रकार तपस्या करनेमें समर्थ हूंगा ? आपके सेवक मेरा प्रिय अनुष्ठान करैंगे यह मुझको बोध नहीं होता ॥ १८ ॥ हे नरपते ! यदि मुझको प्रसन्नकरना आप अपना इष्ट समझते हैं तो आप मेरा वचन प्रतिपालन कीजिये. मेरी सेवा करनेके लिये अपनी उसी कमलनयना कन्या रत्नको दो ॥ १९ ॥ हे महाराज ! आपकी उस कन्याको पानेसे परम सन्तुष्ट हूंगा मेरे तपस्यामें प्रवृत्त होनेपर वह मेरी सदा सेवा करेगी ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार करनेसे मुझको सुख होगा. कारण कि, उससे मैं सन्तुष्ट हूंगा और तभी आपका सैनिकलोगोंके सहित क्लेश दूर होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ हे भूपते ! आप मनमें यह विचारकर मुझको वह कन्या दीजिये. मैं यतव्रत

तपस्वीहूं इसकारण मुझको कन्या दे नेसे आपको किञ्चिन्मात्रभी दोष नहीं होगा॥ २२॥ व्यासजीने कहा हे भारत! राजा शर्यातिने मुनिवर च्यवनके वचन सुनकर चिन्तासे आकुल हुए, किन्तु कन्या देंगे अथवा नहीं यह कुछ न कहा॥ २३॥ राजाने विचारा कि, यह मेरी कन्या देवताओंकी कन्याके समान परमरूपवती है और यह मुनि वृद्ध कुरूप और विशेषकर अन्धे हैं अतएव यह कन्यारत्न इनको देकर किसप्रकार सुखी हूंगा ?॥ २४ ॥ कौन अल्पबुद्धि पापपरायण मनुष्य प्रकृत मंगल और अमंगल जानकर अपने सुखकी इच्छासे कन्याका संसारजनित सुख हरण करसक्ता है ॥ ॥ २५ ॥ वह सुभ्रू कन्या वृद्धच्यवनके समीप जाकर जब कामबाणसे पीड़ित होगी तब किसप्रकार इस अन्धे पतिको ले काल व्यतीतकरके सुखी होगी ?॥ २६ ॥ विशेषकर जब सुन्दरी स्त्रियें अपने अनुरूप पतिको प्राप्त करकेभी यौवनकालके समय कामशत्रुको जीतनेमें समर्थ नहीं होतीं ॥ २७ ॥ परमरूपवती अहल्याने तपस्वी गौतमसे विवाह किया किन्तु यौवनकालके समय उस वरवर्णिनीका रूपलावण्य देख

॥ व्यासउवाच ॥ शर्यातिर्वचनंश्रुत्वामुनेश्चिंतातुरोऽभवत् ॥ नदास्येऽप्यथवादास्येकिंचिन्नोवाचभारत ॥ २३ ॥ कथमंधायवृद्धायकुरूपायसुतामिमाम् ॥ देवकन्योपमांदत्वासुखीस्यामात्मसंभवाम् ॥ २४ ॥ कोवाऽऽत्मनःसुखार्थायपुत्र्याःसंसारजंसुखम् ॥ हरतेऽल्पमतिःपापोजानन्नपिशुभाशुभम् ॥ ॥२५॥ प्राप्यसाच्यवनंसुभ्रूःपंचबाणशरार्दिता ॥ अंधंवृद्धंपतिंप्राप्यकथंकालंनयिष्यति ॥ २६ ॥ यौवनेदुर्जयःकामोविशेषेणसुरूपया ॥ आत्मतुल्यंपतिंप्राप्यकिमुवृद्धंविलोचनम् ॥ २७ ॥ गौतमंतापसंप्राप्यरूपयौवनसंयुता ॥ अहल्यावासवेनाऽऽशुवंचितावरवर्णिनी ॥२८॥ शप्ताचपतिनापश्चाज्ज्ञात्वाधर्मविपर्ययम् ॥ तस्माद्भवतुमेदुःखंनददामिसुकन्यकाम् ॥२९॥ इतिसंचिंत्यशर्यातिर्विमनाःस्वगृहंययौ ॥ सचिवांश्चसमादायमंत्रंचक्रेऽतिदुःखितः ॥३०॥ भोमंत्रिणोब्रुवंत्वद्यकिंकर्तव्यंमयाऽधुना ॥ पुत्रीदेयाऽथविप्रायभोक्तव्यंदुःखमेववा ॥ ३१ ॥ विचारयध्वंमिलिताहितंस्यान्ममवैकथम् ॥ मंत्रिणऊचुः ॥ किंब्रूमोऽस्मिन्महाराजसंकटेऽतिदुरासदे ॥३२॥ दुर्भगायसुकन्यैषाकथंदेयाऽतिसुंदरी ॥ व्यासउवाच ॥ तदाचिंताकुलंवीक्ष्यापितरंमंत्रिणस्तदा ॥३३॥

इन्द्रने छलकर उसका धर्म नष्ट किया था ॥ २८ ॥ अन्तमें उसके पति गौतमने धर्मका विपरीत कार्य देखकर उनको शाप दिया. इस कारण उन ऋषिके शापसे मुझको दुःख उपस्थित हो तो भी मैं अपनी कन्याको नहीं देसक्ता ॥ २९ ॥ राजा शर्याति इसप्रकार चिन्तासे विमन हो अपने डेरेको गये और घर जायकर अत्यन्त कातर हृदयसे मंत्रियोंको बुलाय परामर्श करने लगे ॥ ३० ॥ हे मंत्रिगण! इस समय मुझको क्या करना उचित है? सो तुम कहो अब विप्रवरको कन्या देना उचित है अथवा दुःख भोगना उचित है ॥३१॥ क्या कार्यकरनेसे मेरा हित होगा. तुम सब लोग मिलकर उसका विचार करो. मंत्रियोंने कहा हे महाराज! इस दुस्तर संकटमें हम क्या कहैं ॥ ३२ ॥ आप किसप्रकार उस दुर्भग तपस्वीको यह परमसुन्दरी कन्या देंगे? द्वैपायनने कहा तब सुकन्या

पिता और मंत्रियोंको चिन्तामें नितान्त व्याकुल देखकर ॥ ३३ ॥ बुद्धिसे सब जानगई अनन्तर हँसते हँसते उसने अपने पितासे कहा हे पितः! आज आपका अन्तःकरण चिन्तासे आकुल क्यों देखती हूं॥ ३४॥बोध होताहै कि, आप मेरे निमित्तही दुःखसे अत्यन्त उद्विग्न होते हैं. हे पितः! उन मुनिवरको मैंने ही पीडित किया है अतएव मैंही वहां जाकर उनको समझाऊंगी ॥ ३५ ॥ अधिक क्या मैं उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करके उनको प्रसन्न करूंगी. राजा सुकन्याके इस प्रकार वचन सुन ॥ ३६ ॥ अत्यन्त सन्तुष्टचित्तसे मंत्रियोंके सामने उससे कहनेलगे हे पुत्रि! तुम अबला होकर वनमें मुनिवर च्यवन अन्धे ॥ ३७ ॥ जराजीर्ण देह और विशेषकर कोपनस्वभाव मुनिवरकी किसप्रकार सेवा करोगी? रूपलावण्यसे तुम रतिकी समानहो ॥ ३८ ॥ मैं अपने सुखकी इच्छासे उन जराजीर्णदेह अन्धे मुनिको किसप्रकार

सुकन्यात्विंगितंज्ञात्वाप्रहस्येदमुवाचह ॥ पितःकस्माद्भवानद्यचिंताव्याकुलितेंद्रियः ॥ ३४ ॥ मत्कृतेदुःखसंविग्नोविषण्णवदनोऽसिवै ॥ अहंगत्वामुनिंतत्रसमाश्वास्यभयार्दितम् ॥ ३५ ॥ करिष्यामिप्रसन्नंतमात्मदानेनवैपितः ॥ इतिराजावचःश्रुत्वाभाषितंयत्सुकन्यया ॥ ३६ ॥ तामुवाचप्रसन्नात्मासचिवानांचशृण्वताम् ॥ कथंपुत्रित्वमंधस्यपरिचर्यावनेऽवला ॥ ३७ ॥ करिष्यसिजरार्तस्यक्रोधनस्यविशेषतः ॥ कथमंधायचानेनरूपेणरतिसन्निभाम् ॥ ३८ ॥ ददामिजरयाग्रस्तदेहायसुखवांछया ॥ पित्रापुत्रीप्रदातव्यावयोज्ञातिबलायच ॥ ३९ ॥ धनधान्यसमृद्धायनाऽधनायकदाचन ॥ क्वतेरूपंविशालाक्षिक्वाऽसौवृद्धोवनेचरः ॥ ४० ॥ कथंदेयामयापुत्रीतस्मैचाऽतिवरायच ॥ उटजेनियतंवासोयस्यनित्यंमनोहरे ॥ ४१ ॥ कथमंबुजपत्राक्षिकल्पनीयोमयातव ॥ मरणंमेवरंप्राप्तंसैनिकानांतथैवच ॥ ४२ ॥ नतेप्रदानमंधायरोचतेपिकभाषिणि ॥ भवितव्यंभवत्येवधैर्येणैवत्यजाम्यहम् ॥ ४३ ॥

कन्यादान करूं? जिसके ज्ञाति, वयस्, बल, अतुल धान्य और धनरत्नादि विद्यमान् हैं पिता उसकोही कन्या देते हैं ॥ ३९॥ धनहीन मनुष्यको कभी कोई कन्या नहीं देते हे विशाललोचने! तुम अतिरूपलावण्यवती हो और तपस्वी अत्यन्त बूढे हैं ॥ ४०॥ इससे तुम दोनों में परस्पर बहुत भेद है और उन मुनिवरके विवाहकी अवस्था व्यर्तता होगईहै अतएव किस प्रकार मैं उनको कन्या दूं? हे कमलनयने! तुम सदा मनोहर अटारीमें वास करती हो ॥ ४१॥ इस समय मैं तुमको किस प्रकार सदाके लिये पर्णशालामें वास दूं? ॥ ४२ ॥ हे कोकिलभाषिणि! मैं और सैनिकलोग मृत्युके मुखमें पतित हों यहभी उचित है किन्तु तोभी तुम्हें उस अन्धे वरको कभी समर्पण नहीं करूंगा. जो

होनहार है वह हो किन्तु मैं कभी धैर्य्य न छोड़ूँगा॥ ४३॥ अतएव हे सुश्रोणि! तुम सावधान होओ मैं अन्धेको कभी कन्या नहीं दूंगा. हे बालिके! मेरा राज्य और देह रहे अथवा जाय इससे कुछ हानि नहीं है ॥ ४४ ॥ तथापि मैं किसी प्रकार तुम्हें उस नयनविहीन तपस्वीको नहीं दूंगा. पिताके इसप्रकार वचन सुन ॥ ४५ ॥ सुकन्या प्रसन्नमन हो उनसे अत्यन्त स्नेहमय वचन कहने लगी. हे पितः! आप मेरे लिये निरर्थक चिन्ता न कीजिये. इस समय उन मुनिवरको मुझे दीजिये ॥ ४६ ॥ तो सब मनुष्य सुखी होंगे इसमें सन्देह नहीं. मैं सन्तुष्ट होकर अत्यन्त भक्तिसहित ॥ ४७ ॥ परमपवित्र वृद्धपतिकी निर्जनवनमें सेवा करके परम प्रीतिलाभ करूंगी. मैं सतीधर्मपरायण हो व्रत करूंगी ॥ ४८॥ अनर्थक भोगवासनामें मेरी कुछभी इच्छा नहीं है. चित्त प्रकृतिस्थ हुआ है व्यासजीने कहा हे महाराज! मंत्रिवर्ग उसके यह

सुस्थिराभवसुश्रोणिनदास्येंधायकर्हिचित् ॥ राज्यंतिष्ठतुवायातुदेहोऽयंचतथैवमे ॥ ४४ ॥ नत्वांदास्याम्यहंतस्मैनेत्रहीनायबालिके ॥ सुकन्यातंतदाप्राहश्रुत्वातद्वचनंपितुः ॥ ४५ ॥ प्रसन्नवदनातीवस्नेहयुक्तमिदंवचः ॥ सुकन्योवाच ॥ नमेंचिंतापितःकार्यादेहिमांमुनये ऽधुना ॥ ४६ ॥ सुखंभवतुसर्वेषांलोकानांमत्कृतेनहि ॥ सेवयिष्यामिसंतुष्टापतिंपरमपावनम् ॥ ४७ ॥ भक्त्यापरमयाचापिवृद्धंचविजनेवने ॥ सती धर्मपराचाऽहंचरिष्यामिसुसंमतम् ॥ ४८ ॥ नभोगेच्छाऽस्तिमेतातस्वस्थंचित्तंममाऽनघ ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वाभाषितंतस्यामंत्रिणोविस्मयंगं ताः ॥ ४९ ॥ राजाचपरमप्रीतोजगाममुनिसन्निधौ ॥ गत्वाप्रणम्यशिरसातमुवाचतपोधनम् ॥ ५० ॥ स्वामिन्गृहाणपुत्रींमेसेवार्थंविधिवद्विभो ॥ इत्यु क्त्वाऽस्मैददौपुत्रींविवाहविधिनानृपः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्यमुनिःकन्यांप्रसन्नोभार्गवोऽभवत् ॥ पारिबर्हंनजग्राहदीयमानंनृपेणह ॥ ५२ ॥ कन्यामेवा ऽग्रहीत्कामंपरिचर्यार्थमात्मनः ॥ प्रसन्नेऽस्मिन्मुनौजातंसैनिकानांसुखंतदा ॥ ५३ ॥

वचन सुनकर अत्यन्त आश्चर्यमें हुये ॥ ४९ ॥ और राजाभी परमप्रसन्न होकर कन्याके सहित मुनिवरके समीप गये उनके निकट उपस्थित हो मस्तक झुकाय प्रणाम करके उन तपोधनसे कहा ॥ ५० ॥ हे प्रभो! अपनी सेवा करनेके लिये मेरी इस कन्याको ग्रहण कीजिये. यह कहकर राजाने विवाहकी विधिके अनुसार उनको कन्या दी ॥ ५१ ॥ च्यवनमुनी भी उसको प्रतिग्रहकर परमप्रसन्नहुए किन्तु राजाने व्यवहारोपयोगी जो सब यौतुकमें सामग्री दी थी वह कुछभी न ली॥ ॥ ५२ ॥ केवल अपनी सेवाके निमित्त कन्याको ग्रहण किया. इस प्रकार उन मुनिवरके प्रसन्न होनेपर सैनिकलोग तत्काल मलमूत्र त्यागकर सुखी हुए ॥ ५३ ॥

यह देखकर राजाका हृदय भी आनन्दरसमें भरगया राजाने कन्या देकर जब घर जानेकी इच्छा की ॥ ५४ ॥ तब उस कृशाङ्गी राजनन्दिनीने भूपतिसे कहा कन्याने कहा हे पितः! आप मेरे अलङ्कार और वस्त्रादि लेकर॥५५॥ पहरनेके निमित्त एक उत्तम उचित (मृगचर्म) और वल्कल दीजिये. हे पितः! मैं मुनियोंकी स्त्रियोंके समान वेष धारण करके इसप्रकार पतिकी सेवा करूंगी ॥ ५६ ॥ जिससे आपकी अतुल कीर्ति स्वर्ग पृथ्वी और पातालमें सर्वत्रही अक्षय होकर रहे ॥ ५७ ॥ और इसी प्रकार मैंभी जिससे परलोकमें परमसुख प्राप्तकर सकूं ऐसेही पतिके चरणोंकी सेवा करूंगी. मैं युवती और सुन्दरी हूं आप मेरे वृद्ध तपस्वीको देनेसे ॥ ५८ ॥ दूषित चरित्र होनेकी सम्भावना कर अणुमात्रभी चिन्ता न कीजिये. वसिष्ठकी धर्मपत्नी अरुन्धती जिसप्रकार पृथ्वीमें विख्यात हुई है ॥ ५९ ॥ मैंभी उसीके अनुसार सिद्धि

राज्ञश्चपरमाह्लादःसंजातस्तत्क्षणादपि ॥ दत्त्वापुत्रींयदाराजागमनायगृहंप्रति ॥ ५४ ॥ मतिंचकारतन्वंगीतदोवाचनृपंसुता ॥ सुकन्योवाच ॥ गृहाणममवासांसिभूषणानिचमेपितः ॥ ५५ ॥ वल्कलंपरिधानायप्रयच्छाजिनमुत्तमम् ॥ वेषंतुमुनिपत्नीनांकृत्वातपसिसेवनम् ॥ ५६ ॥ करिष्यामितथाताततयथातेकीर्तिरच्युता ॥ भविष्यतिभुवःपृष्ठेतथास्वर्गेरसातले ॥ ५७ ॥ परलोकसुखायाऽहंचरिष्यामिदिवानिशम् ॥ दत्त्वांधायचवृद्धायसुंदरींयुवतींतुमाम् ॥ ५८ ॥ चिंतात्वयानकर्तव्याशीलनाशसमुद्भवा ॥ अरुंधतीवसिष्ठस्यधर्मपत्नीयथाभुवि ॥ ५९ ॥ तथैवाऽहंभविष्यामिनाऽत्रकार्याविचारणा ॥ अनसूयायथासाध्वीभार्याऽत्रेःप्रथिताभुवि ॥ ६० ॥ तथैवाऽहंभविष्यामिपुत्रीकीर्तिकरीतव ॥ सुकन्यावचनंश्रुत्वाराजापरमधर्मवित् ॥ ६१ ॥ दत्त्वाऽजिनंरुरोदाऽऽशुवीक्ष्यतांचारुहासिनीम् ॥ त्यक्त्वाभूषणवासांसिमुनिवेषधरांसुताम् ॥ ६२ ॥ विवर्णवदनोभूत्वास्थितस्तत्रैवपार्थिवः ॥ राज्यःसर्वाः सुतांदृष्ट्वावल्कलाजिनधारिणीम् ॥ ६३ ॥ रुरुदुर्भृशशोकार्तावेपमानाइवाऽभवन् ॥ तामापृच्छ्यचमहीपालोमंत्रिभिःपरिवारितः ॥ ययौस्वनगरंराजन्मुक्त्वापुत्रींशुचाऽर्पिताम् ॥ ६४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥

प्राप्त करूंगी इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं. महर्षि अत्रिकी भार्या पतिव्रता अनसूयाने जिस प्रकार पृथ्वीमें ख्याती प्राप्त की है ॥ ६० ॥ उसीके अनुसार मैंभी आपकी पुत्री होकर कीर्ति स्थापन करूंगी. उस परमधर्मवित् राजाने सुकन्याके यहवचन सुनकर ॥ ६१ ॥ उसको अजिनादि दिये, उस चारुहासिनी कन्याने जब वसन भूषण त्यागकर मुनिकन्याओंका वेष धारणकिया ॥ ६२ ॥ तब राजा रोदनको न रोकसके और दुःखितमनसे उसीस्थानमें खड़े रहे. कन्याको वल्कल और अजिन पहरे हुए देखकर वह राजमहिषियें ॥ ६३ ॥ अत्यन्त शोकसन्तप्त हृदयसे कम्पायमान होकर रोनेलगीं. हे राजन्! तब महीपति शर्याति मुनिवर च्यवनको कन्या देकर उनसे विदा ले मंत्रियोंके संग शोकसन्तप्तहृदयसे अपने घरको चले आये ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा शर्यातिके घर चले जानेपर फिर वह बाला सुकन्या अपने धर्ममें निरत रहकर अग्नि और अपने पतिकी सेवा करनेलगी ॥ १ ॥ वह षोडशवर्षीय सुकन्या पतिकी सेवामें तत्पर होकर अनेकप्रकारके स्वादिष्ठ फलमूलके संग्रहकर मुनिवरके लिये भक्षणको देती ॥ २ ॥ वह स्नानके समय उष्णजलसे पतिको स्नान और मृगचर्म पहराकर पवित्रकुशासनपर बैठाती ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कुश तिल और कमण्डलु सन्मुख स्थापित करके कहती. हे मुनिवर! आप नित्य कार्य कीजिये ॥ ४ ॥ नित्यकर्म समाप्त होनेपर वह बाला उनका हाथ ग्रहणपूर्वक उठाय कुशासन अथवा अन्य बिछौनेपर बैठाती ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त वह राजकन्या पकेहुए फल और सुसंस्कृत नीवार अन्न लाकर च्यवनमुनिको भोजन कराती ॥ ६ ॥ पतिके भोजन करके तृप्त होनेपर फिर परम

॥ व्यासउवाच ॥ गतेराजनिसाबालापतिसेवापरायणा ॥ बभूवचतथाऽग्नीनां सेवनेधर्मतत्परा ॥१॥ फलान्यादायस्वादूनिमूलानिविविधानिच ॥ ददौसामुनयेबालापतिसेवापरायणा ॥ २ ॥ पतिंततोदकेनाऽऽशुस्नापयित्वामृगत्वचा ॥ परिवेष्ट्यचशुभायांतुबृस्यांस्थापितवत्यपि ॥३॥ तिलान्यवकुशानग्रे परिकल्प्यकमंडलुम् ॥ तमुवाचनित्यकर्मकुरुष्वमुनिसत्तम ॥ ४ ॥ तमुत्थाप्यकरेकृत्वासमाप्तेनित्यकर्मणि ॥ बृस्यांवासंस्तरेबालाभर्तारंसंन्यवेशयत् ॥ ॥ ५ ॥ पश्चादानीयपक्वानिफलानिचनृपात्मजा ॥ भोजयामासच्यवनंनीवारान्नंसुसंस्कृतम् ॥ ६ ॥ भुक्तवंतंपतिंतृप्तंदत्त्वाऽऽचमनमादरात् ॥ पश्चात्पूगंपत्राणिददौचाऽऽदरसंयुता ॥ ७ ॥ गृहीतमुखवासंतंसंवेश्यचशुभासने ॥ गृहीत्वाज्ञांशरीरस्यचकारसाधनंततः ॥ ८ ॥ फलाहारंस्वयंकृत्वापुनर्गत्वाचसन्निधौ ॥ प्रोवाचप्रणयोपेताकिमाज्ञापयसेप्रभो ॥ ९ ॥ पादसंवाहनंतेऽद्यकरोमियदिमन्यसे ॥ एवंसेवापरानित्यंबभूवपतितत्परा ॥ ॥ १० ॥ सायंहोमावसानेसाफलान्याहृत्यसुंदरी ॥ अर्पयामासमुनयेस्वादूनिचमृदूनिच ॥ ११ ॥ ततः शेषाणिबुभुजेप्रेमयुक्तातदाज्ञया ॥ सुस्पर्शास्तरणंकृत्वाशाययामासतंमुदा ॥ १२ ॥

भक्ति सहित आचमनीय जलसे उनके मुख पाँव धुलाकर आदरपूर्वक ताम्बूल और पूगादि देती ॥ ७ ॥ उनके मुखशुद्धि ग्रहण करनेपर फिर उनको उत्तम आसनपर बैठाल उनकी आज्ञा ग्रहणपूर्वक अपने शरीरका संस्कार करती ॥ ८ ॥ अनन्तर मुनिवरके भक्षणसे बचे हुए फल मूलादि स्वयं आहारकर फिर पतिके समीप जाय विनय सहित कहती हे प्रभो! अब क्या करूं? आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ आप यदि अनुमति देतो आपके चरण दबाऊं इस प्रकार पतिके प्रति अनुरागिणी होकर राजबाला सदा पतिकी सेवामें काल व्यतीत करने लगी ॥ १० ॥ सायं कालके समय होमकार्य समाप्त होनेपर वह सुन्दरी स्वादिष्ठ और कोमल फल लायकर उनको भक्षणार्थ देती ॥ ११ ॥ तदन्तर उनकी आज्ञा लेकर भोजनसे बचे हुए फल स्वयं भक्षण करती इसके उपरान्त सुखस्पर्श आस्तरण बनाकर प्रीति सहित उनको शयन कराती ॥ १२ ॥

प्रियतम पतिके सुखपूर्वक शयन करनेपर फिर वह कृशोदरी राजकुमारी उनके पाँव दबाते दबाते सम्पूर्ण कुलस्त्रियोंके धर्मविषयक प्रश्न पूँछती ॥ १३ ॥ रात्रि कालके समय पदसेवा करते करते जब मुनिवर सोजाते तब वह भक्तिपरायण होकर उनके पदतलमें शयन करती ॥ १४ ॥ ग्रीष्म कालके समय पति जब पसीनेमें भीगते तब वह भामिनी तालके पंखेसे व्यजन करके शीतल वायुद्वारा अपने पतिकी सेवामें नियुक्त रहती ॥ १५ ॥ हेमन्तकालके समय काष्ठ इकट्ठाकर पतिके सन्मुख अग्नि जलाय वारंवार पूँछती हे मुनिवर! इससे आपको सुख तो अनुभव होता है ॥ १६ ॥ वह पतिपरायण राजकन्या सूर्योदयसे पहले शय्यासे उठती फिर पतिको उठाय कर शौचके लिये आश्रमसे कुछेक दूर बैठालती ॥ १७ ॥ और हाथ पाँवआदि प्रक्षालनके लिये मृत्तिका और जल उनके निकट रख आप दूर बैठकर प्रतीक्षा करती उनका शौचकार्य समाप्त हुआ जान समीप जाय पतिका हाथ पकड़ ॥ १८ ॥

सुप्तेसुखंप्रियेकांतापादसंवाहनंतदा ॥ चकारपृच्छतीधर्मंकुलस्त्रीणांकृशोदरी ॥ १३ ॥ पादसंवाहनंकृत्वानिशिभक्तिपरायणा ॥ निद्रितं चमुनिंज्ञात्वासुष्वापचरणांतिके ॥ १४ ॥ शुचौप्रतिष्ठितंवीक्ष्यतालवृंतेनभामिनी ॥ कुर्वाणाशीतलंवायुंसिषेवेस्वपतिंतदा ॥ १५ ॥ हेमंते काष्ठसंभारंकृत्वाऽग्निज्वलनंपुरः ॥ स्थापयित्वातथाऽपृच्छत्सुखंतेऽस्तीतिचाऽसकृत् ॥ १६ ॥ ब्राह्ममुहूर्तेचोत्थायजलंपात्रंचमृत्तिकाम् ॥ समर्पयित्वाशौचार्थंसमुत्थाप्यपतिंप्रिया ॥ १७ ॥ स्थानाद्दूरेचसंस्थाप्यदूरंगत्वास्थिराऽभवत् ॥ कृतशौचंपतिंज्ञात्वागत्वाजग्राहतंपुनः ॥१८॥ आनीयाऽऽश्रममध्यस्थाचोपवेश्याऽऽसनेशुभे ॥ मृज्जलाभ्यांचप्रक्षाल्यपादावस्ययथाविधि ॥ १९ ॥ दत्त्वाचमनमात्रंतुदंतधावनमाहरत् ॥ समर्प्यदंतकाष्ठंचयथोक्तंनृपनंदिनी ॥ २० ॥ चकारोष्णंजलंशुद्धंसमानीतंसुपावनम् ॥ स्नानार्थंजलमाहृत्यपप्रच्छप्रणयान्विता ॥ २१ ॥ किमाज्ञापयसेब्रह्मन्कृतंवैदंतधावनम् ॥ उष्णोदकंसुसंपन्नंकुरुस्नानंसमंत्रकम् ॥ २२ ॥ वर्ततेहोमकालोऽयंसंध्यापूर्वाप्रवर्तते ॥ विधिवद्धवनंकृत्वादेवतापूजनंकुरु ॥ २३ ॥ एवंकन्यापतिंलब्ध्वातपस्विनमनिंदिता ॥ नित्यंपर्यचरत्प्रीत्यातपसानियमेनच ॥ २४ ॥ अग्नीनामतिथीनांचशुश्रूषांकुर्वतीसदा॥आराधयामाससुदाच्यवनंसाशुभानना॥२५॥

धीरे धीरे आश्रममें लाती, इसके उपरान्त मुनिवरको पवित्र आसनपर बैठाल फिर मृत्तिका और जलसे उनके दोनों चरण यथाविधि धोती ॥ १९ ॥ राजनन्दिनी पतिको आचमनपात्र देकर शास्त्रविहित दन्तधावनकाष्ठ लाकर समर्पण करती ॥ २० ॥ पवित्र निर्मल जल लाकर उसको उष्ण करती वह जल स्नानके लिये लायकर प्रीति सहित पूँछती ॥ २१ ॥ हे स्वामिन्! आपका दन्तधावन कार्य तो हो गया, जल उष्ण किया है आपकी आज्ञा पानेपर लाऊंगी आप उस तप्तजलसे समन्त्रक स्नान कीजिये ॥ २२ ॥ प्रातःसन्ध्या उपस्थित है, अतएव अब आपके होमका समय होगया है, यथाविधि होम कर देवताओंकी पूजा कीजिये ॥ २३ ॥ निर्मलस्वभाव राजदुहिता तपस्वी च्यवनको पति प्राप्तकरके इस प्रकार तपस्या नियम और प्रीति सहित सदा उनकी सेवामें प्रवृत्त रहती ॥ २४ ॥ वह सुमुखी राजबाला अग्नि और

अतिथियोंकी सदा सेवा और शुश्रूषा करके आनन्दमनसे महर्षि च्यवनकी आराधना करने लगी ॥ २५ ॥ फिर किसी समयमें सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते करते इच्छानुसार महर्षिच्यवनके आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ २६ ॥ तब सर्वाङ्गसुन्दरी राजकन्या पवित्रजलसे स्नानकर आश्रममें आती थी, उसी समय उन दोनों अश्विनीकुमारोंने उसको देखा ॥ २७ ॥ वह देवकन्याकी समान उसका रूप लावण्य देखकर मोहित हो शीघ्र समीप आय आदर सहित उससे पूँछने लगे ॥ २८ ॥ हे गजगामिनि ! देखो हम देवताओंके पुत्र हैं आपसे कोई विषय पूँछनेकेलिये आये हैं अतएव हे वरारोहे ! हमारे अनुरोधसे आप क्षणकाल प्रतीक्षा कीजिये. हे शुचिस्मिते ! हे चारुलोचने ! आप किसकी कन्या हैं ? और किस महात्माने आपका पाणिग्रहण किया है ? आप उद्यान मध्यस्थित इस तडागमें

कस्मिंश्चिदथकालेतुरविजावश्विनावुभौ ॥ च्यवनस्याऽऽश्रमाभ्याशेक्रीडमानौसमागतौ ॥ २६ ॥ जलेस्नात्वातुतांकन्यांनिवृत्तांस्वाश्रमंप्रति ॥ गच्छंतीं चारुसर्वांगींरविपुत्रावपश्यताम् ॥२७॥ तांदृष्ट्वादेवकन्याभांगत्वाचांतिकमादरात् ॥ ऊचतुःसमभिद्रुत्यनासत्यावतिमोहितौ ॥ २८ ॥ क्षणंतिष्ठवरारोहे प्रष्टुंत्वांगजगामिनि ॥ आवांदेवसुतौप्राप्तौब्रूहिसत्यंशुचिस्मिते ॥२९॥ पुत्रीकस्यपतिःकस्तेकथमुद्यानमागता ॥ एकाकिनीतडागेऽस्मिन्स्नानार्थंचारुलोचने ॥ ३० ॥ द्वितीयाश्रीरिवाऽऽभासिकांत्याकमललोचने ॥ इच्छामस्तुवयंज्ञातुंतत्त्वमाख्याहिशोभने ॥ ३१ ॥ कोमलौचरणौकांतेस्थितौभूमावनावृतौ ॥ हृदयेकुरुतःपीडांचलंतौचललोचने ॥३२॥ विमानार्हासितन्वंगिकथंपद्भ्यांव्रजस्यदः ॥ अनावृताऽत्रविपिनेकिमर्थंगमनंतव ॥ ३३ ॥ दासीशत समायुक्ताकथंनत्वंविनिर्गता ॥ राजपुत्र्यप्सरावाऽसिवदसत्यंवरानने ॥३४॥ धन्यामातायतोजाताधन्योऽसौजनकस्तव ॥ वक्तुंत्वां नैवशक्तौचभर्तुर्भाग्यं तवाऽनघे ॥ ३५ ॥

अकेली स्नान करनेके लिये क्यों आई हैं ? ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे कमलाक्षि ! तुम्हारा जिसप्रकार सौन्दर्य है इससे हमको दूसरी हरिवल्लभा बोध होती हो. हे शोभने ! हम आपसे कुछ जाननेकी इच्छा करते हैं आप यथार्थरूपसे वह विषय कहिये ॥ ३१ ॥ हे कान्ते ! तुम्हारे दोनों चरण अत्यन्त कोमल हैं. अतएव पादत्राण न पहरकर अनावृतभावसे उनको पृथ्वीमें रखती है. हे चंचलनयने ! तुम्हारे चरण जब पृथ्वीमें पडते हैं तब हमारे हृदयमें क्लेश उपस्थित होता है ॥ ३२ ॥ हे कृशोदरि ! तुम्हारा देह जिसप्रकार कोमल है, इससे तुमको विमानपर चढकर गमनागमन करता उचित्त है किन्तु ऐसा न करके क्यों पैरों इस कठिन पृथ्वीमें गमन करती हो ॥ ३३ ॥ तुम्हारे संग शतशत दासी क्यों नहीं निकालती ? हे वरानने ! तुम राजकन्या अथवा अप्सरा हो यह हमसे सत्य कहो ॥ ३४ ॥ हे अनघे ! जिन पिता मातासे तुम्हारा

जन्म हुआ है वह भी धन्य हैं विशेषकर जिस मनुष्यके संग तुम्हारा विवाह हुआ है उसका सौन्दर्य वर्णन करनेमें हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३५ ॥ हे सुलोचने! तुम्हारे दोनों चरण इधर उधर चलकर इस पृथ्वीको पवित्र करते हैं अतएव यह उद्यान आज देवलोककी अपेक्षा भी पवित्र बोध होता है ॥ ३६ ॥ जो सम्पूर्ण मृग और पक्षिकुल इच्छानुसार तुमको देखते हैं उनके सौभाग्यकी सीमा नही है अधिक क्या तुम्हारे चरण स्पर्शसे यह वनभूमि अत्यन्त पवित्र बोध होती है ॥ ३७ ॥ हे सुलोचने ! तुम्हारे रूपकी अधिक प्रशंसा करना निष्प्रयोजन है तुम्हारे पिता अथवा माता कौन हैं ? यह हमसे सत्य कहो हम आदर सहित उनको देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह सर्वाङ्गसुन्दरी राजकुमारी उनके यह वचन सुन लज्जित भावसे

देवलोकाधिकाभूमिरियंचैवसुलोचने ॥ प्रचलंश्चरणस्तेऽद्यसंपावयतिभूतलम् ॥ ३६ ॥ सौभाग्याश्चमृगाःकामंयेत्वांपश्यंतिवैवने ॥ येचाऽन्येपक्षिणःसर्वे भूरियंचाऽतिपावना ॥ ३७ ॥ स्तुत्याऽलंतवचाऽत्यर्थंसत्यंब्रूहिसुलोचने॥ पिताकस्तेपतिःक्काऽसौद्रष्टुमिच्छाऽस्तिसादरम् ॥ ३८ ॥ व्यासउवाच ॥ तयोरितिवचःश्रुत्वाराजकन्याऽतिसुंदरी ॥ तावुवाचत्रपाक्रांतादेवपुत्रौनृपात्मजा ॥ ३९ ॥ शर्यातितनयांमांवांवित्तंभार्यांमुनेरिह ॥ च्यवनस्यसतींकां तांपित्रादत्तांयदृच्छया ॥ ४० ॥ पतिरंधोऽस्तिमेदेवौवृद्धश्चाऽतीवतापसः ॥ तस्यसेवामहोरात्रंकरोमिप्रीतमानसा ॥ ४१ ॥ कौयुवांकिमिहाऽऽयातौपतिस्तिष्ठतिचाऽऽश्रमे ॥ तत्राऽऽगत्यप्रकुरुतमाश्रमंचाऽद्यपावनम् ॥ ४२ ॥ तदाकर्ण्यवचोदस्रावूचतुस्तांनराधिप ॥ कथंत्वमपिकल्याणि पित्रादत्तातपस्विने ॥ ४३ ॥

उन दोनों देवकुमारोंसे कहने लगी ॥ ३९ ॥ मैं शर्याति राजाकी कन्या हूं पिताने मुझे दैवकी इच्छासे महर्षि च्यवनको दिया है मैं उनकी प्रियतमा साध्वी भार्या हूं वह महर्षि इसी स्थानमें वास करते हैं ॥ ४० ॥ हे दोनों देवताओ ! मेरे पति नयनविहित तापस और अत्यन्त वृद्ध हुए हैं, अतएव मैं सती धर्मानुसार प्रसन्नमनसे रात दिन उनकी सेवा करती हूं ॥ ४१ ॥ आप कौन हैं ? और किसलिये इस स्थानमें आये हैं ? हमारे पति आश्रममें स्थिति करते हैं अतएव कृपा करके उस स्थानमें चलकर अब आश्रमको पवित्र कीजिये ॥ ४२ ॥ हे नरनाथ ! दोनों अश्विनीकुमारोंने इस प्रकार वचनसुनकर उससे कहा हे कल्याणि ! किसकारणसे तुम्हारे

पिताने वृद्धतपस्वीको ऐसा कन्यारत्न दिया ॥ ४३ ॥ तुम इस विजन वनमें स्थिर सौदामिनीकी समान शोभा पाती हो और अधिक क्या कहें तुम्हारी समान रूपवती कामिनी हमारे देवलोकमेंभी दिखाई नहीं देती ॥ ४४ ॥ अहो ! दिव्यवसन सर्वविधि आभरण और नीलवर्ण अलकावलीही तुम्हारे पक्षमें शोभा पाती है इस प्रकार मृगचर्म और वल्कलादि तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ४५ ॥ हे रम्भोरु ! तुम विशालनेत्रोंवाली हो तथापि विधाताने तुमको अन्धे विशेषकर अत्यन्त जरातुर पति दिया है तुम उन्हीं अन्धे पतिको प्राप्त करके निरन्तर इस वनमें दुःखी होती हो इसकी अपेक्षा विधाताका अन्याय कार्य और क्या होसक्ता है? ॥ ४६ ॥ हे मृगाक्षि ! उस मुनिवरको तुमने निरर्थक पतित्वमें वरण किया है तुम्हारा यह नवयौवन समयमें उन अन्धे पतिके संग कभी शोभा नहीं पावेगा तुम नृत्यविद्यामें चतुर हो

भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशेविद्युत्सौदामनयिथा ॥ नदेवेष्वपितुल्याहितवदृष्टाऽस्तिभामिनी ॥४४॥ त्वंदिव्यांबरयोग्याऽसिशोभसेनाऽजिनैर्वृता ॥ सर्वाभरणसंयुक्तानीलालकवरूथिनी ॥४५॥ अहोविधेर्दुष्कलितंविचेष्टितंयदत्ररंभोरुवनेविषीदसि ॥ विशालनेत्रेंधमिमंपतिंप्रियेमुनिंसमासाद्यजरातुरंभृशम् ॥४६॥ वृथावृतस्तेनभृशंनशोभसेनवंवयःप्राप्यसुनृत्यपंडिते ॥ मनोभवेनाऽऽशुशराःसुसंधिताःपतंतिकस्मिन्पतिरीदृशस्तव ॥४७॥ त्वमंधभार्यानवयौवनान्विताकृताऽसिधात्राननुमंदबुद्धिना ॥ नचैनमर्हस्यसितायतेक्षणेपतिंत्वमन्यंकुरुचारुलोचने ॥ ४८ ॥ वृथैवतेजीवितमंबुजेक्षणेपतिंचसंप्राप्यमुनिंगतेक्षणम् ॥ वनेनिवासंचतथाऽजिनांबरप्रधारणंयोग्यतरंनमन्महे ॥ ४९ ॥ अतोऽनवद्यांग्युभयोस्त्वमेककंवरंकुरुष्वावहितासुलोचने ॥ किंयौवनंमानिनिसंकरोषिवृथामुनिंसुंदरिसेवमाना ॥ ५० ॥ किंसेवसेभाग्यविवर्जितंतंसमुज्झितंपोषणरक्षणाभ्याम् ॥ त्यक्त्वामुनिंसर्वसुखापवर्जितंभजाऽनवद्यांग्युभयोस्त्वमेकम् ॥ ५१ ॥

किन्तु पति अन्धे और जारातुर हैं तुम्हारे नृत्य करनेपर जब कामदेव शरसन्धान करेगा तब वह शर किसके ऊपर पतित होंगे ? ॥ ४७ ॥ हे आयतलोचने ! वह विधाता अत्यन्त अल्पबुद्धि है ! ; नहीं तो तुमको इस प्रकार नवयौवनसे भूषितकर अन्धेकी भार्या क्यों करता ? हे चारुलोचने ! तुम कभी उसके उपयुक्त नहीं हो इस कारण दूसरा पति करो ॥ ४८ ॥ हे कमलनयने ! तुम्हारा पति एक तो नयनविहीन और तिसपरभी तपस्वी है. अतएव तुम्हारा जीवनधारणा करना वृथा है ! विशेषकर वनमें वास और अजिनअम्बरपरिधान तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥ हे असितनयने ! तुम्हारे सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग मनोहर हैं अतएव भलिभाँति विचार कर हम दोनोंमेंसे एकको पति करो. हे भामिनि ! तुम इस प्रकार रूपवती होकर मुनिकी सेवा करके वृथा यौवन क्यों क्षय करती हो ? ॥ ५० ॥ उन मुनिवरका कोई

सौभाग्य नहीं दिखाई देता. विशेषकर तुम्हारे भरणपोषण अथवा रक्षण दर्शन करनेकीभी उनमें सामर्थ्य नहीं है. तब वृथा क्यों उनकी सेवा करती हो ? हे अनिन्दिते ! सर्वसुखरहित मुनिवरको त्यागकर हम दोनोंमेंसे एकके संग विवाह करो ॥ ५१ ॥ "हे कान्ते" ! तो नन्दनकानन अथवा चैत्ररथ वनमें विहार कर सकोगी. हे मानिनि ! अन्धे अथवा वृद्ध पतिके सहित गौरवविहीन होकर तुम किस प्रकार काल व्यतीत करोगी ? ॥ ५२ ॥ एक तो तुम शुभलक्षणोंसे विभूषित तिसपरभी फिर राजकन्या हो अतएव संसारके यावतीय विहारभाव तुमको अविदित नहीं है. इस कारण भाग्यविहीन होकर इस गहनकाननमें वृथा क्यों काल व्यतीतकरती हो ॥ ५३ ॥ हे राजपुत्रि ! तुम्हारा वदन अत्यन्त मनोहर नेत्र विशाल कटि क्षीण और तुम्हारे वचन कोकिलकी समान मीठे हैं, अतएव तुम्हारी

त्वंनंदनेचैत्ररथेवनेचकुरुष्वकांतिप्रथितंविहारम् ॥ अंधेनवृद्धेनकथंहिकालंविनेष्यसेमानिनिमानहीनम् ॥ ५२ ॥ भूपात्मजात्वंशुभलक्षणाच जानासिसंसारविहारभावम् ॥ भाग्येनहीनाविजनेवनेऽत्रकालंकथंवाहयसेवृथाच ॥ ५३ ॥ तस्माद्भजस्वपिकभाषिणिचारुवक्त्रेएकंद्वयोस्तवसुखाय विशालनेत्रे ॥ देवालयेषुचकृशोदरिभुंक्ष्वभोगांस्त्यक्त्वामुनिंजरठमाशुनृपेंद्रपुत्रि ॥ ५४ ॥ किंतेसुखंयत्रवनेसुकेशिवृद्धेनसार्धंविजनेमृगाक्षि ॥ सेवातथांधस्यनवंवयश्चकिंतेमतंभूपतिपुत्रिदुःखम् ॥ ५५ ॥ शशिमुखित्वमतीवसुकोमलाफलजलाहरणंतवनोचितम् ॥ ५६ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ तयोस्तद्भाषितंश्रुत्वावेपमानानृपात्मजा ॥ धैर्यमालंब्यतौतत्रवभाषेमितभाषिणी ॥ १ ॥ देवौवांरविपुत्रौचसर्वज्ञौसुरसंमतौ ॥ सतींमांधर्मशीलांचनैवंवदितुमर्हथ ॥ २ ॥

अपेक्षा सुन्दरी कौन है ! तुम वृद्धतपस्वीको इससमय त्यागकर सुखके लिये हममेंसे एककी भजना करो तो त्रिदशालयमें अनुपम भोग्यवस्तु भोगसकोगी ॥ ५४ ॥ हे सुकेशि ! अन्धेके सहित इस वनमें वास करके तुमको क्या सुख होगा ? हे मृगाक्षि ! तुम्हारा इस नवयौवन और इस अवस्थाके समय वनमें रहकर वृद्धकी सेवा करना अत्यन्त क्लेशकर है. हे राजपुत्रि ! क्या तुमको दुःखही वाञ्छित है ॥ ५५ ॥ हे शशिमुखि ! तुम अत्यन्त कोमलाङ्गी दिखाई देतीहो अतएव जल और फल लाना तुम्हारा उचित कार्य नहीं है ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! यह वचन सुन राजकन्या सुकन्या पहले भयसे काँपनेलगी फिर वह मितभाषिणी बाला धैर्य्य अवलम्बनकर दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहनेलगी ॥ १ ॥ आप सूर्य्यके पुत्र और सुरगणोंके सुसम्मत देवता हैं विशेषकर

१ यह वचन परीक्षार्थ कहे हैं ।

आप सम्पूर्ण विषय जानते हैं मैं धर्म्मपरायण सती हूं मुझसे ऐसा वचन कहना आपको उचित नहीं है ॥ २ ॥ हे सुरद्वय! पिताने मुझे योग्य धर्म्मावलम्बी मुनिको दिया है इसपर भी मैं सती होकर किसप्रकार वेश्याओंके अवलम्बित मार्ग में जाऊं? ॥ ३ ॥ वह सूर्य्य सबके कार्य अकार्यके साक्षिस्वरूप हैं अतएव वह मेरे सम्पूर्ण कार्य्य देखते हैं और आप दोनोंने महात्मा कश्यपके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, इसप्रकार पवित्र देवताके उरसे पवित्रवंशमें उत्पन्न हो ऐसा अधर्म्मकर और अकीर्त्तिकर वचन कहना आपको अत्यन्त अनुचित है ॥ ४ ॥ इस असार संसारमें धर्म क्या अथवा अधर्म क्या है यह आप भलीभाँति जानते हैं हेरविपुत्रो! कुलकन्या हो पतित्याग कर किसप्रकार अन्यपुरुषकी भजना करूं ॥ ५ ॥ आप विमलस्वभाव देवता हैं महाराज ! मैं शर्यातिकी कुलकन्या विशेषकर पतिके प्रति अत्यन्त अनुरक्त और धर्मपरायण हूं अतएव आप इच्छानुसार अपने स्थानमें जाइये ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे भारत ! दोनों अश्विनीकुमार उसके यह वचन

पित्रादत्तासुरश्रेष्ठौमुनयेयोगधर्मिणे॥कथंगच्छामितंमार्गपुंश्चलीगणसेवितम्॥३॥ द्रष्टाऽयंसर्वलोकस्यकर्मसाक्षीदिवाकरः॥ कश्यपाच्चैवसंभूतौनैवंभाषितुमर्हथः॥४॥कुलकन्यापतिंत्यक्त्वाकथमन्यंभजेन्नरम्॥असारेऽस्मिन्हिसंसारेजानंतौधर्मनिर्णयम्॥५॥यथेच्छंगच्छतंदेवौशापंदास्यामिवाऽनघौ॥ सुकन्याऽहंचशर्यातेःपतिभक्तिपरायणा॥६॥व्यासउवाच॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यानासत्यौविस्मितौभृशम्॥तावब्रूतांपुनस्त्वेनांशंकमानौभयंमुनेः॥७॥राजपुत्रिप्रसन्नौतेधर्मेणवरवर्णिनि॥ वरंवरयसुश्रोणिदास्यावःश्रेयसेतव॥८॥ जानीहिप्रमदेनूनमावांदेवभिषग्वरौ॥युवानंरूपसंपन्नंप्रकुर्यावपतिंतव॥९॥ ततस्त्रयाणामस्माकंपतिमेकतमंवृणु॥ समानरूपदेहानांमध्येचातुर्यपंडिते॥१०॥ सातयोर्वचनंश्रुत्वाविस्मितास्वपतिंतदा॥ गत्वोवाचतयोर्वाक्यंताभ्यामुक्तंयदद्भुतम्॥११॥ सुकन्योवाच॥ स्वामिन्सूर्यसुतौदेवौसंप्राप्तौच्यवनाश्रमे॥ दृष्टौमयादिव्यदेहौनासत्यौभृगुनंदन॥१२॥

सुनकर अत्यन्त आश्चर्य्ययुक्त हुए और मुनिवरके भयसे शंकित होकर फिर उससे कहनेलगे॥७॥ हेराजकुमारी! तुम्हारा पतिव्रत धर्म्म देखकर हम प्रसन्न हुए हैं अतएव हे वरवर्णिनि ! तुम अभिलषित वर माँगो. हे सुश्रोणि ! तुम्हारे मंगलके लिये हम तुमको वर देंगे ॥ ८ ॥ हे भामिनि ! हम देवताओंके वैद्य हैं तुम निश्चय जानों कि हम तुम्हारे पतिको परमरूपवान् सुन्दर युवा करेंदेंगे ॥ ९ ॥ हेसुचतुरे ! जब हम तीनोंका समानरूप समान अवस्था और समान देहकी कान्ति होगी तब तुम तीनोंमेंसे जिसकी रुचि हो एकको पतित्वमें वरणकरो ॥ १० ॥ सुकन्या उनके यह वचनसुनकर आश्चर्य्ययुक्त हो अपने पतिके समीप गई अनन्तर दोनों देवताओंके वैद्योंने जो बात कही थी वह सम्पूर्ण मुनिवरसे निवेदन की ॥ ११ ॥ सुकन्याने कहा हे स्वामिन् ! सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार मेरे आश्रमके समीप

तपोवनमें उपस्थित हुए हैं उन दोनों दिव्यदेह देवताओंका मैं ने दर्शन किया है ॥ १२ ॥ वह मेरा सर्वाङ्ग सुन्दर देह देखकर कामातुर हो मुझसे कहनेलगे कि तुम्हारे उन अन्धे पति मुनिवरको दिव्य देह नवयौवन ॥ १३ ॥ और दोनों नेत्र फिर उत्तम करेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु तुमको एक नियम करना होगा वह कहते हैं सुनो ॥ १४ ॥ तुम्हारे उन वृद्धपतिका अंगभी अपनी समान करदेंगे किन्तु फिर हम तीनोंमें से एकको पतित्वमें वरण करना होगा ॥ १५॥ हेसाधो! यह सुनकर इस अद्भुत कार्यका विषय आपको विदित करती हूं अतएव इस संकटके कार्यमें क्या करना चाहिये? आप यह भलीभाँति विचारकर कहिये ॥ १६ ॥ देवताओंकी माया जाननी अत्यन्त कठिन है विशेषकर वह किस अभिप्रायसे ऐसा कहते हैं यह मैं नहीं जानती. हेसर्वज्ञ! आप जो अनुमति करें तो मैं आपका वह

वीक्ष्यमांचारुसर्वांगींजातौकामातुरावुभौ ॥ कथितंवचनंस्वामिन्पतिंतेनवयौवनम् ॥ १३॥ दिव्यदेहंकरिष्यावश्चक्षुष्मंतंमुनिंकिल ॥ एतेनसमयेनाऽद्यतंशृणुत्वंमयोदितम् ॥ १४ ॥ समावयवरूपंचकरिष्यावःपतिंतव ॥ तत्रत्रयाणामस्माकंपतिमेकंकृतमंवृणु ॥१५॥ तच्छ्रुत्वाऽहमिहाऽऽयाताप्रष्टुंत्वांकार्यमद्भुतम् ॥ किंकर्तव्यमतःसाधोब्रूह्यस्मिन्कार्यसंकटे ॥ १६ ॥ देवमायाऽपिदुर्ज्ञेयानजानेकपटंतयोः ॥ यदाज्ञापयसर्वज्ञतत्करोमितवेप्सितम् ॥ १७॥ च्यवनउवाच ॥ गच्छकांतेऽद्यनासत्यौवचनान्ममसुव्रते ॥ आनयस्वसमीपंमेशीघ्रंदेवभिषग्वरौ ॥ १८ ॥ क्रियतामाशुतद्वाक्यंनाऽत्रकार्याविचारणा ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंसासमनुज्ञातातत्रगत्वावचोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥ क्रियतामाशुनासत्यौसमयेनसुरोत्तमौ ॥ तच्छ्रुत्वाचाऽश्विनौवाक्यंतस्यास्तौतत्रचाऽऽगतौ ॥ २० ॥ उचतूराजपुत्रींतांपतिस्तवविशत्वपः ॥ रूपार्थंच्यवनस्तूर्णंततोंभःप्रविवेशह ॥ २१ ॥ अश्विनावपिपश्चात्तत्प्रविष्टौसरउत्तमम् ॥ ततस्तेनिःसृतास्तस्मात्सरसस्तत्क्षणात्रयः ॥ २२ ॥

अभिलषित कार्य करूं ॥ १७ ॥ च्यवनने कहा हे कान्ते! तुम मेरी आज्ञासे अभी उन दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट जाओ. हेसुभद्रे! तुम अभी उनको मेरे समीप लाओ ॥ १८ ॥ अधिक क्या कहूं तुम शीघ्र उनका वचन प्रतिपालन करो इस विषयमें कुछ विचार करनेका प्रयोजन नहीं है व्यासजीने कहा हेमहाराज! सुकन्याने पतिकी इस प्रकार आज्ञा पाय तत्काल उनके समीप जायकर कहा ॥ १९ ॥ हे दोनों अश्विनीकुमारो! आप देवताओंमें अग्रगण्य हैं अतएव आपके यह नियमित वचन स्वीकार हुए अब आप अपना कर्तव्य कार्य कीजिये. तब वह दोनों देवता उसके इसप्रकार वचन सुन आश्रममें जाय ॥ २० ॥ राजकुमारीसे कहनेलगे तुम्हारे पति जलमें प्रवेशकरैं तब वृद्ध च्यवन सुन्दररूप पानेकी इच्छासे उसी समय अगाधजलमें घुसे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त दोनों अश्विनीकुमारोंनेभी उस उत्तम

सरोवरके जलमें प्रवेशकिया. कुछ कालोपरान्त उस सरोवरसे वह तीनों निकले ॥ २२ ॥ सबकाही दिव्यदेह समान सौन्दर्य समान नवयौवन और सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग कुण्डल इत्यादि अनेकप्रकार अलङ्कारोंसे सुशोभित थे अतएव अवयवोंकी कोई विलक्षणता नहीं दिखाई दी ॥ २३ ॥ तब एकबार उन सबोंने कहा हे भद्रे ! तुम्हारी समान सुन्दरी रमणी और दूसरी नहीं है विशेषकर तुम्हारा वदनमण्डल विमल है अतएव तीनोंमें से जिसको तुम्हारी इच्छा हो उसकोही पतित्वमें वरणकरो ॥ २४ ॥ हे वरानने ! अथवा जिसके प्रति तुम्हारी अधिक प्रीति हो उसकोही वरणकरो व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! तब सुकन्याने देखा कि, इन तीनोंका ही देवताओंकी समान अनुरूप रूपलावण्य है ॥ २५ ॥ विशेषकर सौन्दर्य अवस्था स्वर और वेष समान है कुछ भी भिन्नता

तुल्यरूपादिव्यदेहायुवानःसदृशाःकिल ॥ दिव्यकुंडलभूषाढ्याःसमानावयवास्तथा ॥ २३ ॥ तेब्रुवन्सहिताःसर्वेवृणीष्ववरवर्णिनि ॥ अस्मा कमीप्सितंभद्रेपतिंत्वममलानने ॥ २४ ॥ यस्मिन्वाप्यधिकाप्रीतिस्तंवृणुष्ववरानने ॥ व्यासउवाच ॥ सादृष्ट्वातुल्यरूपांस्तान्समानवयसस्तथा ॥२५॥ एकस्वरांस्तुल्यवेषांस्त्रीन्वैदेवसुतोपमान् ॥ सातुसंशयमापन्नावीक्ष्यतान्सदृशाकृतीन् ॥ २६ ॥ अजानतीपतिंसम्यग्व्याकुलासमचिंतयत् ॥ किंकरोमि त्रयस्तुल्याःकंवृणोमिनवेद्म्यहम् ॥ २७ ॥ पतिंदेवसुताह्येतेसंशयेपतिताऽस्म्यहम् ॥ इंद्रजालमिदंसम्यग्देवाभ्यामिहकल्पितम् ॥ २८ ॥ कर्तव्यंकिंमयाचाऽत्रमरणंसमुपागतम् ॥ नमयापतिमुत्सृज्यवरणीयःकथंचन ॥२९॥ देवस्त्वाधुनिकःकश्चिदित्येषाममधारणा ॥ इतिसंचिंत्यमनसापरां विश्वेश्वरींशिवाम् ॥ ३० ॥

दिखाई नहीं देती वह उन सबका समान अवयव देखकर संशययुक्त हुई ॥ २६ ॥ वह राजकन्या अपने पतिको न पहँचानकर अत्यन्त व्याकुल हो चिन्ता करने लगी इस समय मैं क्या करूं ! तीनोंका अवयव एकप्रकार है अतएव अब किसको वरण करूं ॥ २७ ॥ इनमें कौन पति है यह मैं नहीं जानती बोध होता है कि, यह सब देवताओंके पुत्र हैं अथवा उन दोनों देवकुमारोंने इस स्थानमें निश्चय इन्द्रजाल फैलाया है जो हो मैं इस समय विषम संशयमें पड़ी हूं ॥ २८ ॥ मैं पतिको त्याग कर अन्य किसीको कभी वरण न करूंगी. अतएव मेरा मरण उपस्थित है अब मुझको क्या करना चाहिये ॥ २९ ॥ अब जो तीसरी मूर्ति देखती हूं बोध होता है कि यह भी कोई देवपुत्र हैं ! इसप्रकार मनमें चिन्ताकर निश्चय किया कि, अब मैं उन्हीं पराप्रकृति विश्वेश्वरी शिवाकी आराधना करूं ॥ ३० ॥

तब कृशोदरीराजकुमारी देवीभगवतीका स्तव करने लगी सुकन्याने कहा हे जगन्मातः ! मैंने अत्यन्त दुःखमें गिरकर आपकी शरण ली है॥ ३१ ॥ आपके दोनों चरणोंमें प्रणाम करती हूं आप अब मेरे सतीत्वधर्मकी रक्षा कीजिये. हे देवि ! आप कमलसे उत्पन्न हुई हैं आपको नमस्कार करती हूं आप शंकरकी प्रियतमा ॥ ३२ ॥ एवं विष्णुप्रिया लक्ष्मी और आपही वेदमाता सरस्वती हैं. अतएव आपको नमस्कार करती हूं स्थावरजंगमात्मक यह जगन्मण्डल आपनेही उत्पन्न किया है ॥ ३३ ॥ और अव्यग्रचित्तसे उसका प्रतिपालन करती हैं ओर सम्पूर्ण लोकोंके शान्तिकी इच्छासे उसको ग्रास करती हैं अधिक क्या आपही ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरकी परमपूजनीय जननी हैं ॥ ३४ ॥ आपही ज्ञानहीन मूर्खोंको बुद्धि और ज्ञानियोंको सदा भक्ति देती हैं आपही पुरुषोंकी प्रियदर्शन पूर्ण आद्या प्रकृति हैं ॥ ३५ ॥ जिन प्राणियोंकी आत्मा पवित्र हुई है आपही उनको भोग और मुक्तिप्रदान करती हैं, जो अत्यन्त ज्ञानहीन हैं उनको दुःख और जो सत्वगुणाश्रित जीव हैं

दध्यौभगवतींदेवींतुष्टावचकृशोदरी ॥ सुकन्योवाच ॥ शरणंत्वांजगन्मातःप्राताऽस्मिभृशदुःखिता ॥ ३१ ॥ रक्षमेऽद्यसतीधर्मंनमामिचर णौतव ॥ नमःपद्मोद्भवेदेविनमःशंकरवल्लभे ॥ ३२ ॥ विष्णुप्रियेनमोलक्ष्मिवेदमातःसरस्वति ॥ इदंजगत्त्वयासृष्टंसर्वंस्थावरजंगमम् ॥ ३३ ॥ पासित्वमिदमव्यग्रातथाऽत्सिलोकशांतये ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानांजननीत्वंसुसंमता ॥ ३४ ॥ बुद्धिदाऽसित्वमज्ञानांज्ञानिनांमोक्षदासदा ॥ आद्यात्वंप्रकृ तिःपूर्णापुरुषप्रियदर्शना ॥ ३५ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाऽसित्वंप्राणिनांविशदात्मनाम् ॥ अज्ञानांदुःखदाकामंसत्त्वानांसुखसाधना ॥३६॥ सिद्धिदायोगिनामं बजयदाकीर्तिदापुनः ॥ शरणंत्वांप्रपन्नाऽस्मिविस्मयंपरमंगता ॥ ३७ ॥ पतिंदर्शयमेमातर्मग्नाऽस्मिश्छोकसागरे ॥ देवाभ्यांचरितंकूटंकंवृणोमिविमोहि ता ॥ ३८ ॥ पतिंदर्शयसर्वज्ञेविदित्वामेसतीव्रतम् ॥ व्यासउवाच ॥ एवंस्तुतातदादेवीतथात्रिपुरसुंदरी ॥३९॥ हृदयेऽस्यास्तदाज्ञानंददावाशुसुखोदय म् ॥ निश्चित्यमनसातुल्यवयोरूपधरान्सती ॥ ४० ॥ प्रसमीक्ष्यतुतान्सर्वान्वव्रेबालास्वकंपतिम् ॥ वृतेऽथच्यवनेदेवौसंतुष्टौतौबभूवतुः ॥ ४१ ॥

उनको सुख देती हैं ॥ ३६ ॥ हेमातः ! आपही योगियोंको सिद्धि कीर्ति और जयप्रदान करती हैं. इस समय मैंने विस्मयसागरमें पतित होकर आपकी शरण ग्रहण की है ॥ ३७ ॥ हेमातः ! इन दोनों देवताओंने कपटाचरण किया है, मैं इससे मोहित होकर किसको वरणकरूं ? यह स्थिर नहीं करसक्ती अत एव मैं शोकसागरमें निमग्न हुई हूं आपही मुझे मेरे पतिको दिखाकर उद्धार कीजिये॥ ३८ ॥ हे सर्वज्ञे ! मेरे सतीव्रतको जानकर जिससे पतिका दर्शन प्राप्तकरूं आप वही कीजिये. व्यासजीने कहा हे महाराज ! सुकन्याके इसप्रकार स्तवसे परितुष्ट होकर देवी त्रिपुरसुन्दरीने ॥ ३९ ॥ तब उसके हृदयमें सुखकर सत्वज्ञान प्रदान किया तब तीनोंका अवयव और सौन्दर्य समान होनेपरभी ॥ ४० ॥ उस पतिव्रता बालाने उनको देखतेही मनमें निर्णयकर अपने पतिकोही वरण किया सुकन्याने

जब च्यवनकोही वरणकिया तब उसको देखकर वह दोनों देवता परम सन्तुष्ट हुए ॥ ४१ ॥ दोनों देवता भगवतीके प्रसादसे प्रसन्न हुएथे इसके पीछे फिर सतीधर्म देखनेसे परम प्रसन्न हो उसको वर दिया ॥ ४२ ॥ वह दोनों, मुनिवरकी स्तुति करके शीघ्र अपने स्थानको जानेकेलिये उद्यत हुए किन्तु च्यवन उनके अनुग्रहसे रूप यौवन और भार्या प्राप्तकर सन्तुष्ट हुए थे ॥ ४३ ॥ अतएव उन महातेजा मुनिने दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहा हे महानुभाव ! सुरयुगल ! आपने मेरा विशेष उपकार किया है ॥ ४४ ॥ इसप्रकार सुकेशी भार्या पाकरभी मुझको प्रतिदिन दुःखही होता था ! किन्तु आपकी कृपासे इस असुखमय संसारमें जो कुछ सुख पाया है वह नहीं कहसक्ता ॥ ४५ ॥ मैं अत्यन्तवृद्ध और नेत्रविहीन होकर भोगरहित हुआ था परन्तु आपनेही वनमें आय मुझको नेत्र यौवन और अद्भुत सौन्दर्य प्रदानकिया ॥ ४६ ॥ अतएव हे दोनों देवताओ ! मैं आपका किंचित् प्रत्युपकार करनेकी इच्छा करता हूं जो पुरुष उपकारी

सतीधर्मसमालोक्यसंप्रीतौददतुर्वरम् ॥ भगवत्याःप्रसादेनप्रसन्नौतौसुरोत्तमौ ॥ ४२ ॥ मुनिमामंत्र्यतरसागमनायोद्यताबुभौ ॥ लब्ध्वातुच्यवनोरूपंनेत्रे भार्यांचयौवनम् ॥ ४३ ॥ हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौनासत्याविदंवचः ॥ उपकारःकृतोऽयंमेयुवाभ्यांसुरसत्तमौ ॥ ४४ ॥ किंब्रवीमिसुखंप्राप्तंसंसारेऽस्मिन्ननु त्तमे ॥ प्राप्यभार्यांसुकेशांतांदुःखंमेऽभवदन्वहम् ॥४५॥ अंधस्यचाऽतिवृद्धस्यभोगहीनस्यकानने ॥ युवाभ्यांनयनेदत्तेयौवनंरूपमद्भुतम् ॥४६॥ संपा दितंततःकिंचिदुपकर्तुमहंब्रुवे ॥ उपकारिणिमित्रेयोनोपकुर्यात्कथंचन ॥४७॥ तंधिगस्तुनरंदेवौभवेच्चऋणवान्भुवि ॥ तस्माद्वांवांछितंकिंचिद्दातुमिच्छा मिसांप्रतम् ॥ ४८ ॥ आत्मनोऋणमोक्षायदेवेशौनूतनस्यच ॥ प्रार्थितंवांप्रदास्यामियदलभ्यंसुरासुरैः ॥४९॥ ब्रुवाथांवांमनोदिष्टंप्रीतोस्मिसुकृतेनवाम् ॥ श्रुत्वातौतुमुनेर्वाक्यमभिमंत्र्यपरस्परम् ॥५०॥ तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठंसुकन्यासहितंस्थितम् ॥ मुनेपितुःप्रसादेनसर्वनोमनसेप्सितम् ॥५१॥ उत्कंठासोमपान स्यवर्ततेनौसुरैःसह ॥ भिषजावितिदेवेननिषिद्धौचमसग्रहे ॥ ५२ ॥

मित्रका कुछभी उपकार नहीं करते ॥ ४७ ॥ उनको धिक्कार है विशेषकर वह पुरुष पृथ्वीमें सदा ऋणी होते हैं. अतएव आप इस समय जो इच्छा करैं मेरी वही देनेकी इच्छा है ॥ ४८ ॥ हे दोनों देवताओ ! आप जिसकी इच्छा करैं यह यदि देवता अथवा असुरोंको भी दुर्लभ हो तोभी नवीन देहका ऋण छुड़ानेके लिये मैं वही आपको दूंगा ॥ ४९ ॥ मैं आपके सत्कार्यसे परमपरितुष्ट हुआ हूं अतएव तुम मनका अभिलाष कहो. उन्होंने मुनिवर च्यवनके इसप्रकार वचन सुन परस्पर परामर्श की ॥ ५० ॥ फिर सुकन्याके सहित एकत्र बैठे हुए मुनिवर च्यवनसे कहा हे महर्षे ! पिताके अनुग्रहसे हमने अभिलाषित सम्पूर्ण वस्तु प्राप्त की है तथापि देवताओंके सहित एकत्र सोमपान अतिदुर्लभ जानकर उसमेंही बलवती हमारी इच्छा रहती है ॥ ५१ ॥ कनकाचलमें ब्रह्माके विस्तीर्ण यज्ञकालके समय सुरराज

इन्द्रने भिषक् कहकर हमको सोमपान करनेसे निषेध किया है ॥ ५२ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ तापसवर ! आप यदि अनुग्रहपूर्वक यह कार्य करनेमें समर्थ हो तो हमारा अत्यन्त प्रिय और अभिलषितकार्य साधन कीजिये ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप वांछित सब विषय जानसक्ते हैं इस समय हमको देवताओंके सहित सोमपायी कीजिये हमको यह पिपासा अत्यन्त बलवती रहती है आप वह देकर तृप्त करसक्ते हैं इसी कारण आपसे निवेदन किया ॥ ५४ ॥ दोनों अश्विनीकुमारोंका यह वचन सुनकर महर्षि च्यवन प्रीतिसहित उनसे अतिकोमल वचन कहनेलगे ॥ ५५ ॥ हेसुरद्वय ! मैं अन्धा जरातुर वृद्ध था किन्तु आपके अनुग्रहसे रूपवान् पुरुष हुआ हूं विशेषकर आपकी ही कृपासे फिर भार्या प्राप्त हुई है ॥ ५६ ॥ अतएव देवराज इन्द्रके सामने प्रीतिसहित आपको सोमपायी करूंगा यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ५७ ॥ अमितद्युति महाराज शर्यातिके यज्ञमें तुम्हारा अभिलाष पूराहोगा. वह दोनों अश्विनीकुमार मुनिवरके यह वचन सुन परम सन्तुष्ट हो ॥ ५८ ॥ सुरलोकको

शक्रेणवित्ततेयज्ञेब्रह्मणःकनकाचले ॥ तस्मात्त्वमपिधर्मज्ञयदिशक्तोसितापस ॥ ९३ ॥ कार्यमेतद्धिकर्तव्यंवांछितंनौसुसंमतम् ॥ एतद्विज्ञायवा ब्रह्मन्कुरुवांसोमपायिनौ ॥ ९४ ॥ पिपासाऽस्तिमुदुष्प्रापात्वत्तःसमुपयास्यति ॥ च्यवनस्तुतयोःप्राहतच्छुत्वावचनंमृदु ॥ ९५ ॥ यदहं रूपसंपन्नोवयसाचसमन्वितः ॥ कृतोभवद्भ्यांवृद्धःसन्भार्यांचप्रातवानिति ॥ ९६ ॥ तस्माद्युवांकरिष्यामिप्रीत्याऽहंसोमपायिनौ ॥ मिषतोदेवराज स्यसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ९७ ॥ राज्ञस्तुवितत्तेयज्ञेशर्यातेरमितद्युतेः ॥ इत्याकर्ण्यवचोहृष्टौतौदिवंप्रतिजग्मतुः ॥ ९८ ॥ च्यवनस्तांगृहीत्वातुजगा माश्रममंडलम् ॥ ९९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म०सप्तमस्कंधेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ च्यवनेनकथंवैद्यौतौकृतौसोमपायिनौ ॥ वचनंच कथंसत्यंजातंतस्यमहात्मनः ॥ १ ॥ मानुषस्यबलंकीदृग्देवराजबलंप्रति ॥ निषिद्धौभिषजौतेनकृतौतौसोमपायिनौ ॥ २ ॥ धर्मनिष्ठौतदाश्चर्यंविस्तरेणवदप्र भो ॥ चरितंच्यवनस्याऽद्यश्रोतुकामोऽस्मिसर्वथा ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ निशामयमहाराजचरितंपरमाद्भुतम् ॥ च्यवनस्यमखेतस्मिञ्छर्यातेर्भुविभारत ॥ ४ ॥

चलेगये और मुनिवर च्यवनभी उस कन्याको ले अपने आश्रममें आये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! महर्षि च्यवनमें उन दोनों देवताओंको किसप्रकार सोमपानमें अधिकारी किया था ? अथवा उन महात्मा मुनिवरका वचन किस प्रकार सत्य हुआ था ? ॥ १ ॥ देवराज इन्द्रके बलके निकट मनुष्यका बल अतिसामान्य है इसपरभी इन्द्रके निषेधकरनेपर उन्होंने उन दोनों देववैद्योंको सोमपानमें अधि कार प्रदान किया था ॥ २ ॥ यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है ! अतएव हे धर्मनिरत ! हे प्रभो ! इससमय आप च्यवन महर्षिका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये इसको श्रवण करनेके लिये मेरी अत्यन्त इच्छा है ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहाहे महाराज ! पृथ्वीपर राजा शर्यातिके उस विस्तीर्ण यज्ञमें च्यवन ऋषिने अत्यन्त

अद्भुत कार्य किया था. हे भारत ! मैं उनका वही परम अद्भुत चरित्र वर्णन करता हूं सावधान होकर उसको सुनिये ॥ ४ ॥ देवताकी समान तेजयुक्त महर्षि च्यवन देवकन्याओंकी समान उस सुन्दरी सुकन्याको पायकर परमप्रीति एवं प्रसन्न चित्तसे उसके संग विहार करने लगे ॥ ५ ॥ अनन्तर एक समय राजा शर्यातिकी प्रियतम भार्या कन्याकी चिन्ता कर अत्यन्त कातर हो कम्पायमान शरीरसे रोदन करते करते अपने पतिसे कहने लगी ॥ ६ ॥ हे राजन् ! आपने अन्धे मुनि च्यवनको कन्या दानकी किन्तु वह वनवासिनी कन्या जीवित है अथवा मरगई विशेषकर उसे एकवार खोजना आपको उचित है ॥ ७ ॥ हे नाथ ! वह सुन्दरी कन्या ऐसे अन्धे पतिको पायकर क्या करती है ? उसको देखनेके लिये आप उन मुनिवरके आश्रममें अभी जाइये ॥ ८ ॥ हे राजर्षे ! कन्याका दुःख विचार कर मेरा हृदय सर्वदा दुःखानलमें दग्ध होता है वह विशाललोचना तपस्याके क्लेशसे अवश्यही क्षीणाङ्गी होगई होगी अतएव सुकन्याको शीघ्र मेरे निकट लाओ ॥ ९ ॥ जरातुर

सुकन्यांसुंदरींप्राप्यच्यवनःसुरसन्निभः ॥ विजहारप्रसन्नात्मादेवकन्यामिवाऽमरः ॥ ५ ॥ कदाचिदथशर्यातिभार्योचिंतातुराभृशम् ॥ पतिंप्राहवेपमानावचनंरुदतीप्रिया ॥ ६ ॥ राजन्पुत्रीत्वयादत्तामुनयेंधायकानने ॥ मृताजीवतिवासातुद्रष्टव्यासर्वथात्वया ॥ ७ ॥ गच्छनाथमुनेस्तावदाश्रमंद्रष्टुमादरात् ॥ किंकरोतिसुकन्यासाप्राप्यनाथंतथाविधम् ॥ ८ ॥ पुत्रीदुःखेनराजर्षेदग्धास्मिसर्वथाहृदि ॥ तामानयविशालाक्षींतपःक्षामांमदंतिके ॥ ९ ॥ पश्यामिसर्वथापुत्रींकृशांगींवल्कलावृताम् ॥ अंधपतिंसमासाद्यदुःखभाजंकृशोदरीम् ॥ १० ॥ शर्यातिरुवाच ॥ गच्छामोऽद्यविशालाक्षिसुकन्यांद्रष्टुमादरात् ॥ प्रियपुत्रींवरारोहेमुनिंतंसंशितव्रतम् ॥ ११ ॥ व्यासउवाच ॥ एवमुक्त्वातुशर्यातिःकामिनींशोकसंकुलाम् ॥ जगामरथमारुह्यत्वरितश्चाऽऽश्रमंमुनेः ॥ १२ ॥ गत्वाऽऽश्रमसमीपेतुतमपश्यन्महीपतिः ॥ नवयौवनसंपन्नंदेवपुत्रोपमंमुनिम् ॥ १३ ॥ तंविलोक्याऽमराकारंविस्मयंनृपतिर्गतः ॥ किंकृतंकुत्सितंकर्मपुत्र्यालोकविगर्हितम् ॥ १४ ॥ निहतोऽसौमुनिर्वृद्धस्त्वनयान्यःपतिःकृतः ॥ कामपीडितयाकामंप्रशांतोऽप्यतिनिर्धनः ॥ १५ ॥

अन्धे पतिको पाय वह सदाही दुःख भोगती है अतएव क्लेशसे कृश और क्षीण होनेकी सम्भावना है सुतरां वल्कल पहरनेवाली कृशोदरी कुमारीको एकवार मेरी देखनेकी इच्छा है ॥ १० ॥ शर्यातिने कहा हे विशालाक्षि ! प्रियतनया सुकन्या और शंसितव्रत उन मुनिवरको देखनेके लिये अभी आदरपूर्वक मैं वहां जाता हूं ॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! महाराज शर्याति शोकाकुल भार्यासे यह कह रथपर चढ शीघ्र मुनिवर च्यवनके आश्रमकी ओर चले ॥ १२ ॥ महीपति शर्यातिने आश्रमके समीप पहुँचकर नवयौवनसम्पन्न देवपुत्रकी समान च्यवनको देखा ॥ १३ ॥ तब नरपति देवताओंकी समान उनका अंग देखकर अत्यन्त आश्चर्य युक्त हो मनमें चिन्ता करने लगे मेरी इस कन्याने क्या जनसमाजनिन्दनीय कुत्सित कार्य किया है ॥ १४ ॥ वह मुनिवर अत्यन्त शान्तस्वभाव निर्धन और

वृद्ध थे अतएव कन्याने कामशरसे कातर हो उनको मार इच्छानुसार दूसरा पति किया है इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ पुष्पधन्वा कामदेव स्वभावसेही दुःसह है विशेषकर फिर यौवनकालके समय अत्यन्त दुःसह होजाता है अतएव इस कन्याने कामबाणके वशीभूत हो सुमहान् मनुके विमलकुलमें घोर कलङ्क लगाया है ॥ ॥ १६ ॥ इस लोकमें जिसकी कन्या खोटे चरित्रोंवाली है उसके जीवनको धिक्कार है. बोध होता है कि, सम्पूर्ण पापोंका दुःख भोगनेके लिये देहीगणोंके कन्या उत्पन्न होती है ॥ १७ ॥ परन्तु मैंने स्वार्थसिद्धिके लिये क्या अनुचित कार्य किया है यत्नसहित उपयुक्त पात्रकोही कन्या दानकरना पिताको अवश्य कर्तव्य है किन्तु मैंने जान सुनकर भी जरातुर अन्धे तापसको कन्या दान की है ॥ १८ ॥ अतएव मैं ने जिस प्रकार कार्य किया है उसके अनुसार फल अवश्यही होगा इसमें फिर क्या सन्देह है ॥ १९ ॥ मेरी कन्याने कुचरित्र हो पापकार्यका अनुष्ठान किया है अतएव अब यदि इस निमित्त कन्याको मारूं तो अवध्य स्त्रीहत्याजनित पाप मुझको

दुःसहोऽयंपुष्पधन्वाविशेषेणचयौवने ॥ कुलेकलंकःसुमहाननयामानवेकृतः ॥१६॥ धिक्तस्यजीवितंलोकेयस्यपुत्रीहिकुत्सिता॥सर्वपापैस्तुदुःखायपुत्री भवतिदेहिनाम् ॥ १७ ॥ मयात्वनुचितंकर्मकृतंस्वार्थस्यसिद्धये ॥ वृद्धायांधाययादत्तापुत्रीसर्वात्मनाकिल ॥ १८ ॥ कन्यायोग्यायदातव्यापित्रासर्वात्मनाकिल ॥ तादृशंहिफलंप्राप्तंयादृशंवैकृतंमया ॥१९॥ हन्मिचेदद्यतनयांदुःशीलांपापकारिणीम् ॥ स्त्रीहत्यादुस्तरास्यान्मेतथापुत्र्याविशेषतः ॥२०॥ मनुवंशस्तुविख्यातःसकलंकःकृतोमया ॥ लोकापवादोबलवान्दुस्त्याज्यास्नेहशृंखला ॥ २१ ॥ किंकरोमीतिचिंताब्धौयदामग्नःसपार्थिवः ॥ सुकन्यया तदादैवाद्दृष्टश्चिंताकुलःपिता ॥ २२ ॥ साद्दृष्ट्वातंजगामाऽऽशुसुकन्यापितुरंतिके ॥ गत्वापप्रच्छभूपालंप्रेमपूरितमानसा ॥ २३ ॥ किंविचारयसेराजंश्चिंताव्याकुलिताननः ॥ उपविष्टंमुनिंवीक्ष्ययुवानमंबुजेक्षणम् ॥२४॥ एह्येहिपुरुषव्याघ्रप्रणमस्वपतिंमम ॥ माविषादंनृपश्रेष्ठसांप्रतंकुरुमानव ॥ २५ ॥

स्पर्श करेगा विशेषकर इससे मुझको कन्याकी हत्याका भी पाप होगा ॥ २० ॥ इधर जिसप्रकार लोकापवाद अत्यन्त बलवान् है इसी प्रकार स्नेहशृंखलाभी दुश्छेद्य है तो इस प्रकार संकटस्थलमें कार्य निर्णय करना मेरी समान मनुष्यकी बुद्धिके अगोचर है. तात्पर्य यह है कि, मुझसेही विख्यात मानववंश कलङ्कित हुआ ॥ २१ ॥ राजा शर्याति जब किंकर्तव्यमूढ हो चिन्ता कररहे थे तब सुकन्याने दैवयोगसे उन चिन्तासागरमें डूबेहुए पिताको देखा ॥ २२ ॥ उनको देखकर सुकन्या तत्काल पिताके समीप गई और उनके समीप जाय प्रीतिपूर्ण हृदय हो भूपतिसे पूँछा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यह जो मुनिवर विराजमान हैं इनका रूप यौवन और कमलके समान सुन्दर नेत्र देखकर आपका मुखमण्डल चिन्तासे मलिन क्यों हुआ है ? हे पितः ! आप मनमें क्या चिन्ता करते हैं ॥ २४ ॥ हे पितः ! तुमने विख्यात मनुके वंशमें

जन्म ग्रहण किया है विशेषकर आप पुरुषोंमें प्रधान हैं अतएव आपकी समान महात्माओंको सहसा दुःखित होना उचित नहीं है. हे राजेन्द्र! आप शीघ्र आनकर मेरे पतिको प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! कन्याके यह वचन सुन राजा शर्यातिने क्रोधसे अत्यन्त अधीर हो सन्मुखस्थित कन्यासे कहा ॥ ॥ २६ ॥ राजा बोले हे पुत्रि ! तापसप्रधान वह जरातुर अन्धे च्यवन मुनि कहां और यह मदोन्मत्त युवा कहां इस विषयका मेरे मनमें महान् सन्देह उपस्थित हुआ है ॥ २७ ॥ हे पापीयसि ! तैंने कुकार्यमें निरत हो क्या मुनिवर च्यवनको मारडाला है रे कुलकलङ्किनि ! तैंने कामके वशीभूत हो क्या नूतन पति ग्रहण किया है उन मुनिवरको आश्रममें न देखकर मैं इसप्रकार चिन्तासे व्याकुल हुआ हूं ॥२८॥ २९ ॥ रे दुराचारे ! अब महर्षि च्यवनको नहीं देखता किन्तु इस दिव्य पुरुषको देखता हूं अवश्य तेरे कुव्यवहारसेही मैं इसप्रकार चिन्तारूपी समुद्रमें निमग्न हुआ हूं ॥ ३० ॥ तब सुकन्या पिताके वचन सुनकर हँसी और आदरपूर्वक

व्यासउवाच॥इतिपुत्र्यावचःश्रुत्वाशर्यातिःक्रोधपीडितः॥प्रोवाचवचनंराजापुरःस्थांतनयांततः॥२६॥राजोवाच॥क्वमुनिश्च्यवनःपुत्रिवृद्धोंधस्तापसोत्तमः कोयंयुवामदोन्मत्तःसंदेहोत्रमहान्मम ॥ २७ ॥ मुनिःकिंनिहतःपापेत्वयादुष्कृतकारिणि ॥ नूतनोऽसौपतिःकामात्कृतःकुलविनाशिनि ॥ २८ ॥ सोऽहंचितातुरस्तंनपश्याम्याश्रमसंस्थितम् ॥ किंकृतंदुष्कृतंकर्मकुलटाचरितंकिल ॥ २९ ॥ निमग्नोऽहंदुराचारेशोकाब्धौत्वत्कृतेऽधुना ॥ दृष्ट्वेनंपुरुषंदिव्यमदृष्ट्वाच्यवनंमुनिम् ॥ ३० ॥ विहस्यतमुवाचाऽऽशुसाश्रुत्वावचनंपितुः ॥ गृहीत्वाऽऽनीयपितरंभर्तुरंतिकमादरात् ॥ ३१ ॥ च्यवनोऽसौमुनिस्तात जामातातेनसंशयः ॥ अश्विभ्यामीदृशःकांतःकृतःकमललोचनः ॥३२॥ यदृच्छयाऽत्रसंप्राप्तौनासत्यावाश्रमेमम ॥ ताभ्यांकरुणयानूनंच्यवनस्तादृशः कृतः ॥ ३३ ॥ नाहंतवसुतातातततथास्यांपापकारिणी ॥ यथात्वंमन्यसेराजन्विमूढोरूपसंशये ॥ ३४ ॥ प्रणमत्वंमुनिंराजन्भार्गवंच्यवनंपितः ॥ आपृच्छकारणंसर्वंकथयिष्यतिविस्तरम् ॥ ३५ ॥ इतिश्रुत्वावचःपुत्र्याः शर्यातिस्त्वरितस्तदा॥ प्रणनाममुनिंतत्रगत्वापप्रच्छसादरम् ॥ ३६ ॥

उनको शीघ्र स्वामीके निकट लेजाकर कहा ॥ ३१ ॥ हे तात! यह आपके जामाता च्यवन मुनि हैं इसमें सन्देह नहीं. दोनों अश्विनीकुमारोंने दयाके वश होकर इनको ऐसी कमनीय कान्ति और कमलके समान मनोहर नेत्र प्रदान किये हैं॥ ३२॥अश्विनीकुमार इच्छानुसार मेरे इस स्थानमें आये थे, उन्होंने करुणाके वश हो च्यवनको ऐसा रूपवान् कर दिया है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! आप च्यवनका रूप देखकर संशययुक्त और विमोहित हो "मैंने कुकार्य किया है" इसप्रकार जानते हो. हे तात ! आप जानिये कि, मैं आपकी पापकारिणी कन्या नहीं हूं ॥ ३४ ॥ हे पितः ! आप भृगुनन्दन च्यवन मुनिको प्रणाम कीजिये. हे राजन् ! आपके उनसे इसका कारण पूँछनेपर वह आपसे आनुपूर्वीसे सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारसहित वर्णन करेंगे ॥ ३५॥ राजा शर्याति, कन्याके इसप्रकार वचन सुन तत्काल

मुनिवरके समीप जाय उनको प्रणामकर आदरपूर्वक पूँछने लगे ॥ ३६ ॥ राजा शर्याति बोले हे भृगुनन्दन ! आपको किसप्रकार ऐसे दोनों नेत्र प्राप्त हुए अथवा आपका बुढापा कहां चलागया आप शीघ्र अपना आनुपूर्विक वृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपका अत्यन्त सुन्दररूप देखकर मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है अतएव आप अपना विवरण विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये मैं उसको सुनकर अत्यन्त सुखी हूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ च्यवन मुनि बोले हे नृपसत्तम ! देववैद्य दोनों अश्विनीकुमार कार्यवश इस स्थानमें आये थे उन्होंने कृपाके वशीभूत होकर मेरा यही उपकार किया है ॥ ३९ ॥ उसी उपकारके कारण मैंने उनको वर दिया है कि, राजा शर्यातिके अग्निष्टोम यज्ञमें आपको सोमपायी करूंगा ॥ ४० ॥ इसप्रकार मुझको विमलनेत्र और अभिनवयौवन प्राप्त हुआ है अतएव हे महाराज !आप सावधान होकर पवित्र यज्ञीय आसनपर विराजमान हूजिये ॥ ४१ ॥ विप्रवर

राजोवाच॥कथयस्वस्ववृत्तांतंभार्गवाऽऽशुयथोचितम्॥नयनेचकथंप्राप्तेक्वगतातेजरापुनः॥३७॥संशयोऽयंमहान्मेऽस्तिरूपंदृष्ट्वाऽतिसुंदरम्॥वदविस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रुत्वाऽहंसुखमाप्नुयाम् ॥३८॥ च्यवनउवाच ॥ नासत्यावत्रसंप्राप्तौदेवानांभिषजावुभौ॥उपकारःकृतस्ताभ्यांकृपयानृपसत्तम॥३९॥मयाताभ्यांवरो दत्तउपकारस्यहेतवे ॥ करिष्यामिमखेराज्ञोभवंतौसोमपायिनौ ॥४०॥ एवंमयावयःप्राप्तंलोचनेविमलेतथा॥स्वस्थोभवमहाराजसंविशस्वाऽऽसनेशुभे ॥ ॥४१॥इत्युक्तःसतुविप्रेणसभार्यःपृथिवीपतिः॥सुखोपविष्टःकल्याणीःकथाश्चक्रेमहात्मना॥ ४२॥अथैनंभार्गवःप्राहराजानंपरिसांत्वयन्॥याजयिष्यामिरा जंस्त्वांसंभारानुपकल्पय॥ ४३ ॥मयाप्रतिश्रुतंताभ्यांकर्तव्यौसोमपौयुवाम्॥तत्कर्तव्यंनृपश्रेष्ठतवयज्ञेऽतिविस्तरे ॥४४॥ इंद्रंनिवारयिष्यामिक्रुद्धंतेजोब लेनवै ॥ पाययिष्यामिराजेंद्रसोमंसोममखेतव ॥ ४५ ॥ ततःपरमसंतुष्टःशर्यातिःपृथिवीपतिः ॥ च्यवनस्यमहाराजतद्वाक्यंप्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥

च्यवनमुनिके इस प्रकार कहनेपर फिर पृथ्वीपति शर्याति और उनकी प्रियतमा महिषी परमसुखसे विराजमान हुए और उन महानुभाव मुनिवरके संग कल्याणकर कथोपकथन करनेलगे ॥ ४२ ॥ अनन्तर भार्गवश्रेष्ठ च्यवन राजाको भलीप्रकार समझाकर कहनेलगे हे राजन् ! मैं आपका यज्ञकार्य सम्पादन करूंगा अतएव आप यज्ञीय सामग्री सम्भार आयोजन कीजिये ॥ ४३ ॥ मैं दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट प्रतिज्ञा करचुकाहूं कि, तुमको अवश्य सोमपायी करूंगा. अतएव हेनृपवर ! आपके विस्तीर्ण यज्ञमें मुझको यह कार्य सम्पन्न करना होगा ॥ ४४ ॥ हे राजेन्द्र !इन्द्रके कुपित होनेपरभी मैं तपोबलके प्रभावसे उनको निवारण कर आपके अग्निष्टोम यज्ञमें उनको सोमपान कराऊंगा ॥ ४५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! तदनन्तर पृथ्वीपति शर्याति परमसन्तुष्ट हो च्यवनमुनिके उन वचनोंका अनुमोदन करने लगे ॥ ४६ ॥

राजा च्यवनका सन्मान देखकर अत्यन्त प्रसन्नमनसे भार्य्याके सहित मुनिवरकी बात कहते कहते नगरकी ओर चले ॥ ४७ ॥ उन राजाके किसी अभिलषित धनरत्नादिकी कमी नहीं थी अतएव मुनिवरकी आज्ञानुसार उन्होंने यज्ञ करनेके श्रेष्ठ दिनमें अत्युत्तम यज्ञभूमि प्रस्तुत कराई ॥ ४८ ॥ अन्तमें भृगुनन्दन च्यवनने वसिष्ठइत्यादि पूज्यपाद मुनियोंको बुलाकर पृथ्वीपति शर्यातिको उस यज्ञमें दीक्षित किया ॥ ४९ ॥ वह विस्तृतयज्ञ आरम्भ होनेपर इन्द्रादि देवतालोग और दोनों अश्विनीकुमार सोमपान करनेके लिये उस स्थलमें आये ॥ ॥ ५० ॥ किन्तु इन्द्र उस यज्ञमण्डपमें दोनों अश्विनीकुमारोंको देखकर शंकित हो सम्पूर्ण देवताओंसे पूँछनेलगे यह किस कारणसे इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं ? ॥ ५१ ॥ यह चिकित्सक हैं अतएव कभी सोमपानके योग्य पात्र नहीं हैं तब

संमान्यच्यवनंराजाजगामनगरंप्रति ॥ सभार्यश्चाऽतिसंतुष्टःकुर्वन्वार्तांमुनेःकिल ॥ ४७॥ प्रशस्तेऽहनियज्ञीयेसर्वकामसमृद्धिमान् ॥ कारयामासशर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ समानीयमुनीन्पूज्यान्वसिष्ठप्रमुखानसौ ॥ भार्गवोयाजयामासच्यवनःपृथिवीपतिम् ॥ ४९ ॥ वितते तुतथायज्ञेदेवाःसर्वे सवासवाः ॥ आजग्मुश्चाऽश्विनौतत्रसोमार्थमुपजग्मतुः ॥ ५० ॥ इंद्रस्तुशंकितस्तत्रवीक्ष्यतावश्विनावुभौ ॥ पप्रच्छचसुरान्सर्वान्किमेतौसमुपागतौ ॥ ॥ ५१ ॥ चिकित्सकौनसोमार्हौकेनाऽनीताविहेतिच ॥ नाऽब्रुवन्नमरास्तत्रराज्ञस्तुविततेमखे ॥ ५२ ॥ अगृह्णाच्च्यवनःसोममश्विनोर्देवयोस्तदा ॥ शक्रस्तंवारयामासमागृहाणेतयोर्ग्रहम् ॥ ५३ ॥ तमाहच्यवनस्तत्रकथमेतौरवेःसुतौ ॥ नग्रहार्हौचनासत्यौब्रूहिसत्यंशचीपते ॥ ५४ ॥ नसंकरौसमुत्पन्नौधर्मपत्नीसुतौरवेः ॥ केनदोषेणदेवेंद्रनार्हौसोमंभिषग्वरौ ॥ ५५ ॥ निर्णयोऽत्रमखेशक्रकर्तव्यःसर्वदेवतैः ॥ ग्राहयिष्याम्यहंसोमंकृतौतौसोमपौमया ॥ ५६ ॥

कौन पुरुष इस विस्तृत अग्निष्टोम यज्ञमें इनको लाया है ? देवताओंने तिसकाल राजाके सुविस्तृत यज्ञस्थलमें देवराज इन्द्रको उस वचनका कुछ उत्तर न दिया ॥ ॥ ५२ ॥ तब च्यवनमुनिने दोनों अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये जिस समय सोमग्रहण किया तिसी समय इन्द्रने उनको निवारणकरके कहा पहलेसेही इनका यज्ञभागमें अधिकार निषिद्ध है अतएव इनके लिये सोमग्रह ग्रहण न कीजिये ॥ ५३ ॥ च्यवन बोले हे शचीपते ! यह सूर्यके पुत्र हैं तो यह अश्विनीकुमार किस लिये सोमग्रहण करनेके उपयुक्त नहीं हैं आप यह सत्य कहिये ॥ ५४ ॥ यह सङ्करजातीय नहीं है सूर्य देवकी धर्मपत्नीके गर्भसे जन्म ग्रहणकिया है. हे देवेन्द्र ! तो यह भिषग्वर किस दोषसे सोमपान नहीं करसकेंगे ? यह आप कहिये ॥ ५५ ॥ हे शक्र ! सम्पूर्ण देवतालोग मिलकर इस यज्ञमें इस विषयका निर्णय कीजिये.

हेभगवन् ! मैंने इनको सोमपायी करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ५६ ॥ अतएव अपना वचन पालन करनेके लिये राजाको यज्ञमें दीक्षित किया है सुतरां इस यज्ञमें मैं इनको सोमग्रहण कराकर अपने सत्यको पालनकरूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ हेशक्र ! इन्होंने मुझको नवीन अवस्था और नेत्र प्रदान करके विशेष उपकार किया है अतएव मैं यथाशक्ति इनका प्रत्युपकार करूंगा ॥ ५८ ॥ इन्द्रने कहा देवताओंने इन दोनों अश्विनीकुमारोंको चिकित्सक कार्यमें नियुक्त किया है इसीकारणसे यह देवसमाजमें निन्दनीय हैं सुतरां यह सोमपान करनेके उपयुक्त नहीं हैं अतएव आप इनके लिये सोमपानग्रह ग्रहण न कीजिये ॥ ५९ ॥ च्यवनमुनि बोले हे इन्द्र ! तुम अहल्याके जार होकर क्यों इतना निरर्थक कोप प्रकाश करते हो तुमने विश्वासघातकतापूर्वक वृत्रासुरको मारा है तुम्हारी समान पापात्माके वचनसे सूर्यात्मज अश्विनीकुमार सोमपान न करैं यह कभी सम्भव नहीं होसक्ता ॥ ६० ॥ हे भूप ! इसप्रकार विवाद उपस्थित होनेपर उनसे कोई भी कुछ नहीं कहेगा तिससमय तिग्म

प्रेरितोऽसौमयाराजामखायमघवन्किल ॥ एतदर्थंकरिष्यामिसत्यंमेवचनंविभो ॥ ५७ ॥ आभ्यामुपकृतंशक्रतथादत्तंनवंवयः ॥ तस्मात्प्रत्युपकारस्तुकर्तव्यःसर्वथामया ॥ ५८ ॥ इंद्रउवाच ॥ चिकित्सकौकृतावेतौनासत्यौनिंदितौसुरैः ॥ उभावेतौनसोमार्हौमागृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥ ५९ ॥ च्यवनउवाच ॥ अहल्याजारसंयच्छकोपंचाऽद्यनिरर्थकम् ॥ वृत्रघ्नकिंहितौसत्यौनसोमार्हौसुरात्मजौ ॥ ६० ॥ एवंविवादेसमुपस्थितेचनकोऽपिवाचंतमुवाचभूप ॥ ग्रहंतयोर्भार्गवतिग्मतेजाः संग्राहयामासतपोबलेन ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासउवाच ॥ दत्तेग्रहेतुराजेंद्रवासवःकुपितोभृशम् ॥ प्रोवाचच्यवनंतत्रदर्शयन्बलमात्मनः ॥ १ ॥ माब्रह्मबंधोमर्यादामिमांत्वंकर्तुमर्हसि ॥ वधिष्यामिद्विषंतंत्वां विश्वरूपमिवाऽपरम् ॥ २ ॥ च्यवनउवाच ॥ मावमंस्थामहात्मानौरूपद्रविणवर्चसा ॥ यौचक्रतुर्मांमघवन्वृंदारकमिवाऽपरम् ॥ ३ ॥ ऋतेत्वांविबुधाश्चाऽन्येकथंवाऽऽददतेग्रहम् ॥ अश्विनावपिदेवेंद्रदेवौविद्धिपरंतपौ ॥ ४ ॥

तेजा भार्गवने अपने तपोबलसे उनको सोमग्रहण कराई ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! जब दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमपूर्णपात्र दियागया तब इन्द्रने अत्यन्त क्रोधित हो अपना बलप्रदर्शनपूर्वक मुनिवर च्यवनसे कहा ॥ १ ॥ हे ब्रह्मबन्धो ! तुम कभी इनको ऐसा सन्मान स्थापन करनेमें समर्थ नहीं होगे तुम जब मेरे प्रति विद्वेष प्रकाश करते हो तब निश्चयही विश्वरूपकी समान तुम्हारा वध करूंगा ॥ २ ॥ च्यवनमुनि बोले हे मघवन् ! जिन्होंने रूपलावण्य और तेज प्रदान करके मुझे साक्षात् देवमूर्तिकी समान मनोहर किया है तुम उन दोनों महात्माओंका अपमान मत करो ॥ ३ ॥ हे देवेन्द्र ! जब अन्य समस्तदेवता तुमको छोड़कर सोमपात्र ग्रहण करते हैं तब ऐसे महाप्रभावयुक्त देव दोनों अश्विनीकुमार भी

अवश्य इसको ग्रहण करसके हैं ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा यह भिषग् हैं इसकारण यज्ञमें सोमपात्र ग्रहण करनेके किसीप्रकार अधिकारी नहीं होंगे. हे दुर्मते ! यदि तुम इनको सोमपात्र प्रदानकरनेकी इच्छा करते हो तो मैं अभी तुम्हारा शिर काट डालूंगा ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे भारतभूषण ! भार्गवने इन्द्रके इन वचनोंका निरादर करके तथा उनको अत्यन्त तिरस्कारपूर्वक दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमग्रहण कराया ॥ ६ ॥ सोमपानकी इच्छासे जब उन्होंने सोमपात्र ग्रहण किया तब बलभित् इन्द्रने उनको देखकर यह वचन कहा ॥ ७ ॥ अपने प्रयोजनसे तुम यदि इनको स्वयं सोमग्रहण कराओगे तो विश्वरूपकी समान तुम्हारे मस्तकपर आयुध वज्र प्रहार करूंगा ॥ ८ ॥ अत्यन्त गर्वित भार्गवमुनि इन्द्रके यह वचन सुन महाक्रोधित हुए और विधिपूर्वक दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमग्रहण कराया ॥ ९ ॥

इंद्रउवाच ॥ ॥ भिषजौनाऽर्हतःकामंग्रहंयज्ञेकथंचन ॥ यदिदित्ससिमंदात्मञ्छिरइछेत्स्यामिसांप्रतम् ॥ ५ ॥ व्यासउवाच ॥ अनादृत्यतुतद्वाक्यंवासवस्यचभार्गवः ॥ ग्रहंतुग्राहयामासभर्त्सयन्निवतंभृशम् ॥ ६ ॥ सोमपात्रंयदाताभ्यांगृहीतंतुपिपासया ॥ समीक्ष्यवलभिद्देवइदंवचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ आभ्यामर्थायसोमंत्वंग्राहयिष्यसिचेत्स्वयम् ॥ वज्रंतुप्रहरिष्यामिविश्वरूपमिवाऽपरम् ॥ ८ ॥ वासवेनैवमुक्तस्तुभार्गवश्चाऽतिगर्वितः ॥ जग्राहविधिवत्सोममश्विभ्यामतिमन्युमान् ॥ ९ ॥ इंद्रोऽपिप्राक्षिपत्कोपाद्वज्रमस्मैस्वमायुधम् ॥ पश्यतांसर्वदेवानांसूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १० ॥ प्रेरितंचाऽशनिंप्रेक्ष्यच्यवनस्तपसाततः ॥ स्तंभयामासवज्रंसशक्रस्याऽमिततेजसः ॥ ११ ॥ कृत्ययासमहाबाहुरिंद्रंहंतुमिहोद्यतः ॥ जुहावाऽग्नौशृतंहव्यंमंत्रेणमुनिसत्तमः ॥ १२ ॥ तत्रकृत्यासमुत्पन्नाच्यवनस्यतपोबलात् ॥ प्रबलःपुरुषःक्रूरोबृहत्कायोमहासुरः ॥ १३ ॥ मदोनाममहाघोरोभयदःप्राणिनामिह ॥ शरीरेपर्वताकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोभयानकः ॥ १४ ॥

इन्द्रनेभी क्रोधसे सम्पूर्ण देवताओंके सामने उनके ऊपर अपना प्रधान वज्र चलाया तब उस आयुधकी करोड सूर्यके समान प्रभा प्रकाशित होने लगी ॥ १० ॥ तब महर्षि च्यवनने वज्रको चलाताहुआ देखकर तपके प्रभावसे अमिततेजा इन्द्रके वज्रको स्तम्भित करदिया ॥ ११ ॥ तब महाबाहु मुनिवर अभिचार क्रियाद्वारा इन्द्रको संहार करनेकी इच्छासे पक्वहव्य मंत्रपूत करके अग्निमें आहुति प्रदान करने लगे ॥ १२ ॥ अमिततेजा मुनिवर च्यवनके तपोबलद्वारा उस अग्निकुण्डसे कृत्या उत्पन्न हुई उस कृत्यासे प्रबल पराक्रमी पुरुषाकार क्रूरस्वभाव विशालशरीरवाला एक महान् असुर उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वह महाघोर मदनामक असुर इस लोकमें प्राणियोंको भयदायक था उसका शरीर पर्वतके समान बड़ा सम्पूर्ण दाँत तीक्ष्ण और भयानक थे उनमें चार दाँत शतयोजन चौंड़े और अन्य दाँत दशयोजन

विस्तीर्ण थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ और उसके दोनों बाहु पर्वतकी समान दीर्घ और घोरदर्शन थे जिह्वा भीषण कर्कश और इतनी बड़ी थी कि नभोमण्डलको स्पर्श करने लगी ॥ १६ ॥ उसकी ग्रीवा पर्वतके शिखरकी समान कठिन और अत्यन्त भीषणाकार थी नख सब व्याघ्रके नखकी समान और केशसमूह अत्यन्त भीषण थे ॥ १७ ॥ उसका शरीर कज्जलकी समान कृष्णवर्ण तथा मुखमण्डल विकटाकार और भयानक था दोनों नेत्र अग्निकी समान उज्ज्वल और अत्यन्त भयानक थे ॥ १८ ॥ उसकी एक हनु ठोडी पृथ्वीमें और दूसरी स्वर्गको स्पर्श कररही थी इस प्रकार बृहत्काय मदनामक असुर उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण देवतालोग उसको देखकर सहसा भीत होगये इन्द्रने भी उसको देखकर भीतहो फिर युद्धकरनेकी इच्छा न की ॥ २० ॥ दैत्यभी इच्छानुसार इन्द्रके उस वज्र

चतस्रश्चाऽऽयतादंष्ट्रायोजनानांशतंशतम् ॥ इतरेत्वस्यदशनावभूवुर्दशयोजनाः ॥ १५ ॥ बाहूपर्वतसंकाशावायतौक्रूरदर्शनौ ॥ जिह्वातुभीषणाक्रूराले लिहानानभस्तलम् ॥ १६ ॥ ग्रीवातुगिरिशृंगाभाकठिनाभीषणाभृशम् ॥ नखाव्याघ्रनखप्रख्याःकेशाश्चाऽतीवभीषणाः ॥ १७ ॥ शरीरंकज्जलाभंच तस्यचाऽऽस्यंभयानकम् ॥ नेत्रेदावानलप्रख्येभीषणेऽतिभयानके ॥ १८ ॥ हनुरेकास्थितातस्यभूमावेकादिवंगता ॥ एवंविधःसमुत्पन्नोमदोनामबृहत्तनुः ॥ १९ ॥ तंविलोक्यसुराःसर्वेभयमाजग्मुरंहसा ॥ इंद्रोपिभयसंत्रस्तोयुद्धायनमनोदधे ॥ २० ॥ दैत्योऽपिवदनेकामंवज्रमादायसंस्थितः ॥ व्यात्तं नभोघोरदृष्टिर्ग्रसन्निवजगत्त्रयम् ॥ २१ ॥ सभक्षयिष्यन्संक्रुद्धःशतक्रतुमुपाद्रवत् ॥ चुक्रुशुश्चसुराःसर्वेहाहताःस्मेतिसंस्थिताः ॥ २२ ॥ इंद्रःस्तंभितबाहुस्तुमुमुक्षुर्वज्रमंतिकात् ॥ नशशाकपविंतस्मिन्प्रहर्तुंपाकशासनः ॥ २३ ॥ वज्रहस्तःसुरेशानस्तंवीक्ष्यकालसन्निभम् ॥ सस्मारमनसातत्रगुरुं समयकोविदम् ॥ २४ ॥ स्मरणादाजगामाशुबृहस्पतिरुदारधीः ॥ गुरुस्तत्समयंदृष्ट्वाविपत्तिसदृशंमहत् ॥ २५ ॥ विचार्यमनसाकृत्यंतमुवाचशचीपतिम् ॥ दुःसाध्योऽयंमहामंत्रैस्त्वयंवज्रेणवासव ॥ २६ ॥

को मुखमें डालकर नभोमण्डलको देखताहुआ जगतको एकवारही ग्रास करनेके लिये खड़ा हुआ ॥ २१ ॥ वह अत्यन्त क्रोधित होकर इन्द्रको भक्षण करनेके लिये दौडा यह देखकर वहां स्थित देवता " हम मरे " यह कहकर चीत्कार करने लगे ॥ २२ ॥ दोनों बाहुओंके स्तम्भित होजानेसे पाकशासन इन्द्र वज्र चलानेकी इच्छा करकेभी किसी प्रकार उसको प्रहार न करसके ॥ २३ ॥ तब वज्रहस्त सुरपतिने कालकी समान असुरको देखकर समयके जाननेवाले गुरुको मनमें स्मरण किया ॥ ॥ २४ ॥ उदारबुद्धि बृहस्पतिजी महत् विपत्तिका समय जानकर तत्काल स्मरण करतेहीआये ॥ २५ ॥ तब कर्तव्य कार्य्य मनमें विचारकर उन्होंने शचीपति इन्द्रसे कहा

हे वासव! इसका वज्रसे निवारित होना तो दूर रहे वरन् इसको महामंत्रके बलसेभी निवारण करना कठिन है ॥ २६ ॥ यह महाबलवान् मदनामक असुर च्यवन ऋषिके तपोबलप्रभावद्वारा यज्ञकुण्डसे निकला है इसमें महर्षि प्रभूत तपोवीर्य्य प्रकाशित हुआ है ॥ २७ ॥ हे देवेश ! इस शत्रुको तुम मैं अथवा देवता कोई भी निवारण करनेमें समर्थ नहीं होगा अतएव तुम महात्मा च्यवनकी शरणागत होओ ॥ २८ ॥ जो पुरुष पराशक्तिका भक्त है उसके कोपको दूसरेकी तो बात क्या है ब्रह्माजीभी निवारण नहीं करसक्ते च्यवनमुनि पराशक्तिके भक्त हैं इस कारण दूसरा कोई उनको निवारण करनेमें कभी समर्थ नहीं होगा. वेही निजकृत कृत्याको निवारण करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! इन्द्र गुरुका यह उपदेश सुनकर फिर मुनिके समीप गये और डरसहित मस्तक झुकाय उनको प्रणामकर कहनेलगे ॥ ३० ॥ हे मुनिवर ! मुझको क्षमा करके देवताओंके विनाशमें उद्यत उस असुरको निवारण कीजिये. हे सर्वज्ञ ! आप प्रसन्न हूजिये मैं

असुरोमदसंज्ञस्तुयज्ञकुंडात्समुत्थितः॥तपोबलमृषेःसम्यक्च्यवनस्यमहाबलः ॥२७॥ अनिवार्योह्ययंशत्रुस्त्वयादेवैस्तथामया ॥ शरणंयाहिदेवेशच्यवनस्यमहात्मनः ॥२८॥सनिवारयितानूनंकृत्यामात्मकृतांकिल॥ननिवारयितुंशक्ताःशक्तिभक्तरुषंक्वचित्॥२९॥व्यासउवाच ॥ इत्युक्तोगुरुणाशक्रस्तदागच्छन्मुनिंप्रति॥प्रणम्यशिरसानम्रस्तमुवाचभयान्वितः ॥३०॥ क्षमस्वमुनिशार्दूलशमयाऽसुरमुद्यतम् ॥ प्रसन्नोभवसर्वज्ञवचनंतेकरोम्यहम् ॥३१॥ सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृतिभार्गव ॥ भविष्यतःसत्यमेतद्वचोविप्रप्रसीदमे ॥ ३२ ॥ मिथ्यातेनोद्यमोह्येषभवत्वेवतपोधन ॥ जानेत्वमपिधर्मज्ञमिथ्यनैवकरिष्यसि ॥ ३३ ॥ सोमपावश्विनावेतौत्वत्कृतौचसदैवहि ॥ भविष्यतश्चशर्यातेःकीर्तिस्तुविपुलाभवेत् ॥ ३४ ॥ मयायद्विकृतंकर्मसर्वथामुनिसत्तम ॥ परीक्षार्थंतुविज्ञेयंतववीर्यप्रकाशनम् ॥ ३५ ॥ प्रसादंकुरुमेब्रह्मन्मदंसंहरचोत्थितम् ॥ कल्याणंसर्वदेवानांतथाभूयोविधीयताम् ॥ ३६॥ एवमुक्तस्तुशक्रेणच्यवनःपरमार्थवित् ॥ संजहारततःकोपंसमुत्पन्नंविरोधजम् ॥ ३७ ॥ देवमाश्वास्यसंविग्नंभार्गवस्तुमदंततः ॥ व्यभजत्स्त्रीषुपानेषुद्यूतेषुमृगयासुच ॥३८॥

आपका वचन प्रतिपालन करता हूं ॥ ३१ ॥ हे भार्गव ! अबसे यह अश्विनीकुमारसोमपानके अधिकारी हुये यह आपसे सत्य कहता हूं हे विप्र ! आप मेरेप्रति प्रसन्न हूजिये ॥ ३२ ॥ हे तपोधन ! आपका यह उद्यम कभी निष्फल नहीं होगा विशेषकर मैं आपको धर्मज्ञ जानता हूं अतएव आप अपने वचन कभी मिथ्या नहीं करेंगे ॥ ३३ ॥ यह अश्विनीकुमार आपकी कृपासे सदाही सोमपायी होंगे और राजा शर्यातिकी कीर्तिकी भी सीमा नहीं रहेगी ॥ ३४ ॥ हे मुनिसत्तम ! आप यह निश्चय जानिये कि, मैंने जो कर्म किया है वह केवल आपके तपोवीर्यकी परीक्षा करनेके लिये किया है ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! यज्ञकुण्डसे निकलेहुए इस मदनामक असुरको संहार कर मेरे प्रति कृपा कीजिये. इससे सम्पूर्ण देवताओंका कल्याण होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३६ ॥ परमार्थके जाननेवाले मुनिवर च्यवनने इन्द्रके इसप्रकार कातरतापूर्ण वचन सुनकर उनके सहित विरोध होनेसे जो क्रोध उत्पन्न हुआ था उसको दूर किया ॥ ३७ ॥ फिर महर्षि च्यवनने मदनामक असुरके भयसे उद्विग्न

देवताओंको समझाया उस मदको स्त्रीजाति सुरापान द्यूतक्रीडा और मृगया इन चारभागोंमें विभक्त किया ॥ ३८ ॥ इन सम्पूर्ण विषयोंमें मद सदा वास करेगा मदके इसप्रकार विभक्त होनेपर भयचकित देवेन्द्र रक्षा पाय सावधान हुए. तब च्यवनने सम्पूर्ण देवताओंको यथाविधि स्थापितकर उस यज्ञको समाप्त किया ॥ ३९ ॥ फिर धर्मात्मा भार्गवने महात्मा इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमारोंको सम्यक् प्रकारसे संस्कृत सोमपान कराई ॥ ४० ॥ हे राजन् ! च्यवन मुनिने उन आर्य सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमारोंको तपोबलके प्रभावसे इस प्रकार सोमपायी किया था ॥ ४१ ॥ तबसे वह सरोवर यूपमंडित हो विख्यात हुआ और मुनिका आश्रम भी भूमण्डलमें सम्यक् प्रकार विख्यात और सम्मानित हुआ ॥ ४२ ॥ शर्याति राजाभी उस कार्यसे परम सन्तुष्ट हुए और यज्ञ समाप्त करके मंत्रियोंके सहित नगरको चलेगये

मदंविभज्यदेवेंद्रमाश्वास्यचाकितंभिया ॥ संस्थाप्यचसुरान्सर्वान्मखंतस्यन्यवर्तयत् ॥ ३९ ॥ ततस्तुसंस्कृतंसोमंवासवायमहात्मने ॥ अश्विभ्यांसर्वधर्मात्मापाययामासभार्गवः ॥ ४० ॥ एवंतौच्यवनेनाऽऽर्यावश्विनौरविपुत्रकौ ॥ विहितौसोमपौराजन्सर्वथातपसोबलात् ॥ ४१ ॥ सरस्तदपिविख्यातंजातंयूपविमंडितम् ॥ आश्रमस्तुमुनेःसम्यक्पृथिव्यांविश्रुतोऽभवत् ॥ ४२ ॥ शर्यातिरपिसंतुष्टोह्यभवत्तेनकर्मणा ॥ यज्ञंसमाप्यनगरेजगामसचिवैर्वृतः ॥ ४३ ॥ राज्यंचकारधर्मज्ञोमनुपुत्रःप्रतापवान् ॥ आनर्तस्तस्यपुत्रोभूदानर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ ४४ ॥ सोऽतःसमुद्रेनगरींविनिर्मायकुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुंक्तविषयानानर्तादीनरिंदमः ॥ ४५ ॥ तस्यपुत्रशतंजज्ञेककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ पुत्रीचरेवतीनाम्नासुंदरीशुभलक्षणा ॥ ४६ ॥ वरयोग्यायदाजातातदाराजाचरेवतः ॥ चिंतयामासराजेंद्रोराजपुत्रान्कुलोद्भवान् ॥ ४७ ॥ रैवतंनामचगिरिमाश्रितःपृथिवीपतिः ॥ चकारराज्यंबलवानानर्तेषुनराधिपः ॥ ४८ ॥ विचिंत्यमनसाराजाकस्मैदेयामयासुता ॥ गत्वापृच्छामिब्रह्माणंसर्वज्ञंसुरपूजितम् ॥ ४९ ॥

॥ ४३ ॥ अनन्तर वह मनुपुत्र प्रतापवान् धर्मज्ञ नरपाल शर्याति निर्विघ्न राज्य शासन करने लगे. उनका पुत्र आनर्त्त और आनर्त्तके रेवतनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४४ ॥ वह रेवत समुद्रमें कुशस्थली नगरी स्थापनपूर्वक वहां वास कर आनर्त्तादि प्रदेशस्थ समस्त विषय भोग करने लगा ॥ ४५ ॥ रेवतके सौ पुत्र उत्पन्न हुए. ककुद्मी बडे और पवित्र स्वभावके थे और उन परम सुन्दरी रेवती नामक एक शुभलक्षणयुक्त कन्या उत्पन्न हुई ॥ ४६ ॥ जब वह कन्यां विवाहके योग्य हुई तब राजेन्द्र रेवत सत्कुलोत्पन्न राजपुत्रके निमित्त चिन्ता करने लगे ॥ ४७ ॥ वह राजराजेश्वर पृथ्वीपति रेवत गिरिमें वासकर आनर्तोंमें राज्य शासन करने लगा ॥ ४८ ॥ यह कन्या किसको दें ? राजाने मनमें इसप्रकार चिन्तायुक्त हो स्थिर किया कि, मैं ब्रह्माके निकट जाय उन सुरपूजित सर्वज्ञ प्रजापतिसे यह विषय पूछूँगा

इसप्रकार विचार वह भूपाल ब्रह्माजीसे पूँछनेकी इच्छा कर अपनी कन्या रेवतीको संग ले शीघ्रतासहित ब्रह्मलोकको गया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उस स्थानमें देव यज्ञ वेद पर्वत और सरित सम्पूर्ण दिव्यदेह धारण कर विराजमान हैं ॥ ५१ ॥ वहां सनातनऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग और चराचरगण हाथ जोडे खडे हुए ब्रह्माजीका स्तव कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! नरपति रेवत क्षत्रिय होकर अपनी कन्याको संग ले स्वयं किसप्रकार ब्रह्मलोकमें गये ! इस विषयका मुझको महान् संशय उपस्थित

इतिसंचिंत्यभूपालःसुतामादायरेवतीम् ॥ ब्रह्मलोकंजगामाऽऽशुप्रष्टुकामःपितामहम्॥ ५० ॥ यत्रदेवाश्चयज्ञाश्चछंदांसिपर्वतास्तथा ॥ अब्धयःसरितश्चाऽपिदिव्यरूपधराःस्थिताः ॥ ५१ ॥ ऋषयःसिद्धगंधर्वाःपन्नगाश्चारणास्तथा ॥ तस्थुःप्रांजलयःसर्वेस्तुवंतश्चपुरातनाः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ ॥छ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ संशयोऽयंमहान्ब्रह्मन्वर्ततेममानसे॥ ब्रह्मलोकंगतोराजारेवतीसंयुतःस्वयम् ॥ १ ॥ मयापूर्वंश्रुतंकृत्स्नंब्राह्मणेभ्यःकथांतरे ॥ ब्राह्मणोब्रह्मविच्छांतोब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ राजाकथंगतस्तत्ररेवतीसंयुतःस्वयम् ॥ सत्यलोकेऽतिदुष्प्रापेभूर्लोकादितिसंशयः ॥ ३ ॥ मृतःस्वर्गमवाप्नोतिसर्वशास्त्रेपुनिर्णयः “ मानुषेणतुदेहेनब्रह्मलोकेगतिःकथम् ” ॥ स्वर्गात्पुनःकथंलोकेमानुषेजायतेगतिः ॥ ४ ॥ एतन्मेसंशयंविद्धिंछेत्तुमर्हसिसांप्रतम् ॥ यथाराजागतस्तत्रप्रष्टुकामःप्रजापतिम् ॥ ५ ॥ व्यासउवाच ॥ मेरोस्तुशिखरेराजन्सर्वेलोकाःप्रतिष्ठिताः ॥ इंद्रलोकोवह्निलोकोयाचसंयमिनीपुरी ॥ ६ ॥

हुआ है ॥ १ ॥ पहले मैंने यह विषय ब्राह्मणोंके कथा प्रसंगमें भलीभाँति सुना है कि, जो ब्राह्मण शान्त और ब्रह्मके जाननेवाले हैं वही ब्रह्मलोकको प्राप्त होसक्ते हैं॥ २ ॥ सत्यलोक मनुष्य जातिके पक्षमें अत्यन्त कठिन है तो राजा स्वयं रेवतीको संग ले भूर्लोकसे किसप्रकार उस सत्यलोकमें गये ? यही मेरा संशय है ॥ ३ ॥ मनुष्य अपना देह त्यागकर स्वर्ग प्राप्त करते हैं यह सब शास्त्रोंमें निर्णय किया है तब मनुष्यदेहसेही ब्रह्मलोकमें किसप्रकार गये ? और स्वर्गसे फिर मनुष्यलोकमें किसप्रकार आये ? ॥ ४ ॥ तात्पर्य यह है कि, राजा रेवत प्रजापतिसे पूँछनेकी इच्छा करके किसप्रकार ब्रह्मलोकमें गये आप मेरा यह संशय दूर कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा

हे राजन् ! मेरुके शिखरमें इन्द्रकी अमरावती पुरी यमकी संयमनी पुरी ॥ ६ ॥ सत्यलोक, वह्निलोक, कैलास, वैष्णव धाम और वैकुण्ठ इत्यादि सम्पूर्ण लोकही प्रतिष्ठित हैं ॥ ७ ॥ देखो महाधनुर्द्धर पृथानन्दन अर्ज्जुनने इन्द्रलोकमें आयकर पांचवर्ष व्यतीत किये ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें ककुत्स्थ इत्यादि अन्यान्य राजा भी मनुष्य देहसेही इन्द्रके समीप गये थे और महाबलवान् दैत्योंने इन्द्रलोक अथवा अमरावतीको जीतकर वहाँ जाय इच्छानुसार वास किया ॥ ९ ॥ १० ॥ पूर्वकालके समय सार्वभौम नरपति राजा महाभिषके ब्रह्मलोक जानेपर परमसुन्दरी गंगाभी उसी समय ब्रह्मलोकमें आरहीं थीं इसी अवसरमें राजाने उनको देखा ॥ ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इसी समय दैववशसे वायुने उनके पहरनेका वस्त्र उड़ादिया राजाके उस सुन्दरीकी कुछेक नग्न अवस्था देख कामार्त्तचित्त हो ॥ १२ ॥ अग्र

तथैवसत्यलोकश्चकैलासश्चतथापुनः ॥ वैकुंठश्चपुनस्तत्रवैष्णवंपदमुच्यते ॥ ७ ॥ यथाऽर्जुनःशक्रलोकेगतःपार्थोधनुर्धरः ॥ पंचवर्षाणिकौंतेयःस्थितस्तत्रसुरालये ॥ ८ ॥ मानुषेणैवदेहेनवासवस्यचसन्निधौ ॥ तथैवाऽन्येऽपिभूपालाःककुत्स्थप्रमुखाःकिल ॥ ९ ॥ स्वर्लोकंगतयःपश्चाद्दैत्याश्चाऽपिमहाबलाः ॥ जित्वेंद्रसदनंप्राप्यसंस्थितास्तत्रकामतः ॥१०॥ महाभिषःपुराराजाब्रह्मलोकंगतःस्वराट् ॥आगच्छंतीं नृपोगंगामपश्यच्चाऽतिसुंदरीम् ॥ ११ ॥ वायुनांवरमस्यास्तुदैवादपहृतंनृप ॥ किंचिन्नग्नानृपेणाऽथदृष्टासासुंदरीतथा ॥१२॥ स्मितंचकारकामार्तःसाचकिंचिज्जहासवै ॥ ब्रह्मणातौतदादृष्टौशप्तौयातौवसुंधराम् ॥ १३ ॥ वैकुंठेऽपिसुराःसर्वेपीडितादैत्यदानवैः ॥ गत्वाहरिंजगन्नाथमस्तुवन्कमलापतिम् ॥ १४ ॥ संदेहोनाऽत्रकर्तव्यःसर्वथानृपसत्तम ॥ गम्याःसर्वेऽपिलोकाःस्युर्मानवानांनराधिप ॥ १५ ॥ अवश्यंकृतपुण्यानांतापसानांनराधिप ॥ पुण्यसद्भावएवाऽत्रगमने कारणंनृप ॥ १६ ॥

गटभावसे हँसनेपर फिर वह गंगाभी हँसी तिससमय ब्रह्माजीने उन दोनोंकी इसप्रकार अवस्था देखकर तत्काल शाप दिया उसीके अनुसार उन्होंने भूर्लोकमें आनकर जन्म ग्रहण किया ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण देवता दानवोंके हाथसे दुःखित हो वैकुण्ठमें जाय जगन्नाथ कमलापति हरिका स्तव करते थे ॥ १४ ॥ हे नरनाथ ! मनुष्य सम्पूर्ण लोकोंमें भी जासक्ते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ जो अनेकानेक पुण्य सञ्चयकरते हैं ऐसे महात्मा यजमान और तपस्वियोंकी तो निश्चयही स्वर्गमें गति होती है. हे राजन् ! पुण्यकी बहुतायतही स्वर्गमें जानेका एकमात्र कारण है अतएव इस विषयमें कोई सन्देह करना आपको उचित नहीं है ॥ १६ ॥

इसीप्रकार जो यजन यज्ञ अथवा तपस्या करते हैं वह उत्तम लोकमें जाते हैं जनमेजयने कहा हे मुनिवर! रेवतराजा शोभायमान नेत्रोंवाली कन्या रेवतीको संग ले॥ १७॥ ब्रह्मलोकमें गये किन्तु उन्होंने वहाँ जाकर अन्तमें क्या किया ब्रह्माजीने उनको क्या आज्ञा दी? और उन्होंने उनकी आज्ञानुसार किसको कन्या दी ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन्! आप यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये व्यासजीने कहा हे महीपाल! वह वृत्तान्त सुनो रेवतराजा॥ १९॥ कन्याके वरका विषय पूँछनेको जिस समय ब्रह्मलोकमें गये तिससमय ब्रह्मलोकमें गाना बजाना होरहा था राजाने कन्याके सहितसभाके अवसरकी अपेक्षासे क्षणकाल प्रतीक्षा की ॥ २० ॥ किन्तु गाना सुनकर कन्यासहित ऐसे सन्तुष्ट हुए कि, तृप्त न हुए बरन् सुनतेही रहे उस गानेबजानेके समाप्त होनेपर राजाने परमेष्ठी ब्रह्माको प्रणाम कर ॥ २१ ॥ उनको कन्या दिखाय

तथैवयजमानानांयज्ञेनभावितात्मनाम् ॥ जनमेजयउवाच ॥ रेवतोरेवतींकन्यांगृहीत्वाचारुलोचनाम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मलोकंगतःपश्चात्किंकृतंतेनभूभुजा ॥ ब्रह्मणाकिंसमादिष्टंकस्मैदत्तासुतापुनः ॥१८॥ तत्सर्वंविस्तराद्ब्रह्मन्कथयत्वंममाऽधुना ॥ व्यासउवाच ॥ निशामयमहीपालराजारेवतकःकिल॥ १९॥ पुत्र्यावरंपरिप्रष्टुंब्रह्मलोकंगतोयदा ॥ आवर्तमानेगांधर्वेस्थितोलब्धक्षणःक्षणम् ॥२०॥ शृण्वन्नतृप्यद्धृष्टात्मासभायांतुसकन्यकः ॥ समाप्तेतत्रगांधर्वेप्रण म्यपरमेश्वरम् ॥ २१ ॥ दर्शयित्वासुतांतस्मैस्वाभिप्रायंन्यवेदयत् ॥ राजोवाच ॥ वरंकथयदेवेशकन्येयंममपुत्रिका॥२२॥देयाकस्मैमयाब्रह्मन्प्रष्टुंत्वांस मुपागतः ॥ बहवोराजपुत्रामेवीक्षिताःकुलसंभवाः ॥ २३ ॥ कस्मिंश्चिन्मेमनःकामंनोपतिष्ठतिचंचलम् ॥ तस्मात्त्वांदेवदेवेशप्रष्टुमत्रागतोऽस्म्यहम् ॥ ॥ २४ ॥ तदाज्ञापयसर्वज्ञयोग्यंराजसुतंवरम् ॥ कुलीनंबलवंतंचसर्वलक्षणसंयुतम् ॥ २५ ॥ दातारंधर्मशीलंचराजपुत्रंसमादिश ॥ व्यासउवाच ॥ तदाकर्ण्यजगत्कर्तावचनंनृपतेस्तदा ॥ २६ ॥ तमुवाचहसन्वाक्यंदृष्ट्वाकालस्यपर्ययम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राजपुत्रास्त्वयाराजन्वरायेहृदयेकृताः ॥ २७ ॥ ग्रस्ताःकालेनतेसर्वेसपितृपौत्रबांधवाः ॥ सप्तविंशतिमोऽद्यैवद्वापरस्तुप्रवर्तते ॥ २८ ॥

अपना अभिप्राय कहा राजा बोले हे देव! यह वरारोहा मेरी कन्या है इसका वर कौन है? यह आप बतादीजिये ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन्! यह कन्या किसको प्रदान करूं यह बात पूँछनेकोही आपके समीप आया हूं सत्कुलोत्पन्न अनेक राजपुत्र ढूँढकर देखे हैं ॥ २३ ॥ किन्तु उनमेंसे कोई पुरुष भी मेरे मनमें स्थिर नहीं हुआ. हे देवदेवेश! इसी कारण पूँछनेके लिये इस स्थानमें आया हूं ॥ २४ ॥ अतएव आप इसके उपयुक्त एक वर नियतकर दीजिये. वह वर कुलीन बलवान् धर्मात्मा सर्वसुलक्षणयुक्त ॥ २५ ॥ और दाता धर्मशील राजाका पुत्र हो आपसे यही मेरी प्रार्थना है ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! तब जगत्कर्ता पद्मयोनि नरपतिका यह वचन सुन ॥ २६ ॥ कालका अतिक्रम देख हँसते हँसते उनसे कहनेलगे हे राजन्! तुमने जिन सब राजपुत्रोंको वर जाना था ॥ २७ ॥ वह सभी कालके ग्रास हुए

हैं यही क्या उनके पुत्र पौत्र और बान्धवपर्यन्तभी अब जीवित नहीं हैं इससमय सत्ताईसवें मन्वन्तरका द्वापरयुग वर्तमान है ॥ २८ ॥ अतएव तुम्हारे वंशोत्पन्न राजपुत्रोंमेंसेभी अब कोई वर्तमान नहीं है तुम्हारी नगरीको भी दैत्योंने लूटलिया था अब चन्द्रवंशीय राजा उसको शासन करते हैं ॥ २९ ॥ पुण्यात्मा ययातिकुल तिलक माथुर जनपदेश्वर महाराज उग्रसेन उस स्थलमें राज्यशासन करते हैं ॥ ३० ॥ उनका पुत्र महाबलवान् कंस दानवोंके औरससे जन्म ग्रहणकर सर्वदाही देवताओंका अनिष्टसाधन करने लगा और उसने अपने पिताको कारागारमें बन्दकरके रक्खा ॥ ३१ ॥ वह मदसे गर्वित हो सम्पूर्ण राजाओंका राज्य स्वयं शासनकर प्रजाका महत् अनिष्ट साधन करने लगा. हे महाराज ! इसी समयमें उस दुष्ट दैत्यराजकी सेनाके भारसे पृथ्वी इतनी व्याकुल होगई कि, फिर किसी प्रकार भी भार न सहसकी अतएव ब्रह्माजीके निकट जाय उनकी शरणागत हुई ॥ ३२ ॥ वह दुष्ट राजाओंका भार भूत सेनाके भारसे व्याकुल होगई तदनन्तर ब्रह्मादि देवताओंने कहा

वंशजास्तेमृताःसर्वेपुरींदैत्यैर्विलुंठिता ॥ सोमवंशोद्भवस्तत्रराजाराज्यंप्रशास्तिहि ॥ २९ ॥ उग्रसेनइतिख्यातोमथुराधिपतिःकिल ॥ ययातिवंशसंभूतोराजामाथुरमंडले ॥ ३० ॥ उग्रसेनात्मजःकंसःसुरद्वेषीमहाबलः ॥ दैत्यांशःपितरंसोपिकारागारंन्यवेशयत् ॥३१॥ स्वयंराज्यंचकाराऽसौनृपाणांमदगर्वितः ॥ मेदिनीचातिभारार्ताब्रह्माणंशरणंगता ॥ ३२ ॥ दुष्टराजन्यसैन्यानांभारेणाऽतिसमाकुला ॥ अंशावतरणंतत्रगदितंसुरसत्तमैः ॥ ३३ ॥ वासुदेवःसमुत्पन्नःकृष्णःकमललोचनः ॥ देवक्यांदेवरूपिण्यांयोऽसौनारायणोमुनिः ॥ ३४ ॥ तपश्चचारदुःसाध्यंधर्मपुत्रःसनातनः ॥ गंगातीरंनरसखःपुण्येबदरिकाश्रमे ॥ ३५ ॥ सोऽवतीर्णोयदुकुलेवासुदेवोऽतिविश्रुतः ॥ तेनाऽसौनिहतःपापःकंसःकृष्णेनसत्तम ॥ ३६ ॥ उग्रसेनायराज्यंवैदत्तंहत्वाखलंसुतम् ॥ कंसस्यश्वशुरःपापोजरासंधोमहाबलः ॥ ३७ ॥ आगत्यमथुरांक्रोधाच्चकारसंगरंमुदा ॥ कृष्णेनाऽऽसौजितःसंख्येजरासंधोमहाबलः ॥ ३८ ॥

हे वसुन्धरे ! तुम्हारा भार हलका करनेके लिये देवताओंने अंशावतारको लिया है ॥ ३३ ॥ कमललोचन नारायणने अपने अंशसे अवतीर्ण होकर जन्म ग्रहण किया है वह स्वयं सनातन नारायण कमललोचन कृष्ण है वही यदुकुलमें देहरूपिणी देवकीके गर्भ और वसुदेवके औरससे अवतीर्ण हो वासुदेव नामसे विख्यात हुए ॥ ३४ ॥ पहले नरसखा धर्मपुत्र नारायणने गंगाकिनारे परम पवित्र बद्रिकाश्रममें भ्राताके सहित घोर तप किया था ॥ ३५ ॥ वह यदुकुलमें अवतीर्ण होकर वासुदेव नामसे विख्यात हुए. हे नृपसत्तम ! उस पापाचार दुष्टमति खलप्रकृति कंसको मारकर ॥ ३६ ॥ उस साम्राज्यमें उग्रसेनको प्रतिष्ठित किया और दुष्ट कंसको मारा. महा विक्रमशाली पापिष्ठ मगधपति जरासंध कंसका श्वशुर था ॥ ३७ ॥ उसने जामाताकी निधनवार्ता सुन क्रोधके वशीभूत हो मथुरामें आय घोर संग्राम किया महात्मा

कृष्णने महाबली जरासंधको जीता ॥ ३८ ॥ वासुदेवके उस महातेजोगर्वित जरासंधको पराजय करनेपर भी उसने सेनासहित कालयवनको फिर युद्ध करनेके लिये भेजा. अनन्तर भगवान् वासुदेव सेना सहित यवनराजके आनेका वृत्तान्त जान ॥ ३९ ॥ परिवार सहित सम्पूर्ण यादवोंको द्वारकामें भेज स्वयं बलदेवके सहित यवन राजाके आनेकी प्रतीक्षासे स्थित रहे. फिर अकेलेही यवनके शिविरमें जाय कालयवनको आकर्षणपूर्वक गिरिगुहामें ले जाय सुप्तोत्थित महाराज मुचुकुन्दसे उस दुरात्मा यवनको मरवाय मथुराको छोड द्वारकाको चलेगये. तिस समय उस द्वारकापुरीकी भग्नावस्था थी; अतएव कृष्णने शिल्पकारोंको बुलाय दिव्य महल दुर्ग और अटारि इत्यादि बनवाकर उसका सौंदर्य सम्पादन किया. वह प्रतापवान् वासुदेव जीर्ण नगरीका संस्कार कराय उग्रसेनको राज्यपदमें नियुक्तकर वह यदूत्तम वहां यादवोंको स्थापित कर अन्यान्य बान्धवोंके सहित अबभी वहां विराजमान हैं ॥ ४० ॥ उनके अग्रज हलायुध बलदेव नामसे विख्यात हैं. वही मूसली

प्रेषयामासयुद्धायसबलंयवनंततः ॥ श्रुत्वायातंमहाशूरंससैन्यंयवनाधिपम् ॥ ३९ ॥ "कृष्णस्तुमथुरांत्यक्त्वापुरींद्वारवतीमगात् ॥ प्रभग्नांतांपुरींकृष्णः शिल्पिभिःसहसंगतैः ॥ कारयामासदुर्गाढ्यांहट्टशालाविमंडिताम् ॥ जीर्णोद्धारंपुरःकृत्वावासुदेवःप्रतापवान् ॥ उग्रसेनंचराजानंचकारवशवर्तिनम् ॥" यादवान्स्थापयामासद्वारवत्यांयदूत्तमः ॥ वासुदेवस्तुतत्राऽद्यवर्ततेबांधवैःसह ॥ ४० ॥ तस्याऽग्रजःसविख्यातोबलदेवोहलायुधः ॥ शेषांशोमुसलीवीरोवरोऽस्तुतवसंमतः ॥ ४१ ॥ संकर्षणायदेह्याशुकन्यांकमललोचनाम् ॥ रेवतींबलभद्रायविवाहविधिनाततः ॥ ४२ ॥ दत्त्वापुत्रींनृपश्रेष्ठगच्छत्वंवदरिकाश्रमम् ॥ तपस्ततुंसुरारामंपावनंकामदंनृणाम् ॥ ४३ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिराजासमादिष्टोब्रह्मणापद्मयोनिना ॥ जगामतरसाराजन्द्वारकां कन्ययाऽन्वितः ॥ ४४ ॥ ददौतांबलदेवायकन्यांवैशुभलक्षणाम् ॥ ततस्तत्वातपस्तीव्रंनृपतिःकालपर्यये ॥ ४५ ॥ जगामत्रिदशावासंत्यक्त्वादेहंसरित्तटे ॥ राजोवाच ॥ भगवन्महदाश्चर्यंभवतासमुदाहृतम् ॥ ४६ ॥

अनन्तदेवके अंशावतार और महावीर हैं वही तुम्हारी कन्याके उपयुक्त वर हैं ॥ ४१ ॥ अतएव इस कमलके समान नेत्रोंवाली रेवतीको विवाहकी विधि अनुसार संकर्षण बलभद्रके हाथमें शीघ्र प्रदान करो ॥ ४२ ॥ और तुम कन्यादान करके तपस्याका अनुष्ठान करनेके निमित्त बद्रिकाश्रममें जाओ वह पुण्याश्रम देवताओंका विहारस्थान और पवित्र तथा मनुष्योंको कामनादायक है ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोलेहे राजन् ! कमलयोनि ब्रह्माजीके आज्ञा देनेपर राजा अपनी कन्याको संग ले द्वारकामें आये ॥ ४४ ॥ वहां पहुँचकर वह सर्वसुलक्षणयुक्त कन्या विधिके अनुसार बलदेवजीको दी. अन्तमें ब्रह्माजीके उपदेशसे बदरिकाश्रममें जाय कठोर तपस्यामेंनिरत हुए ॥ ४५ ॥ फिर मृत्युकाल उपस्थित होनेपर नदीके तटपर देहत्यागकर सुरलोकको चलेगये. जनमेजयने कहा हेभगवन् ! आपने अत्यन्त आश्चर्यकी कथा कही ॥ ४६ ॥

रेवतराजा कन्याके सहित ब्रह्मलोकमें रहकर संगीत सुननेमें आसक्त हुए अष्टोत्तरशत (१०८) युग बीतनेपर भी ॥ ४७ ॥ राजा और उनकी कन्या अतिवृद्ध क्यों न हुए ? और उनकी इतनी आयु किसप्रकार हुई थी वह आप मुझसे कहिये ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! ब्रह्मलोक पापस्पर्शरहित है वहां जरा, क्षुधा, पिपासा अथवा मृत्यु आदि कुछभी नहीं है. उस स्थानमें अन्य कोई ग्लानि भी नहीं होसक्ती. अतएव वहांके वास करनेवाले पुरुष सर्वदा जरामरणरहित और दीर्घजीवी होते हैं इसमें सन्देह क्या है॥ ४९॥ शर्याति राजाके स्वर्ग जानेपर उनकी सन्तानको राक्षसोंने मार डाला और जो शेष रहे वह भयसे भीत होकर कुशस्थली त्यागकर इधर उधर भाग गये ॥ ५० ॥ वैवस्वतमनुके छींकने पर उनके घ्राणद्वारसे एक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम इक्ष्वाकु था

रेवतस्तुस्थितस्तत्रब्रह्मलोकेसुतार्थतः ॥ युगानांतुगतंतत्रशतमष्टोत्तरंकिल ॥ ४७॥ कन्यावृद्धानसंजाताराजावाऽतितरांनुकिम् ॥ एतावंतंतथाकालमायुःपूर्णंतयोःकथम् ॥ ४८ ॥ व्यासउवाच ॥ नजराक्षुत्पिपासावानमृत्युर्नभयंपुनः ॥ नतुग्लानिःप्रभवतिब्रह्मलोकेसदाऽनघ ॥४९॥ मेरुंगतस्यशर्यातेः संततीराक्षसैर्हता॥गताकुशस्थलींत्यक्त्वाभयभीताइतस्ततः॥५०॥मनोश्चक्षुवतःपुत्रउत्पन्नोवीर्यवत्तरः॥इक्ष्वाकुरितिविख्यातःसूर्यवंशकरस्तुसः ॥५१॥ वंशार्थंतपआतिष्ठद्देवींध्यात्वानिरंतरम् ॥ नारदस्योपदेशेनप्राप्यदीक्षामनुत्तमाम् ॥ ५२ ॥ तस्यपुत्रशतंराजन्निक्ष्वाकोरितिविश्रुतम् ॥ विकुक्षिःप्रथमस्तेषांबलवीर्यसमन्वितः ॥ ५३ ॥ अयोध्यायांस्थितोराजाइक्ष्वाकुरितिविश्रुतः ॥ शकुनिप्रमुखाःपुत्राःपंचाशद्बलवत्तराः ॥ ५४ ॥ उत्तरापथदेशस्यरक्षितारःकृताःकिल ॥ दक्षिणस्यांतथाराजन्नादिष्टास्तेनतेसुताः ॥५५॥ चत्वारिंशत्तथाऽष्टौचरक्षणार्थंमहात्मना ॥ अन्यौद्वौसंस्थितौपार्श्वेसेवार्थंतस्यभूपतेः ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधेऽष्टमोध्यायः ॥ ८॥ व्यासउवाच ॥ कदाचिदष्टकाश्राद्धेविकुक्षिंपृथिवीपतिः ॥ आज्ञापयदसंमूढोमांसमानयसत्वरम् ॥ १ ॥

वही सूर्यवंशविस्तार करनेके लिये जगत्में विख्यात हुए ॥ ५१ ॥ महर्षि नारदके उपदेशानुसार अतिउत्तम दीक्षाको प्राप्त हो वंशबढ़ानेकी इच्छासे निरन्तर देवीका ध्यान करते हुए तपस्याका अनुष्ठान करने लगे॥ ५२॥ हे राजन् ! इक्ष्वाकुके सौ पुत्रउत्पन्न हुए उनमें विकुक्षिही प्रथम थे. वही वीर्यवान् और बलसम्पन्न हुए ॥ ५३ ॥ इक्ष्वाकुने राजा होकर अयोध्यामें वास किया और उन्होंने शकुनि इत्यादि अत्यन्तबलवान् पचास पुत्रोंको ॥ ५४ ॥ उत्तरापथ प्रदेशकी रक्षा कार्यमें नियुक्त किया. उन महात्माने और भी अडतालीस पुत्रोंको दक्षिणदेशकी रक्षा करनेके लिये भेजा था. हे भूपते ! शेष दो पुत्रोंको सेवाकेलिये अपने पासही रक्खा था ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! किसी समय अष्टकाश्राद्ध उपस्थित होनेपर पृथ्वी

पति इक्ष्वाकुने अपने पुत्र विकुक्षिको आज्ञा दी कि, हे वत्स ! तुम शीघ्र वनमें जाय श्राद्धके लिये पवित्र मांस संग्रह कर लाओ ॥ १ ॥ सावधान देखो इसमें किसी प्रकारकी त्रुटि न हो. विकुक्षि पिताकी इस प्रकार आज्ञा पाय अस्त्रशस्त्र ग्रहण कर तत्काल वनको चले गये ॥ २ ॥ उन्होंने वनमें जाय निशित बाणोंसे असंख्य शूकर वराह मृग खरगोश इत्यादि सभी संहार किये परन्तु वह वनमें भ्रमण करते करते थककर क्षुधासे इतने कातर होगये कि ॥ ३ ॥ पिताके अष्टकाकी बात भूल वनमेंही एक खरगोशको भक्षण किया. शेष अत्युत्तम सम्पूर्ण मांस लाय पिताको समर्पण किया ॥ ४ ॥ जब मांस प्रोक्षणके लिये लाया गया तब कुलगुरु मुनिसत्तम वसिष्ठ उसको देखतेही भुक्तावशिष्ट (भोजनसे बचा हुआ) जान अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ५ ॥ भुक्तावशिष्ट द्रव्य श्राद्धमें प्रोक्षणके योग्य नहीं होता यही शास्त्रीय विधि है. वसिष्ठजीने राजाको इस पाकदूषणका विषय विदित किया ॥ ६ ॥ गुरुदेवके वाक्यानुसार पुत्रका यह कार्य जान राजाने विधिलोपवशतः पुत्रके प्रति अत्यन्त

मेध्यंश्राद्धार्थमधुनावनेगत्वासुतादरात् ॥ इत्युक्तोऽसौतथेत्याशुजगामवनमस्त्रभृत् ॥ २ ॥ गत्वाजवानबाणैःसवराहान्सूकरान्मृगान् ॥ शशांश्चापिपरिश्रांतोबभूवाऽथबुभुक्षितः ॥ ३ ॥ विस्मृताचाऽष्टकातस्यशशंचाऽऽददसौवने ॥ शेषंन्यवेदयामासपित्रेमांसमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रोक्षणायसमानीतंमांसंदृष्ट्वागुरुस्तदा ॥ अनर्हमितितज्ज्ञात्वाचुकोपमुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ भुक्तशेषंतुनश्राद्धेप्रोक्षणीयमितिस्थितिः ॥ राज्ञेनिवेदयामासवसिष्ठःपाकदूषणम् ॥ ६ ॥ पुत्रस्यकर्मतज्ज्ञात्वाभूपतिर्गुरुणोदितम् ॥ चुकोपविधिलोपात्तंदेशान्निःसारयत्ततः ॥७॥ शशादइतिविख्यातोनाम्ना जातोनृपात्मजः ॥ गतोवनेशशादस्तुपितृकोपादसंभ्रमः ॥ ८ ॥ वन्येनवर्तयन्कालंनीतवान्धर्मतत्परः ॥ पितर्युपरतेराज्यंप्राप्तंतेनमहात्मना ॥ ९ ॥ शशादस्त्वकरोद्राज्यमयोध्यायाःपतिःस्वयम् ॥ यज्ञाननेकशःपूर्णांश्चकारसरयूतटे ॥ १० ॥ शशादस्याभवत्पुत्रःककुत्स्थइतिविश्रुतः ॥ तस्यैवनामभेदाद्वैइंद्रवाहःपुरंजयः ॥ ११ ॥ जनमेजयउवाच ॥ नामभेदःकथंजातोराजपुत्रस्यचाऽनघ ॥ कारणंब्रूहिमेसर्वंकर्मणायेनचाऽभवत् ॥१२॥

क्रोधित हो उसको अपने देशसे निकाल दिया ॥ ७ ॥ तबहीसे राजपुत्र (खरगोश भक्षण करनेके कारण) शशाद नामसे विख्यात हुए. परन्तु यह शशाद पिताके क्रोधसे कुछभी क्षुभित न हो वनमें जाय वास करने लगे ॥ ८ ॥ वह धर्ममें निरत हो वनके फल मूल भक्षण कर सुखसे काल व्यतीत करने लगे. कुछेक कालोपरान्त पिताके परलोक प्राप्त होनेपर वह महात्मा पिताके राज्यको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ शशादने अयोध्याका राजा होकर राज्यशासन करनेके समय सरयूनदीके तटपर अनेक महत् यज्ञ किये थे ॥ १० ॥ शशादको एक पुत्र था वह तीनों लोकमें ककुत्स्थ नामसे विख्यात हुआ था. उसके इन्द्र वाहु एवं पर परञ्जय यह दो अन्य नाम थे ॥ ११ ॥ जनमेजयने कहा हे पवित्रात्मन् ! राजपुत्रका ककुत्स्थ नामान्तर किसकारणसे और किसप्रकार हुआ था ? किस कार्यसे उसके अन्य दो नाम हुए

यह सम्पूर्ण विवरण मुझसे कहिये ॥ १२ ॥ व्यासजीने कहा हे नृपसत्तम ! महाराजशशादके स्वर्गजानेपर कुकुत्स्थ राजा हुए वह धर्मात्मा पिता और पितामहका राज्य अतिदोर्दण्डप्रतापसे शासन करने लगे. उसी समय सम्पूर्ण देवता दानवोंसे पराजित हो ॥ १३ ॥ त्रिलोकाधिपति अच्युत विष्णुकी शरणागत हुए. तब सच्चिदानंदमय सनातन महाविष्णुने उन देवताओंसे कहा ॥ १४ ॥ विष्णु बोले हे देवताओ ! तुम शशादतनय सर्वजनरक्षक महीपाल ककुत्स्थके निकट प्रार्थनाकरो वह महात्मा तुम्हारे पार्ष्णिग्रह(पार्श्वरक्षक)होकर सम्पूर्ण दानवोंको समरमें निहत करेंगे इसमें सन्देह नहीं॥ १५ ॥ वह कुकुत्स्थ धार्मिक विशेषकर पराशक्तिके उपासक हैं. अतएव उनके प्रसादसे उन नरपतिके बलकी सीमा नहीं है इसकारण प्रार्थना करनेपर वह धनुर्द्धारीहो तुम्हारी सहायता करनेको अवश्यही आवेंगे. इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! इन्द्रादि देववृन्द हरिके यह सुधामय वचन सुनतेही अयोध्यानगरमें शशादतनय ककुत्स्थके निकट गये ॥ १७ ॥ देवताओंके उपस्थित होनेपर राजाने

व्यासउवाच॥शशादेस्वर्गतेराजाककुत्स्थइतिचाऽभवत् ॥ "राज्यंचकारधर्मज्ञःपितृपैतामहंबलात्" ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवादैत्यैःसर्वेपराजिताः ॥ १३ ॥ जग्मुस्त्रिलोकाधिपतिंविष्णुंशरणमव्ययम् ॥ तान्प्रोवाचमहाविष्णुस्तदादेवान्सनातनः ॥ १४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ पार्ष्णिग्राहंमहीपालंप्रार्थयंतुशशादजम् ॥ सहनिष्यतिवैदैत्यान्संग्रामेसुरसत्तमाः ॥ १५॥ आगमिष्यतिधर्मात्मासाहाय्यार्थेधनुर्धरः ॥ पराशक्तेःप्रसादेनसामर्थ्यंतस्यचाऽतुलम् ॥१६॥ हरेःसुवचनाद्देवाययुःसर्वेसवासवाः ॥ अयोध्यायांमहाराजशशादतनयंप्रति ॥ १७ ॥ तानागतान्सुरान्राजापूजयामासधर्मतः॥ पप्रच्छागमनेराजाप्रयोजनमतंद्रितः ॥१८॥ राजोवाच ॥ धन्योऽहंपावितश्चाऽस्मिजीवितंसफलंमम ॥ यदागत्यगृहेदेवाददुश्चदर्शनेमहत् ॥ १९॥ ब्रुवंतुकृत्यंदेवेशादुःसाध्यमपिमानवैः॥करिष्यामिमहत्कार्यंसर्वथाभवतांमहत् ॥२०॥ देवाऊचुः॥साहाय्यंकुरुराजेंद्रसखाभवशचीपतेः॥ संग्रामेजयदैत्येंद्रान्दुर्जयांस्त्रिदशैरपि ॥२१॥ पराशक्तिप्रसादेनदुर्लभंनास्तितेकचित् ॥ विष्णुनाप्रेरिताश्चैवमागतास्तवसन्निधौ ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ पार्ष्णिग्राहोभवाम्यद्यदेवानांसुरसत्तमाः ॥ इंद्रोमेवाहनंतत्रभवेद्यदिसुराधिपः ॥ २३ ॥

सावधान हो उनकी यथाविधि पूजाकर उनसे आनेका कारण पूँछा ॥ १८ ॥ राजाने कहा हे देवताओ ! आपने अनुग्रहपूर्वक जब मेरे घर आय प्रत्यक्ष दर्शन दिया है तब मैं पवित्र और धन्य हुआ और मेरा जन्मभी सफल हुआ ॥ १९ ॥ हे देवेशवृन्द ! आपका क्या कार्य साधन करना होगा वह आप कहिये. वह मनुष्योंको कठिन होनेपरभी मैं आपके उस महत्कार्यको अवश्यही करूंगा ॥ २० ॥ देवता बोले हे राजपुत्र ! तुम हमारी सहायताकर देवताओंसेभी अजय दैत्यपतियोंको समरमें जीतकर शचीपति इन्द्रके सहित मित्रता स्थापन करो ॥ २१ ॥ हे महाराज ! पराशक्तिके प्रसादसे तुमको कहीं भी कुछ दुर्लभ नहीं है अतएव विष्णुकी आज्ञासे हम तुम्हारे पास आये हैं ॥ २२॥ राजाने कहा हे सुरसत्तमगण ! सुराधिपति इन्द्र यदि उस युद्धके समय मेरे वाहन हों तो मैं देवताओंका पार्ष्णिरक्षक (दोनों ओर रक्षक)

हो सका हूं ॥ २३ ॥ देवताओंके कारण अब मैं दानवोंके संग संग्राम करूंगा किन्तु इन्द्रकी पीठपर चढ़कर संग्रामस्थलमें जाऊंगा, यह मैंने आपसे सत्यही कहा है ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! तब देवताओंने इन्द्रसे कहा हे शचीपते ! यह अद्भुत कार्यसम्पादन करना आपको अत्यन्त कर्तव्य है. अतएव आप लज्जा परित्याग कर इस नरेन्द्रके वाहन हूजिये ॥ २५ ॥ सुरपति इन्द्र इस कार्यके करनेसे लज्जित हुए किन्तु हरिने उनको वारंवार उसमें नियुक्तकिया. अतएव देवराज इन्द्रने रुद्रके महावृषभकी समान वृषभमूर्ति धारण की ॥ २६ ॥ राजा संग्राममें जानेके लिये उस वृषभपर चढ़े उन्होंने वृषभकी पीठपर बैठकर युद्ध किया था इसी कारण उनका ककुत्स्थनाम हुआ ॥ २७॥ राजाने इन्द्रको वाहन किया इसकारण उनका नाम इन्द्रवाह और उन्होंने युद्धमें दानवोंके पुर जीत इससे उनका नाम पुरञ्जय हुआ था

संग्रामंतुकरिष्यामिदैत्यैर्देवकृतेऽधुना ॥ आरुह्येंद्रंगमिष्यामिसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २४ ॥ तदोचुर्वासवंदेवाःकर्तव्यंकार्यमद्भुतम् ॥ पत्रंभवनरेंद्रस्यत्यक्त्वालज्जांशचीपते ॥ २५ ॥ लज्जमानस्तदाशक्रःप्रेरितोहरिणाभृशम् ॥ बभूववृषभस्तूर्णंरुद्रस्येवाऽपरोमहान् ॥ २६ ॥ तमारुरोहराजाऽसौसंग्रामगमनायवै ॥ स्थितःककुदियेनाऽस्यककुत्स्थस्तेनचाऽभवत् ॥ २७ ॥ इंद्रोवाहःकृतोयेनतेननाम्नेंद्रवाहकः ॥ पुरंजितंतुदैत्यानांतेनाऽभूच्चपुरंजयः ॥ २८ ॥ जित्वादैत्यान्महाबाहुर्धनंतेषांप्रदत्तवान् ॥ पप्रच्छचैवंराजर्षेरितिसख्यंबभूवह ॥ २९ ॥ ककुत्स्थश्चाऽतिविख्यातोनृपतिस्तस्यवंशजाः ॥ काकुत्स्थाभुविराजानोबभूवुर्बहुविश्रुताः ॥ ३० ॥ ककुत्स्थस्याऽभवत्पुत्रोधर्मपत्न्यांमहाबलः ॥ अनेनाविश्रुतस्तस्यपृथुःपुत्रश्चवीर्यवान् ॥ ३१ ॥ विष्णोरंशःस्मृतःसाक्षात्पराशक्तिपदार्चकः ॥ विश्वरंधिस्तुविज्ञेयःपृथोःपुत्रोनराधि[illegible] ॥३२॥ चंद्रस्तस्यसुतःश्रीमान्राजावंशकरःस्मृतः ॥ तत्सुतोयुवनाश्वस्तुतेजस्वीबलवत्तरः ॥ ३३ ॥

॥ २८ ॥ उन महाबाहु राजाने दानवोंको समरमें पराजय करके उनकी धनसम्पत्ति देवताओंको प्रदानकी. अनन्तर वह देवताओंसे विदा ले अपने नगरको चलेगये. हे महाराज ! इस प्रकार उन राजर्षिके संग इन्द्रका सख्यभाव उत्पन्न हुआ था ॥ २९ ॥ हे राजन् ! ककुत्स्थ पृथ्वीतलमें अत्यन्त विख्यात हुए थे. उनके वंशोत्पन्न राजाभी काकुत्स्थ कहकर पृथ्वीमें विशेष परिचित हैं ॥ ३० ॥ धर्मपत्नीके गर्भसे ककुत्स्थ एक महाबलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम काकुत्स्थ था. उनका पुत्र पृथु अत्यन्त वीर्यवान् हुआ ॥ ३१ ॥ वह पृथू साक्षात् विष्णुके अंश थे. वह सदाही पराशक्तिके चरणकमलोंकी अर्चना करते थे. उनके पुत्र विश्वरन्धि हुए उन्होंने राजा होकर राजत्व किया था ॥ ३२ ॥ उनके पुत्र श्रीमान् चन्द्र हुए उन्होंने राजा होकर राज्यशासन और अपने वंशको भलीभाँति बढ़ाया था युवनाश्व

नामक उनके एक पुत्र हुए वह अत्यन्त बलवान् और महातेजस्वी थे ॥ ३३ ॥ युवनाश्वके शावस्तनामक परमधार्मिक एक पुत्र उत्पन्न हुए उन्होंने अमरावतीकी समान शावस्तीनामक एक अतिउत्तम पुरी बनाई ॥ ३४ ॥ महात्मा शावस्तके पुत्र बृहदश्व और बृहदश्वके पुत्र कुवलयाश्व हुए. वह अपने बाहुबलसे संपूर्ण पृथ्वीके अधिपति हुए थे ॥ ३५ ॥ उन्होंने धुन्धुनामक दानवका संहारकिया इसीसे भूमण्डलमें धुन्धुमार नामसे अत्यन्त विख्यात हुए ॥ ३६ ॥ उनके पुत्र दृढ़ाश्व हुए उन्होंने पृथ्वीका पालन किया उनके पुत्र श्रीमान् हर्यश्व ॥ ३७ ॥ और हर्यश्वके पुत्र निकुम्भ होकर वह पृथ्वीके अधिपति हुए. निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व थे कृशाश्वनामक उनके एक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उनका पुत्र महाबलवान् प्रसेनजित् था उसके विक्रमकी सीमा नहीं थी. प्रसेनजित्के पुत्र महाभाग

शावंतोयुवनाश्वस्यजज्ञेपरमधार्मिकः॥शावंतीनिर्मितातेनपुरीशक्रपुरीसमा॥३४॥बृहदश्वस्तुपुत्रोभूच्छावंतस्यमहात्मनः॥कुवलयाश्वःसुतस्तस्यबभूवपृथिवीपतिः॥३५॥धुंधुर्नामाहतोदैत्यस्तेनाऽसौपृथिवीतले॥धुंधुमारेतिविख्यातंनामप्रापाऽतिविश्रुतम् ॥३६॥ पुत्रस्तस्यदृढाश्वस्तुपालयामासमेदिनीम् ॥ दृढाश्वस्यसुतःश्रीमान्हर्यश्वइतिकीर्तितः॥३७॥निकुंभस्तत्सुतःप्रोक्तोबभूवपृथिवीपतिः॥ बर्हणाश्वोनिकुंभस्यकृशाश्वस्तस्यवैसुतः॥३८॥प्रसेनजित्कृशाश्वस्यबलवान्सत्यविक्रमः ॥ तस्यपुत्रोमहाभागोयौवनाश्वेतिविश्रुतः ॥ ३९ ॥ यौवनाश्वसुतःश्रीमान्मांधातेतिमहीपतिः ॥ अष्टोत्तरसहस्रंतुप्रासादायेननिर्मिताः ॥ ४० ॥ भगवत्यास्तुतुष्टयर्थंमहातीर्थेषुमानद ॥ मातृगर्भेनजातोऽसावुत्पन्नोजनकोदरे॥४१॥निःसारितस्ततःपुत्रःकुक्षिंभित्त्वापितुःपुनः ॥ ॥ राजोवाच ॥ नश्रुतंनचदृष्टंवाभवतातदुदाहृतम् ॥४२॥ असंभाव्यंमहाभागतस्यजन्मयथोदितम् ॥ विस्तरेणवदस्वाऽद्यमांधातुर्जन्मकारणम्॥४३॥

यौवनाश्व हुए ॥ ३९ ॥ हे महाभाग ! यौवनाश्वके पुत्र श्रीमान् मान्धाता हुए उन्होंने पृथ्वीमण्डलके अधीश्वर हो भगवतीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे काशी इत्यादि महातीर्थस्थानोंमें उनके अष्टोत्तर सहस्र (एकसौ आठ हजार) मन्दिर बनाये ॥ ४० ॥ हे मानद ! महातीर्थोंमें यह कार्य भगवतीको सन्तुष्ट करनेके लियेही किया था मान्धाता माताके गर्भसे उत्पन्न न हो पिताके उदरसे उत्पन्न हुए थे ॥ ४१ ॥ तिस समय अमात्योंने पिताकी कुक्षिभेदकर पुत्रको निकालाथा जनमेजयने कहा हे महाभाग ! आपने जो कहा वह न कभी देखा और न कभी सुना ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जन्मग्रहण करना अत्यन्त असम्भव है आप उन महात्माके

जन्मका कारण विस्तारसहित वर्णनकरके मेरा सन्देह दूर कीजिये ॥ ४३ ॥ वह सर्वाङ्गसुन्दर राजाके उदरसे किसप्रकार प्रकट हुए? व्यासजीने कहा हे मुनिसत्तम गण! नरपति यौवनाश्व परमधार्मिक राजाके सन्तान सन्तति कुछ न हुई ॥ ४४ ॥ और उनके सौ रानी थीं राजा प्रायः सदाही पुत्रके लिये चिन्तासागरमें निमग्न रहते ॥ ४५ ॥ एक समय वह पृथ्वीपति यौवनाश्व दुःखित हो पुत्रकी इच्छासे वनमें ऋषियोंके पवित्र आश्रममें गये ॥ ४६ ॥ वह तपोवनमें पहुँचकर तपस्वियोंके सामने अत्यन्त लम्बे लम्बे श्वास छोडने लगे उनको दुःखित देखकर ब्राह्मण कृपाके वशीभूतहुए ॥ ४७ ॥ हे राजन्! तब ब्राह्मणोंने उनसे कहा हे पार्थिव! आप किसकारण शोक प्रकाश करते हैं? हे महाराज! आपके मनमें क्या दुःख है? वह सत्य कहो ॥ ४८ ॥ हम अवश्य आपके दुःखका प्रतिकार करेंगे. यौवनाश्वने कहा हे मुनि

राजोदरेयथोत्पन्नः पुत्रः सर्वांगसुंदरः ॥ व्यासउवाच ॥ यौवनाश्वोनपत्योभूद्राजापरमधार्मिकः ॥ ४४ ॥ भार्याणांचशतंतस्यवभूवनृपतेर्नृप ॥ राजाचिंतापरःप्रायश्चिंतयामासनित्यशः ॥ ४५ ॥ अपत्यार्थेयौवनाश्वोदुःखितस्तुवनंगतः ॥ ऋषीणामाश्रमेपुण्येनिर्विण्णःसचपार्थिवः ॥ ४६ ॥ मुमोचदुःखितःश्वासांस्तापसानांचपश्यताम् ॥ दृष्ट्वातुदुःखितंविप्रावभूवुश्चकृपालवः ॥ ४७ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणाराजन्कस्माच्छोचसिपार्थिव ॥ किंतेदुःखंमहाराजब्रूहिसत्यंमनोगतम् ॥ ४८ ॥ प्रतीकारंकरिष्यामोदुःखस्यतवसर्वथा ॥ यौवनाश्व उवाच ॥ राज्यंधनंसदश्वाश्चवर्ततेमुनयोमम ॥ ४९ ॥ भार्याणांचशतंशुद्धंवर्ततेविशदप्रभम् ॥ नाऽरातिस्त्रिपुलोकेपुकोऽप्यस्तिवलवान्मम ॥ ५० ॥ आज्ञाकरास्तुसामंतावर्ततेमंत्रिणस्तथा ॥ एकंसंतानजंदुःखंनाऽन्यत्पश्यामितापसाः ॥ ५१ ॥ अपुत्रस्यगतिर्नास्तिस्वर्गोनैवचनैवच ॥ तस्माच्छोचामिविप्रेंद्राःसंतानार्थंभृशंततः ॥ ५२ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तापसाश्चकृतश्रमाः ॥ इष्टिंसंतानकामस्ययुक्तांज्ञात्वादिशंतुमे ॥ ५३ ॥ कुर्वंतुममकार्यंवैकृपाचेदस्तितापसाः ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराज्ञःकृपयापूर्णमानसाः ॥ ५४ ॥

सत्तमगण! मेरे राज्य, धन और उत्तम २ अश्व सम्पूर्णही विद्यमान हैं ॥ ४९ ॥ मेरे विमल शुद्धस्वभाववाली सौ रानियें विद्यमान हैं त्रिलोकमें मेरा कोई शत्रु भी नहीं है मेरी अपेक्षा बलवान भी कोई नहीं है ॥ ५० ॥ सम्पूर्ण राजा और अमात्य मेरे आज्ञाकारी हैं किन्तु हे तपस्वियो! एक मात्र अपुत्रता दुःखनेही मेरा सम्पूर्ण सुख नष्ट किया है ॥ ५१ ॥ देखो पुत्रहीन मनुष्यको कभी स्वर्ग प्राप्त नहीं होता. अतएव हे विप्रेन्द्रगण! केवल सन्तानके लियेही मैं निरन्तर शोक करता हूं ॥ ५२ ॥ आप तपस्वी हैं विशेषकर बहुत परिश्रम करके वेद शास्त्रका सार मर्म जाना है अतएव सन्तानकी इच्छा करनेवाले पुरुषको कौन यज्ञ करना युक्तिसंगत है आप लोग इसकी मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ५३ ॥ हे तपस्वियो! यदि आपकी मेरे प्रति कृपा हो तो आप इस सत्कार्यका अनुष्ठान कीजिये. व्यासजी बोले हे महाराज

राजाके यह वचन सुन उन्होंने दयासे पूर्ण हो ॥ ५४ ॥ स्थिरभावसे उनको इन्द्र जिस यज्ञके अधिष्ठात्री देवता थे ऐसा यज्ञ कराया भूपतिको पुत्र प्राप्तिके लिये प्रथम उन्होंने जलपूर्ण कलश स्थापन कराय ॥ ५५ ॥ वैदिक मंत्रद्वारा उसको अभिमंत्रित किया. राजा रात्रिके समय प्यासे हो उस यज्ञमें प्रविष्ट हुए ॥ ५६ ॥ और उसी समय ब्राह्मणोंको सोता हुआ देख वह मंत्रपूत जल स्वयं पिया ब्राह्मणोंने विधिके अनुसार जल उद्धृत और अभिमंत्रितकर राजाकी भार्याके लिये संस्कार किया था ॥ ५७ ॥ किन्तु राजाने प्यासे होकर अज्ञानसे स्वयं वह जल पीलिया दूसरे दिन प्रातःकालके समय ब्राह्मण जलरहित कलश देख अत्यन्त शंकित हुए ॥ ५८ ॥ तब ब्राह्मणोंने राजासे पूँछा यह जल किसने पाया है. तब उन्होंने जाना कि, राजाने यह जल पाया है यह दैवयोगसेही हुआ है ॥ ५९ ॥ मुनि यह जान यज्ञ समाप्त

कारयामासुरव्यग्रास्तस्येष्टिमिंद्रदेवताम् ॥ कलशःस्थापितस्तत्रजलपूर्णस्तुवाडवैः ॥ ५५ ॥ मंत्रितोवेदमंत्रैश्चपुत्रार्थंतस्यभूपतेः ॥ राजातद्यज्ञसदनंप्रविष्टस्तृषितोनिशि ॥ ५६ ॥ विप्रान्दृष्ट्वाशयानान्सपपौमंत्रजलंस्वयम् ॥ भार्यार्थंसंस्कृतंविप्रैर्मंत्रितंविधिनोद्धृतम् ॥ ५७ ॥ पीतंराज्ञातृषार्तेनतदज्ञानान्नृपोत्तम ॥ व्युदकंकलशंदृष्ट्वातदाविप्राविशंकिताः ॥ ५८ ॥ पप्रच्छुस्तेनृपंकेनपीतंजलमितिद्विजाः ॥ राज्ञापीतंविदित्वातेज्ञात्वादेवबलंमहत् ॥ ५९ ॥ इष्टिंसमापयामासुर्गतास्तेमुनयोगृहान् ॥ गर्भंदधारनृपतिस्ततोमंत्रबलादथ ॥ ६० ॥ ततःकालेसउत्पन्नःकुक्षिंभित्त्वाऽस्यदक्षिणम् ॥ पुत्रंनिष्कासयामासुर्मंत्रिणस्तस्यभूपतेः ॥ ६१ ॥ देवानांकृपयातत्रनममारमहीपतिः ॥ कंधास्यतिकुमारोऽयंमंत्रिणश्चुक्रुशुर्भृशम् ॥ ६२ ॥ तदेंद्रोदेशिनींप्रादान्मांधातेत्यवदद्वचः ॥ सोभवद्बलवान्राजामांधातापृथिवीपतिः ॥ ६३ ॥ तदुत्पत्तिस्तुभूपालकथितातवविस्तरात् ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ बभूवचक्रवर्तीसनृपतिःसत्यसंगरः ॥ मांधातापृथिवींसर्वामजयन्नृपतीश्वरः ॥ १ ॥

कर अपने अपने घरको चले गये इसके उपरान्त राजाने उस यज्ञीय मंत्रबलसे गर्भधारण किया ॥ ६० ॥ कुछ दिन व्यतीत होनेपर सन्तान पुष्ट हुई तब उन राजाके मंत्रियोंने उनकी दक्षिणकुक्षि भेदकर पुत्रको निकाला ॥ ६१ ॥ केवल देवताओंकी कृपासे उस समय राजाकी मृत्यु न हुई यह कुमार किसका स्तन पान करेगा यह बात कह मंत्रिलोक अत्यन्त आक्षेप करनेलगे ॥ ६२ ॥ तब इन्द्रने 'मां धाता' अर्थात् मुझको ('मेरी यह अमृतमय तर्ज्जनी अंगुली) पियेगा यह कह उसके मुखमें तर्जनी अंगुली दी इसी कारणसे उन महाबलीका नाम मांधाता हुआ ॥ ६३ ॥ हे भूपाल ! यह मैंने आपसे उन मांधाताके उत्पन्न होनेका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उन सत्यप्रतिज्ञ नरपति मांधाताने क्रमानुसार

सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतकर राजाओंके अधीश्वर हो सार्वभौम उपाधि प्राप्त की ॥ १ ॥ हे महाराज ! राजराजेश्वर मांधाताके प्रभावका वृत्तान्त और अधिक क्या कहैं तिस समय तस्कर उनके भयसे त्रस्त होकर पर्वतकी गुहामें भाग गये थे इस कारण इन्द्रने इनका नाम त्रसदस्यु रक्खा ॥ २ ॥ उन्होंने नन्दपाल शशबिंदुकी कन्या बिन्दुमतिका पाणिग्रहण किया उस पतिव्रता ललनाके अंग प्रत्यंगमें सम्पूर्ण सुलक्षण विद्यमान होनेसे उसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं थी ॥ ३ ॥ हे महाराज ! मांधाताने उसके गर्भसे सुविख्यात पुरुकुत्स और मुचुकुन्द दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४ ॥ पुरुकुत्सके पुत्र अनरण्य हुए यह राजकुमार बृहदश्व नामसे प्रसिद्ध हुए परन्तु यह अत्यन्त धार्मिक और पितृभक्ति परायण थे ॥ ५ ॥ उनके पुत्र हर्यश्व हुए वह धार्मिक और परमार्थ तत्वके जानने

दस्यवोऽस्यभयत्रस्तायर्युगिरिगुहासुच ॥ इंद्रेणाऽस्यकृतंनामत्रसदस्युरितिस्फुटम् ॥ २ ॥ तस्यांबिंदुमतीभार्याशशबिंदोःसुताऽभवत् ॥ पतिव्रतासुरूपाचसर्वलक्षणसंयुता ॥ ३ ॥ तस्यामुत्पादयामासमांधाताद्वौसुतौनृप ॥ पुरुकुत्संसुविख्यातंमुचुकुंदंतथाऽपरम् ॥ ४ ॥ पुरुकुत्सात्ततोरण्यःपुत्रःपरमधार्मिकः ॥ पितृभक्तिरतश्चाभूद्बृहदश्वस्तदात्मजः ॥ ५ ॥ हर्यश्वस्तस्यपुत्रोभूद्धार्मिकःपरमार्थवित् ॥ तस्याऽऽत्मजस्त्रिधन्वाभूदरुणस्तस्यचात्मजः ॥ ६ ॥ अरुणस्यसुतःश्रीमान्सत्यव्रतइतिश्रुतः ॥ सोऽभूदिच्छाचरःकामीमंदात्माह्यतिलोलुपः ॥ ७ ॥ सपापात्माविप्रभार्यांहृतवान्काममोहितः ॥ विवाहेतस्यविघ्नंसचकारनृपतेःसुतः ॥ ८ ॥ मिलिताब्राह्मणास्तत्रराजानमरुणंनृप ॥ ऊचुर्भृशंसुदुःखार्ताहाहताःस्मेतिचासकृत् ॥ ९ ॥ पप्रच्छराजातान्विप्रान्दुःखितान्पुरवासिनः ॥ किंकृतंममपुत्रेणभवतामशुभंद्विजाः ॥ १० ॥ तन्निशम्यद्विजावाक्यंराज्ञोविनयपूर्वकम् ॥ तदोचुस्त्वरुणंविप्राःकृताशीर्वचनाभृशम् ॥ ११ ॥

वाले थे उनके पुत्र त्रिधन्वा और त्रिधन्वाके पुत्र अरुण हुए ॥ ६ ॥ अरुणके पुत्र श्रीमान् सत्यव्रत हुए वह अत्यन्त लोभके वशीभूत कामुक मन्दस्वभाव और इच्छाकारी थे ॥ ७ ॥ एक समय उस पापात्मा राजकुमारने कामसे मोहित हो किसी ब्राह्मणकी भार्या हरण कर उसके विवाहमें विघ्न किया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण ब्राह्मणलोग मिल अत्यन्त परिताप करते करते राजा अरुणके समीप जाय वारंवार कहने लगे हा ! हम मरगये ॥ ९ ॥ राजाने उन दुःखित स्त्री पुरवासी ब्राह्मणोंसे कहा हे विप्रवृन्द ! मेरे पुत्रने आपका क्या अनिष्ट कार्य किया है ॥ १० ॥ राजाके यह विनययुक्त वचन सुन उन वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने वारंवार आशीर्वाद देकर उनसे कहा हे राजन् ! आप बलवानोंमें अग्रगण्य हैं अतएव आपके पुत्र भी ऐसेही हैं अब उन्होंने विवाह स्थलमें एक विवाहित ब्राह्मणकी कन्याको

बलपूर्वक हरण किया है ॥ ११ ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! तब परमधार्मिक राजाने ब्राह्मणका यह वचन सत्य जान पुत्रसे कहा हे दुर्बुद्धे ! आज तैंने यह दुष्कार्य करके अपने सत्यव्रतनामका अर्थ निष्फल किया ॥ १३ ॥ रे दुराचार ! तू मेरे घरसे निकलजा रे पापी ! मेरे अधिकारमें अब तू कभी नहीं रहसक्ता ॥ १४ ॥ तब सत्यव्रतने पिताको कुपित देखकर वारंवार कहा हे पितः ! मैं कहां जाऊं ? उन्होंने कहा तू श्वपचो (चांडालो) के सहित काल व्यतीत कर ॥ १५ ॥ तैंने ब्राह्मणकी स्त्री हरण करके श्वपचका कार्य किया है अतएव उनके संग रहकर सुखपूर्वक काल व्यतीत कर ॥ १६ ॥ रे कुलपाँसन ! मैं तेरे समान दुराचार पुत्रसे पुत्रवान् होनेकी इच्छा नहीं करता. विशेषकर तैंने वंशकी कीर्तिको नाश किया है अतएव रे दुष्टात्मन् ! तेरी जहां इच्छा हो वहां जा ॥ १७ ॥ सत्यव्रत कुपित पिताके

ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजंस्तवसुतेनाऽद्यविवाहेप्रहृताःकिल ॥ विवाहिताविप्रकन्याबलेनबलिनांवर ॥ १२ ॥ व्यासउवाच ॥ श्रुत्वातेषांवचस्तथ्यंराजापरम धार्मिकः ॥ पुत्रमाहवृथानामकृतंतेदुष्टकर्मणा ॥ १३ ॥ गच्छदूरंसुमंदात्मन्दुराचारगृहान्मम ॥ नस्थातव्यंत्वयापापविषयेममसर्वथा ॥ १४ ॥ कुपितंपितरंप्राहक्कगच्छामीतिवैमुहुः ॥ अरुणस्तमथोवाचश्वपाकैःसहवर्तय ॥ १५ ॥ श्वपचस्यकृतंकर्मद्विजदारापहारणम् ॥ तस्मात्तैःसहसंसर्गंकृत्वा तिष्ठयथासुखम् ॥ १६ ॥ नाऽहंपुत्रेणपुत्रार्थीत्वयाचकुलपांसन ॥ यथेष्टंव्रजदुष्टात्मन्कीर्तिर्नाशःकृतस्त्वया ॥ १७ ॥ सनिशम्यपितुर्वाक्यंकुपितस्यमहा त्मनः ॥ निश्चक्रामपुरात्तस्मात्तरसाश्वपचान्ययौ ॥ १८ ॥ सत्यव्रतस्तदातत्रश्वपाकैःसहवर्तते ॥ धनुर्बाणधरःश्रीमान्कवचीकरुणालयः ॥ १९ ॥ यदा निष्कासितःपित्राकुपितेनमहात्मना ॥ गुरुणाऽथवसिष्ठेनप्रेरितोऽसौमहीपतिः ॥ २० ॥ तस्मात्सत्यव्रतस्तस्मिन्बभूवक्रोधसंयुतः ॥ वसिष्ठेधर्मशास्त्रज्ञे निवारणपराङ्मुखे ॥ २१ ॥ केनचित्कारणेनाऽथपितातस्यमहीपतिः ॥ पुत्रार्थेऽसौतपस्तप्तुंपुरंत्यक्त्वावनंगतः ॥ २२ ॥

वचन सुन तत्काल उस पुरीसे बाहर निकल श्वपचोंके समीप गये ॥ १८ ॥ वह राजकुमार बख्तर पहर धनुर्बाण धारणकर तिससमय श्वपचोंके संग काल व्यतीत करने लगे किन्तु उस स्थानमें रहकरभी उनके हृदयमें करुणाका अभाव न हुआ ॥ १९ ॥ जब महात्मा पिताने कुपित हो उनको घरसे निकाला तिस समय गुरुदेव वसिष्ठजीने महीपतिको इस विषयमें नियुक्त किया था ॥ २० ॥ विशेषकर धर्मशास्त्रके जाननेवाले वशिष्ठजीने पुत्रके निकालनेमें उद्यत राजाको निवारण नहीं किया यह जानकर सत्यव्रत उनके प्रति कुपित हुए थे ॥ २१ ॥ उनके पिता किसी अनिर्वचनीय कारणसे नगरको त्यागकर पुत्रके लिये तपस्या करनेको वनमें गये ॥ २२ ॥

हे राजेन्द्र! इस अधर्मसे पाकशासन महेन्द्रने उस राज्यमें बारहवर्षतकएकवारही वर्षा न की ॥ २३ ॥ हे राजन्! उसी समय विश्वामित्र उस राज्यमें अपने स्त्री पुत्रोंको छोड़कर कौशिकी नदीके तटपर उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हुए थे ॥ २४ ॥ तब कौशिककी वह परमसुन्दरी भार्या कुटुम्बका पालन करनेके लिये दुःखसे अत्यन्त कातर हुई ॥ २५ ॥ बालक क्षुधासे व्याकुल हो नीवार अन्न (समा) माँगते हुए अत्यन्त रोते हैं. पतिव्रता कौशिककी भार्या यह देखकर अत्यन्त दुःखित हुई ॥ २६ ॥ वह पुत्रोंको क्षुधातुर देखकर दुःखित हो चिन्ता करने लगी कि, राजेश्वर राजाभी राजधानीमें नहीं हैं तो अब किससे मांगूं अथवा क्या उपाय करूं ? ॥ २७ ॥ पतिभी समीप नहीं हैं. अतएव मेरे पुत्रोंकी कौन रक्षा करेगा ? बालक रात दिन रोते हैं इस कारण मेरे

नववर्षतदातस्मिन्विषयेपाकशासनः ॥ समाद्वादशराजेंद्रतेनाऽधर्मेणसर्वथा ॥ २३॥ विश्वामित्रस्तदादारांस्तस्मिंस्तुविषयेनृप ॥ संन्यस्यकौशिकी तीरेचचारविपुलंतपः ॥ २४ ॥ कातरातत्रसंजाताभार्यावैकौशिकस्यह ॥ कुटुंबभरणार्थायदुःखितावरवर्णिनी ॥ २५ ॥ बालकान्क्षुधयाक्रां तान्रुदतःपश्यतीभृशम् ॥ याचमानांश्चनीवारान्कष्टमापपतिव्रता ॥ २६ ॥ चिंतयामासदुःखार्तातोकान्वीक्ष्यक्षुधातुरान् ॥ नृपोनास्तिपुरेह्यद्यकंयाचे वाकरोमिकिम् ॥२७॥ नमेत्राताऽस्तिपुत्राणांपतिर्मेनास्तिसन्निधौ ॥ रुदंतिबालकाःकामंधिङ्मेजीवनमद्यवै ॥२८॥ धनहीनांचमांत्यक्त्वातपस्तप्तुंगतःप तिः ॥ नजानातिसमर्थोपिदुःखितांधनवर्जिताम् ॥ २९॥ बालानांभरणंकेनकरोमिपतिनाविना ॥ मरिष्यंतिसुताःसर्वेक्षुधयापीडिताभृशम् ॥ ३० ॥ एकं सुतंतुविक्रीयद्रव्येणकियतापुनः ॥ पालयामिसुतानन्यानेवमेविहितोविधिः ॥ ३१ ॥ सर्वेषांमारणंनाद्धायुक्तंममविपर्यये ॥ कालस्यकलनायाऽहंवि क्रीणामितथात्मजम् ॥ ३२ ॥ हृदयंकठिनंकृत्वासंचिंत्यमनसासती ॥ सादर्भरज्ज्वाबद्धाथगलेपुत्रंविनिर्गता ॥ ३३ ॥

इस वृथा जीवन धारण करनेको धिक्कार है ॥ २८ ॥ धनहीन अवस्थामें मुझको छोडकर पति तपस्या करनेको गये हैं, मैं धनके अभावसे कष्ट भोगती हूं वह समर्थ होकर भी यह नहीं जानसकते ॥ २९ ॥ पतिके अतिरिक्त मैं किससे बालकोंका भरण पोषण करूं ? क्षुधासे पीडित होनेपर सम्पूर्ण पुत्रही कालके ग्रासमें पतित होंगे ॥ ३० ॥ जो हो एक पुत्रको बेंचकर जो कुछ द्रव्य मिलेगा उससे बचे हुए पुत्रोंका पालन कर सकूंगी इस उपायका अवलम्बन करनाही मुझको उचित है ॥ ॥ ३१ ॥ इसके अन्यथा करके सम्पूर्ण पुत्रोंको सहसा मृत्युके मुखमें डालना मुझको किसी प्रकार उचित नहीं है. अतएव जीवनयात्रा निर्वाह करनेके लिये मैं एक पुत्रको बेंचूंगी ॥ ३२ ॥ वह सती मनमें इसप्रकार विचारपूर्वक अपने हृदयको कठिन कर कुशकी रस्सीमें पुत्रका गला बांध बाहर निकली ॥ ३३ ॥

वह मुनिपत्नी अवशिष्ट पुत्रोंका भरण करनेके लिये गर्भजात मध्यम पुत्रका गला बाँध उसको लेकर घरसे निकली ॥ ३४ ॥ राजा सत्यव्रतने शोकसन्तापसे कातर हुई उस तापसीको देखकर पूँछा हे शोभने! तुम इस किस कार्योंमें प्रवृत्त हुई हो ॥ ३५ ॥ तुम कौनहो ? यह बालक क्यों रोता है तुम किसलिये इसका कण्ठ बांधकर लिये जाती हो. हे चारुवदने! इसका क्या कारण है यह तुम मुझसे सत्य कहो ॥ ३६ ॥ ऋषि पत्नीने कहा हे नृपनन्दन ! मैं विश्वामित्रकी भार्या हूं यह मेरा औरस पुत्र है अन्नके अभावसे गर्भजातपुत्रको इच्छानुसार वेंचने लिये जाती हूं ॥ ३७ ॥ हे नृप ! मुझको मेरे स्वामी छोडकर कहीं तपस्या करने गये हैं और घरमें भी कुछ अन्न नहीं है अतएव क्षुधासे कातर हुई अवशिष्ट सन्तानका भरण करनेके लिये मैं इसको वेंचूंगी ॥ ३८ ॥ सत्यव्रतने कहा हे पतिव्रते ! तुम पुत्रकी रक्षा करो

मुनिपत्नीगलेबद्ध्वामध्यमंपुत्रमौरसम् ॥ शेषस्यभरणार्थायगृहीत्वाचलितागृहात् ॥ ३४ ॥ दृष्टासत्यव्रतेनाऽऽर्तातापसीशोकसंयुता ॥ पप्रच्छनृपतिस्तांतुकिंचिकीर्षसिशोभने ॥ ३५ ॥ रुदंतंबालकंकंठेबद्ध्वानयसिकाऽधुना ॥ किमर्थंचारुसर्वांगिसत्यंब्रूहिममाऽग्रतः ॥ ३६ ॥ ऋषिपत्न्युवाच ॥ विश्वामित्रस्यभार्याऽहंपुत्रोऽयंमेनृपात्मज ॥ विक्रेतुमौरसंकामंगमिष्येविषमेसुतम् ॥ ३७ ॥ अन्नंनास्तिपतिर्मुक्त्वागतस्तप्तुंनृपक्कचित् ॥ विक्रीणामिक्षुधार्तैनंशेषस्यभरणायवै ॥ ३८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ पतिव्रतेरक्षपुत्रंदास्यामिभरणंतव ॥ तावदेवपतिस्तेऽत्रवनाच्चैवाऽऽगमिष्यति ॥ ३९ ॥ वृक्षेतवाऽऽश्रमाभ्याशेभक्ष्यंकिंचिन्निरंतरम् ॥ बंधयित्वागमिष्यामिसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४० ॥ इत्युक्तासातदातेनराज्ञाकौशिककामिनी ॥ विबंधंतनयंकृत्वाजगामाऽऽश्रममंडलम् ॥ ४१ ॥ सोऽभवद्गालवोनामगलबंधान्महातपाः ॥ सातुस्वस्याऽऽश्रमेगत्वामुमोदबालकैर्वृता ॥ ४२ ॥ सत्यव्रतस्तुभक्त्याचकृपयाचपरिप्लुतः ॥ विश्वामित्रस्यचमुनेःकलत्रंतद्बभारह ॥ ४३ ॥ वनेस्थितान्मृगान्हत्वावराहान्महिषांस्तथा ॥ विश्वामित्रवनाभ्याशेमांसंवृक्षेववंधह ॥ ४४ ॥

वनसे तुम्हारे पति जबतक इस स्थानमें नहीं आते हैं तबतक मैं तुम्हारे भरण पोषणके उपयुक्त आहारकी सामग्री दूंगा ॥ ३९ ॥ तुम्हारे आश्रम समीप किसी वृक्षमें कुछेक भक्ष्य द्रव्य नित्य बांध आया करूंगा. यह मैं तुमसे सत्यही कहता हूं ॥ ४० ॥ विश्वामित्रकी पत्नी राजाके यह वचन सुन पुत्रका बंधन छोड़ अपने आश्रममें चली गई ॥ ४१ ॥ गला बंधनेके कारण वह बालक गालवनामसे प्रसिद्ध होकर अन्तमें महातपा ऋषि हुआ. तब विश्वामित्रकी भार्या अपने आश्रममें जाय पुत्रोंसे परिवृत हो आनन्द अनुभव करनेलगी ॥ ४२ ॥ परन्तु सत्यव्रत भक्ति और कृपासे पूर्ण हो मिश्वामित्रमुनिकी भार्याका भार वहन करनेलगे ॥ ४३ ॥ वह वनके वराह, मृग और महिषको मारकर उनका मांस विश्वामित्रकी पत्नी और पुत्रोंके लिये लेजाकर जिस स्थानमें वास करे उसी तपोवनके समीप वृक्षमें बांध आते ॥ ४४ ॥

ऋषिपत्नी वह मांस लेकर पुत्रोंको भक्षण करनेके लिये देती. इसी प्रकार उसने अत्युत्तम भक्ष्य प्राप्तकर अत्यन्त सुख अनुभव किया ॥ ४५ ॥ इधर नरपति अरुणके वनमें तपस्या करनेको चलेजानेपर वसिष्ठमुनि अयोध्यानगरीके राज्य और अन्तःपुर समस्तहीकी सावधानतासे रक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥ सत्यव्रतभी पिताकी आज्ञानुसार नित्य पशुमारकर जीविकानिर्वाह करते और धर्ममें निरत रहकर नगरके बाहर वनमें वास करते थे ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतने किसी कारणसे वसिष्ठके ऊपर सदाही मनमें कोप धारण कर रक्खा था. क्योंकि पिताने जब धार्मिक प्रिय पुत्रको परित्याग किया तब उन्होंने उन राजाको निवारण नहीं किया. हे महाराज ! यही उनके कोपका कारण जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ सात पग न चलनेसे पाणिग्रहण कर्म समाप्त नहीं होता अतएव उसके हुए विना कन्याहरण करनेसे

ऋषिपत्नीगृहीत्वातन्मांसंपुत्रानदात्ततः ॥ निर्वृतिंपरमांप्रापप्राप्यभक्ष्यमनुत्तमम् ॥ ४५ ॥ अयोध्यांचैवराज्यंचतथैवांतःपुरंमुनिः ॥ गतेतस्मिंनृपे तस्मिन्वसिष्ठःपर्यरक्षत ॥ ४६ ॥ सत्यव्रतोऽपिधर्मात्माह्यतिष्ठन्नगराद्बहिः ॥ पितुराज्ञांसमास्थायपशुघ्नव्रतवान्वने ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतोह्यकस्माच्च कस्यचित्कारणान्नृपः ॥ वसिष्ठेचाऽधिकंमन्युंधारयामासनित्यदा ॥ ४८ ॥ त्यज्यमानंवनेपित्राधर्मिष्ठंचप्रियंसुतम् ॥ नवारयामासमुनिर्वसिष्ठःकारणेनह ॥ ४९ ॥ पाणिग्रहणमंत्राणांनिष्ठास्यात्सप्तमेपदे ॥ जानन्नपिसधर्मात्माविप्रदारपरिग्रहे ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसेऽरण्येमृगाभावेमहीपतिः ॥ वसिष्ठस्यचगांदोग्ध्रीमपश्यद्वनमध्यगाम् ॥ ५१ ॥ तांजघानक्षुधार्तस्तुक्रोधान्मोहाच्चदस्युवत् ॥ वृक्षेबबंधतन्मांसंनीत्वास्वयमभक्षयत् ॥ ५२ ॥ ऋषिपत्नीसुतान्सर्वान्भोजयामासतत्तदा ॥ शंकमानामृगस्येतिनगोरितिचसुव्रत ॥ ५३ ॥ वसिष्ठस्तुहतांदोग्ध्रींज्ञात्वाक्रुद्धस्तमब्रवीत् ॥ दुरात्मन्किंकृतंपापंधेनुघातात्पिशाचवत् ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणकी पत्नी हरण करना नहीं होता " कन्या हरण है " धर्मात्मा वसिष्ठने यह कारण जानकरभी उनको निषेध नहीं किया ॥ ५० ॥ एक दिन राजपुत्र सत्यव्रतने मृगयामें किसी पशुको न पाकर वनमें वसिष्ठकी दुग्धवती धेनुको देखा तब ॥ ५१ ॥ राजाने क्षुधासे कातर हो क्रोध और मोहसे दस्युकी समान धेनुकी हत्याकी और उसका कुछेक मांस विश्वामित्रकी स्त्रीको भक्षण करानेके लिये वृक्षमें बाँधकर अवशिष्टमांस स्वयं भक्षण किया ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! तिस समय विश्वामित्रकी पत्नीने इस मांसको गोमांस न जानकर यह मृगका मांस है इस प्रकार जान वह सम्पूर्ण मांस पुत्रोंको भक्षण कराया ॥ ५३ ॥ इधर वसिष्ठजीने अपनी कामधेनुके विनाशका वृत्तान्त

जान क्रोधके वशीभूत हो सत्यव्रतसे कहा रे दुरात्मन्! धेनु मारकर पिशाचकी समान तूने क्या पापकार्य किया है ॥ ५४ ॥ गोवध द्विजपत्नी हरण और पिताका अत्यन्त क्रोध इन तीन अपराधोंसे तेरे मस्तकपर तीन शंकु अर्थात् कुष्ठवत् तीन पापचिह्न शीघ्र पतित हों॥ ५५॥ अबसे तू सम्पूर्ण प्राणियोंको पिशाचकी समान अपना रूप दिखाकर पृथ्वीमें त्रिशंकुनामसे विख्यात होगा ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा सत्यव्रत वसिष्ठसे इस प्रकार शापको प्राप्त हो उस आश्रममें रहकर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५७ ॥ परन्तु वह किसी मुनि पुत्रसे अनुत्तम मंत्र प्राप्त कर परमाप्रकृति शिवा भगवती देवीके ध्यानमें निमग्न हुए॥ ५८॥ इति श्रीदेवीभागवते महपुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १०॥ जनमेजय बोले हे महामते! जब वसिष्ठने नृपनन्दन त्रिशंकुको शाप दिया, तब

एवंतेशंकवःक्रूराःपतंतुत्वरितास्त्रयः ॥ गोवधाद्दारहरणात्पितुःक्रोधात्तथाभृशम् ॥ ५५ ॥ त्रिशंकुरितिनाम्नावैभुविख्यातोभविष्यसि ॥ पिशाचरूपमात्मानंदर्शयन्सर्वदेहिनाम् ॥ ५६ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंशप्तोवसिष्ठेनतदासत्यव्रतोनृपः ॥ चचारचतपस्तीव्रंतस्मिन्नेवाऽश्रमेस्थितः ॥ ५७ ॥ कस्माच्चिन्मुनिपुत्रात्तुप्राप्यमंत्रमनुत्तमम् ॥ ध्यायन्भगवतींदेवींप्रकृतिंपरमांशिवाम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ छ ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ वसिष्ठेनचशप्तोऽसौत्रिशंकुर्नृपतेःसुतः ॥ कथंशापाद्विनिर्मुक्तस्तन्मेब्रूहिमहामते ॥ १ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ सत्यव्रतस्तथाशप्तःपिशाचत्वमवाप्तवान् ॥ तस्मिन्नेवाऽश्रमेतस्थौदेवीभक्तिपरायणः ॥ २ ॥ कदाचि न्नृपतिस्तत्रजप्त्वामंत्रंनवाक्षरम् ॥ होमार्थंब्राह्मणान्गत्वाप्रणम्योवाचभक्तितः ॥ ३ ॥ भूमिदेवाःशृणुध्वंवैवचनंप्रणतस्यमे ॥ ऋत्विजोममसर्वेऽत्रभवंतःप्रभवंतुह ॥ ४ ॥ जपस्यचदशांशेनहोमःकार्योविधानतः ॥ भवद्भिःकार्यसिद्ध्यर्थंवेदविद्भिःकृपापरैः ॥ ५ ॥ सत्यव्रतोऽहंनृपतेःपुत्रोब्रह्मविदांवराः ॥ कार्यममविधातव्यंसर्वथासुखहेतवे ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वाब्राह्मणास्तत्रतमूचुर्नृपतेःसुतम् ॥ शप्तस्त्वंगुरुणाप्राप्तंपिशाचत्वंत्वयाऽधुना ॥ ७ ॥

वह किसप्रकार उस शापसे छूटे थे? यह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! सत्यव्रत वसिष्ठके शापसे पिशाचत्वको प्राप्त होनेपर देवीके प्रति भक्ति परायण हो उसी आश्रममें समय व्यतीत करनेलगे ॥ २ ॥ एक दिन उन्होंने नवाक्षर मंत्र जपकर उस भगवतीमंत्रका पुरश्चरण करानेके लिये ब्राह्मणोंके समीप जाय भक्तिपूर्वक प्रणाम करके कहा ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो! आप मेरा वचन सुनिये मैं विनयसहित आपके निकट प्रार्थना करता हूं कि, आप सब मेरे ऋत्विक् हों ॥ ॥ ४ ॥ आप वेदके जाननेवाले हैं इस कारण मेरे प्रति कृपाकर यथाविधि कार्यसिद्धिकेलिये जपका दशांश होम कीजिये ॥ ५ ॥ हे विप्रवरगण! मेरा नाम सत्यव्रत है विशेषकर मैं राजपुत्र हूं. मेरा मंगल करनेके लिये यह कार्य सम्पादन करना आपको अवश्य कर्तव्य है ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंने इस प्रकार राजपुत्रके वचन

सुनकर उनसे कहा हे राजपुत्र ! तुम गुरुसे शापित होकर पिशाचपनेको प्राप्त हुए हो ॥ ७ ॥ अब तुम्हारा वेदमें अधिकार नहीं है विशेषकर तुमको जो पिशाचता प्राप्त हुई है वह सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दनीय है इसकारण अब तुम यागार्ह नहीं हो सक्के॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! राजपुत्रने उनके यह वचन सुन दुःखित होकर विचारा कि, मेरे जीवनको धिक्कार है अब मैं वनमें रहकर क्या करूंगा ॥ ९ ॥ पिताने मुझको त्यागन किया है इससे राज्यभ्रष्ट हुआ इसपरभी गुरुके शापसे पिशाचपनेको प्राप्त हुआ हूं अतएव अब मैं क्या करूं ? कुछ स्थिर नहीं करसक्ता ॥ १० ॥ तब राजनन्दनने काष्ठ लाय बडी चिता बनाय चंडिकादेवीको स्मरण किया और उनका मंत्र जपते जपते चितामें प्रवेश करनेको कृतसंकल्प हुए ॥ ११ ॥ फिर राजकुमारने सन्मुख चिता प्रज्वलितकर स्नान किया और उसमें प्रवेश

नयागार्होऽसितस्मात्त्वंवेदेष्वनधिकारतः॥पिशाचत्वमनुप्राप्तंसर्वलोकेषुगर्हितम्॥८॥व्यासउवाच॥ तन्निशम्यवचस्तेषांराजादुःखमवापह॥धिग्जीवितमिदंमेऽद्यकिंकरोमिवनेस्थितः ॥ ९ ॥ पित्राचाऽहंपरित्यक्तःशतश्चगुरुणाभृशम् ॥ राज्याद्भ्रष्टःपिशाचत्वमनुप्राप्तःकरोमिकिम् ॥ १० ॥ तदापृथुतरांकृत्वाचितां काष्ठैर्नृपात्मजः ॥ सस्मारचंडिकांदेवींप्रवेशमनुचिंतयन् ॥ ११ ॥ स्मृत्वादेवींमहामायांचितांप्रज्वलितांपुरः ॥ कृत्वास्नात्वाप्रवेशार्थंस्थितःप्रांजलिरग्रतः ॥ १२ ॥ ज्ञात्वाभगवतीतंतुमर्तुकाममहीपतिम् ॥ आजगामतदाकाशंप्रत्यक्षंतस्यचाऽग्रतः ॥ १३ ॥ दत्त्वाऽथदर्शनंदेवीतमुवाचनृपात्मजम् ॥ सिंहारूढामहाराजमेघगंभीरयागिरा ॥ १४ ॥ देव्युवाच ॥ किंतेव्यवसितंसाधोहुताशेमातनुंत्यज ॥ स्थिरोभवमहाभागपितातेजरसान्वितः ॥ १५ ॥ राज्यंदत्त्वावनेतुभ्यंगंताऽस्तितपसेकिल ॥ विषादंत्यजहेवीरपरश्वोहनिभूपते ॥ १६ ॥ नेतुंत्वामागमिष्यंतिसचिवाश्चपितुस्तव ॥ मत्प्रसादात्पितात्वामभिषिच्यनृपासने ॥ १७ ॥ जित्वाकामंब्रह्मलोकंगमिष्यत्येषनिश्चयः ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वातंतदादेवीतत्रैवांतरधीयत ॥ १८ ॥

करनेके लिये हाथ जोड़कर खड़े हो देवी महामायाका स्तव करनेलगे ॥ १२ ॥ उसी समय भगवती उस महीपतिकी मृत्युकामना जान तत्काल सिंहको पीठपर चढ़ उनके ऊपर स्थित आकाशमार्गसे आईं ॥ १३ ॥ और फिर प्रत्यक्ष दर्शन दे मेघकी समान गम्भीर वचनोंके द्वारा उन नृपनन्दनसे कहने लगीं ॥ १४ ॥ हे साधो ! तुमने मनमें यह क्या निश्चय किया है ? तुम अग्निमें कदापि शरीरका त्याग मत करो स्थिर होओ. हे महाभाग ! तुम्हारे पिताको इससमय बुढ़ापा आगया है ॥ १५ ॥ वह तुमको राज्य देकर तप करनेके लिये वनमें जायँगे अतएव हे वीरवर ! विषाद छोड़ दो. हे भूपते ! परसोंके दिन ॥ १६ ॥ तुम्हारे पिताके मंत्री तुम्हारे लेनेको आवेंगे मेरे प्रसादसे तुम्हारे पिता तुमको राज्यमें अभिषिक्त करेंगे ॥ १७ ॥ और यथासमयमें कामना जीतकर ब्रह्मलोकको जायँगे इसमें सन्देह नहीं. व्यासजीने

कहा हे महाभाग ! देवी तिसकाल उनसे यह बात कहकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई ॥ १८ ॥ और राजपुत्रभी अनल मृत्युसे विरत हुए इसी समय महात्मा नारदजीने अयोध्यामें आनकर ॥ १९ ॥ तत्काल सब आनुपूर्विक वृत्तान्त राजासे कहा तब राजा पुत्रके मरनेका उद्यम सुनकर ॥ २० ॥ दुःखितचित्तसे अनेकप्रकार पछतावा करनेलगे. धर्मात्मा राजाने शोकसन्तप्त होकर मंत्रियोंसे कहा ॥ २१ ॥ तुम सबने मेरे पुत्रके कठोर कार्यका विषय जाना मैंने अपने बुद्धिमान् पुत्र सत्यव्रतको वनमें त्याग किया है ॥ २२ ॥ परन्तु वह परमार्थवित् राज्यार्ह होनेपरभी मेरी आज्ञासे तत्काल वनमें चलागया है यह धनहीन अवस्थामें क्षमाशील हो भलीभाँति ज्ञानकी आलोचना करताहुआ उसी स्थानमें वास करता है ॥ २३ ॥ किन्तु वसिष्ठदेवने शाप देकर उसको पिशाचकी समान किया है वह इस समय दुःखाग्निसे सन्तप्त

राजपुत्रोविरमितोमरणात्पावकात्ततः ॥ अयोध्यायांतदाऽऽगत्यनारदेनमहात्मना ॥ १९ ॥ वृत्तांतःकथितःसर्वोराज्ञेसत्वरमादितः ॥ श्रुत्वाराजाऽथपुत्रस्यतंतथामरणोद्यमम् ॥ २० ॥ खेदमाधायमनसिशुशोचबहुधानृपः ॥ सचिवानाहधर्मात्मापुत्रशोकपरिप्लुतः ॥ २१ ॥ ज्ञातंभवद्भिरत्युग्रंपुत्रस्यममचेष्टितम् ॥ त्यक्तोमयावनेधीमान्पुत्रःसत्यव्रतोमम ॥ २२ ॥ आज्ञयाऽसौगतःसद्योराज्यार्हःपरमार्थवित् ॥ स्थितस्तत्रैवविज्ञानेधनहीनःक्षमान्वितः ॥ २३ ॥ वसिष्ठेनतथाशप्तःपिशाचसदृशःकृतः ॥ सोऽद्यदुःखेनसंतप्तःप्रवेष्टुंचहुताशनम् ॥ २४ ॥ उद्यतःश्रीमहादेव्यानिषिद्धःसंस्थितःपुनः ॥ तस्माद्गच्छंतुतंशीघ्रंज्येष्ठपुत्रंमहाबलम् ॥ २५ ॥ आश्वास्यवचनैरत्रतरसैवानयंत्विह ॥ अभिषिच्यसुतंराज्येऔरसंपालनक्षमम् ॥ २६ ॥ वनंयास्यामिशांतोऽहंतपसेकृतनिश्चयः ॥ इत्युक्त्वामंत्रिणःसर्वान्प्रेषयामासपार्थिवः ॥ २७ ॥ तस्यैवाऽऽनयनार्थंहिप्रीतिप्रवणमानसः ॥ तेगत्वातंसमाश्वास्यमंत्रिणःपार्थिवात्मजम् ॥ २८ ॥ अयोध्यायांमहात्मानंमानपूर्वंसमानयन् ॥ दृष्ट्वासत्यव्रतंराजादुर्बलंमलिनांबरम् ॥ २९ ॥ जटाजूटधरंक्रूरंचिंतातुरमचिंतयत् ॥ किंकृतंनिष्ठुरंकर्ममयापुत्रोविवासितः ॥ ३० ॥

होकर हुताशनमें प्रवेश करनेको उद्यत हुआ था ॥ २४ ॥ किन्तु महादेवीके निषेधकरनेपर वह उस कार्यसे विरत हुआ है इस कारण तुम शीघ्र उस स्थानमें जाय उस महाबल ज्येष्ठपुत्रको ॥ २५ ॥ सांत्वन वचनोंसे समझाय अभी मेरे निकट लेआओ मैं प्रजापालनमें समर्थ उस औरसपुत्रका राज्याभिषेक करूंगा ॥ २६ ॥ मेरा चित्त अब शान्तभावको प्राप्त हुआ है अतएव मैं तपस्या करनेके लिये कृतसंकल्प हुआ हूं. यह कहकर राजाने सब मंत्रियोंको भेजा ॥ २७ ॥ जब पुत्रके प्रति प्रसन्न होकर बुलानेको भेजा तब मंत्रीभी प्रीतिपूर्णमनसे उस स्थानमें जाय महात्मा राजपुत्रको समझाय ॥ २८ ॥ सन्मानसहित अयोध्यामें लेआये. राजा सत्यव्रतको दुर्बल मलीनवस्त्र ॥ २९ ॥ जटाजूटधारी कृशकाय दुर्बल कर्कशाकृति चिन्तातुर देख चिन्ता करनेलगे कि, मैंने पुत्रको निकालकर क्या निष्ठुरकार्य किया है ॥ ३० ॥

महीपतिने मनमें इस प्रकार चिन्ता करके उसको आलिंगन किया ॥ ३१ ॥ और समझावुझाकर अपने समीप स्थित आसनपर बैठाया बैठेहुए पुत्रसे वह राजा प्रेमपूर्वक बोले ॥ ३२ ॥ अर्थात् नीतिशास्त्रविशारद राजा प्रेमगद्गद, वचनसे प्रीतिपूर्वक कहनेलगे राजा बोले हे पुत्र ! सर्वदा धर्ममें मति रखना और ब्राह्मणोंका सन्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है ॥ ३३ ॥ तुम न्यायके अनुसार धन ग्रहण करके सर्वदा प्रजाकी रक्षा करो कहींभी मिथ्या बात नहीं कहना चाहिये अथवा किसीप्रकार कुमार्गमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३४ ॥ किन्तु साधुलोगोंका वचन सम्यक्प्रकार प्रतिपालन करने उचित हैं. तपस्वियोंकी पूजा करनी चाहिये इन्द्रियजय करना और क्रूरस्वभाव तस्करोंको वध करना उचित है ॥ ३५ ॥ हे पुत्र ! कार्यसिद्धिके लिये मंत्रियोंसे मंत्रण करके उसको गुप्त रखना चाहिये ॥ ३६ ॥

राज्यार्हश्चातिमेधावीजानताधर्मनिश्चयम् ॥ इतिसंचिंत्यमनसातमालिंग्यमहीपतिः ॥ ३१ ॥ आसनेस्वसमीपस्थेसमाश्वास्योपवेशयत् ॥ उपविष्टंसुतंराजाप्रेमपूर्वमुवाचह ॥ ३२ ॥ प्रेमगद्गदयावाचानीतिशास्त्रविशारदः ॥ राजोवाच ॥ पुत्रधर्मेमतिःकार्यामाननीयामुखोद्भवाः ॥ ३३ ॥ न्यायागतंधनंग्राह्यंरक्षणीयाःसदाप्रजाः ॥ नासत्यंक्काऽपिवक्तव्यंनाऽमार्गेगमनंक्वचित् ॥ ३४ ॥ शिष्टप्रोक्तंप्रकर्तव्यंपूजनीयास्तपस्विनः ॥ हंतव्यादस्यवःक्रूराइंद्रियाणांतथाजयः ॥ ३५ ॥ कर्त्तव्यःकार्यसिद्ध्यर्थराज्ञापुत्रसदैवहि ॥ मंत्रस्तुसर्वथागोप्यःकर्तव्यःसचिवैःसह ॥ ३६ ॥ नोपेक्ष्योल्पोपिक्कृतिनारिपुःसर्वात्मनासुत ॥ नविश्वसेत्परासक्तंसचिवंचतथानतम् ॥ ३७ ॥ चाराःसर्वत्रयोक्तव्याःशत्रुमित्रेषुसर्वथा ॥ धर्मेमतिःसदाकार्यादानंदद्याच्चनित्यशः ॥ ३८ ॥ शुष्कवादोनकर्तव्योदुष्टसंगंचवर्जयेत् ॥ यष्टव्याविविधायज्ञाःपूजनीयामहर्षयः ॥ ३९ ॥ नविश्वसेत्स्त्रियंक्काऽपिस्त्रैणंद्यूतरतंनरम् ॥ अत्यादरोनकर्तव्योमृगयायांकदाचन ॥ ४० ॥ द्यूतमद्यंतथागेयंनूनंवारवधूंमुच ॥ स्वयंतद्विमुखोभूयात्प्रजास्तेभ्यश्चरक्षयेत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मेमुहूर्तेकर्तव्यमुत्थानंसर्वथासदा ॥ स्नानादिकंसर्वविधिंविधायविधिवद्यथा ॥ ४२ ॥

शत्रु यदि अतिसामान्यभी हो तथापि कार्यकुशल राजा उसकी कभी उपेक्षा न करैं शत्रु परायेप्रति अनुरक्त होकर यदि अवनतभी हो तोभी उसका विश्वास न करै ॥ ३७ ॥ क्या शत्रु क्या मित्र सबके निकट दूतोंको नियुक्त करना चाहिये सदा धर्ममें अनुराग दर्शन और सदा दान करना ॥ ३८ ॥ वृथा वितण्डवाद करना अनुचित है दुष्टोंका संग नहीं करना चाहिये. हे पुत्र ! तुम महर्षियोंकी पूजा और अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करो ॥ ३९ ॥ स्त्री, स्त्रैण पुरुष और द्यूतनिरत पुरुषोंका कभी विश्वास न करना. मृगयामें अत्यन्त आसक्त होना कभी उचित नहींहै ॥ ४० ॥ द्यूतक्रीड़ा मद्य गीत और वारवनिता इन सब विषयोंसे विरत रहना और प्रजाओंकी भी इस कार्यसे रक्षा करना ॥ ४१ ॥ नित्य ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर फिर स्नानादि समस्त कर्त्तव्य कार्यका अनुष्ठान करना ॥ ४२ ॥

हे पुत्र ! गुरुके निकट देवीमंत्रमें दीक्षित होकर भक्तिपूर्वक परमाशक्ति भगवतीकी महती पूजाकरनी. पराशक्तिके चरणकमलोंकी पूजा करनेसे जन्म सफल होताहै ॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! जोपुरुष महादेवीकी केवल एकवार मात्रभी महती पूजा करके उनका चरणामृत जल पान करते हैं उन पुरुषोंको फिर कभी जननीके गर्भमें जन्मग्रहण नहीं करना पड़ता यह स्थिर निश्चय है ॥ ४४ ॥ वह महादेवीही इस सम्पूर्ण देखनेवाली वस्तुका स्वरूप है वही द्रष्टा और साक्षि चैतन्यस्वरूप है इस प्रकार भावमें रत पूर्णात्मा होकर निर्भय चित्तसे वास करै ॥ ४५ ॥ प्रतिदिन नैमित्तिक कार्य समापन करके ब्राह्मणोंकी सभामें जाना चाहिये और उनको बुलाकर धर्मशास्त्रकी सिद्धान्त पूँछना चाहिये ॥ ४६ ॥ वेद और वेदान्त पारग ब्राह्मण अवश्यपूजनीय हैं अतएव उनकी पूजा कर पात्र विचार सदा गो भूमि और सुवर्ण इत्यादि दान करना ॥ ४७ ॥

पराशक्तेःपरांपूजांभक्त्याकुर्यात्सुदीक्षितः ॥ पुत्रैतज्जन्मसाफल्यंपराशक्तेःपदार्चनम् ॥ ४३ ॥ सकृत्कृत्वामहापूजांदेवीपादजलंपिबन् ॥ नजातुजननीगर्भे गच्छेदितिविनिश्चयः ॥ ४४ ॥ सर्वदृश्यंमहादेवीद्रष्टासाक्षीचसैवहि ॥ इतितद्भावभरितस्तिष्ठेन्निर्भयचेतसा ॥ ४५ ॥ कृत्वानित्यविधिंसम्यग्गंतव्यंसद सिद्विजान् ॥ समाहूयचप्रष्टव्योधर्मशास्त्रविनिर्णयः ॥ ४६ ॥ संपूज्यब्राह्मणान्पूज्यान्वेदवेदांतपारगान् ॥ गोभूहिरण्यादिकंचदेयंपात्रेषुसर्वदा ॥ ४७ ॥ अविद्वान्ब्राह्मणःकोऽपिनैवपूज्यःकदाचन ॥ आहारादधिकंनैवदेयंमूर्खायकर्हिचित् ॥ ४८ ॥ नवालोभात्त्वयापुत्रकर्तव्यंधर्मलंघनम् ॥ अतःपरंनकर्त व्यंक्वचिद्विप्रावमाननम् ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणाभूमिदेवाश्चमाननीयाःप्रयत्नतः ॥ कारणंक्षत्रियाणांचद्विजाएवनसंशयः ॥ ५० ॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मणःक्षत्रमश्म नोलोहमुत्थितम् ॥ तेषांसर्वत्रगंतेजःस्वासुयोनिषुशाम्यति ॥ ५१ ॥ तस्माद्विप्राविशेषेणमाननीयासुखोद्भवाः ॥ दानेनविनयेनैवसर्वथाभूतिमिच्छता ॥ ५२ ॥

किसी अविद्वान् ब्राह्मणकी कभी पूजा न करना मूर्ख पुरुषको आहारसे अधिक और कुछ दान न करै ॥ ४८ ॥ हे वत्स ! लोभके वशीभूत होकर कभी धर्म उल्लंघन न करना और यह सदा मनमें विचार रक्खो कि, अबसे ब्राह्मणोंका कभी अपमान नहीं करूंगा ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियोंके कारण और विशेष कर उनके भूलोकके देवता हैं अतएव यत्नसहित ब्राह्मणोंके सन्मानकी रक्षा करनी चाहिये इसमें त्रुटी न करनी ॥ ५० ॥ जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्र और पत्थरसे लोहा उत्थित होता है इनका तेज सर्वत्रगामी होनेपरभी स्वस्वयोनिके संगविरोध उपस्थित होनेपर उसमेंही प्रशमित होता है यह निश्चय जानो ॥ ५१ ॥ जो राजा अपनी

उन्नतिकी कामना करैं वह दान और निश्चयसे ब्रह्माके मुखसे प्रगट ब्राह्मणोंका भलीभाँति सन्मान करैं ॥ ५२ ॥ धर्म शास्त्रके अनुसार सदा नीतिका अनुसरण करैं और न्यायानुसार धन संग्रह करके राज कोष पूर्ण करना ॥५३॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब पिताने पुत्रको इस प्रकार उपदेश दिया तब नरपति त्रिशंकुने प्रणत होकर प्रेमसे रुद्धकण्ठ हो पितासे कहा आप जो आज्ञा देंगे मैं वही करूंगा ॥ १ ॥ तब नरपतिने वेदशास्त्रके जाननेवाले मंत्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर शीघ्र अभिषेककी सामग्री मँगाई ॥ २ ॥ सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगाया सब राजाओंको आदरसहित बुलाया पिताने पुत्र त्रिशंकुको पवित्रदिन देख राज्यमें अभिषिक्त कर उसको विधिके अनुसार राजासन दान किया ॥ ३ ॥ ४ ॥तदनन्तर

दंडनीतिःसदाकार्याधर्मशास्त्रानुसारतः ॥ कोशस्यसंग्रहःकार्योनूनंन्यायागतस्यह ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंप्रबोधितःपित्रात्रिशंकुःप्रणतोनृपः ॥ तथेतिपितरंप्राहप्रेमगद्गदयागिरा ॥ १ ॥ विप्रानाहूयमंत्रज्ञान्वेदशास्त्रविशारदान् ॥ अभिषेकायसंभारान्कारयामाससत्वरम् ॥ २ ॥ सलिलंसर्वतीर्थानांसमानाय्यविशांपतिः ॥ प्रकृतीश्चसमाहूयसामंतान्भूपतींस्तथा ॥ ३ ॥ पुण्येह्निविधिवत्तस्मैददावासनमुत्तमम् ॥ अभिषिच्यसुतंराज्येत्रिशंकुंविधिवत्पिता ॥ ४ ॥ तृतीयमाश्रमंपुण्यंजग्राहभार्यया युतः ॥ वनेत्रिपथगाकूलेचचारदुश्चरंतपः ॥ ५ ॥ कालेप्राप्तेययौस्वर्गंपूजितस्त्रिदशैरपि ॥ इंद्रासनसमीपस्थोरराजरविवत्सदा ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ पूर्वंभगवताप्रोक्तंकथायोगेनसांप्रतम् ॥ सत्यव्रतोवसिष्ठेनशप्तोदोग्ध्रीवधात्किल ॥ ७ ॥ कुपितेनपिशाचत्वंप्रापितोगुरुणाततः ॥ कथंमुक्तःपिशाचत्वादित्येतत्संशयःप्रभो ॥ ८ ॥ नर्सिहासनयोग्योहिभवेच्छापसमन्वितः ॥ मुनिनामोचितःशापात्केनाऽन्येनचकर्मणा ॥ ९ ॥ एतन्मेब्रूहिविप्रर्षेशापमोक्षणकारणम् ॥ आनीतस्तुकथंपित्रास्वगृहेतादृशाकृतिः ॥ १० ॥

भूपति, भार्याके सहित पवित्र वानप्रस्थाश्रम ग्रहणकर वनमें जाय गंगाके तटपर कठोरतपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५ ॥ फिर कालधर्मके वशीभूत हो राजा स्वर्गको गये वहां देवताओंसे सन्मानित हो इन्द्रासनके समीपमें सर्वदा सूर्यकी समान दीप्ति पानेलगे ॥ ६ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आपने कथा प्रसंगमें पहले कहा है कि, जब सत्यव्रतने धेनुवध किया था तब महर्षि वसिष्ठने कुपित होकर उनको ॥ ७ ॥ पिशाच होओ यह कहकर शाप दिया था. सम्प्रति किसप्रकार वह पिशाचत्वसे छूटे ? इसका मुझको अत्यन्त सन्देह होता है ॥ ८ ॥ सत्यव्रत शापग्रस्त होनेसे सिंहासनके अयोग्य हुए किन्तु मुनिवरने किस कार्य द्वारा उनको शापसे छुड़ाया ॥ ९ ॥ इस शापसे पिशाचाकृति पुत्रको पिताने किसप्रकार गृहमें बुलाया. हे विप्रर्षे ! अब उनकी मुक्तिका कारण मुझसे भलीभाँति वर्णनकीजिये ॥ १० ॥

व्यासजीने कहा वसिष्ठके शापसे सत्यवत शीघ्र पिशाचत्वको प्राप्त हो अत्यन्त कुत्सित दुर्द्धर्ष (सहनेके अयोग्य) और सर्गलोकको भयदायक होगयेथे ॥ ११ ॥ किन्तु जब उन्होंने भक्तिभावसे देवीकी उपासनाकी तब देवीने प्रसन्न होकर उनको दिव्यदेह दानकी ॥ १२ ॥ देवीके कृपामृत सींचनेसे उनका पाप क्षय और पिशाचाकृति दूर होगई. तब सत्यवत पापरहित होकर अत्यन्त तेजस्वी हुए ॥ १३ ॥ परमशक्तिके प्रसादसे वसिष्ठ उनके प्रति प्रसन्न हुए उनके अनुग्रहसे पिताभी सत्यव्रतके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ पिताके मरजानेपर धर्मात्मा सत्यवत राजा हो राज्यशासन और बीच बीचमें अनेक प्रकार यज्ञोंका अनुष्ठान कर देवदेवी सनातनीकी अर्चना करने लगे ॥ १५ ॥ हे महाराज ! इन त्रिशंकुके हरिश्चन्द्रनामक एक परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ उस शोभायमान राजपुत्रके अंगमें

व्यासउवाच ॥ वसिष्ठेनचशप्तोऽसौसद्यःपैशाचतांगतः ॥ दुर्वेषश्चाऽतिदुर्धर्षःसर्वलोकभयंकरः ॥ ११ ॥ यदेवोपासितादेवीभक्त्यासत्यव्रतेनह ॥ तयाप्रसन्नयाराजन्दिव्यदेहःकृतःक्षणात् ॥ १२ ॥ पिशाचत्वंगतंतस्यपापंचैवक्षयंगतम् ॥ विपाप्माचाऽतितेजस्वीसंभूतस्तत्कृपामृतात् ॥ १३ ॥ वसिष्ठोऽपिप्रसन्नात्माजातःशक्तिप्रसादतः ॥ पिताऽपिचबभूवाऽस्यप्रेमयुक्तस्त्वनुग्रहात् ॥ १४ ॥ राज्यंशशासधर्मात्मामृतेपितरिपार्थिवः ॥ ईजे चविविधैर्यज्ञैर्देवदेवींसनातनीम् ॥ १५ ॥ तस्यपुत्रोबभूवाऽथहरिश्चंद्रःसुशोभनः ॥ लक्षणैःशास्त्रनिर्दिष्टैःसंयुतश्चाऽतिसुंदरः ॥ १६ ॥ युवराजं सुतंकृत्वात्रिशंकुःपृथिवीपतिः ॥ मानुषेणशरीरेणस्वर्गंभोक्तुंमनोदधे ॥ १७ ॥ वसिष्ठस्याऽऽश्रमंगत्वाप्रणम्यविधिवन्नृपः ॥ उवाचवचनंप्रीतःकृतांजलिपुटस्तदा ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मपुत्रमहाभागसर्वमंत्रविशारद ॥ विज्ञप्तिंमेसुमनसाश्रोतुमर्हसितापस ॥ १९ ॥ इच्छामेऽद्यसमुत्पन्नास्वर्गलोकसुखायच ॥ अनेनैवशरीरेणभोगान्भोक्तुममानुषान् ॥ २० ॥ अप्सरोभिश्चसंवासःक्रीडितुंनंदनेवने ॥ देवगंधर्वगानंचश्रोतव्यंमधुरंकिल ॥ २१ ॥

सम्पूर्ण शास्त्रविहित सुलक्षण विराजमान थे ॥ १६ ॥ पृथ्वीपति त्रिशंकुने पुत्रको युवराज करके मनुष्य देहसेही स्वर्ग भोगकरनेकी इच्छा की ॥ १७ ॥ तब राजाने प्रसन्न चित्तसे वसिष्ठके आश्रममें जाय विधिपूर्वक प्रणाम कर हाथ जोड़ उनसे कहा ॥ १८ ॥ हेतपोधन ! आप ब्रह्माके पुत्र और सम्पूर्ण वैदिकमंत्रोंके पारदर्शी हैं इस कारण आपके सौभाग्यकी सीमा नहीं है. अतएव आपसे एक विषय निवेदन करता हूं आप प्रसन्नचित्तसे वह सुनिये ॥ १९ ॥ इस समय इस मनुष्य शरीरसेही स्वर्गलोकके सुख और सम्पूर्ण देवताओंकी भोग्यवस्तु भोग करनेकी इच्छा उपस्थित हुई है ॥ २० ॥ नन्दनवनमें विहार, अप्सराओंके संग सहवास और देव गन्धर्वोंके मधुर संगीत सुन

नेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ॥ २१ ॥ अतएव हे महामुने ! मैं जिससे इसी शरीरके द्वारा स्वर्गमें वास करसकूं आप मुझको ऐसेही यज्ञमें नियोजित कीजिये ॥ २२ ॥ हे मुनिवर ! आप यह कार्य सम्पादन करनेमें भलीभाँति समर्थ है. अतएव आप मेरे कार्यमें इससमय प्रवृत्त हूजिये. आप यज्ञकरके मुझको शीघ्रही दुर्लभ देवलोक प्रदान कीजिये ॥ २३ ॥ वसिष्ठने कहा हे राजन् ! मनुष्य देहसे स्वर्गमें वास करना अत्यन्त दुर्लभ है. मृतकपुरुष पुण्यबलसे स्वर्गमें वास करते हैं यही वीर प्रसिद्ध है ॥ ॥ २४ ॥ अतएव हे सर्वज्ञ ! तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है इस कारण मैं इससे डरता हूं. हे महाराज ! जीवित पुरुषको अप्सराओंके सहित सहवास अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २५ ॥ अतएव हे महाभाग ! पहले यज्ञका अनुष्ठान कीजिये फिर यह देह त्यागकरस्वर्ग प्राप्त कीजिये. व्यासजीने कहा हे महाराज ! महर्षि वसिष्ठ धेनुवधके कारण

याजयत्वंमखेनाऽशुताहशेनमहामुने ॥ यथाऽनेनशरीरेणवसेलोकंत्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥ समर्थोऽसिमुनिश्रेष्ठकुरुकार्यममाऽऽधुना ॥ प्रापयाऽऽशुमखं कृत्वादेवलोकंदुरासदम् ॥ २३ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ राजन्मानुषदेहेनस्वर्गेवासःसुदुर्लभः ॥ मृतस्यहिध्रुवंस्वर्गःकथितःपुण्यकर्मणा ॥ २४ ॥ तस्माद्बिभेमिसर्वज्ञदुर्लभाच्चमनोरथात् ॥ अप्सरोभिश्चसंवासोजीवमानस्यदुर्लभः ॥ २५ ॥ कुरुयज्ञान्महाभागमृतःस्वर्गमवाप्स्यसि ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्यराजापरमदुर्मनाः ॥ २६ ॥ उवाचवचनंभूयोवसिष्ठंपूर्वरोपितम् ॥ नत्वंयाजयसेब्रह्मन्गर्वावेशाच्चमांयदि ॥ २७ ॥ अन्यंपुरोहितंकृत्वायक्ष्येऽहं किलसांप्रतम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यवसिष्ठः कोपसंयुतः ॥ २८ ॥ शशापभूपतिंचेतिचांडालोभवदुर्मते ॥ अनेनत्वंशरीरेणश्वपचोभवसत्वरम् ॥ २९ ॥ स्वर्गकृंतनपापिष्ठसुरभीवधदूषित ॥ ब्रह्मपत्नीहरोच्छिन्नधर्ममार्गविदूषक ॥ ३० ॥ नतेस्वर्गगतिःपापमृतस्याऽपिकथंचन ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तोगुरुणाराजंस्त्रिशंकुस्तत्क्षणादपि ॥ ३१ ॥

पहलेसेही राजाके प्रति रोषयुक्त थे इसकारण उन्होंने राजासे ऐसे वचन कहे फिर राजा यह सुनकर अत्यन्त विमन हो ॥ २६ ॥ महर्षिसे फिर कहनेलगे हे ब्रह्मन् ! गर्वके अत्यन्त वशीभूत हो यदि आप मुझको यज्ञ न करावेंगे ॥ २७ ॥ तो मैं इससमय दूसरे पुरोहितको बुलाकर यज्ञका अनुष्ठान करूंगा. वसिष्ठने राजाके इस प्रकार वचन सुन कुपित होकर ॥ २८ ॥ उनको शाप दिया रे दुर्मते ! तू चाण्डाल हो अधिक क्या तू शीघ्रही इस शरीरसे श्वपच पिशाच हो ॥ २९ ॥ जिससे स्वर्ग मार्ग रोकता है. तैंने उसी प्रकार पापकार्य किया है. तैंने ब्राह्मणकी पत्नी हरणकर धर्ममार्ग नष्ट किया है तू गोवध करके दूषित हुआ है और तू धर्म विदूषक है ॥ ३० ॥ अतएव हे पापिष्ठ ! तेरे मरनेपरभी कभी स्वर्ग प्राप्त न होगा. व्यासजीने कहा हे राजन् ! त्रिशंकु गुरुके ऐसे निष्ठुर वचन सुनतेही तत्काल ॥ ३१ ॥ उसी शरीरसे वहां

श्वपचाकृति हुए तिसी समय उनके सुवर्णकुण्डल लोहमय हो गये ॥ ३२ ॥ उनके शरीरमें जो सुगन्धित चन्दन था वह विष्ठाकी समान गन्धयुक्त होगया उनके जो मनोहर पीताम्बरयुगल परिधान थे वह नीलवर्ण होगये ॥ ३३ ॥ उन महात्माके शापसे उनका शरीर हाथीके समान वर्णयुक्त होगया. हे राजन्! जो परमाशक्तिके उपासक हैं उनके कोपसे इसीप्रकार फल होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥ अतएव शक्तिके भक्त मनुष्यका अपमान करना कभी उचित नहीं है. हे मुनिसत्तम! वसिष्ठ देवीके गायत्रीजपमें सदा तत्पर थे इसीकारण उनके कोपसे राजाकी दुर्दशा हुई इसमें क्या विचित्रता है ॥ ३५ ॥ तब राजा त्रिशंकु अपना निन्दनीय देह देखकर दुःखित हुए और घर नहीं गये वरन दीनवेशसे वनको चलेगये ॥ ३६ ॥ राजा त्रिशंकु दुःखसे कातर और शोकसे अभिभूत हो

तत्रतेनशरीरेणबभूवश्वपचाकृतिः ॥ कुंडलेऽश्ममयेवापिजातेतस्यचतत्क्षणात् ॥ ३२ ॥ देहेचंदनगंधश्चविड्गन्धोह्यभवत्तदा ॥ नीलवर्णेऽथसंजातेदिव्ये पीतांबरेतनौ ॥ ३३ ॥ गजवर्णोभवद्देहःशापात्तस्यमहात्मनः ॥ शक्त्युपासकरोषेणफलमेतदभून्नृप ॥ ३४ ॥ तस्माच्छ्रीशक्तिभक्तोहिनाऽवमान्यः कदाचन ॥ गायत्रीजपनिष्ठोहिवसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वानिंद्यंनिजंदेहेराजादुःखमवाप्तवान् ॥ नजगामगृहेदीनोवनमेवाऽभितोययौ ॥ ३६ ॥ चिंतयामासदुःखार्तस्त्रिशंकुःशोकविह्वलः ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिदेहोमेऽतीवनिंदितः ॥ ३७ ॥ कर्तव्यंनैवपश्यामियेनमेदुःखसंक्षयः ॥ गृहे गच्छामिचेत्पुत्रःपीडितोऽद्यभविष्यति ॥ ३८ ॥ भार्याऽपिश्वपचंदृष्ट्वानांगीकारंकरिष्यति ॥ सचिवानादरिष्यंतिवीक्ष्यमामीदृशंपुनः ॥ ३९ ॥ ज्ञातयोबंधुवर्गश्चसंगतोनभजिष्यति ॥ सर्वैस्त्यक्तस्यमेनूनंजीवितान्मरणंवरम् ॥ ४० ॥ विषंवाभक्षयित्वाऽद्यपतित्वावाजलाशये ॥ कृत्वावा कंठपाशंचदेहत्यागंकरोम्यहम् ॥ ४१ ॥

चिन्ता करनेलगे मेरा शरीर ऐसा हुआ है अतएव इस अवस्थामें कहाँ जाऊं अथवा क्या उपाय करूं ॥ ३७ ॥ जिससे मेरा दुःख दूर हो ऐसा कोई उपाय नहीं दीखता. यदि घर जाऊं तो पुत्र मेरी यह अवस्था देखकर अत्यन्त कातर होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ भार्या मुझको श्वपचाकृति देखकर फिर ग्रहण न करेगी मंत्रीभी मेरा इस प्रकार अंग देखकर पहलेकी समान आदर न करेंगे ॥ ३९ ॥ विशेषकर ज्ञाति और बान्धव वर्ग मेरे निकट आय पहलेकी समान सेवा नहीं करेंगे. अतएव सबसे परित्यक्त होकर जीवित रहनेकी अपेक्षा मरनाही श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ मैं विषपान कर अथवा जलाशयमें डूब वा गलेमें रस्सी बाँध जीवनत्याग करूंगा ॥ ४१ ॥

अथवा बलपूर्वक यह देह प्रज्वलित अग्निमें विधिके अनुसार जलाऊंगा किंवा निराहार रहकर इस अत्यन्त दूषितजीवनको विसर्जन करूंगा ॥ ४२ ॥ किन्तु हा! इससे आत्महत्याका पाप होगा इसकारण हत्यादोषके वशीभूत हो प्रतिजन्ममें फिर श्वपचत्व और शाप प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥ मनमें इसप्रकार विचार भूपतिने फिर चिन्ताकरके स्थिर किया कि, अब आत्महत्या करना मुझको कभी उचित नहीं है ॥ ४४ ॥ इस कर्मविपाकका भोग होनेसे वह अवश्य दूर होगा. अतएव इस देहसे वनमें अपने कियेहुए कर्मोंको भोगूं ॥ ४५ ॥ विशेषकर भोगनेके अतिरिक्त प्रारब्धकार्य कभी दूर नहीं होता. अतएव जो जो शुभ अथवा अशुभ कार्य किये हैं इस स्थानमें वह सम्पूर्ण भोगूंगा ॥ ४६ ॥ मैं सदाही पवित्र आश्रमके समीप स्थानमें वास तीर्थस्थानमें पर्यटन अम्बिकाका स्मरण और साधुओंकी सेवा

अग्नौवाज्वलितेदेहंजुहोमिविधिवद्बलात् ॥ कृत्वावाऽनशनंप्राणांस्त्यजामिदूषितान्भृशम् ॥ ४२ ॥ आत्महत्याभवेन्नूनंपुनर्जन्मनिजन्मनि ॥ श्वपचत्वंचशापश्चहत्यादोषाद्भवेदपि ॥ ४३ ॥ पुनर्विचार्यभूपालश्चेतसासमचिंतयत् ॥ आत्महत्यानकर्तव्यासर्वथैवमयाऽधुना ॥ ४४ ॥ भोक्तव्यंस्वकृतंकर्मदेहेनाऽनेनकानने ॥ भोगेनाऽस्यविपाकस्यभवितासर्वथाक्षयः ॥ ४५ ॥ प्रारब्धकर्मणांभोगादन्यथानक्षयोभवेत् ॥ तस्मान्मयाऽत्रभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाशुभम् ॥ ४६ ॥ कुर्वन्पुण्याश्रमाभ्याशेतीर्थानांसेवनंतथा ॥ स्मरणंचांबिकायास्तुसाधूनांसेवनंतथा ॥ ४७ ॥ एवंकर्मक्षयंनूनंकरिष्यामिवनेवसन् ॥ भाग्ययोगात्कदाचित्तुभवेत्साधुसमागमः ॥ ४८ ॥ इतिसंचिंत्यमनसात्यक्त्वास्वनगरंनृपः ॥ गंगातीरेगतःकामंशोचंस्तत्रैवसंस्थितः ॥ ४९ ॥ हरिश्चंद्रस्तदाज्ञात्वापितुःशापस्यकारणम् ॥ दुःखितःसचिवांस्तत्रप्रेषयामासपार्थिवः ॥ ५० ॥ सचिवास्तत्रगत्वाऽऽशुतमूचुःप्रश्रयान्विताः ॥ प्रणम्यश्वपचाकारंनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥ राजन्पुत्रेणतेनूनंप्रेषितान्समुपागतान् ॥ अवेहिसचिवांस्त्वन्नोहरिश्चंद्राज्ञयास्थितान् ॥ ५२ ॥

करूंगा ॥ ४७ ॥ वनमें वास करके इसप्रकार निश्चयही कर्मक्षय करूंगा अनन्तर भाग्यवश यदि कभी साधुसमागम संघटित हो तबही मेरी कार्यसिद्धि होगी॥ ४८॥ नरपति मनमें इस प्रकार चिन्ता कर अपने नगरको छोड़ गंगाके तटपर गये और अनेक अनुताप करके उस सुरनदीके पुलिनमें स्थिति करने लगे ॥ ४९ ॥ इधर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने पिताके शापका कारण जान दुःखित हृदयसे मंत्रियोंको उनके निकट भेजा ॥ ५० ॥ जिस समय राजा चाण्डालकी समान हो वारंवार श्वास छोड रहेथे उसी समय मंत्रियोंने उनके निकट उपस्थित हो अति विनीत भावसे प्रणाम करके कहा ॥ ५१ ॥ हे राजन्! आपके पुत्रने हमको भेजा है

उनकी अनुमतिके अनुसार हम आपके पास आये हैं हम राजा हरिश्चन्द्रके आज्ञानुवर्त्ती मन्त्री हैं यह आप सत्य जानिये ॥ ५२ ॥ हे नरनाथ ! आपके पुत्र युवराजने जो कहा है सो सुनिये. उन्होंने कहा है कि, हमारे पिताको तुम शीघ्र इसस्थानमें ले आओ ॥ ५३॥ अतएव हे राजन् ! मनकी वेदना छोडकर राजधानीमें चलिये क्या मन्त्रीलोग क्या प्रजालोग सम्पूर्णही आपकी सदा सेवा करेंगे॥ ५४॥ गुरुदेव वसिष्ठ जिससे आपके प्रति दयायुक्त हो हम सम्पूर्ण उसी प्रकार उनको प्रसन्न करेंगे तो अवश्यही वह महातेजा प्रसन्न होकर शीघ्र आपका दुःख दूर करेंगे ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! आपके पुत्रने इस प्रकार अनेक बातें कही हैं अतएव आप इस समय अपने घरको चलिये ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! उन श्वपचाकृति नरपतिने उनके यह वचन सुनकरभी अपने घर जानेकी इच्छा न की

युवराजसुतःप्राहयत्तच्छृणुनराधिप॥आनयध्वंनृपंयूयंसंमान्यपितरंमम॥५३॥ तस्माद्राजन्समागच्छराज्यंप्रतिगतव्यथः ॥ सेवांसर्वेकरिष्यंतिसचिवाश्च प्रजास्तथा ॥ ५४ ॥ गुरुंप्रसादयिष्यामःसयथातुदयेतवै ॥ प्रसन्नोऽसौमहातेजादुःखस्यांतंकरिष्यति ॥५५॥ इतिपुत्रेणतेराजन्कथितंबहुधाकिल ॥ त स्माद्गमनमेवाऽऽशुरोचतांनिजसद्मनि ॥ ५६ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितेषांनृपःश्रुत्वाभाषितंश्वपचाकृतिः ॥ स्वगृहंगमनायाऽसौनमतिंकृतवानदः ॥५७॥ तानुवाचतदावाक्यंव्रजंतुसचिवाःपुरम् ॥ गत्वापुत्रंमहाभागाब्रुवंतुवचनान्मम ॥ ५८ ॥ नागमिष्याम्यहंपुत्रकुरुराज्यमतंद्रितः ॥ मानयन्ब्राह्मणान्दे वान्यजन्यज्ञैरनेकशः ॥ ५९ ॥ नाऽहंश्वपचवेषेणगर्हितेनमहात्मभिः ॥ आगमिष्याम्ययोध्यायांसर्वेगच्छंतुमाचिरम् ॥ ६० ॥ पुत्रंसिंहासनेस्थाप्य हरिश्चंद्रंमहाबलम् ॥ कुर्वंतुराज्यकर्माणियूयंतत्रममाज्ञया ॥ ६१ ॥ इत्यादिष्टास्ततस्तेतुरुरुदुश्चाऽऽतुराभृशम् ॥ सचिवानिर्ययुस्तूर्णंनत्वातंचवनाश्रमा त् ॥ ६२ ॥ अयोध्यायामुपागत्यपुण्येऽह्निविधिपूर्वकम् ॥ अभिषेकंतदाचक्रुर्हरिश्चंद्रस्यमूर्द्धनि ॥ ६३ ॥

॥ ५७ ॥ वरन् उनसे कहा कि, हे मंत्रियो ! तुम घरको लौट जाओ और तुम घर जायकर मेरे वचनानुसार पुत्रसे कहो कि ॥ ५८ ॥ अब मैं घरको नहीं आऊंगा तुम आलस्य छोड सावधान होकर राज्यशासन करो विशेषकर ब्राह्मणोंका सन्मान और अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान तथा देवताओंकी अर्चना करो ॥ ५९ ॥ मैं इस निन्दनीय चाण्डालवेशसे महानुभव गणोंके सहित अयोध्यामें जानेकी इच्छा नहीं करता अतएव तुम शीघ्रही अयोध्याको जाओ ॥ ६० ॥ मेरी आज्ञानुसार मेरे पुत्र महाबल हरिश्चन्द्रको सिंहासनपर स्थापितकर तुम राज्य कार्य सम्पादन करो ॥ ६१ ॥ अनन्तर मंत्रियोंने राजाकी इसप्रकार आज्ञा सुन कातर हृदयसे अत्यन्त रोदन किया और उनको प्रणामकर शीघ्रही वनाश्रमसे निकले ॥ ६२ ॥ तिसकाल उन्होंने अयोध्यामें आये पवित्र दिन देख हरिश्चन्द्रके मस्तकमें विधिपूर्वक

मन्त्रपूत अभिषेक जल प्रदान किया ॥ ६३ ॥ वह तेजस्वी धर्मनिष्ठ हरिश्चन्द्र राजाकी आज्ञानुसार राज्यमें अभिषिक्त हो निरन्तर पिताको स्मरण कर मंत्रियोंके सहित धर्मानुसार राज्य शासन करने लगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिसत्तम ! नरपतिकी आज्ञानुसार मंत्रियोंने हरिश्चन्द्रको राज्यपदमें अभिषिक्त किया किन्तु त्रिशंकु उस चाण्डाल देहसे किसप्रकार छूटे ? वह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ यह गंगाके तटपर पवित्र जलमें स्नानकर वनमें प्राणपरित्यागपूर्वक शापसे छूटे थे अथवा गुरु वसिष्ठदेवने कृपा करके उनकी शापसे रक्षाकी थी ? ॥ २ ॥ हे ऋषिवर ! मैं उन नरपतिका चरित्र सुननेकी अत्यन्त इच्छा करता हूं इस कारण आप उनके सब अद्भुत चरित्र मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन

अभिषिक्तस्तुतेजस्वीसचिवाश्चनृपाज्ञया॥राज्यंचकारधर्मिष्ठःपितरंचिंतयन्भृशम्॥६४॥इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेद्वादशोऽध्यायः॥१२॥ ॥ राजोवाच ॥ हरिश्चंद्रःकृतोराजासचिवैर्नृपशासनात् ॥ त्रिशंकुस्तुकथंमुक्तस्तस्माच्चांडालदेहतः ॥ १ ॥ मृतोवावनमध्येतुगंगातीरेपरिप्लुतः ॥ गुरुणावाकृपांकृत्वाशापात्तस्माद्विमोचितः ॥ २ ॥ एतद्वृत्तांतमखिलंकथयस्वममाग्रतः ॥ चरितंतस्यनृपतेःश्रोतुकामोऽस्मिसर्वथा ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ अभिषिक्तंसुतंकृत्वाराजासंतुष्टमानसः ॥ कालातिक्रमणंतत्रचकारचिंतयन्छिवाम् ॥ ४ ॥ एवंगच्छतिकालेतुतपस्तप्त्वासमाहितः ॥ द्रष्टुंदारान्सुतांश्चतदाऽगात्कौशिकोमुनिः ॥ ५ ॥ आगत्यस्वजनंदृष्ट्वासुस्थितंमुदमातवान् ॥ भार्यांपप्रच्छमेधावीस्थितामग्रेसपर्यया ॥ ६ ॥ दुर्भिक्षेतुकथंकालस्त्वयानीतःसुलोचने ॥ अन्नंविनात्विमेबालाःपालिताःकेनतद्वद ॥ ७ ॥ अहंतपसिसंबद्धोनाऽऽगतःशृणुसुंदरि ॥ किंकृतंतुत्वयाकांतेविनाद्रव्येणशोभने ॥ ८ ॥

कीजिये ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा पुत्रको राज्यपदमें अभिषिक्तकर सन्तुष्टचित्त हुए और भगवती भवानीका ध्यान करते हुए उस वनमें काल व्यतीत करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर कुशिकपुत्र विश्वामित्र एकाग्रचित्तसे तपस्याका अनुष्ठान समाप्तकर स्त्री और पुत्रोंको देखनेके लिये अपने घर आये ॥ ५ ॥ वह बुद्धिमान् घर आय पुत्रोंको स्वच्छन्दतासे रहता देख अत्यन्त आनन्दित हुए और जब उनकी भार्या उनकी सेवा करनेके लिये सन्मुख आई तब उन्होंने उससे पूंछा ॥ ६ ॥ हे सुलोचने ! दुर्भिक्षके समयमें तुमने किसप्रकार काल व्यतीत किया ? घरमें कुछ भी अन्न नहीं था. तो इन बालकोंका किस उपायसे प्रतिपालन किया यह तुम मुझसे कहो ॥ ७ ॥ हे सुन्दरि ! मैं तपश्चर्य्यामें सम्यक् प्रकार बँधा हुआ था इसकारण तुम्हारा पालन

करनेके लिये यहाँ नहीं आसका किन्तु हेकान्ते ! तुमने खाद्य द्रव्यके अभावसे क्याउपाय अवलम्बनकिया था ॥ ८ ॥ हेशोभने ! मैंने अद्भुत दुर्भिक्षका वृत्तान्त सुन कर तिसकाल विचार किया कि, मैं धनहीन हूं इस कारण इस समय वहाँ जाकर क्या करूंगा ? इसप्रकार विचार करही मैं यहाँ नहीं आया ॥ ९ ॥ हे वामोरु ! तब मैं एकदिन भूंखसे अत्यन्त कातर हो कोई उपाय न देखकर एक चाण्डालके घरमें चोरभावसे घुसा ॥ १० ॥ घरमें घुसकर श्वपचको सोताहुआ देखा तब मैं भूंखसे अत्यन्त कातर हो उसकी पाकशालाको ढूँढताहुआ उसमें उपस्थित हुआ ॥ ११ ॥ भोजनकी हांडी उघाड़कर भोजनके लिये जिससमय पक्क कुत्तेका मांस ग्रहणकिया तिसीसमय उस श्वपचने मुझको देखा ॥ १२ ॥ उसने मुझसे आदरपूर्वक पूंछा कि, तुम कौन हो ? किसकारण रात्रिके समय मेरे घरमें घुसेहो ! अथवा किस लिये पाककी हाँड़ी उघाडतेहो ? तुम्हारा क्या प्रयोजन है सो मुझसे कहो ॥ १३ ॥ हे सुन्दरि ! जब चाण्डालने मुझसे यह बात पूँछी तब मैं भूंखसे अत्यन्त

मयाचिंताकृतातत्रश्रुत्वादुर्भिक्षमद्भुतम् ॥ नागतोऽहंविचार्यैवंकिंकरिष्यामिनिर्धनः ॥ ९ ॥ अहमप्यतिवामोरुपीडितःक्षुधयावने ॥ प्रविष्टश्चौरभावेन कुत्रचिच्छ्वपचालये ॥ १० ॥ श्वपचंनिद्रितंदृष्ट्वाक्षुधयापीडितोभृशम् ॥ महानसंपरिज्ञायभक्ष्यार्थंसमुपस्थितः ॥ ११ ॥ यदाभांडंसमुद्घाट्यपक्वंश्वतनुजामिषम् ॥ गृह्णामिभक्षणार्थायतदादृष्टस्तुतेनवै ॥ १२ ॥ पृष्टःकस्त्वंकथंप्राप्तोगृहेमेनिशिसादरम् ॥ ब्रूहिकार्यंकिमर्थंत्वमुद्घाटयसिभांडकम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तःश्वपचेनाऽहंक्षुधयापीडितोभृशम् ॥ तमवोचंसुकेशांतिकामंगद्गदयागिरा ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोऽहंमहाभागतापसःक्षुधयार्दितः ॥ चौरभावमनुप्राप्तो भक्ष्यंपश्यामिभांडके ॥ १५ ॥ चौरभावेनसंप्राप्तोऽस्म्यतिथिस्तेमहामते ॥ क्षुधितोऽस्मिददस्वाज्ञांमांसमद्मिसुसंस्कृतम् ॥ १६ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ श्वपचस्तुवचःश्रुत्वामामुवाचसुनिश्चितम् ॥ भक्षंमाकुरुवर्णाग्र्यजानीहिश्वपचालयम् ॥ १७ ॥ दुर्लभंखलुमानुष्यंतत्राऽपिचद्विजन्मता ॥ द्विजत्वेब्राह्मणत्वंचदुर्लभंवेत्सिकिंनहि ॥ १८ ॥ दुष्टाहारोनकर्तव्यःसर्वथालोकमिच्छता ॥ अग्राह्यामनुनाप्रोक्ताःकर्मणासप्तचांत्यजाः ॥ १९ ॥

कातर था इसकारण मैंने अपनी इच्छा गद्गदस्वरसे कही ॥ १४ ॥ मैं तपस्वी ब्राह्मण हूं क्षुधासे अत्यन्त क्लेश पाय चौरभावसे तुम्हारे घरमें आय इस हाँडीमें भक्ष्यद्रव्य ढूँढताहूं ॥ १५ ॥ हे महामते ! मैं इस समय तुम्हारे घरमें चौरभावसे अतिथि हूं, विशेषकर मैं इससमय क्षुधासे अत्यन्त पीडित हूं इसकारण सुसंस्कृत मांस भोजन करूंगा तुम इस विषयमें मुझको अनुमति दो ॥ १६ ॥ श्वपचने मेरे यह वचन सुनकर मुझसे शास्त्रविहित वचन कहे, हे वर्णश्रेष्ठ ! इसको चाण्डालका घर जानना चाहिये, अतएव आप इसको कभी भक्षण न कीजिये ॥ १७ ॥ देखो इस लोकमें मनुष्यका जन्म अत्यन्त दुर्लभ है और यद्यपि मनुष्यका जन्म प्राप्त हो तथापि ब्राह्मणका जन्म उसकी अपेक्षा अत्यन्त दुर्लभ है और ब्राह्मणसे भी ब्राह्मणत्व प्राप्त करना अतिकठिन है यह क्या आप नहीं जानते हैं ? ॥ १८ ॥ जो स्वर्गादि प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उनको दूषित अन्न कभी आहार करना नहीं चाहिये. महर्षि मनुने कर्मके अनुसार सप्त जातिको अन्त्यंज कहकर अग्राह्य किया है ॥ १९ ॥

इस कारण हे विप्र ! मैं भी कर्मके वशीभूत होनेसे श्वपचजातिमें उत्पन्न होकर सबके त्यागने योग्य हुआ हूं इसमें संशय नहीं. हे द्विजवर ! लोभ वशसे नहीं किन्तु इस अभिप्रायसे मैं आपको भक्षण करनेसे निवारण करता हूं ॥ २० ॥ वर्णसंकरदोष आपको न लगे. विश्वामित्रने कहा हे धर्मज्ञ ! तुम सत्य कहते हो तुम्हारे चाण्डाल होनेपर भी तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त निर्मल है ॥ २१ ॥ इस समय मैं तुमसे आपद्धर्मका सूक्ष्ममार्ग कहता हूं सुनो. हे मानद ! सम्पूर्ण समयमें देहकी रक्षा करना सम्यक् प्रकार श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ किन्तु यदि उसमें पाप हो तोआपदाके अन्तमें शुद्धिके लिये उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये और आपद् कालके विना पापकार्य करनेसे मनुष्योंकी दुर्गति होती है किन्तु आपद् कालके समयनहीं होती ॥ २३ ॥ जो मनुष्य भूंखा मरता है अन्तमें उसको नरक होता है

त्याज्योऽहंकर्मणाविप्रश्वपचोनाऽत्रसंशयः॥निवारयामिभक्ष्यात्त्वांनलोभेनांजसाद्विज ॥२०॥ वर्णसंकरदोषोऽयंमायातुत्वांद्विजोत्तम॥विश्वामित्रउवाच॥ सत्यंवदसिधर्मज्ञमतिस्तेविशदांत्यज ॥ २१ ॥ तथाऽप्यापदिधर्मस्यसूक्ष्ममार्गंब्रवीम्यहम् ॥ दहस्यरक्षणंकार्यंसर्वथायदिमानद ॥ २२ ॥ पापस्यांते पुनःकार्यंप्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥ दुर्गतिस्तुभवेत्पापादनापदिनचाऽऽपदि ॥२३॥ मरणात्क्षुधितस्याऽथनरकोनाऽत्रसंशयः ॥ तस्मात्क्षुधापहरणंकर्तव्यं शुभमिच्छता ॥ २४ ॥ तेनाऽहंचौर्यधर्मेणदेहंरक्षेऽप्यथांत्यज ॥ अवर्षणेचचौर्येणयत्पापंकथितंबुधैः ॥ २५ ॥ योनवर्षतिपर्जन्यंतत्तुतस्मैभविष्यति॥ विश्वामित्रउवाच ॥ इत्युक्तवचनेकांतेपर्जन्यःसहसापतत् ॥ २६ ॥ गगनाद्धस्तिहस्ताभिर्धाराभिरभिकांक्षितः ॥ मुदितोऽहंघनंवीक्ष्यवर्षंतंविद्युतासह॥ ॥ २७॥ तदाऽहंतद्गृहंत्यक्त्वानिःसृतःपरयामुदा ॥ कथयत्वंवरारोहेकालोनीतस्त्वयाकथम् ॥ २८ ॥

इसमें संशय नहीं. इस कारण शुभाकांक्षी मनुष्योंके क्षुधाका निवारण अवश्य कर्तव्य है ॥ २४ ॥ हे अन्त्यज ! मैंने इसी कारण चौर्यवृत्ति अवलम्बन कर देहके रक्षा करनेकी इच्छा की है. देखो, दुर्भिक्षके समय अवर्षणमें चोरी करनेपर पंडितोंने जो पापका विधान किया है ॥ २५ ॥ यदि मेघ वर्षा न करे तो वह पाप उसकोही अवश्य स्पर्श करता है विश्वामित्र बोले हे कान्ते ! यह वात कहतेही सबके आकांक्षित पर्जन्य देव ॥ २६ ॥ सहसा हस्तिशुण्डाकार धारासे वर्षा करने लगे मेघोंको बिजलीसहित वर्षा करनेपर मैं उनको देखकर आनन्दित हुआ ॥ २७ ॥ तब अत्यन्तप्रसन्नतापूर्वक उस चाण्डालके घरको छोड बाहर निकला हे वरारोहे ! इस घने वनमें सम्पूर्ण प्राणियोंका क्षयकर अत्यन्त भयङ्कर वह दुर्भिक्षका समय तुमने किसप्रकार व्यतीत किया यह मुझसे कहो.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! पतिके इसप्रकार वचन सुन वह प्रियभाषिणी प्रियतमा उनसे कहनेलगी कि ॥ २८ ॥ २९ ॥ परमदारुण दुर्भिक्षके उपस्थित होनेपर मैंने जिसप्रकार काल व्यतीत किया है वह आप सुनिये. हे मुनिवर ! जब आपके तपस्याकरनेको चले जानेपर घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ ॥ ३० ॥ तब पुत्र क्षुधासे अत्यन्त कातर हो अन्नके लिये अतिदुःखित हुए जब मैं बालकोंको क्षुधार्त देखकर चिन्ता करनेलगी तब नीवारके लिये वनमें भ्रमण करतेहुए ॥ ३१ ॥ मुझको कितनेही फल प्राप्त हुए इस प्रकार नीवारान्नसे कितनेही महीने व्यतीत होगये ॥ ३२ ॥ फिर क्रमानुसार उसकाभी अभाव होगया तब मनमें चिन्ता करने लगी इस दारुणदुर्भिक्षके समय वनमें नीवारअन्नकाभी अत्यन्त अभाव हुआ ॥ ३३ ॥ इससमय भिक्षाभी सुलभ नहीं है वृक्षोंपर भी फल नहीं है और पृथ्वीमेंभी मूल नहीं पायेजाते. बालक

कांतारेपरमःक्रूरःक्षयकृत्प्राणिनामिह ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वापतिमाहप्रियंवदा ॥ २९ ॥ यथाशृणुमयानीतःकालःपरमदारुणः ॥ गतेत्वयिमुनिश्रेष्ठदुर्भिक्षंसमुपागतम् ॥३०॥ अन्नार्थंपुत्रकाःसर्वेबभूवुश्चाऽतिदुःखिताः ॥ क्षुधितान्बालकान्वीक्ष्यनीवारार्थंवनेवने ॥ ३१ ॥ भ्रांताऽहं चिंतयाविष्टाकिंचित्प्राप्तंफलंतदा ॥ एवंचकतिचिन्मासानीवारेणाऽतिवाहिताः ॥३२॥ तदभावेमयाकांतचिंतितंमनसापुनः ॥ नभिक्षाकिलदुर्भिक्षेनीवारा नाऽपिकानने ॥ ३३ ॥ नवृक्षेषुफलान्यासुर्नमूलानिधरातले ॥ क्षुधयापीडिताबालारुदंतिभृशमातुराः ॥ ३४ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकिंब्रवीमिक्षुधार्दितान् ॥ एवंविचिंत्यमनसानिश्चयस्तुमयाकृतः ॥ ३५ ॥ पुत्रमेकंददाम्यद्यकस्मैचिद्धनिनेकिल ॥ गृहीत्वातस्यमौल्यंतुतेनद्रव्येणबालकान् ॥ ३६ ॥ पालयेऽहंक्षुधार्तांस्तुनाऽन्योपायोऽस्तिपालने ॥ इतिसंचिंत्यमनसापुत्रोऽयंप्रहितोमया ॥ ३७ ॥ विक्रयार्थंमहाभागक्रंदमानोभृशातुरः ॥ क्रंदमानंगृहीत्वैनंनिर्गताऽहंगतत्रपा ॥३८॥ तदासत्यव्रतोमार्गेमामुद्वीक्ष्यभृशातुराम् ॥ पप्रच्छसचराजर्षिःकस्माद्रोदितिबालकः ॥३९॥

तो क्षुधाकी ज्वालासे कातर होकर अत्यन्त रोदन करते हुए ॥ ३४ ॥ इससमय क्या उपाय है ? कहां जाऊं ? अथवा क्षुधित बालकोंसे क्या कहूं इस भाँति अनेक प्रकारके विषयकी चिन्ता करके स्थिर किया कि ॥ ३५ ॥ एक पुत्रको किसी धनीके निकट बेचूंगी और उसका मूल्य लेकर उस अर्थसे ॥ ३६ ॥ क्षुधार्त बालकोंका प्रतिपालन करूंगी इसके सिवाय पालन करनेका दूसरा उपाय नहीं है हे कान्त! इसप्रकार मनमें विचार इस बालककोही बेचनेकेलिये नियोजित किया ॥ ३७ ॥ हेमहाभाग ! तब यह बालक अत्यन्त कातर होनेलगा तथापि मैं लज्जारहित हो रोतेहुए बालकको संग ले आश्रमसे बाहर निकली ॥ ३८ ॥ इसीसमय सत्यव्रतनामक राजर्षिने

मार्गमें मुझको अत्यन्त कातर देखकर पूँछा हे सुव्रते ! यह बालक किसकारण रोता है ॥ ३९ ॥ हे मुनिसत्तम ! तब मैंने उनसे कहा हे राजन् ! मैं इस बालकको वेंचनेके लिये जाती हूं ॥ ४० ॥ मेरे इसप्रकार वचन सुन राजाका हृदय करुणारससे अभिषिक्त हुआ. तब उन्होंने मुझसे कहा कि, तुम इस कुमारको लेकर अपने आश्रममें जाओ ॥ ४१ ॥ जबतक मुनिवर आश्रममें न आवेंगे तबतक मैं इन कुमारोंके भोजनार्थ नित्य भोजनका उपयोगी मांस संग्रहकर तुम्हारे पास लाऊंगा ॥ ॥ ४२ ॥ हे मुनिवर ! तबसेही यह भूपाल दयाके वशीभूत हो प्रति दिन मृग और शूकरोंको मारकर उनका मांस इस वृक्षमें बांध जाते ॥ ४३ ॥ हे कान्त ! उससेही मैं ने इन बालकोंकी उस दारुण संकटसागरसे रक्षा की, किन्तु यह भूपति मेरेही कारण वसिष्ठसे शापको प्राप्त हुए हैं ॥ ४४ ॥ किसी दिन उस राजाको वनमें

तदाऽहंतमुवाचेदंवचनंमुनिसत्तम ॥ विक्रयार्थंनीयतेऽसौबालकोऽयमयानृप ॥ ४० ॥ श्रुत्वामेवचनंराजादयार्द्रहृदयस्ततः ॥ मामुवाच गृहंयाहिगृहीत्वैनंकुमारकम् ॥ ४१ ॥ भोजनार्थेकुमाराणामामिषंविहितंतव ॥ प्रापयिष्याम्यहंनित्यंयावन्मुनिसमागमः ॥ ४२ ॥ अहन्य हनिभूपालोवृक्षेऽस्मिन्मृगसूकरान् ॥ विन्यस्यययातिहत्वाऽसौप्रत्यहंदययान्वितः ॥ ४३ ॥ तेनैवबालकाःकांतपालितावृजिनार्णवात् ॥ वसिष्ठेनाऽथशप्तो ऽसौभूपतिर्ममकारणात् ॥४४॥ कस्मिंश्चिद्दिवसेमांसंनप्राप्तंतेनकानने ॥ हतादोग्ध्रीवसिष्ठस्यतेनाऽसौकुपितोमुनिः ॥ ४५ ॥ त्रिशंकुरितिभूपस्यकृतंना ममहात्मना ॥ कुपितेनवधाद्धेतोश्चांडालश्चकृतोनृपः ॥४६॥ तेनाऽहंदुःखिताजातातस्यदुःखेनकौशिक ॥ श्वपचत्वमसौप्राप्तोमत्कृतेनृपनंदनः ॥ ४७ ॥ येनकेनाऽप्युपायेनभवतानृपतेःकिल ॥ तस्माद्रक्षाप्रकर्तव्यातपसाप्रबलेनह ॥ ४८ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिभार्यावचःश्रुत्वाकौशिकोमुनिसत्तमः ॥ ता माहकामिनींदीनांसांत्वपूर्वमरिंदम ॥४९॥ विश्वामित्रउवाच ॥ मोचयिष्यामितंशापान्नृपंकमललोचने ॥ उपकारःकृतोयेनकांताराद्रक्षितासिवै ॥५०॥

मांस प्राप्त न हुआ अतएव वसिष्ठकी कामधेनुका वध किया इस कारणसे मुनि उनपर क्रोधित हुए ॥ ४५ ॥ महात्मा मुनिने गोवधसे कुपित होकर उन भूपतिका त्रिशङ्कुनाम रख उनको चाण्डाल किया ॥ ४६ ॥ हे कौशिक ! राजकुमार हमारा उपकार करनेके कारण चाण्डालपनेको प्राप्त हुए इसकारण उनके उस दुःखसे मैं अत्यन्त दुःखित हुई हूं ॥ ४७ ॥ अतएव जिस किसी उपायसे हो अथवा प्रबल तपस्याके बलसेही हो नृपतिकी उस विपद्से रक्षा करना आपको अवश्य कर्तव्य है ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! भार्याके इसप्रकार वचन सुन मुनिसत्तमकौशिक उस दुःखिता कामिनीको समझाकर कहने लगे ॥४९॥ विश्वामित्र बोले

हेकमललोचने ! जिस नरपतिने तुम्हारी उस दारुण संकटसे रक्षाकरके उपकार किया है मैं उसको शापसे छुड़ा दूंगा ॥ ५० ॥ अधिक क्या वियाबल अथवा तपोबलसेही हो मैं उसका दुःख निवारण करूंगा तिसकाल प्रियतमाको इस प्रकार समझाकर परमार्थविद् कौशिक ॥ ५१ ॥ किस प्रकारसे नरपतिका दुःखनाश करैं यही चिन्ता करनेलगे तब मुनिवर मनमें भलीभाँति विचारकर पृथ्वी पति त्रिशङ्कुके निकट गये ॥ ५२ ॥ तिस समय राजा त्रिशंकु श्वपचवेशसे चाण्डालके ग्राममें दीनभावसे वास कररहे थे नरपति मुनिवरको आताहुआ देख अत्यन्त विस्मित हो ॥ ५३ ॥ शीघ्रही उनके चरणोंमें दण्डकी समान गिरपड़े तब द्विजवर कौशिकने उन गिरेहुए राजाको हाथ पकड़कर ॥ ५४ ॥ उठाय प्रबोध वचनोंसे कहा हे महीपाल ! तुम हमारेलियेही वशिष्ठमुनिसे शापको प्राप्त हुए हो ॥ ५५ ॥ अत

विद्यातपोबलेनाऽहंकरिष्येदुःखसंक्षयम् ॥ इत्याश्वास्यप्रियांतत्रकौशिकःपरमार्थवित् ॥ ५१ ॥ चिंतयामासनृपतेःकथंस्याद्दुःखनाशनम् ॥ संविमृश्यमुनिस्तत्रजगामयत्रपार्थिवः ॥ ५२ ॥ त्रिशंकुःपक्कणेदीनःसंस्थितःश्वपचाकृतिः ॥ आगच्छंतंमुनिंदृष्ट्वाविस्मितोऽसौनराधिपः ॥ ५३ ॥ दंडवन्निपपातोर्व्यांपादयोस्तरसामुनेः ॥ गृहीत्वातंकरेभूपंपतितंकौशिकस्तदा ॥ ५४ ॥ उत्थाप्योवाचवचनंसांत्वपूर्वंद्विजोत्तमः ॥ मत्कृतेत्वंमहीपालशप्तोऽसिमुनिनायतः ॥ ५५ ॥ वांछितंतेकरिष्यामिब्रूहिकिंकरवाण्यहम् ॥ राजोवाच ॥ मयासंप्रार्थितःपूर्ववसिष्ठोमखहेतवे ॥ ५६ ॥ मांयाजयमुनिश्रेष्ठकरोमिमखमुत्तमम् ॥ यथेष्टंकुरुविप्रेंद्रयथास्वर्गंव्रजाम्यहम् ॥ ५७ ॥ अनेनैवशरीरेणशक्रलोकंसुखालयम् ॥ कोपंकृत्वावसिष्ठोऽसौमामाहेतिसुदुर्मते ॥ ॥ ५८ ॥ मानुषेणहिदेहेनस्वर्गवासःकुतस्तव ॥ पुनर्मयोक्तोभगवान्स्वर्गलुब्धेनचाऽनघ ॥ ५९ ॥ अन्यंपुरोहितंकृत्वायक्ष्येऽहंयज्ञमुत्तमम् ॥ तदातेनैवशप्तोऽहंचांडालोभवपामर ॥ ६० ॥ इत्येतत्कथितंसर्वंकारणंशापसंभवम् ॥ ममदुःखविनाशायसमर्थोऽसिमुनीश्वर ॥ ६१ ॥

एव मैं तुम्हारा अभिलषित सम्पादन करूंगा इससमय क्या करैं सो कहो. राजाने कहा मैंने यज्ञ करनेके लिये पहले वसिष्ठसे प्रार्थनाकरके कहा ॥ ५६ ॥ हे मुनिवर ! मैं एक श्रेष्ठ यज्ञ करूंगा आप मेरा वह कार्य सम्पादन कीजिये जिससे मैं स्वर्ग जासकूं ॥ ५७ ॥ हे विप्रवर ! जिससे इसी शरीरद्वारा मैं सुरपुरमें सुखसे शक्रभवनमें जासकूं आप ऐसे यज्ञका अनुष्ठान कीजिये. तब वसिष्ठदेवने कुपित होकर मुझसे कहा ॥ ५८ ॥ हेदुर्मते ! तेरा मनुष्यदेहसे किसप्रकार स्वर्ग में वासहोगा ? मैं स्वर्गका लालची था इसकारण फिर भगवान् वसिष्ठसे कहा हे अनघ ! ॥ ५९ ॥ तो मैं दूसरा पुरोहित कर सर्वोत्तम यज्ञका अनुष्ठान करूंगा तब वसिष्ठदेवने यह बात सुन क्रोधित हो तत्काल "रे पामर ! तू चाण्डाल हो" यह कहकर मुझको शाप दिया ॥ ६० ॥ हेमुनिवर ! यह मैंने आपसे शापका सम्पूर्ण कारण निवेदन किया. इस समय आप मेरा दुःखना

श करनेमें समर्थ हैं॥ ६१ ॥ राजा दुःखकी वेदनासे कातर हो यह कहकर मौन होरहे. विश्वामित्र मुनिभी किस उपायसे इनका शाप निवारण करैं यही विचारने लगे॥ ६२॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! महातप विश्वामित्रने मनमें कर्तव्य निश्चयकर यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्रीसंग्रहपूर्वक मुनियोंको निमन्त्रण भेजा ॥ १ ॥ यद्यपि मुनियोंने विश्वामित्रसे निमन्त्रित हो यज्ञका वृत्तान्त जानलिया, किन्तु ऋषिवर वसिष्ठके निवारण करनेसे वह कोई भी उस यज्ञमें न आए ॥ २ ॥ गाधिनन्दन यह वृत्तान्त जान अत्यन्त चिन्तित हुए और अतिदुःखित हो त्रिशंकु नरपतिके आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ तब महर्षि क्रोधित हो उनसे कहनेलगे हे नृपसत्तम ! वसिष्ठके निवारण करनेसे सम्पूर्ण ब्राह्मण इस यज्ञमें नहीं आये ॥ ४ ॥ किन्तु हे महाराज ! तुम मेरी तपस्याका बल देखो मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा तुमको शीघ्रही सुरालयमें भेजूंगा ॥ ५ ॥ उन मुनिने यह बात कहकर हाथमें जल ले लिया, और

इत्युक्त्वाविरराmाऽसौराजादुःखरुजार्दितः ॥ कौशिकोपिनिराकर्तुंशापंतस्यव्यचिंतयत् ॥ ६२ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ व्यासउवाच ॥ विचिंत्यमनसाकृत्यंगाधिसूनुर्महातपाः ॥ प्रकल्प्ययज्ञसंभारान्मुनीनामंत्रयत्तदा ॥१॥ मुनयस्तंमखंज्ञात्वाविश्वामित्रनिमंत्रिताः ॥नाऽगताःसर्वएवैतेवसिष्ठेननिवारिताः॥२॥गाधिसूनुस्तदाज्ञायविमनाश्चाऽतिदुःखितः॥आजगामाऽऽश्रमंतत्रयत्राऽसौनृपतिःस्थितः॥३॥ तमाहकौशिकःक्रुद्धोवसिष्ठेननिवारिताः ॥ नागताब्राह्मणाःसर्वेयज्ञार्थंनृपसत्तम ॥ ४ ॥ पश्यमेतपसःसिद्धिंयथात्वांसुरसद्मनि ॥ प्रापयामिमहाराजवांछितंकरोम्यहम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वाजलमादायहस्तेनमुनिसत्तमः ॥ददौपुण्यंतदातस्मैगायत्रीजपसंभवम् ॥ ६ ॥ दत्त्वाऽथसुकृतंराज्ञेतमुवाचमहीपतिम् ॥ यथेष्टंगच्छराजर्षेत्रिविष्टपमतंद्रितः ॥ ७ ॥ पुण्येनममराजेंद्रबहुकालार्जितेनच ॥ याहिशक्रपुरींप्रीतःस्वस्तितेऽस्तुसुरालये ॥ ८ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तवतिविप्रेंद्रेत्रिशंकुस्तरसाततः ॥ उत्पपातयथापक्षीवेगवांस्तपसोबलात् ॥ ९ ॥ उत्पत्यगगनेराजागतःशक्रपुरींयदा ॥ दृष्टोदेवगणैस्तत्रक्रूरश्चांडालवेषभाक् ॥ १० ॥ कथितोऽसौसुरेंद्रायकोऽयमायातिसत्वरः ॥ गगनेदेववद्घोरोदुर्दर्शःश्वपचाकृतिः ॥ ११ ॥

गायत्री जपकर जो पुण्यसञ्चय कियाथा वह सम्पूर्ण राजाको प्रदान किया ॥ ६ ॥ अनन्तर पुण्य देकर उन महीपतिसे कहा हे राजर्षे ! तुम आलस्यरहित होकर अपनी इच्छानुसार सुरलोकमें जाओ ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम प्रसन्न होकर बहुकाल सञ्चित मेरे पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोकमें जाओ और उस सुरलोकमें तुम्हारा मंगल हो ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्रके यह बात कहनेपर राजा त्रिशंकु उनके तपोबलसे वेगवान् पक्षीके समान अत्यन्त शीघ्र आकाशमार्गमें उडे ॥९॥ राजा त्रिशंकु आकाशमें उडते हुए जब इन्द्रके पुरके समीप पहुँचे तब देवताओंने चाण्डालाकृति भीषणवेश त्रिशंकुको देखकर॥ १०॥ देवराज इन्द्रसे कहा आकाशमार्गमें देवताकी समान अत्यन्तवेगसे आताहै यह कौन मनुष्य है ? इसकी आकृति श्वपचसदृश और लोहेकी समान घोर दर्शन है ॥ ११ ॥

यह मुन इन्द्रने सहसा उठकर उस पुरुषाधमको देखा और उसको त्रिशंकु जानकर तिरस्कारपूर्वक तत्काल उससे कहा ॥ १२ ॥ तुम श्वपच और देवलोकके अत्यन्त अनुपयुक्त हो अतएव कहाँ जातेहो ? यहाँ ठहरना तुमको उचित नहीं है, इस कारण तुम अभी पृथ्वीपर जाओ ॥ १३ ॥ हे अरिनाशन ! इन्द्रके यह वचन कहतेही राजा स्वर्गसे स्खलित हो पुण्यक्षीण देवताओंकी समान तत्काल गिरने लगे ॥ १४ ॥ तब त्रिशंकुने विश्वामित्र विश्वामित्र कहकर चीत्कार करते करते वारंवार कहा मैं स्वर्गसे स्खलित होकर अत्यन्त वेगसे गिरताहूं अतएव आप मेरी इस दुःखसे रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! महर्षि कौशिकने उनके रोनेकी ध्वनि सुनकर गिरता हुआ देख "ठहर ठहर" यह वचन कहा ॥ १६ ॥ नृपति सुरालयसे विचलित होकरभी मुनिके तप प्रभाववशतः उनके वाक्यानुसार

सहसोत्थायशक्रस्तमपश्यत्पुरुषाधमम् ॥ ज्ञात्वात्रिशंकुमपिसनिर्भर्त्स्यतरसाऽब्रवीत् ॥ १२ ॥ श्वपचक्समायासिदेवलोकेजुगुप्सितः ॥ याहिशीघ्रंततोभूमौ नाऽत्रस्थातुंत्वयोचितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तःस्खलितःस्वर्गाच्छक्रेणाऽमित्रकर्शन ॥ निपपाततदाराजाक्षीणपुण्योयथाऽमरः ॥ १४ ॥ पुनश्चुक्रोशभूपालो विश्वामित्रेतिचाऽसकृत् ॥ पतामिरक्षदुःखार्तस्वर्गाच्चलितमाशुगम् ॥ १५ ॥ तस्यतत्क्रंदितंराजन्पततःकौशिकोमुनिः ॥ श्रुत्वातिष्ठेतिहोवाचपतं तंवीक्ष्यभूपतिम् ॥ १६ ॥ वचनात्तस्यतत्रैवस्थितोऽसौगगनेनृपः ॥ मुनेस्तपःप्रभावेणचलितोऽपिसुरालयात् ॥ १७ ॥ विश्वामित्रोप्यपःस्पृष्ट्वाचकारे ष्टिंसुविस्तराम् ॥ विधातुंनूतनांसृष्टिंस्वर्गलोकंद्वितीयकम् ॥ १८ ॥ तस्योद्यमंतथाज्ञात्वात्वरितस्तुशचीपतिः ॥ तत्राऽऽजगामसहसामुनिंप्रतिगाधिजम् ॥ ॥ १९ ॥ किंब्रह्मन्क्रियतेसाधोकस्मात्कोपसमाकुलः ॥ अलंसृष्ट्यामुनिश्रेष्ठब्रूहिकिंकरवाणिते ॥ २० ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ स्वंनिवासंमहीपालंच्युतं त्वद्भुवनाद्विभो ॥ नयस्वप्रीतियोगेनत्रिशंकुंचाऽतिदुःखितम् ॥ २१ ॥ व्यासउवाच ॥ तस्यतंनिश्चयंज्ञात्वातुराषाडतिशंकितः ॥ तपोबलंविदित्वो ग्रमोमित्योवाचवासवः ॥ २२ ॥

आकाशमार्गमें उसीस्थानपर स्थित रहे ॥ १७ ॥ व विश्वामित्रनेभी नूतन सृष्टि और दूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिये आचमनकर सुविस्तीर्ण यज्ञ आरम्भकिया ॥ १८ ॥ उनका इसप्रकार उद्यम देखकर शचीपतिने व्यग्र हो शीघ्रही गाधितनय विश्वामित्र मुनिके निकट आनकर कहा ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप क्या करते हैं ? हे साधो ! आप किसकारणसे इतने कोपयुक्त हुए हैं हेमुनिवर ! नूतन सृष्टिकरनेका अब प्रयोजननहीं है, इससमय आपका क्या कार्य करूं आज्ञा दीजिये ॥ २० ॥ विश्वामित्रने कहा हेदेवराज ! महीपति त्रिशंकु सुरलोकसे पतित होकर अत्यन्त दुःखित हुए हैं अतएव आप प्रसन्नतापूर्वक उनको अपने सुरालयमें लेजाइये यह मेरा अभिप्राय है ॥ २१ ॥ व्यासजीने कहा हेमहाराज ! देवराज इन्द्र उनका स्थिरसङ्कल्प और अत्युग्र तपोबल जानतेथे, इस कारण अत्यन्त शङ्कितचित्तसे उनके वचन स्वीकार किये ॥ २२ ॥

तब सुरपति इन्द्रने नरपतिको दिव्य देहप्रदानकर उत्तम विमानपर बैठाया और मुनिवर कौशिकसे सम्भाषणकर राजाके सहित अपने स्थानको चले गये ॥ २३ ॥ इन्द्रके त्रिशंकुसहित स्वर्ग में चलेजानेपर विश्वामित्र सुखी हो अपने आश्रममें स्थिर होकर वास करनेलगे ॥ २४ ॥ इधर महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्रके तपोबलसे पिताको स्वर्ग प्राप्तहुआ सुन अत्यन्त आनन्दित चित्तसे राज्य शासन करनेलगे ॥ २५ ॥ तब अयोध्याधिपति वह नरपति प्रीतिके वशीभूत हो रूपयौवनसम्पन्न सुचतुरभार्य्याके संग काम क्रीडामें निरत हुए ॥ २६ ॥ इसप्रकार बहुत समय व्यतीत होगया, तौभी वह युवती गर्भवती न हुई राजा यह देखकर अत्यन्त दुःखित और अतिचिन्तातुर हुए ॥ २७ ॥ तब उन्होंने वसिष्ठके पुण्याश्रममें जाय मुनिवरको मस्तक झुकाय प्रणाम कर पुत्र न होनेके कारण

दिव्यदेहंनृपंकृत्वाविमानवरसंस्थितम् ॥ आपृच्छयकौशिकंशक्रोऽगमन्निजपुरींतदा ॥ २३ ॥ गतेशक्रेतुवैस्वर्गेत्रिशंकुसहितेततः ॥ विश्वामित्रःसुखंप्राप्यस्वाश्रमेसुस्थिरोऽभवत् ॥ २४ ॥ हरिश्चंद्रोऽथतच्छ्रुत्वाविश्वामित्रोपकारकम् ॥ पितुःस्वर्गगमनंकामंमुदितोराज्यमन्वशात् ॥ २५ ॥ अयोध्याधिपतिःक्रीडांचकारसहभार्यया ॥ रूपयौवनचातुर्ययुक्तयाप्रीतिसंयुतः ॥ २६ ॥ अतीतकालेयुवतीनसागर्भवतीह्यभूत् ॥ तदाचिंतातुरोराजाबभूवाऽतीवदुःखितः ॥ २७ ॥ वसिष्ठस्याऽऽश्रमंगत्वाप्रणम्यशिरसामुनिम् ॥ अनपत्यत्वजांचिंतांगुरवेसमवेदयत् ॥ २८ ॥ दैवज्ञोऽसिभवान्काममंमंत्रविद्याविशारदः ॥ उपायंकुरुधर्मज्ञसंततेर्ममानद ॥२९॥ अपुत्रस्यगतिर्नास्तिजानासिद्विजसत्तम ॥ कस्मादुपेक्षसेजानन्दुःखंममचशक्तिमान् ॥३०॥ कलविंकास्त्विमेधन्यायेशिशूंलालयंतिहि ॥ मंदभाग्योऽहमनिशंचिंतयामिदिवानिशम् ॥ ३१ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याकर्ण्यमुनिस्तस्यनिर्वेदमिश्रितंवचः ॥ संचिंत्यमनसासम्यक्तमुवाचविधेःसुतः ॥ ३२ ॥

उनके मनमें जो चिन्ता उत्पन्न हुई थी वह गुरुजीसे कही ॥ २८ ॥ हे धर्मज्ञ ! आप मंत्रविद्यामें विशारद विशेषकर सब दैवविषयको जानते हैं अतएव हे मानद ! आप मुझको सन्तान प्राप्त होनेका उपाय कीजिये ॥ २९ ॥ हे द्विजसत्तम ! अपुत्रकीगति नहीं होती यह आप भलीभाँति जानते हैं इसकारण मेरा दुःख जानकर और उस दुःखके निवारण करनेमें समर्थ होकर भी आप क्या उपेक्षा करते हैं? ॥ ३० ॥ यह पक्षी भी धन्य हैं जो अपने पुत्रोंको पालते हैं किन्तु मैं ऐसा मन्दभाग्य हूं कि, पुत्रके न होनेसे दिनरात चिन्तासागरमें डूबा रहता हूं ॥ ३१ ॥ वसिष्ठजीने कहा हे महाराज ! विधिपुत्र वसिष्ठ राजाके खेदपूर्ण वचन सुनकर मनमें चिन्ता

कर उनसे विशेष वृत्तान्त कहने लगे ॥ ३२ ॥ वसिष्ठने कहा हे महाराज ! तुम सत्य कहते हो कि, अपुत्रताजनित दुःखकी अपेक्षा दूसरा कोई भी अति अद्भुत दुःख इस संसारमें विद्यमान नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव हे राजेन्द्र ! तुम यत्नसहित जलाधिपति वरुणदेवकी आराधना करो वही तुम्हारे कार्यकी सिद्धि करैंगे ॥ ३४ ॥ वरुणकी अपेक्षा सन्तानदायक देवता दूसरा कोई नहीं हैं अतएव हे धर्मिष्ठ ! तुम उनकी आराधना करो अवश्यही कार्यसिद्धि होगी ॥ ३५ ॥ दैव और पौरुष यह दोनोंही मनुष्यको माननीय हैं अतएव उद्यम न करनेसे किसप्रकार कार्यसिद्धि होसकी है ॥ ३६ ॥ हे नृपसत्तम ! तत्वदर्शी मनुष्यको न्यायके अनुसार उद्यम करना अवश्य कर्तव्य है उद्यम करनेसेही कार्य सिद्धि होती है इसके अतिरिक्त कभी कार्यकी सिद्धि नहीं होसक्ती ॥ ३७ ॥ अत्यन्त तेजयुक्त गुरुके इसप्रकार वचन सुन राजा

वसिष्ठउवाच ॥ सत्यंब्रूषेमहाराजसंसारेऽस्मिन्नविद्यते ॥ अनपत्यत्वजंदुःखंयत्तथादुःखमद्भुतम् ॥३३॥ तस्मात्त्वमपिराजेंद्रवरुणंयादसांपतिम् ॥ समाराधययत्नेनसतेकार्यंकरिष्यति ॥ ३४ ॥ वरुणादधिकोनास्तिदेवःसंतानदायकः ॥ तमाराधयधर्मिष्ठकार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥३५॥ दैवंपुरुषकारश्चमाननीयाविमौनृभिः ॥ उद्यमेनविनाकार्यसिद्धिःसंजायतेकथम् ॥ ३६ ॥ न्यायतस्तुनरैःकार्यउद्यमस्तत्वदर्शिभिः ॥ कृतेतस्मिन्भवेत्सिद्धिर्नोऽन्यथानृपसत्तम ॥ ३७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वागुरोरमिततेजसः ॥ प्रणम्यनिर्ययौराजातपसेकृतनिश्चयः ॥३८॥ गंगातीरेशुभेस्थानेकृतपद्मासनोनृपः ॥ ध्यायन्पाशधरंचित्तेचचारदुश्चरंतपः ॥ ३९ ॥ एवंतपस्यतस्तस्यप्रचेताहृष्टिगोचरः ॥ कृपयाभून्महाराजप्रसन्नमुखपंकजः ॥ ४० ॥ हरिश्चंद्रमुवाचेदंवचनंयादसांपतिः ॥ वरंवरयधर्मज्ञतुष्टोऽस्मितपसातव ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ अनपत्योऽस्मिदेवेशपुत्रंदेहिसुखप्रदम् ॥ ऋणत्रयापहारार्थमुद्यमोऽयंमयाकृतः ॥ ४२ ॥ नृपस्यवचनंश्रुत्वाप्रगल्भंदुःखितस्यच ॥ स्मितपूर्वंततःपाशीतमाहपुरतःस्थितम् ॥ ४३ ॥ वरुणउवाच ॥ पुत्रोयदिभवेद्राजन्गुणीमनसिवांछितः ॥ सिद्धेकार्येततःपश्चात्किंकरिष्यासिमेप्रियम् ॥ ४४ ॥

स्थिरसंकल्प हुए और उनको प्रणामपूर्वक तपस्या करनेको चलेगये ॥ ३८ ॥ नरपतिगंगाके तटपर पवित्र स्थानमें पद्मासन ग्रहण कर पाशधर वरुण देवके ध्यानमें निमग्न हो कठोर तपस्या करने लगे ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार तपस्या करतेकरते वरुणदेव कृपाके वशीभूत हो प्रफुल्लमनसे उनके दृष्टिगोचर हुए ॥ ४० ॥ तब वरुणने नरपति हरिश्चन्द्रसे कहा हे धर्म्मज्ञ ! मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं अतएव इससमय मुझसे वर माँगो ॥ ४१ ॥ राजाने कहा हे देवेश ! मैं अपुत्र हूं इसलिये मुझको सुखदायक पुत्र दीजिये मैं देवऋण ऋषिऋण और पितृऋणमें बँधाहुआ हूं इन तीनों ऋणोंसे छूटनेके लिये मैंने यह उद्यम किया है ॥ ४२ ॥ तब वरुणदेवने दुःखित राजाके विनययुक्त वचन सुन कुछेक हास्यकर सन्मुख स्थित राजासे कहा ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! यदि तुम्हारी इच्छानुसार गुणवान् पुत्र हो तब

कार्यसिद्धिके उपरान्त मेरा क्या प्रियकार्य करोगे ? ॥ ४४ ॥ हे नृपते ! यदि तुम उस पुत्रको पशुस्थानीय करके निःशङ्कित चित्तसे मेरा यज्ञ करो तो मैं तुमको दूं ॥ ४५ ॥ राजाने कहा हे देव ! मुझको वन्ध्यतादोषसे छुड़ाइये हे जलाधिप ! मैं पुत्र होनेपर उसको पशु बनाय तुम्हारा यज्ञ करूंगा. यह आपसे सत्य कहता हूं ॥ ४६ ॥ हे मानद ! अपुत्रताजनित दुःखकी अपेक्षा अत्यन्त असह्य दुःख पृथ्वीमें दूसरा नहीं है अतएव जिससे मनुष्योंका दुःख दूर हो ऐसी सुसन्तान मुझको दीजिये॥ ४७ ॥ वरुणने कहा हे राजन् ! तुम्हारे इच्छानुसार पुत्र होगा अतएव घरको जाओ किन्तु मेरे निकट जो कहा वह सत्य करना ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा

यदित्वंतेनपुत्रेणमांयजेथाविशंकितः ॥ पशुबंधेनतेनैवददामिनृपतेवरम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ देवमेमास्तुवंध्यत्वंयजिष्येऽहंजलाधिप ॥ पशुंकृत्वासुतंपुत्रंसत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ४६ ॥ वंध्यत्वेपरमंदुःखमसह्यंभुविमानद ॥ शोकाग्निशमनंनॄणांतस्माद्देहिसुतंशुभम् ॥ ४७ ॥ वरुणउवाच ॥ भविष्यतिसुतःकामंराजन्गच्छगृहायवै ॥ सत्यंतद्वचनंकार्ययद्ब्रवीषिममाऽग्रतः ॥ ४८ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तोवरुणेनाऽसौहरिश्चंद्रोगृहंययौ ॥ भार्यायैकथयामासवृत्तांतंवरदानजम् ॥ ४९ ॥ तस्यभार्याशतंपूर्णंबभूवाऽतिमनोहरम् ॥ पट्टराज्ञीशुभाशैब्याधर्मपत्नीपतिव्रता ॥ ५० ॥ कालेगतेऽथसागर्भंदधारवरवर्णिनी ॥ बभूवमुदितोराजाश्रुत्वादोहदचेष्टितम् ॥ ५१ ॥ कारयामासविधिवत्संस्कारान्नृपतिस्तदा॥ मासेऽथदशमेपूर्णेसुषुवेसाशुभेदिने॥५२॥ताराग्रहबलोपेतेपुत्रंदेवसुतोपमम् ॥ पुत्रेजातेनृपःस्नात्वाब्राह्मणैःपरिवेष्टितः ॥ ५३ ॥ चकारजातकर्माऽऽदौददौदानानिभूरिशः ॥ राज्ञश्चाऽतिप्रमोदोऽभूत्पुत्रजन्मसमुद्भवः ॥ ५४ ॥

हे राजन् ! वरुणके इसप्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र घरको चलेगये और वरदानविषयका सम्पूर्ण वृत्तान्त भार्यासे कहा॥ ४९ ॥ उनके सौ परमसुन्दरी मनोहारिणी स्त्रियें थीं उनमें पतिव्रता शैब्याही धर्मपत्नी और पट्टराणी थी ॥ ५० ॥ कुछ काल व्यतीतहोनेपर वह वरवर्णिनी गर्भवती हुई, राजा उसके दोहद (गर्भ) की बात सुन आनन्दित हुए ॥ ५१ ॥ तिससमय राजाने उसका विधिपूर्वक संस्कार कराया क्रमानुसार दशमासपूर्ण होनेपर शैब्याने शुभनक्षत्र ॥ ५२ ॥ और ग्रहबलयुक्त शुभ दिनमें देवताओंके पुत्रकी समान सन्तान उत्पन्न की. पुत्रके जन्म लेनेपर राजाने ब्राह्मणोंके सहित स्नानपूर्वक ॥ ५३ ॥ प्रथम जातकर्म संस्कार कर असंख्य धनरत्नादि

दान किये उस समय पुत्रजन्मसे राजाको अत्यन्त हर्ष हुआ ॥ ५४ ॥ उन चतुर राजाने धन धान्य और अनेक प्रकारके रत्न तथा भूमि इत्यादि विशेष विशेष दान और अनेक प्रकारके गीतवाद्योंका अनुष्ठान कराया ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब नरपतिके भवनमें पुत्र जन्म होनेके कारण महोत्सव हुआ तब वरुण देवने पवित्र विप्रवेश धारणपूर्वक वहाँ आनकर कहा ॥ १ ॥ तब वरुणदेवने "तुम्हारा मंगल हो" यह वचन राजासे कहा हे नरपति ! मुझको वरुण जानो इस समय मैं तुमसे जो कहता हूं सो सुनो. हे नराधिप ! इस समय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है अतएव तुम उससे मेरा यज्ञ करो ॥ २ ॥ हे राजन् ! मेरे वरदानसे तुम्हारा वन्ध्यता दोष दूर होगया है तब तुमने पहले जो कहा था अब वह वचन सत्य करो ॥ ३ ॥ राजा हरिश्चन्द्र वरुणके यहवचन सुनकर चिन्ता करने लगे कि, अहो ! मेरे केवल एक पुत्र कमलके समान

बभूवपरमोदारोधनधान्यसमन्वितः ॥ विशेषदानसंयुक्तोगीतवादित्रसंकुलः ॥ ५५ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ ॥ १४ ॥ व्यासउवाच ॥ प्रवृत्तेसदनेतस्यराज्ञःपुत्रमहोत्सवे ॥ आजगामतदापाशीविप्रवेषधरःशुभः ॥ १ ॥ स्वस्तीत्युक्त्वानृपंप्राहवरुणोऽहंनिशामय ॥ पुत्रोजातस्तवाधीशयजाऽनेननृपाऽऽशुमाम् ॥ २ ॥ सत्यंकुरुवचोराजन्यत्प्रोक्तंभवतापुरा ॥ वंध्यत्वंतुगतंतेऽद्यवरंदानेनमेकिल ॥ ३ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाराजाचिंतांचकारह ॥ कथंहन्मिसुतंजातंजलजेनसमाननम् ॥ ४ ॥ लोकपालःसमायातोविप्रवेषेणवीर्यवान् ॥ नदेवहेलनंकार्यंसर्वथाशुभमिच्छता ॥ ॥ ५ ॥ पुत्रस्नेहःसुदुश्छेद्यःसर्वथाप्राणिभिःसदा ॥ किंकरोमिकथंमेस्यात्सुखंसंततिसंभवम् ॥ ६ ॥ धैर्यमालंब्यभूपालस्तंनत्वाप्रतिपूज्यच ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णंयुक्तंविनयपूर्वकम् ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ देवदेवतवाऽनुज्ञांकरोमिकरुणानिधे ॥ वेदोक्तेनविधानेनमखंचबहुदक्षिणम् ॥ ८ ॥ पुत्रेजातेदशाहेनकर्मयोग्यो भवेत्पिता ॥ मासेनशुद्ध्येज्जननीदंपतीतत्रकारणम् ॥ ९ ॥ सर्वज्ञोऽसिप्रचेतस्त्वंधर्मंजानासिशाश्वतम् ॥ कृपांकुरुत्वंवारीशक्षमस्वपरमेश्वर ॥ १० ॥

मुखवाला उत्पन्न हुआ है इसको किसप्रकार मारूं ॥ ४ ॥ परन्तु वीर्यवान् लोकपालवरुणदेव विप्रवेशसे आए हैं जो कल्याणकी कामना करता है ऐसे मनुष्यको देवताओंका तिरस्कार करना कभी उचित नहीं है ॥ ५ ॥ और प्राणियोंको पुत्र स्नेह छेदन करना भी अत्यन्त कठिन है अतएव मैं अब क्या उपाय करूं ? किसप्रकार मुझको सन्तानजनित सुख होगा ॥ ६ ॥ तब भूपालने धैर्यावलम्बनपूर्वक प्रणतहो उनकी यथोचित पूजा की और विनयसहित युक्तियुक्त मनोहर वचन उनसे कहे ॥ ७ ॥ राजा बोले हे देवदेव ! मैं आपकी आज्ञा पालन करूं ? इसमें सन्देह नहीं मैं वेदोक्तविधानसे अनेक दक्षिणायुक्त आपका यज्ञ करूंगा ॥ ८ ॥ किन्तु नरमेधयज्ञ करना हो तो स्त्री पुरुष दोनों उसके अधिकारी हैं इसकारण पुत्र जन्म होनेसे पिता दश दिनके उपरान्त और जननी एकमासके उपरान्त शुद्ध होकर कार्यके योग्य होती हैं अतएव एकमास न बीतनेपर किसप्रकार यज्ञ करूं ॥ ९ ॥ आप सर्वज्ञ और लोकोंके परमप्रभु हैं, नित्यकर्म क्या है सो आप सभी जानते हैं

अतएव हे वारीश ! आप मुझपर कृपा करके इस एकमहीनेतक शान्त रहिये ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चंद्रके यह वचन सुन फिर वरुणदेवने उस नरपतिसे कहा हे राजन् ! तुम्हारा मंगल हो तुम कर्तव्य कार्य करो मैं इस समय अपने स्थानको जाता हूं ॥ ११ ॥ हे नृपसत्तम ! मैं एक महीनेके उपरान्त फिर आऊंगा, तुम पुत्रका जातकर्म और नामकरण इत्यादि नियमित संस्कार करके तदनन्तर मेरे यज्ञका अनुष्ठान करना ॥ १२ ॥ हे महाराज ! जलाधिपति वरुणदेवके राजासे इसप्रकार मधुर वचन कहकर चले जानेपर राजा हरिश्चन्द्र भी आनन्द अनुभव करनेलगे ॥ १३ ॥ फिर उन पृथ्वीपतिने करोड़करोड हेमभूषित घटोध्री (घटाकारस्तनवाली) धेनु और तिलपर्वत सम्पूर्ण वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको दानकिये ॥ १४ ॥ राजा पुत्रका मुख देखकर अत्यन्त सुखी हुए और विधिपूर्वक उसका रोहिताश्व नाम रक्खा ॥ १५ ॥ फिर एक मास पूर्ण होनेपर वरुणदेव विप्रवेश धारणपूर्वक राजासे आनकर वारंवार कहनेलगे हे महाराज !

व्यासउवाच ॥ इत्युक्तस्तुप्रचेतास्तंप्रत्युवाचजनाधिपम् ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यामिकुरुकार्याणिपार्थिव ॥ ११ ॥ आगमिष्यामिमासांतेयष्टव्यंसर्वथात्वया ॥ कृत्वौत्थानिकमाचारंपुत्रस्यनृपसत्तम ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वाश्लक्ष्णयावाचाराजानंयादसांपतिः ॥ हरिश्चंद्रोमुदंप्रापगतेपाशिनिपार्थिवः ॥ १३ ॥ कोटिशःप्रददौगास्ताघटोध्नीर्हेमपूरिताः ॥ विप्रेभ्योवेदविद्भ्यश्चतथैवतिलपर्वतान् ॥ १४ ॥ राजापुत्रमुखंदृष्ट्वासुखमापमहत्तरम् ॥ नामाऽस्यरोहितश्चेतिचकारविधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पूर्णेमासेततःपाशीविप्रवेषेणभूपतेः ॥ आजगामगृहेसद्योयजस्वेतिब्रुवन्मुहुः ॥ १६ ॥ वीक्ष्यतंनृपतिर्देवंनिमग्नःशोकसागरे ॥ प्रणिपत्यकृतातिथ्यंतमुवाचकृतांजलिः ॥ १७ ॥ दिष्ट्यादेवत्वमायातोगृहंमेपावितंप्रभो ॥ मखंकरोमिवारीशविधिवद्वांछितंतव ॥ १८ ॥ अदंतोनपशुःश्लाघ्यइत्याहुर्वेदवादिनः ॥ तस्माद्दंतोद्भवेतेऽहंकरिष्यामिमहामखम् ॥ १९ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तस्तेनवरुणस्तथेत्युक्त्वाययावथ ॥ हरिश्चंद्रोमुदंप्राप्यविजहारगृहाश्रमे ॥ २० ॥ पुनर्दंतोद्भवंज्ञात्वाप्रचेताद्विजरूपवान् ॥ आजगामगृहेतस्यकुरुकार्यमितिब्रुवन् ॥ २१ ॥

इससमय यज्ञ आरम्भ कीजिये ॥ १६ ॥ नरपति उन वरुणदेवको देखकर शोकसागरमें डूबगये फिर प्रणाम और आतिथ्यसत्कारपूर्वक हाथ जोडकर उनसे कहनेलगे ॥ १७ ॥ हे देव ! सौभाग्यके अनुसारही आपने मेरे घरमें पदार्पण किया है हे प्रभो ! आपके आनेसे अब मेरा घर पवित्र हुआ हे देव ! मैं आपका वाञ्छित यज्ञ विधिपूर्वक सम्पादन करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ किन्तु देखो ! दन्तविहीन पशु यज्ञमें श्रेष्ठ नहीं है यह वेदके जाननेवाले पंडितलोग कहते हैं अतएव पुत्रके दाँत निकलनेपर आपका वाञ्छित महायज्ञ करूंगा यही स्थिर किया है ॥ १९ ॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! वरुणदेव राजा हरिश्चन्द्रके यह वचन सुन यही हो इसप्रकार कहकर अपने स्थानको चलेगये इधर राजा हरिश्चन्द्र आनन्दित हो संसाराश्रममें विहार करनेलगे ॥ २० ॥ फिर कुमारके दाँत उत्पन्न हुए जानकर

वरुणदेव विप्रवेशसे राजाके घर आय कहने लगे हे राजन् ! आप इससमय मेरा यज्ञ कीजिये ॥ २१ ॥ भूपतिनेभी विप्ररूपी जलाधिपतिको आताहुआ देखतेही प्रणामकर आसन प्रदान किया, और यथायोग्य सन्मान करके उनकी पूजा की ॥ २२ ॥ उन्होंने अत्यन्त विनीतभावसे मस्तक झुकाय स्तवकरके उनसे कहा हे देव ! मैं आपका विधिपूर्वक वांछित अनेकदक्षिणायुक्त यज्ञ करूंगा ॥ २३ ॥ इस बालकका अभी चूड़ाकरण नहीं हुआ है अतएव गर्भकालीन केशकलाप विद्यमान है, इस कारण इन केशोंके रहते यह बालक यज्ञीय पशु नहीं होसक्ता यह मैं ने वृद्धोंके मुखसे सुना है ॥ २४ ॥ हे वारीश ! आप शास्त्रकी विधि जानते हैं, इस कारण चूड़ाकरणतक अपेक्षा कीजिये, बालकके मुण्डनकार्य होनेपर फिर मैं आपका यज्ञ करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ वरुणने उनके यह वचन सुन फिर उनसे कहा हे राजन् ! तुम वारंवार इस प्रकार कहकर मुझको क्यों छलते हो ॥ २६ ॥ हे नरपते ! इससमय तुम्हारे सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है केवल पुत्रके

भूपालोऽपिजलाधीशंवीक्ष्यप्राप्तंद्विजाकृतिम् ॥ प्रणम्याऽऽसनसन्मानैःपूजयामाससादरम् ॥ २२ ॥ स्तुत्वाप्रोवाचवचनंविनयानतकंधरः ॥ करोमिविधिवत्काममखंप्रबलदक्षिणम् ॥ २३ ॥ बालोऽप्यकृतचौलोऽयंगर्भकेशोनसंमतः ॥ यज्ञार्थेपशुकरणेमयावृद्धमुखाच्छ्रुतम् ॥ २४ ॥ तावत्क्षमस्ववारीशविधिंजानासिशाश्वतम् ॥ कर्तव्यःसर्वथायज्ञोमुंडनांतेशिशोःकिल ॥२५॥ तस्येतिवचनंश्रुत्वाप्रचेताःप्राहतंपुनः॥प्रतारयसिमांराजन्पुनःपुनरिदंब्रुवन् ॥ ॥२६॥अपितेसर्वसामग्रीवर्ततेनृपतेऽधुना ॥ पुत्रस्नेहानिबद्धस्त्वंवंचयस्येवसांप्रतम्॥२७॥क्षौरकर्मविधिंकृत्वानकर्तासिमखंयदि ॥ तदाहंदारुणंशापंदास्येकोपसमन्वितः ॥ २८ ॥ अद्यगच्छामिराजेंद्रवचनात्तवमानद ॥ नमृषावचनंकार्यंत्वयेक्ष्वाकुकुलोद्भव ॥ २९ ॥ इत्याभाष्यययावाशुप्रचेतानृपतेर्गृहात् ॥ राजापरमसंतुष्टोननंदभवनेतदा ॥ ३० ॥ चूडाकरणकालेतुप्रवृत्तेपरमोत्सवे ॥ संप्राप्तस्तरसापाशीभवनंनृपतेःपुनः ॥ ३१ ॥ यदांकेसुतमादायराज्ञीनृपतिसन्निधौ ॥ उपविष्टाक्रियाकालेतदैववरुणोऽभ्यगात्॥३२॥कुरुकर्मेतिविस्पष्टंवचनंकथयन्नृपम्॥ विप्ररूपधरःश्रीमान्प्रत्यक्षइवपावकः ॥३३॥

स्नेहमें बँधकरही अब मुझको छलते हो ॥ २७ ॥ जो हो क्षौरकार्य करके भी यदि यज्ञ न करोगे तो मैं कुपित होकर तुमको दारुण शाप दूंगा ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र ! इस समय मैं तुम्हारे वचनानुसार जाता हूं किन्तु तुम इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न होकर अपना वचन मिथ्या न करना ॥ २९ ॥ वरुण यह वचन कहकर नरपतिके घरसे तत्काल चलेगये राजाभी तब अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपने भवनमें आनन्द अनुभव करनेलगे ॥ ३० ॥ फिर जब अत्यन्त उत्सवके सहित चूड़ाकार्य आरम्भ हुआ तब पाशधर शीघ्रही पुनर्वार नरपतिके भवनमें आये ॥ ३१ ॥ जिस समय रानी पुत्रको गोदीमेंलिये राजाके सामने बैठीथी उसी समय वरुणदेव वहाँ आनकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ उन विप्ररूपधारी प्रत्यक्ष अग्निके समान तेजःपुञ्जकलेवर वरुणदेवने नरपतिसे स्पष्टवचनद्वारा कहा हे राजन् ! यज्ञ आरम्भ करो ॥ ३३ ॥

नरपतिने उनको देखकर भयसे अत्यन्त विह्वल हो हाथ जोड़ शीघ्र उनको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ फिर यथाविधि उनकी पूजाकर अत्यन्त विनयसहित कहा हे स्वामिन् ! अब मैं विधिपूर्वक आपका यज्ञ करूंगा॥ ३५॥ किन्तु इस विषयमें मुझको कुछ कहना है, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये और तदनन्तर जो कर्तव्य हो वही कीजिये, हेस्वामिन् ! आप यदि युक्तिसंगत कहकर अनुमोदन करैं तो मैं वह आपसे कहूं॥ ३६ ॥ देखो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण यथाविधि संस्कृत होनेसे द्विजाती होते हैं किन्तु संस्कारविहीन होनेसे यह अवश्यही शूद्र हैं यह वेदके जाननेवाले पंडितलोगही जानते हैं ॥ ३७॥ इस कारण मेरी यह शिशुसन्तान इस समयभी शूद्रके समान है यज्ञोपवीत होनेपर फिर यह यज्ञक्रियाके उपयुक्त होगी यही वेदशास्त्रमें निर्णय है ॥ ३८॥ क्षत्रियोंकी ग्यारहवें वर्ष में ब्राह्मणोंकी आठवें वर्षमें और शूद्रोंकी

नृपतिस्तंसमालोक्यबभूवाऽतीवविह्वलः ॥ नमश्चकारतंभीत्याकृतांजलिपुटःपुरः ॥ ३४ ॥ विधिवत्पूजयित्वातंराजोवाचविनीतवान् ॥ स्वामिन्कार्यंकरोम्यद्यमखस्यविधिपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ वक्तव्यमस्तितत्राऽपिशृणुष्वैकमनाविभो ॥ युक्तंचेन्मन्यसेस्वामिंस्तद्ब्रवीमितवाऽग्रतः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यस्त्रयोवर्णाद्विजातयः ॥ संस्कृताश्चाऽन्यथाशूद्राएवंवेदविदोविदुः ॥ ३७ ॥ तस्मादयंसुतोमेऽद्यशूद्रवद्वर्ततेशिशुः॥ उपनीतःक्रियार्हः स्यादितिवेदेषुनिर्णयः ॥ ३८ ॥ राज्ञामेकादशेवर्षेसदोपनयनंस्मृतम् ॥ अष्टमेब्राह्मणानांचवैश्यानांद्वादशेकिल ॥ ३९॥ दयसेयदिदेवेशदीनंमांसेवकंत व ॥ तदोपनीयकर्ताऽस्मिपशुनायज्ञमुत्तमम् ॥ ४० ॥ लोकपालोऽसिधर्मज्ञसर्वशास्त्रविशारद ॥ मन्यसेयद्वचः सत्यंतद्गच्छभवनंविभो ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादयावान्यादसांपतिः ॥ ओमित्युक्त्वाययावाशुप्रसन्नवदनोनृपः ॥ ४२ ॥ गतेऽथवरुणेराजाबभूवाऽतिमुदान्वितः ॥ सुखंप्रा प्यसुतस्यैवराजामुदमवापहम् ॥ ४३ ॥ चकारराजकार्याणिहरिश्चंद्रस्तदानृप ॥ कालेनव्रजतापुत्रोबभूवदशवार्षिकः॥ ४४ ॥

बारहवें वर्षमें वयःक्रमसे उपनयनविधि निर्दिष्ट हुई है ॥ ३९ ॥ अतएव हे देवेश ! यदि आप दीन सेवकके ऊपर दया करैं तो बालकके उपनयनपर्यन्त अपेक्षा कीजिये फिर इसका उपनयनकर पशुरूप बालकसे आपका वह उत्तमयज्ञ करूंगा ॥ ४०॥ हे विभो ! आप लोकपाल हैं विशेषकर सम्पूर्णशास्त्रोंका सारधर्म जानकर धर्मतत्त्व प्राप्त किया है इसकारण यदि आप मेरा वचन सत्य जाने तो आप इससमय अपने घरकोजाइये ॥ ४१ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन सुनकर जलाधिपति वरुणदेव दयार्द्रचित्त हुए और " यही हो " ऐसा कहकर तत्काल उस स्थानसे चलेगये ॥ ४२ ॥ वरुणके अन्तर्धान होनेपर फिर राजा अत्यन्त आनन्दित हुए और रानीभी पुत्रका मंगल जान सन्तुष्ट हुई ॥ ४३ ॥ अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र प्रसन्नचित्तसे राजकार्य की पर्यालोचना करने लगे इसप्रकार कुछ काल व्यतीत

होनेपर उनके पुत्रने दशवें वर्षमें पदार्पणकिया ॥ ४४ ॥ तब राजाने शान्त ब्राह्मण मंत्रियोंकी सम्मतिसे अपने ऐश्वर्यके समान उसकी उपनयन द्रव्यसामग्री मँगाई ॥ ४५ ॥ पुत्रका ग्यारहवें वर्षमें वयःक्रम होनेसे राजाने यथाविधि उपनयनकार्य किया किन्तु वरुणदेवके यज्ञका वृत्तान्त स्मरणकर वारंवार चिन्तातुर होनेलगे ॥ ॥ ४६ ॥ इधर कुमारका उपनयन कार्य आरम्भ होनेपर वरुणदेव विप्रवेशधारण कर उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ४७ ॥ राजाने उनको देखतेही शीघ्र प्रणाम किया और हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो प्रीतिसहित सुरवरसे कहनेलगे ॥ ४८ ॥ हे देव ! यज्ञोपवीत होजानेसे इससमय मेरा यह पुत्र पशुके उपयुक्त हुआ है और आपके अनुग्रहसे मेरा भी वन्ध्यत्वशोक जातारहा ॥ ४९ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ ! मैं जो कहता हूं सो सुनिये. कुछकालके विलम्बसे आपका अनेकःदक्षिणा

तस्योपवीतसामग्रींविभूतिसदृशींनृपः ॥ चकारब्राह्मणैःशिष्टैरन्वितःसचिवैस्तथा ॥ ४५ ॥ एकादशेसुतस्याऽब्देव्रतबंधविधौनृपः ॥ विदधेविधिवत्का र्यंचित्तेचिंतातुरःपुनः ॥ ४६ ॥ वर्तमानेतथाकार्येउपनीतिकुमारके ॥ आजगामाऽथवरुणोविप्रवेषधरस्तदा ॥ ४७ ॥ तंवीक्ष्यनृपतिस्तूर्णंप्रणम्यपुरतः स्थितः ॥ कृतांजलिपुटःप्रीतःप्रत्युवाचसुरोत्तमम् ॥ ४८ ॥ देवदत्तोपवीतोऽयंपशुयोग्योऽस्तिमेसुतः ॥ प्रसादात्तवमेशोकोगतोवंध्यापवादजः ॥ ४९ ॥ कर्तुमिच्छाम्यहंयज्ञंप्रभूतवरदक्षिणम् ॥ समयेशृणुधर्मज्ञसत्यमद्यब्रवीम्यहम् ॥ ५० ॥ समावर्तनकर्मांतेकरिष्यामितवेप्सितम् ॥ ममोपरिदयांकृत्वाताव त्त्वंक्षंतुमर्हसि ॥ ५१ ॥ वरुणउवाच ॥ प्रतारयसिमांराजन्पुत्रप्रेमाकुलोभृशम् ॥ मुहुर्मुहुर्मतिंकृत्वायुक्तियुक्तांमहामते ॥ ५२ ॥ गच्छाम्यद्यमहाराजवचसा तवनोदितः॥आगमिष्यामिसमयेसमावर्तनकर्मणि ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वाप्रययौपाशीतमापृच्छ्यविशांपते ॥ राजाप्रमुदितःकार्यंचकारचयथोत्तरम् ॥ ५४ ॥ आगतंवरुणंदृष्ट्वाकुमारोतिविचक्षणः ॥ यज्ञस्यसमयंज्ञात्वातदाचिंतातुरोऽभवत् ॥ ५५ ॥ शोकस्यकारणंराज्ञःपर्यपृच्छदितस्ततः ॥ ज्ञात्वाऽत्मवधमायुष्म न्गमनायमतिंदधौ ॥ ५६ ॥

युक्त यज्ञ करनेकी इच्छा की है यह आपसे सत्य कहता हूं ॥ ५० ॥ फलतः समावर्तनकार्यके अन्तमें आपका वाञ्छित यज्ञ करूंगा अब मुझपर दयाकरके तब तक क्षमा कीजिये ॥ ५१ ॥ वरुणने कहा हे महामते ! तुम पुत्रस्नेहसे अत्यन्त व्याकुल होकर युक्तियुक्त बुद्धिकौशलसे वारंवार मुझको छलते हो: ॥ ५२ ॥ जो हो हे महाराज ! मैं तुम्हारे वचनानुसार आज जाता हूं किन्तु समावर्तनकार्यके समय फिर मैं आऊंगा यही निश्चय जानिये ॥ ५३ ॥ हे नरपते ! वरुणदेवके यह वचन कह उनसे सम्भाषण कर चलेजानेपर राजाभी आनन्दित हो यथाक्रमसे विहितकार्य करनेलगे ॥ ५४ ॥ राजकुमार अत्यन्त बुद्धिमान् थे इसकारण वरुणदेवको आताहुआ देख यज्ञका समय जान चिन्तासे कातर हुए ॥ ५५ ॥ अनन्तर राजाके शोकका कारण इधर उधर पूँछकर अपने विनाशका विषय जाना और तत्काल राजाके

वरसे निकल जानेकी इच्छा की ॥ ५६ ॥ फिर सचिवपुत्रोंके सहित परामर्शकर कर्तव्यस्थिरतापूर्वक उस नगरसे बाहर हो वनको चलागया ॥ ५७ ॥ पुत्रके चलेजानेपर नरपतिने अत्यन्त दुःखित हो उसको ढूँढनेके लिये अपने सम्पूर्ण दूतोंको भेजा ॥ ५८ ॥ इसप्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर वरुणदेवने उनके घर आय उन शोकसन्तप्त राजासे कहा हे राजन् ! इस समय पहले कहाहुआ यज्ञ कीजिये ॥ ५९ ॥ राजाने उनको प्रणाम करके कहा हे देव ! मैं क्या करूं ? मेरा पुत्र भयसे व्याकुल होकर कहीं चलागया है उसको मैं नहीं जानता ॥ ६० ॥ हे देव ! मेरे सब दूतोंने पर्वतोंके दुर्गम प्रदेश मुनियोंके आश्रम अधिक क्या सम्पूर्ण स्थानोंमें ढूँढा है तथापि किसी स्थानमें भी उसको नहीं पाया ॥ ६१ ॥ मेरा पुत्र घरसे चलागया है इस समय मैं क्या करूं ? आप आज्ञा दीजिये. हे देव ! आप तो सभी जानते हैं अतएव आप

निश्चयंपरमंकृत्वासंमंत्र्यसचिवात्मजैः ॥ प्रययौनगरात्तस्मान्निर्गत्यवनमप्यसौ ॥ ५७ ॥ गतेपुत्रेनृपःकामंदुःखितोभूद्भृशंतदा ॥ प्रेरयामासदूतान्स्वांस्तस्यान्वेषणकाम्यया ॥ ५८ ॥ एवंगतेऽथकालेऽसौवरुणस्तद्गृहंगतः ॥ राजानंशोकसंतप्तंकुरुयज्ञमितिब्रुवन् ॥ ५९ ॥ राजाप्रणम्यतंप्राहदेवदेवकरोमिकिम् ॥ नजानेक्काऽपिपुत्रोमेगतस्त्वद्भयाकुलः ॥ ६० ॥ सर्वत्रगिरिदुर्गेषुमुनीनामाश्रमेषुच ॥ अन्वेषितोमेदूतैस्तुनप्राप्तोयादसांपते ॥ ६१ ॥ आज्ञापयमहाराजकिंकरोमिगतेसुते ॥ नमेदोषोऽत्रसर्वज्ञभाग्यदोषस्तुसर्वथा ॥ ६२ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिभूपवचःश्रुत्वाप्रचेताःकुपितोभृशम् ॥ शशापचनृपंक्रोधाद्वंचितस्तुपुनःपुनः ॥ ६३ ॥ नृपतेऽहंत्वयायस्माद्वचसाचप्रवंचितः ॥ तस्माज्जलोदरोव्याधिस्त्वांतुदत्वतिदारुणः ॥ ॥ ६४ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिशप्तोमहीपालःकुपितेनप्रचेतसा ॥ पीडितोऽभूत्तदाराजाव्याधिनादुःखदेनतु ॥ ६५ ॥ एवंशप्त्वानृपंपाशीजगामनिजमास्पदम् ॥ राजाप्राप्यमहाव्याधिंबभूवाऽतीवदुःखितः ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

तो विचार देखिये मेरा कुछ भी दोष नहीं है केवल भाग्यके दोषसेही ऐसा हुआ है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! राजाके ऐसे वचन सुनकर वरुणदेव अत्यन्त कुपित हुए और जब उन्होंने देखा कि, हरिश्चन्द्रसे वारंवार छला जाकर भी मैं अपने वांच्छितको प्राप्त न हुआ तब क्रोधसे अधीर होकर उनको शाप दिया ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! तुमने छलयुक्त वचनोंसे मुझको छला है इसलिये दारुणजलोदर व्याधि तुमको अत्यन्त पीडित करै ॥ ६४ ॥ वरुणके कुपित होकर इस प्रकार शाप देनेपर फिर राजा इस क्लेशदायक व्याधिसे पीडित हो अत्यन्त कष्ट भोगने लगे ॥ ६५ ॥ तब पाशधारी जलाधिपति राजाको इसप्रकार शाप देकर अपने स्थानको चले गये और राजा भी इस दारुण व्याधिसे ग्रस्त हो अत्यन्तकातर हुए ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज ! वरुणके अपने स्थानमें चले जानेपर राजा उस जलोदर रोगसे अत्यन्त पीडित हुए और दिन दिन दुःख भोग एवं घोरयन्त्रणा अनुभव कर अत्यन्त क्लेश पाने लगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! इधर राजकुमारने वनमेंही पिताके उस रोगजनित सन्तापका विषय सुना इसकारण स्नेहके वशीभूत होकर पिताके समीप जानेकी इच्छा की ॥ २ ॥ संवत्सरके बीतनेपर राजकुमारने आदर सहित पिताको देखने और उनके समीप जानेके लिये इच्छा की है. यह जानकर देवराज इन्द्र वहाँ आनकर उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ उन्होंने दयाके वशीभूत हो शीघ्रविप्ररूप धारणकर अनुकूल युक्तिसे उस जाते हुए कुमारको निवारण किया ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा हे राजपुत्र ! तुम अत्यन्त अज्ञानी हो विशेषकर अबभी कठिनतासे जानने योग्य राजनीतिको नहीं जानसके इसलिये अज्ञानके वशीभूत होकर अब पिताके समीप वृथा जानेको उद्यत हुए हो ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे वहां जानेपर तुम्हारे पिता वेदपरायण ब्राह्मणोंसे नरमेधयज्ञ करेंगे उसमें तुमको पशु

व्यासउवाच ॥ गतेऽथवरुणेराजारोगेणाऽतीवपीडितः ॥ दुःखाद्दुःखंपरंप्राप्यव्यथितोभूद्भृशंतदा ॥ १ ॥ कुमारोऽसौवनेश्रुत्वापितरंरोगपीडितम् ॥ गमनायमतिंराजंश्चकारस्नेहयंत्रितः ॥ २ ॥ संवत्सरेव्यतीतेतुपितरंद्रष्टुमादरात् ॥ गंतुकामंतुतंज्ञात्वाशक्रस्तत्राऽऽजगामह ॥ ३ ॥ वासवस्तुतदारूपं कृत्वाविप्रस्यसत्वरः ॥ वारयामासयुक्त्यावैकुमारंगंतुमुद्यतम् ॥ ४ ॥ इंद्रउवाच ॥ राजपुत्रनजानासिराजनीतिंसुदुर्लभाम् ॥ अतःकरोषिमूढस्त्वं गमनायमतिंवृथा ॥ ५ ॥ पितातवमहाभागब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ कारयिष्यतिहोमंतेज्वलितेऽथविभावसौ ॥ ६ ॥ आत्माहिवल्लभस्तातसर्वेषांप्राणिनां खलु ॥ तदर्थेवल्लभाःसंतिपुत्रदारधनादयः ॥ ७ ॥ आत्मनोदेहरक्षार्थंहत्वात्वांवल्लभंसुतम् ॥ हवनंकारयित्वाऽसौरोगमुक्तोभविष्यति ॥ ८ ॥ तस्मा त्त्वयानगंतव्यंराजपुत्रपितुर्गृहे ॥ मृतेपितरिगंतव्यंराज्यार्थेसर्वथापुनः ॥ ९ ॥ एवंनिषेधितस्तत्रवासवेननृपात्मजः ॥ वनमध्येस्थितःकामंपुनःसंवत्सरं नृप ॥ १० ॥ अत्यंतंदुःखितंश्रुत्वाहरिश्चंद्रंतदात्मजः ॥ गमनायमतिंचक्रेमरणेकृतनिश्चयः ॥ ११ ॥ तुराषाड्द्विजरूपेणतत्राऽगत्यचरोहितम् ॥ निवारयामाससुतंयुक्तिवाक्यैःपुनःपुनः ॥ १२ ॥

बनाय तुम्हारे मांसकी प्रज्वलित अग्निमें आहुति प्रदान करावेंगे ॥ ६ ॥ हे वत्स ! सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मा अत्यन्त प्रिय है इसी कारण आत्माके लिये स्त्री पुत्र और धन रत्नादि प्रिय होते हैं ॥ ७ ॥ अतएव तुम्हारे प्राणोंकी समान पुत्र होनेपरभी वह रोगसे छूटनेके लिये अपनी रक्षार्थ तुमको मारकर होम करावेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥८॥ हे राजपुत्र ! तुमको इस समय पिताके घर जाना उचित नहीं है परन्तु जब तुम्हारे पिता मरे तब तुम राज्यप्राप्तिके लिये अवश्यही फिर वहाँ जाओ ॥९॥ हे नृपवर ! इन्द्रके इसप्रकार निषेध करनेपर फिर राजपुत्रने एकवर्ष पर्यन्त उस वनमें वास किया ॥ १० ॥ किन्तु जब राजपुत्र राजा हरिश्चन्द्रके अत्यन्त दुःखका विषय जानता तब अपना मरण निश्चयकर पिताके घर जानेकी इच्छा करता ॥ ११ ॥ अनन्तर सुरपति इन्द्रभी तिसी समय द्विजरूप धारणकर राजपुत्र रोहितके

समीप उपस्थित होते और युक्तियुक्त वचनोंसे उसको वारंवार निषेध करते ॥ १२ ॥ इधर हरिश्चन्द्रने पीडासे अत्यन्त कातर हो अपने कुलपुरोहित वसिष्ठ देवसे पूँछा हे ब्रह्मन् ! इस रोगकी शान्तिका निश्चय उपाय क्या है ? ॥ १३ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठदेवने उनसे कहा हे महाराज ! द्रव्यसे एक पुत्र क्रय कीजिये फिर उस खरीदे हुए पुत्रसे यज्ञ करनेपरही आप शापसे छूटेंगे ॥ १४ ॥ हे नृपसत्तम ! वेदपरायण ब्राह्मणोंने कहा है कि, पुत्र तेरह प्रकारके हैं ? उनमें क्रीत (खरीदा हुआ) भी पुत्र होता है अतएव मूल्यसे एक बालकको लाय उसको पुत्र कीजिये ॥ १५ ॥ तुम्हारे राज्यहीका कोई ब्राह्मण लोभके वशीभूत हो अपने पुत्रको दे देगा इससे वरुणदेव प्रसन्न हो अवश्यही सुखसम्पादन करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ राजा हरिश्चन्द्र महात्मा वसिष्ठके इसप्रकार वचन सुनकर सन्तुष्ट हुए और उसी

हरिश्चंद्रोऽतिदुःखार्तोवसिष्ठंस्वपुरोहितम् ॥ पप्रच्छरोगनाशायतत्रोपायंसुनिश्चितम् ॥ १३ ॥ तमाहब्रह्मणःपुत्रोयज्ञंकुरुनृपोत्तम ॥ क्रयक्रीतेनपुत्रेण शापमोक्षोभविष्यति ॥ १४ ॥ पुत्रादशविधाःप्रोक्ताब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ द्रव्येणाऽनीयतस्मात्त्वंपुत्रंकुरुनृपोत्तम ॥ १५ ॥ वरुणोऽपिप्रसन्नःसन्सुख कारीभविष्यति ॥ लोभात्कोऽपिद्विजःपुत्रंप्रदास्यतिस्वराष्ट्रजः ॥ १६ ॥ एवंप्रमोदितोराजावसिष्ठेनमहात्मना ॥ प्रधानंप्रेरयामासतदन्वेषणकाम्यया ॥ ॥ १७ ॥ अजीगर्तोद्विजःकश्चिद्विषयेतस्यभूपतेः ॥ तस्याऽऽसंश्चत्रयःपुत्रानिर्धनस्यविशेषतः ॥ १८ ॥ प्रधानेनाऽप्यसौपृष्टःपुत्रार्थंदुर्बलोद्विजः ॥ ग वांशतंददामीतिदेहिपुत्रंमखायवै ॥ १९ ॥ शुनःपुच्छःशुनःशेपःशुनोलांगूलइत्यमी ॥ तेषामेकतमंमेहिददामितुगवांशतम् ॥ २० ॥ अजीगर्तस्तु तच्छ्रुत्वाक्षुधयापीडितोभृशम् ॥ पुत्रंचैकतमंतेभ्योविक्रेतुंवैमनोदधे ॥ २१ ॥ कार्यादिकारिणंज्येष्ठंमत्वानासावदादमुम् ॥ कनिष्ठंनाप्यदान्मातामामैषइ तिवादिनी ॥ २२ ॥ मध्यमंचशुनःशेपंददौगवांशतेनच ॥ आनिनायपशुंचक्रेनरमेधेनराधिपः ॥ २३ ॥

प्रकार पुत्र ढूँढनेके लिये अपने प्रधान मन्त्रीको आज्ञा दी ॥ १७ ॥ उन भूपतिके राज्यमें अजीगर्तनाम एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण वास करता था उसके तीन पुत्र थे ॥ १८ ॥ मन्त्रीने क्रय करनेकी इच्छा कर उस निर्धन ब्राह्मणसे कहा मैं आपको एकशत गो देता हूं आप यज्ञके लिये एक पुत्रको दीजिये ॥ १९ ॥ शुनःपुच्छ शुनःशेप और शुनोलांगूल नामक आपके जो तीन पुत्र हैं उनमेंसे एक पुत्र मुझको दीजिये मैंभी उसके बदलेमें तुमको एकशत गो देता हूं ॥ २० ॥ अजीगर्त्त अन्नके अभावसे अत्यन्त कातर हुए थे इस कारण यह वचन सुनकर उनमेंसे एक पुत्रको बेंचनेकी इच्छाकी ॥ २१ ॥ किन्तु ज्येष्ठ पुत्र और्ध्वदेहिक क्रियाका अधिकारी है यह जानकर उसको न दिया और कनिष्ठ पुत्रको माताने न दिया और कहा कि, यह मेरा है ॥ २२ ॥ विशेषकर मध्यम पुत्र शुनःशेपको सौ गायोंके मूल्यमें

वेंचडाला नरपतिने उसको लाय नरमेध यज्ञके लिये उसको पशु किया ॥ २३ ॥ वह बालक यूपकाष्ठमें बँधकर काँपने लगा और दुःखसे कातर हो अत्यन्त दीनभावसे रोदन करने लगा. यह देखकर मुनिलोग अत्यन्त कातरस्वरसे चीत्कारकर उठे ॥ २४ ॥ नरपतिने नरमेध यज्ञमें वध करनेके लिये उसको पशुरूपसे प्रदान किया शमिता पुरुषने उस पशुको छेदन करनेके लिये शस्त्रग्रहण न किया ॥ २५ ॥ उसनेकहा यह ब्राह्मणका पुत्र कातर होकर अत्यन्त करुणा स्वरसे रोदन करता है अतएव मैं लोभके वशीभूत होकर इसको कभी नहीं मारूंगा ॥ २६ ॥ यह कहकर उस दुष्कर कार्यसे विरत हुआ. तब राजाने सभासदोंसे कहा हे द्विजगण ! इस समय क्या करना चाहिये ॥ २७ ॥ तब शुनःशेप अत्यन्त अद्भुत करुणास्वरसे रोदन करने लगा और साधारण जन उस विषयको लेकर तुमुल आन्दोलन करने लगे

रुदंतंदुःखितंदीनंवेपमानंभृशातुरम् ॥ यूपेबद्धंनिरीक्ष्याऽमुंचुक्रुशुर्मुनयस्तदा ॥ २४ ॥ शामित्रायपशुंचक्रेनरमेधेनराधिपः ॥ शमितानाददेशस्त्रंतमालंभयितुंशिशुम् ॥ २५ ॥ नाऽहंद्विजसुतंदीनंरुदंतंकरुणंभृशम् ॥ हनिष्यामिस्वलोभार्थमित्युवाचाप्यसौतदा ॥२६॥ इत्युक्त्वाविररामाऽसौकर्मणोदुष्कराद्थ ॥ राजासभासदःप्राहकिंकर्तव्यमितिद्विजाः॥२७॥जातःकिलकिलाशब्दोजनानांक्रोशतांतदा ॥ क्रंदमानेशुनःशेपेसभायांभृशमद्भुतम् ॥ २८ ॥ अजीगर्तस्तदोत्थायतमुवाचनृपोत्तमम् ॥ राजन्कार्यंकरिष्यामितवाऽहंसुस्थिरोभव ॥ २९ ॥ वेतनंद्विगुणंदेहिहनिष्यामिपशुंकिल ॥ कर्तव्यंमखकार्यंवैमयातेऽद्यधनार्थिना ॥ ३० ॥ दुःखितस्यधनार्थस्यसदाऽसूयाप्रसूयते ॥ व्यासउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यहरिश्चंद्रोमुदान्वितः ॥ ३१ ॥ तमुवाचददाम्यद्यगवांशतमनुत्तमम् ॥ तदाकर्ण्यपितातस्यपुत्रंहंतुंसमुद्यतः ॥ ३२ ॥ लोभेनाऽऽकुलचित्तोऽसौशामित्रेकृतनिश्चयः ॥ समुद्यतंचतंदृष्ट्वाजनाःसर्वेसभासदः ॥ ३३ ॥

इससे तत्काल उस सभामें अत्यन्त कोलाहल उठा ॥ २८ ॥ अनन्तर अजीगर्तने सभास्थलमें खडे होकर नरपति हरिश्चन्द्रसे कहा हे राजन् ! आप धैर्यका अवलम्बन कीजिये मैं आपका कार्य सम्पादन करूंगा ॥ २९ ॥ मैं धनका अभिलाषी हूं. इस कारण आप मुझको दूना धन दीजिये मैं अभी इस पशुका वध करता हूं आप शीघ्रही यज्ञकार्य सम्पूर्ण कीजिये ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जो पुरुष धनका लालची होता है उसकी सर्वदा पुत्रकेप्रतिभी द्वेषबुद्धि होजाती है इसमें फिर क्या सन्देह है. व्यासजीने कहा हे महाराज ! अजीगर्तके इसप्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र परमआह्लादके सहित ॥ ३१ ॥ उससे कहने लगे मैं इस समय आपको एक शत उत्तम गौ देता हूं तब बालकका पिता राजाकी यह बात सुनतेही ॥ ३२ ॥ लोभके वशीभूत और वधकार्य साधन करनेको कृतनिश्चय हो पुत्रके मारनेमें उद्यत

हुआ सभासद्गण उसको पुत्रके मारनेमें उद्यत देखकर ॥ ३३ ॥ अत्यन्त दुःखसे कातर हुए और हाय ! हाय ! कहकर विलाप करने लगे उन्होंने कहा यह कुलपांसन अपने पुत्रको मारनेमें उद्यत हुआहै हाय ! हमने इस पूर्वमें और कभी भी ऐसा क्रूरकर्मा महापापी नहीं देखा यह निश्चयही द्विजाकृति पिशाच होगा इसमें सन्देह नहीं. रे चाण्डाल ! तुझको धिक्कार है तैंने यह क्या पापकार्य करनेकी इच्छा की है॥ ३४ ॥ ३५ ॥ सामान्य धनकी इच्छासे पुत्ररूपी रत्नकी हत्याकरके तुझको क्या सुख प्राप्त होगा ? रे पापिष्ठ ! वेदमें कहागया है कि, आत्माही अङ्गसे पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ३६ ॥ इस कारण तैंने किसप्रकार उस आत्माके हनन करनेकी इच्छाकी है सभास्थलमें इसप्रकार कोलाहल आरम्भ होनेपर कुशिक नन्दन ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र दयाके वशीभूत हो नरपतिके समीप आनकर उनसे कहने लगे विश्वामित्र बोले हे राजेन्द्र ! शुनःशेप अत्यन्त कातर होकर रोदन करता है अतएव इसको छोड दो ॥ ३८ ॥ तौ तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण और अवश्यही

चुक्रुशुर्भृशदुःखार्ताहाहेतिजगदुर्वचः ॥ पिशाचोऽयंमहापापीक्रूरकर्माद्विजाकृतिः ॥ ३४ ॥ यत्स्वयंस्वसुतंहंतुमुद्यतःकुलपांसनः ॥ धिक्चां डालकिमेतत्तेपापकर्मचिकीर्षितम् ॥ ३५ ॥ हत्वासुतंधनंप्राप्यकिंसुखंतेभविष्यति ॥ आत्मावैजायतेपुत्रअंगाद्वैवेदभाषितम् ॥ ३६ ॥ तत्कथंपापबुद्धे त्वमात्मानंहंतुमिच्छसि ॥ एवंकोलाहलेतत्रजातेकौशिकनंदनः ॥ ३७ ॥ समीपंनृपतेर्गत्वातमुवाचदयापरः ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ राजन्मुंचशुनःशे पंरुदंतंभृशदुःखितम् ॥ ३८ ॥ क्रतुस्तेभवितापूर्णोरोगनाशश्चसर्वथा ॥ दयासमंनास्तिपुण्यंपापंहिंसासमंनहि ॥ ३९ ॥ रागिणांरोचनार्थायनोदनेयंवि चारय ॥ आत्मदेहस्यरक्षार्थंपरदेहनिकृंतनम् ॥ ४० ॥ नकर्तव्यंमहाराजसर्वतःशुभमिच्छता ॥ दययासर्वभूतेषुसंतुष्टोयेनकेनच ॥ ४१ ॥ सर्वेंद्रियोप शांत्याचतुष्यत्याशुजगत्पतिः ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषुचिंतनीयंनृपोत्तम ॥ ४२ ॥ जीवितव्यंप्रियंनूनंसर्वेषांसर्वदाकिल ॥ त्वमिच्छसिसुखंकर्तुंदेहेहत्वात्व मुंद्विजम् ॥ ४३ ॥

व्याधि नष्ट होगी दयाकी समान पुण्य और हिंसाकी समान पाप नहीं है ॥ ३९ ॥ तुम विचार करके देखो कि, यज्ञादि पशुहिंसाकी जो विधि कही गई है वह केवल विषयानुरागी मनुष्योंका प्रवृत्तिके लिये है किन्तु उससे निवृत्त होनाही उचित है. हे महाराज ! जो मनुष्य सम्यक्प्रकार अपने मंगलकी कामना करता है उसको अपने देहकी रक्षाकरनेके लिये पराये देहको छेदन करना कभी कर्त्तव्य नहीं है जो मनुष्य सब जीवोंमें समान दया प्रकाश करता है और सामान्यवस्तु प्राप्त होनेपर प्रसन्न होता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तथा सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें रखता है जगदीश्वर उससे शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं. हे नृपवर ! सम्पूर्ण जीवोंको अपनीही समान देखे ॥ ४२ ॥ और सबका प्रिय होकर जीवनयात्रा व्यतीत करै इस ब्राह्मणके पुत्रका देह नष्ट करके तुमने अपने देहके रक्षा करनेकी इच्छा की है ॥ ४३ ॥

अतएव यह ब्राह्मणका पुत्रभी अपने सुखके आस्पद देहके रक्षाकरनेकी क्यों इच्छा नहीं करेगा ? हे राजन् ! तुमने निरपराध ब्राह्मणके पुत्रको मारनेकी इच्छा की है. किन्तु यह ब्राह्मणका पुत्र पूर्वजन्मकृत वैर कभी नहीं सहेगा यदि कोई मनुष्य शत्रुता न होनेपरभी अपनी इच्छानुसार किसीको मारे ॥ ४४ ॥ ॥४५॥ तो वह मनुष्य दूसरे जन्ममें उस हन्ताका अवश्यही पुनर्वार संहार करता है इसमें सन्देह नहीं. इसके पिताकी धनके लोभसे मति भ्रष्ट हुई है इसकारण अपने पुत्रको अर्पण कियाहै ॥ ४६ ॥ अतएव वह ब्राह्मण अत्यन्त क्रूरस्वभाव लोभी और पापाचारी है इसमें फिर क्या सन्देह है. बहुत पुत्रोंकी इच्छा करते हैं कि, यदि कोई गयामें जाय ॥ ४७ ॥ अथवा यदि कोई अश्वमेध यज्ञ करैं किंवा यदि कोई नीलवृषभ उत्सर्ग करै. इस प्रकार विचारकर मनुष्योंको अनेक

कथंनेच्छेदसौदेहंरक्षितुंस्वसुखास्पदम् ॥ पूर्वजन्मकृतंवैरंनाऽनेनसहतेनृप ॥ ४४ ॥ येनाऽमुंहंतुकामस्त्वंद्विजपुत्रंनिरागसम् ॥ योयंहंतिविनावैरं स्वकामःसततंपुनः ॥ ४५ ॥ हंतारंहंतितंप्राप्यजननंजननांतरे ॥ जनकोऽस्यसुदुष्टात्मायेनाऽसौतेसमर्पितः ॥ ४६ ॥ स्वात्मजोधनलोभे नपापाचारःसदुर्मतिः ॥ एष्टव्यावहवःपुत्रायद्येकोऽपिगयांव्रजेत् ॥ ४७ ॥ यजेतचाऽश्वमेधेननीलंवावृषमुत्सृजेत् ॥ देशमध्येचयःकश्चित्पापकर्मसमा चरेत् ॥ ४८ ॥ षष्ठांशस्तस्यपापस्यराजाभुंक्तेनसंशयः ॥ निषेधनीयोराज्ञाऽसौपापंकर्तुंसमुद्यतः ॥ ४९ ॥ ननिषिद्धस्त्वयाकस्मात्पुत्रंविक्रेतुमुद्यतः ॥ सूर्यवंशेसमुत्पन्नस्त्रिशंकुतनयःशुभः ॥ ५० ॥ आर्यस्त्वनार्यवत्कर्मकर्तुमिच्छसिपार्थिव ॥ मोचनान्मुनिपुत्रस्यकरणाद्वचनस्यमे ॥ ५१ ॥ तवदेहेसुखंराजन्भविष्यत्यविचारणात् ॥ पितातेशापयोगेनचांडालत्वमुपागतः ॥५२॥ मयाऽसौतेनदेहेनस्वर्लोकंप्रापितःकिल ॥ तेनैवप्रीतियोगेनकुरु मेवचनंनृप ॥ ५३ ॥

पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये और देखो देशमें जो कोईभी पापकर्म क्यों न करै ॥४८॥ राजा उस पापका छठाअंश भोगता है इसमें सन्देह नहीं. अतएव मनुष्यके पापकर्म करनेमें प्रवृत्त होनेपर उसको निषेध करना राजाका अवश्य कर्तव्य है ॥ ४९ ॥ किन्तु इस ब्राह्मणके पुत्र बेंचनेमें उद्यत होनेपर तुमने किसलिये इसको निषेध नहीं किया ? हे राजन् ! तुम त्रिशंकुकी सन्तान हो विशेषकर सूर्यवंमें जन्म ग्रहण किया है ॥ ५० ॥ इसकारण तुम आर्य होकरभी अनार्यके समान कार्य करनेकी किसप्रकार इच्छा करतेहो ? तुम मेरे वचन अत्यन्त शीघ्र ग्रहणकर यदि इस ब्राह्मणके पुत्रको छोड़ दोगे ॥ ५१ ॥ तो तुम्हारे देहमें अवश्यही सुख होगा. तुम्हारे पिता शापवश चाण्डालत्वको प्राप्त हुए थे ॥ ५२ ॥ किन्तु उसी देहसे मैं ने उनको स्वर्गमें भेजदिया, यह तुम अवश्यही जानतेहो. अतएव हे राजन् ! तुम

उसी प्रीतिके अनुसार मेरा वचन प्रतिपालन करो ॥ ५३ ॥ यह बालक अत्यन्त कातर हो दीनभावसे रोदनकरता है अतएव इसको छोड़दो तुम्हारे इस राजसूय यज्ञमें मैं यही प्रार्थना करता हूं ॥ ५४ ॥ किन्तु इसे पूर्ण न करनेसे तुमको प्रार्थना भङ्गजनित पाप होगा. अतएव तुम इसको हृदयमें क्यों नहीं धारणकरते. हेनृपसत्तम ! इस यज्ञमें जो किसकी प्रार्थनाकरै वह अवश्यही उसको देनीचाहिये॥ ५५॥ किन्तु इसके अन्यथा करनेसे तुमको पाप होगा इसमें सन्देह नहीं. व्यासजीने कहा हेमहाराज ! कौशिकके इसप्रकार वचन सुनकर नरपति हरिश्चन्द्र ॥ ५६ ॥ मुनिवर विश्वामित्रसे कहनेलगे हे गाधेय ! जलोदरकी पीड़ासे मैं महाक्लेश भोगता हूं ॥ ५७ ॥ अतएव मैं इसको नहीं छोड़सक्ता इसकारण आप अन्य कुछ प्रार्थना कीजिये. हे कुशिकनन्दन ! मेरे इसकार्यमें विघ्न करना आपको उचित नहीं है ॥ ५८ ॥ तब

मुंचैनंबालकंदीनंरुदंतंभृशमातुरम् ॥ याचितोऽसिमयानूनंयज्ञेऽस्मिन्राजसूयके ॥ ५४ ॥ प्रार्थनाभंगजंदोषंकथंत्वंनाऽवबुध्यसे ॥ प्रार्थितं सर्वदादेयंमखेऽस्मिन्नृपसत्तम ॥ ५५ ॥ अन्यथापापमेवस्यात्तवराजन्नसंशयः ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाकौशिकस्यनृपोत्तमः ॥ ५६ ॥ प्रत्युवाचमहाराजःकौशिकंमुनिसत्तमम् ॥ जलोदरेणगाधेयदुःखितोऽहंभृशंमुने ॥ ५७ ॥ तस्मान्नमोचयाम्येनमन्यत्प्रार्थयकौशिक ॥ नत्वयानिग्रहः कार्यःकार्येऽस्मिन्ममसर्वथा ॥ ५८ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराज्ञोविश्वामित्रोऽतिकोपतः ॥ बभूवदुःखसंतप्तोवीक्ष्यदीनंद्विजात्मजम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभाग वतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ रुदंतंबालकंवीक्ष्यविश्वामित्रोदयातुरः॥ शुनःशेपमुवाचेदंगत्वापार्श्वेऽतिदुःखि तम् ॥ १ ॥ मंत्रंप्रचेतसःपुत्रमयोक्तंमनसास्मरन् ॥ जपतस्तवकल्याणंभविष्यतिममाज्ञया ॥ २ ॥ विश्वामित्रवचःश्रुत्वाशुनःशेपःशुचाकुलः ॥ मंत्रंज जापमनसाकौशिकोक्तंस्फुटाक्षरम् ॥ ३ ॥ जपतस्तत्रतस्याऽऽशुप्रचेतास्तुकृपाकरः ॥ प्रादुर्बभूवसहसाप्रसन्नोनृपबालके ॥ ४ ॥

राजाकी यह बात सुनकर विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हुए और ब्राह्मणके पुत्रको अत्यन्त कातर देखकर दुःखसहित सन्ताप करनेलगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्र उस बालक शुनःशेपको अत्यन्त कातरभावसे रोदन करता हुआ देख अतिदयाई चित्त हो उसके समीप जायकर उससे कहने लगे॥ १ ॥ हेवत्स ! मैं तुझको वरुणमंत्र प्रदान करता हूं तू इस मंत्रको मनहीमनमें स्मरणकर और मेरे वचनानुसार इस मंत्रका जप करनेसे तेरा अवश्यही मंगल होगा॥ २ ॥ शोकाकुल शुनःशेप विश्वामित्रका यह वचन सुन उनका कहा मंत्र मनहीमनमें स्पष्टाक्षरसे जप करने लगा॥ ३ ॥ हे राजन् ! शुनःशेफके उस मंत्रको जपतेही कृपालुहृदय वरुणदेव उसकेप्रति प्रसन्न हो सहसा उसके सन्मुख आनकर प्रगट हुए॥ ४ ॥

वरुणदेवको आया हुआ देखकर सम्पूर्ण सभामें बैठे हुए विस्मित हुए और उनको देख आनन्दित होकर सभी उनका स्तव करने लगे ॥ ५ ॥ तब रोगातुर हरिश्चन्द्र नरपतिभी अत्यन्त विस्मित हो उनके दोनों चरणोंमें गिरे और हाथ जोड़ उनके पुरोवर्ती वरुणदेवका स्तव करने लगे ॥ ६ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे देवदेव ! मैं अत्यन्त पापात्मा हूं और मेरी बुद्धि नितान्त कलुषित है इस कारण मैं आपके निकट अत्यन्त अपराधी हुआ हूं. हे दयामय ! इस समय आप कृपा करके इस दीनको पवित्र कीजिये ॥ ७॥ पुत्रके अभावसे मैं अत्यन्त दुःखित था इस कारण पुत्रकामुकहोकर आपके वचनमें अवहेला (तिरस्कार) किया है आप प्रभु हैं अतएव आपको निग्रह और अनुग्रहकी सामर्थ्य है इस कारण मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये. विशेषतः आप विचार करके देखिये कि, जिसकी मति छिन्न हुई है उसका फिर अपराध क्या है ? अतएव दुर्मति पुरुषका अपराध आपको गिन्ना उचित नहीं है ॥ ८ ॥ हे देवदेव ! जो मनुष्य याचक है वह दोष नहीं देखता

दृष्ट्वातमागतंसर्वेविस्मयंपरमंगताः॥तुष्टुवुर्वरुणंदेवंमुदितादर्शनेनते॥५॥राजाऽतिविस्मितःपादौप्रणनामरुजातुरः॥बद्धांजलिपुटोदेवंतुष्टावपुरतःस्थितम् ॥ ॥६॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ देवदेवकृपासिंधोपापात्माऽहंसुमंदधीः ॥ कृतापराधःकृपणःपावितःपरमेष्ठिना ॥७॥ मयातेपुत्रकामेनदुःखसंस्थेनहेलनम् ॥ कृतं क्षमाप्यंप्रभुणाकोऽपराधःसुदुर्मतेः ॥ ८॥ अर्थीदोषंनजानातितस्मात्पुत्रार्थिनामया ॥ वंचितस्त्वंदेवदेवभीतेननरकाद्विभो ॥ ९ ॥ अपुत्रस्यगतिर्नास्ति स्वर्गोनैवचनैवच ॥ भीतोऽहंतेनवाक्येनतस्मात्तेहेलनंकृतम् ॥ १० ॥ नाऽज्ञस्यदूषणंचिंत्यंनूनंज्ञानवताविभो ॥ दुःखितोऽहंरुजाक्रांतोवंचितःस्वसुतेनह ॥ ११ ॥ नजानेऽहंमहाराजपुत्रोमेक्वगतःप्रभो ॥ वंचयित्वावनेभीतोमरणान्मांकृपानिधे ॥ १२ ॥ प्रययौद्रविणंदत्त्वागृहीतोद्विजबालकः ॥ यज्ञोऽयंक्रीतपुत्रेणप्रारब्धस्तवतुष्टये ॥ १३ ॥

मैं भी पुत्रका प्रार्थी हूं इस कारण कोई दोष नहीं विचारसका. हे विभो ! नरकके भयसे डरकर ही मैंने आपको छला है ॥ ९ ॥ अपुत्रकी गति नहीं है विशेषकर उसकी कभी स्वर्ग गति नहीं होती, मैं ने इस शास्त्रके वचनसे डरकरही आपके वचनका अपमान किया है ॥ १० ॥ हे विभो ! आप ज्ञानवान् और मैं अज्ञानी हूं, विशेषकर दुर्द्धर्ष रोगकी यन्त्रणासे अत्यन्त कातर और अपने पुत्रधनसे भी वञ्चित हूं इस कारण मेरा कुछ भी दोषविचारना आपको उचित नहीं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! मेरा पुत्र कहां चलागया है, यह मैं नहीं जानता. हे दयामय ! बोध होता है कि, वह मृत्युके भयसे डरकर और मुझे छलकर वनको चलागया है ॥ १२ ॥ जो हो मैं धनसे इस ब्राह्मणके बालकको मोल लाया हूं और आपको सन्तुष्ट करनेकेलिये क्रीतपुत्रद्वारा यह यज्ञ आरम्भ किया है ॥ १३ ॥ हे देव देव ! आपको

देखतेही मेरा अत्यन्त क्लेश दूर हुआ है इस समय आपके प्रसन्न होनेसे मेरा जलोदर जनित सम्पूर्ण दुःख दूर होजायगा ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उन रोगातुर राजाके यह वचन सुनकर देवदेव वरुण कृपाके वशीभूत हो नरपतिसे कहने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! शुनःशेप अत्यन्त कातर होकर मेरा स्तव करता है, इस कारण तुम इसको छोड़दो और तुम्हारा यज्ञ भी सम्पूर्ण हुआ, अब तुम रोगसे भी मुक्त होओ ॥ १६ ॥ वरुणने यह बात कहकर सभासदोंके सामनेही राजाको रोगसे मुक्त किया, राजा भी तब सुन्दर देह और स्वस्थता प्राप्तकर उनके सन्मुख स्थिति करने लगे ॥ १७ ॥ वरुणदेवकी कृपासे जब द्विजपुत्र पाशबन्धनसे मुक्त हुआ तब उस यज्ञ सभास्थलमें जयशब्द उच्चारित होनेलगा ॥ १८ ॥ राजा दारुणरोगसे तत्काल मुक्ति प्राप्तकर सन्तुष्ट हुए और शुनःशेप भी यूपसे मुक्त हो निरु

दर्शनंतवसंप्राप्यगतंदुःखंममाऽद्भुतम् ॥ जलोदरकृतंसर्वंप्रसन्नेत्वयिसांप्रतम् ॥ १४ ॥ व्यासउवाच॥इतितस्यवचःश्रुत्वाराज्ञोरोगातुरस्यच ॥ दयावान्देवदेवेशःप्रत्युवाचनृपोत्तमम् ॥ १५ ॥ वरुणउवाच ॥ मुंचराजञ्छुनःशेपंस्तुवंतंमांभृशातुरम् ॥ यज्ञोयंपरिपूर्णस्तेरोगमुक्तोभवाऽऽत्मना ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वावरुणस्तूर्णंराजानंविरुजंतथा ॥ चकारपश्यतांतत्रसदस्यानांसुसंस्थितम् ॥ १७ ॥ विमुक्तोऽसौद्विजःपाशाद्वरुणेनमहात्मना ॥ जयशब्दस्ततस्तत्र संजातोमखमंडपे ॥ १८ ॥ राजाप्रमुदितःसद्योरोगान्मुक्तःसुदारुणात् ॥ यूपान्मुक्तःशुनःशेपोबभूवाऽतीवसंस्थितः ॥ १९ ॥ राजात्विमंमखंपूर्णंचकार विनयान्वितः ॥ शुनःशेपस्तदासभ्यानित्युवाचकृतांजलिः ॥ २० ॥ भोभोःसभ्याःसुधर्मज्ञाब्रुवंतुधर्मनिर्णयम् ॥ वेदशास्त्रानुसारेणयथार्थवादिनःकिल ॥ ॥ २१ ॥ पुत्रोऽहंकस्यसर्वज्ञाःपितामेकोऽग्रतःपरम् ॥ भवतांवचनात्तस्यशरणंप्रव्रजाम्यहम् ॥ २२ ॥ इत्युक्तेवचनेतत्रसभ्याःप्रोचुःपरस्परम् ॥ सभ्या ऊचुः ॥ अजीगर्तस्यपुत्रोऽयंकस्याऽन्यस्यभवेदसौ॥२३॥अंगादंगात्समुद्भूतःपालितस्तेनभक्तितः ॥ अन्यस्यकस्यपुत्रोऽसौप्रभवेदितिनिश्चयः ॥२४॥

द्वेग और स्वस्थ हुआ ॥ १९ ॥ तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्रके विनयसहित वह यज्ञ सम्पूर्ण होनेपर फिर शुनःशेपने हाथ जोड़कर सभासदोंसे कहा ॥ २० ॥ हे सभ्यगण ! आप सम्पूर्णही सत्यवादी विशेषकर धर्मका यथार्थ मर्म जानते हैं, इस कारण वेदशास्त्रानुसार धर्मका निश्चय वर्णन कीजिये ॥ २१ ॥ हे सर्वज्ञगण ! इस समयमैं किसका पुत्र हूं ? मेरे पूज्यतम अग्रगण्य पिता कौन हैं, सो आप बतादीजिये. आपके वचनानुसारही उनका आश्रय ग्रहण करूंगा ॥ २२ ॥ शुनःशेपके यह वचन कहनेपर फिर सभासद्लोग परस्पर कहने लगे कि, यह बालक अजीगर्तका पुत्र है अब अन्य किसकापुत्र होगा ? ॥ २३ ॥ उस अजीगर्त्तकेही अङ्गप्रत्यङ्गसे यह बालक उत्पन्न हुआ है

उसी ब्राह्मणने इसको अपनी शक्तिकेअनुसार उसका प्रतिपालन किया है अतएव यह बालक उसकाही पुत्र होगा. यही स्थिर सिद्धान्त है ॥ २४ ॥ यह बात सुनकर वामदेवने उन सभासदोंसे कहा इसके पिताने धनके लोभसे इसको बेंचडाला है ॥ २५ ॥ राजाने द्रव्य देकर इसको मोललिया है अतएव यह बालक इस समय राजाकाही पुत्र होगा. अथवा यह बालक वरुणदेवका पुत्र है क्योंकि उन्होंने इसको बन्धनसे छुड़ाया है ॥ २६ ॥ कारण कि, जो मनुष्य अन्न देकर प्रतिपालन करता है वा जो भयसे रक्षा करता है अथवा जो धन देकर रक्षा करता है जो विद्या देता है औरजो जन्म देता है यह पांच मनुष्यही पितृपदवाच्य हैं ॥ २७ ॥ हे महाराज ! तिस समय कोई अजीगर्तका कोई राजाका अथवा कोई वरुणदेवका पुत्र कहकर वादानुवाद करनेलगे किन्तु कोई इसका निर्णय न करसके ॥ २८ ॥ इस प्रकार सन्देह उपस्थित होनेपर फिर सर्वजनोंके समादृत सर्वज्ञानयुक्त वसिष्ठदेव उन विवाद करते हुए सभासदोंसे कहनेलगे ॥ २९ ॥ हे महाभागगणो ! इस विषयमें श्रुतिसम्मत निर्णय कहता हूं श्रवणकरो

तच्छ्रुत्वावामदेवस्तुतानुवाचसभासदः ॥ विक्रीतस्तेनतातेनद्रव्यलोभात्सुतःकिल ॥२५॥ पुत्रोऽयंधनदातुश्चराज्ञस्तत्रनसंशयः ॥ अथवावरुणस्यैषपाशान्मुक्तोऽस्त्यनेनवै ॥ २६ ॥ अन्नदाताभयत्रातातथाविद्याप्रदश्चयः ॥ तथावित्तप्रदश्चैवपंचैतेपितरःस्मृताः ॥२७॥ तदाकेचित्पितुःप्राहुःकेचिद्राज्ञस्तथाऽपरे ॥ वरुणस्येतिसंवादेनिर्णयंनययुश्चते ॥ २८ ॥ इत्थंसंदेहमापन्नेवसिष्ठोवाक्यमब्रवीत् ॥ सभ्यान्विवदतस्तत्रसर्वज्ञःसर्वपूजितः ॥२९ ॥ शृणुध्वंभोमहाभागानिर्णयंश्रुतिसंमतम् ॥ निःस्नेहेनयदापित्राविक्रीतोऽयंसुतःशिशुः ॥ ३० ॥ संबंधस्तुगतस्तस्यतदैवधनसंग्रहात् ॥ हरिश्चंद्रस्यसंजातःपुत्रोऽसौक्रीतएवच ॥ ३१ ॥ यूपेबद्धोयदाराज्ञातदातस्यनवैसुतः ॥ वरुणस्तुस्तुतोऽनेनतेनतुष्टेनमोचितः ॥ ३२ ॥ तस्मान्नाऽयंमहाभागाह्यसौपुत्रःप्रचेतसः ॥ योयंस्तौतिमहामंत्रैःसोऽपितुष्टोददातिच ॥३३॥ धनंप्राणान्पशून्राज्यंतथामोक्षंकिलेप्सितम् ॥कौशिकस्यसुतश्चाऽयमरिष्टेयेनरक्षितः ॥ ३४ ॥

पिताने पुत्रस्नेह त्यागकर जब बालकपुत्रको बेंचदिया ॥ ३० ॥ तब उसका संबन्धभी दूर होगया अनन्तर यह बालक राजा हरिश्चन्द्रका क्रीत पुत्र हुआ था इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१ ॥ किन्तु जब राजाने इसको यूपमें बांधा तब यह राजाका पुत्र नहीं होसक्ता. परन्तु जब इस बालकने वरुणदेवकी स्तुति की तब उन्होंने उससे सन्तुष्ट होकर इसको छुड़ादिया ॥ ३२ ॥ इस कारण यह बालक वरुणदेवका भी पुत्र नहीं होसक्ता क्योंकि जो मनुष्य महामंत्रसे जिस देवताकी स्तुति करता है वह देव उसके प्रति सन्तुष्ट होकरही उसको ॥ ३३ ॥ धन प्राण पशु राज्य और मुक्ति प्रदान करता है परन्तु अत्यन्त संकटके समय वरुणदेवका महावीर्य मंत्र देकर कुशिकनन्दन विश्वामित्रने इस बालककी रक्षा की है इसलिये यह बालक उनकाही पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं है. व्यासजीने कहा हे राजन् ! वसिष्ठके यह वचन सुनकर

सभादोंने उनके वचनमें अनुमोदन किया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ और विश्वामित्रने प्रेमपूर्ण हो हे पुत्र ! मेरे घरको चलो यह कहकर उसका दक्षिण हाथ पकड़ लिया ॥ ॥ ३६ ॥ तब शुनःशेप भी शीघ्र उनके साथ चलागया इसी समय वरुणदेव भी प्रीतिपरायण हो अपने घरको चलेगये ॥ ३७ ॥ और ऋत्विक् तथा सभासद् भी अपने अपने घरको चलेगये राजा भी रोगसे मुक्ति प्राप्तकर अतिआनन्दित हो ॥ ३८ ॥ अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे राज्य पालन करने लगे. इसी समय राजाका पुत्र रोहितभी वरुणदेवका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुन ॥ ३९ ॥ प्रसन्न हो दुर्गम वन और पर्वतादि छोड़ घरको आया तब दूतोंने राजाके समीप जाय राजपुत्रके आनेका वृत्तान्त कहा ॥ ४० ॥ वह कोशलाधिपति पुत्रका आगमन सुन प्रेमसे परिपूर्ण और आनन्दित हो शीघ्र उसके सन्मुख आनकर उपस्थित हुए रोहिताश्वभी पिताको आताहुआ

मंत्रंदत्वामहावीर्यंवरुणस्यातिसंकटे ॥ व्यासउवाच ॥ श्रुत्वावाक्यंवसिष्ठस्यवाढमूचुःसभासदः ॥ ३५ ॥ विश्वामित्रस्तुजग्राहतंकरेदक्षिणेतदा ॥ एहिपुत्रगृहंमेत्वमित्युक्त्वाप्रेमपूरितः ॥३६॥ शुनःशेपोजगामाऽऽशुतेनैवसहसत्वरः ॥ वरुणस्तुप्रसन्नात्माजगामचस्वमालयम् ॥ ३७ ॥ ऋत्विजश्चतथासभ्याःस्वगृहान्निर्ययुस्तदा ॥ राजाऽपिरोगनिर्मुक्तोबभूवाऽतिमुदान्वितः ॥३८॥ प्रजास्तुपालयामाससुप्रसन्नेनचेतसा ॥ रोहिताख्यस्तुतच्छ्रुत्वावृत्तांतंवरुणस्यह ॥३९॥ आजगामगृहंप्रीतोदुर्गमाद्वनपर्वतात् ॥ दूताराजानमभ्येत्यप्रोचुःपुत्रंसमागतम् ॥ ४० ॥ मुदितोऽसौजगामाऽऽशुसंमुखःकोसलाधिपः ॥ दृष्ट्वापितरमायांतंप्रेमोद्रिक्तःसुसंभ्रमः ॥ ४१ ॥ दंडवत्पतितोभूमावश्रुपूर्णमुखःशुचा ॥ राजाऽपितंसमुत्थाप्यपरिरभ्यमुदान्वितः ॥ ४२ ॥ समाघ्रायसुतंमूर्ध्निपप्रच्छकुशलंपुनः ॥ उत्संगेतंसमारोप्यमुदितोमेदिनीपतिः ॥ ४३ ॥ उष्णैर्नेत्रजलैःशीर्षण्यभिषेकमथाऽकरोत् ॥ राज्यंशशासतेनासौपुत्रेणाऽतिप्रियेणच ॥ ४४ ॥ वृत्तांतंनरमेधस्यकथयामासविस्तरात् ॥ राजसूयंक्रतुवरंचकारनृपसत्तमः ॥ ४५ ॥ वसिष्ठंपूजयित्वाऽथहोतारमकरोद्विभुः ॥ समाप्तेत्वथयज्ञेशेवसिष्ठोऽतीवपूजितः ॥ ४६ ॥

देख ॥ ४१ ॥ प्रेमसे परिपूर्ण होगया और चिरविरहजात शोकके आँसुओंसे मुख प्लावित कर दण्डकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ा, तब राजाने इसको उठाय प्रसन्न हृदयसे आलिङ्गन किया ॥ ४२ ॥ और आनन्दसहित उसका मस्तक सूंघ कुशल वार्त्ता पूँछी. इसप्रकार राजा जब पुत्रको गोदीमें लेकर पूँछते थे ॥ ४३ ॥ तब उसके दोनों नेत्रोंसे गरम आँसूओंकी धारा गिरनेलगी उससे कुमारका मस्तक भीगगया अनन्तर राजा उस प्रियतम पुत्रके सहित राज्यशासन करने लगे ॥ ४४ ॥ तिस समय नृपसत्तमने नरमेध यज्ञका आनुपूर्विक वृत्तान्त विस्तारसहित पुत्रसे कहा इसके उपरान्त उन्होंने श्रेष्ठ राजसूययज्ञका अनुष्ठान कर ॥ ४५ ॥ वसिष्ठमुनिकी यथाविहित पूजा करके उनको उस यज्ञके होतृकार्य में वरण किया. फिर उस श्रेष्ठ यज्ञके समाप्त होनेपर राजाने बहुत धनसे वसिष्ठका अत्यन्त सन्मान किया॥ ४६ ॥

अनन्तर एकसमय वसिष्ठमुनि आदरसहित रमणीक इन्द्रभवनमें गये, इसी समय विश्वामित्र भी उस स्थानमें जाय वसिष्ठसे मिले ॥ ४७ ॥ तब वह दोनों महर्षि मिलित होकर सुरसदनमें विराजमान हुए परन्तु विश्वामित्र शचीपति इन्द्रकी सभामें वसिष्ठको सन्मानित देखकर आश्चर्ययुक्त चित्तद्वारा उनसे पूँछने लगे विश्वामित्र बोले हे ऋषिसत्तम ! आपने यह महती पूजा कहाँ पाई ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! आपकी यह पूजा किसने की है सो आप मुझसे सत्य कहिये. वसिष्ठने कहा हे मुनिवर ! हरिश्चन्द्र नामक एक प्रतापवान् नृपति मेरा यजमान है ॥ ५० ॥ उसी राजाने बहुत दक्षिणायुक्त राजसूययज्ञका अनुष्ठान किया इसकी समान धृतव्रत सत्यवादी राजा अन्य नहीं है ॥ ५१ ॥ वह धर्मशील दाता और प्रजाका पालन करनेमें तत्पर है. हे कौशिकनन्दन ! उसी राजाके यज्ञमें मुझको यह पूजा प्राप्त हुई

शक्रस्यसदनंरम्यंजगाममुनिरादरात् ॥ विश्वामित्रोऽपितत्रैववसिष्ठेनचसंगतः ॥ ४७ ॥ मिलित्वातौस्थितौदेवसदनेमुनिसत्तमौ ॥ विश्वामित्रोऽपि पप्रच्छवसिष्ठंप्रतिपूजितम् ॥ ४८ ॥ वीक्ष्यविस्मयचित्तस्तंसभायांतुशचीपतेः ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ क्वेयंपूजात्वयाप्राप्तामहतीमुनिसत्तम ॥ ४९ ॥ कृताकेनमहाभागसत्यंब्रूहिममांतिके ॥ वसिष्ठउवाच ॥ यजमानोऽस्तिमेराजाहरिश्चंद्रःप्रतापवान् ॥ ५० ॥ राजसूयःकृतस्तेनराज्ञाप्रवरदक्षिणः ॥ नेदृशोऽस्तिनृपश्चान्यःसत्यवादीधृतव्रतः ॥ ५१ ॥ दाताचधर्मशीलश्चप्रजारंजनतत्परः ॥ तस्ययज्ञेमयापूजाप्राप्ताकौशिकनंदन ॥ ५२ ॥ " किंपृच्छसिपुनःसत्यंब्रवीम्यकृत्रिमंद्विज " ॥ हरिश्चंद्रसमोराजानभूतोनभविष्यति ॥ सत्यवादीतथादाताशूरःपरमधार्मिकः ॥ ५३ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाविश्वामित्रोऽतिकोपनः ॥ बभूवक्रोधसंरक्तलोचनोऽप्यब्रवीच्चतम् ॥५४॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एवंस्तौषिनृपंमिथ्यावादिनंकपटप्रियम्॥ वंचितोवरुणोयेनप्रतिश्रुत्यवरंपुनः ॥ ५५ ॥ ममजन्मार्जितंपुण्यंतपसःपठितस्यच ॥ त्वदीयंवाऽतितपसोग्लहंकुरुमहामते ॥ ५६ ॥

है ॥ ५२ ॥ हे द्विजवर ! आप मुझको सत्य कहनेका क्यों अनुरोध करते हैं ? मैं पुनर्वार आपसे यथार्थ ही कहता हूं कि, राजा हरिश्चन्द्रकी समान सत्यवादी वीर चतुर और परमधार्मिक राजा अन्य कोई नहीं हुआ और न कभी कोई होगा ॥ ५३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! अत्यन्त कोपनस्वभाव विश्वामित्र उनके इस प्रकार वचन सुन लाल लाल नेत्र कर उनसे कहनेलगे ॥ ५४ ॥ विश्वामित्र बोले हे वसिष्ठ ! हरिश्चन्द्रने प्रतिज्ञा करके वरुणदेवसे वर प्राप्त किया इसके उपरान्त उसने वरुणकोही कपटरूपी वचनोंसे छला था अतएव वह मिथ्यावादी और कपटप्रिय है तुम उसी राजाकी प्रशंसा करते हो ॥ ५५ ॥ हे महामते ! मैंने जन्मावधि तपस्या और अध्ययन करके जो पुण्य सञ्चय किया है और तुमने भी आजन्म अध्ययन और तपस्या करके जो पुण्य उपार्ज्जन किया है इस समय

उसकाही प्रण करो ॥ ५६ ॥ तुमने उस अदाता महाबल राजा हरिश्चन्द्रकी अत्यन्त स्तुति की है किन्तु यदि मैं उसको शीघ्रही मिथ्यावादी न करूं तो मेरा आजन्म सञ्चित सम्पूर्ण पुण्य नष्ट हो किन्तु इसके अन्यथा होनेसे तुम्हारा समस्तपुण्य नष्टहोगा मैंने आज यही प्रण किया है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब वह परमक्रोधयुक्त दोनों मुनि परस्पर विवाद करते हुए इसप्रकार प्रणकर स्वर्गलोकसे अपने अपने घरको चलेगये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! एकसमय राजा हरिश्चन्द्रने मृगयाके लिये वनमें जाय इधर उधर भ्रमण करतेकरते देखा कि, एक चारुलोचन परमसुन्दरी रमणी रोदन करती है ॥ १ ॥ राजाने इसको देखकर करुणाके वशीभूत हो पूँछा हे वरानने ! तुम अकेली इस वनमें क्यों रोदन करती हो ॥ २ ॥ हे विशालाक्षी ! तुमको क्या

अहंचेत्तन्नृपंसद्योनकरोम्यतिसंस्तुतम् ॥ असत्यवादिनंकाममदातारंमहाखलम् ॥ ५७ ॥ आजन्मसंचितंसर्वंपुण्यंममविनश्यतु ॥ अन्यथात्वत्कृतंसर्वंपुण्यंत्वितिपणावहे ॥ ५८ ॥ ग्लहंकृत्वाततस्तौतुविवदंतौमुनीतदा ॥ स्वाश्रमंस्वर्गलोकाच्चगतौपरमकोपनौ ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ कदाचित्तुहरिश्चंद्रोमृगयार्थंवनंययौ ॥ अपश्यद्रुदतींबालांसुंदरींचारुलोचनाम् ॥ ॥ १ ॥ तामपृच्छन्महाराजःकामिनींकरुणापरः ॥ पद्मपत्रविशालाक्षिकिंरोदिषिवरानने ॥ २ ॥ केनाऽसिपीडितात्यर्थंकिंतेदुःखंवदाऽऽशुभे ॥ काच त्वंविजनेघोरेकस्तेभर्तापिताऽथवा ॥ ३ ॥ नबाधतेचराज्येमेराक्षसोऽपिपरांगनाम् ॥ तंहन्मितरसाकांतेयस्त्वांसुंदरिबाधते ॥ ४ ॥ ब्रूहिदुःखंवरारोहेस्वस्थाभवकृशोदरि ॥ विषयेममपापात्मानतिष्ठतिसुमध्यमे ॥ ५ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वानारीतमब्रवीन्नृपम् ॥ प्रमृज्याऽश्रूणिवदनाद्धरिश्चंद्रंनृपोत्तमम् ॥ ६ ॥ नार्युवाच ॥ राजन्मांबाधतेऽत्यर्थंविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ तपःकरोतियद्घोरंमदर्थंकौशिकोवने ॥ ७ ॥

किसीने क्लेश दिया है ? तुम्हारे दुःखका क्या कारण है सो तुम मुझसे शीघ्र कहो तुम इस जनशून्य भयंकर वनमें क्यों आई हो तुम्हारे स्वामी और पिताका क्या नाम है ? ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! मेरे राज्यमें कभी कोई राक्षस पराई स्त्रीको क्लेश देनेमें समर्थ नहीं होता अतएव हे वरारोहे ! तुमको कौन कष्ट देता है मैं उसको अभी मारूंगा ॥ ४ ॥ हेकृशोदरि ! तुम सावधान हो अब रोदन मत करो, तुम्हारे दुःखका क्या विषय है सो मुझसे कहो. हे सुमध्यमे ! तुम निश्चय जानो कि, मेरे राज्यमें कोई पापिष्ठ मनुष्य नहीं रहता ॥ ५ ॥ नरपतिश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रके इस प्रकार वचन सुन वह सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री दोनों हाथोंसे आँसू पोंछतीहुई उनसे कहनेलगी ॥ ६ ॥ नारी बोली हे राजेन्द्र ! मैं सिद्धिरूपिणी हूं मुझको प्राप्त करनेके लिये महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या करते हैं अतएव उन्हीं कौशिकसे मुझको यह क्लेश उपस्थित हुआ है ॥ ७ ॥

हे राजन् ! इसी कारण मैं आपके राज्यमें दुःखित रहती हूं हे सुव्रत ! मैं कोमलस्वभाव मनोहर स्त्री हूं तो भी वह मुनिवर मुझको अत्यन्त क्लेश देते हैं ॥ ८ ॥ राजाने कहा हे विशाललोचने ! अब तुमको दुःख भोगना नहीं होगा. तुम धैर्यावलम्बन करो मैं तपश्चर्यामें निरत उन मुनिवरको निवारण करता हूं ॥ ९ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस रमणीको इसप्रकार समझाकर शीघ्र मुनिवर विश्वामित्रके समीप गये और उनको प्रणामपूर्वक हाथ जोड उनसे कहने लगे ॥ १० ॥ हेमहर्षे ! कठोर तपस्यामें निरत होकर किसलिये शरीरको पीडा देते हो ? हे महामते ! आप कौन महत्कार्य साधनके लिये इसप्रकार कठोर तपस्या करते हैं सो आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ११ ॥ हे गाधिनन्दन ! आपकी जो इच्छा हो मैं उसको पूर्ण करूंगा. अब इसप्रकार कठोर तपस्या करनेका प्रयोजन नहीं है आप शीघ्र उठिये ॥ १२ ॥ हे महर्षे ! आप तो सभी जानते हैं अतएव आपसे और अधिक क्या कहूं देखो मेरे अधिकारमें रहकर मनुष्योंको पीडादायक दारुण घोर तपस्या करना कभी किसीको

तेनाऽहंदुःखिताराजन्विषयेतवसुव्रत ॥ विद्धिमांकमनांकांतांपीडितांमुनिनाभृशम् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ स्वस्थाभवविशालाक्षिनतेदुःखंभविष्यति ॥ तमहंवारयिष्यामिमुनिंतापपरायणम् ॥९॥ इत्याश्वास्यस्त्रियंराजातरसामुनिसन्निधौ ॥ नत्वाप्रणम्यशिरसातमुवाचमहीपतिः ॥१०॥ स्वामिन्किंक्रियते ऽत्यर्थंतपसादेहपीडनम् ॥ किमर्थंतेसमारंभोब्रूहिसत्यंमहामते ॥ ११ ॥ वांछितंतवगाधेयकरोमिसफलंकिल ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठतरसातपसाऽलमतःपरम् ॥ ॥१२॥विषयेममसर्वज्ञनकर्तव्यंसुदारुणम् ॥ लोकपीडाकरंघोरंतपःकेनाऽपिकर्हिचित् ॥१३॥इत्थंनिषिध्यतंराजाविश्वामित्रंगृहंययौ॥ मनसाक्रोधमाधाय गतोऽसौकौशिकोमुनिः ॥ १४ ॥ सगत्वाचिंतयामासनृपकृत्यमसांप्रतम् ॥ वसिष्ठस्यचसंवादंतपसःप्रतिषेधनम् ॥ १५ ॥ कोपाविष्टेनमनसाप्रतीकार मथाकरोत् ॥ विचिंत्यबहुधाचित्तेदानवंघोरविग्रहम् ॥१६॥ प्रेषयामासतद्देशंविधायसूकराकृतिम् ॥ सोऽतिकायोमहाकालःकुर्वन्नादंसुदारुणम् ॥१७॥

उचित नहीं है ॥ १३ ॥ राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रको इसप्रकार निषेधकर अपने घरको चलेगये और मुनिवर कौशिकभी मनमें क्रोधित हो अपने आश्रमकी ओर चलेगये ॥ १४ ॥ अनन्तर विश्वामित्र आश्रममें जाय पहले इन्द्रभवनमें वसिष्ठके सहित राजा हरिश्चन्द्रके धार्मिकता विषयमें जो वादानुवाद हुआ था और राजा हरिश्चन्द्रने इससमय जो उनको अन्यायरूपसे तपस्या करनेमें निषेध किया उसीकी मनमें चिन्ता करने लगे. फलतः उन्होंने विचारा कि, राजा हरिश्चन्द्र परमधार्मिक है तो उसने किसलिये मुझको तपस्या करनेमें निषेध किया और वसिष्ठने किस प्रकार इसकेलिये प्रण किया ॥ १५ ॥ जो हो विश्वामित्र मनमें क्रोधित हो उनसे बदला लेनेको उद्यत हुए तब उन्होंने मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता कर भयंकर देह एक दानवको ॥ १६ ॥ शूकराकार कर राजा हरिश्चन्द्रकी राजधानीमें भेजा उस

विशाल शरीरधारी महा बलवान् शूकरने भयङ्कर चीत्कार करते करते ॥ १७ ॥ राजाके उपवनमें प्रवेश किया तब रक्षक लोग उसके घोर शब्दसे भीत होगये वह शूकर वनमें प्रवेश कर कहीं मालतीवन कहीं कदम्बवन ॥ १८ ॥ कहीं यूथिका लताके वन इन सम्पूर्णकों वारम्वार तोडने लगा. कहीं दाँतसे भूमि खोदकर वृक्ष तोडता ॥ १९ ॥ कभी चम्पक केतकी और मल्लिका चमेली इत्यादि पादपोंको जड़से उखाड़ने लगा कहीं सुन्दर कोमल उशीर (खस) करवीर ॥ २० ॥ मुचुकुन्द अशोक बकुल और तिलक इत्यादि सम्पूर्ण वृक्षोंकी जड़ोंको खोदकर उस उपवनको छिन्न भिन्न करनेलगा ॥ २१ ॥ तब वनकी रक्षा करनेवाले लोग अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर उसके ऊपर दौड़े और मालीलोग अत्यन्त कातर हो हाहाकार शब्दसे चीत्कार करनेलगे ॥ २२ ॥ यह कालके समान शूकर बाणोंसे ताडित

राज्ञश्चोपवनेप्रातस्त्रासयन्रक्षकांस्तदा ॥ मालतीनांचखंडानिकदंबानांतथैवच ॥ १८ ॥ यूथिकानांचवृंदानिकंपयंश्चमुहुर्मुहुः ॥ दंतेनविलिखन्भूमिंसमुन्मूलयतेद्रुमान् ॥ १९ ॥ चंपकान्केतकीखंडान्मल्लिकानांचपादपान् ॥ करवीरानुशीरांश्चनिचखानशुभान्मृदून् ॥२०॥ मुचुकुंदानशोकांश्च बकुलांस्तिलकांस्तथा ॥ उन्मूलयकदनंतत्रचकारसूकरोवने॥२१॥वाटिकारक्षकाःसर्वेदुद्रुवुःशस्त्रपाणयः ॥ हाहेतिचुक्रुशुस्तत्रमालाकाराभृशातुराः ॥ ॥ २२ ॥ बाणैःसंताड्यमानोऽपियदात्रस्तोनवैमृगः ॥ रक्षकान्पीडयामासकोलःकालसमद्युतिः ॥ २३ ॥ तेतदाऽतिभयाक्रांताराजानंशरणंययुः ॥ तमूचुस्त्राहित्राहीतिवेपमानाभयाकुलाः ॥ २४ ॥ तानागतान्समालोक्यभयार्तान्भूपतिस्तदा ॥ पप्रच्छकिंभयंकस्मान्मांब्रुवंतुसमागताः ॥ २५ ॥ नाहंबिभेमिदेवेभ्योराक्षसेभ्यश्चरक्षकाः ॥ कस्माद्भयंसमुत्पन्नंतद्ब्रुवंतुममाग्रतः ॥ २६ ॥ हन्मिचैकेनबाणेनतंशत्रुंदुर्भगंकिल ॥ योमेऽरातिःसमुत्पन्नोलोकेपापमतिःखलः ॥ २७ ॥ देवोवादानवोवाऽपितन्निहन्मिशरैःशितैः ॥ क्वतिष्ठतिकियद्रूपःकियद्बलसमन्वितः ॥ २८ ॥

होकर भी जब नहीं डरा बरन रक्षकलोगोंको पीडित करनेलगा ॥ २३ ॥ तब वह अत्यन्त भीत और कातर हो राजाकी शारणागत हुए और कम्पायमान कलेवरसे हे महाराज ! रक्षा करो रक्षा करो यह कहकर आर्तनाद करनेलगे॥ २४॥ तब भूपति उन भयार्त रक्षकोंको कातर देखकर पूँछनेलगे तुम किसके भयसे इतने कातर होते हो सो तुम मुझसे सत्य कहो ॥ २५ ॥ हे रक्षकवृन्द ! मैं देवता अथवा राक्षसोंकाभी भय नहीं करता, अतएव किस मनुष्यसे तुमको भय उत्पन्न हुआ है वह मुझसे कहो ॥ २६ ॥ जो पापमति खल इस लोकमें मेरा शत्रु होकर आया है मैं उस दुर्भाग्य शत्रुको एक बाणसेही यमसदनमें भेजूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥ उस शत्रुका रूप किसप्रकार है अथवा उसके बलका कितना परिमाण है और इस समय वह किस स्थानमें स्थिति करता है यह शीघ्र कहो. यह

शत्रु देव हो अथवा दानव हो इससमय बाणोंसे उसका संहार करूंगा ॥ २८ ॥ मालियोंने कहा हे महाराज ! वह शूकर देव दानव यक्ष अथवा किन्नर नहीं है एक महाकाय शूकरने वनमें आनकर प्रवेश किया है ॥ २९ ॥ अत्यन्त वेगवान् वह शूकर दाँतोंसे सम्पूर्ण शोभायमान पुष्प वृक्षोंको जडसहित उखाडता है अधिक क्या कहें वह सब वनको छिन्नभिन्न करे डालता है ॥ ३० ॥ हे महाराज ! हमने उसके बाण लाठी और पत्थरोंसे बहुत प्रहार किया तथापि वह किसीसे न डरा बरन् वह हमको विनाश करनेके लिये दौडा ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उनके इसप्रकार वचन सुन राजा अत्यन्त क्रोधित हुए और शीघ्र घोडेपर चढ उपवनकी ओर गये ॥ ३२ ॥ वह जिस समय उस उपवनको चले उस समय सादी सवार निषादी हाथीपर चढनेवाले रथी और पैदल सम्पूर्ण सेना उनके पीछे पीछे चली

मालाकाराऊचुः ॥ नदेवोनचदैत्योऽस्तिनयक्षोनचकिन्नरः ॥ कश्चित्कोलोमहाकायोराजंस्तिष्ठतिकानने ॥ २९ ॥ पुष्पवृक्षानतिमृद्रून्दंतेनोन्मूलयत्य सौ ॥ विदीर्णंतद्वनंसर्वंसूकरेणाऽतिरंहसा ॥ ३० ॥ विशिखैस्ताडितोऽस्माभिर्द्दषद्भिर्लकुटैस्तथा ॥ नबिभेतिमहाराजहंतुमस्मानुपाद्रवत् ॥ ३१ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तेषांराजाकोपसमाकुलः ॥ अश्वमारुह्यतरसाजगामोपवनंप्रति ॥ ३२ ॥ सैन्येनमहतायुक्तोगजाश्वरथसंयुतः ॥ पदातिवृंदसहितःप्रययौवनमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ तत्राऽपश्यन्महाकोलंघुर्घुरंतंभयानकम् ॥ वनंभग्नंचसंवीक्ष्यराजाक्रोधयुतोऽभवत् ॥ ३४ ॥ चापेबाणंसमारोप्यविकृष्यचशरासनम् ॥ तंहंतुंसूकरंपापंतरसासमुपाक्रमत् ॥ ३५ ॥ समालोक्यचराजानंचापहस्तंरुषाकुलम् ॥ संमुखोऽभ्यद्रवत्तूर्णंकुर्वञ्छब्दंसुदारुणम् ॥ ३६ ॥ तमायांतंसमालोक्यवराहंविकृताननम् ॥ मुमोचविशिखंतस्मिन्हंतुकामोमहीपतिः ॥ ३७॥ वंचयित्वाऽथतद्बाणंसूकरस्तरसाबलात् ॥ निर्जगाममहावेगात्तमुल्लंघ्यनृपंतदा ॥ ३८ ॥ गच्छंतंतंसमालोक्यराजाकोपसमन्वितः ॥ मुमोचविशिखांस्तीक्ष्णांश्चापमाकृष्ययत्नतः ॥ ३९ ॥

॥ ३३ ॥ राजाने वहाँ जायकर घुर्घुराते हुए भयंकर विशालकाय उस शूकरको देखा और वनकी भग्नावस्था देखकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए ॥ ३४ ॥ तब उन्होंने शरासन खैंच बाण चढाय उस शूकरको मारनेके लिये आक्रमण किया ॥ ३५ ॥ वह शूकर राजाको धनुषबाण धारणपूर्वक अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए आता देखकर घोर शब्द करते करते शीघ्र राजाकी ओर चला ॥ ३६ ॥ उस भीमकाय शूकरको मुँह फैलाये आता हुआ देखकर राजा उसके मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर शरवर्षण करने लगे ॥ ३७ ॥ तब वह शूकर शीघ्र उन सम्पूर्ण बाणोंको विफलकर तत्काल अत्यन्त वेगसहित बलपूर्वक राजाको उलांघता हुआ निकला ॥ ३८ ॥ उसके चले जानेपर

यक तीर्थमें उपस्थित होकर स्नानदानादि विना किये जाता है वह मनुष्य आत्माको वञ्चना करता है सुतरां वह आत्मघाती होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ अतएव हे राजन् ! आप अपनी शक्तिके अनुसार इस अत्युत्तमतीर्थमें पुण्यकार्य सम्पादन कीजिये इसके उपरान्त मैं आपको मार्ग बताऊंगा तभी आप अयोध्याको जायंगे ॥ ५ ॥ हे काकुत्स्थ ! फिर आपके दानसे परितुष्ट होकर मैं आपको मार्ग बतानेके लिये आपके संग चलूंगा यह स्थिरकिया है ॥ ६ ॥ राजाने महर्षीके यह छलयुक्त वचन सुनकर अपने देहसे सम्पूर्णवस्त्र उतारे और वृक्षमें घोड़ेको बांध विधिपूर्वक स्नानकरनेके लिये नदीकी ओर चले ॥ ७ ॥ हे राजन् ! अवश्यम्भावि दैवयोगसे मुनिकेवचनोंसे इतने मोहित होगये थे कि, तिससमय उनके एकबारही वशीभूत होगये ॥८॥ फलतः उन्होंने यथाविधि स्नानकार्य समापनपूर्वक देव और पितरोंका

तस्मात्तीर्थवरेराजन्कुरुपुण्यंस्वशक्तितः ॥ दर्शयिष्यामिमार्गंतेगंतासिनगरंततः ॥५॥ आगमिष्याम्यहंमार्गदर्शनार्थंतवाऽनघ ॥ त्वयासहाऽद्यकाकुत्स्थ तवदानेनतोषितः ॥ ६॥ तच्छ्रुत्वावचनंराजामुनेःकपटमंडितम् ॥ वासांस्युत्तार्यविधिवत्स्नातुमभ्याययौनदीम् ॥७॥ बंधयित्वाहयंवृक्षेमुनिवाक्येनमोहितः॥अवश्यंभावियोगेनतद्वशस्तुतदाऽभवत् ॥ ८॥ राजास्नानविधिंकृत्वासंतर्प्यपितृदेवताः ॥ विश्वामित्रमुवाचेदंस्वामिन्दानंददामिते ॥ ९ ॥ यदिच्छसिमहाभागतत्तेदास्यामिसांप्रतम् ॥ गावोभूमिंहिरण्यंचगजाश्वरथवाहनम् ॥ १० ॥ नाऽदेयंमेकिमप्यस्तिकृतमेतद्व्रतंपुरा ॥ राजसूयेमखश्रेष्ठेमुनीनांसन्निधावपि ॥११॥ तस्मात्त्वमिहसंप्राप्तस्तीर्थेऽस्मिन्प्रवरेमुने ॥ यत्तेऽस्तिवांछितंब्रूहिददामितववांछितम् ॥१२॥ विश्वामित्रउवाच ॥ मयापूर्वंश्रुताराजन्कीर्तिस्तेविपुलाभुवि ॥ वसिष्ठेनचसंप्रोक्तादातानास्तिमहीतले ॥१३॥ हरिश्चंद्रोनृपश्रेष्ठःसूर्यवंशेमहीपतिः ॥ तादृशोनृपतिर्दातानभूतोनभविष्यति ॥ १४॥

तर्पणकर विश्वामित्रसे कहा हे स्वामिन् ! मैं आपको दान करता हूं ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! गो भूमि स्वर्ण हाथी घोड़े रथ अथवा वाहन इत्यादि आप जिस किसीकी इच्छाकरें मैं इस समय वही आपको दूंगा ॥ १० ॥ जिसको मैं न देसकूं ऐसी कोईवस्तु नहीं है पहले जब मैंने श्रेष्ठ राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था तिससमय मुनियोंके सामने यह व्रत अवलम्बन किया है ॥ ११ ॥ अतएव हे मुनिवर ! आपभी इस प्रधान तीर्थोंमें उपस्थित हुए हैं इससमय जो आपका अभिलषित है वह कहिये मैं आपको वाञ्छित वस्तु प्रदान करता हूं ॥ १२ ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! आपकी कीर्ति पृथ्वीतलमें अत्यन्त फैलीहुई है विशेषकर आपकी समान दाता पृथ्वीमें दूसरा कोई नहीं है मैंने पूर्वमें सुना है वसिष्ठमुनिने कहा है कि ॥ १३ ॥ त्रिशंकुके पुत्र सूर्यवंशीय महीपति हरिश्चन्द्रही इस पृथ्वीतलमें राजाओंके अग्रगण्य

अद्वितीय और उदारस्वभाव हैं उनकी समान दाता नरपति पृथ्वीमें दूसरा कोई नहींहुआ और होगाभी नहीं. अतएव हे पार्थिव! मेरे पुत्रका विवाह उपस्थित है इसलिये अब आपसे प्रार्थना करता हूं ॥ १४ ॥ १५ ॥ आप उस पुत्रविवाहके लिये धन दीजिये. राजाने कहा हे विप्रवर! आप विवाहकार्य कीजिये मैं आपका प्रार्थित दान दूंगा ॥ १६ ॥ अधिक क्या आप जिस धनकी इच्छा करें मैं वही आपको यथेष्ट प्रदान करूंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है. व्यासजीने कहा हे महाराज! कौशिकमुनि उनके इसप्रकार वचन सुनतेही उनको छलनेके लिये तत्पर हुए ॥ १७ ॥ और गान्धर्वी माया प्रगटकर एक सुन्दराकृति कुमार और दशवर्षीय एक कन्या उत्पन्न की ॥ १८ ॥ और भूपालको उन्हें दिखाकर कहा हे नृपसत्तम! अब इनका विवाहकार्य सम्पादन करना होगा.

पृथिव्यांपरमोदारस्त्रिशंकुतनयोयथा ॥ अतस्त्वांप्रार्थयाम्यद्यविवाहोमेऽस्तिपार्थिव ॥१५॥ पुत्रस्यचमहाभागतदर्थंदेहिमेधनम् ॥ राजोवाच ॥ विवाहंकुरुविप्रेंद्रददामिप्रार्थितंतव ॥ १६ ॥ यदिच्छसिधनंकामंदातातस्याऽस्मिनिश्चितम् ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्तःकौशिकस्तेनवंचनातत्परोमुनिः ॥ ॥ १७ ॥ उद्भाव्यमायांगांधर्वींपार्थिवायाऽप्यदर्शयत् ॥ कुमारःसुकुमारश्चकन्याचदशवार्षिकी ॥ १८॥ एतयोःकार्यमप्यद्यकर्तव्यंनृपसत्तम ॥ राजसूयाधिकंपुण्यंगृहस्थस्यविवाहतः ॥ १९ ॥ भविष्यतितवाऽद्यैवविप्रपुत्रविवाहतः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराजामाययातस्यमोहितः ॥ २० ॥ तथेतिचप्रतिज्ञायनोवाचाऽल्पंवचस्तथा ॥ तेनदर्शितमार्गोऽसौनगरंप्रतिजग्मिवान् ॥ २१ ॥ विश्वाऽमित्रोऽपिराजानंवंचयित्वाऽऽश्रमंययौ ॥ कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम् ॥ २२ ॥ वेदीमध्येनृपाऽद्यत्वंदेहिदानंयथेप्सितम् ॥ राजोवाच ॥ किंतेऽभीष्टंद्विजब्रूहिददामिवांछितंकिल ॥ २३ ॥

हे महाराज! गृहस्थका विवाह करनेपर राजसूययज्ञसे अधिक फल प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ अतएव ब्राह्मणके पुत्रका विवाह करनेसे अभी आपको वह फल होगा. राजा उनकी मायासे मोहित हुएथे इसकारण यह वचन सुनतेही ॥ २० ॥ यही होगा ऐसा कहकर प्रतिज्ञा की परन्तु उसके विरुद्धमें सामान्यमात्र भी वचन न कहे अनन्तर विश्वामित्रके मार्ग दिखलानेपर राजा नगरकी ओर चले ॥ २१ ॥ विश्वामित्रने भी राजाको छलकर अपने आश्रमको प्रस्थान किया इसके उपरान्त नरपति अग्निशालामें उपस्थित हुए इसी समय विश्वामित्र उनके समीप उपस्थित हो कहनेलगे हे राजन्! विवाह विधिनिष्पन्न हुई है ॥ २२ ॥ अतएव आप अब इस वेदीमें मेरा

राजा क्रोधके वशीभूत हो अत्यन्त यत्नसहित धनुष खैंचकर बाण छोडने लगे ॥ ३९ ॥ तिस काल वह शूकर राजाको कभी दिखाई देता और कभी छिपजाता था और अनेक प्रकारका शब्द करता हुआ भागा ॥ ४० ॥ राजा हरिश्चन्द्रनेभी अत्यन्त क्रोधित हो शरासन खैंच वायुके समान वेगशाली घोडेपर चढ़ उसके पीछे दौडे ॥ ४१ ॥ तब सम्पूर्ण सैन्यने इधर उधर वनमें प्रवेश किया राजा अकेलेही उस भागते हुए शूकरके पीछे पीछे दौडे ॥ ४२ ॥ मध्याह्न काल उपस्थित होनेपर राजा एक विजनवनमें पहुँचे तिससमय उनका वाहन थक गया था और वहभी भूंख प्याससे कातर होगये थे ॥ ४३ ॥ शूकरके छिपजानेपर राजा घोर निबिड वनमें मार्ग भूल दीनभावसे चिन्ता करने लगे ॥ ४४ ॥ उन्होंने मनमें विचारा कि, मैं क्या करूं और कहां जाऊं इस घोर वनमें

क्षणंदृष्टिपथंराज्ञःक्षणंचाऽदर्शनंगतः ॥ कुर्वन्बहुविधारावंसूकरःसमुपाद्रवत् ॥४०॥ हरिश्चंद्रोऽतिकुपितोमृगस्याऽनुजगामह ॥ अश्वेनवायुवेगेनविकृष्य चशरासनम् ॥ ४१ ॥ इतस्ततस्ततःसैन्यमगमच्चवनांतरम् ॥ एकाकीनृपतिःकोलंव्रजंतंसमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥ मध्याह्नसमयेराजासंप्राप्तोविजनेवने ॥ तृषितःक्षुधितोऽत्यर्थंबभूवश्रांतवाहनः ॥४३॥ सूकरोऽदर्शनंप्राप्तोराजाचिंतातुरोऽभवत्॥ मार्गभ्रष्टोऽतिविपिनेदारुणेदीनवत्स्थितः ॥४४॥ किंकरोमिक्रगच्छामिनसहायोऽस्तिमेवने ॥ अज्ञातस्वपथःकुत्रव्रजामीतिव्यचिंतयत् ॥ ४५ ॥ एवंचिंतयतस्तत्रविपिनेजनवर्जिते ॥ राजाचिंतातुरोपश्यन्नदींसुविमलोदकाम् ॥ ४६ ॥ वीक्ष्यतांमुदितोराजापाययित्वातुरंगमम् ॥ अश्वादुत्तीर्यविमलंपपौपानीयमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ जलंपीत्वानृपस्तत्रसुखमापमहीपतिः ॥ इयेपनगरंगंतुंदिग्भ्रमेणाऽतिमोहितः ॥ ४८ ॥ विश्वामित्रस्तुसंप्राप्तोवृद्धब्राह्मणरूपधृक् ॥ ननामवीक्ष्यराजातंप्रीतिपूर्वंद्विजोत्तमम् ॥ ४९ ॥ तमुवाचगाधिराजःप्रणमंतंनृपोत्तमम् ॥ स्वस्तितेऽस्तुमहाराजकिमर्थमिहचाऽऽगतः ॥ ५० ॥ एकाकीविजनेराजन्किंचिकीर्षितमत्रते ॥ ब्रूहिसर्वंस्थिरोभूत्वाकारणंनृपसत्तम ॥ ५१ ॥

मेरा कोई सहायक नहीं है विशेषकर जानेका मार्ग नहीं जानता इस समय कहां जाऊं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार चिन्ता करते करते राजाने उस जनशून्य वनमें सहसा एक स्वच्छ जलवाली नदी देखी॥ ४६ ॥ उस नदीको देखकर राजा प्रसन्न हुए और फिर घोडेसे उतर स्वयं निर्मल जलपानकर घोडेको भी जल पिलाया ॥ ४७ ॥ वह नरपालक जलपान कर स्वस्थ हुए और तिसकाल दिग्भ्रमसे अत्यन्त मोहित होनेपर भी नगरके जानेकी इच्छा की ॥ ४८ ॥ इसी समय विश्वामित्र वृद्धब्राह्मणका रूप धारण पूर्वक वहाँ आनकर उपस्थित हुए राजाने उन द्विजवरको देखकर भक्तिसहित प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ विप्रवेषधारी विश्वामित्रने उन प्रणाम करते हुए राजा हरिश्चन्द्रसे कहा हे महाराज ! आपका मंगल हो आप किसलिये इस स्थानमें आए हैं ॥ ५० ॥ हे महाराज ! इस विजनवनमें आपका क्या प्रयोजन है ?

आप सावधान होकर मुझसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये ॥ ५१ ॥ राजाने कहा हे द्विजवर! एक विशालकाय महाबलवान् शूकरने मेरे पुष्पकवनमें प्रवेशकर कोमल सम्पूर्ण पुष्पपादोंको एकवारही तोड़ डाला है ॥ ५२ ॥ मैं उसी दुष्टशूकरको निवारण करनेके लिये धनुष धारणकर सेनासहित नगरसे निकला था ॥ ५३ ॥ वह वेगवान् पापिष्ठ मायावी शूकर मेरी दृष्टिसे छिपकर कहीं चलागया है मैं उसके पीछे पीछे दौड़ताहुआ इस स्थानमें आया हूं इससमय मेरी सेना कहाँ चलीगई है यह मैं नहीं जानता॥५४॥ हे मुनिवर! मैं सैन्यहीन क्षुधित और तृषित होकर इस स्थानमें आया हूं मैं नगरका मार्ग नहीं जानता और सैनिक लोग किस मार्गको गये हैं यहभी मैं नहीं जानता ॥५५॥ हे विभो! मेरे भाग्यसेही आप इस विजनवनमें उपस्थित हुए हैं इस समय मैं नगरको जाऊंगा आप मार्ग बताइये ॥५६॥ मैं अयो-

राजोवाच ॥ सूकरोऽतिमहाकायोबलवान्पुष्पकाननम् ॥ समुपेत्यममर्दाऽऽशुकोमलान्पुष्पपादपान् ॥ ५२ ॥ तंनिवारयितुंदुष्टंकरेकृत्वाचकार्मुकम् ॥ ससैन्योऽहंस्वनगरान्निर्गतोमुनिसत्तम ॥ ५३ ॥ गतोऽसौदृक्पथात्पापोमायावीक्वापिवेगवान् ॥ पृष्ठतोऽहमपिप्राप्तःसैन्यंक्वापिगतंमम ॥५४॥ क्षुधितस्तृपितश्चाऽहंसैन्यभ्रष्टस्त्विहाऽऽगतः ॥ नजानेपुरमार्गंचतथासैन्यगतिंमुने ॥ ५५ ॥ पंथानंदर्शयविभोव्रजामिनगरंप्रति ॥ ममाऽत्रभाग्ययोगेनप्राप्तस्त्वं विजनेवने ॥ ५६ ॥ अयोध्याधिपतिश्चाऽहंहरिश्चंद्रोऽतिविश्रुतः ॥ राजसूयस्यकर्ताचवांछितार्थप्रदःसदा ॥५७॥ धनेच्छायदितेब्रह्मन्यज्ञार्थंद्विजसत्तम॥ आगंतव्यमयोध्यायांदास्यामिविपुलंधनम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥छ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाभूपतेःकौशिकोमुनिः ॥ प्रहस्यप्रत्युवाचेदंहरिश्चंद्रंतदानृप ॥ १ ॥ राजंस्तीर्थमिदंपुण्यंपावनंपापनाशनम् ॥ स्नानंकुरुमहाभाग पितॄणांतर्पणंतथा ॥ २ ॥ कालःशुभतमोऽस्तीहतीर्थेस्नात्वाविशांपते ॥ दानंददस्वशक्त्याऽत्रपुण्यतीर्थेऽतिपावने ॥ ३ ॥ प्राप्यतीर्थंमहापुण्यमस्नात्वायस्तुगच्छति ॥ सभवेदात्महाभूयइतिस्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

ध्याका अधिपति हरिश्चन्द्र हूं मैंने राजसूय यज्ञ किया है अतएव मुझसे जो जिसकी प्रार्थना करता है मैं उसको वही देता हूं यह सब जानते हैं॥५७॥हेद्विजवर!आपकी यज्ञकेलिये यदि धनकी इच्छाहोतो मेरे संग अयोध्याको चलिये फिर मैं आपको बहुत धन दूंगा॥५८॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥

व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! महर्षिकौशिकने नरपति हरिश्चन्द्रके इसप्रकार वचन सुन फिर हँसकर उनसे कहा ॥ १ ॥ हे राजन्! यह तीर्थ अत्यन्तपवित्र है इसमें स्नानकरनेसे सम्पूर्णपाप नष्टहोकर पुण्यउदय होता है अतएव हे महाभाग ! आप इसमें स्नानकर पितृगणोंका तर्पण कीजिये ॥ २ ॥ हे नरनाथ ! इस समय अत्यन्त पुण्यकाल उपस्थित है अतएव आप इस पवित्र पुण्यतीर्थमें स्नानकर अपनी शक्तिके अनुसार दान कीजिये ॥३॥ स्वायम्भुवमनुने कहा है जो पुरुष महापुण्यदा

जो अभिलषित है वह दीजिये. राजाने कहा हे द्विजवर ! आपका वांछित क्या है सो कहिये ॥ २३ ॥ अब मैं यशका अभिलाषी हूं इसकारण संसारमें मुझे जो अदेय है आप यदि उसकी भी प्रार्थना करैं तो भी मैं वह आपको दूंगा. इसमें सन्देह नहीं. जो मनुष्य विभवका अधिकारी होकर भी ॥ २४ ॥ परलोकका सुखकर पवित्र यश उपार्जन नहीं करता उसका जीवन निष्फल है इसमें सन्देह नहीं. विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! आप इस पवित्र वेदीमें छत्र चामरादियुक्त और हाथी घोड़े रथ एवं पदातिसहित रत्नपरिपूर्ण राज्य इस वरको दीजिये. व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाराज हरिश्चन्द्र उनकी मायासे मोहित होगये थे इसकारण मुनिके वचन सुनते ही ॥ २५ ॥ २६ ॥ विना विचारे अपनी इच्छानुसार उनसे कहा हे मुनिवर ! आपकी प्रार्थनासे मैं यह विशाल राज्य प्रदान करता हूं तब अत्यन्त

अदेयमपिसंसारेयशःकामोऽस्मिसांप्रतम् ॥ व्यर्थंहिजीवितंतस्यविभवंप्राप्ययेनवै ॥ २४ ॥ नोपार्जितंयशःशुद्धंपरलोकसुखप्रदम् ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ राज्यंदेहिमहाराजवरायसपरिच्छदम् ॥ २५ ॥ गजाश्वरथरत्नाढ्यंवेदीमध्येऽतिपावने ॥ व्यासउवाच ॥ मोहितोमाययातस्यश्रुत्वावाक्यंमुनेर्नृपः ॥ २६ ॥ दत्तमित्युक्तवान्राज्यमविचार्ययदृच्छया ॥ गृहीतमितितंप्राहविश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः ॥ २७ ॥ दक्षिणांदेहिराजेंद्रदानयोग्यांमहामते ॥ दक्षिणारहितंदानं निष्फलंमनुरब्रवीत् ॥ २८ ॥ तस्माद्दानफलायत्वंयथोक्तांदेहिदक्षिणाम् ॥ इत्युक्तस्तुतदाराजातमुवाचाऽतिविस्मितः ॥ २९ ॥ ब्रूहिकिंयद्धनंतुभ्यंदेयं स्वामिन्मयाधुना ॥ दक्षिणानिष्क्रयंसाधोवदयावत्प्रमाणकम् ॥ ३० ॥ दानपूर्त्यैप्रदास्यामिस्वस्थोभवतपोधन ॥ विश्वामित्रस्तुतच्छ्रुत्वातमाहमेदिनीप तिम् ॥ ३१ ॥ हेमभारद्वयंसार्धदक्षिणांदेहिसांप्रतम् ॥ दास्यामीतिप्रतिश्रुत्यतस्मैराजातिविस्मितः ॥ ३२ ॥

निष्ठुर विश्वामित्रने उनसे कहा हे राजेन्द्र मैंने भी ग्रहण किया ॥ २७ ॥ किन्तु हे महामते ! आप इससमय दानके उपयुक्त दक्षिणा प्रदान कीजिये. मनुने कहा है कि, विनादक्षिणाके दान निष्फल होता है ॥ २८ ॥ अतएव आप दानका फल प्राप्त करनेकेलिये यथाविहित दक्षिणा दीजिये. राजा उनके इसप्रकार वचन सुनतेही अत्यन्त विस्मित हो कहने लगे ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! अब आपको कितना धनदेना होगा सो आप कहिये. हे साधो ! जितना दक्षिणाका मूल्य देनाहोगा सो आप कहिये ॥ ३० ॥ हेतपोधन ! आप व्याकुल न हूजिये मैं दान पूर्ण करनेकेलिये वह आपको दूंगा इसमें सन्देह नहीं. विश्वामित्र यह सुनकर महीपतिसे कहनेलगे ॥ ३१ ॥ सम्प्रति ढाईभार सुवर्णदक्षिणास्वरूप प्रदान कीजिये. हे महाराज ! तब राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त विस्मित हो यही दूंगा ऐसा कहकर अंगीकार किया ॥ ३२ ॥

और चिन्तित चित्तसे घोड़ेपर चढ़ शीघ्र जानेकेलिये प्रस्थित हुए. इसी समय मार्ग भूलेहुए सैनिकलोग उन्हें ढूँढते ढूँढते उनके समीप आनकर उपस्थित हुए तब वह महीपतिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको चिन्तातुर देखकर व्यग्रभावसे उनका स्तवकरनेलगे ॥ ३३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उनके वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने अच्छा वा बुरा कुछ भी न कहा परन्तु अपने कियेहुए कार्यके विषयकी चिन्ता करते करते अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ हाय ! मैंने किस दानके करनेको स्वीकार किया इस समय जो कि, सर्वस्वही समर्पणकिया वनमें चोरके समान इन द्विजवरसे मैं इस विषयमें छलागया ! ॥ ३५ ॥ वस्त्रसहित सम्पूर्ण राज्य इनको दूंगा ऐसा कहकर प्रतिज्ञा की है, अब उनका दक्षिणास्वरूप ढाईभार सुवर्णभी देनाहोगा ॥ ३६ ॥ क्या करूं मेरी बुद्धि नष्ट होगई थी इसलिये मैं मुनिकी कपटता नहीं

तदैवसैनिकास्तस्यवीक्षमाणाःसमागताः ॥ दृष्ट्वामहीपतिंव्यग्रंतुष्टुवुस्तेमुदान्विताः ॥ ३३ ॥ व्यासउवाच ॥ श्रुत्वातेषांवचोराजानोक्त्वाकिंचिच्छुभाशुभम् ॥ चिंतयन्स्वकृतंकर्मययावंतःपुरेततः ॥ ३४ ॥ किंमयास्वीकृतंदानंसर्वस्वंयत्समर्पितम् ॥ वंचितोऽहंद्विजेनाऽत्रवनेपाटच्चरैरिव ॥ ३५ ॥ राज्यंसोपस्करंतस्मैमयासर्वंप्रतिश्रुतम् ॥ भारद्वयंसुवर्णस्यसार्धंचदक्षिणापुनः ॥ ३६ ॥ किंकरोमिमतिर्भ्रष्टा नज्ञातंकपटंमुनेः ॥ प्रतारितोऽहंसहसाब्राह्मणेनतपस्विना ॥ ३७ ॥ नजानेदैवकार्यंवैहादैवकिंभविष्यति ॥ इतिचिंतापरोराजागृहंप्राप्तोऽतिविह्वलः ॥३८॥ पतिंचिंतापरंदृष्ट्वाराज्ञीपप्रच्छकारणम् ॥ किंप्रभोविमनाभासिकाचिंताब्रूहिसांप्रतम् ॥ ३९ ॥ वनात्पुत्रःसमायातोराजसूयःकृतःपुरा ॥ कस्माच्छोचसिराजेंद्रशोकस्यकारणंवद ॥ ४० ॥ नाऽरातिर्विद्यतेकाऽपिबलवान्दुर्बलोऽपिवा ॥ वरुणोऽपिसुसंतुष्टःकृतकृत्योऽसिभूतले ॥ ४१ ॥ चिंतयाक्षीयतेदेहोनास्तिचिंतासमामृतिः ॥ त्यज्यतांनृपशार्दूलस्वस्थोभवविचक्षण ॥ ४२ ॥

जानसका इससेही इस तपस्वी ब्राह्मणसे धोखा खाया ॥ ३७ ॥ दैवका कार्य जानना साध्य नहीं है हा दैव ! इस समय मैं क्या करूं ? अत्यन्त विह्वल हो इसप्रकार चिन्ता करतेकरते राजाने अन्तःपुरके गृहमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ तब रानी स्वामीको चिन्तामें निमग्न देखकर उनसे चिन्ताका कारण पूँछने लगी. हे प्रभो ! आप क्यों विमन हुए हैं ? सम्प्रति आपकी चिन्ताका क्या विषय है सो आप कहिये ॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! पुत्र वनसे गृहमें आगया है पूर्वमें राजसूय यज्ञभी किया है अतएव किसकारणसे शोक करते हो ? आप उस शोकका कारण कहिये ॥ ४० ॥ आपका बलवान् वा दुर्बल कोई शत्रु कहीं भी वियमान् नहींहै केवल वरुणही आपसे कुपित थे वहभी इससमय भलीभाँति सन्तुष्ट हुए हैं अतएव पृथ्वीतलमें आपका शेषकार्य कुछ नहींहैं ॥ ४१ ॥ हेनृपवर ! चिन्तामें दिन दिन क्षीण

१ एकभार ।

होताहै अतएव चिन्ताके समान मृत्युका कारण दूसरा कुछ नहीं है आप बुद्धिमान् हो इसकारण चिन्ताको त्यागकर सावधान हूजिये ॥ ४२ ॥ प्रियतमाके प्रीतिसहित इसप्रकार वचन कहनेपर राजाने उसे सुन शुभाशुभ चिन्ताका कारण उससे यथाकथञ्चित् कठिनतासे कहा ॥ ४३ ॥ किन्तु उन महाराजने चिन्तामें निमग्न होकर भोजन न किया और शुभ्र शय्यापर शयन करके भी निद्रा प्राप्त न करसके॥ ४४ ॥ फिर प्रातःकालके समय उठकर चिन्तित चित्तसे जब सन्ध्यादि कार्य संपादन कर रहे थे उसीसमय उस स्थानमें विश्वामित्र आनकर उपस्थित हुए ॥ ४५ ॥ द्वारपालके मुनिकी आगमवार्त्ता निवेदन करनेपर राजाने उनको आनेकी अनुमति प्रदान की. अनन्तर वह सर्वस्वहारक विश्वामित्र उनके समीप उपस्थित हो वारंवार प्रणाम करतेहुए राजासे कहने लगे ॥ ४६ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! आप अपना राज्यपरित्याग

तन्निशम्यप्रियावाक्यंप्रीतिपूर्वंनराधिपः ॥ प्रोवाचकिंचिच्चिंतायाःकारणंचशुभाशुभम् ॥ ४३ ॥ भोजनंनचकाराऽसौचिंताविष्टस्तथानृपः ॥ सुस्वापिशयनेशुभ्रेलेभेनिद्रांनभूमिपः ॥ ४४ ॥ प्रातरुत्थायचिंतार्तोयावत्संध्यादिकाःक्रियाः ॥ करोतिनृपतिस्तावद्विश्वामित्रःसमागतः ॥ ४५ ॥ क्षत्रानिवेदितोराज्ञेमुनिःसर्वस्वहारकः ॥ आगत्योवाचराजानंप्रणमंतंपुनःपुनः ॥ ४६ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ राजंस्त्यजस्वराज्यंमेदेहिवाचाप्रतिश्रुतम् ॥ सुवर्णंस्पृशराजेंद्रसत्यवाग्भवसांप्रतम् ॥ ४७ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ स्वामित्राज्यंतवेदंमेमयादत्तंकिलाधुना ॥ त्यक्त्वान्यत्रगमिष्यामिमाचिंतांकुरुकौशिक ॥ ४८ ॥ सर्वस्वंममतेब्रह्मन्गृहीतंविधिवद्विभो ॥ सुवर्णदक्षिणांदातुमशक्तोह्यधुनाद्विज ॥ ४९ ॥ दानंददामितेतावद्यावन्मेस्याद्धनागमः ॥ पुनश्चेत्कालयोगेनतदादास्यामिदक्षिणाम् ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वानृपतिःप्राहपुत्रंभार्यांचमाधवीम् ॥ राज्यमस्मैप्रदत्तंवैमयावेद्यांसुविस्तरम् ॥ ५१ ॥

कीजिये और मुझको जो सुवर्ण दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञाकी है वह देकर इस समय यथार्थ ही सत्यवादी हूजिये ॥ ४७ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे प्रभो ! मैंने आपको अपना विशाल राज्य प्रदान किया है अतएव मेरा राज्य आपकाही हुआहै इसकारण मैं इस राज्यको परित्यागकर अन्य किसी स्थानमें जाता हूं. हे कौशिक ! आप इस विषयमें कुछभी चिन्ता न कीजिये ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपने विधिके अनुसारही मेरा सर्वस्व ग्रहण किया है अतएव मैं इससमय दक्षिणा देनेमें अत्यन्त असमर्थ हूं ॥ ४९ ॥ यदि कालवश फिर मुझको धन प्राप्त हो तो तत्काल आपकी दक्षिणा दूंगा ॥ ५० ॥ नरपति हरिश्चन्द्र उनसे यह बात कह शैब्यानाम्नी भार्या और पुत्र

रोहितसे कहने लगे मैंने अग्निहोत्रशालामें यह विस्तीर्ण राज्य इनको दान किया है ॥ ५१ ॥ हाथी घोडे रथ स्वर्ण और रत्नराशिके सहित सम्पूर्ण राज्य प्रदान किया है. अधिक क्या हमारे तीन शरीरोंके अतिरिक्त समस्तही इनको समर्पण किया है ॥ ५२ ॥ यह महर्षिवर सर्वसमृद्धि सम्पन्न इस राज्यको भलीभाँति ग्रहण करैं हम अयोध्याको छोड किसी वन अथवा पर्वतकी गुफामें जायँगे ॥ ५३ ॥ अत्यन्त धर्मिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र भार्या और पुत्रसे यह बात कह और उन द्विजवरका सन्मान कर अपने घरसे निकले॥ ५४ ॥ तब भूपतिको जाता हुआ देखकर उनकी भार्या और पुत्र चिन्तासे कातर हो अत्यन्त मलिन मुखसे उनके पीछे पीछे चले ॥ ५५ ॥ अयोध्यावासी सम्पूर्ण प्राणी उनको देखकर रोनेलगे तिसकाल नगरमें केवल घोर हाहाकार ध्वनि होने लगी ॥ ५६ ॥ हा राजन् ! आपने क्या कार्य किया ? कहांसे

हस्त्यश्वरथसंयुक्तंरत्नहेमसमन्वितम् ॥ त्यक्त्वात्रीणिशरीराणिसर्वंचाऽस्मैसमर्पितम् ॥ ५२ ॥ त्यक्त्वाऽयोध्यांगमिष्यामिकुत्रचिद्वनगह्वरे ॥ गृह्णात्विदंमुनिःसम्यग्राज्यंसर्वसमृद्धिमत् ॥ ५३ ॥ इत्याभाष्यसुतंभार्यांहरिश्चंद्रःस्वमंदिरात् ॥ विनिर्गतःसुधर्मात्मामानयंस्तंद्विजोत्तमम् ॥५४॥ व्रजंतंभूपतिंवीक्ष्यभार्यापुत्रावुभावपि ॥ चिंतातुरौसुदीनास्यौजग्मतुःपृष्ठतस्तदा ॥ ५५ ॥ हाहाकारोमहानासीन्नगरेवीक्ष्यतांस्तथा ॥ चुक्रुशुःप्राणिनःसर्वेसाकेतपुरवासिनः ॥ ५६ ॥ हाराजन्किंकृतंकर्मकुतःक्लेशःसमागतः ॥ वंचितोऽसिमहाराजविधिनाऽपंडितेनह ॥ ५७ ॥ सर्वेवर्णास्तदादुःखमाप्नुयुस्तंमहीपतिम् ॥ विलोक्यभार्ययासार्धंपुत्रेणचमहात्मना ॥ ५८ ॥ निनिंदुर्ब्राह्मणंतंतुदुराचारंपुरौकसः ॥ धूर्तोऽयमितिभाषंतोदुःखार्ताब्राह्मणादयः ॥ ॥ ५९ ॥ निर्गत्यनगरात्तस्माद्विश्वामित्रःक्षितीश्वरम् ॥ गच्छंतंतमुवाचेदंसमेत्यनिष्ठुरंवचः ॥ ६० ॥ दक्षिणायाःसुवर्णमेदत्त्वागच्छनराधिप ॥ नाऽहंदास्यामिवाब्रूहिमयात्यक्तंसुवर्णकम् ॥ ६१ ॥ राज्यंगृहाणवासर्वंलोभश्चेद्धृदिवर्तते ॥ दत्तंचेन्मन्यसेराजन्देहियत्तत्प्रतिश्रुतम् ॥ ६२ ॥

आपको यह क्लेश उपस्थित हुआ हे महाराज ! गुणदोष न जाननेवाले विधिने आपको छला है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णही उन महीपतिको भार्या और महानुभाव पुत्रके सहित जाता हुआ देखकर दुःखप्रकाशकरने लगे॥ ५८ ॥ ब्राह्मण इत्यादि सम्पूर्ण पुरवासी लोग दुःखार्त्त हो उस व्यक्तिको धूर्त्त इत्यादि कटुवाक्य कह उस दुराचार ब्राह्मणकी निन्दा करने लगे ॥ ५९ ॥ पृथ्वीपति उस नगरसे निकलकर जाते थे. इसी समय विश्वामित्र उनके निकट उपस्थित हो उनसे निष्ठुर वचन कहने लगे ॥ ६० ॥ हे नरनाथ ! दक्षिणाका स्वर्ण देकर जाओ अथवा नहीं दूंगा यह बात कहो तो मैं दक्षिणाका स्वर्ण छोड़ दूं ॥ ६१ ॥ यदि आपके अन्तःकरणमें लोभ विद्यमान हो तो सम्पूर्ण राज्यग्रहण करो. हे राजन् ! आपने यदि यथार्थही दान किया है यह जानते हो तो आपने जो

प्रतिज्ञा की है वह दीजिये ॥६२॥ गाधिनन्दन विश्वामित्र इसप्रकार कहरहे थे इसीसमय महीपति हरिश्चन्द्र अत्यन्त दीनभावसे प्रणामकर हाथ जोड उनसेकहने लगे ॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे मुनिवर ! आपको दक्षिणाका स्वर्ण विनादिये मैं भोजन नहीं करूंगा. यही मेरी प्रतिज्ञा जानिये. अतएव हे सुव्रत ! आप दक्षिणाके लिये विषाद त्याग कीजिये ॥ १ ॥ मैं सूर्यवंशीय क्षत्रिय महीपति हरिश्चन्द्र हूं विशेषकर जबसे मैं ने राजसूय यज्ञसम्पादन किया है तबसे जो मनुष्य मेरे निकट जिसकी प्रार्थनाकरता है मैं उसको वही देता हूं ॥ २ ॥ अतएव हे प्रभो ! मैं अपनी इच्छानुसार दान करके उसकी दक्षिणा न दूं यह किसप्रकार सम्भव होसक्ता है ? हे द्विजसत्तम ! मैं अवश्यही ऋण चुकादूंगा ॥ ३ ॥ आपकी इच्छानुसार स्वर्ण अवश्यही दूंगा.

एवंब्रुवंतंगाधेयंहरिश्चंद्रोमहीपतिः॥प्रणिपत्यसुदीनात्माकृतांजलिपुटोऽब्रवीत्॥६३॥इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेएकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ अदत्वातेहिरण्यंवैनकरिष्यामिभोजनम् ॥ प्रतिज्ञामेमुनिश्रेष्ठविषादंत्यजसुव्रत ॥ १ ॥ सूर्यवंशसमुद्भूतःक्षत्रियोऽहंमहीपतिः॥राजसूयस्ययज्ञस्यकर्तावांछितदोनृषु ॥ २ ॥ कथंकरोमिनाकारंस्वामिन्दत्त्वायदृच्छया ॥ अवश्यमेवदातव्यमृणंमेद्विजसत्तम ॥ ३ ॥ स्वस्थोभवप्रदास्यामिसुवर्णमनसेप्सितम् ॥ कंचित्कालंप्रतीक्षस्वयावत्प्राप्स्याम्यहंधनम् ॥ ४ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ कुतस्तेभविताराजन्धनप्राप्तिरतःपरम् ॥ गतंराज्यंतथाकोशोबलंचैवाऽर्थसाधनम् ॥ ५ ॥ वृथाऽऽशातेमहीपालधनार्थेकिंकरोम्यहम् ॥ निर्धनंत्वांचलोभेनपीडयामिकथंनृप ॥ ६ ॥ तस्मात्कथयभूपालनदास्यामीतिसांप्रतम् ॥ त्यक्त्वाऽऽशांमहतींकामंगच्छाम्यहमतःपरम् ॥ ७ ॥ यथेष्टंव्रजराजेन्द्रभार्यापुत्रसमन्वितः ॥ सुवर्णंनास्तिकिंतुभ्यंददामीतिवदाधुना ॥ ८ ॥

अतएव आप सावधान हूजिये किन्तु आप एक महीनेतक प्रतीक्षा कीजिये तो मैं धनप्राप्त करके आपको देसकूंगा ॥ ४ ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! राज्य कोष और बल इनसेही धनका आगमन होता है आपसे वह सम्पूर्ण गया इसकारण फिर आपको धन कहाँसे प्राप्त होगा ? ॥ ५ ॥ हे महीपाल ! धनकी आशा करना आपको वृथा है इस समय मैं क्या करूं ? आप निर्धन हैं अतएव मैं लोभके वशीभूतहो आपको किसप्रकार पीड़ित करूं ? ॥ ६ ॥ हे भूपाल ! आप "धन नहीं देसक्ता" यह बात कहें तो मैं इस महती आशाको छोड़कर इच्छानुसार जाऊं ॥७॥ और आपभी "मेरे पास कुछ स्वर्ण नहीं है मैं आपको इससमय क्या दूं" यह बात

कहकर भार्या और पुत्रके सहित इच्छानुसार जाइये ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! भूपतिने गमन कालके समय मुनिवर विश्वामित्रके इसप्रकार वचन सुनकर कहा हे ब्रह्मन् ! आप धैर्य अवलम्बन कीजिये मैं आपको दक्षिणाका स्वर्ण दूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ९ ॥ हे द्विजवर ! भार्या पुत्र और मैं इन तीन जनोंकाही निरोग देह विद्यमान है सुतरां इनको बेंचकर अवश्यही आपका ऋण चुकाऊंगा ॥ १० ॥ हे विभो ! इस वाराणसी पुरीमें कोई ग्राहक विद्यमान है अथवा नहीं उसको ढूँढवाइये मैं इसी स्थानमें भार्या और पुत्रके सहित दासत्व स्वीकार करूंगा ॥ ११ ॥ हे मुने ! आप हम सबको बेच उस मूल्यसे ढाई भार सुवर्ण ग्रहणकर हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ १२ ॥ राजाने यह बात कह जिस स्थानमें शंकर प्रियतम उमाके सहित स्वयं स्थिति करते हैं उसी वाराणसी पुरीको भार्या और पुत्रके सहित प्रस्थान

व्यासउवाच ॥ गच्छन्वाक्यमिदंश्रुत्वाब्राह्मणस्यचभूपतिः ॥ प्रत्युवाचमुनिंब्रह्मन्धैर्यंकुरुददाम्यहम् ॥ ९ ॥ ममदेहोऽस्तिभार्यायाःपुत्रस्यचह्यनामयः ॥ क्रीत्वादेहंतुतंनूनमृणंदास्यामितेद्विज ॥ १० ॥ ग्राहकंपश्यविप्रेंद्रवाराणस्यांपुरिप्रभो ॥ दासभावंगमिष्यामिसदारोऽहंसपुत्रकः ॥ ॥ ११ ॥ गृहाणकांचनंपूर्णंसार्धभारद्वयंमुने ॥ मौल्येनदत्त्वासर्वान्नःसंतुष्टोभवभूधर ॥ १२ ॥ इतिब्रुवन्जगामाऽथसहपत्न्यासुतान्वितः ॥ उमयाकांतयासार्धंयत्राऽऽस्तेशंकरःस्वयम् ॥ १३ ॥ तांदृष्ट्वाचपुरींरम्यांमनसोह्लादकारिणीम् ॥ उवाचसकृतार्थोऽस्मिपुरींपश्यन्सुवर्चसम् ॥ १४ ॥ ततोभागीरथींप्राप्यस्नात्वादेवादितर्पणम् ॥ देवार्चनंचनिर्वर्त्यकृतवान्दिग्विलोकनम् ॥ १५ ॥ प्रविश्यवसुधापालोदिव्यांवाराणसींपुरीम् ॥ नैषामनुष्यभुक्तेतिशूलपाणेःपरिग्रहः ॥ १६ ॥ जगामपद्भ्यांदुःखार्तःसहपत्न्यासमाकुलः ॥ पुरींप्रविश्यसनृपोविश्वासमकरोत्तदा ॥ १७ ॥

किया ॥ १३ ॥ जिस पुरीके दर्शन करनेसे चित्तको आनन्द बढता है उस शोभायमान वाराणसी नगरीको देखकर राजाने कहा आज मैं कृतार्थ हुआ ॥ १४ ॥ अनन्तर भागीरथीके तटपर जाय उसी स्थानमें स्नान किया फिर देवता और पितरोंकातर्पण एवं अभीष्ट देवताकी पूजा सम्पादनकर जानेका मार्ग देखनेकी इच्छासे चारों ओर देखने लगे ॥ १५ ॥ भूपाल शोभायमान वाराणसी पुरीमें पहुँचकर मनमें विचार करने लगे कि, यह पुरी मनुष्यसे पालित नहीं है स्वयं शूलपाणि इसका पालन करते हैं अतएव इसमें वास करनेसे मेरा प्रदत्त राज्यमें वास करना नहीं होगा ॥ १६ ॥ तब नरपति दुःखसे अत्यन्त कातर और अति व्याकुल हो भार्या और पुत्रके सहित पैद

लही वाराणसी पुरीमें गये और नगरीमें प्रवेशकर उसमें विश्वास स्थापन किया॥ १७॥ इसी समय उन्होंने उन दक्षिणार्थी मुनिवरको देखा और उनको आता देख विनीत भावसे प्रणामकर ॥ १८ ॥ हाथ जोड़ उनसे कहा हे मुनिवर ! यह मेरी प्रियतम भार्या और यह मेरा पुत्र एवं यह मेरा जीवन वियमान हैं ॥ १९ ॥ हे द्विजवर ! इनमेंसे जिसके द्वारा आपका कार्य सम्पन्न हो उसकोही ग्रहण कीजिये अथवा अन्य जो कोई कार्य हमको करना होगा वह आप हमसे कहिये ॥ २० ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! आपने " मासके अन्तमें दक्षिणा दूंगा " यह कहकर प्रतिज्ञा की है किन्तु वह एक मास अब पूर्ण हुआ यदि आपको अपना वचन स्मरण हो तो मुझको दक्षिणा दीजिये ॥ २१ ॥ राजाने कहा हे ब्रह्मन् ! आप ज्ञानवान् और तपोबलयुक्त हैं अतएव आपके वचनमें मुझको द्विरुक्ति करना कभी उचित नहीं है

ददृशेऽथमुनिश्रेष्ठंब्राह्मणंदक्षिणार्थिनम् ॥ तंदृष्ट्वासमनुप्राप्तंविनयावनतोऽभवत् ॥ १८ ॥ प्राहचैवांजलिंकृत्वाहरिश्चंद्रोमहामुनिम् ॥ इमेप्राणाः सुतश्चाऽयंप्रियापत्नीमुनेमम ॥ १९ ॥ येनतेकृत्यमस्त्याशुगृहाणाऽद्यद्विजोत्तम ॥ यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाऽऽख्यातुमर्हसि ॥ २० ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ पूर्णःसमासोभद्रंतेदीयतांममदक्षिणा ॥ पूर्वंतस्यनिमित्तंहिस्मर्यतेस्ववचोयदि ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्नद्याऽपिसंपूर्णोमासोज्ञानतपोबल ॥ तिष्ठत्येकदिनार्धंयत्तत्प्रतीक्षस्वनाऽपरम् ॥ २२ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एवमस्तुमहाराजआगमिष्याम्यहंपुनः ॥ शापंतवप्रदास्यामिनचेदद्यप्रयच्छसि ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वाऽथययौविप्रोराजाचाऽचिंतयत्तदा ॥ कथमस्मैप्रयच्छामिदक्षिणायाप्रतिश्रुता ॥ २४ ॥ कुतःपुष्टानि मित्राणिकुत्राऽर्थःसांप्रतंमम ॥ प्रतिग्रहःप्रदुष्टोमेतत्रयाञ्चाकथंभवेत् ॥ २५ ॥ राज्ञांवृत्तित्रयंप्रोक्तंधर्मशास्त्रेषुनिश्चितम् ॥ यदिप्राणान्विमुंचामिह्यप्रदायचदक्षिणाम् ॥ २६ ॥

किन्तु अभी महीना पूर्ण नहीं हुआ आधा दिन अभी बाकी है आप उसीकी प्रतीक्षाकीजिये अब कल्ह विलम्ब न करूंगा ॥ २२ ॥ विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! यही हो मैं फिर आऊंगा यदि तबभी दक्षिणाका सुवर्ण न दिया तो मैं तुमको शाप दूंगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रके यह कहकर चलेजानेपर राजाभी मनमें चिन्ता करने लगे कि दक्षिणाके विषयमें जो प्रतिज्ञा की है वह इनको किस प्रकार दूंगा ॥ २४ ॥ इस काशीमें मेरे मित्रभी नहीं हैं जो उनसे धन लूं तो इस समय धन कहां पाऊं मैं क्षत्रिय हूं मुझको दान लेनाभी निषिद्ध है अतएव वह किसप्रकार करसक्ताहूं ॥ २५ ॥ धर्मशास्त्रके अनुसार यजन अध्ययन और दान यह तीन वृत्तिही राजा

ओंको विहित हैं और यदि ब्राह्मणको दक्षिणा न देकर प्राणत्यागकरूं ॥ २६ ॥ तो ब्राह्मणस्वहरणनिबन्धनके कारण पापी होकर कृमि हूंगा अथवा नीच होकर प्रेतयोनिको प्राप्त हूंगा अतएव इसकी अपेक्षा आत्म विक्रय करनाही मेरे पक्षमें श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! राजाको व्याकुल दीनभावसे नीचेको मुख किये चिन्ता करताहुआ देखकर उस स्त्रीने बाष्पगद्गद स्वरसे कहा॥ २८ ॥ हे महाराज ! आप चिन्ता त्यागकर सत्यरूप अपना धर्मपालन करो क्योंकि जो मनुष्य सत्य धर्मसे च्युत होते हैं वह प्रेतके समान वर्ज्जनीय हैं ॥ २९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! अपने सत्यका पालन करना ही पुरुषका धर्म है, इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है बुद्धिमानोंने यही कीर्त्तन किया है ॥ ३०॥ जिसका वचन असत्य होता है उसकी अग्निहोत्र अध्ययन और दानादि सम्पूर्ण क्रिया विफल होजाती हैं ॥ ३१ ॥ धर्मशास्त्रमें सत्य अत्यन्त प्रशंसनीय हैऔर वह सत्य ही पुण्यात्मा मनुष्योंको उद्धार करता है और असत्य पापिष्ठ मनुष्यको नरकमें डालता

ब्रह्मस्वहाकृमिःपापोभविष्याम्यधमाधमः ॥ अथवाप्रेततांयास्येवरएवाऽऽत्मविक्रयः ॥ २७ ॥ सूतउवाच ॥ राजानंव्याकुलंदीनंचिंतयानमधोमुखम् ॥ प्रत्युवाचतदापत्नीबाष्पगद्गदयागिरा ॥ २८॥ त्यजचिंतांमहाराजस्वधर्ममनुपालय ॥ प्रेतवद्वर्जनीयोहिनरःसत्यबहिष्कृतः ॥ २९ ॥ नातःपरतरंधर्मवदंतिपुरुषस्यच ॥ यादृशंपुरुषव्याघ्रस्वसत्यस्याऽनुपालनम् ॥३० ॥ अग्निहोत्रमधीतंचदानाद्याःसकलाःक्रियाः ॥ भवंतितस्यवैफल्यंवाक्यंयस्याऽनृतंभवेत् ॥ ३१ ॥ सत्यमत्यंतमुदितंधर्मशास्त्रेषुधीमताम् ॥ तारणायाऽनृतंतद्वत्पतनायाऽकृतात्मनाम् ॥ ३२ ॥ शताश्वमेधानाहृत्यराजसूयंचपार्थिवः ॥ कृत्वाराजासकृत्स्वर्गादसत्यवचनाच्च्युतः ॥३३॥राजोवाच ॥ वंशवृद्धिकरश्चाऽयंपुत्रस्तिष्ठतिबालकः॥उच्यतांवकुकामासियद्वाक्यंगजगामिनि ॥ ३४ ॥ पत्न्युवाच ॥ राजन्माभूदसत्यंतेपुंसांपुत्रफलाःस्त्रियः ॥ तन्मांप्रदायवित्तेनदेहिविप्रायदक्षिणाम् ॥ ३५॥ व्यासउवाच॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्ययया मोहंमहीपतिः ॥ प्रतिलभ्यचसंज्ञांवैविललापातिदुःखितः ॥ ३६॥ महद्दुःखमिदंभद्रेयत्त्वमेवंब्रवीषिमे ॥ किंतवस्मितसंलापाममपापस्यविस्मृताः ॥३७॥

है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ महीपति ययाति अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञकाअनुष्ठान करकेही स्वर्गको गये थे, किन्तु केवल एकवार मिथ्या बात कहनेसे स्वर्गसे च्युत हुए थे ॥ ३३ ॥ राजाने कहा हे गजगामिनि ! तुम दक्षिणा देनेकेलिये मुझको समझातीहो किन्तु मेरे पास कुछ नहीं है केवल भार्या और पुत्र शेष हैं उनमें पुत्र वंशको बढ़ानेवाला है इसकारण उसका प्रदानकरना शास्त्रमें निषिद्ध है और भार्याकोभी नहीं बेचना चाहिये किन्तु इस समय तुम जो कहनेकी इच्छाकरती हो वह कहो ॥ ३४ ॥ महिषीने कहा हे राजन् ! पुत्रके लियेही पुरुष स्त्रीपरिग्रह करते हैं मेरे पुत्र होजानेसे आपका वह प्रयोजन सिद्ध होगया. अतएव धनग्रहणपूर्वक मुझको बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा दीजिये तो आपका वचन मिथ्या नहीं होगा ॥ ३५॥ व्यासजीने कहा हेमहाराज! महीपति यह वचन सुनकर मोहको प्राप्त हुए फिर चैतन्य हो अत्यन्त दुःखित अन्तःकरणसे विलाप करनेलगे ॥ ३६ ॥ हे भद्रे ! तुमने जोमुझे ऐसे वचन कहे इनसे मुझको अत्यन्त दुःख उपस्थित हुआ है मैं क्या ऐसा पापिष्ठ

हूं कि तुम्हारे वह हास्ययुक्त सम्पूर्ण वचन एकवारही भूलगया ? ॥ ३७ ॥ हे शुचिस्मिते ! ऐसे वचन कहना तुमको उचित नहीं है. हे सुन्दरी ! यह न कहने योग्य वचन तुमने मुझसे किसप्रकार कहे ॥ ३८ ॥ यह कहकर वह नृपश्रेष्ठ स्त्रीके बेचनेकी बातसे अधीर और मूर्च्छासे अत्यन्त अभिभूत हो पृथ्वीपर गिरपड़े॥ ३९॥ जब महीपति मूर्च्छासे पृथ्वीपर गिरपड़े तब राजपत्नीने उनको देख अत्यन्त दुःखितहो अतिकरुणावचनद्वारा उनसे कहा ॥ ४० ॥ हे महाराज ! किसका बुरा विचार नेकी इच्छासे आपको यह दुर्घटना उपस्थित हुई. हाय ! आस्तरणमण्डित गृहमें शयन करना जिनको उचित है वह आज नीचके समान भूशय्यापर शयन कररहे हैं ॥ ४१ ॥ पूर्वमें जो पृथ्वीनाथ ब्राह्मणोंको करोड़ करोड़ मुद्रा दान करते थे आज मेरे पति वह भूपति पृथ्वीमें गिरपड़े हैं ॥ ४२ ॥ हाय ! क्या कष्ट है !

हाहात्वयाकथंयोग्यंवक्तुमेतच्छुचिस्मिते ॥ दुर्वाच्यमेतद्वचनंकथंवदसिभामिनि ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वानृपतिःश्रेष्ठोनधीरोदारविक्रये ॥ निपपातमहीपृष्ठे मूर्च्छयाऽतिपरिप्लुतः ॥ ३९ ॥ शयानंभुवितंदृष्ट्वामूर्च्छयाऽपिमहीपतिम् ॥ उवाचेदंसुकरुणंराजपुत्रीसुदुःखिता ॥ ४० ॥ हामहाराजकस्येदमपध्या नादुपागतम् ॥ यस्त्वंनिपतितोभूमौरंकवच्छरणोचितः ॥ ४१ ॥ येनैवकोटिशोवित्तंविप्राणामपवर्जितम् ॥ सएवपृथिवीनाथोभुविस्वपितिमेपतिः ॥ ॥ ४२ ॥ हाकष्टंकिंतवानेनकृतंदैवमहीक्षिता ॥ यदिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयंनीतःपापामिमांदशाम् ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वासाऽपिसुश्रोणीमूर्च्छितानिपपातह ॥ भर्तुर्दुःखमहाभारेणाऽसह्येनाऽतिपीडिता ॥ ४४ ॥ शिशुर्दृष्ट्वाक्षुधाविष्टःप्राहवाक्यंसुदुःखितः ॥ ताततातप्रदेह्यन्नंमातर्मेदेहिभोजनम् ॥ ४५ ॥ क्षुन्मेबलव तीजाताजिह्वाग्रेमेतिशुष्यति ॥ इतिश्रीदे०म०स०हरिश्चंद्रोपाख्यानेविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ एतस्मिन्नंतरेप्राप्तोविश्वामित्रोमहातपाः॥ अंतकेनस मःक्रुद्धोधनंस्वंयाचितुंहृदा ॥ १ ॥

हा देव ! इन महीपालने तुम्हारा क्या किया है जो इन्द्र और उपेन्द्रके समान राजाको इस दुरवस्थामें डाला है ॥ ४३ ॥ वह सुश्रोणी राजपत्नी यह बात कहकर अत्यन्त असह्य स्वामीके दुःखभारसे अतिसन्तप्त और मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़ी॥ ४४ ॥ तब शिशु राजपुत्र पिता और माताको मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर अत्यन्त दुःखित और क्षुधातुर हो हे पितः ! हे पितः ! मुझको अत्यन्त भूंख लगी है मुझको अन्न दीजिये ॥४५॥ हे मातः ! मेरी जिह्वा अत्यन्त सूखीजाती है मुझको भोजनकी सामग्री प्रदान करो यह कहकर वारंवार रोदन करनेलगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसी अवसरमें अत्यन्त तपःप्रभावयुक्त विश्वामित्र अपना धन माँगनेके लिये अन्तकके समान कुपित हो वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ १ ॥

राजा हरिश्चन्द्र उनको देखकर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़े तब विश्वामित्रने उनके अंगमें जल सिंचन करते करते कहा ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! जो मनुष्य ऋण जालमें बँधा है उसको दिन दिन कष्ट बढ़ता है अतएव आप उठकर अपनी अंगीकार कीहुई दक्षिणा दीजिये ॥ ३ ॥ यद्यपि राजा तुषारशीतलजलसिंचनसे चैतन्यताको प्राप्त हुए किन्तु विश्वामित्रको देखतेही ॥ ४ ॥ फिर मोहको प्राप्त हुए द्विजवर विश्वामित्र यह देखकर राजाको समझाय कोपके वशीभूत हो कहनेलगे ॥ ५ ॥ मुनिवर बोले हे महाराज ! यदि आप धैर्यके रक्षा करनेकी इच्छा करते हैं तो मुझको दक्षिणा दीजिये देखो सत्यके बलसेही सूर्य प्रकाशप्रदान करते हैं सत्यहीसे पृथ्वी स्थित है ॥ ६ ॥ अधिक क्या स्वर्ग भी सत्यमेंही प्रतिष्ठित रहता है. अतएव सत्यकोही परमधर्ममें विराजमान जानना चाहिये. सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल और सत्य यदि तराजूमें

तमालोक्यहरिश्चंद्रःपपातभुविमूर्च्छितः ॥ सवारिणातमभ्युक्ष्यराजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजेंद्रस्वांददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ऋणं धारयतांदुःखमहन्यहनिवर्धते ॥ ३ ॥ आप्यायमानःसतदाहिमशीतेनवारिणा ॥ अवाप्यचेतनांराजाविश्वामित्रमवेक्ष्यच ॥ ४ ॥ पुनर्मोहंसमापेदेह्यथक्रोधंययौमुनिः ॥ समाश्वास्यचराजानंवाक्यमाहद्विजोत्तमः ॥ ५ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ दीयतांदक्षिणासामेयदिधैर्यमवेक्षसे ॥ सत्येनाऽर्कःप्रतपतिसत्येतिष्ठतिमेदिनी ॥ ६ ॥ सत्येचोक्तःपरोधर्मःस्वर्गःसत्येप्रतिष्ठितः ॥ अश्वमेधसहस्रंतुसत्यंचतुलयाधृतम् ॥ ७ ॥ अश्वमेधसहस्राद्धिसत्यमेकंविशिष्यते ॥ अथवाकिंममैतेनप्रोक्तेनाऽस्तिप्रयोजनम् ॥ ८ ॥ मदीयांदक्षिणांराजन्नदास्यतिभवान्यदि॥अस्ताचलगतेह्यर्केशप्स्यामित्वामतोध्रुवम् ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वासययौविप्रोराजाचासीद्भयातुरः ॥ दुःखीभूतोऽवनेनिःस्वोनृशंसमुनिनार्दितः ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रब्राह्मणोवेदपारगः ॥ ब्राह्मणैर्बहुभिःसार्धंनिर्ययौस्वगृहाद्बहिः ॥ ११ ॥ ततोराज्ञीतुतंदृष्ट्वाआयांतंतापसंस्थितम् ॥ उवाचवाक्यंराजानंधर्मार्थसहितंतदा ॥ १२ ॥

रक्खा जाय ॥ ७ ॥ तो सहस्र अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा केवल सत्यहीका गुरुत्व अधिक होता है अथवा ऐसा कहनेका मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! यदि आप मुझको दक्षिणा न देंगे तो सूर्यास्त होनेपरही मैं तुमको शापदूंगा इसमें सन्देहनहीं ॥ ९ ॥ विश्वामित्र यह बात कहकर चलेगये और राजाभी अत्यन्त भयातुर हुए यद्यपि वह धनहीन नरपति विश्वामित्रके नृशंस वचनोंसे पीड़ित हुए किन्तु दक्षिणादेकर किसप्रकार सत्यकी रक्षा करें उसकी चिन्तासे कातर हुए ॥ १० ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! इसी समय कोई वेदपारग ब्राह्मणोंके सहित अपने गृहसे उस स्थानमें आया ॥ ११ ॥ तब रानी उस समागत तपस्वीको समीप देखकर राजासे

धर्म और अर्थ संगत वचन कहनेलगी ॥ १२ ॥ हे स्वामिन् ! ब्राह्मण अपर तीनवर्णोंके पिता कहेगये हैं. अतएव पिताका द्रव्य पुत्र अवश्य ग्रहणकरसक्ता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ इसलिये मेरा अभिप्राय यह है कि, आप इस ब्राह्मणसे धन माँगिये राजाने कहा हे सुमध्यमे ! मैं क्षत्रिय हूं इससे प्रतिग्रह न करूंगा ॥ १४ ॥ हे कृशोदरि ! माँगना ब्राह्मणोंके पक्षमें विहित है क्षत्रियोंके पक्षमें वह निषिद्ध है ब्राह्मणसम्पूर्ण वर्णोंके गुरु हैं सुतरां सर्वदाही पूजनीय हैं ॥ १५ ॥ अतएव गुरुसे माँगना नहीं चाहिये. विशेषकर क्षत्रियोंके पक्षमें वह अत्यन्त निषिद्ध है यद्यपि यजन अध्ययन, दान ॥ १६ ॥ प्रजापालन और शरणागतकी रक्षा करनाही क्षत्रियोंका परम धर्म है किन्तु "दो दो" यह दीनवचन क्षत्रियोंके पक्षमें कभी उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हे देवि ! मेरे हृदयमें "देताहूं" यह वचन सदा विद्यमान रहता है

त्रयाणामपिवर्णानांपिताब्राह्मणउच्यते ॥ पितृद्रव्यंहिपुत्रेणग्रहीतव्यंनसंशयः ॥ १३ ॥ तस्मादयंप्रार्थनीयोधनार्थमितिमेमतिः ॥ राजोवाच ॥ नाऽहंप्रतिग्रहंकांक्षेक्षत्रियोऽहंसुमध्यमे ॥ १४ ॥ याचनंखलुविप्राणांक्षत्रियाणांनविद्यते ॥ गुरुर्हिविप्रोवर्णानांपूजनीयोऽस्तिसर्वदा ॥ १५ ॥ तस्माद्गुरुर्न याच्यःस्यात्क्षत्रियाणांविशेषतः ॥ यजनाध्ययनंदानंक्षत्रियस्यविधीयते ॥ १६ ॥ शरणागतानामभयंप्रजानांप्रतिपालनम् ॥ नचाऽप्येवंतुवक्तव्यं देहीतिकृपणंवचः ॥ १७ ॥ ददामीत्येवमेदेविहृदयेनिहितंवचः ॥ अर्जितंकुत्रचिद्द्रव्यंब्राह्मणायददाम्यहम् ॥ १८ ॥ पत्न्युवाच ॥ कालःसमविषम करःपरिभवसन्मानमानदःकालः ॥ कालःकरोतिपुरुषंदातारंयाचितारंच ॥ १९ ॥ विप्रेणविदुषाराजाक्रुद्धेनाऽतिवलीयसा ॥ राज्यान्निरस्तःसौख्याच्चप इयकालस्यचेष्टितम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ असिनातीक्ष्णधारेणवरंजिह्वाद्विधाकृता ॥ नतुमानंपरित्यज्यदेहिदेहीतिभाषितम् ॥ २१ ॥ क्षत्रियोऽहंमहा भागेनयाचेकिंचिदप्यहम् ॥ ददामिवाऽहंनित्यंहिभुजवीर्यार्जितंधनम् ॥ २२ ॥

अतएव मैं अन्य किसी स्थानसे धन उपार्जन करके ब्राह्मणको दूंगा ॥ १८ ॥ रानीने कहा हे महाराज ! काल किसीको समान अवस्थामें रखता है, अथवा किसीको विषम अवस्थामें पतित करता है कालही मान और अपमान देता है यह कालही फिर मनुष्योंको दाता और कभी याचक कर देता है ॥ १९ ॥ देखो अत्यन्त तपोवलयुक्त विश्वामित्र मुनिने सुपंडित होकर भी कुपित हो आपको राज्यच्युत और सुखभ्रष्ट कर परपीड़ाकरणस्वरूप धर्मवहिर्भूत कार्य किया है, इससेही आप कालका कार्य अवलोकन कीजिये ॥ २० ॥ राजाने कहा चाहै तीक्ष्णधारवाली असिसे जिह्वाके दो खण्ड करडालूं तथापि क्षत्रियाभिमान त्यागकर "दो दो" यह बात कभी नहीं कहसक्ता ॥ २१ ॥ हे महाभागे ! मैं क्षत्रिय हूं सुतरां किञ्चित्मात्रभी याचना नहीं करूंगा. वरन अपने बाहुबलसे धनउपार्जन करके दूंगा यही बात मैं

सदा करूंगा ॥ २२ ॥ रानीने कहा हे महाराज ! इन्द्रादि देवताओंने न्यायके अनुसार मुझको आपके हाथमें समर्पण किया है सुतरां मैं आपकी धर्मपत्नी हूं विशेषकर शिक्षणीय और रक्षणीय हूं अतएव हे महाद्युते ! यदि मांगनेमें आपकी इच्छा नहो तो मुझको बेचकर गुरुका धन दीजिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ महीपति हरिश्चन्द्र इन वचनोंके सुननेसे अत्यन्त दुःखित हो हा कष्ट ! हा कष्ट ! ऐसा कहकरविलाप करने लगे ॥ २५ ॥ उनकी भार्याने फिर कहा हे राजन् ! इसके उपरान्त विप्रकी शापरूपी अग्निमें दग्ध होकर नीचत्वको प्राप्त होगे अतएव इस समय मेरा वचन प्रतिपालन करो ॥ २६ ॥ आप द्यूतक्रीड़ामें मुग्ध अथवा मदसे मत्त वा भोगोंकी इच्छासे ज्ञानशून्य होकर अथवा राज्यकी विपदके कारण मुझको नहीं बेचते हो मुझको बेचकर गुरुको धन देते हो इसमें कुछ दोष वा पाप नहीं होसक्ता

पत्न्युवाच ॥ यदितेहिमहाराजयाचितुंनक्षमंमनः ॥ अहंतुन्यायतोदत्तादेवैरपिसवासवैः ॥ २३ ॥ अहंशास्याचपत्याचरक्ष्याचैवमहाद्युते ॥ मन्मौल्यं संगृहीत्वाथगुर्वर्थःसंप्रदीयताम् ॥ २४ ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्यहरिश्चंद्रोमहीपतिः ॥ कष्टंकष्टमितिप्रोच्यविललापाऽतिदुःखितः ॥ २५ ॥ भार्याचभूयःप्राहेदंक्रियतांवचनंमम ॥ विप्रशापाग्निदग्धत्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥ २६ ॥ नद्यूतहेतोर्नचमद्यहेतोर्नराज्यहेतोर्नचभोगहेतोः ॥ ददस्वगुर्वर्थमतोमयात्वं सत्यव्रतत्वंसफलंकुरुष्व ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हरिश्चंद्रोपाख्यानेएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ छ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ सतयानोद्यमानस्तुराजापत्न्यापुनःपुनः ॥ प्राहभद्रेकरोम्येषविक्रयंतेसुनिर्घृणः ॥ १ ॥ नृशंसैरपियत्कर्तुंनशक्यंतत्करोम्यहम् ॥ यदितेभ्राजतेवाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम् ॥ २ ॥ एवमुक्त्वाततोराजागत्वानगरमातुरः ॥ अवतार्यतदारंगतांभार्यांनृपसत्तमः ॥ ३ ॥ बाष्पगद्गदकंठस्तुततोवचनमब्रवीत् ॥ भोभोनागरिकाःसर्वेशृणुध्वंवचनंमम ॥ ४ ॥

अतएव आप मुझको बेचकर अपने सत्यव्रतकी सफलता सम्पादन कीजिये ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजपत्नी माधवीके राजा हरिश्चन्द्रको वारंवार अनुरोध करनेपर उन्होंने कहा हे भद्रे ! इस अवस्थामें निर्दय होकर तुमको बेचूंगा ॥ १ ॥ तुम्हीं ऐसे अति निष्ठुर वचन मुक्तकण्ठसे उच्चारण करनेमें कुण्ठित नहीं होती तो नृशंसभी जिसके करनेमें समर्थ नहीं होसक्ते मैं वही कर्म करूंगा ॥ २ ॥ यह बात कहतेही राजा अत्यन्त कातर हो पत्नीके सहित नगरमें गये इसके उपरान्त राजा हरिश्चन्द्र उस भार्याको राजमार्गमें खडीकर ॥ ३ ॥ बाष्पगद्गद कण्ठसे

कहने लगे हे नगरनिवासियो ! तुम सम्पूर्ण हमारा वचन सुनो ॥ ४ ॥ किसीको क्या दासीका प्रयोजन है ? यह रमणी मेरे प्राणोंके अपेक्षा भी प्रिय है इसका मूल्य मैं जो कहता हूं इसके देनेको जिसकी सामर्थ्य हो तो वह उसको शीघ्र कहे ॥ ५ ॥ तब पंडितोंने कहा तुम कौन हो किसकारण अपनी स्त्रीको बेचनेके लिये इस स्थानमें आए हो राजाने कहा आप क्या हमारा परिचय पूँछते हैं ? तो सुनिये मैं नृशंस और मनुष्य कहनेके योग्य नहीं हूं ॥ ६ ॥ अथवा मैं राक्षस हूं अधिक क्या इसकी अपेक्षा भी कठिन हूं क्योंकि मैं ऐसे पापकार्यके करनेमें प्रवृत्तहूं व्यासजीने कहा हे महाराज ! विप्ररूपधारी कौशिक यह शब्द सुनतेही सहसा ॥ ७ ॥ वृद्धरूप धारणकर हरिश्चन्द्रसे कहनेलगे मैं अतुल ऐश्वर्यका अधिपति हूं सुतरां तुम्हारी इच्छानुसार धनदेनेमें समर्थ हूं अतएव मैं धनसे दासीको मोल लेनेके लिये प्रस्तुत हूं तुम मुझको दासी दो मेरी भार्या अत्यन्त सुकुमारी है वह घरका कार्य नहीं करसक्ती अतएव मुझको

कस्यचिद्यदिकार्यंस्याद्दास्याप्राणेष्टयाममः ॥ सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्स्वंधारयाम्यहम् ॥५॥ तेब्रुवन्पंडिताःकस्त्वंपत्नींविक्रेतुमागतः॥ राजोवाच ॥ किंमां पृच्छथकस्त्वंभोनृशंसोऽहममानुषः ॥६॥ राक्षसोवाऽस्मिकठिनस्ततःपापंकरोम्यहम् ॥ व्यासउवाच ॥ तंशब्दंसहसाश्रुत्वाकौशिकोविप्ररूपधृक् ॥७॥ वृद्धरूपंसमास्थायहरिश्चंद्रमभाषत ॥ समर्पयस्वमेदासीमहंक्रेताधनप्रदः ॥ ८ ॥ अस्तिमेवित्तमतुलंसुकुमारीचमेप्रिया ॥ गृहकर्मनशक्नोतिकर्तुमस्मा त्प्रयच्छमे ॥ ९ ॥ अहंगृह्णामिदासींतुकतिदास्यामितेधनम् ॥ एवमुक्तेतुविप्रेणहरिश्चंद्रस्यभूपतेः ॥ १० ॥ विदीर्णंतुमनोदुःखान्नचैनंकिंचिदब्रवीत् ॥ विप्रउवाच ॥ कर्मणश्चवयोरूपशीलानांतवयोषितः ॥ ११ ॥ अनुरूपमिदंवित्तंगृहाणाऽर्पयमेऽबलाम् ॥ धर्मशास्त्रेषुयद्दृष्टंस्त्रियोमौल्यंनरस्यच ॥१२॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतादक्षाशीलगुणान्विता ॥ कोटिमौल्यंसुवर्णस्यास्त्रियःपुंसस्तथार्बुदम् ॥१३॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यहरिश्चंद्रोमहीपतिः॥ दुःखेनमहताविष्टोनचैनंकिंचिदब्रवीत् ॥ १४ ॥ ततःसविप्रोनृपतेःपुरतोवल्कलोपरि ॥ धनंनिधायकेशेषुधृत्वाराज्ञीमकर्षयत् ॥ १५ ॥

यह दासी दो ॥ ८ ॥ ९ ॥ किन्तु तुमको कितना मूल्य देना होगा सो कहो विप्रके यह बात कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका ॥ १० ॥ हृदय दुःखसे विदीर्ण होगया इससे वह उससे कुछ न कहसके विप्रने कहा तुम अपनी भार्याकी वयस् रूप गुण और कर्मके ॥ ११ ॥ अनुसार धन ग्रहणकर इस अबलाको मेरे करमें समर्पण करो स्त्री और पुरुषके मूल्यका विषय शास्त्रमें जिसप्रकार देखा है ॥ १२ ॥ वह सुनो जो स्त्री कार्यमें निपुण सत्यस्वभाव गुणयुक्त और बत्तीस शुभलक्षणोंसे भूषित है उसका मूल्य करोड़ स्वर्णमुद्रा है और पुरुष ऐसा गुणयुक्त होनेसे उसका मूल्य अर्बुद (अरब) स्वर्णमुद्रा है ॥ १३ ॥ उस ब्राह्मणके ऐसे वचन सुनकर महीपति हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखित हुए और उससे कुछ न कहसके ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त वह ब्राह्मण नरपति हरिश्चन्द्रके सन्मुख वल्कलके ऊपर धन रखकर रानीके

केशपाशग्रहणपूर्वक खेंचने लगा ॥ १५ ॥ रानीने कहा हे आर्य ! मैं एक वार पुत्रका मुखकमल देख लूं इससे मुझको एकवार छोड़दीजिये. हे विप्र ! आप विचारकर देखिये कि, फिर इसका दर्शन मुझको दुर्लभ होगा ॥ १६ ॥ हे पुत्र ! देखो तुम्हारी माता इस समय दासी भावको प्राप्त हुई है अतएव हे राजपुत्र ! तुम अब मुझको स्पर्श मत करो अब मैं तुम्हारे स्पर्शके योग्य नहीं हूं ॥ १७ ॥ तब माताको बालक सहसा आकर्षणकरता हुआ देखकर मा ! मा ! ऐसा कहकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसके पीछे पीछे दौडा ॥ १८ ॥ वह काकपक्षधारी बालक पद पदपर गिरने लगा तो भी दोनों हाथोंसे माताके वस्त्र खैंचकर उसके संग संग जाने लगा. तब वह ब्राह्मण बालकका इसप्रकार कार्य देखकर क्रोधसे अधीर हो उसको प्रहार करने लगा ॥ १९ ॥ तथापि बालक मा ! मा ! कहकर रोदन करने लगा

राज्ञ्युवाच ॥ मुंचमुंचाऽऽर्यमांसद्योयावत्पश्याम्यहंसुतम् ॥ दुर्लभंदर्शनंविप्रपुनरस्यभविष्यति ॥ १६ ॥ पश्येहपुत्रमामेवंमातरंदास्यतांगताम् ॥ मांमास्प्राक्षीराजपुत्रनस्पृश्याऽहंत्वयाऽधुना ॥ १७ ॥ ततःसबालःसहसादृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ॥ समभ्यधावदंबेतिवदन्साश्रुविलोचनः ॥ १८ ॥ हस्तेवस्त्रं समाकर्षन्काकपक्षधरःस्खलन् ॥ तमागतंद्विजःक्रोधाद्बालमभ्याहनत्तदा ॥ १९ ॥ वदंस्तथापिसोंबेतिनैवमुंचतिमातरम् ॥ राज्ञ्युवाच ॥ प्रसादंकुरुमे नाथक्रीणीष्वेमंहिबालकम् ॥ २० ॥ क्रीताऽपिनाऽहंभविताविनैनंकार्यसाधिका ॥ इत्थंममाऽल्पभाग्यायाःप्रसादंकुरुमेप्रभो ॥ २१ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ गृह्यतांवित्तमेतत्तेदीयतांममबालकः ॥ स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैःकृतमेवहिवेतनम् ॥ २२ ॥ शतंसहस्रंलक्षंचकोटिमौल्यंतथापरैः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतादक्षाशीलगुणान्विता ॥ २३ ॥

किसीप्रकार माताको न छोडा. रानीने कहा हे प्रभो ! आप मेरेप्रति कृपाप्रकाश करके इस बालकको क्रय कीजिये ॥ २० ॥ यद्यपि आपने मुझको क्रय किया है किन्तु इस बालकके विना मैं आपका कार्य करनेमें समर्थ नहीं हूंगी. मेरा भाग्य अत्यन्त मन्द है इससेही यह दुर्दशा उपस्थित हुई है अतएव हे प्रभो ! आप मेरे प्रति इस प्रकार अनुग्रहप्रकाश कीजिये ॥ २१ ॥ ब्राह्मणने कहा यह मुद्रा लेकर मुझको बालक प्रदान करो क्योंकि धर्मशास्त्रकुशल पंडितोंने स्त्री और पुरुषका जिसप्रकार मूल्य स्थिर किया है ॥ २२ ॥ अन्यान्य पंडितोंने भी गुणोंके तारतम्यअनुसार शत सहस्र लक्ष और करोड इत्यादि मूलका भी प्रभेद किया है किन्तु जो

स्त्री कार्यमें निपुण सुशील और गुणयुक्त एवं जिसके सम्पूर्ण शरीरमें बत्तीस शुभ लक्षण विराजमान हों ॥ २३ ॥ उस ललनाका मूल्य करोड स्वर्णमुद्रा है और जिस पुरुषके यह सम्पूर्ण शुभलक्षण और गुण विद्यमान हैं उसका मूल्य अर्बुद (अरब) स्वर्ण मुद्रा है सूतजीने कहा हे राजन् ! बालकका जो मूल्य स्थिर हुआ ब्राह्मणने वह स्वर्णमुद्रा पहलेके समान राजाके सन्मुख स्थितवल्कलपर पुनर्वार रखदी ॥ २४ ॥ और बालकको ले उसके सहित एकत्र बांध लिया तब वह ब्राह्मण आनन्दित हो उनको संग ले शीघ्र घरको गया ॥ २५ ॥ जानेके समय रानीने प्रदक्षिणाकर जानु टेककर राजाको प्रणाम किया और उसी अवस्थामें उठकर नेत्रोंके आंसुओंमें डूब दीनभाव होकर राजासे बोली ॥ २६ ॥ यदि जो मैंने कभी दानकिया है. यदि कभी अग्निमें आहुतिप्रदान की है. यदि कभी

कोटिमौल्यंस्त्रियःप्रोक्तंपुरुषस्यतथाऽर्बुदम् ॥ सूतउवाच ॥ तथैवतस्यतद्वित्तंपुरःक्षिप्तंपटेपुनः॥२४॥प्रगृह्यबालकंमात्रासहैकस्थमबंधयत् ॥ प्रतस्थेसगृहंक्षिप्रंतयासहमुदान्वितः ॥ २५ ॥ प्रदक्षिणांतुसाकृत्वाजानुभ्यांप्रणतास्थिता ॥ बाष्पपर्याकुलादीनातिवदंवचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ यदिदत्तंयदिहुतं ब्राह्मणास्तर्पितायदि ॥ तेनपुण्येनमेभर्ताहरिश्चंद्रोऽस्तुवैपुनः ॥ २७ ॥ पादयोःपतितांदृष्ट्वाप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ हाहेतिचवदन्राजाविललापाऽऽकुलेंद्रियः ॥ २८ ॥ वियुक्तेयंकथंजातासत्यशीलगुणान्विता ॥ वृक्षच्छायाऽपिवृक्षंतंनजहातिकदाचन ॥२९॥ एवंभार्यांवदित्वाऽथसुसंबद्धंपरस्परम् ॥ पुत्रंचतमुवाचेदंमांत्वंहित्वाक्वयास्यसि ॥ ३० ॥ कांदिशंप्रतियास्यामिकोमेदुःखंनिवारयेत् ॥ राज्यत्यागेनमेदुःखंवनवासेनमेद्विज ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणको सन्तुष्ट किया है तो उसी पुण्यके बलसे राजा हरिश्चंद्र पुनर्वार मेरे भर्ता हों ॥ २७ ॥ अपने प्राणोंकी अपेक्षा प्यारी भार्याको पैरोंमें पड़ी हुई देखकर राजा व्याकुल हो हाय ! हाय ! इसप्रकार कहकर विलाप करनेलगे ॥ २८ ॥ वृक्षकी छाया कभी उस वृक्षको नहीं छोड़ती परन्तु तुम यथार्थ ही सुशील और गुणयुक्त होकरभी क्यों मुझसे अलग हुई ॥ २९ ॥ भार्याके साथ इसप्रकारसे परस्पर सुसम्बन्ध बातचीत कर पुत्रसे कहा हे वत्स ! तुम मुझको छोड़कर कहां जावोगे ? ॥ ॥ ३० ॥ मैं इससमय कहांजाऊं अथवा कौन मेरा दुःख दूर करैगा फिर राजाने उस ब्राह्मणसे कहा कि, हे द्विजवर ! पुत्रके वियोगसे मुझे जिसप्रकारका दुःख उपस्थित हुआ है राज्यत्याग अथवा वनवासमें मुझे ऐसा दुःख उपस्थित नहीं हुआ इस लोकमें स्वामि साधुस्वभाव होनेसेही भार्याका सर्वदा सुखसे भरण पोषण

१ स्त्रियोंके ३२ लक्षण विराटपर्वमें और पुरुषके ३२ लक्षण काशीखण्डमें लिखे हैं.

करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ किन्तु हे कल्याणि ! मैं तुम्हारे प्रति ऐसा कुपित हूं कि, तुमको छोड़कर दुःखसागरमें डालदिया, मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्नहोकर समस्त राज्यसुखका आस्पद हुआ था ॥ ३३ ॥ परन्तु हाय ! तुम ऐसे पतिको प्राप्तकरकेभी इससमय दासी भावको प्राप्तहुईं ! हे देवि ! मैं ऐसे विशाल शोकसागरमें निमग्न हुआ हूं कि, ॥ ३४ ॥ अनेक प्रकारसे पुराणोंके आख्यान कहकर कौन मुझको छुड़ावेगा. सूतजीने कहा हे राजन् ! वह ब्राह्मण उन राजाके सन्मुखही देवीको दारुण कशाघात ॥ ३५ ॥ करते २ ले जानेलगा, वह भूपाल भार्या और पुत्रको ऐसी अवस्थामें ले जाताहुआ देखकर ॥ ३६ ॥ दुःखसे अत्यन्त कातर हुए और वारंवार लंबे श्वास लेतेहुए विलाप करते २ कहने लगे हाय ! पहले जिसको चंद्र, सूर्य, वायु अथवा अन्य किसीने नहीं देखा ॥ ३७ ॥ मेरी वही प्रियतमा आज दीनभावको

यत्पुत्रेणवियोगोमेएवमाहसभूपतिः ॥ सद्भर्तृभोग्याहिसदालोकेभार्याभवंतिहि ॥ ३२ ॥ मयात्यक्ताऽसिकल्याणिदुःखेनविनियोजिता ॥ इक्ष्वाकुवंशसंभूतंसर्वराज्यसुखोचितम् ॥ ३३ ॥ मामीदृशंपतिंप्राप्यदासीभावंगताह्यसि ॥ ईदृशेमज्जमानंमांसुमहच्छोकसागरे ॥ ३४ ॥ कोमामुद्धरतेदेविपौराणाख्यानविस्तरैः ॥ सूतउवाच ॥ पश्यतस्तस्यराजर्षेःकशाघातैःसुदारुणैः ॥ ३५ ॥ घातयित्वातुविप्रेशोनेतुंसमुपचक्रमे ॥ नीयमानौतुतौदृष्ट्वाभार्यापुत्रौसपार्थिवः ॥ ३६ ॥ विललापाऽतिदुःखार्तोनिश्वस्योष्णंपुनःपुनः ॥ यांनवायुर्नवाऽऽदित्योनचंद्रोनपृथग्जनाः ॥ ३७ ॥ दृष्टवंतःपुरापत्नीसेयंदासीत्वमागता ॥ सूर्यवंशप्रसूतोऽयंसुकुमारकरांगुलिः ॥ ३८ ॥ संप्राप्तोविक्रयंबालोधिङ्मामस्तुसुदुर्मतिम् ॥ हाप्रियेहाशिशोवत्सममाऽनार्यस्यदुर्नयः ॥ ३९ ॥ दैवाधीनदशांप्राप्तोनमृतोऽस्मितथापिधिक् ॥ व्यासउवाच ॥ एवंविलपतोराज्ञोऽग्रेविप्रोंतरधीयत ॥ ४० ॥ वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादायत्वरान्वितः ॥ अत्रांतरेमुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाममहातपाः ॥ ४१ ॥ सशिष्यःकौशिकेंद्रोऽसौनिष्ठुरःक्रूरदर्शनः ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यात्वयोक्तापुराराजन्राजसूयस्यदक्षिणा ॥४२॥ तांददस्वमहाबाहोयदिसत्यंपुरस्कृतम् ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ नमस्करोमिराजर्षेगृहाणेमांस्वदक्षिणाम् ॥४३॥

प्राप्त हुई. हाय ! बालकके हाथकी उँगली सभी कैसी सुकुमार हैं हाय ! वह कुमारसूर्यवंशमें जन्म ग्रहण कर ॥ ३८ ॥ बेचागया ! अहो मेरी दुर्मतीको धिक्कार है हा प्रिये ! हा बालक रोहिताश्व ! इस अनार्यकी दुर्नीतिसे तुम्हारी यह दुर्गति हुई ॥ ३९ ॥ मैं दैवकी विड़म्बनासे इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ परन्तु तौ भी मेरी मृत्यु नहीं हुई ? मुझको धिक्कार है. व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा इस प्रकार विलाप करनेलगे इसी समय वह ब्राह्मण ॥ ४० ॥ उनको लेकर अत्यन्त ऊंचे वृक्ष और अट्टालिका (अटारी) के द्वारा राजाकी दृष्टिसे अन्तर्धान होगया, इसी समय मुनिवर महातपा कौशिकश्रेष्ठ आये ॥ ४१ ॥ अपने शिष्योंको साथ ले अत्यन्त शीघ्र निष्ठुर क्रूर दर्शन ऋषि वहां आये विश्वामित्रने कहा हे महाबाहो ! जो आपने पहले राजसूयकी दक्षिणा कही है ॥ ४२ ॥ यदि सत्यका सन्मान करना

आपका कर्त्तव्य है तो हे राजन्! आप इस समय वह मुझको दीजिये. हरिश्चंद्रने कहा कि, हे राजर्षे! मैं आपको प्रणाम करताहूं हे अनघ! ॥ ४३ ॥ पहले राजसूय यज्ञकी जो दक्षिणा देनेको स्वीकार किया था आप वही दक्षिणा लीजिये। विश्वामित्रनेकहा हे राजेन्द्र! आप दक्षिणाके लिये जो स्वर्णमुद्रा देते हैं वह कहांसे संग्रह की?॥ ॥ ४४ ॥ यह अर्थ जिसप्रकार उपार्जन किया है वह मुझसे कहो? राजाने कहा हे महाभाग! हे अनघ! इसके कहनेसे क्या है ॥ ४५ ॥ हे विप्र! इसके कथनसे मेरा शोक बढ़ता है विश्वामित्रने कहा हे राजन्! अन्यायपूर्वक उपार्जित धन मैं ग्रहण नहीं करूंगा यदि यह धन न्यायके अनुसार उपार्जित हुआ है तो वह मुझको प्रदान कीजिये ॥ ४६ ॥ किन्तु पहले धनके आनेका विषय मुझसे भलीभाँति कहिये इसके उपरान्त वह मुझको दो. हरिश्चंद्रने कहा हे विप्र! अपनी भार्या देवी माधवीको

राजसूयस्ययागस्ययामयोक्तापुराऽनघ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ कुतोलब्धमिदंद्रव्यंदक्षिणार्थेप्रदीयते ॥ ४४ ॥ एतदाचक्ष्वराजेंद्रयथाद्रव्यंत्वया र्जितम् ॥ राजोवाच ॥ किमनेनमहाभागकथितेनतवाऽनघ ॥ ४५ ॥ शोकस्तुवर्धतेविप्रश्रुतेनानेनसुव्रत ॥ ऋषिरुवाच ॥ अशस्तंनैवगृह्णामिशस्तमे वप्रयच्छमे ॥ ४६ ॥ द्रव्यस्याऽऽगमनंराजन्कथयस्वयथातथम् ॥ राजोवाच ॥ मयादेवीतुसाभार्याविक्रीताकोटिसम्मितैः ॥ ४७ ॥ निष्कैःपुत्रोरोहि ताख्योविक्रीतोर्बुदसंख्यया ॥ विप्रैकादशकोट्यस्त्वंसुवर्णस्यगृहाणमे ॥ ४८ ॥ सूतउवाच ॥ तद्वित्तंस्वल्पमालक्ष्यदारविक्रयसंभवम् ॥ शोकाभिभूतं राजानंकुपितःकौशिकोऽब्रवीत् ॥ ४९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ राजसूयस्ययज्ञस्यनैषाभवतिदक्षिणा ॥ अन्यदुत्पादयक्षिप्रंसंपूर्णायेनसाभवेत् ॥ ५० ॥ क्षत्रबंधोममेमांत्वंसदृशींयदिदक्षिणाम् ॥ मन्यसेतर्हितत्क्षिप्रंपश्यत्वंमेपरंबलम् ॥ ५१ ॥ तपसोऽस्यसुतप्तस्यब्राह्मणस्याऽमलस्यच ॥ मत्प्रभावस्य चोग्रस्यशुद्धस्याऽध्ययनस्यच ॥५२॥ राजोवाच ॥ अन्यद्दास्यामिभगवन्कालःकश्चित्प्रतीक्ष्यताम्॥ अधुनैवाऽस्तिविक्रीतापत्नीपुत्रश्चबालकः ॥५३॥

करोड़ स्वर्ण मुद्रामें बेचा है ॥ ४७ ॥ और पुत्र रोहितको दशकरोड़ स्वर्णमुद्रामें बेचा है अतएव यह ग्यारहकरोड़ सुवर्णमुद्रा आप मुझसे लीजिये ॥ ४८ ॥ सूतजीने कहा भार्या और पुत्रको बेचकर जो धन संचित किया था वह धन अत्यन्त सामान्य था और राजाकोभी शोकसे अत्यन्त अभिभूत देखकर कौशिक रोषयुक्त हो कहने लगे ॥ ४९ ॥ हे राजन्! राजसूययज्ञकी दक्षिणा इतनी सामान्य नहीं होसक्ती अतएव जिससे वह दक्षिणा पूर्ण हो उसके उपयोगी अन्य धन संग्रह कीजिये॥ ५० ॥ हे क्षत्रियाधम! यदि इस दक्षिणाकोही मेरे समान जानते हो तो पहले मेरी भलीभाँति अनुष्ठित तपस्या अमल ब्रह्मण्य उग्र प्रभाव और शुद्धअध्ययनका विपुल बल शीघ्र अवलोकन कीजिये इसके उपरान्त दक्षिणा देना ॥ ५१ ॥ ५२॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे भगवन्! केवल इस पत्नी और बालकको बेचा है इस कारण आप कुछ कालतक

प्रतीक्षा कीजिये मैं और भी धनसंग्रह करके आपको देता हूं ॥ ५३॥ विश्वामित्रने कहा हे नराधिप ! दिनका जो चौथा भाग शेष है मैं केवल इसकोही प्रतीक्षा करूंगा इसके उपरान्त फिर मुझको कुछ उत्तर न देसकोगे ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसके उपरान्त महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हो उस दीन धर्मनिष्ठ राजाका इस प्रकार निर्दय और निष्ठुर वचनोंसे तिरस्कार कर वह एकादशकोटि परिमित सुवर्ण लेकर चले गये ॥ १॥ उन ऋषियोंके चलेजानेपर फिर राजा हरिश्चन्द्र शोकाकुल हो वारंवार लम्बे और ऊष्ण श्वास छोडते २ अधो मुख होकर ऊंचे स्वरसे कहने लगे ॥२॥ मैं अत्यन्त दुःख और क्लेशभोगसे प्रेतरूप हुआ हूं तथापि धनसे मुद्राको मोल लेनेपर जो उपकार करै वह शीघ्र सूर्यास्तसे पहले मेरा उचित मूल्य स्थिर करै ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त धर्म निर्दय चांडालका रूप धारणकर हरिश्चंद्रकी परीक्षा करनेके लिये शीघ्र उस स्थानमें आये उस अधम

विश्वामित्रउवाच ॥ चतुर्भागःस्थितोयोयंदिवसस्यनराधिप ॥ एषएवप्रतीक्ष्योमेवक्तव्यंनोत्तरंत्वया॥ ५४ ॥इतिश्रीदे० म० स० द्वाविंशोऽध्यायः ॥ ॥ २२ ॥ व्यासउवाच ॥ तमेवमुक्त्वाराजानंनिर्घृणंनिष्ठुरंवचः ॥ तदादायधनंपूर्णंकुपितःकौशिकोययौ ॥ १ ॥ विश्वामित्रेगतेराजाततःशोकमुपागतः ॥ श्वासोच्छ्वासंमुहुःकृत्वाप्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ २ ॥ वित्तक्रीतेनयस्यार्तिर्मयाप्रेतेनगच्छति ॥ सब्रवीतुत्वरायुक्तोयामेतिष्ठतिभास्करः ॥ ३ ॥ अथाजगामत्वरितोधर्मश्चांडालरूपधृक् ॥ दुर्गंधोविकृतोरस्कःश्मश्रुलोदंतुरोऽघृणी ॥ ४ ॥ कृष्णोलंबोदरःस्निग्धःकरालःपुरुषाधमः ॥ हस्तजर्जरयष्टिश्चशवमाल्यैरलंकृतः ॥ ५ ॥ चांडालउवाच ॥ अहंगृह्णामिदासत्वेभृत्यार्थंसुमहान्मम ॥ क्षिप्रमाचक्ष्वमौल्यंकिमेतत्तेसंप्रदीयते ॥ ६॥ व्यासउवाच ॥ तंताहृशमथाऽऽलक्ष्यक्रूरदृष्टिंसुनिर्घृणम् ॥ वदंतमतिदुःशीलंकस्त्वमित्याहपार्थिवः ॥ ७ ॥ चांडालउवाच ॥ चांडालोऽहमिहख्यातःप्रवीरेतिनृपोत्तम ॥ शासनेसर्वदातिष्ठमृतचैलापहारकः ॥ ८॥ एवमुक्तस्तदाराजावचनंचेदमब्रवीत् ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापिगृह्णात्वितिमतिर्मम ॥ ९ ॥

पुरुषका शरीर कृष्णवर्ण देखनेमें अत्यन्त भयानक उदर लम्बा दांत विशाल और मुखमंडल श्मश्रुपूर्ण हाथमें जर्जर वाँसका दंड गलेमें शवास्थिमाला विराजमान और वक्षस्थल अत्यन्त विकृतभावयुक्त था ॥ ४ ॥ ५ ॥ चांडालने कहा मुझको भृत्यका अत्यन्त प्रयोजन है अतएव मैं तुमको दासत्वमें ग्रहण करूंगा तुम्हारा क्या मूल्य देना होगा वह अतिशीघ्र प्रकाश करके कहो ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अत्यन्त दयाहीन क्रूरलोचन अतिदुष्टस्वभाव उस चांडालके ऐसे वचन कहनेपर फिर राजा हरिश्चंद्र उसकी ऐसी आकृति देखकर विस्मित हो कहनेलगे कि, तुम कौन हो॥ ७॥ चांडालने कहा कि हेनृपवर! मैं प्रवीरनामक विख्यात चांडाल हूं तुमको सर्वदा मेरी आज्ञामें रहकर मृतकमनुष्यका वस्त्र ग्रहण करना होगा ॥ ८॥ तब राजाने उसके ऐसे वचन सुनकर कहा ब्राह्मण अथवा क्षत्री मुझको ग्रहण करैं, यही मेरी

इच्छा है ॥ ९ ॥ देखो पंडितोंने कहा है कि उत्तमका धर्म उत्तम, मध्यमका धर्म मध्यम और अधमका धर्म अधम है. इसकारण तुम अधम हो और मैं उत्तम हूं तुम्हारे घरमें मेरा धर्म कर्म नहीं चलसक्ता ॥ १० ॥ चांडालने कहा हे नृपसत्तम! यदि यही आपका आन्तरिक अभिप्राय था तो जो कोई "ब्राह्मण मुझको ग्रहण करै" यही बात तुमको कहनी उचित थी, परन्तु प्रकारान्तरमें मिथ्या कहकर तुमने अधर्मकिया तो किया फिर किसलिये आपने विचार न करके केवल मेरे सामने इस बातका उल्लेख किया था? ॥ ११ ॥ जो हो, जो मनुष्य प्रथम विचारकर अपना अभिप्राय प्रकाश करता है, वही पुरुष अभीष्ट प्राप्तकरता है. परन्तु हे अनघ! आपने विचार न करके सामान्य वार्त्ता कही ॥ १२ ॥ यदि आपकी वह बात सत्य है तो आप मेरेही गृहीत हुए इसमें संदेह नहीं. हरिश्चंद्रने

उत्तमस्योत्तमोधर्मोमध्यमस्यचमध्यमः ॥ अधमस्याधमश्चैवइतिप्राहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥ चांडालउवाच॥ एवमेवत्वयाधर्मःकथितोनृपसत्तम ॥ अविचार्यत्वयाराजन्नधुनोक्तंममाऽग्रतः॥ ११ ॥ विचारयित्वायोब्रूतेसोऽभीष्टंलभतेनरः ॥ सामान्यमेवतत्प्रोक्तमविचार्यत्वयानघ ॥ १२ ॥ यदिसत्यं प्रमाणंतेगृहीतोसिनसंशयः ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ असत्यान्नरकेगच्छेत्सद्यःक्रूरेनराधमः ॥ १३ ॥ ततश्चांडालतासाध्वीनवरामेह्यसत्यता ॥ व्यासउवाच ॥ तस्यैवंवदतःप्रातोविश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ १४ ॥ क्रोधामर्षविघूर्णाक्षःप्राहचेदंनराधिपम् ॥ चांडालोऽयंमनस्थंतेदातुंवित्तमुपस्थितः ॥ १५ ॥ कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा ॥ राजोवाच ॥ भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानंवेद्मिकौशिक ॥ १६ ॥ कथंचांडालदासत्वंगमिष्येवित्तकामतः ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यदिचांडालवित्तंत्वमात्मविक्रयजंमम ॥ १७ ॥

कहा जो नराधम असत्य व्यवहार करता है वह शीघ्र भयंकर नरकमें जाताहै ॥ १३ ॥ इसकारण असत्य व्यवहारकी अपेक्षा मुझे चांडालपना श्रेष्ठ है. व्यासजीने कहा कि, हे महाराज! राजा यह बात कहही रहे थे कि, इसीसमयमें तपोधन विश्वामित्रजी उस स्थानमें आये ॥ १४ ॥ वह क्रोध और अमर्षके वश हो घूर्णित नेत्र कर राजासे बोले कि, यह चांडाल तुम्हारी इच्छानुसार धन देनेको उपस्थित है ॥ १५ ॥ तब किसलिये अब मुझको यज्ञकी शेष दक्षिणा नहीं देते? हरिश्चंद्र बोले कि, हे कौशिक! कोई विषय आपसे छिपा नहीं है मेरा यह देह सूर्यवंशसे उत्पन्न हुआ है ॥ १६ ॥ इसकारण धनकी इच्छासे किसप्रकार चांडा

लका दास होना स्वीकार करूं ! विश्वामित्रने कहा कि, यदि चांडालको अपनेको बेचकर मुझको ॥ १७ ॥ धन न दोगे तो निश्चय जानों कि, मैं तुमको अभी शाप देदूंगा चांडालसे हो अथवा ब्राह्मणसे हो मेरी दक्षिणाका धन अभी दो. क्योंकि चांडालके अतिरिक्त और कोई धन देनेवाला यहां नहीं है. परन्तु हे राजन् ! विना धन लिये नहीं जाऊंगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे नरपते ! यदि इससमय पहले कहाहुआ धन नहीं दोगे तो दिनकी आधी घड़ी शेष रहतेमें तुमको कोपानलमें भस्म करूंगा ॥ ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चंद्र विश्वामित्रके ऐसे वचन सुनकर मृतकके समान होगये, फिर भयसे व्याकुल हो प्रसन्न हूजिये. इस प्रकार कह कर ऋषिके दोनों चरणोंको पकड़लिया ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे विप्रर्षे ! मैं दीन और अत्यन्त कातर हुआ हूं और विशेष करके मैं आपका भक्त दास हूं

नप्रदास्यसिचेत्तर्हिशप्स्यामित्वामसंशयम् ॥ चांडालादथवाविप्राद्देहिमेदक्षिणाधनम् ॥ १८ ॥ विनाचांडालमधुनानाऽन्यःकश्चिद्धनप्रदः ॥ धनेनाऽहंविनाराजन्नयास्यामिनसंशयः ॥ १९ ॥ इदानीमेवमेवित्तंनप्रदास्यसिचेन्नृप ॥ दिनेऽर्धघटिकाशेषेतत्त्वांशापाग्निनादहे ॥ २० ॥ व्यासउवाच ॥ हरिश्चंद्रस्ततोराजामृतवच्छिन्नजीवितः ॥ प्रसीदेतिवदन्पादौऋषेर्जग्राहविह्वलः ॥ २१ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ दासोऽस्म्यार्तोऽस्मिदीनोऽस्मित्वद्भक्तश्चविशेषतः ॥ प्रसादंकुरुविप्रर्षेकष्टश्चांडालसंकरः ॥ २२ ॥ भवेयंवित्तशेषेणतवकर्मकरोवशः ॥ तवैवमुनिशार्दूलप्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः ॥ २३ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ एवमस्तुमहाराजममैवभवकिंकरः ॥ किंतुमद्वचनंकार्यंसर्वदैवनराधिप ॥ २४ ॥ व्यासउवाच ॥ एवमुक्तेऽथवचनेराजाहर्षसमन्वितः ॥ अमन्यत पुनर्जातमात्मानंप्राहकौशिकम् ॥ २५ ॥ तवादेशंकरिष्यामिसदैवाऽहंनसंशयः ॥ आदेशयद्विजश्रेष्ठकिंकरोमितवाऽनघ ॥ २६ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ चांडालागच्छमद्दासमौल्यंकिंमेप्रयच्छसि ॥ गृहाणदासंमौल्येनमयादत्तंतवाऽधुना ॥ २७ ॥

इसकारण आप प्रसन्न होकर मुझको क्लेश कर चांडालके सहवाससे छुड़ाइये ॥ ॥ २२ ॥ हे मुनिवर ! शेष धनके बदलेमें मैं आपका कार्य करूंगा अधिक क्या मैं आपका आज्ञानुवर्ति सेवक होकर आपके चित्तका अनुगामी हूंगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! तो तुम मेरे किंकर हुए हे नराधिप ! इससमय सर्वदाही तुमको मेरे वचन प्रतिपालन करने होंगे ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्रके यह वचन कहनेपर राजा अत्यन्त हर्षसे अपना पुनर्जन्म जान कौशिकसे कहनेलगे ॥ २५ ॥ मैं सदा आपकी आज्ञा पालन करूंगा इससमय आपका क्या कार्य साधन करूं सो कहिये ॥ २६ ॥ तब विश्वामित्र चांडालको बुलाकर

बोले कि हे चांडाल! मेरे निकट आ और इस दासका जो मूल्य है वह मुझको दे मैं इस समय इस दासको तेरे हाथमें समर्पण करताहूं तू मूल्य देकर इसको ले ॥ २७ ॥ मुझको केवल धनहीका प्रयोजन है सेवककी कुछ आवश्यकता नहीं व्यासजीने कहा हे महाराज! विश्वामित्रकी यह बात कहनेसे श्वपचका हृदय आनंदरससे पूर्ण होगया ॥ २८ ॥ तब वह शीघ्र विश्वामित्रके निकट आकर कहनेलगा. चांडाल बोला कि, हे द्विजसत्तम ! आपने इसको बेचा इससे आपको प्रयागमंडलकी दशयोजन विस्तारवाली भूमि ॥ २९ ॥ रत्नमयी आपको दूंगा, इसको देकर आपने मेरा क्लेश निवारण किया है ॥ ३० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! जब चांडालने एकहजार मणि, एक हजार मोती और एकहजार सुवर्ण मुद्रा देदी तब विश्वामित्रने भी उनको ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ उस

नास्तिदासेनमेकार्यंवित्ताशावर्ततेमम ॥ व्यासउवाच ॥ एवमुक्तेतदातेनश्वपचोहृष्टमानसः ॥ २८ ॥ आगत्यसन्निधौतूर्णंविश्वामित्रमभाषत ॥ चांडाल उवाच ॥ दशयोजनविस्तीर्णंप्रयागस्यचमंडले ॥ २९ ॥ भूमिंरत्नमयींकृत्वादास्येतेऽहंद्विजोत्तम ॥ अस्यविक्रयणेनेयमार्तिश्चप्रहतात्वया ॥ ३० ॥ व्यासउवाच ॥ ततोरत्नसहस्राणिसुवर्णमणिमौक्तिकैः ॥ चांडालेनप्रदत्तानिजग्राहद्विजसत्तमः ॥ ३१ ॥ हरिश्चंद्रस्तथाराजानिर्विकारमुखोऽभवत् ॥ अमन्यततथाधैर्याद्विश्वामित्रोहिमेपतिः ॥ ३२ ॥ तत्तदेवमयाकार्यंयदयंकारयिष्यति ॥ अथांतरिक्षेसहसावागुवाचाऽशरीरिणी ॥ ३३ ॥ अनृणोऽसि महाभागदत्तासादक्षिणात्वया ॥ ततोदिवःपुष्पवृष्टिःपपातनृपमूर्धनि ॥ ३४ ॥ साधुसाध्वितितंदेवाःप्रोचुःसेंद्रामहौजसः ॥ हर्षेणमहताऽऽविष्टोराजाकौशिकमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ राजोवाच ॥ त्वंहिमातापिताचैवत्वंहिबंधुर्महामते ॥ यदर्थमोचितोऽहंतेक्षणाच्चैवाऽनृणीकृतः ॥ ३६ ॥

समय महात्मा हरिश्चन्द्रके मुखमंडलपर कुछभी विकार दिखाई नहीं दिया बरन उन्होंने धैर्य धारणकर स्थिर किया कि इस समय विश्वामित्र ही मेरे प्रभु हैं॥ ३२॥ अतएव उन्होंने मुझको जिस कार्यमें नियुक्त किया है मुझको वही करना चाहिये, इसी समयमें सहसा अशरिरिणी वाणी आकाशसे सुनाई दी ॥ ३३ ॥ हे महाभाग! तुम इस अंगीकार कीहुई दक्षिणाको देकर ऋणसे छूटगये, फिर स्वर्गसे राजाके मस्तकके ऊपर फूलोंकी वर्षा होनेलगी ॥ ३४ ॥ इसी समय महातेजस्वी इन्द्रादिदेवता "साधु साधु" कहकर राजाकी प्रशंसा करनेलगे तब राजाने अत्यन्त हर्षित हो विश्वामित्रसे कहा ॥ ३५ ॥ राजा बोले हे महामते! आपने जो अर्थदायसे छुड़ाकर क्षणमात्रमेंही मुझको ऋणविहीन किया है, इसकारण आप हमारे पिता माता और बंधुओंकी अपेक्षा भी हितकारी हैं ॥ ३६ ॥

हेमहाबाहो! आपके वचनही श्रेष्ठ हैं, इसकारण अब क्या करूं सो आज्ञा दीजिये, राजाकी यह वार्ता कहनेपर फिर विश्वामित्रने उनसे कहा॥ ३७॥ मुनि बोले अबसेही तुम चांडालके वचन प्रतिपालन करो, तुम्हारा मंगल हो यह बात कहकर महर्षि विश्वामित्र उस चांडालके दिये धनको ग्रहणकर अपने आश्रममें चले गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ शौनकजी बोले कि हे सूतश्रेष्ठ ! राजा हरिश्चन्द्रने चांडालके घर जाकर फिर क्या कार्य किया वह आप शीघ्र मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले हे विप्रवर ! विश्वामित्रके चले जानेपर चांडालका मन प्रसन्न होगया, उसने विश्वामित्रको इतने रत्न दिये थे, इसकारण वह नरपतिको बांधकर ॥ २ ॥ तैंने असत्य मार्गमें पैर रक्खा है, यह कहकर दंडसे प्रहार करने लगा, राजा एक तो

किंकरोमिमहाबाहोश्रेयोमेवचनंतव ॥ एवमुक्तेतुवचनेनृपंमुनिरभाषत ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ चांडालवचनंकार्यमद्यप्रभृतितेनृप ॥ स्वस्तितेस्त्वितितंप्रोच्यतदादायधनंययौ ॥ ३८ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेहरिश्चंद्रोपाख्यानेत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ शौनकउवाच ॥ ततःकिमकरोद्राजाचांडालस्यगृहेगतः ॥ तद्ब्रूहिसूतवर्यत्वंपृच्छतःसत्वरंहिमे ॥१॥ सूतउवाच ॥ विश्वामित्रेगतेविप्रेश्वपचोहृष्टमानसः ॥ विश्वामित्रायतद्द्रव्यंदत्त्वाबद्ध्वानरेश्वरम् ॥ २ ॥ असत्योयास्यसीतुयुक्त्वादंडेनाऽताडयत्तदा ॥ दंडप्रहारसंभ्रांतमतीवव्याकुलेंद्रियम् ॥ ३ ॥ इष्टबंधुवियोगार्तमानीयनिजपक्कणे ॥ निगडेस्थापयित्वातंस्वयंसुष्वापविज्वरः ॥ ४ ॥ निगडस्थस्ततोराजावसंश्चांडालपक्कणे ॥ अन्नपानेपरित्यज्यसदावैतदशोचयत् ॥ ५ ॥ तन्वीदीनमुखीदृष्ट्वाबालंदीनमुखंपुरः ॥ मांस्मरत्यसुखाविष्टामोक्षयिष्यतिनोनृपः ॥ ६ ॥ उपात्तवित्तोविप्रायदत्त्वावित्तंप्रतिश्रुतम् ॥ रोदमानंसुतंवीक्ष्यमांचसंबोधयिष्यति ॥ ७ ॥ तातपार्श्वंव्रजामीतिरुदंतंबालकंपुनः ॥ तातताततिभाषंतंतथासंबोधयिष्यति ॥ ८ ॥

इष्टजनोंके वियोगसे कातर हुए थे फिर तिसपर भी चांडालका दंडघात इस कारण इन प्रहारोंसे वह अत्यन्त कातर हुए और इनकी इन्द्रियें अत्यन्त शिथिल होगईं ॥ ३ ॥ बांधववियोगका दुःख हुआ चांडालने ऐसी अवस्थासे राजाको अपने घर लाय शृंखलामें बांधकर रक्खा, इसके उपरान्त स्वयं क्लेश दूरकर निद्राका सुख अनुभव करने लगा ॥ ४ ॥ राजा चांडालके घर बेडियोंसे बंधे वास करने लगे परन्तु उसका अन्न जल ग्रहण न किया, वारंवारही केवल स्त्री पुत्रादिके निमित्त अनुताप करनेलगे ॥ ५ ॥ वह कृशाङ्गी सन्मुख पुत्रका मलीन वदन देखकर दुःखसे मुझको स्मरण करती होगी, वह अत्यन्त दुःखित होकर जानती होगी कि राजा धन प्राप्त होनेपर भी मुझे दासत्वसे छुड़ावेंगे ॥६॥ जब वह धन उपार्जन कर ब्राह्मणको देचुकेंगे तब रोतेहुए पुत्रको देख मुझे समझावेंगे ॥ ७ ॥ मैं पिताके समीप जाताहूं

इस प्रकारसे रोतेहुए बालकको और तात तात करते हुएको समझावेगी ॥ ८ ॥ वह मृगशावकलोचनी यह नहीं जानती कि मैं चांडाल होगया, मेरा राज्यनाश सुहृद्वियोग भार्यापुत्रका विक्रय हुआ ॥ ९ ॥ और इससमय चांडालके दासत्व शृंखलमें बँधना पडा. हाय ! एकवारही क्लेशपर क्लेश मुझको सतारहे हैं राजाने इस प्रकारसे वारंवार भार्या और पुत्रको स्मरण कर ॥ १० ॥ चांडालके घरमें वास कर क्रमानुसार चार दिन व्यतीत किये, पांचवें दिन चांडालने वहां आय बंधनसे राजाको छोड ॥ ११ ॥ क्रोधित हो निष्ठुर वचनोंसे राजाको वारंवार भर्त्सना कर कहा कि तुम श्मशानमें जाकर मरेहुए मनुष्योंका वस्त्र ग्रहण करो ॥ १२ ॥ काशीके दक्षिण स्थानमें एक बडा भारी श्मशान है तुम वहां जाकर उस श्मशानकी रक्षा करो और न्यायके अनुसार जो मुझको मिलताहै वह किसीपर मत छोडो ॥ १३ ॥ तुम

नसामांमृगशावाक्षीवेत्तिचांडालतांगतम् ॥ राज्यनाशःसुहृत्त्यागोभार्यातनयविक्रयः ॥९॥ ततश्चांडालताचेयमहोदुःखपरंपरा ॥ एवंसनिवसन्नित्यंस्मरंश्चद यितांसुतम् ॥ १० ॥ निनायदिवसान्राजाचतुरोविधिपीडितः ॥ अथाऽह्निपंचमेतेननिगडान्मोचितोनृपः ॥ ११ ॥ चांडालेनानुशिष्टश्चमृतचैलापहारणे ॥ क्रुद्धेनपरुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्यचपुनःपुनः ॥ १२ ॥ काश्याश्चदक्षिणेभागेश्मशानंविद्यतेमहत् ॥ तद्रक्षस्वयथान्यायंनत्याज्यंतत्त्वयाक्वचित् ॥ १३ ॥ इमंच जर्जरंदंडंगृहीत्वायाहिमाचिरम् ॥ वीरबाहोरयंदंडइतिघोषस्वसर्वतः ॥ १४ ॥ सूतउवाच ॥ कस्मिंश्चिदथकालेतुमृतचैलापहारकः ॥ हरिश्चंद्रोभवद्रा जाश्मशानेतद्वशानुगः ॥ १५ ॥ चांडालेनानुशिष्टस्तुमृतचैलापहारिणा ॥ राजातेनसमादिष्टोजगामशवमंदिरम् ॥ १६ ॥ पुर्यास्तुदक्षिणेदेशेविद्यमानं भयानकम् ॥ शवमाल्यसमाकीर्णंदुर्गंधबहुधूमकम् ॥ १७ ॥ श्मशानंघोरसन्नादंशिवाशतसमाकुलम् ॥ गृध्रगोमायुसंकीर्णंश्ववृंदपरिवारितम् ॥ १८ ॥ अस्थिसंघातसंकीर्णंमहादुर्गंधसंकुलम् ॥ अर्धदग्धशवास्यानिविकसद्दंतपंक्तिभिः ॥ १९ ॥

यह जर्जर दंड लेकर शीघ्र वहां जाओ मैं वीरबाहुका दूत हूं और उनकाही यह दंड है यह बात कहकर सम्पूर्ण स्थानोंमें घोषण करो ॥ १४ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण! इस प्रकारसे एक समय राजा हरिश्चन्द्र चांडालके वशवर्ती हो श्मशानमें मृतक मनुष्योंके वस्त्र लेनेके कार्यमें नियुक्त हुए ॥ १५ ॥ जब उस मृतक मनुष्योंका वस्त्र लेनेवाले चांडालने राजाको इस प्रकार कार्यमें नियुक्त किया तब वह उसकी आज्ञानुसार श्मशानमें गये ॥ १६ ॥ यह श्मशान काशीपुरीके दक्षिणभागमें स्थित है, उसके स्थान स्थानमें शवमाल्य बिखरी हुई हैं उसके चारोंओर दुर्गन्ध और धूम परिपूर्ण है ॥ १७ ॥ उस स्थानमें कितनीही शिवा भ्रमण करती हैं उनके घोर शब्दसे वह प्रेतभूमि प्रतिध्वनित होती है कहीं गृध्र कहीं गोमायु कहीं कुक्कुरगण शवदेह लेकर खैंचते हैं ॥ १८ ॥ स्थान स्थानमें ढेरके ढेर अस्थियोंके लगे हुए हैं

शवसमूहोंकी दुर्गन्धसे श्मशानभूमि परिपूर्ण है, कहीं अग्निमध्यस्थित अर्द्धदग्ध शवमुखके दांत निकालकर ॥ १९ ॥ मानों विकट हास्य करते हैं कि सम्पूर्ण देहोंकी अग्निमें दग्ध होकर यही दुर्दशा होती है वहां अनेक मनुष्योंके मृतक देह लाये जातेहैं और उनके सुहृद्वर्ग आर्त्तनादसे भयानक कोलाहल करते हैं ॥ २० ॥ कोई हावत्स ! हा पुत्र ! तुम हमको छोडकर कहां चले गये ! कोई हा मित्र!तुमने हमको छोडकर कहां प्रस्थान किया ? कोई हा बन्धो ! तुमने हमको छोड़ दिया?कोई हाभ्रातः! तुमने आज हमको त्यागदिया?कोई हाभागिनेय! तुमभी क्या आज हमको छोड़गये कोई हा माननीय मातामह ! कोई हा मातुल ! ॥ २१ ॥ कोई हा पितामह ! कोई हा पितः ! कोई हा पौत्र ! कोई हा बांधव ! तुम आज कहां चलेगये एकवार आनकर हमको दर्शन दो इसप्रकार प्राणियोंके भयंकर शब्दसे श्मशानभूमि परिपूर्ण होती थी ॥ २२ ॥ मांस चर्बी और वसादि अग्निमें दग्ध हो शोःशो शब्द फैलातीहुई उस स्थानमें व्याकुलता करती है उस स्थानमें अग्निका भयंकर चट्चट् शब्द होर

हसंतीवाऽग्निमध्यस्थकायस्यैवंव्यवस्थितिः ॥ नानामृतसुहृन्नादंमहाकोलाहलाकुलम् ॥ २० ॥ हापुत्रमित्रहाबंधोभ्रातर्वत्सप्रियाऽद्यमे ॥ हाप्यतेभागिनेयाऽहहामातुलपितामह ॥ २१ ॥ मातामहपितःपौत्रक्कगतोस्येहिबांधव ॥ इतिशब्दैःसमाकीर्णंभैरवैःसर्वदेहिनाम् ॥ २२ ॥ ज्वलन्मांसवसामेदश्छूमितिध्वनिसंकुलम् ॥ अग्नेश्चटचटाशब्दोभैरवोयत्रजायते ॥ २३ ॥ कल्पांतसदृशाकारंश्मशानंतत्सुदारुणम् ॥ सराजातत्रसंप्राप्तोदुःखादेवमशोचत ॥ ॥ २४ ॥ हाभृत्यामंत्रिणोयूयंक्कतद्राज्यंकुलोचितम् ॥ हाप्रियेपुत्रमेबालमांत्यक्त्वामंदभाग्यकम् ॥ २५ ॥ ब्राह्मणस्यचकोपेनगतायूयंक्कदूरतः ॥ विनाधर्ममनुष्याणांजायतेनशुभंक्कचित् ॥ २६ ॥ यत्नतोधारयेत्तस्मात्पुरुषोधर्ममेवहि ॥ इत्येवंचिंतयंस्तत्रचांडालोक्तंपुनःपुनः ॥ २७ ॥ मलेनदिग्धसर्वांगःशवानांदर्शनेव्रजन् ॥ लकुटाकारकल्पश्चधावंश्चापिततस्ततः ॥ २८ ॥ अस्मिञ्छवइदंमौल्यंशतंप्राप्स्यामिचाऽग्रतः ॥ इदंममइदंराज्ञइदंचांडालकस्यच ॥ २९ ॥

हा है ॥ २३ ॥ इसप्रकार उस श्मशानका दृश्य कल्पांतकालके समान अत्यन्त भीषण था, राजा हरिश्चंद्र वहां जाकर अत्यन्त दुःखके कारण इस प्रकारसे शोक करनेलगे ॥ २४ ॥ हा मंत्रीगण ! हा भृत्यगण ! तुम सब इस समय कहां हो ! हाय हमारा वंशपरम्पराका राज्य कहां है ? हा पुत्र ! हा प्रेयसी ! तुम इस हतभाग्यको छोड़कर ॥ २५ ॥ ब्राह्मणके कोपवशसे किस दूर स्थानमें चलीगई हो धर्मके विना मनुष्य कभी सुख प्राप्त नहीं करसक्ते ॥ २६ ॥ इस कारण पुरुष यत्नसहित केवल धर्मकाही उपार्जन करै राजा वारंवार इस प्रकारकी चिन्ता करके अन्तमें चांडालका वचन स्मरण कर ॥ २७ ॥ मलीन अंग किये शवके ढूंढनेको गये दुश्चिन्ताके कारण उनकी अंगयष्टि यष्टिके समान शीर्ण होगई थी परन्तु तौभी राजा हरिश्चन्द्र इधर उधर घूमकर ॥ २८ ॥ इस शवका शत मुद्रा मूल्य प्रथम मेरे

हस्तगत होगा इस मूल्यमें यह राजाका यह मेरा और यह चांडालका ॥ २९ ॥ सदा इसप्रकारकी चिन्ता करते अत्यन्त दुरवस्थाको प्राप्त हुए सौ ग्रन्थीकी एक पुराने वस्त्रकी कंथा पहरे थे ॥ ३० ॥ मुख बाहु उदर चरण सब अंग भस्म और धूलिसे व्याप्त थे अनेकविध वसा मेद मज्जासे पैरकी अंगुलीमें लिप्त होनेसे श्वास लेते ॥ ३१ ॥ अनेक जातिवाले मृतकोंके निमित्त जो अन्न पक्व होता है उसीसे क्षुधा निवृत्त करते उनकी माला शिरमें धरते ॥ ३२ ॥ रात्रि अथवा दिनमें नहीं सोते केवल हाय! हाय! शब्द करके सदा लम्बे श्वांस छोडते इसप्रकार उन्होंने सौ वर्षके समान बारह महीने बिताये ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ सूतजीने कहा इधर कुमार रोहिताश्व एक दिन काशीके कुछेक दूर खेलनेके

इत्येवंचिंतयत्राजाव्यवस्थांदुस्तरांगतः ॥ जीर्णैकपटसुग्रंथिकृतकंथापरिग्रहः ॥ ३० ॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥ नानामेदोवसामज्जालिप्तपाण्यंगुलिःश्वसन् ॥ ३१ ॥ नानाशवौदनकृतक्षुन्निवृत्तिपरायणः ॥ तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमंडलः ॥ ३२ ॥ नरात्रौनदिवाशेतेहाहेतिप्रवदन्मुहुः ॥ एवंद्वादशमासास्तुनीतावर्षशतोपमाः ॥ ३३ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ सूतउवाच ॥ एकदातुगतोरंतुंबालकैःसहितोबहिः ॥ वाराणस्यानातिदूरेरोहिताख्यःकुमारकः ॥ १ ॥ क्रीडांकृत्वाततोदर्भान्ग्रहीतुमुपचक्रमे ॥ कोमलानल्पमूलांश्चसाग्राञ्छत्त्यनुसारतः ॥ २ ॥ आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वाहस्तयुग्मेनयत्नतः ॥ सलक्षणाश्चसमिधोबर्हिरिध्मंसलक्षणम् ॥ ३ ॥ पलाशकाष्ठान्यादायत्वग्निहोमार्थमादरात् ॥ मस्तकेभारकंकृत्वाखिद्यमानःपदेपदे ॥ ४ ॥ उदकस्थानमासाद्यतदाबालस्तृषान्वितः ॥ भुविभारंविनिक्षिप्यजलस्थानेतदाशिशुः ॥ ५ ॥ कामतःसलिलंपीत्वाविश्रम्यचमुहूर्तकम् ॥ वल्मीकोपरिविन्यस्तभारोहर्तुंप्रचक्रमे ॥ ६ ॥

लिये बालकोंके सहित बाहर निकला ॥ १ ॥ प्रथम बालकोंके संग खेला इसके उपरान्त अग्रभागयुक्त सहमूल कोमल कुशाओं और समिधोंको अपनी शक्तिके अनुसार ग्रहण करने लगा ॥ २ ॥ बालकोंके यह कारण पूछनेपर रोहिताश्वने समान अवस्थावाले मित्रोंसे कहा मेरे प्रभु ब्राह्मण हैं उनकीही प्रसन्नताके लिये यह ग्रहण किये हैं, उनसे यह बात कह यज्ञीयलक्षणवाली समिध अनलसंदीपक काष्ठ दोनों हाथोंसे मंत्रसहित संग्रह करने लगा ॥ ३ ॥ फिर अग्निमें होम करनेके लिये लाया हुआ पलाशकाष्ठ और पूर्वोक्त द्रव्य सम्पूर्ण एकत्रकर उस भारको यत्नसहित मस्तकपर उठालिया परन्तु प्रत्येकपदमें पीडित होनेलगा ॥ ४ ॥ तब वह बालक प्यासे दुःखित हो जलके निकटस्थानमें जाय पृथ्वीपर भार डाल जल पानकरनेकेलिये जलाशयमें उतरा ॥ ५ ॥ वहां इच्छानुसार जलपान कर मुहूर्त्तभर विश्रामके उप

रान्त ज्योंहीं बँबईके ऊपर उस भारको रखकर फिर मस्तकपर उठानेके लिये उसका उद्योग किया ॥ ६ ॥ कि उसीसमय विश्वामित्रकी आज्ञासे प्राणियोंको भयावह अत्यन्त घोरदर्शन महाविष महाकाय एक कृष्णवर्ण सर्प उस बँबईसे अकस्मात् बाहर निकला ॥ ७ ॥ इस सर्पने निकलतेही बालकको डसलिया उस बालकने पृथ्वीपर गिरकर तत्काल प्राण त्याग किया. उसके मित्रभी रोहिताश्वको मराहुआ देखकर ब्राह्मणके घर गये ॥ ८ ॥ फिर बालक भयसे उद्विग्न हो शीघ्र उसकी माताके निकट उपस्थित हो कहनेलगे हे विप्रदासी ! तेरा पुत्र हमारे साथ खेलनेको बाहर गया था ॥ ९ ॥ परन्तु अकस्मात् उस स्थानमें कालसर्पके काटनेसे मरगया. रोहिताश्वकी माता गिरेहुए वज्रके समान ॥ १० ॥ कठोर वचन सुनतेही जडकटे हुए केलेके समान पृथ्वीपर गिरपड़ी, उसी समय ब्राह्मणने अतिरुष्ट

विश्वामित्राज्ञयातावत्कृष्णसर्पोभयावहः ॥ महाविषोमहाघोरोवल्मीकान्निर्गतस्तदा ॥ ७ ॥ तेनाऽसौबालकोदष्टस्तदैवचपपातह ॥ रोहिताख्यंमृतंदृष्ट्वा ययुर्बालाद्विजालयम् ॥ ८ ॥ त्वरिताभयसंविग्नाःप्रोचुस्तन्मातुरग्रतः ॥ हेविप्रदासितेपुत्रःक्रीडांकर्तुंबहिर्गतः ॥ ९ ॥ अस्माभिःसहितस्तत्रसर्पदष्टोमृतस्ततः ॥ इतिसातद्वचःश्रुत्वावज्रपातोपमंतदा ॥ १० ॥ पपातमूर्च्छिताभूमौछिन्नेवकदलीयथा ॥ अथतांब्राह्मणोरुष्टःपानीयेनाऽभ्यषिंचत ॥ ११ ॥ मुहूर्तांच्चेतनांप्राप्ताब्राह्मणस्तामथाऽब्रवीत् ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अलक्ष्मीकारकंनिंद्यंजानतीत्वंनिशामुखे ॥ १२ ॥ रोदनंकुरुषेदुष्टेलज्जातेहृदयेनकिम् ॥ ब्राह्मणेनैवमुक्तासानकिंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ रुरोदकरुणंदीनापुत्रशोकेनपीडिता ॥ अश्रुपूर्णमुखीदीनाधूसरामुक्तमूर्धजा ॥ १४॥ अथतांकुपितोविप्रोराजपत्नीमभाषत ॥ धिक्त्वांदुष्टेक्रयंगृह्यममकार्यंविलुंपसि॥१५॥अशक्ताचेत्कथंतर्हिगृहीतंममतद्धनम् ॥ एवंनिर्भर्त्सितातेनक्रूरवाक्यैःपुनःपुनः॥१६॥

हो उसके मुखपर जलसेचन किया ॥ ११ ॥ फिर उसके क्षणकालमें चेतना प्राप्त करनेपर ब्राह्मणने क्रोधित होकर उससे कहा ब्राह्मण बोला हे दुष्टे ! रात्रिमें रोना अत्यन्त निन्दनीय है क्योंकि इससे अलक्ष्मीका आविर्भाव होता है ॥ १२ ॥ यह जानकर भी तू क्यों रोदन करती है तेरे हृदयमें क्या कुछभी लज्जा नहीं है ? ब्राह्मणके इसप्रकार कहनेपरभी उसने उनको कुछ उत्तर न दिया ॥ १३ ॥ बरन पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर हो करुणास्वरसे रोदन करने लगी तिसकाल उसका शरीर धूलिमें घुसा हुआ बाल बिखर गये और मुख नेत्रोंके जलसे भीग गया वह शोकसे वारंवार कातर हो करुणास्वरसे रोदन करने लगी ॥ १४ ॥ तब उस ब्राह्मणने क्रोधित होकर उस राजपत्नीसे कहा कि रे दुष्टे ! तुझको धिक्कार है मैं तुझे मूल्य देकर मोल लाया हूं तौभी तू मेरे कार्यमें हानि करती है ॥१५॥ यदि तू मेरा

कार्य न कर सकी तो क्यों व्यर्थ मेरा धन ग्रहण किया उस ब्राह्मणके वारंवार इस प्रकार निष्ठुर वचनोंसे तिरस्कार करनेपर ॥ १६ ॥ उसने करुणा स्वरसे रोदन करते गद्गद हो ब्राह्मणसे कहा हे स्वामिन् ! मेरा बालक पुत्र सर्पके काटनेसे मरगया है ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! मैं उसको फिर न देखसकूंगी अतएव मैं उस बालक पुत्रको देखनेके लिये जाऊंगी आप कृपा करके शीघ्र मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १८ ॥ यह बात कहकर वह बाला फिर करुणास्वरसे रोदन करने लगी, ब्राह्मणभी महाक्रोधित हो फिर राजपत्नीसे कहनेलगा ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले हे शठे ! तेरा आचरण अत्यन्त दूषणीय है, किससे पातक होता है उसको नहीं जानती जो मनुष्य प्रभुका धन ग्रहण कर उसका कार्य नहीं करता है ॥ २० ॥ वह घोर रौरव नरकमें पड़ता है वह अल्पकाल नरकमें वासकर फिर मुरगेकी योनिको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ अथवा

रुदिताकारणंप्राहविप्रंगद्गदयागिरा ॥ स्वामिन्ममसुतोबालःसर्पदष्टोमृतोबहिः ॥ १७ ॥ अनुज्ञांमेप्रयच्छस्वद्रष्टुंयास्यामिबालकम् ॥ दुर्लभंदर्शनंतेनसंजातंममसुव्रत ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वाकरुणंबालापुनरेवरुरोदह ॥ पुनस्तांकुपितोविप्रोराजपत्नीमभाषत ॥ १९ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ शठेदुष्टसमाचारेकिंनजानासिपातकम् ॥ यःस्वामिवेतनंगृह्यतस्यकार्यंविलुंपति ॥ २० ॥ नरकेपच्यतेसोऽथमहारौरवपूर्वके ॥ उषित्वानरकेकल्पंततोऽसौकुक्कुटोभवेत् ॥ २१ ॥ किमनेनाऽथवाकार्यंधर्मसंकीर्तनेनमे ॥ यस्तुपापरतोमूर्खःक्रूरोनीचोऽनृतःशठः ॥ २२ ॥ तद्वाक्यंनिष्फलंतस्मिन्भवेद्बीजमिवोषरे ॥ एहितेविद्यतेकिंचित्परलोकभयंयदि ॥ २३ ॥ एवमुक्ताथसाविप्रंवेपमानाब्रवीद्वचः ॥ कारुण्यंकुरुमेनाथप्रसीदसुमुखोभव ॥२४॥ प्रस्थापयमुहूर्तंमांयावद्द्रक्ष्यामिबालकम् ॥ एवमुक्त्वाऽथसामूर्ध्नानिपत्यद्विजपादयोः ॥ २५ ॥ रुरोदकरुणंबालापुत्रशोकेनपीडिता ॥ अथाहकुपितोविप्रःक्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २६ ॥ विप्रउवाच ॥ किंतेपुत्रेणमेकार्यंगृहकर्मकुरुष्वमे ॥ किंनजानासिमेक्रोधंकशाघातफलप्रदम् ॥ २७ ॥

इस धर्मशास्त्रके उपदेश देनेका मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि जो मनुष्य मूर्ख, क्रूर, नीच, शठ और मिथ्यावादी तथा पापकार्यमें रत है ॥ २२ ॥ उससे इस प्रकारके वचन कहने ऊषरभूमिमें बीज बोनेके समान निष्फल है अतएव यदि तुमको परलोकका भय हो तो इस समय आनकर घरका कार्य करो ॥ २३ ॥ वह यह सुनकर कंपित हो ब्राह्मणसे बोली कि हे प्रभो ! आप प्रसन्न हूजिये और दासीके ऊपर प्रसन्न होकर कृपा प्रकाश कीजिये ॥ २४ ॥ मैं एकवार उस मृतक बालकको देखने जाऊंगी अतएव आप मुहूर्तकालके लिये मुझको भेजदीजिये, वह बाला पुत्रशोकसे ऐसी कातर होगई थी कि यह बात कह ब्राह्मणके पैरोंमें मस्तक रख ॥ २५ ॥ करुणास्वरसे रोदन करने लगी तब वह कुपित विप्र क्रोधसे लाल २ नेत्रकर उससे कहनेलगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोले तेरे पुत्रसे मेरा क्या प्रयोजन

सिद्ध होगा ? मेरे क्रोधको क्या तू नहीं जानती ? मेरा कशाघात क्या तू भूलगई अतएव शीघ्र मेरे गृहकार्यमें तत्पर हो ॥ २७ ॥ उसके इस प्रकारके वचन सुनकर राजमहिषी धैर्य अवलम्बन कर गृहकार्य करने लगी उस ब्राह्मणके पैर दबाते २ राजपत्नीको आधी रात बीतगई ॥ २८ ॥ उस कार्यके समाप्त होनेपर ब्राह्मणने उससे कहा अब तू पुत्रके निकट जा परन्तु उसका दाहादिकार्य सम्पादनकर शीघ्र इस स्थानमें आ ॥ २९ ॥ देखो ! मेरे प्रातःकालके गृहकार्यमें कुछ हानि न हो, परन्तु राजपत्नी उसकी आज्ञा पाय अकेली विलाप करते २ रात्रिकालके समय पुत्रके समीप गई ॥ ३० ॥ क्रमानुसार काशीके बहिर्भागमें उपस्थित होकर देखा कि उसका पुत्र दरिद्रके समान पृथ्वीमें काष्ठ और तृणके ऊपर पड़ा है अपने पुत्रको मृतक अवस्थामें देखकर वह दीन राजमहिषी यूथभ्रष्ट

एवमुक्तास्थिताधैर्याद्गृहकर्मचकारह ॥ अर्धरात्रोगतस्तस्याःपादाभ्यंगादिकर्मणा॥२८॥ब्राह्मणेनाऽथसाप्रोक्तापुत्रपार्श्वंव्रजाऽधुना ॥ तस्यदाहादिकंकृत्वा पुनरागच्छसत्वरम् ॥ २९ ॥ नलुप्येतयथाप्रातर्गृहकर्ममेतिच ॥ ततस्त्वेकाकिनीरात्रौविलपंतीजगामह ॥३०॥ दृष्ट्वामृतंनिजंपुत्रंभृशंशोकेनपीडिता ॥ यूथभ्रष्टाकुरंगीववित्सासौरभीयथा ॥ ३१ ॥ वाराणस्याबहिर्गत्वाक्षणाद्दृष्ट्वानिजंसुतम् ॥ शयानंरंकवद्भूमौकाष्ठदर्भतृणोपरि ॥ ३२ ॥ विललापाऽति दुःखार्ताशब्दंकृत्वासुनिष्ठुरम् ॥ एहिमेसंमुखंकस्माद्रोषितोऽसिवदाऽधुना ॥ ३३ ॥ आयास्यभिमुखोनित्यमंबेत्युक्त्वापुनःपुनः ॥ गत्वास्खलत्पदात स्यपपातोपरिमूर्च्छिता ॥ ३४ ॥ पुनःसाचेतनांप्राप्यदोर्भ्यामालिंग्यबालकम् ॥ तन्मुखेवदनंन्यस्यरुरोदाऽऽर्तस्वनैस्तदा ॥ ३५ ॥ कराभ्यांताडनं चक्रेमस्तकस्योदरस्यच ॥हाबालहाशिशोवत्सहाकुमारकसुंदर ॥ ३६ ॥

मृगी और वत्सहीन गायके समान शोकातुर हुई ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब राजपत्नी माधवी अत्यन्त दुःखित हो अति कातरस्वरसे इसप्रकार रुदन करनेलगी हा पुत्र ! तुम एक वार मेरे सन्मुख आओ किस कारणसे तुमको क्रोध हुआ सो मुझसे कहो ॥ ३३ ॥ हा वत्स ! तुम जो वारंवार मा मा कहकर सदा मेरेपास आते तो इस समय क्यों नहीं आते यह बात कहते २ डगमगाते पैरोंसे जाय मूर्च्छित हो उसके ऊपर गिरपडी ॥ ३४ ॥ फिर वह चैतन्यताको प्राप्तहोकर दोनों हाथोंसे पुत्रको आलिंगनकर उसका मुख चूम कातरस्वरसे रोनेलगी ॥ ३५ ॥ हा पुत्र ! हा वत्स ! हा कुमार ! हा सुन्दर ! इस प्रकार कहकर रुदन और मस्तक

तथा वक्षःस्थलमें कराघात करनेलगी ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! तुम कहां हो ? तुम जिस अपने पुत्रको प्राणोंकी अपेक्षा भी अधिक जानते थे तुम्हारा वही पुत्र आज मृतक अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ा है एकवार आनकर देखो ॥ ३७ ॥ ज्ञात होता है कि पुत्र अभी जीवित है यह विचारकर उसका मुख देखने लगी, परन्तु जब उसका वदन निर्जीव जाना तब तत्काल फिर मूर्च्छित होगई ॥ ३८ ॥ फिर शीघ्रही संज्ञाको प्राप्तहोकर दोनों हाथोंसे उसका वदन ग्रहण कर उससे कहने लगी, हे वत्स ! निद्रा त्यागनकर शीघ्रही जागरित होजाओ अब भीषण ॥ ३९ ॥ रात्रि उपस्थित है इस समय शतशत शिवाका घोर शब्द सुनाई आता है इस समय क्या भूत क्या प्रेत पिशाच और डाकनियोंके यूथके यूथ हूँहूँकार शब्द करतेहुए भ्रमण करते हैं ॥ ४० ॥ तुम्हारे मित्र सूर्य अस्त होतेही चलेगये तुम क्यों इस समय अकेले इस

हाराजन्क्कगतोऽसित्वंपश्येमंबालकंनिजम् ॥ प्राणेभ्योऽपिगरीयांसंभूतलेपतितंमृतम् ॥ ३७ ॥ तथाऽपश्यन्मुखंतस्यभूयोजीवितशंकया ॥ निर्जीववदनंज्ञात्वामूर्च्छितानिपपातह ॥ ३८ ॥ हस्तेनवदनंगृह्यपुनरेवमभाषत ॥ शयनंत्यजहेबालशीघ्रंजागृहिभीषणम् ॥ ३९ ॥ निशार्धंवर्धतेचेदंशिवाशतनिनादितम् ॥ भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥ ४० ॥ मित्राणितेगतान्यस्तात्त्वमेकस्तुकुतःस्थितः ॥ सूतउवाच ॥ एवमुक्त्वा पुनस्तन्वीकरुणंप्ररुरोदह ॥ ४१ ॥ हाशिशोबालहावत्सरोहिताख्यकुमारक ॥ रेपुत्रप्रतिशब्दंमेकस्मात्त्वंनप्रयच्छसि ॥ ४२ ॥ तवाऽहंजननीवत्सकिंनजानासिपश्यमाम् ॥ देशत्यागाद्राज्यनाशात्पुत्रभर्त्रास्वविक्रयात् ॥ ४३ ॥ यदासीत्वाचजीवामित्वांदृष्ट्वापुत्रकेवलम् ॥ तेजन्मसमयेविप्रैरादिष्टंयत्त्वनागतम् ॥ ४४ ॥ दीर्घायुःपृथिवीराजःपुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ शौर्यदानरतिःसत्त्वोगुरुदेवद्विजार्चकः ॥ ४५ ॥

स्थानमें रहगये हो सूतजीने कहा यह कह वह कृशाङ्गी राजमहीषी फिर करुणा स्वरसे रोदन करने लगी ॥ ४१ ॥ हा शिशो ! हा बाल ! हा रोहिताश्व ! हा वत्स ! हा कुमार ! हा पुत्र ! तुम क्यों मुझको उत्तर नहीं देते ॥ ४२ ॥ हे वत्स ! मैं तुम्हारी जननी हूं यह तुम क्या नहीं जानते, एकवार मेरी ओर देखो हे पुत्र ! मैं राज्यसे च्युत और अपने देशसे निकलआई हूं मेरे स्वामीने भी अपना देह पर्यन्त बेंच डाला है॥ ४३ ॥ मैं स्वयं दासी हो गई हूं ऐसी अवस्थामें कौन प्राणी जीवन धारण करनेमें समर्थ होगा केवल तुम्हारा मुख देखकरही जीवित रहती थी तुम्हारे जन्म कालके समय ब्राह्मणोंने जो भविष्यत् वचन कहे थे अब तो वह कुछभी दिखाई नहीं देते ॥ ४४ ॥ उन्होंने कहा था कि यह बालक शूरवीर दीर्घायु दाता और देव ब्राह्मण तथा गुरुजनोंकी पूजामें तत्पर होगा अधिक क्या भूमंडलका एकमात्र अधी

श्वर होकर पुत्र और पौत्रोंके सहित राज्यसुख अनुभव करैगा ॥ ४५ ॥ यह पुत्र जितेन्द्रिय होकर मातापिताका प्रियकार्य साधन करेगा, हा पुत्र! अब सम्पूर्ण बातेंही मिथ्या हुईं ॥ ४६ ॥ हा पुत्र! चक्र, मत्स्य, आतपत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वज,कलश और चमर इत्यादि सम्पूर्ण चिन्हही तुम्हारी हथेलीमें विद्यमान हैं हे सुत! इनके सिवाय अन्यान्य सम्पूर्ण ॥ ४७ ॥ शुभ लक्षणभी तुम्हारे पैरोंके नीचे तलुओंमें विराजमान हैं, परन्तु आज वह सभी क्या व्यर्थ होगये ॥ ४८ ॥ हा वत्स! तुम पृथ्वीके अधीश्वर हो परन्तु तुम्हारा वह राज्य, वह मंत्रीलोग, वह सिंहासन, वह छत्र, वह रङ्ग, वह विपुलधन ॥ ४९ ॥ वह अयोध्यानगरी, वह शोभायमान अटारियें वह गज, अश्व, रथ और वह प्रजावर्ग आज कहां है हा पुत्र! इस समय इन सब और माताको छोड़कर तुम कहां चलेगये

मातापित्रोस्तुप्रियकृत्सत्यवादीजितेंद्रियः ॥ इत्यादिसकलंजातमसत्यमधुनासुत ॥४६॥ चक्रमत्स्यावातपत्रश्रीवत्सस्वस्तिकध्वजाः ॥तवपाणितले पुत्रकलशश्चामरंतथा ॥ ४७ ॥ लक्षणानितथाऽन्यानित्वद्धस्तेयानिसंतिच ॥ तानिसर्वाणिमोघानिसंजातान्यधुनासुत ॥४८॥ हाराजन्पृथिवीनाथक्कते राज्यंक्कमंत्रिणः ॥ क्कतेसिंहासनंछत्रंक्कतेखड्गःक्कतद्धनम् ॥ ४९ ॥ क्कसाऽयोध्याक्कहर्म्याणिक्कगजाश्वरथप्रजाः ॥ सर्वमेतत्तथापुत्रमांत्यक्त्वाक्कगतोऽसिरे॥ ॥ ५० ॥ हाकांतहानृपाऽऽगच्छपश्येमंस्वसुतंप्रियम् ॥ येनतेरिंगतावक्षःकुंकुमेनाऽवलेपितम् ॥ ५१ ॥ स्वशरीररजःपंकैर्विशालंमलिनीकृतम् ॥ येनतेबालभावेनमृगनाभिविलेपितः ॥ ५२ ॥ भ्रंशितोभालतिलकस्तवांकस्थेनभूपते ॥ यस्यवक्त्रंमृदालिप्तंस्नेहार्द्रैश्चुंबितंमया ॥ ५३ ॥ तन्मुखंमक्षिका लिम्यंपश्येकीटैर्विदूषितम् ॥ हाराजन्पश्यतंपुत्रंभुविस्थंरंकवन्मृतम् ॥५४॥ हादेवकिंमयाकृत्यंकृतंपूर्वभवांतरे॥तस्यकर्मफलस्येहनपारमुपलक्षये ॥५५॥

॥ ५० ॥ हा कान्त! हा नाथ! आकर इस समय अपने पुत्रको देखो जो पुत्र अतिबाल्यावस्थामें विचरण करते २ कुंकुमविलेपित तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल ॥ ५१ ॥ अपने शरीरको रजःपंकसे मलीन किया करता था हा नरनाथ! हे भूपते! जो पुत्र तुम्हारी गोदीमें जाकर बाल्यस्वभावके अज्ञानवशसे मृगनाभिरचित तुम्हारे ॥ ५२ ॥ माथेपरका तिलक मलदेता आज उस पुत्रकी अवस्था देखो आहा! पहले मैं धूलिलिप्त जिसके मुखको चूमती थी ॥ ५३ ॥ आज उसी मुखपर मक्खियें बैठती हैं कीट दंशनकरते हैं हाय! यहभी मैं अपनी आंखोंसे देखती हूं हे राजन्! तुम्हारा वह पुत्र दरिद्रकी समान मृतकअवस्थामें भूशय्यापर शयन कररहा है तुम एकवार आनकर देखो॥ ५४ ॥ हा देव! मैंने जन्मान्तरमें क्या कार्य किया है कि इस लोकमें उस कर्मके फलके पार पानेका उपाय नहीं देखती ॥ ५५ ॥

हा पुत्र ! हा शिशो ! हा वत्स ! हा कुमार ! हा सुन्दर ! अब कहींभी क्या तुमको नहीं देखूंगी राजमहिषी माधवी इसप्रकार अनेकप्रकारके विलाप करनेलगी नगरपाल उसके इसप्रकारसे विलापकी ध्वनिको सुनकर ॥ ५६ ॥ जागगयेऔर अत्यन्त विस्मित हो शीघ्र उसके निकट जाय पूछनेलगे नगरवासी बोले कि तू कौन है यह किसका पुत्र है।तेरा पति कहां है॥ ५७॥ तू अकेली निर्भय रात्रिकालके समय क्यों इस स्थानमें रोदन करती है, उनके इसप्रकार पूछनेपरभी इस कृशाङ्गी राजमहिषीने कुछ उत्तर न दिया ॥ ५८ ॥ फिर पूछनेपरभी वह कुछ न बोली, परन्तु कुछकालोपरान्तही अत्यन्त दुःखसे कातर हो विलाप करनेलगी, शोकसे उसके दोनों नेत्रोंसे प्रबल अश्रुधारा बहनेलगी ॥ ५९ ॥ अनन्तर मनुष्य उसके ऊपर संदेहकर शंकित हुए, यही क्या बरन् त्राससे उनके सब अंग रोमांचित होगये, तब वह सम्पूर्ण शस्त्र निकालकर परस्पर कहनेलगे ॥ ६० ॥ यह स्त्री जब कि कुछ उत्तर नहीं देती तो यह कभी स्त्री नहीं है, ऐसा बोध होता है कि कोई मायावी बाल

हापुत्रहाशिशोवत्सहाकुमारकसुंदर ॥ एवंतस्याविलापंतेश्रुत्वानगरपालकाः ॥ ५६ ॥ जागृतास्त्वरितास्तस्याःपार्श्वमीयुःसुविस्मिताः ॥ जनाऊचुः ॥ कात्वंबालश्चकस्याऽयंपतिस्तेकुत्रतिष्ठति ॥ ५७ ॥ एकैवनिर्भयारात्रौकस्मात्त्वमिहरोदिषि ॥ एवमुक्ताऽथसातन्वीनकिंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५८ ॥ भूयोऽपिपृष्टासातूष्णींस्तब्धीभूताबभूवह ॥ विललापाऽतिदुःखार्ताशोकाश्रुप्लुतलोचना ॥ ५९ ॥ अथतेशंकितास्तस्यांरोमांचिततनूरुहाः ॥ संत्रस्ताः प्राहुरन्योन्यमुद्धृतायुधपाणयः ॥ ६० ॥ नूनंस्त्रीनभवत्येषायतःकिंचिन्नभाषते ॥ तस्माद्वध्याभवेदेषायत्नतोबालघातिनी ॥ ६१ ॥ शुभाचेत्तर्हिकिंह्यत्रनिशार्धेतिष्ठतेबहिः ॥ भक्षार्थमनयानूनमानीतःकस्यचिच्छिशुः ॥ ६२ ॥ इत्युक्त्वातैर्गृहीतासागाढंकेशेषुसत्वरम् ॥ भुजयोरपरैश्चैवकैश्चाऽपिगलकेतथा ॥ ६३ ॥ खचरीयास्यतीत्युक्तंबहुभिःशस्त्रपाणिभिः ॥ आकृष्यपक्कणेनीताचांडालायसमर्पिता ॥६४॥ हेचांडालबहिर्दृष्टाह्यस्माभिर्बालघातिनी ॥ वध्यतांवध्यतामेषाशीघ्रंनीत्वाबहिःस्थले॥६५॥ चांडालःप्राहतांदृष्ट्वाज्ञातेयंलोकविश्रुता ॥ नदृष्टपूर्वाकेनाऽपिलोकर्डिभान्यनेकधा ॥ ६६ ॥

घातिनी राक्षसी होगी, इस कारण यत्नसहित इसको मारना उचित है ॥ ६१ ॥ यदि राक्षसी न होती तो क्यों रात्रिके समय इस नगरके बाहरी भागमें स्थिति करती यह राक्षसी किसी बालकको भक्षण करनेके निमित्त इस स्थानमें लाई है, इसमें संदेह नहीं ॥ ६२ ॥ यह बात कह उन्होंने शीघ्रही उसके केशोंको दृढ़रूपसे पकड़कर हे राक्षसि ! कहाँ जाती है ? इसप्रकार कह किसीने उसका हाथ और किसीने उसकी गरदन पकड़ ली ॥ ६३ ॥ तब उन असंख्य अस्त्रधारी पुरुषोंने बलपूर्वक उसे चांडालके घर ले जाकर चांडालके हाथमें समर्पण किया ॥ ६४ ॥ सबने मिलकर कहा कि हे चांडाल ! आज नगरके प्रान्तभागमें इस बालकघातिनी राक्षसीको पकड़ा है, अतएव तुम बाहर वधभूमिमें लेजाकर इसको शीघ्र मारो ॥ ६५ ॥ चांडालने उसके शरीरको देखकर कहा कि यह राक्षसी इस लोकमें विख्यात है

मैं इसको पहलेसेही जानता हूं परन्तु इसको कभी कोई नहीं देखता इस मायावीने साधारण मनुष्योंके अनेक बालक ॥ ६६ ॥ भक्षण किये हैं इसके मारनेसे तुमका बहुत पुण्य होगा और इस लोकमें तुम्हारी सुकीर्ति सर्वदा विख्यात रहेगी इस समय तुम अपने २ घरोंको जाओ ॥ ६७ ॥ जो मनुष्य स्त्री, बालक, गौ और ब्राह्मणकी हत्या करता है जो सोना चुराता और आग लगाता है जो मनुष्योंका गमनमार्ग विलुप्त करता है जो गुरुपत्नीहरण ॥ ६८ ॥ साधुजनोंके सहित विरोध और सुरापान करता है उसके मारनेसे पुण्य होता है स्त्रीलोक अथवा ब्राह्मणभी यदि इसप्रकार पापकार्यमें लिप्त हों तोभी उसके मारनेमें कुछ दोष नहीं होता ॥ ६९ ॥ अतएव इसको मारना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है चांडालने यह बात कहकर उसको मजबूत बांध लिया और उसके बालोंको खेंचकर रस्सीसे मारनेलगा ॥ ७० ॥ इसके पीछे उसने निष्ठुर वचनोंसे हरिश्चंद्रसे कहा रे दास ! इसका वध कर दुष्टस्वभाव यह स्त्री अत्यन्त दुष्ट है अतएव इसके वध करनेमें कुछ विचार न करना ॥ ७१ ॥ तब

भक्षितान्यनयाभूरिभवद्भिःपुण्यमर्जितम् ॥ ख्यातिर्वःशाश्वतीलोकेगच्छध्वंचयथासुखम् ॥६७॥ द्विजस्त्रीबालगोघातीस्वर्णस्तेयीचयोनरः॥अग्निदोवर्त्मघातीचमद्यपोगुरुतल्पगः ॥६८॥ महाजनविरोधीचतस्यपुण्यप्रदोवधः ॥ द्विजस्याऽपिस्त्रियोवाऽपिनदोषोविद्यतेवधे॥६९॥अस्यावधश्चमेयोग्यइत्युक्त्वागाढबंधनैः ॥ बद्ध्वाकेशेष्वथाऽऽकृष्यरज्जुभिस्तामताडयत् ॥७०॥ हरिश्चंद्रमथोवाचवाचापरुषयातदा ॥ रेदासवध्यतामेषादुष्टात्मामाविचारय ॥७१॥ तद्वाक्यंभूपतिःश्रुत्वावज्रपातोपमंतदा॥ वेपमानोऽथचांडालंप्राहस्त्रीवधशंकितः ॥ ७२ ॥ नशक्तोऽहमिदंकर्तुंप्रेष्यंदेहिममाऽऽपरम्॥ असाध्यमपियत्कर्मतत्करिष्येत्वयोदितम् ॥ ७३ ॥ श्रुत्वातदुक्तंवचनंश्वपचोवाक्यमब्रवीत्॥माभैषीस्त्वंगृहाणाऽसिंवधोऽस्याःपुण्यदोमतः ॥७४॥ बालानामेवभयदानेयंरक्ष्याकदाचन ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यराजावचनमब्रवीत् ॥७५॥ स्त्रियोरक्ष्याःप्रयत्नेननहंतव्याःकदाचन॥ स्त्रीवधेकीर्तितंपापंमुनिभिर्धर्मतत्परैः ॥७६॥

नरपति उसके इस प्रकार गिरे हुए वज्रकी समान कठोर वचन सुनकर कम्पित होगये फिर चित्तको स्थिरकर स्त्रीवधकी शंकासे चांडालसे बोले ॥ ७२ ॥ मैं इस कार्यके करनेमें असमर्थ हूं इस कारण आप यह भार अन्य सेवकके ऊपर डालिये; वही इसको मारेगा आप इसके अतिरिक्त जिस किसी कार्यकी आज्ञा देंगे यदि असाध्य हो तो भी मैं उसे करूंगा ॥ ७३ ॥ राजाके यह वचन सुनकर श्वपचने कहा तू भय त्यागकर असि ग्रहणकर, इसका मारना पुण्यदायक है ॥ ७४ ॥ यह मायाविनी बालकोंको सर्वदा नष्ट करती है, इसकी रक्षा करना कभी उचित नहीं राजा उसके इस प्रकारके वचन सुन महादुःखित हो कहनेलगे कि ॥ ७५ ॥ स्त्रियोंकी रक्षा करना सर्वदा उचित है कभी संहार करना ठीक नहीं है विशेषकरके धर्मपरायण मुनियोंने स्त्रीके मारनेमें अधिक पाप निर्देश किया है ॥ ७६ ॥

जो पुरुष ज्ञान अथवा अज्ञानसे स्त्रीहत्या करता है वह मनुष्य महारौरव नरकमें पड़ता है इसमें संदेह नहीं ॥ ७७ ॥ चांडालने कहा तुम यह बात मत कहो बिजलीकी समान प्रभायुक्त यह असि ग्रहण करो जिस स्थानमें एकका वध होनेसे अनेकोंको सुख हो ॥७८॥ उसकी हिंसा करनेसे बहुत पुण्य प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं इस दुष्टाने यहां अनेक बालकोंको भक्षण किया है ॥ ७९ ॥ इस कारण शीघ्र इसको मारकर काशीवासियोंको सावधान करो राजाने कहा हे चांडालाधिपते ! मैं ने जन्मसे " कभी स्त्रीवध न करूंगा " यह कठिनव्रत अवलम्बन किया है ॥ ८० ॥ इसी कारण आपकी आज्ञासे स्त्रीवधके विषयमें यत्न नहीं करसक्ता ॥ चांडालने कहा हे दुष्ट ! प्रभुकार्यके अतिरिक्त और कोई कार्य श्रेष्ठ नहीं होसक्ता ॥८१॥ इस कारण चैतन्य होकर आज किस कारणसे मेरा कार्य नहीं करता जो सेवक

पुरुषोयःस्त्रियंहन्याज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा ॥ नरकेपच्यतेसोऽथमहारौरवपूर्वके ॥ ७७ ॥ चांडालउवाच ॥ मावदाऽसिंगृहाणैनंतीक्ष्णविद्युत्समप्रभम् ॥ यत्रैकस्मिन्वधंनीतेबहूनांतुसुखंभवेत् ॥ ७८ ॥ तस्यांहिंसाकृतानूनंबहुपुण्यप्रदाभवेत् ॥ भक्षितान्यनयाभूरिलोकेडिंभानिदुष्टया ॥७९॥ तत्क्षिप्रंवध्यतामेपालोकःस्वस्थोभविष्यति ॥ राजोवाच ॥ चांडालाधिपतेतीव्रंव्रतंस्त्रीवधवर्जनम् ॥ ८० ॥ आजन्मतस्ततोयत्नंनकुर्यांस्त्रीवधेतव ॥ चांडालउवाच ॥ स्वामिकार्यंविनादुष्टकिंकार्यंविद्यतेपरम् ॥ ८१ ॥ गृहीत्वावेतनंमेऽद्यकस्मात्कार्यंविलुंपसि ॥ यःस्वामिवेतनंगृह्यस्वामिकार्यंविलुंपति ॥ ८२ ॥ नरकान्निष्कृतिस्तस्यनास्तिकल्पायुतैरपि ॥ राजोवाच ॥ चांडालनाथमेदेहिप्राप्यमन्यत्सुदारुणम् ॥ ८३ ॥ स्वशत्रुंब्रूहितंक्षिप्रंघातयिष्याम्यसंशयम् ॥ घातयित्वातुतंशत्रुंतवदास्यामिमेदिनीम् ॥८४॥ देवदेवोरगैःसिद्धैर्गंधर्वैरपिसंयुतम् ॥ देवेंद्रमपिजेष्यामिनिहत्यनिशितैःशरैः ॥८५॥ एतच्छ्रुत्वाततोवाक्यंहरिश्चंद्रस्यभूपतेः ॥ चांडालःकुपितःप्राहवेपमानंमहीपतिम् ॥ ८६ ॥

प्रभुका वेतन लेकर उसके कार्यमें हानि करता है ॥ ८२ ॥ वह अयुत कल्पमें भी नरकसे छुटकारा नहीं पासक्ता. राजाने कहा हे चांडालनाथ ! मुझको अत्यन्त दारुण अन्य किसी कार्यमें नियुक्त कीजिये, मैं सहजमेंही उसको करदूंगा ॥८३ ॥ अथवा यदि आपका कोई शत्रु हो तो उसको बता दीजिये मैं अभी उसका संहार करूंगा इसमें संदेह नहीं मैं उस शत्रुको संहार कर आपको यह पृथ्वी प्रदान करूंगा ॥ ८४ ॥ अधिक क्या देव, दानव, उरग, किन्नर, सिद्ध और गंधर्वोंके साथ यदि इन्द्रभी स्वयं सन्मुख हो तथापि शाणित बाणोंसे उनको मारकर पराजय करसक्ता हूं, परन्तु स्त्रीहत्या किसी प्रकारसे भी नहीं करसक्ता ॥ ८५ ॥ राजा हरिश्चन्द्रके यह वचन सुनकर चांडाल क्रोधसे कम्पितकलेवर हो महीपतिसे कहनेलगा चांडाल बोला तुमने दास होकर जो किया वह दासके उपयुक्त नहीं है. तू चांडालका

दासत्व स्वीकार कर देवताओंकी समान वचन कहता है अतएव रे दास ! अब अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है, अब जो कहता हूं सो सुनो ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ रे निर्लज्ज ! तेरे हृदयमें यदि कुछ पापका भय हो तो चांडालके घर किसकारण दासत्व करनेको आता ॥ ८८ ॥ यह असि लेकर उसका मस्तक छेदन कर यह बात कहकर चांडालने राजाको खड्ग प्रदान किया ॥ ८९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥छ॥ सूतजीने कहा इसके उपरान्त राजा हरिश्चन्द्र नीचेको मुख करके रानीसे कहने लगे कि, हे बाले ! मैं अत्यन्त पापिष्ठ हूं, नहीं तो क्यों ऐसे हीन कार्यके करनेमें प्रवृत्त होता ? जो हो ! इस समय तू मेरे सन्मुख बैठ ॥ १ ॥ मेरे हाथ यदि तेरा संहार करनेमें समर्थ हो तो तेरा शिर छेदन करूंगा, राजा यह बात कहकर असि

चांडालउवाच ॥ "नैतद्वाक्यंसुघटितंयद्वाक्यंदासकीर्तितम् ॥" चांडालदासतांकृत्वासुराणांभाषसेवचः ॥ दासकिंबहुनानूनंशृणुमेगदतोवचः ॥ ८७ ॥ निर्लज्जतवचेदस्तिकिंचित्पापभयंहृदि ॥ किमर्थंदासतांयातश्चांडालस्यतुवेश्मनि ॥ ८८ ॥ गृहाणैनंततःखड्गमस्याश्छिंधिशिरोंबुजम् ॥ एवमुक्त्वाऽथचांडालोराज्ञेखड्गंन्यवेदयत् ॥ ८९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे हरिश्चंद्रोपाख्यानेपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ सूतउवाच ॥ ततोऽथभूपतिः प्राहराज्ञींस्थित्वाह्यधोमुखः ॥ अत्रोपविश्यतांबालेपापस्यपुरतोमम ॥ १ ॥ शिरस्तेच्छेदयिष्यामिहंतुंशक्नोतिचेत्करः ॥ एवमुक्त्वासमुद्यम्यखड्गं हंतुंगतोनृपः ॥ २ ॥ नजानातिनृपःपत्नींसानजानातिभूपतिम् ॥ अब्रवीद्भृशदुःखार्तास्वमृत्युमभिकांक्षती ॥ ३ ॥ स्त्र्युवाच ॥ चांडालशृणुमेवाक्यं किंचित्त्वंयदिमन्यसे ॥ मृतस्तिष्ठतिमेपुत्रोनाऽतिदूरेबहिःपुरात् ॥ ४ ॥ तंदहामिहतंयावदानयित्वातवांतिकम् ॥ तावत्प्रतीक्ष्यतांपश्चादसिनाघातयस्व माम् ॥ ५ ॥ तेनाऽथबाढमित्युक्त्वाप्रेषिताबालकंप्रति ॥ साजगामाऽतिदुःखार्ताविलपंतीसुदारुणम् ॥ ६ ॥

उठाय उसको मारनेके लिये अग्रेसर हुए ॥ २ ॥ राजा जिसप्रकार उसे अपनी स्त्रीनहीं जानसके रानी भी उसी प्रकार उनको हरिश्चन्द्र नरपति नहीं जानसकी इसकारण रानी शोकसे कातर हो अपनी मृत्युकी इच्छासे कहने लगी ॥ ३ ॥ स्त्री बोली हे चांडाल ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं कुछ कहती हूं सो सुनो. मेरा पुत्र मरा हुआ यहांसे कुछेक दूर नगरप्रांतमें पडा है ॥ ४ ॥ उसको तुम्हारे निकट लाकर जबतक उसका दाहादिकार्य न करूं तबतक तुम ठहरो, पश्चात् मुझको असिद्वारा निहत करना ॥ ५ ॥ राजाने कहा अच्छा यही हो यह बात कहकर उसको उस मृतक बालकके निकट जानेकी आज्ञा दी, तब वह दुःखसे दारुण विलाप करतीचली ॥ ६ ॥

नरेन्द्रकी भार्या सर्पके काटे बालकके समीप जा हा पुत्र ! हा वत्स ! हा शिशो ! इस प्रकार वारम्वार कहती ॥ ७ ॥ कृश विवर्ण मलीन वेष धूरि धूसरित केशवाली श्मशानभूमिमें आ बालकको स्थापितकर वहां बैठी और बोली "हे राजन् ! अपने बालकको देखो ! जो अपने मित्रोंके साथ खेलता हुआ उपवनमें सर्पके काटनेसे मृत्युको प्राप्त हुआ है" ॥ ८ ॥ तब नरपति हरिश्चन्द्रने उस बालाकी इस प्रकार करुणायुक्त विलाप ध्वनिको सुनकर शवके समीप जा उसके मुखपरका ढकाहुआ वस्त्र हटा दिया ॥ ९ ॥ दीर्घकाल प्रवासकष्टसे रानीकी मूर्ति बदलगई थी, इसकारण राजा हरिश्चन्द्र उस रोती हुई अपनी भार्याको नहीं पहँचानसके ॥ १० ॥ इधर राजा भी पहलेकी समान वह कुंचिताग्रकेशकलाप नहीं थे, इस समय वह जटामें परिणत हुए थे, इस कारण रानीभी राजाको नहीं पहँचान

भार्यातस्यनरेंद्रस्यसर्पदष्टंहिबालकम् ॥ हापुत्रहावत्साशिशोइत्येवंवदतीमुहुः ॥ ७ ॥ कृशाविवर्णामलिनापांसुध्वस्तशिरारुहो ॥ श्मशानभूमिमागत्य बालंस्थाप्याऽविशद्भुवि ॥ ८ ॥ "राजन्नद्यस्वबालंतंपश्यसीहमहीतले ॥ रममाणंस्वसखिभिर्दष्टंदुष्टाहिनामृतम्" ॥ तस्याविलापशब्दंतमाकर्ण्यसनरा धिपः ॥ शवसन्निधिमागत्यवस्त्रमस्याऽऽक्षिपत्तदा ॥९॥ तांतथारुदतींभार्यांनाभिजानातिभूमिपः ॥ चिरप्रवाससंतप्तांपुनर्जातामिवाऽबलाम् ॥ १० ॥ सापितंचारुकेशांतंपुरेदृष्ट्वाजटालकम् ॥ नाऽभ्यजानान्नृपवरंशुष्कवृक्षत्वचोपमम् ॥ ११ ॥ भूमौनिपतितंबालंदृष्ट्वाशीविषपीडितम् ॥ नरेंद्रलक्षणोपे तमचिंतयदसौनृपः ॥ १२ ॥ अस्यपूर्णेंदुवद्वक्रंशुभमुन्नसमव्रणम् ॥ दर्पणप्रतिमोत्तुंगंकपोलयुगशोभितम् ॥ १३ ॥ नीलान्केशान्कुंचिताग्रान्तसान्द्रान्दी र्घास्तरंगिणः ॥ राजीवसदृशेनेत्रेओष्ठौबिंबफलोपमौ ॥१४॥ विशालवक्षादीर्घाक्षोदीर्घबाहून्नतांसकः ॥ विशालपादोगंभीरःसूक्ष्मांगुल्यवनीधरः ॥ १५ ॥

सकी ॥ ११ ॥ तब राजा पृथ्वीपर पड़ेहुए विषजर्जरित उस बालकके अंग प्रत्यंगमें सम्पूर्ण राजलक्षण देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १२ उसका वदनमंडल पूर्ण चंद्रमाके समान अत्यन्त सुन्दर है कहींभी बिन्दुमात्र व्रण नहीं है नासिका ऊंची, दोनों कपोल दर्पणके समान विमल और प्रशान्त हैं ॥ १३ ॥ केशकलाप नीलवर्ण टेढ़े दीर्घ और तरंगित हैं, दोनों नेत्र कमलदलकी समान खिले हुए दोनों ओष्ठ बिम्बाफलके समान लोहितवर्ण ॥ ॥ १४ ॥ चौंड़ी छाती कानोंपर्यन्त दीर्घ नेत्र जानुतक लम्बी भुजा दोनों कंधे ऊंचे सुन्दर विशाल दोनों चरण सूक्ष्म अंगुली भूमण्डल धारण करनेमें समर्थ ॥ १५ ॥

मृणालकी समान कोमल चरण गंभीर नाभि उन्नत कंधे हैं, अहो कष्ट निश्चयही इसने किसी राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है ॥ १६ ॥ अहो क्या कष्ट है दुरात्मा कालने इसको इस दशामें प्राप्त किया. सूतजीने कहा फिर माताकी गोदीमें शयन करते हुए उस मृतक बालकको पैरोंसे मस्तकपर्यन्त देखकर हरिश्चंद्रके मनमें पूर्वस्मृतिका आविर्भाव हुआ तब वह अपना पुत्र जानकर हाय ! हाय ! शब्दसे रोदन करनेलगे नेत्रोंसे अश्रुधारा बहनेलगी और वह कहनेलगे कि हमारेही पुत्रकी यह अवस्था हुई है ॥ १७ ॥ १८ ॥ यद्यपि पुत्र घोरकालके वशीभूत हुआ है तथापि राजा हरिश्चंद्र क्षण काल मनमें चिन्ताकर स्तब्ध रहे ॥ १९ ॥ अनन्तर राणीने घोर दुःखके वेगसे कहा राणी बोली हा वत्स ! किस पापकी चिन्तासे मुझको यह भयानक दुःख हुआहै ॥ २० ॥ उसके स्वरूपकी उपलब्धि नहीं करसक्ती हा नाथ ! हा राजन् ! मैं अत्यन्त

मृणालपादोगंभीरनाभिरुद्धतकंधरः ॥ अहोकष्टंनरेंद्रस्यकस्याऽप्येषकुलेशिशुः ॥ १६ ॥ जातोनीतःकृतांतेनकालपाशाद्दुरात्मना ॥ सूतउवाच ॥ एवं दृष्ट्वाऽथतंबालंमातुरंकेप्रसारितम् ॥ १७ ॥ स्मृतिमभ्यागतोराजाहाहेत्यश्रूण्यपातयत् ॥ सोऽप्युवाचचवत्सोमेदशामेतामुपागतः ॥ १८ ॥ नीतोयदि चघोरेणकृतांतेनाऽऽत्मनोवशम् ॥ विचारयित्वाराजाऽसौहरिश्चंद्रस्तथास्थितः ॥ १९ ॥ ततोराज्ञीमहादुःखावेशादिदमभाषत ॥ राज्ञ्युवाच ॥ हावत्स कस्यपापस्यत्वपध्यानादिदंमहत् ॥ २० ॥ दुःखमापतितंघोरंतद्रूपंनोपलभ्यते ॥ हानाथराजन्भवतामामपास्यसुदुःखिताम् ॥ २१ ॥ कस्मिन्संस्थी यतेस्थानेविश्रब्धंकेनहेतुना ॥ राज्यनाशःसुहृत्त्यागोभार्यातनयविक्रयः ॥ २२ ॥ हरिश्चंद्रस्यराजर्षेःकिंविधातःकृतंत्वया ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वा राजास्थानच्युतस्तदा ॥ २३ ॥ प्रत्यभिज्ञायदेवींतांपुत्रंचनिधनंगतम् ॥ कष्टंममैवपत्नीयंबालकश्चाऽपिमेसुतः ॥ २४ ॥ ज्ञात्वापपातसंततोमूर्च्छाम तिजगामह ॥ साचतंप्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् ॥२५॥ मूर्च्छितानिपपातार्तानिश्चेष्टाधरणीतले ॥ चेतनांप्राप्यराजेंद्रोराजपत्नीचतौसमम् ॥२६॥

दुःखसे कातर हुई हूं इस अवस्थामें मुझको छोडकर ॥ २१ ॥ किसकारणसे किस स्थानमें गुप्तभावसे काल व्यतीत करते हो. हा विधातः ! तैंने राजर्षि राजा हरिश्चंद्रका राज्य नष्टकर सुहृद् त्याग और भार्या तथा पुत्रपर्यन्तभी विकवादिया ॥ २२ ॥ उन्होंने तेरा ऐसा क्या अपकार किया था तब राजा उसको इसप्रकार विलापध्वनिको सुनकर धैर्यच्युत होगये ॥ २३ ॥ और उस देवी तथा मृतक पुत्रको पहँचानकर कहनेलगे कि, यही मेरी स्त्री और यही मृतक बालक मेरा पुत्र है अहो ! क्या कष्ट है ॥ २४ ॥ इसप्रकार अत्यन्त शोकसे आक्रान्त और मूर्छित हो राजा पृथ्वीपर गिरपडे. राणीनेभी राजाकी ऐसी अवस्था देख ज्योंही राजा हरिश्चंद्रको पहँचाना ॥ २५ ॥ कि त्योंही मूर्छित और निश्चेष्ट हो धरणीपर गिरपड़ी कुछ कालोपरान्त फिर राजेन्द्र और राणी दोनोंने एकसाथ चेतना प्राप्तकी ॥ २६ ॥

फिर शोकसे अत्यन्त संतप्त और कातर हो विलाप करनेलगे. राजाने कहा हा वत्स ! तुम्हारा वह कुंचित अलक, सुशोभित सुकोमल मुखमंडल ॥ २७ ॥ आज मलीन देखकर भी क्यों मेरा हृदय शतखंड होकर विदीर्ण नहीं होता ? हा रोहित ! तुम मधुरस्वरसे तात ! तात ! कहकर कब मेरे समीप आओगे ॥ २८ ॥ मैं स्नेहवश हो गोदीमें लेकर हे वत्स ! हे वत्स ! कहकर कब पुकारूंगा, किसकी जानुलिप्त पिंगलवर्ण पृथ्वीकी रजसे मेरा डुपट्टा, उत्सङ्ग (गोदी) और अंग मलीन होगा, हेहृदयानंदवर्धन ! मैंने कुछभी पुत्रसुख नहीं देखा ॥ २९ ॥ ३० ॥ मैंने पिता होकरभी सामान्य वस्तुकी समान तुमको बेचा है, हीनदैवकी विड़म्बनासे मेरा असीम राज्य बांधव और प्रभूत धन, यह सभी जातारहा, अन्तमें मेरा एकमात्र पुत्र था वहभी नृशंस कालके मुखमें पतितहुआ ॥ ३१ ॥ हाय ! विषम सर्पके काटनेसे

विलेपतुःसुसंतप्तौशोकभारेणपीडितौ ॥ राजोवाच ॥ हावत्ससुकुमारंतेवदनंकुंचितालकम् ॥२७॥ पश्यतोमेमुखंदीनंहृदयंकिंनदीर्यते ॥ ताततातेतिमधुरं ब्रुवाणंस्वयमागतम् ॥२८॥ उपगुह्यैकदावक्ष्येवत्सवत्सेतिसौहृदात् ॥ कस्यजानुप्रणीतेनपिंगेनक्षितिरेणुना ॥२९॥ ममोत्तरीयमुत्संगंतथांगंमलमेष्यति ॥ नवाऽलंममसंभूतंमनोहृदयनंदन ॥ ३० ॥ "मयासिपितृमान्पित्राविक्रीतोयेनवस्तुवत्" ॥ गतंराज्यमशेषंमेसबांधवधनंमहत् ॥ "हीनदैवान्नृशंसेनदृष्टोमेतनयस्ततः ॥ " अहंमहाहिदष्टस्यपुत्रस्याऽऽननपंकजम् ॥ ३१ ॥ निरीक्षन्नद्यघोरेणविषेणाऽधिकृतोऽधुना ॥ एवमुक्त्वातमादायबालकंबाष्पगद्गदः ॥ ३२ ॥ परिष्वज्यचनिश्चेष्टोमूर्च्छयानिपपातह ॥ ततस्तंपतितंदृष्ट्वाशैव्याचैवमचिंतयत् ॥ ३३ ॥ अयंसपुरुषव्याघ्रःस्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥ विद्वज्जनमनश्चंद्रोहरिश्चंद्रो नसंशयः ॥ ३४ ॥ तथाऽस्यनासिकातुंगातिलपुष्पोपमाशुभा ॥ दंताश्चमुकुलप्रख्याःख्यातकीर्तेर्महात्मनः ॥ ३५ ॥ श्मशानमागतःकस्मादद्यवेंसनरेश्वरः ॥ विहायपुत्रशोकंसापश्यंतीपतितंपतिम् ॥ ३६ ॥ प्रहृष्टाविस्मितादीनाभर्तृपुत्रार्तिपीडिता ॥ वीक्षंतीसातदाऽपतन्मूर्च्छयाधरणीतले ॥ ३७ ॥

मृतक पुत्रका वदनमंडल देखकर आज मैं घोर संताप विषसे दग्ध हुआ, राजाने गद्गद स्वरसे यह बात कह ज्योंही उस बालकको गोदीमें लिया ॥ ३२ ॥ कि त्योंही मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पडे अनन्तर राजाको पडा हुआ देखकर शैव्या इसप्रकारसे चिन्ता करने लगी ॥ ३३ ॥ इनके कंठस्वरसे बोध होता है कि, यही पुरुष प्रवर विज्ञजनोंका चित्त प्रसन्न करनेवाले राजा हरिश्चन्द्र हैं ॥ ३४ ॥ उन विख्यात कीर्ति राजा हरिश्चन्द्रकी जैसी अनारकी समान दशन पंक्ति और नासिका ऊंची तथा तिलके फूलकी समान सुकुमारथी इनकी भी वैसीही दिखाई देती है ॥ ३५ ॥ परन्तु यदि यही वह नरेश्वर राजा हरिश्चन्द्र हैं तो किसकारणसे श्मशानमें आये हैं इस प्रकार विचार पुत्रशोक त्यागकर ज्योंही पृथ्वीपर पडे हुए पतिको देखने लगी ॥ ३६ ॥ त्योंही हर्ष विषाद और विस्मयने उसके हृदयको आक्रमण किया तब वह

राजाको देखते देखते मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ३७ ॥ फिर क्रमानुसार चैतन्यता प्राप्तकर कातर स्वरसे कहने लगी हा दैव ! जो राजा एक समय अमरकी समान थे आज तैंने उन नरपतिको राज्य नष्ट सुहृदत्याग भार्या और पुत्रपर्यन्त बिकवाकर चांडालरूपमें परिणत किया है अतएव तुझको दया नहीं धर्म नहीं न्याय अन्यायका विचार नहीं और लज्जा भी नहीं है इस कारण तुझको धिक्कार है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! आज कालने तुमको चांडाल बनाया है अब तुम्हारा वह छत्र वह सिंहासन ॥ ४० ॥ वह चामर और वह दोनों विजय कहां गये ? आज विधाताका यह क्या विपरीत कोप है, पहले इन महात्माके गमन कालमें राजा लोग भृत्य स्वरूप होकर ॥ ४१ ॥ अपने डुपट्टोंसे पृथ्वीकी धूलि झाड़ते थे, आज वही राजा कपालोंसेव्याप्त शवसंस्कारको लायेहुए क्षुद्रकलशोंसे पूर्ण ॥ ४२ ॥ मृतकोंके गलेकी पुष्प

प्राप्यचेतश्शनकैःसागद्गदमभाषत ॥ धिक्त्वां दैवह्यकरुणनिर्मर्यादजुगुप्सित ॥ ३८ ॥ येनाऽयममरप्रख्योनीतोराजाश्वपाकताम् ॥ राज्यनाशंसुहृत्त्यागंभार्यातनयविक्रयम् ॥ ३९ ॥ प्रापयित्वापियेनाऽद्यचांडालोऽयंकृतोनृपः ॥ नाऽद्यपश्यामितेछत्रंसिंहासनमथाऽपिवा ॥ ४० ॥ चामरव्यजनेवाऽपिकोऽयंविधिविपर्ययः ॥ यस्याऽस्यव्रजतःपूर्वंराजानोभृत्यतांगताः ॥ ४१ ॥ स्वोत्तरीयैःप्रकुर्वंतिविरजस्कंमहीतलम् ॥ सोऽयंकपालसंलग्नेघटीपटनिरंतरे ॥ ४२ ॥ मृतनिर्माल्यसूत्रांतर्लग्नकेशसुदारुणे ॥ वसानिष्पंदसंशुष्कमहापटलमंडिते ॥ ४३ ॥ भस्मांगारार्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥ गृध्रगोमायुनादार्तैंपुष्टक्षुद्रविहंगमे ॥४४॥ चिताधूमायतपटनीलीकृतदिगंतरे ॥ कुणपास्वादनमुदासंप्रहृष्टनिशाचरे ॥ ४५ ॥ चरत्यमेध्येराजेंद्रःश्मशानेदुःखपीडितः ॥ एवमुक्त्वाऽथसंश्लिष्यकंठेराज्ञोनृपात्मजा ॥ ४६ ॥ कष्टंशोकसमाविष्टाविललापार्तयागिरा ॥ राजन्स्वप्नोऽथतथ्यंवायदेतन्मन्यतेभवान् ॥ ४७ ॥ तत्कथ्यतांमहाभागमनोवैमुह्यतेमम ॥ यद्येतदेवंधर्मज्ञनास्तिधर्मेसहायता ॥ ४८ ॥

मालाओंके डोरेमें बाल उलझनेसे भीषणवसाके निकलनेसे सूखे महापटलसे मंडित ॥ ४३ ॥ भस्मके अंगारोंसे आधे जले मुर्दोंकी अस्थि और मज्जाके संघट्टसे भयंकर गृध्र गोमायुओंके नादसे क्षुद्र पक्षियोंके पोषक ॥ ४४ ॥ चिताके धूमरूप पटसे आकाशको नीलवर्ण करनेवाले मांसके आस्वादमें प्रसन्न विचरणशील राक्षसोंसे व्याप्त ॥ ४५ ॥ इस अपवित्र स्थानमें विचरण करते हैं,दुःखसे पीडित हैं, इसप्रकार कह रानी राजाके कंठमें लिपटगई ॥ ४६ ॥ और कष्ट शोकसे व्याकुल हो घोर विलाप करने लगी- हेराजन् ! आप जो अपनेको चांडाल कहते हो यह स्वप्न है अथवा सत्य है ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! सो कहो मेरा मन मोहित होता है, हे धर्मज्ञ ! जो

ऐसा है तो धर्मने कुछ सहायता नहीं दी ॥ ४८ ॥ तथा ब्राह्मण देवता आदिके पूजनमें, सत्यपालनमें यदि ऐसीही सहायता प्राप्त हो तौ सत्यकी रक्षा नहीं होसक्ती धर्मकी रक्षा न होनेसे सत्य आर्जव और अनृशंसताकी रक्षा नहीं होसक्ती ॥ ४९ ॥ आप परम धर्मात्मा होकरभी राज्यच्युत हुए. सूतजीने कहा शीर्णदेह शैब्याके ऐसे वचन सुनकर राजा दीर्घ और उष्ण श्वास छोडते हुए ॥ ५० ॥ जिस प्रकार श्वपचत्वको प्राप्त हुए थे, वाष्पकंठद्वारा धीरेसे विस्तारसहित वह वर्णन किया उस राजपत्नीने भी यह सुनकर अत्यन्त दुःखित मनसे ऊष्ण श्वास त्यागकर ॥ ५१ ॥ जिसप्रकार पुत्रकी मृत्यु हुई थी वह आद्योपान्त राजासे निवेदन किया यह सुनतेही राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ५२ ॥ फिर क्रमानुसार चेतना प्राप्तकर जिह्वासे चाट वारंवार मृतक पुत्रका मुख चूमने लगे तब शैब्यानें गद्गदस्वर हो राजा हरिश्चन्द्रसे कहा ॥ ५३ ॥ इससमय मेरा मस्तक छेदन कर प्रभुकी आज्ञा पालन करो हे भूपते ! तो आप सत्यसे रक्षा पावेंगे और प्रभुकी

तथैवविप्रदेवादिपूजनेसत्यपालने ॥ नास्तिधर्मःकुतःसत्यंनाऽऽर्जवंनाऽनृतांशता ॥४९॥ यत्रत्वंधर्मपरमःस्वराज्यादवरोपितः ॥ सूतउवाच ॥ इतितस्या वचःश्रुत्वानिःश्वस्योष्णंसगद्गदः ॥५०॥ कथयामासतन्वंग्यैयथाप्राप्तःश्वपाकताम् ॥ रुदित्वासातुसुचिरंनिःश्वस्योष्णंसुदुःखिता ॥ ५१ ॥ स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तंन्यवेदयत् ॥ श्रुत्वाराजातथावाक्यंनिपपातमहीतले ॥ ५२ ॥ मृतपुत्रंसमानीयजिह्वयाविलिहन्मुहुः ॥ हरिश्चंद्रमथोप्राहशैब्यागद्गदया गिरा ॥ ५३ ॥ कुरुष्वस्वामिनःप्रेष्यंछेदयित्वाशिरोमम ॥ स्वामिद्रोहोनतेस्त्वद्यमाऽसत्योभवभूपते ॥ ५४ ॥ माऽसत्यंतवराजेंद्रपरद्रोहस्तुपातकम् ॥ एतदाकर्ण्यराजातुपपातभुविमूर्च्छितः ॥ ५५ ॥ क्षणेनचेतनांप्राप्यविललापातिदुःखितः ॥ राजोवाच ॥ कथंप्रियेत्वयाप्रोक्तंवचनंत्वतिनिष्ठुरम् ॥५६॥ यदशक्यंभवेद्वक्तुंतत्कर्मक्रियतेकथम् ॥ पत्न्युवाच ॥ मयाचपूजितागौरीदेवाविप्रास्तथैवच ॥ ५७ ॥ भविष्यसिपतिस्त्वंमेह्यन्यस्मिञ्जन्मनिप्रभो ॥ श्रुत्वाराजातदावाक्यंनिपपातमहीतले ॥ ५८ ॥ मृतस्यपुत्रस्यतदाचुचुंबदुःखितोमुखम् ॥ राजोवाच ॥ प्रियेनरोचतेदीर्घकालंक्लेशंमयाऽशितुम् ॥ ५९ ॥

आज्ञा भी उल्लंघन न होगी ॥ ५४ ॥ हे राजेन्द्र, विशेषकर इस परद्रोहजनित अथवा असत्यव्यवहारजनित पाप आपको स्पर्श नहीं करेगा. यह सुन राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ५५ ॥ किन्तु क्षणमात्रमेंही चेतना प्राप्त कर अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगे राजाने कहा हे प्रिये ! तुम किसप्रकार ऐसे निष्ठुर वचन मुखसे निकालती हो ॥ ५६ ॥ जो मुखसे भी उच्चारण नहीं किया जासक्ता वह कार्य किसप्रकार करूंगा ? शैब्याने कहा हे विभो ! मैंने गौरी देवीकी पूजा की है और अन्यान्यदेवता तथा ब्राह्मणोंकी भी पूजा की है ॥ ५७ ॥ अतएव उनकी कृपासे आप जन्मान्तरमें भी मेरे पति होंगे, राजा यह वात सुनकर तत्काल पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ५८ ॥ और शीघ्र उठ तथा दुःखित हो मृतक पुत्रका मुख चूमने लगे राजाने कहा हे प्रिये ! मैं अब दीर्घ कालतक क्लेश नहीं सहसकूंगा ॥ ५९ ॥

परन्तु हे कृशाङ्गी ! देखो मैं ऐसा हतभाग्य हूं कि अपने अंतःकरणके ऊपर भी मेरा कुछ आधिपत्य नहीं है, चांडालकी विना आज्ञा यदि अग्निमें प्रवेश करूं ॥ ६० ॥ तो जन्मान्तरमेंभी फिर मुझको चांडालका दासत्व प्राप्त होगा, फिर नरकमें जाकर दारुण क्लेश भोगना होगा ॥ ६१ ॥ किन्तु वह भी मेरे पक्षमें श्रेष्ठ है, महा रौरवनरकमें जाकर बहुत कालतक असह्य नरक यंत्रणा सहूं वह भी मुझको श्रेष्ठ है, दुःख सागरमें मग्न हो प्राणत्यागन करना श्रेष्ठ है ॥ ६२ ॥ परन्तु मेरा यह बालक पुत्रही वंशकी रक्षा करनेवाला है. मेरे इस बलवान् पुत्रने दैवके विपाकवशसे प्राणत्यागन किया है, अतएव क्लेशसागरमें निमग्न हो जीवनधारणकी अपेक्षा प्राणत्यागनाही श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥ मेरा देह इस समय चांडालके आधीन है, इसकारण इस दुर्गतिकीअवस्थामें किस प्रकार जीवन त्याग करूं, कारण कि उसकी विना आज्ञा प्राणत्याग

नात्मायत्तोऽहंतन्वंगिपश्यमेमंदभाग्यताम् ॥ चांडालेनाऽननुज्ञातःप्रवेक्ष्येज्वलनंयदि ॥ ६० ॥ चांडालदासतांयास्येपुनरप्यन्यजन्मनि ॥ नरकंचवरंप्राप्यखेदंप्राप्स्यामिदारुणम् ॥ ६१ ॥ तापंप्राप्स्यामिसंप्राप्यमहारौरवरौरवे ॥ मग्नस्यदुःखजलधौवरंप्राणैर्वियोजनम् ॥ ६२ ॥ एकोऽपिबालकोयोऽयमासीद्वंशकरःसुतः ॥ ममदैवानुयोगेनमृतःसोऽपिबलीयसा ॥ ६३ ॥ कथंप्राणान्विमुंचामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गतः ॥ तथापिदुःखबाहुल्यात्त्यक्ष्यामितुनिजांतनुम् ॥ ६४ ॥ त्रैलोक्येनाऽस्तितद्दुःखंनाऽसिपत्रवनेतथा ॥ वैतरिण्यांकुतस्तद्वद्यादृशंपुत्रविप्लवे ॥ ६५ ॥ सोऽहंसुतशरीरेणदीप्यमानेहुताशने ॥ निपतिष्यामितन्वंगिक्षंतव्यंतन्ममाऽधुना ॥ ६६ ॥ नवक्तव्यंत्वयाकिंचिदतःकमललोचने ॥ ममवाक्यंचतन्वंगिनिबोधाऽऽहतमानसा ॥६७॥ अनुज्ञाताऽथगच्छत्वंविप्रवेश्मशुचिस्मिते ॥ यदिदत्तंयदिहुतंगुरवोयदितोषिताः ॥ ६८ ॥ संगमःपरलोकेमेनिजपुत्रेणचत्वया ॥ इहलोकेकुतस्त्वेतद्भविष्यतिसमीप्सितम् ॥ ६९ ॥

करनेसे उसके ऋणसे नरक भोगना होगा. तोभी अत्यन्त दुःखके कारण अपना देह त्याग करूंगा ॥ ६४ ॥ पुत्रके वियोगसे जैसा दुःख उपस्थित हुआ है वैतरणी नदीके पार होनेसे अथवा असिपत्र वनमें भी ऐसा दुःख नहीं भोगना होगा. अधिक क्या त्रिलोकीमें भी ऐसा कोई दुःख नहीं है ॥ ६५ ॥ मैं इस समय पुत्रकी मृतकदेहके साथ प्रज्वलित अग्निमें गिरूंगा ॥ ६६ ॥ अतएव हे कृशाङ्गि ! तुम इसमें कुछ भी न कहना. हे शुचिस्मिते ! सावधान हो तुम मेरे वचन मानो ॥ ६७ ॥ इस समय आज्ञा देताहूं कि तुम ब्राह्मणके घर जाओ यदि मैंने कभी धनदान अग्निमें आहुति प्रदान और गुरुजनोंको संतुष्ट किया हो ॥ ६८ ॥ तो परलोकमें पुत्र और तुम्हारे

साथ समागम होगा परन्तु इस लोकमें इस अभीष्टके प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ ६९ ॥ हे शुचिस्मिते ! मैंने हास्यके मिष गुप्तभावसे यदि कोई अप्रमाणिक बात कही हो तो मेरे प्रयाणकालेके समय वह सम्पूर्ण क्षमा करना ॥ ७० ॥ हे शुभे ! तुम अपनेको राजपत्नी जानकर ब्राह्मणका कभी तिरस्कार मत करना, प्रभुको देवताकी समान जानकर यत्नसहित उनको संतुष्ट करना ॥ ७१ ॥ रानीने कहा हे हे राजर्षे ! मैंभी इस प्रज्वलित अग्निमें पतित हूंगी हे देव ! मैं इस दुःखका भार नहीं सहसक्ती अतएव आपके संग चलूंगी॥ ७२॥ आपके संग गमन करना मुझको श्रेष्ठ है अतएव इसके अन्यथा नहीं होगा. हे मानद ! आपके संगही स्वर्ग अथवा नरक भोगूं गी ॥ ७३ ॥ तब यह बात सुनकर राजाने कहा हे पतिव्रते ! जोतुम्हारी इच्छा हो सो करो ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः॥ २६ ॥

यन्मयाहसताकिंचिद्विहसित्वांशुचिस्मिते ॥ अशेषमुक्तंतत्सर्वंक्षंतव्यंममयास्यतः ॥ ७० ॥ राजपत्नीतिगर्वेणनाऽवज्ञेयःसमेद्विजः ॥ सर्वयत्ने नतोष्यःस्यात्स्वामीदैवतवच्छुभे ॥ ७१ ॥ राज्युवाच ॥ अहमप्यत्रराजर्षेनिपतिष्येहुताशने ॥ दुःखभारासहादेवसहयास्यामिवैत्वया ॥ ७२ ॥ त्वयासहममश्रेयोगमनंनाऽन्यथाभवेत् ॥ सहस्वर्गंचनरकंत्वयाभोक्ष्यामिमानद ॥ ७३ ॥ श्रुत्वाराजातदोवाचएवमस्तुपतिव्रते ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधेहरिश्चंद्रोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ सूतउवाच ॥ ततःकृत्वाचितांराजाआरोप्यतनयंस्वकम् ॥ भार्ययासहितो राजावद्धांजलिपुटस्तदा ॥ १ ॥ चिंतयन्परमेशानींशताक्षींजगदीश्वरीम् ॥ पंचकोशांतरगतांपुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ २ ॥ रक्तांबरपरीधानांकरुणारस सागराम् ॥ नानायुधधरामंबांजगत्पालनतत्पराम् ॥ ३ ॥ तस्यचिंतयमानस्यसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ धर्मंप्रमुखतःकृत्वासमाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४ ॥ आगत्यसर्वेप्रोचुस्तेराजञ्छृणुमहाप्रभो ॥ अहंपितामहःसाक्षाद्धर्मश्चभगवान्स्वयम् ॥ ५ ॥

सूतजीने कहा फिर राजा हरिश्चन्द्रने चिता बनाय अपने पुत्रको उसके ऊपर रक्खा, उसके उपरान्त स्वयं हाथ जोड़ भार्याके सहित ॥ १ ॥ जगदीश्वरी परमेशानीका ध्यान करनेलगे. वह शताक्षी जीवोंके अन्नमयादि पंचकोशके अन्तरमें विराजमान रहती है, वह अन्नरसमय पुरुषोंके पुच्छस्थित (आधारचक्रस्थित) ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २ ॥ और करुणारसकी सागरस्वरूप हैं, वह लाल वस्त्र पहरकर अनेक प्रकारके आयुध धारणकर जगत्की रक्षा करनेमें तत्पर रहती है ॥ ३ ॥ जब राजा इसप्रकार ध्यानमें निमग्न हुए तब इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता धर्मको आगेकर शीघ्र हरिश्चन्द्रके निकट आये ॥ ४ ॥ उन सबने आनकर कहा हे राजन् ! तुम

सुनो ! मैं पितामह, स्वयं धर्म, भगवान् विष्णु ॥ ५ ॥ साध्यगण, विश्वेदेवगण मरुद्गण लोकपालगण, चारणगण, गंधर्वगण, रुद्रगण दोनों अश्वनीकुमार अन्यान्य सम्पूर्ण देवतागण और विश्वामित्र स्वयं आये हैं, जो विश्वामित्र तीनों जगत प्रदान करके भी धर्मानुसार मित्रता करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ इस समय वही विश्वामित्र तुम्हें अभीष्ट देनेको अत्यन्त अभिलाषी हुए हैं. धर्मने कहा हे राजन् ! ऐसे साहसिक कार्यमें उद्यत न होना मैं धर्म हूं ॥ ८ ॥ मैं तुम्हारी तितिक्षा (सहनशीलता) दम और सत्वादिगुणोंसे सन्तुष्ट हो तुम्हारे निकट आया हूं इन्द्रने कहा हे हरिश्चंद्र ! मैं भी तुम्हारे निकट उपस्थित हुआहूं ॥ ९ ॥ अतएव तुम्हारे सौभाग्यकी सीमा नहीं तुमने भार्या और पुत्रके साथ इस समय सनातन लोकोंको जय किया है अब भार्या और पुत्रके साथ स्वर्गमें चलो ॥ १० ॥ हे

साध्याःसविश्वेमरुतोलोकपालाःसचारणाः ॥ नागाःसिद्धाःसगंधर्वारुद्राश्चैवतथाऽश्विनौ ॥ ६ ॥ एतेचाऽन्येऽथवहवोविश्वामित्रस्तथैवच ॥ विश्वत्रयेणयोमैत्रींकर्तुमिच्छतिधर्मतः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रःसतेऽभीष्टमाहर्तुंसम्यगिच्छति ॥ धर्मउवाच ॥ माराजन्साहसंकार्षीर्धर्मोऽहंत्वामुपागतः ॥ ८ ॥ तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्वद्गुणैःपरितोषितः ॥ इंद्रउवाच ॥ हरिश्चंद्रमहाभागप्राप्तःशक्रोऽस्मितेंतिकम् ॥ ९ ॥ त्वयाऽद्यभार्यापुत्रेणजिताल्लोकास्सनातनाः ॥ आरोहत्रिदिवंराजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ १० ॥ सुदुष्प्रापंनरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥ सूतउवाच ॥ ततोऽमृतमयंवर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥ ११ ॥ इंद्रःप्रासृजदाकाशाच्चितामध्यगतेशिशौ ॥ पुष्पवृष्टिश्चमहतीदुंदुभिस्वनएवच ॥ १२ ॥ समुत्तस्थौमृतःपुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मनः ॥ सुकुमारतनुःस्वस्थःप्रसन्नःप्रीतमानसः ॥ १३ ॥ ततोराजाहरिश्चंद्रःपरिष्वज्यसुतंतदा ॥ सभार्यःस्वश्रियायुक्तोदिव्यमाल्यांबरावृतः ॥ ॥ १४ ॥ स्वस्थःसंपूर्णहृदयोमुदापरमयावृतः ॥ बभूवतत्क्षणादिंद्रोभूपंचैवमभाषत ॥ १५ ॥ सभार्यस्त्वंसपुत्रश्चस्वर्लोकंसद्गतिंपराम् ॥ समारोहमहाभागनिजानांकर्मणांफलम् ॥ १६ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ देवराजाननुज्ञातःस्वामिनाश्वपचेनहि ॥ अकृत्वानिष्कृतिंतस्यनारोक्ष्येवैसुरालयम् ॥ १७ ॥

राजन् ! जो मनुष्योंको हुआ है तुमने अपने कर्मफलसे उसको जीतलिया. सूतजीने कहा इसके उपरान्त अपमृत्युविनाशन अमृतकी वर्षा ॥ ११ ॥ इन्द्रने चितामें स्थित बालकके ऊपर की इसी समय आकाशमंडलसे पुष्पवृष्टि और दुन्दुभिध्वनि होनेलगी ॥ १२ ॥ इसी अवसरमें वह महानुभाव राजाका पुत्र चितासे उठ बैठा वह पहलेकी समान सुकुमार देह स्वस्थचित्त प्रसन्न और प्रीतमनवाला था ॥ १३ ॥ हरिश्चंद्रने तत्काल पुत्रको आलिंगन किया और इसी समय राजा तथा रानी दोनोंही पूर्वकी समान सौन्दर्य प्राप्त कर मनोहर वस्त्र और मालासे भूषित हुए ॥ १४ ॥ तब स्वास्थ्य और अभीष्ट प्राप्त होनेके कारण आनंदसे उनका हृदय पूर्ण होगया तब इन्द्रने नरपतिसे कहा ॥ १५ ॥ हे महाभाग ! तुम पुत्र और कलत्रके सहित अपने कर्मके फलसे स्वर्गमें चल परम पवित्र सद्गति प्राप्त करो ॥ १६ ॥ हरिश्चंद्रने कहा देवराज ! श्वपच

मेरा प्रभु है इनसे छुटकारा न पाकर और उनकी आज्ञा न लेकर मैं स्वर्गको नहीं जाऊंगा ॥ १७॥ धर्मने कहा तुम्हारा इस प्रकार भावी क्लेश जानकर मैंने अपनी मायासे स्वयं श्वपचरूप धारणकर तुमको यह चांडालपुरी दिखाई अधिक क्या मैंही यह चांडाल मैंही वह ब्राह्मण हूं; और मैंनेही काला सर्प होकर तुम्हारे पुत्रको डसा है ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा हे हरिश्चंद्र! भूमंडलके सम्पूर्ण मनुष्य जिस स्थानका अधिकार करनेकी प्रार्थना करतेहैं तुम स्वयं पुण्यके बलसे उस स्थानको चलो ॥ १९ ॥ हरिश्चंद्रने कहा हे देवराज! मैं आपको प्रणाम करताहूं आप मेरा वचन श्रवण करके विचार कीजिये, कोसलनगरनिवासी सम्पूर्ण मनुष्य मेरे विरहरूपी शोक सागरमें निमग्न होरहे हैं॥ २०॥ इस समय उन शोकसंतप्त प्रजाको छोडकर किसप्रकार स्वर्गको चल सक्ता हूं, भक्तोंके त्यागनसे नरक होता है ब्रह्महत्या सुरापान और गोवधकी ॥ २१ ॥ समान महापातक है. हे शक्र! जो भक्त सर्वदा सेवामें रत हैं उनको त्यागना अत्यन्त अनुचित है. अतएव त्यागनेसे किसप्रकार सुख भोग

॥ धर्मउवाच ॥ तवैवंभाविनंक्लेशमवगम्याऽऽत्ममायया ॥ आत्माश्वपाकतांनीतोदर्शितंतच्चपक्कणम् ॥ १८ ॥ इंद्रउवाच ॥ प्रार्थ्यतेयत्परंस्थानंसमस्तै र्मनुजैर्भुवि ॥ तदारोहहरिश्चंद्रस्थानंपुण्यकृतांनृणाम् ॥ १९ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ देवराजनमस्तुभ्यंवाक्यंचेदंनिबोधमे ॥ मच्छोकमग्नमनसःकोसलेन गरेनराः ॥ २० ॥ तिष्ठंतितानपास्यैवंकथंयास्याम्यहंदिवम् ॥ ब्रह्महत्यासुरापानंगोवधःस्त्रीवधस्तथा ॥ २१ ॥ तुल्यमेभिर्महत्पापंभक्तत्यागादुदाहृतम् ॥ भजंतंभक्तमत्याज्यंत्यजतःस्यात्कथंसुखम् ॥ २२ ॥ तैर्विनानप्रयास्यामितस्माच्छक्रदिवंव्रज ॥ यदितेसहिताःस्वर्गंमयायांतिसुरेश्वर ॥ २३ ॥ ततो ऽहमपियास्यामिनरकंवापितैः सह ॥ इंद्रउवाच ॥ बहूनिपुण्यपापानितेषांभिन्नानिवैनृप॥२४॥कथंसंघातभोज्यंत्वंभूपस्वर्गमभीप्ससि ॥ हरिश्चंद्रउवाच॥ भुंक्तेशक्रनृपोराज्यंप्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २५ ॥ यजतेचमहायज्ञैःकर्मपूर्तंकरोतिच ॥ तच्चतेषांप्रभावेणमयासर्वमनुष्ठितम् ॥ २६ ॥ उपदादान्नसंत्यक्ष्ये तानहंस्वर्गलिप्सया ॥ तस्माद्यन्ममदेवेशकिंचिदस्तिसुचेष्टितम् ॥ २७॥

सक्ताहूं ॥ २२ ॥ इसकारण उनको विनालिये मैं स्वर्गको नहीं जाऊँगा, आप स्वर्गको लौट जाइये. हे सुरेश्वर! यदि वह मेरे संग जासके ॥२३॥ तो मैंभी उनके संग स्वर्ग अथवा नरकमें जासक्ता हूं. इन्द्रने कहा हे नृपवर! उनमेंसे किसीका अधिक पाप अथवा किसीका अधिक पुण्य भिन्न भिन्न है ॥ २४ ॥ अत एव हे भूप! वह सम्पूर्ण एकही समय स्वर्गके भोगनेका किसप्रकार अधिकार रखतेहैं! हरिश्चंद्रने कहा हे वासव! पौरवर्गोंके प्रभावसे ही राजालोग राज्यभोग करते हैं ॥ २५ ॥ महायज्ञका अनुष्ठान और पूर्त्तकार्य (वापीकूपादि) सम्पादन करते हैं इसमें सन्देह नहीं है. मैंने भी इसीप्रकार प्रजाके प्रभावसे सम्पूर्ण धर्मकार्यका अनुष्ठान किया है ॥ २६ ॥ इसकारण जिन्होंने राजप्रयोजनीय सम्पूर्ण द्रव्य दान किया है मैं स्वर्ग प्राप्त होनेकी इच्छासे उनको नहीं छोडूंगा. हे देवेश! यदि

उनका स्वर्गमें चलनेके अनुरूप पुण्य न हो तो कुछ मेरा पुण्य है ॥ २७ ॥ अर्थात् मैंने दान यज्ञ याग इत्यादि जो कुछ सत्कार्यका अनुष्ठान किया है वह उनका सब पुण्य स्वर्गभोगको प्राप्त हो यदि मैं अकेला कर्मका फल भोगूं तो बहुत समयतक भोगसक्ता हूं ॥ २८ ॥ परन्तु आपके प्रसादसे उनके संग उस कर्मका फल एकही दिनमें भोगलूं तो भी मुझको परम श्रेय है. सूतजीने कहा "यही होगा" ऐसा कहकर त्रिभुवनेश्वर इन्द्र ॥ २९ ॥ गाधिनंदन विश्वामित्र और धर्म प्रसन्न हो योगबलसे उसी समय काशीसे अयोध्याको चले गये वह मुहूर्त्त मात्रमेंही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रयुक्त अयोध्यानगरीमें पहुँचे ॥ ३० ॥ और उनमेंसे देवराज इन्द्रने कहा कि नगरनिवासी सम्पूर्ण मनुष्य शीघ्र राजा हरिश्चन्द्रके समीप आवें आज वह हरिश्चन्द्रके धर्मबलसे दुर्लभ स्वर्गलोकको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ यह बात कहकर

दत्तमिष्टमथोजप्तंसामान्यंतैस्तदस्तुनः॥बहुकालोपभोज्यंचफलंयन्ममकर्मगम्॥२८॥तदस्तुदिनमप्येकंतैःसमंत्वत्प्रसादतः ॥ सूतउवाच ॥ एवंभविष्यती त्युक्त्वाशक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥२९॥ प्रसन्नचेताधर्मश्चविश्वामित्रश्चगाधिजः ॥ गत्वातुनगरंसर्वेचातुर्वर्ण्यसमाकुलम् ॥ ३० ॥ हरिश्चंद्रस्यनिकटेप्रोवाचवि बुधाधिपः॥आगच्छंतुजनाःशीघ्रंस्वर्गलोकंसुदुर्लभम् ॥३१॥ धर्मप्रसादात्संप्राप्तंसर्वैर्युष्माभिरेवतु॥हरिश्चंद्रोऽपितान्सर्वाञ्जनान्नगरवासिनः ॥३२॥ प्राहरा जाधर्मपरोदिवमारुह्यतामिति ॥ सूतउवाच ॥ तदिंद्रस्यवचःश्रुत्वाप्रीतास्तस्यचभूपतेः ॥३३ ॥ येसंसारेषुनिर्विण्णास्तेधुरंस्वसुतेषुवै ॥ कृत्वाप्रहृष्टमन सोदिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ३४ ॥ विमानवरमारूढाःसर्वेभास्वरविग्रहाः ॥ तदासंभूतहर्षास्तेहरिश्चंद्रश्चपार्थिवः॥ ३५ ॥ राज्येऽभिषिच्यतनयंरोहिताख्यंम हामनाः ॥ अयोध्याख्येपुरेरम्येहृष्टपुष्टजनान्विते ॥३६॥ तनयंसुहृदश्चापिप्रतिपूज्याऽभिनंद्यच ॥ पुण्येनलभ्यांविपुलांदेवादीनांसुदुर्लभाम् ॥ ३७ ॥

नागरिक मनुष्योंको हरिश्चन्द्रके समीप ले आये, तब उन धार्मिकप्रवर राजा हरिश्चन्द्रने भी नगरवासी मनुष्योंसे ॥ ३२ ॥ कहा तुम सम्पूर्णही मेरे साथ स्वर्गको चलो! सूतजीने कहा वह सुरपति और भूपतिके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त आनंदित हुए और उनमें जो संसारकी वासनासे विरत हुए थे वह अपने २ पुत्रोंके ऊपर संसारिक भार डाल आनंदहृदयसे स्वर्गमें चलनेको उद्यत हुए॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तब प्रजा ज्योतिर्मय देहधारणकर श्रेष्ठ विमानपर चढ़ अत्यन्त आनंदित हुइ तब महानुभाव महीपाल हरिश्चंद्रने ॥ ३५॥ अपने पुत्र रोहिताश्वको राज्यपर अभिषिक्तकर हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे पूर्ण रमणीय अयोध्यानगरी कर ॥ ३६ ॥ सुहृद् मंत्री और पुत्रका

सत्कार और अभिनंदन कर पुण्यसे प्राप्त हुई देवादिकोंको दुर्लभ ॥ ३७ ॥ अपने पुण्यप्रभावसे प्राप्त विपुलकीर्ति लाभकर किंकिणीजालमंडित अतुल कामगामी सुशोभित देवदुर्लभ विमानपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ फिर सर्व शास्त्रके जाननेवाले दैत्यगुरु महाभाग शुक्राचार्यने राजा हरिश्चंद्रको विमानमें देखकर तिससमय यह गाथा गाई ॥ ३९ ॥ शुक्र बोले, अहो तितिक्षाका क्या आश्चर्य माहात्म्य है? दानका क्या महत्त्वफल है! आज जिसके प्रभावसे राजा हरिश्चंद्रने महेन्द्रका सालोक्य प्राप्तकिया ॥ ४० ॥ सूतजीने कहा यह हरिश्चंद्रके सम्पूर्ण चरित्र आपसे वर्णन किये,यदि दुःखी मनुष्य इसको सुने तो सर्वदा सुख प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं॥ ४१ ॥ अधिक क्या इसके प्रभावसे स्वर्गाभिलाषी स्वर्ग, पुत्राभिलाषी पुत्र,भार्याकी इच्छा करनेवाला भार्या, राज्य प्रार्थी मनुष्य राज्यपर्यन्त प्राप्तकरसक्ता है ॥

संप्राप्यकीर्तिमतुलांविमानेसमहीपतिः ॥ आसांचक्रेकामगमेक्षुद्रघंटाविराजिते ॥ ३८ ॥ ततस्तंर्हिसमालोक्यश्लोकमंत्रंतदाजगौ ॥ दैत्याचार्योमहाभागःसर्वशास्त्रार्थतत्ववित् ॥ ३९ ॥ शुक्रउवाच ॥ अहोतितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलंमहत् ॥ यदागतोहरिश्चंद्रोमहेंद्रस्यसलोकताम् ॥ ४० ॥ सूतउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंहरिश्चंद्रस्यचेष्टितम् ॥ यःशृणोतिचदुःखार्तःससुखंलभतेऽन्वहम् ॥ ४१ ॥ स्वर्गार्थीप्राप्नुयात्स्वर्गंसुतार्थीसुतमाप्नुयात् ॥ भार्यार्थीप्राप्नुयाद्भार्यांराज्यार्थीराज्यमाप्नुयात् ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हरिश्चंद्रोपाख्यानेसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ जनमेजयउवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानंहरिश्चंद्रस्यकीर्तितम् ॥ शताक्षीपादभक्तस्यराजर्षेर्धार्मिकस्यच ॥ १ ॥ शताक्षीसाकुतोजातादेवीभगवतीशिवा ॥ तत्कारणंवदमुनेसार्थकंजन्ममेकुरु ॥ २ ॥ कोहिदेव्यागुणाञ्छृण्वंस्तृप्तिंयास्यतिशुद्धधीः ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्यफलमक्षय्यमश्नुते ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिशताक्षीसंभवंशुभम् ॥ तवाऽवाच्यंनमेकिंचिद्देवीभक्तस्यविद्यते ॥ ४ ॥

॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७ ॥ जनमेजयने कहा हे ऋषिवर ! शताक्षी देवीके चरणकमलोंके भक्त परमधार्मिक राजर्षि हरिश्चन्द्रका जो उपाख्यान कहा यह अत्यन्त विचित्र है ॥ १ ॥ वह शिवा रमणीय देवी भगवती किसकारणसे शताक्षी हुई ? हे मुने ! आप उनका कारण कहकर मेरा जन्म सफल कीजिये ॥ २ ॥ अकृतज्ञ मनुष्यही देवीके गुण सुनकर तृप्त होसकते हैं, परन्तु विमल बुद्धि मनुष्य उनके गुण सुनकर तृप्त नहीं होसक्ते. अधिक क्या देवीके गुण वर्णित एक २ शब्द सुननेसे अश्वमेध यज्ञका श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! शताक्षी देवीका

पवित्र उत्पत्तिविषय कहता हूं तुम देवीके परमभक्त हो इसकारण तुमसे मेरा न कहने योग्य कुछ नहीं है ॥ ४ ॥ पूर्वकालके समय दुर्गमनामक अत्यन्त निष्ठुर एक महादानव था, उस रुरुपुत्र महाबलवान् दानवने हिरण्याक्षके वंशमें जन्म ग्रहण किया ॥ ५ ॥ उसने एक समय मनमें विचार किया कि, मुनिगण वेदविहित मंत्रसे होम करते हैं वह होमीय हव्य भक्षण कर देवतागण संतुष्ट होते हैं इससे वह बलगर्वित होकर वेदोक्त अस्त्र शस्त्रद्वारा हमको नष्ट करते हैं अतएव वेदही देवताओंका बल है इस कारण वेदके नष्ट होनेपरही देवता नष्ट होंगे इसमें संदेह नहीं. अतएव देवताओंका विनाश करनेकेलिये वेदको नष्ट करना श्रेष्ठ है, इसके सिवाय अन्य उपाय कोई नहीं है ॥ ६ ॥ वेदकर्ताकी आराधनासेही यह कार्य सिद्ध होगा अतएव उनकीही आराधना करूंगा. इसप्रकार मनमें निश्चयकर तपस्या करनेको हिमालयमें चलागया. वह हृदयमें ब्रह्माजीका ध्यान करता हुआ काल व्यतीत करने लगा ॥ ७ ॥ वह हजारवर्षपर्यन्त कठोर

दुर्गमाख्योमहादैत्यःपूर्वंपरमदारुणः ॥ हिरण्याक्षान्वयेजातोरुरुपुत्रोमहाखलः॥५॥देवानांतुबलंवेदोनाशेतस्यसुराअपि ॥ नंक्ष्यंत्येवनसंदेहोविधेयंतावदे वतत् ॥६॥ विमृश्यैतत्तपश्चर्यागतःकर्तुंहिमालये ॥ ब्रह्माणंमनसाध्यात्वावायुभक्षोव्यतिष्ठत ॥ ७ ॥ सहस्रवर्षपर्यंतंचकारपरमंतपः ॥ तेजसातस्यलोका स्तुसंतप्ताःससुरासुराः ॥ ८ ॥ ततःप्रसन्नोभगवान्हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ ययौतस्मैवरंदातुंप्रसन्नमुखपंकजः ॥ ९ ॥ समाधिस्थंमीलिताक्षंस्फुटमाहचतु र्मुखः ॥ वरंवरयभद्रंतेयस्तेमनसिवर्तते ॥ १० ॥ तवाऽद्यतपसातुष्टोवरदेशोऽहमागतः ॥ श्रुत्वाब्रह्ममुखाद्वाणींव्युत्थितःससमाहितः ॥ ११ ॥ पूजयित्वा वरंवव्रेवेदान्देहिसुरेश्वर ॥ त्रिषुलोकेषुयेमंत्राब्राह्मणेषुसुरेष्वपि ॥१२॥ विद्यंतेतेतुसान्निध्येममसंतुमहेश्वर ॥ बलंचदेहियेनस्याद्देवानांचपराजयः ॥ १३ ॥

तपस्याके अनुष्ठानमें रतरहा अतएव उसके तेजप्रभावसे सुरासुर इत्यादि सम्पूर्ण लोक संतप्त होगये॥८॥ इसी समय भगवान् चतुरानन ब्रह्मा इनसे प्रसन्न हुए और हंसपर चढ उसको वर देनेके निमित्त आये ॥९॥ उस समाधिस्थित निमीलितनेत्र (मुँदेनेत्र) दानवसे चतुराननने स्वरूपसे कहा, तुम्हारा मंगल हो, इस समय तुम अभि लाषित वरकी प्रार्थना करो ॥ १० ॥ अब मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर वर देनेको आया हूं, वह ब्रह्माजीके इस प्रकार वचन सुन समाधि छोड़कर उठा ॥ ११ ॥ और उनकी यथाविधि पूजा करके कहा हे सुरेश्वर ! मुझको सम्पूर्णवेद प्रदान कीजिये. हे महेश्वर ! त्रिलोकीमें ब्राह्मण और देवताओंके पास जो सम्पूर्ण वेदमंत्र विद्यमान हैं ॥ १२ ॥ वह सम्पूर्ण वेदमंत्र मेरे पास विद्यमान रहें और जिससे देवतागण पराजित हों मुझको ऐसा बलप्रदान कीजिये ॥ १३ ॥

चतुर्वेदकर्ता परमेश्वर ब्रह्मा उसके इसप्रकार वचन सुन तथास्तु कहकर सत्यलोकको चलेगये ॥ १४ ॥ तबसे ही ब्राह्मणलोग सम्पूर्ण वेदोंको भूलगये अतएव स्नान, संध्या, नित्य होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप इत्यादि क्रिया सब लुप्त होगईं ॥ १५ ॥ तिसकाल भूमंडलमें महा हाहाकार शब्द होने लगा, ब्राह्मणलोग परस्पर कहनेलगे कि, यह कैसे हुआ यह कैसे हुआ ॥ १६ ॥ इस समय वेदोंका अभाव होनेसे अब हमको क्या करना चाहिये इस प्रकार भूलोकमें परमदारुण घोर अनर्थ उपस्थित होनेपर ॥ १७ ॥ देवतागण होमीय हविका भाग न पाकर क्रमशः दुर्बल हुए. इसी समय उस दानवने अमरावती नगरीको घेर लिया ॥ १८ ॥ अतएव देवतागण वज्रके समान कठिनदेह उस असुरके साथ संग्राम करनेमें असमर्थ हो दूसरे स्थानोंमें चले गये ॥ १९ ॥ वह सुमेरुपर्वतकी गुहा और पर्वतके दुर्गमप्रदेशका आश्रय लेकर

इतितस्यवचःश्रुत्वातथाऽस्त्वितिवचोवदन् ॥ जगामसत्यलोकंतुचतुर्वेदेश्वरःपरः ॥ १४ ॥ ततःप्रभृतिविप्रैस्तुविस्मृतावेदराशयः ॥ स्नानसंध्या नित्यहोमश्राद्धयज्ञजपादयः ॥ १५ ॥ विलुप्ताधरणीपृष्ठेहाहाकारोमहानभूत् ॥ किमिदंकिमिदंचेतिविप्राऊचुःपरस्परम् ॥ १६ ॥ वेदाभावात्त दस्माभिःकर्तव्यंकिमतःपरम् ॥ इतिभूमौमहानर्थेजातेपरमदारुणे ॥ १७ ॥ निर्जराःसजराजाताहविर्भागाद्यभावतः ॥ रुरोधसतदादैत्योनगरीममराव तीम् ॥ १८ ॥ अशक्तास्तेनतेयोद्धुंवज्रदेहासुरेणच ॥ पलायनंतदाकृत्वानिर्गतानिर्जराःक्वचित् ॥१९॥ निलयंगिरिदुर्गेषुरत्नसानुगुहासुच ॥ संस्थिताः परमांशक्तिंध्यायंतस्तेपरांबिकाम् ॥ २० ॥ अग्नौहोमाद्यभावात्तुवृष्ट्यभावोऽप्यभून्नृप ॥ वृष्टेरभावेसंशुष्कंनिर्जलंचापिभूतलम् ॥ २१ ॥ कूपवापी तडागाश्चसरितःशुष्कतांगताः ॥ अनावृष्टिरियंराजन्नभूच्चशतवार्षिकी ॥ २२ ॥ मृताःप्रजाश्चबहुधागोमहिष्यादयस्तथा ॥ गृहेगृहेमनुष्याणामभव च्छवसंग्रहः ॥ २३ ॥ अनर्थेत्वेवमुद्भूतेब्राह्मणाःशांतचेतसः ॥ गत्वाहिमवतःपार्श्वैरिराधयिषवःशिवाम् ॥ २४ ॥

परमशक्ति पराम्बिकाका ध्यान करनेलगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! अग्निमें आहुति देनेसे वह सूर्यलोकमें आस्थित होकर वृष्टिमें परिणत होती है इसकारण होमका यके न होनेसे वृष्टिकाभी अत्यन्त अभाव होगया. वृष्टिके अभावसे भूमंडल शुष्क होकर किसी स्थानमें जलका लेशमात्र नहीं रहा ॥ २१ ॥ अधिक क्या कूप, वापी तडाग और सरिता सबही शुष्क होगये यह अनावृष्टि एक शत वर्ष कालपर्यन्त स्थिर रही थी ॥ २२ ॥ असंख्य प्रजा और अनेक गौ तथा महिष इत्यादि सम्पूर्ण मरगये, उन सम्पूर्ण मनुष्योंके मृतकदेह प्रत्येक घरमें ढेरके ढेर पड़े रहे उनका दाहादि कार्य करनेके लिये कोई मनुष्य नहीं मिला ॥ २३ ॥ इसप्रकार अनर्थ उपस्थित होनेपर शान्तचित्त ब्राह्मणलोग शिवाकी आराधना करनेकेलिये अभिलाषी होकर हिमालयके पार्श्वदेशमें चलेगये ॥ २४ ॥

वह तद्गतचित्त हो निराहार रहकर समाधि ध्यान और पूजाद्वारा प्रतिदिन देवीका स्तव करनेलगे अधिक क्या उनकीही शरणागत होकर उनका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए॥ ॥ २५ ॥ हे महेशानि ! आप हमारे प्रति दया कीजिये. हे अम्बिके ! सम्पूर्ण अपराधसे अपराधी पामरजनोंके ऊपर ऐसा कोपकरना आपको श्लाघनीय नहीं है ॥ ॥ २६ ॥ अतएव हे देवेशि ! आप क्षमा कीजिये यदि हमारे पातकसे आपको क्रोध हुआ है तो उस विषयमें भी हमारा कुछ अपराध नहीं है. कारण कि, आपही अन्तर्यामि रूपसे सबके हृदयमें वासकरती है अतएव आपही जिसको जिसकार्यमें नियुक्तकरती हैं वही उसको करता है ॥ २७ ॥ जप पूजा और होमादिका अनुष्ठान करनेसे अन्यान्य देवतागण सन्तुष्टहोकर फलप्रदान करते हैं वेदमंत्रके अभावसे उसकीभी सम्भावना नहीं किन्तु आप बालकके प्रति माताकी समान स्मरण करते ही दयायुक्त होती हो अतएव आपके सिवाय इस प्रजाकी अन्यगति नहीं है. हे महेश्वरि ! आप जो इच्छा करैं वही करसक्ती हैं इसकारण आपसे वारंवार कहते हैं ॥ २८ ॥ हे

समाधिध्यानपूजाभिर्देवींतुष्टुवुरन्वहम् ॥ निराहारास्तदासक्तास्तामेवशरणंययुः ॥ २५ ॥ दयांकुरुमहेशानिपामरेषुजनेषुहि ॥ सर्वापराधयुक्तेषुनैतच्छ्लाघ्यंतवांबिके ॥ २६ ॥ कोपंसंहरदेवेशिसर्वांतर्यामिरूपिणि ॥ त्वयायथाप्रेर्यतेयंकरोतिसतथाजनः ॥ २७ ॥ नाऽन्यागतिर्जनस्याऽस्यकिंपश्यसिपुनःपुनः ॥ यथेच्छसितथाकर्तुंसमर्थासिमहेश्वरि ॥ २८ ॥ समुद्धरमहेशानिसंकटात्परमोत्थितात् ॥ जीवनेनविनाऽस्माकंकथंस्यात्स्थितिरंबिके ॥ २९ ॥ प्रसीदत्वंमहेशानिप्रसीदजगदंबिके ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिकेतेनमोनमः ॥ ३० ॥ नमःकूटस्थरूपायैचिद्रूपायैनमोनमः ॥ नमोवेदांतवेद्यायैभुवनेश्यैनमोनमः ॥ ३१ ॥ नेतिनेतीतिवाक्यैर्याबोध्यतेसकलागमैः ॥ तांसर्वकारणांदेवींसर्वभावेनसन्नताः ॥ ३२ ॥

अम्बिके ! जलके अतिरिक्त हमारा जीवन किसप्रकार रक्षित होसक्ता है ? अतएव हे महेशानि ! इस उपस्थित विषय संकटसे शीघ्र उद्धार कीजिये ॥ २९ ॥ हे महेश्वरि ! आप ही जगत्की जननी हैं इसकारण जगत्वासी मनुष्योंके प्रति प्रसन्न हूजिये आपही अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी एकमात्र अधीश्वरी हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ आपही कूटस्थ चैतन्यस्वरूप हैं सुतरां आपको नमस्कार करते हैं आपही चिद्घनस्वरूपिणी आद्या शक्ति हैं आपको वारंवार नमस्कार करते हैं आपही वेदप्रतिपाद्य हैं आपको प्रणाम करते हैं आप हीभुवनेश्वरी हैं. आपको वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण वेदवाक्य "यह नहीं यह नहीं" इस प्रकार नश्वर वस्तुके निषेधद्वारा जिनको प्रतिपादित करते हैं जो सम्पूर्ण जगत्की कारणस्वरूप है उन्हीं देवीको हम सर्वान्तःकरणसे प्रणाम करते हैं ॥ ३२ ॥

जब उन ब्राह्मणोंने महेश्वरी पार्वतीका इसप्रकार स्तव किया तब देवी भुवनेश्वरीने अपने शरीरमें असंख्यनेत्र प्रगट कर अपनी मूर्त्ति दिखाई ॥ ३३ ॥ उनका वर्ण अञ्जनके ढेरकी समान नीला नेत्र नीलकमलके समान और चौडे दोनों स्तन कठिन समान भावसे ऊँचे और गोलाकार स्तन स्थूल परस्पर संलग्न परस्पर मिले हुए ॥ ३४ ॥ और चार उनकी भुजा दक्षिण हाथके ऊपर हाथमें कमल, वाम हाथके ऊपर हाथमें महाधनु, नीचेके हाथमें क्षुधा, तृष्णा और ज्वरनाशक सीमारहित रसयुक्त शाक फल पुष्प और मूल सन्निविष्ट सम्पूर्ण सौभाग्यकी सारस्वरूप लावण्यमय ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ करोड सूर्यके समान ज्योतिर्मय और करुणा रसकी सागर उन जगद्धात्रीने इसप्रकार रूप दिखाकर नेत्रोंसे असंख्य ॥ ३७ ॥ जलधारा छोडी. उस लोचनसमुद्भूत जलसे सम्पूर्ण लोकोंमें नवरात्रि पर्यन्त महावृष्टि

इतिसंप्रार्थितादेवीभुवनेशीमहेश्वरी ॥ अनंताक्षिमयंरूपंदर्शयामासपार्वती ॥ ३३ ॥ नीलांजनसमप्रख्यंनीलपद्मायतेक्षणम् ॥ सुकर्कशसमोत्तुंगवृत्तपीनघनस्तनम् ॥३४॥ बाणमुष्टिंचकमलंपुष्पपल्लवमूलकान् ॥ शाकादीन्फलसंयुक्ताननंतरससंयुतान् ॥ ३५ ॥ क्षुत्तृड्जरापहान्हस्तैर्बिभ्रतीचमहाधनुः ॥ सर्वसौंदर्यसारंतद्रूपंलावण्यशोभितम् ॥ ३६ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशंकरुणारससागरम् ॥ दर्शयित्वाजगद्धात्रीसानंतनयनोद्भवाः ॥ ३७ ॥ मोचयामासलोकेषुवारिधाराःसहस्रशः ॥ नवरात्रंमहावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः ॥ ३८ ॥ दुःखितान्वीक्ष्यसकलान्नेत्राश्रूणिविमुञ्चती ॥ तर्पितास्तेनतेलोका ओषध्यःसकलाअपि ॥ ३९ ॥ नदीनदप्रवाहास्तैर्जलैःसमभवन्नृप ॥ निलीयसंस्थिताःपूर्वंसुरास्तेनिर्गताबहिः ॥ ४० ॥ मिलित्वाससुराविप्रादेवींसमभिष्टुवुः ॥ नमोवेदांतवेद्येतेनमोब्रह्मस्वरूपिणि ॥ ४१ ॥ स्वमाययासर्वजगद्विधात्र्यैतेनमोनमः ॥ भक्तकल्पद्रुमेदेविभक्तार्थेदेहधारिणि ॥४२॥

हुई ॥३८॥ वह सम्पूर्ण लोकोंका दुःख देखकर करुणावश नेत्रोंसे बराबर अश्रुवर्षणकरनेलगीं सुतरां उस जलसे सम्पूर्ण लोक और समस्त औषधि तृप्त हुई ॥ ३९ ॥ अधिक क्या उस जलसमूह द्वारा सम्पूर्ण नद और नदियें बहने लगीं. हे राजन् ! जो देवतालोग गुहामें छिप रहे थे वह सभी निकले ॥ ४० ॥ फिर ब्राह्मण लोग देवताओंके सहित मिलित होकर देवीका स्तव करनेलगे आप वेदान्तद्वारा जानी जाती है ब्रह्मस्वरूपिणी हो अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४१ ॥ आपही अपनी मायाद्वारा समस्त जगत्का विधान करती हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं. हे देवि ! आप कल्पद्रुमकी समान

भक्तोंको अभीष्टप्रदान करती हैं इसीकारण आपने भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये देह धारण किया है ॥ ४२ ॥ हे भुवनेश्वरि ! आप सदा तृप्त रहती हैं सुतरां आपकी तुलना नहीं है अतएव आपको हम प्रणाम करते हैं. हे देवि! हमारी शान्तिकेलियेही आपने अतुल असंख्यनेत्र धारणकिये हैं ॥ ४३ ॥ अतएव आप अबसे ही शताक्षी नामसे अभिहित होंगी. हे मातः ! हे अम्बिके ! हम क्षुधासे अत्यन्त कातर हैं सुतरां हमारी स्तव करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४४ ॥ अतएव हे महेशानि ! आप हमारे प्रति दया प्रकाश करके सम्पूर्ण वेदोंका उद्धार कीजिये. व्यासजीने कहा हे महाराज! देवता और ब्राह्मणोंके इस प्रकार वचन सुनकर शिवाने, अपने करस्थित शाक ॥ ४५ ॥ स्वादिष्ट फल और मूलादि भक्षण करनेके लिये उनको अर्पण किये ॥ ४६ ॥ उन्होंने प्रार्थित होकर जबतक नवीन अन्न उत्पन्न न हुआ तबतक मनुष्य

नित्यतृप्तेनिरुपमेभुवनेश्वरितेनमः॥अस्मच्छांत्यर्थमतुलंलोचनानांसहस्रकम्॥४३॥त्वयायतोधृतंदेविशताक्षीत्वंततोभव ॥ क्षुधयापीडितामातःस्तोतुंश क्तिर्नचाऽस्तिनः ॥ ४४ ॥ कृपांकुरुमहेशानिवेदानप्याहरांबिके ॥ व्यासउवाच ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाशाकान्स्वकरसंस्थितान् ॥४५॥ स्वादूनिफलमूलानिभक्षणार्थंददौशिवा ॥ नानाविधानिचान्नानिपशुभोज्यानियानिच ॥ ४६ ॥ काम्यानंतरसैर्युक्तान्यानवीनोद्भवंददौ ॥ शाकंभरीतिनामाऽपितद्दिनात्समभून्नृप ॥ ४७ ॥ ततःकोलाहलेजातेदूतवाक्येनबोधितः ॥ ससैन्यःसायुधोयोद्धुंदुर्गमाख्योऽसुरोययौ ॥ ४८ ॥ सहस्राक्षौहिणीयुक्तःशरान्मुंचंस्त्वरान्वितः ॥ रुरोधदेवसैन्यंतद्यद्देव्यग्रेस्थितंपुरा ॥ ४९ ॥ तथाविप्रगणंचैवरोधयामाससर्वतः ॥ ततःकिलकिलाशब्दःसमभूद्देवमंडले ॥ ५० ॥ त्राहित्राहीतिवाक्यानिप्रोचुःसर्वेद्विजामराः ॥ ततस्तेजोमयंचक्रंदेवानांपरितःशिवा ॥ ५१ ॥ चकाररक्षणार्थायस्वयंतस्माद्बहिःस्थिता ॥ ततःसमभवद्युद्धंदेव्यादैत्यस्यचोभयोः ॥ ५२ ॥

भोज्य असीम रसयुक्त अनेक प्रकारका अन्न मनुष्योंको और पशुभोज्य तृणादि पशुओंको प्रदान किया. हे राजन् ! उसी दिनसे देवीका शाकम्भरी नाम हुआ ॥ ४७ ॥ जब इससे घोर कोलाहल हुआ तब दुर्गमनामक असुरने दूतके मुखसे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जान शस्त्रधारणपूर्वक सैन्यके सहित युद्धयात्रा की ॥ ४८ ॥ उसने एक सहस्र अक्षौहिणी सेना ले शर छोड़ते छोड़ते शीघ्र जाय देवीके आगे स्थित उस देवसैन्य ॥ ४९ ॥ और ब्राह्मणोंको चारों ओरसे घेर लिया यह देखकर देवताओंके मण्डलमें कोलाहलध्वनि होनीलगी॥ ५० ॥ तब देवता और ब्राह्मण सभीने मिलकर कहा हे देवी ! रक्षाकरो रक्षाकरो ! तब शिवाने देव और ब्राह्मणोंकी रक्षा केलिये उनके चारों ओर तेजोमय चक्र उत्पन्नकिया ॥ ५१ ॥ और स्वयं उसके बाहर रहीं इसके उपरान्त देवी और दानव दोनोंका घोर अद्भुत युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ५२ ॥

निरन्तर शरवर्षणकी छटाओंसे सूर्यमण्डल ढकगया, इसलिये अन्धकारके कारण योधालोग लक्ष्यस्थिर न करसके. इसीसमय शरोंके परस्पर घिसनेसे अग्नि उत्पन्न होनेके कारण युद्धस्थल और भी प्रभामय होगया ॥ ५३ ॥ कठोर ज्या शब्दसे दिशायें मानो बहरी होगईं. इसीसमयमें देवीके शरीरसे शक्तियें निकलीं ॥ ५४ ॥ कालिका, तारिणी, षोडशी, त्रिपुरा, भैरवी, कमला, बगला, मातङ्गी, त्रिपुरसुन्दरी, ॥ ५५ ॥ कामाक्षी, तुलजादेवी, जम्भिनी, मोहिनी, छिन्नमस्ता और अयुतबाहु, गुह्यकाली इत्यादि समस्त प्रधान शक्तियें देवीके शरीरसे निकलीं ॥ ५६ ॥ फिर बत्तीस शक्ति इसके उपरान्त, चौसठ शक्ति इसके पीछे असंख्य शक्ति शस्त्रसहित देवीके शरीरसे निकली ॥ ५७ ॥ परन्तु शक्तियोंके एक शत अक्षौहिणी सेना नष्टकरनेपर समरस्थलमें मृदङ्ग शंख वीणा इत्यादि वाद्यध्वनि होने लगी ॥ ५८ ॥ इसी अव

शरवर्षसमाच्छन्नसूर्यमंडलमद्भुतम् ॥ परस्परशरोद्घर्षसमुद्भूताग्निसुप्रभम् ॥ ५३ ॥ कठोरज्याटणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम् ॥ ततोदेवीशरीराच्चनिर्गतास्तीव्रशक्तयः ॥ ५४ ॥ कालिकातारिणीबालात्रिपुराभैरवीरमा ॥ बगलाचैवमातंगीतथात्रिपुरसुंदरी ॥ ५५ ॥ कामाक्षीतुलजादेवीजंभिनीमोहिनीतथा ॥ छिन्नमस्तागुह्यकालीदशसाहस्रबाहुका ॥ ५६ ॥ द्वात्रिंशच्छक्तयश्चाऽन्याश्चतुःषष्टिमिताःपराः ॥ असंख्यातास्ततोदेव्यःसमुद्भूतास्तुसायुधाः ॥ ५७ ॥ मृदंगशंखवीणादिनादितंसंगरस्थलम् ॥ शक्तिभिर्दैत्यसैन्येतुनाशितेऽक्षौहिणीशते ॥ ५८ ॥ अग्रेसरःसमभवद्दुर्गमोवाहिनीपतिः ॥ शक्तिभिःसहयुद्धंचचकारप्रथमंरिपुः ॥ ५९ ॥ महद्युद्धंसमभवद्यत्राऽभूद्रक्तवाहिनी ॥ अक्षौहिण्यस्तुताःसर्वाविनष्टादशभिर्दिनैः ॥ ६० ॥ ततएकादशेप्राप्तेदिनेपरमदारुणे ॥ रक्तमाल्यांबरधरोरक्तगंधानुलेपनः ॥ ६१ ॥ कृत्वोत्सवंमहांतंतुयुद्धायरथसंस्थितः ॥ संरंभेणैवमहताशक्तीःसर्वाविजित्यच ॥ ६२ ॥ महादेवीरथाग्रेतुस्वरथंसंन्यवेशयत् ॥ ततोऽभवन्महद्युद्धंदेव्यादैत्यस्यचोभयोः ॥ ६३ ॥

सरमें वह सेनापति सुरशत्रु दुर्गमअसुर सन्मुख उपस्थित होकर प्रथम शक्तियोंके सहित संग्राम करने लगा ॥ ५९ ॥ क्रमानुसार वह युद्ध ऐसा घोर होगया कि, दश दिनमेंही वह सम्पूर्ण अक्षौहिणी नष्ट होगई यही क्या मृतक योधाओंकी रुधिरधारासे रक्तकी नदियें बहने लगीं ॥ ६० ॥ फिर दारुण ग्यारहवां दिन उपस्थित होनेपर वह दानव कटिमें लालवस्त्र पहरे गलेमें रक्तमाल्य धारण और सर्वाङ्गमें लालचन्दन लेपनपूर्वक ॥ ६१ ॥ महामहोत्सव कर युद्धकेलिये रथपर चढ़ा तब उसने अतीव (परिश्रमसे) समस्त शक्तियोंको जीतकर ॥ ६२ ॥ महादेवीके सन्मुख अपना रथ स्थापन किया, इसके उपरान्त देवी और दानव दोनोंका दो

पहरतक घोर युद्ध हुआ ॥ ६३ ॥ त्राससे लोकोंका हृदय कम्पित होने लगा इसी समय देवी जगदम्बिकाने अत्यन्त उग्र पंद्रहबाण छोडे ॥ ६४ ॥ चार शरसे उसके चारों वाहन, एक शरसे उसका सारथि, दो शरसे उसके दोनों नेत्र और दो शरसे उसकी दोनों भुजा, एक शरसे उसकी ध्वजा ॥ ६५ ॥ और पाँच शरसे उसका हृदय वींधडाला. तब उसने रुधिरको वमन करते करते परमेश्वरीके सन्मुखही प्राणत्याग किया ॥ ६६ ॥ इसीसमय उसके शरीरसे निकला हुआ तेज देवीके शरीरमें लीन होगया. उस महाबलवान् दानवके मारे जानेपर तीनों जगत्ने शान्ति भाव धारण किया ॥ ६७ ॥ फिर हरि हर ब्रह्मा और अन्यान्यदेवता भक्तिपूर्वक गद्गदवचनोंसे जगदम्बिका का स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६८ ॥ देवताओंने कहा हे शिवे! भ्रमरूप जगत्के परिवर्त्तनका आपही एकमात्र कारण हैं. सुतरां आपही प्राणीमात्रकी अधीश्वरी हैं ऐसा न होनेसे आप शाकादि द्वारा प्राणियोंका पालन क्यों करतीं? अतएव हे शतलोचने हम आपको वारंवार प्रणाम करते हैं

प्रहरद्वयपर्यंतंहृदयत्रासकारकम् ॥ ततःपंचदशाऽत्युग्रबाणान्देवीमुमोचह ॥ ६४ ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहान्बाणेनैकेनसारथिम् ॥ द्वाभ्यांनेत्रेभुजौद्वाभ्यां ध्वजमेकेनपत्रिणा ॥६५॥ पंचभिर्हृदयंतस्यविव्याधजगदंबिका ॥ ततोवमन्सरुधिरंममारपुरईशितुः ॥ ६६ ॥ तस्यतेजस्तुनिर्गत्यदेवीरूपेविवेशह ॥ हतेतस्मिन्महावीर्येशांतमासीज्जगत्त्रयम् ॥ ६७ ॥ ततोब्रह्मादयःसर्वेतुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ पुरस्कृत्यहरीशानौभक्त्यागद्गदयागिरा॥ ६८ ॥ देवाऊचुः ॥ जगद्भ्रमविवर्तैककारणेपरमेश्वरि॥ नमःशाकंभरिशिवेनमस्तेशतलोचने ॥६९॥ सर्वोपनिषदुद्घुष्टेदुर्गमासुरनाशिनि ॥ नमोमायेश्वरिशिवेपंचकोशांतर स्थिते ॥ ७० ॥ चेतसानिर्विकल्पेनयांध्यायंतिमुनीश्वराः ॥ प्रणवार्थस्वरूपांतांभजामोभुवनेश्वरीम् ॥७१॥ अनंतकोटिब्रह्मांडजननींदिव्यविग्रहाम् ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिजननींसर्वभावैर्नतावयम् ॥७२॥ कःकुर्यात्पामरान्दृष्ट्वारोदनंसकलेश्वरः ॥ सदयांपरमेशानींशताक्षींमातरंविना ॥ ७३ ॥

॥ ६९ ॥ हे शिवे! समस्त उपनिषद् आपकी महिमा (कथन) करते हैं. अतएव आपही मायाकी अधीश्वरी होकर जीवोंके अन्नमयकोषमें विराजमान रहती हैं अतएव हे दुर्गमासुरनाशिनी! आपको नमस्कार करते हैं ॥ ७० ॥ आपही प्रणवार्थ प्रतिपादित भुवनेश्वरी हैं सुतरां मुनीश्वरलोग निर्विकल्पचित्तसे आपकाही ध्यान करते हैं अतएव हमभी आपकी भावना करते हैं ॥ ७१ ॥ आपही हमारे लिये समय समयमें दिव्यदेह धारण करती हैं वस्तुतः आपही अनन्त ब्रह्माण्डकी जननी हैं अधिक क्या ब्रह्मा हरि और हरकीभी उत्पन्नकरनेवाली हैं अतएव हम सर्वान्तःकरणसे आपको प्रणाम करते हैं ॥ ७२ ॥ आपही सबकी माता हैं इसकारण दयाके वशहो इन पामरजनोंका दुःख देखकर आपही शतनेत्रोंसे रोदन करती हैं. किन्तु हे परमेशानि! यदि कोई सम्पूर्णका ईश्वर हो तथापि आपके

अतिरिक्त और कोई रोदन नहीं करेगा ॥ ७३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! ब्रह्मा विष्णु और हर इत्यादि देवताओंके इसप्रकार देवीका स्तव और अनेकप्रकार उत्तम द्रव्यद्वारा उनकी पूजा करनेपर वह तत्काल सन्तुष्ट हुईं ॥ ७४ ॥ तब देवीने प्रसन्नहोकर सम्पूर्ण वेदोंको लायकर ब्राह्मणोंको समर्पण किये अन्तमें उन कोकिलके समान मधुर बोलने वालीने उनसे विशेषकरके कहा ॥ ७५ ॥ कि, वेदही मेरा उत्तमतनु है अतएव तुम विशेष यत्न सहित इनकी रक्षा करो, इनकी अपेक्षा श्रेष्ठतम अन्य कुछ नहीं है. क्योंकि कल्याणके लियेही मैंने तुमने यह उपदेश दिया है॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मेरे उत्तम माहात्म्यको सदा पाठकरना मैं इससे सन्तुष्ट होकर तुम्हारी सम्पूर्ण आपदायें नष्ट करूंगी॥ ७८ ॥ दुर्गम असुरका संहार करनेसे मेरा दुर्गमानामहुआ है अतएव जो पुरुष मेरा दुर्गमानाम और शताक्षीनाम ग्रहण करेंगे वही मायाको

व्यासउवाच ॥ इतिस्तुतासुरैर्देवीब्रह्मविष्णवादिभिर्वरैः ॥ पूजिताविविधैर्द्रव्यैःसंतुष्टाऽभूच्चतत्क्षणे ॥ ७४ ॥ प्रसन्नासातदादेवीवेदानाहृत्यसाददौ ॥ ब्राह्मणेभ्योविशेषेणप्रोवाचापिकभाषिणी ॥ ७५ ॥ ममेयंतनुरुत्कृष्टापालनीयाविशेषतः ॥ ययाविनाऽनर्थएषजातोदृष्टोऽधुनैवहि ॥ ७६ ॥ पूज्याऽहंसर्वदासेव्यायुष्माभिःसर्वदैवहि ॥ नाऽतःपरतरंकिंचित्कल्याणायोपदिश्यते ॥ ७७ ॥ पठनीयंममैतद्धिमाहात्म्यंसर्वदोत्तमम् ॥ तेनतुष्टाभविष्यामिहरिष्यामितथाऽऽपदः ॥ ७८ ॥ दुर्गमासुरहंत्रीत्वाद्दुर्गेतिममनामयः ॥ गृह्णातिचशताक्षीतिमायांभित्त्वाव्रजत्यसौ ॥ ७९ ॥ किमुक्तेनाऽत्रवहुनासारंवक्ष्यामितत्त्वतः ॥ संसेव्याऽहंसदादेवाःसर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ८० ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्हितादेवीदेवानांचैवपश्यताम् ॥ संतोषंजनयंत्येवंसच्चिदानंदरूपिणी ॥ ८१ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंरहस्यंपरमंमहत् ॥ गोपनीयंप्रयत्नेनसर्वकल्याणकारकम् ॥ ८२ ॥ यइमंशृणुयान्नित्यमध्यायंभक्तितत्परः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिदेवीलोकेमहीयते ॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दूरकर परमपद जासकेंगे ॥ ७९ ॥ अब अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है इस समय जो सार है वही कहती हूं. हे देवताओ ! सुर अथवा असुर सम्पूर्णही सदा मेरी सेवा करो ॥ ८० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! वह सच्चिदानन्दनस्वरूपिणी देवी ऐसे वचनोंसे देवताओंका सन्तोष सम्पादन करके उनके सामनेही अन्तर्धान होगई ॥ ८१ ॥ हे राजन्! यह तो मैंने तुमसे अत्यन्त विस्तीर्ण परमरहस्य समस्तही वर्णन किया, किन्तु यह सम्पूर्णही कल्याणका आस्पद है अतएव इसको यत्न सहित गुप्त रक्खो ॥ ८२ ॥ जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होकर यह अध्याय नित्य श्रवण करता है वह सम्पूर्ण काम्यवस्तुओंको प्राप्त करके अन्तमें देवीके लोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज! यह तो देवीका माहात्म्य वर्णन किया इस समय सूर्य वंशीय और चन्द्रवंशीय धार्मिक राजाओंके पवित्र चरित्रका विषय यथाशक्ति वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ इन सम्पूर्ण राजाओंमें ऐसा पराक्रम होनेका कारण यह है कि वह सभी परादेवीके परमभक्त थे अतएव शक्तिके प्रसादसेही उन्होंने ऐसा महत्व प्राप्त किया था आप निश्चय जानिये कि पराशक्तिही उनके महत्वमूल कारणहै ॥ २ ॥ उनका विक्रम वीर्य और ऐश्वर्य समस्तही पराशक्तिके अंशसे उत्पन्न हुआ है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ हे नरपाल! यह सम्पूर्ण राजा और अन्यान्य राजा लोगोंने पराशक्तिके उपासक होकर ज्ञानरूप कुठारसे संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटी है ॥ ४ ॥ अतएव अत्यन्त यत्नसहित भलीभाँति देवी भुवनेश्वरीकी सेवा करनी चाहिये. धनकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जिसप्रकार पलाल परालभूसी त्याग करते हैं इसी प्रकार भक्तोंके सम्पूर्ण वासना त्यागनी उचित है ॥५॥ हे नरनाथ! मैं ने वेदरूप सागर मथकर पराशक्तिके चरणसरोजरूप रत्न प्राप्त किये हैं इससे अत्यन्त

व्यासउवाच ॥ इत्येवंसूर्यवंश्यानांराज्ञांचरितमुत्तमम् ॥ सोमवंशोद्भवानांचवर्णनीयंमयाकियत् ॥१॥ पराशक्तिप्रसादेनमहत्त्वंप्रतिपेदिरे ॥ राजन्सुनिश्चितं विद्धिपराशक्तिप्रसादतः ॥ २ ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वंश्रीमदूर्जितमेववा ॥ तत्तदेवावगच्छत्वंपराशक्त्यंशसंभवम् ॥ ३ ॥ एतेचाऽन्येचराजानःपराशक्ते रुपासकाः ॥ संसारतरुमूलस्यकुठाराअभवन्नृप ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनसंसेव्याभुवनेश्वरी ॥ पलालमिवधान्यार्थीत्यजेदन्यमशेषतः ॥ ५ ॥ आ मथ्यवेददुग्धाब्धिंप्राप्तंरत्नंमयानृप ॥ पराशक्तिपदांभोजंकृतकृत्योऽस्म्यहंततः ॥ ६ ॥ पंचब्रह्मासनारूढानाऽस्त्यन्याकाऽपिदेवता ॥ ततएवमहादे व्यापंचब्रह्मासनंकृतम् ॥ ७ ॥ पंचभ्यस्त्वधिकंवस्तुवेदेव्यक्तमितीर्यते ॥ यस्मिन्नोतंचप्रोतंचसैवश्रीभुवनेश्वरी ॥ ८ ॥ तामविज्ञायराजेंद्रनैवमुक्तोभवे न्नरः ॥ यदाचर्मवदाकाशंवेष्टयिष्यंतिमानवाः ॥ ९ ॥ तदाशिवामविज्ञायदुःखस्यांतोभविष्यति ॥ अतएवश्रुतौप्राहुःश्वेताश्वतरशाखिनः ॥ १० ॥

कृतकृत्य हुआ हूं ॥ ६ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र और ईश्वर जिनके चारों कोणमें स्थितचार पादपस्वरूप हैं सदाशिव ब्रह्मादिक जिनके मस्तक स्थित फलक स्वरूप हैं उन श्रीदेवीके अतिरिक्त श्रेष्ठ देवता दूसरा कोई नहीं है इन अज्ञानी मनुष्योंको प्रतिपन्न (ज्ञानप्रगट) करनेकेलियेही महादेवीने ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और शिवात्मक आसनकी कल्पनाकी है ॥ ७ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिव यह पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश इन पञ्चभूतोंको अधिपतिहै इन पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति जिनसे हुई है वेदमें उन वस्तुओंको व्यक्त अथवा अव्याकृत (का प्रगट) कहकर निर्देश किया है और उनमेंही सम्पूर्ण जगत् सूत्र ग्रथित मणियोंके समान ओत और प्रोतभावसे अधिष्ठित रहता है वही भुवनेश्वरी हैं ॥ ८ ॥ हे राजेन्द्र! उन भुवनेश्वरीके स्वरूपको न जाननेसे मनुष्य कभी मुक्त नहीं हो सक्ता॥ ९॥ जिस समय मनुष्य

आकाश कृष्णासार चर्मके समान वेष्टन करसकें तो भुवनेश्वरीके स्वरूपको न जाननेसेभी उनके संसारक्लेश नाश होजायँगे. आकाशको वेष्टनकरना जिसप्रकार असम्भव है भुवनेश्वरीके ज्ञानके अतिरिक्त मुक्तिलाभभी इसीप्रकार असम्भव है अतएव भुवनेश्वरीके स्वरूपको जाननेमें यत्नकरना एकान्त उचित है ॥ १० ॥ भुवनेश्वरीका ध्यानही मोक्षका मूल है श्वेताश्वतर उपनिषद्में तत् शाखाध्यायी स्पष्ट कहते हैं कि "जो ध्यानयोगमें निरत हैं वह उन देवीको सत्त्व रज तम इन तीनों गुणोंसे आवृत और देवताओंकी स्वस्व..किरूप कहकर देखते हैं ॥ ११ ॥ अतएव जन्म सफल करनेके लिये लज्जासे हो भयसे हो अथवा प्रेमपूर्ण भक्तियोगसे हो यत्नसहित प्रथम सर्व संग त्यागकरे इसके उपरान्त हृदयमें मन निरोधकर ॥ १२ ॥ देवीनिष्ठ हो सत्परायण होवे वेदान्तरूप डिण्डिम यह घोषण करती है जो व्यक्ति शयन गमन अथवा अवस्थान

तेध्यानयोगानुगताअपश्यन्देवात्मशक्तिंस्वगुणैर्निगूढाम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनजन्मसाफल्यहेतवे ॥ ११ ॥ लज्जयावाभयेनाऽपिभक्त्यावाप्रेमयुक्तया ॥ सर्वसंगंपरित्यज्यमनोहृदिनिरुध्यच ॥ १२ ॥ तन्निष्ठस्तत्परोभूयादितिवेदांतडिंडिमः ॥ येनकेनमिषेणाऽपिस्वपंस्तिष्ठन्व्रजन्नपि ॥ १३ ॥ कीर्तयेत्सततंदेवींसवैमुच्येतबंधनात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनभजराजन्महेश्वरीम् ॥ १४ ॥ विराड्रूपांसूत्ररूपांतथांतर्यामिरूपिणीम् ॥ सोपानक्रमतःपूर्वंततःशुद्धेतुचेतसि ॥ १५ ॥ सच्चिदानंदलक्ष्यार्थरूपांतांब्रह्मरूपिणीम् ॥ आराधयपरांशक्तिंप्रपंचोल्लासवर्जिताम् ॥ १६ ॥ तस्यांचित्तलयोयःसतस्याआराधनंस्मृतम् ॥ राजन्नाज्ञांपराशक्तिभक्तानांचरितंमया ॥ १७ ॥ धार्मिकाणांसूर्यसोमवंशजानांमनस्विनाम् ॥ पावनंकीर्तिदंधर्मबुद्धिदंसद्गतिप्रदम् ॥ १८ ॥

कालके समय ॥ १३ ॥ वा जिस किसी स्थलमेंही देवीका नाम कीर्तन करता है वह भव बन्धनसे मुक्त होता है इसमें सन्देह नहीं. हे राजन् ! आप सर्वप्रकार यत्नसहित महेश्वरीकी अर्चना कीजिये ॥ १४ ॥ जिसप्रकार मनुष्य क्रमानुसार ऊंची सीढी पर चढ़ते हैं आप उन्हींके अनुसार महादेवीके विराट्रूप सूक्ष्मरूप और अन्तर्यामिरूपका ध्यान करके चित्त शुद्धि प्राप्त कीजिये फिर चित्त शुद्धि प्राप्त होनेपर ॥ १५ ॥ जो मायाके अतीत सच्चित् और आनन्दकी आधारस्वरूप हैं उन्हीं ब्रह्मरूपिणी पराशक्तिकी आराधना करो ॥ १६ ॥ पराशक्तिमें चित्तके लय करनेकाही नाम आराधना है इस कारण आप उन्हींमें चित्त लय कीजिये. हे राजेन्द्र ! मैंने पराशक्तिके भक्तोंके चरित्र तथा ॥ १७ ॥ सूर्य और चन्द्रवंशीय मनस्वी धार्मिक पराशक्तिके परमभक्त राजाओंके पवित्र चरित कीर्तन किये इनको श्रवण करनेसे

मनुष्योंको अतुलकीर्त्ति धर्म बुद्धि सद्गति और पुण्य प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त आप अन्य किस विषयके सुननेकी इच्छा करते हैं ? जनमेजयने कहा हे भगवन् ! पूर्वकालके समय जगज्जननी पराशक्तिने हरको गौरी, हरिको लक्ष्मी और हरिकी नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माको सरस्वती प्रदानकी. इस समय सुनता हूं कि, गौरी हिमालय और दक्षकी भी कन्या है ॥ १९ ॥ २० ॥ और महालक्ष्मी क्षीरोदसागरकी कन्या हैं यह सम्पूर्णही मूल देवीसे उत्पन्न हुई हैं तो गौरी और लक्ष्मी किसप्रकार अन्यकी कन्या होसक्ती हैं ? ॥ २१ ॥ हे महामुने ! यह अत्यन्त असम्भव होनेसे मुझको संशय उपस्थित हुआ है हे भगवन् ! आप संशयछेदन करनेमें भलीभांति समर्थ हैं अतएव ज्ञानरूप असिद्वारा मेरा यह उपस्थित संशय छेदन कीजिये ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् !

कथितंपुण्यदंपश्चात्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ जनमेजयउवाच ॥ गौरीलक्ष्मीसरस्वत्योदत्ताःपूर्वंपरांबया ॥ १९ ॥ हरायहरयेतद्वन्नाभिपद्मोद्भवायच ॥ तुषाराद्रेश्चदक्षस्यगौरीकन्येतिविश्रुतम् ॥ २० ॥ क्षीरोदधेश्चकन्येतिमहालक्ष्मीरितिस्मृतम् ॥ मूलदेव्युद्भवानांचकथंकन्यात्वमन्ययोः ॥ २१ ॥ असंभाव्यमिदंभातिसंशयोऽत्रमहामुने ॥ छिंधिज्ञानासिनातंत्वंसंशयच्छेदतत्पर ॥ २२ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिरहस्यंपरमाद्भुतम् ॥ देवीभक्तस्यतेकिंचिदवाच्यंनहिविद्यते ॥ २३॥ देवीत्रयंयदादेवत्रयायादात्परांबिका ॥ तदाप्रभृतितेदेवाःसृष्टिकार्याणिचक्रिरे ॥२४॥ कस्मिंश्चित्समयेराजन्दैत्याहालाहलाभिधाः ॥ महापराक्रमाजातास्त्रैलोक्यंतैर्जितंक्षणात् ॥ २५ ॥ ब्रह्मणोवरदानेनदर्पितारजताचलम् ॥ रुरुधुर्निजसेनाभिस्तथावैकुंठमेवच ॥ २६ ॥ कामारिःकैटभारिश्चयुद्धोद्योगंचचक्रतुः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणामभूद्युद्धंमहोत्कटम् ॥ २७ ॥

आपसे इस अद्भुत रहस्यका विषय कहता हूं श्रवण करो क्योंकि, आप देवीके परमभक्त हैं सुतरां आपसे कुछ अवक्तव्य नहीं है ॥ २३ ॥ पराम्बिकाने जिससमय हर हरि और ब्रह्माको क्रमानुसार गौरी लक्ष्मी और सरस्वती प्रदान की है तबसेही हरादि तीनों देवता सृष्टिकार्यनिर्वाह करते हैं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! किसीसमय हलाहलनामक कितनेही दानवोंने जन्म ग्रहण किया कालक्रमसे उन्होंनें अत्यन्त पराक्रान्तहोकर क्षणमात्रमेंही त्रैलोक्यको पराजय किया ॥ २५ ॥ अधिक क्या उन्होंने ब्रह्माके वरदानसे दर्पित होकर अपनी सेना ले कैलासपर्वत और वैकुण्ठधामपर्यन्त घेरलिया ॥ २६ ॥ यह देखकर महादेव और विष्णु दोनोंही युद्धका उद्योग करने

लगे क्रमानुसार दोनों दलोंमें घोर संग्राम आरम्भ हुआ यही क्या साठ हजारवर्ष पर्यन्त अविश्रान्त युद्ध हुआ ॥ २७ ॥ किन्तु किसीदलकी जय पराजय नहीं हुई क्रमानुसार देव और दानवसैन्यमें घोर हाहाकार ध्वनि होनेलगी. इसी समय शिव और विष्णु यत्नसहित दानवोंको निपातित करनेलगे ॥ २८ ॥ हे राजन्! फिर शिव और विष्णु अपने अपने स्थानको चलेगये वास्तविक दानव उनकी निजशक्तिके प्रभावसे निहत हुए थे किन्तु शिव और विष्णु उन अपनी शक्ति गौरी और लक्ष्मीके निकट जाय गर्वित होकर कहने लगे कि, वह दानवलोग हमारे पराक्रमसेही निहत हुए हैं ॥ २९ ॥ उनको अभिमानयुक्त जानकर गौरी और लक्ष्मीने विचारा कि, हमारे प्रभावसेही यह दानव विनष्ट हुए हैं किन्तु हमारे सन्मुख ही अब अभिमानप्रकाश करते हैं यह जानकर कपटहास्य किया उनका इस प्रकार हास्य देखकर वह दोनों देवता ॥ ३० ॥ अत्यन्त कुपित हुए किन्तु उनकी अनादि मायासे मोहित होकर दोनोंही परस्परको अभिमान

हाहाकारोमहानासीद्देवदानवसेनयोः ॥ महताऽथप्रयत्नेनताभ्यांतेदानवाहताः ॥ २८ ॥ स्वस्वस्थानेषुगत्वातावभिमानंचचक्रतुः ॥ स्वशक्त्योर्निकटेराजन्यद्वशादेवतेहताः ॥ २९ ॥ अभिमानंतयोर्ज्ञात्वाच्छलहास्यंचचक्रतुः ॥ महालक्ष्मीश्चगौरीचहास्यंदृष्ट्वातयोस्तुतौ ॥ ३० ॥ देवावतीवसंक्रुद्धौमोहितावादिमायया ॥ दुरुत्तरंचददतुरवमानपुरःसरम् ॥ ३१ ॥ ततस्तेदेवतेतस्मिन्क्षणेत्यक्त्वातुतौपुनः ॥ अंतर्हितेचाऽभवतांहाहाकारस्तदाह्यभूत् ॥ ३२ ॥ निस्तेजस्कौचनिःशक्तीविक्षिप्तौचाविचेतनौ ॥ अवमानात्तयोःशक्त्योर्जातौहरिहरौतदा ॥३३॥ ब्रह्माचिंतातुरोजातःकिमेतत्समुपस्थितम् ॥ प्रधानौदेवतामध्येकथंकार्याक्षमावमू ॥ ३४॥ अकांडेकिंनिमित्तेनसंकटंसमुपस्थितम् ॥ प्रलयोभविताकिंवाजगतोऽस्यनिरागसः ॥ ३५ ॥ निमित्तंनैवजानेऽहंकथंकार्याप्रतिक्रिया ॥ इतिचिंतातुरोऽत्यर्थंदध्यौमीलितलोचनः ॥ ३६ ॥

पूर्वक कुत्सित वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ उसी समय गौरी और लक्ष्मी शिव और विष्णुको त्यागकर अन्तर्धान होगईं उनके अन्तर्धान होजानेपर सम्पूर्ण मनुष्य हाहाकार करने लगे ॥ ३२ ॥ दोनों शक्तियोंके अपमानसे हरि और हर दोनोंही तेजहीन शक्तिहीन और चेतनारहित होकर विक्षिप्त होगये ॥ ३३ ॥ यह देखकर ब्रह्माजीने चिन्तासे व्याकुल हो विचार किया कि, हरि और हर दोनोंही देवताओंमें प्रधान हैं किन्तु यह जगत् कार्यमें असमर्थ क्यों हुए ? इस उपस्थित व्यापारका क्या कारण है? ॥ ३४॥ किसलिये अकालमें यह संकट उपस्थित हुआ है? कार्यके अभावसे निरपराध इस जगत्में क्या प्रलय उपस्थित होगी॥ ३५॥ इसका कारण कुछ नहीं जाना जाता अतएव किसप्रकार प्रतिकार करूंगा इसप्रकार चिन्तासे अत्यन्त कातर हो उसका कारण जाननेकी इच्छासे नेत्र मूँदकर ध्यानमें निमग्न हुए ३६

हे नृपोत्तम! अनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने ध्यानसे जाना कि पराशक्तिके अत्यन्त कोपके प्रभावसे यह दुर्घटना उपस्थित हुई है ॥ ३७ ॥ तब वह उनके प्रतिकारमें यत्न करने लगे. जबतक हरि और हर स्वस्थ न हुए तपोधन ब्रह्मा स्वीय शक्तिके प्रभावसे तबतक उनका पालन और संहार कार्य स्वयं निर्वाह करने लगे ॥ ३८ ॥ अनन्तर धर्मात्मा प्रजापतिने उनको सुस्थिर करनेकी इच्छासे अपनी सन्तान मनु और सनकादि ऋषियोंको शीघ्र बुलाया ॥ ३९ ॥ जब उन्होंने आनकर प्रणाम किया तब तपोनिधि चतुरानन ब्रह्माजीने कहा मैं इस समय अधिक कार्यमें आसक्त हूं अतएव तपस्याका अनुष्ठान नहीं करसक्ता ॥ ४० ॥ पराशक्तिके कोपसे हरि और हर विक्षिप्त हुए हैं सुतरां उन्हीं महाशक्तिके सन्तोषनार्थ जगत्की सृष्टि संहार और पालन इन तीनों कार्योंका भार मैंने ही लिया है ॥ ४१ ॥ अतएव तुम अत्यन्त भक्तिसहित कठोर तपस्या करके उन पराशक्तिको सन्तुष्ट करो ॥ ४२ ॥ हे पुत्रगण! जिससे हरि और हर पहलेकी

पराशक्तिप्रकोपात्तुजातमेतदितिस्मह ॥ जानंस्तदासावधानःपद्मजोभून्नृपोत्तम ॥ ३७ ॥ ततस्तयोश्चयत्कार्यंस्वयमेवाऽकरोत्तदा ॥ स्वशक्तेश्चप्रभावेण कियत्कालंतपोनिधिः ॥ ३८ ॥ ततस्तयोस्तुस्वस्त्यर्थंमन्वादीन्स्वसुतानथ ॥ आह्वयामासधर्मात्मासनकादींश्चसत्वरः ॥ ३९ ॥ उवाचवचनंतेभ्यःसन्नतेभ्यस्तपोनिधिः ॥ कार्यासक्तोऽहमधुनातपःकर्तुंनचक्षमः ॥ ४० ॥ पराशक्तेस्तुतोषार्थंजगद्भारयुतोऽस्म्यहम् ॥ शिवविष्णूचविक्षिप्तौपराशक्तिप्रकोपतः ॥ ४१ ॥ तस्मात्तांपरमांशक्तिंयूयंसंतोषयंत्वथ ॥ अत्यद्भुतंतपःकृत्वाभक्त्यापरमयायुताः ॥ ४२ ॥ यथातौपूर्ववृत्तौचस्यातांशक्तियुतावपि ॥ तथाकुरुतमत्पुत्रायशोवृद्धिर्भवेद्ध्रुवः ॥ ४३ ॥ कुलेयस्यभवेज्जन्मतयोःशक्त्योस्तुतत्कुलम् ॥ पावयेज्जगतींसर्वांकृतंकृत्यंस्वयंभवेत् ॥ ४४ ॥ व्यासउवाच ॥ पितामहवचःश्रुत्वागताःसर्वेवनांतरे ॥ रिराधयिषवःसर्वेदक्षाद्याविमलांतराः ॥ ४५ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यासउवाच ॥ ततस्तेतुवनोद्देशेहिमाचलतटाश्रयाः ॥ मायाबीजजपासक्तास्तपश्चेरुःसमाहिताः ॥ १ ॥

समान अवस्थाको प्राप्त होकर शक्तिके सहित मिलित हों तुम उसीके अनुसार कार्य करो इससे तुम्हारे यशकी वृद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥ परन्तु जिस कुलमें वह दोनों शक्तियें जन्म लेंगी वह कुल सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करेगा अधिक क्या वह व्यक्तिभी स्वयं कृतार्थ होगा ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! विमलान्तःकरण दक्षादि मानसपुत्र पितामहके इस प्रकार वचन सुनकर उन पराशक्तिकी आराधना करनेकी इच्छासे वनको चलेगये ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! हिमालय पर्वतकी तटभूमि अत्यन्त निर्जन स्थानहैं, सुतरां उन्होंने वनमें जाकर तपस्याकेलिये उसी स्थानमें मन लगाया, वह समाहित चित्तसे मायाबीज भुवनेश्वरीका मंत्र जपते जपते उसी स्थानमें तपस्या करनेलगे ॥ १ ॥

हे राजन् ! परमाशक्तिका ध्यान करते करते एक लक्ष वर्ष व्यतीत होनेपर देवीने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया ॥ २ ॥ उनकी मूर्त्ति त्रिनयना और सच्चिदानन्दरूपिणी है इस कारण वह करुणारससे परिपूर्ण हो एक हाथमें पाश और एक हाथमें अंकुश धारणकर भक्तोंको एक हाथसे अभय और एक हाथसे वर देती है ॥ ३ ॥ वह विमलस्वभाव मुनिगण जगज्जननीकी इसप्रकार मूर्त्ति देखकर उनका स्तव करनेलगे. हे देवि ! आप पृथक्रूपसे समस्त स्थूलदेहोंमें विराजमान रहती हो अतएव आपको नमस्कार करते हैं. हे परमेश्वरि ! आपही पृथक्रूपसे सम्पूर्ण लिंगदेहोंमें वर्तमान रहती हैं अतएव आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥ आपही समष्टिरूप समस्त लिंगदेहोंमें वास करती हैं तैजसरूप हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं जिसमें सम्पूर्ण लिंग देह ओतप्रोतभावसे अवस्थित रहते हैं ॥ ५ ॥ आपही

ध्यायतांपरमांशक्तिंलक्षवर्षाण्यभून्नृप ॥ ततःप्रसन्नादेवीसाप्रत्यक्षंदर्शनंददौ ॥ २ ॥ पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुस्त्रिलोचना ॥ करुणारससंपूर्णासच्चिदानंदरूपिणी ॥ ३॥ दृष्ट्वातांसर्वजननींतुष्टवुर्मुनयोऽमलाः॥नमस्तेविश्वरूपायैवैश्वानरसुमूर्तये ॥४॥ नमस्तैजसरूपायैसूत्रात्मवपुषेनमः ॥ यस्मिन्सर्वेलिंगदेहाओतप्रोताव्यवस्थिताः ॥ ५ ॥ नमःप्राज्ञस्वरूपायैनमोव्याकृतमूर्तये ॥ नमःप्रत्यक्स्वरूपायैनमस्तेब्रह्ममूर्तये ॥ ६ ॥ नमस्तेसर्वरूपायैसर्वलक्ष्यात्ममूर्तये ॥ इतिस्तु[illegible]वाजग[illegible]त्रींभक्तिगद्गदयागिरा ॥ ७ ॥ प्रणेमुश्चरणांभोजंदक्षाद्यामुनयोऽमलाः ॥ ततःप्रसन्नासादेवीप्रोवाचपिकभाषिणी ॥ ८ ॥ वरंब्रूतमहाभागावरदा[illegible]सदामता ॥ तस्यास्तुवचनंश्रुत्वाहराविष्णवोस्तनोःशमम् ॥ ९ ॥ तयोस्तच्छक्तिलाभंचवव्रिरेनृपसत्तम ॥ दक्षोऽथपुनरप्याह जन्मदेविकुलेमम ॥ १० ॥

पृथक्रूपसे उन सम्पूर्ण कारण देहोंमें विराजमान रहती हैं अतएव आपको नमस्कारकरते हैं आपही समस्त जीवोंके अधिष्ठान भूत कूटस्थ ब्रह्मस्वरूप होकर सम्पूर्ण देहोंमें विराजमान रहती हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ आपही समस्तभूतोंकी लक्ष्यभूत आत्मस्वरूप हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं. अमल स्वभाव दक्षादि मुनियोंने भक्तिपूर्वक गद्गदस्वरसे जगद्धात्रीका इस प्रकार स्तव कर ॥ ७ ॥ उनके चरण कमलोंमें प्रणाम किया अनन्तर देवीने प्रसन्न होकर कोकिलके समान मधुर स्वरसे कहा ॥ ८ ॥ हे महाभागगण ! मैं सर्वदाही वर देनेको प्रस्तुत हूं अतएव तुम वरकी प्रार्थना करो. हे नृपसत्तम. उन्होंने देवीके इसप्रकार वचन सुनकर प्रार्थनाकी कि, हरि और हर दोनोंही स्वास्थ्य लाभकर ॥ ९ ॥ अपनी अपनी शक्ति लक्ष्मी और गौरीको प्राप्त करैं फिर दक्षने पुनर्वार कहा कि हे देवि !

आपका जन्म मेरेही कुलमें हो ॥ १० ॥ हे अम्बे ! इससे मैं कृतार्थ हूंगा इसमें सन्देह नहीं. अतएव हे परमेशानि ! अपनी पूजा जप ध्यान और उसके उपयुक्त अनेक स्थानोंके ॥ ११ ॥ विषय आपही अपने मुखसे वर्णन कीजिये. देवीने कहा मेरीही शक्तिके अपमानसे उन हरि और हर दोनोंकी यह दशा हुई है॥ १२॥ अतएव अब ऐसा अपराध कभी न करैं इससमय मेरी कृपाके लेशसे उन शरीरको स्वास्थ्य प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ और दोनों शक्तियोंमेंसे एक शक्ति तुम्हारे घर और अन्य शक्ति क्षीरोदसागरमें जन्म ग्रहण करेगी परन्तु मेरे उनको प्रेरण करनेपर हरि और हर अपनी अपनी शक्तिको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥ मायाबीजही मेरा मुख्य मंत्र है यह सदा मुझको प्रिय है सुतरां इस मंत्रसेही मेरा जप और पूजा करो तुम सन्मुख जिस मूर्त्तिके देखतेहो मेरी यही भुवनेश्वरी मूर्त्ति है अथवा मेरे विराड्रूप ॥ १५॥ किंवा

भवेत्त्वांबयेनाऽहंकृतकृत्योभवेइति ॥ जपंध्यानंतथापूजांस्थानानिविविधानिच ॥११॥ वदमेपरमेशानिस्वमुखेनैवकेवलम् ॥ देव्युवाच ॥ मच्छक्त्योरवमानाच्चजातावस्थातयार्द्वयोः ॥ १२ ॥ नैतादृशःप्रकर्तव्योमेऽपराधःकदाचन ॥ अधुनामत्कृपालेशाच्छरीरेस्वस्थतातयोः ॥ १३ ॥ भविष्यतिचतेशक्तीत्वद्गेहेक्षीरसागरे ॥ जनिष्यतस्तत्रताभ्यांप्राप्स्यतःप्रेरितेमया ॥ १४ ॥ मायाबीजंहिमंत्रोममुख्यःप्रियकरःसदा ॥ ध्यानंविराट्स्वरूपंमेऽथवात्वत्पुरतःस्थितम् ॥ १५ ॥ सच्चिदानंदरूपंवास्थानंसर्वंजगन्मम ॥ युष्माभिःसर्वदाचाऽहंपूज्याध्येयाचसर्वदा ॥ १६ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधेदेवीमणिद्वीपाधिवासिनी ॥ दक्षाद्यामुनयःसर्वेब्रह्माणंपुनराययुः ॥ १७ ॥ ब्रह्मणेसर्ववृत्तांतंकथयामासुरादरात् ॥ हरोहरिश्चस्वस्थौतौस्वस्वकार्यक्षमौनृप ॥ १८ ॥ जातौपरांबाकृपयागर्वेणरहितौतदा ॥ कदाचिदथकालेतुमहःशाक्तमवातरत् ॥ १९ ॥ दक्षगेहेमहाराजत्रैलोक्येप्युत्सवोऽभवत् ॥ देवाःप्रमुदिताःसर्वेपुष्पवृष्टिंचचक्रिरे ॥ २० ॥

मेरे सच्चिदानन्दरूपका ध्यान करो और सम्पूर्ण जगत्‌ही मेरा स्थान है अतएव समस्तस्थानोंमें मेरी पूजा और ध्यान सर्वदा करो ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा मणिद्वीपवासिनी भुवनेश्वरी देवी इस प्रकार उनके प्रश्नका उत्तर देकर अन्तर्धान होगई. दक्ष इत्यादि सम्पूर्ण मुनियोंने फिर ब्रह्माके निकट जाकर ॥ १७ ॥ वह समस्त वृत्तान्त भ्रमयुक्त हो उनसे निवेदन किया. हे नृपवर ! उस प्रकार हरि और हर दोनों गर्वरहितहो परमादेवी अम्बिकाकी कृपासे स्वस्थ होकर अपने अपने कार्य करनेमें समर्थ हुए थे ॥ १८ ॥ यह गर्वरहित हो महाशक्तिकी कृपासे स्वस्थ हुए अनन्तर किसीसमय पराशक्तिकी परमतेजःस्वरूपिणी देवी भगवती ॥ १९ ॥ दक्षप्रजापतिके घर उत्पन्न

हुई. हे महाराज ! उस समय त्रैलोक्यमें सर्वत्र महोत्सव होनेलगा सम्पूर्ण देवता लोग प्रमुदित हो प्रफुल्लितचित्तसे फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २० ॥ स्वर्गमें सुरदुन्दुभि सम्पूर्ण करांगुलियोंसे आहत होकर गम्भीर ध्वनि करनेलगी तब विमलात्मा साधुओंके मन प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ और सूर्यकी प्रभा निर्मल होगई सम्पूर्ण सरित् आनन्दमें भर कर उछलतेहुए अपने मार्गमें बहनेलगे. जीवोंकी जन्ममृत्यु निवारणकारिणी देवी जगन्मङ्गलाके जन्म ग्रहण करनेपर सर्वत्र मंगलका सञ्चार हुआ ॥ २२ ॥ वह परब्रह्मस्वरूपिणी देवी सत्यस्वरूपिणी होनेके कारण तत्त्वज्ञानी मुनियोंने उनका "सती" नाम रक्खा अनन्तर प्रजापति दक्षने जो पूर्वमें महेश्वरकी शक्ति थीं उन्होंने उनको फिर देवा दिदेव महादेवको प्रदानकी ॥ २३ ॥ वही दाक्षायणी देवी दक्षके अपराधसे प्रज्वलित अग्निमें दग्ध हुई थी. जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने मुझको विषम अनर्थकर यह वचन सुना या ॥ २४ ॥ ऐसी परम सद्रूप महत् वस्तु किसप्रकार अग्निमें दग्ध हुई जिनका नाम स्मरण करनेसे मनुष्योंका संसाररूप घोर अग्निभय नष्ट होता है ॥ २५ ॥

नेदुर्दुंदुभयःस्वर्गेकरकोणाहतानृप॥मनांस्यासन्प्रसन्नानिसाधूनाममलात्मनाम्॥२१॥सरितोमार्गवाहिन्यःसुप्रभोभूद्दिवाकरः॥मंगलायांतुजातायांजातंसर्वत्रमंगलम्॥२२॥तस्यानामसतींचक्रेसत्यत्वात्परसंविदः ॥ ददौपुनःशिवायाऽथतस्यशक्तिस्तुयाऽभवत् ॥ २३ ॥ सापुनर्ज्वलनेदग्धादैवयोगान्मनोर्नृप॥ जनमेजयउवाच ॥ अनर्थकरमेतत्तेश्रावितंवचनंमुने ॥२४॥ एतादृशंमहद्वस्तुकथंदग्धंहुताशने ॥ यन्नामस्मरणान्नृणांसंसाराग्निभयंनहि ॥२५॥ केनकर्मविपाकेनमनोर्दग्धंतदेवहि ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्पुरावृत्तंसतीदाहस्यकारणम् ॥२६॥ कदाचिदथदुर्वासागतोजांबूनदेश्वरीम्॥ददर्शदेवींतत्राऽसौमायाबीजंजजापसः ॥ २७ ॥ ततःप्रसन्नादेवेशीनिजकंठगतांस्रजम् ॥ भ्रमद्भ्रमरसंसक्तांमकरंदमदाकुलाम् ॥ २८ ॥ ददौप्रसादभूतांतांजग्राहशिरसामुनिः ॥ ततोनिर्गत्यतरसाव्योममार्गेणतापसः ॥ २९ ॥ आजगामसयत्राऽऽस्तेदक्षःसाक्षात्सतीपिता ॥ संदर्शनार्थमंबायाननामचसतीपदे ॥ ३० ॥

प्रजापतिके कौन कर्मविपाकसे वह वस्तु दग्ध हुई थी उसको सुननेके लिये मेरी इच्छाअत्यन्त बलवती हुई है आप कृपाकरके मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये. व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! सतीके दाहका कारण स्वरूप पुरातन इतिहास वर्णन करता हूं श्रवणकरो ॥ २६ ॥ किसीसमय ऋषिवर दुर्वासाने जाम्बूनदवाहिनी नदीके तटपर जायकर वहाँ स्थित देवीका दर्शनकिया अनन्तर वह उस स्थानमें अवस्थित होकर शांतचित्तसे मायाबीजका जपकरनेलगे ॥ २७ ॥ तदनन्तर सुरेश्वरी भगवतीने उनके प्रति प्रसन्न होकर मकरन्दगन्धसे प्रमोदित प्रमत्त भौंरोंसे युक्त कण्ठस्थित मनोहरमाला ॥ २८ ॥ प्रसादस्वरूप उनको प्रदानकी. महर्षिजीनेभी शीघ्र उसको ग्रहणकर मस्तकमें धारणकिया. इसके उपरान्त उन तपस्वीप्रवर महर्षिने शीघ्रता सहित आकाशमार्गसे चला ॥ २९ ॥ अम्बिकाके दर्शनार्थ जहाँ सतीके पिता प्रजापति

दक्ष स्थिति करतेथे उस स्थानमें आनकर सतीके चरणकमलोंमें प्रणाम किया ॥ ३० ॥ अनन्तर प्रजापतिने उनसे पूँछा हे महर्षे ! यह अलौकिक माला किसकी है ? हे प्रभो ! पृथ्वीमें दुर्लभ यह मोहिनीमाला आपने किसप्रकार प्राप्त की ? ॥ ३१ ॥ तब वह वाग्मिप्रवर महर्षि दुर्वासा उनके इस प्रकार वचन सुनकर प्रेमविगलितचित्तसे नेत्रोंमें आंसू भर कहने लगे हे प्रजापते ! मैंने देवीका प्रसादस्वरूप यह अनुपम मनोहारिणी माला प्राप्त की है ॥ ३२ ॥ यह सुनकर प्रजापतिने महर्षि दुर्वासासे वह माला मांगी उनको भी त्रैलोक्यमें शक्तिके भक्तको अदेय कुछभी नहीं था ॥ ३३ ॥ इसप्रकार विचार कर प्रजापति दक्षको वह माला देदी उन्होंने उस मालाको मस्तकमें धारणकर फिर जिस घरमें ॥ ३४ ॥ दम्पतिकी अतिमनोहर शय्या सज्जित थी उसी शय्याके ऊपर रखदी रात्रिकालके समय उस

पृष्टोदक्षेणसमुनिर्मालाकस्याऽस्त्यलौकिकी ॥ कथंलब्धात्वयानाथदुर्लभाभुविमानवैः ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यप्रोवाचाऽश्रुयुतेक्षणः ॥ देव्याः प्रसादमतुलंप्रेमसद्गदितांतरः ॥ ३२ ॥ प्रार्थयामासतांमालांतंमुनिंससतीपिता ॥ अदेयंशक्तिभक्तायनास्तित्रैलोक्यमंडले ॥३३ ॥ इतिबुद्ध्यातुतांमालां मनवेससमर्पयत् ॥ गृहीताशिरसामालामनुनानिजमंदिरे ॥ ३४ ॥ स्थापिताशयनंयत्रदंपत्योरतिसुंदरम् ॥ पशुकर्मरतोरात्रौमालागंधेनमोदितः ॥३५॥ अभवत्समहीपालस्तेनपापेनशंकरे ॥ शिवेद्वेषमतिर्जातोदेव्यांसत्यांतथानृप ॥ ३६ ॥ राजंस्तेनाऽपराधेनतज्जन्योदेहएवच ॥ सत्यायोगाग्निनादग्धःस तीधर्मंदिदृक्षया ॥ ३७ ॥ पुनश्चहिमवत्पृष्ठेप्रादुरासीच्चुतन्महः ॥ जनमेजयउवाच ॥ दह्यमानेसतीदेहेजातेकिमकरोच्छिवः ॥ ३८ ॥ प्राणाधिकासतीत स्यतद्वियोगेनकातरः ॥ व्यासउवाच ॥ ततःपरंतुयज्जातंमयावक्तुंनशक्यते ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्यप्रलयोजातःशिवकोपाग्निनानृप ॥ वीरभद्रःसमुत्पन्नोभद्र कालीगणान्वितः ॥ ४० ॥

मालाकी सुगन्धसे आमोदित होकर वह महीपति सुरतकार्यमें आसक्त हुए ॥ ३५ ॥ हे नृपवर ! उस पशुकर्म निबन्धनके कारण उनको सतीदेवी और शङ्करके प्रति विद्वेष उत्पन्न हुआ इससे वह शिवकी निन्दा करनेलगे ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! उसी अपराधसे सतीने सनातन पतिव्रत धर्मके मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये उस दक्ष जनित देहको त्यागकरनेका संकल्पकर योगाग्निद्वारा अपना देह दग्ध किया ॥ ३७ ॥ वह शक्ति समद्भूत तेज फिर हिमाचलमें प्रादुर्भूत हुआ था जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! सतीका देह दग्ध होजानेपर ॥ ३८ ॥ प्राणाधिका सतीके वियोगमें कातर होकर महादेवने क्या किया था ? व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसके उपरान्त जिस प्रकार घटना हुई थी मैं उसको वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूं ॥ ३९ ॥ हे नृपवर ! तिससमय शिवकी क्रोधाग्निद्वारा त्रिलोकमण्डलमें प्रलय उपस्थित हुईथी

भद्रकालीगणद्वारा परिवृत हो वीरभद्र उत्पन्न होकर ॥ ४० ॥ तीनों लोकके नाशमें उद्यत हुए. तब ब्रह्मादि देवताओंने शङ्करकी शरण ग्रहण की ॥ ४१ ॥ सतीके विनाशसे सर्वस्वनाश होनेपरभी करुणानिधान ईशानने दक्षका यज्ञ विनष्टकर उनका मस्तक छेदन किया और उसी स्थानमें बकरेका शिरसंयोजनपूर्वक ॥ ४२ ॥ उनको जीवित कर देवताओंको अभय प्रदानकी तब देवादिदेव महादेव अतिखिन्न हो यज्ञस्थानके समीप जाकर अत्यन्त दुःखसे रोदन करनेलगे ॥ ४३ ॥ अनन्तर जब उन्होंने देखा कि, उस चैतन्यरूपिणी सतीका देह चिताग्निमें दग्ध होता है तब वह हासती ! हासती ! इसप्रकार कहकर रोदन करते करते सतीका देह स्वयं कन्धेपर रख॥४४॥ भ्रान्तचित्तसे अनेक देशोंमें भ्रमण करनेलगे यह देखकर ब्रह्मादि देवतागण अत्यन्त चिन्तित हुए ॥ ४५ ॥ और भगवान् विष्णुने धनुर्धारणपूर्वक बाणोंसे सतीके

त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तोवीरभद्रोयदाऽभवत् ॥ ब्रह्मादयस्तदादेवाःशंकरंशरणंययुः ॥ ४१ ॥ जातेसर्वस्वनाशेऽपिकरुणानिधिरीश्वरः ॥ अभयं दत्तवांस्तेभ्योबस्तवक्रेणतंमनुम् ॥ ४२ ॥ अजीवयन्महात्माऽसौततःखिन्नोमहेश्वरः ॥ यज्ञवाटमुपागम्यरुरोदभृशदुःखितः ॥ ४३ ॥ अपश्य त्तांसतींवह्नौदह्यमानांतुचित्कलाम् ॥ स्कंधेऽप्यारोपयामासहासतीतिवदन्मुहुः ॥ ४४ ॥ बभ्रामभ्रांतचित्तःसन्नानादेशेषुशंकरः ॥ तदाब्रह्मादयो देवाश्चितामापुरनुत्तमाम् ॥ ४५ ॥ विष्णुस्तुत्वरयातत्रधनुरुद्यम्यमार्गणैः ॥ चिच्छेदावयवान्सत्यास्तत्तत्स्थानेषुतेपतन् ॥ ४६ ॥ तत्तत्स्थानेषुतत्रा ऽऽसीन्नानामूर्तिधरोहरः ॥ उवाचचततोदेवान्स्थानेष्वेतेषुयेशिवाम् ॥ ४७ ॥ भजंतिपरयाभक्त्यातेषांकिंचिन्नदुर्लभम् ॥ नित्यंसन्निहितायत्रनिजांगेषु परांबिका ॥४८॥ स्थानेष्वेतेषुयेमर्त्याःपुरश्चरणकर्मिणः ॥ तेषांमंत्राःप्रसिध्यंतिमायाबीजंविशेषतः॥४९॥इत्युक्त्वाशंकरस्तेषुस्थानेषुविरहातुरः॥का लंनिन्येनृपश्रेष्ठजपध्यानसमाधिभिः॥५०॥जनमेजयउवाच ॥ कानिस्थानानितानिस्युःसिद्धपीठानिचानघ॥ कतिसंख्यानिनामानिकानितेषांचमेवद ५१

सम्पूर्ण अङ्ग छेदनकिये वह सम्पूर्ण अवयव जिनजिन स्थानोंमें पतित हुए ॥ ४६॥ शंकरने अनेकमूर्त्ति धारण कर उन उन स्थानोंमें स्थिति की, तब उन्होंने देवताओंसे कहा कि, इन सम्पूर्ण स्थानोंमें जोजो पुरुष परमभक्तिसहित भगवतीकी ॥ ४७ ॥ आराधना करैंगे उनको कुछ दुर्लभ नहीं रहैगा. इन सम्पूर्ण स्थानोंमें परमादेवी अम्बिका सदा स्थित रहती हैं ॥ ४८ ॥ जो जो मनुष्य इन सम्पूर्ण स्थानोंमें समस्त मंत्रोंका विशेषकर मायाबीजका पुरश्चरण करैंगे उनको सम्पूर्ण मंत्रोंकी सिद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४९ ॥ हे नृपवर ! यह कहकर महेश्वर सतीके विरहसे अत्यन्त कातर हो जप, ध्यान और समाधि अवलम्बनपूर्वक उन उन स्थानोंमें काल व्यतीत करनेलगे ॥ ५० ॥ जनमेजयने कहा किस किस स्थानमें सतीके सम्पूर्ण अंग पतितहुए थे? उन सब सिद्धपीठका क्या नाम है? और उन सम्पूर्ण पीठोंकी कितनी संख्या

हे? आप आनुपूर्वक समस्त कीर्तन कीजिये ॥ ५१ ॥ हे महामुने ! मैं आपके मुखकमलसे निकली हुई सम्पूर्ण कथा सुनकर इस संसारमें कृतार्थता प्राप्त करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! जिन सबका नाम सुननेसेही मनुष्य पापरहित होता है मैं इस समय वह समस्त पीठस्थान कीर्तन करूंगा श्रवण करो ॥ ५३ ॥ जिनजिन पीठस्थानमें ऐश्वर्याकांक्षी सिद्धि काम मनुष्योंको इन देवीकी उपासना और ध्यान करना कर्तव्य है मैं वह समस्त स्थान भलीभाँति कीर्तन करता हूं ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! वाराणसीमें गौरीका मुख निपतित हुआ है उसी मुखरूप पीठमें भगवतीकी जो मूर्ति विराजमान है वह विशालाक्षी नामसे विख्यात है ॥ नैमिषारण्यमें निपतित देवीकी मूर्तिका नाम लिङ्गधारिणी है ॥ ५५ ॥ यह महामाया प्रया

तत्रस्थितानां देवीनांनामानिचकृपाकर ॥ कृतार्थोऽहंभवेयेनतद्वदाशुमहामुने ॥ ५२ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिदेवीपीठानिसांप्रतम् ॥ येषांश्रवणमात्रेणपापहीनोभवेन्नरः ॥ ५३ ॥ येषुयेषुचपीठेषूपास्येयंसिद्धिकांक्षिभिः ॥ भूतिकामैरभिध्येयातानिवक्ष्यामितत्त्वतः ॥ ५४ ॥ वाराणस्यां विशालाक्षीगौरीमुखनिवासिनी ॥ क्षेत्रेवैनैमिषारण्येप्रोक्तासालिंगधारिणी ॥ ५५ ॥ प्रयागेललिताप्रोक्ताकामुकीगंधमादने ॥ मानसेकुमुदाप्रोक्तादक्षिणे चोत्तरेतथा ॥ ५६ ॥ विश्वकामाभगवतीविश्वकामप्रपूरिणी ॥ गोमंतेगोमतीदेवीमंदरेकामचारिणी ॥ ५७ ॥ मदोत्कटाचैत्ररथेजयंतीहस्तिनापुरे ॥ गौरीप्रोक्ताकान्यकुब्जेरंभातुमलयाचले ॥ ५८ ॥ एकाम्रपीठेसंप्रोक्तादेवीसाकीर्तिमत्यपि ॥ विश्वेविश्वेश्वरींप्राहुःपुरुहूतांचपुष्करे ॥ ५९ ॥ केदारपीठेसंप्रोक्तादेवीसन्मार्गदायिनी ॥ मंदाहिमवतःपृष्ठेगोकर्णेभद्रकर्णिका ॥ ६० ॥ स्थानेश्वरीभवानीतुबिल्वकेबिल्वपत्रिका ॥ श्रीशैलेमाधवीप्रोक्ताभद्राभद्रेश्वरे तथा ॥ ६१ ॥ वराहशैलेतुजयाकमलाकमलालये ॥ रुद्राणीरुद्रकोट्यांतुकालीकालंजरेतथा ॥ ६२ ॥

गमें ललिता, गन्धमादनमें कामुकी, दक्षिण मानसमें कुमुदा और उत्तर मानसमें ॥ ५६ ॥ विश्वकी वाञ्छापूरिणी विश्वकामा है; गोमन्तमें गोमती और मन्दर पर्वतमें कामचारिणी नामसे विख्यात होकर विराजमान रहती है ॥ ५७ ॥ यह देवी चैत्ररथमें मदोत्कटा, हस्तिनापुरमें जयन्ती, कान्यकुब्जमें गौरी, मलयपर्वतमें रम्भा ॥ ५८ ॥ एकाम्रपीठमें कीर्तिमती विश्वमें विश्वेश्वरी और पुष्करमें पुरुहूता नामसे कीर्तित हैं ॥ ५९ ॥ यह केदारपीठमें सन्मार्गदायिनी हिमाचलपृष्ठमें मन्दा, गोकर्णमें भद्रकर्णिका ॥ ६० ॥ स्थानेश्वरमें भवानी, बिल्वकमें बिल्वपत्रिका, श्रीशैलमें माधवी, भद्रेश्वरमें भद्रा ॥ ६१ ॥ वराहशैलमें जया, कमलालयमें कमला, रुद्रकोटिमें

रुद्राणी, कालञ्जरमें काली ॥ ६२ ॥ शालग्राममें महादेवी, शिवलिङ्गमें जलप्रियामहालिङ्गमें कपिला, माकोटमें मुकुटेश्वरी ॥ ६३ ॥ मायापुरीमें कुमारी, सन्तानमें ललिताम्बिका, गयाक्षेत्रमें मंगला, पुरुषोत्तममें विमला ॥ ६४ ॥ सहस्राक्षमें उत्पलाक्षी, हिरण्याक्षमें, महोत्पला, विपाशानदीमें अमोघाक्षी, पुण्ड्रवर्धनमें पाटला ॥ ६५ ॥ सुपार्श्वमें नारायणी, त्रिकूटमें रुद्रसुन्दरी, विपुलमें विपुला देवी, मलयाचलमें कल्याणी ॥ ६६ ॥ सह्याद्रिमें एकवीरा, हरिश्चन्द्रमें चन्द्रिका, रामतीर्थमें रमणा, युमनामें मृगावती ॥ ६७ ॥ कोटतीर्थमें कोटिवी, माधववनमें सुगन्धा, गोदावरीमें त्रिसन्ध्या, गंगाद्वारमें रतिप्रिया ॥ ६८ ॥ शिवकुण्डमें शुभानन्दा, देविकांतरमें नन्दिनी द्वारावतीमें रुक्मिणी, वृन्दा

शालग्रामेमहादेवीशिवलिंगेजलप्रिया ॥ महालिंगेतुकपिलामाकोटेमुकुटेश्वरी ॥६३॥ मायापुर्यांकुमारीस्यात्संतानेललितांबिका ॥ गयायांमंगलाप्रोक्ताविमलापुरुषोत्तमे ॥ ६४ ॥ उत्पलाक्षीसहस्राक्षेहिरण्याक्षेमहोत्पला ॥ विपाशायाममोघाक्षीपाडलापुंड्रवर्धने ॥ ६५ ॥ नारायणीसुपार्श्वेतुत्रिकूटेरुद्रसुंदरी ॥ विपुलेविपुलादेवीकल्याणीमलयाचले ॥ ६६ ॥ सह्याद्रावेकवीरातुहरिश्चंद्रेतुचंद्रिका ॥ रमणारामतीर्थेतुयमुनायांमृगावती ॥ ६७ ॥ कोटिवीकोटतीर्थेतुसुगंधामाधवेवने ॥ गोदावर्यांत्रिसंध्यातुगंगाद्वारेरतिप्रिया ॥ ६८ ॥ शिवकुंडेशुभा नंदानंदिनीदेविकातटे ॥ रुक्मिणीद्वारवत्यांतुराधावृंदावनेवने ॥ ६९ ॥ देवकीमथुरायांतुपातालेपरमेश्वरी ॥ चित्रकूटेतथासीताविंध्येविंध्याधिवासिनी ॥ ७० ॥ करवीरेमहालक्ष्मीरुमादेवीविनायके ॥ आरोग्यावैद्यनाथेतुमहाकालेमहेश्वरी ॥ ७१ ॥ अभयेत्युष्णतीर्थेषुनितंबाविंध्यपर्वते ॥ मांडव्येमांडवीनामस्वाहामाहेश्वरीपुरे ॥ ७२ ॥ छगलंडेप्रचंडातुचंडिकाऽमरकंटके ॥ सोमेश्वरेवरारोहाप्रभासेपुष्करावती ॥ ७३ ॥ देवमातासरस्वत्यांपारावारातटेस्मृता ॥ महालयेमहाभागापयोष्ण्यांपिंगलेश्वरी ॥ ७४ ॥ सिंहिकाकृतशौचेतुकार्तिकेत्वतिशांकरी ॥ उत्पलावर्तकेलोलासुभद्राशोणसंगमे ॥ ७५ ॥

वनमें राधा ॥ ६९ ॥ मथुरामें देवकी, पातालमें परमेश्वरी, चित्रकूटमें सीता और विन्ध्यमें विन्ध्याधिवासिनी नामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ७० ॥ हे महाराज ! यही महादेवी भगवती करवीरपीठमें महालक्ष्मी, विनायकमें उमादेवी, वैद्यनाथमें आरोग्या, महाकालमें महेश्वरी ॥ ७१ ॥ उष्णतीर्थमें अभया, विन्ध्यपर्वतमें, नितम्बा, माण्डव्यमें माण्डवी, माहेश्वरीपुरीमें स्वाहा ॥ ७२ ॥ छगलण्डमें प्रचण्डा,अमरकण्टकमें चण्डिका, सोमेश्वरीमें वरारोहा, प्रभासमें पुष्करावती ॥ ७३ ॥ सरस्वतीमें देवमाता, समुद्रतटमें पारावारा, महालयमें महाभागा, पयोष्णीमें पिङ्गलेश्वरी ॥ ७४ ॥ कृतशौचमें सिंहिका, कार्तिकमें अतिशाङ्करी, उत्पला

वर्तकमें लोला शोणसङ्गममें सुभद्रा ॥ ७५ ॥ सिद्धवनमें मातालक्ष्मी, भारताश्रममें अनङ्गा, जालन्धरमें विश्वमुखी, किष्किन्धापर्वतमें तारा ॥ ७६ ॥ देवदारुवनमें पुष्टि, काश्मीरमंडलमें मेधा, हिमाद्रिमें भीमा, विश्वेश्वरक्षेत्रमें तुष्टि ॥ ७७ ॥ कपालमोचनमें शुद्धि, कायावरोहणमें माता शखोद्धारमें धरा पिण्डारकमें धृति ॥ ७८ ॥ चन्द्रभागा नदीमें कला अच्छोदमें शिवधारिणी वेणामें अमृता बदरिकाश्रममें उर्वशी ॥ ७९ ॥ उत्तर कुरुमें औषधि कुशद्वीपमें कुशोदका हेमकूटमें मन्मथा कुमुदमें सत्यवादिनी ॥ ८० ॥ अश्वत्थमें वन्दनीया वैश्रवणालयमें निधि, वेदवदनमें गायत्री शिवसन्निधानमें पार्वती ॥ ८१ ॥ देवलोकमें इन्द्राणी, ब्रह्माके आस्यमें सरस्वती, सूर्य विम्बमें प्रभा और मातृगणोंके सन्निधानमें वैष्णवीनामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ८२ ॥ यही सतियोंमें अरुन्धती और रामागणोंमें तिलोत्तमा नामसे

मातासिद्धवनेलक्ष्मीरनंगाभरताश्रमे ॥ जालंधरेविश्वमुखीताराकिष्किंधपर्वते ॥ ७६ ॥ देवदारुवनेपुष्टिर्मेधाकाश्मीरमंडले ॥ भीमादेवीहिमाद्रौतुतुष्टिर्विश्वेश्वरीतथा ॥ ७७ ॥ कपालमोचनेशुद्धिर्माताकायावरोहणे ॥ शंखोद्धारेधरानामधृतिःपिंडारकेतथा ॥ ७८ ॥ कलातुचंद्रभागायामच्छोदे शिवधारिणी ॥ वेणायाममृतानामबदर्यामुर्वशीतथा ॥ ७९ ॥ औषधिश्चोत्तरकुरौकुशद्वीपेकुशोदका ॥ मन्मथाहेमकूटेतुकुमुदेसत्यवादिनी ॥ ८० ॥ अश्वत्थेवंदनीयातुनिधिर्वैश्रवणालये ॥ गायत्रीवेदवदनेपार्वतीशिवसन्निधौ ॥ ८१ ॥ देवलोकेतथेंद्राणीब्रह्मास्येपुसरस्वती ॥ सूर्यबिंबेप्रभानाममातॄणां वैष्णवीमता ॥ ८२ ॥ अरुंधतीसतीनांतुरामासुचतिलोत्तमा ॥ चित्तेब्रह्मकलानामशक्तिःसर्वशरीरिणाम् ॥ ८३ ॥ इमान्यष्टशतानिस्युःपीठानि जनमेजय ॥ तत्संख्याकास्तदीशान्योदेव्यश्चपरिकीर्तिताः ॥ ८४ ॥ सतीदेव्यंगभूतानिपीठानिकथितानिच ॥ अन्यान्यपिप्रसंगेनयानिमुख्यानि भूतले ॥ ८५ ॥ यःस्मरेच्छृणुयाद्वापिनामाष्टशतमुत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोदेवीलोकंपरंव्रजेत् ॥ ८६ ॥ एतेषुसर्वपीठेषुगच्छेद्यात्राविधानतः ॥ संतर्पयेच्चपित्रादीञ्छ्राद्धादीनिविधायच ॥ ८७ ॥ कुर्याच्चमहतींपूजांभगवत्याविधानतः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रींजगदंबांमुहुर्मुहुः ॥ ८८ ॥

विख्यात हैं तथा यही संविद्रूपा महादेवी हैं, सम्पूर्ण शरीरियोंके चित्तक्षेत्रमें ब्रह्मकला नामक शक्तिरूपसे सदा अधिष्ठित रहती हैं ॥ ८३ ॥ हे जनमेजय ! यह मैं ने एकशत अष्ट पीठ और तत्संख्यक ईशानीदेवीका विषय तुमसे वर्णन किया ॥ ८४ ॥ देवीके अंगभूत सम्पूर्ण पीठ और प्रसंगके क्रमसे पृथ्वीतलके अन्यान्य मुख्यस्थानभी कीर्तन हुए ॥ ८५ ॥ जो मनुष्य यह अत्युत्तम एकसौआठ देवीके नाम और पीठोंके नाम श्रवण करता है वह सर्वविध पापसे मुक्तहोकर देवीके लोकको जाता है ॥ ८६ ॥ हे जनमेजय ! जो बुद्धिमान् पुरुष इन सम्पूर्ण पीठस्थानोंमें यथा विधानसे यात्राकर श्राद्धादिद्वारा पितरोंका तर्पण ॥ ८७ ॥ और यथाविधि भगवतीकी महती पूजा

करके उस जगद्धात्री जगदम्बिकाके निकट वारंवार क्षमा प्रार्थना करता है ॥ ८८ ॥ उस मनुष्यका अन्तरात्मा कृतकृत्य और पवित्र होता है इसमें सन्देह नहीं. हे राजेन्द्र ! देवीकी पूजाके अनन्तर भक्ष्यभोज्यादिद्वारा ब्राह्मण ॥ ८९ ॥ सुवासिनी कुमारी और बटुकगणोंको भोजन करावे और उस क्षेत्रमें चाण्डालादि जो कोई जाति वासकरती हो ॥ ९० ॥ उसको देवीका स्वरूप जाने अतएव उसको पूजा करना कर्तव्य है इन सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें कभी दान न ले ॥ ९१ ॥ साधुगण इन सम्पूर्ण स्थानोंमें अपने अपने मंत्रका यथाशक्ति पुरश्चरण करते हैं और मायाबीजसे अपने स्थानकी अधिवासिनी देवीको ॥ ९२ ॥ हे राजन् ! रातदिन पूजनेसे पुरश्चरण होता है देवीके प्रति भक्तिमान् मनुष्य इन सम्पूर्ण विषयोंमें वित्तशाठ्य वा कृपणता प्रकाश न करैं ॥ ९३ ॥ जो पुरुष देवीके प्रति प्रसन्न होकर इसप्रकार पीठ स्थानमें यात्रा करता है उसके पितृगण सहस्रकल्प पर्यन्त महत्तर ब्रह्मलोकमें ॥ ९४ ॥ वास करते हैं वह मनुष्य परमज्ञान प्राप्त करके भवसमुद्रसे मुक्त होता है तथा देवीलोकमें

कृतकृत्यंस्वमात्मानंजानीयाज्जनमेजय ॥ भक्ष्यभोज्यादिभिःसर्वान्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ ८९ ॥ सुवासिनीःकुमारीश्चबटुकादींस्तथानृप ॥ तस्मिन्क्षेत्रेस्थितायेतुचांडालाद्याअपिप्रभो ॥ ९० ॥ देवीरूपाःस्मृताःसर्वेपूजनीयास्ततोहिते ॥ प्रतिग्रहादिकंसर्वंतेषुक्षेत्रेषुवर्जयेत् ॥ ९१ ॥ यथाशक्तिपुरश्चर्यांकुर्यान्मंत्रस्यसत्तमः ॥ मायाबीजेनदेवेशींतत्तत्पीठाधिवासिनीम् ॥ ९२ ॥ पूजयेदनिशंराजन्पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ वित्तशाठ्यंनकुर्वीतदेवीभक्तिपरोनरः ॥ ९३ ॥ यएवंकुरुतेयात्रांश्रीदेव्याःप्रीतमानसः ॥ सहस्रकल्पपर्यंतंब्रह्मलोकेमहत्तरे ॥ ९४ ॥ वसंतिपितरस्तस्यसोऽपिदेवीपुरेतथा ॥ अंतेलब्ध्वापरंज्ञानंभवेन्मुक्तोभवांबुधेः ॥ ९५ ॥ नामाष्टशतजापेनबहवःसिद्धतांगताः ॥ यत्रैतल्लिखितंसाक्षात्पुस्तकेवापितिष्ठति ॥ ९६ ॥ ग्रहमारीभयादीनितत्रनैवभवंतिहि ॥ सौभाग्यंवर्धतेनित्यंयथापर्वणिवारिधिः ॥ ९७ ॥ नतस्यदुर्लभंकिंचिन्नामाष्टशतजापिनः ॥ कृतकृत्योभवेन्नूनंदेवीभक्तिपरायणः ॥ ९८ ॥ नमंतिदेवतास्तंवैदेवीरूपोहिसस्मृतः ॥ सर्वथापूज्यतेदेवैःकिंपुनर्मनुजोत्तमैः ॥ ९९ ॥ श्राद्धकालेपठेदेतन्नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ तृप्तास्तत्पितरःसर्वेप्रयांतिपरमांगतिम् ॥ १०० ॥ इमानिमुक्तिक्षेत्राणिसाक्षात्संविन्मयानिच ॥ सिद्धपीठानिराजेंद्रसंश्रयेन्मतिमान्नरः ॥ १०१ ॥

वास करता है ॥ ९५ ॥ देवीके इन अष्टोत्तर नामोंका पाठ करके वह मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है जिस किसी स्थानमें उक्त नामावली पुस्तकमें लिखित हो ॥ ९६ ॥ उस स्थानमें ग्रहभय और महामारीका भय इत्यादि कुछभी नहीं होता वरन् पर्वकालमें समुद्रकी समान उस स्थानमें सौभाग्यकी वृद्धि होती है ॥ ९७ ॥ अष्टोत्तरशतनामके जपनेवाले मनुष्यको कुछ दुर्लभ नहीं रहता वह देवीका भक्त निश्चयही कृतकृत्यता प्राप्त करता है ॥ ९८ ॥ वह साधुव्यक्ति देवीका स्वरूप होता है देवतागण उसको देखकर प्रणाम और उसकी पूजा करते हैं सज्जन मनुष्य जो उनकी पूजा करते हैं उसमें फिर कहना क्या है ? ॥ ९९ ॥ इस अत्युत्तम अष्टोत्तरशतनामके श्रद्धासहित पाठ करनेपर पितृगण तृप्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं ॥ १०० ॥ यह सम्पूर्ण स्थान साक्षात् संविन्मय मुक्तिक्षेत्र हैं, अतएव हे राजेन्द्र ! बुद्धिमान् मनुष्य इन सम्पूर्ण

सिद्धपीठोंका आश्रय करते हैं ॥ १०१ ॥ हे महाराज ! आपने महेश्वरीका जो जो रहस्य और अतिरहस्यका विषय पूँछा था वह सम्पूर्ण मैं ने वर्णन किया. इससमय आप अब क्या सुननेकी इच्छा करते हैं ? सो कहिये ॥ १०२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ छ ॥

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने पहले कहा है कि, अनन्तर यह परमज्योति हिमालयके पृष्ठमें आविर्भूत हुई थी इससमय उस परमज्योतिका विषय विस्तार सहित मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ कौन बुद्धिमान् मनुष्य इस शक्तिका कथामृत पान करनेसे विरत होगा यद्यपि सुधापायी देवताओंको किसी प्रकार मृत्युकी सम्भावना हो तथापि देवीकथामृतपान करनेवालोंके पक्षमें उसकी कुछ सम्भावना नहीं होती ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवीके प्रति जिसप्रकार आपकी एकान्त भक्ति देखता हूं. इससे मुझको बोध होता है कि, आप महात्माओंसे शिक्षित कृतकृत्य भाग्यवान् और धन्य हुए हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! अब मैं

पृष्टंयत्तत्त्वयाराजन्नुक्तंसर्वंमहेशितुः ॥ रहस्यातिरहस्यंचकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥१०२॥ इति श्रीदे०म०स०त्रिंशोध्यायः ॥ ३० ॥ जनमेजयउवाच ॥ धराधराधीशमौलावाविरासीत्परंमहः ॥ यदुक्तंभवतापूर्वंविस्तरात्तद्वदस्वमे ॥ १ ॥ कोविरज्येतमतिमान्पिबञ्छक्तिकथामृतम् ॥ सुधांतुपिबतांमृत्युः सनैतच्छृण्वतोभवेत् ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ धन्योऽसिकृतकृत्योऽसिशिक्षितोऽसिमहात्मभिः ॥ भाग्यवानसियद्देव्यांनिर्व्याजाभक्तिरस्तिते ॥ ३ ॥ शृणुराजन्पुरावृत्तंसतीदेहेऽग्निभर्जिते ॥ भ्रांतःशिवस्तुवभ्रामक्वचिद्देशेस्थिरोभवत् ॥ ४ ॥ प्रपंचभानरहितःसमाधिगतमानसः ॥ ध्यायन्देवीस्वरूपंतुकालंनिन्येसआत्मवान् ॥ ५ ॥ सौभाग्यरहितंजातंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ शक्तिहीनंजगत्सर्वंसाब्धिद्वीपंसपर्वतम् ॥ ६ ॥ आनंदःशुष्कतांयातःसर्वेषांहृदयांतरे ॥ उदासीनाःसर्वलोकाश्चिंताजर्जरचेतसः ॥७॥ सदादुःखोदधौमग्नारोगग्रस्तास्तदाऽभवन् ॥ ग्रहाणांदेवतानांचवैपरीत्येनवर्तनम् ॥ ८ ॥

परमपुरातत्व वर्णन करता हूं श्रवण करो. देवादिदेव महेश्वरने उस अग्निदग्ध सतीके देहको धारण कर भ्रान्त चित्तसे भूमण्डलपर भ्रमण करते करते जिस स्थानमें स्थिर होकर अवस्थिति की ॥ ४ ॥ उस स्थानमें वह नियतेन्द्रिय संसारज्ञानरहित और समाधियुक्त होकर देवीके स्वरूपका ध्यान करते करते काल व्यतीत करनेलगे ॥ ५ ॥ इस समय देवीके विना चराचरयुक्त यह त्रैलोक्यमण्डल ऐश्वर्यरहित और पर्वत, समुद्र तथा द्वीप सहित यह सम्पूर्ण भूमण्डल शक्तिविहीन होगया ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण जीवोंके हृदयका आनन्द शुष्क होगया सम्पूर्ण मनुष्य चिन्ताके कारण जर्जरचित्त हो दीनभावसे अवस्थिति करने लगे ॥ ७ ॥ सब दुःखसागरमें निमग्न होकर रोगग्रस्त होनेलगे ग्रहोंकी विपरीत गति और देवताओंकी विपरीत अवस्था होनेलगी ॥ ८ ॥

राजालोग सतीकेअभावसे आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख परम्पराके आधीन होकर स्थिति करनेलगे ॥ ९ ॥ इसीसमय तारकनामक महासुर ब्रह्माजीसे वर प्राप्तकर अत्यन्तदुर्जय हो उठा वह वीर मदसे मत्त हो त्रिभुवनको जीत त्रैलोक्यका एकमात्र अधीश्वर होगया ॥ १० ॥ प्रजापति ब्रह्माके "शिवका औरस पुत्र तुम्हारा हन्ता होगा" इसप्रकार वरदान करनेपर और उससमय शिवके औरस पुत्रका अभाव होनेके कारण वह महासुर सदा आनन्दसे उन्मत्त होकर जयका अभिमान करनेलगा ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण देवता उसके उपद्रवसे स्थानभ्रष्ट होकर शिवका औरस पुत्र न होनेके कारण दुस्तर चिन्तासागरमें निमग्न हुए ॥ १२ ॥ सती देवीके इससमय प्राण त्यागनेपर महादेव भार्यारहित हुएहैं अतएव इस समय किसप्रकार उनके सुतोत्पत्ति सम्भव होसक्ती है? हम अत्यन्त भाग्यहीन हैं कारण कि शंकरकी

अधिभूताधिदेवानांसत्यभावानृपाऽभवन् ॥ अथाऽस्मिन्नेवकालेतुतारकाख्योमहासुरः ॥ ९ ॥ ब्रह्मदत्तवरोदैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः ॥ शिवौरसस्तुयःपुत्रःसतेहंताभविष्यति ॥ १० ॥ इतिकल्पितमृत्युःसदेवदेवैर्महासुरः ॥ शिवौरससुताभावाज्जगर्जचननंदच ॥ ११ ॥ तेनचोपद्रुताःसर्वेस्वस्थानात्प्रच्युताःसुराः ॥ शिवौरससुताभावाच्चितामापुर्दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ नांगनाशंकरस्यास्तिकथंतत्सुतसंभवः ॥ अस्माकंभाग्यहीनानांकथंकार्यंभविष्यति ॥ १३ ॥ इतिचिंतातुराःसर्वेजग्मुर्वैकुंठमंडले ॥ शशंसुर्हरिमेकांतेसचोपायंजगादह ॥ १४ ॥ कुतश्चिंतातुराःसर्वेकामकल्पद्रुमाशिवा ॥ जागर्तिभुवनेशानीमणिद्वीपाधिवासिनी ॥ १५ ॥ अस्माकमनयादेवतदुपेक्षास्तिनान्यथा ॥ शिक्षैवेयंजगन्मात्राकृतास्मच्छिक्षणायच ॥ १६ ॥ लालनेताडनेमातुर्नाकारुण्यंयथार्भके ॥ तद्वद्देवजगन्मातुर्नियंत्रागुणदोषयोः ॥ १७ ॥

पुत्रोत्पत्तिके अभावसे हमारा कार्य सिद्ध होना अत्यन्त कठिन होगया ॥ १३ ॥ इसप्रकार चिन्तासे कातर होकर सम्पूर्ण देवता वैकुण्ठमण्डलमें गये और निर्जनमें भगवान् विष्णुसे समस्त वृत्तान्त निवेदन करनेपर वह उस विषयका उपाय कहनेलगे ॥ १४ ॥ हे सुरगण! जब मणिद्वीपनिवासिनी वाञ्छाकल्पद्रुमरूपिणी कल्याणदायिनी करुणामयी देवी भुवनेश्वरी हमारे लिये सदा जागरित रहतीहै तब तुम चिन्तासे व्याकुलक्यों होतेहो ॥ १५ ॥ वह जगज्जननी केवल हमारे अपराधसे हमको शिक्षा देनेके लिये उपेक्षा दिखाती हैं. हे देवताओ! तुम निश्चय जानों कि, वह शिक्षा हमारे विनाशके निमित्त नहीं है हमारे प्रति करुणा दिखानेके लियेही वह करती हैं ॥ १६ ॥ जिसप्रकार अपनी सन्तानके लालन पालन और ताड़न विषयमें माताकी दयाहीनता नहीं दिखाईदेती इसीप्रकार तुम्हारे गुण दोष विषयमें वह जगन्नियन्त्री जगज्जननी कभी निर्दय नहीं होगी ॥ १७ ॥

सन्तानसे अपराध पद पदपर होता है त्रैलोक्यमें एकमात्र जननीके विना और कौन उसको सहसक्ता है? ॥ १८ ॥ अतएव तुम शीघ्रही एकान्त भक्तिसहित उन्हीं परमजननी परमेश्वरीकी शरणागत होओ अवश्यही वह तुम्हारे कार्यसाधनमें यत्न करैंगी ॥ १९ ॥ देवाधिपति महाविष्णु देवताओंसे इसप्रकार आदेशकर निजजाया लक्ष्मीके सहित देवीकी आराधनाके लिये देवताओंको संग ले शीघ्र निकले ॥ २० ॥ फिर शीघ्र शैलाधिपति हिमालयमें जाय समस्तही पुरश्चरण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २१ ॥ हे नृपवर! अम्बायज्ञके जाननेवाले देवताओंने अम्बायज्ञ आरम्भ किया और सम्पूर्णही तृतीयादि व्रतका अनुष्ठान करने लगे ॥ २२ ॥ कोई कोई देवीकी समाधि अर्थात् उनके धारावाहिक ध्यानमें परायण हुए कोई कोई निरन्तर उनका नाम जपने लगे कोई कोई देवीसूक्त जप करनेमें प्रवृत्त हुए कोई

अपराधोभवत्येवतनयस्यपदेपदे॥कोपरःसहतेलोकेकेवलंमातरंविना ॥१८॥ तस्माद्यूयंपरांवांतांशरणंयातमाचिरम् ॥ निर्व्याजयाचित्रवृत्त्यासावःकार्यं विधास्यति ॥ १९ ॥ इत्यादिश्यसुरान्सर्वान्महाविष्णुःस्वजायया ॥ संयुतोनिर्जगामाऽऽशुदेवैःसहसुराधिपः ॥ २० ॥ आजगाममहाशैलंहिमवंतंनगा धिपम् ॥ अभवंश्चसुराःसर्वेपुरश्चरणकर्मिणः ॥ २१ ॥ अंबायज्ञविधानज्ञाअंबायज्ञंचचक्रिरे ॥ तृतीयादिव्रतान्याशुचक्रुःसर्वेसुरानृप ॥ २२ ॥ केचित्समाधिनिष्णाताःकेचिन्नामपरायणाः ॥ केचित्सूक्तपराःकेचिन्नामपारायणोत्सुकाः ॥ २३ ॥ मंत्रपारायणपराःकेचित्कृच्छ्रादिकारिणः ॥ अंतर्यागपराः केचित्केचिन्न्यासपरायणाः ॥ २४ ॥ हृल्लेखयापराशक्तेःपूजांचक्रुरतंद्रिताः ॥ इत्येवंबहुवर्षाणिकालोगाज्जनमेजय ॥२५॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां चभृगोर्दिने ॥ प्रादुर्बभूवपुरतस्तन्महःश्रुतिबोधितम् ॥ २६ ॥ चतुर्दिक्षुचतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशंचंद्रकोटिसुशीतलम् ॥ २७ ॥

कोई नामपरायण ॥ २३ ॥ अथवा कोई कोई मंत्रपरायण हुए और कोई कोई कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतपरायण हुए कोई कोई अन्तर्योगमें कोई कोई प्राणाग्निहोत्र योगमें अथवा कोई कोई न्यासादिमें नियुक्त हुए ॥ २४ ॥ और कोई २ अतन्द्रित होकर मायाबीजमंत्रद्वारा परमाशक्ति भुवनेश्वरीकी पूजा करने लगे हे महाराज! इसप्रकार देवताओंको बहुत वर्ष व्यतीत होगये ॥ २५ ॥ फिर एक दिन चैत्रमासकीनवमी तिथि और भृगुवारमें वह श्रुतिबोधित शक्तिसम्बन्धीय परमज्योतिः अकस्मात् उनके सामने प्रगट हुई ॥ २६ ॥ यह तेज करोड करोड विद्युत्की समान अरुणवर्ण और करोड करोड चन्द्रमाके समान शीतल था उस परमज्योतिकी प्रभा करोड़ करोड़ सूर्य्यकी समान थी चारों ओर अवस्थित होकर मूर्तिमान् चारों वेद उसका स्तव करते थे वह तेजोराशि क्या ऊर्द्धमें क्या पार्श्वमें क्या मध्यमें किसी दिशामें

परिच्छिन्न नहीं हुई ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसका आदिभी नहीं और अन्तभी नहीं वह हस्तपादादि अंगसंयुक्त स्त्रीरूप पुरुषरूप अथवा नपुंसकरूप भी नहीं थी ॥ २९ ॥ देवताओंने प्रथम उस तेजकी प्रभासे हत होकर नेत्र मूँदलिये किन्तु क्षणकालमेंही धैर्य्य अवलम्बन कर ज्योंही नेत्र खोले ॥ ३० ॥ त्योंही वह परमज्योति अतिमनोहर दिव्य रमणीरूपसे प्रकाशित हुई उस मनोरमाङ्गी नवयौवना कुमारीके ॥ ३१ ॥ कमलकलिकानिन्दित दोनों कुच ऊँचे परम शोभायमान होरहे थे कमरमें किंकिणी मेखलाके शब्द और चरणोंसे मनोहर मंजीरकी ध्वनि आती थी ॥ ३२ ॥ उसके चारों हाथोंमें कनकवलय चारों बाहुओंमें केयूर ग्रीवादेशमें ग्रैवेयक गलदेशमें अमूल्य मणिहार गलबन्ध और परमोज्वल प्रभाजाल विस्तारित होकर शोभा पारहा था ॥ ३३ ॥ उनके कर्ण और कपोलके मध्यवर्ती केशावली नवकेतकी पुष्पपत्रोपरि

विद्युत्कोटिसमानाभमरुणंतत्परंमहः ॥ नैवचोर्ध्वनतिर्यक्चनमध्येपरिजग्रभत् ॥ २८ ॥ आद्यंतरहितंतत्तुनहस्ताद्यंगसंयुतम् ॥ नचस्त्रीरूपमथवानपुंरूपमथोभयम् ॥ २९ ॥ दीप्त्यापिधानंनेत्राणांतेपामासीन्महीपते ॥ पुनश्चधैर्यमालंब्ययावत्तेदद्दशुःसुराः ॥ ३० ॥ तावत्तदेवस्त्रीरूपेणाऽभाद्दिव्यंमनोहरम् ॥ अतीवरमणीयांगींकुमारींनवयौवनाम् ॥ ३१ ॥ उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिंदिताम्भोजकुड्मलाम् ॥ रणत्किंकिणिकाजालसिंजन्मंजीरमेखलाम् ॥ ३२ ॥ कनकांगदकेयूरग्रैवेयकविभूषिताम् ॥ अनर्घ्यमणिसंभिन्नगलबंधविराजिताम् ॥ ३३ ॥ तनुकेतकसंराजन्नीलभ्रमरकुंतलाम् ॥ नितंबबिंबसुभगांरोमराजिविराजिताम् ॥ ३४ ॥ कर्पूरशकलोन्मिश्रतांबूलपूरिताननाम् ॥ कनत्कनकताटंकविटंकवदनांबुजाम् ॥ ३५ ॥ अष्टमीचंद्रबिंबाभललाटामायतभ्रुवम् ॥ रक्तारविंदनयनामुन्नसांमधुराधराम् ॥ ३६ ॥ कुंदकुड्मलदंताग्रांमुक्ताहारविराजिताम् ॥ रत्नसंभिन्नमुकुटांचंद्ररेखावतंसिनीम् ॥ ३७ ॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ काश्मीरबिंदुनिटिलां नेत्रत्रयविलासिनीम् ॥ ३८ ॥

विराजित दीप्तप्रभ नीलवर्ण भ्रमरावलीके समान समुज्ज्वल शोभा पाती है नितम्बबिम्ब सुघटित और अत्यन्त मनोहर रोमराजि नाभिमें विराजित होकर अपूर्व शोभा सम्पादन करती है ॥ ३४ ॥ दीप्यमान कनकताटङ्कमें उज्ज्वल परम सुन्दर मुखकमल कर्पूरखण्डमिश्रित ताम्बूलसे पूर्ण ॥ ३५ ॥ ललाटमें अर्द्धचन्द्र शोभायमान दोनों भौंहें चौड़ी नेत्रोंने उपांतभागमें कोकनदके समान अर्थात् लालकमलके समान शोभा धारण की है नासिका ऊँची अधर बिम्बाफलके समान अति मनोहर ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण दाँत कुन्द कलीके समान अत्यन्त मनोहर गलेमें लम्बायमान मोतीयोंका हार विराजमान है मस्तकके ऊपर हीरक और मणिरत्नमें खचित प्रदीप्त मुकुटालङ्कार कर्णमें चन्द्ररेखाकी समान कर्णफूल ॥ ३७ ॥ केशपाश मल्लिका और मालतीकी मालासे सुशोभित ललाट काश्मीरबिन्दुद्वारा सुसज्जित और तीनों नेत्र मुखमण्डलकी

अपूर्व शोभा सम्पादन करते हैं ॥ ३८ ॥ उनके एक हस्तमें पाश और दूसरे हाथमें अंकुश तथा अन्यान्य दोनों हाथ वर और अभयदान भङ्गिमासे विराजित देहकी कान्ति दाड़मीके फूलकी समान परिधान अरुणवर्ण अम्बर परमशोभा विस्तार करते हैं ॥ ३९ ॥ देवताओंने इसप्रकार समस्त शृङ्गारवेषधारिणी समस्त वाञ्छापूरिणी सम्पूर्ण देवताओंसे नमस्कृत हास्याननी अखिलमोहिनी ॥ ४० ॥ अखिलजननी प्रसादसुमुखी कपटतारहित करुणाकी मूर्त्तिरूपिणी अम्बिकादेवीको सामने देखा ॥ ४१ ॥ उस करुणामयी मूर्त्तिको देखकर देवताओंने प्रणाम किया किन्तु बाष्पभारसे कण्ठ रुकजानेके कारण कुछभी न कहसके ॥ ४२ ॥ फिर अति कष्टसे धैर्य अवलम्बनकर भक्तिमें भर शिर झुकाय प्रेम अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे जगदम्बिकाका स्तव करनेलगे ॥ ४३ ॥ देवताओंने कहा हे जगदम्बिके! आप देवी और महादेवी हैं तथा आपही शिवरूपिणी हैं हम सदा संयतचित्तसे आपको वारंवार प्रणाम करते हैं हे देवि! आपही साम्यावस्थाविशिष्ट मायोपाधियुक्त ब्रह्मरूपिणी प्रकृति और आपही सर्वकल्याणरूपिणी हैं हम संयतमनसे आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ हे जननि! आपही योगियोंके हृदयमें अनल

पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुंत्रिलोचनाम् ॥ रक्तवस्त्रपरीधानांदाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥ ३९ ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्यांसर्वदेवनमस्कृताम् ॥ सर्वाशापूरिकांसर्वमातरंसर्वमोहिनीम् ॥ ४० ॥ प्रसादसुमुखीमंबांमंदस्मितमुखांबुजाम् ॥ अव्याजकरुणामूर्तिंददृशुःपुरतःसुराः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वातांकरुणामूर्तिंप्रणेमुःसकलाःसुराः ॥ वक्तुंनाशक्नुवन्किंचिद्बाष्पसंरुद्धनिःस्वनाः ॥ ४२ ॥ कथंचित्स्थैर्यमालंब्यभक्त्याचानतकंधराः ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ ४३ ॥ देवाऊचुः ॥ नमोदेव्यैमहादेव्यैशिवायैसततंनमः ॥ नमःप्रकृत्यैभद्रायैनियताःप्रणताःस्मताम् ॥ ४४ ॥ तामग्निवर्णांतपसाज्वलंतींवैरोचनींकर्मफलेषुजुष्टाम् ॥ दुर्गांदेवींशरणमहंप्रपद्येसुतरासितरसेनमः ॥ ४५ ॥ देवींवाचमजनयंतदेवास्तांविश्वरूपाःपशवोवदंति ॥ सानोमंद्रेषमूर्जंदुहानाधेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥ ४६ ॥ कालरात्रींब्रह्मस्तुतांवैष्णवींस्कंदमातरम् ॥ सरस्वतीमदितिंदक्षदुहितरंनमामःपावनांशिवाम् ॥ ४७ ॥

शिखाकी समान अरुणवर्णसे दीप्ति पाती हैं आपही ज्ञानप्रभासे दीप्यमान है. हे मातः! आपही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें चैतन्यरूपसे सर्वत्र प्रकाशित होती हैं ब्रह्मादि देवता और मानवादि जीवगण कर्मफलप्राप्तिके लिये आपकी सेवा करते हैं. हे देवि! आपही संसारसागरसे तारनेवाली हैं अतएव हम घोर संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये आपकी शरणागत होकर आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ हे मातः! प्राणादिपञ्चवायुकी सहायतासे जो सम्पूर्ण भावप्रकाशवाक्य उच्चारित होते हैं हम उसको माया कहते हैं वह माया हमारी कामधेनु अर्थात् हम उस कामधेनुरूपिणी मायासे इच्छानुसार धन, मान और अन्नादि दुहकर अहङ्कारमें उन्मत्त होते हैं. हे मातः! आप हमारी वही भाषास्वरूप हैं अतएव आप सन्तुष्ट होकर हमारी वाञ्छा पूर्ण कीजिये ॥ ४६ ॥ हे देवि! आप सर्वसंहारक कालकाभी संहार करती हैं भगवान् पद्मयोनि ब्रह्मा सदा आपकी स्तुति करते हैं. हे मातः! आपही विष्णुशक्ति लक्ष्मी स्कन्दमाता शिवशक्ति पार्वती

ब्रह्मशक्ति सरस्वती देवमाता अदिति और आपही सतीनाम्नी दक्षकी कन्या हैं. हे मातः ! आप ही इसप्रकार अनेकरूप धारण करके अखिलब्रह्माण्डपूत और सम्पूर्ण को शान्तिदान करती हैं. अतएव हे देवि ! आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४७ ॥ हम आपको ही महालक्ष्मी जानते हैं हम आपको सर्वशक्तिरूपिणी देवी भगवती जानकर आपका ध्यान करते हैं. हे जननि ! आपही हमको अपने श्रवण, मनन और ध्यानमें प्रेरण कीजिये ॥ ४८ ॥ हे देवि ! आपही विराट्रूपिणी हैं आपको नमस्कार है आपही सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भरूपिणी हैं आपको नमस्कार है आप ही महदादि षोड़शविकृतिरूपिणी हैं आपको नमस्कार है हे मातः ! आपही ब्रह्मारूपिणी हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥ जिनके सृष्टि अविद्याजनित ज्ञानसे यह जगत् रज्जू और स्रगादि (मालाआदि) में सर्पकी समान सत्य जानकर भ्रम होता है फिर जिनके सृष्टिविद्याजनित ज्ञानसे वह भ्रम दूर होता है हम भक्तिनम्रमनसे उन्हीं सर्वान्तर्यामिनी भगवती भुवनेश्वरीका ध्यान करते हैं ॥ ५० ॥ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यस्थ

महालक्ष्म्यैचविद्महेसर्वशक्त्यैचधीमहि ॥ तन्नोदेवीप्रचोदयात् ॥ ४८ ॥ नमोविराट्स्वरूपिण्यैनमःसूत्रात्ममूर्तये ॥ नमोव्याकृतरूपिण्यैनमःश्रीब्रह्ममूर्तये ॥ ४९ ॥ यदज्ञानाज्जगद्भातिरज्जुसर्पस्रगादिवत् ॥ यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोतिनुमस्तांभुवनेश्वरीम् ॥ ५० ॥ नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थांचिदेकरसरूपिणीम् ॥ अखंडानंदरूपांतांवेदतात्पर्यभूमिकाम् ॥ ५१ ॥ पंचकोशातिरिक्तांतामवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ पुनस्त्वंपदलक्ष्यार्थांप्रत्यगात्मस्वरूपिणीम् ॥ ५२ ॥ नमःप्रणवरूपायैनमोह्रींकारमूर्तये ॥ नानामंत्रात्मिकायैतेकरुणायैनमोनमः ॥ ५३ ॥ इतिस्तुतातदादेवैर्मणिद्वीपाधिवासिनी ॥ प्राहवाचा मधुरयामत्तकोकिलनिःस्वना ॥ ५४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वदंतुविबुधाःकार्ययदर्थमिहसंगताः ॥ वरदाहंसदाभक्तकामकल्पद्रुमाऽस्मिच ॥ ५५ ॥

तत् शब्दकी प्रतिपाद्य जो सम्पूर्णदेवताओंकी तात्पर्यभूमि चैतन्यरसरूपिणी और अखण्डानन्दस्वरूप ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ५१ ॥ तथा जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय इन पञ्चकोशके अतिरिक्त हैं जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी और जो त्वम्पदकी भी लक्ष्यार्थ हैं हम उन्हीं ज्ञानब्रह्मस्वरूपिणी भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करते हैं ॥ ५२ ॥ हे मातः ! आपही प्रणवरूपिणी ह्रींकारमूर्ति नानाविधमन्त्रात्मिका और करुणामयी हो हम आपके चरणकमलोंमें वारम्वार प्रणाम करते हैं ॥ ५३ ॥ देवताओंके इसप्रकार उन मणिद्वीपनिवासिनी जगदम्बिकाके स्तव करनेपर प्रमत्त कोकिलके कण्ठकी समान कण्ठवाली भगवती मधुर वचनों द्वारा उनसे कहनेलगी ॥ ५४ ॥ देवी बोली हे देवताओ ! तुम किसलिये यहां आये हो ? तुम्हारा क्या

कार्य है सो कहो मैं सदाही भक्तोंकी वाञ्छाको कल्पतरु और वर देनेवाली विद्यमानरहती हूं ॥ ५५ ॥ तुम मेरे भक्त हो मेरे विद्यमान रहते तुमको क्या चिन्ता है ? मैं तुमको दुःखसागरसे उद्धार करूंगी ॥ ५६ ॥ हे देवताओ ! तुम मेरी यह प्रतिज्ञा सत्यही जानो. हे राजन् ! देवतागण देवीके यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥ और जगन्मातासे अपना मनोदुःख निवेदन करनेलगे. देवता बोले हे परमेश्वरि ! आप सर्वज्ञ और सब जगत्की साक्षी हैं इन तीनों जगतोंमें आपसे अज्ञात कुछ नहीं है ॥ ५८ ॥ हे मातः ! हेशिवे ! तारक नामक असुर हमको दिनरात दुःख देता है ॥ ५९ ॥ विश्वस्रष्टा विधाताने शिवके औरसपुत्रसे उसका वध निर्दिष्ट किया है. हे महेश्वरि ! इस समय शिवगृहिणी सतीने देह त्यागकिया है सो आप जानती हैं ॥ ६० ॥ जो सर्वज्ञ हैं फिर उनके सामने पामरगण क्या कहे हैं हे जगदम्बिके ! हमने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त संक्षेपसे वर्णन किया और हमारा अन्यान्य सम्पूर्ण दारुण दुःख आप मनमें जानसक्ती

तिष्ठंत्यांमयिकाचिंतायुष्माकंभक्तिशालिनाम् ॥ समुद्धरामिमद्भक्तान्दुःखसंसारसागरात्॥५६॥इतिप्रतिज्ञांमेसत्यांजानीथविबुधोत्तमाः ॥ इतिप्रेमाकुलां वाणींश्रुत्वासंतुष्टमानसाः ॥ ५७ ॥ निर्भयानिर्जराराजन्नूचुर्दुःखंस्वकीयकम् ॥ देवाऊचुः ॥ नाऽज्ञातंकिंचिदप्यत्रभवत्याऽस्तिजगत्रये ॥ ५८ ॥ सर्वज्ञयासर्वसाक्षिरूपिण्यापरमेश्वरि ॥ तारकेणाऽसुरेंद्रेणपीडिताःस्मोदिवानिशम् ॥ ५९ ॥ शिवांगजाद्वधस्तस्यनिर्मितोब्रह्मणाशिवे ॥ शिवांगनातुनैवास्तिजानासित्वंमहेश्वरि ॥ ६० ॥ सर्वज्ञपुरतःकिंवावक्तव्यंपामरैर्जनैः ॥ एतदुद्देशतःप्रोक्तमपरंतर्कयांबिके ॥ ६१ ॥ सर्वदाचरणांभोजेभक्तिःस्यात्तवनिश्चला ॥ प्रार्थनीयमिदंमुख्यमपरंदेहहेतवे ॥ ६२ ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाप्रोवाचपरमेश्वरी ॥ ममशक्तिस्तुयागौरीभविष्यतिहिमालये ॥ ६३ ॥ शिवायसाप्रदेयास्यात्सावःकार्यंविधास्यति ॥ भक्तिर्यच्चरणांभोजेभूयाद्युष्माकमादरात् ॥ ६४ ॥ हिमालयोहिमनसामामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ततस्तस्यगृहेजन्ममममाप्रियकरंमतम् ॥ ६५ ॥ व्यासउवाच ॥ हिमालयोऽपितच्छ्रुत्वाऽत्यनुग्रहकरंवचः ॥ बाष्पैःसंरुद्धकंठाक्षोमहाराज्ञींवचोऽब्रवीत् ॥ ६६ ॥

हैं ॥ ६१ ॥ हम अधिक और क्या कहैं ? आपके चरणकमलोंमें हमारी अचल भक्ति सदा विद्यमान रहे यही हमारी मुख्य प्रार्थना है और शिवकी सुतोत्पत्तिके लिये आप देह धारण कीजिये यह हमारी दूसरी प्रार्थना जानिये ॥ ६२ ॥ देवताओंके यह वचन सुन प्रसादसुमुखी परमेश्वरी उनसे कहने लगी मेरी शक्ति जो गौरीरूपसे हिमालयमें उत्पन्न होगी ॥ ६३ ॥ वही शिवसीमन्तिनी होकर पुत्रोत्पादनपूर्वक उसकेद्वारा तारकासुरका वध करके तुम्हारा कार्यसाधन करेगी और मेरे चरणकमलोंमें तुम्हारी प्रेमपूर्ण निश्चल भक्ति होगी ॥ ६४ ॥ हिमालय भी अत्यन्त भक्तिसहित एकान्तमनसे मेरी उपासना करते हैं अतएव उनके गृहमें मेरा जन्म ग्रहणकरना अत्यन्त प्रिय जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! गिरिराज हिमालय भी उनके अत्यन्त अनुग्रहसूचक वचन सुनकर प्रेमजनित बाष्पमें भर

रुद्धकण्ठ हो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे त्रैलोक्यसाम्राज्ञी भुवनेश्वरीसे कहनेलगे ॥ ६६ ॥ हे देवि ! आप जिसके प्रति अनुग्रह करती हैं उसको आप अत्यन्त महत् करदेती हैं नहीं तो जड़ और स्थावर पाषाणपुञ्ज मैं कहाँ ? और वाक्य तथा मनके अगोचर सच्चिदानन्दरूपिणी आप कहाँ ? हमारे गृहमें उत्पन्न होकर आप हमारे प्रति इतना अनुग्रह कर क्यों प्रकाश करती यही आपके अनिर्वचनीय महत्त्वका परिचयप्रदान करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ हेविमले ! हमारे पक्षमें आपके जनकत्वलाभका अनन्त जन्म अश्वमेधादिजनित अथवा समाधिजनित पुण्यके अतिरिक्त और कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ ६८ ॥ अहो ! हमारे प्रति आपने क्या अनुग्रह किया है " जगन्माता जगद्धात्री इन हिमालयकी कन्या हुईं अतएव यह व्यक्ति ही धन्य और भाग्यवान् है " अवसे हमारी इसप्रकार अतुल कीर्ति इस सम्पूर्ण जगत्में प्रचलित होगी ॥ ६९ ॥ जिनके जठरमें करोड़ करोड़ ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं वह जिनकी कन्या हुई पृथ्वीतलमें उसकी समान सौभाग्यवान् और

महत्तरंतंकुरुषेयस्यानुग्रहमिच्छसि ॥ नोचेत्काहंजडःस्थाणुःक्वत्वंसच्चित्स्वरूपिणी ॥६७॥ असंभाव्यंजन्मशतैस्त्वत्पितृत्वंममाऽनघे ॥ अश्वमेधादिपुण्यैर्वापुण्यैर्वातत्समाधिजैः ॥६८॥ अद्यप्रपंचेकीर्तिःस्याज्जगन्मातासुताऽभवत् ॥ अहोहिमालयस्यास्यधन्योसौभाग्यवानिति ॥६९ ॥ यस्यास्तुजठरेसंतिब्रह्मांडानांचकोटयः ॥ सैवयस्यसुताजाताकोवास्यात्तत्समोभुवि ॥७०॥ नजानेस्मत्पितृणांकिंस्थानंस्यान्निर्मितंपरम् ॥ एतादृशानांवासाययेषांवंशेस्तिमादृशः ॥७१॥ इदंयथाचदत्तंमेकृपयाप्रेमपूर्णया ॥ सर्ववेदांतसिद्धंचत्वद्रूपंब्रूहिमेतथा ॥७२॥ योगंचभक्तिसहितंज्ञानंचश्रुतिसंमतम् ॥ वदस्वपरमेशानित्वमेवाहंयतोभवेः ॥७३॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाप्रसन्नमुखपंकजा ॥ वक्तुमारभतांवासारहस्यंश्रुतिगूहितम् ॥७४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे देवीगीतायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ शृण्वंतुनिर्जराःसर्वेव्याहरंत्यावचोमम ॥ यस्यश्रवणमात्रेणमद्रूपत्वंप्रपद्यते ॥ १ ॥

पुण्यवान् और कौन होसक्ता है ? ॥ ७० ॥ जिनके वंशमें मेरी समान पुण्यवान् मनुष्यने जन्म ग्रहण किया है मेरे उन पितरोंके वासार्थ कैसे परमोत्कृष्ट समस्त स्थान निर्मित हुए हैं. वह मैं नहीं कहसक्ता ॥ ७१ ॥ हे मातः परमेश्वरी ! आपने जिस प्रकार प्रेमपरिपूर्ण होकर कृपा प्रकाश की है इसी प्रकार आप हमसे अपना सर्व वेदान्तसिद्ध स्वरूप ॥ ७२ ॥ और श्रुतिसम्मत भक्तियुक्त ज्ञान तथा योगका विषय कीर्त्तन कीजिये. क्योंकि हम उसी ज्ञानके बलसे आपका स्वरूपत्व प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ॥ ७३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हिमालयके इसप्रकार स्तुतियुक्त वचन सुनकर भुवनेश्वरीने प्रसन्न मुखसे श्रुत्युक्त गूढ रहस्यका विषय कहना आरम्भ किया ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ देवीने कहा हे देवताओ ! जिसके श्रवणमात्रसे जीवगण मेरा स्वरूपत्व प्राप्तकर

नेमें समर्थ होते हैं मैं इस समय वही विषय वर्णन करती हूं तुम समाहित चित्तसे श्रवण करो ॥ १ ॥ हे गिरिवर ! सृष्टिके पूर्वमें एकमात्र मैंही विद्यमान थी अन्य और कुछ नहीं था मेरेही आत्मस्वरूपको चित् संवित् और परब्रह्म इत्यादि नामसे निर्देश किया है ॥ २ ॥ मेरा आत्मा अनुमानके अतीत लक्ष्यके अतीत उपमाके अतीत और जन्ममरणादिविकारके भी अतीत पदार्थ हैं मेरेही आत्माकी स्वतः सिद्ध एक शक्ति है यह शक्ति मायानामसे विख्यात है ॥ ३ ॥ ब्रह्मज्ञानद्वारा मायाका विनाश होता है यह माया सती अर्थात् सदा नित्य नहीं है और मायाके न होनेसे व्यावहारिकसत्ताका विरोध होनेके कारण असती भी नहीं है सत्ता और असत्ताकी स्थिति सम्भव नहीं होसक्ती. अतएव माया सती और असती यह उभयात्मिका भी नहीं होसक्ती इसप्रकार अनिर्वचनीय वस्तुरूप मायाशक्ति मोक्षकालपर्यन्त विद्यमान रहती है ॥ ४ ॥ मेरी यह अनादि मोक्षपर्यन्त स्थायिनी मायाशक्ति अग्निकी उष्णताके समान सूर्यकी मरीचिके समान चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके समान स्वभावसे उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥ सुषुप्तिकालके समय जीवोंका व्यवहार जिसप्रकार उसमें लीन होता है इसीप्रकार प्रलयकालके समय जीवोंके कर्मसमूह

अहमेवाऽऽसपूर्वंतुनान्यत्किंचिन्नगाधिप॥तदात्मरूपंचित्संवित्परब्रह्मैकनामकम्॥२॥अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम्॥ तस्यकाचित्स्वतःसिद्धाश क्तिर्मायेतिविश्रुता॥३॥ नसतीसानाऽसतीसानोभयात्माविरोधतः॥ एतद्विलक्षणाकाचिद्वस्तुभूताऽस्तिसर्वदा॥ ४ ॥ पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिवदीधितिः॥ चंद्रस्यचंद्रिकेवेयंममेयंसहजाध्रुवा ॥ ५ ॥ तस्यांकर्माणिजीवानांजीवाःकालाश्चसंचरे ॥ अभेदेनविलीनाःस्युःसुषुप्तौव्यवहारवत्॥ ६ ॥ स्वशक्तेश्चसमायोगादहंबीजात्मतांगता ॥ स्वाधारावरणात्तस्यादोषत्वंचसमागतम्॥ ७ ॥ चैतन्यस्यसमायोगान्निमित्तत्वंचकथ्यते॥ प्रपंचपरिणामाच्चसमवायित्वमुच्यते॥ ८ ॥ केचित्तांतपइत्याहुस्तमःकेचिज्जडंपरे॥ ज्ञानंमायांप्रधानंचप्रकृतिंशक्तिमप्यजाम्॥ ९ ॥

जीव और काल यह समस्तही अभिन्न भावसे मायामें लीन हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे गिरिवर ! यद्यपि मैं निर्गुण हूं तथापि ऐसी मायाशक्तिके संयोगसे जगत्की कारण स्वरूप हुई हूं किन्तु जो माया मेरा आश्रय करके रहती है उस मायाके मुझको आवरण करनेसे मायामें आश्रयावरकता दोष विद्यमान् रहता है. हे हिमवान् ! तुमको जानना चाहिये कि मेरे माया और अविद्या नामसे दो रूप हैं तिनमें विद्यारूपिणी प्रथम इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष नहीं है और अविद्यारूपिणी दूसरा इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष विद्यमान है इसके द्वाराही जीवोंकी सृष्टि होती है और विद्याके द्वारा जीवगण मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥ मायाके सहित चैतन्यका संयोग होनेपरही वह मायाप्रतिबिम्बित चैतन्य अर्थात् चिदाभासही जगत्का निमित्तकारण है और यह माया प्रपञ्चरूप परिमाण समवायिकारण कहा जाता है ॥ ८ ॥ कोई कोई शाखाध्यायी वेदके जाननेवाले इस मायाको तप कोई कोई तम कोई कोई जड कोई कोई ज्ञान अथवा कोई कोई माया प्रधानप्रकृति अजा और

शक्ति नामसे निर्देश करते हैं ॥ ९ ॥ शैवशास्त्रतत्वज्ञ पंडितलोग उसको विमर्श और अन्यान्य वेदतत्वार्थचिन्तक कोविदगण अविद्या कहकर निर्देश करते हैं फलतः यह माया समस्त वेदान्तिगणोंकी उपजीव्य (निर्वाहक) है इसप्रकार निगमादि शास्त्रमें माया अनेक नामोंसे कही गई है ॥ १० ॥ जो वस्तु दृश्यमान हैं वही वही वस्तु जड हैं इस अभिचारी लक्षण हेतु मायाका जडत्व और स्वाधिष्ठान ज्ञाननाशहेतु मिथ्यात्व प्रतिपादित होता है किन्तु चैतन्य दृश्य पदार्थ नहीं है अतएव उसको जड़भी नहीं कहा जाता ॥ ११ ॥ चैतन्य स्वप्रकाश है वह अन्यके द्वारा प्रकाशित नहीं होता क्योंकि चैतन्य अन्यद्वारा प्रकाशित होता है यह स्वीकार करनेसे चैतन्य प्रकाशक प्रकाशित होता है ॥ १२ ॥ वह अन्यद्वारा प्रकाशित होताहै इसप्रकार अनवस्था दोष उपस्थित होता है. स्वयंप्रकाश पदार्थकी स्थिरता नहीं है यहभी नहीं कहा जाता क्योंकि उसमें कर्म्म कर्त्ताका विरोध होता है एक पदार्थमें ही एक कालमें कर्तृत्व और कर्म्मत्व नहीं रहसक्ता. अतएव दीप

विमर्शइतितांप्राहुःशैवशास्त्रविशारदाः ॥ अविद्यामितरेप्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिंतकाः ॥ १० ॥ एवंनानाविधानिस्युर्नामानिनिगमादिषु ॥ तस्याजडत्वंदृश्यत्वाज्ज्ञाननाशाततोसती ॥ ११ ॥ चैतन्यस्यनदृश्यत्वंदृश्यत्वेजडमेवतत् ॥ स्वप्रकाशंचचैतन्यंनपरेणप्रकाशितम् ॥ १२ ॥ अनवस्थादोषसत्त्वान्नस्वेनाऽपिप्रकाशितम् ॥ कर्मकर्त्रीविरोधःस्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम् ॥ १३ ॥ प्रकाशमानमन्येषांभासकंविद्धिपर्वत ॥ अतएवचनित्यत्वंसिद्धंसंवित्तनोर्मम ॥ १४ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौदृश्यस्यव्यभिचारतः ॥ संविदोव्यभिचारश्चनानुभूतोऽस्तिकर्हिचित् ॥ १५ ॥ यदितस्याऽप्यनुभवस्तर्ह्ययंयेनसाक्षिणा ॥ अनुभूतःसएवाऽत्रशिष्टःसंविद्वपुःपुरा ॥ १६ ॥

ककी समान चैतन्यको स्वप्रकाश पदार्थ स्वीकार करना चाहिये ॥ १३ ॥ चैतन्यस्वयं प्रकाशमान पदार्थ होनेपरभी अन्य चन्द्र सूर्य्यादि पदार्थोंकोभी प्रकाशित करता है अतएव हे पर्व्वतवर ! मेरे संवित् रूप तनुका नित्यत्व सिद्धहुआ ॥ १४ ॥ कारण कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इत्यादि अवस्थाओंमें दृश्य पदार्थका व्यभिचार होता है किन्तु किसी अवस्थामेंही सम्वित् वा चैतन्यका व्यभिचार अनुभव नहीं होता. क्योंकि जो मैंने जाग्रत् अवस्थाका अनुभव किया है वही मैं स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाका अनुभव करती हूं मैं इस समय सोती थी, इसप्रकार अनुभव किया अतएव सम्वित् पदार्थका कभी व्यभिचार नहीं होता ॥ १५ ॥ बौद्धगण कहते हैं कि, जिसप्रकार सम्वित्का अनुभव होता है इसीप्रकार सम्वित्के अभावकाभी अनुभव होता है जो सत् है वही क्षणिक है इसप्रकार अनुमानद्वारा ज्ञानका भी अनित्यत्व प्रतिपादित होता है इससे कहाजाता है कि, यद्यपि सम्वित्के अभावका अनुभव होता है तथापि जिस साक्षीद्वारा उस सम्वित्के अभावका अनुभव होता है वही

साक्षी सम्वित् वपु है अर्थात् ज्ञानशरीररूपसे प्रतिपन्न होता है. क्योंकि साक्षी ज्ञानका नित्यत्व सबकोही स्वीकार करना होता है ॥ १६ ॥ अतएव अनवद्य सब शास्त्रोंके तत्वज्ञ पंडितगण कहते हैं कि, सम्वित् नित्य और परम प्रेमका आस्पदहोनेसे वह आनन्दस्वरूप है. कारण कि, असुख कभी परम प्रेमका आस्पदीभूत नहीं होसक्ता ॥ १७ ॥ और "मैं हूं" जीवोंका इस प्रकार अनुभव नहीं होता किन्तु "मैं विद्यमान हूं" इसप्रकार प्रेम सम्पूर्ण जीवोंके आत्मामें प्रतिष्ठित रहता है यदि आत्माका आनन्दरूपत्व न हो तो इसप्रकार आत्मप्रेम कभी संभव नहीं होता अतएव प्राणीमात्रके अनुभव हेतु सम्वित्का आनन्दरूपत्व सर्वथा सिद्ध हुआ है हे गिरिराज! यह सम्पूर्ण जगत्प्रपंच मायानिर्मित है अतएव वह मिथ्या भ्रम होनेसे सर्पादि मिथ्या पदार्थका जिसप्रकार रज्जु इत्यादिके सहित सम्बन्ध नहीं होता इसी प्रकार इस जगत्के सहित मेरा (आत्माका) असङ्गत्व भलीभाँति सिद्ध हुआ और यह सम्पूर्ण संसार मिथ्या और परिच्छेद्य होनेसे मेरा आत्मस्वरूपिणीका अपरि

अतएवचनित्यत्वंप्रोक्तंसच्छास्त्रकोविदैः ॥ आनंदरूपताचाऽस्याःपरप्रेमास्पदत्वतः ॥ १७ ॥ मानभूवंहिभूयासमितिप्रेमात्मनिस्थितम् ॥ सर्वस्याऽन्यस्यमिथ्यात्वादसंगत्वंस्फुटंमम ॥ १८॥ अपरिच्छिन्नताप्येवमतएवमतामम ॥ तच्चज्ञानंनात्मधर्मोधर्मत्वेजडतात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञानस्यजडशेषत्वंनदृष्टंनचसंभवि ॥ चिद्धर्मत्वंतथानास्तिचितश्चिन्नहिभिद्यते ॥ २० ॥ तस्मादात्माज्ञानरूपःसुखरूपश्चसर्वदा ॥ सत्यःपूर्णोप्यसंगश्चद्वैतजालविवर्जितः ॥ २१ ॥ सपुनःकामकर्मादियुक्तयास्वीयमायया ॥ पूर्वानुभूतसंस्कारात्कालकर्मविपाकतः ॥ २२ ॥ अविवेकाच्चतत्त्वस्यसिसृक्षावान्प्रजायते ॥ अबुद्धिपूर्वःसर्गोऽयंकथितस्तेनगाधिप ॥ २३ ॥

च्छिन्नता प्रमाणित होती है ॥ १८ ॥ यदि कोई कहै कि, ज्ञान आत्माका स्वरूप नहीं है वह आत्माका धर्म है यह भ्रान्तिविलास है क्योंकि यदि आत्माका धर्म होता तो अवश्यही उसकी जड़ता संघटित होती इसमें सन्देह नहीं. ज्ञानका जडत्व सम्भव नहीं होता अतएव अन्य कहीं भी ज्ञानका जडपरिणामित्व दिखाई नहीं देता ॥ १९ ॥ यदि कहो कि, जो ज्ञानका जड़त्व हो वहभी नहीं होसक्ता क्योंकि ज्ञान भी चित्स्वरूप और आत्मा भी चित्स्वरूप है चित् पदार्थका धर्मत्व नहीं और चित्पदार्थ चित्से भी भिन्न नहीं होसक्ता अतएव चिद्रूप ज्ञानकाधर्माधर्मभाव किसप्रकार सम्भव होसक्ता है? ॥ २० ॥ अतएव आत्मा सर्वदाही ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप सत्यस्वरूप पूर्ण संगरहित और द्वैतवर्जित है ॥ २१ ॥ यह आत्मा कामना और कर्मादियुक्त अपनी मायाद्वारा पूर्वानुभूत संस्कार वशसे काल और कर्मके विपाकानुसार ॥ २२ ॥ चौबीस तत्वोंके अविवेकजनितही इसप्रकार सृष्टिविषयमें इच्छावान् होता है. हे गिरिवर! सोता हुआ

पुरुष जिस प्रकार पूर्वसंस्कारसे अबुद्धिपूर्वक नींदसे उठता है इसीप्रकार आत्माकी यह सृष्टिभी कालकर्मके संस्कार अबुद्धिपूर्वकही साधित होती है ॥ २३ ॥ हे अचलेन्द्र! मैंने जो तत्त्वका विषय वर्णनकिया यही सर्व्वोत्तम और मेरा अलौकिक रूपमात्र है वेदमें यही अव्याकृत अव्यक्त और मायाशबल कह कर उल्लिखित हुआ है ॥ २४ ॥ और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें इसको सर्व कारणोंका कारण सब तत्वका आदिभूत तथा सच्चिदानन्दविग्रह कहकर निर्देश करतेहैं ॥ २५॥ ज्ञान और क्रियासंयुक्त समस्त कर्म्म घनीभूत होनेसे वह ह्रींकार मंत्रका वाच्य होताहै तत्वदर्शी महर्षिगण उस ह्रींकाररूप मायाबीजकोही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आदि तत्त्व कहकर उल्लेख करते हैं ॥ २६ ॥ उस ह्रींकारवाच्य महत्स्वरूप मायाबीज रूप आदितत्त्वसे क्रमानुसार शब्दतन्मात्ररूप अपञ्चीकृत आकाश उत्पन्न होता है

एतद्वियन्मयाप्रोक्तंममरूपमलौकिकम् ॥ अव्याकृतंतदव्यक्तंमायाशबलमित्यपि ॥ २४ ॥ प्रोच्यतेसर्वशास्त्रेषुसर्वकारणकारणम् ॥ तत्त्वानामादिभूतंचसच्चिदानंदविग्रहम् ॥ २५ ॥ सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ॥ ह्रींकारमंत्रवाच्यंतदादितत्त्वंतदुच्यते ॥ २६ ॥ तस्मादाकाशउत्पन्नःशब्दतन्मात्ररूपकः ॥ भवेत्स्पर्शात्मकोवायुस्तेजोरूपात्मकंपुनः ॥ २७ ॥ जलंरसात्मकंपश्चात्ततोगंधात्मिकाधरा ॥ शब्दैकगुणआकाशोवायुःस्पर्शरवान्वितः ॥ २८ ॥ शब्दस्पर्शरूपगुणंतेजइत्युच्यतेबुधैः ॥ शब्दस्पर्शरूपरसैरापोवेदगुणाःस्मृताः ॥ २९ ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगंधैःपंचगुणाधरा ॥ तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रंयल्लिंगंपरिचक्षते ॥ ३० ॥ सर्वात्मकंतत्संप्रोक्तंसूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ अव्यक्तंकारणोदेहःसचोक्तःपूर्वमेवहि ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जगद्बीजरूपंस्थितंलिंगोद्भवोयतः ॥ ततःस्थूलानिभूतानिपंचीकरणमार्गतः ॥ ३२ ॥ पंचसंख्यानिजायंतेतत्प्रकारस्त्वथोच्यते ॥ पूर्वोक्तानिचभूतानिप्रत्येकंविभजेद्द्विधा ॥ ३३ ॥

अनन्तर उससे स्पर्शात्मक वायु अनन्तर उससे क्रमानुसार रूपात्मक तेज ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त रसात्मक जल तदनन्तर गन्धगुणात्मक पृथ्वी उत्पन्न होती है पंडित लोग कहतेहैं कि आकाशगुण एकमात्र शब्द है वायुका गुण शब्द और स्पर्श है ॥ २८ ॥ तेजका गुण शब्द स्पर्श और रूप जलका गुण शब्द स्पर्श रूप और रस है ॥ २९ ॥ तथा शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध यह पाँच पृथ्वीके गुण हैं इन अपञ्चीकृत भूतोंसे व्यापक सूत्र उत्पन्न होता है वही लिङ्गदेहनामसे कहागया है ॥ ३० ॥ यह सूत्र अर्थात् लिंगदेह सर्वप्राणात्मक और यही परमात्माका सूक्ष्म देह है पूर्वमें जो कहागया है जिसमें जगत्का बीज प्रतिष्ठित और जिससे लिङ्गदेहकी उत्पत्ति है वही परमात्माका कारण देह है पूर्वोक्त रूपसे अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत उत्पन्न होनेपर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर उनसे पञ्चीकरण द्वारा जिसप्रकार पञ्चीकृत भूतकी

उत्पत्ति होती है इस समय उसकाही नियम कहती हूं हे गिरिराज ! पूर्वोक्त पञ्चमहाभूतोंके प्रत्येकको दो भागोंमें विभक्त करके ॥ ३३ ॥ और उनके एकएक भागको पुनर्वार चारभागमें विभक्त करके फिर एक २ सबमें से ले प्रत्येकमें मिलावै इस प्रकार यह अष्टमांश पंचीकरण लानेसे वह पंचपंच अंशयुक्त हो एक एक स्थूल महाभूत होता है ॥ ३४ ॥ इस पंचीकृत भूतपंचकका कार्य विराड्देह है वह परमेश्वरका स्थूलदेह कहा गया है इन पंचभूतस्थित प्रत्येकके सत्वांशसे श्रोत्र (कान) त्वगादि (त्वचाआदि) पंच ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३५ ॥ उक्त सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके प्रत्येकका सत्वांश मिलित होकर एक अन्तःकरण होता है यह अन्तःकरण वृत्तिभेदसे चारप्रकार है ॥ ३६ ॥ जब उसका संकल्प और विकल्पात्मक कार्य होता है तब उसको मन जब संशयविहीनरूपसे निश्चित ज्ञानरूप कार्य होता है तब उसको बुद्धि ॥ ३७ ॥ जब अनुसंधानरूप वृत्ति होती है तब चित्त जब अहंकृतिस्वरूप आत्मवृत्तिसमन्वित होता है तब उसको अहङ्कार कहते हैं

एकैकंभागमेकस्यचतुर्धाविभजेद्गिरे ॥ स्वस्वेतरद्वितीयांशेयोजनात्पंचपंचते ॥ ३४ ॥ तत्कार्यंचविराड्देहस्थूलदेहोऽयमात्मनः ॥ पंचभूतस्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनांसमुद्भवः ॥ ३५ ॥ ज्ञानेंद्रियाणांराजेंद्रप्रत्येकंमिलितैस्तुतैः ॥ अंतःकरणमेकंस्याद्वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम् ॥ ३६ ॥ यदातुसंकल्पविकल्पकृत्यं तदाभवेत्तन्मनइत्यभिख्यम् ॥ स्याद्बुद्धिसंज्ञंचयदाप्रवेत्तिसुनिश्चितंसंशयहीनरूपम् ॥ ३७ ॥ अनुसंधानःरूपंतच्चित्तंचपरिकीर्तितम् ॥ अहंकृत्यात्म वृत्त्यातुतदहंकारतांगतम् ॥ ३८ ॥ तेषांरजोंशैर्जातानिक्रमात्कर्मेंद्रियाणिच ॥ प्रत्येकंमिलितैस्तैस्तुप्राणोभवतिपंचधा ॥ ३९ ॥ हृदिप्राणोगुदेपानो नाभिस्थस्तुसमानकः ॥ कंठदेशेप्युदानःस्याद्व्यानःसर्वशरीरगः ॥ ४० ॥ ज्ञानेंद्रियाणिपंचैवपंचकर्मेंद्रियाणिच ॥ प्राणादिपंचकंचैवधियाचसहितं मनः ॥ ४१ ॥ एतत्सूक्ष्मशरीरंस्यान्ममलिंगंयदुच्यते ॥ तत्रयाप्रकृतिःप्रोक्तासाराजन्द्विविधास्मृता ॥ ४२ ॥ सत्त्वात्मिकातुमायास्यादविद्यागुण मिश्रिता ॥ स्वाश्रयंयातुसंरक्षेत्सामायेतिनिगद्यते ॥ ४३ ॥

॥ ३८ ॥ उन पंचभूतके प्रत्येक रजअंशसे वाक् पाणी पाद पायु (गुदा) और उपस्थनामक पंच कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है उनमें प्रत्येकके सम्पूर्ण रजअंशमिलित होकर प्राण अपान समान उदान और व्यान यह पंच प्राणवायु उत्पन्न होती हैं ॥ ३९ ॥ उनमें प्राणवायु हृदयमें, अपानवायु गुह्यमें, समानवायु नाभिस्थलमें, उदान वायु कण्ठमें और व्यान वायु समस्त शरीरमें व्याप्त होकर स्थिति करती है ॥ ४० ॥ पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेन्द्रिय पंच वायु और बुद्धि तथा मन यह सत्रह पदार्थ मिलित होकर ॥ ४१ ॥ मेरे सूक्ष्म शरीर अथवा लिंगदेहकी उत्पत्ति होती है, उसमें जो प्रकृति स्थिति करती है वह दो भागमें विभक्त है ॥ ४२ ॥ एक शुद्ध सत्वात्मिक माया और दूसरी गुणमिश्रित मलिनसत्वप्रधान अविद्या कही जाती है जो स्वाश्रयको आवृत न करके रक्षा करती है वही माया शब्दसे उक्त हुई है ॥ ४३ ॥

इस स्वाश्रयकी अव्यामोहकारिणी शुद्ध सत्व प्रधान मायामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वही ईश्वरनामसे कहागया है शुद्धसत्वप्रधान माया तदाधार ब्रह्मको आवरण न करनेके कारण यह स्वाश्रयज्ञानवान् अर्थात् व्यापक ब्रह्मको जानती है और सर्वव्यापित्व हेतु तथा सर्वत्र इसके ज्ञानावरणके अभावहेतु इसको सर्वज्ञ कहा जाता है और अचिन्त्य मायाशक्तिविशिष्ट होनेके कारण सर्वकर्ता और सम्पूर्ण जगत्का अनुग्रह करनेवाला कहा जाता है ॥ ४४ ॥ और मलिनसत्वप्रधान अविद्यामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वह जीवनामसे अभिहित हुआ है ॥ ४५ ॥ मलिनसत्वप्रधान अविद्या तदाश्रयरूप आनन्द करनेके कारण यह जीव सर्वदुःखका आश्रय होता है उक्त जीव और ईश्वर दोनोंकेही अविद्या और विद्याद्वारा तीन देह होते हैं ॥ ४६ ॥ इन तीनों देहके अभिमानहेतु तीन नाम हैं जीव कारणदेहाभिमानी होनेसे उसको प्राज्ञ सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे तैजस ॥ ४७ ॥ और स्थूलदेहाभिमानीहोनेसे विश्व कहा जाता है और ईश्वरभी कारणदेहाभिमानी होनेसे ईश सूक्ष्मदेहा

तस्यांयत्प्रतिबिंबंस्याद्बिंबभूतस्यचेशितुः ॥ सईश्वरःसमाख्यातःस्वाश्रयज्ञानवान्परः ॥ ४४ ॥ सर्वज्ञःसर्वकर्ताचसर्वानुग्रहकारकः ॥ अविद्यायांतुयत्किंचित्प्रतिबिंबंनगाधिप ॥ ४५ ॥ तदेवजीवसंज्ञंस्यात्सर्वदुःखाश्रयंपुनः ॥ द्वयोरपीहसंप्रोक्तंदेहत्रयमविद्यया ॥ ४६ ॥ देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभून्नामत्रयंपुनः ॥ प्राज्ञस्तुकारणात्मास्यात्सूक्ष्मदेहीतुतैजसः ॥ ४७ ॥ स्थूलदेहीतुविश्वाख्यस्त्रिविधःपरिकीर्तितः ॥ एवमीशोपिसंप्रोक्तईशसूत्रविराट्पदैः ॥ ४८ ॥ प्रथमोव्यष्टिरूपस्तुसमष्ट्यात्मापरःस्मृतः ॥ सहिसर्वेश्वरःसाक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया ॥ ४९ ॥ करोतिविविधंविश्वंनानाभोगाश्रयंपुनः ॥ मच्छक्तिप्रेरितोनित्यंमयिराजन्प्रकल्पितः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेदेवीगीतायांद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

देव्युवाच ॥ मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तंजगत्सर्वंचराचरम् ॥ सापिमत्तःपृथङ्मायानास्त्येवपरमार्थतः ॥ १ ॥

भिमानी होनेसे ‘सूत्र’ और स्थूलदेहाभिमानी होनेसे ‘विराट्’ नामसे अभिहित होता है ॥ ४८ ॥ प्रथम जीव व्यष्टि देहत्रयाभिमानी और ईश्वर समष्टिदेहत्रयाभिमानी होता है, यह सर्वेश्वर निरन्तर आनन्दानुभवहेतु तृप्त होनेपरभी जीवके प्रति मोक्षलाभरूप अनुग्रह करनेकी इच्छासे ॥ ४९ ॥ विविध भोगका आश्रयस्वरूप विश्वकी सृष्टि करता है. हे राजन् ! वह ईश्वरभी ब्रह्मरूपिणी मेरी मायाशक्तिसे प्रेरित होकरही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करता है. क्योंकि मैं ब्रह्मरूपिणी हूं वह मुझमेंही रज्जुकल्पित सर्पके समान कल्पित होरहाहै अतएव उनकोभी मेरी शक्तिके अधीन जानना चाहिये ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ देवी ने कहा हे गिरिराज ! चराचरयुक्त यह सम्पूर्ण जगत् मेरीही मायाशक्तिद्वारा रचित होता है वह माया मुझमेंही कल्पित होती है किन्तु वास्तवमें

वह माया मुझसे पृथक् नहीं है अतएव एकमात्र मैंही चिद्वस्तु हूं मेरे अतिरिक्त चिद्वस्तु अन्य कुछ नहीं है ॥ १ ॥ व्यवहारदृष्टिसे वह माया विद्यादि स्वतन्त्र नामसे विख्यात होती है किन्तु तत्व अथवा ब्रह्मदृष्टिसे मायाकी विद्यमानता नहीं है केवल एकमात्र ब्रह्मही विद्यमान रहता है ॥ २ ॥ मैंही वह चिद्ब्रह्मरूपिणी अविद्या कर्म और अनेकप्रकार संस्कारयुक्त कूटस्थ ब्रह्मरूपसे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके उसके भीतर चिदाभासरूपसे प्राणवायु आगे करके प्रवेश करती हूं ॥ ३ ॥ हे गिरिवर! इसप्रकार मेरे प्राणस्वीकारपूर्वक प्रवेशनकरनेपर लोकान्तरगमन जन्म और मरणादि व्यवहार किसप्रकार सिद्ध होसक्ते हैं ? जिसप्रकार एकमात्र व्यापक महाकाश उपाधि भेदसे घटाकाश और मठाकाश इत्यादि भिन्न भिन्न नामसे विख्यात होतेहैं. इसीप्रकार मैं अनेक स्थलमें प्राणस्वीकार करके अविद्या और अन्तःकरणके प्रभेदसे हेतु भिन्न भिन्न होती हूं अतएव उससेही अनेकप्रकार भिन्नभिन्न जीवोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ जिसप्रकार सूर्य स्वीय किरणसंयोगसे पृथ्वीकी सम्पूर्ण वस्तु प्रदीपितकरके भी दूषित नहीं होता इसीप्रकार मैं भी उत्कृष्ट और निकृष्ट सम्पूर्ण वस्तुके अन्तःप्रवेशहेतु दोषलिप्त नहीं होती ॥ ५ ॥ मूढबुद्धि अज्ञानद्वारा बुद्ध्यादिनिष्ठ कर्तृत्व

व्यवहारदृशासेयंविद्यामायेतिविश्रुता ॥ तत्त्वदृष्ट्यातुनास्त्येवतत्त्वमेवास्तिकेवलम् ॥ २ ॥ साऽहंसर्वंजगत्सृष्ट्वातदंतःप्रविशाम्यहम् ॥ मायाकर्मादिसहितागिरेप्राणपुरःसरा ॥ ३ ॥ लोकांतरगतिर्नोचेत्कथंस्यादितिहेतुना ॥ यथायथाभवंत्येवमायाभेदास्तथातथा ॥ ४ ॥ उपाधिभेदाद्भिन्नाऽहंघटाकाशादयोयथा ॥ उच्चनीचादिवस्तूनिभासयन्भास्करःसदा ॥ ५ ॥ नदुष्यतितथैवाऽहंदोषैर्लिप्ताकदापिन ॥ मयिबुद्ध्यादिकर्तृत्वमध्यस्यैवाऽपरेजनाः ॥ ६ ॥ वदंतिचाऽऽत्माकर्मेतिविमूढानसुबुद्धयः ॥ अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायायाभेदतस्तथा ॥ ७ ॥ जीवेश्वरविभागश्चकल्पितोमाययैवतु ॥ घटाकाशमहाकाशविभागःकल्पितोयथा ॥ ८ ॥ तथैवकल्पितोभेदोजीवात्मपरमात्मनोः ॥ यथाजीवबहुत्वंचमाययैवनचस्वतः ॥ ९ ॥ तथेश्वरबहुत्वंचमाययानस्वभावतः ॥ देहेंद्रियादिसंघातवासनाभेदभेदिता ॥ १० ॥ अविद्याजीवभेदस्यहेतुर्नान्यःप्रकीर्तितः ॥ गुणानांवासनाभेदभेदितायाधराधर ॥ ११ ॥

आत्मरूपिणी मुझमें आरोपित करके आत्माकोही कर्ता कहते हैं किन्तु बुद्धिमान् पंडितगण उसको स्वीकार नहीं करते फलतः मैं जीवके भीतर कर्त्रीरूपसे न रहकर साक्षीरूपसे स्थिति करती हूं ॥ ६ ॥ हे अचलेन्द्र ! अविद्या और विद्याके भेदहेतु जीवबहुत्व और ईश्वरबहुत्व प्रतिपादित होता है. फलतः मायाद्वारा ही मनुष्य पशु इत्यादि जीवभेद और ब्रह्मा, विष्णु इत्यादिमें ईश्वरभेद होता है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार महाकाश घटावच्छिन्न होनेपर महाकाश और घटाकाश ऐसा विभाग कल्पित होता है इसीप्रकार व्यापक परमात्मा जीवावच्छिन्न होकर परमात्मा और जीवात्माका इसप्रकार भेद कल्पित होता है ॥ ८ ॥ जिसप्रकार जीवका बहुत्व मायाद्वारा कल्पित होता है स्वभावसे नहीं होता इसीप्रकार ईश्वरबहुत्वभी स्वभावसे नहीं होता मायाद्वाराही कल्पित होता है ॥ ९ ॥ हे धरणीधर ! देह इन्द्रिय और मन इत्यादिके भेदसे अविद्याही जीवके भेदका हेतु है अन्य कुछ नहीं है ॥ १० ॥ और जो तीनों गुणकी वासनाभेदसे अर्थात् सात्विक राजसिक और तामसिक वासनाभेदसे मायाकीभी

भिन्नता उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥ वह विभिन्नमायाही ब्रह्मा विष्णु इत्यादि ईश्वरकेभेदका कारण है नहीं तो और कुछ नहीं है. हे धराधरेन्द्र ! यह सम्पूर्ण जगत् ओत प्रोतभावसे मुझमेंही स्थित रहता है ॥ १२ ॥ अतएव मैंही कारणदेहाभिमानी ईश्वर लिंगदेहाभिमानी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ और स्थूल देहाभिमानी विराट् हूं मैं ही ब्रह्मा विष्णु महेश्वर और मैं ही ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्री शक्ति हूं ॥ १३ ॥ मैं ही सूर्य मैंही चन्द्रमा मैं ही तारका और मैं ही पशु पक्षी चाण्डाल और तस्कर हूं ॥ १४ ॥ मैंही क्रूरकर्मा व्याध और सत्कर्मा महाजन तथा मैंही स्त्री पुरुष और नपुंसक हूं इसमें सन्देहनहीं ॥ १५ ॥ हे गिरिवर ! जिस किसी स्थानमें जो कोई वस्तु दिखाई देती अथवा सुनाई देती हैं मैं उस सम्पूर्ण वस्तुके भीतर और बाहर व्याप्त होकर सर्वदा स्थित रहती हूं ॥ १६ ॥ मेरेविना चराचरकी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है यदि कुछ है तो वह

मायासापरभेदस्यहेतुर्नान्यःकदाचन ॥ मयिसर्वमिदंप्रोतमोतंचधरणीधर ॥१२॥ ईश्वरोऽहंचसूत्रात्माविराडात्माऽहमस्मिच ॥ ब्रह्माऽहंविष्णुरुद्रौचगौरी ब्राह्मीचवैष्णवी ॥ १३ ॥ सूर्योऽहंतारकाश्चाऽहंतारकेशस्तथाऽस्म्यहम् ॥ पशुपक्षिस्वरूपाऽहंचांडालोऽहंचतस्करः ॥ १४ ॥ व्याधोऽहंक्रूरकर्माऽहंसत्कर्माऽहंमहाजनः ॥ स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेवनसंशयः ॥ १५ ॥ यच्चकिंचित्क्वचिद्वस्तुदृश्यतेश्रूयतेऽपिवा ॥ अंतर्बहिश्चतत्सर्वंव्याप्याऽहंसर्वदा स्थिता ॥१६॥ नतदस्तिमयात्यक्तंवस्तुकिंचिच्चराचरम् ॥ यद्यस्तिचेत्तच्छून्यंस्याद्वंध्यापुत्रोपमंहितत् ॥१७॥ रज्जुर्यथासर्पमालाभेदैरेकाविभातिहि ॥ तथैवेशादिरूपेणभाम्यहंनात्रसंशयः ॥१८॥ अधिष्ठानातिरेकेणकल्पितंतन्नभासते ॥ तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावन्नान्यथाभवेत् ॥१९॥ हिमालयउवाच ॥ यथावदसिदेवेशिसमष्ट्यात्मवपुस्त्विदम् ॥ तथैवद्रष्टुमिच्छामियदिदेविकृपामयि ॥२०॥ व्यासउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वासर्वेदेवाःसविष्णवः ॥ ननंदुर्मुदितात्मानः पूजयंतश्चतद्वचः ॥ २१ ॥

वन्ध्याके पुत्रकी समान निरर्थक है ॥ १७ ॥ जिसप्रकार एकमात्र रज्जु सर्प और मालादिरूपसे प्रतिभात होती है इसप्रकार एकमात्र मैंही ब्रह्मस्वरूपिणी मैंही ईश्वरादि रूपसे प्रतिभात होती हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि यह कल्पित जगत् अधिष्ठानसत्ताके अतिरिक्त हेतु प्रतिभात नहीं होता यह मेरी सत्ताद्वाराही सत्तावान् होताहै नहीं तो अन्य किसीप्रकार सम्भव नहींहोसक्ता ॥ १९ ॥ हिमालयने कहा हेदेवि ! यदि मेरे प्रति आपकी कृपा हो तो आपकी समष्ट्यात्मक अर्थात् सर्वसमष्टिरूप सर्वाभिमानी विराड्मूर्ति देखनेकी इच्छा करता हूं आप अनुग्रहकरके वह मुझको दिखाइये ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हेमहाराज ! गिरिवरके यह वचन

सुनकर विष्णु इत्यादि सम्पूर्ण देवताओंने प्रसन्नचित्त हो अत्यन्त मानसहित उनके उस वचनका अनुमोदन किया ॥ २१ ॥ अनन्तर भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करनेवाली भक्तोंकी कामधेनु और कल्याणरूपिणी देवी भुवनेश्वरी ने अपना रूप देखनेमें देवताओंको उत्सुक जानकर अपना विराड्रूप दिखाया ॥ २२ ॥ वह महादेवीके उस विराट्रूपको देखनेलगे. सम्पूर्ण उर्द्धस्थित सत्यलोक उस विराट्रूपिणीका मस्तक चन्द्रमा और सूर्य उसकी दोनों आँखें ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण दिशा श्रोत्र (कान) सम्पूर्ण वेद वाक्य, वायु उसका प्राण, विश्व उसका हृदय, पृथ्वी जघनस्थल ॥ २४ ॥ नभस्थल अर्थात् भुवर्लोक नाभिसरोवर ज्योतिष्कमण्डल ऊरुस्थल महर्लोक ग्रीवा जनलोक मुखमण्डल ॥ २५ ॥ सत्यलोकके अधःस्थित तपोलोक उसका ललाटफलक इन्द्रादि देवतायुक्त स्वर्गलोक उसकी बाहु, शब्द उस महेश्वरीका श्रवणेन्द्रिय

अथदेवमतंज्ञात्वाभक्तकामदुघाशिवा अदर्शयन्निजंरूपंभक्तकामप्रपूरिणी ॥ २२ ॥ अपश्यंस्तेमहादेव्याविराड्रूपंपरात्परम् ॥ द्यौर्मस्तकंभवेदस्यचंद्रसूर्यौचचक्षुषी ॥ २३ ॥ दिशःश्रोत्रेवचोवेदाःप्राणोवायुःप्रकीर्तितः ॥ विश्वंहृदयमित्याहुःपृथिवीजघनंस्मृतम् ॥ २४ ॥ नभस्तलंनाभिसरोज्योतिश्चक्रमुरःस्थलम् ॥ महर्लोकस्तुग्रीवास्याज्जनोलोकोमुखंस्मृतम् ॥ २५ ॥ तपोलोकोरराटिस्तुसत्यलोकादधःस्थितः ॥ इंद्रादयोबाहवःस्युःशब्दःश्रोत्रंमहेशितुः ॥ २६ ॥ नासत्यदस्रौनासेस्तोगंधोघ्राणंस्मृतोबुधैः ॥ मुखमग्निःसमाख्यातोदिवारात्रीचपक्ष्मणी ॥ २७ ॥ ब्रह्मस्थानंभ्रूविजृंभोऽप्यापस्तालुःप्रकीर्तिताः ॥ रसोजिह्वासमाख्यातायमोदंष्ट्राःप्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥ दंताःस्नेहकलायस्यहासोमायाप्रकीर्तिता ॥ सर्गस्त्वपांगमोक्षःस्याद्व्रीडोर्ध्वोष्ठोमहेशितुः ॥ २९ ॥ लोभःस्यादधरोष्ठोऽस्याधर्ममार्गस्तुपृष्ठभूः ॥ प्रजापतिश्चमेढ्रंस्याद्यःस्रष्टाजगतीतले ॥ ३० ॥ कुक्षिःसमुद्रागिरयोऽस्थीनिदेव्यामहेशितुः ॥ नद्योनाड्यःसमाख्यातावृक्षाःकेशाःप्रकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ कौमारयौवनजरावयोऽस्यगतिरुत्तमा ॥ बलाहकास्तुकेशाःस्युःसंध्यंतेवाससीविभोः ॥ ३२ ॥

॥ २६ ॥ दोनों अश्विनीकुमार उसके नासापुट, गन्ध घ्राणेन्द्रिय, मुखके भीतर अग्नि, दिन और रात उसके दोनों पक्ष्मरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ २७ ॥ और उनकी दोनों भौंहें चतुर्मुख ब्रह्माजीका स्थान, जल उसका तालु, रस उसकी जिह्वा, यमराज उनकी डाढें ॥ २८ ॥ स्नेह विलास दाँत, माया उसका हास्य, ब्रह्माण्डसृष्टि उसका कटाक्ष, व्रीडा उर्द्ध ओष्ठ ॥ २९ ॥ लोभ अधर और अधर्म उसका पृष्ठभाग, जो जगतीतलमें सृष्टिकर्ता प्रजापति हैं वह उसका मेढ्र ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण समुद्र कुक्षि समस्त पर्वत उस महेश्वरीके अस्थिस्वरूप, समस्त नदियें नाडी और सम्पूर्ण वृक्ष उसके केशरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! कौमार यौवन और

जरा उसकी उत्तम गति मेघसमूह उसका केशजाल दोनों सन्ध्या उन परमप्रभुकी दोनों वस्त्रस्वरूप ॥ ३२ ॥ चन्द्रमा उस जगदम्बिकाका मन हरि उसकी विज्ञान शक्ति और रुद्र उसके अन्तःकरण ॥ ३३ ॥ अश्वादि सम्पूर्ण जीव उसको नितम्ब देश और अतलादि सम्पूर्ण महर्लोक उसके कटिदेशसे चरणकमलोंतक स्थिति करते थे ॥ ३४ ॥ देवतागण आश्चर्ययुक्त नेत्रोंसे जगदम्बिकाकी इसप्रकार मूर्त्ति देखने लगे उनकी उस मूर्त्तिसे सहस्र सहस्र ज्वाला माला निकलने लगीं जिह्वाद्वारा सम्पूर्ण जगत्का आस्वादन करने लगी ॥ ३५ ॥ दोनों दशनपंक्तियोंमें कटकटा शब्द होनेलगा सम्पूर्णअक्षियोंसे अग्नि उद्गार आरम्भ हुआ हाथमें अनेक प्रकारके आयुध ब्राह्मण और क्षत्रिय उस घोरदर्शन वीरपुरुषके ओदनस्वरूप ॥ ३६ ॥ उनकी उस मूर्तिमें अनेक मस्तक अनेक नेत्र और अनेक चरण थे जिनकी सीमा नहीं उस मूर्तिके देखनेसे बोध

राजश्छ्रीजगदंबायाश्चंद्रमास्तुमनःस्मृतः ॥ विज्ञानशक्तिस्तुहरीरुद्रोंतःकरणंस्मृतम् ॥ ३३ ॥ अश्वाहिजातयःसर्वाःश्रोणिदेशेस्थिताविभोः ॥ अतलादिमहालोकाःकटयधोभागतांगताः ॥ ३४ ॥ एतादृशंमहारूपंददृशुःसुरपुंगवाः ॥ ज्वालामालासहस्राढ्यंलेलिहानंचजिह्वया ॥ ३५ ॥ दंष्ट्राकटकटारावंवमंतंवह्निमक्षिभिः ॥ नानायुधधरंवीरंब्रह्मक्षत्रौदनंचयत् ॥ ३६ ॥ सहस्रशीर्षनयनंसहस्रचरणंतथा ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशंविद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥ ३७ ॥ भयंकरंमहाघोरंहृदक्ष्णोस्त्रासकारकम् ॥ ददृशुस्तेसुराःसर्वेहाहाकारंचचक्रिरे ॥ ३८ ॥ विकंपमानहृदयामूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम् ॥ स्मरणंचगतंतेषांजगदंबेयमित्यपि ॥ ३९ ॥ अथतेयेस्थितावेदाश्चतुर्दिक्षुमहाविभोः ॥ बोधयामासुरत्युग्रंमूर्च्छातोमूर्च्छितान्सुरान् ॥ ४० ॥ अथतेधैर्यमालंब्यलब्ध्वाचश्रुतिमुत्तमाम् ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयनारुद्धकंठास्तुनिर्जराः ॥ ४१ ॥ बाष्पगद्गदयावाचास्तोतुंसमुपचक्रिरे ॥ देवाऊचुः ॥ अपराधंक्षमस्वांबपाहिदीनांस्त्वदुद्भवान् ॥ ४२ ॥

होता था कि, एकवारही करोड सूर्य उदय हुए हैं मानों अनेक विद्युन्माला एकत्र प्रकाशित होरहीं हैं ॥ ३७ ॥ महादेवीके वह महाभयंकर नेत्रभी मनको त्रास उत्पन्न करते थे इसप्रकार महाघोर विराट्मूर्ति देख सम्पूर्ण देवतालोग भीत होकर हाहाकार करनेलगे ॥ ३८ ॥ और उनका हृदय काँपनेलगा वह अत्यन्त मूर्च्छासे आक्रान्त होगये "यही हमारी पालनकरनेवाली जगदम्बिका है" यह ज्ञान एकवारही दूर होगया ॥ ३९ ॥ उससमय उन भुवनेश्वरीके चारोंओर जो सम्पूर्ण वेद स्थिति करतेथे उन्होंने मूर्च्छासे उठायकर देवताओंको समझाया ॥ ४० ॥ अनन्तर वह निर्जरगण वह अत्युत्तम श्रुति प्राप्तकर धैर्यअवलम्बनपूर्वक अन्तर्जनित वाष्पसे रुद्धकण्ठ हो ॥ ४१ ॥ प्रेमविगलित अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गदवचनद्वारा जगदम्बिकाका स्तव करनेलगे देवताओंने कहा हे मातः ! हम अत्यन्त दीन और

आपसेही हम उत्पन्न हुए हैं आप हमारा अपराध क्षमाकीजिये ॥ ४२ ॥ और हमारे प्रति कोप त्यागकीजिये, हम आपके इस रूपको देखनेसे अत्यन्त भीत हुए हैं हे देवि ! पामर अमरगण आपकी क्या स्तुति करें ? ॥ ४३ ॥ आप स्वयं जब कि, अपने पराक्रमकी सीमा करनेमें असमर्थ हैं तब हम आपके पीछे जन्म ग्रहण करके किसप्रकार उसको जानसक्ते हैं॥ ४४॥ हे प्रणवात्मिके भुवनेश्वरि ! हम आपकोनमस्कार करतेहैं. हेदेवि ! सम्पूर्ण वेदान्तशास्त्रमें आपको प्रतिपादित किया है हम आपकी उसी ह्रींकारमूर्तिको नमस्कार करते हैं ॥ ४५॥ जिनसे अग्नि सूर्य चन्द्रमा और जिनसे सम्पूर्ण औषधियें उत्पन्न हुई हैं उन्ही सर्वात्मरूपिणीको नमस्कार है ॥ ४६॥ जिनसे सम्पूर्ण देवतागण साध्यगण पशुगण पक्षिगण और मनुष्यगण उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं सर्वात्मरूपिणी देवीके विराट्रूपको नमस्कार करते हैं॥ ४७॥ जिनसे प्राण अपान व्रीहि

कोपंसंहरदेवेशिसभयारूपदर्शनात् ॥ कातेस्तुतिःप्रकर्तव्यापामरैर्निर्जरैरिह ॥४३॥ स्वस्याप्यज्ञेयएवाऽसौयावान्यश्चस्वविक्रमः ॥ तदर्वाग्जायमानानां कथंसविषयोभवेत् ॥ ४४ ॥ नमस्तेभुवनेशानिनमस्तेप्रणवात्मिके ॥ सर्ववेदांतसंसिद्धेनमोह्रींकारमूर्तये ॥४५॥ यस्मादग्निःसमुत्पन्नोयस्मात्सूर्यश्चचंद्रमाः ॥ यस्मादोषधयःसर्वास्तस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ ४६ ॥ यस्माच्चदेवाःसंभूताःसाध्याःपक्षिणएवच ॥ पशवश्चमनुष्याश्चतस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ ४७ ॥ प्राणापानौव्रीहियवौतपःश्रद्धाऋतंतथा ॥ ब्रह्मचर्यंविधिश्चैवयस्मात्तस्मैनमोनमः ॥ ४८ ॥ सप्तप्राणार्चिषोयस्मात्समिधःसप्तएवच ॥ होमाःसप्ततथा लोकास्तस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ ४९ ॥ यस्मात्समुद्रागिरयःसिंधवःप्रचरंतिच ॥ यस्मादोषधयःसर्वारसास्तस्मैनमोनमः ॥ ५० ॥ यस्माद्यज्ञःसमुद्भूतो दीक्षायूपश्चदक्षिणाः ॥ ऋचोयजूंषिसामानितस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ ५१ ॥ नमःपुरस्तात्पृष्ठेचनमस्तेपार्श्वयोर्द्वयोः ॥ अधऊर्ध्वंचतुर्दिक्षुमातर्भूयोनमोनमः ॥ ५२ ॥

यव तपस्या श्रद्धा सत्य ब्रह्मचर्य और सम्पूर्ण हितकर्तव्यतारूप विधि उत्पन्न हुई है हम उन्हीं सर्वात्मिका महामायाकी महामूर्तिको नमस्कार करते हैं॥ ४८॥ जिनसे सप्त प्राण सप्त दीप्ति सप्त समाधि सप्त होम और सप्त लोक उत्पन्न हुएहैं हम उन्हीं सर्वस्वरूपिणीको नमस्कार करतेहैं॥ ४९॥ जिनसे सम्पूर्ण समुद्र सम्पूर्ण पर्वत समस्त नदी सम्पूर्ण औषधि और समस्त रस उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं भुवनेश्वरीकी विराट्मूर्तिको नमस्कार करतेहैं ॥ ५० ॥ जिनसे यज्ञ यूप और दक्षिणा एवं ऋक् यजु और सामवेद उत्पन्न हुए हैं हम महामायाके उस अखिल विश्वात्मक विराट्रूपको नमस्कार करते हैं ॥ ५१ ॥ हेमातःमहामाये ! आपके पुरोभागमें नमस्कार आपके पृष्ठ भागमें नमस्कार आपके दोनों पार्श्वमें

नमस्कार आपके ऊर्द्धभागमें नमस्कार आपके अधोभागमें नमस्कार और आपके चारोंओर वारंवार नमस्कार करते हैं॥ ५२॥ हे देवि ! आप अपने इस अलौकिक रूपको दूर करके अपना परम सुन्दर मनोहर रूप हमको दिखाइये॥ ५३॥ व्यासजीने कहा हेराजन् ! करुणाकी अर्णवरूपिणी जगदम्बिकाने सुरगणोंको भीत देख अपना घोर विराट्रूप दूर करके परमसुन्दर भुवनमोहन पूर्वरूप दिखाया ॥ ५४ ॥ उनका सम्पूर्ण शरीर कोमल होगया उन्होंने एक हस्तमें पाश और एक हस्तमें अङ्कुशास्त्र धारण किया अपर दोनों हातोंमेंसे एक हस्तमें वरदान और अन्य हस्त अभयदान भङ्गिमामें उद्यत उनके नेत्र देखनेसे बोध होता था कि, मानो उनके एकवारही करुणारससे परिपूर्ण मुखकमलमें कुछेक हास्य विराजमान है ॥ ५५ ॥ देवतागण जगदम्बिकाकी इसप्रकार मूर्ति देखकर भयरहित हो शान्तचित्तसे

उपसंहरदेवेशिरूपमेतदलौकिकम् ॥ तदेवदर्शयाऽस्माकंरूपंसुंदरसुंदरम् ॥ ५३ ॥ व्यासउवाच ॥ इतिभीतान्सुरान्दृष्ट्वाजगदंबाकृपार्णवा ॥ संहृत्यरूपंघोरंतद्दर्शयामाससुंदरम् ॥५४॥ पाशांकुशवराभीतिधरंसर्वांगकोमलम् ॥ करुणापूर्णनयनंमंदस्मितमुखांबुजम् ॥५५॥ दृष्ट्वातत्सुंदरंरूपंतदा भीतिविवर्जिताः ॥ शांतचित्ताःप्रणेमुस्तेहर्षगद्गदनिःस्वनाः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेदेवीगीतायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ क्वयूयंमंदभाग्यावैक्वेदंरूपंमहाद्भुतम् ॥ तथापिभक्तवात्सल्यादीदृशंदर्शितंमया ॥ १ ॥ नवेदाध्ययनैर्योगैर्नदानैस्तपसेज्यया ॥ रूपंद्रष्टुमिदंशक्यंकेवलंमत्कृपांविना ॥२॥ प्रकृतंशृणुराजेंद्रपरमात्माऽत्रजीवताम् ॥ उपाधियोगात्संप्राप्तःकर्तृत्वादिकमप्युत ॥३॥ क्रियाःकरोतिविविधाधर्माधर्मैकहेतवः ॥ नानायोनीस्ततःप्राप्यसुखदुःखैश्चयुज्यते ॥ ४ ॥ पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतःसदा ॥ नानादेहान्समाप्नोतिसुखदुःखैश्चयुज्यते ॥ ५ ॥

हर्ष और गद्गदशब्दपूर्वक प्रणाम करनेलगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ छ ॥ श्रीदेवी बोली कहां तो तुम मंदभाग्य और कहां यह मेरा अद्भुत रूप तौभी भक्तिवत्सलतासे तुमको मैंने यह रूप दिखाया है ॥ १ ॥ वेदाध्ययन योग दान तप यज्ञसे यह मेरा रूप नहीं दीखता इसमें केवल मेरी कृपाही कारण है ॥ २ ॥ अब उसी प्रकृत विषयको श्रवणकरो जो परमात्मा उपाधियोगसे जीवताको प्राप्त और कर्तृआदिपदसे व्यवहार कियाजाता है ॥ ३ ॥ धर्म अधर्मके कारण अनेकप्रकारकी क्रियाकरता है और यह जीव अनेकयोनियोंको प्राप्त होकर सुखदुःख भोगता है ॥ ४ ॥ फिर उन्ही संस्कारों

के वशसे अनेकप्रकारके कर्मोंमें रत होता है. अनेक देहोंसे युक्त हो अनेक सुखदुःख पाताहै ॥ ५ ॥ घडीयंत्रके समान यह सदा विचरताही रहता है इसको कभी विश्राम नहीं मिलता आजतक अनेकसृष्टि प्रलय हुई पर इसका विराम न हुआ इसका मूल अज्ञान है इस अज्ञानसे इच्छा और उससे क्रिया होती है ॥ ६ ॥ इससे अज्ञान नाशके निमित्त क्रिया करनी चाहिये यही जन्मकी सफलता है ॥ ७ ॥ जो अज्ञाननाश कियाजाय "यो ह्यविदित्वात्मानमस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः" इति श्रुतेः। पुरुषार्थकी समाप्ति जीवन्मुक्तकी दशाकीप्राप्ति और अज्ञाननाशनमें एक विद्याही समर्थ है ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज ! अज्ञानसे उत्पन्न कर्म अज्ञानसे उत्पन्न हुए कर्मके नाशमें समर्थ नहीं है. कारण कि इन दोनोंका परस्पर विरोध नहीं है कर्मद्वारा अज्ञानके नाशकी आशा न करनी चाहिये ॥ ९ ॥

घटीयंत्रवदेतस्यनविरामःकदापिहि॥अज्ञानमेवमूलंस्यात्ततःकामःक्रियास्ततः॥६॥तस्मादज्ञाननाशाययतेतनियतंनरः॥एतद्धिजन्मसाफल्यंयदज्ञानस्य नाशनम् ॥७॥ पुरुषार्थसमाप्तिश्चजीवन्मुक्तदशापिच ॥ अज्ञाननाशनेशक्ताविद्यैवतुपटीयसी ॥८॥ नकर्मतज्जंनोपास्तिर्विरोधाभावतोगिरे ॥ प्रत्युताशाज्ञाननाशेकर्मणानैवभाव्यताम् ॥९॥ अनर्थदानिकर्माणिपुनःपुनरुशंतिहि ॥ ततोरागस्ततोदोषस्ततोनर्थोमहान्भवेत् ॥१०॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनज्ञानंसंपादयेन्नरः ॥ कुर्वन्नेवेहकर्माणीत्यतःकर्माप्यवश्यकम् ॥११॥ज्ञानादेवहिकैवल्यमतःस्यात्तत्समुच्चयः ॥ सहायतांव्रजेत्कर्मज्ञानस्यहितकारिच ॥१२॥ इति केचिद्वदंत्यत्रतद्विरोधान्नसंभवेत् ॥ ज्ञानाद्धृद्ग्रंथिभेदःस्याद्धृद्ग्रंथौकर्मसंभवः ॥ १३ ॥ यौगपद्यंनसंभाव्यंविरोधात्तुततस्तयोः ॥ तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यंनसंभवि ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वाणिकर्माणिवैदिकानिमहामते ॥ चित्तशुद्ध्यंतमेवस्युस्तानिकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १५ ॥

कारण कि, यह अनर्थके देनेवाले कर्म वारंवार प्रगट होते हैं फिर राग और फिर दोष इससे महाअनर्थ होता है ॥ १० ॥ इसकारण सब प्रयत्नसे मनुष्यको ज्ञान सम्पादन करना चाहिये और "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इस श्रुतिसे कर्मकोभी सदा करना आवश्यक कहा है॥ ११ ॥ तथा 'ज्ञानादेव हि कैवल्यम्' अर्थात ज्ञानसेही मुक्ति होतीहै इनका समुच्चय इसप्रकार है कि, ज्ञानके होनेमें कर्म सदा सहायक है ॥ १२ ॥ इसप्रकार इसविषयमें कोई कहते हैं इस भांतिसे विरोध सम्भव नहीं होता कारण कि, ज्ञानसे हृदयकी गांठ खुलती है, और हृदयकी ग्रंथिमें कर्म स्थित है जहां ज्ञानके आगे कर्मकी भावना हो वहां ज्ञानकर्मका समुच्चय कहनाचाहिये ॥ १३ ॥ इसकारण उन ज्ञान और कर्मका तम और प्रकाशकी समान एकसाथ विरोध नहीं संभव होसक्ता, इसकारण यदिज्ञान उत्पन्न न हो तो यावज्जीव कर्मानुष्ठान करतारहै ॥ १४ ॥ हेमहामते ! इस कारण जितने

वैदिक कर्म हैं, वह सब चित्तशुद्धिके निमित्त हैं उनको यत्नपूर्वक करनाचाहिये, चित्तशुद्धिहोनेसे ज्ञान प्राप्त होकर ज्ञानी होगा ॥ १५ ॥ शम—अन्तर इन्द्रियका निग्रह, दम बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह तितिक्षा शीत उष्ण आदिका सहना वैराग्य दोनों लोकके फलमें विराग और अन्तःकरणकी शुद्धि जबतक यह प्राप्त न हो तबतक कर्म करता रहै फिर कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ ज्ञान होनेपर सब कुछ त्याग आत्मवान् गुरुका आश्रय करै वेदपाठी ब्रह्ममें निष्ठावाले वेदवेदांगके ज्ञातासे छल रहित भक्तिपूर्वक ॥ १७ ॥ सावधान हो नित्य वेदांत श्रवण करै और 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंका नित्यही अर्थ विचारता रहै ॥ १८ ॥ "तत्त्वमसि" इत्यादिवाक्य जीव और ईशकी एकताबोधक हैं इनकी एकता जानकर यह निर्भय होकर मेरा रूप होजाता है ॥ १९ ॥ पहले पदार्थका ज्ञान फिर वाक्यार्थका ज्ञान करै हे पर्वतराज 'तत्' पदका अर्थ षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न मैं हूं ॥ २० ॥ और 'त्वं' पदका वाच्यार्थ निःसन्देह जीव है, 'असि' पदसे दोनों जीव ईश्वरकी एकता ज्ञात

शमोदमस्तितिक्षाचवैराग्यंसत्त्वसंभवः ॥ तावत्पर्यंतमेवस्युःकर्माणिनततःपरम् ॥ १६ ॥ तदंतेचैवसंन्यस्यसंश्रयेद्गुरुमात्मवान् ॥ श्रोत्रियंब्रह्म निष्ठंचभक्त्यानिर्व्याजयापुनः ॥ १७ ॥ वेदांतश्रवणंकुर्यान्नित्यमेवमतंद्रितः ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यस्यनित्यमर्थंविचारयेत् ॥ १८ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यं तुजीवब्रह्मैक्यबोधकम् ॥ ऐक्येज्ञातेनिर्भयस्तुमद्रूपोहिप्रजायते ॥ १९ ॥ पदार्थावगतिःपूर्ववाक्यार्थावगतिस्ततः ॥ तत्पदस्यचवाच्यार्थोगिरेऽहंपरिकीर्ति तः ॥ २० ॥ त्वंपदस्यचवाच्यार्थोजीवएवनसंशयः ॥ उभयोरैक्यमसिनापदेनप्रोच्यतेबुधैः ॥ २१ ॥ वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यंनैवघटेतह ॥ लक्षणाऽतःप्रकर्तव्यातत्त्वमोःश्रुतिसंस्थयोः ॥ २२ ॥ चिन्मात्रंतुतयोर्लक्ष्यंतयोरैक्यस्यसंभवः ॥ तयोरैक्यंतथाज्ञात्वास्वाभेदेनाद्वयोभवेत् ॥ २३ ॥

होती है अर्थात् वही तू है ॥ २१ ॥ यदि कहो कि, अत्यन्त विरुद्ध धर्मवाले जीवेश्वरकी एकता किसप्रकार होसक्ती है तो भागलक्षणासे कहते हैं. आशय यह कि, जब वाच्यार्थ विरुद्ध होनेसे दोनोंकी एकता न घटे तो उसमें लक्षणा करनी चाहिये जीवके असर्वज्ञत्व और परिच्छिन्नत्व आदि निकृष्ट धर्म हैं ईश्वरकी सर्वज्ञता व्यापकताआदि उत्कृष्ट धर्म हैं तब इनका अभेद कैसे हो इसपर श्रुतिसम्मत 'तत्, त्वं' पदकी लक्षणा करनी चाहिये ॥ २२ ॥ किस अर्थमें लक्षणा करनी चाहिये, तब कहते हैं कि, चिन्मात्रमें लक्षणा होती है, सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य ईश्वर है असर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य जीव है इनमें दोनों धर्म छोड़कर चिन्मात्र भागत्यागलक्षणासे ग्रहण करना, इसप्रकार लक्षणासे दोनोंकी एकता होगी अपने अभेदसे इनकी एकताका ज्ञान होनेसे

अद्वय होगा यह इसका महाफल है ॥ २३ ॥ वही यह देवदत्त है इस वाक्यसे तत्कालविशिष्ट देवदत्तका इस कालविशिष्ट देवदत्तसे भेद होनेपरभी वैशिष्ट्यरूप दोनों धर्मके त्यागसे अविरुद्ध व्यक्तिको भागत्यागलक्षणासे ग्रहणकर अभेद किया जाता है इसीकारण लक्षणा ग्रहण की है इस अनुभवसे स्थूलादिभेदरहित हो यह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ पंचीकृतमहाभूतसेही यह स्थूलदेह प्रगट हुआ है, यह भोगका स्थान जरा व्याधि तथा सब कर्मोंसे युक्त है ॥ २५ ॥ यह मिथ्या भी है परन्तु मायासे सत्यसा दीखता है. हे पर्वतराज! यह मेरे आत्माकी स्थूलउपाधि है ॥ २६ ॥ ज्ञानकर्मेन्द्रियसे युक्त प्राणपंचकसे संयुक्त तथा मनबुद्धिसे युक्त देह सूक्ष्मउपाधि है॥ २७॥ अपंचीकृत भूतोंसे प्रगट यह आत्माका सूक्ष्म देह है, यह अन्तःकरणकी सुखदुःखादि अवबोधक दूसरी उपाधि है ॥ २८ ॥ हे नगेश्वर! अनादि अनि

देवदत्तःसएवाऽयमितिवल्लक्षणास्मृता ॥ स्थूलादिदेहरहितोब्रह्मसंपद्यतेनरः ॥ २४ ॥ पंचीकृतमहाभूतसंभूतःस्थूलदेहकः ॥ भोगालयोजराव्याधिसंयुतःसर्वकर्मणाम् ॥ २५ ॥ मिथ्याभूतोऽयमाभातिस्फुटंमायामयत्वतः ॥ सोऽयंस्थूलउपाधिःस्यादात्मनोमेनगेश्वर ॥ २६ ॥ ज्ञानकर्मेंद्रिययुतंप्राणपंचकसंयुतम् ॥ मनोबुद्धियुतंचैतत्सूक्ष्मंतत्कवयोविदुः ॥ २७ ॥ अपंचीकृतभूतोत्थंसूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ द्वितीयोऽयमुपाधिःस्यात्सुखादेरवबोधकः ॥ २८ ॥ अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानंतुतृतीयकः ॥ देहोऽयमात्मनोभातिकारणात्मानगेश्वर ॥ २९ ॥ उपाधिविलयेजातेकेवलात्मावशिष्यते ॥ देहत्रयेपंचकोशाअंतःस्थाःसंतिसर्वदा ॥ ३० ॥ पंचकोशपरित्यागेब्रह्मपुच्छंहिलभ्यते ॥ नेतिनेतीत्यादिवाक्यैर्ममरूपंयदुच्यते ॥ ३१ ॥ नजायतेम्रियतेतत्कदाचिन्नाऽयंभूत्वानबभूवकश्चित् ॥ अजोनित्यःशाश्वतोऽयंपुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे ॥ ३२ ॥ हतंचेन्मन्यतेहंतुंहतश्चेन्मन्यतेहतम् ॥ उभौतौनविजानीतोनाऽयंहंतिनहन्यते ॥ ३३ ॥ अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मास्यजंतोर्निहितोगुहायाम् ॥ तमक्रतुःपश्यतिवीतशोकोधातुप्रसादान्महिमानमस्य ॥ ३४ ॥

र्वाच्य अज्ञानयुक्त यह कारणशरीर तीसरा है ॥ २९ ॥ इन स्थूलसूक्ष्मकारण उपाधियोंके लीन होनेमें केवल आत्मा अवशेष रहता है इन तीनों देहोंमें अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनंदमय यह पांच कोश सदा अन्तर स्थित रहते हैं ॥ ३० ॥ इन पंचकोशके त्यागमें 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' ब्रह्ममें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है जो नेति २ इत्यादि वाक्योंसे मेरा रूप कहा जाता है ॥ ३१ ॥ यह ब्रह्मरूप न कभी उत्पन्न होता न मरता, न कभी होनेवाला और न कभी हुआ है यह अज नित्य शाश्वत पुरातन छहों विकारोंसे रहित है शरीरके हन्यमान होनेपरभी मरता नहीं हन्यमान नहीं होता ॥ ३२ ॥ जो मारनेवाला मारा ऐसा जान्ता है हत हुआ अपनेको हत मानता है यह दोनोंही इसको नहीं जानते कारण कि, न यह मरता न माराजाता है ॥ ३३ ॥ यह अणुसे अणु और महान्से महान् आत्मा

होकरभी इस प्राणिके हृदयरूपी गुहा वा बुद्धिमें स्थित है इस आत्माकी महिमाको चित्तकी निर्मलता संकल्पविकल्परहित होनेसे जान्ता है तब वीतशोक होता है ॥ ॥ ३४ ॥ आत्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथि, मन लगाम ॥ ३५ ॥ इन्द्रिय घोड़े हैं यह विषयरूपी मार्गमें निरन्तर गमन करते हैं, आत्मा चिदाभास, इन्द्रिय मन यह तीन कूटस्थ मिलित होकर भोक्ता कहा जाता है ॥ ३६ ॥ जो पुरुष अविद्वान् अर्थात् अविवेकी होता है अस्वाधीन अशुचि होता है वह तत्पदको प्राप्त न होकर संसारमें पड़ता है ॥ ३७ ॥ और जो विज्ञानवान् स्वाधीन मन सदा पवित्रहोता है वह उस पदको प्राप्त होता है जहांसे फिर आना नहीं होता ॥ ३८ ॥ जिसका विज्ञान सारथि मनकी लगाम रोकेहुए है वह इस संसारके पार हो मेरे परमपदको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार श्रुति बुद्धिद्वारा आत्मासेही

आत्मानंरथिनंविद्धिशरीरंरथमेवतु ॥ बुद्धिंतुसारथिंविद्धिमनःप्रग्रहमेवच ॥ ३५ ॥ इंद्रियाणिहयानाहुर्विषयांस्तेषुगोचरान् ॥ आत्मेंद्रियमनोयुक्तंभो क्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ३६ ॥ यस्त्वविद्वान्भवतिचाऽमनस्कश्चसदाऽशुचिः ॥ नतत्पदमवाप्नोतिसंसारंचाधिगच्छति ॥ ३७ ॥ यस्तुविज्ञानवान्भव तिसमनस्कःसदाशुचिः ॥ सतुतत्पदमाप्नोतियस्माद्भूयोनजायते ॥ ३८ ॥ विज्ञानसारथिर्यस्तुमनःप्रग्रहवान्नरः ॥ सोऽध्वनःपारमाप्नो तिमदीयंयत्परंपदम् ॥ ३९ ॥ इत्थंश्रुत्याचमत्याचनिश्चित्यात्मानमात्मना ॥ भावयेन्मामात्मरूपांनिदिध्यासनतोपिच ॥ ४० ॥ योगवृत्तेःपुरास्वस्मि न्भावयेदक्षरत्रयम् ॥ देवीप्रणवसंज्ञस्यध्यानार्थंमंत्रवाच्ययोः ॥ ४१ ॥ हकारःस्थूलदेहःस्याद्रकारःसूक्ष्मदेहकः ॥ ईकारःकारणात्मासौह्रींकारोऽहंतु रीयकम् ॥ ४२ ॥ एवंसमष्टिदेहेऽपिज्ञात्वाबीजत्रयंक्रमात् ॥ समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वंभावयेन्मतिमान्नरः ॥ ४३ ॥ समाधिकालात्पूर्वंतुभावयित्वैवमादृतः॥ ततोध्यायेन्निलीनाक्षोदेवींमांजगदीश्वरीम् ॥ ४४ ॥ प्राणापानौसमौकृत्वानासाभ्यंतरचारिणौ ॥ निवृत्तविषयाकांक्षोवीतदोषोविमत्सरः ॥ ४५ ॥

आत्माका निश्चय कर विक्षेपादिरहित हो साक्षात्कार होनेसे चित्तकी एकाग्र वृत्तिसे आत्मरूप मेरा ध्यान करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार निदिध्यासन अभ्याससे जब चित्तमें समाधिकी योग्यता होजाय तब समाधिसे पहले अपने शरीरमें प्रणवसंज्ञक मायाबीजमंत्रके तीन अक्षरोंका ध्यान करै मंत्रवाच्य मायाबीजमंत्रार्थके समष्टिव्यष्टिके ध्यानार्थ है ॥ ४१ ॥ हकार स्थूलदेह रकार सूक्ष्मदेह ईकार कारणदेहरूप है और मैं जो तुरीयरूप हूं सोई ह्रींकार है ॥ ४२ ॥ जैसे व्यष्टिदेहमें भावना की है इसीप्रकार समष्टिदेहमें क्रमसे तीनों बीजोंको जानकर बुद्धिमान् समष्टिव्यष्टि पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता ध्यान करै ॥ ४३ ॥ इस प्रकार आदरपूर्वक समाधिसे पहले ध्यानकर नेत्र मूँद मुझ जगदीश्वरीका ध्यान करै ॥ ४४ ॥ नासिकाके अभ्यन्तर फिरनेवाले प्राण अपानको समानकर विषयादिकी

आकांक्षासे निवृत्त हुआ दोष और मत्सरतासे रहित ॥ ४५ ॥ छलरहित भक्तिसे युक्त हुआ गुह्य वा शब्दरहित एकान्त स्थानमें वैश्वानरात्मक हकारको रकारमें लीन करै अर्थात् हकारवाच्य स्थूल देहको रकारवाच्य सूक्ष्मदेहमें लीन करै ॥ ४६ ॥ रकारवाच्य तैजस अर्थात् सूक्ष्मदेहको ईकारवाच्य कारण देहमें लय करै ईकारवाच्य कारणदेहको ह्रींकारवाच्य ब्रह्ममें लय करै ॥ ४७ ॥ जब वाच्य और वाचकतासे हीन, द्वैतभावसे वर्जित होजाय तब चैतन्य अग्नि दीपशिखान्तरमें अखंड सच्चिदानंदकी भावना करै ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार नरोत्तम ध्यानमें मेरा साक्षात्कार करके मेराही रूप होजाता है कारण कि, दोनोंकी एकता सिद्ध है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार इस योगयुक्तिसे परात्पर मुझ आत्माको देखतेही अपने कार्यसहित अज्ञान उसीसमय नष्ट होजाता है ॥ ५० ॥

भक्त्यानिर्व्याजयायुक्तोगुहायांनिःस्वनेस्थले ॥ हकारंविश्वमात्मानंरकारेप्रविलापयेत् ॥ ४६ ॥ रकारंतैजसंदेवमीकारेप्रविलापयेत् ॥ ईकारंप्राज्ञमात्मानंह्रींकारेप्रविलापयेत् ॥ ४७ ॥ वाच्यवाचकताहीनंद्वैतभावविवर्जितम् ॥ अखंडंसच्चिदानंदंभावयेत्तच्छिखांतरे ॥ ४८ ॥ इतिध्यानेनमांराजन्साक्षात्कृत्यनरोत्तमः ॥ मद्रूपएवभवतिद्वयोरप्येकतायतः ॥ ४९ ॥ योगयुक्त्याऽनयाद्दृष्ट्वामामात्मानंपरात्परम् ॥ अज्ञानस्यसकार्यस्यतत्क्षणेनाशकोभवेत् ॥ ५० ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेदेवीगीतायांचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥ हिमालयउवाच ॥ योगंवदमहेशानिसांगंसंवित्प्रदायकम् ॥ कृतेनयेनयोग्योऽहंभवेयंतत्त्वदर्शने ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ नयोगोनभसःपृष्ठेनभूमौनरसातले ॥ ऐक्यंजीवात्मनोराहुर्योगंयोगविशारदाः ॥२॥ तत्प्रत्यूहाःषडाख्यातायोगविघ्नकरानघ ॥ कामक्रोधौलोभमोहौमदमात्सर्यसंज्ञकौ ॥३॥ योगांगैरेवभित्त्वातान्योगिनोयोगमाप्नुयुः ॥ यमंनियममासनप्राणायामौततःपरम् ॥ ४ ॥ प्रत्याहारंधारणाख्यंध्यानंसार्धंसमाधिना ॥ अष्टांगान्याहुरेतानियोगिनांयोगसाधने ॥ ५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकयां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ हिमालयने कहा हे महेश्वरि ! जिस योगद्वारा ब्रह्मलाभ होता है उस योगका विषय अंगोंसहित वर्णन करो जिसका अनुष्ठान कर मैं तत्वदर्शनका अधिकारी होऊं ॥ १ ॥ श्रीदेवी बोली आकाश भूमि रसातलादिस्थानोंमें योग नहीं है जीव और आत्माकी अभेदविषयक चित्तवृत्तिकोही योगविशारद योग कहते हैं ॥ २ ॥ हे पापरहित ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य यह छः योगके शत्रु हैं जो इसमें विघ्न कियाकरते हैं ॥ ३ ॥ इसकारण योगियोंको आगे लिखे योगके अंगोंसे योगशत्रुओंको विनाश करके योग प्राप्त करना चाहिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम ॥ ४ ॥ प्रत्याहार, धारण,

ध्यान और समाधि यह आठ अंग योगियोंको योगमें सहायक हैं ॥ ५ ॥ किसीकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, ऋजुता, क्षमा, धृति, सर्वनाशमें भी धीरता मितभोजन दो भाग अन्नसे पूर्ण करै, एक भाग जलसे, चौथा भाग वायुके गमनागमनको रक्खे, यह अल्पाहार है. तथा बाह्य आभ्यन्तरकी शुद्धि करै यह दश यम हैं ॥६॥ तपस्या, सन्तोष, आस्तिक्य, [वेद, देव, द्विज और गुरुमें विश्वास] दान, देवपूजा, सिद्धान्त अर्थात् वेदान्तवाक्यका श्रवण, अकार्यकरनेमें लज्जा मति (सत्कर्म और सच्छास्त्रविषयक ज्ञान) जप और नित्यहोमादि ॥ ७ ॥ हे पर्वतनायक ! यह मैं ने दश नियम कहे हैं. पद्मासन, स्वस्तिक, भद्र, वज्रासन ॥८॥ और वीरासन यह क्रमसे पांच आसन कहे हैं. दोनों पैरोंके तलुए दोनों जंघाओंपर रखकर ॥ ९ ॥ हाथोंको पीठकी ओरसे ले आगे दहिने हाथसे दहिने चरणका

अहिंसासत्यमस्तेयंब्रह्मचर्यंदयार्जवम् ॥ क्षमाधृतिर्मिताहारःशौचंचेतियमादश ॥ ६ ॥ तपःसंतोषआस्तिक्यंदानंदेवस्यपूजनम् ॥ सिद्धांतश्रवणंचैवह्रीर्मतिश्चजपोहुतम् ॥ ७ ॥ दशैतेनियमाःप्रोक्तामयापर्वतनायक ॥ पद्मासनंस्वस्तिकंचभद्रंवज्रासनंतथा ॥ ८ ॥ वीरासनमितिप्रोक्तंक्रमादासनपंचकम् ॥ ऊर्वोरुपरिविन्यस्यसम्यक्पादतलेशुभे ॥ ९ ॥ अंगुष्ठौचनिबध्नीयाद्धस्ताभ्यांव्युत्क्रमात्ततः ॥ पद्मासनमितिप्रोक्तंयोगिनांहृदयंगमम् ॥ १० ॥ जानूर्वोरंतरेसम्यक्कृत्वापादतलेशुभे ॥ ऋजुकायोविशेद्योगीस्वस्तिकंतत्प्रचक्षते ११ ॥ सीवन्याःपार्श्वयोर्न्यस्यगुल्फयुग्मंसुनिश्चितम् ॥ वृषणाधःपादपार्ष्णीपार्ष्णिभ्यांपरिबंधयेत् ॥ १२ ॥ भद्रासनमितिप्रोक्तंयोगिभिःपरिपूजितम् ॥ ऊर्वोःपादौक्रमान्न्यस्यजान्वोःप्रत्यङ्मुखांगुली ॥ १३ ॥ करौविदध्यादाख्यातंवज्रासनमनुत्तमम् ॥ एकंपादमधःकृत्वाविन्यस्योरुंतथोत्तरे ॥ १४ ॥ ऋजुकायोविशेद्योगीवीरासनमितीरितम् ॥ इडयाकर्षयेद्वायुंबाह्यंषोडशमात्रया ॥ १५ ॥

बाँयेंसे बाँये चरणका अँगूठा पकडै यह योगियोंको प्रसन्नकरनेवाला पद्मासन कहा है ॥ १० ॥ जानु और ऊरुओंके अन्तर दोनों पैरके तलवे भलीभाँति स्थापितकर सरलभावसे सुखपूर्वक बैठनेको स्वस्तिक आसन कहते हैं ॥ ११ ॥ अंडकोशकी शिराके नीचे सीमनके दोनों पार्श्वमें दोनों गुल्फोंको भली प्रकार स्थापित कर दोनों हाथोंसे अंडकोशके अधोभागमें दोनों पैरोंका पार्ष्णिभाग हाथोंसे दृढभावसे बांधकर ॥ १२ ॥ बैठनेका नाम योगियोंने भद्रासन कहा है. योगी इसका विशेष आदर करते हैं दोनों चरण क्रमसे दोनों ऊरुओंपर रखकर दोनों जानुओंके निम्नभागमें अंगुली रखकर ॥ १३ ॥ दोनों हाथ स्थापनकर बैठनेको वज्रासन कहते हैं योगीजन एक ऊरुके नीचे एक चरण दूसरी ऊरुके नीचे दूसरा पद स्थापनकर ॥ १४ ॥ सरल कायासे जो स्थिति करते हैं इसको वीरासन कहते हैं. योगका ज्ञाता

प्रथम सोलह वार प्रणव उच्चारण करके इडा अर्थात् बाँईं नासिकाद्वारा गुह्य वायुको आकर्षण करै ॥ १५ ॥ फिर जितनी देरमें चौंसठ वार प्रणव उच्चारण हो इतने समयतक यह खैंची हुई वायु धारण करके पूरक करै फिर ३२ वार प्रणवोच्चारणकालमें शनैः २ सुषुम्नामध्यगत वायुको ॥ १६ ॥ दक्षिणनासापुटद्वारा रेचन करै योगशास्त्रज्ञाता पंडितोंने इसका नाम प्राणायाम कहा है ॥ १७ ॥ इस प्रकार वारंवार बाह्य वायु ग्रहणकरके पूरक कुंभक और रेचकका अभ्यास करै और क्रमानुसार प्रणवोच्चारणकी संख्या बढावै यह प्राणायाम पहले १२ वार फिर १६ वार और फिर क्रमसे और भी अधिक करै ॥ १८ ॥ सगर्भ और अगर्भके भेदसे प्राणायाम दो प्रकारका है इष्ट मंत्रके जप ध्यानादि पूर्वक जो प्राणायाम कियाजाता है वह सगर्भ है और जो प्राणायाम इष्ट मंत्रके जप ध्यानादिविना होता है वह विगर्भ प्राणायाम है ॥ १९ ॥ इस प्रकार क्रमसे प्राणायामका अभ्यास करते २ देहमें पसीना आनेसे वह प्राणायाम अधम, कम्प उत्पन्न होनेसे मध्यम और जिस

धारयेत्पूरितंयोगीचतुःषष्ट्यातुमात्रया ॥ सुषुम्नामध्यगंसम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रयाशनैः ॥ १६ ॥ नाड्यापिंगलयाचैवरेचयेद्योगवित्तमः ॥ प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः॥१७॥ भूयोभूयःक्रमात्तस्यबाह्यमेवंसमाचरेत् ॥ मात्रावृद्धिःक्रमेणैवसम्यग्द्वादशषोडश ॥ १८॥ जपध्यानादिभिःसार्धंसगर्भंतं विदुर्बुधाः ॥ तदपेतंविगर्भंचप्राणायामंपरेविदुः ॥ १९ ॥ क्रमादभ्यस्यतःपुंसोदेहस्वेदोद्गमोधमः ॥मध्यमःकंपसंयुक्तोभूमित्यागःपरोमतः ॥२०॥ उत्तमस्यगुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ॥ इंद्रियाणांविचरतांविषयेषुनिरर्गलम्॥ २१ ॥ बलादाहरणंतेभ्यःप्रत्याहारोऽभिधीयते ॥ अंगुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधारलिंगनाभिषु ॥ २२ ॥ हृद्ग्रीवाकंठदेशेषुलंबिकायांततोनसि ॥ भ्रूमध्येमस्तकेमूर्ध्निद्वादशांतेयथाविधि ॥ २३ ॥ धारणंप्राणमरुतोधारणेतिनिगद्यते ॥ समाहितेनमनसाचैतन्यांतरवर्तिना ॥ २४ ॥ आत्मन्यभीष्टदेवानांध्यानंध्यानमिहोच्यते ॥ समत्वभावनानित्यंजीवात्मपरमात्मनोः ॥ २५ ॥ समाधिमाहुर्मुनयःप्रोक्तमष्टांगलक्षणम् ॥ इदानींकथयेतेऽहंमंत्रयोगमनुत्तमम् ॥ २६ ॥

प्राणायाममें साधक भूमि त्यागकर ऊंचा उठता है वह उत्तम प्राणायाम है॥ २० ॥जबतक उत्तम प्राणायामका फल लाभ न हो तबतक अभ्यास करता रहै इन्द्रिय सदाही अपने २ विषयोंमें अबाधित भावसे विचरण करती हैं ॥ २१ ॥ उनको विषयोंसे बलपूर्वक रोकनेहीका नाम प्रत्याहार है, अँगूठा, गुल्फ, जानु, ऊरु, मूलाधार, लिंग, नाभि ॥ २२ ॥ हृदय, ग्रीवा, कंठ, लम्बिका, नासिका, भ्रूमध्य, मस्तक, मूर्धा (ब्रह्मरंध्र) इन द्वादशान्त स्थानमें विधिपूर्वक ॥ २३ ॥ प्राणवायुको रोक रखनेका नाम धारणा है. प्रथम ध्यानसे अन्तःकरणको चैतन्यवर्ती अर्थात् आत्मसंस्थ करके ॥ २४॥ उसमें अभीष्ट देवताके चिन्तनका नाम ध्यान है. जीवात्मा और परमात्मा की एकता भावना संप्रज्ञात समाधिको ॥ २५ ॥ मुनियोंने समाधि कहा है. यह अष्टांगलक्षणवाला योग तुमसे वर्णन किया अब मंत्रोंका सिद्धिदायक

अति उत्कृष्ट योग तुमसे वर्णन करती हूं ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज ! पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता होनेसे यह शरीर विश्व वा ब्रह्माण्ड कहा जाता है. यह पंचभूतात्मक चन्द्र सूर्य और अग्निसे युक्त होकर जीव ब्रह्मके ऐक्यज्ञानदायक होताहै ॥ २७ ॥ इस शरीरमें साढेतीन करोड नाडियाँ हैं. उनमें दश मुख्य हैं और दशमें भी तीन अतिशय प्रधान हैं ॥ २८ ॥ इनमें भी एक सुषुम्ना नाड़ी प्रधान है. चन्द्र सूर्य और अग्निरूपिणी इस नाड़ीने मेरुदण्डके मध्यभागमें स्थित होकर मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त गमन किया है इसके वामभागमें शुभ्रवर्ण चन्द्र रूपिणी इडा है ॥ २९ ॥ यह शक्तिरूपा अमृतमयी है और दक्षिणभागमें पुरुषरूपिणी सूर्य स्वरूपा पिंगला नाड़ी स्थित है ॥ ३० ॥ और वह्निप्रधानासुषुम्नानाड़ी सब तेजोमयी इसके मध्यमें स्थित चित्ररेखानामक नाडीके भीतर इच्छा, ज्ञान और क्रिया

विश्वंशरीरमित्युक्तंपंचभूतात्मकंनग ॥ चंद्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥२७॥ तिस्रःकोट्यस्तदर्धेनशरीरेनाडयोमताः ॥ तासुमुख्यादशप्रोक्ता स्ताभ्यस्तिस्रोव्यवस्थिताः ॥२८॥ प्रधानामेरुदंडेऽत्रचंद्रसूर्याग्निरूपिणी ॥ इडावामेस्थितानाडीशुभ्रातुचंद्ररूपिणी ॥२९॥ शक्तिरूपातुसानाडीसाक्षादमृतविग्रहा ॥ दक्षिणेयापिंगलाख्यापुंरूपासूर्यविग्रहा ॥ ३० ॥ सर्वतेजोमयीसातुसुषुम्नावह्निरूपिणी ॥ तस्यामध्येविचित्राख्येइच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ॥ ॥ ३१ ॥ मध्येस्वयंभूलिंगंतुकोटिसूर्यसमप्रभम ॥ तदूर्ध्वंमायावीजंतुहरात्माविंदुनादकम् ॥३२॥ तदूर्ध्वंतुशिखाकाराकुंडलीरक्तविग्रहा ॥ देव्यात्मिका तुसाप्रोक्तामदभिन्नानगाधिप ॥३३॥ तद्बाह्येहेमरूपाभंवादिसांतचतुर्दलम् ॥ द्रुतहेमसमप्रख्यंपद्मंतत्रविचिंतयेत् ॥३४॥ तदूर्ध्वंत्वनलप्रख्यंषड्दलंहीरकप्रभम् ॥ वादिलांतषड्वर्णेनस्वाधिष्ठानमनुत्तमम् ॥३५॥ मूलमाधारषट्कोणंमूलाधारंततोविदुः ॥ स्वशब्देनपरंलिंगंस्वाधिष्ठानंततोविदुः ॥ ३६ ॥

त्मक ॥ ३१ ॥ कोटिसूर्यके समान प्रभावशाली स्वयंभूलिंग प्रतिष्ठित है उसके ऊपर भागमें हरात्मा विन्दुनाद अर्थात् हकार, रेफ, ईकार विन्दुनादात्मक मायावीज स्थित है ॥ ३२ ॥ उसके ऊपरीभागमें दीपशिखाके समान लाल वर्ण देवीरूपिणी कुंडलिनी शक्ति विराजमान है. हे नगेश्वर ! यह मुझसे अभिन्न है ॥ ३३ ॥ इसके बहिर्भागमें पीतवर्ण सुवर्णके समान कान्तिवाले कमलकी चिन्ता करै उससे चार दलोंमें श, ष, स, ह, यह चार अक्षर ध्यान करै ॥ ३४ ॥ इसके ऊपर षट्कोण कमलका ध्यान करै जो अग्निके समान छः दलोंसे युक्त हीरेकेसी कान्तिवाला है इसके छहों दल- ब, भ, म, य, र, ल, इन अक्षरोंसे सम्पन्न हैं, स्व शब्दसे परलिंग जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह षट्कोण मूलके आधारवाला है, इसीसे इसको मूलाधार कहते हैं. स्वशब्दसे परलिंग और स्वाधिष्ठान जानना चाहिये यही स्वाधिष्ठान पद्म है ॥ ३६ ॥

इसके ऊपरनाभिस्थानमें विद्युत् छटा और मेघके समान कान्तिमान् अतितेजयुक्त महा प्रभावाला मणिपूर ॥ ३७॥ मणिवत्प्रभावाला होनेसे मणिपद्म कहाता है. उसमें दशदल–ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, यह अक्षरयुक्त है ॥ ३८ ॥ यह पद्म विष्णुसेअधिष्ठित होनेसे इसके ध्यानसे विष्णुका साक्षात्कार होता है. इसके ऊर्ध्वभागमें बालसूर्यके समान प्रभायुक्त अनाहत पद्म है ॥ ३९ ॥ यह क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, इन बारहवर्णों युक्त बारहदल सम्पन्न है इसके मध्यमें अयुत १०००० सूर्यके समान प्रभा सम्पन्न बाणलिंग विराजमान है॥ ४०॥ किसीप्रकारकी ताडनाके विनाही इससे शब्दब्रह्मकी उत्पत्ति होती है इसीसे मुनिजन इसको अनाहत पद्म कहते हैं ॥ ४१ ॥ यह पद्म आनंदका धाम है इसमें रुद्ररूपी पुरुष विराजते हैं इसके ऊपर भुविशुद्धनामक षोडश दल कमल ॥ ४२ ॥ अ, आ, इ,

तदूर्ध्वंनाभिदेशेतुमणिपूरमहाप्रभम्॥मेघाभंविद्युदाभंचवहुतेजोमयंततः ॥३७॥ मणिवद्भिन्नंतत्पद्मंमणिपद्मंतथोच्यते ॥ दशभिश्चदलैर्युक्तंडादिफांताक्षरान्वितम् ॥३८॥ विष्णुनाधिष्ठितंपद्मंविष्ण्वालोकनकारणम्॥तदूर्ध्वेनाहतंपद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥३९॥ कादिठांतदलैरर्कपत्रैश्चसमधिष्ठितम्॥तन्मध्ये वाणलिंगंतुसूर्यायुतसमप्रभम् ॥ ४०॥ शब्दब्रह्ममयंशब्दानाहतंतत्रदृश्यते॥अनाहताख्यंतत्पद्मंमुनिभिःपरिकीर्तितम्॥४१॥आनंदसदनंतत्तुपुरुषाधिष्ठितंपरम्॥तदूर्ध्वेभुविशुद्धाख्यंदलषोडशपंकजम्॥४२॥स्वरैःषोडशभिर्युक्तंधूम्रवर्णमहाप्रभम्॥विशुद्धंतनुतेयस्माज्जीवस्यहंसलोकनात् ॥४३॥ विशुद्धंपद्ममाख्यातमाकाशाख्यंमहाद्भुतम् ॥ आज्ञाचक्रंतदूर्ध्वेतुआत्मनाधिष्ठितंपरम् ॥ ४४ ॥ आज्ञासंक्रमणंतत्रतेनाज्ञेतिप्रकीर्तितम् ॥ द्विदलंहक्षसंयुक्तंपद्मंतत्सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥ कैलासाख्यंतदूर्ध्वंतुरोधिनीतुतदूर्ध्वतः ॥ एवंत्वाधारचक्राणिप्रोक्तानितवसुव्रत ॥ ४६ ॥

ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन सोलह स्वरोंसे युक्त धूम्रवर्णमहाकान्तिमान् है. परमात्माके अवलोकनसे इसमें जीव शुद्ध होता है अर्थात् दोनोंका अभेद साक्षात्कार होनेसे जीव विशुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ इसीकारण इसको विशुद्ध पद्म कहते हैं. यह महाअद्भुत पद्म आकाशनामसे अभिहित है इसके ऊपर–भ्रूमध्यमें आत्माका परम अधिष्ठान आज्ञाचक्र है ॥ ४४॥ यह ह और क्ष दोदलसे युक्त मनोहर है इसमें चित् स्थित होनेसे सब पदार्थोंका साक्षात्कार हो आता है. भूत भविष्य वर्तमान् वस्तुओंमें यह तुम्हारा कर्त्तव्य है. इसप्रकार परमेश्वरकी आज्ञाका संक्रमण होता है, इसीसे इसको आज्ञापद्म कहते हैं ॥ ४५॥ इसके ऊर्ध्वमें

कैलासचक्र और उसके ऊर्ध्वमें रोधिनीचक्र है. हे सुव्रत! इसप्रकार आपके निकट आधारचक्रोंका वर्णन किया ॥ ४६ ॥ योगियोंका कथन है कि, उसके ऊर्ध्वमें सहस्रारचक्र है यह बिन्दु अर्थात् परमात्माका स्थान है यह आपसे सम्पूर्ण योगमार्ग वर्णन किया ॥ ४७ ॥ यह जानकर जो करना चाहिये सोई कहती हू. पहले पूरक प्राणायाम द्वारा आधारचक्रमें मन संयुक्त करै, गुदा और मेढ्रके भीतर मूलाधारमें विराजमान कुंडलिनी शक्तिको मूलाधारमें प्राप्त वायुद्वारा आकुंचित करके प्रबोधित करै ॥ ४८ ॥ अनन्तर लिंगभेद क्रमसे अर्थात् पूर्वोक्त चक्रस्थित तेजोमय स्वयंभू इत्यादि लिंगका भेदकर उस उस मार्गमें उस कुंडलिनी शक्तिको सहस्रार स्थानमें लावै फिर उस परमशक्तिको सहस्रारमें स्थित शंभुके सहित एकीभूत रूपसे चिन्तन करै ॥ ४९ ॥ अनन्तर शिवशक्तिके संगमसे लाक्षारसकेसमान जो अमृत निर्गत होता है उसी आनंदस्वरूप अमृतसे योगसिद्धिकरी मायानाभिनी कुंडलिनी शक्तिको तृप्त करै ॥ ५० ॥ और छहों चक्रोंमें स्थित देवसमूहोंको उस अमृत

सहस्रारयुतंबिंदुस्थानंतदूर्ध्वमीरितम् ॥ इत्येतत्कथितंसर्वंयोगमार्गमनुत्तमम् ॥ ४७ ॥ आदौपूरकयोगेनाप्याधारेयोजयेन्मनः ॥ गुदमेढ्रांतरेशक्तिस्तामाकुंच्यप्रबोधयेत् ॥४८॥ लिंगभेदक्रमेणैवबिंदुचक्रंचप्रापयेत् ॥ शंभुनातांपराशक्तिमेकीभूतांविचिंतयेत् ॥४९॥ तत्रोत्थितामृतंयच्चुद्रुतलाक्षारसोपमम् ॥ पाययित्वातुतांशक्तिंमायाख्यांयोगसिद्धिदाम् ॥५०॥ षट्चक्रदेवतास्तत्रसंतर्प्यामृतधारया॥आनयेत्तेनमार्गेणमूलाधारंततःसुधीः॥ ॥ ५१ ॥ एवमभ्यस्यमानस्याऽप्यहन्यहनिनिश्चितम् ॥ पूर्वोक्तदूषितामंत्राःसर्वेसिध्यंतिनान्यथा ॥ ५२ ॥ जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यतेभवबंधनात् ॥ येगुणाःसंतिदेव्यामेजगन्मातुर्यथातथा ॥ ५३ ॥ तेगुणाःसाधकवरेभवंत्येवनचान्यथा ॥ इत्येवंकथितंतातवायुधारणमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इदानींधारणाख्यंतुशृणुष्वावहितोमम ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नेदेव्यांचेतोविधायच ॥ ५५ ॥ तन्मयोभवतिक्षिप्रंजीवब्रह्मैक्ययोजनात्॥ अथवासमलंचेतोयदिक्षिप्रंनसिद्ध्यति ॥ ५६ ॥ तदावयवयोगेनयोगीयोगान्समभ्यसेत् ॥ मदीयहस्तपादादावंगेतुमधुरेनग ॥ ५७ ॥

धाराद्वारा तृप्त करके पूर्वोक्त मार्गसे उस शक्तिको मूलाधार पद्ममें लावै ॥ ५१ ॥ जो प्रतिदिन इसप्रकार योगका अभ्यास करते हैं उनके सम्बन्धमें छिन्नादिदोष दूषित सब मंत्र सिद्ध होते हैं इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५२ ॥ और इसीसे जरामरणादि दुःखवाले संसार बंधनसे मुक्त होते हैं और मुझ जगन्मातामें जो सब गुण विद्यमान् हैं॥ ५३ ॥ ऐसे साधकको वह समस्त गुण प्राप्त होते हैं इसमें सन्देहनहीं. हे तात! यह तुमसे अति उत्तम वायुधारणयोग कथन किया॥ ५४ ॥ अब सावधान होकर चित्तधारणाख्ययोग सुनो. दिक् काल और देशादिद्वारा अपरिच्छिन्न देवीमूर्तिमें चित्तको स्थिर कर सकनेसे ॥ ५५ ॥ तन्मय होनेसे शीघ्रही जीवब्रह्मकी एकताका ज्ञान होता है उस समय साधक ब्रह्ममय हो जाता है और यदि चित्त रज तम द्वारा मलीन हो तो शीघ्र योगसिद्धि नहीं होती॥ ५६ ॥ तब योगी अवयवयोगसे योनाभ्यास

करे अर्थात् मेरे हस्तपादादि किसी मनोहर अंगमें॥५७॥ चित्तको लगाय एक एक स्थानको जय करता हुआ, चित्तकी शुद्धता होनेसे मेरे सब स्वरूपमें मनको स्थापन करे ॥५८॥ हे नगेन्द्र ! जबतक मुझ ब्रह्मरूपिणीमें चित्तका लय न हो तबतक मंत्रयोगपरायण साधक जप और होमके द्वारा इष्टमंत्रसाधनका अभ्यास करे ॥ ५९ ॥ मंत्राभ्यासयोगद्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है. योगके विना मंत्र सिद्धि नहीं होती और मंत्रके विना योगसिद्ध नहीं होता. मंत्र और योग दोनोंका अभ्यासही ब्रह्मज्ञानका कारण है ॥ ६० ॥ घरमें रक्खा हुआ अंधकारसे आच्छन्न घड़ा जिसप्रकार दीपकसे दिखाई देता है इसीप्रकार मायासे आवृत जीवात्माभी मंत्रद्वारा प्रकाशित होता है अर्थात् मंत्र मायाअंधकारको दूरकरके आत्माका स्वरूप प्रकाश कर देता है॥ ६१ ॥ हे पर्वतराज ! यह मैंने तुम्हारे समीप अंगके सहित सब योग विधिका

चित्तंसंस्थापयेन्मंत्रीस्थानस्थानजयात्पुनः ॥ विशुद्धाचित्तःसर्वस्मिन्रूपेसंस्थापयेन्मनः ॥ ५८ ॥ यावन्मनोलयंयातिदेव्यांसंविदिपर्वत ॥ तावदिष्टमनुंमंत्रीजपहोमैःसमभ्यसेत् ॥ ५९ ॥ मंत्राभ्यासेनयोगेनज्ञेयज्ञानायकल्पते ॥ नयोगेनविनामंत्रोनमंत्रेणविनाहिसः ॥ ६० ॥ द्वयोरभ्यासयोगोहिब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ॥ तमःपरिवृतेगेहेघटोदीपेनदृश्यते ॥ ६१ ॥ एवंमायावृतोह्यात्मामनुनागोचरीकृतः ॥ इतियोगविधिःकृत्स्नःसांगः प्रोक्तो मयाऽधुना ॥ ६२ ॥ गुरूपदेशतोज्ञेयोनान्यथाशास्त्रकोटिभिः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ देव्युवाच ॥ इत्यादियोगयुक्तात्माध्यायेन्मांब्रह्मरूपिणीम् ॥ भक्त्यानिर्व्याजयाराजन्नासनेसमुपस्थितः ॥ १ ॥ आविःसन्निहितंगुहावरंनाममहत्पदम् ॥ अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणन्निमिषच्चयत् ॥ २ ॥ एतज्जानथसदसद्वरेण्यंपरंविज्ञानाद्यद्वरिष्ठंप्रजानाम् ॥ यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणुचयस्मिँल्लोकानिहितालोकिनश्च ॥ ३ ॥

वर्णन किया ॥ ६२ ॥ यह विद्या गुरुके निकट उपदेश प्राप्तकरकेही जानी जाती है अन्यथा कोटिशास्त्रद्वारा भी इसका लाभ नहीं होसक्ता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे गिरिराज ! योगीजन इस प्रकार योगयुक्त हो आसनमें बैठ छलरहित भक्तिसे मुझ ब्रह्मरूपिणीका ध्यान करें ॥१॥ अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करती हूं सुनो यह ब्रह्म आवि अर्थात् प्रकाशमान वस्तु अतिसमीपवर्ती और गुहाचर अर्थात् सर्वव्यापक होकर भी केवल बुद्धिरूप गुहामेंही इसकी प्राप्ति होती है यह योगादि साधन गम्य है इस ब्रह्मसेही आकाशादि समस्त पदार्थ कल्पित होते हैं इसमेंही पक्षी मनुष्य निमेषादि क्रियावान् सब पदार्थ स्थापित हैं ॥ २ ॥ हे देवताओ ! मेरे इस ब्रह्मरूपको जानो जो माया और जगत् इन दोनोंसे श्रेष्ठ है लोकमें ज्ञानातीत और

वरिष्ठ अर्थात् सम्पूर्ण बुद्धियोंको भी गम्य नहीं है जो सूर्यादितेजका भी प्रकाशक है इससे वह सूर्यादितेजसेभी अत्यन्त दीप्तिमान् और अणुसेभी अणु अर्थात् अति सूक्ष्म है. जिसमें भूरादि लोक और उन लोकनिवासियोंकी स्थिति है ॥ ३ ॥ वह अक्षर अविनाशी पदार्थही ब्रह्म है. यही प्राण, वाणी और मन स्वरूप है. वही सत्य और अमृत स्वरूप है. हे सौम्य! मनरूपी बाणसे उसको विद्धकरना चाहिये अर्थात् उसमें मन समाधान करै॥ ४ ॥ हे सौम्य! उसके विद्ध करनेका उपाय कहती हूं॥ उपनिषद्शास्त्र रूपी महाधनुष ग्रहणकर उसमें ध्यान और उपासनाका तीक्ष्ण बाण संधान और सब इन्द्रियोंको अपने अपने २ विषयसे खैंचकर तद्गत चित्तसे उस ब्रह्मरूप लक्ष्यको विद्ध करै ॥ ५ ॥ जिस धनुआदिका विषय कहा है वह भली भाँति वर्णन करती हूंइस ब्रह्मरूप लक्ष्यवेधमें ॐकार वा देवी प्रणवही धनु है जिसप्रकार लक्ष्यमें बाणप्रवेशका कारण धनुषही है इसीप्रकार चित्तरूपी लक्ष्यमें प्रवेशसम्बन्धका प्रण वही कारणहै प्रणवका अभ्यास करते २ उससे संस्कृत हो प्रणवको अवलम्बनपूर्वक अप्रतिबद्ध भावसे ब्रह्ममें स्थिति कीजाती है,इसमें आत्मा अर्थात् अन्तःकरणही शर है जिस प्रकार शर लक्ष्यको विद्ध करताहै इसीप्रकार अन्तःकरणही आत्माको विद्ध करताहै इसीकारण

तदेतदक्षरंब्रह्मसप्राणस्तदुवाङ्मनः ॥ तदेतत्सत्यममृतंतद्वेद्धव्यंसौम्यविद्धि ॥ ४ ॥ धनुर्गृहीत्वौपनिषदंमहास्त्रंशरंह्युपासानिशितंसंधयीत ॥ आयम्यतद्भावगतेनचेतसालक्ष्यंतदेवाक्षरंसौम्यविद्धि ॥ ५ ॥ प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ॥ अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेत् ॥ ६ ॥ यस्मिन्द्यौश्चपृथिवीचांतरिक्षमोतंमनःसहप्राणैश्चसर्वैः ॥ तमेवैकंजानथात्मानमन्यावाचोविमुंचथामृतस्यैषसेतुः ॥ ७ ॥ अराइवरथनाभौसंहतायत्रनाड्यः ॥ सएषोंतश्चरतेबहुधाजायमानः ॥ ८ ॥ ओमित्येवंध्यायथात्मानंस्वस्तिवःपारायतमसःपरस्तात् ॥ दिव्येब्रह्मपुरेव्योम्निआत्मासंप्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

अन्तःकरणको शर कहागया है इस स्थलमें ब्रह्मही लक्ष्यवस्तु है साधक अप्रमत्त चित्तसे इस लक्ष्यको विद्ध करै तो बाण जिस प्रकार लक्ष्यभेद करके उसके संग एकात्मताको प्राप्त होता है इसीप्रकार साधकभी ब्रह्मके संग एकात्माको प्राप्त होसक्ते हैं ॥ ६ ॥ वह ब्रह्मपदार्थ अतिदुर्लक्ष्य वस्तु है इससे भलीभाँति लक्ष्य करनेको फिर कहा जाता है, जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सब इन्द्रियें और प्राणोंके सहित मन स्थित है, उसीको आत्मा जानना चाहिये. हे देवताओ! इसको जानकर अन्य अपर विद्यारूप वाक्योंका त्याग करे यह ब्रह्मज्ञानही मुक्तिका सेतु अर्थात् संसार सागरसे तारनेका हेतु है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार रथकी नाभिमें सब आरे मिलकर सन्निविष्ट रहते हैं इसीप्रकार जिस हृदयमें नाडियें प्रविष्ट हुई हैं उसी हृदयमें बुद्धिवृत्तिका साक्षीरूप आत्मा बुद्धिवृत्तिके द्वारा अनेकरूपयुक्त होकर स्थिति करता है ॥ ८ ॥ ॐकारका अवलम्बन कर यथोक्त प्रकारसे उसी आत्माको चिन्ता करनी चाहिये संसारसागरके पार जानेकी प्राप्तिमें तुम निर्विघ्न हो यह भगवतीका आशीर्वाद है. तुम

अविचारहित ब्रह्मस्वरूपको अवगत हो, वह ब्रह्म जिस स्थानमें प्रतिष्ठित है सुनो जोसर्वज्ञ सर्ववित् और जिसके जगत्सृष्टि आदिरूपकी विभूति पृथ्वीमें प्रसिद्ध है, वह प्रकाशशाली आत्मा दिव्य हृदयकमलमें प्रतिष्ठित होनेसे प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ उसआत्माकी मनोवृत्तिद्वारा भावना होती है, इसी कारण उसको मनोमय कहते हैं, यही प्राण और शरीरका नेता यही अन्नमय हृदयपिण्डमें बुद्धिको स्थितकर प्रतिष्ठित है, विवेकी पुरुष इसको भलीभाँति जानसक्ते हैं वह आनन्दरूप दुःखसे परे है, अविनाशीरूपसे प्रकाशित होता है ॥ १० ॥ आत्मज्ञानका फल कहती हैं उस परमात्माका साक्षात्कार होनेसे हृदयग्रंथि अर्थात् चैतन्य और अहंकारका तादात्म्यभाव नष्ट होजाता है, समस्त ज्ञेयवस्तु विषयक सन्देह दूर होजाता है प्रारब्धके अतिरिक्त सब कर्म नष्ट होजाते हैं जब उस परात्परका साक्षात्कार होता है ॥ ११ ॥ फिर पूर्वोक्त विषयको संक्षेपसे कहती हूं यह ब्रह्म ज्योतिर्मय परकोश अर्थात् आनंदमयकोशमें प्रतिष्ठित है यह सत्वादि तीनों गुणरहित निष्फल (मायार

मनोमयःप्राणशरीरनेताप्रतिष्ठितोऽन्नेहृदयंसन्निधाय ॥ तद्विज्ञानेनपरिपश्यंतिधीराआनंदरूपममृतंयद्विभाति ॥ १० ॥ भिद्यतेहृदयग्रंथिश्छिद्यं तेसर्वसंशयाः ॥ क्षीयंतेचाऽस्यकर्माणितस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥ ११ ॥ हिरण्मयेपरेकोशेविरजंब्रह्मनिष्कलम् ॥ तच्छुभ्रंज्योतिषांज्योतिस्तद्यदात्मविदोवि दुः ॥ १२ ॥ नतत्रसूर्योभातिनचंद्रतारकंनेमाविद्युतोभांतिकुतोऽयमग्निः ॥ तमेवभांतमनुभातिसर्वंतस्यभासासर्वमिदंविभाति ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्मपश्चाद्ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण ॥ अधश्चोर्ध्वंचप्रसृतंब्रह्मैवेदंविश्वंवरिष्ठम् ॥ १४ ॥ एतादृगनुभवोयस्यसकृतार्थोनरोत्तमः ॥ ब्रह्मभूतःप्रसन्ना त्मानशोचतिनकांक्षति ॥ १५ ॥ द्वितीयाद्भयंराजंस्तदभावाद्बिभेतिन ॥ नतद्वियोगोमेप्यस्तिमद्वियोगोपितस्यन ॥ १६ ॥

हित) स्वच्छवस्तु है, यह सर्वप्रकाशक सूर्यादिकाभी प्रकाशक है आत्मवित् जिसको बड़े परिश्रमसे जान्ते हैं वह हिरण्मय परकोशमें स्थित है ॥ १२ ॥ उस ब्रह्मको सूर्यप्रकाश नहीं करसके. चन्द्र तारा बिजली वा अग्निभी उसके प्रकाश करनेमें समर्थ नहीं; बहुत क्या यह सम्पूर्ण जगत् उस स्वप्रकाश आत्मासेही प्रकाशित होता है उससेही यह सब प्रकाशित है ॥ १३ ॥ यह अमृतमय ब्रह्मही आगे पीछे दक्षिणउत्तर नीचे और ऊपर भागमें स्थित है अधिक क्या इस सब जगत्कोही ब्रह्ममय जानना चाहिये॥ १४॥ हे गिरिराज! जो पुरुष श्रेष्ठ इसप्रकार अनुभव कर सक्ते हैं वही कृतार्थ हैं वह ब्रह्मस्वरूप प्रसन्नस्वभाव होकर शोक और विषयकी कांक्षा रहित होते हैं॥ १५॥ हे गिरिराज! द्वैतभावही भयका कारण है द्वैतभाव दूर होनेसे फिर संसारभय नहीं रहता, मैं अद्वैतभावनिष्ठसे वियुक्त नहीं हूं और वह मुझसे पृथक् नहींहै॥ १६॥

हे पर्वतराज ! यह निश्चय जानो, वह ज्ञानी व्यक्ति मैं हूं, जो मैं हूं सो वह ज्ञानी है, जिस किसी स्थानमें ज्ञानी क्यों न रहै उसी स्थानमें उसको मेरा दर्शन प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ मैं तीर्थ कैलास और वैकुण्ठमें निवास नहीं करती परन्तु जो ज्ञानी मुझमें परायण है उसीके हृदयकमलमें वास करती हूं ॥ १८ ॥ जो कोई मुझमें निष्ठावाले ज्ञानीकी एकवार पूजा करता है उसको मेरी पूजाका कोटिगुण फल होता है, जिसका चित्त चैतन्यस्वरूप ब्रह्ममें लीन हुआ है उसका वंश पवित्र है उसकी माता कृतकृत्य ॥ १९ ॥ और उस पुरुषसे पृथ्वी पुण्यशालिनी होती है. हे पर्वतराज ! आपने जो मुझसे ब्रह्मज्ञानका विषय पूँछा ॥ २० ॥ वह मैं ने सब कह दिया इस विषयमें अब कुछ कहना नहीं है. यह ज्येष्ठपुत्र भक्तिमान् शीलसम्पन्न ॥ २१ ॥ यथोक्त शिष्यसे कहना अन्यसे नहीं कहना जिसकी इष्टदेवमें पराभक्ति होती है और देवताके समान गुरुमें भक्ति होती है ॥ २२ ॥ उसीके निमित्त श्रेष्ठ पुरुष यह ब्रह्मविद्या प्रकाशकरते हैं अर्थात् उसी महात्माको यह विद्या प्रकाशित होतीहै

अहमेवससोऽहंवैनिश्चितंविद्धिपर्वत ॥ मद्दर्शनंतुतत्रस्याद्यत्रज्ञानीस्थितोमम ॥ १७ ॥ नाऽहंतीर्थेनकैलासेवैकुंठेवानकर्हिचित् ॥ वसामिकिंतुमज्ज्ञाऽनिहृदयांभोजमध्यमे ॥ १८ ॥ मत्पूजाकोटिफलदंसकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम् ॥ कुलंपवित्रंतस्याऽस्तिजननीकृतकृत्यका ॥ १९ ॥ विश्वंभरापुण्यवती चिल्लयोयस्यचेतसः ॥ ब्रह्मज्ञानंतुयत्पृष्टंत्वयापर्वतसत्तम ॥ २० ॥ कथितंतन्मयासर्वंनाऽतोवक्तव्यमस्तिहि ॥ इदंज्येष्ठायपुत्रायभक्तियुक्तायशीलिने ॥ २१ ॥ शिष्यायचयथोक्तायवक्तव्यंनाऽन्यथाक्वचित् ॥ यस्यदेवपराभक्तिर्यथादेवेतथागुरौ ॥२२ ॥ तस्यैतेकथिताह्यर्थाःप्रकाशंतेमहात्मनः ॥ येनोपदिष्टाविद्येयंसएवपरमेश्वरः ॥२३॥ यस्यायंसुकृतंकर्तुमसमर्थस्ततोऋणी ॥ पित्रोरप्यधिकःप्रोक्तोब्रह्मजन्मप्रदायकः ॥ २४ ॥ पितृजातंजन्मनष्टंनेत्थंजातंकदाचन ॥ तस्मैनद्रुह्येदित्यादिनिगमोप्यवदन्नग ॥ २५ ॥ तस्माच्छास्त्रस्यसिद्धांतोब्रह्मदातागुरुःपरः ॥ शिवेरुष्टेगुरुस्त्रातागुरौरुष्टेनशंकरः ॥ २६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनश्रीगुरुंतोषयेन्नग ॥ कायेनमनसावाचासर्वदातत्परोभवेत् ॥ २७ ॥ अन्यथातुकृतघ्नःस्यात्कृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ इंद्रेणाऽथर्वणायोक्ताशिरश्छेदप्रतिज्ञया ॥ २८ ॥

जो इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करते हैं वह साक्षात् परमेश्वरस्वरूप हैं॥ २३ ॥ इस विद्याको प्राप्त होकर शिष्य प्रत्युपकारमें असमर्थ होता है इससे जीवनपर्यन्त गुरुके समीप ऋणी रहता है, जो ब्रह्मरूपमें युक्त करते हैं वह ब्रह्मजन्मदाता गुरु माता पितासेभी अधिक पूज्य हैं ॥ २४ ॥ पितासे प्रगट होकर जन्म मरण होनेसे नष्ट होते हैं परन्तु ब्रह्मरूप जन्मसे फिर कभी नष्ट नहीं होता. हे पर्वतराज! "तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्यजानन्" इस श्रुतिनेभी कहाहै कि, ब्रह्मदाता गुरुका कार्य स्मरण कर कभी उससे द्रोह न करै ॥ २५ ॥ इसकारण शास्त्रके सिद्धान्तअनुसार ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ है ! शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षक होसक्ताहै, पर गुरुके रुष्ट होनेपर शिव कभी उसकी रक्षा नहीं करते ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज ! इसकारण काय मन वचनसे सर्वदा यत्नपूर्वक श्रीगुरुको संतुष्ट करै ॥ २७ ॥ अन्यथा वह कृतघ्नी होगा और कृतघ्न पुरुषकी

निष्कृति नहीं होती, गुरुके वचन उल्लंघन करनेसे क्या दशा होती है सो कहते हैं दध्यङ्नामक आथर्वण मुनिने इन्द्रसे प्रार्थना की कि, आप मुझे ब्रह्मविद्या दीजिये इन्द्रने कहा विद्या तौ दूंगा पर यदि आप अन्य किसीको यह विद्या दोगे तो मैंतुम्हारा मस्तक छेदन करूंगा. उनके स्वीकारकरनेपर इन्द्रने ब्रह्मविद्या दी ॥ २८ ॥ तब कुछ काल उपरान्त दोनों अश्विनीकुमारोंने मुनिके पास आय विद्याकी प्रार्थना की मुनिने कहा विद्या देनेसे इन्द्र मेरा मस्तक छेदन करेगा तब अश्विनीकुमार बोले हम आपका यह मस्तक छेदनकर आपके देहमें अश्वका मस्तक लगाये देते हैं उस मस्तकसेआप हमको विद्या उपदेश कीजिये, जब इन्द्र आपका यह मस्तक छेदन करेगा तब हम आपका पूर्वशिर संयुक्त करदेंगे मुनिने सम्मत हो उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया तब इन्द्रने आकर उनका वह मस्तक छेदन किया, तब अश्विनी कुमारोंने ॥ २९ ॥ उनका मुख्य शिर जोडकर फिर उनके मुख्य शिरसे ब्रह्मविद्या सुनी यह कथा श्रुतिसिद्धहै. इस प्रकार संकटसे प्राप्त होनेवाली विद्याको जिसने

अश्विभ्यांकथनेतस्यशिरश्छिन्नंचवज्रिणा ॥ अश्वीयंतच्छिरोनष्टंदृष्ट्वावैद्यौसुरोत्तमौ ॥ २९ ॥ पुनःसंयोजितंस्वीयंताभ्यांमुनिशिरस्तदा ॥ इतिसंकटसंपाद्यब्रह्मविद्यानगाधिप ॥ ३० ॥ लब्धायेनसधन्यःस्यात्कृतकृत्यश्चभूधर ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेदेवीगीतायांषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ हिमालयउवाच ॥ स्वीयांभक्तिंवदस्वांबयेनज्ञानंसुखेनहि ॥ जायेतमनुजस्याऽस्यमध्यमस्याऽविरागिणः ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ मार्गास्त्रयोमेविख्यातामोक्षप्राप्तौनगाधिप ॥ कर्मयोगोज्ञानयोगोभक्तियोगश्चसत्तम ॥ २ ॥ त्रयाणामप्ययंयोग्यःकर्तुंशक्योऽस्तिसर्वथा ॥ सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात् ॥ ३ ॥ गुणभेदान्मनुष्याणांसाभक्तिस्त्रिविधामता ॥ परपीडांसमुद्दिश्यदंभंकृत्वापुरःसरम् ॥ ४ ॥ मात्सर्यक्रोधयुक्तोयस्तस्य भक्तिस्तुतामसी ॥ परपीडादिरहितःस्वकल्याणार्थमेवच ॥ ५ ॥

प्राप्त किया, हे पर्वतराज ! वह धन्य और कृत कृत्य हैं ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ हिमालय बोले हे मातः ! अविरागी मध्यम अधिकारी पुरुषको जिस प्रकार सुखपूर्वक ज्ञानलाभ होसके इस समय आप वही अपना भक्तियोग कहो ॥ १ ॥ देवीने कहा हे नगेन्द्र ! मुक्तिप्राप्तिके निमित्त तीन मार्ग हैं. कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग ॥ २ ॥ इन तीनोंमें भक्तियोगही सहजमें सिद्ध होता है. कारण कि, यह योग द्रव्यव्यय और शरीरकी पीडाके विना केवल मनकी वृत्तिसेही संपादित होता है, इससेसुलभ है ॥ ३ ॥ सत्व, रज, तम इन तीन प्रकारके गुणभेदसे मनुष्यकी भक्ति सात्विकी राजसी और तामसी ऐसी तीन प्रकारकी होती है जो दम्भप्रकाशपूर्वक दूसरेको पीडा देनेके निमित्त ॥ ४ ॥ मात्सर्य और क्रोधादियुक्त होकर उपासना करताहै

उसकी तामसी भक्ति है और जो परपीडादिसे रहित हो अपने कल्याणके निमित्तही ॥ ५ ॥ सकाम भावसे यश और भोगमें लोलुप हो अतिभक्तिसे उस उस फलप्राप्तिके निमित्त अत्यन्त भक्तिसे उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ और अपनी अज्ञतासे हुई भेदबुद्धिद्वारा मुझे अपनेसे अन्य जानते हैं. हे नगाधिप ! उस पामरकी भक्ति राजसी है ॥ ७ ॥ परमात्माको अर्पणकिये कर्मही पापनाश करनेमें समर्थ होते हैं वह वेदोक्त कर्म दिन रात मुझे अवश्य कर्तव्य हैं ॥ ८ ॥ इसप्रकार निश्चय कर जो भेदबुद्धिसे मेरी प्रसन्नताके निमित्त नित्यकर्मानुष्ठान करताहै हे पर्वतराज ! उसकी सात्विकीभक्ति है ॥ ९ ॥ यह सात्विकी भक्ति परम प्रेमरूपा और परभक्तिकी प्रापिका है किन्तु यह स्वयंही पराभक्ति नहीं है कारण कि, इसमें भेदबुद्धि वर्तमान रहती है परन्तु राजसी और तामसी भक्ति परभक्तिकी प्रापिका नहीं इससे तामसी और

नित्यंसकामोह्रदयेयशोर्थीभोगलोलुपः ॥ तत्तत्फलसमावाप्त्यैमामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ६ ॥ भेदबुद्ध्यातुमांस्वस्मादन्यांजानातिपामरः ॥ तस्यभक्तिःसमाख्यातानगाधिपतुराजसी ॥ ७ ॥ परमेशार्पणंकर्मपापसंक्षालनायच ॥ वेदोक्तत्वादवश्यंतत्कर्तव्यंतुमयाऽनिशम् ॥ ८ ॥ इतिनिश्चितबुद्धिस्तुभेदबुद्धिमुपाश्रितः ॥ करोतिप्रीतयेकर्मभक्तिःसानगसात्त्विकी ॥ ९ ॥ परभक्तेःप्रापिकेयंभेदबुद्ध्यवलंबनात् ॥ पूर्वप्रोक्तेह्युभेभक्तीनपरप्रापिकेमते ॥ ॥ १० ॥ अधुनापरभक्तिंतुप्रोच्यमानांनिबोधमे ॥ मद्गुणश्रवणंनित्यंममनामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरायांमयिस्थिरम् ॥ चेतसोवर्तनंचैवतैलधारासमंसदा ॥ १२ ॥ हेतुस्तुतत्रकोवापिनकदाचिद्भवेदपि ॥ सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानांनचैषणा ॥ १३ ॥ मत्सेवातोऽधिकंकिंचिन्नैवजानातिकर्हिचित् ॥ सेव्यसेवकताभावात्तत्रमोक्षंनवांछति ॥ १४ ॥ परानुरक्त्यामामेवचिंतयेद्योह्यतन्द्रितः ॥ स्वाभेदेनैवमांनित्यंजानातिनविभेदतः ॥ १५ ॥

राजसी भक्तिका त्यागकरके इसकाही आश्रय करै ॥ १० ॥ हे नगेन्द्र ! अब मैं पराभक्तिको वर्णन करतीहूं तुम सुनो. जो कोई सदा मेरे गुणश्रवण और सदा मेरे नामको कीर्तन करताहै ॥ ११ ॥ जिसका मन कल्याण और गुण रत्नका आकर मुझमेंही तैलधाराके समान अविच्छिन्नभावसे सदा स्थित रहता है ॥ १२ ॥ और उसमें किसी फलके हेतु व किसी फलकी आकांक्षा नहीं करता तथा सामीप्य, सार्ष्टि सायुज्य और सालोक्य मुक्तिकी भी कामना नहीं करता ॥ १३ ॥ और जो प्राणी मेरी सेवासे अधिक और कुछ नहीं जान्ता, जो सेव्यसेवकभाव त्यागकर मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं करता ॥ १४ ॥ जो जितेन्द्रिय हो

परानुरक्तिपूर्वक मेरीही आकांक्षा करता है और मुझको अपनेसे पृथक् न करके मैंही सच्चिदानंदरूप हूं ऐसा जानता है ॥ १५ ॥ और जो सब जीवोंमें मेराही रूप जान्ता है अपने परायेमें समान प्रीतियुक्त है ॥ १६ ॥ जो चैतन्यके समानत्वसे सर्वत्र विद्यमान् सर्वस्वरूपिणी मेरे सहित सदा सब जीवोंका अभिन्नत्व जान्ता है ॥ १७ ॥ हे नगेश्वर! जो भेद बुद्धि त्यागके कारण चण्डालपर्यन्त सब जीवोंको नमस्कार और सत्कार करता है और भेदवर्जनसे कहीं भी जिसकी द्रोहबुद्धि नहीं है ॥ १८ ॥ जो मेरा मेरे भक्तोंका दर्शन मेरा शास्त्रश्रवण और मेरे मंत्रादिविषयमें श्रद्धायुक्त है ॥ १९ ॥ मेरेहीमें प्रेमसे आकुलमति हो मेरी कथामात्र सुननेसे रोमांचित शरीर होता है प्रेमके आंसुओंसे जिसके नेत्र पूर्ण और गद्गद कण्ठ होताहै ॥ २० ॥ हे नगेश्वर! जो अनन्यभावसे जगतकी योनि सर्व कारणोंकी कारण मुझ

मद्रूपत्वेनजीवानांचिंतनंकुरुतेतुयः ॥ यथास्वस्यात्मनिप्रीतिस्तथैवचपरात्मनि ॥ १६ ॥ चैतन्यस्यसमानत्वान्नभेदंकुरुतेतुयः ॥ सर्वत्रवर्तमानांमांसर्वरूपांचसर्वदा ॥ १७ ॥ नमतेयजतेचैवाप्याचांडालांतमीश्वर ॥ नकुत्रापिद्रोहबुद्धिंकुरुतेभेदवर्जनात् ॥ १८ ॥ मत्स्थानदर्शनश्रद्धामद्भक्तदर्शनेतथा ॥ मच्छास्त्रश्रवणेश्रद्धामंत्रतंत्रादिषुप्रभो ॥ १९ ॥ मयिप्रेमाकुलमतीरोमांचिततनुःसदा ॥ प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षःकंठगद्गदनिस्वनः ॥ २० ॥ अनन्येनैवभावेनपूजयेद्योनगाधिप ॥ मामीश्वरींजगद्योनिंसर्वकारणकारणम् ॥ २१ ॥ व्रतानिममदिव्यानिनित्यनैमित्तिकान्यपि ॥ नित्यंयःकुरुतेभक्त्यावित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २२ ॥ मदुत्सवदिदृक्षाचमदुत्सवकृतिस्तथा ॥ जायतेयस्यनियतंस्वभावादेवभूधर ॥ २३ ॥ उच्चैर्गायंश्चनामानिममैवखलुनृत्यति ॥ अहंकारादिरहितोदेहतादात्म्यवर्जितः ॥ २४ ॥ प्रारब्धेनयथायच्चक्रियतेतत्तथाभवेत् ॥ नमेचिंतास्तितत्रापिदेहसंरक्षणादिषु ॥ २५ ॥ इतिभक्तिस्तुयाप्रोक्तापरभक्तिस्तुसास्मृता ॥ यस्यांदेव्यतिरिक्तंतुनकिंचिदपिभाव्यते ॥ २६ ॥ इत्थंजातापराभक्तिर्यस्यभूधरतत्त्वतः ॥ तदैवतस्यचिन्मात्रेमद्रूपेविलयोभवेत् ॥ २७ ॥

परमेश्वरीकी पूजा करता है ॥ २१ ॥ जो भक्तिपूर्वक कृपणता त्याग मेरे नित्य नैमित्तिकके दिव्यव्रत करता है ॥ २२ ॥ जिसको स्वभावसेही मेरे उत्सव करने और देखनेकी इच्छा रहती है हे भूधर! ॥ २३ ॥ जो मेरे नाम ऊंचे स्वरसे लेकर गाते और नृत्य करते हैं जो अहंकार और देहके तादात्म्यभावसे रहित हैं ॥ २४ ॥ जो कोई यह समस्तही प्रारब्धकर्मानुसार होता है यह जानकर मेरे ध्यानके अतिरिक्त देहरक्षादिविषयमेंभी चिन्ता नहीं करते ॥ २५ ॥ उन पुरुषोंकी यह भक्ति पराभक्ति कहाती है, जिसमें देवीविचारके अतिरिक्त अन्य किसी विषयकी चिन्ता नहीं रहती ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज! इसप्रकार तत्त्वसे जिसको पराभक्ति प्राप्त हुई है वह

तत्कालही मेरे चिद्रूपमें लीन हो जाता है ॥ २७ ॥ जिस ज्ञानसे भक्ति और ज्ञानकी पूर्णता होती है इस कारण वैराग्य और भक्तिकी पराकाष्ठाकाही नाम ज्ञान है ज्ञानमें यह दोनोंही हैं ॥ २८ ॥ हे पर्वतराज ! जो भक्तिकरकेभी प्रारब्धवश मेरे ज्ञानके अधिकारी नहीं होते वह मणिद्वीपमें गमनकरते हैं ॥ २९ ॥ हे पर्वतराज ! वहां जाकर इच्छा न करनेसे भी अनेक भोगोंकी प्राप्ति होती है, उसके अन्तमें मेरा चिद्रूप ज्ञानलाभ करकै ॥ ३० ॥ उस ज्ञानसे मुक्त होजाता है. कारण कि, ज्ञानके विना मुक्ति नहीं होती यहां जिसको संवित् स्वरूप हृदयमें प्राप्त प्रत्यगात्माका ज्ञान होता है ॥ ३१ ॥ तो मेरे सम्वित् रूपका ज्ञान होनेसे उसके प्राण उत्क्रान्त नहीं होते इस शरीरमेंही लय होजाते हैं "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" इतिश्रुतेः उसका ब्रह्मके साथ अभेद होता है " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " इति श्रुतेः ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार कंठमें स्थित सुवर्णका भ्रमवश नष्ट होना जानाजाता है और भ्रमके नष्ट होनेसे प्राप्त वस्तुकीही प्राप्ति मानी जाती है ॥ ३३ ॥ हे नगसत्तम ! मेरे चिद्रूपतनुविहित घटादिकार्य अविदित माया

भक्तेस्तुयापराकाष्ठासैवज्ञानंप्रकीर्तितम् ॥ वैराग्यस्यचसीमासाज्ञानेतदुभयंयतः ॥२८॥ भक्तौकृतायांयस्यापिप्रारब्धवशतोनग ॥ नजायतेममज्ञानंमणिद्वीपंसगच्छति ॥२९॥ तत्रगत्वाऽखिलान्भोगाननिच्छन्नपिचर्च्छति ॥ तदंतेममचिद्रूपज्ञानंसम्यग्भवेन्नग ॥३०॥ तेनमुक्तःसदैवस्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्नचान्यथा ॥ इहैवयस्यज्ञानंस्याद्धृद्गतप्रत्यगात्मनः ॥ ३१ ॥ ममसंवित्परतनोस्तस्यप्राणाव्रजंतिन ॥ ब्रह्मैवसंस्तदाप्नोतिब्रह्मैवब्रह्मवेदयः ॥ ३२ ॥ कंठचामीकरसमज्ञानात्तुतिरोहितम् ॥ ज्ञानादज्ञाननाशेनलब्धमेवाहिलभ्यते ॥३३॥ विदिताविदितादन्यन्नगोत्तमवपुर्मम ॥ यथादर्शेतथाऽऽत्मनियथाजलेतथापितृलोके ॥३४॥ छायातपौयथास्वच्छौविविक्तौतद्वदेवहि ॥ ममलोकेभवेज्ज्ञानंद्वैतभानविवर्जितम् ॥३५॥ यस्तुवैराग्यवानेवज्ञानहीनोम्रियेतचेत् ॥ ब्रह्मलोकेवसेन्नित्यंयावत्कल्पंततःपरम् ॥ ३६ ॥ शुचीनांश्रीमतांगेहेभवेत्तस्यजनिःपुनः ॥ करोतिसाधनंपश्चात्ततोज्ञानंहिजायते ॥ ३७ ॥ अनेकजन्मभीराजञ्ज्ञानंस्यान्नैकजन्मना ॥ ततःसर्वप्रयत्नेनज्ञानार्थंयत्नमाश्रयेत् ॥३८॥ नोचेन्महान्विनाशःस्याज्जन्मैतद्दुर्लभंपुनः ॥ तत्राऽपिप्रथमेवर्णेवेदेप्राप्तिश्चदुर्लभा ॥३९॥

रूपसे भिन्न हैं जिसप्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्ब पडता है इसीप्रकार इस देहमें आत्माका अनुभव होता है और जिसप्रकार जलमें प्रतिबिम्ब पूर्वकी अपेक्षा विविक्तरूपसे प्रकाशित होता है इसीप्रकारसे पितृलोकमें देहसे विविक्तभावमें आत्माका अनुभव होता है ॥ ३४ ॥ जैसे छाया और आतपका भेद प्रकाशस्वरूपसे स्वच्छरूपसे दीखता है इसीप्रकार मणिद्वीपमें द्वैतभाववर्जित ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥ जो वैराग्यवान् होकर पूर्णज्ञान प्राप्त हुये विना प्राणत्याग करते हैं वह प्रलयपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करके ॥ ३६ ॥ फिर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके घर जन्म ग्रहणकर साधन करने उपरान्त फिर ज्ञानलाभ करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! एक जन्ममें नहीं अनेक जन्मोंमें ज्ञान होता है इसकारण सब प्रयत्नसे ज्ञानको आश्रय करै ॥ ३८ ॥ यदि मनुष्यजन्म प्राप्त होकर ज्ञानलाभ न किया

तो विनाश होगा. कारण कि, मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है उसमें भी ब्राह्मण और उसमें भी वेदप्राप्ति बहुतही दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा यह षट्सम्पत्ति, योगसिद्धि और उत्तम गुरुकी प्राप्ति यह इस लोकमें बडी दुर्लभ है ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंकी पटुता शरीरका संस्कार और अनेक जन्मोंके पुण्योदयसे मोक्षमें इच्छा होती है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य साधनसे सफल होनेवाले इस शरीरको प्राप्त करके ज्ञानके निमित्त यत्न नहीं करता उसका जन्म निरर्थक है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसकारण यथाशक्ति ज्ञानप्राप्तिके निमित्त यत्न करे तो अवश्य उसको पदपदमें अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जैसे दूधमें घृत निमग्न है इसीप्रकार सब भूतोंमें ज्ञान निवास करता है, उसकी मंथानभूत मनसे सदा मथना चाहिये॥ ४४ ॥ज्ञानको प्राप्त होकरही यह प्राणी कृतार्थ होता है यह वेदान्तकी घोषणा है यह संक्षेपसे आपके प्रति सब वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा है?॥ ४५॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्याय॥ ३७॥

शमादिषट्कसंपत्तियोंगसिद्धिस्तथैवच ॥ तथोत्तमगुरुप्राप्तिःसर्वमेवाऽत्रदुर्लभम् ॥ ४० ॥ तथेंद्रियाणांपटुतासंस्कृतत्वंतनोस्तथा ॥ अनेकजन्मपुण्यैस्तुमोक्षेच्छाजायतेततः ॥ ४१ ॥ साधनेसफलेऽप्येवंजायमानेऽपियोनरः ॥ ज्ञानार्थंनैवयततेतस्यजन्मनिरर्थकम् ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्यथाशक्त्याज्ञानार्थंयत्नमाश्रयेत् ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्यफलमाप्नोतिनिश्चितम् ॥ ४३ ॥ घृतमिवपयसिनिगूढंभूतेभूतेचवसतिविज्ञानम् ॥ सततंमंथयितव्यंमनसामंथानभूतेन ॥ ४४ ॥ ज्ञानंलब्ध्वाकृतार्थःस्यादितिवेदांतडिंडिमः ॥ सर्वमुक्तंसमासेनकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥ ॥इति श्रीदे० म० सप्तमस्कंधेदेवीगीतायांसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ ॥हिमालयउवाच॥कतिस्थानानिदेवेशिद्रष्टव्यानिमहीतले॥ मुख्यानिचपवित्राणिदेवीप्रियतमानिच ॥१॥ व्रतान्यपितथायानितुष्टिदान्युत्सवाअपि ॥ तत्सर्ववदमेमातःकृतकृत्योयतोनरः॥२॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वदृश्यंममस्थानंसर्वेकालाव्रतात्मकाः ॥ उत्सवाःसर्वकालेषुयतोऽहंसर्वरूपिणी॥३॥तथापिभक्तवात्सल्यात्किंचित्किंचिदथोच्यते ॥ शृणुष्वाऽवहितोभूत्वानगराजवचोमम ॥४॥ कोलापुरंमहास्थानंयत्रलक्ष्मीःसदास्थिता ॥ मातुःपुरंद्वितीयंचरेणुकाधिष्ठितंपरम् ॥५॥ तुलजापुरंतृतीयंस्यात्सप्तशृंगंतथैवच ॥ हिंगुलायामहास्थानंज्वालामुख्यास्तथैवच ॥६॥

हिमालय बोले हे देवि ! इस पृथ्वीमें तुम्हारे मुख्य और प्रिय कितने स्थान हैं सो तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे मातः ! जिन सब व्रत और उत्सवका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होते हैं अपने प्रीतिदायक उन सब व्रत और उत्सवका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज ! मैं सर्वाधिष्ठानस्वरूपिणी हूं इसकारण भूमण्डलमें जितने स्थान विद्यमान हैं वह सबही मेरी अधिष्ठान भूमि है और मैं सब कालमयी हूं इसकारण सबकालही मेरा व्रत और उत्सवात्मक है. इस कारण जिस समय जिसका अनुष्ठान करै उसकोही मेरी प्रीतिप्रद जाने ॥ ३॥ पर तथापि भक्तवत्सलतासे कुछ तुमसे कहती हूं. हे नगराज ! वह सावधान होकर मुझसे सुनो ॥ ४॥ दक्षिणदेशमें कोलापुर (करवीर) स्थानमें लक्ष्मीनामसे सदा स्थित हूं सह्यनाम पर्वतमें मातृपुरस्थानमें रेणुकारूपसे निवास करती हूं ॥ ५ ॥ तुलजापुर और सप्तशृंग

स्थानमें हिंगुला और ज्वालामुखी निवासकरती हैं ॥ ६ ॥ यह शाकम्भरी, भ्रामरी, श्रीरक्तदन्तिका और दुर्गाका स्थान है ॥ ७ ॥ विन्ध्याचल निवासि नीका सर्वोत्तम स्थान है, कांचीपुरमें अन्नपूर्णाका महास्थान ॥ ८ ॥ यही पुर भीम देवी विमला श्रीचन्द्रकला और कौशिकीका महास्थान है ॥ ९ ॥ नीलपर्वतके शृंगमें नीलाम्बरीका परमस्थान और सुन्दर श्रीनगरको जाम्बूनदेश्वरीका परम स्थान जानो ॥ १० ॥ नेपालमें गुह्यकालीका उत्कृष्ट स्थान है. चिदम्बरदेशमें मीनाक्षीका परमस्थान है ॥ ११ ॥ वेदारण्यक महास्थानमें सुन्दरी देवी, एकाम्बर महास्थानमें पराशक्ति स्थित रहतीहै ॥ १२ ॥ महालसा, योगेश्वरी और नीलसर स्वतीका

शाकंभर्याःपरंस्थानंभ्रामर्याःस्थानमुत्तमं ॥ श्रीरक्तदंतिकास्थानंदुर्गास्थानंतथैवच ॥७॥ विंध्याचलनिवासिन्याःस्थानंसर्वोत्तमोत्तमम् ॥ अन्नपूर्णामहास्थानंकांचीपुरमनुत्तमम् ॥८॥ भीमादेव्याःपरंस्थानंविमलास्थानमेवच ॥ श्रीचंद्रलामहास्थानंकौशिकीस्थानमेवच ॥९॥ नीलांबायाःपरंस्थानंनीलपर्वतमस्तके ॥ जांबूनदेश्वरीस्थानंतथाश्रीनगरंशुभम् ॥१०॥ गुह्यकाल्यामहास्थानंनेपालेयत्प्रतिष्ठितम् ॥ मीनाक्ष्याःपरमंस्थानंयच्चप्रोक्तंचिदंबरे ॥११॥ वेदारण्यंमहास्थानंसुंदर्याःसमाधिष्ठितम् ॥ एकांबरंमहास्थानंपरशक्त्याप्रतिष्ठितम् ॥१२॥ महालसापरंस्थानंयोगेश्वर्यास्तथैवच ॥ तथानीलसरस्वत्याःस्थानंचीनेषुविश्रुतम् ॥ १३ ॥ वैद्यनाथेतुवगलास्थानंसर्वोत्तमंमतम् ॥ श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्यामणिद्वीपंममस्मृतम् ॥१४॥ श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याःकामाख्यायोनिमंडलम् ॥ भूमंडलेक्षेत्ररत्नंमहामायाधिवासितम् ॥१५॥ नातःपरतरंस्थानंक्वचिदस्तिधरातले ॥ प्रतिमासंभवेद्देवीयत्रसाक्षाद्रजस्वला ॥१६॥ तत्रत्यादेवताःसर्वाःपर्वतात्मकतांगताः ॥ पर्वतेषुवसंत्येवमहत्योदेवताअपि ॥ १७ ॥ तत्रत्यापृथिवीसर्वादेवीरूपास्मृताबुधैः ॥ नातःपरतरंस्थानंकामाख्यायोनिमंडलात् ॥ १८ ॥

स्थान चीनदेशमें है ॥ १३ ॥ वैद्यनाथमें बगलाका सर्वोत्तमस्थान है मणिद्वीपमें मुझ भुवनेश्वरीका परम स्थान है ॥ १४ ॥ जिस कामरूदेशमें सतीका योनिमंडल गिरहौ वह कामाख्या योनिमंडल त्रिपुरभैरवीका महास्थान है भूमण्डलमें यह क्षेत्ररत्न है इसकारण ऐसा दूसरा स्थान नहीं है ॥ १५ ॥ इससे अधिक पृथ्वीमें ऐसा कोई स्थान नहीं है इस स्थानमें महामाया प्रत्येक मासमें रजस्वलाहोती है ॥ १६ ॥ यहांके सब देवता पर्वतभावको प्राप्त हो वहां निवास करते हैं ॥ १७ ॥ वहांकी सब पृथ्वी देवीरूप है

ऐसा पंडित कहते हैं. इस कामाख्या योनिमण्डलसे श्रेष्ठ दूसरा स्थान नहीं है ॥ १८ ॥ पुष्करक्षेत्र गायत्रीका परम स्थान है अमरेशमें चण्डिका और प्रभासमें पुष्करेक्षिणी निवास करती हैं ॥ १९ ॥ नैमिषमहास्थानमें लिंगधारिणी देवी, पुष्कराक्षमें पुरहूता और आषाढी स्थानमें रति निवास करतीहैं ॥ २० ॥ चण्डमुण्डके महास्थानमें दण्डिनी, परमेश्वरी, भारभूतिस्थानमें भूति, नकुलस्थानमें नकुलेश्वरी निवासकरतीहैं ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्रस्थानमें चन्द्रिका, श्रीपर्वतमें शांकरी जप्येश्वरमें त्रिशूला और आम्रातकेश्वरमें सूक्ष्मा निवास करती हैं ॥ २२ ॥ उज्जयनीमें शांकरी मध्यमेश्वरमें शर्वाणी केदार महाक्षेत्रमें प्रसिद्धमार्गदायिनी ॥ २३ ॥ भैरवस्थानमें भैरवी गयामें मंगला कुरुक्षेत्रमें स्थाणुप्रिया नाकुलमें स्वायम्भुवी ॥ २४ ॥ कनखलमें उग्रा विमलेश्वरमें विश्वेशा अट्टहासमें महानन्दा महेन्द्र

गायत्र्याश्वपरंस्थानंश्रीमत्पुष्करमीरितम् ॥ अमरेशेचंडिकास्यात्प्रभासेपुष्करेक्षिणी ॥ १९ ॥ नैमिषेतुमहास्थानेदेवीसालिङ्गधारिणी ॥ पुरुहूतापुष्कराक्षेअषाढौचरतिस्तथा ॥ २० ॥ चंडमुंडीमहास्थानेदंडिनीपरमेश्वरी ॥ भारभूतौभवेद्भूतिर्नाकुलेनकुलेश्वरी ॥ २१ ॥ चंद्रिकातुहरिश्चंद्रेश्रीगिरौशांकरीस्मृता ॥ जप्येश्वरेत्रिशूलास्यात्सूक्ष्माचाम्रातकेश्वरे ॥ २२ ॥ शांकरीतुमहाकालेशर्वाणीमध्यमाभिधे ॥ केदाराख्येमहाक्षेत्रेदेवीसामार्गदायिनि ॥ २३ ॥ भैरवाख्येभैरवीसागयायांमंगलास्मृता ॥ स्थाणुप्रियाकुरुक्षेत्रेस्वायंभुव्यपिनाकुले ॥ २४ ॥ कनखलेभवेदुग्राविश्वेशाविमलेश्वरे ॥ अट्टहासेमहानंदामहेंद्रेतुमहांतका ॥ २५ ॥ भीमेभीमेश्वरीप्रोक्तास्थानेवस्त्रापथेपुनः ॥ भवानीशांकरीप्रोक्तारुद्राणीत्वर्धकोटिके ॥ २६ ॥ अविमुक्तेविशालाक्षीमहाभागामहालये ॥ गोकर्णेभद्रकर्णीस्याद्भद्रास्याद्भद्रकर्णके ॥ २७ ॥ उत्पलाक्षीसुवर्णाक्षेस्थाण्वीशास्थाणुसंज्ञिके ॥ कमलालयेतुकमलाप्रचंडाछगलंडके ॥ २८ ॥ कुरंडलेत्रिसंध्यास्यान्माकोटेमुकुटेश्वरी ॥ मंडलेशेशांडकीस्यात्कालीकालंजरेपुनः ॥ २९ ॥ शंकुकर्णेध्वनिः प्रोक्तास्थूलास्यात्स्थूलकेश्वरे ॥ ज्ञानिनांहृदयांभोजेहृल्लेखापरमेश्वरी ॥ ३० ॥ प्रोक्तानीमानिस्थानानिदेव्याःप्रियतमानिच ॥ तत्तत्क्षेत्रस्यमाहात्म्यंश्रुत्वापूर्वंनगोत्तम ॥ ३१ ॥

पर्वतमें महान्तका ॥ २५ ॥ भीम स्थानमें भीमेश्वरी वस्त्रापथमें भवानी शांकरीअर्धकोटिस्थानमें रुद्राणी ॥ २६ ॥ अविमुक्त स्थानमें विशालाक्षी महालयमें महाभागा गोकर्णमें भद्रकर्णी भद्रकर्णमें भद्रा ॥ २७ ॥ सुवर्णाख्य स्थानमें उत्पलाक्षी स्थाणुस्थानमें स्थाण्वीशा, कमलालयमें कमला छगलंडस्थान [दक्षिण देशमें समुद्रके निकट है] में प्रचण्डा ॥ २८ ॥ करण्डमें त्रिसंध्या माकोटमें मुकुटेश्वरी मण्डलेशमें शाण्डकी कालंजरमें काली ॥ २९ ॥ शंकुकर्णमें ध्वनि स्थूलकेश्वरमें स्थूला और ज्ञानियोंके हृदयकमलमें परमेश्वरी देवी हृल्लेखा प्राणशक्ति रूपसे निवास करती हैं ॥ ३० ॥ हे नगेश्वर ! यह सब स्थान देवीके प्रिय हैं. उन

उन क्षेत्रोंका माहात्म्य सुनकर ॥ ३१ ॥ उसमें कहीं विधिके अनुसार देवीकी पूजा कर. हे नगोत्तम! अथवा सब पुण्यक्षेत्र काशीमें विद्यमान हैं ॥ ३२ ॥ देवीकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य नित्य काशीमें निवास करै उन स्थानोंको देखताहुआ निरन्तर देवीका जप करै ॥ ३३ ॥ और भगवतीके चरणकमलका ध्यान करताहुआ भवबंधनसे छूटजाता है. यह देवीके नाम जो प्रभातकाल उठकर पढताहै ॥ ३४ ॥ हे नगसत्तम! उसीसमय उसके पाप नष्ट होजाते हैं और ब्राह्मणोंके समीप श्राद्धकालमें जो निर्मल नाम पढता है ॥ ३५ ॥ उसके सब पितर मुक्त होकर परगतिको प्राप्त होते हैं. हे सुव्रत! अब तुमसे व्रतोंको कहती हूं ॥ ३६ ॥ नरनारियोंको यत्नपूर्वक व्रतानुष्ठान करना चाहिये अनन्तर तृतीयाव्रत, रसकल्याणिनीव्रत ॥ ३७ ॥ आर्द्रानन्दकरव्रत यह तृतीयाके व्रत हैं शुक्रवारका व्रत कृष्णचतुर्दशीका व्रत

तदुक्तेनविधानेनपश्चाद्देवींप्रपूजयेत् ॥ अथवासर्वक्षेत्राणिकाश्यांसंतिनगोत्तम ॥ ३२ ॥ तत्रनित्यंवसेन्नित्यंदेवीभक्तिपरायणः ॥ तानिस्थानानिसंपश्य ञ्जपन्देवींनिरंतरम् ॥ ३३ ॥ ध्यायंस्तच्चरणांभोजंमुक्तोभवतिबंधनात् ॥ इमानिदेवीनामानिप्रातरुत्थाययःपठेत् ॥ ३४ ॥ भस्मीभवंतिपापानितत्क्षणान्नग सत्वरम् ॥ श्राद्धकालेपठेदेतान्यमलानिद्विजाग्रतः ॥ ३५ ॥ मुक्तास्तात्पितरःसर्वेप्रयांतिपरमांगतिम् ॥ अधुनाकथयिष्यामिव्रतानितवसुव्रत ॥ ३६ ॥ नारीभिश्च नरैश्चैवकर्तव्यानिप्रयत्नतः ॥ व्रतमनंततृतीयाख्यंरसकल्याणिनीव्रतम् ॥ ३७ ॥ आर्द्रानंदकरंनाम्नातृतीयायाव्रतंचयत् ॥ शुक्रवारव्रतंचैवतथाकृष्णचतुर्दशी ॥ ३८ ॥ भौमवारव्रतंचैवप्रदोषव्रतमेवच ॥ यत्रदेवोमहादेवोदेवींसंस्थाप्यविष्टरे ॥ ३९ ॥ नृत्यंकरोतिपुरतःसार्धंदेवैर्निशामुखे ॥ तत्रोपोष्यरजन्यादौप्रदोषेपूजये च्छिवाम् ॥ ४० ॥ प्रतिपक्षंविशेषेणतद्देवीप्रीतिकारकम् ॥ सोमवारव्रतंचैवममाऽतिप्रियकृन्नग ॥ ४१ ॥ तत्रापिदेवींसंपूज्यरात्रौभोजनमाचरेत् ॥ नवरात्रद्वयंचैव व्रतंप्रीतिकरंमम ॥ ४२ ॥ एवमन्यान्यपिविभोनित्यनैमित्तिकानिच ॥ व्रतानिकुरुतेयोवैमत्प्रीत्यर्थंविमत्सरः ॥ ४३ ॥ प्राप्नोतिममसायुज्यंसमेभक्तःसमे प्रियः ॥ उत्सवानपिकुर्वीतदोलोत्सवमुखान्विभो ॥ ४४ ॥

॥ ३८ ॥ भौमवारव्रत प्रदोषव्रत यह चारप्रकारके व्रत हैं इन व्रत और प्रदोषसमय देवदेव महादेव देवीको आसनमें बैठाय ॥ ३९ ॥ देवताओंके सहित देवीके सन्मुख नृत्य करतेहैं इन व्रतोंमें उपवास कर प्रदोषके समय मंगलमयी शिवाका पूजन करै ॥ ४० ॥ और जो प्रति पखवारेमें ऐसा करताहै उसपर देवी अधिक प्रसन्न होतीहै हे नग! सोमवारका व्रत मुझको अतिप्रिय है ॥ ४१ ॥ उसमेंभी देवीको पूजनकर रात्रिमें भोजन करै दोनों नवरात्रियोंमें मेरा व्रत प्रसन्न करनेवाला है ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे और भी जो मत्सरहीन होकर मेरी प्रीतिके निमित्त नित्यनैमित्तिक व्रत करताहै वह वे उपांगललितादि व्रत हैं ॥ ४३ ॥ इनके करनेसे मेरी सायुज्य मिलती है

वह मेरा भक्त और मुझे प्रियहै फिर चैत्र शुक्ल तीजको दोलाउत्सव करै शंकर सहित देवीकी कुंकुम अगर, कपूर, मणि, वस्त्र, सुगंध, माला, धूप, दीपादिसे पूजाकर झुलावै इत्यादि और भी उत्सव करै ॥ ४४ ॥ आषाढपूर्णिमाको शयनोत्सव वा इसकेआगेकी तीज कार्त्तिक पूर्णिमाको जागरणोत्सव, आषाढ शुक्लतृतीयाको रथोत्सव करै. इसमें पृथ्वीको रथ, चन्द्रसूर्यको चक्र वेदोंको अश्व ब्रह्माको सारथि यत्ने अनेकमणियोंसे जटित फूलमालायुक्त रथकी कल्पना कर उसमें शिवाको बैठावै और लोकोंकी रक्षा तथा लोकोंके देखनेको अम्बा रथपर चढी हैं यह भावना करे रथकेचलनेमें शत २ जय शब्द करै. हे भगवती ! हम दीन जनोंकी रक्षा करो. इसप्रकार स्तोत्र पढ बाजे बजाय सीमाके समीप रथ लेजाय पूजा करै. फिर घर लावै. उमासंहिता (शिवपुराण) में यह कथा वर्णन की है. चैत्रपूर्णिमामें दमनोत्सव ॥ ४५ ॥

शयनोत्सवंयथाकुर्यात्तथाजागरणोत्सवम् ॥ रथोत्सवंचमेकुर्याद्दमनोत्सवमेवच ॥ ४५ ॥ पवित्रोत्सवमेवापिश्रावणेप्रीतिकारकम् ॥ ममभक्तःसदाकुर्या देवमन्यान्महोत्सवान् ॥ ४६ ॥ मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्यातथाचैवसुवासिनीः ॥ कुमारीर्वटुकांश्चापिमद्बुद्ध्यातद्गतांतरः ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्येनरहितो यजेदेतान्सुमादिभिः ॥ यएवंकुरुतेभक्त्याप्रतिवर्षमतंद्रितः ॥ ४८ ॥ सधन्यःकृतकृत्योऽसौमत्प्रीतेःपात्रमंजसा ॥ सर्वमुक्तंसमासेनममप्रीतिप्रदायकम् ॥ ॥ ४९ ॥ नाऽशिष्यायप्रदातव्यंनाऽभक्तायकदाचन ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ हिमालयउवाच ॥ देवदेविमहेशानिकरुणासागरेंबिके ॥ ब्रूहिपूजाविधिंसम्यग्यथावदधुनानिजम् ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वक्ष्येपूजाविधिंराजन्नंबिकायायथाप्रियम् ॥ अत्यंतश्रद्धयासार्धंशृणुपर्वतपुंगव ॥ २ ॥

श्रावणपूर्णिमाको पवित्रोत्सव मेरा प्रियकारक है, इसप्रकार मेरे भक्त दूसरे उत्सवोंकोभी सदा करैं ॥ ४६ ॥ प्रीतिसे मेरे भक्त सुवासिनी कुमारी और बटुकोंको मेरा स्वरूप जानकर तद्गतचित्त हो भोजन करावे ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्यकृपणता छोडकर कुसुमादिद्वारा इनकी पूजा करै जो सावधान हो प्रतिवर्ष भक्तिसे ऐसा करता है ॥ ४८ ॥ वह धन्य कृतकृत्य और मेरी प्रीतिका पात्र है इसमेंसन्देह नहीं. यह अपनी प्रियकर वस्तुओंका संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४९ ॥ यह वार्ता अशिष्य और अभक्तको कभी न देनी चाहिये ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ छ ॥ हिमालय बोले हे महेश्वरि ! देवदेवि ! महेशानि ! करुणासागर ! जगदम्बा ! अब भलीप्रकार अपने पूजाविधानको कहिये ॥ १ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे राजन् ! मैं अपनी

प्रियकर पूजाविधि कहती हूं हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुम अतिशय श्रद्धापूर्वक श्रवण करो ॥ २ ॥ बाह्य अभ्यान्तरके भेदसे मेरी पूजा दोप्रकारकी है उसमें बाह्यभी वैदिक और तांत्रिक भेदसे दोप्रकारकी है ॥ ३ ॥ हे भूधर ! वैदिकपूजाभी मूर्ति भेदसे दोप्रकारकी है, उसमें विराट्रूपसे देवीका ध्यानरूप पहली पूजा और करचरणादियुक्त देवीकी मूर्तिका ध्यानकर वैदिकमंत्रोंसे देवीका आवाहन और विसर्जन करना यह दूसरी पूजा है इनमें वैदिकमंत्रमें दीक्षित् पुरुषको वेदविधिके अनुसार वैदिकी पूजा ॥ ४ ॥ और तंत्रमार्गमें दीक्षित पुरुषको तंत्रोक्त विधिसे पूजा करनी चाहिये. जो मूढ इस प्रकार पूजारहस्य न जानकर वैदिक तांत्रिक रीतिसे और तांत्रिकदीक्षावाले वैदिकरीतिसे पूजा करै तो ॥ ५ ॥ इस विपरीतभावके कारण वह मूढ़ पतित होता है अब प्रथम वैदिकी पूजाका विषय वर्णन करती हूं ॥ ६ ॥

द्विविधाममपूजास्याद्बाह्याचाऽऽभ्यंतराऽपिच ॥ बाह्याऽपिद्विविधाप्रोक्तावैदिकीतांत्रिकीतथा ॥ ३ ॥ वैदिक्यर्चाऽपिद्विविधामूर्तिभेदेनभूधर ॥ वैदिकीवैदिकैःकार्यावेददीक्षासमन्वितैः ॥ ४ ॥ तंत्रोक्तदीक्षावद्भिस्तुतांत्रिकीसंश्रिताभवेत् ॥ इत्थंपूजारहस्यंचनज्ञात्वाविपरीतकम् ॥ ५ ॥ करोतियोनरोमूढःसपतत्येवसर्वथा ॥ तत्रयावैदिकीप्रोक्ताप्रथमातांवदाम्यहम् ॥ ६ ॥ यन्मेसाक्षात्परंरूपंदृष्टवानसिभूधर ॥ अनंतशीर्षनयनमनंतचरणंमहत् ॥ ७ ॥ सर्वशक्तिसमायुक्तंप्रेरकंयत्परात्परम् ॥ तदेवपूजयेन्नित्यंनमेद्ध्यायेत्स्मरेदपि ॥ ८ ॥ इत्येतत्प्रथमार्चायाःस्वरूपंकथितंनग ॥ शांतःसमाहितमनादंभाहंकारवर्जितः ॥ ९ ॥ तत्परोभवतद्याजीतदेवशरणंव्रज ॥ तदेवचेतसापश्यजपध्यायस्वसर्वदा ॥ १० ॥ अनन्ययाप्रेमयुक्तभक्त्यामद्भावमाश्रितः ॥ यज्ञैर्यजतपोदानैर्मामेवपरितोषय ॥ ११ ॥ इत्थंममाऽनुग्रहतोमोक्ष्यसेभवबंधनात् ॥ मत्परायेमदासक्तचित्ताभक्तवरामताः ॥ १२ ॥

हे भूधर ! जो तुमने मेरे साक्षात् पररूपका दर्शन किया है जिसमें अनन्तशिर अनन्तनेत्र अनन्त चरण हैं ॥ ७ ॥ जो सब शक्तिसे युक्त प्रेरक परात्पर है उसीका निरन्तर पूजन करै, इसीका नमस्कार ध्यान और स्मरण करै ॥ ८ ॥ हे नगराज ! यहीप्रथम वैदिकी पूजाका स्वरूप है. यह पूजा शान्त, सावधानमन, दंभ अहंकारहीन होकर करनी चाहिये ॥ ९ ॥ उसीमें तत्पर उसीका यजन और उसीकी शरण हो उसीको चित्तसे देखकर सदा जप ध्यान करो ॥ १० ॥ अनन्यप्रेमभक्तिसे मेरे भावको आश्रित हो यज्ञोंसे मेरा यजन और तप दानसे मुझ विराट्रूपकोही सन्तुष्ट करो ॥ ११ ॥ इस प्रकार करते हुए मेरे अनुग्रहसे संसारबंधनसे मुक्त होंगे मुझमें

तत्पर और मुझमें आसक्त चित्त भक्तश्रेष्ठ कहे हैं ॥ १२ ॥ यह मेरी प्रतिज्ञा है. ऐसेभक्तोंको मैं बहुत शीघ्र उद्धार करदेती हूं. हे गिरिराज! कर्मयुक्त ध्यानयोग, अथवा भक्तिमिश्रित ज्ञानयोगसेही ॥ १३ ॥ मैं प्राप्त होसक्ती हूं. केवल कर्मसेही कोई मुझे प्राप्त नहीं करसक्ता धर्मसे भक्ति और भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिमें प्रतिपादन किये कर्मकोही धर्म कहते हैं श्रुतिस्मृतिके विपरीत अन्य शास्त्रोंका कहाहुआ धर्म यथार्थ धर्म नहीं किन्तु धर्माभास है ॥ १५ ॥ सर्वज्ञ और सब शक्तिसम्पन्न मेरे स्वरूपसेही वेद प्रगट हुए हैं, इसकारण वेदके अप्रमाणकी शंका नहीं होसक्ती. कारण कि, मैं अज्ञानरहित हूं इस्से मुझसे प्रगट हुए वेद भ्रान्तिरहित सत्यवस्तु हैं दूसरे शास्त्र अज्ञपुरुषोंद्वारा कल्पित हैं इससे वह वेदके सन्मुख अप्रमाणहैं इसीसे उनमेंका कहाहुआ धर्म धर्माभास है फलपक्षमें वेदोक्त धर्मही यथार्थ धर्म है ॥ १६ ॥ वेदोंका अर्थ ग्रहणकर स्मृतिशास्त्र प्रणीत हुआ है इससे मनुआदि महर्षि प्रणीत स्मृतिशास्त्रका ग्रहण होता है ॥ १७ ॥ स्मृति और पुराणादिमें जिसकिसी

प्रतिजानेभवादस्मादुद्धराम्यचिरेणतु ॥ ध्यानेनकर्मयुक्तेनभक्तिज्ञानेनवापुनः ॥१३॥ प्राप्याऽहंसर्वथाराजन्नतुकेवलकर्मभिः॥धर्मात्संजायतेभक्तिर्भक्त्या संजायतेपरम् ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंयत्सधर्मःप्रकीर्तितः ॥ अन्यशास्त्रेणयःप्रोक्तोधर्माभासःसउच्यते ॥ १५ ॥ सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्चमत्तोवेदः समुत्थितः ॥ अज्ञानस्यममाऽभावादप्रमाणानचश्रुतिः ॥ १६ ॥ स्मृतयश्चश्रुतेरर्थंगृहीत्वैवचनिर्गताः ॥ मन्वादीनांश्रुतीनांचततःप्रामाण्यमिष्यते ॥ ॥ १७ ॥ क्वचित्कदाचित्तंत्रार्थकटाक्षेणपरोदितम् ॥ धर्मंवदंतिसोंशस्तुनैवग्राह्योऽस्तिवैदिकैः ॥ १८ ॥ अन्येषांशास्त्रकर्तृणामज्ञानप्रभवत्वतः ॥ अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्नप्रमाणता ॥ १९ ॥ तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थंसर्वथावेदमाश्रयेत् ॥ राजाज्ञाचयथालोकेहन्यतेनकदाचन ॥ २० ॥ सर्वेशान्याममाज्ञासाश्रुतिस्त्याज्याकथंनृभिः ॥ मदाज्ञारक्षणार्थंतुब्रह्मक्षत्रियजातयः ॥ २१ ॥ मयासृष्टास्ततोज्ञेयंरहस्यंमेश्रुतेर्वचः ॥ यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभूधर ॥ २२ ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्यतदावेषान्बिभर्म्यहम् ॥ देवदैत्यविभागश्चाऽप्यतएवाऽभवन्नृप ॥ २३ ॥

स्थलमें कटाक्षपूर्वक वेदविरुद्ध विषय कहागया वह वैदिकोंको ग्रहण न करना चाहिये ॥ १८ ॥ कारण कि, वेदके अतिरिक्त अन्यशास्त्रकर्ताओंके वचन अज्ञानसंभूत हैं तो अज्ञानदोष वर्तमान होनेसे उनकी उक्तिका प्रमाण नहीं होसक्ता ॥ १९ ॥ इसकारण मुमुक्षुओंको धर्मज्ञानके निमित्त सर्वथा वेदमार्गका आश्रय लेना चाहिये जिसप्रकार लोकमें राजाकी आज्ञा कभी नष्ट नहीं होती ॥ २० ॥ इसीप्रकार सर्वेशानी राजराजेश्वरी मेरी श्रुतिरूप आज्ञाको मनुष्य कैसे त्यागसक्ते हैं? अपनी आज्ञा रक्षा करनेको मैं ने ब्राह्मण क्षत्रियजाति ॥ २१ ॥ उत्पन्न की है, इसकारण मेरा रहस्यरूप श्रुतिवाक्य अवश्य जानना चाहिये. हे भूधर! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है ॥ २२ ॥ और अधर्मका अभ्युत्थान होता है तब मैं शाकंभरी आदि अनेक वेष रामकृष्णादि अवतार धारण करती हूं वेदके सद्भावसेही वेदरक्षक

देवता और वेदविनाशक दैत्य हैं यह विभाग कल्पित हुआ है॥२३॥जो वेदोक्तधर्मका अनुष्ठान नहीं करते उनकी शिक्षाके निमित्तही नरकोंकी कल्पना की है जिनकी वार्तामात्रके श्रवणसे उनको भय प्राप्त होगा ॥ २४ ॥ जो वेदधर्मको छोड़कर दूसरेधर्मोंका आश्रय करते हैं राजाको उन अधर्मियोंको अपने देशसे निकलवा देना चाहिये॥२५॥ब्राह्मणोंको उनके साथ संभाषण न करना चाहिये और उनको ब्रह्मभोजकी पंक्तिमें ग्रहण न करना चाहिये इस लोकमें जो औरभी अनेकप्रकारके शास्त्र हैं॥ ॥ २६ ॥ उनमें जो श्रुति स्मृति विरुद्ध हैं वे सब तामसी हैं यदि कह कि,फिर शिवने तंत्रक्यों बनाये इसपर कहते हैं वाम,कापालक,कौल,भैरवागम॥२७॥जो पापी होकर वेदधर्माचरण करतेहैं अर्थात् जब पापियोंकी वेदधर्माचरणसे सद्गति होगी तो कर्मकी विचित्रताके अभावसे प्रपंच विचित्र न होगा इसप्रकार उनको अनेक फल दिखाकर उनकी प्रवृ

येनकुर्वंतितद्धर्मतच्छिक्षार्थमयासदा॥ संपादितास्तुनरकास्त्रासोयच्छ्रवणाद्भवेत् ॥ २४ ॥ योवेदधर्ममुज्झित्यधर्ममन्यंसमाश्रयेत् ॥ राजाप्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणैर्नचसंभाष्याःपंक्तिग्राह्यानचद्विजैः ॥ अन्यानियानिशास्त्राणिलोकेस्मिन्विविधानिच ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धानितामसान्येवसर्वशः ॥ वामंकापालकंचैवकौलकंभैरवागमः ॥ २७ ॥ शिवेनमोहनार्थायप्रणीतोनान्यहेतुकः ॥ दक्षशापाद्भृगोःशापाद्दधीचस्यचशापतः ॥ २८ ॥ दग्धायेब्राह्मणवरावेदमार्गबहिष्कृताः ॥ तेषामुद्धरणार्थायसोपानक्रमतःसदा ॥ २९ ॥ शैवाश्चवैष्णवाश्चैवसौराःशाक्तास्तथैवच ॥ गाणपत्याआगमाश्चप्रणीताःशंकरेणतु ॥ ३० ॥ तत्रवेदाविरुद्धांशोप्युक्तएवक्वचित्क्वचित् ॥ वैदिकैस्तद्ग्रहेदोषोनभवत्येवकर्हिचित् ॥ ३१ ॥

त्तिको मोहितकर वेदसे श्रद्धा च्यावित करनेको शिवजीने मोहनार्थ तंत्र निर्माण कियेहैं. कारण कि, पापी होनेसे वेदका अधिकार नहीं रहता इससे वे पापका फल पाकर शुद्ध हों पश्चात् वेदानुसार कर्म करें तथा दक्षके शाप, भृगुके शाप, दधीचिके शापसे जो ॥२८॥ ब्राह्मण वेदसे बहिष्कृत हुए हैं उन ब्राह्मणोंको सोपानक्रमसे जन्मान्तरमें वेदाधिकारप्राप्तिके निमित्त कुछ परमेश्वरकी उपासना वक्तव्य है यह विचारकर ॥ २९ ॥ शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य यह पांचप्रकारके आगम शंकरने निर्माण किये ॥ ३० ॥ इनमें किसी २ अंशमें वेदानुकूल और कहीं २ वेदके विरुद्धभी कहा है इनमें वैदिकोंको वेदानुकूल अंशग्रहणमें दोष नहीं है. कारण कि, वायुसंहितामें लिखा है श्रौत अश्रौत भेदसे शिवागमन दोप्रकारका है श्रौतवेदका सार और अश्रौत स्वतंत्र है, वैदिकोंको श्रौतअंश ग्रहणकरना कहा है ॥ ३१ ॥

सर्वथावेदविरुद्ध अंशमें ब्राह्मण अधिकारी नहीं है जिनका वेदमें अधिकार नहीं है वही उस वेदविरुद्ध अंशके अधिकारी हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण वैदिकद्विजाति सब प्रयत्नसे वेदका आश्रय करे. कारण कि, वेदोक्त धर्मानुष्ठानसे उत्पन्नहुआ ज्ञानही परब्रह्मका प्रकाशक है ॥ ३३ ॥ जो सब प्रकारकी वासना त्यागकर मेरी शरण हुए हैं जो सब प्राणियोंमें दया करते मान और अहंकारसे वर्जित हैं ॥३४॥ मुझमें चित्त लगाये मुझमें प्राण अर्पण किये मेरे स्थानवर्णनमें निरत संन्यासी, वनवासी, गृहस्थी, ब्रह्मचारी ॥ ३५ ॥ जो सदा भक्तिसे इस विराट्स्वरूप उपासनानामक योगका अनुष्ठान करते हैं सदा भक्तिसे उपासना करते हैं उन नित्ययोगानुष्ठान करने वालोंका मैं अज्ञानसे उत्पन्न हुआ अंधकार ॥ ३६ ॥ अपने ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे नष्ट करदेती हूं इसमें सन्देह नहीं. हे पर्वतराज ! इस प्रकार यह मैंने पहली

सर्वथावेदभिन्नार्थेनाधिकारीद्विजोभवेत् ॥ वेदाधिकारहीनस्तुभवेत्तत्राधिकारवान् ॥ ३२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनवैदिकोवेदमाश्रयेत् ॥ धर्मेणसहितंज्ञानंपरंब्रह्मप्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥ सर्वैषणाःपरित्यज्यमामेवशरणंगताः ॥ सर्वभूतदयावंतोमानाहंकारवर्जिताः ॥ ३४ ॥ मच्चित्तामद्गतप्राणामत्स्थानकथनेरताः ॥ संन्यासिनोवनस्थाश्चगृहस्थाब्रह्मचारिणः ॥ ३५ ॥ उपासंतेसदाभक्त्यायोगमैश्वरसंज्ञितम् ॥ तेषांनित्याभियुक्तानामहमज्ञानजंतमः ॥ ३६ ॥ ज्ञानसूर्यप्रकाशेननाशयामिनसंशयः ॥ इत्थंवैदिकपूजायाःप्रथमायानगाधिप ॥ ३७ ॥ स्वरूपमुक्तंसंक्षेपाद्द्वितीयायाअथोब्रुवे ॥ मूर्तौवास्थंडिलेवापितथासूर्येंदुमंडले ॥ ३८ ॥ जलेऽथवाबाणलिंगेयंत्रेवाऽपिमहापटे ॥ तथाश्रीहृदयांभोजेध्यात्वादेवींपरात्पराम् ॥ ॥३९॥ सगुणांकरुणापूर्णांतरुणीमरुणारुणाम् ॥ सौंदर्यसारसीमांतांसर्वावयवसुंदराम् ॥४०॥ शृंगाररससंपूर्णांसदाभक्तार्तिकातराम् ॥ प्रसादसुमुखींमंबांचंद्रखंडशिखंडिनीम् ॥ ४१ ॥ पाशांकुशवराभीतिधरामानंदरूपिणीम् ॥ पूजयेदुपचारैश्चयथावित्तानुसारतः ॥ ४२ ॥ यावदांतरपूजायामधिकारोभवेन्नहि ॥ तावद्बाह्यामिमांपूजांश्रयेज्जातेतुतांत्यजेत् ॥४३॥ आभ्यंतरातुयापूजासातुसंविल्लयःस्मृतः ॥ संविदेवपरंरूपमुपाधिरहितंमम ॥ ४४ ॥

वैदिकपूजाका ॥ ३७ ॥ स्वरूप संक्षेपसे कहा अब करचरणादिविशिष्ट मूर्तिपूजा दूसरी कहती हूं मूर्तिमें स्वच्छ भूमिमें सूर्यमंडल, चन्द्रमंडल ॥ ३८ ॥ जल, बाणलिंग, यंत्र, वस्त्र, हृदयकमलमें परात्परा जगदम्बिका देवीका ध्यान करै ॥ ३९ ॥ जो सगुणअर्थात् सत्वादिगुणसम्पन्न करुणारसपरिपूर्ण युवती अरुणवर्ण सुन्दरताके सारकी सीमा सर्वांगसुन्दरी ॥ ४० ॥ शृंगाररसमें परिपूर्ण भक्तोंके दुःख देखतेही कातरहोनेवाली प्रसादसे सुमुखी, अम्बा अर्धचन्द्रसे शोभितशिरवाली ॥ ४१ ॥ चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, वर और अभय धारण किये, आनंदरूपिणीकी वित्तके अनुसार षोडश उपचारसे पूजनकरै ॥ ४२ ॥ जबतक अभ्यन्तर पूजामें अधिकार न हो तब तक इसीप्रकार पूजाकरता रहै जब अभ्यन्तरपूजाका अधिकार होजाय तो इच्छासे बाह्यपूजा छोडदे ॥ ४३ ॥ उपाधिरहित संवित् वा ब्रह्मही मेरा स्वरूप है. इस

संवित स्वरूपमें चित्तके लीन करनेकोही आभ्यन्तरपूजा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इसकारण मेरे संवित्‌रूपमें एकान्तभावसे चित्त स्थापन करै. कारण कि, संवित वा ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य समस्त जगत् मायामय मिथ्या है ॥ ४५ ॥ इसकारण संसार नाशके निमित्त आत्मस्वरूपिणी सर्वसाक्षिणी मेरी निर्विकल्प भक्तियोगयुक्त चित्तसे भावना करै ॥ ४६ ॥ इसके आगे बाह्यपूजाका विस्तार कहती हूं. हे पर्वतसत्तम ! तुम सावधान मनसे सुनो ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज ! साधक प्रभातही उठकर मस्तकके ब्रह्मरंध्रमें स्थित कर्पूरवर्णकी समान उज्वल सहस्रार कमलका स्मरण कर उसमें अपने अनुरूप गुरुके समान आकार स्मरण करै ॥ १ ॥ जो प्रसन्नतायुक्त उत्तम वेषसे भूषित भूषणोंसे

अतःसंविदिमद्रूपेचेतःस्थाप्यंनिराश्रयम् ॥ संविद्रूपातिरिक्तंतुमिथ्यामायामयंजगत् ॥ ४५ ॥ अतःसंसारनाशायसाक्षिणीमात्मरूपिणीम् ॥ भावयेन्निर्मनस्केनयोगयुक्तेनचेतसा ॥ ४६ ॥ अतःपरंबाह्यपूजाविस्तारःकथ्यतेमया ॥ सावधानेनमनसाशृणुपर्वतसत्तम ॥ ४७ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे देवीगीतायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रातरुत्थायशिरसिसंस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम् ॥ कर्पूराभं स्मरेत्तत्रश्रीगुरुंनिजरूपिणम् ॥ १ ॥ सुप्रसन्नंलसद्भूषाभूषितंशक्तिसंयुतम् ॥ नमस्कृत्यततोदेवींकुंडलींसंस्मरेद्बुधः ॥२॥ प्रकाशमानांप्रथमेप्रयाणेप्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥ अंतःपदव्यामनुसंचरंतीमानंदरूपामबलांप्रपद्ये ॥ ३ ॥ ध्यात्वैवंतच्छिखामध्येसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ मांध्यायेदथशौचादिक्रियाःसर्वाःसमापयेत् ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रंततोहुत्वामत्प्रीत्यर्थंद्विजोत्तमः ॥ होमांतेस्वासनेस्थित्वापूजासंकल्पमाचरेत् ॥ ५ ॥

सम्पन्न शक्ति पत्नीसहित है इसप्रकार पत्नीसहित गुरुका ध्यान करके देवी कुंडलिनीका ध्यान करै ॥ २ ॥ जो मूलाधारसे ब्रह्मरंध्रमें गमन करनेके समय प्रकाशमान अर्थात् चैतन्यरूपमें भासमान है और ब्रह्मरंध्रसे मूलाधारमें गमनकरनेके निमित्त आनन्दामृतमयी है, जो इसप्रकार सुषुम्ना पंथमें गमनागमनशील है उस पराशक्ति आनन्दरूपिणी कुंडलिनीकी मैं शरण होता हूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार ध्यान कर मूलाधारमें स्थित चैतन्यरूप अग्निकी कुंडलिनीरूप शिखाके भीतर मुझ सच्चिदानंदरूपिणी का ध्यान करै फिर शौच संध्यावंदनादि सब कार्य करै ॥ ४ ॥ फिर वह द्विजोत्तम मेरी प्रीतिके निमित्त अग्निहोत्र करके होमान्तमें आसनपर आकर पूजाका संकल्प करै ॥ ५ ॥

इससे पहले भूतशुद्धि और मातृकान्यास करै मातृकान्यास हल्लेखा अर्थात मायाबीजद्वारा करै ॥ ६ ॥ मूलाधारमें हकार हृदयमें रकार भ्रूमध्यमें ईकार मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करै ॥ ७ ॥ फिर प्रत्येक मंत्रमें किये न्यासोंको यथोक्त करै अपने देहमें धर्मादि पीठकल्पना कर पूजा करै ॥ ८ ॥ फिर प्राणायामद्वारा विकसित हृदय कमलरूप मेरे स्थानमें पंच प्रेतासनपर स्थित महादेवीकी चिन्तना करै ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, ईश्वर सदाशिव यह पंचप्रेत कहे जाते हैं यह मेरे पादमूलमें सदा स्थित रहते हैं. यह पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन पांच महाभूतोंके और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तुरीय, अतीत इन पांचों अवस्थाओंके अधिपति हैं और मैं पंचभूत तुरीय और

भूतशुद्धिंपुराकृत्वामातृकान्यासमेवच ॥ हृल्लेखामातृकान्यासंनित्यमेवसमाचरेत् ॥ ६ ॥ मूलाधारेहकारंचहृदयेचरकारकम् ॥ भ्रूमध्येतद्वदीकारंह्रीं कारंमस्तकेन्यसेत् ॥ ७ ॥ तत्तन्मंत्रोदितानन्यान्न्यासान्सर्वान्समाचरेत् ॥ कल्पयेत्स्वात्मनोदेहेपीठंधर्मादिभिःपुनः ॥ ८ ॥ ततोध्यायेन्महादेवींप्राणा यामैर्विजृंभिते ॥ हृदंभोजेममस्थानेपंचप्रेतासनेबुधः ॥९॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चईश्वरश्चसदाशिवः ॥ एतेपंचमहाप्रेताःपादमूलेममस्थिताः ॥ १० ॥ पंच भूतात्मकाह्येतेपंचावस्थात्मकाअपि ॥ अहंत्वव्यक्तचिद्रूपातदतीताऽस्मिसर्वथा ॥ ११ ॥ ततोविष्टरतांयाताःशक्तितंत्रेषुसर्वदा ॥ ध्यात्वैवंमानसैर्भोगैःपू जयेन्मांजपेदपि ॥ १२ ॥ जपंसमर्प्यश्रीदेव्यैततोऽर्घ्यस्थापनंचरेत् ॥ पात्रासादनकंकृत्वापूजाद्रव्याणिशोधयेत् ॥ १३ ॥ जलेनतेनमनुनाचास्त्रमंत्रेणदे शिकः ॥ दिग्बंधंचपुराकृत्वागुरून्नत्वाततःपरम् ॥१४॥ तदनुज्ञांसमादायवाह्यपीठेततःपरम् ॥ हृदिस्थांभावितांमूर्तिममदिव्यांमनोहराम् ॥ १५ ॥

अतीत अवस्थासे भी परे ब्रह्मरूपिणी हूं ॥ १० ॥ ११ ॥ इसीकारण यह मेरे आसनको प्राप्त हुए हैं यह शक्तितंत्रमें प्रसिद्ध है इसप्रकार मेरा ध्यान कर मानस उपचारसे मेरा पूजन और जप करे ॥ १२ ॥ जपका फल श्रीदेवीको समर्पण कर फिर अर्घ्य स्थापन करै फिर अर्घ्यपात्रादिको स्थापन करकै पूजाके द्रव्योंकी शुद्धि करै ॥ १३ ॥ साधक मूलमंत्र वा फट् इस मंत्रसे अभिमंत्रित किये जलसे सब पूजाद्रव्य शुद्ध करै दिग्बंधकर गुरुओंको प्रणामपूर्वक ॥ १४ ॥ उनकी आज्ञाको ले पूर्वोक्त यंत्रादि

१ उस पीठपर अनन्तायनमः पद्मायनमः अं सूर्यमंडलायनमः सं सत्वायनमः रंरजसेनम तंतमसेनमः । पूर्वादिदिशाओंमें आं आत्मनेनमः । अं अंतरात्मनेनमः । पं परमात्मने नमः । ह्रींज्ञानात्मनेनमः । फिर पद्मके पूर्वादिदलमें जयायैनमः । विजयायैनमः । अपराजितायै नमः । नित्यायैनमः । विलासिन्यैनमः । दोग्ध्र्यै नमः । अघोरायैनमः । मध्ये मंगलायैनमः यह पीठशक्तिकी पूजा शारदामें है ।

द्वारा बाह्य पीठमें पूर्वमें भावना कीहुई हृदयमें स्थित मेरी मनोहर मूर्त्तिको ॥ १५॥ प्राण स्थापन मंत्रद्वारा आवाहन करै, फिर भक्तिपूर्वक आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन ॥ १६ ॥ स्नान, दोवस्त्र, भूषण और गंध, पुष्प, यथायोग्य भक्तिसे देवीकेनिमित्त प्रदान करे ॥ १७ ॥ फिर भलीप्रकार यंत्रस्थ आवरण देवताकी पूजा करे यदि प्रतिदिन आवरण देवताकी पूजा न करसके तो शुक्रवारको करै ॥ १८ ॥ आवरण देवताको मूलदेवीका प्रभारूप जानना चाहिये और त्रिलोकीको उसकी प्रभा मंडलसे व्याप्त चिन्तन करै ॥ १९ ॥ इसप्रकार आवरण देवताओंको यथास्थानमें ध्यान और पूजादि करके फिर सावर्ण सायुध शक्तिसम्पन्न श्रीभुवनेश्वरीकी सुगंध

आवाहयेत्ततःपीठेप्राणस्थापनविद्यया ॥ आसनावाहनेचाऽर्घ्यंपाद्याद्याचमनंतथा ॥ १६ ॥ स्नानंवासोद्वयंचैवभूषणानिचसर्वशः ॥ गंधपुष्पंयथायोग्यं दत्त्वादेव्यैस्वभक्तितः ॥ १७ ॥ यंत्रस्थानामावृतीनांपूजनंसम्यगाचरेत् ॥ प्रतिवारमशक्तानांशुक्रवारोनियम्यते ॥ १८ ॥ मूलदेवी प्रभारूपाःस्मर्तव्याअंगदेवताः ॥ तत्प्रभापटलव्याप्तंत्रैलोक्यंचविचिंतयेत् ॥ १९ ॥ पुनरावृत्तिसहितांमूलदेवींचपूजयेत् ॥ गंधादिभिःसुगंधैस्तुत थापुष्पैःसुवासितैः ॥ २० ॥ नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैवतांबूलैर्दक्षिणादिभिः ॥ तोषयेन्मांत्वत्कृतेननाम्नांसाहस्त्रकेणच ॥ २१ ॥ कवचेनचसूक्तेनाऽहंरुद्रेभिरिति प्रभो ॥ देव्यथर्वशिरोमंत्रैर्हृल्लेखोपनिषद्भवैः ॥ २२ ॥ महाविद्यामहामंत्रैस्तोषयेन्मांमुहुर्मुहुः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रींप्रेमार्द्रहृदयोनरः ॥ २३ ॥ पुल कांकितसर्वांगैर्वाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः ॥ नृत्यगीतादिघोषेणतोषयेन्मांमुहुर्मुहुः ॥२४॥ वेदपारायणैश्चैवपुराणैःसकलैरपि ॥ प्रतिपाद्यायतोऽहंवैतस्मात्तै स्तोषयेत्तुमाम् ॥ २५ ॥

गंधादि सुगंधित पुष्प ॥ २० ॥ नैवेद्य, तर्पण, ताम्बूल और दक्षिणादि उपचारसे पूजा करै और हे हिमालय ! तुम्हारे किये सहस्रनामसे मुझको संतुष्ट करै ॥ २१ ॥ तंत्रादिप्रोक्त कवच और "अहं रुद्रेभिः" यह सूक्त और भुवनेश्वरीउपनिषद्में "सर्वे वेदेवा देवीमुपतस्थुः" हृल्लेखा उपनिषदस्थ मंत्र ॥ २२ ॥ तथा महाविद्याके महामं त्रोंसे वारंवार देवीको संतुष्ट करै और प्रेमसे आर्द्र हृदय होकर देवीसे अपना अपराध क्षमा करावे ॥ २३ ॥ पुलकित अंग होकर प्रेमाश्रुसे परिपूर्ण नेत्र हो गद्गद वचनसे नृत्यगीतादिद्वारा मुझको वारंवार संतुष्ट करै ॥ २४ ॥ कारण कि, समस्त वेद और पुराणकी प्रतिपाद्य वस्तु मैंहूं. इसकारण वेदाध्ययन और

१ यह स्तोत्र कूर्मपुराणके वारहवें अध्यायमें है.

पुराणोंके पाठद्वारा मुझे सन्तुष्ट करै॥ २५॥ और समस्त ऐश्वर्य अपनी देह सहित मेरे अर्पण करै फिर नित्य हवनकर ब्राह्मण और सुन्दर वस्त्रधारी कुमारी ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंके बालक तथा दूसरे पामरजनोंको भी देवीकी बुद्धिसे भोजन करावे फिर अपने हृदयमें देवीको प्रणामकर संहार मुद्राद्वारा विसर्जन करै ॥ २७ ॥ हे सुव्रत! सब मंत्रोंमें मायाबीज प्रधान है इसकारण मेरी सब पूजा इसी मंत्रसे करै ॥ २८ ॥ हृल्लेखारूपी दर्पणमें मैं सदा प्रतिबिम्बित हूं इसकारण हृल्लेखामंत्रसे दिया हुआ मानो सब मंत्रोंसे समर्पित होता है ॥ २९ ॥ इसप्रकार मेरी पूजा करनेपर भूषणादिसे गुरुकी पूजा करै और अपनेको कृतकृत्य जाने जो इस प्रकारसे श्रीभुवनेश्वरीकी पूजा करता है ॥ ३० ॥ उसको कहीं कभी कुछभी दुर्लभ नहीं है. देहान्तमें वह मेरे मणिद्वीपको सर्वथा प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ वह देवीका स्वरूप ही जानना चाहिये.

निजंसर्वस्वमपिमेसदेहंनित्यशोऽर्पयेत् ॥ नित्यहोमंततःकुर्याद्ब्राह्मणांश्चसुवासिनीः ॥ २६ ॥ बटुकान्पामरानन्यान्देवीबुद्ध्यातुभोजयेत् ॥ नत्वापुनः स्वहृदयेव्युत्क्रमेणविसर्जयेत् ॥२७॥ सर्वंहृल्लेखयाकुर्यात्पूजनंममसुव्रत ॥ हृल्लेखासर्वमंत्राणांनायिकापरमास्मृता ॥ २८ ॥ हृल्लेखादर्पणेनित्यमहंतुप्रतिबिंबिता ॥ तस्माद्धृल्लेखयादत्तंसर्वमंत्रैःसमर्पितम् ॥ २९ ॥ गुरुंसंपूज्यभूषाद्यैःकृतकृत्यत्वमावहेत् ॥ यएवंपूजयेद्देवींश्रीमद्भुवनसुंदरीम् ॥ ३० ॥ नतस्यदुर्लभंकिंचित्कदाचित्क्वचिदस्तिहि ॥ देहांतेतुमणिद्वीपंममयात्येवसर्वथा ॥ ३१ ॥ ज्ञेयोदेवीस्वरूपोऽसौदेवानित्यंनमंतितम् ॥ इतितेकथितंराजन्महादेव्याःप्रपूजनम् ॥३२॥ विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः ॥ कुरुमेपूजनंतेनकृतार्थस्त्वंभविष्यसि ॥ ३३ ॥ इदंतुगीताशास्त्रंमेनाऽशिष्यायवदेत्क्वचित् ॥ नाऽभक्तायप्रदातव्यंनधूर्तायचदुर्हृदे ॥३४॥ एतत्प्रकाशनंमातुरुद्घाटनमुरोजयोः ॥ तस्मादवश्यंयत्नेनगोपनीयमिदंसदा ॥३५॥ देयंभक्तायशिष्यायज्येष्ठपुत्रायचैवहि ॥ सुशीलायसुवेषायदेवीभक्तियुतायच ॥ ३६ ॥ श्राद्धकालेपठेदेतद्ब्राह्मणानांसमीपतः ॥ तृप्तास्तत्पितरःसर्वेप्रयांतिपरमंपदम् ॥ ३७ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वासाभगवतीतत्रैवांतरधीयत ॥ देवाश्चमुदिताःसर्वेदेवीदर्शनतोऽभवन् ॥ ३८ ॥

देवता उसको नित्य नमस्कार करते हैं. हे राजन्! इसप्रकार आपसे यह देवीका पूजनकहा ॥ ३२ ॥ इसको भलीप्रकार विचारकर अपने अधिकारके अनुसार मेरा पूजन करो इससे तुम कृतार्थ हो जाओगे ॥ ३३ ॥ यह गीताशास्त्र कभी अशिष्यके निमित्त न देना अभक्त, धूर्त और दुर्मनवालेको न देना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस शास्त्रका प्रकाश मानो माताके स्तनोंका उद्घाटन करना है, इस कारण यत्नसे इसको गुप्त रखना चाहिये ॥ ३५ ॥ भक्त शिष्य और ज्येष्ठ पुत्रके निमित्त देनाचाहिये, तथा सुशील सुवेष देवीभक्तसे कहना उचित है ॥ ३६ ॥ श्राद्धकालमें यह ब्राह्मणोंके समीप पढे तो उसके सब पितर तृप्त होकर परमपदको प्राप्त होतेहैं॥ ३७ ॥ व्यासजीबोले ऐसा

कहकर भगवती वहाँही अन्तर्धान होगई और देवीके दर्शनसे सब देवता भी प्रसन्नहुए ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले तब [illegible] देवी हिमालयके घर प्रगट होकर गौरीनामसे प्रसिद्धहुई और शंकरने उनका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ तब उनसे कार्तिकेयने जन्म लाभकरके तारक असुरको मारा " गौरी की उत्पत्ति ज्येष्ठशुक्ल चौथको अरुणोदयमें हुई यह रत्नावलीमें लिखाहै" यह गौरीकी उत्पत्ति कही अब लक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो. पूर्वमें समुद्र मथनेके समय अनेक रत्न प्रगट हुए थे ॥ ४० ॥ उस समय लक्ष्मीकी प्राप्तिके निमित्त देवताओंने परम आदरसे उनकी स्तुति की तब उनके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त समुद्रसे लक्ष्मी निकलीं ॥ ४१ ॥ देवताओंने उनको भगवान् विष्णुको दिया जिससे वह बड़ी प्रसन्न हुई. हे राजन् ! यह आपसे उत्तम देवीका माहात्म्य वर्णन किया ॥ ४२ ॥ यह गौरी और लक्ष्मीका प्रादुर्भाव सब कामनाका देनेवाला है यह रहस्य जिस किसीके प्रति नहीं कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ रहस्यमयी इस गीताको बड़े यत्नसे गुप्त रखना चाहिये. हे

व्यासउवाच ॥ ततोहिमालयेजज्ञेदेवीहैमवतीतुसा ॥ यागौरीतिप्रसिद्धाऽसीद्दत्तासाशंकरायच ॥ ३९ ॥ ततःस्कंदःसमुद्भूतस्तारकस्तेनपातितः ॥ समुद्रमंथनेपूर्वंरत्नान्यासुर्नराधिप ॥ ४० ॥ तत्रदेवैःस्तुतादेवीलक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात् ॥ तेषामनुग्रहार्थायनिर्गतातुरमाततः ॥ ४१ ॥ वैकुंठायसुरैर्दत्तातेन तस्यशमोभवत् ॥ इतितेकथितंराजन्देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ गौरीलक्ष्म्योःसमुद्भूतिविषयंसर्वकामदम् ॥ नवाच्यंत्वेतदन्यस्मैरहस्यंकथितंयतः ॥ ४३ ॥ गीतारहस्यभूतेयंगोपनीयाप्रयत्नतः ॥ सर्वमुक्तंसमासेनयत्पृष्टंतत्त्वयाऽनघ ॥ ४४ ॥ पवित्रंपावनंदिव्यंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांसप्तमस्कंधेदेवीगीतायांचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ ॥ श्रीरस्तु ॥ स्कंधश्चायंसमाप्तः ॥ ७ ॥

खशरद्व्यश्वि (२२५०) पद्यैस्तुद्वैपायनखच्युतैः ॥ श्रीमद्भागवतस्याऽस्यसप्तमस्कंधईरितः ॥ १ ॥

पापरहित ! तुमने जो विषय पूँछा था वह सब संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४४ ॥ यह पवित्र पावन और दिव्य चरित्र है आपको अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ इति सप्तमस्कन्धः समाप्तः ॥ ७ ॥

दोहा—शिवाशंभुके पदकमल, प्रेमसहित मनलाय । श्रीसप्तमस्कंधकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥

दोसहस्र दोसै अधिक, पंचाशत यहि पद्य । सो सब वर्णे मिश्रने, निर्मलभाषागद्य ॥ २ ॥

सकलकामप्रद जानिये, यह गीताको ज्ञान । पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, पावहिं पद निर्वान ॥ ३ ॥

देवी हिमवतको भयो, जो सुन्दर संवाद । सो सब भाषा करि कह्यो, बुध ज्वालाप्रसाद ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते सप्तमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायां अष्टमस्कंधः प्रारभ्यते ॥

दोहा—जगदानंदप्रदायिनी, सकल सुमंगल मूल । शिवाभवानी मिश्रपर सदा रहो अनुकूल ॥

जनमेजय बोले आपने सूर्य चन्द्रवंशी राजोंका जो चरित्र कहा सो अमृतका स्थान चरित्र हमने सुना ॥ १ ॥ अब यह सुन[illegible] की इच्छाहै कि, वह जगदम्बिका देवी सब मन्वन्तरों में जिस जिस रूपसे पूजित होती है ॥ २ ॥ और जिस जिस स्थानमें जिस जिस कर्मसे पूजित होती है "तथा [illegible] जिस जिस शरीरसे देवी फल देनेको पूजी जाती है जिस जिस मंत्रबीजसे जहां जहां पूजी जाती है" देवीका विराट्रूप और उसका वर्णन ॥ ३ ॥ तथा जिस ध्यानसे उस[illegible] सूक्ष्म शरीरमें बुद्धिकी गति होती है. हे विप्रर्षे! वह सब कहिये

श्रीगणेशायनमः ॥ जनमेजयउवाच ॥ सूर्यचंद्रान्वयोत्थानांनृपाणांसत्कथाश्रितम् ॥ च[illegible] भवताप्रोक्तंश्रुतंतदमृतास्पदम् ॥ १ ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छा मिसादेवीजगदंबिका ॥ मन्वंतरेषुसर्वेषुयद्यद्रूपेणपूज्यते ॥२॥ यस्मिन्यस्मिंश्चवैस्थाने[illegible] येनचकर्मणा ॥ "शरीरेणचदेवेशीपूजनीयाफलप्रदा ॥ येनव मंत्रबीजेनयत्रयत्रचपूज्यते ॥" देव्याविराट्स्वरूपस्यवर्णनंचयथातथम् ॥३॥ येन[illegible] [illegible]नतत्सूक्ष्मेस्वरूपेस्यान्मतेर्गतिः ॥ तत्सर्वंवदविप्रर्षेयेनश्रेयोहमा प्नुयाम् ॥ ४ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिदेव्याराधनमुत्तमम् ॥ यत्कृ[illegible] [illegible]मनाऽपिनरःश्रेयोऽत्रविंदते ॥ ५ ॥ एवमेतन्नारदेनपृष्टोनारायणःपु रा ॥ तस्मैयदुक्तवान्देवोयोगचर्याप्रवर्तकः ॥ ६ ॥ एकदानारदःश्रीमान्पर्यटन्[illegible] [illegible]मिमाम् ॥ नारायणाश्रमंप्राप्तोगतखेदश्चतस्थिवान् ॥ ७ ॥ तस्मैयो गात्मनेनत्वाब्रह्मदेवतनूद्भवः ॥ पर्यपृच्छदिमंचार्थंयत्पृष्टोभवताऽनघ ॥ [illegible] [illegible]रदउवाच ॥ देवदेवमहादेवपुराणपुरुषोत्तम ॥ जगदाधारसर्वज्ञश्लाघ नीयोरुसद्गुण ॥ ९ ॥

जिसमें हमको मंगलकी प्राप्ति हो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे भारत ! दे[illegible] [illegible]न सुनो जिसके करने सुननेसे मनुष्यका कल्याण होता है ॥ ५ ॥ यही बात पहले नारदजीने नारायणसे पूँछी थी योगमार्गके प्रवर्तक भगवान्ने जो उनसे [illegible] हो ॥ वही कहते हैं. एक समय श्रीमान् नारदजी पृथ्वीपर्यटन करते हुए नारायणके आश्रममें आय खेदरहित स्थित हुए ॥ ७ ॥ नारदजी उन योगात्म[illegible] नमस्कार करके जो आपने पूँछा यही बात पूँछते हुए ॥ ८ ॥ नारदजी बोले, हे देवदेव ! महादेव! हे पुराणपुरुषोत्तम ! हे जगत्के आधार! हे सर्वज्ञ ! [illegible] [illegible]सनीय ! आप जगत्के जिसप्रकार आदि हो सो मुझसे विस्तारसे कहो यह जगत् कहांसे

उत्पन्न और किसमें प्रतिष्ठित है ॥ ९ ॥ १० ॥ और अन्तमें किसमें लय हो[illegible] तथा सम्पूर्ण फलका उदय कहांसे होता है और किसके ज्ञानसे यह माया नाशको प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ किसके पूजन, जप, ध्यानसे हे देव ! प्रकाश होता है [illegible]र्योदयसे अन्धकार दूर होता है ॥ १२ ॥ हे देव ! सब प्रकारसे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये, जिस प्रकार यह लोक अंधकारमें निमग्न हुआ तरजाय ॥ १३ ॥ [illegible]जी बोले जब इस प्रकारसे देवर्षि नारदजीने प्रश्न किया तब महायोगी नारायण प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ १४ ॥ नारायण बोले हे देवर्षि ! सुनो जिसप्रकार यह जगत[illegible]त्त्व है जिसके जाननेसे यह जन्तु जगतके भ्रममें नहीं पड़ता ॥ १५ ॥ देवीने मुझसे

जगतस्तत्त्वमाद्यंयत्तन्मेवदयथेप्सितम् ॥ जायतेकुतएवेदंकुतश्चेदंप्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥ कुतोंतंप्राप्नुयात्कालेकुत्रसर्वफलोदयः ॥ केनज्ञातेनमायैषामोहघ्नूर्नाशमाप्नुयात् ॥ ११ ॥ कयाऽर्चयाकिंजपेनकिंध्यानेनात्महृत्कजे ॥ [illegible]शोजायतेदेवतमस्यर्कोदयोयथा ॥ १२ ॥ एतत्प्रश्नोत्तरंदेवब्रूहिसर्वमशेषतः ॥ यथालोकस्तरेदंधतमसंत्वंजसैवहि ॥ १३ ॥ व्यासउवाच ॥ एवंदेवर्षिणापृ[illegible]प्राचीनोमुनिसत्तमः ॥ नारायणोमहायोगीप्रतिनंद्यवचोब्रवीत् ॥ १४ ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ शृणुदेवर्षिवर्याऽत्रजगतस्तत्त्वमुत्तमम् ॥ येनज्ञातेनमर्त्योहिजाय[illegible]जगद्भ्रमे ॥ १५ ॥ जगतस्तत्त्वमित्येवदेवीप्रोक्तामयापिहि ॥ ऋषिभिर्देवगंधर्वैरन्यैश्चापिमनीषिभिः ॥ १६ ॥ साजगत्सृजतेदेवीतयाचप्रतिपाल्यते ॥ [illegible]चनाश्यतेसर्वमितिप्रोक्तंगुणत्रयात् ॥ १७ ॥ तस्याः स्वरूपंवक्ष्यामिदेव्याःसिद्धर्षिपूजितम् ॥ स्मरतांसर्वपापघ्नंकामदंमोक्षदंतथा ॥ १८ ॥ मनुःस्वायंभु[illegible]स्त्वाद्यःपद्मपुत्रःप्रतापवान् ॥ शतरूपापतिःश्रीमान्सर्वमन्वंतराधिपः ॥ १९ ॥ समनुःपितरंदेवंप्रजापतिमकल्मषम् ॥ भक्त्यापर्यचरत्पूर्वंतमुवाचाऽऽत्म[illegible]सुतम् ॥ २० ॥ पुत्रपुत्रत्वयाकार्यंदेव्याराधनमुत्तमम् ॥ तत्प्रसादेनतेतातप्रजासर्गःप्रसिद्ध्यति ॥ २१ ॥

जगत्का तत्त्व वर्णन कियाहै. ऋषि, गन्धर्व, देवता और दूसरे मनीषियोंनेभी वर्णन कियाहै ॥ १६ ॥ वह देवी जगत्को प्रगटकर पालन करती है और त्रिगुणके द्वारा वही जगत्का नाश करती है, उस सिद्ध और ऋषियोंसे पूजित देवीके स्वरूपको वर्णन करताहूं जो स्मरण करतेही स[illegible]ब पापको दूरकरती है और काम तथा मोक्षकी देनेवाली है ॥ १७ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र स्वायंभुवमनु हुए और शतरूपा उनकी स्त्री थी, यह मन्वन्तराधिप हैं ॥ १९ ॥ वह [illegible]मनु अपने देवरूप पापरहित पिताजीकी परमभक्तिसे उपासना करने लगे तब उन ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा ॥ २० ॥ हे पुत्र ! तुम देवीका श्रेष्ठ आराधन करो हे. पुत्र ! उसी[illegible]के प्रसादसे यह तुम्हारी प्रजासृष्टि सिद्ध होगी ॥ २१ ॥

जब स्वायंभुवमनुसे इसप्रकार ब्रह्माजीने कहा तब वह तपसे जगत्‌की योनिरूप देवीको प्रसन्न करने लगे ॥ २२ ॥ सावधान मनसे देवीको सन्तुष्ट करने लगे जो आदिमाया सर्वशक्ति और सब कारणोंका कारण है ॥ २३ ॥ मनु बोले हे जगत्‌की कारणस्वरूप देवी ! आपको प्रणाम है. तुम शंख, चक्र, गदा हाथमें लिये नारायणके हृदयमें स्थित हो ॥ २४ ॥ वेदकी मूर्ति जगत्‌की माता सब कारणोंकी कारण स्थानकी रूपवाली तीन वेदके प्रमाणकी ज्ञाता सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त कल्याणस्वरूप॥ २५॥ हे महेश्वरि ! हे महामाये ! हे महोदये ! महादेवकी प्रिया सर्वनिवास महादेवकी प्रिय करनेवाली ॥ २६ ॥ गोपेन्द्रकी प्रिया ज्येष्ठा महानंदा और महोत्सवस्वरूप महामारीके भय हरनेवाली देवादिसे पूजित तुमको प्रणाम है ॥ २७॥ हे सम्पूर्ण मंगलोंकी मंगल हे शिवे ! हेसर्वार्थ साधक ! हे शरणागतवत्सले !

एवमुक्तःप्रजास्रष्ट्रामनुःस्वायंभुवोविराट् ॥ जगद्योनिंतदादेवींतपसातर्पयद्विभुः ॥ २२ ॥ तुष्टावदेवींदेवेशींसमाहितमतिःकिल ॥ आद्यांमायांसर्वशक्तिंसर्वकारणकारणाम् ॥ २३ ॥ मनुरुवाच ॥ नमोनमस्तेदेवेशिजगत्कारणकारणे ॥ शंखचक्रगदाहस्तेनारायणहृदाश्रिते ॥ २४ ॥ वेदमूर्तेजगन्मातःकारणस्थानरूपिणि ॥ वेदत्रयप्रमाणज्ञेसर्वदेवनुतेशिवे ॥ २५ ॥ माहेश्वरिमहाभागेमहामायेमहोदये ॥ महादेवप्रियावासेमहादेवप्रियंकरि ॥ २६ ॥ गोपेंद्रस्यप्रियेज्येष्ठेमहानंदेमहोत्सवे ॥ महामारीभयहरेनमोदेवादिपूजिते ॥ २७ ॥ सर्वमंगलमांगल्येशिवेसर्वार्थसाधिके ॥ शरण्येत्र्यंबकेगौरिनारायणिनमोस्तुते ॥ २८ ॥ यतश्चेदंययाविश्वमोतंप्रोतंचसर्वदा ॥ चैतन्यमेकमाद्यंतरहितंतेजसांनिधिम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मायदीक्षणात्सर्वंकरोतिचहरिःसदा ॥ पालयत्यापिविश्वेशःसंहर्तायदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मधुकैटभसंभूतभयार्तःपद्मसंभवः ॥ यस्याःस्तवनमुमुचेघोरदैत्यभवांबुधेः ॥ ३१ ॥त्वंह्रीःकीर्तिःस्मृतिःकांतिःकमलागिरिजासती ॥ दाक्षायणीवेदगर्भाबुद्धिदात्रीसदाभया ॥ ३२ ॥ स्तोष्येत्वांचनमस्यामिपूजयामिजपामिच॥ ध्यायामिभावयेवीक्षेश्रोष्येदेविप्रसीदमे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मावेदानिधिःकृष्णोलक्ष्म्यावासः पुरंदरः ॥ त्रिलोकाधिपतिःपाशीयादसांपतिरुत्तमः ॥ ३४ ॥

गौरीनारायणी आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ जिसके द्वारा यह विश्व ओत प्रोत हो रहा है चेतन्यस्वरूप एक आद्यंतरहित तेजोंकी निधि॥ २९॥ ब्रह्मा जिसके ईक्षणसे सब करता है जिसके अनुग्रहसे विष्णु पालते और शिव संहार करते हैं ॥ ३० ॥ जब मधुकैटभके भयसे ब्रह्माजी घबराये जिसकी स्तुतिसे घोर दैत्यभय छूट गया ॥ ३१ ॥ तुम ही, कीर्ति, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती, दाक्षायणी, वेदगर्भा, बुद्धिकी देनेवाली, सदा निर्भयरूप ॥ ३२ ॥ मैं तुम्हारी स्तुति करता नमस्कार करता पूजन और जप करता हूं. हे देवि ! मैं तुम्हारा ध्यान, ईक्षण और श्रवण करता हूं तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो॥ ३३ ॥ ब्र... के निधि, विष्णु लक्ष्मीके

आवास, इन्द्र तीन लोकका अधिपति, पाशधारी वरुण उत्तम जलोंके पति ॥ ३४ ॥ कुबेर निधिनाथ और यमराज प्रेतराट् हुए हैं, निर्ऋति राक्षसोंके अधिपति, चन्द्रमा जलोंके स्वामी हुए ॥ ३५ ॥ हे देवेशि ! यह सब आपहीकी कृपासे हुए हेत्रिलोकवंद्ये ! हेलोकेशि ! हेमहामंगलस्वरूपिणी ! आपको प्रणामहै. हेजगन्माता ! फिर भी वारंवार प्रणाम है ॥ ३६ ॥ नारायण बोले जब दुर्गा नारायणी परादेवीकी इस प्रकार स्तुति करी. हे देवर्षे ! तब भगवती प्रसन्न हो ब्रह्मपुत्रसे यह बोली॥ ३७॥ श्रीदेवी बोली हे राजेन्द्र ! ब्रह्मपुत्र जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो तुम्हारी स्तुतिभक्तिपूर्वक आराधन और स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूं॥ ३८॥ मनु बोले हेकरुणामयी ! यदि आप

कुवेरोनिधिनाथोऽभूद्यमोजातःपरेतराट् ॥ नैर्ऋतोरक्षसांनाथःसोमोजातोह्यपोमयः ॥ ३५ ॥ त्रिलोकवंद्येलोकेशिमहामांगल्यरूपिणि ॥ नमस्तेस्तुपुनर्भूयोजगन्मातर्नमोनमः ॥ ३६ ॥ नारायणउवाच ॥ एवंस्तुताभगवतीदुर्गानारायणीपरा ॥ प्रसन्नाप्राहदेवर्षेब्रह्मपुत्रमिदंवचः ॥ ३७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरंवरयराजेंद्रब्रह्मपुत्रयदिच्छसि ॥ प्रसन्नाऽहंस्तवेनाऽत्रभक्त्याऽऽचाराधनेनच ॥ ३८ ॥ मनुरुवाच ॥ यदिदेविप्रसन्नासिभक्त्याकारुणिकोत्तमे ॥ तदा निर्विघ्नतःसृष्टिःप्रजायाःस्यात्तवाऽऽज्ञया ॥३९॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रजासर्गःप्रभवतुममाऽनुग्रहतःकिल ॥ निर्विघ्नेनचराजेंद्रवृद्धिश्चाप्युत्तरोत्तरम् ॥ ४० ॥ यःकश्चित्पठतेस्तोत्रंमद्भक्त्यात्वत्कृतंसदा ॥ तेषांविद्याप्रजासिद्धिःकीर्तिःकांत्युदयःखलु ॥४१॥ जायंतेधनधान्यानिशक्तिरप्रहतानृणाम् ॥ सर्वत्रविजयो राजन्सुखंशत्रुपरिक्षयः ॥ ४२ ॥ नारायणउवाच ॥ एवंदत्त्वावरान्देवीमनवेब्रह्मसूनवे ॥ अंतर्धानंगताचासीत्पश्यतस्तस्यधीमतः ॥ ४३ ॥ अथलब्धवरोराजाब्रह्मपुत्रःप्रतापवान् ॥ ब्रह्माणमब्रवीत्तातस्थानंमेदीयतांरहः ॥ ४४ ॥ यत्राऽहंसमधिष्ठायप्रजाःस्रक्ष्यामिपुष्कलाः ॥ यक्ष्यामियज्ञैर्देवेशंतत्समादिशमाचिरम् ॥ ४५ ॥

हमारे ऊपर प्रसन्न हो, तो आपकी आज्ञासे यह सृष्टि निर्विघ्न पूरी होजाय ॥ ३९ ॥ श्रीदेवी बोली मेरे अनुग्रहसे प्रजासर्ग करसकोगे. हेराजेन्द्र ! दिन दिन वृद्धि होगी कोई विघ्नभी न होगा और जो कोई तुम्हारे किये इस स्तोत्रको मेरी भक्तिसे कहैंगे उनको विद्या और प्रजाकी सिद्धि तथा कान्तिका उदय होगा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ जो शक्तिसे हत नहीं है उसको धनधान्यकी प्राप्ति होती है. हे राजन् ! उसको सर्वत्र जय सुख होकर शत्रुका क्षय होता है॥ ४२॥ नारायण बोले इस प्रकार ब्रह्मपुत्र मनुको वरदान देकर भगवती उसके देखते २ अन्तर्धान हो गई ॥ ४३ ॥ तब प्रतापवान् ब्रह्मपुत्र राजा वरको प्राप्त हो ब्रह्मासे कहने लगे. हे तात ! मुझे स्थान दो ॥ ४४ ॥ जहां स्थित हो

कर मैं श्रेष्ठ प्रजाकी रचना करसकूं तथा यज्ञानुष्ठानकर मैं देवेशीका पूजन करूंगा आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥ ४५ ॥ यह पुत्रके वचन सुन प्रजापति विभु विचारने लगे कि, यह कार्य कैसे होगा ॥ ४६ ॥ सृजन करते २ मुझे बहुत समय बीतगया और जलकी धाराओंमें मग्न हो सब भूमि नीचे जाती है ॥ ४७ ॥ इस मेरे चिन्तितकार्यको आदिपुरुषभगवान् सम्पादनकर हमारी सहायता करेंगे जिसके आदेशसे मैं स्थित हूं ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारायण बोले हे परंतप ! इस प्रकार उन ब्रह्माजीके विचार करनेपर मनुआदि मुनिश्रेष्ठ और मरीचिआदि ऋषियोंने सब ओरसे विचार किया ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके ध्यान करतेही उनके नासारन्ध्रसे एक अंगुलप्रमाणका एक वराहबालक प्रगट हुआ ॥ २ ॥ हे नारद ! वह उनके देखते २ आकाशमें स्थित हुआ क्षणमात्रमेंही हाथी

इतिपुत्रवचःश्रुत्वाप्रजापतिपतिर्विभुः ॥ चिंतयामाससुचिरंकथंकार्यंभवेदिदम् ॥ ४६ ॥ सृजतोमेगतःकालोविपुलोऽनंतसंख्यकः ॥ धरावार्भिःप्लुतामग्नारसंयाताऽखिलाश्रया ॥ ४७ ॥ इदंमच्चिंतितंकार्यंभगवानादिपूरुषः ॥ करिष्यतिसहायोमेयदादेशेऽहमाश्रितः ॥ ४८ ॥ इतिश्रीदेवी० भा० महा० अष्टमस्कंधेभुवनकोशोनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ एवंमीमांसतस्तस्यपद्मयोनेःपरंतप ॥ मन्वादिभिर्मुनिवरैर्मरीच्याद्यैःसमंततः ॥ १ ॥ ध्यायतस्तस्यनासाग्राद्विरिंचेःसहसाऽनघ ॥ वराहपोतोनिरगादेकांगुलप्रमाणतः ॥ २ ॥ तस्यैवपश्यतःखस्थःक्षणेनकिलनारद ॥ करिमात्रंप्रववृधेतदद्भुततमंह्यभूत् ॥ ३ ॥ मरीचिमुख्यैर्विप्रेंद्रैःसनकाद्यैश्चनारद ॥ तद्दृष्ट्वासौकररूपंतर्कयामासपद्मभूः ॥ ४ ॥ किमेतत्सौकरव्याजंदिव्यंसत्त्वमवस्थितम् ॥ अत्याश्चर्यमिदंजातंनासिकायाविनिःसृतम् ॥ ५ ॥ दृष्टोंगुष्ठशिरोमात्रःक्षणाच्छैलेंद्रसन्निभः ॥ आहोस्विद्भगवान्किंवायज्ञोमेखेदयन्मनः ॥ ६ ॥ इतितर्कयतस्तस्यब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ वराहरूपोभगवाञ्जगर्जाऽचलसन्निभः ॥ ७ ॥ विरिंचिंहर्षयामाससंहर्तांश्चद्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जशब्दमात्रेणदिक्प्रांतमनुनादयन् ॥ ८ ॥

के समान बढगया. यह अद्भुत बात हुई ॥ ३ ॥ हे नारद ! मरीचिको आदिले ब्राह्मणश्रेष्ठ सनकादि तथा ब्रह्माजी उस सूकरको देख विचारने लगे ॥ ४ ॥ यह सूकर देहके उपालंभमें कौन अद्भुत जीव है, यह कोई दिव्य वस्तु अति आश्चर्यदायक मेरी नासिकासे निर्गत हुआ है ॥ ५ ॥ देखनेमें प्रथम तो यह अंगुष्ठ शिरकेसमान था, क्षणमेंही पर्वतराजके समान होगया, अहो यह भगवान् हैं वा यज्ञ है, जो मेरा मन संदेहमें डालकर चंचल कर रहे हैं ॥ ६ ॥ परमात्मा ब्रह्माके इस प्रकार तर्कना करनेसे पर्वततुल्य भगवान् गर्जना करने लगे ॥ ७ ॥ तब संहत हुए ब्राह्मणोंको ब्रह्माजी प्रसन्न करने लगे वह अपनी गर्जनाओंसे दिशाओंको शब्दायमान करने लगे ॥ ८ ॥

वे अपने खेदका नाशक धुर घुर शब्द सुनकर तप सत्य जनलोकनिवासी श्रेष्ठ देवता ॥ ९ ॥ ऋक् साम अथर्वके छन्दोमय स्तोत्र तथा पुरुषसूक्तके वचनोंसे ब्राह्मण अभिवर्षण करनेलगे ॥ १० ॥ हरि ईश्वर भगवान् उनके स्तोत्रोंको सुनकर कृपादृष्टिसे उनको देख जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ११ ॥ उनके भीतर प्रवेश करनेसे केशरके आघातसे पीडित हो समुद्र कहनेलगा हे शरणागतके दुःख दूरकरनेवाले मेरी रक्षा करो ॥ १२ ॥ भगवान् सागरका यह वचन सुनकर जलचरोंको विदीर्ण करते सागरमें प्रविष्ट हुए ॥ १३ ॥ पृथ्वीके खोजनेको इधर उधर धावमान होने लगे वारंवार सूंघकर ऊपर उठाने योग्य धराको शनैः प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ जो सब जीवोंके आश्रयवाली भूमि जलके अन्तरमें थी देवदेवेशने उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण किया ॥ १५ ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुष उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण कर पद्मिनीको उखाडे

तेनिशम्यस्वखेदस्यक्षयिष्णुंघुर्घुरस्वनम् ॥ जनस्तपःसत्यलोकवासिनोमरवर्यकाः ॥ ९ ॥ छंदोमयैःस्तोत्रवरैर्ऋक्सामाथर्वसंभवैः ॥ वचोभिःपुरुषंत्वाद्यंद्विजेंद्राःपर्यवाकिरन् ॥ १० ॥ तेषांस्तोत्रंनिशम्याऽऽद्योभगवान्हरिरीश्वरः ॥ कृपावलोकमात्रेणाऽनुगृहीत्वाऽपआविशत् ॥ ११ ॥ तस्यांतर्विशतःक्रूरसटाघातप्रपीडितः ॥ समुद्रोऽथाऽब्रवीद्देवरक्षमांशरणार्तिहन् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्यसमुद्रोक्तंवचनंहरिरीश्वरः ॥ विदारयञ्जलचराञ्जगामांतर्जलेविभुः ॥ १३ ॥ इतस्ततोऽभिधावन्सन्विचिन्वन्पृथिवींधराम् ॥ आघ्रायाघ्रायसर्वेशोधरामासादयच्छनैः ॥ १४ ॥ अंतर्जलगतांभूमिंसर्वसत्त्वाश्रयांतदा ॥ भूमिंसदेवदेवेशोदंष्ट्रयोदाजहारताम् ॥ १५ ॥ तांसमुद्धृत्यदंष्ट्राग्रेयज्ञेशोयज्ञपूरुषः ॥ शुशुभेदिग्गजोयद्वदुद्धृत्याऽथसुपद्मिनीम् ॥ ॥ १६ ॥ तंदृष्ट्वादेवदेवेशोविरंचिःसमनुःस्वराट् ॥ तुष्टाववाग्भिर्देवेशंदंष्ट्रोद्धृतवसुंधरम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जितंतेपुंडरीकाक्षभक्तानामार्तिनाशन ॥ खर्वीकृतसुराधारसर्वकामफलप्रद ॥ १८ ॥ इयंचधरणीदेवशोभतेवसुधातव ॥ पद्मिनीवसुपत्राढ्यामतंगजकरोद्धृता ॥ १९ ॥ इदंचतेशरीरंवैशोभतेभूमिसंगमात् ॥ उद्धृतांबुजशुंडाग्रकरींद्रतनुसन्निभम् ॥ २० ॥ नमोनमस्तेदेवेशसृष्टिसंहारकारक ॥ दानवानांविनाशायकृतनानाकृतेप्रभो ॥ २१ ॥

दिग्गजके समान शोभित हुए ॥ १६ ॥ उन देवदेवको ब्रह्मा स्वराट् मनु देखकर वसुन्धराधारी देवकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्तोंके दुःखनाशक ! हे सबकामफलके दाता ! हे सुराधार आपने सत्यलोकतकको खर्व किया है आपकी जय हो ॥ १८ ॥ हे देव ! यह वसुधा धरणी आपसे शोभा पाती है जैसे मतंगद्वारा उखाडी हुई कमलिनी हो ॥ १९ ॥ यह आपका शरीर भूमिके संगमसे शोभा पाता है जैसे सूंडमें कमल उखाडे हाथीका शरीर शोभित हो ॥ ॥ २० ॥ हे सृष्टिसंहारकारक देवेश ! आपको प्रणाम है. हे प्रभो ! आप दानवोंके नाशके निमित्त अनेक शरीर धारण करते हो ॥ २१ ॥

योगसे भगवान्की परिचर्या करतेहुए योगियोंकी इष्टगतिको आप प्राप्त होगे ॥ ७ ॥ पद्मयोनि प्रजापति इसप्रकार अपने मनुपुत्रको समझाकर प्रजासर्गमें नियुक्तकर अपने धामको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! प्रजाको सृजन करो इस प्रकार उनकी आज्ञा धारण की तब स्वायंभुवमनुने प्रजासर्गकी रचना की॥ ॥ ९ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद यह मनुपुत्र बड़े प्रतापी हुए और तीन कन्या हुईं उनके नाम सुनो ॥ १० ॥ आकूती १ देवहूती २ प्रसूती, यह ३ तीन कन्या लोकमें विख्यात हुईं ॥ ११ ॥ रुचिको आकूती, कर्दमको देवहूती, दक्षको प्रसूती दी, जिससे यह सब प्रजा हुई हैं ॥ १२ ॥ रुचिके आदिपुरुष यज्ञनामसे आकूतीमें

इत्याश्वास्यमनुंपुत्रंपद्मयोनिःप्रजापतिः ॥ प्रजासर्गेनियम्याऽमुंस्वधामप्रत्यपद्यत ॥ ८ ॥ प्रजाःसृजतपुत्रेतिपितुराज्ञांसमादधत् ॥ स्वायंभुवःप्रजासर्गम करोत्पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौमनुपुत्रौमहौजसौ ॥ कन्यास्तिस्रःप्रसूताश्चतासांनामानिमेशृणु ॥ १० ॥ आकूतिःप्रथमाकन्याद्वितीयादे वहूतिका ॥ तृतीयाचप्रसूतिर्हिविख्यातालोकपावनी ॥ ११ ॥ आकूतिंरुचयेप्रादात्कर्दमायचमध्यमाम् ॥ दक्षायाऽदात्प्रसूतिंचयासांलोकइमाःप्रजाः ॥ १२ ॥ रुचेःप्रजज्ञेभगवान्यज्ञोनामाऽऽदिपूरुषः ॥ आकूत्यांदेवहूत्यांचकपिलोऽसौचकर्दमात् ॥ १३ ॥ सांख्याचार्यःसर्वलोकेविख्यातःकपिलोविभुः ॥ दक्षात्प्रसूत्यांकन्याश्चबहुशोजज्ञिरेप्रजाः ॥ १४ ॥ यासांसंतानसंभूतादेवतिर्यङ्नरादयः ॥ प्रसूतालोकविख्याताःसर्वेसर्गप्रवर्तकाः ॥ १५ ॥ यज्ञश्चभगवा न्स्वायंभुवमन्वंतरेविभुः ॥ मनुंररक्षरक्षोभ्योयामैर्देवगणैर्वृतः ॥ १६ ॥ कपिलोऽपिमहायोगीभगवान्स्वाश्रमेस्थितः ॥ देवहूत्यैपरंज्ञानंसर्वाऽविद्यानिवर्त कम् ॥ १७ ॥ सविशेषंध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम् ॥ कापिलंशास्त्रमाख्यातंसर्वाज्ञानविनाशनम् ॥ १८ ॥ उपदिश्यमहायोगीसययौपुलहाश्रमम् ॥ अद्यापिवर्ततेदेवःसांख्याचार्योमहाशयः ॥ १९ ॥

प्रगट हुए और देवहूतीमें कपिलदेव कर्दमजीसे प्रगट हुए ॥ १३ ॥ कपिलदेवजी सबलोकमें सांख्याचार्यनामसे विख्यात हुए हैं दक्षसे प्रसूतीमें बहुतसी सन्तान प्रगट हुई ॥ १४ ॥ जिनके सन्तान देवता और तिर्यक् इत्यादि हुए वे सब लोक विख्यात सर्गके प्रवृत्त करनेवाले हुए ॥ १५ ॥ भगवान् यज्ञने यामनामक देवगणोंसे युक्त होकर एक समय राक्षसोंसे स्वायंभुवमनुकी रक्षा की थी ॥ १६ ॥ महायोगीभगवान् कपिलजी अपने आश्रममें स्थित हुए देवहूतीको सब अविद्याका निवृत्तकरने वाला परमज्ञान ॥ १७ ॥ तथा विशेषकर ध्यान, योग, अध्यात्मज्ञानका निश्चय सब अज्ञानका नाशक कपिलशास्त्र ॥ १८ ॥ उपदेशकर वह महायोगी पुलहाश्र

१ विदित होता है कि, इस राजाने अमेरीकामें गमन किया और भूमिकी गोलाई जानी।

वे अपने खेदका नाशक धुर घुर शब्द सुनकर तप सत्य जनलोकनिवासी श्रेष्ठ देवता ॥ ९ ॥ ऋक् साम अथर्वके छन्दोमय स्तोत्र तथा पुरुषसूक्तके वचनोंसे ब्राह्मण अभिवर्षण करनेलगे ॥ १० ॥ हरि ईश्वर भगवान् उनके स्तोत्रोंको सुनकर कृपादृष्टिसे उनको देख जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ११ ॥ उनके भीतर प्रवेश करनेसे केशरके आघातसे पीडित हो समुद्र कहनेलगा हे शरणागतके दुःख दूरकरनेवाले मेरी रक्षा करो ॥ १२ ॥ भगवान् सागरका यह वचन सुनकर जलचरोंको विदीर्ण करते सागरमें प्रविष्ट हुए ॥ १३ ॥ पृथ्वीके खोजनेको इधर उधर धावमान होने लगे वारंवार सूंघकर ऊपर उठाने योग्य धराको शनैः प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ जो सब जीवोंके आश्रयवाली भूमि जलके अन्तरमें थी देवदेवेशने उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण किया ॥ १५ ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुष उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण कर पद्मिनीको उखाडे

तेनिशम्यस्वखेदस्यक्षयिष्णुंघुर्घुरस्वनम् ॥ जनस्तपःसत्यलोकवासिनोमरवर्यकाः ॥ ९ ॥ छंदोमयैःस्तोत्रवरैर्ऋक्सामाथर्वसंभवैः ॥ वचोभिःपुरुषं त्वाद्यंद्विजेंद्राःपर्यवाकिरन् ॥ १० ॥ तेषांस्तोत्रंनिशम्याऽऽद्योभगवान्हरिरीश्वरः ॥ कृपावलोकमात्रेणाऽनुगृहीत्वाऽपआविशत् ॥ ११ ॥ तस्यांतर्विशतःक्रूरसटाघातप्रपीडितः ॥ समुद्रोऽथाऽब्रवीद्देवरक्षमांशरणार्तिहन् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्यसमुद्रोक्तंवचनंहरिरीश्वरः ॥ विदारयञ्ज लचराञ्जगामांतर्जलेविभुः ॥ १३ ॥ इतस्ततोऽभिधावन्सन्विचिन्वन्पृथिवींधराम् ॥ आघ्रायाघ्रायसर्वेशोधरामासादयच्छनैः ॥ १४ ॥ अंतर्जलगतांभूमिंसर्वसत्त्वाश्रयांतदा ॥ भूमिंसदेवदेवेशोदंष्ट्रयोदाजहारताम् ॥ १५ ॥ तांसमुद्धृत्यदंष्ट्राग्रेयज्ञेशोयज्ञपूरुषः ॥ शुशुभेदिग्गजोयद्वदुद्धृत्याऽथसुपद्मिनीम् ॥ ॥ १६ ॥ तंदृष्ट्वादेवदेवेशोविरंचिःसमनुःस्वराट् ॥ तुष्टाववाग्भिर्देवेशंदंष्ट्रोद्धृतवसुंधरम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जितंतेपुंडरीकाक्षभक्तानामार्तिनाशन ॥ खर्वीकृतसुराधारसर्वकामफलप्रद ॥ १८ ॥ इयंचधरणीदेवशोभतेवसुधातव ॥ पद्मिनीवसुपत्राढ्यामतंगजकरोद्धृता ॥ १९ ॥ इदंचतेशरीरंवैशोभतेभूमिसंगमात् ॥ उद्धृतांबुजशुंडाग्रकरींद्रतनुसन्निभम् ॥ २० ॥ नमोनमस्तेदेवेशसृष्टिसंहारकारक ॥ दानवानांविनाशायकृतनानाकृतेप्रभो ॥ २१ ॥

दिग्गजके समान शोभित हुए ॥ १६ ॥ उन देवदेवको ब्रह्मा स्वराट् मनु देखकर वसुन्धराधारी देवकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्तोंके दुःखनाशक ! हे सबकामफलके दाता ! हे सुराधार आपने सत्यलोकतकको खर्व किया है आपकी जय हो ॥ १८ ॥ हे देव ! यह वसुधा धरणी आपसे शोभा पाती है जैसे मतंगद्वारा उखाडी हुई कमलिनी हो ॥ १९ ॥ यह आपका शरीर भूमिके संगमसे शोभा पाता है जैसे सूंडमें कमल उखाडे हाथीका शरीर शोभित हो ॥ ॥ २० ॥ हे सृष्टिसंहारकारक देवेश ! आपको प्रणाम है. हे प्रभो ! आप दानवोंके नाशके निमित्त अनेक शरीर धारण करते हो ॥ २१ ॥

आपको आगे पीछे प्रणाम है, आप सम्पूर्ण देवताओंके आधार बृहद्धाम हो आपको प्रणाम है॥ २२॥ आपनेही शक्तियुक्त हो मुझे प्रजाके निर्माणमें नियुक्त किया है आपहीकी आज्ञासे मैं प्रजाकी सृष्टि करता और बिगाडता हूं॥ २३॥ हे देवेश! आपहीकी सहायतासे पहले देवताओंने अमृत पाया जो यथासमयमें बलानुसार प्राप्त हुआ॥ २४॥ इस त्रिलोकीके साम्राज्यको आपहीकी आज्ञासे इन्द्र देवताओंसे पूजित हो ऐश्वर्यके सहित भोगता है॥ २५॥ अग्नि जठरादिके भेदसे पावकताको प्राप्त होकर देवासुर मनुष्योंका पालन करताहै॥ २६॥ पितरोंके अधिपति धर्मराजभी सबकर्मोंके द्रष्टाहैं वहभी आपहीके नियोगसे सब कर्मोंके फल दाताहैं॥ २७॥ नैर्ऋतराक्षसोंके अधिपति यक्ष विघ्ननाशक सब

अग्रतश्चनमस्तेस्तुपृष्ठतश्चनमोनमः॥सर्वामराधारभूतबृहद्धामनमोस्तुते॥२२॥ त्वयाहंचप्रजासर्गेनियुक्तःशक्तिबृंहितः॥त्वदाज्ञावशतःसर्गंकरोमिविकरोमिच॥२३॥ त्वत्सहायेनदेवेशाअमराश्चपुराहरे॥ सुधांविभेजिरेसर्वेयथाकालंयथाबलम्॥२४॥ इंद्रस्त्रिलोकीसाम्राज्यंलब्धवांस्त्वन्निदेशतः॥ भुनक्तिलक्ष्मींबहुलांसुरसंघप्रपूजितः॥ २५॥ वह्निःपावकतांलब्ध्वाजाठरादिविभेदतः॥ देवासुरमनुष्याणांकरोत्याप्यायनंतथा॥ २६॥ धर्मराजोऽथपितृणामधिपःसर्वकर्मदृक्॥ कर्मणांफलदाताऽसौत्वन्नियोगादधीश्वरः॥ २७॥ नैर्ऋतोरक्षसामीशोयक्षोविघ्नविनाशनः॥ सर्वेषांप्राणिनांकर्मसाक्षीत्वत्तःप्रजायते॥ २८॥ वरुणोयादसामीशोलोकपालोजलाधिपः॥ त्वदाज्ञाबलमाश्रित्यलोकपालत्वमागतः॥ २९॥ वायुर्गंधवहःसर्वभूतप्राणनकारणम्॥ जातस्त्वन्निदेशेनलोकपालोजगद्गुरुः॥ ३०॥ कुबेरःकिन्नरादीनांयक्षाणांजीवनाश्रयः॥ त्वदाज्ञांतर्गतःसर्वलोकेषुचमान्यभूः॥ ३१॥ ईशानःसर्वरुद्राणामीश्वरांतकरःप्रभुः॥ जातोलोकेशवंद्योऽसौसर्वदेवाधिपालकः॥ ३२॥ नमस्तुभ्यंभगवतेजगदीशायकुर्महे॥ यस्यांशभागाःसर्वेहिजातादेवाःसहस्रशः॥ ३३॥ नारदउवाच॥ एवंस्तुतोविश्वसृजाभगवानादिपूरुषः॥ लीलावलोकमात्रेणाऽप्यनुग्रहमवाऽसृजत्॥ ३४॥

प्राणियोंके कर्मसाक्षी आपहीके द्वारा होते हैं॥ २८॥ जलोंके पति वरुण लोकपाल जलाधिप आपहीकी आज्ञाबलको प्राप्त हो लोकपालत्वको प्राप्त हुए हैं॥ २९॥ वायु गंध वहन करनेवाला सबका प्राणधारण करनेका कारण वहभी लोकपालक जगत्का गुरु आपहीकी आज्ञासे हुआ है॥ ३०॥ कुबेर किन्नर और यक्षोंके जीवनका आश्रय आपकीही आज्ञासे सब लोकमें मान्य हुआ है॥ ३१॥ सब रुद्रोंके अधिपति ईश्वर अन्तकारी सब देवोंके पालक हे लोकेश! आपहीके कारण सबके वन्दनीय हुए हैं॥ ३२॥ हे जगदीश्वर! भगवान् आपको प्रणाम है जिसके अंशभागसे सब देवता हुए हैं॥ ३३॥ नारदजी बोले जब इस प्रकार

ब्रह्माजीने आदिपुरुष भगवान्की स्तुति की तब भगवान्ने अपनी लीलाके अवलोकनसे उनपर कृपा की॥ ३४॥ उसी समय महाअसुर हिरण्याक्ष वहां आकर मार्ग रोकने लगा तब भगवान्ने उसको गदासे ताडन किया ॥ ३५ ॥ भगवान् आदि पुरुषका शरीर उसके रुधिरसे आर्द्र होगया और इसप्रकार अपनी दंष्ट्रारूपी एक अंशसे पृथ्वीको उद्धार कर और उस जलके ऊपर॥ ३६॥ स्थापित कर भगवान् अपने स्थानको गये यह भगवान्का धरणी उद्धार बड़ा आश्चर्यजनक है ॥ ३७॥ जो पुरुष इस चरित्रको पढते सुन्ते हैं वह सब पापसे रहित हो वैष्णवगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तत्रैवाऽभ्यागतंदैत्यंहिरण्याक्षंमहाऽसुरम्॥ रुंधानमध्वनोभीमंगदयाताडयद्धरिः ॥३५॥ तद्रक्तपंकदिग्धांगोभगवानादिपूरुषः॥ उद्धृत्यधरणींदेवोदंष्ट्रयाली लयाप्लुताम्॥३६॥ निवेश्यलोकनाथेशोजगामस्थानमात्मनः॥ एतद्भगवतश्चित्रंधरण्युद्धरणंपरम् ॥३७॥ शृणुयाद्यःपुमान्यश्चपठेच्चरितमुत्तमम्॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोवैष्णवींगतिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ ॥ छ ॥ नारायणउवाच ॥ महींदेवःप्रतिष्ठाप्ययथास्थानेचनारद ॥ वैकुंठलोकमगमद्ब्रह्मोवाचस्वमात्मजम् ॥ १ ॥ स्वायंभुवमहाबाहोपुत्रतेजस्विनांवर ॥ स्थानेमहीमयेतिष्ठप्रजाःसृजयथोचितम् ॥ २ ॥ देशकालविभागेनयज्ञेशंपुरुषंयज ॥ उच्चावचपदार्थैश्चयज्ञसाधनकैर्विभो ॥ ३ ॥ धर्ममाचरशास्त्रोक्तंवर्णाश्रमनिबंधनम्॥ एतेनक्रमयोगेनप्रजावृद्धिर्भविष्यति ॥ ४ ॥ पुत्रानुत्पाद्यगुणतःकीर्त्याकांत्याऽऽत्मरूपिणः ॥ विद्याविनयसंपन्नान्सदाचारवतांवरान् ॥ ५ ॥ कन्याश्चदत्त्वागुणवद्यशोवद्भ्यःसमाहितः ॥ मनःसम्यक्समाधायप्रधानपुरुषेपरे ॥ ६ ॥ भक्तिसाधनयोगेनभगवत्परिचर्यया ॥ गतिमिष्टांसदावंद्यांयोगिनांगमिताभवान् ॥ ७॥

नारायण बोले हे नारदजी! इसप्रकार भगवान् भूमिको यथा स्थानमें स्थापित कर वैकुण्ठमें गये और ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा ॥ १ ॥ हे तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ महाभुज स्वायम्भुव इस पृथ्वीके स्थानमें स्थित होकर प्रजाकी रचना करो ॥२॥ देशकालके विभागसे यज्ञेशपुरुषका यजन करो ऊंचे नीचे पदार्थोंसे जो कि, यज्ञके साधन हैं ॥ ३ ॥ शास्त्रोक्त वर्ण आश्रमके निबन्धवाले धर्मका आचरण करो, इस क्रमयोगसे प्रजाकी वृद्धि होगी ॥ ४ ॥ गुणपूर्वक कीर्त्तिद्वारा कान्तिमें अपने समान पुत्रोंको उत्पन्न करो जो विद्याविनयसम्पन्न और सदाचारयुक्त हों ॥५॥ और गुणयशवाली कन्या देकर प्रधान पुरुषेश्वरमें मनको समाधान कर ॥ ६ ॥ भक्तिसाधनके

योगसे भगवान्‌की परिचर्या करतेहुए योगियोंकी इष्टगतिको आप प्राप्त होगे ॥ ७ ॥ पद्मयोनि प्रजापति इसप्रकार अपने मनुपुत्रको समझाकर प्रजासर्गमें नियुक्तकर अपने धामको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ हे पुत्र! प्रजाको सृजन करो इस प्रकार उनकी आज्ञा धारण की तब स्वायंभुवमनुने प्रजासर्गकी रचना की॥ ॥ ९ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद यह मनुपुत्र बड़े प्रतापी हुए और तीन कन्या हुई उनके नाम सुनो ॥ १० ॥ आकूती १ देवहूती २ प्रसूती, यह ३ तीन कन्या लोकमें विख्यात हुईं ॥ ११ ॥ रुचिको आकूती, कर्दमको देवहूती, दक्षको प्रसूती दी, जिससे यह सब प्रजा हुई हैं ॥ १२ ॥ रुचिके आदिपुरुष यज्ञनामसे आकूतीमें

इत्याश्वास्यमनुंपुत्रंपद्मयोनिःप्रजापतिः ॥ प्रजासर्गेनियम्याऽमुंस्वधामप्रत्यपद्यत ॥ ८ ॥ प्रजाःसृजतपुत्रेतिपितुराज्ञांसमादधत् ॥ स्वायंभुवःप्रजासर्गम करोत्पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौमनुपुत्रौमहौजसौ ॥ कन्यास्तिस्रःप्रसूताश्चतासांनामानिमेशृणु ॥ १० ॥ आकूतिःप्रथमाकन्याद्वितीयादे वहूतिका ॥ तृतीयाचप्रसूतिर्हिविख्यातालोकपाविनी ॥ ११ ॥ आकूतिंरुचयेप्रादात्कर्दमायचमध्यमाम् ॥ दक्षायाऽदात्प्रसूतिंचयासांलोकइमाःप्रजाः ॥ १२ ॥ रुचेःप्रजज्ञेभगवान्यज्ञोनामाऽऽदिपूरुषः ॥ आकूत्यांदेवहूत्यांचकपिलोऽसौचकर्दमात् ॥ १३ ॥ सांख्याचार्यःसर्वलोकेविख्यातःकपिलोविभुः ॥ दक्षात्प्रसूत्यांकन्याश्चबहुशोजज्ञिरेप्रजाः ॥ १४ ॥ यासांसंतानसंभूतादेवतिर्यङ्गरादयः ॥ प्रसूतालोकविख्याताःसर्वेसर्गप्रवर्तकाः ॥ १५ ॥ यज्ञश्चभगवा न्स्वायंभुवमन्वंतरेविभुः ॥ मनुंररक्षरक्षोभ्योयामैर्देवगणैर्वृतः ॥ १६ ॥ कपिलोऽपिमहायोगीभगवान्स्वाश्रमेस्थितः ॥ देवहूत्यैपरंज्ञानंसर्वाऽविद्यानिवर्त कम् ॥ १७ ॥ सविशेषंध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम् ॥ कापिलंशास्त्रमाख्यातंसर्वाज्ञानविनाशनम् ॥ १८ ॥ उपदिश्यमहायोगीसययौपुलहाश्रमम् ॥ अद्यापिवर्ततेदेवःसांख्याचार्योमहाशयः ॥ १९ ॥

प्रगट हुए और देवहूतीमें कपिलदेव कर्दमजीसे प्रगट हुए ॥ १३ ॥ कपिलदेवजी सबलोकमें सांख्याचार्यनामसे विख्यात हुए हैं दक्षसे प्रसूतीमें बहुतसी सन्तान प्रगट हुई ॥ १४ ॥ जिनके सन्तान देवता और तिर्यक् इत्यादि हुए वे सब लोक विख्यात सर्गके प्रवृत्त करनेवाले हुए ॥ १५ ॥ भगवान् यज्ञने यामनामक देवगणोंसे युक्त होकर एक समय राक्षसोंसे स्वायंभुवमनुकी रक्षा की थी ॥ १६ ॥ महायोगीभगवान् कपिलजी अपने आश्रममें स्थित हुए देवहूतीको सब अविद्याका निवृत्तकरने वाला परमज्ञान ॥ १७ ॥ तथा विशेषकर ध्यान, योग, अध्यात्मज्ञानका निश्चय सब अज्ञानका नाशक कपिलशास्त्र ॥ १८ ॥ उपदेशकर वह महायोगी पुलहाश्र

१ विदित होता है कि, इस राजाने अमेरीकामें गमन किया और भूमिकी गोलाई जानी।

मर्में चले गये वह महाशय सांख्यमें निपुण अबतक वहां वर्तमान हैं ॥ १९ ॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है, उन योगाचार्य सर्वश्रेष्ठ कपिलदेवजीको प्रणाम करता हूं जो सब वरके देनेवाले हैं ॥ २० ॥ हयमैंने कन्याका उत्तम वंश वर्णन किया इसके पढने सुननेसे सब पाप नाश होते हैं ॥ २१ ॥ अब मनुपुत्रोंका सुन्दर वंश कहता हूं जिसके श्रवण करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ द्वीप वर्ष, सागर आदिकी व्यवस्था जिसके पुत्रोंने की जिससे व्यवहारकी प्रसिद्धी और सब प्राणियोंको सुख प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारायण बोले स्वायंभुवमनुका ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत हुआ वह नित्य पिताकी सेवामें तत्पर सत्यधर्मका परायण हुआ॥ १ ॥ उसने प्रजापति विश्वकर्माकी बर्हिष्मती

यन्नामस्मरणेनाऽपिसांख्ययोगश्चसिद्ध्यति॥तंवंदेकपिलंयोगाचार्यसर्ववरप्रदम्॥२०॥एवमुक्तंमनोःकन्यावंशवर्णनमुत्तमम्॥पठतांशृण्वतांचाऽपिसर्वपापविनाशनम्॥२१॥अतःपरंप्रवक्ष्यामिमनुपुत्रान्वयंशुभम्॥यदाकर्णनमात्रेणपरंपदमवाप्नुयात्॥२२॥द्वीपवर्षसमुद्रादिव्यवस्थायत्सुतैःकृता॥व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थंसर्वभूतसुखाप्तये ॥२३॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टमस्कंधेभुवनकोशेतृतीयोऽध्यायः ॥३॥ ॥ छ ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ मनोःस्वायंभुवस्याऽऽसीज्ज्येष्ठःपुत्रःप्रियव्रतः ॥ पितुःसेवापरोनित्यंसत्यधर्मपरायणः ॥ १ ॥ प्रजापतेर्दुहितरंसुरूपांविश्वकर्मणः ॥ बर्हिष्मतींचोपयेमेसमानांशीलकर्मभिः ॥ २ ॥ तस्यांपुत्रान्दशगुणैरन्वितान्भावितात्मनः ॥ जनयामासकन्यांचोर्जस्वतींचयवीयसीम् ॥ ३ ॥ आग्नीध्रश्चेध्मजिह्वश्चयज्ञबाहुस्तृतीयकः ॥ महावीरश्चतुर्थस्तुपंचमोरुक्मशुक्रकः ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठश्चसवनोमेधातिथिरथाऽष्टमः ॥ वीतिहोत्रःकविश्चेतिदशैतेवह्निनामकाः ॥५॥ एतेषांदशपुत्राणांत्रयोऽप्यासन्विरागिणः ॥ कविश्चसवनश्चैवमहावीरइतित्रयः ॥ ६ ॥ आत्मविद्यापरिष्णाताःसर्वेतेह्यूर्ध्वरेतसः ॥ आश्रमेपरहंसाख्येनिःस्पृहाह्यभवन्मुदा॥७॥अपरस्यांचजायायांत्रयःपुत्राश्चजज्ञिरे ॥ उत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चेतिविश्रुताः ॥ ८ ॥ मन्वंतराधिपतयएतेपुत्रामहौजसः ॥ प्रियव्रतःसराजेंद्रोबुभुजेजगतीमिमाम् ॥ ९ ॥

नाम कन्या रूपशीलवान्से विवाह किया ॥ २ ॥ उसमें अपने समान दश पुत्र और एक कन्या ऊर्जस्वतीनाम प्रगट की ॥ ३ ॥ आग्नीध्र, इध्मजिह्व यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्रक ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र, कवि यह दश वह्नि नामक हुए ॥ ५ ॥ इन दश पुत्रोंमें तीन विरक्त होगये वे कवि, सवन और महावीर थे॥ ६ ॥ यह सब आत्मविद्यामें निष्णात होनेके कारण ऊर्ध्वरेता हुए और परम हंसनामक आश्रममें आनंदसे निवास करने लगे ॥ ७ ॥ दूसरी भार्यामें तीन पुत्र हुए वे उत्तम, तामस, रैवत नामसे विख्यात हुए ॥ ८ ॥ यह प्रतापी पुत्र मन्वन्तरोंके अधिपति हुए, इस प्रकार राजा प्रियव्रत इस भूमिको भोगने लगा ॥ ९ ॥

ग्यारह अर्व वर्षतक बलवान् इन्द्रिय होकर राज्य करता रहा जब सूर्य इस पृथ्वीके अर्धगोलकमें तपता है॥ १०॥ तब नीचेके आधे भागमें अंधकार रहता है. राजाने यह व्यतिकर देख मनमें विचार किया॥ ११॥ कि मेरे शासनकालमें पृथ्वीमें अंधकार कैसे रह सक्ता है मैं अपने योगबलसे इस अंधकारको दूर करूंगा॥ १२॥ इस प्रकार स्वायंभुवपुत्रने विचारकर सूर्यके समान एक प्रकाशित रथ बनाय सात वार प्रदक्षिणा कर निम्नभागका अंधकार दूर किया ॥ १३ ॥ ऐसी सात प्रदक्षिणा उस रथकी होनेसे जो भूमिमें गर्त हुए वही सात सागरनामसे विख्यात हुए ॥ १४॥ और भूमीविभागके कारण वही स्थलभाग सात द्वीप कहाये रथनेमिसे प्रगट हुई परिखाही सात

एकादशार्बुदाब्दानामव्याहतबलेंद्रियः ॥ यदासूर्यःपृथिव्याश्चविभागेप्रथमेऽतपत् ॥१०॥ भागेद्वितीयेतत्राऽऽसीदंधकारोदयःकिल ॥ एवंव्यतिकरंराजा विलोक्यमनसाचिरम् ॥ ११ ॥ प्रशास्तिमयिभूम्यांचतमःप्रादुर्भवेत्कथम् ॥ एवंनिवारयिष्यामिभूमौयोगबलेनच ॥ १२ ॥ एवंव्यवसितोराजापुत्रः स्वायंभुवस्यसः ॥ रथेनाऽऽदित्यवर्णेनसप्तकृत्वःप्रकाशयन् ॥ १३ ॥ तस्याऽपिगच्छतोराज्ञोभूमौयद्रथनेमयः ॥ पतितास्तेसमुद्राख्यांभेजिरेलोकहेतवे ॥ १४ ॥ जाताःप्रदेशास्तेसप्तद्वीपाभूमौविभागशः ॥ रथनेमिसमुत्थास्तेपरिखाःसप्तसिंधवः ॥१५॥ यतआसंस्ततःसप्तभुवोद्वीपाहितेस्मृताः ॥ जंबुद्वीपः प्लक्षद्वीपःशाल्मलीद्वीपसंज्ञकः ॥ १६ ॥ कुशद्वीपःक्रौंचद्वीपःशाकद्वीपश्चपुष्करः ॥ तेषांचपरिमाणंतुद्विगुणंचोत्तरोत्तरम् ॥ १७ ॥ समंततश्चोपकॢप्तंब हिर्भागक्रमेणच ॥ क्षारोदेक्षुरसोदौचसुरोदश्चघृतोदकः॥१८॥क्षीरोदोदधिमंडोदःशुद्धोदश्चेतितेस्मृताः ॥ सप्तैतेप्रतिविख्याताःपृथिव्यांसिंधवस्तदा१९॥ प्रथमोजंबुद्वीपाख्योयःक्षारोदेनवेष्टितः ॥ तत्पतिंविदधेराजापुत्रमाग्नीध्रसंज्ञकम् ॥ २० ॥ प्लक्षद्वीपेद्वितीयेऽस्मिन्द्वीपेक्षुरससंप्लुते ॥ जातस्तदधिपः प्रियव्रतइध्मादिजिह्वकः ॥ २१ ॥ शाल्मलीद्वीपएतस्मिन्सुरोदधिपरिप्लुते ॥ यज्ञबाहुंतदधिपंकरोतिस्मप्रियव्रतः ॥ २२ ॥ कुशद्वीपेऽतिरम्येचघृतो देनोपवेष्टिते ॥ हिरण्यरेताराजाभूत्प्रियव्रततनूजनिः ॥ २३ ॥

सागर कहाये ॥ १५ ॥ उनके बीचकी भूमि सात द्वीपनामवाली हुई. जंबू, प्लक्ष, शाल्मली ॥ १६ ॥ कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप, पुष्कर[illegible] हुए इनका परिमाण भी एकसे दूसरेका दूना है॥ १७॥ और इनके चारों ओर क्रमसे खारीजल, इक्षुरस, सुरोद, घृतरूपजल ॥ १८॥ क्षीरोद, दधि, मंडोद, शुद्धोद,यह सात सागर पृथ्वीमें विख्यात हैं यह जलोंके भेद हैं इन्हीं सातों सागरोंसे यह सातों वस्तु गो इक्षुआदि द्वारा प्रगट होतीहै॥ १९॥ पहला जंबूद्वीप क्षारसमुद्रसे वेष्टित है, उसका राज्य राजाने आग्नीध्रपुत्रको दिया ॥ इक्षुरससे वेष्टित प्लक्षद्वीपका अधिपति इध्मजिह्वको किया ॥ २०॥ २१॥ सुरोदसे वेष्टित शाल्मलीद्वीपका अधिपति यज्ञबाहुको किया॥ २२॥ घृतोदसे वेष्टित मनोहर कुश

मर्मे चले गये वह महाशय सांख्यमें निपुण अवतक वहां वर्तमान हैं ॥ १९ ॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है, उन योगाचार्य सर्वश्रेष्ठ कपिलदेवजीको प्रणाम करता हूं जो सब वरके देनेवाले हैं ॥ २० ॥ हय मैं ने कन्याका उत्तम वंश वर्णन किया इसके पढने सुननेसे सब पाप नाश होते हैं ॥ २१ ॥ अब मनुपुत्रोंका सुन्दर वंश कहता हूं जिसके श्रवण करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ द्वीप वर्ष, सागर आदिकी व्यवस्था जिसके पुत्रोंने की जिससे व्यवहारकी प्रसिद्धी और सब प्राणियोंको सुख प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारायण बोले स्वायंभुवमनुका ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत हुआ वह नित्य पिताकी सेवामें तत्पर सत्यधर्मका परायण हुआ ॥ १ ॥ उसने प्रजापति विश्वकर्माकी बर्हिष्मती

यन्नामस्मरणेनाऽपिसांख्ययोगश्चसिद्ध्यति॥तंवंदेकपिलंयोगाचार्यंसर्ववरप्रदम्॥२०॥एवमुक्तंमनोःकन्यावंशवर्णनमुत्तमम्॥पठतांशृण्वतांचाऽपिसर्वपापविनाशनम्॥२१॥अतःपरंप्रवक्ष्यामिमनुपुत्रान्वयंशुभम्॥यदाकर्णनमात्रेणपरंपदमवाप्नुयात्॥२२॥द्वीपवर्षसमुद्रादिव्यवस्थायत्सुतैःकृता॥व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थंसर्वभूतसुखाप्तये॥२३॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टमस्कंधेभुवनकोशेतृतीयोऽध्यायः ॥३॥ ॥ छ ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ मनोःस्वायंभुवस्याऽऽसीज्ज्येष्ठःपुत्रःप्रियव्रतः ॥ पितुःसेवापरोनित्यंसत्यधर्मपरायणः ॥ १ ॥ प्रजापतेर्दुहितरंसुरूपांविश्वकर्मणः ॥ बर्हिष्मतींचोपयेमेसमानांशीलकर्मभिः ॥ २ ॥ तस्यांपुत्रान्दशगुणैरन्वितान्भावितात्मनः ॥ जनयामासकन्यांचोर्जस्वतींचयवीयसीम् ॥ ३ ॥ आग्नीध्रश्चेध्मजिह्वश्चयज्ञबाहुस्तृतीयकः ॥ महावीरश्चतुर्थस्तुपंचमोरुक्मशुक्रकः ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठश्चसवनोमेधातिथिरथाऽष्टमः ॥ वीतिहोत्रःकविश्चेतिदशैतेवह्निनामकाः ॥५॥ एतेषांदशपुत्राणांत्रयोऽप्यासन्विरागिणः ॥ कविश्चसवनश्चैवमहावीरइतित्रयः ॥ ६ ॥ आत्मविद्यापरिष्णाताःसर्वेतेह्यूर्ध्वरेतसः ॥ आश्रमेपरहंसाख्येनिःस्पृहाह्यभवन्मुदा॥७॥अपरस्यांचजायायांत्रयःपुत्राश्चजज्ञिरे ॥ उत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चेतिविश्रुताः ॥ ८ ॥ मन्वंतराधिपतयएतेपुत्रामहौजसः ॥ प्रियव्रतःसराजेंद्रोबुभुजेजगतीमिमाम् ॥ ९ ॥

नाम कन्या रूपशीलवान्से विवाह किया ॥ २ ॥ उसमें अपने समान दश पुत्र और एक कन्या ऊर्जस्वतीनाम प्रगट की ॥ ३ ॥ आग्नीध्र, इध्मजिह्व यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्रक ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र, कवि यह दश वह्नि नामक हुए ॥ ५ ॥ इन दश पुत्रोंमें तीन विरक्त होगये वे कवि, सवन और महावीर थे ॥ ६ ॥ यह सब आत्मविद्यामें निष्णात होनेके कारण ऊर्ध्वरेता हुए और परम हंसनामक आश्रममें आनंदसे निवास करने लगे ॥ ७ ॥ दूसरी भार्यामें तीन पुत्र हुए वे उत्तम, तामस, रैवत नामसे विख्यात हुए ॥ ८ ॥ यह प्रतापी पुत्र मन्वन्तरोंके अधिपति हुए, इस प्रकार राजा प्रियव्रत इस भूमिको भोगने लगा ॥ ९ ॥

ग्यारह अर्ब वर्षतक बलवान् इन्द्रिय होकर राज्य करता रहा जब सूर्य इस पृथ्वीके अर्धगोलकमें तपता है॥ १०॥ तब नीचेके आधे भागमें अंधकार रहता है. राजाने यह व्यतिकर देख मनमें विचार किया॥ ११॥ कि मेरे शासनकालमें पृथ्वीमें अंधकार कैसे रह सक्ता है मैं अपने योगबलसे इस अंधकारको दूर करूंगा॥ १२॥ इस प्रकार स्वायंभुवपुत्रने विचारकर सूर्यके समान एक प्रकाशित रथ बनाय सात वार प्रदक्षिणा कर निम्नभागका अंधकार दूर किया ॥ १३ ॥ ऐसी सात प्रदक्षिणा उस रथकी होनेसे जो भूमिमें गर्त हुए वही सात सागरनामसे विख्यात हुए ॥ १४॥ और भूमीविभागके कारण वही स्थलभाग सात द्वीप कहाये रथनेमिसे प्रगट हुई परिखाही सात

एकादशार्बुदाब्दानामव्याहतबलेंद्रियः ॥ यदासूर्यःपृथिव्याश्चविभागेप्रथमेऽतपत् ॥१०॥ भागेद्वितीयेतत्राऽऽसीदंधकारोदयःकिल ॥ एवंव्यतिकरंराजा विलोक्यमनसाचिरम् ॥ ११ ॥ प्रशास्तिमयिभूम्यांचतमःप्रादुर्भवेत्कथम् ॥ एवंनिवारयिष्यामिभूमौयोगबलेनच ॥ १२ ॥ एवंव्यवसितोराजापुत्रः स्वायंभुवस्यसः ॥ रथेनाऽऽदित्यवर्णेनसप्तकृत्वःप्रकाशयन् ॥ १३ ॥ तस्याऽपिगच्छतोराज्ञोभूमौयद्रथनेमयः ॥ पतितास्तेसमुद्राख्यांभेजिरेलोकहेतवे ॥ १४ ॥ जाताःप्रदेशास्तेसप्तद्वीपाभूमौविभागशः ॥ रथनेमिसमुत्थास्तेपरिखाःसप्तसिंधवः ॥१५॥ यतआसंस्ततःसप्तभुवोद्वीपाहितेस्मृताः ॥ जंबुद्वीपः प्लक्षद्वीपःशाल्मलीद्वीपसंज्ञकः ॥ १६ ॥ कुशद्वीपःक्रौंचद्वीपःशाकद्वीपश्चपुष्करः ॥ तेषांचपरिमाणंतुद्विगुणंचोत्तरोत्तरम् ॥ १७ ॥ समंततश्चोपक्लृप्तंब हिर्भागक्रमेणच ॥ क्षारोदेक्षुरसोदौचसुरोदश्चघृतोदकः॥१८॥क्षीरोदोदधिमंडोदःशुद्धोदश्चेतितेस्मृताः ॥ सप्तैतेप्रतिविख्याताःपृथिव्यांसिंधवस्तदा१९॥ प्रथमोजंबुद्वीपाख्योयःक्षारोदेनवेष्टितः ॥ तत्पतिंविदधेराजापुत्रमाग्नीध्रसंज्ञकम् ॥ २० ॥ प्लक्षद्वीपेद्वितीयेऽस्मिन्द्वीपेक्षुरससंप्लुते ॥ जातस्तदधिपः प्रैयव्रतइध्मादिजिह्वकः ॥ २१ ॥ शाल्मलीद्वीपएतस्मिन्सुरोदधिपरिप्लुते ॥ यज्ञबाहुंतदधिपंकरोतिस्मप्रियव्रतः ॥ २२ ॥ कुशद्वीपेऽतिरम्येचघृतो देनोपवेष्टिते ॥ हिरण्यरेताराजाभूत्प्रियव्रततनूजनिः ॥ २३ ॥

सागर कहाये ॥ १५ ॥ उनके वीचकी भूमि सात द्वीपनामवाली हुई. जंबू, प्लक्ष, शाल्मली ॥ १६ ॥ कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप, पुष्कर[illegible] हुए इनका परिमाण भी एकसे दूसरेका दूना है॥ १७॥ और इनके चारों ओर क्रमसे खारीजल, इक्षुरस, सुरोद, घृतरूपजल ॥ १८॥ क्षीरोद, दधि, मंडोद, शुद्धोद, यह सात सागर पृथ्वीमें विख्यात हैं यह जलोंके भेद हैं इन्हीं सातों सागरोंसे यह सातों वस्तु गो इक्षुआदि द्वारा प्रगट होतीहै॥ १९॥ पहला जंबूद्वीप क्षारसमुद्रसे वेष्टित है, उसका राज्य राजाने आग्नीध्रपुत्रको दिया ॥ इक्षुरससे वेष्टित प्लक्षद्वीपका अधिपति इध्मजिह्वको किया ॥ २०॥ २१॥ सुरोदसे वेष्टित शाल्मलीद्वीपका अधिपति यज्ञबाहुको किया॥ २२॥ घृतोदसे वेष्टित मनोहर कुश

द्वीपका अधिपति रुक्मशुक्रको किया ॥ २३ ॥ क्षीरोदसे वेष्टित पांचवें क्रौंचद्वीपका अधिपति प्रियव्रतने महाबली घृतपृष्ठको किया ॥ २४ ॥ दधिमंडसे वेष्टित मनोहर शाकद्वीपका अधिपति राजाने सुपुत्र मेधातिथिको किया ॥ २५ ॥ शुद्ध जलसे पूर्ण पुष्करद्वीपका अधिपति राजाने वीतिहोत्रको किया ॥ २६ ॥ ऊर्जस्वतीनामक कन्या उशनाको व्याहदी उससे देवयानी कन्या प्रगट हुई ॥ ॥ २७॥ इस प्रकार प्रियव्रतने सात द्वीपोंको विभाग करके पुत्रोंको दे ज्ञानमार्गकी प्राप्तिके निमित्त योगमार्गका आश्रय लिया ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ छ ॥ ॥

क्रौंचद्वीपेपंचमेतुक्षीरोदपरिसंप्लुते ॥ प्रैयव्रतोघृतपृष्ठःपतिरासीन्महाबलः॥२४॥शाकद्वीपेचारुतरेदधिमंडोदसंकुले॥ मेधातिथिरभूद्राजाप्रियव्रतसुतोवरः ॥२५॥पुष्करद्वीपकेशुद्धोदकसिंधुसमाकुले॥वीतिहोत्रोबभूवाऽसौराजाजनकसंमतः॥२६॥कन्यामूर्जस्वतीनाम्नींददावुशनसेविभुः॥आसीत्तस्यां देवयानी कन्याकाव्यस्यविश्रुता ॥ २७॥ एवंविभज्यपुत्रेभ्यःसप्तद्वीपान्प्रियव्रतः ॥ विवेकवशगोभूत्वायोगमार्गाश्रितोऽभवत् ॥२८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनकोशेचतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ देवर्षेशृणुविस्तारंद्वीपवर्षविभेदतः ॥ भूमंडलस्यसर्वस्ययथादेवप्रकल्पितम् ॥ १ ॥ समासात्संप्रवक्ष्यामिनाऽलंविस्तरतःक्वचित् ॥ जंबुद्वीपःप्रथमतःप्रमाणेलक्षयोजनः ॥ २ ॥ विशालोवर्तुलाकारोयथाऽब्जस्यचकर्णिका ॥ नववर्षाणियस्मिंश्चनवसाहस्रयोजनैः ॥ ३ ॥ आयामैःपरिसंख्यानिगिरिभिःपरितःश्रितैः ॥ अष्टभिर्दीर्घरूपैश्चसुविभक्तानिसर्वतः ॥४॥ धनुर्वत्संस्थितेज्ञेयेद्वेवर्षेदक्षिणोत्तरे ॥ दीर्घाणितत्रचत्वारिचतुरस्रमिलावृतम् ॥ ५ ॥ इलावृतंमध्यवर्षयन्नाभ्यांसुप्रतिष्ठितः ॥ सौवर्णोगिरिराजोऽयंलक्षयोजनमुच्छ्रितः ॥ ॥ ६ ॥ कर्णिकारूपएवाऽयंभूगोलकमलस्यच ॥ मूर्ध्निद्वात्रिंशत्सहस्रयोजनैर्विततस्त्वयम् ॥ ७ ॥

श्री नारायण बोले हे नारदजी ! द्वीपवर्षके भेदसे इस सब भूमण्डलका विस्तार सुनो ॥ १ ॥ जो संक्षेपसे कहता हूं विस्तारसे नहीं. यह जम्बूद्वीप प्रमाणमें लाख योजन है ॥ २ ॥ यह विशाल गोलाकार कमलकर्णिकाके समान है जिसमें नव सहस्र योजनमें नौ वर्ष हैं ॥३॥ इतनेही चौडे पर्वतोंसे घिरा हुआ है अर्थात् एक २ वर्षका नौ सहस्रयोजनमें विस्तार है आठ मर्यादा पर्वतोंमें विभक्त है ॥ ४ ॥ दक्षिण उत्तरके दो वर्ष धनुषके समान स्थित हैं और चार केवल दीर्घाकार मात्र हैं इस सबके मध्य इलावृत है ॥ ५ ॥ इलावृत मध्यवर्षनाभिरूपसे प्रतिष्ठित है इसमें मेरु सुवर्णका पर्वत लाख योजनका ऊंचा है ॥ ६ ॥ यह भूगोल कमलकी कर्णि

कारूप है शिखरका बत्तीस सहस्र योजनका विस्तार है ॥ ७ ॥ मूलमें यह पर्वत सोलह सहस्र योजन तक चलागया है इलावृतके उत्तरमें नील और श्वेत पर्वत शृंगवाला है ॥ ८ ॥ इनमें यह तीन मर्यादापर्वत कहाते हैं रम्यकनामक वर्ष दूसरे हिरण्मयवर्षमें ॥ ९ ॥ तथा तीसरे कुरुवर्षमें यह पर्वत मर्यादा करते हैं यह पूर्वकी ओरसे दीर्घ हुए क्षारसमुद्रतक अवधिवाले हैं ॥ १० ॥ एक तटसे दूसरे तटतक पूर्वसे उत्तरतक दो सहस्र योजनमें वर्तमान हैं इसके एक २ क्रमसे पूर्वसे उत्तर दिग्भागमें दश अंशसे किंचित् मात्र अधिक परिमाणमें दीर्घतासे स्थित है॥ ११ ॥ इस पर्वतसे कितने नद नदी निकलते हैं इलावृतसे दक्षिणकी ओर निषध हेमकूट ॥ १२ ॥ और

मूलेषोडशसाहस्रस्तावतांतर्गतः क्षितौ॥इलावृतस्योत्तरतोनीलःश्वेतश्चशृंगवान्॥८॥त्रयोवैगिरयःप्रोक्तामर्यादावधयास्त्रिषु ॥ रम्यकाख्येतथावर्षेद्वितीयेच हिरण्मये ॥९॥ कुरुवर्षेतृतीयेतुमर्यादांव्यंजयंतिते ॥ प्रागायताउभयतःक्षारोदावधयस्तथा॥१०॥द्विसहस्रपृथुतरास्तथाएकैकशःक्रमात् ॥ पूर्वात्पूर्वाच्चोत्तरस्यांदशांशादधिकांशतः ॥११॥ दैर्घ्यएवह्रसंतीमेनानानदनदीयुताः ॥ इलावृताद्दक्षिणतोनिषधोहेमकूटकः ॥ १२ ॥ हिमालयश्चेतित्रयःप्राग्विस्तीर्णाःसुशोभनाः ॥ अयुतोत्सेधभाजस्तेयोजनैःपरिकीर्तिताः ॥१३॥ हरिवर्षंकिंपुरुषंभारतंचयथातथम् ॥ विभागात्कथयंत्येतेमर्यादागिरयस्त्रयः ॥१४॥ इलावृतात्पश्चिमतोमाल्यवान्नामपर्वतः ॥ पूर्वेणचततःश्रीमान्गंधमादनपर्वतः ॥ १५ ॥ आनीलनिषधंत्वेतौचायतौद्विसहस्रतः ॥ योजनैःपृथुतांयातौ मर्यादाकारकौगिरी ॥ १६ ॥ केतुमालाख्यभद्राश्ववर्षयोःप्रथितौचतौ ॥ मंदरश्चतथामेरुमंदरश्चसुपार्श्वकः ॥ १७ ॥ कुमुदश्चेतिविख्यातागिरयोमेरुपादकाः ॥ योजनायुतविस्तारोन्नाहामेरोश्चतुर्दिशम् ॥ १८ ॥ अवष्टंभकरास्तेतुसर्वतोऽभिविराजिताः ॥ एतेषुगिरिषुप्राप्ताःपादपाश्चूतजंबुनी ॥ १९ ॥

हिमालय यह तीन पर्वत विस्तारको प्राप्त हैं यह दश २ सहस्र योजनके ऊंचे हैं ॥ १३ ॥ इन तीनों वर्षोंकी हरिवर्ष किंपुरुष और भारत वर्ष इन तीन वर्षोंकी मर्यादा होती है इनके विभाग करनेसे यह मर्यादापर्वत कहाते हैं ॥ १४ । इलावृतके पश्चिममें माल्यवान्नाम पर्वत है पूर्वमें श्रीमान्गंधमादन पर्वत है॥ १५ ॥ नील निषधपर्वत पर्यन्त यह मर्यादाकारी पर्वत दो सहस्र योजनपर्यन्त विस्तृत हो रहे हैं ॥ १६ ॥ केतुमाल और भद्राश्व वर्षोंकी मर्यादा करते हैं मंदर, मेरुमंदर और सुपार्श्व ॥ १७ ॥ तथा कुमुद यह पर्वत मेरुपादरूप कहलाते हैं इनका अयुत १०००० योजनोंका विस्तार है और यह मेरुके चारों ओर हैं ॥ १८ ॥ अर्थात् मेरुको अवरोध करनेवाले यह सब

ओरसे विराजते हैं इनही पर्वतोंपर आम जामुन ॥ १९ ॥ कदम्ब न्यग्रोधनामक चार वृक्ष स्थित हैं यह ग्यारह सौ योजन ऊंचे पर्वतकी ध्वजारूपसे शोभित हैं ॥ ॥ २० ॥ इतनाही वृक्षोंका विस्तार है उतनाही इनकी शाखाओंका परिमाण है और शोभित हैं इनमें पयहृद, मधुहृद, इक्षुहृद और अच्छे जलके चार हृद हैं ॥ ॥ २१ ॥ जिनके स्पर्शमात्रसे देवतायोगैश्वर्यको जान्ते हैं और वह स्त्रीजनोंको सुखदायक चार देवोद्यान हैं ॥ २२॥ नन्दनवन, चित्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र जहां देवता स्त्रीजनोंसे संयुक्त होकर ॥ २३ ॥ उपदेवताओंसे अपनी महिमा गवाते प्रसन्न होते हैं और स्वतंत्र होकर यथाकाम यथासुखसे विहार करते हैं ॥ २४ ॥ मन्दरपर्वतके ऊपर स्थित देव आम्रके ऊपरसे जो कि ग्यारहसौ योजन ऊंचा है अमृतमय फल टपकते हैं॥ २५॥ जो कि पर्वतखण्डके समान स्वादु और मृदु होते हैं

कदंबन्यग्रोधइतिचत्वारःपर्वताःस्थिताः ॥ केतवोगिरिराजेषुएकादशशतोच्छ्रयाः ॥२०॥ तावद्विटपविस्ताराःशताख्यपरिणाहिनः ॥ चत्वारश्चह्रदास्ते षुपयोमध्विक्षुसज्जलाः ॥ २१ ॥ यदुपस्पर्शिनोदेवायोगैश्वर्याणिविंदते ॥ देवोद्यानानिचत्वारिभवंतिललनासुखाः ॥ २२ ॥ नंदनंचैत्ररथकंवैभ्राजंसर्वभद्रकम् ॥ येषुस्थित्वाऽमरगणाललनायूथसंयुताः ॥ २३ ॥ उपदेवगणैर्गीतमहिमानोमहाशयाः ॥ विहरंतिस्वतंत्रास्तेयथाकामंयथासुखम् ॥ २४ ॥ मंदरोत्संगसंस्थस्यदेवचूतस्यमस्तकात् ॥ एकादशशतोच्छ्रायात्फलान्यमृतभांजिच ॥ २५ ॥ गिरिकूटप्रमाणानिसुस्वादूनिमृदूनिच ॥ तेषांविशीर्यमाणानांफलानांसुरसेनच ॥२६॥ अरुणोदसवर्णेनअरुणोदाप्रवर्तते ॥ नदीरम्यजलादेवदैत्यराजप्रपूजिता ॥२७॥ अरुणाख्यामहाराजवर्ततेपापहारिणी ॥ पूजयंतिचतांदेवींसर्वकामफलप्रदाम् ॥ २८ ॥ कनानोपहारबलिभिःकल्मषघ्न्यभयप्रदाम् ॥ तस्याःकृपावलोकनक्षेमारोग्यंव्रजंतिते ॥ २९ ॥ आद्यामायातुलानंतापुष्टिरीश्वरमालिनी ॥ दुष्टनाशकरीकांतिदायिनीतिस्मृताभुवि ॥ ३० ॥ अस्याःपूजाप्रभावेणजांबूनदमुदावहत् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनलोकवर्णननामपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उन गिरकर टूटे हुए फलोंके रससे॥ २६॥ जो कि लालरंग सारस है उससे अरुणोदा नदी निर्मलजलवाली दैत्यराजसे पूजित वहन करती है ॥ २७ ॥ हेमहाराज! वहां पापहारिणी अरुणाख्या देवी जो सब कामना देतीहै उसको सब कोई पूजन करतेहैं ॥२८॥ उन पापनाशिनी अभयदायिनीको अनेक प्रकारके उपहार भेंट बलिसे पूजते हैं और उसके कृपावलोकनसे क्षेम और आरोग्यताको प्राप्त होते हैं॥ २९॥ वह आद्यामाया अतुला अनन्ता,पुष्टि,ईश्वरमालिनीहै,वह दुष्टोंकी नाशक,कान्तिदायिनी, पृथ्वीमें विख्यात हैं॥ ३०॥ इन्हींकी पूजाके प्रभावसे जाम्बूनद प्रवाहित होता है ॥ ३१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शिखरपर ही कमलभव विधाता ब्रह्माकी पुरी है, यह मध्यमें दशसहस्र योजनकी है ॥ ६ ॥ वह समान और चौकोन सोनेकी पुरी है ऐसा परावरके ज्ञाता महात्मा वर्णन करते हैं॥ ७॥ उस पुरीके निम्नभागमें आठौं लोकपालोंकी सुवर्णमयपुरी आठौ दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ वे सब ढाई सहस्रयोजनके प्रमाणमें हैं ऐसी मेरुपर ब्रह्मपुरीके सहित नौपुरी हैं. मनोवती, अमरावती ॥ ९ ॥ तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गंधवती, महोदया ॥ १० ॥ यशोवती यह क्रमसे ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि आदिकोंकी हैं. उसी स्थानमें त्रिविक्रमावतारधारी भगवान् विष्णुके ॥ ११ ॥ वामपादके नखसे भिन्नहोकर हे नारद! अंडकटाहके ऊर्ध्वभागके रंध्रमध्यसे देवलोकमें प्रविष्ट होती हुई सी ॥ १२ ॥ स्वर्गसे अवतरित होकर गंगा प्रवाहित होती है, जिसका जल सम्पूर्ण लोकोंका पाप हरण करता है ॥ १३ ॥ यह साक्षात् लोकमें

समानचतुरस्रांचशातकौंभमयींपुरीम् ॥ वर्णयंतिमहात्मानःपरावरविदोबुधाः ॥ ७ ॥ तांपुरीमनुलोकानामष्टानामीशिषांपराः ॥ पुर्यःप्रख्यातसौवर्णरूपास्ताश्चयथादिशम् ॥ ८॥ यथारूपंसार्धनेत्रसहस्रप्रमिताःकृताः ॥ मेरौनवपुराणिस्युर्मनोवत्यमरावती ॥ ९ ॥ तेजोवतीसंयमनीतथाकृष्णांगनापरा ॥ श्रद्धावतीगंधवतीतथाचान्यामहोदया ॥ १० ॥ यशोवतीचब्रह्मेंद्रवन्ह्यादीनांयथाक्रमम् ॥ तत्रैवयज्ञलिंगस्यविष्णोर्भगवतोविभोः ॥ ११ ॥ वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नस्यचनारद ॥ अंडोर्ध्वभागरंध्रस्यमध्यात्संविशतीदिवः ॥ १२ ॥ मूर्धन्यवततारेयंगंगासंविशतीविभोः ॥ लोकानामखिलानांचपापहारिजलाकुला ॥ १३ ॥ इयंचसाक्षाद्भगवत्पदीलोकेषुविश्रुता ॥ कालेनमहतासातुयुगसाहस्रकेणतु ॥ १४ ॥ दिवोमूर्धानमागत्यदेवीदेवनदीश्वरी ॥ यत्तद्विष्णुपदंनामस्थानंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १५ ॥ औत्तानपादिर्यत्रास्तेध्रुवःपरमपावनः ॥ भगवत्पादयुगलंपद्मकोशरजोदधत्॥ १६॥ अद्याप्यास्तेसराजर्षिः पदवीमचलांश्रितः ॥ तत्रसप्तर्षयस्तस्यप्रभावज्ञामहाशयाः ॥ १७ ॥ प्रदक्षिणंप्रक्रमंतिसर्वलोकाहितेप्सवः ॥ आत्यंतिकीसिद्धिरियंतपतांसिद्धिदायिनी ॥ १८ ॥ आद्रियंतेचशिरसाजटाजूटोषितेनच ॥ ततोविष्णुपदाद्देवीनैकसाहस्रकोटिभिः ॥ १९ ॥

भगवत्पदीनामसे विख्यात है वह सहस्रयुग पर्यन्त बडे समयतक ॥ १४ ॥ दिव्यलोकके मूर्धदेशमें आकर वह देवनदियोंकी अधीश्वरी स्थित है जो विष्णुपदनामक त्रिलोकीमें विख्यात स्थान है ॥ १५ ॥ जहां परमपवित्र उत्तानपादके पुत्र ध्रुव निवास करते हैं जो भगवान्के चरणारविंदकी रज मस्तकपर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ अबतक यह राजर्षि अचलपदवीको प्राप्त हो स्थित हैं वहां उनके प्रभावके जाननेवाले सप्तऋषि ॥ १७ ॥ सब लोकके हितकी इच्छासे उनकी परिक्रमा करते हैं यह तपकी सिद्धि अत्यंतिकी सिद्धि देनेवाली है ॥ १८ ॥ यही विचारकर वे महर्षि अपने जटाजूटोंमें नित्य गंगाका आदर करते अर्थात् स्नान कर

ओरसे विराजते हैं इनही पर्वतोंपर आम जामुन ॥ १९ ॥ कदम्ब न्यग्रोधनामक चार वृक्ष स्थित हैं यह ग्यारह सौ योजन ऊंचे पर्वतकी ध्वजारूपसे शोभित हैं ॥ ॥ २० ॥ इतनाही वृक्षोंका विस्तार है उतनाही इनकी शाखाओंका परिमाण है और शोभित हैं इनमें पयह्रद, मधुह्रद, इक्षुह्रद और अच्छे जलके चार ह्रद हैं ॥ ॥ २१ ॥ जिनके स्पर्शमात्रसे देवतायोगैश्वर्यको जान्ते हैं और वह स्त्रीजनोंको सुखदायक चार देवोद्यान हैं ॥ २२॥ नन्दनवन, चित्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र जहां देवता स्त्रीजनोंसे संयुक्त होकर ॥ २३ ॥ उपदेवताओंसे अपनी महिमा गवाते प्रसन्न होते हैं और स्वतंत्र होकर यथाकाम यथासुखसे विहार करते हैं ॥ २४ ॥ मन्दरपर्वतके ऊपर स्थित देव आम्रके ऊपरसे जो कि ग्यारहसौ योजन ऊंचा है अमृतमय फल टपकते हैं॥ २५॥ जो कि पर्वतखण्डके समान स्वादु और मृदु होते हैं

कदंबन्यग्रोधइतिचत्वारःपर्वतास्थिताः ॥ केतवोगिरिराजेषुएकादशशतोच्छ्रयाः ॥२०॥ तावद्विटपविस्ताराःशताख्यपरिणाहिनः ॥ चत्वारश्चह्रदास्ते पुपयोमध्विक्षुसज्जलाः ॥ २१ ॥ यदुपस्पर्शिनोदेवायोगैश्वर्याणिविंदते ॥ देवोद्यानानिचत्वारिभवंतिललनासुखाः ॥ २२ ॥ नंदनंचैत्ररथंवैभ्राजंसर्वभद्रकम् ॥ येषुस्थित्वाऽमरगणाललनायूथसंयुताः ॥ २३ ॥ उपदेवगणैर्गीतमहिमानोमहाशयाः ॥ विहरंतिस्वतंत्रास्तेयथाकामंयथासुखम् ॥ २४ ॥ मंदरोत्संगसंस्थस्यदेवचूतस्यमस्तकात् ॥ एकादशशतोच्छ्रायात्फलान्यमृतभांजिच ॥ २५ ॥ गिरिकूटप्रमाणानिसुस्वादूनिमृदूनिच ॥ तेषांविशीर्यमाणानांफलानांसुरसेनच ॥२६॥ अरुणोदसवर्णेनअरुणोदाप्रवर्तते ॥ नदीरम्यजलादेवदैत्यराजप्रपूजिता ॥२७॥ अरुणाख्यामहाराजवर्ततेपापहारिणी ॥ पूजयंतिचतां देवींसर्वकामफलप्रदाम् ॥ २८ ॥ कनानोपहारबलिभिःकल्मषघ्न्यभयप्रदाम् ॥ तस्याःकृपावलोकेनक्षेमारोग्यंव्रजंतिते ॥ २९ ॥ आद्यामायातुलानंतापुष्टिरीश्वरमालिनी ॥ दुष्टनाशकरीकांतिदायिनीतिस्मृताभुवि ॥ ३० ॥ अस्याःपूजाप्रभावेणजांबूनदमुदावहत् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनलोकवर्णनंनामपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उन गिरकर टूटे हुए फलोंके रससे॥ २६॥ जो कि लालरंग सारस है उससे अरुणोदा नदी निर्मलजलवाली दैत्यराजसे पूजित वहन करती है ॥ २७ ॥ हेमहाराज! वहां पापहारिणी अरुणाख्या देवी जो सब कामना देतीहै उसको सब कोई पूजन करतेहैं ॥ २८॥ उन पापनाशिनी अभयदायिनीको अनेक प्रकारके उपहार भेंट बलिसे पूजते हैं और उसके कृपावलोकनसे क्षेम और आरोग्यताको प्राप्त होते हैं॥ २९॥ वह आद्यामाया अतुला अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनीहै, वह दुष्टोंकी नाशक, कान्तिदायिनी, पृथ्वीमें विख्यात हैं॥ ३०॥ इन्हींकी पूजाके प्रभावसे जाम्बूनद प्रवाहित होता है ॥ ३१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीनारायण बोले हे नारद, जो मैं ने अरुणोदानामक नदी कही है वह मंदरपर्वतसे निकलकर इलावृतके पूर्वसे पतित होती है ॥ १ ॥ जिसके प्रेमपूर्वक सवनस भवानीकी अनुचरी–सखियें यक्ष गन्धर्वोंकी पत्नियोंके देहसे गंध ले चलनेवाली पवन ॥ २ ॥ दश योजनपर्यंत भूमिको वासित करती है इस प्रकार जम्बूफलोंके ऊंचे देशसे गिरनेके कारण ॥ ३ ॥ वे हाथीके समान बडे फल टूटकर उसके रससे मेरुमंदरसे जम्बूनामक नदी ॥ ४ ॥ भूमिभागमें प्राप्त होकर इलावृतके दक्षिण ओरसे वहती है वहां जम्बूफलके आस्वादसे तुष्ट होनेके कारण देवीजम्बादिनी कहाती हैं ॥ ५ ॥ यहांके रहनेवाले देव नाग ऋषि राक्षस उस सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करने वालीका पूजन करते हैं ॥ ६ ॥ वह पापियोंकी पवित्र करनेवाली और स्मरणसेही रोग नाशनेवाली कीर्त्तनसे विघ्न हरती और सदा देवताओंकी माननीया हैं ॥ ७ ॥

॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अरुणोदानदीयातुमयाप्रोक्ताचनारद ॥ मंदरान्निपतंतीसापूर्वेणेलावृतंप्लवेत् ॥ १ ॥ यज्जोषणाद्भवान्याश्चाऽनुचरीणां स्त्रियामपि ॥ यक्षगंधर्वपत्नीनांदेहगंधवहोनिलः ॥ २ ॥ वासयत्यभितोभूमिंदशयोजनसंख्यया ॥ एवंजंबूफलानांचतुंगदेशनिपातनात् ॥ ३ ॥ विशीर्यतामनस्थीनांकुंजरांगप्रमाणिनाम् ॥ रसेनचनदीजंबूनाम्नीमेर्वाख्यमंदरात् ॥ ४ ॥ पतंतीभूमिभागेचदक्षिणेलावृतंगता ॥ देवीजंबूफलास्वादतुष्टा जंम्वादिनीस्मृता ॥ ५ ॥ तत्रत्यानांचलोकानांदेवनागर्षिरक्षसाम् ॥ पूजनीयपदामान्यासर्वभूतदयाकरी ॥ ६ ॥ पावनीपापिनांरोगनाशनीस्मरताम पि ॥ कीर्तिताविघ्नसंहर्त्रीमाननीयादिवौकसाम् ॥ ७ ॥ कोकिलाक्षीकामकलाकरुणाकामपूजिता ॥ कठोरविग्रहाधन्यानाकिमान्यागभस्तिनी ॥ ८ ॥ एभिर्नामपदैःकामंजपनीयासदानृणाम् ॥ जंबूनदीरोधसोर्यामृत्तिकातीरवर्तिनी ॥ ९ ॥ जंबूरसेनानुविद्धयमानावाय्वर्कयोगतः ॥ विद्याधरामरस्त्रीणांभू षणंविविधंमहत् ॥ १० ॥ जांबूनदसुवर्णंचप्रोक्तंदेवविनिर्मितम् ॥ यत्सुवर्णंचविबुधायोपिद्भिःकामुकाःसदा ॥ ११ ॥ मुकुटंकटिसूत्रंचकेयूरादीन्प्रकुर्व ते ॥ महाकदंबःसंप्रोक्तःसुपार्श्वगिरिसंस्थितः ॥ १२ ॥ तस्यकोटरदेशेभ्यःपंचधाराश्रयाःस्मृताः ॥ सुपार्श्वगिरिमूर्ध्नीहपतंत्येताभुवंगताः ॥ १३ ॥

वह कोकिलाक्षी कामकला दया और कामसे पूजित कठोर शरीरवाली धन्या देवताओंकी माननीया गभस्तनयुक्त ॥ ८ ॥ इन नामोंसे वहांके निवासियोंको सदा भजन करना चाहिये. जम्बूनदीके किनारेकी जो मृत्तिका है ॥ ९ ॥ वह जामुनके रससे संयुक्त हो वायु और सूर्यके संपर्कसे विद्याधर और देवताओंकी स्त्रियोंके अनेक प्रकारके भूषणोंका हेतु ॥ १० ॥ देवनिर्मित जाम्बूनद सुवर्ण कहाता है. जिस सोनेकी इच्छा देवताओंकी स्त्रियें करती हैं ॥ ११ ॥ मुकुट, मेखला, बाजूबंद आदि बनवाती हैं और सुपार्श्वपर्वतपर स्थित वृक्ष महाकदम्ब कहाता है ॥ १२ ॥ उसके खखोडलसे जो पांच धारा निकलती हैं वे सुपार्श्वपर्वतके शिखरसे पतित होती हैं ॥ १३ ॥

वे पांचों मधुधारा पश्चिम इलावृत्तमें बहती हैं जहांके भोगी देवताओं के मुखकी गंधको लेकर ॥ १४ ॥ वायु समन्तात् सौ योजन तक सुगन्ध करदेती है वहां भक्तोंकी कार्यसाधिका धारेश्वरी महादेवी है ॥ १५ ॥ वह देवताओं से पूजित महा उत्साहवाली कालरूपा, महामनवाली वनग्रहणकी अधिष्ठात्री कर्मफल दात्री निवास करती है ॥ १६ ॥ वह करालदेहवाली, कालांगी, करोड़ों कामकी प्रवृत्त करनेवाली सर्वेश्वरी देवी इन नामोंसे पूजनी चाहिये ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कुमुदपर्वतपर जो शतवलनामक वटवृक्ष है उसकी स्कन्ध शाखासे कुमुदशिखरपर होते हुए नद ॥ १८ ॥ पय, दधि, मधु, घृत, गुड, अन्न, अम्बर, शय्या, आसन आदि आभरणदायक होते हैं बहुत क्या वे सब कामना देनेवाले हैं ॥ १९ ॥ वे सब ओरसे इलावृत्तके उत्तरभागको प्लावित करते हैं उसके निकटवर्तीदेवता असुरोंसे

मधुधारापंचता स्तुपश्चिमेलावृतंप्लुताः ॥ याश्चोपभुज्यमानानांदिवानांमुखगंधभृत् ॥१४॥ वायुःसमंततोगच्छच्छतयोजनवासनः ॥ धारेश्वरीमहादेवीभ क्तानां कार्यकारिणी ॥ १५ ॥ देवपूज्यामहोत्साहाकालरूपामहानना ॥ वसतेकर्मफलदाकांतारग्रहणेश्वरी ॥ १६ ॥ करालदेहाकालांगीकामकोटिप्रव र्तिनी ॥ इत्येतैर्नामभिःपूज्यादेवीसर्वसुरेश्वरी ॥ १७ ॥ एवंकुमुदरूढोयोनाम्नाशतवलोघटः ॥ तत्स्कंधेभ्योऽधोमुखाश्चनदाःकुमुदमूर्धतः ॥ १८ ॥ पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यंवरादिभिः ॥ शय्यासनाद्याभरणःसर्वेकामदुघाश्वते ॥ १९ ॥ उत्तरेणेलावृतंतेप्लावयंतिसमंततः ॥ मीनाक्षीतत्तलेदेवीदे वासुरनिषेविता ॥ २० ॥ नीलांबरारौद्रमुखीनीलालकयुताचसा ॥नाकिनांदेवसंघानांफलदावरदाचसा ॥ २१ ॥ अतिमान्याऽतिपूज्याचमत्तमातंगगा मिनी ॥ मदनोन्मादिनीमानप्रिय ।मानप्रियांतरा ॥ २२ ॥ मारवेगधरामारपूजितामारमादिनी ॥ मयूरवरशोभाढ्याशिखिवाहनगर्भभूः ॥२३॥ एभिर्ना मपदैर्वंद्यादेवीसामीनलोचना ॥ जपतांस्मरतांमानदात्रीचेश्वरसंगिनी ॥ २४ ॥ तेषांनदानांपानीयपानानुगतचेतसाम् ॥ प्रजानांनकदाचित्स्याद्वली पलितलक्षणम् ॥ २५ ॥ क्लमस्वेदादिदौर्गंध्यंजरामयभृतिभ्रमाः ॥ शीतोष्णवातवैवर्ण्यमुखोपप्लवसंचयाः ॥ २६ ॥

सेवित मीनाक्षी देवी है ॥ २० ॥ वह नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलअलक संयुक्त, स्वर्गवासी देवताओंको फलदात्री और वरदायिनी है ॥ २१ ॥ अतिशय माननीया अतिपूज्या, मत्तमातंगके समान गमन करनेवाली, मदनकी उन्मादक, मानप्रिया, मानप्रियांतरा ॥ २२ ॥ कामवेगधारिणी, कामपूजिता, काममादिनी सुन्दर मयूरवत् शोभाकी खान कार्त्तिकेयको गर्भसे प्रगट करनेवाली ॥ २३ ॥ इन नामोंसे मीनाक्षी देवीको प्रणाम करना चाहिये वह ईश्वरसंगिनी जपने और स्मरण करनेवालोंको मान देती है ॥ २४ ॥ उन नदोंके जऊ पान करने वालोंके कभी बालोंमें श्वेतता तथा झांई नहीं पडती ॥ २५ ॥ परिश्रमके स्वेदकी दुर्गन्धि जरारोगकी प्राप्ति और

भ्रम, शीत, उष्णवातसे विवर्णता मुखपर झाई पडजाना ॥ २६ ॥ यह जीवनपर्यन्त भी नहीं होते हैं जीवनपर्यन्त सुखी रहते निरन्तर उनको अधिक सुख होता है ॥ २७ ॥ अब इसके आगे कहता हूं कि, उस पर्वतके निकटही सुवर्णमयनामवाले सुमेरुके पृथक् पर्वत हैं ॥ २८ ॥ वे वीस पर्वत कर्णिकाके समान शोभित होते हैं वे मेरुके मूलभागमें केसररूपसे स्थित हैं ॥ २९ ॥ वे चारों ओर शोभित हैं उनके नाम सुनो, कुरंग कुरग. कुशुंभ, विकंकत ॥ ३० ॥ त्रिकूट, शिशक, पतंग, रुचक, निषध, शितीवास, कपिल, शंख ॥ ३१ ॥ वैदूर्य, चारुधि, हंस, ऋषभ नाग, कालिंजर और नारद यह वीस पर्वत हैं ॥ ३२ ॥

नापदश्चैवजायंतेयावज्जीवंसुखंभवेत् ॥ नैरंतर्येणतत्स्याद्वैसुखंनिरतिशायकम् ॥ २७ ॥ ततऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिसंनिवेशंचतद्गिरेः ॥ सुवर्णमयनाम्नोवै सुमेरोःपर्वताःपृथक् ॥ २८ ॥ गिरयोविंशतिपराःकर्णिकायाइवेहते ॥ केसरीभूयसर्वेपिमेरोर्मूलविभागके ॥ २९ ॥ परितश्चोपक्लृप्तास्तेते षांनामानिशृण्वतः ॥ कुरंगः कुरगश्चैवकुशुंभोऽथोविकंकतः ॥ ३० ॥ त्रिकूटःशिशिरश्चैवपतंगोरुचकस्तथा ॥ निषधश्चशितीवासःक पिलःशंखएवच ॥ ३१ ॥ वैदूर्यश्चारुधिश्चैवहंसोऋषभएवच ॥ नागःकालंजरश्चैवनारदश्चेतिविंशतिः ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टम स्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ गिरिमेरुंचपूर्वेणद्वौचाष्टादशयोजनैः ॥ सहस्रैरायतौचोदग्द्विसहस्रंपृथूच्चकौ ॥ १ ॥ जठरो देवकूटश्चतावेतौगिरिवर्यकौ ॥ मेरोःपश्चिमतोऽद्रीद्वौपवमानस्तथापरः ॥ २ ॥ पारियात्रश्चतौतावद्विख्यातौतुंगविस्तरौ ॥ मेरोर्दक्षिणतःख्यातौकैलास करवीरकौ ॥ ३ ॥ प्रागायतौपूर्ववत्तौमहापर्वतराजकौ ॥ एवंचोत्तरतोमेरोस्त्रिशृंगमकरौगिरी ॥४॥ एतैश्चाद्रिवरैरष्टसंख्यैःपरिवृतोगिरिः ॥ सुमेरुःकांच नगिरिःपरिभ्राजत्रविर्यथा ॥ ५ ॥ मेरोर्मूर्धनिधातुर्हिपुरीपंकजजन्मनः ॥ मध्यतश्चोपक्लृप्तेयंदशसाहस्रयोजनैः ॥ ६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां अष्टमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ ॥छ॥ ॥ श्रीनारायण बोले सुमेरुपर्वतके पूर्व दो पर्वत अठारहसहस्र योजनपर उत्तरकी ओरको लम्बे दो सहस्र ऊंचे और इतनेही चौडे हैं ॥ १ ॥ इन पर्वतोंके नाम जठर और देवकूट हैं मेरुके पश्चिमसे दो पर्वत इतनीही दूर इतनेही लम्बे चौडे हैं इसके आगे पवमान है॥ २॥ और पारियात्र है इनका भी पूर्वके समान विस्तार है मेरुके दक्षिणमें कैलास और करवीर पर्वतहै यह पर्वतराज पूर्वदिशामें दीर्घ हो रहे हैं इस प्रकार सुमेरुके उत्तरमें त्रिशृंग और मकरपर्वत हैं ॥३॥४॥ इन आठ श्रेष्ठ पर्वतोंसे यह पर्वत व्याप्त है सुमेरु सुवर्णका पर्वत सूर्यके समान विराजमान होता है ॥ ५ ॥ सुमेरुके

शिखरपर ही कमलभव विधाता ब्रह्माकी पुरी है, यह मध्यमें दशसहस्र योजनकी है ॥ ६ ॥ वह समान और चौकोन सोनेकी पुरी है ऐसा परावरके ज्ञाता महात्मा वर्णन करते हैं॥ ७॥ उस पुरीके निम्नभागमें आठौं लोकपालोंकी सुवर्णमयपुरी आठौ दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ वे सब ढाई सहस्रयोजनके प्रमाणमें हैं ऐसी मेरुपर ब्रह्मपुरीके सहित नौपुरी हैं. मनोवती, अमरावती ॥ ९ ॥ तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गंधवती, महोदया ॥ १० ॥ यशोवती यह क्रमसे ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि आदिकोंकी हैं. उसी स्थानमें त्रिविक्रमावतारधारी भगवान् विष्णुके ॥ ११ ॥ वामपादके नखसे भिन्नहोकर हे नारद! अंडकटाहके ऊर्ध्वभागके रंध्रमध्यसे देवलोकमें प्रविष्ट होती हुई सी ॥ १२ ॥ स्वर्गसे अवतरित होकर गंगा प्रवाहित होती है, जिसका जल सम्पूर्ण लोकोंका पाप हरण करता है ॥ १३ ॥ यह साक्षात् लोकमें

समानचतुरस्रांचशातकौंभमयींपुरीम् ॥ वर्णयंतिमहात्मानःपरावरविदोबुधाः ॥ ७ ॥ तांपुरीमनुलोकानामष्टानामीशिषांपराः ॥ पुर्यःप्रख्यातसौवर्णरूपास्ताश्चयथादिशम् ॥ ८॥ यथारूपंसार्धनेत्रसहस्रप्रमिताःकृताः ॥ मेरौनवपुराणिस्युर्मनोवत्यमरावती ॥ ९ ॥ तेजोवतीसंयमनीतथाकृष्णांगनापरा ॥ श्रद्धावतीगंधवतीतथाचान्यामहोदया ॥ १० ॥ यशोवतीचब्रह्मेंद्रवन्ह्यादीनांयथाक्रमम् ॥ तत्रैवयज्ञलिंगस्यविष्णोर्भगवतोविभोः ॥ ११ ॥ वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नस्यचनारद ॥ अंडोर्ध्वभागरंध्रस्यमध्यात्संविशतीदिवः ॥ १२ ॥ मूर्धन्यवततारेयंगंगासंविशतीविभोः ॥ लोकानामखिलानांचपापहारिजलाकुला ॥ १३ ॥ इयंचसाक्षाद्भगवत्पदीलोकेषुविश्रुता ॥ कालेनमहतासातुयुगसाहस्रकेणतु ॥ १४ ॥ दिवोमूर्धानमागत्यदेवीदेवनदीश्वरी ॥ यत्तद्विष्णुपदंनामस्थानंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १५ ॥ औत्तानपादिर्यत्रास्तेध्रुवःपरमपावनः ॥ भगवत्पादयुगलंपद्मकोशरजोदधत्॥१६॥ अद्याप्यास्तेसराजर्षिःपदवीमचलांश्रितः ॥ तत्रसप्तर्षयस्तस्यप्रभावज्ञामहाशयाः ॥ १७ ॥ प्रदक्षिणंप्रक्रमंतिसर्वलोकहितेप्सवः॥ आत्यंतिकीसिद्धिरियंतपतांसिद्धिदायिनी॥ ॥ १८ ॥ आद्रियंतेचशिरसाजटाजूटोषितेनच ॥ ततोविष्णुपदादेवीनैकसाहस्रकोटिभिः ॥ १९ ॥

भगवत्पदीनामसे विख्यात है वह सहस्रयुग पर्यन्त बडे समयतक ॥ १४ ॥ दिव्यलोकके मूर्धदेशमें आकर वह देवनदियोंकी अधीश्वरी स्थित है जो विष्णुपदनामक त्रिलोकीमें विख्यात स्थान है ॥ १५ ॥ जहां परमपवित्र उत्तानपादके पुत्र ध्रुव निवास करते हैं जो भगवान्के चरणारविंदकी रज मस्तकपर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ अबतक यह राजर्षि अचलपदवीको प्राप्त हो स्थित हैं वहां उनके प्रभावके जाननेवाले सप्तऋषि ॥ १७ ॥ सब लोकके हितकी इच्छासे उनकी परिक्रमा करते हैं यह तपकी सिद्धि अत्यंतिकी सिद्धि देनेवाली है ॥ १८ ॥ यही विचारकर वे महर्षि अपने जटाजूटोंमें नित्य गंगाका आदर करते अर्थात् स्नान कर

ते हैं फिर यह देवी विष्णुपदसे अनेक सहस्र कोटि॥ १९॥ विमानोंसे व्याप्त देवमान मार्गमें अवतरण करतीहै और चन्द्रमण्डलको प्लावितकर ब्रह्मभवनमें प्राप्त होती है॥ २०॥ हे नारद! ब्रह्मलोकमें वह चार प्रकारसे भेदको प्राप्त होती है और चार नामसे वह देवी चार दिशामें निर्गत हुई है ॥ २१ ॥ और सरित्पति सागरमें प्राप्त होती है. गंगा, सीता, अलकनन्दा, चतुर्भद्रा यह चारोंके नाम हैं ॥ २२ ॥ सीता ब्रह्मलोकसे होकर पर्वतोंके शिखरोंसे जिनका कि केसर नाम है अर्थात् सुमेरुकर्णिकाके केसरभूत पर्वतोंसे निकलती हुई ॥ २३ ॥ वह पापहारिणी गंधमादन पर्वतके शिखरमें पतित होती है और भद्राश्ववर्षके मध्य होती हुई सागरसे मिलती है ॥ २४ ॥ इस प्रकार देवपूजित द्युलोककी नदी क्षारसमुद्रमें मिलती है और दूसरी माल्यवान्के शृंगसे निकली है ॥ २५ ॥ फिर बडी वेगवती होकर केतुमाल पर्वतसे

विमानैराकुलेदेवयानेऽवतरतीचसा ॥ चंद्रमंडलमाप्लाव्यपतंतीब्रह्मसद्मनि ॥ २० ॥ चतुर्धाभिद्यमानासाब्रह्मलोकेचनारद ॥ चतुर्भिर्नामभिर्देवीचतुर्दिशमभिसृता ॥ २१ ॥ सरितांचनदीनांचपतिमेवाऽन्वपद्यत ॥ सीताचालकनंदाचचतुर्भद्रेतिनामभिः ॥ २२ ॥ सीताचब्रह्मसदनाच्छिखरेभ्यःक्षमाभृताम् ॥ केसराभिधनाम्नाचप्रस्रवंतीचस्वर्णदी ॥ २३ ॥ गंधमादनमूर्ध्नीहपतितापापहारिणी ॥ अंतरेणतुभद्राश्ववर्षप्राच्यांसमागता ॥ २४ ॥ क्षारोदधिंगतासातुद्युनदीदेवपूजिता ॥ ततोमाल्यवतःशृंगाद्द्वितीयापरिनिर्गता ॥ २५ ॥ ततोवेगवतीभूत्वाकेतुमालंसमागता ॥ चक्षुर्नाम्नीदेवनदीप्रतीच्यांदिश्युपागता ॥ २६ ॥ सरितांपतिमाविष्टासागंगादेववंदिता ॥ ततस्तृतीयाधारातुनाम्नाख्याताचनारद ॥ २७ ॥ पुण्याचालकनंदावैदक्षिणेनाञ्जभूपदात् ॥ वनानिगिरिकूटानिसमतिक्रम्यचागता ॥ २८ ॥ हेमकूटंगिरिवरंप्राप्ताऽतोऽपीहनिर्गता ॥ अतिवेगवतीभूत्वाभारतंचागतापरा ॥२९॥ दक्षिणंजलधिंप्राप्तातृतीयासासरिद्वरा ॥ यस्यांःस्नानायसरतांमनुजानांपदेपदे ॥ ३० ॥ राजसूयाश्वमेधादिफलंतुनहिदुर्लभम् ॥ ततश्चतुर्थीधारातुशृंगवत्पर्वतात्पुनः ॥ ३१ ॥ भद्राभिधासंस्रवंतीकुरून्संतर्प्यचोत्तरान् ॥ समुद्रंसमनुप्रातागंगात्रैलोक्यपावनी ॥ ३२ ॥

संगतिको प्राप्त होती है चक्षुनामवाली देवनदी प्रतीचीदिशामें प्राप्त होकर ॥ २६ ॥ देववंदित वह गंगा समुद्रमें प्राप्त हुई है. हेनारद! उसकी तीसरी धारा बडी विख्यात ॥ २७ ॥ पवित्र अलकनंदा ब्रह्मभवनके दक्षिणस्थानसे बही है वह अनेक वनपर्वतकूटोंको उल्लंघन करती प्राप्त हुई है ॥ २८ ॥ वह पर्वतश्रेष्ठ हेमकूटको प्राप्त होकर वहांसे निर्गत हुई और अतिवेगवती होकर भारतवर्षमें आई ॥ २९ ॥ यह नदी तीसरी दक्षिणसागरमें मिली है जिसमें स्नानको जाते हुए मनुष्योंको पदपदमें ॥ ३० ॥ राजसूय और अश्वमेधका फल मिलता है. चौथी धारा शृंगवानपर्वतसे ॥ ३१ ॥ भद्रा नामवाली गिरती हुई उत्तर कुरुओंको तृप्त

करती है वह त्रैलोक्यपावनी गंगा भी समुद्रमें मिली है ॥ ३२ ॥ प्रत्येक वर्षमें और भी अनेक नदी और नद हैं. हे नारद ! बहुतसे मेरुपर मन्दार वृक्ष हैं वहां देवता सुख पाते हैं ॥ ३३ ॥ तो भी भारतवर्षकोही कर्मक्षेत्र कहते हैं और आठ वर्ष पृथ्वीसम्बन्धी स्वर्गसुख देते हैं ॥ ३४ ॥ अर्थात् हे नारदजी ! स्वर्गमें गये हुओंके शेष रहे पुण्यके भोगनेके स्थान हैं वहांके पुरुष अयुत वर्ष जीते वज्रकी समान दृढ शरीर और देवताओंकी तुल्य होते हैं ॥ ३५॥ पुरुषोंको दश २ सहस्र हाथियोंका बल होता है यह महा सुरतसे सन्तुष्ट होनेवाले स्त्री और सुखोंसे युक्त होते हैं॥ ३६॥ हे वत्स ! यहांकी स्त्रियें चिरयुवती हैं एक वर्षकी अल्प आयु रहनेसे गर्भ धारण करनेमें समर्थ होती हैं और वहां निरन्तर त्रेतायुगकी समान समय रहता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अन्येनदाश्च नद्यश्चवर्षेवर्षेऽपिसंतिहि ॥ बहुशोमेरुमंदारप्रसूताश्चैवनारद ॥३३॥ तत्राऽपिभारतंवर्षंकर्मक्षेत्रमुशंतिहि ॥ अन्यानिचाऽष्टवर्षाणिभौमस्वर्गप्रदानिच ॥३४॥ स्वर्गिणांपुण्यशेषस्यभोगस्थानानिनारद ॥ पुरुषाणांचायुतायुर्वज्रांगादेवसन्निभाः ॥३५॥ पुरुषानागसाहस्रैर्दशभिःपरिकल्पिताः ॥ महासौरतसंतुष्टाःकलत्राढ्याःसुखान्विताः ॥ ३६ ॥ एकवर्षोनकेचायुष्यात्तगर्भाःस्त्रियोऽपिहि ॥ त्रेतायुगसमःकालोवर्ततेसर्वदैवहि ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ तेषुवर्षेषुदेवेशाः पूर्वोक्तैः स्तवनैः सदा ॥ पूजयंतिमहादेवींजपध्यानसमाधिभिः ॥ १ ॥ सर्वर्तुकुसुमश्रेणीशोभितावनराजयः ॥ फलानांपल्लवानांचयत्रशोभानिरंतरम् ॥ २ ॥ तेषुकाननवर्षेषुवर्षपर्वतसानुषु ॥ गिरिद्रोणीषुसर्वासुनिर्मलोदकराशिषु ॥ ३ ॥ विकचोत्पलमालासुहंससारससंचयैः ॥ विमिश्रितेषुतेष्वेवपक्षिभिःकूजितेषुच ॥ ४ ॥ जलक्रीडादिभिश्चित्रविनोदैःक्रीडयंतिच ॥ सुंदरीललितभ्रूणांविलासायतनेषुच ॥ ५ ॥ तत्रत्याविहरंत्यत्रस्वैरंयुवतिभिःसह ॥ नवस्वपिचवर्षेषुभगवानादिपूरुषः ॥ ६ ॥ "नारायणाख्योलोकानामनुग्रहरतैकदृक् ॥" देवीमाराधयन्नास्तेसचसर्वैश्चपूज्यते ॥ आत्मव्यूहेनेज्ययासौसन्निधत्तेसमाहितः ॥ ७ ॥

श्रीनारायण बोले उन २ वर्षोंमें देवता पूर्वोक्तस्तोत्रोंसे जपध्यान समाधीसे देवेशीका पूजन करते हैं ॥ १॥ वहां सब ऋतुके फूलोंसे वनराजी शोभाको प्राप्त होती है वहां फल पल्लव निरन्तर शोभाको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ उन वनवाले वर्षोंके पर्वतोंके निम्नभागमें तथा सब पर्वतोंकी द्रोणीमें जहां कि, निर्मल जल है ॥ ३॥ कमलोंके समूह खिले हुए हंस सारस बैठे हुए जहां परस्पर मिले हुए पक्षियोंका शब्द हो रहाहै॥ ४॥ जलक्रीडाके विचित्रविनोदका जहां विहार होता है जहां सुन्दरियोंकी भौंके विलास देखे जाते हैं ॥ ५ ॥ जहांके पुरुष स्वच्छन्द स्त्रियोंसे विहार करते हैं इन नौओं वर्षोंमें आदिपुरुष भगवान् ॥ ६ ॥ "नारायण लोकोंपर अनुग्रह

करनेवाले " सबसे पूजित हुए देवीकी आराधना करते स्थित होते हैं और अपनी मूर्तिके भेदसे लोगोंसे कीहुई पूजाके कारण सब वर्षोंमें निवास करते हैं ॥ ७ ॥ इलावृत्तखण्डमें कमलभवके नेत्रोद्भूत एक रुद्रांश भव देव नित्य निवास करते हैं ॥ ८ ॥ उस क्षेत्रमें और किसीका प्रवेश नहीं होता है भवानीके शापसे वहां पुरुष जातेही स्त्री हो जाता है ॥ ९ ॥ भवानी नाथके स्त्रियोंके कोटिगण देवेशको वेष्टन किये देव संकर्षणका भजन करते हैं ॥ १० ॥ सब प्राणियोंके हितकी इच्छासे अपने ध्यानयोगद्वारा उस तामसी तुरीया नामक अपनी प्रकृतिमूर्तिको ॥ ११ ॥ एकाग्रमनसे भगवान् ध्यान करते हैं. श्रीभगवान् बोले " ओं भगवान् " महा पुरुष सर्वगुणोंके संख्याता अनंतअव्यक्तके निमित्त प्रणाम है ॥ १२ ॥ भजन करने योग्य शरण देनेवाले, सब ऐश्वर्यादिगुणके परम आश्रय, भक्तोंके निमित्त शरीर प्रगट

इलावृतेतुभगवान्पद्मजाक्षिसमुद्भवः ॥ एकएवभवोदेवोनित्यंवसतिसांगनः ॥ ८ ॥ तत्क्षेत्रेनापरःकश्चित्प्रवेशंवितनोतिच ॥ भवान्याःशापतस्तत्रपुमान्स्त्रीभवतिस्फुटम् ॥ ९ ॥ भवानीनाथकैःस्त्रीणामसंख्यैर्गणकोटिभिः ॥ संरुध्यमानोदेवेशोदेवंसंकर्षणंभजन् ॥ १० ॥ आत्मनाध्यानयोगेनसर्वभूतहितेच्छया ॥ तांतामसींतुरीयांचमूर्तिंप्रकृतिमात्मनः ॥ ११ ॥ उपधावतेचैकाग्रमनसाभगवानजः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॐनमोभगवतेमहापुरुषायसर्वगुणसंख्यानायाऽनंतायाऽव्यक्तायनमइति ॥ १२ ॥ भजेभजन्यारणपादपंकजंभगस्यकृत्स्नस्यपरंपरायणम् ॥ भक्तेष्वलंभावितभूतभावनंभवापहंत्वाभवभावमीश्वरम् ॥ १३ ॥ नयस्यमायागुणकर्मवृत्तिभिर्निरीक्षितोह्यण्वपिदृष्टिरज्यते ॥ ईशेयथानोजितमन्युरंसाकस्तंनमन्येतजिगीषुरात्मनः ॥ १४ ॥ असद्दृशोयःप्रतिभातिमाययाक्षीबेवमध्वासवताम्रलोचनः ॥ ननागवध्वोर्हणईशिरेह्रियायत्पादयोःस्पर्शनधर्षितेंद्रियाः ॥ १५ ॥ यमाहुरस्यस्थितिजन्मसंयमंत्रिभिर्विहीनंयमनंतमृषयः ॥ नवेदसिद्धार्थमिवक्वचित्स्थितंभूमंडलंमूर्धसहस्रधामसु ॥ १६ ॥

करनेवाले संसारके नाशक अभक्तोंको संसारमें भावना करनेवाले आपके चरणोंका हम भजन करते हैं॥ १३॥ जिसकी देखनेपर भी मायाके गुणकर्मकी वृत्तिद्वारा अणुमात्र भी दृष्टि लिप्त नहीं होती. कारण कि, नियमनके निमित्त वह ईक्षण करता है जैसे जितक्रोध हमारी दृष्टि विषयोंमें संयुक्त है पर आप ऐसे नहीं इससे कौन आत्म जयकी इच्छावाला मुमुक्षु उसका आदर न करै ॥ १४॥ जो मायासे असदृश विदित होता है जैसे मधु और सवसे रक्तनेत्र हुआ मतवाला भयंकर विदित होता है जिनके चरण स्पर्शसे धर्षितइन्द्रिय हो नागवधू लज्जासे किसी प्रकार और उपासना करनेमें समर्थ नहीं होती ॥१५॥ इस जगत्की स्थिति जन्म और संयमका जिनका हेतु कहते हैं

और यह इन तीनोंसे विहीन भी है इसीसे ऋषि मंत्र इनको अनन्त कहते हैं. जोकि सहस्र मस्तकके किसी एक देशमें स्थित इस भूमण्डलको सरसोंकी समान भी नहीं जान्ते ॥ १६ ॥ जिनका गुणनिमित्तक आदि विग्रह महत्तत्व है, वह विज्ञान सत्वके आश्रय भगवान् हैं वह चित्तरूप होनेसे सत्वप्रधान हैं जिस ब्रह्मसे प्रगट मैं रुद्र अपने त्रिगुणात्मक तेजवाले विभूतिरूप अहंकारसे तामसभूत सर्ग तथा इन्द्रियसमूहको सृजन करता हूं ॥ १७ ॥ यह हम सब जिस महात्माके वंशमें पक्षीके समान सूत्रमें बँधे हैं क्रियासे निरुद्ध हैं अहंकारविकार तामसइन्द्रिय हम जिसके अनुग्रहसे इस जगत्के सृजन करते हैं उसको प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ जिसकी निर्माण की हुई कर्मरूपग्रंथिवाली मायाको यह प्राणी प्रजासर्गमें मोहित हुआ कुछ जान्ता है परन्तु उसके निस्तारका उपाय नहीं जान्ता ऐसे विलीन और उदयवाले आपके रूपके निमित्त प्रणाम है ॥ १९ ॥ नारायण बोले इस प्रकार भगवान् रुद्रदेव संकर्षणप्र

यस्याऽद्यआसीद्गुणविग्रहोमहान्विज्ञानधिष्ण्योभगवानजःकिल ॥ यत्संवृताहंत्रिवृतास्वतेजसावैकारिकंतामससैंद्रियंसृजे ॥ १७ ॥ एतेवयं यस्यवशेमहात्मनःस्थिताःशकुंताइवसूत्रयंत्रिताः ॥ महानहंवैकृततामसेंद्रियाःसृजामसर्वेयदनुग्रहादिदम् ॥ १८ ॥ यन्निर्मितांकर्ह्यपिकर्मपर्वणींमाय जनोऽयंगुरुसर्गमोहितः ॥ नवेदनिस्तारणयोगमंजसातस्मैनमस्तेविलयोदयात्मने॥१९॥नारायणउवाच ॥ एवंसभगवान्रुद्रोदेवंसंकर्षणंप्रभुम् ॥ इलावृत मुपासीतदेवीगणसमाहितः॥२०॥तथैवधर्मपुत्रोऽसौनाम्नाभद्रश्रवाइति ॥ तत्कुलस्याऽपिपतयःपुरुषाभद्रसेवकाः ॥२१॥ भद्राश्ववर्षेतांमूर्तिंवासुदेवस्यवि श्रुताम् ॥ हयमूर्तिभिदातांतुहयग्रीवपदांकिताम्॥२२॥परमेणसमाध्यन्यवारकेणनियंत्रिताम्॥एवमेवचतांमूर्तिंगृणंतउपयांतिच ॥२३॥भद्रश्रवसऊचुः॥ ॐनमोभगवतेधर्मायात्मविशोधनायनमइति ॥ अहोविचित्रंभगवद्विचेष्टितंघ्नंतंजनोयंहिमिषन्नपश्यति ॥ ध्यायन्नसद्यर्हिविकर्मसेवितुंनिर्हृत्यपुत्रंपितरंजि जीविषुः ॥ २४ ॥ वदंतिविश्वंकवयःस्मनश्वरंपश्यंतिचाऽध्यात्मविदोविपाश्चितः॥तथापिमुह्यंतितवाऽजमाययासुविस्मितंकृत्यमजंनतोऽस्मितम् ॥ २५ ॥

भुको देवीगणोंके सहित इलावृतमें उपासना करते हैं ॥ २० ॥ इसी प्रकार यह धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामसे भद्राश्ववर्षमें सेवा करते हैं उस कुलके पति पुरुषभी भद्र नामक वर्षपतिके सेवक हैं ॥ २१ ॥ भद्राश्ववर्षमें वासुदेवकी विख्यात हयग्रीवमूर्ति जो उसी नामसे अंकित है ॥ २२ ॥ परम एकाग्रमनसे समाधिस्थ होकर स्तुति करते उस मूर्तिकी उपासना करते हैं ॥ २३ ॥ भद्रश्रवस बोले भगवान् धर्मके स्थान विशुद्ध करनेवालेको प्रणाम है अहो भगवान्की चेष्टा बडी विचित्र है जो यह मनुष्य मारती हुई मृत्युको देखकर भी नहीं देखता है जोकि पुत्र वा वृद्धपिताको दग्ध करके उन्हींके धनसे स्वयं जीनेकी इच्छा करता है और तुच्छ विषय सेवन करनेको पापहीका ध्यान करता है ॥ २४ ॥ कविजन इस संसारको नश्वर कहते हैं अध्यात्मवादी विद्वान्भी समाधीमें ऐसाही देखते हैं. हे अज! तोभी तुम्हारी

मायासे मोहित होते हैं यह आपकी चेष्टा बडी विचित्र है आपको प्रणाम है॥ २५॥ आप विश्वके उत्पन्न पालन निरोधकर्म करते हो तथापि आवरणरहित होकर अकर्ताही हो ऐसा वेद स्वीकार करता है कारण कि, मायासेही सर्वात्मामें सृष्टिकार्य कारणतासे कही गई है, यथार्थमें तौ सबसे व्यतिरिक्त निरुपाधि होनेसे आप निरावरण और अकर्ताही हैं ॥ २६ ॥ जो युगान्तमें असुररूप तमसे तिरस्कृत हुए वेदोंको हयग्रीव विग्रहवान् होकर रसातलसे लाय याचना करते ब्रह्माजीको देते हुए उस सत्य संकल्पके निमित्त प्रणाम है॥ २७॥ इस प्रकार वे भद्रश्रवस् हयग्रीव भगवान्की स्तुति करते हैं और उनके गुण वर्णन करते हैं ॥ २८॥ इनके चरित्रको

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्मतेह्यकर्तुरंगीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तंनचित्रंत्वयिकार्यकारणेसर्वात्मनिव्यतिरिक्तेचवस्तुतः ॥ २६ ॥ वेदान्युगांते तमसातिरस्कृतान्रसातलाद्योनृतुरंगविग्रहः ॥ प्रत्याददेवैकवयेऽभियाचतेतस्मैनमस्तेवितथेहितायते ॥ २७ ॥ एवंस्तुवंतिदेवेशंहयशीर्षहरिंचते ॥ भद्रश्रवसनामानोवर्णयंतिचतद्गुणान् ॥ २८ ॥ एषांचरितमेतद्धियः पठेच्छ्रावयेच्चयः ॥ पापकंचुकमुत्सृज्यदेवीलोकंव्रजेच्चसः ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ हरिवर्षेचभगवान्नृहरिःपापनाशनः ॥ वर्ततेयोगयुक्तात्माभक्तानुग्रहकारकः ॥ १ ॥ तस्यतद्दयितंरूपंमहाभागवतोसुरः ॥ पश्यन्भक्तिसमायुक्तःस्तौतितद्गुणतत्त्ववित् ॥ २ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ ॐनमोभगवतेनरसिंहायनमस्तेजस्तेजसेआविराविर्भववज्रदंष्ट्रकर्माशयान्रंधयरंधयतमोग्रसग्रसॐस्वाहा॥अभयंममात्मनिभूयिष्ठाः॥ ॐक्ष्रौं॥स्वस्त्यस्तुविश्वस्यखलःप्रसीदतां ध्यायंतुभूतानिशिवंमिथोधिया ॥ मनश्चभद्रंभजतादधोक्षजेआवेश्यतांनोमतिरप्यहैतुकी ॥ ३ ॥ माऽगारदारात्मजवित्तबंधुषुसंगोयदिस्याद्भगवत्प्रियेषु नः ॥ यःप्राणवृत्त्यापरितुष्टआत्मवान्सिद्ध्यत्यदूरान्नतथेंद्रियप्रियः ॥ ४ ॥

जो पढते सुनते हैं वह पापरूपी केचलीको त्याग देवीके लोकको जाते हैं॥ २९ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण बोले हरिवर्षमें भगवान् नृसिंहजी पापनाशक हैं वह भक्तोंपर कृपाकर योगयुक्त हो निवास करते हैं ॥ १ ॥ उनके उस मनोहर रूपको देखकर महाभक्त प्रह्लादजी उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ प्रह्लाद बोले "ओंनमो भगवते" यह मंत्र है संसारका मंगलहो असुरोंका भी मन निर्मल हो और सब प्राणी परस्पर मिलकर मंगलध्यान करें मन नारायणमें कल्याणयुक्त रमे प्राणियोंकी हमारी मति निष्कामा हो॥ ३॥धरा पुत्र धन बंधुओंमें हमारा प्रेम न हो यदि हो तौ भगवद्भक्तोंमें

प्रेम हो जिसकी आत्मा अपनी प्राणवृत्तिसे संतुष्ट है वही सिद्ध होता है घरमें आसक्तिवाला नहीं ॥ ४ ॥ जिन हरिभक्तोंकी संगतिको प्राप्त होकर असाधारण ऐश्वर्य वाले भगवान्‌के चरित्र कर्णोंमें स्पर्श कर सेवनकरनेवाले पुरुषोंके अन्तर्गत मलको हरण करते हैं और तीर्थ तौ वारंवार अवगाहनसे मलको हरण करते हैं ऐसे भगवा न्‌को कौन न सेवन करै ॥ ५ ॥ जिसकी भगवान्‌के चरणोंमें अकिंचन भक्ति है उसको सम्पूर्ण गुण सब और देवता सेवन करते हैं जिसकी हरिमें भक्ति नहीं उसको महद्गुण प्राप्त नहीं होते और वह विषयसुखके मनोरथोंमें बाहर धावमान होते हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार मच्छी जलके विना जीवित नहीं होसक्ती इसीप्रकार भगवान् सब शरीरियोंके जीवनरूप आत्मा हैं उन महान्‌को त्यागनकर जो घरादिमें प्रसक्त होते हैं तौ उन दम्पतियोंके महत्त्वकी समान अकिंचित्कर होता है ॥ ७ ॥ इस

यत्संगलब्धंनिजवीर्यवैभवंतीर्थंमुहुःसंस्पृशतांहिमानसम् ॥ हरत्यजोंतःश्रुतिभिर्गतोगजंकोवैनसेवेतमुकुंदविक्रमम् ॥ ५ ॥ यस्याऽस्तिभक्तिर्भगवत्य किंचनासर्वैर्गुणैस्तत्रसमासतेसुराः ॥ हरावभक्तस्यकुतोमहद्गुणामनोरथेनासतिधावतोबहिः ॥ ६ ॥ हरिर्हिसाक्षाद्भगवाञ्छरीरिणामात्माझषाणा मिवतोयमीप्सितम् ॥ हित्वामहांस्तंयदिसज्जतेगृहेतदामहत्त्वंवयसादंपतीनाम् ॥७॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वागृहं संसृतिचक्रवालंनृसिंहपादंभजतांकुतोभयम् ॥ ८ ॥ एवंदैत्यपतिःसोऽपिभक्त्याऽनुदिनमीडते ॥ नृहरिंपापमातंगहरिंहृत्पद्मवासिनम् ॥ ९ ॥ केतुमाले चवर्षेहिभगवान्स्मररूपधृक् ॥ आस्तेतद्वर्षनाथानांपूजनीयश्चसर्वदा ॥ १० ॥ एतेनोपासतेस्तोत्रजालेनचरमाब्धिजा ॥ तद्वर्षनाथासततंमहतांमानदा यिका ॥ ११ ॥ रमोवाच ॥ ॐह्रींह्रींहूंॐनमोभगवतेहृषीकेशायसर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मनेआकूतीनांचित्तीनांचेतसांविशेषाणांचाधिपतयेषो डशकलायच्छंदोमयायान्नमयायामृतमयायसर्वमयायसहसेओजसेबलायकांतायकामायनमस्तेउभयत्रभूयात् ॥ स्त्रियोव्रतैस्त्वांहृषीकेश्वरंस्वतो ह्याराध्यलोकेपतिमाशासतेन्यम् ॥ तासांनतेवैपरिपांत्यपत्यंप्रियंधनायूंषियतोऽस्वतंत्राः ॥ १२ ॥

कारण रज, राग, विषाद, क्रोध, मान, स्पृहा, भय, दीनता, जो आधिका मूल है इसकोऔर गृहरूपी चक्रवालको छोडकर नृसिंहजीका भजन करनेवालेको कहीं भय नहीं है ॥ ८ ॥ इसप्रकार प्रह्लादजी भक्तिसे दिनरात स्तुति करते हैं पापरूपी मातंगको सिंहरूप नृसिंहजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं ॥ ९ ॥ केतुमालवर्षमें भगवान् कामदेवका रूप धारण किये हैं और उस वर्षके निवासी सदा उनका पूजन करते हैं ॥ १० ॥ लक्ष्मी इस स्तोत्रसे उनका पूजन करती है उस वर्षके निवासियोंको निरन्तर मान देती हैं ॥ ११ ॥ लक्ष्मी कहती है 'ओंह्रीं' यह मंत्र है भगवान् हृषीकेश सब गुणविशेषोंसे लक्षित आत्मावाले क्रिया, ज्ञान, संकल्प, अध्यवसायवालोंके अधिपति

ग्यारह इन्द्रिय पाँच विषय लक्षणयुक्त सोलह कला, वेदोक्त कर्मसे प्राप्त होने योग्य अन्नमय, अमृतमय, सर्वमय ओजबल, कान्ति कामके हेतुरूप भगवानूको सब ओरसे प्रणाम है लोकमें स्त्रियों व्रतोंद्वारा इन्द्रियोंके पति ईश्वर आपको आराधन करके जो अन्यकी इच्छा करती हैं उनके वे पति और अपत्य उनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते. कारण कि, प्रिय धन और आयुमें वे अस्वतंत्र हैं॥ १२ ॥ वही पति है जो स्वयं निर्भय हो और भयातुर जनको सब ओरसे रक्षा करनेमें समर्थ हो सो ऐसे एक आपही हैं जो कि आप आत्मलाभसे अधिक और नहीं मान्ते, अन्याधीनमें सुख नहीं होता और स्वतंत्रोंके अधिक होनेमें मंडलेश्वरकी समान परस्पर भय होता है ॥ १३ ॥ जो स्त्री तुम्हारे चरणकमलकी सेवाकीही इच्छा करती है और फलकी इच्छा नहीं करती वह सब काममें लम्पट न होकर भी सबकामनाको प्राप्त होती है और जो फलान्तर प्राप्तिकी इच्छासे सेवा करती है वह उसको एकही कामना आप देते हो और इससे फलभोगके उपरान्त भग्नयाच्ञा होनेसे फिर भी उसको

सवैपतिःस्यादकुतोभयःस्वतःसमंततःपातिभयातुरंजनम् ॥ सएकएवेतरथामिथोभयंनैवात्मलाभादधिमन्यतेपरम् ॥ १३॥ यातस्यतेपादसरोरुहार्हणंन कामयेत्साखिलकामलंपटा ॥ तदेववरासीप्सितमीप्सितोर्चितोयद्भग्नयाञ्चाभगवन्प्रतप्यते ॥ १४ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यंतउग्रंतपऐंद्रियेधियः ॥ ऋतेभवत्पादपरायणान्नमांविंदंत्यहंत्वद्धृदयायतोऽजित ॥ १५ ॥ सत्वंममाऽप्यच्युतशीर्ष्णिवंदितंकरांबुजंयत्त्वदधायिसात्वताम् ॥ बिभर्षिमांलक्ष्मवरेण्यमाययाकईश्वरस्येहितमूहितुंविभुः ॥ १६ ॥ एवंकामस्तुवंत्येवलोकबंधुस्वरूपिणम् ॥ प्रजापतिमुखावर्षनाथाःकामस्यसिद्धये ॥ १७ ॥ रम्यकेनामवर्षेचमूर्तिंभगवतःपराम् ॥ मात्स्यांदेवासुरैर्व्यांमनुःस्तौतिनिरंतरम् ॥ १८ ॥

दुःख होता है॥ १४॥ हे भगवन् ! मेरी प्राप्तिके निमित्त अज, ईश, सुर, असुर, इन्द्रियसुखमें बुद्धि लगाकर तप करते हैं, परन्तु तुम्हारे चरणकी भक्ति किये बिना कोई भी मुझको प्राप्त नहीं होते. कारण कि,तुममें मन लगानेके कारण मैं परतंत्र तुम्हारी अनुगामिनी हूं इससे तुम्हारे अनुगामीको देखती हूं अन्यको नहीं॥ १५॥ हेअजित ! सो आप जो अपना हस्तकमल भक्तोंके ऊपर रखते हैं,वही मेरे ऊपर रक्खिये, वह आपका वंदित हाथ सब कामना देनेवाला होनेसे सत्पुरुषोंसे स्तुति किया गयाहै. हेवरेण्य ! मुझको तो आप वक्षस्थलमेंही धारण करतेहैं यह केवल आदर मात्र है परन्तु भक्तोंपर आपकी परमकृपा है आपकी मायाकी चेष्टा कौन जान सक्ता है? ॥ १६ ॥ इसप्रकार लोकबंधुस्वरूपवाले कामकी स्तुति करते हैं और प्रजापति वर्षके अधिपति कामकी सिद्धिके निमित्त इसप्रकार स्तुति करते हैं ॥ १७ ॥ रम्यकवर्षमें भगवानूकी देवा

प्रेम हो जिसकी आत्मा अपनी प्राणवृत्तिसे संतुष्ट है वही सिद्ध होता है घरमें आसक्तिवाला नहीं ॥ ४ ॥ जिन हरिभक्तोंकी संगतिको प्राप्त होकर असाधारण ऐश्वर्य वाले भगवान्के चरित्र कर्णोंमें स्पर्श कर सेवनकरनेवाले पुरुषोंके अन्तर्गत मलको हरण करते हैं और तीर्थ तो वारंवार अवगाहनसे मलको हरण करते हैं ऐसे भगवान्को कौन न सेवन करै ॥ ५ ॥ जिसकी भगवान्के चरणोंमें अकिंचन भक्ति है उसको सम्पूर्ण गुण सब और देवता सेवन करते हैं जिसकी हरिमें भक्ति नहीं उसको महद्गुण प्राप्त नहीं होते और वह विषयसुखके मनोरथोंमें बाहर धावमान होते हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार मच्छी जलके विना जीवित नहीं होसक्ती इसीप्रकार भगवान् सब शरीरियोंके जीवनरूप आत्मा हैं उन महान्को त्यागनकर जो घरादिमें प्रसक्त होते हैं तो उन दम्पतियोंके महत्त्वकी समान अकिंचित्कर होता है ॥ ७ ॥ इस

यत्संगलब्धंनिजवीर्यवैभवंतीर्थंमुहुःसंस्पृशतांहिमानसम् ॥ हरत्यजोंतःश्रुतिभिर्गतोगजंकोवैनसेवेतमुकुंदविक्रमम् ॥ ५ ॥ यस्याऽस्तिभक्तिर्भगवत्यकिंचनासर्वैर्गुणैस्तत्रसमासतेसुराः ॥ हरावभक्तस्यकुतोमहद्गुणामनोरथेनासतिधावतोवहिः ॥ ६ ॥ हरिर्हिसाक्षाद्भगवाञ्छरीरिणामात्माझषाणामिवतोयमीप्सितम् ॥ हित्वामहांस्तंयदिसज्जतेगृहेतदामहत्त्वंवयसादंपतीनाम् ॥७॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वागृहंसंसृतिचक्रवालंनृसिंहपादंभजतांकुतोभयम् ॥ ८॥ एवंदैत्यपतिःसोऽपिभक्त्याऽनुदिनमीडते ॥ नृहरिंपापमातंगहरिंहृत्पद्मवासिनम् ॥ ९ ॥ केतुमालेचवर्षेहिभगवान्स्मररूपधृक् ॥ आस्तेतद्वर्षनाथानांपूजनीयश्चसर्वदा ॥ १० ॥ एतेनोपासतेस्तोत्रजालेनचरमाब्धिजा ॥ तद्वर्षनाथासततंमहतांमानदायिका ॥ ११ ॥ रमोवाच ॥ ॐह्रींह्रींहूंॐनमोभगवतेहृषीकेशायसर्वगुणाविशेषैर्विलक्षितात्मनेआकूतीनांचित्तीनांचेतसांविशेषाणांचाधिपतयेषोडशकलायच्छंदोमयायान्नमयायामृतमयायसर्वमयायसहसेओजसेवलायकांतायकामायनमस्तेउभयत्रभूयात् ॥ स्त्रियोव्रतैस्त्वांहृषीकेश्वरंस्वतोह्याराध्यलोकेपतिमाशासतेन्यम् ॥ तासांनतेवैपरिपांत्यपत्यंप्रियंधनायूंषियतोऽस्वतंत्राः ॥ १२ ॥

कारण रज, राग, विषाद, क्रोध, मान, स्पृहा, भय, दीनता, जो आधिका मूल है इसकोऔर गृहरूपी चक्रवालको छोडकर नृसिंहजीका भजन करनेवालेको कहीं भय नहीं है ॥ ८ ॥ इसप्रकार प्रह्लादजी भक्तिसे दिनरात स्तुति करते हैं पापरूपी मातंगको सिंहरूप नृसिंहजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं ॥ ९ ॥ केतुमालवर्षमें भगवान् कामदेवका रूप धारण किये हैं और उस वर्षके निवासी सदा उनका पूजन करते हैं ॥ १० ॥ लक्ष्मी इस स्तोत्रसे उनका पूजन करती है उस वर्षके निवासियोंको निरन्तर मान देती हैं ॥ ११ ॥ लक्ष्मी कहती है 'ओंह्रीं' यह मंत्र है भगवान् हृषीकेश सब गुणविशेषोंसे लक्षित आत्मावाले क्रिया, ज्ञान, संकल्प, अध्यवसायवालोंके अधिपति

ग्यारह इन्द्रिय पाँच विषय लक्षणयुक्त सोलह कला, वेदोक्त कर्मसे प्राप्त होने योग्य अन्नमय, अमृतमय, सर्वमय ओजवल, कान्ति कामके हेतुरूप भगवान्को सब ओरसे प्रणाम है लोकमें स्त्रियों व्रतोंद्वारा इन्द्रियोंके पति ईश्वर आपको आराधन करके जो अन्यकी इच्छा करती हैं उनके वे पति और अपत्य उनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते. कारण कि, प्रिय धन और आयुमें वे अस्वतंत्र हैं॥ १२ ॥ वही पति है जो स्वयं निर्भय हो और भयातुर जनको सब ओरसे रक्षा करनेमें समर्थ हो सो ऐसे एक आपही हैं जो कि आप आत्मलाभसे अधिक और नहीं मान्ते, अन्याधीनमें सुख नहीं होता और स्वतंत्रोंके अधिक होनेमें मंडलेश्वरकी समान परस्पर भय होता है ॥ १३ ॥ जो स्त्री तुम्हारे चरणकमलकी सेवाकीही इच्छा करती है और फलकी इच्छा नहीं करती वह सब काममें लम्पट न होकर भी सबकामनाको प्राप्त होती है और जो फलान्तर प्राप्तिकी इच्छासे सेवा करती है वह उसको एकही कामना आप देते हो और इससे फलभोगके उपरान्त भग्नयाञ्चा होनेसे फिर भी उसको

सवैपतिःस्यादकुतोभयःस्वतःसमंततःपातिभयातुरंजनम् ॥ सएकएवेतरथामिथोभयंनैवात्मलाभादधिमन्यतेपरम् ॥ १३॥ यातस्यतेपादसरोरुहार्हणंन कामयेत्साखिलकामलंपटा ॥ तदेवरासीप्सितमीप्सितोर्चितोयद्भग्नयाञ्चाभगवन्प्रतप्यते ॥ १४ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यंतउग्रंतपऐंद्रियेधि यः ॥ ऋतेभवत्पादपरायणान्नमांविंदंत्यहंत्वद्धृदयायतोऽजित ॥ १५ ॥ सत्वंममाऽप्यच्युतशीर्ष्णिवंदितंकरांबुजंयत्त्वदधायिसात्वताम् ॥ विभर्षिमांल क्ष्मवरेण्यमाययाकईश्वरस्येहितमूहितुंविभुः ॥ १६ ॥ एवंकामंस्तुवंत्येवलोकबंधुस्वरूपिणम् ॥ प्रजापतिमुखावर्षनाथाःकामस्यसिद्धये ॥ १७ ॥ रम्यकेनामवर्षेचमूर्तिंभगवतःपराम् ॥ मात्स्यांदेवासुरैर्व्यांमनुःस्तौतिनिरंतरम् ॥ १८ ॥

दुःख होता है॥ १४॥ हे भगवन् ! मेरी प्राप्तिके निमित्त अज, ईश, सुर, असुर, इन्द्रियसुखमें बुद्धि लगाकर तप करते हैं, परन्तु तुम्हारे चरणकी भक्ति किये बिना कोई भी मुझको प्राप्त नहीं होते. कारण कि,तुममें मन लगानेके कारण मैं परतंत्र तुम्हारी अनुगामिनी हूं इससे तुम्हारे अनुगामीको देखती हूं अन्यको नहीं॥ १५॥ हेअजित ! सो आप जो अपना हस्तकमल भक्तोंके ऊपर रखते हैं,वही मेरे ऊपर रखिये, वह आपका वंदित हाथ सब कामना देनेवाला होनेसे सत्पुरुषोंसे स्तुति किया गयाहै. हेवरेण्य! मुझको तौ आप वक्षस्थलमेंही धारण करतेहैं यह केवल आदर मात्र है परन्तु भक्तोंपर आपकी परमकृपा है आपकी मायाकी चेष्टा कौन जान सक्ता है? ॥ १६॥ इसप्रकार लोकबंधुस्वरूपवाले कामकी स्तुति करते हैं और प्रजापति वर्षके अधिपति कामकी सिद्धिके निमित्त इसप्रकार स्तुति करते हैं ॥ १७ ॥ रम्यकवर्षमें भगवान्की देवा

सुरोंसे वंदित मत्स्यमूर्ति है मनुजी उसकी इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ १८ ॥ मनु बोले सबसे मुख्य सत्वप्रधान प्राण ओजबलसम्पन्न महामत्स्यके निमित्त प्रणाम है जो अन्तर बाहर किसी लोकपालसे भी न देखे जाकर महापराक्रमसे विचरण करतेहैं वह आप ईश्वर इस जगत्को वशीभूत करते हुए विधिनिषेधके आलम्बनसे काठकी पुतलीकी समान नचाते हैं ॥ १९ ॥ अभिमानरूपी ज्वरको प्राप्त होकर भी लोकपाल जिसको छोडकर अन्य समस्त मिलकर द्विपद, चतुष्पद, सरीसृप, जंगम, स्थावर, किसीकी भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ २० ॥ प्रलयके जलमें बड़े वेगसे विचरते हुए आपने इस पृथ्वी औषधी गुल्मलता बीजके आश्रय भूतको मेरे सहित धारण किया जगत्के प्राणगणात्मा आपके निमित्त प्रणाम हैं ॥ २१ ॥ इस प्रकार संशयके निवारण करनेवाले मत्स्यावतारधारी देवेशकी मनुजी स्तुति

मनुरुवाच ॥ ॐनमोमुख्यतमायनमःसत्त्वायप्राणायौजसेबलायमहामत्स्यायनमः ॥ अंतर्बहिश्चाखिललोकपालैरदृष्टरूपोविचरस्युरुस्वनः ॥ सईश्वरस्त्वंयइदंवशेनयन्नाम्नायथादारुमयींनरःस्त्रियम् ॥ १९ ॥ यंलोकपालाःकिलमत्सरज्वराहित्वायतंतोपिपृथक्समेत्यच ॥ पातुंनशेकुर्द्विपदश्चतुष्पदःसरीसृपंस्थाणुयदत्रदृश्यते ॥ २० ॥ भवान्युगांतार्णवऊर्मिमालिनिक्षोणीमिमामोषधिवीरुधांनिधिम् ॥ मयासहोरुक्रमतेजओजसातस्मैजगत्प्राणगणात्मनेनमः ॥ २१ ॥ एवंस्तौतिचदेवेशंमनुःपार्थिवसत्तमः ॥ मत्स्यावतारंदेवेशंसंशयच्छेदकारणम् ॥ २२ ॥ ध्यानयोगेनदेवस्यनिर्धूताशेषकल्मषः ॥ आस्तेपरिचरन्भक्त्यामहाभागवतोत्तमः ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अ० भुवनकोशवर्णनेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ हिरण्मयेनामवर्षेभगवान्कूर्मरूपधृक् ॥ आस्तेयोगपतिःसोऽयमर्यम्णापूज्यईड्यते ॥ १ ॥ अर्यमोवाच ॥ ॐनमोभगवतेअकूपारायसर्वसत्त्वगुणविशेषणायनोपलक्षितस्थानायनमोवर्ष्मणेनमोभूम्नेनमोऽवस्थानायनमस्ते ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययार्पितमर्थस्वरूपंबहुरूपरूपितम् ॥ संख्यानयस्यास्त्यथोपलंभनात्तस्मैनमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ २ ॥ जरायुजंस्वेदजमंडजोद्भिदंचराचरंदेवर्षिपितृभूतमैंद्रियम् ॥ द्यौःखंक्षितिःशैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेयएकः ॥ ३ ॥

करते हैं ॥ २२ ॥ पाप दूर होजानेसे इस प्रकार ध्यानयोगद्वारा भगवान्की परिचर्या करते हुए परम भागवत मनुजी स्थित रहते हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ श्रीनारायण बोले हिरण्यवर्षमें कूर्मरूपधारी भगवान् योगपति अर्यमासे पूजे जाकर स्थित होते हैं ॥ १ ॥ भगवान् कूर्मरूप सम्पूर्ण सत्वगुणोंके विशेषणोंसे उपलक्षित जलस्थानवाले सुखके वर्षानेवाले सर्वगत सबके आधार आपको प्रणाम है जिन्होंने अपना यह दृश्यरूप मायासेही कल्पना किया है यह पृथ्वीआदि भी इन्हीका स्वरूपहै, जो बहुतरूपोंसे निरूपित किये जाते हैं अयथार्थ उपलंभनसे जिनके रूपोंकी संख्या नहीं है ऐसे अनिरुक्त प्रपंचवाले आपके निमित्त प्रणाम है ॥ २ ॥ जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, देवता, ऋषि, पितर चराचर यह द्यौ, आकाश, भूमि,

पर्वत, सरित्, समुद्र, द्वीप, ग्रह, नक्षत्र, इन्द्रिय, सब आपही एक हो ॥ ३ ॥ जिसमें सांख्यादि आचार्योंने विशेष नामरूपादिकी कल्पना की है यह चौवीस तत्वादि संख्या जिस तत्वदृष्टिसे अपनी न होती है उस सांख्यसिद्धान्तरूप आपके निमित्त प्रणाम है ॥ ४ ॥ अर्यमावर्षाधिपोंके सहित इस प्रकार देवेशकी स्तुति करते हैं और सब भूतोंके उत्पादक प्रभुको गानकर भजन करते हैं ॥ ५ ॥ उसके उत्तरकुरुओंमें भगवान्यज्ञपुरुष आदिवराह पृथ्वीदेवीसे सदा पूजे जाते हैं ॥ ६ ॥ भगवान्को पूजन कर उनकी भक्तिसे आर्द्र हृदय होकर दैत्यमर्दन आदिवराहकी भगवती धरणी स्तुति करती है ॥७॥ भूमि बोली भगवान् मंत्रतत्वसे जानने योग्य यज्ञक्रतुरूप महायज्ञरूप शरीरवाले महावराह (पृथ्वीके उद्धारक) शुद्धयज्ञके अनुष्ठान करानेवाले तीन युगरूपआपको प्रणाम है [कलिमें यज्ञ च्छिन्न हैं] ॥ ८ ॥ विद्वान् और चतुर पुरुष जिसके

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौकाविभिःकल्पितेयम् ॥ संख्यायायातत्त्वदृशापनीयतेतस्मैनमःसांख्यनिदर्शनायते ॥ ४ ॥ एवंस्तुवतिदेवेशमर्यमास हवर्षपैः ॥ गीयतेचाऽपिभजतेसर्वभूतभवंप्रभुम् ॥ ५ ॥ ततोत्तरेषुकुरुषुभगवान्यज्ञपूरुषः ॥ आदिवाराहरूपोऽसौधरण्यापूज्यतेसदा ॥ ६ ॥ संपूज्यवि धिवद्देवंतद्भक्त्याऽऽर्द्राऽऽर्द्रहृत्कजा ॥ भूमिःस्तौतिहरिंयज्ञवाराहंदैत्यमर्दनम् ॥ ७ ॥ भूरुवाच ॥ ॐनमोभगवतेमंत्रतत्त्वलिंगाययज्ञक्रतवेमहाध्वरावय वायमहावराहायनमःकर्मशुक्लायत्रियुगायनमस्ते ॥८॥ यस्यस्वरूपंकवयोविपश्चितोगुणेषुदारुष्विवजातवेदसम् ॥ मथ्नंतिमथ्नामनसादिदृक्षवोगूढंक्रिया र्थैर्नमईरितात्मने ॥ ९ ॥ द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुभिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयांगातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतयेनमोऽस्तुते ॥ ॥ १० ॥ करोतिविश्वस्थितिसंयमोदयंयस्येप्सितंनेप्सितुमीक्षितुर्गुणैः ॥ मायायथायोभ्रमतेतदाश्रयंग्राव्णोनमस्तेगुणकर्मसाक्षिणे ॥ ११ ॥

स्वरूपको देहेन्द्रियादि गुणोंमें लकडीमें अग्निके समान विवेक साधनवाले मनसे मथन करते हैं, कर्म और उनके फलसे भी गूढ आपको देखनेकी इच्छावाले ज्ञानसे जान्ते हैं ऐसे आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥ विषय, इन्द्रियव्यापारहेतु—देवता; देह, काल अहंकार इन मायाके गुण अर्थात् कार्यद्वारा जाना जाता हुआ जो आत्मा, और विचारपूर्वक यमनियमादिसे निश्चययुक्त बुद्धिवालों द्वारा मायारहित आकृति करनेवाले आपके निमित्त प्रणाम है ॥ १० ॥ अयस्कान्त मणिसे जैसे लोह घूमता है इसी प्रकार माया अपने गुणोंसे परस्पर सहचारी कर अपने दर्शन गोचर उपस्थितहोकर विश्वकी सृष्टि स्थिति और प्रलय करती है. इससे आपका कुछ भी अभिलाष नहीं है, एक मात्र जीवकेही निमित्त नितान्त अनिच्छाक्रमसे इच्छाका संवेश हुआहै यह आपका आत्मा उस अदृष्टका साक्षीमात्र है आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥

युद्धमें निवारण करनेवाले दैत्यको मथन करके जो आदि वराह मुझ भूमिको अपनी डाढपर रखकर सागरसे निर्गत हुए और हस्तीके समान क्रीडा करते आप उन विभुको मैं प्रणाम करती हूं ॥ १२ ॥ किंपुरुषवर्षमें सबके अधिपति दशरथपुत्र आदिपुरुष श्रीरामको सीतासहित महावीरजी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥ हनुमानजी कहते हैं उत्तमश्लोक भगवानको प्रणाम है, आर्योंके लक्षण और शीलवृत्त सम्पन्न संयत चित्तवाले लोकानुसारकार्यकारीके निमित्त प्रणाम है, साधुवादकी कसौटी ब्रह्मण्यदेव महापुरुष महाभागके निमित्त प्रणाम है, जो विशुद्ध अनुभववाले एक अपने तेजसेही सब गुणोंकी जाग्रदादि अवस्थाके तिरस्कार करनेवाले प्रत्यक् शान्त, सुबु

प्रमथ्यदैत्यंप्रतिवारणंमृधेयोमांरसायाजगदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रेनिरगादुदन्वतःक्रीडन्निवेभःप्रणताऽस्मितंविभुम् ॥ १२ ॥ किंपुरुषेवर्षेऽस्मिन्भगवंतंदाशरथिंचसर्वेशम् ॥ सीतारामंदेवंश्रीहनुमानादिपूरुषंस्तौति ॥ १३ ॥ हनुमानुवाच ॥ ओंनमोभगवतेउत्तमश्लोकायनमइति ॥ आर्यलक्षणशीलव्रतायनमउपशिक्षितात्मनेउपासितलोकायनमः ॥ साधुवादनिकषणायनमोब्रह्मण्यदेवायमहापुरुषायमहाभागायनमइति ॥ यत्तद्विशुद्धानुभवात्ममेकंस्वतेजसाध्वस्तगुणव्यवस्थम् ॥ प्रत्यक्प्रशांतंसुधियोपलंभनंह्यनामरूपंनिरहंप्रपद्ये ॥ १४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विहमर्त्यशिक्षणंरक्षोवधायैवनकेवलंविभोः ॥ कुतोऽन्यथास्याद्रमतःस्वआत्मनःसीताकृतानिव्यसनानीश्वरस्य ॥ १५ ॥ नवैसआत्मात्मवतांसुहृत्तमःसक्तस्त्रिलोक्यांभगवान्वासुदेवः ॥ नस्त्रीकृतंकश्मलमश्नुवीतनलक्ष्मणंचापिविहातुमर्हति ॥ १६ ॥ नजन्मनूनंमहतोनसौभगंनवाङ्नबुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्यद्विसृष्टानपिनोवनौकसश्चकारसख्येवतलक्ष्मणाग्रजः ॥ १७ ॥

द्धियोंके जानने योग्य अनामरूप, अहंकाररहित, वेदान्तके प्रसिद्ध तत्व हैं उनकी शरण होता हूं ॥ १४ ॥ हे विभो ! आपका मनुष्यावतार लोकोंको शिक्षा करनेके निमित्त है केवल राक्षसोंके मारनेके निमित्तही नहीं है. नहीं तो अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले आपको सीताके निमित्त विरहव्यसन क्यों करने पडते यही दिखाया है कि स्त्रीसंगका दुःख दुर्निवार है ॥ १५ ॥ वह भगवान् वासुदेव आत्मज्ञानियोंके अतिशय सुहृद् त्रिलोकीमें किसी वस्तुमें आसक्त नहीं उनको स्त्रीका कश्मल प्राप्त नहीं होता न दुर्वासाके आनेके समय लक्ष्मणको त्यागते [वाल्मीकि उत्तरकाण्ड देखो] ॥ १६ ॥ सत्कुलमें जन्म होना, रूप, सौभाग्य, वाणी, बुद्धि, कर्तव्य यह

भगवान्के संतोषका कारण नहीं उन्हें केवल भक्ति प्यारी है. देखो रामचन्द्रने इन ऊपर गुणोंसे रहित वनवासी वानरादिके साथ सख्यता की ॥ १७ ॥ सुर, असुर, नर, नारी कोई भी हो जो सर्वात्मासे थोडे भजनसे बहुत संतुष्ट होनेवाले मनुजाकार रामका भजन करते हैं वे मुक्त होते हैं कारण कि, वे सब उत्तरकोसलवासियोंको स्वर्गमें लेगये. श्रीनारायण बोले कि, इस प्रकार किंपुरुषवर्षमें सत्यसंध दृढव्रत कमललोचन रामको वानरोत्तम महावीरजी ॥ १८ ॥ १९ ॥ भक्तिपूर्वक स्तुति कर गाते और पूजते हैं जो इस पवित्र रामचन्द्रकी कथा सुन्ते हैं ॥ २० ॥ वह सब पापसे रहित हो शुद्ध होकर रामके लोकको जाते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ श्रीनारायण बोले इस भारत वर्षमें आदिपुरुषरूपसे मैं स्थित रहता हूं और

सुरोऽसुरोवाप्यथवानरोनरःसर्वात्मनायःसुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेतरामंमनुजाकृतिंहरिंयउत्तराननयत्कोसलान्दिवम् ॥ १८ ॥ नारायणउवाच ॥ एवं किंपुरुषेवर्षेसत्यसंधंदृढव्रतम् ॥ रामंराजीवपत्राक्षंहनुमान्वानरोत्तमः ॥ १९ ॥ स्तौतिगायतिभक्त्याचसंपूजयतिसर्वशः ॥ यएतच्छृणुयाच्चित्रंरामचं द्रकथानकम् ॥२०॥ सर्वपापविशुद्धात्मायातिरामसलोकताम् ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टमस्कंधेदशमोध्यायः ॥१०॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ भारताख्येचवर्षेऽस्मिन्नहमादिजपुरुषः ॥ तिष्ठामिभवताचैवस्तवनंक्रियतेऽनिशम् ॥ १ ॥ नारदउवाच ॥ ॐनमोभगवतेउपशमशीलायोपरतानात्म्या यनमोऽकिंचनवित्तायऋषिऋषभायनरनारायणायपरमहंसपरमगुरवेआत्मारामाधिपतयेनमोनमइति ॥ कर्तास्यसर्गादिषुयोनबध्यतेनहन्यतेदेहगतो पिदैहिकैः॥द्रष्टुर्नदृग्यस्यगुणैर्विदूष्यतेतस्मैनमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥२॥ इदंहियोगेश्वरयोगनैपुणंहिरण्यगर्भोभगवाञ्जगादयत् ॥ यदंतकालेत्वयिनिर्गु णेमनोभक्त्यादधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ ३ ॥ यथैहिकामुष्मिककामलंपटःसुतेषुदारेषुधनेषुचिंतयन् ॥ शंकेतविद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्ययत्नः श्रमएवकेवलम् ॥ ४ ॥

आप इसप्रकार स्तुति करते हो ॥ १ ॥ नारदजी बोले भगवान् शान्तिशीलके स्थान अहंकारहीन अकिंचनोंके धनरूप ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण परमहंस परमगुरु आत्मारामोंके अधिपतिको प्रणाम है सृष्टिके आदिमें जो इस जगत्का कर्ता होकर भी कर्मसे बद्ध नहीं होता देहको प्राप्त होकर भी जो देहकी क्षुधा, पिपासासे, अभि भूत नहीं होते द्रष्टा होकर भी जिसकी दृष्टि गुणोंसे दूषित नहीं होती ऐसे असक्त विविक्त साक्षी आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ हे योगेश्वर ! यह आपके योगकी निपुणता हिरण्यगर्भने कही है अभिमानरूप कलेवर त्यागन करते हुए अन्तमें जिसने आपका उच्चारण कर तुममें मन लगाया वही पार हो गया यही योग है ॥ ३ ॥ जैसे यहांके और परलोकके पदार्थोंके कामलम्पट पुरुष पुत्र दारा और धनकी चिन्तामें लगे रहतेहैं और कुत्सित कलेवरकी मृत्युसे नाश होनेकी चिन्ता करते हैं यदि विद्वान् होकर

भी कोई यही चिन्ता करे तो उसका ज्ञानमें भ्रम मात्र है ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज! आप अपनेमें स्वाभाविक प्रेमरूपयोग हमको प्रदान कीजिये. जिस योगसे हम आपकी मायासे इस कुकलेवरमें हुए अहंता, ममता, आदि दुर्भेद दुःखोंको नष्ट कर सकें॥ ५॥ इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ नारदजी सब सारके ज्ञाता अनामय नारायणकी सदा स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ इस भारतवर्षमें जो नदी पर्वतही है. हे राजन्! उनको कहता हूं सुनो॥ ७॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि॥ ८॥ ऋष्यमूक, श्रीशैल, व्यङ्कटाचल, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्, ऋक्षपर्वत ॥ ९ ॥ पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलपर्वत ॥ १० ॥

तन्नःप्रभोत्वंकुकलेवरार्पितांत्वंमाययाहंममतामधोक्षज ॥ भिंद्यामयेनाशुवयंसुदुर्भिदांविधेहियोगंत्वयिनः स्वभावम् ॥ ५ ॥ एवंस्तौतिसदादेवंनारायणमनामयम् ॥ नारदोमुनिशार्दूलःप्रज्ञाताखिलसारदृक् ॥ ६ ॥ अस्मिन्वैभारतेवर्षेसरिच्छैलास्तुसंतिहि ॥ तान्प्रवक्ष्यामिदेवर्षेशृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ ७ ॥ मलयोमंगलप्रस्थोमैनाकश्चत्रिकूटकः ॥ ऋषभःकुटकःकोल्लःसह्योदेवगिरिस्तथा ॥८॥ ऋष्यमूकश्चश्रीशैलोव्यङ्कटाद्रिर्महेंद्रकः ॥ वारिधारश्चविंध्यश्चमुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥ ९ ॥ पारियात्रस्तथाद्रोणश्चित्रकूटगिरिस्तथा ॥ गोवर्धनोरैवतकःककुभोनीलपर्वतः ॥ १० ॥ गौरमुखश्चेंद्रकीलोगिरिःकामगिरिस्तथा ॥ एतेचान्येप्यसंख्यातागिरयोवहुपुण्यदाः ॥ ११ ॥ एतदुत्पन्नसरितःशतशोथसहस्रशः ॥ पानावगाहनस्नानदर्शनोत्कीर्तनैरपि ॥ १२ ॥ नाशयंतिचपापानित्रिविधानिशरीरिणाम् ॥ ताम्रपर्णीचंद्रवशाकृतमालावटोदका ॥ १३ ॥ वैहायसीचकावेरीवेणाचैवपयस्विनी ॥ तुंगभद्राकृष्णवेणाशर्करावर्तकातथा ॥ १४ ॥ गोदावरीभीमरथीनिर्विंध्याचपयोष्णिका ॥ तापीरेवाचसुरसानर्मदाचसरस्वती ॥ १५ ॥ चर्मण्वतीचसिंधुश्चअंधशोणौमहानदौ ॥ ऋषिकुल्यात्रिसामाचवेदस्मृतिमहानदी ॥ १६ ॥ कौशिकीयमुनाचैवमंदाकिनीदृषद्वती ॥ गोमतीसरयूरोधवतीसप्तवतीतथा ॥ १७ ॥ सुषोमाचशतद्रुश्चचंद्रभागामरुद्वृधा ॥ वितस्ताचअसिक्नीचविश्वाचेतिप्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥

गौरमुख, इन्द्रकील, कामगिरि इनके सिवाय और भी बहुतसे पुण्यदायक पर्वत हैं ॥ ११ ॥ इनसे उत्पन्न हुई सैकडों सहस्रो नदी हैं जो अवगाहन, स्नान, दर्शन और कीर्तनसे पवित्र करती हैं ॥ १२ ॥ प्राणियोंके तीनों प्रकारके पाप दूर करती हैं ताम्रपर्णी, चन्द्रवशा, कृतमाला, वटोदका ॥ १३॥ वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेणा शर्करावर्तका ॥ १४ ॥ गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती ॥ १५ ॥ चर्मण्वती, सिंधु, अंध महानदशोण, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, वेदस्मृति, महानदी॥ १६॥ कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती, सप्तवती॥ १७॥ सुषोमा, शतद्रु, (सतलज)

चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा यह नदी हैं ॥ १८ ॥ इस भारतवर्षमें पुरुष अपने कर्मोंसे जन्म धारण करके सत, रज, तमके कारण क्रमसे शुक्ल, लोहित, कृष्ण अन्तःकरणसे स्वर्ग मनुष्य और नरकके भोगवाले होते हैं ॥ १९ ॥ सब निवासियोंको अनेक भोग होतेहैं और अपने:२ वर्णके धर्मानुसार सबकी मोक्ष होती है ॥ २० ॥ इस वर्षमें यही एक प्रधान कार्य है कि, अनायासही परमेश्वर प्रसादरूपकार्यसिद्धि होती है स्वर्गवासी कहते हैं ॥ २१ ॥ अहो इन भारतवासियोंने क्या उत्तम कार्य किये हैं जिनपर स्वयं भगवान् विष्णु प्रसन्न हैं जो यह भारतवर्षमें जन्मलेकर मुकुन्दसेवामें हमको स्पृहा करते हैं ॥ २२ ॥ हमारे किये दुष्कर तप, व्रत,दान, जो तुच्छरूप है उसके द्वारा प्राप्त हुए स्वर्गफलसे क्या है? जहां नारायणके चरणारविन्दके स्मरणकी स्मृति नहीं है, इन्द्रियोंके भोगने यह स्मरण चोर लिया है

अस्मिन्वर्षेलब्धजन्मपुरुषैःस्वस्वकर्मभिः ॥ शुक्ललोहितकृष्णाख्यैर्दिव्यमानुषनारकाः ॥ १९ ॥ भवंतिविविधाभोगाःसर्वेषांचनिवासिनाम् ॥ यथाव र्णविधानेनाऽपवर्गोभवतिस्फुटम् ॥ २० ॥ एतदेवचवर्षस्यप्राधान्यंकार्यसिद्धितः ॥ वदंतिमुनयोवेदवादिनःस्वर्गवासिनः ॥ २१ ॥ अहोअमीषां किमकारिशोभनंप्रसन्नएषांस्विदुतस्वयंहरिः ॥ यैर्जन्मलब्धंनृषुभारताजिरेमुकुंदसेवौपयिकंस्पृहाहिनः ॥ २२ ॥ किंदुष्करैर्नःक्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादि भिर्वाद्युजयेनफल्गुना ॥ नयत्रनारायणपादपंकजस्मृतिःप्रमुष्टातिशयेंद्रियोत्सवात् ॥ २३ ॥ कल्पायुषांस्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषांभारतभूजयो वरम् ॥ क्षणेनमर्त्येनकृतंमनस्विनःसंन्यस्यसंयांत्यभयंपदंहरेः ॥ २४ ॥ नयत्रवैकुंठकथासुधापगानसाधवोभागवतास्तदाश्रयाः ॥ नयत्रयज्ञेशमखामहो त्सवाःसुरेशलोकोपिनवैससेव्यताम् ॥ २५ ॥ प्राप्तानृजातिंत्विहयेचजंतवोज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ॥ नवैयतेरन्नपुनर्भवायतेभूयोवनौकाइ वयांतिबंधनम् ॥ २६ ॥ यैःश्रद्धयाबर्हिषिभागशोहविर्निरुप्तमिष्टंविधिमंत्रवस्तुतः ॥ एकःपृथङ्नामभिराहुतोमुदागृह्णातिपूर्णःस्वयमाशिषांप्रभुः ॥ २७ ॥

॥ २३ ॥ फिर जन्म देनेवाले कल्पायुवाले स्वर्गस्थानसे क्षणमात्रको भारतभूमिमें प्राप्त होना उत्तम है अर्थात् अल्पायुवाले भारतमें जन्म श्रेष्ठ है, जहां बुद्धिमान् मनुष्य सब कुछ त्यागनकर क्षणमात्रमें हरिके समीपको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जहां अमृतमयी नारायणकी कथा नहीं, जहां हरिभक्त साधुओंका समागम नहीं जहां यज्ञेशके यज्ञोंका महोत्सव नहीं ऐसा इन्द्रलोक भी न सेवन करना चाहिये ॥ २५ ॥ जो प्राणी इस भारतवर्षमें मनुष्य जन्म पाकर ज्ञान क्रिया द्रव्यसे सम्पूर्ण हुए मुक्त होनेका यत्न नहीं करते वे फिर भी वनके जीवोंकी समान बंधनमें प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ जिन्होंने श्रद्धापूर्वक कुशामें विभाग कीहुई है विधि मंत्रसे पृथक् २ नाम लेकर दी है 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि' इत्यादि कहा है उनके पृथक् इन्द्रादि नामसे आहूत परिपूर्ण हरि स्वयं उनके भागको ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥

यह सत्य है कि, प्रार्थना करनेपर अर्थकी कामना पूरी करते हैं परन्तु परमार्थ नहीं देते जिससे फिर माँगनेकी इच्छा न रहै और जो निष्काम होकर भजन करते हैं उनको तो सब इच्छाओंके पूर्ण करनेवाले अपने पादपल्लवको स्वयं देते हैं इससे निष्काम भजन श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ "यदि हमको स्वर्गका सुख शेष है, हमारे इष्टा पूर्तका कुछ शोभन है तो हमको अपर जन्ममें अजनाभके चरणोंका स्मरण हो और भारतवर्षमें जन्म होकर शांति मिले" नारायण बोले इसप्रकार स्वर्गके देवता सिद्ध और परम ऋषि भारतवर्षका सुन्दर माहात्म्य कहते हैं ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपकेसमीप आठ और उपद्वीप हैं जिनको घोडा शोधते हुए सगरके पुत्रोंने कल्पित

सत्यंदिशत्यर्थितमर्थितोनृणांनैवार्थदोयत्पुनरर्थितायतः ॥ स्वयंविधत्तेभजतामनिच्छतामिच्छापिधानंनिजपादपल्लवम् ॥ २८ ॥ "यद्यत्रनःस्वर्गसुखावशेषितंस्विष्टस्यपूर्तस्यकृतस्यशोभनम् ॥ तेनाऽजनाभस्मृतिमज्जन्मनःस्याद्वर्षेहरिर्भजतांशंतनोति" ॥१॥ नारायणउवाच ॥ एवंस्वर्गगतादेवाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ प्रवदंतिचमाहात्म्यंभारतस्यसुशोभनम् ॥ २९ ॥ जंबुद्वीपस्यचाऽष्टौहिउपद्वीपाःस्मृताःपरे ॥ हयमार्गान्विशोधद्भिःसागरैःपरिकल्पिताः ॥ ३० ॥ स्वर्णप्रस्थश्चंद्रशुक्रआवर्तनरमाणकौ ॥ मंदरोपाख्यहरिणौपांचजन्यस्तथैवच ॥ ३१ ॥ सिंहलश्चैवलंकेतिउपद्वीपाष्टकंस्मृतम् ॥ जंबुद्वीपस्यमानंहिकीर्तितंविस्तरेणच ॥ ३२ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिप्लुक्षादिद्वीपषट्ककम् ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टमस्कंधेएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ जंबुद्वीपोयथाचाऽयंयत्प्रमाणेनकीर्तितः ॥ तावतासर्वतःक्षारोदधिनापरिवेष्टितः ॥ १ ॥ जंब्वाख्येनयथामेरुस्तथाक्षारोदकेनच ॥ क्षारोदधिस्तुद्विगुणप्लुक्षाख्येनोपवेष्टितः ॥ २ ॥ यथैवपरिखाबाह्योपवनेनहिवेष्टयते ॥ प्लुक्षाख्यश्चस्वयंजंबुप्रमाणोद्वीपरूपधृत् ॥ ३ ॥

किया था ॥ ३० ॥ स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मंदरहरिण, पांचजन्य ॥ ३१ ॥ सिंहलद्वीप और लंका यह आठ उपद्वीप हैं जम्बूद्वीपका प्रमाण विस्तारपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ अब प्लुक्षादि छः द्वीपोंका वर्णन करैंगे ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीनारायण बोले जितने प्रमाणका यह जम्बूद्वीप है उतनेही क्षारसमुद्रसे घिरा हुआ है ॥१॥ जम्बूद्वीपसे जिस प्रकार मेरु वेष्टित है इसी प्रकार दूने विस्तारवाले प्लुक्षद्वीपसे क्षारसमुद्र वेष्टित है॥ २॥ जैसे बाहरी परिखा उपवनोंको वेष्टन करती हैं. इसीप्रकार यह है उस प्लुक्षद्वीपमें प्लुक्षवृक्ष जम्बूद्वीपके जम्बूवृक्षकी समान प्रमाणयुक्त है॥ ३॥

हिरण्मय कान्तिसे स्थित होता है वहां प्रियव्रतका पुत्र इध्मजिह्व निवास करता है ॥ ४ ॥ उसके अधिपति अग्निजिह्वने अपने द्वीपके सात विभाग करकै अपने सात पुत्रोंको बाँट दिये ॥ ५ ॥ और स्वयं आत्मारामोंकी माननीय योगचर्यामें मग्न हुआ, उसी योगसे भगवान्‌को प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ शिव, यवस, भद्र शान्त, क्षेम, अमृत और अभय यह सात वर्ष उसके सात पुत्रोंके नामसे हुए ॥ ७ ॥ उनमें सात नदी और सात पर्वत मुख्य हैं. अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभातिका ॥ ८ ॥ ऋतंभरा, सत्यंभरा यह नदियें हैं. मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन ॥ ९ ॥ ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव, मेघमाल यह प्लक्षद्वीपके पर्वत हैं ॥ १० ॥ नदियोंके

हिरण्मयोऽग्निस्तत्रैवतिष्ठतीतिविनिश्चयः ॥ प्रियव्रतात्मजस्तत्रसत्ताजिह्वइतिस्मृतः ॥ ४ ॥ अग्निस्तदधिपस्त्विध्मजिह्वःस्वंद्वीपमेवच ॥ विभज्यसप्तवर्षाणिस्वपुत्रेभ्योददौविभुः ॥ ५ ॥ स्वयमात्मविदांमान्यांयोगचर्यांसमाश्रितः ॥ तेनैवचाऽऽत्मयोगेनभगवंतमुपागतः ॥ ६ ॥ शिवंचयवसंभद्रंशांतंक्षेमामृतेतथा ॥ अभयंचेतिसप्तैवतद्वर्षाणिसदेक्षताम् ॥ ७ ॥ तेषुप्रोक्तानदीःसप्तगिरयःसप्तचैवहि ॥ अरुणानृम्णांगिरसीसावित्रीसुप्रभातिका ॥ ८ ॥ ऋतंभरासत्यंभराइतिनद्यःप्रकीर्तिताः ॥ मणिकूटोवज्रकूटइंद्रसेनस्तथैवच ॥ ९ ॥ ज्योतिष्मान्वैसुपर्णश्चहिरण्यष्ठीवएवच ॥ मेघमालइतिख्याताः प्लक्षद्वीपस्यपर्वताः ॥ १० ॥ नदीनांजलमात्रेणदर्शनस्पर्शनादिभिः ॥ निर्धूताशेषरजसोनिस्तमस्काःप्रजास्तथा ॥ ११ ॥ हंसश्चैवपतंगश्चऊर्ध्वायनइतीवच ॥ सत्यांगसंज्ञाश्चत्वारोवर्णाःप्लक्षस्यद्वीपके ॥ १२ ॥ सहस्रायुःप्रमाणाश्चविविधोपमदर्शनाः ॥ स्वर्गद्वारंत्रयीविद्याविधिनार्कयजंतिते ॥ ॥ १३ ॥ प्रत्नस्यविष्णोरूपंचसत्यर्तस्यचब्रह्मणः ॥ अमृतस्यचमृत्योश्चसूर्यमात्मानमीमहि ॥ १४ ॥ प्लक्षादिषुचसर्वेषुपंचद्वीपेषुनारद ॥ आयुरिंद्रियमोजश्चबलंबुद्धिःसहोऽपिच ॥ १५ ॥ विक्रमःसर्वलोकानांसिद्धिरौत्पत्तिकीसदा ॥ प्लक्षद्वीपात्परंचेक्षुरसोदःसरितांपतिः ॥ १६ ॥

जलमात्र दर्शन स्पर्शसे सब पाप और मल वहांकी प्रजाके नष्ट होजाते हैं ॥ ११ ॥ हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन, सत्यांग, यह चार वर्ण प्लक्षद्वीपमें रहते हैं ॥ १२ ॥ मनुष्योंकी आयु सहस्र वर्षकी देखनेमें देवताओंकी समान स्वरूपवान् स्वर्गद्वार नामक त्रयीविद्याके विधानसे सूर्यका पूजन करते हैं ॥ १३ ॥ कि, पुराणपुरुष विष्णुका जो सूर्यरूप है उसकी हम शरण होते हैं. जो सत्यादि आत्माका अधिष्ठानस्वरूप है उस ब्रह्मबोधक अमृतरूप शुभफल और अशुभफलके प्रेरक हैं उनको सत्यधर्मके अनुष्ठान और प्रेमभक्तिसे ध्यानकर शरणमें प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ हे नारदजी ! प्लक्षद्वीप तथा दूसरे पाँचों द्वीपोंमें आयु, इन्द्रिय, ओज, बल, बुद्धि, प्राण ॥ १५ ॥ सबप्राणियोंका विक्रम

स्वाभाविक उत्पन्न होता है प्लक्षद्वीपके आगे ईखका समुद्र सब ओरसे व्याप्त है ॥ १६ ॥ जो प्लक्षद्वीपको सब ओरसे घेरकर स्थित है. इसके आगे शाल्मलीद्वीप विस्तारमें इससे दूना है ॥ १७ ॥ जो अपने समान सुरासागरसे वेष्टित होरहा है. जहां सेमलका वृक्ष प्लक्षकी समान है ॥ १८ ॥ वहां महात्मा पक्षिराज गरुडजीका स्थान है उस द्वीपका स्वामी यज्ञबाहु प्रियव्रतका ॥ १९ ॥ पुत्र उसके सात भाग कर अपने सात पुत्रोंको देता हुआ. उसके वर्षोंके नाम सुनो ॥ २० ॥ सुरोचन, सौमनस्य, रमण, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन, विज्ञातनाम ॥ २१ ॥ इनमें वर्षोंके मर्यादापर्वत सात और सात ही नदी हैं सरस, शतशृंग, वामदेव, कंदक ॥ २२ ॥ कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुति यह सात पर्वत हैं नदियोंके नाम कहते हैं ॥ २३ ॥ अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नंदा, राका कही हैं ॥ २४ ॥ उस वर्षके

प्लक्षद्वीपंसमग्रंचपरिवार्यावतिष्ठते ॥ शाल्मलाख्यस्ततोद्वीपश्चाऽस्माद्द्विगुणविस्तरः ॥ १७ ॥ समानेनसुरोदेनसिंधुनापरिवेष्टितः ॥ यत्रवै शाल्मलीवृक्षःप्लक्षायामःप्रकीर्तितः ॥ १८ ॥ स्थानंतत्पक्षिराजस्यगरुडस्यमहात्मनः ॥ तस्यद्वीपस्यनाथोहियज्ञबाहुःप्रियव्रतात् ॥ १९ ॥ जातः सएवसप्तभ्यःस्वपुत्रेभ्योददौधराम् ॥ तद्वर्षाणांचनामानिकथितानिनिबोधत ॥ २० ॥ सुरोचनंसौमनस्यंरमणंदेववर्षकम् ॥ पारिभद्रंतथाचाऽप्यायनंवि ज्ञातनामकम् ॥ २१ ॥ तेषुवर्षाद्रयःसप्तसप्तैवसरितःस्मृताः ॥ सरसःशतशृंगश्चवामदेवश्चकंदकः ॥ २२ ॥ कुमुदःपुष्पवर्षश्चसहस्रश्रुतिरेवच ॥ एतेचपर्वताः सप्तनदीनामानिचोच्यते ॥ २३ ॥ अनुमतिःसिनीवालीसरस्वतीकुहूस्तथा ॥ रजनीचैवनंदाचराकेतिपरिकीर्तिताः ॥ २४ ॥ तद्वर्षपुरुषाःसर्वेचातुर्वर्ण्यसं माह्वयाः ॥ श्रुतधरोवीर्यधरोवसुंधरइषुंधरः ॥ २५ ॥ भगवंतंवेदमयंयजंतेसोममीश्वरम् ॥ स्वगोभिःपितृदेवेभ्योविभजन्कृष्णशुक्लयोः ॥ २६ ॥ सर्वासां चप्रजानांचराजासोमःप्रसीदतु ॥ एवंसुरोदाद्द्विगुणःस्वमानेनप्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ घृतोदेनावृतःसोऽयंकुशद्वीपःप्रकाशते ॥ यस्मिन्नास्तेकुशस्तंबोद्वीपा ख्याकारणोज्वलन् ॥ २८ ॥ स्वशष्परोचिषाकाष्ठाभासयन्परितिष्ठते ॥ हिरण्यरेतास्तद्वीपपतिःप्रैयव्रतःस्वराट् ॥ २९ ॥ स्वपुत्रेभ्यश्चसप्तभ्यस्तंद्वीपंसप्त धाऽभजत् ॥ वसुश्चवसुदानश्चतथादृढरुचिःपरः ॥ ३० ॥

सब पुरुष चारोंवर्णके हैं. जो श्रुतधर, वीर्यधर, वसुंधर, इषुधर कहाते हैं ॥ २५ ॥ जो वेदमय सोममय भगवान् ईश्वरका यजन करते हैं जो अपनी किरण अन्नद्वारा शुक्लकृष्णपक्षोंका विभाग करते हुए देवता पितरोंका विभाग करते हैं ॥ २६ ॥ सम्पूर्णप्रजाओंके अधिपति सोम हमपर प्रसन्न हों इसप्रकार सुरोदसे दूना अपने मानसे प्रतिष्ठित ॥ २७ ॥ घृतसे आवृत कुशद्वीप प्रकाशित होता है जिसमें इस द्वीपका कारण एक कुशस्तंब प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥ और अपने अंकुरोंकी कान्तिसे परम प्रकाशकर्ता स्थित होता है. उस द्वीपका पति राजा हिरण्यरेता है ॥ २९ ॥ इसने भी अपने सात पुत्रोंके नामसे इस द्वीपके सात भाग किये. वसु, वसुदान, दृढरुचि ॥ ३० ॥

नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त, नामदेवक यह सात हैं और सातही इनमें मर्यादापर्वत हैं ॥ ३१ ॥ सातही नदी हैं. अब नाम सुनो चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूटक ॥ ३२ ॥ देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण यह सात पर्वत कहाते हैं. रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा ॥ ३३ ॥ श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता, मन्दमालिका, यह नदी हैं. जिनके जलसे सब कुशद्वीपनिवासी प्रसन्न रहते हैं ॥ ३४ ॥ कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक यह चार वर्णोंकी संज्ञा है ॥ ३५ ॥ सबका देवतोंकी समान रूप है सब कुछ जाननेवाले वे कर्ममें कुशल अग्निरूप देवका यजन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे हव्यवाट् ! आप साक्षात् परब्रह्मका रूप हो इससे देवतोंके यज्ञसे परमेश्वरको यजन

नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतौविविक्तभामदेवकौ ॥ तेषांवर्षेषुसप्तैवसीमागिरिवराःस्मृताः ॥ ३१ ॥ नद्यःसप्तैवसंतीहतन्नामानिनिबोधत ॥ चक्रस्तथाचतुःशृंगःकपिलश्चित्रकूटकः ॥ ३२ ॥ देवानीकश्चोर्ध्वरोमाद्रविणःसप्तपर्वताः ॥ रसकुल्यामधुकुल्यामित्रविंदातथैवच ॥ ३३ ॥ श्रुतविंदादेवगर्भाघृतच्युन्मंदमालिके ॥ यत्पयोभिःकुशद्वीपवासिनःसर्वएवते ॥ ३४ ॥ कुशलःकोविदश्चैवाऽप्यभियुक्तस्तथैवच ॥ कुलकश्चेतिसंज्ञाभिश्चतुर्वर्णाःप्रकीर्तिताः ॥ ॥ ३५ ॥ जातवेदसरूपंतंदेवंकर्मजकौशलैः ॥ यजंतेदेववर्याभाःसर्वेसर्वविदोजनाः ॥ ३६ ॥ परस्यब्रह्मणःसाक्षाज्जातवेदोऽसिहव्यवाट् ॥ देवानांपुरुषांगानांयज्ञेनपुरुषंयज ॥ ३७ ॥ एवंयजंतेज्वलनंसर्वेद्वीपाधिवासिनः ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधेद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारदउवाच ॥ शिष्टद्वीपप्रमाणंचवदसर्वार्थदर्शन ॥ येनविज्ञातमात्रेणपरानंदमयोभवेत् ॥ १ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ कुशद्वीपस्यपरितोघृतोदावरणंमहत् ॥ ततोबहिः क्रौंचद्वीपोद्विगुणःस्यात्स्वमानतः ॥२॥ क्षीरोदेनावृतोभातियस्मिन्क्रौंचाद्रिरस्तिच ॥ नामनिर्वर्तकःसोऽयंद्वीपस्यपरिवर्तते ॥ ३ ॥ योऽसौगुहस्यशक्त्याचभिन्नकुक्षिःपुराऽभवत् ॥ क्षीरोदेनासिच्यमानोवरुणेनचरक्षितः ॥ ४ ॥

करो यह उन्हींके नाम दिये हैं ॥ ३७ ॥ हे देव ! यह हम सब द्वीपवासी प्रकाशस्वरूप आपका यजन करते हैं ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारदजी बोले हे सम्पूर्ण अर्थके देखनेवाले अवशेष द्वीपोंका भी प्रमाणकहिये जिसके जाननेसे परमानंद प्राप्त हो ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले कुशद्वीपके चारों ओर घृतोदनाम सागर है इसके आगे क्रौंचद्वीप मानमें इससे दूना है ॥ २ ॥ यह क्षीरोदसागरसे व्याप्त है इसीमें क्रौंचनामक पर्वत है अपने नामसेही इसने यह द्वीप प्रगट किया है ॥ ३ ॥ जिसकी कुक्षि प्रथम कार्तिकेयकी शक्तिसे विदीर्णहुई थी, फिर क्षीरोदसे सींचकर वरुणने इसकी रक्षाकी थी ॥ ४ ॥

जिसका स्वामी घृतपृष्ठ नाम शोभित होता है यहभी प्रियव्रतका पुत्र सब लोकसे नमस्कृत है ॥ ५॥ इसने भी अपने द्वीपको पुत्रोंके नामसे विभाग कर उन सातोंको राज्य दे दिया ॥ ६ ॥ और आप भगवान्‌की शरणमें हुए. आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक ॥ ७ ॥ भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण, वनस्पति यह सात वर्षोंके नाम हैं. इनमें भी सात मर्यादापर्वत और सात नदी हैं ॥ ८ ॥ शुक्र, वैवर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र, यह पर्वत हैं ॥ ९ ॥ अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला, पवित्रवती यह नदी हैं ॥ १० ॥ इनका पवित्र जल वहांके चारों वर्ण पान करते हैं. पुरुष, ऋषभ, द्रविण, देवक ॥ ११ ॥ यह चार वर्णके पुरुष वहां निवास करते हैं

घृतपृष्ठोनामयस्याविभातिकिलनायकः ॥ प्रियव्रतात्मजःश्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥५॥ स्वद्वीपंतुविभज्यैवसप्तधास्वात्मजान्ददौ ॥ पुत्रनामसुवर्षेषुवर्षपान्सन्निवेश्यन् ॥ ६ ॥ स्वयंभगवतस्तस्यशरणंसंजगामह ॥ आमोमधुरुहश्चैवमेघपृष्ठःसुधामकः ॥७॥ भ्राजिष्ठोलोहितार्णश्चवनस्पतिरितीवच ॥ नगानद्यश्चसप्तैवविख्याताभुविसर्वतः ॥ ८ ॥ शुक्रोवैवर्धमानश्चभोजनश्चोपबर्हणः ॥ नंदश्चनंदनःसर्वतोभद्रइतिकीर्तिताः ॥ ९ ॥ अभयाअमृतौघाचार्यकातीर्थवतीतिच ॥ वृत्तिरूपवतीशुक्लापवित्रवतिकातथा ॥ १० ॥ एतासामुदकंपुण्यंचातुर्वर्ण्यैर्नपीयते ॥ पुरुषऋषभौतद्वद्द्रविणाख्यश्चदेवकः ॥११॥ एतेचतुर्वर्णजाताःपुरुषानिवसंतिहि ॥ तत्रत्याःपुरुषाआपोमयंदेवमपांपतिम् ॥ १२ ॥ पूर्णेनांजलिनाभक्त्यायजंतेविविधक्रियाः ॥ आपःपुरुषवीर्याःस्थपुनंतीर्भूर्भुवःस्वरः ॥ १३ ॥ तानःपुनीताऽमीवघ्नीःस्पृशतामात्मनाभुवः ॥ इतिमंत्रजपांतेचस्तुवंतिविविधैःस्तवैः ॥ १४ ॥ एवंपरस्तात्क्षीरोदात्परितश्चोपवेशितः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षसंख्याकयोजनायाममाश्रितः ॥१५॥ स्वमानेनचद्वीपोऽयंदधिमंडोदकेनच ॥ शाकद्वीपोविशिष्टोयंयस्मिञ्छाकोमहीरुहः ॥१६॥ स्वक्षेत्रव्यपदेशस्यकारणंसहिनारद ॥ प्रैयव्रतोधिपस्तस्यमेधातिथिरितिस्मृतः ॥१७॥ विभज्यसप्तवर्षाणिपुत्रनामानितेषुच ॥ सप्तपुत्रान्निजान्स्थाप्यस्वयंयोगगतिंगतः ॥ १८ ॥

वहांके पुरुष जलमय जलोंके पतिको ॥ १२ ॥ पूर्णभक्तिसे जलकी अंजलीसे यजनकरते हैं. हेजलो! तुम ईश्वरलब्धवीर्यरूप हो इससे भूः भुवः, स्वः, त्रिलोकीको पवित्र करते हो ॥ १३ ॥ वह आप स्पर्श करनेवाले हमारे शरीरोंको पवित्र करो जिससे कि, आत्मस्वरूपसे तुम पाप हरनेवाले हो इसप्रकार मंत्रजपके अन्तमें अनेक स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ इसप्रकार चारों ओर क्षीरसागरसे वेष्टित ३२ लक्ष योजनमें विस्तृत है ॥ १५ ॥ अपने मानसे आगे इस द्वीपके दधिमण्डोदसे घिरा हुआ शाकद्वीप है जिसमें एक शाकवृक्ष है ॥ १६ ॥ हे नारद ! वह अपने क्षेत्रव्यपदेशकेकारण विख्यात है वहां प्रियव्रतका पुत्र मेधातिथि राजा है ॥ १७॥ पुत्रके सातनामोंसे

उसके सात भाग कर वहांका राज्य पुत्रोंको दे स्वयं योगगतिको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ पुरोजव, मनःपूर्वज, पवमानक, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, विश्वधृक् यह सात नाम हैं॥ १९॥ मर्यादापर्वत और नदी भी सातही हैं. ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर ॥ २०॥ सहस्रस्रोतक, देवपाल, महासन, यह सात पर्वत हैं. नदियोंके नाम सुनो ॥ २१ ॥ अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रश्रुति ॥ २२ ॥ निजधृति यह सात नदी हैं बडी निर्मल हैं वहांके पुरुष सत्य व्रत, ऋतुव्रत ॥ २३ ॥ दानव्रत, अनुव्रत, यह चार वर्णयुक्त हैं प्राणायामद्वारा भगवान् प्राणवायुको ॥ २४ ॥ रोककर निर्मल हुए परम हरिरूपसे भजन करते

पुरोजवोमनःपूर्वजवोऽथपवमानकः ॥ धूम्रानीकश्चित्ररेफोबहुरूपोऽथविश्वधृक् ॥ १९ ॥ मर्यादागिरयःसप्तनद्यःसप्तैवकीर्तिताः ॥ ईशानउरुशृंगो ऽथबलभद्रःशतकेसरः ॥ २० ॥ सहस्रस्रोतकोदेवपालोऽप्यंतेमहाशनः ॥ एतेऽद्रयःसप्तचोक्ताःसरिन्नामानिसप्तच ॥ २१ ॥ अनघाप्रथमायुर्दा उभयस्पृष्टिरेवच ॥ अपराजितापंचपदीसहस्रश्रुतिरेवच ॥ २२ ॥ ततोनिजधृतिश्चोक्ताःसप्तनद्योमहोज्ज्वलाः ॥ तद्वर्षपुरुषाःसर्वेसत्यव्रतऋ तुव्रतौ ॥ २३ ॥ दानव्रतानुव्रतौचचतुर्वर्णाउदीरिताः ॥ भगवंतंप्राणवायुंप्राणायामेनसंयुताः ॥२४॥ यजंतिनिर्धूतरजस्तमसःपरमंहरिम् ॥ अंतःप्रविश्य भूतानियोबिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ २५ ॥ अंतर्यामीश्वरःसाक्षात्पातुनोयद्वशेइदम् ॥ परस्ताद्दधिमंडोदात्ततस्तुबहुविस्तरः ॥ २६ ॥ पुष्करद्वीपनामा ऽयंशाकद्वीपाद्विसंगुणः ॥ स्वसमानेनस्वादूदकेनाऽयंपरिवेष्टितः ॥२७॥ यत्राऽस्तेपुष्करंभ्राजदग्निचूडानिभानिच ॥ पत्राणिविंशदानीहस्वर्णपत्रायुतायु तम् ॥ २८ ॥ श्रीमद्भगवतश्चेदमासनंपरमेष्ठिनः ॥ कल्पितंलोकगुरुणासर्वलोकसिसृक्षया ॥ २९ ॥ तद्द्वीपएकएवाऽयंमानसोत्तरनामकः ॥ अर्वाची नपराचीनवर्षयोरवधिर्गिरिः ॥ ३० ॥

हैं जो प्राणियोंके अन्तरमें प्रवेश करके अपनी प्राणादि वृत्तियोंसे प्राणियोंको धारणकरते हैं ॥ २५ ॥ अन्तर्यामी ईश्वर हमारी रक्षा करै जिसके वशीभूत यह सब जगत् है इसके आगे दधिमंडोद बडे विस्तारमें है ॥ २६ ॥ यह पुष्करद्वीप, शाकद्वीपसे प्रमाणमें दूना है अपनी बराबर स्वादूदकसे चारोंओर वेष्टित है ॥ २७ ॥ जहाँ अग्निके वलयकी समान पुष्कर विराजमान है, बडी पवित्र उसकी सुवर्णपंखरी विस्तृतहुई सहस्रों हैं ॥ २८ ॥ यह श्रीभगवान् परमेष्ठी पुरुषका आसन है सब लोकके रचनेकी इच्छासे लोकगुरुने यहां अपने आसनकी कल्पना की थी ॥ २९ ॥ इस द्वीपमें एकही पर्वत मानसोत्तर नामक है जो अर्वाचीन और पराचीन वर्षोंकी

मर्यादा करता है ॥ ३० ॥ यह लम्बावमें १०००० योजन है जिसकी चारों दिशाओंमें चार पुर हैं ॥ ३१ ॥ यह इन्द्रादि लोकपालोंके हैं. जिनके ऊपर होकर सूर्यगमन करते हैं जहां सूर्य मेरुकी प्रदक्षिणा करते चलते हैं ॥ ३२ ॥ संवत्सरका चक्ररूपसे भ्रमण देवताओंका यहां उत्तरायण दक्षिणायनके भेदसे अहोरात्र होता है. इसमें प्रियव्रतका पुत्र वीतिहोत्र राज्य करता है. उसने अपने दो पुत्रोंको ॥ ३३ ॥ दो वर्ष कर वहां स्थापन किया, रमण और धातकी यही दो अधिपति हुए ॥ ३४ ॥ अपने पूर्वजोंकी समानक्रिय भगवद्भक्तिमें तत्पर इस वर्षके पुरुष ब्रह्मरूप परमेश्वरको ॥ ३५ ॥ शीलसम्पन्न हो कर्मयोगसे यजन करते हैं. इस प्रकार ब्रह्मसालोक्यादि साधनोंके फलरूप ब्रह्मकी खोज करते हैं ॥ ३६ ॥ ऐसे एकान्त, अद्वैत, शान्त भगवान्‌को प्रणाम है ॥

उच्छ्रयायामयोःसंख्याऽयुतयोजनसंमिता ॥ यत्रदिक्षुचचत्वारिचतसृषुपुराणिह ॥ ३१ ॥ इंद्रादिलोकपालानांयदुपर्यर्कनिर्गमः ॥ मेरुंप्रदक्षिणीकुर्वन्भानुःपर्यैतियत्रहि ॥ ३२ ॥ संवत्सरात्मकंचक्रंदेवाहोरात्रतोभ्रमन् ॥ प्रैयव्रतोधिपोवीतिहोत्रःस्वात्मजकद्वयम् ॥ ३३ ॥ वर्षद्वयेपरिस्थाप्यवर्षनामधरंक्रमात् ॥ रमणोधातकिश्चैवतत्तद्वर्षपतीउभौ ॥३४॥ कृताःस्वयंपूर्वजवद्भगवद्भक्तितत्पराः ॥ तद्वर्षपुरुषाब्रह्मरूपिणंपरमेश्वरम् ॥३५॥ सकर्मकेनयोगेनयजंतिपरिशीलिताः ॥ यत्तत्कर्ममयंलिंगंब्रह्मलिंगंजनोऽर्चयेत् ॥३६॥ एकांतमद्वयंशांतंतस्मैभगवतेनमः ॥ इतिश्रीदेवीभा० महापुराणेऽष्टमस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ॥ ततःपरस्तादचलोलोकालोकेतिनामकः ॥ अंतरालेचलोकालोकयोर्यःपरिकलिपतः ॥ १ ॥ यावदस्तिचदेवर्षेह्यंतरंमानसोत्तरात् ॥ सुमेरोस्तावतीशुद्धाकांचनीभूमिरस्तिहि ॥ २ ॥ दर्पणोदरतुल्यासासर्वप्राणिविवर्जिता ॥ यस्यांपदार्थःप्रहितोनकिंचिप्रत्युदीयते ॥ ३ ॥ अतःसर्वप्राणिसंवरहितासाचनारद ॥ लोकालोकइतिव्याख्यायदत्रपरिकलिपता ॥ ४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीनारायण बोले इसके आगे लोकालोकनामक पर्वत है जिन पर्वतोंके अन्तराल मध्यमेंही सूर्यका आलोक है ॥ १ ॥ हे देवर्षे ! मानसोत्तरसे मेरुका जितना अन्तर है उतनीही वहां सुवर्णकी भूमि है यह शुद्धोदसागरके पार है यह एक करोड साढे सत्तावन लाख योजन पर्यन्त है और बडी मनोरम है ॥ २ ॥ वह दर्पणकी समान है देवताओंके सिवाय अन्य कोई वहां नहीं जा सक्ता जिसमें डाला हुआ पदार्थ सुवर्णही हो जाता है ॥ ३ ॥ हे नारद ! इस कारण वहां प्राणी निवास नहीं करते लोकालोक इस पदकी लोकोंको 'अगम्य' यही व्याख्या है ॥ ४ ॥

लोकालोकके अन्तरहीमें अर्थात् मध्यमें सदा इसकी सर्वदा स्थिति है ईश्वरने यह त्रिलोकीके अन्तगामी कियाहै अर्थात् मर्यादा रूप है॥ ५॥ सूर्यसे लेकर ध्रुवतककी किरणों जिसके कारण तीन लोकसे बाहर गमन नहीं करती॥ ६॥ हे नारद! यह परम महान् पर्वतराज इसप्रकार उन्नत और विस्तारयुक्त है, कभीभी रश्मियें इसको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ ७॥ यही लोकोंके मानका विन्यास है कविजनोंने इन पर्वतोंके सहित पचास कोटि योजनका विस्तार कहा है ॥ ८॥ हे मुने! भूगोलके चतुर्थांशमें लोकालोक पर्वत है उसके ऊपर चारों ओर परमेष्ठी ब्रह्माजीने॥ ९॥ जो दिग्गज निवेशितकिये हैं उनके नाम सुनो. ऋषभ, पुष्पचूड, वामन, अपराजित॥ १०॥ यह सम्पूर्ण लोककी स्थितिके कारण हैं इनकी विभूति पराक्रम विशेष है॥ ११ ॥ भगवान् हरि इनका विशुद्ध सत्व बढाते हुए विष्वक्सेनादि आठ सिद्धोंके सहित विराजते हैं ॥ १२ ॥

लोकालोकांतरेचास्यवर्ततेसर्वदास्थितिः ॥ ईश्वरेणसलोकानांत्रयाणामंतगःकृतः ॥ ५ ॥ सूर्यादीनांध्रुवांतानांरश्मयायद्वशोदिह ॥ अर्वाचीनाश्चत्रींल्लोकानातन्वानाःकदापिहि ॥ ६ ॥ पराचीनत्वभाजोहिनभवंतिचनारद ॥ तावदुन्नहनायामःपर्वतेंद्रोमहोदयः ॥ ७ ॥ एतावाँल्लोकविन्यासोयंसंस्थामानसलक्षणैः ॥ कविभिःसतुपंचाशत्कोटिभिर्गणितस्यच ॥ ८ ॥ भूगोलस्यचतुर्थांशोलोकालोकाचलोमुने ॥ तस्योपरिचतुर्दिक्षु ब्रह्मणाचात्मयोनिना ॥ ९ ॥ निवेशितादिग्गजायेतन्नामानिनिबोधत ॥ ऋषभःपुष्पचूडोऽथवामनोऽथाऽपराजितः ॥१०॥ एतेसमस्तलोकस्यस्थितिहेतवईरिताः ॥ तेषांचस्वविभूतीनांबहुवीर्योपबृंहणम् ॥११॥ विशुद्धसत्त्वंचैश्वर्यंवर्धयन्भगवान्हरिः ॥ आस्तेसिद्धचष्टकोपेतोविष्वक्सेनादिसंवृतः ॥ १२ ॥ निजायुधैःपरिवृतोभुजदंडैःसमंततः ॥ आस्तेसकललोकस्यस्वस्तयेपरमेश्वरः॥१३॥आकल्पमेवंवेषंसगतोविष्णुःसनातनः॥स्वमायारचितस्याऽस्यगोपीथायात्मसाधनः ॥१४॥ योंतर्विस्तारएतेनह्यलोकपरिमाणकम् ॥ व्याख्यातंयद्बहिर्लोकालोकाचलइतीरणात् ॥१५॥ ततःपरस्ताद्योगेशगतिंशुद्धांवदंतिहि ॥ अंडमध्यगतःसूर्योद्यावाभूम्योर्यदंतरम् ॥१६॥ सूर्यांडगोलयोर्मध्येकोट्यःस्युःपंचविंशतिः॥ मृतेंडएषएतस्मिञ्जातोमार्तंडशब्दभाक् ॥१७॥

वह भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये अपने आयुधोंसे समान सब लोकोंके कल्याणके निमित्त स्थित हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार इसको अपनी मायासे रचकर सनातन विष्णु एक कल्पतक इसकी रक्षा करते हैं ॥ १४ ॥ जो यह पूर्वमें अन्तर्विस्तार वर्णित हुआ है उससेही आलोकका परिमाण निर्दिष्ट होता है. कारण कि, इसके बहिर्भागमें लोकालोक प्रतिष्ठित है यह कहागया है ॥ १५॥ हेनारद! इसके ऊपर शुद्ध योगियोंकी ही गति है इस द्यावाभूमिके मध्यमें सूर्य गमन करते हैं॥ १६॥ सूर्य अंड और भूमिगोलकका अन्तर २५ कोटि योजन है. वैराजरूपसे आत्माके प्रविष्ट होनेसे यह मार्तण्ड कहा जाता है ॥ १७ ॥

हिरण्य अंडसे प्रगट होनेसे यही हिरण्यगर्भ हैं, सूर्यसेही दिशा आकाश द्युलोक और भूमिका भेद होता है ॥ १८ ॥ स्वर्ग, अपवर्ग, नरक, रसोंके स्थान, देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप, वृक्ष, लता ॥ १९ ॥ तथा संपूर्ण बीजसमूहोंकी आत्मा सूर्य ही है, यह इतना भूमंडलका घेराकहा ॥ २० ॥ इसीके अनुसार ज्ञातागण द्युलोकका मान कहते हैं. जैसे दो दलोंमें एकका मान जाननेसे दूसरेका जानाजाता है ॥ २१ ॥ इन दोनोंका जो मध्य है सो परस्पर सँल्लग्न है इनके मध्यमें तपनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्य ॥ २२ ॥ अपने आतपसे प्रकाश करते त्रिलोकीको तपाते हैं पहले उत्तरायणको प्राप्त होकर मंदगति करते हैं ॥ २३ ॥ कारण कि, यह आरोहणस्थान है इसमें जानेसे दिन बड़ा होता है

हिरण्यगर्भइतियद्धिरण्यांडसमुद्भवः ॥ सूर्येणहिविभज्यंतेदिशःखंद्यौर्महीभिदा ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गौनरकारसौकांसिचसर्वशः ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणांसरीसृपसवीरुधाम् ॥ १९ ॥ सर्वजीवनिकायानांसूर्यआत्माहगीश्वरः ॥ एतावान्भूमंडलस्यसन्निवेशउदाहृतः ॥ २० ॥ एतेनहिदिवोमानंवर्णयंतिचताद्विदः ॥ द्विदलानांचनिष्पावादीनांचदलयोर्यथा ॥ २१ ॥ अंतरेणतयोरंतरिक्षंतदुभयसंधितम् ॥ यन्मध्यगश्चभगवान्भानुर्वैतपतांवरः ॥ २२ ॥ आतपेनत्रिलोकींचप्रतपत्येवभासयन् ॥ उत्तरायणमासाद्यगतिमांद्यंवितन्वते ॥ २३ ॥ आरोहणस्थानमसौगत्वाहोदैर्घ्यमाचरेत् ॥ दक्षिणायनमासाद्यगतिशैघ्र्यंवितन्वते ॥ २४ ॥ अवरोहस्थानमसौगच्छन्ह्रस्वंदिनंचरेत् ॥ विषुवत्संज्ञमासाद्यगतिसाम्यंवितन्वते ॥ २५ ॥ समस्थानमथाऽऽसाद्यदिनसाम्यंकरोतिच ॥ यदाचमेषतुलयोःसंचरेद्धिदिवाकरः ॥ २६ ॥ समानानित्वहोरात्राण्यातनोतित्रयीमयः ॥ वृषादिपंचसुयदाराशिष्वर्कोविरोचते ॥ २७ ॥ तदाहानिचवर्धंतेरात्रयोऽपिह्रसंतिच ॥ वृश्चिकादिषुसूर्योहियदासंचरतेरविः ॥ २८ ॥ तदाऽपीमान्यहोरात्राणिभवंतिविपर्ययात् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टमस्कंधेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिभानोर्गमनमुत्तमम् ॥ शीघ्रमंदादिगतिभिस्त्रिविधंगमनंरवेः ॥ १ ॥

और दक्षिणायनको प्राप्त होकर शीघ्र गति करते हैं ॥ २४ ॥ यह उतरनेका समय है उतरनेमें दिन छोटा होता है विषुव 'तुला मेष' संज्ञाको प्राप्त होकर साम्यगति होती है ॥ २५ ॥ समस्थानको प्राप्त होनेसे दिन बराबर होता है जब मेष और तुलामें सूर्यहोते हैं ॥ २६ ॥ तब दिनरात समान होते हैं और वृषादि पंच राशियोंमें जब गमन करते हैं ॥ २७ ॥ तब दिन बढता रात छोटी होती है जब वृश्चिकादिमें गमन करते हैं ॥ २८ ॥ तब दिन छोटा होकर रात बढती है ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण बोले अब सूर्यका गमन कहता हूं शीघ्र मंदादिगतिसे सूर्यका तीन प्रकार गमन है ॥ १ ॥

हे सुरसत्तम ! सब ग्रहोंके तीनही स्थान हैं. जारद्गवस्थान मध्यका और ऐरावत उत्तरका है ॥ २ ॥ और वैश्वानर दक्षिणका है. अश्विनी, कृत्तिका, भरणी, नागवीथी हैं ॥ ३ ॥ रोहिणी, आर्द्रा, मृगशिर, गजवीथी. पुष्य, आश्लेषा, आदित्या, (पुनर्वसु) ऐरावती वीथी हैं ॥ ४ ॥ इन तीन वीथियोंका उत्तरमार्ग कहा जाता है. तथा पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मघा यह आर्षभी वीथी है ॥ ५ ॥ हस्त, चित्रा, स्वाती, गोवीथी है ज्येष्ठा, विशाखा, अनुराधा, जारद्गवी वीथी है ॥ ६ ॥ इन तीनों वीथियोंका मध्यम मार्ग कहा जाता है मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अजवीथी है ॥ ७ ॥ श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगवीथी है. पूर्वाभाद्रपदा उत्तराभाद्रपदा, रेवती, वैश्वानरी वीथी है ॥

सर्वग्रहाणांत्रीण्येवस्थानानिसुरसत्तम ॥ स्थानंजारद्गवंमध्यंतथैरावतमुत्तरम् ॥ २ ॥ वैश्वानरंदक्षिणतोनिर्दिष्टमितितत्वतः ॥ अश्विनीकृत्तिकाया म्यानागवीथीतिशब्दिता ॥ ३ ॥ रोहिण्यार्द्रामृगशिरोगजवीथ्यभिधीयते ॥ पुष्याश्लेषातथादित्यावीथीचैरावतीस्मृता ॥ ४ ॥ एतास्तुवीथ यस्तिस्रउत्तरोमार्गउच्यते ॥ तथाद्वेचाऽपिफल्गुन्योमघाचैवार्षभीमता ॥ ५ ॥ हस्तश्चित्रातथास्वातीगोवीथीतितुशब्दिता ॥ ज्येष्ठविशाखानुराधावी थीजारद्गवीमता ॥ ६ ॥ एतास्तुवीथयस्तिस्रोमध्यमोमार्गउच्यते ॥ मूलाषाढोत्तराषाढाअजवीथ्यभिशब्दिता ॥ ७ ॥ श्रवणंचधनिष्ठाचमार्गीशत भिषक्तथा ॥ वैश्वानरीभाद्रपदेरेवतीचैवकीर्तिता ॥ ८ ॥ एतास्तुवीथयस्तिस्रोदक्षिणोमार्गउच्यते ॥ उत्तरायणमासाद्ययुगाक्षांतर्निबद्धयोः ॥ ९ ॥ कर्षणंपाशयोर्वायुबद्धयोरोहणंस्मृतम् ॥ तदाभ्यंतरगान्मंडलाद्रथस्यगतेर्भवेत् ॥ १० ॥ मांद्यंदिवसवृद्धिश्चजायतेसुरसत्तम ॥ रात्रिह्रासश्चभवतिसौ म्यायनक्रमोह्ययम् ॥ ११ ॥ दक्षिणायनकेपाशेप्रेरणादवरोहणम् ॥ बहिर्मंडलवेशेनगतिशैघ्र्यंतदाभवेत् ॥ १२ ॥ तदादिनाल्पतारात्रिवृद्धिश्चप रिकीर्तिता ॥ वेषुवेपाशसाम्यात्तुसमावस्थानतोरवेः ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ यह तीनों वीथियें दक्षिणमार्ग कहाती हैं. उत्तरायणको प्राप्त होकर युगाक्षांति पाशसे बँधा है ॥ ९ ॥ वायुके बँधे इन पाशोंका जो आकर्षण है वह रोहण है. इसके अन्तरसे जो रथकी गति होती है ॥ १० ॥ हे सुरसत्तम ! इस कारण मंदगतिसे दिनकी वृद्धि होती है रात्रिकी ह्रास होती है. यह चलनेका क्रम है ॥ ११ ॥ जब दक्षिणायन पाश ध्रुवलोकसे प्रेरण करता है तब अवरोहण होनेसे बहिर्मण्डलवेशद्वारा शीघ्र गति होती है ॥ १२ ॥ उस समय दिन छोटा रात्रि बडी

होती है विषवमें साम्यपाश रहनेके कारण मध्यमंडलप्रवेशके कारण ॥ १३ ॥ गतिसाम्य होनेसे दिन रात समान होता है. जब वह ध्रुवके समीप खैंचे जाते हैं ॥ १४ ॥ तब अन्तरमें सूर्य मंडलमें भ्रमण करते हैं और जब ध्रुवद्वारा पाशयुगल मुक्त किये जाते हैं ॥ १५ ॥ तब बाहरी भागमें सूर्यमंडलोंमें भ्रमण करते हैं. उस मेरुके पूर्वभाग इन्द्रकी पुरी है जो देवधानी कहाती है ॥ १६ ॥ दक्षिणमें यमकी संयमनी पुरी है. पश्चिममें निम्लोची वरुणकी महापुरी है ॥ १७ ॥ उत्तरमें चन्द्रकी विभावरी पुरी है. प्रथम इन्द्रपुरीकी ओरसे ब्रह्मवादी सूर्यका उदय कहते हैं ॥ १८ ॥ संयमनीमें आकर मध्याह्न और निम्लोचीमें आकर अस्त होता है ॥ १९ ॥ इनकी प्रवृत्तिसे मेरुके चारों ओरवाले अपना २ उदय कहते हैं जो मेरुके दक्षिणमें हैं वे इन्द्र पुरीसे पूर्वादि जो पश्चिममें है

मध्यमंडलवेशश्चसाम्यंरात्रिदिनादिके ॥ आकृष्यैतेयदातौतुध्रुवेणसमधिष्ठितौ ॥ १४ ॥ तदाभ्यंतरतःसूर्योभ्रमतेमंडलानिच ॥ ध्रुवेणमुच्यमानेनपुनारश्मियुगेनतु ॥ १५ ॥ तथैवबाह्यतःसूर्योभ्रमतेमंडलानिच ॥ तस्मिन्मेरौपूर्वभागेपुर्यैंद्रीदेवधानिका ॥ १६ ॥ दक्षिणेवैसंयमनीनामयाम्यामहापुरी ॥ पश्चान्निम्लोचनीनामवारुणीवैमहापुरी ॥ १७ ॥ तदुत्तरेपुरीसौम्याप्रोक्तानामविभावरी ॥ ऐंद्रपुर्यांरवेःप्रोक्तउदयोब्रह्मवादिभिः ॥ १८ ॥ संयमन्यांचमध्याह्नोनिम्लोचन्यांविमीलनम् ॥ विभावर्यांनिशीथःस्यात्तिग्मांशोःसुरपूजितः ॥ १९ ॥ प्रवृत्तेश्चनिमितानिभूतानांतानिसर्वशः ॥ मेरोश्चतुर्दिशंभानोःकीर्तितानिमयासुने ॥ २० ॥ मेरुस्थानांसदामध्यंगतएवविभातिहि ॥ सव्यंगच्छन्दक्षिणेनकरोतिस्वर्णपर्वतम् ॥ २१ ॥ उदयास्तमयेचैवसर्वकालंतुसन्मुखे ॥ दिशास्वशेषासुतथासुरर्षेविदिशासुच ॥२२॥ यैर्यत्रदृश्यतेभास्वान्सतेषामुदयःस्मृतः ॥ तिरोभावंचयत्रैतितत्रैवास्तमनंरवेः ॥ २३ ॥

वे यमपुरीसे जो उत्तरमें हैं वे वरुण पुरीसे आरंभ करके जो पूर्वमें हैं वेचन्द्रपुरीसे आरंभकरके सूर्यद्वारा चारों दिशा मान्ते हैं ॥ २० ॥ नक्षत्रादिके सन्मुख गतिसे मेरुको वाम ओर करते प्रवह नामक वायुसे भ्रामित होते ज्योतिष चक्रके कारण प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं चक्रगति वशसे अति दूर होनेसे भूमिमें लगाहुआसा दर्शन होना उदय है. आकाशमें, आरूढ दर्शनही मध्याह्न भूमि प्रविष्ट होनेका दर्शनही अस्त है और बहुत दूर गमनही अर्धरात्रि है. यह सब विचार कर स्वर्णपर्वतकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ २१ ॥ उदय और अस्तमें सब समय सन्मुख होते हैं. हे नारद ! और सब दिशाविदिशाओंमें॥ २२॥ जिनको जहां सूर्यका दर्शन होता है वही उनका उदय

है और जहां तिरोभाव है वही अस्त है॥ २३॥ वास्तविक सूर्यका उदय अस्त नहीं है सदाही उदय है अपने दीखने और न दीखनेको उदयास्त मान लिया है॥ २४ ॥ शक्रादिके पुरमें स्थित होते यही इन्द्र, यम, सोम, तीनों पुरोंको किरणोंसे स्पर्श करते हैं, तथा विकर्णमें स्थित हो ईशान कोण और वह्नि कोणको स्पर्श करते हैं और जब वह्निपुरमें होते हैं तब त्रिकोण अर्थात् वह्निकोण, निर्ऋतिकोण ईशान कोण इन्द्रपुर और यमपुरको स्पर्श करते हैं, शेष मेरुसे व्यवधान हुए रहते हैं. इसी प्रकार याम्यादि पुरकी स्थितिमें जानना ॥ २५॥ सब द्वीप और वर्षोंके मेरु उत्तरमें स्थित हैं जो जहाँ सूर्योदय देखते हैं उसेही पूर्व कहते हैं ॥ २६ ॥ उसीके वामभागमें मेरु होता है यह निर्णय है. जब इन्द्रपुरीसे पन्द्रह घडीमें यमपुरीमें आते हैं॥ २७ ॥ तब यमपुरी आतेमें दो करोड़से तीस लाख पचहत्तर सहस्र योजन मार्ग चलना होता

नैवास्तमनमर्कस्यनोदयःसर्वदासतः ॥ उदयास्तमनाख्यंहिदर्शनादर्शनंरवेः ॥ २४ ॥ शक्रादीनांपुरेतिष्ठन्स्पृशत्येषपुरत्रयम् ॥ विकर्णौद्वौविकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वेपुरेतथा ॥२५॥ सर्वेषांद्वीपवर्षाणांमेरुरुत्तरतःस्थितः ॥ यैर्यत्रदृश्यतेभानुःसैवप्राचीतिचोच्यते ॥ २६ ॥ तद्वामभागतोमेरुर्वततेतिविनिर्णयः ॥ यदिचैंद्र्याःप्रचलतेघटिकादशपंचभिः ॥२७॥ याम्यांतदायोजनानांसपादंकोटियुग्मकम् ॥ सार्धद्वादशलक्षाणिपंचनेत्रसहस्रकम् ॥ २८ ॥ प्रक्रामतिसहस्रांशुःकालमार्गप्रदर्शकः ॥ एवंततोवारुणींचसौम्यामैंद्रींसहस्रदृक् ॥२९॥ पर्येतिकालचक्रात्माद्युमणिःकालबुद्धये ॥ तथाचाऽन्येग्रहाःसोमाद्यायेदिविचारिणः ॥३०॥ नक्षत्रैःसहचोयंतिसहचास्तंव्रजंतिते ॥ एवंमुहूर्तेनरथोभानोरष्टशताधिकम् ॥३१॥ योजनानांचतुस्त्रिंशल्लक्षाणिभ्रमतिप्रभुः॥ त्रयीमयश्चतुर्दिक्षुपुरीषुचसमीरणात् ॥३२॥ प्रवहाख्यात्सदाकालचक्रंपर्येतिभानुमान् ॥ यस्यचक्रंरथस्यैकंद्वादशारंत्रिनाभिकम् ॥३३॥ षण्नेमिकवयस्तंचवत्सरात्मिकमूचिरे ॥ मेरुमूर्धनितस्याऽक्षोमानसोत्तरपर्वते ॥३४॥ कृतेतरविभागोयःप्रोतंतत्ररथांगकम्॥ तैलकारकयंत्रेणचक्रसाम्यंपरिभ्रमन् ॥३५॥

है ॥२८॥ कालमार्गको दिखानेवाले इतना मार्ग आक्रमण करते हैं. इसीप्रकार वरुण, सोम और फिर इन्द्रकी पुरीमें आते हैं ॥ २९ ॥ इसप्रकार यह दिनमणि कालज्ञानके निमित्त परिक्रमण करते हैं तथा और भी जो चन्द्र आदि ग्रह द्युलोकमें विचरण करते हैं ॥ ३० ॥ नक्षत्रोंके साथ उदय और अस्तको प्राप्त होते हैं इस प्रकार एक मुहूर्तमें सूर्यका रथ ॥ ३१ ॥ चौंतीस लाख आठसौ योजन भ्रमण करता है यह त्रयीविद्यामय वायुद्वारा चारों पुरियोंमें गमन करते हैं ॥ ३२ ॥ प्रवह नामक वायुद्वारा कालचक्ररूप सूर्य भ्रमण करता है जिसका सम्वत्सररूप एक पहिया बारह महीने रूप बारह आरे तीन चातुर्मास्य नाभि ॥ ३३॥ षट्ऋतुरूप नेमि है कवि इसकोही सम्वत्सरात्मा कहते हैं. मेरुके शिरोभाग मानसोत्तर पर्वतमें इसका अक्ष धुर है ॥ ३४ ॥ इसी सूर्यचक्रके प्रान्तभागद्वारा अपरापर कलाकाष्ठा

मुहूर्त, याम, प्रहर, अहोरात्र और पक्षादि विभक्त हुए हैं, इसी निमित्त यह चक्र चलता है. भगवान् भानुमान तैलकारके यंत्रके समान इस चक्रको भ्रमण कराते मानसोत्तर नामक उल्लिखित पर्वतकी परिक्रमा करते हैं. चक्रके पूर्वभागमें वे अक्ष और दूसरे भागमें अक्ष सन्निवेशित हुआ है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दूसरा परिमाण इसका एक चतुर्थांश है यह तैलयंत्रके अक्षानुरूप कहा है इसके ऊपरी भागमें जगत्पति सूर्यका भाग कहा गया है ॥ ३७ ॥ सूर्यका उपवेशनस्थान अर्थात् जहाँ स्थित हुआ जाता है वह श्रेष्ठ उनके ॥ ३८ ॥ रथका नीड छत्तीस लाख योजन है. उसीके तुर्यभागमें इसकी दीर्घता है और शास्त्रोंमें इतनाही इस रथका युग (जुआ कहा है) इसमें गायत्री आदि छन्दनामके सात अश्व सूर्यके सारथिने लगाये हैं ॥ ३९ ॥ यही लोकोंके सुखके निमित्त आदित्यदेवको वहन करते हैं अरुण सारथि सूर्यके आगे

मानसोत्तरनाम्नीहगिरौपर्येतिचांशुमान् ॥ तस्मिन्नक्षेकृतंमूलंद्वितीयोऽक्षोध्रुवेकृतः ॥ ३६ ॥ तुर्यमानेनतैलस्ययंत्राक्षवदितीरितः ॥ कृतोपरितनोभागः सूर्यस्यजगतांपतेः ॥ ३७ ॥ रथनीडस्तुषट्त्रिंशल्लक्षयोजनमायतः ॥ तत्तुर्यभागतःसोऽयंपरिणाहेनकीर्तितः ॥ ३८ ॥ तावानर्करथस्याऽत्रयुगस्तस्मिन्हयाःशुभाः ॥ सप्तच्छंदोभिधानाश्चसूरसूतेनयोजिताः ॥ ३९ ॥ वहंतिदेवमादित्यंलोकानांसुखहेतवे ॥ पुरस्तात्सवितुःसूतोऽरुणःपश्चान्नियोजितः ॥ ४० ॥ सौत्येकर्मणिसंयुक्तोवर्ततेगरुडाग्रजः ॥ तथैववालखिल्याख्याऋषयोंगुष्ठपर्वकाः ॥ ४१ ॥ प्रमाणेनपरिख्याताःषष्टिसाहस्रसंख्यकाः ॥ स्तुवंतिपुरतःसूर्यं सूक्तवाक्यैःसुशोभनैः ॥ ४२ ॥ तथाचाऽन्येचऋषयोगंधर्वाअप्सरोरगाः ॥ ग्रामण्योयातुधानाश्चदेवाःसर्वेपरेश्वरम् ॥ ४३ ॥ एकैकशःसप्तसप्तमासिमासिविरोचनम् ॥ सार्धलक्षोत्तरंकोटिनवकंभूमिमंडलम् ॥ ४४ ॥ द्विसहस्रंयोजनानांसगव्यूत्युत्तरंक्षणात् ॥ पर्येतिदेवदेवेशोविश्वव्यापीनिरंतरम् ॥ ४५ ॥
इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टमस्कंधेपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

स्थित होकर भी प्रत्यङ्मुख स्थित हैं ॥ ४० ॥ यह गरुडके बडे भ्राता रथवाहका कर्म करते हैं. इसीप्रकार अंगुष्ठप्रमाणवाले वालखिल्यनामक ऋषि ॥ ४१ ॥ साठ सहस्र सूर्यकी ओर मुख किये सूक्तवाक्योंसे सूर्यकी स्तुति करते चलते हैं ॥ ४२ ॥ इसीप्रकार और ऋषि गंधर्व, अप्सरा, उरग, ग्रामणी, यातुधानदेवता, यह सब इन परेश्वरको ॥ ४३ ॥ प्रत्येक चौदह, बारह, सात, गुणे महीने महीनेमें, विरोचनदेवकी सेवा करते हैं अर्थात् एक २ सात सात गणमें विभक्त होकर इन परम ज्योतिर्मय शरीरी परमेश्वर रूपी भानुमान्की उपासना करते हैं और नौ करोड़ ॥ ४४ ॥ एकलाख बावन हजार दो योजन भूमण्डलके परिमाणमें देवदेवेश्वर सर्वव्यापी एक क्षणमें परिभ्रमण करते हैं और क्षणमात्रकोभी विश्राम नहीं करते ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीनारायण बोले अब चन्द्रादिकी गति श्रवण करो. उनकी गतिसे मनुष्योंका शुभाशुभ जाना जाता है॥ १ ॥ जैसे कुलालचक्र निरन्तर भ्रमण करता रहै तौ उसके आश्रयसे और कीटादिकीभी वही गति होती है अर्थात् घूमते हैं ॥ २ ॥ इसीप्रकार उसी कालचक्रकी राशिसमूहद्वारा मेरुकी धुरका अनुसरण करते सर्वदा प्रदक्षिणा करते हुए ॥ ३ ॥ सूर्यादि मुख्य ग्रहोंकी गति अन्यसी ही दीखती है नक्षत्रान्तरमें गमनके कारण इसी भाँति अन्य नक्षत्रोंमें गमन होता है ॥ ४ ॥ यह दोनोंगति चक्रवशसे अविरुद्ध हैं सर्वत्रही यह निर्णय है. यही भगवान् आदिपुरुषलोकभावन ॥ ५ ॥ नारायण सबके आधार लोकोंकी शुभकामनाके निमित्त भ्रमण करते हैं यही कर्मशुद्धीके निमित्त त्रयीमय कहे जाते हैं ॥ ६ ॥ वही अविनाशी कवियोंद्वारा अवितर्क होकर सूर्यरूपसे बारह भेदसे कहेजाते हैं. यह स्वयं वसन्तादि षट्

श्रीनारायणउवाच ॥ अथातःश्रूयतांचित्रंसोमादीनांगमादिकम् ॥ तद्गत्यनुमृतानृणांशुभाशुभनिदर्शना ॥ १ ॥ यथाकुलालचक्रेणभ्रमताभ्रमतांसह ॥ तदाश्रयाणांचगतिरन्याकीटादिनांभवेत् ॥ २ ॥ एवंहिराशिवृंदेनकालचक्रेणतेनच ॥ मेरुंधुरंचसरतांप्रादक्षिण्येनसर्वदा ॥ ३ ॥ ग्रहाणांभानुमुख्यानां गतिरन्येवदृश्यते ॥ नक्षत्रांतरगामित्वाद्भांतरेगमनंतथा ॥ ४ ॥ गतिद्वयंचाऽविरुद्धंसर्वत्रैषविनिर्णयः ॥ सएवभगवानादिपुरुषोलोकभावनः ॥ ५ ॥ नारायणोऽखिलाधारोलोकानांस्वस्तयेभ्रमन् ॥ कर्मशुद्धिनिमित्तंतुआत्मानंवैत्रयीमयम् ॥ ६ ॥ कविभिश्चैववेदेनविजिज्ञास्योऽर्कधाऽभवत् ॥ षट्सुक्रमेणऋतुषुवसंतादिषुचस्वयम् ॥ ७ ॥ यथोपजोषमृतुजान्गुणान्वैविदधातिच ॥ तमेनंपुरुषाःसर्वैत्रय्याचविद्ययासदा ॥ ८ ॥ वर्णाश्रमाचारपथातथाऽम्नातैश्चकर्मभिः ॥ उच्चावचैःश्रद्धयाचयोगानांचवितानकैः ॥ ९ ॥ अंजसाचयजंतेयेश्रेयोविंदंतितिमतम् ॥ अथैषआत्मालोकानांद्यावाभूम्यंतरेणच ॥ १० ॥ कालचक्रगतोभुंक्तेमासान्द्वादशराशिभिः ॥ संवत्सरस्यावयवान्मासःपक्षद्वयंदिवा ॥ ११ ॥ नक्तंचेतिसपादर्क्षद्वयमित्युपदिश्यते ॥ यावतापष्ठमंशंसभुंजीतऋतुरुच्यते ॥ १२ ॥ संवत्सरस्याऽवयवःकविभिश्चोपवर्णितः ॥ यावतार्धेनचाऽऽकाशवीथ्यांप्रचरतेरविः ॥ १३ ॥

ऋतुओंमें ॥ ७ ॥ उनको सेवन करते हुए पूर्तिपूर्वक उनमें गुणस्थापन करते हैं. इन्हींको सब पुरुष त्रयीविद्याद्वारा ॥ ८ ॥ वर्णाश्रम आचारके मार्गसे तथा वेद उच्चावच कर्मोंद्वारा श्रद्धा और योगसे ॥ ९ ॥ निरन्तर अपने अभीष्टके निमित्त यजन करते और कल्याणको प्राप्त होते हैं यही लोकोंके आत्मा द्यावापृथ्वीके अन्तरमें ॥ १० ॥ कालचक्रको प्राप्त हुए मेषादि बारह राशियोंद्वारा बारह मासोंको भोगते हैं महीने सम्वत्सरके अवयव हैं महीनेके दो पक्ष हैं दिन ॥ ११ ॥ और रात सौर परिमाणमें सवादो नक्षत्रोंका भोग होता है इस परिमाणसे छठे अंश अर्थात् दो राशिका भोग होता है इसका नाम ऋतु है ॥ १२ ॥ यह सम्वत्सरके

अवयव कविजनोंने वर्णन किये हैं जबतक सूर्य तीन ऋतुमें आकाश वीथीमें विचरण करते हैं ॥ १३ ॥ उसीको पूर्वपुरुष एक अयन कहते हैं और जब द्यावापृथ्वीके सहित समस्त मंडलमें गमन हो चुकता है ॥ १४ ॥ तौ बारह ऋतुओंके भोगनेसे उस कालको वर्ष कहते हैं उसके पांच नाम हैं. सम्वत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर ॥ १५ ॥ अनुवत्सर, इद्वत्सर यह पाँच नाम हैं. सूर्यकी मंद, शीघ्र, सम गतिसे कालज्ञाताओंने ॥ १६ ॥ इसप्रकार सूर्यकी गति कही है अब चन्द्रादिकी गति सुनो. इसी प्रकार चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे लाख योजन दूर है ॥ १७ ॥ और सूर्यके सम्वत्सर भोगको दो पखवारोंमें भोगते हैं ॥ १८ ॥ सवादो दिन चन्द्रमा एक राशिपर रहते हैं इस

तंप्राक्तनावर्णयंतिअयनंमुनिपूजिताः ॥ अथयावन्नभोमंडलंसहप्रतिगच्छति ॥ १४ ॥ कात्स्न्र्येनसहभुंजीतकालंतंवत्सरंविदुः ॥ संवत्सरंपरिवत्सर मिडावत्सरमेवच ॥१५॥ अनुवत्सरमिद्वत्सरमितिपंचकमीरितम् ॥ भानोर्मांद्यशैघ्र्यसमगतिभिःकालवित्तमैः ॥ १६ ॥ एवंभानोर्गतिःप्रोक्ताचंद्रादीनांनि बोधत ॥ एवंचंद्रोर्करश्मिभ्योलक्षयोजनमूर्ध्वतः ॥ १७ ॥ उपलभ्यमानोमित्रस्यसंवत्सरभुंजिचसः ॥ पक्षाभ्यांचौषधीनाथोभुंक्तेमासभुंजिचसः ॥ ॥ १८ ॥ सपादभाभ्यांदिवसभुक्तिंपक्षभुंजिंचरेत् ॥ एवंशीघ्रगतिःसोमोभुंक्तेनूनंभचक्रकम् ॥ १९ ॥ पूर्यमाणकलाभिश्चाऽमराणांप्रीतिमावहन् ॥ क्षीय माणकलाभिश्चपितृणांचित्तरंजकः ॥ २० ॥ अहोरात्राणितन्वानःपूर्वापरसुपक्षकैः ॥ सर्वजीवनिकायस्यप्राणोजीवःसएवहि ॥ २१ ॥ भुंक्तेचैकैकनक्ष त्रंमुहूर्तैस्त्रिंशताविभुः ॥ सएवषोडशकलःपुरुषोऽनादिरुत्तमः ॥ २२ ॥ मनोमयोप्यन्नमयोमृतधामासुधाकरः ॥ देवपितृमनुष्यादिसरीसृपसवीरुधाम् ॥ ॥ २३ ॥ प्राणाप्यायनशीलत्वात्ससर्वमयउच्यते ॥ ततोभचक्रंभ्रमतियोजनानांत्रिलक्षतः ॥ २४ ॥ मेरुप्रदक्षिणेनैवयोजितंचेश्वरेणतु ॥ अष्टविंशतिसं ख्यानिगणितानिसहाऽभिजित् ॥ २५ ॥

प्रकार शीघ्र गतिसे चन्द्रमा नक्षत्रोंको भोगता है ॥ कलाओंसे पूर्ण होते देवताओंकी प्रीति धारणकरते हैं और क्षीणकला होनेमें पितरोंका मनरंजन करते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ पूर्व अपर पक्षसे यह दिन रात्रिका विस्तार करते हैं. सब जीवधारियोंके जीवनका हेतु है कारण कि, अमृतमय है ॥ २१ ॥ तीस मुहूर्तमें एक २ नक्षत्रको भोगता है यही षोडशकलात्मक अनादि उत्तम पुरुष हैं ॥ २२ ॥ मनोमय अन्नमय अमृतके धाम सुधाकर देव, पितर, मनुष्य, सरी, सृप वीरुध ॥ २३ ॥ यह सबके प्राणोंका आय तन है शीलवान् होनेसे सर्वमयहै. इसके आगे तीन लाख योजनमें नक्षत्रचक्र भ्रमण करता है ॥ २४ ॥ यह सब ईश्वरद्वारा नियुक्त हुए मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं. यह

अभिजित सहित अठाईस नक्षत्र हैं ॥ २५ ॥ इसके ऊपर दो लाख योजन शुक्र है यह आगे भोगे हुए सूर्यके नक्षत्रको पश्चात् भोगता है अर्थात् आगे पीछे और सन्मुख चलते हैं ॥ २६ ॥ यह भी शीघ्र समान मंदगतिसे विचरण करता है यह लोकोंके अनुकूल सुखदायक कहे गये हैं ॥ २७ ॥ हे मुने! शुक्र वृष्टि रोकनेवाले ग्रहांकी शांति करता है शुक्रसे बुध दो लाख योजन दूर है ॥ २८ ॥ इसकी भी शुक्रके समान शीघ्र मंद और समान गति है. जिस समय बुध जब सूर्यसे दूर हो जाता है उस समयमें ॥ २९ ॥ अतिपवन, अभ्रपात और अनावृष्टिका भय सूचन करता है उसके आगे मंगल दो लाख योजन ऊंचा है ॥ ३० ॥ यह तीन तीन पक्षमें एक एक राशिको भोगता है. यदि वक्री न हो तौ तीन पक्षमें एक राशि पूर्ण करता है ॥ ३१ ॥ यह प्रायः अशुभ ग्रह दुःखोंको सूचन करता है इसके आगे दो

ततःशुक्रोद्विलक्षेणयोजनानामथोपरि ॥ पुरःपश्चात्सहैवासावर्कस्यपरिवर्तते ॥२६॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिर्विचरन्विभुः ॥ लोकानामनुकूलोऽयंप्रायः प्रोक्तःशुभावहः ॥२७॥ वृष्टिविष्टंभशमनोभार्गवःसर्वदामुने ॥ शुक्राद्बुधःसमाख्यातोयोजनानांद्विलक्षतः ॥२८॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिःशुक्रवत्सदा ॥ यदाऽर्काद्व्यतिरिच्येतसौम्यःप्रायेणतत्रतु ॥ २९ ॥ अतिवाताभ्रपातानावृष्ट्यादिभयसूचकः ॥ उपरिष्टात्ततोभौमोयोजनानांद्विलक्षतः ॥ ३० ॥ पक्षैस्त्रिभिस्त्रिभिःसोऽयंभुंक्तेराशीनथैकशः ॥ द्वादशाऽपिचदेवर्षेयदिवक्रोनजायते ॥३१॥ प्रायेणाऽशुभकृत्सोऽयंग्रहौघानांचसूचकः ॥ ततोद्विलक्षमानेन योजनानांचगीष्पतिः ॥३२॥ एकैकस्मिन्नथोराशौभुंक्तेसंवत्सरंचरन् ॥ यदिवक्रोभवेन्नैवाऽनुकूलोब्रह्मवादिनाम् ॥३३॥ ततःशनैश्वरोघोरोलक्षद्वयपरोमितः ॥ योजनैःसूर्यपुत्रोयंत्रिंशन्मासैःपरिभ्रमन् ॥३४॥ एकैकराशौपर्येतिसर्वान्राशीन्महाग्रहः ॥ सर्वेषामशुभोमंदःप्रोक्तःकालविदांवरैः ॥३५॥ ततउत्तरतःप्रोक्तमेकादशसुलक्षकैः ॥ योजनैःपरिसंख्यातंसप्तर्षीणांचमंडलम् ॥३६॥ लोकानांशंभावयंतोमुनयःसप्ततेमुने ॥ यत्तद्विष्णुपदंस्थानंदक्षिणंक्रमतेचते ॥३७॥इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अथर्षिमंडलादूर्ध्वंयोजनानांप्रमाणतः ॥ लक्षैस्त्रयोदशमितैःपरमंवैष्णवंपदम् ॥ १ ॥

लाख योजनपर बृहस्पति ॥ ३२ ॥ एक २ राशिको यदि वक्री न हो तौ एक वर्षमें भोगता है वक्री न होनेपर यह ब्रह्मवादियोंको अनुकूल होता है ॥ ३३ ॥ इसके ऊपर दो लाख योजन घोर ग्रह शनिश्चर रहता है यह तीस महीनेमें एक राशिपरसे चलता है ॥ ३४ ॥ इसप्रकार यह महाग्रह बारह राशि भोग करता है ज्योतिषियोंने इसे सबके निमित्त अशुभ कहा है ॥ ३५ ॥ इसके ऊपर ग्यारह लाख योजनपर सप्तर्षियोंका मंडल है ॥ ३६ ॥ हे नारद ! यह सातों मुनिलोकोंके मंगल निमित्त विष्णुपद स्थानकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥छ॥ श्रीनारायण बोले सप्तर्षि

मण्डलसे तेरह लाख योजन आगे परमवैष्णवपद है ॥ १ ॥ जहां महाभागवत लोकवंदित उत्तानपादपुत्र, ध्रुव, इन्द्र, अग्नि, कश्यप ॥ २ ॥ धर्मके सहित स्थित हैं और देखनेवाले सदाही उनकी बहुत मानना करते हैं ॥ ३ ॥ कल्पपर्यन्त जीनेवाले भगवत्की सब उपासना करते हैं. ज्योतिश्चक्रमें प्राप्त सब ग्रह, नक्षत्रोंको ॥ ४ ॥ अव्यक्तगतिसे भ्रमण कराते हुए ईश्वरने इनको स्थाणुके समान निश्चल किया है ॥ ५ ॥ देवपूजित हो अपनी कान्तिसे सबको प्रकाश करते हैं जैसे मेढिस्तंभमें बँधेहुए पशुगण कर्षकेद्वारा ॥ ६ ॥ उसके चारों ओर मण्डलरूपसे भ्रमण करते हैं इसी प्रकारसे सब ग्रह, नक्षत्र, यथाक्रमसे ॥ ७ ॥ अन्तर बाहरके विभागद्वारा कालचक्रमें बँधे हैं केवल ध्रुवसे अवलम्बित हो वायुसे विचरण करते हैं ॥ ८ ॥ आकाशमें जैसे श्येनादि पक्षी उडते हैं इसी प्रकार कर्म

महाभागवतःश्रीमान्वर्ततेलोकवंदितः ॥ औत्तानपादिरिंद्रेणवह्निनाकश्यपेनच ॥ २ ॥ धर्मेणसहचैवास्तेसमकालयुजाध्रुवः ॥ बहुमानंदक्षिणतःकुर्वद्भिः प्रेक्षकैःसदा ॥ ३ ॥ आजीव्यःकल्पजीविनामुपास्तेभगवत्पदम् ॥ ज्योतिर्गणानांसर्वेषांग्रहनक्षत्रभादिनाम् ॥ ४ ॥ कालेनानिमिषेणायंभ्राम्यतां व्यक्तरंहसा ॥ अवष्टंभस्थाणुरिवविहितश्चेश्वरेणसः ॥ ५ ॥ भासतेभासयन्भासास्वीययादेवपूजितः ॥ मेढिस्तंभेयथायुक्ताःपशवःकर्षणार्थकाः ॥ ॥ ६ ॥ मंडलानिचरंतीमेसवनत्रितयेनच ॥ एवंग्रहादयःसर्वेभगणाद्यायथाक्रमम् ॥ ७ ॥ अंतर्बहिर्विभागेनकालचक्रेनियोजिताः ॥ ध्रुवमेवाऽवलंब्या शुवायुनोदीरिताश्चरन् ॥ ८ ॥ आकल्पांतंचक्रमंतिखेश्येनाद्याःखगाइव ॥ कर्मसारथयोवायुवशगाःसर्वएवते ॥९॥ एवंज्योतिर्गणाःसर्वेप्रकृतेःपुरुषस्यच संयोगानुगृहीतास्तेभूमौननिपतंतिच ॥ १० ॥ ज्योतिश्चक्रंकेचिदेतच्छिशुमारस्वरूपकम् ॥ सोपयोगंभगवतोयोगधारणकर्मणि ॥ ११ ॥ यस्या ऽर्वाक्शिरसःकुंडलीभूतवपुषोमुने ॥ पुच्छाग्रेकल्पितोयोऽयंध्रुवउत्तानपादजः ॥ १२ ॥ लांगूलेऽस्यचसंप्रोक्तःप्रजापतिरकल्मषः ॥ अग्निरिंद्रश्चध र्मश्चातिष्ठंतेसुरपूजिताः ॥ १३ ॥ धाताविधातापुच्छांतेकट्यांसप्तर्षयस्ततः ॥ दक्षिणावर्तभोगेनकुंडलाकारमीयुषः ॥ १४ ॥ उत्तरायणभानीहदक्षपार्श्वे ऽर्पितानिच ॥ दक्षिणायनभानीहसव्येपार्श्वेऽर्पितानिच ॥ १५ ॥ कुंडलाभोगवेशस्यपार्श्वयोरुभयोरपि ॥ समसंख्याश्चावयवाभवंतिकजनंदन ॥ १६ ॥

सारथिरूप वायु रश्मि सारथिद्वारा बँधे हुए नहीं गिरते हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकार यह सब ज्योतिर्गण नक्षत्र प्रकृतिपुरुषके संयोगरूप अनुग्रहसे अनुग्रहीत हुए नहीं गिरते हैं ॥ १० ॥ ज्योतिषचक्रको कोई शिशुमार स्वरूपसे कथन करते हैं कि, भगवान्के योगसाधनकार्यसे यथोपयुक्त स्थित है इससे नहीं गिरता है ॥ ११ ॥ हे मुने ! यह कुण्डली भूतकलेवरसे नीचा मुख किये स्थित है पुच्छके अग्रभागमें उत्तानपाद ध्रुव स्थित है ॥ १२ ॥ लांगूलमें पापरहित प्रजापति, तथा अग्नि, इन्द्र और धर्म देवताओंसे पूजित हो स्थित होते हैं ॥ १३ ॥ धाता, विधाता, पुच्छके अन्तमें, कटिमें सप्त ऋषि यह दक्षिणावर्तके भोगसे कुंडलाकार हैं ॥ १४ ॥ उत्तरायणके नक्षत्र अभिजितसे पुनर्वसुतक चौदह दक्षपार्श्वमें और पुष्यसे उत्तराषाढ तक चौदह नक्षत्र दक्षिणपार्श्वमें हैं ॥ १५ ॥ कुंडलरूप शरीरके समान दोनों पार्श्वोंमें बराबर

अवयवोंकी संख्या है ॥ १६ ॥ अजवीथी पृष्ठभागमें आकाशगंगा उदरमें पुनर्वसु पुष्य दक्षिणवामश्रेणीमें ॥ १७ ॥ आर्द्रा, श्लेषा, पश्चिमके दहने बाँयें चरणमें अभिजित उत्तराषाढा दहिनी बाईं नासिकामें जानने ॥ १८ ॥ हे नारद ! इसीप्रकार यथासंख्यक श्रवण और पूर्वाषाढा दहिने और बायें नेत्रोंमें कल्पना किये हैं ॥ १९ ॥ धनिष्ठा और मूल दहिने बाँयें कर्णमें मघाको आदि ले आठ नक्षत्र दक्षिण पार्श्वमें ॥ २० ॥ तथा वामपार्श्वकी अस्थियोंमें जानने. हे मुनि ! इसीप्रकार मृगशिरादि उदयनगामी नक्षत्र ॥ २१ ॥ दक्षिणपार्श्वकी अस्थियोंमें प्रतिलोमसे युक्त करे शतभिषा और ज्येष्ठा दहिने बाँयें स्कंधमें ॥ २२ ॥ उत्तरठोढीमें अगस्त्य, नीचेकी ठोढीमें यम,

अजवीथीपृष्ठभागेआकाशसरिदोदरे ॥ पुनर्वसुश्चपुष्यश्चश्रोण्यौदक्षिणवामयोः ॥ १७ ॥ आर्द्राश्लेषेपश्चिमयोःपादयोर्दक्षवामयोः ॥ अभिजिच्चोत्तराषाढानासयोर्दक्षवामयोः ॥ १८ ॥ यथासंख्यंचदेवर्षेश्रुतिश्चजलभंतथा ॥ कल्पितेकल्पनाविद्भिर्नेत्रयोर्दक्षवामयोः ॥१९॥ धनिष्ठाचैवमूलंचकर्णयोर्दक्षवामयोः ॥ मघादीन्यष्टभानीहदक्षिणायनगानिच ॥ २० ॥ युंजीतवामपार्श्वीयवंक्रिषुक्रमतोमुने ॥ तथैवमृगशीर्षादीन्युदग्भानिचयानिहि ॥ २१ ॥ दक्षपार्श्वेवंक्रिकेषुप्रातिलोम्येनयोजयेत् ॥ शततारातथाज्येष्ठास्कंधयोर्दक्षवामयोः ॥ २२ ॥ अगस्तिश्चोत्तरहनावधरायांहनौयमः ॥ मुखेष्वंगारकःप्रोक्तोमंदःप्रोक्तउपस्थके ॥ २३ ॥ बृहस्पतिश्चककुदिवक्षस्यर्कोग्रहाधिपः ॥ नारायणश्चहृदयेचंद्रोमनसितिष्ठति ॥२४॥ स्तनयोरश्विनौनाभ्यामुशनाःपरिकीर्तितः ॥ बुधःप्राणापानयोश्चगलेराहुश्चकेतवः ॥ २५ ॥ सर्वांगेषुतथारोमकूपेतारागणाःस्मृताः ॥ एतद्भगवतोविष्णोःसर्वदेवमयंवपुः ॥ २६ ॥ संध्यायांप्रत्यहंध्यायेत्प्रयतोवाग्यतोमुनिः ॥ निरीक्षमाणश्चोत्तिष्ठेन्मंत्रेणानेनधीधरः ॥ २७ ॥ नमोज्योतिर्लोकायकालायाऽनिमिषांपतयेमहापुरुषायाऽभिधीमहीति ॥ २८ ॥

मुखमें मंगल, उपस्थमें शनि, ॥ २३ ॥ बृहस्पतिककुदमें, वक्षस्थलमें ग्रहाधिपसूर्यनारायण, हृदयमें चन्द्रमा, मनमें ॥ २४ ॥ अश्विनीकुमार, स्तनोंमें नाभिमें शुक्र, प्राणापानमें बुध, गलेमें राहु केतु ॥ २५ ॥ सर्वांग और रोमकूपमें तारागण यह भगवान्‌विष्णुका सर्व देवमय शरीरहै [यह अलंकार है] ॥ २६ ॥ जो मौन हो प्रतिसंध्यामें इसका ध्यान करता है और इस मंत्रसे जो बुद्धिमान् देखता हुआ उठता है उसका कल्याण होताहै ॥ २७ ॥ ज्योतिर्लोक काल अनिमिषोंके पति महापुरुषका ध्यान करते हुए प्रणाम करतेहैं ॥ २८ ॥

ग्रह नक्षत्र तारामय आप त्रिकालज्ञमें मंत्र पाठ करनेवालोंके पापदूर करते हो आपको नमस्कार है और त्रिकालमें स्मरण करनेवालेके पाप तत्काल दूर होतेहैं ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारायण बोले सूर्यसे दशसहस्र योजन नीचे अयोग्य दारुण राहुका मंडल है ॥ १ ॥ यही सिंहिका पुत्र राहु सूर्य चन्द्रमाका मर्दन करनेवाला है इसने विष्णुके अनुग्रहसे अमरत्व और नक्षत्रत्व प्राप्त किया है॥ २॥ जो यह सूर्यका बिम्ब १०००० योजन तपता है उसका छादन करनेवाला यह असुर है, चन्द्रमण्डल बारह सहस्र योजन है ॥ ३ ॥ तेरह सहस्र योजन होनेसे चन्द्रमाको राहु आच्छादन करता है

ग्रहर्क्षताराममयमाधिदैविकंपापापहंमंत्रकृतांत्रिकालम् ॥ नमस्यतःस्मरतोवात्रिकालंनश्येतेतत्कालजमाशुपापम् ॥ २९ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधेसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अधस्तात्सवितुःप्रोक्तमयुतंराहुमंडलम् ॥ नक्षत्रवच्चरतिचसैंहिकेयोऽतदर्हणः ॥ १ ॥ सूर्याचंद्रमसोरेवमर्दनःसिंहिकासुतः ॥ अमरत्वंचखेटत्वंलेभेयोविष्ण्वनुग्रहात् ॥ २ ॥ यददस्तरणेर्बिंबं तपतोयोजनायुतम् ॥ तच्छादकोऽसुरोज्ञेयोऽप्यर्कसाहस्रविस्तरम् ॥ ३ ॥ त्रयोदशसहस्रंतुसोमस्याच्छादकोग्रहः ॥ यःपर्वसमयेवैरानुबंधी छादकोऽभवत् ॥ ४ ॥ सूर्याचंद्रमसोर्दूराद्ध्वेच्छादनकारकः ॥ तन्निशम्योभयत्रापिविष्णुनाप्रेरितंस्वकम् ॥ ५ ॥ चक्रंसुदर्शनंनामज्वालामालाति भीषणम् ॥ तत्तेजसादुःसहेनसमंतात्परिवारितम् ॥ ६ ॥ मुहूर्तोद्विजमानस्तुदूराच्चकितमानसः ॥ आरान्निवर्ततेसोऽयमुपरागइतीवह ॥ ७ ॥ उच्यते लोकमध्येतुदेवर्षेअवबुध्यताम् ॥ ततोऽधस्तात्समाख्यातालोकाः परमपावनाः ॥ ८ ॥ सिद्धानांचारणानांचविद्याध्राणांचसत्तम ॥ योजनायुतविख्याता लोकाःपुण्यानिषेविताः ॥ ९ ॥

जो अमावास्या और पूर्णिमाके पर्वसमयमें वैरसे आच्छादनकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥ दूर होनेसे भी यह सूर्य चन्द्रका आच्छादक होता है आच्छादन श्रवण होतेही विष्णु अपना ॥ ५ ॥ अग्निकी लपटोंसे भीषण सुदर्शन चक्र प्रेरित करते हैं, इसके दुस्सह तेजसे सब ओर घेरा हुआ ॥ ६ ॥ एक मुहूर्तमें ही खेदको प्राप्त होकर चकित मन होकर समीपसे ही निवृत्त होजाता है इसीका नाम ग्रहण है ॥ ७ ॥ हे देवर्षे ! लोकमें इसे ग्रहण कहते हैं सो तुम जानो इसके नीचे परमपवित्र लोक ॥ ८ ॥ सिद्ध चारण और विद्याधरोंके हैं यह पुण्य निषेवितलोक १०००० दश सहस्र योजनके मध्यमें हैं ॥ ९ ॥

हे देवर्षे! इसकेनीचे यक्ष,राक्षस, पिशाच, प्रेत,भूतोंके विहारस्थान हैं॥ १०॥ जहां तक वायु वहनकरती है वह अन्तरिक्ष है और जहांतक मेघ हैं यहींतक इसकी अवधि है ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तम ! इसके नीचे सौ योजनमें पृथ्वी है इसमें गरुड, श्येन, (गिद्ध) सारस ॥ १२॥ हंसादिक पृथ्वीपर होनेसे पार्थिव कहाते और उड़ते हैं यह तुमसे पृथ्वीका सन्निवेश वर्णन किया ॥ १३ ॥ हे नारद ! इस पृथ्वीतलमें भी सात विवर हैं इनमें एक एक दश दश सहस्र योजनमें हैं ॥ १४ ॥ यह बड़े विख्यात १०००० अयुत योजनके अन्तरमें स्थित सब ऋतुओंमें सुखदायक हैं, पहला अतल, दूसरा वितल ॥ १५ ॥ तीसरा सुतल चौथा तलातल पांचवां महातल छठा रसा

ततोऽप्यधस्तादेवर्षेयक्षाणांचसरक्षसाम् ॥ पिशाचप्रेतभूतानांविहाराजिरमुत्तमम् ॥ १० ॥ अंतरिक्षंचतत्प्रोक्तंयावद्वायुःप्रवातिहि ॥ यावन्मेघास्तथो र्ध्वंतितत्प्रोक्तंज्ञानकोविदैः ॥ ११ ॥ ततोऽधस्ताद्योजनानांशतंयावद्द्विजोत्तम ॥ पृथिवीपरिसंख्यातासुपर्णश्येनसारसाः ॥ १२ ॥ हंसादयः प्रोत्पतंतिपार्थिवाःपृथिवीभवाः ॥ भूसन्निवेशावस्थानंयथावदुपवर्णितम् ॥ १३ ॥ अधस्तादवनेःसप्तदेवर्षेविवराःस्मृताः ॥ एकैकशोयोजना नामायामोच्छ्रायतःपुनः ॥ १४ ॥ अयुतांतरविख्याताःसर्वर्तुसुखदायकाः ॥ अतलंप्रथमंप्रोक्तंद्वितीयंवितलंतथा ॥ १५ ॥ तृतीयंसुतलंप्रोक्तंच तुर्थंवैतलातलम् ॥ महातलंपंचमंचषष्ठंप्रोक्तंरसातलम् ॥ १६ ॥ सप्तमंविप्रपातालंसप्तैतेविवराःस्मृताः ॥ एतेषुबिलस्वर्गेषुदिवोप्यधिकमेवच ॥ १७ ॥ कामभोगैश्वर्यसुखसमृद्धभुवनेषुच ॥ नित्योद्यानविहारेषुसुखास्वादःप्रवर्तते ॥१८॥ दैत्याश्चकाद्रवेयाश्चदानवाबलशालिनः ॥ नित्यंप्रमुदितारक्ताःकल त्रापत्यबंधुभिः ॥ १९ ॥ सुहृद्भिरनुजीवाद्यैःसंयुताश्चगृहेश्वराः ॥ ईश्वरादप्रतिहतकामामायाविनश्वते ॥ २० ॥ निवसंतिसदाहृष्टाःसर्वर्तुसुखसंयुताः ॥ मयेनमायाविभुनायेषुयेषुचनिर्मिताः ॥ २१ ॥ पुरःप्रकामशोभक्तामणिप्रवरशालिनः ॥ विचित्रभवनाट्टालगोपुराद्याःसहस्रशः ॥ २२ ॥

तल ॥ १६ ॥ सातवां पाताल है. हे विप्र ! इसप्रकार सात विवर हैं इन बिलोंमें स्वर्गसे अधिक ऐश्वर्य है ॥ १७ ॥ कामभोग, ऐश्वर्य, सुख समृद्धिके भुवन नित्य उद्या नोंका विहार सदा सुखरूप होता है ॥ १८ ॥ कद्रूके पुत्र दैत्य तथा बड़े बलशाली दानव अपने कलत्र सन्तान बंधुआदिके सहित सदा आनंदसे रहते हैं ॥ १९॥ अपने सुहृद् और अनुजीवियोंसे युक्त गृहोंमें रहते हैं कोई भी उनकी कामना नहीं रोक सकता वे सब मायावी होते हैं ॥ २० ॥ यह सब ऋतुओं में सुखसे सम्पन्न हो निवास करते हैं, वे स्थान मायावी मयने बनाये हैं ॥२१॥ जिनकी मणिमुक्ताओंसे बडी शोभा होरही है, भवनोंकी सहस्रों अटारी छज्जोंकी शोभा हो रही है ॥२२॥

१ ताराआदि रहित स्थान ।

सभा चौराहे आँगनोंकी शोभा देवसदनोंका तिरस्कार करती है. नाग असुरोंके मिथुन, तथा कबूतर, मैना ॥ २३ ॥ तथा कृत्रिम भूमिपै उत्तम गृह शोभित होते हैं. अलंकृत हुए उद्यान शोभाको प्राप्त हो रहे हैं॥ २४॥ जहांके विशाल फल, पुष्प, मनको प्रसन्न करनेवाले हैं ललनाओंके विलासयोग्य जहांके स्थान शोभा पाते हैं ॥ २५ ॥ अनेक विहंगोंके समूहसे जहांकी जलराशी शोभित होती है स्वच्छ जलसे पूर्ण ह्रद जिनमें पाठीन जातिकी मछली शोभित होती हैं ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके जलमें होनेवाले जन्तु जहांके जलोंको क्षुब्ध करते हैं. कुमुद, उत्पल, कह्वार, नील, लालकमल ॥ २७ ॥ इनमें अपना विहारस्थान कल्पना किये हैं. इन्द्रियोंको आनंददायक अनेक शब्द कर रहे हैं॥ २८॥ बहुत क्या देवताओंकी परमलक्ष्मीको तिरस्कार करते हैं. जहां कालके अंगवाले दिन रातका कुछ भय नहीं है॥ २९॥

सभाचत्वरचैत्यादिशोभाढ्याःसुरदुर्लभाः ॥ नागासुराणांमिथुनैःसपारावतसारिकैः ॥ २३ ॥ कीर्णकृत्रिमभूमिश्चविवरेशगृहोत्तमैः ॥ अलंकृताश्चकासंतिउद्यानानिमहांतिच ॥ २४ ॥ मनःप्रसन्नकारीणिफलपुष्पविशालिभिः ॥ ललनानांविलासार्हस्थानैःशोभितभांजिच ॥ २५ ॥ नानाविहंगमव्रातसंयुक्तजलराशिभिः ॥ स्वच्छार्णपूरितह्रदैःपाठीनसमलंकृतैः ॥ २६ ॥ जलजंतुक्षुब्धनीरनीरजातैरनेकशः ॥ कुमुदोत्पलकह्लारनीलरक्तोत्पलैस्तथा ॥ २७ ॥ तेषुकृतनिकेतानांविहारैःसंकुलानिच ॥ इंद्रियोत्सवकारैश्चतथैवविविधैःस्वरैः ॥ २८ ॥ अमराणांचपरमांश्रियंचाऽतिशयंतिच ॥ यत्रनैवभयंक्कापिकालांगैर्दिनरात्रिभिः ॥ २९ ॥ यत्राऽहिप्रवराणांचशिरःस्थैर्मणिरश्मिभिः ॥ नित्यंतमःप्रबाध्येतसदाप्रस्फुटकांतिभिः॥३०॥नवाएतेषु वसतांदिव्यौषधिरसायनैः ॥ रसान्नपानस्नानाद्यैर्नाऽऽध्योनचव्याधयः ॥ ३१ ॥ वलीपलितजीर्णत्ववैवर्ण्यस्वेदगंधताः ॥ अनुत्साहवयोवस्थानबाधंतेकदाचन ॥ ३२ ॥ कल्याणानांसदातेषांनचमृत्युभयंकुतः ॥ भगवत्तेजसोऽन्यत्रचक्राच्चैवसुदर्शनात् ॥३३॥ यस्मिन्प्रविष्टेदैतेयवधूनांगर्भराशयः ॥ प्रायोभयात्पतंत्येवस्रवंतिब्रह्मपुत्रक ॥३४॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥ ॥छ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ प्रथमेविवरे विप्रअतलाख्येमनोरमे॥मयपुत्रोबलोनामवर्ततेऽखर्वगर्वकृत्॥१॥षण्णवत्योयेनसृष्टामायाःसर्वार्थसाधिकाः ॥ मायाविनोयाश्चसद्योधारयंतिचकाश्चन॥२॥

जहां बड़े २ सर्पोंके शिरोंकी मणियोंसे कभी अंधकार न होकर प्रकाश बना रहता है ॥ ३० ॥ यहांके निवासियोंको दिव्य औषधि रसायनसे रस अन्नपान स्नानादिके कारण आधि व्याधि नहीं होती ॥ ३१ ॥ वली, बाल पकना, जीर्णता, विवर्णता, स्वेद, दुर्गन्ध, अनुत्साह, शरीरकी अवस्थाके गुण कभी बाधा नहीं देते ॥ ३२ ॥ उनको सदा कल्याण रहता है मृत्युका अन्यत्र भय नहीं होता. भगवान्‌के तेज और चक्र सुदर्शनको छोडकर अन्यत्र भय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे नारद ! जिसमें भगवान्‌के तेज प्रविष्ट होनेसे दैत्यस्त्रियोंके गर्भ भयसे पतित हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! पहले अतलनामक विवरमें मयपुत्र बलगर्वका खंडन करनेवाला निवास करता है ॥ १ ॥ जिसने सर्वार्थ साधक ९६ छानवे

माया सृजन की हैं, जो कोई उनको धारण करता है वह मायावी होता है ॥ २ ॥ उस बलीवलके जंभाई लेनेसे त्रिलोकीको मोहित करनेवाली स्त्री प्रगट हो जाती है ॥ ३ ॥ पुंश्चली, स्वैरिणी तथा दूसरी कामिनी प्रगट होती हैं जो बिलमें प्रविष्ट हुए पुरुषको ॥ ४ ॥ हाटकरससे संभोगमें समर्थ करके अपने विलास अवलोकन अनुरागस्मित आलिंगनादि ॥ ५ ॥ तथा संलाप और विभ्रमादिसे रमण कराती हैं जिसके उपयोगमें मनुष्य अपनेको बहुत मानता है ॥ ६ ॥ मैं ईश्वर सिद्ध और दशसहस्र हाथीका बलवाला हूं वह ऐसे अपनेको मान्ता हुआ मदान्ध हो जाता है ॥ ७ ॥ हे नारद! यह आपसे अतलकी स्थिति कही. अब दूसरे विवर

जृंभमाणस्ययस्यैवबलस्यबलशालिनः ॥ स्त्रीगणाउपपद्यंतेत्रयोलोकविमोहनाः ॥ ३ ॥ पुंश्चल्यश्चैवस्वैरिण्यःकामिन्यश्चेतिविश्रुताः ॥ यावैबिलायनंप्रविष्टंप्रविष्टंपुरुषंरहः ॥ ४ ॥ रसेनहाटकाख्येनसाधयित्वाप्रयत्नतः ॥ स्वविलासावलोकानुरागस्मितविगूहनैः ॥ ५ ॥ संलापविभ्रमाद्यैश्चरमयंत्यपिताः स्त्रियः ॥ यस्मिन्नुपयुक्तेजनोमनुतेबहुधास्वयम् ॥ ६ ॥ ईश्वरोऽहमहंसिद्धोनागायुतबलोमहान् ॥ आत्मानंमन्यमानःसन्मदांधइवकथ्यते ॥ ७ ॥ एवंप्रोक्तास्थितिश्चाऽत्रअतलस्यचनारद ॥ द्वितीयविवरस्याऽत्रवितलस्यनिबोधत ॥ ८ ॥ भूतलाधस्तलेचैववितलेभगवान्भवः ॥ हाटकेश्वरनामाऽयंस्वपार्षदगणैर्वृतः ॥ ९ ॥ प्रजापतिकृतस्यापिसर्गस्यबृंहणायच ॥ भवान्यामिथुनीभूयआस्तेदेवाधिपूजितः ॥ १० ॥ भवयोर्वीर्यसंभूताहाटकी सरिदुत्तमा ॥ समिद्धोमरुतावह्निरोजसापिबतीवहि ॥ ११ ॥ तन्निष्ठ्यूतंहाटकाख्यंसुवर्णंदैत्यवल्लभम् ॥ दैत्यांगनाभूषणार्हंसदासंधारयंतिहि ॥ १२ ॥ तद्बिलाधस्तलात्प्रोक्तंसुतलाख्यंबिलेश्वरम् ॥ पुण्यश्लोकोबलिर्नामाआस्तेवैरोचनिर्मुने ॥ १३ ॥ महेंद्रस्यचदेवस्यचिकीर्षुःप्रियमुत्तमम् ॥ त्रिविक्रमोऽपिभगवान्सुतलेबलिमानयत् ॥ १४ ॥

वितलका वृत्तान्त सुनो ॥ ८ ॥ भूतलके अधस्थल वितलमें भगवान् शिव हाटकेश्वरनामसे अपने पार्षद और गणोंसे संयुक्त हो ॥ ९ ॥ प्रजापतिके किये सर्गके बढानेके निमित्त देवताओंसे पूजित हुए भवानीके सहित विराजते हैं ॥ १० ॥ शिवके वीर्यसे यहां हाटकी सरित् प्रगट हुई है जो बढी हुई पवन और अग्निको अपने तेजसे बाहरही पान करलेती है ॥ ११ ॥ वह्निद्वारा उगला हुआ वह हाटकनाम सोना दैत्योंको बहुत प्यारा है दैत्योंकी स्त्रीजन भूषण बनाय सदा उसे धारण करती हैं ॥ १२ ॥ उस बिलके नीचे सुतल है यहां पुण्यश्लोक विरोचन पुत्र राजा बलि निवास करता है ॥ १३ ॥ महेन्द्र देवका प्रिय करनेकी इच्छासे त्रिविक्रम भग

वान् सुतलमें बलिको लाये ॥ १४ ॥ त्रिलोककी लक्ष्मी आक्षिप्त कर दैत्यराट्को वहां स्थापित किया जो लक्ष्मी इन्द्रादिकोभी प्राप्त नहीं वह राजा बलिके है ॥ १५ ॥ वह सुतलपति निर्भय हो भगवान् वामनजीकी आराधना करते हुए आजतक वर्तमान् हैं ॥ १६ ॥ पात्रभूत जगदीश्वरको भूमिदान करनेकाही यह फल है. हे नारद ! ऐसा महात्मा जन वर्णन करते हैं सो यह अयुक्त नहीं है ॥ १७ ॥ वासुदेव भगवान् हरिमें जो अपना पुरुषार्थ लगाते हैं हे विप्र ! इस दानका फल सब प्रकार उपयुक्त नहीं है ॥ १८ ॥ जिस देवदेवके विवश होकर नाम लेनेसे अपने किये कर्मबंधनके गुण सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जिस क्लेशबंधनकी हानिके निमित्त सांख्ययोगादिका साधन किया

त्रैलोक्यलक्ष्मीमाक्षिप्यस्थापितःकिलदैत्यराट् ॥ इंद्रादिष्वप्यलब्धायासाश्रीस्तमनुवर्तते ॥ १५ ॥ तमेवदेवदेवेशमाराधयतिभक्तितः ॥ व्यपेतसाध्वसोऽद्यापिवर्ततेसुतलाधिपः ॥ १६ ॥ भूमिदानफलंह्येतत्पात्रभूतेऽखिलेश्वरे ॥ वर्णयंतिमहात्मानोनैतद्युक्तंचनारद ॥ १७ ॥ वासुदेवेभगवतिपुरुषार्थप्रदेहरौ ॥ एतद्दानफलंविप्रसर्वथानहियुज्यते ॥ १८ ॥ यस्यैवदेवदेवस्यनामाऽपिविवशोगृणन् ॥ स्वकीयकर्मबंधीयगुणान्विधुनुतेंजसा ॥ १९ ॥ यत्क्लेशबंधहानायसांख्ययोगादिसाधनम् ॥ कुर्वंतेयतयोनित्यंभगवत्यखिलेश्वरे ॥ २० ॥ नचाऽयंभगवानस्माननुजग्राहनारद ॥ मायामयंचभोगानामैश्वर्यंव्यतनोत्परम् ॥ २१ ॥ सर्वक्लेशाधिहेतुंतदात्मानुस्मृतिमोषणम् ॥ यंसाक्षाद्भगवान्विष्णुःसर्वोपायविदीश्वरः ॥ २२ ॥ याञ्चाछलेनाऽपहृतंसर्वस्वंदेहशेषकम् ॥ अप्राप्तान्योपायईशःपाशैर्वारुणसंभवैः ॥ २३ ॥ बंधयित्वाऽवमुच्यापिगिरिदर्यामिवाऽब्रवीत् ॥ असाविंद्रोमहामूढोयस्यमंत्रीबृहस्पतिः ॥ २४ ॥ प्रसन्नमिममत्यर्थंमयाचल्लोकसंपदम् ॥ त्रैलोक्यमिदमैश्वर्यंकियदेवातितुच्छकम् ॥ २५ ॥

जाता है यति नित्य भगवान अखिलेश्वरका ध्यान करते हैं ॥ २० ॥ हे नारद ! यह भगवान नारायण यदि हमको मायामयभोगोंका ऐश्वर्य विस्तार करते हैं ॥ २१ ॥ तौ अनुग्रह नहीं है. कारण कि, आत्माकी स्मृतिका नष्ट होना सम्पूर्ण क्लेशोंका कारणहै जिसको सब उपायके ज्ञाता भगवान् विष्णुने ॥ २२ ॥ याचनाके छलसे हरण कर लिया अर्थात् देहको छोड़ और सर्वस्व ले लिया शेषभूमि न मिलनेसे वरुणकी पाशोंसे बांधकर ॥ २३ ॥ फिर इस गिरिकंदरामें छोड़दिया आप द्वारे रहे तब भक्तिका प्रताप देख बलिने कहा यह इन्द्र महामूढ है जिसके मंत्री बृहस्पति हैं ॥ २४ ॥ जो प्रसन्नहोकर इसने लोकसम्पत्तिकी याचना की. यह त्रिलोकीका ऐश्वर्य क्या है? अतितुच्छ है ॥ २५ ॥

जो मूढ कल्याणोंके स्वामी नारायणको छोडकर लोकसम्पदामें आसक्त है वह महा मूढ है हमारे पितामह श्रीमान् प्रह्लाद भगवत्प्रिय ॥ २६ ॥ सर्वलोकका उपकारक भगवत्का दासभाव मागते हुए यद्यपि विष्णु पिताका सम्पूर्ण ऐश्वर्य देते थे॥ २७॥ पर उन भगवत्प्रियने पिताके उपराम होनेमें इस बातकी. इच्छा नहीं की यह दृश्यमान सब लोक जिसकी उपाधी ॥ २८ ॥ तथा जिसकी ऐश्वरी शक्तिका अन्त नहीं उन भगवान्का स्वरूप वा अन्त हमारी नाईं दोषयुक्त कौन जान सक्ता है ? इसप्रकार यह दैत्यपति बलि परमपूजित ॥ २९ ॥ सुतलमें वर्तता है, जिसके द्वारपाल स्वयं नारायण हैं. एक समय लोकोंको रुवानेवाला रावण दिग्विजयमें॥ ३० ॥ सुतलमें

आशिषांप्रभवंमुक्त्वायोमूढोलोकसंपदि ॥ अस्मत्पितामहःश्रीमान्प्रह्लादोभगवत्प्रियः ॥ २६ ॥ दास्यंवव्रेविभोस्तस्यसर्वलोकोपकारकः ॥ पित्र्यमैश्वर्यमतुलंदीयमानंचविष्णुना ॥ २७ ॥ पितर्युपरतेवीरेनैवैच्छद्भगवत्प्रियः ॥ तस्याऽतुलानुभावस्यसर्वलोकोपधीमतः ॥ २८ ॥ अस्मद्विधोनाल्पपक्वेतरदोषोवगच्छति ॥ एवंदैत्यपतिःसोऽयंबलिःपरमपूजितः ॥ २९ ॥ सुतलेवर्ततेयस्यद्वारपालोहरिःस्वयम् ॥ एकदा दिग्विजयेराजारावणोलोकरावणः ॥ ३० ॥ प्रविशन्सुतलेयेनभक्तानुग्रहकारिणा ॥ पादांगुष्ठेनप्रक्षितोयोजनायुतमत्रहि ॥ ३१ ॥ एवं भूतानुभावोयंबलिःसर्वसुखैकभुक् ॥ आस्तेसुतलराज्यस्थोदेवदेवप्रसादतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे एकोनविंशोध्यायः ॥ ॥ १९ ॥ छ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ततोधस्ताद्विवरकंतलातलमुदीरितम् ॥ दानवेंद्रोमयोनामत्रिपुराधिपतिर्महान् ॥ १ ॥ त्रिलोक्याःशंकरेणाऽयंपा लितोदग्धपूस्त्रयः ॥ देवदेवप्रसादात्तुलब्धराज्यसुखास्पदः ॥२॥ आचार्योमायिनांसोऽयंनानामायाविशारदः ॥ पूज्यतेराक्षसैर्वोरैःसर्वकार्यसमृद्धये ॥३॥

प्रविष्ट हुआ तब भक्त अनुग्रहकारी भगवान्ने पादके अंगुष्ठसे १०००० योजन फेंक दिया था ॥ ३१ ॥ इसप्रकारके प्रभाववाला बलि सब सुखोंका स्थान है वह सुतलराजमें देवदेवके प्रसादसे स्थित है ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ श्रीनारायण बोले इसके नीचे तलातलनामक विवर है, जहां त्रिपुराधिपति मयनामक दानव रहता है ॥ १ ॥ जिस समय शंकरने त्रिपुर जलाया तब इसकी रक्षा की श्री. देव २ के प्रसादसे राज्य और सुखकी प्राप्ति की ॥ २ ॥ यह अनेकों मायामें पंडित मायावियोंका आचार्य है. सब काम समृद्धिके निमित्त घोर राक्षस इसकी

पूजा करते हैं ॥ ३ ॥ इसके नीचे विख्यात महातल है जिसमें कद्रूके पुत्र महाक्रोधी सर्प निवास करते हैं ॥४॥ हेनारद ! इनके अनेक शिर हैं प्रधान २ तुमसे कहता हूं. कुहुक, तक्षक, सुषेण, कालिय ॥ ५ ॥ यह महाशरीरवाले महाबली क्रूर स्वजातिमें भी क्रूर हैं. गरुडके डरसे यह सब भीत रहते हैं ॥ ६ ॥अपनी स्त्री संतान सुहृद् कुटुम्बियोंसे संगत हुए प्रमत्त हुए अनेक क्रीडाओंसे संगत रहते हैं ॥ ७ ॥ इस विवरके नीचे रसातल है उसमें दैत्य और पणनामके दानव निवास करते हैं ॥८॥ तथा हिरण्यपुरवासी निवातकवचोंके समूह जो कालेय कहाते और देवताओंके शत्रु होते हैं ॥ ९ ॥ यह उत्पत्तिसेही महापराक्रमी महासाहसी हैं केवल भगवान्के

ततोधस्तात्सुविख्यातंमहातलमितिस्फुटम् ॥ सर्पाणांकाद्रवेयाणांगणःक्रोधवशोमहान् ॥ ४ ॥ अनेकशिरसांविप्रप्रधानान्कीर्तयामिते ॥ कुहक स्तक्षकश्चैवसुषेणःकालियस्तथा ॥ ५ ॥ महाभोगामहासत्त्वाःक्रूराःक्रूरस्वजातयः ॥ पतत्रिराजाधिपतेरुद्विग्नाःसर्वएवते ॥ ६ ॥ स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुं बस्यचसंगताः ॥ प्रमत्ताविहरंत्येवनानाक्रीडाविशारदाः ॥ ७ ॥ ततोधस्ताच्चविवरेरसातलसमाह्वये ॥ दैतेयानिवसंत्येवपणयोदानवाश्चये ॥८॥ निवात कवचानामहिरण्यपुरवासिनः ॥ कालेयाइतिचप्रोक्ताःप्रत्यनीकाहविर्भुजाम् ॥ ९ ॥ महौजसश्चोत्पत्त्यैवमहासाहसिनस्तथा ॥ सकलेशस्यचहरेस्तेजसा हतविक्रमाः ॥ १० ॥ बिलेशयाइवसदाविवरेनिवसंतिहि ॥ यैर्वाग्भिःसरमयाशक्रदूत्यानिरंतरम् ॥ ११ ॥ मंत्रवर्णाभिरसुरास्ताडिताबिभ्यतिस्मह ॥ ततोप्यधस्तात्पातालेनागलोकाधिपालकाः ॥ १२ ॥ वासुकिप्रमुखाःशंखःकुलिकःश्वेतएवच ॥ धनंजयोमहाशंखोधृतराष्ट्रस्तथैवच ॥ १३ ॥ शंखचूडः कंबलाश्वतरोदेवोपदत्तकः ॥ महामर्षामहाभोगानिवसंतिविषोल्बणाः ॥ १४ ॥ पंचमस्तकवंतश्चफणासप्तकभूषिताः ॥ केचिद्दशफणाःकेचिच्छतशीर्षा स्तथापरे ॥ १५ ॥

तेजसेही इनका पराक्रम महत् होता है ॥ १० ॥ यह सदैवकाल विवरमेंही निवास करते हैं जो सरमा इन्द्रकी दूतीद्वारा निरन्तर मंत्ररूपवाणीसे ॥११॥ जो मंत्र वर्णात्मक होती है निरन्तर ताडित होकर डरते हैं इसके नीचे पातालमें नागलोकके पालक निवास करते हैं ॥ १२ ॥ वे वासुकि आदि शंख, कुलिक, श्वेत, धनंजय, महाशंख, धृतराष्ट्र ॥ १३ ॥ शंखचूड, कंबल, अश्वतर, देवउपदत्तक, महाक्रोधी महाफणा विषैले निवास करते हैं ॥ १४ ॥ किसीके पांच, सात, दश, सौ ॥१५॥

कोई सहस्र शिरवाले प्रकाशमान् मणियें धारण करनेवाले हैं. जिनकी किरणोंसे पातालका अंधकार दूर होता है ॥ १६ ॥ हे नारद ! वे सदा क्रोधसे फूत्कार करते हैं. इसके मूलमें तीस सहस्र ॥ १७ ॥ योजन उपरान्त भगवान्‌की तामसी कला सब देवताओंसे पूजित अनन्तनामसे विख्यात है ॥ १८ ॥ जिसको अहं इस अभिमानका लक्षण कहते हैं. दृष्टादृष्टचका जो भलीप्रकार एकीकरण है उसको संकर्षण कहते हैं ॥ १९ ॥ हे नारद ! उन अनन्तमूर्ति सहस्र शिरवाले अनन्तके मस्तकपर यह सारा भूमण्डल स्थित है ॥ २० ॥ उनपर यह सम्पूर्ण पृथ्वीका गोला सरसोंके समान लक्षित होता है चराचरके लयकरनेको जिसकालमें इच्छा करते हैं. तब उनकी भौंसे ग्यारह व्यूहसे शोभायमान् संकर्षणनामक रुद्र प्रगट होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ वे त्रिलोचन, हाथमें शूललिये वह महासत्व सब प्राणियोंको भय देनेवाले उत्थित होते हैं ॥ २३ ॥ जिनके

सहस्रशिरसःकेपिरोचिष्णुमणिधारकाः ॥ पातालंध्रतिमिरनिकरंस्वमरीचिभिः ॥ १६ ॥ विधमंतिचदेवर्षेसदासंजातमन्यवः ॥ अस्यमूलप्रदेशेहित्रिंशत्साहस्रकेंतरे ॥ १७ ॥ योजनैःपरिसंख्यातेतामसीभगवत्कला ॥ अनंताख्यासमास्तेहिसर्वदेवप्रपूजिता ॥ १८ ॥ अहमित्यभिमानस्यलक्षणंयंप्रचक्षते ॥ संकर्षणंसात्वतीयाःकर्षणंद्रष्टृदृश्ययोः ॥ १९ ॥ इदंभूमंडलंयस्यसहस्रशिरसःप्रभोः ॥ अनंतमूर्तेःशेषस्याध्रियमाणंचशीर्षके ॥ २० ॥ पृथ्वीगोलमशेषंहिसिद्धार्थइवलक्ष्यते ॥ यस्यकालेनदेवस्यसंजिहीर्षोःसमंविभोः ॥ २१ ॥ चराचरंभ्रुवोरंतर्विवरादुदपद्यत ॥ सांकर्षणोनामरुद्रोव्यूहैकादशशोभितः ॥ २२ ॥ त्रिलोचनश्चत्रिशिखंशूलमुत्तंभयन्स्वयम् ॥ उदतिष्ठन्महासत्त्वोमहाभूतक्षयंकरः ॥ २३ ॥ यस्यांघ्रिकमलद्वंद्वशोणाच्छनखमंडले ॥ विराजन्माणिबिंबेषुमहाहिपतयोनिशम् ॥ २४ ॥ एकांतभक्तियोगेनसहसात्त्वतपुंगवैः ॥ प्रणमंतःस्वमूर्ध्नांतेस्वमुखानिसमीक्षते ॥ २५ ॥ स्फुरत्कुंडलमाणिक्यप्रभामंडलभांज्यपि ॥ सुकपोलानिचारूणिगंडस्थलधुमंतिच ॥ २६ ॥ नागराजकुमार्योपिचार्वंगविलसत्त्विषः ॥ विशदैर्विपुलैस्तद्वद्धवलैःसुभगैस्तथा ॥ २७ ॥ रुचिरैर्भुजदंडैश्चशोभमानाइतस्ततः ॥ चंदनागुरुकाश्मीरपंकलेपेनभूपिताः ॥ २८ ॥ तदभिमर्षसंजातकामवेशसमायुताः ॥ ललितस्मितसंयुक्ताःसव्रीडंलोकयंतिच ॥ २९ ॥ अनुरागमदोन्मत्तविघूर्णारुणलोचनम् ॥ करुणावलोकनेत्रंचआशासानास्तथाशिषः ॥ ३० ॥

चरणकमलकी लालीसे नखमंडल महाअहिपतियोंकी माणिक्योंमें विराजते हैं ॥ २४ ॥ जिनको श्रेष्ठ जन एकान्त भक्तियोगसे शिरझुकाकर प्रणाम करते हुए अपने मुखका प्रतिबिम्ब देखते हैं ॥ २५ ॥ स्फुरण्यमान कुंडलोंके माणिक्योंकी कान्तिमण्डलसे सुन्दर कपोल और गंडस्थल प्रकाश करते हैं ॥ २६ ॥ सुन्दर अंगकी कान्तिवाली नागराजकी कुमारियें भी विशद स्वच्छ, बडे ॥ २७ ॥ शोभायमान् भुजदंडोंको चंदन अगर केशरसे भूषित करती हैं ॥ २८ ॥ उनके अंगस्पर्शमात्रसे कामातुर होजाती हैं, मनोहर स्मित करके लज्जापूर्वक देखने लगती हैं ॥ २९ ॥ अनुरागके मदसे मत्त हो उनके लाल नेत्र घूमने लगते हैं और करुणावलोकी

नेत्रोंसे उनके आशीर्वादोंकी इच्छा करती हैं ॥ ३० ॥ वह अनन्त सत्व महा यशस्वी अनन्त गुणसागर, महा द्युतिमान् ॥ ३१ ॥ अमर्षरोषादिको रोके हुए महा सत्वसम्पन्न सब देवताओंसे पूजित उस स्थानमें निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ सुरसिद्ध, असुर, उरग, विद्याधर, गंधर्व, मुनिसमूह उनका नित्य ध्यान करते हैं ॥ ॥ ३३ ॥ निरन्तर मदोन्मत्त तथा विह्वल नेत्र किये अपने वाक्यरूपी अमृतसे देवता और अपने पार्षदोंको ॥ ३४ ॥ प्रसन्न करते हुए वह विभु मलीन न होने वाले तुलसीदलोंसे सम्पन्न वैजयन्ती माला धारण किये स्थित हैं ३५ ॥ मत्त हुए भ्रमरोंके घोषसे संयुक्त नीलवस्त्र पहरे वह देवदेव एक कुंडल धारण किये हैं ॥ ॥३६॥ हलकी ककुदपर वह श्री अविनाशी अपनी पुष्ट भुजा रखकर तथा इन्द्रके ऐरावतके समान कक्षा धारण कर विराजतेहैं॥३७॥इस प्रकार तत्त्वदर्शियोंने देवेशको

सोऽनंतोभगवान्देवोनंतसत्त्वोमहाशयः॥अनंतगुणवार्धिश्चआदिदेवोमहाद्युतिः॥३१॥संहृतामर्षरोषादिवेगोलोकशुभायच॥ आस्तेमहासत्त्वनिधिःसर्वदेव प्रपूजितः॥३२॥ध्यायमानःसुरैःसिद्धैरसुरैश्चोरगैस्तथा॥विद्याधरैश्चगंधर्वैर्मुनिसंघैश्चनित्यशः॥३३॥अनारतमदोन्मत्तलोकविह्वललोचनः॥वाक्यामृतेनवि बुधान्स्वपार्षदगणानपि ॥३४॥ आप्यायमानःसविभुर्वैजयंतींस्रजंदधत् ॥ अम्लानाभिनवैःस्वच्छैस्तुलसीदलसंचयैः ॥३५॥ माद्यन्मधुकरव्रातघोषश्री संयुतांसदा॥नीलवासादेवदेवएककुंडलभूषितः॥३६॥हलस्यककुदिन्यस्तसुपीवरभुजोव्ययः॥महेंद्रःकांचनींयद्वद्वरत्रांचमतंगमः ॥ ३७॥ उदारलीलोदे वेशोवर्णितःसात्त्वतर्षभैः॥इ०दे०भा०म०ऽष्टमस्कंधेविंशोऽध्यायः॥२०॥नारायणउवाच ॥ तस्यानुभावंभगवान्ब्रह्मपुत्रःसनातनः॥ सभायांब्रह्मदेवस्यगा यमानउपासते॥१॥उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोस्यकल्पाःसत्त्वाद्याःप्रकृतिगुणायदीक्षयासन्॥यद्रूपंध्रुवमकृतंयदेकमात्मन्नानाधात्कथमुहवेदतस्यवर्त्म॥२॥ मूर्तिंनःपुरुकृपयावभारसत्वंसंशुद्धंसदसदिदंविभातियत्र ॥ यल्लीलांमृगपतिराददेनवद्यामादातुंस्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ ३ ॥

उदारलीलावाला वर्णन किया है ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥

नारायण बोले भगवान् सनातन ब्रह्मपुत्र इनका प्रभाव ब्रह्मसभामें गाया करते हैं ॥ १ ॥ इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और लयके हेतु जिसके गुण हैं जिसकी ईक्षासे सत्वादि प्रकृतिके गुण अपने २ कार्यमें समर्थ होते हैं, जिसका रूप ध्रुव और अनादि है, जो एक होकरभी अपनेमें अनेक प्रपंच धारण करते हैं. उस ब्रह्मरूपका तत्त्व यह प्राणी कैसे जानसक्ता है ? ॥२॥ जिसके द्वारा यह सत् असत् प्रकाश करता है वही भक्तोंके ऊपर कृपाकर सत्वमूर्ति धारण करते हैं अपने भक्तोंके मन वशीभूत कर

नेको जिसकी लीला सिंहरूप है उन्हींसे यह कार्यकारणमय विश्व दिखाई देता है मोक्षकी इच्छावाले उन उदारवीर्यका सेवन क्यों न करैं।।३।।आर्त वा पतित अवस्थामें अ[illegible]
उपहासमें भी उसका नाम एकवार कीर्तन करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप उसी समय दूर होजाते हैं. मोक्षाभिलाषी पुरुषगण इन अनन्त भगवान्के अतिरिक्त और किसका
आश्रय ग्रहण करैं ? ॥ ४ ॥ शैल, सागर, सरित्, सम्पूर्णप्राणियों सहित यह विशाल भूमि अपने मस्तकपर अणुवत् धारण करते हैं, वे अनन्तस्वरूप हैं. इस कारण उनके
विक्रमका किसी प्रकार क्षय नहीं होता. यदि किसीके सहस्र जिह्वा हैं तो भी कोई उनके कार्यपरम्पराके वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ५ ॥ इसप्रकार प्रभाववाले
अनन्त गुणसम्पन्न भगवान् अनन्त स्वतंत्रतापूर्वक भूमिके मूलभागमें स्थित हैं जो अपनी लीलासे विश्वको धारण करते हैं ॥ ६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मनुष्य जिसप्रकार

यन्नामश्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्त्तोवायदिपतितःप्रलंभनाद्वा॥हंत्यंहःसपदिनृणामशेषमन्यंकंशेषाद्भगवतआश्रयेन्मुमुक्षुः॥४॥मूर्धन्यार्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो
भूगोलंसगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम्॥आनंत्यादनमितविक्रमस्यभूम्नःकोवीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥५॥ एवंप्रभावोभगवाननंतोदुरंतवीर्योरुगुणानुभावः॥
मूलेरसायाःस्थितआत्मतंत्रोयोलीलयाक्ष्मांस्थितयेबिभार्ति॥६॥एताह्येवेहतुनृभिर्गतयोमुनिसत्तम॥गंतव्याबहुशोयद्वद्यथाकर्मविनिर्मिताः॥७॥यथोपदेशं
चकामान्सदाकामयमानकैः ॥ एतावतीर्हिराजेंद्रमनुष्यमृगपक्षिषु ॥ ८ ॥ विपाकगतयःप्रोक्ताधर्मस्यवशगास्तथा ॥ उच्चावचाविसदृशायथाप्रश्नंनिबोध
त ॥ ९ ॥ नारदउवाच ॥ वैचित्र्यमेतल्लोकस्यकथंभगवताकृतम् ॥ समानत्वेकर्मणांचतन्नोब्रूहियथातथम् ॥ १० ॥ नारायणउवाच ॥ कर्तुःश्रद्धावशादे
वगतयोऽपिपृथग्विधाः ॥ त्रिगुणत्वात्सदातासांफलंविसदृशंत्विह ॥ ११ ॥ सात्त्विक्याश्रद्धयाकर्तुःसुखित्वंजायतेसदा ॥ दुःखित्वंचतथाकर्तूराजस्याश्र
द्धयाभवेत् ॥ १२ ॥ दुःखित्वंचैवमूढत्वंतामस्याश्रद्धयोदितम् ॥ तारतम्यात्तुश्रद्धानांफलवैचित्र्यमीरितम् ॥ १३ ॥ अनाद्यविद्याविहितकर्मणांपरिणा
मजाः ॥ सहस्रशःप्रवृत्तास्तुगतयोद्विजपुंगव ॥ १४ ॥

कर्म करै और शास्त्रविहित पदवीमें परतंत्र होकर ॥ ७ ॥ सर्वदा जिस जिस प्रकार कामना करता है इस लोकमें उसीके अनुसार हे राजेन्द्र ! मनुष्य मृगपक्षियोंमें ॥
॥ ८ ॥ यह विपाकगति धर्मकी वशगामिनी कही है, यह तुम्हारे प्रश्नानुसार सब प्रकार उच्चावच गति कहीं ॥ ९ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! प्राणियोंके विहित
कर्म सबही समान हैं परमात्मा भगवान्ने इस जगत्को विचित्र क्यों किया है ? ॥ १० ॥ नारायण बोले हे नारद ! कर्ताकी श्रद्धाके अनुसार कर्मकी गति अनेक प्रकारकी
होती है. कारण कि, यह श्रद्धा त्रिगुणात्मक होनेसे फल भिन्न भिन्न देती है ॥ ११ ॥ सात्विकी श्रद्धासे कर्म करनेसे सदा सुख होता है और राजसी श्रद्धासे
दुःखरूप होता है ॥ १२ ॥ दुःख और मूढता तामसी श्रद्धासे होती है श्रद्धाके तारतम्यसे फल विचित्र होता है ॥ १३ ॥ अनादि अविद्यासे विहित कर्मोंके परिणामसे

होनेके कारण सहस्रों गति होजाती हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्रविस्तारसे मैं इनके भेद कहता हूं त्रिजगतीके अन्तरालमें दक्षिणदिशाकी ओर ॥ १५ ॥ भूमिके अधोभाग अतलके ऊपर अग्निष्वात्तानामक पितृगण और पितर ॥ १६ ॥ निवास करते हैं. वे परम समाधि साधनसे वहां स्थित हो अपने गोत्रोंको आशीर्वाद करते हैं ॥१७॥ इसीप्रकार पितृराजभगवान् यम अपने पुरुषोंद्वारा लाये हुए ॥१८॥ मृत प्राणीके प्रति यथाकर्म यथादोषके अनुसार दण्ड देते हैं दण्डधारी भगवत्के वे गण हैं॥ ॥१९॥ धर्मके तत्त्व जाननेवाले आज्ञामें वर्तनेवाले यथादेशमें नियोजित अपने गणोंको निरन्तर भेजते हैं।।२०।।कोई नरकोंकी संख्या इक्कीस कोई अट्ठाईस कहते हैं यथासं

तद्भेदान्वर्णयिष्यामिप्राचुर्येणद्विजोत्तम ॥ त्रिजगत्याअंतरालेदक्षिणस्यांदिशीहवै ॥ १५ ॥ भूमेरधस्तादुपरित्वतलस्यचनारद ॥ अग्निष्वात्ताः पितृगणावर्ततेपितरश्चह ॥१६॥ वसंतियस्यांस्वीयानां,गोत्राणांपरमाशिषः ॥ सत्याःसमाधिनीशीघ्रंत्वाशासानाःपरेणवै ॥१७॥ पितृराजोऽपिभगवान्सं परेतेषुजंतुषु ॥ विषयंप्रापितेष्वेषुस्वकीयैःपुरुषैरिह ॥ १८ ॥ सगणोभगवत्प्रोक्ताज्ञापरोदमधारकः ॥ यथाकर्मयथादोषंविदधातिविचारदृक् ॥ १९ ॥ स्वान्गणान्धर्मतत्त्वज्ञांन्सर्वानाज्ञाप्रवर्तकान् ॥ सदाप्रेरयतिप्राज्ञोयथादेशनियोजितान् ॥ २० ॥ नरकानेकविंशत्यासंख्ययावर्णयंतिहि ॥ अष्टाविंशमितान्केचित्तानुक्रमतोब्रुवे ॥ २१ ॥ तामिस्रअंधतामिस्रोरौरवोऽपितृतीयकः ॥ महारौरवनामाचकुंभीपाकोपरोमतः ॥ २२ ॥ कालसूत्रंतथाचाऽसिपत्रारण्यमुदाहृतम् ॥ सूकरस्यमुखंचांधकूपोऽथकृमिभोजनः ॥२३॥ संदंशस्तप्तमूर्तिश्चवज्रकंटकएवच ॥ शाल्मलीचाऽथदेवर्षेनाम्नावैतरणीतथा॥ ॥ २४ ॥ पूयोदःप्राणरोधश्चतथाविशसनंमतम् ॥ लालाभक्षःसारमेयादनमुक्तमतःपरम् ॥ २५ ॥ अवीचिरप्ययःपानंक्षारकर्दमएवच ॥ रक्षोगणाख्यसंभोजःशूलप्रोतोप्यतःपरम् ॥ २६ ॥ दंदशूकोवटारोधःपर्यावर्तनकःपरम् ॥ सूचीमुखमितिप्रोक्ताअष्टाविंशतिनारकाः ॥ २७ ॥ इत्येतेनारकानाम यातनाभूमयःपराः ॥ कर्मभिश्चापिभूतानांगम्याःपद्मजसंभव ॥ २८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ ॥छ॥ ॥ नारदउवाच ॥ कर्मभेदाःकतिविधाःसनातनमुनेमम ॥ श्रोतव्याःसर्वथैवैतेयातनाप्रातिभूमयः ॥ १ ॥

ख्यक आपसे वर्णन करता हूं।।२१।। तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव,महारौरव, कुंभीपाक ।।२२।। कालसूत्र, असिपत्रार्णव, सूकरसुख, अंधकूप, कृमिभोजन ।। २३।। संदंश, तप्तमूर्ति, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी।।२४।। पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन।।२५।।अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगण, संभोज,शूलप्रोत॥ २६॥ दंदशूक, वाटारोध, पर्यावर्तन, सूचीमुख यह अट्ठाईस नरक हैं॥२७॥ यह नारकियोंको दुःख देनेवाली भूमियें हैं. हे नारद ! कर्मद्वारा प्राणी इनमें गमन करते हैं॥ २८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ नारदजी बोले, हे सनातनमुने ! कर्मभेद कितने हैं और वे यातनाभूमि कैसे प्राप्त

होती हैं सो कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले जो दुष्टात्मा पराया धन, दारा, सन्तान, हरण करता है उसको यमदूत मारते हैं ॥ २ ॥ वे भयानक यमदूत कालपाशमें बांधकर महा दुखःदायक तामिस्र नरकमें डालते हैं ॥ ३ ॥ वहां यमदूत पाश हाथमें लिये उसको ताडते दंड देते और घुडकते हैं ॥ ४ ॥ हे नारद! तब यह नारकी मूर्च्छाको प्राप्त होता है जो कोई अपने स्वामीकी वंचना करके उसकी दाराको भोग करता है ॥ ५ ॥ यमकिंकर, उसको अंधतामिस्र नरकमें डालते हैं. जहां पड़कर इसको महादुःख होता है ॥ ६ ॥ तत्काल इसकी दृष्टि और मति नष्ट हो जाती है. मूल भग्न होनेसे जैसे वृक्ष होता है यही दशा इसकी होती है ॥ ७ ॥ इस कारण इसका अंधतामिस्रनाम कहा है. जो प्राणी अहंकारके वश हो निरन्तर भूतोंसे द्रोह करते हैं ॥ ८ ॥ और कार्यमें लंपट हो अपने कुटुम्बकोही पुष्ट करते

श्रीनारायणउवाच ॥ ॥ योवैपरस्यवित्तानिदारापत्यानिचैवहि ॥ हरतेसहिदुष्टात्मायमानुचरगोचरः ॥ २ ॥ कालपाशेनसंबद्धोयाम्यैरतिभयानकैः ॥ तामिस्रनामनरकेपात्यतेयातनास्पदे ॥ ३ ॥ ताडनंदंडनंचैवसंतर्जनमतःपरम् ॥ याम्याःकुर्वंतिपाशाढ्याःकश्मलंयातिचैवहि ॥ ४ ॥ मूर्च्छामायातिविवशोनारकीपद्मभूसुत ॥ यःपतिंवंचयित्वातुदारादीनुपभुज्यति ॥ ५ ॥ अंधतामिस्रनरकेपात्यतेयमकिंकरैः ॥ पात्यमानोयत्रजंतुर्वेदनापरवान्भवेत् ॥ ६ ॥ नष्टदृष्टिर्नष्टमतिर्भवत्येवाऽविलंबतः ॥ वनस्पतिर्भज्यमानमूलोयद्वद्भवेदिह ॥ ७ ॥ तस्मादप्यंधतामिस्रनाम्नाप्रोक्तःपुरातनैः ॥ एतन्ममाहमितियोभूतद्रोहेणकेवलम् ॥ ८ ॥ पुष्णातिप्रत्यहंस्वीयकुटुंबंकार्यलंपटः ॥ एतद्विहायचाऽत्रैवस्वाशुभेनपतेदिह ॥ ९ ॥ रौरवेनामनरकेसर्वसत्त्वभयावहे ॥ इहलोकेऽमुनायेतुर्हिंसिताजंतवःपुरा ॥ १० ॥ तएवरुरवोभूत्वापरत्रपीडयंतितम् ॥ तस्माद्रौरवमित्याहुःपुराणज्ञामनीषिणः ॥ ११ ॥ रुरुःसर्पादतिक्रूरोजंतुरुक्तःपुरातनैः ॥ एवंमहारौरवाख्योनरकोयत्रपूरुषः ॥ १२ ॥ यातनांप्राप्यमाणोहियःपरंदेहसंभवः ॥ क्रव्यादानामरुरवस्तंक्रव्येघातयंतिच ॥ १३ ॥ यउग्रःपुरुषःक्रूरःपशुपक्षिगणानपि ॥ उपरंधयतेमूढोयाम्यास्तंरंधयंतिच ॥ १४ ॥ कुंभीपाकेततैलेउपर्यपिचनारद ॥ यावंतिपशुरोमाणितावद्वर्षसहस्रकम् ॥ १५ ॥

हैं. वह यह सब यही छोडकर अपने कर्मसे ॥ ९ ॥ सब प्राणियोंको भयावह रौरवनरकमें पडते हैं और जिन्होंने इस लोकमें प्राणियोंकी हिंसा की है ॥ १० ॥ वेही रुरु होकर दूसरे जन्ममें उसको पीडा देते हैं. इस कारण पुराणज्ञाता महात्मा इसको रौरव कहते हैं ॥ ११ ॥ पुरातन कहते हैं कि, रुरु सर्पसे भी अति क्रूर हैं. इसीप्रकार महारौरव नामक नरक है ॥ १२ ॥ जो दूसरोंको यातना करते हैं वे उसमें पडते हैं और रुरुनामक क्रव्यादगण उसके शरीरको भक्षण करते हैं ॥ १३ ॥ जो कोई क्रूर और उग्र पुरुषपशुपक्षियोंको बंधनमें डालता है यमदूत उसको बांधते हैं ॥ १४ ॥ वह उसे कुंभीपाकमें डालकर ऊपरसे तत्ता तेल डालते हैं जितने पशुके रोम हैं

उतनेही सहस्रवर्षतक ॥ १५ ॥ पिता ब्राह्मणका द्रोही कालसूत्र नरकमें पडता है अग्नि और सूर्यद्वारा तपाया जाकर नरकमें पडता है ॥ १६ ॥ क्षुधा, पिपासासे. उसका शरीर भीतर, बाहर, तप्त होता है. वहीं रहना, सोना फिरना और बैठना, दौडना, होता है ॥ १७ ॥ जो अपने वेद मार्गसे पृथक् होकर पाखण्डमार्गमें चलता है विना आपदाके ऐसा करनेसे उस पापी पुरुषको यमकिंकर ॥ १८ ॥ असिपत्रनामक नरकमें डालते हैं और उस नारकीके चावक मारते हैं ॥ १९ ॥ तब वह इधर उधर दौडता है और दुधारावाले असिपत्रोंसे विदीर्ण होजाता है "यातना भोगनेको एक शरीर मिलता है जिसको पीडा होती और प्राण नहीं निकलता" ॥ २० ॥ सब अंग छेदन होनेसे "हा मैं मरा" ऐसा कह मूर्च्छित होता है परमदुःखको प्राप्त हो पदपदमें गिरता है ॥ २१ ॥ और वह दुष्टबुद्धि अपने धर्मानुसार पाखण्ड

पितृविप्रब्राह्मणध्रुक्कालसूत्रेसनारके ॥ अग्न्यर्काभ्यांतप्यमानेनारकीविनिवेशितः ॥ १६ ॥ क्षुत्पिपासादह्यमानोंतःशरीरस्तथावहिः ॥ आस्तेशेतेचेष्टतेचा ऽवतिष्ठतिचधावति ॥ १७ ॥ निजवेदपथाद्योवैपाखंडंचोपयातिच ॥ अनापद्यपिदेवर्षेतंपापंपुरुषंभटाः ॥ १८ ॥ असिपत्रवनंनामनरकंवेशयंतिच ॥ कशयाप्रहरं त्येवनारकीतद्रुतस्तदा ॥ १९ ॥ इतस्ततोधावमानउत्तालमतिवेगितः ॥ असिपत्रैश्छिद्यमानउभयत्रचधारभिः ॥ २० ॥ संछिद्यमानसर्वांगोहाहतोऽस्मीतिमू र्च्छितः ॥ वेदनांपरमांप्राप्तःपतत्येवपदेपदे ॥ २१ ॥ स्वधर्मानुगतंभुंक्तेपाखंडफलमल्पधीः ॥ योराजाराजपुरुषोदंडयेद्वैत्वधर्मतः ॥ २२ ॥ द्विजेशरीरदंडंचपापी यात्रारकीचसः ॥ नरकेसूकरमुखेपात्यतेयमकिंकरैः ॥ २३ ॥ विनिष्पिष्टावयवकोवलवद्भिस्तथेक्षुवत् ॥ आतर्स्वरेणस्वनयन्मूर्च्छितःकश्मलंगतः ॥ २४ ॥ सपी डयमानोवहुधावेदनांयात्यतीवहि ॥ विविक्तपरपीडोयोप्यविविक्तपरव्यथाम् ॥ २५ ॥ ईश्वरांकितवृत्तीनांव्यथामाचरतेस्वयम् ॥ सचांधकूपेपततितदभिद्रो हयंत्रितै ॥ २६ ॥ तत्राऽसौजंतुभिःक्रूरैःपशुभिर्मृगपक्षिभिः ॥ सरीसृपैश्चमशकैर्यूकामत्कुणजातिभिः ॥ २७ ॥ मक्षिकाभिश्चतमसिदंदशूकैश्चपीड्यते ॥ परिक्रामतिचैवाऽत्रकुशरीरेचजंतुवत् ॥ २८ ॥

फलको भोगता है जो राजा वा राजपुरुष अधर्मसे प्रजाको दंड देता है ॥ २२ ॥ तथा ब्राह्मणके शरीरमें दण्डप्रहार करता है वह नरकको जाता है. यमदूत उसको सूकरमुख नरकमें डालते हैं ॥ २३ ॥ वहां कोल्हूमें इसके अंग वलपूर्वक पीसे जाते हैं. तब आर्तस्वरसे शब्द करता हुआ मूर्च्छित होता है ॥ २४ ॥ महापीडाको प्राप्त हो वेदनाको प्राप्त होता है जो पराई पीडाको नहीं जानता और कुत्सित कर्म करता है ॥ २५ ॥ और ईश्वरद्वारा कल्पित रक्तपानादिकी वृत्तिवाले मत्कुणादिको व्यथा देते हैं वह अंधकूपनाम नरकमें डाले जाते हैं ॥ २६ ॥ वहां यह क्रूर जन्तु पशुमृग, पक्षीगण, सरीसृप, मशक, यूका, मत्कुण, (खटमल) ॥ २७ ॥ मक्खी, दंदशूकादि

द्वारा अंधकारमें पीडा पाते हैं. यह अवस्था कुशरीरकी नाईं देहमें आक्रमण करती है ॥ २८ ॥ जो पुरुष यत्किंचित् अन्न और धनादिको प्राप्त होकर उससे शास्त्रविहित पंचयज्ञके अनुष्ठानपूर्वक देवताके उद्देशसे विभाग न करके काकके समान स्वयं भोग करता है ॥ २९ ॥ वह पापी पुरुष यमदूतोंद्वारा कृमिभोजन नरकमें पडकर अपने दुष्ट कर्मोंका फल भोगता है ॥ ३० ॥ वह भयंकर कीडोंका कुंड लाखयोजनके विस्तारमें है वहां वे कृमिरूपसे उसका भक्षण करते हैं ॥ ३१ ॥ जो विना अतिथियोंको दिये स्वयं आपही खाजाता है वह इसमें पड़ता है जो कोई चोरी वा बलसे सुवर्ण वा रत्न ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण वा और किसीका हरण करता है विना आपत्तिके ऐसा करनेपर उसे यमदूत ॥ ३३ ॥ लोहेके लाल किये अग्नि पिंडोंसे उसे कूटते हैं. जो पुरुष आगम्या स्त्रीमें गमन करता और जो स्त्री अगम्य

यस्तुसंविहितैःपंचयज्ञैःकाकैश्वसंस्तुतः ॥ अश्नातिचाऽसंविभज्ययत्किंचिदुपपद्यते ॥ २९ ॥ सपापपुरुषःक्रूरैर्याम्यैश्चकृमिभोजने ॥ नरकाधमकेदुष्टकर्मणापरिपात्यते ॥ ३० ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णंकृमिकुंडेभयंकरे ॥ कृमिरूपंसमासाद्यभक्ष्यमाणश्चतैःस्वयम् ॥ ३१ ॥ अप्रत्ताप्रहुतादोयःपातमाप्नोतितत्रवै ॥ यस्तुस्तेयेनचबलाद्धिरण्यंरत्नमेवच ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणस्याऽपहरतिअन्यस्यापिचकस्यचित् ॥ अनापदिचदेवर्षेत ममुत्रयमानुगाः ॥ ३३ ॥ अयस्मयैरग्निपिंडैःसद्दशैर्निष्कुर्वंतिच ॥ योऽगम्यांयोषितंगच्छेदगम्यंपुरुषंचया ॥ ३४ ॥ तावमुत्रापिकशयाताडयंतोयमानु गाः ॥ तिग्मयालोहमय्याचसूर्म्याप्यालिंगयंतितम् ॥ ३५ ॥ तांचापियोपितंसूर्म्यालिंगयंतियमानुगाः ॥ यस्तुसर्वाभिगमनःपुरुषःपापसंचयी ॥ ३६ ॥ निरयेऽमुत्रतंयाम्याःशाल्मलींरोपयंतितम् ॥ वज्रकंटकसंयुक्तांशाल्मलींतामयस्मयीम् ॥ ३७ ॥ राजन्याराजपुरुषायेवापाखंडवर्तिनः ॥ धर्मसेतुंविभिं दंतितेपरेत्यगतानराः ॥ ३८ ॥ वैतरण्यांपतंत्येवभिन्नमर्यादपातकाः ॥ नद्यांनिरयदुर्गस्यपरिखायांचनारद ॥ ३९ ॥ यादोगणैःसमंतात्तुभक्ष्यमाणाइ तस्ततः ॥ नात्मनावियुजंत्येवनाऽसुभिश्चापिनारद ॥ ४० ॥

पुरुष चांडालादिमें गमन करती है ॥ ३४ ॥ परलोकमें यमदूत उन दोनोंको चाबकोंसे मारते हैं और तीव्र लोहेकी गरम स्त्री पुरुषोंकी मूर्तिसे उनको आलिंगन कराते हैं ॥ ३५ ॥ स्त्रीको पुरुषकी मूर्तिसे आलिंगन कराते हैं जो पापी पुरुष सबमें गमन करता है ॥ ३६ ॥ यमदूत उसको शाल्मली नरकमें डालते हैं. जहां वज्रकंटक युक्त लोहेके सेमलकेसे कांटे हैं ॥ ३७ ॥ राजा वा राजपुरुष जो पाखण्डी है जो धर्मसेतुको नष्ट करते हैं वही मरकर मर्यादाके तोडनेवाले वैतरणीमें पडते हैं. हे नारद ! वह घोर नरककी नदी है वही नरकरूपी दुर्गकी परिखा है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उसमें जीवगण सब ओरसे भक्षण करते हैं तथापि उनका प्राण और

देह नष्ट नहीं होता ॥ ४० ॥ अपने कर्मानुसार निरन्तर दुःख पाते हैं. विष्ठा, मूत्र, पूय, रक्त, केश, अस्थि, नख, मांस ॥ ४१ ॥ मेद चर्बीसे संयुक्त नदीमें पापी डाले जाते हैं जो उच्च वृषलीपति होते भ्रष्टाचार, निर्लज्ज ॥ ४२ ॥ सत् आचरण नियमके त्यागी स्वेच्छाचारी हैं वेही इसमें आकर विष्टा मूत्र श्लेष्मा रक्त ॥ ४३ ॥ तथा श्लेष्म मलसे पूर्णनदीमें पडते हैं. यमानुचरके वर्ग इन्हीं वस्तुओंको प्राणीजनोंको खवाते हैं ॥ ४४ ॥ जो द्विजाति श्वानगर्दभादिके पालक हैं तथा निरन्तर मृगयामें आसक्त वृथा मृग मारते हैं ॥ ४५ ॥ मरनेपर यमराजके दूत उन क्रूर कर्मियोंको वाणोंसे लक्षकर मारते हैं ॥ ४६ ॥ जो नराधम दंभाचार परायण होकर पशुओंको दम्भयज्ञ प्रवृत्त कर मारते हैं यमकिंकर उनको विशसन नामक नर्कमें ॥ ४७ ॥ डालकर भयंकर कशाघातसे पीडा देते हैं. जो द्विज कामसे मोहित हो अपनी सवर्ण भार्यामें ॥ ४८ ॥

स्वीयेनकर्मपाकेनोपतपंतिचसर्वतः ॥ विण्मूत्रपूयरक्तैश्चकेशास्थिनखमांसकैः ॥ ४१ ॥ मेदोवसासंयुतायांनद्यामुपपतंतिते ॥ वृषलीपतयोयेचनष्टशौचागतत्रपाः ॥ ४२ ॥ आचारनियमैस्त्यक्ताःपशुचर्यापरायणाः ॥ तेऽत्रानुकष्टगतयेविण्मूत्रश्लेष्मरक्तकैः ॥४३॥ श्लेष्ममलसमापूर्णेनिपतंतिदुराग्रहाः ॥ तदेवखादयंत्येतान्यमानुचरवर्गकाः ॥४४॥ येश्वानगर्दभादीनांपतयोवैद्विजातयः ॥ मृगयारसिकानित्यमतीर्थेमृगघातकाः ॥४५॥ परेतांस्तान्यमभटालक्षीभूतान्नराधमान् ॥ इषुभिश्चविभिंदंतितांस्तान्दुर्नयमागतान् ॥ ४६ ॥ येदंभादंभयज्ञेषुपशून्घ्नंतिनराधमाः ॥ तानमुष्मिन्यमभटानरकेवैशसेतदा ॥ ॥ ४७ ॥ निपात्यपीडयंत्येवकशाघातैर्दुरासदैः ॥ योभार्यांचसवर्णांवैद्विजोमदनमोहितः ॥४८॥ रेतःपातयतेमूढोऽमुत्रतंयमकिंकराः ॥ रेतःकुंडेपातयंतिरेतःसंपाययंतिच ॥ ४९ ॥ येदस्यवोऽग्निदाश्चैवगरदाःसार्थघातकाः ॥ ग्रामान्सार्थान्विलुंपंतिराजानोराजपूरुषाः ॥ ५० ॥ तान्परेतान्यमभटानयंतिश्वानकादनम् ॥ विंशत्यधिकसंख्याताःसारमेयामहाद्भुताः ॥ ५१ ॥ सप्तशत्यासमाख्याताऽरभसंखादयंतिते ॥ सारमेयादनंनामनरकंदारुणंमुने ॥ ५२ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिअवीचिप्रमुखान्मुने ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

॥ श्रीनारायणउवाच ॥ येनराःसर्वदासाक्ष्येअनृतंभाषयंतिच ॥ दानेविनिमयेऽर्थस्यदेवर्षेपापबुद्धयः ॥ १ ॥

मूढतासे वीर्यपात करता है उसको यमकिंकर रेतके कुंडमें डालकर वीर्यपात कराते हैं ॥ ४९ ॥ जो चोर अग्नि और विषके देनेवाले सार्थनाशक हैं तथा ग्राम और सार्थके नाशक राजा और राजपुरुष हैं ॥ ५० ॥ उनके मरनेपर यमदूत उनको श्वानकाद नरकमें डालते हैं. वहां महा अद्भुत वीस अधिक ॥ ५१ ॥ सातसौ सारमेय हैं जो बड़े वेगसे प्राणियोंको भक्षण करते हैं. हे मुने ! सारमेयादन नामक दारुण नरक है ॥ ५२ ॥ अब अवीची आदि नरकोंका वर्णन करता हूं ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ श्रीनारायण बोले जो मनुष्य साक्षीमें सदा असत्य भाषण करते हैं तथा अर्थके

लेने देनेमें असत्य भाषण करते हैं ॥ १ ॥ वे मरकर अवीचिनरकमें पडते हैं. सौ योजन ऊंचे पहाड़परसे नीचे गिराये जाते हैं ॥ २ ॥ अनाकाशमें नीचा शिरकर इस नरकमें गिराये जाते हैं. जहां स्थलभाग जलके समान तरंगवाला दीखता है ॥ ३ ॥ इसीसे इसे अवीचि कहते हैं, इसमें गिरकर शरीर तिल २ छिन्न होजाता है. पर हे नारद ! मरता नहीं, फिर नवीन शरीर होजाता है ॥ ४ ॥ हे नारद ! जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य सोमपान कर प्रमादवश सुरापान करते हैं ॥ ५ ॥ तो वह भी नरकमें जाते हैं. हे मुने ! यमदूत उनको गरम लोहा पिलाते हैं ॥६॥ हे नारद ! जो निरन्तर अग्निसे पिघलाया जाता है जो नराधम अपने गौरवपरायण होकर ॥ ७ ॥ विद्या जन्म तपसे बडे वर्णाश्रमके आचारवाले जनोंको वरिष्ठ और श्रेष्ठ जानकर आदर नहीं करते ॥ ८ ॥ यमदूत उनको क्षारकर्दम नरकमें डालते हैं. वहां नीचे

तेप्रेत्याऽमुत्रनरकेअवीच्याख्येऽतिदारुणे ॥ योजनानांशतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नःपतंतिहि ॥ २ ॥ अनाकाशेऽधःशिरसस्तदवीचीतिनामके ॥ यत्रस्थलंदृश्यतेचजलवद्वीचिसंयुतम् ॥ ३ ॥ अवीचिमत्ततस्तत्रतिलशश्छिन्नविग्रहः ॥ म्रियतेनैवदेवर्षेपुनरेवावरोप्यते ॥ ४ ॥ योवाद्विजोवाराजन्यो वैश्योवाब्रह्मसंभव ॥ सोमपीथस्तत्कलत्रंसुरांवापिबतीवहि ॥५॥ प्रमादतस्तुतेषांवैनिरयेपरिपातनम् ॥ कुर्वंतियमदूतास्तेपानंकार्ष्णायसंमुने ॥६॥ वह्निनाद्रवमाणस्यनितरांब्रह्मसंभव ॥ संभावनेनस्वस्यैवयोऽधमोपिनराधमः ॥ ७ ॥ विद्याजन्मतपोवर्णाश्रमाचारवतोनरान् ॥ वरीयसोपिनबहुमन्यतेपुरुषाधमः ॥ ८ ॥ सनीयतेयमभटैःक्षारकर्दमनामके ॥ निरयेऽर्वाक्शिराघोरादुरंतयातनाश्नुते ॥ ९ ॥ येवैनरायजंत्यन्यंनरमेधेनमोहिताः ॥ स्त्रियोपिवानरपशुंखादंत्यत्रमहामुने ॥ १० ॥ पशवोनिहितास्तेतुयमसद्मनिसंगताः ॥ सौनिकाइवतेसर्वेविदार्यसितधारया ॥ ११ ॥ असृक्पिबंतिनृत्यंतिगायंतिबहुधामुने ॥ यथेहमांसभोक्तारःपुरुषादादुरासदाः ॥ १२ ॥ अनागसोपियोरण्येग्रामेवाब्रह्मपुत्रक ॥ वैश्रंभकैरुपसृतान्विश्रंभय्यजिजीविषून् ॥ १३ ॥ शूलसूत्रादिषुप्रोतान्क्रीडनोत्कारकानिव ॥ पातयंतिचतेप्रेत्यशूलपातेपतंतिह ॥ १४ ॥

शिरकर घोर यातना भोगनी पडती है ॥ ९ ॥ जो स्त्री वा पुरुष मोहित होकर अन्य देवको नरपशुद्वारा यजन करते हैं अर्थात् मांस भक्षणको ऐसा करते हैं ॥ १० ॥ वे मरे हुए पशु यमलोकमें प्राप्त हुए सैनिकके समान तीक्ष्ण खड्गसे विदीर्ण कर ॥ ११ ॥ उन पुरुषोंका रक्तपान कर अनेक प्रकार नाचते गाते हैं. जैसे यहां दुरासद मांसभोजी पुरुष हैं वैसाही करते हैं ॥ १२ ॥ हे नारद ! जो विना अपराध वन वा ग्राममें अनेक प्रकार विश्वासोंके उपायोंसे जीवन धारणकी इच्छावालोंको विश्वास देकर ॥ १३ ॥ शूलसूत्रादिमें पाकर क्रीडा करते हैं. मरकर वे यमदूतोंद्वारा शूलपात नरकमें डाले जाते हैं ॥ १४ ॥

वहां उनका देह शूलमें पोया जाता है क्षुधा पिपासासे बड़े पीडित होते हैं तीक्ष्ण तुंडवाले कंक और बकोंसे ताडित होते हैं ॥ १५ ॥ वे पीडित हो अपने पापोंको स्मरण करते हैं जो तीक्ष्ण वृत्तिवाले पुरुष प्राणियोंको उद्विग्न करते हैं॥ १६॥ जैसे सर्प भय देते हैं ऐसे पुरुष भी नरकमें पडतेहैं जो नरक दंदशूक है उसमें निरन्तर रहते हैं॥ १७॥ वे पांच सात मुखवाले नरकवासियोंको निरन्तर काटते हैं. हे नारद ! जिस प्रकार बिलमें शयन करनेवाले मूर्षोंको सर्प उद्वेजित करते हैं ॥ १८॥ जो जीवगणों को अन्धकूपमें तथा अन्धकारमय गुहादिमें बद्ध करतेहैं यमकिंकर हाथ उठाकर उनको॥ १९॥ विषविमिश्रित अग्नि और धूमसे परिपूर्ण वैसीही गुहाओंमें रुद्ध करते हैं ॥ २०॥ जो गृहपति ब्राह्मण समयपर प्राप्त हुए अतिथियोंको नेत्रोंसे भस्म करनेसे पापदृष्टि फैलाकर देखते हैं॥ २१॥ यमके अनुचरगण वज्रतुण्ड कंक और काकवटादि

शूलादिषुप्रोतदेहाःक्षुत्तृड्भ्यांचातिपीडिताः॥तिग्मतुंडैःकंकबकैरितश्चेतश्चताडिताः ॥१५॥ पीडिताआत्मशमलंबहुधासंस्मरंतिहि ॥ येभूतानुद्वेजयंति नराउल्वणवृत्तयः॥ १६॥यथासर्पादिकास्तेपिनरकेनिपतंतिहि॥दंदशूकाभिधानेचयत्रोत्तिष्ठंतिसर्वतः॥ १७॥पंचाननाःसप्तमुखाग्रसंतिनरकागतान्॥यथा बिलेशयाविप्रक्रूरबुद्धिसमन्विताः ॥१८॥ येऽवटेषुकुसूलादिगुहादिषुनिरुंधते॥तानमुत्रोद्यतकराःकीनाशपरिसेवकाः ॥१९॥ तेष्वेवोपविशित्वाचसगरेण चवह्निना ॥ धूमेनचानिरुंधंतिपापकर्मरतान्नरान् ॥२०॥ योऽतिथीन्समयप्राप्तान्दिधक्षुरिवचक्षुषा ॥ पापेनेहालोकयेच्चस्वयंगृहपतिर्द्विजः ॥२१॥ तस्या पिपापदृष्टेर्हिनिरयेयमकिंकराः ॥ अक्षिणीवज्रतुंडायेकंकाःकाकवटादयः ॥२२॥ गृध्राःक्रूरतराश्चापिप्रसह्योत्पाटयंतिहि ॥ यआढ्याभिमातिर्यातिअहंकृ त्यातिगर्वितः ॥२३॥ तिर्यक्प्रेक्षणएवाऽत्राऽभिविशंकीनराधमः ॥ चिंतयाऽर्थस्यसर्वत्रायतिव्ययस्वरूपया॥२४॥शुष्यद्धृदयवक्त्रश्चानिर्वृतिंनैवगच्छति ॥ ग्रहवद्रक्षतेचार्थंसप्रेतोयमकिंकरैः ॥२५॥ सूचीमुखेचनरकेपात्यतेनिजकर्मणा ॥ वित्तग्रहंचपुरुषंवायकाइवयाम्यकाः ॥२६॥ किंकराःसर्वतोंगेषुसूत्रैःप रिवयंतिहि ॥ एतेबहुविधावित्तनरकाःपापकर्मणाम् ॥ २७ ॥ नराणांशतशःसंतियातनास्थानभूमयः ॥ सहस्रशोऽपिदेवर्षेउक्तानुक्तास्तथापिहि॥२८॥

विहंगम ॥ २२ ॥ तथा क्रूरतरगृध्र बलपूर्वक उनके नेत्र फोडते हैं जो धनगर्वित पुरुष अहंकारसे बडा गर्व प्रकाश करते ॥ २३ ॥ और तिरछीदृष्टिसे गुरुआदिमें धन चोरादिका सन्देह करते और निरन्तर धनके आयव्ययमें ही चिन्तित रहते हैं ॥ २४ ॥ इसीमें सदा जिनका हृदय और मुख सूखता है कभी शान्त नहीं होता. धनकी रक्षा ब्रह्मराक्षसके समान करते हैं यमकिंकर उनको ॥ २५ ॥ उनके कर्मानुसार सूचीमुख नरकमें डालते हैं और इस अर्थ पिशाच पुरुषको वायक (जुलाहे) के समान यमदूत ॥ २६ ॥ सर्वांगमें सूत्रद्वारा वयन करते हैं. इसप्रकारसे अनेको नरक पापियोंको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ पापियोंको सैकडों यातना स्थानकी भूमियें

हैं हे देवर्षे! सहस्त्रों कहे और वे कहे स्थान हैं ॥ २८ ॥ हे मुने! इनमें बडी यातना प्राप्त होती है और धर्मपरायण सुखके लोकोंमें गमन करते हैं ॥ २९ ॥ उनको उत्तम स्थान प्राप्तिका धर्म बहुत प्रकार कहाहै वह देवीपूजनरूप श्रेष्ठ धर्म है ॥ ३० ॥ जिसके अनुष्ठान मात्रसे यह प्राणी नरकको नहीं जाता, पूजन करनेवाले मनुष्योंको वह देवी संसारसागरसे उद्धार करती है ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ छ ॥ नारद बोले हे भगवन्! देवीआराधनरूप धर्म किसप्रकार है? वह देवी आराधित होकर किसप्रकार परमपद देती है? ॥ १ ॥ उसके आराधनकी विधि क्या है? वह

विंशतिनरकानेतान्यातनाबहुलान्मुने ॥ तथाधर्मपराश्चापिलोकान्यांतिसुखोद्गतान् ॥ २९ ॥ स्वधर्मोबहुधागीतोयथातवमहामुने ॥ देवीपूजनरूपोहिदेव्याराधनलक्षणः ॥ ३० ॥ येनाऽनुष्ठितमात्रेणनरोननरकंव्रजेत् ॥ सादेवीभवपाथोधेरुद्धर्त्रीपूजितानृणाम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधेत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ छ ॥ नारदउवाच ॥ धर्मश्चकीदृशस्तातदेव्याराधनलक्षणः ॥ कथमाराधितादेवीसाददातिपरंपदम् ॥ १ ॥ आराधनविधिःकोवाकथमाराधिताकदा ॥ केनसादुर्गनरकाद्दुर्गात्राणप्रदाभवेत् ॥ २ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ देवर्षेशृणुचित्तैकाग्र्येणमेविदुषांवर ॥ यथाप्रसीदतेदेवीधर्माराधनतःस्वयम् ॥ ३ ॥ स्वधर्मोयादृशःप्रोक्तस्तंचमेशृणुनारद ॥ अनादाविहसंसारेदेवीसंपूजितास्वयम् ॥ ४ ॥ परिपालयतेघोरसंकटादिषुसामुने ॥ सादेवीपूज्यतेलोकैर्यथावत्तद्विधिंशृणु ॥ ५ ॥ प्रतिपत्तिथिमासाद्यदेवीमाज्येनपूजयेत् ॥ घृतंदद्याद्ब्राह्मणायरोगहीनोभवेत्सदा ॥६॥ द्वितीयायांशर्करयापूजयेज्जगदंबिकाम् ॥ शर्करांप्रददेद्विप्रेदीर्घायुर्जायतेनरः ॥ ७ ॥

कब किसप्रकार आराधन कीजाती है? किसप्रकार वह बडे नरकसे निकालकर रक्षा करती है ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले हे ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ आप एकाग्रचित होकर सुनिये. जैसे धर्माराधनसे देवी प्रसन्न होती है ॥ ३ ॥ हे नारद! जिसको स्वधर्म कहते हैं वह आप मुझसे सुनिये. अनादि इस संसारमें देवीकी भली प्रकार पूजा करनेसे ॥४॥ हे मुने! वह घोरसंकटसे इस संसारमें रक्षा करती है. सो लोक उस देवीको जिस विधानसे पूजते हैं वह सुनो ॥५॥ प्रतिपदातिथिको देवीका घृतसे पूजन करै और ब्राह्मणके निमित्त घृत देनेसे सदा रोगहीन होता है ॥ ६ ॥ द्वितीयाको जगदम्बिकाका शर्करासे पूजन करै ब्राह्मणको शर्करा देनेसे दीर्घायुके

प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ तृतीयाको देवीका दूधसे पूजन करै ब्राह्मणको इस दिन क्षीर देनेसे सब दुःख दूर होजाते हैं ॥ ८ ॥ चौथको देवी और ब्राह्मणको पुए देनेसे विघ्न नहीं होते ॥ ९ ॥ पांचैको देवीको और ब्राह्मणको कदली देनेसे पुरुष बुद्धिमान् होता है ॥ १० ॥ छठको मधुसे देवीका पूजन करै ब्राह्मणको मधु देनेसे कान्तिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ सप्तमीको गुड और नैवेद्य देवी तथा ब्राह्मणको देनेसे शोकरहित होता है ॥ १२ ॥ अष्टमीको देवीके निमित्त नैवेद्य और नारियल दे ब्राह्मणको देनेसे यह प्राणी तापहीन होता है ॥ १३ ॥ नौमीको देवी और ब्राह्मणके निमित्त लाजा देनेसे इस लोक और परलोकमें सुख मिलता है ॥ १४ ॥

तृतीयादिवसेदेव्यैदुग्धंपूजनकर्मणि ॥ क्षीरंदत्त्वाद्विजाग्र्यायसर्वदुःखातिगोभवेत् ॥ ८ ॥ चतुर्थ्यांपूजनेपूपादेयादेव्यैद्विजायच ॥ अपूपाएवदातव्यान विघ्नैरभिभूयते ॥ ९ ॥ पंचम्यांकदलीजातंफलंदेव्यैनिवेदयेत् ॥ तदेवब्राह्मणेदेयंमेधावान्पुरुषोभवेत् ॥ १० ॥ षष्ठीतिथौमधुप्रोक्तंदेवीपूजनकर्मणि ॥ ब्राह्मणायचदातव्यंमधुकांतिर्यतोभवेत् ॥ ११ ॥ सप्तम्यांगुडनैवेद्यंदेव्यैदत्त्वाद्विजायच ॥ गुडंदत्त्वाशोकहीनोजायतेद्विजसत्तम ॥ १२ ॥ नारिकेलमथाष्टम्यां देव्यैनैवेद्यमर्पयेत् ॥ ब्राह्मणायप्रदातव्यंतापहीनोभवेन्नरः ॥ १३ ॥ नवम्यांलाजमंबायैचार्पयित्वाद्विजायच ॥ दत्त्वासुखाधिकोभूयादिहलोकेपरत्रच ॥ १४ ॥ दशम्यामर्पयित्वातुदेव्यैकृष्णतिलान्मुने ॥ ब्राह्मणायप्रदत्त्वातुयमलोकाद्भयंनहि ॥ १५ ॥ एकादश्यांदधितथादेव्यैचार्पयतेतुयः ॥ ददातिब्राह्मणायैतद्देवीप्रियतमोभवेत् ॥ १६ ॥ द्वादश्यांपृथुकान्देव्यैदत्त्वाचार्याययोददेत् ॥ तानेवचमुनिश्रेष्ठसदेवीप्रियतांव्रजेत् ॥ १७ ॥ त्रयोदश्यांचदुर्गायैचणकान्प्रददातिच ॥ तानेवदत्त्वाविप्रायप्रजासंततिमान्भवेत् ॥१८॥ चतुर्दश्यांचदेवर्षेदेव्यैसक्तून्प्रयच्छति ॥ तानेवदद्याद्विप्रायशिवस्यदयितोभवेत् ॥ १९ ॥ पायसंपूर्णिमातिथ्यामपर्णायैप्रयच्छति ॥ ददातिचद्विजाग्र्यायपितॄनुद्धरतेऽखिलान् ॥ २० ॥ तत्तिथौहवनंप्रोक्तंदेवीप्रीत्यै महामुने ॥ तत्तात्तिथ्युक्तवस्तूनामशेषारिष्टनाशनम् ॥ २१ ॥ रविवारेपायसंचनैवेद्यंपरिकीर्तितम् ॥ सोमवारेपयःप्रोक्तंभौमेचकदलीफलम् ॥ २२ ॥

हे मुने ! दशमीको देवीके निमित्त काले तिल चढावे ब्राह्मणको देनेसे यमका भय नहीं होता ॥ १५ ॥ एकादशीको दहीसे देवीकी पूजा कर ब्राह्मणको देनेसे देवीका प्रिय होता है ॥ १६ ॥ द्वादशीको देवी और ब्राह्मणको पृथक (चूरा) देनेसे देवीका प्रिय होता है ॥ १७ ॥ तेरसको देवी और ब्राह्मणको चने देनेसे प्रजा और सन्तान वाला होता है ॥ १८ ॥ हे नारद ! चौदसको देवी और ब्राह्मणके निमित्त सत्तू देनेसे शिवका प्रिय होता है ॥ १९ ॥ पूर्णिमाको जो अपर्णाका खीरसे पूजन कर ब्राह्मणको देता है उसके सब पितरोंका उद्धार होता है ॥ २० ॥ हे महामुने ! उस तिथिमें पूजापटलके कहे अनुसार नित्य हवन करै तो सम्पूर्ण अरिष्ट शान्त होते हैं ॥ २१ ॥ रविवारको पायसका

नैवेद्य देना, सोमवारको दूध, मंगलको कदलीफल ॥ २२ ॥ बुधको नवनीत (मक्खन) गुरुवारको शर्करा, शुक्रवारको मिश्री ॥ २३ ॥ शनिवारको गौका घी, नैवेद्य कहा है. हे मुने ! अब सत्ताईस नक्षत्रोंका नैवेद्य सुनो ॥ २४ ॥ घी, तिल, शर्करा, दही, दूध, दूधकी मलाई, दधिकूर्ची, लड्डू, फेनी, घृतमण्डक ॥ २५ ॥ कसार, वटपत्र (पापड) घेवर, वटक, खर्जूररस, गुडनिर्मितचणकपिष्ट, शहत, घृतमें भुना सूरण ॥ २६ ॥ गुड पृथुक, द्राक्षा, खजूर, चारक, (खाद्यविशेष) अपूप (पूये) मक्खन, मूंगके लड्डू ॥ २७ ॥ और मातुलिंग (विजौरानींबू) यह क्रमसे अश्विनी आदि सब नक्षत्रोंका नैवेद्य है. अब विष्कंभादि योगका नैवेद्य कहते हैं ॥ २८ ॥ इन पदार्थोंके देनेसे जगदम्बा प्रसन्न होती है. गुड, मधु, घी, दूध, दही, तक्र, पुए ॥ २९ ॥ मक्खन, कर्कटी, कूष्माण्ड, मोदक, पनस, केला, जामन, आम, तील ॥ ३० ॥ नारंगी, दाडिमी, बेर, आमला, पायस, पृथूक, चना

बुधवारेचसंप्रोक्तनवनीतंनवंद्विज ॥ गुरुवारेशर्करांचसितांभार्गववासरे ॥२३॥ शनिवारेघृतंगव्यंनैवेद्यंपरिकीर्तितम् ॥ सप्तविंशतिनक्षत्रनैवेद्यंश्रूयतांमुने ॥ ॥ २४ ॥ घृतंतिलंशर्करांचदधिदुग्धंकिलाटकम् ॥ दधिकूर्चीमोदकंचफेणिकांघृतमंडकम् ॥२५॥ कंसारंवटपत्रंचघृतपूरमतःपरम् ॥ वटकंकोकरसकंपूरणंमधुसूरणम् ॥२६॥ गुडंपृथुकद्राक्षेचखर्जूरंचैवचारकम् ॥ अपूपंनवनीतंचमुद्गंमोदकएवच ॥२७॥ मातुलिंगमितिप्रोक्तंभनैवेद्यंचनारद ॥ विष्कंभादिपुयोगेषुप्रवक्ष्यामिनिवेदनम् ॥२८॥ पदार्थानांकृतेष्वेषुप्रीणातिजगदंबिका ॥ गुडंमधुघृतंदुग्धंदधितक्रंत्वपूपकम् ॥२९॥ नवनीतंकर्कटींचकूष्मांडंचापिमोदकम् ॥ पनसंकदलंजंबुफलमाम्रफलंतिलम् ॥ ३० ॥ नारंगंदाडिमंचैवबदरीफलमेवच ॥ धात्रीफलंपायसंचपृथुकंचणकंतथा ॥ ३१ ॥ नारिकेलंजंभफलंकसेरुंसूरणंतथा ॥ एतानिक्रमशोविप्रनैवेद्यानिशुभानिच ॥ ३२ ॥ विष्कंभादिषुयोगेषुनिर्णीतानिमनीषिभिः ॥ अथनैवेद्यमाख्यास्येकरणानांपृथङ्मुने ॥ ३३ ॥ कंसारंमंडकंफेणीमोदकंवटपत्रकम् ॥ लड्डुकंघृतपूरंचतिलंदधिघृतंमधु ॥ ३४ ॥ करणानामिदंप्रोक्तंदेवीनैवेद्यमादरात् ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामिदेवीप्रीतिकरंपरम् ॥ ३५ ॥ विधानंनारदमुनेशृणुतत्सर्वमादृतः ॥ चैत्रशुद्धतृतीयायांनरोमधुकवृक्षकम् ॥३६॥ पूजयेत्पंचखाद्यंचनैवेद्यमुपकल्पयेत् ॥ एवंद्वादशमासेषुतृतीयातिथिषुक्रमात् ॥३७॥ शुक्लपक्षेविधानेननैवेद्यमभिदध्महे ॥ वैशाखमासेनैवेद्यंगुडयुक्तंचनारद ॥३८॥

॥ ३१ ॥ नारियल, जंबीरी, कसेरू, जमीकंद. हे विप्र ! यह क्रमसे सुन्दर नैवेद्य ॥ ३२ ॥ विष्कंभादि योगोंमें महर्षियोंने निर्णय की हैं. हे मुने ! अब पृथक् पृथक् करणोंका नैवेद्य कहते हैं ॥ ३३ ॥ कसार, मण्डक, फेनी, मोदक, वटपत्रक, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घी मधु ॥ ३४ ॥ यह करणोंमें आदरसे नैवेद्य देना अब और भी देवीका प्रीतिविधायक ॥ ३५ ॥ विधान कहता हूं. हे नारद! सो आदरसे सुनो. मनुष्य चैत्र शुदी दोयजको महुएके पेड़को ॥ ३६ ॥ पूजनकर पंचमेवा निवेदन करै. इसप्रकार बारह महीनोंमें तीजआदि तिथियोंमें क्रमसे ॥ ३७ ॥ शुक्लपक्षके विधानसे नैवेद्य दे. हे नारद ! वैशाखमासमें गुडयुक्त नैवेद्य दे ॥ ३८ ॥

ज्येष्ठके महीनेमें देवीकी प्रीतिके निमित्त मधु दे आषाढमें नवनीत और मधूक दे॥ ३९॥श्रावणमें दही, भादोंमें शर्करा,आश्विनमें पायस,कार्त्तिकमें दूधदे॥ ४०॥अघहनमें फेनी, पूषमें दधिकूर्चिका, माघमें गौका घी॥ ४१॥और फाल्गुनमें नारियलका नैवेद्यदे. इसप्रकार बारह महीनेमें क्रमसे नैवेद्य देकर पूजे ॥ ४२ ॥ मंगला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मातंगी, काली, कमलवासिनी ॥ ४३ ॥ शिवा, सहस्रचरणवाली, सब मंगलकी रूपवाली, इन नामोंसे देवीको मधूकवृक्षमें पूजन करै ॥ ४४ ॥ फिर मधूकमें स्थित देवेशीकी सब कामकी प्राप्ति और व्रतपूर्तिके निमित्त स्तुति करै ॥ ४५॥ पुष्करनेत्र जगत्की माता माहेश्वरी महादेवी

ज्येष्ठमासेमधुप्रोक्तंदेवीप्रीत्यर्थमेवतु ॥ आषाढेनवनीतंचमधूकस्यनिवेदनम् ॥ ३९ ॥ श्रावणेदधिनैवेद्यंभाद्रमासेचशर्करा ॥ आश्विनेपायसं प्रोक्तंकार्त्तिकेपयउत्तमम् ॥ ४० ॥ मार्गेफेण्युत्तमाप्रोक्तापौषेचदधिकूर्चिका ॥ माघेमासिचनैवेद्यंघृतंगव्यंसमाहरेत् ॥ ४१ ॥ नारिकेलंचनैवेद्यंफाल्गुनेपरिकीर्तितम् ॥ एवंद्वादशनैवेद्यैर्मासिचक्रमतोऽर्चयेत् ॥ ४२ ॥ मंगलावैष्णवीमायाकालरात्रिर्दुरत्यया ॥ महामायामतंगीचकालीकमलवासिनी ॥ ॥ ४३ ॥ शिवासहस्रचरणासर्वमंगलरूपिणी ॥ एभिर्नामपदैर्देवींमधूकेपरिपूजयेत् ॥ ४४ ॥ ततःस्तुवीतदेवेशींमधूकस्थांमहेश्वरीम् ॥ सर्वकामसमृद्ध्यर्थंव्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥ ४५ ॥ नमःपुष्करनेत्रायैजगद्धात्र्यैनमोस्तुते ॥ माहेश्वर्यैमहादेव्यैमहामंगलमूर्तये ॥ ४६ ॥ परमापापहंत्रीचपरमार्गप्रदायिनी ॥ परमेश्वरीप्रजोत्पत्तिःपरब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ४७ ॥ मददात्रीमदोन्मत्तामानगम्यामहोन्नता ॥ मनस्विनीमुनिध्येयामार्तंडसहचारिणी ॥४८॥ जयलोकेश्वरिप्राज्ञेप्रलयांबुदसन्निभे ॥ महामोहविनाशार्थंपूजिताऽसिसुराऽसुरैः ॥ ४९ ॥ यमलोकाभावकर्त्रींयमपूज्यायमाग्रजा ॥ यमनिग्रहरूपाचयजनीयेनमोनमः ॥ ५० ॥ समस्वभावासर्वेशीसर्वसंगविवर्जिता ॥ संगनाशकरीकाम्यरूपाकारुण्यविग्रहा ॥ ५१ ॥ कंकालक्रूराकामाक्षीमीनाक्षीमर्मभेदिनी ॥ माधुर्यरूपशीलाचमधुरस्वरपूजिता ॥ ५२ ॥

महामंगलमूर्त्तिके निमित्त नमस्कार है ॥ ४६ ॥ परम पापनाशिनी, मुक्तिमार्गदायिनी,परमेश्वरी प्रजाकी उत्पत्तिकारण, परब्रह्मस्वरूपिणी ॥४७॥ मददायका, मदोन्मत्ता, मानसे गम्या,महाउन्नत,मनस्विनी,मुनियोंसे ध्यान करनेयोग्य सूर्यमंडलमें स्थित॥ ४८॥सब लोकोंकी ईश्वरी, प्राज्ञतमा, प्रलयमेघके समान कान्तिमान्, महामोहके नाश करनेको सुरासुरोंसे पूजित, आपकी जय हो ॥ ४९ ॥ तुमही यमलोककी निवारण करनेवाली, यमसे पूजनीय, यमकी अग्रजा,यमकी निग्रहरूप, सबकी यजनयोग्य, तुमको प्रणाम है ॥५०॥ समान स्वभाव, सबकी अधीश्वरी, सब संगसे रहित लोककी विषयाशक्तिनाशिनी, काम्या, दयामयशरीरवाली॥ ५१॥ कंकालक्रूरा,कामाक्षी,

मीनाक्षी, मर्मभेदनी, माधुर्यरूपशीलवाली, मधुरस्वरसे पूजित वा प्रणवसे पूजित ॥ ५२ ॥ तुम मायाबं रस्वरूपिणी, मंत्र जपकी सहायतासे प्राप्त होनेवाली, निदिध्यासनरूप, एकान्तविचारसे प्रसन्न होनेवाली साधकमनुष्योंके मानसमें प्राप्त, महादेवकी प्रियकरनेवाली ॥ ५३ ॥ अश्वत्थ, वट, नींब, आम, कैथ, बेर, पनस, अर्क, (आक) करीरादि क्षीरवृक्षस्वरूपवाली ॥ ५४ ॥ तुम दुग्धवल्लीमें निवासकरती दयनीयस्वरूप होनेसे अधिक दयावाली, दाक्षिण्य और करुणारूपवाली, सर्वज्ञवल्लभा, हो आपकी जय हो ॥ ५५ ॥ इसप्रकारके स्तोत्रसे पूजनके अन्तमें देवीकी स्तुति करे तौ मनुष्यको व्रतका सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य देवीकी प्रीति करनेवाले इस स्तोत्रको नित्यप्रति पढ़ते हैं उसको आधिव्याधि और शत्रुका भय नहीं होता ॥ ५७ ॥ अर्थी अर्थ, धर्मार्थी धर्म, कामी कामना, मोक्षार्थी मोक्षको प्राप्त

महामंत्रवतीमंत्रगम्यामंत्रप्रियंकरी ॥ मनुष्यमानसगमामन्मथारिप्रियंकरी ॥५३॥ अश्वत्थवटनिंबाम्रकपित्थबदरीगते ॥ पनसार्ककरीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणि ॥ ५४ ॥ दुग्धवल्लीनिवासार्हेदयनीयेदयाधिके ॥ दाक्षिण्यकरुणारूपेजयसर्वज्ञवल्लभे ॥ ५५ ॥ एवंस्तवेनदेवेशींपूजनांतेस्तुवीततताम् ॥ व्रतस्यसकलंपुण्यंलभतेसर्वदानरः ॥ ५६ ॥ नित्यंयःपठतेस्तोत्रंदेवीप्रीतिकरंनरः ॥ आधिव्याधिभयंनास्तिरिपुभीतिर्नतस्यहि ॥ ५७ ॥ अर्थार्थीचार्थमाप्नोति धर्मार्थीधर्ममाप्नुयात् ॥ कामानवाप्नुयात्कामीमोक्षार्थीमोक्षमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणोवेदसंपन्नोविजयीक्षत्रियोभवेत् ॥ वैश्यश्चधनधान्याढ्योभवेच्छूद्रः सुखाधिकः ॥ ५९ ॥ स्तोत्रमेतच्छ्राद्धकालेयःपठेत्प्रयतोनरः ॥ पितृणामक्षयातृप्तिर्जायतेकल्पवर्तिनी ॥६०॥ एवमाराधनंदेव्याःसमुक्तंसुरपूजितम् ॥ यःकरोतिनरोभक्त्यासदेवीलोकभाग्भवेत् ॥ ६१ ॥ देवीपूजनतोविप्रसर्वेकामाभवंतिहि ॥ सर्वपापहतिःशुद्धामतिरंतेप्रजायते ॥ ६२ ॥ यत्रतत्रभवेत्पूज्योमान्योमानधनेषुच ॥ जायतेजगदंबायाःप्रसादेनविरंचिज ॥ ६३ ॥ नरकाणांनतस्याऽस्तिभयंस्वप्नेऽपिकुत्रचित् ॥ महामायाप्रसादेनपुत्रपौत्रादिवर्धनः ॥ ६४ ॥ देवीभक्तोभवत्येवनाऽत्रकार्याविचारणा ॥ इत्येवंतेसमाख्यातंनरकोद्धारलक्षणम् ॥ ६५ ॥

होता है ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण इसके पाठसे वेदसम्पन्न, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनधान्यसमृद्धि और शूद्र अधिक सुख पाता है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य नियत होकर श्राद्ध कालमें इस स्तोत्रको पढते हैं तौ उसके पितरोंकी कल्पपर्यन्त अक्षय तृप्ति होती है ॥ ६० ॥ इसप्रकार सुरपूजित देवीका आराधन कहा जो मनुष्य भक्तिसे पूजा करता है वह देवीके लोकको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ हे नारद ! देवीके पूजनसे सबकाम प्राप्त होते हैं और अन्तमें सब पापसे रहित हो शुद्धमति होती है ॥ ६२ ॥ वह जहाँ तहाँ पूजित और मान पाता है. हे नारद ! जगन्माताकेही प्रसादसे वह उत्तम होता है ॥ ६३ ॥ उसको नरकका भय स्वप्नमेंभी नहीं होता. महामायाके प्रसादसे पुत्र पौत्रकी वृद्धि होती है ॥ ६४ ॥ वह निःसन्देह देवीका भक्त होता है. यह तुमसे नरकके उद्धारलक्षणवाला धर्म कहा ॥ ६५ ॥

महादेवीका पूजन सब मंगलकारक है हे मुने ! इसी प्रकार महीनोंके क्रमसे मधूकपूजन करना ॥ ६६ ॥ जो सब प्रकार यह मधूक पूजन करता है वह पापरहित होता है उसको कोई रोगादि बाधाका भय नहीं होता ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त प्रकृतिस्वरूपिणी महादेवीके अपर पंचक कीर्त्तन करैंगे उसके नामरूप और उत्पत्ति आदि समुदाय जगतको आनंददायक है ॥६८॥ हे मुने ! आख्यान और माहात्म्यके सहित यह प्रकृतिपंचकश्रवण करो यह कौतूहलकारी और मुक्तिका विधायक है॥६९॥

पूजनंहिमहादेव्याःसर्वमंगलकारकम् ॥ मधूकपूजनंतद्वन्मासानांक्रमतोमुने ॥ ६६ ॥ सर्वंसमाचरेद्यस्तुपूजनंमधुकाह्वयम् ॥ नतस्यरोगबाधादिभयमुद्भवतेऽनघ ॥६७॥ अथाऽन्यदपिवक्ष्यामिप्रकृतेःपंचकंपरम् ॥ नाम्नारूपेणचोत्पत्त्याजगदानंददायकम् ॥६८॥ साख्यानंचसमाहात्म्यंप्रकृतेःपंचकंमुने ॥ कुतूहलकरंचैवशृणुमुक्तिविधायकम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायांवैयासिक्यांसमाराधनविधानेऽष्टमस्कंधे देवीपूजननिरूपणंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ ॥ स्कंधश्चायंसमाप्तः ॥ ८ ॥ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

नंदाग्निवसुभिः (८३९) पद्यैर्द्वैपायनमुखच्युतैः ॥ देवीभागवतस्याऽस्याष्टमःस्कंधउदीरितः ॥ १ ॥

"इसमें विराटस्वरूप वर्णन कर पश्चात् एक स्वरूपसे उपासना कही है सो विस्तारपूर्वक अष्टमस्कंध (८३९) श्लोकोंमें कहा है"

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां समाराधनविधानेअष्टमस्कंधे देवीपूजननिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥ ८ ॥ ॥ शुभमस्तु ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रितम्। संवत् १९५८,
शके १८२३, सन् १९०१ ई०

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते अष्टमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते नवमस्कंधः प्रारभ्यते ॥

दोहा—भालबिन्दु केशर लसत, करुणासार शृँगार ॥ फुल्लकमललोचन विमल, वन्दों वारंवार ॥ १ ॥
जगदम्बाके चरणगह, नारायण संवाद ॥ सो सब भाषा कर लिखत, बुध ज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

भगवान् नारायण नारदजीसे बोले हे वत्स ! जो वेदादि सब शास्त्रोंमेंही त्रिगुण साम्यावस्थ मायाशबलित परब्रह्मरूपिणी प्रकृतिनामसे विख्यात है. वह पराप्रकृतिही सृष्टिके समयमें गणेश जननी, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री इन पंच मूर्तिमें आविर्भूत होती है ॥ १ ॥ नारायणके मुखसे यह बात सुनतेही नारदजीने कहा हे भगवन् ! जो पुरुष इस जगत्में ज्ञानी कहकर प्रसिद्ध हैं. आप उन सबमें अग्रणी हैं, साधुता वा ज्ञानवत्तादि सभी आपमें जाज्वल्यमान रहती है. अतएव आप अनुग्रहपूर्वक कहिये कि, वह मूलप्रकृति कान ह ? अर्थात् वह चैतन्यरूपिणीहै वा जड़ात्मिका ? क्योंकि मैं ने सुनाहै कि "मायाशबलित ब्रह्महो प्रकृति नामसे कहा जाताहै."

श्रीगणेशायनमः ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ॥ गणेशजननीदुर्गाराधालक्ष्मीःसरस्वती ॥ सावित्रीचसृष्टिविधौप्रकृतिःपंचधास्मृता ॥ १ ॥ नारदउवाच ॥ आविर्बभूवसाकेनकावासाज्ञानिनांवर ॥ किंवातल्लक्षणंसाधोबभूवपंचधाकथम् ॥ २ ॥ सर्वासांचरितंपूजाविधानंगुणईप्सितः ॥ अवतारःकुत्रकस्यास्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥३॥ श्रीनारायणउवाच ॥ प्रकृतेर्लक्षणंवत्सकोवावक्तुंक्षमोभवेत् ॥ किंचित्तथापिवक्ष्यामियच्छ्रुतंधर्मवक्त्रतः ॥ ॥ ४ ॥ प्रकृष्टवाचकःप्रश्चकृतिश्चसृष्टिवाचकः ॥ सृष्टौप्रकृष्टायादेवीप्रकृतिःसाप्रकीर्तिता ॥ ५ ॥ गुणेसत्त्वेप्रकृष्टेचप्रशब्दोवर्ततेश्रुतः ॥ मध्यमेरजसिकृ श्चतिशब्दस्तमसिस्मृतः ॥ ६ ॥

जो हो.आप उसके लक्षणप्रकाश करके कहिये तो मैं सब समझ लूंगा. और एक बात यह है कि, उस मूलप्रकृतिके आविर्भावका कारण क्या है? विशेषकर उनका पांच मूर्तियोंमेंही आविर्भाव क्यों होता है ॥ २ ॥ विशेषतः उन अवतीर्ण दुर्गा इत्यादि पंच मूर्त्तिमें प्रत्येकको चरित्र गाथा, पूजाविधि और उनकी पूजाका क्या फल है ? और उनमें कौन कौन मूर्त्ति किस किस स्थलमें अवतीर्ण हुई थी ? यह आप वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! इस विश्वसंसारमें ऐसा कौनह कि, जो सम्पूर्ण रूपसे प्रकृतिके लक्षण कहनेमें समर्थ हो ? किन्तु ता भी मैंने अपने पिता धर्मकेमुखसे जो कुछ सुना है, वह किंचित् कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ 'प्र' यह उपसर्ग प्रकृष्टवाचक और " कृति " यह पद सृष्टिवाचक है, अतएव जो सृष्टिविषयमें प्रकृष्ट रूपा है, वही महादेवी प्रकृतिनामसे प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ हे वत्स ! तुमसे प्रकृतिशब्दका यह जो व्युत्पत्तिलक्षण कहा, यह तटस्थ लक्षण मात्र है, अब उसके स्वरूपका लक्षण कहता हूं, सावधान हो सुनो. तीनों गुणोंमें सत्वगुणको विमल और ज्ञानप्रकाश

करनेके कारण सर्वोत्कृष्ट जानना चाहिये. सुतरां "प्र" शब्द प्रकृष्टार्थबोधक सत्वगुणमें वर्तित है. विक्षेपतादोष होनेके कारण रजोगुण मध्यम है. अतएव 'कृ' शब्दको रजोगुणमें प्रवर्तित होनेसे मध्यम जानना चाहिये. तमोगुण ज्ञानका आवरक होनेके कारण अधमनामसे विख्यात है "ति" शब्द तमोगुण बोधक है ॥ ६ ॥ अतएव निरतिशयरूपमें आवरण विक्षेपादि दोषरहित वह गुणातीत चिन्मयी ब्रह्मरूपिणी जब उल्लिखित लक्षणा क्रान्त तीनों गुणोंसे मिलित होकर सर्वशक्तियुक्त होती है तिसी-समय सृष्टिकार्यमें प्रधान है. इसीलिये उनको प्रकृति कहा जाता है ॥ ७ ॥ हे वत्स नारद ! प्रकृति शब्दकी सलक्षण व्युत्पत्ति फिर कहता हूं सुनो. सृष्टिकी पूर्व अवस्थाका नाम "प्र" और कृति शब्द सृष्टिवाचक है. अतएव जो सृष्टिके पहिलेभी देदीप्यमान रहती है, वह महादेवी ही प्रकृतिनामसे कही गई है ॥८॥ इसका तात्पर्य यही है कि, वह निरञ्जनदेव परमात्मा सृष्टिकार्यके निमित्त अपनी योगमायाके प्रभावसे दो प्रकार आविर्भूत होते हैं, उन्हींके दक्षिणार्द्धभागका नाम पुरुष, और वामार्द्ध भागका नाम प्रकृति है ॥ ९ ॥ अतएव हे वत्स ! उन प्रकृतिदेवीको नित्य ब्रह्मरूपा सनातनी जानना चाहिये. वस्तुतः जिसप्रकार अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति दोनों

त्रिगुणात्मकस्वरूपायासाचशक्तिसमन्विता ॥ प्रधानासृष्टिकरणेप्रकृतिस्तेनकथ्यते ॥७॥ प्रथमेवर्ततेप्रश्चकृतिश्चसृष्टिवाचकः ॥ सृष्टेरादौचयादेवी प्रकृतिःसाप्रकीर्तिता ॥८॥ योगेनात्मासृष्टिविधौद्विधारूपोबभूवसः ॥ पुमांश्चदक्षिणार्धांगोवामार्धप्रकृतिःस्मृता ॥ ९ ॥ साचब्रह्मस्वरूपाचनित्यासा चसनातनी ॥ यथात्माचतथाशक्तिर्यथाग्नौदाहिकास्थिता ॥ १० ॥ अतएवहियोगींद्रैःस्त्रीपुंभेदोनमन्यते ॥ सर्वंब्रह्ममयब्रह्मञ्छश्वत्सदपिनारद ॥११॥ स्वेच्छामयस्येच्छयाचश्रीकृष्णस्यासिसृक्षया ॥ साऽऽविर्बभूवसहसामूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ १२ ॥

परस्पर भिन्न स्थित नहीं है इसीप्रकार पुरुष और प्रकृतिको अभिन्न जानो. हेवत्स नारद ! तुम ब्रह्माके मानसपुत्र हो अतएव तुमको समझानेके लिये बहुत श्रम उठाना नहीं पडेगा ॥ १० ॥ इसीलिये योगेन्द्र पुरुष प्रकृति पुरुषको अभिन्न चक्षुसे देखते हैं. फलतः एकमात्र वह नित्य निरंजन चिदानंदमय ब्रह्महो निरन्तर प्रकृति पुरुषरूपमें सर्वत्र विराजमान हैं. इस अनन्त विश्वब्रह्माण्डमें जो कुछ दिखाई देता है वह सर्वही ब्रह्ममय है, इस विश्व संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो उस प्रकृति पुरुषात्मक ब्रह्मके विना क्षण कालके लिये भी प्रकाश पासके ! ॥ ११ ॥ हे वत्स ! वह परब्रह्म निर्वचनीय महिमा शक्तिसंपन्न होनेपर भी मैंने तुम्हारी शक्ति और ज्ञानका उदय होनेके लिये उनके किंचित्मात्र तत्वका वर्णन किया इसप्रकार इच्छामय सर्व ज्ञानैश्वर्य शक्तिमान् उन कृष्ण परमात्माको सृजनाभिलाषात्मिका इच्छाके उदय होतेही सहसा वह मूलप्रकृति (स्वरूप पराशक्ति) प्रथम सर्व नियन्त्री भगवती रूपमें (साम्यावस्थ मायोपहित ब्रह्मरूपिणी होकर) प्रादुर्भूत हुई ॥ १२ ॥

तदनन्तर सृष्टि—विषयक भिन्न भिन्न कार्य संपादन करनेके लिये हो,वा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये हो, अपने शरीरसे निज इच्छासे भक्तानुग्रहरूप ॥ १३॥ पांच शक्ति मूर्त्ति उत्पादन करीं यद्यपि यह पंच शक्तिही जगत्की सर्व प्रधान कहकर विख्यातहैं किन्तु तो भी इनमें जो दुर्गानामसे प्रसिद्ध है, यही सर्व मंगलमयी पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी हैं क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण जीवोंका मंगलसाधन करनेके लिये इस दुर्गाशक्तिके गर्भसेही गणेशरूपमें आविर्भूत होते हैं, इस कारण यही विश्व जगत्में विष्णुमाया नारायणी सब जीवोंका आश्रयरूप कही जाती हैं वास्तवमें यह दुर्गाशक्तिही परममंगलमय परब्रह्म कृष्णकी प्रियतमारूप शक्ति है ॥ १४ ॥ हे वत्स! तुमसे अधिक और क्या कहूं! यही स्थिर जानो कि यह सर्वमंगलस्वरूप सनातनी भगवती दुर्गादेवीही सबकी अधिष्ठात्री देवता है इसी कारण क्या ब्रह्मादि देवतागण

तदाज्ञयापंचविधासृष्टिकर्मविभेदिका ॥ अथभक्तानुरोधाद्वाभक्तानुग्रहविग्रहा ॥ १३ ॥ गणेशमातादुर्गायाशिवरूपाशिवप्रिया ॥ नारायणीविष्णुमायापूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पजितास्तुता ॥ सर्वाधिष्ठात्रीदेवीसाशर्वरूपासनातनी ॥ १५ ॥ धर्मसत्यापुण्यकीर्तिर्यशोमंगलदायिनी ॥ सुखमोक्षहर्षदात्रीशोकार्तिदुःखनाशिनी ॥१६॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा ॥ तेजःस्वरूपापरमातदधिष्ठातृदेवता ॥१७॥ सर्वशक्तिस्वरूपाचशक्तिरीशस्यसंततम् ॥ सिद्धेश्वरीसिद्धिरूपासिद्धिदासिद्धिरीश्वरी ॥ १८ ॥ बुद्धिर्निद्राक्षुत्पिपासाछायातंद्रादयास्मृतिः ॥ जातिःक्षांतिश्चभ्रांतिश्चशांतिःकांतिश्चचेतना ॥ १९ ॥

क्या मुनिगण क्या मनुष्यगण सभी उनकी अर्चन और स्तवादि करते हैं ॥ १५ ॥ इन भगवती दुर्गाके भाग्य एकवार प्रसन्न होनेपर यह शरणागत भक्तोंके सब शोक दुःखादि विनाश करके धर्म, चिरस्थायिनी कीर्त्ति, परम पवित्र मंगलमय यश एवं आनन्दादि समस्त सुख और मोक्षपर्यन्त देती है ॥ १६ ॥ यह नितान्त शरणागत दीनभक्तोंका परम आश्रयस्वरूप होकर उनकी सब विपदजालसे रक्षा करती है वास्तवमें इनकोही परमात्मा श्रीकृष्णके अन्तःकरणकी अधिष्ठात्रीरूपा तेजोमयी पराशक्ति जानना चाहिये ॥ १७ ॥ यह सर्वशक्तिस्वरूप भगवती दुर्गाही परमात्मा परमेश्वरकी नित्य संगिनी पराशक्ति है यही समस्त सिद्धपुरुषोंकी परमाराध्य है अठारह सिद्धि इनकेही हाथमें हैं, यही आराधनासे संतुष्ट होकर भक्तोंको अभिलषित सिद्धिप्रदान करती है ॥ १८ ॥ यह महादेवीही जगत्में स्थित जीवोंकी बुद्धि,

निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति, भ्रान्ति, शान्ति, कान्ति, चेतना ॥ १९ ॥ तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी और धृतिरूपा है यही वेदादि शास्त्रमें विश्वरूपिणी महामाया कहकर कीर्तित हुई है, फलतः यह जगदाराध्य शक्तिही परमात्मा कृष्णकी स्वरूपा शक्ति है ॥ २० ॥ हे वत्स ! मैंने उन अनन्तगुणमयी भगवती दुर्गाकी जो सब गुणगाथा वर्णन की यह श्रुतिवर्णित प्रसिद्ध गुणराशिमें कुछेक अंशमात्र है क्योंकि वेदही जब उनके अनन्त गुणग्राम वर्णन करके शेष नहीं कर सकते तब इस विश्वमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है जो उनके संपूर्ण गुणोंकी महिमा वर्णन करनेमें समर्थ हो ! तो केवल इतनाही जानो कि, मैंने जो कुछ कहा है, उसमें कहीं शास्त्रका मत अतिक्रम करके नहीं कहा सो जो हो उन परमेश्वरकी पराशक्तिके पांच अवतारोंमेंसे तुमने दुर्गारूपा प्रथमाशक्तिका माहात्म्य कुछेक सुना अब उनकी शक्तिके अवतार माहात्म्यका विषय कुछेक वर्णन करता हूं सुनो ॥ २१ ॥ परमात्माको द्वितीय अवताररूपा शक्तिका नाम पद्मा लक्ष्मी है, यह विशुद्ध सत्वस्वरूपा और यह महाशक्तिही परमात्मा कृष्णके संपूर्ण ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवता है ॥ २२ ॥ यह परम मनोहर मूर्त्ति लक्षी रूपा महादेवी अतिशय

तुष्टिःपुष्टिस्तथालक्ष्मीर्धृतिर्मायातथैवच ॥ सर्वशक्तिस्वरूपासाकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ २० ॥ उक्तःश्रुतौश्रुतगुणश्चातिस्वल्पायथोगमम् ॥ गुणोऽस्त्यनंतोऽनंतायाअपरांचनिशामय ॥ २१ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपायापद्मासापरमात्मनः ॥ सर्वसंपत्स्वरूपासातदधिष्ठातृदेवता ॥ २२ ॥ कांताऽतिदांताशांताचसुशीलासर्वमंगला ॥ लोभमोहकामरोषमदाहंकारवर्जिता ॥ २३ ॥ भक्तानुरक्तापत्युश्चसर्वाभ्यश्चपतिव्रता ॥ प्राणतुल्याभगवतःप्रेमपात्रंप्रियंवदा ॥२४॥ सर्वसस्यात्मिकादेवीजीवनोपायरूपिणी ॥ महालक्ष्मीश्चवैकुंठेपतिसेवारतासती ॥२५॥ स्वर्गेचस्वर्गलक्ष्मीश्चराजलक्ष्मीश्चराजसु ॥ गृहेषुगृहलक्ष्मीश्चमर्त्यानांगृहिणांतथा ॥ २६ ॥ सर्वप्राणिषुद्रव्येषुशोभारूपामनोहरा ॥ कीर्तिरूपापुण्यवतांप्रभारूपानृपेषुच ॥ २७ ॥

जितेन्द्रिय है अतएव यह अतीव शान्तप्रकृति सुशील और समस्त मंगलकी आधारभूमि है, अचंभेकी बात यही है कि ऐसे असाधारण गण होनेपर भी लोभ, मोह, काम क्रोध अहंकार कोई शत्रु उनको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ यह महादेवी निजपति और भक्तोंपर अत्यन्त अनुरक्त हैं, विशेषकर वह निरन्तर प्रियंवदा होनेसे भगवान्‌के प्राणके समान प्रीतिभाजन होती है, इन सब असामान्य गुणोंके कारण इन्होंने पतिव्रताओंमें प्रधान आसन ग्रहण किया है ॥ २४ ॥ यह महाशक्ति जीवोंकी जीवन रक्षाके लिये एकांशमें शस्यरूपिणी है किन्तु स्वरूपसे यह जगत्‌में सतीधर्मका आदर्शरूप होकर महालक्ष्मी रूपसे वैकुण्ठ धाममें निरन्तर निजपति वैकुण्ठनाथकी पदसेवामें निरत रहती है ॥ २५ ॥ हे वत्स ! यह महाशक्ति रूपिणीही स्वर्गधामकी स्वर्गलक्ष्मी राजाओंकी राजलक्ष्मी और मर्त्यलोकमें पुण्यवान् पुरुषोंकी गृहलक्ष्मी है ॥ २६ ॥ हेनारद ! सम्पूर्ण प्राणियोंमें और सम्पूर्ण द्रव्यसमूहमें जो मनोहर शोभा दिखाई देती है, वह समस्तही यह है यही पुण्यात्माओंकी

कीर्त्तिरूप और बलवान् राजाओंका प्रभाव स्वरूप है ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहूं ! यह स्थिर जानो कि, यह निरन्तर परोपकार व्रतरत साधुओंके अन्तरमें दयारूपसे वैश्योंमें वाणिज्य रूपसे और पापात्माओंके घरमें कलहके अंकुरस्वरूपसे विराजमानहै ॥ २८ ॥ वास्तवमें इस लक्ष्मीरूपा दूसरी शक्तिको सम्यक् प्रकार जगतकी पूजनीय और वन्दनीय जानना चाहिये. अब परमेश्वरकी ज्ञानाधिष्ठात्री, वाक्य बुद्धि और विद्यारूप तीसरी शक्तिके अवतारका विषय कुछेक कहता हूं सुनो ॥ २९ ॥ जो इस अनन्तविश्वकी समस्त विद्यास्वरूप हैं जो महाशक्ति परमात्मा मनुष्यके हृदयमें बुद्धिरूपसे अवस्थित होकर मेधा ग्रंथधारण सामर्थ्य, कविता शक्ति, स्मृति शक्ति, और प्रतिभाशक्ति कार्यकालमें तत्तद् विषयकी स्फूर्ति प्रदान करती है उन तीसरी अवतारशक्तिका नाम सरस्वती है ॥ ३० ॥ सुधीपुरुषको किसी विषयमें सन्देह होनेपर यही उसका वह दुर्बोध व्याख्या अर्थ ध्यानमें स्थित करके सब संशय छेदन और नाना विषयक सिद्धान्त सबका भिन्न भिन्न प्रकारसे अर्थ संकलन

वाणिज्यरूपावणिजांपापिनांकलहांकुरा । दयारूपाचकथितावेदोक्तासर्वसंमता ॥ २८ ॥ सर्वपूज्यासर्ववंद्याचाऽन्यांमत्तोनिशामय ॥ वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिष्ठात्रीचपरमात्मनः ॥ २९ ॥ सर्वविद्यास्वरूपायासाचदेवीसरस्वती ॥ साबुद्धिःकवितामेधाप्रतिभास्मृतिदानृणाम् ॥ ३० ॥ नानाप्रकारसिद्धांतभेदार्थकलनामता ॥ व्याख्याबोधस्वरूपाचसर्वसंदेहभंजिनी ॥ ३१ ॥ विचारकारिणीग्रंथकारिणीशक्तिरूपिणी ॥ स्वरसंगीतसंधानतालकारणरूपिणी ॥ ३२ ॥ विषयज्ञानवाग्रूपाप्रतिविश्वोपजीविनी ॥ व्याख्यावादकरीशांतावीणापुस्तकधारिणी ॥ ३३ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपाचसुशीलाश्रीहरिप्रिया ॥ हिमचंदनकुंदेंदुकुमुदांभोजसन्निभा ॥ ३४ ॥ यजंतीपरमात्मानंश्रीकृष्णंरत्नमालया ॥ तपःस्वरूपातपसांफलदात्रीतपस्विनाम् ॥ ३५ ॥

कर देती है ॥ ३१ ॥ हे वत्स ! पण्डितोंकी ग्रंथकरणशक्ति वा विचारशक्ति अथवा संगीत व्यवसायीगणोंकी स्वरसंगीतका सन्धान या तालयादि इस महाशक्तिको इन सबकाही कारण जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ यह महादेवीही समस्त शास्त्रकी व्याख्या और वाद अर्थात् वितर्क रूप हैं. इनकोही ब्रह्माण्डस्थ जीवोंकी स्वं स्व विषयमें ज्ञानरूपा और वाक्यरूपा जानना चाहिये. अधिक क्या ? इस महाशक्तिको अवलम्बन करकेही जीवगण अपनी अपनी जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं "मैंही सब विद्याका आधार भूमि हूं" सब जीवोंको यह विदित करनेके लिये ही इन महादेवी सरस्वतीने एक हाथमें वीणा और दूसरे हाथमें पुस्तक धारणकी है ॥ ३३ ॥ यह शुद्ध–सत्व–स्वरूप सुशील और श्रीहरिकी अत्यन्त प्रियतमा है इनका वर्ण हिमशिला चन्दन कुन्द चन्द्र कुमुद और श्वेत कमलके समान गौर है ॥ ३४ ॥ यह सदा रत्नकी माला लेकर परमात्मा श्रीकृष्णके नामका जप करती है यह तपस्वरूप और तपस्वियोंको तपका फल देती है ॥ ३५ ॥

यह सबकी सिद्धि और विद्यास्वरूप हैं यह सदा सबको सिद्धि प्रदान करती हैं इनके न होनेसे जगत्‌केसम्पूर्ण ब्राह्मण निरन्तर मृत मनुष्यके समान मूक (गूँगे) होते हैं ॥ ३६ ॥ वेदमें जो जगदम्बिकाको तीसरी देवी कहकर वर्णन किया है यही वह तीसरी देवी सरस्वती है यह मैंने उनकी कथा वर्णन की अब शास्त्रानुसार अपरा देवीका माहात्म्य वर्णन करता हूं सुनो॥ ३७॥ जो चार वर्णकी जननी जो संपूर्ण वेदाङ्ग और सब छन्दोंकी उत्पत्तिका निदान हैं जो संध्यावंदन मंत्र और तंत्रका स्थानीय बीज है, जो स्वयं सब विषयमें पण्डित हैं ॥ ३८॥ जो स्वयं तपस्विनी होकरभी ब्राह्मणोंकीजाति और तपःस्वरूप हैं, जो ब्रह्मण्यतेज और सर्वप्रकार संस्कार स्वरूप हैं ॥ ३९॥ जो स्वयं पवित्ररूपा,सावित्री और गायत्रीनामसे कहीजाती हैं,जो सदा ब्रह्मलोकमेंवासकरतीहैं,सर्वतीर्थ पवित्र होनेके लिये जिनके स्पर्शकी प्रार्थना करते हैं॥ ४०॥

सिद्धिविद्यास्वरूपाचसर्वसिद्धिप्रदासदा ॥ ययाविनातुविप्रौघोमूकोमृतसमःसदा॥३६॥देवीतृतीयागदिताश्रुत्युक्ताजगदंबिका ॥ यथागमंयथार्किंचिदपरां त्वंनिबोधमे ॥३७॥ माताचतुर्णांवर्णानांवेदांगानांचछंदसाम् ॥ संध्यावंदनमंत्राणांतंत्राणांचविचक्षणा ॥३८॥ द्विजातिजातिरूपाचजपरूपातपस्विनी ॥ ब्रह्मण्यतेजोरूपाचसर्वसंस्काररूपिणी॥३९॥पवित्ररूपासावित्रीगायत्रीब्रह्मणःप्रिया॥तीर्थानियस्याःसंस्पर्शंवांछंतिह्यात्मशुद्धये॥४०॥शुद्धस्फटिकसंकाशाशुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ परमानंदरूपाचपरमाचसनातनी ॥४१॥परब्रह्मस्वरूपाचनिर्वाणपददायिनी ॥ ब्रह्मतेजोमयीशक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥४२॥ यत्पादरजसापूतंजगत्सर्वंचनारद ॥ देवीचतुर्थीकथितापंचमींवर्णयामिते ॥४३॥ पंचप्राणाधिदेवीयापंचप्राणस्वरूपिणी ॥ प्राणाधिकप्रियतमासर्वाभ्यःसुंदरीपरा ॥ ४४ ॥ सर्वयुक्ताचसौभाग्यमानिनीगौरवान्विता ॥ वामांगार्धस्वरूपाचगुणेनतेजसासमा ॥ ४५ ॥

जिनका शुद्ध स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण है, जो स्वयं शुद्ध सत्वस्वरूपा परमानन्दस्वरूपा सर्वश्रेष्ठ और सनातनी हैं ॥ ४१ ॥ जो परब्रह्मरूपिणी और मोक्षदायिनी हैं जो ब्रह्मकी तेजोमयी शक्ति और ब्रह्मतेजकी अधिष्ठात्री देवता हैं॥ ४२॥ जिनके चरणरेणुके स्पर्शसे सम्पूर्ण जगत् पवित्र होता है वह देवी सावित्रीही चौथी प्रकृति हैं हे वत्स नारद ! अब तुमसे पाँचवी शक्ति देवी राधिकाका विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ४३ ॥ जो पंचप्राणकी अधिष्ठात्री देवी हैं जो स्वयं सबको जीवनस्वरूप जो श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं जो सब प्रकृति देवियोंसे अधिकसुन्दरी और सर्व श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ जो सब पदार्थमें विद्यमान रहती हैं, जो सौभाग्यके गर्वसे अत्यन्त गर्वित हैं जिनके गौरवकी सीमा नहीं ह जो श्रीकृष्णका वामाङ्गस्वरूप हैं क्या गुण क्या तेजमें कोई उनकी अपेक्षा अधिक नहीं हैं ॥ ४५ ॥

जो श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतम सबकी सारभूत सर्वोत्कृष्ट सबकी आदि सनातनी परमानन्दस्वरूप धन्या मान्या और सबकी पूजिता हैं ॥ ४६ ॥ जो परमात्मा श्रीकृष्णके रासकी क्रीड़ाकी अधिदेवी हैं जिनसे रासमंडलकी उत्पत्ति हुई है जो रासमण्डलकी भूषणस्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ जो रासेश्वरी रसिकोंमें अग्रगण्य और सदा रासावासमें स्थिति करती हैं गोलोकधाम जिनका निवासस्थान है जिनसे सब गोपियें उत्पन्न हुई हैं ॥ ४८ ॥ जो परमानन्द परम सन्तोष और परमहर्षरूपा हैं जो सत्वादि तीनों गुणोंसे अतीत पदार्थ और निराकार हैं किन्तु निर्लिप्तभावसे सर्वत्र अवस्थान करती हैं जो सबकी आत्मास्वरूप हैं ॥ ४९ ॥ जो सब विषयोंमें ही निश्चेष्ट और अहंकार रहित हैं, जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लियेही केवल शरीर धारण करती हैं विचक्षण पण्डितगण केवल वेदोक्त ध्यानद्वारा जिनकी महिमा पाठ करते हैं ॥ ५० ॥

परावरासारभूतापरमाद्यासनातनी ॥ परमानंदरूपाचधन्यामान्याचपूजिता ॥४६॥ रासक्रीडाधिदेवीश्रीकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ रासमंडलसंभूतारासमंडलमंडिता ॥ ४७ ॥ रासेश्वरीसुरसिकारासावासनिवासिनी ॥ गोलोकवासिनीदेवीगोपीवेषविधायिका ॥ ४८ ॥ परमाह्लादरूपाचसंतोषहर्षरूपिणी ॥ निर्गुणाचनिराकारानिर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी ॥ ४९ ॥ निरीहानिरहंकाराभक्तानुग्रहविग्रहा ॥ वेदानुसारिध्यानेनविज्ञातासाविचक्षणैः ॥ ५० ॥ दृष्टिदृष्टानसाचेशैःसुरेंद्रैर्मुनिपुंगवैः ॥ वह्निशुद्धांशुकधरानानालंकारभूषिता ॥ ५१ ॥ कोटिचंद्रप्रभापुष्टसर्वश्रीयुक्तविग्रहा ॥ श्रीकृष्णभक्तिदास्यैककराचसर्वसंपदाम् ॥ ५२ ॥ अवतारेचवाराहेवृषभानुसुताचया ॥ यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्राचवसुंधरा ॥ ५३ ॥ ब्रह्मादिभिरदृष्टायासर्वैर्दृष्टाचभारते ॥ स्त्रीरत्नसारसंभूताकृष्णवक्षस्थलेस्थिता ॥ ५४ ॥ यथांबरेनवघनेलोलासौदामनीमुने ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिप्रतप्तंब्रह्मणापुरा ॥ ५५ ॥

सुरेन्द्र और मुनीन्द्रगण जिनको कभी चक्षुसे नहीं देखते जिनके अग्निमें न जलनेवाला लाल वस्त्र है और सर्वाङ्ग अनेक प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हैं ॥ ५१ ॥ जिनके शरीरकी कान्ति देखनेसे बोध होता है कि, एकहीवार करोड़चन्द्रमा उदय हुए हैं जो कृष्णदास्य कृष्णभक्ति और सब संपत्तिकी दान करनेवाली है ॥ ५२ ॥ जो वराहकल्पमें अर्थात् वाराहावतारसमयमें ब्रजवासी वृषभानु नामक गोपके कन्यारूपमें अवतीर्ण हुई थीं वसुन्धरा जिनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पवित्र होती हैं ॥ ॥ ५३ ॥ जो ब्रह्मादि देवताओंको भी अदृष्ट हैं भारतवर्षमें आय वृन्दावनमें जिनको सब सुखसे देखते हैं जो स्त्रीरत्नमें श्रेष्ठ रत्न हैं जिनके श्रीकृष्णकी छातीमें वास करनेसे बोध होता है॥ ५४ ॥ मानों आकाशस्थित नीले बादलोंमें विजली विराजमानहै पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिनके चरणनखको देखकर आत्माको पवित्र करनेके लिये

साठ हजार वर्ष घोर तपस्या की थी किन्तु चरणनखका प्रत्यक्ष देखना तो दूर रहा स्वप्नमें भी जिनका दर्शन प्राप्त करनेमें समर्थ न हुए ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ किन्तु अन्तमें तपके फलसे वृन्दावनके काननमें जिनका दर्शन पाकर कृतार्थ हुए. हे वत्स नारद ! वह यही पांचवी प्रकृति है इसीको राधानामसे निर्देश करते हैं ॥ ५७ ॥ हे वत्स ! सब जगतमें जितनी स्त्रियें वास करती हैं वह सभी श्रीराधाके अंश कला कलांश और अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५८ ॥ हे वत्स नारद ! मूलप्रकृतिसे दुर्गादि जो पांच पूर्णतम प्रकृति उत्पन्न हुई हैं, उनका विषय कहा अब जो प्रकृतिकी अंशरूपा हैं उनका वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥ ५९ ॥ जो प्रधानांशस्वरूप भुवन पाविनी गंगा हैं जो विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुई हैं जो द्रवरूपा और सनातनी हैं ॥ ६० ॥ जो पापियोंके पापरूपी काष्ठ जलानेमें प्रज्वलित अनलस्वरूप हैं, जो स्नान और पानादि

यत्पादपद्मनखरदृष्टयेचात्मशुद्धये ॥ नचदृष्टंचस्वप्नेपिप्रत्यक्षस्यापिकाकथा ॥ ५६ ॥ तेनैवतपसादृष्टाभुविवृंदावनेवने ॥ कथितापंचमीदेवी साराधाचप्रकीर्तिता ॥ ५७ ॥ अंशरूपाःकलारूपाःकलांशांशांशसंभवाः ॥ प्रकृतेःप्रतिविश्वेषुदेव्यश्चसर्वयोषितः ॥ ५८ ॥ परिपूर्णतमाःपंचविद्यादेव्यःप्रकीर्तिताः ॥ यायाःप्रधानांशरूपावर्णयामिनिशामय ॥ ५९ ॥ प्रधानांशस्वरूपासागंगाभुवनपावनी ॥ विष्णुविग्रहसंभूताद्रवरूपासनातनी ॥ ॥ ६० ॥ पापिपापेध्मदाहायज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ सुखस्पर्शास्नानपानैर्निर्वाणपददायिनी ॥ ६१ ॥ गोलोकस्थानप्रस्थानसुखसोपानरूपिणी ॥ पवित्ररूपातीर्थानांसरितांचपरावरा ॥ ६२ ॥ शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ॥ तपःसंपादिनीसद्योभारतेषुतपस्विनाम् ॥ ६३ ॥ चंद्रपद्मक्षीरनिभाशुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ निर्मलानिरहंकारासाध्वीनारायणप्रिया ॥ ६४ ॥ प्रधानांशस्वरूपाचतुलसीविष्णुकामिनी ॥ विष्णुभूषणरूपाचविष्णुपादस्थितासती ॥ ६५ ॥ तपःसंकल्पपूजादिसंवसंपादिनीमुने ॥ सारभूताचपुष्पाणांपवित्रापुण्यदासदा ॥ ६६ ॥

विषयमें सुखस्पर्शा हैं, जो जीवोंको निर्वाणपद प्रदान करती हैं ॥ ६१ ॥ जो गोलोक धाम जानेकी सुख सोपान हैं, जो सब तीर्थोंमें पूततमतीर्थ हैं, जो सब स्रोतवतीमें प्रधान स्रोतवती हैं ॥ ६२ ॥ जो महादेवके मस्तकस्थित जटामें रुकी मुक्तापंक्ति हैं जो इस कर्मक्षेत्रभारतवासी तपस्वियोंकी सद्योसंभूत तपस्या हैं ॥ ॥ ६३ ॥ जिनकी प्रभा पूर्ण चन्द्रके समान, श्वेतकमलके समान और दूधके समान धवल वर्ण है जो विशुद्ध सत्वस्वरूपिणी, निर्मल अहंकारहीन साध्वी और नारायणकी प्रिया हैं वह त्रिभुवन पावनी गंगा मूल प्रकृतिका अंश हैं ॥ ६४ ॥ विष्णुकामिनी देवी तुलसी हैं जो नारायणकी अलंकृतिरूपा हैं जो सदा नारायणके चरण कमलोंमें अवस्थान करती हैं ॥ ६५ ॥ क्या तपस्या, क्या संकल्प, क्या पूजादि कार्य, समस्तकार्य जिनके द्वारा संपादित होते हैं. जो पुष्पोंमें प्रधान पवित्र और पुण्यदायिनी हैं ॥ ६६ ॥

जिनके दर्शन और स्पर्शसे तत्काल निर्वाणपद प्राप्त होता है जिनके अतिरिक्त कलियुगमें पापकाष्ठ दहनकी दूसरी अग्नि नहीं है जो स्वयं अग्निस्वरूपिणी हैं ॥ ६७ ॥ जिनके चरणकमलोंका स्पर्श करके वसुंधरा पवित्र हुई है सम्पूर्ण तीर्थ स्व स्व शुद्धिलाभके लिये जिनके दर्शन और स्पर्शकी कामना करते हैं ॥ ६८ ॥ जिनके विना विश्वके सब कार्य निष्फल हैं जो मुमुक्षु पुरुषोंको मोक्षदायिनी जो सबके सब प्रकार मनोरथ संपन्न करती हैं ॥ ६९ ॥ स्वयं कल्पवृक्षस्वरूप जो भारतके सब वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवता भारतवासी कामिनीगणोंको प्रसन्न करनेके लिये जो उत्पन्न हुई हैं और जो सर्वश्रेष्ठ देवता कहकर भारतके सर्वत्र परिगृहीत होती हैं ॥ ७० ॥ वह तुलसी देवी मूलप्रकृतिकी प्रधान अंश हैं कश्यपकन्या मनसा जो शंकरकी प्रिय शिष्या हैं सुतरां शास्त्रज्ञान विषयमें महापण्डिता हैं॥ ७१ ॥

दर्शनस्पर्शनाभ्यांचसद्योनिर्वाणदायिनी ॥ कलौकलुषशुष्केध्मदहनायाग्निरूपिणी॥६७॥यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सद्यःपूतावसुंधरा॥ यत्स्पर्शदर्शनेचैवेच्छं तितीर्थानिशुद्धये॥६८॥ ययाविनाचविश्वेषुसर्वंकर्मचनिष्फलम्॥मोक्षदायामुमुक्षूणांकामिनीसर्वकामदा ॥६९॥ कल्पवृक्षस्वरूपायाभारतेवृक्षरूपिणी ॥ भारतीनांप्रीणनायजातायापरदेवता ॥७०॥ प्रधानांशस्वरूपायामनसाकश्यपात्मजा ॥ शंकरप्रियशिष्याचमहाज्ञानविशारदा ॥७१॥ नागेश्वरस्या नंतस्यभगिनीनागपूजिता ॥ नागेश्वरीनागमातासुंदरीनागवाहिनी ॥ ७२ ॥ नागेंद्रगणसंयुक्तानागभूषणभूषिता ॥ नागेंद्रवंदितासिद्धायोगिनीनागशा यिनी ॥ ७३ ॥ विष्णुरूपाविष्णुभक्ताविष्णुपूजापरायणा ॥ तपःस्वरूपातपसांफलदात्रीतपस्विनी ॥ ७४ ॥ दिव्यंत्रिलक्षवर्षंचतपस्तप्त्वाचयाहरेः ॥ तपस्विनीषुपूज्याचतपस्विषुचभारते ॥७५॥ सर्वमंत्राधिदेवीचज्वलंतीब्रह्मतेजसा ॥ ब्रह्मस्वरूपापरमाब्रह्मभावनतत्परा ॥ ७६ ॥ जरत्कारुमुनेःपत्नी कृष्णांशस्यपतिव्रता ॥ आस्तीकस्यमुनेर्माताप्रवरस्यतपस्विनाम् ॥ ७७ ॥

जो नागेश्वर अनन्त देवकी बहन और समस्त नागगणोंसे सत्कृत हैं जो स्वयं सुन्दरीनागेश्वरी नागजननी और नागवाहिनी हैं ॥ ७२ ॥ जो सदा नागेन्द्रगणोंमें परिवेष्टित नागभूषणोंसे विभूषित नागेन्द्रगणसे वंदित और नागशय्यापर शयन करती हैं जो सिद्धयोगिनी ॥ ७३ ॥ विष्णुस्वरूपिणी विष्णुभक्ता और विष्णुपूजामें तत्पर हैं जो तपःस्वरूप और तपस्याकी फलप्रदा होकरभी स्वयं तपस्विनी हैं ॥ ७४ ॥ जो देवमानके तीन लक्ष वर्षपर्यन्त श्रीहरिकी आराधना करके भारतमें तपस्वी और तपस्वियोंमें प्रधान कही गई हैं ॥ ७५ ॥ जो सम्पूर्ण मंत्रकी अधिदेवी जिनकाशरीर ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान होता है जो स्वयं ब्रह्मरूपिणी होकर भी फिर ब्रह्मभावकी भावना करती हैं ॥ ७६ ॥ जो श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न और जरत्कारु ऋषिकी पतिव्रता स्त्री हैं जो मुनिश्रेष्ठ आस्तिक मुनिकी माता हैं वह भी मूल

प्रकृतिकी अंश हैं ॥ ७७ ॥ हे वत्स नारद ! जिनका नाम देवसेना है वही षष्ठी हैं षष्ठी देवी जो गौरीआदि षोडश मातृकामें श्रेष्ठतम मातृका हैं ॥ ७८ ॥ जो पतिव्रता तीनों जगत्को पुत्र पौत्रादि दात्री और सबकी धात्री हैं जो मूल प्रकृतिकाषष्ठांशस्वरूप होनेके कारण षष्ठीनामसे कही गई हैं ॥ ७९ ॥ जो वृद्धभाव और योगिनीके वेषसे सम्पूर्ण बालकोंके निकट विद्यमान रहती हैं वैशाखादि बारह मासमें जिनकी पूजा सर्वत्र प्रचलित हुई है ॥ ८० ॥ बालकके उत्पन्न होनेपर छठे दिन सूतिका गृह सोवरमें जिनकी पूजा होती है और बीस दिन बीतनेपर इक्कीसवें दिन जिनकी शुभकरी पूजाका विधान करना होता है ॥ ८१ ॥ मुनि अवनतमस्तकसे जिनको प्रणाम और सदा जिनके दर्शनकी कामना करते हैं जो माताके समान स्नेहार्द्रहृदयसे सर्वदा बालकोंकी रक्षा करती हैं वह षष्ठी देवी मूल

प्रधानांशस्वरूपायादेवसेनाचनारद ॥ मातृकासुपूज्यतमासाषष्ठीचप्रकीर्तिता ॥ ७८॥ पुत्रपौत्रादिदात्रीचधात्रीत्रिजगतांसती ॥ षष्ठांशरूपाप्रकृतेस्तेन षष्ठीप्रकीर्तिता ॥ ७९ ॥ स्थानेशिशूनांपरमावृद्धरूपाचयोगिनी ॥ पूजाद्वादशमासेषुयस्याविश्वेषुसंततम् ॥ ८० ॥ पूजाचसूतिकागारेपुराषष्ठदिनेशिशोः ॥ एकविंशतिमेचैवपूजाकल्याणहेतुकी ॥ ८१ ॥ मुनिभिर्नमिताचैषानित्यकामाप्यतःपरा ॥ मातृकाचदयारूपाशश्वद्रक्षणकारिणी ॥ ८२ ॥ जलेस्थलेचांतरिक्षेशिशूनांसद्मगोचरे ॥ प्रधानांशस्वरूपाचदेवीमंगलचंडिका ॥ ८३ ॥ प्रकृतेर्मुखसंभूतासर्वमंगलदासदा ॥ सृष्टौमंगलरूपाचसंहारेकोपरूपिणी ॥ ८४ ॥ तेनमंगलचंडीसापंडितैःपरिकीर्तिता ॥ प्रतिमंगलवारेषुप्रतिविश्वेषुपूजिता ॥ ८५ ॥ पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमंगलदायिनी ॥ परितुष्टासर्ववांछाप्रदात्रीसर्वयोषिताम् ॥ ८६ ॥ रुष्टाक्षणेनसंहर्तुंशक्ताविश्वंमहेश्वरी ॥ प्रधानांशस्वरूपासाकालीकमललोचना ॥ ८७ ॥

प्रकृतिका षष्ठांश हैं ॥ ८२ ॥ देवी मंगल चण्डिका जो जल स्थल अन्तरिक्ष और बालकोंके घर घर मंगल विधान करके भ्रमण करती हैं ॥ ८३ ॥ जो प्रकृति देवीके मुखमंडलसे उत्पन्न हुई हैं और सर्वदा सबका सब प्रकार मंगलविधान करती हैं सृष्टिकालमें मंगलमयी और संहार कालमें प्रचण्ड रोष रूपिणी मूर्त्ति ॥ ८४ ॥ धारण करनेके कारण पण्डितोंने जिनका मंगल चण्डी नाम रक्खा है प्रतिविश्व और प्रति मंगलवारमें जिनकी पूजा होती है ॥ ८५ ॥ जो प्रसन्न होकर स्त्रियोंको पुत्र पौत्र धन ऐश्वर्य यश और सब प्रकार मंगल व सब प्रकार अभीष्ट प्रदान करती हैं, यह मंगल चंडी भी मूल प्रकृतिका अंश हैं ॥ ८६ ॥ कमललोचना महेश्वरी काली जो

रुष्ट होनेसे क्षणकालमें सब विश्वको संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ ८७ ॥ जो समरमें शुंभ और निशुंभ दैत्योंको निपात करनेके लिये मूल प्रकृति दुर्गाके ललाट देशसे आविर्भूत हुई हैं, जो दुर्गाकी अर्धांश स्वरूपा और उनके समान गुणवती और तेजस्विनी हैं॥८८॥ जिनके शरीरकी कान्ति देखनेसे बोध होता है मानो एकही कालमें करोड़ सूर्य उदय हुए हैं जो सब शक्तियोंमें प्रधान और सबकी अपेक्षा अधिक बलवती हैं ॥ ८९ ॥ जो संपूर्ण लोकोंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करती हैं जो सर्व श्रेष्ठ और योगस्वरूपा हैं जो अतिशय कृष्णभक्त एवं तेज, गुण और विक्रममें कृष्णके समान हैं ॥ ९० ॥ निरन्तर श्रीकृष्णकी चिन्तासे जिनका शरीर कृष्णवर्ण होगया है जो सनातनी एक निश्वासमें संपूर्ण ब्रह्माण्ड विध्वंस कर सकती हैं ॥ ९१ ॥ जो केवल क्रीड़ा और लोकशिक्षाके लिये दैत्योंके सहित समरमें प्रवृत्त हुई थीं जो पूजासे संतुष्ट होनेपर धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष इन चारों वर्गका फल प्रदान कर सकती हैं, वह काली भी प्रकृतिका अंश हैं ॥ ९२ ॥

दुर्गाललाटसंभूतारणेशुंभनिशुंभयोः ॥ दुर्गार्धांशस्वरूपासागुणेनतेजसासमा ॥ ८८ ॥ कोटिसूर्यसमाजुष्टपुष्टजाज्वलविग्रहा ॥ प्रधानासर्वशक्तीनां बलाबलवतीपरा ॥ ८९ ॥ सर्वसिद्धिप्रदादेवीपरमायोगरूपिणी ॥ कृष्णभक्ताकृष्णतुल्यातेजसाविक्रमैर्गुणैः ॥ ९० ॥ कृष्णभावनयाशश्वत्कृष्ण वर्णासनातनी ॥ संहर्तुंसर्वब्रह्माण्डंशक्तानिश्वाससमात्रतः ॥ ९१ ॥ रणंदैत्यैःसमंतस्याःक्रीडयालोकशिक्षया ॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्चदातुंशक्ताचपूजिता ॥ ९२ ॥ ब्रह्मादिभिःस्तूयमानामुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥ प्रधानांशस्वरूपासाप्रकृतिश्चवसुंधरा ॥ ९३ ॥ आधाररूपासर्वेषांसर्वसस्याप्रकीर्तिता ॥ रत्नाकरारत्नगर्भासर्वरत्नाकराश्रया ॥ ९४ ॥ प्रजाभिश्चप्रजेशैश्चपूजितावंदितासदा ॥ सर्वोपजीव्यरूपाचसर्वसंपद्विधायिनी ॥ ९५ ॥ययाविनाज गत्सर्वंनिराधारंचराचरम् ॥ प्रकृतेश्चकलायायास्तानिबोधमुनीश्वर ॥ ९६ ॥ यस्ययस्यचयापत्नीतत्सर्वंवर्णयामिते ॥ स्वाहादेवीवह्निपत्नीप्रति विश्वेषुपूजिता ॥ ९७॥ ययाविनाहविर्दानंनग्रहीतुंसुराःक्षमाः॥ दक्षिणायज्ञपत्नीचदीक्षासर्वत्रपूजिता ॥ ९८ ॥

वसुंधरादेवी, जिनका ब्रह्मादि देवतागण समस्त मुनिगण, चौदह मनु और संपूर्ण मनुष्य स्तव करते हैं ॥ ९३ ॥ जो सबकी आधारस्वरूप और सर्व प्रकार शस्यसे परिपूर्ण हैं जो रत्नाकरा रत्नगर्भा और सर्व प्रकार श्रेष्ठतम वस्तुकी प्रसूति और आश्रय स्थान हैं॥९४॥प्रजामंडल और राजमंडल नित्य जिनकी पूजा और स्तुतिवाद करते हैं जो जीवमात्रकी (जीवनदायिनी) और सबको सब प्रकारकी सम्पद देनेवाली हैं॥९५॥जिनके विना स्थावर जंगमात्मक संपूर्ण जगत निराधार हो जाता है वह वसुं धराभी मूलप्रकृतिका अंश है. हे वत्स नारद ! जो प्रकृतिकी कलासे उत्पन्न है॥९६॥ और जो जिनकी पत्नी हैं, अब एकादिक्रमसे वह सब वर्णन करता हूं सुनो देवी स्वाहा अग्निकी पत्नी हैं । संपूर्ण विश्व उनकी पूजा करते हैं ॥ ९७ ॥ इनके विना देवतागण कभी आहुति ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते दक्षिणा और दीक्षा, यह

दोनों यज्ञपत्नी हैं इनका सर्वत्र आदर होता है ॥ ९८ ॥ यही क्या? दक्षिणाके विना कोई कार्य सफल नहीं हो सकता. देवी स्वधा पितरोंकी पत्नी हैं क्या मनुष्य गण, क्या मनुगण, क्या मुनिगण ॥ ९९ ॥ सबही स्वधादेवीकी पूजा करते हैं। स्वधामंत्रके विना पितरोंको जो कुछ दान किया जाय, वह सब निष्फल है देवी. स्वस्ति वायुदेवकी पत्नी हैं इनका संपूर्ण विश्वमें आदर होता है ॥ १०० ॥ स्वस्तिदेवीके विना क्या आदान, क्या प्रदान कोई कार्य फलदायक नहीं हो सकता. गणपतीकी पत्नीका नाम पुष्टि है जगत्में सबही पुष्टिदेवीकी पूजा करते हैं ॥ १०१ ॥ जगत्में पुष्टिकेविना क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी अतिशय क्षीण होते हैं, तुष्टि अनन्तदेवकी पत्नी हैं पृथ्वीमें सर्वत्रही वह सत्कृत और वंदित होती हैं ॥ १०२ ॥ जिनके असद्भावसे पृथ्वीके किसी स्थानमें कोई मनुष्य सुखी नहीं हो सका सम्पत्तिदेवी ईशानकी पत्नी हैं क्या देवता क्या मनुष्य सभी जिनका समान आदर करते हैं ॥ १०३ ॥ उनके न होनेसे जगत्के सभी मनुष्य दरिद्रदोषसे

यथाविनाहिविश्वेषुसर्वकर्महिनिष्फलम् ॥ स्वधापितॄणांपत्नीचमुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥ ९९ ॥ पूजितापितृदानंहिनिष्फलंचययाविना ॥ स्वस्तिदेवीवायुपत्नीप्रतिविश्वेषुपूजिता ॥ १०० ॥ आदानंचप्रदानंचनिष्फलंचययाविना ॥ पुष्टिर्गणपतेःपत्नीपूजिताजगतीतले ॥ १०१ ॥ ययाविनापरिक्षीणाःपुमांसोयोषितोऽपिच ॥ अनंतपत्नीतुष्टिश्चपूजितावंदिताभवेत् ॥ १०२ ॥ ययाविनानसंतुष्टाःसर्वेलोकाश्चसर्वतः ॥ ईशानपत्नीसंपत्तिःपूजिताचसुरैर्नरैः ॥ १०३ ॥ सर्वेलोकादरिद्राश्चविश्वेषुचययाविना ॥ धृतिःकपिलपत्नीचसर्वैःसर्वत्रपूजिता ॥ १०४ ॥ सर्वेलोकाअधैर्याश्चजगत्सुचययाविना ॥ सत्यपत्नीसतीमुक्तैःपूजिताजगतीप्रिया ॥ १०५ ॥ ययाविनाभवेल्लोकोबंधुतारहितःसदा ॥ मोहपत्नीदयासाध्वीपूजिताचजगत्प्रिया ॥ १०६ ॥ सर्वेलोकाश्चसर्वत्रनिष्फलाश्चययाविना ॥ पुण्यपत्नीप्रतिष्ठासापूजितापुण्यदासदा ॥ १०७ ॥ ययाविनाजगत्सर्वंजीवन्मृतसमंमुने ॥ सुकर्मपत्नीसंसिद्धाकीर्तिर्धन्यैश्चपूजिता ॥ १०८ ॥ ययाविनाजगत्सर्वंयशोहीनंमृतंयथा ॥ क्रियातूद्योगपत्नीचपूजितासर्वसंमता ॥ १०९ ॥

अत्यन्त पीड़ित होते ॥ देवी धृति कपिलदेवकी सहधर्मिणी हैं जगतके सब स्थानोंमेंही सब इनका समान आदर करते हैं ॥ १०४ ॥ यही क्या ? इनके न होनेसे जगत्के सब मनुष्य ही अत्यन्त अधैर्य होते देवी सती सत्यदेवकी पत्नी हैं यह जगत् प्रिय हैं मुक्तपुरुष सर्वदाही इनकी पूजा करते हैं ॥ १०५ ॥ सत्यप्रिया सती यदि विद्यमान न होतीं तो एकबारही संपूर्ण जगत् बन्धुता (बांधवपन) से वंचित होजाता पतिपरायणा दया, मोह, देवकी पत्नी हैं सबही जगत् इनका आदर करते हैं ॥ १०६ ॥ इनके न होनेसे पृथ्वीके सब मनुष्य सब विषयमें हताश होते देवी प्रतिष्ठा पुराणदेवकी पत्नी हैं मनुष्य इनका जितना यत्न करता है, यह उनको उतनाही पुण्यप्रदान करती हैं ॥ १०७ ॥ अधिक क्या इनके विना पृथ्वीके समस्त मनुष्य जीवन्मृतके समान होतेहैं, देवी कीर्त्ति सुकर्मकी पत्नी हैं यह स्वयं सिद्ध और कृतार्थ मनुष्य इनका परम आदर करते हैं ॥ १०८ ॥ इनके न होनेसे जगतके संपूर्ण मनुष्य मृतकवत् यशहीन होते. क्रिया उद्योगकी पत्नी है। इनका सभी सन्मान

और महाआदर करते हैं ॥ १०९ ॥ हे मुनिवर नारद! जगत्में उद्योगकी पत्नी क्रिया यदि विद्यमान न होती, तो सब मनुष्य एकवारही विधिहीन हो जाते. मिथ्या अधर्मकी पत्नी है। इस जगत्में जितने धूर्त विद्यमान हैं, वह सब इसका अत्यन्त आदर करते हैं ॥ ११० ॥ मिथ्याके न होनेसे विधाताका विधान किया सब धूर्तपन जगत्में नहीं रहता सत्ययुगमें यह कभी किसीको दिखाई न दी. त्रेतासे ही इसके सूक्ष्मतम शरीरका संचार हुआ है ॥ १११ ॥ जब द्वापरयुग उपस्थित था, तब इसके अवयव अर्धपुष्ट थे। इसके उपरान्त कलि प्रवृत्त हुआ तब इसके संपूर्ण अंग प्रत्यङ्ग सब अवयवमें पुष्ट होगये तिस कालमें इसके समान वाचाल और व्यापिका दूसरी नहीं है ॥ ११२ ॥ उस समय यह अपने भ्राता कपटको संग लेकर मनुष्योंके घर घरमें भ्रमण करती है शान्ति और लज्जा यह

ययाविनाजगत्सर्वंविधिहीनंचनारद ॥ अधर्मपत्नीमिथ्यासासर्वधूर्तैश्चपूजिता ॥ ११० ॥ययाविनाजगत्सर्वमुच्छिन्नंविधिनिर्मितम् ॥ सत्येअदर्शनायाचत्रेतायांसूक्ष्मरूपिणी ॥ १११ ॥ अर्धावयवरूपाचद्वापरेचैवसंवृता ॥ कलौमहाप्रगल्भाचसर्वत्रव्यापिकाबलात् ॥ ११२ ॥ कपटेनसमंभ्रात्राभ्रमतेचगृहेगृहे ॥ शांतिर्लज्जाचभार्येद्वेसुशीलस्यचपूजिते ॥ ११३ ॥ याभ्यांविनाजगत्सर्वमुन्मत्तमिवनारद ॥ ज्ञानस्यतिस्रोभार्याश्चबुद्धिर्मेधाधृतिस्तथा ॥ ११४ ॥ याभिर्विनाजगत्सर्वंमूढंमत्तसमंसदा ॥ मूर्तिश्चधर्मपत्नीसाकांतिरूपामनोहरा ॥ ११५ ॥ परमात्माचविश्वौघोनिराधारोययाविना ॥ सर्वत्रशोभारूपाचलक्ष्मीर्मूर्तिमतीसती ॥ ११६ ॥ श्रीरूपामूर्तिरूपाचमान्याधन्याऽतिपूजिता ॥ कालाग्निरुद्रपत्नीचनिद्रासासिद्धयोगिनी ॥ ११७ ॥ सर्वेलोकाःसमाच्छन्नाययायोगेनरात्रिषु ॥ कालस्यतिस्रोभार्याश्चसंध्यारात्रिदिनानिच ॥ ११८ ॥ याभिर्विनाविधाताचसंख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ क्षुत्पिपासेलोभभार्येधन्येमान्येचपूजिते ॥ ११९ ॥

दोनोंही सुशीलकी भार्या हैं ॥ ११३ ॥ इन दोनोंके विद्यमान न होनेसे संपूर्ण जगत् एकवारही मूढ और उन्मत्तके समान हो जाता. बुद्धि मेधा और धृति, यह तीनों ज्ञानकी भार्या हैं ॥ ११४ ॥ इनके न होनेसे जगत्के संपूर्ण मनुष्य एकवारही मूढ और उन्मत्त हो जाते मूर्त्ति धर्मदेवकी पत्नी है, यह सबकी कान्तिरूपिणी और अतीव मनोहारिणी है॥ ११५॥ इनके न होनेसे परमात्मा आश्रयस्थान प्राप्त नहीं कर सकते इसकारण समस्त विश्व निरालम्ब हो जाता यह पतिव्रता सती मूर्त्ति शोभारूप ॥ ११६ ॥ लक्ष्मीरूप, सर्वत्र मान्या धन्या और पूजिता हैं सिद्धयोगिनी निद्रा कालाग्नि रुद्रदेवकी पत्नीहैं॥ ११७॥ जिसके सम्बन्धसे जीवगण रात्रिकालमें समाच्छन्न होते हैं संध्या, रात्रि और दिन, यह तीन कालकी भार्या हैं॥ ११८॥ इनके न होनेसे विधाता भी संख्या गणना करनमें समर्थ नहीं होते. क्षुधा और पिपासा दोनों लोभकी पत्नी

हैं यह धन्य, मान्य और जगत्पूज्य हैं ॥ ११९ ॥ इन दोनोंके विद्यमान न होनेसे जगत्के सब जीव एकवारही चिन्तासागरमें निमग्न हो जाते हैं. प्रभा और दाहिका यह दोनों तेजकी भार्या हैं ॥ १२० ॥ इन दोनोंके न होनेसे जगदीश्वर कभी जगत्की सृष्टि और नियमित व्यवस्था व्यवस्थापित नहीं कर सकते मृत्यु और जरा दोनों कालकी कन्या हैं किन्तु ज्वरकी प्रियतमा पत्नी हैं ॥ १२१ ॥ इनके न होनेसे विधातृविहित संपूर्ण सृष्टि वृद्धिकोही प्राप्त होती नष्ट न होती देवी तन्द्रा और प्रीति दोनों निद्राकी कन्या हैं यह दोनों सुखकी प्रियतमा भार्या हैं ॥ १२२ ॥ यह दोनों संपूर्ण जगत्में व्याप कर अवस्थान करती हैं. हे मुनिवर ! जगत्पूज्य श्रद्धा और भक्ति, वैराग्यकी भार्या हैं ॥ १२३ ॥ इन दोनोंके विद्यमान होनेसे विश्वको सब मनुष्य जीवन्मुक्तके समान अवस्थान कर सकते हैं इनके अतिरिक्त देव माता

याभ्यांव्यातंजगत्सर्वंनित्यंचिंतातुरंभवेत् ॥ प्रभाचदाहिकाचैवद्वेभार्येतेजसस्तथा ॥ १२० ॥ याभ्यांविनाजगत्स्रष्टुंविधातुंचनहीश्वरः ॥ कालकन्ये मृत्युजरेप्रज्वारस्यप्रियाप्रिये ॥ १२१ ॥ याभ्यांजगत्समुच्छिन्नंविधात्रानिर्मितंविधौ ॥ निद्राकन्याचतंद्रासाप्रीतिरन्यासुखप्रिये ॥१२२॥ याभ्यांव्यातं जगत्सर्वंविधिपुत्रविधेर्विधौ ॥ वैराग्यस्यचद्वेभार्येश्रद्धाभक्तिश्चपूजिते ॥ १२३ ॥ याभ्यांशश्वजगत्सर्वंयजीवन्मुक्तिमन्मुने ॥ अदितिर्देवमाताचसुरभी चगवांप्रसूः ॥ २४ ॥ दितिश्चदैत्यजननीकद्रूश्चविनतादनुः ॥ उपयुक्ताःसृष्टिविधौएतास्तुकीर्तिताःकलाः ॥ १२५ ॥ कलाअन्याःसंतिबह्वचस्तासुका श्चिन्निबोधमे ॥ रोहिणीचंद्रपत्नीचसंज्ञासूर्यस्यकामिनी ॥ १२६ ॥ शतरूपामनोर्भार्याशचींद्रस्यचगेहिनी ॥ ताराबृहस्पतेर्भार्यावसिष्ठस्याऽप्यरुंधती ॥ १२७ ॥ अहल्यागौतमस्त्रीसाऽप्यनुसूयाऽत्रिकामिनी ॥ देवहूतीकर्दमस्यप्रसूतिर्दक्षकामिनी ॥१२८॥ पितॄणांमानसीकन्यामेनकासांऽबिकाप्रसूः ॥ लोपामुद्रातथाकुंतीकुबेरकामिनितिथा ॥ १२९ ॥

अदिति, गोजननी सुरभी ॥ १२४ ॥ दैत्यजननी दिति, नागमाता, कद्रु, खगेन्द्रजननी विनता और दानवमाता दनु यह सभी सृष्टिकार्यकी विशेष उपयोगिनी हैं, किन्तु सब मूलप्रकृतिकी कला हैं ॥ १२५ ॥ इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो प्रकृतिकी कला हैं विद्यमान हैं, उनके कितनोंहीके नाम कहता हूं, सुनो । चन्द्रकी पत्नी रोहिणी, सूर्यकी भार्या संज्ञा ॥ १२६ ॥ मनुपत्नी शतरूपा, इन्द्रपत्नी शची, बृहस्पतिकी भार्या तारा, वशिष्ठकी पत्नी अरुन्धती ॥ १२७ ॥ गौतमपत्नी अहल्या, अत्रिकी भार्या अनुसूया, कर्दमकामिनी देवहूती, दक्ष भार्या प्रसूति ॥ १२८ ॥ पितरोंकी मानसी कन्या और अम्बिकाकी जननी मेनका, लोपामुद्रा, कुन्ती, कुबेरपत्नी ॥ १२९ ॥

वरुणपत्नी, बलिराजाकी पत्नी, विन्ध्यावली, मनोहर दमयन्ती, यशोदा, देवकी ॥ १३० ॥ गान्धारी, द्रौपदी, शैब्या, सत्यवती, वृषभानुपत्नी, कुलीना राधाकी जननी ॥ १३१ ॥ मन्दोदरी, कौशल्या, कौरवी, सुभद्रा, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा ॥ १३२ ॥ जाम्बवती, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, रुक्मिणी, सीता, यह स्वयं लक्ष्मी हैं ॥ १३३ ॥ काली, योजनगंधा, महासती, पतिव्रता, व्यासजननी, बाणपुत्री, ऊषा उसकी सखी चित्रलेखा ॥ १३४ ॥ प्रभावती, भानुमती, सतीमायावती; परशुरामकी जननी रेणुका, बलरामकी जननी रोहिणी ॥ १३५ ॥ एकनन्दा और श्रीकृष्णकी भगिनी सती दुर्गा इत्यादि अन्यान्य अनेक कामिनी भारतमें प्रकृतिका अंशस्वरूप हैं ॥ १३६ ॥ इनके अतिरिक्त ग्रामदेवी भी प्रकृतिका अंश हैं और सब विश्वमें जितनी स्त्री विद्यमान हैं वह सब प्रकृतिके अंशसे

वरुणानीप्रसिद्धाचबलेर्विंध्यावलिस्तथा ॥ कांताचदमयंतीचयशोदादेवकीतथा ॥ १३० ॥ गांधारीद्रौपदीशैब्यासाचसत्यवतीप्रिया ॥ वृषभानुप्रियासाध्वीराधामाताकुलोद्वहा ॥ १३१ ॥ मंदोदरीचकौसल्यासुभद्राकौरवीतथा ॥ रेवतीसत्यभामाचकालिंदीलक्ष्मणातथा ॥ १३२ ॥ जांबवतीनाग्नजितिमित्रविंदातथापरा ॥ लक्ष्मणारुक्मिणीसीतास्वयंलक्ष्मीःप्रकीर्तिता ॥ १३३ ॥ कालीयोजनगंधाचव्यासमातामहासती ॥ बाणपुत्रीतथोषाचचित्रलेखाचतत्सखी ॥ १३४ ॥ प्रभावतीभानुमतीतथामायावतीसती ॥ रेणुकाचभृगोर्मातारामःमाताचरोहिणी ॥ १३५ ॥ एकनंदाचदुर्गासाश्रीकृष्णभगिनीसती ॥ बह्व्यःसत्यःकलाश्चैवप्रकृतेरेवभारते ॥ १३६ ॥ यायाश्चग्रामदेव्यःस्युस्ताःसर्वाःप्रकृतेःकलाः ॥ कलांशांशसमुद्भूताःप्रतिविश्वेषुयोषितः ॥ १३७ ॥ योषितामवमानेनप्रकृतेश्चपराभवः ॥ ब्राह्मणीपूजितायेनपतिपुत्रवतीसती ॥ १३८ ॥ प्रकृतिःपूजितातेनवस्त्रालंकारचंदनैः ॥ कुमारीचाष्टवर्षायावस्त्रालंकारचंदनैः ॥ १३९ ॥ पूजितायेनविप्रस्यप्रकृतिस्तेनपूजिता ॥ सर्वाःप्रकृतिसंभूताउत्तमाधममध्यमाः ॥ १४० ॥ सत्त्वांशाश्चोत्तमाज्ञेयाःसुशीलाश्चपतिव्रताः ॥ मध्यमारजसश्चांशास्ताश्चभोग्याःप्रकीर्तिताः ॥ १४१ ॥ सुखसंभोगवश्याश्चस्वकार्यतत्पराःसदा ॥ अधमास्तमसश्चांशाअज्ञातकुलसंभवाः ॥ १४२ ॥

उत्पन्न हुई हैं ॥ १३७ ॥ अतएव स्त्रीका अपमान करनेसे प्रकृतिका अपमान होता है. पतिपुत्रवती पतिव्रता ब्राह्मणीकी वस्त्र अलंकार और चन्दनादिसे पूजा करनेपर ॥ १३८ ॥ प्रकृतिकी पूजा हो जाती है यही क्या वस्त्रालंकार और चन्दनादिसे अष्टवर्षीय ब्राह्मण कुमारीकी पूजा करनेपरभी ॥ १३९ ॥ प्रकृति देवी पूजित होती है. उत्तम मध्यम और अधम सभी प्रकृति संभूत हैं ॥ १४० ॥ जो रमणी सत्वगुणके अंशसे उत्पन्न हैं, वही उत्तम सुशील और पतिव्रता हैं जो रजोगुणके अंशसे उत्पन्न हैं वह मध्यम हैं और भोग्या हैं ॥ १४१ ॥ और भोग विषयमें अत्यन्त अनुरक्त होकर अपने कार्य साधनमें तत्पर होती हैं और जो तमोगुणसे उत्पन्न हैं वही अज्ञात

कुलशील अधम कही गई हैं ॥ १४२ ॥ उनके समान दुर्मुख कुलनाशक धूर्त्त स्वाधीनताप्रिय और कलहनिपुण दूसरी स्त्रियें दिखाई नहीं देतीं. ऐसी स्त्रियें मर्त्य लोकमें कुलटा और स्वर्लोकमें अप्सरा कहाती हैं ॥ १४३ ॥ यद्यपि पुंश्चली भी प्रकृतिका अंश हैं किन्तु वह तमोगुणात्मक हैं यह तो प्रकृतिका स्वरूप वर्णन किया॥ ॥ १४४ ॥ अतएव पुण्यक्षेत्रभारत भूमिमें समुदाय प्रकृति देवीकी पूजा करना सम्यक् प्रकार उचित है पूर्वकालमें सुरथराजाने दुर्गति नाशिनी मूल प्रकृति दुर्गाकी पूजा की थी ॥ १४५ ॥ इसके पीछे श्रीरामचन्द्रजीने रावणके मारनेकी इच्छासेउनकी पूजा करी फिर तीनों लोकमें उनकी पूजाका प्रचार हुआ ॥ १४६ ॥ उन्होंनेही प्रथम दक्षकी कन्या रूपमें जन्म ग्रहण किया उन्होंनेही दैत्यकुल और दानवकुलको संहार किया था उन्होंनेही दक्षके यज्ञ समयमें पतिनिन्दा सुन अपना

दुर्मुखाःकुलहाधूर्ताःस्वतंत्राःकलहप्रियाः ॥ पृथिव्यांकुलटायाश्चस्वर्गेचाप्सरसांगणाः ॥ १४३ ॥ प्रकृतेस्तमसश्चांशाःपुंश्चल्यःपरिकीर्तिताः ॥ एवंनिगदितंसर्वंप्रकृतेरूपवर्णनम् ॥ १४४ ॥ ताःसर्वाःपूजिताःपृथ्व्यांपुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ पूजितासुरथेनादौदुर्गादुर्गार्तिनाशिनी ॥ १४५ ॥ ततःश्रीरामचंद्रेणरावणस्यवधार्थिना ॥ तत्पश्चाज्जगतांमातात्रिषुलोकेषुपूजिता ॥ १४६ ॥ जातादौदक्षकन्यायानिहत्यदैत्यदानवान् ॥ ततोदेहंपरित्य ज्ययज्ञेभर्तुश्चनिंदया ॥१४७॥ जज्ञेहिमवतःपत्न्यांलेभेपशुपतिंपतिम् ॥ गणेशश्चस्वयंकृष्णःस्कंदोविष्णुकलोद्भवः ॥१४८॥ बभूवतुस्तौतनयौपश्चात्त स्याश्चनारद ॥ लक्ष्मीर्मंगलभूपेनप्रथमंपरिपूजिता ॥ ४९ ॥ त्रिषुलोकेषुतत्पश्चाद्देवतामुनिमानवैः ॥ सावित्रीचाऽश्वपतिनाप्रथमंपरिपूजिता ॥ १५० ॥ तत्पश्चात्त्रिषुलोकेषुदेवतामुनिपुंगवैः ॥ आदौसरस्वतीदेवीब्रह्मणापरिपूजिता ॥ १५१ ॥ तत्पश्चात्त्रिषुलोकेषुदेवतामुनिपुंगवैः ॥ प्रथमंपूजिताराधागोलो केरासमंडले ॥ १५२ ॥

देह त्याग फिर जन्मग्रहण किया था ॥ १४७ ॥ उन्होंनेही हिमाचल पत्नी मेनकाके गर्भसे जन्मग्रहण करके पशुपतिको पतिलाभ किया था. फिर कार्त्तिकेय और गणेश नामक पार्वतीके जो दो पुत्र उत्पन्न हुए तिनके कार्त्तिकेय नारायणके अंश और गणपति स्वयं राधापति श्रीकृष्ण थे ॥ १४८ ॥ हे देवर्षे ! इन दो पुत्रोंके उपरान्त दुर्गासे जो लक्ष्मी देवीकी उत्पत्ति हुई प्रथम मङ्गलराजने उनकी पूजाकी ॥ १४९ ॥ फिर त्रिलोकीमें क्या देवता क्या मनुष्य सबनेही उनकी पूजा करी प्रथम तो राजा अश्वपतिने सावित्री देवी की पूजा करी ॥ १५० ॥ फिर त्रिभुवनमें क्या देवता क्या मुनिगण, सबही उनकी पूजा करते हैं देवीसरस्वतीके उत्पन्न होनेपर सबसे पहिले भगवान् ब्रह्माजीने उनकी पूजा करी ॥ १५१ ॥ तबसे क्या श्रेष्ठतममुनिगण, क्या देवतागण, सभी उनकी पूजा करते हैं गोलोकरासमंडलमें पहले

राधाकी पूजा हुई ॥ १५२॥ कार्त्तिकी पौर्णमासीकी रजनीमें परमात्मरूपी भगवान्‌श्रीकृष्णने गोलोकधाम रासमंडलमें देवी राधाकी प्रथम पूजा करी फिर श्रीकृष्णकी अनुमतिसे सम्पूर्ण गोप सम्पूर्ण गोपिका सम्पूर्ण बालकबालिका ॥ १५३॥ गोपजननी सुरभी और अन्यान्य गोपोंने उनकी पूजा की. यही क्या? तबसेही ब्रह्मादि देवता और मुनिपर्यन्त अत्यन्त भक्तिसहित ॥ १५४ ॥ धूपदीपादि विविध उपाहारद्वारा परमानन्दसे श्रीराधाकी पूजामें रत हुए हैं. भूतलमें राधाका प्रथम सुयज्ञराजाने पूजन किया ॥ १५५ ॥ भगवान् शंकरके उपदेशानुसार इस पुण्यक्षेत्र भारत भूमिमें राजा सुयज्ञने पूजाकरी फिर परमात्मरूपी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार तीनों लोकमें ॥ १५६ ॥ सर्वत्र उनकी पूजा प्रचलित हुई है. मुनिगण भक्तिपूर्वक पुष्प धूपादि विविध उपहारसे सर्वदा देवीराधिकाकी पूजा करते हैं. हे वत्स नारद! इनके अतिरिक्त प्रकृतिके अंशसे जो सब देवी उत्पन्न हुई हैं भारतमें वह सबही पूजित होती हैं ॥ १५७ ॥ यही क्या? ग्राममें ग्राम्य देवी

पौर्णमास्यांकार्तिकस्यकृष्णेनपरमात्मना ॥ गोपिकाभिश्चगोपैश्चबालिकाभिश्चबालकैः ॥ १५३ ॥ गवांगणैःसुरभ्याचततपश्चादाज्ञयाहरेः ॥ तदाब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिःपरयामुदा ॥ १५४ ॥ पुष्पधूपादिभिर्भक्त्यापूजितावंदितासदा ॥ पृथिव्यांप्रथमंदेवीसुयज्ञेनैवपूजिता ॥ १५५ ॥ शंकरेणोपदिष्टेनपुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ त्रिषुलोकेषुतत्पश्चादाज्ञयापरमात्मनः ॥ १५६ ॥ पुष्पधूपादिभिर्भक्त्यापूजितामुनिभिःसदा ॥ कलायायाःसमुद्भूताः पूजितास्ताश्चभारते ॥१५७॥ पूजिताग्रामदेव्यश्चग्रामेचनगरेमुने॥एवंतेकथितंसर्वंप्रकृतेश्चरितंशुभम् ॥१५८॥ यथागमंलक्षणंचकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ समासेनश्रुतंसर्वंदेवीनांचरितंप्रभो ॥ विबोधनायबोधस्यव्यासेनवक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ सृष्टेराद्यासृष्टिविधौकथमाविर्बभूवह ॥ कथंवापंचधाभूतावदवेदविदांवर ॥ २ ॥ भूतायर्यांशकलयातयात्रिगुणयाभवे ॥ व्यासेन तासांचरितंश्रोतुमिच्छामिसांप्रतम् ॥ ३ ॥ तासांजन्मानुकथनंपूजाध्यानविधिंबुध ॥ स्तोत्रंकवचमैश्वर्यंशौर्यंवर्णयमंगलम् ॥ ४ ॥

वनमें वनदेवी और नगरमें नगर देवीकी पूजा होती है. हे वत्स नारद! यह मैंने तुमसे शास्त्रानुसार संपूर्ण प्रकृतियोंके शुभचरित्र वर्णन किये ॥ १५८ ॥ शास्त्रानुसार लक्षण कहे अब क्या सुननेकी इच्छा है? सो कहो ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ छ ॥ ॥

देवर्षि नारदने नारायणसे कहा हे प्रभो! आपने जो संक्षेपसे पंचप्रकृति देवीका चरितविषय कहा वह मैंने सुना पर अब विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ आप वेदवेत्ताओंमें अग्रणी हैं इसकारण पूँछता हूं कि, इस जगत्प्रपंचके पहिलेही मूलप्रकृति आद्याशक्तिकीसृष्टि क्यों हुई किस निमित्त वह पांच प्रकारसे हुई॥ २॥ कैसे त्रिगुणरूपिणी होकर पांच भागोंमें विभक्त हुई? यह आनुपूर्वीसे सब सुननेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ अतएव अब आप उनके मंगलदायक जन्मका वृत्तान्त पूजाप्रकरण ध्यानविधि, स्तोत्रक

वच महिमा और प्रभाव-विषय सब विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हेदेवर्षे ! आत्मा, नभोमंडल, काल, दशदिक् विश्वोंके गोलक, गोलोक ॥ ५ ॥ और जिसकी अपेक्षा निम्नभाग स्थित वैकुण्ठधाम जिस प्रकार नित्य पदार्थ है? परब्रह्मरूपिणीकी मायारूपिणी मूलप्रकृति भी उसी प्रकार नित्य पदार्थ है ॥ ६ ॥ अग्नि और दाहिकाशक्ति, चन्द्र और रमणीयता, कमल और शोभा रवि और प्रभा जिसप्रकार अभिन्न भावसे सदा परस्पर संयुक्त रहते हैं आत्मा और प्रकृति भी उसी प्रकार अभिन्न भावसे परस्पर मिलित रहती हैं ॥ ७ ॥ जैसे सुनार सुवर्णके विना कुण्डल और कुंभार मट्टीके विना घट बनानेमें समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार आत्मा सर्वशक्तिस्वरूपाप्रकृतिके विना कोई कार्य नहीं कर सकता. अतएव आत्मा प्रकृतिकी सहायतासे ही सर्व शक्तिमान है ॥ ९ ॥ "श" ऐश्वर्यवाचक

श्रीनारायणउवाच॥नित्यआत्मानभोनित्यंकालोनित्योदिशोयथा॥विश्वानांगोलकंनित्यंनित्योगोलोकएवच॥५॥तदेकदेशोवैकुंठोनम्रभागानुसारकः ॥ तथैवप्रकृतिर्नित्याब्रह्मलीलासनातनी ॥ ६ ॥ यथाग्नौदाहिकाचंद्रेपद्मेशोभाप्रभारवौ ॥ शश्वद्युक्तानभिन्नासातयाप्रकृतिरात्मनि ॥ ७ ॥ विनास्वर्णं स्वर्णकारःकुंडलंकर्तुमक्षमः ॥ विनामृदाघटंकर्तुंकुलालोहिनहीश्वरः ॥ ८ ॥ नहिक्षमस्तथात्माचसृष्टिंस्रष्टुंतयाविना ॥ सर्वशक्तिस्वरूपासायययाचश क्तिमान्सदा ॥ ९ ॥ ऐश्वर्यवचनःशश्चक्तिःपराक्रमएवच ॥ तत्स्वरूपातयोर्दात्रीसाशक्तिःपरिकीर्तिता ॥ १० ॥ ज्ञानंसमृद्धिःसंपत्तिर्यशश्चैवबलंभगः ॥ तेनशक्तिर्भगवतीभगरूपाचसासदा ॥ ११ ॥ तयायुक्तःसदात्माचभगवांस्तेनकथ्यते ॥ सचस्वेच्छामयोदेवःसाकारश्चनिराकृतिः ॥ १२ ॥ तेजोरूपं निराकारंध्यायंतेयोगिनःसदा ॥ वदंतिचपरंब्रह्मपरमानंदमीश्वरम् ॥१३॥ अदृश्यंसर्वद्रष्टारंसर्वज्ञंसर्वकारणम् ॥ सर्वदंसर्वरूपंतंवैष्णवास्तन्नमन्वते॥१४॥

और "क्ति" पराक्रमवाचक है. सुतरां ऐश्वर्य और पराक्रमस्वरूपा एवं इन दोनोंकी दात्री होनेसे मूलप्रकृति शक्तिनामसे कही गई है ॥ १० ॥ भग शब्दज्ञान, समृद्धि सम्पत्ति, यश और बलवाचक है अतएव मूलप्रकृतिकी यह सब ज्ञानादिशक्तिं विद्यमान रहनेसे उनको भगवती भी कहते हैं ॥ ११ ॥ आत्मा सदा शक्तिरूपाभगवतीके संग सम्मिलन होनेके कारण भगवान् नामसे अभिहित हुआ है. भगवान् स्वयंइच्छामय देव हैं इसीलिये वह कभी साकार और कभी निराकार होते हैं ॥१२॥ योगीगण सदा इन्हीं निराकारभगवान्‌की तेजोमूर्त्तिकी भावना और उनको ही परमानन्दरूपी, परब्रह्म, परमेश्वर कहकर कीर्त्तन करते हैं ॥ १३ ॥ यद्यपि वह अदृश्य, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्व कारण, सर्वदाता और सर्वरूपी है किन्तु वैष्णवगण यह बात स्वीकार नहीं करते ॥ १४ ॥

वह कहते हैं कि, तेजस्विके विना किसप्रकार तेजकी उत्पत्ति होगी ? अतएव जो ज्योतिमण्डलके मध्यभागमें विराजमान रहते हैं वही परब्रह्म, वही तेजस्वीपुरुष, वही परात्पर॥ १५॥ वही इच्छामय वही सर्वरूपी और वही सब कारणोंका कारण हैं और उनका रूप अत्यन्त मनोहर है ॥ १६॥ वह अवस्थामें किशोर उनकी मूर्त्ति अति शान्त और सबसे कमनीय है। वह परात्पर हैं, उनका श्यामाङ्ग नवीन मेघके समान आभासमान है ॥ १७ ॥ उनके दोनों नेत्रोंने मध्याह्नके कमलोंकी शोभाका तिरस्कार किया है, उनके दांतोंकी पंक्ति देखनेसे मुक्तापंक्ति भी लज्जित होती है॥ १८॥ उनके चूडामें मयूरपुच्छ गलेमें मालतीमाला नासिका अत्यन्त मनोहर और मुखमें हास्य सदा विराजमान है। भक्तोंके प्रति दया प्रकाश करनेमें उनके समान दूसरा कोई नहीं है ॥ १९ ॥ पहरनेके पीताम्बरने मानो प्रज्वलित अग्निके समान द्युति

वदंतिचैवतेकस्यतेजस्तेजस्विनाविना ॥ तेजोमंडलमध्यस्थंब्रह्मतेजस्विनंपरम् ॥ १५ ॥ स्वेच्छामयंसर्वरूपंसर्वकारणकारणम् ॥ अतीवसुंदररूपंबिभ्रतंसुमनोहरम् ॥ १६ ॥ किशोरवयसंशांतंसर्वकांतंपरात्परम् ॥ नवीननीरदाभासधामैकंश्यामविग्रहम् ॥ १७ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ॥ मुक्ताच्छविविनिंद्यैकदंतपंक्तिमनोरमम् ॥ १८ ॥ मयूरपिच्छचूडंचमालतीमाल्यमंडितम् ॥ सुनसंसस्मितंकांतंभक्तानुग्रहकारणम् ॥ १९ ॥ ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम् ॥ द्विभुजंमुरलीहस्तंरत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥ सर्वाधारंचसर्वेशंसर्वशक्तियुतंविभुम् ॥ सर्वैश्वर्यप्रदंसर्वस्वतंत्रंसर्वमंगलम् ॥ २१ ॥ परिपूर्णतमंसिद्धंसिद्धेशंसिद्धिकारकम् ॥ ध्यायंतेवैष्णवाःशश्वद्देवदेवंसनातनम् ॥ २२ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरंपरम् ॥ ब्रह्मणोवयसायस्यनिमेषउपचर्यते ॥ २३ ॥

धारण की है। आजानुलम्बित दोनों हाथमें मुरली विराजमान और संपूर्ण अंग रत्नमयभूषणोंसे भूषित हैं ॥ २० ॥ वह जगत्के एक मात्र आधार सबके प्रभु और सर्व शक्तिमान् विभु हैं। वह सबको सब प्रकार ऐश्वर्य और मंगल प्रदान करते हैं. वह किसीके आधीन नहीं हैं ॥ २१ ॥ उनमें अपूर्णताका लेश मात्रभी नहीं है। वह स्वयं सिद्धपुरुष और समस्त सिद्धपुरुषोंमें प्रधान हैं सबको ही सिद्धि प्रदान करते हैं वैष्णवगण निरन्तर उन्हीं सनातन देवदेव श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥ उनके प्रसादसे मनुष्योंको जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयका लेश मात्रभी नहीं रहता उनका एक

निमेष ब्रह्माकी आयुका परिमाण है ॥ २३ ॥ वही परमात्मा वही परब्रह्म कृष्णनामसे अभिहित होते हैं 'कृषि' शब्द श्रीकृष्णकी भक्ति वाचक और "न" उनका दास्यवाचक है ॥ २४ ॥ अतएव जो भक्ति और दास्यके दाता हैं वही कृष्ण हैं प्रकारान्तरमें "कृषि" शब्दका अर्थ सकल और "न" शब्दका अर्थ बीजहै ॥ २५ ॥ सुतरां जो सबके बीज अर्थात् सबके उत्पन्न कर्ता हैं वही कृष्ण हैं जब सबसे पहिले उन्होंने इसविश्वको उत्पन्न करनेकी इच्छाकी तब एक मात्र श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई विद्यमान नहीं था अंतमें वही प्रभु कालप्रेरित होकर अंशसे सृष्टिकार्यमें उद्योगीहुए ॥ २६ ॥ फिर उन्हीं स्वेच्छामयके स्वीय इच्छानुसार द्विधा विभक्त होनेपर उनका वाम भाग स्त्री और दहिना अंग पुरुषरूपमें परिणत होता है ॥ २७ ॥ तब वह सनातन महाकामी कामके एक मात्र आधार लोचन लोभनीय शोभायमान कमलके समान

सचाऽऽत्मासपरंब्रह्मकृष्णइत्यभिधीयते ॥ कृषिस्तद्भक्तिवचनोनश्चतद्दास्यवाचकः ॥ २४ ॥ भक्तिदास्यप्रदातायःसचकृष्णःप्रकीर्तितः ॥ कृषिश्चसर्ववचनोनकारोबीजमेवच ॥ २५ ॥ सकृष्णःसर्वस्रष्टाऽऽदौसिसृक्षन्नेकएवच ॥ सृष्टयुन्मुखस्तदंशेनकालेनप्रेरितःप्रभुः ॥ २६ ॥ स्वेच्छामयः स्वेच्छयाचद्विधारूपोबभूवह ॥ स्त्रीरूपोवामभागांशोदक्षिणांशःपुमान्स्मृतः ॥ २७ ॥ तांददर्शमहाकामीकामाधारांसनातनः ॥ अतीवकम नीयांचचारुपंकजसन्निभाम् ॥ २८ ॥ चंद्रबिंबविनिंद्यैकनितंबयुगुलांपराम् ॥ सुचारुकदलीस्तंभनिंदितश्रोणिसुंदरीम् ॥ २९ ॥ श्रीयुक्तश्रीफला कारस्तनयुग्ममनोरमाम् ॥ पुष्पजुष्टांसुवलितांमध्यक्षीणांमनोहराम् ॥ ३० ॥ अतीवसुंदरींशांतांसस्मितांवक्रलोचनाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधारांरत्नभू षणभूषिताम् ॥ ३१ ॥ शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यांपिबंतींसततंमुदा ॥ कृष्णस्यमुखचंद्रंचचंद्रकोटिविनिंदितम् ॥ ३२ ॥ कस्तूरीबिंदुनासार्धमधश्चंदनबिं दुना ॥ समंसिंदूरबिंदुंचभालमध्येचबिभ्रतीम् ॥ ३३ ॥ वक्रिमंकवरीभारंमालतीमाल्यभूषितम् ॥ रत्नेंद्रसारहारंचदधतींकांतकामुकीम् ॥ ३४ ॥

वामाङ्ग संभूता रमणीपर दृष्टिपात करते हैं ॥ २८ ॥ इस स्त्रीके दोनों नितम्ब चन्द्रमण्डलका तिरस्कार करते हैं उसके दोनों ऊरु देखनेसे कदली स्तम्भ स्तम्भित हो जाँय ॥ २९ ॥ उसके दोनों स्तनके देखनेसे शोभायमान दो श्रीफलकी भान्ति होती है कबरी बंधनमें पुष्प गुँथे हुए कमर अत्यन्त पतली, देखनेमें अत्यन्त मनोहर ॥ ३० ॥ अतीव सुंदर, मूर्त्ति अतिशान्त मुखमें सदा हास्य दृष्टि पैरोंमें लगी हुई पहरनेके अनलमें विशुद्ध उत्कृष्ट, वस्त्र, सर्वाङ्ग रत्नमय भूषणोंसे भूषित हैं ॥ ३१ ॥ उसके नयन चकोर आनंदसे निरन्तर श्रीकृष्णके करोड़ चन्द्र लजानेवाले मुख चन्द्रको पान करते हैं ॥ ३२ ॥ उसके ललाटमें सिन्दूरबिन्दु उसके ऊपर चन्दनविन्दु और उसके ऊपर कस्तूरी लगी हुई है ॥ ३३ ॥ उसके मस्तकका कबरीभाव कुछेक वक्र, वहभी फिर मालतीमालसे विभूषित गलेमें सर्वोत्कृष्ट रत्नहार विराजित और वह सदा केवल स्वामीके प्रति

स्पृहावती है ॥ ३४ ॥ उसका रूप देखनेसे बोध होता है मानो एकवारही करोड़ चन्द्रमाउदय हुए हैं उसका गमन देखकर राजहंस और मातङ्गका गर्व खर्व होजाता है ॥ ॥ ३५ ॥ हेमुनिवर ! रासेश्वर रासक्रीडा रसिक श्रीकृष्ण वे क्षणकाल अपाङ्गमें उसकोदेख फिर उसका हाथ पकड रासमंडलमें जाय रासक्रीडा आरम्भ करी ॥ ३६ ॥ मानो शृङ्गारदेव स्वयं मूर्त्तिमान् होकर विविध शृंगार सुख संभोग करने लगे. यही क्या ? इस क्रीडामें ब्रह्माका एक दिन बीतगया ॥ ३७ ॥ तब जगत् पिताने थकित होकर शुभ कालमें उस वामाङ्गसंभूता रमणीकी योनिमें गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ प्रकृति देवी श्रीकृष्णके निपीडनसे बहुत थकगई थी इस कारण सुरताके अन्तमें उनके गात्रसे पसीना निकलने लगा ॥ ३९ ॥ और घनघन श्वास चलने लगा, उनके ही पसीनेने जलरूपमें परिणत होकर सम्पूर्ण विश्वको आच्छादित किया ॥

कोटिचंद्रप्रभामृष्टपुष्टशोभासमन्विताम् ॥ गमनेनराजहंसगजगर्वविनाशिनीम् ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वातांतुतयासार्धंरासेशोरासमंडले ॥ रासोल्लासिसुरसिकोरासक्रीडांचकारह ॥ ३६ ॥ नानाप्रकारश्शृंगारंशृंगारोमूर्तिमानिव ॥ चकारसुखसंभोगंयावद्वैब्रह्मणोदिनम् ॥ ३७ ॥ ततःसचपरिश्रांतस्तस्यायोनौजगत्पिता ॥ चकारवीर्याधानंचनित्यानंदश्शुभक्षणे ॥ ३८ ॥ गात्रतोयोषितस्तस्याःसुरतांतेचसुव्रत ॥ निःससारश्रमजलंश्रांतायास्तेजसाहरेः ॥ ३९ ॥ महाक्रमणक्लिष्टायानिःश्वासश्चबभूवह ॥ तदावव्रेश्रमजलंतत्सर्वंविश्वगोलकम् ॥ ४० ॥ सचनिःश्वासवायुश्चसर्वाधारोबभूवह ॥ निःश्वासवायुःसर्वेषांजीविनांचभवेषुच ॥ ॥ ४१ ॥ बभूवमूर्तिमद्वायोर्वामांगात्प्राणवल्लभा ॥ तत्पत्नीसाचतत्पुत्राःप्राणाःपंचचजीविनाम् ॥ ४२ ॥ प्राणोपानःसमानश्चोदानव्यानौचवायवः ॥ बभूवुरेवतत्पुत्राअधःप्राणाश्चपंचच ॥ ४३ ॥ घर्मतोयाधिदेवश्चबभूववरुणोमहान् ॥ तद्वामांगाच्चतत्पत्नीवरुणानीबभूवसा ॥ ४४ ॥ अथसाकृष्णचिच्छक्तिःकृष्णगर्भंदधारह ॥ शतमन्वंतरंयावज्ज्वलंतीब्रह्मतेजसा ॥ ४५ ॥ कृष्णप्राणाधिदेवीसाकृष्णप्राणाधिकप्रिया ॥ कृष्णस्यसंगिनीशश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥ ४६ ॥

॥ ४० ॥ और वह निश्वास वायुही वायुरूप धारण करके जगत्वासी मनुष्योंके जीवनरूपमें परिणत हुआ ॥ ४१ ॥ वायुदेवके वामाङ्ग जिस रमणीरत्नकी उत्पत्ति होती है वही इन वायुदेवकी पत्नी और उसकेही संसर्गसे प्राण अपान समान उदान और व्यान नामक जो पंचपुत्रोंकी उत्पत्ति होती है वही जीवोंके पांच प्राण हैं उनके अतिरिक्त वायुपत्नीके गर्भसे नागादि और पांच अधः प्राणकी उत्पत्ति हुई है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पसीनेके जलसे जिस जलकी उत्पत्ति हुई, वरुणदेव उसके अधिष्ठाता और वरुणदेवके वामाङ्गसे जिस रमणीकी उत्पत्ति हुई वही वरुणपत्नी वरुणानी हैं ॥ ४४ ॥ इस ओर श्रीकृष्णकी ज्ञानरूपाशक्तिने श्रीकृष्णके सहवाससे शत मन्वन्तर पर्यन्त गर्भधारण किया ब्रह्मतेजसे उसके शरीरने उज्ज्वल ज्योति धारण की ॥ ४५ ॥ कृष्णही उसके जीवन और वही कृष्णको प्राणोंसे भी प्रियपदार्थ है सदा

ही कृष्णके संगमें अवस्थित है अधिक क्या श्रीकृष्णके वक्षस्थलका आश्रय करके अवस्थान करती है ॥ ४६ ॥ अनन्तर शत वर्ष काल व्यतीत होनेपर उस सुन्दरीने सुवर्णकेसमान वर्णयुक्त एक बालक उत्पन्न किया यह (बालक) ही विश्वाधारका एक मात्र आधार है ॥ ४७ ॥ तब श्रीकृष्णकी कान्ता उस डिम्बको देखकर मनमें अत्यन्त दुःखी हुई और क्रोधमें भरकर उस डिम्बको ब्रह्माण्ड मध्यवर्ती सलिलमें डाल दिया ॥ ४८ ॥ यह देख श्रीकृष्ण हाहाकार शब्द कर उठे और तिसी समय यथोचित शाप देकर कहा ॥ ४९ ॥ हे कोपने! निष्ठुरे! जब तुमने क्रोधमें भरकर अपने सन्तानको त्याग दिया है तब मैं कहता हूं कि, आजसे तुम निःसन्देह अपत्यसे वञ्चित होगी ॥ ५० ॥ इसके अतिरिक्त जो सब देवयाङ्गना तुम्हारे अंशसे उत्पन्न होंगी वह भी सब स्थिर यौवन होकर तुम्हारे समान अपुत्र होंगीं ॥ ५१ ॥ हे मुनिवर! श्रीकृष्ण इसप्रकार शाप दे ही रहे थे उसी अवसरमें सहसा उस श्रीकृष्ण प्रियाकी जिह्वाके

शतमन्वंतरांतेचकालेतीतेतुसुंदरी ॥ सुषावडिंभंस्वर्णाभंविश्वाधारालयंपरम् ॥ ४७ ॥ दृष्ट्वाडिंभंचसादेवीहृदयेनव्यदूयत ॥ उत्ससर्जचकोपेनब्रह्मांडगोलकेजले ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वाकृष्णश्चतत्त्यागंहाहाकारंचकारह ॥ शशापदेवींदेवेशस्तत्क्षणंचयथोचितम् ॥ ४९ ॥ यतोऽपत्यंत्वयात्यक्तंकोपशीलेचनिष्ठुरे ॥ भवत्वमनपत्याऽपिचाद्यप्रभृतिनिश्चितम् ॥ ५० ॥ यायास्त्वदंशरूपाश्चभविष्यंतिसुरस्त्रियः ॥ अनपत्याश्चताःसर्वास्त्वत्समानित्ययौवनाः ॥५१ ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवीजिह्वाग्रात्सहसाततः ॥ आविर्बभूवकन्यैकाशुक्लवर्णामनोहरा ॥ ५२ ॥ श्वेतवस्त्रपरीधानावीणापुस्तकधारिणी ॥ रत्नभूषणभूषाढ्यासर्वशास्त्राधिदेवता ॥ ५३ ॥ अथकालांतरेसाचद्विधारूपाबभूवह ॥ वामार्धांगाच्चकमलादक्षिणार्धाच्चराधिका ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नंतरेकृष्णोद्विधारूपोबभूवसः ॥ दक्षिणार्धश्चद्विभुजोवामार्धश्चचतुर्भुजः ॥ ५५ ॥ उवाचवाणींकृष्णस्तांत्वमस्यकामिनीभव ॥ अत्रैवमानिनीराधातवभद्रंभविष्यति ॥ ५६ ॥ एवंलक्ष्मींचप्रददौतुष्टोनारायणायच ॥ सजगामचवैकुंठेताभ्यांसार्धंजगत्पतिः ॥ ५७ ॥

अग्रभागसे श्वेतवर्ण अति मनोरम एक कन्याकी उत्पत्ति हुई ॥ ५२ ॥ उसके वस्त्र सफेद हाथमें वीणा और पुस्तक और सब अंगरत्नमय भूषणोंसे विभूषित थे वही संपूर्ण शास्त्रोंकी अधिदेवता है ॥ ५३ ॥ कुछ कालोपरान्त वह श्रीकृष्ण प्रिया मूलप्रकृति दो भागमें विभक्त हुई उसके वाम अंगसे कमला और दक्षिणअंगसे राधिका की उत्पत्ति हुई ॥ ५४ ॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्ण भी द्विधा विभक्त हुए उनके दक्षिणार्द्धसे द्विभुज और वामार्द्धसे चतुर्भुज मूर्त्तिका आविर्भाव हुआ ॥ ५५ ॥ तब श्रीकृष्णने वीणाधारिणी वाणीसे कहा हे देवि! तुम इस द्विभुज पुरुषकी कामिनी होओ और राधासे कहा हे राधे! तुम अभिमानवती हो इस कारण तुम मेरी पत्नी होओ तुम्हारा मंगल होगा ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णने संतुष्ट होकर लक्ष्मीको भी द्विभुज नारायणके हाथमें समर्पण किया फिर जगत्पति नारायण

लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंको संग लेकर वैकुण्ठधाममें चले गये ॥५७॥ हे मुनिवर! श्रीकृष्णके शापसे लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंही पुत्रधनसे वञ्चित रहीं चतुर्भुज नारायणके अंगसे उनके अनुरूप कितनेही पार्श्व चर उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ वह सबरूप गुण तेज और वयसमें उनके समान थे इधर कमलाके शरीरसे भी उसके समान रूप गुणशालिनी करोड करोड पार्श्वचारिणियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ५९ ॥ अनन्तर गोलोकनाथ श्रीकृष्णके रोमकूपसे असंख्य गोपोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६० ॥ वह सभी रूप गुण पराक्रम और वयसमें गोलोकनाथके अनुरूप थे अधिक क्या? वह सब उन विभुके प्राणोंके समान प्रियपात्र थे ॥ ६१ ॥ राधिकाके रोमोंसे गोपक कन्याओंकी उत्पत्ति हुई वह सब गोपाङ्गना राधाके अनुरूप राधाकोही पार्श्वचरी और सभी प्रियंवदा थीं ॥ ६२ ॥ उनका संपूर्ण शरीर रत्नमय भूषणोंसे विभूषित और सदास्थिरयौवना थीं. श्रीकृष्णके शापसे उनमें किसीके भी संतान सन्तति नहींहुई ॥ ६३ ॥ हे द्विजवर! इस ओर इसीसमय सहसा कृष्णदेवता सनातनी

अनपत्येचतेद्वेचजातेराधांशसंभवे ॥ भूतानारायणांगाच्चपार्षदाश्चचतुर्भुजाः ॥५८॥ तेजसावयसारूपगुणाभ्यांचसमाहरेः ॥ बभूवुःकमलांगाच्चदासीकोट्यश्चतत्समाः ॥५९॥ अथगोलोकनाथस्यलोम्नांविवरतोमुने॥भूताश्चाऽसंख्यगोपाश्चवयसातेजसासमाः ॥६०॥ रूपेणचगुणेनैवबलेनविक्रमेणच॥प्राणतुल्यप्रियाःसर्वेबभूवुःपार्षदाविभोः॥६१॥ राधांगलोमकूपेभ्योबभूवुर्गोपकन्यकाः ॥ राधातुल्याश्चताःसर्वाराधादास्यःप्रियंवदाः॥६२॥रत्नभूषणभूषाढ्याःशश्वत्सुस्थिरयौवनाः॥अनपत्याश्चताःसर्वाःपुंसःशापेनसंततम्॥६३॥एतस्मिन्नंतरेविप्रसहसाकृष्णदेवता॥आविर्बभूवदुर्गासाविष्णुमायासनातनी॥६४॥ देवीनारायणीशानासर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ बुद्ध्यधिष्ठात्रीदेवीसाकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ ६५ ॥ देवीनांबीजरूपाचमूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ परिपूर्णतमातेजःस्वरूपात्रिगुणात्मिका ॥ ६६ ॥ तप्तकांचनवर्णाभाकोटिसूर्यसमप्रभा ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यासहस्रभुजसंयुता ॥६७॥ नानाशस्त्रास्त्रनिकरंबिभ्रतीसात्रिलोचना ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानारत्नभूषणभूषिता ॥६८॥ यस्याश्चांशांशकलयाबभूवुःसर्वयोषितः ॥ सर्वेविश्वस्थितालोकामोहिताःस्युश्चमायया ॥६९॥

विष्णुमाया दुर्गाकी उत्पत्ति हुई ॥ ६४ ॥ वही नारायणी वही ईशानी सबकी शक्तिरूपिणी और वही परमात्मरूपी श्रीकृष्णकी बुद्धिको अधिष्ठात्री देवता हैं ॥ ६५ ॥ उनसे ही अन्यान्य देवियोंकी उत्पत्ति हुई है वही मूलप्रकृति और वही ईश्वरी हैं उनमें अपूर्णताका लेशमात्र नहीं है वही तेजःस्वरूपा और वही त्रिगुणात्मिका हैं ॥ ६६ ॥ उनका वर्ण तप्त कंचनके समान उज्ज्वल है, उनका सौन्दर्य देखनेसे बोध होता है मानो एकबार ही करोड़ सूर्य उदय हुए हैं कुछेक हास्यसे मुस्कुरातामुख संतत प्रसन्न और हस्तसंख्यामें सहस्र हैं ॥ ६७ ॥ और सब हाथोंमेंही अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र हैं उन त्रिलोचनाका परिधान अग्नि विशुद्ध उज्ज्वल वर्ण वस्त्र और अंगोंमें जो कितने ही रत्नाभरण हैं. उनकी सीमा नहीं है. ॥ ६८ ॥ उनकेही अंश और उनकेही अंशके अंशसे संपूर्ण रमणीरत्नकी उत्पत्ति

हुई है उनकीही मायाके प्रभावसे जगत्के संपूर्ण लोक मोहित हैं ॥ ६९ ॥ गृहस्थी लोग जिस जिस प्रकारके ऐश्वर्यकी कामना करते हैं वह उनको वही प्रदान करती हैं वही कृष्णभक्त मनुष्यको कृष्णभक्ति प्रदान करती हैं. अधिक क्या? वही वैष्णवोंकी वैष्णवी शक्ति हैं ॥ ७० ॥ वह मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको मोक्ष और सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सुख देती हैं. वही स्वर्गकी स्वर्गलक्ष्मी और गृहकी गृहलक्ष्मी हैं ॥ ७१ ॥ वही तपस्वियोंका तप राजाओंकी राज्यश्री; अग्निकी दाहिकाशक्ति सूर्यकी प्रभा ॥ ७२ ॥ चन्द्रकी रमणीयता, कमलकी शोभा और परमात्मरूपी श्रीकृष्णकी शक्तिस्वरूप हैं ॥ ७३ ॥ क्या आत्मा क्या जगत् समस्तही उनके द्वारा शक्तिशाली हैं उनके विना संपूर्ण जगत् प्रायः जीवन्मुक्त होता है ॥ ७४ ॥ हे नारद! वही

सर्वैश्वर्यप्रदात्रीचकामिनांगृहवासिनाम् ॥ कृष्णभक्तिप्रदायाचवैष्णवानांचवैष्णवी ॥ ७० ॥ मुमुक्षूणांमोक्षदात्रीसुखिनांसुखदायिनी ॥ स्वर्गेषुस्वर्गलक्ष्मीश्चगृहलक्ष्मीर्गृहेषुच ॥ ७१ ॥ तपस्विषुतपस्याचश्रीरूपातुनृपेषुच ॥ यावह्नौदाहिकारूपाप्रभारूपाचभास्करे ॥ ७२॥ शोभारूपाचचंद्रेचसापद्मेषुचशोभना ॥ सर्वशक्तिस्वरूपायाश्रीकृष्णेपरमात्मनि॥७३॥ययाचशक्तिमानात्माययाचशक्तिमज्जगत्॥ययाविनाजगत्सर्वंजीवन्मृतमिवस्थितम् ॥७४॥ याचसंसारवृक्षस्यबीजरूपासनातनी ॥ स्थितिरूपाबुद्धिरूपाफलरूपाचनारद॥७५॥क्षुत्पिपासादयारूपानिद्रातंद्राक्षमाधृतिः ॥ शांतिलज्जातुष्टिपुष्टिभ्रांतिकांत्यादिरूपिणी ॥ ७६ ॥ साचसंस्तूयसर्वेशंतत्पुरःसमुवासह ॥ रत्नसिंहासनंतस्यैप्रददौराधिकेश्वरः॥ ७७॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रसस्त्रीकश्चचतुर्मुखः ॥ पद्मनाभेर्नाभिपद्मान्निस्ससारमहामुने ॥ ७८ ॥ कमंडलुधरःश्रीमांस्तपस्वीज्ञानिनांवरः ॥ चतुर्मुखैस्तंतुष्टावप्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥ ७९ ॥

संसारवृक्षका बीज वही सनातनी वही स्थिति वही बुद्धि वही फल ॥ ७५ ॥ वही क्षुधा वही पिपासा वही दया वही निद्रा वही तन्द्रा वही क्षमा वही धृति वही शान्ति वही लज्जा वही पुष्टि वही तुष्टि और वही कान्तिरूपिणी हैं ॥ ७६ ॥ वह मूल प्रकृति सर्वेश्वर श्रीकृष्णका स्तव करके उनके सन्मुख अवस्थान करने लगीं तब राधिकेश्वरने उसके बैठनेको सिंहासन दिया ॥ ७७ ॥ हे महामुने! इसी समयमें पद्मनाभके नाभिपद्मसे अतीव रमणीय मूर्त्ति सावित्रीपत्नीसहित चतुर्मुख ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ ॥ ७८ ॥ वह कमण्डलुधारी ज्ञानियोंमें अग्रणी तपःपरायण श्रीमान् चतुर्मुख उत्पन्न होतेही चारोंमुखसे श्रीकृष्णका स्तव करने लगे ॥ ७९ ॥

इधर वह सुख संभूत शत चन्द्रप्रभा, अग्निविशुद्धवसनधारिणी अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित ॥ ८० ॥ देवी सावित्री विश्वके एकमात्र कारण स्वरूप श्रीकृष्णका स्तव करके परमानन्दपूर्वक स्वामीके संग रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हुई॥ ८१॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्णभी द्विधा अर्थात् दो भागोंमें विभक्त हुए उनका वामार्द्धभाग महादेव और दक्षिणार्द्ध गोपिकापति रूपमें परिणत हुआ ॥ ८२ ॥ महादेवजीके शरीरकी प्रभा विशुद्ध स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण देखनेसे बोध होता है मानो एक संग सौ करोडसूर्य उदय हुए हैं जिनके हाथमें त्रिशूल और पट्टिश, परिधान व्याघ्रचर्म ॥ ८३ ॥ शिरपर तप्तकाञ्चनके समान पिङ्गलवर्ण जटाभार, सर्वाङ्गमें भस्म विलेपन मुखमें हास्य और भालमें अर्द्धचन्द्र ॥ ८४ ॥ जिनके कटितटमें वस्त्र नहीं अतएव दिगम्बर हैं जिनका कंठ नीलवर्ण है अंगमें सर्प विभूषण, दहिने हाथमें

सातदासुंदरीसृष्टाशतचंद्रसमप्रभा ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानारत्नभूषणभूषणा ॥ ८० ॥ रत्नसिंहासनेरम्येसंस्तूयसर्वकारणम् ॥ उवासस्वामिनासार्धंकृष्णस्यपुरतोमुदा ॥ ८१ ॥ एतस्मिन्नंतरेकृष्णोद्विधारूपोबभूवसः ॥ वामार्धांगोमहादेवोदक्षिणेगोपिकापतिः ॥ ८२ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशःशतकोटिरविप्रभः ॥ त्रिशूलपट्टिशधरोव्याघ्रचर्मांबरोहरः ॥ ८३ ॥ तप्तकांचनवर्णाभोजटाभारधरःपरः ॥ भस्मभूषितगात्रश्चसस्मितश्चंद्रशेखरः ॥ ८४ ॥ दिगंबरोनीलकंठःसर्पभूषणभूषितः ॥ बिभ्रद्दक्षिणहस्तेनरत्नमालांसुसंस्कृताम् ॥८५॥ प्रजपन्पंचवक्त्रेणब्रह्मज्योतिःसनातनम् ॥ सत्यस्वरूपंश्रीकृष्णंपरमात्मानमीश्वरम् ॥ ८६ ॥ कारणंकारणानांचसर्वमंगलमंगलम् ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरंपरम् ॥ ८७ ॥ संस्तूयमृत्योर्मृत्युंतंयतोमृत्युंजयाभिधः ॥ रत्नसिंहासनेरम्येसमुवासहरःपुरः ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अथडिंभोजलेतिष्ठन्यावद्वैब्रह्मणोवयः ॥ ततःसकालेसहसाद्विधाभूतोबभूवह ॥ १ ॥

(जपके उपयोगी) रत्नमाला ॥८५॥ जो पंचमुखसे केवल सनातन वेदमंत्रका जप करतेथे जो सत्यस्वरूप कृष्णस्वरूप परमात्मस्वरूप ईश्वरस्वरूप ॥८६॥ सम्पूर्ण उपादानके भी उपादानस्वरूप सम्पूर्ण मंगलके भी मंगलस्वरूप, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधिशोक और भय भंजन ॥ ८७ ॥ श्रीकृष्णका स्तवकर मृत्युको जीत मृत्युञ्जय नाम पाया वही महादेव श्रीकृष्णके सन्मुख रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हुए ॥८८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारायण बोले हे देवर्षे ! मूलशक्तिप्रसूत जो डिम्भ ब्रह्माके वयः परिमित कालतक जलमें भासमान था वह डिम्भ अब यथोचित समयमें सहसा द्विधा विदीर्ण हुआ ॥ १ ॥

इस डिम्भमें सौकरोड़ सूर्यके समान प्रभायुक्त एक बालक विद्यमान था माताके परित्याग करनेसे स्तनपान नहीं करसका इसकारण भूंखसे कातर होकर क्षणकालतक वारंवार रोदन करने लगा ॥ २ ॥ जो बालक परिणाममें असंख्य ब्रह्माण्डके अधीश्वर रूपमें परिणत है पिता माता हीन वह बालक निराश्रय होकर जलसे ऊर्द्धभाग अवलोकन करने लगा ॥ ३ ॥ फिर अन्तमें यही बालक एकही वार स्थूलतम होकर महाविराट्नामसे अभिहित हुआ है जिसप्रकार परमाणुसे सूक्ष्म तम पदार्थ अन्य (दूसरा) नहीं है इसीप्रकार महाविराट्से स्थूलतम पदार्थ भी दूसरानहीं है ॥ ४ ॥ इस महाविराट्का प्रभाव परमात्मरूपी श्रीकृष्णके सोलहवें अंशका एक अंश है किन्तु राधारूपा प्रकृतिसंभूत यह बालकही सब विश्वका एकमात्र आधार और वही महाविष्णुनामसे अभिहित है ॥ ५ ॥ उसके प्रत्येक रोममें असंख्य

तन्मध्येशिशुरेकश्चशतकोटिरविप्रभः ॥ क्षणंरोरूयमाणश्चस्तनांधःपीडितःक्षुधा ॥ २ ॥ पित्रामात्रापरित्यक्तोजलमध्येनिराश्रयः ॥ ब्रह्मांडासंख्यनाथो योददर्शोर्ध्वमनाथवत् ॥ ३ ॥ स्थूलात्स्थूलतमःसोऽपिनाम्नादेवोमहाविराट् ॥ परमाणुर्यथासूक्ष्मात्परःस्थूलात्तथाऽप्यसौ ॥ ४ ॥ तेजसाषोडशांशोऽयंकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ आधारःसर्वविश्वानांमहाविष्णुश्चप्राकृतः ॥ ५ ॥ प्रत्येकंलोमकूपेषुविश्वानिनिखिलानिच ॥ अस्याऽपितेषांसंख्यांचकृष्णोवक्तुंनहिक्षमः ॥ ६ ॥ संख्याचेद्रजसामस्तिविश्वानांनकदाचन ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनांतथासंख्यानविद्यते ॥ ७ ॥ प्रतिविश्वेषुसंत्येवंब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ पातालाद्ब्रह्मलोकांतंब्रह्मांडंपरिकीर्तितम् ॥ ८ ॥ ततऊर्ध्वंचवैकुंठोब्रह्मांडाद्बहिरेवसः ॥ ततऊर्ध्वंचगोलोकःपंचाशत्कोटियोजनः ॥ ९ ॥ नित्यःसत्यस्वरूपश्चयथाकृष्णस्तथाऽप्ययम् ॥ सप्तद्वीपमितापृथ्वीसप्तसागरसंयुता ॥ १० ॥ ऊनपंचाशदुपद्वीपासंख्यशैलवनान्विता ॥ ऊर्ध्वं सप्तस्वर्गलोकाब्रह्मलोकसमन्विताः ॥ ११ ॥

विश्व विराजमान हैं अधिक क्या श्रीकृष्णभी उन सब विश्वकी संख्या गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ६ ॥ कदाचित् रजःसंख्याकी गणना होजाय किन्तु विश्वकी संख्या गणना संभव नहीं है और इसी प्रकार कितने ब्रह्मा कितने विष्णु और कितने महादेव विद्यमान रहते हैं उनकी भी संख्या नहीं है ॥७॥ प्रति ब्रह्माण्डमें ही ब्रह्मा विष्णु और महादेव विद्यमान रहते हैं पातालसे ब्रह्मलोकपर्यन्त एक एक ब्रह्माण्डकी सीमा है ॥ ८ ॥ वैकुण्ठधाम उसके ऊपर अर्थात् ब्रह्माण्डके बहिर्भागमें अवस्थित है और गोलोकधाम इस वैकुण्ठधामके पञ्चाशत कोटि योजन ऊर्द्धमें अवस्थित है॥९॥श्रीकृष्ण जिसप्रकार नित्य और सत्यस्वरूप हैं यह गोलोकधाम उसी प्रकार है सप्तद्वीप समन्वित यह पृथ्वी सातसमुद्रसे परिवेष्टित रहती है ॥ १० ॥ इसमें उंचास उपद्वीप विद्यमान हैं इनके अतिरिक्त कितने ही जो पर्वत और वन विद्यमान रहते हैं उनकी

संख्या नहीं है उनके ऊर्ध्वमें ब्रह्मलोकसहित सप्तस्वर्ग ॥ ११ ॥ और अधोभागमें सप्तपाताल हैं, यही ब्रह्माण्डकी सीमा है. धराके व्यवधानसे आगे ऊर्ध्वमें भूर्लोक उसके ऊपर भुवर्लोक ॥ १२ ॥ उसके ऊपर स्वर्लोक उसके ऊपर जनलोक उसके ऊपर तपोलोक; उसके ऊपर सत्यलोक ॥ १३ ॥ और तिसके ऊपर ब्रह्मलोक है। इस ब्रह्मलोककी प्रभा तप्तकांचनके समान है, किन्तु यह ब्रह्माण्ड विवृति के बहिर्भागमें स्थित हो वा आभ्यन्तरीण हो संपूर्ण पदार्थही कृत्रिम अर्थात् अनित्य हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्माण्डके विनाशमें सम्पूर्णही नष्ट होताहै। समस्त विश्वही जलबुद्बुदके समान अनित्य है ॥ १५ ॥ केवल गोलोक और वैकुण्ठ धाम नित्य पदार्थ है महाविराट्के प्रत्येक रोममेंही एक एक ब्रह्माण्ड विराजमान है ॥ १६ ॥ दूसरेकी तो बातही नहीं स्वयं श्रीकृष्ण भी इन समस्त ब्रह्माण्डकी संख्या गणना करनेमें समर्थ नहीं है प्रत्येक ब्रह्माण्डमेंही ब्रह्मा विष्णु और महादेव विद्यमान रहते हैं ॥ १७ ॥ हे वत्स नारद ! प्रति ब्रह्माण्डमेंही देवताओंकी संख्या तीन

पातालानिचसप्ताधश्चैवंब्रह्मांडमेवच ॥ ऊर्ध्वंधरायाभूर्लोकोभुवर्लोकस्ततःपरम् ॥ १२ ॥ ततःपरश्चस्वर्लोकोजनलोकस्तथापरः ॥ ततःपरस्तपोलोकस्सत्यलोकस्ततःपरः ॥ १३ ॥ ततःपरंब्रह्मलोकस्तप्तकांचनसन्निभः ॥ एवंसर्वंकृत्रिमंचबाह्याभ्यंतरमेवच ॥ १४ ॥ तद्विनाशेविनाशश्चसर्वेषामेवनारद ॥ जलबुद्बुदवत्सर्वंविश्वसंघमनित्यकम् ॥ १५ ॥ नित्यौगोलोकवैकुंठौप्रोक्तौशश्वदकृत्रिमौ ॥ प्रत्येकंलोमकूपेषुब्रह्मांडंपरिनिश्चितम् ॥ १६ ॥ एषांसंख्यांनजानातिकृष्णोऽन्यस्याऽपिकाकथा ॥ प्रत्येकंप्रतिब्रह्मांडंब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १७ ॥ तिस्रःकोट्यःसुराणांचसंख्यासवेत्रपुत्रक ॥ दिगीशाश्चैवदिक्पालानक्षत्राणिग्रहादयः ॥१८॥ भुविवर्णाश्चचत्वारोऽप्यधोनागाश्चराचराः ॥ अथकालेत्रसविराडूर्ध्वंदृष्ट्वापुनःपुनः ॥१९॥ डिंभांतरेचशून्यंचनाद्वितीयंचाकिंचन ॥ चिंतामवापक्षुद्युक्तोरुरोदचपुनःपुनः ॥ २० ॥ ज्ञानंप्राप्यतदादध्यौकृष्णंपरमपूरुषम् ॥ ततोददर्शतत्रैवब्रह्मज्योतिःसनातनम् ॥ २१ ॥ नवीनजलदश्यामंद्विभुजंपीतवाससम् ॥ सस्मितंमुरलीहस्तंभक्तानुग्रहकातरम् ॥ २२ ॥

करोड़ है. इनमें कितनेही दिक्पति कितनेही दिक्पाल कितनेही नक्षत्र और कितनेही ग्रहादि हैं ॥ १८ ॥ भूलोकमें ब्राह्मणादि चारोंवर्ण और पातालमें नाग हैं इस प्रकार स्थावर जंगमात्मक विश्व विद्यमान रहता है ॥ यही ब्रह्माण्ड विवृति है ॥ १९ ॥ हे वत्स नारद ! इस ओर वह विराट् पुरुष वारंवार ऊपरको देखनेलगे किन्तु उन्होंने उस (दोभाग हुए) अंडेमें शून्य पदार्थके अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा, तब वह भूंखसे अत्यन्त कातर हो वारंवार रुदन करते हुए अत्यन्त चिन्ता करने लगे ॥ २० ॥ कुछ कालोपरान्त पूर्वसंस्कारके बलसे ज्योंही उनके मनमें अस्तित्व बुद्धिका उदय हुआ, उसीसमय वह परम पुरुष श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्न हुए तब तत्काल वहां उस सनातन ब्रह्मज्योतिको देखा ॥ २१ ॥ उनका रूप नवीन मेघके समान श्यामवर्ण दो हाथ परिधान पीताम्बर मुखमें

कुछेक हास्य हाथमें मुरली और उनका रूप देखनेसे बोध होता था, मानों भक्तके प्रति दया प्रकाश करनेमें अत्यन्त तत्पर हैं ॥ २२ ॥ विराट्रूपी बालक सर्वेश्वर अपने पिताको देखतेही आनन्दसे हँसने लगा. तब उन वरददेवने बालकको समयोचित वरदान करके कहा ॥ २३ ॥ "हे वत्स ! तुम मेरे समान ज्ञानयुक्त होओ, तुम्हारी भूंख प्यास दूरहो तुम प्रलयकालपर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डके आधार होओ ॥ २४ ॥ तुम संपूर्ण वासनाको छोड़ सम्यक्प्रकारसे भयरहित हो प्राणियोंको अभीष्ट प्रदान करो जरा मरण रोग, शोक वा किसीप्रकारकी पीड़ादि तुमको स्पर्श करनेमें समर्थ न हो॥ २५॥ यह कहकर उसके कानमें साङ्गवेदपूजित अभीष्टप्रद सर्वविघ्नविनाशन "ॐ कृष्णाय स्वाहा" यह षडक्षर महामंत्र तीनवार जपा ॥ २६ ॥ २७॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! विभु श्रीकृष्णने इसप्रकार महामंत्र प्रदान करके फिर उसके भोगके लिये जिसप्रकार आहारविधान किया वह कहता हूं सुनो ॥ २८ ॥ प्रतिविश्वमें भक्तलोग श्रीकृष्णको जो नैवेद्य प्रदान करते हैं उसका

जहासबालकस्तुष्टोदृष्ट्वाजनकमीश्वरम् ॥ वरंतदाददौतस्मैवरेशःसमयोचितम्॥२३॥मत्समोज्ञानयुक्तश्चक्षुत्पिपासादिवर्जितः ॥ ब्रह्मांडासंख्यनिलयोभव वत्सलयावधि॥२४॥निष्कामोनिर्भयश्चैवसर्वेषांवरदोभव॥ जरामृत्युरोगशोकपीडादिवर्जितोभव॥२५॥इत्युक्त्वातस्यकर्णेसमहामंत्रंषडक्षरम्॥त्रिःकृत्व श्चप्रजजापवेदांगप्रवरंपरम् ॥२६॥ प्रणवादिचतुर्थ्यंतंकृष्णइत्यक्षरद्वयम् ॥ वह्निजायांतमिष्टंचसर्वविघ्नहरंपरम् ॥२७ ॥ मंत्रंदत्त्वातदाहारंकल्पयामासवै विभुः ॥ श्रूयतांतद्ब्रह्मपुत्रनिबोधकथयामिते ॥ २८ ॥ प्रतिविश्वंयन्नैवेद्यंददातिवैष्णवोजनः ॥ तत्षोडशांशोविषयिणोविष्णोःपंचदशाऽस्यवै ॥ २९ ॥ निर्गुणस्यात्मनश्चैवपरिपूर्णतमस्यच ॥ नैवेद्येचैवकृष्णस्यनहिकिंचित्प्रयोजनम् ॥ ३० ॥ यद्यद्ददातिनैवेद्यंतस्मैदेवाययोजनः ॥ सचखादतितत्सर्वंलक्ष्मीनाथौविराट्तथा ॥३१॥ तंचमंत्रवरंदत्त्वातमुवाचपुनर्विभुः ॥ वरमन्यंकिमिष्टंतेतन्मेब्रूहिददामिच ॥३२॥ कृष्णस्यवचनंश्रुत्वातमुवाचविराड्विभुः ॥ कृष्णंतंबालकस्तावद्वचनंसमयोचितम् ॥ ३३ ॥ बालकउवाच ॥ वरोमेत्वत्पदांभोजेभक्तिर्भवतुनिश्चला ॥ सततंयावदायुर्मेक्षणंवासुचिरंचवा ॥ ३४ ॥

सोलहवाँ भाग वैकुण्ठपति नारायणके और अपर पन्द्रहभाग इस विराट्रूपी बालकके लिये कल्पित हुए हैं॥ २९॥ श्रीकृष्णने अपने लिये अंशकी कल्पना नहीं करी क्योंकि स्वयं गुणातीत और पूर्णतम हैं अतएव जो सदाही तृप्त रहते हैं उनको फिर नैवेद्यका क्या प्रयोजन है ॥ ३० ॥ मनुष्य भक्तिपूर्वक उनको जो प्रदान करता है वह लक्ष्मीपति विराट्पुरुषही उस सबको भोग करते हैं ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने इसप्रकार उस विराट्पुरुषको मंत्र और वरदेकर कहा हे वत्स ! तुम्हारी अब क्या अभिलाषा है ? सो कहो मैं अभी प्रदान करूंगा ॥ ३२॥ उस विराट्रूपी बालकने श्रीकृष्णका वचन सुनकर उनसे उचित वचन कहा ॥ ३३ ॥ बालक बोले हे विभो ! मुझको अब कछ वासना नहीं है केवल क्षणकाल हो वा दीर्घकाल हो जबतक जीवित रहूं तबतक आपके चरणकमलोंमें सदा मेरी विमलभक्ति रहै ॥ ३४ ॥

इस जगत्में जो पुरुष आपके भक्त हैं वह सदाही जीवन्मुक्त हैं और जो आपके प्रति भक्तिशून्य हैं वह पुरुष जीवित रहनेपर भी मृतकके समान हैं ॥ ॥ ३५ ॥ कृष्णभक्तिविहीन पुरुषके जब तप यज्ञ पूजा नियम उपवास पवित्र तीर्थसेवा और अन्यान्य पुण्यकर्मके अनुष्ठानका क्या प्रयोजन है ॥ ? ॥ ३६ ॥ जो पुरुष परमात्मरूपी श्रीकृष्णसे जीवन धारण करके फिर उनकोही अग्राहव करता है उसके समान कृतघ्न और कौन है ? उस कृष्णभक्तिहीन मूढका जीवन धारणकरना वृथा है ॥ ३७ ॥ जबतक देहमें आत्मा वास करता है तबतक संपूर्ण शक्ति विद्यमान रहती हैं किन्तु आत्माके प्रस्थान करतेही आत्माधीन संपूर्ण इन्द्रियश क्तिभी उसके संग संग चली जाती हैं॥ ३८॥ हेमहाभाग ! जो प्रकृतिके अतीत स्वेच्छामय आदि पुरुष परमज्योतिस्वरूप सनातन ब्रह्म हैं आप स्वयं वह विश्वात्मा हैं॥ ३९॥

त्वद्भक्तियुक्तोलोकेऽस्मिञ्जीवन्मुक्तश्चसंततम् ॥ त्वद्भक्तिहीनोमूर्खश्चजीवन्नपिमृतोहिसः ॥ ३५ ॥ किंतज्जपेनतपसायज्ञेनपूजनेनच ॥ व्रते नचोपवासेनपुण्येनतीर्थसेवया ॥ ३६ ॥ कृष्णभक्तिविहीनस्यमूर्खस्यजीवनंवृथा ॥ येनात्मनाजीवितश्चतमेवनहिमन्यते ॥ ३७ ॥ यावदात्माशरी रेऽस्तितावत्सशक्तिसंयुतः ॥ पश्चाद्यांतिगतेतस्मिन्स्वतंत्राःसर्वशक्तयः ॥ ३८ ॥ सचत्वंचमहाभागसर्वात्माप्रकृतेःपरः ॥ स्वेच्छामयश्चसर्वाद्योब्रह्मज्यो तिःसनातनः ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वाबालकस्तत्रविरराचनारद ॥ उवाचकृष्णःप्रत्युक्तिंमधुरांश्रुतिसुंदरीम् ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ सुचिरंसुस्थिरंतिं ष्ठयथाऽहंत्वंतथाभव ॥ ब्रह्मणोऽसंख्यपातेचपातस्तेनभविष्यति ॥४१॥ अंशेनप्रतिब्रह्मांडेत्वंचक्षुद्रविराड्भव ॥ त्वन्नाभिपद्माद्ब्रह्माचविश्वस्रष्टाभविष्य ति ॥४२॥ ललाटेब्रह्मणश्चैवरुद्राश्चैकादशैवते ॥ शिवांशेनभविष्यंतिसृष्टिसंहरणायवै ॥४३॥ कालाग्निरुद्रस्तेष्वेकोविश्वसंहारकारकः ॥ पाताविष्णुश्च विषयीक्षुद्रांशेनभविष्यति ॥ ४४ ॥ मद्भक्तियुक्तःसततंभविष्यसिवरेणमे ॥ ध्यानेनकमनीयंमांनित्यंद्रक्ष्यसिनिश्चितम् ॥ ४५ ॥

हे वत्स नारद ! विराट्रूपी बालक केवल इतना कहतेही चुपगया फिर भगवान् श्रीकृष्णने श्रुति मधुरवचनसे कहा ॥ ४० ॥ भगवान् बोले हे वत्स ! तुम अनन्त काल मेरेसमान स्थिरभावसे अवस्थान करो असंख्य ब्रह्माके अतीत होनेपर भी तुम्हारा पतन नहीं होगा ॥ ४१ ॥ तुम स्वीय अंशमें विभक्त होकर प्रति ब्रह्माण्डमें ही क्षुद्र क्षुद्र विराट्रूपसे परिणत होओ ब्रह्मा तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न होकर विश्वकी सृष्टि करेंगे ॥ ४२ ॥ सृष्टिसंहारके निमित्त उन ब्रह्माके ललाटसे एकादशरुद्र उत्पन्न होंगे किन्तु वह सबही शिवांश हैं ॥ ४३ ॥ इन एकादशरुद्रोंमें जो कालाग्निनामक रुद्र हैं वही सब विश्वके संहारकर्ता हैं इनके सिवाय तुम्हारे क्षुद्रांशसे एक एक विष्णु उत्पन्न होंगे और वह भोगवान् विष्णुही विश्वके पालक हैं ॥ ४४ ॥ मैं कहता हूं कि, मेरे वरदानसे तुम सदा मेरेप्रति भक्तिमान् होंगे और

तुम ध्यानयोग अवलम्बन करतेही मेरी मनोहर मूर्त्ति देखोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ मेरे वक्षस्थलाश्रित तुमको जननीका दर्शन भी दुर्लभ नहीं होगा. हे वत्स ! तुम स्वच्छन्दतासे इस स्थानमें वासकरो मैं गोलोकको चलता हूं जगत्पति श्रीकृष्ण यह कहकर अन्तर्धान होगये ॥ ४६ ॥ फिर उन्होंने गोलोकमें उपस्थित हो तत्काल सृष्टि और संहारकार्यपटुब्रह्मा और महादेवजीसे कहा ॥ ४७ ॥ भगवान् बोले हे वत्स विधातः ! तुम शीघ्र जाओ जाकर सृष्टिकार्यके लिये महाविराट्के लोमसे जो क्षुद्रविराट् उत्पन्न हों उन सब क्षुद्रविराट्के नाभिपद्मसे अंशमें उत्पन्न होओ ॥ ४८ ॥ हे वत्स महादेव ! तुम भी जाओ जाकर सृष्टिसंहारके लिये प्रति विश्वमें प्रत्येक ब्रह्माके कपालसे अंशमें उत्पन्न होओ किन्तु देखो अपनी दीर्घकाल तपस्या करनी मतभूल जाना ॥ ४९ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! श्रीकृष्ण ब्रह्मा और महादेवको इस प्रकार आज्ञा करके मौन होगये इस ओर ब्रह्मा और शिवदाताशिव दोनों जगत्पतिको प्रणाम करके स्वस्वकार्य करनेके लिये गये ॥ ५० ॥ उधर उस ब्रह्मा

मातरंकमनीयांचममवक्षःस्थलस्थिताम् ॥ यामिलोकंतिष्ठवत्सेत्युक्त्वासोंतरधीयत ॥ ४६ ॥ गत्वास्वलोकंब्रह्माणंशंकरंसमुवाचह ॥ स्रष्टारंस्रष्टुमीशंचसंहर्तुंचैवतत्क्षणम् ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सृष्टिंस्रष्टुंगच्छवत्सनाभिपद्मोद्भवोभव ॥ महाविराड्लोमकूपेक्षुद्रस्यचविधेशृणु ॥ ४८ ॥ गच्छवत्समहादेवब्रह्मभालोद्भवोभव ॥ अंशेनचमहाभागस्वयंचसुचिरंतप ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वाजगतांनाथोविररामविधेःसुत ॥ जगामब्रह्मातंनत्वाशिवश्चशिवदायकः ॥ ५० ॥ महाविराड्लोमकूपेब्रह्मांडगोलकेजले ॥ बभूवचविराट्क्षुद्रोविराडंशेनसांप्रतम् ॥ ५१ ॥ श्यामोयुवापीतवासाःशयानोजलतल्पके ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्योविश्वव्यापीजनार्दनः ॥ ५२ ॥ तन्नाभिकमलेब्रह्माबभूवकमलोद्भवः ॥ संभूयपद्मदंडेचबभ्रामयुगलक्षकम् ॥ ५३ ॥ नांतंजगामदंडस्यपद्मनालस्यपद्मजः ॥ नाभिजस्यचपद्मस्यचिंतामापपितातव ॥ ५४ ॥ स्वस्थानंपुनरागम्यदध्यौकृष्णपदांबुजम् ॥ ततोददर्शक्षुद्रंतंध्यानेनदिव्यचक्षुषा ॥ ५५ ॥ शयानंजलतल्पेचब्रह्मांडगोलकाप्लुते ॥ यल्लोमकूपेब्रह्मांडंतंचततपरमीश्वरम् ॥ ५६ ॥

ण्डगोलकजलमें जो महाविराट् भासमान थे पूर्वमें उनकेही अंशसे उनकेही प्रतिलोमसे एक एक क्षुद्र विराट् उत्पन्न हुए थे ॥ ५१ ॥ दूर्वादलश्यामरूप पीताम्बरधारी हास्य प्रफुल्ल वदन युवा विश्वव्यापी जो विराट्रूपी जनार्दन जलशय्यापर शयन कर रहे थे ॥ ५२ ॥ ब्रह्माने जाकर उनके नाभिपद्मसे जन्मग्रहण किया जन्मग्रहण करनेके उपरान्त कमलयोनिने उस नाभिपद्म और उसके मृणालदण्डमें लक्षयुगपर्यन्त भ्रमण किया ॥ ५३ ॥ किन्तु किसी प्रकार भी पद्म और मृणालदण्डका कुछ अन्त नहीं पाया. हे वत्स नारद ! तब तुम्हारे पिता अत्यन्त चिन्ताकुल हो ॥ ५४ ॥ फिर अपने स्थानमें आय श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ध्यानयोगकेद्वारा दिव्यचक्षुसे प्रथम तो क्षुद्रविराट् ॥ ५५ ॥ फिर जिनके लोममें ब्रह्माण्ड विराजमान है उन अनन्त जलशय्याशायी महाविराट्का ॥ ५६ ॥

और फिर गोपगोपी समन्वित गोलोक विहारी परमेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया. तब तुम्हारे पिताके गोलोकपतिके स्तुतिवादमें प्रवृत्त होनेपर उन्हों ने तुम्हारे पिताको वर दिया इसके पीछे तुम्हारे पिता सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ ५७ ॥ प्रथम तो तुम्हारे पिताके मानससे सनकादि मातृगण और फिर कपालसे,एकादश रुद्र उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त उन जलमें सोये हुए क्षुद्रविराट् पुरुषके वामपार्श्वसे विश्वपाता चतुर्भुज भगवान् विष्णुकी उत्पत्ति हुई वह श्वेतद्वीपमें जाकर वास करने लगे ॥ ५९ ॥ इस ओर तुम्हारे पिता उन क्षुद्रविराट्पुरुषके नाभिपद्ममें स्वर्ग मर्त्य और पाताल इस त्रिभुवनात्मक स्थावर जङ्गम समाकीर्ण विश्वकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६० ॥ हे वत्स नारद ! इस प्रकार उन महाविराट्के लोमसे प्रत्येक विश्वकी उत्पत्ति हुई है और प्रति ब्रह्माण्डमें ही एक एक क्षुद्र

श्रीकृष्णंचाऽपिगोलोकंगोपगोपीसमन्वितम् ॥ तंसंस्तूयवरंप्रापततःसृष्टिंचकारसः ॥ ५७॥ बभूवुर्ब्रह्मणःपुत्रामानसाःसनकादयः ॥ ततोरुद्रकलाश्चाऽपि शिवस्यैकादशस्मृताः ॥५८॥ बभूवपाताविष्णुश्चक्षुद्रस्यवामपार्श्वतः ॥ चतुर्भुजश्चभगवान्श्वेतद्वीपेसचाऽवसत् ॥५९॥ क्षुद्रस्यनाभिपद्मेचब्रह्माविश्वंससर्ज ह ॥ स्वर्गंमर्त्यंचपातालंत्रिलोकींसचराचराम् ॥ ६० ॥ एवंसर्वलोमकूपेविश्वंप्रत्येकमेवच ॥ प्रीतिविश्वेक्षुद्रविराड्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥ इत्येवंक थितंब्रह्मन्कृष्णसंकीर्तनंशुभम् ॥ सुखदंमोक्षदंब्रह्मन्किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारदउवाच ॥ श्रुतंसर्वमयापूर्वंत्वत्प्रसादात्सुधोपमम् ॥ अधुनाप्रकृतीनांचव्यस्तंवर्णयपूजनम् ॥ १ ॥ कस्याःपूजाकृताकेनकथंमर्त्येप्रचारिता ॥ के नवापूजिताकावाकेनकावास्तुताप्रभो ॥ २ ॥ तासांस्तोत्रंचध्यानंचप्रभावंचरितंशुभम् ॥ काभिःकेभ्योवरोदत्तस्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीना रायणउवाच ॥ गणेशजननीदुर्गाराधालक्ष्मीःसरस्वती ॥ सावित्रीचसृष्टिविधौप्रकृतिःपंचधास्मृता ॥ ४ ॥

विराट् एक एक ब्रह्मा एक एक विष्णु एक एक शिव और सनकादि अन्यान्य सम्पूर्ण विद्यमान रहते हैं ॥ ६१ ॥ हे द्विजवर ! यह मैंने अतिसुखकर और मोक्ष प्रद कृष्णके गुण कहे अब और क्या सुननेकी इच्छा है सोकहो ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ छ ॥ नारदजीने कहा हे प्रभो ! मैंने आपके अनुग्रहसे सुधाके समान मधुर पूर्वतन सब वृत्तान्त सुना, अब पंचप्रकृति देवीमें ॥ १ ॥ किसकी किसने किसमंत्रसे पूजा करी है किसने किस प्रकार किसका स्तव किया है? किसप्रकार किसकी पूजा मर्त्यलोकमें प्रचारित हुई है ॥ २ ॥ उनमें प्रत्येकका स्तोत्र, ध्यान प्रभाव और चरित सेवा किस प्रकार है? और किस देवीने किसको किसप्रकार वरदान किया है वह आनुपूर्विक संपूर्ण पृथक् पृथक् वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! सृष्टि

विषयमें गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री यह पंचप्रकृतिही मूलाधार है यह तो सुना है ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त उनकी पूजाविधि, अद्भुतप्रभाव अपूर्व स्तोत्र और सुधासदृश सर्वमङ्गलनिदान चरित वेद पुराण और तंत्रादि संपूर्ण शास्त्रोंमेंही प्रसिद्ध हैं अतएव उनके वर्णन करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ५ ॥ अब जो प्रकृतिके अंश और कलासे उत्पन्न हैं उनकेही शुभचरित्रका वृत्तान्त अद्योपान्त वर्णन करता हूं सावधान होकर सुनो ॥६॥ काली, वसुन्धरा, गङ्गा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा यह प्रकृतिका अंश हैं ॥७॥ इनका पुण्यदायक श्रवण सुखकर चरित उसीके संग जीवोंका कर्मविपाक ॥ ८ ॥ एवं दुर्गा और राधाका अत्यन्त विस्तारित उदारचरितका क्रमानुसार संक्षेपसे वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥ सम्प्रति सरस्वतिका वृत्तान्त कहता हूं सुनो. हे मुनिवर ! जिन वीणापाणीके प्रभावसे अज्ञानान्ध मूढपुरुषोंका हृदयाकाश भी ज्ञानालोकसे प्रकाशित होता है श्रीकृष्णने सबसे प्रथम उन्हीं देवी सरस्वतीकी पूजा भारतमें अवतीर्ण की ॥

आसांपूजाप्रसिद्धाचप्रभावःपरमाद्भुतः ॥ सुधोपमंचचरितंसर्वमंगलकारणम् ॥ ५ ॥ प्रकृत्यंशाःकलायाश्चतासांचचरितंशुभम् ॥ सर्ववक्ष्यामिते ब्रह्मन्सावधानोनिशामय ॥ ६ ॥ कालीवसुंधरागंगाषष्ठीमंगलचंडिका ॥ तुलसीमनसानिद्रास्वधास्वाहाचदक्षिणा ॥ ७ ॥ संक्षिप्तमासां चरितंपुण्यदंश्रुतिसुंदरम् ॥ जीवकर्मविपाकंचतच्चवक्ष्यामिसुंदरम् ॥ ८ ॥ दुर्गायाश्चैवराधायाविस्तीर्णचरितंमहत् ॥ तद्वत्पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपक्रमतःशृणु ॥ ९ ॥ आदौसरस्वतीपूजाश्रीकृष्णेनविनिर्मिता ॥ यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठमूर्खोभवतिपंडितः ॥ १० ॥ आविर्भूतायथादेवीवक्रतः कृष्णयोषितः ॥ इयेषकृष्णंकामेनकामुकीकामरूपिणी ॥ ११ ॥ सचविज्ञायतद्भावंसर्वज्ञःसर्वमातरम् ॥ तामुवाचहितंसत्यंपरिणामेसुखावहम् ॥१२॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ भजनारायणंसाध्विमदंशंचचतुर्भुजम् ॥ युवानंसुंदरंसर्वगुणयुक्तंचमत्समम् ॥ १३ ॥ कामज्ञंकामिनीनांचतासांचकामपूरकम् ॥ कोटिकंदर्पलावण्यंलीलालंकृतमीश्वरम् ॥ १४ ॥ कांतेकांतंचमांकृत्वायादिस्थातुमिहेच्छसि ॥ त्वत्तोबलवतीराधानभद्रंतेभविष्यति ॥ १५ ॥

॥ १० ॥ कामरूपिणी कामुकी देवी सरस्वतीने राधाके जिह्वाग्रभागसे आविर्भूत होकर कामवश कृष्णकोही पति बनानेकी अभिलाषा की ॥ ११ ॥ सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण तत्काल यह जानकर उन लोकमातासे परिणाम सुखकर सत्य और पथ्यवचन कहने लगे ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे पतिव्रते ! मेरे अंशोत्पन्न चतुर्भुज नारायण युवा सुश्री और सर्वगुणान्वित हैं यही क्या ! बरन् मेरेही समान हैं ॥ १३ ॥ वह ऐश्वरिक गुणसे विभूषित हैं अतएव स्त्रियोंके हृदयकी वासना विलक्षण जानते हैं और वासना पूर्णभी करते हैं उनके सौन्दर्यकी बात क्या कहूं ? उनके शरीरमें करोड़ कामदेवकी लावण्यता क्रीड़ा करतीहै ॥ १४ ॥ हेकान्ते ! और यदि मुझको पति बनाकर मेरे निकट वास करनेकी इच्छा करो तो यह तुमको कल्याणदायक नहीं है. क्योंकि मेरे समीपस्थ राधा तुम्हारी अपेक्षा प्रबल है ॥ १५ ॥

यदि कोई पुरुष अपेक्षाकृत बलवान् हो तो वह आश्रितपुरुषकी अन्यसे रक्षा करनेमें समर्थ होसक्ता है किन्तु यदि उसकी अपेक्षा दुर्बल हो तो स्वयं असमर्थ होकर किस प्रकार दूसरेकी रक्षा कर सकता है ॥ १६ ॥ यद्यपि मैं सर्वेश्वर हूं और सबका शासन करता हूं किन्तु मुझमें राधाको शासन करनेकी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि वह क्या प्रभाव ? क्या रूप ? क्या गुण ? सर्वांशमेंही मेरे समान है ॥ १७ ॥ राधाको परित्याग करनेकी भी मुझमें सामर्थ्य नहीं है क्योंकि राधा मेरे प्राणकी अधिष्ठात्री देवता है अतएव कौन पुरुष अपना जीवन विसर्जन करनेमें समर्थ होता है ? यद्यपि पुत्र सबके आदरकी सामग्री है किन्तु तो भी क्या प्राणोंसे अधिक प्रि[illegible] होसकता है ? ॥ १८ ॥ इस कारण हे भद्रे ! तुम वैकुण्ठधाममें जाओ वहां तुमको कल्याणलाभ होगा तुम वैकुण्ठनाथको पतिपाकर चिरकाल सुखपूर्वक

योयस्माद्बलवान्वाणिततोऽन्यंरक्षितुंक्षमः ॥ कथंपरान्साधयतियदिस्वयमनीश्वरः ॥१६॥ सर्वेशःसर्वशास्ताऽहंराधांबाधितुमक्षमः॥ तेजसामत्समासाच रूपेणचगुणेनच ॥ १७ ॥ प्राणाधिष्ठातृदेवीसाप्राणांस्त्यक्तुंचकःक्षमः ॥ प्राणतोपिप्रियःपुत्रःकेषांवास्तिचकश्चन ॥ १८ ॥ त्वंभद्रेगच्छवैकुंठंतवभद्रंभविष्यति ॥ पतिंतमीश्वरंकृत्वामोदस्वसुचिरंसुखम् ॥ १९ ॥ लोभमोहकामक्रोधमानहिंसाविवर्जिता ॥ तेजसात्वत्समालक्ष्मीरूपेणचगुणेनच ॥ २० ॥ तयासार्धंतवप्रीत्याशश्वत्कालःप्रयास्यति ॥ गौरवंचहरिस्तुल्यंकरिष्यतिद्वयोरपि ॥ २१ ॥ प्रतिविश्वेषुतांपूजांमहतींगौरवान्विताम् ॥ माघस्यशुक्लपंचम्यांविद्यारंभेचसुंदरि ॥ २२ ॥ मानवामनवोदेवामुनींद्राश्चमुमुक्षवः ॥ वसवोयोगिनःसिद्धानागागंधर्वराक्षसाः ॥ २३ ॥ मद्वरेणकरिष्यंतिकल्पेकल्पेलयावधि ॥ भक्तियुक्ताश्चदत्वावैचोपचाराणिषोडश॥२४॥ कण्वशाखोक्तविधिनाध्यानेनस्तवनेनच ॥ जितेंद्रियाःसंयताश्चघटेचपुस्तकेऽपिच ॥ २५ ॥

विहार करसकोगी ॥ १९ ॥ यद्यपि लक्ष्मी वहां वास करती है किन्तु वहभी तुम्हारे समान काम,क्रोध,लोभ, मोह,मद और मात्सर्यके वशीभूत नहीं हैं और क्या रूप, क्या गुण, क्या प्रभाव, सर्वांशमेंही तुम्हारे समान है ॥ २० ॥ अतएव उनके संग परमसुखकसे काल व्यतीत करसकोगी वैकुण्ठनाथ हरिभी तुम दोनोंकाही समान आदर करेंगे ॥ २१ ॥ विशेषतः मैं कहता हूं प्रति ब्रह्माण्डमेंही माघमासकी जो शुक्ला पंचमीके दिन विद्यारंभ होता है उस दिनके महामहोत्सवमें ॥ २२ ॥ क्या मनुष्यगण, क्या मनुगण, क्या देवगण, क्या मुमुक्षु मुनि, क्या वसु, क्या योगी, क्या नाग, क्या सिद्ध, क्या गंधर्व, क्या राक्षस ॥ २३ ॥ सभी जबतक महाप्रलय उपस्थित नहीं होती तबतक प्रति कल्पकल्पमें भक्तिभावसे षोड़शोपचारद्वारा तुम्हारी पूजाकरेंगे ॥ २४ ॥ सब जितेन्द्रिय और संयमी होकर घटमें वा पुस्तकमें तुमको आवाहन करके यजुर्वेदके काण्वशाखोक्त

विधानसे ध्यान और स्तव पाठकरके तुम्हारी अर्चना करेंगे ॥ २५॥ तुम्हारा कवच आठप्रकार गंधद्रव्यद्वारा भोजपत्रपर लिख सुवर्णके तवीजमें मढ़ाय कंठमें वा दक्षिण भुजामें धारण करें ॥ २६ ॥ विशेष करके विद्वान् पुरुष मात्रही पूजाकालके समय तुम्हारे स्तव पाठमें निरत होंगे. इसप्रकार कहकर पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णने स्वयं सरस्वती देवीकी पूजा करी ॥ २७ ॥ उसी दिनसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तथा अनन्त देव, धर्म, सनकादि मुनीन्द्रगण ॥ २८॥ समस्त देव, समस्त मुनि, समस्त राजा और समस्त दानवोंके समाजने सरस्वती देवीकी पूजा आरंभ की है. हे वत्स नारद ! इसप्रकार उन अनन्तकालस्थायिनी देवी सरस्वतीकी पूजा तीनों लोकमें प्रचलित हुई है ॥ ॥ २९ ॥ नारदजी बोले, हे वेदविदाम्वर ! सरस्वती पूजाकी श्रवण मनोहर पद्धति ध्यान, कवच, स्तोत्र और पूजाके उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प और चन्दनादि उपचारका॥

कृत्वासुवर्णगुटिकांगंधचंदनचर्चिताम् ॥ कवचंतेग्रहीष्यंतिकंठेवादक्षिणेभुजे ॥ २६ ॥ पठिष्यंतिचविद्वांसःपूजाकालेचपूजिते ॥ इत्युक्त्वापूजयामास तांदेवींसर्वपूजिताम् ॥ २७ ॥ ततस्तत्पूजनंचक्रुर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ अनंतश्चाऽपिधर्मश्चमुनींद्राःसनकादयः ॥ २८ ॥ सर्वेदेवाश्चमुनयोनृपाश्चमानवादयः ॥ बभूवपूजितानित्यासर्वलोकैःसरस्वती ॥ २९ ॥ नारदउवाच ॥ पूजाविधानंकवचंध्यानंचापिनिरंतरम् ॥ पूजोपयुक्तंनैवेद्यंपुष्पंचचंदनादिकम् ॥ ३० ॥ वदवेदविदांश्रेष्ठश्रोतुंकौतूहलंमम ॥ वर्ततेहृदयेशश्वत्किमिदंश्रुतिसुंदरम् ॥ ३१ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ शृणुनारदवक्ष्यामिकण्वशाखोक्तपद्धतिम् ॥ जगन्मातुःसरस्वत्याःपूजाविधिसमन्विताम् ॥ ३२ ॥ माघस्यशुक्लपंचम्यांविद्यारंभदिनेऽपिच ॥ पूर्वेऽह्निसमयंकृत्वातत्राऽह्निसंयतःशुचिः ॥ ३३ ॥ स्नात्वानित्यक्रियाःकृत्वाघटंसंस्थाप्यभक्तितः ॥ स्वशाखोक्तविधानेनतांत्रिकेणाऽथवापुनः ॥३४॥ गणेशंपूर्वमभ्यर्च्यततोऽभीष्टांप्रपूजयेत् ॥ ध्यानेनवक्ष्यमाणेनध्यात्वावाह्यघटेध्रुवम् ॥ ३५ ॥

॥ ३० ॥ विषय सुननेकेलिये मेरे हृदयमें सदा महाकौतूहल विद्यमान् रहता है अतएव आप वह सब कहिये ॥ ३१ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! यजुर्वेदके अन्तर्गत काण्वशाखामें जन्मदाता सरस्वतीकी पूजाविधि समन्वित जैसी पद्धति प्रचलित है वह कहता हूं सुनो ॥ ३२ ॥ माघशुक्ला पंचमी वा विद्यारंभदिनके पहिले दिनसंयत हो ॥ ३३ ॥ स्नानके पीछे नित्य कर्मका अनुष्ठान कर कण्वशाखोक्त विधानसे हो अथवा तंत्रोक्त विधानसे हो भक्तिपूर्वक घट स्थापन करै ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त प्रथम उस घटमें गणपतिकी पूजा करके फिर जो ध्यान कहता हूं उसी ध्यानसे सरस्वतीकी भावना करके आवाहनपूर्वक फिर ध्यान पढ़कर षोडश

पचारसे पूजा करे ॥ ३५ ॥ हे भद्र ! अब वेदमें वा तंत्रमें पूजाकी जिसप्रकार नैवेद्य निर्दिष्ट हुई है ॥ ३६ ॥ अपने ज्ञानके अनुसार समस्त कहता हूं सुनो नवनीत, दधि, क्षीर, खीलैं, तिल, लड्डू ॥ ३७ ॥ गन्ना, इक्षुरस, पकाहुआ गुड, मधु, स्वतिक (मंगलपिष्टघृतयुक्त अन्न) शर्करा, सफेद धान्यके अक्षत, तंडुल ॥ ३८ ॥ अस्विन्न शुक्लधान्यका चिपिटक (बनाहुआ पदार्थ) शुक्लमोदक, घृत सैंधवसंयुक्त हविष्यान्न ॥ ३९ ॥ यवचूर्ण वा गोधूमचूर्णका घृतसंयुक्त पिष्टक, कसार, स्वस्तिक पिष्टक (मंगलदायक मिष्टपदार्थ) स्वतिकयुक्त पकी हुई केलेकी फलीका पिष्टक ॥ ४० ॥ घृतसंयुक्त परमान्न, अमृततुल्य मिष्टान्न, नारिकेल, नारिकेलोदक, कसेरू, मूली ॥ ४१ ॥ अदरख, पकीहुई केलेकी फली अत्युत्कृष्ट श्रीफल, बदरीफल, (बेर) और यथाकाल यथा देशोत्पन्न अन्यान्य शुक्लवर्ण सुसंस्कृतफल प्रदान करे

ध्यात्वापुनःषोडशोपचारेणपूजयेद्व्रती ॥ पूजोपयुक्तनैवेद्यंयच्चवेदनिरूपितम् ॥ ३६ ॥ वक्ष्यामिसौम्यतत्किंचिद्यथाधीतंयथागमम् ॥ नवनीतंदधिक्षीरं लाजांश्चतिलल‍ड्डुकम् ॥ ३७ ॥ इक्षुमिक्षुरसंशुक्लवर्णपक्कगुडंमधु ॥ स्वस्तिकंशर्कराशुक्लधान्यस्याऽक्षतमक्षतम् ॥ ३८ ॥ अस्विन्नशुक्लधान्यस्यपृथु कंशुक्लमोदकम् ॥ घृतसैंधवसंयुक्तंहविष्यान्नंयथोदितम् ॥३९॥ यवगोधूमचूर्णानांपिष्टकंघृतसंयुतम् ॥ पिष्टकंस्वतिकस्याऽपिपक्करंभाफलस्यच ॥४०॥ परमान्नंचसघृतंमिष्टान्नंचसुधोपमम् ॥ नारिकेलंतदुदकंकसेरुंमूलमार्द्रकम् ॥ ४१ ॥ पक्करंभाफलंचारुश्रीफलंबदरीफलम् ॥ कालदेशोद्भवंचारुफलंशु क्लंचसंस्कृतम् ॥४२॥ सुगंधंशुक्लपुष्पंचसुगंधंशुक्लचंदनम् ॥ नवीनंशुक्लवस्त्रंचशंखंचसुंदरंमुने ॥४३॥ माल्यंचशुक्लपुष्पाणांशुक्लहारंचभूषणम् ॥ यादृशं चश्रुतौध्यानंप्रशस्यंश्रुतिसुंदरम् ॥४४॥ तन्निबोधमहाभागभ्रमभंजनकारणम् ॥ सरस्वतींशुक्लवर्णांसस्मितांसुमनोहराम् ॥४५॥ कोटिचंद्रप्रभामुष्टपुष्टश्री युक्तविग्रहाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानांवीणापुस्तकधारिणीम् ॥४६॥ रत्नसारेंद्रनिर्माणनवभूषणभूषिताम् ॥ सुपूजितांसुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥४७॥

॥ ४२ ॥ हे वत्स नारद ! सुगंध शुक्लपुष्प सुगंधित श्वेतचंदन नवीन शुक्लवस्त्र, मनोहर शंख ॥ ४३ ॥ सफेद फूलोंकी माला, शुक्लहार और सुंदर भूषण सरस्वतीको प्रदान करे हे महाभाग ! वेदमें सरस्वती देवीका जिसप्रकार भ्रमभंजन श्रवणमनोहर ध्यान निर्दिष्ट हुआ है ॥ ४४ ॥ वह कहता हूं सुनो जो सरस्वती शुक्लवर्ण हास्य युक्त मनोहर हैं ॥ ४५ ॥ जिनके शरीरकी प्रभासे करोड़ चन्द्रमाकी प्रभाभी मलिनता धारण करती है जिनका परिधान अग्निपरीक्षित विशुद्ध पट्टवस्त्र है जिनके हाथमें वीणायंत्र और पुस्तक है ॥ ४६ ॥ जो सर्वोत्कृष्ट रत्नजात नव भूषणोंसे विभूषित हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवतागण सदा जिनकी पूजा करते हैं ॥ ४७ ॥

जो मुनीन्द्र मनु और मनुष्योंसे सर्वदा वंदित होती हैं मैं भक्तिभावसे उन्हीं शुक्लवर्ण हास्यानना मनोहरा सरस्वतीकी वन्दना करता हूं. विचक्षण पुरुष इसप्रकार ध्यान करके सब द्रव्य मूलमंत्र उच्चारणपूर्वक प्रदान करै ॥ ४८ ॥ फिर स्तवपाठ और कवच धारणपूर्वक पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत प्रणाम करै. हे मुनिवर ! यह देवी सरस्वती जिनकी इष्टदेवता है उनकी तो बातही नहीं ॥ ४९ ॥ इसके अतिरिक्त सर्व साधारणको विद्यारम्भ दिवसमें और वर्षके अन्तमें माघशुक्ला पंचमीके दिन सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये वेदोक्त अष्टाक्षरयुक्त मंत्रही सरस्वतीका मूलमंत्र है ॥ ५० ॥ अथवा जो जिस मंत्रमें दीक्षित हों वही उनका मूलमंत्र है अतएव निज मूलमंत्रसे हो, वा सरस्वती शब्दमें चतुर्थी मिलाकर अग्नि पत्नी "स्वाहा" पर्यन्त शेष धरकर ॥ ५१ ॥ उसके पहिले प्रणव "श्रीं ह्रीं बीज

वंदेभक्त्यावंदितांचमुनींद्रमनुमानवैः ॥ एवंध्यात्वाचमूलेनसर्वंदत्वाविचक्षणः ॥ ४८ ॥ संस्तूयकवचंधृत्वाप्रणमेद्दंडवद्भुवि ॥ येषांचेयमिष्टदेवीतेषांनित्याक्रियामुने ॥ ४९ ॥ विद्यारंभेचवर्षांतेसर्वेषांपंचमीदिने ॥ सर्वोपयुक्तोमूलंचवैदिकाष्टाक्षरःपरः ॥ ५० ॥ येषांयेनोपदेशोवातेषांसमूलएवच ॥ सरस्वतीचतुर्थ्यंतंवह्निजायांतमेवच ॥ ५१ ॥ लक्ष्मीमायादिकंचैवमंत्रोऽयंकल्पपादपः ॥ पुरानारायणश्चेमंवाल्मीकायकृपानिधिः ॥ ५२ ॥ प्रददौजाह्नवीतीरेपुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ भृगुर्ददौचशुक्रायपुष्करेसूर्यपर्वणि ॥ ५३ ॥ चंद्रपर्वणिमारीचोददौवाक्पतयेमुदा ॥ भृगोश्चैवददौतुष्टोब्रह्मावदरिकाश्रमे ॥ ॥ ५४ ॥ आस्तिकस्यजरत्कारुर्ददौक्षीरोदसन्निधौ ॥ विभांडकोददौमेरौऋष्यशृंगायधीमते ॥ ५५ ॥ शिवःकणादमुनयेगौतमायददौमुदा ॥ सूर्यश्चयाज्ञवल्यायतथाकात्यायनायच ॥ ५६ ॥

उच्चारणपूर्वक उस मंत्रसे अर्थात् "श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा" इस अष्टाक्षर मंत्रसे सरस्वतीको सम्पूर्ण वस्तु प्रदान करै लक्ष्मीमायादिक यह मंत्रही कल्पवृक्ष है अर्थात् कल्पवृक्षके निकटसे जिसप्रकार सम्पूर्ण अभीष्ट लाभ होता है इस मंत्रसे भी उसीप्रकार सम्पूर्ण अभीष्ट लाभ होता है कृपानिधिनारायणने पूर्वकालके समय ॥ ५२ ॥ पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें गंगाके तटपर वाल्मीकिको यह मंत्र प्रदान किया इसके उपरान्त भृगुने एक समय सूर्य ग्रहणके समय पुष्करतीर्थमें महर्षि शुक्राचार्यको ॥ ५३ ॥ मरीचिने चन्द्रग्रहणके समय बृहस्पतिको, बद्रिकाश्रममें ब्रह्माने भृगुको ॥ ५४ ॥ क्षीरोदसागरके तटपर जरत्कारुने आस्तिकको सुमेरुपर्वतमें विभाण्डकने धीमान् ऋष्यशृङ्गको ॥ ५५ ॥ शिवने कणाद और गौतमको सूर्यने याज्ञवल्क्य और कात्यायनको ॥ ५६ ॥

अनन्तदेवने पातालतलमें बलिसभामें पाणिनी धीमान् भरद्वाज और शाकटायनको यह मंत्र प्रदान किया था ॥५७॥ इस मंत्रको चार लक्षवार जपनेसेही मनुष्य सिद्ध होते हैं मंत्र सिद्ध होनेसेही बृहस्पतिके समान शक्तिशाली होसकता है ॥ ५८ ॥ पूर्वकालके समय विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीने गंधमादन पर्वतमें भृगुको विश्वजय नामक जो कवच प्रदान किया था, उसको कहता हूं, सुनो ॥ ५९ ॥ एक समय भृगुने सर्वेश्वर सर्वपूजित ब्रह्मासे कहा, भृगु बोले हे ब्रह्मन्! आप सब वेदवेत्ताओंमें अग्रणी हैं वेदज्ञान विषयमें आपके समान दूसरा नहीं है ॥ ६० ॥ यही क्या! आपको अविदित कुछ भी नहीं है, अर्थात् आप सभी जानते हैं, क्योंकि समस्तही आपसे उत्पन्न हुआ है, अतएव हे प्रभो! जो निर्दोष और समस्त मंत्र गुणनिष्ठ है आप वही सर्वोत्कृष्ट विश्वविजयनामक सरस्वती कवच मेरे निकट कीर्तन कीजिये

शेषःपाणिनयेचैवभारद्वाजायधीमते ॥ ददौशाकटायनायसुतलेबलिसंसदि ॥ ५७ ॥ चतुर्लक्षजपेनैवमंत्रःसिद्धोभवेन्नृणाम् ॥ यदिस्यान्मंत्रसिद्धो हिबृहस्पतिसमोभवेत् ॥ ५८ ॥ कवचंशृणुविप्रेंद्रयद्दत्तंब्रह्मणापुरा ॥ विश्वस्रष्टाविश्वजयंभृगवेगंधमादने ॥ ५९ ॥ भृगुरुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मविदांश्रेष्ठब्र ह्मज्ञानविशारद ॥ सर्वज्ञसर्वजनकसर्वेशसर्वपूजित ॥ ६० ॥ सरस्वत्याश्चकवचंब्रूहिविश्वजयंप्रभो ॥ अयातयामंमंत्राणांसमूहसंयुतंपरम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणुवत्सप्रवक्ष्यामिकवचंसर्वकामदम् ॥ श्रुतिसारंश्रुतिसुखंश्रुत्युक्तंश्रुतिपूजितम् ॥६२॥ उक्तंकृष्णेनगोलोकेमह्यंवृंदावनेवने ॥ रासेश्वरेण विभुनारासेवैरासमंडले ॥ ६३ ॥ अतीवगोपनीयंचकल्पवृक्षसमंपरम् ॥ अश्रुताद्भुतमंत्राणांसमूहैश्चसमन्वितम् ॥ ६४ ॥ यद्धृत्वाभगवाञ्छुक्रःसर्वदै त्येषुपूजितः ॥ यद्धृत्वापठनाद्ब्रह्मन्बुद्धिमांश्चबृहस्पतिः ॥६५॥ पठनाद्धारणाद्वाग्मीकवींद्रोवाल्मिकोमुनिः ॥ स्वायंभुवोमनुश्चैवयद्धृत्वासर्वपूजितः ॥ ॥ ६६ ॥ कणादोगौतमःकण्वःपाणिनिःशाकटायनः ॥ ग्रंथंचकारयद्धृत्वादक्षःकात्यायनःस्वयम् ॥ ६७ ॥

॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्स! तुमने जो श्रवण मनोहर वेदविहित वेद पूजित सर्वाभीष्टप्रद सरस्वतीकवचको पूँछा सो कहता हूं सुनो ॥ ६२ ॥ सबसे पहले रासेश्वर विभु श्रीकृष्णने गोलोक धाममें वृन्दावन नामक अरण्यमें रासोत्सवके समय रासमण्डलमें वह सरस्वती कवच मुझसे कहा था ॥ ६३ ॥ यह कवच अतीव गोपनीय और कल्पवृक्षकी समान अश्रुत अद्भुत मंत्रोंसे परिपूर्ण है ॥ ६४ ॥ यह कवच पाठ और धारण करके बृहस्पति बुद्धिवेत्ता विषयमें अग्रणी हुए हैं इसी कवचके बलसे शुक्राचार्यने दैत्योंके निकट प्रधानता लाभ की है ॥ ६५ ॥ इसी कवचके पाठसे मुनिवर वाल्मीकिने वाग्मिता लाभ करके कवीन्द्र पदमें आरोहण किया है स्वायंभुवमनु इसको धारण करके सर्वत्र समादत हुए हैं ॥ ६६ ॥ कणाद, गौतम, कण्व पाणिनी, शाकटायन, दक्ष, कात्यायन, यह सभी इस कवचके प्रभावसे

ग्रंथकार पदमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ ६७ ॥ कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने इस कवचको धारण करके वेदविभाग और अठारह पुराणकी रचनाकी है॥६८॥ शातातप,संवर्त्त वसिष्ठ पराशर और याज्ञवल्क्य सरस्वती कवचको धारण और पाठ करके ग्रंथकार हुए हैं ॥६९॥ ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तरिक, देवल, जैगीषव्य और ययाति इन सबने इसकेही बलसे सर्वत्र समान आदर लाभ किया है ॥ ७० ॥ हे द्विजवर ! प्रजापति स्वयं इस कवचके ऋषि बृहती इसका छन्द और शारदा अम्बिका इसकी अधिष्ठात्री देवता है ॥ ७१ ॥ क्या तत्वार्थज्ञान क्या प्रयोजग सिद्धि क्या समस्त कविता सर्वत्र इसका विनियोग होता है ॥ ७२ ॥ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा सम्यक् प्रकारसे

धृत्वावेदविभागंचपुराणान्यखिलानिच ॥ चकारलीलामात्रेणकृष्णद्वैपायनःस्वयम् ॥ ६८ ॥ शातातपश्चसंवर्तोवसिष्ठश्चपराशरः ॥ यद्धृत्वापठनाद्ग्रंथं याज्ञवल्क्यश्चकारसः ॥ ६९ ॥ ऋष्यशृंगोभरद्वाजश्चास्तिकोदेवलस्तथा ॥ जैगीषव्योययातिश्च धृत्वासर्वत्रपूजिताः ॥ ७०॥ कवचस्याऽस्यविप्रेंद्रऋषिरेवप्रजापतिः ॥ स्वयंछंदश्चबृहतीदेवताशारदांबिका ॥ ७१ ॥ सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेपुच ॥ कवितासुचसर्वासुविनियोगःप्रकीर्तितः ॥ ७२ ॥ श्रीह्रींसरस्वत्यैस्वाहाशिरोमेपातुसर्वतः ॥ श्रींवाग्देवतायैस्वाहाभालंमेसर्वदाऽवतु ॥ ७३ ॥ ॐह्रींसरस्वत्यैस्वाहेतिश्रोत्रेपातुनिरंतरम् ॥ ॐश्रींह्रींभगवत्यैसरस्वत्यैस्वाहानेत्रयुग्मंसदाऽवतु ॥ ७४ ॥ ऐंह्रींवाग्वादिन्यैस्वाहानासांमेसर्वदाऽवतु ॥ ह्रींविद्याधिष्ठातृदेव्यैस्वाहाचोष्ठंसदाऽवतु ॥ ७५ ॥ ॐश्रींह्रींब्राह्म्यैस्वाहेतिदंतपंक्तिंसदाऽवतु ॥ ऐमित्येकाक्षरोमंत्रोममकंठंसदाऽवतु ॥ ७६ ॥ ॐश्रींह्रींपातुमेग्रीवांस्कंधौमेश्रींसदावतु ॥ ॐह्रींविद्याधिष्ठातृदेव्यैस्वाहावक्षःसदाऽवतु ॥७७॥ ॐह्रींविद्याधिस्वरूपायैस्वाहामेपातुनाभिकाम् ॥ ॐह्रींक्लींवाण्यैस्वाहेतिममहस्तौसदाऽवतु ॥ ७८ ॥ ॐसर्ववर्णात्मिकायैपादयुग्मंसदाऽवतु ॥ ॐवागधिष्ठातृदेव्यैस्वाहासर्वंसदाऽवतु ॥ ७९ ॥

मेरे शिरकी रक्षा करो श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा मेरे कपालकी ॥ ७३ ॥ ओं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा सर्वदा मेरे दोनों कर्णकी ओं श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा सर्वदा मेरे दोनों नेत्र ॥ ७४ ॥ ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा सर्वदा मेरी नासिकाकी ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा सदा मेरे ओष्ठकी ॥ ७५ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा मेरी दन्तपंक्ति ऐं यह एकाक्षरमंत्र सदा मेरे कंठकी ॥ ७६ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं मेरी ग्रीवाकी श्रीं मेरे दोनों कंधेकी ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठात्री देव्यै स्वाहा सदा मेरे वक्षस्थल ॥७७॥ ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मेरी नाभिकी ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा मेरे दोनों हाथोंकी ॥ ७८ ॥ ॐ सर्ववर्णात्मिकायै स्वाहा मेरे चरण युगल और ॐ

वागधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा मेरे सर्वाङ्गकी सदा रक्षा करै ॥ ७९ ॥ ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा मेरे पूर्वदिक् ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यैस्वाहा मेरे अग्निकोण ॥ ८० ॥ ॐ ऐंह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा मेरे दक्षिणदिक् ॥ ८१ ॥ ऐं ह्रीं श्रीं यह त्र्यक्षरमंत्र मेरे नैर्ऋतकोण ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मेरे पश्चिमदिक् ॥ ८२ ॥ ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा मेरे वायुकोण ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मेरे उत्तरदिक् ॥ ८३ ॥ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा मेरे ईशानकोण ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा मेरे ऊर्द्धभाग ॥ ८४ ॥ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा मेरे अधोभाग और ॐ ग्रंथबीजस्वरूपायै स्वाहा मेरे समस्त दिक्की रक्षा करै ॥ ८५ ॥ हे वत्स नारद ! यह मंत्रशरीर ब्रह्मस्वरूप विश्वजय नामक कवच तुमसे कहा ॥ ८६ ॥ पूर्व कालके समय मैने यह कवच गंधमादनपर्वतमें धर्मदेवके मुखसे

ॐसर्वकंठवासिन्यैस्वाहाप्राच्यांसदाऽवतु ॥ ॐसर्वजिह्वाग्रवासिन्यैस्वाहाऽग्निदिशिरक्षतु ॥ ८० ॥ ॐऐंह्रींक्लींसरस्वत्यैबुधजनन्यैस्वाहा ॥ सततंमंत्रराजोऽयंदक्षिणेमांसदाऽवतु ॥ ८१ ॥ ऐंह्रींश्रींत्र्यक्षरोमंत्रोनैर्ऋत्यांसर्वदाऽवतु ॥ ॐऐंजिह्वाग्रवासिन्यैस्वाहामांवारुणेऽवतु ॥ ८२ ॥ ॐसर्वाम्बिकायैस्वाहावायव्येमांसदाऽवतु ॥ ॐऐंश्रींक्लींगद्यवासिन्यैस्वाहामामुत्तरेऽवतु ॥८३॥ ऐंसर्वशास्त्रवासिन्यैस्वाहैशान्यांसदाऽवतु ॥ ॐह्रींसर्वपूजितायैस्वाहाचोर्ध्वंसदाऽवतु ॥ ८४ ॥ ह्रींपुस्तकवासिन्यैस्वाहाऽधोमांसदाऽवतु ॥ ॐग्रंथबीजस्वरूपायैस्वाहामांसर्वतोऽवतु ॥ ८५ ॥ इतितेकथितंविप्रब्रह्ममंत्रौघविग्रहम् ॥ इदंविश्वजयंनामकवचंब्रह्मरूपकम् ॥८६॥ पुराश्रुतंधर्मवक्त्रात्पर्वतेगंधमादने ॥ तवस्नेहान्मयाख्यातंप्रवक्तव्यंनकस्यचित् ॥८७॥ गुरुमभ्यर्च्यविधिवद्वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ प्रणत्यदंडवद्भूमौकवचंधारयेत्सुधीः ॥ ८८॥ पंचलक्षजपेनैवसिद्धंतुकवचंभवेत् ॥ यदिस्यात्सिद्धकवचोबृहस्पतिसमोभवेत् ॥ ॥८९॥ महावाग्मीकवींद्रश्चत्रैलोक्यविजयीभवेत् ॥ शक्नोतिसर्वंजेतुंचकवचस्यप्रसादतः ॥९०॥ इदंचकण्वशाखोक्तंकवचंकथितंमुने ॥ स्तोत्रपूजाविधानंचध्यानंचवंदनंशृणु ॥ ९१ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सुना था अब अतिशय स्नेह होनेके कारण तुमसे कहा किन्तु यह कवच कभी किसीके निकट न कहना ॥ ८७ ॥ वस्त्र अलंकार और चन्दनद्वारा यथाविधि गुरुदेवकी अर्चना करके गुरुदेवके चरणमें दण्डवत् प्रणामपूर्वक यह कवच धारण करै ॥ ८८ ॥ फिर लक्षवार जप करनेसे कवच सिद्ध होता है कवचधारी पुरुष कवचके सिद्ध होनेसेही बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् ॥ ८९ ॥ वाग्मी कवीन्द्र और त्रैलोक्यविजयी होता है अधिक क्या इस कवचके प्रभावसे संपूर्ण जय करनेमें समर्थ होता है ॥ ९० ॥ हे मुने ! मैंने तुमसे यह काण्वशाखोक्तकवचका विषय कहा, और पूजाविधि ध्यान और वन्दनादिका विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ९१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारायणने कहा हे वत्स नारद ! पूर्वकालके समय ऋषिवर याज्ञवल्क्यने जिस स्तोत्रसे वाग्देवी सरस्वतीका स्तव किया था इस समय सर्व कामप्रद उन्हीं सरस्वतीका स्तव कीर्त्तन करता हूं सुनो ॥ १ ॥ मुनिवर याज्ञवल्क्य गुरुशापके कारण समस्त वेदादि भूलकर अत्यन्त दुःखित चित्तसे पुण्यप्रद रविस्थानमें गये ॥ २ ॥ वहां कुछ काल तपस्याके पीछे सूर्यदेवके नयनगोचर होनेपर अति शोकमें पीडित हो वारंवार रोदन करते करते उनके स्तुतिमें प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥ तब भगवान् सूर्यने प्रसन्नहोकर उनको संपूर्ण वेद और वेदाङ्गशिक्षाप्रदानपूर्वक कहा हे वत्स ! अब तुम स्मरण शक्तिप्राप्तिके लिये भक्तिसहित वाग्देवीका स्तव करो ॥ ४ ॥ दिवाकर यह कहते ही वहांसे अन्तर्धान होगये इधर मुनिवर याज्ञवल्क्य स्नानकरके भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाय वाग्देवीके स्तवपाठमें प्रवृत्त हुए ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्यने कहा हे मातः ! गुरुके शापसे मेरी मति भ्रंश हुई है मैं विद्याहीन और तेजहीन होगया हूं मेरे दुःखकी अवधि

॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ॥ वाग्देवतायाःस्तवनंश्रूयतांसर्वकामदम् ॥ महामुनिर्याज्ञवल्क्योयेनतुष्टावतांपुरा ॥ १ ॥ गुरुशापाच्चसमुनिर्हतविद्योबभूवह ॥ तदाजगामदुःखार्तोरविस्थानंसुपुण्यदम् ॥ २ ॥ संप्राप्यतपसासूर्यंलोलार्कंदृष्टिगोचरे ॥ तुष्टावसूर्यंशोकेनरुरोदचमुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥ सूर्यस्तंपाठयामासवेदंवेदांगमीश्वरः ॥ उवाचस्तौहिवाग्देवींभक्त्याचस्मृतिहेतवे ॥ ४ ॥ तमित्युक्त्वादीननाथोऽप्यंतर्धानंचकारसः ॥ मुनिःस्नात्वाचतुष्टावभक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ कृपांकुरुजगन्मातर्मामेवंहततेजसम् ॥ गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टंविद्याहीनंचदुःखितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानंदेहिस्मृतिंविद्यांशक्तिंशिष्यप्रबोधिनीम् ॥ ग्रंथकर्तृत्वशक्तिंचसुशिष्यंसुप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥ प्रतिभांसत्सभायांचविचारक्षमतांशुभाम् ॥ लुप्तंसर्वंदैवयोगान्नवीभूतंपुनःकुरु ॥ ८ ॥ यथांकुरंभस्मनिचकरोतिदेवतापुनः ॥ ब्रह्मस्वरूपापरमाज्योतीरूपासनातनी ॥ ९ ॥ सर्वविद्याधिदेवीयातस्यैवाण्यैनमोनमः ॥ विसर्गबिंदुमात्रासुयदधिष्ठानमेवच ॥ १० ॥ तदधिष्ठात्रीयादेवीतस्यैनीत्यैनमोनमः ॥ व्याख्यास्वरूपासादेवीव्याख्याधिष्ठातृरूपिणी ॥ ११ ॥

नहीं है हे जगज्जननी ! मुझपर कृपा करो ॥ ६ ॥ मुझको ज्ञान, विद्या, स्मृति, शिष्यबोधिनी शक्ति, ग्रन्थकर्तृत्व और प्रतिभासम्पन्नसुशिष्यत्व प्रदान करो ॥ ७ ॥ जिससे सज्जनोंके समाजमें मेरीभी भलीभांति प्रतिभा और विचारशक्ति प्रसारित हो दैवके दुर्विपाकसे मेरा जो कुछ नष्ट हुआ है ॥ ८ ॥ वह भस्मराशिसमुद्गत बीजांकुरकी समान संपूर्ण मेरे उत्पादिकाशक्तिशून्य चित्तक्षेत्रमें उदय होकर पुनर्वार नवीनभाव धारण करे हे मातः ! तुमही ब्रह्मस्वरूपिणी तुमही सर्वश्रेष्ठ तुमही ज्योतिःस्वरूपा तुमही सनातनी ॥ ९ ॥ और तुमही समस्तविद्याकी अधिष्ठात्री देवीहो इस कारण तुमको वारंवार नमस्कार करता हूं हे मातः ! अनुस्वार विसर्ग और चन्द्रविन्दु जिन वर्णका आश्रय करके रहते हैं ॥ १० ॥ तुम वही वर्णस्वरूपिणी हो अतएव तुमको नमस्कार है. हे मातः ! तुमही शास्त्रकी व्याख्यास्वरूप और तुमही समस्तव्याख्याकी अधिष्ठात्री देवी हो ११ ॥

तुम्हारे विना गणितविद्याके पारदर्शी भी किसीविषयकी गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं अत एव तुम कालगणनाकी संख्यास्वरूप हो ॥ १२ ॥ तुमही मनुष्योंका भ्रमभंजन करनेवाली सिद्धान्तशक्तिरूप हो अत एव तुमको वारंवार नमस्कार है हेमातः! तुमही स्मृतिशक्ति, तुमही ज्ञानशक्ति, तुमही बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी हो ॥ १३ ॥ तुमही प्रतिभाशक्ति और तुमही कल्पनाशक्ति हो अतएव वारंवार तुमको प्रणाम करते हैं स्वयं सनत्कुमारने भी जब भ्रमयुक्त होकर ब्रह्माजीसे प्रश्न किया ॥ १४ ॥ तब वह उसका सिद्धान्त करनेमें असमर्थ होकर मूककी समान निरुत्तर रहे तब परमात्मरूपी परमेश्वर श्रीकृष्णने वहां उपस्थित होकर ॥ १५ ॥ कहा हे प्रजापते ! तुम अभीष्टदात्री वागीश्वरीका स्तव करो तो तुम्हारा सिद्धान्त स्थिर होगा तब चतुराननने परमेश्वरकी आज्ञानुसार देवी सरस्वतीका स्तव करके ॥ १६ ॥ उनके प्रसादबलसे

ययाविनाप्रसंख्यावान्संख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ कालसंख्यास्वरूपायातस्यैदेव्यैनमोनमः ॥ १२ ॥ भ्रमसिद्धांतरूपायातस्यैदेव्यैनमोनमः ॥ स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिबुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्याचतस्यैनमोनमः ॥ सनत्कुमारोब्रह्माणंज्ञानंपप्रच्छयत्रवै ॥ १४ ॥ बभूवमूकवत्सोऽपिसिद्धांतंकर्तुमक्षमः ॥ तदाजगामभगवानात्माश्रीकृष्णईश्वरः ॥ १५ ॥ उवाचसचतांस्तौहिवाणीमिष्टांप्रजापते ॥ सचतुष्टावतांब्रह्माचाऽऽज्ञयापरमात्मनः ॥ १६ ॥ चकारतत्प्रसादेनतदासिद्धांतमुत्तमम् ॥ यदाप्यनंतंपप्रच्छज्ञानमेकंवसुंधरा ॥१७॥ बभूवमूकवत्सोऽपिसिद्धांतंकर्तुमक्षमः ॥ तदातांसचतुष्टावसंत्रस्तःकश्यपाज्ञया ॥ १८ ॥ ततश्चकारसिद्धांतंनिर्मलंभ्रमभंजनम् ॥ व्यासःपुराणसूत्रंचपप्रच्छवाल्मीकिंयदा ॥ १९ ॥ मौनीभूतश्चसस्मारतामेवजगदंबिकाम् ॥ तदाचकारसिद्धांतंतद्वरेणमुनीश्वरः ॥ २० ॥ संप्राप्यनिर्मलंज्ञानंभ्रमांध्यध्वंसदीपकम् ॥ पुराणसूत्रंश्रुत्वाचव्यासःकृष्णकलोद्भवः ॥ २१ ॥

अति उत्तम सिद्धान्त स्थिर किया एक दिन वसुन्धराने संदिग्ध चित्तसे अनन्त देवके निकट प्रश्न किया ॥ १७ ॥ तब वह भी सिद्धान्त स्थिरकरनेमें असमर्थ होकर मूककी समान निरुत्तर रहे अन्तमें महाभीत हो कश्यपकी आज्ञानुसार तुम्हारा स्तव करनेसे ॥ १८ ॥ उनका भ्रम दूर होकर सिद्धान्त स्थिर हुआ जब श्रीवेदव्यासजीने वाल्मीकिके निकट जायकर पुराणसूत्रका विषय पूँछा ॥ १९ ॥ तब मुनिवर वाल्मीकिने हतबुद्धि होकर जगत्की मातास्वरूप तुमको स्मरण किया तुम्हारे प्रसादसे ज्ञानज्योतिके प्रकाशित होनेपर ऋषिवरका भ्रमान्धकार दूर हुआ ॥ २० ॥ तब वह श्रीवेदव्यासके किये प्रश्नके विषयका सिद्धान्त स्थिर करनेमें समर्थ

हुए तब कृष्णांशोत्पन्न श्रीव्यासदेवजीने महर्षि वाल्मीकिजीके मुखसे पुराणसूत्रका विषय सुनकर तुम्हारी महिमा जानी ॥ २१ ॥ और फिर पुष्करतीर्थमें जाय शत वर्षपर्यन्त शान्तिदात्री स्वरूप तुम्हारी आराधनामें प्रवृत्त हुए इसके पीछे तुम्हारे प्रसन्न होकर उनको वरदेनेसे वह कवीन्द्रपदवीमें आरूढ हुए ॥ २२ ॥ फिर उन्होंने वेदविभाग और अठारह पुराणोंकी रचना करी जब महेन्द्रने सदाशिवसे तत्वज्ञानकी कथा पूंछी ॥ २३ ॥ तब सदाशिवने क्षणकाल तुम्हारी चिन्ताकरके तत्वज्ञानका उपदेश प्रदान किया फिर एक समय देवराजने सुरगुरु बृहस्पतिजीके निकट शब्दशास्त्रविषयक प्रश्न पूँछा ॥ २४॥ तब उन्होंने उसके उत्तर देनेमें असमर्थ होकर पुष्कर तीर्थमें जाय देवपरिमाणसे हजारवर्षपर्यन्त तुम्हारी आराधना करके तुमसे वर पाया ॥ २५ ॥ फिर दिव्य सहस्र वर्षपर्यन्त महेन्द्रको शब्दशास्त्र और शब्दशास्त्रार्थ विषयक उपदेश प्रदान करनेमें समर्थ हुए हे सुरेश्वरी जो मुनिगण शिष्यको शिक्षा प्रदान करते हैं ॥ २६ ॥ जो स्वयं अध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं वह कोई भी प्रथम

तांशिवांविदद्ध्यौचशतवर्षचपुष्करे ॥ तदात्वत्तोवरंप्राप्यसत्कवींद्रोबभूवह ॥ २२ ॥ तदावेदविभागंचपुराणंचचकारसः ॥ यदामहेंद्रःपप्रच्छतत्त्वज्ञानं सदाशिवम् ॥ २३ ॥ क्षणंतामेवसंचिंत्यतस्मैज्ञानंददौविभुः ॥ पप्रच्छशब्दशास्त्रंचमहेंद्रश्चबृहस्पतिम् ॥२४॥ दिव्यंवर्षसहस्रंचसत्वांदध्यौचपुष्करे ॥ तदात्वत्तोवरंप्राप्यदिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ २५ ॥ उवाचशब्दशास्त्रंचतदर्थंचसुरेश्वरम् ॥ अध्यापिताश्चयेशिष्यायैरधीतंमुनीश्वरैः ॥ २६ ॥ तेचतांपरिसं चिंत्यप्रवर्ततेसुरेश्वरीम् ॥ त्वंसंस्तुतापूजिताचमुनींद्रैर्मनुमानवैः ॥२७॥ दैत्येंद्रैश्चसुरैश्चाऽपिब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ जडीभूतःसहस्रास्यःपंचवक्रश्चतुर्मुखः ॥ २८ ॥ यांस्तोतुंकिमहंस्तौमितामेकास्येनमानवः ॥ इत्युक्त्वायाज्ञवल्क्यश्चभक्तिनम्रात्मकंधरः ॥२९॥ प्रणनामनिराहारोरुरोदचमुहुर्मुहुः ॥ ज्योतीरूपामहामायातेनदृष्टाऽप्युवाचतम् ॥ ३० ॥ सुकवींद्रोभवेत्युक्त्वावैकुंठंचजगामह ॥ याज्ञवल्क्यकृतंवाणीस्तोत्रमेतत्तुयःपठेत् ॥ ३१ ॥

तुम्हारा स्मरण विना किये अपने कार्यमें प्रवृत्त नहीं होसक्के कितनेही मुनीन्द्र कितने ही मनु ॥ २७ ॥ कितने ही दानव कितने ही दैत्येन्द्र कितने ही अमर यही क्या ब्रह्मा विष्णु और महादेव पर्यन्त तुम्हारी पूजा और तुम्हारा ही स्तव करते हैं किन्तु विष्णु जब सहस्रमुखसे महादेव पांचमुखसे और ब्रह्मा चारमुखसे ॥ २८ ॥ तुम्हारा स्तव करनेमें जड़ीभूत होते हैं तो फिर मैं सामान्य मनुष्य एकमुखसे क्या स्तव करूं कृतोपवास महर्षि याज्ञवल्क्यने इसप्रकार कहकर भक्तिभावसे मस्तक झुकाय ॥ २९ ॥ देवीको प्रणाम किया और क्षणक्षणमें रुदन करनेलगे इस समय फिर उन ज्योतिरूपा महामाया सरस्वतीसे नहीं रहागया उन्होंने उनके समीप आनकर कहा ॥ ३० ॥ "हे वत्स ! तुम सुकवीन्द्र होओ" इसप्रकार वर दे वैकुण्ठधामको चलीं गई जो याज्ञवल्क्यकृत इस सरस्वतीस्तवका पाठकरते हैं ॥ ३१ ॥

वह सुकवि वाग्मी और बृहस्पतिकी समान बुद्धिशक्तिसंपन्न हो सक्ते हैं यदि महामूर्ख मनुष्य भी एक वर्षतक यह वाणीस्तवपाठ करता है ॥३२॥ तो वह सहजमेंही सुपण्डित मेधावी और सुकवि होनेमें समर्थ होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद! सरस्वती सदाही वैकुण्ठमें नारायणके निकट वास करतीं हैं एक दिन गंगाके सहित कलह उपस्थित होनेपर उनके शापके कारण अंशद्वारा सरितरूपसे भारतमें अवतीर्ण हुईं ॥ १ ॥ यह भारतमें अतिपावनी पुण्यरूपा और पवित्र तीर्थस्वरूपिणी हैं पुण्यवान् मनुष्य इनके तटमें वास करके निरन्तर इनकी सेवा करते हैं ॥ २ ॥ यह तपस्वियोंकी तपस्या और तपका फलस्वरूप हैं जो पापस्वरूप काष्ठराशिको आहरण करता है, यह प्रज्वलित हुताशनरूप धारण

सकवींद्रोमहावाग्मीबृहस्पतिसमोभवेत् ॥ महामूर्खश्चदुर्बुद्धिर्वर्षमेकंयदापठेत् ॥ ३२ ॥ सपंडितश्चमेधावीसुकवींद्रोभवेद्ध्रुवम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥५॥ ॥छ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच॥ सरस्वतीतुवैकुंठेस्वयंनारायणांतिके ॥ गंगाशापेनकलहात्कलयाभारतेसरित् ॥ १ ॥ पुण्यदापुण्यरूपाचपुण्यतीर्थस्वरूपिणी ॥ पुण्यवद्भिर्निषेव्याचस्थितिःपुण्यवतांमुने ॥ २ ॥ तपस्विनांतपोरूपातपसःफलरूपिणी ॥ कृतपापेध्मदाहायज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ३ ॥ ज्ञानात्सरस्वतीतोयेमृतायेमानवाभुवि ॥ तेषांस्थितिश्चवैकुंठेसुचिरंहरिसंसदि ॥ ४ ॥ भारते कृतपापश्चस्नात्वातत्रचलीलया ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकेवसेच्चिरम् ॥ ५ ॥ चातुर्मास्यांपौर्णमास्यामक्षयायांदिनक्षये ॥ व्यतीपातेचग्रहणेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपिच ॥ ६ ॥ अनुषंगेणयःस्नातोहेतुनाश्रद्धयाऽपिवा ॥ सारूप्यंलभतेनूनंवैकुंठेसहरेरपि ॥ ७ ॥ सरस्वतीमनुंतत्रमासमेकंचयोजपेत् ॥ महामूर्खःकवींद्रश्चसभवेन्नाऽत्रसंशयः ॥ ८ ॥

करके उसकी उस पापरूप काष्ठराशिको भस्मकरतीं हैं ॥ ३ ॥ भारतमें जो ज्ञान सहित सरस्वतीके जलमें कलेवर त्याग करते हैं, वह सदा वैकुण्ठके मध्य हरिकी सभामें वास करसक्ते हैं ॥ ४ ॥ भारतमें जो पापाचरणकरके सरस्वतीजलमें स्नान करते हैं,वह लीलापूर्वकही अपने किये सब पापोंसे छूटकर दीर्घकालतक विष्णुलोकमें वास करते हैं ॥ ५ ॥ क्या चातुर्मास्यका समय, क्या पूर्णिमा, क्या अक्षया, क्या दिनक्षयसमय, क्या व्यतीपातयोग, क्या ग्रहणकाल, क्या अन्यपुण्यदिन ॥ ६ ॥ वा आनुषङ्गिक जिस किसी कारणसे हो अधिक क्या अश्रद्धापूर्वक होनेपर भी सरस्वतीके जलमें केवल एकवार स्नान करनेसे वैकुण्ठधाममें जाकर श्रीहरिकी सरूपता लाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ७ ॥ एक मासतक सरस्वतीके तटपर वास करके सरस्वतीका मंत्र जपनेसे महामूर्ख पुरुष भी कवीन्द्रपदमें

प्रतिष्ठित होसकता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ एकवार मस्तक मुण्डन करके सरस्वतीके तटपर वास करके जो पुरुष प्रतिदिन उसमें स्नान करता हैं उसको फिर गर्भकी यंत्रणा भोगनी नहीं होती ॥ ९ ॥ हे वत्स नारद ! यह तो मैंने भारतके असीमगुणोंमें सुखप्रद कामप्रद और सारभूत कुछेक वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ १० ॥ सूतजीने कहा हे शौनक ! मुनिवर नारदने नारायणके मुखसे इसप्रकार सुनकर सन्देह दूर होनेकेलिये फिर उसी समय जो प्रश्न पूँछा था, सो कहता हूं सुनो ॥ ११ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! सरस्वती देवी गंगाके संग कलह करके उनके शापसे किसप्रकार स्वीय अंशद्वारा भारतमें पुण्यप्रद संवित् रूपसे अवतीर्ण हुई ॥ १२ ॥ यह श्रुतिसार वृत्तान्त सुननेके लिये मेरा चित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ है

नित्यंसरस्वतीतोयेयःस्नायान्मुंडयन्नरः ॥ नगर्भवासंकुरुतेपुनरेवसमानवः ॥ ९ ॥ इत्येवंकथितंकिंचिद्भारतेगुणकीर्तनम् ॥ सुखदंकामदंसारंभूयःकिंश्रोतुमिच्छसि ॥ १० ॥ सूतउवाच ॥ नारायणवचःश्रुत्वानारदोमुनिसत्तमः ॥ पुनःपप्रच्छसंदेहमिमंशौनकसत्वरम् ॥ ११ ॥ नारदउवाच ॥ कथंसरस्वतीदेवीगंगाशापेनभारते ॥ कलयाकलहेनैवबभूवपुण्यदासरित् ॥ १२ ॥ श्रवणेश्रुतिसाराणांवर्धतेकौतुकंमम ॥ कथामृतेनमेतृप्तिःकेनश्रेयसितृप्यते ॥ १३ ॥ कथंशशापसागंगापूजितांतांसरस्वतीम् ॥ सातुसत्त्वस्वरूपायापुण्यदाशुभदासदा ॥ १४ ॥ तेजस्विनोर्द्वयोर्वादकारणंश्रुतिसुंदरम् ॥ सुदुर्लभंपुराणेषुतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ १५ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ शृणुनारदवक्ष्यामिकथामेतांपुरातनीम् ॥ यस्याःश्रवणमात्रेणसर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ १६ ॥ लक्ष्मीःसरस्वतीगंगातिस्रोभार्याहरेरपि ॥ प्रेम्णासमास्तास्तिष्ठंतिसततंहरिसन्निधौ ॥ १७ ॥ चकारसैकदागंगाविष्णोर्मुखनिरीक्षणम् ॥ सस्मिताचसकामाचसकटाक्षंपुनःपुनः ॥ १८ ॥

आपका वचनामृत पान करके किसी प्रकारभी मुझको तृप्ति नहीं होती फलतः श्रेयो लाभमें किसका चित्त चरितार्थता लाभ कर सकता है ? ॥ १३ ॥ सरस्वती सामान्य नारी नहीं है, त्रैलोक्यमें सभी उसकी पूजा करते हैं और गंगाभी सत्वगुणप्रधान हैं अतएव उन्होंने सर्वदा सबको पुण्य और शुभदात्री होकर सरस्वतीको किसलिये शाप दिया ॥ १४ ॥ दोनोंही तेजस्विनी थीं, अतएव बलवत् दोनों पक्षके विवादका कारण सुननेसे कानोंमें अमृतधारा वर्षण करता है विशेषकर पुराणमें यह सब वृत्तान्त अत्यन्त दुर्लभ है अतएव आप कृपा करके मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! जिस कथाके सुननेसे संपूर्ण पाप दूर होते हैं वही पुरातन कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ १६ ॥ लक्ष्मी सरस्वती और गंगा यह तीनो नारायणके निकट समान प्रेमसे वास करती हैं ॥ १७ ॥ इनमें गंगा एक दिन हास्य वदन

हो उत्सुक चित्तसे वारंवार नारायणके प्रति कटाक्षविक्षेप करनेलगी ॥ १८ ॥ प्रभु नारायणभी यह देखकर चकितकी समान गंगाकी ओर दृष्टिपात करके कुछेक हँसे यह देखकर लक्ष्मीजीने तो कुछ अपराध नहीं माना किन्तु सरस्वती महाक्रोधित होगई ॥ १९ ॥ यद्यपि सत्वगुणयुक्त लक्ष्मीजीने हास्यमुख हो उन क्रुद्ध सरस्वतीको अनेक प्रकारसे समझाया किन्तु तो भी किसीप्रकार शान्त न हुई ॥ २० ॥ बरन क्रोधसे उनके वदनमण्डलने लोहितराग धारण किया दोनों नेत्र रक्तवर्ण होगये वह क्रोधके वश हो कांपने लगी उनके ओष्ठ बराबर प्रस्फुरित होनेलगे तब भर्तासे कहने लगी ॥ २१ ॥ जो स्वामी सज्जन धार्मिक और गुणवान् है वह सब भार्याओंकोही समाननेत्रोंसे देखते हैं किन्तु धूर्तोंके पक्षमें इसके विपरीत है ॥ २२ ॥ हे गदाधर ! गंगाके प्रतिही आपका प्रणय पक्षपात है लक्ष्मीके प्रतिभी उससे न्यून नहीं है केवल

विभुर्जहासतद्दृष्ट्वानिरीक्ष्यचक्षणंतदा॥क्षमांचकारतद्दृष्ट्वालक्ष्मीर्नैवसरस्वती ॥ १९ ॥ बोधयामासपद्मातांसत्त्वरूपाचसस्मिता ॥ क्रोधाविष्टाचसावाणी नचशांतावभूवह ॥२०॥ उवाचवाणीभर्तारंरक्तास्यारक्तलोचना॥कंपिताकामवेगेनशश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥ २१ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ सर्वत्रसमताबुद्धिः सद्भर्तुःकामिनींप्रति ॥ धर्मिष्ठस्यवरिष्ठस्यविपरीताखलस्यच ॥ २२ ॥ ज्ञातंसौभाग्यमधिकंगंगायांतेगदाधर ॥ कमलायांचतत्तुल्यंनचकिंचिन्मयिप्रभो ॥ २३ ॥ गंगायाःपद्मयासार्धंप्रीतिश्चाऽस्तिसुसंमता ॥ क्षमांचकारतेनेदंविपरीतंहरिप्रिया ॥२४॥ किंजीवनेनमेऽत्रैवदुर्भगायाश्चसांप्रतम् ॥ निष्फलंजीवनंतस्यायापत्युःप्रेमवंचिता ॥२५॥ त्वांसर्वेसत्त्वरूपंचयेवदंतिमनीषिणः ॥ तेचमूर्खानवेदज्ञानजानंतिमतिंतव ॥ २६ ॥ सरस्वतीवचःश्रुत्वादृष्ट्वातांकोपसंयुताम् ॥ मनसाचसमालोच्यसजगामबहिःसभाम् ॥ २७ ॥ गतेनारायणेगंगामुवाचानिर्भयंरुषा ॥ वागधिष्ठातृदेवीसावाक्यंश्रवणदुष्करम् ॥ ॥ २८ ॥ हेनिर्लज्जेहेसकामेस्वामिगर्वकरोषिकिम् ॥ अधिकंस्वामिसौभाग्यंविज्ञापयितुमिच्छसि ॥ २९ ॥

मैंही उससे वंचित हूं ॥ २३ ॥ इसीकारण गंगा और लक्ष्मीमें परस्पर प्रणय है,क्योंकि आपभी लक्ष्मीको प्यार करते हैं अतएव लक्ष्मी यह विपरीताचरण क्यों न सहै ? ॥ २४ ॥ मैं हतभाग्य हूं मेरे जीवनसे क्या प्रयोजन है कारण कि जो स्त्री पतिके प्रेमसे वंचित है उसका जीवन विडम्बना मात्र है ॥ २५ ॥ जो मनीषिगण आपको सत्वगुणका अधिष्ठाता कहकर निर्देश करते हैं वह कभी पण्डितपदवाच्य होनेके योग्य नहीं हैं वह नितान्त मूर्ख हैं, उनको कुछभी वेदज्ञान नहीं है वह आपकी मनोवृत्ति जाननेमें एकान्त असमर्थ है ॥ २६ ॥ हे वत्स नारद ! नारायण सरस्वतीके वचन सुन और उनको अत्यन्त कोपयुक्त जान क्षण काल चिन्ताके पीछे अन्तःपुरसे बाहर गये ॥ २७ ॥ इसओर वागीश्वरी सरस्वती नारायणके जानेसे निर्भयचित्त हो क्रोधमें भर असहनीय कटुवचनोंके द्वारा गंगासे कहनेलगी ॥ २८ ॥ रे निर्लज्जे !

कामातुरे ! तू स्वामीके सौभाग्यका गर्व करती है. स्वामी तेरे प्रति अत्यन्त प्रणय प्रकाश करतेहैं. वही जताती है? ॥ २९ ॥ तू बडी पतिसोहागिनी हुई है, आज तेरा दर्प चूर्ण करूंगी ! आज देखतीहूं तेरे हरि मेरा क्या करेंगे ? ॥ ३० ॥ यह कहतेही जब सरस्वती गंगाके केशाकर्षण करने अर्थात् बाल खेंचनेमें उद्यत हुई, तब लक्ष्मीने दोनोंको मध्यवर्तिनी होकर निवारण किया ॥ ३१ ॥ वाणी (सरस्वती) गंगाके बाधा देनेसे इतनी प्रबल होगई कि तिस काल उसको कुछभी हिताहितका विचार नहीं रहा, वरन उसने क्रोधसे अधीर हो उसको यह कहकर शाप दिया कि हे पद्मे! तुमने जब गंगाके अन्यान्य आचरण वा पक्षपात वशसे कुछ बात न कहकर वृक्ष तथा सरित्‌की समान जड़भावसे स्थित रही तो मैं कहती हूं कि शीघ्र तुमको वृक्ष और सरित्स्वरूप धारण करना होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीने सरस्वतीकी बात सुनकर कुछभी क्रोध नहीं किया केवल दुःखितहो सरस्वतीका हाथ पकड़कर निस्तब्धभावसे अवस्थान करनेलगी ॥ ३४ ॥ इस

मानचूर्णंकरिष्यामितवाऽद्यहरिसन्निधौ ॥ किंकरिष्यतितेकांतोममैवंकांतवल्लभे ॥ ३० ॥ इत्येवमुक्त्वागंगायाःकेशग्रहींतुमुद्यता ॥ वारयामासतां पद्मामध्येदेशंसमाश्रिता ॥ ३१ ॥ शशापवाणीतांपद्मांमहाबलवतीसती ॥ वृक्षरूपासरिद्रूपाभविष्यसिनसंशयः ॥ ३२ ॥ विपरीतंततोदृष्ट्वाकिंचिन्नो वक्तुमर्हसि ॥ संतिष्ठतिसभामध्येयथावृक्षोयथासरित् ॥ ३३ ॥ शापंश्रुत्वातुसादेवीनशशापचुकोपह ॥ तत्रैवदुःखितातस्थौवाणींधृत्वाकरेणच ॥ ३४ ॥ अत्युग्रतांतुतांदृष्ट्वाकोपप्रस्फुरिताधराम् ॥ उवाचगंगातांदेवींपद्मांचारक्तलोचना ॥ ३५ ॥ श्रीगंगोवाच ॥ त्वमुत्सृजमहोग्रांचपद्मेकिंमेकरिष्यति ॥ दुःशीलामुखरानष्टानित्यंवाचालरूपिणी ॥ ३६ ॥ वागधिष्ठात्रीदेवीयंसततंकलहप्रिया ॥ यावतीयोग्यताचास्यायावतीशक्तिरेवच ॥ ३७ ॥ तथाकरो तुवादंचमयासार्धंचदुर्मुखी ॥ स्वबलंयन्ममबलंविज्ञापयितुमिच्छति ॥ ३८ ॥ जानंतुसर्वेह्युभयोःप्रभावंविक्रमंसति ॥ इत्येवमुक्त्वासादेवीवाण्यैशापं ददाविति ॥ ३९ ॥ सरित्स्वरूपाभवतुसायात्वांचशशापह ॥ अधोमर्त्यंसाप्रयातुसंतियत्रैवपापिनः ॥ ४० ॥

समय गंगाकेभी कोपसे वारंवार ओष्ठाधर कांपनेलगे फिर लाल लाल नेत्र कर सरस्वतीको क्रोधमें अत्यन्त उन्मत्त देख लक्ष्मीसे कहा ॥ ३५ ॥ गंगा बोली हे पद्मे ! तुम इस दुष्टस्वभावा मुखराको छोडदो, यह दुःशीला वाचाल हमारा क्या करेगी? ॥ ३६ ॥ यह वाक्यकी अधिष्ठात्री होनेसे केवल सदा कलहही करतीहै उस दुर्मुखीका जितना प्रभाव है जितनी शक्ति है ॥ ३७ ॥ मेरे संग विवाद करके देखले वह अपना बल कितना और मेरा बल कितना है ? यह जाननेकी इच्छा करती है ॥ ३८ ॥ अतएव उपेक्षाको छोड़ सब हम दोनोंका पराक्रम और प्रभाव देखो. इसप्रकार कहकर गंगाने सरस्वतीको शाप देनेमें उद्यत हो लक्ष्मीसे कहा ॥ ३९ ॥ हे सखि पद्मे ! उसने जब तुमको सरिद्रूपिणी होनेका शाप दिया तब मैंभी कहती हूं कि, जहां पापी हैं वहां मृत्युलोक जो नीचे है वहां गमन करे ॥ ४० ॥

उसकोभी सरितरूप धारण करके पापियोंके निवास स्थान मर्त्यलोक जाकर कलियुगमें उनके पापग्रहण करना हो यह सुनकर सरस्वतीनेभी शापदिया ॥ ४१ ॥ तुमभी पृथ्वी में जाकर पापियोंका पाप ग्रहणकरो. हे वत्स नारद! इसीप्रकार कलह होही रहाथा कि इसी समय भगवान् आये ॥ ४२॥ चतुर्भुजमूर्ति सर्वज्ञ भगवान् हरि चतुर्भुज चार पार्षदोंके सहित वहां आनकर उपस्थितहुए और सरस्वतीको हाथ पकड़ हृदयसे लगाकर ॥४३॥ पुराना रहस्य कहनेलगे तब वह अपने २ शापदान और कलहका कारण जानकर ॥ ४४ ॥ अत्यन्त दुःखित हुई इसीसमय भगवान् हरि समयोचित वचनद्वारा एकादिक्रमसे उनसे सब कहनेलगे भगवान् बोले हे लक्ष्मि ! तुम अंशसे मर्त्यलोकमें धर्मध्वज राजाके घर ॥ ४५ ॥ अयोनिसंभवा कन्यारूपमें जन्म लोगी वहां भाग्यके दोषसे तुमको वृक्षत्व लाभकरना होगा ॥ ४६ ॥ वहां मेरे अंशसे

कलौतेषांचपापानिग्रहीष्यतिनसंशयः ॥ इत्येवंवचनंश्रुत्वातांशशापसरस्वती ॥ ४१ ॥ त्वमेवयास्यसिमहींपापिपापंलभिष्यसि ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्रभगवानाजगामह ॥४२॥ चतुर्भुजश्चतुर्भिश्चपार्षदैश्चचतुर्भुजैः ॥ सरस्वतींकरेधृत्वावासयामासवक्षसि॥४३॥ बोधयामाससर्वज्ञःसर्वज्ञानंपुरातनम्॥ श्रुत्वारहस्यंतासांचशापस्यकलहस्यच ॥ ४४ ॥ उवाचदुःखितास्ताश्चवाचंसामयिकींविभुः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ लक्ष्मित्वंकलयागच्छधर्मध्वजगृहं शुभे ॥ ४५ ॥ अयोनिसंभवाभूमौतस्यकन्याभविष्यसि ॥ तत्रैवदैवदोषेणवृक्षत्वंचलभिष्यसि ॥ ४६ ॥ मदंशस्याऽसुरस्यैवशंखचूडस्यकामिनी ॥ भूत्वापश्चाच्चमत्पत्नीभविष्यसिनसंशयः ॥ ४७ ॥ त्रैलोक्यपावनीनाम्नातुलसीतिचभारते ॥ कलयाचसरिद्भावंशीघ्रंगच्छवरानने ॥ ४८॥ भारतंभारती शापात्राम्नापद्मावतीभव ॥ गंगेयास्यसिपश्चात्त्वमंशेनविश्वपावनी ॥ ४९ ॥ भारतंभारतीशापात्पापदाहायपापिनाम् ॥ भगीरथस्यतपसातेननीतासुक ल्पिते ॥ ५० ॥ नाम्नाभागीरथीपूताभविष्यसिमहीतले ॥ मदंशस्यसमुद्रस्यजायाजायेर्ममाज्ञया ॥ ५१ ॥ मत्कलांशस्यभूपस्यशंतनोश्चसुरेश्वरि ॥ गंगाशापेनकलयाभारतंगच्छभारति ॥ ५२ ॥

उत्पन्न असुरेन्द्र शङ्खचूडनामक तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा फिर तुम यहां आनकर जिस प्रकार मेरी पत्नी हैं उसी प्रकार रहोगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ भारतमें जाकर तुम त्रैलोक्यपाविनी तुलसीनामसे विख्यात होगी हे वरानने ! शीघ्र भारतमें जाय अंशके द्वारा सरितरूपसे ॥ ४८॥ अवतीर्ण होकर पद्मावती नामसे विख्यात होओ हे गंगे ! तुमको भी सरस्वतीके शापसे मेरे अंशसे ॥ ४९ ॥ भारतमें भारतवासियोंके पाप दूर करनेको विश्वपाविनी सरितरूपसे अवतीर्ण होना पडेगा भगीरथके तपसे अनेक आराधना करके तुमको लेजानेसे॥ ५० ॥ तुम भूलोकमें पूततमा भागीरथी नामसे विख्यात होगी वहां मेरे अंशसम्भूत समुद्र ॥ ५१ ॥ और मेरे अंशसे उत्पन्न

राजा शन्तनु तुम्हारे पति होंगे. हे भारती ! गंगाके शापसे तुमभी भारतमें जाकर अंशसे अवतीर्ण होओ ॥ ५२ ॥ दोनों सपत्नीके सहित कलहका फल भोगो हे भद्रे ! तुम स्वयं पूर्णरूपसे ब्रह्मसदनमें जाकर ब्रह्माकी पत्नी होओ ॥ ५३ ॥ गंगाभी पूर्णरूपसे शिवके समीप जाय और पद्मा मेरेही निकट रहे पद्मा अत्यन्त शान्तप्रकृति क्रोधरहित मद्भक्तिपरायण और सत्वगुणावलम्बिनी है ॥ ५४ ॥ पद्माकी समान साध्वी सचरित्रा भाग्यवती और धर्मचारिणी अतिविरल हैं जो स्त्रियें पद्माके अंशसे जन्म ग्रहण करतीं हैं वह सब अतिशय धार्मिका और पतिपरायण होती हैं ॥ ५५ ॥ अधिक क्या ? शान्तस्वभाव और सुशीलकामिनियोंका सर्वत्र समान आदर होताहै क्या तीन भार्या क्या तीन भृत्य क्या तीन बांधव ॥ ५६ ॥ भिन्न स्वभावके तीन जन एकत्र बैठालना निषिद्ध है और वेदविरुद्ध है क्योंकि तीन जन कभी एकस्वभावके नहीं होसकते अतएव भिन्नप्रकृति तीन जनोंका एकत्र वास कभी मंगलदायक नहीं है जिस घरमें पुरुषकी समान स्त्रियोंका आधिपत्य प्रबल है

कलहस्यफलंभुंक्ष्वसपत्नीभ्यांसहाऽच्युते ॥ स्वयंचब्रह्मसदनेब्रह्मणःकामिनीभव ॥ ५३ ॥ गंगायातुशिवस्थानमत्रपद्मैवतिष्ठतु ॥ शांताचक्रोधरहितामद्भक्तासत्त्वरूपिणी ॥ ५४ ॥ महासाध्वीमहाभागासुशीलाधर्मचारिणी ॥ यदंशकलयासर्वाधर्मिष्ठाश्चपतिव्रताः ॥ ५५ ॥ शांतरूपाःसुशीलाश्चप्रतिविश्वेषुपूजिताः ॥ तिस्रोभार्यास्त्रिशीलाश्चत्रयोभृत्याश्चबांधवाः ॥ ५६॥ ध्रुवंवेदविरुद्धाश्चनह्येतेमंगलप्रदाः॥ स्त्रीपुंवच्चगृहेयेषांगृहिणांस्त्रीवशःपुमान् ॥ ॥ ५७ ॥ निष्फलंचजन्मतेषामशुभंचपदेपदे ॥ मुखेदुष्टायोनिदुष्टायस्यस्त्रीकलहप्रिया ॥ ५८ ॥ अरण्यंतेनगंतव्यंमहारण्यंगृहाद्वरम् ॥ जलानांचस्थलानांचफलानांप्राप्तिरेवच ॥ ५९ ॥ सततंसुलभातत्रनतेषांगृहएवच ॥ वरमग्नौस्थितिर्हिंस्रजंतूनांसन्निधौसुखम् ॥ ६० ॥ ततोऽपिदुःखंपुंसांचदुष्टस्त्रीसन्निधौध्रुवम् ॥ व्याधिज्वालाविषज्वालावरंपुंसांवरानने ॥ ६१॥ दुष्टस्त्रीणांमुखज्वालामरणादतिरिच्यते ॥ पुंसांचस्त्रीजितांचैवभस्मांतंशौचमध्रुवम् ॥ ६२ ॥

और पुरुष स्त्रीके वशीभूत हैं ॥ ५७ ॥ उनका जन्म निष्फल है और पद पदमें उनको अशुभ संघटित होते हैं जिसकी स्त्री मुखदुष्ट योनिदुष्ट और कलहप्रिय है ॥ ५८ ॥ उसको निबिड़वनमें चलाजानाही श्रेष्ठ है. क्योंकि ऐसे व्यक्तिके पक्षमें महावन घरकी अपेक्षा सुखका स्थान होता है वह मनुष्य घरमें पैर धोनेका जल बैठनेका स्थान भक्षणार्थफल इत्यादि कुछ नहीं पाता ॥ ५९ ॥ किन्तु वनमें उसको किसी वस्तुका अभाव नहीं होता दुष्टा स्त्रीके संग रहनेकी अपेक्षा हिंसक जंतुओंमें वास वा अग्निमें प्रवेश करना उत्तम है ॥ ६० ॥ परन्तु दुष्ट स्त्रीके समीप अवश्य घोर दुःख है हे वरानने ! यद्यपि व्याधियंत्रण (रोगजनित कष्ट) वा विषकी ज्वाला सहन होसक्ती है ॥ ६१ ॥ किन्तु दुष्टा स्त्रीके वाक्यकी यंत्रण नहीं सही जाती अधिक क्या उसकी अपेक्षा मृत्युही श्रेष्ठ है जो स्त्रीके अत्यन्त

वशीभूत हैं, यह निश्चय जानो कि जबतक वह चितामें नहीं जायगे तबतक उनके मन शान्त न होगे ॥ ६२ ॥ वह प्रतिदिन जिस कार्यका अनुष्ठान करते हैं उससे किसी प्रकार वह फलभागिनी नहीं होसक्ते उनका इस लोक वा परलोक कहीं भी यश नहीं है बरन चरमावस्थामें नरक प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ जिसका यश वा कीर्ति नहीं है उसका जीवन विडम्बनामात्र है बहुत सपत्नियोंका एकत्र रहना कभी मंगलका निमित्त नहीं है ॥ ६४ ॥ केवल एक स्त्री ग्रहण करके जब मनुष्य सुखी नहीं होसकता तब बहुत भार्यावाले पुरुषको जो कष्ट होता है उसमें फिर कहनाही क्या है. हे गंगे! तुम शिवके समीप और सरस्वती! तुम ब्रह्माके घर जाओ ॥ ६५ ॥ केवल कमलवासिनी सुशीला कमला मेरे निकट रहे जिसकी पत्नी पतिव्रता सुशीला और आज्ञाकारिणी है ॥ ६६ ॥ उसको इस लोकमें सुख और धर्म एवं परकालमें मुक्तिलाभ

यदह्निकुरुतेकर्मनतस्यफलभाग्भवेत् ॥ निंदितोऽत्रपरत्रैवसर्वत्रनरकंव्रजेत् ॥ ६३ ॥ यशःकीर्तिविहीनोयोजीवन्नपिमृतोहिसः ॥ बह्वीनांचसपत्नीनां नैकत्रश्रेयसेस्थितिः ॥६४॥ एकभार्यःसुखीनैवबहुभार्यःकदाचन ॥ गच्छगंगेशिवस्थानंब्रह्मस्थानंसरस्वति॥६५॥अत्रतिष्ठतुमद्गेहेसुशीलाकमलालया॥ सुसाध्यायस्यपत्नीचसुशीलाचपतिव्रता ॥ ६६ ॥ इहस्वर्गेसुखंतस्यधर्मोमोक्षःपरत्रच ॥ पतिव्रतायस्यपत्नीसचमुक्तःशुचिःसुखी ॥ ६७ ॥ जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखीदुःशीलापतिरेवच ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेषष्ठोऽध्यायः॥६॥ श्रीनारायणउवाच ॥ इत्युक्त्वाजगतांनाथोविररामचनारद॥ अतीवरुरुदुर्देव्यः समालिंग्यपरस्परम् ॥१॥ ताश्चसर्वाःसमालोक्यक्रमेणोचुस्तदेश्वरम् ॥ कंपिताःसाश्रुनेत्राश्चशोकेनचभयेनच ॥२॥ सरस्वत्युवाच ॥ विशापंदेहिहेनाथदुष्टमाजन्मशोचनम् ॥ सत्स्वामिनापरित्यक्ताःकुतोजीवंतिताःस्त्रियः ॥ ३ ॥

होता है फलतः जिसकी स्त्री पतिव्रता है वह सर्वान्तःकरणसे सुख भोगकरता है यही नहीं बरन वह जीवन्मुक्त है॥ ६७ ॥ और जिसकी स्त्री दुश्चरित्रा है इस लोकमें सर्वान्तःकरणके सहित उसको केवल दुःखही भोगना पड़ता है अधिक क्या उसको जीवन्मृत कहनेसे भी अन्योक्ति नहीं होती ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद! जब जगन्नाथ श्रीकृष्ण इसप्रकार कहकर मौन (चुप) हुए, तब लक्ष्मी सरस्वती और गंगा परस्परको आलिंगन करके अत्यन्त रुदन करनेलगीं ॥ १ ॥ अनन्तर वह सब जगदीश्वर श्रीकृष्णकी ओर देखकर कंपितगात्र हो शोक और भयसे आँसु बहाती हुई क्रमानुसार उनसे अपने मनका भाव कहने लगीं ॥ २ ॥ प्रथम तो सरस्वतीने कहा हे नाथ! हमारे इस आजन्म

पर्यन्त क्लेशप्रद अतिकठोर शापके छूटनेका क्या उपाय है ? अबलागण क्या कभी अनुकूलपतिके त्यागनेपर जीवन धारण करसकतीं हैं॥ ३॥ हे नाथ ! मैं निश्चय कहती हूं कि, मैं भारतमें जाकर योगावलम्बनपूर्वक इस देहको विसर्जन करूंगी, महात्मा लोग निःसंदेह सदा सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ फिर गंगाने कहा हे जगत्पते ! आपने किस अपराधसे मुझको त्याग किया ? मैं शरीरपरित्याग करूंगी इस समय आप इस दोषविहीन रमणीके वधभागी हुए ॥ ५ ॥ इस भूमण्डलमें जो मनुष्य निरपराध स्त्रीको परित्याग करता है वह यद्यपि सर्वेश्वर हो किन्तु तो भी उसको नरकगामी होना पड़ता है ॥ ६ ॥ पद्माने कहा हे नाथ ! आप पूर्णसत्वगुणस्वरूप है. क्या आश्चर्य है कि, आपके शरीरमें किसप्रकार क्रोधका संचार हुआ ? जो हो आप सरस्वती और गंगापर प्रसन्न हूजिये. क्योंकि क्षमाही सत्पतिका प्रधान गुण है ॥ ७ ॥ और सरस्वतीने जब मुझको शाप दिया है तब मैं इसी समय भारतमें जानेको प्रस्तुत हूं किन्तु मुझको कितने कालतक वहां रहना होगा ? कितने दिनोंमें

देहत्यागंकरिष्यामियोगेनभारतेध्रुवम् ॥ अत्युन्नतोहिनियतंपातुमर्हतिनिश्चितम् ॥ ४॥ गंगोवाच ॥ अहंकेनाऽपराधेनत्वयात्यक्ताजगत्पते ॥ देहत्यागं करिष्यामिनिर्दोषायावधंलभ ॥ ५ ॥ निर्दोषकामिनीत्यागंकरोतियोनरोभुवि ॥ सयातिनरकंघोरंकिंतुसर्वेश्वरोऽपिवा ॥ ६ ॥ पद्मोवाच ॥ नाथसत्त्वस्वरूपस्त्वंकोपःकथमहोतव ॥ प्रसादंकुरुभार्येद्वेसदीशस्यक्षमावरा ॥ ७ ॥ भारतेभारतीशापाद्यास्यामिकलयाह्यहम् ॥ कियत्कालंस्थितिस्तत्रकदाद्रक्ष्यामितेपदम् ॥ ८ ॥ दास्यंतिपापिनःपापंसद्यःस्नानावगाहनात् ॥ केनतेनविमुक्ताऽहमागमिष्यामितेपदम् ॥ ९ ॥ कलयातुलसीरूपंधर्मध्वजसुतासती ॥ भुक्त्वाकदालभिष्यामित्वत्पादांबुजमच्युत॥ १०॥ वृक्षरूपाभविष्यामित्वदधिष्ठातृदेवता॥ समुद्धरिष्यसिकदातन्मेब्रूहिकृपानिधे॥ ११॥ गंगासरस्वतीशापाद्यदियास्यतिभारते ॥ शापेनमुक्तापापाच्चकदात्वांचलभिष्यति ॥ १२ ॥ गंगाशापेनवावाणीयदियास्यतिभारतम्॥ कदाशापाद्विनिर्मुच्यलभिष्यतिपदंतव ॥ १३ ॥

आपके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ पापीगण सदा स्नान और अवगाहनद्वारा मेरे जलमें पापरूपी कीचड धोवेंगे तब किस उपायद्वारा उससे छूटकर फिर आपके चरणकमलोंका दर्शन पाऊंगी॥ ९॥ जब मैं अंशसे धर्मध्वजकी दुहिता हूंगी तब मुझको कितने दिन पीछे आपका दर्शन प्राप्त होगा॥ १०॥ कितने दिन मुझको आपका अधिष्ठानभूत तुलसीवृक्षरूप धारण करके अवस्थान करना होगा ? हे कृपानिधे ! कहो कितने दिनोंमें मेरा उद्धार करोगे ॥ ११ ॥ भारतीके शापसे यदि गंगाको भारतमें अवतीर्ण होना पडे तो शापसे और पापसे छूटकर कितने दिन पीछे आपका दर्शन करसकती हैं ॥ १२ ॥ और यदि गंगाके शापसे सरस्वतीही भारतमें गमन करे तो उसके शापावसानमें कितना विलम्ब होगा?कितने दिन पीछे आपके चरणोंका दर्शन करनेमें समर्थ होगी? ॥ १३ ॥

इसके अतिरिक्त सरस्वतीको ब्रह्मसदनमें और गंगाको जो शिवसदनमें जानेकी अनुमति दी सो इस विषयमें क्षमा कीजिये ॥ १४ ॥ हे वत्स नारद ! देवी कमला जगन्नाथसे यह बात कहकर उनके चरणकमलोंमें गिरगई और अपने केशोंसे उनके चरण वेष्टन करके वारंवार रोदन करने लगी ॥ १५ ॥ इसीसमय भक्तानुग्रह कातर पद्मनाभ हरिने हास्यमुख और प्रसन्नचित्त हो पद्माको हृदयसे लगाकर कहा भगवान् बोले हे सुरेश्वरि ! अपने वचनकी रक्षा करके तुम्हारे कथनानुसार कार्य करूंगा. हे कमललोचने ! जिस प्रकारसे दोनों बातोंकी रक्षा हो वह कहता हूं सुनो ॥ १६ ॥ सरस्वती एकांशसे नदीरूप धारण करके भारतमें और अर्धांशसे ब्रह्माके समीप वास करें और पूर्णांशसे वैकुण्ठमें मेरे समीप विद्यमान रहै ॥ १७ ॥ भगीरथके यत्नसे त्रिभुवन पूत (पवित्र) करनेके लिये गंगाको एकांशसे भारतमें

तांवाणींब्रह्मसदनंगंगांवाशिवमंदिरम् ॥ गंतुंवदसिहेनाथतत्क्षमस्वचतेवचः ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वाकमलाकांतपादंधृत्वाननामसा ॥ स्वकेशैर्वे ष्टनंकृत्वारुरोदचपुनःपुनः ॥ १५ ॥ " उवाचपद्मनाभस्तांपद्मांकृत्वास्ववक्षसि ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्योभक्तानुग्रहकातरः ॥ १ ॥ " ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वद्वाक्यमाचरिष्यामिस्ववाक्यंचसुरेश्वरि ॥ समतांचकरिष्यामिशृणुत्वंकमलेक्षणे ॥ १६ ॥ भारतीयातुकलयासरिद्रूपाचभा रते ॥ अर्धासाब्रह्मसदनंस्वयंतिष्ठतुमद्गृहे ॥ १७ ॥ भगीरथेनसानीतागंगायास्यतिभारते ॥ पूतंकर्तुंत्रिभुवनंस्वयंतिष्ठतुमद्गृहे ॥ १८ ॥ तत्रैवचंद्रमौले श्चमौलिंप्राप्स्यतिदुर्लभम् ॥ ततःस्वभावतःपूताऽप्यतिपूताभविष्यति ॥ १९ ॥ कलांशांशेनगच्छत्वंभारतेवामलोचने ॥ पद्मावतीसरिद्रूपातुलसी वृक्षरूपिणी ॥ २० ॥ कलेःपंचसहस्रेचगतेवर्षेचमोक्षणम् ॥ युष्माकंसरितांचैवमद्गेहेचागमिष्यथ ॥ २१ ॥ संपदाहेतुभूताचविपत्तिःसर्वदेहिनाम् ॥ विनाविपत्तेर्महिमाकेषांपद्मभवेभवे ॥ २२ ॥ मन्मंत्रोपासकानांचसतांस्नानावगाहनात् ॥ युष्माकंमोक्षणंपापाद्दर्शनात्स्पर्शनात्तथा ॥ २३ ॥

जाना होगा ॥ १८ ॥ और एकांशसे चन्द्रशेखरकी दुर्लभ जटामें स्थान लाभ करके स्वभावसे जिसप्रकार पवित्र हैं, उससे भी अधिक पवित्र होगी और पूर्णांशसे मेरे समीप अवस्थान करे ॥ १९ ॥ हे वामलोचने पद्मे ! तुम सबकी अपेक्षा निरपराध हो अतएव तुम्हारा अंशका अंश भारतमें पद्मावती नामक नदी और तुलसी वृक्ष रूपमें परिणत होवे ॥ २० ॥ कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर तुम शापसे छूटोगी तब फिर तुम मेरे गृहमें आसकोगी ॥ २१ ॥ हे पद्मे ! विपत्तिही देहधारियोंकी संपत्तिका निदान हैं संसारमें विपत्तिके विना कोई सम्पद्का गौरव नहीं समझ सकता ॥ २२ ॥ मेरे मंत्रोपासक जो साधुपुरुष तुम्हारे जलमें स्नान और अवगाहन

करेंगे उनके दर्शन और स्पर्शनसे तुम्हारा पाप छूट जायगा ॥ २३ ॥ हे सुन्दरी ! मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे भूलोकस्थित संपूर्ण तीर्थ पवित्र होंगे ॥ २४ ॥ सुपवित्रधराका उद्धार और पवित्रता साधन करनेके लिये मेरे मंत्रोपासक अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ शैव वैष्णव शाक्त और गाणपत्यादि संपूर्ण भक्त भारतमें वास करते हैं ॥ २५ ॥ मेरे भक्त वहां अवस्थान करके पैर धोते हैं वह स्थान निःसन्देह पवित्र तीर्थ कहकर परिगणित होते हैं ॥ २६ ॥ यही क्या ! मेरे भक्तोंके स्पर्श और दर्शनसे स्त्री हत्या गोहत्या और ब्रह्महत्याकारी एवं कृतघ्न और गुरुदारापहारी पुरुषतकभी पवित्र और जीवन्मुक्त होते हैं ॥ २७ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे एकादशीविहीन संध्यावर्जित नास्तिक और नरहत्याकारीकाभी पाप दूर होता है ॥ २८ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे असिजीवी मसिजीवी धावक अर्थात्

पृथिव्यांयानितीर्थानिसंत्यसंख्यानिसुंदरि ॥ भविष्यंतिचपूतानिमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २४ ॥ मन्मंत्रोपासकाभक्ताविश्रमंतिचभारते ॥ पूतंकर्तुंतारितुंचसुपवित्रांवसुंधराम् ॥ २५ ॥ मद्भक्तायत्रतिष्ठंतिपादंप्रक्षालयंतिच ॥ तत्स्थानंचमहातीर्थंसुपवित्रंभवेद्ध्रुवम् ॥ २६ ॥ स्त्रीघ्नोगोघ्नःकृतघ्नश्चब्रह्मघ्नोगुरुतल्पगः ॥ जीवन्मुक्तोभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २७ ॥ एकादशीविहीनश्चसंध्याहीनोऽथनास्तिकः ॥ नरघातीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २८ ॥ असिजीवीमसीजीवीधावकोग्रामयाचकः ॥ वृषवाहोभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २९ ॥ विश्वासघातीमित्रघ्नोमिथ्यासाक्ष्यस्यदायकः ॥ स्थाप्यहारीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३० ॥ अत्युग्रवाग्दूषकश्चजारकःपुंश्चलीपतिः ॥ पूतश्चपुंश्चलीपुत्रोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३१ ॥ शूद्राणांसूपकारश्चदेवलोग्रामयाजकः ॥ अदीक्षितोभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३२ ॥ पितरंमातरंभार्यांभ्रातरंतनयंसुताम् ॥ गुरोःकुलंचभगिनींचक्षुर्हीनंचबांधवम् ॥ ३३ ॥ श्वश्रूंचश्वशुरंचैवयोनपुष्णातिसुंदरि ॥ समहापातकीपूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३४ ॥

रजककर्मकारी ग्रामयाचक और वृषवाही ब्राह्मणोंका भी पाप दूर होता है ॥ २९ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे विश्वासघातक मित्रद्रोही मिथ्यासाक्षीदाता और धरोहर मारनेवाला पुरुषभी पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे अति वाग्दुष्ट अर्थात् उग्रवचन बोलनेवाला जारक (अन्यपितासे उत्पन्न) पुंश्चलीपति और पुंश्चलीका पुत्रभी पवित्र होता है ॥ ३१ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे जो ब्राह्मण शूद्रका पाचक (रसोईदार) जो देवल पुजारी जो ग्रामवालोंका यज्ञ करानेवाला और जो गुरुमंत्रमें दीक्षित नहीं है वह भी पवित्र होता है ॥ ३२ ॥ हे सुन्दरि ! जो पामर पिता, माता, भ्राता, स्त्री, पुत्र, कन्या, भगिनी, अंध, बंधु ॥ ३३ ॥ गुरुकुल, सास और श्वशुरका भरण पोषण नहीं करता मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे वह पातकी भी पापसे छूट जाता है ॥ ३४ ॥

मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे पीपलका काटनेवाला मेरे भक्तोंकी निन्दा करनेवाला और शूद्रोंका अन्न भोजन करनेवाला ब्राह्मणपर्यन्त अपने अपने किये पापोंसे मुक्त होता है॥ ३५॥ जो देवताका द्रव्य और ब्राह्मणका द्रव्य हरण करता है जो लाक्षा (लाख) लोहा और रस तथा कन्या बेचता है ॥ ३६॥ जो महापातकी और शूद्रोंका शव फूँकनेवाला है वह भी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श करनेपर अपने अपने पापसे छूटते हैं॥ ३७॥ महालक्ष्मीने कहा हे भक्तवत्सल! आप भक्तोंके लक्षण कहिये जिन भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे नराधम शीघ्र पवित्र होते हैं॥ ३८॥ हरिभक्तिविहीन घोर अहंकारी आत्मश्लाघामें निरत धूर्त शठ और साधुओंकी निन्दा करनेवाले ॥ ३९ ॥ पापात्मा लोग भी शीघ्र महापातकसे छूटते हैं जिन भक्तोंके स्नानावगाहनसे संपूर्ण तीर्थ पवित्रतालाभ करते हैं जिन भक्तोंकी चरणरेणु और

अश्वत्थनाशकश्चैवमद्भक्तनिंदकस्तथा ॥ शूद्रान्नभोजीविप्रश्चपूतोमद्भक्तदर्शनात् ॥ ३५ ॥ देवद्रव्यापहारीचविप्रद्रव्यापहारकः ॥ लाक्षालोहरसानांच विक्रेतादुहितुस्तथा ॥ ३६ ॥ महापातकिनश्चैवशूद्राणांशवदाहकः ॥ भवेयुरेतेपूताश्चमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३७ ॥ श्रीमहालक्ष्मीरुवाच ॥ भक्तानां लक्षणंब्रूहिभक्तानुग्रहकातर ॥ येषांतुदर्शनस्पर्शात्सद्यःपूतानराधमाः ॥ ३८ ॥ हरिभक्तिविहीनाश्चमहाहंकारसंयुताः ॥ स्वप्रशंसारताधूर्ताःशठाश्च साधुनिंदकाः ॥ ३९ ॥ पुनंतिसर्वतीर्थानियेषांस्नानावगाहनात् ॥ येषांचपादरजसापूतापादोदकान्मही ॥ ४० ॥ येषांसंदर्शनंस्पर्शंयेवावांछंतिभारते ॥ सर्वेषांपरमोलाभोवैष्णवानांसमागमः ॥ ४१ ॥ नह्यम्मयानितीर्थानिनदेवामृच्छिलामयाः ॥ तेपुनंत्यपिकालेनविष्णुभक्ताःक्षणादहो ॥ ४२ ॥ सूतउवाच ॥ महालक्ष्मीवचःश्रुत्वालक्ष्मीकांतश्चसस्मितः ॥ निगूढतत्त्वंकथितुमपिश्रेष्ठोपचक्रमे ॥ ४३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तानांलक्षणंलक्ष्मिगूढंश्रुतिपुराणयोः ॥ पुण्यस्वरूपंपापघ्नंसुखदंभुक्तिमुक्तिदम् ॥ ४४ ॥ सारभूतंगोपनीयंनवक्तव्यंखलेषुच ॥ त्वांपवित्रांप्राणतुल्यांकथयामिनिशामय ॥ ४५ ॥

पादोदकस्पर्शसे वसुंधरा पवित्र होती है ॥ ४० ॥ भारतीयमनुष्य सदा जिन भक्तोंके दर्शन और स्पर्शकी प्रार्थना करते हैं और जिन भक्तोंके समागमसे भारी लाभ दूसरा नहीं है ॥ ४१ ॥ विशेषतः जलमय संपूर्ण तीर्थ एवं मृण्मय और शिलामय देवताओंसे बहुत कालमें पाप दूर होता है, किन्तु अब पूँछती हूं कि, आपके जिन भक्तोंसे शीघ्र महापातक नष्ट होते हैं, आपके उन्हीं निर्दिष्टभक्तोंके लक्षण किसप्रकार हैं? ॥ ४२ ॥ सूतजीने कहा हे महर्षे! लक्ष्मीकान्तने महालक्ष्मीके वचन सुन कुछेक हँसकर निगूढतत्व अर्थात् भक्तोंके लक्षण निर्देश करनेका उपक्रम करके कहा ॥ ४३ ॥ श्रीभगवान् बोले हे लक्ष्मी! भक्तोंके लक्षण श्रुति और पुराणमें अत्यन्त गूढभावसे कथित हुए हैं यह अत्यन्त पवित्र पापघ्न (पापनाशक) सुखद और भुक्तिमुक्तिदायक हैं ॥ ४४ ॥ यह सारभूत गोपनीय वृत्तान्त

खलके निकट प्रकाशित न करै किन्तु तुम अत्यन्त सरलस्वभाव और मेरे प्राणोंकी समान हो. इसकारण तुमसे कहताहूं सुनो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दरि! गुरुदेवके मुखसे जिसके कानमें विष्णु, शिव, गणेश और सूर्यादिमंत्र पडताहै, संपूर्ण वेदही उसको पवित्र और नरोत्तम कहतेहैं ॥ ४६ ॥ ऐसे पुरुषके जन्म लेतेही उसके पूर्व शत (१००) पुरुष स्वर्गमें हों वा नरकमें हों, तत्काल मुक्तिलाभ करते हैं ॥४७॥ और उनमें यदि कोई किसी स्थानमें वा किसी जीवयोनिमें जन्म ग्रहण करता है तो वह जीवन्मुक्त होकर अन्तमें विष्णुपद लाभ करता है ॥ ४८ ॥ जो पुरुष मेरे भक्तिरसमें आर्द्र होताहै, जो पुरुष निरन्तर मेरे गुणकीर्तन और तदनुरूप व्यवहार करताहै, जो पुरुष सदा मेरी कथामें चित्त लगाये रहताहै ॥ ४९ ॥ और मेरे गुणानुवाद सुनकर जिसका मन आनन्दमें नृत्य करता रहताहै, सर्वाङ्ग पुलकित होताहै, कंठस्वर रुद्ध होजाताहै, अनवरत नेत्रोंसे आसुओंकी धारा गिरती रहती है, बाह्यज्ञान तिरोहित होताहै, वही पुरुष मेरा भक्त है ॥ ५० ॥ मेरे भक्त क्या सुख,

गुरुवक्त्राद्विष्णुमंत्रोयस्यकर्णेपतिष्यति ॥ वदंतिवेदास्तंचाऽपिपवित्रंचनरोत्तमम् ॥ ४६ ॥ पुरुषाणांशतंपूर्वंतथातज्जन्ममात्रतः ॥ स्वर्गस्थंनरकस्थंवामुक्तिमाप्नोतितत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ यैःकैश्चिद्यत्रवाजन्मलब्धंयेषुचजंतुषु ॥ जीवन्मुक्तास्तुतेपूतायांतिकालेहरेःपदम् ॥ ४८ ॥ मद्भक्तियुक्तोमर्त्यश्चसमुक्तोमद्गुणान्वितः ॥ मद्गुणाधीनवृत्तिर्यःकथाविष्टश्चसंततम् ॥ ४९ ॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेणसानंदःपुलकान्वितः ॥ सगद्गदःसाश्रुनेत्रःस्वात्मविस्मृतएवच ॥५०॥ नवांछतिसुखंमुक्तिंसालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ ब्रह्मत्वममरत्वंवातद्वांछाममसेवने ॥ ५१ ॥ इंद्रत्वंचमनुत्वंचब्रह्मत्वंचसुदुर्लभम् ॥ स्वर्गराज्यादिभोगंचस्वप्नेऽपिचनवांछति ॥ ५२ ॥ भ्रमंतिभारतेभक्तास्तादृग्जन्मसुदुर्लभम् ॥ मद्गुणश्रवणाःश्राव्यागानैर्नित्यंमुदान्विताः ॥ ५३ ॥ तेयांतिचमहींपूत्वानरास्तीर्थममाऽऽलयम् ॥ इत्येवंकथितंसर्वंपद्मेकुरुयथोचितम् ॥ ५४ ॥ तदाज्ञयातास्तच्चक्रुर्हरिस्तस्थौसुखासने ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ सरस्वतीपुण्यक्षेत्रमाजगामचभारते ॥ गंगाशापेनकलयास्वयंतस्थौहरेःपदे ॥ १ ॥

क्या मुक्ति, क्या सायुज्य, क्या सारूप्य, क्या सालोक्य, क्या ब्रह्मत्व, क्या अमरत्व किसीकी इच्छा नहीं करते, वह केवल मेरी सेवा करनेमें अत्यन्त तत्पर होते हैं॥ ॥ ५१ ॥ वास्तविक वह कभी स्वप्नमेंभी दुर्लभ इन्द्रत्व, मनुत्व, ब्रह्मत्व और स्वर्गराज्यभोग करनेकी वासना नहीं करते ॥ ५२ ॥ मेरे भक्त केवल मेरेही गुण सुननेमें लग्न और मेरेही मधुरगुणगानमें नित्य आनंदित होकर भारतमें भ्रमण करते हैं. फलतः भारतमें ऐसे भक्तजन्म अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५३ ॥ वह पृथ्वीको पवित्र करके अंतमें मेरे आलयरूप श्रेष्ठतम तीर्थमें गमन करतेहैं. हे पद्मे! यह मैंने तुमसे अभिलाषित समस्त विषय वर्णन किया अब जो रुचि हो, सो करो ॥५४॥ अनन्तर गंगादि सभी श्रीहरिकी आज्ञा पालन करनेको गई, इस ओर वह स्वयं हरि अपने धाममें अवस्थान करनेलगे॥ ५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥ नारायणने कहा हे देवर्षे! अनन्तर सरस्वती गंगाके शापवश अंशसे पुण्यक्षेत्रभारतमें आई और पूर्णांशसे विष्णुभवन वैकुण्ठधाममें स्थिति करने लगी॥ १॥

भारतमें गमन करनेके कारण उनका नाम भारती और ब्रह्माकी प्रिया होनेके कारण उनका दूसरा नाम ब्राह्मी हुआहै और वाणी अर्थात् वाक्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं, इस कारण उनका वाणी नाम हुआहै ॥ २ ॥ हरि सर्वव्यापी हैं, अतएव वह क्या सर अर्थात् सरोवर, क्या वापी, क्या स्रोत, सर्वत्रही विद्यमान रहते हैं। सरसमें विद्यमान होनेके कारण वह सरस्वान्‌हैं। वाणी उन सरस्वान्‌की शक्तिहै, इसलिये सरस्वती नामसे कही गई हैं ॥ ३ ॥ नदीरूपा सरस्वती अतिपावन तीर्थस्वरूप है। मणियोंके पापरूपीकाष्ठ जलानेमें वह प्रज्वलित अग्निस्वरूप हैं ॥ ४ ॥ हे वत्स नारद! सरस्वतीके शापसे देवी गंगाने अंशसे सलिलरूप धारण किया। फिर भगीरथ उनको भूलोकमें लाये हैं, इसीकारण उनका नाम भागीरथी हुआहै॥५॥ भगीरथकी प्रार्थनासे जब गंगाकी एक धारा ऊपरसे पृथ्वीपर गिरी, तब वसुंधराके धारापातका वेग धारण करनेमें असमर्थ होनेपर एकमात्र धारणपटु श्रीमहादेवजीके निकट प्रार्थना करनेपर उन्होंने उस समय उनको मस्तकमें धारण कियाथा ॥६॥ भारतीके शापसे

भारतीभारतंगत्वाब्राह्मीचब्रह्मणःप्रिया ॥ वाण्यधिष्ठातृदेवीसातेनवाणीप्रकीर्तिता ॥ २ ॥ सरोवाप्यांचस्रोतस्सुसर्वत्रैवहिदृश्यते ॥ हरिःसरस्वांस्तस्येयं तेननाम्नासरस्वती ॥ ३ ॥ सरस्वतीनदीसाचतीर्थरूपाऽतिपावनी ॥ पापिनांपापदाहायज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४ ॥ पश्चाद्भागीरथीनीतामहींभगीरथेनच ॥ सावैजगामकलयावाणीशापेननारद ॥ ५ ॥ तत्रैवसमयेतांचदधारशिरसाशिवः ॥ वेगंसोढुमयंशक्तोभुवःप्रार्थनयाविभुः ॥ ६ ॥ पद्माजगाम कलयासाचपद्मावतीनदी ॥ भारतंभारतीशापात्स्वयंतस्थौहरेःपदे ॥ ७ ॥ ततोऽन्ययासाकलयालेभेजन्मचभारते ॥ धर्मध्वजसुतालक्ष्मीर्विख्यातातुलसीतिच ॥८॥ पुरासरस्वतीशापात्पश्चाच्चहरिशापतः॥बभूववृक्षरूपासाकलयाविश्वपावनी ॥९॥ कलेःपंचसहस्रंचवर्षंस्थित्वाचभारते ॥ जग्मुस्ताश्चसरिद्रूपंविहायश्रीहरेःपदम् ॥ १० ॥ यानिसर्वाणितीर्थानिकाशींवृंदावनंविना ॥ यास्यंतिसार्धंताभिश्चवैकुंठमाज्ञयाहरेः ॥ ११ ॥ शालग्रामःशक्तिशिवौ जगन्नाथश्चभारतम्॥कलेर्दशसहस्रांतेत्यक्त्वायांतिनिजंपदम्॥१२॥साधवश्चपुराणानिशंखानिश्राद्धतर्पणे॥वेदोक्तानिचकर्माणिययुस्तैःसार्धमेवच॥१३॥

पद्माकोभी अंशसे पद्मावती नदी होकर भारतमें अवतीर्ण होना पड़ाहै किन्तु पूर्णभावसे वैकुण्ठमें नारायणकी अंकलक्ष्मी होकर वास करती हैं ॥ ७ ॥ इनका अपर अंश प्रथम भारतमें राजा धर्मध्वजके तुलसी नामसे विख्यात कन्यारूपमें अवतीर्ण हुआ ॥ ८ ॥ अन्तमें भारतीके शापसे और श्रीहरिकी आज्ञासे विश्वपावनी तुलसी वृक्षरूपमें परिणत हुई हैं ॥ ९ ॥ कलिके पाँच हजार वर्ष बीतनेपरही यह सब सरित्‌रूप त्यागकर भारतसे फिर वैकुण्ठधाममें हरिसदनमें गमन करेंगी ॥ १० ॥ श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार काशी और वृंदावनके अतिरिक्त और संपूर्ण तीर्थ सरिद्गणोंके संग संग वैकुण्ठमें जाँयगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त कलिके दश हजार वर्ष बीतनेपर शालिग्राम शिला शिव और शिवशक्ति एवं पुरुषोत्तम जगन्नाथ इस भारतभूमिको छोड़कर अपने अपने स्थानको जाँयगे अर्थात् भारतसे शालग्राम माहात्म्य पीठस्थानमाहात्म्य और पुरुषोत्तममाहात्म्य एकवारही अन्तर्धान होजायगा॥ १२ ॥ शैव शाक्त गाणपत्य और वैष्णवादि धर्मपरायण साधुगण अठारह पुराण. मांगल्य शंखध्वनि श्राद्धतर्पण

और वेदोक्त क्रियाकलापादि कुछभी नहीं रहेगी॥ १३॥ देवपूजा, देवप्रशंसा और देवताओंके गुणगानकी बात तो दूर रहे, देवताओंका नाम पर्यन्तभी लुप्त होगा साङ्ग वेद शास्त्रका नाम पर्यन्त फिर सुनाई नहीं देगा॥ १४॥ साधुसमाज,सत्यधर्म, चारोंवेद, ग्राम्यदेव, देवी, व्रत, तपस्या और उपवास एकवारही लयको प्राप्त होंगे॥ १५ ॥ सभी मद्यमांसादिकी सेवामें अनुरक्त होंगे, मिथ्या और कपटता सबको आश्रय करेगी, यदि कोई पूजाभी करेगा तो वह अर्चना तुलसीविहीन होगी ॥ १६ ॥ प्रायः समस्तलोक शठ, क्रूर, दाम्भिक, अहंकारी, तस्कर और हिंसक होजाँयगे ॥ १७ ॥ पुरुष पुरुष और स्त्री स्त्रीमें परस्पर प्रणय नहीं रहेगी। केवल स्त्री पुरुष मात्र भेद रहेगा। जातिभेद एकवारही अन्तर्धान होगा। सुतरां विवाहके संबधमें भयका लेशमात्रभी न रहेगा। प्रतिपदार्थमेंही स्वस्वामिसत्व बद्धमूल होगा अर्थात् पिता पुत्रके और पुत्र पिताके द्रव्यको स्पर्श नहीं करसकेगा॥ १८॥ पुरुषमात्रही प्रायः स्त्रीके वशीभूत होंगे और प्रत्येकघरमेंही प्रायः संपूर्ण स्त्रियें पुंश्चली धर्म अवलम्बन करेगी।

देवपूजादेवनामतत्कीर्तिगुणकीर्तनम् ॥ वेदांगानिचशास्त्राणियुस्तैःसाधमेवच ॥ १४ ॥ संतश्चसत्यधर्मश्चवेदाश्चग्रामदेवताः ॥ व्रतंतपश्चाऽनशनंयुस्तैःसाधमेवच ॥ १५ ॥ वामाचाररताःसर्वेमिथ्याकपटसंयुताः ॥ तुलसीरहितापूजाभविष्यतिततःपरम् ॥ १६ ॥ शठाः क्रूरादांभिकाश्चमहाहंकारसंयुताः ॥ चोराश्चहिंसकाःसर्वेभविष्यंतिततःपरम् ॥ १७ ॥ पुंसोभेदःस्त्रीविभेदोविवाहोवाऽपिनिर्भयः ॥ स्वस्वामिभेदोवस्तूनांभविष्यतिततःपरम् ॥ १८ ॥ सर्वेस्त्रीवशगाःपुंसःपुंश्चल्यश्चगृहेगृहे ॥ तर्जनैर्भर्त्सनैःशश्वत्स्वामिनंताडयंतिच ॥ १९ ॥ गृहेश्वरीचगृहिणीगृहीभृत्याधिकोऽधमः ॥ चेटीदाससमौवध्वाःश्वश्रूश्चश्वशुरस्तथा ॥ २० ॥ कर्तारोबलिनोगेहेयोनिसंबंधिबांधवाः ॥ विद्यासंबंधिभिःसार्धसंभाषापिनविद्यते ॥ २१ ॥ यथाऽपरिचितालोकास्तथापुंसश्चबांधवाः ॥ सर्वकर्माक्षमाःपुंसोयोषितामाज्ञयाविना ॥ २२ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशःशूद्राजात्याचारविवर्जिताः॥संध्याचयज्ञसूत्रंचभवेल्लुप्तंनसंशयः॥२३॥म्लेच्छाचाराभविष्यंतिवर्णाश्चत्वारएवच॥म्लेच्छशास्त्रंपठिष्यंतिस्वशास्त्राणिविहायच ॥२४॥

वह निरंतर तर्जन गर्जन करके अपने अपने स्वामीको ताड़ना करती रहेंगी ॥ १९ ॥ गृहिणी गृहकर्त्री होंगी और गृहस्वामी अधम मृत्युकी समान उनके निकट हाथजोड़े रहेंगे सास और श्वशुर उनके निकट दास दासीकी समान व्यवहृत होंगे ॥ २० ॥ स्त्रीके सहोदर इत्यादि बांधवलोगही गृहके कर्ता होंगे किन्तु सहाध्यायीगणोंके सहित आलाप मात्र नहीं रहेगा ॥ २१ ॥ गृहस्वामिके भ्रातादि बांधवगण एकवारही अनजान परदेशीके समान अपरिचित होजाँयगे गृहणीकी अनुमतिके विना गृहकर्ताका किसी विषयमें कर्तृत्व करनेकी सामर्थ्य नहीं रहेगी ॥ २२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि जाति भेद एकवारही तिरोहित होगा. संध्यावंदनादि कर्तव्य कार्यका अनुष्ठान करना तो दूररहे ब्राह्मणगण एकवारही यज्ञोपवीतरहित होंगे ॥ २३ ॥ ब्राह्मणादि चारों वर्णही अपना अपना शास्त्र और आचार परित्याग करके म्लेच्छशास्त्र अध्य

यन और म्लेच्छ आचारमें अत्यन्त आसक्त होंगे॥ २४ ॥ कलियुगमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यगण शूद्रके दास होंगे सबही शूद्रके पाचक(रसोईदार)धावक(कपडेधोनेवाले)वा दूत और वृषवाहक अर्थात् बैलके लादनेवाले होंगे ॥ २५॥ मनुष्यमात्रही सत्यहीन पृथ्वी सस्यरहित, वृक्ष फलशून्य और स्त्रियें पुत्रहीन होंगी ॥ २६॥ गायोंके स्तनमें प्रायः दुग्ध नहीं रहेगा और यदि कुछेक दुग्ध निकलाभी, तो घृत उत्पन्न नहीं होगा । स्त्री पुरुष आपसमें प्रेमहीन और गृहस्थगण मिथ्यावादी होंगे ॥ २७ ॥ राजाका पराक्रम कुछ नहीं रहेगा, प्रजागण करभारसे अत्यन्त पीड़ित होजाँयगे । क्या विस्तीर्ण जलवाली नदियें क्या अल्पजला नदी, क्या कन्दरादि समस्तही क्रमानुसार क्षीणजलवाली होंगी ॥ २८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी धर्मप्रवृत्ति तिरोहित और पुण्यलोप होगा प्रथम तो लक्ष पुरुषोंमें एकजन पुण्यवान् होगा, किन्तु फिर वह भी न रहेगा ॥ २९ ॥ क्या नर, क्या नारी, क्या बालक, सभी कुत्सित और विकृताकृति होंगे । कुत्सित बात और कुत्सित शब्दके अतिरिक्त किसीके

ब्रह्मक्षत्रविशांवंशाःशूद्राणांसेवकाःकलौ ॥ सूपकाराधावकाश्ववृषवाहाश्वसर्वशः॥२५॥सत्यहीनाजनाःसर्वेसस्यहीनाचमेदिनी॥फलहीनाश्वतरवोऽपत्यहीनाश्वयोषितः॥२६॥क्षीरहीनास्तथागावःक्षीरंसर्पिर्विवर्जितम् ॥ दंपतीप्रीतिहीनौचगृहिणःसत्यवर्जिताः ॥२७ ॥ प्रतापहीनाभूपाश्वप्रजाश्वकरपीडिताः ॥ जलहीनामहानद्योदीर्घिकाकंदरादयः ॥२८॥ धर्महीनाःपुण्यहीनावर्णाश्चत्वारएवच॥लक्षेपुपुण्यवान्कोऽपिनतिष्ठतिततःपरम्॥२९॥ कुत्सिताविकृताकारानरानार्यश्चवालकाः॥कुवार्ताकुत्सितःशब्दोभविष्यतिततःपरम्॥३०॥केचिद्ग्रामाश्वनगरानरशून्याभयानकाः॥ केचित्स्वल्पकुटीरेणनरेणचसमन्विताः ॥३१॥ अरण्यानिभविष्यंतिग्रामेपुनगरेपुच ॥ अरण्यवासिनःसर्वेजनाश्वकरपीडिताः ॥३२॥ सस्यानिचभविष्यंतितडागेषुनदीषुच ॥ प्रकृष्टवंशजाहीनाभविष्यंतिकलौयुगे ॥ ३३ ॥ अलीकवादिनोधूर्ताःशठाश्चाऽसत्यवादिनः ॥ प्रकृष्टानिचक्षेत्राणिसस्यहीनानिनारद ॥ ३४ ॥ हीनाःप्रकृष्टाधनिनोदेवभक्ताश्वनास्तिकाः॥हिंसकाश्वदयाहीनाःपौराश्वनरघातिनः॥३५॥वामनाव्याधियुक्ताश्वनरानार्यश्वसर्वतः॥स्वल्पायुषोगदायुक्तायौवनैरहिताःकलौ ॥३६॥

मुखसे दूसरी बात उच्चरित नहीं होगी ॥ ३० ॥ कोई कोई ग्राम और कोई कोई नगर एकबारही मनुष्यरहित होकर भीषणमूर्त्ति धारण करेंगे और किसी किसी स्थान वा अतिसामान्य कुटीरमें और सामान्यलोकोंमें स्थिति रहेगी ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण ग्राम और नगर अरण्यमें परिणत और अरण्यलोकोंके निवाससे पूर्ण होकर वनवासी मनुष्य करभारसे पीडित हो जायँगे ॥ ३२ ॥ अनावृष्टिके कारण जलका अभाव होनेसे तालाब और नदियोंमें खेती होनेलगेगी. सद्वंशोत्पन्न कुलीन नितान्त नीच होजायँगे ॥ ३३ ॥ पृथ्वी अलीकवादी असत्यपरायण धूर्त और शठोंसे परिपूर्ण होंगी भूमि भलीभाँति जोतनेपर भी सस्यका नाममात्र नहीं रहेगा ॥ ३४ ॥ जो अतुल ऐश्वर्यके अधिपति कहकर विख्यात हैं वही निर्धन और जो देवभक्त हैं वही नास्तिक होंगे पुरवासियोंके शरीरमें दयाका लेशमात्र नहीं रहेगा बरन वह प्रतिवेशीके विद्वेष्टा और नरघातक हो जाँयगे ॥ ३५ ॥ पृथ्वीके सब स्थानोंमें नर और नारीमात्र लघुकाय, व्याधिग्रस्त, क्षीणायु, रोगी और हीनयौवन होंगे ॥ ३६ ॥

वर्षमें पदार्पण न करते करते ही केश सफेद वर्ण हो जाँयगे बीसवाँ वर्ष उपस्थित होनेपर समस्त पुरुष महावृद्ध होंगे अष्टवर्षीय रमणी युवती रजस्वला और गर्भवती होंगी ॥ ३७ ॥ प्रसव करनेमें वर्ष नहीं जायगा इसके उपरान्त सोलहवाँ वर्ष उपस्थित होतेही बुढापा आजयगा, कदाचितही कोई २ स्त्री पति पुत्रवती होगी; नहीं तो प्रायः सभी बांझ होगी ॥ ३८ ॥ चारों वर्णही कन्या बेचेगी. माता भार्या पुत्रवधू कन्या और भगिनीके उपपतिही जीवनके अवलम्बन होंगे ॥ ३९ ॥ विना अर्थके कोई हरि नाम जपजनित पुण्यसंचयमें अधिकारी नहीं होगा ॥ ४० ॥ यश प्राप्तहोनेकी इच्छासे दान करके फिर अन्तमें उस अपनी दी हुई वस्तुको ग्रहण करेंगे ॥ ४१ ॥ देवता ब्राह्मण वा गुरुकुलके निमित्त अपनी दी हुई हो, वा अपने पूर्व पुरुषोंकी दी हुई यदि कोई वृत्ति निर्दिष्ट हो, तो फिर आत्मसात् (अपने आधीन)

पलिताः षोडशेवर्षेमहावृद्धाश्चविंशतौ ॥ अष्टवर्षाचयुवतीरजोयुक्ताचगर्भिणी ॥ ३७ ॥ वत्सरांतप्रसूतास्त्रीषोडशेचजरान्विता ॥ पतिपुत्रवतीकाचित्स र्वावंध्याःकलौयुगे ॥ ३८ ॥ कन्याविक्रयिणःसर्वेवर्णाश्चत्वारएवच ॥ मातृजायावधूनांचजारोपात्तान्नभक्षकाः ॥३९ ॥ कन्यानांभगिनीनांवाजारोपात्ता न्नजीविनः ॥ हरेर्नाम्नांविक्रयिणोभविष्यंतिकलौयुगे ॥ ४० ॥ स्वयमुत्सृज्यदानंचकीर्तिवर्धनहेतवे ॥ ततःपश्चात्स्वदानंचस्वयमुल्लंघयिष्यति ॥ ४१ ॥ देववृत्तिंब्रह्मवृत्तिंवृत्तिंगुरुकुलस्यच ॥ स्वदत्तांपरदत्तांवासर्वमुल्लंघयिष्यति ॥ ४२॥ कन्यकागामिनः केचित्केचिच्चश्वश्रुगामिनः ॥ केचिद्वधूगामिनश्चके चिद्वैसर्वगामिनः ॥ ४३ ॥ भगिनीगामिनःकेचित्सपत्नीमातृगामिनः ॥ भ्रातृजायागाभिनश्चभविष्यंतिकलौयुगे ॥ ४४॥ अगम्यागमनंचैवकरिष्यंति गृहेगृहे ॥ मातृयोनिंपरित्यज्यविहरिष्यंतिसर्वतः ॥ ४५ ॥ पत्नीनांनिर्णयोनास्तिभर्तृणांचकलौयुगे ॥ प्रजानांचैवग्रामाणांवस्तूनांचविशेषतः ॥ ४६ ॥ अलीकवादिनःसर्वेसर्वेचौराश्चलंपटाः ॥ परस्परंहिंसकाश्चसर्वेचनरघातिनः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशांवंशांभविष्यंतिचपापिनः ॥ लाक्षालोहरसानांच व्यापारंलवणस्यच ॥ ४८ ॥

करनेमें त्रुटि नहीं होगी ॥ ४२ ॥ कोई कोई कन्या कोई कोई सास कोई कोई पुत्रवधू कोई सब कोई कोई ॥ ४३ ॥ भगिनी, कोई सपत्नी जननी और कोई कोई भ्रातृजाया गमन करेगा किसीको कोई गमन अवशिष्ट नहीं रहेगा ॥ ४४ ॥ केवल मातृयोनिके अतिरिक्त प्रत्येक घरमेंही अगम्यागमन प्रचलित होजायगा ॥ ॥ ४५ ॥ कलियुगमें कौन किसकी पत्नी और कौन किसका भर्ता कुछ निर्णय न रहेगा कौन किसीकी प्रजा और कौन किसका ग्राम है विशेषतः कौन वस्तु किसकी है कुछ निर्दिष्ट नहीं रहेगा ॥ ४६ ॥ सभी मिथ्यावादी, लम्पट, तस्कर, परस्त्रीकातर और नरघातक होंगे ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन श्रेष्ठतम तीनों

वर्णके घरमें पापस्रोत बहता रहेगा शास्त्रनिषिद्ध लाक्षा (लाख) लोहा और लवण वेचना इनका जीवनोपाय होगा ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणगण वृषचालन, शूद्रका शवदाहन, शूद्रान्नभोजन और वृषलीगमन करेंगे ॥ ४९ ॥ ऋषियज्ञादि पंचयज्ञमें फिर आस्था नहीं रहेगी. प्रायः ब्राह्मणमात्रही अमावास्या (की रातको भोजन करेंगे) भोजन न करनेकी आज्ञा पालनमें विमुख होंगे. यज्ञसूत्र दूर फेंककर ब्राह्मणोचित संध्यावन्दनादि और शौचाचार एकवारही त्याग करेंगे ॥ ५० ॥ ऋणदानजीविनी पुंश्चली और रजस्वला कुटनियें ब्राह्मणोंकी रन्धनशाला (रसोईंघर) में पाचिका अर्थात् भोजन बनानेवाली होगी ॥ ५१ ॥ अन्नविचार योनिविचार आश्रमविचार और लोकविचार कुछभी नहीं रहेगा, सवही म्लेच्छाचार होंगे ॥ ५२ ॥ हे वत्स ! नारद ! इस प्रकार घोर कलिके प्रवृत्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् म्लेच्छोंसे भरजायगा

वृषवाहाविप्रवंशाःशूद्राणांशवदाहिनः ॥ शूद्रान्नभोजिनःसर्वेसर्वेचवृषलीरताः ॥ ४९ ॥ पंचयज्ञविहीनाश्चकुहूरात्रौचभोजिनः ॥ यज्ञसूत्रविहीनाश्चसंध्याशौचविहीनकाः ॥ ५० ॥ पुंश्चलीवार्धुषाजीवाकुट्टनीचरजस्वला ॥ विप्राणांरंधनागारेभविष्यतिचपाचिका ॥ ५१ ॥ अन्नानांनियमोनास्तियोनीनांचविशेषतः ॥ आश्रमाणांजनानांचसर्वेम्लेच्छाःकलौयुगे ॥ ५२ ॥ एवंकलौसंप्रवृत्तेसर्वंम्लेच्छमयंभवेत् ॥ हस्तप्रमाणेवृक्षेचअंगुष्ठेचैवमानवे ॥ ५३ ॥ विप्रस्यविष्णुयशसःपुत्रःकल्किर्भविष्यति ॥ नारायणकलांशश्चभगवान्बलिनांवरः ॥ ५४ ॥ दीर्घेणकरवालेनदीर्घघोटकवाहनः ॥ म्लेच्छशून्यांचपृथिवींत्रिरात्रेणकरिष्यति ॥ ५५ ॥ निर्म्लेच्छांवसुधांकृत्वाचांतर्धानंकरिष्यति ॥ अराजकाचवसुधादस्युग्रस्ताभविष्यति ॥ ५६ ॥ स्थूलाऽप्रमाणाषड्रात्रंवर्षधाराप्लुतामही ॥ लोकशून्यावृक्षशून्यागृहशून्याभविष्यति ॥ ५७ ॥ ततश्चद्वादशादित्याःकरिष्यंत्युदयंमुने ॥ प्राप्नोतिशुष्कतांपृथ्वीसमातेषांचतेजसा ॥ ५८ ॥

सम्पूर्ण वृक्ष हस्तप्रमाण और मनुष्य सब अंगुष्ठप्रमाण होंगे ॥ ५३ ॥ इसी अवसरमें बलियोंमें श्रेष्ठ भगवान् नारायण अपने अंशसे विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घर उसके पुत्ररूपमें अवतीर्ण होंगे ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त वह हाथमें खड्ग धारणकर सुदीर्घ एक घोड़ेपर चढ़, तीन रात्रिमें पृथ्वी म्लेच्छहीन कर अंतर्धान होंगे ॥ ५५ ॥ तब पृथ्वी उनके अन्तर्धान होनेपर अराजक और दस्युग्रस्त होजायगी ॥ ५६ ॥ इसी समय अनवरत छःदिन धारापातसे यह विस्तीर्ण स्थूलकाय पृथ्वी डूबजायगी. मनुष्य, वृक्ष और गृहादिका चिह्नमात्रभी नहीं रहेगा ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त एक वारही बारह सूर्यके उदय होकर करप्रसारण करनेसे ही सम्पूर्ण जल सूखकर

भूमण्डल समान होजायगा ॥ ५८ ॥ हे वत्स नारद ! इस प्रकार घोरतर कलिके बीतजानेपर और सत्ययुगके प्रवृत्त होनेपर फिर तपस्यादि सत्वगुणनिष्ठ सत्य धर्मका पूर्ण प्रचार होगा ॥ ५९ ॥ फिर ब्राह्मणगण तपस्याधर्मनिष्ठ और वेदपरायण होजाँयगे फिर घर घर स्त्रियें पतिपरायण और धर्मनिष्ठ होजाँयगी ॥ ६० ॥ फिर ब्राह्मणभक्त मनस्वीक्षत्रियगण सिंहासन अधिकार करेंगे पुनः उनका प्रताप, धर्मनिष्ठा और सत्कर्मानुराग बढ़ेगा ॥ ६१ ॥ फिर वैश्योंकी वही वाणिज्यप्रवृत्ति वही ब्राह्मणभक्ति और वही धर्मानुरक्ति प्रत्यागमन करेगी शूद्रगण फिर पुण्यशील, धार्मिक और ब्राह्मणोंके सेवक होंगे ॥ ६२ ॥ पुनर्वार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी देवीध्यान देवीज्ञान और देवीमंत्रपरायण होंगे ॥ ६३ ॥ फिर उन्हीं वेद उन्हीं स्मृति और उन्हीं पुराणोंका ज्ञान फैल जायगा सबही ऋतुकालमें भार्या

कलौगतेचदुर्धर्षेप्रवृत्तेचकृतेयुगे ॥ तपःसत्त्वसमायुक्तोधर्मःपूर्णोभविष्यति ॥ ५९ ॥ तपस्विनश्चधर्मिष्ठावेदज्ञाब्राह्मणाभुवि ॥ पतिव्रताश्चध र्मिष्ठायोषितश्चगृहेगृहे ॥ ६० ॥ राजानःक्षत्रियाःसर्वेविप्रभक्तामनस्विनः ॥ प्रतापवंतोधर्मिष्ठाःपुण्यकर्मरताःसदा ॥ ६१ ॥ वैश्यावाणिज्य निरताविप्रभक्ताश्चधार्मिकाः ॥ शूद्राश्चपुण्यशीलाश्चधर्मिष्ठाविप्रसेविनः ॥ ६२ ॥ विप्रक्षत्रविशांवंशादेवीभक्तिपरायणाः ॥ देवीमंत्ररताःसर्वेदेवीध्यान परायणाः ॥६३॥ श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञाःपुमांसऋतुगामिनः॥लेशोनास्तिह्यधर्मस्यपूर्णोधर्मःकृतेयुगे ॥६४॥ धर्मस्त्रिपाच्चत्रेतायांद्विपाच्चद्वापरेततः॥कलौवृ त्तैकपाच्चसर्वलुप्तिस्ततः परम् ॥६५॥ वाराःसप्ततथाविप्रतिथयःषोडशस्मृताः ॥ तथाद्वादशमासाश्चऋतवश्चषडेवच ॥ ६६ ॥ द्वौपक्षौचायनेद्वेचचतु र्भिःप्रहरैर्दिनम् ॥ चतुर्भिःप्रहरैरात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा ॥६७॥ वर्षपंचविधंज्ञेयंकालसंख्याविधिक्रमे ॥ यथाचाऽऽयांतियांत्येवयथायुगचतुष्टयम् ॥६८॥

गमन करेंगे अधर्मका लेशमात्रभी नहीं रहेगा पुनर्वार सत्ययुगमें धर्म पूर्ण कलामें प्रवृत्त होगा ॥ ६४ ॥ इसके पीछे जब त्रेता उपस्थित होगा तब धर्म त्रिपाद्, जब द्वापर तब द्विपाद् जब कलिकी प्रवृत्ति तब एक पाद किन्तु कलिके पूर्णकलामें प्रवृत्त होनेसे फिर धर्मका नाममात्रभी नहीं रहेगा ॥ ६५ ॥ हे वत्स नारद ! अब समयका स्वरूप कहता हूं सुनो रवि इत्यादि सातवार प्रतिपदादि षोडशतिथि वैशाखादि बारह मास ग्रीष्मादि छै ऋतु॥ ६६॥ शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष एवं दक्षिण और उत्तर दो अयन कल्पित हुये हैं चार प्रहरमें दिन चार प्रहरमें रात्रि सुतरां रात्रि और दिन लेकर एकदिन होता है इस प्रकार तीस दिनमें एक मास परिगणित होता है ॥ ६७ ॥ काल–संख्या–गणनामें पांच प्रकार वर्ष पहिलेही (अष्टमस्कंधमें) निर्देश किया है जिस प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, यह चार युगपर्याय क्रमसे

आकर फिर बीत जाते हैं वार और मासादि समात्मक वर्ष भी उसी प्रकार क्रमसे एकवार आकर और फिर बीत जाते हैं ॥ ६८ ॥ मनुष्योंका वर्ष पूर्ण होनेपर ही देवमानका एक दिन होता है गणनावित् पण्डित कहते हैं कि, इसप्रकार मनुष्योंके वर्ष परिमाण तीन सौ साठ मानवीय युग बीतने पर ॥ ६९ ॥ देवमानका एक युग होता है इसी प्रकार (इकहत्तर) देवयुग बीतनेपर एक मन्वन्तर होता है ॥ ७० ॥ हेवत्स ! इस प्रकार चौदह मन्वन्तर शचीपति इन्द्रकी आयुका परिमाण अर्थात् चौदह मन्वन्तरके बीतनेपरही एक एक इन्द्रका पतन होता है इस प्रकार अट्ठाईस (२८) इन्द्रका पतन होनेपर हिरण्यगर्भ ब्रह्माका एक दिन होताहै ॥ ७१ ॥ इस प्रकार परिमाणसे एक सौ आठ (१०८) वर्ष पूर्ण होनेपरही ब्रह्माका पतन होता है यह ब्रह्माका पतनही प्राकृत प्रलय है अर्थात् फिर उस समय यह पृथ्वी दिखाई

वर्षेपूर्णेनराणांचदेवानांचदिवानिशम् ॥ शतत्रयेषष्टचधिकेनराणांचयुगेगते ॥ ६९ ॥ देवानांचयुगंज्ञेयंकालसंख्याविदांमतम् ॥ मन्वंतरं तुदिव्यानांयुगानामेकसततिः ॥ ७० ॥ मन्वंतरसमंज्ञेयमायुष्यंचशचीपतेः ॥ अष्टाविंशतिमेचेंद्रेगतेब्रह्मदिवानिशम् ॥ ७१ ॥ अष्टोत्तरशतेवर्षेगतेपातश्चब्रह्मणः ॥ प्रलयःप्राकृतोज्ञेयस्तत्राऽदृष्टावसुंधरा॥७२॥जलप्लुतानिविश्वानिब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ऋषयोज्ञानिनःसर्वेलीनाःसत्येचिदात्मनि ॥७३॥ तत्रैवप्रकृतिर्लीनातत्रप्राकृतिकोलयः ॥ लयेप्राकृतिकेजातेपातेचब्रह्मणोमुने ॥ ७४॥ निमेषमात्रंकालश्चश्रीदेव्याःप्रोच्यतेमुने ॥ एवंनश्यंतिसर्वाणिब्रह्माण्डान्यखिलानिच ॥ ७५ ॥ निमेषांतरकालेनपुनःसृष्टिक्रमेणच ॥ एवंकतिविधासृष्टिर्लयःकतिविधोऽपिवा ॥ ७६ ॥ कतिकल्पागतायाताःसंख्यां जानातिकःपुमान् ॥ सृष्टीनांचलयानांचब्रह्मांडानांचनारद ॥ ७७ ॥

नहीं देती ॥ ७२ ॥ संपूर्ण ब्रह्माण्ड जलमें डूब जाता है ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि ज्ञानपूर्ण ऋषिगण उन सत्यमय चिन्मय परब्रह्ममें एकवारही लीन होजाते हैं ॥ ॥ ७३ ॥ इसी समय प्रकृत देवीभी परब्रह्ममें विलीन होती हैं ब्रह्माका पतन और प्रकृतिका विलय इसकोही प्राकृत प्रलय कहते हैं ॥ ७४ ॥ हे मुनिवर ! यह प्रलयकाल मायायुक्त परब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृतिका एक निमेष है इस समय जिस स्थानमें जितने ब्रह्माण्ड विद्यमान रहते हैं सब नष्ट होतेहैं ॥ ७५ ॥ और यह निमेष परिमित काल बीतनेपरही फिर क्रमानुसार सृष्टिकार्य वर्धित होता है इस प्रकार कितनीही वार सृष्टि और कितनीही वार प्रलय होती है उसकी सीमा नहीं है ॥ ७६ ॥ अतएव कितने कल्प बीत गये हैं और कितने कल्प आवेंगे और कितने वार कितने ब्रह्माण्डकी सृष्टि और कितने वार कितने ब्रह्माण्डका लय होगया है, इसको कौन कह सकता है? ॥ ७७ ॥

यदि ब्रह्माण्डही असंख्य हो तो कितने ब्रह्माण्डमें कितने विष्णु और कितने महेश्वर हैं इनका भी निर्णय करनेमें कौन समर्थ होगा ? किन्तु एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर इन असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधीश्वर हैं ॥ ७८ ॥ वह सच्चिदानंदरूपी परमेश्वरही सबके परमात्मा हैं क्या ब्रह्मा क्या विष्णु क्या महादेव क्या महाविराट् ॥ ७९ ॥ क्या क्षुद्रविराट् सभी उनके अंश हैं वही मूल प्रकृति है उनसेही अर्धनारीश्वर श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए हैं ॥ ८० ॥ जो द्विधाभूत होकर द्विभुजरूपसे गोलोकमें और चतुर्भुजरूपसे वैकुण्ठमें वास करते हैं ॥ ८१ ॥ ब्रह्मासे तृणपर्यन्त अति सामान्य पदार्थ भी प्रकृतिसे उत्पन्न हैं अतएव प्रकृतिप्रभव संपूर्ण पदार्थही नाशवान हैं ॥ ८२ ॥ इस प्रकार उस सृष्टिके निदानभूत स्वेच्छामय सत्यसनातन त्रिगुणातीत परब्रह्मही प्रकृतिके अतीत पदार्थ हैं ॥ ८३ ॥ उनकी उपाधि नहीं और आकृतिभी नहीं है,

ब्रह्मादीनांचब्रह्मांडेसंख्यांजानातिकःपुमान् ॥ ब्रह्मांडानांचसर्वेषामीश्वरश्चैकएवसः ॥ ७८ ॥ सर्वेषांपरमात्माचसच्चिदानंदरूपधृक् ॥ ब्रह्मादयश्चतस्यांशास्तस्यांशश्चमहाविराट् ॥ ७९ ॥ तस्यांशश्चविराट्क्षुद्रःसैवेयंप्रकृतिःपरा ॥ तस्याःसकाशात्संजातोऽप्यर्धनारीश्वरस्ततः ॥ ८० ॥ सैवकृष्णोद्विधाभूतोद्विभुजश्चचतुर्भुजः ॥ चतुर्भुजश्चवैकुंठेगोलोकेद्विभुजःस्वयम् ॥ ८१ ॥ ब्रह्मादितृणपर्यंतंसर्वंप्राकृतिकंभवेत् ॥ यद्यत्प्राकृतिकंसृष्टंसर्वंनश्वरमेवच ॥ ८२ ॥ एवंविधंसृष्टिहेतुसत्यंनित्यंसनातनम् ॥ स्वेच्छामयंपरंब्रह्मनिर्गुणंप्रकृतेःपरम् ॥ ८३ ॥ निरुपाधिनिराकारंभक्तानुग्रहकातरम् ॥ करोतिब्रह्माब्रह्मांडंयज्ज्ञानात्कमलोद्भवः ॥ ८४ ॥ शिवोमृत्युंजयश्चैवसंहर्तासर्वसत्त्ववित् ॥ यज्ज्ञानाद्यस्यतपसासर्वेशस्तुतपोमहान् ॥ ८५ ॥ महाविभूतियुक्तश्चसर्वज्ञःसर्वदर्शनः ॥ सर्वव्यापीसर्वपाताप्रदातासर्वसंपदाम् ॥ ८६ ॥ विष्णुःसर्वेश्वरःश्रीमान्यद्भक्त्यातस्यसेवया ॥ महामायाचप्रकृतिःसर्वशक्तिमयीश्वरी ॥ ८७ ॥ सैवप्रोक्ताभगवतीसच्चिदानंदरूपिणी ॥ यज्ज्ञानाद्यस्यतपसायद्भक्त्यायस्यसेवया ॥ ८८ ॥

तब जो वह यह सब स्वीकार करते हैं सो केवल भक्तोंपर अनुग्रह प्रकाश मात्र है कमलयोनि ब्रह्मा केवल उनकेही ज्ञानबलसे ब्रह्माण्डकी रचना करनेमें समर्थ होतेहैं ॥ ८४ ॥ योगीश्वर शिवने जो मृत्युञ्जय नाम धारण किया है, सबके संहारकर्त्ता और सर्वतत्त्वविज्ञाता हुए हैं, वह केवल उनकी ही कृपाका बल है ॥ ॥ ८५ ॥ तपश्चरणसे उन परब्रह्मकी उपलब्धि करनेके कारण वह सर्वेश, सर्वज्ञ, महाविभूतियुक्त, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सबके रक्षक हैं और सर्वसम्पद्दाता हुए हैं ॥ ८६ ॥ उनपर ब्रह्मके प्रति भक्ति और उनकी आराधना ही श्रीमान् विष्णु वो सर्वेश्वरत्वलाभका मूलकारण है। महामाया प्रकृतिदेवीभी उनके ही बलसे सर्वेश्वरी और सर्वशक्तिमयी हुई है॥ ८७ ॥ भगवती दुर्गाने उनके ही प्रति भक्ति, उनकी आराधना और उनकीही सेवा करके अनुग्रहलाभ किया है और उस अनुग्रहके बलसेही

सच्चिदानंदरूपिणी मूलप्रकृति हुई है ॥ ८८ ॥ वेदमाता देवी सावित्री भी उनके प्रति भक्ति और उनकीही सेवाके बलसे चार वेदकी अधिष्ठात्री देवी, वेदज्ञा और ब्राह्मणोंकी पूज्य हुई है ॥ ८९ ॥ उनको समस्तविद्याओंकी अधिदेवी, समस्त विद्वन्मण्डलीकी आराध्य और सब विश्वमें पूजित होना केवल प्रकृति देवीकी आराधना और प्रकृति देवीकी उपासनाका फलमात्र है ॥ ९० ॥ उनकीही आराधनाके बलसे सबकी सम्पद्दात्री और समस्त ग्रामकी अधिदेवी लक्ष्मी सबकी ईश्वरी सबसे स्तुतिको प्राप्त सर्वज्ञ सर्वदुःखनिवारिणी सबकी वन्दनीय और सबको पुत्रदायिनी हुई हैं ॥ ९१ ॥ दुर्गा श्रीकृष्णके वामाङ्गसम्भूत उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी ॥ ९२ ॥ राधाजी प्रकृतिको उपासनाके बलसेही सबकी उपासना करनेयोग्य और सर्वज्ञानसम्पन्न हुई हैं मान गौरव और सौभाग्यमें सबसे अधिक हैं ॥ ९३ ॥ राधिकाका कृष्णकी प्राणेश्वरी होना, कृष्णके निकट आदर और सन्मान लाभ करना श्रीकृष्णके वक्षस्थलमें स्थान प्राप्तहोना और लोकातीत सौन्दर्यशालिनी

सावित्रीदेवमाताचवेदाधिष्ठातृदेवता ॥ पूज्याद्विजानांवेदज्ञायज्ज्ञानाद्यस्यसेवया ॥ ८९ ॥ सर्वविद्याधिदेवीसापूज्याचविदुषांपरा ॥ यत्सेवयायत्तपसासर्वविश्वेषुपूजिता ॥ ९० ॥ सर्वग्रामाधिदेवीसासर्वसंपत्प्रदायिनी ॥ सर्वेश्वरीसर्ववंद्यासर्वेषांपुत्रदायिनी ॥ ९१ ॥ सर्वस्तुताचसर्वज्ञासर्वदुर्गार्तिनाशिनी ॥ कृष्णवामांससंभूताकृष्णप्राणाधिदेवता ॥ ९२ ॥ कृष्णप्राणाधिकाप्रेम्णाराधिकाशक्तिसेवया ॥ सर्वाधिकंचरूपंचसौभाग्यंमानगौरवे ॥ ९३ ॥ कृष्णवक्षःस्थलस्थानंपत्नीत्वेप्रापसेवया ॥ तपश्चकारसापूर्वंशतशृंगेचपर्वते ॥ ९४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रंचपतिप्राप्त्यर्थमेवच ॥ जातेशक्तिप्रसादेतुदृष्ट्वाचंद्रकलोपमाम् ॥ ९५ ॥ कृष्णोवक्षःस्थलेकृत्वारुरोदकृपयाविभुः ॥ वरंतस्यैददौसारंसर्वेषामपिदुर्लभम् ॥ ९६ ॥ ममवक्षःस्थलेतिष्ठममभक्ताचशाश्वता ॥ सौभाग्येनचमानेनप्रेम्णाथोगौरवेणच ॥ ९७ ॥ त्वंमेश्रेष्ठाचज्येष्ठाचप्रेयसीसर्वयोषिताम् ॥ वरिष्ठाचगरिष्ठाचसंस्तुतापूजितामया ॥ ९८ ॥ सततंतवसाध्योऽहवश्यंश्वप्राणवल्लभे ॥ इत्युक्त्वाचजगन्नाथश्चकारललनांततः ॥ ९९ ॥

होकर कृष्णको पतिपाना इन सब बातोंका मूलकारण शक्तिसेवा अर्थात् मूलप्रकृतिकी आराधना है, क्योंकि राधिकाने श्रीकृष्णको पतिलाभ करनेकेलिये भारतमें शतशृंग पर्वतपर मूलप्रकृतिको प्रसन्नताके उद्देशसे ॥ ९४ ॥ देव मानके हजार वर्षपर्यन्त घोरतर तपस्या की है, फिर शक्तिरूपा मूलप्रकृतिके प्रसन्न होनेपर श्रीकृष्णने राधिकाको शशिकलाके समान देखकर ॥ ९५ ॥ स्वयं वक्षःस्थलमें धारणकर करुणायुक्त होकर उनको अनन्य दुर्लभ वर देकर कहा ॥ ९६ ॥ हे प्रिये ! तुम मेरे प्रति भक्तिमती होकर सदा मेरे वक्षःस्थलमें वास करो. मेरी सब पत्नियोंके मध्य तुम सौभाग्यमें, मानमें, प्रणयमें और गौरवमें सबसे श्रेष्ठ होओ ॥ ९७ ॥ तुम आजसे मेरी ज्येष्ठ और श्रेष्ठतमा पत्नी हुई मैं तुमको सर्वप्रधाना जानकर आदर करूंगा ॥ ९८ ॥ हे प्राणवल्लभे ! मैं

सदा तुम्हारे वशीभूत और एकान्त आधीन होकर रहूंगा. हे मुनिवर ! जगन्नाथ श्रीकृष्णने इसप्रकार कहकर उसको सपत्नीहीन पत्नी बनाकर प्राणप्रिया किया ॥ ९९ ॥ पूर्वमें पंचप्रकृतिके अतिरिक्त संपूर्ण देवियोंकी कथा लिखीगई हैं. उन्होंनेभी एक मूलप्रकृतिकी सेवासे सबकी अपेक्षा श्रेष्ठता लाभ की है ॥ १०० ॥ हे मुने ! अधिक क्या कहूं जिसकी जैसी तपस्या है, वह वैसाही फल लाभ करता है. हे मुनिवर ! भगवती दुर्गा दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त हिमालय पर्वतमें तपस्या ॥ १०१ ॥ और मूलप्रकृतिके चरणकमलोका ध्यान करके सबकी पूजनीय हुई हैं. देवीसरस्वती गंधमादनपर्वतमें ॥ १०२ ॥ दिव्यलक्ष वर्षतक तपस्या करके सबकी वंदनीय हुई हैं. देवी लक्ष्मी दिव्य सौ युग पर्यन्त पुष्करमें तपस्या करके ॥ १०३ ॥ मूलप्रकृतिके प्रसाद—बलसे सबको सम्पददात्री हुई हैं. देवी सावित्री मलयपर्वतमें ॥ १०४ ॥ दिव्य साठसहस्र वर्ष पर्यन्त शक्तिकी आराधनासे सबकी पूजनीय और सबकी वन्दनीय हुई हैं हे विभो ! सौ मन्वन्तरतक शिवने तप कियाहै ॥ १०५ ॥ ब्रह्मा और विष्णु इन्होंने

सपत्नीरहितांतांचचकारप्राणवल्लभाम् ॥ अन्यायायाश्चतादेव्यःपूजिताःशक्तिसेवया ॥ १०० ॥ तपस्तुयादृशंयासांतादृक्तादृक्फलंमुने ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंचतपस्तप्त्वाहिमाचले ॥ १०१ ॥ दुर्गाचतत्पदंध्यात्वासर्वपूज्याबभूवह ॥ सरस्वतीतपस्तप्त्वापर्वतेगंधमादने ॥ १०२ ॥ लक्षवर्षंचदिव्यंचसर्ववंद्याबभूवसा ॥ लक्ष्मीर्युगशतंदिव्यंतपस्तप्त्वाचपुष्करे ॥ १०३ ॥ सर्वसंपत्प्रदात्रीचजातादेवीनिषेवणात् ॥ सावित्रीमलयेतप्त्वापूज्यावंद्याबभूवसा ॥ १०४ ॥ षष्टिवर्षसहस्रंचदिव्यंध्यात्वाचतत्पदम् ॥ शतमन्वंतरंतप्तंशंकरेणपुराविभो ॥ १०५ ॥ शतमन्वंतरंचेदंब्रह्माशक्तिंजजापह ॥ शतमन्वंतरंविष्णुस्तप्त्वापाताबभूवह ॥ १०६ ॥ दशमन्वंतरंतप्त्वाश्रीकृष्णःपरमंतपः ॥ गोलोकंप्राप्तवान्दिव्यंमोदतेऽद्याऽऽपियत्रहि ॥ १०७ ॥ दशमन्वंतरंधर्मस्तप्त्वाचैभक्तिसंयुतः ॥ सर्वप्राणःसर्वपूज्यःसर्वाधारोबभूवसः ॥ १०८ ॥ एवंदेव्याश्चतपसासर्वेदेवाश्चपूजिताः ॥ मुनयोमनवोभूपाब्राह्मणाश्चैवपूजिताः ॥ १०९ ॥ एवंतेकथितंसर्वंपुराणंसयथागमम् ॥ गुरुवक्त्राद्यथाज्ञातंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ११० ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणे नवमस्कंधेशक्तिप्रादुर्भावेनारदनारायणसंवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शत मन्वन्तरतक शक्तिकी आराधना करके जगत्का पालकत्व पद लाभ किया है ॥ १०६ ॥ श्रीकृष्णने दश मन्वन्तरपर्यन्त घोर तपस्या करके गोलोकमें स्थान पाया है और अबतक वहां परमानन्दसे वास करते हैं ॥ १०७ ॥ धर्मदेव दश मन्वन्तरतक भक्तिभावसे शक्तिकी आराधना करके सबके जीवन स्वरूप, सबके आराध्य और सबके आधारस्वरूप हुए हैं ॥ १०८ ॥ हे मुनिवर ! इसप्रकार क्या देवीगण, क्या देवगण, क्या मुनिगण, क्या मनुगण, क्या भूपालगण, क्या ब्राह्मणगण सबही शक्तिकी आराधना करके जगत्में पूजनीय हुए हैं ॥ १०९ ॥ हे देवर्षे ! मैं ने पूर्वकालमें गुरुके मुखसे वेदविधानानुसार जिस प्रकार सुना है, वह सब पूर्वतन वृत्तान्त वर्णन किया. अब और क्या सुननेकी वासनाहै सो कहो ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

देवर्षि नारद नारायणसे बोले हे प्रभो ! आपने कहा कि, प्रकृतिदेवीके निमेषमें प्रलय उपस्थित होती है और उस पतनमेंही ब्रह्माण्डका पतन होता है और यह प्रलय ही प्राकृतप्रलय है ॥ १ ॥ इस प्रलयमें वसुंधरा देवी तिरोहित होती है संपूर्ण विश्वभी जलमें डूब जाता है और संपूर्ण जगत् प्रपंच प्रकृतिके शरीरमें लीन होता है॥ २॥ किन्तु मैं जिज्ञासा करता हूं. वसुन्धरा देवी तिरोहित होकर किस स्थानमें अवस्थान करती है और फिर सृष्टिके आरंभमें वह किसप्रकार किस स्थानसे फिर आविर्भूत होती है ? ॥ ३ ॥ उनके इसप्रकार धन्य, मान्य, सबके आश्रय और विजयप्रद होनेका कारण क्या है ? आप अनुग्रहपूर्वक उनका मंगलनिदान जन्मवृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हे वत्सनारद ! सबही कहते हैं कि, देवी वसुंधरा सृष्टिके प्रारंभमें जन्म ग्रहण करती हैं किन्तु वास्तविक मायामयी प्रकृति देवीकी महिमासे उनकीही शक्तिरूपिणी धरणीका कभी आविर्भाव और कभी तिरोभाव होता है. अतएव उनकी इच्छानुसारही प्रतिप्रलयमें पृथ्वी एकबार तिरो

नारदउवाच ॥ देव्यानिमेषमात्रेणब्रह्मणःपातएवच ॥ तस्यपातःप्राकृतिकःप्रलयःपरिकीर्तितः ॥ १ ॥ प्रलयेप्राकृतेचोक्तातत्राऽदृष्टावसुंधरा ॥ जलप्लुतानिविश्वानिसर्वेलीनाःपरात्मनि ॥ २ ॥ वसुंधरातिरोभूताकुत्रवासाचतिष्ठति ॥ सृष्टेर्विधानसमयेसाऽऽविर्भूताकथंपुनः ॥ ३ ॥ कथंबभूवसाधन्यामान्यासर्वाश्रयाजया ॥ तस्याश्चजन्मकथनंवदमंगलकारणम् ॥ ४ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ सर्वादिसृष्टौसर्वेषांजन्मदेव्याइतिश्रुतिः ॥ आविर्भावस्तिरोभावःसर्वेषुप्रलयेषुच ॥ ५ ॥ श्रूयतांवसुधाजन्मसर्वमंगलकारणम् ॥ विघ्ननिघ्नकरंपापनाशनंपुण्यवर्धनम् ॥ ६ ॥ अहोकेचिद्वदंतीतिमधुकैटभमेदसा ॥ बभूववसुधाधन्यातद्विरुद्धमतःशृणु ॥७॥ ऊचतुस्तौपुराविष्णुंतुष्टौयुद्धेनतेजसा ॥ आवांवधानयत्रोर्वीपाथसासंवृतेतिच ॥ ८॥

हित और फिर आविर्भूत होती है ॥ ५ ॥ जो हो, अब मंगलप्रद विघ्नविनाशन, पापमोचन और पुण्यवर्द्धक पृथ्वीके जन्मका वृत्तान्त वर्णन करता हूं सुनो ॥ ६॥ कोई कोई कहते हैं कि, मधु और कैटभ दैत्यके मेदसे मेदिनीकी उत्पत्ति हुई है, किन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है, सम्प्रति मधुकैटभके मेदसे जो मेदिनीकी उत्पत्ति हुई है, वह विरुद्धमत वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७ ॥ अतिपूर्वकालमें विष्णुके संग मधु और कैटभनामक दो दैत्योंका घोर युद्ध उपस्थित हुआ उस युद्धमें दोनों दैत्य विष्णुसे संतुष्ट होकर बोले हे "विष्णु ! हम दोनों युद्धमें संतुष्ट हुए हैं; अतएव हमसे वर मांगो" विष्णुने कहा "यदि संतुष्ट हुए हो तो मैं यही वर माँगता हूं कि, तुम दोनों मुझसे मारे जाओ" तब दैत्योंने कहा "पृथ्वीका जो स्थान जलमें प्लावित न हो अर्थात् जहां जल न हो उस स्थानमें हमारा वध करो" ॥ ८॥

इससे स्पष्ट बोध होता है कि, इन दोनों दैत्योंके जीविन कालमें पृथ्वी विद्यमान थी. किन्तु केवल जलमें निमग्न होकर अदृश्यभावसे अवस्थित थी, नहीं तो "पृथ्वीका जो स्थान जलकीर्ण न हो, उस स्थानमें हमारा वध करो" यह बात क्यों कहते ? और केवल मेदसे पृथ्वीकी उत्पत्ति भी असंभव है क्योंकि शतसूर्य भी मेदको शुष्क करके पृथ्वीको उत्पन्न नहीं करसके तो मेदिनीका फलितार्थ यही है कि, विष्णुके अपने उरुदेशके ऊपर स्थापन करके दोनों दैत्योंका विनाश करनेसे उनका जो मेद जलमें गिरा ॥ ९ ॥ और वराहदेवने धराका उद्धार होनेपर उस धराके संग मेदका संश्लेष संबंध उपस्थित होनेके कारण पृथ्वीका नाम मेदिनी हुआ है ॥ १० ॥ अब मैं ने पूर्वकालके समय पुष्कर तीर्थमें धर्म देवके मुखसे श्रुतिसम्मत, संगत और मंगलदायक जो मत सुना है वह कहता हूं सुनो ॥ ११ ॥ जलमें प्रविष्ट महा विराट्का मन सर्वाङ्ग व्यापी होनेसे प्रतिलोममेंही प्रविष्ट हुआ इसके पीछे पञ्चीकरण समयमें जो महा पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, उस महापृथ्वीको खंड खंड करके प्रत्येक

तयोर्जीवनकालेनप्रत्यक्षासाऽभवत्स्फुटम् ॥ ततोबभूवमेदश्चमरणानंतरंतयोः॥९॥मेदिनीतिचविख्यातेत्युक्तमेतन्मतंशृणु ॥ जलधौताकृतापूर्ववार्धितामे दसायतः ॥१०॥ कथयामितेतज्जन्मसार्थकंसर्वमंगलम् ॥ पुराश्रुतंयच्छ्रुत्युक्तंधर्मवक्त्राच्चपुष्करे ॥ ११ ॥ महाविराट्छरीरस्यजलस्थस्यचिरंस्फुटम् ॥ मनोबभूवकालेनसर्वांगव्यापकंध्रुवम् ॥ १२॥ तच्चप्रविष्टंसर्वेषांतल्लोम्नांविवरेषुच ॥ कालेनमहतापश्चाद्बभूववसुधामुने ॥१३॥ प्रत्येकंप्रतिलोम्नांचकूपेषुसं स्थितासदा ॥ आविर्भूतातिरोभूतासजलाचपुनःपुनः ॥१४॥ आविर्भूतासृष्टिकालेतज्जलोपर्युपस्थिता ॥ प्रलयेचतिरोभूताजलस्याऽभ्यंतरेस्थिता ॥ १५॥ प्रतिविश्वेषुवसुधाशैलकाननसंयुता ॥ सप्तसागरसंयुक्तासप्तद्वीपसमन्विता ॥ १६ ॥ हेमाद्रिमेरुसंयुक्ताग्रहचंद्रार्कसंयुता ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्चसुरैर्लो कैस्तदाज्ञया ॥ १७ ॥ पुण्यतीर्थसमायुक्तापुण्यभारतसंयुता ॥ कांचनीभूमिसंयुक्तासप्तस्वर्गसमन्विता ॥ १८ ॥ पातालसप्ततदधस्तदूर्ध्वंब्रह्मलोक कः ॥ ध्रुवलोकश्चतत्रैवसर्वंविश्वंचतत्रवै ॥ १९ ॥ एवंसर्वाणिविश्वानिपृथिव्यांनिर्मितानिच ॥ नश्वराणिचविश्वानिसर्वाणिकृत्रिमाणिवै ॥ २० ॥

लोममें स्थापन किया इसके अनन्तर खंड खंडमें अवस्थित वह पृथ्वी सृष्टिकालमें एकबार आविर्भूत और प्रलय कालमें तिरोहित हुई ॥ १२॥ अतएव महाविराट्के प्रति लोमकूपमें जो मन प्रविष्ट होता है, उस मनसेही बहुत कालके पीछे वसुधाकी उत्पत्ति होती है ॥ १३ ॥ विराट्रूपी पुरुषके प्रतिलोमकूपमेंही एक एक पृथ्वी विराजमान रहती है केवल वारंवार आविर्भूत और तिरोभूत होना मात्र है॥१४॥ जब आविर्भूत होती है, तब जलके ऊपर भासमान होती है और जब तिरोभूत होती है, तब जलमें मग्न होती है ॥ १५ ॥ यह पृथ्वी प्रति विश्वमेंही शैल, कानन, सप्तसागर, सप्तद्वीप ॥ १६ ॥ सुमेरुपर्वत, चन्द्र सूर्यादि ग्रह, ब्रह्मा विष्णु शिवादि सुर लोक ॥ १७ ॥ संपूर्ण पुण्यतीर्थ, पवित्र भारतवर्ष, काञ्चनीभूमि, सप्तस्वर्ग ॥ १८ ॥ अधोभागमें सप्त पाताल, ऊर्ध्वमें ब्रह्मलोक और ध्रुवलोक संयुक्त होकर स्थिति करते हैं. इसप्रकार संपूर्ण पदार्थ संयुक्त एक एक भूमण्डल एक एक विश्व है ॥ १९ ॥ प्रतिभूमण्डलमेंही पूर्वोक्त नियमसे विश्व विरचित होता है

सुतरां विश्वमात्रही कृत्रिम और नश्वर है ॥ २० ॥ जब प्राकृतप्रलय उपस्थित होकर ब्रह्माका पतन होता है और जब आदि सृष्टिका प्रारंभ होता है तब परमात्मा रूपी श्रीकृष्णसेही महाविराट्की उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥ सृष्टि, स्थिति, प्रलय, काल और ब्रह्मादि समस्तही प्रवाहरूपसे नित्य हैं वराहकल्पमें सुरगण ॥ २२ ॥ मुनिगण, मनुगण, विप्रगण और गंधर्वादिद्वारा जो वसुंधरा पूजित होती है, यह भी प्रवाहरूपसे नित्य है. श्रुतिमें कहा है कि, धरा वराह रूपधारी विष्णुकी पत्नी है ॥ ॥ २३ ॥ मंगल उस धराका पुत्र और मंगलके पुत्र घटेश हैं. देवर्षिनारदने कहा हे भगवन्! वराहकल्पमें वाराही नामक प्रसिद्ध, भूमि देवताओंने किसरूपसे पूजी ॥ ॥ २४ ॥ सचेतन और अचेतन सम्पूर्ण पदार्थोंकी आश्रयस्थानीय सुरपूजिता यह पृथ्वी पंचीकरण प्रथानुसार किसप्रकार मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुई ॥२५॥ भूलोकमें

प्रलयेप्राकृतेचैवब्रह्मणश्चनिपातने ॥ महाविराडादिसृष्टौसृष्टः कृष्णेनचाऽऽत्मना॥२१॥नित्यौचस्थितिप्रलयौकाष्ठाकालेश्वरैःसह ॥ नित्याधिष्ठातृदेवीसा वाराहेपूजितासुरैः ॥ २२ ॥ मुनिभिर्मनुभिर्विप्रैर्गंधर्वादिभिरेवच ॥ विष्णोर्वराहरूपस्यपत्नीसाश्रुतिसंमता ॥ २३ ॥ तत्पुत्रोमंगलोज्ञेयोघटेशोमंगला त्मजः ॥ नारदउवाच ॥ पूजिताकेनरूपेणवाराहेचसुरैर्मही ॥ २४ ॥ वाराहेचैववाराहीसर्वैःसर्वाश्रयासती ॥ मूलप्रकृतिसंभूतापंचीकरणमार्गतः॥२५॥ तस्याःपूजाविधानंचाऽप्यधश्चोर्ध्वमनेकशः ॥ मंगलंमंगलस्याऽपिजन्मव्यासंवदप्रभो ॥ २६ ॥ नारायणउवाच॥ वाराहेचवराहश्चब्रह्मणासंस्तुतःपुरा ॥ उद्दधारमहींहत्वाहिरण्याक्षंरसातलात् ॥२७॥ जलेतांस्थापयामासपद्मपत्रंयथाह्रदे॥तत्रैवनिर्ममेब्रह्माविश्वंसर्वंमनोहरम् ॥२८॥ दृष्ट्वातदधिदेवींचसकामां कामुकोहरिः ॥ वाराहरूपीभगवान्कोटिसूर्यसमप्रभः ॥२९॥ कृत्वारतिकलांसर्वांमूर्तिंचसुमनोहराम् ॥ क्रीडांचकाररहसिदिव्यवर्षमहर्निशम् ॥ ३० ॥

और स्वर्लोकमें उसकी पूजापद्धति किसप्रकार है और मंगलकी जो मंगलजनक अर्थात् अत्यन्त पावन उस पृथ्वीका विस्तार किसप्रकार है और जन्मवृत्तान्त किस प्रकार है? यह विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २६ ॥ नारायणने कहा वराहदेव पूर्वकालके समय वाराह कल्पमें ब्रह्माजीके स्तुति करनेसे हिरण्याक्ष दैत्यको मारकर पृथ्वीको रसातलसे निकाल लाये ॥ २७ ॥ फिर हृदयमें जिसप्रकार पद्मपत्र भासमान होता है, इसीप्रकार पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापन किया इस ओर ब्रह्माजीने उसी अवसरमें उस धरापृष्ठमें अत्यन्त मनोहर विश्व संसार रचा ॥ २८ ॥ इसी समय करोड़सूर्यके समान प्रभायुक्त वराहरूपी भगवान् हरि पृथ्वीकी अधिदेवीको रूपवती और अनुरागवती देखकर ॥ २९ ॥ स्वयं मनोहरमूर्ति रमणोपयोगी वेष किया अनन्तर देवमानके एक वर्ष पर्यन्त दिनरात दोनोंने रतिक्रिया की ॥ ३० ॥

सुन्दरी धरा संभोगसुखसे एकवारही मूर्च्छित होगई. क्योंकि रसिकाके संग रसिकका समागम अत्यन्त सुखजनक है ॥ ३१ ॥ इधर विष्णु भी धराके अंगस्पर्शजनित सुखसे अत्यन्त अभिभूत हुए यही क्या? दिनरात्रि उनके किस ओर होकर बीत गये थे कुछ न जानपड़े पूर्ण एकवर्ष बीतनेपर समागम सुखके अन्तमें पूर्ववत् बोधका विकास हुआ, तब कामुक और कामुकी दोनोंमें पृथक् हुए ॥ ३२ ॥ श्रीहरिने पुनर्वार लीलापूर्वकही पूर्ववत् वराहरूप धारण किया और उस सती धरणीकी पूजा की ॥ ३३ ॥ और धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और अन्यान्य अनेक प्रकारकी सामग्रीसे उसकी पूजा करके कहा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे शुभे ! तुम सम्पूर्ण पदार्थोंका आधार होओ मुनिगण, मनुगण, देवगण, सिद्धगण और दानवादि सम्पूर्ण स्वच्छन्दतासे तुम्हारी अर्चना करें॥ ३५॥ मैं कहता हूं, अम्बुवाची[1] त्यागके दिन और

सुखसंभोगसंस्पर्शान्मूर्च्छांसंप्रापसुंदरी ॥ विदग्धायाविदग्धेनसंगमोऽतिसुखप्रदः ॥ ३१ ॥ विष्णुस्तदंगसंश्लेषाद्बुबुधेनदिवानिशम् ॥ वर्षांतेचेतनांप्राप्यकामीतत्याजकामुकीम् ॥ ३२ ॥ पूर्वरूपंवराहंचदधारसचलीलया ॥ पूजांचकारतांदेवींध्यात्वाचधरणींसतीम् ॥ ३३ ॥ धूपैर्दीपैश्चनैवेद्यैःसिंदूरैरनुलेपनैः ॥ वस्त्रैःपुष्पैश्चबलिभिःसंपूज्योवाचतांहरिः ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सर्वाधाराभवशुभेसर्वैःसंपूजितासुखम् ॥ मुनिभिर्मनुभिर्देवैःसिद्धैश्चदानवादिभिः ॥ ३५ ॥ अंबुवाचीत्यागदिनेगृहारंभेप्रवेशने ॥ वापीतडागारंभेचगृहेचकृषिकर्मणि ॥ ३६ ॥ तवपूजांकरिष्यंतिमद्वरेणसुरादयः ॥ मूढायेनकरिष्यंतियास्यंतिनरकंचते ॥ ३७ ॥ वसुधोवाच ॥ वहामिसर्ववाराहरूपेणाऽहंतवाऽऽज्ञया ॥ लीलामात्रेणभगवन्विश्वंचसचराचरम् ॥ ३८ ॥ मुक्ताशुक्तिहरेरर्चाशिवलिंगंशिवांतथा ॥ शंखंप्रदीपंयंत्रंचमाणिक्यंहीरकंतथा ॥ ३९ ॥ यज्ञसूत्रंचपुष्पंचपुस्तकंतुलसीदलम् ॥ जपमालांपुष्पमालांकर्पूरंचसुवर्णकम् ॥ ४० ॥ गोरोचनंचंदनंचशालग्रामजलंतथा ॥ एतान्वोढुमशक्ताऽहंक्लिष्टाचभगवञ्छृणु ॥ ४१ ॥

इसके अतिरिक्त गृहारंभ, गृहप्रवेश वापी वा तालाब इत्यादि खोदने एवं कृषिकार्यकेप्रारंभदिनमें ॥ ३६ ॥ सबही तुम्हारी पूजा करेंगे जो मूढ तुम्हारी पूजासे विमुख होंगे वह निःसन्देह नरकवास करेंगे ॥ ३७ ॥ वसुन्धराने कहा हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञानुसार वाराही मूर्त्ति धारण करके लीलापूर्वकही स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वको पीठपर वहन करूंगी ॥ ३८ ॥ किन्तु मोती, सीपी, शालग्राम, शिवलिंग, देवी, प्रतिमा, शंख, प्रदीप यंत्र, माणिक्य, हीरक॥ ३९ ॥ यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसी पत्र, जपमाला, पुष्पमाला, सुवर्ण, कपूर, ॥ ४० ॥ गोरोचन, चन्दन और शालग्राम शिलाका जल यह सब किसीप्रकार वहन नहीं करसकूंगी इन सबको वहन करनेसे

[1] आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें पृथ्वीरजस्वला होती है उस दिनको त्यागना चाहिये यही अम्बुवाची है । तीनदिनतक रजस्वलाजाननी ।

मेरे कष्टकी सीमा नहीं रहेगी अर्थात् यह वस्तु किसी आधारपर धरो ॥ ४१ ॥ भगवान् नारायणने कहा हे सुन्दरी ! जो मूढ पापात्मालोग तुम्हारी पीठपर यह सब द्रव्य स्थापन करेंगे, वह दिव्य शतवर्षपर्यन्त कालसूत्र (नरकविशेष) में गमन करेंगे ॥ ४२ ॥ हे वत्सनारद ! भगवान् नारायण धरासे इसप्रकार कहकर मौन होगये इस ओर पूर्वसंभोगके कारण धराके गर्भसे तेजस्वी मंगल ग्रह उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ श्रीहरिकी आज्ञानुसार सबही काण्वशाखोक्त ध्यानसे धराकी पूजा करके स्तवपाठ करने लगे ॥ ४४ ॥ मूलमंत्रसे नैवेद्य इत्यादि समस्त द्रव्य देने लगे त्रैलोक्यमें सर्वत्रही उनका स्तव और पूजा चलनिकली ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! वसुन्धराका ध्यान स्तव और मूलमंत्र पुराणोंमें अति गूढ है, अतएव उसको सुननेके लिये मुझको बड़ा कौतूहल उपस्थित हुआ है अनुग्रहपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! सबसे पहिले वराह देवके पृथ्वीकी पूजा करनेपर फिर ब्रह्माने उनकी पूजा की ॥ ४७ ॥ ब्रह्माकी पूजाके

श्रीभगवानुवाच ॥ द्रव्याण्येतानियेमूढाअर्पयिष्यंतिसुंदरि ॥ यास्यंतिकालसूत्रंतेदिव्यंवर्षशतंत्वयि ॥ ४२ ॥ इत्येवमुक्त्वाभगवान्विररामचनारद ॥ बभूवतेनगर्भेणतेजस्वीमंगलग्रहः ॥ ४३ ॥ पूजांचक्रुः पृथिव्याश्चतेसर्वेचाऽऽज्ञयाहरेः ॥ कण्वशाखोक्तध्यानेनतुष्टुवुश्चस्तवेनते ॥ ४४ ॥ ददुर्मूलेनमंत्रेणनैवेद्या दिकमेवच ॥ संस्तुतात्रिषुलोकेषुपूजितासावभूवह ॥ ४५ ॥ नारदउवाच ॥ किंध्यानंस्तवनंतस्यामूलमंत्रंचकिंवद ॥ गूढंसर्वपुराणेषुश्रोतुंकौतूहलंमम ॥ ४६ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ आदौचपृथिवींदेवीवराहेणचपूजिता ॥ ततोहिब्रह्मणापश्चात्पूजितापृथिवीतदा ॥ ४७ ॥ ततःसर्वैर्मुनींद्रैश्चमनुभिर्मानवा दिभिः ॥ ध्यानंचस्तवनंमंत्रंशृणुवक्ष्यामिनारद ॥ ४८ ॥ ॐह्रींश्रींक्लींवसुधायैस्वाहेत्यनेनमंत्रेणविष्णुनापूजितापुरा ॥ श्वेतपंकजवर्णाभांशरच्चंद्रनिभा ननाम् ॥ ४९ ॥ चंदनोत्क्षिप्तसर्वांगींरत्नभूषणभूषिताम् ॥ रत्नाधारांरत्नगर्भांरत्नाकरसमन्विताम् ॥ ५० ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानांसस्मितांवंदितांभजे ॥ ध्यानेनाऽनेनसादेवीसर्वैश्चपूजिताऽभवत् ॥ ५१ ॥ स्तवनंशृणुविप्रेंद्रकण्वशाखोक्तमेवच ॥ श्रीनारायणउवाच जयजयेजलाधारेजलशीलेजयप्रदे ॥ ५२ ॥

पीछे समस्त मुनीन्द्र समस्त मनु और मनुष्यादि सबने पृथ्वीकी पूजा आरम्भकी है अब देवीका ध्यान स्तव और मंत्र कहता हूं सुनो ॥ ४८ ॥ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने "ओं ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा" इस मूलमंत्रसे पृथ्वीकी पूजा की थी इसके उपरान्त फिर "हे देविधरे" तुम्हारा वर्ण श्वेतसरोज (कमल) के समान है तुम्हारा मुखमण्डल शरद्के चन्द्रमाके समान है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा सर्वाङ्ग चन्दनादिलेपनसे लिप्त है तुम्हारा संपूर्ण शरीर रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित है, तुम सब, रत्नोंका आधार हो, तुम्हारेही गर्भमें समस्त रत्न निहित रहते हैं तुम्हीं रत्नाकरमें व्याप्त हो ॥ ५० ॥ तुम्हीं अग्निपरीक्षित (वस्त्र) पहरे रहती हो. हे स्मिताननने ! तुम तीनों लोकोंसे पूजित हो, अतएव मैं तुम्हारी भजना करता हूं. इस ध्यानसे सभी भूमिकी पूजा करने लगे ॥ ५१ ॥ नारायणने कहा हे द्विजेन्द्र ! अब काण्व

शाखामें पृथ्वीका जिसप्रकार स्तव निर्दिष्ट हुआ है सो कहता हूं सुनो “हे जगजये! हे जलाधारे! हेजलशीले! हे जयप्रदे! ॥ ५२ ॥ हे यज्ञवराहपत्नि! हे जयावहे! तुम मुझको जयप्रदान करो हे मङ्गले! हे मङ्गलाधारे! हे माङ्गल्ये! हे मङ्गल प्रदे! ॥ ५३ ॥ तुम मंगलप्रदानकेलिये मंगलकी अधीश्वरी हुई हो, अतएव इस संसारमें मुझको मंगल प्रदान करो. हेसर्वाधारे! हे सर्वज्ञे! हे सर्वशक्तिसमन्विते ॥ ५४ ॥ हे सर्वकामप्रदे! हे देवि पृथिवि! तुम इस संसारमें मुझको वांछित फलप्रदान करो. हे पुण्यस्वरूपे! हे समस्त पुण्यवीजरूपे! हे सनातनि! ॥५५॥ हे पुण्याश्रये! तुम संपूर्ण पुण्यवान्! पुरुषोंकी स्थानस्वरूप हो, इस संसारमें तुम सबको पुण्यप्रदान करती हो, तुम्हीं सम्पूर्णसस्य (धान्य) का आलय और तुम्हीं सब प्रकारके सस्य धनमें धनवती हो, तुम्हीं सबको सब प्रकारका सस्यप्रदान करती हो ॥ ५६ ॥ इस संसारमें तुम्हीं एक समय समस्त सस्य करती हो और फिर एक समयमें अनेक प्रकारका सस्य उत्पन्न करती हो. हे भूमे! तुम्ही भूमिपतियोंकी सर्वस्व स्वरूप

यज्ञसूकरजायेत्वंजयंदेहिजयावहे ॥ मंगलेमंगलाधारेमांगल्येमंगलप्रदे ॥ ५३ ॥ मंगलार्थंमंगलेशेमंगलंदेहिमेभवे ॥ सर्वाधारेचसर्वज्ञेसर्वशक्तिसमन्विते ॥ ५४ ॥ सर्वकामप्रदेदेविसर्वेष्टंदेहिमेभवे ॥ पुण्यस्वरूपेपुण्यानांबीजरूपेसनातनि ॥ ५५ ॥ पुण्याश्रयेपुण्यवतामालयेपुण्यदेभवे ॥ सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्येसर्वसस्यदे ॥ ५६ ॥ सर्वसस्यहरेकालेसर्वसस्यात्मिकेभवे ॥ भूमेभूमिपसर्वस्वेभूमिपालपरायणे ॥ ५७ ॥ भूमिपानांसुखकरेभूमिंदेहि चभूमिदे ॥ इदंस्तोत्रंमहापुण्यंप्रातरुत्थाययःपठेत् ॥ ५८ ॥ कोटिजन्मसुसभवेद्बलवान्भूमिपेश्वरः ॥ भूमिदानकृतंपुण्यंलभ्यतेपठनाज्जनैः ॥ ५९ ॥ भूमिदानहरात्पापान्मुच्यतेनाऽत्रसंशयः ॥ अंबुवाचीभूकरणपापात्समुच्यतेध्रुवम् ॥ ६० ॥ अन्यकूपेकूपखननपापात्समुच्यतेध्रुवम् ॥ परभूमिहरात्पापान्मुच्यतेनाऽत्रसंशयः ॥ ६१ ॥ भूमौवीर्यत्यागपापाद्भूमौदीपादिस्थापनात् ॥ पापेनमुच्यतेसोऽपिस्तोत्रस्यपठनान्मुने ॥ ६२ ॥ अश्वमेधशतं पुण्यंलभतेनाऽत्रसंशयः ॥ भूमिदेव्यामहास्तोत्रंसर्वकल्याणकारकम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हो ॥ ५७ ॥ उनको श्रेष्ठतम आश्रयस्वरूप और सुखस्वरूप हो, अतएव हे भूमिदे! तुम मुझे भूमिदान करो” हे वत्स! पृथ्वीका यह स्तोत्र अतीव पुण्यप्रद है, अधिक क्या प्रतिदिन प्रातःकालमें उठकर जो इस भूमिस्तोत्रको पढते हैं ॥ ५८ ॥ वह करोड २ जन्ममें सार्वभौम राजा होकर काल व्यतीत करसकते हैं मनुष्यगण इसको पाठ करके भूमिदानके पुण्यलाभ करनेमें अधिकारी होते हैं ॥ ५९ ॥ यदि कोई भूमिदान करके उसको फेरले, जो अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन करता है ॥ ६० ॥ जो विना अनुमतिके दूसरेके बनाये कूपमें कूपखनन करता है, जो पराई भूमि हरण करता है ॥६१॥ जो भूमिमें वीर्यपात करता है जो भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन करता है तो वह निःसन्देह इस स्तोत्रका पाठ करनेपर अपने अपने किये पातकसे छूट जातेहैं॥६२॥ इसके पढनेसे सौ अश्वमेधके समान पुण्यलाभ होता है इसमें संशय नहीं. वास्तवमें देवी धरणीका यह स्तोत्र सब प्रकारके कल्याणका आकरस्वरूपहै॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः॥ ९॥

नारदजी बोले हे वेदवेत्ताओंमें अग्रगण्य दूसरेकी भूमिका हरण, दूसरेके कूपमें कूपखनन ॥ १ ॥ अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन, पृथ्वीपर वीर्यत्याग, भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन ॥ २ ॥ वा पृथ्वीपर अन्यप्रकारका असदाचरण करनेसे जिसप्रकार पापका स्पर्श होता है, सो कैसे कार्यका अनुष्ठान करनेसे उसका प्रतीकार होता है? यह सुननेकी अभिलाषा है, कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले हे वत्सनारद! इस भारतमें जो कोई एक बिलस्त भूमि त्रिसंध्या करनेवाले ब्राह्मणको देता है तो उसका शिवलोकमें वास होता है ॥ ४ ॥ धान्यपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणको दान करनेसे दाता अन्तकालमें भूमि रेणुपरिमित समयतक विष्णुलोकमें वास करता है ॥ ५ ॥ ब्राह्मणको ग्रामदान भूमिदान और धान्यदान करनेसे दाता और प्रतिगृहीता दोनोंही पापसे छूटकर देवीलोकमें जाते हैं ॥ ६ ॥ अधिक क्या यदि कोई सज्जन

नारदउवाच ॥ भूमिदानकृतंपुण्यंपापंतद्धरणेनच ॥ परभूहरणात्पापंकूपेकूपखननेतथा॥१॥अंबुवाच्यांभूखननेवीर्यस्यत्यागएवच॥दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामियत्नतः ॥ २ ॥ अन्यद्वापृथिवीजन्यंपापंयत्पृच्छतेपरम् ॥ यदस्तितत्प्रतीकारंवदवेदविदांवर ॥ ३ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ वितस्तिमात्र भूमिंचयोददातिचभारते ॥ संध्यापूतायविप्रायसयातिशिवमंदिरम् ॥ ४ ॥ भूमिंचसर्वसस्याढ्यांब्राह्मणायददातिच ॥ भूमिरेणुप्रमाणाब्दमंतेविष्णुपदे स्थितिः ॥ ५ ॥ ग्रामंभूमिंचधान्यंचब्राह्मणायददातियः ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौचोभौदेवीपुरस्थितौ ॥ ६ ॥ भूमिदानंचतत्कालेयःसाधुश्चाऽनुमोदते ॥ सचप्रयातिवैकुंठेमित्रगोत्रसमन्वितः ॥ ७ ॥ स्वदत्तांपरदत्तांवाब्रह्मवृत्तिंहरेत्तुयः ॥ सतिष्ठतिकालसूत्रेयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ८ ॥ तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिही नःश्रियाहतः ॥ पुत्रहीनोदरिद्रश्चघोरंयातिचरौरवम् ॥ ९ ॥ गवांमार्गंविनिष्कृष्ययश्चसस्यंददातिच ॥ दिव्यंवर्षशतंचैवकुंभीपाकेचतिष्ठति ॥ १० ॥

भूमिदानके प्रसंगमें स्थित होकर दाताको प्रवृत्ति करे तो वह भी अन्तमें मित्र बांधवोंके सहित वैकुण्ठधाममें गमन करते हैं ॥ ७ ॥ अपनी दी हुई हो वा पराई दी हुई हो ब्रह्मवृत्ति हरण करनेसे जबतक जगत्में चन्द्र सूर्य प्रकाशमान रहेंगे, तबतक उसको कालसूत्र नामक नरकमें वास करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ यही नहीं, बरन् उसके पुत्र पौत्रादिकको भी भूमिहीन श्रीहीन पुत्रहीन और धनहीन हो घोरतर रौरवनरकमें वास करना होगा ॥ ९ ॥ ग्रामके प्रान्तभागमें गोप्रचार[1] स्थानकी रक्षा करनी चाहिये, यही शास्त्रका शासन है किन्तु यदि कोई उस गोप्रचार भूमिको कर्षण करके, उस भूमिजातधान्यादिसे पुण्यसंचय वा उसको ब्राह्मणके निमित्त ही दे दे तो उसका पुण्यसंचय करना तो दूर रहै, बरन् वह दिव्य शतवर्ष पर्यन्त कुंभीपाक नामक नरकमें वास करता है ॥ १० ॥ गोठ वा तालावादि नष्ट करके जो उसमें

१ जहां गौ चराकरती हैं उस स्थानको गोप्रचार कहते हैं।

धान्यादि उत्पन्न करता है, उसको भी चौदह इन्द्रपात होनेके समयतक असिपत्र नामक नरकमें वास करना पड़ता है ॥ ११ ॥ अन्यनिर्मित पुष्करिणी इत्यादिमें स्नान करनेके समय पाँच मिट्टीकी डली उठा करके स्नान करना चाहिये किन्तु कोई यदि ऐसा न करके स्नान करता है, उसको स्नानका फललाभ होना तो दूर रहे, वरन उसको नरकवासका आश्रय ग्रहण करना होता है ॥ १२ ॥ जो पुरुष कामके वशीभूत होकर किसी प्रकारकी निर्जन भूमिमें वीर्यपात करता है तो उसको वहांकी भूमिकी रेणुका परिमित वर्षपर्यन्त नरकका दुःख भोगना पड़ता है ॥ १३॥ अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन करनेसे चार युगपर्यन्त कृमिदंश नामक नरकमें काल व्यतीत करना पड़ता है ॥ १४ ॥ जो मूढ पुरुष कूप बनानेवालेकी वा जलाशयदाताकी विना अनुमतिलिये लुप्तकूपका वा लुप्तजलाशयका पङ्कोद्धार करता है ॥ १५ ॥ तो उसका कुछभी फलोदय नहीं होता, वरन् पूर्वस्वामीको ही पुण्यलाभ होता है अधिकतर उस मूर्खको तप्तकुंड नरकमें जाकर चौदह इन्द्रके समयपर्यन्त वहां वास

गोष्ठंतडागंनिष्कृष्यमार्गेसस्यंददातियः ॥ सतिष्ठत्यसिपत्रेचयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥११॥ पंचपिंडाननुद्धृत्यपरकूपेचस्नातियः ॥ प्राप्नोतिनरकंचैवस्नानंनिष्फलमेवच ॥ १२ ॥ कामीभूमौचरहसिवीर्यत्यागंकरोतियः ॥ भूमिरेणुप्रमाणंचवर्षंतिष्ठतिरौरवे ॥ १३ ॥ अंबुवाच्यांभूकरणंयःकरोतिचमानवः ॥ सयातिकृमिदंशंचस्थितिस्तत्रचतुर्युगम् ॥ १४ ॥ परकीयेलुप्तकूपेकूपंमूढःकरोतियः ॥ पुष्करिण्यांचलुप्तायांपुष्करिणींददातियः ॥ १५ ॥ सर्वफलंपरस्यैवतप्तकुंडंव्रजेच्चसः ॥ तत्रतिष्ठतिसंततोयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥ परकीयेतडागेचपंकमुद्धृत्यचोन्मृजेत् ॥ रेणुप्रमाणवर्षंचब्रह्मलोकेवसेन्नरः ॥१७ ॥ पिंडांपित्रेभूमिभर्तुर्नप्रदायचमानवः ॥ श्राद्धंकरोतियोमूढोनरकंयातिनिश्चितम् ॥ १८ ॥ भूमौदीपंयोऽर्पयतिसचांधःसप्तजन्मसु ॥ भूमौशंखंचसंस्थाप्यकुष्ठंजन्मांतरेलभेत् ॥ १९ ॥ मुक्तांमाणिक्यहीरौचसुवर्णंचमणिंतथा ॥ पंचसंस्थापयेद्भूमौसचांधःसप्तजन्मसु ॥ २० ॥ शिवलिंगंशिवामर्चांयश्चाऽर्पयतिभूतले ॥ शतमन्वंतरंयावत्कृमिभक्षस्सतिष्ठति ॥ २१ ॥ शंखंयंत्रंशिलातोयंपुष्पंचतुलसीदलम् ॥ यश्चार्पयतिभूमौचसातिष्ठेन्नरकेध्रुवम् ॥ २२ ॥

करना पड़ता है ॥ १६ ॥ दूसरेके सरोवरके जलमें स्नान करनेके समय पांच डली उठा करके स्नान करनेसे उन गुटिकाकी रेणुपरिमितकाल स्नान करनेवाला ब्रह्मलोकमें वास करता है ॥ १७ ॥ पिता और पितामहादिके श्राद्धमें भूस्वामीको पिंड अर्थात् कोई खाद्य वस्तु विनादिये श्राद्ध करनेसे उस मूढ श्राद्ध करनेवालेको निःसन्देह नरकमें वास करना पड़ता है॥ १८॥ बिना आधार भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन करनेसे सात जन्मतक अंधा और जन्मान्तरमें कुष्ठ रोगसे आक्रान्त होता है॥ १९॥ मोती, मूँगा, हीरा, सुवर्ण, मणि इन पांच रत्नको भी भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवाला अंधा होता है ॥ २० ॥ शिवलिंग, शिवाकी प्रतिमूर्ति और शालग्राम शिला भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवालेको शतमन्वन्तरतक कृमिभक्षक होकर वास करना पडताहै॥ २१ ॥ शंख यंत्र शिलाजल अर्थात् चरणामृत पुष्प और तुलसीपत्र

भूमिमें स्थापन करनेसे निःसन्देह नरकवास प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ जपमाला, पुष्पमाला, गोरोचन और कपूर भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवालेको निःसन्देह घोरतर नरककी यंत्रणा भोगनी पडती है ॥ २३ ॥ चन्दन काष्ठ रुद्राक्षमाला और कुशमूल पृथ्वीमें स्थापन करनेसे एक मन्वन्तरपर्यन्त नरकमें वास होता है ॥ २४ ॥ पुस्तक और यज्ञसूत्र भूमिपर स्थापन करनेसे फिर उसको ब्राह्मणके कुलमें जन्म नहीं मिलता ॥ २५ ॥ वरन् उसको ब्रह्महत्याके समान पातकमें लिप्त होना पडता है ग्रंथियुक्त यज्ञसूत्र सब वर्णोंको पूज्य है ॥ २६ ॥ यज्ञकार्य समापनके पीछे जो पुरुष दूध दहीसे पृथ्वीका अर्थात् यज्ञभूमिका अभिषेक नहीं करता उसको सात जन्मतक संतप्त होकर तप्तभूमिमें वास करना पडता है ॥२७॥ भूकम्प वा ग्रहणके समय जो मिट्टी खोदता है वह महापापी जन्मान्तरमें अंगहीन

जपमालांपुष्पमालांकर्पूरंरोचनंतथा ॥ योमूढश्चाऽर्पयेद्भूमौसयातिनरकंध्रुवम् ॥ २३ ॥ भूमौचंदनकाष्ठंचरुद्राक्षंकुशमूलकम् ॥ संस्थाप्यभूमौनरकेव सेन्मन्वंतरावधि ॥२४॥ पुस्तकंयज्ञसूत्रंचभूमौसंस्थापयेन्नरः ॥ नभवेद्विप्रयोनौचतस्यजन्मांतरेजनिः ॥ २५॥ ब्रह्महत्यासमंपापमिहैवलभतेध्रुवम् ॥ ग्रंथियुक्तंयज्ञसूत्रंपूज्यंचसर्ववर्णकैः॥२६॥ यज्ञंकृत्वातुयोभूमिंक्षीरेणनहिसिंचति ॥ सयातितप्तभूमिंचसंतप्तःसप्तजन्मसु ॥ २७ ॥ भूकंपेग्रहणेयोहिकरोतिखननंभुवः ॥ जन्मांतरेमहापापोह्यंगहीनोभवेद्ध्रुवम् ॥२८॥ भवनंयत्रसर्वेषांभूमिस्तेनप्रकीर्तिता ॥ काश्यपीकश्यपस्येयमचलास्थिररूपतः॥२९॥ विश्वंभराधारणाच्चाऽनंतानंतस्वरूपतः॥पृथिवीपृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्महामुने॥३०॥इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेदशमोऽध्यायः ॥१०॥ नारदउवाच ॥ श्रुतंपृथिव्युपाख्यानमतीवसुमनोहरम् ॥ गंगोपाख्यानमधुनावदवेदविदांवर ॥ १ ॥ भारतेभारतीशापात्साजगामसुरेश्वरी ॥ विष्णुस्वरूपापरमास्वयंविष्णुपदीतिच ॥ २ ॥ कथंकुत्रयुगेकेनप्रार्थिताप्रेरितापुरा ॥ तत्क्रमंश्रोतुमिच्छामिपापघ्नंपुण्यदंशुभम् ॥ ३ ॥

होता है ॥ २८ ॥ हे मुनिवर ! यह पृथ्वी सबका भवन होनेके कारण भूमि कश्यपकी कन्या होनेसे काश्यपी स्थिर रूपा होनेसे अचला ॥ २९ ॥ संपूर्ण विश्वको धारण करनेके कारण विशम्भरा अनन्त विस्तार होनेसे अनन्ता और पृथुराजकी कन्या वा बहुत विस्तृत होनेके कारण पृथ्वीनामसे अभिहित हुई है ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ छ ॥ देवर्षि नारदने कहा हे वेदविदाम्वर ! अत्यन्त मनोहर पृथ्वीका उपाख्यान सुना अव गंगाका उपाख्यान सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ पूर्वमें सुना है कि, सुरेश्वरी विष्णुस्वरूपिणी विष्णुपादोद्भवा गंगा भारतीके शापसे भारतमें गई ॥ २॥ किन्तु उनके भारतमें जानेका कारण क्या है? किस युगमें किसकी प्रार्थनासे वह भारतवर्षमें गई? हे प्रभो ! वही पापनाशक पुण्यप्रद शुभवृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीनारायण बोले हे वत्स ! पूर्वकालके समय सूर्यवंशमें सगर नामक श्रीमान् एक राजराजेश्वरने जन्म लिया था उनकी परमरूपवती दो भार्या थीं, तिनमें एकका नाम वैदर्भी और दूसरीका नाम शैब्या था॥ ४॥ शैब्याके गर्भसे नरपतिके वंशधर अतिरूपवान् एक पुत्रने जन्म ग्रहण किया इस पुत्रका नाम असमञ्जस था॥ ५॥ इस ओर दूसरी रानी वैदर्भी पुत्रकी इच्छासे श्रीशंकरकी आराधना करने लगी भगवान् भूतनाथके प्रसन्न होकर वरदेनेसे वैदर्भी भी गर्भवती हुई ॥ ६ ॥ अनन्तर शतवर्ष गर्भ धारणके पीछे उसने एक मासका पिंड प्रसव किया यह देखकर राजपत्नी अत्यन्त दुःखितमनसे महादेवकी शरणागत हो उच्चस्वरसे वारंवार रोदन करने लगी ॥ ७ ॥ तब भगवान् शंकरने ब्राह्मणके वेषमें वहां उपस्थित होकर उस मांसपिंडको सहस्र खंडमें विभक्त किया ॥ ८ ॥ वह सहस्रखंड महाबलपराक्रान्त पुत्ररूपमें परिणत

श्रीनारायणउवाच ॥ राजराजेश्वरःश्रीन्मान्सगरःसूर्यवंशजः ॥ तस्यभार्याचवैदर्भीशैब्याचेद्वमनोहरे ॥ ४ ॥ तत्पत्न्यामेकपुत्रश्चबभूवसुमनोहरः ॥ असमंजइतिख्यातःशैब्यायांकुलवर्धनः ॥ ५ ॥ अन्याचाऽऽराधयामासशंकरंपुत्रकामुकी ॥ बभूवगर्भस्तस्याश्चहरस्यचवरेणह ॥ ६ ॥ गतेशताब्देपूर्णे चमांसपिंडंसुषावसा ॥ तंदृष्ट्वासाशिवंध्यात्वारुरोदोच्चैःपुनःपुनः ॥ ७ ॥ शंभुर्ब्राह्मणरूपेणतत्समीपंजगामह ॥ चकारसंविभज्यैतत्पिंडंषष्टिसहस्रधा ॥८॥ सर्वेबभूवुःपुत्राश्चमहाबलपराक्रमाः ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडप्रभामुष्टकलेवराः ॥ ९ ॥ कपिलस्यमुनेःशापाद्बभूवुर्भस्मसाच्चते ॥ राजारुरोदतच्छ्रुत्वा जगामगहनेवने ॥१०॥तपश्चकाराऽसमंजोगंगानयनकारणात् ॥ लक्षवर्षंतपस्तप्त्वाममारकालयोगतः ॥११॥ अंशुमांस्तस्यतनयोगंगानयनकारणात्॥ तपःकृत्वालक्षवर्षंममारकालयोगतः ॥१२॥ भगीरथस्तस्यपुत्रोमहाभागवतःसुधीः ॥ वैष्णवोविष्णुभक्तश्चगुणवानजरामरः ॥ १३॥ तपःकृत्वालक्षवर्षंगंगानयनकारणात् ॥ ददर्शकृष्णंग्रीष्मस्थसूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १४ ॥

हुए अधिक क्या ? उन कुमारोंके शरीरकी प्रभा ग्रीष्म कालके मध्याह्नसूर्यकी प्रभासे भी अधिक उज्ज्वल थी ॥ ९॥ किन्तु संपूर्ण कुमारोंके कपिलमुनिके शापसे भस्म होनेपर राजाने अत्यन्त रुदनकरते करते निबिड़ वनमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ इधर असमंजस गंगाको लानेकेलिये घोरतर तपस्या करनेलगे क्रमानुसार लाख वर्ष बीतने पर उन्होंने कालके वशीभूत होकर देह त्याग दिया ॥ ११ ॥ फिर उनके पुत्र अंशुमान् गंगाको लानेकेलिये लक्षवर्षपर्यन्त कठोर तपस्या करके कालकवलमें पतित हुए ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त अंशुमान्के पुत्र भगवद्भक्त परम वैष्णव अजर अमर अशेषगुणोंकी खान बुद्धिमान् भगीरथने ॥ १३ ॥ गंगाको लानेकेलिये एक

१ सगरके यज्ञ करनेपर इन्द्रने घोडा हरणकर कपिलजीके समीपजा रक्खा. यह राजकुमार उसको खोजनेगये वहां पाय कपिलजीको दुर्वचन कहनेसे उनके कोपानलमें भस्म हुए असमंजसकी प्रार्थनासे गंगासे उद्धार होगा यह मुनिने (कहा ना०पु०) ।

लक्षवर्षपर्यन्त तपस्या की अन्तमें करोड़ ग्रीष्मके सूर्यके समान प्रभायुक्त श्रीकृष्णने उनको दर्शन दिया ॥ १४ ॥ उन किशोर मूर्त्ति गोपवेषधारी द्विभुज श्रीकृष्णके हाथमें मुरली विराजमान थी और उनका वह गोपाल सुंदरीरूप देखनेसे बोध होता था मानों भक्तोंके प्रति अनुग्रहप्रकाश करनेके लियेही सर्वदा उन्मुख रहते हैं ॥ १५ ॥ वह स्वेच्छामय परब्रह्म हैं उनकी अपूर्णता नहीं है ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि देवता तथा मुनि इत्यादि सभी उन विभुका स्तव करते रहते हैं ॥ १६ ॥ वह किसीमें लिप्त नहीं हैं और सबके साक्षीरूपसे अवस्थान करते हैं वह तीनों गुणोंसे अतीत और प्रकृतिसेभी अतीत पदार्थ हैं कुछेक हास्यसे उनका मुखमंडल सदाही प्रफुल्ल है. भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेमें उनके समान दूसरा और कोई नहीं है ॥ १७ ॥ उनका परिधान अग्नि परीक्षित विशुद्ध अंशुक और सर्वांग रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित था. राजा भगीरथ उस अपूर्व मूर्त्तिका दर्शन करके प्रणामपूर्वक वारंवार स्तव करने लगे ॥ १८ ॥

द्विभुजंमुरलीहस्तंकिशोरंगोपवेषिणम् ॥ गोपालसुंदरीरूपंभक्तानुग्रहरूपिणम् ॥ १५ ॥ स्वेच्छामयंपरंब्रह्मपरिपूर्णतमंप्रभुम् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्चस्तुतंमु निगणैर्नुतम् ॥ १६ ॥ निर्लिप्तंसाक्षिरूपंचनिर्गुणंप्रकृतेःपरम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यंभक्तानुग्रहकारणम् ॥ १७ ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानंरत्नभूषणभूषितम् ॥ तुष्टावदृष्ट्वानृपतिःप्रणम्यचपुनःपुनः ॥ १८ ॥ लीलयाचवरंप्रापवांछितंवंशतारणम् ॥ कृत्वाचस्तवनंदिव्यंपुलकांकितविग्रहः ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भारतंभारतीशापाद्गच्छशीघ्रंसुरेश्वरि ॥ सगरस्यसुतान्सर्वान्पूतान्कुरुममाऽऽज्ञया ॥ २० ॥ त्वत्स्पर्शवायुनापूतायास्यंतिममंदिरम् ॥ बिभ्रतोममभूर्तीश्च दिव्यस्यंदनगामिनः ॥ २१ ॥ मत्पार्षदाभविष्यंतिसर्वकालंनिरामयाः ॥ समुच्छिद्यकर्मभोगान्कृताञ्जन्मनिजन्मनि ॥ २२ ॥ कोटिजन्मार्जितंपापंभा रतेयत्कृतंनृभिः ॥ गंगायावातस्पर्शेननश्यतीतिश्रुतौश्रुतम् ॥ २३ ॥ स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याःपुण्यंदशगुणंततः ॥ मौसलस्नानमात्रेणसामान्यदिवसेनृणाम् ॥ २४ ॥

उनका सर्वांग पुलकावलीसे पूर्ण होगया अनन्तर उन्होंने स्वच्छन्दतासे अपने वंशका तारनेवाला अभिमत वर लाभ किया ॥ १९ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने गंगासे कहा हे सुरेश्वरि ! सरस्वतीके शापसे तुम शीघ्र भारतमें अवतीर्ण होओ, मेरे कहनेके अनुसार तुम शीघ्र जाकर सगर—सन्तानका उद्धार करो ॥ २० ॥ वह सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे पवित्र हो; मेरे समान मूर्त्ति धारण कर दिव्य विमानमें चढ़ मेरे भवनमें आवेंगे ॥ २१ ॥ और निरन्तर वहां मेरे पार्षद होकर वास करेंगे और उनको जन्म जन्मान्तर कृतपातकमें लिप्त होना नहीं पडेगा ॥ २२ ॥ हे वत्सनारद ! वेदमें इस प्रकार वर्णित हुआ है कि, मनुष्यगण भारतमें जन्म ग्रहण करके यदि करोड करोड जन्म पापाचरण करें तो भी एक गंगाके सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे वह सब ध्वंस होजाते हैं ॥ २३ ॥ गंगाजीके दर्शन और गंगाजलके स्पर्शसे दशगुणा पुण्य होता है. मनुष्य सामान्यदिनमें जो संकल्प रहित विधिहीन स्नान करता है गंगासलिल कणवाहि वायुसेवनकी अपेक्षा

दशगुण पुण्यलाभ होता है ॥ २४ ॥ विशेष कर गंगाजलमें स्नान करनेसे मनुष्य शीघ्र पापसे छूट जाता है वेदसे जाना गया है. कि, विधिपूर्वक गंगास्नान करनेपर भी शतकोटिजन्मजनित जो ब्रह्महत्यादि पातक हैं ॥ २५ ॥ ज्ञानकृत हों वा अज्ञानकृत हों जन्मपर्यन्तके किये समस्त पातक विधिपूर्वक स्नानसे नष्ट होजाते हैं ॥ २६ ॥ पुण्य दिनमें स्नान करनेसे जितना पुण्य लाभ होता है, उसका वर्णन करनेकी वेदमें भी सामर्थ्य नहीं है तो वेदमें जो कुछ वर्णन किया गया है, वह अति सामान्य है ॥ २७ ॥ अधिक क्या ब्रह्मा विष्णु और महादेवादि देवतागण भी गंगास्नानकी प्रकृत महिमा वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं. हे विप्रवर! यह तो साधारण दैनिक (नित्य) गंगास्नानका माहात्म्य है. अब संकल्पजनित स्नानका माहात्म्य वर्णन करता हूं सुनो ॥ २८ ॥ साधारण दैनिक स्नानसे जो फल लाभ होता है संकल्पपूर्वक गंगास्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुण पुण्य लाभ होता है और यदि सूर्यके संक्रमण दिनमें अर्थात् संक्रान्तिके दिन गंगास्नान

शतकोटिजन्मपापंनश्यतीतिश्रुतौश्रुतम ॥ यानिकानिचपापानिब्रह्महत्यादिकानिच ॥ २५ ॥ जन्मसंख्यार्जितान्येवकामतोऽपिकृतानिच ॥ तानिसर्वाणिनश्यंतिमौसलस्नानतोनृणाम् ॥२६॥ पुण्याहस्नानतःपुण्यंवेदानैववदंतिच ॥ किंचिद्वदंतितेविप्रफलमेवयथागमम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्चसर्वेनैववदंतिच ॥ सामान्यदिवसस्नानसंकल्पंशृणुसुंदरि ॥ २८ ॥ पुण्यंदशगुणंचैवमौसलस्नानतःपरम् ॥ ततस्त्रिंशद्गुणंपुण्यंरविसंक्रमणेदिने ॥ २९ ॥ अमायांचाऽपितत्तुल्यंद्विगुणंदक्षिणायने ॥ ततोदशगुणंपुण्यंनराणामुत्तरायणे ॥ ३० ॥ चातुर्मास्यांपौर्णमास्यामनंतंपुण्यमेवच ॥ अक्षयायांचतत्तुल्यंचैतद्वेदेनिरूपितम् ॥३१॥ असंख्यपुण्यफलदमेतेषुस्नानदानकम् ॥ सामान्यदिवसस्नानाद्दानाच्छतगुणंफलम् ॥३२॥ मन्वंतराद्यायांतिथौयुगाद्यायांतथैवच ॥ माघस्यासितसप्तम्यांभीष्माष्टम्यांतथैवच ॥३३॥ अथाप्यशोकाष्टम्यांचनवम्यांचतथाहरेः॥ततोऽपिद्विगुणंपुण्यंनंदायांतवदुर्लभम्॥ ३४॥

किया जाय तो उसकी अपेक्षा तीस गुणा पुण्य बढता है ॥ २९ ॥ अमावास्याके दिनमें गंगास्नान करनेसे पूर्ववत् फल लाभ होता है किन्तु दक्षिणायनमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दूना और उत्तरायणमें स्नान करनेसे पूर्वकी अपेक्षा दशगुणा पुण्य संचय होता है ॥ ३० ॥ चातुर्मास्य, पूर्णिमा, अक्षयनवमी वा तृतीयामें गंगास्नान करनेसे जितना पुण्य लाभ होता है उसकी सीमा नहीं है॥ ३१ ॥ और पूर्वोक्त पर्ववालेदिनमें स्नान और दान इन दोनों प्रकारके कार्योंका अनुष्ठान होनेसे पुण्य फल लाभकी सीमा नहीं रहती. प्रात्याहिक स्नानकी अपेक्षा दानसे शतगुणा पुण्यलाभ होता है ॥ ३२ ॥ मन्वन्तरा तिथि युगाद्या माघमासकी शुक्ला सप्तमी भीष्माष्टमी ॥ ३३ ॥ अशोकाष्टमी और श्रीरामनवमीके दिन गंगास्नान करनेसे महापुण्य लाभ होता है और नन्दास्नानसे उसकी अपेक्षा दूना पुण्य संचय होता है ॥ ३४ ॥

दशहरादशमीमें स्नानकरनेसे युगाद्या स्नानकी तुल्य फल होताहै और यदि महानन्दा अथवा महावारुणीमें गंगास्नान किया जाय तो पूर्वकी अपेक्षा चतुर्गुणा पुण्य लाभ होता है ॥ ३५ ॥ महा वारुणीमें स्नान करनेसे साधारण गंगास्नानकी अपेक्षा करोड गुण पुण्य लाभ होता है ॥ ३६ ॥ चन्द्रग्रहणके समयमें स्नानकी अपेक्षा सूर्य ग्रहणमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुण पुण्य लाभ होता है किन्तु अर्द्धोदय योगमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा शतगुणा पुण्य लाभ होता है ॥ ३७॥ हे वत्स ! जब देवेश हरि गंगा और भगीरथके सन्मुख इसप्रकार कहकर मौन हुए तब देवी गंगाने भक्तिपूर्वक कंधे झुकाय उनसे कहा ॥ ३८ ॥ गंगा बोली हे नाथ ! यदि पूर्व विहित सरस्वतीके शापसे और आपकी आज्ञासे अवश्यही मुझको भारतमें जाना होगा ॥ ३९ ॥ तो पापी मनुष्य मेरे जलमें जो पापमल धोवेंगे

दशहरादशम्यांतुयुगाद्यादिसमंफलम्॥नंदासमंचवारुण्यांमहत्पूर्वेचतुर्गुणम् ॥३५॥ ततश्चतुर्गुणंपुण्यंद्विमहत्पूर्वकेसति ॥ पुण्यंकोटिगुणंचैवसामान्यस्नानतोऽपियत् ॥३६॥ चंद्रोपरागसमयेसूर्येदशगुणंततः॥ पुण्यमर्धोदयेकालेततःशतगुणंफलम्॥३७॥इत्येवमुक्त्वादेवेशोविरराम तयोःपुरः॥तमुवाचततोगंगाभक्तिनम्रात्मकंधरा ॥३८॥ गंगोवाच॥यामिचेद्भारतंनाथभारतीशापतःपुरा ॥ तवाऽऽज्ञयाचराजेंद्रतपसाचैवसांप्रतम् ॥ ३९ ॥ दास्यंतिपापिनोमह्यंपापानियानिकानिच॥ तानिमेकेननश्यंतितमुपायंवदप्रभो॥४०॥कतिकालंपरिमितंस्थितिर्मेतत्रभारते॥कदायास्यामिदेवेशतद्विष्णोःपरमंपदम्॥४१॥ ममाऽन्यद्वांछितंयद्यत्सर्वंजानासिसर्ववित् ॥ सर्वांतरात्मन्सर्वज्ञतदुपायंवदप्रभो ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जानामिवांछितंगंगेतवसर्वंसुरेश्वरि॥पतिस्तेद्रवरूपायालवणोदोभविष्यति ॥४३॥ ममांशस्वरूपश्चत्वंचलक्ष्मीस्वरूपिणी ॥ विदग्धायाविदग्धेनसंगमोगुणवान्भुवि॥४४॥ यावत्यःसंतिनद्यश्चभारत्याद्याश्चभारते ॥ सौभाग्यात्वंचतास्वेवलवणोदस्यसौरते॥४५॥अद्यप्रभृतिदेवेशिकलेःपंचसहस्रकम्॥वर्षंस्थितिस्तेभारत्याःशापेनभारतेभुवि ॥४६॥

मैं किसप्रकार उनसे छुटकारा पाऊंगी ? इसका उपाय बताइये ॥ ४० ॥ और कितने समयतक मुझको भारतमें रहना होगा ? कितने दिनोंके पीछे मैं आपके परमपदको प्राप्तहूंगी ? ॥ ४१ ॥ हे सर्वान्तर्यामिन् ! हे सर्वज्ञ ! हे प्रभो ! इसके अतिरिक्त मेरे मनकी जो वांछा है वह आपसे छिपी नहीं है, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, अतएव अनुग्रह करके समस्त विषयका उपाय बताइये॥ ४२॥ भगवान् श्रीहरिने कहा हेसुरेश्वरीगंगे ! मैं ने तुम्हारे हृदयका भाव समझलिया है, कुछ चिन्ता नहीं तुम्हारी जलमयी मूर्त्ति धारण करनेसे लवणोदधि तुम्हारे पति होंगे ॥४३ ॥ वह भी मेरे अंशस्वरूप और तुमभी लक्ष्मीस्वरूपिणी हो, अतएव भूलोकमें रसिकके संग रसिकाका समागम अतीव सुखजनक होता है ॥ ४४॥ भारतमें सरस्वती इत्यादि जो सब नदी विद्यमान हैं, तुम उनकी अपेक्षा सौभाग्य शालिनी होगी ॥ ४५ ॥ भारतीके शापवश

आजसे कलिके पांच हजार वर्षतक तुमको भारतमें रहना होगा ॥ ४६ ॥ तुम नित्य जलनिधिके संग क्रीडाकौतुकमें काल व्यतीत करोगी, क्योंकि जैसी तुम रसिका हो, वह भी इसी प्रकार रसिकचूडामणि है ॥ ४७ ॥ भारतवासी सब मनुष्य भगीरथकृत स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति और भक्तिभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ ४८ ॥ काण्व शाखोक्त ध्यानद्वारा ध्यान करके जो प्रतिदिन तुम्हारी अर्चना, तुम्हारी स्तुति और तुमको प्रणाम करेंगे, वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होंगे ॥ ॥ ४९ ॥ अधिक क्या शतयोजनके अन्तरमें भी वास करके जो कोई " गंगा गंगा " यह शब्द मुखसे उच्चारण करता है, तो वह पुरुष सब प्रकारके पापोंसे छूटकर विष्णु लोकमें जाता है ॥ ५० ॥ हजार हजार पापियोंके स्नान करनेसे तुमको जो पाप स्पर्श होगा वह अविचलित चित्तसे सहना. क्योंकि प्रकृति मंत्र उपा

नित्यंत्वमब्धिनासार्धंकरिष्यसिरहोरतिम् ॥ त्वमेवरासिकादेविरासिकेंद्रेणसंयुता ॥ ४७ ॥ त्वांस्तोष्यंतिचस्तोत्रेणभगीरथकृतेनच ॥ भारतस्थाजनाःस र्वेपूजयिष्यंतिभक्तितः ॥ ४८ ॥ कण्वशाखोक्तध्यानेनध्यात्वात्वांपूजयिष्यति ॥ यःस्तौतिप्रणमेन्नित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥ ४९ ॥ गंगागंगेतियोब्रू याद्योजनानांशतैरपि ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंसगच्छति ॥ ५० ॥ सहस्रपापिनांस्नानाद्यत्पापंतेभविष्यति ॥ प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शाद्देवताद्विवि नंक्ष्यति ॥५१॥ पापिनांतुसहस्राणांशवस्पर्शेनयत्त्वयि ॥ तन्मंत्रोपासकस्नानात्तदघंचविनंक्ष्यति ॥५२॥ तत्रैवत्वमधिष्ठानंकरिष्यस्यघमोचनम् ॥ सा र्धंसरिद्भिःश्रेष्ठाभिःसरस्वत्यादिभिःशुभे ॥ ५३ ॥ तत्तुतीर्थंभवेत्सद्योयत्रतद्गुणकीर्तनम् ॥ त्वद्रेणुस्पर्शमात्रेणपूतोभवतिपातकी ॥ ५४ ॥ रेणुप्रमाणवर्षं चदेवीलोकेवसेद्ध्रुवम् ॥ ज्ञानेनत्वयियेभक्त्यामन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥ ५५ ॥ समुत्सृजंतिप्राणांश्चतेगच्छंतिहरेःपदम् ॥ पार्षदप्रवरास्तेचभविष्यंतिहरे श्चिरम् ॥ ५६ ॥ लयंप्राकृतिकंतेचद्रक्ष्यंतिचाऽप्यसंख्यकम् ॥ मृतस्यवहुपुण्येनतच्छवंत्वयिविन्यसेत् ॥ ५७ ॥

सक भक्तोंके स्पर्शसे तुम्हारे संपूर्ण पातक नष्ट होंगे ॥ ५१ ॥ अधिक क्या हजार हजार पापी शव स्पर्श करके तुम्हारे जलमें स्नान करनेपर भी उन प्रकृतिमन्त्रोपासक साधुओंके स्पर्शसे तुम्हारे समस्तही पाप नष्ट होंगे ॥ ५२ ॥ हे शुभे ! तुम भारतमें सरस्वती इत्यादि श्रेष्ठ नदियोंके संग अवस्थान करके पापियोंके पापपङ्क प्रक्षालन करो ॥ ५३ ॥ जहां प्रकृति देवीकी महिमा कीर्तित होगी वह स्थान पवित्रतीर्थके नामसे विख्यात होगा तुम्हारी चरणरेणुके स्पर्शसे घोर पातकी भी पवित्र होंगे ॥ ॥ ५४ ॥ और वह निःसन्देह उस रेणुपरिमित वर्ष देवीलोक अर्थात् मणिद्वीपमें वास करेंगे जो ज्ञान सहित भक्तिपूर्वक मेरा नाम स्मरण करते करते ॥५५॥ तुम्हारे गोदमें देहत्याग करेंगे, वह निःसन्देह मेरे लोकमें जाकर अनन्तकालतक मेरे प्रधान पार्षद हो अवस्थान करेंगे ॥ ५६ ॥ कितनीही असंख्य प्राकृतप्रलय उनके दृष्टि

गोचर होगी जिनकी सीमा नहीं मृतपुरुषका महापुण्य न रहनेसे उसका देह तुम्हारे क्रोडमें कभी पात नहीं होसकता ॥ ५७ ॥ जबतक सूर्य उदय होंगे, तबतक वह पुरुष वैकुण्ठधाममें वास करेगा अनेक देह धारण कराय स्वकर्मफल भोगके अन्तमें ॥ ५८ ॥ उसको सारूप्य प्रदान करके पार्षद करता हूं यदि कोई अज्ञानी पुरुष तुम्हारे जलको स्पर्श करके देहत्याग करे ॥ ५९ ॥ उसको सालोक्य प्रदान करके पार्षद करता हूं अधिक क्या यत्किंचित् तुम्हारा नाम स्मरण करके स्थानान्तरमें भी देहत्याग करनेसे ॥ ६० ॥ ब्रह्माकी अवस्था तक उसको सालोक्य प्रदान करता हूं और यदि भक्तिभावसे तुम्हारा नामस्मरण करके अन्यत्र देहत्याग करे ॥ ॥ ६१ ॥ उसको असंख्य प्राकृतलयपर्यन्त सारूप्य प्रदान करता हूं, वह अतिउत्तम रत्ननिर्मित विमानमें बैठ, तत्काल पार्षदोंके सहित ॥ ६२ ॥ गोलोकमें जाय मेरे

प्रयातिसचवैकुंठंयावदह्नःस्थितिस्त्वयि ॥ कायव्यूहंततःकृत्वाभोजयित्वास्वकर्मकम् ॥ ५८ ॥ तस्मैददामिसारूप्यंकरोमितंचपार्षदम् ॥ अज्ञानीत्वज्जलस्पर्शाद्यदिप्राणान्समुत्सृजेत् ॥ ५९ ॥ तस्मैददामिसालोक्यंकरोमितंचपार्षदम् ॥ अन्यत्रवात्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥ ॥ ६० ॥ तस्मैददामिसालोक्यंयावद्वैब्रह्मणोवयः ॥ अन्यत्रवात्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥ ६१ ॥ तस्मैददामिसारूप्यमसंख्यंप्राकृतं लयम् ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणयानेनसहपार्षदैः ॥ ६२ ॥ सद्यःप्रयातिगोलोकंममतुल्योभवेद्ध्रुवम् ॥ तीर्थेऽप्यतीर्थेमरणेविशेषोनास्तिकश्चन ॥ ६३ ॥ मन्मंत्रोपासकानांतुनित्यंनैवेद्यभोजिनाम् ॥ पूतंकर्तुंसशक्तोहिलीलयाभुवनत्रयम् ॥ ६४ ॥ रत्नेंद्रसारयानेनगोलोकंसंप्रयांतिच ॥ मद्भक्तबांधवायेषांते ऽपिपश्वादयोपिहि ॥ ६५ ॥ प्रयांतिरत्नयानेनगोलोकंचाऽतिदुर्लभम् ॥ यत्रयत्रस्मृतास्तेचज्ञानेनज्ञानिनःसति ॥ ६६ ॥ जीवन्मुक्ताश्चतेपूतामद्भक्तेः संविधानतः ॥ इत्युक्त्वाश्रीहरिस्तांचप्रत्युवाचभगीरथम् ॥६७॥ स्तुहिगंगामिमांभक्त्यापूजांचकुरुसांप्रतम् ॥ भगीरथस्तांतुष्टावपूजयामासभक्तितः॥ ॥ ६८ ॥ कौथुमोक्तेनध्यानेनस्तोत्रेणाऽपिपुनःपुनः ॥ प्रणनामचश्रीकृष्णंपरमात्मानमीश्वरम् ॥ ६९ ॥

समान रूप धारण करसकता है उसको तीर्थ अतीर्थके मरनेमें कुछ विशेष नहीं है ॥ ६३ ॥ जो नित्य मेरे मंत्रकी उपासना करके मुझको निवेदन की हुई वस्तु भक्षण करता है वह भक्तजन लीलापूर्वकही त्रिभुवन पवित्र करसकताहै ॥ ६४ ॥ वह पुरुष सर्वोत्कृष्ट रत्ननिर्मित विमानमें चढकर गोलोकधाममें जाता है. हे पतिव्रते! मेरे भक्तके बांधवगणभी यदि पशुजन्मलाभ करें ॥ ६५ ॥ तो वह भी मेरी भक्तिके प्रभावसे पवित्र होकर रत्नमय विमानमें बैठ दुर्लभ गोलोकमें गमन कर सक्ते हैं भक्तगण जिस किसी स्थानमें वास क्यों न करें भक्तिपूर्वक मुझको स्मरण करने पर ॥ ६६ ॥ उस भक्तिके प्रभावसे वह जीवन्मुक्त होते हैं और पवित्र होते हैं भगवान् श्रीहरिने गंगासे इसप्रकार कहकर भगीरथसे कहा ॥ ६७ ॥ हे वत्स! अब तुम भक्तिपूर्वक गंगाका स्तव और गंगाकी पूजा करो तब भगीरथने भक्तिभावसे ॥ ६८ ॥ कौथुमीशाखोक्त ध्यानसे देवीकी

पूजा करके वारंवार उनकी स्तुति करी. अनन्तर गंगा और भगीरथके परमात्मरूपी श्रीकृष्णको प्रणाम करनेपर ॥ ६९ ॥ वह उनके सामनेही अन्तर्धान होगये. देवर्षि नारदजी बोले हे वेदविदग्रगण्य ! राजा भगीरथने कुथुमशाखोक्त किस ध्यान किस स्तोत्र और किस विधानसे ॥ ७० ॥ गंगाकी पूजा करी हे श्रेष्ठ ! वह कहिये. नारायणने कहा हे वत्स नारद ! प्रथम तो स्नानपूर्वक धौतवस्त्र पहर कर नित्य क्रिया करै ॥ ७१ ॥ फिर संयत होकर भक्तिभावसे गणेश दिनेश अग्नि विष्णु शिव और शिवा ॥ ७२ ॥ इन छः देवताओंकी पूजा करै क्योंकि इन छः देवताओंकी विना पूजा किये पूजाका अधिकारी नहीं होता. प्रथम विघ्नविनाशके लिये गणेश, आरोग्यता लाभके लिये सूर्य ॥ ७३ ॥ पवित्र होनेके लिये अग्निदेव, ऐश्वर्यलाभके लिये विष्णु, ज्ञानलाभके लिये शिव और मुक्तिलाभके लिये शिवानीकी पूजा

भगीरथश्चगंगाचसोंऽतर्धानंचकारह ॥ नारदउवाच ॥ केनध्यानेनस्तोत्रेणकेनपूजाक्रमेणच ॥ ७० ॥ पूजांचकारनृपतिर्वेदवेदविदांवर ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ स्नात्वानित्यक्रियांकृत्वाधृत्वाधौतेचवाससी ॥ ७१ ॥ संपूज्यदेवषट्कंचसंयतोभक्तिपूर्वकम् ॥ गणेशंचदिनेशंचवह्निंविष्णुंशिवं शिवाम् ॥ ७२ ॥ संपूज्यदेवषट्कंचसोऽधिकारीचपूजने ॥ गणेशंविघ्ननाशायआरोग्यायदिवाकरम् ॥ ७३ ॥ वह्निंशौचायविष्णुंचलक्ष्म्यर्थंपूजये न्नरः ॥ शिवंज्ञानायज्ञानेशंशिवांचमुक्तिसिद्धये ॥ ७४ ॥ संपूज्यैतांल्लभेत्प्राज्ञोविपरीतमतोऽन्यथा ॥ दध्यावनेनध्यानेनतद्ध्यानंशृणुनारद ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ध्यानंचकण्वशाखोक्तंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्वेतपंकजवर्णाभांगंगांपापप्रणाशिनीम् ॥ १ ॥ कृष्णविग्रहसंभूतांकृष्णतुल्यांपरांसतीम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानांरत्नभूषणभूषिताम् ॥ २ ॥ शरत्पूर्णेदुशतकमृष्टशोभाकरांपराम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ ३ ॥

करै ॥ ७४ ॥ इन सब देवताओंकी पूजा करनेसे कार्यमें अधिकार होता है नहीं तो विपरीत फल प्राप्त होता है अब भगीरथने जिस ध्यान द्वारा गंगाका ध्यान किया था वह कहताहूं सुनो ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ नारायणने कहा हे वत्सनारद ! अब पापनाशक काण्वशाखोक्त गंगाका ध्यान कहताहूं सुनो. हे श्वेतसरोजवर्णे गङ्गे ! तुम सबके समस्त पाप ध्वंस करती हो ॥ १ ॥ तुम्हीं श्रीकृष्णके शरीरसे उत्पन्न हुई हो, तुम्हीं श्रीकृष्णके समान सामर्थ्यशालिनी हो, तुम्हारे समान सती अन्य दूसरी नहीं है. तुम अग्निपरीक्षित विशुद्ध वस्त्र पहरती हो, तुम्हारा सर्वाङ्ग रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित है ॥ २ ॥ तुमने शरत्कालीन शतपूर्णचन्द्रमाकी अपेक्षा उज्ज्वल ज्योति धारण की है. ईषत्हास्यसे

तुम्हारा मुखमंडल सदा प्रसन्न रहता है और तुम आजीवन स्थिरयौवना हो ॥ ३ ॥ तुम्हीं शान्तस्वभाव नारायणकी प्रियतमा और उनके सौभाग्यगर्वसे गर्विता हो तुम मालतीमालासे विभूषित केशभारसंपन्न हो ॥ ४ ॥ तुम्हारा गण्डदेश चन्दनबिन्दु सिंदूरबिन्दु और नानाविध विचित्र कस्तूरी (———) रेखासे कैसा सुसज्जित रहता है ॥ ५ ॥ तुम्हारे परिहित वस्त्र और अतिमनोहर ओष्ठपुट परिपक्वबिम्बाफलकी अपेक्षाभी लोहित वर्ण हैं तुम्हारे दांतोंकी पंक्ति मुक्तापंक्तिकी शोभाका तिरस्कार करती है ॥ ६ ॥ तुम्हारे नयन कैसे मनोहर हैं तुम्हारा अपाङ्ग विलोकन कैसा आनन्दजनक है तुम्हारे दोनों स्तन श्रीफलके समान कैसे कठिन हैं ॥ ७ ॥ नितम्बदेश रंभास्तम्भकी अपेक्षा कैसे कठिन और सुघन हैं दोनों चरणकमलोंने स्थलपद्मकी शोभाका तिरस्कार करके कैसी शोभा धारण की है ॥८॥ चरणमें

नारायणप्रियांशांतांतत्सौभाग्यसमन्विताम् ॥ बिभ्रतींकबरीभारंमालतीमाल्यसंयुतम् ॥ ४ ॥ सिंदूरबिंदुललितंसार्धचंदनबिंदुभिः ॥ कस्तूरीपत्रकंगंडेनानाचित्रसमन्वितम् ॥ ५ ॥ पक्वबिंबविनिंद्याच्छचार्वोष्ठपुटमुत्तमम् ॥ मुक्तापंक्तिप्रभामुष्टदंतपंक्तिमनोरमम् ॥ ६ ॥ सुचारुवक्त्रनयनंसकटाक्षंमनोहरम् ॥ कठिनंश्रीफलाकारंस्तनयुग्मंचबिभ्रतीम् ॥ ७ ॥ बृहच्छ्रोणिंसुकठिनांरंभास्तंभविनिंदिताम् ॥ स्थलपद्मप्रभामुष्टपदपद्मयुगंवरम् ॥ ८ ॥ रत्नपादुकसंयुक्तंकुंकुमाक्तंसयावकम् ॥ देवेंद्रमौलिमंदारमकरंदकणारुणम् ॥ ९ ॥ सुरसिद्धमुनींद्रैश्चदत्तार्घसंयुतंसदा ॥ तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम् ॥ १० ॥ मुक्तिप्रदंमुमुक्षूणांकामिनांसर्वभोगदम् ॥ वरांवरेण्यांवरदांभक्तानुग्रहकारिणीम् ॥ ११ ॥ श्रीविष्णोःपददात्रींचभजेविष्णुपदींसतीम् ॥ इत्यनेनैवध्यानेनध्यात्वात्रिपथगांशुभाम् ॥ १२ ॥ दत्त्वासंपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचाराणिषोडश ॥ आसनंपाद्यमर्घंचस्नानीयंचाऽनुलेपनम् ॥ १३ ॥

लोहित वर्ण पादुका कुंकुम और अलक्तक कैसी शोभा पाता है देवेन्द्रके मस्तकस्थित पारिजात कुसुमके मकरन्दमें दोनों चरणोंने कैसा अरुणिमा राग धारण किया है ॥ ९ ॥ देवता सिद्ध तथा मुनींद्रोंका दियाहुआ अर्घ्य चरणोंमें कैसी शोभा पाता है. तपस्वियोंके मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेसे बोध होता है कि, मानों चरण कमलोंमें भ्रमरपंक्ति सन्निविष्ट हुई है॥ १० ॥ हे मातः ! तुम्हारे पादपद्म मुक्तिकी कामना करनेवालेको मुक्ति और भोगकी अभिलाषा करनेवालेको भोग प्रदान करते हैं. हे मातः ! तुम्हीं वर तुम्हीं वरेण्य तुम्हीं वरद और तुम्हीं भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हो॥ ११ ॥ तुम्हीं विष्णुपद प्रदानकरती हो और तुम्हीं विष्णुपदसे उत्पन्न हुईहो सतीहो तुमको प्रणाम करताहूं. हे वत्स ! इस ध्यानसे त्रिपथगा शुभदायिनी गंगाका ध्यान करके॥ १२ ॥ षोडशोपचारसे पूजे आसन पाद्य अर्घ्य स्नानीय अनुलेपन ॥ १३ ॥

धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, सुशीतल जल, वसन, भूषण, माल्य, चंदन, आचमनीय ॥ १४ ॥ और मनोहर शय्या इन षोडश उपचारोंसे देवीकी पूजाकरै फिर हाथजोडेहुए स्तव करके भक्तिभावसे प्रणाम करे ॥ १५ ॥ इसप्रकार पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है. नारदजीने कहा हे देवेश ! अब लक्ष्मीकान्त जगत्पति विष्णुके ॥ १६ ॥ चरणोंसे उत्पन्न पतितपावनी श्रीगंगादेवीका पापनाशक पुण्यप्रद स्तोत्र सुननेकी इच्छा करता हूं, आप कहिये नारायण बोले हे वत्स नारद ! अब पापनाशक पुण्यप्रद ॥ १७ ॥ गंगास्तोत्र कीर्त्तन करता हूं सुनो. जो शिवके संगीतसे मोहित हो श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हैं और श्रीराधाके अंग जलमें सिंचित हैं उन गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ १८ ॥ सृष्टिके पहिले गोलोक धाममें रासमंडलके मध्य जिनका जन्म हुआ है, जो सदा शंकरके समीप वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ १९ ॥

धूपंदीपंचनैवेद्यंतांबूलंशीतलंजलम् ॥ वसनंभूषणंमाल्यंगंधमाचमनीयकम् ॥ १४ ॥ मनोहरंसुतल्पंचदेयान्येतानिषोडश ॥ दत्त्वाभक्त्या चप्रणमेत्संस्तूयसंपुटांजलिः ॥ १५ ॥ संपूज्यैवंप्रकारेणसोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥ नारदउवाच ॥ श्रोतुमिच्छामिदेवेशलक्ष्मीकांतजगत्पते ॥ १६ ॥ विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रंपापघ्नंपुण्यकारकम् ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ शृणुनारदवक्ष्यामिपापघ्नंपुण्यकारणम् ॥ १७ ॥ शिवसंगीतसंमुग्धश्री कृष्णांगसमुद्भवाम् ॥ राधांगद्रवसंयुक्तांतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ १८ ॥ यज्जन्मसृष्टेरादौचगोलोकेरासमंडले ॥ सन्निधानेशंकरस्यतांगंगांप्रण माम्यहम् ॥ १९ ॥ गोपैर्गोपीभिराकीर्णेशुभेराधामहोत्सवे ॥ कार्त्तिकीपूर्णिमायांचतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २० ॥ कोटियोजनविस्तीर्णादैर्घ्येलक्षगुणात तः ॥ समावृतायागोलोकंतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २१ ॥ षष्टिलक्षयोजनायाततोदैर्घ्येचतुर्गुणा ॥ समावृतायावैकुंठेतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २२ ॥ त्रिंशल्लक्षयोजनायादैर्घ्येपंचगुणाततः ॥ आवृताब्रह्मलोकेयातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २३ ॥ त्रिंशल्लक्षयोजनायादैर्घ्येचतुर्गुणाततः ॥ आवृताशिवलोके यातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २४ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णादैर्घ्येसप्तगुणाततः ॥ आवृताध्रुवलोकेयातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २५ ॥

जिन्होंने कार्त्तिककी पूर्णिमाको गोप और गोपीमण्डलमें समाकीर्ण शुभप्रद राधाके रासमहोत्सवमें अवस्थान किया, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २० ॥ जो विस्तारमें करोड़ योजन और दीर्घतामें अपना लक्षगुण स्थान अधिकार करके गोलोक धाममें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २१ ॥ जो विस्तारमें साठलाख और दैर्घ्यमें उससे चतुर्गुण स्थान अधिकार करके वैकुण्ठमें वासकरती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २२ ॥ जो विस्तारमें तीसलाख योजन और दीर्घतामें उससे पचगुना स्थान अधिकार करके ब्रह्मलोकमें वास करती हैं उन्हींगंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २३ ॥ जो विस्तारमें त्रिंशल्लक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे चतुर्गुण स्थान अधिकार करके शिवलोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ जो विस्तारमें लक्षयोजन और दैर्घ्यमें उससे सातगुण

स्थान अधिकार करके ध्रुव लोकमें वास करती हैं, उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २५ ॥ जो विस्तारमें लक्षयोजन और दैर्घ्यमें उससे पांच गुणा स्थान अधिकार करके चन्द्रलोकमें वास करती हैं, उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ जो विस्तारमें साठहजार योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके सूर्य लोकमें वास करती हैं, उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २७ ॥ जो विस्तारमें लक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पांच गुण स्थान अधिकार करके तपोलोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ जो विस्तारमें हजार योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके जनलोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ जो विस्तारमें दशलक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पचगुणा स्थान अधिकार करके महर्लोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम

लक्षयोजनविस्तीर्णादैर्घ्येपंचगुणाततः ॥ आवृताचंद्रलोकेयातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २६ ॥ षष्टिसहस्रयोजनायादैर्घ्येदशगुणाततः ॥ आवृतासूर्यलोकेयातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २७ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णादैर्घ्येपंचगुणाततः ॥ आवृतायातपोलोकेतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २८ ॥ सहस्रयोजनायामादैर्घ्येदशगुणाततः ॥ आवृताजनलोकेयातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ २९ ॥ दशलक्षयोजनायादैर्घ्येपंचगुणाततः ॥ आवृतायामहर्लोकेतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ ३० ॥ सहस्रयोजनायामादैर्घ्येशतगुणाततः ॥ आवृतायाचकैलासेतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ शतयोजनविस्तीर्णादैर्घ्येदशगुणाततः ॥ मंदाकिनीयेंद्रलोकेतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ ३२ ॥ पातालेभोगवतीचैवविस्तीर्णादशयोजना ॥ ततोदशगुणादैर्घ्येतांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ ३३ ॥ क्रोशैकमात्रविस्तीर्णाततःक्षीणाचकुत्रचित् ॥ क्षितौचाऽलकनंदायातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ ३४ ॥ सत्येयाक्षीरवर्णाचत्रेतायामिंदुसन्निभा ॥ द्वापरेचंदनाभायातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ ३५ ॥

करता हूं ॥ ३० ॥ जो विस्तारमें सहस्र योजन और दैर्घ्यमें उससे शतगुण स्थान अधिकार करके कैलासमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ जो मन्दाकिनी नामसे विख्यात होकर विस्तारमें शतयोजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके इन्द्रलोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३२ ॥ जो भोगवती नामसे विख्यात होकर विस्तारमें दश योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके पाताल तलमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ जो भूमंडलमें अलकनन्दाके नामसे विख्यात होकर विस्तारमें एक कोश वा किसी स्थानमें उसकी अपेक्षा कुछेक न्यून होकर बहती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३४ ॥ जो सत्ययुगमें क्षीरवर्ण, त्रेतायुगमें चन्द्रवर्ण और द्वापरमें चंदनवर्ण होकर बहती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३५ ॥

जो कलियुगमें केवल भूमण्डलमें जलमयी और स्वर्गमें क्षीरमयी होकर बहती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं॥ ३६॥ हे वत्स ! इन गंगाके जलकणस्पर्शसे प्राणियोंके ज्ञानकृत कोटिजन्मार्जित ब्रह्महत्यादि सब भारी पातक भस्म होजाते हैं॥ ३७॥ हे वत्सनारद ! इसप्रकार इक्कीस पद्यमें पापनाशक और पुण्यवर्द्धक गंगाका परमस्तोत्र कहा गया है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक सुरेश्वरी गंगाकी पूजा करके उनका स्तव करता है उसको अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ इसके प्रभावसे अपुत्र पुरुषको पुत्र और भार्याहीन पुरुषको भार्या लाभ होती है, रोगी पुरुष रोगसे छूटता है और बँधा हुआ पुरुष बंधनसे छूट जाता है ॥ ४० ॥ जो प्रतिदिन प्रातःकालके समय उठकर गंगास्तव पाठ करता है, वह पुरुष अख्यात नाम होनेपर भी विख्यात नाम और

जलप्रभाकलौयाचनाऽन्यत्रपृथिवीतले ॥ स्वर्गेचनित्यंक्षीराभातांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥ ॥ ३६ ॥ यत्तोयकणिकास्पर्शेपापिनांज्ञानसंभवः ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापंकोटिजन्मार्जितंदहेत् ॥ ३७ ॥ इत्येवंकथिताब्रह्मन्गंगापद्यैकविंशतिः ॥ स्तोत्ररूपंचपरमंपापघ्नंपुण्यजीवनम् ॥३८॥ नित्यंयोहिपठेद्भक्त्यासंपूज्यचसुरेश्वरीम् ॥ सोऽश्वमेधफलंनित्यंलभतेनाऽत्रसंशयः ॥ ३९ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रंभार्याहीनोलभेत्स्त्रियम् ॥ रोगात्प्रमुच्यतेरोगीबंधान्मुक्तोभवेद्ध्रुवम् ॥४०॥ अस्पष्टकीर्तिःसुयशामूर्खोभवतिपंडितः ॥ यःपठेत्प्रातरुत्थायगंगास्तोत्रमिदंशुभम् ॥ ४१ ॥ शुभंभवेच्चदुःस्वप्नेगंगास्नानफलंलभेत् ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ स्तोत्रेणाऽनेनगंगांचस्तुत्वाचैवभगीरथः ॥ ४२ ॥ जगामतांगृहीत्वाचयत्रनष्टाश्चसागराः ॥ वैकुंठंतेययुस्तूर्णंगंगायाःस्पर्शवायुना ॥ ४३ ॥ भगीरथेनसानीतातेनभागीरथीस्मृता ॥ इत्येवंकथितंसर्वंगंगोपाख्यानमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ पुण्यदंमोक्षदंसारंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ नारदउवाच ॥ कथंगंगात्रिपथगाजाताभुवनपावनी ॥ ४५ ॥

अज्ञानान्ध होनेपर भी ज्ञानालोकमें पूर्ण होता है ॥ ४१ ॥ उसको दुःस्वप्नदर्शन सुस्वप्न और नित्य गंगास्नानजनित पुण्य लाभ होता है. नारायणने कहा हे वत्स नारद ! राजा भगीरथ उपरोक्त स्तोत्रसे गंगाका स्तव करके ॥ ४२ ॥ उनको संग ले जहां सगरसन्तानगण कपिलदेवके शापसे भस्म हुए थे वहां गये. भागीरथीके सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे वह तत्काल मुक्त होकर वैकुण्ठधाममें चलेगये ॥ ४३ ॥ भगीरथ जो गंगाको भूलोकमें लायेथे, इस कारण इनका नाम भागीरथी हुआ है. हे वत्स ! यह मैंने तुम्हारे निकट गंगाका उपाख्यान वर्णन किया ॥ ४४ ॥ यह उपाख्यान अतीव पुण्यप्रद और मोक्षपथका सोपान है, अब क्या सुननेकी

अभिलाषा है सो प्रकाश करो. नारदने कहा हे प्रभो ! गंगा त्रिपथगा होकर किसप्रकार त्रिभुवनपावनी हुई ॥ ४५ ॥ कौन किसप्रकार उनको किसस्थानमें लेगया था और उस स्थानके रहनेवाले पुरुषोंने उनके संबंधमें किसप्रकार व्यवहार कियाथा ॥ ४६ ॥ यह सब आनुपूर्विसे वर्णन कीजिये. नारायण बोले हे वत्स नारद ! कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन श्रीराधाके महोत्सवमें ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्णने राधाकी पूजा करके रासमण्डलमें स्थिति की. तब कृष्णकी पूजित राधाकी प्रसन्नतासे पूजा करके ॥ ४८ ॥ ब्रह्मादि देवता और शौनकादि ऋषि परमानंदपूर्वक वहां वास करनेलगे. इसी समय कृष्णविषयिणी संगीतशास्त्रकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ॥४९॥ मनोहर ताल लयपूर्वक वीणायंत्रमें गान करनेलगी. तब ब्रह्माजीने सरस्वतीको संतुष्ट होकर रत्नमय हार ॥ ५० ॥ महादेवजीने ब्रह्माण्डमें दुर्लभमणि कृष्णने

कुत्रवाकेनविधिनातत्सर्ववदमेप्रभो ॥ तत्रस्थाश्चजनायेयेतेचकिंचकुरुत्तमम् ॥४६॥एतत्सर्वंतुविस्तीर्णंकृत्वावक्तुमिहाऽर्हसि ॥नारायणउवाच॥कार्तिक्यां पूर्णिमायांतुराधायाःसुमहोत्सवः॥४७॥कृष्णःसंपूज्यतांराधामुवासरासमंडले॥कृष्णेनपूजितांतांतुसंपूज्यहृष्टमानसाः ॥ ४८ ॥ ऊषुर्ब्रह्मादयःसर्वेऋषयः शौनकादयः॥एतस्मिन्नंतरेकृष्णसंगीताचसरस्वती॥४९॥जगौसुंदरतालेनवीणयाचमनोहरम्॥तुष्टोब्रह्माददौतस्यैरत्नेंद्रसारहारकम्॥५०॥ शिवोमणींद्रसारंतुसर्वब्रह्मांडदुर्लभम्॥कृष्णःकौस्तुभरत्नंचसर्वरत्नात्परंवरम्॥५१॥अमूल्यरत्ननिर्माणंहारसारंचराधिका॥नारायणश्चभगवान्ददौमालांमनोहराम् ॥५२॥ अमूल्यरत्ननिर्माणंलक्ष्मीःकनककुंडलम् ॥ विष्णुमायाभगवतीमूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ५३ ॥ दुर्गानारायणीशानाब्रह्मभक्तिंसुदुर्लभाम् ॥ धर्मबुद्धिंचधर्मश्चयशश्चविपुलंभवे ॥ ५४ ॥ वह्निशुद्धांशुकंवह्निर्वायुश्चमणिनूपुरान् ॥ एतस्मिन्नंतरेशंभुर्ब्रह्मणाप्रेरितोमुहुः ॥ ५५॥ जगौश्रीकृष्णसंगीतंरासोल्लाससमन्वितम् ॥ मूर्छांप्रापुःसुराःसर्वेचित्रपुत्तलिकायथा ॥ ५६ ॥ कष्टेनचेतनांप्राप्यददृशूरासमंडले ॥ स्थलंसर्वंजलाकीर्णंराधाकृष्णविहीनकम् ॥ ५७ ॥

सर्वोत्कृष्ट कौस्तुभमणि ॥ ५१ ॥ राधिकाने अमूल्य रत्ननिर्मित उत्कृष्ट हार नारायणने मनोहर सर्वोत्कृष्ट रत्नमयमाला ॥ ५२ ॥ लक्ष्मीने अमूल्य रत्नखचित कनक कुण्डल तथा जो विष्णुमाया मूलप्रकृति भगवती ॥ ५३ ॥ दुर्गा नारायणी ईश्वरी और ईशानी हैं उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मभक्ति धर्मने धर्ममें भक्ति और विपुल यश ॥ ५४ ॥ अग्निने अग्निपरिक्षित उत्कृष्ट वस्त्र और वायुने अतिउत्तम मणिमय नूपुरप्रदान किये. इसी समय भूतपति महादेवजीने ब्रह्माजीके वचनानुसार ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णके रासोत्सवविषयक संगीत आरंभ किया. देवता यह देख मोहित हो चित्रलिखित पुतलीके समान रहगये और मूर्च्छित होगये ॥ ५६ ॥ यही क्या वरन् अत्यन्त

कष्टसे उनको चैतन्यता प्राप्त हुई तब उन्होंने देखा कि, रासमंडलमें वह राधाभी नहीं है और वह कृष्णभी नहीं हैं, सम्पूर्ण जलमय है॥५७॥ तब गोप, गोपी, देवता और ब्राह्मण उच्चस्वरसे रोनेलगे तब ब्रह्माजीने ध्यानमें स्थित होकर जाना कि, अब कुछ नहीं है, तीर्थ है ॥ ५८ ॥ संसारवासी पुरुषोंका उद्धार करनेके लियेही राधा और कृष्ण दोनोंने जलमयी मूर्त्ति धारण की है. हे वत्स नारद! तिस समय ब्रह्मादि सभी परमेश श्रीकृष्णकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ५९ ॥ और कहनेलगे हे विभो! तुम अब हमको अपनी मूर्ति दिखाकर अभिलषित वर दो. उसी समय अतिमधुर यह आकाशवाणी स्पष्टही ॥ ६० ॥ सबके कानोंमें प्रविष्टहुई कि "मैं सर्वात्मा अर्थात् सर्वव्यापी और यह शक्तिरूपिणी राधाभी सर्वव्यापिनी है ॥६१॥ सुतरां मेरे वा राधाके संग क्षणकालके लियेभी तुम्हारा वियोग नहीं होगा तो मैं केवल भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके निमित्त देह धारण करता हूं. इसीलिये मेरे देह मात्रसे केवल तुम्हारा वियोग है नहीं तो और कुछ नहीं है

अत्युच्चैरुरुदुःसर्वेगोपागोप्यःसुराद्विजाः ॥ ध्यानेनब्रह्माबुबुधेसर्वंतीर्थमभीप्सितम् ॥ ५८ ॥ गतश्चराधयासार्धंश्रीकृष्णोद्रवतामिति ॥ ततोब्रह्मादयःस र्वेतुष्टुवुःपरमेश्वरम् ॥ ५९ ॥ स्वमूर्तिंदर्शयविभोवांछितंवरमेवनः ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रवाग्बभूवाऽशरीरिणी ॥ ६० ॥ तामेवशुश्रुवुःसर्वेसुव्यक्तांमधुरान्वि ताम् ॥ सर्वात्माऽहमियंशक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा ॥ ६१ ॥ ममाऽप्यस्याश्चदेहेनकर्तव्यंचकिमावयोः ॥ मनवोमानवाःसर्वेमुनयश्चैववैष्णवाः ॥ ६२ ॥ म न्मंत्रपूतामांद्रष्टुमागमिष्यंतिमत्पदम् ॥ मूर्तिंद्रष्टुंचसुव्यक्तांयदीच्छथसुरेश्वराः ॥ ६३ ॥ करोतुशंभुस्तत्रैवंमदीयंवाक्यपालनम् ॥ स्वयंविधातस्त्वंब्रह्मन्ना ज्ञांकुरुजगद्गुरुम् ॥ ६४ ॥ कर्तुंशास्त्रविशेषंचवेदांगंसुमनोहरम् ॥ अपूर्वमंत्रनिकरैःसर्वाभीष्टफलप्रदैः ॥ ६५ ॥ स्तोत्रैश्चनिकरैर्ध्यानैर्युतंपूजाविधिक्रमैः॥ मन्मंत्रकवचस्तोत्रंकृत्वायत्नेनगोपनम् ॥ ६६ ॥ भवंतिविमुखायेनजनामांतत्करिष्यति ॥ सहस्रेषुशतेष्वेकोमन्मंत्रोपासकोभवेत्॥६७॥जनामन्मंत्रपूता श्चगमिष्यंतिचमत्पदम्॥अन्यथानभविष्यंतिसर्वेगोलोकवासिनः॥६८॥निष्फलंभवितासर्वंब्रह्मांडंचैवब्रह्मणः॥जनाःपंचप्रकाराश्चयुक्ताःस्रष्टुंभवेभवे॥६९॥

मेरे देहसे भी तुम्हारा कुछ प्रयोजन नहीं है. हे देवगण! तो भी यदि मेरे मंत्रपूत मनुगण, मानवगण, मुनिगण, वैष्णवगण ॥ ६२ ॥ और तुम मेरी स्पष्टमूर्त्ति देखनेकी अत्यन्तही अभिलाषा करते हो तो मैं जो कहता हूं ॥ ६३ ॥महेश्वरसे मेरा यह वचन प्रतिपालन करनेको कहो. हे ब्रह्मन्! विधातः! तुम जग द्गुरु महादेवजीको यह आज्ञा दो ॥ ६४ ॥ कि, वह वेदाङ्गसंगत मनोहर तन्त्रशास्त्रप्रणयन करैं और यह शास्त्र अभीष्टप्रद मंत्रसमूह ॥ ६५ ॥ स्तोत्र यथाविधि पूजा क्रमयुक्त ध्यानसे परिपूर्ण हो और इसमें मेरामंत्र कवच और स्तोत्र गूढभावसे सन्निवेशित रहै॥६६॥जिससे पापिष्ठ मनुष्यगण उसके मर्मावरोधमें असमर्थ होकर मेरे प्रति अत्यन्त विमुख हों जिससे सहस्रमें अथवा सौ मनुष्योंमें एकजन मेरा मंत्रोपासक हो ॥ ॥ ६७ ॥ और मेरे मंत्रोपासक साधुगण पूतात्मा होकर मेरे लोकमें गमन कर सकें मेरा शास्त्रप्रणीत न होनेसे अर्थात् यदि सभी इस शास्त्रके मर्मावरोधमें समर्थहोंगे और यदि सभी भूलोकसे गोलोकमें जाँयगे ॥ ६८ ॥ तो तुम्हारा ब्रह्माण्डकारण

निष्फल होगा अतएव तुम सात्विक तामसिकादि भेदसे पंचप्रकार तथा नाना प्रकार लोकोंकी सृष्टि करो तो ॥ ६९ ॥ अपने कर्मके वश कोई भूलोकवासी और कोई कोई द्युलोकवासी होंगे. हे ब्रह्मन् ! यदि महादेव देवसभाके सामने ॥ ७० ॥ तंत्रशास्त्र बनानेके विषयमें दृढ प्रतिज्ञा करैं तो मैं अपनी मूर्त्ति दिखाऊं हे वत्सनारद ! सनातन पुरुष श्रीकृष्ण यह कहकर विरत होगये ॥ ७१ ॥ इसप्रकार आकाशवाणीके अन्तमें जगत्कर्त्ता ब्रह्माजीने उसको सुननेसे आनन्दित होकर शिवजीको उस आकाशवाणीका मर्म समझाया. ज्ञानियोंमें अग्रणी ज्ञानकेअधीश्वर भूतनाथने विधाताका वचन सुन ॥ ७२ ॥ गंगाजल हाथमें लेकर प्रतिज्ञापूर्वक कहा मैं राधा मंत्रसे परिपूर्ण वेदका अविरोधी ॥ ७३ ॥ तंत्र शास्त्र प्रणयन करूंगा गंगाजल स्पर्श करके यदि कोई मिथ्या बात कहै ॥ ७४ ॥ तो वह ब्रह्माकी अवस्थाके कालतक घोरतर कालसूत्र नामक नरकमें वास करता है हे द्विजवर ! गोलोकस्थित सुरसभाके सामने जब भगवान् शंकरने इसप्रकार कहा

पृथिवीवासिनःकेचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः ॥ इदंकर्तुंमहादेवःकरोतिदेवसंसदि ॥७०॥ प्रतिज्ञांसुदृढांसद्यस्ततोमूर्तिंचद्रक्ष्यति ॥ इत्येवमुक्त्वागगनेवि रराम सनातनः ॥ ७१ ॥ तच्छ्रुत्वाजगतांधातातमुवाचाशिवंमुदा ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वाज्ञानेशोज्ञानिनांवरः ॥ ७२ ॥ गंगातोयंकरेकृत्वास्वीकारंचचकार सः ॥ संयुक्तंविष्णुमायायामंत्रौघःशास्त्रमुत्तमम् ॥७३॥ वेदसारंकरिष्यामिप्रतिज्ञापालनायच ॥ गंगातोयमुपस्पृश्यमिथ्यायदिवदेज्जनः ॥ ७४ ॥ सया तिकालसूत्रंचयावद्वैब्रह्मणोवयः ॥ इत्युक्तेशंकरेब्रह्मन्गोलोकेसुरसंसदि॥ ७५ ॥ आविर्बभूवश्रीकृष्णोराधयासहितस्ततः ॥ तंसुदृष्ट्वाचसंहृष्टास्तुष्टुवुःपुरु षोत्तमम् ॥ ७६ ॥ परमानंदपूर्णाश्चचक्रुश्चपुनरुत्सवम् ॥ कालेनशंभुर्भगवान्मुक्तिदीपंचकारसः ॥ ७७ ॥ इत्येवंकथितंसर्वंसुगोप्यंचसुदुर्लभम् ॥ सएव द्रवरूपासागंगागोलोकसंभवा ॥ ७८ ॥ राधाकृष्णांगसंभूताभुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ स्थानेस्थानेस्थापितासाकृष्णेनचपरात्मना ॥ ७९ ॥ कृष्ण स्वरूपापरमासर्वब्रह्मांडपूजिता ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ ७५ ॥ तब श्रीकृष्ण राधासहित वहां प्रगट हुए उनको देखतेही फिर देवताओंके आनन्दकी सीमा न रही, तिस समय वह उन पुरुषोत्तमकी स्तुति करके ॥ ७६ ॥ फिर पूर्ववत् आनंदसे रासमहोत्सवमें प्रवृत्त हुए अनन्तर कुछ काल पीछे महादेवजीने मुक्तिदीप प्रज्वलित किया अर्थात् महादेवजीके द्वारा पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार तंत्र शास्त्र प्रकाशित हुआ ॥ ७७ ॥ हे वत्स ! यह मैं ने तुम्हारे निकट अति दुर्लभ गोपनीय वृत्तान्त प्रकाशित किया वह श्रीकृष्णही गोलोकसंभूत द्रवमयी गंगा हैं॥ ७८॥ अभिन्न देह राधा और कृष्ण अंगोत्पन्न गंगा सबको भोगैश्वर्य और मुक्तिप्रदान करती हैं परमात्मा श्रीकृष्णने उनको स्थान स्थानमें स्थापित किया है ॥ ७९॥ सुतरां गंगा श्रीकृष्णस्वरूप और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके सर्वत्र सबके द्वारा समानपूजनीय हैं॥ ८० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

देवर्षि नारदने कहा हे सुरेश्वर ! कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर देवी गंगा किसलोकमें गई थीं ? सो कहिये ॥ १ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! भागीरथी भारतीके शापसे भारतमें अवतीर्ण होकर फिर ईश्वरकी इच्छासे शापके अन्तमें वैकुण्ठ धामको गईं ॥ २ ॥ और इस ओर भी जैसेही शापका अवसान हुआ उसी समय भारती और पद्मावती दोनों भारत त्यागकर नारायणके समीप गईं ॥ ३ ॥ गंगा लक्ष्मी और सरस्वती यह तीन एवं तुलसी यह चार श्रीहरिकी प्रियतमा हैं ॥ ४ ॥ नारदने कहा हे भगवान् ! गंगा किसप्रकार विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुईं ब्रह्माजीने किस निमित्त उनको कमण्डलुमें धरा था. सुना है कि, वह शिवकी पत्नी हैं ॥५॥ तो फिर किसप्रकार नारायणकी पत्नी हुईं ? हे मुनिवर ! यह सब वृत्तान्त आदिसे अन्ततक मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ नारायणने कहा हे मुने ! पूर्व कालके समय गंगाने शिवलोकमें द्रवमूर्त्ति धारण की थी. गंगा श्रीकृष्ण और राधाके अंगसे उत्पन्न हैं सुतरां वह दोनोंकाही अंश और आत्मस्वरूपिणी हैं ॥७॥

नारदउवाच ॥ कलेःपंचसहस्राब्देसमतीतेसुरेश्वर ॥ क्वगतासामहाभागतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ नारायणउवाच ॥ भारतंभारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया ॥ जगामतत्रवैकुंठेशापांतेपुनरावसो ॥२॥ भारतीभारतंत्यक्त्वातज्जगामहरेःपदम् ॥ पद्मावतीचशापांतेगंगासाचैवनारद ॥३॥ गंगासरस्वतीलक्ष्मीश्चैतास्तिस्रःप्रियाहरेः ॥ तुलसीसहिताब्रह्मंश्चतस्रःकीर्तिताःश्रुतौ ॥४॥ नारदउवाच॥केनोपायेनसादेवीविष्णुपादाब्जसंभवा ॥ ब्रह्मकमंडलुस्थाचश्रुताशिवप्रियाचसा ॥५ ॥ बभूवसामुनिश्रेष्ठगंगानारायणप्रिया ॥ अहोकेनप्रकारेणतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीनारायणउवाच॥ पुराबभूवगोलेकेसागंगाद्रवरूपिणी ॥ राधाकृष्णांगसंभूतातदंशातत्स्वरूपिणी ॥७॥ द्रवाधिष्ठातृदेवीयारूपेणाऽप्रतिमाभुवि ॥ नवयौवनसंपन्नासर्वाभरणभूषित ॥ ८॥ शरन्मध्याह्नपद्मास्यासस्मितासुमनोहरा ॥ तप्तकांचनवर्णाभाशरच्चंद्रसमप्रभा ॥ ९ ॥ स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धाशुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ सुपीनकठिनश्रोणिःसुनितंबयुगंवरा ॥ १० ॥ पीनोन्नतंसुकठिनंस्तनयुग्मंसुवर्तुलम् ॥ सुचारुनेत्रयुगलंसुकटाक्षंसुवंक्रिमम् ॥ ११ ॥ वंक्रिमंकवरीभारंमालतीमाल्यसंयुतम् ॥ सिंदूरबिंदुललितंसार्धचंदनबिंदुभिः ॥ १२ ॥

वह जलकी अधिष्ठात्री देवी हैं उनके समान रूपवती भूमंडलमें दूसरी नहीं है वह नवयौवनसे युक्त और सब प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हैं ॥ ८ ॥ शरत्कालीन मध्याह्नपंकजके समान उनके मुखमें हँसी रहती है. रूप अतीव मनोहर शरीरका वर्ण तप्तकांचनके समान और प्रभा शरत्कालीन चन्द्रमाके समान है ॥ ९ ॥ उनकी प्रभाके देखनेसे नयन और मन अतिशय स्निग्ध होते हैं वह स्वयं अति शुद्ध सत्वस्वरूपा हैं और नितम्ब पीन और कठिन हैं, उनके ऊपर अत्युत्कृष्ट वस्त्र ढका हुआ है ॥ १० ॥ उनके दोनों स्तन पीन, उन्नत, कठिन और सुगोल हैं नयनयुगल अति मनोहर सदा वक्रभावसे अपाङ्गमें विलोकन ॥ ११ ॥ एक तो वङ्किमभावसे कवरी बन्धन उसके ऊपर मालतीमालाके समर्पित होनेसे अधिक मनोहर हुई हैं, उनके भालमें चन्दनबिन्दुके ऊपर सिन्दूर लगा होनेसे शोभाकी

सीमा नहीं है ॥ १२॥ और गण्डोपरि कस्तूरी पत्रकी रचना होनेसे क्या सुंदरता हुई है, उनके दोनों ओष्ठने बन्धुक पुष्पके समान रक्तवर्ण आभा धारणकी है ॥ १३ ॥ उनके दांतोंकी पंक्ति देखनेसे बोध होता है मानों सुपक्व दाडिमबीज श्रेणीबद्ध होकर स्थापित हैं उन्होंने नीवीस्थान (चीन) पर्यन्त अग्नि विशुद्ध वस्त्र युगल धारण किये हैं ॥ १४ ॥ हे वत्स नारद ! ऐसी रूपलावण्यवती और वेष भूषासंपन्न गंगा रति लाभकी इच्छाकर लज्जाभावसे वस्त्राञ्चलसे अपना मुख ढक श्रीकृष्णके पार्श्वमें बैठ अनिमेष नयनसे ॥ १५ ॥ परमानन्दपूर्वक उनका चन्द्र वदन पान करने लगी. नवसमागम लाभके आनंदसे उनका मुखकमल अत्यन्त प्रफुल्लित होगया ॥ १६ ॥ वह श्रीकृष्णका रूप देखकर मूर्च्छित होगई उनका सर्वांग रोमाञ्चित होगया. इसी अवसरमें कृष्णप्राणा राधिका वहां उपस्थित हुई ॥ १७ ॥ तीस करोड गोपी उनकी सहगामिनी थीं उनका रूप देखनेसे बोध होता है, मानों एक कालमें करोड सूर्य उदय हुए हैं. गंगाको श्रीकृष्णके पार्श्वमें बैठी देख

कस्तूरीपत्रिकायुक्तंगंडयुग्मंमनोरमम् ॥ वंधूककुसुमाकारमधरोष्ठंचसुंदरम् ॥१३॥ पक्वदाडिमबीजाभदंतपंक्तिसमुज्ज्वलम् ॥ वाससीवह्निशुद्धेचनीवीयुक्तेचबिभ्रती ॥ १४ ॥ सासकामाकृष्णपार्श्वेसमुवासमुलज्जिता ॥ वाससामुखमाच्छाद्यलोचनाभ्यांविभोर्मुखम् ॥ १५ ॥ निमेषरहिताभ्यांचपिबंतीसततं मुदा ॥ प्रफुल्लवदनाहर्षान्नवसंगमलालसा ॥ १६ ॥ मूर्छिताप्रभुरूपेणपुलकांकितविग्रहा ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रविद्यमानाचराधिका ॥ १७ ॥ गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ताकोटिचंद्रसमप्रभा॥कोपेनारक्तपद्मास्यारक्तपंकजलोचना॥ १८॥पीतचंपकवर्णाभागजेंद्रमंदगामिनी॥अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषिता॥ १९॥ अमूल्यरत्नखचितममूल्यंवह्निशौचकम् ॥ पीतवस्त्रस्ययुगलंनीवीयुक्तंचबिभ्रती ॥ २० ॥ स्थलपद्मप्रभामुष्टंकोमलंचसुरंजितम् ॥ कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तंविन्यसंतीपदांबुजम् ॥ २१ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानादवरुह्यसा ॥ सेव्यमानाचऋषिभिःश्वेतचामरवायुना ॥ २२ ॥ कस्तूरीबिंदुभिर्युक्तंचंदनेन समन्वितम् ॥ दीप्तदीपप्रभाकारंसिंदूरंबिंदुशोभितम् ॥२३॥ दधतीभालमध्येचसीमंताधःस्थलोज्ज्वले ॥ पारिजातप्रसूनानांमालायुक्तंसुवंकिमम् ॥२४॥

क्रोधसे उनका मुखमण्डल और दोनों नेत्र रक्तपद्मके समान रक्तवर्ण होगये ॥ १८॥ उनका वर्ण पीत चंपकके समान और गमन मदवाले हाथीके समान था वह अमूल्य रत्ननिर्मित अनेक प्रकारके भूषणोंसे विभूषित थीं ॥ १९ ॥ अमूल्य रत्नखचित अग्निपरीक्षित बहुमूल्य परिधेय पीताम्बरयुगल उनके नीविस्थानमें आबद्ध थे ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण प्रदत्त अर्घ्यमें समायुक्त स्थलपद्म प्रभाविनिन्दित सुरञ्जित चरणकमल पग पगमें विन्यस्त होते थे ॥ २१ ॥ वह उत्कृष्ट निर्मित विमानमें चढकर जब मंद मंद गमन करती थीं, उस समय ऋषिगण उनका श्वेत चामरसे वीजन करते थे ॥ २२॥ उनके सीमन्तके अधोभागमें सिन्दूरबिन्दु उज्ज्वल दीपशिखाके समान प्रभा विस्तार करती थी उनके दोनों पार्श्वमें कस्तूरी बिन्दु और चन्दनबिन्दु विराजमान था ॥ २३ ॥ वह जैसेही क्रोधसे कंपित होने लगीं, वैसेही उनका पारिजातमाल वेष्टित ॥ २४ ॥

वक्र कबरीभार कंपित होने लगा चारु रागसंयुक्त ओष्ठ प्रस्फुरित होने लगा ॥ २५ ॥ वह रोषयुक्त गमन करके श्रीकृष्णके पार्श्वमें रत्नमय सिंहासन पर बैठ गई और उनकी अनुगामिनी सखियें भी यथा स्थानमें बैठगई ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण राधाको देखतेही संभ्रम और हास्यवदनसे उठकर सादर संभाषणपूर्वक मीठी बातें करने लगे ॥ २७ ॥ गोपियें संत्रस्त होकर मस्तक झुकाय प्रणामपूर्वक भक्तियुक्त हो स्तव करने लगीं. तब श्रीकृष्ण भी उनकी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥ इसी समय देवी गंगानेभी उठकर अनेक स्तव स्तुति करके भय सहित विनयनम्र वचनोंसे कुशलप्रश्न पूँछा ॥ २९ ॥ भयसे उनका कंठ ओष्ठ और तालु शुष्क होगया उन्होंने नम्रभावसे श्रीकृष्णके चरणोंमें शरण ग्रहण की ॥ ३० ॥ जब श्रीकृष्णने उनको हृदयसे लगाय अभय प्रदान किया तब उनका चित्त स्थिर हुआ ॥ ३१ ॥

सुचारुकबरीभारंकंपयंतीसुकंपिता ॥ सुचारुरागसंयुक्तमोष्ठंकंपयतीरुषा ॥ २५ ॥ गत्वोवासकृष्णपार्श्वेरत्नसिंहासनेशुभे ॥ सखीनांचसमूहैश्चप रिपूर्णाविभोःप्रिया ॥ २६ ॥ तांदृष्ट्वाचसमुत्तस्थौकृष्णःसादरपूर्वकम् ॥ संभाष्यमधुरालापैःसस्मितश्चससंभ्रमः ॥ २७ ॥ प्रणेमुरतिसंत्रस्तागोपान म्रात्मकंधराः ॥ तुष्टुवुस्तेचभक्त्याचतुष्टावपरमेश्वरः ॥ २८ ॥ उत्थायगंगासहसास्तुतिंबहुचकारसा ॥ कुशलंपरिपप्रच्छभीताऽतेविनयेनच ॥ २९ ॥ नम्रभागस्थितात्रस्ताशुष्ककंठोष्ठतालुका ॥ ध्यानेनशरणायत्ताश्रीकृष्णचरणांबुजे ॥ ३० ॥ तांहृत्पद्मस्थितांकृष्णोभीतायैचाऽभयंददौ ॥ बभूवस्थिरचि त्तासासर्वेश्वरवरेणच ॥ ३१ ॥ ऊर्ध्वसिंहासनस्थांचराधांगंगाददर्शसा ॥ सुस्निग्धांसुखदृश्यांचज्वलंतींब्रह्मतेजसा ॥ ३२ ॥ असंख्यब्रह्मणःकर्त्रीमादि सृष्टेःसनातनीम् ॥ सदाद्वादशवर्षीयांकन्याभिनवयौवनाम् ॥ ३३ ॥ विश्ववृंदेनिरुपमांरूपेणचगुणेनच ॥ शांतांकांतामनंतांतामाद्यंतरहितां सतीम् ॥ ३४ ॥ शुभांसुभद्रांसुभगांस्वामिसौभाग्यसंयुताम् ॥ सौंदर्यसुंदरींश्रेष्ठांसर्वासुसुंदरीषुच ॥ ३५ ॥ कृष्णार्धांगांकृष्णसमांतेजसावयसात्विषा ॥ पूजितांचमहालक्ष्मींलक्ष्म्यालक्ष्मीश्वरेणच ॥ ३६ ॥ प्रच्छाद्यमानांप्रभयासभामीशस्यसुप्रभाम् ॥ सखीदत्तंचतांबूलंभुक्तवतींचदुर्लभम् ॥ ३७ ॥

हे वत्सनारद ! उसी समय सुरेश्वरी गंगाने सिंहासनपर विरामान सुस्निग्धा सुखदृश्या राधाको देखा कि, मानों ब्रह्मतेजसे ज्वलित होरही हैं ॥ ३२ ॥ वह सृष्टिके आदिसे असंख्य ब्रह्माकी एकमात्र कर्त्री और सनातनी हैं उनके देखनेसे बोध होता है, मानों बारहवर्षकी नव यौवना कन्या हैं ॥ ३३ ॥ किसी विश्वमें ऐसी रूपवती वा ऐसी गुणवती रमणी दूसरी दिखाई नहीं देती वह शान्त कान्त अनन्त और आद्यन्त रहित हैं ॥ ३४ ॥ वह शुभा, सुभद्रा, ऐश्वर्यवती और स्वामिसौभाग्यशालिनी हैं, वह सम्पूर्ण रमणीयोंमें प्रधान रत्न हैं, देखनेसे बोध होता है मानों समुदायसौन्दर्य एकत्र सन्निवेशित हुआ है ॥ ३५ ॥ वह श्रीकृष्णका अर्द्ध शरीर है. क्या तेज, क्या वयस, क्या कान्ति, सर्वांशमेंही कृष्णके समान हैं लक्ष्मी और लक्ष्मीकान्त दोनोंही उनकी पूजा करते हैं ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णकी

तादृश उज्ज्वल सभा है, किन्तु राधाके रूपसे सब आच्छादित होरही हैं वह सिंहासनपर बैठकर सखीका दिया हुआ ताम्बूल चावने लगीं ॥ ३७॥ वह सब जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली हैं, किन्तु उनको उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है वह धन्य मान्य और मानिनी हैं वह श्रीकृष्णकी प्राणेश्वरी और प्राणोंसे भी प्रियतमा रमणी हैं ॥ ३८ ॥ हे देवर्षे ! सुरेश्वरी गंगा अनिमेष लोचनसे वारम्वार उनको देखने लगीं, किन्तु किसीप्रकारभी उनके नेत्र व उनका मन तृप्त नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ इसी समय शान्तमूर्त्ति राधाने विनीत भाव, हास्यवदन और मधुर वचन द्वारा जगदीश्वर श्रीकृष्णसे कहा ॥ ४० ॥ राधा बोली प्राणेश्वर ! आपके पार्श्वमें हास्यवदन वक्रलोचन उत्सुक चित्तसे जो आपके वदनसुधाकरका पान कर रही है ॥ ४१ ॥ यह कल्याणी कौन है? यह आपका रूप देखकर एकवारही मोहित हुई है, इसका

अजन्यांसर्वजननींधन्यांमान्यांचमानिनीम् ॥ कृष्णप्राणाधिदेवींचप्राणप्रियतमांरमाम् ॥३८॥ दृष्ट्वाराकेश्वरींतृप्तिंनजगामसुरेश्वरी ॥ निमेषरहिताभ्यां चलोचनाभ्यांपपौचताम् ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नंतरेराधाजगदीशमुवाचसा ॥ वाचामधुरयाशांताविनीतासस्मितामुने ॥ ४० ॥ राधोवाच ॥ केयंप्राणे शकल्याणीसस्मितात्वन्मुखांबुजम् ॥ पश्यंतीसस्मितंपार्श्वेसकामावक्रलोचना ॥ ४१ ॥ मूर्च्छांप्राप्नोतिरूपेणपुलकांकितविग्रहा ॥ वस्त्रेणमुखमाच्छा द्यनिरीक्षंतीपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ त्वंचाऽपितांसंनिरीक्ष्यसकामःसस्मितःसदा ॥ मयिजीवतिगोलोकेभूतादुर्वृत्तिरीदृशी ॥ ४३ ॥ त्वमेवचैवदुर्वृत्तंवारंवारं करोपिच ॥ क्षमांकरोमिप्रेम्णाचस्त्रीजातिःस्निग्धमानसा ॥ ४४ ॥ संगृह्येमांप्रियामिष्टांगोलोकाद्गच्छलंपट ॥ अन्यथानहितेभद्रंभविष्यतिव्रजेश्वर ॥ ॥ ४५ ॥ दृष्टस्त्वंविरजायुक्तोमयाचंदनकानने ॥ क्षमाकृतामयापूर्वंसखीनांवचनादहो ॥ ४६ ॥ त्वयामच्छब्दमात्रेणतिरोधानंकृतंपुरा ॥ देहंतत्या जविरजानदीरूपावभूवसा ॥ ४७ ॥

सब शरीर रोमाञ्चित दीखता है, यह वस्त्रसे अपना मुखमंडल ढककर वारम्वार आपको देखती है ॥ ४२ ॥ और आपभी इसको देखकर उत्सुक चित्तसे हास्य करते हैं, यह क्या व्यापार है मेरे गोलोकमें विद्यमान रहते ऐसा कुव्यवहार आरंभ क्यों हुआ ॥ ४३ ॥ आप तो वारम्वार इस प्रकार दुष्कर्म करते हैं किन्तु क्या करूं मैं स्त्रीजाति स्वभावसेही सरलचित्त प्रणयके वश होकर समस्तही क्षमा करती हूं ॥४४॥ हे लम्पट ! आप शीघ्र अपनी प्रणयिनीको लेकर गोलोकसे चले जाइये नहीं तो यह कार्य आपको कल्याणदायक नहीं है ॥ ४५ ॥ पहिले एक दिन चंदनवनमें गोपाङ्गना विरजाके संग इसीप्रकार मिलित देखा था, किन्तु क्या करूं सखि योंके अनुरोधसे उसको क्षमा किया ॥ ४६ ॥ उस समय आप मेरे पैरका शब्द सुनकर भाग गये थे और विरजाने लज्जाके कारण देहत्याग करके नदीरूप धारण

किया है ॥ ४७ ॥ उसका विस्तार बहुत योजन और दैर्घ्य इससे चतुर्गुण है अद्यापि आपकी कीर्त्तिस्वरूपा वह विरजा विद्यमान है ॥ ४८ ॥ विरजाकी यह घटना देखनेके पीछे मेरे गृह प्रस्थान करनेपर आप फिर उसके निकट जाय उच्चस्वरसे " विरजे विरजे " कहकर रोदन करते फिरे थे ॥ ४९ ॥ जब आपके चीत्कार शब्दसे उस सिद्धयोगिनीने योगबलद्वारा जलसे उत्थित होकर आपको भूषणभूषित अपनी दिव्यमूर्त्ति दिखाई ॥ ५० ॥ तब आप उसको खैंचकर संगममें प्रवृत्त हुए और उसमें वीर्य निक्षेप किया विरजाके क्षेत्रमें वीर्याधान करनेसेही सात समुद्रोंकी उत्पत्ति हुई है ॥ ५१ ॥ दूसरे एक दिन चंपकवनमें शोभानामक गोपिनीके संग संगत होते देखा था उस दिनभी आप मेरे पैरका शब्द सुनकर भाग गयेथे ॥५२ ॥ किन्तु शोभाने लज्जासे अपना कलेवर त्यागकर चन्द्रमण्डलमें प्रस्थान किया वह

कोटियोजनविस्तीर्णाततोदैर्घ्येंचतुर्गुणा ॥ अद्याऽपिविद्यमानासातवसत्कीर्तिरूपिणी ॥ ४८ ॥ गृहंमयिगतायांचपुनर्गत्वातदंतिके ॥ उच्चैरुरोदविरजे विरजेचेतिसंस्मरन् ॥ ४९ ॥ तदातोयात्समुत्थायसायोगात्सिद्धयोगिनी ॥ सालंकारामूर्तिमतीददौतुभ्यंचदर्शनम् ॥ ५० ॥ ततस्तांचसमाक्षिप्यवीर्याधानंकृतंत्वया ॥ ततोबभूवुस्तस्यांचसमुद्राःसप्तएवच ॥ ५१ ॥ दृष्टस्त्वंशोभयागोप्यायुक्तश्चंपककानने ॥ सद्योमच्छब्दमात्रेणतिरोधानंकृतं त्वया ॥ ५२ ॥ शोभादेहंपरित्यज्यजगामचंद्रमंडले ॥ ततस्तस्याःशरीरंचस्निग्धंतेजोबभूवह ॥ ५३ ॥ संविभज्यत्वयादत्तंहृदयेनविदूयता ॥ रत्नाय किंचित्स्वर्णायकिंचिन्मणिवरायच ॥ ५४ ॥ किंचित्स्त्रीणांमुखाब्जेभ्यःकिंचिद्राज्ञेचकिंचन ॥ किंचित्किसलयेभ्यश्चपुष्पेभ्यश्चाऽपिकिंचन ॥ ५५ ॥ किंचित्फलेभ्यःपक्वेभ्यःसस्येभ्यश्चाऽपिकिंचन ॥ नृपदेवगृहेभ्यश्चसंस्कृतेभ्यश्चकिंचन ॥ ५६ ॥ किंचिन्नूतनपत्रेभ्योदुग्धेभ्यश्चाऽपिकिंचन ॥ दृष्टस्त्वं प्रभयागोप्यायुक्तोवृंदावनेवने ॥ ५७ ॥ सद्योमच्छब्दमात्रेणतिरोधानंकृतंत्वया ॥ प्रभादेहंपरित्यज्यजगामसूर्यमंडले ॥ ५८ ॥

शोभाही चन्द्रमण्डलकी स्निग्ध तेजस्वरूपिणी है ॥ ५३ ॥ शोभाकी इसप्रकार दुर्दशा होनेपर आपनेही दुःखित अन्तःकरणसे उसका विभाग करके कुछ रत्नमें कुछ सुवर्णमें, कुछ उत्कृष्ट मणिमण्डलमें ॥ ५४ ॥ कुछ स्त्रियोंके मुखकमलमें कुछ राजशरीरमें, कुछ वृक्षपत्रमें, कुछ पुष्पमें ॥ ५५ ॥ कुछ पके हुए फलोंमें कुछ धान्यमें कुछ कुछ नृप और देवतायतन (देवस्थान) में, कुछ कुछ सुसंस्कृत पदार्थोंमें ॥ ५६ ॥ कुछ कुछ नवकिसलयमें और कुछ थोडासा दूधमें प्रदान किया था तीसरे आपको वृन्दावनमें प्रभा गोपीके संग संगत होते देखा है ॥ ५७ ॥ मेरा शब्द सुनतेही आपके भागनेपर प्रभाभी लज्जासे देह त्यागकर सूर्यमण्डलमें

१ इनके अधिष्ठाता पुरुष ।

उपस्थित हुई ॥ ५८ ॥ वह प्रभाही सूर्यमण्डलके तीव्र तेजस्वरूपमें परिणत हुई है आपनेही प्रणयविच्छेदके कारण मनमें क्षुभित हो रोदन करते करते ॥ ५९ ॥ कुछ नेत्र लज्जा और कुछ मेरे भयसे उस प्रभाको विभाग करके कुछ हुताशनमें कुछ यक्षमें ॥६०॥ कुछ पुरुष सिंहमें कुछ देवताओंमें कुछ वैष्णवोंमें कुछ नागोंमें ॥ ६१ ॥ कुछ ब्राह्मणोंमें कुछ मुनियोंमें कछ तपस्वियोंमें कुछ यशस्वियों एवं कीर्तिमती और सौभाग्यवती अबलाओंमें समर्पण किया है ॥ ६२ ॥ पूर्वमें प्रभाका इसप्रकार विभाग करके उसके वियोगमें आपको रोदन करना पड़ा था चौथे मैंने रासमंडलमें आपको शान्तिनी नामक गोपिनीके संग प्रेमासक्त होते देखा है ॥ ६३ ॥ वसन्तके आगममें आप एक दिन गलेमें पुष्पमाला डाले और सर्वाङ्गमें चंदन विलेपनपूर्वक रत्नमयभूषणोंसे विभूषित हो रत्नदीपविराजित रत्नमंदिरमें

ततस्तस्याःशरीरंचतीव्रंतेजोबभूवह ॥ संविभज्यत्वयादत्तंप्रेम्णाप्ररुदतापुरा ॥ ५९ ॥ विसृष्टंचक्षुषोःकृष्णलज्जयामद्भयेनच ॥ हुताशनायर्किं चिद्वयक्षेभ्यश्चाऽपिकिंचन ॥ ६० ॥ किंचित्पुरुषसिंहेभ्योदेवेभ्यश्चाऽपिकिंचन ॥ किंचिद्विष्णुजनेभ्यश्चनागेभ्योऽपिचकिंचन ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणेभ्योमुनिभ्यश्चतपस्विभ्यश्चकिंचन ॥ स्त्रीभ्यःसौभाग्ययुक्ताभ्योयशस्विभ्यश्चकिंचन ॥६२॥ तत्तुदत्त्वाचसर्वेभ्यःपूर्वंप्ररुदितंत्वया ॥ शांतिगोप्यायुतस्त्वंचदृष्टोऽसिरासमंडले ॥ ६३ ॥वसंतेपुष्पशय्यायांमाल्यवांश्चंदनोक्षितः ॥ रत्नप्रदीपैर्युक्तेचरत्ननिर्माणमंदिरे ॥ ६४ ॥ रत्नभूषणभूषाढ्योरत्नभूषितया सह ॥ तयादत्तंचतांबूलंभुक्तवांश्चपुराविभो ॥६५॥ सद्योमच्छब्दमात्रेणतिरोधानंकृतंत्वया ॥ शांतिर्देहंपरित्यज्यभियालीनात्वयिप्रभो ॥ ६६ ॥ ततस्तस्याःशरीरंचगुणश्रेष्ठंबभूवह ॥ संविभज्यत्वयादत्तंप्रेम्णाप्ररुदतापुरा ॥ ६७ ॥ विश्वेतुविपिनेकिंचिद्ब्रह्मणेचमयिप्रभो ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपायैकिंचिल्लक्ष्म्यै पुराविभो ॥६८॥ त्वन्मंत्रोपासकेभ्यश्चशाक्तेभ्यश्चाऽपिकिंचन ॥ तपस्विभ्यश्चधर्मायधर्मिष्ठेभ्यश्चकिंचन ॥ ६९ ॥

॥ ६४ ॥ वस्त्रालंकारसे विभूषिता शान्ति गोपीके संग पुष्पशय्यापर शयन करके प्रणयिनीका दिया हुआ ताम्बूल चर्वण करते थे ॥ ६५ ॥ आपने मेरा शब्द सुनतेही तत्काल प्रस्थान किया शान्ति गोपीभी लज्जा और भयसे देह त्यागकर एकबारही आपके शरीरमें लीन हुई ॥ ६६ ॥ इससेही शान्ति गुण श्रेष्ठ कहकर परिगणित हुई है आपनेभी प्रणयभंगसे रोदन करते करते शान्तिके देहको विभाग करके ॥ ६७ ॥ विश्व संसारके मध्य कुछ वनस्थलमें कुछ ब्रह्माको कुछ मुझको कुछ शुद्धसत्वस्वरूप लक्ष्मीको ॥ ६८ ॥ कुछ अपने मंत्रोपासकोंको कुछ मेरे मंत्रोपासकोंको कुछ तपस्वियोंको कुछ धर्मको और कुछ धार्मिकोंको प्रदान कियाथा॥ ६९ ॥

पांचवें मनमें विचारकर देखो फिर एकदिन आप सर्वाङ्गमें चंदन विलेपन और गलेमें पुष्पमाला डाल सज्जित हो रत्नभूषणोंसे विभूषित और गंध चन्दनसे चर्चित ॥ ७० ॥ ७१ ॥ क्षमा नाम्नी गोपीके संग पुष्पसमाकीर्ण चन्दनादि युक्त सुखशय्यापर शयन करके सुखपूर्वक सोरहे थे यही नहीं वरन् नव समागमके पीछे परस्परको आलिंगनपूर्वक नींदमें ऐसे अभिभूत हुए थे कि मेरे जाकर जगानेसे दोनोंकी निद्रा भंग हुई ॥ ७२ ॥ मैंने आपका पीताम्बर मनोहर मुरली वनमाला कौस्तुभ और अमूल्य रत्नकुंडल लेलिये थे ॥ ७३ ॥ फिर सखियोंके अनेकयत्न और वचनोंसे पुनर्वार प्रदान किये पाप और लज्जासे आपका देह काले वर्ण होगया था ॥ ७४ ॥ इसके पीछे क्षमाने लज्जासे देह त्यागकर पृथ्वीमें गमन किया इसीकारण क्षमाका शरीर श्रेष्ठतम गुणका आधार हुआ है ॥ ७५ ॥ अनन्तर

मयापूर्वंचत्वंदृष्टोगोप्याचक्षमयासह॥ सुवेषयुक्तोमालावान्गंधचंदनचर्चितः ॥ ७० ॥ रत्नभूषितयागंधचंदनोक्षितयासह ॥ सुखेनमूर्छितस्तल्पेपुष्पचंदनचर्चिते ॥ ७१ ॥ श्लिष्टोनिद्रितयासद्यःसुखेननवसंगमात् ॥ मयाप्रबोधितासाचभवांश्चस्मरणंकुरु ॥ ७२ ॥ गृहीतंपीतवस्त्रंचमुरलीचमनोहरा ॥ वनमालाकौस्तुभश्चाऽप्यमूल्यंरत्नकुंडलम् ॥ ७३ ॥ पश्चात्प्रदत्तंप्रेम्णाचसखीनांवचनादहो ॥ लज्जयाकृष्णवर्णोभूद्भवान्पापेनयःप्रभो ॥ ७४ ॥ क्षमादेहंपरित्यज्यलज्जयापृथिवींगता ॥ ततस्तस्याःशरीरंचगुणश्रेष्ठंबभूवह॥ ७५ ॥ संविभज्यत्वयादत्तंप्रेम्णाप्ररुदतापुनः ॥ किंचिद्दत्तंविष्णवेचवैष्णवेभ्यश्च किंचन ॥ ७६ ॥ धार्मिकेभ्यश्चधर्मायदुर्बलेभ्यश्चकिंचन ॥ तपस्विभ्योऽपिदेवेभ्यःपंडितेभ्यश्चकिंचन ॥७७॥ एतत्तेकथितंसर्वंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ त्वद्गुणंचैवबहुशोनजानामिपरंप्रभो ॥ ७८ ॥ इत्येवमुक्त्वासाराधारक्तपंकजलोचना ॥ गंगांवकुंसमारेभेनम्रास्यांलज्जितांसतीम् ॥ ७९ ॥ गंगारहस्यंविज्ञाययोगेनसिद्धयोगिनी ॥ तिरोभूयसभामध्येस्वजलंप्रविवेशसा ॥ ८० ॥ राधायोगेनविज्ञायसर्वत्राऽवस्थितांचताम् ॥ पानंकर्तुंसमारेभे गंडूषात्सिद्धयोगिनी ॥ ८१ ॥

आपने प्रणयवश अत्यन्त दुःखित हो उस देहको विभागकर कुछ विष्णुको कुछ वैष्णवोंको ॥ ७६ ॥ कुछ धर्मको कुछ धार्मिकोंको कुछ दुर्बलोंको कुछ तपस्वियोंको कुछ देवताओंको और कुछ पण्डितोंको प्रदान किया था ॥ ७७ ॥ हे प्रभो ! मैं तुम्हारे गुणोंके विषयमें जितना जानती हूं वह सब कहदिया अब क्या सुननेकी अभिलाषा है ? इनके अतिरिक्त और भी आपके अनेक गुण हैं किन्तु उनको मैं अधिक नहीं जानती ॥ ७८ ॥ इस समय लाल कमलके समान नेत्रोंवाली राधा कृष्णसे इसप्रकार कहकर उनकी बगलमें बैठी हुई लज्जासे नम्रमुखी गंगाकी यथोचित भर्त्सना करने लगी ॥ ७९ ॥ तब सिद्धयोगिनी गंगा योगबलसे समस्त रहस्य जान तत्काल सभासे अन्तर्धान हो अपनी जलमयी मूर्त्तिमें विलीन हुई ॥ ८० ॥ सिद्धयोगिनी राधाभी योगबलसे गंगाका रहस्यभेद जानकर चुल्लू

द्वारा उसका सब जल पान करनेमें उद्यत हुई ॥ ८१ ॥ तब गंगाने योगबलसे यह सब बात जान श्रीकृष्णकी शरणागत हो उनके चरणतलमें प्रवेश किया ॥ ८२॥
तब राधाने प्रथम गोलोक फिर गोलोक त्यागकर वैकुण्ठधाम वैकुण्ठ त्यागकर ब्रह्मलोक इसप्रकार योगबल द्वारा एकादि क्रमसे समस्तही देखा किन्तु कहीं भी
गंगाका दर्शन न पाया ॥ ८३ ॥ गोलोक धामके सब स्थान जलहीन होकर शुष्कपङ्क होगये जल जन्तु सब जीवन शून्य होकर निपतित होनेलगे ॥ ८४॥ तब ब्रह्मा, विष्णु,
शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, निशाकर, दिवाकर, मनु, मुनि, सिद्ध और तपस्वीगण ॥ ८५॥ प्याससे शुष्ककण्ठ और शुष्कतालु हो गोलोक धाममें आय जो सर्वेश्वर
प्रकृतिके अतीत पदार्थ वरस्वरूप वरेण्य वरद वरिष्ठ और वर कारण हैं, जो गोपिका और गोपकुलमें सबसे प्रधान प्रभु हैं ॥ ८६॥८७॥ जो निराकार निरीह निर्लिप्त
निराश्रय निर्गुण निरुत्साह निर्विकार और निरंजन हैं ॥ ८८ ॥ जो इच्छामय भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके लिये आकार धारण करते हैं, जो सत्यस्वरूप

गंगारहस्यंविज्ञाययोगेनसिद्धयोगिनी॥श्रीकृष्णचरणांभोजेविवेशशरणंययौ॥८२॥गोलोकेसाचवैकुंठेब्रह्मलोकादिकेतथा ॥ ददर्शराधासर्वत्रनैवगंगांददर्श
सा॥८३॥सर्वत्रजलशून्यंचशुष्कपंकंचगोलकम् ॥जलजंतुसमूहैश्चमृतदेहैःसमन्वितम्॥८४॥ब्रह्मविष्णुशिवानंतधर्मेद्रेंदुदिवाकराः॥ मनवोमुनयःसर्वेदेवासि
द्धतपस्विनः ॥८५॥ गोलोकंचसमाजग्मुःशुष्ककंठोष्ठतालुकाः ॥ सर्वेप्रणेमुर्गोविंदंसर्वेशंप्रकृतेःपरम् ॥८६॥ वरंवरेण्यंवरदंवरिष्ठंवरकारणम् ॥ गोपिका
गोपवृंदानांसर्वेषांप्रवरंप्रभुम् ॥ ८७ ॥ निरीहंचनिराकारंनिर्लिप्तंचनिराश्रयम् ॥ निर्गुणंचनिरुत्साहंनिर्विकारंनिरंजनम् ॥ ८८ ॥ स्वेच्छामयंचसाकारं
भक्तानुग्रहकारकम्॥सत्वस्वरूपंसत्येशंसाक्षिरूपंसनातनम् ॥८९॥ परंपरेशंपरमंपरमात्मानमीश्वरम् ॥ प्रणम्यतुष्टुवुःसर्वेभक्तिनम्रात्मकंधराः ॥ ९० ॥
सगद्गदाःसाश्रुनेत्राःपुलकांकितविग्रहाः ॥ सर्वेसंस्तूयसर्वेशंभगवंतंपरात्परम् ॥ ९१ ॥ ज्योतिर्मयंपरंब्रह्मसर्वकारणकारणम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिं
हासनस्थितम् ॥ ९२ ॥ सेव्यमानंचगोपालैःश्वेतचामरवायुना ॥ गोपालिकानृत्यगीतंपश्यंतंसस्मितंमुदा ॥ ९३ ॥ प्राणाधिकप्रियतमराधावक्षःस्थल
स्थितम् ॥ तयाप्रदत्तंतांबूलंभुक्तवंतंसुवासितम् ॥ ९४ ॥ परिपूर्णतमंरासेददृशुश्चसुरेश्वरम् ॥ मुनयोमानवाःसिद्धास्तपसाचतपस्विनः ॥ ९५ ॥

सत्येश साक्षिरूपी और सनातन पुरुष हैं ॥ ८९ ॥ जो पर परमेश परम परमात्मा और परमेश्वर हैं, उनको भक्ति भावसे मस्तक झुकाय प्रणाम करके सब स्तव करनेमें
प्रवृत्त हुए ॥९०॥ सबही भक्तिभावसे गद्गद सबहीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधार भरे और सबकाही कलेवर रोमाञ्चित हुआ ऐसे वे परात्पर भगवान्की स्तुति करने लगे॥ ९१॥
जो ज्योतिर्मय परब्रह्म जो समस्त कारणोंके भी कारण जो अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान ॥ ९२॥ गोपालगण जिनका श्वेतचामरसे बीजन करते थे,
जो परमानंदपूर्वक हास्यवदनसे गोपिकाओंका नृत्य गीत दर्शन और श्रवण करते थे ॥ ९३ ॥ जो प्राणोंसे भी प्रियतमा राधाके वक्षस्थलमें स्थित होकर उसका
दिया हुआ सुगंधित ताम्बूल भक्षण करते थे ॥ ९४ ॥ मुनि मनुष्य और तपस्वी इत्यादि सबनेही उन पूर्णतम विभु रासेश्वर श्रीकृष्णको देखतेही

प्रणाम किया ॥ ९५ ॥ एक साथही सबके मनमें हर्ष और आश्चर्य उत्पन्न हुआ तब उन्होंने परस्पर, परस्परके सुखकी अपेक्षा करके अन्तमें ॥ ९६ ॥ अपने मनका भाव प्रकाश करनेके लिये ब्रह्माजीको नियुक्त किया तब चतुरानन ब्रह्मा विष्णुको दक्षिण ॥ ९७ ॥ और वामदेवको वामभागमें लेकर क्रमानुसार श्रीकृष्णके आगे गये आगे जाकर रासमण्डलके जिस ओर दृष्टि डाली, उसी ओर देखा कि, परमानन्दरूपी परमानन्दयुक्त ॥९८॥ श्रीकृष्ण विराजमान हैं सबही कृष्णमय सबकाही आसन एकाकार सबकाही एक वेष ॥ ९९ ॥ सभी द्विभुज और मुरली धारी हैं सबकेही गलेमें वनमाला सबकेही चूडेमें मोरपंख और सबकेही वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि है ॥ १००॥ उनकी मूर्त्ति अत्यन्त मनोहर अति सुंदर और अतीव शान्त है. क्या रूप, क्या गुण, क्या भूषण, क्या प्रभा, क्या अवस्था, क्या

प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम् ॥ परस्परं समालोक्य प्रोचुस्ते च चतुर्मुखम् ॥ ९६ ॥ निवेदितुं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम् ॥ ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृत्वा स्वदक्षिणे ॥ ९७ ॥ वामतो वामदेवं च जगाम कृष्णसंनिधिम् ॥ परमानंदयुक्तं च परमानंदरूपिणम् ॥ ९८ ॥ सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमंडले ॥ सर्वसमानवेषं च समानासनसंस्थितम् ॥ ९९ ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम् ॥ मयूरपिच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम् ॥ १०० ॥ अतीवकमनीयं च सुंदरं शांतविग्रहम् ॥ गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥ १ ॥ परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ किं सेव्यं सेवकं किं वा दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः ॥२॥ क्षणं तेजः स्वरूपं च रूपं तत्रस्थितं क्षणम् ॥ निराकारं च साकारं ददर्श द्विविधं क्षणम् ॥३॥ एकमेव क्षणं कृष्णं राधया रहितं परम् ॥ प्रत्येकासनसंस्थं च तया सार्धं च तत्क्षणम् ॥ ४ ॥ राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपं कलत्रकम् ॥ किं स्त्रीरूपं च पुरुषं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥५॥ हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं ध्यात्वा ध्यानेन चक्षुषा ॥ चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥ ६ ॥ ततः स्वचक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया ॥ ददर्श कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ १०७ ॥

कान्ति, किसीविषयमेंभी किसीके संग कुछ भिन्नता नहीं है॥ १०१॥ कोई अपूर्ण नहीं और किसीका ऐश्वर्य्य न्यूनाधिक नहीं है उनमें कौन प्रभु और कौन सेवक है यह देखकर कहना कठिन है ॥ १०२ ॥ कभी तेजोमूर्त्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं, कभी दिव्य स्पष्ट मूर्त्ति कभी निराकार कभी साकार कभी द्विविध॥ १०३ ॥ कभी राधा नहीं केवल कृष्ण विराजमान हैं और कभी प्रतिआसनपरही "राधा-कृष्ण" युगलरूपसे विराजमान हैं ॥ १०४ ॥ कभी कभी राधा कृष्णरूप धारण करती है सुतरां ब्रह्माजी उनको स्त्रीरूपी वा पुरुषरूपी कुछ भी स्थिर न करसके ॥ १०५ ॥ अन्तमें ध्यानद्वारा स्वीय हृदयपद्ममें स्थित कृष्णकी चिन्ता करके भक्तिभावसे उनकी स्तुति कर उनसे अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थनाकी ॥ १०६ ॥ तब श्रीकृष्णके प्रसन्न होनेपर ब्रह्माजीने फिर नेत्र खोलकर देखा कि, श्रीकृष्णके

वक्षःस्थलमें राधा विराजमान हैं ॥ १०७ ॥ चारों ओर पार्षद और चारों ओर गोपीमण्डल है यह देखकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उनको प्रणाम करके स्तव करने लगे ॥ १०८ ॥ इस ओर उन सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर सर्व कारण रमापति श्रीकृष्णने उनके हृदयका भाव समझ प्रत्येकको पृथक् पृथक् संबोधन देकर कहा ॥ १०९ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्मन् ! तुम कुशलसे तो हो ? कमलापते ! आओ, महादेव ! यहां आओ, तुम्हारा मंगल हो ॥ ११० ॥ तुम गंगाके निमित्त मेरे समीप आये हो, गंगाने राधाके भयसे मेरे चरणमें शरण ली है ॥ १११ ॥ राधा गंगाको मेरे निकट बैठा देखकर इसको पान करनेमें उद्यत हुई थी जो हो मैं अब इसको तुम्हारे हाथमें समर्पण करता हूं, किन्तु तुम राधाके निकट प्रार्थना करके जिससे इसको अभयदान करसको उसी विषयकी चेष्टा करो ॥ ११२ ॥

स्वपार्षदैः परिवृतंगोपीमंडलमंडितम् ॥ पुनःप्रणेमुस्तंदृष्ट्वातुष्टुवुःपरमेश्वरम् ॥ ८ ॥ तदभिप्रायमाज्ञायतानुवाचरमेश्वरः ॥ सर्वात्मासचसर्वज्ञःसर्वेशःसर्वभावनः ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आगच्छकुशलंब्रह्मन्नागच्छकमलापते ॥ इहागच्छमहादेवशश्वत्कुशलमस्तुवः ॥ ११० ॥ आगताहिमहाभागगंगानयनकारणात् ॥ गंगाचचरणांभोजेभयेनशरणंगता ॥ ११ ॥ राधेमांपातुमिच्छंतींदृष्ट्वामत्सन्निधानतः ॥ दास्यामीमांचभवतांयूयंकुरुतनिर्भयाम् ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णस्यवचः श्रुत्वासस्मितःकमलोद्भवः ॥ तुष्टावराधामाराध्यांश्रीकृष्णपरिपूजिताम् ॥ १३ ॥ वक्त्रैश्चतुर्भिःसंस्तूयभक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ धाताचतुर्णांवेदानामुवाचचतुराननः ॥ १४ ॥ चतुराननउवाच ॥ गंगात्वदंगसंभूताप्रभोश्चरासमंडले ॥ युवयोर्द्रवरूपासामुग्धयोःशंकरस्वनात् ॥ १५ ॥ कृष्णांशाचत्वदंशाचत्वत्कन्यासदृशीप्रिया ॥ त्वन्मंत्रग्रहणंकृत्वाकरोतुतवपूजनम् ॥ १६ ॥ भविष्यतिपतिस्तस्यावैकुंठेशश्चतुर्भुजः ॥ भूस्थायाःकलयातस्याःपतिर्लवणवारिधिः ॥ ॥ १७ ॥ गोलोकस्थाचयागंगासर्वत्रस्थातथांबिके ॥ तदंबिकात्वंदेवेशीसर्वदासात्वदात्मजा ॥ ११८ ॥

तब कमलयोनि ब्रह्मा श्रीकृष्णका वचन सुनकर कुछेक हँसे और फिर सबकी आराध्या कृष्णपूजिता राधाकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ११३ ॥ ऋगादि चारोंवेदके विधाता चतुरानन धाताने भक्तियुक्त हो कंधे झुकाय चारों मुखसे राधाका स्तव करनेके पीछे उनसे कहा ॥ ११४ ॥ हे राधे ! गंगा तुम्हारे और इन प्रभुके अंगसे उत्पन्न हुई है पूर्वकालके समय तुम दोनों रासमण्डलमें शंकरका संगीत सुनकर आर्द्र होगये थे. तुम्हारी वह आर्द्रताही द्रवमयी गंगा है ॥ ११५ ॥ अतएव यह जब तुम्हारे और श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न है तब यह तुम्हारी कन्याके समान आदर करनेकी सामग्री है विशेषकर यह तुम्हारे मंत्रमें दीक्षित तुम्हारीही पूजा करती है ॥ ११६ ॥ चतुर्भुज वैकुण्ठनाथ उसके पति होंगे और जब अंशसे भूलोकमें अवतीर्ण होंगी तब लवणोदधि उसके पति होंगे ॥ ११७ ॥ हे मातः ! जो गंगा गोलोकविहा

रिणी है. वही सर्वत्र विहारिणी है हे देवेशि ! तुम उसकी माता हो वह सभी समयमें तुम्हारी कन्या[1] है॥ ११८॥ हे वत्स ! जब राधाने विधाताके वचन सुनकर कुछेक हास्यपूर्वक गंगाकी रक्षामें सम्मति दी, तब वह श्रीकृष्णचरणके अंगुष्ठाग्रभागसे बाहर निकलीं ॥ ११९॥ अनन्तर द्रवमयी गंगा अपनी मूर्त्ति धारण कर जलसे समुत्थित हो महा आदरसे उनके समीप वास करने लगीं ॥ १२० ॥ भगवान् ब्रह्माने वह गंगाका जल कुछ अपने कमण्डलुमें और कुछ भगवान् चन्द्रशेखरके मस्तकमें धारण किया ॥ १२१ ॥ तब कमलयोनिने गंगाको राधामंत्रमें दीक्षित किया उसको सामवेदोक्त राधास्तोत्र राधाकवच राधाध्यान राधाकी पूजा विधि ॥ १२२ ॥ और राधाके पुरश्चरण प्रकरणकी शिक्षा प्रदान की उसीके अनुसार गंगा राधाकी पूजाकरके उनके संग वैकुण्ठधाममें गईं॥ १२३॥ हे मुनिवर ! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा,

ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वास्वीचकारचसस्मिता ॥ बहिर्बभूवसाकृष्णपादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ १९ ॥ तत्रैवसत्कृताशांतातस्थौतेषांचमध्यतः ॥ उवासतोयादुत्थायतदधिष्ठातृदेवता ॥ १२० ॥ तत्तोयंब्रह्मणाकिंचित्स्थापितंचकमंडलौ ॥ किंचिद्दधारशिरसिचंद्रार्धकृतशेखरः ॥ २१ ॥ गंगायैराधिकामंत्रं प्रददौकमलोद्भवः ॥ तत्स्तोत्रंकवचंपूजांविधानंध्यानमेवच ॥ २२ ॥ सर्वंतत्सामवेदोक्तंपुरश्चर्याक्रमंतथा ॥ गंगातामेवसंपूज्यवैकुंठंप्रययौसह ॥ २३ ॥ लक्ष्मीःसरस्वतीगंगातुलसीविश्वपावनी ॥ एतानारायणस्यैवचतस्रोयोषितोमुने ॥ २४ ॥ अथतंसस्मितःकृष्णोब्रह्माणंसमुवाचसः ॥ सर्वकालस्यवृत्तांतंदुर्बोधमविपश्चिताम् ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ गृहाणगंगांहेब्रह्मन्हेविष्णोहेमहेश्वर ॥ शृणुकालस्यवृत्तांतंमत्तोब्रह्मन्निशामय ॥ २६ ॥ यूयंचयेऽन्येदेवाश्चमुनयोमनवस्तथा ॥ सिद्धायशस्विनश्चैवयेयेऽत्रैवसमागताः ॥ २७ ॥ एतेजीवंतिगोलोकेकालचक्रविवर्जिते ॥ जलप्लुतंसर्वविश्वंजातंकल्पक्षयोऽधुना ॥ १२८ ॥

और विश्वको पवित्र करनेवाली तुलसी, यह चारों नारायणकी पत्नी हैं ॥ १२४ ॥ अनन्तर श्रीकृष्ण कुछेक हँसकर विधाताके निकट दूसरेको कठिनतासे जाननेयोग्य कालका वृत्तान्त विस्तार सहित कहने लगे॥ १२५॥ हेब्रह्मन्! हेमहेश्वर ! हे विष्णो ! सम्प्रति तुम्हारे गंगाका ग्रहण और काल वृत्तान्त कहता हूं सुनो॥ १२६॥ तुम तीन जने और अन्यान्य देवता मुनि मनु सिद्ध और अपरापर जो सब महात्मा इस स्थानमें उपस्थित हैं॥ १२७॥ वह सभी जीवित हैं क्योंकि इस गोलोकधाममें कालचक्रका

१ यहां कन्याशब्द अलौकिक अर्थवाली कन्यामें है मनुष्योंके समान योनिप्रगटताका नहीं इससे मानुषीनियमका व्यवहार नहीं है यह दिव्य आविर्भाववाली देवी है इनके अनेक अंश आविर्भाव तिरोभाव अनेकरूपमें होते हैं ।

प्रभाव नहीं है अब कल्पान्तकाल उपस्थित है इस समय सब विश्व जलमें मग्न है ॥ १२८ ॥ अतएव गोलोकधाम और वैकुण्ठधामके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त विश्वमें जो अपरापर ब्रह्मा विद्यमान थे वह सबही इससमय मेरे शरीरमें विलीन हुए हैं. हेकमलयोने! इस समय वैकुण्ठधाम और गोलोकधामके अतिरिक्त अन्य समस्तही जलमग्न हैं ॥ १२९ ॥ अब तुम जाकर फिर ब्रह्मलोकादिक्रमसे अपने ब्रह्माण्डकी रचना करो. तब गंगा उस नवीन विरचित ब्रह्माण्डमें जायगी ॥ १३० ॥ मैंभी अन्यान्य विश्व और उन विश्वोंके ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करता हूं किन्तु तुम शीघ्र देवताओंके संग अपना कार्य साधन करनेके निमित्त जाओ ॥ १३१ ॥ तुमको बहुत विलम्ब होगया है जितने ब्रह्मादिकोंका पतन हुआ है फिर सबकी उत्पत्ति होगी ॥ १३२ ॥ हे मुनिवर! राधापति श्रीकृष्णने यह कहकर अपने अन्तःपुरमें प्रवेश

ब्रह्माद्यायेन्यविश्वस्थास्तेविलीनाऽधुनामयि ॥ वैकुंठंचविनासर्वंजलमग्नंचपद्मज ॥ १२९ ॥ गत्वासृष्टिंकुरुपुनर्ब्रह्मलोकादिकंभवम् ॥ स्वंब्रह्मांडंविरचयपश्चाद्गंगाप्रयास्य[illegible] ॥ [illegible]० ॥ एवमन्येषुविश्वेषुसृष्टौब्रह्मादिकंपुनः ॥ करोम्यहंपुनःसृष्टिंगच्छशीघ्रंसुरैःसह ॥ १३१ ॥ गतोबहुतरःकालो युष्माकंचचतुर्मुखाः ॥ गताःकतिविधास्तेचभविष्यंतिचवेधसः ॥ १३२ ॥ इत्युक्त्वाराधिकानाथोजगामांतःपुरेमुने ॥ देवागत्वापुनःसृष्टिंचक्रुरेवप्रयत्नतः ॥१३३॥ गोलोकेचस्थितागंगावैकुंठेशिवलोकके ॥ ब्रह्मलोकेस्थिताऽन्यत्रयत्रयत्रपुरःस्थिता ॥१३४॥ तत्रैवसागतागंगाचाऽऽज्ञयापरमात्मनः ॥ निर्गताविष्णुपादाब्जात्तेनविष्णुपदीस्मृता ॥ १३५ ॥ इत्येवंकथितंब्रह्मन्गंगोपाख्यानमुत्तमम् ॥ सुखदंमोक्षदंसारंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ १३६ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे गंगोपाख्याननामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

किया इधर देवतालोगभी तत्काल वहांसे लौटकर फिर यत्नपूर्वक सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ १३३ ॥ गंगाभी फिर पहिलेके समान गोलोकधाम, वैकुण्ठधाम, शिवलोक, ब्रह्मलोक और अन्यान्य जिस जिस स्थानमें पहिले वास किया था॥ १३४॥ परमात्माश्रीकृष्णकी आज्ञानुसार उसी स्थानमें वास करने लगी विष्णुके पादपद्मसे निकलनेके कारण उनका नाम विष्णुपदी भी है ॥ १३५ ॥ हे द्विजवर! यह मैंने अतिसुखकर मोक्षप्रद और सारभूत गंगाका उपाख्यान वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी वासना है सो प्रकाश करो ॥ १३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

नारदजी बोले हे प्रभो ! गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती और विश्वपावनी तुलसी, यह चारों ही नारायणकी प्रियतमा हैं ॥ १ ॥ तिनमें गंगाने गोलोकधामसे वैकुण्ठमें गमन किया यह सुना, किन्तु वह किसप्रकार नारायणकी पत्नी हुईं ? यह नहीं सुना अतएव अब यही वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ नारायणने कहा जगत्स्रष्टा विधाता गंगाको आगे करके वैकुण्ठधाममें उपस्थित हुए और वहां जगदीश नारायणको प्रणाम करके कहा ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! जो राधा कृष्णके अंगसे उत्पन्न नहीं है जो द्रवमयी नवयौवन सम्पन्न सुशील अलोक सामान्यरूपवती ॥ ४ ॥ शुद्ध सत्वस्वरूपा तथा क्रोध और अहंकार रहित हैं उन गंगाने कृष्णाङ्गसे उत्पन्न होनेके कारण उनके अतिरिक्त और किसीको भी पतित्वमें वरण करनेकी अभिलाषा नहीं करी ॥ ५ ॥ किन्तु राधा अत्यन्त अभिमानवती और अति उग्रस्वभाव है यही क्या वह गंगाको पान करनेमें उद्यत हुई थी ॥ ६ ॥ उसने राधाके भयसे तत्काल बुद्धिपूर्वक श्रीकृष्णके चरण कमलोंमें प्रवेश किया सुतरां संपूर्ण गोलोक जलरहित होगया है ॥ ७ ॥ यह देखकर मैं

॥ नारदउवाच ॥ लक्ष्मीःसरस्वतीगंगातुलसीविश्वपावनी ॥ एतानारायणस्यैवचतस्रश्चप्रियाइति ॥ १ ॥ गंगाजगामवैकुंठमिदमेवश्रुतंमया ॥ कथंसातस्यपत्नीचबभूवेतिचनश्रुतम् ॥ २ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ गंगाजगामवैकुंठंतत्पश्चाज्जगतांविधिः ॥ गत्वोवाचतयासार्धंप्रणम्यजगदीश्वरम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राधाकृष्णांगसंभूतायादेवीद्रवरूपिणी ॥ नवयौवनसंपन्नासुशीलासुंदरीवरा ॥ ४ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपाचक्रोधाहंकारवर्जिता ॥ तदंगसंभवानाऽन्यंवृणोतीयंचतंविना ॥ ५ ॥ तत्राऽतिमानिनीराधासाचतेजस्विनीवरा ॥ समुद्युक्तापातुमिमांभीतेयंबुद्धिपूर्वकम् ॥ ६ ॥ विवेशचरणांभोजे कृष्णस्यपरमात्मनः ॥ सर्वत्रगोलकंशुष्कंदृष्ट्वाऽहमगमंतदा ॥ ७ ॥ गोलोकेयत्रकृष्णश्चसर्ववृत्तांतप्राप्तये ॥ सर्वांतरात्मासर्वेषांज्ञात्वाऽभिप्रायमेवच ॥ ८ ॥ बहिश्चकारगंगाचपादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ दत्त्वाऽस्यैराधिकामंत्रंपूरयित्वाचगोलकान् ॥ ९ ॥ प्रणम्यतांचराधेशंगृहीत्वाऽत्राऽगमंप्रभो ॥ गांधर्वेणविवाहेनगृहाणेमांसुरेश्वरीम् ॥ १० ॥ सुरेश्वरेषुरसिकेरसिकेयंसमागता ॥ त्वंरत्नंपुंसुदेवेशस्त्रीरत्नंस्त्रीष्वियंसती ॥ ११ ॥ विदग्धायाविदग्धेनसंगमोगुणवान्भवेत् ॥ उपस्थितांस्वयंकन्यांनगृह्णातीहयःपुमान् ॥ १२ ॥ तंविहायमहालक्ष्मीरुष्टायातिनसंशयः ॥ योभवेत्पंडितःसोऽपिप्रकृतिंनावमन्यते ॥ १३ ॥

इसका विशेष वृत्तान्त जाननेके लिये गोलोकपति श्रीकृष्णके निकट गया तब सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णने मेरे मनका भाव समझ ॥ ८ ॥ तत्काल अपने चरणनखके अग्रभागसे गंगाको बाहर निकाला और फिर राधामंत्रमें दीक्षित करके मेरे हाथमें समर्पण किया ॥ ९ ॥ मैं भी राधापति श्रीकृष्णको प्रणाम करके गंगाको संग ले आपके निकट आया हूं, अब तुम गांधर्वविधानसे इस सुरेश्वरी गंगाका पाणिग्रहण करो ॥ १० ॥ सुरसमाजमें तुम जैसे सुरसिक हो, यह भी वैसीही है पुरुष संप्रदायमें तुम जिसप्रकार रत्न हो यह भी उसीप्रकार रमणियोंमें रत्नस्वरूप है विशेष कर रसिकोंके संग रसिकका समागम अतीव सुखजनक है ॥ ११ ॥ तुम स्वयं आई हुई इस कन्याको ग्रहण करो, जो उपस्थित कन्याको ग्रहण नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ महालक्ष्मी रुष्ट हो उनको छोडकर चली जाती है, इसमें सन्देह नहीं

है बुद्धिमान् पुरुष कभी प्रकृतिका अपमान नहीं करते ॥ १३ ॥ पुरुष मात्रही सब प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और रमणी मात्रही प्रकृतिका अंश हैं, सुतरां प्रकृति और पुरुष दोनों अभिन्न हैं अतएव परस्पर परस्परका अपमान करना कभी उचित नहीं है. यदि कहो कि " गंगा कृष्णासक्त है " किस प्रकार मैं उसका पाणिग्रहण करूं " ? तो इस विषयमें यह कहना है कि, श्रीकृष्ण जिसप्रकार गुणातीत और प्रकृतिके अतीत पदार्थ हैं तुमभी उसी प्रकार हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णका अर्द्धाङ्ग द्विभुज और अपर अर्द्धाङ्ग चतुर्भुज है अतएव श्रीकृष्णमें और तुममें कुछ भी भेद नहीं है राधिका श्रीकृष्णके वामाङ्गसे उत्पन्न हुई है ॥ १५ ॥ सुतरां श्रीकृष्ण स्वयं दक्षिणांश और पद्मा उनका वामांश है जिसप्रकार राधा और कमला दोनोंमें कुछ भी भिन्नता नहीं है. इसीप्रकार श्रीकृष्णमें और तुममें कुछ भेद नहीं हैं. सुतरां तुम्हारे देहसे उत्पन्न होनेके कारण यह तुमको पतित्वमें वरण करनेकी अभिलाषा करती हैं ॥

सर्वैंप्राकृतिकाःपुंसःकामिन्यःप्रकृतेःकलाः ॥ त्वमेवभगवान्नाथोनिर्गुणःप्रकृतेःपरः ॥ १४ ॥ अर्धांगंद्विभुजःकृष्णोयोऽर्धांगेनचतुर्भुजः ॥ कृष्णवामांगसंभूताबभूवराधिकापुरा ॥ १५ ॥ दक्षिणांशःस्वयंसाचवामांशःकमलातथा ॥ तेनेयंत्वांवृणोत्येवयतस्त्वद्देहसंभवा ॥ १६ ॥ एकांगंचैवस्त्रीपुंसोर्यथाप्रकृतिपूरुषौ ॥ इत्येवमुक्त्वाधातातांतंसमर्प्यजगामसः ॥ १७ ॥ गांधर्वेणविवाहेनतांजग्राहहरिःस्वयम् ॥ नारायणःकरंधृत्वा पुष्पचंदनचर्चितम् ॥ १८ ॥ रेमेरमापतिस्तत्रगंगयासहितोमुदा ॥ गंगापृथ्वींगतायासास्वस्थानंपुनरागता ॥ १९ ॥ निर्गताविष्णुपादाब्जात्तेनविष्णुपदीतिच ॥ मूर्च्छांसंप्रापसादेवीनवसंगमलीलया ॥ २० ॥ रसिकासुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता ॥ तांदृष्ट्वादुःखितावाणीपद्मयावर्जिताऽपिच ॥ २१ ॥

॥ १६ ॥ जिसप्रकार प्रकृति और पुरुष अभेदात्मक हैं इसी प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों एकात्मा हैं ब्रह्मा नारायणसे इसप्रकार कह गंगाको उनके हाथमें समर्पण कर वहांसे चलेगये ॥ १७ ॥ इधर नारायणने स्वयं गान्धर्व विधानद्वारा गंगाका पुष्पचन्दनचर्चित पाणिग्रहण किया ॥ १८ ॥ रमापति पद्माके समान गंगाके संग वैकुण्ठधाममें सुखसे विहार करनेलगे. गंगा सरस्वतीके शापसे पृथ्वीमें अवतीर्णहोकर फिर वैकुण्ठधाममें चलीगई थीं ॥ १९ ॥ वह विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुई इसी कारण विष्णुपदीके नामसे विख्यात हुई हैं देवी गंगा नारायणके संग नवसमागमके कारण सुखमें एकान्त मूर्च्छित हुई थीं, यही क्या उसके शरीरमें स्पन्दमात्र नहीं रहा ॥ २० ॥ इसप्रकार रसिका गंगा रसिक चूडामणि नारायणके सहित मिलित होकर परमसुखसे काल व्यतीत

करने लगीं लक्ष्मीके निवारण करनेपर भी गंगाके प्रतिसे सरस्वतीकी ईर्षा दूर न हुई ॥ २१ ॥ वह नित्य गंगाके प्रति विद्वेष प्रकाशकरने लगी किन्तु गंगा उनके प्रति कुछ भी ईर्षाप्रकाश नहीं करती फिर अंतमें एक दिन बहुत विरक्त करनेसे गंगाने कुपित होकर सरस्वतीको भारतमें जन्मग्रहण करनेका शाप दिया ॥ २२ ॥ सुतरां लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा, यह तीनों रमापति नारायणकी पत्नी हैं, अन्तमें देवी तुलसी भी उनकी पत्नी हुई थीं सुतरां सब समेत नारायणकी चार पत्नी हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! पतिपरायण तुलसी किसप्रकार नारायणकी पत्नी हुई कौन स्थान उनका जन्मभूमि है वह पूर्वजन्ममें कौन थीं उन्हों ने कौन कुल अलंकृत किया था ॥ १ ॥ और वह किसकी कन्या थीं जो नारायण प्रकृतिके अतीत ॥ २ ॥ निर्विकार, निरीह (इच्छा रहित) विश्वात्मा परब्रह्म और परमेश्वर हैं, जो सबके ईश्वर ॥ ३ ॥ सर्वज्ञ सर्वकारण सबके आधार पूजनीय सर्वव्यापी

नित्यमीर्ष्यतितांवाणीनचगंगासरस्वतीम् ॥ गंगाशशापकोपेनभारतेचहरिप्रिया ॥२२॥ गंगयासहतस्यैवतिस्रोभार्यारमापतेः ॥ सार्धतुलस्यापश्चाच्च तस्यश्चाऽभवन्मुने ॥२३॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणे नवमस्कंधेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारदउवाच ॥ नारायणप्रियासाध्वीकथंसाचबभूवह ॥ तुलसीकुत्रसंभूताकावासापूर्वजन्मनि ॥ १ ॥ कस्यवासाकुलेजाताकस्यकन्याकुलेसती ॥ केनवातपसासाचसंप्राप्ताप्रकृतेःपरम् ॥ २ ॥ निर्विकारंनिरीहंचसर्वविश्वस्वरूपकम् ॥ नारायणंपरंब्रह्मपरमेश्वरमीश्वरम् ॥ ३ ॥ सर्वाराध्यंचसर्वेशंसर्वज्ञंसर्वकारणम् ॥ सर्वाधारंसर्वरूपंसर्वेषांपरिपालकम् ॥ ॥ ४ ॥ कथमेतादृशीदेवीवृक्षत्वंसमवापह ॥ कथंसाऽप्यसुरग्रस्तासंबभूवतपस्विनी ॥ ५ ॥ सुस्निग्धंमेमनोलोलंप्रेरयन्मांमुहुर्मुहुः ॥ छेत्तुमर्हसिसंदेहंसर्वसंदेहभंजन ॥६॥ नारायणउवाच ॥ मनुश्चदक्षसावर्णिःपुण्यवान्वैष्णवःशुचिः ॥ यशस्वीकीर्तिमांश्चैवविष्णोरंशसमुद्भवः ॥ ७ ॥ तत्पुत्रोब्रह्मसावर्णिर्धर्मिष्ठोवैष्णवःशुचिः ॥ तत्पुत्रोधर्मसावर्णिर्वैष्णवश्चजितेंद्रियः॥८॥तत्पुत्रोरुद्रसावर्णिर्भक्तिमान्विजितेंद्रियः ॥ तत्पुत्रोदेवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः॥९॥

और सबके परिपालक हैं, तुलसीने किस तपस्याके फलसे उन नारायणको पतिलाभ किया ॥ ४ ॥ तुलसी ऐसी प्रधान देवी अर्थात् नारायणकी प्रिया होनेपर भी किसप्रकार वृक्षत्वको प्राप्त हुई ? किसप्रकार स्वयं निरपराध होनेपर भी दुर्दान्त असुर अर्थात् रावणके द्वारा ग्रस्त हुई ? ॥ ५ ॥ हे सन्देह भंजन ! मेरा निर्मल चित्त चंचल हो उठा है श्रवणपिपासा मुझको वारंवार व्याकुल करती है अतएव आप मेरा संशय छेदन कीजिये ॥ ६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! दक्षसावर्णि मनु अत्यन्त पुण्यवान् विष्णुभक्त यशस्वी कीर्त्तिमान् और विष्णुके अंशसे उत्पन्न थे ॥ ७ ॥ दक्षसावर्णिके पुत्र ब्रह्मसावर्णि भी अतिशय धार्मिक विष्णुभक्त और शुद्धसत्व था ब्रह्मसावर्णिके पुत्र धर्मसावर्णिभी विष्णुपरायण और जितेन्द्रिय थे ॥ ८ ॥ धर्मसावर्णिके पुत्र रुद्रसावर्णि भी जितेन्द्रिय और परमभक्त थे विष्णुपरा

यण देवसावर्णि रुद्रसावर्णिके पुत्र थे ॥ ९ ॥ देवसावर्णिके पुत्रका नाम इन्द्रसावर्णि था इन्द्रसावर्णिके समान विष्णुभक्त अतिविरले हैं उनकेही पुत्रका नाम वृषध्वज है वृषध्वज घोरतर शैव थे ॥ १० ॥ शंकरने स्वयं उनके भवनमें देवमानके तीन युग पर्यन्त वास किया था यही नहीं बरन् भगवान् भूतनाथ पुत्रसे भी अधिक उनपर स्नेह रखते थे ॥ ११ ॥ वृषध्वज नारायण, लक्ष्मी वा सरस्वती किसीको भी नहीं मानते, शंकरके अतिरिक्त और सब देवताओंकी पूजा एकवार ही छोड़दी थी ॥ ॥ १२॥ उन्होंने उन्मत्त हो भादोंके महीनेमें महालक्ष्मीकी पूजा और माघमासमें जो श्रीपंचमीकी पूजा॥ १३॥ जो सर्वदेवसम्मत थीं, उन सरस्वतीकी पूजा एकवारही छोडदी थी तब सूर्यने यज्ञरहित विष्णुविद्वेषी निन्दक ॥ १४॥ सम्राट् वृषध्वजके प्रति कुपित होकर यह शाप दिया कि "हे राजन्! जिसप्रकार तुम शुद्ध शिवभक्त हो और

तत्पुत्रइंद्रसावर्णिर्महाविष्णुपरायणः ॥ वृषध्वजश्चतत्पुत्रोवृषध्वजपरायणः ॥ १० ॥ यस्याऽश्रमेस्वयंशंभुरासीद्देवयुगत्रयम् ॥ पुत्रादपिपरःस्नेहो नृपेतस्मिञ्छिवस्यच ॥ ११ ॥ नचनारायणंमेनेनलक्ष्मींनसरस्वतीम् ॥ पूजांचसर्वदेवानांदूरीभूतांचकारसः ॥ १२ ॥ भाद्रेमासिमहालक्ष्मी पूजांमत्तोबभंजह ॥ तथामाघीयपंचम्यांविस्तृतांसर्वदेवतैः ॥१३ ॥ पापःसरस्वतीपूजांदूरीभूतांचकारसः ॥ यज्ञंचविष्णुपूजांचनिंदंतंतंदिवाकरः ॥१४॥ चुकोपदेवोभूपेंद्रंशशापशिवकारणात् ॥ भ्रष्टश्रीस्त्वंचभवेतितंशशापदिवाकरः ॥ १५ ॥ शूलंगृहीत्वातंसूर्यमधावच्छंकरःस्वयम् ॥ पित्रासार्धंदिनेश श्चब्रह्माणंशरणंययौ ॥ १६ ॥ शिवस्त्रिशूलहस्तश्चब्रह्मलोकंययौक्रुधा ॥ ब्रह्मासूर्यंपुरस्कृत्यवैकुंठंचययौभिया ॥ १७॥ ब्रह्मकश्यपमार्तंडाःसंत्रस्ताःशुष्क तालुकाः ॥ नारायणंचसर्वेशंतेययुःशरणंभिया॥ १८॥मूर्ध्नाप्रणेमुस्तेगत्वातुष्टुवुश्चपुनःपुनः॥सर्वंनिवेदनंचक्रुर्भयस्यकारणंहरौ॥ १९॥नारायणश्चकृपयाते भ्यश्चह्यभयंददौ॥स्थिराभवतहेभीताभयंकिंचमयिस्थिते॥२०॥स्मरंतियेयत्रतत्रमांविपत्तौभयान्विताः॥तांस्तत्रगत्वारक्षामिचक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥२१॥

किसीको नहीं मानते, ऐसे ही मैं कहता हूं कि अचिरात् तुम भ्रष्टश्री होंगे॥१५॥ देव शंकर शापकी बात सुनतेही कुपित हो स्वयं शूलास्त्र ग्रहण करके सूर्यके प्रति दौडे, तब सूर्यभयसे पिता कश्यपको संग लेकर ब्रह्माकी शरणागत हुए ॥ १६ ॥ भगवान् शंकर क्रोधमें पूर्ण हाथमें त्रिशूल लिये ब्रह्मलोकमें गये ब्रह्माजी महादेवके भयसे सूर्यको संगलेकर वैकुण्ठधाममें गये ॥ १७ ॥ भयसे ब्रह्मा कश्यप और सूर्यके कंठ तालु सूखगये वह वैकुण्ठधाममें उपस्थित शरणागत हो भयसे ॥ १८ ॥ मस्तक झुकाय वारंवार स्तव करने लगे और अन्तमें उनसे भयका यथार्थ कारण कहा ॥ १९ ॥ नारायणने सुनतेही दयाभावसे उनको अभय देकर कहा "तुम स्थिर होओ जो मेरे विद्यमान रहते तुम्हारे भयका कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ २० ॥ जिस किसी स्थानमें पुरुष अवस्थान क्यों न करे यदि भयार्त्त हो मेरा

स्मरण करे तो मैं तत्काल चक्रधारणपूर्वक वहां जाकर उसकी रक्षा करता हूं॥ २१॥ हेदेवगण! मैं जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलय करता हूं मैं विष्णुरूपसे सब जगत्का पालन, ब्रह्मरूपसे सब जगत्की सृष्टि और शिवरूपसे सब जगत्का संहार करता हूं ॥ २२ ॥ मैं ही शिव, मैं ही तुम और मैं ही त्रिगुणात्मक सूर्य हूं. मैंही अनेकप्रकारके रूप धारण करके जगत्को पालन करता हूं ॥ २३ ॥ तुम अपने स्थानको जाओ तुमको भय क्या है? मैं कहता हूं आजसे तुम्हारा महादेवजनित भय दूर हुआ ॥ २४ ॥ सर्वेश्वर भगवान् शंकर साधुओंकी गति हैं वह भक्ताधीन और भक्तवत्सल हैं ॥ २५ ॥ सूर्य और शिव दोनोंही मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हैं. हे ब्रह्मन्! ब्रह्माण्डमें शंकर और सूर्यके समान तेजस्वी और कोई नहीं है ॥ २६ ॥ महादेवजी लीलापूर्वकही करोड सूर्य और करोड ब्रह्माकी सृष्टि करसके

पाताऽहंजगतांदेवाःकर्ताचसततंसदा ॥ स्रष्टाचब्रह्मरूपेणसंहर्ताशिवरूपतः ॥ २२ ॥ शिवोऽहंत्वमहंचाऽपिसूर्योऽहंत्रिगुणात्मकः ॥ विधाय नानारूपंचकरोमिसृष्टिपालनम् ॥ २३ ॥ यूयंगच्छतभद्रंवोभविष्यतिभयंकुतः ॥ अद्यप्रभृतिमद्दरेणभयंवोनास्तिशंकरात् ॥ २४ ॥ सर्वेशोवै सभगवाञ्छंकरश्चसतांपतिः॥ भक्ताधीनश्चभक्तानांभक्तात्माभक्तवत्सलः ॥ २५ ॥ सुदर्शनःशिवश्चैवममप्राणाधिकःप्रियः ॥ ब्रह्मांडेषुनतेजस्वीहेब्रह्मन्नन योःपरः ॥ २६ ॥ शक्तःस्रष्टुंमहादेवःसूर्यकोटिंचलीलया ॥ कोटिंचब्रह्मणामेवंनाऽसाध्यंशूलिनःप्रभोः ॥ २७ ॥ बाह्यज्ञानंनैवकिंचिद्ध्यायतेमांदिवानिशम् ॥ मन्मंत्रान्मद्गुणान्भक्त्यापंचवक्त्रेणगायति ॥ २८ ॥ अहमेवंचिंतयामितत्कल्याणंदिवानिशम् ॥ यथाचमांप्रपद्यंतेतांस्तथैवभजाम्यहम् ॥ २९ ॥ शिवस्वरूपोभगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता ॥ शिवंभवतितस्माच्चशिवंतेनविदुर्बुधाः ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रजगामशंकरःस्थितः ॥ शूलहस्तोवृषारूढोरक्त पंकजलोचनः ॥ ३१ ॥

हैं प्रभु शूलपाणिको कुछ भी असाध्य नहीं है ॥ २७ ॥ वह बाह्य (बाहरी) ज्ञानरहित होकर दिन रात मेरे ध्यानमें निमग्न रहते हैं वह तद्गत चित्त हो भक्तिपूर्वक पंचमुखसे केवल मेराही मंत्र जप और मेरेही गुणोंका गान करते हैं ॥ २८ ॥ मैं भी दिन रात उनके कल्याणकी चिन्तामें रत रहता हूं. मेरा जो जिस भावसे भजन करता है, मैं भी उसके प्रति वैसाही अनुग्रह प्रकाश करता हूं ॥ २९ ॥ भगवान् महादेव शिवस्वरूप अर्थात् मंगलमय हैं, वह शिवके अर्थात् मोक्षके अधिष्ठात्री देवता हैं उनसे शिव अर्थात् मोक्षपद लाभ होता है. इसीकारण पण्डितोंने उनको "शिव" नाम प्रदान किया है ॥ ३० ॥ हे वत्स नारद! नारायण इस

प्रकार कहते ही थे कि, इसी अवसरमें रक्तपद्मके समान लोहितनेत्र किये बैलपर चढे शूलधारी महादेवजी वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ और बैलसे उतर भक्तिभावसे कंधे झुकाय उन शान्त प्रकृति परात्पर लक्ष्मीकान्तको प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ लक्ष्मीकान्त इस समय रत्नमय गहनोंसे विभूषित होकर रत्नसिंहासनपर विराजमान थे उनके मस्तकमें किरीट, कानमें दो कुण्डल, देदीप्यमान् हाथमें चक्रास्त्र गलेमें वनमाला ॥ ३३ ॥ वर्ण नवीन नीले मेघके समान श्याममूर्त्ति अतीव मनोहर चतुर्भुज पार्षद चारों हाथोंसे श्वेत चामर बीजन करते थे ॥ ३४ ॥ सर्वाङ्गमें चंदन विलेपन और परिधान पीताम्बर था वह परमात्मा भक्तवत्सल भगवान् रत्नसिंहासन पर बैठे पद्माका दिया ताम्बूल चर्वण और हास्यवदनसे विद्याधरियोंका नृत्य गीत दर्शन और श्रवण करते थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ महादेवजीने उपस्थित होकर जैसेही नारा

अवरुह्यवृषात्तूर्णंभक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ ननामभक्त्यातंशांतंलक्ष्मीकांतंपरात्परम् ॥ ३२ ॥ रत्नसिंहासनस्थंचरत्नालंकारभूषितम् ॥ किरीटि नंकुंडलिनंचक्रिणंवनमालिनम् ॥ ३३ ॥ नवीननीरदश्यामंसुंदरंचचतुर्भुजम् ॥ चतुर्भुजैःसेवितंचश्वेतचामरवायुना ॥ ३४ ॥ चंदनोक्षितसर्वांगं भूषितंपीतवाससम् ॥ लक्ष्मीप्रदत्ततांबूलंभुक्तवंतंचनारद ॥ ३५ ॥ विद्याधरीनृत्यगीतंपश्यंतंसस्मितंसदा ॥ ईश्वरंपरमात्मानंभक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ३६ ॥ तंननामहादेवोब्रह्मणानमितश्वसः ॥ ननामसूर्योभक्त्याचसंत्रस्तश्चंद्रशेखरम् ॥ ३७ ॥ कश्यपश्चमहाभक्त्यातुष्टावचननामच ॥ शिवःसंस्तूयसर्वे शंसमुवाससुखासने ॥ ३८ ॥ सुखासनेसुखासीनंविश्रांतंचंद्रशेखरम् ॥ श्वेतचामरवातेनसेवितंविष्णुपार्षदैः ॥ ३९ ॥ पीयूषतुल्यंमधुरंवचनंसुमनोह रम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ आगतोऽसिकथंचाऽत्रवदकोपस्यकारणम् ॥ ४० ॥ महादेवउवाच ॥ वृषध्वजंचमद्भक्तंममप्राणाधिकंप्रियम् ॥ सूर्यःशशापइतिमे प्रकोपस्यतुकारणम् ॥ ४१ ॥

यणको प्रणाम किया उसी समय उन ब्रह्माने भी भूतनाथको प्रणाम किया सूर्य भी तटस्थ होकर भक्तिभावसे उन चन्द्रशेखरके चरणोंमें अवनत हुए ॥ ३७ ॥ फिर कश्यपजीभी महाभक्तियुक्त हो उनको प्रणाम करके स्तव करने लगे इस ओर भगवान् शंकर भी नारायणकी स्तुति करके सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ चन्द्रशेखरके आसनपर बैठनेसे नारायणके पार्षद श्वेत चामर लेकर उनकी बीजन करनेलगे ॥ ३९ ॥ इसी समय विष्णुने अमृतधारावर्षी मधुरस्वरद्वारा शंकरसे कहा विष्णु बोले हे महेश्वर ! यहां आनेका कारण क्या है, किस निमित्त कुपित हुए हो? ॥ ४० ॥ महादेवजी बोले हे विष्णो ! राजा वृषध्वज मेरा परमभक्त है,

इस कारण मेरे प्राणोंसे भी प्रिय है भास्कर उसको शाप देना मेरे क्रोधके कारण हुए हैं ॥ ४१ ॥ पुत्रस्नेहके वश मैं अतिशय दुःखितः होकर सूर्यका वधकरनेमें उद्यत हुआ हूं सूर्य प्रथम तो ब्रह्माकी शरणागत हुए थे किन्तु अब विधाताको संगलेकर आपके निकट आये हैं ॥ ४२ ॥ जो विषन्न (दुःखी) होकर मनसे वा वचनसे तुम्हारी शरणागत होता है, वह एकवार ही निरापद और शंकारहित हो जाता है वरन् जरा, मृत्यु वर्जित होता है ॥ ४३ ॥ और जो स्वशरीरसे तुम्हारी शरणागत होता है,उसको जैसा फल प्राप्त होता है, उसका क्या वर्णन करूं वास्तवमें हरिका स्मरणकरनेसे कोई भय नहीं रहता वरन् सदा सब प्रकार मंगल लाभ होता है ॥ ४४ ॥ हे जगत् प्रभो ! आप अब बताइये सूर्यके शापसे हतश्री हुए मेरे मूढ भक्तका उपाय क्या होगा ॥ ४५ ॥ विष्णुने कहा हे शंकर ! दैवघटनाके कारण

पुत्रवत्सलशोकेनसूर्यंहंतुंसमुद्यतः ॥ सब्रह्माणंप्रपन्नश्चसूर्यश्चसविधिस्त्वयि ॥ ४२ ॥ त्वयियेशरणापन्नाध्यानेनवचसाऽपिवा ॥ निरापदो विशंकास्तेजरामृत्युश्चवर्जिताः ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्षंशरणापन्नास्तत्फलंकिंवदामिभोः ॥ हरिस्मृतिश्चाऽभयदासर्वमंगलदासदा ॥ ४४ ॥ किंमेभक्तस्यभवितातन्मेब्रूहिजगत्प्रभो ॥ श्रीहतस्याऽस्यमूढस्यसूर्यशापेनहेतुना ॥ ४५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ कालोऽतियातोदैवेनयुगानामेकविंशतिः ॥ वैकुंठेघटिकार्धेनशीघ्रंगच्छत्वमालयम् ॥ ४६ ॥ वृषध्वजोमृतःकालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात् ॥ रथध्वजश्चतत्पुत्रोमृतःसोऽपिश्रियाहतः ॥४७॥ तत्पुत्रौ चमहाभागौधर्मध्वजकुशध्वजौ ॥ हतश्रियौसूर्यशापात्स्मृतौपरमवैष्णवौ ॥ ४८ ॥ राज्यभ्रष्टौश्रियाभ्रष्टौकमलातपसारतौ ॥ तयोश्चभार्ययोर्लक्ष्मीः कलयाचभविष्यति ॥ ४९ ॥ संपद्युक्तौतदातौचनृपश्रेष्ठौभविष्यतः ॥ मृतस्तेसेवकःशंभोगच्छयूयंचगच्छत ॥५० ॥

वैकुण्ठमें आनेसे इस आधीघडीमें मर्त्यलोकके मध्य इक्कीस युग बीतगये हैं अब तुम शीघ्र अपने स्थानको जाओ ॥ ४६ ॥ दुर्निवार दारुण कालके प्रभावसे वृषध्वजको लोकान्तर प्राप्त हुआ है, उसका पुत्र रथध्वज भी हतश्री होकर कराल कालकवलमें निपतित हुआ है ॥ ४७ ॥ रथध्वजके धर्मध्वज और कुशध्वज नामक दो महाभाग पुत्रोंने जन्म लिया है वह दोनोंही परम वैष्णव हैं, किन्तु सूर्यके शापसे हतश्री हुए हैं ॥ ४८ ॥ वह राज्यभ्रष्ट और श्रीभ्रष्ट होनेसे महालक्ष्मीकी आराधनामें अनुरक्त हुए हैं महालक्ष्मी उन दोनोंकी भार्याओंके शरीरसे अंशमें अवतीर्ण होंगी ॥ ४९ ॥ तब फिर धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों लक्ष्मीके अग्रेहसनु सम्पद्युक्त होकर नृपश्रेष्ठ होंगे. हे शंभो ! तुम्हारा सेवक वृषध्वज कालकवलमें पतित हुआ है अतएव तुम अपने स्थानको जाओ. हे ब्रह्मन् ! हे भास्कर ! हे कश्यप !

तुम भी अपने अपने स्थानको जाओ ॥ ५० ॥ हे वत्स नारद ! भगवान् विष्णु इसप्रकार कहकर भार्याके सहित सभासे अन्तःपुरमें चलेगये और देवताओंने भी परमानन्दसे अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥ और इस ओर पूर्णतम महादेवजी भी तपस्या करनेके लिये तत्काल वहांसे चले गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ नारायणने कहा हे देवर्षे ! धर्मराज और कुशध्वज दोनोंने घोर तपस्याद्वारा लक्ष्मीकी आराधना करके उनसे अभिमत (वांछित) वरलाभ किया ॥ १ ॥ इस वरसे वह फिर पृथ्वीश्वर होगये, उनके पुण्यकी सीमा न रही दोनोंही पुत्रमुख देखनेमें अधिकारी हुए ॥ २ ॥ कुशध्वजकी पत्नीका नाम मालावती था सती मालावतीने बहुत कालके पीछे कमलाका अंश स्वरूप एक कन्या उत्पन्नकी ॥ ३ ॥

इत्युक्त्वाचसलक्ष्मीकःसभातोऽभ्यंतरंगतः॥देवाजग्मुःसंप्रहृष्टाःस्वाश्रमंपरमंमुदा ॥५१॥ शिवश्चतपसेशीघ्रंपरिपूर्णतमोययौ॥५२॥इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधेनारायणनारदसंवादेशक्तिप्रादुर्भावेपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ लक्ष्मींतौचसमाराध्यचोग्रेणतपसामुने ॥ वरमिष्टंचप्रत्येकंसंप्रापतुरभीप्सितम् ॥ १ ॥ महालक्ष्मीवरेणैवतौपृथ्वीशौबभूवतुः ॥ पुण्यवंतौपुत्रवंतौधर्मध्वजकुशध्वजौ ॥ २ ॥ कुशध्वजस्यपत्नी चदेवीमालावतीसती ॥ सासुषावचकालेनकमलांशांसुतांसतीम् ॥ ३ ॥ साचभूयिष्ठकालेनज्ञानयुक्ताबभूवह ॥ कृत्वावेदध्वनिंस्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहात् ॥ ४ ॥ वेदध्वनिंसाचकारजातमात्रेणकन्यका ॥ तस्मात्तांचवेदवतींप्रवदंतिमनीषिणः ॥ ५ ॥ जातमात्रेणसुस्नाताजगामतपसेवनम् ॥ सर्वैर्निषिद्धायत्नेननारायणपरायणा ॥ ६ ॥ एकमन्वंतरंचैवपुष्करेचतपस्विनी ॥ अत्युग्रांचतपस्यांचलीलयाहिचकारसा ॥ ७ ॥ तथाऽपिपुष्टानक्लिष्टानवयौवनसंयुता ॥ शुश्रावसाचसहसासुवाचमशरीरिणीम् ॥ ८ ॥ जन्मांतरेचतेभर्ताभविष्यतिहरिःस्वयम् ॥ ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिंलप्स्यसिसुंदरि ॥ ९ ॥

यह कन्या लक्ष्मीका अंश होनेके कारण जन्मतेही ज्ञानपूर्ण हुई और उत्पन्न होतेही सतीका गृहसे स्पष्ट वेद पाठकर उठी ॥ ४ ॥ जो कि उसने वेद ध्वनिकी इसी कारण पण्डितोंने उसको वेदवती संज्ञा प्रदानकी थी ॥ ५ ॥ वह जन्म लेनेके पीछे स्नान करके तपके अर्थ वन जानेमें उद्यतहुई जानेके समय उस नारायणपरायणा वेदवतीको यत्नपूर्वक सबनेही निषेध किया किन्तु उसने किसीप्रकार भी उनकी बातोंपर कान नहीं दिया ॥ ६ ॥ एक मन्वन्तर कालतक पुष्करमें जाकर लीलासेही उसने अति दुष्कर तपस्या की ॥ ७ ॥ तोभी उसका शरीर कुछ शीर्ण नहीं हुआ वरन् क्रमसे मोटा होने लगा क्रमानुसार शरीरमें नवयौवनका आविर्भाव हुआ ॥ ८ ॥ एक दिन यह

आकाशवाणी उसके कर्णमें प्रविष्ट हुई कि "हे सुंदरि! जन्मान्तरमें ब्रह्मादि वंदित श्रीहरि स्वयं तुम्हारे स्वामी होंगे" ॥ ९ ॥ यह बात सुनतेही वेदवतीके आनंदकी सीमा न रही, वह फिर गंधमादन पर्वतके निर्जन प्रदेशमें बैठकर तप करने लगी ॥ १० ॥ बहुत काल तपस्या करते करते एक दिन दुर्निवार रावण अतिथि वेषमें वहां उपस्थित हुआ ॥ ११ ॥ वेदवतीने देखतेही अतिथिभक्ति वशतः उसको पैर धोनेको जल स्वादिष्ट फल और शीतल पानी दिया ॥ १२ ॥ पापिष्ठने आतिथ्य स्वीकार पूर्वक उसके समीप बैठकर पूँछा कि, हे कल्याणि ! तुम कौन हो ? ॥ १३ ॥ वह दुराचारी उस (पुष्ट नितम्बवाली) पीनपयोधरसम्पन्न शरत्पंकजवदना हास्यमुखी सुदती सुन्दरीको देखकर ॥ १४ ॥ कामवाणसे जर्जरित होगया बाह्यज्ञान एकवारही तिरोहित होगया और वह पापाशय वेदवतीको आकर्षण करके बलात्कार

इतिश्रुत्वाचसाहृष्टाचकारहपुनस्तपः ॥ अतीवनिर्जनस्थानेपर्वतेगंधमादने ॥ १० ॥ तत्रैवसुचिरंतप्त्वाविश्वस्यसमुवाससा ॥ ददर्शपुरतस्तत्ररावणंदुर्निवारणम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वासाऽतिथिभक्त्याचपाद्यंतस्मैददौकिल ॥ सुस्वादभूतंचफलंजलंचाऽपिसुशीतलम् ॥ १२ ॥ तच्चभुक्त्वा सपापिष्ठश्चोवासतत्समीपतः ॥ चकारप्रश्नमितितांकात्वंकल्याणिवर्तसे ॥ १३ ॥ तांदृष्ट्वासवरारोहांपीनश्रोणिपयोधराम् ॥ शरत्पद्मोत्सवास्यांचसस्मितांसुदतींसतीम् ॥ १४ ॥ मूर्च्छामवापकृपणःकामबाणप्रपीडितः ॥ सकरेणसमाकृष्यशृंगारंकर्तुमुद्यतः ॥ १५ ॥ सतीचुकोपदृष्ट्वातंस्तंभितंचचकारह ॥ सजडोहस्तपादैश्चकिंचिद्वक्तुंनचक्षमः ॥ १६ ॥ तुष्टावमनसादेवींप्रययौपद्मलोचनाम् ॥ सातुष्टातस्यस्तवनंसुकृतंचचकारह ॥ १७ ॥ साशशापमदर्थेत्वंविनंक्ष्यसिसबांधवः ॥ स्पृष्टाऽहंचत्वयाकामाद्बलंचाऽप्यवलोकय ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वासाचयोगेनदेहत्यागंचकारसा ॥ गंगायांतांचसंन्यस्यस्वगृहंरावणोययौ ॥ १९ ॥

करनेमें उद्यत हुआ ॥ १५ ॥ सती वेदवतीने यह देखकर कुपित हो अपने तपके प्रभावसे उसको स्तम्भित किया, अधिक क्या वह जडके समान बैठा रहा उसको हाथ पैरादि चलाने वा बोलनेकी भी सामर्थ्य न रही ॥ १६ ॥ तब दुरात्मा मनहीमनमें पद्मपलाश लोचना सती वेदवतीका स्तव करने लगा, पराशक्तिकी स्तुति कभी व्यर्थ होनेवाली नहीं है, उन्होंने संतुष्ट होकर उसको परलोकप्रद सुकृति प्रदान की ॥ १७ ॥ किन्तु उसके द्वारा यह शाप दिया गया "जब तैंने कामके वशीभूत होकर मेरे अंगको स्पर्श किया है तब मेरे लियेही तुझको वंश सहित ध्वंस होना पडेगा. इस समय मेरी कितनी सामर्थ्य है देख" ॥ १८ ॥ हे वत्स नारद ! वेदवतीने

रावणसे यह बात कहकर योगबलसे देहत्याग किया, तब रावण वेदवतीका वह देह गंगाके जलमें डालकर अपने भवनको चलागया ॥ १९॥ किन्तु "क्या आश्चर्य देखा" इस रमणीने किस अद्भुत कार्यका अनुष्ठान किया ? रावण वारंवार यह चिन्ता करके विलाप करने लगा ॥ २० ॥ हे वत्स ! पवित्रस्वभाव यह वेदवतीने ही एक समयमें जनकात्मजा सीता होकर जन्मग्रहण किया था, इस सीताके निमित्त ही रावण वंशसमेत मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥ २१॥ इस तपस्विनीनेही जन्मान्तरीय तपके प्रभावसे रामचन्द्ररूपी पूर्णतम हरिको पतिलाभ ॥ २२ ॥ और बहुत कालतक उन दुरावध्य जगत्पतिके संग परम सुखसे काल विताया ॥ २३ ॥ उन्होंने जातिस्मरा होनेपर भी पूर्वजन्मकृत कठोर तपस्याका क्लेश कुछ भी अनुभव नहीं किया. क्योंकि कष्ट सफल होनेपर कष्टको कष्ट कहकर बोध नहीं किया जाता ॥ २४ ॥ नवयौवना सीता सुकुमार शान्त सुरसिक सर्वप्रधान देवस्त्रियोंमें मनोहर गुणवान् अभिलषित पतिलाभ करनेसे बहुत काल अनेक प्रकारके सौभाग्य

अहोकिमद्भुतंदृष्टंकिंकृतंवानयाऽधुना ॥ इतिसंचिंत्यसंचिंत्यविललापपुनःपुनः ॥ २० ॥ साचकालांतरेसाध्वीबभूवजनकात्मजा ॥ सीतादेवीतिविख्यातायदर्थेरावणोहतः ॥ २१ ॥ महातपस्विनीसाचतपसापूर्वजन्मतः ॥ लेभेरामंचभर्तारंपरिपूर्णतमंहरिम् ॥ २२ ॥ संप्राप तपसाराध्यंदुराराध्यंजगत्पतिम् ॥ सारमासुचिरंरेमेरामेणसहसुंदरी ॥ २३ ॥ जातिस्मरानस्मरतितपसश्चक्लमंपुरा ॥ सुखेनतज्जहौसर्वंदुःखंचाऽपिसुखंफले ॥ २४ ॥ नानाप्रकारविभवंचकारसुचिरंसती ॥ संप्राप्यसुकुमारंतमतीवनवयौवना ॥ २५ ॥ गुणिनंरसिकंशांतंकांतंदेवमनुत्तमम् ॥ स्त्रीणांमनोज्ञंरुचिरंतथालेभेयथेप्सितम् ॥ २६ ॥ पितुःसत्यपालनार्थंसत्यसंधोरघूद्वहः ॥ जगामकाननंपश्चात्कालेनचबलीयसा ॥ २७ ॥ तस्थौसमुद्रनिकटेसीतयालक्ष्मणेनच ॥ ददर्शतत्रवह्निंचविप्ररूपधरंहरिः ॥२८॥ रामंचदुःखितंदृष्ट्वासचदुःखीबभूवह ॥ उवाचकिंचित्सत्येष्टंसत्यंसत्यपरायणः॥२९॥ द्विजउवाच ॥ भगवञ्छ्रूयतांरामकालोऽयंयदुपस्थितः ॥ सीताहरणकालोऽयंतवैवसमुपस्थितः ॥ ३० ॥ दैवंचदुर्निवार्यंचनचदैवात्परोबली ॥ जगत्प्रसूंमयिन्यस्यछायांरक्षांतिकेऽधुना ॥ ३१ ॥

सुखभोग करने लगी ॥ २५ ॥ २६ ॥ किन्तु बलवान्कालकीगति दुर्निवार है कालके प्रभावसे पिताका सत्य पालन करनेके निमित्त उन सत्यप्रतिज्ञ रघुकुलधुरन्धर श्रीरामचंद्रजीको वनवासका आश्रय लेना पड़ा ॥ २७ ॥ वह सीता और लक्ष्मणके संग समुद्रके तटपर वास करने लगे. एक समय हुताशन (अग्नि) ब्राह्मणका वेष धारण करके उनके समीप आये ॥ २८ ॥ ब्राह्मणरूपी वैश्वानर श्रीरामचन्द्रजीको दुःखित देखकर स्वयं दुःखित हुए और उन्हीं सत्यपरायण हुताशनने सत्यस्वरूप, रामचंद्रजीसे कहा ॥२९॥ द्विज बोले हे भगवन् श्रीरामचंद्रजी ! जैसा समय आया है, सो कहता हूं सुनो तुम्हारी सीता हरीजानेका समय उपस्थित हैं ॥ ३० ॥ दैवकी गति दुर्निवार है, दैवसे बलवान् दूसरा अन्य कोई नहीं है. इस कारण तुम जगज्जननी सीताको मेरे हाथमें समर्पण करो और इस समय इस छायारूपी सीताको

अपने समीप रक्खो ॥ ३१ ॥ जब सीताकी परीक्षाका समय उपस्थित होगा, तब मैं इसको पुनर्वार तुम्हें समर्पण करूंगा. देवताओंने मिलकर मुझे तुम्हारे पास भेजा है मैं यथार्थमें ब्राह्मण नहीं हूं मैं अग्नि हूं ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी अग्निके वचन सुनकर उनमें सम्मत हुए, किन्तु उनका हृदय विदीर्ण होने लगा उन्होंने लक्ष्मणजीसे यह सब बात कुछ न कही ॥ ३३ ॥ अग्निने योगबलसे मायासीताको उत्पन्न किया. हे वत्स नारद ! वह मायासीता सब अंगोंमें प्रकृत सीताके समान हुई, तब उन्होंने वह मायारूपी सीता श्रीरामचंद्रजीके हाथमें समर्पण करी ॥ ३४ ॥ हुताशन प्रकृत सीताको ग्रहण पूर्वक " यह बात किसी प्रकार भी दूसरेके निकट प्रकाशित न हो " यह कहकर चलेगये इधर दूसरेकी बात तो क्या कहैं, लक्ष्मणभी उस बातको कुछ न जानसके ॥ ३५ ॥ एकदिन सहसा एक सुवर्णमृग श्रीरामचन्द्रजीको दिखाई दिया सीताने उस सुवर्णमृगके लिये यत्नपूर्वक श्रीरामचंद्रजीको भेजा ॥ ३६ ॥ सुतरां वनमें सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणजीको वहां रख स्वयं शीघ्रतासहित वहां

दास्यामिसीतांतुभ्यंचपरीक्षासमयेपुनः ॥ देवैःप्रस्थापितोऽहंचनचविप्रोहुताशनः ॥ ३२ ॥ रामस्तद्वचनंश्रुत्वानप्रकाश्यचलक्ष्मणम् ॥ स्वीकारंवचसश्चक्रेहृदयेनविदूयता ॥ ३३ ॥ वह्नियोंगेनसीतायामायासीतांचकारह ॥ तत्तुल्यगुणसर्वांगांददौरामायनारद ॥ ३४ ॥ सीतांगृहीत्वासययौगोप्यंवक्तुंनिषिध्यच ॥ लक्ष्मणोनैवबुबुधेगोप्यमन्यस्यकाकथा ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नंतरेरामोददर्शकानकंमृगम् ॥ सीतातंप्रेरयामासतदर्थेयत्नपूर्वकम् ॥ ३६ ॥ संन्यस्यलक्ष्मणंरामोजानक्यारक्षणेवने ॥ स्वयंजगामतूर्णंतंविव्याधसायकेनच ॥ ३७ ॥ लक्ष्मणेतिचशब्दंसकृत्वाचमाययामृगः ॥ प्राणांस्तत्याजसहसापुरोदृष्ट्वाहरिंस्मरन् ॥ ३८ ॥ मृगदेहंपरित्यज्यादिव्यरूपंविधायच ॥ रत्ननिर्माणयानेनवैकुंठंसजगामह ॥ ३९ ॥ वैकुंठलोकद्वार्यासीत्किंकरोद्वारपालयोः ॥ पुनर्जगामतद्द्वारमादेशाद्द्वारपालयोः ॥ ४० ॥ अथशब्दंचसाश्रुत्वालक्ष्मणेतिचविक्लवम् ॥ तंहिसाप्रेरयामासलक्ष्मणंरामसन्निधौ ॥ ४१ ॥

जाय एक वाणसे उस स्वर्णमृगको वींध डाला ॥ ३७ ॥ विद्ध होतेही उस मायामृगने " हा लक्ष्मण ! कहकर ऊंचे स्वरसे चीत्कार करके सामने खडे हरिका दर्शन और हरिनाम स्मरण करते करते प्राणत्याग किया ॥ ३८ ॥ तब उसका वह मृगदेह दूर होकर दिव्यमूर्त्तिका आविर्भाव हुआ वह रत्ननिर्मित विमानमें चढ़कर वैकुण्ठ धाममें गया ॥ ३९ ॥ यह मायामृग पूर्वमें वैकुण्ठके दो द्वारपालोंका किंकर था, किन्तु कार्यवश राक्षसयोनि पाई थीं, इस समय भगवान् भक्तहितकारी असुरारी कौशल्यानन्दवर्द्धक श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मृत्युको प्राप्त हो फिर उन्हीं वैकुण्ठके दोनों द्वारपालोंका किंकर हुआ ॥ ४० ॥ इधर देवी सीताने " हा लक्ष्मण ! " यह आर्त्तनाद सुनतेही अत्यन्त कातर हो लक्ष्मणको श्रीरामचन्द्रजीके निकट भेजा लक्ष्मणके आश्रमसे बाहर होतेही दुर्निवार रावण सीताको लेकर अत्यानन्दसे

लंकापुरीको चलागया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस ओर श्रीरामचन्द्रजी वनमें लक्ष्मणको आया हुआ देख विषादसागरमें निमग्न हुए और काल व्यतीत न कर अपने आश्रममें आय फिर सीताको न देखा ॥ ४३ ॥ तब तत्काल मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरगये बहुत देर पीछे चेत होनेपर विलाप करते करते इधर उधर उसकी खोजमें विचरने लगे ॥ ४४ ॥ कुछ दिनों पीछे गोदावरीके तटपर उसकी सुधि पाय वानर सैन्यकी सहायतासे समुद्रमें पुल बांधा ॥ ४५ ॥ फिर सेना सहित लंकामें प्रवेश करके बाणोंके द्वारा रावणको बांधवोंसहित मारडाला ॥ ४६ ॥ अनन्तर सीताकी अग्निपरीक्षाका समय उपस्थित हुआ तिस काल हुताश

गतेचलक्ष्मणेरामंरावणोदुर्निवारणः ॥ सीतांगृहीत्वाप्रययौलंकामेवस्वलीलया ॥ ४२ ॥ विषसादचरामश्चवनेदृष्ट्वाचलक्ष्मणम् ॥ तूर्णंचस्वाश्रमं गत्वासीतांनैवददर्शसः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छांसंप्रापसुचिरंविललापभृशंपुनः ॥ पुनःपुनश्चबभ्रामतदन्वेषणपूर्वकम् ॥ ४४ ॥ कालेनप्राप्यतद्वार्तां गोदावरीनदीतटे ॥ सहायान्वानरान्कृत्वाबबंधसागरंहरिः ॥ ४५ ॥ लंकांगत्वारघुश्रेष्ठोजघानसायकेनच ॥ कालेनप्राप्यतंहत्वारावणंबां धवैःसह ॥ ४६ ॥ तांचवह्निपरीक्षांचकारयामाससत्वरम् ॥ हुताशस्तत्रकालेतुवास्तवींजानकींददौ ॥ ४७ ॥ उवाचछायावह्निंचरामंचविनयान्विता ॥ करिष्यामीतिकिमहंतदुपायंवदस्वमे ॥ ४८ ॥ श्रीरामाग्नीऊचतुः ॥ त्वंगच्छतपसेदेविपुष्करंचसुपुण्यदम् ॥ कृत्वातपस्यांतत्रैवस्वर्गलक्ष्मीर्भविष्य सि ॥ ४९ ॥ साचतद्वचनंश्रुत्वाप्रतप्यपुष्करेतपः ॥ दिव्यंत्रिलक्षवर्षंचस्वर्गलक्ष्मीर्बभूवह ॥ ५० ॥ साचकालेनतपसायज्ञकुंडसमुद्भवा ॥ कामिनीपां डवानांचद्रौपदीद्रुपदात्मजा ॥ ५१ ॥ कृतेयुगेवेदवतीकुशध्वजसुताशुभा ॥ त्रेतायांरामपत्नीचसीतेतिजनकात्मजा ॥ ५२ ॥

नने श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें प्रकृत सीताको समर्पण किया ॥ ४७ ॥ तब छायासीताने विनीतभावसे अग्नि और श्रीरामचन्द्रजीसे कहा हे प्रभो ! अब मैं क्या करूं इसका उपाय बताइये ॥ ४८ ॥ अग्नि और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंने छायासीतासे कहा हे देवि ! तुम तपाचरणके लिये पुण्यप्रद पुष्करतीर्थमें जाओ वहां कुछ काल तप करके सहजमें ही स्वर्गलक्ष्मी होसकोगी ॥ ४९ ॥ छायारूपी सीता यह बात सुन, दिव्य तीन लाखवर्ष पर्यन्त पुष्करमें तपस्या कर स्वर्गलक्ष्मी हुई ॥ ५० ॥ अन्तमें यह स्वर्गलक्ष्मीही एकसमय यज्ञ कण्डसे उत्पन्न हुई यही द्रुपदकी कन्या होकर पांच पांडवोंकी पत्नी हुई थी ॥ ५१ ॥ वही सत्ययुगमें कुशध्वजकी कन्या वेदवती

त्रेतायुगमें जनककन्या रूपसे रामपत्नी ॥ ५२ ॥ और द्वापरमें उसकी छाया द्रुपदात्मजा द्रौपदीनामसे उत्पन्न हुई यह सत्य, त्रेता और द्वापर इन तीन युगमें विद्यमान रहती है इस कारण उनको त्रिहारिणी कहते हैं ॥ ५३ ॥ देवर्षि नारदने नारायणसे कहा हे मुनिपुंगव ? हे सन्देहभंजन ! द्रौपदीके पांच पति क्यों हुए इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है, अतएव आप मेरा संशय छेदन कीजिये ॥ ५४ ॥ नारायण बोले हे देवर्षे ! जब लंकापुरीमें प्रकृत सीतारामेक समीप उपस्थित हुई तब अग्निदत्ता छायारूपी नवयौवना सीताके अत्यन्त व्याकुल होनेपर ॥ ५५ ॥ अग्निदेव और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंने उसको पुष्करमें जाय शंकरकी आराधना करनेकी अनुमति दी अनन्तर छायारूपी सीताने पुष्करमें तपस्या करते करते कामातुर और श्रेष्ठ पति प्राप्त होनेके लिये अत्यन्त व्यग्र हो श्रीमहादेवजीके

तच्छायाद्रौपदीदेवीद्वापरेद्रुपदात्मजा ॥ त्रिहायणीचसाप्रोक्ताविद्यमानायुगत्रये ॥ ५३ ॥ नारदउवाच ॥ प्रियाःपंचकथंतस्यावभूवुर्मुनिपुंगव ॥ इतिमच्चित्तसंदेहंभंजसंदेहभंजन ॥ ५४ ॥ नारायणउवाच ॥ लंकायांवास्तवीसीतारामंसंप्रापनारद ॥ रूपयौवनसंपन्नाछायाचवहुचिंतया ॥ ५५ ॥ रामाग्न्योराज्ञयातप्तुमुपास्तेशंकरंपरम् ॥ कामातुरापतिव्यग्राप्रार्थयंतीपुनःपुनः ॥५६॥ पतिंदेहिपतिंदेहिपतिंदेहित्रिलोचन ॥ पतिंदेहिपतिंदेहिपंचवा रंचकारसा ॥ ५७ ॥ शिवस्तत्प्रार्थनांश्रुत्वाप्रहस्यरसिकेश्वरः ॥ प्रियेतवप्रियाःपंचभविष्यंतिवरंददौ ॥ ५८ ॥ तेनसापांडवानांचबभूवकामिनीप्रिया ॥ इतितेकथितंसर्वंप्रस्तावंवास्तवंशृणु॥५९॥अथसंप्राप्यलंकायांसीतांरामोमनोहराम्॥ विभीषणायतांलंकांदत्त्वाऽयोध्यांययौपुनः॥६०॥एकादशसहस्राब्दंकृत्वाराज्यंचभारते॥ जगामसर्वैर्लोकैश्चसार्धंवैकुंठमेवच॥६१॥कमलांशावेदवतीकमलायांविवेशसा ॥ कथितंपुण्यमाख्यानंपुण्यदंपापनाशनम्॥६२॥

निकट वारंवार ॥ ५६ ॥ अर्थात् पांचवार "मुझको पति प्रदान करो" कहकर प्रार्थना करी ॥ ५७ ॥ रसिकचूडामणि शिवजीने यह कामना सुनकर "हे प्रिये ! तुम पांच पति प्राप्त करोगी" यह कहकर उसको वर दिया ॥ ५८ ॥ इसी कारण वह पांच पांडवोंकी प्रियतम भार्या हुई थीं. हे वत्स नारद ! यह मैंने तुम्हारे निकट विस्तार सहित सब विषय वर्णन किया, अब दूसरी वास्तविक कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५९ ॥ लंकाका युद्ध समाप्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजी अपनी मनोहारिणी प्रियतमा पत्नी सीताको पाय विभीषणको लंकाके राज्यसिंहासनपर बैठाय स्वयं फिर अयोध्यामें आये ॥ ६० ॥ फिर ग्यारह हजार वर्षपर्यन्त भारतमें आधिपत्य विस्तार कर अन्तमें फिर सब प्रजाओंके सहित वैकुण्ठधाममें उपस्थित हुये॥ ६१ ॥ लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न वेदवती भी कमलाके शरीरमें विलीन हुई. हे वत्स ! यह मैं ने

तुमसे वेदवतीका पवित्र उपाख्यान वर्णन किया इसके सुननेसे पापध्वंस और पुण्यका संचार होता है ॥ ६२ ॥ ऋगादि चारों वेद मूर्त्तिमान् होकर वेदवतीके जिह्वाग्रमें विराजमान थे, इसी कारण उसका नाम वेदवती हुआ है ॥ ६३ ॥ यह मैंने तुम्हारे निकट कुशध्वजकी कन्या वेदवतीका वृत्तान्त वर्णन किया, अब धर्मध्वजकी कन्या तुलसीका वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! धर्मध्वजकी पत्नीका नाम माधवी था माधवी गंधमादन पर्वतपर जाकर राजा धर्मध्वजके संग परमसुखसे विहार करने लगी ॥ १ ॥ वहां पुष्पोंसे अलंकृत और चंदनविलिप्त रतिशय्या प्रस्तुत हुई स्वयं सर्वाङ्गमें चन्दनविलेपन किया पुष्प और चंदन गंध

सततंमूर्तिमंतश्चवेदाश्चत्वारएवच ॥ संतियस्याश्चजिह्वाग्रेसाचवेदवतीश्रुता ॥ ६३ ॥ धर्मध्वजसुताख्यानंनिबोधकथयामिते ॥ ६४ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ धर्मध्वजस्यपत्नीचमाधवीतिचविश्रुता ॥ नृपेणसार्धंसाऽऽरामेरेमेच गंधमादने ॥ १ ॥ शय्यांरतिकरींकृत्वापुष्पचंदनचर्चिताम् ॥ चंदनालिप्तसर्वांगीपुष्पचंदनवायुना ॥ २ ॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वंगीरत्नभूषणभूषिता ॥ कामु कीरसिकाश्रृंगारसिकेनचसंयुता ॥ ३ ॥ सुरतेविरतिर्नास्तितयोःसुरतिविज्ञयोः ॥ गतंदेववर्षशतंनज्ञातंचदिवानिशम् ॥ ४ ॥ ततोराजामतिंप्राप्यसुर ताद्विररामच ॥ कामुकीसुंदरीकिंचिन्नचतृप्तिंजगामसा ॥ ५ ॥ दधारगर्भंसासद्योदैवाद्दिव्यशतंसती ॥ श्रीगर्भाश्रीयुतासाचसंबभूवदिनेदिने ॥ ६ ॥

समायुक्त सुस्निग्ध वायु सब शरीरको शीतल करने लगा ॥ २ ॥ माधवी एक स्त्रीरत्नथी, उसका सर्वाङ्ग अतिमनोहर था. इस पर भी फिर सब रत्नमय भूषण पहिरे हुई थी वह जैसी रसिका थी, नरपति भी वैसेही रसिक चूडामणि थे बोध होता है मानो विधाताने धर्मध्वजके लियेही अनुरूप रसिका कामुकीको उत्पन्न किया है ॥ ३ ॥ दोनों ही रतिविशारद थे, सुतरां सुरतिमें किसीकी भी विरति नहीं थी इस कार्यके उपलक्षणमें देवमानके एक शतवर्षपर्यन्त दिनरात्रि किधर होकर बीतगये, वह यह कुछभी न जानसके ॥ ४ ॥ अनन्तर नरपतिको चेत हुआ, तब वह रतिकार्यसे विरत हुए किन्तु कामातुरा सुंदरी माधवीकी इससे कुछ भी तृप्ति न हुई॥ ५॥ जो हो दैवयोगसे उसने गर्भवती होकर शतवर्ष पर्यन्त गर्भधारण किया गर्भमें लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ, इस कारण दिन दिन शरीरकी कान्ति बढने लगी॥ ६॥

अनन्तर शुभदिन, शुभक्षण, शुभयोग, शुभलग्न, शुभअंश एवं शुभस्वामी और ग्रहयोगके उपस्थित होनेपर ॥ ७ ॥ कार्त्तिकी पूर्णिमा शुक्रवारमें लक्ष्मी अंश संभूत एक मनोहर कन्या उत्पन्न करी ॥ ८ ॥ कन्याका मुखमंडल शरद्के पूर्ण चन्द्रमाके समान और दोनों नेत्र शारदीय कमलकी शोभा विस्तार करते थे, अधर और ओष्ठ पक्व बिम्बाफलकी शोभा प्रकाशित करते थे कन्या उत्पन्न होतेही हास्य वदनसे सूतिकागृह (सोवर) को देखने लगी ॥ ९ ॥ उसके करतल (हथेली) और पदतल (पैरके तलुए) लालवर्ण थे नाभि गहरी और उसके निम्नदेशमें त्रिवली विराजमान् तथा नितम्ब गोलाकार थे ॥ १० ॥ शीतकालमें उस श्यामाङ्गीका शरीर उष्णस्पर्श और ग्रीष्ममें शीतल तथा सुखस्पर्श था. केशकलापन्यग्रोधजटाके समान लम्बे थे ॥ ११ ॥ उसका वर्ण पीतचम्पकके समान समुज्ज्वल था वह सब

शुभेक्षणेशुभदिनेशुभयोगेचसंयुते ॥ शुभलग्नेशुभांशेचशुभस्वामिग्रहान्विते ॥ ७ ॥ कार्त्तिकीपूर्णिमायांतुसितवारेचपाद्मज ॥ सुषावसाचपद्मांशांपद्मिनींतांमनोहराम् ॥ ८ ॥ शरत्पार्वणचंद्रास्यांशरत्पंकजलोचनाम् ॥ पक्वबिंबाधरोष्ठींचपश्यंतींसस्मितांगृहम् ॥ ९ ॥ हस्तपादतलारक्तांनिम्ननाभिंमनोरमाम् ॥ तदधस्त्रिवलीयुक्तांनितंबयुगवर्तुलाम् ॥ १० ॥ शीतेसुखोष्णसर्वांगींग्रीष्मेचसुखशीतलाम् ॥ श्यामांसुकेशींरुचिरांन्यग्रोधपरिमंडलाम् ॥ ११ पीतचंपकवर्णाभांसुंदरीष्वेवसुंदरीम् ॥ नरानार्यश्चतांदृष्ट्वातुलनांदातुमक्षमाः ॥ १२ ॥ तेननाम्नाचतुलसींतांवदंतिमनीषिणः ॥ साचभूमिष्ठमात्रेणयोग्यास्त्रीप्रकृतिर्यथा ॥ १३ ॥ सर्वैर्निषिद्धातपसेजगामबदरीवनम् ॥ तत्रदेवाब्दलक्षंचचकारपरमंतपः ॥ १४ ॥ मनसानारायणःस्वामीभवितेतिचनिश्चिता ॥ ग्रीष्मेपंचतपाःशीतेतोयस्त्राचप्रावृषि ॥ १५ ॥ आसनस्थावृष्टिधाराःसहंतीतिदिवानिशम् ॥ विंशत्सहस्रवर्षंचफलतोयाशनाचसा ॥ १६ ॥ त्रिंशत्सहस्रवर्षंचपत्राहारातपस्विनी ॥ चत्वारिंशत्सहस्राब्दंवाय्वाहाराकृशोदरी ॥ १७ ॥

रमणी रत्नोंमें प्रधान रत्न थी नर और नारीगण उसके शरीरके सौन्दर्यकी तुलना देनेमें असमर्थ जानकर ॥१२॥ महर्षियोंने उसका तुलसीनाम रक्खा, वह उत्पन्न होतेही योग्य स्त्री प्रकृतिके समान प्रतीयमान होनेलगी ॥ १३ ॥ वारंवार सब उसको निषेध करने लगे तो भी वह तपस्याके अर्थ बदरीवनमें चलीगई वहां उसने देवमानके लक्ष वर्षतक कठोर तपस्या करी ॥ १४ ॥ नारायणको पतिलाभ करनाही उसकी तपस्याका प्रधान उद्देश था वह ग्रीष्ममें पंचतपा, शीतमें सलिलस्था और वर्षाके समय अनावृत (उघड़े) स्थानमें बैठकर ॥ १५ ॥ दिनरात धारापात सहने लगी बीसहजार वर्ष केवल फल और जलाशनमें बीतगये ॥ १६ ॥ तीसहज़ारवर्ष केवल

वृक्षके पत्तेमात्र आहार किये. चालीस सहस्र वर्ष उपस्थित होनेपर वायुमात्र भक्षण करनेके कारण दिन दिन शरीर दुबला होने लगा ॥ १७ ॥ अनन्तर दशहजार वर्ष काल एकवारही सब आहार छोड़ जब लक्ष्य विहीन होकर एक पैरसे खडी हुई. उसी समय कमलयोनि ब्रह्माजी ॥ १८ ॥ यह देखकर वर देनेके लिये वहां आये तब देखतेही तुलसीने तत्काल हंसवाहन चतुराननको प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तब जगत्कर्ता विधाताने उससे कहा हे देवि तुलसी ! मनोवांछित वर मांगो ॥ २० ॥ तुम हरिभक्ति हरिदास्य,अजरता और अमरता इत्यादि जिस किसी अभीष्टकी प्रार्थना करोगी, मैं वही दूंगा. तुलसीने कहा हे तात ! इस समय मेरी जो अभिलाषा है,वह कहती हूं, सुनो॥ २१ ॥ क्योंकि जो अंतर्यामी हैं, उनके निकट लाज करके क्या करूंगी. हे प्रभो ! मेरा नाम तुलसी गोपी है मैं पूर्वकालके समय गोलोकमें अवस्थिति करतीथी ॥ २२ ॥

ततोदशसहस्राब्दंनिराहाराबभूवसा ॥ निर्लक्षांचैकपादस्थांदृष्ट्वातांकमलोद्भवः॥१८॥समाययौवरंदातुंपरंबदरिकाश्रमम् ॥ चतुर्मुखंचसादृष्ट्वाननामहंसवाहनम् ॥१९॥ तामुवाचजगत्कर्ताविधाताजगतामपि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वरंवृणीष्वतुलसियत्तेमनसिवांछितम् ॥२०॥ हरिभक्तिंहरेर्दास्यमजरामरतामपि ॥ तुलस्युवाच ॥ शृणुतातप्रवक्ष्यामियन्मेमनसिवांछितम् ॥ २१ ॥ सर्वज्ञस्याऽपिपुरतःकालज्जाममसांप्रतम् ॥ अहंतुतुलसीगोपीगोलोकेऽहंस्थितापुरा ॥ २२ ॥ कृष्णप्रियाकिंकरीचतदंशातत्सखीप्रिया ॥ गोविंदरतिसंभुक्तामतृप्तांमांचमूर्च्छिताम् ॥२३॥ रासेश्वरीसमागत्यददर्शरासमंडले ॥ गोविंदंभर्त्सयामासमांशशापरुषान्विता ॥२४॥ याहित्वंमानवींयोनिमित्येवंचशशापह ॥ मामुवाचसगोविंदोमदंशंचचतुर्भुजम् ॥ २५ ॥ लभिष्यसितपस्तस्वाभारतेब्रह्मणोवरात् ॥ इत्येवमुक्त्वादेवेशोप्यंतर्धानंचकारसः॥२६॥ देव्याभियातनुंत्यक्त्वाप्राप्तंजन्मगुरोभुवि॥अहंनारायणंकांतंशांतंसुंदरविग्रहम्॥२७॥

और मैं कृष्णप्रिया राधिकाकी प्रिय किंकरी थी मैंने भी उसके अंशसे जन्म ग्रहण किया था उसकी सब सखियेंभी मेरा आदर करती मैं एकसमय रासमंडलमें गोविंदके द्वारा सम्भुक्त होकर तृप्त न होनेसे प्रायः मूर्च्छित होकर गिरपड़ी थी ॥ २३ ॥ इसी अवसरमें रासेश्वरी राधाने वहां आय मुझको उस अवस्थामें देख गोविंदकी भर्त्सना करी और क्रोधमें भरकर मुझको यह शाप दिया कि ॥ २४ ॥ " तू अभी भूलोकमें जाकर मानवी हो " तब गोविंदने मुझसे कहा " तेरे भारतमें जाकर तपस्या करनेपर ब्रह्मा संतुष्टहोकर वर देंगे तू उसी वरके पानेसे मेरे अंशसंभूत चतुर्भुज मूर्त्तिको पतिलाभ करेगी " हे तात ! देवेश ! श्रीकृष्ण यह बात कहकर अन्तर्धान होगये ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे गुरो ! मैंने उन देवी राधाके भयसे शरीर त्यागकर इस भूमण्डलमें जन्म ग्रहण किया है अब मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है केवल

मुझको यह वरदो "जिससे मैं शान्त कान्त सुंदर शरीर नारायण को ॥ २७ ॥ पतिलाभ करसकूं" ब्रह्माजीने कहा ! हे वत्से तुलसी ! सुदामा नामक गोप श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न हुआ है ॥ २८ ॥ इस समय उस कृष्णांशरूपी अतितेजस्वी सुदामाने श्री राधाके शापसे भारतके मध्य दानववंशमें जन्म ग्रहण किया है ॥ २९ ॥ उसका नाम शंखचूड है तीनों लोकमें उसके समान पराक्रमी दूसरा नहीं है पूर्वकालके समय वह गोलोक धाममें तुमको देख उसका चित्त कामवाणसे जर्जरित हुआ ॥ ३० ॥ किन्तु केवल राधिकाके प्रभावसे तुमको आलिंगन करनेमें समर्थ न हुआ वही सुदामा अब जातिस्मर हुआ है ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरि ! तुमभी जातिस्मरा हो कोई बात भी तुमसे छिपी नहीं है. हे शोभने! तुम इस समय उसकी पत्नी होओ ॥ ३२॥ फिर शान्त स्वभाव मनोहरमूर्त्ति नारायणको पतिलाभ करसकोगी

सांप्रतंतंपतिंलब्धुंवरयेत्वंचदेहिमे ॥ ब्रह्मदेवउवाच ॥ सुदामानामगोपश्चश्रीकृष्णांगसमुद्भवः ॥ २८ ॥ तदंशश्चाऽतितेजस्वीलेभेजन्मचभारते ॥ सांप्रतंराधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः ॥२९॥ शंखचूडेतिविख्यातस्त्रैलोक्येनचतत्समः ॥ गोलोकेत्वांपुराद्दष्ट्वाकामोन्मथितमानसः ॥ ३० ॥ विलंभितुंन शशाकराधिकायाःप्रभावतः ॥ सचजातिस्मरस्तस्मात्सुदामाभूच्चसागरे॥३१॥जातिस्मरात्वमपिसासर्वंजानासिसुंदरि ॥अधुनातस्यपत्नीत्वंसंभविष्यसि शोभने ॥ ३२ ॥ पश्चान्नारायणंशांतंकांतमेववरिष्यसि ॥ शापान्नारायणस्यैवकलयादैवयोगतः ॥ ३३ ॥ भविष्यसिवृक्षरूपात्वंपूताविश्वपाविनी ॥ प्रधानासर्वपुष्पेषुविष्णुप्राणाधिकाभवेः ॥ ३४ ॥ त्वयाविनाचसर्वेषांपूजाचविफलाभवेत् ॥ वृंदावनेवृक्षरूपानाम्नावृंदावनीतिच ॥ ३५ ॥ त्वत्पत्रैर्गोपि गोपाश्चपूजयिष्यंतिमाधवम् ॥ वृक्षाधिदेवीरूपेणसार्धंकृष्णेनसंततम् ॥ ३६ ॥ विहरिष्यसिगोपेनस्वच्छंदंमद्वरेणच ॥ इत्येवंवचनंश्रुत्वासस्मिताहृष्टमानसा ॥ ३७ ॥ प्रणनामचब्रह्माणंतंचकिंचिदुवाचसा ॥ तुलस्युवाच ॥ यथामेद्विभुजेकृष्णेवांछाचश्यामसुंदरे ॥ ३८ ॥

तुम नारायणके शाप अंशसे ॥ ३३ ॥ विश्वपावनी तुलसी वृक्षरूपमें परिणत होगी तुम पुष्पोंमें सर्व प्रधानपुष्प और नारायणको प्राणोंकी अपेक्षा भी प्रियतम होगी ॥ ॥ ३४ ॥ तुम्हारे पुष्पके विना किसीकी पूजाभी सिद्ध नहीं होगी. तुम वृन्दावनमें वृक्षरूप धारण करके वृन्दावनी नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ३५ ॥ गोप और गोपियें तुम्हारे पत्र लेकर माधवकी पूजा करेंगी तुम तुलसी वृक्षकी अधिष्ठात्री देवीरूपसे सदा गोपवर श्रीकृष्णके संग स्वच्छन्दविहार करोगी ॥ ३६ ॥ हे वत्स नारद ! देवी तुलसी ब्रह्माजीके इसप्रकार वचन सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुई ॥ ३७ ॥ उनके मुखपर हास्यका विकास हुआ तब उन्होंने विधाताको प्रणाम

करके कहा तुलसी बोली हे तात ! मैं तुमसे सत्य कहती हूं कि, द्विभुज श्यामसुंदर कृष्णके प्रति जैसी भक्ति है ॥ ३८ ॥ चतुर्भुजके प्रति वैसी नहीं है यह सत्य कहती हूं. क्योंकि सहसा गोविन्दके संग मेरी रतिभंग होनेसे मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥ ३९ ॥ मैं तो केवल गोविन्दके वचनसेही चतुर्भुजकी प्रार्थना करती थी अब निश्चय बोध होता है कि, आपके अनुग्रहसे फिर दुर्लभ गोविन्दको प्राप्त हूंगी ॥ ॥ ४० ॥ किन्तु हे तात ! अब मुझको राधाके भयसे कातर होना न पड़े ब्रह्माजी बोले हे वत्से ! मैं तुमको षोडशाक्षर राधामंत्र देता हूं ॥ ४१ ॥ मेरे वरसे तुम राधाकी प्राणके तुल्य स्नेहपात्र होगी तुम्हारा गुप्त विहार व्यापार फिर राधा नहीं जानसकेगी ॥ ४२ ॥ हे सौभाग्यवती ! तुम राधाके समान गोविन्दकी प्रियतमा होगी. जगत्कर्त्ता ब्रह्माजीने तुलसीसे इसप्रकार कह उनको षोड़शाक्षर ॥ ४३ ॥

सत्यंब्रवीमिहेतातनतथाचचतुर्भुजे ॥ अतृप्ताऽहंचगोविंदेदैवाच्छृंगारभंगतः ॥ ३९ ॥ गोविंदस्यैववचनात्प्रार्थयामिचतुर्भुजम् ॥ त्वत्प्रसादेनगोविंदंपुनरेवसुदुर्लभम् ॥ ४० ॥ ध्रुवमेवलभिष्यामिराधाभीतिंप्रमोचय ॥ ब्रह्मदेवउवाच ॥ गृहाणराधिकामंत्रंददामिषोडशाक्षरम् ॥ ४१ ॥ तस्याश्चप्राणतुल्यात्वंमद्वरेणभविष्यसि ॥ शृंगारंयुवयोर्गोप्यंनज्ञास्यतिचराधिका ॥ ४२ ॥ राधासमात्वंसुभगेगोविंदस्यभविष्यसि ॥ इत्येवमुक्त्वादत्त्वाचदेव्यावैषोडशाक्षरम् ॥ ४३ ॥ मंत्रं चैवजगद्धातास्तोत्रंचकवचंपरम् ॥ सर्वपूजाविधानंचपुरश्चर्याविधिक्रमम् ॥ ४४ ॥ परांशुभाशिषंचैवपूजांचैवचकारसा ॥ बभूवसिद्धासादेवीतत्प्रसादाद्रमायथा ॥ ४५ ॥ सिद्धमंत्रेणतुलसीवरंप्रापयथोदितम् ॥ बुभुजेचमहाभोगंयद्विश्वेषुचदुर्लभम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नमनसादेवीतत्याजतपसःक्लमम् ॥ सिद्धेफलेनराणांचदुःखंचसुखमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ भुक्त्वापीत्वाचसंतुष्टाशयनंचचकारसा ॥ तल्पेमनोरमेतत्रपुष्पचंदनचर्चिते ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादे तुलस्युपाख्याने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ तुलसीपरितुष्टाचसुष्वापहृष्टमानसा ॥ नवयौवनसंपन्नावृषध्वजवरांगना ॥ १ ॥

राधामंत्र, स्तोत्र, कवच, पूजाविधि और पुरश्चरणके नियमका उपदेश प्रदान ॥ ४४ ॥ पूर्वक यथेष्ट आशिर्वाद दिया. तब तुलसीभी तदनुसार ही पूजा करनेमें प्रवृत्त हुई. लक्ष्मीके समान तुलसीनेभी इसप्रकार ब्रह्माजीके अनुग्रहसे सिद्धिलाभ की थी ॥ ४५ ॥ सिद्धमंत्रके प्रभावसे उनको अभीष्टवर प्राप्त हुआ वह जगदुर्लभ अनेक भोगोंमें सौभाग्यवती हुई ॥ ४६ ॥ उनका मन सुस्थिर हुआ तपस्याका क्लेश दूर होगया वास्तविक मनुष्यकी मनोकामना सिद्ध होनेपर चाहे जितना कष्टभोग क्यों न हो ? सबही सुखमें परिणत होना है ॥ ४७ ॥ फिर उन्होने पान, भोजन समाप्त करके पुष्प और चन्दन समायुक्त मनोहर शय्यापर शयन किया ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारायण बोले हे वत्स नारद ! इसप्रकार तपश्चर्या समाप्तिके पीछे वृषध्वज

कन्या नवयौवनसंपन्न तुलसी देवीके अत्यन्त आनन्दित होकर सुखसे शयन करने पर ॥ १ ॥ पंचशर (कामदेव) ने उनपर सम्मोहनादि पांच बाण छोडे यद्यपि चंदन लगाये होकर पुष्प शय्यापर शयनकर रही थीं, किन्तु तो भी पुष्पधन्वाके बाणोंसे उनका शरीर दग्ध होने लगा ॥ २ ॥ उनका सर्वाङ्ग रोमाञ्चित होगया शरीरकाँपने लगा नेत्र रक्तवर्ण होगये क्षणमें उद्वेग, क्षणमें मूर्च्छा ॥ ३ ॥ क्षणमें शुष्कता, क्षणमें सुखावह तन्द्रा, क्षणमें दाह, क्षणमें प्रसन्नता ॥ ४ ॥ क्षणमें चेतना और क्षणमें विषाद होने लगा कभी शय्यासे उठै कभी बैठ जाय कभी उद्वेगसे फिर निद्रा होजाती थी ॥ ५ ॥ क्षणमें उद्वेगसे भ्रमने लगती क्षणमें स्थित होती क्षणमें उद्वेगसे सोजाती ॥ ६ ॥ चंदनदिग्ध, पुष्पशय्या उसको कंटक होगयी अतीव सुंदर और सुखकर फल तथा सुशीतल जल उसको विषवत् होगया ॥ ७ ॥ वासगृह भूविवर तथा सूक्ष्म सूक्ष्म

चिक्षेपपंचबाणश्चपंचबाणांश्चतांप्रति ॥ पुष्पायुधेनसादग्धापुष्पचंदनचर्चिता ॥ २ ॥ पुलकांचितसर्वांगीकंपितारक्तलोचना ॥ क्षणंसाशुष्कतांप्रापक्षणं मूर्च्छामवापह ॥ ३ ॥ क्षणमुद्विग्नतांप्रापक्षणंतंद्रांसुखावहाम् ॥ क्षणंचदहनंप्रापक्षणंप्रापप्रसन्नताम् ॥ ४ ॥ क्षणंसाचेतनांप्रापक्षणंप्रापविषण्णताम् ॥ उत्तिष्ठंतीक्षणंतल्पाद्गच्छंतीनिकटेक्षणम् ॥ ५ ॥ भ्रमंतीक्षणमुद्वेगान्निवसंतीक्षणंपुनः ॥ क्षणमेवसमुद्वेगात्सुष्वापपुनरेवसा ॥ ६ ॥ पुष्पचंदनतल्पं चतद्बभूवाऽतिकंटकम् ॥ विषहारिसुखंदिव्यंसुंदरंचफलंजलम् ॥ ७ ॥ निलयंचबिलाकारंसूक्ष्मवस्त्रंहुताशनः ॥ सिंदूरपत्रकंचैवव्रणतुल्यंचदुःखदम् ॥ ८ ॥ क्षणंददर्शतंद्रायांसुवेषंपुरुषंसती ॥ सुंदरंचयुवानंचसस्मितंरासिकेश्वरम् ॥ ९ ॥ चंदनोक्षितसर्वांगंरत्नभूषणभूषितम् ॥ आगच्छंतंमाल्यवंतंपिबंतंतन्मुखांबुजम् ॥ १० ॥ कथयंतंरतिकथांब्रुवंतंमधुरंमुहुः ॥ संभुक्तवंतंतल्पेचसमाश्लिष्यंतमीप्सितम् ॥ ११ ॥ पुनरेवतुगच्छंतमागच्छंतचसन्निधौ ॥ यांतंक्कयासि प्राणेशतिष्ठेत्येवमुवाचसा ॥ १२ ॥ पुनश्चचेतनांप्राप्यविललापपुनःपुनः ॥ एवंसायौवनंप्राप्यतस्थौतत्रैवनारद ॥ १३ ॥

वस्त्र हुताशनके समान बोध होनेलगे सिन्दूरबिन्दु उसको व्रणतुल्य दुखःदायक हुआ ॥ ८ ॥ वह तन्द्राके आवेशमें स्वप्न देखने लगी कि, एक सुवेष सुंदर रसिक युवा पुरुष हास्यवदनसे उनके समीप उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥ उसका सर्वांग चन्दन विलिप्त और उत्कृष्ट रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित और गलेमें वनमाला विराजमान है वह आनकर मानों उनके मुखकमलका मधु पान करता है ॥ १० ॥ और रतिकथा तथा अन्यान्य अनेक प्रकारकी मधुर बातोंसे मिष्टालाप करता है और मानों आलिंगनपूर्वक शय्यापर शयन करके संभोग सुख आस्वादन करता है ॥ ११ ॥ फिर संभोगके पीछे एकवार चला जाता है और फिर निकट आजाता है जानेके समय "हे प्राणेश्वर ! कहां जाते हो निकट रहो" यह कहकर वह सीमन्तिनी उससे संभाषण करती है ॥ १२ ॥ और फिर ज्योंही चेतनका संचार हुआ, उसी समय वारंवार

विलाप करने लगी. हे वत्स नारद ! देवी तुलसी यौवनकी सीमामें भरकर इसप्रकार बद्रिकाश्रममें वास करने लगी ॥ १३ ॥ इधर महायोगी शंखचूडने महर्षि जैगीषव्यसे कृष्णमंत्र पाय पुष्करमें सिद्धि प्राप्त करी ॥ १४ ॥ सर्वमंगलमय कवच गलेमें धारणपूर्वक ब्रह्माजीसे अपना अभिलषित वर लाभ करके ॥ १५ ॥ उनकीही आज्ञानुसार बद्रिकाश्रममें उपस्थित हुआ उपस्थित होतेही शंखचूड देवी तुलसीके नेत्रपथका पथिक हुआ ॥ १६ ॥ शंखचूडके शरीरमें नवयौवनका आविर्भाव होनेसे बोध होता था मानो मूर्तिमान् काम है वर्ण श्वेत चम्पकके समान और सर्वाङ्गमें रत्नमय आभूषण थे ॥ १७॥ मुखमण्डल शारदीय पूर्ण चन्द्र और चक्षु पद्मपलाशके सदृश बड़े थे वह मनोहर मूर्त्ति उत्कृष्ट रत्नमय विमानमें विराजमान थी ॥ १८ ॥ दो रत्नकुण्डल गण्डस्थलपर्यन्त चलायमान थे गलेमें पारिजात पुष्पकी माला ॥

शंखचूडोमहायोगीजैगीषव्यान्मनोहरम् ॥ कृष्णमंत्रंचसंप्राप्यकृत्वासिद्धंतुपुष्करे ॥ १४ ॥ कवचंचगलेबद्धासर्वमंगलमंगलम् ॥ ब्रह्मणश्चवरंप्राप्ययत्त्मनसिवांछितम् ॥ १५ ॥ आज्ञयाब्रह्मणःसोपिवदरींचसमाययौ ॥ आगच्छंतंशंखचूडंददर्शतुलसीमुने ॥ १६ ॥ नवयौवनसंपन्नंकामदेवसमप्रभम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभंरत्नभूषणभूषितम् ॥ १७ ॥ शरत्पार्वणचंद्रास्यंशरत्पंकजलोचनम् ॥ रत्नसारविनिर्माणविमानस्थंमनोहरम् ॥ ॥ १८ ॥ रत्नकुंडलयुग्मेनगंडस्थलविराजितम् ॥ पारिजातप्रसूनानांमालावंतंचसुस्मितम् ॥ १९ ॥ कस्तूरीकुंकुमायुक्तंसुगंधिचंदनान्वितम् ॥ साहृष्ट्वासन्निधावेनंमुखमाच्छाद्यवाससा ॥ २० ॥ सस्मितातंनिरीक्षंतीसकटाक्षंपुनःपुनः ॥ बभूवाऽतिनम्रमुखीनवसंगमलज्जिता ॥ २१ ॥ शरदिंदुविनिंद्यैकस्वमुखेंदुविराजिता ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणयावकावलिसंयुता ॥ २२ ॥ मणींद्रसारनिर्माणक्वणन्मंजीररंजिता ॥ दधतीकवरीभारंमालतीमाल्यसंयुतम् ॥ २३ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिकुंडला ॥ चित्रकुंडलयुग्मेनगंडस्थलविराजिता ॥ २४ ॥ रत्नेंद्रसारहारेणस्तनमध्यस्थलोज्वला ॥ रत्नकंकणकेयूरशंखभूषणभूषिता ॥ २५ ॥ रत्नांगुलीयकैर्दिव्यैरंगुल्यावलिराजिता ॥ दृष्ट्वातांललितांरम्यांसुशीलांसुंदरींसतीम् ॥ २६ ॥

॥ १९ ॥ शरीरमें कुंकुम और सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था. हे वत्स नारद ! देवी तुलसी शंखचूडको समीप आयाहुआ देख वस्त्रके अंचलसे अपना मुख ढक ॥ २० ॥ हास्य वदनसे वारंवार उसके प्रति कटाक्ष विक्षेप और नव समागम पिपासाकी लज्जासे मुख नीचा करने लगी ॥ २१ ॥ जिसका विमल मुखचन्द्र शरदके चन्द्रमाकी शोभाका तिरस्कार करता है चरणोंमें अमूल्य रत्ननिर्मित चरणाभरण ॥ २२ ॥ और उत्कृष्ट मणिनिर्मित नूपुर हैं मस्तकमें सुगंधित मालतीमालासे कबरीबंधन है ॥ २३ ॥ कानमें अमूल्य रत्ननिर्मित मकराकृत विचित्र कुण्डल गण्डस्थलपर्यन्त चलायमान है ॥ २४ ॥ अमूल्य रत्नमय हारने स्तनमण्डलके मध्यभागमें लम्बायमान होकर वक्षःस्थलको उज्ज्वल किया है हाथमें रत्नमय कंकण और शंख भूषण है ॥ २५ ॥ दोनों बाहुमें रत्नमय केयूर और

हाथोंकी अंगुलियोंमें श्रेष्ठ रत्नांगुली शोभा पाती है. हे मुनिवर! शंखचूडने उस मनोहर सुशील सुंदरीसती तुलसीको देखतेही ॥ २६ ॥ समीप आय बैठकर मधुरस्वरसे कहा शंखचूड बोला हे मानिनी ! हे कल्याणी ! हे कल्याणदायिनी ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ? ॥ २७ ॥ रमणियोंमें तुम धन्या और मान्या बोध होती हो, मैं तुम्हारा मौनीभूत दास हूं मेरे संग बात चीत करो ॥ २८ ॥ उत्सुक चित्तवाली उन वामलोचना तुलसीने अनुरागवान् शंखचूडका वचन सुनतेही हास्य मुख और नम्रवदन होकर उससे कहा ॥२९॥ तुलसी बोली महाराज ! मैं वृषध्वजकी कन्या हूं तपश्चरणके अर्थ तपोवनमें आनकर तपस्यामें निमग्न रहती हूं आप कौन हैं आपकी वार्तोंसे क्या प्रयोजन है?आप यथेच्छ यहांसे गमन कीजिये॥ ३०॥शास्त्रमें सुना है कि, सद्वंशोत्पन्न पुरुष कभी सद्वंशमें उत्पन्न हुई निर्जनमें बैठी स्त्रीसे बात

उवासतत्समीपेतुमधुरंतामुवाचसः ॥ शंखचूडउवाच ॥ कात्वंकस्यचकन्याचधन्यामान्याचयोषिताम् ॥ २७ ॥ कात्वंमानिनिकल्याणिसर्वकल्याणदायिनी ॥ मौनीभूतेकिंकरेमांसंभाषांकुरुसुंदरि ॥ २८ ॥ इत्येवंवचनंश्रुत्वासकामावामलोचना ॥ सस्मितानम्रवदनासकामंतमुवाचसा ॥ २९ ॥ तुलस्युवाच ॥ धर्मध्वजसुताहंचतपस्यायांतपोवने ॥ तपस्विन्यहंतिष्ठामिकस्त्वंगच्छयथासुखम् ॥ ३० ॥ कामिनींकुलजातांचरहस्येकाकिनींसतीम् ॥ नपृच्छतिकुलेजातइत्येवंमेश्रुतौश्रुतम् ॥ ३१ ॥ लंपटोऽसत्कुलेजातोधर्मशास्त्रार्थवर्जितः ॥ येनाऽश्रुतःश्रुतेरर्थःसकामीच्छतिकामिनीम् ॥ ३२ ॥ आपातमधुरांमत्तामंतकांपुरुषस्यताम् ॥ विषकुंभाकाररूपाममृतास्यांचसंततम् ॥ ३३ ॥ हृदयेक्षुरधाराभांशश्वन्मधुरभाषिणीम् ॥ स्वकार्यपरिनिष्पत्यैतत्परांसततंचताम् ॥३४॥ कार्यार्थेस्वामिवशगामन्यथैवाऽवशांसदा ॥ स्वांतर्मलिनरूपांचप्रसन्नवदनेक्षणाम्॥३५॥ श्रुतौपुराणेयासांचचरित्रमतिदूषितम् ॥ तासुकोविश्वसेत्प्राज्ञःप्रज्ञावांश्चदुराशयः ॥ ३६ ॥ तासांकोवारिपुर्मित्रंप्रार्थयंतिनवंनवम् ॥ दृष्ट्वासुवेषंपुरुषमिच्छंतिहृदयेसदा ॥ ३७ ॥

चीत नहीं करते ॥ ३१ ॥ जो लम्पट धर्मशास्त्रहीन, वेदज्ञानरहित और अकुलीन हैं, वही कामीपुरुष अकेलेमें कामिनीके संग बात चीत करनेकी अभिलाषा करते हैं ॥ ३२ ॥ और जो स्त्रियें आपातरमणीयें कामोन्मत्त और पुरुषकी अन्तक हैं, पयोमुख विषपूर्ण घडेके समान जिनके अन्तरमें गरल और मुखमें मधुरालाप है ॥ ३३ ॥ जिनके हृदय क्षुरधार और मुखमें मिष्टभाषा है जो सदा अपना कार्य साधनमें तत्पर हैं॥ ३४ ॥ जो अपने कार्यके वश होकर स्वामीके वशवर्तिनी और अन्यथा स्वेच्छाचारिणी हैं, जिनके अन्तरमें मलभरा है किन्तु वदन और नेत्रमें प्रसन्नता विद्यमान रहती है ॥ ३५ ॥ श्रुति और पुराणमें जिनका चरित अति दूषित वर्णित हुआ है, कौन विद्वान् बुद्धिमान् उन्नताशय पुरुष उनका विश्वास करता है ॥ ३६ ॥ ऐसी स्त्रियोंमें शत्रु मित्रका विचार नहीं है, वह नित्य नवीन अभिलाषा

करती हैं, वह वेषवान् पुरुषको देखतेही अपने कार्यसाधन करनेकी वासना करती हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु बाहरमें अत्यन्त यत्नसहित स्वीय सतीत्वका घोषण करती हैं वह एकमात्र कामकी आधार हैं, वह सदा दूसरेके चित्तको आकर्षण और स्वीय कामवृत्ति चरितार्थ करनेके लिये विशेष व्यग्र रहती हैं ॥ ३८ ॥ वह मुखसे नायकको प्रत्याख्यान करनेके उद्योग करती हैं, किन्तु अन्तरमें रमणवासना सदा जाज्वल्यमान है नायकको अकेला पानेपर निर्लज्ज हँसती रहती हैं किन्तु बाहर लज्जाकी सीमा नहीं रहती ॥ ३९ ॥ वह नायकके सहित संगत न होनेके कारणही अभिमानमें भरती हैं क्रोधसे अंग जलते रहते हैं और उनमें कलहबीज अंकुरित होजाता है जब बराबर संभोगवासना चरितार्थ होती रहती हैं, तब फिर आनन्दकी सीमा नहीं रहती, किन्तु उसकी लाघवता होनेपर ही ऐसी दुःखाग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥ ४० ॥ मिष्टान्न और सुशीतल सलिलके कारणही गुणवान् सुरसिक सुश्री युवा पुरुष उनके एकमात्र लक्ष्यस्थल हैं ॥ ४१ ॥ वह संभोगमें चतुर सुरसिक युवाको

बाह्येस्वार्थसतीत्वंचज्ञापयंतीप्रयत्नतः ॥ शश्वत्कामाचरामाचकामाधारामनोहरा ॥३८॥ बाह्येच्छलात्खेदयंतीस्वांतमैथुनमानसा ॥ कांतंहसंतीरहसिवा ह्येतीवसुलज्जिता ॥ ३९ ॥ मानिनीमैथुनाभावेकोपनाकलहांकुरा ॥ सुप्रीताभूरिसंभोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिता ॥ ४० ॥ सुमिष्टान्नाच्छीततोयादाकांक्षंतीचमानसे ॥ सुंदरंरसिकंकांतंयुवानंगुणिनंसदा ॥ ४१ ॥ सुतात्परमभिन्नेहंकुर्वतीरसिकोपरि ॥ प्राणाधिकंप्रियतमंसंभोगकुशलंप्रियम् ॥ ४२ ॥ पश्यंतीरिपुतुल्यंचवृद्धंवामैथुनाक्षमम् ॥ कलहंकुर्वतीशश्वत्तेनसार्धंसुकोपना ॥ ४३ ॥ वाचयाभक्षयंतीतंसर्पआखुमिवोल्बणम् ॥ दुःसाहसस्वरूपाचसर्वदोषाश्रयासदा ॥ ४४ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनांदुःसाध्यामोहरूपिणी ॥ तपोमार्गार्गलाशश्वन्मोक्षद्वारकपाटिका ॥ ॥ ४५ ॥ हरेर्भक्तिव्यवहितासर्वमायाकरंडिका ॥ संसारकारागारेचशश्वन्निगडरूपिणी ॥ ४६ ॥ इंद्रजालस्वरूपाचमिथ्याचस्वप्नरूपिणी ॥ बिभ्रती बाह्यसौंदर्यमधोंगमतिकुत्सितम् ॥ ४७ ॥ नानाविण्मूत्रपूयानामाधारंमलसंयुतम् ॥ दुर्गंधिदोषसंयुक्तंरक्तारक्तमसंस्कृतम् ॥ ४८ ॥

पुत्रकी अपेक्षा प्राणोंसे अधिक प्रियतम जानती हैं ॥ ४२ ॥ और यदि वही प्रियतम संभोगमें अपटु (मूर्ख) वा वृद्ध हो, तो उसको शत्रुके समान जानती हैं, क्रोधमें भरी सदा उसके संग क्लेश करती हैं ॥ ४३ ॥ यही क्या सर्प जिसप्रकार चूहेको ग्रास करता है, इसप्रकार वह तादृश पुरुषको ग्रासकरजाती हैं वह मूर्तिमान् दुःसाहस और समस्त दोषोंकी आकर (खान) स्वरूप हैं ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवताभी उनके निकट मोहित होते हैं यही क्या वह ऐसी मोहिनी स्त्रियोंका अन्त नहीं पासक्ते यह तपोमार्गकी महान् विघ्नकारी और मोक्षद्वारकी कपाटस्वरूप हैं ॥ ४५ ॥ हरिभक्ति ऐसी स्त्रियोंके निकट तीनों अवस्थामें नहीं जासकती वह मायाकी एकमात्र आधार और संसाररूपी कारागारकी निगड़ (बेड़ी) स्वरूप हैं ॥ ४६ ॥ वह ऐन्द्रजालिकी विद्या और मिथ्यास्वप्नस्वरूप हैं उनका बाहिरी सौन्दर्य सबको मोहित करता है उनका आधाअंग अति कुत्सित ॥ ४७ ॥ और विष्ठा मूत्र तथा लार इत्यादि मलका एकमात्र आधार है उसमें दुर्गंध दोषकी सीमा नहीं और वह स्थान

रक्ताक्ष एवं अति अपवित्र है ॥ ४८ ॥ भगवान् विधाताने उनको मायावी पुरुषोंकी माया और मुमुक्षु पुरुषोंको विषरूपा कहकर उत्पन्न किया है ॥ ४९ ॥ हे वत्स नारद ! जब देवी तुलसी शंखचूडसे इसप्रकार कहकर मौन होगई तब वह हास्यवदन हो उनसे कहने लगा ॥ ५० ॥ शंखचूड बोला हे देवि ! तुमने जो कहा वह सर्वथा मिथ्या नहीं है इसमें कुछ मिथ्या और कुछ सत्य है मैं इसका स्वरूप कहता हूं सुनो ॥ ५१ ॥ विधाताने सर्व विमोहन रमणीमूर्त्तिको द्विधा विभक्त करके उत्पन्न किया है तिनमें एकभाग प्रशंसनीय और एक भाग अप्रशंसनीय है ॥ ५२ ॥ लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री और राधा इत्यादि स्त्रियोंको सृष्टिके मूल कारण रूपमें उत्पन्न किया है अतएव यह आदि सृष्टि हैं ॥ ५३ ॥ जो सबस्त्रियें इनके अंशसे उत्पन्न हैं वास्तवमें वह अति प्रशंसनीय कीर्त्तिस्वरूप और मंगलदायक

मायारूपामायिनांचविधिनानिर्मितापुरा ॥ विषरूपामुमुक्षूणामदृश्याऽप्यभिवांछताम ॥४९॥ इत्युक्त्वातुलसीतंचविररामचनारद ॥ सस्मितःशंखचूड श्चप्रवक्तुमुपचक्रमे॥५०॥शंखचूडउवाच ॥त्वयायत्कथितंदेविनचसर्वमलीककम्॥किंचित्सत्यमलीकंचकिंचिन्मत्तोनिशामय॥५१॥निर्मितंद्विविधंधात्रा स्त्रीरूपंसर्वमोहनम् ॥ कृत्वारूपंवास्तवंचप्रशस्यंचाऽप्रशंसितम् ॥ ५२ ॥ लक्ष्मीःसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकादिका ॥ सृष्टिसूत्रस्वरूपाचआद्यासृष्टि विनिर्मिता ॥ ५३ ॥ एतासामंशरूपंचस्त्रीरूपंवास्तवंस्मृतम् ॥ तत्प्रशस्यंयशोरूपंसर्वमंगलकारकम् ॥ ५४ ॥ शतरूपादेवहूतीस्वधास्वाहाचदक्षिणा ॥ छायावतीरोहिणीचवरुणानीशचीतथा ॥ ५५ ॥ कुबेरस्यचपत्नीयाऽप्यदितिश्चदितिस्तथा ॥ लोपामुद्रानसूयाचकोटभीतुलसीतथा ॥ ५६ ॥ अ हल्याऽरुंधतीमेनातारामंदोदरीतथा ॥ दमयंतीवेदवतीगंगाचमनसातथा ॥ ५७ ॥ पुष्टिस्तुष्टिःस्मृतिर्मेधाकालिकाचवसुंधरा ॥ षष्ठीमंगलचंडीचमूर्तिश्च धर्मकामिनी ॥ ५८ ॥ स्वस्तिश्रद्धाचशांतिश्चकांतिःक्षांतिस्तथापरा॥निद्रातंद्राक्षुत्पिपासासंध्यारात्रिदिनानिच ॥५९॥ संपत्तिर्धृतिकीर्तीचक्रियाशोभा प्रभाशिवा ॥ यत्स्त्रीरूपंचसंभूतमुत्तमंतुयुगेयुगे ॥ ६० ॥ कलाकलांशरूपंचस्वर्वेश्यादिकमेवच ॥ तदप्रशस्यंविश्वेषुपुंश्चलीरूपमेवच ॥ ६१ ॥

हैं ॥ ५४ ॥ शतरूपा, देवहूती, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी शची ॥ ५५ ॥ कुबेरकीपत्नी, दिति, अदिति, लोपामुद्रा, अनसूया, (कौटभी,) कोटरी, तुलसी ॥ ५६ ॥ अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा ॥ ५७ ॥ पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, व सुन्धरा, षष्ठी, मंगलचण्डी, धर्मकामिनी मूर्त्ति ॥ ५८ ॥ स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, संध्या, रात्रि, दिवा ॥ ५९ ॥ सम्पत्ति, धृति, कीर्त्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा इत्यादि जो सब स्त्रियें उत्पन्न होती हैं वह सब युगोंमें ही श्रेष्ठ हैं ॥ ६० ॥ स्वर्गवेश्या रमणीगण पूर्वोक्त कामिनियोंकी कला और अंशरूप हैं

विश्वमें वह प्रशंसनीय नहीं हैं वह पुंश्चली कहकर विख्यात् हैं ॥ ६१ ॥ जो स्त्रियें सत्वप्रधाना हैं वह श्रेष्ठ और प्रभासम्पन्न हैं विश्वमें वही उत्तम और साध्वी कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ ६२ ॥ वास्तवमें वह बात भी मिथ्या नहीं है पण्डितगण भी उनको उत्कृष्ट कहकर गणना करते हैं जिसप्रकार सत्वगुणात्मक अंश है इसी प्रकार रज और तमोगुणके भेदसे अंश नानाविध हैं ॥ ६३ ॥ रजोगुणात्मिका स्त्रियोंको मध्यम कहा जाता है वह केवल भोग सुखमें लालच करनेवाली संभोगके वशीभूत और सदा स्वीय (अपने) कार्य साधनमें तत्पर हैं ॥ ६४ ॥ ऐसी स्त्रियें प्रायः कपटी मोहकारिणी और धर्मार्थ कार्यके बहिर्भूत होती हैं इस कारण रजोगुणात्मिका स्त्रियें प्रायः असती दोषमें लिप्त होती हैं ॥ ६५ ॥ पण्डितजन ऐसी स्त्रियोंको मध्यम कहते हैं और तमोगुणात्मिका स्त्रियें अधम कहीगई हैं ॥ ६६ ॥ सद्वंशोत्पन्न पण्डित गण कभी निर्जनमें वा गुप्तस्थानमें पराईस्त्रीकेसंग बात चीत नहीं करते ॥ ६७ ॥ किन्तु मैं केवल ब्रह्माकी आज्ञानुसार तुम्हारे निकट आया हूं

सत्त्वप्रधानंयद्रूपंतद्युक्तंचप्रभावतः ॥ तदुत्तमंचविश्वेषुसाध्वीरूपंप्रशंसितम् ॥६२॥ तद्वास्तवंचविज्ञेयंप्रवदंतिमनीषिणः॥ रजोरूपंतमोरूपंकलासुविविधं स्मृतम् ॥ ६३ ॥ मध्यमारजसश्चांशास्तास्तुभोगेषुलोलुपाः ॥ सुखसंभोगवश्याश्चस्वकार्येनिरताःसदा ॥ ६४ ॥ कपटामोहकारिण्योधर्मार्थविमुखाः सदा ॥ रजोरूपस्यसाध्वीत्वमतोनैवोपजायते ॥ ६५ ॥ इदंमध्यमरूपंचप्रवदंतिमनीषिणः ॥ तमोरूपंदुर्निवार्यमधमंतद्विदुर्बुधाः ॥६६॥ नपृच्छतिकुले जातःपंडितश्चपरस्त्रियम् ॥ निर्जनेनिर्जलेवाऽपिरहस्यपिपरस्त्रियम् ॥ ६७ ॥ आगच्छामित्वत्समीपमाज्ञयाब्रह्मणोऽधुना ॥ गांधर्वेणविवाहेनत्वांग्रहीष्यामिशोभने ॥६८॥ अहमेवशंखचूडोदेवविद्रावकारकः ॥ दनुवंश्योविशेषेणसुदामाऽहंहरेःपुरा ॥६९॥ अहमष्टसुगोपेषुगोपोऽपिपार्षदेषुच ॥ अधुनादानवेंद्रोऽहंराधिकायाश्चशापतः ॥७०॥ जातिस्मरोऽहंजानामिकृष्णमंत्रप्रभावतः ॥ जातिस्मरात्वंतुलसीसंभुक्ताहरिणापुरा ॥७१॥ त्वमेवराधिकाकोपाज्जाताऽसिभारतेभुवि ॥ त्वांसंभोक्तुमुत्सुकोऽहंनाऽलंराधाभयात्ततः ॥७२॥ इत्येवमुक्त्वासपुमान्विररामहामुने ॥ सस्मितंतुलसीतुष्टाप्रवक्तुमुपचक्रमे॥७३॥

हे सुन्दरी ! इस समय गांधर्व विवाहके अनुसार तुम्हारा पाणिग्रहण करूंगा ॥ ६८ ॥ मेरा नाम शंखचूड है देवतातक भी मुझको देखकर भयसे भाग जाते हैं. मैं पूर्वकालके समय सुदामा नामक ॥६९॥ श्रीहरिका अति प्रियतम सखा था सम्प्रति राधिकाके शापसे दानवकुलमें जन्मग्रहण किया हैं. मैं श्रीकृष्णका पार्षद और आठ गोपोंमें प्रधान गोप था. इससमय राधिकाके शापप्रभावसे दानवेन्द्र शंखचूड हुआ हूं ॥७०॥ मैंने श्रीकृष्णके अनुग्रहसे और मंत्रके प्रभावसे जातिस्मर होकर जन्मग्रहण कियाहै तुम भी जातिस्मरा तुलसी हो. पूर्वमें श्रीकृष्णने तुमसे संभोग कियाहै॥७१॥तुमने राधिकाके कोपसे भारतमें जन्म ग्रहण किया है. मैं उससमय तुमको भोगकरनेकेलिये अत्यन्त व्यग्र हुआ था किन्तु राधाके भयसे आशा चरितार्थ नहीं करसका ॥ ७२ ॥ हे मुनिवर ! जब शंखचूड यह बातें कहकर मौन होगया तब तुलसी

आनन्दितमन हो हँसते हँसते उससे कहने लगी॥ ७३॥ तुलसी बोली जगत्में ऐसे पुरुषही यशस्वी होते हैं और स्त्रियें ऐसे कंतकीही सदा अभिलाषा करतीं हैं ॥ ७४ ॥ वास्तवमें इससमय तुम्हारेद्वारा विचारसे परास्त हुई जो पुरुष स्त्रीजित है, वह अत्यन्त अशुचि और समाजनिन्दित है ॥ ७५ ॥ स्त्रीजित मनुष्यको पितृलोक देवलोक और गंधर्वगण पर्यन्त त्याज्यज्ञान करते हैं यही नहीं वरन्, पिता, माता, भ्राता पर्यन्त मनहीमनमें उससे अत्यन्त घृणाकरते हैं ॥ ७६॥ वेदमें कहा है कि, जननाशौच और मरणाशौच होनेपर ब्राह्मण दशवें, क्षत्रिय बारह दिनमें॥ ७७॥वैश्य पंद्रह दिनमें और हीनजाति शूद्रभी एक महीनेमें शुद्धिलाभ करता है. किन्तु स्त्रीजित अशुचि पुरुषका चितानलके अतिरिक्त शुद्धिका उपाय नहीं है ॥ ७८ ॥ पितृ कभी इच्छापूर्वक स्त्रीजित पुरुषका पिंड और तर्पणादि ग्रहण नहीं करते अधिक क्या

तुलस्युवाच ॥ एवंविधोबुधोनित्यंविश्वेषुचप्रशंसितः ॥ कांतमेवंविधंकांताशश्वदिच्छतिकामतः ॥ ७४ ॥ त्वयाऽहमधुनासत्यंविचारेणपराजिता ॥ सर्निंदितश्चाऽप्यशुचिर्यःपुमांश्चस्त्रियाजितः ॥ ७५ ॥ निंदंतिपितरोदेवाबांधवाःस्त्रीजितंनरम् ॥ स्त्रीजितंमनसामातापिताभ्राताचनिंदति ॥ ७६ ॥ शुद्धो विप्रोदशाहेनजातकेमृतकेयथा ॥ भूमिपोद्वादशाहेनवैश्यःपंचदशाहतः ॥७७॥ शूद्रोमासेनवेदेषुमातृवद्धीनसंकरः ॥ अशुचिःस्त्रीजितःशुद्धचेच्चितादहनकालतः ॥७८॥ नगृह्णंतीच्छयातस्यापितरःपिंडतर्पणम् ॥ नगृह्णंतीवदेवाश्चतस्यपुष्पजलादिकम् ॥७९॥ किंवाज्ञानेनतपसाजपहोमप्रपूजनैः ॥ किंविद्ययाचयशसास्त्रीभिर्यस्यमनोहृतम् ॥८०॥ विद्याप्रभावज्ञानार्थंमयात्वंचपरीक्षितः ॥ कृत्वापरीक्षांकांतस्यवृणोतिकामिनीवरम् ॥८१॥ वरायगुणहीनायवृद्धायाऽज्ञानिनेतथा ॥ दरिद्रायचमूर्खायरोगिणेकुत्सितायच ॥८२॥ अत्यंतकोपयुक्तायवाऽत्यंतदुर्मुखायच ॥ पंगवेचांगहीनायचांधायबधिरायच॥ ॥ ८३ ॥ जडायचैवमूकायक्लीबतुल्यायपापिने ॥ ब्रह्महत्यांलभेत्सोपिस्वकन्यांप्रददातियः ॥ ८४ ॥ शांतायगुणिनेचैवयूनेचविदुषेऽपिच ॥ साधवेचसुतांदत्वादशयज्ञफलंलभेत् ॥ ८५ ॥

देवताभी उसका दिया पुष्प और जलांजलि ग्रहण करनेमें संकुचित होते हैं॥ ७९॥ जिनका चित्त स्त्रियोंके अत्यन्त वशीभूत है, उनके विज्ञान, तपस्या, जप, होम, पूजा, विद्या और यशसे कोई फल उदय नहीं होता ॥ ८० ॥ मैंने तुम्हारा विद्यावल जाननेके लिये तुम्हारी परीक्षा की है. क्योंकि दोषगुणकी परीक्षा करके कान्तको वरण करना स्त्रियोंका अवश्य कर्तव्य है ॥ ८१ ॥ गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानान्ध, दरिद्र मूर्ख, रोगयुक्त, कुत्सिताकार अत्यन्त कोपनस्वभाव, अत्यन्त, दुर्म्मुख, पंगु, अंगहीन अंध, बधिर (बहरा) ॥८२॥ मूक (गूंगा) जड और क्लीवतुल्य पापीको कन्यादान करनेसे ब्रह्महत्याकी समान फल लाभ होता है ॥ ८३ ॥ शान्तस्वभाव, गुणवान् विज्ञान, सच्चरित्र, युवापुरुषको कन्यादान करनेसे दश अश्वमेधयज्ञका फललाभ होता है ॥ ८४ ॥ यदि कोई कन्याका पालन करके धनके लोभसे उस कन्याको

बेचता है, उसको कुम्भीपाक नरकमें गिरना पडताहै ॥ ८५ ॥ वह पातकी उस नरकमें वास करके उस कन्याका मूत्र और मल भक्षण करके काल व्यतीत करता है वह चौदह इन्द्रोंके समयपर्यन्त कृमि और काकोंके द्वारा दंशित होताहै ॥ ८६ ॥ इसमें भी उसका विस्तार नहीं होता इस नरकके भोगनेपर फिर उसको व्याधिग्रसित होकर मनुष्य लोकमें जन्म ग्रहणकरना पडता है. उस मनुष्यजन्ममें मांसविक्रय और मांसभार वहन करके जीविका (निर्वाह) करनी पडती है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हेतपोधन ! जब तुलसी इस प्रकार कहकर मौन अर्थात् चुप होगई, तब ब्रह्माजीने वहां प्रगट होकर शंखचूडसे कहा हे शंखचूड ! तुम क्यों वृथा तुलसीके संग कथोपकथनमें काल व्यतीत करते हो ॥ ८९ ॥ शीघ्र गांधर्व विवाहमें इसको ग्रहण करो तुम जैसे पुरुषरत्न हो, तुलसी भी वैसीही स्त्रीरत्न है ॥ ९० ॥ रसिकाके संग रसिकका समागम अतीव

यःकन्यापालनंकृत्वाकरोतियदिविक्रयम् ॥ विक्रेताधनलोभेनकुंभीपाकंसगच्छति ॥ ८६ ॥ कन्यामूत्रंपुरीषंचतत्रभक्षतिपातकी ॥ कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ८७ ॥ तदंतेव्याधिसंयुक्तःसलभेज्जन्मानिश्चितम् ॥ विक्रीणातिमांसभारंवहत्येवदिवानिशम् ॥ ८८ ॥ इत्येवमुक्त्वातुलसीविररामतपोनिधे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किंकरोषिशंखचूडसंवादमनयासह ॥८९॥ गांधर्वेणविवाहेनत्वंचास्याग्रहणंकुरु ॥ पुरुषेष्वसिरत्नंत्वंस्त्रीषुरत्नंत्वियंसती॥ ॥ ९० ॥ विदग्धायाविदग्धेनसंगमोगुणवान्भवेत् ॥ निर्विरोधसुखंराजन्कोवात्यजतिदुर्लभम् ॥ ९१ ॥ योऽविरोधसुखत्यागीसपशुर्नात्रसंशयः ॥ किंपरीक्षसित्वंकांतमीदृशंगुणिनंसति ॥ ९२ ॥ देवानामसुराणांचदानवानांविमर्दकम् ॥ यथालक्ष्मीश्चलक्ष्मीशेयथाकृष्णेचराधिका ॥ ९३ ॥ यथामयिचसावित्रीभवानीचभवेयथा ॥ यथाधरावराहेचदक्षिणाचयथाऽध्वरे ॥ ९४ ॥ यथाऽत्रेरनसूयाचदमयंतीयथानले ॥ रोहिणीचयथाचंद्रेयथाकामेरतिःसती ॥ ९५ ॥ यथादितिःकश्यपेचवसिष्ठेरुंधतीसखी ॥ यथाऽहल्यागौतमेचदेवहूतिश्चकर्दमे ॥ ९६ ॥ यथाबृहस्पतौताराशतरूपामनौयथा ॥ यथाचदक्षिणायज्ञेयथास्वाहाहुताशने ॥ ९७ ॥ यथाशचीमहेंद्रेचयथापुष्टिर्गणेश्वरे ॥ देवसेनायथास्कंदेधर्मेमूर्तिर्यथासती ॥ ९८ ॥ सौभाग्यासुप्रियात्वंचशंखचूडेतथाभव ॥ अनेनसार्धंसुचिरंसुंदरेणचसुंदरि ॥ ९९ ॥

सुखकर होता है. हे राजन् ! अनायास प्राप्त दुर्लभ सुखको कौन पुरुष छोडनेकी इच्छा करता है ॥ ९१ ॥ जो पुरुष उसको त्याग करता है, इस जगत्में उसकी समान पशु दूसरा कोई नहीं है. हे तुलसी ! तुमभी किसलिये ऐसे ॥ ९२ ॥ देवासुर दानव विमर्दनकारी गुणवान् पुरुषकी परीक्षा करती हो. हे वत्से ! तुम नारायणकी लक्ष्मी कृष्णकी राधिका ॥ ९३ ॥ मेरी सावित्री, भव (शिव) की भवानी, वराहकी धरा, यज्ञकी दक्षिणा ॥ ९४ ॥ अत्रिकी अनसूया, नलकी दमयन्ती, चन्द्रकी रोहिणी, कन्दर्पकी रति ॥ ९५ ॥ कश्यपकी अदिति, वशिष्ठजीकी अरुन्धती, गौतमकी अहिल्या, कर्दमकी देव हूति ॥ ९६ ॥ बृहस्पतिकी तारा, मनुकी शतरूपा, हुताशनकी स्वाहा, यज्ञकी दक्षिणा ॥ ९७ ॥ देवेन्द्रकी शची, गणेश्वरकी पुष्टि, स्कन्दकी देवसेना और धर्मकी मूर्ति के समान ॥ ९८ ॥ शंखचूडकी सौभाग्यशालिनी प्रियतमा पत्नी होओ. तुम रूपवान्

शंखचूडके संग कुछ कालतक॥९९॥अनेक स्थानोंमें इच्छानुसार विहार करो इसके पीछे जब शंखचूड देहत्याग करेगा,तब तुम गोलोकमें द्विभुज श्रीकृष्ण॥१००॥ और वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीकृष्णके सहित महासुखसे अनायास विहार करसकोगी ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ नारदजी बोले यह आपने बडा विचित्र आख्यान कहा जिसके सुननेसे किसीप्रकार मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ इसके उपरान्त जो हुआ सो हे महामते! आप कहिये. नारायण बोले इसप्रकार हरि आशिषदे अपने स्थानको गये॥ २ ॥ दानवने गंधर्वविवाहसे उसको ग्रहण किया. उस समय स्वर्गमें दुंदुभी बजी और पुष्प वर्षा हुई ॥ ३ ॥ तब वह अपने घरमें उसके साथ रमण करनेलगा और नवसंगम से संगत होनेके कारण तुलसी मूर्च्छित होगई ॥ ४ ॥ और वह साध्वी संभोग

स्थानेस्थानेविहारंचयथेच्छंकुरुसंततम् ॥ पश्चात्प्राप्स्यसिगोलोकेश्रीकृष्णंपुनरेवच॥१००॥ चतुर्भुजंचवैकुंठेशंखचूडेमृतेसति ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ ॥ नारदउवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानंभवतासमुदाहृतम् ॥ श्रुतेनयेनमेतृप्तिर्नकदाऽपिहिजायते ॥ ॥ १ ॥ ततःपरंतुयज्जातंतत्त्वंवदमहामते ॥ नारायणउवाच ॥ इत्येवमाशिषंदत्वास्वालयंचययौविधिः ॥ २ ॥ गांधर्वेणविवाहेनजगृहेतांचदानवः ॥ स्वर्गेदुंदुभिवाद्यंचपुष्पवृष्टिर्बभूवह ॥ ३ ॥ सरेमेरामयासार्धंवासगेहेमनोरमे ॥ मूर्च्छांसाप्रापतुलसीनवसंगमसंगता ॥ ४ ॥ निमग्नानिर्जलेसाध्वीसंभोगसुखसागरे ॥ चतुःषष्टिकलामानंचतुःषष्टिविधंसुखम् ॥५॥ कामशास्त्रेयन्निरुक्तंरसिकानांयथेप्सितम् ॥ अंगप्रत्यंगसंश्लेषपूर्वकंस्त्रीमनोहरम् ॥६॥ तत्सर्वंरसशृंगारंचकाररसिकेश्वरः ॥ अतीवरम्यदेशेचसर्वजंतुविवर्जिते ॥७॥ पुष्पचंदनतल्पेचपुष्पचंदनवायुना ॥ पुष्पोद्यानेनदीतीरेपुष्पचंदनचर्चिते ॥८॥ गृहीत्वारसिकोरासेपुष्पचंदनचर्चिताम् ॥ भूषितोभूषणैर्नैवरत्नभूषणभूषिताम् ॥ ९ ॥ सुरतेविरतिर्नास्तितयोःसुरतिविज्ञयोः ॥ जहारमानसंभर्तुर्लोलयालीलयासती ॥ १० ॥ चेतनांरसिकायाश्चजहाररसभाववित् ॥ वक्षसश्चंदनंराज्ञस्तिलकंविजहारसा ॥ ११ ॥

रूपी सुखसागरमें विना जलकेही निमग्न होगई. चौंसठ शृंगारकी कलाओंसे युक्त जो चौंसठ प्रकारका सुख है ॥ ५ ॥ जो कामशास्त्रमें रसिकोंकेनिमित्त कहा जो अंग प्रत्यंगके श्लेषसे स्त्रीजनोंको मनोहर है॥६॥ वह सब शृंगाररस उस रसिकेश्वरने किया, अतीव मनोहर जन्तु और हितस्थानमें ॥७॥ पुष्पचन्दनकी शय्यामें पुष्पचन्दनकी सुगन्धिद्वारा पुष्पचन्दनसे चर्चित फूलोंके उद्यान और नदियोंके किनारे॥८॥रासमें उस पुष्पचन्दनसे चर्चिताको ग्रहणकर रत्न और भूषणोंसे भूषित॥९॥ उन सुरत चतुरोंकी सुरतसे विरति न हुई अपनी अनेक लीलाओंसे सतीने स्वामीका मन हर लिया॥१०॥और उस रसभावके ज्ञाताने भी अपनी प्रियाका मन हरलिया परस्पर

शरीरसंघर्षणसे राजाने उसकी छातीका और मस्तकका तिलक हरलिया ॥ ११ ॥ उसने उस प्रियाका सिन्दूर और बिन्दी हरण की उसने उसके वक्षस्थल और उरोजोंमें प्रसन्नतासे नखरेखा की॥ १२॥ और प्रियाने उसके वामपार्श्वमें करभूषणकी रेखा की राजाने उसके होठोंमें दंतदंशन किया ॥ १३॥ उसने उसके दोनों कपोलोंमें चौगुना दन्तचिह्न किया, आलिंगन चुम्बन जंघादिमर्दन ॥ १४ ॥ इसप्रकार वे दोनों परस्पर क्रीडा करनेलगे, सुरतके विरत होनेमें वे दोनों परस्पर उठकर ॥ १५ ॥ मन वांछित वेषकरते हुए उसने चन्दन और रक्तकुंकुमसे उसका तिलक किया ॥ १६ ॥ और सर्वांगमें सुन्दर अनुलेपन किया सुवासित ताम्बूल और अग्निमें शुद्ध वस्त्र दिये ॥ १७॥ पारिजातके फूल जरारोगके हरनेवाले तथा अमूल्य रत्नोंसे जडी अँगूठी॥ १८॥ तथा त्रिलोकीमें श्रेष्ठ सुन्दर मणियें मैं तुम्हारी दासी हौं इस प्रकार

सचजहारतस्याश्चसिंदूरंबिंदुपत्रकम् ॥ सतद्वक्षस्युरोजेचनखरेखांददौमुदा॥१२॥साददौतद्वामपार्श्वेकरभूषणलक्षणम्॥राजातदोष्ठपुटकेददौरदनदंशनम् ॥१३॥तद्गंडयुगलेसाचप्रददौतच्चतुर्गुणम् ॥ आलिंगनंचुंबनंचजंघादिमर्दनंतथा ॥१४॥ एवंपरस्परंक्रीडांचक्रतुस्तौविजानतौ ॥ सुरतेविरतेतौचसमुत्थाययपरस्परम् ॥१५॥ सुवेषंचक्रतुस्तत्रयद्यन्मनसिवांछितम् ॥ चंदनैःकुंकुमारक्तैःसातस्यतिलकंददौ ॥ १६ ॥ सर्वांगेसुंदरेरम्येचकारचाऽनुलेपनम् ॥ सुवासंचैवतांबूलंवह्निशुद्धेचवाससी ॥१७॥ पारिजातस्यकुसुमंजरारोगहरंपरम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमंगुलीयकमुत्तमम्॥१८॥ सुंदरंचमणिवरंत्रिषुलोकेषुदुर्लभम्॥ दासीतवाऽहमित्येवंसमुच्चार्यपुनःपुनः॥१९॥ननामपरयाभक्त्यास्वामिनंगुणशालिनम् ॥ सस्मितातन्मुखांभोजंलोचनाभ्यांपुनःपुनः॥२०॥ निमेषरहिताभ्यांचाऽप्यपश्यत्कामसुंदरम् ॥ सचतांचसमाकृष्यचकारवक्षसिप्रियाम् ॥ २१ ॥ सस्मितंवाससाच्छन्नंददर्शमुखपंकजम् ॥ चुचुंबकठिनेगंडेबिंबोष्ठौपुनरेवच ॥ २२ ॥ ददौतस्यैववस्त्रयुग्मंवरुणादाहृतंचयत् ॥ तदाहृतांरत्नमालांत्रिषुलोकेषुदुर्लभाम् ॥ २३ ॥ ददौमंजीरयुग्मंचस्वाहायाआहृतंचयत् ॥ केयूरयुग्मंछायायारोहिण्याश्चैवकुंडलम् ॥२४॥ अंगुलीयकरत्नानिरत्याश्चकरभूषणम् ॥ शंखंचरुचिरंचित्रंयद्दत्तंविश्वकर्मणा ॥२५॥

वारंवार कह पहराई॥ १९॥ और परमभक्तिसे अपने गुणशाली स्वामीको प्रणाम किया और हँसकर उसके मुखको वारंवार अपने नेत्रोंसे ॥ २० ॥ निमेषरहित हो सुन्दरताकी खान देखने लगी. तब शंखचूडने उसे खैंचकर हृदयसे लगाया॥ २१ ॥ और घूंघटमें उसका हास्ययुक्त मुखकमल देखनेलगा फिर भी उसके कपोल और विम्बोष्ठोंको चुम्बन किया ॥ २२ ॥ और वरुणके लाये दो वस्त्र उसको दिये और उसीकी लाई त्रिलोकीमें दुर्लभ रत्नमाला दी ॥ २३ ॥ स्वाहाद्वारा अग्निसे लाये दो मंजीर नूपुर दिये सूर्यपत्नी छायाके लाये केयूर वाजूवंद और चन्द्रपत्नी रोहिणीके लाये कुंडल दिये॥ २४॥ अँगूठी आदि रत्न और रतिके भूषण तथा विश्वकर्माका दियाहुआ शंख॥ २५॥

विचित्र पद्मरागमणिकी बनी शय्या तथा भूषण आदि देकर राजाने हास किया ॥ २६ ॥ और उसके कबरीभारमें मंगलके भूषण बांधे और सुचित्र चंदन वल्लीरूप पत्र इसके गंडस्थलमें किये ॥ २७ ॥ तीन कर्पूरकी लेखा सुगंधित चंदन और सब ओर विचित्र कुंकुमकी विन्दु लगाई ॥ २८ ॥ प्रज्वलित दीपकके समान सिंदूरका तिलक किया. उसके दोनों पदकमल जो स्थल पद्मको लज्जित करते थे ॥ २९ ॥ वहां नखरेखाओंमें महावरसे चित्रित किया फिर वह रँगाहुआ पद अपनी छातीमें रखकर ॥ ३० ॥ हे देवी ! मैं तेरा दास हूं इसप्रकार वारंवार उच्चारण कर रत्न भूषित हाथसे उसे अपने वक्षस्थलमें कर ॥ ३१ ॥ तपोवनको

विचित्रपद्मकश्रेणींशय्यांचाऽपिसुदुर्लभाम् ॥ भूषणानिचदत्वाचभूपोहासंचकारह ॥ २६ ॥ निर्ममेकबरीभारेतस्यामांगल्यभूषणम् ॥ सुचित्रंपत्रकं गंडमंडलेऽस्याःसमंतथा॥२७॥चंद्रलेखात्रिभिर्युक्तंचंदनेनसुगंधिना॥परीतंपरितश्चित्रैःसार्धंकुंकुमबिंदुभिः॥२८॥ज्वलत्प्रदीपाकारंचसिंदूरतिलकंददौ ॥ तत्पादपद्मयुगुलेस्थलपद्मविनिंदिते॥२९॥चित्रालक्तकरागंचनखरेषुददौमुदा ॥ स्ववक्षसिमुहुर्न्यस्यसरागंचरणांबुजम् ॥३०॥ हेदेवितवदासोऽहमित्युच्चार्यपुनःपुनः॥रत्नभूषितहस्तेनतांचकृत्वास्ववक्षसि॥३१॥तपोवनंपरित्यज्यराजास्थानांतरंययौ॥मलयेदेवनिलयेशैलेशैलेतपोवने॥३२॥स्थानेस्थानेऽतिरम्येचपुष्पोद्यानेचनिर्जने ॥ कंदरेकंदरेसिंधुतीरेचैवातिसुंदरे ॥३३॥ पुष्पभद्रानदीतीरेनीरवातमनोहरे ॥ पुलिनेपुलिनेदिव्येनद्यांनद्यांनदेनदे ॥३४॥ मधौमधुकराणांचमधुरध्वनिनादिते ॥ विस्पंदनेसुरसनेनंदनेगंधमादने ॥ ३५ ॥ देवोद्यानेनंदनेचचित्रचंदनकानने ॥ चंपकानांकेतकीनांमाधवीनांच माधवे ॥ ३६ ॥ कुंदानांमालतीनांचकुमुदांभोजकानने ॥ कल्पवृक्षेकल्पवृक्षेपारिजातवनेवने ॥ ३७ ॥ निर्जनेकांचनेस्थानेधन्येकांचनपर्वते ॥ कांचीवनेकिंजल्केकंचुकेकांचनाकरे ॥ ३८ ॥

छोडकर राज्यके स्थानान्तरमें आया. मलयाचल, देवस्थान, तपोवन प्रत्येक पर्वतमें ॥ ३२ ॥ अतिरमणीय स्थान स्थान तथा निर्जन पुष्पोद्यान प्रति कन्दरा समुद्रके तट ॥ ३३ ॥ पुष्पभद्रा नदीके किनारे जहां मनोहर जलमिश्रित पवन चलती है दिव्य पुलिन २ नदी २ नद २ में ॥ ३४ ॥ मधुके कारण मधुकरोंकी दिव्यध्वनिसे शब्दायमान विस्पन्दन वन सुरसन वन नंदन गंधमादन ॥ ३५ ॥ देवोद्यान नंदन चित्रचन्दन काननमें चम्पक केतकी वसन्तमें वासन्ती लताओंके वनमें ॥ ३६ ॥ कुमुद मालती कुमुदाम्भोजवन प्रति कल्पवृक्ष पारिजातके वन वनमें ॥ ३७ ॥ निर्जन कांचन स्थान धन्यकांचन पर्वत कांचीवन किंजल्क कंचुक कांचनाकर ॥ ३८ ॥

पुष्पचंदनोंकी शय्या पुंस्कोकिलाओंके शब्द पुष्पचन्दनसे संयुक्त पुष्पचन्दनकी वायुसे सेवित ॥ ३९ ॥ इसप्रकार उस कामुकी रामाके संग वह कामुक रमण करने लगा दानवेन्द्र और तुलसी कोई भी तृप्त नहीं हुए ॥ ४० ॥ अग्निमें पडे घीकी समान दोनोंका काम बढने लगा, तब दानवराज उसके सहित अपने आश्रममें आया ॥ ४१ ॥ फिर रम्य क्रीडागृहमें जाकर वारंवार विहार करनेलगा इस प्रकार प्रतापी शंखचूडने राज्य भोगा ॥ ४२ ॥ एक मन्वन्तरपर्यन्त वह राजराजेश्वर रहा. देव असुर दानवोंको ॥ ४३ ॥ तथा गंधर्व, किन्नर, राक्षसोंको शान्तिमें रक्खा परन्तु देवता अधिकार हरजानेसे भिक्षुककी समान विचरते थे ॥ ४४ ॥ वे सब बडे दुःखी हो ब्रह्माकी सभामें गये और वारंवार अपना वृत्तान्त कहकर रोये ॥ ४५ ॥ तब ब्रह्मा देवताओंके साथ शंकरके स्थानमें गये और विधाताने चन्द्रशेखर विश्वेशसे

पुष्पचंदनतल्पेषुपुंस्कोकिलरुतश्रुते ॥ पुष्पचंदनसंयुक्तःपुष्पचंदनवायुना ॥ ३९ ॥ कामुक्याकामुकःकामात्सरेमेरामयासह ॥ नहितृप्तोदानवेंद्रस्तृप्तिंनैवजगामसा ॥ ४० ॥ हविषाकृष्णवर्त्मेववधृधेमदनस्तयोः ॥ तयासहसमागत्यस्वाश्रमंदानवस्ततः ॥ ४१ ॥ रम्यंक्रीडालयंगत्वाविजहारपुनःपुनः ॥ एवंसबुभुजेराज्यंशंखचूडःप्रतापवान् ॥ ४२ ॥ एकमन्वंतरंपूर्णंराजराजेश्वरोमहान् ॥ देवानामसुराणांचदानवानांचसंततम् ॥ ४३ ॥ गंधर्वाणांकिन्नराणां राक्षसानांचशांतिदः ॥ हृताधिकारादेवाश्चचरंतिभिक्षुकायथा ॥ ४४ ॥ तेसर्वेऽतिविषण्णाश्चप्रजग्मुर्ब्रह्मणःसभाम् ॥ वृत्तांतंकथयामासूरुरुदुश्चभृशंमुहुः ॥ ४५ ॥ तदाब्रह्मासुरैःसार्धंजगामशंकरालयम् ॥ सर्वेशंकथयामासविधाताचंद्रशेखरम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्माशिवश्चतैःसार्धंवैकुंठंचजगामह ॥ दुर्लभंपरमंधामजरामृत्युहरंपरम् ॥ ४७ ॥ संप्रापचवरंद्वारमाश्रमाणांहरेरहो ॥ ददर्शद्वारपालांश्चरत्नसिंहासनस्थितान् ॥ ४८ ॥ शोभितान्पीतवस्त्रैश्चरत्नभूषणभूषितान् ॥ वनमालान्वितान्सर्वाञ्श्यामसुंदरविग्रहान् ॥ ४९ ॥ शंखचक्रगदापद्मधरांश्चैवचतुर्भुजान् ॥ सस्मितान्स्मेरवक्त्रास्यान्पद्मनेत्रान्मनोहरान् ॥ ॥ ५० ॥ ब्रह्मातान्कथयामासवृत्तांतंगमनार्थकम् ॥ तेऽनुज्ञांचददुस्तस्मैप्रविवेशतदाज्ञया ॥ ५१ ॥ एवंषोडशद्वाराणिनिरीक्ष्यकमलोद्भवः ॥ देवैःसार्धंतानतीत्यप्रविवेशहरेःसभाम् ॥ ५२ ॥ देवर्षिभिःपरिवृतांपार्षदैश्चचतुर्भुजैः ॥ नारायणस्वरूपैश्चसर्वैःकौस्तुभभूषितैः ॥ ५३ ॥

सब वर्णन किया ॥ ४६ ॥ तब देवतोंके साथ ब्रह्मा और भगवान् शंभु वैकुंठको गये जो परमधाम बड़ादुर्लभ जरामृत्युका हरनेवाला है ॥ ४७ ॥ उन हरिके स्थानके द्वारमें प्राप्तहुए वहां रत्नसिंहासनोंपर स्थित द्वारपालोंको देखा ॥ ४८ ॥ जो पीतवस्त्रोंसे शोभित और रत्नभूषणोंसे भूषित थे सब वनमाला पहरे श्याम सुन्दर शरीर ॥ ॥ ४९ ॥ चार भुजा शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये कमलमुख मुसकुराते हुए कमललोचन मनोहर हैं ॥ ५० ॥ तब ब्रह्माने उनसे अपने आनेका वृत्तान्त कहा तब उनकी आज्ञासे ब्रह्माजी आदि भीतर गये ॥ ५१ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजी सोलह द्वार देखतेहुए देवताओंके साथ हरिकी सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ५२ ॥ जो सभा देवर्षि

तथा चतुर्भुजी पार्षदोंसे परिवृत् थी सब नारायणस्वरूप और कौस्तुभ धारण कियेथे ॥ ५३ ॥ जो नये चन्द्रके मंडलकी समान चौकोन मनोहर मणीन्द्रहारसे बनी हीरोंके सारसे शोभित ॥ ५४ ॥ अमूल्यरत्नोंसे खचित स्वेच्छासे हरिकी बनाई माणिक्य मालाके जालकी आभावाली मुक्ता पंक्तिसे विभूषित ॥ ५५ ॥ मंडलाकार कोटिरत्नोंके दर्पणोंसे मंडित विचित्र चित्ररेखा और अनेकचित्रोंसे विचित्रित ॥ ५६ ॥ पद्मरागमणियोंसे रचित रुचिर मणियोंके कमलोंसे संयुक्त तथा स्यमन्तकमणि निर्मित सैकडों सोपानोंसे शोभित ॥ ५७ ॥ रेशमकी ग्रंथि लगे सुन्दर चन्दनके पत्ते जो इन्द्रनीलमणीके स्तंभोंमें लिपट रहे थे जिससे बडी मनोहर थी ॥ ५८ ॥ उन्हीं रत्नोंके पूर्णकुम्भोंके समूहोंसे युक्त तथा पारिजातके फूलोंकी बनी सैकडों मालाओंसे विराजित ॥ ५९ ॥ कस्तूरी, कुकुंम, महावर, सुगंधितद्रव्य चन्दनवृक्षोंसे सर्वत्र

नवेंदुमंडलाकारांचतुरस्रांमनोहराम् ॥ मणींद्रहारनिर्माणांहीरासारसुशोभिताम् ॥ ५४ ॥ अमूल्यरत्नखचितांरचितांस्वेच्छयाहरेः ॥ माणिक्यमालाजालाभांमुक्तापंक्तिविभूषिताम् ॥ ५५ ॥ मंडितांमंडलाकारैरत्नदर्पणकोटिभिः ॥ विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम् ॥ ॥ ५६ ॥ पद्मरागेंद्ररचितांरुचिरांमणिपंकजैः ॥ सोपानशतकैर्युक्तांस्यमंतकविनिर्मितैः ॥ ५७ ॥ पट्टसूत्रग्रंथियुक्तैश्चारुचंदनपल्लवैः ॥ इंद्रनीलस्तंभवर्यैर्वेष्टितांसुमनोहराम् ॥ ५८ ॥ तद्रत्नपूर्णकुंभानांसमूहैश्चसमन्विताम् ॥ पारिजातप्रसूनानांमालाजालैर्विराजिताम् ॥ ५९ ॥ कस्तूरीकुंकुमारक्तैःसुगंधिचंदनद्रुमैः ॥ सुसंस्कृतांतुसर्वत्रवासितांगंधवायुना ॥ ६० ॥ विद्याधरीसमूहानांनृत्यजालैर्विराजिताम् ॥ सहस्रयोजनायामांपरिपूर्णांचकिंकरैः ॥ ६१ ॥ ददर्शश्रीहरिंब्रह्माशंकरश्चसुरैःसह ॥ वसंतंतन्मध्यदेशेयथेंदुंतारकावृतम् ॥ ६२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनेस्थितम् ॥ किरीटिनंकुंडलिनंवनमालाविभूषितम् ॥ ६३ ॥ चंदनोक्षितसर्वांगंबिभ्रतंकेलिपंकजम् ॥ पुरतोनृत्यगीतंचपश्यंतंसस्मितंमुदा ॥ ६४ ॥ शांतंसरस्वतीकांतंलक्ष्मीधृतपदांबुजम् ॥ लक्ष्म्याप्रदत्ततांबूलंभुक्तवंतंसुवासितम् ॥ ६५ ॥ गंगयापरयाभक्त्यासेवितंश्वेतचामरैः ॥ सर्वैश्चस्तूयमानंचभक्तिनम्रात्मकंधरैः ॥ ६६ ॥

संस्कार कीहुई और गंधवायुसे सुगंधित होरही ॥ ६० ॥ विद्याधरियोंके समूह नृत्य कर रहे सहस्रयोजनके विस्तारमें किंकरोंसे व्याप्त ॥ ६१ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा और शिवजीने सभामें हरिभगवान्‌का दर्शन किया जो उनके मध्य तारोंमें चन्द्रमाके समान शोभित थे ॥ ६२ ॥ जो अमूल्य रत्नोंके बने विचित्र सिंहासनपर स्थित थे किरीट कुंडल और वनमालासे भूषित ॥ ६३ ॥ सर्वांगमें चन्दन लगाये लीला कमल हाथमें लिये आगे हँसते हुए नृत्य गीतका अवलोकन करते ॥ ६४ ॥ शान्त लक्ष्मी और सरस्वती जिनके चरणोंका स्पर्श कर रही लक्ष्मीके दिये सुगंधित ताम्बूलको चाबतेहुए ॥ ६५ ॥ परमभक्तिसे गंगा श्वेत चमर कर रही और भक्तिसे

॥ ६६ ॥

शिर झुकाये सब कोई स्तुति कर रहे ॥ ६६ ॥ इसप्रकार परिपूर्णतम प्रभुको देखकर सब ब्रह्मादिक प्रणाम कर स्तुति करनेलगे ॥ ६७ ॥ उनके सर्वांग पुलकित होगये आखोंमें जलभर गद्गद कंठ हो परम भक्तिसे भयभीत हुए शिर झुकाये रहे ॥ ६८ ॥ तब जगत्के विधाताने हाथ जोडकर विनयपूर्वक हरिसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ६९ ॥ सर्वज्ञ सर्वभावज्ञाता हरि उन सबके वचन सुन हँसकर ब्रह्मासे रहस्य कहने लगे ॥ ७० ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्माजी! मैं शंखचूडका सब रहस्य जानता हूं वह पहले मेरा भक्त महातेजस्वी गोप रहा है ॥ ७१ ॥ उसके वृत्तान्तका पुरातन इतिहास सुनो. गोलोकका चरित पापनाशक पुण्यकारी है ॥ ७२ ॥ सुदामानाम गोप मेरा श्रेष्ठ पार्षद था उसनेही राधाके दारुण शापसे दानवी योनि पाई है ॥ ७३ ॥ एक समयमें अपने स्थानसे रासमंडलमें गया और अपनी प्राणाधिक

एवंविशिष्टंतंदृष्ट्वापरिपूर्णतमंप्रभुम् ॥ ब्रह्मादयःसुराःसर्वेप्रणम्यतुष्टुवुस्तदा ॥६७॥ पुलकांचितसर्वांगाःसाश्रुनेत्राश्चगद्गदाः ॥ भक्त्याश्वपरयाभक्त्याभीतान म्रात्मकंधराः ॥ ६८ ॥ कृतांजलिपुटोभूत्वाविधाताजगतामपि ॥ वृत्तांतंकथयामासविनयेनहरेःपुरः ॥ ६९ ॥ हरिस्तद्वचनंश्रुत्वासर्वज्ञःसर्वभाववित् ॥ प्रहस्योवाचब्रह्माणंरहस्यंचमनोहरम् ॥ ७० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शंखचूडस्यवृत्तांतंसर्वंजानामिपद्मज ॥ मद्भक्तस्यचगोपस्यमहातेजस्विनः पुरा ॥७१॥ शृणुतत्सर्ववृत्तांतमितिहासंपुरातनम् ॥ गोलोकस्यैवचरितंपापघ्नंपुण्यकारकम् ॥ ७२ ॥ सुदामानामगोपश्चपार्षदप्रवरोमम ॥ सप्राप दानवींयोनिंराधाशापात्सुदारुणात् ॥ ७३ ॥ तत्रैकदाऽहमगमंस्वालयाद्रासमंडलम् ॥ विरजामपिनीत्वाचममप्राणाधिकापरा ॥ ७४ ॥ सामांविरजया सार्धंविज्ञायकिंकरीमुखात् ॥ पश्चात्क्रुद्धासाजगामनददर्शचतत्रमाम् ॥ ७५ ॥ विरजांचनदीरूपांमांज्ञात्वाचतिरोहितम् ॥ पुनर्जगामसादृष्ट्वास्वालयंस खिभिःसह ॥ ७६ ॥ मांदृष्ट्वामंदिरेदेवीसुदाम्नासहितंपुरा ॥ भृशंसाभर्त्सयामासमौनीभूतंचसुस्थिरम् ॥ ७७ ॥ तच्छ्रुत्वाऽसहमानश्चसुदामातांचुको पह ॥ सचतांभर्त्सयामासकोपेनममसन्निधौ ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वाकोपयुक्तासारक्तपंकजलोचना ॥ बहिष्कर्तुंचकाराऽऽज्ञांसंत्रस्तंममसंसदि ॥७९॥ सखी लक्षंसमुत्तस्थौदुर्वारंतेजसोल्बणम् ॥ बहिश्चकारतंतूर्णंजल्पंतंचपुनःपुनः ॥ ८० ॥

प्रिया विरजा गोपी भी संग थी ॥ ७४ ॥ उस समय राधा किंकरीके मुखसे विरजाके संग मुझे सुनकर देखनेको क्रोध किये आई परन्तु मुझे वहां न देखा ॥ ७५ ॥ विरजाको नदीरूप और मुझे अन्तर्धान जानकर तब वह फिर सखियोंके सहित अपने स्थानको गई ॥ ७६ ॥ तब वह देवी सुदामाके सहित मुझे मन्दिरमें देखकर मौन हुए मेरी क्रोधसे भर्त्सना करने लगी ॥ ७७ ॥ यह सुनकर इस बातको न सहकर सुदामाको क्रोध हुआ और मेरे समीपही उसने क्रोधसे राधाको घुडका ॥ ७८ ॥ यह सुनतेही राधा क्रोधसे लाल नेत्र कर उसे मेरी सभामेंसे बाहर जानेकी आज्ञा दी ॥ ७९ ॥ तब आज्ञा पातेही सहस्रों सखियाँ उठ खडी हुई और निवारण करनेके

अयोग्य महातेजस्वी उस जल्पना करते गोपको बाहर करती हुई ॥ ८० ॥ फिर सुदामने उन सखियोंको ताडन किया तब राधिकाने सखियोंका ताडन सुनकर रुष्ट हो यह दारुण शाप दिया अरे ! तू दानवी योनिको प्राप्त होगा ॥ ८१ ॥ तब शापित हो रुदन करता मुझे प्रणाम कर सुदामा जाने लगा तब नेत्रोंमें जल भर कृपाकर राधाने उसको निवारण किया ॥ ८२ ॥ हे वत्स ! स्थित हो मत जाओ कहां जाते हो ऐसा वारंवार कहा. इसप्रकार कहकर फिर बडे खेदको प्राप्त हुई ॥ ८३ ॥ सब गोपी रुदन करने लगीं और गोप भी बडे दुःखित हुए उन सबने और मैंने भी राधिकाको पीछे समझाया ॥ ८४ ॥ तब उसने कहा यह आधे क्षणमें शापका पालन करके आवेगा. हे सुदामा ! तुम यहां आना ऐसा कह उसको शोकसे निवारण किया स्वयं भी शोकरहित हुई ॥ ८५ ॥ परन्तु गोलोकका आधाक्षण मर्त्यलोकका एक

साचतत्ताडनंतासांश्रुत्वारुष्टाशशापह ॥ याहिरेदानवयोनिमित्येवंदारुणंवचः ॥८१॥ तंगच्छंतंशपंतंचरुदंतंमांप्रणम्यच ॥ वारयामासतुष्टासारुदती कृपयापुनः ॥८२॥ हेवत्सतिष्ठमागच्छक्वयासीतिपुनःपुनः ॥ समुच्चार्यचतत्पश्चाज्जगामसाचविक्लवम् ॥८३॥ गोप्यश्चरुरुदुःसर्वागोपाश्चाऽपिसुदुःखिताः ॥ तेसर्वेराधिकाचाऽपितत्पश्चाद्बोधितामया ॥८४॥ आयास्यतिक्षणार्धेनकृत्वाशापस्यपालनम् ॥ सुदामंस्त्वमिहागच्छेत्युक्त्वासाचनिवारिता ॥८५॥ गोलोकस्यक्षणार्धेनचैकंमन्वंतरंभवेत् ॥ पृथिव्याजगतांधातरित्येववचनंध्रुवम् ॥८६॥ इत्येवंशंखचूडश्चपुनस्तत्रैवयास्यति ॥ महाबलिष्ठोयोगेशःसर्वमायाविशारदः ॥८७॥ ममशूलंगृहीत्वाचशीघ्रंगच्छतभारतम् ॥ शिवःकरोतुसंहारंममशूलेनरक्षसः ॥८८॥ ममैवकवचंकंठेसर्वमंगलकारकम् ॥ बिभर्तिदानवःशश्वत्संसारेविजयीततः ॥८९॥ तस्मिन्ब्रह्मन्स्थितेचैवनकोऽपिहिंसितुंक्षमः ॥ तद्याचनांकरिष्यामिविप्ररूपोऽहमेवच ॥९०॥ सतीत्वहानिस्तत्पत्न्यायत्रकाले भविष्यति ॥ तत्रैवकालेतन्मृत्युरितिदत्तोवरस्त्वया ॥९१॥ तत्पत्न्याश्चोदरेवीर्यमर्पयिष्यामिनिश्चितम् ॥ तत्क्षणेचैवतन्मृत्युर्भविष्यतिनसंशयः ॥९२॥

मन्वन्तर होता है जगत्के धाताने पृथ्वीमें ऐसाही नियम किया है ॥ ८६ ॥ इस प्रकार यह शंखचूड फिर वहीं आवेगा वह महाबलिष्ठ योगेश सब मायाका पंडित है ॥ ८७ ॥ यह तुम हमारा शूल ग्रहण कर शीघ्र भारतमें जाओ इस मेरे शूलसे शिवजी उस दानवका संहार करैंगे ॥ ८८ ॥ और वह दानव कंठमें मेराही सर्व मंगलकारक कवच धारण करता है इसकारण संसारमें विजयी होरहा है ॥ ८९ ॥ हे ब्रह्मन् ! जबतक उसके पास वह कवच है तबतक उसको कोई नहीं मार सकता ब्राह्मणका रूप धारणकर उसको मैं मांगलूंगा ॥ ९० ॥ जिस समय उसकी स्त्रीके सतीत्वकी हानि होगी उसी समय उसकी मृत्यु होगी यह वर तुमनेही दिया है ॥ ९१ ॥ सो मैं उसकी पत्नीसे निश्चित संगम करूंगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी इसमें सन्देह नहीं [जगन्निवास हरिके प्रत्यक्ष संयोगसे उनमें दोष नहीं है कारण कि, वह

सर्वत्र व्यापक हैं] ॥ ९२ ॥ पीछे वह देहत्यागनकर मेरीही प्रिया होगी. यह कह जगत्पतिने शिवजीको शूल दिया ॥ ९३ ॥ शूल देकर भगवान् निजमन्दिरमें प्रविष्ट हुए और ब्रह्मा, शिव आदि देवता भारतवर्षमें आये ॥ ९४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ श्रीनारायण बोले इसप्रकार दानवोंके संहारमें ब्रह्माजी शिवको नियुक्तकर देवता शीघ्रतासे अपने स्थानको चलेगये ॥ १ ॥ चन्द्रभागा नदीके किनारे मनोहर वटमूलमें देवताओंके निस्तारके निमित्त महादेव स्थित हुए ॥ २ ॥ और गंधर्वोंके अधिपति चित्ररथगंधर्वको दूतबनाकर शीघ्रही शंखचूडके निकट भेजा ॥ ३ ॥ वह सर्वेश्वरकी आज्ञासे शीघ्र उस नगरमें गये जो महेन्द्र और कुबेरके नगरसेभी उत्कृष्ट था ॥ ४ ॥ पांचयोजनका विस्तार दशयोजनदीर्घ स्फटिकमणियोंके समूहसे युक्त यानसे

पश्चात्सादेहमुत्सृज्यभविष्यतिममप्रिया॥इत्युक्त्वाजगतांनाथोददौशूलंहरायच॥९३॥शूलंदत्वाययौशीघ्रंहरिरभ्यंतरेमुदा॥ भारतंचययुर्देवाब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥ ९४ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहा०नवमस्कंधेएकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ब्रह्माशिवंसंनियोज्यसंहारेदानवस्यच ॥ जगामस्वालयंतूर्णंयथास्थानंसुरोत्तमाः॥१॥चंद्रभागानदीतीरेवटमूलेमनोहरे॥तत्रतस्थौमहादेवोदेवविस्तारहेतवे ॥२॥दूतंकृत्वाचित्ररथंगंधर्वेश्वरमीप्सितम् ॥ शीघ्रंप्रस्थापयामासशंखचूडांतिकंमुदा ॥ ३ ॥ सर्वेश्वराज्ञयाशीघ्रंययौतन्नगरंपरम् ॥ महेंद्रनगरोत्कृष्टंकुबेरभवनाधिकम् ॥ ४ ॥ पंचयोजनविस्तीर्णंदैर्घ्येतद्विगुणंभवेत् ॥ स्फटिकाकारमणिभिर्निर्मितंयानवेष्टितम् ॥ ५ ॥ सप्तभिःपरिखाभिश्चदुर्गमाभिःसमन्वितम् ॥ ज्वलदग्निनिभैःशश्वत्कलिपतंरत्नकोटिभिः ॥६॥ युक्तंचवीथीशतकैर्मणिवेदिविचित्रितैः ॥ परितोवणिजांसौधैर्नानावस्तुविराजितैः ॥ ७ ॥ सिंदूराकारमणिभिर्निर्मितैश्चविचित्रितैः ॥ भूषितंभूषितैर्दिव्यैराश्रमैःशतकोटिभिः ॥ ८ ॥ गत्वाददर्शतन्मध्येशंखचूडालयंपरम् ॥ अतीववलयाकारंयथापूर्णेंदुमंडलम् ॥ ९ ॥ ज्वलदग्निशिखाक्ताभिःपरिखाभिश्चतसृभिः ॥ तद्दुर्गमंचशत्रूणामन्येषांसुगमंसुखम् ॥ १० ॥ अत्युच्चैर्गगनस्पर्शिमणिशृंगविराजितम् ॥ राजितंद्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितम् ॥ ११ ॥ मणींद्रसारनिर्माणैःशोभितंलक्षमंदिरैः ॥ शोभितंरत्नसोपानैरत्नस्तंभविराजितम् ॥ १२ ॥

वेष्टित ॥ ५ ॥ सात परिखा और दुर्गसमन्वित जलतीहुई अग्निके समान कोटिरत्नोंसे व्याप्त ॥ ६ ॥ मणिकी विचित्रवेदीवाली सैकडों गलियोंसे व्याप्त अनेकवस्तुओंसे विराजित वणिकोंके महलसे व्याप्त ॥ ७ ॥ सिन्दूरके आकारवाली विचित्रमणियोंसे वेष्टित भूषित और दिव्यसैकडों कोटियों आश्रमोंसे व्याप्त था ॥ ८ ॥ उसके मध्यमें शंखचूडका आश्रम था जो वलयाकार पूर्णचन्द्रमण्डलकी समान था ॥ ९ ॥ अग्निकी शिखासे युक्त प्रज्वलित चार परिखासे व्याप्त वह दुर्ग शत्रुओंको दुर्गम तथा दूसरोंको सुगम था ॥ १० ॥ अतिऊंचे आकाशको छूनेवाले मणिजडित शिखरोंसे सम्पन्न बारह द्वारोंमें स्थित द्वारपालोंसे सम्पन्न ॥ ११ ॥ मणियोंके सार

वाले लक्ष्मंदिरोंसे शोभित रत्नसोपान और रत्नोंके स्तंभोंसे शोभित था ॥ १२ ॥ यहदेखकर पुष्पदन्तने द्वारको देखा कि, द्वारमें एकपुरुष शूल हाथमें लिये नियुक्तहै १३ ॥ जो ताम्रवर्ण पिंगललोचन बड़ा भयंकर है यह अपना वृत्तान्त कहकर उसकी आज्ञासे भीतर गया ॥ १४ ॥ उस द्वारको अतिक्रमणकर भीतरगया रणसम्बधी आह्वानमें आयेहुए दूतको सुनकर कोईभी नहीं रोकता था ॥ १५ ॥ वह भीतरके द्वारपर जाय द्वारपालसे बोला कि, युद्धका वृत्तान्त बहुत शीघ्र कहो ॥ १६ ॥ उसने वहां जाकर दूतकी बात कही उसने बुलाया तब यह जाकर शंखचूडको देखने लगा ॥ १७ ॥ जो राजमण्डलके मध्यमें स्थित रत्नसिंहासनपर शोभित जिसमें मणियोंके

तद्दृष्ट्वापुष्पदंतोऽपिवरंद्वारंददर्शसः ॥ द्वारानयुक्तपुरुषंशूलहस्तंचसस्मितम् ॥ १३ ॥ तिष्ठंतंपिंगलाक्षंचताम्रवर्णंभयंकरम् ॥ कथयामासवृत्तांतंजगामतदनुज्ञया ॥ १४ ॥ अतिक्रम्यचतद्द्वारंजगामाभ्यंतरंपुनः ॥ नकोऽपिरक्षतिश्रुत्वादूतरूपंरणस्यच ॥ १५ ॥ गसत्वोऽभ्यंतरद्वारंद्वारपालमुवाचह ॥ रणस्यसर्ववृत्तांतंविज्ञापयतमाचिरम् ॥ १६ ॥ सचतंकथयित्वाचदूतोगंतुमुवाचह ॥ सगत्वाशंखचूडंतंददर्शसुमनोहरम् ॥ ॥ १७ ॥ राजमंडलमध्यस्थंस्वर्णसिंहासनेस्थितम् ॥ मणीन्द्ररचितांदिव्यंरत्नदंडसमन्वितम् ॥ १८ ॥ रत्नकृत्रिमपुष्पैश्चप्रशस्तैःशोभितंसदा ॥ भृत्येनमस्तकन्यस्तंस्वर्णच्छत्रंमनोहरम् ॥ १९ ॥ सेवितंपार्षदगणैरुचिरैःश्वेतचामरैः ॥ सुवेषंसुंदरंरम्यंरत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥ माल्येनलेपनंसूक्ष्मंसुवस्त्रंदधतंमुने ॥ दानवेंद्रैःपरिवृतंसुवेषैश्चत्रिकोटिभिः ॥ २१ ॥ शतकोटिभिरन्यैश्चभ्रमद्भिरस्त्रपाणिभिः ॥ एवंभूतंचतंदृष्ट्वापुष्पदंतःसविस्मयः ॥ ॥ २२ ॥ उवाचसचवृत्तांतंयदुक्तंशंकरेणच ॥ पुष्पदंतउवाच ॥ राजेंद्रशिवभृत्योऽहंपुष्पदंताभिधःप्रभो ॥ २३ ॥ यदुक्तंशंकरेणैवतद्ब्रवीमिनिशामय ॥ राज्यंदेहिचदेवानामधिकारंचसांप्रतम् ॥ २४ ॥ देवाश्चशरणापन्नादेवेशंश्रीहरिंपरम् ॥ हरिर्दत्त्वाऽस्यशूलंचतेनप्रस्थापितःशिवः ॥ २५ ॥

रचित सुन्दर दंडे लगे थे ॥ १८ ॥ रत्नोंके कृत्रिम मनोहर पुष्पोंसे शोभित भृत्यद्वारा मस्तकपर श्वेतछत्रधारण किये हुए ॥ १९ ॥ श्वेतचमर लिये मनोहर पार्षदोंसे वीज्यमान रत्नोंके भूषणोंसे भूषित मनोहर सुन्दर वेष किये ॥ २० ॥ माला अनुलेपन और सुन्दर वस्त्र धारण किये अनेक सुवेष किये दानवोंसे व्याप्त ॥ २१ ॥ सैकडों शस्त्रधारी योधाओंसे सम्पन्न इसप्रकार उसको देख पुष्पदन्त बडा विस्मित हुआ ॥ २२ ॥ और शंकरका कहा वृत्तान्त कहनेलगा. पुष्पदन्त बोला हे राजेन्द्र! मैं पुष्पदन्तनामवाला शिवका दूत हूं ॥ २३ ॥ मैं शिवजीका संदेशा कहता हूं सुनो इससमय देवताओंका राज्य और अधिकार उनको देदो ॥ २४ ॥ सब देवता भगवान्

विष्णुकी शरण हुए हैं हरिने शूलदेकर शिवको प्रस्थापित किया है ॥ २५ ॥ पुष्पभद्रा नदीके किनारे वटमूलमें भगवान् त्रिलोचन स्थित हैं या तो देवताओंका राज्य दो अथवा युद्धकरो ॥ २६ ॥ मैं शिवजीसे जाकर क्या कहूंगा सो आप कहिये. दूतके वचन सुनकर शंखचूड हँसकर बोला ॥ २७ ॥ तुम चलो प्रभातको मैं आऊंगा तब उस दूतने जाकर वटमूलमें स्थित ईश्वरसे कहा ॥ २८ ॥ जो कुछ शंखचूडके मुखसे वचन निकले थे कहे. इसीसमय स्कंद शिवजीके निकट आये ॥ ॥ २९ ॥ वीरभद्र, नंदी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकंपन ॥ ३० ॥ विरूप, विकृत, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन कालकंठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ आठभैरव, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य ॥ ३३ ॥ हुताशन

पुष्पभद्रानदीतीरेवटमूलेत्रिलोचनः ॥ विषयंदेहितेषांचयुद्धंवाकुरुनिश्चितम् ॥ २६ ॥ गत्वावक्ष्यामिकिंशंभुमथतद्वदमामपि ॥ दूतस्यवचनंश्रुत्वाशंखचूडः प्रहस्यच ॥ २७ ॥ प्रभातेऽहंगमिष्यामित्वंचगच्छेत्युवाचह ॥ सागत्वोवाचतंतूर्णंवटमूलस्थमीश्वरम् ॥ २८ ॥ शंखचूडस्यवचनंतदीयंतन्मुखोदितम् ॥ एतस्मिन्नंतरेस्कंदआजगामशिवांतिकम् ॥ २९ ॥ वीरभद्रश्चनंदीचमहाकालःसुभद्रकः ॥ विशालाक्षश्चबाणश्चपिंगलाक्षोविकंपनः ॥ ३० ॥ विरूपो विकृतिश्चैवमणिभद्रश्चबाष्कलः ॥ कपिलाख्योदीर्घदंष्ट्रोविकटस्ताम्रलोचनः ॥ ३१ ॥ कालकंठोबलीभद्रःकालजिह्वःकुटीचरः ॥ बलोन्मत्तोरणश्लाघी दुर्जयोदुर्गमस्तथा ॥ ३२ ॥ अष्टौचभैरवारौद्रारुद्राश्चैकादशस्मृताः ॥ वसवोऽष्टौवासवश्चआदित्याद्वादशस्मृताः ॥ ३३ ॥ हुताशनश्चचंद्रश्चविश्वकर्माश्वि नौचतौ ॥ कुबेरश्चयमश्चैवजयंतोनलकूबरः ॥ ३४ ॥ वायुश्चवरुणश्चैवबुधश्चमंगलस्तथा ॥ धर्मश्चशनिरीशानःकामदेवश्चवीर्यवान् ॥ ३५ ॥ उग्रदं ष्ट्राचोग्रचंडाकोटराकैटभीतथा ॥ स्वयंचाष्टभुजादेवीभद्रकालीभयंकरी ॥ ३६ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानोपरिसंस्थिता ॥ रक्तवस्त्रपरीधानारक्तमाल्यानु लेपना ॥ ३७ ॥ नृत्यंतीचहसंतीचगायंतीसुस्वरंमुदा ॥ अभयंददातिभक्तेभ्योऽभयासाचभयंरिपुम् ॥ ३८ ॥ बिभ्रतीविकटांजिह्वांसुलोलांयोजनायता म् ॥ शंखचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनुःशरान् ॥ ३९ ॥ खर्परंवर्तुलाकारंगंभीरंयोजनायतम् ॥ त्रिशूलंगगनस्पर्शिशक्तिंचयोजनायताम् ॥ ४० ॥

चन्द्रमा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, जयन्त, नलकूबर ॥ ३४ ॥ वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, ईशान, बली, कामदेव ॥ ३५ ॥ उग्रदंष्ट्र, उग्रचंड, कोटर, कैटभी और स्वयं अष्टभुजा भयंकरी कालिकादेवी ॥ ३६ ॥ यह रत्नोंके सारसे निर्मित विमानोंपर स्थित थीं. लालवस्त्रपहरे लाल मालाका अनुलेपन लगाये ॥ ३७ ॥ नाचती सुंदर सुरसे गाती हुई हँसतीथी वह अभया अपने भक्तोंको अभय और शत्रुओंको भय देती थी ॥ ३८ ॥ एकयोजनतक विस्तार होनेवाली विकट चलायमान जिह्वाको धारण किये शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, चर्म, धनुष, शर ॥ ३९ ॥ गोल एक योजन परिमाणका खप्पर लिये, तथा गगनस्पर्शी त्रिशूल और एकयोजनके परिमाणकी शक्ति

धारण किये ॥ ४० ॥ मुद्गर, मूसल, वज्र, खेट, उज्वल फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्र, गंधर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृंभणास्त्र, पर्वतास्त्र ॥ ४२ ॥ माहेश्वर वायव्य दंड सम्मोहन अव्यर्थमस्त्र तथा दूसरे सैकडों दिव्यास्त्र युक्तथे ॥ ४३ ॥ और वहां तीनकोटियोगिनी आनकर स्थित हुई, जिनके संग विकट डाकिनी भी तीनकोटि थी ॥ ४४ ॥ भूत प्रेत पिशाच कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष, किन्नर ॥ ४५ ॥ इनके सहित स्कंदजी शिवजीको प्रणामकर सहायकरनेको पिताके समीप उनकी आज्ञासे स्थित हुए ॥ ४६ ॥ उधर दूतके चलेजानेपर प्रतापवान् शंखचूड मंदिरमें जाय तुलसीसे यह सब बात कहने लगा ॥ ४७ ॥ रणकी वार्ता सुनकर उसका ओष्ठ और कंठ सूखगया और दुःखी मनसे वह साध्वी कहने लगी ॥ ४८ ॥ तुलसी बोली हे प्राणबंधो! हेस्वामिन्! क्षणमात्र

मुद्गरंमुसलंवज्रंखेटंफलकमुज्वलम् ॥ वैष्णवास्त्रंवारुणास्त्रंवाह्नेयंनागपाशकम् ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्रंगांधर्वंब्रह्मास्त्रंगारुडंतथा ॥ पर्जन्यास्त्रंपाशुपतंजृंभणास्त्रंचपार्वतम् ॥ ४२ ॥ माहेश्वरास्त्रंवायव्यंदंडंसंमोहनंतथा ॥ अव्यर्थमस्त्रकंदिव्यंदिव्यास्त्रशतकंपरम् ॥ ४३ ॥ आगत्यतत्रतस्थौचयोगिनीनांत्रिकोटिभिः ॥ सार्धंचडाकिनीनांचविकटानांत्रिकोटिभिः ॥४४॥ भूतप्रेतपिशाचाश्चकूष्मांडाब्रह्मराक्षसाः ॥ वेतालाराक्षसाश्चैवयक्षाश्चैवतुकिन्नराः॥४५॥ ताभिश्चैवसहस्कंदःप्रणम्यचंद्रशेखरम् ॥ पितुःपार्श्वेसहायार्थंसमुवासतदाज्ञया ॥४६॥ अथदूतेगतेतत्रशंखचूडःप्रतापवान् ॥ उवाचतुलसींवार्तांगत्वाऽभ्यंतरमेवच ॥ ४७ ॥ रणवार्तांचसाश्रुत्वाशुष्ककंठोष्ठतालुका ॥ उवाचमधुरंसाध्वीहृदयेनविदूयता ॥ ४८ ॥ तुलस्युवाच ॥ हेप्राणबंधोहेनाथतिष्ठमेवक्षसिक्षणम् ॥ हेप्राणाधिष्ठातृदेवरक्षमेजीवितंक्षणम् ॥४९॥ भुंक्ष्वजन्मसमासाद्ययन्मेमनसिवांछितम् ॥ पश्यामित्वांक्षणंकिंचिल्लोचनाभ्यांचसादरम् ॥ ५० ॥ आंदोलयंतेप्राणामेमनोदग्धंचसंततम् ॥ दुःस्वप्नश्चमयादृष्टश्चाद्यैवचरमेनिशि ॥५१॥ तुलसीवचनंश्रुत्वाभुक्त्वापीत्वानृपेश्वरः॥ उवाचवचनंप्राज्ञोहितंसत्यंयथोचितम् ॥५२॥ शंखचूडउवाच ॥ कालेनयोजितंसर्वंकर्मभोगनिबंधनम् ॥ शुभंहर्षःसुखंदुःखंभयंशोकश्चमंगलम् ॥५३॥ कालेभवंतिवृक्षाश्चस्कंधवंतश्चकालतः ॥ क्रमेणपुष्पवंतश्चफलवंतश्चकालतः॥५४॥ तेषांफलानिपक्वानिप्रभवंत्येवकालतः ॥ तेसर्वेफलिताःकालेपातंयांतिचकालतः ॥ ५५ ॥

मेरे हृदयमें स्थितहो. हे प्राणके अधिष्ठाता देव! मेरे प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ४९ ॥ मेरे मनकी वांछित रतिको इस जन्ममें भोगो कुछ क्षणमें तुमको सादर नेत्रोंसे देखती हूं ॥ ५० ॥ इस समय मेरे प्राण चंचल और मन दग्ध होता है. हे स्वामिन्! आजही रातको मैंने बुरा स्वप्न देखा है ॥ ५१ ॥ तुलसीके वचन सुन वह राजा भोजन पान करके यथेच्छ हितकारी सत्यवचन कहने लगा ॥ ५२ ॥ शंखचूड बोला सब कर्म योगनिबंधन कालसे युक्त है. शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक, मंगल कालसे होता है ॥ ५३ ॥ कालसेही वृक्ष और उनके स्कंध होते हैं. फिर कालसेही वे फल पुष्पवान् होते हैं ॥ ५४ ॥ कालसेही उनके फल पकते हैं फिर कालसेही

पककर कालसेही गिरते हैं ॥ ५५ ॥ हे सुन्दरि ! यह सब विश्व कालसे होकर कालसेही नष्ट होता है. स्रष्टा कालसे प्रगट करता रक्षक कालसे ही रक्षा करता है॥ ५६॥ कालसेही संहार और काल क्रमसे संचरण होता है. ब्रह्मा विष्णु शिवादिकी पराप्रकृति ईश्वरी है ॥ ५७ ॥ वह प्रकृतिरूप ईश्वर सबका सृजन कर पालन करने उपरान्त संहार करता है वही कालकोभी नचाता है. समयपरही वह प्रभु अपनेसे अभिन्न प्रकृतिको निर्माण करके ॥ ५८ ॥ इस चराचर विश्वको करता है. वह सर्वात्मा परमेश्वर सर्वेश और सर्वरूप है ॥ ५९ ॥ वही जनसे जनको प्रगट करते और जनसेही पालन करते हैं. जनको जनसेही हरण कराते हैं. इस समय उन्हीं देवका भजन करते ॥ ६० ॥ जिनकी आज्ञासे पवन शीघ्रतासे गमन करता जिनकी आज्ञासे सूर्य प्रतिक्षण तपता है ॥ ६१ ॥ इन्द्र यथा क्षण वरसता मृत्यु प्राणियोंमें

कालेभवंतिविश्वानिकालेनइयंतिसुंदरि ॥ कालात्स्रष्टाचसृजतिपातापातिचकालतः ॥५६॥ संहर्तासंहरेत्कालेक्रमेणसंचरंतिते ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीना मीश्वरःप्रकृतिःपरा ॥ ५७ ॥ स्रष्टापाताचसंहर्तासचात्माकालनर्तकः ॥ कालेसएवप्रकृतिंस्वाभिन्नांस्वेच्छयाप्रभुः ॥ ५८ ॥ निर्मायकृतवान्सर्वान्विश्व स्थांश्चचराचरान् ॥ सर्वेशःसर्वरूपश्चसर्वात्मापरमेश्वरः॥५९॥जनंजनेनजनिताजनंपातिजनेनयः ॥ जनंजनेनहरतेतंदेवंभजसांप्रतम् ॥ ६० ॥ यस्या ऽऽज्ञयावातिवातःशीघ्रगामीचसांप्रतम् ॥ यस्याऽऽज्ञयाचतपनस्तपत्येवयथाक्षणम् ॥६१॥ यथाक्षणंवर्षतींद्रोमृत्युश्चरतिजंतुषु ॥ यथाक्षणंदहत्यग्निश्चं द्रोभ्रमतिशीतवान् ॥ ६२ ॥ मृत्योर्मृत्युंकालकालंयमस्यचयमंपरम् ॥ विभुंस्रष्टुश्चस्रष्टारंमातुश्चपातृकंभवे ॥ ६३ ॥ संहर्तारंचसंहर्तुस्तंदेवंशरणं व्रज ॥ कोवाबंधुश्चकेषांवासर्वबंधुंभजप्रिये ॥ ६४ ॥ अहंकावाचत्वंकावाविधिनायोजितःपुरा ॥ त्वयासार्धंकर्मणाचपुनस्तेनवियोजितः ॥ ६५ ॥ अज्ञानीकातरःशोकेविपत्तौनचपंडितः ॥ सुखदुःखेभ्रमत्येवकालनेमिक्रमेणच ॥ ६६ ॥ नारायणंतंसर्वेशंकांतंयास्यसिनिश्चितम् ॥ तपःकृतंयदर्थं चपुराबदरिकाश्रमे ॥ ६७ ॥ मयात्वंतपसालब्धाब्रह्मणस्तुवरेणच ॥ हर्यर्थंयत्तवतपोहरिंप्राप्स्यसिकामिनि ॥ ६८ ॥

विचरण करता अग्नि जलाता और चन्द्रमा शीतल रहता ॥ ६२ ॥ मृत्युका मृत्यु कालका काल यमका यम स्रष्टाके भी स्रष्टा रक्षकके भी रक्षक विभु ॥ ६३ ॥ संहर्ताके भी संहारकरनेवाले परमात्माकी शरण हो. हे प्रिये ! कौन किसका बंधु है जो सबका बंधु है उसका भजन करो ॥ ६४ ॥ मैं और तुम कौन हो विधाताने नियुक्त कर दिया है कर्मसेही तुमसे मिले अब वही तुमसे नियुक्त करता है॥६५॥ शोक विपत्तिमें अज्ञानीही कातर होते हैं पंडित नहीं. यह सुख दुःखरूप काल चक्रनेमि क्रमसे भ्रमण करता है ॥ ६६ ॥ तुम अवश्य सर्वेश नारायणको प्राप्त होगी. जिस निमित्त पहले बद्रिकाश्रममें तप किया था ॥६७॥ मैंने तुमको ब्रह्माके

वर और तपसे प्राप्त किया है और तुम्हारा तप हरिके निमित्त था. इस कारण हे कामिनी ! तुम हरिको प्राप्त होगी ॥ ६८ ॥ गोलोकके वृंदावनमें तुम गोविन्दको प्राप्त होगी और मैं भी यह दानवी शरीर त्यागनकर उस लोकमें जाऊंगा ॥ ६९ ॥ वह तुम मुझे और मैं तुमको देखूंगा मैं राधाके शापसे दुर्लभ भारत वर्षमें आया था ॥ ७० ॥ फिर वहीं जाऊंगा. हे प्रिये ! इसमें मुझको क्या शोक है तुम भी यह देहत्याग दिव्यरूप धारण कर ॥ ७१ ॥ तत्काल हरिको प्राप्त होगी. हे प्रिये ! शोक मत करो. यह कह दिनान्तमें उसके साथ मनोहर ॥ ७२ ॥ दिव्यचन्दनसे चर्चित शय्यामें शयन करके तथा रत्न मंदिरमें अनेक प्रकारके विभव कर ॥ ७३ ॥ जहां रत्नोंके दीपक जल रहे उस स्थानमें परम सुन्दरी स्त्रीरत्नको प्राप्त होकर क्रीडा कौतुक मंगलसे राजाने रात्रि व्यतीत की ॥ ७४ ॥ रोती और अति दुःखित

वृंदावनेचगोविंदंगोलोकेत्वंलभिष्यसि॥अहंयास्यामितल्लोकंतनुंत्यक्त्वाचदानवीम्॥६९॥तत्रद्रक्ष्यासिमांत्वंचद्रक्ष्यामित्वांचसांप्रतम्॥ अगमंराधिकाशापाद्भारतंचसुदुर्लभम् ॥७०॥ पुनर्यास्यामितत्रैवकःशोकोमेशृणुप्रिये ॥ त्वंचदेहंपरित्यज्यदिव्यरूपंविधायच ॥७१॥ तत्कालंप्राप्स्यसिहरिंमाकांतेकातराभव ॥इत्युक्त्वाचदिनांतेचतयासार्धमनोहरम्॥७२॥सुष्वापशोभनेतल्पेपुष्पचंदनचर्चिते॥नानाप्रकारविभवंचकाररत्नमंदिरे॥७३॥रत्नप्रदीपसंयुक्तेस्त्रीरत्नंप्राप्यसुंदरीम्॥ निनायरजनींराजाक्रीडाकौतुकमंगलैः॥७४॥कृत्वावक्षसितांकांतांरुदतीमतिदुःखिताम्॥कृशोदरींनिराहारांनिमग्नांशोकसागरे॥७५॥ पुनस्तांबोधयामासदिव्यज्ञानेनज्ञानवित्॥पुराकृष्णेनयद्दत्तंभांडीरेतत्त्वमुत्तमम्॥७६॥सचतस्यैददौसर्वंसर्वशोकहरंपरम्॥ज्ञानंसंप्राप्यसादेवीप्रसन्नवदनेक्षणा ॥७७॥ क्रीडांचकारहर्षेणसर्वंमत्वेतिनश्वरम् ॥ तौदंपतीचक्रीडंतौनिमग्नौसुखसागरे ॥७८॥ पुलकांचितसर्वांगौमूर्छितौनिर्जनेमुने ॥ अंगप्रत्यंगसंयुक्तौसुप्रीतौसुरतोत्सुकौ ॥ ७९ ॥ एकांगौचतथातौद्वौचाऽर्धनारीश्वरोयथा ॥ प्राणेश्वरंचतुलसीमेनेप्राणाधिकंपरम् ॥८०॥ प्राणाधिकांचतांमेनेराजाप्राणेश्वरींसतीम् ॥ तौस्थितौसुखसुप्तौचतंद्रितौसुंदरौसमौ ॥ ८१ ॥ सुवेषौसुखसंभोगादचेष्टौसुमनोहरौ ॥ क्षणंसुचेतनौतौचकथयंतौरसाश्रयात् ॥ ८२ ॥

अपनी प्रियाको गोदीमें बैठाय जो कृशोदरी निराहार शोकसागरमें निमग्न थी ॥ ७५ ॥ उस ज्ञानीने फिर भी दिव्यज्ञानसे उसको समझाया जो पहले कृष्णने भांडीर वनमें तत्त्वज्ञान दिया था ॥ ७६ ॥ वह सब शोकनाशी ज्ञान उसने उसको दिया तब वह देवी उस ज्ञानको प्राप्त होकर प्रसन्नवदन हुई ॥ ७७ ॥ सब विश्वको नश्वर मान प्रसन्नतासे क्रीडा करने लगी. तब वे दोनों स्त्री पुरुष क्रीडा करते हुए सुखसागरमें निमग्न हुए ॥ ७८ ॥ सर्वांग उनके पुलकित और निर्जनमें मूर्च्छित हुए सुरतमें उत्सुक होकर उन्होंने अंग प्रत्यंगसंयुक्त कर लिये थे ॥ ७९ ॥ वे दो थे परन्तु अर्धनारीश्वरके समान एक अंग होगये थे उस समय तुलसी प्राणपतिको प्राणोंसे अधिक मानतीहुई ॥ ८० ॥ और राजाने भी उस प्राणेश्वरी सतीको प्राणोंसे अधिकमाना वह दोनों समान सुन्दर सुखसे स्थित हो सोये ॥ ८१ ॥ वह सुन्दर वेषवाले

मनोहर सुख संजोगसे अचेष्ट होगये और रसाश्रयकी कथासे क्षणमें चैतन्यताको प्राप्त हुए ॥ ८२ ॥ मनोहर दिव्य कथा करते हास्य करने लगे. वह रसभावमें युक्त हो क्षणमें केलि करते क्षणमें बात करते ॥ ८३ ॥ वे दोनों इस विषयमें पंडित थे. इस कारण सुरतिसे विरामको प्राप्त न हुए निरन्तर दोनों जयकी इच्छा करते क्षणमात्रको भी पराजित न हुए ॥ ८४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां शक्तिप्रादुर्भावेविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ श्रीनारायण बोले वह कृष्णपरायण दानव कृष्णको मनमें ध्यानकर उस मनोहर फूलोंकी शय्यासे ब्राह्ममूहूर्तमें उठकर ॥ १ ॥ रात्रिके वस्त्रत्याग मंगल जलसे स्नान कर धुले वस्त्र पहर उज्वल तिलक धारण कर ॥ २ ॥ अभीष्ट आह्निक कर्म और देववंदन कर दही घृत मधु खीलैं इन मांगलिक पदार्थोंका दर्शन कर ॥ ३ ॥

कथांमनोरमांदिव्यांहसंतौचक्षणंपुनः ॥ क्षणंचकेलिसंयुक्तौरसभावसमन्वितौ ॥ ८३ ॥ सुरतेविरतिर्नास्तिततौतद्विषयपंडितौ ॥ सततंजययुक्तौद्वौक्षणंनैव पराजितौ ॥ ८४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेनारदनारायणसंवादेशक्तिप्रादुर्भावेविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ श्रीकृष्णंमनसाध्यात्वारक्षःकृष्णपरायणः ॥ ब्राह्मेमुहूर्तेउत्थायपुष्पतल्पान्मनोहरात् ॥ १ ॥ रात्रिवासःपरित्यज्यस्नात्वामंगलवारिणा ॥ धौतेचवाससीधृत्वाकृत्वातिलकमुज्ज्वलम् ॥ २ ॥ चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववंदनम् ॥ दध्याज्यमधुलाजांश्चददर्शवस्तुमंगलम् ॥ ३ ॥ रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठंवस्त्रश्रेष्ठंचकांचनम् ॥ ब्राह्मणेभ्योददौभक्त्यायथानित्यंचनारद ॥ ४ ॥ अमूल्यरत्नंयत्किंचिन्मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥ ददौविप्रायगुरवेया त्रामंगलहेतवे ॥ ५ ॥ गजरत्नमश्वरत्नंधनरत्नंमनोहरम् ॥ ददौसर्वंदरिद्रायविप्रायमंगलायच ॥ ६ ॥ भांडाराणांसहस्राणिनगराणांद्विलक्षकम् ॥ ग्रा माणांशतकोटिंचब्राह्मणायददौमुदा ॥ ७ ॥ पुत्रंकृत्वातुराजेंद्रंसर्वेषुदानवेषुच ॥ पुत्रेसमर्प्यभार्यांतांराज्यंचसर्वसंपदम् ॥ ८ ॥ प्रजानुचरसंघंचभांडा रंवाहनादिकम् ॥ स्वयंसन्नाहयुक्तश्चधनुष्पाणिर्बभूवह ॥ ९ ॥ भृत्यद्वाराक्रमेणैवचकारसैन्यसंचयम् ॥ अश्वानांचत्रिलक्षेणलक्षेणवरहस्तिनाम् ॥ ॥ १० ॥ रथानामयुतेनैवधानुष्काणांत्रिकोटिभिः ॥ त्रिकोटिभिर्वर्मिणांचशूलिनांचत्रिकोटिभिः ॥ ११ ॥

श्रेष्ठ रत्न, श्रेष्ठ मणि, श्रेष्ठ वस्त्र, श्रेष्ठ सुवर्ण, जैसे वह नित्य ब्राह्मणोंको दान करता था इसीप्रकार कर ॥ ४ ॥ जो अमूल्य रत्न मुक्तामणि हीरे आदि थे वह यात्रा मंगलके निमित्त ब्राह्मण और गुरुजीको दे ॥ ५ ॥ गजरत्न, अश्वरत्न, धन रत्न, यह सब दरिद्र ब्राह्मणोंको मंगलके निमित्त दिये ॥ ६ ॥ सहस्रों भंडारे दोलाख नगर शतकोटि ग्राम प्रसन्न हो ब्राह्मणोंको दिये ॥ ७ ॥ सब दानवोंका अधिपति अपने पुत्रको करके उस भार्या और सब राज्यको पुत्रके समर्पणकर ॥ ८ ॥ प्रजा अनुचरोंके समूह भांडारादिदे आपने वस्त्र पहर धनुष धारण किया ॥ ९ ॥ और भृत्योंके द्वारा सेना संग्रहकराई. तीन लाख घोडे, एकलाख हाथी ॥ १० ॥ दशसहस्र रथ, तीनकोटि

धनुषधारी तीनकोटि वर्मधारी तीनकोटि शूलधारी ॥ ११ ॥ हे नारद! उस दानवेन्द्रने इतनी सेना एकत्रकी उस सेनाका अधिपति युद्धशास्त्रमें विशारद ॥ १२ ॥ रथियोंमें प्रवर महारथी था. उसको तीनलाख अक्षौहिणीका सेनापति करके ॥ १३ ॥ और तीस अक्षौहिणीको रक्षामें किया. यह सब मनसे भगवान्‌का स्मरणकर शिविरोंसे बाहर हुए ॥ १४ ॥ और वह रत्नोंसे बने विमानपर चढा और गुरुजनोंको आगेकर शंकरके समीप गया ॥ १५ ॥ जहां पुष्पभद्रा नदीके किनारे सुन्दर अक्षय वट था. हे नारद! वह सिद्धोंका सिद्धाश्रम सिद्धक्षेत्र है ॥ १६ ॥ इस पुण्यक्षेत्र भारतमें कपिलजीकेतपका स्थान पश्चिम सागरके पूर्व और मलयाचलके पश्चिममें ॥ १७ ॥ श्रीशैलके

कृतासेनापरिमितादानवेंद्रेणनारद ॥ तस्यांसेनापतिश्चैवयुद्धशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥ महारथःसविज्ञेयोरथिनांप्रवरोरणे ॥ त्रिलक्षाऽक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वानराधिपः ॥ १३ ॥ त्रिंशदक्षौहिणीबाधंभांडौघंचचकारह ॥ बहिर्बभूवशिविरान्मनसाश्रीहरिंस्मरन् ॥ १४ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानमारुरो हसः ॥ गुरुवर्गान्पुरस्कृत्यप्रययौशंकरांतिकम् ॥ १५ ॥ पुष्पभद्रानदीतीरेयत्राक्षयवटःशुभः ॥ सिद्धाश्रमंचसिद्धानांसिद्धिक्षेत्रंचनारद ॥ १६ ॥ कपिलस्यतपःस्थानंपुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ पश्चिमोदधिपूर्वेचमलयस्यचपश्चिमे ॥ १७ ॥ श्रीशैलोत्तरभागेचगंधमादनदक्षिणे ॥ पंचयोजनविस्तीर्णंदैर्घ्यं शतगुणातथा ॥ १८ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशाभारतेचसुपुण्यदा ॥ शाश्वतीजलपूर्णाचपुष्पभद्रानदीशुभा ॥ १९ ॥ लवणाब्धिप्रियाभार्याशश्वत्सौभाग्य संयुता ॥ शरावतीमिश्रिताचनिर्गतासाहिमालयात् ॥ २० ॥ गोमतींवामतःकृत्वाप्रविष्टापश्चिमोदधौ ॥ तत्रगत्वाशंखचूडोददर्शचंद्रशेखरम् ॥ २१ ॥ वटमूलेसमासीनंसूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कृत्वायोगासनंदृष्ट्वामुद्रायुक्तंचसस्मितम् ॥ २२ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशंज्वलंतंब्रह्मतेजसा ॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मांबरंवरम् ॥ २३ ॥

उत्तरभाग गंधमादनके दक्षिणमें पाँचयोजनके चौवडावमें और इससे सौगुनेके विस्तारमें ॥ १८ ॥ शुद्ध स्फटिकमणिके समान स्वच्छजलवाली इस पुण्यदायक भारतमें निरन्तर जलसे पूर्ण पुष्पभद्रा नदी है ॥ १९ ॥ वह सागरकी प्रिया भार्या निरन्तर सौभाग्यसे सम्पन्न शरावतीसे मिली है जो हिमालयसे निकली है ॥ २० ॥ वह गोमतीको बाईं ओर करती पश्चिमसागरमें मिली है. वहां जाकर शंखचूडने शिवजीकादर्शनकिया ॥ २१ ॥ जो सौकोटि सूर्यके समान कान्तिमान् वटमूलमें स्थित थे. योगासनमारे मुद्रायुक्त हास्यकरतेहैं ॥ २२ ॥ जो शुद्धस्फटिक मणिके समान ब्रह्मतेजसे प्रदीप्त होरहे हैं. त्रिशूल पट्टिश और व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारे ॥ २३ ॥

भक्तोंकी मृत्यु हरनेवाले शांत गौरीकान्त मनोहर तपके फल और सब सम्पतियोंके देनेवाले ॥ २४ ॥ आशुतोष प्रसन्नमुख भक्तोंपर दयाकरनेमें तत्पर विश्वनाथ विश्व बीज विश्वरूप विश्वज ॥ २५ ॥ विश्वके भरणकरनेवाले विश्वमें श्रेष्ठ विश्वके संहार कारक कारणोंके भी कारण नरकसागरसे तारनेवाले ॥ २६ ॥ ज्ञानदाता ज्ञानके बीज ज्ञानमें आनन्द सनातनशिवको विमानसे उतरकर दानवेन्द्रने देखा ॥ २७ ॥ और सबके सहित भक्तियुक्त हो प्रणाम किया जिनके बाईं ओर भद्रकाली और आगे स्कंदजी स्थित थे ॥ २८ ॥ तब काली स्कंद और शंकरने उसको आशीर्वाददिया और नंदीश्वरादि उसको आया देख खडे होगये ॥ २९ ॥ और परस्पर वार्ता करने लगे, राजाभी वार्ताकर शिवजीके समीप स्थित हुआ ॥ ३० ॥ तब भगवान् महादेवने प्रसन्न हो उससे कहा महादेवजी बोले ब्रह्मा जगतके विधाता और धर्मवित्

भक्तमृत्युहरंशांतंगौरीकांतंमनोहरम् ॥ तपसांफलदातारंदातारंसर्वसंपदाम् ॥ २४ ॥ आशुतोषंप्रसन्नास्यंभक्तानुग्रहकातरम् ॥ विश्वनाथंविश्वबीजंविश्वरूपंचविश्वजम् ॥ २५ ॥ विश्वंभरंविश्ववरंविश्वसंहारकारकम् ॥ कारणंकारणानांचनरकार्णवतारणम् ॥ २६ ॥ ज्ञानप्रदंज्ञानबीजंज्ञानानंदंसनातनम् ॥ अवरुह्यविमानाच्चतंदृष्ट्वादानवेश्वरः ॥ २७ ॥ सर्वैःसार्धंभक्तियुक्तःशिरसाप्रणनामसः ॥ वामतोभद्रकालींचस्कंदंचतत्पुरःस्थितम् ॥ २८ ॥ आशिषंचददौतस्मैकालीस्कंदश्चशंकरः ॥ उत्तस्थुरागतंदृष्ट्वासर्वेनंदीश्वरादयः ॥ २९ ॥ परस्परंचभाषांतेचक्रुस्तत्रचसांप्रतम् ॥ राजाकृत्वाचसंभाषामुवासशिवसंनिधौ ॥ ३० ॥ प्रसन्नात्मामहादेवोभगवांस्तमुवाचह ॥ महादेवउवाच ॥ विधाताजगतांब्रह्मापिताधर्मस्यधर्मवित् ॥ ३१ ॥ मरीचिस्तस्यपुत्रश्चवैष्णवश्चाऽपिधार्मिकः ॥ कश्यपश्चाऽपितत्पुत्रोधर्मिष्ठश्चप्रजापतिः ॥ ३२ ॥ दक्षःप्रीत्याददौतस्मैभक्त्याकन्यास्त्रयोदश ॥ तास्वेकाचदनुःसाध्वीतत्सौभाग्यविवर्धिता ॥ ३३ ॥ चत्वारिंशद्दनोःपुत्रादानवास्तेजसोल्बणाः ॥ तेष्वेकोविप्रचित्तिश्चमहाबलपराक्रमः ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रोधार्मिकोदंभोविष्णुभक्तोजितेंद्रियः ॥ जजापपरमंमंत्रंपुष्करेलक्षवत्सरम् ॥ ३५ ॥ शुक्राचार्यंगुरुंकृत्वाकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ तदात्वांतनयंप्रापपरंकृष्णपरायणम् ॥ ॥ ३६ ॥ पुरात्वंपार्षदोगोपोगोपेष्वपिसुधार्मिकः ॥ अधुनाराधिकाशापाद्भारतेदानवेश्वरः ॥ ३७ ॥

धर्मके पिता हैं ॥ ३१ ॥ उनके पुत्र मरीचि परमधार्मिक वैष्णव हैं. उनके पुत्र धर्मिष्ठ प्रजापति कश्यप हैं ॥ ३२ ॥ जिनको प्रसन्न हो दक्षने तेरह कन्या दान की हैं उसमें एक साध्वी दनुसौभाग्यसे वर्द्धित है ॥ ३३ ॥ उस दनुके चालीस पुत्र दानव बडे तेजस्वी हुए उनमें एक विप्रचित्ति महाबली दानव हुआ ॥ ३४ ॥ उसका पुत्र धार्मिक दंभ विष्णु भक्त जितेन्द्री हुआ, उसने लाख वर्षतक पुष्करमें परम मंत्रका जप किया ॥ ३५ ॥ शुक्राचार्यको गुरु करके परमात्मा कृष्णको आराधन किया तब कृष्णपरायण तुम पुत्रको पाया ॥ ३६ ॥ पहले तुम गोपपार्षद गोपोंमें अति धार्मिक थे. हे दानवेश्वर! अब इस भारतवर्षमें तुम राधाके शापसे ॥ ३७ ॥

जन्मले वैष्णव हो ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त तुच्छ मान्ते हो सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य मुक्ति हरिके॥ ३८।।देनेपर भी वैष्णव उनकी सेवा विना कुछ ग्रहण नहीं करते हैं, वैष्णव ब्रह्मत्व और अमरत्व भी तुच्छ मानते हैं ॥ ३९ ॥ इन्द्रत्व और मनुत्व कीभी इच्छा नहीं करते. फिर तुम कृष्णके भक्तका देवताओंके अधिकार लेनेमें क्यों भ्रमता है ।।४०।। हे भूमिपति ! देवताओंको राज्य देकर मेरी प्रीतिकी रक्षा करो तुम अपने राज्यमें सुख भोगो देवता अपने अधिकारमें संतुष्ट हो ।। ४१ ।। तुम सब कश्यपके वंशमें हो विरोध मत करो जो कोई पाप ब्रह्महत्यादिक हैं ।।४२।। वे ज्ञातिद्रोह पापकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है. हे राजेन्द्र ! यदि अपनी सम्पदाकी हानि मानते हो ।। ४३ ।। तो सब अवस्था किसकी समान बीतती है. लय प्राकृत लयमें ब्रह्माका भी तिरोभाव होजाताहै ।। ४४ ।। फिर ईश्वरकी

आब्रह्मस्तंबपर्यंतंतुच्छंमेनेचवैष्णवः ॥ सालोक्यसार्ष्टिसायुज्यसामीप्यंचहरेरपि ॥ ३८ ॥ दीयमानंनगृह्णंतिवैष्णवाःसेवनंविना ॥ ब्रह्मत्वममरत्वंवातुच्छंमेनेचवैष्णवः ॥ ३९ ॥ इंद्रत्वंवामनुत्वंवानमेनेगणनासुच ॥ कृष्णभक्तस्यतेकिंवादेवानांविषयेभ्रमे ॥ ४० ॥ देहिराज्यंचदेवानांमत्प्रीतिंरक्षभूमिप ॥ सुखंस्वराज्येत्वंतिष्ठदेवास्तिष्ठंतुवैपदे ॥ ४१ ॥ अलंभूतविरोधेनसर्वेकश्यपवंशजाः ॥ यानिकानिचपापानिब्रह्महत्यादिकानिच ॥ ॥ ४२ ॥ ज्ञातिद्रोहस्यपापानिकलांनार्हंतिषोडशीम् ॥ स्वसंपदांचहानिंचयदिराजेंद्रमन्यसे ॥ ४३ ॥ सर्वावस्थाचसमतांकेषांयातिचसर्वदा ॥ ब्रह्मणश्चतिरोभावोलयेप्राकृतिकेसदा ॥ ४४ ॥ आविर्भावःपुनस्तस्यप्रभावादीश्वरेच्छया ॥ ज्ञानवृद्धिश्चतपसास्मृतिलोपश्चनिश्चितम् ॥ ४५ ॥ करोतिसृष्टिंज्ञानेनस्रष्टासोऽपिक्रमेणच॥परिपूर्णतमोधर्मःसत्येसत्याश्रयेसदा॥४६॥ त्रिभागःसोऽपित्रेतायांद्विभागोद्वापरेस्मृतः ॥ एकभागःकलौपूर्वंतदंशश्चक्रमेणच ॥ ४७॥ कलामात्रंकलेःशेषेकुह्वांचंद्रकलायथा ॥ यादृक्तेजोरवेर्ग्रीष्मेनतादृक्छिशिरेपुनः ॥ ४८॥ दिनेषुयादृङ्मध्याह्नेसायंप्रातर्नतत्समम्॥ उदयंयातिकालेनबालतांचक्रमेणच ॥ ४९ ॥ प्रकांडतांचतत्पश्चात्कालेऽस्तंपुनरेतिसः ॥ दिनेप्रच्छन्नतांयातिकालेनदुर्दिनेघने ॥ ५० ॥

इच्छासेही उसका आविर्भाव होता है. तपसे ज्ञानकी वृद्धि होतीहै. यह सत्य है किन्तु स्मृतिका लोप होता है ॥ ४५।। ज्ञानसे ही स्रष्टा सृष्टि करता है. सत्ययुगमें सत्याश्रयसे परिपूर्ण धर्म होता है ।। ४६ ।। त्रेतामें तीनभाग द्वापरमें दो भाग रहता है कलियुगमें एक भाग और फिर वह भी क्रमसे घटता है ॥ ४७ ।। कलियुगान्तमें कलामात्र शेष रह जाता है जैसे अमावसमें चन्द्रमाकी कला रहती है जैसे ग्रीष्मऋतुमें सूर्यका तेज रहता है वैसा शिशिर ऋतुमें नहीं होता ॥ ४८ ।। दिनमें भी जैसा मध्याह्नमें होता है वैसा प्रभात और संध्यामें नहीं,समयपरही उदय बाल ॥ ४९ ॥ और समयपर प्रचण्डता तथा फिर अस्त होजाताहै और समयपरही दुर्दिन होकर बादलों

में छि पजाता है ॥ ५० ॥ राहुके ग्रासमें कंपित होकर फिर प्रसन्न होता है पूर्णिमाको चन्द्रमा परिपूर्ण होता है ॥ ५१ ॥ वैसा दिन दिन नहीं होकर क्षय होता रहता है और अमावसके उपरान्त फिर दिन २ पुष्ट होता है ॥ ५२ ॥ शुक्ल पक्षमें संपत् युक्त कृष्णपक्षमें क्षयसे मलीन होता है राहुग्रस्त होनेसे मलीन और दिनमें शोभा नहीं पाता ॥ ॥ ५३ ॥ समयसेही चन्द्रमा शुभ्र और समयसेही भ्रष्टश्री होता है. इस समय सुतलमें बलीभ्रष्टश्री है समयपर इन्द्र होगा ॥ ५४ ॥ समयपरही पृथ्वी सब सस्य शालिनी होती है. यह पृथ्वी सबकी आधार है और समयपरही जलमें निमग्न हो छिपजाती है ॥ ५५ ॥ समयपरही जगत् नष्ट होकर समयपरही फिर होता है. यह चराचर कालसे नष्ट होकर फिर प्रगट होता है ॥ ५६ ॥ ईश्वरकी समता ब्रह्म परमात्मा देखो जिससे मैं मृत्युंजय होकर असंख्य प्राकृत प्रलयोंको ॥ ५७ ॥

राहुग्रस्तेकंपितश्चपुनरेवप्रसन्नताम् ॥ परिपूर्णतमश्चंद्रःपूर्णिमायांचजायते ॥ ५१ ॥ तादृशोनभवेन्नित्यंक्षयंयातिदिनेदिने ॥ पुनश्चपुष्टिमायातिपरंकुह्वा दिनेदिने ॥५२॥ संपद्युक्तःशुक्लपक्षेकृष्णेम्लानश्चयक्ष्मणा ॥ राहुग्रस्तेदिनेम्लानोदुर्दिनेनविरोचते ॥ ५३ ॥ कालेचंद्रोभवेच्छुक्लोभ्रष्टश्रीःकालभेदतः ॥ भविष्यतिबलिश्चेंद्रोभ्रष्टश्रीःसुतलेऽधुना ॥ ५४ ॥ कालेनपृथ्वीसस्याढ्यासर्वाधारावसुंधरा ॥ कालेजलेनिमग्नासातिरोभूतांबुविप्लुता ॥ ५५ ॥ कालेनश्यंतिविश्वानिप्रभवंत्येवकालतः ॥ चराचराश्चकालेननश्यंतिप्रभवंतिच ॥ ५६ ॥ ईश्वरस्यैवसमताब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ अहंमृत्युंजयोयस्माद संख्यंप्राकृतंलयम् ॥ ५७ ॥ अदर्शंचापिद्रक्ष्यामिवारंवारंपुनःपुनः ॥ सचप्रकृतिरूपंचसएवपुरुषःस्मृतः ॥ ५८ ॥ सचात्मासचजीवश्चनानारूपधरः परः ॥ करोतिसततंयोहितन्नामगुणकीर्तनम् ॥ ५९ ॥ कालेमृत्युंसजयतिजन्मरोगंभयंजराम् ॥ स्रष्टाकृतोविधिस्तेनपाताविष्णुःकृतोभवेत् ॥ ६० ॥ अहंकृतश्चसंहर्तावयंविषयिणःकृताः ॥ कालाग्निरुद्रंसंहारेनियोज्यविषयेनृप ॥ ६१ ॥ अहंकरोमिसततंतन्नामगुणकीर्तनम् ॥ तेनमृत्युंजयोऽहंचज्ञानेनाऽनेननिर्भयः ॥ ६२ ॥ मृत्युर्मृत्युभयाद्यातिवैनतेयादिवोरगाः ॥ इत्युक्त्वासचसर्वेशःसर्वभावनतत्परः ॥ ६३ ॥

अन्तर्धान और प्रगट होता बार २ देखता हूं वही प्रकृतिरूप और वही पुरुष है ॥ ५८ ॥ वही आत्मा वही नानारूपधारी जीव है. जो निरन्तर उसके नामगुणोंका कीर्तनकरता है ॥ ५९ ॥ वह समयपर जन्म रोग भय जरा वाली मृत्युको जयकरता है विधाताको स्रजनेवाला और विष्णुको पालक इसीने किया है ॥ ६० ॥ और अहंकारयुक्त संहारकरनेवाला मैं हुआ हूं. हे राजन् ! संहारमें कालाग्नि रुद्र नियुक्त होते हैं ॥ ६१ ॥ मैं स्वयं उसके नाम गुणका कीर्तन करता रहता हूं इसीके ज्ञानसे मैं निर्भय और मृत्युंजय कहाता हूं ॥ ६२ ॥ गरुडसे सर्पकी समान मृत्यु भी मृत्युके भयसे जिससे भागती है इसप्रकार सर्व भावनामें

तत्पर सर्वेश उससे यह वचन कहा ॥ ६३ ॥ हे नारदजी ! सभाके मध्यमें शिवजी विरामको प्राप्त हुए और राजा भी यह वचन सुन वारंवार शिवजीकी प्रशंसा करने लगा ॥ ६४ ॥ और विनयपूर्वक शिवजीसे मधुर वचन बोला शंख चूड बोला हे देवजी ! आपने कहा यह इसी प्रकार है इसमें अन्यथा नहीं है॥ ६५॥ तो भी आप यथार्थ मेरे निवेदनको सुनो जो कि, आपने अभी ज्ञातिद्रोहका बड़ा पाप बताया है ॥ ६६ ॥ तब बलिका सर्वस्व हरण करके उसको पातालमें क्यों भेजा. हे ईश्वर ! मैंने अव ऊर्ध्व लोकका ऐश्वर्य ग्रहण कर लियाहै॥ ६७॥ और सुतलसे उसको ऐश्वर्य उद्धार करनेकी सामर्थ्य स्वयं गदाधर भगवान् फिर भाई सहित हिरण्याक्षको देवताओंने क्यों मरवाया ॥ ६८ ॥ देवताओंने शुंभादि असुरोंको क्यों मारा पहले समुद्रमथनमें अमृत भी देवताओंने ही पिया ॥ ६९ ॥ हम दैत्यके

विररामचशंभुश्चसभामध्येचनारद ॥ राजातद्वचनंश्रुत्वाप्रशशंसपुनःपुनः ॥६४॥उवाचमधुरंदेवंपरंविनयपूर्वकम् ॥ शंखचूडउवाच ॥ त्वयायत्कथितं देवनाऽन्यथावचनंस्मृतम् ॥ ६५ ॥ तथापिकिंचिद्यथार्थंश्रूयतांमन्निवेदनम् ॥ज्ञातिद्रोहेमहत्पापंत्वयोक्तमधुनाचयत् ॥ ६६ ॥ गृहीत्वातस्यसर्वस्वं कुतःप्रस्थापितोबलिः ॥ मयासमुद्धृतंसर्वमूर्ध्वमैश्वर्यमीश्वर ॥ ६७ ॥ सुतलाच्चसमुद्धर्तुंनालंतत्रगदाधरः ॥ सभ्रातृकोहिरण्याक्षःकथंदेवैश्चहिंसितः ॥ ॥ ६८ ॥ शुंभादयश्चासुराश्चकथंदेवैर्निपातिताः ॥ पुरासमुद्रमथनेपीयूषंभक्षितुंसुरैः ॥ ६९ ॥ क्लेशभाजोवयंतत्रतेसर्वेफलभोगिनः ॥ क्रीडाभांडमिदंविश्वंप्रकृतेःपरमात्मनः ॥ ७० ॥ यस्मैयत्रसददातितस्यैश्वर्यंभवेत्तदा ॥ देवदानवयोर्वादःशश्वन्नैमित्तिकःसदा ॥ ७१ ॥ पराजयोजयस्तेषांकालेऽस्माकंक्रमेणच ॥ तदाऽऽवयोर्विरोधेवागमनंनिष्फलंपरम् ॥ ७२ ॥समसंबंधिनोबंधोरीश्वरस्यमहात्मनः ॥ इयंतेमहतीलज्जायुद्धेऽस्माभिःसहाऽधुना ॥७३॥ जयेततोऽधिकाकीर्तिर्हानिश्चैवपराजये ॥ इत्येतद्वचनंश्रुत्वाप्रहस्यचात्रिलोचनः ॥ ७४ ॥

बल क्लेशभागी और वह सब फलभोगी हुए. यह विश्व परमात्माप्रकृतिका क्रीडा भाजन है ॥ ७० ॥ जिसको जहां देता है वहीं उसको ऐश्वर्य मिलता है देवदानवोंका विवाद निमित्तसे निरन्तर होता है ॥ ७१ ॥ कालानुसार उनकी हमारी जय पराजय होती है. हमारे उनके बीचमें आपका आना परम निष्फल है ॥ ७२॥ ईश्वर महात्माका तो सबसे समान सम्बन्ध होता है और हमारे साथ युद्धमें तो आपको लज्जा होनी चाहिये॥ ७३॥ कारण कि, आपके होते यदि हमारी जय होगी तो अधिक कीर्ति होगी. आप जीतेंगे तो कुछभी आपकी बडाई नहीं. कारण कि, आप ईश्वर हो पराजयमें आपकी बडी हानि है यह वचन सुनकर शिवजी हँसते हुए ॥ ७४ ॥

उस दानवको यथोचित उत्तर देनेलगे महादेवजी बोले ब्रह्माके वंशमें प्रगट हुए तुम्हारे साथ युद्धमें ॥ ७५॥ क्या लज्जा है. हे राजन्! पराजयमें अकीर्ति भी नहीं है आदिमें हरिने भी मधुकैटभसे युद्ध किया था ॥ ७६ ॥ तथा हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्षसे भी गदाधरका युद्ध हुआ था ॥ ७७ ॥ मैं ने भी पहले त्रिपुरासुरके साथ युद्ध किया था सर्वेश्वरी सबकी माता प्रकृति देवीकाभी ॥ ७८ ॥ शुंभादिके संग परम अद्भुत संग्राम हुआ था तुम परमात्मा कृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो ॥ ७९ ॥ इससे जो जो दैत्य मरे उनमें तुम्हारी समान कोई न था. सो हे राजन्! मेरी तुमसे युद्धमें क्या लज्जा है ॥ ८० ॥ हरिने देवताओंको शरण देनेकेही निमित्त मुझे भेजा है

यथोचितमुत्तरंतमुवाचदानवेश्वरम् ॥ महादेवउवाच ॥ युष्माभिःसहयुद्धेमेब्रह्मवंशसमुद्भवैः ॥ ७५ ॥ कालज्जामहतीराजन्नकीर्तिर्वापराजये ॥ युद्धमा दौहरेरेवमधुनाकैटभेनच ॥ ७६ ॥ हिरण्यकशिपोश्चैवसहतेनात्मनानृप ॥ हिरण्याक्षस्ययुद्धंचपुनस्तेनगदाभृता ॥ ७७ ॥ त्रिपुरैःसहयुद्धंचमयापि चपुराकृतम् ॥ सर्वेश्वर्याःसर्वमातुःप्रकृत्याश्चबभूवह ॥ ७८ ॥ सहशुंभादिभिःपूर्वंसमरःपरमाद्भुतः ॥ पार्षदप्रवरस्त्वंचकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ ७९ ॥ येयेहताश्चदैतेयानहिकेऽपित्वयासमाः ॥ कालज्जामहतीराजन्ममयुद्धेत्वयासह ॥ ८० ॥ सुराणांशरणस्यैवप्रेषितश्चहरेरहो ॥ देहिराज्यंचदेवाना मितिमेनिश्चितंवचः ॥ ८१ ॥ "युद्धंवाकुरुमत्सार्धंवाग्व्ययेकिंप्रयोजनम् ॥" इत्युक्त्वाशंकरस्तत्रविररामचनारद ॥ उत्तस्थौशंखचूडश्चह्यमात्यैः सहसत्वरम् ॥८२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादेएकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ शिवंप्रणम्य शिरसादानवेंद्रःप्रतापवान् ॥ समारुरोहयानंचसहामात्यैःससत्वरः ॥ १ ॥ शिवःस्वसैन्यंदेवांश्चप्रेरयामाससत्वरम् ॥ दानवेंद्रःससैन्यश्चयुद्धारंभे बभूवह ॥ २ ॥ स्वयंमहेंद्रोयुयुधेसार्धंचवृषपर्वणा ॥ भास्करोयुयुधेविप्रचित्तिनासहसत्वरः ॥ ३ ॥

देवताओंका राज्य देदो यह मेरा निश्चित वचन है ॥ ८१ ॥ "अथवा हमारे साथ संग्राम करो वाणीके व्ययसे क्या प्रयोजन है" हे नारद! ऐसा कहकर भगवान् शंकर मौन हुए तब आमात्योंके सहित तत्काल शंखचूड उठ खडा हुआ ॥ ८२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीनारायण बोले वह प्रतापी दानवेन्द्र शिवजीको शिरसे प्रणाम कर आमात्योंके सहित शीघ्र अपने विमानपर चढा ॥ १ ॥ और शिवजीने भी अपनी सेना और देवताओंको शीघ्र प्रेरणा किया और दानवेन्द्रने भी सेनासहित युद्धका आरंभ किया ॥ २ ॥ स्वयं महेन्द्रका वृषपर्वासे, भास्करका विप्रचित्तिसे ॥ ३ ॥

दंभका चन्द्रसे, कालका कालस्वरसे, हुताशनका गोकर्णसे ॥ ४ ॥ कुबेरका कालकेयसे, विश्वकर्माका भयसे, भयंकरका मृत्युसे, यमका संहारसे ॥ ५ ॥ वरुणका विकंकणसे, वायुका चंचलसे, बुधका घृतपृष्ठसे, शनैश्वरका रक्ताक्षसे ॥ ६ ॥ जयन्तका रत्नसारसे, वसुओंका वर्चसगणोंसे, अश्विनीकुमारोंका दीप्तिमानसे, नलकूबरका धूम्रसे ॥ ७ ॥ धर्मका धुरंधरसे मंगलका उषाक्षसे भानुका शोभाकरसे मन्मथका पिठरसे ॥ ८ ॥ गोधामुख चूर्णखड्ग ध्वज कांचीमुख पिण्ड धूम्र नंदी ॥ ९ ॥ विश्व और पलाशसे आदित्यादि युद्ध करने लगे. ग्यारह रुद्र ग्यारह भयंकर दैत्योंसे युद्ध करने लगे ॥ १० ॥ महामारी दैत्या उग्रचंडादिकेसहित

दंभेनसहचंद्रश्चचकारपरमंरणम् ॥ कालस्वरेणकालश्चगोकर्णेनहुताशनः ॥४॥ कुबेरःकालकेयेनविश्वकर्मामयेनच॥भयंकरेणमृत्युश्चसंहारेणमयस्तथा ॥ ५ ॥ विकंकणेनवरुणश्चंचलेनसमीरणः ॥ बुधश्चघृतपृष्ठेनरक्ताक्षेणशनैश्वरः ॥ ६ ॥ जयंतोरत्नसारेणवसवोवर्चसांगणैः ॥ अश्विनौचदीप्तिमताधूम्रेणनलकूबरः ॥ ७ ॥ धुरंधरेणधर्मश्चउषाक्षेणचमंगलः ॥ शोभाकरेणवैभानुःपिठरेणचमन्मथः ॥ ८ ॥ गोधामुखेनचूर्णेनखड्गेनचध्वजेनच ॥ कांचीमुखेनपिंडेनधूम्रेणसहनंदिना ॥ ९ ॥ विश्वेनचपलाशेनादित्याद्यायुयुधुःपरे ॥ एकादशचरुद्राश्चैएकादशभयंकरैः ॥ १० ॥ महामारीचयुयुधेचोग्रचंडादिभिःसह ॥ नंदीश्वरादयःसर्वेदानवानांगणैःसह ॥ ११ ॥ युयुधुश्चमहायुद्धेप्रलयेऽपिभयंकरे ॥ वटमूलेचशंभुश्चतस्थौकाल्यासुतेनच ॥ १२ ॥ सर्वेचयुयुधुःसैन्यसमूहाःसततंमुने ॥ रत्नसिंहासनेरम्येकोटिभिर्दानवैःसह ॥ १३ ॥ उवासशंखचूडश्चरत्नभूषणभूषितः ॥ शंकरस्यचयेयोधादानवैश्चपराजिताः ॥ १४ ॥ देवाश्चदुद्रुवुःसर्वेभीताश्चक्षतविग्रहाः ॥ चकारकोपंस्कंदश्चदेवेभ्यश्चाभयंददौ ॥ १५ ॥ बलंचस्वगणानांचवर्धयामासतेजसा ॥ सोऽयमेकश्चयुयुधेदानवानांगणैःसह ॥ १६ ॥ अक्षौहिणीनांशतकंसमरेचजवानसः ॥ असुरान्पातयामासकालीकमललोचना ॥ १७ ॥

संग्राम करने लगी और नंदीश्वरादि सब दानवादि गणोंके साथ ॥ ११ ॥ उस उस महाप्रलयके भयंकर संग्राममें युद्ध करने लगे और स्कन्दके सहित शंकर वटमूलमें स्थितहुए ॥ १२ ॥ हे मुने! वह सब सैन्यसमूह संग्राम करने लगा. मनोहर रत्नोंके सिंहासनमें कोटियों दानवोंके सहित ॥ १३ ॥ रत्नोंके भूषणोंसे भूषित शंखचूड स्थित हुआ, शंकरके योधा दानवोंसे पराजित होने लगे ॥ १४ ॥ और देवता भीत तथा क्षतविग्रह होकर भागने लगे, तब स्कंदने कोपकर देवताओंको अभय दी ॥ १५ ॥ और तेजसे अपने गणोंका बल बढाने लगे सो यह एकमात्र ही दानवोंके गणोंसे युद्धकरने लगे ॥ १६ ॥ और युद्धमें सैकडों अक्षौहिणी

सेनाका वध किया इधर कमललोचना कालीने अनेक असुरोंका संहार किया ॥ १७ ॥ और अतिक्रुद्ध हो दानवोंका रक्तपान करने लगी दशलक्ष गजेन्द्र और कोटिशों लक्ष अश्व ॥ १८ ॥ हाथसे पकड पकड लीलासेही मुखमें डालने लगी. हे मुने! युद्धमें सहस्रों कबंध नाचनेलगे ॥ १९ ॥ स्कन्दके शरजालसे दानवोंका शरीर क्षत विक्षत होगया और वे महारणके पराक्रमी भयभीत हो भागने लगे ॥ २० ॥ वृषपर्वा विप्रचित्ति दंभ विकंकण यह बडे विक्रमसे स्कंधके साथ युद्धकरने लगे ॥ २१ ॥ और पराङ्मुखी न होकर महामारी युद्धही करती रही वे सब स्कंदकी शक्तिसे पीडित हो क्षुब्ध हुए ॥ २२ ॥ परभयसे भागे

पपौरक्तंदानवानामतिक्रुद्धाततःपरम् ॥ दशलक्षंगजेंद्राणांशतलक्षंचकोटिशः ॥ १८ ॥ समादायैकहस्तेनमुखेचिक्षेपलीलया ॥ कबंधानांसहस्रंचननर्त समरेमुने ॥ १९ ॥ स्कंदस्यशरजालेनदानवाःक्षतविग्रहाः ॥ भीताश्चदुद्रुवुःसर्वेमहारणपराक्रमाः ॥ २० ॥ वृषपर्वाविप्रचित्तिर्दंभश्चापिविकंकणः ॥ स्कंदेनसार्धंयुयुधुस्तेसर्वेविक्रमेणच ॥ २१ ॥ महामारीचयुयुधेनबभूवपराङ्मुखी ॥ बभूवुस्तेचसंक्षुब्धाःस्कंदस्यशक्तिपीडिताः ॥ २२ ॥ नदुद्रुवुर्भयात्स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूवह ॥ स्कंदस्यसमरंदृष्ट्वामहारुद्रंसमुल्बणम् ॥ २३ ॥ दानवानांक्षयकरंयथाप्राकृतिकोलयः ॥ राजाविमानमारुह्यचकारबाणवर्षणम् ॥ २४ ॥ नृपस्यशरवृष्टिश्चघनस्यवर्षणंयथा ॥ महाघोरांधकारश्चवन्ह्युत्थानंबभूवच ॥ २५ ॥ देवाःप्रदुद्रुवुःसर्वेऽप्यन्येनंदीश्वरादयः ॥ एकएवकार्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्धनि ॥ २६ ॥ पर्वतानांचसर्पाणांशिलानांशाखिनांतथा ॥ नृपश्चकारवृष्टिंचदुर्वारांचभयंकरीम् ॥ २७ ॥ नृपस्यशरवृष्ट्याचप्रहितःशिवनंदनः ॥ नीहारेणचसांद्रेणप्रहितोभास्करोयथा ॥ २८ ॥

नहीं. इस कारण स्वर्गसे पुष्पवृष्टि हुई, स्कंदका महाभयंकर समर देखकर ॥ २३ ॥ जो प्रकृतिक प्रलयके समान दानवोंका क्षयकारी था यह देख राजाने विमानपर चढ बाणोंकी वर्षाकी ॥ २४ ॥ राजाकी शरवृष्टि मेघवर्षाके समान थी उससे महाघोर अंधकार और अग्नि उठने लगी ॥ २५ ॥ नंदीश्वरादि और देवता यह देख भागनेलगे इकले कार्तिकेयही संग्रामस्थलमें स्थित हुए ॥ २६ ॥ पर्वत, शिला, सर्प, वृक्षकी बडी भयंकर वर्षा राजा करने लगा. राजाकी घोर शरवृष्टिसे स्कंदताडित हुए. जैसे घने कुहरसे सूर्य ढकजाता है ॥ २७ ॥ राजाने स्कंधका महाघोर भयंकर धनुष छेदनकर दिया तथा दिव्यरथको तोडकर रथके पीठको छेदनकर दिया ॥ २८ ॥

दिव्यास्त्रसे उनके मयूरकोभी जर्जरितकर दिया और सूर्यके समान प्रकाशित घातिनीशक्ति उनकी छातीमें मारी॥ २९॥ ३०॥ जिससे क्षणमें मूर्च्छाको प्राप्तहोकर फिर चेतन्य हुए. तब पहले विष्णुके दिये दिव्यधनुषको लेकर ॥ ३१ ॥ रत्नोंमें श्रेष्ठ रत्नसार विमानमें कार्तिकेय चढे और अस्त्र शस्त्र लेकर घोर दारुण संग्राम किया ॥ ३२ ॥ सर्प, पर्वत, वृक्ष, पत्थर इन सबको शिवकुमारने क्रोधकर अपने अस्त्रजालसे छेदनकर दिया ॥ ३३ ॥ और पर्जन्य अस्त्रसे सब अग्नि बुझादी और लीलासेही शंखचूडका रथ और धनुष छेदनकर दिया ॥ ३४ ॥ उसका बख्तर सारथि किरीट उज्वल मुकुट तोडकर दानवेन्द्रकी छातीमें एक स्वच्छ

धनुश्चिच्छेदस्कंदस्यदुर्वहंचभयंकरः ॥ बभंजचरथंदिव्यंचिच्छेदरथपीठकान्॥२९॥मयूरंजर्जरीभूतंदिव्यास्त्रेणचकारसः॥ शक्तिंचिक्षेपसूर्याभांतस्यवक्ष स्यघातिनीम्॥३०॥क्षणंमूर्छांच संप्रापबभूवचेतनःपुनः॥ गृहीत्वातद्धनुर्दिव्यंयद्दत्तंविष्णुनापुरा॥३१॥रत्नेंद्रसारनिर्माणंयानमारुह्यकार्तिकः॥शस्त्रास्त्रंचगृ हीत्वाचचकाररणमुल्बणम् ॥३२॥ सर्पांश्चपर्वतांश्चैववृक्षांश्चप्रस्तरांस्तथा ॥ सर्वांश्चिच्छेदकोपेनदिव्यास्त्रेणशिवात्मजः ॥३३॥ वह्निंनिर्वापयामासपार्ज न्येनप्रतापवान् ॥ रथंधनुश्चचिच्छेदशंखचूडस्यलीलया ॥३४॥ सन्नाहंसारथिंचैवकिरीटंमुकुटोज्ज्वलम् ॥ चिक्षेपशक्तिंशुक्लाभांदानवेंद्रस्यवक्षसि ॥३५॥ मूर्छांसंप्राप्यराजाचचेतनश्चबभूवह ॥ आरुरोहयानमन्यद्धनुर्जग्राहसत्वरः ॥ ३६ ॥ चकारशरजालंचमाययामायिनांवरः ॥ गुहंचच्छादसमरेशरजाले ननारद ॥ ३७ ॥ जग्राहशक्तिमव्यर्थांशतसूर्यसमप्रभाम् ॥ प्रलयाग्निशिखारूपांविष्णोश्चतेजसावृताम् ॥ ३८ ॥ चिक्षेपतांचकोपेनमहावेगेनकार्तिके ॥ पपातशक्तिस्तद्गात्रेवह्निराशिरिवोज्ज्वला ॥ ३९ ॥ मूर्छांसंप्रापशक्त्याचकार्तिकेयोमहाबलः ॥ कालीगृहीत्वातंक्रोडेनिनायाशिवसन्निधौ ॥ ४० ॥

शक्तिका प्रहार किया ॥ ३५ ॥ जिससे राजा मूर्च्छित हो कुछ कालमें फिर चेतनाको प्राप्त हुए और दूसरे विमानपर चढकर शीघ्रही दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ तब उस मायावीने मायासे शरजाल बनालिया. हे नारद ! युद्धमें उस शरजालसे स्कन्दको आच्छादित करदिया ॥ ३७ ॥ और व्यर्थ न होनेवाली सौ सूर्यके समान शक्तिग्रहणकी, जो प्रलयाग्निके शिखाकी समान विष्णुके तेजसे युक्त थी ॥ ३८ ॥ बडे वेग और कोपसे वह कार्तिकेयपर छोडी उनके शरीरपर वह शक्ति अग्नि समूहके समान गिरी ॥ ३९ ॥ महाबली स्कन्द उस शक्तिके लगनेसे मूर्छित हुए. तब काली उन्हें गोदीमें ले शिवके समीप चलीआई ॥ ४० ॥

तव शिवजीने लीलासेही अपने ज्ञानद्वारा उनको जीवित किया और अनन्तबल दिया जिससे वह प्रतापी शीघ्र उठ खडेहुए ॥ ४१ ॥ तब काली स्कंदकी रक्षा करनेको समरमें चली और नंदीश्वरादि वीर उनके पीछे चले ॥ ४२ ॥ सब देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर चले. सैकडों बाजे और सैकडों मधुवाहक चले ॥ ४३ ॥ तब कालीने संग्राममें जाकर सिंहनाद किया, देवीके सिंहनादसेही दानव मूर्च्छित होगये ॥ ४४ ॥ भगवतीने वारंवार भयंकर सिंहनाद किया और मधुपान कर संग्राममें नृत्य करनेलगी ॥ ४५ ॥ उग्रदंष्ट्रा उग्रदंडा कोटकीने मधुपान किया, योगिनी डाकिनीके गण सुरोंके समूह गर्जे ॥ ४६ ॥ कालीको देख शंखचूड शीघ्रही संग्राममें आया, दानव जो भयभीत हुएथे राजाने उनको अभय दिया ॥ ४७ ॥ कालीने प्रलयाग्निशिखाके समान अग्नि फेंकी, राजाने पर्जन्यअस्त्रसे लीलापूर्वक उसको बुझा दिया ॥ ४८ ॥

शिवस्तंचाऽपिज्ञानेनजीवयामासलीलया ॥ ददौबलमनंतंचसमुत्तस्थौप्रतापवान् ॥ ४१ ॥ कालीजगामसमरंरक्षितुंकार्तिकस्यया ॥ वीरास्तामनुजग्मुश्चतेचनंदीश्वरादयः ॥ ४२ ॥ सर्वेदेवाश्चगंधर्वायक्षराक्षसकिन्नराः ॥ वाद्यभांडश्चबहुशःशतशोमधुवाहकाः ॥ ४३ ॥ साचगत्वाऽथसंग्रामंसिंहनादंचकारच ॥ देव्याश्चसिंहनादेनप्रापुर्मूर्छांचदानवाः ॥ ४४ ॥ अट्टाट्टहासमशिवंचकारचपुनःपुनः ॥ दृष्ट्वापपौचमाध्वीकंननर्तरणमूर्धनि ॥ ४५ ॥ उग्रदंष्ट्राचोग्रदंडाकोटकीचपपौमधु ॥ योगिनीडाकिनीनांचगणाःसुरगणादयः ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वाकालींशंखचूडःशीघ्रमाजौसमाययौ ॥ दानवाश्चभयंप्रापूराजातेभ्योऽभयंददौ ॥ ४७ ॥ कालीचिक्षेपवह्निंचप्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ राजानिर्वापयामासपार्जन्येनचलीलया ॥ ४८ ॥ चिक्षेपवारुणंसाचतीव्रंचमहदद्भुतम् ॥ गांधर्वेणचचिच्छेददानवेंद्रश्चलीलया॥४९॥माहेश्वरंप्रचिक्षेपकालीवह्निशिखोपमम् ॥ राजाजवानतंशीघ्रंवैष्णवेनचलीलया ॥ ५० ॥ नारायणास्त्रंसादेवीचिक्षेपमंत्रपूर्वकम् ॥ राजाननामतद्दृष्ट्वाचावरुह्यरथादसौ ॥५१॥ ऊर्ध्वंजगामतच्चास्त्रंप्रलयाग्निशिखोपमम्॥पपातशंखचूडश्चभक्त्यातंदंडवद्भुवि ॥ ५२ ॥ ब्रह्मास्त्रंसाचचिक्षेपयत्नतोमंत्रपूर्वकम् ॥ ब्रह्मास्त्रेणमहाराजोनिर्वापंचचकारसः ॥५३॥ तदाचिक्षेपदिव्यास्त्रंसादेवीमंत्रपूर्वकम् ॥ राजादिव्यास्त्रजालेनतन्निर्वाणंचकारच ॥ ५४ ॥ देवीचिक्षेपशक्तिंचयत्नतोयोजनायताम्॥ राजादिव्यास्त्रजालेनशतखंडांचकारह ॥ ५५ ॥

तब भगवतीने तीव्र वारुणास्त्र छोड़ा, तब दानवेन्द्रने लीलापूर्वक गन्धर्व अस्त्रसे उसको छेदन करदिया ॥ ४९ ॥ तब कालीने वह्निशिखाके समान माहेश्वर अस्त्र त्यागन किया, राजाने लीलापूर्वक वैष्णव अस्त्रसे उसको शान्त किया ॥ ५० ॥ तब देवीने मंत्रपूर्वक नारायण अस्त्र छोड़ा राजाने इसे देखतेही रथसे उतर प्रणाम किया ॥ ५१ ॥ इससे प्रलयाग्निके समान वह अस्त्र ऊपरको चलागया और शंखचूड भक्तिपूर्वक पृथ्वीमें दंडवत् करताहुआ ॥ ५२ ॥ तब, भगवतीने यत्नसे मंत्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र छोड़ा राजाने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसको शान्त किया ॥ ५३ ॥ तब देवीने मंत्रपूर्वक दिव्यास्त्र छोड़ा राजाने अपने दिव्यास्त्रजालसे उसको शान्त किया ॥ ५४ ॥ देवीने एकयोजन प्रमाणकी

शक्ति छोडी राजाने अपने दिव्यास्त्रोंसे उसको खंड खंडकर दिया ॥ ५५ ॥ तब देवीने क्रोधसे मंत्रपूत पाशुपतास्त्र ग्रहण किया तब उसके छोडनेका निषेध करती हुई अशरीरिणी वाणी हुई ॥ ५६ ॥ इस महात्मा राजाकी मृत्यु पाशुपतास्त्रसे नहीं है, जबतक इसके पास हरिका मंत्र और कवच है ॥ ५७॥ जबतक इस राजाकी भार्यामें सतीत्व है तबतक इस राजाकी जरा मृत्यु न होगी. यह ब्रह्माजीका वर है ॥ ५८ ॥ यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं छोडा और क्षुधा होनेसे लीलापूर्वक सौलक्ष दानवोंको ग्रहण करलिया ॥ ५९ ॥ और बडे वेगसे भय देती हुई शंखचूडके ग्रास करनेको दौडी तब दानवने तीक्ष्ण दिव्यास्त्रसे भगवतीको निवारण किया॥ ६०॥ तब देवीने ग्रीष्मके सूर्यकी समान प्रकाशित खड्गका प्रहार किया,दानवेन्द्रने अपने दिव्यास्त्रसे उस खड्गके सौखण्ड करदिये ॥ ६१॥ फिर महादेवी बडेवेगसे उसे

जग्राहमंत्रपूतंचदेवीपाशुपतंरुषा॥ निक्षेपणंनिरोद्धुंचवाग्बभूवाऽशरीरिणी ॥५६॥ मृत्युःपाशुपतेनास्तिनृपस्यचमहात्मनः॥ यावदस्तिचमंत्रस्यकवचं चहरेरिति ॥५७॥ यावत्सतीत्वमस्त्येवसत्याश्चनृपयोषितः॥ तावदस्यजरामृत्युर्नास्तीतिब्रह्मणोवचः॥५८॥इत्याकर्ण्यभद्रकालीनतच्चिक्षेपशस्त्रकम् ॥ शतलक्षंदानवानांजग्रासलीलयाक्षुधा ॥५९॥ ग्रस्तुंजगामवेगेनशंखचूडंभयंकरी ॥ दिव्यास्त्रेणसुतीक्ष्णेनवारयामासदानवः॥ ६० ॥ खड्गंचिक्षेपसादेवी ग्रीष्मसूर्योपमंयथा ॥ दिव्यास्त्रेणदानवेंद्रःशतखंडंचकारसः ॥६१॥ पुनर्ग्रस्तुंमहादेवीवेगेनचजगामतम् ॥ सर्वसिद्धेश्वरःश्रीमान्ववृधेदानवेश्वरः ॥६२॥ वेगेनमुष्टिनाकालीकोपयुक्ताभयंकरी ॥ बभंजचरथंतस्यजघानसारथिंसती ॥ ६३ ॥ साचशूलंचचिक्षेपप्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ वामहस्तेनजग्राहशंखचूडःस्वलीलया ॥ ६४ ॥ मुष्ट्याजघानतंदेवीमहाकोपेनवेगतः॥ बभ्रामचतयादैत्यःक्षणंमूर्छामवापच ॥६५॥ क्षणेनचेतनांप्राप्यसमुत्तस्थौप्रतापवान्॥ नचकारबाहुयुद्धंदेव्यासहननामताम्॥६६॥देव्याश्चास्त्रंसचिच्छेदजग्राहचस्वतेजसा॥ नास्त्रंचिक्षेपतांभक्तोमातृभक्त्यातुवैष्णवः॥६७॥ गृहीत्वादानवंदेवी भ्रामयित्वापुनःपुनः॥ ऊर्ध्वंचप्रापयामासमहावेगेनकोपिता॥६८॥ऊर्ध्वात्पपातवेगेनशंखचूडःप्रतापवान्॥ निपत्यचसमुत्तस्थौप्रणम्यभद्रकालिकाम्॥६९॥

खानेको दौडी तब वह श्रीमान् सब सिद्धोंका ईश्वर दानव अपनाशरीर बढाने लगा ॥६२॥ तब भयंकरीकालीदेवीने बडेवेगसे एकघूंसेसे उसकारथ तोड सारथिकोनष्टकिया ॥ ६३ ॥ प्रलयाग्निके समान उसके ऊपर शूलचलाया, शंखचूडने लीलापूर्वक उसे बायें हाथसे पकडलिया ॥ ६४ ॥ तब देवीने बडे कोप और बड़े वेगसे उसके घूंसा मारा जिससे घूमकर दैत्य क्षणमात्रके मूर्छित होगया ॥६५॥ फिर वह प्रतापी क्षणमात्रमें चैतन्यहो उठा और देवीके साथ बाहुयुद्ध न करके प्रणाम किया ॥ ६६ ॥ देवीके अस्त्रोंको छेदन किया और अपने तेजसे ग्रहण किये परन्तु भक्तिके कारण देवीपर अस्त्र नहीं चलाये. कारण कि, वह वैष्णव मातृभक्त था ॥६७॥ तब देवीने दानवको ग्रहणकर वारंवार घुमाकर महावेगसे कोपकर ऊपरको उछालदिया ॥६८॥ तब प्रतापीशंखचूड बडे वेगसे ऊपरसे कूदा और भद्रकालीको प्रणामकर स्थित हुआ॥६९॥

रत्नोंमें श्रेष्ठ रत्नोंके बने मनोहर विमानमें प्रसन्नतासे चढा और युद्धमें कुछभी थकित न हुआ ॥ ७० ॥ तब देवीने क्षुधासे दानवोंका रुधिरपान किया तब उसको पान भोजन कर भद्रकाली शंकरके समीप गई ॥ ७१ ॥ और यथाक्रम पूर्वापर युद्धका वृत्तान्त कहा दानवोंका विनाश सुन शिवजी हँसे॥ ७२ ॥ काली बोली अब युद्धमें लाखही दानव अवशिष्ट हैं जो मेरे मुखसे भोजन करते निकल गये हैं. हे शिव ! और सब खालिये ॥ ७३ ॥ जब संग्राममें पाशुपतास्त्रसे दानवेन्द्रको मारने लगी तब यह अशरीरिणी वाणी हुई कि, राजा तुमसे अवध्य है ॥ ७४ ॥ यह राजेन्द्र महाज्ञानी महाबली पराक्रमी है इससे मेरे ऊपर अपने अस्त्र नहीं चलाये किन्तु मेरे अस्त्र छेदन किये ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ छ ॥ ॥

रत्नेंद्रसारनिर्माणंविमानंसुमनोहरम् ॥ आरुरोहहर्षयुक्तोनविश्रांतोमहारणे ॥ ७० ॥ दानवानांचक्षतजंसादेवीचपपौक्षुधा ॥ पीत्वाभुक्त्वाभद्रकाली जगामशंकरांतिकम् ॥ ७१ ॥ उवाचरणवृत्तांतंपौर्वापर्यंयथाक्रमम् ॥ श्रुत्वाजहासशंभुश्चदानवानांविनाशनम् ॥ ७२ ॥ लक्षंचदानवेंद्राणा मवशिष्टंरणेऽधुना ॥ भुंजंत्यानिर्गतंवक्त्रात्तदन्यंभुक्तमीश्वर ॥७३॥ संग्रामेदानवेंद्रंचहंतुंपाशुपतेनवै॥अवध्यस्तवराजेतिवाग्बभूवाशरीरिणी ॥७४॥ राजें द्रश्चमहाज्ञानीमहाबलपराक्रमः ॥ नचचिक्षेपमय्यस्त्रंचिच्छेदममसायकम् ॥७५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादेद्वा विंशोऽध्यायः॥२२॥ श्रीनारायणउवाच ॥ शिवस्तत्त्वंसमाकर्ण्यतत्त्वज्ञानविशारदः॥ययौस्वयंचसमरेस्वगणैःसहनारद॥१॥शंखचूडःशिवंदृष्ट्वाविमानाद वरुह्यच ॥ ननामपरयाभक्त्याशिरसादंडवद्भुवि ॥२॥ तंप्रणम्यचवेगेनविमानमारुरोहसः ॥ तूर्णंचकारसन्नाहंधनुर्जग्राहदुर्वहम् ॥३॥ शिवदानवयोर्युद्धंपू र्णमब्दशतंपुरा॥नबभूवतुरन्योन्यंब्रह्मञ्जयपराजयौ॥४॥न्यस्तशस्त्रश्चभगवान्न्यस्तशस्त्रश्चदानवः ॥ रथस्थःशंखचूडश्चवृषस्थोवृषभध्वजः ॥५॥ दानवा नांचशतकमुद्धृतंचबभूवह ॥ रणेयेयेमृताःशंभुर्जीवयामासतान्विभुः॥६॥ एतस्मिन्नंतरेवृद्धब्राह्मणःपरमातुरः ॥ आगत्यचरणस्थानमुवाचदानवेश्वरम्॥७॥

श्रीनारायणजी बोले तत्त्वज्ञानविशारद शिवजी इस तत्त्वको श्रवण कर हे नारद ! अपने गणोंके सहित युद्धमें गये ॥ १ ॥ शंखचूड शिवजीको देख विमानसे उतर परम भक्तिसे भूमिमें दंडवत् करता हुआ ॥ २ ॥ और उनको प्रणाम कर बडे वेगसे विमानपर चढा और दुर्वह उद्योग कर धनुष धारण किया ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकारसे सौवर्ष पर्यन्त शिव और दानवका युद्ध होता रहा परन्तु किसीकी जय पराजय न हुई ॥ ४ ॥ तो शिव और दानव दोनोंहीने शस्त्र रखदिये रथमें स्थित शंखचूड और वृषमें स्थित शंकर थे ॥ ५ ॥ उस समय दानवोंके शतक अनेक युद्धमें मथित होगये थे युद्धमें जो देवताओंके पक्षवाले मरे थे शिवजीने उनको जीवित करदिया ॥ ६ ॥ इसी समय कोई

वृद्ध ब्राह्मण परम आतुर रणस्थानमें आकर दानवेश्वरसे बोला ॥ ७ ॥ वृद्ध ब्राह्मणने कहा हे राजेन्द्र! इस समय मुझ ब्राह्मणको भिक्षा दो तुम मेरी मनवांछित सब सम्पत्तियोंके दाता हो ॥ ८ ॥ निरीह वृद्ध प्यासेके निमित्त दक्षिणा दो, परन्तु जब पहले शपथ कर लोगे तब पीछे तुमसे कहूंगा ॥ ९ ॥ राजाने प्रसन्न हो शपथपूर्वक स्वीकार किया तब उस मायीपुरुषने कहा मैं तुम्हारे कवच लेनेकी इच्छा करता हूं ॥ १० ॥ यह सुन उसने कवच उतारदिया और वह हरिकवच ग्रहणकर शंखचूडका रूप धारणकर तुलसीके समीप गये ॥ ११ ॥ और जाकर उसमें मायापूर्वक वीर्य आधान किया और उसी समय शिवजीने हरिका शूल दानवके प्रति ग्रहण किया॥ जो ग्रीष्मके मध्याह्न सूर्यके समान प्रलयाग्निके शिखाकी समान था दुर्निवार दुर्धर्ष और शत्रुनाशमें अव्यर्थ था ॥ १२ ॥ १३ ॥ तेजमें चक्रकी समान सब

वृद्धब्राह्मणउवाच ॥ देहिभिक्षांचराजेंद्रमह्यंविप्रायसांप्रतम् ॥ त्वंसर्वसंपदांदातायन्मेमनसिवांछितम् ॥ ८ ॥ निरीहायचवृद्धायतृषितायचसांप्रतम् ॥ पश्चात्त्वांकथयिष्यामिपुरःसत्यंचकुर्विति ॥ ९ ॥ ओमित्युवाचराजेंद्रःप्रसन्नवदनेक्षणः ॥ कवचार्थीजनश्चाऽहमित्युवाचातिमायया ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वाकवचंदिव्यंजग्राहहरिरेवच ॥ शंखचूडस्यरूपेणजगामतुलसींप्रति ॥ ११ ॥ गत्वातस्यांमाययाचवीर्याधानंचकारच ॥ अथशंभुर्हरेःशूलंजग्राह दानवंप्रति ॥ १२ ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडप्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ दुर्निवार्यंचदुर्धर्षमव्यर्थंवैरिघातकम् ॥ १३ ॥ तेजसाचक्रतुल्यंचसर्वशस्त्रास्त्रसारकम् ॥ शिवकेशवयोरन्यदुर्वहंचभयंकरम् ॥ १४ ॥ धनुःसहस्रंदैर्घ्येणप्रस्थेनशतहस्तकम् ॥ सजीवंब्रह्मरूपंचनित्यरूपमनिर्दिशम् ॥ १५ ॥ संहर्तुंसर्वब्रह्मांडमलंयत्स्वीयलीलया ॥ चिक्षेपतोलनंकृत्वाशंखचूडेचनारद ॥ १६ ॥ राजाचापंपरित्यज्यश्रीकृष्णचरणांबुजम् ॥ ध्यानेचकारभक्त्याचकृत्वा योगासनंधिया ॥ १७ ॥ शूलंचभ्रमणंकृत्वापपातदानवोपरि ॥ चकारभस्मसात्तंचसरथंचाऽथलीलया ॥ १८ ॥ राजाधृत्वादिव्यरूपंकिशोरंगोपवेषकम् ॥ द्विभुजंमुरलीहस्तंरत्नभूषणभूषितम् ॥ १९ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणंवेष्टितंगोपकोटिभिः ॥ गोलोकादागतंयानमारुरोहपुरंययौ ॥ २० ॥

शस्त्र अस्त्रका सार शिवके सिवाय दूसरोंको दुर्वह और भयंकर ॥ १४ ॥ दीर्घतामें सहस्रधनुष चौडाईमें सौहाथ, सजीव ब्रह्मरूप और नित्यरूप अनिर्देश्य ॥ १५॥ जो अपनी लीलासे सब ब्रह्माण्डके संहार करनेको समर्थ है. हेनारद ! उसको उत्तोलन कर शिवजीने शंखचूड़पर छोड़ा ॥ १६ ॥ तब राजा चापको छोड श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंको योगासनसे ध्यान करनेलगे ॥ १७ ॥ इधर वह शूल भ्रमणकर दानवके ऊपर गिरा और लीलासहितही रथसहित उसको भस्म करदिया॥ १८ ॥ इधर राजाभी किशोर गोपवेष धारण कर दो भुजा मुरली हाथमें लिये रत्नभूषणोंसे भूषित ॥ १९ ॥ रत्नेंद्रसारसे बने गहने पहरे कोटिहौ गोपोंसे वेष्टित गोलोकसे आये

उस विमानपर आरोहण कर अपने पुरको गया ॥ २० ॥ हे मुने ! जाकर शिरसे राधा–कृष्ण को प्रणाम किया और वृन्दावनके रासमें भक्तिसे चरणारविंदोंमें प्रणाम किया ॥ २१ ॥ यह दोनों सुदामाको देख प्रसन्नवदन हुए और प्रेमसे उनको अपनी गोदीमें लेते हुये ॥ २२ ॥ और बडे वेगसे वह शूल श्रीकृष्णके समीप चला गया और शंखचूडकी अस्थियोंसे शंखजाति हुई ॥ २३ ॥ जो अनेक प्रकारके रूपसे पवित्र हुए देवार्चनमें युक्त रहते हैं और शंखका जल देवताओंको प्रीति दायक है ॥ २४ ॥ यह तीर्थके जलस्वरूप है, पर शिवजीके ऊपर शंखका जल नहीं दिया जाता जहां शंखका शब्द होता है वहां लक्ष्मी स्थिर रहती है ॥ २५॥ जो शंखजलसे स्नान करता है वह मानो सब तीर्थोंमें न्हा चुका. शंख हरिका अधिष्ठान है जहां शंख हैं वहीं हरि स्थित है ॥ ३६ ॥ वहीं लक्ष्मी स्थित रहती और

गत्वाननामशिरसासराधाकृष्णयोर्मुने ॥ भक्त्याचचरणांभोजंरासेवृंदावनेवने ॥२१॥ सुदामानंचतौदृष्ट्वाप्रसन्नवदनेक्षणौ॥ क्रोडेचक्रतुरत्यंतंप्रेम्णाऽतिपरिसंयुतौ॥२२॥अथशूलंचवेगेनप्रययौतंचसादरम्॥अस्थिभिःशंखचूडस्यशंखजातिर्बभूवह॥२३॥नानाप्रकाररूपेणशश्वत्पूतासुरार्चने ॥प्रशस्तंशंखतोयंचदेवानांप्रीतिदंपरम् ॥२४॥ तीर्थतोयस्वरूपंचपवित्रंशंभुनाविना ॥ शंखशब्दोभवेद्यत्रतत्रलक्ष्मीःसुसंस्थिरा ॥२५॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुयःस्नातःशंखवारिणा ॥ शंखोहरेरधिष्ठानंयत्रशंखस्ततोहरिः ॥ २६ ॥ तत्रैववसतेलक्ष्मीर्दूरीभूतममंगलम् ॥ स्त्रीणांचशंखध्वनिभिःशूद्राणांचविशेषतः ॥ २७ ॥ भीतारुष्टायातिलक्ष्मीस्तत्स्थलादन्यदेशतः ॥ शिवोऽपिदानवंहत्वाशिवलोकंजगामह॥२८॥ प्रहृष्टोवृषभारूढःस्वगणैश्चसमावृतः॥सुराःस्वविषयंप्रापुःपरमानंदसंयुताः ॥२९॥ नेदुर्दुंदुभयःस्वर्गेजगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥ बभूवपुष्पवृष्टिश्चशिवस्योपरिसंततम् ॥३०॥ प्रशशंसुःसुरास्तंचमुनींद्रप्रवरादयः॥३१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ ॥ नारदउवाच ॥ नारायणश्चभगवान्वीर्याधानंचकारह ॥ तुलस्यांकेनरूपेण तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ नारायणश्चभगवान्देवानांसाधनेषुच ॥ शंखचूडस्यकवचंगृहीत्वाविष्णुमायया ॥ २ ॥

सब अमंगल दूर होते हैं पर स्त्री और शूद्र शंखध्वनि न करैं स्त्री और शूद्रोंकी शंखध्वनिसे ॥ २७ ॥ भीत और रुष्ट हो लक्ष्मी उस स्थानसे अन्यत्र चली जाती है, शिवजी भी दानवको मारकर निज लोकको चले गये ॥ २८ ॥ प्रसन्न हो वृषपर चढे अपने गणों सहित चले गये और देवताभी परमानंदको प्राप्त हो अपने स्थानको गये ॥ २९ ॥ स्वर्गमें दुंदुभी बजी गंधर्व किन्नर गाने लगे और शिवके ऊपर पुष्पवर्षा हुई ॥ ३० ॥ और बडे २ मुनीन्द्रादि शिवजीकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ छ॥ नारदजी बोले भगवान् नारायणने तुलसीमें किसरूपसे वीर्याधान किया था वह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले नारायण भगवान् देवताओंके कार्यसाधनको शंखचूडका कवच मायासे ग्रहण कर ॥ २ ॥

शंखचूडका रूप विधान कर शंखचूडके नाशकी इच्छासे उसका पातिव्रत्य भंग करने लगे॥ ३ ॥ तुलसीके द्वार दुंदुभीका शब्द कराया और जय शब्द कराकर उस सुन्दरी को उद्बोधन कराया ॥ ४ ॥ वह सुनकर वह साध्वी परमानन्दको प्राप्त हुई और झरोखेमें परम आदरसे राजमार्गको देखने लगी ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंको धन देकर मंगल पाठ कराया. बन्दी, भिक्षुक वाचियोंको बडा धन दिया॥ ६ ॥ इधर रथपर स्थित हो देव देवीके मंदिरमें गये जो अमूल्य रत्नोंका बना बडा सुन्दर और मनोहर था॥ ७ ॥ वह मनोहर अपने स्वामीको आगे देखतेही प्रसन्न हो उनका चरण धोय प्रणाम कर प्रेमाश्रु वर्षाने लगी ॥ ८ ॥ उस कामवतीने उन्हें रत्नोंके मनोहर सिंहासनपर बैठाया और कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल इनको दिया ॥ ९ ॥ और बोली इस समय मेरा जीवन और जन्म सफल है जो युद्धमें गये प्राणेशको फिर आया देखती

पुनर्विधायतद्रूपंजगामतत्सतीगृहम् ॥ पातिव्रत्यस्यनाशेनशंखचूडजिघांसया ॥ ३ ॥ दुंदुभिंवादयामासतुलसीद्वारसन्निधौ ॥ जयशब्दंचतद्वारेबोधयामाससुंदरीम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वाचरवंसाध्वीपरमानंदसंयुता ॥ राजमार्गंगवाक्षेणददर्शपरमादरात् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणेभ्योधनंदत्त्वाकारयामासमंगलम् ॥ वंदिभ्योभिक्षुकेभ्यश्चवाचिभ्यश्चधनंददौ ॥ ६ ॥ अवरुह्यरथाद्देवोदेव्याश्चभवनंययौ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणंसुंदरंसुमनोहरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाचपुरतःकांतंसातंकांतंमुदान्विता ॥ तत्पादंक्षालयामासननामचरुरोदच ॥ ८ ॥ रत्नसिंहासनेरम्येवासयामासकामुकी ॥ तांबूलंचददौतस्मैकर्पूरादिसुवासितम् ॥ ॥ ९ ॥ अद्यमेसफलंजन्मजीवनंचबभूवह ॥ रणेगतंचप्राणेशंपश्यंत्याश्चपुनर्गृहे ॥ १० ॥ सस्मितासकटाक्षंचसकामापुलकांकिता ॥ प्रपच्छरणवृत्तांतंकांतंमधुरयागिरा॥ ११ ॥ तुलस्युवाच ॥ असंख्यविश्वसंहर्त्रासार्धमाजौतवप्रभो ॥ कथंबभूवविजयस्तन्मेब्रूहिकृपानिधे ॥ १२ ॥ तुलसीवचनंश्रुत्वाप्रहस्यकमलापतिः ॥ शंखचूडस्यरूपेणतामुवाचाऽमृतंवचः ॥ १३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आवयोःसमरःकांतेपूर्णमब्दंबभूवह ॥ नाशोबभूवसर्वेषांदानवानांचकामिनि ॥ १४ ॥ प्रीतिंचकारयामासब्रह्माचस्वयमावयोः ॥ देवानामधिकारश्चप्रदत्तोब्रह्मणोऽज्ञया ॥ १५ ॥ मयागतंस्वभवनंशिवलोकंशिवोगतः ॥ इत्युक्त्वाजगतांनाथःशयनंचचकारह ॥ १६ ॥ रेमेरमापतिस्तत्ररामयासहनारद॥ सासाध्वीसुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥ १७ ॥

हूं ॥ १० ॥ तब वह कटाक्षसे देखती कामकी व्याप्तिसे पुलकित हुई और मधुर वाणीसे पतिसे रणवृत्तान्त पूँछने लगी ॥ ११ ॥ तुलसी बोली हे प्रभो ! तुम्हारा संग्राम असंख्य विश्वके संहार करनेवालेके संग हुआ. हे कृपानिधे ! विजय किस प्रकार हुई सो कहो ॥ १२ ॥ कमलापति तुलसीके वचन सुन हँसकर शंखचूडके रूपसे अमृतमय वचन कहने लगे ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले हे कान्ते ! हम दोनोंका संग्राम पूरे सौ वर्ष हुआ. हे कामिनि ! उसमें सम्पूर्ण दानवोंका नाश होगया॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजीने आकर हम दोनोंकी प्रीति करादी और ब्रह्माजीकी आज्ञासे मैं ने देवताओंका अधिकार देदिया ॥ १५ ॥ मैं अपने घर और शिवजी अपने लोकको गये, यह कह जगत्पतिने शयन किया ॥ १६ ॥ हे नारद ! तब उस रामाके सहित रमापति रमण करनेलगे उस साध्वीने अलौकिक सुखसंभोग तथा आकर्षके व्यतिक्रमसे

"स्त्रीका बल आकर्षण कर स्वयं च्युत न होना" ॥ १७ ॥ वितर्क कर जाना कि, यह मेरे पति नहीं है. तब यों बोली तुम कौन हो? तुलसी बोली हे मायेश! तुम कौन हो जो मायासे तुमने मुझे भोगा ॥ १८ ॥ मेरा सतीत्व दूर किया इस कारण मैं तुमको शाप देती हूं तुलसीके वचन सुनकर हरि शापके भयसे ॥ १९ ॥ अपनी मनोहर मूर्ति लीलासेही धारण करते हुए. तब उस देवीने अपने आगे सनातन देव देवका दर्शन किया ॥ २० ॥ जो नवीन मेघके समान श्याम शरत्कमलके समान नेत्र कोटि कामकी समान आभा रत्नोंके भूषणोंसे भूषित ॥ २१ ॥ कुछ हँसते प्रसन्न मुख पीतवस्त्रसे शोभित थे उनको देखतेही तुलसी तत्काल मूर्छित होगई

सर्वंवितर्कयामासकस्त्वमेवेत्युवाचसा ॥ तुलस्युवाच ॥ कोवात्वंवदमायेशभुक्ताऽहंमाययात्वया ॥ १८ ॥ दूरीकृतंमत्सतीत्वंयदतस्त्वांशपामिहे ॥ तुलसीवचनंश्रुत्वाहरिःशापभयेनच ॥१९॥ दधारलीलयाब्रह्मन्स्वमूर्तिंसुमनोहराम्॥ददर्शपुरतोदेवीदेवदेवंसनातनम्॥२०॥नवीननीरदश्यामंशरत्पंकजलोचनम् ॥ कोटिकंदर्पलीलाभंरत्नभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥ ईषद्धास्यंप्रसन्नास्यंशोभितंपीतवाससम् ॥ तंदृष्ट्वाकामिनीकामंमूर्च्छांसंप्रापलीलया ॥२२॥ पुनश्चचेतनांप्राप्यपुनःसातमुवाचह॥तुलस्युवाच ॥ हेनाथतेदयानास्तिपाषाणसदृशस्यच॥२३॥छलेनधर्मभंगेनममस्वामीत्वयाहतः॥पाषाणहृदयस्त्वंहिदयाहीनोयतःप्रभो॥२४॥तस्मात्पाषाणरूपस्त्वंभवेदेवभवाऽधुना ॥ येवदंतिचसाधुंत्वांतेभ्रांताहिनसंशयः॥२५॥भक्तोविनापराधेनपरार्थेचकथंहतः॥ भृशंरुरोदशोकार्ताविललापमुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ ततश्चकरुणांदृष्ट्वाकरुणारससागरः ॥ नयेनतांबोधयितुमुवाचकमलापतिः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तपस्त्वयाकृतंभद्रेमदर्थेभारतेचिरम् ॥ त्वदर्थेशंखचूडश्चचकारसुचिरंतपः ॥ २८ ॥

॥ २२ ॥ फिर चैतन्य हो हरिसे बोली तुलसीने कहा हे नाथ! तुम पाषाणके समान हो तुमको कुछभी दया नहीं है ॥ २३ ॥ छलसे धर्म नष्ट कर तुमने मेरे स्वामीको मारा तुम दयाहीन होनेसे पाषाण हृदय हो ॥ २४ ॥ इस कारण तुमको पाषाण होना पडेगा जो तुमको साधु कहते हैं वे अवश्य भ्रान्त हैं ॥ २५ ॥ आपने विना अपराध अपना भक्त दूसरोंके निमित्त क्यों मारा इसप्रकार कह वह शोकसे व्याकुल हो वारंवार विलाप करने लगी ॥ २६ ॥ तब करुणासागर उसकी करुणाको देखकर नीतिसे उसे समझाते हुए बोले श्रीभगवान् बोले हे भद्रे! "कृष्ण मेरे पति हों" इस निमित्त तुमने भारतवर्षमें मेरा आराधन किया और शंखचूडने तुम्हारे

पानेको तप किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसने तुमको भार्या पाकर विहार कर अपने तपका फल पाया अब तुमने जिसनिमित्त तपकिया था तुमको वह फल देना उचित है ॥ २९ ॥ अब इस शरीरको त्याग दिव्य देह धारण कर लक्ष्मीकी समान होकर तुम हमारे साथ रमण करो ॥ ३० ॥ यह तुम्हारा शरीर नदीरूप होकर गंडकी नामसे विख्यात होगा और भारतमें स्नान करनेवालोंको पुण्यरूप होगा ॥ ३१ ॥ तुम्हारे केशसमूहोंका एक पवित्र वृक्ष होगा तुलसीके केशसे प्रगट होनेसे लोकमें तुलसीनामसे विख्यात होगी ॥ ३२ ॥ तीन लोकमें देवपूजनमें जितने पत्र, पुष्प हैं हे वरानने! उनमें तुम प्रधानरूपसे तुलसी होगी ॥ ३३ ॥ स्वर्ग, मृत्यु, पाताल गोलोकमें मेरे समीप हे सुन्दरि! सब पुष्पोंमें श्रेष्ठ तुम तुलसीवृक्ष होगी ॥ ३४ ॥ गोलोकमें विरजाके किनारे रासवृंदावनके वनमें, भांडीर चम्पकवन और सुन्दर

कृत्वात्वांकामिनींसोऽपिविजहारचतत्क्षणात् ॥ अधुनादातुमुचितंतवैवतपसःफलम् ॥ २९ ॥ इदंशरीरंत्यक्त्वाचदिव्यदेहंविधायच ॥ रामेरममयासार्धं त्वंरमासदृशीभव ॥ ३० ॥ इयंतनुर्नदीरूपागंडकीतिचविश्रुता ॥ पूतासुपुण्यदानॄणांपुण्येभवतुभारते ॥ ३१ ॥ तवकेशसमूहश्चपुण्यवृक्षोभविष्यति ॥ तुलसीकेशसंभूतातुलसीतिचविश्रुता ॥ ३२ ॥ त्रिषुलोकेषुपुष्पाणांपत्राणांदेवपूजने ॥ प्रधानरूपातुलसीभविष्यतिवरानने ॥ ३३ ॥ स्वर्गेमर्त्ये चपातालेगोलोकेममसन्निधौ ॥ भवत्वंतुलसीवृक्षवरापुष्पेषुसुंदरी ॥ ३४ ॥ गोलोकेविरजातीरेरासेवृंदावनेवने ॥ भांडीरेचंपकवनेरम्येचंदनकानने ॥ ३५ ॥ माधवीकेतकीकुंदमालिकामालतीवने ॥ वासस्तेऽत्रैवभवतुपुण्यस्थानेषुपुण्यदः ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुमूलेषुपुण्यदेशेषुपुण्यदम् ॥ अधिष्ठानंचतीर्थानां सर्वेषांचभविष्यति ॥ ३७ ॥ तत्रैवसर्वदेवानांममाऽधिष्ठानमेवच ॥ तुलसीपत्रपतनप्राप्तयेचवरानने ॥ ३८ ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षितः ॥ तुलसीपत्रतोयेनयोऽभिषेकंसमाचरेत् ॥ ३९ ॥ सुधाघटसहस्राणांयातुष्टिस्तुभवेद्धरेः ॥ साचतुष्टिर्भवेन्नूनंतुलसीपत्रदानतः ॥ ४० ॥ गवामयुतदानेनयत्फलं तत्फलंभवेत् ॥ तुलसीपत्रदानेनतत्फलंकार्तिकेसति ॥ ४१ ॥ तुलसीपत्रतोयंचमृत्युकालेचयोलभेत् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकेमहीयते ॥ ४२ ॥

चन्दनोंके वनमें ॥ ३५ ॥ माधवी, केतकी, कुंद, मालिका, मालतीके वन और पुण्यस्थानोंमें पुण्यदायक तुम्हारा निवास होगा ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुके मूलमें पुण्यदेशोंमें पुण्यदायक सब तीर्थोंका अधिष्ठान तुम्हारा निवास होगा ॥ ३७ ॥ वहीं और भी सब देवताओंका अधिष्ठान होगा. हे वरानने! तुलसी पत्रके मस्तकमें गिरनेके समय ॥ ३८ ॥ प्राणी सब यज्ञोंमें दीक्षित और सब तीर्थोंमें स्नात होजाता है, जो तुलसीपत्रके जलसे अभिषेक करता है ॥ ३९ ॥ जो सहस्र अमृत घटसे भगवान्‌की तुष्टि होती है वह फल तुलसी पत्रके दानसे हो जाती है ॥ ४० ॥ दशसहस्र गोदानका जो फल है वही फल कार्तिकमें तुलसीके दानका है ॥ ४१ ॥ तुलसीपत्रका जल जिसको मृत्युकालमें प्राप्त हो वह सब पापसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है ॥ ४२ ॥

जो मनुष्य नित्य भक्तिसे तुलसीजल प्राप्त करता है उसको लाख अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अपने हाथ वा देहमें तुलसी धारणकर तीर्थमें प्राण त्यागन करता है वह विष्णुलोकको जाता है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य तुलसी काष्ठकी बनी मालाको धारण करताहै उसको पद पदमें अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥ ४५ ॥ जो तुलसीपत्रको हाथमें ले स्वीकार की हुई बातकी रक्षा नहीं करता वह चन्द्र आदित्यकी स्थितितक कालसूत्र नरकमें पडता है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य तुलसी लेकर मिथ्या शपथ करता है वह चौदह इन्द्रके कालपर्यन्त कुंभीपाकमें जाता है ॥ ४७ ॥ जो मृत्युकालमें तुलसी जलकी कणिका भी मिलजाय तो वह रत्नोंके विमानपर बैठकर अवश्य वैकुंठको जाताहै ॥ ४८ ॥ पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, संक्रान्ति तथा मध्याह्न और निशिसंध्यामें तेल मलतेमें ॥ ४९ ॥ आशौच

नित्यंयस्तुलसीतोयंभुंक्तेभक्त्याचमानवः ॥ लक्षाश्वमेधजंपुण्यंसंप्राप्नोतिसमानवः ॥ ४३ ॥ तुलसींस्वकरेकृत्वाधृत्वादेहेचमानवः ॥ प्राणांस्त्यजतितीर्थेषुविष्णुलोकंसगच्छति ॥ ४४ ॥ तुलसीकाष्ठनिर्माणमालांगृह्णातियोनरः ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्यलभतेनिश्चितंफलम् ॥ ४५ ॥ तुलसींस्वकरेकृत्वास्वीकारंयोनरक्षति ॥ सयातिकालसूत्रंचयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ४६ ॥ करोतिमिथ्याशपथंतुलस्यांयोऽत्रमानवः ॥ सयातिकुंभीपाकंचयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४७ ॥ तुलसीतोयकणिकांमृत्युंकालेचयोलभेत् ॥ रत्नयानंसमारुह्यवैकुंठेप्राप्यतेध्रुवम् ॥ ४८ ॥ पूर्णिमायाममायांचद्वादश्यांरविसंक्रमे ॥ तैलाभ्यंगंचकृत्वाचमध्याह्नेनिशिसंध्ययोः ॥ ४९ ॥ आशौचेऽशुचिकालेथेरात्रिवासोन्वितानराः ॥ तुलसींयेविचिन्वंतितेछिंदंतिहरेःशिरः ॥ ५० ॥ त्रिरात्रंतुलसीपत्रंशुद्धंपर्युषितंसति ॥ श्राद्धेव्रतेचदानेचप्रतिष्ठायांसुरार्चने ॥ ५१ ॥ भूगतंतोयपतितंयद्दत्तंविष्णवेसति ॥ शुद्धंचतुलसीपत्रंक्षालनादन्यकर्मणि ॥ ५२ ॥ वृक्षाधिष्ठातृदेवीयागोलोकेचनिरामये ॥ कृष्णेनसार्धंनित्यंचनित्यंक्रीडांकरिष्यसि ॥ ५३ ॥ नद्यधिष्ठातृदेवीयाभारतेचसुपुण्यदा ॥ लवणोदस्यसापत्नीमदंशस्यभविष्यति ॥ ५४ ॥ त्वंचस्वयंमहासाध्वीवैकुंठेममसन्निधौ ॥ रमासमाचरामाचभविष्यसिनसंशयः ॥ ५५ ॥ अहंचशैलरूपेणगंडकीतीरसन्निधौ ॥ अधिष्ठानंकरिष्यामिभारतेतवशापतः ॥ ५६ ॥

अपवित्र समयमें तथा रात्रिमें जो मनुष्य तुलसी तोडते हैं वे मानो हरिका शिर छेदन करते हैं ॥ ५० ॥ तीनरातका भी बांसी तुलसीपत्र शुद्ध है. श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा, देवार्चन ॥ ५१ ॥ इनमें पृथ्वीपर गिरा जलमें पतित, जो विष्णुको दियाहै, वह सब तुलसीपत्रक्षालनसे अन्य कर्ममें शुद्ध है ॥ ५२ ॥ जो यह वृक्षकी अधिष्ठात्री देवी है यह निरामय गोलोकमें कृष्णके साथ नित्य क्रीडा करेगी ॥ ५३ ॥ और नदीकी अधिष्ठात्री देवी होकर भारतमें भी पुण्यदायक है और यह मेरे अंशरूप सागरकी पत्नी होगी ॥ ५४ ॥ हे महासाध्वी ! तुम स्वयं वैकुण्ठमें मेरे समीप लक्ष्मीकी समान होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ५५ ॥ और मैं पाषाण रूपसे गंडकी नदीके किनारे

तुम्हारे शापसे निवास करूंगा ॥ ५६ ॥ कोटि संख्यांक कीट अपनी तीक्ष्ण डाढोंसे इसमें चक्रका चिह्न करेंगे ॥ ५७ ॥ एक द्वार चार चक्र वनमालासे भूषित माला कार रेखा नवीन मेघके आकारवाली लक्ष्मी नारायण नामक होगी ॥ ५८ ॥ जो एक द्वार चारचक्र नवीन मेघकी समान हो वह वनमालासे रहित लक्ष्मी जनार्दन जानने ॥ ५९ ॥ जो दोद्वार चारचक्र और गोष्पादसे विराजित हों यह वनमाला रहित रघुनाथजी है ॥ ६० ॥ जो जिसमें अतिछोटे दोचक्र नवीन मेघकी समान हों वह वन माला रहित वामनजी हैं ॥ ६१ ॥ जो अतिक्षुद्र दोचक्र वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सदा लक्ष्मीदायक श्रीधरका रूप जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ जो स्थूल गोल

कोटिसंख्यास्तत्रकीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रावरायुधैः ॥ तच्छिलाकुहरेचक्रंकरिष्यंतिमदीयकम् ॥ ५७ ॥ एकद्वारंचतुश्चक्रंवनमालाविभूषितम् ॥ नवीननीरदाकारंलक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥ ५८ ॥ एकद्वारंचतुश्चक्रंनवीननीरदोपमम् ॥ लक्ष्मीजनार्दनोज्ञेयोरहितोवनमालया ॥ ५९ ॥ द्वारद्वयेचतुश्चक्रंगोष्पदेनविराजितम् ॥ रघुनाथाभिधंज्ञेयंरहितंवनमालया ॥ ६० ॥ अतिक्षुद्रंद्विचक्रंचनवीनजलदप्रभम् ॥ तद्वामनाभिधंज्ञेयंरहितंवनमालया ॥ ६१ ॥ अतिक्षुद्रंद्विचक्रंचवनमालाविभूषितम् ॥ विज्ञेयंश्रीधरंरूपंश्रीप्रदंगृहिणांसदा ॥ ६२ ॥ स्थूलंचवर्तुलाकारंरहितंवनमालया ॥ द्विचक्रंस्फुटमत्यंतंज्ञेयंदामोदराभिधम् ॥ ६३ ॥ मध्यमंवर्तुलाकारंद्विचक्रंवाणविक्षतम् ॥ रणरामाभिधंज्ञेयंशरतूणसमन्वितम् ॥ ६४ ॥ मध्यमंसप्तचक्रंचछत्रभूषणभूषितम् ॥ राजराजेश्वरंज्ञेयंराजसंपत्प्रदंनृणाम् ॥ ६५ ॥ द्विसप्तचक्रंस्थूलंचनवनीरदसुप्रभम् ॥ अनंताख्यंचविज्ञेयंचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ६६ ॥ चक्राकारंद्विचक्रंचसश्रीकंजलदप्रभम् ॥ सगोष्पदंमध्यमंचविज्ञेयंमधुसूदनम् ॥ ६७ ॥ सुदर्शनंचैकचक्रंगुप्तचक्रंगदाधरम् ॥ द्विचक्रंहयवक्त्राभंहयग्रीवंप्रकीर्तितम् ॥ ६८ ॥

वनमालासे रहित हों और स्फुट दोचक्रहों उनको दामोदर जानो ॥ ६३ ॥ जो मध्यम वर्तुलाकार दोचक्र शरप्रहारके चिह्नसे अंकित हों वे शरतूण सहित रणराम जानने ॥ ६४ ॥ जो मध्यम सातचक्र और छत्र भूषणसे भूषित हो वह मनुष्योंको राज संपत्ति देनेवाले राजराजेश्वर जानने ॥ ६५ ॥ जिनमें, स्थूल चौदह चक्र हों नये मेघकी समान कान्तिमान् उनको चारवर्गके फलदाता अनन्त जानना ॥ ६६ ॥ जो चक्राकार दोचक्र हों वामांकमें लक्ष्मीका चिह्न हो वह जगत्की समान कान्तिमान् गोपदसे अंकित मध्यमें परिमाण मधुसूदन जानने ॥ ६७ ॥ एक सुदर्शन चक्र गुप्तचक्र गदाधर जानने और दोचक्र हयमुखके आकारके हयग्रीव जानने ॥ ६८ ॥

जिनका अतिविस्तृत मुख दोचक्र विकटाकार हो वह मनुष्योंको शीघ्र वैराग्य देनेवाले नृसिंहजी जानने ॥ ६९ ॥ जो दोचक्र विस्तृत मुख वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सुखदेने वाले लक्ष्मीनृसिंह जानने ॥ ७० ॥ जिनके द्वार देशमें दोचक्र लक्ष्मीका वाम और चिह्न सम (वक्रभिन्न) स्फुट हो उनको सब कामना दायक वासुदेव जानो ॥ ७१ ॥ सूक्ष्मचक्र नवीन मेघकी समान प्रभावाले महामुखके अन्तमें सूक्ष्म छिद्र हों तो प्रद्युम्न जानो ॥ ७२ ॥ जो दोचक्र एकत्र मिले हों अर्थात् परस्पर दोनोंका मुख मिलाहो और उनका पृष्ठ भाग विशालरूप हो वह गृहस्थियोंको सदा सुखदायक संकर्षण जानो ॥ ७३ ॥ जो गोल अतिशोभित

अतीवविस्तृतास्यंचद्विचक्रंविकटंसति ॥ नरसिंहंसुविज्ञेयंसद्योवैराग्यदंनृणाम् ॥६९॥ द्विचक्रंविस्तृतास्यंचवनमालासमन्वितम् ॥ लक्ष्मीनृसिंहंविज्ञेयं गृहिणांचसुखप्रदम् ॥ ७० ॥ द्वारदेशेद्विचक्रंचसश्रीकंचसमंस्फुटम् ॥ वासुदेवंतुविज्ञेयंसर्वकामफलप्रदम् ॥ ७१ ॥ प्रद्युम्नंसूक्ष्मचक्रंचनवीननीरदप्रभम् ॥ सुषिरच्छिद्रबहुलंगृहिणांचसुखप्रदम् ॥ ७२ ॥ द्वेचक्रेचैकलग्नेचपृष्ठंयत्रतुपुष्कलम् ॥ संकर्षणंसुविज्ञेयंसुखदंगृहिणांसदा ॥ ७३ ॥ अनिरुद्धंतुपीताभंवर्तुलंचाऽतिशोभनम् ॥ सुखप्रदंगृहस्थानांप्रवदंतिमनीषिणः ॥ ७४॥ शालग्रामशिलायत्रतत्रसन्निहितोहरिः ॥ तत्रैवलक्ष्मीर्वसतिसर्वतीर्थसमन्विता ॥ ७५ ॥ यानिकानिचपापानिब्रह्महत्यादिकानिच ॥ तानिसर्वाणिनश्यंतिशालग्रामशिलार्चनात् ॥ ७६ ॥ छत्राकारेभवेद्राज्यंवर्तुले चमहाश्रियः ॥ दुःखंचशकटाकारेशूलाग्रेमरणंध्रुवम् ॥ ७७ ॥ विकृतास्येचदारिद्र्यंपिंगलेहानिरेवच ॥ भग्नचक्रेभवेद्व्याधिर्विदीर्णेमरणंध्रुवम् ॥ ७८ ॥ व्रतंदानंप्रतिष्ठाचश्राद्धंचदेवपूजनम् ॥ शालग्रामस्यसान्निध्यात्प्रशस्तंतद्भवेदिति ॥ ७९ ॥

पीतवर्ण हो वह अनिरुद्ध जानो मनीषी इनको गृहस्थियोंका सुखदायी कहते हैं ॥ ७४ ॥ जहां शालिग्रामकी शिला है वहां साक्षात् हरि हैं वहां लक्ष्मी सब तीर्थोंके सहित निवास करती है ॥ ७५ ॥ जितने पाप ब्रह्महत्याको आदि लेकर हैं वह सब शालिग्रामशिलाके पूजनसे नष्ट होजाते हैं ॥ ७६ ॥ चक्राकारसे राज्य और गोलाकारसे महालक्ष्मी मिलती है शकटाकारसे दुःख और शूलाकार अग्रभागवाली मूर्तिके पूजनसे मरण होता है ॥ ७७ ॥ विकृतमुखीसे दारिद्र पिंगल वर्णसे हानि भग्नचक्रसे व्याधि और विदीर्णसे अवश्य मरण होता है ॥ ७८ ॥ व्रत दान प्रतिष्ठा श्राद्ध देवपूजन शालिग्राम शिलाके निकट सब प्रशस्त होता है ॥ ७९ ॥

तुम्हारे शापसे निवास करूंगा ॥ ५६ ॥ कोटि संख्यांक कीट अपनी तीक्ष्ण डाढोंसे इसमें चक्रका चिह्न करेंगे ॥ ५७ ॥ एक द्वार चार चक्र वनमालासे भूषित माला कार रेखा नवीन मेघके आकारवाली लक्ष्मी नारायण नामक होगी ॥ ५८ ॥ जो एक द्वार चारचक्र नवीन मेघकी समान हो वह वनमालासे रहित लक्ष्मी जनार्दन जानने॥ ५९ ॥ जो दोद्वार चारचक्र और गोष्पादसे विराजित हों यह वनमाला रहित रघुनाथजी है ॥ ६० ॥ जो जिसमें अतिछोटे दोचक्र नवीन मेघकी समान हों वह वन माला रहित वामनजी हैं॥ ६१ ॥ जो अतिक्षुद्र दोचक्र वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सदा लक्ष्मीदायक श्रीधरका रूप जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ जो स्थूल गोल

कोटिसंख्यास्तत्रकीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रावरायुधैः ॥ तच्छिलाकुहरेचक्रंकरिष्यंतिमदीयकम् ॥ ५७ ॥ एकद्वारंचतुश्चक्रंवनमालाविभूषितम् ॥ नवीननीरदाकारंलक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥ ५८ ॥ एकद्वारंचतुश्चक्रंनवीननीरदोपमम् ॥ लक्ष्मीजनार्दनोज्ञेयोरहितोवनमालया ॥ ५९ ॥ द्वारद्वयेचतुश्चक्रंगोष्पदेनविराजितम् ॥ रघुनाथाभिधंज्ञेयंरहितंवनमालया ॥ ६० ॥ अतिक्षुद्रंद्विचक्रंचनवीनजलदप्रभम् ॥ तद्वामनाभिधंज्ञेयंरहितंवनमालया ॥ ६१ ॥ अतिक्षुद्रंद्विचक्रंचवनमालाविभूषितम् ॥ विज्ञेयंश्रीधरंरूपंश्रीप्रदंगृहिणांसदा ॥ ६२ ॥ स्थूलंचवर्तुलाकारंरहितंवनमालया ॥ द्विचक्रंस्फुटमत्यंतंज्ञेयंदामोदराभिधम् ॥ ६३॥ मध्यमंवर्तुलाकारंद्विचक्रंबाणविक्षतम् ॥ रणरामाभिधंज्ञेयंशरतूणसमन्वितम् ॥६४ ॥ मध्यमंसप्तचक्रंचछत्रभूषणभूषितम् ॥ राजराजेश्वरंज्ञेयंराजसंपत्प्रदंनृणाम् ॥ ६५ ॥ द्विसप्तचक्रंस्थूलंचनवनीरदसुप्रभम् ॥ अनंताख्यंचविज्ञेयंचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ६६ ॥ चक्राकारंद्विचक्रंचसश्रीकंजलदप्रभम् ॥ सगोष्पदंमध्यमंचविज्ञेयंमधुसूदनम् ॥६७॥ सुदर्शनंचैकचक्रंगुप्तचक्रंगदाधरम् ॥ द्विचक्रंहयवक्त्राभंहयग्रीवंप्रकीर्तितम् ॥६८॥

वनमालासे रहित हों और स्फुट दोचक्रहों उनको दामोदर जानो ॥६३॥ जो मध्यम वर्तुलाकार दोचक्र शरप्रहारके चिह्नसे अंकित हों वे शरतूण सहित रणराम जानने ॥ ६४ ॥ जो मध्यम सातचक्र और छत्र भूषणसे भूषित हो वह मनुष्योंको राज संपत्ति देनेवाले राजराजेश्वर जानने ॥ ६५ ॥ जिनमें, स्थूल चौदह चक्र हों नये मेघकी समान कान्तिमान् उनको चारवर्गके फलदाता अनन्त जानना ॥ ६६ ॥ जो चक्राकार दोचक्र हों वामांकमें लक्ष्मीका चिह्न हो वह जगत्की समान कान्तिमान् गोपदसे अंकित मध्यमें परिमाण मधुसूदन जानने ॥ ६७ ॥ एक सुदर्शन चक्र गुप्तचक्र गदाधर जानने और दोचक्र हयमुखके आकारके हयग्रीव जानने॥६८॥

जिनका अतिविस्तृत मुख दोचक विकटाकार हो वह मनुष्योंको शीघ्र वैराग्य देनेवाले नृसिंहजी जानने ॥ ६९ ॥ जो दोचक्र विस्तृत मुख वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सुखदेने वाले लक्ष्मीनृसिंह जानने ॥ ७० ॥ जिनके द्वार देशमें दोचक्र लक्ष्मीका वाम और चिह्न सम (वक्रभिन्न) स्फुट हो उनको सब कामना दायक वासुदेव जानो ॥ ७१ ॥ सूक्ष्मचक्र नवीन मेघकी समान प्रभावाले महामुखके अन्तमें सूक्ष्म छिद्र हों तो प्रद्युम्न जानो ॥ ७२ ॥ जो दोचक्र एकत्र मिले हों अर्थात् परस्पर दोनोंका मुख मिलाहो और उनका पृष्ठ भाग विशालरूप हो वह गृहस्थियोंको सदा सुखदायक संकर्षण जानो ॥ ७३ ॥ जो गोल अतिशोभित

अतीवविस्तृतास्यंचद्विचक्रंविकटंसति ॥ नरसिंहंसुविज्ञेयंसद्योवैराग्यदंनृणाम् ॥६९॥ द्विचक्रंविस्तृतास्यंचवनमालासमन्वितम् ॥ लक्ष्मीनृसिंहंविज्ञेयं गृहिणांचसुखप्रदम् ॥ ७० ॥ द्वारदेशेद्विचक्रंचसश्रीकंचसमंस्फुटम् ॥ वासुदेवंतुविज्ञेयंसर्वकामफलप्रदम् ॥ ७१ ॥ प्रद्युम्नंसूक्ष्मचक्रंचनवीननी रदप्रभम् ॥ सुषिरच्छिद्रबहुलंगृहिणांचसुखप्रदम् ॥ ७२ ॥ द्वेचक्रेचैकलग्नेचपृष्ठंयत्रतुपुष्कलम् ॥ संकर्षणंसुविज्ञेयंसुखदंगृहिणांसदा ॥ ७३ ॥ अनिरुद्धंतुपीताभंवर्तुलंचाऽतिशोभनम् ॥ सुखप्रदंगृहस्थानांप्रवदंतिमनीषिणः ॥ ७४॥ शालग्रामशिलायत्रतत्रसन्निहितोहरिः ॥ तत्रैवलक्ष्मीर्वसतिसर्व तीर्थसमन्विता ॥ ७५ ॥ यानिकानिचपापानिब्रह्महत्यादिकानिच ॥ तानिसर्वाणिनश्यंतिशालग्रामशिलार्चनात् ॥ ७६ ॥ छत्राकारेभवेद्राज्यंवर्तुले चमहाश्रियः ॥ दुःखंचशकटाकारेशूलाग्रेमरणंध्रुवम् ॥ ७७ ॥ विकृतास्येचदारिद्र्यंपिंगलेहानिरेवच ॥ भग्नचक्रेभवेद्व्याधिर्विदीर्णेमरणंध्रुवम् ॥ ७८ ॥ व्रतंदानंप्रतिष्ठाचश्राद्धंचदेवपूजनम् ॥ शालग्रामस्यसान्निध्यात्प्रशस्तंतद्भवेदिति ॥ ७९ ॥

पीतवर्ण हो वह अनिरुद्ध जानो मनीषी इनको गृहस्थियोंका सुखदायी कहते हैं ॥ ७४ ॥ जहां शालिग्रामकी शिला है वहां साक्षात् हरि हैं वहां लक्ष्मी सब तीर्थोंके सहित निवास करती है ॥ ७५ ॥ जितने पाप ब्रह्महत्याको आदि लेकर हैं वह सब शालिग्रामशिलाके पूजनसे नष्ट होजाते हैं ॥ ७६ ॥ चक्राकारसे राज्य और गोलाकारसे महालक्ष्मी मिलती है शकटाकारसे दुःख और शूलाकार अग्रभागवाली मूर्तिके पूजनसे मरण होता है ॥ ७७ ॥ विकृतमुखोंसे दारिद्र पिंगल वर्णसे हानि भग्नचक्रसे व्याधि और विदीर्णसे अवश्य मरण होता है ॥ ७८ ॥ व्रत दान प्रतिष्ठा श्राद्ध देवपूजन शालिग्राम शिलाके निकट सब प्रशस्त होता है ॥ ७९ ॥

वह सब तीर्थोंमें स्नान और सब यज्ञोंमें दीक्षित हो चुका तथा सब यज्ञतीर्थ व्रत तप करचुका ॥८०॥ चारों वेदोंका पाठ तपस्या करनेका फल पाचुका जो शालिग्राम शिलाका पूजन करता है॥८१॥ "जो शालिग्रामकी शिलाको जलसे सदा अभिषेक करता है उसको सब दानका पुण्य और भूमिकी प्रदक्षिणाकाफल प्राप्त होता है जो मनुष्य नित्य शालिग्राम शिलाके जलको पान करते हैं वह निःसन्देह देवताओंके इच्छित प्रसादको पाते हैं ॥८२॥ उसके स्पर्शको सम्पूर्ण तीर्थ वांछा करते हैं" वह जीवन्मुक्त और महा पवित्र हो अन्तमें हरिके पदको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ वहां हरिके साथ असंख्य प्राकृतप्रलयपर्यन्त निवास करता है जो उनकी सेवामें नियुक्त होताहै ॥ ८४ ॥ जितने ब्रह्महत्याकी समान पातक हैं वोह उसे देखकर गरुडसे सर्पकी समान भागते हैं ॥८५॥ हे देवि ! उसके चरणोंकी रजसे शीघ्रही वसु

सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षितः ॥ सर्वयज्ञेषुतीर्थेषुव्रतेषुचतपःसुच ॥ ८० ॥ पाठेचतुर्णांवेदानांतपसांकरणेसति ॥ तत्पुण्यंलभतेनूनंशालग्रामशिलार्चनात् ॥ ८१ ॥ "शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकंसदाचरेत् ॥ सर्वदानेषुयत्पुण्यंप्रदक्षिणंभुवोयथा ॥ " शालग्रामशिलातोयंनित्यंभुंक्तेचयोनरः ॥ सुरेप्सितंप्रसादंचलभतेनात्रसंशयः ॥ ८२ ॥ तस्यस्पर्शंचवांछंतितीर्थानिनिखिलानिच ॥ जीवन्मुक्तोमहापूतोऽप्यंतेयातिहरेःपदम् ॥ ८३ ॥ तत्रैवहरिणासार्धमसंख्यंप्राकृतंलयम् ॥ यास्यत्येवहिदास्येचनियुक्तोदास्यकर्मणि ॥ ८४ ॥ यानिकानिचपापानिब्रह्महत्यासमानिच ॥ तंदृष्ट्वाचपलायंतेवैनतेयादिवोरगाः ॥ ८५ ॥ तत्पादरजसादेवीसद्यःपूतावसुंधरा ॥ पुंसांलक्षंतत्पितॄणांनिस्तरेत्तस्यजन्मतः ॥ ८६ ॥ शालग्रामशिलातोयंमृत्युकालेचयोलभेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति ॥ ८७ ॥ निर्वाणमुक्तिंलभतेकर्मभोगात्प्रमुच्यते ॥ विष्णोःपदेप्रलीनश्चभविष्यतिनसंशयः ॥ ॥ ८८ ॥ शालग्रामशिलांधृत्वामिथ्यावाक्यंवदेत्तुयः ॥ सयातिकुंभीपाकेचयावद्वैब्रह्मणोवयः ॥ ८९ ॥ शालग्रामशिलांधृत्वास्वीकारंयोनपालयेत् ॥ सप्रयात्यसिपत्रंचलक्षमन्वंतरावधि ॥ ९० ॥ तुलसीपत्रविच्छेदंशालग्रामेकरोतियः ॥ तस्यजन्मांतरेकांतेस्त्रीविच्छेदोभविष्यति ॥ ९१ ॥

न्धरा पवित्र होती है उसके जन्मसे लाख पितर उसके कुलके तरजाते हैं ॥ ८६ ॥ जो कोई मृत्युकालमें शालिग्रामशिलाजलको पान करता है वह सब पापरहित हो विष्णुलोकको जाता है ॥ ८७ ॥ वह कर्मभोगसे रहित हो निर्वाण मुक्तिको प्राप्त होता है और निःसन्देह विष्णुके पदमें लीन होता है ॥८८ ॥ शालिग्राम शिलाको धारणकर जो मिथ्या वाक्य बोलता है वह ब्रह्माकी अवस्थापर्यन्त कुंभीपाकमें जाता है ॥ ८९ ॥ शालिग्रामशिलाको धारणकर जो स्वीकारको पालन नहीं करता वह लाख मन्वन्तरतक असिपत्र वनमें जाता है ॥ ९० ॥ जो शालिग्रामसे तुलसी पत्रका वियोग करता है हे कान्ते! जन्मान्तरमें उसका स्त्रीसे वियोग होता है॥ ९१ ॥

अथवा जो शंखसे तुलसीपत्रका वियोग करता है वह सातजन्म भार्याहीन और रोगी रहता है ॥ ९२ ॥ जो महाज्ञानी शालिग्राम तुलसीपत्र और शंखको एकत्र रखताहै रक्षा करताहै वह श्रीहरिका प्रिय होता है ॥ ९३ ॥ एकबारही जो जिसमें वीर्याधान करता है उसके वियोगमें परस्पर उनको दुःख होता है ॥ ९४ ॥ तुम शंखचूडकी प्रिया एक मन्वन्तरतक रहीं तब शंखके सहित तुम्हारा वियोग केवल दुःख दाई ही है ॥ ९५ ॥ हेनारद ! इसप्रकार हरि उससे कह विरामको प्राप्तहुए वहभी यह देहत्याग दिव्यरूप धारणकर ॥ ९६ ॥ लक्ष्मीकी समान हरिके हृदयमें निवास करनेलगी और लक्ष्मीपति उसके सहित वैकुंठको गये ॥ ९७ ॥ हेनारद ! लक्ष्मी सरस्वती, गंगा, तुलसी यह चारों हरिकी प्रिया हुईं ॥ ९८ ॥ तुलसीके देहसे तत्काल गंडकी नदी हुई और ईश्वरभी शिलारूपसे उसके समीप मनुष्योंको पुण्यदेनेको स्थित हैं ॥ ९९ ॥ हेमुने ! वहांके

तुलसीपत्रविच्छेदंशंखेयोहिकरोतिच ॥ भार्याहीनोभवेत्सोऽपिरोगीचसप्तजन्मसु ॥ ९२ ॥ शालग्रामंचतुलसींशंखंचैकत्रएवच ॥ योरक्षतिमहाज्ञानीसभवेच्छ्रीहरेःप्रियः ॥ ९३ ॥ सकृदेवहियोयस्यांवीर्याधानंकरोतिच ॥ तद्विच्छेदेतस्यदुःखंभवेदेवपरस्परम् ॥ ९४ ॥ त्वंप्रियाशंखचूडस्यचैकमन्वंतरावधि ॥ शंखेनसार्धं त्वद्भेदःकेवलंदुःखदस्तथा ॥ ९५ ॥ इत्युक्त्वाश्रीहरिस्तांचविरराम चनारद ॥ साचदेहंपरित्यज्यदिव्यरूपंविधायच ॥ ९६ ॥ यथाश्रीश्चतथासाचाऽप्युवासहरिवक्षसि ॥ सजगामतयासार्धंवैकुंठंकमलापतिः ॥ ९७ ॥ लक्ष्मीःसरस्वतीगंगातुलसीचापिनारद ॥ हरेःप्रियाश्चतस्रश्चबभूवुरीश्वरस्यच ॥ ९८ ॥ सद्यस्तद्देहजाताचबभूवगंडकीनदी ॥ ईश्वरःसोपिशैलश्चतत्तीरेपुण्यदोनृणाम् ॥ ९९ ॥ कुर्वंतितत्रकीटाश्चशिलांबहुविधांमुने ॥ जलेपतंतियायाश्चफलदास्ताश्चनिश्चितम् ॥ ॥ १०० ॥ स्थलस्थाःपिंगलाज्ञेयाश्चोपतापाद्रवेरिति ॥ इत्येवंकथितंसर्वंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ १०१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादेचतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ तुलसीचयदापूज्याकृतानारायणप्रिया ॥ अस्याःपूजाविधानंचस्तोत्रंचवदसांप्रतम् ॥ १ ॥ केनपूजाकृताकेनस्तुताप्रथमतोमुने ॥ तत्रपूज्यासाबभूवकेनवावदमामहो ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वाप्रहस्यमुनिपुंगवः ॥ कथांकथितुमारेभेपुण्यांपापहरांपराम् ॥ ३ ॥

कीट अनेकप्रकारका शिलाओंमें चिह्न करतेहैं उनमें जो जो जलमें पतित होती हैं वह मनुष्योंको फलदायीहैं ॥ १०० ॥ स्थलकी शिला सूर्यके उपतापसे पिंगलवर्ण होजाती हैं यह आपसे सब कहा अब और क्या सुननेकी इच्छाहै ॥ १०१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते माहापुराणे नवमस्कन्धे तुलसीमाहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नारदजी बोले जब नारायणने अपनी प्रियातुलसीको पूजनीय किया तो हे ब्रह्मन् ! इसकी पूजाविधि और स्तोत्रभी कहिये ॥ १ ॥ हे मुने ! पहले किसने इनकी पूजा और स्तुति की और किससे किसप्रकार पूजनीया हुई वह आप कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले नारदजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ हँसकर पुण्यदायक पापहारिणी कथा

कहनेलगे ॥ ३ ॥ नारायण बोले हरिने तुलसीका पूजनकर रमाके साथ क्रीडा की और गौरवमें लक्ष्मीकी समान उसका सौभाग्य किया ॥ ४ ॥ लक्ष्मी और गंगाने तो उसका नवसंगम सहनकरलिया परन्तु सौभाग्य और गौरवके क्रोधसे सरस्वतीने सहन न किया ॥ ५ ॥ उस मानिनीने क्लेश कर हरिके समीपही उसे ताडनकिया तब तुलसी लज्जा और अपमानसे अन्तर्धान होगई ॥ ६ ॥ वह सब सिद्धोंकी ईश्वरी देवी ज्ञानियोंकी सिद्धयोगिनी कोपसे हरिसे अन्तर्हित होगई ॥ ७ ॥ तब हरिने तुलसीको न देखकर सरस्वतीको समझाया और फिर उसकी आज्ञालेकर तुलसीके वनमें गये ॥ ८ ॥ वहां जाय हरिने स्नानकर तुलसी सतीका ध्यानकर पूजन किया और भक्तिसे स्तोत्र पढा ॥ ९ ॥ श्रीबीज, भुवनेश्वरी बीज, मन्मथबीज, वाग्बीज, चतुर्थीयुक्त,वृंदावनी वह्निजायापूर्वक दशाक्षरमंत्र वह्निजायात्मक पढा अर्थात् बीज युक्त

नारायणउवाच ॥ हरिःसंपूज्यतुलसीं रेमेचरमयासह ॥ रमासमानसौभाग्यांचकारगौरवेणच ॥ ४ ॥ सेहेचलक्ष्मीर्गंगाचतस्याश्चनवसंगमम् ॥ सौभाग्यगौरवंकोपात्तंनसेहेसरस्वती ॥ ५ ॥ सातांजवानकलहेमानिनीहरिसन्निधौ ॥ व्रीडयाचाऽपमानेनसांतर्धानंचकारह ॥ ६ ॥ सर्वसिद्धेश्वरी देवीज्ञानिनांसिद्धियोगिनी ॥ जगामाऽदर्शनंकोपात्सर्वत्रचहरेरहो ॥ ७ ॥ हरिर्नदृष्ट्वातुलसींबोधयित्वासरस्वतीम् ॥ तदनुज्ञांगृहीत्वाचजगामतुलसीवनम् ॥ ८ ॥ तत्रगत्वाचसुस्नातोहरिःसतुलसींसतीम् ॥ पूजयामासतांध्यात्वास्तोत्रंभक्त्याचकारह ॥ ९ ॥ लक्ष्मीमायाकामवाणीबीजपूर्वंदशाक्षरम् ॥ वृंदावनीतिङेन्तंचवह्निजायांतमेवच ॥ १० ॥ अनेनकल्पतरुणामंत्रराजेननारद ॥ पूजयेद्योविधानेनसर्वसिद्धिंलभेद्ध्रुवम् ॥ ११ ॥ घृतदीपेनधूपेन सिंदूरचंदनेनच ॥ नैवेद्येनचपुष्पेणचोपचारेणनारद ॥ १२ ॥ हरिस्तोत्रेणतुष्टासाचाऽऽविर्भूतामहीरुहात् ॥ प्रसन्नाचरणांभोजेजगामशरणंशुभा ॥ १३ ॥ वरंतस्यैददौविष्णुःसर्वपूज्याभवेरिति ॥ अहंत्वांधारयिष्यामिसुरूपांमूर्ध्निवक्षसि ॥ १४ ॥ सर्वेत्वांधारयिष्यंतिस्वमूर्ध्निचसुरादयः ॥ इत्युक्त्वातांगृहीत्वाच प्रययौस्वालयंविभुः ॥ १५ ॥ नारदउवाच ॥ किंध्यानंस्तवनंकिंवाकिंवापूजाविधानकम् ॥ तुलस्याश्चमहाभागतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ १६ ॥

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा ॥ १० ॥ हेनारद! इस कल्पवृक्षरूप मंत्रराजसे जो विधानसे तुलसीका पूजन करताहै उसको अवश्य सब सिद्धि प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥ घृतका दीपक, धूप, चंदन, नैवेद्य और पुष्पादि षोडशोपचारसे पूजी हुई ॥ १२ ॥ हरिके स्तोत्रसे सन्तुष्ट हो वह वृक्षसे निर्गत हुई और प्रसन्न हो हरिके चरणोंकी शरणमें हुई ॥ १३ ॥ तब विष्णुने उसको वर दिया तुम सर्व पूज्याहोगी मैं तुम सुरूपाको शिर और वक्षस्थलमें धारण करूंगा ॥ १४ ॥ और सब देवता आदि तुमको अपने शिरपर धारण करेंगे यह कह हरि उसको ग्रहणकर वैकुंठको गये ॥ १५ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो! तुलसीका ध्यान स्तोत्र पूजन विधान किसप्रकार है? हेमहाभाग! सो आप मुझसे कहिये १६ ॥

नारायण बोले तुलसीके अन्तर्धान होनेपर हरि वृन्दावनमें जाय विरहातुर हो तुलसीकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले जो कि, यह वृन्दरूप वृक्ष एकत्र होते हैं इसकारण पण्डित इसको वृन्दा कहते हैं यह मेरी प्रिया है इसको मैं भजता हूं ॥ १८ ॥ आदिमें जो देवी पहले वृन्दावनके वनमें हुई इसीसे वृन्दावन कहा गया है उस सौभाग्यवतीको मैं भजता हूं ॥ १९ ॥ जो असंख्य विश्वोंमें निरन्तर पूजित है इससे उस विश्वपूजित नामवालीको मैं निरन्तर भजता हूं ॥ २० ॥ तुमसे सदा असंख्य विश्व पवित्र होते हैं उस विश्वपावनी देवीको मैं विरहसे स्मरण करता हूं ॥ २१ ॥ जिसके विना पुष्पसमूहसे भी देवता सन्तुष्ट नहीं होते उस शुद्ध पुष्पों

नारायणउवाच ॥ अंतर्हितायांतस्यांचहरिर्वृंदावनेतदा ॥ तस्याश्चक्रेस्तुतिंगत्वातुलसींविरहातुरः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृंदरूपाश्ववृक्षाश्चयदैकत्र भवंतिच ॥ विदुर्बुधास्तेनवृंदांमत्प्रियांतांभजाम्यहम् ॥ १८ ॥ पुराबभूवयादेवीत्वादौवृंदावनेवने ॥ तेनवृंदावनाख्यातासौभाग्यांतांभजाम्यहम् ॥ १९ ॥ असंख्येषुचविश्वेषुपूजितायानिरंतरम् ॥ तेनविश्वपूजिताख्यापूजितांचभजाम्यहम् ॥ २० ॥ असंख्यानिचविश्वानिपवित्राणित्वयासदा ॥ तांविश्वपावनींदेवींविरहेणस्मराम्यहम् ॥ २१ ॥ देवानतुष्टाःपुष्पाणांसमूहेनययाविना ॥ तांपुष्पसारांशुद्धांचद्रष्टुमिच्छामिशोकतः ॥ २२ ॥ विश्वेयत्प्राप्तिमात्रेणभक्तानंदोभवेद्ध्रुवम् ॥ नंदिनीतेनविख्यातासाप्रीताभवतादिह ॥ २३ ॥ यस्यादेव्यास्तुलानास्तिविश्वेषुनिखिलेषुच ॥ तुलसीतेनविख्यातातांयामि शरणंप्रियाम् ॥ २४ ॥ कृष्णजीवनरूपासाशश्वत्प्रियतमासती ॥ तेनकृष्णजीवनीसासामेरक्षतुजीवनम् ॥ २५ ॥ इत्येवंस्तवनंकृत्वातस्थौतत्ररमापतिः ॥ ददर्शतुलसींसाक्षात्पादपद्मनतांसतीम् ॥ २६ ॥ रुदतीमवमानेनमानिनींमानपूजिताम् ॥ प्रियांदृष्ट्वाप्रियःशीघ्रंवासयामासवक्षसि ॥ २७ ॥

की सारको मैं शोकाकुल देखनेकी इच्छा करता हूं ॥ २२ ॥ विश्वमें जिसके प्राप्ति मात्रसे भक्तोंको आनंद होता है इसीसे वह नंदिनीनामसे विख्यात है हमपर प्रसन्न हो ॥ २३ ॥ सब संसारमें जिस देवीकी उपमाको कोई नहीं है और तुला न होनेसे तुलसी नामसे विख्यात है उस प्रियाकी मैं शरण होता हूं ॥ २४ ॥ यह कृष्णकी जीवनरूप निरन्तर अतिशय प्यारी है इससे कृष्णजीवनी नामवाली है मेरे जीवनकी रक्षा करे ॥ २५ ॥ इसप्रकार स्तुति कर रमापति वहां स्थित हुए तब चरण कमलमें प्रणामकरती तुलसीका हरिने साक्षात् दर्शन किया ॥ २६ ॥ जो मानिनी मानसे पूजित होकर अवमानके कारण नेत्रोंमें आंसू भरे थी हरिने

प्रियाको देखतेही हृदयमें बसाया ॥ २७ ॥ और भारतीकी आज्ञासे उसके सहित अपने स्थानमें गये और सरस्वतीसे तुलसीकी प्रीति करादी ॥ २८ ॥ और सबसे पूजित होनेका विष्णुने उसे वरदिया सबको शिरोंपर धारण करनेयोग्य तथा मुझसे भी वन्दित और माननीया होगी ॥ २९ ॥ तब वह देवी विष्णुके वरसे संतुष्ट हुई और सरस्वतीने स्वयं उसे लेकर हरिके समीप बैठाया ॥ ३० ॥ हे नारद ! तब लक्ष्मी और गंगानेभी हँसकर तुलसीका हाथ पकड विनयपूर्वक घरमें प्रवेश कराया ॥ ॥ ३१ ॥ वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वकी पवित्रकरनेवाली विश्वसे पूजित हुई अथवा विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नंदिनी, कृष्णजीवनी ॥ ३२ ॥ इन आठ नामोंका स्तोत्र अर्थसंयुक्त जो पढ़ता और तुलसीकी पूजा करता है उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ३३ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाको तुलसीका मंगलमय जन्म है

भारत्याज्ञांगृहीत्वाचस्वालयंचययौहरिः ॥ भारत्यासहतत्प्रीतिंकारयामाससत्वरम् ॥२८॥ वरंविष्णुर्ददौतस्यैसर्वपूज्याभवेरिति ॥ शिरोधार्याचसर्वेषां वंद्यामान्याममेतिच ॥ २९ ॥ विष्णोर्वरेणसादेवीपरितुष्टाबभूवच ॥ सरस्वतीतामाकृष्यवासयामाससन्निधौ ॥३०॥ लक्ष्मीर्गंगासस्मिताचतांसमाकृष्य नारद ॥ गृहंप्रवेशयामासविनयेनसतींसदा ॥ ३१ ॥ वृंदावृंदावनीविश्वपूजिताविश्वपाविनी ॥ पुष्पसारानंदनीचतुलसीकृष्णजीवनी ॥ ३२ ॥ एतन्नामाष्टकंचैवस्तोत्रंनामार्थसंयुतम् ॥ यःपठेत्तांचसंपूज्यसोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥ ३३ ॥ कार्तिक्यांपूर्णिमायांचतुलस्याजन्ममंगलम् ॥ तत्रतस्याश्चपूजाचविहिताहरिणापुरा ॥ ३४ ॥ तस्यांयः पूजयेत्तांचभक्त्याचविश्वपावनीम् ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति ॥ ३५ ॥ कार्तिकेतुलसीपत्रंयो ददातिचवैष्णवे ॥ गवामयुतदानस्यफलंप्राप्नोतिनिश्चितम् ॥३६॥ अपुत्रोलभतेपुत्रंप्रियाहीनोलभेत्प्रियाम् ॥ बंधुहीनोलभेद्बंधून्स्तोत्रश्रवणमात्रतः ॥३७॥ रोगीप्रमुच्यतेरोगाद्बद्धोमुच्येतबंधनात् ॥ भयान्मुच्येतभीतस्तुपापान्मुच्येतपातकी ॥३८॥ इत्येवंकथितंस्तोत्रंध्यानंपूजाविधिंशृणु ॥ त्वमेववेदेजानासिकण्वशाखोक्तमेवच ॥ ३९ ॥ तद्वृक्षेपूजयेत्तांचभक्त्याचावाहनंविना ॥ तांध्यात्वाचोपचारेणध्यानंपातकनाशनम् ॥ ४० ॥

हरिने उसी समय तुलसीपूजाका विधान कहा है ॥ ३४ ॥ उसमें जो भक्तिसे विश्व पावनीका पूजन करते हैं वह सब पापसे रहित हो विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ३५ ॥ कार्तिकमें जो वैष्णवको तुलसीपत्र देता है उसको अवश्य दशसहस्र गोदानका फल मिलता है ॥ ३६ ॥ अपुत्रको पुत्र, प्रियाहीनको प्रिया, बंधु इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ रोगी रोगसे, बंधनमें पडाहुआ बंधनसे, भीत भयसे और पापी पातकसे, छूटजाता है ॥ ३८ ॥ यह आपसे स्तोत्र कहा वह अब ध्यान पूजा विधिको सुनो जिसको कण्वशाखामें कहे वेदमें तुम भी सब जान्ते हो ॥ ३९ ॥ विना आवाहनके तुलसीके वृक्षमेंही भक्तिसे पूजन करे उसको ध्यानकर षोडश उपचा

रसे पूजन करै ध्यान पातकोंका नाशक है ॥ ४० ॥ तुलसी, पुष्पसारा, सती, पूता, (पवित्र) मनोहरा, पापरूपी ईंधनके भस्मकरनेकी जलती अग्निके शिखाकी समान ॥ ४१ ॥ जिसकी समान कोई पुष्प नहीं ऐसा वेदोंमें कहा है, सबमें पवित्र होनेसे जो तुलसी कहाती है ॥ ४२॥ सबको शिरपर धारण करनेयोग्य ईप्सिता, विश्वकी पवित्रकरनेवाली स्वयं जीवन्मुक्त, भक्तोंको मुक्ति देनेवाली, हरिभक्ति देनेवालीको भजता हूं ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् इसप्रकार ध्यानकर पूजन करने उपरान्त प्रणाम करै यह तुलसीका उपाख्यान कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥६९॥

नारदजी बोले यह मैंने अमृतके समान तुलसीका उपाख्यान सुना अब आप मुझसे सावित्रीका उपाख्यान कहिये ॥ १ ॥ यह सावित्री वेदकी माता है इन्होंने

तुलसींपुष्पसारांचसतींपूतांमनोहराम् ।। कृतपापेध्मदाहायज्वलदग्निशिखोपमाम् ॥ ४१ ।। पुष्पेषुतुलनायस्यानास्तिवेदेषुभाषितम् ॥ पवित्ररूपासर्वासुतुलसीसाचकीर्तिता ॥ ४२ ॥ शिरोधार्याचसर्वेषामीप्सिताविश्वपावनी ॥ जीवन्मुक्तांमुक्तिदांचभजेतांहरिभक्तिदाम् ॥ ४३ ॥ इतिध्यात्वाचसंपूज्यस्तुत्वाचप्रणमेत्सुधीः ॥ उक्तंतुलस्युपाख्यानंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥४४॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ नारदउवाच ॥ तुलस्युपाख्यानमिदंश्रुतंचाऽतिसुधोपमम् ॥ ततंसावित्र्युपाख्यानंतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ पुराकेनसमुद्भूतासाश्रुताचश्रुतेःप्रसूः ॥ केनवापूजितालोकेप्रथमेकैश्चवापरे ॥ २ ॥ नारायणउवाच ॥ ब्रह्मणावेदजननीप्रथमेपूजितामुने ॥ द्वितीयेचवेदगणैस्तत्पश्चाद्विदुषांगणैः ॥ ॥ ३ ॥ तदाचाऽश्वपतिर्भूपःपूजयामासभारते ॥ तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वारएवच ॥ ४ ॥ नारदउवाच ॥ कोवासोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केनवातेनपूजिता ॥ सर्वपूज्याचसादेवीप्रथमेकैश्चवापरे ॥ ५ ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ ॥ मद्रदेशेमहाराजोबभूवाऽश्वपतिर्मुने ॥ वैरिणांबलहर्ताचमित्राणांदुःखनाशनः ॥ ६ ॥ आसीत्तस्यमहाराज्ञीमहिषीधर्मचारिणी ॥ मालतीतिसमाख्यातायथालक्ष्मीर्गदाभृतः ॥ ७ ॥ साचराज्ञीचवंध्याचवसिष्ठस्योपदेशतः ॥ चकाराऽऽराधनंभक्त्यासावित्र्याश्चैवनारद ॥ ८ ॥ प्रत्यादेशंनसाप्राप्तामहिषीनददर्शताम् ॥ गृहंजगामदुःखार्ताहृदयेनविदूयता ॥ ९ ॥

किसकारणसे जन्म लिया और प्रथम किसके द्वारा लोकमें पूजित हुई ।। २ ॥ नारायण बोले हे मुने ! इस वेदमाताका प्रथम ब्रह्माजीने पूजन किया है, दूसरे कालमें वेदगणोंने और पश्चात् विद्वानोंने पूजन किया है ॥ ३ ।। फिर भारतमें अश्वपति राजाने इनकी पूजा की पीछे चारों वर्णोंने इनकी पूजाकी ॥ ४ ।। नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! वह अश्वपति कौन थे और किसप्रकार उन्होंने पूजा की सर्वपूज्या वह देवी प्रथम एक और फिर दूसरोंसे पूजित हुई ।। ५ ।। श्रीनारायण बोले हे मुने ! राजा अश्वपति भद्रदेशके निवासी थे वह वैरियोंके बलहर्ता और मित्रोंका दुःखनाश करते थे ॥ ६ ॥ धर्मचारिणी उनकी महारानी मालतीनामक विष्णुप्रिया लक्ष्मीकी समान थी ॥ ७ ॥ हे नारद ! उसकी रानी वंध्या थी वसिष्ठके उपदेशसे भक्तिसे सावित्रीका आराधन करने लगी ।। ८ ।। बहुत कालतक आराधन करनेपरभी

भगवतीसे उत्तर वा दर्शन न मिला, तब दुःखी मनसे अपने घर चली आई ॥ ९ ॥ राजाने उसे दुःखीदेखकर नीतिपूर्वक समझाया और भक्तिसे सावित्रीकी तपस्या करनेको पुष्करमें गया ॥ १० ॥ वहां नियत इन्द्रिय होकर शतवर्ष तप किया, परन्तु सावित्रीका दर्शन न पाकर आज्ञा पाई ॥ ११॥ राजाने आकाशसे अशरीरिणी वाणी सुनी कि, हे नारद! तुम गायत्रीका दशलक्ष जप करौ॥१२॥ उसी समय वहां पराशरजी आये राजाके प्रणाम करनेपर मुनिने उनसे कहा ॥ १३ ॥ मुनि बोले एकबार गायत्री जप, दिनका किया पाप हर लेता है दशवार जपनेसे दिनरातका किया पाप दूर होताहै ॥ १४ ॥ सौवार जपनेसे महीनेका पाप दूर होजाता है,

राजातांदुःखितांदृष्ट्वाबोधयित्वानयेनवै ॥ सावित्र्यास्तपसेभक्त्याजगामपुष्करंतदा ॥ १० ॥ तपश्चकारतत्रैवसंयतःशतवत्सरम् ॥ नददर्शचसावित्र्याः प्रत्यादेशोबभूवच ॥ ११ ॥ शुश्रावाऽऽकाशवाणींचनृपेंद्रश्चाऽशरीरिणीम् ॥ गायत्र्यादशलक्षंचजपंत्वंकुरुनारद ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रआजगामपराशरः ॥ प्रणनामततस्तंचमुनिर्नृपमुवाचच ॥ १३ ॥ मुनिरुवाच ॥ सकृज्जपश्चगायत्र्याःपापंदिनभवंहरेत् ॥ दशवारंजपेनैवनश्येत्पापंदिवानिशम् ॥ १४ ॥ शतवारंजपश्चैवपापंमासार्जितंहरेत् ॥ सहस्रधाजपश्चैवकल्मषंवत्सरार्जितम् ॥ १५ ॥ लक्षोजन्मकृतंपापंदशलक्षोऽन्यजन्मजम् ॥ सर्वजन्मकृतंपापंशतलक्षाद्विनश्यति ॥ १६ ॥ करोतिमुक्तिंविप्राणांजपोदशगुणस्ततः ॥ करंसर्पफणाकारंकृत्वातद्रंध्रमुद्रितम् ॥ १७ ॥ आनम्रमूर्धमचलंप्रजपेत्प्राङ्मुखोद्विजः ॥ अनामिकामध्यदेशादधोऽवामक्रमेणच ॥ १८ ॥ तर्जनीमूलपर्यंतंजपस्यैवंक्रमःकरे ॥ श्वेतपंकजबीजानांस्फटिकानांचसंस्कृताम् ॥ १९ ॥ कृत्वावामालिकांराजञ्जपेत्तीर्थेसुरालये ॥ संस्थाप्यमालामश्वत्थपत्रेपद्मेचसंयतः ॥ २० ॥

सहस्रवार जपनेसे सम्वत्सरकृत पाप नष्ट होजाता है ॥ १५ ॥ एक लाख जपनेसे जन्मका किया पाप और दश लक्षसे अन्य जन्मका और सौलाख जपनेसे सब जन्मका किया पाप नष्ट होताहै ॥१६॥ दशकोटि जपसे ब्राह्मणोंकी मुक्ति होजाती है, जपका विधान कहते हैं सर्पके फणकी समान हाथ करके और अंगुलियोंको छिद्र मूँदे और ऊर्ध्वांगुलीके अग्र भागको अधोभागमें भुग्न करके ॥१७॥ शिर झुकाये अचल भावसे प्राङ्मुख होकर द्विज जप करै अनामिकाके मध्य देशसे नीचे वामक्रमसे ॥१८॥ तर्जनीके मूल पर्यन्त जप करै यह करमालाका क्रम है श्वेत कमलके बीज; स्फटिक मणिकी माला ॥ १९ ॥ बनाकर तीर्थमें जाय देवालयमें जप करै मालाको

स्थापनकर पीपलके पत्ते कमलमें संयत होकर ॥ २० ॥ गोरोचनसे लिखकर सुधी पुरुष गायत्रीको स्नान करावे उसपर गायत्री शतकका जप करै ॥ २१ ॥ और पंचगव्यसे संस्कार कीहुई मालाको संस्कार कराकर और फिर स्वयं स्नान कर मालाको भी गंगाजलसे स्नान कराय ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार दशलाख जप करो तब तीन जन्मके पातक क्षय होनेसे साक्षात् गायत्री देवीका दर्शन करोगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जब दिन दिन नित्य संध्याको करोगे मध्याह्न, सायाह्न और प्रभातमें सदा पवित्र रहोगे तो दर्शन पाओगे ॥ २४ ॥ जो संध्याहीन है वह नित्य अशुचि होनेसे सब कर्मोंके अयोग्य होता है बिना संध्याके जो दिनका किया कर्म हैं वह उसका फलभागी नहीं होता ॥ २५ ॥ जो प्रभात और सायं संध्या नहीं करता उसको सर्व द्विजकर्मोंसे बाहर करदेना चाहिये ॥ २६ ॥ जो जीवन

कृत्वागोरोचनाक्तांचगायत्र्यास्नापयेत्सुधीः ॥ गायत्रीशतकंतस्यांजपेच्चविधिपूर्वकम् ॥२१॥ अथवापंचगव्येनस्नात्वामालांसुसंस्कृताम् ॥ अथगंगोदकेनैव स्नात्वावाऽतिसुसंस्कृताम् ॥ २२ ॥ एवंक्रमेणराजर्षेदशलक्षंजपंकुरु ॥ साक्षाद्द्रक्ष्यसिसावित्रींत्रिजन्मपातकक्षयात् ॥ २३ ॥ नित्यंसंध्यांचहेराजन्करिष्यसिदिनेदिने ॥ मध्याह्नेचापिसायाह्नेप्रातरेवशुचिःसदा ॥ २४ ॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसु ॥ यदन्हाकुरुतेकर्मनतस्यफलभाग्भवेत् ॥ ॥ २५ ॥ नोपतिष्ठतियःपूर्वांनोपास्तेयस्तुपश्चिमाम् ॥ सशूद्रवद्बहिष्कार्यःसर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ २६ ॥ यावज्जीवनपर्यंतंत्रिःसंध्यांयःकरोतिच ॥ सच सूर्यसमोविप्रस्तेजसातपसासदा ॥ २७ ॥ तत्पादपद्मरजसासद्यःपूतावसुंधरा ॥ जीवन्मुक्तःसतेजस्वीसंध्यापूतोहियोद्विजः ॥ २८ ॥ तीर्थानिचपवित्राणितस्यसंस्पर्शमात्रतः ॥ ततःपापानियांत्येववैनतेयादिवोरगाः ॥२९॥ नगृह्णंतिसुराःपूजांपितरःपिंडतर्पणम् ॥ स्वेच्छयाचद्विजातेश्चत्रिसंध्यारहितस्य च ॥३०॥ मूलप्रकृत्यभक्तोयस्तन्मंत्रस्याप्यनर्चकः ॥ तदुत्सवविहीनश्चविषहीनोयथोरगः ॥३१॥ विष्णुमंत्रविहीनश्चत्रिसंध्यारहितोद्विजः ॥ एकादशीविहीनश्चविषहीनोयथोरगः ॥ ३२ ॥ हरेरनैवेद्यभोजीधावकोवृषवाहकः ॥ शूद्रान्नभोजीयोविप्रोविषहीनोयथोरगः ॥ ३३ ॥

पर्यन्त तीनों कालमें संध्या करता है वह ब्राह्मण सूर्यके समान सदा अपने तेजसे तपता है ॥२७॥ उसके चरणकमलकी रजसे भूमि सदा पवित्र होती है जो ब्राह्मण संध्यासे पवित्र है वह पवित्र तेजस्वी जीवन्मुक्त होता है ॥ २८ ॥ उसके स्पर्श मात्रसे तीर्थ पवित्र होते हैं सर्प जैसे गरुडको देख भागते हैं इसप्रकार उसे देख पाप भागते हैं ॥ २९ ॥ और जो ब्राह्मण तीनों कालकी संध्यासे रहित है देवता उसकी पूजा और पितर उसका पिण्ड ग्रहण नहीं करते ॥३०॥ जो मूलप्रकृतिका अभक्त है और उसके मंत्रकी अर्चा नहीं करता और भगवतीके उत्सवविहीन है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण विष्णुमंत्र और तीनों संध्याओंसे रहित है तथा एकादशीव्रतविहीन है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३२ ॥ जो विना भगवान्को भोग लगाये नैवेद्य खाता धावक कर्मकारी, बैलोंपर बोझ

लादनेवाला तथा शूद्रोंका अन्न खानेवाला जो ब्राह्मण है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३३ ॥ जो शूद्रांके शवका दहन करनेवाला है वह ब्राह्मण शूद्रीपति होता है जो शूद्रोंकी रसोई करता है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रोंसे प्रतिग्रह लेता शूद्रोंको यजन करता स्याहीका व्यवहार करनेवाला शस्त्र बेचनेवाला विषहीन सर्पके समान है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण कन्याका बेचने वाला हरिनाम बेचने वाला जो ब्राह्मण पुत्ररहित ' अवीरा ' ब्राह्मणीपतिके भोजन करता है जो ऋतु स्नाताके अन्नका भोगनेवाला है ॥ ३६ ॥ जो कुटना है जो व्याजसे जीता है, जो व्याज लेता है जो विद्या बेचता है वह विषहीन सर्पके समान

शूद्राणांशवदाहीयःसविप्रोवृषलीपतिः ॥ शूद्राणांसूपकारश्चविषहीनोयथोरगः ॥३४॥ शूद्राणांचप्रतिग्राहीशूद्रयाजीचयोद्विजः॥मसिजीवीअसिजीवीविष हीनोयथोरगः॥३५॥यःकन्याविक्रयीविप्रोयोहरेर्नामविक्रयी ॥ योविप्रोऽवीरान्नभोजीऋतुस्नातान्नभोजकः ॥३६॥ भगजीवीवार्धुषिकोविषहीनोयथोरगः योविद्याविक्रयीविप्रोविषहीनोयथोरगः ॥ ३७ ॥ सूर्योदयेस्वपेद्योहिमत्स्यभोजीचयोद्विजः ॥ शिवापूजादिरहितोविषहीनोयथोरगः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वाचमुनिश्रेष्ठःसर्वपूजाविधिक्रमम् ॥ तमुवाचचसावित्र्याध्यानादिकमभीप्सितम् ॥ ३९ ॥ दत्त्वासर्वंनृपेंद्राययययौचस्वाश्रमेमुने ॥ राजासंपूज्य सावित्रींददर्शवरमापच ॥ ४० ॥ नारदउवाच ॥ किंवाध्यानंचसावित्र्याःकिंवापूजाविधानकम् ॥ स्तोत्रंमंत्रंचकिंदत्वाप्रययौसपराशरः ॥ ४१ ॥ नृपःकेनविधानेनसंपूज्यश्रुतिमातरम् ॥ वरंचकंवासंप्रापसंपूज्यतुविधानतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामिसावित्र्याःपरमंमहत् ॥ रहस्याऽतिरहस्यंच श्रुतिसिद्धंसमासतः ॥ ४३ ॥

होता है ॥ ३७ ॥ जो ब्राह्मण सूर्योदयतक सोता है जो ब्राह्मण मच्छी खाता है जो देवीकी पूजासे रहित है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३८ ॥ यह कहकर पराशरने सब पूजाकी विधि क्रम और सावित्रीका ध्यानादिक वर्णन किया॥ ३९ ॥ इसप्रकार राजाको सब देकर हेमुने! वह मुनि अपने आश्रमको गये राजाने सावित्रीको पूज वर पाया ॥ ४० ॥ नारदजी बोले सावित्रीका ध्यान और पूजाविधि क्या है और क्या स्तोत्र देकर पराशरजी चले गये ॥ ४१ ॥ और राजाने किस विधानसे वेद माताका पूजन किया और उस पूजाके विधानसे क्या वर पाया॥ ४२ ॥ वह मैं सब सावित्रीके परम महत् श्रुति सिद्ध रहस्यको संक्षेपसे सुननेकी इच्छा करता हूं॥ ४३ ॥

नारायण बोले ज्येष्ठकृष्ण त्रयोदशीको शुद्ध समय यत्नपूर्वक रहकर परम भक्तिसे चौदशको व्रत करै ॥ ४४ ॥ यह चौदह वर्षका व्रत चौदह फलसे संयुक्त है भगवतीको चौदह नैवेद्य देनेसे पुष्प और धूपादि करे ॥ ४५ ॥ वस्त्र यज्ञोपवीत विधिपूर्वक भोजन निवेदन करे फल शाखासंयुक्त मंगल घटस्थापन कर के ॥ ४६ ॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा इनको भलीप्रकार पूजनकर ब्राह्मण घटमें आवाहन करै ॥ ४७ ॥ जो मध्यदिनमें ध्यान कहा है वह सावित्रीका ध्यान सुनो. स्तोत्र पूजाविधान और सब कामना देनेवाला मंत्र है ॥ ४८ ॥ तपाये सुवर्णके समान कांतिमान् ब्रह्मतेजसे प्रकाशित ग्रीष्मऋतुके सहस्र मध्याह्न सूर्यके समान अतिकान्तिमान् ॥ ४९ ॥ कुछ हँसीसे प्रसन्नमुख रत्नके भूषणोंसे भूषित [अग्निशुद्ध शुकाधान] "अग्निमें न जलनेवाले वस्त्र पहरे" भक्तोंके ऊपर अनुग्रहका

नारायणउवाच ॥ ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्यांशुद्धकालेचयत्नतः ॥ व्रतमेवंचतुर्दश्यांव्रतीभक्त्यासमाचरेत् ॥ ४४ ॥ व्रतंचतुर्दशाब्दंचद्विसप्तफलसंयुतम् ॥ दत्त्वाद्विसप्तनैवेद्यंपुष्पधूपादिकंचरेत् ॥ ४५ ॥ वस्त्रंयज्ञोपवीतंचभोजनंविधिपूर्वकम् ॥ संस्थाप्यमंगलघटंफलशाखासमन्वितम् ॥ ४६ ॥ गणेशंचदिनेशंचवह्निंविष्णुंशिवंशिवाम् ॥ संपूज्यपूजयेदिष्टंघटेआवाहितेद्विजः ॥ ४७ ॥ शृणुध्यानंचसावित्र्याश्चोक्तंमाध्यंदिनेचयत् ॥ स्तोत्रंपूजाविधानंचमंत्रंचसर्वकामदम् ॥ ४८ ॥ तप्तकांचनवर्णाभांज्वलंतींब्रह्मतेजसा ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडसहस्रसंमितप्रभाम् ॥ ४९ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांरत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानांभक्तानुग्रहविग्रहाम् ॥ ५० ॥ सुखदांमुक्तिदांशांतांकांतांचजगतांविधेः ॥ सर्वसंपत्स्वरूपांचप्रदात्रींसर्वसंपदाम् ॥ ५१ ॥ वेदाधिष्ठातृदेवींचवेदशास्त्रस्वरूपिणीम् ॥ वेदबीजस्वरूपांचभजेतांवेदमातरम् ॥ ५२ ॥ ध्यात्वाध्यानेननैवेद्यंदत्वापाणिंस्वमूर्धनि ॥ पुनर्ध्यात्वाघटेभक्त्यादेवीमावाहयेद्व्रती ॥ ५३ ॥ दत्वाषोडशोपचारंवेदोक्तमंत्रपूर्वकम् ॥ संपूज्यस्तुत्वाप्रणमेद्देवदेवींविधानतः ॥ ५४ ॥ आसनंपाद्यमर्घ्यंचस्नानीयंचानुलेपनम् ॥ धूपंदीपंचनैवेद्यंतांबूलंशीतलंजलम् ॥ ५५ ॥ वसनंभूषणंमाल्यंगंधमाचमनीयकम् ॥ मनोहरंसुतल्पंचदेयान्येतानिषोडश ॥ ५६ ॥ दारुसारविकारंचहेमादिनिर्मितंचवा ॥ देवाधारंपुण्यदंचमयातुभ्यंनिवेदितम् ॥ ५७ ॥ तीर्थोदकंचपाद्यंचपुण्यदंप्रीतिदंमहत् ॥ पूजांगभूतंशुद्धंचमयातुभ्यंनिवेदितम् ॥ ५८ ॥

शरीर धारण करनेवाली ॥ ५० ॥ सुखदायक मुक्तिकारक शान्त भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली मनोहर जगत्की निधियोंमें श्रेष्ठ सब सम्पत्तिस्वरूपवाली सब संपत्तिकी स्वरूप और सब सम्पत्तियोंकी देनेवाली ॥ ५१ ॥ वेदकी अधिष्ठातृदेवी वेदशास्त्रकी स्वरूपवाली वेदबीजकी स्वरूपा जगन्माताका भजन करते हैं ॥ ५२ ॥ इसप्रकार ध्यानमें ध्यान कर अपने शिरपर हात लगाय नैवेद्य देकर फिर घटमें भक्तिसे ध्यान कर व्रती देवीका आवाहन करै ॥ ५३ ॥ वेदोक्त मंत्रपूर्वक षोडश उपचार देकर पूजन और स्तुति करके विधानसे देवदेवीका पूजन करै ॥ ५४ ॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान अनुलेपन, धुप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल ॥ ५५ ॥ वसन, भूषण, माला, गंध, आचमन, मनोहर शय्या, यह षोडशवस्तु देनी चाहिये ॥ ५६ ॥ चन्दन वा सुवर्णादिक बना सिंहासन देवाधार पुण्यदायक मैं ने तुमको निवेदन किया है ॥ ५७ ॥ देवी तीर्थजल पवित्र

पाद्य रूप जो कि, महान् प्रीतिका देनेवाला है वह पूजाङ्गभूत शुद्ध मैंने तुमको निवेदन किया ॥ ५८ ॥ पवित्ररूप अर्घ्य, दूर्वा, पुष्पदलके सहित पुण्यदायक शंखजलसम्पन्न मैं ने तुमको निवेदन किया है ॥ ५९ ॥ सुगंध रूप गंध जल स्नेह और सुगंध करनेवाला मैंने यह स्नानीय जल भक्तिसे निवेदन किया है तुम इसको ग्रहण करो ॥ ६० ॥ यह गन्धद्रव्योंसे प्रगट प्रीतिदायक दिव्य गंध है. हे अम्बिके ! यह प्रेमसे दिया गंधजल ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ सब मंगलका रूप और सब मंगलका देनेवाला पुण्यदायक धूपको हे परमेश्वरी ! ग्रहण करो ॥ ६२ ॥ सुगंध युक्त सुखदायक मैंने तुमको निवेदन किया है यह जगत्के दर्शनके निमित्त दीप्ति कारक दीपक ॥ ६३ ॥ अंधकारके नाशका बीज मैंने तुमको निवेदन किया है, तुष्टि पुष्टिदायक प्रीतिदायक क्षुधानाशक ॥ ६४ ॥ पुण्य और स्वादुरूप यह नैवेद्य

पवित्ररूपमर्घ्यंचदूर्वापुष्पदलान्वितम् ॥ पुण्यदंशंखतोयाक्तंमयातुभ्यंनिवेदितम् ॥ ५९ ॥ सुगंधंगंधतोयंचस्नेहंसौगंधकारकम् ॥ मयानिवेदितंभक्त्या स्नानीयंप्रतिगृह्यताम् ॥ ६० ॥ गंधद्रव्योद्भवंपुण्यंप्रीतिदंदिव्यगंधदम् ॥ मयानिवेदितंभक्त्यागंधतोयंतवांबिके ॥ ६१ ॥ सर्वमंगलरूपंचसर्वंचमंगल प्रदम् ॥ पुण्यदंचसुधूपंतंगृहाणपरमेश्वरि ॥ ६२ ॥ सुगंधयुक्तंसुखदंमयातुभ्यंनिवेदितम् ॥ जगतांदर्शनार्थायप्रदीपंदीप्तिकारकम् ॥ ६३ ॥ अंधका रध्वंसबीजंमयातुभ्यंनिवेदितम् ॥ तुष्टिदंपुष्टिदंचैवप्रीतिदंक्षुद्विनाशनम् ॥ ६४ ॥ पुण्यदंस्वादुरूपंचनैवेद्यंप्रतिगृह्यताम् ॥ तांबूलप्रवरंरम्यंकर्पूरादिसु वासितम् ॥ ६५ ॥ तुष्टिदंपुष्टिदंचैवमयातुभ्यंनिवेदितम् ॥ सुशीतलंवारिशीतंपिपासानाशकारणम् ॥ ६६ ॥ जगतांजीवरूपंचजीवनंप्रतिगृह्यताम् ॥ देहशोभास्वरूपंचसभाशोभाविवर्धनम् ॥ ६७ ॥ कार्पासजंचकृमिजंवसनंप्रतिगृह्यताम् ॥ कांचनादिविनिर्माणंश्रीकरंश्रीयुतंसदा ॥ ६८ ॥ सुखदं पुण्यदंरत्नभूषणंप्रतिगृह्यताम् ॥ नानावृक्षसमुद्भूतंनानारूपसमन्वितम् ॥ ६९ ॥ फलस्वरूपंफलदंफलंचप्रतिगृह्यताम् ॥ सर्वमंगलरूपंचसर्वमंगलमंग लम् ॥ ७० ॥ नानापुष्पविनिर्माणंबहुशोभासमन्वितम् ॥ प्रीतिदंपुण्यदंचैवमाल्यंचप्रतिगृह्यताम् ॥ ७१ ॥ पुण्यदंचसुगंधाढ्यंगंधंचदेविगृह्यताम् ॥ सिंदूरंचवरंरम्यंभालशोभाविवर्धनम् ॥ ७२ ॥ भूषणानांचप्रवरंसिंदूरंप्रतिगृह्यताम् ॥ विशुद्धग्रंथिसंयुक्तंपुण्यसूत्रविनिर्मितम् ॥ ७३ ॥

ग्रहण करो. यह सुन्दर रम्य ताम्बूल कर्पूरादिसे सुवासित ॥ ६५ ॥ तुष्टि, पुष्टिदायक मैं ने तुमको निवेदन किया है यह सुन्दर ठंडाजल पिपासानाशक ॥ ६६ ॥ जगतका जीवरूप जीवन ग्रहण करो, देहका शोभास्वरूप सभाकी शोभा बढानेवाला ॥ ६७ ॥ सूत और रेशमका यह वस्त्र ग्रहण करो, सुवर्णादिका निर्मित लक्ष्मी करने वाला श्रीयुक्त ॥ ६८ ॥ सुख और पुण्य देनेवाला यह पवित्र भूषण ग्रहण करो अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न अनेक रूपसम्पन्न ॥ ६९ ॥ फलस्वरूप फलदायक यह फल ग्रहण करो, सब मंगलरूप सब मंगलोंका मंगलकर्ता ॥ ७० ॥ अनेक फूलोंसे निर्मित बहुतशोभा सम्पन्न प्रीति और पुण्यदायक वह माला ग्रहण करो ॥ ॥ ७१ ॥ हे देवि ! पुण्यदायक सुगंधभरी यह गंध ग्रहण करो, यह सुन्दर सिन्दूर मस्तकको शोभा बढानेवाला है ॥ ७२ ॥ भूषणोंमें श्रेष्ठ यह सिन्दूर ग्रहणकरो

विशुद्ध ग्रंथियोंसे संयुक्त पुण्यसूत्रसे बने ॥ ७३ ॥ वेदमंत्रसे पवित्र इस यज्ञसूत्रको ग्रहण करो. यह द्रव्य मूल मंत्रसे देकर फिर बुद्धिमान् स्तोत्र पाठ करै ॥ ७४ ॥ फिर व्रती भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा दे "सावित्र्यै स्वाहा" इस प्रकारसे ॥ ७५ ॥ लक्ष्मीबीज (श्रीबीज) मायाबीज (भुवनेश्वरीबीज) मन्मथबीज इन तीनबीज "पूर्वसावित्र्यैस्वाहा" यह मंत्र पढे माध्यन्दिनोक्त स्तोत्र सब कामनाका देनेवाला है ॥ ७६ ॥ यह ब्राह्मणोंका जीवनरूप है सुनो मैं आपसे कहता हूं कृष्णने गोलोकमें पहले ब्रह्माको सावित्री दी थी ॥ ७७ ॥ हेनारद ! वह उनके साथ ब्रह्मलोकमें आनेको सम्मत न हुई तब ब्रह्माजीने कृष्णकी

पवित्रंवेदमंत्रेणयज्ञसूत्रंचगृह्यताम् ॥ द्रव्याण्येतानिमूलेनदत्वास्तोत्रंपठेत्सुधीः॥७४॥ततोविप्रायभक्त्याचव्रतीदद्याच्चदक्षिणाम्॥सावित्रीतिचतुर्थ्यंतंवह्निजायांतमेवच ॥ ७५ ॥ लक्ष्मीमायाकामपूर्वंमंत्रमष्टाक्षरंविदुः ॥ माध्यंदिनोक्तंस्तोत्रंचसर्वकामफलप्रदम् ॥ ७६ ॥ विप्रजीवनरूपंचनिबोधकथयामिते ॥ कृष्णेनदत्तांसावित्रींगोलोकेब्रह्मणेपुरा ॥ ७७ ॥ नायातिसातेनसार्धंब्रह्मलोकेचनारद ॥ ब्रह्माकृष्णाज्ञयाभक्त्यातुष्टाववेदमातरम् ॥ ७८ ॥ तदासापरितुष्टाचब्रह्माणंचकमेपतिम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सच्चिदानंदरूपेत्वंमूलप्रकृतिरूपिणि ॥ ७९ ॥ हिरण्यगर्भरूपेत्वंप्रसन्नाभवसुंदरि ॥ तेजःस्वरूपेपरमेपरमानंदरूपिणि ॥ ८० ॥ द्विजातीनांजातिरूपेप्रसन्नाभवसुंदरि ॥ नित्येनित्यप्रियेदेविनित्यानंदस्वरूपिणि ॥ ८१ ॥ सर्वमंगलरूपेचप्रसन्नाभवसुंदरि ॥ सर्वस्वरूपेविप्राणांमंत्रसारेपरात्परे ॥ ८२ ॥ सुखदेमोक्षदेदेविप्रसन्नाभवसुंदरि ॥ विप्रपापेध्मदाहायज्वलदग्निशिखोपमे ॥ ८३ ॥ ब्रह्मतेजःप्रदेदेविप्रसन्नाभवसुंदरि ॥ कायेनमनसावाचायत्पापंकुरुतेनरः ॥ ८४ ॥

आज्ञासे वेदमाताको सन्तुष्ट किया ॥ ७८ ॥ तब उसने प्रसन्न होकर ब्रह्माको स्वामित्वमें वरण किया ब्रह्माजी बोले सच्चिदानंदरूपे ! हेमूल प्रकृतिरूपवाली ! ॥ ७९ ॥ हे हिरण्यगर्भरूपिणी सुन्दरि ! तुम प्रसन्न हो. हे तेजस्वरूपे हेपरमानंद रूपिणी ॥ ८० ॥ हेद्विजातियोंकी जातिरूप सुन्दरि ! प्रसन्न हो नित्य नित्य प्रिय देवी नित्यानंदस्वरूपिणी ॥ ८१ ॥ हे सब मंगलरूप सुन्दरी ! मुझपर प्रसन्न हो सर्वस्वरूप ब्राह्मणोंके मंत्रसार परात्पर ॥ ८२ ॥ हे सुखमोक्षकी देनेवाली सुन्दरि देवी ! प्रसन्न हो तुम ब्राह्मणोंके पापरूपी अग्निदाहके निमित्त जलती हुई अग्निकी शिखा हो ॥ ८३ ॥ हे ब्रह्मतेजकी देनेवाली सुन्दरीदेवी ! प्रसन्न हो मन वचन कर्मसे मनुष्य जो पाप करता है ॥ ८४ ॥

वह पाप तुम्हारे स्मरणमात्रसे भस्मीभूत होजाता है जगत्के धाता ऐसा कहकर उस सभामें स्थित हुए ॥ ८५॥ तब सावित्री ब्रह्माके साथ ब्रह्मलोकमें गई. हे नारदजी! अश्वपतिने इसी स्तवराजसे भगवतीकी स्तुति की ॥ ८६ ॥ तब सावित्रीका दर्शन कर मनवांछित वर पाया यह पवित्र स्तवराज संध्याकरके जो पढता है ॥ ८७ ॥ वह इसके पाठसे चारवेद पढनेके फलको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ छ ॥
श्रीनारायण बोले अश्वपति इस मंत्रसे स्तुति कर विधिपूर्वक पूजन करने उपरान्त सहस्र सूर्यके समान कांतिवाली देवीने उनको दर्शन दिया ॥ १ ॥ और वह प्रसन्न मुख राजासे बोली जैसे माता अपने पुत्रसे कहता है उनकी दशनकान्तिसे दिशायें प्रदीप्त होगई ॥ २ ॥ सावित्री बोली हे राजन्! जो तुम्हारे मनवांछितहै मैं

तत्त्वत्स्मरणमात्रेणभस्मीभूतंभविष्यति ॥ इत्युक्त्वाजगतांधातातस्थौतत्रचसंसदि ॥८५॥ सावित्रीब्रह्मणासार्धंब्रह्मलोकंजगामसा ॥ अनेनस्तवराजेनसंस्तूयाऽश्वपतिर्नृपः ॥८६॥ ददर्शतांचसावित्रींवरंप्रापमनोगतम् ॥ स्तवराजमिमंपुण्यंसंध्यांकृत्वाचयःपठेम्॥८७॥पाठेचतुर्णांवेदानांयत्फलंलभतेचतत्॥ ॥८८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ स्तुत्वाऽनेनसोऽश्वपतिःसंपूज्यविधिपूर्वकम् ॥ ददर्शतत्रतांदेवींसहस्राकसमप्रभाम् ॥ १ ॥ उवाचसाचराजानंप्रसन्नासस्मितासती ॥ यथामातास्वपुत्रंचद्योतयंतीदिशस्त्विषा ॥ २ ॥ सावित्र्युवाच ॥ जानाम्यहंमहाराजयत्तेमनसिवांछितम् ॥ वांछितंतवपत्न्याश्चसर्वदास्यामिनिश्चितम् ॥ ३ ॥ साध्वीकन्याभिलाषंचकरोतितवकामिनी ॥ त्वंप्रार्थयसिपुत्रंचभविष्यतिक्रमेणच ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वासातदादेवीब्रह्मलोकंजगामह ॥ राजाजगामस्वगृहंतत्कन्याऽऽदौबभूवह ॥ ५ ॥ आराधनाच्चसावित्र्याबभूवकमलापरा ॥ सावित्रीतिचतन्नामचकाराऽश्वपतिर्नृपः ॥ ६ ॥ कालेनसावर्धमानाबभूवचदिनेदिने ॥ रूपयौवनसंपन्नाशुक्लेचंद्रकलायथा ॥ ७ ॥ सावरंवरयामासद्युमत्सेनात्मजंसदा ॥ सत्यवंतंसत्यशीलंनानागुणसमन्वितम्॥८॥राजातस्मैददौतांचरत्नभूषणभूषिताम् ॥ सोऽपिसार्धंकौतुकेनतांगृहीत्वागृहंययौ॥॥९॥

उसको जान्ती हूं जो तुम्हारी पत्नीको वांछित है वह मैं तुमको देती हूं॥ ३ ॥तुम्हारी साध्वी स्त्री कन्याकी अभिलार्षाहै और तुम पुत्रकी इच्छा करते हो तोभी क्रमसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ ऐसा कहकर वह देवी ब्रह्मलोकको गई राजा अपने घर गये उनके पहले कन्या हुई ॥५॥ सावित्रीके आराधनसे वह मानो दूसरी कमलाही हुई अश्वपतिने उसका नाम 'सावित्री' रक्खा ॥६॥ फिर वह समयानुसार दिन २ बढने लगी, वह शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके समान बढती हुई रूपयौवन सम्पन्न हुई ॥ ७ ॥ तब उसने द्युमत्सेनके पुत्रको 'वरणकिया, जो सत्यवान् सत्यशील अनेकगुणसम्पन्न था ॥ ८ ॥ राजाने अपनी उस सब भूषणोंसे भूषित कन्याको द्युमत्सेनको दिया वह भी

उसको कौतुकसे लेकर वरगया ॥ ९ ॥ वह सत्यवान् सत्यविक्रमी संवत्सर बीचनेमें पिताकी आज्ञासे वनमें फल और काष्ठ लेनेगया ॥ १०॥ दैवयोगसे उस दिन सावित्रीभी सत्यवान्के संग गई वहां वृक्षसे निपतित होनेसे सत्यवानका शरीर छूटगया ॥ ११ ॥ यमराज उस पुरुषको अंगुष्ठ प्रमाणका शरीरसे लेकर चले पतिव्रताधर्मके प्रभावसे सावित्रीने यमराजको देखा और उनके पीछे २ चली ॥ १२ ॥ संयमनीपति यमराज इसप्रकार उस धर्मशीलाको देखकर साधुओंमें प्रवर महानुभावतासे कहने लगे ॥ १३ ॥ अहो सावित्री ! मानुषीशरीरसे तुम कहाँ जातीहो यदि जाना चाहती हो तो यह देह त्यागनकर चलो ॥ १४ ॥ पांचभौतिक शरीरसे कोई मनुष्य हमारे यहां जानेको समर्थ नहीं है. कारण कि, पांचभौतिक देह नश्वर है ॥ १५ ॥ तुम्हारे स्वामिकी आयु पूरी होगई अपने कर्मफल भोगनेको सत्यवान् मेरे लोकको

सचसंवत्सरेऽतीतिसत्यवान्सत्यविक्रमः ॥ जगामफलकाष्ठार्थंप्रहर्षेपितुराज्ञया ॥ १० ॥ जगामसाध्वीतत्पश्चात्सावित्रीदैवयोगतः ॥ निपत्यवृक्षाद्दैवेनप्राणांस्तत्याजसत्यवान् ॥ ११ ॥ यमस्तंपुरुषंदृष्ट्वाबद्ध्वांगुष्ठसमंमुने ॥ गृहीत्वागमनंचक्रेतत्पश्चात्प्रययौसती ॥ १२ ॥ पश्चात्तांसुदतींदृष्ट्वायमःसंयमनीपतिः ॥ उवाचमधुरंसाध्वींसाधूनांप्रवरोमहान् ॥ १३ ॥ धर्मराजउवाच ॥ अहोक्वयासिसावित्रिगृहीत्वामानुषींतनुम् ॥ यदियास्यसिकांतेनसार्धंदेहंतदात्यज ॥१४॥ गंतुंमर्त्योनशक्नोतिगृहीत्वापांचभौतिकम् ॥ देहंचममलोकंचनश्वरंनश्वरःसदा ॥१५॥ भर्तुस्तेपूर्णकालोवैबभूवभारतेसति॥स्वकर्मफलभोगार्थंसत्यवान्यातिमद्गृहम्॥१६॥कर्मणाजायतेजंतुःकर्मणैवप्रलीयते ॥ सुखंदुःखंभयंशोकःकर्मणैवप्रणीयते॥१७॥कर्मणेंद्रोभवेज्जीवोब्रह्मपुत्रःस्वकर्मणा ॥ स्वकर्मणाहरेर्दासोजन्मादिरहितोभवेत् ॥१८॥ स्वकर्मणासर्वसिद्धिममरत्वंलभेद्ध्रुवम् ॥ लभेत्स्वकर्मणाविष्णोःसालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ १९ ॥ सुरत्वचमनुत्वंचराजेंद्रत्वंलभेन्नरः ॥ कर्मणाचशिवत्वंचगणेशत्वंतथैवच ॥ २० ॥ कर्मणाचमुनींद्रत्वंतपस्वित्वंस्वकर्मणा ॥ स्वकर्मणाक्षत्रियत्वंवैश्यत्वंचस्वकर्मणाम् ॥२१॥ कर्मणैवचम्लेच्छत्वंलभतेनात्रसंशयः ॥ स्वकर्मणाजंगमत्वंशैलत्वंचस्वकर्मणा ॥ २२ ॥

जाता है ॥१६॥ कर्मसेही यह प्राणी प्रगट होकर कर्मसेही लय होता है सुख दुःख भय शोक कर्मसेही प्राप्त होता है ॥१७॥ कर्मसेही यह जीव इन्द्र कर्मसेही ब्रह्मपुत्र होता है अपने कर्मसेही हरिका दास और जन्मादि रहित होता है ॥१८॥ अपने कर्मसेही सब सिद्धि और अमरत्व प्राप्त होता है और कर्मसेही विष्णुके सालोक्यादि चारलोक प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ देवत्व मनुष्यत्व राजेन्द्रत्व शिवत्व गणेशत्व कर्मसेही मनुष्यको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ मुनीन्द्रपन तपस्वीपन, क्षत्रिय तथा वैश्यत्व सब कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ इसमें सन्देह नहीं. कर्मसेही म्लेच्छत्व होता है जंगमपन और शैलत्वभी कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

कर्मसे राक्षसत्व किन्नरत्व प्राप्त होता है कर्मसेही आधिपत्य और वृक्षत्व प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ कर्मसेही पशुत्व और वनजीवी होता है कर्मसेही क्षुद्र जन्तुपन कृमिपन प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ दैत्यदानव असुरत्व सब अपने कर्मसे प्राप्त होतेहैं सावित्रीसे यह कहकर यमराज मौन हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीनारायण बोले पतिव्रता सावित्री यमके यह वचन सुन परमभक्तिसे यमको प्रसन्न करती हुई बोली ॥ १ ॥ सावित्री बोली कर्मका स्वरूप क्या है कैसे वह होता है उसका हेतु क्या है देही और देह क्या है तथा इसमें कर्म करनेवाला कौन है ॥ २ ॥ ज्ञान, बुद्धि, शरीरियोंका प्राण इन्द्रिय यह क्या हैं इनके लक्षण और देवता क्या हैं ॥ ३ ॥ भोक्ता और इसको भुगानेवाला कौन है भोग और इसकी निष्कृति क्या है, जीव और परमात्मा क्या है? इसकी व्याख्या

कर्मणाराक्षसत्वंचकिन्नरत्वंस्वकर्मणा ॥ कर्मणैवाधिपत्यंचवृक्षत्वंचस्वकर्मणा ॥ २३ ॥ कर्मणैवपशुत्वंचवनजीवीस्वकर्मणा ॥ कर्मणाक्षुद्रजंतुत्वंकृमित्वंचस्वकर्मणा ॥ २४ ॥ दैतेयत्वंदानवत्वमसुरत्वंस्वकर्मणा ॥ इत्येतदुक्त्वासावित्रींविरराामसवैयमः ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ यमस्यवचनंश्रुत्वासावित्रीचपतिव्रता ॥ तुष्टावपरयाभक्त्यातमुवाचमनस्विनी ॥ १ ॥ सावित्र्युवाच ॥ किंकर्मतद्भवेत्केनकोवातद्धेतुरेवच ॥ कोवादेहीचदेहःकःकोवाऽत्रकर्मकारकः ॥ २ ॥ किंवाज्ञानंचबुद्धिःकाकोवाप्राणःशरीरिणाम् ॥ कानींद्रियाणिकिंतेषांलक्षणंदेवताश्चकाः ॥ ३ ॥ भोक्ताभोजयिताकोवाकोवाभोगश्चनिष्कृतिः ॥ कोजीवःपरमात्माकस्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥ धर्मउवाच ॥ वेदप्रणिहितोधर्मःकर्मयन्मंगलंपरम् ॥ अवैदिकंतुयत्कर्मतदेवाशुभमेवच ॥ ५ ॥ अहैतुकींदेवसेवासंकल्परहितासती ॥ कर्मनिर्मूलरूपाचसाएवपरभक्तिदा ॥ ६ ॥ कोवाकर्मफलंभुंक्तेकोवानिर्लिप्तएवच ॥ ब्रह्मभक्तोयोनरश्चसचमुक्तःश्रुतःश्रुतौ ॥ ७ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ॥ भक्तिश्चद्विविधासाध्विश्रुत्युक्तासर्वसंमता ॥ ८ ॥ निर्वाणपददात्रीचहरिरूपप्रदानृणाम् ॥ हरिरूपस्वरूपांचभक्तिंवांछंतिवैष्णवाः ॥ ९ ॥ अन्येनिर्वाणमिच्छंतियोगिनोब्रह्मवित्तमाः ॥ कर्मणोबीजरूपश्चसततंतत्फलप्रदः ॥ १० ॥

आप हमसे कीजिये ॥ ४ ॥ धर्मने कहा वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है वही धर्म है, उसका करनाही परममंगल है और जो अवैदिक कर्म है वही अशुभ और नरकका देनेवाला है ॥ ५ ॥ जो देवसेवा विनाकारण संकल्परहित होकर कीजाती है वही सेवा कर्मकी निर्मूल करनेवाली परमभक्तिदायका है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य ब्रह्मभक्त है वही श्रुतियोंमें मुक्तकहागया है उसको कौन कर्मफलका भोक्ता और कौन निर्लिप्त है यह कुछ नहीं है ॥ ७ ॥ वह जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयसे वर्जित होता है वेदमें कही भक्ति दोप्रकारकी है ॥ ८ ॥ एक निर्वाणपद देनेवाली निर्गुण भक्ति है दूसरी सगुण भक्ति हरिरूप देनेवाली है हरिरूपस्वरूप भक्तिकी

वैष्णव इच्छाकरते हैं ॥ ९ ॥ और जो ब्रह्मवियोगी हैं वे निर्वाणपदकी इच्छा करते हैं अब कर्मका उपादानकारण कहते हैं जो परमात्मा है वही कर्मरूप बीजका फलदेनेवाला है ॥ १० ॥ कर्मरूप भगवान् हैं, जो परात्मा है और पराप्रकृति उसकाहेतु है अर्थात् सृष्टिकी सृष्टि स्थिति संहार कर्मवाले भगवान् हैं मूल प्रकृति इसका उपादान कारण है विवृत तथा निमित्त कारण है उसमें अविद्या उपादान अर्थात् अविद्यामें चित्प्रतिबिम्ब निमित्त कारण ब्रह्म विवृत कारण है अविद्यासे काम और कामसे कर्म होताहै इससे निमित्तकारण अदृष्टरूप विना कहे भी अर्थसे जानलेना. देह नश्वररूप है ॥ ११ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज यह ब्रह्माकी सृष्टिरूप विधिमें सूत्ररूप हैं॥ १२ ॥ जो कर्मकर्ता जीव है वही देही है. वही भोक्ता है अन्तर्यामी आत्मा उसका भुगानेवाला है विभवके भेद सुख दुःख साक्षात्कार पर्यन्त भोग है आत्मामें अवस्था न होनेको निष्कृति मुक्ति कहते हैं॥ १३ ॥ सत् आत्मा और असत् माया इनके भेदका बीजरूप कारण ज्ञान है अर्थात् अपरोक्ष आत्मवस्तु विषय ब्रह्मविद्या ज्ञान है वह अनेकविध घटपटादि विषय तथा विषयोंके जो परस्पर विभाग हैं उनका भेदक सब वासनाओंका बीज है ॥ १४ ॥ सबकी विवेचना करने

कर्मरूपश्चभगवान्परात्माप्रकृतिःपरा ॥ सोऽपितद्धेतुरूपश्चदेहोनश्वरएवच ॥ ११ ॥ पृथिवीवायुराकाशोजलंतेजस्तथैवच ॥ एतानिसूत्ररूपाणिसृष्टिरूपविधौसतः ॥ १२ ॥ कर्मकर्ताचदेहीचआत्माभोजयितासदा ॥ भोगोविभवभेदश्चनिष्कृतिर्मुक्तिरेवच ॥ १३ ॥ सदसद्भेदबीजंचज्ञानंनानाविधंभवेत् ॥ विषयाणांविभागानांभेदिबीजंचकीर्तितम् ॥ १४ ॥ बुद्धिर्विवेचनासाचज्ञानबीजंश्रुतौश्रुतम् ॥ वायुभेदाश्चप्राणाश्चबलरूपाश्चदेहिनाम् ॥ १५ ॥ इंद्रियाणांचप्रवरमीश्वरांशमनूहकम् ॥ प्रेरकंकर्मणां चैवदुर्निवार्यंचदेहिनाम् ॥ १६ ॥ अनिरूप्यमदृश्यंचज्ञानभेदोमनःस्मृतम् ॥ लोचनंश्रवणंघ्राणंत्वक्चरसनमिंद्रियम्॥ १७॥अंगिनामंगरूपंचप्रेरकंसर्वकर्मणाम् ॥ रिपुरूपंमित्ररूपंसुखरूपंचदुःखदम् ॥ १८ ॥ सूर्योवायुश्चपृथिवीब्रह्माद्यादेवताःस्मृताः ॥ प्राणदेहादिभृद्योहिसजीवःपरिकीर्तितः ॥ १९ ॥ परमंव्यापकंब्रह्मनिर्गुणःप्रकृतेःपरः ॥ कारणंकारणानांचपरमात्मासउच्यते ॥ २० ॥

वाली बुद्धि ज्ञानका बीज है. ऐसा श्रुतिमें कहागया है और वायुके भेद पांच प्राण देहधारियोंको बलरूप हैं ॥ १५ ॥ मनका रूप कहते हैं इन्द्रियोंमें श्रेष्ठ ईश्वरका अंश अर्थात् ईश्वर परमात्माका बिम्बभूत संशयात्मक कर्मों अर्थात् इन्द्रियविकारका प्रेरण करनेवाला देहधारियोंको स्वाधीन करनेमें अशक्य ॥ १६ ॥ निरूपण करनेमें अशक्य, दीखनेमें न आनेवाला, बुद्धिके भेदवाला मन है उसको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं. लोचन, श्रवण, नासिका, त्वचा, रसना इन्द्रियोंका॥ १७॥तथा अंगियोंका अवयवरूप सब कर्मेंद्रियव्यापारोंका प्रेरक है रिपुरूप मित्ररूप सुखरूप तथा दुःखदायी है इन्द्रि योंमें आसक्त होनेसे रिपुरूप दुःखदाई होता है सद्विषयोंमें आसक्त होनेसे मित्ररूप सुखदाई है॥ १८ ॥ इन्द्रियोंके देवता सूर्य, वायु, पृथ्वी, ब्रह्मादिक है, विस्तारसे दिशा वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार,अग्नि यह है. जो प्राण देहादिका धारक है वह अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बरूप जीव कहाता है ॥ १९ ॥ परमात्माका स्वरूप कहते हैं, जो परमव्यापक ब्रह्म निर्गुणप्रकृतिसे परे है और कारणोंका भी कारणहै उसको परमात्मा

कहते हैं ॥ २० ॥ हे देवी ! जो तुमने शास्त्रकी बात पूँछी सो तुमसे सब कही यह ज्ञानियोंको ज्ञानरूप है. हे वत्से! अब तुम यथासुख गमन करो ॥ २१॥ सावित्री बोली अपने स्वामीको और ज्ञानके सागर तुमको त्यागकर मैं कहां जाऊं ? जो मैं तुमसे प्रश्नकरूं सो आप उत्तर दीजिये ॥ २२ ॥ हे पिता! किस २ कर्मसे यह प्राणी किस २ योनियोंमें गमनकरता है किसकर्मसे स्वर्ग और किसकर्मसे नरक होता है ॥ २३ ॥ किसकर्मसे मुक्ति और किसकर्मसे गुरुमें भक्ति होती है किसकर्मसे योगी और किसकर्मसे रोगी होता है ॥ २४ ॥ किसकर्मसे दीर्घजीवी और किसकर्मसे अल्पायु होता है किसकर्मसे दुःखी और सुखी होता है ॥ २५ ॥ अंगहीन, काणा,

इत्येवंकथितंसर्वंत्वयापृष्टंयथागमम् ॥ ज्ञानिनांज्ञानरूपंचगच्छवत्सेयथासुखम् ॥२१॥ सावित्र्युवाच ॥ त्यक्त्वाक्रयामिकांतंवात्वांवाज्ञानार्णवंध्रुवम् ॥ यद्यत्करोमिप्रश्नंचतद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २२ ॥ कांकांयोनिंयातिजीवःकर्मणाकेनवापुनः ॥ केनवाकर्मणास्वर्गंकेनवानरकंपितः ॥ २३ ॥ केनवाकर्मणामुक्तिःकेनभक्तिर्भवेद्गुरौ ॥ केनवाकर्मणायोगीरोगीवाकेनकर्मणा ॥ २४ ॥ केनवादीर्घजीवीचकेनाल्पायुश्चकर्मणा ॥ केनवाकर्मणादुःखीसुखीवा केनकर्मणा ॥ २५ ॥ अंगहीनश्चकाणश्चबधिरःकेनकर्मणा ॥ अंधोवापंगुरपिवाप्रमत्तःकेनकर्मणा ॥ २६ ॥ क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरःकेनवाकर्मणाभवेत् ॥ केनसिद्धिमवाप्नोतिसालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ २७ ॥ केनवाब्राह्मणत्वंचतपस्वित्वंचकेनवा ॥ स्वर्गभोगादिकंकेनवैकुंठंकेनकर्मणा ॥ २८ ॥ गोलोकंकेनवाब्रह्मन्सर्वोत्कृष्टोनिरामयः ॥ नरकोवाकतिविधःकिंसंख्योनामकिंचवा ॥ २९ ॥ कोवाकंनरकंयातिकियंतंतेषुतिष्ठति ॥ पापिनांकर्मणा केनकोवाव्याधिःप्रजायते ॥३०॥ यद्यत्प्रियंमयापृष्टंतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादेसावित्र्युपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ सावित्रीवचनंश्रुत्वाजगामविस्मयंयमः ॥ प्रहस्यवक्तुमारेभेकर्मपाकंतुजीविनाम् ॥ १ ॥

बहरा, अंधा, पंगु, प्रमत्त किसकर्मसे होता है ॥ २६ ॥ क्षिप्त, अतिलोभी, चोर, किसकर्मसे होता है और सिद्धि सालोक्यादिचतुष्टय किसकर्मसे प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ ब्राह्मणत्व तपस्वित्व स्वर्गभोगादि वैकुण्ठ किसकर्मसे प्राप्त होता है॥ २८॥ सबसे उत्कृष्ट निरामय गोलोक किसकर्मसे प्राप्त होता है नरक कितने हैं उनकी संख्या और नाम कहिये॥ २९॥ कौन नरकमें जाना कितनेकाल वहां रहना होता है पापियोंकी किसकर्मसे क्या व्याधि होती है॥ ३०॥ जो मैं ने आपसे पूँछा सो मुझसे कहिये ३१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीनारायण बोले सावित्रीके वचन सुन यमराज अति विस्मित हुए और हँसकर

जीवोंका कर्मविपाक कहनेलगे ॥ १ ॥ धर्म बोले हे वत्से! अवस्थामें तो तुम द्वादश वर्षीया कन्या हो ओर ज्ञान तुम्हारा ज्ञानी योगियोंसे भी अधिक है॥ २ ॥ सावित्रीके वरदानसे तुम सावित्रीकी कला हो राजाने तपसे तुमको प्राप्त किया है ॥ ३॥ जैसे लक्ष्मी भगवान्‌की गोदमें, भवानी शिवकी गोदमें, अदिति, कश्यप, अहिल्या, गौतमके समीप ॥ ४ ॥ शची महेन्द्रसे, रोहिणी चन्द्रमासे, रति कामसे, स्वाहा अग्निसे॥ ५॥ स्वधा पितरोंमें, संज्ञा दिवाकरमें, वरुणानी वरुणमें, दक्षिणा यज्ञमें॥ ६ ॥ पृथ्वी वराहमें, देवसेना कार्तिकेयमें अनुरक्त हैं अर्थात् जैसे देवताओंकी यह स्त्रियें अखंडित सौभाग्यवाली हैं इसीप्रकार तुम सत्यवान्‌में अखण्ड सौभाग्यवाली हो ॥ ७ ॥ यह मैं ने तुझको वर दिया है. हे महाभागे! और भी जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग मैं तुझको दूंगा ॥८॥ सावित्री बोली हे महाभाग ! सत्यव्रतके औरससे मेरे सौ पुत्रहों यही

धर्मउवाच ॥ कन्याद्वादशवर्षीयावत्सेत्वंवयसाऽधुना ॥ ज्ञानंतेपूर्वविदुषांज्ञानिनांयोगिनांपरम् ॥ २ ॥ सावित्रीवरदानेनत्वंसावित्रीकलासती ॥ प्राप्ता पुराभूभृताचतपसातत्समासुते ॥ ३ ॥ यथाश्रीःश्रीपतेःक्रोडेभवानीचभवोरसि ॥ यथाऽदितिःकश्यपेचयथाऽहल्याचगौतमे ॥ ४ ॥ यथाशचीमहेंद्रे चयथाचंद्रेचरोहिणी ॥ यथारतिःकामदेवेयथास्वाहाहुताशने ॥ ५ ॥ यथास्वधाचपितृषुयथासंज्ञादिवाकरे ॥ वरुणानीचवरुणेयज्ञेचदक्षिणायथा ॥ ६ ॥ यथावराहेपृथिवीदेवसेनाचकार्तिके ॥ सौभाग्यासुप्रियात्वंचतथासत्यवतःप्रिये ॥ ७ ॥ अयंतुभ्यंवरोदत्तोप्यपरंचयथेप्सितम् ॥ वृणुदेविमहाभागेददामिसकलेप्सितम् ॥ ८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ सत्यव्रतऔरसानांपुत्राणांशतकंमम ॥ भविष्यतिमहाभागवरमेतन्मदीप्सितम् ॥ ९ ॥ मत्पितुःपुत्रशतकंश्वशुरस्यचचक्षुषी ॥ राज्यलाभोभवत्वेवंवरमेतन्मदीप्सितम् ॥ १० ॥ अंतेसत्यवतासार्धंयास्यामिहरिमंदिरम् ॥ समतीतेलक्षवर्षेदेहींदंमेजगत्प्रभो ॥ ११ ॥ जीवकर्मविपाकंचश्रोतुंकौतूहलंमम ॥ विश्वनिस्तारबीजंचतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ १२ ॥ धर्मराजउवाच ॥ भविष्यतिमहासाध्विसर्वंमानसिकंतव ॥ जीवकर्मविपाकंचकथयामिनिशामय ॥ १३ ॥ शुभानामशुभानांचकर्मणांजन्मभारते ॥ पुण्यक्षेत्रेचनाऽन्यत्रसर्वंचभुंजतेजनाः ॥ १४ ॥

वर मुझको दीजिये ॥ ९ ॥ मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों श्वशुर नेत्रविहीन हैं उनके नेत्र होजांय और उनका राज्य उनको प्राप्तहोजाय यही वर मुझको दो ॥ १० ॥ अन्तमें सत्यवान्‌के सहित हरिमंदिरमें मेरा गमन हो लक्षवर्षके उपरान्त सत्यवान् और मैं इसलोकसे गमन करैं ॥ ११ ॥ तथा जीवोंके कर्मविपाक सुननेका मुझे परम कौतूहल है वही विश्वके निस्तारका बीज है सो आप मुझसे कहिये ॥ १२ ॥ धर्म राज बोले हे महासाध्वि! तेरे सब मनोरथ पूर्णहोंगे जीवोंका कर्मविपाक कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ इस पुण्यक्षेत्रभारतवर्षमें शुभाशुभकर्मोंसेही जन्म होता है दूसरे स्थानोंमें केवल पुण्य वा पापही भोगा जाता है ॥ १४ ॥

सुर,दैत्य,दानव,गंधर्व राक्षसादि यह सब नर कर्मके करनेवाले हैं पशवादि सब जीव कर्मकारी नहीं है॥ १५॥ मुख्यजीव कर्माधिकारी मनुष्यही सब योनियोंमें कर्म भोगते हैं स्वर्ग नरकमें शुभ अशुभ सर्वत्र है॥ १६॥ विशेषकर यह जीव सब योनियों में भ्रमता है और पूर्व अर्जित कर्मके अनुसार अशुभ भोगताहै॥ १७॥ शुभकर्मसे स्वर्गलोकादिमें गमन करता है अशुभकर्मोंसे नरकमें भ्रमण करना होता है ॥ १८ ॥ कर्मके निर्मूल करनेका साधन भक्ति है वह दो प्रकारकीहै एक निर्वाणरूप निर्गुण भक्ति और दूसरी मायाविशिष्ट ब्रह्मरूपिणी है ॥ १९ ॥ बुरेकर्म करनेसे रोगी और अच्छेकर्मसे अरोगी होता है दीर्घजीवी सुखी शुभकर्मसे, अल्पायु और दुःखी दुष्टकर्मसे होता है ॥ २० ॥ अंधे और हीनांग खोटेकर्मोंसे होते हैं सर्वोत्कृष्ट कर्मोंसे सिद्धि आदिको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ हे देवी ! यह आपसे सामान्यसे कहा अब

सुरादैत्यादानवाश्चगंधर्वाराक्षसादयः ॥ नराश्चकर्मजनकानसर्वेजीविनःसति ॥ १५ ॥ विशिष्टजीविनःकर्मभुंजतेसर्वयोनिषु ॥ शुभाशुभंचसर्वत्रस्वर्गेषु नरकेषुच ॥ १६ ॥ विशेषतोजीविनश्चभ्रमंतेसर्वयोनिषु ॥ शुभाशुभंभुंजतेचकर्मपूर्वार्जितंपरम् ॥ १७ ॥ शुभेनकर्मणायातिस्वर्लोकादिकमेवच ॥ कर्मणाचाऽशुभेनैवभ्रमंतिनरकेषुच ॥ १८ ॥ कर्मनिर्मूलनेभक्तिःसाचोक्ताद्विविधासति ॥ निर्वाणरूपाभक्तिश्चब्रह्मणःप्रकृतेरिह ॥ १९ ॥ रोगीकुकर्मणाजीवश्चाऽरोगीशुभकर्मणा ॥ दीर्घजीवीचक्षीणायुःसुखीदुःखीचकर्मणा ॥ २० ॥ अंधादयश्चांगहीनाःकर्मणाकुत्सितेनच ॥ सिद्ध्यादिकमवाप्नोतिसर्वोत्कृष्टेनकर्मणा ॥ २१ ॥ सामान्यंकथितंदेविविशेषंशृणुसुंदरि ॥ सुदुर्लभंसुगोप्यंचपुराणेषुस्मृतिष्वपि ॥ २२ ॥ दुर्लभामानुषीजातिःसर्वजातिषुभारते ॥ सर्वेभ्योब्राह्मणःश्रेष्ठःप्रशस्तःसर्वमर्मसु ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठोद्विजश्चैवगरीयान्भारतेसति ॥ निष्कामश्चसकामश्चब्राह्मणोद्विविधःसति ॥ २४ ॥ सकामाच्चप्रधानश्चनिष्कामोभक्तएवच ॥ कर्मभोगीसकामश्चनिष्कामोनिरुपद्रवः ॥ २५ ॥ सयातिदेहंत्यक्त्वाचपदंयत्तन्निरामयम् ॥ पुनरागमनंनास्तितेषांनिष्कामिनांसति ॥ २६ ॥ सेवंतेद्विभुजंकृष्णंपरमात्मानमीश्वरम् ॥ गोलोकंप्रतितेभक्तादिव्यरूपविधारिणः ॥ २७ ॥ सकामिनोवैष्णवाश्चगत्वावैकुंठमेवच ॥ भारतंपुनरायांतितेषांजन्मद्विजातिषु ॥ २८ ॥

विशेषरूपसे सुनो यह पुराणस्मृतियोंमें दुर्लभ है इसको भलीप्रकार गुप्त रखना चाहिये ॥ २२ ॥ भारतकी सब जातियोंमें मानुषीजाती बडी दुर्लभ है इन सबमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और वह सबकर्म में श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥ भारतमें ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है निष्काम सकामभेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके हैं ॥ २४ ॥ सकाम ब्राह्मण लोकप्रधान हैं और निष्काम भक्त हैं कर्मभोगी सकाम हैं और निष्काम उपद्रवरहित हैं ॥ २५ ॥ वह निष्काम देहत्यागकर निरामय पदको गमन करते हैं उन निष्कामियोंका फिर आगमन नहीं होता ॥ २६ ॥ जो परमात्मा ईश्वर द्विभुज कृष्णका सेवन करते हैं वह दिव्यरूपधारी भक्त गोलोकमें निवास करते हैं ॥ २७ ॥ सकामी वैष्णव

वैकुण्ठमें जाकर फिर भारतमें आय द्विजातियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २८ ॥ फिर वे कालपाय क्रमसे निष्कामी होते हैं मैं उनकी निर्मल भक्ति प्रदान करता हूं ॥ २९ ॥ अवैष्णव ब्राह्मण सब जन्ममें सकाम होते हैं विष्णुभक्तिरहित होनेसे उनकी बुद्धि निर्मल नहीं होती ॥ ३० ॥ जो ब्राह्मण तीर्थमें आश्रित और तपस्यामें निरत हैं वह ब्रह्मलोकतक जाकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३१ ॥ जो अपने धर्ममें निरत हुए तीर्थ वा अन्यत्र कहीं निवास करते हैं वे सत्यलोकमें जाकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३२ ॥ स्वधर्ममें निरतब्राह्मण सूर्यभक्त होनेसे सूर्यलोकमें गमनकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३३ ॥ मूलप्रकृतिके भक्त निष्काम ब्रह्मचारी महात्मा मणिद्वीपमें जाकर फिर नहीं आते हैं ॥ ३४ ॥ अपने धर्ममें निरत शैव, शाक्त गाणपत्य, शिवादिलोकमें गमनकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण

कालेनतेचनिष्कामाभवंत्येवक्रमेणच ॥ भक्तिंचनिर्मलांतेभ्योदास्यामिनिश्चितंपुनः ॥ २९ ॥ ब्राह्मणावैष्णवाश्चैवसकामाःसर्वजन्मसु ॥ नतेषांनिर्मलाबुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥ ३० ॥ तीर्थाश्रिताद्विजायेचतपस्यानिरताःसति ॥ तेयांतिब्रह्मलोकंचपुनरायांतिभारते ॥ ३१ ॥ स्वधर्मनिरतायेचतीर्थान्यत्रनिवासिनः ॥ व्रजंतितेसत्यलोकंपुनरायांतिभारते ॥ ३२ ॥ स्वधर्मनिरताविप्राःसूर्यभक्ताश्चभारते ॥ व्रजंतितेसूर्यलोकंपुनरायांतिभारते ॥ ३३ ॥ मूलप्रकृतिभक्तायेनिष्कामाधर्मचारिणः ॥ मणिद्वीपंप्रयांत्येवपुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३४ ॥ स्वधर्मनिरताभक्ताःशैवाःशाक्ताश्चगाणपाः ॥ तेयांतिशिवलोकंचपुनरायांतिभारते ॥ ३५ ॥ येविप्राअन्यदेवेज्याःस्वधर्मनिरताःसति ॥ तेयांतिसर्वलोकंचपुनरायांतिभारते ॥ ३६ ॥ हरिभक्ताश्चनिष्कामाःस्वधर्मनिरताद्विजाः ॥ तेचयांतिहरेर्लोकंक्रमाद्भक्तिवलाद्दहो ॥३७॥ स्वधर्मरहिताविप्रादेवान्यसेवनाःसदा ॥ भ्रष्टाचाराश्चकामाश्चतेयांतिनरकंध्रुवम् ॥ ३८॥ स्वधर्मनिरताएववर्णाश्चत्वारएवच ॥ भवंत्यवशुभस्यैवकर्मणःफलभोगिनः ॥ ३९ ॥ स्वकर्मरहितायेचनरकंयांतितेध्रुवम् ॥ भारतेनभवंत्येवकर्मणःफलभोगिनः ॥ ४० ॥ स्वधर्मनिरताएववर्णाश्चत्वारएवच ॥ स्वधर्मनिरताविप्राःस्वधर्मनिरतायच ॥ ४१ ॥ कन्यांददतिविप्रायचंद्रलोकंप्रयांतिते ॥ वसंतितत्रतेसाध्वियावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४२ ॥

अपने धर्ममें निरतहुए अन्यदेवताओंका यजन करते हैं वे सबलोकोंमें गमनकरते फिर भारतमें आते हैं ॥ ३६ ॥ जो हरिभक्त निष्काम ब्राह्मण स्वधर्ममें तत्पर भक्त हैं वे अपनी भक्तिके बलसे हरिलोकमें गमन करते हैं ॥ ३७ ॥ अपने धर्मसे रहित ब्राह्मण देवताओंके त्याग भूत प्रेतादिका सेवनकरते हैं वे भ्रष्टाचार अवश्य नरकमें जाते हैं ॥ ३८ ॥ चारोंवर्ण अपने धर्ममें तत्पर हुए शुभकर्मके फलभोगी होते हैं ॥ ३९ ॥ जो अपने कर्मसे रहित हैं वेही नरकमें जाते हैं वह अपने कर्मफलभोगनेकेकारण भारतवर्षमें नहींहोते ॥ ४० ॥ चारोंवर्ण अपने धर्ममें निरतहुए शुभफल पाते हैं अपने धर्ममें निरत ब्राह्मण अपने धर्ममें निरत ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणको कन्या देताहै वह चन्द्रलोकमें गमन

करता है.हेसाध्वि ! वे चौदह इन्द्र भोग कालतक इन्द्रलोकमें निवास करते हैं॥ ४२॥ अलंकृत कन्यादानसे दूना फल मिलता है. सकामा उस लोकको जाते हैं निष्कामा नहीं ॥ ४३ ॥ वे फलसंघातसे रहित विष्णुलोकको जाते हैं. घी, चांदी, सोना, वस्त्र, दूध, फल, जल॥ ४४॥ जो ब्राह्मणोंको देते हैं वे चन्द्रलोकमें गमन करते हैं वे एकमन्वन्तरपर्यन्त उस लोकमें निवास करते हैं ॥ ४५॥ इसप्रकार वे प्राणी वहां बहुत कालपर्यन्त निवास करते हैं जो सुवर्ण और ताम्रसे अलंकृत कर गोदान करते हैं ॥ ४६ ॥ वे पवित्र ब्राह्मणको देनेवाले सूर्य लोकमें निवास करते हैं वे उन लोकोंमें दशसहस्र वर्षतक निवास करते हैं ॥ ४७ ॥ वे उन लोकोंमें चिरकाल तक निरामय हो निवास करते हैं अनेक धन भूमि जो ब्राह्मणोंको देते हैं ॥ ४८ ॥ वह मनोहर श्वेतद्वीप और विष्णुलोकमें गमन करते हैं वह चन्द्रदिवाकरको स्थिति

सालंकृतायादानेनद्विगुणंफलमुच्यते ॥ सकामायांतितल्लोकंननिष्कामाश्वसाधवः ॥ ४३॥ तेप्रयांतिविष्णुलोकंफलसंघातवर्जिताः ॥ गव्यंचरजतंस्वर्णं वस्त्रंसर्पिःफलंजलम् ॥ ४४ ॥ येददत्येवविप्रेभ्यश्चंद्रलोकंप्रयांतिते ॥ वसंतितेचतल्लोकेयावन्मन्वंतरंसति ॥ ४५ ॥ सुचिरात्सुचिरंवासंकुर्वंतितेनतेज नाः ॥ येददतिसुवर्णाश्वगाश्वताम्रादिकंसति ॥ ४६ ॥ तेयांतिसूर्यलोकंचशुचयेब्राह्मणायच ॥ वसंतितेतत्रलोकेवर्षाणामयुतंसति ॥ ४७ ॥ विपुलेसुचि रंवासंकुर्वंतिचनिरामयाः ॥ ददातिभूमिंविप्रेभ्योधनानिविपुलानिच ॥ ४८ ॥ सयातिविष्णुलोकंचश्वेतद्वीपंमनोहरम् ॥ तत्रैवनिवसत्येवयावच्चंद्रदिवाक रौ ॥ ४९ ॥ विपुलेविपुलंवासंकरोतिपुण्यवान्मुने ॥ गृहंददतिविप्राययेजनाभक्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ तेयांतिविष्णुलोकंचसुचिरंसुखदायकम् ॥ गृहरे णुप्रमाणंचविष्णुलोकेमहत्तमे ॥ ५१ ॥ विपुलेविपुलंवासंकुर्वंतिमानवाःसति ॥ यस्मैयस्मैचदेवाययोददातिगृहंनरः ॥ ५२ ॥ सयातितस्यलोकंचरे णुमानाब्दमेवच ॥ सौधेचतुर्गुणंपुण्यंदेशेशतगुणंफलम् ॥ ५३ ॥ प्रकृष्टेद्विगुणंतस्मादित्याहकमलोद्भवः ॥ योददातितडागंचसर्वपापापनुत्तये ॥५४॥

पर्यन्त वहां रहते हैं ॥ ४९ ॥ और वह विपुल लोकमें बहुत समयतक निवास करते हैं जो मनुष्य भक्तिपूर्वक ब्राह्मणके निमित्त घर देते हैं ॥५०॥ वह सुखदायक विष्णुलोकमें बहुत समयतक रहते हैं उसकी रेणुप्रमाणतक विष्णुलोकमें महाप्रतिष्ठा होती है ॥ ५१ ॥ ऐसा होनेसे मनुष्य विपुललोकमें बहुत काल निवास करते हैं जो मनुष्य जिस जिस देवताके निमित्त घर देता है उस घरकी जितनी रेणु हैं उतने वर्षतक वह उसी देवताके लोकमें निवास करता है राज महलका चौगुना पुण्य और देशका सौगुनापुण्य होता है ॥५२॥५३॥ प्रकृष्ट देशका इससे दूना पुण्य है ऐसा ब्रह्माजीने कहा है जो सब पापनाशके निमित्त सरोवर दान करता है ॥ ५४ ॥

वह उसके रेणुप्रमाण वर्षोंतक जनलोकको जाता है बावडीका इससे दशगुण फल मनुष्यको प्राप्त होता है "चार हाथका एक धनुष चार सहस्र धनुषकी वापी होती है दोसहस्रधनुषका कोश होता है" ॥ ५५ ॥ वापीप्रदानसे भी तडागका फल प्राप्तहोता है जिसकी दीर्घता चारसहस्रधनुष हो ॥ ५६ ॥ उतनीही चौडी वा उससे कुछ न्यून हो तो वह वापी कहाती है यदि पात्रको दीजाय तो कन्यादानका इससे दशगुणा पुण्य है ॥ ५७ ॥ यदी कन्या अलंकारयुक्त हो तो दूना फल देती है जितना फल तडाग खुदानेमें है उतना ही उसके जीर्णोद्धारमें है ॥ ५८ ॥ बावडीकी पंक निकलवानेमें वापीदानका ही फल है जो पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है ॥५९॥ वह दशसहस्रवर्ष तपलोंकमें जाता है. हे सावित्री ! जो सबके निमित्त फूलोंका उद्यान लगाता है देता है

सयातिजनलोकंचरेणुमानाब्दमेवच ॥ वाप्यांफलंदशगुणंप्राप्नोतिमानवःसदा ॥ ५५ ॥ सतुवापीप्रदानेनतडागस्यफलंलभेत् ॥ धनुश्चतुःसहस्रेणदैर्घ्यमानेननिश्चितम् ॥५६ ॥ न्यूनावातावतीप्रस्थेसावापीपरिकीर्तिता ॥ दशवापीसमाकन्यायदिपात्रेप्रदीयते ॥ ५७ ॥ फलंददातिद्विगुणंयदिसाऽलंकृताभवेत् ॥ यत्फलंचतडागेचतदुद्धारेचतत्फलम् ॥५८॥ वाप्याश्चपंकोद्धरणेवापीतुल्यफलंलभेत् ॥ अश्वत्थवृक्षमारोप्यप्रतिष्ठांयःकरोतिच ॥ ५९ ॥ सप्रयातितपोलोकंवर्षाणामयुतंसति ॥ पुष्पोद्यानंयोददातिसावित्रिसर्वभूतये ॥ ६० ॥ सवसेद्ध्रुवलोकंचवर्षाणामयुतंध्रुवम् ॥ योददातिविमानंचविष्णवेभारतेसति ॥ ६१ ॥ विष्णुलोकेवसेत्सोऽपियावन्मन्वंतरंपरम् ॥ चित्रयुक्तेचविपुलेफलंतस्यचतुर्गुणम् ॥ ६२ ॥ तस्यार्धंशिबिकादानेफलमेवलभेद्ध्रुवम् ॥ योददातिभक्तियुक्तोहरयेदोलमंदिरम् ॥ ६३ ॥ विष्णुलोकेवसेत्सोऽपियावन्मन्वंतरंशतम् ॥ राजमार्गंसौधयुक्तंयःकरोतिपतिव्रते ॥ ६४ ॥ वर्षाणामयुतंसोऽपिशक्रलोकेमहीयते ॥ ब्राह्मणेभ्योऽथदेवेभ्योदानेसमफलंलभेत् ॥ ६५ ॥ यद्दिदत्तंचतद्भुंक्तेनदत्तंनोपतिष्ठते ॥ भुक्त्वास्वर्गादिजंसौख्यंपुण्यवाञ्जन्मभारते ॥ ६६ ॥ लभेद्विप्रकुलेष्वेवक्रमेणैवोत्तमादिषु ॥ भारतेपुण्यवान्विप्रोभुक्त्वास्वर्गादिकंफलम् ॥ ६७ ॥

॥ ६० ॥ वह दशसहस्रवर्ष ध्रुवलोकमें निवास करता है जो भारतवर्षमें विष्णुके निमित्त विमान देता है ॥ ६१ ॥ वह मन्वन्तरपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है और जो चित्रयुक्त विपुलविस्तारका विमान देता है उसका चौगुना फल होता है ॥६२॥ पालकीदानका इससे आधा फल है जो भक्तिपूर्वक हरिके निमित्त दोल झूले योग्यस्थानवाले मन्दिरको देता है॥६३॥ वह सौ मन्वन्तरतक विष्णुलोकमें निवास करता है. हे पतिव्रते ! जो महलयुक्त राजमार्गको करता है॥६४॥ वह दशसहस्रवर्ष इन्द्रलोकमें निवास करता है ब्राह्मण और देवताके निमित्त दानमें समान फलहोता है॥६५॥ जो दिया है सोई भोगाजाता है विनादिये नहीं मिलता. स्वर्गादिसुख भोगकर यह पुण्यात्मा प्राणी भारतमें जन्म लेकर ॥ ६६ ॥ ब्राह्मण होता है क्रमसे उत्तम गतिको प्राप्त होता है भारतमें पुण्यवान् ब्राह्मणस्वर्गादि फल भोग कर फिर ॥ ६७ ॥

विप्रही होता है, इसीप्रकार क्षत्रियादि जानने. क्षत्रिय, वैश्य, कोई क्यों नहो सौ कोटिकल्पमें भी ॥ ६८ ॥ तपस्याकरके ब्राह्मण नहीं बनता जन्मसेही होताहै यह श्रुतिमें कहा है. सौ कोटिकल्पमें भी विनाभोगे कर्मका क्षय नहीं होता॥६९॥शुभाशुभ किया कर्म अवश्यही भोगना होताहै देव और तीर्थकी सहायतासे कायव्यूहसे शुद्धहोजाताहै॥७०॥यह कुछ तुमसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छाहै॥७१॥ इति श्रीदेवीभा०महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां ऐकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥ सावित्री बोली हे भगवन् यम! जिस कर्मसे यह प्राणी स्वर्गमें गमनकरते हैं वे पुण्यवान् मनुष्य होते हैं वह आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ धर्म बोले इस भारतमें जो अन्नदान करते हैं वह अन्नके जितने रेणु हैं उतने समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ २ ॥ यह अन्नदान महादान है जो ब्राह्मणोंसे अतिरिक्तके निमित्त देता है वह

पुनःसोऽपिभवेद्विप्रश्चैवंचक्षत्रियादयः॥क्षत्रियोवाऽथवैश्योवाकल्पकोटिशतेनच॥६८॥तपसाब्राह्मणत्वंचनप्राप्नोतिश्रुतौश्रुतम् ॥ नाऽभुक्तंक्षीयतेकर्मकल्पकोटिशतैरपि ॥६९॥ अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाशुभम् ॥ देवतीर्थसहायेनकायव्यूहेनशुद्ध्यति॥७०॥एतत्तेकथितंकिंचित्किंभूयःश्रोतुमिच्छसि॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेनारदनारायणसंवादेसावित्र्युपाख्यानेएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ सावित्र्युवाच ॥ प्रयांतिस्वर्गमन्यंच येनैवकर्मणायम ॥ मानवाःपुण्यवंतश्चतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ धर्मराजउवाच ॥ अन्नदानंचविप्राययःकरोतिचभारते ॥ अन्नप्रमाणवर्षंचशिवलोकेमहीयते ॥ २ ॥ अन्नदानंमहादानमन्येभ्योऽपिकरोतियः ॥ अन्नदानप्रमाणंचशिवलोकेमहीयते ॥ ३ ॥ अन्नदानात्परंदानंनभूतंनभविष्यति ॥ नाऽत्रपात्रपरीक्षास्यान्नकालनियमःक्वचित्॥४॥देवेभ्योब्राह्मणेभ्योवाददातिचाऽऽसनंयदि ॥ महीयतेविष्णुलोकेवर्षाणामयुतंसति॥५॥योददातिचविप्रायदिव्यांधेनुंपयस्विनीम् ॥ तल्लोममानवर्षंचविष्णुलोकेमहीयते॥६॥चतुर्गुणंपुण्यदिनेतीर्थेशतगुणंफलम् ॥ दानंनारायणक्षेत्रेफलंकोटिगुणंभवेत् ॥७॥गांयोददातिविप्रायभारतेभक्तिपूर्वकम् ॥ वर्षाणामयुतंचैवचंद्रलोकेमहीयते॥८॥यश्चोभयमुखींदानंकरोतिब्राह्मणायच॥तल्लोममानवर्षंचविष्णुलोकेमहीयते॥९॥

अन्नदानके प्रमाणसे शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ३ ॥ अन्नदानकी समान न कुछ और दान है न होगा इसमें पात्रपरीक्षा और कालका नियम नहीं है ॥ ४ ॥ यदि देवता और ब्राह्मणोंके निमित्त आसनदेता है वह दशसहस्रवर्ष विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मणको दिव्य दुधारी गाय देता है वह उसके रोमप्रमाणवर्षतक विष्णुलोकमें महिमा पाता है ॥६॥ पुण्यदिन दानकरनेसे चौगुना तीर्थमें सौगुणा, नारायणक्षेत्रमें दानका कोटि गुना फल है ॥ ७ ॥ जो भक्तिपूर्वक भारतमें ब्राह्मणको गौ देता है वह१००००दश सहस्रवर्षतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ८॥ जो ब्राह्मणको उभयमुखी[1] गौदान करता है उसके लोममान वर्षतक विष्णु

१ गर्भिणी ।

लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मणको मनोहर श्वेतछत्र देता है वह अयुत १०००० वर्ष वरुणलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १० ॥ जो पीडितशरीर ब्राह्मणके निमित्त दो वस्त्र देता है वह अयुतवर्ष वायुलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मणके निमित्त सवस्त्र शालिग्राम देता है, वह चन्द्रसूर्यकी स्थितितक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥१२॥ जो ब्राह्मणको दिव्य मनोहर शय्या देता है वह चन्द्र सूर्यकी स्थितितक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १३ ॥ जो देवता ब्राह्मणके निमित्त दीपदान करता है वह मन्वन्तरपर्यन्त वह्निलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १४ ॥ जोभारतमें ब्राह्मणके निमित्त गजदान करता है वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त इन्द्रके अर्ध

योददातिब्राह्मणायश्वेतच्छत्रंमनोहरम् ॥ वर्षाणामयुतंसोऽपिमोदतेवरुणालये ॥१०॥ विप्रायपीडितांगायवस्त्रयुग्मंददातिच ॥ महीयतेवायुलोकेवर्षाणामयुतंसति ॥ ११॥ योददातिब्राह्मणायशालग्रामंसवस्त्रकम् ॥ महीयतेसवैकुंठेयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १२ ॥ योददातिब्राह्मणायदिव्यां शय्यांमनोहराम् ॥ महीयतेचंद्रलोकेयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १३॥ योददातिप्रदीपंचदेवेभ्योब्राह्मणायच ॥ यावन्मन्वंतरंसोऽपिवह्निलोकेमहीयते ॥१४॥ करोतिगजदानंचयदिविप्रायभारते ॥ यावदिंद्रोनरस्तावदिंद्रस्याऽर्धासनेवसेत् ॥ १५ ॥ भारतेयोऽश्वदानंचकरोतिब्राह्मणायच ॥ मोदतेवारुणेलोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥ प्रकृष्टांशिबिकांयोहिददातिब्राह्मणायच ॥ मोदतेवारुणेलोकेयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १७ ॥ प्रकृष्टांवाटिकांयोहिददातिब्राह्मणायच ॥ महीयतेवायुलोकेयावन्मन्वंतरंसति ॥ १८ ॥ योददातिचविप्रायव्यजनंश्वेतचामरम् ॥ महीयतेवायुलोकेवर्षाणामयुतंध्रुवम् ॥ १९ ॥ धान्यंरत्नंयोददातिचिरजीवीभवेत्सुधीः ॥ दाताग्रहीतातौद्वौचध्रुवंवैकुंठगामिनौ ॥ २० ॥ सततंश्रीहरेर्नामभारतेयोजपेन्नरः ॥ सएवचिरजीवीचततोमृत्युः पलायते ॥ २१ ॥

आसनमें निवास करता है ॥ १५ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त अश्वदान करता है वह चौदह इन्द्रकी स्थितिपर्यन्त वरुणलोकमें निवास करता है ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मणको पालकी दान करता है वह चौदह इन्द्रकी स्थितिपर्यन्त वरुणलोकमें निवास करता है ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मणको श्रेष्ठ बगियाका दान करता है वह मन्वन्तरपर्यन्त वायुलोकमें निवास करता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मणको व्यजन और श्वेतचामर देते हैं वह दशसहस्रवर्ष वायुलोकमें निवास करते हैं ॥ १९ ॥ धान्य और रत्नदेनेवाला चिरजीवी होता है. इसके दाता ग्रहीता दोनों वैकुंठको जाते हैं ॥ २० ॥ इस भारतमें जो मनुष्य निरन्तर श्रीहरिका नाम जपता है वह चिरंजीवी

होता है उससे मृत्यु पलायमान होती है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य भारतवर्षमें दोलोत्सव कराता है पूर्णिमा और रात्रिके शेषमें इस उत्सवका करनेवाला जीवन्मुक्त होता है॥ ॥ २२ ॥ इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुमन्दिरको जाता है और निश्चय वहां सौ मन्वन्तरतक निवास करता है ॥ २३ ॥ उत्तराफाल्गुनीमें इससे भी दूना फल होता है वह कल्पान्तजीवी होता है यह ब्रह्माजीका कथन है ॥ २४ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त तिलदान करता है वह तिल जितने हों उतने वर्षतक शिवमं दिरमें निवास करता है ॥ २५ ॥ फिर अच्छीयोनिको प्राप्त होकर चिरजीवी सुखी होता है ताम्रपात्रके दानसे इससे दूना फल होता है ॥ २६ ॥ जो अलंकारसम्पन्न सवस्त्रा सुन्दरी पतिव्रता अपनी भार्याको ब्राह्मणके निमित्त दान करता है ॥ २७ ॥ वह मन्वन्तरपर्यन्त चन्द्रलोकमें निवास करता है "पतिव्रताका दान कर फिर उसके

योनरोभारतेवर्षेदोलनंकारयेत्सुधीः ॥ पूर्णिमारजनीशेषेजीवन्मुक्तोभवेन्नरः ॥ २२ ॥ इहलोकेसुखंभुक्त्वायात्यंतेविष्णुमंदिरम् ॥ निश्चितंनिवसे त्तत्रशतमन्वंतरावधि ॥ २३ ॥ फलमुत्तरफल्गुन्यांततोऽपिद्विगुणंभवेत् ॥ कल्पांतजीवीसभवेदित्याहकमलोद्भवः ॥ २४ ॥ तिलदानंब्राह्मणाययः करोतिचभारते ॥ तिलप्रमाणवर्षंचमोदतेशिवमंदिरे ॥ २५ ॥ ततःसुयोनिंसंप्राप्यचिरजीवीभवेत्सुखी ॥ ताम्रपात्रस्यदानेनद्विगुणंचफलंलभेत् ॥ ॥ २६ ॥ सालंकृतांचभोग्यांचसवस्त्रांसुंदरींप्रियाम् ॥ योददातिब्राह्मणायभारतेचपतिव्रताम् ॥ २७ ॥ महीयतेचंद्रलोकेयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ तत्रस्व र्वेश्ययासार्धंमोदतेचदिवानिशम् ॥ २८ ॥ ततोगंधर्वलोकेचवर्षाणामयुतंध्रुवम् ॥ दिवानिशंकौतुकेनचोर्वश्यासहमोदते ॥ २९ ॥ ततोजन्मसहस्रंच प्राप्नोतिसुंदरींप्रियाम् ॥ सतींसौभाग्ययुक्तांचकोमलांप्रियवादिनीम् ॥ ३० ॥ प्रददातिफलंचारुब्राह्मणायचयोनरः ॥ फलप्रमाणवर्षंचशक्रलोकेमहीय ते ॥ ३१ ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यलभतेसुतमुत्तमम् ॥ सफलानांचवृक्षाणांसहस्रंचप्रशंसितम् ॥ ३२ ॥ केवलंफलदानंवाब्राह्मणायददातिच ॥ सुचिरं स्वर्गवासंचकृत्वायातिचभारते ॥ ३३ ॥ नानाद्रव्यसमायुक्तंनानासस्यसमन्वितम् ॥ ददातियश्चविप्रायभारतेविपुलंगृहम् ॥ ३४ ॥

भार वा यथाशक्ति सुवर्ण ब्राह्मणोंको देकर उसे ग्रहण करै अन्यथा दाता प्रतिग्रहीता दोनों नरकमें जातेहैं यह पतिव्रता शब्दही सूचित करता है स्कन्दमें कहा है "स्त्रियं दत्वा ततस्तां तु क्रीणीयात्कांचनादिना " और वहां वह अप्सराओंके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ २८ ॥ फिर दशसहस्रवर्ष गंधर्वलोकमें दिनरात कौतुक देखता उर्वशीके साथ प्रसन्न होता है ॥ २९ ॥ और सहस्रजन्मतक सुन्दरीप्रियाको प्राप्त होता है जो सती सौभाग्ययुक्त कोमल और प्रियवादिनी होती है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणके निमित्त श्रेष्ठ फल देता है वह फलप्रमाणवर्षतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है॥ ३१ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो सुन्दर पुत्र लेता, फलयुक्त सहस्रवृक्षोंका दान प्रसंशनीय है ॥ ३२ ॥ अथवा जो ब्राह्मणोंको केवल फलदान करता है वह बहुतकाल स्वर्गमें रहकर फिर भारतमें आता है ॥ ३३ ॥ अनेक द्रव्य और धान्य

युक्त घर जो भारतमें ब्राह्मणको देता है ॥ ३४ ॥ वह सौ मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो महाधनी होता है ॥ ३५ ॥ जोब्राह्मण पुण्यक्षेत्र भारतमें सस्ययुक्त भूमि ब्राह्मणको देता है॥ ३६ ॥ वह सौ मन्वन्तर वैकुंठमें वास करताहै फिर सुयोनिको प्राप्त हो महान् राजा होता है॥ ३७॥ सौ जन्मभी उसको भूमि त्यागन नहीं करती वह श्रीमान् धनवान् पुत्रवान् प्रजेश्वर होताहै॥ ३८॥ जो गोठसहित अच्छा ग्राम ब्राह्मणको देते हैं वह लाख मन्वन्तरतक वैकुंठमें रहते हैं॥ ३९॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर लाखग्रामसे युक्त होता है लाख जन्मभी उसको पृथ्वी त्यागन नहीं करती है॥ ४० ॥ भली प्रजायुक्त प्रकृष्ट पक्कसस्यसम्पन्न अनेक पुष्करिणी वृक्ष फल वल्लीसे सम्पन्न॥ ४१॥ नगर जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त देता है वह कैलासमें दशलाख इन्द्रके कालपर्यन्त प्रसन्न रहता है ॥ ४२ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो भारतमें

सुरलोकेवसेत्सोऽपियावन्मन्वंतरंशतम् ॥ ततःसुयोनिंसंप्राप्यसमहाधनवान्भवेत् ॥ ३५ ॥ योनरःसस्यसंयुक्तांभूमिंचसुचिरांसति ॥ ददातिभक्त्या विप्रायपुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ ३६ ॥ महीयतेचवैकुंठेमन्वंतरशतंध्रुवम् ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यमहांश्चभूमिपोभवेत् ॥ ३७ ॥ तंनत्यजतिभूमिश्चजन्मनाशतकंपरम् ॥ श्रीमांश्चधनवांश्चैवपुत्रवांश्चप्रजेश्वरः ॥ ३८ ॥ सव्रजंचप्रकृष्टंचग्रामंदद्याद्विजायच ॥ लक्षमन्वंतरंचैववैकुंठेसमहीयते ॥ ३९ ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यग्रामलक्षसमन्वितम् ॥ नजहातिचतंपृथ्वीजन्मनांलक्षमेवच ॥४०॥ सुप्रजंचप्रकृष्टंचपक्कसस्यसमन्वितम् ॥नानापुष्करिणीवृक्षफलवल्लीसमन्वितम्॥४१॥नगरंयश्चविप्रायददातिभारतेभुवि॥महीयतेसकैलासेदशलक्षेंद्रकालकम्॥४२॥पुनःसुयोनिंसंप्राप्यराजेंद्रोभारतेभवेत्॥ नगराणांचनियुतंसलभेन्नाऽत्रसंशयः॥४३॥धरातंनजहात्येवजन्मनामयुतंध्रुवम् ॥ परमैश्वर्यनियुतोभवेदेवमहीतले ॥४४॥ नगराणांचशतकंदेशंयोहिद्विजातये ॥सुप्रकृष्टंमध्यकृष्टंप्रजायुक्तंददातिच ॥४५॥ वापीतड़ागसंयुक्तंनानावृक्षसमन्वितम् ॥ महीयतेसवैकुंठेकोटिमन्वंतरावधि॥४६॥पुनःसुयोनिंसंप्राप्यजंबुद्वीपपतिर्भवेत ॥ परमैश्वर्यसंयुक्तोयथाशक्रस्तथाभुवि ॥४७॥ महीतंनजहात्येवजन्मनांकोटिमेवच ॥ कल्पांतजीवीसभवेद्राजराजेश्वरोमहान् ॥४८॥ स्वाधिकारंसमग्रंचयोददातिद्विजातये ॥ चतुर्गुणंफलंचांतेभवेत्तस्यनसंशयः॥४९॥ जंबुद्वीपंयोददातिब्राह्मणायतपस्विने॥फलंशतगुणंचांतेभवेत्तस्यनसंशयः॥५०॥

राजेन्द्र होता है वह एक नियुत (१००००००) नगर प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं ।। ४३ ।। दशसहस्र जन्मपर्यन्त भी भूमि उसको त्यागन नहीं करती महीतलमें परम ऐश्वर्यसम्पन्न होताहै।।४४।।जो ब्राह्मणोंको नगरोंका शतक सुप्रकृष्ट मध्यकृष्ट प्रजायुक्त देता है॥ ४५॥ तथा तडागसंयुक्त पापी अनेक वृक्षसंयुक्त देता है वह कोटिमन्वन्तरतक वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ४६ ।। फिर सुयोनिको प्राप्त होकर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है. स्वर्गमें जैसे इन्द्र, इसप्रकार परम ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ।। ४७ ।। कोटिजन्मतक भी उसको पृथ्वी नहीं छोडती वह राजराजेश्वर कल्पान्तजीवी होता है ।। ४८ ।। जो अपना समस्त अधिकार ब्राह्मणको देता है उसको अन्तमें उसका चौगुना फल होता है।। ४९ ।। जो तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका अधिकार देता है उसको अन्तमें उसका सौगुना फल होता है ।। ५० ।।

जम्बूद्वीपका पृथ्वीका दान, सब तीर्थोंका सेवन सब तपस्या सब वासकारी॥५१॥ सब दानके देनेवाले सब सिद्धेश्वरदर्शनसे पुनरावृत्ति होती है परन्तु महेशानीके भक्त फिर नहीं लौटते ॥ ५२ ॥ जो मणिद्वीपमें श्रीदेवीके परमपदमें निवास करते हैं उन्होंने असंख्य ब्रह्माओंका पात देखा है ॥ ५३ ॥ देवीमंत्रके उपासक मानवी शरीर त्यागकर जरामृत्युरहित दिव्यरूप और ऐश्वर्यको प्राप्त हों ॥ ५४ ॥ देवीके सारूप्यको प्राप्त होकर देवीकी सेवाको करते हैं और मणिद्वीपमें अखण्ड लोकसंक्षय देखते हैं ॥ ५५॥ देव सिद्ध और सब विश्व नष्ट होते हैं, परन्तु जन्म मृत्यु जराके हरनेवाले देवीके भक्त नष्ट नहीं होते हैं॥ ५६॥ जो कार्तिकमें हरिके निमित्त तुलसी दान करते हैं वह तीनयुगपर्यन्त हरिमन्दिरमें निवास करते हैं ॥ ५७ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर हरिभक्तिको प्राप्त होते हैं वह भारतभूमिमें जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ

जंबूद्वीपमहीदातुःसर्वतीर्थानिसेवितुः ॥ सर्वेषांतपसांकर्तुस्सर्वेषांवासकारिणः ॥ ५१ ॥ सर्वदानप्रदातुश्चसर्वसिद्धेश्वरस्यच ॥ अस्त्येवपुनरावृत्तिर्नभक्तस्यमहेशितुः ॥ ५२ ॥ असंख्यब्रह्मणांपातंपश्यंतिभुवनेशितुः ॥ निवसंतिमणिद्वीपेश्रीदेव्याःपरमेपदे ॥ ५३ ॥ देवमंत्रोपासकाश्चविहायमानवींतनुम् ॥ विभूतिंदिव्यरूपंचजन्ममृत्युजराहरम् ॥ ५४ ॥ लब्ध्वादेव्याश्चसारूप्यंदेवीसेवांचकुर्वते ॥ पश्यंतितेमणिद्वीपेसखंडंलोकसंक्षयम् ॥ ५५ ॥ नश्यंतिदेवाःसिद्धाश्चविश्वानिनिखिलानिच ॥ देवीभक्तानन्श्यंतिजन्ममृत्युजराहराः ॥ ५६ ॥ कार्तिकेतुलसीदानंकरोतिहरयेचयः ॥ युगत्रयप्रमाणंचमोदतेहरिमंदिरे ॥ ५७ ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यहरिभक्तिंलभेद्ध्रुवम् ॥ जितेंद्रियाणांप्रवरःसभवेद्भारतेभुवि ॥ ५८ ॥ मध्येयःस्नातिगंगायामरुणोदयकालतः ॥ युगषष्टिसहस्राणिमोदतेहरिमंदिरे ॥ ५९ ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यविष्णुमंत्रंलभेद्ध्रुवम् ॥ त्यक्त्वाचमानुषंदेहंपुनर्यातिहरेःपदम् ॥ ६० ॥ नास्तिततपुनरावृत्तिर्वैकुंठाच्चमहीतले ॥ करोतिहरिदास्यंचतथासारूप्यमेवच ॥ ६१ ॥ नित्यस्नायीचगंगायांसपूतःसूर्यवद्भुवि ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्यलभतेनिश्चितंफलम् ॥ ६२ ॥ तस्यैवपादरजसासद्यःपूतावसुंधरा ॥ मोदतेसचवैकुंठेयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ६३ ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यहरिभक्तिंलभेद्ध्रुवम् ॥ जीवन्मुक्तोऽतितेजस्वीतपस्विप्रवरोभवेत् ॥ ६४ ॥

होते हैं ॥ ५८ ॥ जो अरुणोदयके समय गंगाके मध्यमें स्नान करते हैं, वह साठ सहस्रयुगतक हरिमंदिरमें निवास करते हैं ॥ ५९ ॥ फिरसुयोनिको प्राप्त होकर श्रेष्ठ हरिभक्तिको प्राप्त होते हैं. मनुष्यदेह त्याग करनेपर फिर हरिके पदको जाते हैं ॥ ६० ॥ वैकुण्ठसे भूलोकमें फिर आवृत्ति नहीं होती. हरि अपने दासोंको सारूप्य मुक्ति देते हैं ॥ ६१ ॥ गंगामें नित्य स्नानकरनेवाला सूर्यके समान पृथ्वीमें पवित्र होता है और पद पदमें उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥६२॥ उसीकी पादरजसे भूमि शीघ्र पवित्र होती है, वह चन्द्र दिवाकर पर्यन्त वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ ६३ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो हरिकी परमभक्तिको प्राप्त होता है, वह जीव

न्मुक्त तेजस्वी तपस्विप्रवर होता है ॥ ६४ ॥ तथा स्वधर्ममें निरत शुद्धविद्वान् जितेन्द्रिय होता है जैसे मीन और कर्कके मध्यमें सूर्य गाढरूपसे तपता है ॥ ६५ ॥ जो भारतमें किसीको सुगंधित जल देता है वह चौदह इन्द्रपर्यन्त कैलासमें प्रसन्न होता है ॥ ६६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर रूपवान् और सुखी होता है शिव भक्त तेजस्वी वेदवेदाङ्गका पारगामी होता है ॥ ६७ ॥ जो वैशाखमें ब्राह्मणको सत्तु दान करता है वह सत्तुके कणप्रमाण वर्षोंतक शिवमंदिरमें प्रसन्न रहता है ॥ ६८ ॥ जो भारतमें कृष्णजन्माष्टमीव्रत करता है निःसन्देह उसके सौ जन्मके पाप नष्टहो जाते हैं ॥ ६९ ॥ चौदह इन्द्रकी आयुपर्यन्त वह निःसन्देह वैकुण्ठमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्तहो कृष्णभक्ति लेते हैं ॥ ७० ॥ इस भारतवर्षमें जो शिवरात्रिका व्रत करते हैं वह सातमन्वन्तरपर्यन्त शिवलोकमें निवास करते हैं ॥ ७१ ॥

स्वधर्मनिरतःशुद्धोविद्वांश्चसजितेंद्रियः ॥ मीनकर्कटयोर्मध्येगाढंतपतिभास्करः ॥ ६५ ॥ भारतेयोददात्येवजलमेवसुवासितम् ॥ समोदतेचकैलासेयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ६६ ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यरूपवांश्चसुखीभवेत् ॥ शिवभक्तश्चतेजस्वीवेदवेदांगपारगः ॥ ६७ ॥ वैशाखेसक्तुदानंचयःकरोतिद्विजातये ॥ सक्तुरेणुप्रमाणाब्दंमोदतेशिवमंदिरे ॥ ६८ ॥ करोतिभारतेयोहिकृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ॥ शतजन्मकृतंपापंमुच्यतेनाऽत्रसंशयः ॥ ६९ ॥ वैकुंठेमोदतेसोऽपियावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यकृष्णेभक्तिंलभेद्ध्रुवम् ॥ ७० ॥ इहैवभारतेवर्षेशिवरात्रिंकरोतियः ॥ मोदतेशिवलोकेसससप्तमन्वंतरावधि ॥ ७१ ॥ शिवायशिवरात्रौचबिल्वपत्रंददातिच ॥ पत्रमानयुगंतत्रमोदतेशिवमंदिरे ॥ ७२ ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यशिवभक्तिंलभेद्ध्रुवम् ॥ विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान्प्रजावान्भूमिमान्भवेत् ॥ ॥ ७३ ॥ चैत्रमासेऽथवामाघेशंकरंयोऽर्चयेद्व्रती ॥ करोतिनर्तनंभक्त्यावेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥ ७४ ॥ मासंवाऽप्यर्धमासंवादशसप्तदिनानिच ॥ दिनमानयुगंसोऽपिशिवलोकेमहीयते ॥ ७५ ॥ श्रीरामनवमींयोहिकरोतिभारतेपुमान् ॥ सप्तमन्वंतरंयावन्मोदतेविष्णुमंदिरे ॥ ७६ ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यरामभक्तिंलभेद्ध्रुवम् ॥ जितेंद्रियाणांप्रवरोमहांश्चधनवान्भवेत् ॥ ७७ ॥ शारदीयांमहापूजांप्रकृतेर्यःकरोतिच ॥ माहिषैश्छागलैर्मेषैःखड्गैर्भेकादिभिःसति ॥ ७८ ॥

जो शिवरात्रिमें शिवके निमित्त बेलपत्र देता है वह पत्रके प्रमाणवर्षोंतक शिवमन्दिरमें निवास करता है ॥ ७२ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो शिवभक्ति पाता है. विद्यावान् पुत्रवान्, श्रीमान्, प्रजावान्, भूमिवान् होता है ॥ ७३ ॥ जो व्रती चैत्र वा माघमें शंकरका अर्चन करता है और भक्तिसे नृत्यकर दिनरात वेत्रपाणी होता है ॥ ७४ ॥ महीने पखवारे वा दश सातदिन जितने दिन अर्चन करै उतनेही युगपर्यन्त शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीरामनवमीव्रत करते हैं वह सातमन्वन्तरतक विष्णुलोकमें प्रसन्न रहते हैं ॥ ७६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर रामभक्तिको अवश्य लेतेहैं जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ और महाधनी होते हैं ॥ ७७ ॥ जो शरत्कालमें देवीकी

महापूजा करते हैं महिष, छाग, मेष, खड्ग, भेकादि ॥ ७८ ॥ नैवेद्य, उपहार, धूप, दीपादि तथा नृत्य गीतादिसे अनेक कौतुक करते हैं ॥ ७९ ॥ वह सात मन्वन्तरतक शिवलोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो निर्मल बुद्धि पाता है ॥ ८० ॥ पुत्र पौत्रकी बढानेवाली अतुल श्रीको प्राप्त होता है और महा प्रभावसे युक्त हाथी घोडोंसे युक्त होता है॥ ८१ ॥ निःसन्देह वह राजराजेश्वर होता है. फिर शुक्लाष्टमीको प्राप्त होकर जो महालक्ष्मीको अर्चन करता है ॥ ८२ ॥ नित्य भक्तिसे पुण्यक्षेत्र भारतमें जो एक पक्षतक प्रकृष्ट षोडशोपचार करता है ॥८३ ॥ वह चौदह इन्द्रके समयतक गोलोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त होकर

नैवेद्यैरुपहारैश्चधूपदीपादिभिस्तथा ॥ नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमंगलम् ॥ ७९ ॥ शिवलोकेवसेत्सोऽपिसप्तमन्वन्तरावधि ॥ पुनःसुयोनिंसं प्राप्यनरोबुद्धिंचनिर्मलाम् ॥ ८० ॥ अतुलांश्रियमाप्नोतिपुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ महाप्रभावयुक्तश्चगजवाजिसमन्वितः ॥ ८१ ॥ राजराजेश्वरःसोऽपि भवेदेवनसंशयः ॥ ततःशुक्लाष्टमींप्राप्यमहालक्ष्मींचयोऽर्चयेत्॥८२॥नित्यंभक्त्यापक्षमेकंपुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ दत्वातस्यैप्रकृष्टानिचोपचाराणिषोडश ॥ ॥ ८३ ॥ गोलोकेचवसेत्सोऽपियावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ पुनःसुयोनिंसंप्राप्यराजराजेश्वरोभवेत् ॥ ८४ ॥ कार्तिकीपूर्णिमायांतुकृत्वातुरासमंडलम् ॥ गोपानांशतकंकृत्वागोपीनांशतकंतथा ॥ ८५ ॥ शिलायांप्रतिमायांचश्रीकृष्णंराधयासह ॥ भारतेपूजयेद्भक्त्याचोपहाराणिषोडश ॥ ८६ ॥ गोलोकेवसतेसोऽपियावद्वैब्रह्मणोवयः ॥ भारतंपुनरागत्यकृष्णेभक्तिंलभेद्दृढाम् ॥ ८७ ॥ क्रमेणसुदृढांभक्तिंलब्ध्वामंत्रंहरेरहो ॥ देहंत्यक्त्वाचगोलोकं पुनरेवप्रयातिसः ॥ ८८ ॥ ततःकृष्णस्यसारूप्यंपार्षदप्रवरोभवेत् ॥ पुनस्तत्पतनंनास्तिजरामृत्युहरोभवेत् ॥ ८९ ॥ शुक्लांवाऽप्यथवाकृष्णांकरोत्ये कादशींचयः ॥ वैकुंठेमोदतेसोऽपियावद्वैब्रह्मणोवयः ॥ ९० ॥ भारतंपुनरागत्यकृष्णभक्तिंलभेद्ध्रुवम् ॥ क्रमेणभक्तिंसुदृढांकरोत्येकांहरेरहो ॥ ९१ ॥

राजराजेश्वर होता है ॥ ८४ ॥ जो कार्तिकी पूर्णिमाको रासमण्डलकरके गोप और गोपियोंका शतक पढै ॥ ८५ ॥ शिलाकी प्रतिमामें श्रीकृष्णराधिकाको षोडश उपचारसे भक्तिपूर्वक जो पूजन करता है ॥ ८६ ॥ वह गोलोकमें ब्रह्माकी आयुपर्यन्त निवास करता है फिर भारतमें आकर कृष्णकी दृढभक्तिलेता है ॥ ८७ ॥ क्रमसे दृढभक्ति हरिकी प्राप्त होतीहै, तथा देहत्यागनकर फिर वह गोलोकको जाता है॥८८॥ फिर कृष्णके सारूप्यको पाय पार्षद होता है वहांसे फिर पतन नहीं होता जरा मृत्यु नहीं होती ॥८९ ॥ और जो शुक्ला वा कृष्णा एकादशी करता है वह ब्रह्माकी अवस्थातक वैकुंठमें निवास करता है ॥९०॥ फिर भारतमें आकर कृष्णभक्त होता

है अहो फिर क्रमसे हरिका दृढभक्त होता है ॥ ९१ ॥ देह त्यागनकर यह फिर गोलोकको जाता है फिर कृष्णका सारूप्य पाकर पार्षद होता है ॥ ९२॥ फिर वह जरा मृत्युरहित हो वहांसे पतित नहीं होता भाद्रशुक्ल द्वादशीको जो मनुष्य इन्द्रकी पूजा करते हैं ॥ ९३ ॥ वह साठसहस्र वर्षतक इन्द्रलोकमें निवास करता हैं शुक्लपक्ष वा रविवार संक्रान्तिमें ॥ ९४ ॥ भारतमें सूर्यका पूजनकर जो हविष्य अन्न करता है वह चतुर्दश इन्द्रकी स्थितितक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥९५॥ फिर भारतमें आकर श्रीयुक्त योगी होता है ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीको जो सावित्रीका पूजन करता है ॥ ९६ ॥ वह सात मन्वन्तरतक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाता है फिर पृथ्वीमें आकर श्रीमान् अतुलविक्रमी होता है ॥ ९७ ॥ वह ज्ञानवान् सम्पत्तिसे युक्त चिरंजीवी होता है माघशुक्ल पंचमीके जो सरस्वतीका पूजन करता है ॥ ९८ ॥

देहंत्यक्त्वाचगोलोकंपुनरेवप्रयातिसः ॥ ततःकृष्णस्यसारूप्यंसंप्राप्यपार्षदोभवेत् ॥ ९२ ॥ पुनस्तत्पतनंनास्तिजरामृत्युहरोभवेत् ॥ भाद्रेचशुक्लद्वादश्यांयःशक्रंपूजयेन्नरः ॥ ९३ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिशक्रलोकेमहीयते ॥ रविवारेचसंक्रांत्यांसप्तम्यांशुक्लपक्षके ॥ ९४ ॥ संपूज्यार्कंहविष्यान्नंयः करोति चभारते ॥ महीयतेसोऽर्कलोकेयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥९५॥ भारतंपुनरागत्यचारोगीश्रीयुतोभवेत् ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यांसावित्रींयोहिपूजयेत् ॥ ९६ ॥ महीयतेब्रह्मलोकेसप्तमन्वंतरावधि ॥ पुनर्महींसमागत्यश्रीमानतुलविक्रमः ॥ ९७ ॥ चिरजीवीभवेत्सोऽपिज्ञानवान्संपदायुतः ॥ माघस्यशुक्लपंचम्यां पूजयेद्यःसरस्वतीम् ॥ ९८ ॥ संयतोभक्तितोदत्वाचोपचाराणिषोडश ॥ महीयतेमणिद्वीपेयावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ ९९ ॥ संप्राप्यचपुनर्जन्मसभवेत्कविपंडितः ॥ गांसुवर्णादिकंयोहिब्राह्मणायददातिच ॥ १०० ॥ नित्यंजीवनपर्यंतंभक्तियुक्तश्चभारते ॥ गवांलोमप्रमाणाब्दंद्विगुणंविष्णुमंदिरे ॥ १०१ ॥ मोदतेहरिणासार्धंक्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ तदंतेपुनरागत्यराजराजेश्वरोभवेत् ॥ २ ॥ श्रीमांश्चपुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतःसुखी ॥ भोजयेद्योऽपिमिष्टान्नंब्राह्मणेभ्यश्चभारते ॥ ३ ॥ विप्रलोमप्रमाणाब्दंमोदतेविष्णुमंदिरे ॥ ततःपुनरिहाऽऽगत्यसुखीचधनवान्भवेत् ॥ ४ ॥

और भक्तिपूर्वक सोलह उपचार देता है वह कल्पपर्यन्त मणिद्वीपमें निवास करता है ॥ ९९ ॥ फिर जन्मको प्राप्त होकर वह कवि पंडित होता है. सुवर्ण संयुक्त गौ जो ब्राह्मणके निमित्त देता है ॥ १०० ॥ वह जीवनपर्यन्त नित्य भक्ति युक्त भारतमें गौओंका दान करनेसे जितने गौके लोम हों उससे दूनो वर्ष विष्णु मंदिरमें निवास करता है ॥ १०१ ॥ क्रीडा कौतुक मंगलपूर्वक हरिके सहित प्रसन्न होता है फिर लौटकर यहां राजराजेश्वर होता है ॥ २ ॥ श्रीमान् पुत्रवान् विद्वान् ज्ञानवान् सबप्रकार सुखी होता है जो भारतमें ब्राह्मको मिष्टान्न भोजन कराता है ॥ ३ ॥ वह ब्राह्मणके लोमप्रमाणवर्षतक विष्णु मंदिरमें प्रसन्न होता है फिर यहां आकर

सुखी और धनवान् होता है ॥ ४ ॥ विद्वान् चिरजीवी श्रीमान् अतुलविक्रम होता है जो भारतमें हरिका नाम लेता लिवाता है ॥ ५ ॥ वह नामके अनुसार विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा पाता है फिर यहां आकर सुखी और धनवान् होता है॥ ६ ॥ जो नारायण क्षेत्रमें हरिका नाम लेनेसे कोटिगुणा फल होता है॥ ७ ॥ ऐसा पुरुष सब पापसे रहित होकर जीवन्मुक्त होता है उसका फिर जन्म न होकर वह वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा पाताहै ॥ ८ ॥ वह विष्णुके सारूप्यको प्राप्त होता है फिर उसका पतन नहीं होता वह विष्णु भक्तिको प्राप्त होकर विष्णुकी सारूप्यताको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ और जो पार्थिवलिंग बनाय नित्य शिवका पूजन करै वह जीवनपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है ॥ ११० ॥ उस पार्थिवलिंगके रेणुप्रमाण वर्षतक शिवलोकमें निवास करता है फिर भारतमें आय राजेन्द्र होता है ॥ ११ ॥ जो शालिग्रामशिलाका

विद्वान्सुचिरजीवीचश्रीमानतुलविक्रमः ॥ योवक्तिवाददात्येवहरेर्नामानिभारते ॥५॥ युगंनामप्रमाणंचविष्णुलोकेमहीयते ॥ ततःपुनरिहागत्यससुखीधन वान्भवेत् ॥ ६ ॥ यदिनारायणक्षेत्रेफलंकोटिगुणंभवेत् ॥ नाम्नांकोटिंहरेर्योहिक्षेत्रेनारायणेजपेत् ॥ ७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोजीवन्मुक्तोभवेद्ध्रुवम् ॥ नलभेत्सपुनर्जन्मवैकुंठेसमहीयते ॥ ८ ॥ लभेद्विष्णोश्चसारूप्यंनतस्यपतनंभवेत् ॥ विष्णुभक्तिंलभेत्सोऽपिविष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ॥ ९ ॥ शिवंयःपूजयेन्नित्यंकृत्वालिंगंचपार्थिवम् ॥ यावज्जीवनपर्यंतंसयातिशिवमंदिरम् ॥ ११० ॥ मृदोरेणुप्रमाणाब्दंशिवलोकेमहीयते ॥ ततःपुन रिहागत्यराजेंद्रोभारतेभवेत् ॥ ११ ॥ शिलांचपूजयेन्नित्यंशिलातोयंचभक्षति ॥ महीयतेचवैकुंठेयावद्ब्रह्मणःशतम् ॥ १२ ॥ ततोलब्ध्वापुन र्जन्महरिभक्तिंचदुर्लभाम् ॥ महीयतेविष्णुलोकेनतस्यपतनंभवेत् ॥ १३ ॥ तपांसिचैवसर्वाणिव्रतानिनिखिलानिच ॥ कृत्वातिष्ठतिवैकुंठेया वदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १४ ॥ ततोलब्ध्वापुनर्जन्मराजेंद्रोभारतेभवेत् ॥ ततोमुक्तोभवेत्पश्चात्पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ११५ ॥ यःस्नात्वासर्वतीर्थेषुभुवःकृत्वाप्र दक्षिणाम् ॥ सतुनिर्वाणतांयातिनतुजन्मभवेद्भुवि ॥ १६ ॥ पुण्यक्षेत्रेभारतेचयोऽश्वमेधंकरोतिच ॥ अश्वलोममिताब्दंचशक्रस्याऽर्धासनंभजेत् ॥ ११७ ॥

नित्य पूजन कर चरणामृत लेता है वह सौ ब्रह्माकी आयुतक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ १२ ॥ फिर जन्म लेकर दुर्लभ हरिभक्तिको प्राप्त होता है और विष्णुलोकमें प्राप्त होकर फिर नहीं आता ॥ १३ ॥ सब तप और व्रत करके चौदह इन्द्रके कालतक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ १४ ॥ फिर भारतमें जन्मले राजा होता है पश्चात् जन्मले मुक्त होकर फिर जन्म नहीं पाता ॥ १५ ॥ जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर सब तीर्थोंमें स्नान करता है वह निर्वाणताको प्राप्त होता है उसका भूमिमें जन्म नहीं होता ॥ १६ ॥ जो इस पुण्यक्षेत्र भारतमें अश्वमेध करता है वह घोडेके लोम प्रमाण वर्षतक इन्द्रके अर्धासनका भागी होता है ॥ १७ ॥

यह मनुष्य राजसूयसे चौगुने फलको प्राप्त होता है सब यज्ञोंसे विशेष देवीयज्ञ है॥ १८॥ यह पहिले ब्रह्मा विष्णु और त्रिपुरासुरनाशके निमित्त शंकरने किया था॥ १९॥ हेसुन्दरि ! सब यज्ञोंमें शक्तियज्ञ प्रधान है तीन लोकमें इसकी समान और यज्ञ नहींहै १२०॥ बडे संभारसंयुक्त पहले इसको दक्षने किया जहां शंकर और दक्षको क्लेश हुआ था ॥ २१ ॥ वहां ब्राह्मणोंमें नंदिको और नंदिने क्रोधकर ब्राह्मणोंको शाप दिया जिस कारण चन्द्रशेखरने दक्षका यज्ञ विध्वंस किया ॥ २२ ॥ दक्ष प्रजापतिने पहले देवीका यज्ञ किया धर्म कश्यप और कर्दमने यज्ञ किया ॥ २३ ॥ स्वायंभुवमनु उनके पुत्र प्रियव्रत शिव सनत्कुमार कपिल ध्रुव॥ २४॥ यह सबही यज्ञ करते

चतुर्गुणंराजसूयफलमाप्नोतिमानवः ॥ सर्वेभ्योऽपिमखेभ्योहिपरोदेवीमखःस्मृतः ॥ १८ ॥ विष्णुनाचकृतःपूर्वंब्रह्मणाचवरानने ॥ शंकरेणमहेशेनत्रिपुरासुरनाशने ॥ १९ ॥ शक्तियज्ञःप्रधानश्चसर्वयज्ञेषुसुंदरि ॥ नाऽनेनसदृशोयज्ञस्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ १२० ॥ दक्षेणचकृतःपूर्वंमहान्संभारसंयुतः ॥ बभूवकलहोयत्रदक्षशंकरयोःसति ॥ २१ ॥ शेपुश्चनंदिनंविप्रानंदीविप्रांश्चकोपतः ॥ यद्धेतोर्दक्षयज्ञंचबभंजचंद्रशेखरः ॥ २२ ॥ चकारदेवीयज्ञंसपुरादक्षःप्रजापतिः ॥ धर्मश्चकश्यपश्चैवशेषश्चाऽपिचकर्दमः ॥ २३ ॥ स्वायंभुवोमनुश्चैवतत्पुत्रश्चप्रियव्रतः ॥ शिवःसनत्कुमारश्चकपिलश्चध्रुवस्तथा ॥ २४ ॥ राजसूयसहस्राणांफलमाप्नोतिनिश्चितम् ॥ देवीयज्ञात्परोयज्ञोनास्तिवेदेफलप्रदः ॥ २५ ॥ वर्षाणांशतजीवीचजीवन्मुक्तोभवेद्ध्रुवम् ॥ ज्ञानेनतेजसाचैवविष्णुतुल्योभवेदिह ॥ २६ ॥ देवानांचयथाविष्णुर्वैष्णवानांचनारदः ॥ शास्त्राणांचयथावेदावर्णानांब्राह्मणोयथा ॥ २७ ॥ तीर्थानांचयथागंगापवित्राणांशिवोयथा ॥ एकादशीव्रतानांचपुष्पाणांतुलसीयथा ॥ २८ ॥ नक्षत्राणांयथाचंद्रःपक्षिणांगरुडोयथा ॥ यथास्त्रीणांचप्रकृतीराधावाणीवसुंधरा ॥ २९ ॥ शीघ्राणांचेंद्रियाणांचचंचलानांमनोयथा ॥ प्रजापतीनांब्रह्माचप्रजानांचप्रजापतिः ॥ १३० ॥ वृंदावनंवनानांचवर्षाणांभारतंतथा ॥ श्रीमतांचयथाश्रीश्चविदुषांचसरस्वती ॥ ३१ ॥ पतिव्रतानांदुर्गाचसौभाग्यानांचराधिका ॥ देवीयज्ञस्तथावत्सेसर्वयज्ञेषुभामिनि॥३२॥

हुए इससे सहस्र राजसूयका फल प्राप्त होता है देवी यज्ञकी बराबर वेदमें फल देनेवाला और यज्ञ नहीं है ॥ २५ ॥ सैकडों वर्ष जीकर जीवन्मुक्त होता है वह ज्ञान और तेजमें विष्णुकी तुल्य होता है ॥ २६ ॥ देवताओंमें जैसे विष्णु, वैष्णवोंमें जैसे नारद शास्त्रोंमें जैसे वेद वर्णोंमें ब्राह्मण ॥ २७ ॥ तीर्थोंमें गंगा पवित्र करनेवालोंमें शिवव्रतोंमें एकादशी पुष्पोंमें जैसे तुलसी ॥२८॥ नक्षत्रोंमें चन्द्रमा पक्षियोंमें गरुड स्त्रियोंमें जैसे प्रकृति राधा वाणी भूमि॥ २९॥ शीघ्रगामी इन्द्रियों और चंचलोंमें जैसे मन प्रजापतियोंमें प्रजाओंके पति ब्रह्मा॥ १३०॥ वनोंमें वृंदावन,वर्षोंमें भारत, श्रीमानोंमें जैसे लक्ष्मी, विद्वानोंमें सरस्वती॥ ३१॥ पतिव्रताओंमें दुर्गा,सौभागिनियोंमें राधिका

हे हे भामिनी! इसीप्रकार सब यज्ञोंमें देवीयज्ञ श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ सौ अश्वमेधसे शक्रत्वकी निश्चयही प्राप्ति होती है और सहस्रसे विष्णुपद मिलता है जो राजा पृथुको प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ सब यज्ञोंमें स्नान सब यज्ञोंमें दीक्षा सब व्रत और तपका फल ॥ ३४ ॥ चार वेदोंके पाठ भू प्रदक्षिणाका फल इनसेहीमुक्तिदायक देवीके चरणकमलकी भक्ति होती है ॥ ३५ ॥ वेद पुराण और सब इतिहासोंमें देवीके चरणकमल पूजनकोही सार कहा है ॥ ३६ ॥ उसीका वर्णन ध्यान उसीके नाम गुणका कीर्तन उसीके स्तोत्रका स्मरण वंदन और जप ॥ ३७ ॥ उनके चरणका अमृत लेना उनका नैवेध भक्षण यह सब सम्मति और सब इच्छितोंका देनेवाला है ॥ ३८ ॥ परब्रह्म निर्गुण पराप्रकृति मायाविशिष्ट मूलरूपिणीका भजन करो. हेवत्से! अपने स्वामीको ग्रहण कर अपने मंदिरमें सुखसे निवास करो ॥ ३९ ॥ यह मैंने

अश्वमेधशतेनैवशक्रत्वंचलभेद्ध्रुवम् ॥ सहस्रेणविष्णुपदंसंप्राप्तःपृथुरेवच ॥ ३३ ॥ स्नानंचसर्वतीर्थानांसर्वयज्ञेषुदीक्षणम् ॥ सर्वेषांचव्रतानांचतपसांफलमेवच ॥ ३४ ॥ पाठेचतुर्णांवेदानांप्रादक्षिण्यंभुवस्तथा ॥ फलभूतमिदंसर्वंमुक्तिदंशक्तिसेवनम् ॥ ३५ ॥ पुराणेषुचवेदेषुचेतिहासेषुसर्वतः ॥ निरूपितंसारभूतंदेवीपादांबुजार्चनम् ॥ ३६ ॥ तद्वर्णनंचतद्ध्यानंतन्नामगुणकीर्तनम् ॥ तत्स्तोत्रस्मरणंचैववंदनंजपमेवच ॥ ३७ ॥ तत्पादोदकनैवेद्यंभक्षणंनित्यमेवच ॥ सर्वसम्मतमित्येवंसर्वेप्सितामिदंसति ॥ ३८ ॥ भजनित्यंपरंब्रह्मनिर्गुणंप्रकृतिंपराम् ॥ गृहाणस्वामिनंवत्सेसुखंवसचमंदिरे ॥ ३९ ॥ अयंतेकथितःकर्मविपाकोमंगलोनृणाम् ॥ सर्वेप्सितःसर्वमतस्तत्त्वज्ञानप्रदःपरः ॥ १४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ॥ शक्तेरुत्कीर्तनंश्रुत्वासावित्रीयमवक्रतः ॥ साश्रुनेत्रासपुलकायमंपुनरुवाचसा ॥ १ ॥ सावित्र्युवाच ॥ ॥ शक्तेरुत्कीर्तनंधर्मसकलोद्धारकारणम् ॥ श्रोतॄणांचैववक्तॄणांजन्ममृत्युजराहरम् ॥ २ ॥ दानवानांचसिद्धानांतपसांचपरंपदम् ॥ योगानांचैववेदानांकीर्तनंसेवनंविभोः ॥ ३ ॥ मुक्तित्वममरत्वंचसर्वसिद्धित्वमेवच ॥ श्रीशक्तिसेवकस्यैवकलांनार्हंतिषोडशीम् ॥ ४ ॥ भजामिकेनविधिनावदवेदविदांवर ॥ शुभकर्मविपाकंचश्रुतंनॄणांमनोहरम् ॥ ५ ॥ कर्माशुभविपाकंचतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ इत्युक्त्वाचसतीब्रह्मन्भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥ ६ ॥

तुमसे मनुष्योंका मांगलीक कर्मविपाक वर्णन किया यह सबके ईप्सित सर्व सम्मत और तत्त्वज्ञानका देनेवाला है ॥ १४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायणबोले यमराजके मुखसे सावित्री शक्तिका कीर्तन सुनकर नेत्रमें जल भरनेसे पुलकित हो यमराजसे बोली ॥ १ ॥ सावित्री बोली हे धर्म! शक्तिका उत्कीर्तन सब धर्मोंका कारण है सुनने और कहनेवालोंकी जरा मृत्यु हरता है ॥ २ ॥ दानव सिद्ध तपस्वियोंकी परमपददायक है, योग और वेदोंका कीर्तन हे विभो! सबको मंगल करनेवाला है ॥ ३ ॥ मुक्ति अमरत्व और सब सिद्धियें श्रीशक्तिके सेवककी सोलहवीं कलाभी नहीं है ॥ ४ ॥ हे वेदविदांवर! किसप्रकार उनका भजनकियाजाय सो कहो मैंने मनुष्योंका शुभ कर्मविपाक तो सुना ॥ ५ ॥ अशुभ कर्मोंका

विपाक भी आप हमसे कहिये. हे ब्रह्मन्! ऐसा कहकर वह सती नम्र कंधा कर॥६॥ वेदोक्त स्तवसे धर्मराजको प्रसन्न करनेलगी सावित्री बोली पहले पुष्करमें सूर्य देवने तपसे धर्मकी आराधनाकर ॥ ७ ॥ धर्मराज नामक पुत्रको प्राप्त किया जिस सर्व साक्षीकी सब भूतोंमें समानता है उस धर्मराजको प्रणाम करती हूं ॥ ८ ॥ इससे जिनका नाम शमन है इसकारण उनको प्रणाम करती हूं जिन्होंने सम्पूर्ण प्राणधारियोंका अन्त किया है ॥ ९ ॥ जो समयपर कामानुरूप हरण करता है उसको मैं प्रणाम करती हूं जो पापियोंकी शुद्धिके हेतु दंड धारणकरते हैं ॥ १० ॥ उन सब जीवोंके शास्ता दंडधरको प्रणाम करती हूं जो निरन्तर सब विश्वका कलन करता है ॥ ११ ॥ जो अतीवदुर्निवार है उस कालको प्रणाम करती हूं जो तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ संयमी जितेन्द्रिय हैं ॥ १२ ॥ जीवोंके कर्मफलदाता यमको

तुष्टावधर्मराजंचवेदोक्तेनस्तवेनच ॥ सावित्र्युवाच ॥ तपसाधर्ममाराध्यपुष्करेभास्करःपुरा ॥ ७ ॥ धर्मंसूर्यःसुतंप्रापधर्मराजंनमाम्यहम् ॥ समतासर्वभूतेषुयस्यसर्वस्यसाक्षिणः ॥ ८ ॥ अतोयन्नामशमनमितितंप्रणमाम्यहम् ॥ येनांतश्चकृतोविश्वेसर्वेषांजीविनांपरम् ॥ ९ ॥ कामानुरूपंकालेनतंकृतांतंनमाम्यहम्॥बिभर्तिदंडंदंडायपापिनांशुद्धिहेतवे ॥१०॥नमामितंदंडधरंयःशास्तासर्वजीविनाम् ॥ विश्वंचकलयत्येवयःसर्वेषुचसंततम्॥११॥ अतीवदुर्निवार्यंचतंकालंप्रणमाम्यहम् ॥ तपस्वीब्रह्मनिष्ठोयःसंयमीसंजितेंद्रियः ॥ १२ ॥ जीवानांकर्मफलदस्तंयमंप्रणमाम्यहम् ॥ स्वात्मारामश्चसर्वज्ञोमित्रंपुण्यकृतांभवेत् ॥ १३ ॥ पापिनांक्लेशदोयस्तंपुण्यमित्रंनमाम्यहम् ॥ यज्जन्मब्रह्मणोंऽशेनज्वलंतंब्रह्मतेजसा ॥ १४ ॥योध्यायतिपरंब्रह्मतमीशंप्रणमाम्यहम् ॥ इत्युक्त्वासाचसावित्रीप्रणनामयमंमुने ॥ १५॥ यमस्तांशक्तिभजनंकर्मपाकमुवाचह॥ इदंयमाष्टकंनित्यंप्रातरुत्थाययःपठेत् ॥ १६ ॥ यमात्तस्यभयंनास्तिसर्वपापात्प्रमुच्यते॥ महापापीयदिपठेन्नित्यंभक्तिसमन्वितः॥१७॥यमःकरोतिसंशुद्धंकायव्यूहेननिश्चितम् ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ॥ मायाबीजंमहामंत्रंप्रदत्वाविधिपूर्वकम् ॥ कर्माशुभविपाकंचतामुवाचरवेःसुतः ॥ १ ॥

प्रणाम करती हूं जो स्वात्माराम सर्वज्ञ पुण्य कर्म करनेवालोंके मित्र हैं ॥ १३ ॥ तथा पापियोंके क्लेश देनेवाले पुण्यके मित्रको मैं प्रणाम करती हूं. जिनका जन्म ब्रह्मके अंशसे तेजसे प्रज्वलित है ॥ १४ ॥ जो परब्रह्मका ध्यान करनेवाले हैं उन ईशको मैं प्रणाम करती हूं. हे मुने! ऐसा कह सावित्रीने यमको प्रणाम किया॥ ॥ १५ ॥ तब यमने उनको शक्तिका भजन और कर्मविपाक वर्णन किया जो प्रभात उठकर नित्य इस अष्टकको पढते हैं ॥ १६ ॥ उनको यमराजका भय नहीं होता वह सब पापोंसे छूट जाते हैं महापापी भी यदि नित्य भक्तिसे पढे तो ॥ १७॥ निश्चय उसको यमराज कायव्यूहसे शुद्ध कर देते हैं ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ ६२ ॥ ॥ श्रीनारायण बोले विधिपूर्वक मायाबीज महामंत्रको देकर अशुभ कर्मके विपाक

को यमराज कहने लगे ॥ १ ॥ धर्मराज बोले शुभकर्मके विपाकसे यह मनुष्य नरकको नहीं जाता है अब अशुभ कर्मका विपाक कहताहूं सुनो ॥ २ ॥ हे भामिनि! अनेक पुराण और नामके भेद तथा अनेक प्रकारके कर्मोंसे यह जीव विविध प्रकारके स्वर्गमें जाता है ॥ ३ ॥ शुभ कर्मके विपाकसे नरकको नहीं जाता है कुकर्मके विपाकसे अनेक प्रकारके नरकमें जाता है ॥ ४ ॥ नरकके अनेक प्रकारके कुण्ड हैं वह अनेक शास्त्रके प्रमाण और कर्म भेदसे ॥ ५ ॥ वह मनुष्योंको क्लेश देनेवाले गर्त दुःखियोंको क्लेश देनेको विस्तृत हुए हैं भयंकर घोर और वडे कुत्सित हैं ॥ ६ ॥ इसीप्रकार ८६ कुंड हैं वेदप्रसिद्ध उनके नाम सुनो ॥ ७ ॥ वह्नि

धर्मराजउवाच ॥ शुभकर्मविपाकान्ननरकंयातिमानवः ॥ कर्माशुभविपाकंचकथयामिनिशामय ॥ २ ॥ नानापुराणभेदेननामभेदेनभामिनि ॥ नानाप्रकारंस्वर्गंचयातिजीवःस्वकर्मभिः ॥ ३ ॥ शुभकर्मविपाकान्ननरकंयातिकर्मभिः ॥ कुकर्मणाचनरकंयातिनानाविधंनरः ॥ ४ ॥ नरकाणां चकुंडानिसंतिनानाविधानिच ॥ नानाशास्त्रप्रमाणेनकर्मभेदेनयानिच ॥ ५ ॥ विस्तृतानिचगर्तानिक्लेशदानिचदुःखिनाम् ॥ भयंकराणिघोराणिहेवत्से कुत्सितानिच ॥ ६ ॥ षडशीतिचकुंडानिएवमन्यानिसंतिच ॥ निबोधतेषांनामानिप्रसिद्धानिश्रुतौसति ॥ ७ ॥ वह्निकुंडंतप्तकुंडंक्षारकुंडंभयानकम् ॥ विट्कुंडंमूत्रकुंडंचश्लेष्मकुंडंचदुःसहम् ॥ ८ ॥ गरकुंडंदूषिकुंडंवसाकुंडंतथैवच ॥ शुक्रकुंडमसृक्कुंडमश्रुकुंडंचकुत्सितम् ॥ ९ ॥ कुंडंगात्रमलानां चकर्णविट्कुंडमेवच ॥ मज्जाकुंडंमांसकुंडंनक्रकुंडंचदुस्तरम् ॥१०॥ लोमकुंडंकेशकुंड मस्थिकुंडंचदुस्तरम् ॥ ताम्रकुंडंलोहकुंडंप्रतप्तंक्लेशदंमहत् ॥ ॥ ११ ॥ चर्मकुंडंतप्तसुराकुंडंचपरिकीर्तितम् ॥ तीक्ष्णकंटककुंडंचविषोदंविषकुंडकम् ॥ १२ ॥ प्रतप्तकुंडंतैलस्यकुंतकुंडंचदुर्वहम् ॥ कृमिकुंडं पूयकुंडंसर्पकुंडंदुरंतकम् ॥ १३ ॥

कुंड, तप्तकुंड, भयानक, क्षारकुंड, विष्ठाकुंड, मूत्रकुंड, श्लेष्माकुंड, बडा दुःसह ॥ ८ ॥ गरकुंड दूषिकुंड, वसाकुंड, शुक्रकुंड, रुधिरकुंड, कुत्सित अश्रुकुंड ॥ ९ ॥ शरीरके मलोंकाकुंड, कर्ण विट्कुंड, मज्जाकुंड, मांसकुंड, दुस्तर नक्रकुंड ॥ १० ॥ लोमकुंड, केशकुंड, दुस्तर अस्थिकुंड, ताम्रकुंड, लोहकुंड, तप्तकुंड, बडाक्लेश देने वालाहै ॥ ११ ॥ चर्मकुंड, तप्तसुराकुंड, तीक्ष्णकंटककुंड, विषोदककुंड, विषकुंड ॥ १२ ॥ तप्ततैलकुंड, दुर्वह अनेक प्रकारके तुंडकुंड, कृमिकुंड, पूयकुंड दुरन्त सर्पकुंड ॥ १३ ॥

मण्डककुंड, दंशकुंड, भीमकुंड, गरलकुंड, वज्रदंष्ट्रकुंड वृश्चिक कुंड ॥ १४ ॥ शरकुंड, शूलकुंड, खड्गकुंड, गोलकुंड, नक्रकुंड, काककुंड, शोकका स्थान ॥१५॥ मंथान जीवोंकेकुंड, बीजनामक जीवोंके कुंड, दुःस्सह वज्रकुंड, तप्त पाषाणकुंड, तीक्ष्ण पाषाणकुंड ॥१६॥ लालाकुंड, मसीकुंड, चूर्णकुंड, चक्रकुंड, वक्र कुंड, बडा विकट कूर्मकुंड ॥ १७ ॥ ज्वालाकुंड भस्मकुंड, दग्धकुंड, तप्तसूची असिपत्र क्षुरधार, सूचीमुख ॥ १८ ॥ गौकामुख नक्रकुंड, गजदंश, गोमुख, कुंभीपाक कालसूत्र, मत्स्योद, कृमिकंतुक ॥ १९ ॥ पांसुभोज, पाशोंसे वेष्टित, शूलप्रोत, प्रकंपन, उल्कामुख, अंधकूप, वेधन, ताडन ॥ २० ॥ जालरंध्र, देहचूर्ण दलन, शोषण,

मशकुंडंदंशकुंडंभीमंगरलकुंडकम् ॥ कुंडंचवज्रदंष्ट्राणांवृश्चिकानांचसुव्रते ॥ १४॥ शरकुंडंशूलकुंडंखड्गकुंडंचभीषणम् ॥ गोलकुंडंनक्रकुंडंकाककुंडंशुचास्पदम् ॥ १५ ॥ मंथानकुंडंबीजकुंडंवज्रकुंडंचदुःसहम् ॥ तप्तपाषाणकुंडंचतीक्ष्णपाषाणकुंडकम् ॥ १६ ॥ लालाकुंडंमसीकुंडंचूर्णकुंडंतथैवच ॥ चक्रकुंडंवक्रकुंडंकूर्मकुंडमहोल्वणम् ॥ १७ ॥ ज्वालाकुंडंभस्मकुंडंदग्धकुंडंशुचिस्मिते ॥ तप्तसूचीमसिपत्रंक्षुरधारंसूचीमुखम् ॥ १८ ॥ गोकामुखंनक्रमुखंगजदंशंचगोमुखम् ॥ कुंभीपाकंकालसूत्रंमत्स्योदंकृमिकंतुकम् ॥ १९ ॥ पांसुभोज्यंपाशवेष्टंशूलप्रोतंप्रकंपनम् ॥ उल्कामुखमंधकूपंवेधनंताडनंतथा ॥ २० ॥ जालरंध्रंदेहचूर्णंदलनंशोषणंकषम् ॥ शूर्पज्वालामुखंचैवधूमांधंनागवेष्टनम् ॥ २१ ॥ कुंडान्येतानिसावित्रिपापिनांक्लेशदानिच ॥ नियुतैःकिंकरगणैरक्षितानिचसंततम् ॥ २२ ॥ दंडहस्तैःपाशहस्तैर्मदमत्तैर्भयंकरैः ॥ शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैरसिहस्तैःसुदारुणैः ॥२३॥ तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्निवार्यैश्चनसर्वतः ॥ तेजस्विभिश्चनिःशंकैस्ताम्रपिंगलोचनैः ॥२४॥ योगयुक्तैःसिद्धियुक्तैर्नानारूपधरैर्भटैः ॥ आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैःपापिभिःसर्वजीविभिः ॥ ॥ २५ ॥ स्वकर्मनिरतैःसर्वैःशाक्तैःसौरैश्चगाणपैः ॥ अदृश्यैःपुण्यकृद्भिश्चसिद्धैर्योगिभिरेवच॥ २६ ॥ स्वधर्मनिरतैर्वापिविरक्तैर्वास्वतंत्रकैः ॥ बलवद्भिश्चनिःशंकैःस्वप्नदृष्टैश्चवैष्णवैः ॥ २७ ॥

कशाघात, शूर्पज्वालामुख, धूमांध, नागवेष्टन ॥ २१ ॥ हे सावित्रि ! यह सब कुंड पापियोंको क्लेश देने वाले हैं लक्षों किंकरगण इनकी रक्षाकरते हैं ॥ २२ ॥ दण्ड पाश हाथमें लिये मदमत्त भयंकर शक्ति गदा दारुण असि हाथमें लिये ॥ २३ ॥ तमयुक्त दयाहीन अनिवार्य तेजस्वी निश्शंक ताम्रपिंग लालचनवाले ॥ २४ ॥ कोई योगयुक्त कोई सिद्धियुक्त नानारूप धारी भट है यह जिनकी मृत्यु निकट है उन पापियोंको दीखने वाले हैं ॥ २५ ॥ और जो अपने कर्म में निरत सब शाक्त सौर गाणपत्य सिद्ध योगी पुण्यात्मा हैं उनको नहीं दीखनेवाले हैं ॥ २६ ॥ अपने धर्ममें श्रेष्ठज्ञानवाले वा स्वतंत्र मानसिक बलवान् निश्शंक वैष्णव ज्ञानियोंको देव

भावापन्न होनेसे दूत स्वप्नमें दीखें तो दीखें नहीं तो उनको नहीं दीखते. उन देवरूप पुरुषोंसे यमदूत अदृश्य हैं. हे साध्वी! यह तुमसे कुंडसंख्या निरूपण की जिसका निवास जिसकुंडमें है वह समझो मैं तुमसे कहता हूं ॥ २७ ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ धर्मराज बोले हरिसेवामें निरत शुद्धयोग, सिद्ध, व्रती, तपस्वी, ब्रह्मचारी इनमें कोई नरकको नहीं जाता ॥ १ ॥ जो बलके विद्याधनके घमण्डसे कटुवचन बोलकर अपने बंधु आदिको दग्धकरताहै वह वह्निकुंडमें जाता है ॥ २ ॥ वह अपने शरीरके लोमप्रमाण वर्षतक हुताशनमें स्थित हो पीछे छायारहित वनमें पशुयोनिको तीन जन्मतक प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ कोई ब्राह्मण अपने यहां भूखा प्यासा आगया हो उसको जो मूढ भोजन नहीं कराता वह तप्त

एतत्तेकथितंसाध्विकुंडसंख्यानिरूपणम् ॥ येषांनिवासोयत्कुंडेनिबोधकथयामिते ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादेसावित्र्युपाख्यानेद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ धर्मराजउवाच ॥ हरिसेवारतःशुद्धोयोगसिद्धोव्रतीसति ॥ तपस्वीब्रह्मचारीचनयातिनरकंध्रुवम् ॥ १ ॥ कटुवाचाबांधवांश्वबललेपेनयोनरः ॥ दग्धान्करोतिबलवान्वह्निकुंडंप्रयातिसः ॥ २ ॥ स्वगात्रलोममानाब्दंतत्रस्थित्वाहुताशने ॥ पशुयोनिमवाप्नोतिरौद्रदग्धांत्रिजन्मनि ॥ ३ ॥ ब्राह्मणंतृषितंतप्तंक्षुधितंगृहमागतम् ॥ नभोजयतियोमूढस्तप्तकुंडंप्रयातिसः ॥ ४ ॥ तत्रतल्लोममानंचवर्षंस्थित्वाचदुःखदे ॥ तप्तस्थलेवह्नितल्पेपक्षीचसतजन्मसु ॥ ५ ॥ रविवारेचसंक्रांत्याममायांश्राद्धवासरे ॥ वस्त्राणांक्षारसंयोगंकरोतिकेवलंनरः ॥ ६ ॥ सयातिक्षारकुंडंचसूत्रमानाब्दमेवच ॥ सव्रजेद्रजकींयोनिंसप्तजन्मसुभारते ॥ ७ ॥ मूलप्रकृतिनिंदांयःकुरुतेमानवाधमः ॥ वेदनिंदांशास्त्रनिंदांपुराणानांतथैवच ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनांतथानिंदापरोजनः ॥ गौरीवाण्यादिदेवीनांतथानिंदापरोजनः ॥ ९ ॥ तेसर्वेनिरयेयांतितस्मिन्कुंडेभयानके ॥ नातःपरतरंकुंडंदुःखदंतुभविष्यति ॥ १० ॥

कुंडको जाता है ॥ ४ ॥ वहां उसके लोमप्रमाण वर्षतक तप्तकुंडमें निवास कर फिर कहीं तप्तस्थलवह्नितल्पमें सातजन्म पक्षी होता है ॥ ५ ॥ रविवार संक्रान्ति अमावस श्राद्धदिवसमें जो वस्त्रोंमें खार लगाता है ॥ ६ ॥ वह उसके सूत्रप्रमाणवर्षतक क्षार कुंडमें जाता है और सातजन्मतक वह भारतमें धोबीकी योनिको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ जो मनुष्याधम मूल प्रकृतिकी निन्दा करै है तथा वेद शास्त्र पुराणकी निन्दा करते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्रह्मा विष्णु शिवादिकी निन्दा करते हैं तथा गौरी वाणी आदि देवताओंकी निन्दा करते हैं ॥ ९ ॥ वे उस भयानक कुंडमें सब जाते हैं इससे अधिक दुःखदायक और कोई कुंड नहीं है ॥ १० ॥

उसमें अनेक कल्प निवास कर फिर यह प्राणी सर्पयोनिमें जाताहै, देवी निन्दाके अपराधका प्रायश्चित नहींहै॥ ११॥ जो स्वयं वा दूसरेकी दी हुई सुरविप्रकी वृत्तिको हरण करते हैं वह साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाके कुंडमें गमन करते हैं ॥ १२ ॥ और साठ सहस्र वर्षतक वहां विष्ठा भोजन करता है फिर इतनेही समयतक भूमिमें आनकर विष्ठाका कृमि होता है ॥ १३॥ जो दूसरेके सरोवरमें उसकी आज्ञाके विना स्वयं तडाग करते हैं तथा मूत्र करते हैं तो ये मूत्रकुंडको गमन करतेहैं॥ १४॥ उसके रेणुमान वर्षतक मूत्रपान करता वहां स्थित रहता है फिर वहांसे आनकर पूर्ण सौ वर्ष भारतमें वृष होता है ॥ १५॥ जो इकलाही मीठा खाता है वह श्लेष्मकुंडमें गमन करता है और सौवर्षतक वहां उसको भोजनकरता स्थित रहता है ॥ १६ ॥ फिर भारतमें आकर सौवर्षतक प्रेत होता है यहां भी वह श्लेष्मा मूत्र पूय भोजनकरनेउपरान्त

तत्रस्थित्वाऽनेककल्पंसर्पयोनिंव्रजेत्पुनः॥देवीनिंदापराधस्यप्रायश्चित्तंनविद्यते ॥११॥ स्वदत्तांपरदत्तांवावृत्तिंचसुरविप्रयोः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिविट्कुंडं चप्रयातिसः॥१२॥तावंत्येवचवर्षाणिविड्भोजीतत्रतिष्ठति ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिविट्कृमिश्चपुनर्भुवि ॥१३॥ परकीयतडागेचतडागंयःकरोतिच॥उत्सृजेद्दैव दोषेणमूत्रकुंडंप्रयातिसः ॥१४॥ तद्रेणुमानवर्षंचतद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥ पुनःपूर्णशताब्दंचसवृषोभारतेभवेत् ॥१५॥ एकाकीमिष्टमश्नातिश्लेष्मकुंडंप्रया तिच ॥ पूर्णमब्दशतंचैवतद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥१६॥ ततःपूर्णशताब्दंचसप्रेतोभारतेभवेत् ॥ श्लेष्ममूत्रपरंचैवपूयंभुंक्तेततःशुचिः ॥ १७॥ पितरंमातरंचैवगु रुंभार्यांसुतंसुताम् ॥ योनपुष्णात्यनाथंचगरकुंडंप्रयातिसः ॥१८॥ पूर्णमब्दशतंचैवतद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥ ततोव्रजेद्भूतयोनिंशतवर्षंततःशुचिः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वातिथिंवक्रचक्षुःकरोतियोहिमानवः ॥ पितृदेवास्तस्यजलंनगृह्णंतिचपापिनः ॥२०॥ यानिकानिचपापानिब्रह्महत्यादिकानिच ॥ इहैवलभतेचांतेदूषि काकुंडमाव्रजेत् ॥२१॥ पूर्णमब्दशतंचैवतद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥ ततोव्रजेद्भूतयोनिंशतवर्षंततःशुचिः ॥ २२ ॥ दत्वाद्रव्यंचविप्रायचान्यस्मैदीयतेयदि ॥ सतिष्ठतिवसाकुंडेतद्भोजीशतवत्सरम् ॥ २३ ॥

शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ माता, पिता, गुरु, भार्या, सुत, कन्या, तथा अनाथोंका जो पालन नहीं करता, वह विषकुंडमें गमन करता है ॥ १८ ॥ और सौवर्षतक वहां उसे यही भोजनकरनेको प्राप्त होता है फिर भूतयोनिको प्राप्तहो सौवर्षमें पवित्र होता है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य अतिथिको देखकर कुटिलनेत्र करते हैं उस पापी का जल पितृ देव ग्रहण नहीं करते॥ २०॥ और भी जो ब्रह्महत्यादि पाप हैं वह यही प्राप्त होकर अन्तमें दूषिकाकुंडको गमन करताहै ॥ २१ ॥ वहां यही भोजनकरता सौ वर्षतक निवास करता है फिर सौवर्षतक भूतयोनिको प्राप्त होकर सौवर्षमें पवित्र होताहै॥ २२॥ ब्राह्मणको देनेको कहा द्रव्य यदि औरको दियाजायतो वह वसाकुंडमें जाय वहां

सौवर्षतक वही भोजन करते हैं॥ २३॥ वह सातजन्ममें गिरगट होता है फिर यहां आकर महादरिद्री अल्पायु होता है।।२४।। पुरुषको कामिनी वा कामिनीको पुरुष जो अपना वीर्यपानकराते हैं वह वीर्यके कुंडमें जातेहैं ॥ २५ ।। और सौवर्षतक यही भोजन करते वहां रहतेहैं फिर सौजन्म कृमिको पाकर शुचि होताहै ।।२६॥ जो गुरु या ब्राह्मणको ताडनकर उनका रक्त भूमिपर गिराता है वह सौ वर्ष रक्तके कुंडमें स्थित हो उसीको भोजन करता है।।२७।।फिर भारतमें आय सात जन्मतक व्याघ्र होता है फिर क्रमसे शुद्धिको प्राप्त होता है ।। २८ ।। जो कोई आश्रुत्यागकर गद्गद हो गाते हुए भक्त वा श्रीकृष्णके गुण संगीतपर हास्य करता है ।। २९ ।। वह सौवर्षतक अश्रु कुंडमें

कृकलासोभवेत्सोऽपिभारतेसप्तजन्मसु ॥ ततोभवेन्महारौद्रोदरिद्रोऽल्पायुरेवच ॥ २४॥ पुमांसंकामिनीवापिकामिनींवापुमानथ ॥ यःशुक्रंपाययत्येवशुक्रकुंडंप्रयातिसः ॥ २५ ॥ पूर्णमब्दशतंचैवतद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥ कृमियोनिंशताब्दंचव्रजेद्भूत्वाततःशुचिः ॥ २६ ॥ संताड्यचगुरुंविप्रंरक्तपातंचकारयेत् ॥ सचतिष्ठत्यसृक्कुंडेतद्भोजीशतवत्सरम् ॥ २७ ॥ ततोलभेद्व्याघ्रजन्मसप्तजन्मसुभारते ॥ ततःशुद्धिमवाप्नोतिमानवश्चक्रमेणह ॥२८॥ योऽश्रुतत्याजगायंतंभक्तंदृष्ट्वासगद्गदम् ॥ श्रीकृष्णगुणसंगीतेहसत्येवहियोनरः ॥२९॥ सवसेदश्रुकुंडेचतद्भोजीशतवर्षकम् ॥ ततोभवेच्चचंडालस्त्रिजन्मनिततःशुचिः ॥ ३० ॥ करोतिशठतांतद्वन्नित्यंसुहृदियोनरः ॥ कुंडंगात्रमलानांचसप्रयातिशताब्दकम् ॥ ३१ ॥ ततःसगार्दभींयोनिमवाप्नोतित्रिजन्मनि ॥ त्रिजन्मनिचसार्गालींततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम् ॥३२॥ बधिरंयोहसत्येवनिंदत्येवाभिमानतः ॥ सवसेत्कर्णविट्कुंडेतद्भोजीशतवत्सरम् ॥३३॥ ततोभवेत्सबधिरोदरिद्रःसप्तजन्मसु ॥ सप्तजन्मन्यंगहीनस्ततःशुद्धिंलभेद्ध्रुवम् ॥३४॥ लोभात्स्वभरणार्थायजीविनंहंतियोनरः ॥ मज्जाकुंडेवसेत्सोऽपितद्भोजीलक्षवत्सरम् ॥३५॥

उन्हींको भोजन करता स्थित रहता है फिर तीन जन्म चांडाल होकर शुचि होता है ।। ३०।। जो मनुष्य अपने सुहृदोंमें नित्य शठता करता है वह सौ वर्षतक शरीरके मलोंके कुंडमें निवास करता है ।। ३१ ।। फिर वह तीन जन्म गधा होता है और तीन जन्म शृगाल होकर शुद्ध होता है ।।३२।। जो बहरेके ऊपर हँसकर अभिमानसे उसकी निन्दा करता है वह सौ वर्षतक कर्णविट्में निवास कर उसीको भोगता है ।। ३३ ।। फिर वह बहरा होकर सात जन्मतक दरिद्री होता है फिर सात जन्म अंगहीन होकर शुद्ध होता है ।। ३४ ।। जो मनुष्य लोभसे अपनी उदरपूर्तिके निमित्त जीवघात करते हैं वह मज्जाकुण्डमें निवास कर सौ वर्ष उसीको खाते हैं ॥ ३५॥

फिर खरगोश और सात जन्म मछली होता है तीन जन्म वराह और सात जन्म कुक्कुट होता है ॥ ३६ ॥ फिर कर्मसे मृगादि होकर फिर शुद्ध होता है जो मनुष्य अपनी कन्याका पालनकर बेचता है ॥ ३७ ॥ वह महामूढ अर्थके लोभसे मांसकुंडको गमन करता है और कन्याके लोमप्रमाण वर्ष वहां रहकर वह खाता हुआ वहां निवास करता है ॥ ३८ ॥ यमकिंकर उसपर महादंडका प्रहार करते हैं मांसभार शिरपर कराकर जिह्वासे रक्त चटवाते हैं ॥ ३९ ॥ फिर वह पापी भारतमें आय विष्ठा कीट तथा अन्य कीटादिमें जन्म लेता है साठसहस्र वर्ष यह योनि भोगकर सातजन्मतक व्याध होता है ॥ ४० ॥ तीन जन्ममें वराह सातजन्ममें कुक्कुट और सातजन्म भारतमें मण्डूक और जलौका होता है ॥ ४१ ॥ फिर सातजन्म काक होकर पश्चात् शुद्ध होता है व्रत उपवास और श्राद्धादिके

ततोभवेच्चशशकोमीनश्चसप्तजन्मसु ॥ त्रिजन्मानिवराहश्चकुक्कुटःसप्तजन्मसु ॥ ३६ ॥ एणादयश्चकर्मभ्यस्ततःशुद्धिंलभेद्ध्रुवम् ॥ स्वकन्यापालनंकृत्वाविक्रीणातिचयोनरः ॥ ३७ ॥ अर्थलोभान्महामूढोमांसकुंडंप्रयातिसः ॥ कन्यालोमप्रमाणाब्दंतद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥ ३८ ॥ तस्यदंडप्रहारंचकुर्वतिममर्किंकराः ॥ मांसभारंमूर्ध्निकृत्वारक्तभारंलिहेत्क्षुधा ॥ ३९ ॥ ततोहिभारतेपापीकन्याविट्कृमिगोभवेत् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिव्याधश्चसप्तजन्मसु ॥ ॥ ४० ॥ त्रिजन्मनिवराहश्चकुक्कुटःसप्तजन्मसु ॥ मंडूकोहिजलौकाश्चसप्तजन्मसुभारते ॥ ४१ ॥ सप्तजन्मसुकाकश्चततःशुद्धिंलभेद्ध्रुवम् ॥ व्रतानामुपवासानांश्राद्धादीनांचसंगमे ॥४२॥ करोतियःक्षौरकर्मसोऽशुचिःसर्वकर्मसु ॥ सचतिष्ठतिकुंडंचनखादीनांचसुंदरि ॥ ४३ ॥ तद्दैवदिनमानाब्दंतद्भोजीदंडताडितः ॥ सकेशंपार्थिवंलिंगंयोवाऽर्चयतिभारते ॥ ४४ ॥ सतिष्ठतिकेशकुंडेमृद्रेणुमानवर्षकम् ॥ तदंतेयावनींयोनिंप्रयातिहरकोपतः ॥ ४५ ॥ शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोतिराक्षसःसभवेद्ध्रुवम् ॥ पितृणांयोविष्णुपदेपिंडंनैवददातिच ॥ ४६ ॥ सचतिष्ठत्यस्थिकुंडेस्वलोमाब्दंमहोल्वणे ॥ ततःसुयोनिंसंप्राप्यकुब्जःसप्तजन्मसु ॥ ४७ ॥ भवेन्महादरिद्रश्चततःशुद्धोहिदेहतः ॥ यःसेवतेमहामूढोगुर्विणींचस्वकामिनीम् ॥ ४८ ॥

समागममें ॥ ४२ ॥ जो क्षौर कराता है वह सब कर्ममें अशुचि होता है. हे सुन्दरि ! वह नखादिके कुंडमें पडता है ॥ ४३ ॥ और देवताओंके एकवर्ष पर्यन्त वही भोजन करता वहां स्थित रहता है जो भारतमें सकेश पार्थिवलिंगका पूजन करता है ॥ ४४ ॥ वह मृद्रेणुवर्षपरिमाण वर्षतक केशकुंडमें निवास करता है फिर हरके कोपसे यवनयोनिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ सौवर्षमें शुद्धिको प्राप्त होकर राक्षस होता है जो गयामें पितरोंके निमित्त पिंड नहीं देता है ॥ ४६ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक महाभयंकर अस्थिकुंडमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त होकर सातजन्ममें कुब्जा होता है ॥ ४७ ॥ फिर महा दरिद्री हो

देहसे शुद्ध हो जाता है जो महामूढ गर्भवती अपनी कामिनीकी मैथुन सेवा करता है ॥ ४८॥ वह प्रतप्त ताम्रकुंडमें सौवर्ष निवास करता है जो अवीरा और ऋतुस्नाताका अन्न खाता है॥ ४९॥ वह सातजन्म तप्तलोह कुंडमें निवास करता है वह रजकयोनिमें और सातजन्म काकयोनिमें निवास करता है ॥ ५० ॥ फिर वह मनुष्य महाव्रणी दरिद्री और शुद्ध होता है जो चर्मके हाथसे देवद्रव्यको स्पर्श करता है ॥ ५१ ॥ वह सौवर्षतक चर्मके कुंडमें निवास करता है जो शूद्रकी आज्ञासे शूद्रका अन्न खाता है ॥ ५२ ॥ वह द्विज सुराकुण्डमें सौवर्ष निवास करता है फिर सातजन्मतक वह ब्राह्मण शूद्रयाजी होता है ॥ ५३ ॥ फिर शूद्रके श्राद्धका अन्न भोगकर पश्चात् शुद्ध होता है जो वाग्दुष्ट कटुवाणीसे सदा स्वामीको त्यागन करता है ॥ ५४ ॥ वह तीक्ष्ण कंटकके कुंडमें उसीको खाता सदा निवास करता है और यमदूत अपने

प्रतप्तेताम्रकुंडेचशतवर्षंसतिष्ठति ॥ अवीरान्नंचयोभुंक्तेऋतुस्नातान्नमेवच ॥ ४९ ॥ लोहकुंडेशताब्दंचसचतिष्ठतितप्तके ॥ सव्रजेद्राजकीयोनिंकाकानां सप्तजन्मसु ॥ ५० ॥ महाव्रणीदरिद्रश्चततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ योहिचर्माक्तहस्तेनदेवद्रव्यमुपस्पृशेत् ॥ ५१ ॥ शतवर्षप्रमाणंचचर्मकुंडेसतिष्ठति ॥ यःशूद्रेणाऽभ्यनुज्ञातोभुंक्तेशूद्रान्नमेवचं ॥ ५२ ॥ सचतप्तसुराकुंडेशताब्दंतिष्ठतिद्विजः ॥ ततोभवेच्छूद्रयाजीब्राह्मणःसप्तजन्मसु ॥५३॥ शूद्रश्राद्धान्नभोजीचततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम् ॥ वाग्दुष्टःकटुकोवाचाताडयेत्स्वामिनंसदा ॥ ५४ ॥ तीक्ष्णकंटककुंडेसतद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥ ताडितोयमदूतेनदण्डेनचचतुर्गुणम् ॥५५॥ ततउच्चैःश्रवाःसप्तजन्मस्वेवततःशुचिः ॥ विषेणजीवनंहंतिनिर्दयोयोहिमानवः ॥ ५६ ॥ विषकुंडेचतद्भोजीसहस्राब्दंचतिष्ठति ॥ ततोभवेन्नृघातीचव्रणीचशतजन्मसु ॥ ५७ ॥ सप्तजन्मसुकुष्ठीचततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम् ॥ दंडेनताडयेद्गांहिवृषंचवृषवाहकः ॥ ५८ ॥ भृत्यद्वारास्वतंत्रोवापुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ प्रतप्ततैलकुंडेऽग्नौतिष्ठतिस्मचतुर्युगम् ॥५९॥ गवांलोमप्रमाणाब्दंवृषोभवतितत्परम् ॥ कुंतेनहंतियोजीवंवह्निलोहेनहेलया ॥६०॥

दंडसे उसे चौगुना दंडदेते हैं ॥ ५५॥ फिर सातजन्ममें उच्चैश्रवाहोकर पवित्र होता है जो मनुष्य निर्दयी होकर विषसे किसीका जीवन हरते हैं ॥ ५६ ॥ वह सहस्रवर्ष उसीको खाते सहस्रवर्षतक रहते हैं फिर मनुष्यघाती और व्रणी सातजन्मतक होते हैं ॥ ५७ ॥ फिर सातजन्ममें कुष्ठी होकर शुद्ध होते हैं जो वृषवाहक दंडसे वृष और गौकी ताडना करता है ॥ ५८ ॥ अथवा भृत्यद्वारा ताडन करता वा स्वतंत्र ताडन करता है वह चारयुगतक तप्त तेलके कुंडमें निवास करता है ॥ ५९ ॥ इस प्रकार गौओंके लोमप्रमाण वर्षतक वहां रहकर फिर वृष होता है जो कुन्त बरछी वा लोहको लालकर खेलसेही जीवको मारते हैं ॥ ६० ॥

वह दशसहस्र वर्ष तक कुन्तके कुंडमें निवास करतेहैं फिर सुयोनिको प्राप्त होकर उदरमें व्याधिवाले होते हैं ॥ ६१ ॥ एकजन्म क्लेशपाकर फिर शुद्ध होतेहैं जो द्विजाधम मांसके लोभसे वृथा मांस खाता है॥ ६२ ॥ हरिको विना भोगलगाये नैवेद्य भोग लगाताहै वह कृमिकुंडमें गमन करताहै और अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ६३ ॥ फिर तीनजन्मतक म्लेच्छजातिमें रहकर ब्राह्मण होता है जो ब्राह्मण शूद्रयाजी और शूद्रका अन्न खानेवाला है ॥ ६४ ॥ जो शूद्रोंके शवदाह करता है वह पूयकुंडमें निवास करता है. हे सुव्रते ! वह लोमप्रमाण वर्षोंतक यमदंडसे ॥ ६५ ॥ यमदूतोंद्वारा ताडित होकर वहां निवास करता है फिर भारतमें आय सातजन्मतक शूद्र होता है ॥ ६६ ॥ महारोगी दरिद्री बधिर मूक होता है कृष्ण सर्प वा जिसके मस्तकमें पद्माकार चिह्नहोता है उस सर्पको जो मनुष्य मारता है

कुंतकुंडेवसेत्सोऽपिवर्षाणामयुतंसति ॥ ततःसुयोनिंसंप्राप्यचोदरेव्याधिसंयुतः ॥ ६१ ॥ जन्मनैकेनक्लेशेनततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ योभुंक्तेचवृथामांसंमांसलोभीद्विजाधमः ॥ ६२ ॥ हरेरनैवेद्यभोजीकृमिकुंडंप्रयातिसः ॥ स्वलोममानवर्षंचतद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥ ६३ ॥ ततोभवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनिततोद्विजः ॥ ब्राह्मणःशूद्रयाजीचशूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥ ६४ ॥ शूद्राणांशवदाहीचपूयकुंडेवसेद्ध्रुवम् ॥ यावल्लोमप्रमाणाब्दंयमदंडेनसुव्रते ॥ ६५॥ ताडितोयमदूतेनतद्भोजीतत्रतिष्ठति॥ततोभारतमागत्यसशूद्रःसप्तजन्मसु ॥ ६६ ॥ महारोगीदरिद्रश्चबधिरोमूकएवच ॥ कृष्णंपद्मंचकेयस्यतंसर्पंहंतियोनरः ॥६७॥ स्वलोममानवर्षंचसर्पकुंडंप्रयातिसः ॥ सर्पेणभक्षितःसोऽथयमदूतेनताडितः ॥ ६८ ॥ वसेच्चसर्पविड्भोजीततःसर्पोभवेद्ध्रुवम् ॥ ततोभवेन्मानवश्चस्वल्पायुर्दद्रुसंयुतः ॥ ६९ ॥ महाक्लेशेनतन्मृत्युःसर्पेणभक्षिताद्ध्रुवम् ॥ विधिप्रदत्तजीव्यांश्चक्षुद्रजंतूंश्चहंतियः ॥ ७० ॥ सदंशमशयोःकुंडेजंतुमानाब्दमेवच ॥ दिवानिशंभक्षितस्तैरनाहारश्चशब्दवान् ॥ ७१ ॥ हस्तपादादिबद्धश्चयमदूतेनताडितः ॥ ततोभवेत्क्षुद्रजंतुर्जातिश्चयावनीभवेत् ॥ ७२ ॥

॥ ६७ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक सर्पकुंडमें गमन करता है वह सर्पोंसे भक्षित हो यमदूतोंसे ताडित होता है ॥ ६८ ॥ और सर्पोंकी विष्ठा खाताहुआ निवास करता है पीछे सर्प ही होता है फिर वह मनुष्य स्वल्पायु दादोंसे संयुक्त होता है ॥ ६९ ॥ फिर सर्पसे भक्षित होनेसे महाक्लेशसे उसकी मृत्यु होती है और विधिकी दी हुई जीविकासे जो क्षुद्रजन्तुओंको मारता है ॥ ७० ॥ वह जन्तुप्रमाण वर्षतक दंश मशकके कुंडमें निवास करता है और रातदिन यही जीव उसको भक्षण करते हैं जिससे वह अनाहार होकर शब्द करता है॥ ७१ ॥ हाथपर बिद्धहुए यमदूतोंसे ताडित हुआ रहता है फिर यहां आकर क्षुद्रजन्तु होकर पीछे यावनी जाती होताहै ॥ ७२ ॥

फिर अंगहीन मनुष्य होकर पीछे शुद्ध होता है जो मूढ मधुमाखीको मारकर मधु खाता है ॥ ७३ ॥ वह विषके कुंडमें जीवोंके प्रमाणवर्षतक निवास करता है और गरलसे दग्धहो जीवोंसे दग्ध हो मेरे दूतोंसे ताडितहोता है ॥ ७४ ॥ फिर मक्षिक होकर मनुष्य शुद्ध होजाता है. जो अदंडको दंड करता और ब्राह्मणको दंडदेता है ॥ ७५ ॥ वह वज्रदंष्ट्रकीटोंके कुंडमें अवश्य गमन करता है और वह उसके लोमप्रमाण वर्षतक वह रातदिन रहता है ॥ ७६ ॥ बडा शब्द करता है जीव भक्षण करते हैं मेरे दूत उसको ताडना करते हैं. हे भद्रे! वहां वह क्षणक्षणमें हाहाकार करता रोता है ॥ ७७ ॥ फिर सातजन्म सूकर होकर तीन जन्म काक होकर शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥ जो मूढ अर्थलोभसे प्रजाको दंड देता है वह उनके लोमप्रमाण वर्षतक विच्छुओंके कुंडमें निवासकरता है ॥ ७९ ॥ फिर भारतमें

ततोभवेन्मानवश्चसोंऽगहीनस्ततःशुचिः ॥ योमूढोमधुमश्नातिहत्वाचमधुमक्षिकाः॥७३॥सएवगारलेकुंडेजीवमानाब्दकंवसेत् ॥ भक्षितोगरलैर्दग्धोममदूतेनताडितः ॥७४॥ ततोहिमक्षिकाजातिस्ततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ दंडंकरोत्यदंडयेचविप्रेदंडंकरोतिच ॥७५॥ सकुंडंवज्रदंष्ट्राणांकीटानांयातिसत्वरम् ॥स तल्लोमप्रमाणाब्दंतत्रतिष्ठत्यहर्निशम् ॥ ७६ ॥ शब्दकृद्भक्षितस्तैस्तुममदूतेनताडितः ॥ करोतिरोदनंभद्रेहाहाकारंक्षणेक्षणे ॥ ७७॥ पुनःसूकरयोनौच जायतेसप्तजन्मसु॥त्रिजन्मनिकाकयोनौततःशुद्धोभवेन्नरः॥७८॥अर्थलोभेनयोमूढःप्रजादंडंकरोतिमः॥वृश्चिकानांचकुंडंचतल्लोमाब्दंवसेद्ध्रुवम् ॥७९॥ ततोवृश्चिकजातिश्चसप्तजन्मसुभारते ॥ ततोनरश्चांगहीनोव्याधिशुद्धोभवेद्ध्रुवम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणःशस्त्रधारीयोह्यन्येषांधावकोभवेत् ॥ संध्याहीनश्च योविप्रोहरिभक्तिविहीनकः ॥ ८१ ॥ सतिष्ठतिस्वलोमाब्दंकुंडेषुचशरादिषु ॥ विद्धःशरादिभिःशश्वत्ततःशुद्धोभवेन्नरः ॥८२॥कारागारेसांधकारेप्राणिहंतिप्रजाश्चयः ॥ प्रमत्तःस्वस्यदोषेणगोलकुंडंप्रयातिसः ॥८३॥ सपंकतप्ततोयाक्तंसांधकारंभयंकरम् ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रैश्चकीटैश्चसंयुक्तंगोलकुंडकम् ॥ ८४॥ कीटैर्विद्धोवसेत्तत्रप्रजालोमाब्दमेवच॥ ततोभवेत्प्रजाभृत्यस्ततःशुद्धोभवेत्क्रमात् ॥ ८५॥

सातजन्म वृश्चिक होकर फिर अंगहीन व्याधियुक्त मानव होता है ॥ ८० ॥ ब्राह्मण शस्त्रधारी जो दूसरोंका घातक होता है जो ब्राह्मण संध्याहीन हरिभक्तिरहित है ॥ ८१ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक बाणोंके कुंडमें पडता है शरादिसे विद्ध होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ८२ ॥ जो अंधकारयुक्त कारागारमें प्राणी और प्रजाको मारता है वह अपने दोषसे प्रमत्त हुआ गोलकुंडमें जाता है ॥ ८३ ॥ वह तप्तजलकी कीच अंधकारसे भयंकर तीक्ष्ण डाढोंवाले जीवोंसे युक्त गोलकुंड है ॥ ८४ ॥ वहां कीटसे विद्ध हुआ प्रजाके लोमप्रमाण वर्षतक निवास करता है फिर प्रजाका भृत्य होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ८५ ॥

जो सरोवरसे उडतेहुए नक्रादिको मारता है वह नक्रकंटकप्रमाण वर्षतक नक्रकुंडमें जाता है ॥ ८६ ॥ फिर नक्रादिमेंही अवश्य उसका जन्म होता है फिर वारंवार दंडको प्राप्त हो शुद्ध होता है ॥ ८७ ॥ जो इस पुण्यक्षेत्रमें कामी होकर कामनासे परस्त्रियोंके हृदय, स्तन, मुख, नितम्ब देखता है ॥ ८८ ॥ वह काककुंडमें वसता है वहां कौए उसके नेत्र फोडते हैं फिर वह अपने लोमप्रमाण वर्ष वहां रहकर तीन जन्ममें वह्निआदिसे दग्ध होता है ॥ ८९ ॥ जो भारतमें देवब्राह्मणका सुवर्ण चुराता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक मंथानकुंडमें पडता है॥ ९० ॥ यमदूतोंसे ताडित हुआ मंथानसे छन्न लोचन हो वहां उसको ही विट्भोजन करनेको मिलती है, फिर तीन

सरोवरादुत्थितांश्चनक्रादीन्हंतियोनरः ॥ नक्रकंटकमानाब्दंनक्रकुंडंप्रयातिसः ॥ ८६ ॥ ततोनक्रादिजातीयोभवेन्नक्रादिषुध्रुवम् ॥ ततःसद्यो विशुद्धोहिदंडैनैवपुनःपुनः ॥ ८७ ॥ वक्षःश्रोणीस्तनास्यंचयःपश्यतिपरस्त्रियाः ॥ कामेनकामुकोयोहिपुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ ८८ ॥ सवसेत्काकतुंडे चकाकैःसंचूर्णलोचनः ॥ ततःस्वलोममानाब्दं भवेद्दग्धस्त्रिजन्मनि ॥ ८९ ॥ स्वर्णस्तेयीचयोमूढोभारतेसुरविप्रयोः ॥ सचमंथानकुंडेवैस्वलोमाब्दंवसे द्ध्रुवम् ॥ ९० ॥ ताडितोयमदूतेनमंथानैश्छन्नलोचनः ॥ तद्विड्भोजीचतत्रैवततश्चांधस्त्रिजन्मनि ॥ ९१ ॥ सप्तजन्मदरिद्रश्चमहाक्रूरश्चपातकी ॥ भारतेस्व र्णकारश्चसचस्वर्णवणिक्ततः ॥ ९२ ॥ योभारतेताम्रचौरोलोहचौरश्चसुंदरि ॥ सचस्वलोममानाब्दंबीजकुंडंप्रयातिसः ॥ ९३ ॥ तत्रैवबीजविड्भोजीबीजैश्च छन्नलोचनः ॥ ताडितोयमदूतेनततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ ९४ ॥ भारतेदेवचोरश्चदेवद्रव्यापहारकः ॥ सदुस्तरेवज्रकुंडेस्वलोमाब्दंवसेद्ध्रुवम् ॥ ९५ ॥ देहद ग्धोऽपितद्वज्रैरनाहारश्चशब्दकृत् ॥ ताडितोयमदूतैश्चततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ ९६ ॥ रौप्यगव्यांशुकानांचयश्चौरःसुरविप्रयोः ॥ तप्तपाषाणकुंडेचस्वलोमा ब्दंवसेद्ध्रुवम् ॥ ९७ ॥

जन्म अंधा होताहै ॥ ९१ ॥ फिर वह महाक्रूर पातकी सात जन्मतक दरिद्री होता है फिर वह भारतमें स्वर्णकार और स्वर्णवणिक् होता है ॥ ९२ ॥ हे सुन्दरि ! जो भारतमें तांबा और लोहा चुराता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक बीज कुंडमें जाता है ॥ ९३ ॥ वहां वह बीजरूप विष्ठाभोजन करनेवाला बीजसेही छन्ननेत्र हुआ यमदूतोंसे ताडित हो पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ९४ ॥ फिर भारतमें देव चोर और देवद्रव्यका हरनेवाला दुस्तर वज्रकुंडमें अपने लोमप्रमाण वर्षतक निवास करता है ॥ ९५ ॥ वहां वह देहसे वज्रोंसे दग्ध होनेपर भोजन न मिलनेसेही 'हा हा' शब्द करता है यमदूतोंसे ताडित हो पीछे शुद्ध होता है ॥ ९६ ॥ जो चांदी गौओंके पदार्थ तथा सुरविप्रके

पदार्थोंका चोर है, वह तप्तपाषणकुंडमें अपने लोम प्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ९७ ॥ तीन जन्म कूर्म और तीन जन्म कुष्ठी होता है एक जन्ममें श्वेतचिह्नवाला फिर श्वेत पक्षी होता है ॥ ९८ ॥ फिर रक्तविकार और शूलरोग ग्रसित मनुष्य होता है फिर सात जन्म अल्पायु होकर फिर शुद्ध होता है ॥ ९९ ॥ जो देव और ब्राह्मणके पीतल कांसेके पात्र हरण करता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक पाषाण कुंडमें जाता है॥ १०० ॥ फिर सात जन्मतक भारतमें अश्वजाति होता है फिर अधिक अंगवाला पश्चात् पादरोगी होता है ॥ १ ॥ जो पुंश्चलीका अन्न खाता और पुंश्चलीके अन्नसे जीता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक लाला (लार) कुंडमें निवास करता है ॥ २ ॥ वहां यमदूत उसको ताडनकर लारही खवाते हैं इससे वह बडा दुःखी होता फिर शूलरोगी और पश्चात् क्रमसे

त्रिजन्मनिचकंसोऽपिश्वेतरूपस्त्रिजन्मनि ॥ जन्मैकंश्वेतचिह्नश्चततोऽन्येश्वेतपक्षिणः ॥ ९८ ॥ ततोरक्तविकारीचशूलीवैमानवोभवेत् ॥ सप्तजन्म सुचाऽल्पायुस्ततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ ९९ ॥ रैतंकांस्यमयंपात्रंयोहरेद्देवविप्रयोः ॥ तीक्ष्णपाषाणकुंडेचस्वलोमाब्दंवसेन्नरः ॥ १०० ॥ सभवेद श्वजातिश्चभारतेसप्तजन्मसु ॥ ततोऽधिकांगजातिश्चपादरोगीततःशुचिः ॥ १ ॥ पुंश्चल्यन्नंचयोभुंक्तेपुंश्चलीजीव्यजीविनः ॥ स्वलोममानवर्षंचलाला कुंडेवसेद्ध्रुवम् ॥ २ ॥ ताडितोयमदूतेनतद्भोजीतत्रदुःखितः ॥ ततश्चक्षुःशूलरोगीततःशुद्धःक्रमेणसः ॥ ३ ॥ म्लेच्छसेवीमसीजीवीयोविप्रोभारतेभुवि ॥ वसेत्स्वलोममानाब्दंमसीकुंडेसदुःखभाक् ॥ ४ ॥ ताडितोयमदूतेनतद्भोजी तत्रतिष्ठति ॥ ततस्त्रिजन्मनिभवेत्कृष्णवर्णःपशुःसति ॥ ५ ॥ त्रिजन्मनिभवे च्छागःकृष्णवर्णस्त्रि जन्मनि ॥ ततःसतालवृक्षश्चततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ ६ ॥ धान्यादिशस्यंतांबूलंयोहरेत्सुरविप्रयोः ॥ आसनंचतथातल्पंचूर्णकुंडेप्र यातिसः ॥ ७ ॥ शताब्दंतत्रनिवसेद्यमदूतेनताडितः ॥ ततोभवेन्मेषजातिःकुक्कुटश्चत्रिजन्मनि ॥ ८ ॥

शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण म्लेच्छोंकी सेवा और लेखे आदि कार्य करता है वह ब्राह्मण मसी कुंडमें पडकर दुःखी होता है और स्वलोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ४ ॥ यमदूत उसे मारते हैं और वह मसी भक्षण करता वहाँ निवास करता है, फिर तीन जन्मतक कृष्णपशु होता है ॥ ५ ॥ फिर कृष्णवर्ण छाग फिर तीन जन्ममें कृष्णवर्ण फिर तालवृक्ष और पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ जो देव ब्राह्मणके धान्यादि श्रेष्ठ ताम्बूल हरण करते हैं तथा जो आसन, शय्या, हरण करते हैं वह चूर्णकुंडमें जाते हैं ॥ ७ ॥ सौ वर्षतक वहां यमदूतोंसे ताडित होकर वहां निवास करते हैं. फिर वह मेष जाति और तीन जन्मतक कुक्कुट होता है ॥ ८ ॥

फिर कास व्याधिसंयुक्त भूमिमें वानर होता है फिर वंशहीन और दरिद्री होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणोंका द्रव्य हरण कर चक्रपूजा वा कुलालादि चक्र करता है वह दंडसे ताडित होकर सौ वर्षतक चक्रकुंडमें निवास करता है ॥ ११० ॥ फिर तीन जन्मतक मर्त्यलोकमें तेली होता है व्याधियुक्त रोगी वंशहीन होकर पश्चात् शुचि होता है ॥ ११ ॥ जो पुरुष गोधन और ब्राह्मणों में वक्रता करता है वह वक्र कुंडमें जाकर वहां सौ युगपर्यन्त निवास करता है ॥ १२ ॥ फिर वह वक्रांग और हीनांग सात जन्ममें होता है व दरिद्र वंशहीन भार्याहीन होकर फिर शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ फिर गृध्र और तीन जन्ममें शूकर होता

ततोभवेद्वानरश्चकासव्याधियुतोभुवि ॥ वंशहीनोदरिद्रश्चअल्पायुश्चततःशुचिः ॥ १०९ ॥ करोतिचक्रंविप्राणांहत्वाद्रव्यंचयोजनः ॥ सवसेच्चक्रकुंडे चशताब्दंदंडताडितः ॥ ११० ॥ ततोभवेन्मानवश्चैतलकारस्त्रिजन्मनि ॥ व्याधियुक्तोभवेद्रोगीवंशहीनस्ततःशुचिः ॥ ११ ॥ गोधनेषुचविप्रेषुकरोति वक्रतांपुमान् ॥ प्रयातिवक्रकुंडंसतिष्ठेद्युगशतंसति ॥ १२ ॥ ततोभवेत्सवक्रांगोहीनांगःसप्तजन्मनि ॥ दरिद्रोवंशहीनश्चभार्याहीनस्ततःशुचिः ॥१३॥ ततोभवेद्गृध्रजन्मात्रिजन्मनिचसूकरः ॥ त्रिजन्मनिविडालश्चमयूरश्चत्रिजन्मनि ॥ १४ ॥ निषिद्धंकूर्ममांसंचब्राह्मणोयोहिभक्षति ॥ कूर्मकुंडेवसेत्सो ऽपिशताब्दंकूर्मभक्षितः ॥ १५ ॥ ततोभवेत्कूर्मजन्मत्रिजन्मनिचसूकरः ॥ त्रिजन्मनिविडालश्चमयूरश्चततःशुचिः ॥ १६ ॥ घृतंतैलादिकंचैवयोहरे त्सुरविप्रयोः ॥ सयातिज्वालाकुंडंचभस्मकुंडंचपातकी ॥ १७ ॥ तत्रस्थित्वाशताब्दंचसभवेत्तैलपाचितः ॥ सप्तजन्मनिमत्स्यश्चमूषकश्चततः शुचिः ॥ १८ ॥ सुगंधितैलंधात्रींवागंधद्रव्यान्यदेववा ॥ भारतेपुण्यवर्षेचयोहरेत्सुरविप्रयोः ॥ १९ ॥ सवसेद्दग्धकुंडेचभवेद्दग्धोदिवानिशम् ॥ स्वलोममानवर्षंचततोदुर्गंधिकोभवेत् ॥ १२० ॥

है तीन जन्ममें बिडाल और तीन जन्म मयूर होता है ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण निषिद्ध कूर्ममांस भक्षण करता है सौ वर्ष कूर्मकुंडमें उसको कूर्म भक्षण करते हैं ॥ १५ ॥ फिर कूर्म जन्म और तीन जन्ममें सूकर होता है तीन जन्मतक बिडाल और मयूर होकर शुद्ध होता है ॥ १६ ॥ जो देव ब्राह्मणका घी और तेल हरण करता है वह पातकी ज्वालाकुंड और भस्मकुण्डमें गमन करता है ॥ १७ ॥ वहां सौ वर्ष रहकर तैलपाचित होता है सात जन्ममें मत्स्य और फिर मूषक होकर पवित्र होता है ॥ ॥ १८ ॥ सुगंधि तेल धात्री (आमले) वा दूसरे गंधद्रव्य जो सुरविप्रकी कोई वस्तु हरण करता है ॥ १९ ॥ वह दग्धकुंडमें निवासकर दिनरात दग्ध होता है. वह

अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहाँ निवास करके फिर दुर्गन्धिवाला होता है ॥१२०॥ सात जन्ममें दुर्गन्धिक, तीन जन्मतक मृगनाभि, सात जन्म मंथान और फिर मनुष्य होता है ॥ २१ ॥ जो छल बल वा हिंसासे बलिष्ठ पुरुष दूसरेकी पैतृकभूमि हरण करता है ॥ २२ ॥ वह तप्तसूची कुंडमें पडकर दिनरात तप्त होता है जैसे तप्त तेलमें जीव निरन्तर दग्ध होता है ॥ २३ ॥ परन्तु वह भस्म नहीं होता भोगमें देही नष्ट नहीं होता वह पापी सात मन्वन्तरतक वहीं निवास करता है ॥ २४॥ और अनाहार होकर 'हा हा' शब्द करता यमदूतोंसे ताडित होताहै फिर वह साठ सहस्रवर्ष रहकर विष्ठाका कीट होता है ॥ २५॥ फिर भूमिहीन दरिद्री होकर पश्चात् शुचि

दुर्गंधिकःसप्तजन्मसृगनाभिस्त्रिजन्मनि ॥ सप्तजन्मसुमंथानस्ततोहिमानवोभवेत् ॥ २१ ॥ बलेनैवच्छलेनैर्वाहिंसारूपेणवासति ॥ बलिष्ठश्चहरेद्भूमिंभारतेपरपैतृकीम् ॥ २२ ॥ सवसेत्तप्तसूचिंचभवेत्तापीदिवानिशम् ॥ तप्ततैलेयथाजीवोदग्धोभवतिसंततम् ॥ २३ ॥ भस्मसान्नभवत्येवभोगेदेही ननश्यति ॥ सप्तमन्वंतरंपापीसंततस्तत्रतिष्ठति ॥ २४ ॥ शब्दंकरोत्यनाहारोयमदूतेनताडितः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिविट्कृमिश्चभवेत्ततः ॥ २५ ॥ ततोभवेद्भूमिहीनोदरिद्रश्चततःशुचिः ॥ ततःस्वयोनिंसंप्राप्यशुभकर्माचरेत्पुनः ॥ १२६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ यमधर्मउवाच ॥ छिनत्तिजीवंखड्गेनदयाहीनःसुदारुणः ॥ नरघातीहंतिनरमर्थंलोभेनभारते ॥ १ ॥ असिपत्रे वसेत्सोऽपियावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ तेषुयोब्राह्मणान्हंतिशतमन्वंतरंवसेत् ॥ २ ॥ छिन्नांगःसंवसेत्सोऽपिखड्गधारेणसंततम् ॥ अनाहारःशब्दमुच्चैर्यमदूतेनताडितः ॥ ३ ॥ मंथानःशतजन्मानिशतजन्मानिसूकरः ॥ कुक्कुटःसप्तजन्मानिसृगालःसप्तजन्मसु ॥ ४ ॥ व्याघ्रश्चसप्तजन्मानिवृकश्चैवत्रिजन्मसु ॥ सप्तजन्मसुमंडूकोयमदूतेनताडितः ॥ ५ ॥

होता है फिर स्वयोनिको प्राप्त होकर शुभकर्म करता है ॥ १२६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ छ ॥ धर्मराज बोले जो दयाहीन हो खड्गसे जीवोंको मारते हैं और जो लोभसे भारतमें मनुष्योंको मारते हैं ॥ १ ॥ वह चौदह मन्वन्तरतक असिपत्र वनमें निवास करते हैं. उनमें जो ब्राह्मणोंको मारता है. वह सौ मन्वन्तर निवास करता है ॥२॥ अर्थात् वह खड्गसे छिन्न अंग होकर वहां निवास करता है और यमदूतोंसे ताडित हो अनाहार होनेसे हाहाकार करता है ॥ ३ ॥ सौ जन्म मंथानजीव, सौ जन्म शूकर, सात जन्म कुक्कुट और सात जन्म शृगाल होता है ॥ ४ ॥ सात जन्मतक व्याघ्र

तीन जन्मतक वृश्चिक, सात जन्म मंडूक यमदूतोंसे ताडित हुआ होता है ॥ ५ ॥ फिर वह भारतवर्षमें महिष होकर पश्चात् शुद्ध होता है. जो ग्राम और नगरोंमें आग लगाते हैं ॥ ६ ॥ वह असिधारकुंडमें पड़कर तीन युगोंतक छिन्नाग होता है, फिर प्रेत होकर वह्निमुख हो विचरण करता है ॥ ७ ॥ सात जन्मतक अमेध्य वस्तुका खानेवाला सात जन्मतक कपोत होकर फिर मनुष्यजन्ममें शूलरोग युक्त होता है ॥ ८ ॥ फिर सात जन्ममें गलितकुष्ठ और पश्चात् शुद्ध होता है जो दूसरेके कानमें दूसरोंकी निन्दा करता है ॥ ९ ॥ और पराये दोषमें महाश्लाघी देव ब्राह्मणकी निन्दा करता है वह सूचीमुख नरकमें सूचीविद्ध हो तीन युगपर्यन्त निवास करता है ॥ १० ॥ फिर वृश्चिक और सात जन्मतक सर्प होता है सात जन्म वज्रकीट और फिर भस्मकीट होता है ॥ ११ ॥ फिर महाव्याधियुक्त मनुष्य

सभवेद्भारतेवर्षेमहिषश्चततःशुचिः ॥ ग्रामाणांनगराणांवादहनंयःकरोतिच ॥६॥ क्षुरधारेवसेत्सोऽपिच्छिन्नांगस्त्रियुगंसति ॥ ततःप्रेतोभवेत्सद्योवह्निवक्त्रो भ्रमन्महीम् ॥ ७ ॥ सप्तजन्मामेध्यभोजीकपोतःसप्तजन्मसु ॥ ततोभवेन्महाशूलीमानवःसप्तजन्मानि ॥ ८ ॥ सप्तजन्मगलत्कुष्ठीततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ प रकर्णेमुखंदत्त्वापरनिंदांकरोतियः ॥ ९ ॥ परदोषेमहाश्लाघीदेवब्राह्मणनिंदकः ॥ सूचीमुखेवसेत्सोऽपिसूचीविद्धोयुगत्रयम् ॥ १० ॥ ततोभवेद्वृश्चिकश्च सर्पश्चसप्तजन्मसु ॥ वज्रकीटःसप्तजन्मभस्मकीटस्ततःपरम् ॥ ११ ॥ ततोभवेन्मानवश्चमहाव्याधिस्ततःशुचिः ॥ गृहिणांहिगृहंभित्त्वावस्तुस्तेयंक रोतियः ॥ १२ ॥ गाश्चच्छागांश्चमेषांश्चयातिगोकामुखेचसः ॥ ताडितोयमदूतेनवसेत्तत्रयुगत्रयम् ॥ १३ ॥ ततोभवेत्सप्तजन्मगोजातिर्व्याधिसंयुतः ॥ त्रिजन्मनिमेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि ॥ १४ ॥ ततोभवेन्मानवश्चनित्यरोगीदरिद्रकः ॥ भार्याहीनोबंधुहीनःसंतापीचततःशुचिः ॥ १५ ॥ सा मान्यद्रव्यचौरश्चयातिनक्रमुखंचसः ॥ ताडितोयमदूतेनवसेत्तत्राऽब्दकत्रयम् ॥ १६ ॥ ततोभवेत्सप्तजन्मगोपतिर्व्याधिसंयुतः ॥ ततोभवेन्मानवश्चमहा रोगीततःशुचिः ॥ १७ ॥ हंतिगाश्चगजांश्चैवतुरगांश्चनगांस्तथा ॥ सयातिगजदंशंचमहापापीयुगत्रयम् ॥ १८ ॥

होकर सातजन्ममें शुद्ध होता है जो गृहस्थियोंके घरमें सेंध लगाय वहाँकी वस्तु हरण करता है ॥ १२ ॥ तथा गौ, छाग, मेषादिको जो हरण करता है वह गोका मुखमें गमन करता है और यमदूतोंसे ताडित होकर वहां तीन युग निवास करता है ॥ १३ ॥ फिर सातजन्मतक व्याधिसम्पन्न हो गोजाति होता है तीन जन्म मेष और तीन जन्म छाग होता है ॥ १४ ॥ फिर मनुष्यजन्ममें नित्य रोगी दरिद्री होता है भार्याहीन बन्धुहीन संतापी और फिर शुचि होता है ॥ १५ ॥ सामान्य द्रव्यका चुरानेवाला नक्रमुख नरकमें जाता है और यमदूतोंसे ताडित हो तीनवर्ष वहां निवास करता है ॥ १६ ॥ फिर सातजन्म व्याधियुक्त गोपति होता है फिर मानव महारोगी होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ जो गौ, हाथी, घोडे और वृक्षोंका नाश करते हैं वह महापापी तीनयुगपर्यन्त गजदंशनरकमें जाते हैं ॥ १८ ॥

और यमदूत हाथीदाँतसे निरन्तर उनको मारते हैं फिर वह तीनजन्म घोडे और हाथीकी योनिको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ फिर गोजाती और म्लेच्छ जाती होकर पश्चात् शुद्ध हो जाते हैं. जो प्याससे जलपानकरती गायको निवारण करता है ॥ २० ॥ वह गोमुखाकार कृमितप्तोदनरकमें जाता है और वहां तप्त होकर एक मन्वन्तरतक रहता है ॥ २१ ॥ फिर वह मनुष्य गौहीन महारोगी दरिद्री होता है सातजन्म नीचजातिमें जन्म लेकर फिर शुद्ध होता है॥ २२ ॥ जो शास्त्र वचनके तात्पर्यको नजानकर गोहत्या ब्रह्महत्या करता है जो अगम्यागमन और स्त्रीहत्या करता है ॥ २३ ॥ तथा जो महापापी भिक्षुहत्या और भ्रूणहत्या करता है वह चौदहमन्वन्तरतक कुंभीपाकमें निवास करता है ॥ २४ ॥ वहाँ यमदूतोंसे ताडित होकर चर्ण होता है कभी क्षणमें अग्नि और क्षणमें कंटकमें डाला जाता है॥ २५ ॥ क्षणमें

ताडितोयमदूतेननागदंतेनसंततम् ॥ सभवेद्गजजातिश्चतुरगश्चत्रिजन्मनि ॥ १९ ॥ गोजातिर्म्लेच्छजातिश्चततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ जलंपिबंतींतृषितांगां वारयतियःपुमान् ॥ २० ॥ नरकंगोमुखाकारंकृमितप्तोदकान्वितम् ॥ तत्रतिष्ठतिसंतप्तोयावन्मन्वंतरावधि ॥ २१ ॥ ततोनरोऽपिगोहीनोमहारोगीद रिद्रकः ॥ सप्तजन्मांत्यजातिश्चततःशुद्धोभवेन्नरः ॥ २२ ॥ गोहत्यांब्रह्महत्यांचकरोतिह्यातिदेशिकीम् ॥ योहिगच्छत्यगम्यांचयःस्त्रीहत्यांकरोतिच ॥ ॥ २३ ॥ भिक्षुहत्यांमहापापीभ्रूणहत्यांचभारते ॥ कुंभीपाकेवसेत्सोऽपियावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ २४ ॥ ताडितोयमदूतेनचूर्ण्यमानश्चसंततम् ॥ क्षणंपत तिवह्नौचक्षणंपतति कंटके ॥ २५ ॥ क्षणंपतेत्तप्ततैलेतप्ततोयेनक्षणंक्षणम् ॥ क्षणंचतप्तलोहेचक्षणंचतप्ततामके ॥ २६ ॥ गृध्रोजन्मसहस्राणिशतजन्मा निसूकरः ॥ काकश्चसप्तजन्मानिसर्पश्चसप्तजन्मसु ॥ २७ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिविष्ठायांजायतेकृमिः ॥ नानाजन्मसुसवृषस्ततःकुष्ठीदरिद्रकः ॥ २८ ॥ ॥ सावित्र्युवाच ॥ विप्रहत्याचगोहत्याकिंविधाचाऽऽतिदेशिकी ॥ कावानृणामगम्याचकोवासंध्याविहीनकः ॥२९॥ अदीक्षितःपुमान्कोवाकोवातीर्थप्र तिग्रही ॥ द्विजःकोवाग्रामयाजीकोवाविप्रोऽथदेवलः ॥ ३० ॥ शूद्राणांसूपकारश्चप्रमत्तोवृषलीपतिः ॥ एतेषांलक्षणंसर्वंवदवेदविदांवर ॥ ३१ ॥

तप्ततेल और क्षणमें तपते जलमें निवास करना होता है क्षणमें तप्तलोह और क्षणमें तप्ततांबेके पात्रमें डाला जाता है ॥ २६ ॥ सहस्रजन्ममें गृध्र और सौ जन्मतक सूकर सातजन्मतक काक और सातजन्मतक सर्प होता है ॥ २७ ॥ फिर साठ सहस्रवर्षतक विष्ठाका कीडा होता है. अनेक जन्मतक वृष और पश्चात् कुष्ठी दरिद्री होता है ॥ २८ ॥ सावित्री बोली अतिदेशिकी विप्रहत्या और गोहत्या कैसीहोती है,मनुष्योंको अगम्या कौन है और संध्याविहीन कौन है? ॥ २९॥ कौन अदीक्षित और तीर्थप्रतिग्रही कौन है, कौन ग्रामयाजी ब्राह्मण है और कौन देवल है ॥ ३० ॥ शूद्रोंका रसोइयाप्रमत्त वृषलीपति है वेदविदाम्वर इन सबके लक्षण कहो ॥ ३१ ॥

धर्मराज बोले श्रीकृष्ण उनकी पूजा तथा दूसरोंकी मूर्ति शिव, शिवलिंग सूर्य सूर्यमणि ॥ ३२॥ गणेश दुर्गा हे सुन्दरी! इसीप्रकार सर्वत्र देवताओंमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३३ ॥ अपना गुरु इष्टदेव जन्मदाता माता इनमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३४ ॥ वैष्णवभक्त तथा ब्राह्मणादि इतर देवताभक्त महात्माओंमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है॥ ३५॥ ब्राह्मणका पादोदक शालिग्रामोदकमें जो भेदबुद्धि करता है वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ शिव और हरिके नैवेद्यमें भेद करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३७॥ सर्वेश्वर सबके कारणके कारण सबके आदि सब देवताओंसे सेवनीयसर्वा

धर्मराजउवाच ॥ श्रीकृष्णेचतदर्चायामन्येषांप्रकृतौसति ॥ शिवेचशिवलिंगेचसूर्येसूर्यमणौतथा॥ ३२॥गणेशेवाथदुर्गायामेवंसर्वत्रसुंदरि॥ यःकरोतिभेदबुद्धिंब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ३३ ॥ स्वगुरौस्वेष्टदेवेचजन्मदातरिमातरि ॥ करोतिभेदबुद्धिंयोब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ३४ ॥ वैष्णवेषुचभक्तेषुब्राह्मणेष्वितरेषुच ॥ करोतिभेदबुद्धिंयोब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ३५ ॥ विप्रपादोदकेचैवशालग्रामोदकेतथा ॥ करोतिभेदबुद्धिंयोब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ३६ ॥ शिवैनैवेद्यकेचैवहरिनैवेद्यकेतथा ॥ करोतिभेदबुद्धिंयोब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ३७॥ सर्वेश्वरेश्वरेकृष्णेसर्वकारणकारणे ॥ सर्वाद्येसर्वदेवानांसेव्येसर्वांतरात्मनि ॥ ॥ ३८ ॥ माययाऽनेकरूपेवाप्येकएवहिनिर्गुणे ॥ करोतीशेनभेदंयोब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ३९ ॥ शक्तिभक्तेद्वेषबुद्धिंशक्तिशास्त्रेतथैवच ॥ द्वेषंयःकुरुतेमत्योंब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ४० ॥ पितृदेवार्चनंयोवात्यजेद्वेदनिरूपितम् ॥ यःकरोतिनिषिद्धंचब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥४१॥ योनिंदतिहृषीकेशंतन्मंत्रोपासकंतथा ॥ पवित्राणांपवित्रंचज्ञानानंदंसनातनम्॥४२॥ प्रधानंवैष्णवानांचदेवानांसेव्यमीश्वरम् ॥ येनार्चयंतिनिन्दंतिब्रह्महत्यांलभंतिते॥४३॥येनिंदंतिमहादेवींकारणब्रह्मरूपिणीम्॥सर्वशक्तिस्वरूपांचप्रकृतिंसर्वमातरम् ॥४४॥ सर्वदेवस्वरूपांचसर्वेषांवंदितांसदा॥ सर्वकारणरूपांचब्रह्महत्यांलभंतिते॥४५॥

न्तर्यामी श्रीकृष्णमें ॥ ३८ ॥ मायासे अनेकरूप धारण करनेवाले वा एकनिर्गुणमें जो भेद करता है वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ जो शक्तिके भक्त और शक्तिशास्त्रमें द्वेषबुद्धिसे द्वेष करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४० ॥ जो वेद निरूपित पितृदेवताओंके पूजनको निषेध करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है॥ ४१॥ जो हृषीकेश और उनके मंत्रोपासककी निन्दा करता है तथा पवित्रोंका पवित्र सनातन ज्ञानानन्द ॥ ४२ ॥ वैष्णवोंके प्रधान देव सेवनीय विष्णुकी जो अर्चा नहीं करता और निन्दा करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है॥ ४३॥जो कारण ब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृतिमहादेवी सर्वशक्तिस्वरूपा प्रकृति सबकी माता ॥ ४४ ॥ सर्ववेदस्वरूपिणी सबको

जाननेयोग्य सबकी कारणरूपकी निन्दा करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४५ ॥ कृष्णजन्माष्टमी ओर पवित्र रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशि, रविवार ॥ ४६ ॥ इन पांच पवित्रपर्वोंको जो मनुष्य नहीं करते हैं वह हत्याको प्राप्त होकर चाण्डालसे अधिक पापी होते हैं ॥ ४७ ॥ अम्बुवाची अर्थात् आर्द्रा नक्षत्रके आदिपादसे तीन दिन भूमि रजस्वला होती है उस समय उसका खनन तथा उस जलसे जो शौचादि करते हैं वे ब्रह्महत्याको प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ गुरु, माता, साध्वीभार्या पुत्र, बेटी इन अनिंद्योंका जो पालन नहीं करते उनको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४९ ॥ जिसका विवाह नहुआ जिसने पुत्रका मुख न देखा वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है

कृष्णजन्माष्टमींरामनवमींचसुपुण्यदाम् ॥ शिवरात्रिंतथाचैकादशींवारेरवेस्तथा ॥ ४६ ॥ पंचपर्वाणिपुण्यानियेनकुर्वंतिमानवाः ॥ लभंतिब्रह्महत्यांते चांडालाधिकपापिनः ॥ ४७ ॥ अंबुवाच्यांभूखननंजलशौचादिकंचये ॥ कुर्वंतिभारतेवर्षेब्रह्महत्यांलभंतिते ॥ ४८ ॥ गुरुंचमातरंतातंसाध्वींभार्यांसुतंसुताम् ॥ अनिंद्यांयोनपुष्णातिब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ४९ ॥ विवाहोयस्यनभवेन्नपश्यतिसुतंतुयः ॥ हरिभक्तिविहीनोयोब्रह्महत्यांलभेत्तुसः ॥ ५० ॥ हरेरनैवेद्यभोजीनित्यंविष्णुंनपूजयेत् ॥ पुण्यंपार्थिवलिंगंचब्रह्महाऽसौप्रकीर्तितः ॥ ५१ ॥ गोप्रहारंप्रकुर्वंतंदृष्ट्वायोननिवारयेत् ॥ यातिगोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यांतुलभेत्तुसः ॥ ५२ ॥ दंडैर्गास्ताडयेन्मूढोयोविप्रोवृषवाहनः ॥ दिनेदिनेगोवधंचलभतेनाऽत्रसंशयः ॥ ५३ ॥ ददातिगोभ्यउच्छिष्टंभोजयेद्वृषवाहकम् ॥ भुनक्तिवृषवाहान्नंसगोहत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥ ५४ ॥ वृषलीपतिंयाजयेद्योभुंक्तेऽन्नंतस्ययोनरः ॥ गोहत्याशतकंसोऽपिलभते नाऽत्रसंशयः ॥ ५५ ॥

तथा हरिभक्तिहीन पुरुषको ब्रह्महत्यालगती है ॥ ५० ॥ जो हरिको नैवेद्यका भोग नहीं लगाता तथा जो विष्णुका नित्य पूजन नहीं करता तथा जो पवित्र पार्थिवलिंगका पूजन नहीं करता उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५१ ॥ जो गौ प्रहार करतेहुएको देखकर निवारण नहीं करता है गौ ब्राह्मणके मध्यसे होकर देखता चलाजाता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५२ ॥ जो विप्र दंडसे गौको ताडन करते और बैलपर चढते हैं उनको दिन दिन गोहत्या लगती है इसमें संदेह नहीं ॥ ५३ ॥ जो गौओंको उच्छिष्ट देते गोवाहकको भोजन कराते तथा बैलपर चढनेवालेका अन्न खाते हैं उनको गोहत्या लगती है ॥ ५४ ॥ जो शूद्रीप तिको

यजन कराते वा जो उसका अन्न खाते हैं उसको सौ गोहत्याका पाप लगता है इसमें संदेह नहीं ॥ ५५ ॥ जो अग्निपर पैर रखते और चरणसे गायको ताडन करतेहैं विना पैरधोये जो घरोंमें घुसते हैं वह गोहत्या पाते हैं ॥ ५६ ॥ जो गीले चरणोंसे भोजनको बैठते हैं तथा गीले चरण सोते हैं तथा सूर्योदयके समय जो भोजन करते हैं उनको ब्रह्महत्या लगती है ॥५७॥ जो अवीरान्न खाता और जो ब्राह्मण कुटनापन करता है और जो तीनों कालकी संध्यासे रहित है उसे गोहत्या लगती है ॥ ॥ ५८ ॥ जो स्त्री अपने स्वामी और देवतामें भेदबुद्धि करती है और स्वामीको कटूक्ति कहती है उसको गोहत्या लगती है ॥ ५९ ॥ जो गोमार्गको बिगाडकर

पादंददातिवह्नौयोगाश्चपादेनताडयेत् ॥ गेहंविशेदधौतांघ्रिःस्नात्वागोवधमाप्नुयात् ॥ ५६ ॥ योभुंक्तेस्निग्धपादेनशेतेस्निग्धांघ्रिरेवच ॥ सूर्योदयेचयो भुंक्तेसगोहत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥ ५७ ॥ अवीरान्नंचयोभुंक्तेयोनिजीव्यस्यचद्विजः ॥ यस्त्रिसंध्याविहीनश्चगोहत्यांलभतेचसः ॥ ५८ ॥ स्वभर्तरिचदेवेवाभेद बुद्धिंकरोतिया ॥ कटूक्त्याताडयेत्कांतंसागोहत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥ ५९ ॥ गोमार्गवर्जनंकृत्वाददातिसस्यमेववा ॥ तडागेवादुर्गेवासगोहत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥ ॥ ६० ॥ प्रायश्चित्तेगोवधस्ययःकरोतिव्यतिक्रमम् ॥ पुत्रलोभादथाज्ञानात्सगोहत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥ ६१ ॥ राजकेदैवकेयत्नाद्गोस्वामीगांनरक्षति ॥ दुःखं ददातियोमूढोगोहत्यांसलभेद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ प्राणिनोलंघयेद्योहिदेवार्चामनलंजलम् ॥ नैवेद्यंपुष्पमन्नंचसगोहत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥ ६३ ॥ शश्वन्नास्तीतियोवादीमिथ्यावादीप्रतारकः ॥ देवद्वेषीगुरुद्वेषीसगोहत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ देवताप्रतिमांदृष्ट्वागुरुंवाब्राह्मणंसति ॥ संभ्रमान्ननमेद्योहिसगोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

सस्य तडाग वा दुर्गमें खेदता है उसे गोहत्या लगती है ॥ ६० ॥ जो गोवधके प्रायश्चित में व्यतिक्रम करता है पुत्रलोभ वा अज्ञानसे न करै तो अर्थात् पुत्रने हत्या की है ऐसा जानकर जो प्रायश्चित नहीं कराता उसे गोहत्या लगती है ॥ ६१ ॥ राजोपद्रव और दैवके उपद्रवमें यत्नसे जो गोस्वामी गौओंकी रक्षा नहीं करता और जो मूढ दुःख देता है उसको अवश्य गोहत्या प्राप्त होती है॥ ६२ ॥ जो प्राणी देवार्चा, अनल, जलको नैवेद्य, पुष्प, अन्न इनको उल्लंघन करता है उसे गोहत्या लगती है॥ ६३ ॥ जो मिथ्यावादी छली अतिथिके आनेपर नहीं है ऐसा कहता है जो देवता और गुरुसे द्वेष करता है उसे गोहत्या लगती है ॥ ६४ ॥ देवताकी प्रतिमाको देखकर

गुरु वा ब्राह्मणको देखकर जो सहसा प्रणाम नहीं करता उसे गोहत्या लगती है ॥ ६५ ॥ जो ब्राह्मण क्रोधसे प्रणाम करनेवालेको शीर्वाद नहीं देता तथा विद्यार्थीको विद्या नहीं देता उसको गोहत्या लगती है ॥ ६६ ॥ यह तुमसे शास्त्रानुसार गोहत्या और विप्रहत्या कही अब गम्य स्त्रियोंका वर्णन करताहूं सुनो ॥ ६७ ॥ अपनी स्त्री सबको गम्य है यह वेदानुशासन है, दूसरी अगम्या है यह वेदके ज्ञाता कहते हैं॥ ६८ ॥हेसुन्दरि ! सामान्यसे तुमसे सब कहा अब विशेषको श्रवण करो जो अत्यन्त अगम्य है उसको कहता हूं सुनो ॥ ६९॥ शूद्रोंको विप्रपत्नी विप्रोंको शूद्रकी स्त्री हे पतिव्रते ! यह अत्यन्त अगम्य और निन्दनीय हैं ॥ ७०॥ शूद्र यदि ब्राह्मणीमें गमन करै तो सौ ब्रह्महत्या लगती हैं और उसीकी समान वह ब्राह्मणी भी कुंभीपाकमें जाती है ॥ ७१ ॥ शूद्रोंको विप्रपत्नी और ब्राह्मणोंको शूद्रपत्नी ऐसीही है यदि ब्राह्मण

नददात्याशिषंकोपात्प्रणतायचयोद्विजः ॥ विद्यार्थिनेचविद्यांचसगोहत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥ ६६ ॥ गोहत्याविप्रहत्याचकथिताचाऽऽतिदेशिकी ॥ गम्यांस्त्रियंनृणामेवनिबोधकथयामिते ॥ ६७ ॥ स्वस्त्रीगम्याचसर्वेषामितिवेदानुशासनम् ॥ अगम्याचतदन्यायाचेतिवेदविदोविदुः ॥ ६८ ॥ सामान्यंकथितंसर्वंविशेषंशृणुसुंदरि ॥ अत्यगम्याहियायाश्चनिबोधकथयामिताः ॥ ६९ ॥ शूद्राणांविप्रपत्नीचविप्राणांशूद्रकामिनी ॥ अत्यगम्याचनिंद्याचलोकेवेदेपतिव्रते ॥ ७० ॥ शूद्रश्चब्राह्मणींगत्वाब्रह्महत्याशतंलभेत् ॥ तत्समंब्राह्मणीचापिकुंभीपाकंलभेद्ध्रुवम् ॥ ७१ ॥ शूद्राणांविप्रपत्नीचविप्राणांशूद्राकामिनी ॥ यदिशूद्रांव्रजेद्विप्रोवृषलीपतिरेवसः ॥ ७२ ॥ सभ्रष्टोविप्रजातेश्चचांडालात्सोऽधमःस्मृतः ॥ विष्ठासमश्चतत्पिंडोमूत्रंतस्यचतर्पणम् ॥ ७३ ॥ नपितॄणांसुराणांचतद्दत्तमुपतिष्ठति ॥ कोटिजन्मार्जितंपुण्यंतस्यार्चातपसाऽर्जितम् ॥ ७४ ॥ द्विजस्यवृषलीलोभान्नश्यत्येवनसंशयः ॥ ब्राह्मणश्चसुरापीतिर्विड्भोजीवृषलीपतिः ॥ ७५ ॥ तप्तमुद्रादग्धदेहस्तप्तशूलांकितस्तथा ॥ हरिवासरभोजीचकुंभीपाकंव्रजेद्द्विजः ॥ ७६ ॥ गुरुपत्नींराजपत्नींसपत्नीमातरंध्रुवम् ॥ सुतांपुत्रवधूंश्वश्रूंसगर्भांभगिनींसतीम् ॥७७॥ सोदरभ्रातृजायांचमातुलानींपितुःप्रसूम् ॥ मातुःप्रसूंतत्स्वसारंभगिनीभ्रातृकन्यकाम् ॥७८॥

शूद्रामें गमन करे तो वह वृषलीपति होता है ॥ ७२ ॥ वह विप्र ब्राह्मण जातिसे भ्रष्ट होकर चाण्डाल होता है उसका पिण्ड विष्ठाकी समान और तर्पण मूत्रके समान होता है॥ ७३ ॥उसका दिया देवतापितरोंको प्राप्त नहीं होता और कोटि जन्मोंमें जो उसने तप पूजासे फल प्राप्त किया है॥ ७४॥ वह उस ब्राह्मणका वृषलीके लोभसे नाश हो जाता है जो ब्राह्मण सुरापान करता है और वृषलीपति है वह विड्भोजी है ॥ ७५॥ तथा जिसका शरीर तप्तमुद्रासे दग्ध है तप्तशूलसे अंकित है तथा जो एकादशीके दिन भोजन करता है वह कुंभीपाकमें जाता है ॥ ७६ ॥ गुरुपत्नी, राजपत्नी सपत्नीमाता, पुत्री, पुत्रवधू,सास,सहोदरा,भगिनी,सती ॥ ७७॥ सगेभाईकी स्त्री, मामी,

मा, (दादी) माताकी मा, (नानी) नानीकी बहन, भगिनी, भाईकी कन्या ॥ ७८ ॥ शिष्या, शिष्यकी पत्नी, भांजेकी बहू, भाईके पुत्रकी स्त्री, ब्रह्माने इनको अधिक अगम्य कहा है ॥ ७९ ॥ जो अधमपुरुष इनके निकट कामनासे गमन करता है वह वेदमें मातृगामी है और सौ ब्रह्महत्याका उसको पाप लगता है ॥ ८० ॥ वह किसीक र्मके योग्य नहीं तथा स्पर्शके योग्य नहीं वह लोकवेदमें निन्दित होता है वह महापापी रौरव दुःखरूप कुंभीपाकमें गमन करता है ॥ ८१ ॥ जो अति अशुद्ध शास्त्रसे विहीन संध्याकरता है वा जो तीनों कालमें सन्ध्या नहीं करता वह संध्याहीन ब्राह्मणहै ॥ ८२ ॥ वैष्णव, शैव शाक्त, सौर, गाणपत्य इनमें जो अहंकारसे मंत्रग्रहण नहीं करता वही अदीक्षित है ॥ ८३ ॥ गंगाके प्रवाहसे चार हाथ भूमिपर्यन्त गंगागर्भ कहाता है. भगवान् नारायण निरन्तर वहां रहते हैं अथवा बहते जलके चार हाथतक

शिष्यांशिष्यस्यपत्नींचभागिनेयस्यकामिनीम् ॥ भ्रातुःपुत्रप्रियांचैवाऽत्यगम्याआहपद्मजः ॥ ७९ ॥ एताःकामेनकांतायोव्रजेद्वैमानवाधमः ॥ समातृगामीवेदेषुब्रह्महत्याशतंव्रजेत् ॥ ८० ॥ अकर्माहोंऽप्यसंस्पृश्योलोकेवेदेचनिंदितः ॥ सयातिकुंभीपाकेचमहापापीसुदुष्करे ॥ ८१ ॥ ॥ करोत्यशुद्धांसंध्यांवानसंध्यांवाकरोतिच ॥ त्रिसंध्यंवर्जयेद्योवासंध्याहीनश्चसद्विजः ॥ ८२ ॥ वैष्णवंचतथाशैवंशाक्तंसौरंचगाणपम् ॥ योहंकारात्रगृह्णातिमंत्रंसोऽदीक्षितःस्मृतः ॥ ८३ ॥ प्रवाहमवधिंकृत्वायावद्धस्तचतुष्टयम् ॥ तत्रनारायणःस्वामीगंगागर्भांतरेवसेत् ॥ ८४ ॥ तत्रनारायणक्षेत्रमृतोयातिहरेःपदम् ॥ वाराणस्यांबदर्यांचगंगासागरसंगमे ॥ ८५ ॥ पुष्करेहरिहरक्षेत्रेप्रभासेकामरूस्थले ॥ हरिद्वारेचकेदारेतथामातृपुरेऽपिच ॥ ८६ ॥ सरस्वतीनदीतीरेपुण्येवृंदावनेवने ॥ गोदावर्यांचकौशिक्यांत्रिवेण्यांचहिमाचले ॥ ८७ ॥ एषुतीर्थेषुयोदानंप्रतिगृह्णातिकामतः ॥ सचतीर्थप्रतिग्राहीकुंभीपाकेप्रयातिसः ॥ ८८ ॥ शूद्रसेवीशूद्रयाजीग्रामयाजीतिकीर्तितः ॥ तथादेवोपजीवीचदेवलःपरिकीर्तितः ॥ ८९ ॥ शूद्रपाकोपजीवीयः सूपकारइतिस्मृतः ॥ संध्यापूजनहीनश्चप्रमत्तःपतितःस्मृतः ॥ ९० ॥

किनारेतकके नारायण स्वामी हैं उस नारायणक्षेत्र काशी आदिमें जो प्रतिग्रह करता है वह तीर्थप्रतिग्राही है ॥ ८४ ॥ नारायणक्षेत्रमें मरकर हरिके पदको जाता है. वाराणसी बद्रिकाश्रम गंगासागरसंगम ॥ ८५ ॥ पुष्कर, हरिहरक्षेत्र, त्र्यम्बक, प्रभास, कामरू, हरिद्वार, केदार, श्रीरेणुका स्थान ॥ ८६ ॥ सरस्वतीके किनारे पवित्र वृंदावनमें गोदावरी, कौशिकी, त्रिवेणी हिमालय ॥ ८७ ॥ जो इन पवित्र तीर्थोंमें कामनापूर्वक दान ग्रहण करता है यह तीर्थप्रतिग्राही कुंभीपाकमें जाता है ॥ ८८ ॥ शूद्रसेवी, शूद्रयाजी, ग्रामयाजी कहाहै देवताकी पूजाकर आजीविका करनेवाला देवल कहाताहै ॥ ८९ ॥ जो शूद्रकी रसोईकरके

जीविका करता है वह रसोईया है जो संध्या पूजनसे हीन है वह प्रमत्त और पतित होजाता है॥ ९०॥ हेभद्रे ! मैंने वृषलीपतिके सब लक्षण कहे यह महापातकी कुंभीपाकको जाते हैं ॥ ९१॥ तथा जो दूसरे कुंडोंमें जाते हैं उसको सुनो मैं कहता हूं ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ धर्मराज बोले हे साध्वि ! देवताओंकी सेवाके विना कर्म बंधन नष्ट नहीं होता शुद्धकर्म सुकर्मका बीज है और कुकर्मसे नरक होता है ॥ १ ॥ हे पतिव्रते! जो व्यभिचारिणीका अन्न खाता और उससे गमन करता है वह ब्राह्मण मरकर कालसूत्र नरकमें जाता है ॥ २ ॥ वह सौ वर्षतक कालसूत्रमें पडा रहता है उस जन्ममें रोगी और फिर यह मनुष्य शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ एकपतितक पतिव्रता दूसरा करनेमें कुलटा तीसरेपर गमन करनेसे धर्षिणी और चतुर्थपर गमन

उक्तंसर्वंमयाभद्रेलक्षणंवृषलीपतेः॥एतेमहापातकिनःकुंभीपाकंप्रयांतिते॥९१॥कुंडान्यन्यानियेयांतितिनिबोधकथयामिते ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणे नवमस्कंधेनारदनारायणसंवादेसावित्र्युपाख्यानेचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥छ॥ धर्मराजउवाच ॥ देवसेवांविनासाध्विनभवेत्कर्मकृंतनम् ॥ शुद्धकर्मशुद्धबीजंनरकश्चकुकर्मणा ॥१॥ पुंश्चल्यन्नंचयोभुंक्तेयोऽस्यांगच्छेत्पतिव्रते ॥ सद्विजःकालसूत्रंचमृतोयातिसुदुर्गमम् ॥२॥ शतवर्षंकालसूत्रेस्थिरीभूतोभवेद्ध्रुवम् ॥ तत्रजन्मनिरोगीचततःशुद्धोभवेद्द्विजः ॥ ३ ॥ पतिव्रताचैकपतौद्वितीयेकुलटास्मृता ॥ तृतीयेधर्षिणीज्ञेयाचतुर्थेपुंश्चलीत्यपि ॥ ४ ॥ वेश्याचपंचमेषष्ठेपुंगीचसप्तमेऽष्टमे ॥ ततऊर्ध्वंमहावेश्यासाऽस्पृश्यासर्वजातिषु ॥ ५ ॥ योद्विजःकुलटांगच्छेद्धर्षिणींपुंश्चलीमपि ॥ पुंगींवेश्यांमहावेश्यांमत्स्योदेयातिनिश्चितम् ॥ ६ ॥ शताब्दंकुलटागामीधृष्टागामीचतुर्गुणम् ॥ षड्गुणंपुंश्चलीगामीवेश्यागामीगुणाष्टकम् ॥ ७ ॥ पुंगीगामीदशगुणंवसेत्तत्रनसंशयः ॥ महावेश्याकामुकश्चततोदशगुणंवसेत् ॥८॥ तत्रैवयातनांभुंक्तेयमदूतेनताडितः ॥ तित्तिरिः कुलटागामीधृष्टागामीचवायसः ॥ ९ ॥

करनेसे पुंश्चली कहाती है ॥ ४ ॥ पांच और छः पुरुषतक वेश्या, सातवें आठवें पुरुषतक पुंगी, इससे अधिक पुरुषोंमें गमन करै तो वह महावेश्या कहाती है सब जातियोंसे वह स्पर्शके अयोग्य है॥ ५॥ जो ब्राह्मणकुलटा धर्षिणी और पुंश्चलीके पास जाता है अथवा पुंगी वेश्या महावेश्याके समीप गमन करता है वह मत्स्योदनरकमें जाता है॥६॥ कुलटागामी सौवर्ष धृष्टागामी ४०० वर्ष पुंश्चलीगामी छः गुणेवर्ष वेश्यागामी अठगुणे ॥ ७ ॥ पुंगीगामी दशगुणे वर्ष वहां निवासकरता है इसमें सन्देह नहीं. महावेश्याकी इच्छावाला इससे दशगुणे वर्ष नरकमें रहता है ॥८॥ और यमदूतोंसे ताडित होकर वहां ही यातनाको भोगता है कुलटागामी तीतर, धृष्टागामी वायस ॥ ९ ॥

पुंश्चलीगामी कोकिल वेश्यागामी भेडिया होता है और पुंगीगामी सातजन्म भारतमें सूकर होता है ॥ १० ॥ महावेश्यागामी सेमलका वृक्ष होता है जो चन्द्रसूर्यकेग्रहण में भोजन करता है ॥ ११ ॥ वह अन्नके मानप्रमाण अरुंतुद नरकमें जाता है फिर उदररोगग्रसित मनुष्य होता है ॥ १२ ॥ गुल्मयुक्त काना दांतोंसे हीन होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो अपनी कन्याको वाग्दान कर फिर अन्यको देता है ॥ १३ ॥ वह धूरिके कुंडमें पडकर निरन्तर धूरिपान करता है. हे साध्वि ! जो कन्याका द्रव्य हरण करता है वह सौवर्षतक धूरिसे युक्त ॥ १४ ॥ यमदूतोंसे ताडित हो शरशय्यापर शयन करता है जो ब्राह्मण भक्तिसे शिवलिंगका पूजन नहीं करता ॥ १५ ॥ वह पापी शूलप्रोत नामक नरकमें शूली होकर निवास करता है वह सौवर्षतक रहकर सात जन्मतक श्वापद जीव होता है ॥ १६ ॥ फिर देवल होकर सातजन्ममें पवित्र होता

कोकिलःपुंश्चलीगामीवेश्यागामीवृकःस्मृतः ॥ पुंगीगामीसूकरश्चसप्तजन्मनिभारते ॥ १० ॥ महावेश्याप्रगामीचजायतेशाल्मलतिरुः ॥ योभुंक्तेज्ञानही नश्चग्रहणेचंद्रसूर्ययोः ॥११॥ अरुंतुदंसयात्येवाऽप्यन्नमानाब्दमेवच ॥ ततोभवेन्मानवश्चाऽप्युदेररोगपीडितः ॥१२॥ गुल्मयुक्तश्चकाणश्चदंतहीनस्ततः शुचिः ॥ वाक्प्रदत्तांस्वकन्यांचयोऽन्यस्मैप्रददातिच ॥ १३ ॥ सवसेत्पांसुकुंडेचतद्भोजीशतवत्सरम् ॥ तद्द्रव्यहारीयःसाध्विपांसुवेष्टेशताब्द कम् ॥ १४ ॥ निवसेच्छरशय्यायांयमदूतेनताडितः ॥ भक्त्यानपूजयेद्विप्रःशिवलिंगंचपार्थिवम् ॥ १५ ॥ सयातिशूलिनःपापाच्छूलप्रोतं सुदारुणम् ॥ स्थित्वाशताब्दंतत्रैवश्वापदःसप्तजन्मसु ॥ १६ ॥ ततोभवेद्देवलश्चसप्तजन्मततःशुचिः ॥ करोतिकुंठितंविप्रंयद्भियाकंपतेद्विजः ॥ १७ ॥ प्रकंपनेवसेत्सोऽपिविप्रलोमाब्दमेवच ॥ प्रकोपवदनाकोपात्स्वामिनंयाचपश्यति ॥१८॥ कटूक्तिंप्रवदतिसोल्मुकंसंप्रयातिहि ॥ उल्कांददातितद्वक्रेस ततंममकिंकरः ॥ १९ ॥ दंडेनताडयेन्मूर्ध्नितल्लोमाब्दप्रमाणकम् ॥ ततोभवेन्मानवीचविधवासप्तजन्मसु ॥ २० ॥ साभुक्त्वाचैववैधव्यंव्याधियुक्तातततः शुचिः ॥ याब्राह्मणीशूद्रभोग्याचांधकूपेप्रयातिसा ॥२१॥ तप्तशौचोदकेध्वांतेतदाहारीदिवानिशम् ॥ निवसेदतिसंतप्तायमदूतेनताडिता ॥२२॥

है जो ब्राह्मणको कुंठित करता है वा जिसके भयसे ब्राह्मण कंपित होता है ॥१७॥ वह ब्राह्मणके लोमप्रमाण वर्षतक प्रकम्पन नरकमें निवास करता है जो क्रोधकरके अपने स्वामीको देखता है ॥ १८ ॥ तथा कटूक्ति कहता है वह उल्मुकनरकमें जाता है मेरे दूत निरन्तर उसके मुखमें उल्मुक देते हैं ॥ १९ ॥ और उसके लोम प्रमाणवर्षतक शिरपर दंडकी ताडना होती है फिर वह मानवी और सातजन्मतक विधवा होती है ॥२०॥ वह व्याधियुक्त वैधव्य भोगकर पश्चात् शुद्ध होती है जो ब्राह्म णी शूद्रसे संगम करती है,वह अंधकूपमें जाती है ॥२१॥ तप्त शौचजल और अंधकारमें निराहार पड़ी रहती है और यमदूतोंसे ताडित हो बडेदुःखसे रहती है ॥२२॥

वह चौदहइन्द्रके कालतक शौचके जलमें निमग्न रहती है सहस्र काकी जन्म और सौजन्म शूकरी होती है ॥ २३ ॥ सौजन्मतक शृगाली सौजन्ममें कुतिया सौजन्म कबूतरी, सात जन्म वानरी ॥२४॥ फिर भारतमें सर्वभोग्या चाण्डाली होती है फिर धोबन फिर यक्ष्मरोगवाली पुंश्चली होती है ॥ २५ ॥ फिर कुष्ठयुक्त होकर पश्चात् तेलन होती है तब शुद्ध होती है वैश्यावेधन और पुंगी दंडताडन नरकमें निवास करती है ॥ २६ ॥ वेश्या जलरंध्रस्थान और कुलटा देहचूर्णस्थानमें निवास करती है, स्वैरिणी दलन और धृष्टा शोषण नरकमें निवास करती है ॥ २७ ॥ यह हमारे दूतोंसे ताडित हो बड़ी यातना युक्त निवास करती है, विष्ठा मूत्र भक्षणको निरन्तर मिलता, ऐसे एक मन्वन्तरतक रहती है ॥२८॥ फिर विष्ठाका कृमि होकर लाख वर्षमें शुचि होती है जो ब्राह्मण ब्राह्मणीमें, क्षत्रिय क्षत्रियामें गमन करता है ॥२९॥

शौचोदेकनिमग्नासायावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ काकीजन्मसहस्राणिशतजन्मानिसूकरी॥२३॥सृगालीशतजन्मानिशतजन्मानिकुकुटी॥पारावतीसप्तजन्मवानरीसप्तजन्मसु ॥ २४॥ ततोभवेत्साचांडालीसर्वभोग्याचभारते ॥ततोभवेच्चरजकीयक्ष्मग्रस्ताचपुंश्चली ॥२५॥ ततःकुष्ठयुतातैलकारीशुद्धाभवेत्ततः ॥ निवसेद्वेधनेवेश्यापुंगीचदंडताडने ॥ २६ ॥ जलरंध्रेवसेद्वेश्याकुलटादेहचूर्णके ॥ स्वैरिणीदलनेचैवधृष्टाचशोषणेतथा ॥ २७ ॥ निवसेद्यातनायुक्ता ममदूतेनताडिता ॥ विण्मूत्रभक्षासततंयावन्मन्वंतरंसति ॥२८॥ ततोभवेद्विट्कृमिश्चलक्षवर्षंततःशुचिः ॥ब्राह्मणोब्राह्मणींगच्छेत्क्षत्रियांवाऽपिक्षत्रियः ॥२९॥वैश्योवैश्यांचशूद्रांवाशूद्रश्चाऽपिव्रजेद्यदि॥सवर्णपरदारैश्चकषायंयांतितेजनाः॥३०॥भुक्त्वाकषायंतप्तोदंनिवसेद्द्वादशाब्दकम्॥ततोविप्रोभवेच्छुद्धस्ततोवैक्षत्रियादयः॥३१॥योषितश्चापिशुद्ध्यंतीत्येवमाहपितामहः॥क्षत्रियोब्राह्मणींगच्छेद्वैश्योवाऽपिपतिव्रते॥३२॥ मातृगामीभवेत्सोऽपिशूर्पेचनरकेवसेत्॥शूर्पाकारैश्चकृमिभिर्ब्राह्मण्यासहभक्षितः॥३३॥प्रतप्तमूत्रभोजीचममदूतेनताडितः॥तत्रैवयातनांभुंक्तेयावदिंद्राश्चतुर्दश॥३४॥सप्तजन्मवराहश्चछागलश्चततःशुचिः॥करेधृत्वातुतुलसींप्रतिज्ञांयोनपालयेत्॥३५॥मिथ्यावाशपथंकुर्यात्सचज्वालामुखंव्रजेत्॥गंगातोयंकरेकृत्वाप्रतिज्ञांयोनपालयेत्॥३६॥

वैश्य वैश्या और शूद्र शूद्रोंमें गमन करता है अर्थात् सवर्ण परदाराओंमें जो गमन करता है वह कषाय नरकमें जाता है ॥३०॥ वहां कसैला तत्ता जल पानकर बारह वर्ष निवास करता है तब ब्राह्मण और क्षत्रिय शुद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ और इसीप्रकार स्त्री भी शुद्ध होती है यह ब्रह्माजीने कहा है हे. पतिव्रते ! जो क्षत्रिय वा वैश्य ब्राह्मणीमें गमन करता है॥३२॥ वह मातृगामी होकर शूर्पनामक नरकमें पडता है वह ब्राह्मणीके सहित उन कीडोंसे भक्षित होता है ॥३३॥ यमदूतोंसे ताडित हो तत्ते मूत्रका भोजन करना होता है एक मन्वन्तरपर्यन्त वहां इसप्रकार दुःखभोगना होता है ॥३४॥ सात जन्म वराह और फिर छाग होकर पवित्र होता है जो हाथमें तुलसी लेकर अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण नहीं करता॥३५॥वा मिथ्या शपथ करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है वा जो हाथमें गंगाजल लेकर प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता॥३६॥

जो शालिग्राम वा देवमूर्त्ति हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करता है और फिर उसे उल्लंघन करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है अथवा दहिना हाथ मिला कर जो प्रतिज्ञापूर्ण नहीं करता ॥ ३७ ॥ देवगृहमें स्थित होकर भी जो कृत्यको उल्लंघन करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है ब्राह्मण और गौको स्पर्शकर जो प्रतिज्ञा टालता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है ॥ ३८ ॥ प्रतिज्ञाका न पालनेवाला ज्वालामुख नरकमें जाता है मित्रद्रोही कृतघ्नी विश्वासघाती ॥ ३९ ॥ और मिथ्या साक्षी देनेवाला ज्वालामुखनरकमें जाता है वो वहां चौदह इन्द्रके समयतक निवास करता है ॥ ४० ॥ अंगारोंसे प्रदग्धकर यमदूत उनको ताडन करते हैं तुलसीकी शपथ कर पालन न करनेसे चाण्डाल होकर सातजन्ममें पवित्र होता है ॥ ४१ ॥ गंगाजलको स्पर्शकर मिथ्या करनेवाला म्लेच्छ होकर पांच जन्ममें शुचि होता है शालिग्राम स्पर्शकर मिथ्या करनेसे विष्ठाका कृमि होकर सात जन्ममें पवित्र होता है ॥ ४२ ॥ अर्चाका स्पर्श करनेवाला ब्राह्मण गृहस्थीके

शिलांवादेवप्रतिमांसचज्वालामुखंव्रजेत् ॥ दत्त्वादक्षिणहस्तंचप्रतिज्ञांयोनपालयेत् ॥ ३७ ॥ स्थित्वादेवगृहेवाऽपिसचज्वालामुखंव्रजेत् ॥ आस्पृश्य ब्राह्मणंगांचज्वालावह्निंव्रजेद्द्विजः ॥ ३८ ॥ नपालयेत्प्रतिज्ञांचसचज्वालामुखंव्रजेत् ॥ मित्रद्रोहीकृतघ्नश्चयश्चविश्वासघातकः ॥ ३९ ॥ मिथ्यासाक्ष्य प्रदश्चैवसचज्वालामुखंव्रजेत् ॥ एतेतत्रवसंत्येवयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४० ॥ तथांगारप्रदग्धाश्चयमदूतेनताडिताः ॥ चांडालस्तुलसींस्पृष्ट्वासप्तजन्मततः शुचिः ॥ ४१ ॥ म्लेच्छोगंगाजलस्पर्शीपंचजन्मततःशुचिः ॥ शिलास्पर्शीविट्कृमिश्चसप्तजन्मसुसुंदरि ॥ ४२ ॥ अर्चास्पर्शीब्रह्मकृमिःसप्तजन्मततः शुचिः ॥ दक्षहस्तप्रदाताचसर्पश्चसप्तजन्मसु ॥ ४३ ॥ ततोभवेद्ब्रह्महीनोमानवश्चततःशुचिः ॥ मिथ्यावादीदेवगृहेदेवलःसप्तजन्मसु ॥ ४४ ॥ विप्रादिस्पर्शकारीचव्याघ्रजातिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ततोभवेच्चमूकःसबधिरश्चात्रिजन्मनि ॥ ४५ ॥ भार्याहीनोबंधुहीनोवंशहीनस्ततःशुचिः ॥ मित्रद्रोहीचनकुलःकृतघ्नश्चाऽपिगंडकः ॥ ४६ ॥ विश्वासघातीव्याघ्रश्चसप्तजन्मसुभारते ॥ मिथ्यासाक्षीचवक्तव्येमंडूकःसप्तजन्मसु ॥ ४७ ॥ पूर्वान्सप्ताऽपरान्सप्तपुरुषान्हंतिचाऽऽत्मनः ॥ नित्यक्रियाविहीनश्चजडत्वेनयुतोद्विजः ॥४८॥ यस्याऽनास्थावेदवाक्येमंदंहसतिसंततम् ॥ व्रतोपवासहीनश्चसद्वाक्यपरनिंदकः ॥४९॥

यहां कृमि होता है सात जन्ममें शुद्ध होता है. दक्षिण हाथ देनेसे परकार्य न करनेवाला सातजन्मतक सर्प होता है ॥ ४३ ॥ फिर ब्रह्महीन होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो देवगृहमें मिथ्या बोलता है वह सातजन्मतक पुजारी होता है ॥ ४४ ॥ विप्रादिका स्पर्श करनेवाला व्याघ्रजाति होता है फिर मूक और तीन जन्मतक बहरा होता है ॥ ४५ ॥ भार्या बंधु और वंशहीन होकर पश्चात् पवित्र होता है मित्रद्रोही न्यौला और कृतघ्न होनेसे विघ्नकारी गंडक होता है ॥ ४६ ॥ विश्वास घाती भारतमें सातजन्मपर्यन्त व्याघ्र होताहै और मिथ्यासाक्षी देनेवाला सातजन्मतक मैंडक होता है ॥ ४७ ॥ वह अपने सात पहलेके और सात पीछेके पुरुषोंको मारता है जो नित्य क्रियासे हीन है वह ब्राह्मण जडत्वको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ जिसको वेदवाक्यमें श्रद्धा नहीं और मंद मंद हँसता है जो व्रत और उपवाससे हीन तथा सद्वाक्यका निन्दक है ॥ ४९ ॥

वह सौ वर्ष धुआँपीता हुआ धूम्रांध नरकमें निवास करता है और सौ जन्मके क्रमसे वह जलजन्तु होता है ॥ ५० ॥ फिर अनेक प्रकारका मत्स्य होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो देवता और ब्राह्मणके धनमें उपहास करता है ॥ ५१ ॥ वह दश पहले और दश आगेके पुरुषोंको नरकमें डालकर धूमसमूहसे युक्त धूम्रांध नरकमें जाताहै ॥ ५२ ॥ धूमसे क्लेशित धूम्रभोजी वहां चौगुने समयतक निवास करता है फिर भारतमें सात जन्मतक मूषक होताहै ॥ ५३ ॥ फिर अनेक प्रकारकी पक्षिजाति और कृमि योनियोंमें जाकर फिर अनेक जातिके वृक्ष और पशुयोनियोंमें जाकर पश्चात् मनुष्य होता है ॥ ५४ ॥ जो ब्राह्मण ज्योतिषसे डराकर धन लेते धन ठहराकर चिकित्सा करते हैं तथा लाख लोहादिका व्यापार और रसादि बेचते हैं ॥ ५५ ॥ वह नागोंसे वेष्टित होकर नागवेष्ट नरकमें जाते हैं और अपने लोमप्रमाण वर्षतक

धूम्रांधेचवसेत्सोऽपिशताब्दंधूम्रभक्षकः ॥ जलजंतुर्भवेत्सोऽपिशतजन्मक्रमेणच ॥ ५० ॥ ततोनानाप्रकारश्चमत्स्यजातिस्ततःशुचिः ॥ यःकरोत्युपहासंचदेवब्राह्मणयोर्धने ॥ ५१ ॥ पातयित्वासपुरुषान्दशपूर्वान्दशाऽपरान् ॥ सोऽयंयातिचधूम्रांधंधूमध्वांतसमन्वितम् ॥ ५२ ॥ धूम्रक्लिष्टाधूम्रभोजीवसेत्तत्रचतुर्गुणम् ॥ ततोमूषकजातिश्चसप्तजन्मसुभारते ॥ ५३ ॥ ततोनानाविधाःपक्षिजातयःकृमिजातिभिः ॥ ततोनानाविधावृक्षाःपशवश्चततोनरः ॥ ५४ ॥ विप्रोदैवज्ञजीवीचवैद्यजीवीचिकित्सकः ॥ लाक्षालोहादिव्यापारीरसादिविक्रयीचयः ॥ ५५ ॥ सयातिनागवेष्टंचनागैर्वेष्टितमेवच ॥ वसेत्सलोमानाब्दंतत्रैवनागपाशितः ॥ ५६ ॥ ततोनानाविधाःपक्षिजातयश्चततोनरः ॥ ततोभवेत्सगणकोवैद्यश्चसप्तजन्मसु ॥ ५७ ॥ गोपश्चकर्मकारश्चरंगकारस्ततःशुचिः ॥ प्रसिद्धानिचकुंडानिकथितानिपतिव्रते ॥ ५८ ॥ अन्यानिचाऽप्रसिद्धानिक्षुद्राणिसंतितत्रवै ॥ संतिपातकिनस्तेषुस्वकर्मफलभोगिनः ॥ ५९ ॥ भ्रमंतिनानायोनिंचकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ सावित्र्युवाच ॥ धर्मराजमहाभागवेदवेदांगपारग ॥ नानापुराणेतिहासेयत्सारंतत्प्रदर्शय ॥ १ ॥

वहां निवास करते हैं ॥ ५६ ॥ फिर अनेक प्रकारकी पक्षिजातिमें जन्म लेकर पश्चात् मनुष्य होते हैं फिर वह गणक और सात जन्म वैद्य होता है ॥ ५७ ॥ गोप कर्मका रंगकार होकर फिर शुचि होता है. हे पतिव्रते ! यह प्रसिद्ध कुंड तुमसे कथन किये ॥ ५८ ॥ और भी बहुतसे अपवित्र और क्षुद्र कुंड उस स्थानपर हैं उसमें पातकी अपने कर्मोंका फल भोगते हैं ॥ ५९ ॥ और अनेक योनियोंमें भ्रमते हैं अब तुम्हारी क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सावित्री बोली हे महाभाग धर्मराज ! वेद वेदांगके पारगामी अनेक पुराण इति

हासका जो सार है सो दिखाइये ॥ १ ॥ जो सबका सारभूत सबका इष्ट सर्वसम्मत हो जो कर्मच्छेदका बीजरूप हो प्रशस्त और मनुष्योंको सुखदायक हो ॥ २ ॥ सब कुछ देनेवाला सबके मंगलका कारण जिससे मनुष्य भय और दुःखको प्राप्त हो ॥ ३ ॥ यह कुंड न देखै न कभी इनमें पडै जिससे जन्मादि न हो उस कर्मको दिखाइये और कहिये ॥ ४ ॥ यह कुंड किस आकारके बनेहुए हैं और किसप्रकारसे कौनरूपसे पापी वहां निवास करते हैं ॥ ५ ॥ अपना देह भस्म होनेसे यह प्राणी लोकान्तर गमन करता है फिर यह किस देहसे शुभाशुभका भोग करता है ॥ ६ ॥ और बहुत कालतक क्लेश भोगनेसे भी यह देह क्यों नहीं नष्ट होता है हे ब्रह्मन् ! वह देह किस प्रकारका है सो आप मुझसे कहिये ॥ ७ ॥ नारायण बोले सावित्रीके वचन सुन धर्मराज हरिका स्मरण करतेहुए इस कर्मबंधननाशिनी कथाको कहने लगे ॥ ८ ॥

सर्वेषुसारभूतंयत्सर्वेष्टंसर्वसंमतम् ॥ कर्मच्छेदबीजरूपंप्रशस्तंसुखदंनृणाम् ॥ २ ॥ सर्वप्रदंचसर्वेषांसर्वमंगलकारणम् ॥ भयंदुःखंनपश्यंतियेनवैसर्वमानवाः ॥ ३ ॥ कुंडानितेनपश्यंतितेषुनैवपतंतिच ॥ नभवेद्येनजन्मादितत्कर्मवदसांप्रतम् ॥ ४ ॥ किमाकाराणिकुंडानितानिवानिर्मितानिच ॥ केचकेनैवरूपेणतत्रतिष्ठंतिपापिनः ॥ ५ ॥ स्वदेहेभस्मसाद्भूतेयातिलोकांतरंनरः ॥ केनदेहेनवाभोगंकरोतिचशुभाशुभम् ॥ ६ ॥ सुचिरंक्लेशभोगेनकथंदेहोननश्यति ॥ देहोवाकिंविधोब्रह्मंस्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥ नारायणउवाच ॥ सावित्रीवचनंश्रुत्वाधर्मराजोहरिंस्मरन् ॥ कथांकथितुमारेभेकर्मबंधनिकृंतनीम् ॥ ८ ॥ धर्मराजउवाच ॥ वत्सेचतुर्षुवेदेषुधर्मेषुसंहितासुच ॥ पुराणेष्वितिहासेषुपांचरात्रादिकेषुच ॥ ९ ॥ अन्येषुधर्मशास्त्रेषुवेदांगेषुचसुव्रते ॥ सर्वेष्टंसारभूतंचपंचदेवानुसेवनम् ॥ १० ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसंतापनाशनम् ॥ सर्वमंगलरूपंचपरमानंदकारणम् ॥ ११ ॥ कारणंसर्वसिद्धीनांनरकार्णवतारणम् ॥ भक्तिवृक्षांकुरकरंकर्मवृक्षनिकृंतनम् ॥ १२ ॥ विमोक्षसोपानमिदमविनाशपदंस्मृतम् ॥ सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदंशुभम् ॥ १३ ॥ कुंडानियमदूतैश्चरक्षितानिसदाशुभे ॥ नहिपश्यंतिस्वप्नेचपंचदेवार्चकानराः ॥ १४ ॥

धर्मराज बोले हे वत्से ! चारवेद सब धर्मसंहिताओंमें पुराण इतिहास पंचरात्र ॥ ९ ॥ हे सुव्रते ! तथा दूसरे धर्मशास्त्र वेदांगोंमें सबका इष्ट और सारभूत पंचदेवताओंकी उपासना है ॥ १० ॥ यह जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और संतापनाशिनी है सब मंगलकी रूप परमानंदकी कारण है ॥ ११ ॥ सब सिद्धियोंकी कारण नरकार्णवसे तारक भक्तिरूपी वृक्षका अंकुर करनेवाली कर्मवृक्षका छेदन करनेवाली है ॥ १२ ॥ यह विमोक्षकी सोपान अविनाश पद है, सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य सामीप्यादि देनेवाला शुभ है ॥ १३ ॥ हे शुभे ! कुंडोंको जो तुमने पूँछा इन कुंडोंकी यमदूत सदा रक्षा करते हैं पंचदेवकी उपासना करनेवाले स्वप्नमें भी इन कुंडोंका

दर्शन नहीं करते हैं ॥ १४ ॥ जो देवीकी भक्ति नहीं करते वही हमारे स्थानमें आते हैं जो हरितीर्थमें जाते एकादशी आदि व्रत करते हैं ॥ १५ ॥ जो नित्य भगवान्को प्रमाण कर उनकी अर्चा करते हैं वे हमारी घोर संयमनी पुरीको नहीं आते ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण तीनों संध्याओंसे पवित्र शुद्धाचार हैं वह भी विना देवीकी उपासनाके मुक्तिको प्राप्त नहीं होते ॥ १७ ॥ जो अपने धर्ममें निरत आचारवाले स्वधर्ममें निरत है मर्त्यलोकमें जाते उनको मेरे दूतोंका दर्शन नहीं होता ॥ १८ ॥ शिवके उपासकोंसे मेरे दूत इसप्रकार भय खाते हैं जैसे गरुडसे सर्प और ऐसे स्थानमें पाशधारी दूतको जाता देखकर मैं निवारण करदेता हूं ॥ १९ ॥ हरिदासके आश्रयके सिवाय वे सर्वत्र गमन करते हैं गरुडसे सर्पकी समान कृष्णभक्तसे मेरे दूत डरते हैं ॥ २० ॥ देवीमंत्रके उपासकोंको भगवतीका नामही कर्मबंधनसे

देवीभक्तिविहीनायेतेपश्यंतिममाऽऽलयम् ॥ यांतियेहरितीर्थंवाश्रयंतिहरिवासरम् ॥ १५ ॥ प्रणमंतिहरिंनित्यंहर्यर्चांकलयंतिच ॥ नयांति तेऽपिघोरांचममसंयमिनींपुरीम् ॥ १६ ॥ त्रिसंधिपूताविप्राश्चशुद्धाचारसमन्विताः ॥ निवृत्तिंनैवलप्स्यंतिदेवीसेवांविनानराः ॥ १७ ॥ स्वधर्मनिरताचाराःस्वधर्मनिरतास्तथा ॥ गच्छंतोमृत्युलोकंचदुर्दृशाममकिंकराः ॥ १८ ॥ भीताःशिवोपासकेभ्योवैनतेयादिवोरगाः ॥ स्वदूतंपाशहस्तंचगच्छंतंवारयाम्यहम् ॥ १९ ॥ यास्यंतितेचसर्वत्रहरिदासाश्रयंविना ॥ कृष्णमंत्रोपासकाच्चवैनतेयादिवोरगाः ॥ २० ॥ देवीमंत्रोपासकानांनाम्नाचैवनिकृंतनम् ॥ करोतिनखलेखन्याचित्रगुप्तश्चभीतवत् ॥ २१ ॥ मधुपर्कादिकंतेषांकुरुतेचपुनःपुनः ॥ विलंघ्यब्रह्मलोकंचलोकंगच्छंतितेसति ॥ ॥ २२ ॥ दुरितानिचनश्यंतियेषांसंस्पर्शमात्रतः ॥ तेमहाभाग्यवंतोहिसहस्रकुलपावनाः ॥ २३ ॥ यथाचप्रज्वलद्वह्नौशुष्काणिचतृणानिच ॥ प्राप्नोतिमोहःसंमोहंतांश्चदृष्ट्वाचभीतवत् ॥ २४ ॥ कामश्चकामिनंयातिलोभक्रोधौततःसति ॥ मृत्युःप्रलीयतेरोगोजराशोकोभयंतथा ॥ २५ ॥

मुक्त करता है इनके कोई कर्म हो तो चित्रगुप्त नखलेखिनीसे भीतहुए लिखते हैं और जो अज्ञानसे चित्रगुप्तने लिखा है वह मंत्रजापसे नष्ट होता है ॥ २१ ॥ और उनको वारंवार मधुपर्क दिया जाता है वह इस लोकको उल्लंघनकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं ॥ २२ ॥ इनके स्पर्श मात्रसे पाप नष्ट होजाते हैं वे महाभाग्यवान् सहस्र कुलके पवित्र करनेवाले होते हैं ॥ २३ ॥ जैसे प्रज्वलित अग्निमें शुष्क तृण भस्म होते हैं इसप्रकार उन भक्तोंको देखकर भयसे मोह भी मोहको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ उनके काम कामियोंपर जाते कामना हीन होनेसे लोभ क्रोध भी नष्ट होते हैं. फिर रोग, जरा, शोक, भय और मृत्यु उनकी लीन होजाती है ॥ २५ ॥

काल,सत्ता,शुभकर्म, हर्ष,भोग यह निवृत्त होता है. हे देवि! जो जो इस पीडाको प्राप्त नहीं होते उनका वर्णन तुमसे किया॥ २६॥ अब देहका विवरण सुनो यथायोग्य कहता हूं पृथ्वी,वायु, आकाश, तेज, जल॥ २७॥ यह देहधारी और स्रष्टाकी सृष्टिके बीज हैं जो देह पृथ्वी आदि पंचभूतका बना है॥ २८॥ वह कृत्रिम और नश्वर है यह यहांही भस्म होता है परन्तु पुरुषाकृति जीव अंगुष्ठप्रमाण शरीरवाला कर्मसे बद्ध है॥ २९॥ यह भोगके निमित्त उस देहको धारण करता है वह देह यमालयकी प्रज्वलित अग्निमें भी भस्म नहीं होता ॥ ३० ॥ जल वा प्रहारसे भी यह नष्ट नहीं होता. शस्त्र, अस्त्र, तीक्ष्ण कंटक ॥ ३१ ॥ उपद्रव, तप्त लोह, तप्त पाषाण, तप्त प्रतिमासे आलिंगन कराने

कालःशुभाशुभंकर्म हर्षोभोगस्तथैवच ॥ येयेनयांतितांपीडांकथितास्तेमयासति ॥ २६ ॥ शृणुदेहविवरणंकथयामियथागमम् ॥ पृथिवीवायुराकाशस्ते जस्तोयमितिस्फुटम् ॥ २७ ॥ देहिनांदेहबीजंचस्रष्टृसृष्टिविधौपरम् ॥ पृथिव्यादिपंचभूतैर्योदेहोनिर्मितोभवेत् ॥ २८ ॥ सकृत्रिमोनश्वरश्चभस्म सात्चभवेदिह ॥ बद्धो गुष्ठप्रमाणश्चयोजीवःपुरुषःकृतः ॥ २९ ॥ बिभर्तिसूक्ष्मंदेहंतंतद्रूपंभोगहेतवे ॥ सदेहोनभवेद्भस्मज्वलदग्नौममालये ॥ ३० ॥ जलेननष्टोदेहीवाप्रहारेसुचिरंकृते ॥ नशस्त्रेणनवाऽस्त्रेणसुतीक्ष्णकंटकेतथा ॥ ३१ ॥ तप्तद्रवेतप्तलोहेतप्तपाषाणएवच ॥ प्रतप्तप्रतिमाश्लेषेयत्पूर्वपतने ऽपिच ॥ ३२ ॥ नदग्धोनचभग्नःसभुंक्तेसंतापमेवच ॥ कथितोदेहवृत्तांतःकारणंचयथागमम् ॥ ३३ ॥ कुंडानांलक्षणंसर्वंबोधायकथयामिते ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ छ ॥ ॥ धर्मराजउवाच ॥ पूर्णेंदुमंडलाकारंसर्वंकुंडंचवर्तुलम् ॥ निम्नंपाषाणभे दैश्चपाचितंबहुभिःसति ॥ १ ॥ ननश्वरंचाऽऽप्रलयंनिर्मितंचेश्वरेच्छया ॥ क्लेशदंपातकानांचनानारूपंतदालयम् ॥ २ ॥ ज्वलदंगाररूपंचशतहस्त शिखान्वितम् ॥ परितःक्रोशमानंचवह्निकुंडंप्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥

तथा पातन करनेसे ॥ ३२॥ दग्ध और भग्न नहीं होता अनेक संताप सहता है यह देहका वृत्तान्त और कारण तुमसे कथन किया ॥ ३३॥ अब कुंडोंका विवरण कहता हूं सुनो ॥ ३४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ धर्मराज बोले सम्पूर्ण कुंड पूर्णचन्द्रमाके मंडलकी समान गोल हैं और विलक्षण पाषाणरूप अंगारोंसे निरन्तर जलते रहते हैं ॥ १॥ यह ईश्वरकी इच्छासे निर्मित हुए प्रलयपर्यन्त अविनाशी रहते हैं वह स्थान पापोंके कारण अनेक क्लेश देनेवाला है ॥ २ ॥ और इनमेंसे जलते अंगारोंसे सौहाथ ऊंची ज्वाला निकलती है यह अग्निकुंड सब ओरसे एक कोशके घेरेमें है ॥ ३ ॥

और महाशब्द करनेवाले पापियोंसे पूर्ण रहता है मेरे दूत निरन्तर रक्षा कर पापियोंको दण्ड देते हैं ॥ ४ ॥ तत्ते जलसे पूर्ण कुंड हिंसकजन्तुओंसे पूर्ण है और दृढप्रहारसे वहां महाघोर काकुशब्द होता है ॥ ५ ॥ यह आध कोशमें है मेरे पार्षद दूत यहां पापियोंको दंड देते हैं एक कुंड तत्तेक्षारजलसे पूर्ण और काकोंसे व्याप्त है ॥ ६ ॥ पापियोंसे युक्त एककोशपर्यन्त बडा भयानक है और मेरे दूतोंसे ताडित हो पापी त्राहि त्राहि (रक्षा करो) यह शब्द करते हैं ॥ ७ ॥ अनाहारसे इनका ओष्ठतालु सूख जाता है. इसप्रकार एक कुंड कोशपर्यन्त विट्से पूर्ण है ॥ ८ ॥ अति दुर्गन्धियुक्त है इसमें पापी भरे रहते हैं उस दारुण आहार करनेको पापी उनको ताडन करते रहते हैं ॥ ९ ॥ वहांके कीट उनको भक्षण करते हैं उस समय वे रक्षा करो रक्षाकरो इस प्रकारका शब्द करते हैं यह तत्ते मूत्र जलसे पूर्ण और मूत्रके कीटोंसे व्याप्त है ॥ १० ॥ कीटोंसे खाये

महाशब्दंप्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम् ॥ रक्षितंममदूतैश्चताडितैश्चाऽपिसंततम् ॥ ४ ॥ प्रतप्तोदकपूर्णंचहिंस्रजंतुसमन्वितम् ॥ महाघोरंकाकुशब्दप्रहारेणदृढेनच ॥ ५ ॥ क्रोशार्धमानंतद्दूतैस्ताडितैर्ममपार्षदैः ॥ तप्तक्षारोदकैःपूर्णंपुनःकाकैश्चसंकुलम् ॥ ६ ॥ संकुलंपापिभिश्चैवक्रोशमानंभयानकम् ॥ त्राहीतिशब्दंकुर्वद्भिर्ममदूतैश्चताडितैः ॥ ७ ॥ प्रचलद्भिरनाहारैःशुष्ककंठोष्ठतालुकैः ॥ विड्भिरवकृतंपूर्णंक्रोशमानंचकुत्सितम् ॥ ८ ॥ अतिदुर्गंधिसंसक्तंव्याप्तंपापिभिरन्वहम् ॥ ताडितैर्ममदूतैश्चतदाहारैःसुदारुणैः ॥ ९ ॥ रक्षेतिशब्दंकुर्वद्भिस्तत्कीटैरेवभक्षितैः ॥ तप्तमूत्रद्रवैःपूर्णंमूत्रकीटैश्चसंकुलम् ॥ १० ॥ युक्तंमहापातकिभिस्तत्कीटैर्भक्षितैःसदा ॥ गव्यूतिमानंध्वांताक्तंशब्दकृद्भिश्चसंततम् ॥ ११ ॥ मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैःशुष्ककंठोष्ठतालुकैः ॥ श्लेष्मपूर्णंप्रशसितंतत्कीटैःपूरितंतदा ॥ १२ ॥ तद्भोजिभिःपापिभिश्चवेष्टितंवेष्टितैःसदा ॥ क्रोशार्धंगरकुंडंचगरभोजिभिरन्वितम् ॥ १३ ॥ गरकीटैर्भक्षितैश्चपापिभिः पूर्णमेवच ॥ ताडितैर्ममदूतैश्चशब्दकृद्भिश्चकंपितैः ॥ १४ ॥ सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैःशुष्ककंठैःसुदारुणैः ॥ नेत्रयोर्मलपूर्णंचक्रोशार्धंकीटसंयुतम् ॥ १५ ॥ पापिभिःसंकुलंशश्वद्भ्रमद्भिःकीटभक्षितैः ॥ वसारसेनसंपूर्णंक्रोशतुर्यंसुदुःसहम् ॥ १६ ॥ तद्भोजिभिःपातकिभिर्ममदूतैश्चताडितैः ॥ शुक्रकुंडंक्रोशमितंशुक्रकीटैश्चसंयुतम् ॥ १७ ॥

जाते महा पापियोंसे यह कुण्ड व्याप्त रहता है दो कोशके बीचमें ध्वान्त नामक कुंड है जिसमें पापियोंका बडा शब्द होता है ॥ ११ ॥ घोर रूप मेरे दूतोंसे ताडित कंठ ओष्ठ तालु सूखनेसे दुःख पाते हैं श्लेष्मासे पूर्ण श्लेष्मकुंड है और उसी प्रकारके कीटोंसे व्याप्त है ॥ १२ ॥ और उसीके भोजी पापियोंसे यह वेष्टित रहता है आधे कोशमें गरलकुंड है इसमें गरभोजी डाले जाते हैं ॥ १३ ॥ इसके पापी गरलके कीडोंसे भक्षित होते हैं और मेरे दूतोंसे ताडित होकर बडा शब्द कर कंपित होते हैं ॥ १४ ॥ जो कि सर्पाकार वज्रसी डाढोंवाले दारुण शुष्ककंठ हैं नेत्रोंके मलसे पूर्ण दूषिकाकुंड है यह आधकोशमें है ॥ १५ ॥ यह पापियोंसे व्याप्त है इसमें भ्रमण करते कीट इनको भक्षण करते हैं वसाकुंड चारकोशपर्यन्त वसारससे पूर्ण है ॥ १६ ॥ इसके भोजन करनेवाले पापियोंको मेरे दूत ताडना करते हैं शुक्रकुंड

एक कोश परिमाणमें शुक्र कीडोंसे युक्त है ॥ १७ ॥ यहांके पापी निरन्तर इन कीडोंसे खाये जाते हैं. रक्तकुंड बडा दुर्गंधियुक्त वापीकी समान गहरा है ॥ १८ ॥ और उसके भोजी पापियोंसे संकुल कीटोंसे भक्षित होता है नेत्रोंके आंसुओंसे भरा अश्रुकुंड अनेक पापियोंसे व्याप्त है ॥ १९ ॥ यह पूर्वोक्त वापीकी प्रमाणमें चौथाई यहां कीटोंसे भक्षित होता रोता है गात्रमलकुंड मनुष्योंके गात्रके मलसे भरा है इसके खानेवाले पापी उसमें पडे रहते हैं ॥ २० ॥ यह यमदूतोंसे ताडित होकर कीटोंके भक्षणसे बडे दुःखी होते हैं कर्णविट्कुंड कानके मैलसे युक्त है यहां पापी यही खाते हैं और वहांके कीडे उनको काटते हैं ॥ २१ ॥ यह पूर्वोक्त बावडीसे विस्तारमें चौथाई है इसमें कीटोंसे भक्षित हो प्राणी रोता है मज्जाकुंड मनुष्योंकी मज्जासे युक्त महा दुर्गन्ध

पापिभिःसंकुलंशश्वद्रुवद्भिःकीटभक्षितैः ॥ दुर्गंधिरक्तपूर्णंचवापीमानंगभीरकम् ॥ १८ ॥ तद्भोजिभिःपापिभिश्चसंकुलंकीटभक्षितम् ॥ पूर्णनेत्राश्रुभिस्ततंबहुपापिभिरन्वितम् ॥ १९ ॥ वापीतुर्यप्रमाणंचरुदद्भिःकीटभक्षितैः ॥ नृणांगात्रमलैर्युक्तंतद्भक्षैःपापिभिर्युतम् ॥ २० ॥ ताडितैर्यमदूतैश्चव्यग्रैश्चकीटभक्षितैः ॥ कर्णविट्परिपूर्णंचतद्भक्षैःपापिभिर्वृतम् ॥ २१ ॥ वापीतुर्यप्रमाणंचब्रुवद्भिःकीटभक्षितैः ॥ मज्जापूर्णंनराणांचमहादुर्गंधिसंयुतम् ॥ २२ ॥ महापातकिभिर्युक्तंवापीतुर्यप्रमाणकम् ॥ परिपूर्णंस्निग्धमांसैर्यमदूतैश्चताडितैः ॥ २३ ॥ पापिभिःसकुलंचैववापीमानंभयानकैः ॥ कन्याविक्रयिभिश्चैवतद्भक्ष्यैःकीटभक्षितैः ॥ २४ ॥ पाहीतिशब्दंकुर्वद्भिस्त्रासितैश्चभयानकैः ॥ वापीतुर्यप्रमाणंचनखादिकचतुष्टयम् ॥ २५ ॥ पापिभिःसंयुतंशश्वन्यमदूतैश्चताडितैः ॥ प्रतप्तताम्रकुंडंचताम्रोपर्युल्मुकान्वितम् ॥ २६ ॥ ताम्राणांप्रतिमालक्षैःप्रतप्तैर्व्याप्तंसदा ॥ प्रत्येकंप्रतिमाश्लिष्टैरुदद्भिःपापिभिर्युतम् ॥ २७ ॥ गव्यूतिमानंविस्तीर्णंयमदूतैश्चताडितैः ॥ प्रतप्तलोहधारंचज्वलदंगारसंयुतम् ॥ २८ ॥

वाला है ॥ २२ ॥ यह महा पातकियोंसे युक्त वापीसे चौथाई परिमाणयुक्त है मांसकुंड मांससे पूर्ण है यहां यमदूत पापियोंको ताडन करते हैं ॥ २३ ॥ यह वापीमानतक अनेक पापियोंसे व्याप्त होनेसे महा भयानक है इसमें कन्याके बेचनेवाले पडते और वहांके कीट उनको भक्षण करते हैं ॥ २४ ॥ वे बडे भयानक शब्दसे त्रासित हो हाहाकार करते हैं नखकुंड लोमकुंड अस्थिकुंड यहबावडीसे चतुर्थांश विस्तारवाले हैं॥ २५॥ यह पापियोंसे भरे निरन्तर यम दूतोंसे ताडित होते हैं तांबेके ऊपर प्रतप्त ताम्रकुंड है उल्मुकसे युक्त है॥ २६ ॥ इसमें तांबेकी तपाई लाखों प्रतिमा हैं प्रत्येक पापी इनसे चिपटाये जाते हैं तब यह बडा शब्द करते हैं॥ २७॥ यह दोकोशके

विस्तारमें है यमदूत यहां पापियोंको मारते हैं तप्त लोहधार और जलते अंगारोंसे युक्त लोहकुंड है ॥ २८ ॥ उसमें लोहोंकी गरम प्रतिमाओंसे पापी चिपटाये जाते हैं और गरम प्रतिमाओंमें चिपटनेसे बडा रुदन करते हैं ॥ २९ ॥ और दूतोंसे ताडित होकर रक्षा करो २ ऐसा शब्द करते हैं यह दोकोशमें महा पापियोंसे युक्त है ॥ ३० ॥ भयानक अंधकारसे युक्त लोहकुंड कहा है चर्मकुंड तप्तसुराकुंड वापीसे आधा है ॥ ३१ ॥ यमदूतोंसे ताडित उनके भोजी पापियोंसे युक्त है यह शाल्मलीकुंड तीक्ष्ण कांटोंसे व्याप्त है ॥ ३२ ॥ यह लक्षपुरुष प्रमाण एक कोशमें महा दुःखदायक है और धनुषप्रमाण लम्बे कांटे इसमें भरे पड़े हैं ॥ ३३ ॥ इसके प्रत्येक कंटकमें महापापी विंधे पडे हैं यमदूत वृक्षके अग्रभागसे उस कुंडमें धकेलते हैं ॥ ३४ ॥ तालु शुष्क होनेसे जल दो २ ऐसा शब्द करते हैं डरसे व्याकुल

लोहानांप्रतिमाश्लिष्टैरुदद्भिःपापिभिर्युतम्॥प्रत्येकंप्रतिमाश्लिष्टैःशश्वत्प्रज्वलितैर्भिया ॥२९॥ रक्षरक्षेतिशब्दंचकुर्वद्भिर्दूतताडितैः॥महापातकिभिर्युक्तंद्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥३०॥ भयानकंध्वांतयुक्तंलोहकुंडंप्रकीर्तितम्॥चर्मकुंडंतप्तसुराकुंडंवाप्यर्धमेवच॥३१॥तद्भोजिपापिभिर्व्याप्तंयमदूतैश्चताडितैः ॥ अतः शाल्मलीकुंडंचवृक्षकंटकशोभितम्॥३२॥लक्षपौरुषमानंचक्रोशमानंचदुःखदम्॥धनुर्मानैःकंटकैश्चसुतीक्ष्णैःपरिवेष्टितम्॥३३॥ प्रत्येकंविद्धगात्रैश्चमहापातकिभिर्युतम्॥वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्चयमदूतैश्चपातितैः॥३४॥जलंदेहीतिशब्दंचकुर्वद्भिःशुष्कतालुकैः ॥ महाभियाऽतिव्यग्रैश्चदंडैःसंभग्नमस्तकैः ॥३५॥ प्रचलद्भिर्यथातप्ततैलजीविभिरेवच ॥ विषोदैस्तक्षकाणांचपूर्णंचक्रोशमानकम् ॥ ३६ ॥ तद्भक्षैःपापिभिर्युक्तंयमदूतैश्चताडितैः॥प्रतप्ततैलपूर्णंचकीटादिपरिवर्जितम् ॥३७॥ महापातकिभिर्युक्तंदग्धांगारैश्चवेष्टितम् ॥ काकुशब्दंप्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतपीडितैः ॥३८॥ध्वांतयुक्तंक्रोशमानंक्लेशदंचभयानकम् ॥शूलाकारैःसुतीक्ष्णाग्रैर्लोहशस्त्रैश्चवेष्टितम् ॥३९॥शस्त्रतल्पस्वरूपंचक्रोशतुर्यप्रमाणकम् ॥ वेष्टितंतत्पातकिभिःकुंतविद्धैश्चवेष्टितैः ॥४०॥ ताडितैर्यमदूतैश्चशुष्ककंठोष्ठतालुकैः॥कीटैश्चशंकुप्रमितैःसर्पमानैर्भयंकरैः॥४१॥तीक्ष्णदंतैश्चविकृतैर्व्याप्तंध्वांतयुतंसति॥महापातकिभिर्युक्तंयमदूतैश्चताडितैः ॥४२॥

और दंडसे शिर चूर्ण किया जाता है ॥ ३५ ॥ और डरसे तेलपायी जीवोंकी समान इधर उधर चलायमान होता है विषोदकुंड एक कोशतक तक्षकोंसे पूर्ण है ॥ ॥ ३६ ॥ उसके भक्षणवाले जीवों और पापियोंसे वह व्याप्त है मेरे दूत उनको ताडन करते हैं तत्ते तेलका कुंड कीटादिसे रहित है॥ ३७॥ यह दग्ध अंगारोंसे वेष्टित महापापियोंसे व्याप्त है और दूतोंके मारनेसे दौडते महाशब्द करते हैं ॥ ३८ ॥ ध्वान्तयुक्त कुंतकुंड कोशमान क्लेशदायक बडा भयानक है शूलाकार अग्रमें तीक्ष्ण लोहशस्त्र बरछी समूहोंसे व्याप्त है ॥ ३९ ॥ यहां चारकोशतक बर्छियोंकी ही शय्या है वहां बरछियोंसे विंधे पापी भरेपड़े हैं ॥ ४० ॥ मेरे दूतोंके ताडन करनेसे उनके कंठ ओष्ठ तालु सूखगये हैं कीटकुंडमें सर्पाकार शंकुकी समान कीट हैं ॥ ४१ ॥ यह तीक्ष्ण दांतवाले विकृत अंग अंधकारमें व्याप्त हैं इनमें महापातकी भरे मेरे

दूतोंसे ताडित होते हैं ॥ ४२ ॥ चारकोशमें पूयकुंड है इसके जीव यहांके प्राणियोंको काटते यही पापी खाते और मेरे दूत इनको ताडन करते हैं ॥ ४३ ॥ सर्प कुंड तालवृक्षके समान लम्बे अनन्त सर्पोंसे भरा है यहां सर्प पापीके सब शरीरमें लिपटकर उसको भक्षण करते हैं ॥ ४४ ॥ और मेरे दूतोंसे ताडित हो बडाशब्द करते हैं. मशककुंड दंशकुंड गरलकुंड यह तीन कुंड मशकादिसे पूर्ण हैं ॥ ४५ ॥ यह सब आधेकोशके परिमाणमें महापातकियोंसे युक्त हैं इनमें हाथ पैर बांधकर डालते हैं शरीर लोहू लुहान होजाता है ॥ ४६ ॥ मेरे दूतोंसे ताडित हो हाहाकार शब्द करते हैं वज्रदंष्ट्रकुंड और वृश्चिक कुंड यह इन दोनोंसे पूर्ण हैं ॥ ४७ ॥ यह

द्विगव्यूतिप्रमाणंचपूयकुंडंप्रचक्षते ॥ तद्भक्ष्यैःप्राणिभिर्युक्तंममदूतैश्चताडितैः ॥४३॥ तालवृक्षप्रमाणैश्चसर्पकोटिभिरावृतम् ॥ सर्पवेष्टितगात्रैश्चपापिभिः सर्पभक्षितैः ॥ ४४ ॥ संकुलंशब्दकृद्भिश्चममदूतैश्चताडितैः ॥ कुंडत्रयंमशादीनांपूर्णंचमशकादिभिः ॥ ४५ ॥ सर्वक्रोशार्धमानंचमहापातकिभिर्युतम् ॥ हस्तपादादिबद्धैश्चक्षतजौघेनलोहितैः ॥ ४६ ॥ हाहेतिशब्दंकुर्वद्भिस्ताडितैर्ममपार्षदैः ॥ वज्रवृश्चिकयोःकुंडंताभ्यांचपरिपूरितम् ॥ ४७ ॥ वाप्यर्धंपापिभिर्युक्तंवज्रवृश्चिकदंशितैः ॥ कुंडत्रयंशरादीनांतैरेवपरिपूरितम् ॥ ४८ ॥ तैर्विद्धैःपापिभिर्युक्तंवाप्यर्धंरक्तलोहितैः ॥ तप्ततोयोदकैःपूर्णंस ध्वांतंगोलकुंडकम् ॥ ४९ ॥ कीटैःसंकुलमानैश्चभक्षितैःपापिभिर्युतम् ॥ वाप्यर्धमानंभीतैश्चपापिभिःकीटभक्षितैः ॥ ५० ॥ रुदद्भिःक्रोशमानैश्चमम दूतैश्चताडितैः ॥ अतिदुर्गंधिसंयुक्तंदुःखदंपापिनांसदा ॥ ५१ ॥ दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितंपापिभिर्युतम् ॥ वाप्यर्धंपरिपूर्णंचजलस्थैर्नक्रको टिभिः ॥ ५२ ॥

प्रमाणमें पापीसे आधे, वापियोंसे युक्त है, जहां वज्रकी समान विच्छू काटते हैं शरकुंड, शूलकुंड, खड्गकुंड, यह उन्हींसे पूर्ण हैं ॥ ४८ ॥ इनमें इन्हींसे बद्ध हुए पापी रहते हैं यह प्रमाणमें आधी बावडीके हैं और रक्त (रुधिर) से पूर्ण हैं गोलकुंड अंधकारमय तप्तजलसे पूर्ण है ॥ ४९ ॥ अनेक प्रकारके कीटोंसे परिपूर्ण जो पापियोंको भक्षण करते हैं यह भी पापीके अर्ध प्रमाणमें है यहां कीटभक्षित पापी दुःख पाते हैं ॥ ५० ॥ सब प्रकार रोते और दुःखी होते और यमदूत उनको ताडन करते हैं यह अति दुर्गन्धिसे संयुक्त पापियोंको सदा दुःखदायक है ॥ ५१ ॥ दारुण विकटाकार पापियोंसे भक्षित नक्रकुंड है यह बावडीसे अर्धपरिमाणमें है, इसके जलमें

कोटियों नाके हैं ॥ ५२ ॥ विष्ठा, मूत्र, श्लेष्म, भक्षण करनेवाले अनन्त काक भी जहां पापियोंको भक्षण करते हैं ॥ ५३ ॥ मंथानकुंड और बीजकुंड, मंथान और बीज नामक कीटोंसे व्याप्त है सौ धनुषके प्रमाणमें है यहां इनसे भक्षित हो पापी बडा शब्द करते हैं ॥ ५४ ॥ सौ धनुषमें जीवोंसे जिनकी दंष्ट्रा वज्रके आकारयुक्त हैं यह पापियोंको भक्षण करते जिनका बडा शब्द होताहै और वहां बडा अंधकार है ॥ ५५ ॥ पाषाणकुंड वापीमानसे बना तत्ते पत्थरका है जलते अंगारकी समान भूमिपर दौडते हुए पापियोंसे युक्त है ॥ ५६ ॥ क्षुरधारकी समान तीक्ष्ण पाषाणोंसे निर्मित तीक्ष्ण पाषाणकुंड है लोहितयुक्त प्राणियोंसे युक्त लालाकुंड है ॥ ५७ ॥ यह एक कोशपर्यन्त गहरा है मेरे दूत यहां पापियोंको दंड देते हैं मसीकुंड तप्तांजन पर्वतके समानवाले पाषाणोंसे व्याप्त है सौ धनुषपरिमाणमें है ॥ ५८ ॥ इसमें अनेक पापी

विण्मूत्रश्लेष्मभक्षैश्चसंयुतंशतकोटिभिः ॥ काकैश्चविकृताकारैर्भक्षितैःपापिभिर्युतम् ॥ ५३ ॥ मंथानकुंडंबीजकुंडंताभ्यांपूर्णंधनुःशतम् ॥ भक्षितैः पापिभिर्युक्तंशब्दकृद्भिश्चसंततम् ॥ ५४ ॥ धनुःशतंजीवयुक्तंपापिभिःसंकुलंसदा ॥ शब्दकृद्भिर्वज्रदंष्ट्रैःसांद्रध्वांतमयंपरम् ॥ ५५ ॥ वापीद्विगुणमानं चतत्प्रस्तरनिर्मितम् ॥ ज्वलदंगारसदृशंचलद्भिःपापिभिर्युतम् ॥ ५६ ॥ क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैःपाषाणैर्निर्मितंपरम् ॥ महापातकिभिर्युक्तंलालाकुंडंच लोहितैः ॥ ५७ ॥ क्रोशमात्रंचगंभीरंममदूतैश्चताडितैः ॥ तप्तांजनाचलाकारैःपरिपूर्णंधनुःशतम् ॥ ५८ ॥ चलद्भिःपापिभिर्युक्तंममदूतैश्चताडितैः ॥ पूर्णंचूर्णद्रवैःक्रोशमानंपापिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥ तद्भोजिभिःप्रदग्धैश्चममदूतैश्चताडितैः ॥ कुंडंकुलालचक्रंचघूर्णमानंचसंततम् ॥ ६० ॥ सुतीक्ष्णं षोडशारंचचूर्णितैःपापिभिर्युतम् ॥ अतीववक्रंनिम्नंचद्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ६१ ॥ कंदराकारनिर्माणंतप्तोदैश्चसमन्वितम् ॥ महापातकिभिर्युक्तंभक्षितैर्जलजंतुभिः ॥ ६२ ॥ ज्वलद्भिःशब्दकृद्भिश्चध्वांतयुक्तंभयानकम् ॥ कोटिभिर्विकृताकारैःकच्छपैश्चसुदारुणैः ॥ ६३ ॥ जलस्थैःसंयुतंतैश्चभक्षितैःपापिभिर्युतम् ॥ ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितंक्रोशमानकम् ॥ ६४ ॥ शब्दकृद्भिःपातकिभिःसंयुतंक्लेशदंसदा ॥ क्रोशमानंचगंभीरंतप्तभस्मभिरन्वितम् ॥ ६५ ॥

पडते और मेरे दूत उनको दंड देते हैं यह चूर्णद्रव्यसे पूर्ण चिल्लाते हुए पापियोंसे युक्त हैं ॥ ५९ ॥ यही भोजन करनेको मिलता बडे प्रदग्ध होते मेरे दूत उनको मारते हैं कुलालचक्रकुंड निरन्तर भ्रमण करता रहता है ॥ ६० ॥ यह बडा तीक्ष्ण सोलह अरोंसे सम्पन्न चूर्णीभूत हुए पापियोंसे युक्त है बडाही टेढा निम्न चार कोशके मध्यमें है ॥ ६१ ॥ कंदराके आकारमें निर्मित तत्ते जलोंसे व्याप्त जलजंतुओंसे युक्त महा पापियोंसे भराहुआ है ॥ ६२ ॥ जहांके पापी प्रज्वलित होकर भयानक शब्द करते हैं महा अंधकार है, कूर्मकुंड अनेक विकृत आकारवाले दारुण कच्छपोंसे भरा है ॥ ६३ ॥ जो अपने जलमें पडे पापियोंको निरन्तर भक्षण करते हैं ज्वालाकुंड अग्निके समान तेजवाले पदार्थोंसे निर्मित एक कोशपर्यन्त है ॥ ६४ ॥ शब्द करनेवाले क्लेश पाये हुए पापियोंसे निरन्तर व्याप्त है, भस्मकुंड एक कोशपर्यन्त गहरा तत्ती

भस्मसे युक्त है॥ ६५॥ निरन्तर भस्म होनेवाले और भस्म खानेवाले पापियोंसे युक्त है तत्ते पाषण और लोह समूहोंसे परिपूर्ण है ॥ ६६ ॥ दग्धकुंडमें दग्धगात्र हुए जीव रहते हैं और उनके कंठ तालु सूखजाते हैं यह कुंड एक कोशपर्यन्त अंधकारमय बडा गंभीर और दारुण है ॥ ६७ ॥ यहां मेरे दूत पापियोंको मारते और दग्धकरते हैं, इससे यह दग्धकुंड कहाता है क्षारकुंड बडी २ लहरोंवाला तत्ते क्षारसे संयुक्त है ॥ ६८ ॥ अनेक प्रकारके शब्द करने वाले जलजंतुओंसे सम्पन्न दो गव्यूती (चार कोश) के प्रमाणमें गंभीर अंधकारसे युक्त है ॥ ६९ ॥ वहांके जीव पापियोंको दुःख देते और काटते हैं यह

शश्वज्ज्वलद्भिःसंयुक्तंपापिभिर्भस्मभक्षितैः ॥ तप्तपाषाणलोहानांसमूहैःपरिपूरितैः ॥ ६६ ॥ पापिभिर्दग्धगात्रैश्चयुक्तंचशुष्कतालुकैः ॥ क्रोशमानंध्वांतयुक्तंगंभीरमतिदारुणम् ॥ ६७ ॥ ताडितैश्चप्रदग्धैश्चदग्धकुंडंप्रकीर्तितम् ॥ अतीवोर्मियुतंतोयंप्रतप्तक्षारसंयुतम् ॥ ६८ ॥ नानाप्रकारैर्विरुतैर्जलजंतुभिरन्वितम् ॥ द्विगव्यूतिप्रमाणंचगंभीरंध्वांतसंयुतम् ॥ ६९॥ तद्भक्ष्यैःपापिभिर्युक्तंदंशितैर्जलजंतुभिः ॥ ज्वलद्भिःशब्दकृद्भिश्चनपश्यद्भिःपरस्परम् ॥७०॥ प्रतप्तसूचीकुंडंचकीर्तितंचभयानकम् ॥ असिवधारापत्रस्याऽप्युच्चैस्तालतरोरधः॥७१॥क्रोशार्धमानंकुंडंचपततपत्रसमन्वितम्॥ पापिनांरक्तपूर्णंचवृक्षाग्रात्पततांध्रुवम् ॥ ७२ ॥ परित्राहीतिशब्दंचकुर्वतामसतामपि ॥ गंभीरंध्वांतयुक्तंचरक्तकीटसमन्वितम् ॥ ७३ ॥ तदसीपत्रकुंडंचकीर्तितंचभयानकम् ॥ धनुःशतप्रमाणंचक्षुरधारास्त्रसंयुतम् ॥७४॥ पापिनांरक्तपूर्णंचक्षुरधारंभयानकम् ॥ सूचीमुखास्त्रसंयुक्तंपापिरक्तौघपूरितम्॥७५॥पंचाशद्धनुरायामंक्लेशदंचसूचीमुखम् ॥ कस्यचिज्जंतुभेदस्यगोकाख्यस्यमुखाकृति ॥ ७६ ॥

जलते और शब्द करते परस्पर एक दूसरेको देखते हैं ॥ ७० ॥ प्रतप्त सूचीकुंड बडाभयानक है असिपत्रकुंड असिपत्रके समान धारवाले पत्तोंसे सम्पन्न ताल वृक्षके नीचे है ॥ ७१ ॥ यह इन्हीं पत्तोंसे युक्त आधे कोशके मध्यमें है और वृक्षाग्रसे गिराये जाते पापियोंके रुधिरसे व्याप्त है ॥ ७२ ॥ रक्षा करो इसप्रकार असतपुरुष शब्द करते हैं वो कुंड गंभीर ध्वांतयुक्त रक्तकीटसे सम्पन्न है ॥ ७३ ॥ यह असिपत्र कुंड बडा भयानक है क्षुरधाराकुंड सौ धनुषके प्रमाणमें तीक्ष्ण अस्त्रोंसे व्याप्त है ॥ ७४ ॥ यह पापियोंके रक्तसे पूर्ण भयानक क्षुरधाराओंसे सम्पन्न है. सूचीमुख कुंड अस्त्रोंसे परिपूर्ण पापियोंके रक्तोंसे पूर्ण है ॥ ७५ ॥ यह परिमाणमें पचास

धनुष, पापियोंको बडा क्लेशकारक है गोकानामक जन्तुविशेषके मुखकी समान गोकामुख नरक है ॥ ७६ ॥ यह कूपकी समान बड़ा गंभीर वीस धनुषके प्रमाणमें है यह महा पातकियोंको बड़ा क्लेशदेनेवाला है ॥ ७७ ॥ वहां गोकामुख नामवाले कीट पापियोंको भक्षण करते हैं वहां जीव निरन्तर नम्र मुख रहते हैं नक्रमुखाकार कुंड सोलह धनुषके प्रमाणमें है ॥ ७८ ॥ यह कूपकी समान गंभीर पापियोंसे सम्पन्न है गजदंशनकुंड सौ धनुषके प्रमाणमें है इसमें भी पापी दुःख पाते हैं ॥७९॥ गोमुखाकृति कुंड तीस धनुषके प्रमाणमें है यह गोमुख निरन्तर पापियोंको क्लेश देता है ॥८०॥ कुंभीपाककुंड कालचक्रके समान भ्रमण करता कुंभके आकार अंधकार युक्त चार कोशमें है ॥ ८१ ॥ यह लाख पुरुषप्रमाण गंभीर और बडे विस्तारमें है इसमें पापी दुःख पाते हैं इसके अन्तर्गत कहीं तेल और कहीं ताम्रकुंड हैं ॥८२॥

कूपरूपंगभीरंचधनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ महापातकिनांचैवमहत्क्लेशप्रदंपरम् ॥७७॥तत्कीटभक्षितानांचनम्रास्यानांचसंततम्॥कुंडंनक्रमुखाकारंधनुःषोडशमानकम् ॥ ७८ ॥ गंभीरंकूपरूपंचपापिनांसंकुलंसदा ॥ धनुःशतप्रमाणंचकीर्तितंगजदंशनम् ॥ ७९ ॥ धनुस्त्रिंशत्प्रमाणंचकुंडंचगोमुखाकृति ॥ पापिनांक्लेशदंशश्वद्गोमुखंपरिकीर्तितम् ॥ ८० ॥ कालचक्रेणसंयुक्तंभ्रममाणंभयानकम् ॥ कुंभाकारंध्वांतयुक्तंद्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ८१ ॥ लक्षपौरुषमानंचगंभीरंविस्तृतंसति ॥ क्वचित्तप्ततैलंचताम्रादिकुंडमेवच ॥ ८२ ॥ पापिनांचप्रधानैश्चमूर्छितैःकृमिभिर्युतम् ॥ परस्परंचनश्यद्भिःशब्दकृद्भिश्चसंततम् ॥ ८३ ॥ ताडितैर्यमदूतैश्चमुसलैर्मुद्गरैस्तथा ॥ घूर्णमानैःपतद्भिश्चमूर्छितैश्चक्षणंक्षणम् ॥ ८४ ॥ पातितैर्यमदूतैश्चरुदंत्यस्मात्क्षणंपुनः ॥ यावंतःपापिनःसंतिसर्वकुंडेषुसुंदरि ॥ ८५ ॥ ततश्चतुर्गुणाःसंतिकुंभीपाकेचदुःखदे ॥ सुचिरंवध्यमानास्तेभोगदेहाननश्वराः ॥ ८६ ॥ सर्वकुंडप्रधानंचकुंभीपाकंप्रकीर्तितम् ॥ कालनिर्मितसूत्रेणनिबद्धायत्रपापिनः ॥ ८७ ॥ उत्थापिताश्चदूतैश्चक्षणमेवनिमज्जिताः ॥ निश्वासबद्धाःसुचिरंतथामोहंगताःपुनः ॥ ८८ ॥ अतीवक्लेशसंयुक्तादेहभोगेनसुंदरि ॥ प्रतप्ततोययुक्तंचकालसूत्रंप्रकीर्तितम् ॥ ८९ ॥ अवटःकूपभेदश्चमत्स्योदःसउदाहृतः ॥ प्रतप्ततोयपूर्णंचचतुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ ९० ॥

यह कृमियोंसे भरा है प्रधान पापी इसमें मूर्छित पडे रहते हैं सब ओरसे शब्द करते परस्पर नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ८३ ॥ यहां यमदूत मूशल और मुद्गरोंसे ताडन करते हैं घूर्णमान और पतित होते क्षण क्षण मूर्च्छित होते हैं ॥ ८४ ॥ और यमदूतोंसे पातित होते हुए रुदन करते हैं. हे सुन्दरि!सब कुंडोंमें जितने पापी हैं॥८५॥ कुंभीपाकमें इनसे चौगुने पापी रहते हैं वे इस दुःखदायक नरकमें चिरकालतक अपने कमाका भोग भोगते हैं ॥ ८६ ॥ यह कुंभीपाक सब कुंडोंमें प्रधान कहा है कालसूत्र नरकमें कालनिर्मित सूत्रसे पापी बँधे रहते हैं ॥ ८७ ॥ क्षणमात्रमें दूत ऊपरको उछालते और क्षणमें डुबा देते हैं. बहुत कालतक निश्वासबद्ध होकर मोहको प्राप्त हाजाते हैं ॥ ८८ ॥ हे सुन्दरि ! वह देहभोगके कारण दुःख पाते हैं यह कालसूत्र नरक तप्ते जलसे पूर्ण है ॥ ८९ ॥ अवट गर्तसमान कूपके भेदवाला

मत्स्योदकुंड है यह भी तप्तजलसे भरा चौवीस धनुष्के प्रमाणमें है ॥ ९० ॥ दग्ध अंगवाले महापातकियोंसे व्याप्त है और मेरे दूतोंद्वारा वे ताडित होते हैं और दुःख पाते हैं ॥ ९१ ॥ जिसके जलस्पर्श करतेही गिरतेहुए पापियोंकी सब व्याधी एकसाथ प्राप्त होजाती है यह सौ धनुष्प्रमाण कुंड है ॥ ९२ ॥ और कृमि कंतुक कुंडमें इसी नामके जीव पापियोंको दुःख देते हैं. वह मर्मस्थानछेदन होनेसे हाहाकार शब्द करते हैं ॥ ९३ ॥ पांसुभोज्यकुंड तत्ती धूरिसे भरा, जलती हुई भूमीसे व्याप्त, सौ धनुष्के प्रमाणमें है. यहांके जीवोंको तुष भक्षण कराई जाती है ॥ ९४ ॥ पाशसे वेष्टण कुंडमें गिरतेही प्राणी पाशवेष्टित हो जाता है यह पाशवेष्टणकुंड एक कोश पर्यन्त है ॥ ९५ ॥ शूलकुंडमें गिरतेही पापी शूलसे वेष्टित होता है. यह शूलप्रोतकुंड वीस धनुष्के प्रमाणमें है ॥ ९६ ॥ प्रकंपनकुंडमें गिरतेही प्राणी कंपित होता

व्याप्तंमहापातकिभिर्व्यादग्धांगैश्चसंततम् ॥ मद्दूतैस्ताडितैःशश्वदवटोदंप्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥ यत्रोदस्पर्शमात्रेणसर्वव्याधिश्चपापिनाम् ॥ भवेदकस्मात्पततांयस्मिन्कुंडेधनुःशते ॥ ९२ ॥ अरुंतुदैर्भक्षितैस्तुप्राणिभिर्यच्चसंकुलम् ॥ हाहेतिशब्दंकुर्वद्भिस्तदेवारुंतुदंविदुः ॥ ९३ ॥ तप्तपांसुभिराकीर्णज्वलद्भिस्तुषदग्धकैः ॥ तद्भक्षैःपापिभिर्युक्तंपांसुभोजैर्धनुःशतम् ॥ ९४ ॥ पातमात्रेणपापीचपाशेनवेष्टितोभवेत् ॥ क्रोशमात्रेणकुंडंचतत्पाशवेष्टनंविदुः ॥ ॥ ९५ ॥ पातमात्रेणपापीचशूलेनवेष्टितोभवेत् ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणंचशूलप्रोतंप्रकीर्तितम् ॥ ९६ ॥ पततांपापिनांयत्रभवेदेवप्रकंपनम् ॥ अतीवहिमतोयाक्तंक्रोशार्धंचप्रकंपनम् ॥ ९७ ॥ ददत्येवहिमेदूतायत्रोल्काःपापिनांमुखे ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणंतदुल्काभिश्चसुसंकुलम् ॥ ९८ ॥ लक्षपौरुषमानंचगंभीरंचधनुःशतम् ॥ नानाप्रकारकृमिभिःसंयुक्तंचभयानकम् ॥ ९९ ॥ अत्यंधकारव्याप्तंचकूपाकारंचवर्तुलम् ॥ तद्भक्ष्यैःपापिभिर्युक्तंप्रणश्यद्भिःपरस्परम् ॥ १०० ॥ तप्ततोयप्रदग्धैश्चज्वलद्भिःकीटभक्षितैः ॥ ध्वांतेनचक्षुषाचांधैरंधकूपःप्रकीर्तितः ॥ १ ॥ नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्रविद्धाश्चपापिनः ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणंचवेधनंतत्प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ दंडेनताडितायत्रममदूतैश्चपापिनः ॥ धनुःषोडशमानंचतत्कुंडंदंडताडनम् ॥ ३ ॥

है. यह वडे शीतल जलका कुंड आधे कोशमें है ॥ ९७ ॥ जिसमें यमदूत पापियोंके मुखमें उल्का देते हैं. यह वीस धनुष्के प्रमाणमें उल्कामुख नरक है ॥ ९८ ॥ अंधकूपकुंड लाख पुरुषके प्रमाण गहरा, सौ धनुष्में विस्तारवाला अनेक प्रकारके कृमियोंसे व्याप्त वडा भयानक है ॥ ९९ ॥ अधिक अंधकारसे व्याप्त गोल कूपाकार है और वहां वैसेही जीव पापियोंको भक्षण करते हैं व जीवगण परस्पर नष्ट होते हैं ॥ १०० ॥ तत्ते जलमें दग्धहोने और कीटोंके सन्मुख भक्षित होनेसे तथा नेत्रोंसे निरन्तर अंधकार रहनेसे इसको अंधकूप कहते हैं ॥ १०१ ॥ जहाँ अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे पापी विद्ध होते हैं वहाँ वीस धनुष्के प्रमाणमें वेधन नामवाला नरक है ॥ २ ॥ जहां यमदूत

पापियोंको निरन्तर दंडसे ताडित करते हैं वह सोलह धनुष्प्रमाण दंडताडनकुंड है ॥ ३ ॥ जिसमें पापी मच्छियोंकी समान जालमें बाँधे जाते हैं वहाँ बीस धनुषके प्रमाणमें जालरन्ध्र नाम कुंड है ॥ ४ ॥ जहां गिरतेही पापियोंका देह चूर्ण होजाता है जहां पापी लोहेकी बेडीमें बाँधे जाते हैं कोटि पुरुषोंके मानवाला ॥ ५ ॥ गंभीर अंधकारसे युक्त बीस धनुष्की समान विस्तारवाला मूर्छित जड़ पापियोंसे युक्त देह चूर्ण नरक कहा है ॥ ६ ॥ और जहाँ यमदूतोंसे ताडित हो पापी दलित होते हैं वह सोलह धनुषके प्रमाणमें दलनकुंड है ॥ ७ ॥ जहां गिरतेही पापीके कंठ ओष्ठ तालुशुष्क होजाते हैं. जहां तत्ती वालुका है तीस धनुषके प्रमाणवाला ॥ ८ ॥ सौ पुरुषमान गहरा अंधकारसे युक्त दूसरेको दुःख देनेवाले पापियोंको दुःखदायक शोषणकुंड है ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके

निरुद्धाश्चमहाजालैर्यथामीनाश्चपापिनः ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणंचजालरंध्रंप्रकीर्तितम् ॥ ४ ॥ पततांपापिनांकुंडेदेहश्चूर्णोभवेदिह ॥ लोहबंदीनिबद्धानांकोटिपौरुषमानकम् ॥ ५ ॥ गंभीरंध्वांतसंयुक्तंधनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ मूर्छितानांजडानांचदेहचूर्णप्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥ दलिताःपापिनोयत्रयमदूतैश्चताडिताः ॥ धनुःषोडशमानंचतत्कुंडंदलनंस्मृतम् ॥ ७ ॥ पतनेनैवपापीचशुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥ वालुकासुचतप्तासुधनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ॥८॥ शतपौरुषमानंचगंभीरंध्वांतसंयुतम् ॥ शोषणंकुंडमेतद्धिपापिनांपरदुःखदम् ॥ ९ ॥ नानाचर्मकषायोदपरिपूर्णंधनुःशतम् ॥ दुर्गंधियुक्तंतद्भक्ष्यैःप्राणिभिःसंकुलंकषम् ॥ ११० ॥ शूर्पाकारमुखंकुंडंधनुर्द्वादशमानकम् ॥ तप्तलोहवालुकाभिःपूर्णंपातकिसंयुतम् ॥११ ॥ दुर्गंधियुक्तंतद्भक्ष्यैःपापिभिःसंकुलंसति ॥ शूर्पाकारमुखंकुंडंधनुर्द्वादशमात्रकम् ॥ १२ ॥ प्रतप्तवालुकापूर्णंमहापातकिभिर्युतम् ॥ अंतरग्निशिखानांचज्वालाव्याप्तमुखंसदा ॥ १३ ॥ धनुर्विंशतिमात्रंचप्रमाणंयस्यसुंदरि ॥ ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्चपापिभिर्व्याप्तमेवच ॥ १४ ॥ तन्महाक्लेशदेशश्चत्कुंडेज्वालामुखेस्मृतम् ॥ पातमात्राद्यत्रपापीमूर्छितोवैनरोभवेत् ॥ १५ ॥

चर्मकषायके जलसे पूर्ण सौधनुषके प्रमाणमें दुर्गन्धसे युक्त और वहाँके भक्षण करने वाले प्राणियोंसे व्याप्त कषकुंड है ॥ ११० ॥ शूर्पकुण्ड शूर्पाकार बारह धनुषके प्रमाणमें है यह तत्ते लोहेकी वालुकासे युक्त पूर्ण पातकियोंसे भराहुआ ॥ ११ ॥ दुर्गन्धसे युक्त यही वस्तु खानेवाले पापियोंसे संकुल यह शूर्पाकारमुख कुण्ड बारह धनुषके विस्तारमें है ॥ १२ ॥ ज्वालामुखकुंड तत्ती वालुसे व्याप्त महापापियोंसे युक्त अन्तरमें अग्निशिखा और मुखपर भी ज्वालासे व्याप्त ॥ १३ ॥ जिसका बीस धनुष्का प्रमाण है और ज्वालासे दग्धशरीर हुए पापियोंसे संकुल ॥ १४ ॥ यह महाक्लेश देनेवाला ज्वालामुखकुंड है जहाँ गिरतेही पापी मूर्छित होते हैं ॥ १५ ॥

धूम्रांधकुंड तत्ती ईंटोंके अंतरमें अर्धजिह्म धूम्र अंधकारसे संयुक्त धूम्रांध पापियोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ यह सौ धनुषके प्रमाणमें स्वांसरंध्र होनेसे धूम्रांध कहाता है और जहाँ गिरतेही पापी नागोंसे वेष्टित होता है ॥ १७ ॥ वह सौ धनुषमें नागोंसे पूर्ण नागवेष्टित कुंड है यह मैं ने८६ छयासी कुंडोंका तुमसे वर्णन किया ॥ ११८॥ और उनका लक्षण भी कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ सावित्री बोली अब आप सारोंकी सार देवीभक्ति मुझको प्रदान कीजिये जो पुरुषोंके मुक्तिद्वारका बीज और नरकसागरसे तारनेवाली है ॥ १ ॥ मुक्तिसारोंकी कारण

ततेष्टकाभ्यंतरितंवाप्यर्धजिह्मकुंडकम् ॥ धूम्रांधकारसंयुक्तंधूम्रांधैःपापिभिर्युतम् ॥ १६ ॥ धनुःशतंश्वासरंध्रैर्धूम्रांधंपरिकीर्तितम् ॥ पातमात्राद्यत्रपापी नागैश्चवेष्टितोभवेत् ॥ १७ ॥ धनुःशतंनागपूर्णतन्नागैर्वेष्टितंभवेत् ॥ षडशीतिचकुंडानिमयोक्तानिनिशामय ॥ ११८ ॥ लक्षणंचाऽपितेषांचकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभा० महापु० नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादेसावित्र्युपाख्यानेसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ ॥ सावित्र्युवाच ॥ देवीभक्तिंदेहिमह्यं साराणांचैवसारकम् ॥ पुंसांमुक्तिद्वारबीजंनरकार्णवतारकम् ॥१॥ कारणंमुक्तिसाराणांसर्वाशुभविनाशनम् ॥ दारकंकर्मवृक्षाणांकृतपापौघहारणम् ॥२॥ मुक्तिश्चकतिधाप्यस्तिकिंवातासांचलक्षणम् ॥ देवीभक्तिभक्तिभेदंनिषेकस्याऽपिखंडनम् ॥ ३ ॥ तत्त्वज्ञानविहीनाचस्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता ॥ किंचिज्ज्ञानंसारभूतंवदवेदविदांवर ॥ ४ ॥ सर्वदानंचयज्ञश्चतीर्थस्नानंव्रतंतपः ॥ अज्ञानिज्ञानदानस्यकलांनार्हतिषोडशीम् ॥५ ॥ पितुःशतगुणामातागौरवेचेतिनिश्चितम् ॥ मातुःशतगुणःपूज्योज्ञानदातागुरुःप्रभो ॥ ६ ॥ धर्मराजउवाच ॥ पूर्वसर्वोवरोदत्तोयस्तेमनसिवांछितः ॥ अधुनाशक्तिभक्तिस्ते वत्सेभवतुमद्वरात् ॥७॥

सम्पूर्ण अशुभोंकी विनाशक कर्मरूपी वृक्षकी निवारक और कियेहुए पापसमूहोंकी विनाशक है ॥ २ ॥ और मुक्ति कितने प्रकारकी हैं उनका लक्षण क्या हैं तथा भक्तिका स्वरूप और उसके भेद कितने हैं और किये कर्मोंका भोग किसप्रकार खण्डन होता है सो कहिये ॥ ३ ॥ विधाताने स्त्रीजातिको तत्त्वज्ञानसे विहीन कहा है. हे वेदविदांवर ! सो आप सारभूत कुछ ज्ञान कहिये ॥ ४॥ सर्व दान, यज्ञ, तीर्थ, स्नान, तप, व्रत यह अज्ञानीको ज्ञान प्रदान करनेकी सोहलवीं कलाभी नहीं है ॥ ५॥ गौरवमें पितासे माता सौगुनी है यह निश्चय है,परन्तु हे प्रभो ! ज्ञानदाता गुरु मातासे सौगुणा पूज्य है ॥ ६ ॥ धर्मराज बोले हमने पहले तुमको वर दिया है कि, जो

तुम्हारे मनमें इच्छित है सो प्राप्त होगा अब मेरे वरसे तुमको भगवतीकी भक्तिभी प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ हे कल्याणी ! अब तुम देवीके गुण कीर्तन सुननेके योग्य हो जो वक्ता पृच्छक और सुननेवालोंके कुल तारण करनेवाली है ॥ ८ ॥ शेषजी जिसको सहस्र मुखसे नहीं कह सक्ते शंकर जिसको पंचमुखसे नहीं कह सक्ते ॥ ९ ॥ चारों वेदोंके धाता जगत्के रचनेवाला विधाता ब्रह्मा चार मुखसे[1] तथा सर्ववित्त विष्णुभी पूर्णतया कहनेको समर्थ नहीं है ॥ १० ॥ कार्तिकेय छःमुखसे गणेश तथा योगीन्द्रोंके गुरु भी कहनेको समर्थ नहीं है ॥ ११ ॥ सब शास्त्रोंके सारभूत चार वेद हैं तथा दूसरे पण्डित जिसके गुणोंकी कलामात्रभी नहीं जान्ते हैं ॥ १२ ॥

श्रोतुमिच्छसिकल्याणिश्रीदेवीगुणकीर्तनम् ॥ वक्तृणांपृच्छकानांचश्रोतृणांकुलतारणम् ॥८॥ शेषोवक्रसहस्रेणनहियद्वक्तुमीश्वरः ॥ मृत्युंजयोनक्षमश्चवक्तुंपंचमुखेनच ॥ ९ ॥ धाताचतुर्णांवेदानांविधाताजगतामपि ॥ ब्रह्माचतुर्मुखेनैवनाऽलंविष्णुश्चसर्ववित् ॥ १० ॥ कार्तिकेयःषण्मुखेननाऽपिवक्तुमलंध्रुवम् ॥ नगणेशःसमर्थश्चयोगींद्राणांगुरोर्गुरुः ॥ ११ ॥ सारभूताश्चशास्त्राणांवेदाश्चत्वारएवच ॥ कलामात्रंयद्गुणानांनविदंतिबुधाश्चये ॥१२॥ सरस्वतीजडीभूतानाऽलंतद्गुणवर्णने ॥ सनत्कुमारोधर्मश्चसनंदनश्चसनातनः ॥ १३ ॥ सनकःकपिलःसूर्योयेऽन्येचब्रह्मणःसुताः ॥ विचक्षणानयद्वक्तुंकिंचान्येजडबुद्धयः ॥ १४ ॥ नयद्वक्तुंक्षमाःसिद्धामुनींद्रायोगिनस्तथा ॥ केचाऽन्येचवयंकेवाश्रीदेव्यागुणवर्णने ॥ १५ ॥ ध्यायंतेयत्पदांभोजंब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ अतिसाध्यंस्वभक्तानांतदन्येषांसुदुर्लभम् ॥ १६ ॥ कश्चित्किंचिद्विजानातितद्गुणोत्कीर्तनंशुभम् ॥ अतिरिक्तंविजानातिब्रह्माब्रह्मविशारदः ॥ १७ ॥ ततोऽतिरिक्तंजानातिगणेशोज्ञानिनांगुरुः ॥ सर्वातिरिक्तंजानातिसर्वज्ञःशंभुरेवसः ॥ १८ ॥

जिनके गुणवर्णनमें सरस्वतीभी जडीभूत हो रही है. सनत्कुमार, धर्म, सनन्दन, सनातन ॥ १३ ॥ सनक, कपिल, सूर्य तथा दूसरे ब्रह्माजीके पुत्र यह चतुरभी जिनके गुण नहीं कहसक्ते फिर दूसरे जडबुद्धियोंकी कौन कहे ॥ १४ ॥ जिन देवीके गुण कहनेको सिद्ध मुनीन्द्र भी समर्थ नहीं तो मैं तथा दूसरे क्या कहसक्ते हैं ?॥ १५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि जिनके चरणकमलका ध्यान करते हैं वह केवल भक्तोंकोही अतिशय साध्य है और दूसरोंको अतिशय दुर्लभ है ॥ १६ ॥ कोईही कुछ उनके गुणोंका कीर्तन जान्ता है पर हाँ ब्रह्मविशारद ब्रह्माजी कुछ विशेष जानते हैं॥ १७ ॥ उनसे अधिक गणेश ज्ञानियोंके गुरु जानते हैं और सबसे कधिक सर्वज्ञ शंकर जानतेहैं १८ ॥

परमात्मा कृष्णने उनको पहले ज्ञान दिया था जो अतिशय निर्जनवन गोलोकके रासमण्डलमें ॥ १९ ॥ यह ज्ञान कहा था और शिवलोकमें शंकरने धर्मके निमित्त यह ज्ञान कहा था ॥ २० ॥ धर्मने पूँछनेपर सूर्यसे कहा था जिसको सुनकर हमारे पिताने तपसे आराधनकर देवीको प्राप्त किया ॥ २१ ॥ प्रथम मुझको देवताओंके यह अधिकार देनेपर मैंने यह स्वीकार न किया और वैराग्ययुक्त होकर मैं ने तपस्या करनेके निमित्त वनजानेकी इच्छा की ॥ २२ ॥ तब हमारे पिताने हमसे वह दुर्लभ ज्ञान कहा सो मैं तुमसे कहता हूं तुम सुनो ॥ २३ ॥ स्वयं वह भगवतीभी अपने गुणोंको नहीं जानती औरोंकी तो क्या कथा है. हेवराननें ! जैसे आकाश अपना

तस्मैदत्तंपुराज्ञानंकृष्णेनपरमात्मना ॥ अतीवनिर्जनेऽरण्येगोलोकेरासमंडले ॥ १९ ॥ तत्रैवकथितंकिंचित्तद्गुणोत्कीर्तनंशुभम् ॥ धर्मंचकथयामास शिवलोकेशिवःस्वयम् ॥ २० ॥ धर्मस्तुकथयामासभास्वतेपृच्छतेतथा ॥ यामाराध्यमत्पिताऽपिसंप्रापतपसासति ॥ २१ ॥ पूर्वंस्वंविषयंचाऽहंनगृह्णामिप्रयत्नतः ॥ वैराग्ययुक्तस्तपसेगंतुमिच्छामिसुव्रते ॥ २२ ॥ तदामांकथयामासपितातद्गुणकीर्तनम् ॥ यथागमंतद्वदामिनिबोधाऽतीवदुर्गमम् ॥ २३ ॥ तद्गुणंसानजानातितदन्यस्यचकाकथा ॥ यथाकाशोनजानातिस्वांतमेववरानने ॥ २४ ॥ सर्वात्मासर्वभगवान्सर्वकारणकारणः ॥ सर्वेश्वरश्वसर्वाद्यःसर्ववित्परिपालकः ॥ २५ ॥ नित्यरूपीनित्यदेहीनित्यानंदोनिराकृतिः ॥ निरंकुशोनिराशंकोनिर्गुणश्चनिरामयः ॥ २६ ॥ निर्लिप्तःसर्वसाक्षीचसर्वाधारःपरात्परः ॥ मायाविशिष्टःप्रकृतिस्तद्विकाराश्चप्राकृताः ॥ २७ ॥ स्वयंपुमांश्चप्रकृतिस्तावभिन्नौपरस्परम् ॥ यथावह्नेस्तस्यशक्तिर्नभिन्नाऽस्त्येवकुत्रचित् ॥ २८ ॥ सेयंशक्तिर्महामायासच्चिदानंदरूपिणी ॥ रूपंबिभर्त्यरूपाचभक्तानुग्रहहेतवे ॥ २९ ॥ गोपालसुंदरीरूपंप्रथमंसाससर्जह ॥ अतीवकमनीयंचसुंदरंसुमनोहरम् ॥ ३० ॥

अन्त नहीं जानता ॥ २४ ॥ इसी कारण सर्वात्मा भगवान् सबके कारणोंका कारण सर्वेश्वर सबकी आदि सब कुछ जाननेवाले सबके परिपालक ॥ २५ ॥ नित्यरूपी, नित्यस्वरूपवाले, नित्यानंद, निराकृति, निरंकुश, निरानंद, निर्गुण, निरामय ॥ २६ ॥ निर्लिप्त सर्वसाक्षी, सर्वाधार, परात्पर, मायाविशिष्ट, प्रकृति और उसके विकार प्राकृत ॥ २७ ॥ स्वयं पुरुष और प्रकृति यह परस्पर अभिन्न है जैसे अग्निसे अग्निकी शक्ति भिन्न नहीं है ॥ २८ ॥ सो यह महामाया सच्चिदानंदरूपिणी शक्ति अरूप होनेपर भी भक्तोंके अनुग्रह करनेको अनेकरूप धारण करती है ॥ २९ ॥ पहला इनका रूप परमअद्भुत गोपालसुन्दरी है जो अतिशय सुन्दर और मनोहर है ॥ ३० ॥

१ गोपीवेषधारी-कृष्ण ।

यह नये मेघकी समान श्याम किशोरवेषसम्पन्न जो कोटिकंदर्पके समान सुन्दर लीलाधाम मनोहर ॥ ३१ ॥ शरत्‌के मध्याह्न कमलके शोभाको जिनके नेत्र लज्जित करते शरत्पूर्णिमाके कोटिचन्द्रोंको जिनका मुख लज्जित करता है ॥ ३२ ॥ अमूल्य रत्नोंके बने अनेक भूषणोंसे भूषित स्मितमुख पीतवसनसे निरन्तर शोभाय मान ॥ ३३ ॥ वह परब्रह्मका स्वरूप ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान सुखदृश्य शांत राधाके कान्त अनन्तरूप ॥ ३४ ॥ निरन्तर मन्दमुसकानयुक्त गोपियोंसे देखे जाते हुए रासमण्डलके मध्यमें रत्नसिंहासनपर स्थित ॥ ३५ ॥ वंशी बजाते द्विभुज वनमालासे विभूषित कौस्तुभेन्द्र मणियोंमें श्रेष्ठ मणियोंसे जिनका वक्षस्थल उज्वल हो रहा है ॥ ३६ ॥ कुंकुम अगर कस्तूरी और चन्दनसे चर्चित विग्रह सुन्दर चंपेकी मालासे युक्त मालतीमालासे मंडित ॥ ३७ ॥ सुन्दर चन्द्रक भूषणकी

नवीननीरदश्यामंकिशोरंगोपवेषकम् ॥ कंदर्पकोटिलावण्यंलीलाधाममनोहरम् ॥ ३१ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मानांशोभामोचनलोचनम् ॥ शरत्पार्वणकोटीं दुशोभाप्रच्छादनाननम् ॥ ३२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषितम् ॥ सस्मितंशोभितंशश्वदमूल्यपीतवाससा ॥ ३३ ॥ परब्रह्मस्वरूपंचज्वलं तंब्रह्मतेजसा ॥ सुखदृश्यंचशांतंचराधाकांतमनंतकम् ॥ ३४ ॥ गोपीभिर्वीक्ष्यमाणंचसस्मिताभिश्चसंततम् ॥ रासमंडलमध्यस्थंरत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ॥ ३५ ॥ वंशींक्वणंतंद्विभुजंवनमालाविभूषितम् ॥ कौस्तुभेंद्रमणींद्रेणशश्वद्वक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥ ३६ ॥ कुंकुमागुरुकस्तूरीचंदनार्चितविग्रहम् ॥ चारुचंपकमालाक्तंमालतीमाल्यमंडितम् ॥ ३७ ॥ चारुचंद्रकशोभाढ्यंचूडावंक्रिमराजितम् ॥ एवंभूतंचध्यायंतंभक्ताभक्तिपरिप्लुताः ॥ ३८ ॥ यद्भया जगतांधाताविधत्तेसृष्टिमेवच ॥ कर्मानुसाराल्लिखितंकरोतिसर्वकर्मणाम् ॥ ३९ ॥ तपसांफलदाताचकर्मणांचयदाज्ञया ॥ विष्णुःपाताचसर्वेषां यद्भयात्पातिसंततम् ॥ ४० ॥ कालाग्निरुद्रःसंहर्तासर्वविश्वेषुयद्भयात् ॥ शिवोमृत्युंजयश्चैवज्ञानिनांचगुरोर्गुरुः ॥ ४१ ॥ यज्ज्ञानाज्ज्ञानवानस्तियोगीशो ज्ञानवित्प्रभुः ॥ परमानंदयुक्तश्चभक्तिवैराग्यसंयुतः ॥ ४२ ॥ यद्भयाद्वातिपवनःप्रवरःशीघ्रगामिनाम् ॥ तपनश्चप्रतपतियद्भयात्संततंसति ॥ ४३ ॥ यदाज्ञयावर्षतींद्रोमृत्युश्चरतिजंतुषु ॥ यदाज्ञयादहेद्वह्निर्जलमेवंसुशीतलम् ॥ ४४ ॥

शोभासे व्याप्त चूडा वंक्रिमसे विराजमान जिनको इसप्रकारसे भक्तजन ध्यान करते हैं ॥ ३८ ॥ जिनके भयसे ब्रह्मा जगत्‌की सृष्टि करते हैं और कर्मानुसार लिखे सब कर्मोंको करते हैं ॥ ३९ ॥ जिनकी आज्ञासे तप और कर्मोंके फलभी देते हैं और जिनके भयसे विष्णु सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४० ॥ जिनके भयसे कालाग्नि रुद्र जगत्‌का संहार करते हैं शिव मृत्युंजय ज्ञानियोंके भी गुरु ॥ ४१ ॥ जिनके ज्ञानसे वह योगीश ज्ञानवित्प्रभु ज्ञानवान् हैं परमानन्द तथा भक्ति वैराग्यसे संयुक्त है ॥ ॥ ४२ ॥ जिनके भयसे शीघ्रगामियोंमें श्रेष्ठ पवन वहन करती है जिनके भयसे सूर्य निरन्तर तपता है ॥ ४३ ॥ जिनकी आज्ञासे मेघ वर्षता मृत्यु प्राणियोंमें विचरती है

जिनकी आज्ञासे अग्नि जलाती और जल शीतल रहता है ॥४४॥ दिक्पाल दिशाओंकी रक्षा करते जिनकी आज्ञासे महाभीत रहते हैं जिनके भयसे राशिचक्र और ग्रह भीत होकर चलते हैं ॥ ४५ ॥ वृक्षोंमें फल लगते और भयसे फूल त्यागते हैं जिनकी आज्ञाके भयसे समयपर काल कलनकरता है॥ ४६ ॥ जलस्थलके जीव जिसकी आज्ञाके विना जीवनधारण नहीं करसक्ते जो अकालमें विद्धकोभी रणमें हरण नहीं करसक्ते ॥ ४७ ॥ उन्हींकी आज्ञासे वायु जलको तथा कूर्म सागरके जलको धारण करता है, कूर्म और शेष सागर पर्वतसहित भूमिको ॥ ४८ ॥ अथार्त् क्षमायुक्त नानारत्नसम्पन्नको जिसकी आज्ञासे धारणकरती है जिससे सब प्राणी स्थित और मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥४९॥ इन्द्रकी आयु इकहत्तर चौकडीयुगकी होती और अट्ठाईस इन्द्रके पातमें ब्रह्माका एकदिन होता है॥५०॥ इसप्रकार ब्रह्माके तीस दिनका

दिशोरक्षंतिदिक्पालामहाभीतायदाज्ञया ॥ भ्रमंतिराशिचक्राणिग्रहाश्चयद्भयेनच ॥ ४५ ॥ भयात्फलंतिवृक्षाश्चपुष्यंत्यपिचयद्भयात् ॥ यदाज्ञांतुपुरस्कृत्यकालःकालेहरेद्भयात् ॥ ४६ ॥ तथाजलस्थलस्थाश्चनजीवंतियदाज्ञया ॥ अकालेनाहरेद्विद्धंरणेषुविषमेषुच ॥ ४७ ॥ धत्तेवायुस्तोयराशिंतोयंकूर्मंतदाज्ञया ॥ कूर्मोनंतंसचक्षोणींसमुद्रान्साचपर्वतान् ॥ ४८ ॥ सर्वांचैवक्षमारूपानानारत्नंविभर्तिया ॥ यतःसर्वाणिभूतानिस्थीयंतेहंतितत्रहि ॥ ४९ ॥ इंद्रायुश्चैवदिव्यानांयुगानामेकसप्ततिः ॥ अष्टाविंशेशक्रपातेब्रह्मणश्चदिवानिशम् ॥ ५० ॥ एवंत्रिंशद्दिनैर्मासोद्वाभ्यामाभ्यामृतुःस्मृतः ॥ ऋतुभिःषड्भिरेवाब्दंब्रह्मणोवैवयःस्मृतम् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मणश्चनिपातेचचक्षुरुन्मीलनंहरेः ॥ चक्षुरुन्मीलनेतस्यलयंप्राकृतिकंविदुः ॥ ५२ ॥ प्रलयेप्राकृतेसर्वेदेवाद्याश्चचराचराः ॥ लीनाधाताविधाताचश्रीकृष्णनाभिपंकजे ॥ ५३ ॥ विष्णुःक्षीरोदशायीचवैकुंठेयश्चतुर्भुजः ॥ विलीनोवामपार्श्वेचकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ ५४ ॥ यस्यज्ञानेशिवोलीनोज्ञानाधीशःसनातनः ॥ दुर्गायांविष्णुमायायांविलीनाःसर्वशक्तयः ॥ ५५ ॥ साचकृष्णस्यबुद्धौचबुद्ध्यधिष्ठातृदेवता ॥ नारायणांशःस्कंदश्चलीनोवक्षसितस्यच ॥ ५६ ॥

महीना, दो महीनोंकी एक ऋतु छः ऋतुओंका ब्रह्माका एक वर्ष इसप्रकारके सौवर्षकी ब्रह्माकी आयु होती है ॥ ५१ ॥ ब्रह्माके निपात होनेपर विष्णुका एकपल होता है उनके चक्षु मीचनेपर प्राकृतिक प्रलय होजाती है ॥ ५२ ॥ प्राकृतिक प्रलय होनेमें चराचर सब देवता धाता विधाता श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीनहोजाते हैं ॥ ५३ ॥ क्षीरोदशायी विष्णु और वैकुण्ठमें जो चतुर्भुज हैं वह श्रीकृष्णके वामपार्श्वमेंलीन होजाते हैं ॥ ५४ ॥ जिसके ज्ञानमें ज्ञानाधीश सनातन शिवलीन होजाते हैं और दुर्गा विष्णुमायामें सब शक्तियें लीन होजाती हैं ॥ ५५ ॥ और वह कृष्णकीबुद्धिमें स्थित होकर बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता होतीहै. नारायणके अंश स्कन्द उनके

१ कठिनसे प्राप्त ।

वक्षस्थलमें लीन होजाते हैं॥ ५६ ॥ श्रीकृष्ण अंशरूप गणेश्वर उनकी भुजामें लीन हो जाते हैं और पद्मांशा पद्मा राधामें लीनहोजाती है॥ ५७॥ और सबदेवताओंकी स्त्रियें गोपियोंमें और गोपी राधामें लीन होती हैं. वह कृष्णकी प्राणप्रिया देवी उनके प्राणोंमें स्थित होती है ॥ ५८ ॥ सावित्री और सब वेदशास्त्र सरस्वतीमें लीन होकर वह वाणी परमात्माकी जिह्वामें स्थित होती है ॥ ५९ ॥ गोलोकके गोप उनके लोममें स्थित होते हैं उनके प्राणमें सबके प्राणवायु अग्निमें लीनहोते हैं ॥ ६० ॥ जठराग्निमें हुताशन, जल उनके जिह्वाग्रमें, भक्तिसम्पन्न वैष्णव उनके चरणकमलमेंपरमानंदसे लीन होते हैं ॥ ६१ ॥ जो सारसे भी सार भक्तिरूपअमृत पानेवाले हैं क्षुद्र

श्रीकृष्णांशश्चतद्बाहौदेवाधीशोगणेश्वरः ॥ पद्मांशाश्चैवपद्मायांसाराधायांचसुव्रते ॥५७॥ गोप्यश्चाऽपिचतस्यांचसर्वाश्चदेवयोषितः॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सातस्यप्राणेषुसंस्थिता ॥५८॥ सावित्रीचसरस्वत्यांवेदाःशास्त्राणियानिच ॥ स्थितावाणीचजिह्वायांतस्यैवपरमात्मनः ॥५९॥ गोलोकस्यचगोपाश्चविलीनास्तस्यलोमसु ॥ तत्प्राणेषुचसर्वेषांप्राणवाताहुताशनाः॥६०॥ जठराग्नौविलीनाश्चजलंतद्रसनाग्रतः ॥ वैष्णवाश्चरणांभोजेपरमानंदसंयुताः ॥६१॥ सारात्सारतराभक्तिरसपीयूषपायिनः ॥ विराडंशाश्चमहतिलीनाःकृष्णेमहाविराट् ॥ ६२ ॥ यस्यैवलोमकूपेषुविश्वानिनिखिलानिच ॥ यस्यचक्षुषउन्मेषेप्राकृतःप्रलयोभवेत् ॥ ६३ ॥ चक्षुरुन्मीलनेसृष्टिर्यस्यैवपुनरेवसः ॥ यावत्कालेनिमेषेणतावदुन्मीलनेनच ॥ ६४ ॥ ब्रह्मणश्चशताब्देचसृष्टेःसूत्रलयःपुनः ॥ ब्रह्मसृष्टिलयानांचसंख्यानास्त्येवसुव्रते ॥ ६५ ॥ यथाभूरजसांचैवसंख्यानंनैवविद्यते ॥ चक्षुर्निमेषेप्रलयोयस्यसर्वांतरात्मनः ॥ ६६ ॥ उन्मीलनेपुनःसृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया ॥ सकृष्णःप्रलयेतस्यांप्रकृतौलीनएवहि ॥ ६७ ॥ एकैवचपराशक्तिर्निर्गुणःपरमःपुमान् ॥ सदेवेदमग्रआसीदितिवेदविदोविदुः ॥ ६८ ॥

विराट्के रूप महाविराट्में और महाविराट्कृष्णमें विलीन होते हैं ॥ ६२ ॥ जिसके लोमकूपोंमें अनन्त विश्व हैं जिनके नेत्रके उन्मेषमें प्राकृत प्रलय होजाता है॥ ६३ ॥ फिर पलक खोलनेमें सृष्टि होजाती है जितनासमय पलक लगानेका है उतनाही खोलनेका है ॥ ६४ ॥ ब्रह्माके सौवर्षमें सृष्टिका सूत्र लय होता है. हे सुव्रते! ब्रह्माकी सृष्टि और लयकी संख्या नहीं है ॥ ६५ ॥ जैसे पृथ्वीके रजोंकी संख्या नहीं है इसप्रकार सृष्टि और लयकी संख्या नहीं है. जिस सर्वान्तरात्माके नेत्रोंके पलक लगानेमें प्रलय होजाती है ॥ ६६ ॥ और पलक खोलनेमें उनकी इच्छासे फिर सृष्टि होजाती है वह कृष्णभी उसकी प्रलयमें प्रकृतिमें लीन होजाते हैं॥ ६७ ॥ कहीं पराशक्ति

और निर्गुणपरमपुरुष है, पहले आगे सत् ही था ऐसा वेदके ज्ञाता कहते हैं ॥ ६८ ॥ मूलप्रकृतिही अव्यक्त और अव्याकृत पदनामवाली है चित्से अभिन्न हुई प्रलयमें स्थितरहती है ॥ ६९ ॥ उसके गुणकथनकरनेको ब्रह्माण्डमें कौन समर्थ है ? चारोंवेदोंमें चारप्रकारकी मुक्तिकही है ॥ ७० ॥ उनमें प्रधान होनेसे भक्ति मुक्तिसे भी अधिक है. सालोक्य, सारूप्य ॥ ७१ ॥ सामीप्य और निर्वाण यह चार प्रकारकी मुक्ति हैं. उस विभुकी सेवा भक्तिके सिवाय भक्तजन मुक्तिकी इच्छा करते हैं ॥ ७२ ॥ शिवत्व, अमरत्व, ब्रह्मत्व, जन्ममृत्यु, जराव्याधि, भयशोकादिक धन यह सब वे तुच्छजान्ते हैं ॥ ७३ ॥ तथा दिव्यरूपका धारण निर्वाण मुक्ति नहीं चाहते

मूलप्रकृतिरव्यक्ताऽप्यव्याकृतपदाभिधा ॥ चिदभिन्नत्वमापन्नाप्रलयेसैवतिष्ठति ॥ ६९ ॥ तद्गुणोत्कीर्तनंवक्तुंब्रह्मांडेषुचकःक्षमः ॥ मुक्तयश्चचतुर्वेदे निरुक्ताश्चचतुर्विधाः ॥ ७० ॥ तत्प्रधानादेवभक्तिर्मुक्तेरपिगरीयसी ॥ सालोक्यदाभवेदेकातथासारूप्यदापरा ॥ ७१ ॥ सामीप्यदाऽथनिर्वाणप्रदामुक्तिश्चतुर्विधा ॥ भक्तास्तानहिवांछंतिविनातत्सेवनंविभोः ॥ ७२ ॥ शिवत्वममरत्वंचब्रह्मत्वंचाऽवहेलया ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिकंधनम् ॥ ७३ ॥ दिव्यरूपधारणंचनिर्वाणंमोक्षणंविदुः ॥ मुक्तिश्चसेवारहिताभक्तिःसेवाविवर्धिनी ॥ ७४ ॥ भक्तिमुक्त्योरयंभेदोनिषेकखंडनंशृणु ॥ विदुर्बुधा निषेकंचभोगंचकृतकर्मणाम् ॥ ७५ ॥ तत्खंडनंचशुभदंश्रीविभोःसेवनंपरम् ॥ तत्त्वज्ञानमिदंसाध्विस्थिरंचलोकवेदयोः ॥ ७६ ॥ निर्विघ्नंशुभदंचोक्तंग च्छवत्सेयथासुखम् ॥ इत्युक्त्वासूर्यपुत्रश्चजीवयित्वाचतत्पतिम् ॥ ७७ ॥ तस्यैशुभाशिषंदत्वागमनंकर्तुमुद्यतः ॥ दृष्ट्वायमंचगच्छंतंसासावित्री प्रणम्यच ॥ ७८ ॥ रुरोदचरणौधृत्वासाधुच्छेदेनदुःखिता ॥ सावित्रीरोदनंश्रुत्वायमश्चैवकृपानिधिः ॥ ७९ ॥ तामित्युवाचसंतुष्टःस्वयंचैवरुरोदह ॥ धर्मउवाच ॥ लक्षवर्षंसुखंभुक्त्वापुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ ८० ॥

मुक्ति सेवारहित है और भक्ति सेवाकी बढानेवाली है ॥ ७४ ॥ यह भक्ति और मुक्तिका भेद है. अब निषेकखण्डनके स्वरूपको सुनो. पण्डितजन किये कर्मोंके भोग कोही निषेक कहते हैं ॥ ७५ ॥ उस भोगका खण्डनही श्रीविभुकी सेवा है. हे साध्वि ! यहीतत्त्वज्ञान लोकवेदमें स्थित है ॥ ७६ ॥ यह विघ्नरहित और शुभका देनेवाला है. हेवत्से ! अब तुम यथासुख गमन करो. यह कह यमराजने उसके पतिको जिवाकर ॥ ७७ ॥ और उसको शुभ आशीर्वाद देकर जानेकी इच्छाकी. यमराजको जाता देख सावित्री प्रणामकर ॥ ७८ ॥ साधुके वियोगसे दुःखी हो चरण पकडकर रोनेलगी. सावित्रीका रोदन सुनकर कृपासागर यमराज ॥ ७९ ॥ स्वयं नेत्रोंमें आँसूभर उससे

कहने लगे धर्म बोले पुण्यक्षेत्र भारतमें लाख वर्षतक सुख भोगकर ॥ ८० ॥ अन्तमें उस लोकको गमन करैगी. जहां देवी विराजमान होती है. हे भद्रे! अपने घर जाकर सावित्रीका व्रत करो ॥ ८१ ॥ यह चौदह वर्ष करनेसे स्त्रीकी मोक्षका कारण है ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशीको सावित्रीका सुन्दर व्रत करै ॥ ८२ ॥ भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको महालक्ष्मीका जिसप्रकार व्रत है वैसा करै. हे शुचिस्मिते ! अथवा सोलह वर्षतक इसव्रतको ॥ ८३ ॥ भक्तिसे जो स्त्री करती है वह विभुके लोकको गमन करती है प्रति मंगलवारको करनेसे देवी मंगलकी देनेवाली होती है ॥ ८४ ॥ प्रति महीनेको शुक्ला छठको छठ मंगलदायिनी है और इसीप्रकार आषाढकी षष्ठी मनसे सब सिद्धि देनेवाली है ॥ ८५ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाको राधाव्रत जो कृष्णकी प्राणोंकी समान अधिक प्यारी है तथा शुक्ला अष्टमीमें दुर्गाव्रत करै यह प्रतिमहीनेमें करनेसे

अंतेयास्यसितल्लोकंयत्रदेवीविराजते ॥ गत्वाचस्वगृहंभद्रेसावित्र्याश्चव्रतंकुरु ॥ ८१ ॥ द्विसप्तवर्षपर्यंतंनारीणांमोक्षकारणम् ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यांसावित्र्याश्चव्रतंशुभम् ॥ ८२ ॥ शुक्लाष्टम्यांभाद्रपदेमहालक्ष्म्यायथाव्रतम् ॥ द्व्यष्टवर्षव्रतंचैवप्रत्यादेयंशुचिस्मिते ॥ ८३ ॥ करोतिभक्त्यायानारीसायातिचविभोःपदम् ॥ प्रतिमंगलवारेचदेवींमंगलदायिनीम् ॥ ८४ ॥ प्रतिमासंशुक्लषष्ठ्यांषष्ठींमंगलदायिनीम् ॥ तथाचाऽऽषाढसंक्रांत्यांमनसांसर्वसिद्धिदाम् ॥ ८५ ॥ राधांरासेचकार्तिक्यांकृष्णप्राणाधिकप्रियाम् ॥ उपोष्यशुक्लाष्टम्यांचप्रतिमासंवरप्रदाम् ॥ ८६ ॥ विष्णुमायांभगवतींदुर्गांदुर्गार्तिनाशिनीम् ॥ प्रकृतिंजगदंबांचपतिपुत्रवतीषुच ॥ ८७ ॥ पतिव्रतासुशुद्धासुयंत्रेषुप्रतिमासुच ॥ यानारीपूजयेद्भक्त्याधनसंतानहेतवे ॥ ८८ ॥ इहलोकेसुखंभुक्त्वायात्यंतेश्रीविभोःपदम् ॥ एवंदेव्याविभूतीश्चपूजयेत्साधकोऽनिशम् ॥ ८९ ॥ सर्वकालंसर्वरूपासंसेव्यापरमेश्वरी ॥ नातःपरतरंकिंचित्कृतकृत्यत्वदायकम् ॥ ९० ॥ इत्युक्त्वातांधर्मराजोजगामनिजमंदिरम् ॥ गृहीत्वास्वामिनंसाचसावित्रीचनिजालयम् ॥ ९१ ॥ सावित्रीसत्यवांश्चैवप्रययौचयथागमम् ॥ अन्यांश्चकथयामासस्ववृत्तांतंहिनारद ॥९२॥ सावित्रीजनकःपुत्रान्संप्राप्तःप्रक्रमेणच ॥ श्वशुरश्चक्षुषीराज्यंसाचपुत्रान्वरेणच॥९३॥

वरदायी होती है ॥ ८६ ॥ विष्णुकी माया भगवती दुर्गा कठिन दुःखोंकी दूर करने वाली प्रकृति जगदम्बाको पतिपुत्रवाली ॥ ८७ ॥ तथा शुद्ध पतिव्रता ओंमें वा यंत्र और प्रतिमाओंमें जो स्त्री धन सन्तानके निमित्त पूजा करती है ॥ ८८ ॥ वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविभुके स्थानमें गमन करती है. इसप्रकार उत्तम साधक नित्य देवीकी विभूतिको भक्तिसे पूजन करै ॥ ८९ ॥ सब समय सर्वरूपा परमेश्वरीका सेवन करना चाहिये इससे अधिक कृतकृत्यदायक और कुछ नहीं है ॥ ॥ ९० ॥ यह कहकर धर्मराज अपने स्थानको गये और अपने स्वामीको लेकर सावित्री अपने स्थानको चली ॥ ९१ ॥ सावित्री और सत्यवानने अपने आश्रममें जाय दूसरोंसे वह वृत्तान्त कथन किया ॥ ९२ ॥ क्रमसे सावित्रीके पिताके पुत्र हुए और श्वसुरको नेत्र प्राप्त हुए और वरदानके कारण उसने भी पुत्रोंकी प्राप्ति की ॥ ९३ ॥

वह पतिव्रता इस भारतक्षेत्रमें लाख वर्षतक सुख भोगकर स्वामीके संग देवीके मणिद्वीपको गई ॥९४॥ जो सविता अर्थात् सूर्यमंडलात्मक देवताकी अन्तर्यामी ब्रह्मरूपिणी है तथा गायत्रीकी अधिष्ठात्री है,वेदोंकी माता होनेसे सावित्री कहाती है ॥ ९५ ॥ हे वत्स ! यह आपसे इसप्रकार सावित्रीका उत्तम आख्यान कहा है तथा जीवका कर्मविपाक कहा अब फिर क्या सुननेकीइच्छा है ॥ ९६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥छ॥ नारदजी बोले श्रीमूलप्रकृति तारणी गायत्री देवीके माहात्म्ययुक्त सावित्री और यमके संवादमें निर्मल यश श्रवण किया ॥ १ ॥ तथा उनके सत्यरूप गुणोंका कीर्तन जो मंगलोंका मंगल है सो सुना, हे भगवन् ! अब महालक्ष्मीका उपाख्यान सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ प्रथम किसने उनका पूजन किया है वह किस

लक्षवर्षंसुखंभुक्त्वापुण्यक्षेत्रेचभारते ॥ जगामस्वामिनासार्धंदेवीलोकंपतिव्रता ॥ ९४ ॥ सवितुश्चाधिदेवीयामंत्राधिष्ठातृदेवता ॥ सावित्रीह्यपिवेदानांसावित्रीतनकीर्तिता ॥ ९५ ॥ इत्येवंकथितंवत्ससावित्र्याख्यानमुत्तमम् ॥ जीवकर्मविपाकंचकिंपुनःश्रोतुमिच्छसि ॥ ९६ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादेसावित्र्युपाख्यानेअष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ श्रीमूलप्रकृतेर्देव्यागायत्र्यास्तुनिराकृतेः ॥ सावित्रीयमसंवादेश्रुतंवैनिर्मलंयशः ॥ १ ॥ तद्गुणोत्कीर्तनंसत्यंमंगलानांचमंगलम् ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामिलक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर ॥२॥ केनाऽऽदौपूजितासाऽपिकिंभूताकेनवापुरा ॥ तद्गुणोत्कीर्तनंमह्यंवदवेदविदांवर ॥ ३ ॥ नारायणउवाच ॥ सृष्टेरादौपुराब्रह्मन्कृष्णस्यपरमात्मनः ॥ देवीवामांससंभूताबभूवरासमंडले ॥ ४ ॥ अतीवसुंदरीश्यामान्यग्रोधपरिमंडिता ॥ यथाद्वादशवर्षीयाशश्वत्सुस्थिरयौवना ॥ ५ ॥ श्वेतचंपकवर्णाभासुखदृश्यामनोहरा ॥ शरत्पार्वणकोटींदुप्रभाप्रच्छादनानना ॥ ६ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मानांशोभामोचनलोचना ॥ सादेवीद्विविधाभूतासहसैवेश्वरेच्छया ॥ ७ ॥ स्वीयरूपेणवर्णेनतेजसावयसात्विषा ॥ यशसावाससाकृत्याभूषणेनगुणेनच ॥ ८ ॥

प्रकारकी है ? हे वेदविदांवर! मुझसे आप उनके गुणोंका कीर्तन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले हे नारदजी ! सृष्टिकी आदिमें परमात्मा कृष्णकी देवी राधाके वाम अंशसे रासमंडलमें यह प्रगट हुई है ॥ ४ ॥ यह अति सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपर मंडित अथवा द्वादशवर्षकी अवस्थासे सम्पन्न निरन्तर स्थिरयौवनवाली ॥ ५ ॥ श्वेतचम्पकके वर्णकी समान सुखदृश्या परममनोहर शरत्की पूर्णिमाके कोटिचन्द्रके प्रभाकी समान मुखवाली ॥ ६ ॥ और शरत्के मध्याह्न कमलोंकी शोभाको जिनके लोचन मोचन करनेवाले हैं वह देवी सहसाही ईश्वरकी इच्छासे दो रूप हुई ॥ ७ ॥ अपना रूप, वर्ण, तेज, वय, कान्ति, यश, वमन, कृति, भूषण गुण ॥ ८ ॥

स्मितवीक्षण प्रेम अनुनयमें राधाकी समानही थी. उन कृष्णके वामअंशसे महालक्ष्मी और दक्षिण अंशसे राधिका प्रगट हुईहै ॥९॥ राधाने प्रथम द्विभुज परात्पर देवको वरण किया. महालक्ष्मीने पश्चात् उन मनोहरकी इच्छा की ॥ १० ॥ तब कृष्ण राधाके गौरवसे दो रूप हुए दक्षिणांशसे द्विभुज और वाम अंशसे चतुर्भुज हुए ॥ ११ ॥ द्विभुज भगवान्ने महालक्ष्मीको चतुर्भुजके निमित्त दिया. जिससे यह सब जगत् निरन्तर स्निग्ध दृष्टिसे दीखता है॥१२॥ और जो महती देवी है इसी कारण महालक्ष्मी कहाती है.राधाकांत द्विभुज और लक्ष्मीकांत चतुर्भुज है॥१३॥ वह शुद्धसत्वस्वरूपवाली गोप और गोपियोंसे आवृत है चतुर्भुज लक्ष्मीके सहित वैकुंठमें गये ॥ १४ ॥ वह कृष्ण और विष्णु सर्वांशमें समान है महालक्ष्मीके योगमें वह अनेक रूपा हुई ॥ १५ ॥ वैकुंठमें महालक्ष्मी परिपूर्णतमा रमा है शुद्ध

स्मितेनवीक्षणेनैवप्रेम्णावाऽनुनयेनच॥तद्वामांसान्महालक्ष्मीर्दक्षिणांसाच्चराधिका॥९॥राधाऽऽदौवरयामासद्विभुजंचपरात्परम्॥महालक्ष्मीश्चतत्पश्चाच्चकमेकमनीयकम् ॥ १० ॥ कृष्णस्तद्गौरवेणैवद्विधारूपोबभूवह ॥ दक्षिणांसश्चद्विभुजोवामांसश्चचतुर्भुजः ॥११॥ चतुर्भुजायद्विभुजोमहालक्ष्मींददौपुरा ॥ लक्ष्यतेदृश्यतेविश्वंस्निग्धदृष्ट्यायथानिशम् ॥ १२ ॥ देवीभूताचमहतीमहालक्ष्मीश्चसास्मृता ॥ राधाकांतश्चद्विभुजोलक्ष्मीकांतश्चतुर्भुजः ॥१३॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपाचगोपैर्गोपीभिरावृता ॥ चतुर्भुजश्चवैकुंठंप्रययौपद्मयासह ॥ १४ ॥ सर्वांशेनसमौतौद्वौकृष्णनारायणौपरौ ॥ महालक्ष्मीश्चयोगेननानारूपाबभूवसा ॥ १५ ॥ वैकुंठेचमहालक्ष्मीःपरिपूर्णतमारमा ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपाचसर्वसौभाग्यसंयुता ॥ १६ ॥ प्रेम्णासाचप्रधानाचसर्वासुरमणीषुच ॥ स्वर्गेषुस्वर्गलक्ष्मीश्चशक्रसंपत्स्वरूपिणी ॥ १७ ॥ पातालेनागलक्ष्मीश्चराजलक्ष्मीश्चराजसु ॥ गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेवगृहिणांचकलांशतः ॥ १८ ॥ संपत्स्वरूपागृहिणांसर्वमंगलमंगला ॥ गवांप्रसूतिः सासुरभिर्दक्षिणायज्ञकामिनी ॥ १९ ॥ क्षीरोदसिंधुकन्यासाश्रीरूपापद्मिनीषुच ॥ शोभास्वरूपाचंद्रेचसूर्यमंडलमंडिता ॥ २० ॥ विभूषणेषुरत्नेषुफलेषुचजलेषुच ॥ नृपेषुनृपपत्नीषुदिव्यस्त्रीषुगृहेषुच ॥ २१ ॥ सर्वसस्येषुवस्त्रेषुस्थानेषुसंस्कृतेषुच ॥ प्रतिमासुचदेवानांमंगलेषुघटेषुच ॥ २२ ॥ माणिक्येषुचमुक्तासुमाल्येषुचमनोहरा ॥ मणींद्रेषुचहीरेषुक्षीरेषुचंदनेषुच ॥ २३ ॥

सत्वस्वरूपा सर्व सौभाग्यसे संयुक्त है ॥ १६ ॥ वह सब स्त्रियोंमें प्रेमसे प्रधान है स्वर्गोंमें स्वर्गलक्ष्मी इन्द्रके सम्पत्स्वरूपिणी ॥ १७ ॥ पातालमें नागलक्ष्मी राजाओंमें राजलक्ष्मी घरोंमें गृहलक्ष्मी गृहिणी कलाअंशसे निवास करती है ॥ १८ ॥ गृहस्थियोंके यहाँ सम्पत् स्वरूपा सब मंगलकी मंगल करनेवाली गायोंकी प्रसूति होनेसे सुरभी यज्ञकी कामनामें दक्षिणा ॥ १९ ॥ क्षीरसागरकी कन्या पद्मिनियोंमें श्रीरूपा चन्द्रमामें शोभास्वरूप सूर्यमंडलमें मंडित ॥ २० ॥ विभूषण रत्नफल जल नृप नृपपत्नी दिव्यस्त्री और घरोंमें ॥ २१ ॥ सब धान्य वस्त्र संस्कृतस्थान देवताओंकी प्रतिमा मंगल घटोंमें ॥ २२ ॥ माणिक्य मुक्ता मनोहर मालामणियोंके

हार क्षीर और चन्दनमें ॥ २३ ॥ मनोहर वृक्षशाखा नवीन मेघ और वस्तुओंमें रहती. प्रथम नारायणने वैकुण्ठमें पूजन किया ॥ २४ ॥ दूसरी बार भक्तिसे ब्रह्माने और ती सरीबार शंकरने पूजन किया है. हे मुने! फिर क्षीरोदमें विष्णुने पूजन कियाहै ॥ २५ ॥ मानवेन्द्र स्वायंभू मनुने तथा ऋषि मुनि और सद्भक्ति करनेवाले गृहस्थियोंने पूजन किया है ॥ २६ ॥ गन्धर्व तथा नागादिने पातालमें पूजन किया है शुक्लाष्टमीको भाद्रपदमें ब्रह्माजीने पूजन किया ॥ २७ ॥ हे नारद! तीनों लोकमें भक्तिसे पक्षपर्यन्त पूजन होता है. चैत्र, पौष, भाद्रपद, मंगलवारमें पूजन होता है ॥ २८ ॥ विष्णु तथा त्रिलोकीने भक्तिपूर्वक पूजाकी वर्षके अन्तमें पूषसंक्रान्ति

वृक्षशाखासुरम्यासुनवमेघेषुवस्तुषु ॥ वैकुंठेपूजितासाऽऽदौदेवीनारायणेनच ॥ २४ ॥ द्वितीयेब्रह्मणाभक्त्यातृतीयेशंकरेणच ॥ विष्णुनापूजिता साचक्षीरोदेभारतेसुने ॥ २५ ॥ स्वायंभुवेनमनुनामानवेंद्रैश्वसर्वतः ॥ ऋषींद्रैश्चमुनींद्रैश्चसद्भिश्चगृहिभिर्भवे ॥ २६ ॥ गंधर्वैश्चैवनागाद्यैःपातालेषुचपूजिता ॥ शुक्लाष्टम्यांभाद्रपदेकृतापूजाचब्रह्मणा ॥ २७ ॥ भक्त्याचपक्षपर्यंतंत्रिषुलोकेषुनारद ॥ चैत्रेपौषेचभाद्रेचपुण्येमंगलवासरे ॥ २८ ॥ विष्णुनापूजितासाचत्रिषुलोकेषुभक्तितः ॥ वर्षांतेपौषसंक्रांत्यांमाघ्यामावाह्यमंगले ॥ २९ ॥ मनुस्तांपूजयामाससाभूताभुवनत्रये ॥ पूजितासामहेंद्रेणमंगलेनैवमंगला ॥ ३० ॥ केदारेणैवनीलेनसुबलेननलेनच ॥ ध्रुवेणोत्तानपादेनशक्रेणबलिनातथा ॥ ३१ ॥ कश्यपेनचदक्षेणकर्दमेनविवस्वता ॥ प्रियव्रतेनचंद्रेणकुबेरेणैववायुना ॥ ३२ ॥ यमेनवह्निनाचैववरुणेनैवपूजिता ॥ एवंसर्वत्रसर्वेषुपूजितावंदितासदा ॥ ३३ ॥ सर्वैश्वर्याधिदेवीसासर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ छ ॥ नारदउवाच ॥ नारायणप्रियासाचवरावैकुंठवासिनी ॥ वैकुंठाधिष्ठातृदेवीमहालक्ष्मीःसनातनी ॥ १ ॥ कथंबभूवसादेवीपृथिव्यांसिंधुकन्यका ॥ पुराकेनस्तुताऽऽदौसातन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

माघी पूर्णिमाको आवाहन करके ॥ २९ ॥ मनुने उनका पूजन कराया और मंगलारूपा लक्ष्मीका महेन्द्रने भी पूजन किया है ॥ ३० ॥ केदार, नील, सुबल, नल, ध्रुव, उत्तानपाद, इन्द्र, बलि ॥ ३१ ॥ कश्यप, दक्ष, कर्दम, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र कुबेर, वायु ॥ ३२ ॥ यम, वह्नि, वरुणने पूजन किया और प्रणाम किया. इसप्रकार सबने सर्वत्र पूजन किया ॥ ३३ ॥ वह सब ऐश्वर्यकी देवी सब सम्पत्स्वरूपिणी है ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले वह नारायणकी प्रिया श्रेष्ठ वैकुंठवासिनी, वैकुंठकी अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी सनातनी ॥ १ ॥ फिर भूमिमें किसप्रकार क्षीरसागरकी कन्या हुई

और पहले किसने उनकी स्तुति की सो आप मुझसे कहिये ॥ २॥ श्रीनारायण बोले एक समय दुर्वासाके शापसे इन्द्र श्रीभ्रष्ट हुए थे और मर्त्यलोकमें देवताओंके समूह एकत्रित हुए ॥ ३ ॥ लक्ष्मी स्वर्गादिको त्यागनकर रुष्ट और परम दुःखित हुई. हे नारद ! वह जाकर वैकुंठमें लीन होगई ॥ ४ ॥ तब सबकोई दुःखी हो ब्रह्माकी सभामें गये और ब्रह्माजीको आगेकर वैकुंठमें गये ॥ ५ ॥ सब देवता वैकुंठमें परमदेव नारायणकी शरण हुए अतिदैन्ययुक्त होनेसे उनके कंठ ओष्ठ तालु सूखगये ॥ ६ ॥ तब पुराण पुरुषकी आज्ञासे कलारूप लक्ष्मी सर्वसंपत्स्वरूपिणी सागरकन्या हुई थी ॥ ७ ॥ तब देवता दैत्योंने क्षीरसागर मंथनकर महालक्ष्मीको प्राप्त किया विष्णुने उनको देखा ॥ ८ ॥ देवादिको वर और क्षीरसागरशायी विष्णुको प्रसन्नतासे वनमालादेकर प्रसन्न किया ॥ ९ ॥ हे नारद ! तब देवताओंने

श्रीनारायणउवाच ॥ पुरादुर्वाससःशापाद्भ्रष्टश्रीश्चपुरंदरः ॥ बभूवदेवसंघश्चमर्त्यलोकेचनारद ॥ ३ ॥ लक्ष्मीःस्वर्गादिकंत्यक्त्वारुष्टापरम दुःखिता ॥ गत्वालीनाचवैकुंठेमहालक्ष्मीश्चनारद ॥ ४ ॥ तदाशोकाद्ययुःसर्वेदुःखिताब्रह्मणःसभाम् ॥ ब्रह्माणंचपुरस्कृत्यययुर्वैकुंठमेवच ॥ ५ ॥ वै कुंठेशरणापन्नादेवानारायणेपरे ॥ अतीवदैन्ययुक्ताश्चशुष्ककंठोष्ठतालुकाः ॥६॥ तदालक्ष्मीश्चकलयापुराणपुरुषाज्ञया ॥ बभूवसिंधुकन्यासासर्वसंपत्स्व रूपिणी ॥ ७ ॥ तथामथित्वाक्षीरोदंदेवादैत्यगणैःसह ॥ संप्राप्ताश्चमहालक्ष्मींविष्णुस्तांचददर्शह ॥ ८ ॥ सुरादिभ्योवरंदत्वावनमालांचविष्णवे ॥ ददौ प्रसन्नवदनातुष्टाक्षीरोदशायिने ॥९॥ देवाश्चाऽप्यसुरग्रस्तंराज्यंप्रापुश्चनारद ॥ तांसंपूज्यचसंभूयसर्वेत्रचनिरापदः ।.१०॥नारदउवाच॥कथंशशापदुर्वासा मुनिश्रेष्ठःकदाचन॥केनदोषेणवाब्रह्मन्ब्रह्मिष्ठस्तत्त्ववित्पुरा ॥११॥ ममंथुःकेनरूपेणजलधिंतेसुरादयः ॥ केनस्तोत्रेणवादेवीशक्रंसाक्षाद्बभूवसा ॥ १२ ॥ कोवातयोश्चसंवादोबभूवतद्वदप्रभो ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ मधुपानप्रमत्तश्चत्रैलोक्याधिपतिःपुरा ॥ १३ ॥ क्रीडांचकाररहसिरंभयासहकामुकः ॥ कृत्वाक्रीडांतयासार्धंकामुक्याहृतमानसः ॥ १४ ॥ तस्थौतत्रमहारण्येकामोन्मथितमानसः ॥ कैलासशिखरेयांतंवैकुंठाद्दृषिसत्तमम् ॥ १५ ॥

असुरोंके ग्रसित राज्यको फिर पाया तब भगवतीकी पूजाकर सब कोई आपत्ति रहित हुए ॥ १० ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! तत्त्ववित् मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने क्यों शापदिया क्या दोष था वह तो तत्त्ववित् थे ॥ ११ ॥ और उन सुरादिने किस प्रकार सागरको मथा और किस स्तोत्रसे देवी इन्द्रके सन्मुख प्रगट हुई ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! किसप्रकार उन इन्द्र और दुर्वासाका सम्वाद हुआ सो आप कहिये. श्रीनारायण बोले पहले त्रैलोक्याधिपति इन्द्र मधुपानसे मत्तहोकर ॥ १३ ॥ कामुक हो एकान्तमें रंभाकेसाथ क्रीडा करने लगे. उसके साथ क्रीडाकरनेसे देवराजका मन उसमें लगगया ॥ १४ ॥ कामसे उन्मथित हो उस महावनमें निवास करने

लगे उस समय ऋषिश्रेष्ठ वैकुंठसे कैलासशिखरमें जाते थे ॥ १५ ॥ उन ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित दुर्वासा ऋषिको देखकर कि, जिनकी प्रभा मध्याह्नकालीन सूर्यके समान चमक रही थी ॥ १६ ॥ तप्त सुवर्णके समान जटाभार बडा उज्वल था श्वेत यज्ञोपवीत चीर दण्ड कमंडलु लिये ॥ १७ ॥ महा प्रकाशमान् चलायमान् इन्द्र के समान प्रकाशित लाखोंवेदवेदांगके पारगामी शिष्योंसेयुक्त ॥ १८ ॥ देखतेही इन्द्रने उनको शिरसे प्रणाम किया और प्रसन्न हो उन मुनिके शिष्यसमूहोंको संतुष्ट किया ॥ १९ ॥ मुनिराजने शिष्योंसहित आशीर्वाद दिये और विष्णुके दिये मनोहर पारिजात पुष्पको॥ २०॥ "जो कि जरारोग और मृत्युका नाशक शोकहारी

दुर्वाससंददर्शेंद्रोज्वलंतंब्रह्मतेजसाग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडसहस्रप्रभमीश्वरम् ॥ १६ ॥ प्रतप्तकांचनाकारंजटाभारमहोज्वलम् ॥ शुक्लयज्ञोपवीतंचचीरदंडौ कमंडलुम् ॥ १७ ॥ महोज्वलंचतिलकंविभ्रतंचेंदुसन्निभम् ॥ समन्वितंशिष्यलक्षैर्वेदवेदांगपारगैः ॥ १८ ॥ दृष्ट्वाननामशिरसासंप्रमत्तःपुरंदरः ॥ शि ष्यवर्गंतदाभक्त्यातुष्टावचमुदान्वितम् ॥ १९ ॥ मुनिनाचसशिष्येणदत्तास्तस्मैशुभाशिषः ॥ विष्णुदत्तंपारिजातपुष्पंचसुमनोहरम् ॥ २० ॥ तज्जरा रोगमृत्युघ्नंशोकघ्नंमोक्षकारकम् ॥ शक्रःपुष्पंगृहीत्वाचप्रमत्तोराज्यसंपदा ॥२१॥ पुष्पंसन्यस्तयामासतदैवकरिमस्तके ॥ हस्तीतत्स्पर्शमात्रेणरूपेणच गुणेनच ॥ २२ ॥ तेजसावयसाऽकस्माद्विष्णुतुल्योबभूवह ॥ त्यक्त्वाशक्रंगजेंद्रश्चजगामघोरकाननम् ॥ २३ ॥ नशशाकमहेंद्रस्तंरक्षितुंतेजसामुने ॥ तत्पुष्पंत्यक्तवंतंचदृष्ट्वाशक्रंमुनीश्वरः ॥ २४ ॥ तमुवाचमहारुष्टःशशापचरुषान्वितः ॥ मुनिरुवाच ॥ अरेश्रियाप्रमत्तस्त्वंकथंमामवमन्यसे ॥ २५ ॥ म दत्तपुष्पंदत्तंचगर्वेणकरिमस्तके ॥ विष्णोर्निवेदितंचैवनैवेद्यंवाफलंजलम् ॥ २६ ॥ प्राप्तिमात्रेणभोक्तव्यंत्यागेनब्रह्महाभवेत् ॥ भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्चपुर भ्रष्टोभवेत्तुसः ॥ २७ ॥

और मोक्षका करनेवाला है" दिया. शक्र उस फूलको लेकर राज्य सम्पत्तीसे प्रमत्त हो ॥ २१ ॥ उस अपने हाथीके ऊपर रखदिया हाथी उसके स्पर्शमात्र रूप और गुणसे ॥ २२ ॥ तेज और वयसे विष्णुकी तुल्य हुआ तब गजेन्द्र इन्द्रको छोडकर गहन वनमें चलागया ॥ २३ ॥ हेमुने ! तेजसे इन्द्र उसकी रक्षाकरनेको समर्थ न हुआ. मुनीश्वरने इन्द्रको इसप्रकार फूलत्यागन करता हुआ देखकर ॥ २४ ॥ महारुष्टहोकर शापदिया. मुनि बोले अरे ! लक्ष्मीसे प्रमत्त तुम मेरे अपमान क्यों करते हो ॥ २५ ॥ मेरा दिया फूल तैंने हाथीके मस्तकपर क्यों रख दिया. विष्णुको निवेदनकिया नैवेद्य, जल, फल ॥ २६ ॥ प्राप्तमात्रही भोगना चाहिये. अन्यथा ब्रह्महत्या लगती है.

तुम भ्रष्टश्री भ्रष्टबुद्धि और अपने पुरसे भ्रष्टहो जाओ ॥ २७ ॥ जो भाग्यसे उपस्थित हुए विष्णुके नैवेद्यको प्राप्त होतेही भोग लगाता है जो भक्त विष्णुनिवेदित नैवेद्यको इसप्रकार भोग करते हैं ॥ २८ ॥ वह सौ पुरुषोंका उद्धारकर स्वयं जीव न्मुक्त होता है, जो नैवेद्य भोग लगाकर नित्य नारायणके प्रणाम करता है ॥२९॥ अथवा भक्तिसे पूजन और स्तुति करता है वह विष्णुके समान होता है. उसकी स्पर्श कीहुई वायुसे शीघ्र तीर्थसमूह शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३० ॥ हे मूढ ! उनकी पादरजसे फिर भूमि शुद्ध होती है पुंश्चलीका अन्न अवीरान्न शूद्रान्न श्राद्धान्न ॥ ॥ ३१ ॥ तथा हरिको विना निवेदन किया अन्न वृथामांसका भक्षण शिवलिंगपर

यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यंभाग्येनोपस्थितंशुभम् ॥ प्राप्तिमात्रेणयोभुंक्तेभक्तोविष्णुनिवेदितम् ॥ २८ ॥ पुंसांशतंसमुद्धृत्यजीवन्मुक्तःस्वयंभवेत् ॥ नैवेद्यभोजनंकृत्वानित्यंयःप्रणमेद्धरिम् ॥ २९ ॥ पूजयेत्स्तौतिवाभक्त्यासविष्णुसदृशोभवेत् ॥ तत्स्पर्शवायुनासद्यस्तीर्थौघश्चविशुध्यति ॥ ३० ॥ तत्पादरजसामूढसद्यःपूतावसुंधरा ॥ पुंश्चल्यन्नमवीरान्नंशूद्रश्राद्धान्नमेवच ॥ ३१ ॥ यद्धरेरनिवेद्यंचवृथामांसस्यभक्षणम् ॥ शिवलिंगप्रदान्नंचयद्दत्तंशूद्रयाजिना ॥ ३२ ॥ चिकित्सकद्विजान्नंचदेवलान्नंतथैवच ॥ कन्याविक्रयिणामन्नंयदन्नंयोनिजीविनाम् ॥ ३३ ॥ उच्छिष्टान्नंपर्युषितंसर्वभक्षावशेषितम् ॥ शूद्रापतिद्विजानांचवृषवाहद्विजान्नकम् ॥ ३४ ॥ अदीक्षितद्विजानांचयदन्नंशवदाहिनाम् ॥ अगम्यागामिनांचैवद्विजानामन्नमेवच ॥ ॥ ३५ ॥ मित्रद्रुहांकृतघ्नानामन्नंविश्वासघातिनाम् ॥ मिथ्यासाक्ष्यप्रदान्नंचब्राह्मणान्नंतथैवच ॥ ३६ ॥ एतेसर्वेविशुध्यंतिविष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥ श्वपचश्चेद्विष्णुसेवीवंशानांकोटिमुद्धरेत् ॥ ३७ ॥ हरेरभक्तोमनुजःस्वंचरक्षितुमक्षमः ॥ अज्ञानाद्यदिगृह्णातिविष्णोर्निर्माल्यमेवच ॥ ३८ ॥

चढाया हुआ पदार्थ शूद्रयाजीका दिया द्रव्य ॥ ३२ ॥ चिकित्सक ब्राह्मणका अन्न पुजारीका अन्न कन्याबेचनेवालेका अन्न कुटनीका अन्न ॥ ३३ ॥ उच्छिष्ट अन्न वासी अन्न सबके खालेनेपर अवशिष्ट अन्न शूद्रापति ब्राह्मणोंका अन्न वृष वाहक द्विजका अन्न ॥ ३४ ॥ अदीक्षित ब्राह्मणका अन्न शवदाही ब्राह्मणका अन्न अगम्यागामियोंका अन्न ॥३५॥ मित्रद्रोही कृतघ्नी विश्वासघाती मिथ्या साक्षी देनेवाले ब्राह्मणका अन्न ॥ ३६ ॥ यह सब विष्णुकी नैवेद्य भक्षण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं यदि श्वपचभी विष्णुका सेवी हो तो कोटिवंशोंका उद्धार करता है॥ ३७॥ हरिका अभक्त मनुष्य अपनेको रक्षा करनेमें असमर्थ होता है वह अज्ञानसे यदि

विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करले ॥ ३८ ॥ तो इसमें सन्देह नहीं कि, वह सात जन्मके अर्जित पापसे मुक्त होता है और जो जानकर भक्तिसे विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥ हे इन्द्र ! वह कोटिजन्मके अर्जित पापसे निश्चयही मुक्त हो जाते हैं. जो कि, तुमने हमारा दिया फूल हाथीके मस्तकपर स्थापित किया है॥ ४० ॥ इसकारण तुमको छोडकर लक्ष्मी नारायणके स्थानको गमन करेगी मैं नारायणका भक्त हूं देवता विधातासे नहीं डरताहूं॥ ४१ ॥ कालमृत्यु जरा किसीसेभी नहीं डरता हूं प्रजापति कश्यप तुम्हारे पिता मेरा क्या करसक्ते हैं ॥ ४२ ॥ मैं बृहस्पति गुरुसे निःशंक हूं, हे इन्द्र ! यह फूल जिसके शिरपर होता है उसका परम

सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनाऽत्रसंशयः ॥ ज्ञात्वाभक्त्याचगृह्णातिविष्णोर्नैवेद्यमेवच ॥ ३९ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनिश्चितंहरे ॥ यस्मात्संस्थापितंपुष्पंगर्वेणकरिमस्तके ॥ ४० ॥ तस्माद्युष्मान्परित्यज्ययातुलक्ष्मीर्हरेःपदम् ॥ नारायणस्यभक्तोऽहंनबिभेमिसुराद्विधेः ॥ ४१ ॥ कालान्मृत्योर्जरातश्चकानन्यान्गणयामिच ॥ किंकरिष्यतितेतातःकश्यपश्चप्रजापतिः ॥ ४२ ॥ बृहस्पतिर्गुरुश्चैवनिःशंकस्यचमेहरे ॥ इदंपुष्पंयस्य मूर्ध्नितस्यैवपूजनंपरम् ॥४३॥ इतिश्रुत्वामहेंद्रश्चधृत्वासचरणंमुनेः ॥ उच्चैरुरोदशोकार्तस्तमुवाचभयाकुलः ॥४४॥ महेंद्रउवाच ॥ दत्तःसमुचितःशापोम ह्यंमायापहःप्रभो ॥ हृतांनयाचेसंपत्तिंकिंचिज्ज्ञानंचदेहिमे ॥ ४५ ॥ ऐश्वर्यंविपदांबीजंज्ञानप्रच्छन्नकारणम् ॥ मुक्तिमार्गकुठारश्चभक्तेश्चव्यवधायक म् ॥ ४६ ॥ मुनिरुवाच ॥ जन्ममृत्युजराशोकरागबीजांकुरंपरम् ॥ संपत्तितिमिरांधश्चमुक्तिमार्गंनपश्यति ॥ ४७ ॥ संपन्मत्तोविमूढश्चसुरामत्तःस एवच ॥ बांधवैर्वेष्टितःसोऽपिबंधत्वेनैवहेहरे ॥ ४८ ॥ संपत्तिमदमत्तश्चविषयांधश्चविह्वलः ॥ महाकामीराजसिकःसत्त्वमार्गंनपश्यति ॥ ४९ ॥

पूजन होता है ॥ ४३ ॥ यह सुन्तेही इन्द्रने मुनिराजके चरण पकडे और शोकसे व्याकुल हो ऊंचे स्वरसे रोताहुआ भयाकुल हुआ ॥ ४४ ॥ महेन्द्रने कहा हेमायाहारी प्रभो! आपने मुझको उचित शाप दिया है, मैं हरीहुई सम्पत्तिकी याचना नहीं करता आप मुझे कुछ ज्ञान दीजिये ॥ ४५ ॥ ऐश्वर्य विपत्तिका बीज ज्ञानका प्रच्छन्न करनेवाला है तथा मुक्तिमार्गको कुठार और भक्तिमें व्यवधान करनेवाला है ॥ ४६ ॥ मुनि बोले जन्म मृत्यु जरा शोक रोगका बीजांकुर है सम्पत्तिरूपी तिमिरमें अंध हो मुक्तिमार्गको नहीं देखता है ॥ ४७ ॥ सम्पत्तिसे मत्त विमूढ पुरुष सुरामत्तही कहा है और बांधवोंसे वेष्टित हुआ भी एक प्रकारके बंधनमें पडा है ॥ ४८ ॥ सम्पत्तिकेसे मदमें

मत्त हुआ विषयमें अंधा मदसे विह्वल महाकामी राजसी पुरुष मुक्तिमार्गको नहीं देखता है ॥ ४९ ॥ रजोगुणी तमोगुणी भेदसे विषयांध दो प्रकारका है अशास्त्रज्ञ तामसी और शास्त्रज्ञ रजोगुणी होता है ॥ ५० ॥ हे इन्द्र ! शास्त्र दो प्रकारका मार्ग दिखलाता है. एक प्रवृत्तिका बीज और एक निवृत्तिका कारण है ॥ ५१ ॥ प्रथम मार्ग प्रवृत्तिरूपमें जीव भ्रमण करते हैं स्वच्छन्द प्रसन्न निर्विरोध उन्मत्तवत् रहता है ॥ ५२ ॥ मधुके लोभसे आकर क्लेशमें सुख मानता है परिणाममें नाशकारक जन्म मृत्यु और जरा करनेवाला है ॥ ५३ ॥ इसप्रकार अनेक जन्मपर्यन्त भ्रमण करके अपने कर्मानुसार अनेक योनियोंमें विचरण करता है ॥ ५४ ॥ फिर ईश्वरके अनुग्रहसे उसको सत्संगकी प्राप्ति होती है सहस्रों सैकडोंमें कोई एक संसार सागरके पारके कारण ॥ ५५ ॥

द्विविधोविषयांधश्चराजसस्तामसःस्मृतः ॥ अशास्त्रज्ञस्तामसश्चशास्त्रज्ञोराजसःस्मृतः ॥५०॥ शास्त्रंचद्विविधंमार्गंदर्शयेत्सुरपुंगव ॥ प्रवृत्तिबीजमेकंच निवृत्तेःकारणंपरम् ॥ ५१ ॥ चरंतिजीविनश्चादौप्रवृत्तेर्दुःखवर्त्मनि ॥ स्वच्छंदंचप्रसन्नंचनिर्विरोधंचसंततम् ॥ ५२ ॥ आयातिमधुनोलोभात्क्लेशेनसुखमानितः ॥ परिणामेनाशबीजेजन्ममृत्युजराकरे ॥ ५३ ॥ अनेकजन्मपर्यंतंकृत्वाचभ्रमणंमुदा ॥ स्वकर्मविहितायांचनानायोन्यांक्रमेणच ॥ ५४ ॥ ततश्चेशानुग्रहाच्चसत्संगंलभतेचसः ॥ सहस्रेषुशतेष्वेकोभवाब्धिपारकारणम् ॥ ५५ ॥ साधुस्तत्त्वप्रदीपेनमुक्तिमार्गंप्रदर्शयेत् ॥ तदाकरोतियत्नंचजीवोबंधनखंडने ॥ ५६ ॥ अनेकजन्मयोगेनतपसाऽनशनेनच ॥ तदालभेन्मुक्तिमार्गंनिर्विघ्नंसुखदंपरम् ॥ ५७ ॥ इदंश्रुतंगुरोर्वक्त्राद्यत्पृच्छसिपुरंदर ॥ मुनेस्तद्वचनंश्रुत्वावीतरागोबभूवसः ॥ ५८ ॥ वैराग्यंवर्धयामासतस्यब्रह्मन्दिनेदिने ॥ मुनेःस्थानाद्गृहंगत्वासददर्शाऽमरावतीम् ॥ ५९ ॥ दैत्यैरसुरसंघैश्चसमाकीर्णांभयाकुलाम् ॥ विषमोपप्लवांकुत्रबंधुहीनांचकुत्रचित् ॥ ६० ॥ पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचंचलाम् ॥ शत्रुग्रस्तांचतांदृष्ट्वाजगामवाक्पतिंप्रति ॥६१॥ शक्रोमंदाकिनीतीरेददर्शगुरुमीश्वरम् ॥ ध्यायमानंपरंब्रह्मगंगातोयेस्थितंपरम् ॥ ६२ ॥ सूर्याभिसंमुखंपूर्वमुखंचविश्वतोमुखम् ॥ साश्रुनेत्रंपुलकिनंपरमानंदसंयुतम् ॥ ६३ ॥

साधु तत्त्वदीपकसे मुक्तिमार्ग दिखाता है तब यह जीव बंधनके खण्डनका यत्न करता है ॥ ५६ ॥ अनेक जन्मके योग तपस्या भोजन त्यागसे निर्विघ्न परम सुखदायक मुक्तिमार्गको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ हे इन्द्र ! जो तुमने पूँछा है यह मैं ने गुरुके मुखसे सुना है तब मुनिके वचन सुन इन्द्र वीतराग हुए ॥ ५८ ॥ और दिन दिन वैराग्य बढने लगा मुनिके स्थानसे घरको जाकर जब इन्द्रने अमरावतीको देखा तो ॥ ५९ ॥ वह दैत्य असुरोंसे व्याप्त बडी भयानक होगई थी कहीं विषका उपद्रव कहीं बंधुहीनता ॥ ६० ॥ कहीं पिता माता कलत्रसे विहीन अतिचंचल तथा विविध शत्रुसे ग्रसित देखकर इन्द्र बृहस्पतिके समीप गये ॥ ६१ ॥ इन्द्रने मन्दाकिनीके किनारे गुरुजीको देखा जो परब्रह्मको ध्यानकरते गंगाके जलमें स्थित थे ॥ ६२ ॥ सूर्यके सन्मुख पूर्वको मुख किये सब ओर मुखवाले ईश्वरके प्रेममें

आंसू भरे रोमांच शरीर परमानन्द सम्पन्न थे ॥ ६३ ॥ वरिष्ठ गरिष्ठ धनिष्ठ श्रेष्ठ पुरुषोंसे सेवित बंधुवर्गोंमें प्रेष्ठ ज्ञानियोंमें अतिश्रेष्ठ ॥ ६४ ॥ भ्रातृवर्गोंमें ज्येष्ठ देव वैरियोंके अनिष्टकारक उन गुरुजीको जपमें तत्पर देखकर इन्द्र उसी स्थानमें स्थित हुए ॥ ६५ ॥ जब एक पहरके अन्तमें गुरुजी उठे तब प्रणाम किया और उनके चरणोंमें पडकर अमरेश रुदन करने लगे ॥ ६६ ॥ और दुर्वासाके शापका सब वृत्तान्त कहा फिर वर और दुर्लभज्ञानकी प्राप्ति कही ॥ ६७ ॥ फिर वैरियोंसे ग्रस्त अपनी पुरीका वृत्तान्त कहा शिष्यके वचन सुनकर बोलनेवालोंमें अति श्रेष्ठ सुबुद्धि ॥ ६८ ॥ बृहस्पतिजी क्रोधकर यह वचन बोले बृहस्पति बोले हे इन्द्र! यह मैं ने सब सुना परन्तु मत रोओ हमारे वचन सुनो ॥ ६९ ॥ नीतिज्ञाता पुरुष विपत्तिमें कभी कातर नहीं होते हैं सम्पत्ति वा विपत्ति यह सब

वरिष्ठंचगरिष्ठंचधर्मिष्ठंश्रेष्ठसेवितम् ॥ प्रेष्ठंचबंधुवर्गाणामतिश्रेष्ठंचज्ञानिनाम् ॥६४॥ ज्येष्ठंचभ्रातृवर्गाणामनिष्टंसुरवैरिणाम् ॥ दृष्ट्वागुरुंजपंतंचतत्रतस्थौसुरेश्वरः॥६५॥प्रहरांतेगुरुंदृष्ट्वाचोत्थितंप्रणनामसः॥प्रणम्यचरणांभोजेरुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः॥६६॥ वृत्तांतंकथयामासब्रह्मशापादिकंतथा॥पुनर्वरोपलब्धिंचज्ञानप्राप्तिंसुदुर्लभाम् ॥ ६७ ॥ वैरिग्रस्तांचस्वपुरींक्रमेणैवसुरेश्वरः ॥ शिष्यस्यवचनंश्रुत्वासुबुद्धिर्वदतांवरः ॥ ६८ ॥ बृहस्पतिरुवाचेदंकोपसंरक्तलोचनः ॥ गुरुरुवाच ॥ श्रुतंसर्वंसुरश्रेष्ठमारोदीर्वचनंशृणु ॥ ६९ ॥ नकातरोहिनीतिज्ञोविपत्तौचकदाचन ॥ संपत्तिर्वाविपत्तिर्वानश्वराभ्रमरूपिणी ॥ ७० ॥ पूर्वस्यकर्मायत्ताचस्वयंकर्तातयोरपि ॥ सर्वेषांचभवत्येवशश्वज्जन्मनिजन्मनि ॥७१॥ चक्रनेमिक्रमेणैवतत्रकापरिदेवना ॥ उक्तंहिस्वकृतंकर्मभुज्यतेऽखिलभारते ॥ ७२ ॥ शुभाशुभंचयत्किंचित्स्वकर्मफलभुक्पुमान् ॥ नाऽभुक्तंक्षीयतेकर्मकल्पकोटिशतैरपि ॥ ७३ ॥ अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाशुभम् ॥ इत्येवमुक्तंवेदेचकृष्णेनपरमात्मना॥७४॥सामवेदोक्तशाखायांसंबोध्यकमलोद्भवम् ॥ जन्मभोगावशेषेचसर्वेषांकृतकर्मणाम्॥७५॥ अनुरूपंहितेषांचभारतेऽन्यत्रचैवहि॥कर्मणाब्रह्मशापंचकर्मणाचशुभाशिषम्॥७६॥कर्मणाचमहालक्ष्मींलभेद्दैन्यंचकर्मणा॥कोटिजन्मार्जितंकर्मजीविनामनुगच्छति॥७७॥

भ्रमरूप और नश्वर है ॥ ७० ॥ यह अपने पूर्वकर्मके अनुसार सबका स्वयंकर्त्ता है यह जन्म २ सबकोही प्राप्त होती है ॥ ७१ ॥ पहियेके समान सुख दुःख घूमते हैं इसमें दुःख करना क्या है यह कहाहीहै अपना किया कर्म भोगा जाता है ॥ ७२ ॥ शुभ अशुभ कोई क्यों नहो यह पुरुष अपने कर्मका फल भोगता है कोटिकल्प शतवर्षमें भी विना भोगे कर्मक्षय नहीं होता है ॥ ७३ ॥ शुभाशुभ किया कर्म अवश्यही भोगना पडता है यह वेदमें श्रीकृष्ण परमात्माद्वारा कथित हुआ है ॥ ७४ ॥ अर्थात् सामवेदकी शाखामें ब्रह्माजीसे सबके कर्मोंका जन्म भोगावशेष कहा है ॥ ७५ ॥ अर्थात् कर्मकेही अनुसार भारतमें वा अन्य कहीं जन्म होता है कर्मसेही ब्रह्मशाप और कर्मसेही आशीर्वाद प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥ कर्मसेही महालक्ष्मी और दीनता प्राप्त होती है कोटि जन्मोंका उपार्जित पुण्य भी जीवोंके पीछे चलता है ॥ ७७ ॥

हेपुरन्दर विना भोगके उसकी छाया कभी नहीं छोडती देश काल पात्रके भेदसे कर्मोंकी ॥ ७८ ॥ कर्मसेही न्यूनता और अधिकता होतीहै वस्तुके दानसे दिन दिन वस्तुओंके समान पुण्य होताहै ॥ ७९ ॥ दिनके भेदसे कोटिगुण और असंख्य वा इससेभी अधिक पुण्य होताहै और हेइन्द्र! समदेशमें वस्तुदानका समान पुण्य है ॥ ८० ॥ देशभेदसे कोटिगुण असंख्य वा इससे अधिक होताहै समपात्रमें वस्तुदान करनेवालेको समान पुण्य होताहै ॥ ८१ ॥ पात्र भेदसे सौगुना असंख्य वा उससेभी अधिक होताहै जैसे धान्य बराबर बोये जाकर न्यूनाधिक फलते हैं ॥ ८२ ॥ कर्षकोंके क्षेत्र भेदसे न्यूनाधिकता होती है, इसीप्रकार पात्रभेदमें फल होता है. हे इन्द्र! सामान्यदिनमें दानका समान

नहित्यजेद्विनाभोगंतच्छायेवपुरंदर ॥ कालभेदेदेशभेदेपात्रभेदेचकर्मणाम् ॥ ७८ ॥ न्यूनताधिकभावोऽपिभवेदेवहिकर्मणा ॥ वस्तुदानेनवस्तूनांसमंपुण्यंदिनेदिने ॥ ७९ ॥ दिनभेदेकोटिगुणमसंख्यंवाततोधिकम् ॥ समेदेशेचवस्तूनांदानेपुण्यंसमंसुर ॥ ८० ॥ देशभेदेकोटिगुणमसंख्यंवाततोऽधिकम् ॥ समेपात्रेसमंपुण्यंवस्तूनांकर्तुरेवच ॥ ८१ ॥ पात्रभेदेशतगुणमसंख्यंवाततोऽधिकम् ॥ यथाफलंतिसस्यानिन्यूनान्यप्यधिकानिच ॥ ८२ ॥ कर्षकाणांक्षेत्रभेदेपात्रभेदेफलंतथा ॥ सामान्यदिवसेविप्रदानंसमफलंभवेत् ॥ ८३ ॥ अमायांरविसंक्रांत्यांफलंशतगुणंभवेत् ॥ चातुर्मास्यांपौर्णमास्यामनंतंफलमेवच ॥ ८४ ॥ ग्रहणेशशिनःकोटिगुणंचफलमेवच ॥ सूर्यस्यग्रहणेवाऽपिततोदशगुणंभवेत् ॥ ८५ ॥ अक्षयायामक्षयंतदसंख्यंफलमुच्यते ॥ एवमन्यत्रपुण्याहेफलाधिक्यंभवेदिति ॥ ८६ ॥ यथादानेतथास्नानेजपेऽन्यपुण्यकर्मसु ॥ एवंसर्वत्रबोद्धव्यंनराणांकर्मणांफलम् ॥ ८७ ॥ यथादंडेनचक्रेणशरावेणभ्रमेणच ॥ कुंभंनिर्मातिनिर्माताकुंभकारोमृदाभुवि ॥ ८८ ॥ तथैवकर्मसूत्रेणफलंधातादादातिच ॥ यस्याज्ञयासृष्टमिदंतंचनारायणंभज ॥ ८९ ॥ सविधाताविधातुश्चपातुःपाताजगत्त्रये ॥ स्रष्टुःस्रष्टाचसंहर्तुःसंहर्ताकालकालकः ॥ ९० ॥

फलहोता है ॥ ८३ ॥ अमावास्या और संक्रांतिमें सौगुणा फल होता है चातुर्मास्यकी पूर्णमासीमें अनन्त फल होता है ॥ ८४ ॥ चन्द्रग्रहणका कोटिगुणा फल सूर्यग्रहणका उससेभी दशगुण फल होता है ॥ ८५ ॥ और अक्षयतिथिमें अक्षयफल होता है इसीप्रकार और भी पुण्यदिनोंमें अधिक फल होता है ॥ ८६ ॥ जैसे दान स्नान जप और पुण्यकर्मोंमें होता है. इसीप्रकार मनुष्योंके कर्मका फल जानना चाहिये ॥ ८७ ॥ जिसप्रकार दण्डचक्रादिके भ्रमणसे कुम्हार घट निर्माण करता है और मृत्तिकासे कार्य करता है ॥ ८८ ॥ इसीप्रकार विधाता कर्मसूत्रसे फल देता है जिसकी आज्ञासे यह सृष्टि चलती है उस नारायणको भजो ॥ ८९ ॥ वह विधाताका

विधाता, रक्षकका रक्षक,तीनों जगत्‌का रक्षक, सृष्टिकाभी सृजन करनेवाला,संहार करनेवालेकाभी संहार करनेवाला है ॥९०॥ महा विपत्तिवाले संसारमें जो मधुसूदनको स्मरणकरता है उसकी विपत्तिमें सम्पत्ति होती है ऐसा शंकरने कहा है ॥ ९१ ॥ वह तत्त्वज्ञ इसप्रकार कह इन्द्रको आलिंगनकर और इष्ट आशीर्वाद देकर समझादिया ॥ ९२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ नारायण बोले तब इन्द्रने हरिका ध्यानकर ब्रह्माकी सभामें गमन किया तब सब देवता बृहस्पतिको आगे करके ॥ १ ॥ शीघ्र ब्रह्मलोकमें जाय ब्रह्माजीको देख इन्द्र और गुरुके सहित उनको प्रणाम करते हुए ॥ २ ॥ तब सुराचार्यने विधातासे यह सब वृत्तान्त कहा तब कमलासनने हँसकर महेन्द्रसे कहा ॥

महाविपत्तौसंसारेयःस्मरेन्मधुसूदनम् ॥ विपत्तौतस्यसंपत्तिर्भवेदित्याहशंकरः॥९१॥इत्येवमुक्त्वातत्त्वज्ञःसमालिंग्यसुरेश्वरम् ॥ दत्त्वाशुभाशिषंचेष्टंबोधयामासनारद ॥ ९२ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ हरिंध्यात्वाहरिर्ब्रह्मन्जगामब्रह्मणःसभाम् ॥ बृहस्पतिंपुरस्कृत्यसर्वैःसुरगणैःसह ॥ १ ॥ शीघ्रंगत्वाब्रह्मलोकंदृष्ट्वाचकमलोद्भवम् ॥ प्रणेमुर्देवताःसर्वाःसहेंद्रागुरुणासह ॥ २ ॥ वृत्तांतंकथयामाससुराचार्योविधिंप्रति ॥ प्रहस्योवाचतच्छ्रुत्वामहेंद्रंकमलासनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वत्समद्वंशजातोऽसिप्रपौत्रोमेविचक्षणः ॥ बृहस्पतेश्चशिष्यस्त्वंसुराणामाधिपःस्वयम् ॥ ४ ॥ मातामहश्चदक्षस्तेविष्णुभक्तःप्रतापवान् ॥ कुलत्रयंयस्यशुद्धंकथंसोऽहंकृतोभवेत् ॥ ५ ॥ मातापतिव्रतायस्यपिताशुद्धोजितेंद्रियः ॥ मातामहोमातुलश्चकथंसोऽहंकृतोभवेत् ॥ ६ ॥ जनःपैतृकदोषेणदोषान्मातामहस्यच ॥ गुरुदोषात्त्रिभिर्दोषैर्हरिदोषीभवेद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥ सर्वांतरात्माभगवान्सर्वदेहेष्ववस्थितः ॥ यस्यदेहात्सप्रयातिसशवस्तत्क्षणेभवेत् ॥ ८ ॥ मनोहमिंद्रियेशंचज्ञानरूपोहिशंकरः ॥ विष्णुप्राणाचप्रकृतिर्बुद्धिर्भगवतीसती ॥ ९ ॥

॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले हे वत्स ! मेरे वंशमें उत्पन्नहुए तुम मेरे चतुर प्रपौत्रहो बृहस्पतिके शिष्य और देवताओंके स्वयं अधिपति हो ॥४॥ तुम्हारे मातामह दक्ष प्रतापवान् विष्णुभक्त हैं जिसके तीनों कुल शुद्ध हैं उसको अहंकार कैसे हो सकता है? ॥ ५ ॥ जिसकी माता पतिव्रता और पिता शुद्ध जितेन्द्रिय है मातामहके मामा जिसका शुद्धहो वह अहंकार युक्त कैसे होसकता है ॥६॥ यह मनुष्य पिता और मातामहके दोषसे तथा गुरुके दोषसे देवताका अपराधी होता है ॥७॥ सबके अन्तरात्मा भगवान् सबके देहमें स्थित है जिसके देहसे निर्गत हो जाता है वह उसीसमय शवरूप होजाता है ॥८॥ मन इन्द्रियोंका अधिपति और शंकर ज्ञानरूपहै प्रकृति

भगवती बुद्धि सती विष्णुकी प्राणस्वरूपाहै ॥ ९ ॥ निद्रादिक शक्तियें सब प्रकृतिकी कलाहैं अपना प्रतिविम्ब जीवभोग शरीरका धारण करनेवाला है ॥ १० ॥ और जब आत्माका अधीश्वर चलाजाता है तब सब संभ्रमरूपसे चलेजाते हैं, जैसे मार्गमें जाते राजाके पीछे उनके अनुचरभी जातेहैं ॥ ११ ॥ मैं, शिव, शेष, विष्णु, धर्म, महाविराट् तुम जिसके अंशके भक्तहो उसी फूलका तुमने तिरस्कार किया है ॥ १२ ॥ जिस पुष्पसे शिवने भगवान्‌के चरणकमलका पूजन किया है वह दुर्वासाका दिया हुआ तुमने तिरस्कार कर दिया ॥ १३ ॥ वह कृष्णके चरणकमलका चढा पुष्प जिसके मस्तकमें स्थित है उसकी सबसे अधिक और पूजा पहले क्यों नहो ॥ १४ ॥ तुम प्रारब्धसे वंचित हुए हो दैवही बलवान् है भाग्यहीन मनुष्यको देवताभी रक्षा करनेको समर्थ नहीं ॥ १५ ॥ कृष्णनिर्माल्यके वर्जनसे अब लक्ष्मी चलीगई अब हमारे और गुरुके

निद्रादयःशक्तयश्चताःसर्वाःप्रकृतेःकलाः ॥ आत्मनःप्रतिबिंबश्चजीवोभोगशरीरभृत् ॥ १० ॥ आत्मनीशेगतेदेहात्सर्वेयांतिससंभ्रमाः ॥ यथावर्त्मनि गच्छंतंनरदेवमिवाऽनुगाः ॥ ११ ॥ अहंशिवश्चशेषश्चविष्णुर्धर्मोमहाविराट् ॥ यूयंयदंशाभक्ताश्चतत्पुष्पंन्यकृतंत्वया ॥ १२ ॥ शिवेनपूजितंपादपद्मंपु ष्पेणयेनच ॥ तत्रदुर्वाससादत्तंदैवेनन्यकृतंत्वया ॥ १३ ॥ तत्पुष्पंमस्तकेयस्यकृष्णपादाब्जप्रच्युतम् ॥ सर्वेषांचसुराणांचतत्पूजापुरतोभवेत् ॥ १४ ॥ दैवेनवंचितस्त्वंहिदैवंचबलवत्तरम् ॥ भाग्यहीनंजनंमूढंकोवारक्षितुमीश्वरः ॥ १५ ॥ साश्रीर्गताऽधुनाकोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात् ॥ अधुनागच्छवै कुंठंमयाचगुरुणासह ॥ १६ ॥ निषेव्यतत्रश्रीनाथंश्रियंप्राप्स्यसिमद्वरात् ॥ एवमुक्त्वाचसब्रह्मासर्वैःसुरगणैःसह ॥ १७ ॥ तत्रगत्वापरंब्रह्मभगवंतंसना तनम् ॥ दृष्ट्वातेजःस्वरूपंतंप्रज्वलंतंस्वतेजसा ॥ १८ ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडशतकोटिसमप्रभम् ॥ शांतमनादिमध्यांतंलक्ष्मीकांतमनंतकम् ॥ १९ ॥ चतुर्भुजैःपार्षदैश्चसरस्वत्यायुतंप्रभुम् ॥ भक्त्याचतुर्भिर्वेदैश्चगंगयापरिवेष्टितम् ॥ २० ॥ तंप्रणेमुःसुराःसर्वेमूर्ध्नाब्रह्मपुरोगमाः ॥ भक्तिनम्राःसाश्रुनेत्रा स्तुष्टुवुःपरमेश्वरम् ॥ २१ ॥ वृत्तांतंकथयामासस्वयंब्रह्माकृतांजलिः ॥ रुरुदुर्देवताःसर्वाःस्वाधिकाराच्च्युताश्चताः ॥ २२ ॥

सहित वैकुण्ठको चलो ॥ १६ ॥ वहां श्रियानाथको सेवनकर मेरे वरसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी ब्रह्माजी यह कह सब देवतादिके सहित ॥ १७ ॥ वहां जाय सनातन परब्रह्म तेजस्वरूप अपने तेजसे प्रकाशमान् तेजस्वरूपको देखकर ॥ १८ ॥ ग्रीष्म मध्याह्न मार्तण्डके समान सौ कोटिसूर्यकी प्रभावाली, कांति शान्ति अनादि मध्यांत लक्ष्मीकान्त अनंत ॥ १९ ॥ चारभुजावाले पार्षद और सरस्वतीसे युक्त भक्तिपूर्वक चारवेद और गंगासे परिवेष्टित ॥ २० ॥ और ब्रह्मा आदि सब देवता उनको प्रणाम करते हुए और भक्तिसे नम्रहो नेत्रोंमें आंसू भर परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ और स्वयं ब्रह्माजी हाथ जोडकर अपना वृत्तान्त कहने लगे और

अपने अधिकारसे च्युत होनेसे देवता भी सब रोने लगे ॥ २२ ॥ उन्होंने विपद्ग्रस्त भयाकुल देवताओंको देखा, जो रत्नभूषण शून्य वाहनादिसे वर्जित थे ॥ २३ ॥ शोभासे शून्य लक्ष्मीसे हत, प्रभारहित भयभीत हुए देवताओंको कातर देखकर भयमोचन भगवान् कहने लगे ॥ २४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्मन्! हे देवताओ! मतडरो मेरे होते तुमको भय नहीं है मैं परम ऐश्वर्य बढानेवाली अचललक्ष्मीको दूंगा ॥ २५ ॥ परन्तु इस समय समयोचित मेरे वचनको सुनो जो हित सत्य सारभूत और परिणाममें सुख करनेवाले हैं ॥ २६ ॥ असंख्य विश्वमें स्थित प्राणी मेरे अधीन हैं परन्तु यथा तथा मैं भक्तोंके विषयमें पराधीन हूं

सददर्शसुरगणंविपद्ग्रस्तंभयाकुलम् ॥ रत्नभूषणशून्यंचवाहनादिविवर्जितम् ॥ २३ ॥ शोभाशून्यंहतश्रीकंनिष्प्रभंसभयंपरम् ॥ उवाचकातरंदृष्ट्वाभ यभीतिविभंजनः ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ माभैर्ब्रह्मन्हेसुराश्चभयंकिंवोमयिस्थिते ॥ दास्यामिलक्ष्मीमचलांपरमैश्वर्यवर्धिनीम् ॥ २५ ॥ किंचमद्वचनंकिंचिच्छ्रूयतांसमयोचितम् ॥ हितंसत्यंसारभूतंपरिणामसुखावहम् ॥ २६ ॥ जनाश्चाऽसंख्यविश्वस्थामदधिनाश्चसंततम् ॥ यथातथा ऽहंमद्भक्तपराधीनोऽस्वतंत्रकः ॥ २७ ॥ यंयंरुष्टोहिमद्भक्तोमत्परोहिनिरंकुशः ॥ तद्गृहेऽहंनतिष्ठामिपद्मयासहनिश्चितम् ॥ २८ ॥ दुर्वासाःशंकरांशश्चवै ष्णवोमत्परायणः ॥ तच्छापादागतोऽहंचसलक्ष्मीकोहिवोगृहात् ॥ २९ ॥ यत्रशंखध्वनिर्नास्तितुलसीनशिवार्चनम् ॥ नभोजनंचविप्राणांनपद्मातत्र तिष्ठति ॥ ३० ॥ मद्भक्तानांचमेनिंदायत्रब्रह्मन्भवेत्सुराः ॥ महारुष्टामहालक्ष्मीस्ततोयातिपराभवम् ॥ ३१ ॥ मद्भक्तिहीनोयोमूढोभुंक्तेयोहरिवासरे ॥ ममजन्मदिनेवापियातिश्रीस्तद्गृहादपि ॥ ३२ ॥ मन्नामविक्रयीयश्चविक्रीणातिस्वकन्यकाम् ॥ यत्राऽतिथिर्नभुंक्तेचमत्प्रियायातितद्गृहात् ॥ ३३ ॥

॥ २७ ॥ मेरे भक्त निरंकुश हैं वह जिस जिसपर रुष्ट होंगे मैं लक्ष्मीके सहित उनके यहां स्थित नहीं रहता हूं ॥ २८ ॥ दुर्वासा शंकरांश वैष्णव मेरे परमभक्त हैं उनके शापसे मैं तुम्हारे घरसे लक्ष्मीसहित चलाआया हूं ॥ २९ ॥ जहां शंख ध्वनि नहीं है तुलसी और शिव शिवार्चन नहीं है तथा जहां ब्राह्मणभोजन नहीं होता वहां लक्ष्मी नहीं रहती ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन्! जहां मेरे भक्त और मेरी निन्दा होती है वहां महारुष्ट हो महालक्ष्मी पराभवको प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥ मेरी भक्तिसे हीन होकर जो मूढ हरिवासर एकादशीको भोजन करता है वा मेरे जन्म दिनमें भोजन करता है लक्ष्मी उनके घरसे चली जाती है ॥ ३२ ॥ जो मेरे नामको बेचता

और स्वकन्याको वेचता है तथा जहां अतिथि भोजन नहीं करते मेरी प्रिया उनके घरसे चली जाती है॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण पुंश्चलीका पुत्र है उसका पति महापापी है जो पापियोंके घर जाते हैं तथा जो शूद्रके श्राद्धान्नका भोजन करता है॥३४॥ उसके यहांसे लक्ष्मी रूठकर चली जाती है जो शूद्रोंके शव जलाते हैं वह द्विजाधम भाग्यहीन हैं ॥३५॥हे देवताओ ! उसके गृहसे लक्ष्मी कमलवासिनी चली जाती है जो ब्राह्मण होकर शूद्रोंका सूपकारी तथा जो ब्राह्मण वृषवाही है ॥ ३६ ॥ उनके जलपानके भयसे भी उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है जिसका हृदय अशुद्ध क्रूर जो द्विज हिंसक और निन्दक है ॥ ३७ ॥ तथा जो ब्राह्मण शूद्रयाजी है हे देवी! उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है तथा जो अवीराका अन्न खाता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है॥ ३८॥ जो नखूनोंसे तृण छेदन करते वा उनसे जो भूमिको लिखते हैं. जहांसे ब्राह्मण निराश चले जाते हैं उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण सूर्योदयमें भोजन करते हैं जो ब्राह्मण दिनमें शयन करते हैं

योविप्रःपुंश्चलीपुत्रोमहापापीचतत्पतिः ॥ पापिनोयोगृहंयाति शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥ ३४ ॥ महारुष्टाततोयातिमंदिरात्कमलालया ॥ शूद्राणांशवदाहीचभाग्यहीनोद्विजाधमः ॥ ३५ ॥ यातिरुष्टातद्गृहाच्चदेवाःकमलवासिनी ॥ शूद्राणांसूपकारीयोब्राह्मणोवृषवाहकः ॥ ३६ ॥ तत्तोयपानभीताचकमलायातितद्गृहात् ॥ अशुद्धहृदयःक्रूरोहिंसकोनिंदकोद्विजः ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणःशूद्रयाजीचयातिदेवीचतद्गृहात् ॥ अवीरान्नंचयोभुंक्तेतस्माद्यातिजगत्प्रसूः ॥ ३८ ॥ तृणंछिनत्तिनखैरस्तैर्वायोविलिखेन्महीम् ॥ निराशोब्राह्मणोयत्रतद्गृहाद्यातिमत्प्रिया ॥ ३९ ॥ सूर्योदयेद्विजोभुंक्तेदिवास्वापीचब्राह्मणः ॥ दिवामैथुनकारीचयस्तस्माद्यातिमत्प्रिया ॥ ४० ॥ आचारहीनोविप्रोयोयश्चशूद्रप्रतिग्रही ॥ अदीक्षितोहियोमूढस्तस्माद्यातिमत्प्रिया ॥ ४१ ॥ स्निग्धपादश्चनग्नोहियःशेतेज्ञानदुर्बलः ॥ शश्वद्वदतिवाचालोयातिसातद्गृहात्सती ॥४२॥ शिरःस्नातस्तुतैलेनयोऽन्यांगंसमुपस्पृशेत् ॥ स्वांगेचवादयेद्वाद्यंरुष्टासायातितद्गृहात् ॥ ४३ ॥ व्रतोपवासहीनोयःसंध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः ॥ विष्णुभक्तिविहीनस्तुतस्माद्यातिचमत्प्रिया ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणंनिंदयेद्योहितंचयाद्वेष्टिसंततम् ॥ जीवहिंसोदयाहीनोयातिसर्वप्रसूस्ततः ॥ ४५ ॥ यत्रयत्रहरेरर्चाहरेरुत्कीर्तनंतथा ॥ तत्रतिष्ठतिसादेवीसर्वमंगलमंगला ॥ ४६ ॥

तथा जो दिनमें मैथुन करते हैं उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४० ॥ जो ब्राह्मण आचारहीन और शूद्रसे प्रतिग्रह लेता है जो मूढ अदीक्षित है उसके स्थानसे लक्ष्मी चली जाती है॥ ४१ ॥ जो ज्ञानहीन गीले पैरसे नंगा होकर सोता है तथा वाचाल और निरन्तर हँसता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४२ ॥ शिरसे तेलसे न्हाया हुआ जो दूसरेका अंग स्पर्श करे तथा जो अपने शरीरमें बाजा बजाता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥४३॥ जो ब्राह्मण व्रत उपवाससे हीन और संध्यासे हीन अशुचि है तथा जो विष्णुभक्तिसे हीन है. उसके स्थानमें मेरी प्रिया नहीं रहती॥४४॥जो ब्राह्मणकी निन्दा करता और निरन्तर उनसे द्वेष करता है जो जीवहिंसक दयाहीन है उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥४५॥जहां जहां हरिकी अर्चा और हरिका कीर्त्तन होता है वहाँ २ सर्वमंगला देवी निवास करती है ॥४६॥

हे पितामह ! जहाँ कृष्ण और उनके भक्तोंकी प्रशंसा है वहां कृष्णप्रिया देवी निरन्तर निवास करती है ॥ ४७ ॥ जहां शंख, शंख ध्वनि, शालिग्राम, तुलसीदल तथा भगवान्‌की सेवा, वंदन, ध्यान है वहां कमला निवास करती है ॥ ४८ ॥ जहां शिवलिंगार्चन और उनका सुन्दर कीर्त्तन है तथा दुर्गाका अर्चन और उनके गुणोंका गान है वहां लक्ष्मी निवास करती है ॥ ४९ ॥ जहां ब्राह्मणोंका सेवन और उनका भोजन है जहां सब देवोंका अर्चन है वहां लक्ष्मी निवास करती है ॥ ५० ॥ सब देवताओंसे ऐसा कहकर रमापतिने लक्ष्मीसे कहा कि, तुम अपनी कलासे क्षीरसागरमें जन्म लो ॥ ५१ ॥ जगन्नाथ इसप्रकार कहकर फिर ब्रह्मासे बोले कि, सागरसे लक्ष्मी मथन कर देवताओंको दो ॥ ५२ ॥ हे मुने ! कमलाकान्त यह कहकर अन्तःपुरमें चले गये देवता भी तत्काल क्षीरसागरको गये ॥ ५३ ॥ कूर्मको

यत्रप्रशंसाकृष्णस्यतद्भक्तस्यापितामह ॥ साचकृष्णप्रियादेवीतत्रतिष्ठतिसंततम् ॥ ४७ ॥ यत्रशंखध्वनिःशंखःशिलाचतुलसीदलम् ॥ तत्सेवावंदनंध्यानंतत्रसापरितिष्ठति ॥ ४८ ॥ शिवलिंगार्चनंयत्रतस्यचोत्कीर्तनंशुभम् ॥ दुर्गार्चनंतद्गुणाश्चतत्रपद्मनिवासिनी ॥ ४९ ॥ विप्राणांसेवनंयत्रतेषांचभोजनंशुभम्॥अर्चनंसर्वदेवानांतत्रपद्ममुखीसती॥५०॥इत्युक्त्वाचसुरान्सर्वान्रमामाहरमापतिः॥क्षीरोदसागरेजन्मकलयाऽऽकलयेतिच ॥५१॥ इत्युक्त्वातांजगन्नाथोब्रह्माणंपुनराहच ॥ मथित्वासागरंलक्ष्मींदेवेभ्योदेहिपद्मज ॥ ५२ ॥ इत्युक्त्वाकमलाकांतोजगामांतःपुरंमुने ॥ देवाश्चिरेणकालेनययुःक्षीरोदसागरम् ॥ ५३ ॥ मंथानंमंदरंकृत्वाकूर्मंकृत्वाचभाजनम् ॥ कृत्वाशेषंमंथपाशंममंथुरसुराःसुराः ॥ ५४ ॥ धन्वंतरिंचपीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम् ॥नानारत्नंहस्तिरत्नंप्रापुर्लक्ष्मींसुदर्शनम् ॥ ५५ ॥ वनमालांददौसाचक्षीरोदशायिनेमुने ॥ सर्वेश्वरायरम्यायविष्णवेवैष्णवीसती ॥५६॥ देवैःस्तुतापूजिताचब्रह्मणाशंकरेणच॥ददौदृष्टिंसुरगृहेब्रह्मशापविमोचनात्॥५७॥प्रापुर्देवाःस्वविषयंदैत्यग्रस्तंभयंकरम् ॥ महालक्ष्मीप्रसादेनवरदानेननारद॥५८॥इत्येवंकथितंसर्वंलक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम्॥सुखदंसारभूतंचकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि॥५९॥इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेएकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

भाजन कर और मंदरको मंथन करके और शेषको मंथपाश करके सुर असुरोंने सागरमंथन किया ॥५४॥ धन्वन्तरि, अमृत, उच्चैःश्रवा, अनेक रत्न, ऐरावत हाथी सुदर्शन, लक्ष्मी उसमेंसे निर्गत हुई ॥५५॥ हे मुने ! उन्होंने क्षीरोदशायीके निमित्त वनमाला दी जो विष्णु सर्वेश्वर अति मनोहर हैं उनहीको वैष्णवी सतीने माला दी॥ ॥ ५६ ॥ फिर देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो वह ब्रह्मा और शंकरसे पूजित हुई और ब्रह्माके शाप मुक्त होनेसे उन्होंने देवताओंके स्थानमें दृष्टि दी॥ ५७॥ तब देवताओंने दैत्योंसे भयंकर ग्रसित अपने विषय (राज्य) को पाया हे नारद ! महालक्ष्मीके प्रसाद और वरदानसे ॥ ५८ ॥ राज्य पाया यह सब तुमसे लक्ष्मीका उपाख्यान कहा यह सुखदायक सारभूत है अब आपकी क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

नारदजी बोले हे भगवन् ! हरिका उत्कीर्तन और उनका ज्ञान श्रवण किया और लक्ष्मीका उपाख्यान भी सुना. हे प्रभो ! अब उनका स्तोत्र कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले इन्द्र तीर्थमें स्नानकर धुले वस्त्र पहरकर क्षीरसागरमें घट स्थापन कर छःदेवताओंका पूजन करता हुआ ॥ २ ॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा इनको भक्तिपूर्वक पुष्प गंधादिसे अर्चनकर ॥ ३ ॥ परमैश्वर्यरूपिणी लक्ष्मीका आवाहन कर देवेश ब्रह्मा और अपने पुरोहितके सहित पूजा करते हुए ॥ ४ ॥ मुनि ब्राह्मण हरि गुरु इनके आगे स्थित होने में तथा ज्ञानानन्द शिव और देवादिके सुदेशमें स्थित होनेसे ॥ ५ ॥ चन्दनसे सिक्त पारिजातका फूल ग्रहण करनेपर महालक्ष्मी देवीका ध्यान करके हे नारद ! उनका पूजन किया ॥ ६ ॥ जो प्रथम ब्रह्माजीको हरिने सामवेदोक्त लक्ष्मीका ध्यान कहा था वही ध्यान किया सुनिये मैं वह ध्यान आपसे

नारदउवाच ॥ ॥ हरेरुत्कीर्तनंभद्रंश्रुतंतज्ज्ञानमुत्तमम् ॥ ईप्सितंलक्ष्म्युपाख्यानंध्यानंस्तोत्रंवदप्रभो ॥ १ ॥ नारायणउवाच ॥ स्नात्वातीर्थेपुराशक्रोधृत्वाधौतेचवाससी ॥ घटंसंस्थाप्यक्षीरोदेषड्देवान्पर्यपूजयत् ॥ २ ॥ गणेशंचदिनेशंचवह्निंविष्णुंशिवंशिवाम् ॥ एतान्भक्त्यासमभ्यर्च्यपुष्पगंधादिभिस्तदा ॥ ३ ॥ आवाह्यचमहालक्ष्मींपरमैश्वर्यरूपिणीम् ॥ पूजांचकारदेवेशोब्रह्मणाचपुरोधसा ॥ ४ ॥ पुरःस्थितेषुमुनिषुब्राह्मणेषुगुरोर्हरौ ॥ देवादिषुसुदेशेचज्ञानानंदेशिवेमुने ॥ ५ ॥ पारिजातस्यपुष्पंचगृहीत्वाचंदनोक्षितम् ॥ ध्यात्वादेवींमहालक्ष्मींपूजयामासनारद ॥ ६ ॥ ध्यानंचसामवेदोक्तंयद्दत्तंब्रह्मणेपुरा ॥ हरिणातेनध्यानेनतन्निबोधवदामिते ॥ ७ ॥ सहस्रदलपद्मस्थकर्णिकावासिनींपराम् ॥ शरत्पार्वणकोटींदुप्रभामुष्टिकरांपराम् ॥ ८ ॥ स्वतेजसाप्रज्वलंतींसुखदृश्यांमनोहराम् ॥ प्रतप्तकांचननिभशोभांमूर्तिमतींसतीम् ॥ ९ ॥ रत्नभूषणभूषाढ्यांशोभितांपीतवाससा ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ १० ॥ सर्वसंपत्प्रदात्रींचमहालक्ष्मींभजेशुभाम् ॥ ध्यानेनाऽनेनतांध्यात्वानानागुणसमन्विताम् ॥ ॥ ११ ॥ संपूज्यब्रह्मवाक्येनचोपचाराणिषोडश ॥ ददौभक्त्याविधानेनप्रत्येकंमंत्रपूर्वकम् ॥ १२ ॥ प्रशस्तानिप्रकृष्टानिवराणिविविधानिच ॥ अमूल्यरत्नसारंचनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ १३ ॥

कहता हूं ॥ ७ ॥ सहस्रदल कमलकी कर्णिकामें निवास करनेवाली शरत्पूर्णिमाके कोटिचन्द्रकी प्रभाको तिरस्कार करनेवाली ॥ ८ ॥ अपने तेजसे प्रज्वलित सुखदृश्या मनोहर तपे सुवर्णके समान शोभावाली मूर्तिमती सती ॥ ९ ॥ रत्नभूषणोंकी शोभासे पूर्ण पीतवस्त्रसे शोभित कुछ हास्यसे प्रसन्नमुखी निरन्तर स्थिर यौवनवाली ॥ १० ॥ सब सम्पत्तिकी देनेवाली शुभ महालक्ष्मीका भजन करता हूं इस ध्यानसे उन अनेक गुणसम्पन्नका ध्यान करके ॥ ११ ॥ और सोलह उपचारसे ब्रह्मवाक्यसे पूजन कर प्रत्येक पदार्थको मंत्रपूर्वक भक्तिविधानसे दिया ॥ १२ ॥ प्रशस्त और प्रकृष्ट अनेक प्रकारके श्रेष्ठ पदार्थ अमूल्य रत्नसार जो

ब्रह्माजीके बनाये हैं ॥ १३ ॥ और विचित्र आसन हे महालक्ष्मी ! ग्रहण करो और यह सबसे वंदित मनोहर शुद्ध गंगाजल है ॥ १४ ॥ यह पापरूपी ईंधनके जलानेको अग्निरूप है. हे लक्ष्मी ! इसको ग्रहण करो. यह पुष्प चंदन दूर्वादिसे संयुक्त जाह्नवी जल है ॥ १५ ॥ और इस शंखमें स्थित अर्घ्यको हे कमललोचनी ! ग्रहण करो सुगंधित पुष्पका तेल और सुगंधित आमला ॥ १६ ॥ हे हरिप्रिये ! इस देहकी सुन्दरताके बीजको ग्रहण करो. हे देवी ! यह सूती और रेशमी वस्त्र ग्रहण करो ॥ १७ ॥ रत्न और सुवर्णके गहने देहकी शोभा बढानेवाले हैं यह श्रीकररत्न शोभाके निमित्त हैं हे देवि ! इनको ग्रहण करो ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण सुन्दरताके बीज और सब शोभा करनेवाले वृक्षकी निर्यासरूप गंध ग्रहण करो ॥ १९ ॥ हे कृष्ण कांते ! यह पवित्र धूप ग्रहण करो यह सुगंधियुक्त सुखद चंदन है इसको ग्रहण करो

आसनंचविचित्रंचमहालक्ष्मिप्रगृह्यताम् ॥ शुद्धंगंगोदकमिदंसर्ववंदितमीप्सितम् ॥ १४ ॥ पापेध्मवह्निरूपंचगृह्यतांकमलालये ॥ पुष्पचंदनदूर्वादिसंयुतंजाह्नवीजलम् ॥ १५ ॥ शंखगर्भस्थितंस्वर्घ्यंगृह्यतांपद्मवासिनि ॥ सुगंधिपुष्पतैलंचसुगंधामलकीफलम् ॥ १६ ॥ देहसौंदर्यबीजंचगृह्यतांश्रीहरेःप्रिये ॥ कार्पासजंचकृमिजंवसनंदेविगृह्यताम् ॥ १७ ॥ रत्नस्वर्णविकारंचदेहभूषाविवर्धनम् ॥ शोभायैश्रीकररत्नंभूषणंदेविगृह्यताम् ॥ १८ ॥ सर्वसौंदर्यबीजंचसद्यःशोभाकरंपरम् ॥ वृक्षनिर्यासरूपंचगंधद्रव्यादिसंयुतम् ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णकांतेधूपंचपवित्रंप्रतिगृह्यताम् ॥ सुगंधियुक्तंसुखदंचंदनंदेविगृह्यताम् ॥ २० ॥ जगच्चक्षुःस्वरूपंचपवित्रंतिमिरापहम् ॥ प्रदीपंसुखरूपंचगृह्यतांचसुरेश्वरि ॥ २१ ॥ नानोपहाररूपंचनानारससमन्वितम् ॥ अतिस्वादुकरंचैवनैवेद्यंप्रतिगृह्यताम् ॥ २२ ॥ अन्नंब्रह्मस्वरूपंचप्राणरक्षणकारणम् ॥ तुष्टिदंपुष्टिदंचैवदेव्यन्नंप्रतिगृह्यताम् ॥ २३ ॥ शाल्यन्नजंसुपक्वंचशर्करागव्यसंयुतम् ॥ स्वादुयुक्तंमहालक्ष्मीःपरमान्नंप्रगृह्यताम् ॥ २४ ॥ शर्करागव्यपक्वंचसुस्वादुसुमनोहरम् ॥ मया निवेदितंभक्त्यास्वस्तिकंप्रतिगृह्यताम् ॥ २५ ॥ नानाविधानिरम्याणिपक्वान्नानिफलानिच ॥ सुरभिस्तनसंत्यक्तंसुस्वादुसुमनोहरम् ॥ २६ ॥ मर्त्यामृतंसुगव्यंचगृह्यतामच्युतप्रिये ॥ सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ अग्निपक्वमतिस्वादुगुडंचप्रतिगृह्यताम् ॥ यवगोधूमसस्यानांचूर्णरेणुसमुद्भवम् ॥ २८ ॥

॥ २० ॥ यह जगत्के चक्षुःस्वरूप पवित्र अंधकारनाशक सुखरूप दीपक हे सुरेश्वरि ! ग्रहण करो ॥ २१ ॥ अनेक उपहाररूप अनेक रससे सम्पन्न अति स्वादिष्ठ नैवेद्य ग्रहण करो ॥ २२ ॥ यह अन्न ब्रह्मस्वरूप प्राणरक्षणका कारण है. हे देवि ! इस तुष्टि और पुष्टि देनेवालेको ग्रहण करो ॥ २३ ॥ शालि अन्नसे बनाई खीर शर्करा और दूधघृतयुक्त है हे महालक्ष्मी ! यह परम स्वादिष्ठ है इसको ग्रहण करो ॥ २४ ॥ शर्करा दूधमें पक्व सुस्वादिष्ठ मनोहर मेरा निवेदित यह स्वस्तिक अन्न ग्रहण करो ॥ २५ ॥ और भी अनेक प्रकारके पक्व मधुर अन्न मनोहर सुरभीके स्तनसे निकला स्वादिष्ठ ॥ २६ ॥ मनुष्योंका अमृतस्वरूप दूध घृतादि हे अच्युतप्रिये ! ग्रहण करो. अच्छे स्वादिष्ठ रससे संयुक्त गन्नेके रससे प्रगट ॥ २७ ॥ अग्निमें पक्व अति स्वादिष्ठ गुड ग्रहण करो एवं गोधूम सस्योंका चूर्ण ॥ २८ ॥

सुपक गुड और गव्यसे युक्त मिष्टान्न ग्रहण करो सस्यचूर्णोद्भव पक्व स्वस्तिकादिसे युक्त ॥ २९ ॥ यह मेरे दिये नैवेद्यको भक्तिपूर्वक ग्रहण करो शीत वायुका करनेवाला और दाहमें भी परम सुखकारी ॥ ३० ॥ हे कमले देवि ! यह व्यजन और श्वेतचमर आप ग्रहण करो मनोहर ताम्बूल कर्पूरादिसे सुवासित ॥ ३१ ॥ जिह्वाकी जडताका छेदकारी ताम्बूल ग्रहण करो सुवासित सुशीतल प्यासका नाशक ॥ ३२ ॥ जगत्‌काजीवनरूप जल हे देवि ! ग्रहण करो. देहकी सुन्दरताका बीज सदा शोभाका बढानेवाला ॥ ३३ ॥ कपास और रेश्मी वस्त्र हे देवि ! ग्रहण करो. यह स्वर्णविकार रत्न देहकी शोभा बढानेवाले ॥ ३४ ॥ शोभाधारक श्रीकरभूषण हे देवि ! ग्रहण करो अनेक ऋतुओंमें निर्मित बहु शोभाकारी ॥ ३५ ॥ सुरभूप प्रियमाला हे देवि ! ग्रहण करो शुद्धिदायक शुद्धरूप सब मंगलका मंगलरूप ॥ ३६ ॥ गन्ध

सुपक्वंगुडगव्याक्तंमिष्टान्नंदेविगृह्यताम् ॥ सस्यचूर्णोद्भवंपक्वंस्वस्तिकादिसमन्वितम् ॥ २९ ॥ मयानिवेदितंभक्त्यानैवेद्यंप्रतिगृह्यताम् ॥ शीतवायुप्रदंचैवदाहेचसुखदंपरम् ॥ ३० ॥ कमलगृह्यतांचेदंव्यजनंश्वेतचामरम् ॥ तांबूलंचवरंरम्यंकर्पूरादिसुवासितम् ॥ ३१ ॥ जिह्वाजाड्यच्छेदकरंतांबूलंप्रतिगृह्यताम् ॥ सुवासितंसुशीतंचपिपासानाशकारणम् ॥ ३२ ॥ जगज्जीवनरूपंचजीवनंदेविगृह्यताम् ॥ देहसौंदर्यबीजंचसदाशोभाविवर्धनम् ॥ ३३ ॥ कार्पासजंचकृमिजंवसनंदेविगृह्यताम् ॥ रत्नस्वर्णविकारंचदेहभूषादिवर्धनम् ॥ ३४ ॥ शोभाधारंश्रीकरंचभूषणंदेविगृह्यताम् ॥ नानाऋतुपुनिर्माणंबहुशोभाश्रयंपरम् ॥ ३५ ॥ सुरभूपप्रियंशुद्धंमाल्यंदेविप्रगृह्यताम् ॥ शुद्धिदंशुद्धरूपंचसर्वमंगलमंगलम् ॥ ३६ ॥ गंधवस्तूद्भवंरम्यंगंधंदेविप्रगृह्यताम् ॥ पुण्यतीर्थोदकंचैवविशुद्धंशुद्धिदंसदा ॥ ३७ ॥ गृह्यतांकृष्णकांतेत्वंरम्यमाचमनीयकम् ॥ रत्नसारादिनिर्माणंपुष्पचंदनचर्चितम् ॥ ३८ ॥ वस्त्रभूषणभूषाढ्यंसुतल्पंदेविगृह्यताम् ॥ यद्यद्द्रव्यमपूर्वंचपृथिव्यामपिदुर्लभम् ॥ ३९ ॥ देवभूषार्हभोग्यंचतद्द्रव्यंदेविगृह्यताम् ॥ द्रव्याण्येतानिदत्त्वाचमूलेनदेवपुंगवः ॥ ४० ॥ मूलंजजापभक्त्याचदशलक्षंविधानतः ॥ जपेनदशलक्षेणमंत्रसिद्धिर्बभूवह ॥ ४१ ॥ मंत्रश्चब्रह्मणादत्तःकल्पवृक्षश्चसर्वतः ॥ लक्ष्मीमायाकामवाणीङेंताकमलवासिनी ॥ ४२ ॥ वैदिकोमंत्रराजोऽयंप्रसिद्धःस्वाहयाऽन्वितः ॥ कुबेरोऽनेनमंत्रेणपरमैश्वर्यमाप्तवान् ॥ ४३ ॥

वस्तुओंका उद्भव परम मनोहर गंध हेदेवि ! ग्रहण करो. पुण्यतीर्थका जल विशुद्ध और शुद्धिका देनेवाला है ॥ ३७ ॥ हे कृष्णकान्ते ! यह मनोहर आचमन ग्रहण करो रत्नसारादिसे निर्मित पुष्प चन्दनसे चर्चित ॥ ३८ ॥ वस्त्र भूषणोंसे भूषित शय्याको ग्रहण करो जो जो द्रव्य अपूर्व है और पृथ्वीमें अपूर्व है ॥ ३९ ॥ देवभूषणके योग्य हे देवि ! उन उन भूषणोंको ग्रहण करो. हे देवपुंगव ! मूलमंत्रसे इन द्रव्योंको देकर ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक भक्तिसे दशलक्ष मंत्रका जप करै दश लाख जपसे मंत्र सिद्धि होती है ॥ ४१ ॥ ब्रह्माका दिया मंत्र सबप्रकार कल्पवृक्ष होता है लक्ष्मी श्रीबीज मायाबीज कामबीज वाणीबीज इनका उच्चारण कर चतुर्थीविभक्ति लगावै अर्थात् "कमलवासिन्यै स्वाहा" ॥ ४२ ॥ यह वैदिक मंत्रराज है और प्रसिद्ध है इसी मंत्रसे कुबेरने परमऐश्वर्य पाया था ॥ ४३ ॥

राज राजराजेश्वर दक्ष सावर्णि मनु इसी मंगलदायक मंत्रसे सप्तद्वीपावसुमतीके पति हुए॥ ४४॥ प्रियव्रत उत्तानपाद केदार नृपति हेनारद! यह राजेन्द्र इसी मंत्रके प्रभावसे सिद्ध थे॥ ४५॥ मंत्रसिद्ध होनेपर महालक्ष्मीने इन्द्रको दर्शन दिया वह वर देनेको रत्नोंकेसारके सिंहासनपर स्थित होकर आईं॥ ४६॥ जिनकी कान्तिसे सात द्वीपकी वसुमति आच्छादित होती थीं वह श्वेत चम्पेके वर्णवाली रत्न भूषणोंसे भूषित ॥ ४७ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्न मुखी भक्तोंके अनुग्रहसे कातर हुई कोटिचन्द्रमाके समान कांतिवाली रत्न मालाको धारण करती ॥ ४८ ॥ जगन्माताका दर्शन कर इन्द्र उनको सन्तुष्ट करने लगे उनका सब अंग पुलकितनेत्रोंमें जलभरि आया हाथ जोडे

राजराजेश्वरोदक्षःसावर्णिर्मनुरेवच ॥ मंगलोऽनेनमंत्रेणसप्तद्वीपेऽवनीपतिः ॥ ४४ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौकेदारोनृपएवच ॥ एतेसिद्धाश्चराजेंद्रामंत्रेणानेन नारद ॥ ४५ ॥ सिद्धेमंत्रेमहालक्ष्मीःशक्रायदर्शनंददौ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानस्थवरप्रदा ॥ ४६ ॥ सप्तद्वीपवतींपृथ्वींछादयंतीत्विषाचसा ॥ श्वेतचंपकवर्णाभारत्नभूषणभूषिता ॥ ४७ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्याभक्तानुग्रहकातरा ॥ बिभ्रतीरत्नमालांचकोटिचंद्रसमप्रभाम् ॥ ४८॥ दृष्ट्वाजगत्प्रसूंशांतांतुष्टावेतांपुरंदरः ॥ पुलकांचितसर्वांगःसाश्रुनेत्रःकृतांजलिः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणाचप्रदत्तेनस्तोत्रराजेनसंयुतः ॥ सर्वाभीष्टप्रदेनैववैदिकेनैवतत्रच ॥ ५० ॥ पुरंदरउवाच ॥ नमःकमलवासिन्यैनारायण्यैनमोनमः ॥ कृष्णप्रियायैसततंमहालक्ष्म्यैनमोनमः ॥ ५१ ॥ पद्मपत्रेक्षणायैचपद्मास्यायैनमोनमः ॥ पद्मासनायैपद्मिन्यैवैष्णव्यैचनमोनमः ॥ ५२ ॥ सर्वसंपत्स्वरूपिण्यैसर्वाराध्यैनमोनमः ॥ हरिभक्तिप्रदात्र्यैचहर्षदात्र्यैनमोनमः ॥ ५३ ॥ कृष्णवक्षःस्थितायैचकृष्णेशायैनमोनमः ॥ चंद्रशोभास्वरूपायैरत्नपद्मेचशोभने ॥ ५४ ॥ संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यैमहादेव्यैनमोनमः ॥ नमोवृद्धिस्वरूपायैवृद्धिदायैनमोनमः ॥ ५५ ॥

॥ ४९ ॥ ब्रह्माके दिये स्तोत्रराजसे जो सर्वाभीष्ट प्रद वैदिक है स्तुति करने लगे ॥ ५० ॥ इन्द्र बोले कमलवासिनी नारायणी कृष्णप्रिया महालक्ष्मीको निरन्तर नमस्कार है ॥ ५१ ॥ कमललोचनी कमलमुखी पद्मासना पद्मिनी वैष्णवीके निमित्त प्रणाम है ॥ ५२ ॥ सर्व सम्पत्स्वरूपिणी सर्वाराधिनी हरिभक्ति और हर्ष दायिनीको प्रणामहै ॥ ५३ ॥ कृष्णके वक्षस्थलमें स्थित कृष्णेशी चन्द्र शोभा स्वरूपिणीरत्नपद्मा शोभना ॥ ५४ ॥ सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी वृद्धिरूपा वृद्धिदायीको

नित्य प्रणाम है ॥ ५५ ॥ जो महालक्ष्मी वैकुंठ क्षीरसागर स्वर्ग इन्द्रके घरमें और राजोंके स्थानमें है॥ ५६ ॥ जो गृहस्थियोंके घरकी लक्ष्मी गृह देवता है जो सागरमें प्रगट हुई सुरभी दक्षिणा और यज्ञकामिनी है ॥ ५७ ॥ तुमही अदिति देवमाता कमला कमलालया हवि देनेमें स्वाहा और कव्यदानमें स्वधा हो ॥ ५८ ॥ तुमही विष्णुस्वरूपिणी सर्वाधारा वसुंधरा हो शुद्ध सत्वस्वरूपा नारायणपरायणी हो ॥ ५९ ॥ क्रोध हिंसासे वर्जित वरदायक शारदा शुभा हो तुमही परमार्थदायिनी हरिका दासत्व देनेवाली ॥ ६० ॥ जिसके विना यह सब जगत् भस्मीभूत और असार है और जिसके विना यह सब विश्व जीताहुआही मृत है ॥ ॥ ६१ ॥ वह सबकी परामाता सबकी बंधुस्वरूपिणी तथा धर्म अर्थ काम मोक्षकी कारणरूपिणी तुमही हो ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार माता दूध पीनेवाले बालकोंकी

वैकुंठेयामहालक्ष्मीर्यालक्ष्मीःक्षीरसागरे ॥ स्वर्गलक्ष्मीरिंद्रगेहेराजलक्ष्मीर्नृपालये ॥ ५६ ॥ गृहलक्ष्मीश्वगृहिणांगेहेचगृहदेवता ॥ सुरभिःसागरेजाता दक्षिणायज्ञकामिनी ॥ ५७ ॥ अदितिर्देवमातात्वंकमलाकमलालया ॥ स्वाहात्वंचहविर्दानेकव्यदानेस्वधास्मृता ॥ ५८ ॥ त्वंहिविष्णुस्वरूपाचसर्वाधारावसुंधरा ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपात्वंनारायणपरायणा ॥ ५९ ॥ क्रोधहिंसावर्जिताचवरदाशारदाशुभा ॥ परमार्थप्रदात्वंचहरिदास्यप्रदापरा ॥ ६० ॥ ययाविनाजगत्सर्वंभस्मीभूतमसारकम् ॥ जीवन्मृतंचविश्वंचशश्वत्सर्वंययाविना ॥६१॥ सर्वेषांचपरामातासर्वबांधवरूपिणी॥धर्मार्थकाममोक्षाणांत्वंचकारणरूपिणी॥६२॥यथामातास्तनांधानांशिशूनांशैशवेसदा॥तथात्वंसर्वदामातासर्वेषांसर्वरूपतः॥६३॥मातृहीनःस्तनांधस्तुसचजीवतिदैवतः॥ त्वयाहीनो जनःकोऽपिनजीवत्येवनिश्चितम्॥६४॥ सुप्रसन्नःस्वरूपात्वंमांप्रसन्नाभवांबिके ॥वैरिग्रस्तंचविषयंदेहिमह्यंसनातनि ॥६५॥अहंयावत्त्वयाहीनोबंधुहीनश्च भिक्षुकः॥सर्वसंपद्विहीनश्चतावदेवहरिप्रिये ॥ ६६॥ ज्ञानंदेहिचधर्मंचसर्वसौभाग्यमीप्सितम् ॥ प्रभावंचप्रतापंचसर्वाधिकारमेवच ॥६७॥ जयंपराक्रमंयुद्धेपरमैश्वर्यमेवच ॥ इत्युक्त्वाचमहेंद्रश्चसर्वैःसुरगणैःसह ॥ ६८ ॥ प्रणनामसाश्रुनेत्रोमूर्ध्नाचैवपुनःपुनः ॥ ब्रह्माचशंकरश्चैवशेषोधर्मश्चकेशवः ॥ ६९ ॥ सर्वेचक्रुःपरीहारंसुरार्थेचपुनःपुनः ॥ देवेभ्यश्ववरंदत्त्वापुष्पमालांमनोहराम् ॥ ७० ॥

बालकपनमें रक्षाकरती है हे माता ! इसीप्रकार तुम सबकी सर्वरूपसे रक्षाकरती हो ॥ ६३ ॥ चाहै मातासे पृथक् हुआ दुधारीबालक दैववश जीवित होजाय परन्तु तुम्हारे विना कोई जीवित नहीं रहसकता यह सत्य है ॥६४॥ हे अम्बिके ! प्रसन्न स्वरूपिणी तुम हमसे प्रसन्न हो. हे सनातनि ! हमारे वैरियोंके ग्रसे देशको हमें दीजिये ॥ ६५ ॥ जबतक मैं तुमसे हीन हूं तबतक बंधुहीन भिक्षुक हूं हेहरिप्रिये ! तबहीतक सब सम्पत्तिसे हीन हूं ॥ ६६ ॥ ज्ञान धर्म और ईप्सित सौभाग्य मुझको दीजिये प्रभाव प्रताप और सब अधिकार दीजिये ॥ ६७ ॥ युद्धमें जय पराक्रम तथा परम ऐश्वर्य दो ऐसा कहकर महेन्द्रने सब देवताओंके सहित ॥ ६८ ॥ नेत्रोंमें जलभर वारंवार शिरसे प्रणाम किया ब्रह्मा शंकर शेष धर्म केशव ॥६९॥ यह सबही देवताओंके निमित्त प्रार्थना करते हुए तब देवताओंको वर और मनोहर पुष्पमाला॥ ७०॥

संतुष्ट होकर देवताओंकी सभामें केशवको देतीहुई हे नारद ! तब सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो अपने २ स्थानको गये ॥ ७१ ॥ और देवीभी प्रसन्न हो क्षीरोदशायीके स्थानको गईं. हे नारद ! ब्रह्मा और शिवभी अपने स्थानोंको गये ॥ ७२॥ यह दोनों प्रेमसे देवताओंको शुभ आशिर्वाद देकर गये इस महापवित्र स्तोत्रको जो तीनों संध्याओंमें पढता है ॥ ७३ ॥ वह कुवेरतुल्य महान् राजराजेश्वर होता है पांचलाख जपनेसे मनुष्योंको स्तोत्र सिद्धि होजाती है॥ ७४॥ इस सिद्धस्तोत्रको जो एकमास निरन्तर पाठकरताहै वह राजेन्द्र महासुखी होगा इसमें सन्देह नहीं॥ ७५॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

केशवायददौलक्ष्मीःसंतुष्टासुरसंसदि ॥ ययुर्देवाश्चसंतुष्टाःस्वंस्वंस्थानंचनारद ॥ ७१ ॥ देवीययौहरेःस्थानंहृष्टाक्षीरोदशायिनः ॥ ययतुश्चैवस्वगृहंब्रह्मेशानौचनारद ॥ ७२ ॥ दत्त्वाशुभाशिषंतौचदेवेभ्यःप्रीतिपूर्वकम् ॥ इदंस्तोत्रंमहापुण्यंत्रिसंध्यंयःपठेन्नरः ॥ ७३ ॥ कुवेरतुल्यःसभवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥ पंचलक्षजपेनैवस्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ७४ ॥ सिद्धस्तोत्रंयदिपठेन्मासमेकंतुसंततम् ॥ महासुखीचराजेंद्रोभविष्यतिनसंशयः ॥ ७५ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ नारदउवाच ॥ नारायणमहाभागनारायणसमप्रभो ॥ रूपेणैवगुणेनैवयशसातेजसात्विषा ॥ १ ॥ त्वमेवज्ञानिनांश्रेष्ठःसिद्धानांयोगिनांमुने ॥ तपस्विनांमुनीनांचपरोवेदविदांवरः ॥ २ ॥ महालक्ष्म्याउपाख्यानंविज्ञातंमहदद्भुतम् ॥ अन्यत्किंचिदुपाख्यानंनिगूढंवदसांप्रतम् ॥ ३ ॥ अतीवगोपनीयंयदुपयुक्तंचसर्वतः ॥ अप्रकाश्यंपुराणेषुवेदोक्तंधर्मसंयुतम् ॥ ४ ॥ नारायणउवाच ॥ नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यंपुराणतः ॥ श्रुतंकतिविधंगूढमास्तेब्रह्मन्सुदुर्लभम् ॥ ५ ॥ तेषुयत्सारभूतंचश्रोतुंकिंवात्वमिच्छसि ॥ तन्मेब्रूहिमहाभागपश्चाद्वक्ष्यामितत्पुनः ॥ ६ ॥ नारदउवाच ॥ स्वाहादेवीहविर्दानेप्रशस्तासर्वकर्मसु ॥ पितृदानेस्वधाशस्तादक्षिणासर्वतोवरा ॥ ७॥

नारदजी बोले हे महाभाग हे नारायणसम हे प्रभो ! तुम रूप गुण यश तेजमें नारायण ॥ १ ॥ हो. हे मुने! आप ज्ञानी सिद्ध और योगियोंमें श्रेष्ठ हो तुम तपस्विमुनियोंमें परे वेदविदाम्वर हो ॥ २ ॥ मैंने महालक्ष्मीका महाअद्भुत आख्यान जाना अब और भी कोई निगूढ उपाख्यान कहिये ॥३॥ जो अधिकही गोपनीय और सबके उपयोगी हो जो पुराणोंमें अप्रकाश्य और वेदोक्त धर्मसंयुक्त हो ॥ ४ ॥ नारायण बोले पुराणोंमें अनेक प्रकारके आख्यान अप्रकाशित हैं वह सुनेहुए अनेक प्रकारसे गूढ हैं ॥५॥ क्या उनमेंके सारभूत आख्यान सुननेकी तुम्हारी इच्छा है वह कितने प्रकारका गूढ तुमने सुना है ॥ ६ ॥ नारदजी बोले हविदानमें स्वाहादेवी सब कर्ममें

प्रशस्त है पितृदानमें स्वधा और सबसे अधिक दक्षिणारूप है ॥ ७ ॥ इनका जन्म चरित फल और प्रधानता हे वेदविदाम्वर ! आपके मुखसे सुनना चाहता हूं ॥ ८ ॥ सूतजी बोले नारदजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ हँसकर पुराणोक्त पुरानी कथा कहने लगे ॥ ९ ॥ नारायण बोले सृष्टिसे प्रथम देवता अपने आहारके निमित्त गये अर्थात् ब्रह्मलोकमें मनोहर ब्रह्मसभामें प्राप्त हुए ॥ १० ॥ हे मुने ! जाकर अपने आहारके निमित्त निवेदन किया यह वार्त्ता सुन प्रतिज्ञाकर ब्रह्माजी श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ नारदजी बोले यज्ञरूप परमात्मा है अर्थात् यह यज्ञ उनकी कलाही है तो यज्ञमें जो ब्राह्मण देवताओंके निमित्त हवि देते हैं क्या देवता उससे तृप्त नहीं होते ॥ १२ ॥ नारायण बोले ब्राह्मण क्षत्रिय जो भक्तिसे हवि देते हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! देवताउस दानको नहीं प्राप्त होते थे वह किसी औरकोही प्राप्त होता था ॥ १३ ॥ तब

एतासांचरितंजन्मफलंप्राधान्यमेवच ॥ श्रोतुमिच्छामित्वद्वक्त्राद्वेदविदांवर ॥ ८॥ सूतउवाच ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वाप्रहस्यमुनिसत्तम ॥ कथांकथितुमारेभेपुराणोक्तांपुरातनीम् ॥ ९ ॥ नारायणउवाच ॥ सृष्टेःप्रथमतोदेवाःस्वाहारार्थययुःपुरा ॥ ब्रह्मलोकंब्रह्मसभामाजग्मुःसुमनोहराम् ॥ १० ॥ गत्वानिवेदनंचक्रुराहारहेतुकंमुने ॥ ब्रह्माश्रुत्वाप्रतिज्ञायनिषेवेश्रीहरिंपरम् ॥ ११ ॥ नारदउवाच ॥ यज्ञरूपोहिभगवान्कलयाचबभूवह ॥ यज्ञेयद्यद्विदानंदत्तंतेभ्यश्चब्राह्मणैः ॥ १२ ॥ नारायणउवाच ॥ हविर्ददतिविप्राश्चभक्त्याचक्षत्रियादयः ॥ सुरानैवप्राप्नुवंतितद्दानंमुनिपुंगव ॥१३॥ देवाविषण्णास्तेसर्वेतत्सभांचययुःपुनः ॥ गत्वानिवेदनंचक्रुराहाराभावहेतुकम् ॥ १४ ॥ ब्रह्माश्रुत्वातुध्यानेनश्रीकृष्णंशरणंययौ ॥ पूजांचकारप्रकृतेर्ध्यानेनैवतदाज्ञया ॥ १५ ॥ प्रकृतेःकलयाचैवसर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ अतीवसुंदरीश्यामारमणीयामनोहरा ॥ १६ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्याभक्तानुग्रहकातरा ॥ उवाचेतिविधेरग्रेपद्मयोनेवरंवृणु ॥ १७ ॥ विधिस्तद्वचनंश्रुत्वासंभ्रमात्समुवाचताम् ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ त्वमग्नेर्दाहिकाशक्तिर्भवयाऽतीवसुंदरी ॥ १८ ॥ दग्धुंनशक्तःप्रकृतीहुताशश्चत्वयाविना ॥ त्वन्नामोच्चार्यमंत्रांतेयोदास्यतिहविर्नरः ॥ १९ ॥

देवता दुःखी होकर ब्रह्माकी सभामें गये और जाकर आहारके निमित्त निवेदन किया॥ १४ ॥ ब्रह्माजी यह सुनकर ध्यानसे श्रीकृष्णकी शरण हुए और उनकी आज्ञासे ध्यानमें प्रकृतिकी पूजाकी ॥ १५ ॥ प्रकृतिकी कलासे वह सर्वशक्तिस्वरूपिणी अतिसुन्दरी नवीनवया रमणीया मनोहरा ॥ १६ ॥ कुछेक हँसीसे प्रसन्नमुखी भक्तों पर अनुग्रह करनेमें तत्पर ब्रह्मासे बोली हे पद्मयोने ! वर मांगो ॥१७॥ विधाता यह वचन सुनकर संभ्रमसे उससेबोले प्रजापति बोले हेसुन्दरि ! तुम अतिशय अग्निकी दाहिका शक्ति हो ॥ १८ ॥ तुम्हारे विना यह भौतिक अग्नि जलानेको समर्थ नहींहोती तुम्हारा नाम उच्चारणकर मंत्रान्तमें जो मनुष्य हवि देगा ॥ १९ ॥

उसको देवता आनंदपूर्वक प्राप्त होंगे वह गृहेश्वरी अग्निकी सम्पत्स्वरूपा और गृहेश्वरीहै॥ २०॥ हेअंबिके ! इसप्रकारसे तुम देवता मनुष्योंकी निरन्तर पूजनीया हो ब्रह्माके वचन सुनकर वह विषण्णवदन हुई ॥ २१ ॥ और स्वयंभूसे अपना अभिप्राय कहनेलगी मैं चिरकालके तपसे श्रीकृष्णका भजन करूंगी ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन्! उनकेविना जो कुछभी है वह भ्रमरूप है वह जगत्के विधाता शंभु मृत्युंजय विभु हैं ॥ २३ ॥ शेषहो विश्वको धारण करते धर्मरूप हो धर्मियोंके साक्षी होते देवताओंमें सबके आद्य पूज्य गणेश्वर हैं ॥ २४ ॥ जिनके प्रसादसे प्रकृति सर्वाद्या और सर्व पूज्य हुई है ऋषि और मुनियोंने सेवापूर्वक जिसको सेवन किया है ॥ २५ ॥ मैं परमभावसे उनके पादपद्मको चिन्तन करती हूं पद्ममुखी पद्मजन्मा ब्रह्मासे यह वचन कहकर भगवानके उद्देश्यसे ॥ २६ ॥ निरामय भगवान् कृष्णके निमित्त तपकरनेको गई

सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवंतिसुराःसानंदपूर्वकम् ॥ अग्नेःसंपत्स्वरूपाचश्रीरूपासागृहेश्वरी ॥ २० ॥ देवानांपूजिताशश्वन्नरादीनांभवांबिके ॥ ब्रह्मणश्चवचः श्रुत्वासाविषण्णावभूवह ॥ २१ ॥ तमुवाचततोदेवीस्वाभिप्रायंस्वयंभुवम् ॥ स्वाहोवाच ॥ अहंकृष्णंभजिष्यामितपसासुचिरेणच ॥ २२ ॥ ब्रह्मंस्तदन्यंयत्किंचित्स्वप्नवद्भ्रममेवच ॥ विधाताजगतस्त्वंचशंभुर्मृत्युंजयोविभुः ॥ २३ ॥ बिभर्तिशेषोविश्वंचधर्मःसाक्षीचधर्मिणाम् ॥ सर्वाद्यपूज्योदेवानांगणेषुचगणेश्वरः ॥ २४ ॥ प्रकृतिःसर्वसंपूज्यायत्प्रसादात्पुराऽभवत् ॥ ऋषयोमुनयश्चैवपूजितायन्निषेवया ॥ २५ ॥ तत्पादपद्मंनियतंभावेनचिंतयाम्यहम् ॥ पद्मास्यापाद्ममित्युक्त्वापद्मनाभानुसारतः ॥ २६ ॥ जगामतपसेदेवीध्यात्वाकृष्णंनिरामयम् ॥ तपस्तेपेवर्षलक्षमेकपादेनपद्मजा ॥ २७ ॥ तदाददर्शश्रीकृष्णंनिर्गुणंप्रकृतेःपरम् ॥ अतीवकमनीयंचरूपंदृष्ट्वाचरूपिणी ॥ २८ ॥ मूर्च्छांसंप्रापकालेनकामेशस्यचकामुकी ॥ विज्ञायतदभिप्रायंसर्वज्ञस्तामुवाचह ॥ २९ ॥ समुत्थाप्यचतांक्रोडेक्षीणांगींतपसाचिरम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वाराहेवैत्वमंशेनममपत्नीभविष्यसि ॥ ३० ॥ नाम्नानाग्नजितीकन्याकांतेनग्नजितस्यच ॥ अधुनाऽग्नेर्दाहिकात्वंभवपत्नीचभामिनी ॥ ३१ ॥ मंत्रांगरूपापूज्याचमत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ वह्निस्त्वांभक्तिभावेनसंपूज्यचगृहेश्वरीम् ॥ ३२ ॥ रमिष्यतित्वयासार्धंरामयारमणीयया ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधेदेवोदेवींसंभाष्यनारद ॥ ३३ ॥

और एकचरणसे खडीहोकर लक्षवर्षतक तपकिया ॥ २७ ॥ तब प्रकृतिसे परे कृष्णका दर्शन हुआ, वह रूपिणी उनका अत्यन्त कमनीयरूप देखकर ॥ २८ ॥ और उनकी शोभासे कामुकी मूर्च्छित होगई तब वह सर्वज्ञ उनके अभिप्रायको जानकर उनसे बोले ॥ २९ ॥ उन तपसे क्षीण हुई को गोदीमें बैठाकर श्रीभगवान् बोले हे वरारोहे ! तुम अंशसे मेरी पत्नी होगी ॥ ३० ॥ हे कान्ते ! तुम नामसे नग्नजित राजाकी कन्या नाग्नजिती होगी हे भामिनी ! इससमय तुम अग्निकी दाहिकारूप पत्नी हो ॥ ३१ ॥ और मेरे प्रसादसे तुम मंत्रांगरूपा पूजनीया होगी अग्नि तुमको गृहेश्वरिरूपसे भक्तिभावसे पूजन करेंगे ॥ ३२ ॥ और रमणीय रामा होकर रमण करोगी. हे नारद ! इसप्र

कार देवीसे कहकर देव अन्तर्धान होगये ॥ ३३ ॥ वहां ब्रह्माकी आज्ञासे व्याकुलीभूत हुए अग्निदेवता आये सामवेदोक्तध्यानसे जगदम्बिकाका ध्यान करके ॥ ३४ ॥ मंत्रपूर्वपाणिग्रहणकर संतोष करतेहुए और दिव्य सौवर्षतक रामाके साथ रमण करते हुए ॥ ३५ ॥ अत्यन्त निर्जनदेश संभोगमें सुखका देनेवाला हुआ तब अग्निके तेजसे देवीके गर्भकी स्थिति हुई ॥ ३६ ॥ देवीने बारह वर्षतक उस गर्भको धारण किया और फिर रमणीय मनोहर पुत्रोंको प्रगट किया ॥ ३७ ॥ दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय अग्नि यह क्रमसे हुए ऋषि मुनि और क्षत्रियादि ब्राह्मण ॥ ३८ ॥ यह स्वाहान्त मंत्रको उच्चारणकर हविर्दानादि करते हुए, जो यह प्रशस्त स्वाहायुक्त मंत्र ग्रहण करता है ॥ ३९ ॥ मंत्रग्रहणमात्रसे उसको सब सिद्धि होती है, जैसे विषहीन सर्प और वेदहीन ब्राह्मण है ॥ ४० ॥ जैसे पतिकी सेवासे विहीन स्त्री,

तत्राऽऽजगामसंत्रस्तोवह्निर्ब्रह्मनिदेशतः॥सामवेदोक्तध्यानेनध्यात्वातांजगदंबिकाम् ॥३४॥ संपूज्यपरितुष्टावपाणिंजग्राहमंत्रतः ॥ तदादिव्यंवर्षशतंसरेमे रामयासह॥३५॥अतीवनिर्जनेदेशेसंभोगसुखदेसदा॥बभूवगर्भस्तस्यांचहुताशस्यचतेजसा॥३६॥तंदधारचसादेवीदिव्यंद्वादशवत्सरम्॥ ततःसुषावपुत्रांश्चरमणीयान्मनोहरान् ॥ ३७ ॥ दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान्क्रमेणच ॥ ऋषयोमुनयश्चैवब्राह्मणाःक्षत्रियादयः ॥ ३८ ॥ स्वाहांतंमंत्रमुच्चार्यहविर्दानंचचक्रिरे॥स्वाहायुक्तंचमंत्रंचयोगृह्णातिप्रशस्तकम् ॥३९॥ सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्यमंत्रग्रहणमात्रतः॥विषहीनोयथासर्पोवेदहीनोयथाद्विजः॥४०॥पतिसेवाविहीनास्त्रीविद्याहीनोयथापुमान् ॥ फलशाखाविहीनश्चयथावृक्षोहिनिंदितः ॥ ४१ ॥ स्वाहाहीनस्तथामंत्रोनहुतःफलदायकः ॥ परितुष्टाद्विजाःसर्वेदेवाःसंप्रापुराहुतीः ॥ ४२ ॥ स्वाहांतेनैवमंत्रेणसफलंसर्वमेवच ॥ इत्येवंकथितंसर्वंस्वाहोपाख्यानमुत्तमम् ॥ ४३ ॥ सुखदंमोक्षदंसारंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि॥ नारदउवाच॥ स्वाहापूजाविधानंचध्यानंस्तोत्रंमुनीश्वर ॥४४॥ संपूज्यवह्निस्तुष्टावयेनतद्वदमेप्रभो ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ध्यानंचसामवेदोक्तंस्तोत्रंपूजाविधानकम् ॥ ४५ ॥ वदामिश्रूयतांब्रह्मन्सावधानोमुनीश्वर ॥ सर्वयज्ञारंभकालेशालग्रामेघटेऽथवा ॥ ४६ ॥ स्वाहांसंपूज्ययत्नेनयज्ञंकुर्यात्फलाप्तये॥स्वाहांमंत्रांगयुक्तांचमंत्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ॥४७॥ सिद्धांचसिद्धिदांनॄणांकर्मणांफलदांशुभाम् ॥ इतिध्यात्वाचमूलेनदत्त्वापाद्यादिकंनरः ॥ ४८॥

विद्याहीन जैसे पुरुष, जैसे फलशाखाहीन निन्दित वृक्ष ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार स्वाहाहीन मंत्र फलदायक नहीं होता इससे सब ब्राह्मण संतुष्ट हुए देवताओंने आहुति ग्रहणकी ॥ ४२ ॥ स्वाहांत मंत्रलगाकर ही सब सफल होजाता है यह आपसे सब उत्तम स्वाहाका उपाख्यान कहा है ॥ ४३ ॥ यह सुख और मोक्षदायक सारभूत है अब क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले हे मुनीश्वर ! स्वाहाकीपूजा विधान ध्यान स्तोत्र ॥ ४४ ॥ जिसकेद्वारा अग्निने स्तुतिकी थी सो आप कहिये श्रीनारायण बोले सामवेदोक्त ध्यान स्तोत्र पूजाका विधान ॥ ४५ ॥ कहताहूं सो सावधानहोकर आप श्रवण करो सब यज्ञके आरंभकालमें शालिग्राम तथा घटमें ॥ ४६ ॥ यत्नपूर्वक स्वाहाको पूजनकरके फलप्राप्तिके निमित्त यज्ञकरै स्वाहाअंगसे युक्त मंत्र सिद्धिस्वरूप है ॥ ४७ ॥ सिद्ध और मनुष्योंको सिद्धकरनेवाला कर्मका फलदेने

वाला परम शुभ है. इसप्रकार ध्यानकर मूलमंत्रादिसे पाद्यादिक दे ॥ ४८ ॥ तो स्तुतिकरनेसे सब सिद्धिहोती है अब मूलमंत्रको सुनो ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायै देव्यै स्वाहा ॥ ४९ ॥ जो इसप्रकार भक्तिसे पूजन करते हैं उनको सब सिद्धि होती है अग्निबोले स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया संतोषकारिणी ॥ ५० ॥ शक्तिक्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा सदा मनुष्योंकी गति दाहिका दहनमें समर्थ ॥ ५१ ॥ संसारकी साररूप घोरसंसारकी तारनेवाली देवी जीवनरूप, देवपोषणकारिणी ॥ ॥ ५२ ॥ जो भक्तिपूर्वक इन सोलह नामोंको पढता है उसको इस लोक परलोकमें सर्व सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥ अंगहीन न होकर उसके सब कर्म शुद्ध होते हैं इसके पाठसे अपुत्रके पुत्र भार्याहीनके भार्या प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥ वह रंभाके समान अपनी कान्ताको प्राप्त होकर सुख पाता है ॥ ५५ ॥

सर्वसिद्धिंलभेत्स्तुत्वामूलमंत्रंमुनेशृणु॥ॐह्रींश्रींवह्निजायायैदेव्यैस्वाहेत्यनेनच ॥४९॥ यःपूजयेच्चतांभक्त्यासर्वेष्टंसंभवेद्ध्रुवम् ॥वह्निरुवाच॥ स्वाहावह्निप्रियावह्निजायासंतोषकारिणी ॥५०॥शक्तिःक्रियाकालदात्रीपरिपाककरीध्रुवा॥गतिःसदानराणांचदाहिकादहनक्षमा॥५१॥संसारसाररूपाचघोरसंसारतारिणी॥देवजीवनरूपाचदेवपोषणकारिणी॥५२॥षोडशैतानिनामानियःपठेद्भक्तिसंयुतः॥सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्यइहलोकेपरत्रच ॥५३॥नांगहीनंभवेत्तस्य सर्वकर्मसुशोभनम् ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रंभार्याहीनोलभेत्प्रियाम् ॥ ५४ ॥ रंभोपमांस्वकांतांचसंप्राप्यसुखमाप्नुयात् ॥ इतिश्रीदे०म०नवमस्कंधेनारदनारायणसंवादेस्वाहोपाख्यानेत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ नारदशृणुवक्ष्यामिस्वधोपाख्यानमुत्तमम् ॥ पितृणांचतृप्तिकरंश्राद्धान्नफलवर्धनम् ॥१॥ सृष्टेरादौपितृगणान्ससर्जजगतांविधिः ॥ चतुरश्चमूर्तिमतस्त्रींश्चतेजःस्वरूपिणः ॥ २ ॥ दृष्ट्वासप्तपितृगणान्सुखरूपान्मनोहरान् ॥ आहारंससृजेतेषांश्राद्धंतर्पणपूर्वकम्॥३॥स्नानंतर्पणपर्यंतंश्राद्धंतुदेवपूजनम् ॥ आह्निकंचत्रिसंध्यांतंविप्राणांचश्रुतौश्रुतम् ॥४॥ नित्यंनकुर्याद्योविप्रस्त्रिसंध्यंश्राद्धतर्पणम् ॥ बलिंवेदध्वनिंसोऽपिविषहीनोयथोरगः ॥ ५ ॥ देवीसेवाविहीनश्चश्रीहरेरनिवेद्यभुक् ॥ भस्मांतंसूतकंतस्यनकर्मार्हश्चनारद ॥ ६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी! सुनो उत्तम स्वधाउपाख्यान कहता हूं यह पितरोंका तृप्तिकारी श्राद्धान्नका फल बढानेवाला है ॥ १ ॥ जगत्के विधाताने सृष्टिकी आदिमें पितृगणोंकी सृष्टिकी आदिमें जगत्के विधिने पितृगणोंकी रचनाकी है उनमें चार मूर्तिमान् और तीन तेजस्वरूपा है ॥ २ ॥ सात पितृगणोंको सुखरूप मनोहर देखकर विधाताने श्राद्ध तर्पण पूर्वक उनके आहारकी सृजनाकी ॥ ३ ॥ स्नान तर्पणपर्यन्त श्राद्ध और देवपूजन पंचायतन पूजन तीनों संध्या और आह्निककर्म जैसे शास्त्रमें श्रुत हुआ है ॥ ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण नित्य तीनों संध्याओंमें श्राद्ध तर्पण नहीं करते तथा बलि और वेदध्वनि जिनके नहीं वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ५ ॥ जो देवीकी सेवासे

विहीन है और भगवान्‌को विना निवेदन किये खाता है. हे नारद! भस्मपर्यंत उसको सूतकही रहता है वह कर्मके योग्य नहीं रहता ॥ ६ ॥ ब्रह्मा पितरोंके श्राद्धादि निर्माण करके पितरोंके निमित्त प्राप्तहुए उस समय पितर ब्राह्मणादिके दिये अन्नको नहीं पाते थे ॥ ७ ॥ तब वे सब क्षुधित हो ब्रह्माकी सभामें गये और उस जगत्‌के विधातासे निवेदन करनेलगे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने मनोहर एक मानसी कन्या प्रगटकी जो रूपयौवनसे सम्पन्न सौ चन्द्रमाके समान कान्तिमान् थी॥९॥ विद्यावान् गुणवान् अतिरूप सम्पन्न सती श्वेतचम्पकके वर्णके समान रत्नभूषणोंसे भूषित ॥ १० ॥ विशुद्ध प्रकृतिका अंश मन्द हँसनयुक्त वरदायक शुभ स्वधानामवाली सुरती लक्ष्मीके लक्षणसे संयुक्त ॥ ११ ॥ शतपद्मके पदमें चिह्नवाली चरणकमलोंके विलाससे युक्त पितरोंकी पत्नी पद्मास्या पद्मजा पद्मलोचना ॥ १२ ॥ उस तुष्टिरूपिणीको ब्रह्मा

ब्रह्माश्राद्धादिकंसृष्ट्वाजगामपितृहेतवे ॥ नप्राप्नुवंतिपितरोददतिब्राह्मणादयः ॥ ७ ॥ सर्वेचजग्मुःक्षुधिताःखिन्नास्तुब्रह्मणःसभाम् ॥ सर्वंनिवेदनं चक्रुस्तमेवजगतांविधिम् ॥ ८ ॥ ब्रह्माचमानसींकन्यांससृजेचमनोहराम् ॥ रूपयौवनसंपन्नांशतचंद्रनिभाननाम् ॥ ९ ॥ विद्यावतींगुणवती मतिरूपवतींसतीम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभांरत्नभूषणभूषिताम् ॥ १० ॥ विशुद्धांप्रकृतेरंशांसस्मितांवरदांशुभाम् ॥ स्वधाभिधांचसुदतींलक्ष्मी लक्षणसंयुताम् ॥ ११ ॥ शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मंचबिभ्रतीम् ॥ पत्नींपितॄणांपद्मास्यांपद्मजांपद्मलोचनाम् ॥ १२ ॥ पितृभ्यश्चददौब्रह्मातुष्टेभ्यस्तु ष्टिरूपिणीम् ॥ ब्राह्मणानांचोपदेशंचकारगोपनीयकम् ॥ १३ ॥ स्वधांतमन्त्रमुच्चार्यपितृभ्योदेयमित्यपि ॥ क्रमेणतेनविप्राश्चपित्रेदानंददुःपुरा ॥ १४ ॥ स्वाहाशस्तादेवदानेपितृदानेस्वधास्मृता ॥ सर्वत्रदक्षिणाशस्ताहतंयज्ञमदक्षिणम् ॥ १५ ॥ पितरोदेवताविप्रामुनयोमनवस्तथा ॥ पूजांचक्रुःस्वधांशां तांतुष्टुवुःपरमादरात् ॥ १६ ॥ देवादयश्चसंतुष्टाःपरिपूर्णमनोरथाः ॥ विप्रादयश्चपितरःस्वधादेवीवरेणच ॥ १७ ॥ इत्येवंकथितंसर्वंस्वधोपाख्यानमेव च॥सर्वेषांचतुष्टिकरंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥१८॥ नारदउवाच ॥ स्वधापूजाविधानंचध्यानंस्तोत्रंमहामुने ॥ श्रोतुमिच्छामियत्नेनवदवेदविदांवर ॥१९॥

जीने पितरोंको दिया और ब्राह्मणोंको गोपनीय उपदेश किया ॥ १३ ॥ इस कारण स्वधारूपमंत्रको उच्चारण कर पितरोंको अन्न देना चाहिये क्रमसे विप्रोंने इस दानको दिया ॥ १४ ॥ इससे देवताओंके दानमें स्वाहा और पितृदानमें स्वधा कही जाती है और दक्षिणा सर्वत्र शस्त है अदक्षिणयज्ञ हत होता है ॥ १५ ॥ पितर देवता विप्र मुनि मनु यह सब शांत स्वधाको परम आदरसे पूजनकर स्तुति करते हुए ॥ १६ ॥ और देवादि संतुष्ट होकर पूर्ण मनोरथ हुए तथा विप्रादि और स्वधादेवीके वरदानसे भागभोजी हुए ॥ १७ ॥ यह सब स्वधाका उपाख्यान तुमसे कहा यह सबका तुष्टि करनेवाला है फिर और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १८ ॥ नारदजी बोले हे महामुने! स्वधा पूजा विधान ध्यान स्तोत्र यह आपसे सुननेकी इच्छा करता हूं हे वेदविदाम्वर!

आप कहिये ॥ १९ ॥ नारायण बोले हे ब्रह्मन् ! वेदोक्त सब मंगलका ध्यान यह तुम सब जान्ते हो वृद्धिके लिये सब जान्ते हो ॥ २० ॥ शरदकृष्णत्रयोदशी मघा नक्षत्रयुक्त श्राद्धके दिनमें यत्नपूर्वक स्वधाका पूजन कर श्राद्ध आरंभ करै ॥ २१ ॥ जो ब्राह्मण विना स्वधाके अर्चन किये अहंकारसे श्राद्ध करता है वह श्राद्ध और तर्पणका फल भागी नहीं होता है ॥ २२ ॥ ब्रह्माकी मानसी कन्या जो निरन्तर स्थिर यौवनवाली है देवता पितरोंकी पूज्य श्राद्धका फल देनेवालीको मैं भजन करता हूं ॥ २३ ॥ इसप्रकार शिला वा मंगल घटमें ध्यान करके मूल मंत्रसे पाद्यादिक उसके निमित्त दे ऐसा श्रुतिमें कहा है ॥ २४ ॥ ओं ह्रीं श्रीं क्लीं

॥ नारायणउवाच ॥ ध्यानंचस्तवनंब्रह्मन्वेदोक्तंसर्वमंगलम् ॥ सर्वंजानासिचकथंज्ञातुमिच्छसिवृद्धये ॥ २० ॥ शरत्कृष्णत्रयोदश्यांमघायांश्राद्धवासरे ॥ स्वधांसंपूज्ययत्नेनततःश्राद्धंसमाचरेत् ॥ २१ ॥ स्वधांनाभ्यर्च्ययोविप्रःश्राद्धंकुर्यादहंमतिः ॥ नभवेत्फलभाक्सत्यंश्राद्धस्यतर्पणस्यच ॥ २२॥ ब्रह्मणोमानसींकन्यांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ पूज्यांवैपितृदेवानांश्राद्धानांफलदांभजे ॥ २३ ॥ इतिध्यात्वाशिलायांवाह्यथवामंगलेघटे ॥ दद्यात्पाद्यादिकंतस्यैमूलेनेतिश्रुतौश्रुतम् ॥ २४ ॥ ॐह्रींश्रींक्लींस्वधादेव्यैस्वाहेतिचमहामुने ॥ समुच्चार्यचसंपूज्यस्तुत्वातांप्रणमेद्द्विजः ॥२५॥ स्तोत्रंशृणुमुनिश्रेष्ठब्रह्मपुत्रविशारद ॥ सर्ववांछाप्रदंनृणांब्रह्मणायत्कृतंपुरा ॥ २६ ॥ नारायणउवाच ॥ स्वधोच्चारणमात्रेणतीर्थस्नायीभवेन्नरः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्योवाजपेयफलंलभेत्॥२७॥स्वधास्वधास्वधेत्येवंयदिवारत्रयंस्मरेत् ॥ श्राद्धस्यफलमाप्नोतिबलेश्चतर्पणस्यच ॥२८॥ श्राद्धकालेस्वधास्तोत्रंयःशृणोतिसमाहितः ॥ सलभेच्छ्राद्धसंभूतंफलमेवनसंशयः ॥ २९ ॥ स्वधास्वधास्वधेत्येवंत्रिसंध्यंयःपठेन्नरः ॥ प्रियांविनीतांसलभेत्साध्वींपुत्रगुणान्विताम् ॥ ३० ॥

स्वधादेव्यै स्वाहा इसप्रकार उच्चारण और पूजन करके उनको प्रणाम करै ॥२५॥ हे मुनिश्रेष्ठ हे विशारद ! आप स्तोत्रको सुनिये जो पहले मनुष्योंको वांछादायक ब्रह्माजीने कहा है ॥ २६ ॥ नारायण बोले स्वधाके उच्चारण मात्रसेही मनुष्योंको तीर्थस्नानका फल होता है और सब पापसे मुक्त होकर वाजपेयका फल मिलता है ॥ २७ ॥ जो तीनवार स्वधा ३ उच्चारण करता है वह श्राद्ध और बलितर्पणके फलको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ श्राद्धकालमें सावधान हो जो स्वधास्तोत्रको सुनता है उसको निःसन्देह श्राद्धका फल प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ स्वधा स्वधा स्वधा इस प्रकार जो तीनों संध्याओंमें पढ़ता है वह साध्वी पुत्र गुणयुक्त विनीत प्रियाको

प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ तुम पितरोंकी प्राणतुल्या द्विजोंकी जीवनरूपिणी हो. श्राद्धकी अधिष्ठातृदेवी श्राद्धादिके फल देनेवाली हो ॥ ३१ ॥ तुम नित्य सत्य रूपा पुण्यरूपा हो. हे सुव्रते! आविर्भाव और तिरोभावमें तुम्हारी सृष्टि और प्रलय होती है ॥ ३२ ॥ ओं स्वस्ति नमः स्वाहा स्वधा दक्षिणा तुम हो चारों वेदोंमें श्रेष्ठ कर्मद्वारा तुमही निरूपित हुई हो ॥ ३३ ॥ ईश्वरने यह कर्म पूर्त्तिके अर्थही निर्माण किये हैं इसप्रकारसे ब्रह्मा कथन कर ब्रह्मलोककी सभामें॥ ३४ ॥ स्थित हुए. उस समय सहसा स्वधा प्रगट हुई तब उस कमलाननाको ब्रह्माजीने पितरोंको दिया ॥ ३५ ॥ उसको प्राप्त हो पितृगण परमहर्षित होकर अपने स्थानको गये इस स्वधा स्तोत्रको जो बडापवित्र कोई सावधान हो सुन्तेहैं ॥ ३६ ॥ वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान करके वांछित फलको प्राप्त होते हैं ॥

पितॄणांप्राणतुल्यात्वंद्विजजीवनरूपिणी ॥ श्राद्धाधिष्ठातृदेवीचश्राद्धादीनांफलप्रदा ॥ ३१॥ नित्यात्वंसत्यरूपाऽसिपुण्यरूपासिसुव्रते ॥ आविर्भावतिरोभावौसृष्टौचप्रलयेतव ॥ ३२ ॥ ॐस्वस्तिश्चनमःस्वाहास्वधात्वंदक्षिणातथा ॥ निरूपिताश्चतुर्वेदैःप्रशस्ताःकर्मिणांपुनः ॥३३॥ कर्मपूर्त्यर्थमेवैताईश्वरेणविनिर्मिताः ॥ इत्येवमुक्त्वासब्रह्माब्रह्मलोकेस्वसंसदि ॥ ३४ ॥ तस्थौचसहसासद्यःस्वधासाऽविर्बभूवह ॥ तदापितृभ्यःप्रददौतामेवकमलाननाम् ॥ ३५ ॥ तांसंप्राप्यययुस्तेचापितरश्चप्रहर्षिताः ॥ स्वधास्तोत्रमिदंपुण्यंयःशृणोतिसमाहितः ॥ ३६ ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुवांछितंफलमाप्नुयात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते म०नवमस्कंधेनारदनारायणसंवादेस्वधोपाख्यानेचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ उक्तंस्वाहास्वधाख्यानंप्रशस्तंमधुरंपरम् ॥ वक्ष्यामिदक्षिणाख्यानंसावधानोनिशामय ॥ १ ॥ गोपीसुशीलागोलोकेपुराऽसीत्प्रेयसीहरेः ॥ राधाप्रधानासध्रीचीधन्यामान्यामनोहरा ॥ २ ॥ अतीवसुंदरीरामासुभगासुदतीसती ॥ विद्यावतीगुणवतीचातिरूपवतीसती ॥ ३ ॥ कलावतीकोमलांगीकांताकमललोचना ॥ सुश्रोणीसुस्तनीश्यामान्यग्रोधपरिमंडिता ॥४॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यारत्नालंकारभूषिता ॥ श्वेतचंपकवर्णाभाबिंबोष्ठीमृगलोचना ॥ ५ ॥

इति देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ श्रीनारायण बोले स्वाहा और स्वधाका आख्यान सुनाया जो अत्यन्त श्रेष्ठ है अब दक्षिणाख्यान कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ गोलोकमें एक सुशीला नामक गोपी हरिको बहुत प्यारी थी वह राधाकी प्रधान सखी धन्यामान्या और अति मनोहरा थी ॥ २ ॥ वह बहुत सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती विद्यावती गुणवती तथा अति रूपवती थी ॥ ३ ॥ कलावती कोमलांगी कांता कमललोचना सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा शरीर शोभामें वटवृक्षके समान शोभित ॥ ४ ॥ कुछेक हास्यसेही प्रसन्नमुखी रत्नोंके अलंकारोंसे युक्त श्वेतचंपकके वर्णकी समान कान्ति

शाली बिम्बोष्ठी चारुमृगलोचनी ॥ ५ ॥ कामशास्त्रमें निपुण कामिनी हंसगामिनी भावमें अनुरक्त भावकी ज्ञाता कृष्णकी प्रिया भामिनी ॥ ६ ॥ रसकी ज्ञाता रासमें रसिक तथा रासेशके रसमें उत्सुक राधाके सन्मुख हरिके वाम अंगमें स्थित हुई ॥ ७ ॥ भयसे मधुसूदन नम्रमुख हुए गोपियोंमें श्रेष्ठ राधाको सन्मुख देखकर ॥८॥ जो कामिनी क्रोधसे लाल मुख किये लाल कमलके समान नेत्र कोपसे कंपित शरीर किये होठ फडकते हुए ॥ ९ ॥ बडे वेगसे राधाको गमन करती जानकर विरोधसे भीत हो भगवान् अन्तर्धान हुए ॥ १० ॥ शान्तशरीर सत्वविग्रह कृष्णको गमन करते देखकर सुशीलादि गोपी भयसे कंपित हुई ॥ ११ ॥ गोपियोंके लक्ष कोटि

कामशास्त्रेषुनिपुणाकामिनीहंसगामिनी ॥ भावानुरक्ताभावज्ञाकृष्णस्यप्रियभामिनी ॥ ६ ॥ रसज्ञारसिकारासेरासेशस्यरसोत्सुका ॥ उवासाऽदक्षिणेक्रोडेराधायाःपुरतःपुरा ॥ ७ ॥ संबभूवानम्रमुखोभयेनमधुसूदनः ॥ दृष्ट्वाराधांचपुरतोगोपीनांप्रवरोत्तमाम् ॥ ८ ॥ कामिनींरक्तवदनांरक्तपंकजलोचनाम् ॥ कोपेनकंपितांगींचकोपेनस्फुरिताधराम् ॥ ९ ॥ वेगेनतांतुगच्छंतींविज्ञायतदनंतरम् ॥ विरोधभीतोभगवानंतर्धानंचकारसः ॥ १० ॥ पलायंतंचकांतंचशांतंसत्त्वंसुविग्रहम् ॥ विलोक्यकंपितागोप्यःसुशीलाद्यास्ततोभिया ॥११॥ विलोक्यलंपटंतत्रगोपीनांलक्षकोटयः ॥ पुटांजलियुताभीताभक्तिनम्रात्मकंधराः ॥ १२ ॥ रक्षरक्षेत्युक्तवंत्योदेवीमितिपुनःपुनः ॥ ययुर्भयेनशरणंतस्याश्चरणपंकजे ॥ १३ ॥ त्रिलक्षकोटयोगोपाःसुदामादयएवच ॥ ययुर्भयेनशरणंतत्पादाब्जेचनारद ॥ १४ ॥ पलायंतंचकांतंचविज्ञायपरमेश्वरी ॥ पलायंतींसहचरींसुशीलांचशशापसा ॥ १५ ॥ अद्यप्रभृतिगोलोकंसाचेदायातिगोपिका ॥ सद्योगमनमात्रेणभस्मसाच्चभविष्यति ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्त्वातत्रैवदेवदेवेश्वरीरुषा ॥ रासेश्वरीरासमध्येरासेशमाजुहावह ॥ १७ ॥ नालोक्यपुरतःकृष्णंराधाविरहकातरा ॥युगकोटिसमंमेनेक्षणभेदेनसुव्रता ॥ १८ ॥

समूह उन लम्पटको देखकर भीत हो हाथ जोडे भक्तिसे नम्र कंधे किये ॥ १२ ॥ रक्षा करो २ ऐसे वार २ देवीसे कहने लगे भयसे उनके चरणकमलकी शरणमें प्राप्त हुईं ॥ १३ ॥ सुदामाको आदि ले तीनलाखकोटि गोप हे नारद ! भयसे यह सब उनके शरणागत हुए ॥ १४ ॥ स्वामीको द्रुत वेगसे गमन करता देखकर तथा पलायन करती उस सुशीला सहचरीको देखकर परमेश्वरीने शापदिया ॥१५॥ यदि यह गोपी आजसे कभी गोलोकमें आवेगी तौ तत्काल भस्म हो जायगी॥ १६॥ देवदेवेश्वरीने क्रोधसे यह वचन कहकर रासेश्वरीने रासके मध्यमें रासेशको बुलाया ॥ १७ ॥ तब आगे कृष्णको न देखकर विरहसे कातर राधाने एकक्षणको कोटि

युगके समान जाना ॥ १८ ॥ हे कृष्ण हे प्राणनाथ ईश प्राणाधिक प्रिय प्राणके अधिष्ठातृदेवता ! आओ तुम्हारे विना प्राण जाते हैं ॥ १९ ॥ पतिके सौभाग्यसेही दिन दिन स्त्रीका गर्व बढता है और बडा सुख होता है इस कारण धर्मसे उसको सदा सेवन करे ॥ २० ॥ कुलस्त्रियोंका पतिही बंधु अधिदेवता सदा गति है परमसम्पत्ति स्वरूप मूर्तिमान भोगदायक है ॥ २१ ॥ धर्म सुख प्रीति और सदा शांतिका देने वाला है सन्मानसे दीप्तिमान मानदायक मानका खण्डन करनेवाला है ॥ २२ ॥ यह स्वामी सारसे भी सारतर बंधुओंकी बंधुताका बढानेवाला स्त्रियोंको भर्ताकी समान कहीं दूसरा बंधु नहीं है ॥ २३ ॥ स्वामी भरणकरनेसे भर्ता और पालनसे पति कहाता है शरीरका ईश होनेसे स्वामी और कामदायक होनेसे कान्त कहाता है ॥ २४ ॥ सुखवृद्धिकरनेसे बंधु और प्रीतिदानसे

हेकृष्णप्राणनाथेशाऽऽगच्छप्राणाधिकाप्रिय ॥ प्राणाधिष्ठातृदेवेशप्राणायांतित्वयाविना ॥ १९ ॥ स्त्रीगर्वःपतिसौभाग्याद्वर्धतेचदिनेदिने ॥ सुखंचविपुलं यस्मात्तंसेवेद्धर्मतःसदा ॥ २० ॥ पतिर्बंधुःकुलस्त्रीणामधिदेवःसदागतिः ॥ परसंपत्स्वरूपश्चमूर्तिमान्भोगदःसदा ॥ २१ ॥ धर्मदःसुखदःशश्वत्प्रीतिदः शांतिदःसदा ॥ सन्मानैर्दीप्यमानश्चमानदोमानखंडनः ॥ २२ ॥ सारात्सारतरःस्वामीबंधूनांबंधुवर्धनः ॥ नचभर्तुःसमोबंधुर्बंधोर्बंधुषुदृश्यते ॥२३॥ भरणादेवभर्ताचपालनात्पतिरुच्यते ॥ शरीरेशाच्चसस्वामीकामदःकांतउच्यते ॥ २४ ॥ बंधुश्चसुखवृद्धयाचप्रीतिदानात्प्रियःस्मृतः ॥ ऐश्वर्यदानादीशश्चप्राणेशात्प्राणनायकः ॥ २५ ॥ रतिदानाच्चरमणःप्रियोनास्तिप्रियात्परः ॥ पुत्रस्तुस्वामिनःशुक्राज्जायतेतेनसप्रियः ॥ २६ ॥ शतपुत्रात्परःस्वामी कुलजानांप्रियःसदा ॥ असत्कुलप्रसूतायाकांतंविज्ञातुमक्षमा ॥ २७ ॥ स्नानंचसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदक्षिणा ॥ प्रादक्षिण्यंपृथिव्याश्चसर्वाणिचतपांसिच ॥ २८ ॥ सर्वाण्येवव्रतादीनिमहादानानियानिच ॥ उपोषणानिपुण्यानियानियानिश्रुतानिच ॥ २९ ॥ गुरुसेवाविप्रसेवावेदसेवादिकंचयत् ॥ स्वामिनः पादसेवायाःकलांनार्हतिषोडशीम् ॥३०॥ गुरुविप्रेष्टदेवेषुसर्वेभ्यश्चपतिर्गुरुः ॥ विद्यादातायथापुंसांकुलजानांतथाप्रियः ॥३१॥ गोपीनांलक्षकोटीनांगोपानांचतथैवच ॥ ब्रह्मांडानामसंख्यानांतत्रस्थानांतथैवच ॥३२॥ विश्वादिगोलकांतानामीश्वरीयत्प्रसादतः ॥ अहंनजानेतंकांतंस्त्रीस्वभावोदुरत्ययः ॥३३॥

प्रिय कहाता है ऐश्वर्यदानसे ईश और प्राणेश होनेसे प्राणनायक होता है ॥ २५ ॥ रतिदानसे रमण, इससे अधिक कोई प्रिय नहीं इसकारण यह प्रियात्पर है स्वामीके वीर्यसेही पुत्रहोता है इसकारण इसको प्रिय कहते हैं ॥ २६ ॥ कुलस्त्रियोंको स्वामी सौ पुत्रोंसेभी अधिक प्रिय है और असत्कुलकी स्त्री अपने स्वामीकी महिमा नहीं जान्ती ॥२७॥ सब तीर्थोंमें स्नान, सब यज्ञोंकी दक्षिणा, पृथ्वीकी परिक्रमा, सम्पूर्ण तप २८ ॥ सब व्रत और महादान और जितने प्रसिद्ध उपवास हैं ॥ २९ ॥ गुरु ब्राह्मण तथा वेदकी सेवा स्वामीकी पादसेवाकी सोलहवीं कलाकेभी योग्य नहीं है ॥ ३० ॥ गुरुविप्रदेवसेवाओंमें गुरु सबसे अधिक है कारण कि पुरुषोंको विद्या दान करता है, इसी प्रकार कुलस्त्रियोंको स्वामी प्यारेहैं ॥ ३१ ॥ लक्षकोटि गोपी और गोप असंख्य ब्रह्माण्ड और उनकी स्थिति ॥ ३२ ॥ जिसके प्रसादसे विश्वादि

गोलकान्तोंकी ईश्वरी हूं मैं उस स्वामीको नहीं जान्ती स्त्रियोंका स्वभाव बडा दुरवगाह है ॥ ३३ ॥ यह कहकर राधिकाने भक्तिसे कृष्णका ध्यान किया और प्रेमसे रुदन कर नाथ २ कहने लगी ॥ ३४ ॥ हे रमण! मैं दीना तुम्हारे वियोगसे दुःखी हूं मुझे दर्शन दो हे मुने! इसप्रकार तो राधा व्याकुल हुई और उधर वह देवी दक्षिणा गोलोकसे भ्रष्ट हो ॥ ३५॥ महातप करके लक्ष्मीके शरीरमें प्रवेश करगई तब सम्पूर्ण देवता बडा दुस्तर यज्ञ करके भी॥ ३६॥ उसका फल न पातेहुए तब दुःखी हो ब्रह्माजीके समीप गये तब विधाताने उनका निवेदन सुनकर देवादिके जगत्पतिका ॥ ३७ ॥ बहुत कालतक ध्यान करके उनकी आज्ञा पायी कि मैं तुम्हारा कार्य करूंगा तब नारायण भगवान्‌ने महालक्ष्मीके शरीरसे ॥ ३८॥ निकालकर मनुष्योंकी लक्ष्मी दक्षिणा नाम उनको दी ब्रह्माजीने यज्ञके पूर्ण करनेमें और कर्मोंकी पूर्त्तिमें

इत्युक्त्वाराधिकाकृष्णंतत्रदध्यौस्वभक्तितः ॥ रुरोदप्रेम्णासाराधानाथनाथेतिचाऽब्रवीत् ॥ ३४ ॥ दर्शनंदेहिरमणदीनाविरहदुःखिता ॥ अथसादक्षिणादेवीध्वस्तागोलोकतोमुने ॥ ३५ ॥ सुचिरंचतपस्तप्त्वाविवेशकमलातनौ ॥ अथदेवादयःसर्वेयज्ञंकृत्वासुदुष्करम् ॥ ३६॥ नालभंस्तेफलंतेषांविषण्णाःप्रययुर्विधिम् ॥ विधिर्निवेदनंश्रुत्वादेवादीनांजगत्पतिम् ॥ ३७॥ दध्यौचसुचिरंभक्त्याप्रत्यादेशमवापसः ॥ नारायणश्चभगवान्महालक्ष्म्याश्चदेहतः ॥ ३८ ॥ विनिष्कृष्यमर्त्यलक्ष्मींब्रह्मणेदक्षिणांददौ ॥ ब्रह्माददौतांयज्ञायपूरणार्थंचकर्मणाम् ॥ ३९ ॥ यज्ञःसंपूज्यविधिवत्तांतुष्टावतदामुदा ॥ तप्तकांचनवर्णाभांचंद्रकोटिसमप्रभाम् ॥ ४० ॥ अतीवकमनीयांचसुंदरींसुमनोहराम् ॥ कमलास्यांकोमलांगींकमलायतलोचनाम् ॥४१॥ कमलासनपूज्यांचकमलांगसमुद्भवाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानांबिंबोष्ठींसुदतींसतीम् ॥ ४२ ॥ बिभ्रतींकबरीभारंमालतीमाल्यसंयुतम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांरत्नभूषणभूषिताम् ॥४३॥ सुवेषाढ्यांचसुस्नातांमुनिमानसमोहिनीम् ॥ कस्तुरीबिंदुभिःसार्धंसुगंधिचंदनेंदुभिः ॥ ४४ ॥ सिंदूरबिंदुनाल्पेनाप्यलकाधःस्थलोज्ज्वलाम् ॥ सुप्रशस्तनितंबाढ्यांबृहच्छ्रोणिपयोधराम् ॥ ४५ ॥ कामदेवाधाररूपांकामबाणप्रपीडिताम् ॥ तांदृष्ट्वारमणीयांचयज्ञोमूर्च्छामवापह ॥ ४६ ॥

उसको दिया ॥ ३९॥ विधिपूर्वक यज्ञको पूजन कर परम प्रसन्नतासे उनको सन्तुष्ट किया जो कि तप्त सुवर्णके वर्णकी समान कोटि चन्द्रकी समान प्रभावाली॥ ४०॥ अतिही कमनीय सुन्दरी मनोहर कमलमुखी कोमलांगी कमलकी समान दीर्घलोचनी ॥ ४१॥ विधातासे पूजित लक्ष्मीके अंगसे प्रगट अग्निसे शुद्ध पट्टवस्त्रधारिणी बिम्बाफलकी समान ओष्ठवाली सुन्दर दांतवाली सती ॥ ४२॥ मालतीमालासे गुंथे वेणीके जूडेको धारण किये कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी रत्नोंके भूषणोंसे भूषित ॥ ४३ ॥ सुवेष सुस्नात मुनियोंका मन भी मोहनेवाली कस्तूरीके बिन्दुओंके सहित सुगंधित चन्दन लगाये ॥ ४४ ॥ सिन्दूरके अल्प २ बिन्दुधारे उज्वल अच्छे नितम्बोंसे सम्पन्न पुष्टश्रोणी और स्तनोंसे युक्त ॥ ४५ ॥ कामदेवके आधाररूपवाली कामबाणसे पीडित इसप्रकार उस मनोहारिणीको देखकर यज्ञको मूर्छा प्राप्त हुई ॥ ४६॥

और विधातासे पूर्वमें बोधित होनेके कारण उसको भार्यात्वमें ग्रहण किया ॥ ४७ ॥ उसके साथ यज्ञ परम आनंदसे विहार करने लगा तब उस देवीनें बारह दिव्य वर्षतक गर्भ धारण किया ॥ ४८ ॥ तब सब कर्मोंके फलरूप पुत्रको उत्पन्न किया कर्मके पूर्ण होनेमें वह पुत्र फलदायक होता है ॥ ४९ ॥ यज्ञ अपनी दक्षिणा पत्नी और फलरूपपुत्रके सहित यज्ञकर्म करनेवालोंको फलका दाता है ऐसा वेदवादी कहते हैं ॥ ५० ॥ इसप्रकार यज्ञ दक्षिणा और फलदायक पुत्रको प्राप्त होकर हे नारद सबको कर्मोंका फल देनेलगे ॥ ५१ ॥ तब देवादि संतुष्ट होकर पूर्णमनोरथ हुए और सब अपने २ स्थानमें गये यह हमने धर्मके मुखसे सुना है ॥५२॥ कर्ता कर्म करके शीघ्र दक्षिणाको दे तो हे मुनिराज! उसी समय वह उसके फलको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ कर्मी कर्मके पूर्ण होनेमें उसी समय यदि

पत्नींतामेवजग्राहविधिबोधितपूर्वकम् ॥ दिव्यंवर्षशतंचैवतांगृहीत्वातुनिर्जने ॥ ४७ ॥ यज्ञोरेमेमुदायुक्तोरामेशोरमयासह ॥ गर्भंदधारसादेवीदिव्यंद्वादशवर्षकम् ॥४८॥ ततःसुषावपुत्रंचफलंवैसर्वकर्मणाम् ॥ परिपूर्णेकर्मणिचतत्पुत्रःफलदायकः ॥४९॥ यज्ञोदक्षिणयासार्धंपुत्रेणचफलेनच ॥ कर्मिणांफलदाताचेत्येवंवेदविदोविदुः ॥५०॥ यज्ञश्चदक्षिणांप्राप्यपुत्रंचफलदायकम् ॥ फलंददौचसर्वेभ्यःकर्मणांचैवनारद ॥५१॥ तदादेवादयस्तुष्टाःपरिपूर्णमनोरथाः ॥ स्वस्थानंतेययुःसर्वेधर्मवक्त्रादिदंश्रुतम् ॥ ५२ ॥ कृत्वाकर्मचकर्ताचतूर्णंदद्याच्चदक्षिणाम् ॥ तत्क्षणंफलमाप्नोतिवेदैरुक्तमिदंमुने ॥ ५३ ॥ कर्मीकर्मणिपूर्णेचतत्क्षणेयदिदक्षिणाम् ॥ नदद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्चदैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥ ५४ ॥ मुहूर्तेसमतीतेतुद्विगुणासाभवेद्ध्रुवम् ॥ एकरात्रेव्यतीतेचभवेच्छतगुणाचसा ॥ ५५ ॥ त्रिरात्रेतच्छतगुणासप्ताहेद्विगुणाततः ॥ मासेलक्षगुणाप्रोक्ताब्राह्मणानांचवर्धते ॥ ५६ ॥ संवत्सरेव्यतीतेतुसात्रिकोटिगुणाभवेत् ॥ कर्मतद्यजमानानांसर्वंवैनिष्फलंभवेत् ॥ ५७ ॥ सचब्रह्मस्वहारीचनकर्मार्होऽशुचिर्नरः ॥ दरिद्रोव्याधियुक्तश्चतेनपापेनपातकी ॥५८॥ तद्गृहाद्यातिलक्ष्मीश्चशापंदत्वासुदारुणम् ॥ पितरोनैवगृह्णंतितद्दत्तंश्राद्धतर्पणम् ॥५९॥ एवंसुराश्चतत्पूजांतद्दत्तामग्निराहुतिम् ॥ दत्तंनदीयतेदानंग्रहीतानैवयाचते ॥६०॥

दक्षिणा ब्राह्मणोंको प्रारब्धवश वा अज्ञानसे न दे ॥ ५४ ॥ तो एक मुहूर्तके बीतनेमें वह दूनी होजाती है एक रातके बीतनेमें सौगुणी होजाती है ॥ ५५ ॥ तीन रातमें उससे सौगुणी और सप्ताहमें उससे द्विगुणी होती है और एक महीना बीतनेमें ब्राह्मणोंकी दक्षिणा लाखगुणी हो जाती है ॥ ५६ ॥ एकवर्ष बीतनेपर फिर तीनकोटि गुणी होती है और उसके विना यजमानोंका सब कर्म निष्फल होजाता है ॥ ५७ ॥ वह मनुष्य ब्रह्मस्वहारी होकर कर्मके योग्य नहीं होता उस पापसे पातकी होकर दरिद्र और व्याधियुक्त होता है ॥ ५८ ॥ लक्ष्मी दारुण शाप देकर उसके घरसे चली जाती है उसका दिया श्राद्ध तर्पण पितर ग्रहण नहीं करते ॥ ५९ ॥ इसप्रकार देवता उसकी पूजा और अग्नि आहुती ग्रहण नहीं करते कर्म समय मनसे संकल्पित दक्षिणारूप दान यजमान न दे तथा ग्रहीता ब्राह्मण न ले॥ ६० ॥

वह टूटी रस्सीवाले घटकी समान दोनोंही नरकको जाते हैं और मांगनेपरभी यदि दक्षिणा न दे ॥ ६१ ॥ तौ ब्राह्मणका धन हरण करनेका प्रायश्चित्त लगता है इससे वह अवश्य कुंभीपाक नरकमें जाता है ॥ ६२ ॥ फिर वह व्याधियुक्त दरिद्री चांडाल होता है सात आगे और सात पीछेके पुरुषाओंको नरकमें डालता है ॥ ६३ ॥ हे नारद ! यह तौ आपसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले हे मुने ! जो कर्म दक्षिणाहीन है उसका फल कौन भोगताहै ?॥ ६४ ॥ और यज्ञकी कीहुई दक्षिणाकी पूजाविधि कहिये नारायण बोले हे मुने अदक्षिण कर्मका फलही कहां है ॥ ६५ ॥ दक्षिणावाले कर्मकाही फल मिलता है और जो कर्म दक्षिणाहीन है उसका फल बलि भोगते हैं ॥ ६६ ॥ यह पहले वामनजीने बलिको वर दिया है कि अश्रोत्रियके श्राद्धका द्रव्य तथा विना श्रद्धाका दिया हुआ

उभौतौनरकेयातश्छिन्नरज्जुर्यथाघटः ॥ नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितश्चापिदक्षिणाम् ॥ ६१ ॥ भवेद्ब्रह्मस्वापहारीकुंभीपाकंव्रजेद्ध्रुवम् ॥ वर्षलक्षं वसेत्तत्रयमदूतेनताडितः ॥ ६२ ॥ ततोभवेत्सचांडालोव्याधियुक्तोदरिद्रकः ॥ पातयेत्पुरुषान्सप्तपूर्वांश्चसप्तजन्मतः ॥ ६३ ॥ इत्येवं कथितंविप्रकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ नारदउवाच ॥ यत्कर्मदक्षिणाहीनंकोभुंक्तेतत्फलंमुने ॥ ६४ ॥ पूजाविधिंदक्षिणायाःपुरायज्ञकृतंवद ॥ नारायणउवाच ॥ कर्मणोऽदक्षिणस्यैवकुतएवफलंमुने ॥ ६५ ॥ सदक्षिणेकर्मणिचफलमेवप्रवर्तते ॥ अदक्षिणंचयत्कर्मतद्भुंक्तेचबलिर्मुने ॥ ६६ ॥ बलयेतत्प्रदत्तंचवामनेनपुरामुने ॥ अश्रोत्रियःश्राद्धद्रव्यमश्रद्धादानमेवच ॥ ६७ ॥ वृषलीपतिविप्राणांपूजाद्रव्यादिकंचयत् ॥ असद्द्विजैःकृतंयज्ञमशुचेःपूजनंचयत् ॥ ६८ ॥ गुरावभक्तस्यकर्मबलिर्भुंक्तेनसंशयः ॥ दक्षिणायाश्चयद्ध्यानंस्तोत्रंपूजाविधिक्रमम् ॥ ६९ ॥ तत्सर्वंकण्वशाखोक्तंप्रवक्ष्यामिनिशामय ॥ पुरासंप्राप्यतांयज्ञःकर्मदक्षांचदक्षिणाम् ॥ ७० ॥ मुमोहास्याःस्वरूपेणतुष्टावकामकातरः ॥ यज्ञउवाच ॥ पुरागोलोकगोपीत्वंगोपीनांप्रवरावरा ॥ ७१ ॥ राधासमातत्सखीचश्रीकृष्णप्रेयसीप्रिया ॥ कार्तिकीपूर्णिमायांतुरासेराधामहोत्सवे ॥ ७२ ॥ आविर्भूतादक्षिणांसाल्लक्ष्म्याश्चतेनदक्षिणा ॥ पुरात्वंचसुशीलाख्याख्याताशीलेनशोभने ॥ ७३ ॥ लक्ष्मीदक्षांसभागात्त्वंराधाशापाच्चदक्षिणा ॥ गोलोकात्त्वंपरिभ्रष्टाममभाग्यादुपस्थिता ॥ ७४ ॥

॥ ६७ ॥ तथा वृषली ब्राह्मणोंका जो कुछ पूजादि द्रव्य है वा अशुद्ध असत् ब्राह्मणोंका यज्ञ अशुचिका पूजन ॥ ६८ ॥ तथा गुरुके अभक्तका कर्म बलि भोगता है इसमें सन्देह नहीं दक्षिणाका जो ध्यान स्तोत्र पूजाविधान है ॥ ६९ ॥ वह सब कण्वशाखामें लिखा है सुनो पहले वह यज्ञ अपनी कर्मदक्ष दक्षिणाको प्राप्त होकर ॥ ७० ॥ उसके स्वरूपसे मोहित हो कामसे व्याकुलीभूत मनसे प्रार्थना करने लगा यज्ञ बोला पहले तुम गोलोककी गोपी सब गोपियोंमें श्रेष्ठ थीं ॥ ७१ ॥ और श्रीकृष्णकी सखी राधाकी समान प्रिय थीं कार्तिकी पूर्णमासीको राधाके महोत्सव रासमें ॥ ७२ ॥ लक्ष्मीके दक्षिण अंससे प्रगट हुई इससे दक्षिणा कहाती हो हे शोभने ! पहले तुम शीलसे सुशील नामसे विख्यात थी ॥ ७३ ॥ लक्ष्मीके दक्षिणांशभागवाली तुम राधाके शापसे दक्षिणा हुई हो तुम गोलोकसे भ्रष्ट होकर हमारे भाग्यसे

यहां प्राप्त हुई हो ॥ ७४ ॥ हे महाभागे कृपाकरके मुझको अपना स्वामी करो हे देवि कर्मियोंके कर्मकी फलदाता तुम्हीं हो ॥ ७५ ॥ तुम्हारे विना सबके सब कर्म निष्फल होते हैं और तुम्हारे विना कर्मियोंके कर्म शोभा नहीं पाते ॥ ७६ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेशादि दिक्पाल तुम्हारे विना कर्मके फल देनेको समर्थ नहीं हैं॥ ७७ ॥ कर्मरूपी स्वयं ब्रह्माजी हैं और फलरूपी महेश्वर हैं यज्ञरूपी विष्णु मैं हूं और तुम इनकी साररूपिणी हो ॥ ७८ ॥ फलदायक परब्रह्म निर्गुण पराप्रकृति है, स्वयं कृष्ण भगवान् तुम्हारेसहित कार्यमें समर्थ हैं ॥ ७९ ॥ हे कान्ते तुमही हमारे जन्म जन्मान्तरकी शक्ति हो हे वरानने तुम्हारे सहितही मैं सब कर्म करनेमें समर्थ हूं ॥

कृपांकुरुमहाभागेमामेवस्वामिनंकुरु ॥ कर्मिणांकर्मणांदेवीत्वमेवफलदासदा ॥ ७५ ॥ त्वयाविनाचसर्वेषांसर्वंकर्मचनिष्फलम् ॥ त्वयाविनातथाकर्मकर्मिणांचनशोभते ॥ ७६ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्चदिक्पालादयएवच ॥ कर्मणश्चफलंदातुंनशक्ताश्चत्वयाविना ॥ ७७ ॥ कर्मरूपीस्वयंब्रह्माफलरूपीमहेश्वरः ॥ यज्ञरूपीविष्णुरहंत्वमेषांसाररूपिणी ॥ ७८ ॥ फलदातृपरंब्रह्मनिर्गुणाप्रकृतिःपरा ॥ स्वयंकृष्णश्चभगवान्सचशक्तस्त्वयासह ॥ ७९ ॥ त्वमेवशक्तिःकांतेमेशश्वज्जन्मनिजन्मनि ॥ सर्वकर्मणिशक्तोऽहंत्वयासहवरानने ॥ ८० ॥ इत्युक्त्वाचपुरस्तस्थौयज्ञाधिष्ठातृदेवता ॥ तुष्टावभूवसादेवीभेजेतंकमलाकला ॥ ८१ ॥ इदंचदक्षिणास्तोत्रंयज्ञकालेचयःपठेत् ॥ फलंचसर्वयज्ञानांप्राप्नोतिनात्रसंशयः ॥ ८२ ॥ राजसूयेवाजपेयेगोमेधनरमेधके ॥ अश्वमेधेलांगलेचविष्णुयज्ञेयशस्करे ॥८३॥ धनदेभूमिदेपूर्तेफलदेगजमेधके ॥ लोहयज्ञेस्वर्णयज्ञेरत्नयज्ञेऽथताम्रके॥८४ ॥ शिवयज्ञेरुद्रयज्ञेशक्रयज्ञेचवंधुके ॥ वृष्टौवरुणयागेचकंडकेवैरिमर्दने ॥ ८५ ॥ शुचियज्ञेधर्मयज्ञेऽध्वरेचपापमोचने ॥ ब्रह्माणीकर्मयागेचयोनियागेचभद्रके ॥ ८६॥ एतेषांचसमारंभेइदंस्तोत्रंचयःपठेत् ॥ निर्विघ्नेनचतत्कर्मसर्वंभवतिनिश्चितम् ॥ ८७ ॥

॥८०॥ यज्ञके अधिष्ठात्री देवता यह कहकर उसके आगेस्थित हुये तब वह कमला की कला उनपर संतुष्ट हुई और उनको भजने लगी ॥ ८१ ॥ यह दक्षिणास्तोत्र जो कोई यज्ञकालमें पढता है निःसन्देह उसको सब यज्ञोंका फल प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥ राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध,लांगल, श्रीकर, यशस्कर, वैष्णव यज्ञ॥८३॥धनदायक, भूमिदायक, पूर्त, फलद गजमेध, लोहयज्ञ, स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ,ताम्रयज्ञ ॥८४॥ शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, शक्रयज्ञ, बंधुकयज्ञ, वृष्टिमें वरुणयाग, कंडक, वैरिमर्दन ॥ ८५ ॥ शुचियज्ञ धर्मयज्ञ पापमोचनयज्ञ ब्रह्माणीयज्ञ कर्मयाग योनियाग भद्रकयाग ॥ ८६ ॥ यदि इन यागोंके आरंभमें इस स्तोत्रको जो कोई पढे निश्चयही

उसका सब कर्म निर्विघ्न होता है ॥ ८७ ॥ यह स्तोत्र तौ कहा अब ध्यान और पूजाविधि सुनो शालिग्राम वा घटमें दक्षिणाको पूजन करै ॥ ८८ ॥ लक्ष्मीके दक्षिणांससे समुत्पन्न कमलाकी कला दक्षिणा सब कर्ममें दक्ष और सबकर्मोंका फल देनेवाली ॥ ८९ ॥ विष्णुकी शक्तिस्वरूपा पूजित और विदित शुद्धिदा शुद्धिरूपा सुशीला शुभदायिकाका मैं भजन करता हूं ॥९०॥ वरदायिकाको इसप्रकार ध्यान कर मूलमंत्रसे पूजन करै और हे नारदजी! वेदानुसार देवीको पाद्यादिक देकर॥९१॥ ओं श्रींक्लींह्रींदक्षिणायैस्वाहा इसप्रकारके मंत्रसे विचक्षण पुरुष परम भक्तिसे सर्वपूजित दक्षिणाका पूजन करै ॥९२॥हे ब्रह्मन्! यह आपसे दक्षिणाका आख्यान कहा यह सुखदायक प्रीतिदायक और सब कर्मोंका फल देनेवाला है॥९३॥जो सावधान होकर इस दक्षिणाके आख्यानको सुनते हैं भारत भूमिमें वह कर्म अंगहीन नहीं होता

इदंस्तोत्रंचकथितंध्यानंपूजाविधिंशृणु ॥ शालग्रामेवटेवाऽपिदक्षिणांपूजयेत्सुधीः ॥८८॥ लक्ष्मीदक्षांससंभूतांदक्षिणांकमलाकलाम् ॥ सर्वकर्मसुदक्षांचफलदांसर्वकर्मणाम् ॥ ८९ ॥ विष्णोःशक्तिस्वरूपांचपूजितांवंदितांशुभाम् ॥ शुद्धिदांशुद्धिरूपांचसुशीलांशुभदांभजे ॥ ९० ॥ ध्यात्वाऽनेनैववरदांमूलेनपूजयेत्सुधीः ॥ दत्वापाद्यादिकंदेव्यैवेदोक्तेनैवनारद ॥ ९१ ॥ ॐश्रींक्लींह्रींदक्षिणायैस्वाहेतिचविचक्षणः ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्यादक्षिणांसर्वपूजिताम् ॥ ९२ ॥ इत्येवंकथितंब्रह्मन्दक्षिणाख्यानमेवच ॥ सुखदंप्रीतिदंचैवफलदंसर्वकर्मणाम् ॥ ९३ ॥ इदंचदक्षिणाख्यानंयःशृणोतिसमाहितः ॥ अंगहीनंचतत्कर्मनभवेद्भारतेभुवि ॥ ९४ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रंनिश्चितंचगुणान्वितम् ॥ भार्याहीनोलभेद्भार्यांसुशीलांसुंदरींपराम् ॥ ९५ ॥ वरारोहांपुत्रवतींविनीतांप्रियवादिनीम् ॥ पतिव्रतांचशुद्धांचकुलजांचवधूंवराम् ॥ ९६ ॥ विद्याहीनोलभेद्विद्यांधनहीनोलभेद्धनम् ॥ भूमिहीनोलभेद्भूमिंप्रजाहीनोलभेत्प्रजाम् ॥ ९७ ॥ संकटेबंधुविच्छेदेविपत्तौबंधनेतथा ॥ मासमेकमिदंश्रुत्वामुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९८ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते म० नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादेदक्षिणोपाख्यानेपंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ नारदउवाच ॥ अनेकानांचदेवीनांश्रुतमाख्यानमुत्तमम् ॥ अन्यासांचरितंब्रह्मन्वदवेदविदांवर ॥ १ ॥

है ॥ ९४ ॥ अवश्यही अपुत्र पुरुषके निश्चित गुणसम्पन्न पुत्र होता है भार्याहीन पुरुष सुशील सुन्दर भार्याको प्राप्त करता है ॥ ९५ ॥ जो सुन्दरमुखी पुत्र प्रगट करनेवाली पतिव्रता शुद्ध कुलजा श्रेष्ठवधू होती है ॥९६॥ विद्याहीनको विद्या और धनहीनको धन मिलताहै भूमि हीनकोभूमि और प्रजाहीनको प्रजा प्राप्त होतीहै॥९७॥ संकटमें भाइयोंके वियोग विपत्ति बंधनकी उपस्थितिमें एकमहीने इसस्तोत्रको सुनकर संकटसे मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥९८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ नारदजी बोले अनेक देवियोंका आख्यान सुना हे वेदविदांवर! अब दूसरी

देवियोंका चरित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ नारायण बोले हे ब्रह्मन् ! वेदमें पृथक् पृथक् सबके चरित्र कहे हैं तुम पूर्वोक्त देवियोंमें किसके चरित्र सुनना चाहते हो ॥ २॥ नारदजी बोले षष्ठी, मंगली, चण्डी और मनसा प्रकृतिकी कला हैं इनकी उत्पत्ति और चरित्रमें तत्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥ नारायण बोले प्रकृतिका षष्ठांशाही षष्ठी है यह बालकोंकी अधिष्ठात्री विष्णुकी माया बालकोंको देनेवाली है ॥ ४ ॥ यह देवसेनानामक मातृकाओंमें विख्यात है यह प्राणसे अधिक प्रिय स्कंदकी साध्वी सुव्रता भार्या है ॥ ५ ॥ बालकोंको आयु देनेवाली धात्री रक्षणकरनेवाली है योगसे सिद्ध यह योगिनी निरन्तर बालकके पार्श्वभागमें स्थित रहती है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! उसकी पूजाविधि और इतिहास सुनो जो पुत्रदायक सुखदायककथा धर्मराजके मुखसे सुनी है ॥ ७ ॥

नारायणउवाच ॥ सर्वासांचरितंविप्रवेदेषुचपृथक्पृथक् ॥ पूर्वोक्तानांचदेवीनांकासांश्रोतुमिहेच्छसि ॥२॥ नारदउवाच ॥ षष्ठीमंगलचंडीचमनसाप्रकृतेः कला ॥ उत्पत्तिमासांचरितंश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥३॥ नारायणउवाच ॥ षष्ठांशाप्रकृतेर्याचसाचषष्ठीप्रकीर्तिता ॥ बालकानामधिष्ठात्रीविष्णुमायाच बालदा ॥ ४ ॥ मातृकासुचविख्यातादेवसेनाभिधाचया ॥ प्राणाधिकप्रियासाध्वीस्कंदभार्याचसुव्रता ॥ ५ ॥ आयुःप्रदाचबालानांधात्रीरक्षणकारिणी ॥ सततंशिशुपार्श्वस्थायोगेनसिद्धियोगिनी ॥ ६ ॥ तस्याःपूजाविधिंब्रह्मन्नितिहासमिदंशृणु ॥ यच्छ्रुतंधर्मवक्रेणसुखदंपुत्रदंपरम् ॥७॥ राजाप्रियव्रतश्चासी त्स्वायंभुवमनोःसुतः ॥ योगींद्रोनोद्वहद्भार्यांतपस्यासुरतःसदा ॥ ८ ॥ ब्रह्माज्ञयाचयत्नेनकृतदारोबभूवह ॥ सुचिरंकृतदारश्चनलेभेतनयंमुने ॥ ९ ॥ पुत्रेष्टियज्ञंतंचापिकारयामासकश्यपः ॥ मालिन्यैतस्यकांतायैमुनिर्यज्ञचरुंददौ ॥ १० ॥ भुक्त्वाचतंचरुंतस्याःसद्योगर्भोबभूवह ॥ दधारतंचसादेवी दैवंद्वादशवत्सरम् ॥ ११ ॥ ततःसुषावसाब्रह्मन्कुमारंकनकप्रभम् ॥ सर्वावयवसंपन्नंमृतमुत्तारलोचनम् ॥१२॥ तंदृष्ट्वारुरुदुःसर्वानार्यश्चबांधवस्त्रियः ॥ मूर्च्छामवापतन्मातापुत्रशोकेनभूयसा॥१३॥इमशानंचययौराजागृहीत्वाबालकंमुने॥रुरोदतत्रकांतारेपुत्रंकृत्वास्ववक्षसि ॥ १४ ॥

स्वायंभुव मनुके पुत्र राजा प्रियव्रत हुए यह तपस्यामें सदा रत योगीन्द्र भार्या परिग्रह न करते हुए ॥ ८ ॥ तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे स्त्री ग्रहण की परन्तु चिरकालतक भी कोई पुत्र नहीं हुआ ॥ ९ ॥ तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया मुनिने यज्ञचरु उनकी मालिनी नामक स्त्रीको दिया ॥ १० ॥ उस चरुके भक्षण करतेही उसको तत्काल गर्भ रहा तब देवीने बारह वर्षतक गर्भको धारण किया ॥ ११ ॥ तब उसके सुवर्णकी समान कांतिमान पुत्र जन्मा जो सब अवयवसे सम्पन्न मृत उत्तार नेत्रयुक्त था ॥ १२ ॥ उसको मृतक देख सब स्त्रीआदि हा हा कारसे रोने लगी और पुत्रशोकसे माता मूर्छित होगई ॥ १३ ॥ हे मुने ! उस बालकको

लेकर राजा श्मशानमें गये और उसे हृदयसे लगाय वनमें रुदन करने लगे ॥ १४ ॥ राजाने बालकको न छोडा और प्राणत्यागन करनेपर उतारू हुआ और दारुण शोकसे ज्ञानयोगको भूलगया ॥ १५ ॥ इसी समय उसने एक विमान देखा जो शुद्ध स्फटिकमणिकी समान मणिश्रेष्ठोंसे बना था॥ १६॥ निरन्तर तेजसे प्रकाशमान क्षौमवस्त्रोंसे शोभित और अनेकप्रकारकी चित्र विचित्र फूलमालाओंसे विराजित ॥ १७॥ उसमें एक बडी मनोहरा देवीका दर्शन किया जो श्वेत चंपककी समान वर्ण सम्पन्न निरन्तर स्थिरयौवनवाली ॥ १८ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी रत्नभूषणोंसे भूषित कृपामयी योगसिद्धा भक्तोंके अनुग्रहमें तत्पर थी ॥ १९ ॥ राजाने भगवतीको देख परम आदरसे संतुष्ट किया और बालकको भूमिपर छोडकर उसका पूजन किया ॥ २० ॥ उस ग्रीष्मकालीन सूर्यकी समान कान्तिवाली

नोत्सृजद्बालकंराजाप्राणांस्त्यक्तुंसमुद्यतः ॥ ज्ञानयोगंविसस्मारपुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रविमानंचददर्शसः ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशंमणिराजविनिर्मितम् ॥ १६ ॥ तेजसाज्वलितंशश्वच्छोभितंक्षौमवाससा ॥ नानाचित्रविचित्राढ्यंपुष्पमालाविराजितम् ॥ १७ ॥ ददर्शतत्रेदेवींचकमनीयांमनोहराम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ १८ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांरत्नभूषणभूषिताम् ॥ कृपामयींयोगसिद्धांभक्तानुग्रहकातराम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वातांपुरतोराजातुष्टावपरमादरम् ॥ चकारपूजनंतस्याविहायबालकंभुवि ॥ २० ॥ पप्रच्छराजातांतुष्टांग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ॥ तेजसाज्वलितांशांतांकांतांस्कंदस्यनारद ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ कात्वंसुशोभनेकांतेकस्यकांतासिसुव्रते ॥ कस्यकन्यावरारोहेधन्यामान्याचयोषिताम् ॥ २२ ॥ नृपेंद्रस्यवचःश्रुत्वाजगन्मंगलचंडिका ॥ उवाचदेवसेनासादेवानांरणकारिणी ॥ २३ ॥ देवानांदैत्यग्रस्तानांपुरासेनावभूवसा ॥ जयंददौसातेभ्यश्चदेवसेनाचतेनसा ॥ २४ ॥ श्रीदेवसेनोवाच ॥ ब्रह्मणोमानसीकन्यादेवसेनाहमीश्वरी ॥ सृष्ट्वामांमनसाधाताददौस्कंदायभूमिप ॥ २५ ॥ मातृकासुचविख्यातास्कंदभार्याचसुव्रता ॥ विश्वेषष्ठीतिविख्याताषष्ठांशाप्रकृतेःपरा ॥ २६ ॥

प्रसन्न, तेजसे प्रज्वलित, शान्त स्कंदकी भार्यासे राजा पूछने लगे ॥ २१ ॥ राजा बोला, हे शोभने कान्ते तुम कौन किसकी प्रिया हो हे वरारोहे ! तुम स्त्रियोंमें धन्या मान्या किसकी कन्या हो ॥ २२ ॥ राजाके यह वचन सुन यह जगन्मंगला चंडिका देवसेना देवरणकारिणी बोली ॥ २३ ॥ पहले मैं दैत्योंसे ग्रस्त देवताओंकी सेना हुई थी, और देवताओंको जयदेनेके कारणही देवसेना हुई ॥ २४ ॥ देवसेना बोली मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या देवसेना ईश्वरी हूं, हे राजन् विधाताने मुझे मनसे रचनाकर स्कंदके निमित्त दिया ॥ २५ ॥ मैं माताओंमें विख्यात स्कंदकी सुव्रता भार्या हूं और प्रकृतिका षष्ठांश होनेसे संसारमें षष्ठीनामसे विख्यात हूं ॥ २६ ॥

मैं अपुत्रोंको पुत्र और प्रियाकी इच्छावालोंको प्रिया देती हूं, दरिद्रोंको धन और कर्मियोंको कर्म देती हूं॥ २७॥ सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, संपत्ति, विपत्ति सब कर्मसे होती है ॥ २८ ॥ कर्मसे बहुत पुत्र कर्मसेही वंशहीन कर्मसेही मृत पुत्र और कर्मसेही चिरजीवी पुत्र होता है ॥ २९ ॥ कर्मसेही गुणवान्, अंगहीन बहुत भार्यावाला तथा भार्याहीन होता है ॥ ३० ॥ कर्मसेही रूपवान् धर्मी रोगी व्याधित और अरोगी होता है ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इसकारण सब शास्त्र वेदमें कर्मविशेष सुना गया है हे मुने ऐसा कह वोह देवी बालकको ग्रहणकर ॥ ३२ ॥ महाज्ञानसे अपनी लीलासेही उसको जिवाती हुई जब राजाने कंचन

अपुत्राय पुत्रदाऽहंप्रियादात्रीप्रियायच ॥ धनदाऽहंदरिद्रेभ्यःकर्मिभ्यश्चस्वकर्मदा ॥२७॥ सुखंदुःखंभयंशोकोहर्षोमंगलमेवच ॥ संपत्तिश्चविपत्तिश्चसर्वं भवतिकर्मणा ॥ २८ ॥ कर्मणाबहुपुत्रश्चवंशहीनःस्वकर्मणा ॥ कर्मणामृतपुत्रश्चकर्मणाचिरजीवनः ॥ २९ ॥ कर्मणागुणवांश्चैवकर्मणाचांगहीनकः ॥ कर्मणाबहुभार्यश्चभार्याहीनश्चकर्मणा ॥ ३० ॥ कर्मणारूपवान्धर्मीरोगीशश्वत्स्वकर्मणा ॥ कर्मणाचभवेद्व्याधिःकर्मणाऽऽरोग्यमेवच ॥ ३१ ॥ तस्मात्कर्मपरंराजन्सर्वेभ्यश्चश्रुतौश्रुतम् ॥ इत्येवमुक्त्वासादेवीगृहीत्वाबालकंमुने ॥३२॥ महाज्ञानेनसादेवीजीवयामासलीलया ॥ राजाददर्शतंबालंस स्मितंकनकप्रभम् ॥ ३३ ॥ देवसेनाचपश्यंतंनृपमापृच्छ्यसातदा ॥ गृहीत्वाबालकंदेवीगगनंगंतुमुद्यता ॥ ३४ ॥ पुनस्तुष्टावतांराजाशुष्ककंठो ष्ठतालुकः ॥ नृपस्तोत्रेणसादेवीपरितुष्टाबभूवह ॥ ३५ ॥ उवाचतंनृपंब्रह्मन्वेदोक्तंकर्मनिर्मितम् ॥ देव्युवाच ॥ त्रिषुलोकेपुत्वंराजास्वायंभुवमनोः सुतः ॥ ३६ ॥ ममपूजांचसर्वत्रकारयित्वास्वयंकुरु ॥ तदादास्यामिपुत्रंतेकुलपद्मंमनोहरम् ॥ ३७ ॥ सुव्रतंनामविख्यातंगुणवंतंसुपंडितम् ॥ जा तिस्मरंचयोगींद्रंनारायणकलात्मकम् ॥ ३८ ॥ शतक्रतुकरंश्रेष्ठंक्षत्रियाणांचवंदितम् ॥ मत्तमातंगलक्षाणांधृतवंतंबलंशुभम् ॥ ३९ ॥

वर्ण उस बालकको हँसता देखा ॥ ३३ ॥ तब राजासे देवसेना पूछकर उस बालकको लेकर आकाशमें जानेकी इच्छा करने लगी ॥ ३४ ॥ तब फिर राजा शुष्क कंठ ओष्ठ तालुसे उसकी प्रार्थना करने लगे तब वह देवी राजाके स्तोत्रसे संतुष्ट हुई ॥ ३५ ॥ और वेदोक्त कर्मको राजासे कहने लगी देवी बोली तुम स्वायं भुव मनुके पुत्र त्रिलोकीके राजा हो ॥ ३६ ॥ तुम सर्वत्र हमारी पूजा कराओ तब मैं तुमको कुलवर्द्धक मनोहर पुत्र दूंगी ॥ ३७ ॥ जो सुव्रत नामसे विख्यात गुण वान् पंडित जातिस्मरणवाला योगीन्द्र नारायणकी कलाही होगा ॥ ३८ ॥ सौ यज्ञका करनेवाला श्रेष्ठ क्षत्रियोंसे नमस्कृत लक्ष मत्तमातंगके बलसे सम्पन्न ॥ ३९ ॥

धनी गुणी शुद्ध विद्वानोंका प्रिय योगी ज्ञानी और तपस्वियोंका सिद्धरूप ॥ ४०॥ लोकमें यशस्वी सब सम्पत्तियोंका देनेवाला होगा यह कहकर देवीने वह बालक राजा को दिया॥ ४१॥ राजाने पूजा स्वीकार की और देवी उसको सुन्दर वर देकर स्वर्गको गई॥ ४२॥ राजा मंत्रियोंसहित प्रसन्न हो अपने घर आये और आकर पुत्र पानेका वृत्तान्त कहा॥ ४३॥ स्त्रियें यह वर सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और पुत्रके निमित्त सर्वत्र मंगल कराया॥ ४४॥ देवीको पूजनकर ब्राह्मणोंको धन दिया और राजाने प्रतिमहीने शुक्लाषष्ठीमें महोत्सव ॥ ४५॥ षष्ठी देवीका कराया और सूतिकास्थानमें बालकोंके निमित्त छठीका उत्सव करवाया ॥ ४६ ॥ छठे अथवा इक्कीसवें दिन उसकी पूजा

धनिनंगुणिनंशुद्धंविदुषांप्रियमेवच ॥ योगिनांज्ञानिनांचैवसिद्धिरूपंतपस्विनाम् ॥ ४० ॥ यशस्विनंचलोकेषुदातारंसर्वसंपदाम् ॥ इत्येवमुक्त्वासादेवीतस्मैतद्बालकंददौ ॥४१॥ राजाचकारस्वीकारंपूजार्थंचप्रियव्रतः ॥ जगामदेवीस्वर्गंचदत्त्वातस्मैशुभंवरम् ॥ ४२ ॥ आजगामसहामात्यःस्वगृहंहृष्टमानसः ॥ आगत्यकथयामासवृत्तांतंपुत्रहेतुकम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वाबभूवुःसंतुष्टावरानार्यश्चनारद ॥ मंगलंकारयामाससर्वत्रपुत्रहेतुकम् ॥ ४४ ॥ देवींचपूजयामासब्राह्मणेभ्योधनंददौ ॥ राजाचप्रतिमासेषुशुक्लषष्ठ्यांमहोत्सवम् ॥ ४५ ॥ षष्ठ्यादेव्याश्चयत्नेनकारयामाससर्वतः ॥ बालानांसूतिकागारेषष्ठाहेयत्नपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ तत्पूजांकारयामासचैकविंशतिवासरे ॥ बालानांशुभकार्येचशुभान्नप्राशनेतथा ॥ ४७ ॥ सर्वत्रवर्धयामासस्वयमेवचकारह ॥ ध्यानंपूजाविधानंचस्तोत्रंमत्तोनिशामय ॥ ४८ ॥ यच्छ्रुतंधर्मवक्त्रेणकौथुमोक्तंचसुव्रत ॥ शालग्रामेघटेवाऽथवटमूलेऽथवामुने॥४९॥ भित्त्यांपुत्तलिकांकृत्वापूजयेद्वाविचक्षणः ॥ षष्ठांशांप्रकृतेःशुद्धांप्रतिष्ठाप्यचसुप्रभाम् ॥ ५० ॥ सुपुत्रदांचशुभदांदयारूपांजगत्प्रसूम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभांरत्नभूषणभूषिताम् ॥ ५१ ॥ पवित्ररूपांपरमांदेवसेनांपरांभजे ॥ इतिध्यात्वास्वशिरसिपुष्पंदत्त्वाविचक्षणः ॥ ५२ ॥ पुनर्ध्यात्वाचमूलेनपूजयेत्सुव्रतांसतीम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयैश्चगंधपुष्पप्रदीपकैः ॥ ५३ ॥

कराई बालकोंके शुभकार्य अथवा अन्नप्राशनदिनमें ॥ ४७ ॥ राजाने सर्वत्र पूजा कराई और आपभी की उनकी ध्यान पूजाविधान और स्तोत्र मुझसे सुनो ॥ ४८॥ हे सुव्रत जो धर्मके मुखसे सुनकर कौथुमने कहा है शालिग्राम, घट, अथवा वटमूलमें ॥ ४९ ॥ वा भित्तिमें मूर्ति खैंचकर चतुर पुरुष पूजनकरै इस शुद्ध प्रकृतिके छठे अंशकी पूजा करके जो सुप्रभा॥ ५०॥ सुपुत्रदा शुभदा दयारूपा जगत्की प्रसूति श्वेतचम्पकके वर्णवाली रत्नोंके भूषणोंसे भूषित हैं ॥ ५१ ॥ उस पवित्ररूपा परमा देवसेनाका मैं भजन करता हूं इसप्रकार चतुर पुरुष ध्यानकर अपने शिरपर फूल रख कर ॥ ५२ ॥ फिर ध्यानकर मूलमंत्रसे सुव्रता सतीका पूजनकरै पाद्य, अर्घ्य,

आचमन, गंध, पुष्प, दीप ॥ ५३ ॥ विविध नैवेद्य और फल निवेदनकरे 'ओंह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा' यह मंत्र विधिपूर्वक जपै ॥ ५४ ॥ इस अष्टाक्षर महामंत्रको यथाशक्ति जपै फिर स्तुतिकर भक्तिसे प्रणामकरे ॥ ५५ ॥ सामवेदोक्त स्तोत्र वर और पुत्रफलका देनेवाला है इस अष्टाक्षर महामंत्रको जो एकलाखवार जपै ॥५६॥ उसको अवश्य सुपुत्रकी प्राप्ति होती है यह ब्रह्माजीने कहा है हे मुनिश्रेष्ठ! सब कामनादायक सुन्दर स्तोत्र सुनो ॥ ५७ ॥ हे नारद! यह सबको वांछादायक स्तोत्र वेदोंमें गूढ रूपसे स्थित है प्रियव्रत बोले देवी महादेवी सिद्धि शांतिके निमित्त नमस्कार है ॥ ५८ ॥ शुभा देवसेना षष्ठी देवीको न०वरदा पुत्रदा धनदाके निमित्त

नैवेद्यैर्विविधैश्चापिफलेनशोभनेनच॥ ॐह्रींषष्ठीदेव्यैस्वाहेतिविधिपूर्वकम् ॥ ५४ ॥ अष्टाक्षरंमहामंत्रंयथाशक्तिजपेन्नरः ॥ ततःस्तुत्वाचप्रणमेद्भक्तियुक्तःसमाहितः ॥ ५५ ॥ स्तोत्रंचसामवेदोक्तंवरंपुत्रफलप्रदम् ॥ अष्टाक्षरंमहामंत्रंलक्षधायोजपेत्ततः ॥ ५६ ॥ सुपुत्रंसलभेन्नूनमित्याहकमलोद्भवः ॥ स्तोत्रंशृणुमुनिश्रेष्ठसर्वकामशुभावहम् ॥ ५७ ॥ वांछाप्रदंचसर्वेषांगूढंवेदेषुनारद ॥ प्रियव्रतउवाच ॥ नमोदेव्यैमहादेव्यैसिद्ध्यैशांत्यैनमोनमः ॥ ५८ ॥ शुभायैदेवसेनायैषष्ठ्यैदेव्यैनमोनमः ॥ वरदायैपुत्रदायैधनदायैनमोनमः ॥५९॥ सुखदायैमोक्षदायैषष्ठ्यैदेव्यैनमोनमः ॥ सृष्ट्यैषष्ठांशरूपायैसिद्धायैचनमोनमः ॥ ६० ॥ मायायैसिद्धयोगिन्यैषष्ठीदेव्यैनमोनमः ॥ सारायैशारदायैचपरादेव्यैनमोनमः ॥ ६१ ॥ बालाधिष्ठातृदेव्यैचषष्ठीदेव्यैनमोनमः ॥ कल्याणदायैकल्याण्यैफलदायैचकर्मणाम् ॥ ६२ ॥ प्रत्यक्षायैस्वभक्तानांषष्ठ्यैदेव्यैनमोनमः ॥ पूज्यायैस्कंदकांतायैसर्वेषांसर्वकर्मसु ॥६३॥ देवरक्षणकारिण्यैषष्ठीदेव्यैनमोनमः ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपायैवंदितायैनृणांसदा ॥ ६४ ॥ हिंसाक्रोधवर्जितायैषष्ठीदेव्यैनमोनमः ॥ धनंदेहिप्रियांदेहिपुत्रंदेहिसुरेश्वरि ॥ ६५ ॥ मानंदेहिजयंदेहिद्विषोजहिमहेश्वरि ॥ धर्मंदेहियशोदेहिषष्ठीदेव्यैनमोनमः ॥ ६६ ॥

प्रणाम है॥ ५९॥ सुखदा, मोक्षदा, षष्ठी देवीको न०सृष्टि षष्ठांशरूपा सिद्धाको प्रणाम है ॥ ६० ॥ माया सिद्धयोगिनी षष्ठी देवी सारा शारदा परा देवीको प्रणाम है ॥६१॥ बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी षष्ठी देवीको प्रणाम है कल्याणदा कल्याणी कर्मोंका फल देनेवाली ॥६२॥ अपने भक्तोंके निमित्त प्रत्यक्ष होनेवाली षष्ठी देवीको प्रणाम है सब कर्मोंमें पूजनीया स्कन्दकांता ॥६३॥ देवरक्षणकारिणी षष्ठी देवीको प्रणाम है शुद्धसत्वस्वरूपा मनुष्योंसे सदा वंदित ॥ ६४ ॥ हिंसा क्रोध रहित षष्ठी देवीको प्रणाम है हे सुरेश्वरि! धन, प्रिया और पुत्र दीजिये ॥६५॥ हे महेश्वरि! मान और जय दो शत्रुओंको नष्टकरो धर्म और यश दो षष्ठी देवीको प्रणाम है ॥६६॥

हे सुपूजिते ! भूमि प्रजा और विद्या दो कल्याण जयदायक षष्ठी देवीको प्रणाम है ॥ ६७ ॥ इससे देवीकी स्तुतिकर प्रियव्रतने पुत्र पायाथा हे राजेन्द्र ! षष्ठी देवीके प्रसादसे यशस्वी पुत्र मिला था ॥ ६८ ॥ जो यह षष्ठीका स्तोत्र एक वर्षतक सुनता है वह अपुत्र चिरजीवीपुत्र को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ और जो एक वर्ष भक्तिसे इसको पूजनकर सुनता है वह सब पापसे रहितहोता है और महावंध्या भी प्रसूती होती है ॥ ७० ॥ वीर, गुणी, विद्वान्, यशस्वी, चिरायुष पुत्रको देवीके प्रसादसे प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ जो स्त्री काकवंध्या और मृतवत्सा होती है वह एक वर्ष इस स्तोत्रको सुनकर षष्ठी देवीके प्रसादसे पुत्र पावैगी॥ ७२॥ बालकके रोगी होनेमें जो पिता माता इसको सुने तो षष्ठी देवीके प्रसादसे एक महीनेमें बालक रोगसे मुक्त होजाता है ॥ ७३ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे

देहिभूमिंप्रजां देहिविद्यांदेहिसुपूजिते ॥ कल्याणंचजयंदेहिषष्ठीदेव्यैनमोनमः ॥ ६७ ॥ इतिदेवींचसंस्तूयलेभेपुत्रंप्रियव्रतः ॥ यशस्विनंचराजेंद्रःषष्ठीदेव्याःप्रसादतः ॥ ६८ ॥ षष्ठीस्तोत्रमिदंब्रह्मन्यःशृणोतितुवत्सरम् ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रंवरंसुचिरजीविनम् ॥ ६९ ॥ वर्षमेकंचयोभक्त्यासंपूज्येदंशृणोतिच ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तोमहावंध्याप्रसूयते ॥ ७० ॥ वीरंपुत्रंचगुणिनंविद्यावंतंयशस्विनम् ॥ सुचिरायुष्यवंतंचसूतेदेवीप्रसादतः ॥ ७१ ॥ काकवंध्याचयानारीमृतवत्साचयाभवेत् ॥ वर्षंश्रुत्वालभेत्पुत्रंषष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ७२ ॥ रोगयुक्तेचबालेचपितामाताशृणोतिचेत् ॥ मासेनमुच्यतेबालःषष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ७३ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेम०नवमस्कंधेनारदनारायणसंवादेषष्ठ्युपाख्यानेषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ कथितंषष्ठ्युपाख्यानंब्रह्मपुत्रयथागमम् ॥ देवीमंगलचंडीचतदाख्यानंनिशामय ॥ १ ॥ तस्याःपूजादिकंसर्वंधर्मवक्त्रेणयच्छ्रुतम् ॥ श्रुतिसंमतमेवेष्टंसर्वेषांविदुषामपि ॥ २ ॥ दक्षायावर्ततेचंडीकल्याणेषुचमंगला ॥ मंगलेषुचयादक्षासाचमंगलचंडिका ॥ ३ ॥ पूज्यायावर्ततेचंडीमंगलोऽपिमहीसुतः ॥ मंगलाभीष्टदेवीयासावामंगलचंडिका ॥ ४ ॥ मंगलोमनुवंश्यश्चसप्तद्वीपधरापतिः ॥ तस्यपूज्याऽभीष्टदेवीतेनमंगलचंडिका ॥५॥ मूर्तिभेदेनसादुर्गामूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ कृपारूपाऽतिप्रत्यक्षायोषितामिष्टदेवता ॥ ६ ॥

नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! यथाशास्त्र षष्ठीका उपाख्यान कहा अब मंगलाचंडी देवीका उपाख्यान सुनो ॥ १ ॥ उसकी सब पूजादि जो धर्मके मुखसे सुनी है जो श्रुति और सब विद्वानोंको इष्ट है ॥ २ ॥ जो कल्याणकर्मोंमें प्रतापवती है वह दक्षा चंडी है और जो मंगल कार्योंमें दक्ष है वह मंगलाचण्डी है ॥ ३ ॥ अथवा भूमि पुत्र मंगलकी अभीष्टदात्री जो चंडी है वह मंगलचंडिका है ॥ ४ ॥ मंगल एक मनुवंशमें सप्त द्वीपका अधिपति हुआ है उसकी पूज्या और अभीष्टदानसे भी यह मंगलचंडिका कहाती है ॥ ५ ॥ मूर्तिभेदसेही वह दुर्गा मूलप्रकृति अधीश्वरी है

प्रत्यक्षरूपसे स्त्रियोंको अभीष्टदात्री है ॥ ६ ॥ प्रथम इस परात्पराका शंकरने पूजन किया था जब घोर त्रिपुर वधको विष्णुने प्रेरणाकी थी ॥ ७ ॥ हे नारद ! जब दैत्यने क्रोधकर आकाशसे विमान पातित किया था तब दुर्गतसंकटमें ब्रह्माके उपदेशसे ॥ ८ ॥ ब्रह्मा विष्णुके उपदेशसे शंकरने दुर्गाभगवतीको संतुष्ट किया था वह रूपभेदसे मंगलचंडी कहाती है ॥ ९ ॥ शिवजीसे यह कहा था कि हे प्रभो ! अब भय नहीं है विष्णु भगवान् वृषरूपसे तुम्हारे वाहन होंगे ॥ १० ॥ और निःसन्देह मैं युद्धशक्तिस्वरूपा हूंगी हे शंकर मेरे और विष्णुके सहायक होनेसे ॥ ११ ॥ देवताओंके पदघातक शत्रुको तुम भलीभांति जयकरसकोगे यह कह भगवती अन्तर्द्धान होकर शंभुकी शक्ति हुई ॥ १२॥ और विष्णुके दिये शस्त्रसे शिवजीने उस दैत्यको मारा हे मुनीन्द्र उस दैत्यके पतित होनेमें सम्पूर्ण देवता महर्षि

प्रथमेपूजितासाचशंकरेणपरात्परा॥त्रिपुरस्यवधेघोरेविष्णुनाप्रेरितेनच॥७॥ब्रह्मन्ब्रह्मोपदेशेनदुर्गतेनचसंकटे॥आकाशात्पतितेयानेदैत्येनपातितेरुषा ॥८॥ ब्रह्मविष्णूपादिष्टश्चदुर्गांतुष्टावशंकरः ॥ साचमंगलचंडीयावभूवरूपभेदतः ॥९॥ उवाचपुरतःशंभोर्भयंनास्तीतितेप्रभो ॥ भगवान्वृषरूपश्चसर्वेशस्ते भविष्यति ॥ १० ॥ युद्धशक्तिस्वरूपाऽहंभविष्यामिनसंशयः ॥ मायात्मनाचहरिणासहायेनवृषध्वज ॥११॥ जहिदैत्यंस्वशत्रुंचसुराणांपदघातकम् ॥ इत्युक्त्वांतर्हितादेवीशंभोःशक्तिर्बभूवसा ॥ १२ ॥ विष्णुदत्तेनशस्त्रेणजघानतमुमापतिः ॥ मुनींद्रपतितेदैत्येसर्वेदेवामहर्षयः ॥ १३ ॥ तुष्टुवुःशंकरंदेवंभक्तिनम्रात्मकंधराः ॥ सद्यःशिरसिशंभोश्चपुष्पवृष्टिर्बभूवह ॥ १४ ॥ ब्रह्माविष्णुश्चसंतुष्टोददौतस्मैशुभाशिषम् ॥ ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्चसुस्नातःशंकरस्तथा ॥ १५ ॥ पूजयामासतांभक्त्यादेवींमंगलचंडिकाम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयैश्चवस्त्रैश्चविविधैरपि ॥ १६ ॥ पुष्पचंदननैवेद्यैर्भक्त्यानानाविधैर्मुने ॥ छागैर्मेषैश्चमहिषैर्गवयैःपक्षिभिस्तथा ॥ १७ ॥ वस्त्रालंकारमाल्यैश्चपायसैःपिष्टकैरपि ॥ मधुभिश्चसुधाभिश्चफलैर्नानाविधैरपि ॥ १८ ॥ संगीतैर्नर्तकैर्वाद्यैरुत्सवैर्नामकीर्तनैः ॥ ध्यात्वामाध्यंदिनोक्तेनध्यानेनभक्तिपूर्वकम् ॥ १९ ॥ ददौद्रव्याणिमूलेनमंत्रेणैवचनारद ॥ ॐह्रींश्रींक्लींसर्वपूज्येदेविमंगलचंडिके ॥ २० ॥

॥ १३ ॥ भक्तिसे नम्रकंधर हो शंकरकी स्तुति करने लगे और उसी समय शिवजीपर पुष्पवृष्टि हुई ॥ १४ ॥ ब्रह्मा विष्णुने प्रसन्न हो उनको श्रेष्ठ आशीर्वाद दिये और इन दोनोंकी आज्ञासे शिवजी स्नानकर ॥ १५ ॥ भक्तिसे मंगलचंडिका देवीकी पूजा करते हुए पाद्य अर्घ्य आचमन दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्र ॥ १६ ॥ हे मुने ! पुष्प चन्दन नैवेद्य और अनेक प्रकार छाग, मेष, महिष, गवय, विविध पक्षी ॥ १७ ॥ वस्त्र, अलंकार, माला, पायस, पिष्ट पदार्थ, मधु, सुधा अनेक प्रकारके फल ॥ १८ ॥ संगीत, नृत्य, वाद्य, उत्सव, नामकीर्तनद्वारा माध्यन्दिनके अनुसार ध्यान करके भक्तिपूर्वक ॥ १९ ॥ हे नारद ! मूलमंत्रसे

देवीकी प्रीतिके निमित्त यह सब दिये "ओं ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मंगलचंडिके हूं हूं फट् स्वाहा" ॥ २० ॥ यह इक्कीस अक्षरका ओंकाररहित मंत्र है यह पूज्य कल्पतरु और भक्तोंको सब कामना देनेवाला है ॥ २१ ॥ दशलाख जपनेसे इस मंत्रकी सिद्धि अवश्य होती है हे ब्रह्मन्! वेदोक्त सर्वसम्मत भगवतीका ध्यान सुनो ॥ २२ ॥ वह सोलहवर्ष की अवस्थावाली निरन्तर स्थिरयौवनवाली बिम्बोष्ठी सुदती निरन्तर शुद्ध शरत्पद्मकी समान मुखवाली ॥ २३ ॥ श्वेतचम्पक के वर्णकी समान नीलकमलवत् नेत्र जगद्धात्री और सबको सब संपत्तियों की देनेवाली ॥ २४ ॥ इस घोर संसारसागरमें ज्योतिरूप का सदा भजन करता हूं हे मुने!

हूंहूंफट्स्वाहाप्येकविंशाक्षरोमनुः ॥ पूज्यःकल्पतरुश्चैवभक्तानांसर्वकामदः ॥ २१ ॥ दशलक्षजपेनैवमंत्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ध्यानंचश्रूयतां ब्रह्मन्वेदोक्तंसर्वसंमतम् ॥ २२ ॥ देवींषोडशवर्षीयांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ बिंबोष्ठींसुदतींशुद्धांशरत्पद्मनिभाननाम् ॥ २३ ॥ श्वेतचंपक वर्णाभांसुनीलोत्पललोचनाम् ॥ जगद्धात्रींचदात्रींचसर्वेभ्यःसर्वसंपदाम् ॥ २४ ॥ संसारसागरेघोरेज्योतीरूपांसदाभजे ॥ देव्याश्चध्यानमित्येवंस्तवनं श्रूयतांसुने ॥ २५ ॥ महादेवउवाच ॥ रक्षरक्षजगन्मातर्देविमंगलचंडिके ॥ हारिकेविपदांराशेर्हर्षमंगलकारिके ॥ २६ ॥ हर्षमंगलदक्षेचहर्षमंगलदा यिके ॥ शुभेमंगलदक्षेचशुभेमंगलचंडिके ॥ २७ ॥ मंगलेमंगलार्हेचसर्वमंगलमंगले ॥ सतांमंगलदेदेविसर्वेषांमंगलालये ॥ २८ ॥ पूज्येमंगलवारे चमंगलाभीष्टदेवते ॥ पूज्येमंगलभूपस्यमनुवंशस्यसंततम् ॥ २९ ॥ मंगलाधिष्ठातृदेविमंगलानांचमंगले ॥ संसारमंगलाधारेमोक्षमंगलदायिनि ॥ ॥ ३० ॥ सारेचमंगलाधारेपारेचसर्वकर्मणाम् ॥ प्रतिमंगलवारेचपूज्येमंगसुखप्रदे ॥ ३१ ॥

देवीका यह ध्यान है अब स्तुति सुनो ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले हे जगन्माता ! चण्डिके ! हमारी रक्षा करो विपत्तिसमूहकी हरनेवाली और हर्ष मंगलकी करनेवाली हो ॥ २६ ॥ हर्ष मंगलदक्ष और हर्ष मंगलकी देनेवाली शुभ मंगलमें दक्ष शुभमंगल चंडिके ॥ २७ ॥ मंगला मंगलके योग्य सब मंगलकी करनेवाली हे देवी ! सत्पुरुषोंको मंगल देनेवाली सबके मंगलका स्थान ॥ २८ ॥ मंगलवारमें पूज्य मंगलकी अभीष्ट देवता तथा मनुवंशमें हुए मंगल राजासे निरन्तर पूजित ॥ २९ ॥ हे देवी ! तुम मंगलकी अधिष्ठात्री देवी मंगलोंकी भी मंगलस्वरूपा इस मंगलाधार संसारमें मोक्षमंगल देनेवाली तुम हो ॥ ३० ॥ मंगलाधारकी सार

सब कर्मोंकी पारगामिनी प्रतिमंगलवारमें पूज्य सर्वत्र जानेवाले बहुत सुखकी देनेवाली हो ॥ ३१॥ शिवजी इस स्तोत्रसे मंगलचंडिकाकी स्तुतिकरके और प्रतिमंगलवारमें पूजा देकर गये ॥ ३२ ॥ प्रथम सर्वमंगलाका शंकरने पूजन किया दूसरीवार मंगल ग्रहने इसका पूजन किया ॥ ३३ ॥ तीसरीवार राजा मंगलने पूजन किया चौथीवार मंगलवारको सुन्दरियोंने पूजा की ॥ ३४ ॥ पांचवींवार मंगलाकांक्षी मनुष्योंने पूजा की फिर सब संसार और विश्वेशने पूजाकी ॥ ३५ ॥ फिर यह परमेश्वरी सर्वत्र पूजित हुई हे मुने देवता मुनि मानव मनु इन्होंने पूजन किया ॥ ३६ ॥ जो कोई सावधान होकर इस देवीके मंगलस्तोत्र को सुनते हैं उसको मंगल ही होता है अमंगल नहीं होता पुत्र पौत्रयुक्त मंगल दिन दिन बढता है ॥ ३७ ॥ नारायण बोले हे नारद! यथाशास्त्र दोनों देवियोंका उपाख्यान कहा अब धर्मके मुखसे सुना मनसाका

स्तोत्रेणानेनशंभुश्चस्तुत्वामंगलचंडिकाम् ॥ प्रतिमंगलवारेचपूजांदत्त्वागतःशिवः ॥ ३२ ॥ प्रथमेपूजितादेवीशिवेनसर्वमंगला ॥ द्वितीयेपूजितासाचमंगलेनग्रहेणच ॥ ३३ ॥ तृतीयेपूजिताभद्रामंगलेननृपेणच ॥ चतुर्थेमंगलेवारेसुंदरीभिःप्रपूजिता ॥ ३४ ॥ पंचमेमंगलाकांक्षिनरैर्मंगलचंडिका ॥ पूजिताप्रतिविश्वेषुविश्वेशपूजितासदा ॥ ३५ ॥ ततःसर्वत्रसंपूज्याबभूवपरमेश्वरी ॥ देवैश्चमुनिभिश्चैवमानवैर्मनुभिर्मुने ॥ ३६ ॥ देव्याश्चमंगलस्तोत्रंयःशृणोतिसमाहितः ॥ तन्मंगलंभवेत्तस्यनभवेत्तदमंगलम् ॥ वर्धतेपुत्रपौत्रैश्चमंगलंचदिनेदिने ॥ ३७ ॥ नारायणउवाच ॥ उक्तंद्वयोरुपाख्यानंब्रह्मपुत्रयथागमम् ॥ श्रूयतांमनसाख्यानंयच्छ्रुतंधर्मवक्त्रतः ॥३८॥ साचकन्याभगवतीकश्यपस्यचमानसी ॥ तेनैवमनसादेवीमनसायाचदीव्यति ॥ ३९ ॥ मनसाध्यायतेयाचपरमात्मानमीश्वरम् ॥ तेनसामनसादेवीतेनयोगेनदीव्यति ॥ ४० ॥ आत्मारामाचसादेवीवैष्णवीसिद्धयोगिनी ॥ त्रियुगंचतपस्तप्त्वाकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ ४१ ॥ जरत्कारुशरीरंचदृष्ट्वायत्क्षीणमीश्वरः ॥ गोपीपतिर्नामचक्रेजरत्कारुरितिप्रभुः ॥ ४२॥ वांछितंचददौतस्यैकृपयाचकृपानिधिः ॥ पूजांचकारयामासचकारचस्वयंप्रभुः ॥ ४३ ॥ स्वर्गेचनागलोकेचपृथिव्यांब्रह्मलोकतः ॥ भृशंजगत्सुगौरीसासुंदरीचमनोहरा ॥ ४४ ॥

आख्यान सुनो ॥ ३८ ॥ यह भगवती कश्यपकी मानसी कन्या है यह मनसे क्रीडा करनेकेही कारण मनसा देवी विख्यात हैं ॥ ३९ ॥ जो मनसा परमात्मा ईश्वरका ध्यान करती है वह मनसादेवी इसी कारण उस योगसे क्रीडा करती है ॥ ४० ॥ यह देवी आत्मारामा वैष्णवी सिद्धयोगिनी है इसने तीन युगपर्यन्त परमात्मा कृष्णका तप किया ॥ ४१ ॥ पुराने वस्त्रकी समान इसका शरीर क्षीण देखकर वा जरत्कारु मुनिकी समान क्षीण शरीर देखकर श्रीकृष्णने इसका जरत्कारु नाम रक्खा ॥ ४२ ॥ और कृपानिधिने इसको मनवांछित वर देकर स्वयं इनकी पूजाकी और कराई थी ॥ ४३ ॥ स्वर्ग नागलोक पृथ्वी

और ब्रह्मलोकतक पूजा हुई तथा गौरी सुन्दरी मनोहरा ॥ ४४ ॥ जगद्गौरी नामोंसे उनसे पूजित हो विख्यात हुई और शिवकी शिष्या होनेसेही यह शैवी कहाती हैं ॥ ४५ ॥ और अत्यन्त विष्णुभक्त होनेसे यह वैष्णवी कहाती है जनमेजयके यज्ञमें इसीने नागोंके प्राणोंकी रक्षाकी थी ॥ ४६ ॥ इसीसे यह नागेश्वरी और नागभगिनी कहकर विख्यात है यह विषहरण करनेमें स्वतंत्र होनेसे विषहरी कहाती है ॥ ४७ ॥ शिवजीसे सिद्धयोग प्राप्त होनेसे यह सिद्धयोगिनी है यह महाज्ञान योगदायक मृतसंजीविनी परा विद्या है ॥ ४८ ॥ मनीषी इसीकारण इसको महाज्ञानवती कहते हैं यह तपस्विनी आस्तीक मुनिश्रेष्ठकी माता है ॥ ४९ ॥

जगद्गौरीतिविख्यातातेनसापूजितासती॥शिवशिष्याचसादेवीतेनशैवीप्रकीर्तिता ॥४५॥ विष्णुभक्ताऽतीवशश्वद्वैष्णवीतेनकीर्तिता॥नागानांप्राणरक्षित्री यज्ञेपारिक्षितस्यच ॥ ४६ ॥ नागेश्वरीतिविख्यातासानागभगिनीतिच ॥ विषंसंहर्तुमीशायातेनविषहरीस्मृता ॥ ४७ ॥ सिद्धयोगंहरात्प्रापतेनसा सिद्धयोगिनी ॥ महाज्ञानंचयोगंचमृतसंजीवनींपराम् ॥ ४८ ॥ महाज्ञानयुतांतांचप्रवदंतिमनीषिणः ॥ आस्तीकस्यमुनींद्रस्यमातासापितपस्विनी ॥ ॥ ४९ ॥ आस्तीकमाताविज्ञाताजगत्यांसुप्रतिष्ठिता ॥ प्रियामुनेर्जरत्कारोर्मुनींद्रस्यमहात्मनः ॥ ५० ॥ योगिनोविश्वपूज्यस्यजरत्कारुप्रियाततः ॥ जरत्कारूर्जगद्गौरीमनसासिद्धयोगिनी ॥५१॥ वैष्णवीनागभगिनीशैवीनागेश्वरीतथा ॥ जरत्कारुप्रियास्तीकमाताविषहरेतिच ॥५२॥महाज्ञानयुताचै वसादेवीविश्वपूजिता ॥ द्वादशैतानिनामानिपूजाकालेतुयःपठेत् ॥ ५३ ॥ तस्यनागभयंनास्तितस्यवंशोद्भवस्यच ॥ नागभीतेचशयनेनागग्रस्तेचमं दिरे ॥ ५४ ॥ नागशोभेमहादुर्गेनागवेष्टितविग्रहे ॥ इदंस्तोत्रंपठित्वातुमुच्यतेनाऽत्रसंशयः ॥ ५५ ॥ नित्यंपठेद्यस्तंदृष्ट्वानागवर्गःपलायते ॥ दशलक्षजपेनैवस्तोत्रंसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ५६ ॥

आस्तीककी माता होकरही जगत्में प्रतिष्ठित है और महात्मा जरत्कारु मुनीन्द्रकी प्रिया है ॥ ५० ॥ इसीसे विश्वपूज्य योगी जरत्कारुकी प्रिया कहाती है जरत्कारु जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी ॥ ५१ ॥ वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी जरत्कारुप्रिया आस्तीकमाता विषहरा ॥ ५२ ॥ महाज्ञानयुता देवी विश्वपूजिता ॥ ५३ ॥ यह बारह नाम जो पूजाके समय पढते हैं ॥ ५३ ॥ उनको तथा उनके वंशवालोंको सर्पोंका भय नहीं होता नागभयमें, शयनमें नागग्रस्त मंदिरमें कहीं भय नहीं होता ॥ ५४ ॥ नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टित विग्रहवाली ऐसा यह स्तोत्र पढकर सर्पभयसे छूट जाता है॥ ५५ ॥ जो इस स्तोत्रको पढता है उसे देखकर सर्पसमूह भाग

जाते हैं दशलाख जपनेसे मनुष्योंको स्तोत्रसिद्धि होजाती है ॥ ५६ ॥ जिसको स्तोत्रसिद्धि होजाय वह विषभी खा सक्ता है और भय नहीं होता और नागोंके भूषणकरके वह नागवाहन हो सक्ता है ॥ ५७ ॥ वह पुरुष नागोंके आसन नागोंकी शय्यापर स्थित होनेवाला महासिद्ध होता है अन्तमें विष्णुके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायांसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! अब मुझसे पूजाका विधान सुनो और ध्यान विधानभी सामवेदोक्त कहता हूं ॥ १ ॥ श्वेतचंपककी समान वर्ण रत्नोंके भूषणोंसे भूषित वह्निशुद्धांशुकाधाना, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥ २ ॥ महाज्ञानयुता बडे २ ज्ञानियोंमें भी बडी सिद्धाधिष्ठातृदेवी सिद्धा सिद्धि देनेवालीका भजन करता हूं

स्तोत्रसिद्धिर्भवेद्यस्यसविषंभोक्तुमीश्वरः ॥ नागैश्चभूषणंकृत्वासभवेन्नागवाहनः ॥ ५७ ॥ नागासनोनागतल्पोमहासिद्धोभवेन्नरः ॥ अंतेचविष्णुनासार्धंक्रीडत्येवदिवानिशम् ॥ ५८ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेनारदनारायणसंवादेसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ मत्तःपूजाविधानंचश्रूयतांमुनिपुंगव ॥ ध्यानंचसामवेदोक्तंप्रोक्तंदेवीविधानकम् ॥ १ ॥ श्वेतचंपकवर्णाभांरत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानांनागयज्ञोपवीतिनीम् ॥ २ ॥ महाज्ञानयुतांतांचप्रवरज्ञानिनांवराम् ॥ सिद्धाधिष्ठातृदेवींचसिद्धांसिद्धिप्रदांभजे ॥ ३ ॥ इतिध्यात्वाचतांदेवींमूलेनैवप्रपूजयेत् ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैःपुष्पगंधानुलेपनैः ॥ ४ ॥ मूलमंत्रैश्चवेदोक्तैर्भक्तानांवांछितप्रदः ॥ मुनेकल्पतरुर्नामसुसिद्धोद्वादशाक्षरः ॥ ५ ॥ ॐह्रींश्रींक्लींऐंमनसादेव्यैस्वाहेतिकीर्तितः ॥ पंचलक्षजपेनैवमंत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ६ ॥ मंत्रसिद्धिर्भवेद्यस्यससिद्धोजगतीतले ॥ सुधासमंविषंतस्यधन्वंतरिसमोभवेत् ॥ ७ ॥ ब्रह्मन्स्नात्वातुसंक्रांत्यांगूढशालासुयत्नतः ॥ आवाह्यदेवीमीशानांपूजयेद्योऽतिभक्तितः ॥ ८ ॥ पंचम्यांमनसाध्यायन्देव्यैदद्याच्चयोबलिम् ॥ धनवान्पुत्रवांश्चैवकीर्तिमान्सभवेद्ध्रुवम् ॥ ९ ॥

॥ ३ ॥ इसप्रकार देवीको ध्यानकर मूलमंत्रसे पूजाकरै नैवेद्य धूप पुष्प गंधानुलेपन ॥ ४ ॥ और वेदोक्त मूलमंत्र पढनेसे वह भक्तोंको मनवांछित फलको देनेवाली है हे मुने ! इस मंत्रको कल्पतरु कहते हैं यह बारह अक्षरका है ॥५॥ "ओंह्रींश्रींक्लीं ऐं मनसादेव्यैस्वाहा" यह मंत्र है इसके पांच लाख जपसे सिद्धि होती है ॥ ६ ॥ जिसको इस मंत्रकी सिद्धि हो वही भूमिमें सिद्ध है उसको विषभी अमृतकी समान होता है वह धन्वन्तरिकी समान होता है ॥ ७ ॥ हे नारद ! स्नानकर एकान्त शालामें बैठ ईशानीदेवीको आवाहन कर यत्नसे पूजनकरै ॥ ८ ॥ जो पंचमीको मनसे ध्यानकर देवीको बलि देता है वह अवश्य धन पुत्र और कीर्तिमान् होता है ॥ ९ ॥

यह पूजाविधान कहा अब आख्यान सुनो हे महाभाग वह धर्मके मुखसे निर्गत हुआ कहता हूं ॥ १० ॥ पहले मनुष्य नागोंसे बहुत व्याकुल हुए थे तब सब कश्यपकी शरणमें गये थे ॥ ११ ॥ तब ब्रह्माके सहित कश्यपने मंत्रोंको निर्माण किया वे वेदके बीजानुसार ब्रह्माके उपदेशसे विषहर मंत्र बने ॥ १२ ॥ और सब मंत्रोंकी अधिष्ठात्री देवीको मनसे सृजन किया वह तप और मनसे प्रगट होनेके कारण मनसा नामवाली हुई ॥ १३ ॥ वह कुमारी शंकरके स्थानको गई और कैलासमें जाय भक्तिसे पूजन कर शंकरको संतुष्ट किया ॥ १४ ॥ उस कन्याने शिवजीको दिव्य सहस्र वर्षतक सेवन किया तब आशुतोष शिवजी उसपर प्रसन्न हुए ॥ १५॥ उसको महाज्ञान देकर सामवेद पढाया और आठ अक्षरका कल्पतरु नामक कृष्ण मंत्र उसको दिया ॥ १६ ॥ लक्ष्मी माया कामबीज चतुर्थीविभक्तियुक्त कृष्णका

पूजाविधानंकथितंतदाख्यानंनिशामय ॥ कथयामिमहाभागयच्छ्रुतंधर्मवक्त्रतः ॥ १० ॥ पुरानागभयाक्रांताबभूवुर्मानवाभुवि ॥ गतास्तेशरणंसर्वेकश्यपंमुनिपुंगवम् ॥ ११ ॥ मंत्रांश्चससृजेभीतःकश्यपोब्रह्मणान्वितः ॥ वेदबीजानुसारेणचोपदेशेनब्रह्मणः ॥ १२ ॥ मंत्राधिष्ठातृदेवींतांमनसाससृजेतथा ॥ तपसामनसातेनबभूवमनसाचसा ॥ १३ ॥ कुमारीसाचसंभूताजगामशंकरालयम् ॥ भक्त्यासंपूज्यकैलासेतुष्टावचंद्रशेखरम् ॥ १४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रंतांसिषेवेचमुनेःसुता ॥ आशुतोषोमहेशश्चतांचतुष्टोबभूवह ॥ १५ ॥ महाज्ञानंददौतस्यैपाठयामाससामच ॥ कृष्णमंत्रंकल्पतरुंददावष्टाक्षरंमुने ॥ १६ ॥ लक्ष्मीमायाकामबीजंङेंतंकृष्णपदंततः ॥ त्रैलोक्यमंगलंनामकवचंपूजनक्रमम् ॥ १७ ॥ पुरश्चर्याक्रमंचाऽपिवेदोक्तंसर्वसंमतम् ॥ प्राप्यमृत्युंजयान्मंत्रंसासतीचमुनेःसुता ॥ १८ ॥ जगामतपसेसाध्वीपुष्करंशंकराज्ञया ॥ त्रियुगंचतपस्तप्त्वाकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ १९ ॥ सिद्धाबभूवसादेवीददर्शपुरतःप्रभुम् ॥ दृष्ट्वाकृशांगींबालांचकृपयाचकृपानिधिः ॥ २० ॥ पूजांचकारयामासचकारचस्वयंहरिः ॥ वरंचप्रददौतस्यैपूजितात्वंभवेभव ॥ २१ ॥ वरंदत्त्वाचकल्याण्यैततश्चांतर्दधेहरिः ॥ प्रथमेपूजितासाचकृष्णेनपरमात्मना ॥ २२ ॥ द्वितीयेशंकरेणैवकश्यपेनसुरेणच ॥ मुनिनामनुनाचैवनागेनमानवादिभिः ॥ २३ ॥ बभूवपूजितासाचत्रिषुलोकेषुसुव्रता ॥ जरत्कारुमुनींद्रायकश्यपस्तांददौपुरा ॥ २४ ॥

मंत्र दिया और त्रैलोक्यमंगलनामक कवच और पूजन क्रम बताया ॥ १७ ॥ और वेदोक्तसर्वसम्मत पुरश्चरण कहा इस प्रकार वह मुनिसुता सती शिवजीसे मंत्रोंको प्राप्त होकर ॥ १८ ॥ शंकरकी आज्ञासे वह साध्वी पुष्करमें तप करनेको चलीगई वहां परमात्मा कृष्णका तीनयुग पर्यन्त आराधन करके ॥ १९ ॥ सिद्ध हुई और कृष्णका दर्शन पाया उस कृशांगीबालाको देखकर कृपापूर्वक कृपानिधिने ॥ २० ॥ उसकी पूजा स्वयं की और दूसरोंसे कराई और उसको वर दिया कि तुम संसारमें पूजित होगी ॥ २१ ॥ इसप्रकार उस कल्याणीको वर दे भगवान् अन्तर्द्धान हुए प्रथम परमात्मा कृष्णने उसका पूजन किया ॥ २२ ॥ फिर शंकर कश्यप मुनि मनु नाग मनुष्योंने पूजन किया ॥ २३ ॥ इसप्रकार वह सुव्रता त्रिलोकीमें पूजित हुई कश्यपजीने प्रथम उसको जरत्कारु मुनीन्द्रको दियाथा ॥ २४ ॥

मुनिश्रेष्ठकी इच्छा न थी परन्तु ब्रह्माकी आज्ञासे उसको ग्रहण किया वह महायोगी उससे विवाह कर तपसे थकित हो ॥ २५ ॥ पुष्करक्षेत्रवटके मूलमें देवीकी जंघापर शिरधर कर सोगये अर्थात् निद्रेश ईश्वरको स्मरण कर सोये ॥ २६ ॥ जब संध्यासमय सूर्य अस्त होनेलगे तब पतिव्रता मनसाने विचार किया ॥ २७ ॥ अर्थात् संध्याके धर्म लोकभयसे विचारने लगी ब्राह्मण नित्यकी पश्चिम संध्या न करके ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यादि पापको प्राप्त होते हैं सो मेरे पतिको यह प्रायश्चित्त लगेगा जो पूर्व और पश्चिमकी संध्या नहीं करते ॥ २९ ॥ वह सर्वत्र नित्य अशुचि होता है उसे ब्रह्महत्यादि पाप लगते हैं यह वेदोक्त वार्ता विचारकर सुन्दरीने अपने पतिको जगाया ॥

अयाचितोमुनिश्रेष्ठोजग्राहब्राह्मणाज्ञया॥कृत्वोद्वाहंमहायोगीविश्रांतस्तपसाचिरम्॥२५॥सुष्वापदेव्याजघनेवटमूलेचपुष्करे॥ निद्रांजगामसमुनिःस्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् ॥२६॥ जगामास्तंदिनकरःसायंकालउपस्थिते॥ संचिंत्यमनसासाध्वीमनसासापतिव्रता ॥२७॥ धर्मलोपभयेनैवचकारालोचनंसती ॥ अकृत्वापश्चिमांसंध्यांनित्यांचैवद्विजन्मनाम् ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापंलभिष्यतिपतिर्मम ॥ नोपतिष्ठतियःपूर्वांनोपास्तेयस्तुपश्चिमाम् ॥ २९ ॥ ससर्वत्राऽशुचिर्नित्यंब्रह्महत्यादिकंलभेत् ॥ वेदोक्तमितिसंचिंत्यबोधयामाससुंदरी ॥ ३० ॥ सचबुद्धोमुनिश्रेष्ठस्तांचुकोपभृशंमुने ॥ मुनिरुवाच ॥ कथंमेसुखिनःसाध्विनिद्राभंगःकृतस्त्वया ॥ ३१ ॥ व्यर्थंव्रतादिकंतस्यायाभर्तुश्चाऽपकारिणी ॥ तपश्चाऽनशनंचैवव्रतंदानादिकंचयत् ॥ ३२ ॥ भर्तुरप्रियकारिण्याःसर्वंभवतिनिष्फलम् ॥ ययाप्रियःपूजितश्चश्रीकृष्णःपूजितस्तया ॥ ३३ ॥ पतिव्रताव्रतार्थंचपतिरूपोहरिःस्वयम् ॥ सर्वदानंसर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम् ॥ ३४ ॥ सर्वंव्रतंतपःसर्वमुपवासादिकंचयत् ॥ सर्वधर्मश्चसत्यंचसर्वदेवप्रपूजनम् ॥ ३५ ॥ तत्सर्वंस्वामिसेवायाःकलांनार्हतिषोडशीम् ॥ पुण्येचभारतेवर्षेपतिसेवांकरोतिया ॥ ३६ ॥ वैकुंठेस्वामिनासार्धंसायातिब्रह्मणःपदम् ॥ विप्रियंकुरुतेभर्तुर्विप्रियंवदतिप्रियम् ॥ ३७ ॥

॥ ३० ॥ हे मुने वह मुनि जागतेही उसपर बडे कुपित हुए मुनि बोले हे साध्वी ! तुमने सुखपूर्वक सोते मेरी निद्राभंग क्यों की ॥ ३१ ॥ जो स्वामीका अपकार करती है उसके व्रतादि सब व्यर्थ होजाते हैं तप अनशन व्रत दान जो कुछ भी है ॥ ३२ ॥ स्वामीकी अप्रिय करने वालीका सब वृथा होजाता है जिसने स्वामीका पूजन किया उसने श्रीकृष्णका पूजन किया ॥ ३३ ॥ पतिव्रताके व्रतके निमित्त पतिही स्वयं नारायण है सब दान सब यज्ञ सब तीर्थोंका सेवन ॥ ३४ ॥ सब व्रत तप सब उपवासादि सब सत्य धर्म और सब देवपूजन ॥ ३५ ॥ यह सब स्वामीसेवाकी सोलहवीं कलाभी नहीं है जो पवित्र भारतवर्षमें पतिकी सेवा करतीहै ॥ ३६ ॥ वह स्वामीके

सहित वैकुण्ठमें प्राप्त होती है और ब्रह्मपदको प्राप्त होती है जो स्वामीको अप्रिय कहती और उनको अप्रिय वचन बोलती है॥ ३७॥ वह असत्कुलकी उत्पन्न हुई जाननी उसका फल सुनो वह चन्द्र सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कुंभीपाकमें पडती है ॥ ३८ ॥ फिर पतिपुत्रसे वर्जित चांडाली होती है यह कहते २ मुनि श्रेष्ठके होठ फडक उठे ॥ ३९ ॥ तब वह साध्वी भयसे कंपितहो मुनिश्रेष्ठसे बोली साध्वीने कहा स्वामिन् संध्याविधिके लोप होनेके भयसे ही आपको जगायाथा ॥ ४० ॥ हे महाभाग ! मुझ दुष्टाकी क्षमा करो शृंगार आहार निद्राको जो भंगकरता है ॥ ४१ ॥ वह चन्द्र सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्र नरकमें पडता है मनसा देवी यह कहकर स्वामीके

असत्कुलेप्रसूताहितत्फलंश्रूयतांसति ॥ कुंभीपाकंव्रजेत्साचयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ३८ ॥ ततोभवतिचांडालीपतिपुत्रविवर्जिता ॥ इत्युक्त्वाचमुनिश्रेष्ठो बभूवस्फुरिताधरः ॥ ३९ ॥ चकंपेतेनसासाध्वीभयेनोवाचतंपतिम् ॥ साध्व्युवाच ॥ संध्यालोपभयेनैवनिद्राभंगः कृतस्तव ॥ ४० ॥ कुरुशांतिमहाभागदुष्टायाममसुव्रत ॥ शृंगाराहारनिद्राणांयश्चभंगंकरोतिवै ॥ ४१ ॥ सव्रजेत्कालसूत्रंवैयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ इत्युक्त्वामनसादेवीस्वामिनश्चरणांबुजे ॥ ४२ ॥ पपातभक्त्याभीताचरुरोदचपुनःपुनः ॥ कुपितंचमुनिंदृष्ट्वाश्रीसूर्यंशप्तुमुद्यतम् ॥ ४३ ॥ तत्राऽऽजगामभगवान्संध्ययासहनारद ॥ तत्राऽऽगत्यमुनिंसम्यगुवाचभास्करःस्वयम् ॥ ४४ ॥ विनयेनचभीतश्चतयासहयथोचितम् ॥ भास्करउवाच ॥ सूर्यास्तसमयंदृष्ट्वासाध्वीधर्मभयेनच ॥ ४५ ॥ ॥ बोधयामासत्वांविप्रशरणंत्वामहंगतः ॥ क्षमस्वभगवन्ब्रह्मन्मांशप्तुंनोचितंमुने ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणानांचहृदयंनवनीतसमंसदा ॥ तेषांक्षणार्धंक्रोधश्चयतोभस्मभवेज्जगत् ॥ ४७ ॥ पुनःस्रष्टुंद्विजःशक्तोनतेजस्वीद्विजात्परः ॥ ब्राह्मणोब्रह्मणोवंशःप्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥ ४८ ॥

चरणकमलमें ॥ ४२ ॥ भयभीत हो गिरपडी और वारंवार रुदन करने लगी तब क्रोधकर मुनि सूर्यको शाप देनेको उद्यत हुए॥ ४३॥ उस स्थानमें भगवान् संध्याके सहित वहां आये हे नारद ! उस समय मुनिसे स्वयं भास्कर कहने लगे ॥ ४४ ॥ और विनय तथा भीतिसे यथोचित वचन कहने लगे भास्कर बोले सूर्यास्तका समय देखकर इस साध्वीने धर्मके भयसे ॥ ४५ ॥ हे विप्र इसकारण तुमको जगाया अब मैं तुम्हारी शरण हुआ हूं हे ब्रह्मन् मुझे क्षमा कीजिये मुझे शाप मत दीजिये ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणोंका हृदय मक्खनकी समान कोमल होता है इनका क्रोध क्षणार्ध होता है नहीं तो जगत् भस्म होजाय ॥ ४७ ॥ और फिरभी जगत्के निर्माण

करनेमें समर्थ होसक्ते हैं ब्राह्मणसे अधिक कोई तेजस्वी नहीं है ब्राह्मण ब्रह्माके वंशमें होनेसे तेजसे अधिक प्रज्वलित होता है ॥ ४८ ॥ सनातन ब्रह्मज्योति कृष्णकी नित्य भावना करे सूर्यके वचन सुन ब्राह्मण जरत्कारु सन्तुष्ट हुए ॥ ४९ ॥ और ब्राह्मणका आशीर्वाद ले सूर्य अपने स्थानको गये और ब्राह्मणने अपनी प्रतिज्ञा पालनके निमित्त मनसाको त्यागदिया ॥ ५० ॥ उसको शोकसे रोता देख यह भी दुःखी हुए उस समय मनसाने अपने गुरु शंकर इष्टदेव विधाता हरिका स्मरण किया ॥ ५१ ॥ तथा इस विपत्तिमें जन्मदाता कश्यपका स्मरण किया तब उस स्थानमें गोपीश्वर, भगवान् शंभु ॥ ५२ ॥ ब्रह्मा और कश्यप मनसाके विचार करतेही आगये जब ब्राह्मणने निर्गुण प्रकृतिसे परे अपने इष्टदेवको देखा ॥ ५३ ॥ तब परम भक्तिसे स्तुतिकर वारंवार प्रणाम करने लगे तथा शिव

श्रीकृष्णंभावयेन्नित्यंब्रह्मज्योतिःसनातनम् ॥ सूर्यस्यवचनंश्रुत्वाद्विजस्तुष्टोबभूवह ॥ ४९ ॥ सूर्योजगामस्वस्थानंगृहीत्वाब्राह्मणाशिषम् ॥ तत्याज मनसांविप्रःप्रतिज्ञापालनायच॥५०॥रुदतींशोकसंयुक्तांहृदयेनविदूयता॥सासस्मारगुरुंशंभुमिष्टदेवंविधिंहरिम् ॥५१॥कश्यपंजन्मदातारंविपत्तौभयक र्शिता ॥ तत्राऽऽजगामगोपीशोभगवाञ्छंभुरेवच ॥५२॥ विधिश्चकश्यपश्चैवमनसापरिचिंतितः ॥ दृष्ट्वाविप्रोऽभीष्टदेवंनिर्गुणंप्रकृतेःपरम् ॥५३॥ तुष्टाव परयाभक्त्याप्रणनाममुहुर्मुहुः ॥ नमश्चकारशंभुंचब्रह्माणंकश्यपंतथा ॥ ५४ ॥ कथमागमनंदेवाइतिप्रश्नंचकारसः ॥ ब्रह्मातद्वचनंश्रुत्वासहसासम योचितम् ॥ ५५ ॥ प्रत्युवाचनमस्कृत्यहृषीकेशपदांबुजम् ॥ यदित्यक्ताधर्मपत्नीधर्मिष्ठामनसासती ॥ ५६ ॥ कुरुष्वाऽस्यांसुतोत्पत्तिंस्वधर्मपालना यवै ॥ जायायांचसुतोत्पत्तिंकृत्वापश्चात्त्यजेन्मुने ॥ ५७ ॥ अकृत्वातुसुतोत्पत्तिंविरागीयस्त्यजेत्प्रियाम् ॥ स्रवतेतस्यपुण्यंचचालन्यांचयथाजलम् ॥ ॥ ५८ ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वाजरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥ चकारनाभिसंस्पर्शंयोगेनमंत्रपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ मनसायामुनिश्रेष्ठमुनिश्रेष्ठउवाचताम् ॥ जरत्कारुरु वाच ॥ गर्भेणानेनमनसेतवपुत्रोभविष्यति ॥ ६० ॥ जितेंद्रियाणांप्रवरोधार्मिकोब्राह्मणाग्रणीः ॥ तेजस्वीचतपस्वीचयशस्वीचगुणान्वितः ॥ ६१ ॥

ब्रह्मा और कश्यपको प्रणाम किया ॥ ५४ ॥ हे देवताओ ! तुम कैसे आये यह प्रश्न भी किया ब्रह्माजी उनके यह वचन सुनकर सहसा समयानुसार ॥ ५५ ॥ हृषीकेशके चरणकमलको प्रणाम कर बोले यदि तुमने अपनी धर्मपत्नी सती मनसाको त्यागन किया है तो ॥ ५६ ॥ अपने धर्म पालन करनेके निमित्त इसको एक पुत्र दीजिये हे मुने ! जायामें पुत्रोत्पत्ति करके पश्चात् त्याग दो ॥ ५७ ॥ जो विरागी विना पुत्रोत्पत्ति किये अपनी प्रियाको त्यागता है उसका पुण्य चलनीके जलकी समान निर्गत होजाता है॥ ५८॥ जरत्कारु मुनीश्वर इसप्रकार ब्रह्माजीका वचन सुन योगसे मंत्र पूर्वक उसकी नाभिस्पर्श करते हुए ॥ ५९ ॥ मनसे यह करके मुनिश्रेष्ठने मनसासे कहा जरत्कारु बोले हे मनसे ! इस गर्भसे तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ६० ॥ जितेन्द्रियोंमें प्रवर धर्मात्मा ब्राह्मणोंमें अग्रणी होगा तेजस्वी तपस्वी

यशस्वी गुणान्वित ॥ ६१ ॥ वेदवित् ज्ञानी और योगियोंमें श्रेष्ठ वह पुत्र धर्मात्मा विष्णुभक्त कुलका उद्धार करैगा ॥ ६२ ॥ ऐसे पुत्रके जन्ममात्रसे प्रसन्न हो पितर नृत्य करते हैं पतिव्रता सुशीला स्वामीसे प्रिय बोलनेवाली ॥६३॥ धर्मिष्ठा पुत्रकी माता कुलकी स्त्री कुलपालिका है जो बंधु हरिकी भक्ति देनवालाही बंधु है, केवल अभीष्ट सुखप्रद बंधु नहीं होता॥६४॥हरिमार्गको दिखानेवाला बंधुही पिता है वही माता यथार्थमें गर्भधारिणी है जो गर्भका रहना छुडा दे ॥ ६५ ॥ यमका भय छुडानेवाली दयाही भगिनी है विष्णुका मंत्र और भक्तिका देनेवाला गुरु होता है॥६६॥ज्ञानदाता गुरु वही है जिस ज्ञानमें कृष्णकी भावना होती है ब्रह्मासे स्तंबपर्यन्त जिससे चराचर विश्व होता है॥ ६७॥ आविर्भाव और तिरोभाव जो है उसके जाननेसे अधिक और क्या ज्ञान होगा हरिकासे वनही वेदका और यज्ञका सार है ॥ ६८ ॥ यही

वरोवेदविदांचैवज्ञानिनांयोगिनांतथा ॥ सचपुत्रोविष्णुभक्तोधार्मिकःकुलमुद्धरेत् ॥ ६२ ॥ नृत्यंतिपितरःसर्वेजन्ममात्रेणवैमुदा ॥ पतिव्रतासुशीलायासाप्रियाप्रियवादिनी ॥ ६३ ॥ धर्मिष्ठापुत्रमाताचकुलस्त्रीकुलपालिका ॥ हरिभक्तिप्रदोबंधुर्नचाभीष्टसुखप्रदः ॥ ६४ ॥ योबंधुश्रेत्सचपिताहरिवर्मप्रदर्शकः ॥ सागर्भधारिणीयाचगर्भावासविमोचनी ॥ ६५ ॥ दयारूपाचभगिनीयमभीतिविमोचनी ॥ विष्णुमंत्रप्रदाताचसगुरुर्विष्णुभक्तिदः ॥ ६६ ॥ गुरुश्चज्ञानदोयोहियज्ज्ञानंकृष्णभावनम् ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंयतोविश्वंचराचरम् ॥ ६७ ॥ आविर्भूतंतिरोभूतंकिंवाज्ञानंतदन्यतः ॥ वेदजंयज्ञजंयद्यत्तत्सारंहरिसेवनम् ॥ ६८ ॥ तत्त्वानांसारभूतंचहरेरन्यद्विडंबनम् ॥ दत्तंज्ञानंमयातुभ्यंसस्वामीज्ञानदोहियः ॥ ६९ ॥ ज्ञानात्प्रमुच्यतेबंधात्सरिपुर्योहिबंधदः ॥ विष्णुभक्तियुतंज्ञानंनोददातिहियोगुरुः ॥ ७० ॥ सरिपुःशिष्यघातीचयतोबंधान्नमोचयेत् ॥ जननीगर्भजक्लेशाद्यमयातनयातथा ॥ ७१ ॥ नमोचयेद्यःसकथंगुरुस्तातोहिबांधवः ॥ परमानंदरूपंचकृष्णमार्गमनश्वरम् ॥ ७२ ॥ नदर्शयेद्यःसततंकीदृशोबांधवोनृणाम् ॥ भजसाध्विपरंब्रह्माच्युतंकृष्णंचनिर्गुणम् ॥ ७३ ॥ निर्मूलंचभवेत्पुंसांकर्मवैतस्यसेवया ॥ मयाच्छलेनत्वंत्यक्ताक्षमस्वैतन्ममप्रिये ॥ ७४ ॥

तत्वोंका सारभूत है हरिसे अन्य वस्तु विडम्बना मात्र है मैंने तुझको ज्ञान दिया है ज्ञानदाता ही यथार्थ स्वामी है ॥ ६९ ॥ ज्ञानसे ही बंधसे छूटता है जो बंधनमें डाले वह शत्रु है जो गुरु विष्णुभक्तियुक्त ज्ञानको नहीं देता ॥ ७० ॥ वह शत्रु शिष्यघाती है कारण कि वह बंधनसे मुक्त नहीं करता जननीके गर्भस्थितिके क्लेश और यमयातनासे ॥ ७१ ॥ जो मुक्त नहीं करता वह कैसा गुरु पिता वा बंधु है परमानन्दरूप अविनाशी कृष्णका मार्ग है ॥७२॥जो इसको निरन्तर नहीं दिखाता वह कैसा बंधु है हे साध्वि ! अच्युत निर्गुण परब्रह्मका भजन करो ॥ ७३ ॥ इनकीही सेवामें पुरुष कर्मबंधनसे छूटता है मैंने इसी निमित्तसे तुमको त्यागा है सो

क्षमा करना "विवाहके समय प्रतिज्ञा की थी यदि यह मेरी आज्ञा न पालन करैगी तौ त्याग दूंगा" ॥ ७४ ॥ क्षमायुक्त साध्वी स्त्रियोंको सत्वगुण अधिक होनेसे क्रोध नहीं होता हे देवि! अब मैं पुष्करमें तप करने जाता हूं तुम यथासुख गमन करो ॥ ७५ ॥ निःस्पृही पुरुषोंके मनोरथ श्रीकृष्णके चरणकमलमेंही होते हैं जरत्कारुके वचन सुन मनसा वडी शोकित हुई ॥ ७६ ॥ आंखोंमें आंसू भर अपने प्राणवल्लभ से बोली मनसा बोली हे प्रभो! आपकी निद्राभंग होनेसे मेरे त्यागनेमें आपका दोष नहीं है ॥ ७७ ॥ पर जहां मैं आपको स्मरण करूं वहां तुम आना बंधुका भेद महाक्लेशदायक है और इसके उपरान्त पुत्रका भेद क्लेशकर है ॥ ७८ ॥ पर स्वामीका वियोग प्राणविच्छेदसे भी दुस्तर है पतिव्रताओंको पति सौ पुत्रोंसे अधिक प्रिय होता है ॥ ७९ ॥ सबसे अधिक प्रिय होनेसेही स्त्री

क्षमायुतानांसाध्वीनांसत्त्वात्क्रोधोनविद्यते ॥ पुष्करेतपसेयामिगच्छदेवियथासुखम् ॥ ७५॥ श्रीकृष्णचरणांभोजेनिःस्पृहाणांमनोरथाः॥ जरत्कारुवचः श्रुत्वामनसाशोककातरा ॥ ७६ ॥ साश्रुनेत्राचविनयादुवाचप्राणवल्लभम् ॥ मनसोवाच ॥ दोषोनास्त्येवमेत्यक्तुंनिद्राभंगेनतेप्रभो ॥ ७७ ॥ यत्रस्मरामित्वांनित्यंतत्रमामागमिष्यसि ॥ बंधुभेदःक्लेशतमःपुत्रभेदस्ततःपरम् ॥ ७८ ॥ प्राणेशभेदःप्राणानांविच्छेदात्सर्वतःपरः ॥ पतिःपतिव्रतानांतुशतपुत्राधिकंप्रियः ॥ ७९ ॥ सर्वस्माच्चप्रियःस्त्रीणांप्रियस्तेनोच्यतेबुधैः ॥ पुत्रेयथैकपुत्राणांवैष्णवानांयथाहरौ ॥ ८० ॥ नेत्रेयथैकनेत्राणांतृषितानांयथाजले ॥ क्षुधितानांयथाऽन्नेचकामुकानांचमैथुने ॥ ८१ ॥ यथापरस्वेचौराणांयथाजारेकुयोषिताम् ॥ विदुषांचयथाशास्त्रेवाणिज्येवणिजांयथा ॥ ८२ ॥ तथाशश्वन्मनःकांतेसाध्वीनांयोषितांप्रभो ॥ इत्युक्त्वामनसादेवीपपातस्वामिनःपदे ॥ ८३ ॥ क्षणंचकारक्रोडेतांकृपयाचकृपानिधिः ॥ नेत्रोदकेनमनसांस्नापयामासतांमुनिः ॥ ८४ ॥ साश्रुनेत्रामुनेःक्रोडंसिषेचभेदकातरा ॥ तदाज्ञानेनतौद्वौचविशोकौसंबभूवतुः ॥ ८५ ॥

पतिको प्रिय कहती है एक पुत्रवालीका जैसे पुत्रमें वैष्णवोंका जैसे हरिमें ॥ ८० ॥ एक नेत्रवालोंका जैसे नेत्रोंमें प्यासोंका जैसे जलमें भूखोंका अन्नमें और कामियोंका मैथुनमें॥ ८१ ॥ चोरोंका पराये धनमें कुलटाओंका जारमें पण्डितोंका शास्त्रमें वनियोंका व्यापारमें ॥ ८२ ॥ जैसे मन होता है इसीप्रकार साध्वी स्त्रियोंका स्वामीमें मन होता है यह कहकर मनसा देवी स्वामीके चरणोंमें गिरी ॥ ८३ ॥ तब वह कृपानिधि क्षणमात्रको प्रियाको गोदमें लेते हुए और मुनिके नेत्रोंके जलसे मनसा भीजगई ॥ ८४ ॥ और वियोगके कारण नेत्रोंके जलसे स्वामीकी गोदी मनसाने भिजोदी तब दोनों ज्ञान अवलम्बन कर शोकरहित हुए ॥ ८५ ॥

वारंवार परमात्मा कृष्णके चरणकमलका स्मरणकर अपनी प्रियाको समझाय ब्राह्मण तप करने गये ॥ ८६ ॥ और मनसा शिवजीके स्थान कैलास मंदिरको गई और शोकसे व्याकुल मनसाको पार्वतीने समझाया ॥ ८७ ॥ और शिवके अतिशय ज्ञानदानके कारण शिवालयमें स्थित वह साध्वी अच्छे दिन मंगलमुहूर्तमें ॥ ८८ ॥ नारायणके अंश योगी और ज्ञानियोंके गुरु पुत्रको उत्पन्न करती हुई शिवजीके मुखसे गर्भमेंही वह ज्ञान सुनकर ॥ ८९ ॥ योगीन्द्र योगी और ज्ञानियोंका गुरु हुआ तब मंगलवाचनकर उसके जातकर्म कराये ॥ ९० ॥ शिवजीने स्वयं उस बालकके कल्याणके निमित्त वेदपाठ करवाया और मणि रत्नकिरीटादि ब्राह्मणोंको दिया ॥ ९१ ॥ पार्वतीने लाख गौ और रत्न दिये शिवजीने चारों वेद और वेदांग ॥ ९२ ॥

स्मारंस्मारंपदांभोजंकृष्णस्यपरमात्मनः ॥ जगामतपसेविप्रःस्वकांतांसंप्रबोध्यच ॥८६॥ जगाममनसाशंभोःकैलासंमंदिरंगुरोः ॥ पार्वतीबोधयामास मनसांशोककर्शिताम् ॥ ८७ ॥ शिवश्चातीवज्ञानेनशिवेनचशिवालयः ॥ सुप्रशस्तेदिनेसाध्वीसुषुवेमंगलक्षणे ॥ ८८ ॥ नारायणांशंपुत्रंतंयोगिनांज्ञानिनांगुरुम् ॥ गर्भस्थितोमहाज्ञानंश्रुत्वाशंकरवक्रतः ॥ ८९ ॥ संबभूवचयोगींद्रोयोगिनांज्ञानिनांगुरुः ॥ जातकंकारयामासवाचयामासमंगलम् ॥९०॥ वेदांश्चपाठयामासशिवायचशिवःशिशोः ॥ मणिरत्नकिरीटांश्चब्राह्मणेभ्योददौशिवः ॥ ९१ ॥ पार्वतीचगवांलक्षंरत्नानिविविधानिच ॥ शंभुश्चचतुरो वेदान्वेदांगानितरांस्तथा ॥ ९२ ॥ बालकंपाठयामासज्ञानंमृत्युंजयंपरम् ॥ भक्तिरस्त्याधिकाकांतेऽभीष्टदेवेगुरौतथा ॥ ९३ ॥ यस्यास्तेनचतत्पुत्रोबभूवाऽऽस्तीकएवच ॥ जगामतपसेविष्णोःपुष्करंशंकराज्ञया ॥९४॥ संप्राप्यचमहामंत्रंततश्चपरमात्मनः ॥ दिव्यंवर्षत्रिलक्षंचतपस्तस्वातपोधनः॥९५॥ आजगाममहायोगीनमस्कर्तुंशिवंप्रभुम् ॥ शंकरंचनमस्कृत्यस्थित्वातत्रैवबालकः॥९६॥साचाऽऽजगाममनसाकश्यपस्याऽऽश्रमंपितुः ॥ तांसपुत्रांसुतां दृष्ट्वासुदंप्रापप्रजापतिः॥९७॥शतलक्षंचरत्नानांब्राह्मणेभ्योददौमुने॥ब्राह्मणान्भोजयामाससोऽसंख्याञ्च्छ्रेयसेशिशोः॥९८॥अदितिश्चदितिश्चान्यामुदंप्रापपरंतप ॥ सासपुत्राचसुचिरंतस्थौतातालयेसदा ॥ ९९ ॥ तदीयंपुनराख्यानंवक्ष्यामितन्निशामय ॥ अथाभिमन्युतनयेब्रह्मशापःपरीक्षिते ॥ १०० ॥

मृत्युंजयके सहित ज्ञानपूर्वक बालकको पढाये और देवगुरुकी अधिक भक्ति उसकी माताके थी ॥ ९३ ॥ इसकारण उसके बालकका नाम आस्तीक रक्खा तब वह शिवजीकी आज्ञासे पुष्करमें तप करनेको गया ॥ ९४ ॥ वहां परमात्माके महामंत्र जो शिव ने दिया था जपते २ उस तपस्वीने दिव्य तीनलाख वर्षतक तपकिया ॥ ९५॥ तब फिर वह महायोगी शिवके नमस्कार करनेको आये और शिवजीको प्रणामकर वह कुमार वहां स्थित हुए ॥९६॥ और तब मनसा अपने पुत्रसहित पिता कश्यपके आश्रममें गई,महर्षिने सुपुत्रा अपनी कन्याको देख बडा आनंद माना॥९७॥उस समय उन्होंने ब्राह्मणोंको सौलाख रत्न दिये और बालकके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया॥९८॥हे परंतप! उस समय अदिति और दिति सबको आनंद हुआ, तब वह सुपुत्रा चिरकालतक पिताके॥९९॥आश्रममें रही मैं उसका आख्यान

कहता हूं सुनो उसी समय अभिमन्युतनय परीक्षित् को ब्राह्मणका शाप हुआ था ॥ १०० ॥ हे नारद! दैवदोष कर्मसे ही ऐसा हुआ कि एक सप्ताहमें तक्षक तुझको काटैगा ॥ १ ॥ यह शृंगी ऋषिने कौशिकीका जल हाथमें लेकर शापदिया राजा यह सुनकर ऐसे स्थानमें स्थित हुए जहां स्वच्छन्द पवनभी नहीं जासक्ती ॥ २ ॥ वह सातदिन देहकी रक्षामें तत्पर होकर रहा, सप्ताह बीतनेपर मार्गमें जाते तक्षकको ॥३ ॥ राजाके पास धनकी इच्छासे गमन करते धन्वन्तरि मिले वहां उन दोनोंका वह परस्पर प्रेमपूर्वक संवाद हुआ ॥ ४ ॥ तब तक्षकने स्वेच्छासे धन्वन्तरिको मणि दी उसे ले सन्तुष्ट मनसे गये ॥ ५ ॥ तक्षकने मंचपर स्थित राजाको डसलिया

बभूवसहसाब्रह्मन्दैवदोषेणकर्मणा ॥ सप्ताहेसमतीतेतुतक्षकस्त्वांचधक्ष्यति ॥ १०१ ॥ शशापशृंगीतत्रैवकौशिक्याश्चजलेनवै ॥ राजाश्रुत्वाततप्रवृत्तिं निर्वातस्थानमागतः ॥ २ ॥ तत्रतस्थौचसप्ताहंदेहरक्षणतत्परः ॥ सप्ताहेसमतीतेतुगच्छंतंतक्षकंपथि ॥ ३ ॥ धन्वंतरिर्नृपंभोक्तुंददर्शगामुकःपथि ॥ तयोर्बभूवसंवादःसुप्रीतिश्चपरस्परम् ॥ ४ ॥ धन्वंतरिर्मणिंप्रापतक्षकःस्वेच्छयाददौ ॥ सययौतंगृहीत्वातुसंतुष्टोहृष्टमानसः ॥ ५ ॥ तक्षकोभक्षयामास नृपंतंमंचकेस्थितम् ॥ राजाजगामतरसादेहंत्यक्त्वापरत्रच ॥ ६ ॥ संस्कारंकारयामासपितुर्वैजनमेजयः ॥ राजाचकारयज्ञंचसर्पसत्रंततोमुने ॥ ७ ॥ प्राणांस्तत्याजसर्पाणांसमूहोब्रह्मतेजसा ॥ सतक्षकोवैभीतस्तुमहेंद्रंशरणंययौ ॥ ८ ॥ सेंद्रंचतक्षकंहंतुंविप्रवर्गःसमुद्यतः ॥ अथदेवाश्चसेंद्राश्चसंजग्मुर्मनसांतिकम् ॥ ९ ॥ तांतुष्टावमहेंद्रश्चभयकातरविह्वलः ॥ ततआस्तीकआगत्ययज्ञंचमातुराज्ञया ॥ ११० ॥ महेंद्रतक्षकप्राणान्ययाचेभूमिपंपरम् ॥ ददौवरंनृपश्रेष्ठःकृपयाब्राह्मणाज्ञया ॥ ११ ॥ यज्ञंसमाप्यविप्रेभ्योदक्षिणांचददौमुदा ॥ विप्राश्चमुनयोदेवागत्वाचमनसांतिकम् ॥ १२ ॥ मनसांपूजयामासुस्तुष्टुवुश्चपृथक्पृथक् ॥ शक्रःसंभृतसंभारोभक्तियुक्तःसदाशुचिः ॥ १३ ॥

राजाका तत्काल देह नष्ट होगया ॥ ६ ॥ जनमेजयने पिताके संस्कार कराये फिर जनमेजयने सर्पसत्र यज्ञ किया ॥ ७ ॥ वहां ब्रह्मतेजके कारण सर्पोंके समूह नष्ट होने लगे तब तक्षक डरकर महेन्द्रकी शरण गया ॥८॥ तब ब्राह्मणोंने इन्द्रसहित तक्षकके नष्ट करनेका उद्योग किया तब देवता इन्द्रादिक मनसाके समीप गये ॥ ९ ॥ वहां भयसे कातर और विह्वल हो इन्द्रने उसको संतुष्ट किया, तब माताकी आज्ञासे आस्तीकने यज्ञमें आकर ॥ १० ॥ राजासे महेन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना करी तब नृपश्रेष्ठने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे वरदिया ॥ ११ ॥ और यज्ञ समाप्तकर ब्राह्मणोंको दक्षिणादी तथा विप्रमुनिदेवता मनसाके समीप गये ॥ १२ ॥ और मनसाको

पूजनकर पृथक् पृथक् पूजन करते हुए और उस समय इन्द्रने भी सामग्री सजाय पवित्रहो ।। १३ ।। आदरसे मनसाको पूज उसकी स्तुतिकरी उसको प्रणामकर षोडशोपचारसे पूज बलि दी ।।१४।। यह भेंट पूजा ब्रह्मा विष्णु शिवकी आज्ञासे सन्तुष्ट होकर दी वे मनसा देवीको पूज अपने २ स्थानको गये ।। १५ ।। यह आपसे सब कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले महेन्द्रने मनसाको किस स्तोत्रसे प्रसन्न किया ।। १६ ।। और तत्वसे उनके पूजाविधि क्रमको कहिये नारायण बोले स्नान आचमन कर पवित्र वस्त्र पहर ।। १७ ।। रत्नसिंहासनपर मनसा देवीको बैठाय भक्तिपूर्वक रत्नघटमें भरे स्वर्गगंगाके जलसे ।। १८ ।। वेदमंत्रसे इन्द्रने मनसादेवी को स्नान कराया और अग्निमें शुद्ध मनोहर वस्त्र पहराये ।।१९।। सर्वांगमें चंदन लगाय भक्तिसहित पादार्घ देकर गणेश, सूर्य, अग्नि,विष्णु, शिव, शिवा

मनसांपूजयामासतुष्टावपरमादरम् ॥ नत्वाषोडशोपचारंबलिंचतात्प्रियंतदा ॥ १४ ॥ प्रददौपरितुष्टश्चब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया ॥ संपूज्यमनसांदेवीं प्रययुःस्वालयंचते ॥ १५ ॥ इत्येवंकथितंसर्वंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ॥ नारदउवाच ॥ ॥ केनस्तोत्रेणतुष्टावमहेंद्रोमनसांसतीम् ॥ १६ ॥ पूजाविधिक्रमंतस्याःश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ नारायणउवाच ॥ सुस्नातःशुचिराचांतोधृत्वाधौतेचवाससी ॥ १७ ॥ रत्नसिंहासनेदेवींवासयामासभक्तितः ॥ स्वर्गंगायाजलेनैवरत्नकुंभस्थितेनच ॥ १८ ॥ स्नापयामासमनसांमहेंद्रोवेदमंत्रतः ॥ वाससीवासयामासवह्निशुद्धेमनोहरे ॥ १९ ॥ सर्वांगे चंदनंकृत्वापादार्घ्यंभक्तिसंयुतः ॥ गणेशंचदिनेशंचवह्निंविष्णुंशिवंशिवाम् ॥ १२० ॥ संपूज्याऽऽदौदेवषट्कंपूजयामासतांसतीम् ॥ ॐह्रींश्रींमनसादेव्यैस्वाहेत्येवंचमंत्रतः ॥ २१ ॥ दशाक्षरेणमूलेनददौसर्वंयथोचितम् ॥ दत्त्वाषोडशोपचारान्दुर्लभान्देवनायकः ॥ २२ ॥ पूजयामासभक्त्याचविष्णुनाप्रेरितोमुदा ॥ वाद्यंनानाप्रकारंचवादयामासतत्रवै ॥ २३ ॥ बभूवपुष्पवृष्टिश्चनभसोमनसोपरि ॥ देवप्रियाज्ञयातत्रब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया ॥ २४ ॥ तुष्टावसाश्रुनेत्रश्चपुलकांकितविग्रहः ॥ पुरंदरउवाच ॥ देवित्वांस्तोतुमिच्छामिसाध्वीनांप्रवरांवराम् ॥ २५ ॥ परात्परांचपरमांनहिस्तोतुंक्षमोऽधुना ॥ स्तोत्राणांलक्षणंवेदेस्वभावाख्यानतत्परम् ॥ २६ ॥ नक्षमःप्रकृतेवक्तुंगुणानांगणनांतव ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपात्वंकोपहिंसाविवर्जिता ॥ २७ ॥

॥ १२० ॥ पहले इन छहों देवताओंको पूजन कर फिर उस सतीकी पूजा की 'ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा' यह मंत्र है ॥ २१ ॥ दशाक्षर मूलमंत्रसे सब वस्तु समर्पण की इसप्रकार इन्द्रने दुर्लभ षोडश उपचार देकर ॥ २२ ॥ विष्णुसे प्रेरित हो भक्तिपूर्वक पूजा करी, और वहां अनेक प्रकारके बाजे बजाये ॥ २३ ॥ आकाशसे मनसाके ऊपर पुष्पवृष्टि हुई देवप्रियता विप्रकी आज्ञासे तथा ब्रह्मा विष्णु शिवकी आज्ञासे ॥ २४ ॥ पुलकित हो नेत्रोंमें जल भर इन्द्र स्तुतिकरने लगे, इन्द्र बोले हे साध्वियोंमें श्रेष्ठ! मैं तुम्हारी स्तुतिकी इच्छा करता हूं ॥ २५ ॥ तुम परात्पर परमात्माकी कौन स्तुति कर सक्ता है, वेदमें स्तोत्रका लक्षण और स्वभावाख्यान ॥ २६ ॥ हे प्रकृति तुम्हारे गुणोंकी गणना कोई नहीं कह सक्ता तुम शुद्धसत्वकी स्वरूप

वाली क्रोध हिंसासे रहित हो ॥ २७ ॥ इससे मुनि तुमको त्यागनेके योग्य नहीं थे कारण कि चलते समय उन्होंने तुम्हारी याचनाकीथी हे साध्वी मैंने तुम्हारी पूजा की तुम मेरी माता अदितिकी समान हो ॥ २८ ॥ तुम दयारूप होनेसे भगिनी और क्षमारूप होनेसे माता हो हे सुरेश्वरि! तुमने मेरे प्राण पुत्रदारादि बचाये हैं ॥ २९ ॥ मैं प्रीति बढानेवाली तुम्हारी पूजाको करता हूं हे जगदम्बिके! तुम नित्य और सर्वत्र पूजनीया हो ॥ १३० ॥ हे सुरेश्वरि! तो भी तुम्हारी पूजाको बढाता हूं जो भक्तिसे तुमको आषाढकी संक्रान्तिको पूजन करेंगे ॥ ३१ ॥ वा मनसा नागपंचमी मासान्त वा दिन दिनमें पूजा करेंगे उनके पुत्र पौत्र और धनादिकी वृद्धि होगी ॥ ३२ ॥ वे यशस्वी कीर्त्तिमान् विद्यावान् गुणी होंगे और जो तुम्हारा पूजन न कर अज्ञानसे निन्दा करेंगे ॥ ३३ ॥ वे लक्ष्मीहीन होंगे और उनको सदा

नचशक्तोमुनिस्तेनत्यक्तुंयाच्ञाकृतायतः ॥ त्वंमयापूजितासाध्वीजननीमेयथाऽदितिः ॥२८॥ दयारूपाचभगिनीक्षमारूपायथाप्रसूः ॥ त्वयामेरक्षिताः प्राणाःपुत्रदाराःसुरेश्वरि ॥२९॥ अहंकरोमित्वत्पूजांप्रीतिश्चवर्धतांसदा ॥ नित्यायद्यपिपूज्यात्वंसर्वत्रजगदंबिके ॥१३०॥ तथाऽपितवपूजांचवर्धयामि सुरेश्वरि ॥ येत्वामाषाढसंक्रांत्यांपूजयिष्यंतिभक्तितः ॥ ३१ ॥ पंचम्यांमनसाख्यायांमासांतेवादिनेदिने ॥ पुत्रपौत्रादयस्तेषांवर्धंतेचधनानिवै ॥ ३२ ॥ यशस्विनःकीर्तिमंतोविद्यावंतोगुणान्विताः ॥ येत्वांनपूजयिष्यंतिनिंदंत्यज्ञानतोजनाः ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीहीनाभविष्यंतितेषांनागभयंसदा ॥ त्वंस्वयं सर्वलक्ष्मीश्चवैकुंठेकमलालया ॥ ३४ ॥ नारायणांशोभगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥ तपसातेजसात्वांचमनसाससृजेपिता ॥ ३५ ॥ अस्माकंरक्षणायैव तेनत्वंमनसाभिधा ॥ मनसादेविशक्तयात्वंस्वात्मनासिद्धयोगिनी ॥ ३६ ॥ तेनत्वंमनसादेवीपूजितावंदिताभव ॥ येभक्त्यामनसां देवाःपूजयंत्यनिशंभृशम् ॥ ३७ ॥ तेनत्वांमनसादेवींप्रवदंतिमनीषिणः ॥ सत्यस्वरूपादेवित्वंशश्वत्सत्यनिषेवणात् ॥ ३८ ॥ योहित्वांभावयेन्नित्यंसत्वांप्राप्नोतितत्परः ॥ इंद्रश्चमनसांस्तुत्वागृहीत्वाभगिनीवरम् ॥ ३९ ॥ प्रजगामस्वभवनंभूषयासपरिच्छदम् ॥ पुत्रेणसार्धंसादेवीचिरंतस्थौपितुर्गृहे ॥ १४० ॥

नागोंसे भय होगा तुमही स्वयं सबकी लक्ष्मी वैकुंठमें कमलास्वरूप हो ॥ ३४ ॥ जरत्कारु मुनीश्वर नारायणके अंश है पिताने तुमको तेज और तपसे मनसे निर्माण किया है ॥ ३५ ॥ हमारी रक्षाको मनसे तुमको प्रगट किया है इसकारण तुम मानसी हो हे देवि तुम सिद्धियोगिनी मनसेही सब कुछ करनेको समर्थ हो ॥ ३६ ॥ उसकारणसे हे मानसी देवि! तुम पूजित और वंदित हुई हो जो कि देवता भक्तिसे मनसे तुमको पूजन करते हैं ॥ ३७ ॥ इसकारण विद्वान् लोग तुमको मानसी देवी कहते हैं हे देवि! निरन्तर सत्यसेवनसे तुम सत्यस्वरूपा हो ॥ ३८ ॥ जो तुम्हारी नित्य भावना करते हैं वह तुममें तत्पर हुए तुमको प्राप्त होंगे इसप्रकार इन्द्र मनसाकी स्तुतिकर और अपनी भगिनीसे वर ग्रहण कर ॥ ३९ ॥ भूषण और सब सामग्री ले कुटुम्बसहित अपने घर गये और वह देवी पुत्रके सहित चिर

कालतक पिताके यहां रही ॥ १४० ॥ वह अपने भाइयोंसेभी पूजित हो सर्वत्र माननीया और पूजनीया हुई, हे नारद ! गोलोकसे कामधेनुने उस पूजिताके समीप आकर ॥ ४१ ॥ क्षीरसे उसको स्नान कराकर आदरसे पूजन किया है, और बड़ा दुर्लभ गुप्त ज्ञान उसको कथन किया ॥ ४२ ॥ उससे और देवतोंसे पूजित होकर वह स्वर्गलोकको गई, इन्द्रके स्तोत्र पुण्य बीजवालेसे जो मनसाको पूजन करता है, और पढ़ता है ॥ ४३ ॥ उसे और उसके वंशवालोंको नागभय नहीं होता, जब यह स्तोत्र सिद्ध होजाय तो विषभी सुधाकी तुल्य होजाता है ॥ ४४ ॥ पांच लाख जपनेसे मनुष्य यह स्तोत्र सिद्धकर लेता है, और वह अवश्यही सर्पोंपर सोने वाला और सर्पोंपर चढ़नेवाला होसक्ता है ॥ १४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ छ ॥ ॥

भ्रातृभिःपूजिताशश्वन्मान्यावंद्याचसर्वतः ॥ गोलोकात्सुरभिर्ब्रह्मंस्तत्रागत्यसुपूजिताम् ॥ ४१ ॥ तांस्नापयित्वाक्षीरेणपूजयामाससादरम् ॥ ज्ञानंच कथयामासगोप्यंसर्वंसुदुर्लभम् ॥ ४२ ॥ तयादेवैःपूजितासास्वर्लोकंचपुनर्ययौ ॥ इंद्रस्तोत्रेणपुण्यबीजंमनसांपूजयेत्पठेत् ॥ ४३ ॥ तस्यनागभयं नास्तितस्यवंशोद्भवस्यच ॥ विषंभवेत्सुधातुल्यंसिद्धस्तोत्रोयदाभवेत् ॥ ४४ ॥ पंचलक्षजपेनैवसिद्धस्तोत्रोभवेन्नरः ॥ सर्पशायीभवेत्सोऽपिनिश्चितंसर्पवाहनः ॥ १४५ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेम०नवमस्कंधेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ कावासासुरभिर्देवीगोलोकादागताचया ॥ तज्जन्मचरितंब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामियत्नतः ॥ १ ॥ नारायणउवाच ॥ गवामधिष्ठातृदेवीगवामाद्यागवांप्रसूः ॥ गवांप्रधानासुरभिर्गोलोकेसासमुद्भवा ॥ २ ॥ सर्वादिसृष्टेश्चरितंकथयामिनिशामय ॥ बभूवतेनतज्जन्मपुरावृंदावनेवने ॥ ३ ॥ एकदाराधिकानाथोराधयासहकौतुकी ॥ गोपांगनापरिवृतोपुण्यंवृंदावनंययौ ॥ ४ ॥ सहसातत्ररहसिविजहारसकौतुकात् ॥ बभूवक्षीरपानेच्छातस्यस्वेच्छामयस्यच ॥५॥ ससृजेसुरभिंदेवींलीलयावामपार्श्वतः ॥ वत्सयुक्तांदुग्धवतींवत्सोनाममनोरथः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वासवत्सांश्रीदामानवभांडेदुदोहच ॥ क्षीरंसुधातिरिक्तंचजन्ममृत्युजराहरम् ॥ ७ ॥ तदुत्थंचपयःस्वादुपपौगोपीपतिःस्वयम् ॥ सरोबभूवपयसांभांडविस्रंसनेनच ॥ ८ ॥

नारदजी ! बोले वह सुरभी देवी कौन है जो गोलोकसे आई हे ब्रह्मन ! मैं उसके जन्मचारित्र सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ नारायण बोले यह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी गौओंकी प्रसूता गौओंमें प्रधान सुरभी गोलोकवासिनी गोलोकमें प्रगट हुई ॥ २ ॥ मैं सर्वादि सृष्टिका चारित्र कहता हूं सुनो जिसकारण फिर वृन्दावनमें उसका जन्म हुआ ॥ ३ ॥ एक समय कौतुकी राधिकानाथ राधाके सहित गोपाङ्गनाओंसे युक्त पवित्र वृंदावनमें गये ॥ ४ ॥ और वहां कौतुकसेही एकान्तमें विहार करने लगे तब उनकी स्वेच्छासे क्षीरपानकी इच्छा हुई ॥५॥ तब उन्होंने लीला पूर्वक वामओरसे सुरभी देवीकी सृष्टि की जो वत्सयुक्त दुधारी थी वत्सका नाम मनोरथ था॥६॥उसको देखकर श्रीदामाने नये बर्तनमें दुहा वह क्षीर जन्म मृत्यु जराका हरनेवाला है ॥ ७ ॥ उसके स्वादु दूधको स्वयं गोपीपतिने पानकिया फिर उस

पात्रके टूटनेसे वहां एक दूधका कुंड होगया ॥ ८ ॥ वह दीर्घ और विस्तृत सौयोजनके मध्यमें था वह क्षीरसरोवर गोलोकमें प्रसिद्ध है ॥९॥ वह गोपी और राधाकी क्रीडावावडी हुई और ईश्वरकी इच्छासे वह रत्नजटित होगई ॥ १० ॥ और वहां सहसा लक्ष कोटिकामधेनु होगईं जितने वहां गोप थे उतनेही सुरभीके लोम कूपसे ॥ ११ ॥ उनके असंख्य पुत्र हुए यह गौओंकी सृष्टि कही जिससे जगत् पूर्ण है ॥ १२ ॥ हेमुने ! पहले भगवानने सुरभीकी पूजा की फिर त्रिलोकीमें इनकी पूजा होने लगी ॥ १३ ॥ दिवालीसे दूसरे दिन श्रीकृष्णकी आज्ञासे गौओंकी पूजा चली है यह हमने धर्मके मुखसे सुना है ॥ १४ ॥ ध्यान स्तोत्र मूल मंत्र जो

दीर्घंचविस्तृतंचैवपरितःशतयोजनम् ॥ गोलोकेऽयंप्रसिद्धश्चसोऽपिक्षीरसरोवरः ॥ ९ ॥ गोपिकानांचराधायाःक्रीडावापीबभूवसा ॥ रत्नेंद्ररचितापूर्णभूताचाऽपीश्वरेच्छया ॥ १० ॥ बभूवकामधेनूनांसहसालक्षकोटयः ॥ यावंतस्तत्रगोपाश्चसुरभ्यालोमकूपतः ॥ ११ ॥ तासांपुत्राश्चबहवःसंबभूवुरसंख्यकाः ॥ कथिताचगवांसृष्टिस्तयाचपूरितंजगत् ॥ १२ ॥ पूजांचकारभगवान्सुरभ्याश्चपुरामुने ॥ ततोबभूवतत्पूजात्रिषुलोकेषुदुर्लभा ॥ १३ ॥ दीपान्वितापरदिनेश्रीकृष्णस्याऽऽज्ञयाहरेः ॥ बभूवसुरभिःपूज्याधर्मवक्त्रादिदंश्रुतम् ॥ १४ ॥ ध्यानंस्तोत्रंमूलमंत्रंयद्यत्पूजाविधिक्रमम् ॥ वेदोक्तंचमहाभागनिबोधकथयामिते ॥ १५ ॥ ॐसुरभ्यैनमइतिमंत्रस्तस्याःषडक्षरः ॥ सिद्धोलक्षजपेनैवभक्तानांकल्पपादपः ॥ १६ ॥ ध्यानंयजुर्वेदगीतंतस्याःपूजाचसर्वतः ॥ ऋद्धिदावृद्धिदाचैवमुक्तिदासर्वकामदा ॥ १७ ॥ लक्ष्मीस्वरूपांपरमांराधासहचरींपराम् ॥ गवामधिष्ठातृदेवींगवामाद्यांगवांप्रसूम् ॥ १८ ॥ पवित्ररूपांपूतांचभक्तानांसर्वकामदाम् ॥ ययापूतंसर्वविश्वंतांदेवींसुरभिंभजे ॥ १९ ॥ घटेवाधेनुशिरसिबंधस्तंभेगवामपि ॥ शालग्रामेजलाग्नौवासुरभिंपूजयेद्द्विजः ॥ २० ॥ दीपान्वितापरदिनेपूर्वाह्णेभक्तिसंयुतः ॥ यःपूजयेच्चसुरभिंसचपूज्योभवेद्भुवि ॥ २१ ॥

जो पूजाविधिका क्रम है हे महाभाग वह वेदोक्त मैं सब कहता हूं सुनो ॥ १५ ॥ ॐ सुरभ्यैनमः यह षडक्षर मंत्र है यह लाख वार जपनेसे सिद्ध होकर कामना पूर्ण करता है ॥ १६ ॥ यजुर्वेदका कहा ज्ञान और उसकी पूजा ऋद्धि और वृद्धि देनेवाली है ॥ १७ ॥ लक्ष्मीस्वरूपा परमा राधा सहचरी परमा गौओंकी अधिष्ठात्री देवी गौओंकी आद्या प्रसूती ॥ १८ ॥ पवित्रोंकी पवित्ररूपा परमा भक्तोंको सब कामना देनेवाली जिसने सब विश्व पवित्र किया है उस सुरभी देवीको भजन करता हूं ॥ १९ ॥ घटमें वा धेनुके शिरमें गौओंके बंधन और स्तंभमें शालिग्राम, जल तथा अग्निमें सुरभीको ब्राह्मण पूजा करै ॥ २० ॥ दीवालीसे अगलेदिन पूर्वाह्णमें

भक्तिपूर्वक जो गौओंकी पूजा करता है वह पृथ्वीमें पूजनीय होता है ॥ २१ ॥ एक समय वाराह कल्पमें विष्णुकी मायासे सुरभीने त्रिलोकीका क्षीर ग्रहण करलिया तब सब देवता चिन्ता करने लगे ॥ २२ ॥ और वे सब ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माको सन्तुष्ट करने लगे तब उनकी आज्ञासे इन्द्रने सुरभीकी प्रार्थना की थी ॥ २३ ॥ इन्द्र बोले देवी महादेवी सुरभी गौओंकी बीजस्वरूपा जगदम्बाको प्रणाम है ॥ २४ ॥ राधाप्रिया पद्मांशा कृष्णप्रिया गौओंकी माताको प्रणाम है ॥ २५ ॥ कल्पवृक्षकी स्वरूपवाली सबको निरन्तर क्षीरधन और बुद्धि देनेवालीको प्रणाम है ॥ २६ ॥ शुभा, सुभद्रा, गोप्रदा, यशोदा, कीर्तिदा, धर्मदाको प्रणाम है ॥ २७ ॥ इस स्तोत्रके सुन्तेही जगत्प्रसूती प्रसन्न हुई और वहीं वह सनातनी ब्रह्मलोकमें प्रगट हुई ॥ २८ ॥ इन्द्रको वांछित और दुर्लभ वर देकर वह गोलोकको और

एकदात्रिषुलोकेषुवाराहेविष्णुमायया ॥ क्षीरंजहारसुरभिर्श्चितिताश्चसुरादयः ॥२२॥ तेगत्वाब्रह्मलोकेचब्रह्माणंतुष्टुवुस्तदा ॥ तदाज्ञयाचसुरभिंतुष्टावपाकशासनः ॥ २३ ॥ पुरंदरउवाच ॥ नमोदेव्यैमहादेव्यैसुरभ्यैचनमोनमः ॥ गवांबीजस्वरूपायैनमस्तेजगदंबिके ॥ २४ ॥ नमोराधाप्रियायैचपद्मांशायैनमोनमः ॥ नमःकृष्णप्रियायैचगवांमात्रेनमोनमः ॥ २५ ॥ कल्पवृक्षस्वरूपायैसर्वेषांसततंपरे ॥ क्षीरदायैधनदायैबुद्धिदायैनमोनमः ॥ २६ ॥ शुभायैचसुभद्रायैगोप्रदायैनमोनमः ॥ यशोदायैकीर्तिदायैधर्मदायैनमोनमः ॥ २७ ॥ स्तोत्रश्रवणमात्रेणतुष्टाहृष्टाजगत्प्रसूः ॥ आविर्बभूवतत्रैवब्रह्मलोकेसनातनी ॥ २८ ॥ महेंद्रायवरंदत्त्वावांछितंचापिदुर्लभम् ॥ जगामसाचगोलोकंययुर्देवादयोगृहम् ॥ २९ ॥ बभूवविश्वंसहसादुग्धपूर्णंचनारद ॥ दुग्धंघृतंततोयज्ञस्ततःप्रीतिःसुरस्यच ॥ ३० ॥ इदंस्तोत्रंमहापुण्यंभक्तियुक्तश्चयःपठेत् ॥ सगोमान्धनवांश्चैवकीर्तिमान्पुत्रवांस्तथा ॥ ३१ ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षितः ॥ इहलोकेसुखंभुक्त्वायात्यंतेकृष्णमंदिरे ॥ ३२ ॥ सुचिरंनिवसेत्तत्रकरोतिकृष्णसेवनम् ॥ नपुनर्भवनंतत्रब्रह्मपुत्रोभवेत्ततः ॥ ३३ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेनवमस्कंधेएकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ नारदउवाच ॥ श्रुतंसर्वमुपाख्यानंप्रकृतीनांयथातथम् ॥ यच्छ्रुत्वामुच्यतेजंतुर्जन्मसंसारबंधनात् ॥ १ ॥

देवादि अपने लोकको गये ॥२९॥ हे नारद! तब सब विश्व दूधसे पूर्ण होगया दूधसे घी उससे यज्ञ और यज्ञसे देवताओंकी प्रीति हुई ॥ ३० ॥ इस महा पुण्यदायक स्तोत्रको जो भक्तिपूर्वक पढता है वह गोमान्, धनवान्, कीर्तिमान्, पुत्रवान् होता है ॥ ३१ ॥ मानो वह सब तीर्थोंमें नहा लिया सब यज्ञोंमें दीक्षित होगया और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें कृष्णके मन्दिरमें जाता है॥ ३२॥ वहां चिरकालतक निवास कर कृष्णका सेवन करता है फिर यहां न लौटकर ब्रह्मपुत्र होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९ ॥ प्रकृतिका यथायोग्य सब उपाख्यान सुना जिसके सुननेसे प्राणी जन्म संसार

वंधनसे छूट जाता है ॥ १ ॥ अब वेदमें गुप्त रहस्यके सुननेकी इच्छा करता हूं जो राधा और दुर्गाका श्रुतिकथित विधान है ॥ २ ॥ तुमने इन दोनोंकी बडी महिमा वर्णन की है इसको सुनकर इसमें किसका मन न लगेगा ॥ ३ ॥ जिनके अंशसे यह सब चराचर जगत् है जिनकी भक्तिसे मुक्ति होती है उसका अब विधान कहो ॥ ४ ॥ नारायण बोले हे नारद ! सुनो वेदकथित विधानरहस्य कहता हूं जो आजतक किसीसे नहीं कहा और सारका भी सार है परात्पर है ॥ ५ ॥ और यह सुनकर दूसरेसे न कहना चाहिये कारण कि बडा गुप्त है मूलप्रकृति जगदीश्वरीसे जगत्के प्रगट होनेमें ॥ ६ ॥ समष्टि व्यष्टि प्राणकी अधिदेवता राधा शक्ति तथा समष्टि व्यष्टि बुद्धिकी अधिदेवता दुर्गा यह समस्त जीवोंकी प्रेरणकरनेवाली प्रगट हुई है ॥ ७ ॥ यह विराटादि सचराचर जगत् उसीके आधीन है जबतक इन दोनोंका प्रसाद नहो

अधुनाश्रोतुमिच्छामिरहस्यंवेदगोपितम् ॥ राधायाश्चैवदुर्गायाविधानंश्रुतिचोदितम् ॥ २॥ महिमावर्णितोऽतीवभवतापरयोर्द्वयोः ॥ श्रुत्वातंतद्गतंचेतो नकस्यस्यान्मुनीश्वर ॥ ३ ॥ ययोरंशोजगत्सर्वंयन्नियम्यंचराचरम् ॥ ययोर्भक्त्याभवेन्मुक्तिस्तद्विधानंवदाऽधुना ॥ ४ ॥ नारायणउवाच ॥ शृणुनारद वक्ष्यामिरहस्यंश्रुतिचोदितम् ॥ यन्नकस्यापिचाऽऽख्यातंसारात्सारंपरात्परम् ॥ ५ ॥ श्रुत्वापरस्मैनोवाच्यंयतोऽतीवरहस्यकम् ॥ मूलप्रकृतिरूपिण्याःसंविदोजगदुद्भवे ॥६॥ प्रादुर्भूतंशक्तियुग्मंप्राणबुद्ध्यधिदैवतम् ॥ जीवानांचैवसर्वेषांनियंतृप्रेरकंसदा ॥७॥ तदधीनंजगत्सर्वंविराडादिचराचरम्॥ यावत्तयोःप्रसादोनतावन्मोक्षोहिदुर्लभः ॥ ८ ॥ ततस्तयोःप्रसादार्थंनित्यंसेवेततद्द्वयम् ॥ तत्रादौराधिकामंत्रंशृणुनारदभक्तितः ॥ ९ ॥ ब्रह्मविष्णवादिभिर्नित्यंसेवितोयःपरात्परः ॥ श्रीराधेतिचतुर्थ्यंतंवह्नेर्जायाततःपरम् ॥ १० ॥ षडक्षरोमहामंत्रोधर्माद्यर्थप्रकाशकः ॥ मायाबीजादिकश्चायंवांछाचिंतामणिःस्मृतः ॥ ११ ॥ वक्त्रकोटिसहस्रैस्तुजिह्वाकोटिशतैरपि ॥ एतन्मंत्रस्यमाहात्म्यंवर्णितुंनैवशक्यते ॥ १२ ॥ जग्राहप्रथमंमंत्रंश्रीकृष्णोभक्तितत्परः ॥ उपदेशान्मूलदेव्यागोलोकेरासमंडले ॥ १३ ॥ विष्णुस्तेनोपदिष्टस्तुतेनब्रह्माविराट्तथा ॥ तेनधर्मस्तेनचाऽहमित्येषाहिपरंपरा ॥ १४॥

तबतक मुक्ति बडी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ इसकारण उन दोनोंके प्रसन्न करनेके निमित्त दोनोंहीका सेवन करै हे नारद ! प्रथम भक्तिसे राधिकाका मंत्र सुनो ॥ ९ ॥ जो परात्पर ब्रह्मा विष्णु आदिसे नित्य सेवित है उसके साथ श्रीराधा यह चतुर्थ्यन्त मंत्र लगावै अर्थात् "ओं ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा" ॥ १० ॥ यह छः अक्षरका महामंत्र धर्मादि अर्थका प्रकाशक है और मायाबीज होनेसे वांछावालोंको चिन्तामणि है ॥ ११ ॥ सौ करोड मुख सौ करोड जिह्वा भी इस मंत्रका माहात्म्य नहीं कह सकती ॥ १२ ॥ प्रथम इस मंत्रको परम भक्तिसे कृष्णने ग्रहण किया गोलोकमें रास मंडलमें मूलदेवी ने उपदेश दिया था ॥ १३ ॥ उनसे विष्णुने, विष्णुसे ब्रह्माने

१ बुद्धि प्राणके संयमनाधीनहीं योग विचार है उनके आधीन मोक्ष है इससे बुद्धि प्राणके अधिष्ठात्री देवताओंकी उपासना करनी ॥

ब्रह्मासे विराट्ने, उनसे धर्मने, धर्मसे मैंने लिया यह इस मंत्रकी परम्परा है ॥ १४ ॥ मै इस मंत्रको जपता हूं, इसकारण मैं इस मंत्रका ऋषि हूं, ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवता भी नित्य उसका प्रसन्नतासे ध्यान करते हैं ॥ १५ ॥ राधामंत्रकी उपासनाके विना कृष्णपूजाका अधिकार नहीं होता इस कारण सब वैष्णवोंको राधाका अर्चन करना चाहिये ॥ १६ ॥ वह कृष्णकी प्रिया देवी हैं और इसीसे वह विभु राधाके आधीन हैं, और वह रासेश्वरी उनके विना स्थित नहीं रह सकती ॥ १७ ॥ सब कामके साधनेसेही इनका राधा नाम है दुर्गा मंत्रके विना और जो मंत्र इस स्कंधमें कहे हैं उन सबका ऋषि मैं हूं ॥ १८ ॥ इसका देवी गायत्री छन्द राधा देवता है प्रणव बीज भुवनेश्वरी शक्ति है ॥ १९ ॥ मूल मंत्रको छः वार आवर्तन कर षडंग न्यास करै फिर रासकी नायिका महादेवी राधिका का ध्यान करै ॥ २० ॥ हे मुने

अहंजपामितंमंत्रंतेनाऽहमृषिरीडितः ॥ ब्रह्माद्याःसकलादेवानित्यंध्यायंतितांमुदा ॥ १५ ॥ कृष्णार्चायांनाधिकारोयतोराधार्चनंविना ॥ वैष्णवैः सकलैस्तस्मात्कर्तव्यंराधिकार्चनम् ॥ १६ ॥ कृष्णप्राणाधिदेवीसातदधीनोविभुर्यतः ॥ रासेश्वरीतस्यनित्यंतयाहीनोनतिष्ठति ॥ १७ ॥ राध्नोति सकलान्कामांस्तस्माद्राधेतिकीर्तिता ॥ अत्रोक्तानांमनूनांचऋषिरस्म्यहमेवच ॥ १८ ॥ छंदश्चदेवीगायत्रीदेवताऽत्रचराधिका ॥ तारोबीजंशक्तिर्वी जंशक्तिस्तुपरिकीर्तिता ॥ १९ ॥ मूलावृत्त्याषडंगानिकर्तव्यानीतरत्रच ॥ अथध्यायेन्महादेवींराधिकांरासनायिकाम् ॥ २० ॥ पूर्वोक्तरीत्यातुमुनेसामवेदे विगीतया ॥ श्वेतचंपकवर्णाभांशरदिंदुसमाननाम् ॥ २१ ॥ कोटिचंद्रप्रतीकाशांशरदंभोजलोचनाम् ॥ बिंबाधरांपृथुश्रोणींकांचीयुतनितंबिनीम् ॥ २२ ॥ कुंदपंक्तिसमानाभदंतपंक्तिविराजिताम् ॥ क्षौमांबरपरीधानांवह्निशुद्धांशुकान्विताम् ॥ २३ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांकरिकुंभयुगस्तनीम् ॥ सदाद्वादश वर्षीयांरत्नभूषणभूषिताम् ॥ २४ ॥ शृंगारसिंधुलहरींभक्तानुग्रहकातराम् ॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ २५ ॥ सुकुमारांगलतिकां रासमंडलमध्यगाम् ॥ वराभयकरांशांतांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ २६ ॥

सामवेदके कहे अनुसार पूर्वोक्त प्रकारसे ध्यान करै श्वेत चंपेकी समान वर्णकी कांति शरदचन्द्रकी समान मुख ॥ २१ ॥ कोटिचन्द्रकी समान कांति शारद कमलकी समान नेत्र बिम्बाकी समान अधर बड़ा श्रोणिभाग कौंधनीयुक्त नितम्ब ॥ २२ ॥ कुन्दकी पंक्तिकी समान दांतोंकी पंक्ति क्षौम वस्त्र पहरे अग्निमें शुद्ध जो अग्निमें रखनेसे न जलै ऐसे वस्त्रोंसे युक्त ॥ २३ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्न मुखवाली हस्तीके कुंभकी समान स्तन द्वादशवर्षकी अवस्था रत्नोंके भूषणोंसे युक्त ॥ २४ ॥ शृंगारसागरकी लहरवाली भक्तके अनुग्रहमें तत्पर मल्लिका चमेलीकी मालायुक्त केशपाशसे विराजित ॥ २५ ॥ सुकुमार अंगकी लतावाली रासमण्डलके मध्यमें स्थित सुन्दर अभयकारिणी

शान्त निरन्तर स्थिरयौवनवाली ॥ २६ ॥ रत्नसिंहासनपर स्थित गोपीमण्डलकी नायिका कृष्णकी प्राणसे अधिक प्यारी वेदबोधित परमेश्वरीकी ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे ध्यान करके शालिग्राम शिला अथवा घटमें बाह्य ध्यान करके वा अष्टदल यंत्रमें विधानसे देवीको पूजन करै ॥ २८ ॥ आवाहन करनेके उपरान्त आसनादि दे मूल मंत्रका उच्चारणकर आसनादिकी कल्पना करै ॥ २९ ॥ पाद्यचरणोंमें और मस्तकमें अर्घ्य दे और मुखमें मूलमंत्रसे तीनवार आचमन करै ॥ ३० ॥ फिर मधुपर्क और एक पयस्विनी गौ दे फिर स्नानशालामें लाकर वहां उसकी भावना करै ॥ ३१ ॥ उबटन स्नानविधि और वस्त्रादिकी कल्पना करके फिर अनेक अलंकारपूर्वक चन्दन दे ॥ ३२ ॥ अनेकप्रकारकी पुष्पमाला तुलसीकी मंजरीयुक्त दे पारिजातके फूल शतपत्र कमल पुष्प दे ॥ ३३ ॥ फिर पवित्रतापूर्वक

रत्नसिंहासनासीनांगोपीमंडलनायिकाम् ॥ कृष्णप्राणाधिकांवेदबोधितांपरमेश्वरीम् ॥२७॥ एवंध्यात्वाततोबाह्येशालग्रामेघटेऽथवा ॥ यंत्रेवाऽष्टदलेदेवीं पूजयेत्तुविधानतः ॥२८॥ आवाह्यदेवींतत्पश्चादासनादिप्रदीयताम् ॥ मूलमंत्रंसमुच्चार्यचाऽऽसनादीनिकल्पयेत् ॥२९॥ पाद्यंतुपादयोर्दद्यान्मस्तकेऽर्घ्यं समीरितम् ॥ मुखेत्वाचमनीयंस्यात्रिवारंमूलविद्यया ॥३०॥ मधुपर्कंततोदद्यादेकांगांचपयस्विनीम् ॥ ततोनयेत्स्नानशालांतांचतत्रैवभावयेत् ॥ ३१॥ अभ्यंगादिस्नानविधिंकल्पयित्वाऽथवाससी ॥ ततश्चचंदनंदद्यान्नानालंकारपूर्वकम् ॥ ३२ ॥ पुष्पमालाबहुविधास्तुलसीमंजरीयुताः ॥ पारिजातप्रसूनानिशतपत्रादिकानिच ॥ ३३ ॥ ततःकुर्यात्पवित्रंतत्परिवारार्चनंविभोः ॥ अग्नीशासुरवायव्यमध्येदिक्ष्वंगपूजनम् ॥ ३४ ॥ कृत्वापश्चादष्टदलेदक्षिणावर्ततोऽग्रतः ॥ मालावतीमग्रदलेवह्निकोणेचमाधवीम् ॥ ३५ ॥ रत्नमालांदक्षिणेचनैर्ऋत्येतुसुशीलकाम् ॥ पश्चाद्दलेशशिकलांपूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ३६ ॥ मारुतेपारिजातांचाप्युत्तरेचपरावतीम् ॥ ईशानकोणेसंपूज्यासुंदरीप्रियकारिणी ॥ ३७ ॥ ब्राह्म्यादयस्तुतद्बाह्येप्याशापालांस्तुभूपुरे ॥ वज्रादिकान्यायुधानिदेवीमित्थंप्रपूजयेत् ॥ ३८ ॥ ततोदेवींसावरणांगंधाद्यैरुपचारकैः ॥ राजोपचारसहितैःपूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ३९ ॥

परिवारका अर्चन करै फिर अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, मध्यादिमें अंगपूजन करै॥ ३४ ॥ फिर अष्टदल यंत्रमें दक्षिण क्रमसे मालादि अष्टशक्तिका पूजन करै उसका क्रम यह है कि अग्रदलमें मालावतीका अग्निकोण में माधवीका ॥ ३५ ॥ दक्षिणमें रत्नमालाका, नैर्ऋत्यमें सुशीलाका, पश्चिममें शशिकलाका, बुद्धिमान् नित्य पूजन करै ॥ ३६ ॥ वायव्यमें पारिजाताका, उत्तरमें परावतीका, ईशानकोणमें प्रियकारिणी सुन्दरीका ॥ ३७ ॥ ब्राह्मी आदिका उसके बाहरभागमें आशापालका भूमिके अग्रभागमें और वज्रादि आयुधसहित इसप्रकारसे निरन्तर देवीका पूजन करै ॥ ३८ ॥ फिर आवरणसहित देवीको गंधादि उपचारके सहित तथा राज

उपचारके सहित बुद्धिमान् पूजन करै ॥ ३९ ॥ फिर सहस्रनामस्तोत्रसे देवीका पूजन करै सहस्र संख्यक जप नित्य प्रयत्नसे करै ॥ ४० ॥ जो इसप्रकारसे परादेवी परमेश्वरीका पूजन करते हैं वह विष्णुकी तुल्य होकर गोलोकमें जाते हैं ॥ ४१ ॥ जो पण्डित कार्तिकी पूर्णमासीको राधाका जन्मोत्सव करता है उसको परादेवी रासेश्वरी अपना सान्निध्य देती है ॥ ४२ ॥ किसी एक कारणसे वृंदावन वनमें वही गोलोकस्थायिनी राधा वृषभानुनन्दिनी हुई ॥ ४३ ॥ इसमें कहे मंत्र और वर्ण संख्याके विधानसे पुरश्चरण कर्म कहा है और इसका दशांश होम करना चाहिये ॥ ४४ ॥ तिल, मधु, घृत, पयके साथ हवन करै और परमभक्तिकरै. नारदजी बोले हे मुने वह स्तोत्र कहिये जिससे देवी प्रसन्न हो ॥ ४५ ॥ नारायण बोले हे परमेशानि हे रासमंडलकी निवासकरनेवाली हे रासेश्वरि हे कृष्णप्राणाधिका तुमको प्रणाम

ततःस्तुवीतदेवेशींस्तोत्रैर्नामसहस्रकैः ॥ सहस्रसंख्यंचजपंनित्यंकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ४० ॥ यएवंपूजयेद्देवींराधांरासेश्वरींपराम् ॥ सभवेद्विष्णुतुल्यस्तुगोलोकंयातिसंततम् ॥ ४१ ॥ यःकार्तिक्यांपौर्णमास्यांराधाजन्मोत्सवंबुधः ॥ कुरुतेतस्यसान्निध्यंदद्याद्रासेश्वरीपरा ॥ ४२ ॥ केनाचित्कारणेनैवराधावृंदावने वने ॥ वृषभानुसुताजातागोलोकस्थायिनीसदा ॥ ४३ ॥ अत्रोक्तानांतुमंत्राणांवर्णसंख्याविधानतः ॥ पुरश्चरणकर्मोक्तंदशांशंहोममाचरेत् ॥ ४४ ॥ तिलैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैर्जुहुयाद्भक्तिभावतः ॥ ॥ नारदउवाच ॥ स्तोत्रंवदमुनेसम्यग्येनदेवीप्रसीदति ॥ ४५ ॥ नारायणउवाच ॥ नमस्तेपरमेशानिरासमंडलवासिनी ॥ रासेश्वरिनमस्तेऽस्तुकृष्णप्राणाधिकप्रिये ॥ ४६ ॥ नमस्त्रैलोक्यजननिप्रसीदकरुणार्णवे ॥ ब्रह्मविष्णवादिभिर्देवैर्वंद्यमानपदांबुजे ॥ ४७ ॥ नमःसरस्वतीरूपेनमःसावित्रिशंकरि ॥ गंगापद्मावतीरूपेषष्ठिमंगलचंडिके ॥ ४८ ॥ नमस्तेतुलसीरूपेनमोलक्ष्मीस्वरूपिणि ॥ नमोदुर्गेभगवतिनमस्तेसर्वरूपिणि ॥ ४९ ॥ मूलप्रकृतिरूपांत्वांभजामःकरुणार्णवाम् ॥ संसारसागरादस्मानुद्धरांबदयांकुरु ॥ ५० ॥ इदंस्तोत्रंत्रिसंध्यंयःपठेद्राधांस्मरन्नरः ॥ नतस्यदुर्लभंकिंचित्कदाचिच्चभविष्यति ॥ ५१ ॥ देहांतेचवसेन्नित्यंगोलोकेरासमंडले ॥ इदंरहस्यंपरमंनचाऽऽख्येयंतुकस्यचित् ॥ ५२ ॥

है ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्यजननी करुणाकी सागर ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंसे नमस्कृत चरणवाली तुमको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ सरस्वतीरूप सावित्रि. शांकरि गंगा पद्मावतीरूपे षष्ठि मंगलचण्डिके तुमको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ तुलसीरूप लक्ष्मीस्वरूपिणि, दुर्गे भगवति सर्वस्वरूपिणि तुमको प्रणाम है ॥ ४९ ॥ तुम मूलप्रकृति करुणारूपिणी हो तुमको प्रणाम है हे मातः हमको संसारसागरसे उद्धार कर दयाकरो ॥ ५० ॥ जो इस स्तोत्रको राधाको स्मरण करता तीनो संध्याओंमें पढता है उसको कभी कोई वात दुर्लभ नहीं रहेगी ॥ ५१ ॥ वह देहान्तमें नित्य रासमण्डलमें निवास करता है यह परम रहस्य किसीसे नहीं कहना चाहिये ॥ ५२ ॥

हे ब्रह्मन्! अब दुर्गाका विधान सुनो जिसके स्मरणमात्रसे महाआपत्ति दूर होती है॥ ५३ ॥ जो इनका भजन नहीं करते हैं उनको कहीं कुछ नहीं हैं वह सर्व माता शैवी शक्ति सबसे उपासनीय है॥ ५४॥ वह सबकी बुद्धिअधिष्ठात्री देवी अन्तर्यामीस्वरूपिणी बडे संकटकी हरनेवाली पृथ्वीमें दुर्गानामसे विख्यात है॥ ५५॥ यह वैष्णव और शैवोंसे नित्य उपासनीय है वह मूल प्रकृतिरूप सृष्टिकी स्थिति अन्त करनेवाली है ॥ ५६ ॥ उसका मंत्रोंमें उत्तम नवाक्षर मंत्र कहता हूं वाणीबीज भुवनेश्वरीबीज कामबीज ॥ ५७ ॥ "ओं ऐंह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे" इसप्रकार यह नवाक्षर मंत्र है यह भजन करनेवालोंको कल्पवृक्षरूप है ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश यह इनके ऋषि हैं गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् यह छन्द हैं ॥ ५९ ॥ महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती देवता हैं रक्तदन्तिका दुर्गा भ्रामरी बीज हैं ॥ ६० ॥ नंदा शाकंभरी

अधुनाशृणुविप्रेंद्रदुर्गादेव्याविधानकम् ॥ यस्याःस्मरणमात्रेणपलायंतेमहापदः ॥ ५३ ॥ एनांनभजतेयोहितादृङ्नास्त्येवकुत्रचित् ॥ सर्वोपास्यासर्वमाताशैवीशक्तिर्महाद्भुता ॥ ५४ ॥ सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमंतर्यामिस्वरूपिणी ॥ दुर्गसंकटहंत्रीतिदुर्गेतिप्रथिताभुवि ॥ ५५ ॥ वैष्णवानांचशैवानामुपास्येयंचनित्यशः ॥ मूलप्रकृतिरूपासासृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ ५६ ॥ तस्यानवाक्षरंमंत्रंवक्ष्येमंत्रोत्तमोत्तमम् ॥ वाग्भवंशंभुवनिताकामबीजंततःपरम् ॥ ॥ ५७ ॥ चामुंडायैपदंपश्चाद्विच्चेइत्यक्षरद्वयम् ॥ नवाक्षरोमनुःप्रोक्तोभजतांकल्पपादपः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानाऋषयोऽस्यप्रकीर्तिताः ॥ छंदांस्युक्तानिसततंगायत्र्युष्णिगनुष्टुभः ॥ ५९ ॥ महाकालीमहालक्ष्मीःसरस्वत्यपिदेवता ॥ स्याद्रक्तदंतिकाबीजंदुर्गाचभ्रामरीतथा ॥ ६० ॥ नंदाशाकंभरीदेव्यौभीमाचशक्तयःस्मृताः ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषुविनियोगउदाहृतः ॥ ६१ ॥ ऋषिच्छंदोदैवतानिमौलौवक्त्रेहृदिन्यसेत् ॥ स्तनयोःशक्तिबीजानिन्यसेत्सर्वार्थसिद्धये ॥ ६२ ॥ बीजत्रयैश्चतुर्भिश्चद्वाभ्यांसर्वेणचैवहि ॥ षडंगानिमनोःकुर्याज्जातियुक्तानिदेशिकः ॥ ६३ ॥ शिखायांलोचनद्वंद्वश्रुतिनासाननेपुच ॥ गुदेन्यसेन्मंत्रवर्णान्सर्वेणव्यापकंचरेत् ॥ ६४ ॥ खड्गचक्रगदाबाणचापानिपरिघंतथा ॥ शूलंभुशुंडींचशिरःशंखंसंदधतींकरैः ॥ ६५ ॥

देवी भीमा शक्तियें हैं धर्म अर्थ काम मोक्षमें इनका विनियोग है ॥ ६१ ॥ ऋषि छन्द देवता मौली (शिर) मुख और हृदयमें न्यास करै सर्व अर्थसिद्धिके निमित्त स्तनोंमें शक्तिबीजका न्यास करै तीन बीज दक्षिणस्तनमें और तीन शक्ति वामस्तनमें न्यास करै ॥ ६२ ॥ फिर तीन और चामुण्डायै इन चार बीजको और विच्चे इन दोसे और पूरेमंत्रसे नमःस्वाहा वषट् हूं वौषट् फट् लगाकर षडंगन्यास करै ॥ ६३ ॥ शिखा दोनों नेत्र कान नासिका मुख गुद इनमें मंत्रवर्णोंका न्यास कर सर्वांगमें न्यास करै ॥ ६४॥ ध्यान कहते हैं खड्ग, चक्र, गदा, बाण, चाप, परिघ, शूल, भुशुण्डी, शिर, शंख, हाथमें लिये॥ ६५॥

महाकाली त्रिनयना नाना भूषणोंसे भूषित नीलांजनकी समान दशपाद और दश मुखवालीको भजन करता हूं ॥ ६६॥ मधुकैटभके नाशके निमित्त ब्रह्माजीने जिनको स्तुति की इसप्रकार कामबीजस्वरूपिणी महाकालीका ध्यान करै ॥ ६७ ॥ महालक्ष्मीका ध्यान कहते हैं अक्षमाला, परशु, गदा, वज्र,पद्म,धनुष, कुंडिका, दंड, शक्ति असि (तलवार) ॥ ६८ ॥ चर्म,अम्बुज, घंटा, सुरापात्र, शूल, पाश, सुदर्शन धारण करनेवाली अरुणप्रभा ॥ ६९ ॥ नवार्णअन्तर्गत मायाबीजकी अधिदेवता लाल कमलके आसनमें स्थित महिषासुरमर्दिनी महादेवीको भजन करता हूं ॥ ७० ॥ महासरस्वतीका ध्यान कहते हैं घंटा, शूल,हल, मुशल, सुदर्शन, धनुर्बाण हस्तकमलमें धारे कुंदकी समान ॥ ७१ ॥ शुंभादि दैत्यका संहार करनेवाली नवार्णमंत्रके वाग्बीजकी अधिदेवता सच्चिदानंद विग्रहवाली महासरस्वतीका ध्यान करता हूं ।। ७२ ॥

महाकालींत्रिनयनांनानाभूषणभूषिताम् ॥ नीलांजनसमप्रख्यांदशपादाननांभजे ॥६६॥ मधुकैटभनाशार्थंयांतुष्टावांबुजासनः ॥ एवंध्यायेन्महाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम् ॥ ६७ ॥ अक्षमालांचपरशुंगदेषुकुलिशानिच ॥ पद्मंधनुष्कुंडिकांचदंडशक्तिमसिंतथा ॥ ६८ ॥ चर्मांबुजंतथाघंटांसुरापात्रं चशूलकम् ॥ पाशंसुदर्शनंचैवदधतीमरुणप्रभाम् ॥ ६९ ॥ रक्तांबुजासनगतांमायाबीजस्वरूपिणीम् ॥ महालक्ष्मींभजेदेवंमहिषासुरमर्दिनीम् ॥७०॥ घंटाशूलेहलंशंखंमुसलंचसुदर्शनम् ॥ धनुर्बाणान्हस्तपद्मैर्दधानांकुंदसन्निभाम् ॥ ७१ ॥ शुंभादिदैत्यसंहर्त्रींवाणीबीजस्वरूपिणीम् ॥ महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानंदविग्रहाम् ॥ ७२ ॥ यंत्रमस्याःशृणुप्राज्ञत्र्यस्रंषट्कोणसंयुतम् ॥ ततोष्टदलपद्मंचचतुर्विंशतिपत्रकम् ॥ ७३ ॥ भूगृहेणसमायुक्तंयं त्रमेवंविचिंतयेत् ॥ शालग्रामेघटेवाऽपियंत्रेवाप्रतिमासुवा ॥७४॥ बाणलिंगेथवासूर्येयजेद्देवीमनन्यधीः ॥ जयादिशक्तिसंयुक्तेपीठेदेवींप्रपूजयेत् ॥७५ ॥ पूर्वकोणेसरस्वत्यासहितंपद्मजंयजेत् ॥ श्रियासहहरिंतत्रनैर्ऋतेकोणकेयजेत् ॥ ७६ ॥ पार्वत्यासहितंशंभुंवायुकोणेसमर्चयेत् ॥ देव्याउत्तरतःपूज्यः सिंहोवामेमहासुरम् ॥ ७७ ॥

इसका यंत्र पहले तीनकोण षट्कोण युक्तकरे तथा उसे अष्टदल पद्म और चौवीसदलपद्मयुक्त करै ।।७३॥ भूगृह(गृह)से युक्त इसप्रकारसे विचारकरै शालिग्राम घटयंत्र वा प्रतिमामें ॥ ७४॥ बाणलिंग वा सूर्यमें अनन्य बुद्धिसे देवीका यजन करै जयादि शक्तिसंयुक्त पीठ'सिंहासन'में देवीको ध्यान करै जयादिशक्ति "जयायैनमः विजयायैनमःअजितायैनमः अपराजितायैनमः नित्यायैनमः विलासिन्यैनमः दोग्ध्र्यैनमः अघोरायैनमः मंगलायै नमः" ॥ ७५ ॥ आवरण देवता कहते हैं पूर्वकोण अर्थात् देवीके अग्रकोणमें सरस्वतीसहित ब्रह्माजीको पूजे 'सरस्वतीसहिताय ब्रह्मणेनमः'इत्यादि सर्वत्र जानना नैर्ऋत्य कोणमें लक्ष्मीसहित हरिको ॥ ७६ ॥ वायु कोणमें पार्वतीसहित शिवको

देवीके उत्तरकी ओर सिंह और वाम ओर महासुर महिषकी सायुज्य पानेके कारण पूजा करै ॥ ७७ ॥ महिषपूजा अन्तमें करै यह यजनक्रमसे षट्कोणमें करै नंदजा, रक्तदंतिका, शाकंभरी, शिवा ॥ ७८ ॥ दुर्गा, भीमा, भ्रामरीको पूजे आठों दलोंमें फिर ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ॥७९॥ वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, चामुण्डाको पूजै फिर चौवीस दलोंमें पूर्वसे क्रमानुसार ॥८०॥ विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, परा, तृष्णा, शांति, जाति, लज्जा ॥८१॥ शांति, श्रद्धा, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, मातृ, भ्रांति यह क्रमसे पूजै ॥ ८२ ॥ फिर भूपुर कोणमें गणेश क्षेत्रपाल बटुक योगिनीका बुद्धिमान् पूजन करे ॥ ८३ ॥ इसके बाहर वज्रादि हाथमें लिये इन्द्रादिका पूजन करे इसप्रकार आवरणसहित देवीको पूजे ॥ ८४ ॥ और भगवतीकी सन्तुष्टताके निमित्त विधिवत् राजउपचार समर्पण करै, फिर अर्थपूर्वक नवार्ण मंत्रका जप करे, इस मंत्रमें महासरस्वती महालक्ष्मी महाकालीके क्रमसे बीज हैं, और वित् च इ यह तीन पद क्रमसे

महिषंपूजयेदंतेषट्कोणेषुयजेत्क्रमात् ॥ नंदजांरक्तदंतांचतथाशाकंभरींशिवाम् ॥ ७८ ॥ दुर्गांभीमांभ्रामरींचततोवसुदलेषुच ॥ ब्राह्मींमाहेश्वरींचैवकौमारींवैष्णवींतथा ॥७९॥ वाराहींनारसिंहींचऐंद्रींचामुंडकांतथा ॥ पूजयेच्चततःपश्चात्तत्त्वपत्रेषुपूर्वतः ॥८०॥ विष्णुमायांचेतनांचबुद्धिंनिद्रांक्षुधांतथा ॥ छायांशक्तिंपरांतृष्णांशांतिंजातिंचलज्जया ॥८१॥ शांतिंश्रद्धांकीर्तिलक्ष्म्यौधृतिंवृत्तिंश्रुतिंस्मृतिम् ॥ दयांतुष्टिंततःपुष्टिंमातृभ्रांतीइतिक्रमात् ॥८२॥ ततोभूपुरकोणेषुगणेशंक्षेत्रपालकम् ॥ बटुकंयोगिनीश्चापिपूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ८३ ॥ इंद्राद्यानपितद्बाह्येवज्राद्यायुधसंयुतान् ॥ पूजयेदनयारीत्यादेवींसावरणांततः ॥ ८४ ॥ राजोपचारान्विविधान्दद्यादंबाप्रतुष्टये ॥ ततोजपेन्नवार्णंचमंत्रंमंत्रार्थपूर्वकम् ॥ ८५ ॥ ततःसप्तशतीस्तोत्रंदेव्याअग्रेतुसंपठेत् ॥ नानेनसदृशंस्तोत्रंविद्यतेभुवनत्रये ॥८६॥ ततश्चाऽनेनदेवेशींतोषयेत्प्रत्यहंनरः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामालयंजायतेनरः ॥ ८७ ॥ इतितेकथितंविप्रश्रीदुर्गायाविधानकम् ॥ कृतार्थतायेनभवेत्तदेतत्कथितंतव ॥ ८८ ॥ सर्वेदेवाहरिब्रह्मप्रमुखामनवस्तथा ॥ मुनयोज्ञाननिष्ठाश्चयोगिनश्चाऽऽश्रमास्तथा ॥ ॥ ८९ ॥ लक्ष्म्यादयस्तथादेव्यःसर्वेध्यायंतितांशिवाम् ॥ तदैवजन्मसाफल्यंदुर्गास्मरणमस्तिचेत् ॥ ९० ॥

सत चित् आनंदके वाचक चामुण्डापद ब्रह्मविद्याका विशेषण है, उसका हम ध्यान करते हैं, अर्थात् हे चिद्रूपिणी महासरस्वती हे सद्रूपिणी महासरस्वति हे आनंदरूपिणी महाकालिका तुमको चामुण्डाये ब्रह्मविद्याप्राप्तिके लिये ध्यान करता हूं॥८५॥ फिर देवीके आगे सप्तशतीस्तोत्र पढै इसके समान तीनों भुवनमें दूसरा स्तोत्र नहीं है. [यह मार्कण्डेय पुराणका है] ॥ ८६ ॥ इससे प्रतिदिन मनुष्य देवेशीका यजनकरै चार लाख इसका पुरश्चरण और दशांश पायसका हवन करै ॥ इससे मनुष्यको धर्म अर्थ काम मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ८७ ॥ हे विप्र ! यह आपसे श्रीदुर्गापूजाका विधान कहा, इससे कृतार्थता प्राप्त होती है सो आपसे सुनाया ॥ ८८ ॥ सब देवता हरि, ब्रह्मा, मनु, ज्ञाननिष्ठ मुनि, योगी, आश्रमवासी ॥८९॥ लक्ष्मीआदिक देवी सबही उस शिवाका ध्यान करती हैं दुर्गाके स्मरणसेही जन्मकी

सफलता होती है ॥ ९० ॥ चौदह मनु जिसके चरणकमलका ध्यान करके मनुत्वको प्राप्त हुए तथा दूसरे देवता निज २ पदको प्राप्त हुए ॥ ९१ ॥ सो रहस्यसेभी रहस्य यह हमने तुमसे कहा है पांचो प्रकृति तथा उनके अंशोंका वर्णन किया ॥ ९२ ॥ इसके सुननेसे मनुष्य चारों पदार्थोंको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं यह मैंने सत्यही कहा है ॥ ९३ ॥ इसके सुननेसे अपुत्रको पुत्र, विद्यार्थीको विद्या मिलती है बहुत क्या जिस जिस निमित्त सुने उसको उसी २ कामनाकी प्राप्ति होती है ॥ ९४ ॥ जो देवीके आगे सावधान होकर नौरातमें इसको पढै उसपर भगवती अवश्य संतुष्ट होतीहैं ॥ ९५ ॥ और जो मनुष्य नित्य एक एक अध्यायको पढता है वह देवीका प्रिय करनेवाला है, देवी उसके वशीभूत होती है ॥ ९६ ॥ इसमें यथाविधि शकुनोंकी परीक्षा करै उसका क्रम यह है कि कुमारीके अथवा बटुकके हाथसे

चतुर्दशाऽपिमनवोध्यात्वाचरणपंकजम् ॥ मनुत्वंप्राप्तवंतश्चदेवाःस्वंस्वंपदंतथा ॥ ९१ ॥ तदेतत्सर्वमाख्यातंरहस्यातिरहस्यकम् ॥ प्रकृतीनांपंचकस्य तदंशानांचवर्णनम् ॥ ९२ ॥ श्रुत्वैतन्मनुजोनित्यंपुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ लभतेनाऽत्रसंदेहःसत्यंसत्यंमयोदितम् ॥ ९३ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रंविद्यार्थीप्राप्नुयाच्चताम् ॥ यंयंकामंस्मरेद्धापितंतंश्रुत्वासमाप्नुयात् ॥ ९४ ॥ नवरात्रेपठेदेतद्देव्यग्रेतुसमाहितः ॥ परितुष्टाजगद्धात्रीभवत्येवहिनिश्चितम् ॥ ९५ ॥ नित्यमेकैकमध्यायंपठेद्यःप्रत्यहंनरः ॥ तस्यवश्याभवेद्देवीदेवीप्रियकरोहिसः ॥ ९६ ॥ शकुनांश्चपरीक्षेतनित्यमस्मिन्यथाविधि ॥ कुमारीदिव्यहस्तेन यद्वाबटुकरांबुजात् ॥ ९७ ॥ मनोरथंतुसंकल्प्यपुस्तकंपूजयेत्ततः ॥ देवींचजगदीशानींप्रणमेच्चपुनः पुनः ॥ ९८ ॥ सुस्नातांकन्यकांतत्राऽऽनीयाऽभ्यर्च्ययथाविधि ॥ शलाकांरोपयेन्मध्येतयास्वर्णेननिर्मिताम् ॥ ९९ ॥ शुभंवाऽप्यशुभंतत्रयदायातिचतद्भवेत् ॥ उदासीनेऽप्युदासीनंकार्यंभवतिनिश्चितम् ॥ १०० ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेपंचाशत्तमोध्यायः ॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

वाणाक्षिरसरामैस्तुसार्धैः (३६२५) श्लोकैःसुविस्तरः ॥ देवीभागवतस्यास्यनवमस्कंधईरितः ॥ ९ ॥

॥ ९७ ॥ अपना मनोरथ मनमें विचार कर पुस्तक पूजन करावै और जगत्की ईशानी देवीको वारंवार प्रणाम करै ॥ ९८ ॥ अच्छी प्रकार स्नान करी कन्याको लाकर और स्वयं स्नान कर एक सुवर्णशलाका उनके हाथमें दे ॥ ९९ ॥ उन अध्यायोंके चक्रमें उस शलाकाको रखावै फिर जिस अध्यायमें वह शलाका रक्खै उसके अनुसार उस अध्यायको देखकर जैसा लिखा हो वैसा कहै, उसीके अनुसार ग्रंथका शुभाशुभ फल कहै यदि शुभ हो तो शुभ यदि अशुभवार्त्ता निकलै तौ अशुभ फल जानना यदि उसके डालनेमें कुमारी उदासीनता करै तौ उदासीन फल जानना चाहिये यह आपसे देवीचरित्र वर्णन किया ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे गंगागर्भसम्भूतसर्वविद्यासम्पन्नमिश्रसुखानंदात्मजविद्यावारिधिपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतौ भाषाटीकायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रितम् । संवत् १९५८, शके १८२३, सन् १९०१ ई०

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते नवमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते दशमस्कन्धः प्रारभ्यते ॥

दोहा—शिवा भवानी भक्तहित,—कारिणि सब सुखमूल । जन ज्वालाप्रसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥

श्रीनारदजी बोले हे नारायण अधराधार ! सबके पालनके कारण आपका कहा हुआ पापनाशन देवीचरित्र सुना ॥ १ ॥ सब मन्वन्तरोंमें वह देवी जो स्वरूप धारण करती है जिस आकारसे वह महेश्वरी प्रादुर्भाव करती है ॥ २ ॥ वह देवी माहात्म्यसंयुक्त कथा हमसे कहिये जिस प्रकार वह जिससे पूजित और स्तुतिको प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ और भक्तोंके भक्तवत्सलतासे मनोरथ पूरे करती है वह हम देवीचरित्र सुननेवालोंको ॥ ४ ॥ वर्णन कीजिये जिससे बडे सुखकी प्राप्ति हो श्रीनारायण बोले हे महर्षे ! पापनाशन चरित्रको श्रवण कीजिये ॥५॥ जो भक्तोंकोभक्ति देनेवाला आर महासंपत्ति करनेवाला है लोकपितामह ब्रह्मा महातेजस्वी जग

श्रीगणेशायनमः ॥ नारदउवाच ॥ नारायणधराधारसर्वपालनकारण ॥ भवतोदीरितंदेवीचरितंपापनाशनम् ॥१॥ मन्वंतरेषुसर्वेषुसादेवीयत्स्वरूपिणी ॥ यदाकारेणकुरुतेप्रादुर्भावंमहेश्वरी ॥ २ ॥ तान्नःसर्वान्समाख्याहिदेवीमाहात्म्यमिश्रितान् ॥ यथाचयेनयेनेहपूजितासंस्तुतापिहि ॥ ३ ॥ मनोरथान्पूरयतिभक्तानांभक्तवत्सला ॥ तन्नःशुश्रूषमाणानांदेवीचरितमुत्तमम् ॥ ४ ॥ वर्णयस्वकृपासिंधोयेनाप्नोतिसुखंमहत् ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ आकर्णयमहर्षेत्वंचरितंपापनाशनम् ॥ ५ ॥ भक्तानांभक्तिजननंमहासंपत्तिकारकम् ॥ जगद्योनिर्महातेजाब्रह्मालोकपितामहः ॥ ६ ॥ आविरासीन्नाभिपद्माद्देवदेवस्यचक्रिणः ॥ सचतुर्मुखआसाद्यप्रादुर्भावंमहामते ॥ ७ ॥ मनुंस्वायंभुवंनामजनयामाससमानसात् ॥ समानसोमनुःपुत्रोब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ ८ ॥ शतरूपांचतत्पत्नींजज्ञेधर्मस्वरूपिणीम् ॥ समनुःक्षीरसिंधोश्चतीरेपरमपावने ॥ ९ ॥ देवीमाराधयामाससमहाभाग्यफलप्रदाम् ॥ मूर्तिंचमृन्मयींतस्याविधायपृथिवीपतिः ॥ १० ॥ उपासतेस्मतांदेवींवाग्भवंसजपन्रहः ॥ निराहारोजितश्वासोनियमव्रतकर्शितः ॥ ११ ॥ एकपादेनसंतिष्ठन्धरायामनिशंस्थिरः ॥ शतवर्षंजितःकामःक्रोधस्तेनमहात्मना ॥ १२ ॥ भेजेस्थावरतांदेव्याश्चरणौचिंतयन्हृदि ॥ तस्यतत्तपसादेवीप्रादुर्भूताजगन्मयी ॥ १३ ॥

तके आदिकारण ॥ ६ ॥ भगवान् चक्रधारीके नाभिकमलसे प्रगट हुए हे महामते !इसप्रकार उन चतुर्मुखका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७ ॥ उन्होंने मनसे स्वायंभुव मनुको प्रगट किया वह ब्रह्मापरमेष्ठीके मानसपुत्र हुए ॥ ८ ॥ धर्मरूपिणी उनकी पत्नी शतरूपा हुई वह मनु क्षीरसागरके परम पावन तटमें ॥ ९ ॥ महाभाग्य फलकी देनेवाली देवीकी आराधना करने लगे राजा उसकी मृण्मयी मूर्त्तिका विधान करके ॥ १० ॥ व एकान्तमें भजन करते वाङ्मय देवीका आराधन करने लगे निराहार श्वास रोके हुए नियमव्रतसे कर्शित ॥ ११ ॥ एक पैरसे निरन्तर पृथ्वीमें खडे रहे इस प्रकार सौवर्षतक महात्माने काम क्रोध जीते रक्खा ॥ १२ ॥ और हृदयमें देवीके चर

णोंका ध्यान करते रहे उनके तपसे जगन्माता देवी प्रगट हुई ॥ १३ ॥ और कहा हे राजन् ! वर माँगो यह आनंदजनक दिव्यवचन सुन राजा ॥ १४ ॥ हृदयमें स्थित उन अमरदुर्लभ वरोंको माँगता हुआ मनु बोले हे विशालाक्षि ! सर्वान्तरमें स्थित आपकी जय हो ॥ १५ ॥ हे माननीय पूजनीय जगत्की माता सर्वमंगलमंगला ! तुम्हारी कटाक्षसेही ब्रह्मा जगत् निर्माणकरते हैं ॥ १६ ॥ भगवान् पालते और शंकर क्षणमें संहार करते हैं, तुम्हारी आज्ञासेही इन्द्र त्रिलोकीका शासक है ॥ १७ ॥ और यमराज दण्डसे प्राणियोंको शिक्षा देते हैं और वरुण पाशलिये अस्मदादिका पालनकरते हैं ॥ १८ ॥ निधिपतित्व कुबेर करता है नैर्ऋत अग्नि वायु ईशान शेष

उवाचवचनंदिव्यंवरंवरयभूमिप ॥ ततआनंदजनकंश्रुत्वावाक्यंमहीपतिः ॥ १४ ॥ वरयामासतान्हृत्स्थान्वरानमरदुर्लभान् ॥ मनुरुवाच ॥ जयदेविविशालाक्षिजयसर्वांतरस्थिते ॥ १५ ॥ मान्येपूज्येजगद्धात्रिसर्वमंगलमंगले ॥ त्वत्कटाक्षावलोकेनपद्मभूःसृजतेजगत् ॥ १६ ॥ वैकुंठःपालयत्येवहरःसंहरतेक्षणात् ॥ शचीपतिस्त्रिलोक्याश्चशासकोभवदाज्ञया ॥ १७ ॥ प्राणिनःशिक्षयत्येवदंडेनचपरेतराट् ॥ यादसामधिपःपाशीपालनंमादृशामपि ॥ ॥ १८ ॥ कुरुतेसकुबेरोऽपिनिधीनांपतिरव्ययः ॥ हुतभुङ्नैर्ऋतोवायुरीशानःशेषएवच ॥ १९ ॥ त्वदंशसंभवाएवत्वच्छक्तिपरिबृंहिताः ॥ अथापियदिमेदेविवरोदेयोऽस्तिसांप्रतम् ॥ २० ॥ तदाप्रह्वाःसर्गकार्येविघ्नानश्यंतुमेशिवे ॥ वाग्भवस्याऽपिमंत्रस्ययेकेचिदुपसेविनः ॥ २१ ॥ तेषांसिद्धिःसत्वरापिकार्याणांजायतामपि ॥ येसंवादमिमंदेविपठंतिश्रावयंतिच ॥ २२ ॥ तेषांलोकेभुक्तिमुक्तीसुलभेभवतांशिवे ॥ जातिस्मरत्वंभवतुवक्तृत्वंसौष्ठवंतथा ॥ ॥ २३ ॥ ज्ञानासिद्धिःकर्ममार्गसंसिद्धिरपिचास्तुहि ॥ पुत्रपौत्रसमृद्धिश्चजायेदित्येवमेवचः ॥ २४ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ भूमिपालमहाबाहोसर्वमेतद्भविष्यति ॥ यत्त्वयाप्रार्थितंतत्तेददामिमनुजाधिप ॥ १ ॥

॥ १९ ॥ यह सब तुम्हारी शक्तिसे होकर तुम्हारी शक्तिसेही परिबृंहित होते हैं तोभी हे देवि! यदि इस समय मुझे वर देती हो तौ ॥ २० ॥ हे शिवे! इस बडे सृष्टिके कार्यमें मेरे विघ्ननाशको प्राप्त हों जो वाग्बीज मंत्रका सेवन करते हैं ॥ २१ ॥ उनके कार्योंमें शीघ्रही सिद्धि हो जो इस देवीके संवादको पढते सुनाते हैं ॥ २२ ॥ हे शिवे! लोकमें उनको भक्ति मुक्ति सुलभ हो तुम्हारी कृपासे जाति स्मरणता प्राप्त हो ॥ २३ ॥ ज्ञानसिद्धि कर्ममार्गसिद्धि भी हो तथा पुत्र पौत्रकी समृद्धि हो यही मेरा वचन है ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्री देवी बोली हे राजन्! हे महाबाहो ! यह सब कुछ होगा हे राजन् ! जो तैंने प्रार्थना

...करता हूं ॥ १ ॥ हे दैत्येन्द्र ! मैं प्रसन्न हूं मै दैत्यन्द्राका नाशक अमोघविक्रमवाली तुम्हारे मायाबीज जप और तपसे ॥ २ ॥ प्रसन्न हूं तुम्हारा राज्य निष्कंटक होगा और पुत्र वंशकरनेवाले होंगे हे वत्स ! मुझमें तुम्हारी दृढभक्ति औरअन्तमें सत् पदकी प्राप्ति होगी ॥ ३ ॥ हे महामुने ! इसप्रकार मनुराजसे कहकर देवी देखते २ विन्ध्यपर्वतको चली गई ॥ ४ ॥ जिस विंध्याचलको महर्षि अगस्त्यनेरुद्धकर लियाथा जो पर्वत एकसमय सूर्यका मार्ग रोकनेको उठ खडा हुआ था ॥ ॥ ५ ॥ वह वरदायक विन्ध्यवासिनी विष्णुकी अवरजा सब लोकोंकी पूजनीया हुई ॥ ६ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी! यह विन्ध्याचल क्या है और किस प्रकार आकाश स्पर्शकरने लगा था और इसने सूर्यका मार्ग क्यों रोका था ॥ ७ ॥ और किस प्रकार अगस्त्यजीने महा ऊँचे पर्वतको प्रकृतिमें स्थित किया यह आप विस्तारसे

अहंप्रसन्नादैत्येंद्रनाशनाऽमोघविक्रमा ॥ वाग्भवस्यजपेनैवतपसातेस्रुनिश्चितम् ॥ २ ॥ राज्यंनिष्कंटकंतेऽस्तुपुत्रावंशकराअपि ॥ मयिभक्तिर्दृढावत्समो क्षांतेसत्पदेभवेत् ॥ ३ ॥ एवंवरान्महादेवीतस्मैदत्त्वामहात्मने ॥ पश्यतस्तुमनोरेवजगामविंध्यपर्वतम् ॥ ४ ॥ योऽसौविंध्याचलोरुद्धःकुंभोद्भवमह र्षिणा ॥ भानुमार्गावरोधार्थप्रवृत्तोगगनंस्पृशन् ॥ ५ ॥ साविंध्यवासिनीविष्णोरनुजावरदेश्वरी ॥ बभूवपूज्यालोकानांसर्वेषांमुनिसत्तम ॥ ६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कोसौविंध्याचलःसूतकिमर्थंगगनंस्पृशन् ॥ भानुमार्गावरोधंचकिमर्थंकृतवानसौ ॥ ७ ॥ कथंचमैत्रावरुणिःपर्वतंतंमहोन्नतम् ॥ प्रकृतिस्थंचकारेतिसर्वं विस्तरतोवद ॥ ८ ॥ नहितृप्यामहेसाधोत्वदास्यगलितामृतम् ॥ देव्याश्चरित्ररूपाख्यंपीत्वातृष्णाप्रवर्धते ॥ ९ ॥ सूतउवाच ॥ आसीद्विंध्याचलो नाममान्यःसर्वधराभृताम् ॥ महावनसमूहाढ्योमहापादपसंवृतः ॥ १० ॥ सुपुष्पितैरनेकैश्चलतागुल्मैस्तुसंवृतः ॥ मृगावराहामहिषाव्याघ्राःशार्दू लकाअपि ॥ ११ ॥ वानराःशशकाऋक्षाःशृगालाश्चसमंततः ॥ विचरंतिसदाहृष्टाःपुष्टाएवमहोद्यमाः ॥ १२ ॥ नदीनदजलक्रांतोदेवगंधर्वकिन्नरैः ॥ अप्सरोभिःकिंपुरुषैःसर्वकामफलद्रुमैः ॥ १३ ॥ एतादृशेविंध्यनगेकदाचित्पर्यटन्महीम् ॥ देवर्षिःपरमप्रीतोजगामस्वेच्छयामुनिः ॥ १४ ॥ तंदृष्ट्वास नगोमंक्षुतूर्णमुत्थायसंभ्रमात् ॥ पाद्यमर्घ्यंतथादत्त्वावरासनमथार्पयत् ॥ १५ ॥

कहो ॥ ८ ॥ हे साधो ! आपके मुखसे निर्गत देवीचरित्ररूपी अमृतको पानकरके हम तृप्त नहीं होते हैं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले विन्ध्याचल सब पर्वतोंमें मान्य महावन और वृक्षोंसे समृद्ध है ॥ १० ॥ वह अनेक पुष्प लता गुल्मोंसे युक्त मृग वराह महिष व्याघ्र शार्दूल ॥ ११ ॥ वानर खरगोश रीछ शृगालोंसे निषेवित, जहां यह सब हृष्ट पुष्ट होकर विचरण करते हैं ॥ १२ ॥ नदी नदोंके जलोंसे आक्रान्त, देव गंधर्व किन्नर, अप्सरा किंपुरुष और सब कामना देनेवाले वृक्षोंसे सम्पन्न ॥ १३ ॥ पर्वतराज हैं वहाँ एकसमय पृथ्वीपर्यटन करते हुए मुनिराज अपनी इच्छासे आनकर प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ उनको देखतेही विन्ध्यका अधिष्ठात्री देवता अपने आसनसे शीघ्र

ताके सहित उठ पाय अर्घ्य दे ऋषिराजको आसन देता हुआ ॥ १५ ॥ देवर्षिके प्रसन्न होकर बैठनेपर विन्ध्यने कहा हे देवर्षे ! इस समय आपने कहांसे आग
मन किया है ॥ १६ ॥ आपके आनेसे मेरा मन्दिर पवित्र हुआ हे देव ! आपका विचरण सूर्यके समान अभयके निमित्तही है ॥ १७ ॥ सो जो आपका मनोवृत्त
हो उसको कहिये नारदजी बोले हे पर्वतराज ! मैं सुमेरुसे आता हूं ॥ १८ ॥ वहां मैंने इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण आदिके लोक देखे सब लोकपालोंके भवन चारों
ओर हैं ॥१९॥ जो कि मैंने अनेक भोगोंके देनेवाले देखे ऐसा कह नारदने फिर श्वास लिया ॥ २० ॥ मुनिको श्वास लेते देखकर फिर विन्ध्यने पूछा हे ऋषिराज !

सुखोपविष्टंदेवर्षिंप्रसन्नंनगऊचिवान् ॥ विंध्यउवाच ॥ देवर्षेकथ्यतांजातआगमःकुतउत्तमः ॥ १६ ॥ तवाऽऽगमनतोजातमनर्घ्यममममंदिरम् ॥ तव
चंक्रमणंदेवाऽभयार्थंहियथारवेः ॥१७॥ अपूर्वंयन्मनोवृत्तंतद्ब्रूहिममनारद ॥ नारदउवाच ॥ ममाऽऽगमनमिंद्रारेजातंस्वर्णगिरेरथ ॥ १८ ॥ तत्रदृष्टामया
लोकाःशक्राग्नियमपाशिनाम् ॥ सर्वेषांलोकपालानांभवनानिसमंततः ॥ १९ ॥ मयादृष्टानिविंध्यागनानाभोगप्रदानिच ॥ इतिचोक्त्वाब्रह्मयोनिः
पुनरुच्छ्वासमाविशत् ॥ २० ॥ उच्छ्वसंतंमुनिंदृष्ट्वापुनःपप्रच्छशैलराट् ॥ उच्छ्वासकारणंकिंतद्ब्रूहिदेवऋषेमम ॥ २१ ॥ इत्याकर्ण्यनगस्योक्तंदे
वर्षिरमितद्युतिः ॥ अब्रवीच्छ्रूयतांवत्समसोच्छ्वासस्यकारणम् ॥ २२ ॥ गौरीगुरुस्तुहिमवाञ्छिवस्यश्वशुरःकिल ॥ संबंधित्वात्पशुपतेःपूज्यआसी
त्क्षमाभृताम् ॥ २३ ॥ एवमेवचकैलासःशिवस्यावसथःप्रभुः ॥ पूज्यःपृथ्वीभृतांजातोलोकेपापौघदारणः ॥ २४ ॥ निषधःपर्वतोनीलोगंधमादनएवच ॥
पूज्याःस्वस्थानमासाद्यसर्वएवक्षमाभृतः ॥ २५ ॥ यंपर्येतिचविश्वात्मासहस्रकिरणःस्वराट् ॥ सग्रहर्क्षगणोपेतःसोयंकनकपर्वतः ॥ २६ ॥ आत्मानं
मनुतेश्रेष्ठंवरिष्ठंचधराभृताम् ॥ सर्वेषामहमेवाग्र्योनास्तिलोकेषुमत्समः ॥ २७॥

दीर्घनिश्वास लेनेका कारण कहिये ॥ २१ ॥ पर्वतराजके यह वचन सुन परम द्युतिमान् नारदजी बोले हे वत्स! मेरे दीर्घश्वासका कारण सुनो ॥२२॥ गौरीगुरु हिमा
लय शिवके श्वशुर हैं वह पशुपतिके सम्बन्धसे सदा प्राणियोंसे पूजित हैं ॥ २३ ॥ एक कैलास शिवका निवासस्थान है वह भी पापनाशक होनेसे लोकोंसे पूज्य है ॥ २४ ॥
निषध पर्वत नीलपर्वत गन्धमादन पर्वत यह सब पर्वत अपने स्थानको प्राप्त होकर सदा पूजनीय हैं ॥ २५ ॥ जिसकी विश्वात्मा सहस्रकिरण ग्रह नक्षत्र गणोंके सहित
... वह यह कनकपर्वत है ॥२६॥ वह सब भूमिके पर्वतोंसे अपनेको श्रेष्ठ मान्ते हैं कि सबसे अग्रणी मैं हूं मेरे समान कोई नहीं ॥ २७ ॥

...र्योंके अभिमान देखकर मैं श्वासत्यागन करता हूं हम तपावल वालोंका भी ऐसा कृत्य नहीं होता ॥ २८ ॥ यह बात मैं ने प्रसंगसे कही अन्तमें ब्रह्मलोकको गमन करता हूं ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ इस प्रकार महातेजस्वी नारदजी उसको उपदेश देकर स्वच्छन्द विचरण करते ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १ ॥ मुनिके चले जानेपर विन्ध्यको बडी चिन्ता हुई सदा शोचके कारण उसको शान्तिकी प्राप्ति न हुई ॥ २ ॥ मैं अब क्या करूं मेरुको किसप्रकार जय करूं मेरे मनमें शांति और स्वास्थ्य नहीं होता ॥ ३ ॥ 'मेरे उत्साह मानऔर कीर्त्तिको धिक्कार है तथा कुलको धिक्कार है' मेरे बल पौरुषको धिक्कार है जिसको

एवंमानाभिमानंतंस्मृत्वोच्छ्वासोमयोज्झितः ॥ अस्तुनैतावताकृत्यंतपोबलवतांनग॥२८॥ प्रसंगतोमयोक्तंतेगमिष्यामिनिजंगृहम् ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणेदशमस्कंधेद्वितीयोध्यायः ॥२ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसमुपदिश्यायंदेवर्षिःपरमःस्वराट्॥जगामब्रह्मणोलोकंस्वैरचारीमहामुनिः ॥१॥गतेमुनिव रोविंध्यश्चिंतांलेभेनपायिनीम् ॥ नैवशांतिंसलेभेचसदांतःकृतशोचनः ॥ २ ॥ कथंकित्वत्रमेकार्यंकथंमेरुंजयाम्यहम् ॥ नैवशांतिंलभेनाऽपिस्वास्थ्यंमे मानसेभवेत्॥३॥"धिगुत्साहंचमानंचधिङ्मेकीर्तिंचाधिकुलम्॥"धिग्बलंमेपौरुषंधिकस्मृतंपूर्वैर्महात्मभिः॥एवंचिंतयमानस्यविंध्यस्यमनासिस्फुटम्॥४॥ प्रादुर्भूतामतिःकार्यंकर्तव्येदोषकारिणी॥मेरुंप्रदक्षिणांकुर्वन्नित्यमेवदिवाकरः॥५॥सग्रहर्क्षगणोपेतःसदाहृप्यत्ययंनगः॥तस्यमार्गस्यसंरोधंकरिष्यामिनिजैः करैः ॥ ६ ॥तदानिरुद्धोद्युमणिःपरिक्रामेत्कथंनगम् ॥ एवंमार्गोनिरुद्धेतुमयादिनकरस्यच ॥ ७ ॥ भग्नदर्पोदिव्यनगोभविष्यतिविनिश्चितम् ॥ एवंनि श्चित्यविंध्याद्रिःखंस्पृशन्ववृधेभुजैः ॥ ८ ॥ महोन्नतैःशृंगवरैःसर्वंव्याप्यव्यवस्थितः॥ कदोदेष्यतिभास्वांस्तंरोधयिष्याम्यहंकदा ॥ ९ ॥

पूर्वमहात्माओंने सराहा है इस प्रकार चिन्ता करते विन्ध्यके मनमें ॥ ४ ॥ दोष कार्य करनेकी मति प्रगट हुई कि यह सूर्य नित्य मेरुकी प्रदक्षिणा करते उदय होते हैं ॥ ५ ॥ ग्रहनक्षत्र गणोंके सहित परिक्रमा होनेसे मेरु सदा अभिमानमें है मैं अपने शृंगोंसे इसका मार्ग रोध करूंगा ॥ ६ ॥ तब सूर्य निरुद्ध होकर पर्वतकी परिक्रमा कैसे करेगा इस प्रकार मेरे द्वारा सूर्यमार्ग निरुद्ध होनेसे ॥ ७ ॥ तौ यह दिव्य पर्वत भग्नदर्प होगा इसमें संदेह नहीं यह विचार विन्ध्याद्रि अपने शृंगोंसे आकाशको स्पर्श करता बढने लगा ॥ ८ ॥ और बडे उन्नत शृंगोंसे सबको व्याप्त कर बढा कि कब सूर्य उदय हो और मैं उसका रोध करूं ॥ ९ ॥

और उदयाचलसे सूर्यउदय होने लगे और सूर्यकी
इस विचारमेंही उसको रात बीत गई जिस समय प्रभातको सूर्यकिरणोंसे दिशा अंधकारहीन हुई ॥ १० ॥
उज्ज्वल किरणोंसेः आकाश निर्मल हुआ॥ ११ ॥कमल खिले कुमोदिनी कुँभिलाई सब लोक अपने२कार्यमें लगे॥ १२॥देवताओंको हव्य पितरोंको कव्य भूतोंको बलि
दीजाने लगी, पराह्ण तीसरा पहर और मध्याह्न समय सूर्य ॥ १३ ॥ वियोगिनीरूप पूर्व और आग्नेयी दिशाको सावधान करते हुए जो चिरकालकी विरहवती कामिनीके
समान प्रज्वलित हो रही थी ॥ १४ ॥ इस प्रकार सूर्य अग्नि दिशाको छोडकर जब दक्षिणदिशाको गमन करने लगे ॥ १५ ॥ तब आगे चलनेको समर्थ न हुए
उस समय वरुणने कहा वरुण बोले हे सूर्य ! इस समय मानो विन्ध्य पर्वत ऊपर उठा है ॥ १६ ॥ और आपसे प्रदक्षिणापानेवाले मेरुसे स्पर्धा करता है, सूतजी

एवंसंचिंतयानस्यसाव्यतीयायशर्वरी ॥ प्रभातंविमलंजज्ञेदिशोवितिमिराःकरैः ॥ १० ॥ कुर्वन्सनिर्गतोभानुरुदयायोदयेगिरौ ॥ प्रकाशतेस्मविमलंन
भोभानुकरैःशुभैः ॥ ११ ॥ विकासंनलिनीभेजेमीलनंचकुमुद्वती ॥ स्वानिकार्याणिसर्वेचलोकाःसमुपतस्थिरे ॥ १२ ॥ हव्यंकव्यंभूतबलिंदेवानांचप्र
वर्धयन् ॥ प्राह्णापराह्णमध्याह्नविभागेनत्विषांपतिः ॥ १३ ॥ एवंप्राचींतथाग्नेयींसमाश्वास्यवियोगिनीम् ॥ ज्वलंतींचिरकालीनविरहादिवकामिनीम्
॥ १४ ॥ भास्करोऽथकृशानोश्चदिशंनूनंविहायच ॥ याम्यांगंतुंततस्तूर्णंप्रतस्थेकमलाकरः ॥ १५ ॥ नशेकुश्चाग्रतोगंतुंततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत् ॥ अनू
रुरुवाच ॥ भानोमानोन्नतोविंध्योनिरुध्यगगनांस्थितः ॥ १६ ॥ स्पर्धतेमेरुणाप्रेप्सुस्त्वद्दत्तांचप्रदक्षिणाम् ॥ सूतउवाच ॥ अनूरुवाक्यमाकर्ण्यसविता
ह्यासचिंतयन् ॥ १७ ॥ अहोगगनमार्गोऽपिरुध्यतेचाऽतिविस्मयः ॥ प्रायःशूरोनकिंकुर्यादुत्पथेवर्त्मनिस्थितः ॥ १८ ॥ निरुद्धोनोवाजिमार्गोदैवंहि
बलवत्तरम् ॥ राहुबाहुग्रहव्यग्रोयःक्षणंनावतिष्ठते ॥ १९ ॥ सचिरंरुद्धमार्गोऽपिकिंकरोतिविधिर्बली ॥ एवंचमार्गेसंरुद्धेलोकाःसर्वेचसेश्वराः ॥ २० ॥
नान्वविंदंतशरणंकर्तव्यंनान्वपद्यत ॥ चित्रगुप्तादयःसर्वेकालंजानंतिसूर्यतः ॥ २१ ॥ सरुद्धोविंध्यगिरिणाअहोदैवविपर्ययः ॥ यदानिरुद्धःसवितागिरि
णास्पर्धयातदा ॥ २२ ॥

बोले वरुणके वचन सुन सूर्य विचारने लगे ॥ १७ ॥ अहो आश्चर्य है क्या आकाशमार्ग भी रुद्ध हो सकता है उत्पथमार्गमें स्थित होकर शूर क्या नहीं
कर सकते ॥ १८ ॥ मेरे अश्व मार्गमें रुकेंगे दैवही बलवान् है जो राहुकी बाहुसे व्यग्र होकर क्षणमात्रको भी स्थित नहीं होते ॥ १९ ॥ वह चिरकाल
तक मार्गमें रुद्ध होंगे बली विधाता क्या करेगा इस प्रकार रुद्धमार्ग होनेपर सब लोक और सब ईश्वर ॥ २० ॥ शरण और कर्तव्यको नहीं जानते हुए चित्रगुप्तादि
— [illegible] कालको जानते हैं ॥ २१ ॥ वह भी विन्ध्य पर्वतसे रुद्ध होते हैं अहो दैव बडा विपरीत है जब इस प्रकार स्पर्धा करते हुये गिरिदेवने सूर्यके

रोकनेकी इच्छा की ॥ २२ ॥ उस समय स्वाहा स्वधाकार नष्ट होकर प्रायः जगतही नष्ट होने लगा. इस प्रकार पश्चिम और दक्षिणके आलोक ॥ २३ ॥ निद्रासे नेत्र मूँदकर निशाको प्राप्त हुए पश्चिम और उत्तरके देश दिन रहनेसे तीक्ष्ण तापसे तपने लगे ॥ २४ ॥ प्रजागण मृत नष्ट भग्न और विनाशको प्राप्त होने लगी, स्वधा और कव्यसे वर्जित हो जगतमें हाहाकार होने लगा ॥ २५ ॥ देवता इन्द्र उद्विग्न होकर क्या करैं इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ सूतजी बोले तब सम्पूर्ण देवता महेन्द्र आदि ब्रह्माजीको आगेकर शंकरकी शरणमें गये ॥ १ ॥ और नम्रहो अनेक प्रकारकी स्तुति करने लगे. उस समय देवदेव गिरिशायी चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले शंकरकी इसप्रकार प्रार्थना

नष्टःस्वाहास्वधाकारोनष्टप्रायमभूज्जगत् ॥ एवंचपाश्चिमालोकादाक्षिणात्यास्तथैवच ॥ २३ ॥ निद्रामीलितचक्षुष्कानिशामेवप्रपेदिरे ॥ प्रांचस्तथौत्तराहाश्चतीक्ष्णतापप्रतापिताः ॥ २४ ॥ मृतानष्टाश्चभग्नाश्चविनाशमभजन्प्रजाः ॥ हाहाभूतंजगत्सर्वंस्वधाकव्यविवर्जितम् ॥ ॥२५॥ देवाःसेंद्राःसमुद्विग्नाःकिंकुर्मइतिवादिनः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे देवीमाहात्म्येतृतीयोऽध्यायः ॥३॥ ॥ सूतउवाच ॥ ततःसर्वेसुरगणामहेंद्रप्रमुखास्तदा ॥ पद्मयोनिंपुरस्कृत्यरुद्रंशरणमन्वयुः ॥ १ ॥ उपतस्थुःप्रणतिभिःस्तोत्रैश्चारुविभूतिभिः ॥ देवदेवंगिरिशयंशशिलोलितशेखरम् ॥ २ ॥ देवाऊचुः ॥ जयदेवगणाध्यक्षउमालालितपत्कज ॥ अष्टसिद्धिविभूतीनांदात्रेभक्तजनायते ॥ ३ ॥ महामायाविलसितस्थानायपरमात्मने ॥ वृषांकायामरेशायकैलासस्थितिशालिने ॥ ४ ॥ अहिर्बुध्न्यायमान्यायमनवेमानदायिने ॥ अजायबहुरूपायस्वात्मारामायशंभवे ॥ ५ ॥ गणनाथायदेवायगिरिशायनमोस्तुते ॥ महाविभूतिदात्रेतेमहाविष्णुस्तुतायच ॥ ६ ॥ विष्णुहृत्कंजवासायमहायोगरतायच ॥ योगगम्याययोगाययोगिनांपतयेनमः ॥ ७ ॥ योगीशायनमस्तुभ्यंयोगानांफलदायिने ॥ दीनदानपरायापिदयासागरमूर्तये ॥ ८ ॥ आर्तिप्रशमनायोग्रवीर्यायगुणमूर्तये ॥ वृषध्वजायकालायकालकालायतेनमः ॥ ९ ॥

करनेलगे॥ २ ॥ देवता बोले हे देवगणोंकेअधिपति उमासे सेवित चरणवाले भक्तजनोंको आठ सिद्धि और विभूतिके देनेवाले ॥ ३ ॥ महामायासे परमात्मारूप स्थानपर शोभित वृषांक अमरोंके पति कैलासपर निवास करनेवाले ॥ ४ ॥ अहिर्बुध्न्यमान्य मनुके मान देनेवाले अज बहुरूप स्वात्माराम शंभु ॥ ५ ॥ गणनाथ देव गिरिशायीके निमित्त प्रणाम है महाविभूतिके दाता महाविष्णुके पुत्र ॥ ६ ॥ विष्णुके हृदयकमलमें वास करनेवाले महायोगमें रत योगगम्य योगस्वरूप योगियोंके पतिके निमित्त प्रणाम है ॥ ७ ॥ आप योगीशके निमित्त प्रणाम है योगियोंके फलदाता दीन दानमें तत्पर दयासागररूप ॥ ८ ॥ दुःखोंके शान्त करनेवाले उग्रवीर्य गुणमूर्त्ति

वृषध्वज कालकालके कलन करनेवाले आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले जब देवताओंने इसप्रकार शंकरकी स्तुति की तब हँसकर गंभीर वाणीसे शिवजी देवताओंसे बोले ॥ १० ॥ श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! तुम्हारे इस रूपसे हम प्रसन्न हैं. हे देवताओ ! मैं तुम सबके मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥ ११ ॥ देवता बोले हे सर्वदेवेश गिरिशायी भालचन्द्र महाबली आप दुःख दूरकरने वाले हमारा मंगल करो ॥ १२ ॥ विन्ध्याचल पर्वत मेरुसे द्वेषकर ऊंचा हुआ है वह सूर्यका मार्ग निरोधकर सबको दुःख देता है ॥ १३ ॥ हे ईशान ! सब मंगलकर्त्ता आप इसकी वृद्धिको निवारण कीजिये, यदि सूर्यका संचार रुकगया तो कालज्ञान किसप्रकार होगा ? ॥ १४ ॥ स्वाहा स्वधाकार नष्ट होनेमें लोक किसकी शरण होंगे, हम भयार्तोंकी आपही शरण हैं ॥ १५ ॥ हे गिरिजापते ! हमारे दुख

सूतउवाच ॥ एवंस्तुतःसदेवेशोयज्ञभुग्भिर्वृषध्वजः ॥ प्राहगंभीरयावाचाप्रहसन्विबुधर्षभान् ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नोऽहंदिविषदःस्तोत्रेणो त्तमपूरुषाः ॥ मनोरथंपूरयामिसर्वेषांदेवतर्षभाः॥११॥देवाऊचुः ॥ सर्वदेवेशगिरिशशशिमौलिविराजित॥आर्तानांशंकरस्त्वंचशंविधेहिमहाबल ॥१२॥ पर्वतोविंध्यनामास्तिमेरुद्वेष्टामहोन्नतः ॥ भानुमार्गनिरोद्धाहिसर्वेषांदुःखदोऽनघ ॥ १३ ॥ तद्वृद्धिंस्तंभयेशानसर्वकल्याणकृद्भव ॥ भानुसंचाररोधे नकालज्ञानंकथंभवेत् ॥ १४ ॥ नष्टस्वाहास्वधाकारेलोकेकःशरणंभवेत् ॥ अस्माकंचभयार्तानांभवानेवहिदृश्यते ॥ १५ ॥ दुःखनाशकरोदेवप्रसी दगिरिजापते ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नाऽस्माकंशक्तिरस्तीहतद्वृद्धिस्तंभनेसुराः ॥ १६ ॥ इममेवचवंदामोभगवंतंरमाधवम् ॥ सोऽस्माकंप्रभुरात्मा चपूज्यःकारणरूपधृक् ॥ १७ ॥ गोविंदोभगवान्विष्णुःसर्वकारणकारणः ॥ तंगत्वाकथयिष्यामःसदुःखांतोभविष्यति ॥ १८ ॥ इत्येवमार्कण्यगिरी शभाषितंदेवाश्चसेंद्राःसपयोजसंभवाः ॥ रुद्रंपुरस्कृत्यचवेपमानावैकुंठलोकंप्रतिजग्मुरंजसा ॥ १९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ॥ सूतउवाच ॥ तेगत्वादेवदेवेशंरमानाथंजगद्गुरुम् ॥ विष्णुंकमलपत्राक्षंददृशुःप्रभयान्वितम् ॥ १ ॥ स्तोत्रेणतुष्टुवुर्भक्त्यागद्गद स्वरसत्कृताः ॥ देवाऊचुः ॥ जयविष्णोरमेशाऽद्यमहापुरुषपूर्वज ॥ २ ॥

नाशक होकर हमपर आप कृपा कीजिये श्रीभगवान्. बोले हे देवताओ ! इस समय नियमके पालनानुसार तो हम उसकी वृद्धि नहीं रोकेंगे ॥ १६ ॥ परन्तु भगवान् माधवसे आप यह कहिये वह हम सबके आत्मा पूज्य कारणरूप धारी हैं ॥१७॥ गोविन्द भगवान् विष्णु सब कारणोंके कारण हैं उनसे चलकर कहैं वे सबका दुःख नाश करेंगे ॥ १८॥ शिवजीके यह वचन सुनकर इन्द्रादिक देवता गणोंके सहित रुद्रको आगेकर कंपित होते हुए शीघ्रतासे वैकुण्ठको गये ॥ १९ ॥ ॥ छ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ सूतजी बोले वे सब देवता वहाँ जाय कमललोचन, रमानाथ जगद्गुरु प्रभासे व्याप्त भगवान् विष्णुका दर्शन करते हुए ॥ १ ॥ और गद्गद स्वरसे स्तोत्र पाठ करने लगे. देवता बोले हे महापुरुषपूर्वज विष्णु ! आपकी जय हो ॥ २ ॥

हे दैत्य शत्रुकामजनक सब कामना और फलको देनेवाले महावराह गोविन्द महायज्ञके स्वरूपवाले॥ ३॥ महाविष्णु, ध्रुवेश, आद्य, जगत्के उत्पत्ति कारण मत्स्यावतारमें वेदोंका उद्धार करनेवाले आधाररूपक ॥ ४ ॥ सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपधारी के निमित्त नमस्कार है अकूपार दयासागर दैत्यशत्रु देवकार्यकर्त्ता ॥५॥ अमृत प्राप्ति कर ईशान कूर्मरूप आपके निमित्त प्रणाम है जयादि दैत्यके नाशनिमित्त आदि सूकररूप धारण करनेवाले ॥ ६ ॥ मही उद्धारके उद्योगकर्त्ता कालरूप आपके निमित्त प्रणाम है जो महानृसिंहरूप धारणकर महादैत्यकुलको नष्ट करते हुए ॥७॥ नखोंसे दीप्त अंगवाले नृसिंहजीके निमित्त प्रणाम है वामनरूप धारणकर त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित हुए ॥ ८ ॥ बलिको छलते हुए उन वामनरूपधारीके निमित्त प्रणाम है दुष्ट शत्रुके नाश करने सहस्र भुजावाले शत्रुको मारते हुए ॥ ९ ॥ उन

दैत्यारेकामजनकसर्वकामफलप्रद ॥ महावराहगोविंदमहायज्ञस्वरूपक ॥ ३ ॥ महाविष्णोध्रुवेशाऽऽद्यजगदुत्पत्तिकारण ॥ मत्स्यावतारेवेदानामुद्धाराधाररूपक ॥ ४ ॥ सत्यव्रतधराधीशमत्स्यरूपायतेनमः ॥ जयाऽकूपारदैत्यारेसुरकार्यसमर्पक ॥ ५ ॥ अमृताप्तिकरेशानकूर्मरूपायतेनमः ॥ जयाऽऽदिदैत्यनाशार्थमादिसूकररूपधृक् ॥ ६ ॥ मह्युद्धारकृतोद्योगकोलरूपायतेनमः ॥ नारसिंहंवपुःकृत्वामहादैत्यंददारयः ॥ ७ ॥ करजैर्वरदृप्तांगंतस्मैनृहरयेनमः ॥ वामनंरूपमास्थायत्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम् ॥ ८ ॥ बलिंसंछलयामासतस्मैवामनरूपिणे ॥ दुष्टक्षत्रविनाशायसहस्रकरशत्रवे ॥९॥ रेणुकागर्भजातायजामदग्न्यायतेनमः॥ दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे॥१०॥श्रीमद्दाशरथेतुभ्यंनमोऽनंतक्रमायच ॥ कंसदुर्योधनाद्यैश्चदैत्यैःपृथ्वीशलांछनैः ॥ ११ ॥ भाराक्रांतांमहींयोसावुज्जहारमहाविभुः ॥ धर्मसंस्थापयामासपापंकृत्वासुदूरतः ॥ १२ ॥ तस्मैकृष्णायदेवाय नमोस्तुवहुधाविभो ॥ दुष्टयज्ञविघातायपशुहिंसानिवृत्तये ॥ १३ ॥ बौद्धरूपंदधौयोसौतस्मैदेवायतेनमः ॥ म्लेच्छप्रायेऽखिलेलोकेदुष्टराजन्यपीडिते ॥ १४ ॥ कल्किरूपंसमादध्यौदेवदेवायतेनमः॥दशावतारास्तेदेवभक्तानांरक्षणायवै ॥१५॥ दुष्टदैत्यविघातायतस्मात्त्वंसर्वदुःखहृत् ॥ जयभक्तार्तिनाशायधृतंनारिजलात्मसु ॥ १६ ॥ रूपंयेनत्वयादेवकोऽन्यस्त्वत्तोदयानिधिः ॥ इत्येवंदेवदेवेशस्तुत्वाश्रीपीतवाससम् ॥१७ ॥

रेणुकागर्भसंभूत परशुरामको प्रणाम है दुष्ट राक्षस रावणके शिर छेदन करनेवाले ॥ १० ॥ अनन्त विक्रमी रामके निमित्त प्रणाम है कंस दुर्योधन शिशुपाल राजचिह्नधारी दैत्योंके ॥ ११ ॥ भारसे आक्रान्त हुई पृथ्वीको जिन महाप्रभुने उद्धार किया और पापोंको दूरकर धर्मको स्थापन किया ॥ १२ ॥ बहुत प्रकारसे उन कृष्णदेवके निमित्त प्रणाम है. दुष्ट यज्ञको विघात और पशुहिंसा निवृत्तिके लिये ॥ १३ ॥ बौद्धरूप धारण करनेवाले देवके निमित्त प्रणाम है जब लोक म्लेच्छप्राय होकर दुष्टराजोंसे पीडित हुआ ॥ १४ ॥ तब कल्किरूपधारी आप देवदेवके निमित्त प्रणाम है. हे देव ! आपके दशावतार भक्तोंके रक्षा करने ॥ १५॥ और दुष्ट दैत्योंके नाशके निमित्त हैं इसकारण आप सब दुःखोंके हरनेवाले हैं भक्तोंके दुःख दूरकरनेवाले नारी जलात्मरूपधारी आपकी जय हो ॥ १६॥ हे देव ! जो इस

प्रकार रूप धारण करै तुमसे अधिक ऐसा दयासागर कौन है ? इस प्रकार देवदेव श्रीनिवासकी स्तुतिकर ॥ १७ ॥ देवता साष्टांग भक्तिसे प्रणाम करते हुये. श्रीपुरुषोत्तमदेव उनकी स्तुति सुनकर ॥ १८ ॥ उनको प्रसन्नकरके गदाधर बोले श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं आप दुःख त्यागो ॥ १९ ॥ तुम्हारा मैं परमदुःख दूर करूंगा. हे देवताओ ! मुझसे तुम परम दुर्लभ वर मांगो ॥ २० ॥ मैं प्रसन्न है इस स्तवके प्रभावसे तुमको वर देताहूं जो मनुष्य प्रभातही उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है ॥ २१ ॥ उसको मेरी भक्ति होती और कभी दुःख नहीं होता है तथा उसके घरमें अलक्ष्मी काल कभी नहीं आक्रमण करती ॥ २२ ॥ उपसर्ग, वेताल, ग्रह, ब्रह्मराक्षस, वात पित्त, श्लेष्माके रोग ॥ २३ ॥ अकाल मरण कभी नहीं होता चिरकालमें रहनेवाली सन्तति और सब सुखदायी भोग होते

प्रणेमुर्भक्तिसहिताःसाष्टांगंविबुधर्षभाः ॥ तेषांस्तवंसमाकर्ण्यदेवःश्रीपुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ उवाचविबुधान्सर्वान्हर्षयञ्छ्रीगदाधरः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मिस्तवेनाऽहंदेवास्तापंविमुंचथ ॥ १९ ॥ भवतांनाशयिष्यामिदुःखंपरमदुःसहम् ॥ वृणुध्वंचवरंमत्तोदेवाःपरमदुर्लभम् ॥ २० ॥ ददामिपरमप्रीतःस्तवस्याऽस्यप्रसादतः ॥ यएतत्पठतेस्तोत्रंकल्यउत्थायमानवः ॥ २१ ॥ मयिभक्तिपरांकृत्वानतंशोकःस्पृशेत्कदा ॥ अलक्ष्मीःकालकर्णीचनाक्रामेत्तद्गृहंसुराः ॥ २२ ॥ नोपसर्गानवेतालानग्रहाब्रह्मराक्षसाः ॥ नरोगावातिकाः पैत्ताःश्लेष्मसंभविनस्तथा ॥ २३ ॥ नाऽकालमरणंतस्यकदापिचभविष्यति ॥ संततिश्चिरकालस्थाभोगाःसर्वेसुखादयः ॥ २४ ॥ संभविष्यंतितन्मर्त्यगृहेयस्तोत्रपाठकः ॥ किंपुनर्बहुनोक्तेनस्तोत्रंसर्वार्थसाधकम् ॥ २५ ॥ एतस्यपठनान्नृणांभुक्तिमुक्तीनदूरतः ॥ देवाभवत्सुयद्दुःखंकथ्यतांतदसंशयम् ॥ २६ ॥ नाशयामिनसंदेहश्चाऽत्रकार्योऽणुरेवच ॥ एवंश्रीभगवद्वाक्यंश्रुत्वासर्वेदिवौकसः ॥ २७ ॥ प्रसन्नमनसःसर्वेपुनरूचुर्वृषाकपिम् ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ सूतउवाच ॥ श्रीशस्यवचनादेवाःसंतुष्टाःसर्वएवहि ॥ प्रसन्नमनसोभूत्वापुनरेनंसमूचिरे ॥ १ ॥ देवाऊचुः ॥ देवदेवमहाविष्णोसृष्टिस्थित्यंतकारण ॥ विष्णोर्विंध्यनगोऽर्कस्यमार्गरोधंकरोतिहि ॥ २ ॥ तेनभानुविरोधेनसर्वएवमहाविभो ॥ अलब्धभोगभागाहिकिंकुर्मःकुत्रयामहि ॥ ३ ॥

हैं ॥ २४ ॥ यह सब वस्तु स्तोत्रपाठीको प्राप्त होती हैं बहुत कहनेसे क्या है यह स्तोत्र सम्पूर्ण अर्थका साधक है ॥ २५ ॥ इसके पाठसे मनुष्योंको भुक्ति मुक्ति दूर नहीं रहती. हे देवताओ ! जो तुमको दुःख है वह निश्चय कहो ॥ २६ ॥ मैं तुम्हारा वह दुःख दूर करूंगा इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है. सब देवता इस प्रकार श्रीभगवान्का वचन सुनकर ॥ २७ ॥ प्रसन्नमन होकर विष्णुसे कहने लगे इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूतजी बोले विष्णुके वचनसे सब देवता प्रसन्न हुए और प्रसन्न मन होकर फिर भी कहने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे देवदेव महाविष्णु ! सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले देव यह विन्ध्यपर्वत सूर्यका मार्ग रोधकरता है ॥ २ ॥ सो भानुके विरोधसे विना भाग पाये हुए क्या करैं कहां जाँय ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले जो सबकी निर्माता आद्या कुलवर्द्धिनी देवी भगवती है उसीके उपासक परमकान्तिमान् ॥ ४ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी वाराणसीमें स्थित हैं हे देवताओ ! वह अगस्त्यजी विन्ध्याचलका तेज हरण करेंगे ॥ ५ ॥ उन ब्राह्मणश्रेष्ठ अगस्त्यजीको प्रसन्नकर मुक्तिदायक काशीमें जाय अभयदान मांगो ॥ ६ ॥ सूतजी बोले जब इसप्रकार विष्णुने कहा तब सब देवता प्रणाम कर काशीमें गये ॥ ७ ॥ वह देवता क्षणमात्रमें काशीपुरीमें जाय मणिकर्णिकामें भक्तियुक्त प्रणाम करके ॥ ८ ॥ देवता पितरोंका तर्पणकर विधिपूर्वक दान दे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीके आश्रममें आये ॥ ९ ॥ जो प्रशान्त श्वापदोंसे व्याप्त

श्रीभगवानुवाच ॥ याकर्त्रीसर्वजगतामाद्याचकुलवर्धनी ॥ देवीभगवतीतस्याःपूजकःपरमद्युतिः ॥ ४ ॥ अगस्त्योमुनिवर्योऽसौवाराणस्यांसमासते ॥ तत्तेजोवंचकोऽगस्त्योभाविष्यातिसुरोत्तमाः ॥ ५ ॥ तंप्रसाद्यद्विजवरमगस्त्यंपरमौजसम् ॥ याचध्वंविबुधाःकाशींगत्वानिःश्रेयसःपदीम् ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसमुपदिष्टास्तेविष्णुनाविबुधोत्तमाः ॥ प्रतीताःप्रणताःसर्वेजग्मुर्वाराणसींपुरीम् ॥ ७ ॥ क्षणेनविबुधश्रेष्ठागत्वाकाशीपुरींशुभाम् ॥ मणिकर्णींसमाप्लुत्यसचैलंभक्तिसंयुताः ॥ ८ ॥ संतर्प्यदेवांश्चपितॄन्दत्त्वादानंविधानतः ॥ आगत्यमुनिवर्यस्यचाऽऽश्रमंपरमंमहत् ॥ ९ ॥ प्रशांतश्वापदाकीर्णनानापादपसंकुलम् ॥ मयूरैःसारसैर्हंसैश्चक्रवाकैरुपाश्रितम् ॥ १० ॥ महावराहैःकोलैश्चव्याघ्रैःशार्दूलकैरपि ॥ मृगैरुरुभिरत्यर्थखड्गैःशरभकैरपि ॥ ११ ॥ समाश्रितंपरमयालक्ष्म्यामुनिवरंतदा ॥ दंडवत्पतिताःसर्वेप्रणेमुश्चपुनःपुनः ॥१२॥ जयद्विजगणाधीशमान्यपूज्यधरासुर ॥ वातापीबलनाशायनमस्तेकुंभयोनये ॥ १३ ॥ लोपामुद्रापतेश्रीमन्मित्रावरुणसंभव ॥ सर्वविद्यानिधेऽगस्त्यशास्त्रयोनेनमोस्तुते ॥ १४ ॥ यस्योदयेप्रसन्नानिभवंत्युज्वलभांज्यपि॥ तोयानितोयराशीनांतस्मैतुभ्यंनमोऽस्तुते॥१५॥काशपुष्पविकासायलंकावासप्रियायच॥जटामंडलयुक्तायसशिष्यायनमोस्तुते॥१६॥

अनेक वृक्षोंसे संघटित मयूर सारस हंस चक्रवाकोंसे उपाश्रित ॥ १० ॥ महावराह, कोल, व्याघ्र, शार्दूल, मृग, रुरु, खड्ग, शरभसे ॥ ११ ॥ युक्त परमलक्ष्मीसे व्याप्त मुनिश्रेष्ठको देखते हुए और दंडक समान लेटकर सब प्रणाम करने लगे ॥१२॥ हे द्विजगणोंसे पूज्यमान्य भूमिसुर ! आपकी जय हो वातापीके बलनाशक अगस्त्यजीको प्रणाम है ॥ १३ ॥ लोपामुद्राके पति श्रीमान् मित्रवरुणसे प्रगट सब विद्याके निधि, शास्त्रयोनि अगस्त्यजीके निमित्त प्रणाम है ॥ १४ ॥ जिनके उदय होते ही जलसमूह निर्मल और उज्ज्वल हो जाते हैं उन आपके निमित्त प्रणाम है ॥ १५ ॥ काशपुष्पोंके खिलनेवाले लंकावासके प्रिय

जटामंडल युक्त शिष्योंके सहित आपको प्रणाम है॥ १६॥ सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त गुणराशि महामुनिवरिष्ठ पूज्य स्त्री सहित आपको प्रणाम है॥ १७॥ हेस्वामिन्! प्रसन्न हो हम सब आपकी शरण हुए हैं हे परमकान्तिमान्! हम दुस्तर शैलके दुःखसे पीडित हुए हैं॥ १८॥ जब परमधर्मात्मा अगस्त्यजीकी इसप्रकार प्रार्थना की तब हँसते हुए महर्षि प्रसन्न हो बोले॥ १९॥ मुनिने कहा हे देवताओ! तुम त्रिभुवनमें सबसे श्रेष्ठ हो लोकपाल महात्मा निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ हो॥ २०॥ जो अमरावतीके अधिपति तथा वज्र जिनका आयुध है, जिसके द्वारे आठों सिद्धि निवास करती हैं वह मरुत्पति इन्द्र ॥ २१ ॥ वैश्वानर हव्य कव्यका वहन करनेवाला अग्नि सब देवताओंका मुख है उसको दुष्कर क्या है ॥ २२ ॥ सब रक्षोंका अधिपति कान्तिमान् सबके कर्मोंका साक्षी दण्डधारी देव है हे देवताओ! कौन बात इनको दुर्लभ है ॥ २३ ॥

जयसर्वामरस्तव्यगुणराशेमहामुने ॥ वरिष्ठायचपूज्यायसस्त्रीकायनमोऽस्तुते ॥ १७ ॥ प्रसादःक्रियतांस्वामिन्वयंत्वांशरणंगताः ॥ दुस्तराच्छैलजाद्दुःखात्पीडिताःपरमद्युते ॥ १८ ॥ इत्येवंसंस्तुतोऽगस्त्योमुनिःपरमधार्मिकः ॥ प्राहप्रसन्नयावाचाविहसन्द्विजसत्तम ॥ १९ ॥ मुनिरुवाच ॥ भवंतःपरमश्रेष्ठादेवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ लोकपालमहात्मानोनिग्रहानुग्रहक्षमाः ॥ २० ॥ योऽमरावत्यधीशानःकुलिशंयस्यचाऽऽयुधम् ॥ सिद्ध्यष्टकंचयद्द्वारिसशक्रोमरुतांपतिः ॥ २१ ॥ वैश्वानरःकृशानुर्हिहव्यकव्यवहोऽनिशम् ॥ मुखंसर्वामराणांहिसोऽग्निःकिंतस्यदुष्करम् ॥ २२ ॥ रक्षोगणाधिपोभामःसर्वेषांकर्मसाक्षिकः ॥ दंडव्यग्रकरोदेवःकिंतस्याऽसुकरंसुराः ॥ २३ ॥ तथाऽपियदिदेवेशाःकार्यमच्छक्तिसिद्धिभृत् ॥ अस्तिचेदुच्यतांदेवाःकरिष्यामिनसंशयः ॥ २४ ॥ एवंमुनिवरेणोक्तंनिशम्यविबुधर्षभाः ॥ प्रतीताःप्रणयोद्विग्नाःकार्यंनिजगदुर्निजम् ॥ २५ ॥ महर्षेविंध्यागिरिणानिरुद्धोऽर्कविनिर्गमः ॥ त्रैलोक्यंतेनसंविष्टंहाहाभूतमचेतनम् ॥ २६ ॥ तद्वृद्धिंस्तंभयमुनेनिजयातपसः श्रिया ॥ भवतस्तेजसाऽगस्त्यनूनंनम्रोभविष्यति ॥ २७ ॥ एतदेवाऽस्मदीयंचकार्यंकर्तव्यमस्तिहि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सूतउवाच ॥ इतिवाक्यंसमाकर्ण्यविबुधानांद्विजोत्तमः ॥ करिष्येकार्यमेतद्वःप्रत्युवाचततोमुनिः ॥ १ ॥

तौ भी जो देवता अपने कार्यकी इच्छा करते हैं वह कहिये मैं अवश्य उसको करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ इस प्रकार देवता मुनिके वचन सुनकर विश्वासकर प्रेमसे अपना कार्य कहने लगे ॥ २५ ॥ हे महर्षि! विन्ध्याचलने सूर्यका मार्ग निरुद्ध किया है उससे त्रिलोकी नष्ट होकर हाहाकार करती है ॥ २६ ॥ हे मुने! अपने तपकी कान्तिसे उसकी वृद्धि स्तंभित कीजिये. हे ऋषे! आपके तेजसे वह अवश्य नम्र होगा बस केवल यही हमारा कर्तव्यकार्य है ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां दशमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूतजी बोले अगस्त्यजी इस प्रकार ब्राह्मणोंके वचन श्रवणकर बोले मैं यह तुम्हारा कार्य करूंगा ॥ १ ॥

जब कुंभजन्मा अगस्त्यजीने यह देवताओंका कार्य स्वीकार किया हे द्विजसत्तम ! तब देवता बडे प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ मुनिके वचनसे सब देवता अपने २ स्थानोंको गये तब मुनिवर नृपकन्या अपनी स्त्रीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! यह अनर्थकारी विघ्न प्राप्त हुआ है विन्ध्य पर्वतने सूर्यका मार्ग रोकनेकी इच्छाकी है ॥ ४ ॥ उस विघ्नका कारण पुरातन तत्त्ववादी ऋषियोंका वाक्य स्मरण करके मैंने जाना है जो काशीके उद्देश्यसे कहा गया है ॥ ५ ॥ मुमुक्षुओंको कभी काशीवास त्यागना न चाहिये परन्तु काशी सेवन करनेवालोंको बडे विघ्न उपस्थित होते हैं ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! वही काशीमें निवास करते हुए मुझे विघ्न प्राप्त हुआ है परम तपस्वी मुनिभार्यासे इसप्रकार कहकर ॥ ७ ॥ मणिकर्णिकामें स्नानकर विश्वेश्वरका दर्शनकर दण्डपाणिकी अर्चनाकर कालभैरवके समीप आय ॥ ८ ॥

अंगीकृतेतदाकार्येमुनिनाकुंभजन्मना ॥ देवाःप्रमुदिताःसर्वेबभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ तेदेवाःस्वानिधिष्ण्यानिभेजिरेमुनिवाक्यतः ॥ पत्नींमुनिवरःश्रीमानुवाचनृपकन्यकाम् ॥ ३ ॥ अयेनृपसुतेप्राप्तोविघ्नोऽनर्थस्यकारकः ॥ भानुमार्गनिरोधनकृतोविंध्यमहीभृता ॥ ४ ॥ आज्ञातंकारणंतच्चस्मृतंवाक्यंपुरातनम् ॥ काशीमुद्दिश्ययद्गीतंमुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५ ॥ अविमुक्तंनमोक्तव्यंसर्वथैवमुमुक्षुभिः ॥ किंतुविघ्नाभविष्यंतिकाश्यांनिवसतांसताम् ॥ ६ ॥ सोंतरायोमयाप्राप्तःकाश्यांनिवसताप्रिये ॥ इत्येवमुक्त्वाभार्यांतांमुनिःपरमतापनः ॥ ७ ॥ मणिकर्ण्यांसमाप्लुत्यदृष्ट्वाविश्वेश्वरंविभुम् ॥ दंडपाणिंसमभ्यर्च्य कालराजंसमागतः ॥ ८ ॥ कालराजमहाबाहोभक्तानांभयहारक ॥ कथंदूरयसेपुर्याःकाशीपुर्यास्त्वमीश्वरः ॥ ९ ॥ त्वंकाशीवासविघ्नानांनाशको भक्तरक्षकः ॥ मांकिंदूरयसेस्वामिन्भक्तार्तिविनिवारक ॥ १० ॥ परापवादोनोक्तोमेनपैशुन्यंनचानृतम् ॥ केनकर्मविपाकेनकाश्याद्दूरंकरोषिमाम् ॥ ११ ॥ एवंप्रार्थ्यचतंकालनाथंकुंभोद्भवोमुनिः ॥ जगामसाक्षिविघ्नेशंसर्वविघ्ननिवारणम् ॥ १२ ॥ तंदृष्ट्वाऽभ्यर्च्यसंप्रार्थ्यततःपुर्याविनिर्गतः ॥ लोपामुद्रापतिः श्रीमानगस्त्योदक्षिणांदिशम् ॥ १३ ॥ काशीविरहसंतप्तोमहाभाग्यनिधिर्मुनिः ॥ संस्मृत्यानुक्षणंकाशींजगामसहभार्यया ॥ १४ ॥

कहने लगे हे महाबाहु भैरवजी ! भक्तोंका भय हरनेवाले तुम काशीपुरीके अधीश्वर होकर मुझे क्यों दूरकरते हो ॥ ९ ॥ आप काशीके निवासियोंके सब भय दूर करते हो भक्तोंके रक्षकहो हे भक्तोंके भय निवारक ! मुझे क्यों दुःख देते हो ॥ १० ॥ न मैंने पराया अपवाद किया, न चुगली की, न असत्य बोला फिर किस कर्मविपाकसे मुझे काशीसे दूरकरते हो ॥ ११ ॥ अगस्त्यजी इसप्रकार भैरवजीकी प्रार्थना करके सब विघ्नके निवारण करनेवाले विघ्नेशकी साक्षीको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ उनको देख और प्रार्थनाकरके पुरीसे बाहर हुए और श्रीमान् लोपामुद्राके पति दक्षिणदिशामें चले ॥ १३ ॥ वह महाभाग्यनिधि मुनि काशीके विरहसे सन्तप्त हो वारंवार

काशीका स्मरण करते भार्याकेसहित गये ॥ १४ ॥ आधे निमेषमेंही वह मुनि तपके यानमें प्राप्त हो आगे उठे हुए विन्ध्यपर्वतको देखने लगे ॥ १५॥ आगे स्थित होते हुए मुनिको देख पर्वत कंपायमान होगया और सूक्ष्म होकर पृथ्वीमें स्पर्शसा करने लगा ॥ १६ ॥ भक्तिभावसे पृथ्वीमें दंडवत् करता हुआ इस प्रकार महामुनि विन्ध्यपर्वतको नम्रीभूत देखकर ॥ १७ ॥ प्रसन्न हो विन्ध्याचलसे कहने लगे हे वत्स! मैं जबतक इधर आऊं तबतक तुम योंही स्थित रहो ॥ १८ ॥ हे पुत्र! मैं तुम्हारे ऊंचे शिखर नहीं लाँघसक्ता हूं ऐसा कहकर मुनि दक्षिणदिशा जानेको उत्सुक हुए ॥ १९ ॥ और उसके शिखरोंपर आरोहण करते उतरगये फिर दक्षिणदिशामें जाय मार्गमें श्रीपर्वतको देख ॥ २० ॥ मलयाचलको प्राप्त हो वहाँ अपना आश्रम निर्माण करते हुए और मुनिसे पूजित हो देवीभी विन्ध्याचलपर आई ॥

तपोयानमिवाऽऽरुह्यनिमिषार्धेनवैमुनिः ॥ अग्रेददर्शतंविंध्यंरुद्धांबरमथोन्नतम् ॥ १५ ॥ चकंपेचाचलस्तूर्णंदृष्ट्वैवाग्रेस्थितंमुनिम् ॥ गिरिःखर्वतरोभूत्वा विवक्षुरवनीमिव ॥१६॥ दंडवत्पतितोभूमौसाष्टांगंभक्तिभावितः॥ तंदृष्ट्वानम्रशिखरंविंध्यंनाममहागिरिम् ॥ १७ ॥ प्रसन्नवदनोऽगस्त्योमुनिर्विंध्यमथाऽब्रवीत् ॥ वत्सैवंतिष्ठतावत्त्वंयावदागम्यतेमया ॥ १८ ॥ अशक्तोऽहंगंडशैलारोहणेतवपुत्रक ॥ एवमुक्त्वामुनिर्याम्यदिशंप्रतिगमोत्सुकः ॥ १९ ॥ आरुह्यतस्यशिखराण्यवारुहदनुक्रमात् ॥ गतोयाम्यदिशंचापिश्रीशैलंप्रेक्ष्यवर्त्मनि ॥ २० ॥ मलयाचलमासाद्यतत्राऽऽश्रमपरोभवत् ॥ सापिदेवीतत्र विंध्यमागतामनुपूजिता ॥ २१ ॥ लोकेषुप्रथिताविंध्यवासिनीतिचशौनक ॥ सूतउवाच ॥ एतच्चरित्रंपरमंशत्रुनाशनमुत्तमम् ॥ २२ ॥ अगस्त्यविंध्यनगयोराख्यानंपापनाशनम् ॥ राज्ञांविजयदंतच्चद्विजानांज्ञानवर्धनम् ॥२३॥ वैश्यानांधान्यधनदंशूद्राणांसुखदंतथा ॥ धर्मार्थीधर्ममाप्नोतिधनार्थीधनमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ कामानवाप्नुयात्कामीभक्त्याचास्यसकृच्छ्रवात् ॥ एवंस्वायंभुवमनुर्देवीमाराध्यभक्तितः ॥ २५ ॥ लेभेराज्यंधरायाश्चनिजमन्वंतराश्रयम् ॥ २६॥ इत्येतद्वर्णितंसौम्यमयामन्वंतराश्रितम् ॥ आद्यंचरित्रंश्रीदेव्याःकिंपुनःकथयामिते ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ २१ ॥ हे शौनक वह लोकमें विन्ध्यवासिनीनामसे विख्यात हुई सूतजी बोले यह शत्रुनाशन परमोत्तम चरित्र है ॥ २२ ॥ यह अगस्त्य और विन्ध्याचलका पापनाशी आख्यान है यह राजोंको विजय और द्विजोंके ज्ञानका बढानेवाला है ॥ २३ ॥ वैश्योंको धान्यादिका दाता तथा शूद्रोंका सुख देनेवाला है इससे धर्मार्थीको धर्म और पुत्रार्थीको पुत्र मिलता है ॥ २४ ॥ भक्तिसे एकवारभी स्मरण करनेसे कामनावालेकी सब कामना पूर्ण होती हैं इसप्रकार स्वायंभुवमनु भक्तिसे देवीका आराधन कर ॥२५॥ अपने मन्वन्तरके आश्रयवाले पृथ्वीका राज्य लेते हुए हेसौम्य! यह मैंने मन्वन्तर चरित्र वर्णन किया यह देवीका आद्य चरित्र है अब और क्या सुनने की इच्छा है ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

शौनकजी बोले मैंने आपसे जो पूँछा सो आपने आद्यमन्वन्तर कहा अब आप दिव्य तेजवाले मनुओंका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार स्वायं भुवकी उत्पत्ति सुनकर क्रमसे उनकी संभूतिकी इच्छासे ॥ २ ॥ परमज्ञानी देवीके तत्त्व जाननेमें पण्डित नारदजी पूँछने लगे हे भगवन् ! मुझसे मनुओंकी उत्पत्ति कहिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले पहले हमने आपसे स्वायंभुवमनुका चरित्र कहा जिससे देवीके आराधनसे उन्होंने अकंटक राज्य पाया ॥ ४ ॥ उस मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए यह राजपालनमें पृथ्वीमें विख्यात हुए ॥ ५ ॥ दूसरे मनु स्वारोचिष हुए यह अप्रमेय पराक्रमी प्रियव्रतके पुत्र थे ॥ ६ ॥ वह स्वारोचिषनाम

शौनकउवाच ॥ आद्योमन्वंतरःप्रोक्तोभवताचायमुत्तमः ॥ अन्येषामुद्भवंब्रूहिमनूनांदिव्यतेजसाम् ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ एवमाद्यस्यचोत्पत्तिंश्रुत्वास्वायंभुवस्यहि ॥ अन्येषांक्रमशस्तेषांसंभूतिंपरिपृच्छति ॥ २ ॥ नारदःपरमोज्ञानीदेवीतत्त्वार्थकोविदः ॥ नारदउवाच ॥ मेमनूनां समाख्याहिसूत्पत्तिंचसनातन ॥ ३ ॥ नारायणउवाच ॥ प्रथमोऽयंमनुःस्वायंभुवउक्तोमहामुने ॥ देव्याराधनतोयेनप्राप्तंराज्यमकंटकम् ॥ ४ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौमनुपुत्रौमहौजसौ ॥ राज्यपालनकर्तारौविख्यातौवसुधातले ॥ ५ ॥ द्वितीयश्चमनुःस्वारोचिषउक्तोमनीषिभिः ॥ प्रियव्रतसुतः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ ६ ॥ सस्वारोचिषनामापिकालिंदीकूलतोमनुः ॥ निवासंकल्पयामाससर्वसत्त्वप्रियंकरः ॥ ७ ॥ जीर्णपत्राशनो भूत्वातपःकर्तुमनुव्रतः ॥ देव्यामूर्तिंमृन्मयींचपूजयामासभक्तितः ॥ ८ ॥ एवंद्वादशवर्षाणिवनस्थस्यतपस्यतः ॥ देवीप्रादुरभूत्तातसहस्रार्कसमद्युतिः ॥९॥ ततःप्रसन्नादेवेशीस्तवराजेनसुव्रता ॥ ददौस्वारोचिषायैवसर्वंमन्वतराश्रयम् ॥ १० ॥ आधिपत्यंजगद्धात्रीतारिणीतिप्रथामगात् ॥ एवंस्वारोचिषमनुस्तारिण्याराधनात्ततः ॥११॥ आधिपत्यंचलेभेससर्वारातिविवर्जितम् ॥ धर्मंसंस्थाप्यविधिवद्राज्यंपुत्रैःसमंविभुः ॥ १२ ॥

मनु कालिन्दीके तटपर सब प्राणियोंके प्रिय करनेको निवास करते हुए ॥७॥ और जीर्ण पत्ते खाकर तप करनेको उद्यत हुए और देवीकी मृत्तिकाकी मूर्त्तिकी भक्तिसे पूजा करने लगे॥८॥इसप्रकार वनमें निवास करते बारह वर्ष बीत गये हेतात ! तब सहस्र सूर्यके समान कान्तिवाली देवी प्रगट हुई ॥९॥ हे सुव्रत ! तब उनके स्तवराजसे देवी प्रसन्न हुई और स्वारोचिषको मन्वन्तरका आश्रय दिया ॥ १० ॥ इसप्रकार जगन्माता आधिपत्य देकर तारिणी नामसे विख्यात हुई. इसप्रकार स्वारोचिषमनु तारिणीके आराधनसे ॥ ११ ॥ सब शत्रुओंसे रहित हो आधिपत्यको प्राप्त हुए. इसप्रकार विधिपूर्वक धर्मको स्थापित कर राज्यको पुत्रोंको दे ॥ १२ ॥

भोग भोगकर अपने मन्वन्तरके आश्रयसे स्वर्ग लोकको गया. प्रियव्रतका पुत्र मनु तीसरा उत्तमनामक हुआ ॥ १३ ॥ वह गंगा किनारे देवीका जप करता हुआ तप करने लगा. इसप्रकार तीन वर्षमें देवीके अनुग्रहको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ भक्तिसे भावित मन हो देवीको अनेक स्तोत्रोंसे पूजकर चिरकालिक सन्ततिके सहित निष्कंटक राज्यको प्राप्त होता हुआ ॥ १५ ॥ राज्योंके योग्य सुख और युग धर्मको भोगकर राजर्षियोंसे भावित पदवीको प्राप्त होता हुआ ॥ १६ ॥ चौथा तामस नाम मनु प्रियव्रतका पुत्र हुआ वह नर्मदाके दक्षिणकूलमें जगन्माताकी आराधना कर ॥ १७ ॥ जो माहेश्वरी है उनका भजन कर कामराजके कूटजापमें परायण हुआ वसन्त शरद् और नवरात्रमें पूजा जपसे ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ कमललोचनी देवीको सन्तुष्ट करता हुआ उनकी प्रसन्नताको अनेक स्तोत्रोंसे प्राप्त होकर ॥ १९ ॥ निर्भय हो

भुक्त्वाजगामस्वर्लोकंनिजमन्वंतराश्रयात् ॥ तृतीयउत्तमोनामप्रियव्रतसुतोमनुः ॥ १३ ॥ गंगाकूलेतपस्तप्त्वावाग्भवंसंजपन्त्रहः ॥ वर्षाणित्रीण्युपवसन्देव्यनुग्रहमाविशत् ॥ १४ ॥ स्तुत्वादेवींस्तोत्रवरैर्भक्तिभावितमानसः ॥ राज्यंनिष्कंटकंलेभेसंततिंचिरकालिकीम् ॥ १५ ॥ राज्योत्थान्यानिसौख्यानिभुक्त्वाधर्मान्युगस्यच ॥ सोप्याजगामपदवींराजर्षिवरभाविताम् ॥ १६ ॥ चतुर्थस्तामसोनामप्रियव्रतसुतोमनुः ॥ नर्मदादक्षिणेकूलेसमाराध्यजगन्मयीम् ॥ १७ ॥ महेश्वरींकामराजकूटजापपरायणः ॥ वासंतेशारदेकालेनवरात्रसपर्यया ॥ १८ ॥ तोषयामासदेवेशींजलजाक्षीमनूपमाम् ॥ तस्याःप्रसादमासाद्यनत्वास्तोत्रैरनुत्तमैः ॥ १९ ॥ अकंटकंमहद्राज्यंबुभुजेगतसाध्वसः ॥ पुत्रान्बलोद्धताञ्छूरान्दशवीर्यनिकेतनान् ॥ ॥ २० ॥ उत्पाद्यनिजभार्यायांजगामांबरमुत्तमम् ॥ पंचमोमनुराख्यातोरैवतस्तामसानुजः ॥ २१ ॥ कालिंदीकूलमाश्रित्यजजापकामसंज्ञकम् ॥ बीजंपरमवाग्दर्पदायकंसाधकाश्रयम् ॥ २२ ॥ एतदाराधनादापस्वाराज्यर्द्धिमनुत्तमाम् ॥ बलमप्रहतंलोकेसर्वसिद्धिविधायकम् ॥ २३ ॥ संततिंचिरकालीनांपुत्रपौत्रमयींशुभाम् ॥ धर्मान्व्यस्यव्यवस्थाप्यविषयानुपभुज्यच ॥ २४ ॥ जगामाप्रतिमःशूरोमहेंद्रालयमुत्तमम् ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अकंटक राज्य भोगने लगा और बडे पराक्रमी शूर दशपुत्रोंको ॥ २० ॥ भार्यामें प्रगटकर स्वर्गलोकको गमन किया तामसका छोटा भाई पांचवाँ मनु रैवत हुआ ॥ २१ ॥ उसने भी यमुनाके किनारे कामराज मंत्रका जप किया जो साधकको अनेक प्रकारकी मनोरथसिद्धिका देनेवाला है ॥ २२ ॥ इसके आराधनसे उस मनुको श्रेष्ठ राज्यकी सिद्धि प्राप्त हुई और लोकमें सब सिद्धिविधायक बडा बल प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ और चिरायुष पुत्र पौत्रभार्या सन्तति हुई इसप्रकार धर्मको स्थापन कर विषयोंको भोगकर ॥ २४ ॥ अन्तमें वह शूर महेन्द्र स्थानको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीनारायण बोले अब विचित्र देवीका माहात्म्य सुनो जिसप्रकार अंगपुत्रमनुने उत्तम राज्य पाया ॥ १ ॥ अंगराजाका पुत्र चाक्षुषमनु हुआ यह छठवाँ मनु पुलहनाम ब्रह्मर्षिकी शरणको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ हे ब्रह्मर्षि! मैं आपकी शरण हुआ हूं हे दुःखनाशक! आप मुझे समझाइये जिससे मैं श्रेष्ठ लक्ष्मीको प्राप्त होऊं ॥ ३ ॥ जैसे मेरा पृथ्वीमें अखण्ड राज्य होजाय मेरी भुजाओंका बल अप्रतिहत और अस्त्र शस्त्रमें मैं निपुण होजाऊं ॥ ४ ॥ निरन्तर स्थायी सन्तति, अखण्ड उत्तम आयु और अन्तमें मुक्ति हो इसप्रकार मुझे उपदेश करो ॥ ५ ॥ जब इस प्रकारके वचन मुनिने सुने तब राजपुत्रसे देवीका परमाराधन कहने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन्! मेरे श्रोत्रसुखकारी वचन सुनो तुम शिवाका आराधन करो उसके प्रसादसे यह सब कुछ होजायगा ॥ ७ ॥ चाक्षुष बोले हे मुने! भगवतीका परमाराधन किस प्रकार

श्रीनारायणउवाच ॥ अथातःश्रूयतांचित्रंदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अंगपुत्रेणमनुनायथाऽऽप्तंराज्यमुत्तमम् ॥ १ ॥ अंगस्यराज्ञःपुत्रोऽभूच्चाक्षुषो मनुरुत्तमः ॥ षष्ठःसुपुलहंनामब्रह्मर्षिंशरणंगतः ॥ २ ॥ ब्रह्मर्षेत्वामहंप्राप्तःशरणंप्रणतार्तिहन् ॥ शाधिमांकिंकरंस्वामिन्येनाऽहंप्राप्नुयांश्रियम् ॥ ॥ ३ ॥ मेदिन्याश्चाधिपत्यंमेस्यात्यथावदखंडितम् ॥ अव्याहतंभुजबलंशस्त्रास्त्रनिपुणंक्षमम् ॥ ४ ॥ संततिश्चिरकालीनाऽप्यखंडं वयउत्तमम् ॥ अंतेऽपवर्गलाभश्चस्यात्तथोपदिशाऽद्यमे ॥ ५ ॥ इत्येवंवचनंतस्यमनोःकर्णपथेऽभवत् ॥ प्रत्युवाचमुनिःश्रीमान्देव्याःसंराधनंपरम् ॥ ६ ॥ राजन्नाकर्णयवचोममश्रोत्रसुखंमहत् ॥ शिवामाराधयाऽद्यत्वंतत्प्रसादादिदंभवेत् ॥ ७ ॥ चाक्षुषउवाच ॥ कीदृगाराधनंदेव्यास्तस्याः परमपावनम् ॥ केनाकारेणकर्तव्यंकारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ मुनिरुवाच ॥ राजन्नाकर्ण्यतांदेव्याःपूजनंपरमव्ययम् ॥ वाग्भवंवीजमव्यक्तंसंजप्यम निशंतथा ॥ ९ ॥ त्रिकालंसंजपन्मर्त्योभुक्तिमुक्तीलभेत्तुहि ॥ नबीजंवाग्भवादन्यदस्तिराजन्यनंदन ॥ १० ॥ जपात्सिद्धिकरंवीर्यबलवृद्धिकरंपरम् ॥ एतस्यजापात्पाद्मोऽपिसृष्टिकर्तामहाबलः ॥ ११ ॥ विष्णुर्यज्जपतःसृष्टिपालकःपरिकीर्तितः ॥ महेश्वरोऽपिसंहर्तायज्जपादभवन्नृप ॥ १२ ॥ लोकपालास्तथाऽन्येऽपिनिग्रहानुग्रहक्षमाः ॥ यदाश्रयादभूवंस्तेबलवीर्यमदोद्धताः ॥ १३ ॥

है किस प्रकार करना चाहिये वह कृपाकर आप कहिये ॥ ८ ॥ मुनि बोले हे राजन्! देवीका परम अव्यय पूजन आप सुनिये महासरस्वती देवता वाला बीज निरन्तर जपना चाहिये ॥ ९ ॥ तीन काल जपनेसे भुक्ति मुक्तिकी प्राप्ति होती है. हे राजन्! वाग्भवबीजके समान और मंत्र नहीं है ॥ १० ॥ यह जपसेही सिद्धि करनेवाला बलवीर्यकी वृद्धि करनेवाला है इसीके जपसे ब्रह्माजी सृष्टि करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ ११ ॥ इसीके जपसे विष्णु सृष्टिपालक और महेश्वर संहर्ता कहे जाते हैं ॥ १२ ॥ तथा इसीसे दूसरे लोकपाल भी निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ होते हैं जिसके आश्रयसे यह सब कोई बलवीर्य सम्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥

हेराजन् ! इसी प्रकार तुम भी माहेश्वरी जगदम्बिकाको आराधन कर शीघ्रही महासमृद्धिको प्राप्त होगे ॥ १४ ॥ जब मुनिश्रेष्ठ पुलहने इस प्रकार समझाया तब अंगपुत्र तप करने विरजा नदीके तटपर गया ॥ १५ ॥ वहां वाणीबीजका जप करता परम तप करने लगा और यह राजा सूखे पत्तोंका आहार करने लगा ॥ १६ ॥ पहले वर्षमें पत्ते खाये दूसरेमें जल पिया तीसरेमें वायु भक्षण कर ठूंठके समान अचल रहे ॥ १७ ॥ इसप्रकार बारह वर्षपर्यन्त राजाने भोजन त्यागकर जप किया जिससे मतिमें प्रकाश हुआ ॥ १८ ॥ जब एकान्तमें देवीका भजन करने लगा तब साक्षात् परमेश्वरी जगन्माता प्रसन्न हो प्रगट हुई ॥ १९ ॥ जो तेज सम्पन्न दुराधर्ष सर्व देवमय ईश्वरी है, वह मनोहर अक्षरोंसे अंगपुत्रसे कहने लगी ॥ २० ॥ देवी बोली हे पृथ्वीपाल ! जो तुमने अपने मनमें

एवंत्वमपिराजन्यमहेशींजगदंबिकाम् ॥ समाराध्यमहर्द्धिंचलप्स्यसेऽचिरकालतः ॥ १४ ॥ एवंसमुनिवर्येणपुलहेनप्रबोधितः ॥ अंगपुत्रस्तपस्तप्तुंजगामविरजांनदीम् ॥ १५ ॥ सचतेपेतपस्तीव्रंवाग्भवस्यजपेरतः ॥ बीजस्यपृथिवीपालःशीर्णपर्णाशनोविभुः ॥ १६ ॥ प्रथमेऽब्देपल्लवाशोद्वितीयेतोयभक्षणः ॥ तृतीयेऽब्देपवनभुक्तस्थौस्थाणुरिवाचलः ॥ १७ ॥ एवंद्वादशवर्षाणित्यक्ताहारस्यभूभुजः ॥ वाग्भवंजपतोनित्यंमतिरासीच्छुभान्विता ॥ १८ ॥ तथाचदेव्याःपरमंमंत्रंसंजपतोरहः ॥ प्रादुरासीज्जगन्मातासाक्षाच्छ्रीपरमेश्वरी ॥ १९ ॥ तेजोमयीदुराधर्षासर्वदेवमयीश्वरी ॥ उवाचांगतनूजंतंप्रसन्नललिताक्षरम् ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ पृथिवीपालतेयत्स्याच्चिंतितंपरमंवरम् ॥ तद्ब्रूहिसंप्रदास्यामितपसातेसुतोषिता ॥ २१ ॥ चाक्षुषउवाच ॥ जानासिदेवदेवेशियत्प्रार्थ्यंमनसेप्सितम् ॥ अंतर्यामिस्वरूपेणतत्सर्वंदेवपूजिते ॥ २२ ॥ तथाऽपिममभाग्येनजातंयत्तवदर्शनम् ॥ ब्रवीमिदेविमेदेहिराज्यंमन्वंतराश्रितम् ॥ २३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ दत्तंमन्वंतरस्याऽस्यराज्यंराजन्यसत्तम ॥ पुत्रामहाबलास्तेचभविष्यंतिगुणाधिकाः ॥ २४ ॥ राज्यंनिष्कंटकंभाविमोक्षोंऽतेचापिनिश्चितः ॥ एवंदत्त्वावरंदेवीमनवेवरमुत्तमम् ॥ २५ ॥ जगामाऽदर्शनंसद्यस्तेनभक्त्याचसंस्तुता ॥ सोऽपिराजामनुःषष्ठःप्रसादात्तुतदाश्रयात् ॥ २६ ॥

विचारा है वह मांगो मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हो तुमको देती हूं ॥ २१ ॥ चाक्षुष बोले हे देवेशि ! जो प्रार्थना मेरे मनमें है उसको तुम जानती हो हे देवपूजिते ! अन्तर्यामिस्वरूपसे तुम सब जानती हो ॥ २२ ॥ यह मेरा बड़ा भाग्य है जो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ. हे देवि ! मुझको मन्वन्तरपर्यन्तके आश्रयका राज्य दो ॥ २३ ॥ देवी बोली. हे राजसत्तम ! मैंने मन्वन्तरपर्यन्तका राज्य तुमको दिया, तुम्हारे गुणी महाबली पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ निष्कंटक राज्य और अन्तमें तुम्हारी मोक्ष होगी इस प्रकार देवी मनुको वर दे ॥ २५ ॥ उससे भक्तिपूर्वक स्तुतिको प्राप्त होकर अदर्शनको प्राप्त हुई वह राजा भगवतीके आश्रयसे छठा मनु हुआ ॥ २६ ॥

यह बडा मान्य और सार्वभौम सुखसे युक्त हुआ इसके पुत्र बडे बली कार्यके भार वहनमें समर्थ हुए॥ २७॥ वह सब देवीके भक्त,शूर,महाबली,पराक्रमी हुए सर्वत्र माननीय महाराज सुखसे सम्पन्न हुए ॥ २८ ॥ इस प्रकार चाक्षुष मनुने देवीका आराधन कर श्रेष्ठताको प्राप्त हो अन्तमें वैकुण्ठ गमन किया और शिवाका पद पाया॥ २९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारायण बोले सातवें वैवस्वत मनु हुए जो श्राद्धदेवनामसे विख्यात परानंदके भोक्ता राजोंके माननीय हुए ॥ १ ॥ यह वैवस्वत मनु देवीकी परम प्रसन्नतासे उस तप और जपसे मन्वन्तरके अधिपति हुए ॥ २ ॥ आठवें मनु पृथ्वीमें विख्यात

बभूवमनुमान्योऽसौसार्वभौमसुखैर्वृतः ॥ पुत्रास्तस्यबलोद्युक्ताःकार्यभारसहाहृताः ॥ २७ ॥ देवीभक्ताश्चशूराश्चमहाबलपराक्रमाः ॥ अन्यत्रमाननीयाश्चमहाराज्यसुखास्पदाः ॥ २८ ॥ एवंचचाक्षुषमनुर्देव्याराधनतःप्रभुः ॥ बभूवमनुवर्योऽसौजगामांतेशिवापदम् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेदेवीचरित्रेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ सप्तमोमनुराख्यातोमनुर्वैवस्वतःप्रभुः ॥ श्राद्धदेवःपरानंदभोक्तामान्यस्तुभूभुजाम् ॥१॥ सचवैवस्वतमनुःपरदेव्याःप्रसादतः ॥ तथातत्तपसाचैवजातोमन्वंतराधिपः ॥ २ ॥ अष्टमोमनुराख्यातःसावर्णिःप्रथितःक्षितौ ॥ सजन्मांतरआराध्यदेवींतद्वरलाभतः ॥ ३ ॥ जातोमन्वंतरपतिःसर्वराजन्यपूजितः ॥ महापराक्रमीधीरोदेवीभक्तिपरायणः ॥ ४ ॥ नारदउवाच ॥ कथंजन्मांतरेतेनमनुनाऽऽराधनंकृतम् ॥ देव्याःपृथिव्युद्भवायास्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ५ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ चैत्रवंशसमुद्भूतोराजास्वारोचिषेंऽतरे ॥ सुरथोनामविख्यातोमहाबलपराक्रमः ॥ ६ ॥ गुणग्राहीधनुर्धारीमान्यःश्रेष्ठःकविःकृती ॥ धनसंग्रहकर्ताचदातायाचकमंडले ॥ ७ ॥ अरीणांमर्दनोमानीसर्वास्त्रकुशलोबली ॥ तस्यैकदाबभूवुस्तेकोलाविध्वंसिनोनृपाः ॥ ८ ॥

सावर्णि होंगे वह जन्मान्तरमें देवीका आराधन कर उनके वरदानसे ॥ ३ ॥ सब राजोंसे पूजित मन्वन्तर पति हुए, यह धीर महापराक्रमी देवीकी भक्तिमें परायण हुए ॥ ४ ॥ नारदजी बोले इन मनुने किसप्रकार पूर्व जन्ममें पृथ्वीसे प्रगट भगवतीका आराधन किया था, सो आप हमसे कहिये? ॥ ५ ॥ श्रीनारायण बोले स्वारोचिष मनुके अन्तरमें चैत्रवंशमें एक सुरथ नामवाला राजा बडा बली और विख्यातथा ॥६॥ यह गुणग्राही, धनुर्धर मान्य श्रेष्ठ और कवि था, धनका संग्रह कर्त्ता और याचकमंडलको दान देता था॥ ७॥ वह मानी शत्रुओंका मर्दन करनेवाला सब अस्त्रोंमें कुशल और बली हुआ एक समय उसकी कोलानगरीके विध्वंस करनेवाले राजा॥ ८॥

१ प्रकृतिखण्डके दुर्गामाहात्म्यमें इसका विस्तार है कि ध्रुवका पौत्र नंदि शत १०० अक्षौहिणीसेना लेकर नगरीपर चढा था।

शत्रु सेनाके सहित आकर इसे घेरते हुए जब इस मानधनी राजाकी नगरी उन्होंने घेर ली ॥ ९ ॥ तब सुरथराजा सेनासहित शत्रुके मारनकी इच्छासे नगरीसे बाहर निकला ॥ १० ॥ तब शत्रुओंने युद्ध कर सुरथ राजाको जीत लिया अमात्य मंत्री और कोषधन उसका सब जाता रहा ॥ ११ ॥ जब सब धन हरगया तब राजा बडा दुःखी हुआ तब वह परमद्युति नगरीसे बाहर किये गये ॥ १२ ॥ और मृगयाके मिससे वनको चले गये इकले वनमें भ्रांत हो राजा विच रनेलगे ॥ १३ ॥ फिर किसी एक शान्तमनवाले श्वापदोंसे व्याप्त मुनि और शिष्यगणोंसे संयुक्त ॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठ बुद्धिमान् दीर्घदृष्टिके आश्रममें राजा कुछ दिनों तक निवास करता हुआ ॥ १५ ॥ एक समय वह राजा पूजाके अन्तमें मुनिके समीप जाय प्रणाम कर नम्रतासे पूँछने लगा ॥ १६ ॥ हे मुनिराज ! मेरा मन बडा

शत्रवः सैन्यसहिताः परिवार्येनमूर्जिताः ॥ रुरुधुर्नगरींतस्यराज्ञोमानधनस्यहि ॥ ९ ॥ तदाससुरथोनामराजासैन्यसमावृतः ॥ निर्ययौनगरात्स्वीयात्सर्व शत्रुनिवर्हणः ॥ १० ॥ तदाससमरेराजासुरथःशत्रुभिर्जितः ॥ अमात्यैर्मंत्रिभिश्चैवतस्यकोशगतंधनम् ॥ ११ ॥ हृतंसर्वमशेषेणतदाऽतप्यतभूमिपः ॥ निष्काशितश्चनगरात्सराजापरमद्युतिः ॥ १२ ॥ जगामाऽऽश्रमथाऽऽरुह्यमृगयामिषतोवनम् ॥ एकाकीविजनेऽरण्येवभ्रामोद्भ्रांतमानसः ॥ १३ ॥ मुनेः कस्यचिदागत्यस्वाश्रमंशांतमानसः ॥ प्रशांतजंतुसंयुक्तंमुनिःशिष्यगणैर्युतम् ॥ १४ ॥ उवासकंचित्कालंसराजापरमशोभने ॥ आश्रमेमुनिवर्यस्यदी र्घदृष्टेःसुमेधसः ॥ १५ ॥ एकदासमहीपालोमुनिंपूजावसानके ॥ कालेगत्वाप्रणम्याऽऽशुपप्रच्छविनयान्वितः ॥ १६ ॥ मुनेममममनोदुःखंबाधतेचाधिसं भवम् ॥ ज्ञाततत्त्वस्यभूदेवनिष्प्रज्ञस्यचसंततम् ॥ १७ ॥ शत्रुभिर्निर्जितस्यापिहृतराज्यस्यसर्वशः ॥ तथापितेषुमनसिममत्वंजायतेस्फुटम् ॥ १८ ॥ किंकरोमिक्कगच्छामिकथंशर्मलभेमुने ॥ त्वदनुग्रहमाशासेवदवेदविदांवर ॥ १९ ॥ मुनिरुवाच ॥ आकर्णयमहीपालमहाश्चर्यकरंपरम् ॥ देवीमाहा त्म्यमतुलंसर्वकामप्रदंपरम् ॥ २० ॥ जगन्मयीमहामायाविष्णुब्रह्महरोद्भवा ॥ साबलादपहृत्यैवजंतूनांमानसानिहि ॥ २१ ॥ मोहायप्रतिसंयच्छेदि तिजानीहिभूमिप ॥ सासृजत्यखिलंविश्वंसापालयतिसर्वदा ॥ २२ ॥

दुःखी है हे भूदेव ! तत्त्वज्ञान होने और निष्प्रज्ञा होनेपरभी ॥ १७ ॥ शत्रुकेद्वारा जो मेरा राज्यधन हरण हुआ है तौभी मेरे मनसे राज्यका ममत्व नहीं छूटता ॥ १८ ॥ हे मुनिराज ! मैं क्या करूं कहां जाऊं किसप्रकार मेरे मनमें शान्ति होगी ? हे वेदज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ! अब मैं आपके अनुग्रहकी इच्छा करता हूं सो आप कृपा कर कहिये ॥ १९ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! महाआश्चर्य करनेवाली बातको सुनो, जो देवीका माहात्म्य सब कामनादायक है ॥ २० ॥ जो जगन्मयी महामाया विष्णु, शिव ब्रह्माकी भी प्रगट करनेवाली है, जो बलसे जन्तुओंके मन आकर्षण करती है ॥ २१ ॥ और फिर मोहितकर देती है ऐसा जानो वही सब जगत्को उत्पन्नकर

पालन करती है ।। २२ ।। और संहारके समय हररूप धारण करती है, वह कामदात्री महामाया दुरन्ता कालरात्रि है ॥ २३ ॥ यह काली विश्वकी संहार करने वाली कमला कमलमें निवास करनेवाली है उसीसे सब जगत् होकर उसीमें प्रतिष्ठित है ॥२४॥ अन्तमें उसीमें लय होगा इस कारण वही परात्पर है. हे राजन्! जिसके ऊपर उस देवीका प्रसाद होजाता है॥ २५॥ वही मोहके पार हो जाताहै इसमें सन्देह नहीं॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १०॥ राजा बोले हे काल जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! कहो वह कौनसी देवी है कौन इन प्राणियोंको मोहित करती है इसमें कारण क्या है ।। १ ।। वह देवी किससे प्रगट होती है क्या उसका स्वरूप है क्या आत्मा है? हे ब्रह्मन्! कृपा कर आप यह सब कहिये ।।२।। मुनि बोले सुनो राजन्! मैं तुमसे देवीका स्वरूप कहता हूं जिस

संहारेहररूपेणसंहरत्येवभूमिप ॥ कामदात्रीमहामायाकालरात्रिर्दुरत्यया ॥ २३ ॥ विश्वसंहारिणीकालीकमलाकमलालया ॥ तस्यांसर्वंजगज्जातं तस्यांविश्वंप्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥ लयमेष्यतितस्यांचतस्मात्सैवपरात्परा ॥ तस्यादेव्याःप्रसादश्चयस्योपरिभवेन्नृप ॥ २५ ॥ सएवमोहमत्येतिना न्यथाधरणीपते ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ राजोवाच ॥ कासादेवीत्वयाप्रोक्ताब्रूहिकालविदांवर ॥ कामोहयतिसत्त्वानिकारणंकिंभवेद्द्विज ॥ १ ॥ कस्मादुत्पद्यतेदेवीकिंरूपासाकिमात्मिका ॥ सर्वमाख्याहिभूदेवकृपयाममसर्वतः ॥ २ ॥मुनिरुवाच ॥ राजन्देव्याःस्वरूपंतेवर्णयामिनिशामय ॥ तथाचोत्पतितादेवीयेनवासाजगन्मयी ॥३॥ यदानारायणोदेवोविश्वंसंहृत्ययोगराट् ॥ आस्तीर्यशेषंभगवान्स मुद्रोनिद्रितोऽभवत् ॥ ४ ॥ तदाप्रस्वापवशगोदेवदेवोजनार्दनः ॥ तत्कर्णमलसंजातौदानवौमधुकैटभौ ॥ ५ ॥ ब्रह्माणंहंतुमुद्युक्तौदानवौघोररूपिणौ ॥ तदाकमलजोदेवोदृष्ट्वातौमधुकैटभौ ॥६॥ निद्रितंदेवदेवेशंचिंतामापदुरत्ययाम् ॥ निद्रितोभगवानीशोदानवौचदुरासदौ ॥७॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकथं शर्मलभेह्यहम् ॥ एवंचिंतयतस्तस्यपद्मयोनेर्महात्मनः ॥ ८ ॥ बुद्धिःप्रादुरभूत्ताततदाकार्यप्रसाधिनी ॥ यस्यावशंगतोदेवोनिद्रितोभगवान्हरिः ॥ ९ ॥

प्रकार वह जगन्मयी प्रगट हुई सो आपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ जिस समय योगनिद्रामें भगवान् सब जगत्का संहार कर शयन कर गये और शेष शय्यापर सागरमें निद्रित हुये ।। ४ ।। तब देवदेव जनार्दनके शयन करनेसे मधुकैटभ दानव उनके कानोंके मैलसे प्रगट हुए ।। ५ ।। वह घोररूप दानव ब्रह्माजीके मारनेको उद्यत हुए तब ब्रह्माजी उन दोनों दैत्योंको देखकर ॥ ६ ॥ तथा विष्णुको सोता देख बडी चिन्ताको प्राप्त हुए कि, भगवान् शयन करते हैं और ये दोनों दैत्य बडे प्रबल हैं ॥ ७ ॥ मैं क्या करूं कहां जाऊं किसप्रकार मुझे मंगलकी प्राप्ति हो इसप्रकार महात्मा ब्रह्माजीके चिन्ता करनेमें ।। ८ ।। तब कार्यसाधनी बुद्धि प्रगट

हुई जिसकेद्वारा भगवान् निद्रित हुए थे ॥ ९ ॥ उस सबकी प्रसूती भगवती देवीके शरण होता हूं ब्रह्माजी बोले हे जगद्धात्री ! भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली आपकी जय हो ॥ १० ॥ हे जगतकी माया, महामाया, समुद्रमें शयन करनेवाली शिवे तुम्हारी आज्ञामें वश हुए सब अपना २ कार्य करते हैं ॥ ११ ॥ तुम कालरात्री, महारात्री, मोहरात्री, मदसे उत्कट हो सर्वत्र व्याप्त वशगामिनी महा आनंदकी मर्यादाहो॥ १२॥ तुम पूजनीय महा आराधनीया माया, मधुमती, मही, परमा, परमेशानी अर्थात् सब पर और अपरकी परमा कही गई हो ॥ १३ ॥ लज्जा, पुष्टि, क्षमा कीर्ति, कान्ति, कारुण्य विग्रहवाली, मनोहर जगत्से वंदित जाग्रदादि स्वरूपवाली ॥ १४ ॥ परमा, परमेशानी, परनंदा, परायणा, अद्वितीया, एक, एक स्वरूपवाली तथा मायावस्तुके सहित दयामयी हो कहीं द्वयात्मिका पाठ है, तब यह अर्थ करना कि

तांदेवींशरणंयामिनिद्रांसर्वप्रसूतिकाम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेविजगद्धात्रिभक्ताभीष्टफलप्रदे ॥ १० ॥ जगन्मायेमहामायेसमुद्रशयनेशिवे ॥ त्वदाज्ञावशगाःसर्वेस्वस्वकार्यविधायिनः ॥ ११ ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्महारात्रिर्मदोत्कटा ॥ व्यापिनीवशगामान्यामहानंदैकशेवधिः ॥ १२ ॥ महनीयामहाराध्यामायामधुमतीमही ॥ परापराणांसर्वेषांपरमात्वंप्रकीर्तिता ॥ १३ ॥ लज्जापुष्टिः क्षमाकीर्तिःकांतिःकारुण्यविग्रहा ॥ कमनीयाजगद्वंद्या जाग्रदादिस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ परमापरमेशानीपरनंदापरायणा ॥ एकाऽप्येकस्वरूपाचसद्वितीयाद्वयात्मिका ॥ १५॥ त्रयीत्रिवर्गनिलयातुर्यातुर्यपदात्मिका ॥ पंचमीपंचभूतेशीषष्ठीषष्ठेश्वरीतिच ॥ १६ ॥ सप्तमीसप्तवारेशीसप्तसप्तवरप्रदा ॥ अष्टमीवसुनाथाचनवग्रहमयीश्वरी ॥ १७ ॥ नवरागकलारम्यानवसंख्यानवेश्वरी ॥ दशमीदशदिक्पूज्यादशाशाव्यापिनीरमा ॥ १८ ॥ एकादशात्मिकाचैकादशरुद्रनिषेविता ॥ एकादशीतिथिप्रीताएकादशगणाधिपा ॥ १९ ॥

द्वित्व संख्याविशिष्ट पदार्थात्मिका हो ॥ १५ ॥ त्रयीविद्यारूप, त्रिगुणरूप, धर्म, अर्थ,काम, स्वरूपिणी तुर्यावस्था स्वरूप ब्रह्मपदात्मिका, अथवा एकसे चार संख्या तिथि रूपा हो पंचतत्त्व संख्यारूप पांच भूतोंकी अधीश्वरी षष्ठी, षट् संख्या रूपा अथवा, छः के पूरक पदार्थकी अधीश्वरी हो ॥ १६ ॥ सप्तमी तिथि सातों वारकी अधीश्वरी सात सात वारकी देनेवाली अष्टमी वसुओंकी अधीश्वरी, नवग्रह नौयुक्त और उनकी अधीश्वरी ॥ १७ ॥ नवीन रागवानो रागोंकी कलासे मनोहर संख्या तथा नौकी अधीश्वरी दशमी दश दिशाओंमें पूजनीया, दशों दिशाओंमें व्याप्तरमारूप ॥ १८ ॥ एकादशात्मायुक्त ग्यारह रुद्रोंसे निषेवित, एकादशी तिथिको

प्यार करनेवाली, एकादश गणोंकी स्वामिनी ॥ १९ ॥ द्वादशी, बारह भुजावाली बारह आदित्योंको प्रगट करनेवाली, त्रयोदशात्मिका "मलमासके सहित तेरहवां महीना भी ग्रहण करना" देवी त्रयोदश गणको प्यार करनेवाली ॥ २० ॥ त्रयोदशनामवाली, तथा इनसे अभिन्न विश्वेदेवाओंकी अधिदेवी चौदह इन्द्रोंको वर देनेवाली चौदह मनुओंको प्रगट करनेवाली ॥ २१ ॥ पंचदशी कामराज विद्यारूपवाली त्रिपुरसुन्दरी विद्या, जानने योग्य पंचदशी तिथिवाली षोडशी षोडश भुजा सोलह चन्द्रमाकी कलामय व्याप्त ॥ २२ ॥ षोडशात्मक चन्द्रकिरणमें व्याप्त दिव्य कलेवरवाली हो. हे देवेशि ! तुम इसप्रकारके रूपवाली निर्गुण तमके उदयमें ॥ २३ ॥ आपने देवदेव रमापतिको ग्रहण किया है और यह दोनों दुरासद् मधु कैटभ दैत्य हैं ॥ २४ ॥ इनके वधके निमित्त देव देवको जगाओ, मुनि बोले जब भगवत्

द्वादशीद्वादशभुजाद्वादशादित्यजन्मभूः ॥ त्रयोदशात्मिकादेवीत्रयोदशगणप्रिया ॥ २० ॥ त्रयोदशाभिधाभिन्नाविश्वेदेवाधिदेवता ॥ चतुर्दशेंद्रवरदाच तुर्दशमनुप्रसूः ॥ २१ ॥ पंचाधिकदशीविद्यापंचाधिकदशीतिथिः ॥ षोडशीषोडशभुजाषोडशेंदुकलामयी ॥ २२ ॥ षोडशात्मकचंद्रांशुव्याप्तदिव्यकलेवरा ॥ एवंरूपाऽसिदेवेशिनिर्गुणेतामसोदये ॥ २३ ॥ त्वयागृहीतोभगवान्देवदेवोरमापतिः ॥ एतौदुरासदौदैत्यौविक्रांतौमधुकैटभौ ॥ ॥ २४ ॥ एतया श्ववधार्थायदेवेशंप्रतिबोधय ॥ मुनिरुवाच ॥ एवंस्तुताभगवतीतामसीभगवत्प्रिया ॥२५॥ देवदेवंतदात्यक्त्वामोहयामासदानवौ ॥ तदैवभगवान्विष्णुः परमात्माजगत्पतिः ॥ २६ ॥ प्रबोधमापदेवेशोददृशेदानवोत्तमौ ॥ तदातौदानवौघोरौदृष्ट्वातंमधुसूदनम् ॥ २७ ॥ युद्धायकृतसंकल्पौजग्मतुःसन्निधिंहरेः ॥ युयुधेचततस्ताभ्यांभगवान्मधुसूदनः ॥ २८ ॥ पंचवर्षसहस्राणिबाहुप्रहरणोविभुः ॥ तौतदाऽतिबलोन्मत्तौजगन्मायाविमोहितौ ॥ २९ ॥ व्रियतांवरइत्येवमूचतुःपरमेश्वरम् ॥ एवंतयोर्वचःश्रुत्वाभगवानादिपूरुषः ॥ ३० ॥ वव्रेवध्यावुभौमेऽद्यभवेतामितिनिश्चितम् ॥ तौतदाऽतिबलौदेवं पुनरेवोचतुर्हरिम् ॥ ३१ ॥ आवांजहिनयत्रोर्वीपयसाचपरिप्लुता ॥ तथेत्युक्त्वाभगवतागदाशंखभृतानृप ॥ ३२ ॥

प्रिया तामसीकी इसप्रकार स्तुति की ॥ २५ ॥ तब देव देवको त्यागनकर उसने दोनों दानवोंको मोहित किया, तभी भगवान्, विष्णु, परमात्मा, जगत्पति ॥ २६ ॥ जागे और उन्होंने दोनों दानवोंको देखा तब वे दोनों घोर दानव मधुसूदनको देखकर ॥ २७ ॥ युद्धका संकल्पकर भगवान्के समीप गये उनके संग भगवान् वासुदेवका युद्ध हुआ ॥ २८ ॥ पांच सहस्र वर्षतक भगवान्ने बाहुयुद्ध किया तब यह दोनों बलसे मत्त हो जगन्मायासे मोहित हुए ॥ २९ ॥ वर मांगो यह मधुसूदनसे बोले आदि पुरुष भगवान् उन दोनोंके वचन सुन ॥ ३० ॥ बोले तुम दोनों हमारे वध्यहो तब वे दोनों बडे बली हरिसे बोले ॥ ३१ ॥ हमको उस

स्थानमें मारो जहां कहीं पृथ्वी जलसे व्याप्त न हो तब भगवान् शंखचक्रधारीने ॥ ३२ ॥ चक्रसे उनका शिरच्छेदन कर दिया. हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्मासे स्तुतिको प्राप्त हो देवी प्रगट हुई ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वह महाकाली सब योगेश्वरोंकी ईश्वरी है हे राजन् ! अब महालक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ मुनि बोले महिषीगर्भसे प्रगट हुआ महाबली पराक्रमी महिषासुर सब देवताओंको जीतकर जगत्का अधिपति स्वयं हुआ ॥ १ ॥ वह महासुर सब लोकपालोंके अधिकारोंको बलसे छीन त्रिलोकीका ऐश्वर्य भोगने लगा ॥ २ ॥ तब पराजित हो सब देवता स्वर्गसे च्युत हुए और ब्रह्माको आगेकर उत्तम लोकको गये॥ ३ ॥ जहां उत्तम देव शंकर और अच्युत निवास करते हैं वहां जाकर दुरात्मा

कृत्वाचक्रेणवैछिन्नेजघनेशिरसीतयोः ॥ एवंदेवीसमुत्पन्नाब्रह्मणासंस्तुतानृप ॥ ३३ ॥ महाकालीमहाराजसर्वयोगेश्वरेश्वरी ॥ महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिनिशामयमहीपते ॥ ३४ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधेदेवीमाहात्म्येएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ मुनिरुवाच ॥ महिषीगर्भसंभूतोमहाबलपराक्रमः ॥ देवान्सर्वान्पराजित्यमहिषोऽभूज्जगत्प्रभुः ॥१॥ सर्वेषांलोकपालानामाधिकारान्महासुरः ॥ बलान्निर्जित्यबुभुजेत्रैलोक्यैश्वर्यमद्भुतम् ॥ २ ॥ ततःपराजिताःसर्वेदेवाःस्वर्गपरिच्युताः ॥ ब्रह्माणंचपुरस्कृत्यतेजग्मुर्लोकमुत्तमम् ॥ ३ ॥ यत्रोत्तमौदेवदेवौसंस्थितौशंकराच्युतौ ॥ वृत्तांतंकथयामासुर्महिषस्यदुरात्मनः ॥ ४ ॥ देवानांचैवसर्वेषांस्थानानितरसाऽसुरः ॥ विनिर्जित्यस्वयंभुंक्तेबलवीर्यमदोद्धतः ॥ ५ ॥ महिषासुरनामाऽसौदुष्टदैत्योऽमरेश्वरौ ॥ वधोपायश्चतस्याऽऽशुचिंत्यतामसुरार्दनौ ॥ ६ ॥ एवंश्रुत्वासभगवान्देवानामार्तियुग्वचः ॥ चकारकोपंसुबहुंतथाशंकरपद्मजौ ॥ ७ ॥ एवंकोपयुतस्यास्यहरेरास्यान्महीपते ॥ तेजःप्रादुरभूद्दिव्यंसहस्रार्कसमद्युति ॥८॥ अथानुक्रमतस्तेजःसर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ शरीरादुद्भवंप्रापहर्षयद्विबुधाधिपान् ॥ ९ ॥ यदभूच्छंभुजंतेजोमुखमस्योदपद्यत ॥ केशाबभूवुर्याम्येनवैष्णवेनचबाहवः ॥ १० ॥ सौम्येनचस्तनौजातौमाहेंद्रेणचमध्यमः ॥ वारुणेनततोभूपजंघोरूसंबभूवतुः ॥११॥ नितंबौतेजसाभूमेःपादौब्राह्मेणतेजसा ॥ पादांगुल्योभानवेनवासवेनकरांगुलीः ॥ १२ ॥

महिषासुरका वृत्तान्त कथन किया ॥ ४ ॥ कि उस असुरने बडे वेगसे सब देवताओंके स्थान जीतकर मदोद्धत हो उनको स्वयं भोगा है ॥ ५ ॥ हे देवताओ ! वह महिषासुर बडा दुष्टदैत्य है हे असुरनाशको! उसके वधका उपाय विचारो ॥ ६ ॥ वह भगवान् देवताओंका इसप्रकार दुःख पूर्ण वचन सुनकर शंकर भगवान् बडा क्रोध करते हुए ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उस समय क्रोध करते हुए भगवान् हरिके मुखसे सहस्र सूर्यके समान दिव्यतेज निर्गत हुआ ॥ ८ ॥ फिर क्रमसे सब देवताओंका तेज देवताओंको प्रसन्न करता हुआ उनके शरीरसे निर्गत हुआ ॥ ९ ॥ शंभुके तेजसे मुख यमके तेजसे केश विष्णुके तेजसे भुजा ॥ १० ॥ चन्द्रमाके तेजसे स्तन, महेन्द्रके तेजसे मध्यभाग, वरुणके तेजसे जंघा हुई॥ ११ ॥भूमिके तेजसे नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे चरण, सूर्यके तेजसे पादांगुली, इन्द्रके तेजसे हाथोंकीअंगुली॥ १२ ॥

कुबेरके तेजसे नासिका, प्रजापतिके उत्तम तेजसे दांत ॥ १३ ॥ अग्निके तेजसे तीन नेत्र, संध्याके तेजसे तेजकी निधि भ्रुकुटी ॥ १४ ॥ हे राजन्! वायुके तेजसे कान, इसप्रकार सबके तेजसे महिषमर्दिनी प्रगट हुई ॥ १५ ॥ शिवने शूल, विष्णुने चक्र, वरुणने पाश, अग्निने शक्ति, वायुने धनुषबाण ॥ १६ ॥ महेन्द्रने वज्र, ऐरावतने घंटा, यमने कालदण्ड, ब्रह्माने अक्षमाला और कमंडलु ॥ १७ ॥ दिवाकरने रोमकूपोंमें रश्मिमाला, हे राजन्! कालने दिव्य ढाल तलवार ॥ १८ ॥ समुद्रने निर्मलहार और मलीन न होनेवाले वस्त्र चूडामणि कटक कुंडल बाजूबंद ॥ १९ ॥ निर्मल अर्धचन्द्र और नूपुर तथा गलेका भूषण प्रसन्नतासे देवीके निमित्त दिया ॥ २० ॥ हे राजन् ! विश्वकर्माने यह सब देवीके निमित्त दिया, हिमालयने वाहन सिंह तथा अनेक रत्न दिये ॥ २१ ॥ धनाधिप कुबेरने सुरापूर्ण पान पात्रदिया,

कौबेरेणतथानासादंताःसंजज्ञिरेतदा ॥ प्राजापत्येनोत्तमेनतेजसावसुधाधिप ॥१३॥ पावकेनचसंजातंलोचनत्रितयंशुभम् ॥ सांध्येनतेजसाजातेभृकुट्यौ तेजसांनिधी ॥१४॥ कर्णौवायव्यतोजातौतेजसोमनुजाधिप ॥ सर्वेषांतेजसादेवीजातामहिषमर्दिनी ॥ १५ ॥ शूलंददौशिवोविष्णुश्चक्रंशंखंचपाशभृत् ॥ हुताशनोददौशक्तिंमारुतश्चापसायकौ ॥ १६ ॥ वज्रंमहेंद्रःप्रददौघंटांचैरावताद्गजात् ॥ कालदंडंयमोब्रह्माचाक्षमालाकमंडलू ॥१७॥ दिवाकरोरश्मिमालांरोमकूपेषुसंददौ ॥ कालःखड्गंतथाचर्मनिर्मलंवसुधाधिप॥१८॥समुद्रोनिर्मलंहारमजरेचांबरेनृप ॥ चूडामणिंकुंडलेचकटकानितथांगदे ॥ १९ ॥ अर्धचंद्रंनिर्मलंचनूपुराणितथाददौ॥ग्रैवेयकंभूषणंचतस्यैदेव्यैमुदान्वितः॥२०॥विश्वकर्माचोर्मिकाश्चददौतस्यैधरापते ॥ हिमवान्वाहनंसिंहंरत्नानिविविधानि च ॥२१॥ पानपात्रंसुरापूर्णंददौतस्यैधनाधिपः ॥ शेषश्चभगवान्देवोनागहारंददौविभुः ॥२२॥ अन्यैरशेषविबुधैर्मानितासाजगन्मयी ॥ तांतुष्टुवुर्महादेवींदेवामहिषपीडिताः ॥२३॥ नानास्तोत्रैर्महेशानींजगदुद्भवकारिणीम् ॥ तेषांनिशम्यदेवेशीस्तोत्रंविबुधपूजिता ॥२४॥ महिषस्यवधार्थायमहानादंचकार ह ॥ तेननादेनमहिषश्चकितोभूद्धरापते ॥ २५ ॥ आससादजगद्धात्रींसर्वसैन्यसमावृतः ॥ ततःसयुयुधेदेव्यामहिषाख्योमहासुरः ॥२६॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधाक्षिप्तैःपूरयन्नंबरांतरम्॥चिक्षुरोग्रामणीःसेनापतिर्दुर्धरदुर्मुखौ॥२७॥बाष्कलस्ताम्रकश्चैवबिडालवदनोपरः॥एतैश्चान्यैरसंख्यातैःसंग्रामांतकसन्निभैः॥२८॥

शेषजीने नागहार दिया ॥ २२ ॥ और भी सम्पूर्ण देवताओंने जगन्माताको मान्य किया, महिषपीडित देवता महादेवीकी स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार जगत्की उत्पन्न करनेवाली महेशानीकी स्तुति की देवताओंसे पूजित भगवती उनके स्तोत्रको सुनकर ॥ २४ ॥ महिषासुरके मारनेको महानाद करती हुई हे राजन्! उस नादसे महिषासुर चकित होगया ॥ २५ ॥ और सब सेनालेकर जगद्धात्रीके समीप आया तब महिषासुर देवीसे युद्ध करने लगा ॥ २६ ॥ और शस्त्रास्त्रोंसे आकाश पूर्ण कर दिया, चिक्षुर, ग्रामणी, दुर्धर, दुर्मुख ॥ २७ ॥ बाष्कल, ताम्र, विडालवदन इसप्रकारके और भी दैत्य असंख्य संग्राम करनेवाले ॥ २८ ॥

योद्धाओंसेयुक्त दानवश्रेष्ठ महिषासुर आया तब क्रोधसे लालनेत्रकर लोकमोहिनी देवी ॥ २९ ॥ महिषके आश्रित योद्धाओंको समरमें मारनेलगीं. तब उनके मरनेसे क्रोधसे मूर्च्छितहो वह दैत्य ॥ ३० ॥ मायामें चतुर देवीके समीप प्राप्त हुआ और मायासे दानव अनेक प्रकारके रूपान्तर धारण करने लगा ॥ ३१ ॥ भगवती उसके उन्हीं २ रूपोंका नाशकरने लगी, तब अन्तमें अमरमर्दकने महिषका रूप धारणकरा ॥ ३२ ॥ तब देवीने पाशसे बाँधकर खड्गसे उसका शिरच्छेदन किया और देवगणोंके नाशक महिषसुरको भूमिमें पटक दिया ॥ ३३ ॥ तब सब सेनामें हाहाकार मचगया, सबओर सेना भग्नहोगई और सब देवता प्रसन्न हो देवेशीकी स्तुतिकरने लगे ॥ ३४ ॥ इसप्रकार महिषमर्दिनी लक्ष्मी प्रगटहुई. हे राजन् ! अब जैसे सरस्वतीका प्रादुर्भाव हुआ सो सुनो ॥ ३५ ॥ एकसमय वडा वली दैत्य शुंभनामक था, निशुंभ उसका

योधैःपरिवृतोवीरोमहिषोदानवोत्तमः ॥ ततःसाकोपताम्राक्षीदेवीलोकविमोहिनी ॥ २९ ॥ जघानयोधान्समरेदेवीमहिषमाश्रितान् ॥ ततस्तेषुहतेष्वेवस दैत्योरोषमूर्च्छितः ॥३०॥ आससादतदादेवींतूर्णमायाविशारदः ॥ रूपांतराणिसंभेजेमाययादानवेश्वरः ॥३१॥ तानितान्यस्यरूपाणिनाशयामाससात दा ॥ ततोऽतेमाहिषंरूपंबिभ्राणममरार्दनम् ॥ ३२ ॥ पाशेनवद्ध्वासुदृढंछित्त्वाखड्गेनतच्छिरः ॥ पातयामासमहिषंदेवीदेवगणांतकम् ॥३३॥ हाहाकृतंततः शेषसैन्यंभग्नंदिशोदश ॥ तुष्टुवुर्देवदेवेशींसर्वेदेवाःप्रमोदिताः ॥ ३४ ॥ एवंलक्ष्मीःसमुत्पन्नामहिषासुरमर्दिनी ॥ राजञ्छृणुसरस्वत्याःप्रादुर्भावोयथाऽभव त् ॥ ३५ ॥ एकदाशुंभनामाऽऽसीद्दैत्योमदबलोत्कटः ॥ निशुंभश्चापितद्भ्रातामहाबलपराक्रमः ॥ ३६ ॥ तेनसंपीडितादेवाःसर्वेभ्रष्टश्रियोनृप ॥ हिम वंतमथासाद्यदेवींतुष्टुवुरादरात् ॥ ३७ ॥ देवाऊचुः ॥ जयदेवेशिभक्तानामार्तिनाशनकोविदे ॥ दानवांतकरूपेत्वमजरामरणेऽनघे ॥ ३८ ॥ देवेशिभक्ति सुलभेमहाबलपराक्रमे ॥ विष्णुशंकरब्रह्मादिस्वरूपेऽनंतविक्रमे ॥ ३९ ॥ सृष्टिस्थितिकरेनाशकारिकेकांतिदायिनि ॥ महातांडवसुप्रीतेमोददायिनि माधवि ॥ ४० ॥ प्रसीददेवदेवेशिप्रसीदकरुणानिधे ॥ निशुंभशुंभसंभूतभयापारांबुवारिधेः ॥ ४१ ॥

भ्राता महाबली पराक्रमी था ॥ ३६ ॥ उससे पीडित हो देवता राजलक्ष्मीसे विहीनहोगये, तब देवता हिमालयको प्राप्त देवीकी प्रार्थना आदरसे करने लगे ॥ ३७ ॥ देवता बोले हे भक्तोंके दुःख दूर करनेवाली देवी! आपकी जय हो तुम दानवोंके नाशकरनेको रूप धारण करतीहो हे पापरहिते! तुम अजर अमर हो॥ ३८ ॥ हे देवेशि ! तुम भक्तिसेही प्राप्त होती हो तुम अनन्तविक्रमवाली विष्णु शंकर ब्रह्मादिका स्वरूप हो ॥ ३९ ॥ हे कान्तिदायिनी ! तुम सृष्टिकी स्थिति उत्पत्ति और संहार करती हो, महातांडवसे प्रसन्न होनेवाली तथा मोददायक हो ॥ ४० ॥ हे करुणानिधे देवदेवेशि ! प्रसन्न हो, तथा निशुंभशुंभका भय दूरकरती हो ॥ ४१ ॥

हम तुम्हारी शरणमें आनकर प्राप्त हुएहैं हमारा उद्धार करो हे धरापते ! इसप्रकार उनके स्तुति करनेपर ॥ ४२ ॥ प्रसन्न होकर पार्वती बोली अपने स्तवनका कारण कहो इसीसमय उसके शरीर कोशसे उत्थित होकर ॥ ४३ ॥ जगत्पूज्या कौशिकी प्रसन्न हो देवताओंसे कहने लगी. हे देवताओ ! मैं इस आपके स्तवनसे प्रसन्नहूं ॥ ४४ ॥ तुम वर मांगो तब देवता बोले कि शुंभ निशुंभ यह दो भ्राता हैं इनमें बडाभाई ॥ ४५ ॥ शुंभ अपने पराक्रमसे त्रिलोकीको आक्रमण किये हैं, हे देवी! वह दानवेश्वर बडा दुरात्मा है, इसका वधविचार कियाजाय ॥ ४६ ॥ वह अपने तेजसे सबको तिरस्कार करता है श्रीदेवी बोली, देवशत्रु शुंभ और निशुंभका मैं वध करूंगी ॥ ४७ ॥ तुम स्वस्थ होकर स्थित हो मैं तुम्हारे कंटकको नाश करूंगी. इसप्रकार इन्द्रादि देवताओंसे दयामयी देवी कहकर ॥ ४८ ॥ देवताओंके देखते २ अदर्शन होगई और

उद्धराऽस्मान्प्रपन्नार्तिनाशिकेशरणागतान् ॥ एवंसंस्तुवतांतेषांत्रिदशानांधरापते ॥ ४२ ॥ प्रसन्नागिरिजाप्राहब्रूतस्तवनकारणम् ॥ एतस्मिन्नंतरे तस्याःकोशरूपात्समुत्थिता ॥ ४३ ॥ कौशिकीसाजगत्पूज्यादेवान्प्रीत्येदमब्रवीत् ॥ प्रसन्नाऽहंसुरश्रेष्ठाःस्तवेनोत्तमरूपिणी ॥ ४४ ॥ व्रियतांवरइत्युक्तेदेवाःसंवव्रिरेवरम् ॥ शुंभनामावरोभ्रातानिशुंभस्तस्यविश्रुतः ॥ ४५ ॥ त्रैलोक्यमोजसाक्रांतंदैत्येनबलशालिना ॥ तद्वधश्चिंत्यतांदेवि दुरात्मादानवेश्वरः ॥ ४६ ॥ बाधतेसततंदेवितिरस्कृत्यनिजौजसा ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ देवशत्रुंपातयिष्येनिशुंभंशुंभमेवच ॥ ४७ ॥ स्वस्थास्ति ष्ठतभद्रंवःकंटकंनाशयामिवः ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशीदेवान्सेंद्रान्दयामयी ॥ ४८ ॥ जगामाऽदर्शनंसद्योमिषतांत्रिदिवौकसाम् ॥ देवाःसमागताहृष्टाःसु वर्णाद्रिगुहांशुभाम् ॥ ४९ ॥ चंडमुंडौपश्यतःस्मभृत्यौशुंभनिशुंभयोः ॥ दृष्ट्वातांचारुसर्वांगींदेवींलोकविमोहिनीम् ॥ ५० ॥ कथयामासतूराज्ञेभृत्यौ तौचंडमुंडकौ ॥ देवसर्वासुरश्रेष्ठरत्नभोगार्हमानद ॥ ५१ ॥ अपूर्वाकामिनीदृष्टाचावाभ्यांरिपुमर्दन ॥ तस्याःसंभोगयोग्यत्वमस्त्येवतवसांप्रतम् ॥ ॥ ५२ ॥ तांसमानयचार्वंगींभुंक्ष्वसौख्यसमन्वितः ॥ तादृशीनासुरीनारीनगंधर्वीनदानवी ॥ ५३ ॥ नमानवीनापिदेवीयादृशीसामनोहरा ॥ एवंभृ त्यवचःश्रुत्वाशुंभःपरबलार्दनः ॥ ५४ ॥ दूतंसंप्रेषयामाससुग्रीवंनामदानवम् ॥ सदूतस्त्वरितंगत्वादेव्याःसविधमादरात् ॥ ५५ ॥

देवता प्रसन्न हो सुमेरुकी गुहाओंमें आये ॥ ४९ ॥ तब शुंभ निशुंभके भृत्य चंडमुंडने उस सुंदर अंगवाली लोकमोहिनी देवीको देख ॥ ५० ॥ अपने राजासे जाकर उसका रूप वर्णन किया हे मानदायी असुरश्रेष्ठ देव ! आप सम्पूर्ण रत्नोंके भोगनेवाले हैं ॥ ५१ ॥ हे शत्रुमर्दन! हमने एक अपूर्व कामिनीका दर्शन किया है वह आपके ही संभोग योग्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥ उस सुन्दर अंगवालीको बुलाकर सुख भोगो, उस प्रकारकी स्त्री असुर, गंधर्व, दानव ॥ ५३ ॥ मनुष्य देवताओंमें कहीं नहीं है, वह जैसी मनोहर है ऐसा कोई नहीं इसप्रकार शत्रुतापन शुंभ भृत्योंका वचन सुन ॥ ५४ ॥ सुग्रीवनामक अपने दानवदूतको भेजता हुआ, वह दूत शीघ्र

तासे जाकर आदरपूर्वक ॥ ५५ ॥ देवीसे शुंभके वचन आदरसे कहता हुआ, हे देवी ! शुंभासुरनाम त्रिलोकीमें विजयी है ॥ ५६ ॥ वह त्रिलोकीके सब रत्नोंका भोक्ता देवताओंका मान्य है, हे देवि ! जो उसने कहा है वह हमारे अविनाशी वचनसुनो हे चारुलोचने! जब कि मैं रत्नोंका भोक्ता हूं अविनाशी हूं ॥ ५७ ॥ तब तुम रत्नरूप होनेसे मेरा भजन करो, देवता असुर नरोंमें जितने रत्न हैं ॥ ५८ ॥ वह सब मेरे यहां हैं, हे सुभगे! मुझे कामरससे भजन करो, देवी बोली हे दूत ! तुम सत्यही दैत्यराजके प्रियकर वचन कहते हो ॥ ५९ ॥ पर जो पहले मैंने प्रतिज्ञा की है, वह मिथ्या किसप्रकार होसकती है ? हे दूत ! मेरी प्रतिज्ञाको सुनो ॥६०॥ जो मेरा दर्प और बल नष्ट करे, जो लोकमें मुझसे अधिक बली होगा वही मेरे भोगकाभागी होगा॥६१॥हे असुरेश्वर ! उस मेरी प्रतिज्ञाको सत्य कर मेरा पाणिग्रहण करे

वृत्तांतंकथयामासदेव्यैशुंभस्ययद्वचः ॥ देविशुंभासुरोनामत्रैलोक्यविजयीप्रभुः ॥ ५६ ॥ सर्वेषांरत्नवस्तूनांभोक्तामान्योदिवौकसाम् ॥ तदुक्तंशृणुमेदेविरत्नभोक्ताऽहमव्ययः ॥ ५७ ॥ त्वंचापिरत्नभूताऽसिभजमांचारुलोचने ॥ सर्वेषुयानिरत्नानिदेवासुरनरेषुच ॥ ५८ ॥ तानिमय्येवसुभगेभजमांकामजैरसैः ॥ देव्युवाच ॥ सत्यंवदसिहेदूतदैत्यराजप्रियंकरम् ॥५९॥ प्रतिज्ञायामयापूर्वंकृतासाप्यनृताकथम् ॥ भवेत्तांशृणुमेदूतयाप्रतिज्ञामयाकृता ॥ ६० ॥ योमेदर्पंविधुनुतेयोमेबलमपोहति ॥ योमेप्रतिवलोभूयात्सएवममभोगभाक् ॥ ६१ ॥ ततएनांप्रतिज्ञांमेसत्यांकृत्वासुरेश्वरः ॥ गृह्णातुपाणिंतरसातस्याऽशक्यंकिमत्रहि ॥ ६२ ॥ तस्माद्गच्छमहादूतस्वामिनंब्रूहिचादृतः ॥ प्रतिज्ञांचापिमेसत्यांविधास्यतिबलाधिकः ॥ ६३ ॥ एवंवाक्यंमहादेव्याःसमाकर्ण्यसदानवः ॥ कथयामासशुंभायदेव्यावृत्तांतमादितः ॥ ६४ ॥ तदप्रियंदूतवाक्यंशुंभःश्रुत्वामहाबलः ॥ कोपमाहारयामासमहांतंदनुजाधिपः ॥ ६५ ॥ ततोधूम्राक्षनामानंदैत्यंदैत्यपतिःप्रभुः ॥ आदिदेशशृणुवचोधूम्राक्षममचादृतः ॥ ६६ ॥ तांदुष्टांकेशपाशेपुधृत्वाप्यानीयतांमम ॥ समीपमविलंबेन शीघ्रंगच्छस्वमेपुरः ॥ ६७ ॥ इत्यादेशंसमासाद्यदैत्येशोधूम्रलोचनः ॥ षष्ट्यासुराणांसहितःसहस्राणांमहाबलः ॥ ६८ ॥ तुहिनाचलमासाद्यदेव्याःसविधमेवसः ॥ उच्चैर्दैवींजगादाशुभजदैत्यपतिंशुभे ॥ ६९ ॥ शुंभंनाममहावीर्यंसर्वभोगानवाप्नुहि ॥ नोचेत्केशान्गृहीत्वात्वांनेष्येदैत्यपतिंप्रति ॥ ७० ॥

और उसे तो कुछ अशक्य नहीं है ॥ ६२ ॥ हे दूत ! इस कारण तुम जाकर स्वामीसे आदरपूर्वक मेरा वचन कहो यदि वह बलाधिक मेरी सत्य प्रतिज्ञा करेगा तो कार्य होगा ॥ ६३ ॥ वह दानव इसप्रकार देवीके वचन सुन आदिसे शुंभके निमित्त देवीका वृत्तान्त कहता हुआ ॥ ६४ ॥ महाबली शुंभ दूतसे यह अप्रिय वचन सुन बलकी अधिकता और अधिकाईसे महा क्रोध करता हुआ ॥ ६५ ॥ तब उस दैत्यपतिने धूम्राक्षनामक दैत्यसे कहा मेरे वचन सुनो ॥ ६६ ॥ उस दुष्टाके बाल पकडकर यहां ले आओ देर न हो शीघ्र जाकर मेरे समीप लाओ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ धूम्रलोचन दैत्य यह आज्ञा पाकर साठ सहस्र असुरोंको लेकर हिमालयमें देवीके समीप गया और ऊंचे स्वरसे बोला हे शुभे ! दैत्यपतिको भजो॥६९॥उस महाबली शुंभके भजनेसे सब भोगोंको प्राप्त होगी;न मानोगी तो केश पकडकर

दैत्यराजके पास तुमको ले जाऊंगा ॥ ७० ॥ यह वचन उस दैत्यके सुनकर देवी बोली हे दैत्य ! जो कहता है वह सब सत्य है ॥ ७१ ॥ राजा शुंभ और तू क्या करेगा सो कह ऐसा कहनेपर शस्त्र लेकर वह दैत्य धावमान हुआ ॥ ७२ ॥ महेश्वरीने हुंकारसेही उसको भस्म कर दिया और देवीके वाहन सिंहने सब सेना नष्ट कर दी ॥ ७३ ॥ और वह हाहाकार करती अचेतन हो दशों दिशामें धावमान हुई, दैत्यपति शुंभने यह वृत्तान्त श्रवण कर ॥ ७४ ॥ महाक्रोधसे कुटिल भौंहें करलीं, तब वह प्रतापी दैत्यराज महा क्रोधकर ॥ ७५ ॥ क्रमसे चंड, मुंड और रक्तबीजको भेजता हुआ, वे तीनों दैत्य बडे विक्रमी वहां जाकर ॥ ७६ ॥ यत्नसे देवीके ग्रहणका यत्न करने लगे, तब जगद्धात्री मदोत्कटा उनपर टूट पडी ॥ ७७ ॥ शूल ग्रहण कर बडे वेगसे उनको पृथ्वीमें गिरा दिया तब दानवेश्वर

इत्युक्तासाततोदेवीदैत्येनत्रिदशारिणा ॥ उवाचदैत्ययद्ब्रूषेतत्सत्यंतेमहाबल ॥ ७१ ॥ राजाशुंभासुरस्त्वंचकिंकरिष्यसितद्वद ॥ इत्युक्तोदैत्यपोऽधावच्चूर्णेशस्त्रसमन्वितः ॥ ७२ ॥ भस्मसात्तंचकाराशुहुंकारेणमहेश्वरी ॥ ततःसैन्यंवाहनेनदेव्याभग्नंमहीपते ॥ ७३ ॥ दिशोदशाभजच्छीघ्रंहाहाभूतमचेतनम् ॥ तद्वृत्तांतंसमाश्रुत्यसशुंभोदैत्यराड्विभुः ॥ ७४ ॥ चुकोपचमहाकोपाद्भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ ततःकोपपरीतात्मादैत्यराजःप्रतापवान् ॥ ७५ ॥ चंडंमुंडंरक्तबीजंक्रमतःप्रैषयद्विभुः ॥ तेचगत्वात्रयोदैत्याविक्रांताबहुविक्रमाः ॥ ७६ ॥ देवींग्रहीतुमारब्धयत्नास्तेह्यभवन्बलात् ॥ तानापततएवासौजगद्धात्रीमदोत्कटा ॥ ७७ ॥ शूलंगृहीत्वावेगेनपातयामासभूतले ॥ ससैन्यान्निहताञ्छ्रुत्वादैत्यांस्त्रीन्दानवेश्वरौ ॥ ७८ ॥ शुंभश्चैवनिशुंभश्चसमाजग्मतुरोजसा ॥ निशुंभश्चैवशुंभश्चकृत्वायुद्धंमहोत्कटम् ॥ ७९ ॥ देव्याश्चवशगौजातौनिहतौचतयासुरौ ॥ इतिदैत्यवरंशुंभंघातयित्वाजगन्मयी ॥ ८० ॥ विबुधैःसंस्तुतातद्वत्साक्षाद्वागीश्वरीपरा ॥ एवंतेवर्णितोराजन्प्रादुर्भावोऽतिरम्यकः ॥ ८१ ॥ काल्याश्चैवमहालक्ष्म्याःसरस्वत्याःक्रमेणच ॥ परापरेश्वरीदेवीजगत्सर्गंकरोतिच ॥ ८२ ॥ पालनंचैवसंहारंसैवदेवीदधातिहि ॥ तांसमाश्रयदेवेशींजगन्मोहनिवारिणीम् ॥ ८३ ॥ महामायांपूज्यतमांसाकार्यंतेविधास्यति ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ इतिराजावचःश्रुत्वामुनेःपरमशोभनम् ॥ ८४ ॥

शुंभ, निशुंभने तीनों दैत्योंको मृतक और सेनाको नष्ट हुआ सुन ॥ ७८ ॥ तब क्रोधकर शुंभ निशुंभही आनकर प्राप्त हुए और दोनोंने बडा युद्ध किया ॥ ७९ ॥ और देवीके वशीभूत होकर निहत हुए, इसप्रकार जगन्माता दैत्यप्रवर शुंभ निशुंभको मारकर ॥ ८० ॥ वह वागीश्वरी देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होने लगी. हे राजन् ! यह भगवतीका उत्तम प्रादुर्भाव आपसे वर्णन किया ॥ ८१ ॥ यह क्रमसे महाकाली महालक्ष्मी, महासरस्वतीका वर्णन किया यही परा परेश्वरी देवी जगत्की सृष्टि करती है ॥ ८२ ॥ यही देवी पालन और संहार करती है, इस जगत्के मोह निवारण करनेवाली देवीका आश्रय करो ॥ ८३ ॥ वही पूज्यतमा महामाया

आपका कार्य विधान करेगी, श्रीनारायण बोले इसप्रकार राजा मुनिके परम उत्तम वचन सुनकर ॥ ८४ ॥ सब कामना और फलकी देनेवाली देवीके शरणमें हुआ निराहार यतात्मा और सावधान हो उन्हींमें मन लगाया ॥ ८५ ॥ भक्तिसे देवीकी मृन्मयी मूर्त्तिकी पूजा करने लगा और पूजनके अन्तमें बलिमें अपने शरीरका रुधिर देने लगा ॥ ८६ ॥ तब जगत्‌की योनि कृपावती देवी प्रसन्न हुई और आगे प्रगट हो वर मांगनेको कहा ॥ ८७ ॥ तब राजाने अपने मोह नाशनका उत्तम ज्ञान और निष्कंटक राज्य देवीसे मांगा ॥ ८८ ॥ श्रीदेवी बोली हे राजन्! निष्कंटक राज्य और मोहनाशक ज्ञान मेरी कृपासे इसी शरीरमें तुझको प्राप्त होगा ॥ ८९ ॥ हे राजन्! और भी जन्मान्तरकी चेष्टा सुनो आप सूर्यसे जन्म लेकर सावर्णि मनु होगे ॥ ९० ॥ वहाँ मन्वन्तरका पतिपन बडा विक्रम तथा बहुत सन्तान मेरे वरसे

देवींजगामशरणंसर्वकामफलप्रदाम् ॥ निराहारोयतात्माचतन्मनाश्चसमाहितः ॥ ८५ ॥ देवीमूर्तिंमृन्मयींचपूजयामासभक्तितः ॥ पूजनांतेबलिंतस्यै निजगात्रासृजंददत् ॥ ८६ ॥ तदाप्रसन्नादेवेशीजगद्योनिःकृपावती ॥ प्रादुर्बभूवपुरतोवरंब्रूहीतिभाषिणी ॥ ८७ ॥ सराजानिजमोहस्यनाशनंज्ञानमुत्तमम् ॥ राज्यंनिष्कंटकंचैवयाचतिस्ममहेश्वरीम् ॥ ८८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ राजन्निष्कंटकंराज्यंज्ञानंवैमोहनाशनम् ॥ भविष्यतिमयादत्तमस्मिन्नेवभवेतव ॥ ८९ ॥ अन्यच्चशृणुभूपालजन्मांतरविचेष्टितम् ॥ भानोर्जन्मसमासाद्यसावर्णिर्भविताभवान् ॥ ९० ॥ तत्रमन्वंतरस्यापिपतित्वंबहुविक्रमम् ॥ संततिंबहुलांचापिप्राप्स्यतेमद्वराद्भवान् ॥ ९१ ॥ एवंदत्त्वावरंदेवीजगामादर्शनंतदा ॥ सोपिदेव्याःप्रसादेनजातोमन्वंतराधिपः ॥ ९२ ॥ एवंतेवर्णितंसाधोसावर्णेर्जन्मकर्मच ॥ एतत्पठंस्तथाशृण्वन्देव्यनुग्रहमाप्नुयात् ॥ ९३ ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेदेवीमाहात्म्येद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अथातःश्रूयतांशेषमनूनांचित्रमुद्भवम् ॥ यस्यस्मरणमात्रेणदेवीभक्तिःप्रजायते ॥१॥ आसन्वैवस्वतमनोः पुत्राःषड्विमलोदयाः ॥ करूषश्चपृषध्रश्चनाभागोदिष्टएवच ॥ २ ॥ शर्यातिश्चत्रिशंकुश्चसर्वेएवमहाबलाः ॥ ततःषडेवतेगत्वाकालिंद्यास्तीरमुत्तमम् ॥३॥ निराहाराजितश्वासाःपूजांचक्रुस्ततःस्थिताः ॥ देव्यामहीमयींमूर्तिंविनिर्मायपृथक्पृथक् ॥ ४ ॥

तुमको प्राप्त होंगी ॥ ९१ ॥ इस प्रकार वर देकर भगवती अन्तर्द्धान होगई, वह भी देवीके प्रसादसे मन्वन्तराधिप हुआ ॥ ९२ ॥ हे साधो! यह आपसे सावर्णिका जन्मकर्म वर्णन किया, इसके पढने सुननेसे देवीके अनुग्रहकी प्राप्ति होती है ॥ ९३ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीनारायण बोले अब शेषमनुओंका चरित्र श्रवण कीजिये जिसके स्मरणमात्रसे देवीकी भक्ति होती है ॥ १ ॥ वैवस्वतमनुके छः पुत्र बडे विज्ञानी थे, करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट ॥ २ ॥ शर्याति, त्रिशंकु यह महाबली थे, तब यह छहों कालिन्दीके तटपर जाकर ॥ ३ ॥ निराहार हुए श्वास रोककर पूजा करने लगे देवताकी

मूर्त्ति बनाकर पृथक् २ सेवा की ॥ ४ ॥ और अनेक उपचारोंसे आदरपूर्वक पूजा करने लगे तब यह सब तपके सार महावली ॥ ५ ॥ सूखेपत्ते, वायुभक्षण, तथा जलजीवी मात्र होकर धूमपान रश्मिपान करके महाश्रम करने लगे ॥ ६ ॥ तब इस प्रकार आदरसे उनके आराधन करनेपर सब मोहनाशिनी उज्ज्वल मति उनको प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ वे सब देवीके चरणोंका ध्यान करनेवाले मनुके पुत्र हुए, वह मतिकी विमलतासे अपनेमेंही सब जगत् ॥ ८ ॥ देखने लगे, यह बडी अद्भुत बात हुई इस प्रकार बारह वर्षके उपरान्त वह जगदीश्वरी तपस्यासे ॥ ९ ॥ सहस्र सूर्यके समान कान्तिमान् प्रगट हुई, विमलात्मा वे छः राजपुत्र उनको देखकर ॥ १० ॥ भक्तिसे नम्र अन्तःकरण भावसंयुक्त हो स्तुति करने लगे, राजपुत्र बोले, माहेश्वरि, ईशानी, आपकी जय हो आप परम करुणामयी हो ॥ ११ ॥

विविधैरुपचारैस्तांपूजयामासुरादृताः ॥ ततश्चसर्वएवैतेतपःसारामहाबलाः ॥ ५ ॥ जीर्णपर्णाशनावायुभक्षणास्तोयजीवनाः ॥ धूम्रपानरश्मिपानाः क्रमशश्चबहुश्रमाः ॥ ६ ॥ ततस्तेषामादरेणाऽऽराधनंकुर्वतांसदा ॥ विमलामतिरुत्पन्नासर्वमोहविनाशिनी ॥ ७ ॥ बभूवुर्मनुपुत्रास्तेदेवीपादैकचिंतनाः॥ मत्याविमलयातेषामात्मन्येवाखिलंजगत् ॥ ८ ॥ दर्शनंसंजगामाशुतदद्भुतमिवाभवत् ॥ एवंद्वादशवर्षांतेतपसाजगदीश्वरी ॥ ९ ॥ प्रादुर्बभूवदेवेशी सहस्रार्कसमद्युतिः ॥ तांदृष्ट्वाविमलात्मानोराजपुत्राःषडेवते ॥ १० ॥ तुष्टुवुर्भक्तिनम्रांतःकरणाभावसंयुताः ॥ राजपुत्राऊचुः ॥ महेश्वरिजयेशानिपरमे करुणालये ॥ ११ ॥ वाग्भवाराधनप्रीतेवाग्भवप्रतिपादिते ॥ क्लींकारविग्रहेदेविक्लींकारप्रीतिदायिनि ॥१२॥ कामराजमनोमोददायिनीश्वरतोषिणि ॥ महामायेमोदपरेमहासाम्राज्यदायिनि ॥ १३ ॥ विष्णवर्कहरशक्रादिस्वरूपेभोगवर्धिनि ॥ एवंस्तुताभगवतीराजपुत्रैर्महात्मभिः ॥ १४ ॥ प्रसादसुमुखी देवीप्रोवाचवचनंशुभम् ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ राजपुत्रामहात्मानोभवंतस्तपसायुताः ॥ १५ ॥ निष्कल्मषाःशुद्धधियोजातावैमदुपासनात् ॥वरंमनोगतंसर्वं याचध्वमविलंवितम् ॥ १६ ॥

सरस्वतीबीजके आराधनसे प्रसन्न होनेवाली, सरस्वतीबीजमें प्रतिपादित 'क्लीं' विग्रहवाली क्लींसे प्रीति देनेवाली ॥ १२ ॥ कामराज मंत्र जपनेसे मनको आनंद देनेवाली, हे ईश्वरको प्रसन्न करनेवाली ! हे महामाया ! हे मोदमें तत्पर ! हे महासाम्राज्यदायिनी ॥ १३ ॥ हे विष्णु, सूर्य, शिव, इन्द्रादिके स्वरूपवाली ! हे भोगकी बढानेवाली ! आपकी जय हो, जब महात्मा राजपुत्रोंने इस प्रकार भगवतीकी स्तुति की ॥ १४ ॥ तब प्रसन्न हो देवी सुन्दर वचन बोली, देवी बोली हे महात्मा राजपुत्रो ! आप बडे तपसे संयुक्त हो ॥ १५ ॥ तुम मेरी उपासनासे पापरहित और शुद्धबुद्धि हुए हो, शीघ्र अपना मनवांछित वर मांगो ॥ १६ ॥ मैं

मैं प्रसन्न होकर आपके मनचिन्तित वरको दूंगी राजपुत्र बोले हे देवि! निष्कंटक राज्य और चिरजीविनी सन्तान॥ १७॥ विघ्नरहित भोग, यश, तेज, मति यह सब अकुंठित रहैं, यही वर हमैं हितकारी है ॥ १८ ॥ श्रीदेवी बोली जो तुम सबके मनमें स्थित है वह सब इसी प्रकार होगा और भी मेरे वाक्य आदरसे सुनो ॥ १९ ॥ तुम सब मन्वन्तरोंके अधिपति होगे और दीर्घजीवी सन्तानको प्राप्त होगे, तथा अनेक भोग भोगोगे ॥ २० ॥ अखंडित बल ऐश्वर्य तेज और विभूति होगी, हे राजपुत्रो! मेरे प्रसादसे यह सब कुछ प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ श्रीनारायण बोले इस प्रकार भ्रामरी जगदम्बिका उनको वरदान देकर उनसे भक्तिद्वारा स्तुतिको प्राप्त हो

प्रसन्नाऽहंप्रदास्यामियुष्माकंमनसिस्थितम् ॥राजपुत्राऊचुः॥ देविनिष्कंटकंराज्यंसंततिश्चिरजीविनी ॥१७॥ भोगाअव्याहताःकामंयशस्तेजोमतिश्चह॥ अकुंठितत्वंसर्वेषामेषएववरोहितः ॥१८॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवमस्तुचसर्वेषांभवतांयन्मनोगतम् ॥ अथान्यदपिमेवाक्यंश्रूयतामादरादिदम् ॥१९॥ भवंतः सर्वएवैतेमन्वंतरपतीश्वराः ॥ संतत्यादीर्घयाभोगैरनेकैरपिसंगमः ॥२०॥ अखंडितबलैश्वर्ययशस्तेजोविभूतयः ॥ भवितारोमत्प्रसादाद्राजपुत्राःक्रमेणतु॥ ॥२१॥श्रीनारायणउवाच ॥ एवं तेभ्योवरान्दत्वाभ्रामरीजगदंबिका ॥ अंतर्धानंजगामाऽऽशुभक्त्यातैःसंस्तुतासती ॥२२॥तेराजपुत्राःसर्वेऽपितस्मिञ्जन्मन्यनुत्तमम् ॥ राज्यंमहीगतान्भोगान्बुभुजुश्चमहौजसः ॥ २३ ॥ संततिंचाऽखंडितां तेसमुत्पाद्यमहीतले ॥ वंशंसंस्थाप्यसर्वेऽपिमनूनांपतयोऽभवन् ॥ ॥ २४ ॥ भवांतरेक्रमेणैवसावर्णिपदभागिनः ॥ प्रथमोदक्षसावर्णिर्नवमोमनुरीरितः ॥२५॥ अव्याहतबलोदेव्याःप्रसादादभवद्विभुः ॥ द्वितीयोमेरुसावर्णिर्दशमोमनुरेवच ॥ २६ ॥ बभूवमन्वंतरपोमहादेवीप्रसादतः ॥ तृतीयोमनुराख्यातःसूर्यसावर्णिनामकः ॥ २७ ॥ एकादशोमहोत्साहस्तपसास्वेनभावितः ॥ चतुर्थश्चंद्रसावर्णिर्द्वादशोमनुराड्विभुः ॥ २८ ॥ देवीसमाराधनेनजातोमन्वंतरेश्वरः ॥ पंचमोरुद्रसावर्णिस्त्रयोदशमनुःस्मृतः ॥ २९ ॥

अन्तर्धान हुई ॥ २२ ॥ वे सब राजपुत्रभी उस जन्ममें पृथ्वीका उत्तम राज्य भोगतेहुए ॥ २३ ॥ पश्चात् भूतलमें अखण्ड सन्तान उत्पन्नकर और वंश स्थापनकर सब मनुओंके पति हुए ॥ २४ ॥ और जन्मान्तरके क्रमसे सावर्णिके पदभागी हुए पहला दक्ष नौवाँ सावर्णि मनु हुआ ॥ २५ ॥ यह देवीके वरसे अव्याहतगतिवाला महाबली हुआ, दूसरा मेरु सावर्णि दशवाँ मनु हुआ ॥ २६ ॥ यह भी महादेवीके प्रसादसे मन्वन्तरका अधिपति हुआ तीसरा मनु सूर्यसावर्णि नामक ॥ २७ ॥ अपने तपके बलसे ग्यारहवां मनु हुआ चौथा चन्द्रसावर्णि बारहवां मनु हुआ ॥ २८ ॥ यह भी देवीके आराधनसे मन्वन्तराधिपति हुआ, पांचवाँ रुद्रसावर्णि तेरहवां मनु हुआ ॥ २९ ॥

यह महाबली महासत्ववान् जगत्का अधिपति हुआ, छठा विष्णुसावर्णि चौदहवां मनु हुआ ॥ ३० ॥ यह देवीके वरसे जगत्के प्रभु हुए यह चौदह मनु महातेज और बलसे सम्पन्न हैं ॥ ३१ ॥ यह देवीके आराधनसे लोकमें वंदित और पूजनीय हुए और भ्रामरीके प्रसादसे महाप्रतापी हुए ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले, यह भ्रामरी देवी कौन है कैसे प्रगट हुई क्या आत्मावाली है आप यह विचित्रशोकनाशन आख्यान कहिये ॥ ३३ ॥ देवीकथामृत पानकरते मेरी तृप्ति नहीं होती है इस अमृतपानसे मृत्युका भय नहीं रहता ॥ ३४ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! जगन्माताकी चेष्टा सुनो मैं कहता हूं, जो अचिन्त्य अव्यक्तरूपा विचित्र और मोक्ष दायक है ॥ ३५ ॥ देवीका जो जो चरित्र है सो सबलोकके हितके निमित्त है, जैसा माताका कार्य पुत्रके निमित्त होता है ॥ ३६ ॥ पहले एक महाबली अरुण

महाबलोमहासत्त्वोबभूवजगदीश्वरः ॥ षष्ठश्चविष्णुसावर्णिश्चतुर्दशमनुःकृती ॥ ३० ॥ बभूवदेवीवरतोजगतांप्रथितःप्रभुः ॥ चतुर्दशैतेमनवोमहातेजोबलैर्युताः ॥ ३१ ॥ देव्याराधनतःपूज्यावंद्यालोकेषुनित्यशः ॥ महाप्रतापिनःसर्वेभ्रामर्यास्तुप्रसादतः ॥ ३२ ॥ नारदउवाच ॥ केयंसाभ्रामरीदेवीकथंजाताकिमात्मिका ॥ तदाख्यानंवदप्राज्ञविचित्रंशोकनाशकम् ॥ ३३ ॥ नतृप्तिमधिगच्छामिपिबन्देवीकथामृतम् ॥ अमृतंपिबतांमृत्युर्नोऽस्यश्रवणतोयतः ॥ ३४ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ शृणुनारदवक्ष्यामिजगन्मातुर्विचेष्टितम् ॥ अचिंत्याव्यक्तरूपायाविचित्रंमोक्षदायकम् ॥ ३५ ॥ यद्यच्चरित्रंश्रीदेव्यास्तत्सर्वंलोकहेतवे ॥ निर्व्याजयाकरुणयापुत्रेमातुर्यथातथा ॥ ३६ ॥ पूर्वंदैत्योमहानासीद्रुणाख्योमहाबलः ॥ पातालेदैत्यसंस्थानेदेवद्वेषीमहाखलः ॥ ३७ ॥ सदेवाञ्जेतुकामश्चचकारपरमंतपः ॥ पद्मसंभवमुद्दिश्यसनस्त्राताभविष्यति ॥ ३८ ॥ गत्वाहिमवतःपार्श्वेगंगाजलसुशीतले ॥ पक्वपर्णाशनोयोगीसंनिरुध्यमरुद्गणम् ॥ ३९॥ गायत्रीजपसंसक्तःसकामस्तमसायुतः ॥ दशवर्षसहस्राणिततोवारिकणाशनः ॥ ४० ॥ दशवर्षसहस्राणिततःपवनभोजनः ॥ दशवर्षसहस्राणिनिराहारोऽभवत्ततः ॥ ४१ ॥ एवंतपस्यतस्तस्यशरीरादुत्थितोऽनलः ॥ ददाहजगतींसर्वांतदद्भुतमिवाभवत् ॥४२॥

नामक दैत्य हुआ है, वह महा खल दैत्योंके निवासस्थान पातालमें देवीका द्वेष करता स्थित था ॥ ३७ ॥ वह देवताओंके जीतनेकी इच्छासे परमतप करता हुआ और ब्रह्माकाही तप किया कि यह हमारी रक्षा करैंगे ॥ ३८ ॥ हिमालयके निकट जाय शीतल गंगाजल पके पत्ते खाता हुआ श्वास रोककर ॥ ३९ ॥ गायत्रीजपमें संसक्त हुआ, तमयुक्त हो सकामतासे तपकरा दशसहस्र वर्षतक जलकणका भोजन किया ॥ ४० ॥ फिर दशसहस्र वर्षतक वायुभोजन किया, फिर दशसहस्रवर्षतक निराहार रहा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार तप करते २ उसके शरीरसे अग्नि निकली उससे सब जगत् भस्म होने लगा यह बडी अद्भुत बात हुई ॥ ४२ ॥

यह क्या है यह क्या है यह कहकर सब देवता कंपित होगये और सब लोक संत्रस्त होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी देवतोंकी विज्ञापना सुनकर गायत्रीके सहित हंसपर आरूढ होकर गये॥ ४४ ॥ जो कि वह दैत्य प्राणमात्रसे अवशिष्ट सैकडों नसोंसे व्याप्त, सूखा, पेट, दुबला शरीर ध्यानसे नेत्र मींचे था॥ ४५॥ तेजसे दीप्त दूसरी अग्निकी समान उसको देखा, तब ब्रह्माजी बोले हे भद्र! जो तुम्हारे मनमें आवे सो वर मांगो ॥ ४६ ॥ जब श्रवणमात्रसेही संतोषकारक वाक्य सुना तब अरुणने यह वाणी सुधाधाराकी समान मानी ॥ ४७ ॥ आँख खोलतेही आगे गायत्रीसहित चारों वेदोंसे संयुक्त ॥ ४८ ॥ रुद्राक्षकी माला लिये कुंडिका हाथमें लिये, ओंकारका जप

किमिदंकिमिदंचेतिदेवाःसर्वेचकंपिरे ॥ संत्रस्ताःसकलालोकाब्रह्माणंशरणंययुः ॥ ४३ ॥ विज्ञापितंदेववरैःश्रुत्वातत्रचतुर्मुखः ॥ गायत्रीसहितो हंससमारूढोययौमुदा ॥ ४४ ॥ प्राणमात्रावशिष्टंतंधमनीशतसंकुलम् ॥ शुष्कोदरंक्षामगात्रंध्यानमीलितलोचनम् ॥ ४५ ॥ ददर्शंते जसादीप्तंद्वितीयमिवपावकम् ॥ वरंवरयभद्रंतेवत्सयन्मनसिस्थितम् ॥ ४६ ॥ श्रुतिमात्रेणसंतोषकारकंवाक्यमूचिवान् ॥ श्रुत्वाब्रह्ममुखाद्वाणीं सुधाधारामिवारुणः ॥ ४७ ॥ उन्मीलिताक्षःपुरतोददर्शजलजोद्भवम् ॥ गायत्रीसहितंदेवंचतुर्वेदसमन्वितम् ॥ ४८ ॥ अक्षस्रक्कुंडिकाहस्तंजपंतंब्रह्म शाश्वतम् ॥ दृष्ट्वोत्थायननामाऽथस्तुत्वाचविविधैःस्तवैः ॥ ४९ ॥ वरंवव्रेस्वबुद्धिस्थंमाभवेन्मृत्युरित्यपि ॥ श्रुत्वाऽरुणवचोब्रह्माबोधयामाससादरम् ॥ ॥ ५० ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यामृत्युनाकवलीकृताः ॥ तदाऽन्येषांतुकावार्तामरणेदानवोत्तम ॥ ५१ ॥ वरंयोग्यंततोब्रूहिदातुंयःशक्यतेमया ॥ नाऽत्रा ऽऽग्रहंप्रकुर्वंतिबुद्धिमंतोजनाःक्वचित् ॥ ५२ ॥ इतिब्रह्मवचःश्रुत्वापुनःप्रोवाचसादरम् ॥ नयुद्धेनचशस्त्रास्त्रान्नपुंभ्योनापियोषितः ॥ ५३ ॥ द्विपाद्भ्यो वाचतुष्पाद्भ्योनोभयाकारतस्तथा ॥ भवेन्मेमृत्युरित्येवंदेवदेहिवरंप्रभो ॥ ५४ ॥ बलंचविपुलंदेहियेनदेवजयोभवेत् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वातथा स्त्वितिवचोऽब्रवीत् ॥ ५५ ॥

करते ब्रह्माजीको देखा, देखतेही प्रणाम करने उपरान्त अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिकर ॥ ४९ ॥ यह बुद्धिसे विचार कर वर मांगा कि मेरी मृत्यु न हो, अरुणके वचन सुन ब्रह्मा आदरसे समझाने लगे ॥ ५० ॥ जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भी कालधर्म मानते हैं तो हे दानव! मरणमें औरोंकी तो बातही क्या है॥ ५१ ॥ तुम वरके योग्य मांगो जिसको मैं देसकूं, बुद्धिमान् पुरुष इसमें आग्रह नहीं करते॥ ५२॥ यह ब्रह्माके वचन सुन फिर वह दैत्य आदरसे बोला कि युद्धमें शस्त्र, अस्त्र, पुरुष, स्त्री ॥ ५३ ॥ द्विपाये, चौपाये, वा दोनों प्रकारके आकारवाले इनमें किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो, हे देव! यही वर दो ॥ ५४ ॥ हे देव! इतना अधिक बल दो जिससे मेरी

जय हो ब्रह्मांजीने यह वचन सुनकर तथास्तु कहा ॥ ५५ ॥ वर देकर ब्रह्माजी शीघ्रही अपने स्थानको चलेगये, तब दैत्यने पातालसे अपने आश्रित को ॥ ५६ ॥ दैत्यों बुलाय ब्रह्माका वर सुनाया, वे सब असुर आकर दैत्यपतिको घेर लेते हुए ॥५७॥ और युद्धके निमित्त अमरावतीमें दूतको भेजा दूतके वचन सुनकर देवराज भयसे कंपित हुए ॥ ५८ ॥ और देवताओंके साथ शीघ्रही ब्रह्मलोकको गये, फिर ब्रह्माजी विष्णुको लेकर शंकरके स्थानमें गये ॥ ५९ ॥ और उस दैत्यके मारनेका विचार करने लगे, इसी समय वह दैत्य सेना लिये ॥ ६० ॥ बडी शीघ्रतासे स्वर्गको चला सूर्य, चन्द्र, यम, अग्नि इन सबके अधिकारोंको पृथक् पृथक् ॥ ६१ ॥ लेकर आप अनेक रूप धारणकर तपसे स्वर्ग भोगने लगा यह सब देवता अपने २ स्थानसे भ्रष्ट हो कैलासको गये ॥ ६२ ॥ और सब देवता अपना २ दुःख पृथक् २ शिवजीसे

दत्त्वावरंजगामाऽऽशुपद्मजःस्वंनिकेतनम् ॥ ततोरुणाख्योदैत्यस्तुपातालात्स्वाश्रयस्थितान् ॥५६॥ दैत्यानाकारयामासब्रह्मणोवरदर्पितः॥आगत्यते ऽसुराःसर्वेदैत्येशंतंप्रचक्रिरे ॥५७॥ दूतंचप्रेषयामासुर्युद्धार्थममरावतीम् ॥ दूतवाक्यंतदाश्रुत्वादेवराड्भयकंपितः ॥ ५८ ॥ देवैःसार्धंजगामाऽऽशुब्रह्मणः सदनंप्रति ॥ ब्रह्मविष्णूपुरस्कृत्यजग्मुस्तेशंकरालयम् ॥ ५९ ॥ विचारंचक्रिरेतत्रवधार्थंतेसुरद्रुहाम् ॥ एतस्मिन्समयेतत्रदैत्यसेनासमावृतः ॥ ६० ॥ अरुणाख्योदैत्यराजोजगामाऽऽशुत्रिविष्टपम् ॥ सूर्येंदुयमवह्नीनामधिकारान्पृथक्पृथक् ॥ ६१ ॥ स्वयंचकारतपसानानारूपधरोमुने ॥ स्वस्वस्थान च्युताःसर्वेजग्मुःकैलासमंडलम् ॥ ६२ ॥ शशंसुःशंकरंदेवाःस्वस्वदुःखंपृथक्पृथक् ॥ महान्विचारस्तत्राऽऽसीत्किंकर्तव्यमतःपरम् ॥ ६३ ॥ नयुद्धेन चशस्त्रास्त्रैर्नपुंभ्योनापियोषितः॥द्विपाद्भ्योवाचतुष्पाद्भ्योनोभयाकारतोऽपिवा॥६४॥मृत्युर्भवेदितिब्रह्माप्रोवाचवचनंयतः॥ इतिचिंतातुराःसर्वेकर्तुंकिंचि न्नचक्षमाः ॥६५॥ एतस्मिन्समयेतत्रवागभूदशरीरिणी ॥ भजध्वंभुवनेशानींसावःकार्यंविधास्यति ॥६६॥ गायत्रीजपसंसक्तोदैत्यराड्यदितांत्यजेत् ॥ मृ त्युयोग्यस्तदाभूयादित्युच्चैस्तोषकारिणी ॥६७॥ श्रुत्वादैवींतथावाणींमंत्रयामासुराद्दताः ॥ बृहस्पतिंसमाहूयवचनंप्राहदेवराट्॥६८॥ गुरोगच्छसुराणांतु कार्यार्थमसुरंप्रति॥यथाभवेच्चगायत्रीत्यागस्तस्यतथाकुरु॥६९॥अस्माभिःपरमेशानीसेव्यतेध्यानयोगतः॥प्रसन्नासाभगवतीसाहाय्यंतेकरिष्यति॥७०॥

निवेदन करने लगे, उस स्थानमें बडा विचार प्रारंभ हुआ कि, हमको अब क्या करना चाहिये ॥ ६३ ॥ युद्ध, अस्त्र, शस्त्र, पुरुष, स्त्री, दुपाये, चौपाये वा दोनों प्रकारके जीवोंसे ॥ ६४ ॥ मृत्यु न हो यही उसको ब्रह्माजीका वरदान है, ऐसा विचार कर वे कुछ भी करनेमें समर्थ न हुए ॥ ६५ ॥ इसी समय अशरीरिणी वाणी हुई तुम ईशानीका भजन करो वह तुम्हारा कार्य करेगी ॥ ६६ ॥ यह दैत्यराज गायत्रीका जप निरन्तर करता है, जो उसको त्याग देगा तो यह वधके योग्य होगा ऐसी संतोषकारिणी वाणी हुई ॥ ६७ ॥ देवीकी यह वाणी सुन आदरसे देवता मंत्रणा करने लगे तब बृहस्पतिको बुलाकर इन्द्रने कहा ॥ ६८ ॥ हे गुरुदेव! आप देवकार्यसिद्धिके निमित्त असुरके पास जाओ जिस प्रकार वह गायत्रीका त्याग करे तैसा करो ॥ ६९ ॥ हम ध्यानयोगसे परमेशानीकी सेवा करते हैं, वह

भगवती प्रसन्न होकर तुम्हारी सहायता करेगी ॥ ७० ॥ यह आदेश करके सब देवता जाम्बूनदेश्वरीके समीप गये कि, वह शोभना दैत्योंके भयसे घबराये हुए हमारी रक्षा करेगी ॥ ७१ ॥ वहां जाकर सब कोई तपश्चर्या करने लगे वे सब मायाबीजके जपमें आसक्त देवीके ध्यानयज्ञमें परायण हुए ॥ ७२ ॥ तब बृहस्पति बहुत शीघ्र असुरके समीप गये मुनिको आया देख दैत्यराज पूंछने लगा ॥ ७३ ॥ हे मुने ! तुम्हारा आगमन कहांसे किस निमित्त हुआ है, मैं तुम्हारा पक्षपाती नहीं किन्तु शत्रु हूं ॥ ७४ ॥ यह उसके वचन सुन मुनिराज बोले जो देवी हमारी सेवनीय है, उसीको निरन्तर तुम आराधन करते हो ॥ ७५ ॥ फिर तुम

इत्यादिश्यगुरुंसर्वेजग्मुर्जांबूनदेश्वरीम् ॥ सास्मान्दैत्यभयत्रस्तान्पालयिष्यतिशोभना ॥ ७१ ॥ तत्रगत्वातपश्चर्यांचक्रुःसर्वेसुनिष्ठिताः ॥ मायाबीजजपासक्तादेवीमखपरायणाः ॥ ७२ ॥ बृहस्पतिस्ततःशीघ्रंजगामाऽसुरसन्निधौ ॥ आगतंमुनिवर्यंतंपप्रच्छाऽथसदैत्यराट् ॥ ७३ ॥ मुनेकुत्राऽगमःकस्मात्किमर्थमितिमेवद॥नाहंयुष्मत्पक्षपातीप्रत्युताराातिरेवच ॥७४॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाप्रोवाचमुनिनायकः ॥ अस्मत्सेव्याचयादेवीसात्वयापूज्यतेऽनिशम् ॥ ॥७५॥तस्मादस्मत्पक्षपातीनभवेस्त्वंकथंवद ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वामोहितोदेवमायया ॥ ७६ ॥ तत्याजपरमंमंत्रमभिमानेनसत्तम ॥ गायत्रीत्यागतो दैत्योनिस्तेजस्कोबभूवह ॥ ७७ ॥ कृतकार्योगुरुस्तस्मात्स्थानान्निर्गतवान्पुनः ॥ ततोवृत्तांतमखिलंकथयामासवज्रिणे ॥ ७८ ॥ संतुष्टास्तेसुराःसर्वे भेजिरेपरमेश्वरीम् ॥ एवंवहुगतेकालेकस्मिंश्चित्समयेमुने ॥ ७९ ॥ प्रादुरासीज्जगन्माताजगन्मंगलकारिणी ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशाकोटिकंदर्पसुंदरा ॥ ॥ ८० ॥ चित्रानुलेपनादेवीचित्रवासोयुगान्विता ॥ विचित्रमाल्याभरणाचित्रभ्रमरमुष्टिका ॥ ८१ ॥

हमारे पक्षपाती क्यों नहीं यह कहिये यह वचन सुन वह दैत्य देवमायासे मोहित हो ॥ ७६ ॥ अभिमानसे उस परम मन्त्रका जप त्यागन करता हुआ, गायत्रीके त्यागतेही वह तेजहीन हो गया ॥ ७७ ॥ यह कार्यकर गुरु उस स्थानसे निर्गत हुए और इन्द्रसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ७८ ॥ तब देवता संतुष्ट हो परमेश्वरीका भजन करने लगे हे मुने ! इस प्रकार बहुत समय बीतनेसे कुछ कालके उपरान्त ॥ ७९ ॥ जगन्मंगलकारिणी जगन्माता प्रगट हुई, कोटिसूर्यकी समान प्रकाशमान, कोटिकामवत् सुन्दर ॥ ८० ॥ चित्रविचित्र लेपन लगाये चित्रित दो वस्त्रोंसे सम्पन्न विचित्र मालाका आभरण पहरे चित्र भ्रमरोंको मुट्ठीमें लिये ॥ ८१ ॥

वरदायिका, अभयकारिणी, शांता, करुणामृतसागरा अनेक भौंरोंसे संयुक्त फूलोंकी मालासे विराजित ॥ ८२ ॥ असंख्यात विचित्र भ्रमरियोंसे संयुक्त, भ्रमरोंसे गीयमान अर्थात् ह्रींकार शब्द करते हुए भौंरोंसे सेवित ॥ ८३ ॥ चारों ओर कोटि २ ऐसे भ्रमर व्याप्त सब शृंगार वेषसे सम्पन्न सब वेदोंसे प्रशंसित ॥ ८४ ॥ सर्वात्मावाली, सर्वमयी, सब मंगलकी रूपवाली, सर्वज्ञा, सबकी जननी, सर्वरूपा, सर्वेश्वरी, शिवाको ॥ ८५ ॥ देखकर चंचलात्मा देवता प्रसन्नमन होकर वेदप्रतिपाद्या देवीका स्तव करने लगे ॥ ८६ ॥ देवता बोले, हे देवि ! महाविद्ये सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाली कमललोचनी सर्वाधारे ! तुमको प्रणाम है ॥ ८७ ॥ विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट् सूत्रात्मावाली तुमको प्रणाम है, अव्याकृतरूप कूटस्थके निमित्त प्रणाम है ॥ ८८ ॥ हे दुर्गे ! तुम सर्गादिसे रहित दुष्टोंके निरोध करनेको

वराभयकराशांताकरुणामृतसागरा ॥ नानाभ्रमरसंयुक्तपुष्पमालाविराजिता ॥ ८२ ॥ भ्रमरीभिर्विचित्राभिरसंख्याभिःसमावृता ॥ भ्रमरैर्गीयमानैश्चह्रींकारमनुमन्वहम् ॥ ८३ ॥ समंततःपरिवृताकोटिकोटिभिरंबिका ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्यासर्ववेदप्रशंसिता ॥ ८४ ॥ सर्वात्मिकासर्वमयीसर्वमंगलरूपिणी ॥ सर्वज्ञासर्वजननीसर्वासर्वेश्वरीशिवा ॥ ८५ ॥ दृष्ट्वातांतरलात्मानोदेवाब्रह्मपुरोगमाः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसोविष्टरश्रवसंशिवाम् ॥ ८६ ॥ देवाऊचुः ॥ नमोदेविमहाविद्येसृष्टिस्थित्यंतकारिणि ॥ नमःकमलपत्राक्षिसर्वाधारेनमोऽस्तुते ॥ ८७ ॥ सविश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रात्मिकेनमः ॥ नमोव्याकृतरूपायैकूटस्थायैनमोनमः ॥ ८८ ॥ दुर्गेसर्गादिरहितेदुष्टसंरोधनार्गले ॥ निरर्गलप्रेमगम्येभर्गेदेविनमोऽस्तुते ॥ ८९ ॥ नमःश्रीकालिकेमातर्नमोनीलसरस्वति ॥ उग्रतारेमहोग्रेतेनित्यमेवनमोनमः ॥ ९० ॥ नमःपीतांबरेदेविनमस्त्रिपुरसुंदरि ॥ नमोभैरविमातंगिधूमावतिनमोनमः ॥९१॥ छिन्नमस्तेनमस्तेऽस्तुक्षीरसागरकन्यके ॥ नमःशाकंभरिशिवेनमस्तेरक्तदंतिके ॥ ९२ ॥ निशुंभशुंभदलनिरक्तबीजविनाशिनि ॥ धूम्रलोचननिर्णाशेवृत्रासुरनिबर्हिणि ॥ ९३ ॥

शृंखलारूप स्वयं निरर्गल, प्रेमसे गम्यमान हो, तेजरूप देवीके निमित्त प्रणाम है ॥ ८९ ॥ हे मातः कालिके हे नीलसरस्वति, हे उग्रतारा महाउग्रा ! आपके निमित्त वारंवार प्रणाम है ॥ ९० ॥ हे पीताम्बरे ! [बगलामुखी देवी] हे त्रिपुरसुन्दरि ! भैरवी, मातंगी, धूमावती तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९१ ॥ हे छिन्नमस्ते ! आपको प्रणाम है हे क्षीरसागरकन्ये ! आपको प्रणाम है हे शांकभरि ! हे शिवे ! हे रक्तदन्तिके ! तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९२ ॥ हे शुंभनिशुंभकी दलन करनेवाली ! हे रक्तबीजनाशिनी ! हे धूम्रलोचनकी नाशक तेजरूपिणी ! तुमको वारंवार प्रणाम है हे वृत्रासुरनाशिनी तुमको प्रणाम है ॥ ९३ ॥

हे चण्डमुण्डनाशिनी ! दानवान्तकरी शिवा, विजया, गंगा, शारदा, विकच [खिले] मुखवाली शारदाको प्रमाण है ॥ ९४ ॥ हे पृथ्वीरूप दयारूप, तेजोरूप, प्राणरूप, महाभूतरूप ! तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९५ ॥ हे विश्वमूर्त्ति, दयाकी मूर्त्ति, धर्ममूर्त्ति, देवमूर्त्ति, ज्योतिमूर्त्ति, ज्ञानमूर्त्ति ! तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९६ ॥ हे गायत्रि ! [गान करनेवालोंकी रक्षक,] वरदायक, दिव्यगुणवाली, सावित्रि, सरस्वति, स्वाहा, स्वधा, दक्षिणामाता! आपको वारंवार प्रणाम है ॥ ९७ ॥ सब आगम तुमको नेति वाक्यसे वर्णन करते हैं, हम सबसे पृथक् रूप परदेवताका भजन करते हैं ॥ ९८ ॥ भ्रमरोंसे वेष्टित होनेसे तुम्हारा नाम भ्रामरी होगा, इस देवीस्वरूप आपको वारंवार प्रणाम है ॥ ९९ ॥ दोनों ओर पृष्ठभाग आगे पीछे ऊपर नीचे सर्वत्र तुमको प्रणाम है ॥ १०० ॥ हे मणिद्वीपाधिवासिनी

चंडमुंडप्रमथिनिदानवांतकरेशिवे ॥ नमस्तेविजयेगंगेशारदेविकचानने ॥ ९४ ॥ पृथ्वीरूपेदयारूपेतेजोरूपेनमोनमः ॥ प्राणरूपेमहारूपे भूतरूपेनमोऽस्तुते ॥ ९५ ॥ विश्वमूर्तेदयामूर्तेधर्ममूर्तेनमोनमः ॥ देवमूर्तेज्योतिर्मूर्तेज्ञानमूर्तेनमोऽस्तुते ॥ ९६ ॥ गायत्रिवरदेदेविसावित्रि चसरस्वति ॥ नमःस्वाहेस्वधेमातर्दक्षिणेतेनमोनमः ॥ ९७ ॥ नेतिनेतीतिवाक्यैर्याबोध्यतेसकलागमैः ॥ सर्वप्रत्यक्स्वरूपांतांभजामःपरदेवताम् ॥ ९८ ॥ भ्रमरैर्वेष्टितायस्माद्भ्रामरीयाततःस्मृता ॥ तस्यैदेव्यैनमोनित्यंनित्यमेवनमोनमः ॥ ९९ ॥ नमस्तेपार्श्वयोःपृष्ठेनमस्तेपुरतोऽम्बिके ॥ नमऊर्ध्वे नमश्चाधःसर्वत्रैवनमोनमः ॥ १०० ॥ कृपांकुरुमहादेविमणिद्वीपाधिवासिनि ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिकेजगदंबिके ॥ १ ॥ जयदेविजगन्मातर्जयदे विपरात्परे ॥ जयश्रीभुवनेशानिजयसर्वोत्तमोत्तमे ॥ २ ॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरेभुवनेश्वरि ॥ प्रसीदपरमेशानिप्रसीदजगतोरणे ॥ ३ ॥ नारायणउवाच ॥ इतिदेववचःश्रुत्वाप्रगल्भंमधुरंवचः ॥ उवाचजगदंबासामत्तकोकिलभाषिणी ॥ ४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रसन्नाऽहंसदादेवावरदेशशिखामणिः ॥ श्रुवंतुविबुधाःसर्वेयदेवस्याच्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ देवीवाक्यंसुराःश्रुत्वाप्रोचुर्दुःखस्यकारणम् ॥ दुष्टदैत्यस्यचरितंजगद्बाधाकरंपरम् ॥ ६ ॥

महादेवि ! कृपा करो, हे अनंत कोटि ब्रह्माण्डकी नायिका जगदम्बा ! ॥ १०१ ॥ हे देवि जगन्मातः, परात्परा, श्रीभुवनेशानी, सर्वोत्तमोंमें उत्तम, तुम्हारी जय हो ॥ १०२ ॥ कल्याणकारी गुणरूपी रत्नोंकी खान, भुवनेश्वरि, परमेशानी, जगतकी कारण प्रसन्न हो ॥ ३ ॥ नारायण बोले, इसप्रकार देवताओंके प्रगल्भ और मनोहर वचन सुन मत्त कोकिलकी समान जगदम्बा बोली ॥ ४ ॥ श्रीदेवी बोली, हे देवताओ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं जो तुम्हारी इच्छा हो सो हमसे कहो ॥ ५ ॥ देवीके वचन सुनकर देवता अपने दुःखका कारण दुष्टदैत्यका चरित्र और उसकी जगतको बाधा देना कहने लगे ॥ ६ ॥

जिस प्रकार उसने देवता और ब्राह्मणोंकी अवमानना की उनका नाश किया तथा जैसे देवताओंको स्थानभ्रष्ट किया वह सब आदरसे कहा ॥ ७ ॥ और यथावत् उन्हों ने ब्रह्माके वरदानको कथन किया, तब महाभगवती देवताओंके मुखसे यह वचन सुन॥८॥उस स्थानमें स्थित भ्रमरोंको प्रेरण करती हुई जो पार्श्वमें स्थित नाना रूप धारण किये थे ॥ ९ ॥ इस प्रकार बहुतसे भ्रमर और भ्रामरियोंको देवीने प्रगट किया, जिनसे जगत् व्याप्त होगया शलभोंके यूथकी समान उनका यूथ निर्गत हुआ ॥ ११० ॥ तब उनसे अन्तरिक्ष व्याप्त होगया जिससे पृथ्वीमें अंधकार छागया आकाश पर्वत वृक्षों और वनोंमें ॥ ११ ॥ भ्रमरही व्याप्त होगये यह अद्भुत

देवब्राह्मणवेदानांहेलनंनाशनंतथा ॥ स्थानभ्रंशंसुराणांचकथयामासुराहताः ॥७॥ ब्रह्मणोवरदानंचयथावत्तेसमूचिरे ॥ श्रुत्वादेवमुखाद्वाणींमहाभगवती तदा ॥ ८ ॥ प्रेरयामासहस्तस्थान्भ्रमरान्भ्रामरीतदा ॥ पार्श्वस्थानग्रभागस्थान्नानारूपधरांस्तदा ॥९॥ जनयामासबहुशोयैर्व्याप्तंभुवनत्रयम् ॥ मटची यूथवत्तेषांसमुदायस्तुनिर्गतः ॥ ११० ॥ तदांऽतरिक्षंतैर्व्याप्तमंधकारःक्षितावभूत् ॥ दिविपर्वतशृंगेषुद्रुमेषुविपिनेष्वपि ॥ ११ ॥ भ्रमराएवसंजातास्त दद्भुतमिवाऽभवत् ॥ तेसर्वेदैत्यवक्षांसिदारयामासुरुद्धताः ॥ १२ ॥ नरंमधुहरंयद्वन्मक्षिकाःकोपसंयुताः ॥ उपायोनचशस्त्राणांतथाऽस्त्राणांतदाऽभवत् ॥ ॥ १३ ॥ नयुद्धंनचसंभाषाकेवलंमरणंखलु ॥ यस्मिन्यस्मिन्स्थलेयेयेस्थितादैत्यायथायथा ॥ १४ ॥ तत्रैवचतथासर्वेमरणंप्रापुरुत्स्मयाः ॥ परस्परंसमाचारोनकस्याप्यभवत्तदा ॥ १५ ॥ क्षणमात्रेणतेसर्वेविनष्टादैत्यपुंगवाः ॥ कृत्वेत्थंभ्रमराःकार्यंदेवीनिकटमाययुः ॥ १६ ॥ आश्चर्यमेतदाश्चर्यमितिलोकाःसमूचिरे ॥ किंचित्रंजगदंबायायस्यामायेयमीदृशी ॥ १७ ॥

बात हुई वे सब एकत्र होकर दैत्योंकी छाती विदीर्ण करने लगे ॥ १२ ॥ जिस प्रकार शहतकी मक्खी शहत लेनेवाले मनुष्यको लिपट जाती हैं, ऐसे भौंरे लिपट गये उस समय अस्त्र शस्त्रोंका उपाय न चला ॥ १३ ॥ युद्ध और बात नहीं होती थी केवल मरणही होता था जिस २ स्थान जो जो दैत्य जिसप्रकार स्थित थे ॥ ॥ १४ ॥ वह वहां उसी प्रकार मरणको प्राप्त होते हुए, उस समय परस्पर किसीको किसीका समाचार ज्ञात न हुआ ॥ १५ ॥ क्षणमात्रमें वह सब दैत्य नष्ट होगये इस प्रकार कार्यकर भौंरे देवीके समीप आगये ॥ १६ ॥ लोक सब आश्चर्य आश्चर्य कहने लगे कि, जगदम्बामें क्या आश्चर्य है, जिसकी माया इस प्रकार है ॥ १७ ॥

तब विष्णुको आदिलेकर सब देवतागण महाप्रसन्न हो जगदम्बाका पूजन करने लगे ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके उपचार और भेंटोंसे पूजते जयशब्द करते फूल वर्षाने लगे ॥ १९ ॥ आकाशमें दुंदुभी बजी, अप्सरा नाचने लगीं, मुनिश्रेष्ठ वेदपाठ करने लगे और गन्धर्वादि गान करने लगे ॥ १२० ॥ मृदंग मुरज वीणा ढक्का डमरू घंटा और शंखके शब्दोंसे त्रिभुवन व्याप्त होगया ॥ २१ ॥ अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिको करते शिरपर अंजली बाँधकर माता ! आपकी जय हो, हे ईशानी ! आपकी जय हो, इस प्रकारसे सब कहने लगे ॥ २२ ॥ तब महादेवी सब पर प्रसन्नहो उनको पृथक् २ वर देकर और उनको अपनेमें प्रार्थनानुसार अचला भक्ति देकर ॥ २३ ॥ देवताओंके

ततोदेवगणाःसर्वेब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ निमग्नाहर्षजलधौपूजयामासुरंबिकाम् ॥ १८ ॥ नानोपचारैर्विविधैर्नानोपायनपाणयः ॥ जयशब्दंप्रकुर्वाणासुमुचुःसुमनांसिच ॥ १९ ॥ दिविदुंदुभयोनेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ पेठुर्वेदान्मुनिश्रेष्ठागंधर्वाद्याजगुस्तथा ॥ १२० ॥ मृदंगमुरजावीणाढक्काडमरुनिःस्वनैः ॥ घंटाशंखनिनादैश्चव्यातमासीज्जगत्रयम् ॥ २१ ॥ नानास्तोत्रैस्तदास्तुत्वामूर्ध्न्याधायांजलींस्तदा ॥ जयमातर्जयेशानीत्येवंसर्वेसमूचिरे ॥ ॥ २२ ॥ ततस्तुष्टामहादेवीवरान्दत्त्वापृथक्पृथक् ॥ स्वास्मिंश्चविपुलांभक्तिंप्रार्थितातैर्ददौचताम् ॥ २३ ॥ पश्यतामेवदेवानामंतर्धानंगताततः ॥ इतितेसर्वमाख्यातंभ्रामर्याश्चरितंमहत् ॥ २४ ॥ पठतांशृण्वतांचैवसर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्रुतमाश्चर्यजनकंसंसारार्णवतारकम् ॥ २५ ॥ एवंमनूनांसर्वेषांचरितंपापनाशनम् ॥ देवीमाहात्म्यसंयुक्तंपठन्शृण्वन्शुभप्रदम् ॥ २६ ॥ यश्चैतत्पठतेनित्यंशृणुयाद्योऽनिशंनरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोदेवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १२७ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥छ॥ ॥ दशमस्कंधःसमाप्तः ॥ १० ॥

सार्धरुद्रैःपंचशत (५११) श्लोकैर्व्यासकृतैःशुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्यदशमस्कंधईरितः ॥ १ ॥

देखते २ अन्तर्धान होगई, यह आपसे सम्पूर्ण भ्रामरीका चरित्र कहा ॥ २४ ॥ यह पढते और सुन्नेमें सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ॥ २५ ॥ यह देवीमाहात्म्यसे संयुक्त चरित्र पढने सुन्नेसे शुभ देता है ॥ २६ ॥ जो इसको नित्य पढते और सुन्ते हैं वह सम्पूर्ण पापसे रहित हो देवीके सायुज्यको पाते हैं ॥ १२७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कितम् ।
सं० १९५८, शके १८२३.

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते दशमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते एकादशस्कन्धः प्रारभ्यते ॥

१२८

दोहा—शरणसुखद दुखभयहरण, करन सकल सुरकाज । रखहिं सदा जनमिश्रकी, श्रीजगदम्बालाज ॥ १ ॥

नारदजी बोले, हे भगवन्! भूतभव्येश नारायण सनातन आपने देवीका चरित्र परम उत्तम कथन किया ॥ १ ॥ जिस प्रकार देवताओंकी प्रार्थनासे माता प्रगट होती है और देवीकी पूर्णकृपासे आपने अधिकारकी प्राप्ति कही ॥२॥ अब वह सुननेकी इच्छा करता हूं जिससे वह सदा प्रसन्न होती है और अपने भक्तोंसे प्रसन्न होती है, वह आचार हमसे कहिये ॥३॥ श्रीनारायण बोले, हे तत्वज्ञाता नारदजी ! आपसे क्रमसे आचारकी विधि कहता हूं जिसके अनुष्ठानसे सदा देवी प्रसन्न होती है ॥४॥ ब्राह्मणको जो वार्ता दिन २ प्रभात समय उठकर करनी चाहिये वह मैं ब्राह्मणोंके उपकारके निमित्त कहता हूं ॥५॥ उदयसे अस्तपर्यन्त जिसके द्वारा ब्राह्मण सत्कर्म

श्रीगणेशायनमः ॥ नारदउवाच ॥ भगवन्भूतभव्येशनारायणसनातन ॥ आख्यातंपरमाश्चर्यं देवीचारित्रमुत्तमम् ॥१॥ प्रादुर्भावःपरोमातुःकार्यार्थमसुरद्रुहाम् ॥ अधिकारातिरुक्ताऽत्रदेवीपूर्णकृपावशात् ॥ २ ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामियेनप्रीणातिसर्वदा ॥ स्वभक्तान्परिपुष्णातितमाचारंवदप्रभो ॥ ३ ॥ नारायणउवाच ॥ शृणुनारदतत्त्वज्ञसदाचारविधिक्रमम् ॥ यदनुष्ठानमात्रेणदेवीप्रीणातिसर्वदा ॥४॥ प्रातरुत्थायकर्तव्यंयद्द्विजेनदिनेदिने ॥ तदहंसंप्रवक्ष्यामिद्विजानामुपकारकम् ॥५॥ उदयास्तमयंयावद्द्विजःसत्कर्मकृद्भवेत् ॥ नित्यनैमित्तिकैर्युक्तःकाम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥ ६ ॥ आत्मैवनसहायार्थेपितामाताचतिष्ठति ॥ नपुत्रदारानज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठतिकेवलम् ॥७॥ तस्माद्धर्मंसहायार्थंनित्यंसंचिनुसाधनैः॥धर्मेणैवसहायात्तुतमस्तरतिदुस्तरम् ॥ ८ ॥ आचारःप्रथमोधर्मःश्रुत्युक्तःस्मार्तएवच ॥ तस्मादस्मिन्समायुक्तोनित्यंस्यादात्मनोद्विजः ॥९॥ आचाराल्लभतेचायुराचाराल्लभतेप्रजाः॥आचारादन्नमक्षय्यमाचारोहंतिपातकम् ॥ १० ॥ आचारःपरमोधर्मोनृणांकल्याणकारकः ॥ इहलोकेसुखीभूत्वापरत्रलभतेसुखम् ॥११॥ अज्ञानांधजनानांतुमोहितैर्भ्रामितात्मनाम् ॥ धर्मरूपोमहादीपोमुक्तिमार्गप्रदर्शकः ॥१२॥ आचारात्प्राप्यतेश्रैष्ठ्यमाचारात्कर्मलभ्यते॥कर्मणोजायतेज्ञानमितिवाक्यंमनोःस्मृतम् ॥१३॥

करता है तथा नित्य नैमित्तिक अगर्हित कर्म करता है ॥ ६ ॥ आत्माका सहायक परलोकमें पिता, माता, पुत्र, स्त्री, ज्ञाति, कोई नहीं है केवल धर्मही स्थित होता है ॥ ७ ॥ इस कारण अपनी सहायताके निमित्त साधनोंद्वारा धर्मका उपार्जन करना चाहिये धर्मकी सहायतासेही दुस्तर अंधकार तरा जाता है ॥ ८ ॥ श्रुति स्मृतिमें पहला मुख्यधर्म आचारही कहा है इस कारण ब्राह्मणको नित्य आचारयुक्त होना चाहिये ॥ ९ ॥ आचारसेही आयु, आचारसे सन्तान, आचारसेही अक्षय्य अन्न प्राप्त होता और आचारसेही पाप दूर होता है ॥ १० ॥ आचारही मनुष्योंके कल्याणका कर्ता है जिससे इस लोकमें सुखी होकर परलोकमें सुख प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ अज्ञान और अंधजन्मवाले कुदृष्टियोंसे मोहितपुरुषोंको धर्मरूपी महादीपकही मुक्तिका दिखानेवाला है ॥ १२ ॥ आचारसेही श्रेष्ठता प्राप्त होती है

आचारसे कर्म प्राप्त होता, कर्मसे ज्ञान और ज्ञानसे मोक्ष होती है यह मनुजी कहते हैं ॥ १३॥ हे परंतप ! यह आचारही सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है, इसीसे ज्ञान होता है इस ज्ञानसेही सब साधा जाता है ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो पुरुष आचारहीन होकर वर्तता है वह शूद्रकी समान सब धर्मोंसे बाहर होनेसे आचारभ्रष्ट होनेसे शूद्रकी समान है ॥ १५ ॥ शास्त्र और लौकिक भेदसे आचार दोप्रकारका है शुभकी इच्छावालेको यह दोनोंही करने चाहिये, त्यागने न चाहिये ॥ १६ ॥ ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म, कुलधर्म, यह सब मनुष्योंको ग्रहण करने चाहिये और उल्लंघन न करना चाहिये ॥ १७ ॥ दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है वह सदा दुःखभागी और व्याधिसे व्याप्त रहता है ॥ १८ ॥ धर्मसे रहित अर्थ और कामकोभी त्याग न करदे और जो धर्मभी प्राणियोंको पीडा करनेवाले हों उनको भी त्यागन

सर्वधर्मवरिष्ठोऽयमाचारःपरमंतपः ॥ तदेवज्ञानमुद्दिष्टंतेनसर्वंप्रसाध्यते ॥ १४ ॥ यस्त्वाचारविहीनोऽत्रवर्ततेद्विजसत्तमः ॥ सशूद्रवद्बहिष्कार्योयथाशूद्रस्तथैवसः ॥ १५ ॥ आचारोद्विविधःप्रोक्तःशास्त्रीयोलौकिकस्तथा ॥ उभावपिप्रकर्तव्यौनत्याज्यौशुभमिच्छता ॥१६॥ ग्रामधर्माजातिधर्मादेशधर्माःकुलोद्भवाः ॥ परिग्राह्यानृभिःसर्वैर्नैवतांल्लंघयेन्मुने ॥ १७ ॥ दुराचारोहिपुरुषोलोकेभवतिनिंदितः ॥ दुःखभागीचसततंव्याधिनाव्याप्तएवच ॥ १८ ॥ परित्यजेदर्थकामौयौस्यातांधर्मवर्जितौ ॥ धर्ममप्यसुखोदर्कंलोकविद्विष्टमेवच ॥ १९ ॥ नारदउवाच ॥ बहुत्वादिहशास्त्राणांनिश्चयःस्यात्कथंमुने ॥ कियत्प्रमाणंतद्ब्रूहिधर्ममार्गविनिर्णये॥२०॥नारायणउवाच॥श्रुतिस्मृतीउभेनेत्रेपुराणंहृदयंस्मृतम् ॥ एतत्त्रयोक्तएवस्याद्धर्मोनान्यत्रकुत्रचित्॥२१॥विरोधोयत्रतुभवेत्त्रयाणांचपरस्परम्॥श्रुतिस्तत्रप्रमाणंस्याद्द्वयोर्द्वैधेस्मृतिर्वरा ॥२२॥ श्रुतिद्वैधंभवेद्यत्रतत्रधर्मावुभौस्मृतौ ॥ स्मृतिद्वैधंतुयत्रस्याद्विषयःकल्प्यतांपृथक् ॥ २३ ॥ पुराणेषुक्वचिच्चैवतंत्रदृष्टंयथातथम् ॥ धर्मंवदंतितंधर्मंगृह्णीयान्नकथंचन ॥ २४ ॥

कर दे पशुहननादि धर्मभी गर्हित है ॥ १९ ॥ नारदजी बोले हे मुने ! शास्त्र बहुत है इनमें निश्चय किसप्रकार हो सकता है ? सो धर्ममार्गके निर्णयमें किसका प्रमाण किया जाय ॥ २० ॥ श्रीनारायण बोले, परमात्माके श्रुति स्मृति यह दोनों नेत्र हैं, पुराण हृदय है, इन्हीं तीनमें कहा हुआ धर्म है और इनके सिवाय कहीं नहीं अर्थात् परमेश्वरके नेत्ररूप श्रुति स्मृतिसे देखा हुआ धर्म सत्य है और पुराणरूप हृदयमें विचाराहुआ सत्य है ॥ २१ ॥ जहां कहीं वेद स्मृति और पुराणोंमें विरोध दीखै वहां श्रुतिका प्रमाण मानना होता है और जहां पुराण और स्मृतिका विरोध हो वहां स्मृतिका प्रमाण मानना चाहिये ॥ २२ ॥ और जहां श्रुतिमें परस्पर विरोध हो वहां दोनोंही प्रमाण हैं जहाँ स्मृतिमें दो भाँति लिखाहो वहाँ भिन्न विषयकी कल्पना करकै विरोधका परिहार करना चाहिये ॥ २३ ॥ और जो कहीं पुराण

और तंत्रोंमें किसी कटाक्षसे जो धर्म कहा है वोह श्रुति स्मृतिका विरोधी धर्म ग्रहणकरना न चाहिये ॥ २४ ॥ और वेदका अविरोधी तंत्रका प्रमाण होसकता है इसमें सन्देह नहीं जो प्रत्यक्ष श्रुतिके विरुद्ध हो उसका प्रमाण नहीं होसकता जिस प्रकार कि, तप्त मुद्राधारण आदि कहीं कहीं लिखा है, वह वेदके विरुद्ध होनेसे अप्रमाण है ॥ २५ ॥ धर्ममार्गमें सर्वथा वेदही प्रमाण है, उसके अविरुद्धही जो कुछ हो उसीका प्रमाण है औरका नहीं ॥ २६ ॥ जो वेद धर्मको त्यागकर दूसरे प्रमाणमें वर्तते हैं उनकेही शिक्षाके निमित्त यमलोकमें कुण्ड विद्यमान हैं ॥ २७ ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे वेदोक्त धर्मका आश्रय करना चाहिये स्मृति पुराण दूसरे और ग्रंथ वा तंत्रशास्त्र ॥ २८ ॥ यह वेदमूलक होनेसेही प्रमाण हैं, अन्यथा नहीं जो कुशास्त्रोंके योगसे मनुष्योंको वर्तवाते हैं ॥ २९ ॥ वे अधोमुख और ऊर्ध्वपाद होकर

वेदाविरोधिचेत्तंत्रंतत्प्रमाणंनसंशयः ॥ प्रत्यक्षश्रुतिरुद्धंयत्तत्प्रमाणंभवेन्नच ॥२५॥ सर्वथावेदएवासौधर्ममार्गप्रमाणकः ॥ तेनाविरुद्धंयत्किंचित्तत्प्रमाणं नचान्यथा ॥ २६ ॥ योवेदधर्ममुज्झित्यवर्ततेऽन्यप्रमाणतः ॥ कुंडानितस्यशिक्षार्थंयमलोकेवसंतिहि ॥२७॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनवेदोक्तंधर्ममाश्रयेत् ॥ स्मृतिःपुराणमन्यद्वातंत्रंवाशास्त्रमेवच ॥ २८ ॥ तन्मूलत्वेप्रमाणंस्यान्नान्यथातुकदाचन ॥ येकुशास्त्राभियोगेनवर्तयंतीहमानवान् ॥ २९ ॥ अधोमुखोर्ध्वपादास्तेयास्यंतिनरकार्णवम् ॥ कामाचाराःपाशुपतास्तथावैलिंगधारिणः ॥ ३० ॥ तप्तमुद्रांकितायेचवैखानसमतानुगाः ॥तेसर्वेनिरयंयांतिवेदमार्गबहिष्कृताः ॥ ३१ ॥ वेदोक्तमेवसद्धर्मंतस्मात्कुर्यान्नरःसदा ॥ उत्थायोत्थायबोद्धव्यंकिंमयाऽद्यकृतंकृतम् ॥ ३२ ॥ दत्तंवादापितंवापिवाक्येनापिचभाषितम् ॥ उपपापेषुसर्वेषुपातकेषुमहत्स्वपि ॥ ३३ ॥ अवाप्यरजनीयामंब्रह्मध्यानंसमाचरेत् ॥ ऊरुस्थोत्तानचरणःसव्येचोरौतथोत्तरम् ॥ ३४ ॥

नरकसागरमें पडते हैं यथेष्ट आचरण करनेवाले, लिंगधारी पाशुपत ॥ ३० ॥ जो तप्तमुद्रा शंख चक्र जलाकर शरीरपर धारण करनेवाले वैखानस मतके अनुसार चलनेवाले वे वेदमार्गके बाहर चलनेवाले सब नरकमें जाँयगे ॥ ३१ ॥ वेदकाही कहाहुआ सद्धर्म है इसकारण मनुष्योंको वही सदा करना चाहिये वार २ जागरूक होकर जानना चाहिये कि, मैंने आज क्या किया है ॥ ३२ ॥ दिया दिलाया वा वाणीसे कहा हुआ, वा सब उपपातक और महापातकोंमें मैंने क्या पातक किया है यह निरन्तर विचारना चाहिये ॥ ३३ ॥ जब पहरभर रात रहजाय तब उठकर ब्रह्मका ध्यान करे वह क्रम यह है कि, पहले वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण चरण

चित्त करके रक्खे और दक्षिण ऊरुके ऊपर बाँयाँ चरण उसी प्रकार स्थापित करै ॥ ३४ ॥ फिर मस्तक कुछेक ऊंचा होकर हिलौवे मुख ऊँचाकर अपनी ठोढीसे वक्षस्थलको स्पर्श कर नेत्र बंद कर अपने बलसे स्थित होकर दांतोंसे दाँतोंको न लगावे ॥ ३५ ॥ जिह्वाको लौटकर तालुस्थानमें लगादे विवृतमुख हो निश्चल हुआ इन्द्रियसमूहको रोके हुए चैल अजिन वा कुशके आसनपर स्थित जो बहुत नीचा न हो बैठे ॥ ३६ ॥ दूने वा तिगुने प्राणायामको करै इसके उपरान्त जो प्रभु हृदयमें दीपकके समान स्थित हैं उसका ध्यान करै ॥ ३७ ॥ और विद्वान् धारणपूर्वक धारणा करै, प्राणायाम सधूम (श्वाससंयुक्त) विधूम अर्थात् अतिशय अभ्याससे चित्तके स्थिर होनेपर मध्यम कहाता है, वही दो प्रकारका है सगर्भ (मंत्रजपके सहित) अगर्भ मंत्रजपरहित ॥ ३८ ॥ फिर अति अभ्याससे चित्तके स्थिर होनेसे प्राणायाम उत्तम होता है वह सलक्ष्य देवताके ध्यानके सहित अलक्ष्य ध्यानरहित होनेसे यह प्राणायाम छः प्रकारका है प्राणायामकी समान योगप्राणायामही है दूसरा नहीं

उत्तानंकिंचिदुत्तानंमुखमवष्टभ्यचोरसा ॥ निमीलिताक्षःसत्त्वस्थोदंतैर्दंतान्नसंस्पृशेत् ॥ ३५ ॥ तालुस्थाचलजिह्वश्चसंवृतास्यःसुनिश्चलः ॥ सन्निरुद्धेंद्रियग्रामोनातिनिम्नस्थितासनः ॥ ३६ ॥ द्विगुणंत्रिगुणंवापिप्राणायाममुपक्रमेत् ॥ ततोध्येयःस्थितोयोऽसौहृदयेदीपवत्प्रभुः ॥ ३७ ॥ धारयेत्तत्रचाऽऽत्मानंधारणांधारयेद्बुधः ॥ सधूमश्चविधूमश्चसगर्भश्चाप्यगर्भकः ॥ ३८ ॥ सलक्ष्यश्चाप्यलक्ष्यश्चप्राणायामस्तुषड्विधः ॥ प्राणायामसमो योगःप्राणायामइतीरितः ॥ ३९ ॥ प्राणायामइतिप्रोक्तोरेचपूरककुंभकैः ॥ वर्णत्रयात्मकाह्येतेरेचपूरककुंभकाः ॥ ४० ॥ सएवप्रणवःप्रोक्तःप्राणायामश्च तन्मयः ॥ इडयावायुमारोप्यपूरयित्वोदरेस्थितम् ॥ ४१ ॥ शनैःषोडशमात्राभिरन्ययातंविरेचयेत् ॥ एवंसधूमःप्राणानामायामःकथितोमुने ॥ ४२ ॥ आधारेलिंगनाभिप्रकटितहृदयेतालुमूलेललाटेद्वेपत्रेषोडशारेद्विदशदशदलद्वादशार्धेचतुष्के ॥ नासांतेबालमध्येधफकठसहितेकंठदेशेस्वराणांहंक्षंतत्त्वार्थयुक्तंसकलदलगतंवर्णरूपंनमामि ॥ ४३ ॥

॥ ३९ ॥ रेचक, पूरक, कुंभक नामसे तीन प्रकारका है इसमें 'ओं' के तीनों वर्णोंका क्रमसे ध्यान होता है ॥ ४० ॥ वह परमात्माही प्रणव कहाता है और तन्मय होनेसे प्राणायाम उसीका रूप है बाँई ओरकी नाडी इडा, दक्षिण ओरकी नाडी पिंगला कहाती है सो इडानाडीद्वारा वायुको पूर्णकर अर्थात् वामनासिका पुटसे ३२ वार अकारको आवर्तन कर वायुको आरोपण कर उसे खैंचकर पूरक करै पीछे चौंसठ बार उकारको आवर्तन करते हुए उदरमें स्थित कुंभक करकै फिर दक्षिणनासापुटसे ॥ ४१ ॥ सोलह वार मकारका आवर्तन करता हुआ उस वायुको विरेचन करै अर्थात् त्यागे इसीप्रकार पिंगलासे करै यह प्राणायाम सधूम कहाता है ॥ ४२ ॥ प्राणायामके पश्चात् कुण्डलिनीके चक्रभेद कहते हैं इस देहमें क्रमसे षट् कमल हैं पहला गुदस्थानमें, दूसरा लिङ्गके मूलमें, तीसरा नाभिचक्र चौथा

हृदयमें, पांचवाँ कण्ठ और छठा भ्रूमध्यमें हैं उनमें भ्रूमध्यमें जो कमल है उसमें दो दल हैं उन दो दलोंमें दक्षिण क्रमानुसार लगे हुए ब्रह्मा हं, क्षं वर्ण हैं उनको नमस्कार करता हूं कण्ठमें जो कमल है उसमें सोलह दल हैं उन दलोंमें दक्षिणावर्तके क्रमसे लगे हुए अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, सोलह स्वर वर्णरूप हैं उनको नमस्कार है हृदयस्थित पद्मके बारह दल हैं उनमें यथा क्रमसे क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, यह बारह वर्णरूप है, उनको प्रणाम है नाभिस्थानमें स्थित पद्मके १० दल हैं उनमें दक्षिणावर्तके अनुसार लगे हुए ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, वर्ण हैं इनको नमस्कार है लिङ्गमूल पद्मके छः दल हैं उसमें दक्षिणावर्त क्रमसे लगे हुए ब, भ, म, य, र, ल, वर्णको नमस्कार है. गुदमूलस्थित पद्मके चार दल हैं उनमें दक्षिणा वर्तक्रमसे स्थित व, श, ष, स, चार वर्णको नमस्कार है. इनका आशय यह है कि, उक्त छः स्थानोंमें कहे छः पद्मोंके ध्यान कर उनके दलमें प्रत्येक रूप और वर्णका ध्यान करके नमस्कार

अरुणकमलसंस्थातद्रजःपुंजवर्णाहरनियमितचिह्नापद्मतंतुस्वरूपा ॥ रविहुतवहराकानायकास्यस्तनाढ्यासकृदपियदिचित्तेसंवसेत्स्यात्समुक्तः॥४४॥ स्थितिःसैवागतिर्यात्रामतिश्चिंतास्तुतिर्वचः ॥ अहंसर्वात्मकोदेवस्तुतिःसर्वत्वदर्चनम् ॥ ४५ ॥ अहंदेवीनचान्योऽस्मिब्रह्मैवाहंनशोकभाक् ॥ सच्चिदानंदरूपोऽहंस्वात्मानमितिचिंतयेत् ॥४६॥ प्रकाशमानांप्रथमेप्रयाणेप्रतिप्रयाणेप्यमृतायमानाम् ॥ अंतःपदव्यामनुसंचरंतीमानंदरूपामबलांप्रपद्ये॥४७॥

करे ॥ ४३ ॥ रक्तवर्ण चार युक्त गुदमूलमें जो कमल है उसमें पद्मनीलके सूतकी समान अत्यन्त सूक्ष्मरूपवाली कुलकुण्डलिनी शक्ति विराजमान है वह रजोगुणमयी रक्तवर्ण है सूर्यविन्दु उसका मुख, अग्निविन्दु उसके दोनों स्तन हैं उसका नाम मायाबीज अर्थात् (ह्रीं) है यह बीज प्रतिपाद्य अर्थ है वह जिसके हृदयमें एकवार भी प्रगट होता है वह जीवन्मुक्त होता है ॥ ४४ ॥ वही कुंडलिनी शक्ति सहकृत अहंशब्द प्रतिपाद्य है यही हम, यही भगवती, वही, स्थिति, गति, यात्रा, मति, चिन्ता, स्तुति, वचन सर्वात्मक देव मैंही हूं और सब स्तुति हमारा अर्चन है ॥ ४५ ॥ मैंही देवी हूं, दूसरा नहीं. मैं ही ब्रह्म हूं शोकभागी नहीं हूं मैंही सच्चिदानन्द हूं इस प्रकार अपने आत्मामें विचार करे ॥ ४६ ॥ फिर हर्षगद्गद चित्तसे देवी कुंडलिनीका ध्यान करे जो प्रथमही ब्रह्मरन्ध्रमें जानेसे प्रकाशमान है फिर मूलाधारमें आनेसे अमृतसे परिव्याप्त अर्थात् ब्रह्मरंध्रमें स्थित अमृतधारासे युक्त सुषुम्नामें गमन करती हुई आनंदरूप अबला कुंडलिनीको शरण होता हूं ॥ ४७ ॥

फिर अपने ब्रह्मरन्ध्रमें गुरुरूप ईश्वरका ध्यान करे और मनके कल्पित उपचारोंसे विधिपूर्वक पूजन करे ॥ ४८ ॥ इसप्रकार इस मंत्रसे संयुत होकर साधक स्तुति करै गुरुही ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देव महेश्वर है गुरुही परब्रह्म है उन श्रीगुरुदेवके निमित्त प्रणाम है ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले चाहे षट् अंगों सहित वेद पढाहो परन्तु आचारहीनको पवित्र नहीं करसकता मृत्युकालमें आचारहीन पुरुषको वेद इसप्रकार त्यागन कर देते हैं जैसे पंख निकलनेसे पक्षी घौंसलोंको त्याग देते हैं ॥ १ ॥ ब्राह्म मुहूर्त पिछले पहरमें उठ मुखादि प्रक्षालन कर वह सब कुछ भलीप्रकार करै और उस अन्तिम प्रहरमें विद्वान् वेदाभ्यास करै ॥ २ ॥ फिर कुछ कालपर्यन्त अपने इष्टदेवका चिन्तन करै पूर्व कहे अनुसार योगी छः घडीतक ब्रह्मध्यान करै ॥ ३ ॥ जिसके

ततोनिजब्रह्मरंध्रेध्यायेत्तंगुरुमीश्वरम् ॥ उपचारैर्मानसैश्चपूजयेत्तंयथाविधि ॥ ४८ ॥ स्तुवीताऽनेनमंत्रेणसाधकोनियतात्मवान् ॥ गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवोमहेश्वरः ॥ गुरुरेवपरंब्रह्मतस्मैश्रीगुरवेनमः ॥ ४९ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधेप्रातश्चिंतनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ॥ आचारहीनंनपुनन्तिवेदायद्यप्यधीताःसहषड्भिरंगैः ॥ छंदांस्येनंमृत्युकालेत्यजंतिनीडंशकुंताइवजातपक्षाः ॥ १ ॥ ब्राह्मेमुहूर्तेचोत्थायतत्सर्वंसम्यगाचरेत् ॥ रात्रेरंतिमयामेतुवेदाभ्यासंचरेद्बुधः ॥ २ ॥ किंचित्कालंततःकुर्यादिष्टदेवानुचिंतनम् ॥ योगीतुपूर्वमार्गेणब्रह्मध्यानंसमाचरेत् ॥ ३ ॥ जीवब्रह्मैक्यतायेनजायतेतुनिरंतरम् ॥ जीवन्मुक्तश्चभवतितत्क्षणादेवनारद ॥ ४ ॥ पंचपंचउषःकालःसप्तपंचारुणोदयः ॥ अष्टपंचभवेत्प्रातःशेषःसूर्योदयःस्मृतः ॥ ५ ॥ प्रातरुत्थाययःकुर्याद्विण्मूत्रंद्विजसत्तमः ॥ नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकंभुवः ॥ ६ ॥ विण्मूत्रेपिचकर्णस्थआश्रमेप्रथमेद्विजः ॥ निवीतंपृष्ठतःकुर्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥ ७ ॥ कृत्वायज्ञोपवीतंतुपृष्ठतःकंठलंबितम् ॥ विण्मूत्रंतुगृहीकुर्यात्कर्णस्थंप्रथमाश्रमी ॥ ८ ॥ अंतर्धायतृणैर्भूमिंशिरःप्रावृत्यवाससा ॥ वाचंनियम्ययत्नेनष्ठीवनश्वासवर्जितः ॥ ९ ॥ नफालकृष्टेनजलेनाचितायांनपर्वते ॥ जीर्णदेवालयेकुर्यान्नवल्मीकेनशाद्वले ॥ १० ॥

द्वारा जीव ब्रह्मकी निरन्तर एकता होती है हे नारद ! वह उसी समय जीवन्मुक्त होता है ॥ ४ ॥ पचपन घड़ीके उपरान्त उषःकाल होता है सत्तावन घडीके उपरान्त अरुणोदय होता है अठावन घडीपर प्रभात और शेषमें सूर्योदय होता है ॥ ५ ॥ प्रभातकाल उठकर ब्राह्मण विष्ठा मूत्र करै अर्थात् शयनस्थानसे उठकर बाणविक्षेपमात्रतक दूर जाकर वा अधिक दूर जाकर शौचादि करै ॥ ६ ॥ प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्यमें विष्ठा मूत्र करतेमें कानमें यज्ञोपवीत रक्खै वानप्रस्थ और गृहस्थ अवस्थामें यज्ञोपवीत पीठकी ओरही लगाकर ॥ ७ ॥ पृष्ठकी ओर कंठलम्बित यज्ञोपवीत करकै गृहस्थी विष्ठा मूत्र करै ब्रह्मचारी कानपर धरै ॥ ८ ॥ तृणसे पृथ्वी आच्छादित करकै वस्त्रसे शिर ढककर यत्नपूर्वक वाणीको रोक निष्ठीवन करै और श्वाससे वर्जित हो ॥ ९ ॥ हलसे जोती, भूमि, जल, चिता,

पर्वत, जीर्ण देवालय, वल्मीक, (सर्पस्थान) हरित तृण ॥ १० ॥ जीवसहित गर्तस्थानमें, चलते हुए मार्गमें, स्थित होता हुआ मलत्यागन करै दोनों संध्याओंमें जप, भोजन, दँतौन ॥ ११ ॥ पितृकार्य, देवकार्यमें, मूत्रपुरीष करनेमें, मैथुनमें गुरुके समीपमें ॥ १२ ॥ योग दान तथा ब्रह्मयज्ञमें द्विजको मौन रहना चाहिये सब देवता, ऋषि, उरग, राक्षस ॥ १३ ॥ इस भूमिसे बाहर होजाओ मैं शौच करता हूं इसप्रकार प्रार्थना कर विधिपूर्वक शौच करै ॥ १४ ॥ वायु, अग्नि, ब्राह्मण, आदित्य, जल और गौको देखता हुआ कभी विष्ठामूत्र न करै ॥ १५ ॥ दिनमें उत्तरकी ओर मुखकर रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुखकर मलमूत्र करै फिर उसके ऊपर

नससत्त्वेषुगर्तेषुनगच्छन्नपथिस्थितः ॥ संध्ययोरुभयोर्जप्येभोजनेदंतधावने॥ ११॥पितृकार्येचदैवेचतथामूत्रपुरीषयोः॥ उत्सारेमैथुनेवापितथावैगुरुसन्निधौ ॥ १२ ॥ यागेदानेब्रह्मयज्ञेद्विजोमौनंसमाचरेत् ॥ देवताऋषयःसर्वेपिशाचोरगराक्षसाः ॥ १३ ॥ इतोगच्छंतुभूतानिबहिर्भूमिंकरोम्यहम् ॥ इतिसंप्राथ्र्यपश्चात्तुकुर्याच्छौचंयथाविधि ॥ १४ ॥ वाय्वग्नीविप्रमादित्यमापःपश्यंस्तथैवगाः ॥ नकदाचनकुर्वीतविण्मूत्रस्यविसर्जनम् ॥१५॥ उदङ्मुखोदिवाकुर्याद्रात्रौचेद्दक्षिणामुखः ॥ ततआच्छाद्यविण्मूत्रंलोष्टपर्णतृणादिभिः ॥ १६ ॥ गृहीतलिंगउत्थायसगच्छेद्वारिसान्निधौ ॥ पात्रेजलंगृहीत्वातुगच्छेदन्यत्रचैवहि ॥ १७ ॥ गृहीत्वामृत्तिकांकूलाच्छ्वेतांब्राह्मणसत्तमः ॥ रक्तांपीतांतथाकृष्णांगृह्णीयुश्चान्यवर्णकाः ॥१८॥ अथवायायत्रदेशेसैवग्राह्याद्विजोत्तमैः ॥ अंतर्जलादेवगृहाद्वल्मीकान्मूषकोत्करात् ॥ १९ ॥ कृतशौचावशिष्टाचनग्राह्याःसप्तमृत्तिकाः ॥ मूत्रात्तुद्विगुणंशौचेमैथुनेत्रिगुणंस्मृतम् ॥ २०॥ एकांलिंगेकरेतिस्रउभयोर्मृद्द्वयंस्मृतम् ॥ मूत्रशौचंसमाख्यातंशौचेताद्विगुणंस्मृतम् ॥ २१ ॥

मृत्तिका पत्ते और तृण डाल दे जिससे सूर्यकी किरणे न पडैं ॥ १६ ॥ फिर मेढ्र ग्रहण किये उठकर जलके समीप जाय और पात्रमें जल ग्रहण कर अन्यत्र जाय ॥ १७ ॥ किनारेसे अच्छी श्वेतवर्णकी मृत्तिकाको ग्रहण करै और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, रक्त, पीत, कृष्णवर्णकी मृत्तिका ग्रहण करै ॥ १८ ॥ अथवा अभावमें जिस देशमें जो हो द्विजोत्तम उसीको ग्रहण करे जलके भीतरसे, देवगृहसे बँबईसे मूषककीखोदी हुई ॥ १९ ॥ शौचसे अवशिष्ट रही मृत्तिका यह सात मृत्तिका ग्रहण न करै मूत्रसे दूनी शौचमें और मैथुनमें तिगुनी पवित्रता करै॥ २०॥एकवार लिंगमें तीनवार हाथमें दोनों हाथोंमें दोवार मूत्र करनेपर शुद्धि करै और शौचमें उससे दूना करै२१॥

विष्ठाशौचमें लिंगदेशमें दोवार मृत्तिका लगावै पांचवार गुदामें दशवार हाथमें और फिर सातवार दोनों हाथोंमें मृत्तिका लगावै ॥ २२ ॥ वाम चरणको आगे कर पीछे दक्षिणको आगेकर प्रत्येकमें चार २ वार मृत्तिका लगावै ॥ २३ ॥ इस प्रकार गृहस्थीका शौच कहा है ब्रह्मचारीका इससे दूना वानप्रस्थका तिगुना और यतियोंका चौगुना है ॥ २४ ॥ गीली आमलेकी समान मृत्तिका शौच कर्ममें लेनी चाहिये यह एक २ वार ग्रहण करै इससे न्यून न करै ॥ २५ ॥ यह दिनका शौच कहा रातको इससे आधा करै आतुरको इससे आधा और मार्गमें स्थितको इससे भी आधा करना चाहिये ॥ २६ ॥ स्त्री, शूद्र, अशक्त और बालकोंको शौचकर्म वहांतक करै जहांतक गंधक्षय हो इसमें संख्या नहीं है ॥ २७ ॥ जबतक गंध और लेपका क्षय हो तबतक अशुद्ध है यह सब वर्णोंके निमित्त है ऐसा भगवान् मनुने

विट्शौचे लिंगदेशे तु प्रदद्यान्मृत्तिकाद्वयम् ॥ पंचाऽपाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्तमृत्तिकाः ॥२२॥ वामपादं पुरस्कृत्य पश्चाद्दक्षिणमेव च ॥ प्रत्येकं च चतुर्वारं मृत्तिकां लापयेत्सुधीः ॥२३॥ एवं शौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ त्रिगुणं वानप्रस्थस्य यतीनां च चतुर्गुणम् ॥२४॥ आर्द्रामलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि ॥ प्रत्येकं तु सदा ग्राह्या नातो न्यूना कदाचन ॥ २५ ॥ एतद्दिवा स्याद्विट्शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् ॥ आतुरस्य तदर्धं तु मार्गस्थस्य तदर्धकम् ॥२६॥ स्त्रीशूद्राणामशक्तानां बालानां शौचकर्मणि ॥ यथा गंधक्षयः स्यात्तु तथा कुर्यादसंख्यकम् ॥ २७ ॥ गंधलेपक्षयो यावत्तावच्छौचं विधीयते ॥ सर्वेषामेव वर्णानामित्याह भगवान्मनुः ॥ २८ ॥ वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न ॥ नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः ॥ २९ ॥ शौचकर्मणि विज्ञेयो नान्यथा द्विजपुंगवैः ॥ जलपात्रं न गृह्णीयाद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः ॥ ३० ॥ गृह्णीयाद्यदि मोहेन प्रायश्चित्तं चरेत्ततः ॥ मोहाद्वाप्यथवाऽऽलस्यान्न कुर्याच्छौचमात्मनः ॥३१॥ जलाहारस्त्रिरात्रः स्यात्ततो जापाच्च शुध्यति ॥ देशकालद्रव्यशक्तिस्वोपपत्तीश्च सर्वशः ॥३२॥ ज्ञात्वा शौचं प्रकर्तव्यमालस्यं नात्र धारयेत् ॥ पुरीषोत्सर्जने कुर्याद्गंडूषान्द्वादशैव तु ॥ ३३ ॥ चतुरो मूत्रविक्षेपे नातो न्यूनान्कदाचन ॥ अधोमुखं नरः कृत्वा त्यजेत्तं वामतः शनैः ॥ ३४ ॥

कहा है ॥ २८ ॥ वाम हाथसे शौच करै दक्षिणसे नहीं नाभिसे नीचे बायाँ हाथ रहै नाभिसे ऊपर दहना रहे ॥२९॥ यह शौचकर्मकी विधिमें है अन्यथा नहीं विष्ठा मूत्र उत्सर्जन करते समय जलपात्रको ग्रहण न करै॥ ३०॥ और जो मोहसे ग्रहण करे तो प्रायश्चित्त करै जो मोह वा आलस्यसे अपना शौच नहीं करै तो॥ ३१॥ तीनरात तक जलाहार मात्र करता हुआ गायत्रीके जपसे शुद्ध होता है देश काल द्रव्य शक्ति और अपनी उपपत्ति ॥ ३२ ॥ विचारकर शौच करना चाहिये इसमें आलस्य न करै पुरीषउत्सर्जनके उपरान्त बारह कुल्ले करै ॥ ३३॥ मूत्र करने उपरान्त चार कुल्ले करै कमती नहीं नीचेको मुखकरता हुआ वाम ओरसे त्यागन करै ॥ ३४ ॥

फिर आचमन कर आदरसे दँतोन करै जो कीकड,अश्वत्थ गूलर, पिलखन, न्यग्रोधादिकी बारह अंगुल प्रमाणकी व्रणादिसे रहित हो ॥ ३५ ॥ जो कनिष्ठिकाके अग्रभागवत् स्थूल हो पूर्वार्द्ध जिसका पत्थरसे कूटकर कूचीकी समानकिया हो करंज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध, चम्पा ॥ ३६ ॥ बेरी इनकी दँतौन करनी उत्तम है मंत्र यह है कि, अन्नके भक्षण और शत्रुओंके ध्वंसके निमित्त सोमराजा इस वृक्षमें प्रगट है ॥ ३७ ॥ वह यश और ऐश्वर्यद्वारा मेरे मुखको प्रक्षालन करै आयु, बल, यश, कान्ति, प्रजा, पशु, धन ॥ ३८ ॥ ब्रह्म, प्रज्ञा और मेधा हे वनस्पते! मुझे दीजिये निषिद्ध दिनोंमें जब कि, दँतोन न की जाती हो ॥ ३९ ॥ जलके बारह कुल्लेमे दँतौन करै उसने सविताका भक्षण और अपने कुलका घात किया ॥ ४० ॥ जिसने पडवा अमावस छठ नौमी एकादशी रविवारको दँतौनकी इन दिनोंमें

आचम्यचततःकुर्याद्दंतधावनमादरात् ॥ कंटकिक्षीरवृक्षोत्थंद्वादशांगुलमव्रणम् ॥ ३५ ॥ कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलंपूर्वार्धेकृतकूर्चकम् ॥ करंजोदुंबरौचूतः कदंबोलोध्रचंपको ॥३६॥ बदरीतिद्रुमाश्चेतिप्रोक्तादंतप्रधावने ॥ अन्नाद्यायव्यूहध्वंसेसोमोराजायमागमत् ॥३७॥ समेमुखंप्रक्षाल्यतेयशसाचभगेनच॥ आयुर्बलंयशोवर्चःप्रजाःपशुवसूनिच ॥ ३८ ॥ ब्रह्मप्रज्ञांचमेधांचत्वन्नोदेहिवनस्पते ॥ अभावेदंतकाष्ठस्यप्रतिषिद्धदिनेषुच ॥ ३९ ॥ अपांद्वादशगंडूषै र्विदध्याद्दंतधावनम् ॥ सविताभक्षितस्तेनस्वकुलंतेनघातितम्॥४०॥प्रतिपद्दर्शपष्ठीषुनवम्येकादशीरवौ॥दंतानांकाष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमंकुलम् ॥४१॥ कृत्वाऽलंपादशौचंद्यमलमथजलंत्रिःपिबेद्विर्विमृज्यतर्जन्यांगुष्ठवत्यासजलमभिमृशेन्नासिकारंध्रयुग्मम् ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यांनयनयुगयुतंकर्णयुग्मंक निष्ठांगुष्ठाभ्यांनाभिदेशेहृदयमथतलेनांगुलीभिःशिरांसि ॥४२॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ "शुद्धंस्मार्तंचाचमनंपौराणंवैदिकंतथा ॥ तांत्रिकंश्रौतमित्याहुःषड्विधंश्रुतिचोदितम् ॥ विण्मूत्रादिकशौचंचशुद्धंचपरिकीर्तितम्॥ स्मार्तंपौरा णिकंकर्मआचांतिविधिपूर्वकम् ॥ वैदिकंश्रौत्रमित्यादिब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम् ॥ अस्त्रविद्यादिकंकर्मतांत्रिकोविधिरुच्यते ॥ " स्मृत्वाचोंकारगायत्रींनिबध्नी याच्छिखांतथा ॥ पुनराचम्यहृदयंबाहूस्कंधौचसंस्पृशेत् ॥ १ ॥

दाँतोंमें काष्ठका संयोग होनेसे सातकुलतक दग्ध करता है ॥ ४१ ॥ फिर निर्मल जलसे पादशौच करकै तीनवार उत्तम जल पिये, फिर तर्जनी और अँगूठेसे दोबार जलस्पर्श कर नासिकाके दोनों पुटछुये फिर अंगुष्ठ अनामिकासे दोनों नेत्र फिर कनिष्ठिका अंगुष्ठसे कान और हृदय करतलसे सब अंगुलियोंसे शिरस्पर्श करै ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ श्रीनारायण बोले " शुद्ध, स्मार्त आचमन, पुराण, वेद, तंत्र, श्रुतिमें कहाहुआ आचमन छःप्रकारका है विष्ठा मूत्र आदिद्वारा शौचकरने उपरान्त आचमन करना शुद्ध कहाता है, स्मार्त पौराणिक कर्मके उपरान्त कियाहुआ आचमन स्मार्त और

पौराणिक कहाता है ब्रह्मयज्ञादि पूर्वक आचमन वैदिक और श्रौत कहाता है अन्नविद्यादि कर्ममें तांत्रिक विधिका आचमन कहाता है" ॐकारपूर्वक गायत्रीका स्मरण कर शिखा बाँधे फिर आचमन कर हृदय वा बाहु और कंधोंको छुये ॥ १ ॥ छींक,खकार, दांतोंकी उच्छिष्ट, असत्यभाषण और पतितोंसे भाषण करनेमें दहिना कान स्पर्श करे ॥ २ ॥ अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य, अनिल (वायु) यह सब ब्राह्मणके दहिने कानमें स्थित रहते हैं यह मंत्र पढे ॥ ३ ॥ फिर नदीआदिमें जाकर प्रभातस्नानकी शुद्धि करे. हे मुने ! इससे देहकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥ यह देह अत्यन्त मलिन है इसके नौओं द्वारोंसे मल बहता है इनके शोधनको सदा प्रभात स्नान करे ॥ ५ ॥ अगम्या स्त्रीमें गमनका पाप प्रतिग्रहका पाप गुप्तपाप भी स्नान करनेसे नष्ट होजाते हैं ॥६॥ विनास्नान कियेकी सब क्रिया नष्ट होजाती है

क्षुतेनिष्ठीवनेचैवदंतोच्छिष्टेतथाऽनृते ॥ पतितानांचसंभाषेदक्षिणंश्रवणंस्पृशेत् ॥ २ ॥ अग्निरापश्चवेदाश्चसोमःसूर्योऽनिलस्तथा ॥ सर्वेनारद विप्रस्यकर्णेतिष्ठंतिदक्षिणे ॥ ३ ॥ ततस्तुगत्वानद्यादौप्रातःस्नानंविशोधनम् ॥ समाचरेन्मुनिश्रेष्ठदेहसंशुद्धिहेतवे ॥ ४ ॥ अत्यंतमलिनोदेहोनवद्वारैर्मलंवहन् ॥ सदाऽऽस्तेतच्छोधनायप्रातःस्नानंविधीयते ॥ ५ ॥ अगम्यागमनात्पापंयच्चपापंप्रतिग्रहात् ॥ रहस्याचरितंपापंमुच्यतेस्नानकर्मणा ॥ ६ ॥ अस्नातस्यक्रियाःसर्वाभवंतिविफलायतः ॥ तस्मात्प्रातश्चरेत्स्नानंनित्यमेवदिनेदिने ॥७॥ दर्भयुक्तश्चरेत्स्नानंतथासंध्याभिवंदनम् ॥ सप्ताहंप्रातरस्नायीसंध्याहीनस्त्रिभिर्दिनैः ॥ ८ ॥ द्वादशाहमनग्निःसन्द्विजःशूद्रत्वमाप्नुयात् ॥ अल्पत्वाद्धोमकालस्यबहुत्वात्स्नानकर्मणः ॥ ९ ॥ प्रातर्नतुतथास्नायाद्धोमकालेविगर्हितः ॥ गायत्र्यास्तुपरंनास्तिइहलोकेपरत्रच ॥१०॥ गायंतंत्रायतेयस्माद्गायत्रीत्यभिधीयते॥प्रणवेनतुसंयुक्तांव्याहृतित्रयसंयुताम् ॥११॥ वायुंवायौजयेद्विप्रःप्राणसंयमनत्रयात् ॥ ब्राह्मणःश्रुतिसंपन्नःस्वधर्मनिरतःसदा ॥ १२ ॥ सवैदिकंजपेन्मंत्रंलौकिकंनकदाचन ॥ गोशृंगेसर्षपोयावत्तावद्वेपांनसस्थिरः ॥ १३ ॥

इसकारण प्रतिदिन नित्य प्रभातमें स्नान करे ॥ ७ ॥ कुशाग्रहण करके स्नान और सन्ध्यावंदन करे प्रभातस्नान नकरनेसे सातदिनमें, विनासंध्याके तीन दिनमें ॥ ८ ॥ अग्नि होत्र न करनेसे बारह दिनमें द्विज शूद्रत्वको प्राप्त होजाताहै स्नानादिविधिके बहुत होने और हवनकालके अल्प होनेसे इसप्रकार स्नानविधि करके तथा सन्ध्यादि विधि करनेमें होमकाल नहीं मिलताहै ॥ ९ ॥ इससे प्रभातकालमें वैसी विधिसे स्नान नकरके संक्षेपसे करे इसलोक और परलोकमें गायत्रीसे परे कुछ नहीं है ॥ १० ॥ अपने जपनेवालेकी रक्षा करती है इसीसे इसको गायत्री कहते हैं ओंकार और तीनों व्याहृतियोंके सहित ॥ ११ ॥ ब्राह्मण तीनवार प्राणायाम करके वायुका निरोध करे श्रुतिसम्पन्न ब्राह्मण सदा अपने धर्ममें निरत हुआ ॥ १२ ॥ वैदिक मंत्रका जप करे लौकिक मंत्रका नहीं गौके शृंगपर जितनी देर सरसौं स्थित रहती है इतने

कालतक भी जिनका प्राणनिरोध नहीं होता ॥ १३ ॥ वह माता पिताके १०१ एकसौ एक पितरोंको तारनेमें समर्थ नहीं होता सगर्भ प्राणायाम जपसे युक्त और अगर्भ ध्यानमात्रका होताहै ॥ १४ ॥ स्नानका अंग भूत तर्पण देवता पितरोंको संतुष्ट करताहै जलसे बाहर आय शुद्ध वस्त्र धारण कर ॥ १५ ॥ विभूति और रुद्राक्ष धारण करै जपसाधकोंको सदा क्रमयोगसे करना चाहिये ॥ १६ ॥ कंठमें ३२ मस्तकमें ४० कानोंमें छः छः, बारह २ हाथोंमें, भुजदण्डोंमें सोलह, सोलह, नेत्रमें एक, शिखामें एक वक्षस्थलमें १०८ जो धारण करता है वह स्वयं शिवस्वरूप होता है ॥ १७ ॥ सुवर्ण अथवा चांदीके तारमें हे मुने ! रुद्राक्ष पिरोकर शिखा वा कर्णमें धारण करना

नतारयंत्युभौपक्षौपितृनेकोत्तरंशतम् ॥ सगर्भोजपसंयुक्तअगर्भोध्यानमात्रकः ॥ १४ ॥ स्नानांगतर्पणंकृत्वादेवर्षिपितृतोषकम् ॥ शुद्धेवस्त्रे परीधायजलाद्बहिरुपागतः ॥ १५ ॥ विभूतिधारणंकार्यंरुद्राक्षाणांचधारणम् ॥ क्रमयोगेनकर्तव्यंसर्वदाजपसाधकैः ॥ १६ ॥ रुद्राक्षान्कंठदेशेदशनपरिमितान्मस्तकेविंशतीद्वेषट्षट्कर्णप्रदेशेकरयुगलकृतेद्वादशद्वादशैव ॥ बाह्वोरिंदोःकलाभिर्नयनयुगकृतेत्वेकमेकंशिखायांवक्षस्यष्टाधिकंयः कलयतिशतकंसस्वयंनीलकंठः ॥ १७ ॥ बद्धास्वर्णेनरुद्राक्षंरजतेनाऽथवामुने ॥ शिखायांधारयेन्नित्यंकर्णयोर्वासमाहितः ॥ १८ ॥ यज्ञोपवीतेहस्तेवाकंठे तुंदेऽथवानरः ॥ श्रीमत्पंचाक्षरेणैवप्रणवेनतथापिवा ॥ १९ ॥ निर्व्याजभक्त्यामेधावीरुद्राक्षंधारयेन्मुदा ॥ रुद्राक्षधारणंसाक्षाच्छिवज्ञानस्यसाधनम् ॥ ॥ २० ॥ रुद्राक्षंयच्छिखायांतत्तारतत्त्वमितिस्मरेत् ॥ कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन्देवंदेवींचभावयेत् ॥ २१ ॥ यज्ञोपवीतेवेदांश्चतथाहस्तेदिशः स्मरेत् ॥ कंठेसरस्वतींदेवींपावकंचापिभावयेत् ॥ २२ ॥ सर्वाश्रमाणांवर्णानांरुद्राक्षाणांचधारणम् ॥ कर्तव्यंमंत्रतःप्रोक्तंद्विजानांनान्यवर्णिनाम् ॥ २३ ॥

चाहिये ॥ १८ ॥ यज्ञोपवीतमें, हाथमें, कंठमें, तुंदमें, पंचाक्षर मंत्र नमःशिवाय वा ॐकारसे धारण करै ॥ १९ ॥ बुद्धिमान् निष्काम भक्तिसे रुद्राक्षको धारण करै रुद्राक्षका धारण साक्षात् शिवके ज्ञानका साधक होता है ॥ २० ॥ शिखामें रुद्राक्ष है इस तारकतत्वका स्मरण करै दोनों कानोंके रुद्राक्षमें देवदेवीको भावना करै ॥ २१ ॥ यज्ञोपवीतमें वेदोंकी, हाथोंमें दिशाओंकी, कंठमें सरस्वती देवी और अग्निकी भावना करै ॥ २२ ॥ सब आश्रम और वर्णोंको रुद्राक्ष धारण करना

चाहिये उनमें द्विजातियोंको मंत्रपूर्वक धारण करना चाहिये अन्यथा नहीं ॥ २३ ॥ रुद्राक्षके धारण करनेसे वह निःसन्देह रुद्रही होजाता है निषिद्धोंको देखता सुन्ता स्मरण करता हुआ ॥ २४ ॥ सूँघता, खाता, प्रलाप करता, गमन विसर्जनमें इन निषिद्ध कर्मोंको करता हुआ ॥ २५ ॥ रुद्राक्ष धारण करनेसे फिर उसको पाप नहीं लगता है इसका भोजन किया हुआ देवताओंके भोजन करनेकी समान है ॥ २६ ॥ जो उसने पान किया सो रुद्रने उसने सूंघा सो शिवने हे महामुने ! जिनको रुद्राक्ष धारणमें लज्जा है ॥ २७ ॥ उनका संसारसे कोडजन्ममें भी निस्तार नहीं होता रुद्राक्षधारणको देखकर जो निन्दाकरता है ॥ २८ ॥ उसकी उत्पत्तिमें संकरता

रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो भवत्येव न संशयः ॥ पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन् ॥ २४ ॥ जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन्प्रलपन्नपि संततम् ॥ कुर्वन्नपि सदा गच्छन्विसृजन्नपि मानवः ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते ॥ अनेन भुक्तं देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत् ॥ २६ ॥ पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं घ्रातं शिवेन तत् ॥ रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने ॥ २७ ॥ तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ रुद्राक्षधारिणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः ॥ २८ ॥ उत्पत्तौ तस्य सांकर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः ॥ रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ मुनयः सत्यसंकल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः ॥ रुद्राक्षधारणाच्छ्रेष्ठं न किंचिदपि विद्यते ॥ ३० ॥ रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयेत विमोदतः ॥ पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ३२ ॥ रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ३३ ॥ हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः ॥ रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन्रुद्रतामियात् ॥ ३४ ॥ रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते ॥ समंत्रकं वा मंत्रेण रहितं भाववर्जितम् ॥ ३५ ॥

है यह निश्चय है, रुद्राक्षके धारणसे रुद्र भी रुद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ मुनि सत्यसंकल्प और ब्रह्मा ब्रह्मत्वको प्राप्तहुए रुद्राक्षधारणसे कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं है ॥ ३० ॥ रुद्राक्षधारीके निमित जो वस्त्र और धान्य देताहै वह सब पापसे रहित होकर शिवलोकको जाता है ॥ ३१ ॥ जो रुद्राक्षधारीको प्रसन्न होकर जिमाता है वह पितृलोकको प्राप्तहोताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष रुद्राक्षधारण किये पुरुषको चरण धोकर जलपानकरे वह सब पापसे मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्तहोताहै ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण हार कटक वा सुवर्णको रुद्राक्षके सहित धारणकरता है वह रुद्रताको प्राप्तहोता है ॥ ३४ ॥ हे महामते ! केवल रुद्राक्षको भी जहां

कहीं मंत्र वा अमन्त्रसे भाव वा अभावसे ॥ ३५ ॥ जो कोई भक्ति वा लज्जासे भी धारणकरताहै वह सर्वपापसे रहित हो भलीप्रकारके ज्ञानको प्राप्तहोताहै ॥ ३६ ॥ अहो! मैं रुद्राक्षका माहात्म्य नहीं कहसकता. इससे सबप्रकार रुद्राक्षधारणकरै ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारदजी बोले हे अनघ! जब रुद्राक्षका इसप्रकारका प्रभाव है और महान् पुरुषोंसे पूजित है तो इसका क्या कारण है? कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले यही वार्ता पहले भगवान् गिरीशसे षण्मुखने पूँछी थी रुद्रने इसपर जो कहा सो सुनो ॥ २ ॥ ईश्वर बोले हे कुमार! तत्वपूर्वक सुनो मैं संक्षेपसे कहता हूं. पहले एक त्रिपुरनामक दैत्य बडा दुर्जय होगया है ॥ ३ ॥ उसने ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवताओंको तिरस्कृतकरदिया, तब सबने उसकी व्यवस्था मुझसे कही ॥ ४ ॥ तब मैं अपने अघो

योवाकोवानरोभक्त्याधारयेल्लज्जयाऽपिवा ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःसम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात् ॥३६॥ अहोरुद्राक्षमाहात्म्यंमयावक्तुंनशक्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकुर्याद्रुद्राक्षधारणम् ॥३७॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेसदाचारवर्णनेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ छ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ एवंभूतानुभावोऽयंरुद्राक्षोभवतानघ ॥ वर्णितोमहतांपूज्यःकारणंतत्रकिंवद ॥ १ ॥ नारायणउवाच ॥ एवमेवपुरापृष्टोभगवान्गिरिशःप्रभुः ॥ षण्मुखेनचरुद्रस्तंयदुवाचशृणुष्वतत् ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुषण्मुखतत्त्वेनकथयामिसमासतः ॥ त्रिपुरोनामदैत्यस्तुपुराऽसीत्सर्वदुर्जयः ॥३॥ हतास्तेनसुराःसर्वेब्रह्मविष्ण्वादिदेवताः ॥ सर्वैस्तुकथितेतस्मिंस्तदाऽहंत्रिपुरंप्रति ॥ ४ ॥ अचिंत्यंमहाशस्त्रमघोराख्यंमनोहरम् ॥ सर्वदेवमयंदिव्यंज्वलंतंघोररूपियत् ॥ ५ ॥ त्रिपुरस्यवधार्थायदेवानांतारणायच ॥ सर्वविघ्नोपशमनमघोरास्त्रमचिंतयम् ॥ ६ ॥ दिव्यवर्षसहस्रंतुचक्षुरुन्मीलितंमया ॥ पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्यःपतिताजलबिंदवः ॥ ७ ॥ तत्राश्रुबिंदुतोजातामहारुद्राक्षवृक्षकाः ॥ ममाऽऽज्ञयामहासेनसर्वेषांहितकाम्यया ॥ ८ ॥ बभूवुस्तेचरुद्राक्षाअष्टत्रिंशत्प्रभेदतः ॥ सूर्यनेत्रसमुद्भूताःकपिलाद्वादशस्मृताः ॥९॥ सोमनेत्रोत्थिताःश्वेतास्तेषोडशविधाःक्रमात् ॥ वह्निनेत्रोद्भवाःकृष्णादशभेदाभवंतिहि ॥ १० ॥

रनामक महाशस्त्रको विचारकर जो सब देवमय दिव्य ज्वलित महाघोररूपी है ॥५॥ उस समय त्रिपुरके वधकरने और देवताओंकी रक्षा करनेको सब विघ्नके नाशके निमित्त अघोर अस्त्रका चिन्तन किया ॥ ६ ॥ दिव्यसहस्रवर्षतक मैंने नेत्र निमीलित किये तब मेरे नेत्रोंसे जलबिन्दु गिरे ॥ ७ ॥ उन आसुओंकी बूंदोंसे महारुद्राक्षके वृक्ष उत्पन्न हुए हे महासेनापते! सबके हितकी कामनासे मेरी आज्ञासे उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ वे अट्ठाईस प्रकारके भेदवाले हुए सूर्यनेत्रसे उत्पन्न कपिलवर्णके बारह उत्पन्नहुए ॥ ९ ॥ सोमनेत्रसे उत्पन्न हुए श्वेतवर्णके सोलहप्रकारके हैं और वह्निनेत्रसे उत्पन्नहुए कृष्णवर्ण दशभेदवाले हैं ॥ १० ॥

श्वेतवर्ण रुद्राक्ष जातिसे ब्राह्मण कहाता है, रक्तवर्ण क्षत्रिय, मिश्र वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्रसंज्ञक है ॥ ११ ॥ एकमुखी साक्षात् शिव ब्रह्महत्याको दूर करता है. दोमुखी देवी और देवतास्वरूप है अनेक पाप दूरकरताहै ॥ १२ ॥ तीनमुखी साक्षात् अनल स्त्रीहत्या दूरकरता है चतुर्मुखी स्वयं ब्रह्मा नरहत्या दूरकरता है ॥ १३ ॥ पंचमुखी साक्षात् रुद्र कालाग्नि नामक है वह अभक्ष्यभक्षण और अगम्यागमन अपराधसे ॥ १४ ॥ तथा और भी सब पापोंसे मुक्त करता है. षण्मुखवाले साक्षात् कार्तिकेय हैं इनको दक्षिणहाथमें धारणकरना चाहिये ॥ १५ ॥ तो वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे छुटजाते हैं इसमें सन्देह नहीं सातमुखी

श्वेतवर्णश्वरुद्राक्षोजातितोब्राह्मउच्यते॥क्षात्रोरक्तस्तथामिश्रोवैश्यःकृष्णस्तुशूद्रकः॥११॥एकवक्रःशिवःसाक्षाद्ब्रह्महत्यांव्यपोहति॥द्विवाक्रोदेवदेव्योस्या द्विविधंनाशयेदघम्॥१२॥त्रिवक्रस्त्वनलःसाक्षात्स्त्रीहत्यांदहतिक्षणात्॥चतुर्वक्रःस्वयंब्रह्मानरहत्यांव्यपोहति ॥१३॥ पंचवक्रःस्वयंरुद्रःकालाग्निर्नामना मतः॥अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः॥१४॥मुच्यतेसर्वपापैस्तुपंचवक्रस्यधारणात्॥षड्वक्रःकार्तिकेयस्तुसधार्योदक्षिणेकरे ॥१५॥ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः॥सप्तवक्रोमहाभागोह्यनंगोनामनामतः॥१६॥तद्धारणान्मुच्यतेहिस्वर्णस्तेयादिपातकैः ॥ अष्टवक्रोमहासेनसाक्षाद्देवोविनायकः ॥ ॥१७॥अन्नकूटंतूलकूटंस्वर्णकूटंतथैवच॥दुष्टान्वयास्त्रियंवाऽथसंस्पृशंश्चगुरुस्त्रियम्॥१८॥एवमादीनिपापानिहंतिसर्वाणिधारणात्॥विघ्नास्तस्यप्रणश्यंति यातिचांतेपरंपदम् ॥ १९ ॥ भवंत्येतेगुणाःसर्वेह्यष्टवक्रस्यधारणात् ॥ नववक्रोभैरवस्तुधारयेद्वामबाहुके ॥ २० ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदःप्रोक्तोममतुल्यबलोभ वेत् ॥ भ्रूणहत्यासहस्राणिब्रह्महत्याशतानिच ॥ २१ ॥ सद्यःप्रलयमायांतिनववक्रस्यधारणात् ॥ दशवक्रस्तुदेवेशःसाक्षाद्देवोजनार्दनः ॥ २२ ॥

अनंगनामक है यह महाभाग है ॥ १६ ॥ इसके धारणादिसे स्वर्णचोरी आदिके पापसे छुटजाता है. हे पुत्र ! अष्टमुखी साक्षात् विनायकदेव है ॥ १७ ॥ अन्नकूट, तुलाकूट, स्वर्णकूट, दुष्टवंशस्त्री वा गुरुस्त्रीका स्पर्श ॥ १८॥ इत्यादि पाप उसके धारणसे दूर होते हैं उनके सब पापनाश होजाते हैं और अन्तमें परमपदको जाते हैं ॥ ॥ १९ ॥ यह सब गुण अष्टमुखीके धारणकरनेसे होते हैं. नौमुखका भैरव है उसे बाईं भुजामें धारणकरना चाहिये ॥ २० ॥ उसको भुक्तिमुक्तिकी प्राप्ति और मेरी तुल्यबल होता है सहस्रों गर्भहत्या सैकडों ब्रह्महत्या ॥ २१ ॥ नौमुखीके धारणसे शीघ्रही नाश होजाती है दशमुखी साक्षात् देवदेव जनार्दन है ॥ २२ ॥

ग्रह, पिशाच वेताल, ब्रह्मराक्षस, पन्नगादि सब दशमुखके धारणसे शान्त होजाते हैं॥ २३॥ एकादशमुखी साक्षात् रुद्रहै जो इसको शिखामें धारणकरतेहैं उसके पुण्यफलको
सुनो ॥ २४ ॥ सहस्रअश्वमेध सौ वाजपेय और सौ सहस्र गोदानका जो फल है ॥ २५ ॥ वह एकादशमुखी रुद्राक्षके धारणकरनेसे मिलता है और द्वादशमुखी
रुद्राक्ष कर्णमें धारण करे ॥ २६ ॥ तो उससे बारह आदित्य प्रसन्न होजाते हैं. गोमेध और अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ शृंगवाले शस्त्रधारी और
व्याघ्रादिका भय नहीं होता उसकी आधि व्याधिका भी भय नहीं होता ॥ २८ ॥ न उसको कोई भय और न व्याधि होती है न कहीं भय होता किन्तु सर्वत्र सुख
होता है तथा अधिपति होता है ॥ २९ ॥ हाथी, अश्व, मृग, मार्जार, मूषक, दर्दुर खर, कुत्ते, शृगाल बहुत प्रकारके जीवोंको मारकर भी ॥ ३० ॥ द्वादशमुखी रुद्रा

ग्रहाश्चैवपिशाचाश्चवेतालाब्रह्मराक्षसाः॥ पन्नगाश्चोपशाम्यंतिदशवक्त्रस्यधारणात्॥२३॥वक्त्रैकादशरुद्राक्षोरुद्रैकादशकंस्मृतम् ॥ शिखायांधारयेद्योवैत
स्यपुण्यफलंशृणु ॥ २४ ॥ अश्वमेधसहस्रस्यवाजपेयशतस्यच ॥ गवांशतसहस्रस्यसम्यग्दत्तस्ययत्फलम् ॥२५ ॥ तत्फलंलभतेशीघ्रंवक्त्रैकादशधार
णात् ॥ द्वादशास्यस्यरुद्राक्षस्यैवकर्णेतुधारणात्॥२६॥आदित्यास्तोषितानित्यंद्वादशास्येव्यवस्थिताः॥गोमेधेचाऽश्वमेधेचयत्फलंतदवाप्नुयात्॥२७॥
शृंगिणांशस्त्रिणांचैवव्याघ्रादीनांभयंनहि ॥ नचव्याधिभयंतस्यनैवचाधिःप्रकीर्तितः ॥२८ ॥ नचकिंचिद्भयंतस्यनचव्याधिःप्रवर्तते॥नकुतश्चिद्भयंतस्य
सुखीचैवेश्वरोभवेत् ॥ २९ ॥ हस्त्यश्वमृगमार्जारसर्पमूषकदर्दुरान् ॥ खरांश्चश्वशृगालांश्चहत्वाबहुविधानपि ॥ ३० ॥ मुच्यतेनात्रसंदेहोवक्त्रद्वादशधार
णात् ॥ वक्त्रत्रयोदशोवत्सरुद्राक्षोयदिलभ्यते ॥ ३१ ॥ कार्तिकेयसमोज्ञेयःसर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ रसोरसायनंचैवतस्यसर्वंप्रसिध्यति ॥३२॥ तस्यैवस
र्वभोग्यानिनात्रकार्याविचारणा ॥ मातरंपितरंचैवभ्रातरंवानिहंतियः ॥ ३३ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्योधारणात्तस्यषण्मुख ॥ चतुर्दशास्योरुद्राक्षोयदिलभ्ये
तपुत्रक ॥३४॥ धारयेत्सततंमूर्ध्नितस्यपिंडःशिवस्यतु ॥ किंमुनेबहुनोक्तेनवर्णनेनपुनःपुनः ॥ ३५ ॥ पूज्यतेसंततंदेवैःप्राप्यतेचपरागतिः ॥ रुद्राक्षएकः
शिरसाधार्योभक्त्याद्विजोत्तमैः ॥ ३६ ॥ षड्विंशद्भिःशिरोमालापंचाशद्धृदयेनतु ॥ कलाक्षैर्बाहुवलयेअर्काक्षैर्मणिबंधनम् ॥ ३७ ॥

क्षधारणसे इनके पापसे छूटजाता है. हे वत्स ! यदि तेरहमुखी रुद्राक्ष प्राप्त होजाय ॥ ३१ ॥ तब वह कार्तिकेयकी समान सब अर्थ और कामका देनेवाला होता है
उसको रस रसायन सब सिद्ध होजाती हैं॥ ३२॥ उसको सब भोग प्राप्त होतेहैं इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं जो माता पिता वा भाईको मारताहै॥ ३३॥ हेषण्मुख!
वह उसके धारणसे उस पापसे मुक्त होजाता है. हे पुत्र ! यदि चौदहमुखी रुद्राक्ष धारण करता है ॥ ३४ ॥ तो शिरपर धारण करनेसे शिवके शरीररूप होता है. हेमुने !
वारंवार वर्णनसे क्याहै ॥ ३५॥ वह सदा देवतोंसे पूजित होकर परमगतिको प्राप्त होता है. एकही रुद्राक्ष शिखापर भक्तिसे धारण करनेसे ॥ ३६॥ छब्बीसकी माला शिरपर,

पचासकी हृदयमें, सोलहकी बाहुमें, बारहकी मणिबंधमें ॥ ३७ ॥ हे षडानन! एकसौआठ, पचास, अथवा सत्ताईस दानेकी रुद्राक्षमाला ॥ ३८ ॥ धारण वा जपसे अनन्त फल होता है जो१०८रुद्राक्षोंकी माला धारणकरते हैं॥ ३९॥हेषण्मुख! उसको क्षण२ में अश्वमेधका फल प्राप्त होता है.तथा२१कुल उद्धारकर शिवलोकमें प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ ईश्वर बोले हे षण्मुख! जपमालाका लक्षण सुनो मैं कहताहूं रुद्राक्षका मुख ब्रह्माबिन्दु रुद्र कहा है ॥ १ ॥ विष्णु पुच्छ है जो भोगमोक्षको देनेवाला है पचीस रुद्राक्षोंकी पंचमुखी कंटकमाला ॥ २ ॥ जो लाल श्वेत वर्णोंसे मिश्रित रन्ध्रद्वारा ग्रथित होतो गोपुच्छबढ़ायके आकारमाला निर्माण करनी चाहिये ॥ ३ ॥ मुखसे मुख

अष्टोत्तरशतेनापिपंचाशद्भिःषडानन ॥ अथवासप्तविंशत्याकृत्वारुद्राक्षमालिकाम् ॥ ३८ ॥ धारणाद्वाजपाद्वापिह्यनंतंफलमश्नुते ॥ अष्टोत्तरशतैर्मालारुद्राक्षैर्धार्यतेयदि ॥ ३९ ॥ क्षणेक्षणेऽश्वमेधस्यफलंप्राप्नोतिषण्मुख ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्याशिवलोकेमहीयते ॥ ४० ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणे एकादशस्कंधेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ईश्वरउवाच ॥ लक्षणंजपमालायाःशृणुवक्ष्यामिषण्मुख ॥ रुद्राक्षस्यमुखंब्रह्माबिंदूरुद्रइतीरितः ॥ १ ॥ विष्णुःपुच्छंभवेच्चैवभोगमोक्षफलप्रदम् ॥ पंचविंशतिभिश्चाक्षैःपंचवक्त्रैःसकंटकैः ॥ २ ॥ रक्तवर्णैःसितैर्मिश्रैःकृतरंध्रविदर्भितैः ॥ अक्षसूत्रंप्रकर्तव्यंगोपुच्छवलयाकृति ॥ ३ ॥ वक्त्रंवक्त्रेणसंयोज्यपुच्छंपुच्छेनयोजयेत् ॥ मेरुमूर्ध्वमुखंकुर्यात्तदूर्ध्वेनागपाशकम् ॥ ४ ॥ एवंसंग्रथितांमालांमंत्रसिद्धिप्रदायिनीम् ॥ प्रक्षाल्यगंधतोयेनपंचगव्येनचोपरि ॥ ५ ॥ ततःशिवांभसाऽऽक्षाल्यततोमंत्रगणान्न्यसेत् ॥ स्पृष्ट्वाशिवास्त्रमंत्रेणकवचेनावगुंठयेत् ॥ ६ ॥ मूलमंत्रंन्यसेत्पश्चात्पूर्ववत्कारयेत्तथा ॥ सद्योजातादिभिःप्रोक्ष्ययावदष्टोत्तरंशतम् ॥ ७ ॥ मूलमंत्रंसमुच्चार्यशुद्धभूमौनिधायच ॥ तस्योपरिन्यसेत्सांबंशिवंपरमकारणम् ॥ ८ ॥ प्रतिष्ठिताभवेन्मालासर्वकामफलप्रदा ॥ यस्यदेवस्ययोमंत्रस्तांतेनैवाभिपूजयेत् ॥ ९ ॥ मूर्ध्निकंठेऽथवाकर्णेन्यसेद्वाजपमालिकाम् ॥ रुद्राक्षमालयाचैवंजप्तव्यंनियतात्मना ॥ १० ॥

और पुच्छसे पुच्छ संयुक्त करै मेरुको ऊर्ध्वमुख करै उसके ऊपर नागपाश धारण करै ॥ ४ ॥ इसप्रकारसे ग्रथित हुई गोपुच्छमाला सब सिद्धिदेनेवाली होती है. गंधजलसे धोकर फिर पंचगव्यसे प्रक्षालनकर ॥ ५ ॥ फिर शुद्धजलसे प्रक्षालन करके मंत्रसमूहोंका न्यास करै फिर शिवास्त्रमंत्रसे जो षडंगमें है स्पर्शकर कवचमंत्र हुम् से संयुक्त करै ॥ ६ ॥ फिर मूलमंत्रसे न्यास करै यह स्वयं पूर्वोक्तप्रकारसे करै वा गुरुके हाथसे करावे फिर सद्योजातादि मंत्रोंसे शोधन एकसौ आठ ॥ ७ ॥ मूलमंत्रको उच्चारण कर शुद्धभूमिमें रख, उसके ऊपर अम्बासहित परमकारुणिक शंकरका न्यास करे ॥ ८ ॥ इस प्रकार माला प्रतिष्ठित होकर सब कामना और फलकी देनेवाली होती है जिस देवताका जो मंत्र है उसको उसीसे पूजन करै ॥९॥ मूर्धा कंठ वा हाथमें जपमालाका न्यास करै अर्थात् जपके अन्तमें इन स्थानोंपर

रखले नियतात्मा होकर रुद्राक्षमालासे जप करना चाहिये ॥ १० ॥ कंठ, शिर, हृदय, कान, बाहु, इनमें परमभक्तिसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ ११ ॥ बहुत कहने और वारंवार वर्णन करनेसे क्या है, रुद्राक्ष नित्य धारणसे प्रतिष्ठा होती है ॥ १२ ॥ स्नान, दान, जप, होम, वैश्वदेव, सुरार्चन, प्रायश्चित्त, श्राद्ध और विशेष कर दक्षिणाकालमें ॥ १३ ॥ विनारुद्राक्षके धारण किये जो कुछ भी वैदिककर्म करते हैं वह मोहसे नरकमें जाते हैं ॥ १४ ॥ रुद्राक्षको शिरमें कंठमें यज्ञोपवीत और हाथमें सुवर्णमणिसे युक्त रुद्राक्ष धारणकरे कुछ मिलाके नधारे अशुचि होकर रुद्राक्षको न धारण करे सदा भक्तिसेही धारणकरै रुद्राक्षवृक्षसे लगीहुई वायुके तृणभी पुण्यलोकको प्राप्त होते हैं, जिनके जीवोंकी फिर आवृत्ति नहीं होती रुद्राक्ष धारण कर पाप करते हुएभी मनुष्य ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ सब पाप तरजातेहैं ऐसा जाबाल

कंठेमूर्ध्निहृदिप्रांतेकर्णेबाहुयुगेऽथवा ॥ रुद्राक्षधारणंनित्यंभक्त्यापरमयायुतः ॥ ११ ॥ किमत्रबहुनोक्तेनवर्णनेनपुनःपुनः ॥ रुद्राक्षधारणंनित्यंतस्मादेतत्प्रशस्यते ॥ १२ ॥ स्नानेदानेजपेहोमेवैश्वदेवेसुरार्चने ॥ प्रायश्चित्तेतथाश्राद्धेदीक्षाकालेविशेषतः ॥ १३ ॥ अरुद्राक्षधरोभूत्वायत्किंचित्कर्मवैदिकम् ॥ कुर्वन्विप्रस्तुमोहेननरकेपततिध्रुवम् ॥ १४ ॥ रुद्राक्षंधारयेन्मूर्ध्निकंठेसूत्रेकरेऽथवा ॥ सुवर्णमणिसंभिन्नंशुद्धंनान्यैर्धृतंशिवम् ॥ १५ ॥ नाशुचिर्धारयेदक्षंसदाभक्त्यैवधारयेत् ॥ रुद्राक्षतरुसंभूतवातोद्भूततृणान्यपि ॥ १६ ॥ पुण्यलोकंगमिष्यंतिपुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ रुद्राक्षंधारयन्पापंकुर्वन्नपिचमानवः ॥ ॥ १७ ॥ सर्वंतरतिपाप्मानंजाबालश्रुतिराहहि ॥ पशवोहिचरुद्राक्षधारणाद्यांतिरुद्रताम् ॥ १८ ॥ किमुयेधारयंतिस्मनरारुद्राक्षमालिकाम् ॥ रुद्राक्षःशिरसाह्येकोधार्योरुद्रपरैःसदा ॥ १९ ॥ ध्वंसनंसर्वदुःखानांसर्वपापविमोचनम् ॥ व्याहरंतिचनामानियेशंभोःपरमात्मनः ॥ २० ॥ रुद्राक्षालंकृतायेचतेवैभागवतोत्तमाः ॥ रुद्राक्षधारणंकार्यंसर्वश्रेयोर्थिभिर्नृभिः ॥ २१ ॥ कर्णपाशेशिखायांचकंठेहस्तेतथोदरे ॥ महादेवश्चविष्णुश्चब्रह्मातेषांविभूतयः ॥ २२ ॥ देवाश्चान्येतथाभक्त्याखलुरुद्राक्षधारिणः ॥ गोत्रर्षयश्चसर्वेषांकूटस्थामूलरूपिणः ॥ २३ ॥

श्रुति कहती है पशुभी रुद्राक्षधारणसे रुद्रलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ १८ ॥ और जो मनुष्य रुद्राक्षकी माला धारण करतेहैं उनकी बात तो कौन कहे एकभी रुद्राक्ष जो शिरपर शिवके भक्त धारण करते हैं ॥ १९ ॥ सब दुःखोंका ध्वंस करनेवाला और सब पापोंका मुक्त करनेवाला परमात्मा शंकरका जो नाम लेते हैं ॥ २० ॥ और जो रुद्राक्षसे अलंकृत हैं वह उत्तम भागवत हैं सब कल्याणकी इच्छावालोंको सदा रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ २१ ॥ कर्ण, शिखा, कंठ, हाथ, उदरमें महादेव विष्णु और ब्रह्माकी विभूति हैं ॥ २२ ॥ तथा औरभी देवता भक्तिसे रुद्राक्ष धारण करतेहैं सबके गोत्र ऋषि सब कूटस्थ मूलरूपी श्रौतधर्ममें रत रुद्राक्षके धारण करने

वाले हैं ॥ २३ ॥ उन्हींसे सब मुनियोंके वंश हैं वे सब रुद्राक्षधारी श्रौतधर्ममें तत्पर और शुद्ध हैं ॥ २४ ॥ वेदसिद्ध रुद्राक्षधारणमें एकसंग श्रद्धा नहीं होती परन्तु बहुत जन्मोंके अन्तमें महादेवके प्रसादसे ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणमें स्वभावसेही वांछा होती है. रुद्राक्षमाहात्म्य जाबालश्रुतियोंमें आदरपूर्वक ॥ २६ ॥ सब मुनियोंसे पढ़ा जाताहै. हे पुत्र! हम भी पढते हैं रुद्राक्षका फल त्रिलोकीमें विख्यातहै ॥ २७ ॥ रुद्राक्षके दर्शनसे पुण्य स्पर्शसे कोटिगुण पुण्य और धारणसे उससे भी सौकोटिगुण पुण्य होताहै ॥ २८ ॥ लक्षकोटि सहस्रलक्षकोटि सौगुना फल जपसे प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ हाथ, हृदय, कंठ, कान और मस्तकमें जो रुद्राक्ष धारण करताहै वह शिवहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ वह सब प्राणियोंसे अवध्य हो भूमिमें विचरण करता है वह शिवकी समान सुरासुरोंका वन्दनीय होताहै॥

तेषांवंशप्रसूताश्चमुनयःसकलाअपि ॥ श्रौतधर्मपराःशुद्धाःखलुरुद्राक्षधारिणः ॥ २४ ॥ श्रद्धानजायतेसाक्षाद्वेदसिद्धेविमुक्तिदे ॥ बहूनां जन्मनामंतेमहादेवप्रसादतः ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणेवांछास्वभावादेवजायते ॥ रुद्राक्षस्यतुमाहात्म्यंजाबालैरादरेणतु ॥ २६ ॥ पठ्यतेमुनिभिः सर्वैर्मयापुत्रतथैवच ॥ रुद्राक्षस्यफलंचैवत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ २७ ॥ फलस्यदर्शनेपुण्यंस्पर्शात्कोटिगुणंभवेत् ॥ शतकोटिगुणंपुण्यंधा रणाल्लभतेनरः ॥ २८ ॥ लक्षकोटिसहस्राणिलक्षकोटिशतानिच ॥ जपाच्चलभतेनित्यंनात्रकार्याविचारणा ॥ २९ ॥ हस्तेचोरसिकंठेचकर्णयोर्मस्तकेत था ॥ रुद्राक्षंधारयेद्यस्तुसरुद्रोनात्रसंशयः ॥ ३० ॥ अवध्यःसर्वभूतानांरुद्रवद्विचरेद्भुवि ॥ सुराणामसुराणांचवंदनीयोयथाशिवः ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षधारी सततंवंदनीयस्तथानरैः ॥ उच्छिष्टोवाविकर्मस्थोयुक्तोवासर्वपातकैः ॥ ३२ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्योरुद्राक्षस्यतुधारणात् ॥ कंठेरुद्राक्षमाबध्यश्वापिवाम्रिय तेयदि ॥ ३३ ॥ सोपिमुक्तिमवाप्नोतिकिंपुनर्मानुषोऽपिसः ॥ जपध्यानविहीनोपिरुद्राक्षंयदिधारयेत् ॥ ३४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःसयातिपरमांगतिम् ॥ ए कंवापिहिरुद्राक्षंकृत्वायत्नेनधारयेत् ॥ ३५ ॥ एकविंशतिमुद्धृत्यरुद्रलोकेमहीयते ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिरुद्राक्षस्यपुनर्विधिम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे पंचमोध्यायः ॥ ५ ॥

॥ ३१ ॥ रुद्राक्षधारी सदा मनुष्योंसे वन्दनीय होताहै उच्छिष्ट वा विकर्ममें स्थित वा सब पापोंसे युक्तहो ॥ ३२ ॥ वह रुद्राक्षके धारणसे सब पापोंसे छूट जाताहै कंठमें रुद्राक्ष बाँधकर श्वानभी यदि प्राण त्यागे ॥ ३३ ॥ वहभी मुक्त होजाताहै मनुष्योंकी तो बातही क्याहै जप ध्यानसे विहीन भी यदि रुद्राक्ष धारण करे ॥ ३४ ॥ वह सब पापसे निर्मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होताहै जो एकभी रुद्राक्ष यत्नपूर्वक धारण करता है ॥ ३५ ॥ वह इक्कीस कुलका उद्धार करके रुद्र लोकमें प्रतिष्ठा पाता है अब रुद्राक्षका फिर विधान कहता हूं ॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशकन्धे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ईश्वर बोले हे महासेन ! कुशग्रंथि जीयापोता आदिक जो कितनेही दूसरी वस्तु हैं यह रुद्राक्षकी सोलहवीं कलाको भी नहीं प्राप्त हो सकते ॥ १ ॥ पुरुषोंमें जैसे विष्णु, ग्रहोंमें जैसे सूर्य, नदियोंमें जैसी गंगा, मुनियोंमें कश्यप ॥ २ ॥ अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, देवताओंमें जैसे महादेव, देवीमें जैसे गौरी इसीप्रकार यह सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ इससे परे दूसरा स्तोत्र इससे परे व्रत तथा अक्षय्य दानोंमें रुद्राक्ष सबसे विशेष है ॥ ४ ॥ शिवभक्त शान्तके निमित्त उत्तम रुद्राक्ष देने चाहिये उसके पुण्य फलकी अनन्तता कोई नहीं कह सकता ॥५॥ कंठमें रुद्राक्ष धारण किये पुरुषको जो अन्न देता है वह कुलोंका उद्धारकर रुद्रलोकको जाता है ॥ ६ ॥ जिस

ईश्वरउवाच ॥ महासेनकुशग्रंथिपुत्राजीवादयःपरे ॥ रुद्राक्षस्यतुनैकोऽपिकलामर्हतिषोडशीम् ॥१॥ पुरुषाणांयथाविष्णुर्ग्रहाणांचयथारविः ॥ नदीनां तुयथागंगामुनीनांकश्यपोयथा ॥ २ ॥ उच्चैःश्रवायथाश्वानांदेवानामीश्वरोयथा ॥ देवीनांतुयथागौरीतद्वच्छ्रेष्ठमिदंभवेत् ॥ ३ ॥ नातःपरतरंस्तोत्रंनातःपरतरंव्रतम् ॥ अक्षय्येषुचदानेषुरुद्राक्षस्तुविशिष्यते ॥ ४ ॥ शिवभक्तायशांतायदद्याद्रुद्राक्षमुत्तमम् ॥ तस्यपुण्यफलस्यांतंनचाहं वक्तुमुत्सहे ॥ ५ ॥ धृतरुद्राक्षकंठाययस्त्वन्नंसंप्रयच्छति ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्यरुद्रलोकंसगच्छति ॥ ६ ॥ यस्यभालेविभूतिर्नर्नांगे रुद्राक्षधारणम् ॥ नशंभोर्भवनेपूजासविप्रःश्वपचाधमः ॥ ७ ॥ खादन्मांसंपिबन्मद्यंसंगच्छन्नंत्यजानपि ॥ पातकेभ्योविमुच्येतरुद्राक्षेशिरसिस्थिते ॥ ८ ॥ सर्वयज्ञतपोदानवेदाभ्यासैश्चयत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेसद्योरुद्राक्षस्यतुधारणात् ॥ ९ ॥ वेदैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यंपुराणपठनेनच ॥ यत्तीर्थ सेवनेनैवसर्वविद्यादिभिस्तथा ॥१०॥ तत्पुण्यंलभतेसद्योरुद्राक्षस्यतुधारणात् ॥ प्रयाणकालेरुद्राक्षंबंधयित्वाम्रियेद्यदि॥११॥ सरुद्रत्वमवाप्नोतिपुनर्जन्म नविद्यते ॥ रुद्राक्षंधारयेत्कंठेबाह्वोर्वाम्रियतेयदि ॥ १२ ॥ कुलैकविंशमुत्तार्यरुद्रलोकेवसेन्नरः ॥ ब्राह्मणोवापिचांडालोनिर्गुणःसगुणोपिच ॥१३॥

मस्तकमें विभूति, अंगमें रुद्राक्ष नहीं जो शिवके मंदिरमें जाकर पूजा नहीं करता वह ब्राह्मण श्वपचोंमें नीच है ॥ ७ ॥ मांस खाते मद्यपीते अन्त्यजोंका संग करते भी शिरमें रुद्राक्ष धारण करके पातकोंसे छूटता है ॥ ८ ॥ सब यज्ञ तपोदान वेदाभ्यास का जो फल है वह फल रुद्राक्षके धारणसे तत्काल मिलता है ॥ ९ ॥ जो चार वेद और पुराणपाठका फल है जो तीर्थ और सब विद्यासेवनका फल है वह फल शीघ्रही रुद्राक्षधारणसे प्राप्त होताहै प्रयाणकालमें रुद्राक्ष धारण कर यदि मरजाय ॥ १०॥११॥ वह फिर जन्मको प्राप्त न होकर रुद्रलोकमें गमन करता है कंठ और भुजामें रुद्राक्ष धारण करके यदि मृत्यु होजाय ॥ १२ ॥ वह २१ कुल तारकर रुद्रलोकमें

निवास करता है ब्राह्मण वा चाण्डाल निर्गुण वा सगुण कोई हो ॥ १३ ॥ भस्म रुद्राक्ष धारण करनेवाला शिवताको प्राप्त होता है. शुचि अशुचि अभक्ष्यका भक्षण करनेवाला ॥ १४ ॥ म्लेच्छ चाण्डाल वा सब पातकोंसे युक्त हो वह रुद्राक्ष धारणसे रुद्रही होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ एक कोटि गुना फल शिरपर, दश कोटि कर्णमें, शतकोटि गलेमें मूर्धापर सहस्र कोटि ॥ १६ ॥ यज्ञोपवीतमें अयुत, भुजाओंमें लक्षकोटि गुना फल होता है, तथा मणिबंधने रुद्राक्ष धारण कर मोक्षसाधनमें तत्पर होता है ॥ १७ ॥ रुद्राक्षधारण करताहुआ जो कुछ कर्म ब्राह्मण वेदके अनुसार करता है उससे बडे फलको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ जो भक्तिरहित

भस्मरुद्राक्षधारीयःसदेवत्वंशिवंव्रजेत् ॥ शुचिर्वाप्यशुचिर्वापितथाऽभक्ष्यस्यभक्षकः ॥ १४ ॥ म्लेच्छोवाप्यथचांडालोयुतोवासर्वपातकैः ॥ रुद्राक्षधारणादेवसरुद्रोनात्रसंशयः ॥ १५ ॥ शिरसाधारितेकोटिःकर्णयोर्दशकोटयः ॥ शतकोटिर्गलेबद्धोमूर्ध्निकोटिसहस्रकम् ॥ १६ ॥ अयुतंचोपवीतेतुलक्षकोटिर्भुजेस्थिते ॥ मणिबंधेतुरुद्राक्षोमोक्षसाधनकःपरः ॥१७॥ रुद्राक्षधारकोभूत्वायत्किंचित्कर्मवैदिकम् ॥ कुर्वन्विप्रःसदाभक्त्या महदाप्नोतितत्फलम् ॥ १८ ॥ रुद्राक्षमालिकांकंठेधारयेद्भक्तिवर्जितः ॥ पापकर्मातुयोनित्यंसमुक्तःसर्वबंधनात् ॥१९॥ रुद्राक्षार्पितचेतायोरुद्राक्षस्तेन वैधृतः ॥ असौमाहेश्वरोलोकेनमस्यःसतुलिंगवत् ॥ २० ॥ अविद्योवासविद्योवारुद्राक्षस्यतुधारणात् ॥ शिवलोकंप्रपद्येतकीकटेगर्दभोयथा ॥ २१ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ रुद्राक्षान्संदधेदेवगर्दभःकेनहेतुना ॥ कीकटेकेनवादत्तस्तद्ब्रूहिपरमेश्वर ॥२२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणुपुत्रपुरावृत्तंगर्दभोविंध्यपर्वते॥ धत्तेरुद्राक्षभारंतुवाहितःपथिकेनतु ॥ २३ ॥ श्रांतोऽसमर्थस्तद्भारंवोढुंपतितवान्भुवि ॥ प्राणैस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तुशूलपाणिर्महेश्वरः ॥ २४ ॥

होकर भी कंठमें रुद्राक्षकी मालाको धारण करता है वह पापकर्मा भी मुक्त होजाता है ॥ १९ ॥ जो रुद्राक्षमें चित्त लगाकर रुद्राक्ष धारण करता है वह शिवभक्त शिवलोकमें शिवकी समान नमस्कृत होता है ॥ २० ॥ विद्यावान् वा अविद्यावान् कोई भी रुद्राक्ष धारण करे वह शिवलोकको प्राप्त होता है, जैसे कीकट देशमें रासभ मुक्त हुआ ॥ २१ ॥ स्कंदजी बोले हे देव! गर्दभने किसप्रकार रुद्राक्ष धारण किया? कीकटमें किसने उसको दिया सो आप भलीप्रकार कहिये ॥ २२ ॥ श्रीभगवान् बोले हे पुत्र! पहली एक कथा सुनो विंध्याचल पर्वतपर एक गर्दभ रहता था, वह पथिकद्वारा रुद्राक्ष भार ढोया करता था ॥ २३ ॥ एक समय वह भार उठानेमें

असमर्थ होकर भूमिपर गिरगया और प्राण निकल गये तब त्रिनेत्र शूलपाणि महेश्वररूप हो ॥ २४ ॥ मेरे प्रसादसे वह मेरे समीप प्राप्त हुआ जितने रुद्राक्षोंके मुखकी संख्या थी ॥ २५ ॥ उतनेही सहस्त्रवर्ष शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाई यह अपने शिष्योंके प्रतिही कहनी अशिष्योंसे नहीं कहनी ॥ २६ ॥ अभक्त तथ मूर्खोंसे इन कथाओंको प्रकाश न करे कोई अभक्त वा भक्त नीचसे भी नीच क्यों न हो ॥ २७ ॥ जो रुद्राक्ष धारण करता है वह सब पातकोंसे छूट जाता है रुद्राक्षके धारणका पुण्य किसकी समान कहै ॥ २८ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह महाव्रत कहा है जो सहस्त्र रुद्राक्षको धारण करता है ॥ २९॥ उसको सब देवता

मत्प्रसादान्महासेनमदंतिकमुपागतः॥यावद्वक्त्रस्यसंख्यानंरुद्राक्षाणांसुदुर्लभम्॥२५॥तावद्युगसहस्राणिशिवलोकेमहीयते॥ स्वशिष्येभ्यस्तुवक्तव्यंनाशिष्येभ्यःकदाचन॥२६॥अभक्तेभ्योपिमूर्खेभ्यःकदाचिन्नप्रकाशयेत्॥अभक्तोवास्तुभक्तोवानीचोनीचतरोऽपिवा॥२७॥ रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तुमुच्यतेसर्वपातकैः ॥ रुद्राक्षधारणंपुण्यंकेनवासदृशंभवेत् ॥२८॥ महाव्रतमिदंप्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ सहस्रंधारयेद्यस्तुरुद्राक्षाणांधृतव्रतः॥२९॥तंनमंतिसुराःसर्वेयथारुद्रस्तथैवसः ॥ अभावेतुसहस्रस्यबाह्वोःषोडशषोडश ॥ ३० ॥ एकंशिखायांकरयोर्द्वादशद्वादशैवतु॥द्वात्रिंशत्कंठदेशेतुचत्वारिंशच्चमस्तके॥३१॥ एकैकंकर्णयोःषट्षट्वक्षस्यष्टोत्तरंशतम् ॥ योधारयतिरुद्राक्षान्रुद्रवत्सतुपूज्यते ॥३२ ॥ मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैडूर्यकांचनैः ॥ समेतान्धारयेद्यस्तुरुद्राक्षान्सशिवोभवेत् ॥ ३३ ॥ केवलानपिरुद्राक्षान्यद्यालस्याद्बिभर्तियः ॥ तंनस्पृशंतिपापानितमांसीवविभावसुम् ॥ ३४ ॥ रुद्राक्षमालयामंत्रोजप्तोऽनंतफलप्रदः ॥ यस्यांगेनास्तिरुद्राक्षएकोऽपिबहुपुण्यदः॥३५॥तस्यजन्मनिरर्थंस्यात्त्रिपुंड्ररहितंयथा ॥ रुद्राक्षंमस्तकेधृत्वाशिरःस्नानंकरोतियः॥३६॥

प्रणाम करते हैं वह रुद्रकी समान है सहस्र न मिलें तो भुजाओंमें सोलह२ धारण करै ॥ ३० ॥ शिखामें एक, हाथोंमें बारह २ कंठमें ३२ और चालीस मस्तकमें॥ ३१ ॥ एक एक कानमें छः छः वक्षस्थलमें १०८ रुद्राक्ष जो धारण करता है वह रुद्रके समान पूजित होता है ॥ ३२ ॥ मुक्ता प्रवाल (मूँगा) स्फटिक चांदी वैडूर्य सुवर्णसहित जो धारण करता है वह शिवरूप होता है ॥ ३३ ॥ जो आलस्यसेही केवल रुद्राक्षोंको धारण करता है उसको पाप नहीं छूसक्ते जैसे सूर्यको अंधकार॥ ॥ ३४ ॥ रुद्राक्ष मालाका मंत्र जपनेसे अनन्त फलका देनेवाला होता है जिसके अंगमें बहुत पुण्य देनेवाला एकभी रुद्राक्ष नहीं है ॥ ३५ ॥ उसका जन्म निरर्थक

होता है इसीप्रकार त्रिपुण्ड्ररहित है जो कोई रुद्राक्ष शिरपर धारण करके शिरसे स्नान करता है ॥ ३६ ॥ उसको गंगास्नानका फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं. एकमुखी पंचमुखी एकादशमुखी ॥ ३७ ॥ चौदहमुखी रुद्राक्ष लोकमें पूजित हैं जो शंकरात्मक रुद्राक्षको भक्तिसे पूजन करता है ॥ ३८ ॥ वह दरिद्रको भी राजा करदेता है इसमें आपसे उत्तम पुराणका मत कहता हूं ॥ ३९ ॥ कोशल देशमें कोई ब्राह्मण गिरिनाथ नामक बडा विख्यात महाधनी धर्मात्मा वेदवेदांगका पारगामी ॥ ४० ॥ यज्ञ करनेवाला दीक्षित था उसका पुत्रभी सुन्दरगुणनिधि नामवाला तरुण कामवत सुन्दर था ॥ ४१ ॥ वह सुधिष्ण गुरुकी मुक्तावली पत्नीको अपने रूपयौवनमदसे मोहितकरता हुआ ॥ ४२ ॥ उसके साथ कुछ कालतक तो भयसहित संगति करता हुआ पीछे गुरुको विषदेकर उससे निर्भय

गंगास्नानफलंतस्यजायतेनात्रसंशयः ॥ एकवक्त्रःपंचवक्त्रएकादशमुखाःपरे॥३७॥चतुर्दशमुखाःकेचिद्रुद्राक्षालोकपूजिताः॥भक्त्यासंपूज्यतेनित्यंरुद्राक्षःशंकरात्मकः ॥ ३८ ॥ दरिद्रंवापिपुरुषंराजानंकुरुतेभुवि ॥ अत्रतेकथयिष्यामिपुराणंमतमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ कोसलेषुद्विजःकश्चिद्गिरिनाथइतिश्रुतः ॥ महाधनीचधर्मात्मावेदवेदांगपारगः ॥४०॥ यज्ञकृद्दीक्षितस्तस्यतनयःसुंदराकृतिः ॥ नाम्नागुणनिधिःख्यातस्तरुणःकामसुंदरः॥४१॥गुरोःसुधिषणस्याथपत्नींमुक्तावलीमथ ॥ मोहयामासरूपेणयौवनेनमदेनच ॥ ४२ ॥ संगतस्तुतयासार्धंकंचित्कालंततोभिया॥ विषंददौचगुरवेयेभेपश्चात्तुनिर्भयः॥४३॥ यदामातापिताकर्मकिंचिज्जानातितत्क्षणे ॥ मातरंपितरंचापिमारयामासतद्विषात् ॥ ४४ ॥ नानाविलासभोगैश्चजातेद्रव्यव्ययेततः ॥ ब्राह्मणानांगृहेचौर्यंचकारसतदाखलः ॥ ४५ ॥ सुरापानमदोन्मत्तस्तदाज्ञातिबहिष्कृतः ॥ ग्रामान्निष्कासितःसर्वैस्तदासोऽभूद्वनेचरः ॥ ४६ ॥ मुक्तावल्यातयासार्धंजगामगहनंवनम् ॥ मार्गेस्थितोद्रव्यलोभाज्जघानब्राह्मणान्बहून् ॥ ४७ ॥ एवंबहुगतेकालेममारसतदाऽधमः ॥ नेतुंतंयमदूताश्चसमाजग्मुःसहस्रशः ॥ ४८॥ शिवलोकाच्छिवगणास्तथैवचसमागताः ॥ तयोःपरस्परंवादोबभूवगिरिजासुत ॥ ४९ ॥ यमदूतास्तदाप्रोचुःपुण्यमस्यकिमस्तिहि ॥ ब्रुवंतुसेवकाःशंभोर्यद्येनंनेतुमिच्छथ ॥५०॥

मैथुन करने लगा ॥ ४३ ॥ जब माता पिताने उसके इस कुकर्मको जाना तब विषदेकर उनकोभी मारडाला ॥ ४४ ॥ तब अनेक विलासभोगमें द्रव्यके व्यय होजानेसे तब वह दुष्ट ब्राह्मणोंके घरमें चोरी करनेलगा ॥ ४५ ॥ सुरापानसे मदोन्मत्त होनेकेकारण ज्ञातिने उसको बाहर करदिया सबने इसको ग्रामसे निकाल दिया तब यह वनचारी होगया ॥ ४६ ॥ तब उस मुक्तावलीके साथ गहन वनको चला गया, मार्गमें स्थित हो द्रव्यके लोभसे बहुतसे ब्राह्मणोंको मारडाला ॥ ४७ ॥ इसप्रकार बहुत समय बीतनेसे वह अधम मृत्युको प्राप्त होगया उसको लेनेको अनेक यमदूत आये ॥ ४८ ॥ उसी अवसर शिवलोकसे शिवजीके गण आये हे गिरिजासुत ! उनका परस्पर विवाद होनेलगा ॥ ४९ ॥ यमदूत बोले इसका क्या पुण्य है? हे शिवके सेवको ! कहो, जिसके कारण तुम इसको लेने आये हो ॥ ५० ॥

शिवदूत बोले यह जिस स्थानमें मृतक हुआ है वहां भूमिसे दश हाथ नीचे रुद्राक्ष है ॥५१॥ हे दूतो ! उसीके प्रभावसे हम इसको शिवके समीप ले जायँगे तब वह ब्राह्मण दिव्यरूप धर विमानपर चढ ॥५२॥ गुणनिधि दूतोंके साथ शिवके स्थानको गया. हे सुव्रत ! यह तुमसे रुद्राक्षका माहात्म्य कहा॥५३॥यह रुद्राक्षकी महिमा संक्षेपसे तुमसे कही यह सब पापक्षयकारी महापुण्यका फल देने वाला है ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! इसप्रकार शिवजीने कार्तिकेयसे कहा था, रुद्राक्षकी महिमा जानकर वह कृतार्थ हुए ॥ १ ॥ इसप्रकार रुद्राक्षका प्रभाव मैंने कहा

शिवदूतास्तदाप्रोचुरयंयस्मिन्स्थलेमृतः ॥ दशहस्तादधोभूमेरुद्राक्षस्तत्रचास्तिहि ॥ ५१ ॥ तत्प्रभावेनहेदूतानेष्यामःशिवसन्निधिम् ॥ ततोविमानमारुह्यदिव्यरूपधरोद्विजः ॥ ५२ ॥ गतोगुणनिधिर्दूतैःसहितःशंकरालयम् ॥ इतिरुद्राक्षमाहात्म्यंकथितंतवसुव्रत ॥ ५३ ॥ एवंरुद्राक्षमहिमासमासात्कथितोमया ॥ सर्वपापक्षयकरोमहापुण्यफलप्रदः ॥ ५४ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ ॥ एवंनारदषड्वक्त्रोगिरिशेनविबोधितः ॥ रुद्राक्षमहिमानंचज्ञात्वाऽसीत्सकृतार्थकः ॥ १ ॥ इत्थंभूतानुभावोयंरुद्राक्षोवर्णितोमया ॥ सदाचारप्रसंगेनशृणुचान्यत्समाहितः ॥ २ ॥ यथारुद्राक्षमहिमावर्णितोऽनंतपुण्यदः ॥ लक्षणंमंत्रविन्यासंतथाऽहंवर्णयामिते ॥ ३ ॥ लक्षंतुदर्शनात्पुण्यंकोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत् ॥ तस्यकोटिगुणंपुण्यंलभतेधारणान्नरः ॥४॥ लक्षकोटिसहस्राणिलक्षकोटिशतानिच ॥ तज्जपाल्लभतेपुण्यंनरोरुद्राक्षधारणात् ॥ ५ ॥ रुद्राक्षाणांतुभद्राक्षधारणात्स्यान्महाफलम् ॥ धात्रीफलप्रमाणंयच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम्॥६॥बदरीफलमात्रंतुप्रोच्यतेमध्यमंबुधैः ॥ अधमंचणमात्रंस्यात्प्रतिज्ञैषामयोदिता ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चेतिशिवाज्ञया ॥ वृक्षाजाताःपृथिव्यांतुतज्जातीयाःशुभाक्षकाः ॥ ८ ॥

सदाचारके प्रसंगसे औरभी सुनो ॥ २ ॥ जैसे रुद्राक्षकी महिमा बहुत पुण्यकी देनेवाली कही है वैसेही लक्षण और मंत्र न्यास भी मैं तुमसे वर्णन करता हूं हे मुने ! सुनो ॥ ३ ॥ देखनेसे लाखगुण स्पर्शसे करोड गुण और धारणसे उससे भी कोटि गुण पुण्य फल प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ लक्षकोटि सहस्र, लक्षकोटि सौ गुना रुद्राक्षके जपसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ रुद्राक्षोंमें भद्राक्ष धारणका बडा पुण्य है आमलेकी समान रुद्राक्ष श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ बेरकी समान मध्यम, चनेकीसमान अधम हैं यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ ७ ॥ शिवकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चार प्रकारके रुद्राक्षके वृक्ष हैं उन्हींके जतिवाले सुभाक्ष कहाते हैं ॥ ८ ॥

श्वेत ब्राह्मण, लाल क्षत्रिय, पीत वर्ण वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र जानने ॥ ९ ॥ ब्राह्मण श्वेत वर्णके, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीत और शूद्र कृष्ण वर्णके धारण करे ॥ १० ॥ समान स्निग्ध दृढ कंटक उठेहुए शुभ होते हैं कृमिदष्ट छिन्न भिन्न कंटकोंसे रहित॥ ११ ॥ व्रणयुक्त अनावृत यह छः प्रकारके रुद्राक्ष धारण न करे जिसमें स्वयं छिद्र हो वह उत्तम रुद्राक्ष है ॥ १२ ॥ और जो यत्नसे छिद्र किया रुद्राक्ष है वह मध्यम है समस्निग्ध, दृढ, गोलदानोंको रेशमके सूत्रसे पहरे ॥ १३ ॥ सब शरीरमें साम्यता पूर्वक विलक्षण धारण करे जैसे कसौटीपर घर्षण करनेसे सुवर्ण रेखा पडजाती है इसप्रकार जिसकी कसौटीपर रेखा पडजाय ॥ १४ ॥ वह उत्तम रुद्राक्ष शिव

श्वेतास्तुब्राह्मणाज्ञेयाःक्षत्रियारक्तवर्णकाः ॥ पीतावैश्यास्तुविज्ञेयाःकृष्णाःशूद्राःप्रकीर्तिताः ॥९॥ ब्राह्मणोविभृयाच्छ्वेतान्रक्तान्राजातुधारयेत् ॥ पीतान्वैश्यस्तुविभृयात्कृष्णाञ्छूद्रस्तुधारयेत् ॥ १० ॥ समाःस्निग्धादृढास्तद्वत्कंटकैःसंयुताःशुभाः ॥ कृमिदष्टाञ्छिन्नभिन्नान्कंटकैरहितांस्तथा ॥ ११ ॥ व्रणयुक्तानावृतांश्चषड्रुद्राक्षांस्तुवर्जयेत् ॥ स्वयमेवकृतद्वारोरुद्राक्षःस्यादिहोत्तमः ॥ १२ ॥ यत्तुपौरुषयत्नेनकृतंतन्मध्यमंभवेत् ॥ समान्स्निग्धान्दृढान्वृत्तान्क्षौमसूत्रेणधारयेत् ॥ १३ ॥ सर्वगात्रेषुसाम्येनसमानाऽतिविलक्षणा ॥ निघर्षैहेमलेखाभायत्रलेखाप्रदृश्यते ॥ १४ ॥ तदक्षमुत्तमंविद्यात्सधार्यःशिवपूजकैः ॥ शिखायामेकरुद्राक्षंत्रिंशद्वैशिरसावहेत् ॥१५॥ षट्त्रिंशच्चगलेधार्यावाह्वोःषोडशषोडश॥मणिबंधेद्वादशाक्षान्स्कंधेपंचाशतंभवेत् ॥१६॥ अष्टोत्तरशतैर्मालोपवीतंचप्रकल्पयेत् ॥ द्विसरंत्रिसरंवापिबिभृयात्कंठदेशतः ॥ १७ ॥ कुंडलेमुकुटेचैवकर्णिकाहारकेषुच ॥ केयूरेकटकेचैवकुक्षिवंशेतथैवच ॥ १८ ॥ सुप्तेपीतेसर्वकालंरुद्राक्षंधारयेन्नरः ॥ त्रिशतंत्वधमंपंचशतंमध्यममुच्यते ॥ १९ ॥ सहस्रमुत्तमंप्रोक्तंचैवंभेदेनधारयेत् ॥ शिरसीशानमंत्रेणकर्णेतत्पुरुषेणच ॥ २० ॥ अघोरेणललाटेतुतेनैवहृदयेऽपिच ॥ अघोरबीजमंत्रेणकरयोर्धारयेत्पुनः ॥ २१ ॥

भक्तोंको सदा धारणकरना चाहिये. जो शिखामें एक और तीस रुद्राक्ष शिरपर धारण करता है ॥ १५ ॥ गलेमें बाहुओंमें सोलह सोलह पहुँचेमें बारह और स्कंधदेशमें पचास धारण करता है ॥ १६ ॥ एकसौ आठकी मालासे यज्ञोपवीतकी कल्पना करे दो लड वा तीन लडकी माला कंठमें धारण करे ॥१७॥ कुंडल मुकुट, कर्णिका, हार, केयूर, कटक, कुक्षिवंशमें ॥१८॥ सोते पान करते सब समयमें मनुष्य रुद्राक्ष धारण करें. तीनसौ धारण करना अधम, पांचसौ धारण करना मध्यम है॥ ॥ १९ ॥ सहस्र धारण करना उत्तम है. इस प्रकारके भेदसे धारण करे शिरमें 'ईशाने' मंत्रसे, कानमें 'तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि मंत्रसे॥ २० ॥ ललाट में अघोर मंत्रसे

१ यह मंत्र हमारे टीका किये शिवपुराणमें देखो ।

इसी मंत्रसे हृदयमें अघोर बीज मंत्रसे हाथोंमें धारण करै ॥ २१ ॥ पचास रुद्राक्षकी माला 'वामदेव' मंत्रसे उदरमें इसप्रकार पंच ब्रह्म मंत्रोंसे अंगोंमें रुद्राक्ष धारण करै ॥ २२ ॥ मूलमंत्रसे ग्रथित कर रुद्राक्षोंको धारण करै. एक मुखी रुद्राक्ष परतत्वका प्रकाशक है ॥ २३ ॥ परतत्वकी धारणासे उसका प्रकाश होता है. हे मुनिश्रेष्ठ ! द्विमुखी अर्धनारीश्वर होता है जो उसे धारण करता है उससे अर्धनारीश्वर प्रसन्न होजाते हैं ॥ २४ ॥ त्रिमुखी अग्नि रूप है साक्षात् स्त्री हत्याको दूर करता है ॥ २५ ॥ त्रिमुखी रुद्राक्षभी तीन अग्निके रूपवाला है उसके धारणसे अग्निकी तृप्ति होती है ॥ २६ ॥ चतुर्मुखी रुद्राक्ष पितामहस्वरूपवाला है उसके धारणसे श्री और उत्तम आरोग्यकी प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥ इससे महाज्ञान, सम्पत्ति और शुद्धिके

पंचाशदक्षग्रथितांवामदेवेनचोदरे ॥ पंचब्रह्मभिरंगैश्चाप्येवंरुद्राक्षधारणम् ॥२२॥ ग्रथितान्मूलमंत्रेणसर्वानक्षांस्तुधारयेत् ॥ एकवक्रस्तुरुद्राक्षः परतत्त्वप्रकाशकः॥२३॥परतत्त्वधारणाच्चजायतेतत्प्रकाशनम्॥द्विवक्रस्तुमुनिश्रेष्ठअर्धनारीश्वरोभवेत्॥२४॥धारणादर्धनारीशःप्रीयतेतस्यनित्यशः॥ त्रिवक्रस्त्वनलःसाक्षात्स्त्रीहत्यांदहतिक्षणात् ॥ २५ ॥ त्रिमुखश्चैवरुद्राक्षोप्यग्नित्रयस्वरूपकः ॥ तद्धारणाच्चहुतभुक्तस्यतुष्यतिनित्यशः ॥२६॥चतुर्मुख स्तुरुद्राक्षःपितामहस्वरूपकः ॥ तद्धारणान्महाश्रीमान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ २७ ॥ महतीज्ञानसंपत्तिःशुद्धयेधारयेन्नरः ॥ पंचमुखस्तुरुद्राक्षःपंचब्रह्मस्व रूपकः ॥ २८ ॥ तस्यधारणमात्रेणसंतुष्यतिमहेश्वरः ॥ षड्वक्रश्चैवरुद्राक्षःकार्तिकेयाधिदैवतः ॥ २९ ॥ विनायकंचापिदेवंप्रवदंतिमनीषिणः ॥ सप्तवक्र स्तुरुद्राक्षःसप्तमात्राधिदैवतः ॥ ३० ॥ सप्ताश्वदैवतश्चैवमुनिसप्तकदैवतः ॥ तद्धारणान्महाश्रीःस्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥३१॥ महतीज्ञानसंपत्तिःशुचिर्वै धारयेन्नरः ॥ अष्टवक्रस्तुरुद्राक्षोप्यष्टमात्राधिदैवतः ॥ ३२ ॥ वस्वष्टकप्रीतिकरोगंगाप्रीतिकरःशुभः ॥ तद्धारणादिमेप्रीताभवेयुःसत्यवादिनः ॥ ३३ ॥

निमित्त मनुष्यको धारण करना चाहिये. पंचमुखी रुद्राक्ष पंचब्रह्मस्वरूपवाला है ॥ २८ ॥ उसके धारणमात्रसे शिवजी संतुष्ट होते हैं षण्मुखीके कार्तिकेय देवता हैं ॥ २९ ॥ कोई बुद्धिमान् गणेश देवता कहते हैं इससे यह दोनों प्रसन्न होते हैं सातमुखी रुद्राक्षकी सातमातायें देवता हैं ॥ ३० ॥ तथा सूर्य और सातौं मुनिभी देवता हैं इसके धारणसे महालक्ष्मी और महाआरोग्यकी प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥ पवित्र होकर धारण करनेसे बडी ज्ञानकी सम्पत्ति प्राप्त होती है अष्टमुखी रुद्राक्षकी आठमातायें देवता हैं ॥ ३२ ॥ यह आठौ वसु और गंगाकोभी प्रसन्न करनेवाला है इसके धारण करनेसे यह सत्यवादी देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ३३ ॥

नवमुखीके यमराज देवता हैं इसके धारणसे यमराजका भय नहीं होता है ॥ ३४ ॥ दशमुखी रुद्राक्षकी दशादिश देवता हैं इसके धारणसे दशों दिशाओंकी प्रीति होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ एकादशमुखीके ग्यारह रुद्र देवता हैं, इन्द्र देवताभी कहाते हैं यह सदा प्रीतिका बढानेवाला है ॥ ३६ ॥ बारहमुखी रुद्राक्ष महाविष्णुके स्वरूपवाला है इसके बारह आदित्य देवता हैं इसके धारणसे उनकी प्रीति होती है ॥ ३७ ॥ तेरहमुखी रुद्राक्ष काम और सिद्धि देनेवाला है इसके धारणमात्रसे कामदेव प्रसन्न होता है॥ ३८॥ चौदहमुखी रुद्रके नेत्रसे प्रगट हुआ है यह सब व्याधी हरनेवाला और सब आरोग्यका देनेवाला है ॥ ३९॥ मद्य,आमिष, लहसन प्याज शिग्रु, (सहिंजना) श्लेष्मातक, (लहसोडा) विड्वराह इतनी वस्तुओंका रुद्राक्षधारी सेवन न करै ॥ ४० ॥ ग्रहण विषुव (मेषतुला) संक्रान्ति अयनसमय आमावस पूर्णिमा

नववक्त्रस्तुरुद्राक्षोयमदेवउदाहृतः ॥ तद्धारणाद्यमभयंनभवत्येवसर्वथा ॥३४॥ दशवक्त्रस्तुरुद्राक्षोदशाशादैवतःस्मृतः ॥ दशाशाप्रीतिजनकोधारणे नात्रसंशयः ॥ ३५ ॥ एकादशमुखस्त्वक्षोरुद्रैकादशदैवतः ॥ तमिंद्रदैवतंचाहुःसदासौख्यविवर्धनम् ॥३६॥ रुद्राक्षोद्वादशमुखोमहाविष्णुस्वरूपकः ॥ द्वादशादित्यदैवश्चबिभर्त्येवहितत्परः ॥ ३७ ॥ त्रयोदशमुखश्चाक्षःकामदःसिद्धिदःशुभः ॥ तस्यधारणमात्रेणकामदेवःप्रसीदति ॥ ३८ ॥ चतुर्दशमुखश्चाक्षोरुद्रनेत्रसमुद्भवः ॥ सर्वव्याधिहरश्चैवसर्वारोग्यप्रदायकः ॥ ३९ ॥ मद्यंमांसंचलशुनंपलांडुंशिग्रुमेवच ॥ श्लेष्मातकंविड्वराहंभक्षणेवर्जयेत्ततः ॥ ४० ॥ ग्रहणेविषुवेचैवसंक्रमेअयनेतथा ॥ दर्शेचपौर्णमासेचपुण्येषुदिवसेष्वपि ॥ ४१ ॥ रुद्राक्षधारणात्सद्यःसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ॥ इति श्री देवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ भूतशुद्धिप्रकारंचकथयामिमहामुने ॥ मूलाधारात्समुत्थायकुंडलींपरदेवताम् ॥ १ ॥ सुषुम्नामार्गमाश्रित्यब्रह्मरंध्रगतांस्मरेत् ॥ जीवंब्रह्मणिसंयोज्यहंसमंत्रेणसाधकः ॥ २ ॥ पादादिजानुपर्यंतंचतुष्कोणंसवज्रकम् ॥ लंबीजाढ्यंस्वर्णवर्णंस्मरेदवनिमंडलम् ॥ ३ ॥ जान्वाद्यानाभिचंद्रार्धनिभंपद्मद्वयांकितम् ॥ वंबीजयुक्तंश्वेताभमंभसोमंडलंस्मरेत् ॥ ४ ॥

पवित्रदिनोंमें ॥ ४१ ॥ रुद्राक्षधारणसे शीघ्रही सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायण बोले हे महामुने ! अब भूतशुद्धिका प्रकार तुमसे कहते हैं परदेवता कुंडलीको मूलाधारसे उठाकर ॥ १ ॥ सुषुम्नामार्गमें आश्रित होकर ब्रह्मरंध्रतक गई है इसप्रकार विचार करै और साधक हंसमात्रसे जीवब्रह्मकी एकता संयुक्त करके ॥ २ ॥ चरणोंसे लेकर जानुपर्यन्त चतुष्कोण यंत्रका विचार करै उससे लंबीजसे युक्त सुवर्णके वर्णका अवनीमण्डल स्मरण करै ॥ ३ ॥ जानुसे आदिलेकर नाभि पर्यन्त अर्धचन्द्रके समान दोपद्मसे अंकित बीजसे युक्त श्वेतकान्तिवाले सोम

मण्डलका स्मरण करे ॥ ४ ॥ नाभिसे लेकर हृदयपर्यन्त त्रिकोणस्वस्तिक आसन रंबीजसे युक्त रक्तवर्ण पावक मंडलका स्मरण करे ॥ ५ ॥ हृदयसे लेकर भ्रूमध्य पर्यन्त गोल छः बिन्दुसे लक्षित यंबीजसे युक्त धूम्रवर्ण वायुमंडलका स्मरण करे॥ ६ ॥ भ्रूमध्यसे ब्रह्मरंध्रपर्यन्त गोलाकार स्वच्छ परममनोहर हंबीजयुक्त आकाशमण्डलका विचार करे ॥ ७ ॥ इसप्रकार भूतोंकी चिन्ताकर प्रत्येकको अपनेमें लयकरे भूको जलमें जलको अग्निमें अग्निको वायुमें वायुको आकाशमें ॥ ८ ॥ विलीन करके आकाशको अहंकारमें अहंकारको महत्तत्त्वमें महान्को प्रकृतिमें मायाको आत्मामें लय करे ॥ ९ ॥ शुद्धसंवित् होकर अपने शरीरमें पापपुरुषका चिन्तन करे जो बाईं ओर स्थित कृष्णवर्ण अंगुष्ठपरिमाणवाला है ॥ १० ॥ ब्रह्महत्यारूप शिरसे युक्त कनककी चोरीरूप बाहुसेयुक्त मदिरापानरूपी हृदय गुरुतल्परूपी कटिसेयुक्त ॥ ११ ॥

भनोर्हृदयपर्यंतंत्रिकोणंस्वस्तिकान्वितम्॥रंबीजेनयुतंरक्तंस्मरेत्पावकमंडलम्॥५॥हृदोभ्रूमध्यपर्यंतंवृत्तंषड्बिंदुलांछितम्॥ यंबीजयुक्तंधूम्राभंनभस्वन्मंडलंस्मरेत् ॥ ६ ॥ आब्रह्मरंध्रंभ्रूमध्याद्वृत्तंस्वच्छंमनोहरम् ॥ हंबीजयुक्तमाकाशमंडलंचविचिंतयेत् ॥ ७ ॥ एवंभूतानिसंचिंत्यप्रत्येकंसंविलापयेत् ॥ भुवंजलेजलंवह्नौवह्निंवायौनभस्युमुम् ॥ ८ ॥ विलाप्यखमहंकारेमहत्तत्त्वेप्यहंकृतिम् ॥ महांतंप्रकृतौमायामात्मनिप्रविलापयेत् ॥ ९ ॥ शुद्धसंविन्मयोभूत्वाचिंतयेत्पापपूरुषम् ॥ वामकुक्षिस्थितंकृष्णमंगुष्ठपरिमाणकम् ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याशिरोयुक्तंकनकस्तेयबाहुकम् ॥ मदिरापानहृदयंगुरुतल्पकटीयुतम् ॥ ११ ॥ तत्संसर्गिपदद्वंद्वमुपपातकमस्तकम् ॥ खड्गचर्मधरंकृष्णमधोवक्त्रंसुदुःसहम् ॥ १२ ॥ वायुबीजंस्मरन्वायुंसंपूर्यैनंविशोषयेत् ॥ स्वशरीरयुतंमंत्रीवह्निबीजेननिर्दहेत् ॥ १३ ॥ कुंभकेपरिजप्तेननततःपापनरोद्भवम् ॥ बहिर्भस्मसमुत्सार्यवायुबीजेनरेचयेत् ॥ १४ ॥ सुधाबीजेनदेहोत्थंभस्मसंप्लावयेत्सुधीः ॥ भूबीजेनघनीकृत्यभस्मतत्कनकांडवत् ॥ १५ ॥

उसके संसर्गरूपी दोनों चरण उपपातकरूप मस्तकसे संयुक्त खड्गचर्म धारण करनेवाले दुष्ट, अधोमुखसे दुःसह ॥ १२ ॥ इसप्रकार चिन्ताकर वायुबीजको स्मरण कर उस बीजसे उठी हुई वायुद्वारा पूरक प्राणायामसे देहको पूर्णकर पाप पुरुषको शुष्ककरे पश्चात् अपने शरीरमें स्थित पापपुरुषको रंबीजसे अग्नि प्रगट कर भस्म करे ॥ १३ ॥ फिर कुंभकद्वारा वह्नि बीजके जपके उपरान्त वायुबीजको उच्चारणकर पापपुरुषकी भस्मको अपने शरीरसे बाहर फेंक दे यह क्रिया रेचक प्राणायामसे करे ॥ १४ ॥ अनन्तर स्वशरीरोद्भव भस्मको अमृत बीज ‘ वम् ’ बीजका उच्चारण करके उससे उठे अमृतसे उसे संप्लावित करे जिससे पिण्डहो पीछे भूबीज

'लम्' मंत्रसे उसभस्मको घनीभूत करै और उसको कनक अंडवत् भावनाकरै ॥ १५ ॥ फिर आकाशका हंबीज जपकर उसपिंडकी मुकुराकार भावना करै फिर उस पिण्डके मूर्धासे नखपर्यन्त अवयव मनसेही रचना करै ॥ १६ ॥ फिर जिसक्रमसे ब्रह्ममें पंचभूतोंका संहार किया है इसीक्रमसे फिर ब्रह्मसे पंचभूतोंको प्रगट करै, फिर 'सोहम्' मंत्रसे ब्रह्ममें एकीभूतहुए जीवको हृदयकमलमें लावे ॥ १७ ॥ पहले जैसे कुंडलीमें जीवब्रह्मसे संयुक्त हुआ था वही कुंडली उस पर मात्माके संगसे सुधामय जीवनको हृदयकमलमें स्थापनकर मूलाधारमें प्रातस्मरण करै यही जीवनका प्रकारहै इसके उपरान्त प्राणप्रतिष्ठा करै ॥ १८ ॥ शोणसागरमें स्थित नौका है उसमें स्थित एक रक्तकमल है उसमें आरूढ करकमलोंमें शूलकोदण्ड अर्थात् इक्षुका धनुष, पाश, अंकुश, पांच बाण, रक्तपूर्ण कपाल,

विशुद्धमुकुराकारंजपन्बीजंविहायसः ॥ मूर्धादिपादपर्यंतान्यंगानिरचयेत्सुधीः ॥ १६ ॥ आकाशादीनिभूतानिपुनरुत्पादयेच्चितः ॥ सोऽहंमंत्रेणचात्मानमानयेद्धृदयांबुजे ॥ १७ ॥ कुंडलीजीवमादायपरसंगात्सुधामयम् ॥ संस्थाप्यहृदयांभोजेमूलाधारगतांस्मरेत् ॥ १८ ॥ रक्तांभोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढाकराब्जैःशूलंकोदंडमिक्षूद्भवमणिगुणमप्यंकुशंपंचबाणान् ॥ बिभ्राणासृक्कपालंत्रिनयनलसितापीनवक्षोरुहाढ्यादेवीबालार्कवर्णाभवतुसुखकरीप्राणशक्तिःपरानः ॥ १९ ॥ एवंध्यात्वाप्राणशक्तिंपरमात्मस्वरूपिणीम् ॥ विभूतिधारणंकार्यंसर्वाधिकृतिसिद्धये ॥ २० ॥ विभूतेर्विस्तरंवक्ष्येधारणेचमहाफलम् ॥ श्रुतिस्मृतिप्रमाणोक्तंभस्मधारणमुत्तमम् ॥ २१ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ इदंशिरोव्रतंचीर्णंविधिवद्यैर्द्विजातिभिः ॥ तेषामेवपरांविद्यांवदेदज्ञानबाधिकाम् ॥ १ ॥ विधिवच्छ्रद्धयासाधंनचीर्णंयैःशिरोव्रतम् ॥ श्रौतस्मार्तसमाचारस्तेषामनुपकारकः ॥ २ ॥ शिरोव्रतसमाचारादेवब्रह्मादिदेवताः ॥ देवताअभवन्विद्वन्खलुनान्येनहेतुना ॥ ॥ ३ ॥ शिरोव्रतस्यमाहात्म्यंपूर्वैःपूर्वतरंकृतम् ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चदेवताःसकलाअपि ॥ ४ ॥

धारण किये षड्हस्ता, तीन नेत्रसे शोभित, पीनवक्षस्थल बालसूर्यके समान वर्णवाली देवी पराप्राणशक्ति हमको सुखकारी हो ॥ १९ ॥ इसप्रकार परमात्मस्वरूपिणी प्राणशक्तिको ध्यान करके प्राणको स्थापनकर सब सिद्धिके निमित्त विभूति धारण करना चाहिये ॥ २० ॥ विभूतिकेधारणका महाफल विस्तारसे कहता हूं कि, श्रुतिस्मृतिके पुराणसे युक्त भस्मधारण करना परमउत्तम है ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण बोले जिन ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक यह शिरोव्रत कियाहै उन्हींसे अज्ञान बाधक इस परा विद्याको प्रकाश करना चाहिये ॥ १ ॥ और जिन्होंने विधिपूर्वक शिरोव्रत नहीं कियाहै उनको श्रुतिस्मृतिका आचरण उपकारी नहीं होता ॥ २ ॥ शिरोव्रतके आचारवाले ब्रह्मादि देवता हैं इससे ब्रह्माने ब्रह्मत्व पायाहै औरसे नहीं ॥ ३ ॥ शिरोव्रतका माहात्म्य

पूर्वसे पूर्वतरोंने भी किया है. सब ब्रह्मा विष्णु रुद्रदेवता शिरोव्रत करते हैं ॥ ४ ॥ सब पातकों से युक्त हुआभी, इसके अनुष्ठानसे सब पातकोंसे छूट जाता है. हे ब्राह्मणों ! जिन्होंने शिरोव्रतका आचरण किया है वह मंगलको प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ अथर्वशिर उपनिषदमें यह शिरोव्रत कथन किया है परन्तु यह पुण्यके द्वारा प्राप्त होता है ॥६॥ हे मुनिराज ! शाखाभेदसे इस एकही व्रतके अनेकनाम पढेजाते हैं कोई पाशुपत् और कोई उसे शिवव्रत कहते हैं ॥ ७ ॥ सब शाखाओंमें यह एकही शिवनामक व्रत सत् चित् घन है तथा उसको विषयका ज्ञान इसीप्रकार शिरोव्रत है ॥ ८ ॥ शिरोव्रतसे विहीन पुरुष सब धर्मोंसे रहित होता है सब विद्याओंमें अधिकारी हो तोभी धर्मवर्जित ही जानना यदि यह व्रत न किया हो ॥ ९॥ यह शिरोव्रत पापरूपी वनका दहन करनेवाला है

सर्वपातकयुक्तोऽपिमुच्यतेसर्वपातकैः ॥ शिरोव्रतमिदंयेनचरितंविधिवद्बुध ॥५॥ शिरोव्रतमिदंनामशिरस्याथर्वणश्रुतेः ॥ यदुक्तंतद्धिनैवान्यत्तत्पुण्येनलभ्यते॥६॥शाखाभेदेषुनामानिव्रतस्यास्यविभेदतः ॥ पठ्यंतेमुनिशार्दूलशाखास्वेकव्रतंहितत् ॥ ७ ॥ सर्वशाखासुवस्त्वेकंशिवाख्यंसत्यचिद्घनम् ॥ तथातद्विषयंज्ञानंतथैवचाशिरोव्रतम् ॥ ८ ॥ शिरोव्रतविहीनस्तुसर्वधर्मविवर्जितः ॥ अपिसर्वासुविद्यासुसोऽधिकारीनसंशयः ॥९॥ शिरोव्रतमिदंकार्यंपापकांतारदाहकम् ॥ साधनंसर्वविद्यानांयतस्तत्सम्यगाचरेत्॥१०॥श्रुतिराथर्वणीसूक्ष्मासूक्ष्मार्थस्यप्रकाशिनी॥यदुवाचव्रतंप्रीत्यातन्नित्यंसम्यगाचरेत् ॥ ॥ ११ ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैःषड्भिःशुद्धेनभस्मना ॥ सर्वांगोद्धूलनंकुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम् ॥ १२ ॥ एतच्छिरोव्रतंकुर्यात्संध्याकालेषुसादरम् ॥ यावद्विद्योदयस्तावत्तस्यविद्याखलूत्तमा ॥ १३ ॥ द्वादशाब्दमथाब्दंवातदर्धंचतदर्धकम् ॥ प्रकुर्याद्द्वादशाहंवासंकल्पेनशिरोव्रतम् ॥ १४ ॥ शिरोव्रतेनयःस्नातस्तंतुनोपादिशेत्तुयः ॥ तस्यविद्याविनष्टास्यान्निर्घृणःसगुरुःखलु ॥ १५ ॥ ब्रह्मविद्यागुरुःसाक्षान्मुनिःकारुणिकःखलु ॥ यथासर्वेश्वरः श्रीमान्मृदुःकारुणिकःखलु ॥ १६ ॥

सब विद्याओंका साधक है इसकारण इसको भलीभाँतिसे आचरण करना चाहिये ॥ १० ॥ अथर्वणकी श्रुति सूक्ष्म अर्थका प्रकाश करनेवाली है उसने प्रीतिसे जो कहा है उसको भलीप्रकार आचरण करना चाहिये॥ ११ ॥ अग्नि इत्यादि छः मंत्र अर्थात् 'अग्निरितिभस्म, जलमितिभस्म, स्थलमितिभस्म, वायुरितिभस्म, व्योमेतिभस्म, सर्वं हवाइदं भस्म' इन अथर्वणमें कहे छः मंत्रोंद्वारा भस्मको सब अंगमें लगावै इसका नाम शिरोव्रत है ॥ १२ ॥ सन्ध्यासमय आदरसे यह शिरोव्रत करै जबतक ब्रह्मविद्याका उदय हो तबतक उसकी विद्या उत्तम है ॥ १३ ॥ बारह वर्ष, एकवर्ष, छःमहीने, तीन महीने अथवा बारह दिन संकल्पकरके शिरोव्रत करना चाहिये ॥ १४ ॥ जो शिरोव्रतसे स्नात है उसको जो गुरु उपदेश नहींकरता उसकी विद्या नष्ट होती है और वह गुरु कठोर है ॥ १५ ॥ ब्रह्मविद्याका देनेवालाही साक्षात् परमकारुणिक

गुरु है जैसे सर्वेश्वर श्रीमान् परमकारुणिक नारायण हैं. इसीप्रकार सत् उपदेष्टा गुरु हैं ॥ १६ ॥ जिन मनुष्योंने सहस्रों जन्मान्तरोंमें धर्माचरण किया है उनकीही इसमें श्रद्धा होती है अन्योंकी नहीं ॥ १७ ॥ अज्ञानकी बहुतापनसे इसमें द्वेषही होता है इसकारण द्वेषयुक्तको आत्मज्ञान नहीं होसकता ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन्! इस ब्रह्मविद्या उपदेशके वेही अधिकारी हैं जो शिरोव्रतमें स्नान करचुके हैं ॥ १९ ॥ जिन ब्राह्मणोंने आदरसे पाशुपतव्रत किया है उन्हींको उपदेश करना चाहिये. यह वेदका अनुशासन है ॥ २० ॥ जो पशु है वह पुरुष इसव्रतसे पशुत्व त्यागन करै उन पशुओंको मारकर वह ज्ञानी पापी नहीं होता यह वेदान्तका निश्चय है ॥ २१ ॥ जाबालि श्रुतिमें आदरपूर्वक त्रिपुंड्र धारणकरना कहा है त्र्यम्बकमंत्र और तारक मंत्रसे लगावै ॥ २२ ॥ गृहस्थाश्रममें स्थित हुआ नित्य त्रिपुंड्र धारण करै

जन्मांतरसहस्रेषुनरायेधर्मचारिणः ॥ तेषामेवखलुश्रद्धाजायतेनकदाचन ॥ १७ ॥ प्रत्युताज्ञानबाहुल्याद्द्वेषएवविजायते ॥ अतःप्रद्वेषयुक्तस्य नभवेदात्मवेदनम् ॥१८॥ ब्रह्मविद्योपदेशस्यसाक्षादेवाधिकारिणः ॥ तएवनेतरेविद्वन्येतुस्नाताशिरोव्रतैः ॥ १९ ॥ व्रतंपाशुपतंचीर्णंयैर्द्विजैरादरेणतु ॥ तेषामेवोपदेष्टव्यमितिवेदानुशासनम् ॥२०॥ यःपशुस्तत्पशुत्वंचव्रतेनानेनसंत्यजेत् ॥ तान्हत्वानसपापीयान्भवेद्वेदांतनिश्चयः॥२१॥त्रिपुंड्रधारणंप्रोक्तं जाबालैरादरेणतु ॥ त्रियंबकेनमंत्रेणसतारेणाशिवेनच ॥ २२ ॥ त्रिपुंड्रंधारयेन्नित्यंगृहस्थाश्रममाश्रितः ॥ ओंकारेणत्रिरुक्तेनसहंसेनत्रिपुंड्रकम् ॥ २३ ॥ धारयेद्भिक्षुकोनित्यमितिजाबालिकीश्रुतिः ॥ त्रियंबकेनमंत्रेणप्रणवेनशिवेनच ॥ २४ ॥ गृहस्थश्चवनस्थश्चधारयेच्चत्रिपुंड्रकम् ॥ मेधावीत्यादिनावाऽपि ब्रह्मचारीदिनेदिने ॥ २५ ॥ भस्मनासजलेनाऽपिधारयेच्चत्रिपुंड्रकम् ॥ ब्राह्मणोविधिनोत्पन्नस्त्रिपुंड्रंभस्मनैवतु ॥ २६ ॥ ललाटेधारयेन्नित्यंतिर्यग्भस्मावगुंठनम् ॥ "महादेवस्यसंबंधात्तद्धर्मेप्यस्तिसंगतिः" ॥ सम्यक्त्रिपुंड्रधर्मंचब्राह्मणोनित्यमाचरेत् ॥ २७ ॥ आदिब्राह्मणभूतेनात्रिपुंड्रंभस्मनाधृतम् ॥ यतोऽतएवविप्रस्तुत्रिपुंड्रंधारयेत्सदा ॥ २८ ॥ भस्मनावेदसिद्धेनात्रिपुंड्रंदेहगुंठनम् ॥ रुद्रलिंगार्चनंवाऽपिमोहतोऽपिचनत्यजेत् ॥ २९ ॥

तीनवार ॐकार अथवा हंस इसमंत्रसे धारण करै ॥ २३ ॥ भिक्षुकभी नित्यधारण करै यह जाबालकी श्रुति है त्र्यम्बकमंत्र, ओंकारमंत्र, नमःशिवाय मंत्र चाहै ॥ २४ ॥ गृहस्थ और वनवासीको त्रिपुंड्र धारण करना उचित है. मेधावी इत्यादि मंत्रसे दिन२ ब्रह्मचारी धारण करै ॥ २५ ॥ भस्म तथा जलसे त्रिपुंड्र धारण करै, ब्राह्मण विधि पूर्वक भस्मद्वारा त्रिपुंड्र धारण करै ॥ २६ ॥ ललाटमें तिरछी भस्म धारण करै [महादेवके सम्बन्धसे इस धर्ममें संगति होती है] त्रिपुंड्रधर्मको नित्यही ब्राह्मणको धारण करना चाहिये ॥ २७ ॥ आदिब्राह्मण ब्रह्माजीने त्रिपुंड्र धारण किया है इसकारण ब्राह्मण सदा त्रिपुंड्र धारण करै ॥ २८ ॥ वेदसिद्ध भस्मसे देहमें भस्म लगाकर त्रिपुंड्र चढाना चा

हिये और मोहसेभी कभी शिवलिंगका अर्चन न त्यागे॥ २९॥ त्र्यम्बकमंत्र तारकमंत्र पंचाक्षर वा प्रणवमंत्रसे॥ ३०॥ हे महामुने! ललाट हृदय भुजाओंमें संन्यासाश्रममेंभी स्थित हुआ नित्य त्रिपुंड्र धारण करै ॥ ३१ ॥ त्र्यायुषंजमदग्ने० मेधावीत्यादि० मंत्रसे गौणभस्म (अग्निहोत्र की जो नहो) का त्रिपुंड्रभी ब्रह्मचारी धारण करसकता है ॥ ३२ ॥ 'शिवायनमः' इसमंत्रसे सेवामें तत्पर शूद्रभी शरीरमें भस्म और मस्तकपर नित्य भक्तिसे त्रिपुंड्र लगावै ॥ ३३ ॥ हे सुव्रत! और सबोंको विनामंत्रकेही शरीरमें भस्म और त्रिपुंड्र धारण करना चाहिये॥ ३४॥ ऐश्वर्यके निमित्त शरीरमें भस्म लगाना त्रिपुंड्रका धारण करना सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है इस कारण नित्य इसको भक्तिसे आचरण करै ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रकी भस्म वा विरजा होमकी भस्म आदरसे लेकर शुद्ध पात्रमें रख छोडे ॥ ३६ ॥ हाथ पैर

त्रियंबकेनमंत्रेणसतारेणतथैवच ॥ पंचाक्षरेणमंत्रेणप्रणवेनतथैवच ॥३०॥ ललाटेहृदयेचैवदोर्द्वंद्वेचमहामुने ॥ त्रिपुंड्रंधारयेन्नित्यंसंन्यासाश्रममाश्रितः ॥ ॥३१॥ त्रियायुषेणमंत्रेणमेधावीत्यादिनाऽथवा ॥ गौणेनभस्मनाधार्यंत्रिपुंड्रंब्रह्मचारिणा॥३२॥नमोंतेनशिवेनैवशूद्रःशुश्रूषणेरतः ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचनि त्यंभक्त्यासमाचरेत् ॥३३॥अन्येषामपिसर्वेषांविनामंत्रेणसुव्रत ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचकर्तव्यंभक्तितोमुने ॥३४॥ भूत्यैवोद्धूलनंतिर्यक्त्रिपुंड्रस्यचधारणम् ॥ वरेण्यंसर्वधर्मेभ्यस्तत्त्वान्नित्यंसमाचरेत् ॥ ३५ ॥ भस्माग्निहोत्रजंवाऽथविरजाग्निसमुद्भवम् ॥ आदरेणसमादायशुद्धेपात्रेनिधायतत् ॥३६॥ प्रक्षाल्यपा दौहस्तौचद्विराचम्यसमाहितः ॥ गृहीत्वाभस्मतत्पंचब्रह्ममंत्रैःशनैःशनैः ॥ ३७ ॥ प्राणायामत्रयंकृत्वाअग्निरित्यादिमंत्रितम् ॥ तैरेवसप्तभिर्मंत्रैस्त्रिवारम भिमंत्रयेत् ॥ ३८ ॥ ओमापोज्योतिरित्युक्त्वाध्यात्वामंत्रानुदीरयेत् ॥ सितेनभस्मनापूर्वंसमुद्धूल्यशरीरकम् ॥३९॥ विपापोविरजोमर्त्योजायतेनात्रसं शयः ॥ ततोध्यात्वामहाविष्णुंजगन्नाथंजलाधिपम् ॥ ४० ॥ संयोज्यभस्मनातोयमग्निरित्यादिभिःपुनः ॥ विमृज्यसांबंध्यात्वाचसमुद्धूल्योर्ध्वमस्तकम् ॥ ४१ ॥ तेनभावनयाब्रह्मभूतेनसितभस्मना ॥ ललाटवक्षःस्कंधेषुस्वाश्रमोचितमंत्रतः ॥ ४२ ॥

धोय दो वार आचमन कर भस्म लेकर शनैः शनैः वह सद्योजातादि पंचब्रह्म मंत्रों [सद्योजातादि] से ग्रहण कर ॥ ३७ ॥ तीन प्राणायाम करकै अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, वायुरिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वंहवा भस्म इन सात मंत्रोंसे तीन वार अभिमंत्रण करै ॥ ३८ ॥ ओम् आपोज्योतीरसोमृतम् यह कहकर मंत्रोंको उच्चारण करै पहले श्वेतभस्मसे शरीरको उद्धूलन करै ॥ ३९॥ इससे मनुष्य पापरहित होते हैं इसमें सन्देह नहीं फिर जगन्नाथ जलाधिप महाविष्णुको ध्यान कर ॥ ४० ॥ भस्मसे जल मिलाय अग्निरित्यादि मंत्रोंसे वारंवार मिलाकर शिवका ध्यान करते ऊर्ध्व मस्तकमें उद्धूलन करै ॥ ४१ ॥ इस भावनासे ब्रह्मभूत

सितभस्मद्वारा अपने आश्रमके उचित मंत्रोंसे ललाट छाती स्कंधोंमें ॥ ४२ ॥ मध्यमा अनामिका अंगुष्ठ इनसे सव्य अपसव्य द्वारा अर्थात् दो अंगुलीसे बाईं ओरसे आरंभकर दक्षिणभागपर्यन्त दो रेखा करै और अँगूठेसे दक्षिण भागसे आरंभकर वामभागपर्यन्त एकरेखा करै इसप्रकार भक्तिसे तीनोंकालमें त्रिपुंड्र धारण करै ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥छ॥ ॥ छ ॥ नारायण बोले अग्निकी गौणभस्म भी अज्ञाननाशक और ज्ञानसाधक है. हे ब्रह्मन् ! हे ब्रह्मविदांवर ! तुम गौणभस्मको भी अनेक प्रकारकी जानो ॥ १ ॥ हे मुने ! और जैसी अग्निहोत्रकी भस्म है वैसेही विरजाहोमकी [संन्यासके] समय विराजाहोमकाविशेष प्रचार है उपासन अग्निसे उत्पन्न स्मार्त विवाहाग्निसे प्रगट समिधाकी अग्निसे

मध्यमानामिकांगुष्ठैरनुलोमविलोमतः ॥ त्रिपुंड्रंधारयेन्नित्यंत्रिकालेष्वपिभक्तितः ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥छ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ आग्नेयंगौणमज्ञानध्वंसकंज्ञानसाधकम् ॥ गौणंनानाविधंविद्धिब्रह्मन्ब्रह्मविदांवर ॥ १ ॥ अग्निहोत्राग्निजं तद्वद्विरजानलजंमुने ॥ औपासनसमुत्पन्नंसमिदग्निसमुद्भवम् ॥ २ ॥ पचनाग्निसमुत्पन्नंदावानलसमुद्भवम् ॥ त्रैवर्णिकानांसर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ विरजानलजंचैवधार्यंभस्ममहामुने ॥ औपासनसमुत्पन्नंगृहस्थानांविशेषतः ॥ ४ ॥ समिदग्निसमुत्पन्नंधार्यंवैब्रह्मचारिणा ॥ शूद्राणांश्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम् ॥ ५ ॥ अन्येषामपिसर्वेषांधार्यंदावानलोद्भवम् ॥ कालश्चित्रापौर्णमासीदेशःस्वयिःपरिग्रहः ॥६॥ क्षेत्रारामाद्यरण्यंवाप्रशस्तःशुभलक्षणः ॥ तत्रपूर्वंत्रयोदश्यांसुस्नातःसुकृताग्निकः ॥ ७ ॥ अनुज्ञाप्यस्वमाचार्यंसंपूज्यप्रणिपत्यच ॥ पूजां वैशेषिकींकृत्वाशुक्लांबरधरःस्वयम् ॥ ८ ॥

उत्पन्न ॥ २ ॥ पंचाग्निसे दावानलसे तथा अग्निहोत्रसे उत्पन्नहुई तीनोंवर्णों और सबको हितकारी है ॥ ३ ॥ हे महामुने ! विरजाभस्म तीनोंवर्णोंको धारण करनी चाहिये, स्मार्ताग्नि गृहस्थोंको धारण करनी चाहिये ॥ ४ ॥ समिधाग्नि ब्रह्मचारियोंको, शूद्रोंको श्रोत्रियके स्थानकी पचनाग्नि भस्म धारण करनी चाहिये ॥ ५ ॥ और सबको दावानलके अग्निकी भस्म धारण करनी चाहिये विरजानलकी उत्पत्तिकासमय कहते हैं चित्रायुक्त पूर्णमासी पुण्यकाल है जहां स्वयं स्थितहो वही पुण्यदेश है ॥ ६ ॥ क्षेत्र बगीचा वन शुभलक्षणवाला उत्तम है सो पहले त्रयोदशीके दिन स्नानकर आह्निक क्रियाकर ॥ ७ ॥ अपने आचार्यसे अनुज्ञालेकर पूजापूर्वक

प्रणामकर तथा विशेष पूजाकर स्वयं शुक्लवस्त्र धारणकर ॥ ८ ॥ शुद्ध यज्ञोपवीत और श्वेतमालाको पहर श्वेत अनुलेपन लगाय कुशासनपर बैठ एकमुष्टि कुश ग्रहण कर ॥ ९ ॥ तीन प्राणायामकर पूर्व वा उत्तरको मुखकर देवी और देवका ध्यान कर उसकी आज्ञा मनसे ग्रहण करके ॥ १० ॥ मैं यह व्रत करता हूं इसप्रकार संकल्पकर दीक्षित हो जबतक शरीरपातहो अथवा बारह वर्षतक ॥ ११ ॥ वा छः वा तीन वा एक वर्षतक छः महीने तीन महीने वा एक महीने ॥ १२॥ बारहदिन छः दिन तीन दिन वा एकदिन व्रतकी संकल्पना विधिके अनुसार ॥ १३ ॥ अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निका आधान करके विरजाहोमके निमित्त अग्निमें हवनकरै घृत, समिधा और यथाविधि चरुको त्यागे ॥ १४ ॥ पूर्णमासीसे प्रथमही तत्वकी शुद्धि होती है इस उद्देशसे यह हवनकरना चाहिये मूलमंत्रसे उन्हीं समिधाओंद्वारा

शुद्धयज्ञोपवीतीचशुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ दर्भासनेसमासीनोदर्भमुष्टिंप्रगृह्यच ॥९॥ प्राणायामत्रयंकृत्वाप्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः॥ध्यात्वादेवंचदेवींचतद्विज्ञापनवर्त्मना ॥ १० ॥ व्रतमेतत्करोमीतिभवेत्संकल्पदीक्षितः ॥ यावच्छरीरपातंवाद्वादशाब्दमथाऽपिवा ॥११॥ तदर्धंवातदर्धंवामासद्वादशकंतुवा ॥ तदर्धंवातदर्धंवामासमेकमथापिवा ॥ १२ ॥ दिनद्वादशकंवाऽपिदिनषट्कमथापिवा ॥ तदर्धंदिनमेकंवाव्रतसंकल्पनावधि ॥ १३ ॥ अग्निमाधायविधिवद्विरजाहोमकारणात् ॥ हुत्वाऽऽज्येनसमिद्भिश्चचरुणाचयथाविधि ॥ १४ ॥ पूताहात्पुरतोभूयस्तत्त्वानांशुद्धिमुद्दिशन् ॥ जुहुयान्मूलमंत्रेणतैरेवसमिदादिभिः ॥ १५ ॥ तत्त्वान्येतानिमेदेहेशुध्यंतामित्यनुस्मरन् ॥ पश्चाद्भूतादितन्मात्राःपंचकर्मेंद्रियाणिच ॥ १६ ॥ ज्ञानकर्मविभेदेनपंचपंचविभागशः ॥ त्वगादिधातवःसप्तपंचप्राणादिवायवः ॥ १७ ॥ मनोबुद्धिरहंकारोगुणाःप्रकृतिपूरुषौ ॥ रागोविद्याकलाचैवनियतिःकालएवच ॥ १८ ॥ मायाचशुद्धविद्याचमहेश्वरसदाशिवौ ॥ शक्तिश्चशिवतत्त्वंचतत्त्वानिक्रमशोविदुः ॥ १९ ॥ मंत्रैस्तुविरजैर्हुत्वाहोताऽसौविरजोभवेत् ॥ अथगोमयमादायपिंडीकृत्याभिमंत्र्यच ॥ २० ॥ न्यस्याग्नौतंचसंरक्ष्यदिनेतास्मिन्हविष्यभुक् ॥ प्रभातेचचतुर्दश्यांकृत्वासर्वंपुरोदितम् ॥ २१ ॥

हवन करना चाहिये ॥ १५॥ और यह स्मरणकरे कि, यह मेरे देहके तत्व शुद्धहों पीछे पांच महाभूत उन पांचोंकी तन्मात्रा पंचकर्मेन्द्रिय ॥ १६ ॥ यह ज्ञान और कर्मके भेदसे पांच, पांच, तथा त्वचाआदि सातधातु और प्राणादि पांचवायु॥ १७॥ मन, बुद्धि, अहंकार उनके सत्वादि गुण प्रकृति और पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल ॥ १८॥ माया, शुद्धविद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिवतत्व यह क्रमसे तत्व हैं ॥ १९॥ विरजाहोमके मंत्रोंसे हवनकरनेसे होता पापरहित होता है, गौका गोवर लाय उसका पिण्ड बनाय पंचाक्षरमंत्रसे उसको अभिमंत्रणकर॥ २०॥ उसको अग्निमें रखकर रक्षाकरे और उसदिन हविष्यान्न खाय फिर प्रभातकाल चतुर्दशीको

१ पृथ्वीतत्वमें शुध्यतां ज्योतिरहं विरजाविपाप्माभूयासं स्वाहा यहक्रमसे मंत्रजाने इस प्रकार एक २ तत्वके नाम उच्चारण कर हवन करै।

पूर्वोक्तरीतिसे पंचाक्षर द्वारा हवन करकै ॥ २१ ॥ उसदिन निराहार रहकर शेष समय व्यतीत करै फिर पूर्णिमाको नित्यकर्म समाप्त करकै फिर पंचाक्षर मंत्रसे हवन करकै ॥ २२ ॥ रुद्राग्निको विसर्जनकर यत्नसे भस्म लेकर फिर जटावान् वा मुंडशिखा वा एक जटावाला होकर ॥ २३ ॥ स्नानकरै यदि लोकलाज न रही हो तो दिगम्बर होजाय यदि सलज्ज हो तो काषाय वस्त्र चर्म चीरके वस्त्रधारण किये रहै॥ २४ ॥ एक वस्त्र वा वल्कलधारी दण्ड और मेखला धारण किये रहे, पश्चात् अपने दोनों चरणोंको प्रक्षालनकर फिर दोवार आचमनकर ॥ २५ ॥ विरजानलकी भस्मको एकत्र करकै 'अग्निरिति भस्म' इन अथर्वणके छः मंत्रोंसे ॥ २६ ॥ मूर्धासे चरणोंतक

तस्मिन्दिनेनिराहारःकालशेषंसमापयेत् ॥ प्रातःपर्वणिचाप्येवंकृत्वाहोमावसानतः ॥ २२ ॥ उपसंहृत्यरुद्राग्निंगृहीत्वाभस्मयत्नतः ॥ ततश्चजटिलोमुंडःशिखैकजटएवच ॥ २३ ॥ भूत्वास्नात्वापुनर्वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगंबरः ॥ अन्यःकाषायवसनश्चर्मचीरांबरोऽथवा ॥ २४ ॥ एकांबरोवल्कलवान्भवेद्दंडीचमेखली ॥ प्रक्षाल्यचरणौपश्चाद्द्विराचम्याऽऽत्मनस्तनुम् ॥२५॥ संकलीकृत्यतद्भस्मविरजानलसंभवम् ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैःषड्भिराथर्वणैःक्रमात् ॥ २६ ॥ विमृज्यांगानिमूर्धादिचरणांतंचतैःस्पृशेत् ॥ ततस्तेनक्रमेणैवसमुद्धूल्यचभस्मना ॥ २७ ॥ सर्वांगोद्धूलनंकुर्यात्प्रणवेनशिवेनवा ॥ ततश्चपुंड्रंरचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ॥ २८ ॥ शिवभावंसमागम्यशिवभावमथाचरेत् ॥ कुर्यात्त्रिसंध्यमप्येवमेतत्पाशुपतंव्रतम् ॥ २९ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदंचैवपशुत्वंविनिवर्तयेत् ॥ तत्पशुत्वंपरित्यज्यकृत्वापाशुपतंव्रतम् ॥ ३० ॥ पूजनीयोमहादेवोलिंगमूर्तिःसदाशिवः ॥ भस्मस्नानंमहापुण्यंसर्वसौख्यकरंपरम् ॥ ३१ ॥

धोकर इसीक्रमसे भस्मसे उद्धूलन करै ॥ २७ ॥ फिर ओंकार वा शिवमंत्रसे सर्वांगमें भस्म लगावै फिर "त्र्यायुषंजमदग्नेः" इस प्रकारके मंत्रसे त्रिपुंड्र धारणकरै ॥ २८ ॥ शिवभावको प्राप्त होकर शिवभावकाही आचरण करै. ऐसा तीनोंसंध्याओंमें करै यह पाशुपत व्रत है ॥ २९ ॥ यह भुक्तिमुक्तिका दाता और पशुत्वका निवृत्त करनेवाला है. इसकारण पशुत्वत्याग पाशुपत व्रत करकै ॥ ३० ॥ लिंगमूर्तिसदाशिव महादेव सदा पूजाके योग्य है भस्मका स्नान महा पवित्र सब सुखदायक है॥ ३१ ॥

आयु, बल, आरोग्य, श्री और पुष्टिका बढानेवाला है रक्षामंगल और सबसम्पत्तिकी समृद्धिके निमित्त करना चाहिये ॥ ३२ ॥ भस्मसे स्नान करनेवाले मनुष्योंको महामारीका भय नहीं होता यह भस्म शान्ति पुष्टि और कामना देनेसे तीन प्रकारकी है ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ नारदजी बोले हे देव! यह भस्म तीनप्रकारकी कैसे है इसके सुननेका मुझे परम कौतूहल है सो आप कहिये॥ १॥ श्रीनारायण बोले हे नारद! भस्मके तीनप्रकार आपसे कहता हूं सुनो यह महापापक्षयकारी महाकीर्ति करनेवाला है ॥२॥ जो गोबर भूमिपर नहीं गिरनेपाता और हाथमेंही ग्रहणकर लिया जाता है और 'सद्योजातादि' पंचब्रह्म मंत्रोंसे दग्धकियाजाय वह शांतिकरनेवाला होता है ॥ ३॥ मनुष्य सावधान होकर गोबर ग्रहण करे अर्थात्. उसे अन्तरिक्षमें ही ग्रहणकर षडंगके

आयुष्यंबलमारोग्यंश्रीपुष्टिवर्धनंयतः ॥ रक्षार्थंमंगलार्थंचसर्वसंपत्समृद्धये ॥ ३२ ॥ भस्मस्निग्धमनुष्याणांमहामारीभयंनच ॥ शांतिकंपौष्टिकंभस्मकामदंचत्रिधाभवेत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारदउवाच ॥ त्रिविधत्वं कथंचास्यभस्मनःपरिकीर्तितम् ॥ एतत्कथयमेदेवमहत्कौतूहलंमम ॥ १ ॥ नारायणउवाच ॥ त्रिविधत्वंप्रवक्ष्यामिदेवर्षेभस्मनःशृणु ॥ महापापक्षयकरंमहाकीर्तिकरंपरम् ॥ २ ॥ गोमयंयोनिसंबद्धंतद्धस्तेनैवगृह्यते ॥ ब्राह्मैर्मंत्रैस्तुसंदग्धंतच्छांतिकृदिहोच्यते ॥ ३ ॥ सावधानस्तुगृह्णीयान्नरोवैगोमयंतु यत् ॥ अंतरिक्षेगृहीत्वातत्षडंगेनदहेदतः ॥४॥ पौष्टिकंतत्समाख्यातंकामदंचततःशृणु ॥ प्रसादेनदहेदेतत्कामदंभस्मकीर्तितम् ॥५॥ प्रातरुत्थायदेवर्षेभस्मव्रतपरःशुचिः ॥ गवांगोष्ठेषुगत्वातुनमस्कृत्वातुगोकुलम् ॥ ६ ॥ गवांवर्णानुरूपाणांगृह्णीयाद्गोमयंशुभम् ॥ ब्राह्मणस्यचगौःश्वेतारक्तागौःक्षत्रियस्यच ॥ ७ ॥ पीतवर्णातुवैश्यस्यकृष्णाशूद्रस्यकथ्यते ॥ पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यांवाविशुद्धधीः ॥ ८ ॥ प्रासादेनतुमंत्रेणगृहीत्वागोमयंशुभम् ॥ हृदयेनतुमंत्रेणपिंडीकृत्यतुगोमयम् ॥ ९ ॥ रविरश्मिसुसंतप्तंशुचौदेशेमनोहरे ॥ तुषेणवाबुसैर्वापिप्रासादेनतुनिक्षिपेत् ॥ १० ॥ अरण्योद्भवमग्निंश्रोत्रियागारजंतुवा ॥ तदग्नौविन्यसेत्तंचशिवबीजेनमंत्रतः ॥ ११ ॥ गृह्णीयादथतत्राग्निकुंडाद्भस्मविचक्षणः ॥ नवपात्रंसमादायप्रसादेनतुनिक्षिपेत् ॥१२॥

मंत्रोंसे भस्मकरै ॥ ४॥ यह पुष्टिकारक भस्म होती है अब कामनादायकको सुनो जो 'हौम' मंत्रसे भस्म की जाय वह कामद है ॥५॥ हे नारद! भस्म व्रत करनेवाला प्रभातही उठकर गौके गोठमें जाय गोकुलको नमस्कार कर ॥६॥ गौओंके वर्णके अनुसार सुन्दर गोबर लेकर अर्थात् ब्राह्मणकी गौ श्वेत क्षत्रियकी लाल॥ ७॥ वैश्यकी पीली और शूद्रकी कृष्णवर्णकी कही है विशुद्धबुद्धिवाला पूर्णिमा अमावस अष्टमीमें ॥ ८ ॥ 'हौम्' इस मंत्रसे सुन्दर गोबर ग्रहण कर 'हृदयेनमः' इस मंत्रसे उसकी पिण्डी बनाय ॥ ९॥ अच्छे स्थानमें सूर्यकी किरणोंसे सुखावै और भूसी वा बुस (भूसा) से वेष्टित कर प्रासाद मंत्रसे उसमें निक्षेप करै ॥ १०॥ वनकी अग्नि श्रोत्रियके स्थानकी अग्निमें शिवके बीज मंत्रसे डालकर पूर्वोक्त रीतिसे हवन करै ॥ ११॥ फिर चतुर पुरुष उस अग्निकुंडसे भस्म ग्रहण करे नवीन पात्र लेकर 'हौम्'

मंत्रसे उसमें भस्म डाले ॥ १२ ॥ केतकी, पाढल, खस, चन्दन और केशरादि अनेक सुगंधके द्रव्य ॥ १३ ॥ 'सद्योजात' मंत्रसे उसमें डे पहले जल और पीछे भस्मस्नान करे ॥ १४ ॥ जलस्नानमें अशक्त हो तो भस्मस्नानही करे 'ईशानः सर्व विद्याना' मित्यादि मंत्रसे हाथ पैर शिरके प्रक्षालन करने ॥ १५ ॥ अंगोंमें उद्धूलन करे तत्पुरुष मंत्रसे मुखमें, अघोर मंत्रसे हृदयमें, वामदेव मंत्रसे नाभिमें ॥ १६ ॥ सद्योजात मंत्रसे विचक्षण सर्वांगमें समद्धूलन करे. १९ वस्त्रको त्यागकर फिर शुद्ध वस्त्रको ग्रहण करे ॥ १७ ॥ हाथ पैर धोकर पीछे आचमन करे भस्मके उद्धूलनके अभावमें त्रिपुंड्र धारण करे ॥ १८ ॥ मध्याह्नसे प१ह जलसे स्नान करे फिर जलके विना स्नान करे तर्जनी और अनामिका मध्यसे त्रिपुंड्र लगावे ॥१९॥ शिर, ललाट, कर्ण, कंठ, हृदय, बाहु, यह न्यासके स्थान हैं २०॥ 'हौम्'

केतकीपाटलीतद्वदुशीरंचंदनंतथा ॥ नानासुगंधिद्रव्याणिकाश्मीरप्रभृतीनिच ॥ १३ ॥ निक्षिपेत्तत्रपात्रेतुसद्योमंत्रेणशुद्धधीः ॥ जलस्नानंपुरः कृत्वाभस्मस्नानमतःपरम् ॥ १४ ॥ जलस्नानेत्वशक्तश्चभस्मस्नानंसमाचरेत्॥प्रक्षाल्यपादौहस्तौचशिरश्चेशानमंत्रतः ॥१५॥ सुमुद्धूल्यततःपश्चादाननंतत्पुरुषेणतु ॥ अघोरेणतुहृदयंनाभिंवामेनतत्परम् ॥ १६ ॥ सद्योमंत्रेणसर्वांगंसमुद्धूल्यविचक्षणः ॥ पूर्ववस्त्रंपरित्यज्यशुद्धवस्त्रंपरिग्रहेत् ॥ १७॥ प्रक्षाल्यपादौहस्तौचपश्चादाचमनंचरेत्॥भस्मनोद्धूलनाभावेत्रिपुड्रंतुविधीयते ॥ १८ ॥ मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तंपरतोजलवर्जितम् ॥ तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुंड्रंचसमाचरेत् ॥ १९ ॥ मूर्ध्निचैवललाटेचकर्णेकंठेतथैवच ॥ हृदयेचैवबाहोश्चन्यासस्थानंहिचोच्यते ॥ २० ॥ पंचांगुलैर्न्यसेन्मूर्ध्निप्रासादेनतुमंत्रतः ॥ त्र्यंगुलैर्विन्यसेद्भालेशिरोमंत्रेणदेशिकः ॥२१॥ सद्येनदक्षिणेकर्णेवामदेवेनवामतः ॥ अघोरेणतुकंठेचमध्यांगुल्यास्पृशेद्बुधम् ॥ २२ ॥ हृदयंहृदयेनैवत्रिभिरंगुलिभिःस्पृशेत् ॥ विन्यसेद्दक्षिणेबाहौशिखामंत्रेणदेशिकः ॥ २३ ॥ वामबाहौन्यसेद्धीमान्कवचेनत्रियंगुलैः ॥ मध्येनसंस्पृशेन्नाभ्यामीशानइतिमंत्रतः ॥ २४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तिस्रोरेखाइतिस्मृताः ॥ आद्योब्रह्माततोविष्णुस्तदूर्ध्वंतुमहेश्वरः ॥ २५ ॥ एकांगुलेनन्यस्तंयदीश्वरस्तत्रदेवता ॥ शिरोमध्येत्वयंब्रह्माईश्वरस्तुललाटके ॥ २६ ॥

मंत्रसे पांच अंगुलीसे शिरमें लगावे तीन अंगुलीसे भालमें शिरोमंत्र (स्वाहा) से लगावे॥ २१॥ 'सद्यो' मंत्रसे दहिने कानमें 'वामदेव' मंत्रसे बांये कानमें 'अघोर'मंत्रसे कंठमें मध्य अंगुलीसे स्पर्श करे॥ २२॥ हृदयको हृदयद्वारा 'हृदयेनैवनमः' इसप्रकार तीन अंगुलीसे स्पर्श करे दक्षिण बाहुमें शिखामंत्रसे न्यास करे ॥ २३ ॥ तीन अंगुलसे वामबाहुसे तीन अंगुल कवचका न्यास करे 'ईशान' मंत्रसे मध्यमा अंगुलीसे नाभि स्पर्श करे ॥ २४ ॥ यह तीन रेखा ब्रह्मा विष्णु महेशरूप हैं पहली रेखा ब्रह्मा दूसरी विष्णु और तीसरी महेश्वर है ॥ २५ ॥ जो एक अंगुलीसे न्यास है उसका ईश्वर देवता है शिरोमध्यका ब्रह्मा और ललाटका देवता ईश्वर है ॥ २६ ॥

दोनों कानोंके अश्विनीकुमार गणेश गलेके देवता हैं क्षत्रिय वैश्य और शूद्र यह सर्वांगमें उद्धूलन न करै ॥ २७ ॥ और सब अन्त्यज जातियोंका मंत्ररहित होता है अदीक्षित मनुष्योंका भी मंत्ररहित होता है ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥
श्रीनारायण बोले हे देवर्षे ! भस्म लगानेका फल सुनो यह रहस्य और विधानके सहित कहता हूं जो सब कामना और फलका देनेवाला है ॥ १ ॥ कपिला गौका गोबर आकाशमेंही ग्रहणकरै जो बहुत पतला कठिन और दुर्गन्धयुक्त और बासी न हो ॥ २ ॥ और जो गिरपडा हो तो ऊपरनीचेका त्यागकर बीचसे

कर्णयोरश्विनौदेवौगणेशस्तुगलेतथा ॥ क्षत्रियश्चतथावैश्यःशूद्रश्चोद्धूलनंत्यजेत् ॥२७॥ सर्वेषामंत्यजातीनांमंत्रेणरहितंभवेत् ॥ "उदीक्षितंमनुष्याणामपि मंत्रंविनाभवेत्" ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेएकादशोऽध्यायः ॥११॥ श्रीनारायणउवाच ॥ देवर्षेशृणुतत्सर्वंभस्मोद्धूलनजंफलम् ॥ सरहस्यविधानंचसर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥ कपिलायाःशकृत्स्वच्छंगृहीत्वागगनेपतत् ॥ नक्लिन्नंनापिकठिनंनदुर्गंधंनचोषितम् ॥२॥ उपर्यधःपरित्यज्य गृह्णीयात्पतितंयदि ॥ पिंडीकृत्यशिवाग्यादौतत्क्षिपेन्मूलमंत्रितम् ॥३॥ आदायवाससाच्छाद्यभस्माधानेविनिक्षिपेत् ॥ सुकृतेसुदृढेशुद्धेक्षालितेप्रोक्षिते शुभे ॥४॥ विन्यस्यमंत्रीमंत्रेणपात्रेभस्मविनिक्षिपेत् ॥ तैजसंदारवंचाथमृन्मयंचैलमेवच ॥५॥ अन्यद्वाशोभनंशुद्धंभस्माधारंप्रकल्पयेत् ॥ क्षौमेचैवातिशुद्धेवा वनवद्भस्मनिक्षिपेत् ॥ ६ ॥ प्रस्थितोभस्मगृह्णीयात्स्वयंचानुचरोपिवा ॥ नचायुक्तकरेदद्यान्नचाशुचितलेक्षिपेत् ॥७॥ नसंस्पृशेत्तुनीचांगैर्नक्षिपेन्नचलं घयेत् ॥ तस्माद्भसितमादायविनियुंजीतमंत्रितम् ॥ ८ ॥ विभूतिधारणविधिःस्मृतिप्रोक्तोमयेरितः ॥ यदीयाचरणेनैवशिवतुल्योनसंशयः ॥ ९ ॥

ग्रहण करै और शिवाग्निमें पिंडीकरके मूलमंत्रसे उसमें डाले ॥ ३ ॥ फिर उसे वस्त्रसे लेकर भस्मके पात्रमें डालै अच्छे सुकृत सुदृढ क्षालित सुदेशमें ॥ ४ ॥ उसको रखकर फिर पात्रमें डालै सुवर्ण ताम्रादि धातुका काठका मृत्तिका चैलवस्त्रका ॥ ५ ॥ अथवा और किसी प्रकारका शुद्ध भस्माधार कल्पना करै क्षौम वस्त्र (अलसीकेवस्त्र) में वा अतिशुद्धमें भस्म धरै ॥ ६ ॥ मार्गमें जातेहुए स्वयं भस्म ग्रहणकरै अथवा अनुचरोंको देदे पर अयुक्त पुरुषको नदे और न अपवित्र स्थानमें धरै ॥ ७ ॥ नीचअंगोंसे भस्मको स्पर्श नकरै नकहीं डालै न उल्लंघन करै भस्म लेकर मंत्रसे नियुक्त करै ॥ ८ ॥ विभूति धारणकी विधि स्मृतिमें मेरी कही है जिसके आच

रण करतेही निःसन्देह यह प्राणी शिवकी तुल्य होजाता है ॥ ९ ॥ जो वेदमंत्रों द्वारा शैवोंने शिवके समीप भस्म धारण की है उसे प्रार्थनाकर परमभक्तिसे ग्रहण करनी चाहिये ॥ १० ॥ तांत्रिकोंसे पूजीत भस्म तंत्रोक्तमार्गसे ग्रहण करनी चाहिये और वैदिकोंको जहां कहांकी दीहुई ग्रहण नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥ शूद्र कापालिकोंसे वा पाखंडवालोंसे न लेनी भक्तिसे त्रिपुण्ड्र धारण करै और मनसे भी उल्लंघन न करे ॥ १२ ॥ कारण कि, इसमें श्रुतिका विधान है इसके त्यागसे पतित होता है भक्तिसे त्रिपुंड्र धारण देहमें अवगुंठन (मलना) ॥ १३ ॥ मंत्रपूर्वक ब्राह्मण करे इसके त्यागसे पतित होता है जो भक्तिसे भस्म धारण और त्रिपुण्ड्र नहीं लगाते हैं ॥ १४ ॥ करोड जन्मोंमें भी संसारसे उनका छुटकारा नहीं होता. हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसने उक्तमार्गसे भस्म धारण नकी ॥ १५ ॥ हे मुनिराज ! उसका शूकरकी

शैवैःसंपादितंभस्मवैदिकैःशिवसन्निधौ ॥ भक्त्यापरमयाग्राह्यंप्रार्थयित्वातुपूजयेत् ॥ १० ॥ तंत्रोक्तवर्त्मनासिद्धंभस्मतांत्रिकपूजकैः ॥ यत्रकुत्रापिदत्तंचेत्तद्ग्राह्यंनैववैदिकैः ॥ ११ ॥ शूद्रैःकापालिकैर्वाथपाखंडैरपरैस्तुतत् ॥ त्रिपुंड्रंधारयेद्भक्त्यामनसाऽपिनलंघयेत् ॥१२॥ श्रुत्याविधीयतेयस्मात्तत्त्यागीपतितोभवेत् ॥ त्रिपुंड्रधारणंभक्त्यातथादेहावगुंठनम् ॥ १३ ॥ द्विजःकुर्याद्धिमंत्रेणतत्त्यागीपतितोभवेत् ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचभक्त्यानैवाचरंतिये ॥ १४॥ तेषांनास्तिविनिर्मोक्षःसंसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ येनभस्मोक्तमार्गेणधृतंनमुनिपुंगव ॥ १५ ॥ तस्यविद्धिमुनेजन्मनिष्फलंसौकरंयथा ॥ येषांवपुर्मनुष्याणांत्रिपुंड्रेणविनास्थितम् ॥ १६ ॥ श्मशानसदृशंतत्स्यान्नप्रेक्ष्यंपुण्यकृज्जनैः ॥ धिग्भस्मरहितंभालंधिग्ग्राममशिवालयम् ॥१७ ॥ धिगनीशार्चनंजन्मधिग्विद्यामशिवाश्रयाम् ॥ त्रिपुंड्रंयेविनिंदंतिनिंदंतिशिवमेवते ॥१८॥ धारयंतिचयेभक्त्याधारयंतितमेवते ॥ यथाकृशानुरहितोभूधरोनविराजते ॥१९॥ अशेषसाधनेप्येवंभस्महीनंशिवार्चनम् ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचश्रद्धयानाचरंतिये ॥ २० ॥ तैःपूर्वाचरितंसर्वंविपरीतंभवेदपि ॥ भस्मनावेदमंत्रेणात्रिपुंड्रस्यच धारणम् ॥ २१ ॥ विनावेदोचिताचारस्मार्तस्यानर्थकारणम् ॥ कृतंस्यादकृतंतेनश्रुतमप्यश्रुतंभवेत् ॥ २२ ॥

समान निष्फल जन्म जानना, जिन मनुष्योंका शरीर विना त्रिपुंड्रके हैं ॥ १६ ॥ वे श्मशानकी समान हैं पुण्यात्माओंको उनका दर्शन करना नचाहिये भस्मरहित मस्तकको और शिवालयरहित ग्रामको धिक्कार है ॥ १७ ॥ विना शिवके पूजनके जन्म विना शिवाश्रयके विद्याको धिक् है जो त्रिपुंड्र और शिवकी निन्दा करते हैं उनको धिक् है॥ १८॥ जो भक्तिसे धारण करते कराते हैं वह कृशानुरहित भूधरके समान शोभित नहीं होते ॥१९॥ जो विना सब साधनोंके विना भस्महीन शिवार्चन करते हैं भस्म धारण और त्रिपुंड्र जो भक्तिसे धारण नहीं करते ॥ २० ॥ उनका पूर्वाचरित सब विपरीत होता है, भस्म और वेदमंत्रद्वारा त्रिपुंड्रका धारण करना ॥ २१ ॥ विना त्रिपुंड्रके उचित आचार स्मार्त्त वैदिक कर्म अनर्थका कारण है उसका किया न करनेके समान और सुना न सुनेके समान है ॥ २२ ॥

पढा अनपढा है जो त्रिपुंड्रको धारण नहीं करता उसका वेद, यज्ञ, दान, तप, वृथा है ॥ २३ ॥ व्रत उपवास वृथा है जो त्रिपुंड्रको धारण नहीं करता जो पुरुष भस्म धारणको त्यागकर मुक्तिकी इच्छा करता है ॥ २४ ॥ वह विषपान करके अपनेको नित्य माननेकी इच्छा करताहै जगत्स्रष्टाने सृष्टिके छलसेही त्रिपुंड्रका धारण करना कहा है ॥ २५ ॥ उसने ललाटको दण्डाकार ऊर्ध्व वा कदम्बपुष्पवत् वर्तुलाकार सृजन नहीं किया है सबके ललाटमें तिर्यक् रेखा दिखाई देती हैं ॥ २६ ॥ तो भी मूर्ख मनुष्य त्रिपुंड्र धारण नहीं करते हैं वह ध्यान, मोक्ष, ज्ञान, तपस्या नहीं है जिसमें त्रिपुंड्र न हो ॥ २७ ॥ त्रिपुंड्र धारण किये विना ब्राह्मणने जो अनुष्ठान

अधीतमनधीतंचत्रिपुंड्रंयोनधारयेत् ॥ वृथावेदावृथायज्ञावृथादानंवृथातपः ॥ २३ ॥ वृथाव्रतोपवासेनत्रिपुंड्रंयोनधारयेत् ॥ भस्मधारणंत्यक्त्वामुक्तिमिच्छतियःपुमान् ॥ २४ ॥ विषपानेननित्यत्वंकुरुतेह्यात्मनोहिसः ॥ स्रष्टासृष्टिच्छलेनाहत्रिपुंड्रस्यचधारणम् ॥ २५ ॥ ससर्जसललाटंहितिर्यगूर्ध्वंनवर्तुलम् ॥ तिर्यग्रेखाःप्रदृश्यंतेललाटेसर्वदेहिनाम् ॥ २६ ॥ तथापिमानवामूर्खानकुर्वंतित्रिपुंड्रकम् ॥ नतद्ध्यातंनतन्मोक्षंनतज्ज्ञानंनतत्तपः ॥२७॥ विनातिर्यक्त्रिपुंड्रंचविप्रेणयदनुष्ठितम् ॥ वेदस्याध्ययनेशूद्रोनाधिकारीयथाभवेत् ॥ २८ ॥ त्रिपुंड्रेणविनाविप्रोनाधिकारीशिवार्चने ॥ प्राङ्मुखश्चरणौहस्तौप्रक्षाल्याचम्यपूर्ववत् ॥ २९ ॥ प्राणानायम्यसंकल्प्यभस्मस्नानंसमाचरेत् ॥ आदायभसितंशुद्धमग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥ ३० ॥ ईशानेनतुमंत्रेणस्वमूर्धनिविनिक्षिपेत् ॥ ततआदायतद्भस्ममुखेचपुरुषेणतु ॥ ३१ ॥ अघोराख्येणहृदयेगुह्येवामाह्वयेनच ॥ सद्योजाताभिधानेनभस्मपादद्वयेक्षिपेत् ॥ ३२ ॥ सर्वांगंप्रणवेनैवमंत्रेणोद्धूलनंततः ॥ एतदाग्नेयकंस्नानमुदितंपरमर्षिभिः ॥ ३३ ॥ सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थंकुर्यादादाविदंबुधः ॥ ततःप्रक्षाल्यहस्तादीनुपस्पृश्ययथाविधि ॥ ३४ ॥

किया है वह वृथा है जैसे वेदके अध्ययनका शूद्र अधिकारी नहीं है ॥ २८ ॥ इसीप्रकार त्रिपुंड्रके विना विप्र शिवार्चनका अधिकारी नहीं प्राङ्मुख हो ब्राह्मण पूर्ववत् हाथ पैर धोय आचमन कर ॥ २९ ॥ प्राणायामपूर्वक संकल्प करके भस्मस्नान करै अग्निहोत्रकी शुद्ध भस्म लेकर ॥ ३० ॥ ईशान मंत्रसे अपने शिरपर धारण करै फिर तत्पुरुष मंत्रसे मुखमें धारण करै 'अघोर' मंत्रसे हृदय 'वामदेव' मंत्रसे गुह्य, और 'सद्योजातसे' दोनों चरणोंमें मले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ (ओंकारसे) सर्वांगमें उद्धूलन करै परम ऋषियोंने इसका आग्नेयस्नान नाम कहा है ॥ ३३ ॥ सब कर्मकी समृद्धिके निमित्त पंडितको पहले इसे करना चाहिये फिर हाथादिका प्रक्षालनकर यथा

विधि जलस्पर्श कर ॥ ३४ ॥ जो त्रिपुंड्रकी विधिसे ललाट हृदय गलेमें पंच ब्रह्मके मंत्रसे धारण करते हैं तथा भस्म धारण करते हैं ॥ ३५॥ तो त्रिपुंड्र धारण करनेसे सब कर्मोंमें पवित्र होजाते हैं शूद्र और अन्त्यजोंके हाथकी भस्म कभी धारण न करनी चाहिये॥ ३६ ॥ जो अग्निहोत्रकी भस्मसे लिप्तहोकर कर्मकरते हैं वे सिद्ध होते हैं इससे अन्यथा कोई कर्म भी नहीं फलतेहैं॥ ३७॥ सत्य, शौच, जप, होम, तीर्थ, देवादिपूजन त्रिपुण्ड्र न धारण करनेवालेके सब वृथा हैं ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मण पवित्र हो त्रिपुंड्र और रुद्राक्ष धारण करता है वह रोग, दुरित, व्याधि और तस्करोंके शान्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ३९ ॥ और आवृत्तिरहित ब्रह्मको प्राप्त होता है फिर नहीं लौटता वह ब्राह्मण पंक्तिपावन है श्राद्धमें ब्राह्मण और देवताओंसे पूजनीय है॥ ४०॥ श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव, सुरार्चन इनमें त्रिपुंड्र धारण करनेसे पवित्र हो मनुष्य

तिर्यक्त्रिपुंड्रंविधिनाललाटेहृदयेगले॥पंचभिर्ब्रह्मभिर्वापिकृतेनभसितेनच ॥ ३५ ॥ धृतमेतत्त्रिपुंड्रंस्यात्सर्वकर्मसुपावनम् ॥ शूद्रैरंत्यजहस्तस्थंनधार्यं भस्मचक्वचित् ॥ ३६ ॥ भस्मनासाग्निहोत्रेणलिप्तःकर्मसमाचरेत् ॥ अन्यथासर्वकर्माणिनफलंतिकदाचन ॥३७॥ सत्यंशौचंजपोहोमस्तीर्थंदेवादिपूजनम् ॥ तस्यव्यर्थमिदंसर्वंयस्त्रिपुंड्रंनधारयेत् ॥३८॥ त्रिपुंड्रधृग्विप्रवरोयोरुद्राक्षधरःशुचिः ॥ सहंतिरोगदुरितव्याधिदुर्भिक्षतस्करान् ॥३९॥ समाप्नोति परंब्रह्मयतोनावर्ततेपुनः ॥ सपंक्तिपावनःश्राद्धेपूज्योविप्रैःसुरैरपि ॥४०॥ श्राद्धेयज्ञेजपेहोमेवैश्वदेवेसुरार्चने ॥ धृतत्रिपुंड्रःपूतात्मामृत्युंजयतिमानवः ॥ ॥ ४१ ॥ भस्मधारणमाहात्म्यंभूयोपिकथयामिते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ महापातकसंघाश्चपातकान्यपराण्यपि ॥ नश्यंतिमुनिशार्दूलसत्यंसत्यंनचान्यथा ॥ १ ॥ एकंभस्मधृतंयेनतस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यतीनांज्ञानदंप्रोक्तंवनस्थानांविरक्तिदम् ॥२॥ गृहस्थानांमुनेतद्वद्धर्मवृद्धिकरंतथा ॥ ब्रह्मचर्याश्रमस्थानांस्वाध्यायप्रदमेवच॥३॥शूद्राणांपुण्यदंनित्यमन्येषांपापनाशनम् ॥ भस्मनोद्धूलनंचैवतथातिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ४ ॥ रक्षार्थंसर्वभूतानांविधत्तेवैदिकीश्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनंचैवतथातिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ५ ॥ यज्ञत्वेनैवसर्वेषांविधत्तेवैदिकीश्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनंचैवतथातिर्यक्त्रिपुंड्रकम्॥६॥सर्वधर्मतयातेषांविधत्तेवैदिकीश्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनंचैवतथातिर्यक्त्रिपुंड्रकम्॥७॥

मृत्युको जयकरता है॥ ४१ ॥मैं भस्मधारणका माहात्म्य फिर भी तुमसेकहता हूं॥ ४२ ॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः १२॥ श्रीनारायण बोले महापातकसमूह तथा दूसरेपातक इसके धारणसे अवश्य नष्ट होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥ एक भस्मही जिससे धारणकी है उसके पुण्यका बल सुनो यतियोंको ज्ञान और वनवासियोंको वैराग्य देता है ॥ २॥ हेमुने! गृहस्थोंको धर्मवृद्धिका करनेवालाहै ब्रह्मचारियोंको स्वाध्यायका देनेवाला है।। ३ ॥शूद्रोंको पुण्यदायक तथा दूसरोंका भी पापनाश करनेवाला है. भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण करना ॥ ४ ॥ सब प्राणियोंकी रक्षाके निमित्त होता है यह वेदकी श्रुति है. भस्मका सर्वांगमें लेपन तथा त्रिपुंड्रधारण ॥५॥ यह यज्ञमें सबको धारण करना चाहिये यह वैदिकी श्रुति है भस्मद्वारा उद्धूलन और तिर्यक् त्रिपुंड्र धारण ॥ ६ ॥ सब धर्मोंका कारण

है यह वेदकी श्रुतिहै. भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण ॥ ७ ॥ यह शैवोंका चिह्न है यह वेदकी श्रुति है. भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण करना ॥ ८ ॥ सबके विज्ञानके निमित्त है यह वेदकी श्रुति है, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र ॥ ९ ॥ हिरण्यगर्भ उनके अवतार वरुणादि इन सब देवताओंने भस्म और त्रिपुंड्र धारण किया है ॥ १० ॥ उमादेवी लक्ष्मी तथा सरस्वती दूसरे आस्तिक तथा और देवांगनाओंने भस्म और त्रिपुंड्र धारण किया है ॥ ११ ॥ यक्ष, राक्षस, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, मुनि सबने भस्म और त्रिपुंड्र धारण किया है ॥ १२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, संकरजाति अपभ्रंश सबने भस्म और त्रिपुंड्रधारण किया है ॥ १३ ॥ जो उद्धूलन और त्रिपुंड्र आनंदसे धारण करते हैं वही शिष्ट और विद्वान् हैं. हे मुनिश्रेष्ठ ! दूसरे नहीं ॥ १४ ॥ जैसे स्त्रीवशीकरणमें कंठमें बहुमूल्य मणि सख्यता वाजीकरण

माहेश्वराणांलिंगार्थंविधत्तेवैदिकीश्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनंचैवतथातिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ८ ॥ विज्ञानार्थंचसर्वेषांविधत्तेवैदिकीश्रुतिः ॥ शिवेनविष्णुनाचैवब्रह्मणावज्रिणातथा ॥ ९ ॥ हिरण्यगर्भेणतदवतारैर्वरुणादिभिः ॥ देवताभिर्धृतंभस्मत्रिपुंड्रोद्धूलनात्मकम् ॥ १० ॥ उमादेव्याचलक्ष्म्याचवाचाचान्याभिरास्तिकैः ॥ सर्वस्त्रीभिर्धृतंभस्मात्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥११॥ यक्षराक्षसगंधर्वसिद्धविद्याधरादिभिः ॥ मुनिभिश्चधृतंभस्मत्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥ १२ ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैःशूद्रैरपिचसंकरैः ॥ अपभ्रंशैर्धृतंभस्मात्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥ १३ ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचयैःसमाचरितंमुदा ॥तएवशिष्टाविद्वांसोनेतरेमुनिपुंगव॥१४॥शिवलिंगंमणिःसख्यंमंत्रःपंचाक्षरस्तथा ॥ विभूतिरौषधंपुंसांमुक्तिस्त्रीवश्यकर्मणि ॥१५॥ भुनक्तियत्रभस्मांगोमूर्खोवापंडितोऽपिवा ॥ तत्रभुंक्तेमहादेवःसपत्नीकोवृषध्वजः ॥१६॥ भस्मसंछन्नसर्वांगमनुगच्छतियःपुमान् ॥ सर्वपातकयुक्तोऽपिपूजितोमानवोचिरात्॥१७॥ भस्मसंछन्नसर्वांगंयःस्तौतिश्रद्धयासह ॥ सर्वपातकयुक्तोऽपिपूज्यतेमानवोचिरात् ॥ १८ ॥ त्रिपुंड्रधारिणेभिक्षाप्रदानेनहिकेवलम् ॥ तेनाऽधीतंश्रुतंतेनतेनसर्वमनुष्ठितम् ॥ १९ ॥ येनविप्रेणशिरसित्रिपुंड्रंभस्मनाकृतम् ॥ कीकटेष्वपिदेशेषुयत्रभूतिविभूषणः ॥२०॥ मानवस्तुवसेन्नित्यंकाशीक्षेत्रसमंहितत् ॥ दुःशीलःशीलयुक्तोवायोगयुक्तोप्यलक्षणः ॥ २१ ॥ भूतिशासनयुक्तोवासपूज्योममपुत्रवत् ॥ छद्मनापिचरेद्योहिभूतिशासनमैश्वरम् ॥ २२ ॥

ओषधी वा गुटिका एक साधनहै इसीप्रकार मुक्तिरूपी स्त्रीके वश करनेमें शिवलिंगमणि पंचाक्षर मंत्र सख्यता विभूति ओषधी है ॥ १५ ॥ जहां भस्म धारण किये मूर्ख वा पंडित कोई भोजन करता है वहां सपत्नीका शंकर ही भोग लगाते हैं ॥ १६ ॥ जो शरीरमें भस्मलगाये कहीं गमन करते हैं वह सब पातकोंसे युक्त होकर भी पूजित होता है ॥ १७ ॥ भस्म लगाकर जो श्रद्धासे स्तुति करता है वह सब पातकोंसे रहितहो पूजित होता है ॥ १८ ॥ जो त्रिपुंड्र धारियोंको भिक्षा देते हैं उसने सब कुछ पढासुना और अनुष्ठान करलिया ॥ १९ ॥ जिस ब्राह्मणने शिरपर भस्मका त्रिपुंड्र लगाया वह मगधदेशमें भी विभूतिधारी ॥ २० ॥ रहताहुआ उसे काशी क्षेत्रके समान करता है. दुःशील शीलयुक्त योगयुक्त वा लक्षणहीन हो ॥ २१ ॥ जो विभूति धारण करता है वह मेरे पुत्रवत् पूज्य है जो छद्मसेभी विभूति धारण करताहै ॥ २२ ॥

वहभी जिस गतिको प्राप्त होता है कोई सौ यज्ञकरनेसे भी उस गतिको नहीं प्राप्त होता संपर्क लीला वा भयसे भी जो विभूति धारण करता है वहभी महापुण्य पाता है ॥ ॥ २३ ॥ और विधियुक्त विभूति धारण करनेवाला मेरेसमान पूज्य होता है वह शिव विष्णु और ब्रह्मादि देवतोंकी तृप्तिका कारण होता है ॥ २४ ॥ पार्वती महालक्ष्मी और महासरस्वतीकी तृप्तिका कारण होता है दान यज्ञ और दुर्लभ तपसे भी ऐसा नहीं ॥ २५ ॥ तथा तीर्थयात्रा का पुण्यभी त्रिपुंड्रधारणके समान नहीं है हेनारद ! दान, यज्ञ, धर्म, तीर्थयात्रा॥ २६॥ ध्यान, तप यह त्रिपुंड्रधारणकी सोहलवीं कलाकेभी बराबर नहीं है जैसे राजा अपने चिह्नसे अपने भृत्यको पहँचान्ते हैं मान्ते हैं ॥ २७ ॥ इसी प्रकार शिव त्रिपुंड्रधारीको अपने समान मान्ते हैं द्विजाति हो वा अन्यजाति हो जो शुद्धचित्तसे भस्म ॥ २८ ॥ और त्रिपुंड्र धारण करता है मानो

सोऽपियांगतिमाप्नोतिनतांयज्ञशतैरपि ॥ संपर्कांल्लीलयावापिभयाद्वाधारयेत्तुयः ॥२३॥ विधियुक्तोविभूतिंतुसचपूज्योयथाह्यहम्॥शिवस्यविष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तृप्तिकारणम् ॥२४॥ पार्वत्याश्चमहालक्ष्म्याभारत्यास्तृप्तिकारणम् ॥ नदानेननयज्ञेननतपोभिःसुदुर्लभैः ॥२५॥ नतीर्थयात्रयापुण्यंत्रिपुंड्रेणच लभ्यते ॥ दानंयज्ञाश्चधर्माश्चतीर्थयात्राश्चनारद ॥२६॥ ध्यानंतपास्त्रिपुंड्रस्यकलांनार्हंतिषोडशीम् ॥ यथाराजास्वचिह्नांकंस्वजनंमन्यतेसदा ॥ २७ ॥ तथाशिवास्त्रिपुंड्रांकंस्वकीयमिवमन्यते॥द्विजातिर्वाऽन्यजातिर्वाशुद्धचित्तेनभस्मना ॥२८॥ धारयेद्यस्त्रिपुंड्रांकंरुद्रस्तेनवशीकृतः ॥ त्यक्तसर्वाश्रयाचारोलु प्तसर्वक्रियोऽपिसः ॥२९॥ सकृत्तिर्यक्त्रिपुंड्रांकंधारयेत्सोऽपिमुच्यते॥नास्यज्ञानंपरीक्षेतनकुलंनव्रतंतथा ॥ ३० ॥ त्रिपुंड्रांकितभालेनपूज्यएवहिनारद॥ शिवमंत्रात्परोमंत्रोनास्तितुल्यंशिवात्परम्॥३१॥ शिवार्चनात्परंपुण्यंनहितीर्थंचभस्मना ॥ रुद्राग्नेर्यत्परंवीर्यंतद्भस्मपरिकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ ध्वंसनंस र्वदुःखानांसर्वपापविशोधनम् ॥ अंत्यजोवाऽधमोवापिमूर्खोवापंडितोऽपिवा ॥ ३३ ॥ यस्मिन्देशेवसेन्नित्यंभूतिशासनसंयुतः ॥ तस्मिन्सदाशिवःसोमः सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ सर्वतीर्थैश्चसंयुक्तःसान्निध्यंकुरुतेसदा ॥ ३४ ॥

उसने शंकरको वशीभूत करलिया है ॥ २९ ॥ जो एकबारभी तिरछा त्रिपुंड्र धारण करते हैं वहभी मुक्त होजाते हैं इसके ज्ञान और कुल तथा व्रतकी परीक्षा नकरै ॥ ॥ ३० ॥ मस्तकपर त्रिपुंड्र धारणकरतेही वह पूज्य होता है शिवमंत्रसे अधिक मंत्र शिवसे परे देवता ॥ ३१ ॥ शिवार्चनसे परे पुण्य और भस्मसे अधिक तीर्थ नहीं है रुद्राग्निका जो परमवीर्य है उसीको भस्म कहते हैं ॥ ३२ ॥ यह सब पापोंकी नाशक और सब दुःखनिवारक है अन्त्यज, अधम, मूर्ख वा पंडित ॥ ३३॥ जिस स्थानमें विभूतिधारणपूर्वक निवास करता है उसमें सदाशिव पार्वती सहित सब भूत गणोंको लिये सब तीर्थोंसे संयुक्तहो उसके निकट निवास करते हैं ॥ ३४ ॥

यह 'सद्योजातादि' शिवके पांचमंत्र पवित्र हैं, भस्म शिवके अंगसे विभूषित है जिन्होंने ललाटपर त्रिपुंड्र लगाये हैं उनके दैवके लिखे खोटे अक्षर मिटजाते हैं ॥ ३५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारायण बोले जो भस्मधारीके निमित्त प्रसन्नतासे धन देता है उसके सब पाप नाश होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं॥ १ ॥ श्रुति स्मृति और सब पुराण विभूतिका माहात्म्य कहते हैं इससे ब्राह्मण भस्मधारण करै ॥ २ ॥ जो तीनों संध्याओंमें श्वेत भस्मसे त्रिपुंड्र धारण करते हैं वह सब पापोंसे रहितहो शिवलोकमें जाता है॥ ३ ॥ योगी पादसे मस्तकपर्यन्त सर्वांगमें स्नानकरै जो तीनों संध्याओंमें ऐसा करता है वह शीघ्र योगको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ भस्मस्नायी पुरुष अपने कुलका उद्धारक होता है जलस्नानसे भस्मस्नान असंख्य गुणवाला है ॥ ५ ॥ सब तीर्थोंमें जो पुण्य सब

एतानिपंचाशिवमंत्रपवित्रितानिभस्मानिकामदहनांगविभूषितानि ॥ त्रैपुंड्रकाणिरचितानिललाटपट्टेलुंपंतिदैवलिखितानिदुरक्षराणिं ॥३६॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ भस्मदिग्धशरीराययोददातिधनंमुदा ॥ तस्यसर्वाणिपापानिविनश्यंतिनसंशयः ॥ १ ॥ श्रुतयःस्मृतयःसर्वाःपुराणान्यखिलान्यपि ॥ वदंतिभूतिमाहात्म्यंतत्तस्माद्धारयेद्द्विजः ॥ २ ॥ सितेनभस्मनाकुर्यात्रिसंध्यंयस्त्रिपुंड्रकम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःशिवलोकेमहीयते॥३॥योगीसर्वांगकंस्नानमापादतलमस्तकम् ॥ त्रिसंध्यमाचरेन्नित्यमाशुयोगमवाप्नुयात्॥४॥भस्मस्नानेनपुरुषःकुलस्योद्धारकोभवेत्॥भस्मस्नानंजलस्नानादसंख्येयगुणान्वितम्॥५॥सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्वतीर्थेषुयत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेसर्वंभस्मस्नानान्नसंशयः॥६॥ महापातकयुक्तोवायुक्तोवाप्युपपातकैः ॥ भस्मस्नानेनतत्सर्वंदहत्यग्निरिवेंधनम्॥७॥भस्मस्नानात्परंस्नानंपवित्रंनैवविद्यते ॥ एवमुक्तंशिवेनादौतदास्नातःस्वयंशिवः ॥८॥तदाप्रभृतिब्रह्माद्यामुनयश्चशिवार्थिनः ॥ सर्वकर्मसुयत्नेनभस्मस्नानंप्रचक्रिरे ॥९॥ तस्मादेतच्छिरस्नानमाग्नेयंयःसमाचरेत् ॥ अनेनैवशरीरेणसहिरुद्रोनसंशयः ॥१०॥ येभस्मधारिणंदृष्ट्वापरितृप्ताभवंतिते॥देवासुरमुनींद्रैश्चपूज्यानित्यंनसंशयः॥११॥भस्मसंच्छन्नसर्वांगंदृष्ट्वोत्तिष्ठतियःपुमान् ॥ तंदृष्ट्वादेवराजोऽपिदंडवत्प्रणमिष्यति ॥१२॥ अभक्ष्यभक्षणंयेषांभस्मधारणपूर्वकम् ॥ तेषांतद्भक्ष्यमेवस्यान्मुनेनात्रविचारणा ॥ १३॥

तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है वह सब भस्मस्नानसे प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६॥ महापातक वा उपपातकसे युक्त हो वह सब भस्मस्नानसे ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे अग्निसे ईंधनकी दशा होती है ॥ ७ ॥ जो महापातक वा उपपातक हैं वह सब दूर होते हैं बहुत क्या भस्मस्नानसे अधिक पवित्र कोई वस्तु नहीं यह प्रथम शिवने कहकर पीछे स्वयं स्नान किया ॥ ८॥ उसीदिनसे ब्रह्मादिमुनि शिवकी इच्छावाले सबप्रकार यत्नसे भस्मस्नान करते हैं ॥ ९॥ इसकारण जो कोई इस आग्नेय स्नानको करते हैं वह इसी शरीरसे रुद्र होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ जो भस्मधारण करनेवालेको देखकर परितुष्ट होते हैं वह निःसन्देह देवता असुर मुनीन्द्रोंसे पूजित होते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ भस्मधारी पुरुषको देखकर जो खड़े होते हैं उनको देखकर देवराजभी प्रणाम करैंगे ॥ १२॥ हे मुने ! जिन्होंने भस्मधारणके उपरान्त

अभक्ष्यभी भक्षणकरलिया है उनका वह भक्ष्यही है इसमें विचार नहीं है ॥ १३ ॥ जो जलमें स्नान करनेसे पहले भस्मसे स्नान करता है ब्रह्मचारी ग्रहस्थ वानप्रस्थ कोई हो आदरसे स्नानकरके ॥ १४ ॥ सब पापरहितहो परमगतिको पाता है आग्नेय भस्मसे स्नानकरना यतियोंको विशेष रीतिसे उचित है ॥ १५॥ जलके स्नानसे भस्म स्नान श्रेष्ठ है कारण कि, भस्मस्नानसे प्रकृतिरूप बंधनका नाश होता है ॥ १६॥ प्रकृतिबंधनके नाशके निमित्तही भस्मस्नान कहा है. हे ब्रह्मन् ! भस्मके समान कुछभी त्रिलोकीमें नहीं है ॥ १७ ॥ पहले देवताओंने यह रक्षामंगल पवित्रताके निमित्त धारणकी थीं हे मुने! पहले शंकरने यह अपनी प्रियाको दी थी ॥ १८ ॥ इसकारण इस तेज सम्पन्नस्नानको सदा करना चाहिये कारण कि, भस्ममें अग्नि विद्यमान है जो सूक्ष्मरूपसे उसमें रहती है जिससे विद्युत् शक्ति बढती है, इससे स्नानकर भवपाशसे

यःस्नातिभस्मनानित्यंजलेस्नात्वाततःपरम्।।ब्रह्मचारीगृहस्थोवावानप्रस्थोऽथवादरात्।। १४।।सर्वपापविनिर्मुक्तःसयातिपरमांगतिम्।।आग्नेयंभस्मनास्नानं यतीनांचविशिष्यते ॥ १५ ॥ आर्द्रस्नानाद्वरंभस्मस्नानमार्द्रंवधोध्रुवः ॥ आर्द्रंतुप्रकृतिंविद्यात्प्रकृतिंबंधनंविदुः ।। १६।।प्रकृतेस्तुप्रहाणायभस्मनास्नानमिष्यते ॥ भस्मनासदृशंब्रह्मन्नास्तिलोकत्रयेष्वपि।। १७।।रक्षार्थंमंगलार्थंचपवित्रार्थंपुरासुरैः।।भस्मदृष्ट्वामुनेपूर्वंदत्तंदेव्यैप्रियेणतु ।। १८।।तस्मादेतच्छिरस्स्नानमाग्नेयंयःसमाचरेत् ॥ भवपाशैर्विनिर्मुक्तःशिवलोकेमहीयते ॥ १९ ॥ ज्वररक्षःपिशाचाश्चपूतनाकुष्ठगुल्मकाः ॥ भगंदराणिसर्वाणिचाऽशीतिर्वातरोगकाः ॥२०॥ चतुःषष्टिःपित्तरोगाःश्लेष्माःसतत्रिपंचकाः ॥ व्याघ्रचौरभयंचैवाप्यन्येदुष्टग्रहाअपि ॥२१॥ भस्मस्नानेननश्यंतिसिंहेनेवयथागजाः ॥ शुद्धशीतजलेनैवभस्मनाचात्रिपुंड्रकम् ॥२२॥ योधारयेत्परंब्रह्मसप्राप्नोतिनसंशयः ॥ "भस्मनाचत्रिपुंड्रंचयःकोपिधारयेत्परम् ॥ सब्रह्मलोकमाप्नोतिमुक्तपापोनसंशयः" ॥ यथाविधिललाटेवैवह्निवीर्यप्रधारणात् ॥ २३ ॥ नाशयेल्लिखितांयामींललाटस्थांलिपिंध्रुवम् ॥ कंठोपरिकृतंपापंनाशयेत्तत्प्रधारणात्॥ ॥ २४ ॥ कंठेचधारणात्कंठभोगादिकृतपातकम् ॥ बाह्वोर्बाहुकृतंपापंवक्षसामनसाकृतम् ॥ २५ ॥

मुक्तहो शिवलोकमें जाता है ॥ १९ ॥ ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतना, कुष्ठ, गुल्म सबप्रकारके भगन्दर अस्सीवातके रोग ॥ २० ॥ चौंसठ पित्तके रोग बत्तीस प्रकारके श्लेष्मरोग व्याघ्र चोरका भय वा दूसरे दुष्टग्रहोंकेरोग ॥ २१ ॥ भस्मस्नानसे ऐसे नष्ट होते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी पलायन करते हैं शुद्ध शीतलजल और भस्मसे त्रिपुंड्रको ॥ २२ ॥ जो धारण करता है वह निःसन्देह परब्रह्मको प्राप्त होता है "जो कोई भस्मसे त्रिपुंण्ड्रको धारण करता है वह निःसन्देह पापरहितहो ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है" यथाविधि मस्तकमें अग्निवीर्य धारण करनेसे ॥ २३॥ मस्तकमें लिखी यमकी लिपी मिट जाती है कंठके ऊपर भागसे किये पाप इसके धारणसे नष्ट होजाते हैं॥ २४॥ अर्थात् कंठमें धारणसे कंठभोगादिके किये पातक बाहुमें धारण करनेसे भुजासे किये पाप वक्षस्थलमें धारण करनेसे मनके किये पाप ॥ २५ ॥

नाभिमें धारणसे मेढ्रके, गुदमें धारण करनेसे गुह्यके, पार्श्वमें धारण करनेसे परस्त्री आलिंगनके सब पाप दूर होतेहैं ॥ २६ ॥ इस कारणसे सर्वथा त्रिलिंगयुक्त भस्म धारण करनी चाहिये यह ब्रह्मा विष्णु महेशरूप तीन अग्नियोंका धारण है ॥ २७ ॥ त्रिपुण्ड्र धारण करनेसे मानो त्रिलोकीके गुण धारण कर लिये भस्म लगाये हुए विद्वान् ब्राह्मण महापातकसे प्रगट हुए ॥ २८ ॥ दोषोंसे शीघ्रही मुक्त होता है इसमें सन्देह नहीं भस्म लगानेवालेके दोष भस्माग्निसे नष्ट होजाते हैं ॥ २९ ॥ भस्मस्नानसे शुद्ध पुरुष आत्मनिष्ठ कहाता है सर्वांगमें भस्म लगाये भस्मसे त्रिपुंड्र जिनका दीप्तिमान् है ॥ ३० ॥ जो पुरुष भस्ममें शयन करते हैं वही आत्मनिष्ठ हैं भूत प्रेत पिशाच और बडे दुःसह रोग ॥ ३१ ॥ भस्मनिष्ठकी निकटतासेही दूर होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं यह प्रकाशमान् होनेसे भसित और पाप भक्षण करनेसे भस्म कहाती है

नाभ्यांशिश्नकृतंपापंगुदेगुदकृतंहरेत् ॥ पार्श्वयोर्धारणाद्ब्रह्मन्परस्त्र्यालिंगनादिकम् ॥२६ ॥ तद्भस्मधारणंशस्तंसर्वत्रैवत्रिलिंगकम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनांचधारणम् ॥२७॥ गुणलोकत्रयाणांचधारणंतेनवैकृतम् ॥ भस्मच्छन्नोद्विजोविद्वान्महापातकसंभवैः ॥२८॥ दोषैर्वियुज्यतेसद्योमुच्यतेचनसं शयः ॥ भस्मनिष्ठस्यदह्यंतेदोषाभस्माग्निसंगमात्॥२९॥भस्मस्नानविशुद्धात्माआत्मनिष्ठइतिस्मृतः ॥ भस्मनादिग्धसर्वांगोभस्मदीप्तत्रिपुंड्रकः॥३०॥ भस्मशायीचपुरुषोभस्मनिष्ठइतिस्मृतः ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यारोगाश्चातीवदुःसहाः ॥३१॥ भस्मनिष्ठस्यसान्निध्याद्विद्रवंतिनसंशयः ॥भासनाद्भसितंप्रोक्तंभस्मकल्मषभक्षणात् ॥ ३२ ॥ भूतिर्भूतिकरीपुंसांरक्षारक्षाकरीपुरा ॥ त्रिपुंड्रधारणंदृष्ट्वाभूतप्रेतपुरःसराः ॥ ३३॥ भीताःप्रकंपिताःशीघ्रंनश्यंत्येवनसं शयः ॥ स्मरणादेवरुद्रस्ययथापापंप्रणश्यति ॥ ३४ ॥ अप्यकार्यसहस्राणिकृत्वायःस्नातिभस्मना ॥ तत्सर्वंदहतेभस्मयथाग्निस्तेजसावनम् ॥ ३५ ॥ कृत्वापिचातुलंपापंमृत्युकालेऽपियोद्विजः ॥ भस्मस्नायीभवेत्कश्चित्क्षिप्रंपापैःप्रमुच्यते ॥३६॥ भस्मस्नानाद्विशुद्धात्माजितक्रोधोजितेंद्रियः ॥ मत्समीपंसमागम्यनसभूयोऽभिवर्तते ॥ ३७ ॥ वनस्पतिगतेसोमेभस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ अर्चितंशंकरंदृष्ट्वासर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३८ ॥

॥ ३२॥ यह विभूति पुरुषोंको ऐश्वर्य करानेवाली और राक्षसोंसे रक्षा करनेवाली है, त्रिपुंड्रधारीको देखकर भूत प्रेतादि ॥ ३३ ॥ भीत और कंपित होकर शीघ्रही नष्ट होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं जैसे रुद्रके स्मरण करतेही पापनाश होजाते हैं ॥ ३४ ॥ जो सहस्रों अकार्य करकै भी भस्मसे स्नान करता है वह भस्म सब नष्टकरती है जैसे अग्निके तेजसे वन नष्ट होजाता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण अनेक पाप करकै भी अन्त्यसमयमें भस्मस्नान करै वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३६ ॥ भस्म स्नानसे शुद्धात्मा जितक्रोध और जितेन्द्रिय होकर मेरे समीप आकर फिर संसारमें नहीं पडता है ॥ ३७ ॥ जिस समय अमावास्याको चन्द्रमा वनस्पतिमें जाता है

उस समय शरीरमें भस्म लगाकर शंकरके दर्शन करनेसे सब पाप दूर होजाते हैं अमावसको पन्द्रहकला क्षीण होतीहैं सो सोलहवीं कलासे सब प्राणियोंमें प्रवेश करकै प्रभातको पगट होता है ॥ ३८ ॥ जो पुरुष आयु ऐश्वर्य मोक्षकी कामना करै वह नित्य भस्म धारण करै ॥ ३९ ॥ यह त्रिपुंड्र ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक परम पवित्र है जो घोर राक्षस प्रेत और क्षुद्र जन्तु हैं ॥ ४० ॥ वह त्रिपुंड्रधारीको देखकर पलायन करते हैं इसमें सन्देह नहीं. शौचादि कर्मकर उज्ज्वल जलमें स्नान करकै ॥ ४१ ॥ शिखासे मस्तकपर्यन्त भस्म लगावै, जलस्नान तौ देहका बाह्य मल दूरकरता है ॥ ४२ ॥ और विभूतिस्नान बाहर भीतरका मल हरण करता है इससे जलस्नान न कियाहो तौभी विभूति स्नान करै ॥ ४३ ॥ हे मुने ! भस्मस्नानके विना किया कार्य भी नहीं किया है, यह श्रुतिमें कहा भस्मस्नान आग्नेयस्नान कहाता है ॥ ४४ ॥ जब

आयुष्कामोऽथवाविद्वान्भूतिकामोऽथवानरः॥नित्यंवैधारयेद्भस्ममोक्षकामीचवैद्विजः॥३९॥त्रिपुंड्रंपरमंपुण्यंब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥येघोराराक्षसाःप्रेताये चान्येक्षुद्रजंतवः॥४०॥ त्रिपुंड्रधारणंदृष्ट्वापलायंतेनसंशयः ॥ कृत्वाशौचादिकंकर्मस्नात्वातुविमलेजले ॥४१॥ भस्मनोद्धूलनंकार्यमापादतलमस्तकम् ॥ केवलंवारुणंस्नानंदेहेबाह्यमलापहम् ॥४२॥ विभूतिस्नानमनघंबाह्यांतरमलापहम् ॥ त्यक्त्वापिवारुणंस्नानंतत्परःस्यान्नसंशयः ॥४३॥ कृतमप्यकृतंसत्यं भस्मस्नानंविनामुने ॥ भस्मस्नानंश्रुतिप्रोक्तमाग्नेय्यंस्नानमुच्यते ॥ ४४ ॥ अंतर्बहिश्चसंशुद्धंशिवपूजाफलंलभेत् ॥ यद्बाह्यमलमात्रस्यनाशकंस्नानमस्ति तत् ॥४५॥ तन्नाशयतितीव्रेणप्राणिबाह्यांतरंमलम् ॥ कृत्वाऽपिकोटिशोनित्यंवारुणंस्नानमादरात् ॥ ४६ ॥ नभवत्येवपूतात्माभस्मस्नानंविनामुने ॥ यद्भ स्मस्नानमाहात्म्यंतद्वेदोवेदतत्त्वतः ॥४७॥ यद्वावेदमहादेवःसर्वदेवशिखामणिः ॥ भस्मस्नानमकृत्वैवयःकुर्यात्कर्मवैदिकं ॥४८॥ सतत्कर्मकलार्धार्धमपि नाप्नोतिवस्तुतः ॥ यःकरिष्यतियत्नेनभस्मस्नानंयथाविधि ॥४९॥ सएवैकःसर्वकर्मस्वधिकारीश्रुतिश्रुतः ॥ पावनंपावनानांचभस्मस्नानंश्रुतिश्रुतम् ॥५०॥

भीतर बाहर शुद्ध हो तब शिवपूजाका फल प्राप्त होता है जो बाह्य मल नाशकरै वही स्नान है ॥ ४५ ॥ पर भस्म तीव्रतासे प्राणीके बाहर भीतरका मलनाश करती है जो करोडोंवार आदरसे जलस्नानकिया जाय ॥ ४६ ॥ हे मुने ! वह भस्मस्नानके विना पवित्र नहीं होता है जो भस्मस्नानका माहात्म्य है वह तत्त्वसे वेदही जान्ता है ॥ ४७ ॥ अथवा सब देवताओंके अधिपति महादेव उसको जान्ते हैं भस्मस्नान विनाकिये जो वैदिक कर्म करता है ॥ ४८ ॥ वह उस कर्मकी कलाके आधेको भी प्राप्त नहीं होता जो यत्नसे भस्मस्नान विधिपूर्वक करता है ॥ ४९ ॥ वह एकही सब कर्ममें अधिकारी है यह शास्त्रमें कथित है वेदमें कहा है भस्मस्नान पवित्रोंका

भी पवित्र करनेवाला है ॥ ५० ॥ जो मोहसे नहीं करता है वह महापातकी होता है जो पुण्य ब्राह्मणोंको अनन्त जलस्नानसे प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ उससे अनन्त गुण भस्मस्नानसे प्राप्त होता है, तीनोंकालमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये ॥ ५२ ॥ भस्मस्नान श्रौतकर्म है उसके त्यागनेसे पतित होता है. मूत्रादि उत्सर्जनके उपरान्त यत्नसे भस्मस्नान ॥ ५३ ॥ करना चाहिये अन्यथा वह पवित्र न होगा, जिसने विधिपूर्वक शौच कियाहो वह ब्राह्मण भस्मस्नानके विना ॥ ५४ ॥ पवित्र नहीं होता न किसीकर्ममें अधिकारी होता है. अपानवायुके आनेमें जँभाई स्कंदन तथा छींक आनेमें ॥ ५५ ॥ तथा थूकादिके निकलनेमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये यह भस्मस्नानमाहात्म्यका एकदेश तुमसे वर्णन किया ॥ ५६ ॥ फिरभी भस्मस्नानका माहात्म्य तुमसे कहता हूं हे मुनिश्रेष्ठ! सावधान होकर आप सुनो ॥ ५७ ॥

नकरिष्यतियोमोहात्समहापातकीभवेत् ॥ अनंतैर्वारुणैःस्नानैर्यत्पुण्यंप्राप्यतेद्विजैः ॥५१॥ ततोऽनंतगुणंपुण्यंभस्मस्नानादवाप्यते ॥ कालत्रयेपिकर्तव्यं भस्मस्नानंप्रयत्नतः ॥५२॥ भस्मस्नानंस्मृतंश्रौतंतत्त्यागीपतितोभवेत् ॥ मूत्राद्युत्सर्जनांतेतुभस्मस्नानंप्रयत्नतः॥५३॥कर्तव्यमन्यथापूतानभविष्यंति मानवाः ॥ विधिवत्कृतशौचोऽपिभस्मस्नानंविनाद्विजः ॥५४॥ नभविष्यतिपूतात्मानाधिकार्यपिकर्मणि ॥ अपानवायुनिर्यातेजृंभणेस्कंदनेक्षुते ॥५५॥ श्लेष्मोद्गारेऽपिकर्तव्यंभस्मस्नानंप्रयत्नतः ॥ श्रीभस्मस्नानमाहात्म्यस्यैकदेशोऽत्रवर्णितः ॥५६॥पुनश्चसंप्रवक्ष्यामिभस्मस्नानोत्थितंफलम् ॥ सावधानेन मनसाश्रोतव्यंमुनिपुंगव ॥ ५७ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥छ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अग्निरि त्यादिभिर्मंत्रैर्भस्मसंशोध्यसादरम् ॥ धारणीयंललाटादौत्रिपुंड्रंकेवलंद्विजैः ॥१॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्याश्चएतेसर्वेद्विजाःस्मृताः ॥ तस्माद्विजैःप्रयत्नेनत्रिपुंड्रंधा र्यमन्वहम् ॥२ ॥ यस्योपनयनंब्रह्मन्सएवद्विजउच्यते ॥ तस्माच्छ्रौतंद्विजैःकार्यंत्रिपुंड्रस्यचधारणम् ॥३॥ विभूतिधारणंत्यक्त्वायःसत्कर्मसमाचरेत् ॥ तत्कृतंचाऽकृतप्रायंभवत्येवनसंशयः ॥ ४ ॥ नगायत्र्युपदेशोपिभस्मनोधारणंविना ॥ ततोधृत्वैवभस्मांगेगायत्रीजपमाचरेत् ॥ ५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण बोले अग्नि इत्यादि मंत्रोंसे आदरपूर्वक भस्मको शोधनकर ब्राह्मणको ललाटादिमें त्रिपुंड्रधारण करना चाहिये ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह द्विज कहाते हैं इसकारण द्विजोंको यत्नपूर्वक त्रिपुंड्रधारण करना नित्य उचित है ॥ २ ॥ हे हे ब्रह्मन्! जिसका यज्ञोपवीत होगयाहो उसीको ब्राह्मण कहते हैं इसकारण श्रौत ब्राह्मणोंको त्रिपुंड्रधारण करना चाहिये ॥ ३ ॥ जो विभूति न धारणकरके दूसरे सत्कर्म करता है वह निःसन्देह उसका विना कियेके समान होता है ॥ ४ ॥ भस्मधारण विना गायत्रीका उपदेश उचित नहीं अंगमें भस्मधारण करकेही गायत्रीका जप करै ॥ ५ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! गायत्रीही ब्राह्मणताकी मूल है वह विना भस्मधारे किसीसे यथार्थ उपदेश नहीं होते ॥ ६ ॥ हे मुने ! तबतक गायत्री ग्रहणका अधिकार नहीं है जबतक अग्निकी प्रगट हुई भस्म भालपर धारण नहीं कीजाती ॥ ७ ॥ भस्मके विना मस्तकमें ब्राह्मणता नहीं दीखती. हे ब्रह्मन् ! इसीकारण मैंने इसे हेतुयुक्त पुण्यदायक कहा है ॥ ८ ॥ जिसके मस्तकमें मंत्रसे पवित्र भस्म दिखाई देती है हम उसकोही विद्वान् ब्राह्मण कहते हैं यह सत्य है ॥ ९ ॥ जिसकी मणिके समान भस्म संग्रहमें स्वाभाविक प्रीति है हे ब्रह्मन् ! वही ब्राह्मण है यह मैं सत्य २ कहता हूं ॥ १० ॥ और मणिके समान भस्म संग्रहमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति नहीं है वह जन्म जन्मान्तर चाण्डाल जानना ॥ ११ ॥ जिसकी त्रिपुण्ड्र और भस्ममें स्वाभाविक प्रीति नहीं वह अन्त्यज है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ १२ ॥ जो भस्म धारण किये

गायत्रींमूलमेवाहुर्ब्राह्मण्येमुनिपुंगव ॥ साभस्मधारणाभावेनकेनाप्युपदिश्यते॥६॥नतावदधिकारोऽस्तिगायत्रीग्रहणेमुने ॥ यावन्नभस्मभालादौधृतमग्निसमुद्भवम् ॥७॥ भस्महीनललाटत्वंनब्राह्मण्यानुमापकम् ॥ एवमेवमयाब्रह्मन्हेतुरुक्तःसुपुण्यदः ॥८॥ मंत्रपूतंसितंभस्मललाटेपरिवर्तते॥सएवब्राह्मणोविद्वान्सत्यंसत्यंमयोच्यते ॥९॥ यस्यास्तिसहजाप्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ सएवब्राह्मणोब्रह्मन्सत्यंसत्यमयोच्यते ॥१०॥ नयस्यसहजाप्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ सचांडालइतिज्ञेयोजन्मजन्मांतरेध्रुवम् ॥ ११ ॥ नयस्यसहजाप्रीतिस्त्रिपुंड्रोद्धूलनादिषु ॥ सचांडालइतिज्ञेयःसत्यंसत्यंमयोच्यते॥१२॥ येभस्मधारणंत्यक्त्वाभुंजंतेचफलादिकम् ॥ तेसर्वेनरकंघोरंप्राप्नुवंतिनसंशयः ॥ १३ ॥ "विभूतिधारणंत्यक्त्वायःशिवंपूजयिष्यति ॥ सदुर्भगःशिवद्वेष्टासद्वेषोनरकप्रदः ॥ सर्वकर्मबहिर्भूतोभस्मधारणवर्जितः" ॥ विभूतिधारणंत्यक्त्वाकुर्वन्हेमतुलामपि ॥ नतत्फलमवाप्नोतिपतितोहिभवेद्द्विजः ॥ १४ ॥ यथोपवीतरहितैःसंध्यानाक्रियतेद्विजैः तथासंध्यानकर्तव्याविभूतिरहितैरपि ॥ १५ ॥ गतोपवीतैःसंध्यायांकार्यःप्रतिनिधिःक्वचित् ॥ जपादिकंतुसावित्र्यास्तथैवोपोषणादिकम् ॥ १६ ॥ विभूतिधारणेत्वन्योनास्तिप्रतिनिधिःक्वचित् ॥ विभूतिधारणंत्यक्त्वायादिसंध्यांकरोतियः ॥ १७ ॥ प्रत्यवैत्यवयेनासौनाधिकारीतदाद्विजः ॥ यथाश्रुत्वांत्यजोवेदान्प्रत्यवैतितथाद्विजः ॥ १८ ॥

विना फलादिक खाते हैं वे सब घोर नरकको जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ "विभूति धारण किये विना जो शंकरका पूजन करैंगे वह दुर्भागी शिवद्वेषी हैं वही द्वेष नरकका देनेवाला है" विना विभूति धारण किये जो सुवर्णकी तुला करता है वह उसके फलको प्राप्त नहीं होता वह पतित होता है ॥ १४ ॥ जैसे उपवीतरहित ब्राह्मण सन्ध्या नहीं करता इसीप्रकार विभूतिके विना संध्या न करै ॥ १५ ॥ उपवीत रहितोंको संध्यामें कहीं प्रतिनिधि होता है गायत्रीका जपादि तथा उपोषणादि होता है ॥ १६ ॥ पर विभूतिधारणमें कोई प्रतिनिधि नहीं होता यदि कोई विभूति विना धारण किये संध्या करै ॥ १७ ॥ तो उसको प्रत्यवाय लगता है विना भस्मके

यह ब्राह्मण गायत्रीका अधिकारी नहीं होता जैसे अन्त्यज वेदोंको सुनकर प्रत्यवायको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ इसप्रकार भस्म विना धारण किये शैव संध्या करनेसे प्रायश्चित्तको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ स्मार्त वा उसके अभावमें लौकिक कर्म सावधान होकर चाहे जैसे कर्म करै वह भस्मसंयुक्त हो तौ पवित्र होता है ॥ २० ॥ संध्यादि कर्मोंमें ब्राह्मणको पवित्रतापूर्वक भस्म धारण करनी चाहिये भस्मनिष्ठ पुरुषको पाप स्पर्श नहीं करते ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक भस्म धारण करनी चाहिये अपने दहिने हाथसे मध्यकी तीन अंगुलीसे धारण करै ॥ २२ ॥ त्रिपुंड्रका छः अंगुल वा इससे अंगुलीका भी प्रमाण है. दोनों नेत्रोंके प्रमाण पर्यन्त मस्तकमें दीप्तिमान् त्रिपुंड्र ॥ २३ ॥ जो कभी भी भस्मका धारण करता है वह रुद्र होता है इसमें सन्देह नहीं, अकार अनामिका, उकार मध्यमा ॥ २४ ॥ मकार तर्जनी

प्रत्यवैतिनसंदेहःसंध्याकृद्भस्मवर्जितः ॥ संपादनीयंयत्नेनश्रौतभस्मसदाद्विजैः ॥ १९ ॥ स्मार्तेवातदभावेतुलौकिकंवासमाहितैः ॥ यादृशंतादृशं वास्तुपवित्रंभस्मसंततम् ॥ २० ॥ धारणीयःप्रयत्नेनाद्विजैःसंध्यादिकर्मसु ॥ नसंविशंतिपापानिभस्मनिष्ठेततःसदा ॥ २१ ॥ कर्तव्यमपियत्नेनब्राह्मणै भस्मधारणम् ॥ मध्यांगुलित्रयेणैवस्वदक्षिणकरस्यतु ॥ २२ ॥ षडंगुलायतंमानमपिचाधिकमानकम् ॥ नेत्रयुग्मप्रमाणेनभालेदीप्तंत्रिपुंड्रकम् ॥२३॥ कदाचिद्भस्मनाकुर्यात्सरुद्रोनात्रसंशयः ॥ अकारोनामिकाप्रोक्तोउकारोमध्यमांगुलिः ॥ २४ ॥ मकारस्तर्जनीतस्मात्रिपुंड्रंत्रिगुणात्मकम् ॥ त्रिपुंड्रम ध्यमातर्जन्यनामाभिरनुलोमतः ॥२५॥ अत्रतेकथयाम्येनमितिहासंपुरातनम् ॥ कदाचिदथदुर्वासाःपितृलोकंगतोऽभवत् ॥२६॥ भस्मसंदिग्धसर्वांगो रुद्राक्षाभरणान्वितः ॥ शिवशंकरसर्वात्मञ्छ्रीमातर्जगदंबिके ॥ २७ ॥ नामानीतिगृणन्नुच्चैस्तापसानांशिखामणिः ॥ कव्यवाडादयस्तेतुप्रत्युत्थाना भिवादनैः ॥ २८ ॥ आसनाद्युपचारैश्चसंमानंबहुचक्रिरे ॥ नानाकथाभिरन्योन्यसंभाषांचक्रिरेतदा ॥ २९ ॥ तस्मिंस्तुसमयेकुंभीपाकस्थानांतुपापि नाम् ॥ घोरःसमभवच्छब्दोहाहताःस्मेतिवादिनाम् ॥ ३० ॥

है इसकारण त्रिपुंड्र त्रिगुणात्मक है त्रिपुंड्रको मध्यमा तर्जिनीके अनुलोमसे लगावै ॥ २५ ॥ मैं इसमें पुरातन इतिहास कहता हूं एक समय दुर्वासा पितृलोकको गये ॥ २६ ॥ सर्वांगमें भस्म लगाये रुद्राक्षके आभरणोंसे युक्त श्रीशंकर सर्वात्मन् श्रीमाता जगदम्बिका ॥ २७ ॥ इसप्रकार वह तपस्वियोंके शिखामणि इन नामोंको उच्चारण करते गये तब कव्यवाडनलादि उस समय प्रत्युत्थान अभिवादन करते हुए ॥ २८ ॥ और आसनादिके उपचारसे बहुत मान करते हुए, तथा अनेक कथा ओंसे परस्पर संभाषण करने लगे ॥ २९ ॥ उसी समय कुंभीपाक नरकमें पडे रहने वालोंका घोर हाहाकार शब्द सुनाई दिया ॥ ३० ॥

कोई बोले मरे कोई बोले दग्धहुए कोई बोले छिन्नभिन्नहुए इसप्रकार परस्पर रुदन करनेलगे॥ ३१ ॥ मुनिराज हृदयभरे उस करुणा शब्दको सुनकर बडे दुःखीहुए पितृनाथोंसे पूँछा कि,यह किनका शब्द है? ॥ ३२ ॥ वे कहने लगे कि, यह संयमनी पुरी है यहाँ यमराज पापियोंको कष्ट देते हैं॥ ३३ ॥ अनेक कालरूपी कृष्णवर्ण भयंकर दूतोंके सहित इस पुरीके नायक यहां वर्तमान हैं ॥ ३४ ॥ यहां अनेक कुंड पापियोंको भोगदायक हैं जो चौरासी घोररूप दूतोंसे व्याप्त हैं ॥ ३५ ॥ वहां मुख्य कुंड कुंभीपाक नामवाला है वहां रहनेवालोंके दुःखका वर्णन ॥ ३६ ॥ कोई सौ वर्ष भी नहींकरसक्के जो शिव और देवीके द्रोही हैं तथा जो विष्णुके द्रोही हैं वे इस नरकमें पडते

मृताःस्मेतिवदंत्येकेदग्धाःस्मेतिपरेजगुः॥छिन्नाःस्मेतिविभिन्नाःस्मेत्येवंरोदनकारिणः॥३१॥श्रुत्वातंकरुणंशब्दंदुःखितोमुनिराड्हृदि॥पप्रच्छपितृनाथांस्तान्केषांशब्दोऽयमित्यपि ॥ ३२ ॥ तेसमूचुर्मुनेऽत्रैवपुरीसंयमनीपरा ॥ वर्ततेयमराडत्रपापिनांभोगदायकः ॥ ३३ ॥ नानादूतैःकालरूपैःकृष्णवर्णैर्भयंकरैः ॥ सहितोऽत्रैवतत्पुर्यानायकोविद्यतेऽनघ ॥ ३४ ॥ तत्रकुंडान्यनेकानिपापिनांभोगदानिच ॥ षडशीतिर्घोररूपैर्दूतैःपरिवृतानिच ॥ ३५ ॥ तत्रमुख्यतमंकुंडंकुंभीपाकाभिधंमहत् ॥ वर्ततेतद्गतानांचयातनानांतुवर्णनम् ॥ ३६ ॥ कर्तुंनशक्यतेकैश्चिदपिवर्षशतैरपि ॥ येशिवद्रोहिणःसंतितथादेवीविनिंदकाः ॥ ३७ ॥ येविष्णुद्रोहिणःसंतिपतंत्यत्रैवतेमुने ॥ येवेदनिंदकाःसंतिसूर्यस्यचगणेशितुः ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणानांद्रोहिणोयेपतंत्यत्रैवतेमुने॥ कामाचाराश्चयेसंतितप्तमुद्रांकिताश्चये ॥३९॥ त्रिशूलधारिणोयेचपतंत्यत्रैवतेमुने ॥ मातृपितृगुरुज्येष्ठपुराणस्मृतिनिंदकाः ॥४०॥ येधर्मदूषकाःसंतिपतंत्यत्रैवतेमुने ॥ तेषामयंमहाघोरःशब्दःश्रवणदारुणः ॥४१॥ श्रूयतेऽस्माभिरनिशंवैराग्यंयच्छ्रुतेर्भवेत् ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वामुनिराट्तद्दिदृक्षया ॥ ४२ ॥ उत्थायचलितस्तूर्णंययौकुंडसमीपतः ॥ अवाङ्मुखोददर्शाऽधस्तस्मिन्नेवक्षणेमुने ॥ ४३ ॥

हैं जो वेद सूर्य और गणेशके निन्दकहैं॥ ३७॥ ३८॥ हे मुने! जो ब्राह्मणोंके द्रोहीहैं वह यहां पतित होते हैं जो यथेच्छ मनके अनुसार आचरण करते तथा तपाकर बाँहोंपर शंख चक्रादि लगाते॥ ३९॥ तथा जो त्रिशूलका अंक धारण करते हैं वह यहां पतित होते हैं "कारण कि, यह बातें वेदानुकूल नहीं है" जो माता,पिता, गुरु, ज्येष्ठ, पुराण और स्मृतियोंके निन्दक हैं ॥ ४० ॥ तथा जो धर्मके दूषक हैं वह यहां पतित होते हैं उन्हींका यह महाघोर दारुण शब्द सुनाई आता है ॥ ४१ ॥ यह हम रातदिन सुनते हैं इसके सुननेसे वैराग्य होता है यह उनके वचन सुन मुनिराज उनके देखनेकी इच्छासे ॥ ४२ ॥ शीघ्रही उठकर चले और कुंडके समीप गये और नीचेको

मुखकर देखने लगे. उसी समय ॥ ४३ ॥ वहांके निवासियोंको स्वर्गसे अधिक सुख हुआ कोई हँसने गाने और नाचने लगे ॥ ४४ ॥ कोई उत्तम सुख बढनेसे परस्पर आलाप करने लगे. मृदंग, मुरज, वीणा, ढक्का, दुंदुभीके शब्द ॥ ४५ ॥ पंचमस्वरसे भूषित वहांसे उठने लगे. वसन्तकी वेलफूलोंकीसी हवा वहन करने लगी ॥ ४६ ॥ मुनि भी चकित और यमदूत भी विस्मित हुए उन्होंने शीघ्रही धर्मराजसे कहा ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! इस समय बड़ा आश्चर्य हुआ कुंभीपाकवाले पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुख हुआ है ॥ ४८ ॥ हे विभो ! यह किस कारणसे ऐसा हुआ इस निमित्तको मैं नहीं जानता हूं हम चकित होकर आपके समीप आकर प्राप्त हुए हैं ॥ ४९ ॥ यह वाणी सुनकर धर्मराज बहुत शीघ्रतासे उठे और महा महिषपर चढकर

तत्रत्यानांपापिनांतुस्वर्गाधिकमभूत्सुखम् ॥ हसंतिकेचिद्गायंतिनृत्यंतिचतथापरे ॥ ४४ ॥ परस्परंरमंतेतेऽप्युन्मत्ताःसुखवर्धनात् ॥ मृदंगमुरजावीणाढक्कादुंदुभिनिस्वनाः ॥ ४५ ॥ समुद्भूतास्तुमधुराःपंचमस्वरभूषिताः ॥ वसंतवल्लीपुष्पाणांसुगंधमरुतोववुः ॥ ४६ ॥ मुनिस्तुचकितोदृष्ट्वायमदूताश्चविस्मिताः ॥ शीघ्रंतंकथयामासुर्धर्मराजायवेदिने ॥ ४७ ॥ महाराजमहाश्चर्यमधुनैवाभवद्विभो ॥ स्वर्गादप्यधिकंसौख्यंकुंभीपाकस्थपापिनाम् ॥४८॥ निमित्तंनैवजानीमःकस्मादिदमभूद्विभो ॥ चकिताःस्मवयंसर्वेप्राप्तादेवत्वदंतिकम् ॥ ४९ ॥ निशम्यदूतवाणींतांधर्मराट्शीघ्रमुत्थितः ॥ महामहिषमारूढोययौतेयत्रपापिनः ॥५०॥ तांवार्तांप्रेषयामासदूतद्वाराऽमरावतीम् ॥ श्रुत्वातांदेवराजोपिप्राप्तोदेवगणैःसह ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकात्पद्मजोपिवैकुंठाद्विष्टरश्रवाः ॥ तत्तल्लोकाच्चदिक्पालाःसमाजग्मुर्गणैःसह ॥ ५२ ॥ परिवार्यस्थिताःसर्वेकुंभीपाकमितस्ततः ॥ अपश्यंस्तद्गताञ्जीवान्स्वर्गाधिकसुखान्वितान् ॥५३॥ चकिताएवतेसर्वेनाविदुस्तस्यकारणम् ॥ अहोपापस्यभोगार्थंकुंडमेतद्विनिर्मितम् ॥ ५४ ॥ तत्रसौख्यंयदाजातंतदापापात्तुकिंभयम् ॥ उच्छिन्नावेदमर्यादापरमेशकृताकथम् ॥ ५५ ॥ भगवान्स्वस्यसंकल्पंवितथंकृतवान्कथम् ॥ आश्चर्यमेतदाश्चर्यमेतदित्येवभाषिणः ॥ ५६ ॥

पापियोंके समीप गये ॥ ५० ॥ और दूतोंके द्वारा इस बातको अमरावतीमें कहाभेजा, यह सुनकर देवराजभी देवताओंके सहित प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकसे ब्रह्मा वैकुंठसे भगवान् तथा दूसरे सब लोकपालभी वहां आनकर प्राप्त हुए ॥५२॥ अपने गणोंके सहित कुंभीपाकको घेरकर खड़े हुए और वहांके जीवोंको स्वर्गसे अधिक सुखी देखनेलगे ॥ ५३ ॥ सब चकित रहे किसीने उसके कारणको न जाना और बोले अहो ! यह कुंड तो पापके भोगके निमित्त किया था ॥ ५४ ॥ जब यहां यह सुख हुआ तो फिर पापसे क्या भय होगा परमात्माकी कीहुई वेदमर्यादा कैसे छिन्न हुई ॥ ५५ ॥ भगवान्ने अपने संकल्पको मिथ्या किसप्रकार किया यह बड़ा आश्चर्य

हे इस प्रकार सब परस्पर कहने लगे ॥ ५६ ॥ समीपवर्त्ती होकरभी किसीने इस कारणको न जाना इसीसमय भगवान् विष्णु देवताओंसे सम्मतिकर ॥ ५७ ॥ कुछ देवताओंको साथले शिवके स्थानपर गये जहां वह देव कोटिकामके समान सुन्दर पार्वतीके सहित विराजमान थे ॥ ५८ ॥ जो अतिशय रमणीय और लावण्यताकी खान है सदा सोलह वर्षकी अवस्था अनेक अलंकारोंसे शोभित ॥ ५९ ॥ नानागणोंसे युक्त शिवाको प्यार करते हुए शंकरको देख चतुर्वेदके सहित हरिने प्रणाम किया ॥ ६० ॥ और उस चमत्कारका वृत्तान्त कहा कि, हे देव!हम इसका कारण नहीं जान्ते हैं॥ ६१ ॥ हे प्रभो!आप सर्वज्ञ हो इसकारण इसका कारण कहो विष्णु के यह वचन सुन प्रसन्नमुखसे ॥ ६२ ॥ मेघगंभीरवाणीसे शिवजी मधुर वाक्य बोले इसका निमित्त सुनो इसमें कुछभी आश्चर्य नहीं है ॥ ६३ ॥ यह सब भस्मकी

तटस्थाअभवन्सर्वेनविदुस्तत्रकारणम् ॥ एतास्मिन्नंतरेशौरिःसंमंत्र्यविबुधादिभिः ॥ ५७ ॥ ययौकैश्चित्सुरगणैःसहितःशंकरालयम् ॥ पार्वत्यासहितंदेवंकोटिकंदर्पसुंदरम् ॥ ५८ ॥ रमणीयतमांगंतंलावण्यखनिमद्भुतम् ॥ सदाषोडशवर्षीयंनानालंकारभूषितम् ॥ ५९ ॥ नानागणैःपरिवृतंलालयंतंपरांशिवाम् ॥ ददर्शचंद्रमौलिंसचतुर्वेदंननामह ॥ ६० ॥ वृत्तांतंकथयामासचमत्कृतमतिस्फुटम् ॥ एतस्यकारणंदेवनजानीमःकथंचन॥ ६१ ॥ वदतत्कारणंदेवसर्वज्ञोसियतःप्रभो ॥ विष्णुवाक्यंतदाश्रुत्वाप्रसन्नमुखपंकजः ॥ ६२ ॥ उवाचमधुरंवाक्यंमेघगंभीरयागिरा ॥ शृणुविष्णोतन्निमित्तंनाश्चर्यंत्वत्रविद्यते ॥ ६३ ॥ भस्मनोमहिमैवायंभस्मनाकिंभवेन्नहि ॥ कुंभीपाकंगतोद्रष्टुंदुर्वासाःशैवसंमतः ॥ ६४ ॥ अवाङ्मुखोददर्शाऽधस्तदावायुवशाद्भ्रे ॥ भालभस्मकणास्तत्रपतितादैवयोगतः ॥ ६५ ॥ तेनजातमिदंसर्वंभस्मनोमहिमात्वयम् ॥ इतःपरंतुतत्तीर्थंपितृलोकनिवासिनाम् ॥ ६६ ॥ भविष्यतिनसंदेहोयत्रस्नात्वासुखीभवेत् ॥ पितृतीर्थंतुतन्नाम्नाऽप्यतऊर्ध्वंभविष्यति ॥ ६७ ॥ मल्लिंगस्थापनंतत्रकार्यंदेव्याश्चसत्तम ॥ पूजयिष्यंतितेतत्रपितृलोकनिवासिनः ॥ ६८ ॥ त्रैलोक्येयानितीर्थानितत्रश्रेष्ठामिदंभवेत् ॥ पित्रीश्वरीपूजयातुत्रैलोक्यंपूजितंभवेत् ॥ ६९ ॥ नारायणउवाच ॥ इतिदेववचःश्रुत्वादेवंमूर्ध्नाप्रणम्यच ॥ तदनुज्ञांसमादाययर्यौदेवांतिकंहरिः ॥ ७० ॥ तत्सर्वंकथयामासकारणंशंकरोदितम् ॥ साधुसाध्वितितेप्रोचुरमरामौलिचालनैः ॥ ७१ ॥

महिमा है भस्मसे क्या नहीं होता है शैवसंमत दुर्वासाजी कुंभीपाक देखनेगये ॥ ६४ ॥ सो वह नीचेको मुखकर देखने लगे उसीसमय वायुवशसे उनके मस्तकसे भस्मके कण कुण्डमें पतित हुए ॥ ६५ ॥ उसीसे यह सब कुछ हुआ है यह भस्मकीमहिमा है अबसे यह पितृलोक निवासियोंको तीर्थ ॥ ६६ ॥ होगा इसमें सन्देह नहीं यहां स्नान करनेसे सुख होगा और पितृतीर्थनाम होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ यहां मेरी प्रतिमा देवीके सहित स्थापन करनी, पितृलोकनिवासी इसका पूजन करेंगे ॥ ६८ ॥ त्रिलोकीके सब तीर्थोंसे यह श्रेष्ठ होगा. यहां पित्रीश्वरीकी पूजासे त्रिलोकी पूजित जाननी ॥ ६९ ॥ नारायण बोले हरि इसप्रकार हरके वचन सुन उनको शिरसे प्रणामकर उनकी आज्ञाले देवताओंके समीप आये ॥ ७० ॥ और शिवकी कही सब बात सुनाई सब देवता शिरकंपित करते

धन्य २ कहने लगे ॥ ७१ ॥ हरि ब्रह्मादिक देवता भस्मका माहात्म्य कहनेलगे हे परंतपतीर्थलाभसे पितरभी संतुष्ट हुए ॥ ७२ ॥ देवताओंने उस तीर्थके निकट शिवलिंग और देवीकी मूर्त्ति विधिपूर्वक स्थापन कर निरन्तर पूजाकी ॥ ७३ ॥ उस स्थानमें पाप भोगनेको जितने प्राणी थे वे सब विमानोंमें बैठ कैलासमंडलको चले गये ॥ ७४ ॥ वे भद्र नामवाले गण होकर आजतक वहाँ निवास करते हैं फिर वहांसे दूर देशमें कुंभीपाक नरक बनाया गया ॥ ७५ ॥ उस दिनसे देवताओंने वहां शिवभक्तोंके जानेकी मनाई की है, यह तुमसे सब भस्मका माहात्म्य कहा ॥ ७६ ॥ हे मुने! इससे अधिक और कुछ नहीं है ऊर्ध्वपुंड्रकी विधि अधिकारीके भेदसे ॥ ७७ ॥ वर्णन करता हूं जो वैष्णवशास्त्रमें है हे मुनिश्रेष्ठ! ऊर्ध्व पुंड्रका प्रमाण दिव्य अंगुलीके भेद ॥ ७८ ॥ तथा वर्णमंत्र और उसका फल

शशंसुर्भस्ममाहात्म्यंहरिब्रह्मादयःसुराः ॥ पितरश्चैवसंतुष्टास्तीर्थलाभात्परंतप ॥ ७२ ॥ तत्तीर्थतीरेलिंगंचदेव्यामूर्त्तिंयथाविधि ॥ स्थापयामासुरमराःपूजयामासुरन्वहम् ॥ ७३ ॥ तत्रयेप्राणिनोभूवन्पापभोगार्थमास्थिताः ॥ तेविमानंसमारुह्यगताःकैलासमंडलम् ॥ ७४ ॥ नाम्नाभद्रगणास्तेतुवसंत्यद्यापितत्रहि ॥ पुनश्चदूरदेशेतुकुंभीपाकोविनिर्मितः ॥७५॥ निरुद्धंशैवगमनंदेवैस्तत्रतुतद्दिनात् ॥ इतितेसर्वमाख्यातंभस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ॥७६॥ नातःपरतरंकिंचिदधिकंविद्यतेमुने ॥ ऊर्ध्वपुंड्रविधिंचैवाऽप्याधिकारिविभेदतः ॥ ७७ ॥ प्रवक्ष्येमुनिशार्दूलवैष्णवागमलोकनात् ॥ ऊर्ध्वपुंड्रप्रमाणानिदिव्यान्यंगुलिभेदतः ॥ ७८ ॥ वर्णाभिमंत्रदेवांश्चप्रवक्ष्यामिफलानिच ॥ पर्वताग्रेनदीतीरेशिवक्षेत्रेविशेषतः ॥ ७९ ॥ सिंधुतीरेचवल्मीकेतुलसीमूलमाश्रिते ॥ मृदएतास्तुसंग्राह्यवर्जयेदन्यमृत्तिकाः ॥८०॥ श्यामंशांतिकरंप्रोक्तंरक्तंवश्यकरंभवेत् ॥ श्रीकरंपीतमित्याहुर्धर्मदंश्वेतमुच्यते ॥८१॥ अंगुष्ठःपुष्टिदःप्रोक्तोमध्यमायुष्करीभवेत् ॥ अनामिकान्नदानित्यंमुक्तिदाचप्रदेशिनी ॥ ८२ ॥ एतैरंगुलिभेदैस्तुकारयेन्ननखैःस्पृशेत् ॥ वर्तिदीपावलिकृतिंवेणुपत्राकृतिंतथा ॥ ८३ ॥ पद्मस्यमुकुलाकारंतथाकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ मत्स्यकूर्माकृतिंवापिशंखाकारंततःपरम् ॥[1] ८४ ॥ दशांगुलिप्रमाणंतुउत्तमोत्तममुच्यते ॥ नवांगुलंमध्यमंस्यादष्टांगुलमतःपरम् ॥ ८५ ॥

कहूंगा पर्वतके अग्रभाग नदीके तट तथा विशेष कर शिवक्षेत्रमेंसे ॥ ७९ ॥ समुद्र तट, वल्मीक, तुलसीकी जडकी मृत्तिका लावै और सब मृत्तिका वर्जित हैं ॥८०॥ श्याम कांतिकारी, लाल वश्यकारी, पीली श्रीकरनेवाली, श्वेत ऊर्ध्वपुंड्र धर्म देनेवाला है ॥ ८१ ॥ अंगुष्ठ पुष्टिदायक, मध्यमा आयुष्करी, अनामिका अन्नदायक, प्रदेशिनी अंगुली मुक्तिदायक है ॥ ८२ ॥ इन अंगुलीके भेदोंसे तिलक करै नखूनोंसे स्पर्श न करै जलते हुए दीपकके लोयके समान तथा बाँसपत्रके आकार ॥ ८३ ॥ वा पद्मकी कलीके समान, प्रयत्नसे करै मत्स्य कूर्मके आकार शंखके आकार ॥ ८४ ॥ बनावे दशांगुलि प्रमाणका परमोत्तम तिलक है नौ

१ ब्रह्माण्ड पुराणमें इसका विनियोग लिखा है—ललाटमें बाहुवत्, कानमें दंडकेसमान, हृदयमें कमलकेसमान, उदरमें दीपकेसमान, स्कंधमें जम्बू और पलाशवत् धारण करै ॥

अंगुलका मध्यम और आठ अंगुलका उससे भी निकृष्ट है ॥ ८५ ॥ सात छः पांच अंगुलका तीन प्रकारका मध्यम है चार तीन दो अंगुलका तीन प्रकारका कनिष्ठ है ॥ ८६ ॥ ललाटमें केशवको जानै, उदरमें नारायण, हृदयमें माधव कंठमें गोविन्द ॥ ८७ ॥ उदरके दक्षिणपार्श्वमें विष्णु, उसके दूसरे पार्श्व और बाहु मध्यमें मधुसूदन ॥ ८८ ॥ कर्णमें त्रिविक्रम, बाईकोखमें वामन, बाईभुजामें श्रीधर, दहिने कानमें हृषीकेश ॥ ८९ ॥ पीठमें पद्मनाभ कंधेमें दामोदरको स्मरण करै यह बारह वासुदेवके नाम लेकर तिलक करै यह तिलकोंके देवता हैं ॥ ९० ॥ प्रभात संध्या समय पूजा और हवनके समय विधिसे इन नामोंको उच्चारण कर ऊर्ध्वपुंड्र

सप्तषट्पंचभिःपुंड्रंमध्यमंत्रिविधंस्मृतम् ॥ चतुस्त्रिद्व्यंगुलैःपुंड्रंकनिष्ठंत्रिविधंभवेत् ॥८६ ॥ ललाटेकेशवंविद्यान्नारायणमथोदरे ॥ माधवंहृदिविन्यस्यगोविंदंकंठकूपके ॥८७॥ उदरेदक्षिणेपार्श्वेविष्णुरित्याभिधीयते ॥ तत्पार्श्वेबाहुमध्येचमधुसूदनमेवच ॥८८॥ त्रिविक्रमंकर्णदेशेवामकुक्षौतुवामनम् ॥ श्रीधरंबाहुकेवामेहृषीकेशंतुकर्णके ॥८९॥ पृष्ठेचपद्मनाभंतुककुद्दामोदरंस्मरेत् ॥ द्वादशैतानिनामानिवासुदेवेतिमूर्धनि ॥९० ॥ पूजाकालेचहोमेचसायंप्रातःसमाहितः ॥ नामान्युच्चार्यविधिनाधारयेदूर्ध्वपुंड्रकम् ॥ ९१ ॥ अशुचिर्वाप्यनाचारोमनसापापमाचरेत् ॥ शुचिरेवभवेन्नित्यंमूर्ध्निपुंड्रांकितोनरः ॥९२॥ ऊर्ध्वपुंड्रधरोमर्त्योम्रियतेयत्रकुत्रचित् ॥ श्वपाकोऽपिविमानस्थोममलोकेमहीयते ॥९३॥ एकांतिनोमहाभागामत्स्वरूपविदोऽमलाः ॥ सांतरालान्प्रकुर्वंतिपुंड्रान्विष्णुपदाकृतीन् ॥९४॥ परमैकांतिनोप्येवंमत्पादैकपरायणाः ॥ हरिद्राचूर्णसंयुक्ताञ्छूलाकारांस्तुवाऽमलान् ॥९५॥ अन्येतुवैष्णवाःपुंड्रानच्छिद्रानपिभक्तितः ॥ प्रकुर्वीरन्दीपपद्मवेणुपत्रोपमाकृतीन् ॥९६॥ अच्छिद्रानपिसच्छिद्रान्कुर्युःकेवलवैष्णवाः ॥ अच्छिद्रकरणेतेषांप्रत्यवायोनविद्यते ॥९७॥

धारण करै ॥ ९१ ॥ जो मनुष्य ऊर्ध्वपुंड्र धारण करते हैं वह अशुचि अनाचारी, चाहैं मनमें पापभी स्मरण करते हों तौभी शुद्ध होतेहैं ॥ ९२ ॥ ऊर्ध्वपुंड्रधारी जहां कहींभी मृत्युको प्राप्तहो चाण्डालपर्यन्तभीहो वह विमानमें चढकर मेरे लोकको आताहै ॥ ९३ ॥ एकान्त रहनेवाले महाभाग निर्मलही मेरा स्वरूप जानते हैं, जो दो रेखावाला मध्यमें शून्य विष्णुके पदके समान तिलक करते हैं ॥ ९४ ॥ वे परम एकान्ती भी मेरे चरणोंके भक्त हैं, जो हलदीके चूर्णसे संयुक्त शूलाकार अमल तिलक करते हैं ॥ ९५ ॥ तथा जो दूसरे वैष्णव भक्तिपूर्वक दीप कमलकली बांसीके पत्तेके समान अच्छिद्र तिलक करते हैं ॥ ९६ ॥ तथा जो अच्छिद्र और सच्छिद्र केवल

वैष्णव तिलक करते हैं तौ अच्छिद्र करणमें उनको कोई विघ्न नहीं है ॥ ९७ ॥ जो एकांतिक परम वीरभक्त वैष्णव है उनको अच्छिद्र पुंड्रके करनेमें महा प्रत्ययवाय प्राप्त होता है ॥ ९८॥ जो कोई दंडके आकार शोभित ऊर्ध्वपुंड्र करता है मध्यमें छिद्र रखता है अर्थात् दोनों रेखाओंके मध्यमें अवकाश रखता है केशवादि नामोंको उच्चारण करताहै ॥९९॥ तथा जो अवकाशयुक्त उज्ज्वल ऊर्ध्वपुंड्रोंको धारण करता है वह मानो मेरा मंदिरही करता है ॥१००॥ विशाल मनोहर ऊर्ध्वपुंड्रके मध्यमें लक्ष्मीसहित अविनाशी विष्णु रमण करते हैं ॥ १ ॥ और जो द्विजाधम निरवकाश ऊर्ध्व पुंड्रको करता है वह विष्णुको स्थितकर वहांसे लक्ष्मीवियुक्त करता है ॥ २ ॥ जो मूढबुद्धि अच्छिद्र ऊर्ध्वपुंड्रको करते हैं वह क्रमसे इक्कीस नरकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ दोनों पार्श्व सीधे स्फुट करने चाहिये ऊर्ध्व पुंड्रदंड कमलकके और

एकांतिनांप्रपन्नानांपरमैकांतिनामपि ॥ अच्छिद्रपुंड्राकरणेप्रत्यवायोमहान्भवेत् ॥ ९८ ॥ ऊर्ध्वपुंड्रंतुयःकुर्याद्दंडाकारंतुशोभनम् ॥ मध्येच्छिद्रंवैष्णवश्चनमोन्तैःकेशवादिभिः ॥ ९९ ॥ विमलान्यूर्ध्वपुंड्राणिसांतरालानियोनरः ॥ करोतिविपुलंतत्रमंदिरंमेकरोतिसः ॥ १०० ॥ ऊर्ध्वपुंड्रस्यमध्येतु विशालेसुमनोहरे ॥ लक्ष्म्यासाकंसहासीनोरमतेविष्णुरव्ययः ॥ १ ॥ निरंतरालंयःकुर्यादूर्ध्वपुंड्रंद्विजाधमः ॥ सहितत्रस्थितंविष्णुंश्रियंचैवव्यपोहति ॥ ॥२॥अच्छिद्रमूर्ध्वपुंड्रंतुयःकरोतिविमूढधीः ॥ सपर्यायेणतानेतिनरकानेकविंशतिम् ॥ ३ ॥ ऋजूनिस्फुटपार्श्वानिसांतरालानिविन्यसेत् ॥ ऊर्ध्वपुंड्राणि दंडाब्जदीपमत्स्याजनिभानिच ॥४॥ शिखोपवीतवद्धार्यमूर्ध्वपुंड्रंद्विजेनच ॥ विनाकृताश्चेद्विफलाःक्रियाःसर्वामहामुने ॥५॥ तस्मात्सर्वेषुकार्येषुकार्यंवि प्रस्यधीमतः ॥ ऊर्ध्वपुंड्रंत्रिशूलंचवर्तुलंचतुरस्रकम् ॥६॥ अर्धचंद्रादिकंलिंगंवेदनिष्ठोनधारयेत्॥जन्मनालब्धजातिस्तुवेदपंथानमाश्रितः ॥७॥ पुंड्रांतरं भ्रमाद्वापिललाटेनैवधारयेत् ॥ ख्यातिकांत्यादिसिद्ध्यर्थंचापिविष्णवागमादिषु॥८॥ स्थितंपुंड्रांतरंनैवधारयेद्वैदिकोजनः ॥ तिर्यक्त्रिपुंड्रंसंत्यज्यश्रौतंक र्मपिभ्रमात् ॥ ९ ॥ ललाटेभस्मनातिर्यक्त्रिपुंड्रस्यचधारणम् ॥ विनापुंड्रांतरंमोहाद्धारयन्नारकीभवेत् ॥ ११० ॥

दीपकके समान करने चाहिये ॥ ४ ॥ द्विजको शिखा उपवीतके समान ऊर्ध्वपुंड्र धारण करना चाहिये हे महामुने! इसके विना किये सब क्रिया निष्फल होगी ॥ ५ ॥ इस कारण सब कार्योंमें बुद्धिमानको ऊर्ध्वपुंड्र त्रिशूल, वर्तुलाकार चौकोन तिलक धारण करना चाहिये ॥ ६ ॥ वेदनिष्ठ पुरुषको अर्धचन्द्रादि चिह्न धारण करने उचित नहीं हैं, वेदसे अतिरिक्तही इनके अधिकारी हैं जो जन्मसे द्विज हैं वेदमार्गका आश्रय लिये हैं ॥ ७ ॥ वह भ्रमसे भी मस्तक ललाटमें कोई दूसरा पुंड्र न धारण करैं वैष्णवशास्त्रोंमें ख्याति और कांति आदिकी सिद्धिके निमित्त तिलक धारण कहे हैं पर वैदिक पुरुषोंको नहीं चाहिये ॥ ८ ॥ वैदिक पुरुषको और तिलक न देना, अर्थात् वैदिक जो तिरछे त्रिपुंड्रको छोडकर किसीप्रकार भी भ्रमसे ॥ ९ ॥ ललाटमें भस्म वा तिर्यक् त्रिपुंड्रको छोडकर और कुछ धारण न करै जो मोहसे धारण

करता है वह नारकी (आवागमन सम्पन्न) होता है ॥ ११० ॥ जो वेदमार्गमें निष्ठावाला होकर यदि मोहसे अंकित होजाय तौ अवश्य पतित होगा इसमें सन्देह नहीं, यही दशा अन्य पुंड्र धारणमें जाननी ॥ ११ ॥ वेदमार्गमें स्थित पुरुषको शरीर दगाना अंकित करना उचित नहीं, श्रौतधर्ममें निष्ठावालोंको तौ श्रौतलिंगही युक्त है ॥ १२ ॥ हां जो श्रुतियोंके धर्ममें निष्ठ नहीं है उनके कारण वेदबाह्य चिह्न धारण करनेमें क्या निषेध है वेदसिद्धदेवताओंका तो वेदही चिह्न है ॥ १३ ॥ जो श्रौतकर्म नहीं करते तंत्रनिष्ठावाले हैं उनके अपरापर चिह्न होते हैं, पर वैदिक कर्मसिद्ध महादेव साक्षात् संसारके छुडानेवाले हैं ॥ १४ ॥ भक्तोंके उपकारके निमित्तही श्रुतिसम्मत भस्मादि चिह्न धारण करते हैं वैदिक कर्मकारी वैष्णवको भी श्रुतिसम्मत भस्मही धारण करनी होगी अन्य नहीं (तप्तमुद्रा ऊर्ध्व पुंड्र तंत्रोक्त दीक्षावाले वैष्णवोंको है वेदानुसार वर्तनेवालोंको नहीं) ॥ १५ ॥ जो राम कृष्ण इत्यादि विशेष अवतार हुए हैं उन्होंने वेदानुसार कर्मकर त्रिपुंड्र भस्म

वेदमार्गैकनिष्ठस्तुमोहेनाप्यंकितोयदि ॥ पतत्येवनसंदेहस्तथापुंड्रांतरादपि ॥ ११ ॥ नांकनंविप्रदेहेकुर्याद्वेदमार्गसमाश्रितः ॥ श्रौतधर्मैकनिष्ठानांलिंगं तुश्रौतमेवहि ॥ १२ ॥ अश्रौतधर्मनिष्ठानामश्रौतंलिंगमीरितम् ॥ देवतावेदसिद्धायास्तासांलिंगंतुवैदिकम् ॥ १३ ॥ अश्रौततंत्रनिष्ठायास्तासामश्रौ तमेवहि ॥ वेदसिद्धोमहादेवःसाक्षात्संसारमोचकः ॥ १४ ॥ भक्तानामुपकारायश्रौतंलिंगंदधातिच ॥ वेदसिद्धस्यविष्णोश्चश्रौतंलिंगंनचेतरत् ॥१५॥ प्रादुर्भावविशेषाणामपितस्यतदेवहि ॥ श्रौतंलिंगंतुविज्ञेयंत्रिपुंड्रोद्धूलनादिकम् ॥ १६ ॥ अश्रौतमूर्ध्वपुंड्रादिनैवतिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैववर्त्मना ॥ १७ ॥ ललाटेभस्मनातिर्यक्त्रिपुंड्रंधार्यमेवहि ॥ यस्तुनारायणंदेवप्रपन्नःपरमंपदम् ॥ ११८ ॥ धारयेत्सर्वदाशूलंललाटेगंधवा रिणा ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधेपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

धारण की है इससे उनके भक्तोंको भी वही कर्तव्य है " रामचन्द्रका शिवस्थापन वाल्मीकिमें और कृष्णका शिवकी तपस्या करना हरिवंश पुराणमें स्पष्ट है" ॥ १६ ॥ जो श्रुतिकर्मसे बाह्य हैं वही ऊर्ध्वपुंड्रादिक धारण करते हैं वह त्रिर्यक् त्रिपुंड्र धारण नहीं करते जो वेदमार्गमेंही निष्ठावाले हैं वे वेदोक्त मार्गसे ॥ १७ ॥ ललाटमें भस्म और त्रिपुंड्र धारण करते हैं जो नारायण देवकी शरण हो परम पदकी इच्छा करता है ॥ १८ ॥ वह गंधजलसे ललाटमें सदा शूलाकार तिलक धारै ॥ "इस अध्यायसे तथा दूसरे सूत संहिता, पराशर कूर्मपुराणादिसे सिद्ध है कि, भस्म धारण वैदिक कर्म है, त्रिपुंड्र वैदिक कर्म है, कारण कि श्रौतस्मार्त्त कर्मवालेही त्रिपुंड्र धारण करते हैं, इनकी पद्धति वैदिक है और दूसरे तिलकधारी वेदानुसार वा वेदको मुख्यमान कर कर्म नहीं करते बहुत क्या सन्ध्या आदि न करके सम्प्रदाय भेदमें रत हो रहे हैं इन्हीं कारणोंसे भारतवर्षमें वेदविद्या लुप्तसी होगई है" ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीनारायण बोले अब हम उत्तम संध्योपासन कहते हैं और भस्मधारणका माहात्म्य तौ विस्तारसे कहचुके, संध्याकालकी अधिष्ठात्री देवी गायत्रीकी उपासनाही संध्योपासना है संध्या तीन कालमें होती है सोई याज्ञवल्क्य कहते हैं—पूर्वसंध्या गायत्री, मध्यमा सावित्री, पश्चिमा सरस्वतीरूप है. गायत्री श्वेत, सावित्रीरक्त, सरस्वती कृष्णवर्ण है. इसी क्रमसे ब्रह्म, रुद्र, विष्णुके समानाकार होनेसे तीन देवताओंका ध्यान कहा है, उपासनाका अर्थ ध्यान है कोई ध्यान जप कहते हैं, पर गायत्रीका जप प्रधान है, ऋषियोंने गायत्रीजपसेही दीर्घायु पायी है यह मनु कहते हैं ॥ १ ॥ हे पापरहित ! अब मैं प्रभातसंध्याका विधान कहूंगा जब तारे दीखते हों उस समयसे आरंभ कर सूर्योदयपर्यन्त प्रातःसंध्या है, मध्यस्थानमें सूर्य आनेसे मध्यमा है ॥ २ ॥ और सूर्यास्तसमयकी पश्चिमासंध्या है, इस प्रकार तीन संध्या

नारायणउवाच ॥ अथातःश्रूयतांपुण्यंसंध्योपासनमुत्तमम् ॥ भस्मधारणमहात्म्यंकथितंचैवाविस्तरात् ॥१॥ प्रातःसंध्याविधानंचकथयिष्यामितेऽनघ॥ प्रातःसंध्यांसनक्षत्रांमध्याह्नेमध्यभास्कराम्॥२॥ ससूर्यांपश्चिमांसंध्यांतिस्रःसंध्याउपासते ॥ तद्भेदानपिवक्ष्यामिशृणुदेवर्षिसत्तम ॥३॥ उत्तमातारकोपेतामध्यमालुप्ततारका॥अधमासूर्यसहिताप्रातःसंध्यात्रिधामता॥४॥उत्तमासूर्यसहितामध्यमाऽस्तमितेरवौ॥अधमातारकोपेतासायंसंध्यात्रिधामता ॥५॥ विप्रोवृक्षोमूलकान्यत्रसंध्यावेदःशाखाधर्मकर्माणिपत्रम् ॥ तस्मान्मूलंयत्नतोरक्षणीयंछिन्नेमूलेनैववृक्षोनशाखा ॥ ६ ॥ संध्यायेननविज्ञातासंध्यायेनानुपासिता ॥ जीवमानोभवेच्छूद्रोमृतःश्वाचैवजायते ॥ ७ ॥ तस्मान्नित्यंप्रकर्तव्यंसंध्योपासनमुत्तमम् ॥ तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारीभवेन्नहि ॥ ८ ॥

हैं हे नारद ! सुनो इनके भेदभी कहता हूं ॥ ३ ॥ तारोंसे युक्त उत्तमा, लुप्ततारेवाली मध्यमा और सूर्यनिकलेमें संध्या अधमा इसप्रकार प्रातःसंध्या. तीन प्रकारकी है ॥ ४ ॥ सायंसंध्या सूर्यके सहित उत्तमा, सूर्यास्तमें मध्यमा, तारोंमें अधमा है इसप्रकार इसकेभी तीन भेद हैं ॥ ५ ॥ ब्राह्मण वृक्ष है मूल उसकी संध्या है वेद शाखा है धर्म कर्म पत्ते हैं इससे मूलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी मूल नष्ट होनेमें वृक्ष और शाखा कुछ नहीं रहती ॥ ६ ॥ जिसने संध्या न जानी तथा जिसने संध्याकी उपासना न की, वह जीता हुआही शूद्र है वह मरकरभी शूद्र होता है ॥ ७ ॥ इस कारण नित्यही संध्योपासन करना चाहिये संध्याके विना और कर्मोंका

अधिकारी नहीं होता ॥ ८ ॥ उदय और अस्तमें जबतक तीन घडी हो तबतक संध्योपासन करना चाहिये ऐसा न करनेसे प्रायश्चित्त लगता है ॥ ९ ॥ यदि कालातिक्रम हो जाय तो चतुर्थअर्घ्य दे अथवा आठ सौ गायत्रीदेवीको जपकर पीछे प्रायश्चित्त करै॥ १० ॥जिसकालमें जो कर्म करना है उसकालकी अधीश्वरी संध्याकी उपासना करके उस कर्मको करै ॥ ११ ॥ घरमें साधारण, गोष्ठमें मध्यमा, नदीतीरमें उत्तमा और देवीके मंदिरमें उत्तमोत्तम है ॥ १२ ॥ जिसकारणसे कि, यह देवीकी उपासना है इससे देवीके निकट तीनोंकालमें संध्या करै तो अनन्त फलकी देनेवाली है ॥ १३ ॥ इससे अधिक ब्राह्मणोंको और देवता नहीं है, विष्णु और महादेवकी उपासना अनन्त फल देनेवालीनहीं है ॥ १४ ॥ जैसे महादेवी गायत्रीकी उपासना वेदबोधित है सर्ववेदसारभूत गायत्रीकी अर्चना करनी चाहिये ॥ १५ ॥ ब्रह्मा

उदयास्तमयादूर्ध्वंयावत्स्याद्घटिकात्रयम्॥तावत्संध्यामुपासीतप्रायश्चित्तंततः परम् ॥९॥ कालातिक्रमणेजातेचतुर्थार्घ्यंप्रदापयेत्॥अथवाष्टशतंदेवींजप्त्वाऽऽदौतांसमाचरेत्॥ १०॥यस्मिन्कालेतुयत्कर्मतत्कालाधीश्वरींचताम् ॥ संध्यामुपास्यपश्चात्तुतत्कालीनंसमाचरेत् ॥ ११॥ गृहेसाधारणाप्रोक्तागोष्ठेवैमध्यमाभवेत् ॥ नदीतीरेचोत्तमास्याद्देवीगेहेतदुत्तमा ॥१२॥ यतोदेव्याउपासेयंततोदेव्यास्तुसन्निधौ ॥ संध्यात्रयंप्रकर्तव्यंतदानंत्यायकल्पते ॥ १३॥ एतस्याअपरंदैवंब्राह्मणानांनविद्यते ॥ नविष्णूपासनानित्यानाशिवोपासनातथा ॥१४॥ यथाभवेन्महादेव्यागायत्र्याः श्रुतिचोदिता॥सर्ववेदसारभूतागायत्र्यास्तुसमर्चना॥१५॥ब्रह्मादयोऽपिसंध्यायांतांध्यायंतिजपंतिच ॥ वेदाजपंतितांनित्यंवेदोपास्याततः स्मृता॥१६॥तस्मात्सर्वेद्विजाः शाक्तानशैवानचवैष्णवाः ॥ आदिशक्तिमुपासंतेगायत्रींवेदमातरम् ॥ १७ ॥ आचांतःप्राणमायम्यकेशवादिकनामभिः ॥ केशवश्चतथानारायणोमाधवएवच ॥ १८ ॥ गोविंदोविष्णुरेवाथमधुसूदनएवच ॥ त्रिविक्रमोवामनश्चश्रीधरोऽपिततः परम् ॥१९॥ हृषीकेशः पद्मनाभोदामोदरअतः परम् ॥ संकर्षणोवासुदेवः प्रद्युम्नोप्यनिरुद्धकः ॥ २० ॥ पुरुषोत्तमाधोक्षजौचनारसिंहोच्युतस्तथा ॥ जनार्दनउपेंद्रश्चहरिःकृष्णोंऽतिमस्तथा ॥२१॥ ॐकारपूर्वकंनामचतुर्विंशतिसंख्यया ॥ स्वाहांतैःप्राशयेद्वारिनमोंतैःस्पर्शयेत्तथा॥२२॥केशवादित्रिभिःपीत्वाद्वाभ्यांप्रक्षालयेत्करौ ॥ मुखंप्रक्षालयेद्वाभ्यांद्वाभ्यामुन्मार्जनंतथा ॥ २३ ॥

दिकभी संध्यामें उसीका ध्यान और जप करते हैं, वेदभी उसकी नित्य उपासना करते हैं इसकारण वह वेदद्वारा उपासनीय है ॥ १६ ॥ इसकारण सबही द्विज शाक्त हैं शैव वैष्णव नहीं हैं, आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥ १७ ॥ आचमन कर केशवादिनामोंसे प्राणायाम करके केशव, नारायण, माधव ॥ १८ ॥ गोविन्द,विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर॥ १९ ॥हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न,अनिरुद्ध ॥ २० ॥ पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नारसिंह, अच्युत जनार्दन, उपेन्द्र, हरि,श्रीकृष्ण॥ २१ ॥ यह चौवीस नाम २४ संख्यामें ओंकारपूर्वक स्मरणकर स्वाहा लगाय फिर नमःलगावै ॥ २२ ॥ केशवाय स्वाहा, नारायणाय स्वाहा

माधवायस्वाहा, ऐसे तीननामसे जलपान करै, गोविन्दायनमः विष्णवेनमः कहकर दोनों हाथ धोवै, मधुसूदन त्रिविक्रमनाम लेकर अंगुष्ठमुलसे होठ मल श्रीधरादि दो नामोंसे मुखमार्जनकर ॥ २३ ॥ हृषीकेश नामसे वायां हाथ प्रोक्षणकर, पद्मनाभनामसे चरण प्रोक्षणकर दामोदर नामसे मूर्धा संकर्षणादिनामसे बारह अंगोंमें स्पर्शकरै संकर्षणसे मध्यमा अंगुली, वासुदेव प्रद्युम्नसे अंगुष्ठ और तर्जनीसे नासापुटस्पर्शकरै अनिरुद्ध और पुरुषोत्तम नामसे अंगुष्ठ और अनामिकासे नेत्र छूकर, अधोक्षज नारसिंहनामसे श्रोत्र, अच्युत नामसे कनिष्ठ अंगुष्ठसे नाभिको स्पर्शकर, जनार्दननामसे पाणितलसे हृदयको स्पर्शकर उपेन्द्रनामसे शिरछूकर हरयेनमः श्रीकृष्णायनमः इनसे दहिनी और बाईं भुजमूलको स्पर्शकरै ॥ २४ ॥ दक्षिण हाथसे जल पीकर वामसे स्पर्शकरै, जबतक वामहाथसे स्पर्श नकरै तबतक जल शुद्ध नहीं होता ॥ २५ ॥ गौके कानके समान हाथका आकार करकै एकमासे जलपियै, फिर इससे न्यूनाधिकपियै तो ब्राह्मण सुरापायी होता है ॥ २६ ॥ दक्षिण हाथकी मिली हुई अंगुलियोंसे अँगूठाऔर कन अंगुली

एकेनपाणिंसंप्रोक्ष्यपादावपिशिरोऽपिच ॥ संकर्षणादिदेवानांद्वादशांगानिसंस्पृशेत् ॥ २४ ॥ दक्षिणेनोदकंपीत्वावामेनसंस्पृशेद्बुधः ॥ तावन्नशुध्यते तोयंयावद्वामेननस्पृशेत् ॥ २५ ॥ गोकर्णाकृतिहस्तेनमाषमात्रंजलंपिबेत् ॥ ततोन्यूनाधिकंपीत्वासुरापानीभवेद्द्विजः ॥ २६ ॥ संहतांगुलिनातोयंपाणिनादक्षिणेनतु ॥ मुक्तांगुष्ठकनिष्ठाभ्यांशेषेणाचमनंविदुः ॥ २७ ॥ प्राणायामंततःकृत्वाप्रणवस्मृतिपूर्वकम् ॥ गायत्रींशिरसासार्धंतुरीयपदसंयुताम् ॥ ॥ २८ ॥ दक्षिणेरेचयेद्वायुंवामेनपूरितोदरम् ॥ कुंभेनधारयेन्नित्यंप्राणायामंविदुर्बुधाः ॥ २९ ॥ पीडयेद्दक्षिणानाडीमंगुष्ठेनतथोत्तराम् ॥ कनिष्ठानामिकाभ्यांतुमध्यमांतर्जनींत्यजेत् ॥ ३० ॥ रेचकःपूरकश्चैवप्राणायामोऽथकुंभकः ॥ प्रोच्यतेसर्वशास्त्रेषुयोगिभिर्यतमानसैः ॥ ३१ ॥ रेचकःसृजतेवायुं पूरकःपूरयेत्तुतम् ॥ साम्येनसंस्थितिर्यत्तत्कुंभकःपरिकीर्तितः ॥ ३२ ॥ नीलोत्पलदलश्यामंनाभिमध्येप्रतिष्ठितम् ॥ चतुर्भुजंमहात्मानंपूरकेचिंतयेद्धरिम् ॥ ३३ ॥ कुंभकेतुहृदिस्थानेध्यायेत्तुकमलासनम् ॥ प्रजापतिंजगन्नाथंचतुर्वक्त्रंपितामहम् ॥ ३४ ॥

छोडकर शेषसे आचमन करै ॥ २७ ॥ तब ओंकार स्मरण कर प्राणायाम करके तुरीयपादसहित गायत्रीको जपता हुआ प्राणायाम करै ॥ २८ ॥ दक्षिणनासापुटसे वायु रेचन करै, बायेंसे उदरको पूर्णकरै कुंभकसे धारण करै इसका नाम पंडितोंने प्राणायाम कहा है ॥ २९ ॥ अंगुष्ठसे दक्षिण नाडीको पीडितकरै, कनिष्ठ और अनामिकासे यह कार्य करै मध्यमा और तर्जनीको त्यागन करै ॥ ३० ॥ रेचक पूरक और कुंभक यह तीन प्रकारका प्राणायाम जितेन्द्रिय योगी कहते हैं ॥ ३१ ॥ रेचकसे वायु छोडीजीती, पूरक पूर्णकरती, और समानतासे इसकी स्थितिका नाम कुंभक है ॥ ३२ ॥ नीलोत्पलके समान श्यामस्वरूपनाभिमें प्रतिष्ठित है, वहां चतुर्भुज हरिको पूरकके समय ध्यानकरै ॥ ३३ ॥ कुंभकके समय हृदयमें कमलासन प्रजापति जगन्नाथ चतुर्मुख

पितामहका ध्यान करै ॥ ३४ ॥ रेचकके समय ललाटमें स्थित महेश्वर शुद्ध स्फटिकके समान पापनाशी शंकरका ध्यान करे ॥ ३५ ॥ पूरकमें विष्णुका सायुज्य कुंभकमें ब्रह्मकी गति, रेचकसे शिवकीगति परम प्राप्तहोती है ॥ ३६ ॥ हे देवर्षि! यह पुराणसम्मत आचमन आपसे कहा आपसे अब श्रौत आचमन कहता हूं ॥ ३७ ॥ पहले ओंकार पढकर फिर गायत्री त्रिपदी उच्चारणकर जलपान करै, यह श्रौत आचमन है ॥ ३८ ॥ जो व्याहृतिपूर्वक शिरके सहित गायत्रीका जपकरता प्रत्येकवार प्राणायाम रेचक पूरक कुंभककर ऐसे तीनवार करनेका नाम प्राणायाम करै ॥ ३९ ॥ "अबलक्षण सहित प्राणोंका आयाम कहते हैं जो अनेक पापनाशक और महापुण्यका फल देने वाला है" ओंकारसे पांचौअंगुलियों द्वारा नासाग्रभागको पीडित करै यह मुद्रा वानप्रस्थ और ग्रहस्थोंके सब पापकी हरनेवाली है ॥ ४० ॥ कनिष्ठिका अनामिका और अँगूठेसे

रेचकेशंकरंध्यायेल्ललाटस्थंमहेश्वरम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशंनिर्मलंपापनाशनम् ॥ ३५ ॥ पूरकेविष्णुसायुज्यंकुंभकेब्रह्मणोगतिम् ॥ रेचकेनतृतीयं तुप्राप्नुयादीश्वरंपरम् ॥ ३६ ॥ पौराणाचमनाद्यंचप्रोक्तंदेवर्षिसत्तम ॥ श्रौतमाचमनाद्यंचशृणुपापापहंमुने ॥ ३७ ॥ प्रणवंपूर्वमुच्चार्यगायत्रींतुतदित्यृचम् ॥ पादादौव्याहृतीस्तिस्रःश्रौताचमनमुच्यते ॥ ३८ ॥ गायत्रींशिरसासार्धंजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् ॥ प्रतिप्रणवसंयुक्तांत्रिरयंप्राणसंयमः ॥ ३९ ॥ "सलक्षणं तुप्राणानामायामंकीर्त्यतेऽधुना ॥ नानापापैकशमनंमहापुण्यफलप्रदम्" ॥ पंचांगुलीभिर्नासाग्रंपीडयेत्प्रणवेनतु ॥ सर्वपापहरामुद्रावानप्रस्थगृहस्थयोः ॥ ४० ॥ कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यतेश्चब्रह्मचारिणः ॥ आपोहिष्ठेतितिसृभिःप्रोक्षणंस्यात्कुशोदकैः ॥ ४१ ॥ ऋगंतेमार्जनंकुर्यात्पादांतेवासमाहितः ॥ नवप्रणवयुक्तेनआपोहिष्ठेत्यनेनतु ॥ ४२ ॥ नश्येदघंमार्जनेनसंवत्सरसमुद्भवम् ॥ ततआचमनंकृत्वासूर्यश्चेतिपिबेदपः ॥ ४३ ॥ अंतःकरणसंभिन्नंपापंतस्य विनश्यति ॥ प्रणवेनव्याहृतिभिर्गायत्र्याप्रणवाद्यया ॥ ४४ ॥ आपोहिष्ठेतिसूक्तेनमार्जनंचैवकारयेत् ॥ उद्धृत्यदक्षिणेहस्तेजलंगोकर्णवत्कृते ॥ ४५ ॥

यती और ब्रह्मचारीका प्राणायाम होता है आपोहिष्ठा तीन मंत्रसे कुशोदकसे प्रोक्षणकरै ॥ ४१ ॥ ऋचाके अन्त वा पादके अन्तमें मार्जन करै नौवार आपोहिष्ठादिके साथ प्रणव लगाय मार्जन करै ॥ ४२ ॥ मार्जनसे एक वर्षका किया पाप नष्ट होता है फिर 'सूर्यश्चमा' ७ ऋचा पढकर जलपिये ॥ ४३ ॥ तौ उसके अन्तःकरणका पाप नष्ट होजाता है प्रणव व्याहृति गायत्री सबमें ॐकार लगाय ॥ ४४ ॥ 'आपोहिष्ठा' सूक्तसे मार्जन करै गोकर्णवत् किये दक्षिण हाथमें जल लेकर ॥ ४५ ॥

१ 'ओमापोज्योतिरसोमृतम्' 'ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम्' यहगायत्रीशिर है।

उस नासिकाके अग्रभागमें लाकर बाईं ओरके पापको स्मरण करै कृष्णवर्ण पापपुरुषका ध्यानकरकै 'ऋतंचसत्यं' यह पढै ॥ ४६ ॥ फिर द्रुपदादि मंत्रको पढता हुआ दक्षिण नासापुटसे श्वासमार्गसे उस पापको हाथके जलमें लावै ॥ ४७ ॥ विनादेखे हुए उस जलको वाम भागमें अश्मके समान डालै मेरा शरीर पापरहित हो यही भावना करै ॥ ४८ ॥ फिर उठकर दोनों चरणोंको समान नियुक्त करकै जलांजलिग्रहण कर तर्जनी और अंगुष्ठके विना ॥ ४९ ॥ गायत्री पढ सूर्यको देख जल छोड़दे ऐसा तीनवार करै. हे मुनि ! यह विधि पापनाश और अघमोचनके निमित्त है ॥ ५० ॥ फिर 'असौवाआदित्य' इस मंत्रसे प्रदक्षिणा करै मध्याह्नमें एकही वार

नीत्वातंनासिकाग्रंतुवामकुक्षौस्मरेदघम् ॥ पुरुषंकृष्णवर्णंचऋतंचेतिपठेत्ततः ॥ ४६ ॥ द्रुपदावाऋचंपश्चाद्दक्षनासापुटेनच ॥ श्वासमार्गेणतंपापमानयेत्करवारिणि ॥ ४७ ॥ नावलोक्यैवतद्वारिवामभागेऽश्मनिक्षिपेत् ॥ निष्पापंतुशरीरंमेसंजातमितिभावयेत् ॥४८॥ उत्थायतुततःपादौद्वौसमौसन्नियोजयेत्॥जलांजलिंगृहीत्वातुतर्जन्यंगुष्ठवर्जितम्॥४९॥वीक्ष्यभानुंक्षिपेद्वारिगायत्र्या चाभिमंत्रितम् ॥ त्रिवारंमुनिशार्दूलविधिरेषोऽघ्यमोचने ॥५०॥ ततःप्रदक्षिणांकुर्यादसावादित्यमंत्रतः ॥ मध्याह्नेसकृदेवस्यात्संध्ययोस्तुत्रिवारतः ॥५१॥ ईषन्नम्रःप्रभातेतुमध्याह्नेदंडवत्स्थितः ॥ आसनेचोपविष्टस्तुद्विजःसायंक्षिपेदपः ॥५२॥ उदकंप्रक्षिपेद्यस्मात्तत्कारणमतःशृणु॥त्रिंशत्कोट्योमहावीरामंदेहानामराक्षसाः ॥५३॥ कृतघ्नादारुणाघोराःसूर्यमिच्छंतिखादितुम्॥ ततोदेवगणाःसर्वेऋषयश्चतपोधनाः ॥ ५४ ॥ उपासतेमहासंध्यांप्रक्षिपंत्युदकांजलीन् ॥ दह्यंतेतेनदैत्यास्तेवज्रीभूतेनवारिणा ॥ ५५ ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राःसंध्यांनित्यमुपासते ॥ महापुण्यस्यजननंसंध्योपासनमीरितम् ॥ ५६ ॥ अर्घ्यांगभूतमंत्रोऽयंप्रोच्यतेशृणुनारद ॥ यदुच्चारणमात्रेणसांगंसंध्याफलंभवेत् ॥ ५७ ॥

अर्घ्य होता है संध्याओंमें तीनवार अर्घ्य दे ॥५१॥ प्रभातकालमें कुछ नम्र हो मध्याह्नमें दंडवत् स्थितहो और संध्यासमय आसनपर बैठा हुआ ही जलत्यागे॥ ५२॥ जिस कारण जल त्यागाजाता है सो कारण सुनो मन्देहा नामक तीस करोड़ महाबली राक्षस ॥५३॥ बडेकृतघ्न और घोर दारुण हैं यह सूर्यके खानेकी इच्छा करते हैं जब सब देवता और तपोधन ऋषि संध्याके उपासनामें जलांजलि देते हैं वह जल वज्रीभूत होकर दैत्योंको नष्ट करते हैं [ताआपोवज्रीभूतास्तानिरक्षांसि मंदेहारुणोद्वीपे प्रक्षिपन्ति तैत्तरीयश्रुतिः]॥५४॥५५॥ इसकारणसे विप्र नित्यसंध्योपासनमें ऐसा करते हैं संध्योपासन महापुण्यका देनेवाला कहा है ॥ ५६ ॥ हे नारद ! यह अर्घ्यका

१ इनका विचार हमारी निर्मित संध्याविधिमें देखो ।

अंगभूत मंत्र कहते हैं सुनो जिसके उच्चारणमात्रसे सांग संध्याका फल होता है ॥ ५७ ॥ वह मैं हूं सूर्य मैं हूं ज्योति, आत्मा ज्योति शिव मैं हूं आत्म्यज्योति शुक्र और सब ज्योतिका रस मैं हूं ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मरूपिणी गायत्री देवी ! आकर मुझे वरदीजिये जपानुष्ठानकी सिद्धिके निमित्त मेरे हृदयमें प्रवेशकर ॥ ५९ ॥ हे देवि! उठो और फिर आनेके लिये जाओ. हे देवि! मेरे हृदयमें प्रवेशकर अर्घ्यों में गमन करो ॥ ६० ॥ फिर चतुर शुद्ध स्थानमें अपने आसनकी कल्पना करै उसपर बैठ वेदमाता गायत्रीका जप करै ॥ ६१ ॥ हे मुने ! प्राणायाम के उत्तर यहीं खेचरी मुद्राकरै. हे मुनिश्रेष्ठ ! वह प्रातःसंध्याके विधानमें कीर्त्तन की है ॥ ६२ ॥ हे नारद ! सुनो इसके नामका अर्थ कहता हूं जिस कारण कि, चित्त आकाशमें विचरता है आकाशमें गई जिह्वा चरती है ॥ ६३ ॥

सोहमर्कोस्म्यहंज्योतिरात्माज्योतिरहंशिवः ॥ आत्मज्योतिरहंशुक्लःसर्वज्योतीरसोऽस्म्यहम् ॥ ५८ ॥ आगच्छवरदेदेविगायत्रिब्रह्मरूपिणि ॥ जपानुष्ठानसिद्ध्यर्थंप्रविश्यहृदयंमम ॥ ५९ ॥ उत्तिष्ठदेविगंतव्यंपुनरागमनायच ॥ अर्घ्येषुदेविगंतव्यंप्रविश्यहृदयंमम ॥ ६० ॥ ततःशुद्धःस्थलेनैजमासनं स्थापयेद्बुधः ॥ तत्रारुह्यजपेत्पश्चाद्गायत्रींवेदमातरम् ॥ ६१ ॥ अत्रैवखेचरीमुद्राप्राणायामोत्तरंमुने ॥ प्रातःसंध्याविधानेचकीर्तितामुनिपुंगव ॥ ६२ ॥ तन्नामार्थंप्रवक्ष्यामिसादरंशृणुनारद ॥ चित्तंचरतिखेयस्माज्जिह्वाचरतिखेगता ॥ ६३ ॥ भ्रुवोरंतर्गताहृष्टिर्मुद्राभवतिखेचरी ॥ नचासनंसिद्धसमंनकुंभसदृशोऽनिलः ॥ ६४ ॥ नखेचरीसमामुद्रासत्यंसत्यंचनारद ॥ घंटावत्प्रणवोच्चाराद्वायुंनिर्जित्ययत्नतः ॥ ६५ ॥ स्थिरासनेस्थिरोभूत्वानिरहंकारनिर्ममः ॥ लक्षणंनारद मुनेशृणुसिद्धासनस्यच ॥ ६६ ॥ योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितंकृत्वादृढंविन्यसेन्मेढ्रेपादमथैकमेवहृदयंकृत्वासमंविग्रहम् ॥ स्थाणुःसंयमितेंद्रियोचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरंतरंतिष्ठत्येतदतीवयोगिसुखदंसिद्धासनंप्रोच्यते ॥ ६७ ॥ आयातुवरदादेवीअक्षरंब्रह्मसंमितम् ॥ गायत्रींछंदसांमातरिदंब्रह्मजुषस्वमे ॥ ६८ ॥

जिस समय भौंके मध्यमें दृष्टि लगती है उसमें खेचरी मुद्रा होती है सिद्धासनके समान आसन कुंभकके समान प्राणायाम ॥ ६४ ॥ खेचरीके समान दूसरी मुद्रा नहीं. हेनारद ! यह सत्य सत्य है घंटाके समान ॐकारके उच्चारणसे यत्नपूर्वक वायुकोजीतकर ॥ ६५ ॥ अहंकार ममता छोड़ दृढ आसनपर दृढ होकर बैठे. हे नारद ! सिद्धासनके लक्षण सुनो ॥ ६६ ॥ एक पादमूल लिंगके मूलमें दूसरे चरणका मूल वृषणके नीचे हृदय और शरीरको दंडवत् स्थितकर स्थाणुके समान नियतेन्द्रिय हो अचल दृष्टिसे भौंके मध्यभागको देखताहुआ स्थित हो, यह योगियोंको सुखदायक सिद्धासन है ॥ ६७ ॥ आसन बांधने उपरान्त इसप्रकार आवाहन करै वरदा

यक देवी गायत्री छन्दोंकी माता ब्रह्मसम्मित अक्षर ब्रह्मके सेवनके निमित्त मेरे समीप आवै ॥ ६८ ॥ दिनमें पाप किया जाता है वह सब इससे छूट जाता है जो रात्रिमें पाप किया जाय वह रातकी उपासनासे छूट जाता है ॥ ६९ ॥ हे सब अक्षररूप हे महादेवि ! संध्या विद्या सरस्वति अजर अमर सर्व देवि तुमको प्रणाम है ॥ ७० ॥ फिर 'तेजोसी' इत्यादि मंत्रसे देवीका आवाहन करै जो तुम्हारा अनुष्ठान किया है वह सब पूर्ण हो ॥ ७१ ॥ फिर शापनाशके निमित्त भली प्रकार विधान करै ब्रह्मा और विश्वामित्र दोका शाप है ॥ ७२ ॥ तथा वसिष्ठका यह तीन प्रकारका शाप लगा है, ब्रह्माके स्मरणसे ब्रह्माका शाप ॥ ७३ ॥ विश्वामित्रके स्मरणसे विश्वामित्रका शाप वसिष्ठके स्मरणसे वसिष्ठका शाप दूर होता है ॥ ७४ ॥ हृदयकमलमें सत्यस्वरूप सत्यात्मक पुरुष निवास करते हैं उस परमात्माको मैं

यदह्नात्कुरुतेपापंतदह्नात्प्रतिमुच्यते ॥ यद्रात्र्यात्कुरुतेपापंतद्रात्र्यात्प्रतिमुच्यते ॥ ६९ ॥ सर्ववर्णेमहादेविसंध्याविद्येसरस्वति ॥ अजरेअमरेदेविसर्वे देविनमोस्तुते ॥ ७० ॥ तेजोसीत्यादिमंत्रेणदेवीमावाहयेत्ततः ॥ यत्कृतंत्वदनुष्ठानंतत्सर्वंपूर्णमस्तुमे ॥ ७१ ॥ ततःशापविमोक्षायविधानंसम्यगाच रेत् ॥ ब्रह्मशापस्ततोविश्वामित्रस्यचतथैवच ॥ ७२ ॥ वसिष्ठशापइत्येतद्त्रिविधंशापलक्षणम् ॥ ब्रह्मणःस्मरणेनैवब्रह्मशापोनिवर्त्यते ॥ ७३ ॥ विश्वामित्र स्मरणतोविश्वामित्रस्यशापकः ॥ वसिष्ठस्मरणादेवतस्यशापोविनश्यति ॥ ७४ ॥ हृत्पद्ममध्येपुरुषंप्रमाणंसत्यात्मकंसर्वजगत्स्वरूपम् ॥ ध्यायामिनित्यंपर मात्मसंज्ञंचिद्रूपमेकंवचसामगम्यम् ॥ ७५ ॥ अथन्यासविधिंवक्ष्येसंध्यायाअंगसंभवम् ॥ ॐकारंपूर्वमुच्चार्यततोमंत्रानुदीरयेत् ॥ ७६ ॥ भूरित्युक्त्वा चपादाभ्यांनमइत्येवचोच्चरेत् ॥ भुवःपूर्वंतुजानुभ्यांस्वःकटिभ्यांनमोवदेत् ॥ ७७ ॥ महर्नाभ्यैजनश्चैवहृदयायततस्तपः ॥ कंठायचततःसत्यंललाटेपरिकी र्तयेत् ॥ ७८ ॥ अंगुष्ठाभ्यांतत्सवितुस्तर्जनीभ्यांवरेण्यकम् ॥ भर्गोदेवस्यमध्याभ्यांधीमहीत्येवकीर्तयेत् ॥ ७९ ॥ अनामाभ्यांकनिष्ठाभ्यांधियोयोनः पदंवदेत् ॥ प्रचोदयात्करपृष्ठतलयोर्विन्यसेत्सुधीः ॥ ८० ॥ ब्रह्मात्मनेतत्सवितुर्हृदयायनमस्तथा ॥ विष्णवात्मनेवरेण्यंचशिरसेनमइत्यपि ॥ ८१ ॥

नित्य ध्यान करता हूं जो एकचित्तस्वरूप वाणीसे भी परे है ॥ ७५ ॥ अब संध्यामें अंगसंभव न्यासकी विधिको कहता हूं पहले ॐकार उच्चारण कर पीछे मंत्रको संयुक्त करै ॥ ७६ ॥ भूः पादाभ्यांनमः, भुवः, जानुभ्यांनमः, स्वःकटिभ्यांनमः, इसप्रकार कहै ॥ ७७ ॥ महर्नाभ्यै नमः, जनःहृदयायनमः, तपः कंठायनमः, सत्यंललाटायनमः, इसप्र प्रकार कल्पना करै ॥ ७८ ॥ तत्सवितुःअंगुष्ठाभ्यांनमः, वरेण्यम् तर्जनीभ्यांनमः, भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यांनमः, धीमहि ॥ ७९ ॥ अनामिकाभ्यांनमः, धियोयोनः,कनिष्ठिका भ्यांनमः, प्रचोदयात् करतल कर पृष्ठाभ्यांनमः इस प्रकार बुद्धिमान् न्यास करै ॥ ८० ॥ ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयायनमः । विष्णवात्मने वरेण्यं शिरसे नमः ॥ ८१ ॥

भर्गोदेवस्य रुद्रात्मने शिखायैवषट् शक्त्यात्मने धीमहि कवचायहुम् ॥ ८२ ॥ कालात्मने धियोयोनः नेत्रत्रयाय वौषट् प्रचोदयात्सर्वात्मने अस्त्राय फट् ॥ ८३ ॥ हे मुने! अब अक्षरन्यास कहता हूं गायत्रीमंत्र संभूत न्यास पापके हरनेवाले हैं ॥ ८४ ॥ पहले प्रणवको उच्चारण कर वर्णन्यास करना चाहिये पहले तत् उच्चारण करके पादांगुष्ठमें न्यास करै ॥ ८५ ॥ सकारका गुल्फोंमें विकारका जंघाओंमें तुकार जानुओंमें वकारका उरुओंमें ॥ ८६ ॥ रेकार गुदमें णिकार मेढ्रमें यकार कटिमें भकार नाभिमें ॥ ८७ ॥ गोकार हृदयमें दे दोनों स्तनोंमें वे हृदयमें स्य कंठमें ॥ ८८ ॥ धी मुखमें म तालुमें हि नासिकाके अग्रभागमें धि नेत्र मंडलमें ॥ ८९ ॥ यो दोनों भ्रूमध्यमें यो ललाटमें नकार पूर्व मुखमें प्रकार दहिने मुखमें ॥ ९० ॥ चो पश्चिम मुखमें दकार उत्तर मुखमें या मूर्धामें तकारका

भर्गोदेवस्यरुद्रात्मनेशिखायैप्रकीर्तितम् ॥ शक्त्यात्मनेधीमहीतिकवचायततःपरम् ॥८२॥ कालात्मनेधियोयोनोनेत्रत्रयउदीरितम् ॥ प्रचोदयाच्चसर्वात्मनेऽस्त्रायपरिकीर्तितम् ॥८३॥ अक्षरन्यासमेवाग्रेकथयामिमहामुने ॥ गायत्रीवर्णसंभूतन्यासःपापहरःपरः ॥ ८४ ॥ प्रणवंपूर्वमुच्चार्यवर्णन्यासःप्रकीर्तितः ॥ तत्कारमादावुच्चार्यपादांगुष्ठद्वयेन्यसेत् ॥८५॥ सकारंगुल्फयोस्तद्वद्विकारंजंघयोर्न्यसेत् ॥ जान्वोस्तुकारंविन्यस्यऊर्वोश्चैववकारकम् ॥८६॥ रेकारंचगुदेन्यस्यणिकारंलिंगएवच ॥ कट्यांयकारमेवात्रभकारंनाभिमंडले ॥८७॥ गोकारंहृदयेन्यस्यदेकारंस्तनयोर्द्वयोः ॥ वकारंहृदिविन्यस्यस्यकारंकंठकूपके ॥ ८८ ॥ धीकारंमुखदेशेतुमकारंतालुदेशके ॥ हिकारंनासिकाग्रेतुधिकारंनेत्रमंडले ॥ ८९ ॥ भ्रूमध्येचैवयोकारंयोकारंचललाटके ॥ नकारंवैपूर्वमुखेप्रकारंदक्षिणेमुखे ॥९०॥ चोकारंपश्चिममुखेदकारंचोत्तरेमुखे ॥ याकारंमूर्ध्निविन्यस्यतकारंव्यापकंन्यसेत् ॥९१॥ एतन्न्यासविधिंकेचिन्नेच्छंतिजपतत्पराः ॥ ततोध्यायेन्महादेवींजगन्मातरमंबिकाम् ॥ ९२ ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभांकुमारींपरमेश्वरीम् ॥ रक्तांबुजासनारूढांरक्तगंधानुलेपनाम् ॥ ९३ ॥ रक्तमाल्यांबरधरांचतुरास्यांचतुर्भुजाम् ॥ द्विनेत्रांस्रुक्स्रुवौमालांकुंडिकांचैवविभ्रतीम् ॥ ९४ ॥

व्यापकतामें न्यास करै ॥ ९१ ॥ कोई जापक यह न्यासविधि नहीं भी करते, फिर न्यासकर जगन्माता अम्बिका देवीका ध्यान करै ॥ ९२ ॥ जो परमेश्वरी चमकते हुए जपाके फूलोंके समान प्रकाशमान् है, जो लाल कमलके आसनमें आरूढ है लाल गंधका अनुलेपन लगाये है ॥ ९३ ॥ लाल माला और वस्त्र पहरे हुए चारमुख चतुर्भुजा प्रतिमुखमें दो दो नेत्र स्रुक् स्रुवा जपमाला और कमण्डलु धारण किये ॥ ९४ ॥

१ ओंतत् नमः पादाङ्गुष्ठद्वये, ओंसनमः गुल्फद्वये, ओंविनमः जङ्घाद्वये इस प्रकार चौवीसों न्यास करै।

सम्पूर्ण आभरणोंसे संदीत ऋग्वेदकी कथनकरनेवाली परा हंसके ऊपर स्थापित रक्तकमलपर स्थित, आहवनीयके मध्यमें स्थित, ब्रह्म देवता अर्थात् ब्रह्माकी उपास्य देवता ॥९५॥ चार वेदरूप चार चरणवाली पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व, अधर, अन्तरिक्ष अवान्तर दिशारूप आठकुक्षिसम्पन्न व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास, पुराण, उपनिषद्रूप सात शिरवाली अग्निरूप मुख, रुद्रशिखा और विष्णुरूप चिह्नवालीका ध्यान करै ॥ ९६ ॥ जिसके ब्रह्मा कवच सांख्यायन गोत्र है आदित्य मंडलमें स्थित उस महेश्वरी देवीका ध्यान करै ॥ ९७ ॥ इस प्रकार विधिसे वेदमाता गायत्रीका ध्यान करके फिर देवीकी प्रसन्न करनेवाली मुद्रा

सर्वाभरणसंदीतामृग्वेदाध्यायिनींपराम् ॥ हंसपत्रामाहवनीयमध्यस्थांब्रह्मदेवताम् ॥ ९५ ॥ चतुष्पदामष्टकुक्षिंसप्तशीर्षांमहेश्वरीम् ॥ अग्निवक्त्रां रुद्रशिखांविष्णुचित्तांतुभावयेत् ॥ ९६ ॥ ब्रह्मातुकवचंयस्यागोत्रंसांख्यायनंस्मृतम् ॥ आदित्यमंडलांतस्थांध्यायेद्देवींमहेश्वरीम् ॥ ९७ ॥ एवंध्यात्वाविधानेनगायत्रींवेदमातरम् ॥ ततोमुद्राःप्रकुर्वीतदेव्याःप्रीतिकराःशुभाः ॥ ९८ ॥ संमुखंसंपुटंचैवविततंविस्तृतंतथा ॥ द्विमुखंत्रिमुखंचैवचतुष्कंपंचकंतथा ॥ ९९ ॥ षण्मुखाधोमुखंचैवव्यापकांजलिकंतथा ॥ शकटंयमपाशंचग्रथितंसंमुखोन्मुखम् ॥ १०० ॥ विलंबंमुष्टिकंचैवमत्स्यंकूर्मंवराहकम् ॥ सिंहाक्रांतंमहाक्रांतंमुद्गरंपल्लवंतथा ॥ १ ॥ चतुर्विंशतिमुद्राश्चगायत्र्याःसंप्रदर्शयेत् ॥ शताक्षरांचगायत्रींसकृदावर्तयेत्सुधीः ॥ २ ॥ चतुर्विंशत्यक्षराणिगायत्र्याःकीर्तितानिहि ॥ जातवेदसनाम्नींचऋचमुच्चारयेदतः ॥ ३ ॥ त्र्यंबकस्यचेमावृत्त्यगायत्रीशतवर्णका ॥ भवतीयंमहापुण्यासकृज्जप्याबुधैरियम् ॥ ४ ॥ ॐकारंपूर्वमुच्चार्यभूर्भुवःस्वस्तथैवच ॥ चतुर्विंशत्यक्षरांचगायत्रींप्रोच्चरेत्ततः ॥ ५ ॥

दिखावै ॥ ९८ ॥ संमुख, संपुट, विततं, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुष्क, पंचक ॥९९॥ षण्मुख, अधोमुख, व्यापक, आंजलिक, शकट, यमपाश, ग्रथित, संमुखोन्मुख ॥१००॥ विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर, पल्लव ॥ १ ॥ यह चौवीस मुद्रा एकान्तमें गायत्रीको दिखावै और बुद्धिपूर्वक शताक्षरा गायत्रीको आवर्तन करै ॥२॥ गायत्रीके २४ अक्षर कहे हैं 'जातवेदसे सुन वामसो' यह चौंवालीस अक्षर ऋचा साथमें उच्चारण करै ॥३॥ तथा 'त्र्यम्बकं यजामहे' यह ३२ अक्षरके मंत्रके साथमें गायत्री शताक्षरी होजाती है यह महा पुण्यदायक है गायत्रीसे पहले शताक्षरा गायत्री जपै ॥४॥ पहले ओंकार उच्चारणकर फिर 'भूः,

भुवः, स्वः' कहकर २४ अक्षरवाली गायत्रीको जपै ॥ ५॥ इसप्रकार जो ब्राह्मण श्रेष्ठ नित्य जप करता है वह संध्याका सब फल पाकर पूरा सुख पाता है ॥ १०६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ नारायण बोले भिन्नपाद गायत्री ब्रह्महत्या दूर करती है और संलग्न सब पाद पढनेसे जिसमें सन्दिग्ध अक्षर निकलैं ऐसी पढनेसे ब्रह्महत्या लगती है॥ १॥ जो पादआदिके सहित यथार्थ गायत्रीका उच्चारण नहीं करते वे द्विज अधोमुखसे सौ कोटि कल्प रहते हैं ॥ २ ॥ प्रणव, संपुट, षट् ओंकारादिसे गायत्री इतिहास पुराणोंमें विविध प्रकार लिखी है ॥ ३ ॥ पांच प्रणवसे युक्त जपकरनेकी भी आज्ञा है

एवंनित्यंजपंकुर्याद्ब्राह्मणोविप्रपुंगवः॥ससमग्रंफलंप्राप्यसंध्यायाःसुखमेधते॥१०६॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेषोडशोऽध्यायः॥१६॥ नारायणउवाच ॥ भिन्नपादातुगायत्रीब्रह्महत्याप्रणाशिनी ॥ अभिन्नपादागायत्रीब्रह्महत्यांप्रयच्छति ॥ १ ॥ अच्छिन्नपादागायत्रीजपंकुर्वंतियेद्विजाः ॥ अधोमुखाश्चतिष्ठंतिकल्पकोटिशतानिच ॥ २ ॥ संपुटैकषडोंकारागायत्रीविविधामता ॥ धर्मशास्त्रपुराणेषुइतिहासेषुसुव्रत ॥ ३ ॥ पंचप्रणवसंयुक्तां जपेदित्यनुशासनम् ॥ जपसंख्याष्टभागांतेपादोजप्यस्तुरीयकः ॥ ४ ॥ सद्विजःपरमोज्ञेयःपरंसायुज्यमाप्नुयात् ॥ अन्यथाप्रजपेद्यस्तुसजपोविफलो भवेत् ॥ ५ ॥ संपुटैकाषडोंकाराभवेत्साऊर्ध्वरेतसाम् ॥ गृहस्थोब्रह्मचारीवामोक्षार्थीतुरीयांजपेत् ॥ ६ ॥ तुरीयपादोगायत्र्याःपरोरजसेसावदोम् ॥ ध्यानमस्यप्रवक्ष्यामिजपसांगफलप्रदम् ॥ ७ ॥ हृदिविकसितपद्मंसार्कसोमाग्निबिंबंप्रणवमयमचिंत्यंयस्यपीठंप्रकल्प्यम् ॥ अचलपरमसूक्ष्मंज्योतिराकाशसारंभवतुममसुदंसोसच्चिदानंदरूपः ॥ ८ ॥

जितनी संख्याका जप करे उसके अष्टम भागमें 'परोरजसे' इत्यादि लगाकर चतुर्थ पाद जपना चाहिये ॥ ४ ॥ वह द्विज परम जानना और ऐसा करनेसे पर सायुज्यकी प्राप्ति होती है अन्यथा जप करनेसे जप निष्फल होता है ॥ ५ ॥ संपुटा और षडोंकारा ऊर्ध्वरेतसवालोंको जपनी और गृहस्थी वा ब्रह्मचारी तुरीया एक ओंकार वालीको जपै ॥ ६ ॥ गायत्रीका चौथा पाद 'परोरजसे साव दोम्' है अब इसका ध्यानजप सांग फलका देनेवाला कहता हूं ॥ ७ ॥ हृदयमें कमल खिला है सूर्य सोम अग्निका बिम्बरूप प्रणवमय अचिन्त्यरूप जिसका सिंहासन है अचल परम सूक्ष्म ज्योति आकाशका सार सच्चिदानंदस्वरूप मेरे आनंदका देनेवाला हो ॥ ८ ॥

तुरीया गायत्रीकी मुद्रा कहते हैं त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अम्बुज, महामुद्रा यह सात दिखावै ॥ ९ ॥ जो संध्या है वही सच्चिदानंदरूपिणी गायत्री है उसको भक्तिसे ब्राह्मण नित्य पूजै और नमस्कार करै ॥ १० ॥ ध्यानयोग्य देवकी पंचोपचारसे पूजा करै 'लंपृथिव्यात्मने गंधं समर्पयामि नमोनमः' इससे गंध ॥ ११ ॥ 'हमाकाशात्मने पुष्पं समर्पयामि नमोनमः' इससे पुष्प, 'यंवाय्वात्मने धूपं समर्पयामि' इससे धूप ॥ १२ ॥ 'रंवह्न्यात्मने दीपं समर्पयामि' इससे दीप, 'वममृतात्मने नैवेद्यं समर्पयामि' इससे नैवेद्य दे ॥ १३ ॥ यं रं लं वं हं कहकर पुष्पांजलि दे इसप्रकार पूजा कर अन्तमें मुद्रा दिखावै ॥ १४ ॥ मनसे देवीका ध्यान कर शनैः मुद्रा दिखावै शिर ग्रीवाको कंपित न करै दांत भी न दिखावै ॥ १५ ॥ विधिपूर्वक (१०८) एक सौ आठ बार और शक्ति न हो तौ दशबार जपै इससे न्यून न करै ॥ १६ ॥ फिर उत्तम

त्रिशूलयोनीसुरभिमक्षमालांचलिंगकम् ॥ अंबुजंचमहामुद्रामितिसप्तप्रदर्शयेत् ॥ ९ ॥ यासंध्यासैवगायत्रीसच्चिदानंदरूपिणी ॥ भक्त्यातांब्राह्मणोनित्यंपूजयेच्चनमेत्ततः ॥ १० ॥ ध्यातस्यपूजांकुर्वीतपंचभिश्चोपचारकैः ॥ लंपृथिव्यात्मनेगंधमर्पयामिनमोनमः ॥ ११ ॥ हमाकाशात्मनेपुष्पंचार्पयामि नमोनमः ॥ यंचवाय्वात्मनेधूपंचार्पयामितितोवदेत् ॥१२॥ रंचवह्न्यात्मनेदीपमर्पयामितितोवदेत् ॥ वममृतात्मनेतस्मैनैवेद्यमपिचार्पयेत् ॥ १३ ॥ यं रंलंवंहमितिचपुष्पांजलिमथार्पयेत् ॥ एवंपूजांविधायाथचांतेमुद्राःप्रदर्शयेत् ॥ १४ ॥ ध्यायेत्तुमनसादेवींमंत्रमुच्चारयेच्छनैः ॥ नकंपयेच्छिरोग्रीवांदंतान्नैवप्रकाशयेत् ॥ १५ ॥ विधिनाष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेववा ॥ दशवारमशक्तौवानातोन्यूनंकदाचन ॥१६॥ ततउद्वासयेद्देवीमुत्तमेत्यनुवाकतः ॥ नगायत्रींजपेद्विद्वाञ्जलमध्येकथंचन ॥१७॥ यतःसाग्निमुखीप्रोक्तेत्याहुःकेचिन्महर्षयः ॥ सुरभिर्ज्ञानशूर्पंचकूर्मोयोनिश्चपंकजम् ॥ १८ ॥ लिंगंनिर्वाणकंचैवजपांतेऽष्टौप्रदर्शयेत् ॥ यदक्षरपदभ्रष्टंस्वरव्यंजनवर्जितम् ॥१९॥ तत्सर्वंक्षम्यतांदेविकश्यपप्रियवादिनी ॥ गायत्रीतर्पणंचातःकरणीयंमहामुने ॥२०॥

अनुवाकसे देवीका अनुवासन करै जलके मध्यमें गायत्रीको न जपै "बहुत स्थानोंमें हारितादिके वचनोंसे जलमें भी जप लिखा है पर यदि आसनादि विद्यमान हो तो आलस्यसे जलमें न जपै इस कारण कहा है" ॥ १७ ॥ कारण कि, गायत्री अग्निमुखी है ऐसा कोई महर्षि कहते हैं सुरभि ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि पंकज ॥ १८ ॥ लिंग, निर्वाण यह आठ मुद्रा दिखावै जो अक्षर पद भ्रष्ट स्वर व्यंजनवर्जित है ॥ १९ ॥ हे कश्यप ! प्रियवादिनि यह हमारी क्षमाकरना हे महामुने ! इसके

---

१ गायत्र्येकपदीद्विपदी इत्यादिसे हृदयसे उठावै ॥ उत्तरे शिखरे जातेसे विदा करै ।

उपरान्त गायत्रीका तर्पण करना चाहिये ॥ २० ॥ गायत्री छन्द विश्वामित्र ऋषि सविता देवता तर्पणमें विनियोग करै ॥ २१ ॥ ओं भूरिति ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि ओं भुव इति यजुर्वेदं तर्पयामि ॥ २२॥ ओंस्व इति सामवेदं तर्पयामि, ओं मह इत्यथर्ववेदं तर्पयामि॥ २३॥ ओंजनः इति इतिहास पुराणपुरुष तर्पयामि, ॐ तपः सर्वागम पुरुषं तर्पयामि ॥ २४ ॥ ओं सत्यमिति सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि, ओं भूः भूर्लोकपुरुषं तर्पयामि ॥ २५ ॥ ओं भुव इति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि ओं स्वः स्वर्लोक पुरुषं तर्पयामि ॥ २६ ॥ ओं भूरेकपदां गायत्रीं तर्पयामि, ओं भुवः द्विपदा गायत्रीं तर्पयामि ॥ २७ ॥ ओं स्वः त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि, ओं भूर्भुवः स्वः चतु

गायत्रीछंदआख्यातंविश्वामित्रऋषिःस्मृतः ॥ सवितादेवताप्रोक्ताविनियोगश्चतर्पणे ॥ २१ ॥ भूरित्युक्त्वाचऋग्वेदपुरुषंतर्पयामिच ॥ भुवइत्येत दुक्त्वाचयजुर्वेदमथोवदेत् ॥ २२ ॥ स्वर्व्याहृतिंसमुक्त्वाचसामवेदंसमुच्चरेत् ॥ महइत्येतदुक्त्वांतेऽथर्ववेदंचतर्पयेत् ॥२३॥ जनःपदांतइतिहासपुराण मितीरयेत् ॥ तपःसर्वागमंचैवपुरुषंतर्पयामिच ॥ २४ ॥ सत्यंचसत्यलोकाख्यपुरुषंतर्पयामिच ॥ ॐभूर्भूर्लोकपुरुषंतर्पयामिततोवदेत् ॥ २५ ॥ भुवश्चेतिभुवर्लोकपुरुषंतर्पयामिच ॥ स्वःस्वर्गलोकपुरुषंतर्पयामिततःपरम् ॥ २६ ॥ ॐभूरेकपदांनामगायत्रींतर्पयामिच ॥ भुवोद्विपदांगायत्रींतर्पयामी तिकीर्तयेत् ॥ २७ ॥ स्वश्चत्रिपदांगायत्रींतर्पयामिततोवदेत् ॥ ॐभूर्भुवःस्वश्चेतितथागायत्रींचचतुष्पदाम् ॥ २८ ॥ उपसींचैवगायत्रींसावित्रींचसरस्व तीम् ॥ वेदानांमातरंपृथ्वीमजांचैवतुकौशिकीम् ॥ २९ ॥ सांकृतिंवैसार्वजितिंगायत्रींतर्पणेवदेत् ॥ तर्पणांतेचशांत्यर्थंजातवेदसमीरयेत् ॥ ३० ॥ मान स्तोकेतिमंत्रंचशांत्यर्थंप्रजपेत्सुधीः ॥ ततोऽपित्र्यंबकोमंत्रःशांत्यर्थंपरिकीर्तितः ॥३१॥ तच्छंयोरितिमंत्रंचजपेच्छांत्यर्थमेवतु ॥ अतोदेवाइतिद्वाभ्यां सर्वांगस्पर्शनंचरेत् ॥ ३२ ॥ स्योनापृथिविमंत्रेणभूम्यैकुर्यात्प्रणामकम् ॥ यथाविधिचगोत्रादीनुच्चरेद्द्विजसत्तमः ॥ ३३ ॥ एवंविधानंसंध्यायाःप्रातःका कीर्तितम् ॥ संध्याकर्मसमाप्यांतेऽप्यग्निहोत्रंस्वयंहुनेत् ॥३४॥ पंचायतनपूजांचततःकुर्यात्समाहितः ॥ शिवांशिवंगणपतिंसूर्यंविष्णुंतथाऽर्चयेत् ॥३५॥

ष्पदां गायत्रीं तर्पयामि ॥२८॥ उपसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथ्वीअजा, कौशिकी ॥ २९ ॥ सांकृति, सार्वजिति गायत्री इन सबको तर्पणमें कहै तथा उपसीं तर्पयामि इत्यादि तर्पणके अन्तमें शान्तिके निमित्त 'सुनवामसोमम्' यह मंत्र बोले॥ ३०॥ शान्तिके निमित्त मानस्तोक यह मंत्र बोले वा त्र्यम्बकंयजामहे यह मंत्र उच्चारण करै॥ ३१॥ वा शान्तिके निमित्त 'तच्छंयोः' यह मंत्र उच्चारण करै 'अतोदेवा' यह दोमंत्र पढ सर्वांगमें स्पर्शकरै॥ ३२॥ स्योनापृथ्वीइसमंत्रसे पृथ्वीमें प्रणाम करै फिर ब्राह्मण विधिसे गोत्रादिका उच्चारण करै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार प्रभातकालीन संध्याका विधान है संध्या करने उपरान्त अग्निहोत्र करै ॥ ३४ ॥ फिर सावधानहो पंचायतन

पूजा करे. शिवा, शिव, गणपति, विष्णुको पूजे ॥ ३५ ॥ पुरुषसूक्त व्याहृतिसंयुक्त वा देवीके मूलमंत्रसे वा श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यौ इस तैत्तिरीय शाखाके मंत्रसे पूजै ॥ ३६ ॥ मध्यमें भवानीको, ईशानमें माधवको, आग्नेय दिशामें गिरिजापति शंकरको गणेशको राक्षसोंकी दिशामें पूजे ॥ ३७ ॥ वायव्य दिशामें सूर्यका यजन करै यह देवताओंके स्थापनका क्रम है पुरुषसूक्तके सोलह मंत्रोंसे भगवान्‌का षोडशोपचार पूजन करे ॥ ३८ ॥ पहले देवीकी पूजाकर पीछे अन्य देवताओंकी पूजा कर देवीपूजनसे अधिक पुण्य कहीं नहीं है ॥ ३९ ॥ इसीकारण संध्यामें संध्योपासनकी श्रुति कही है अक्षतसे विष्णु और तुलसीसे गणेशका पूजन न करै ॥ ४० ॥ दूर्वासे भगवतीको केतकीसे शंकरको न पूजै. मल्लिका, जातिकुसुम, कुटज, पनस ॥ ४१ ॥ किंशुक, बकुल, कुंद, लोध, करवीर(कनेर)शिंशपा, अपराजिता फूल, बंधुक, अगस्त्य

पौरुषेणतुसूक्तेनव्याहृत्यावासमाहितः ॥ मूलमंत्रेणवाकुर्याद्ध्रीश्चतेइतिमंत्रतः ॥ ३६ ॥ भवानींतुयजेन्मध्येतथेशान्यांतुमाधवम् ॥ आग्नेय्यांगिरिजानाथंगणेशंरक्षसांदिशि ॥ ३७ ॥ वायव्यामर्चयेत्सूर्यमितिदेवस्थितिक्रमः ॥ षोडशानुपचारांश्चषोडशर्ग्भिर्हरेन्नरः ॥ ३८ ॥ देवीमभ्यर्च्यपुरतोयजेदन्याननुक्रमात ॥ नदेवीपूजनात्पुण्यमधिकंक्वचिदीक्ष्यते ॥३९॥ अतएवतुसंध्यासुसंध्योपास्तिःश्रुतीरिता ॥ नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुंनतुलस्यागणेश्वरम् ॥ ॥ ४० ॥ दूर्वाभिर्नार्चयेद्दुर्गांकेतकैर्नमहेश्वरम् ॥ मल्लिकाजातिकुसुमंकुटजंपनसंतथा ॥ ४१ ॥ किंशुकंबकुलंकुंदंलोध्रंतुकरवीरकम् ॥ शिंशपाऽपराजितापुष्पंबंधकागस्त्यपुष्पके ॥ ४२ ॥ मदंतंसिंदुवारंचपालाशकुसुमंतथा ॥ दूर्वांकुरंबिल्वदलंकुशमंजरिकातथा ॥४३॥ शल्लकीमाधवीपुष्पमर्कमंदारपुष्पकम् ॥ केतकींकर्णिकारंचकदंबकुसुमंतथा ॥ ४४ ॥ पुन्नागश्चंपकस्तद्वद्यूथिकातगरौतथा ॥ एवमादीनिपुष्पाणिदेवीप्रियकराणिच ॥ ४५ ॥ गुग्गुलस्यभवेद्धूपोदीपःस्यात्तिलतैलतः ॥ कृत्वेत्थंदेवतापूजांततोमूलमनुंजपेत् ॥ ४६ ॥ एवंपूजांसमाप्यैववेदाभ्यासंचरेद्बुधः ॥ ततःस्ववृत्त्याकुर्वीतपोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ ४७ ॥ तृतीयेदिनभागेतुनियमेनविचक्षणः ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥
श्रीनारदउवाच ॥ ॥ पूजाविशेषंश्रीदेव्याःश्रोतुमिच्छामिमानद ॥ येनाश्रितेनमनुजःकृतकृत्यत्वमावहेत् ॥ १ ॥

॥ ४२ ॥ मदंत, सिन्धुवार, ढाकके फूल, दूर्वांकुर, बेलपत्र, जरिकाफूल ॥ ४३ ॥ शल्लकी, चमेली, आक, मंदार, केतकी कर्णिकार कदम्बके फूल ॥ ४४ ॥ पुन्नाग चम्पक, यूथिका, तगर इत्यादि पुष्प देवीके प्रिय हैं भगवतीके दुर्गा विग्रहपर दूर्वांकुरका निषेध है अन्यत्र नहीं ॥ ४५ ॥ गुग्गुलकी धूप तिलके तेलका दीपक कर 'एक ओर वृतकाभी रख' पूजा करने उपरान्त मूल मंत्र जपै ॥ ४६ ॥ इसप्रकार पूजाकर वेदाभ्यास करै फिर अपनी वृत्तिके अनुसार पालनीयोंका पालन करै ॥ ४७ ॥ माता पिता गुरु गुरुपत्नी भार्या पुत्र अनाथादि पोष्य वर्ग हैं नियमपूर्वक चतुर पुरुष यहकृत्य दिनके तृतीय भागमें करै ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारदजी बोले हे मानद ! देवीकी विशेष पूजा सुननेकी इच्छा करता हूं जिसके

आश्रयसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले हे देवर्षि! सुनो श्रीमाताका पूजनक्रम कहता हूं जो साक्षात् भुक्तिमुक्तिदायक सब आपत्तियोंका निवारक है ॥ २ ॥ मौन हो आचमन कर संकल्प करने उपरान्त भूतशुद्धि करै फिर मातृकान्यासपूर्वक षडंगन्यास करै ॥ ३ ॥ शंखको स्थापनकर सामान्य अर्घ्य देकर फट् मंत्रके जलसे पूजाद्रव्यको प्रोक्षण करै ॥ ४ ॥ फिर गुरुकी आज्ञा लेकर पूजा आरंभ करै, पहले पीठ पूजाकर फिर देवीका ध्यान करै ॥ ५ ॥ भक्ति प्रेमसे आसनादि उपचार करै और पंचामृतके जलोंसे देवीको स्नान करावै रसादिसे न्हवावै ॥ ६ ॥ पौंड्र ईखके रससे सौकलशोंसे जो देवीको स्नान कराता है उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ७ ॥ जो आमके रससे देवीको स्नान कराता है वा वेदपारायण करकै इक्षुरससे न्हवावै ॥ ८ ॥ उसके घरको लक्ष्मी सरस्वती कभी त्यागन

श्रीनारायणउवाच ॥ देवर्षेशृणुवक्ष्यामिश्रीमातुःपूजनक्रमम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदंसाक्षात्समस्तापन्निवारणम् ॥ २ ॥ आचम्यमौनीसंकल्प्यभूतशुद्ध्यादिकंचरेत् ॥ मातृकान्यासपूर्वंतुषडंगन्यासमाचरेत् ॥ ३ ॥ शंखस्यस्थापनंकृत्वासामान्यार्घ्यंविधायच ॥ पूजाद्रव्याणिचास्त्रेणप्रोक्षयेन्मतिमान्नरः ॥ ४ ॥ गुरोरनुज्ञामादायततःपूजांसमारभेत् ॥ पीठपूजांपुराकृत्वादेवींध्यायेत्ततःपरम् ॥ ५ ॥ आसनाद्युपचारैश्चभक्तिप्रेमयुतांसदा ॥ स्नापयेत्परदेवींतांपंचामृतरसादिभिः ॥ ६ ॥ पौंड्रेक्षुरसपूर्णैस्तुकलशैःशतसंख्यकैः ॥ स्नापयेद्योमहेशानींनसभूयोभिजायते ॥ ७ ॥ यश्चचूतरसैरेवंस्नापयेज्जगदंबिकाम् ॥ वेदपारायणंकृत्वारसेनेक्षूद्भवेनवा ॥ ८ ॥ तद्गेहंनत्यजेन्नित्यंरमाचैवसरस्वती ॥ यस्तुद्राक्षारसेनैववेदपारायणंचरन् ॥ ९ ॥ अभिषिंचेन्महेशानींसकुटुंबोनरोत्तमः ॥ रसरेणुप्रमाणंचदेवीलोकेमहीयते ॥ १० ॥ कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीपंकपंकिलैः ॥ सलिलैःस्नापयेद्देवींवेदपारायणंचरन् ॥ ११ ॥ भस्मीभवंतिपापानिशतजन्मार्जितानिच ॥ योदुग्धकलशैर्देवींस्नापयेद्वेदपाठतः ॥ १२ ॥ आकल्पंसवसेन्नित्यंतस्मिन्वैक्षीरसागरे ॥ यस्तुदध्नाभिषिंचेत्तांदधिकुल्यापतिर्भवेत् ॥ १३ ॥ मधुनाचघृतेनैवतथाशर्करयापिच ॥ स्नापयेन्मधुकुल्यादिनदीनांसपतिर्भवेत् ॥ १४ ॥ सहस्रकलशैर्देवींस्नापयन्भक्तितत्परः ॥ इहलोकेसुखीभूत्वाप्यन्यलोकेसुखीभवेत् ॥ १५ ॥ क्षौमंवस्त्रद्वयंदत्त्वावायुलोकंसगच्छति ॥ रत्ननिर्मितभूषाणांदातानिधिपतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

नहीं करती, जो वेदपारायण करता हुआ दाखके रससे ॥ ९ ॥ महेशानीको सकुटुम्ब स्नान कराता है वह नरोत्तम होता है रेणुमात्र रसदेनेसे भी देवीलोकमें पूजित होता है ॥ १० ॥ कपूर अगर केशर कस्तूरीके जलोंसे न्हवाते वेदपारायण करता है ॥ ११ ॥ उसके सौ जन्मोंके पाप भस्म होते हैं, जो वेदपाठकरते दूधके कलशोंसे देवीको स्नान कराते हैं ॥ १२ ॥ वह कल्पपर्यन्त क्षीरसागरमें निवास करते हैं जो दहींसे न्हवाते वह दधिकुल्या नदी जो देवलोकमें है उनके अधिपति होते हैं ॥ १३ ॥ मधु घी शर्करासे स्नान करानेसे मधु घी शर्करादि कुल्याओंका अधिपति होता है ॥ १४ ॥ जो भक्तिपूर्वक सहस्र कलशोंसे देवीको स्नान कराता है वह दोनों लोकमें सुखी होता है ॥ १५ ॥ दो अलसीके बने वस्त्र देकर वायुलोकमें जाता है, और रत्ननिधियोंका देनेवाला निधिपति होता है ॥ १६ ॥

केशर, चंदन, कस्तूरी, बिन्दी, केशविधायकसिंदूर चरणोंमें महावर ॥ १७ ॥ देकर इन्द्रासनमें स्थित हो देवपति होता है, महात्माओंने पूजामें अनेक फूल कहे हैं ॥ १८ ॥ यथालाभ उनको देकर कैलासवासी होता है, जो अमोघ बेलपत्र भगवतीको देता है ॥ १९ ॥ उसको कभी कदाचित् दुःख नहीं होता, तीनों बेलपत्र पर लालचंदनसे ॥ २० ॥ स्फुट तीन मायावीज (ह्रीं) लिखकर और चतुर्थी युक्त "ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः" उच्चारणकर ॥ २१ ॥ परम भक्तिसे देवीके चरणकमलमें कोमल पत्रोंको अर्पण करै ॥ २२ ॥ जो परम भक्तिसे ऐसा करते है वह मनु होते हैं, जो कोमल और अति निर्मल ऐसे कोटि दलोंसे ॥ २३ ॥ भुवनेश्वरीका पूजन करते हैं, वह

काश्मीरचंदनंदत्त्वाकस्तूरीबिंदुभूषितम् ॥ तथासीमंतसिंदूरंचरणेऽलक्तपत्रकम् ॥ १७ ॥ इंद्रासनेसमारूढोभवेद्देवपतिःपरः ॥ पुष्पाणिविविधान्याहुः पूजाकर्मणिसाधवः ॥ १८ ॥ तानिदत्त्वाययथालाभंकैलासंलभतेस्वयम् ॥ बिल्वपत्राण्यमोघानियोदद्यात्परशक्तये ॥ १९ ॥ तस्यदुःखंकदाचिच्चक्व चिन्नभविष्यति ॥ बिल्वपत्रत्रयेरक्तचंदनेनतुसंलिखेत् ॥२०॥मायाबीजत्रयंयत्नात्सुस्फुटंचातिसुंदरम् ॥ मायाबीजादिकंनामचतुर्थ्यंतंसमुच्चरेत् ॥२१॥ नमोंतंपरयाभक्त्यादेवीचरणपंकजे ॥ समर्पयेन्महादेव्यैकोमलंतच्चपत्रकम् ॥२२॥ यएवंकुरुतेभक्त्यामनुत्वंलभतेहिसः ॥ यस्तुकोटिदलैरेवंकोमलैरतिनिर्मलैः ॥ २३ ॥ पूजयेद्भुवनेशानींब्रह्मांडाधिपतिर्भवेत् ॥ कुंदपुष्पैर्नवीनैस्तुलुलितैरष्टगंधतः ॥ २४ ॥ कोटिसंख्यैः पूजयेत्तुप्राजापत्यंलभेद्ध्रुवम् ॥ मल्लिकामालतीपुष्पैरष्टगंधेनलोलितैः ॥ २५ ॥ कोटिसंख्यैःपूजयातुजायतेसचतुर्मुखः॥दशकोटिभिरप्येवंतैरेवकुसुमैर्मुने ॥२६॥ विष्णुत्वंलभतेमर्त्यो यत्सुरेष्वपिदुर्लभम् ॥ विष्णुनैतद्व्रतंपूर्वंकृतंस्वपदलब्धये ॥२७॥ शतकोटिभिरप्येवंसूत्रात्मत्वंव्रजेद्ध्रुवम् ॥ व्रतमेतत्पुरासम्यक्कृतंभक्त्याप्रयत्नतः॥२८॥ एतेनव्रतप्रभावेनहिरण्योदरतांव्रजेत् ॥ जपाकुसुमपुष्पस्यबंधूककुसुमस्यच ॥ २९ ॥

ब्रह्माण्डके अधिपति होते हैं, जो नवीन कुंदके पुष्पोंको अष्टगंधसे युक्त ॥ २४ ॥ एककोटि चढाय पूजा करते हैं वह प्राजापत्य पदको प्राप्त होते हैं, अष्टगंधसे माया वीज लिखकर उसके सहित जो मल्लिका मालतीके ॥ २५ ॥ एक कोटि फूल चढाकर पूजाकरते हैं वह चतुर्मुख होते हैं. हे मुने ! जो उसके दशकोटि पुष्प चढाते हैं ॥ २६ ॥ वह मनुष्य देवताओंको दुर्लभ विष्णुत्वको प्राप्त होते हैं, अपनी पद प्राप्तिकेनिमित्त पहले विष्णुने यह व्रत किया था ॥ २७ ॥ इसके सौकोटि फूल चढानेसे जिसमें मायावीज लिखाहो मनुष्य सूत्रात्मापद 'हिरण्यगर्भ' को प्राप्त होता है यह व्रत प्रयत्नसे भक्तिपूर्वक करनेसे ॥ २८ ॥ इसके प्रभावसे हिरण्यगर्भताको प्राप्त

१ सावतः शुद्ध ।

होता है जपाकुसुम, बंधूक पुष्प ॥ २९ ॥ दाडिमीकुसुमकी भी यही विधि है इसी प्रकार औरभी फूल भक्तिसे देवीको अर्पण करै ॥ ३० ॥ इसके पुण्यफलके अन्तको ईश्वरभी नहीं जान्ते, प्रत्येक ऋतुमें हुए फूलोंसे ॥ ३१ ॥ स्कन्धमें लिखे सहस्रनामकी संख्यासे सावधानहो प्रतिवर्ष देवीको समर्पण करै, जो ऐसा करता है वह महापातकसंयुक्त होकरभी ॥ ३२ ॥ वा उपपातक संयुक्तहो वह उनसे छूट जाता है देहान्तमें, वह साधक देवताओंको भी दुर्लभ देवीके पदकमलको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ हे मुने! इसमें संदेह नहीं, काला अगर, कपूर,चन्दन ॥ ३४ ॥ सिह्लक (लोबान) घृत, गुग्गुलु इनसे महादेवीको धूपदे जो भगवतीका मंदिर धूपित करता

दाडिमीकुसुमस्यापिविधिरेषउदीरितः॥एवमन्यानिपुष्पाणिश्रीदेव्यैविधिनार्पयेत्॥३०॥तस्यपुण्यफलस्यांतंनजानातीश्वरोपिसः॥तत्तदृतूद्भवैःपुष्पैर्नाम साहस्रसंख्यया॥३१॥समर्पयेन्महादेव्यैप्रतिवर्षमतंद्रितः॥यएवंकुरुतेभक्त्यामहापातकसंयुतः॥३२॥उपपातकयुक्तोऽपिमुच्यतेसर्वपातकैः॥देहांतेश्रीपदांभोजंदुर्लभंदेवसत्तमैः॥३३॥प्राप्नोतिसाधकवरोमुनेनास्त्यत्रसंशयः॥कृष्णागुरुंसकर्पूरंचंदनेनसमन्वितम्॥३४॥सिल्हकंचाज्यसंयुक्तंगुग्गुलेनसमान्वितम्॥ धूपंदद्यान्महादेव्यैयेनस्याद्धूपितंगृहम् ॥ ३५ ॥ तेनप्रसन्नादेवेशीददातिभुवनत्रयम् ॥ दीपंकर्पूरखंडैश्चदद्याद्देव्यैनिरंतरम् ॥ ३६॥ सूर्यलोकमवाप्नोतिनात्रकार्याविचारणा ॥ शतदीपांस्तथादद्यात्सहस्रान्वासमाहितः॥३७॥नैवेद्यंपुरतोदेव्याःस्थापयेत्पर्वताकृतिम् ॥ लेह्यैश्चोष्यैस्तथापेयैःषड्रसैस्तुसमाहितैः ॥३८॥ नानाफलानिदिव्यानिस्वादूनिरसवंतिच ॥ स्वर्णपात्रस्थितान्नानिदद्याद्देव्यैनिरंतरम्॥३९॥तृप्तायांश्रीमहादेव्यांभवेत्तृप्तंजगत्त्रयम्॥ यतस्तदात्मकंसर्वंरज्जौसर्पोयथातथा ॥ ४० ॥ ततःपानीयकंदद्याच्छुभंगंगाजलंमहत् ॥ कर्पूरवालासंयुक्तंशीतलंकलशस्थितम् ॥ ४१ ॥

है ॥ ३५ ॥ उससे प्रसन्नहो देवेशी उसको त्रिलोकी देती है, जो निरन्तर देवीको दीपक और कपूर देता है ॥ ३६ ॥ वह निःसन्देह सूर्यलोकको प्राप्त होता है; जो सौ वा सहस्र दीपक देता है ॥ ३७ ॥ और महान् पर्वताकार नैवेद्य भगवतीके आगे स्थापित करता है लेह्य, चोष्य, पेय, षड्रसोंको ॥ ३८ ॥ तथा अनेक दिव्य स्वादिष्ठ रसभरे फल, सोनेके पात्रमें रखकर जो देवीको देता है ॥ ३९ ॥ तो महादेवीके तृप्त होनेपर सब जगत् तृप्त होजाता है, कारण कि यह सब जगत् तदात्मकही है रज्जुमें सर्पकीसी समान भ्रम है॥ ४०॥ फिर सुन्दर गंगाजल पीनेको दे जो कर्पूर, नेत्रवाला इनसे शीतलकर कलशमें स्थापन किया है ॥ ४१ ॥

फिर देवीके निमित्त संपूर्ण सुगंध लवंगसे युक्त मुखकी सुगंधि करनेवाला ताम्बूल दे, जिसमें कपूरभी हो॥ ४२॥ महाभक्तिसे देनेसे देवी प्रसन्न होती है मृदंग, वीणा, मुरज, ढक्का, दुंदुभीके शब्दोंसे॥ ४३॥ तथा मनोहर गानोंसे जगन्माताको संतुष्ट करै, वेदपारायण तथा पुराणोंके स्तोत्र पढै॥ ४४॥ सावधानहो देवीके निमित्त छत्र और दो चँवर प्रदान करै श्री देवीके निमित्त नित्यही राजोपचार समर्पण करै॥ ४५॥ अनेक प्रकारसे देवीकी प्रदक्षिणा नमस्कार करै और वारंवार जगद्धात्री जगदम्बासे क्षमा करावै॥ ॥ ४६ ॥ जहां एकवार स्मरण करनेसेही देवी प्रसन्न होती है, फिर इतने उपचारोंसे प्रसन्नहो इसमें आश्चर्यही क्या है ॥ ४७ ॥ माता स्वभावसेही पुत्रमें दयावती होती है, फिर भक्तिकरने पर तो क्या कहना है ॥ ४८ ॥ यहां एक भक्तिदायक बृहद्रथ राजर्षिका पुरातन इतिहास कहते हैं ॥ ४९ ॥ कहीं एक हिमालय देशमें चक्रवाक

तांबूलंचततोदेव्यैकर्पूरशकलान्वितम् ॥ एलालवंगसंयुक्तंमुखसौगंध्यदायकम् ॥ ४२ ॥ दद्याद्देव्यैमहाभक्त्यायेनदेवीप्रसीदति ॥ मृदंगवीणामुरजढक्का दुंदुभिनिःस्वनैः ॥ ४३ ॥ तोषयेज्जगतांधात्रींगायनैरतिमोहनैः ॥ वेदपारायणैःस्तोत्रैःपुराणादिभिरप्युत ॥४४॥ छत्रंचचामरेद्वेचदद्याद्देव्यैसमाहितः ॥ राजोपचारान्श्रीदेव्यैनित्यमेवसमर्पयेत् ॥ ४५ ॥ प्रदक्षिणांनमस्कारंकुर्याद्देव्याअनेकधा ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रींजगदंबांमुहुर्मुहुः ॥४६॥ सकृत्स्मरणमात्रेणयत्रदेवीप्रसीदति ॥ एतादृशोपचारैश्चप्रसीदेदत्रकःस्मयः॥४७॥स्वभावतोभवेन्मातापुत्रेऽतिकरुणावती ॥ तेनभक्तौकृतायांतुवक्तव्यंकिंततःपरम् ॥ ॥ ४८ ॥ अत्रतेकथयिष्यामिपुरावृत्तंसनातनम् ॥ बृहद्रथस्यराजर्षेःप्रियंभक्तिप्रदायकम् ॥ ४९ ॥ चक्रवाकोभवेत्पक्षीक्वचिद्देशेहिमालये ॥ भ्रमन्नानाविधान्देशान्ययौकाशीपुरंप्रति ॥ ५० ॥ अन्नपूर्णामहास्थानेप्रारब्धवशतोद्विजः ॥ जगामलीलयातत्रकणलोभादनाथवत् ॥ ५१ ॥ कृत्वाप्रदक्षिणामेकांजगामसविहायसा ॥ देशांतरंविहायैवपुरींमुक्तिप्रदायिनीम् ॥५२॥ कालांतरेममारासौगतःस्वर्गपुरींप्रति ॥ बुभुजेविषयान्सर्वान्दिव्यरूपधरोयुवा ॥ ॥ ५३ ॥ कल्पद्वयंतथाभुक्त्वापुनःप्रापभुवंप्रति ॥ क्षत्रियाणांकुलेजन्मप्रापसर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ५४ ॥ बृहद्रथेतिनाम्नाभूत्प्रसिद्धःक्षितिमंडले॥महायज्वा धार्मिकश्चसत्यवादीजितेंद्रियः ॥ ५५ ॥ त्रिकालज्ञःसार्वभौमोयमीपरपुरंजयः ॥ पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्यवर्ततेदुर्लभाभुवि ॥ ५६ ॥

पक्षी था, वह अनेक देशोंमें भ्रमण करता काशीपुरीमें गया ॥ ५० ॥ वह प्रारब्धवश अन्नपूर्णाके स्थानमें प्राप्त हुआ, वह कणलोभसे अनाथवत् लीलासे होगया ॥ ॥ ५१ ॥ फिर एक प्रदक्षिणाकर आकाशमें गया, इसप्रकार देशान्तरोंको छोडकर मुक्ति दायकापुरीमें रहा ॥ ५२ ॥ फिर कुछ कालान्तरमें मृत्युको प्राप्त हो स्वर्गमें गया दिव्यरूपधारी युवा होकर सब विषयोंको भोगने लगा ॥ ५३ ॥ इस प्रकार दो कल्प आनंदकर फिर भूर्लोकमें आया और सर्वोत्तम क्षत्रियोंके कुलमें जन्म पाया ॥ ५४ ॥ भूमण्डलमें बृहद्रथ नामसे प्रसिद्ध हुआ जो महायज्ञ करनेवाला धर्मात्मा सत्यवादी जितेंद्रिय था ॥ ५५ ॥ त्रिकालका ज्ञाता सार्वभौम

यम नियममें तत्पर शत्रुनाशी था और उसको इस भूमिमें दुर्लभ पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही ॥ ५६ ॥ इस किंवदन्तीको सुनकर वहां मुनिराज आनकर प्राप्त हुए और राजासे अतिथिसत्कारको प्राप्त हो विस्तरोंपर बैठे ॥ ५७ ॥ और सब ऋषि बोले हे राजन्! हमको बडा संशयहै किस पुण्यके प्रभावसे तुमको पूर्वजन्मकी स्मृति है ॥ ५८ ॥ तथा किस पुण्यके प्रभावसे तुमको त्रिकालज्ञान है तुम्हारा ज्ञान जाननेके निमित्त हम तुम्हारे समीप आये हैं ॥ ५९ ॥ सो आप उपालंभरहित हो यथार्थ रूपसे हमसे वर्णन कीजिये. नारायण बोले इसप्रकार उनके वचन सुन परम धर्मात्मा राजा ॥ ६० ॥ सम्पूर्ण त्रिकालज्ञानके कारणको कहने लगा. हे मुनियो!

इतिश्रुत्वाकिंवदंतींमुनयःसमुपागताः ॥ कृतातिथ्यानृपेंद्रेणविष्टरेषूपुरेवते ॥ ५७ ॥ पप्रच्छुर्मुनयःसर्वेसंशयोस्तिमहान्नृप ॥ केनपुण्यप्रभावेणपूर्वजन्मस्मृतिस्तव॥५८॥त्रिकालज्ञानमेवापिकेनपुण्यप्रभावतः ॥ ज्ञानंतवेतितज्ज्ञातुमागताःस्मतवांतिकम् ॥५९॥ वदनिर्व्याजयावृत्त्यातदस्माकंयथातथम्॥ श्रीनारायणउवाच॥इतितेषांवचःश्रुत्वाराजापरमधार्मिकः॥६०॥उवाचसकलंब्रह्मंस्त्रिकालज्ञानकारणम् ॥ श्रूयतांमुनयःसर्वेममज्ञानस्यकारणम् ॥६१॥ चक्रवाकःस्थितःपूर्वंनीचयोनिगतोपिवा ॥ अज्ञानतोपिकृतवानन्नपूर्णाप्रदक्षिणाम् ॥६२॥ तेनपुण्यप्रभावेणस्वर्गेकल्पद्वयस्थितिः ॥ त्रिकालज्ञानताप्यस्मिन्नभूज्जन्मनिसुव्रताः ॥ ६३ ॥ कोवेदजगदंबायाःपदस्मृतिफलंकियत् ॥ स्मृत्वातन्महिमानंतुपतंत्यश्रूणिमेऽनिशम् ॥ ६४ ॥ धिगस्तुजन्मतेषां वैकृतघ्नानांतुपापिनाम् ॥ येसर्वमातरंदेवींस्वोपास्यांनभजंतिहि ॥ ६५ ॥ नशिवोपासनानित्यानविष्णूपासनातथा ॥ नित्योपास्तिःपरादेव्या नित्याश्रुत्यैवचोदिता ॥ ६६ ॥ किंमयाबहुवक्तव्यंस्थानेसंशयवर्जिते ॥ सेवनीयंपदांभोजंभगवत्यानिरंतरम् ॥ ६७ ॥

तुम सब मेरे ज्ञानका कारण सुनो ॥ ६१ ॥ मैं पहले नीच योनि चक्रवाक्में स्थितथा, अज्ञानसे मैंने अन्नपूर्णाकी प्रदक्षिणा की थी ॥ ६२ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें दो कल्प रहा. हे सुव्रतो! अब इस जन्ममें भूर्लोकमें त्रिकालज्ञान प्राप्त होकर स्थित हुआ हूं ॥ ६३ ॥ कौन जाने जगदम्बाके चरण स्मरणका कितना फल है, वह महिमा उनकी स्मरण कर मेरे अश्रुपात होते हैं ॥ ६४ ॥ उन कृतघ्न पापी जनोंके जन्मको धिक्कार है जो सबकी माता देवीकी उपासना नहीं करते॥ ६५॥ शिव विष्णुकी उपासना नित्य नहीं है परादेवीके उपासनाकी नित्य आज्ञा वेदमें स्थित है [अहरहः संध्यामुपासीत इत्यादि] ॥ ६६ ॥ इस सन्देहरहित स्थानमें बहुत क्या

कहूं निरन्तर भगवतीके चरणकमलोंका सेवन करना चाहिये ॥ ६७ ॥ भूमितलमें इससे अधिक और कुछ नहीं है वह परादेवी सगुणा निर्गुणा सेवन करनी चाहिये ॥ ६८ ॥ नारायण बोले इसप्रकार धार्मिक राजाका वचन सुन प्रसन्न मन हो सब अपने २ स्थानको गये॥६९॥भगवतीका इतना प्रभाव है फिर उसकी पूजाका फल कितना है? यह कौन कहसकता है. इसके पूंछनेपर पूरा उत्तर कौन देसकर्ता है? ॥ ७० ॥ जिनका जन्म सफल है उन्हींकी इसमें श्रद्धा होती है जिनका जन्म संकरता युक्त है उनकी श्रद्धा नहीं होती ॥ ७१ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥छ॥ ॥ श्रीनारायण बोले अब मध्याह्न समयकी शुभसंध्याको सुनो जिसके अनुष्ठानसे उत्तम फल होता है ॥ १ ॥ मध्याह्न समय सावित्री युवती श्वेतवर्णा त्रिलोचना

नातःपरतरंकिंचिदधिकंजगतीतले ॥ सेवनीयापरादेवीनिर्गुणासगुणाऽथवा ॥६८॥ नारायणउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाराजर्षेर्धार्मिकस्यच ॥ प्रसन्नहृदयाःसर्वेगताःस्वस्वनिकेतनम् ॥६९॥ एवंप्रभावासादेवीतत्पूजायाःफलंकियत् ॥ अस्तीतिकेनप्रष्टव्यंवक्तव्यंवानकेनचित् ॥ ७०॥ येषांतुजन्मसाफल्यंतेषांश्रद्धातुजायते ॥ येषांतुजन्मसांकर्यंतेषांश्रद्धानजायते ॥ ७१ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ अथातःश्रूयतांब्रह्मन्सध्यांमाध्याह्निकींशुभाम् ॥ यदनुष्ठानतोपूर्वंजायतेत्युत्तमंफलम् ॥ १ ॥ सावित्रींयुवतींश्वेतवर्णांचैवत्रिलोचनाम् ॥ वरदांचाक्षमालाढ्यांत्रिशूलाभयहस्तकाम् ॥ २ ॥ वृषारूढांयजुर्वेदसंहितांरुद्रदेवताम् ॥ तमोगुणयुतांचैवभुवर्लोकव्यवस्थिताम् ॥३॥ आदित्यमार्गसंचारकर्त्रींमायांनमाम्यहम् ॥ आदिदेवीमथध्यात्वाऽऽचमनादिचपूर्ववत् ॥ ४ ॥ अथचार्घ्यप्रकरणंपुष्पाणिचिनुयात्ततः ॥ तदलाभेबिल्वपत्रंतोयेनामिश्रयेत्ततः ॥५॥ ऊर्ध्वंचसूर्याभिमुखंक्षिप्त्वाऽर्घ्यंप्रतिपादयेत् ॥ प्रातःसंध्यादिवत्सर्वमुपसंहारपूर्वकम् ॥६॥ मध्याह्नेकेचिदिच्छंतिसावित्रींतुतदित्यृचम् ॥ असंप्रदायंतत्कर्मकार्यहानिस्तुजायते ॥७॥ कारणंसंध्ययोश्चात्रमंदेहानामराक्षसाः ॥ भक्षितुंसूर्यमिच्छंतिकारणंश्रुतिचोदितम् ॥ ८ ॥

वरदायक अक्षमालासे युक्त त्रिशूल अभय हाथमें धारण किये ॥ २ ॥ वृषपर आरूढ यजुर्वेद उच्चारण करती रुद्रसे उपास्य तमोगुणयुक्त भुवर्लोकमें स्थित ॥ ३ ॥ आदित्यमार्गमें संचार करनेवाली मायाको मैं प्रणाम करता हूं. इस प्रकार आदिदेवीको ध्यान कर पूर्ववत् आचमनादि करै ॥ ४ ॥ फिर अर्घ्यके निमित्त पुष्पचयन करै उसके अभावमें बिल्वपत्र जलसे संयुक्तकर ॥ ५ ॥ सूर्यके सन्मुख ऊर्ध्वमुख होकर अर्घ्य दे और सब प्रभातसंध्याके समान उपचार करै ॥ ६ ॥ कोई मध्याह्नमें अर्घ्यदानका निषेधकर कहते हैं कि यह संप्रदायसिद्ध नहीं इसमें कार्यहानि होती है ॥ ७॥ कारण यह है कि, दोनों संध्याओंमें मन्देहा नाम

राक्षस सूर्यके भक्षणकी इच्छा करते हैं इससे अर्घ्य देते हैं यह श्रुतिकथित कारणहै।।८।।हेब्राह्मण! इसकारण संध्यामें दोनों समय अवश्य अर्घ्य दे और दोनों संध्याओंमें ओंकारसहित गायत्रीका जपकरै ॥ ९ ॥ फिर अर्घ्यदे अन्यथा श्रुतिघातक होताहै 'आकृष्णेन, वा हंसः शुचिषद्' यह मंत्र पढकर फूल और जल मिलावे ॥ १० ॥ यदि बिल्व दूर्वादि न मिलें तो फूल फूलके अभावमें दूर्वादि मिलाय अर्घ्य दे तो संध्याका सांग फल प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ हे देवर्षिसत्तम! इसी विषयमें तर्पण कहते हैं ॐभुवः पुरुषं तर्पयामि नमोनमः ॥ १२ ॥ ॐयजुर्वेदं तर्पयामि ॐ मण्डलं तर्पयामि ॐहिरण्य गर्भंत०ॐअन्तरात्मानंत० ॥ १३ ॥ ॐसावित्रींत०ॐवेदमातरंत०ॐसां कृतिंत०ॐसंध्यांत०ॐयुवतींत०ॐरुद्राणींत०ॐनीमृजांत० ॥ १४ ॥ ॐसर्वार्थानां सिद्धिकरींत० ॐसर्वमंत्रार्थ सिद्धिदांत०ॐभूर्भुवः स्वः पुरुषं तर्पयामि, यह मध्या

अतस्तुकारणाद्विप्रःसंध्यांकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ संध्ययोरुभयोर्नित्यंगायत्र्याप्रणवेनच ॥ ९ ॥ अंभस्तुप्रक्षिपेत्तेननान्यथाश्रुतिघातकः ॥ आकृष्णेनेतिमंत्रेणपुष्पैर्वांबुविमिश्रितम् ॥ १० ॥ अलाभेविल्वदूर्वादिपत्रेणोक्तनपूर्वकम् ॥ अर्घ्यंदद्यात्प्रयत्नेनसांगंसंध्याफलंलभेत् ॥ ११ ॥ अत्रैवतर्पणंवक्ष्येशृणुदेवर्षिसत्तम ॥ भुवःपुनःपूरुषंतुतर्पयामिनमोनमः ॥ १२ ॥ यजुर्वेदंतर्पयामिमंडलंतर्पयामिच ॥ हिरण्यगर्भंचतथांतरात्मानंतथैवच ॥ १३ ॥ सावित्रींचततोदेवमातरंसांकृतिंतथा ॥ संध्यांतथैवयुवतींरुद्राणींनीमृजांतथा ॥ १४ ॥ सर्वार्थानांसिद्धिकरींसर्वमंत्रार्थसिद्धिदाम् ॥ भूर्भुवःस्वःपूरुषंतुइतिमध्याह्नतर्पणम् ॥ १५ ॥ उदुत्यमितिसूक्तेनसूर्योपस्थानमेवच ॥ चित्रंदेवानामितिचसूर्योपस्थानमाचरेत् ॥१६॥ ततोजपंप्रकुर्वीतमंत्रसाधनतत्परः ॥ जपस्यापिप्रकारंतुवक्ष्यामिशृणुनारद ॥ १७ ॥ कृत्वोत्तानौकरौप्रातःसायंचाऽधःकरौतथा ॥ मध्याह्नेहृदयस्थौतुकृत्वाजपमुदीरयेत् ॥ ॥१८॥ पर्वद्वयमनामिक्याःकनिष्ठादिक्रमेणतु ॥ तर्जनीमूलपर्यंतंकरमालाप्रकीर्तिता ॥ १९ ॥ गोघ्नःपितृघ्नोमातृघ्नोभ्रूणहागुरुतल्पगः ॥ ब्रह्मस्वक्षेत्रहारीचयश्चविप्रःसुरांपिबेत् ॥२०॥सगायत्र्याःसहस्रेणपूतोभवतिमानवः ॥ मानसंवाचिकंपापंविषयेंद्रियसंगजम् ॥२१ ॥तत्किल्बिषंनाशयतित्रीणिजन्मानिमानवः ॥ गायत्रींयोनजानातिवृथातस्यपरिश्रमः ॥ २२ ॥ पठेच्चचतुरोवेदान्गायत्रींचैकतोजपेत् ॥ वेदानांचावृतेस्तद्वद्गायत्रीजपउत्तमः ॥ २३ ॥

ह्नतर्पण है ॥ १५ ॥ ओं 'उदुत्यम्' इससूक्तसे और 'चित्रं देवानां' इसमंत्रसे सूर्यका उपस्थानकरै ॥ १६ ॥ फिर मंत्रसाधनमें तत्पर अपना जपकरै हे नारद सुनो मैं जपकाभी प्रकार कहता हूं ॥ १७ ॥ प्रभातको हाथ ऊंचेकर संध्याको नीचे और मध्याह्नको हृदयमें हाथ धरकर जपकरै ॥ १८ ॥ अनामिकाके दोनों पर्व मध्यम और मूल और कनिष्ठाके मूलपर्वसे दक्षिणावर्त क्रमसे तर्जनी मूल पर्वपर्यन्त करमाला कही गईहै ॥१९॥ जो गोघ्न, पितृघ्न, मातृहा, गर्भहा, गुरुतल्पगामी, ब्राह्मण का धनहरनेवाला तथा जो सुरापान करता है ॥ २० ॥ वह मनुष्य एक सहस्र गायत्री जपकर पवित्र होजाताहै, मन वचन कर्म और विषयेन्द्रियके संगसे उत्पन्न हुआ पाप ॥ २१ ॥ गायत्री ऐसे तीन जन्मके मनुष्यके पापदूर करती है, जो गायत्रीको नहीं जानता है उसका परिश्रम वृथा है ॥ २२ ॥ चारों वेदका पढना और

एक ओर गायत्रीका जप इनमें गायत्रीही मुख्य है ॥ २३ ॥ यह मैंने मध्याह्न संध्याका प्रकार कहा अब ब्रह्मयज्ञ विधिका क्रम कहते हैं ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ नारायण बोले ब्राह्मण पहले तीनबार आचमन कर दोबार मार्जन करै सीधा हाथ धोकर फिर चरणोंको प्रक्षालन करै ॥ १ ॥ शिर चक्षु नासिका श्रोत्र हृदय शिर इनमें प्रोक्षण करै फिर देश काल उच्चारण कर ब्रह्मयज्ञ करै दक्षिणहाथमें दो कुशा, बायें हाथमें तीन, आसनमें एक ॥ २ ॥ ३ ॥ उपवीत शिखा और पादमूलमें एक एक रक्खै यह मुक्ति और सबपापक्षयमें उपयोगी हैं ॥ ४ ॥ सूत्रमें कहे देवता

इतिमध्याह्नसंध्यायाःप्रकारःकीर्तितोमया॥अतःपरंप्रवक्ष्यामिब्रह्मयज्ञविधिक्रमम्॥२४॥इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेएकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ त्रिराचम्यद्विजःपूर्वंद्विर्मार्जनमथाचरेत् ॥ उपस्पृश्येत्यसव्यपाणिंपादौचप्रोक्षयेत्ततः ॥ १ ॥ शिरसिचक्षुषितथानासायांश्रोत्रेदेशके ॥ हृदयेचतथामौलौप्रोक्षणंसम्यगाचरेत् ॥ २ ॥ देशकालौसमुच्चार्यब्रह्मयज्ञमथाचरेत् ॥ द्वौदर्भौदक्षिणेहस्तेवामेत्रीनासनेसकृत् ॥ ३ ॥ उपवीतेशिखायांचपादमूलेसकृत्सकृत् ॥ विमुक्तयेसर्वपापक्षयार्थंचैवमेवहि ॥ ४ ॥ सूत्रोक्तदेवताप्रीत्यैब्रह्मयज्ञंकरोम्यहम् ॥ गायत्रींत्रिर्जपेत्पूर्वंचाग्निमीळेततःपरम् ॥५॥ यदंगेतिततःप्रोच्यअग्निर्वैइतिकीर्तयेत् ॥ अथमहाव्रतंचैवपंथाएतच्चकीर्तयेत् ॥ ६ ॥ अथातःसंहितायाश्चविदामघवदित्यपि ॥ महाव्रतस्येतितथाइषेत्वोर्जेइतीवहि ॥ ७ ॥ अग्नआयाहिचेत्येवंशन्नोदेवीरितीतिच ॥ अथतस्यसमाम्नायोवृद्धिरादैजितीवहि ॥ ८ ॥ अथशिक्षांप्रवक्ष्यामिपंचसंवत्सरेतिच ॥ मयरसतजभेत्येवगौग्म्इत्येवकीर्तयेत् ॥ ९ ॥ अथातोधर्मजिज्ञासाअथातोब्रह्मइत्यपि ॥ तच्छंयोरितिचप्रोच्यब्रह्मणेनमइत्यपि ॥ १० ॥ तर्पणंचैवदेवानांततःकुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ प्रजापतिश्चब्रह्माचवेदादेवास्तथर्षयः ॥ ११ ॥

की प्रीतिके निमित्त मैं ब्रह्मयज्ञ करता हूं पहले तीन गायत्री पढकर फिर 'अग्निमीळेपुरोहितम्' ॥ ५ ॥ 'यदंग' इति, 'अग्निर्वै' इत्यादि मंत्र पढै फिर महाव्रतका यह मार्ग है 'महाव्रतं चैव पंथा' ऐसा कहै ॥ ६ ॥ फिर संहिताके 'विदामघवत्' 'महा व्रतस्य इषेत्वा ऊर्जेत्वा' ॥ ७ ॥ 'अग्न आयाहि, शन्नोदेवी' और उसका समाम्नाय 'वृद्धिरादैच्' पाणि० सू० ॥ ८ ॥ और अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पंचसंवत्सरेति, मय रसतजभेत्येवगौग्मा, यह प्रतीक हैं इनको सम्यक् प्रकार कीर्त्तन करै ॥ ९ ॥ फिर अथातो धर्मजिज्ञासा, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, पढकर फिर नमोब्रह्मणे नमोस्त्वग्नये नमःपृथिव्यै इत्यादि तच्छंयो इति उच्चारण करके पढै ॥ १० ॥ फिर देवताओंका तर्पण

और प्रदक्षिणा करे प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषि ॥ ११ ॥ सब छंद, ओंकारवषट्कार, व्याहृति, सावित्री ॥ १२ ॥ गायत्री, यज्ञ, द्यावापृथ्वी, अन्तरिक्ष, अहोरात्र, सांख्य ॥ १३ ॥ सिद्ध, समुद्र, नदी, पर्वत, ओषधि, वनस्पति, गन्धर्व अप्सरा ॥ १४ ॥ नाग, पक्षी, गौ, साध्य, विप्र, यक्ष, राक्षस, भूतादि कीर्त्तन कर तर्पण करे ॥ १५ ॥ फिर निवीती (गलेमें यज्ञोपवीत डाल) ऋषियोंका तर्पण करे वह शतर्चि, माध्यमा, गृत्समद ॥ १६ ॥ विश्वामित्र वामदेव अत्रि भरद्वाज वशिष्ठ प्रगाथ, पावमान्य ॥ १७ ॥ क्षुद्र सूक्त, महा सूक्त, सनक सनंदन सनातन सनत्कुमार ॥ १८ ॥ कपिल आसुरि वोहलि, पंचशीर्षक, यह ऋषि तर्पण प्राचीनावीतिसे करै

सर्वाणिचैवच्छंदांसितथोंकारस्तथैवच ॥ वषट्कारोव्याहृतयःसावित्रीचततःपरम् ॥ १२ ॥ गायत्रीचैवयज्ञाश्चद्यावापृथिवीइत्यपि ॥ अंतरिक्षंत्वहोरात्राणिचसांख्याअतःपरम् ॥ १३ ॥ सिद्धाःसमुद्रानद्यश्चगिरयश्चततःपरम् ॥ क्षेत्रौषधिवनस्पत्योगंधर्वाप्सरसस्तथा ॥ १४ ॥ नागावयांसिगावश्चसाध्याविप्रास्तथैवच ॥ यक्षारक्षांसिभूतानीत्येवमंतानिकीर्तयेत् ॥ १५ ॥ अथोनिवीतीभूत्वाचऋषीन्संतर्पयेदपि ॥ शतर्चिनोमाध्यमाश्चगृत्समदस्तथैवच ॥ १६ ॥ विश्वामित्रोवामदेवोऽत्रिर्भरद्वाजएवच ॥ वसिष्ठश्चप्रगाथश्चपावमान्यस्ततःपरम् ॥ १७ ॥ क्षुद्रसूक्तामहासूक्ताःसनकश्चसनंदनः ॥ सनातनस्तथैवाऽत्रसनत्कुमारएवच ॥ १८ ॥ कपिलासुरिनामानौवोहलिःपंचशीर्षकः ॥ प्राचीनावीतिनातच्चकर्तव्यमथतर्पणम् ॥ १९ ॥ सुमंतुजैमिनिर्वैशंपायनःपैलसूत्रयुक् ॥ भाष्यभारतपूर्वंचमहाभारतइत्यपि ॥ २० ॥ धर्माचार्याइमेसर्वेतृप्यंत्वितिचकीर्तयेत् ॥ जानंतिबाहविगार्ग्यगौतमाश्चैवशाकलः ॥ २१ ॥ बाभ्रव्यमांडव्ययुतोमांडूकेयस्ततःपरम् ॥ गार्गीवाचक्नवीचैववडवाप्रातिथेयिका ॥ २२ ॥ सुलभायुक्तमैत्रेयीकहोलश्चततःपरम् ॥ कौषीतकंमहाकौषीतकंवैतर्पयेत्ततः ॥ २३ ॥ भारद्वाजंचपैंग्यंचमहापैंग्यंसुयज्ञकम् ॥ सांख्यायनमैतरेयंमहैतरेयमेवच ॥ २४ ॥ बाष्कलंशाकलंचैवसुजातवक्रमेवच ॥ औदवाहिंचसौजामिंशौनकंचाश्वलायनम् ॥ २५ ॥ येचान्येसर्वआचार्यास्तेसर्वेतृप्तिमाप्नुयुः ॥ येकेचास्मत्कुलेजाताअपुत्रोगोत्रिणोमृताः ॥ २६ ॥

॥ १९ ॥ सुमंतु जैमिनि वैशंपायन पैल सूत्रभाष्य भारत महाभारत ॥ २० ॥ धर्माचार्यास्तृप्यन्तु ऐसा कहै जानन्ति बाहविगार्ग्य गौतम शाकल्य ॥ २१ ॥ बाभ्रव्य माण्डव्यमाण्डूकेयास्तृप्यन्तु गार्गीवाचक्नवी तृप्यतु वडवा प्रातिथेयी तृप्यतु ॥ २२ ॥ सुलभामैत्रेयी तृप्यतुकहोळा कौषीतक और महाकौषीतकको तर्पण करे ॥ २३ ॥ भरद्वाज पैंग्य महापैंग्य सुयज्ञक सांख्यायन ऐतरेय, महैतरेय ॥ २४ ॥ बाष्कल शाकल वसुजात वक्र औदवाहि सौजामि शौनक आश्वलायन ॥ २५ ॥ तथा जो और आचार्य हैं वे सब

१ ॐ प्रजापतिस्तृप्यतु । ॐ ब्रह्मातृप्यताम् । ॐ वेदास्तृप्यन्ताम् इत्यादि तर्पणमें देखलो ।

तृप्तिको प्राप्त हों जो हमारे कुलमें हुए अपुत्र और गोत्री मरे हैं ॥ २६॥ यह मेरा दिया वस्त्रनिष्पीडित जल ग्रहण करैं हे मुने यह आपसे ब्रह्मयज्ञकी विधि कही॥ २७॥ हे ब्रह्मन् ! जो इस यज्ञकी उत्तम विधि करता है उस साधकको सब वेदांगपाठका फल होता है ॥ २८॥ फिर वैश्वदेव और नित्य श्राद्ध करै अतिथियोंको नित्य अन्न दान करै ॥ २९ ॥ फिर गोग्रास दे ब्राह्मणोंके सहित भोजन करै दिनके पंचम भागमें यह उत्तम कर्म करै ॥ ३० ॥ दिनके छठे सातवें भागमें इतिहास पुराण पढै आठवे भागमें लोकयात्रा करै फिर बहिः संध्या करै ॥ ३१ ॥ हे महामुने अब सायंसंध्या कहता हूं जिसके अनुष्ठानमात्रसे महामाया प्रसन्न होती है ॥ ३२ ॥

तेगृह्णंतुमयादत्तंवस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥ एवंतेब्रह्मयज्ञस्यविधिरुक्तोमहामुने ॥ २७ ॥ यश्चायंकुरुतेब्रह्मयज्ञस्यविधिमुत्तमम् ॥ सर्ववेदांगपाठस्यफलमाप्नोतिसाधकः ॥ २८ ॥ वैश्वदेवंततःकुर्यान्नित्यश्राद्धंतथैवच ॥ अतिथिभ्योन्नदानंचनित्यमेवसमाचरेत् ॥ २९ ॥ गोग्रासंचततोदत्त्वाभुंजीतब्राह्मणैःसह ॥ अह्नस्तुपंचमेभागेप्रकुर्यादेतदुत्तमम् ॥ ३० ॥ इतिहासपुराणाद्यैःषष्ठसप्तमकौनयेत् ॥ अष्टमेलोकयात्रातुवहिःसंध्याततःपुनः ॥ ३१ ॥ अथसायंतनींसंध्यांप्रवक्ष्यामिमहामुने ॥ यदनुष्ठानमात्रेणमहामायाप्रसीदति ॥ ३२ ॥ आचम्यप्राणानायम्यसाधकःस्थिरमानसः ॥ बद्धपद्मासनोयोगीसायंकालेस्थिरोभवेत् ॥ ३३ ॥ श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौसगर्भःप्राणसंयमः ॥ अगर्भोध्यानमात्रंतुसचामंत्रःप्रकीर्तितः ॥ ३४ ॥ भूतशुद्ध्यादिकंकृत्वानान्यथाकर्मकीर्तितम् ॥ सलक्षोदेवतांध्यात्वापूरकुंभकरेचकैः ॥ ३५ ॥ ध्यानंप्रकुर्यात्संध्यायां सायंकालेविचक्षणः ॥ वृद्धांसरस्वतींदेवींकृष्णांगींकृष्णवाससम् ॥ ३६ ॥ शंखचक्रगदापद्महस्तांगरुडवाहनाम् ॥ नानारत्नलसद्भूषांक्वणन्मंजीरमेखलाम् ॥ ३७ ॥ अनर्घ्यरत्नमुकुटांतारहारावलीयुताम् ॥ ताटंकबद्धमाणिक्यकांतिशोभिकपोलकाम् ॥ ३८ ॥

साधक आचमन कर प्राणायाम करके स्थिर मौन हो पद्मासनसे बैठ योगयुक्त हो सायंकालमें स्थिरहो ॥ ३३ ॥ श्रुति स्मृतिआदि कर्मादिमें सगर्भ प्राणायाम होता है, अगर्भ प्राणायाम ध्यानमात्रक और अमंत्र कहा है ॥ ३४ ॥ भूतशुद्धिआदि करकै अन्यथा कर्मदूर कर रेचक पूरक कुंभक द्वारा सलक्षण (इष्ट) देवताका ध्यान करै ॥ ३५ ॥ इसप्रकार चतुर पुरुष संध्या कालमें ध्यान करके वृद्धा सरस्वती देवी कृष्णअंग कृष्णवस्त्र धारण किये ॥ ३६ ॥ शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये गरुडवाहना अनेक रत्नोंके भूषणोंसे शोभित मंजीर मेखलाके शब्दसे व्याप्त ॥ ३७॥ अनर्घ्य रत्नके मुकुट धारे तारहारावलीसंयुक्त ताटंक कर्णभूषणमें बँधे माणिक्यकी

कांतिसे शोभित कपोलवाली ॥ ३८ ॥ पीताम्बरधारिणी सच्चिदानन्दरूपिणी देवी सामवेदके सहित सत्यमार्गमें संयुक्त ॥ ३९ ॥ स्वर्लोकमें स्थित आदित्य मार्गमें गमन करनेवाली सूर्यमंडलसे आती हुई देवीको आवाहन करता हूं ॥ ४० ॥ इसप्रकार देवीको ध्यान करकै संध्या संकल्पकरै आपोहिष्ठा और आग्निश्चेति मंत्रोंसे ॥ ४१ ॥ और शेष पूर्ववत् आचमन आदि करै श्रीनारायणकी प्रीतिके निमित्त गायत्रीका उच्चारण करै ॥ ४२ ॥ शुद्ध मनसे साधक सूर्यके निमित्त अर्घ्यदे दोनोंचरण समानकर हाथमें अंजलिले ॥ ४३ ॥ मंडलमें स्थित देवताका ध्यान करके क्रमसे अर्घ्यदे जो मूढात्मा ज्ञानसे वर्जितहो नीरमें अर्घ्य देता है वह ज्ञानरहित होता है ॥ ४४ ॥ जो स्मृतिके मंत्रोंको उल्लंघन करता है

पीतांबरधरांदेवींसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ सामवेदेनसहितांसंयुतांसत्त्ववर्त्मना ॥ ३९ ॥ व्यवस्थितांचस्वर्लोकेआदित्यपथगामिनीम् ॥ आवाहयाम्यहंदेवीमायांतींसूर्यमंडलात् ॥ ४० ॥ एवंध्यात्वाचतांदेवींसंध्यासंकल्पमाचरेत् ॥ आपोहिष्ठेतिमंत्रेणअग्निश्चेतितथैवच ॥ ४१ ॥ विदध्यादाचमनकंशेषंपूर्ववदीरितम् ॥ गायत्रीमंत्रमुच्चार्यश्रीनारायणप्रीतये ॥ ४२ ॥ अर्घ्यंदद्याच्चसूर्यायसाधकःशुद्धमानसः ॥ उभौपादौसमौकृत्वाहस्तेधृत्वाजलांजलिम् ॥ ४३ ॥ देवंध्यात्वामंडलस्थंक्षिपेदर्घ्यंततःक्रमात् ॥ अर्घ्यंदद्यात्तुयोनीरेमूढात्माज्ञानवर्जितः ॥ ४४ ॥ उल्लंघ्यस्मृतिमंत्रांश्चप्रायाश्चित्तीभवेद्द्विजः ॥ ततःसूर्यमुपस्थायाप्यसावादित्यमंत्रतः ॥ ४५ ॥ गायत्र्याश्चजपंकुर्यादुपविश्यततोबृसीम् ॥ सहस्रांवातदर्धंवाश्रीदेवीध्यानपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ यथाप्रातःपुनस्तद्वदुपस्थानादिकंचरेत् ॥ सायंसंध्यातर्पणेचक्रमेणपरिकीर्तयेत् ॥ ४७ ॥ वसिष्ठऋषिरेवाऽत्रसरस्वत्याःप्रकीर्तितः ॥ देवताविष्णुरूपासाछंदश्चैवसरस्वती ॥ ४८ ॥ सायंकालीनसंध्यायास्तर्पणेविनियोगकः ॥ स्वरित्युक्त्वाचपुरुषंसामवेदंतथैवच ॥ ४९ ॥ मंडलंचेतिसंप्रोच्यहिरण्यगर्भकंतथा ॥ तथैवपरमात्मानंततोपिचसरस्वतीम् ॥ ५० ॥ वेदमातरमेवात्रसंकृतिंतद्वदेवच ॥ संध्यांवृद्धांतथाविष्णुरूपिणीमुषसींतथा ॥ ५१ ॥ निमृजींचतथासर्वसिद्धीनांकारिणींतथा ॥ सर्वमंत्राधिपतिकांभूर्भुवःस्वश्चपूरुषम् ॥ ५२ ॥ इत्येवंतर्पणंकार्यंसंध्यायाःश्रुतिसंमतम् ॥ सायंसंध्याविधानंचकथितंपापनाशनम् ॥ ५३ ॥

वह प्रायश्चित्ती होताहै फिर असावादित्य इस मंत्रसे सूर्योपस्थान करकै ॥ ४५ ॥ आसनपर बैठ गायत्रीका जप करै सहस्र वा पांचसौ श्रीदेवीके ध्यानपूर्वक जप करै ॥ ४६ ॥ और प्रभात कालके समान उपस्थानादि करै सायंसंध्याके तर्पण क्रमसे परिकीर्त्तन करै ॥ ४७ ॥ सायं संध्यारूप सरस्वतीका वसिष्ठ ऋषि विष्णु देवता सरस्वती छन्द है ॥ ४८ ॥ और सायंसंध्याके तर्पणमें विनियोग है स्वः कहकर पुरुषको सामवेदको ॥ ४९ ॥ मंडल हिरण्यगर्भका उच्चारण करके तथा परमात्मा, सरस्वती ॥ ५० ॥ वेद माता संकृति संध्या वृद्धा विष्णुरूपिणी उषसी ॥ ५१ ॥ 'निमृजीं सर्वसिद्धीनां कारिणीम्' सब मंत्रकी अधिपतिका भूर्भुवः पुरुष ॥ ५२ ॥ इस प्रकार संध्यामें श्रुति

सम्मत तर्पण करना चाहिये यह तुमसे पापनाशक सायंसंध्याका विधान कहा ॥५३॥ सब दुःख हरनेवाला व्याधिनाशक और मोक्षदायक है हे मुनिश्रेष्ठ सदाचारमें यह सायंसंध्यामें प्राधान्य कहा है ॥ ५४ ॥ संध्या करनेसे देवी भक्तोंको इष्ट देती हैं ओं स्वःपुरुषं तर्पयामि, ओं सामवेदं तर्पयामि, ओं मंडलं तर्पयामि इत्यादि कहे ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ श्रीनारायण बोले हे ब्रह्मन् ! अब गायत्रीका पाप नाशन यथेष्टफलदायक पुरश्चरण कहता हूं ॥ १ ॥ पर्वतके अग्रभाग नदीके किनारे बेलकी मूल जलाशय गोष्ठ देवालय अश्वत्थ उद्यान तुलसीवन, ॥ २ ॥ पुण्यक्षेत्र गुरुके पार्श्व चित्त एकाग्र वाले स्थलमें पुरश्चरण करनेवाला मंत्री सिद्ध होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ जिस किसीभी मंत्रका पुरश्चरण आरंभ करे तीनों व्याहृतियोंके सहित १०००० गायत्री जपे ॥ ४ ॥ नृसिंह सूर्य वाराहादि तांत्रिक, वा वैदिक पुरश्चरण कोई हो विना गायत्रीके जपे सब निष्फल होजाता है ॥ ५ ॥ सबही ब्राह्मण शाक्त हैं शैव और वैष्णव नहीं सब वेदमाता आदिशक्ति गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ पुरश्चरणमें तत्पर मनुष्य यत्नसे इसप्रकार प्रथम १०००० दशसहस्र मंत्र जपकर उसे शोधन कर पीछे पुरश्चरणमें तत्पर हो और मंत्रशोधनसे पहले अंगशोधन आत्मशोधन करे सो तीन लाख वा एकलाख आत्मशोधनके निमित्त गायत्री जपे,यही पुरश्चरण भास्करमें लिखा है ॥७॥ विद्वान् आत्मतत्त्वशोधनके निमित्त तीन लाख गायत्रीका जप करे अथवा वेद कथित आज्ञानुसार एक लाख जपे ॥ ८ ॥ जो अंगने और मंत्रशोधनके विना जो कुछ क्रिया करता है वह सब निष्फल होती है यह श्रुतिकथित कारण है ॥ ९ ॥ तपसे देहको तापित करे पितृ और देवताओंका तर्पण

सर्वदुःखहरंव्याधिनाशकंमोक्षदंतथा ॥ सदाचारेपुसंध्यायाःप्राधान्यंमुनिपुंगव ॥ ५४ ॥ संध्याचरणतोदेवीभक्ताभीष्टंप्रयच्छति ॥ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेविंशोऽध्यायः ॥२०॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अथातःश्रूयतांब्रह्मन्गायत्र्याःपापनाशनम् ॥ पुरश्चरणकंपुण्यंयथेष्टफलदायकम् ॥ १ ॥ पर्वताग्रेनदीतीरेबिल्वमूलेजलाशये ॥ गोष्ठेदेवालयेऽश्वत्थेउद्यानेतुलसीवने ॥ २ ॥ पुण्यक्षेत्रेगुरोःपार्श्वेचित्तैकाग्र्यस्थलेपिच ॥ पुरश्चरणकृन्मंत्रीसिध्यत्येवनसंशयः ॥ ३ ॥ यस्यकस्यापिमंत्रस्यपुरश्चरणमारभेत् ॥ व्याहृतित्रयसंयुक्तांगायत्रींचाऽयुतंजपेत् ॥ ४ ॥ नृसिंहार्कवराहाणांतांत्रिकंवैदिकंतथा ॥ विनाजप्त्वातुगायत्रींतत्सर्वंनिष्फलंभवेत् ॥ ५ ॥ सर्वेशाक्ताद्विजाःप्रोक्तानशैवानचवैष्णवाः ॥ आदिशक्तिमुपासंतेगायत्रींवेदमातरम् ॥ ६ ॥ मंत्रंसंशोध्ययत्नेनपुरश्चरणतत्परः ॥ मंत्रशोधनपूर्वांगमात्मशोधनमुत्तमम् ॥ ७ ॥ आत्मतत्त्वशोधनायत्रिलक्षंप्रजपेद्बुधः ॥ अथवाचैकलक्षंतुश्रुतिप्रोक्तेनवर्त्मना ॥ ८ ॥ आत्मशुद्धिंविनाकर्तुर्जपहोमादिकाःक्रियाः ॥ निष्फलास्तास्तुविज्ञेयाःकारणंश्रुतिचोदितम् ॥ ९ ॥ तपसातापयेद्देहंपितॄन्देवांश्चतर्पयेत् ॥ तपसास्वर्गमाप्नोतितपसाविंदतेमहत् ॥ १० ॥

करै कारण कि तपसेही स्वर्ग मिलता है और तपसे महानता होती है॥१०॥ क्षत्रिय अपनी आपत्ति बाहुवीर्यसे तरजाता है धनसे वैश्य, शूद्र सेवासे और ब्राह्मण जप होमसे आपत्ति तरजाता है ॥ ११ ॥ हे विप्रेन्द्र इस कारण यत्नपूर्वक तप करै तापस शरीरशोषणको ही उत्तम तपस्या कहते हैं ॥ १२ ॥ इसको विधिमार्ग कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतसे शोधे हे नारद! अब अन्नशुद्धि कारणको कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ विना मांगे जो मिला, उञ्छवृत्ति, शुक्ला अयाचित, भिक्षा यह चार वृत्ति हैं इस प्रकार वैदिकोंने अन्नकी शुद्धि कही है ॥ १४ ॥ शुद्ध भिक्षाअन्नको लेकर उसके चार भाग करकै उसमें एकभाग ब्राह्मणको दूसरा गोग्रास ॥ १५ ॥ अतिथियोंको तीसरा भाग तदुपरान्त अपनी भार्याको दे और आप ले जिस आश्रममें हो उसीके अनुसार ग्रासविधि करकै ॥ १६ ॥ यथाशक्ति यथाक्रमसे पहले गोमूत्र

क्षत्रियोबाहुवीर्यैणतरेदापदआत्मनः॥ धनेनवैश्यःशूद्रस्तुजपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥११॥ अतएवतुविप्रेंद्रतपःकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ शरीरशोषणंप्राहुस्तापसास्तपउत्तमम् ॥१२॥ शोधयेद्विधिमार्गेणकृच्छ्रचांद्रायणादिभिः ॥ अथान्नशुद्धिकरणंवक्ष्यामिशृणुनारद ॥ १३ ॥ अयाचितोञ्छशुक्लाख्यभिक्षावृत्तिचतुष्टयम् ॥ तांत्रिकैर्वैदिकैश्चैवंप्रोक्तान्नस्यविशुद्धता ॥ १४ ॥ भिक्षान्नंशुद्धमानीयकृत्वाभागचतुष्टयम् ॥ एकंभागंद्विजेभ्यस्तुगोग्रासस्तुद्वितीयकः ॥ १५ ॥ अतिथिभ्यस्तृतीयस्तुतदूर्ध्वंतुस्वभार्ययोः ॥ आश्रमस्ययथायस्यकृत्वाग्रासविधिंक्रमात् ॥१६॥ आदौक्षिप्त्वातुगोमूत्रंयथाशक्तियथाक्रमम् ॥ तदूर्ध्वंग्राससंख्यास्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥ १७ ॥ कुक्कुटांडप्रमाणंतुग्रासमानंविधीयते ॥ अष्टौग्रासागृहस्थस्यवनस्थस्यतदर्धकम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारीयथेष्टंचगोमूत्रविधिपूर्वकम् ॥ प्रोक्षणंनववारंचषड्वारंचत्रिवारकम् ॥ १९ ॥ निश्छिद्रंचकरंकृत्वासावित्रींचतदित्यृचम् ॥ मंत्रमुच्चार्यमनसाप्रोक्षणेविधिरुच्यते ॥ २० ॥ चौरोवायदिचांडालोवैश्यःक्षत्रस्तथैवच ॥ अन्नंदद्यात्तुयःकश्चिदधमोविधिरुच्यते ॥ २१ ॥ शूद्रान्नंशूद्रसंपर्कंशूद्रेणचसहाशनम् ॥ तेयांतिनरकंघोरंयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ २२ ॥ गायत्रीच्छंदोमंत्रस्ययथासंख्याक्षराणिच ॥ तावल्लक्षाणिकर्तव्यंपुरश्चरणकंतथा ॥ २३ ॥

प्रक्षेप करकै फिर वानप्रस्थ और गृहस्थको ग्रास संख्याका विधान करना चाहिये ॥ १७ ॥ कुक्कुट मुर्गेके अंडके समान ग्रासका परिमाण कहा है गृहस्थीको आठ वनस्थको चार ब्रह्मचारीको यथेष्ट गोमूत्रसे विधिपूर्वक नौवार छःवार तीन वार प्रोक्षण करने चाहिये गायत्री मंत्र उतनीहीं वार पढना चाहिये ॥१८॥१९॥ दोनों हाथ छिद्ररहित करकै सावित्री मंत्रको उच्चारण कर मनसे प्रोक्षणकी विधि कही है ॥ २० ॥ चौर चाण्डाल वैश्य क्षत्रिय इनके दिये अन्न अधम जाने इनके अन्नकी अधम विधि है ॥ २१ ॥ शूद्रका अन्न शूद्रसे संपर्क शूद्रके साथ भोजन जो करते हैं वह चन्द्र दिवाकरपर्यन्त घोर नरकमें जाते हैं ॥२२॥ गायत्री छंद मंत्रके जितने संख्यावाले अक्षर हैं उतनेही लाख पुरश्चरण करना चाहिये यह गायत्रीमंत्रका पुरश्चरण है और जो दूसरे मंत्रका पुरश्चरण हो वहां उसके अक्षरोंकी संख्या देखे॥ २३॥

विश्वामित्र का मत लाख पुरश्चरणका है जैसे विना जीवके देह कोई कर्म करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २४ ॥ इसी प्रकार पुरश्चरणके विना मंत्र है ज्येष्ठ आषाढ भाद्रमास पौषमास मलमास ॥ २५ ॥ मंगल शनिवार व्यतिपात वैधृति योग अष्टमी नवमी षष्ठी चतुर्थी त्रयोदशी ॥ २६ ॥ चौदश अमावास्या प्रदोष रात्रि यम 'भरणी' अग्नि कृत्तिका रुद्र 'आर्द्रा' सर्प आश्लेषा इन्द्र ज्येष्ठा वसु धनिष्ठा श्रवण नक्षत्र तथा जन्मनक्षत्रमें ॥ २७ ॥ मेष कर्क तुला कुंभ मकर लग्न पुरश्चरणमें यह मास तिथि नक्षत्र योग लग्न सब वर्जित हैं ॥ २८ ॥ जब चंद्रतारा (ग्रह) अनुकूल हों विशेष कर शुक्लपक्षमें पुरश्चरण करनेसे मंत्रसिद्धि होती है ॥ २९ ॥ पहले स्वस्तिवाचन कराय विधिपूर्वक नांदीश्राद्ध करके भोजनाच्छादनसे यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको तृप्तकर ॥ ३० ॥ गुरु आदिकी आज्ञासे आरंभ

द्वात्रिंशल्लक्षमानंतुविश्वामित्रमतंतथा ॥ जीवहीनोयथादेहःसर्वकर्मसुनक्षमः ॥ २४ ॥ पुरश्चरणहीनस्तुतथामंत्रःप्रकीर्तितः ॥ ज्येष्ठाषाढौभाद्रपदंपौषंतुमलमासकम् ॥२५॥ अंगारंशनिवारंचव्यतीपातंचवैधृतिम् ॥ अष्टमींनवमींषष्ठींचतुर्थींचत्रयोदशीम् ॥ २६ ॥ चतुर्दशीममावास्यांप्रदोषंचतथानिशाम् ॥ यमाग्निरुद्रसर्पैन्द्रवसुश्रवणजन्मभम् ॥ २७ ॥ मेषकर्कतुलाकुंभान्मकरंचैववर्जयेत् ॥ सर्वाण्येतानिवर्ज्यानिपुरश्चरणकर्मणि ॥ २८ ॥ चंद्रतारानुकूलेचशुक्लपक्षेविशेषतः ॥ पुरश्चरणंकुर्यान्मंत्रसिद्धिःप्रजायते ॥ २९ ॥ स्वस्तिवाचनंकुर्यान्नांदीश्राद्धंयथाविधि ॥ विप्रान्संतर्प्ययत्नेनभोजनाच्छादनादिभिः ॥ ३० ॥ आरभेत्तुततःपश्चादनुज्ञानपुरःसरम् ॥ प्रत्यङ्मुखशिवस्थानेद्विजश्चान्यतमेजपेत् ॥३१॥ काशीपुरीचकेदारोमहाकालोऽथनासिकम् ॥ त्र्यंबकंचमहाक्षेत्रंपंचदीपाइमेभुवि ॥ ३२ ॥ सर्वत्रैवहिदीपस्तुकूर्मासनमितिस्मृतम् ॥ प्रारंभदिनमारभ्यसमाप्तिदिवसावधि ॥ ३३ ॥ नन्यूनंनातिरिक्तंचजपंकुर्याद्दिनेदिने ॥ नैरंतर्येणकुर्वंतिपुरश्चर्यांमुनीश्वराः ॥ ३४ ॥ प्रातरारभ्यविधिवज्जपेन्मध्यंदिनावधि ॥ मनःसंहरणंशौचंध्यानंमंत्रार्थचिंतनम् ॥ ३५ ॥ गायत्रीच्छंदोमंत्रस्ययथासंख्याक्षराणिच ॥ तावल्लक्षाणिकर्तव्यंपुरश्चरणकंतथा ॥ ३६ ॥

करै शिवके स्थानमें लिंगके समीप पश्चिम मुख होय जप करै वा अन्य शिवस्थानोंमें जप करै ॥ ३१ ॥ काशीपुरी केदारनाथ महाकाल (उज्जैन) नासिक त्र्यम्बक महाक्षेत्र यह पांच द्वीप अर्थात् शंकरके प्रसिद्ध स्थान हैं ॥ ३२ ॥ सब द्वीपोंमें कूर्मासन कहा है और इन स्थलोंके अतिरिक्त कूर्म चक्रभी द्वीप है प्रारंभसे लेकर जबतक समाप्ति हो॥ ३३ ॥प्रतिदिन बराबर जप करै न्यूनाधिक न करै मुनीश्वर पुरश्चरणको निरन्तरही करते हैं ॥ ३४ ॥ प्रभातसे लेकर विधिपूर्वक मध्याह्नतक जप करै मनका रोकना पवित्रता ध्यान मंत्रार्थका चिन्तन करना गायत्री छन्दके जितने अक्षर हैं उतनेही लाख पुरश्चरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

पश्चात् उसका दशांश घृत दूध ओदनसे तथा तिल बेलपत्र फूल शर्करादि युक्त पदार्थोंसे हवन करै ॥ ३७ ॥ इसप्रकार दशांश होमसे गायत्रीका सेवन करै तो यह धर्म अर्थ काम मोक्षकी देनेवाली होती है ॥ ३८ ॥ नित्य निमित्त काम्य कार्यों तथा मोक्षमें परायण हुआ यही जपै इस लोक वा परलोकमें गायत्रीसे परे कोई पदार्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ दूसरा पुरश्चरण कहते हैं मध्याह्नमें मितभोजन कर मौन रहै तीनवार स्नान कर अर्चनमें तत्पर रहै जलमें धीमान् अनन्य मन तीन लाख जप करै ॥ ४० ॥ इसप्रकार पहले पुरश्चरण कर पीछे काम्य कर्म वा स्वेच्छासे जबतक कार्य सिद्ध नहो जपादिक करता रहै ॥ ४१ ॥ सामान्य काम्य कर्मादिकी यथावत् विधि कहते हैं सूर्योदयमें स्नानकर प्रतिदिन सहस्र जप करै ॥ ४२ ॥ तो आयु आरोग्य ऐश्वर्य और धन बहुत मिलता है छः महीने तीन

जुहुयात्तद्दशांशेनसघृतेनपयोंधसा ॥ तिलैःपत्रैःप्रसूनैश्चयवैश्चमधुरान्वितैः ॥ ३७ ॥ कुर्याद्दशांशतोहोमंततःसिद्धोभवेन्मनुः ॥ गायत्रीचैवसंसेव्याधर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ३८ ॥ नित्यैनैमित्तिकेकाम्येत्रितयेतुपरायणः ॥ गायत्र्यास्तुपरंनास्तिइहलोकेपरत्रच ॥ ३९ ॥ मध्याह्नमितभुङ्मौनीत्रिःस्नानार्चनतत्परः ॥ जलेलक्षत्रयंधीमाननन्यमानसक्रियः ॥ ४० ॥ कर्मणायोजपेत्पश्चात्कर्मभिःस्वेच्छयाऽपिवा ॥ यावत्कार्यंनसिद्धयेत्तुतावत्कुर्याज्जपादिकम् ॥ ॥ ४१ ॥ सामान्यकाम्यकर्मादौयथावद्विधिरुच्यते ॥ आदित्यस्योदयेस्नात्वासहस्रंप्रत्यहंजपेत् ॥ ४२ ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यंधनंचलभतेध्रुवम् ॥ षण्मासंवात्रिमासंवावर्षांतेसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ पद्मानांलक्षहोमेनघृताक्तानांहुताशने ॥ प्राप्नोतिनिखिलंमोक्षंसिध्यत्येवनसंशयः ॥ ४४ ॥ मंत्रसिद्धिं विनाकर्तुंजपहोमादिकाःक्रियाः ॥ काम्यंवायदिवामोक्षःसर्वंतन्निष्फलंभवेत् ॥ ४५ ॥ पंचविंशतिलक्षेणदध्नाक्षीरेणवाहुतात् ॥ स्वदेहेसिध्यतेजंतुर्महर्षीणांमतंतथा ॥ ४६ ॥ अष्टांगयोगसिद्धयाचनरःप्राप्नोतियत्फलम् ॥ तत्फलंसिद्धिमाप्नोतिनात्रकार्याविचारणा ॥ ४७ ॥ शक्तोवापित्वशक्तोवाआहारंनियतंचरेत् ॥ षण्मासात्तस्यसिद्धिःस्याद्गुरुभक्तिरतःसदा ॥ ४८ ॥ एकाहंपंचगव्याशीचैकाहंमारुताशनः ॥ एकाहंब्राह्मणान्नाशीगायत्रीजपकृद्भवेत् ॥ ४९ ॥

महीने वा एक वर्षके उपरान्त सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ एक लाख घृतमें बोरे कमलोंके हवनसे मोक्ष अवश्य प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥ मंत्रसिद्धिके विना कर्ताकी जप होमादि सब किया काम्य वा मोक्ष सब निष्फल होती हैं ॥ ४५ ॥ पचीस लाख दधि और क्षीरकी आहुती देनेसे इसी जन्ममें प्राणी सिद्ध होता है यह महर्षियोंका मत है ॥ ४६ ॥ अष्टांग योगकी सिद्धिसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है उस फलको मंत्र सिद्धिसे प्राप्त करसक्ता है, इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं ॥ ४७ ॥ शक्त वा अशक्त जो नियत आहारसे मंत्र जपता है उस गुरुभक्तको छः महीनेमें सिद्धि होजाती है ॥ ४८ ॥ एकदिन पंचगव्य एकदिन वायुभोजन

एकदिन ब्राह्मणोंके यहांका अन्न खाकर गायत्री जप करै ॥ ४९ ॥ गंगादि तीर्थोंमें जाकर जलके अन्तरमें ही सौवार जपै और सौवार जपकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५० ॥ और चान्द्रायणादि कृच्छ्रव्रतोंका अवश्य फल पाता है राजा वा ब्राह्मण जो अपने घरमें तप करै ॥ ५१ ॥ गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थके अपने अधिकार परत्वसे यज्ञादि पूर्वक फल मिलता है ॥ ५२ ॥ मोक्षकी आकांक्षावाले श्रौतस्मार्तादि कर्म करते हैं, साग्निक सदाचार विद्वानोंसे शिक्षित ब्राह्मण ॥ ५३ ॥ प्रयत्नसे फल मूल उदक वा भिक्षा अन्न शुद्धखाय आठ ग्रास स्वयं भोजन करै ॥ ५४ ॥ इसप्रकार पुरश्चरण करके मंत्रसिद्धिको प्राप्त होता है. हे देवर्षे! इसके अनुष्ठानसे दारिद्र नष्ट होजाता है ॥

स्नात्वागंगादितीर्थेषुशतमंतर्जलेजपेत् ॥ शतेनापस्ततःपीत्वासर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५० ॥ चांद्रायणादिकृच्छ्रस्यफलंप्राप्नोतिनिश्चितम् ॥ राजा वायदिवाविप्रस्तपःकुर्यात्स्वकेगृहे ॥ ५१ ॥ गृहस्थोब्रह्मचारीवावानप्रस्थोऽथवापिच ॥ अधिकारपरत्वेनफलंयज्ञादिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ श्रौतस्मार्तादि कंकर्मक्रियतेमोक्षकांक्षिभिः ॥ साग्निकश्चसदाचारोविद्वद्भिश्चसुशिक्षितः ॥५३॥ ततःकुर्यात्प्रयत्नेनफलमूलोदकादिभिः ॥ भिक्षान्नंशुद्धमश्नीयादष्टौग्रासा न्स्वयंभुजेत् ॥ ५४ ॥ एवंपुरश्चरणकंकृत्वामंत्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ देवर्षेयदनुष्ठानाद्दारिद्र्यंविलयंव्रजेत् ॥५५॥ यच्छ्रुत्वापिचपुण्यानांमहतींसिद्धिमाप्नु यात् ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ नारायणउवाच ॥ अथातःश्रूयतांब्रह्मन्वैश्वदेवविधानकम् ॥ पुरश्चर्या प्रसंगेनममापिस्मृतिमागतम् ॥ १ ॥ देवयज्ञोब्रह्मयज्ञोभूतयज्ञस्तथैवच ॥ पितृयज्ञोमनुष्यस्ययज्ञश्चैवतुपंचमः ॥ २ ॥ पंचसूनागृहस्थस्यचुल्लीपेषण्युप स्करः ॥ कंडणीचोदकुंभश्चतेषांपापस्यशांतये ॥ ३ ॥ नचुल्ल्यांनायसेपात्रेनभूमौनचखर्परे ॥ वैश्वदेवंप्रकुर्वीतकुंडेवास्थंडिलेपिवा ॥ ४ ॥ नपाणिना नशूर्पेणनचमेध्याजिनादिभिः ॥ मुखेनोपधमेदग्निंमुखादेवव्यजायत ॥ ५ ॥

॥ ५५ ॥ इसके सुननेसे पुण्योंकी बडी सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ छ ॥ श्रीनारायण बोले हे देवर्षे! अब वैश्यदेव विधान सुनो पुरश्चरणके प्रसंगसे जो हमको स्मरण हुआ है ॥ १ ॥ देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, यह पांचयज्ञ हैं ॥ २ ॥ गृहस्थको पांच हत्या लगती हैं चूल्हा चक्की बुहारी ओखली घटकुंभ यहां जो चैंटी आदि मरती हैं इनकी पापशान्तिके निमित्त यज्ञ करै ॥ ३ ॥ चूल्हा लोहपात्र भूमि खर्पर इनस्थानोंमें वैश्वदेव न करै कुंड वा स्थंडिल स्थानमें करै ॥ ४ ॥ हाथ शूर्प मृगचर्म इनसे अग्निको न फूंके किन्तु मुखकी फूंकसे धमन करै

कारण कि, मुखसे अग्नि उत्पन्न हुई है ॥ ५ ॥ वस्त्रसे बाले तौ व्याधिहो, शूर्पसे धननाश, हाथसे मृत्यु होती है मुखसे कर्मसिद्धि होती है ॥ ६ ॥ फल दही घी मूल शाक उदक आदिसे करै यदि यह प्राप्त नहीं तो जिस किसी काष्ठ मूल तृणादिसे करै ॥ ७ ॥ तेल क्षारको छोडकर सर्पि (घी) दही दूधसे हवन करै यह नहीं तो जलसेही हवन करै ॥ ८ ॥ शुष्क और बासी अन्न हवन करनेसे कुष्ठी उच्छिष्टसे शत्रुओंके वशीभूत रूखे पदार्थोंसे दरिद्र और क्षारसे हवन करै तौ नरकमें जाता है ॥ ९ ॥ भस्मयुक्त अंगारोंको अन्नपाचक अग्निके उत्तर देशसे लावै यह लेकर वैश्वदेवके निमित्त हवन करै क्षारादि मिश्रित न करै ॥ १० ॥ जो मूर्ख विना वैश्व

पटकेनभवेद्व्याधिःशूर्पेणधननाशनम् ॥ पाणिनामृत्युमाप्नोतिकर्मसिद्धिर्मुखेनतु॥६॥फलैर्दधिघृतैःकुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः॥अलाभेयेनकेनापिकाष्ठमूलतृणादिभिः ॥७॥ जुहुयात्सर्पिपाभ्यक्तंतैलक्षारविवर्जितम् ॥ दध्यक्तंवापायसाक्तंतदभावेंभसापिवा ॥८॥ शुष्कैःपर्युषितैःकुष्ठीउच्छिष्टेनद्विषांवशी ॥ रूक्षैर्द्दरिद्रतांयातिक्षारंहुत्वाव्रजत्यधः ॥ ९ ॥ अंगारान्भस्ममिश्रांस्तुनिर्हृत्योत्तरतोनलात् ॥ जुहुयाद्वैश्वदेवंतुनक्षारादिविमिश्रितम् ॥ १० ॥ अकृत्वा वैश्वदेवंतुयोभुंक्तेमूढधीर्द्विजः ॥ समूढोनरकंयातिकालसूत्रमवाक्शिराः ॥ ११ ॥ शाकंवायदिवापत्रंमूलंवायदिवाफलम् ॥ संकल्पयेद्यदाहारंतेनाग्नौजुहुयादपि ॥१२॥ अकृतेवैश्वदेवेतुभिक्षौभिक्षार्थमागते ॥ उद्धृत्यवैश्वदेवार्थंभिक्षांदत्त्वाविसर्जयेत्॥१३॥वैश्वदेवकृतंदोषंशक्तोभिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ नतुभिक्षुकृतंदोषंवैश्वदेवोव्यपोहति॥१४॥यतिश्चब्रह्मचारीचपक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥ तयोरन्नमदत्त्वातुभुक्त्वाचांद्रायणंचरेत्॥१५॥वैश्वदेवानंतरंचगोग्रासंप्रतिपादयेत् ॥ तद्विधानंप्रवक्ष्यामिशृणुदेवर्षिपूजित ॥ १६ ॥ सुरभिर्वैष्णवीमातानित्यंविष्णुपदेस्थिता ॥ गोग्रासंचमयादत्तंसुरभेप्रतिगृह्यताम् ॥ १७ ॥

देव किये भोजन करते हैं वह मूढ कालसूत्रमें नीचेको मुखकर गिरते हैं ॥ ११ ॥ शाकपत्र मूल फल जिसवस्तुको भोजन करै उसे अग्निमें हवन करै ॥ १२ ॥ विना वैश्वदेवाकिये भिक्षुकके भिक्षा करनेके निमित्त आनेमें वैश्वदेव भाग निकालकर भिक्षादेकर विसर्जन करै ॥ १३ ॥ अतिथि वैश्वदेवका दोष दूर करसक्ता है पर भिक्षुके दोषको वैश्वदेव दूर नहीं करसक्ता. जो उसको भिक्षा न दीजाय ॥ १४ ॥ यति और ब्रह्मचारी यह दोनों पक्वान्नके स्वामी हैं, उनको विनादिये भोजन करकै चान्द्रायण करना पडता है ॥ १५ ॥ वैश्वदेव करनेके उपरान्त गोग्रास दे हे देवर्षे ! सुनो उसकाविधान कहता हूं ॥ १६ ॥ सुरभी वैष्णवी माता नित्य विष्णुपदमें स्थित है मैं

गोग्रासको देताहूं सुरभी ग्रहण करे ॥ १७ ॥ "गोभ्यश्वनमः" ऐसा कहकर गौकीपूजा गौको अर्पण करे, गोग्राससे गोमाता सुरभी प्रसन्न होती है ॥ १८ ॥ फिर गोदोहन कालतक अर्थात् जितनी देरतक गौ दुही जाती है उतने समयतक अतिथिकी प्रतीक्षा करता हुआ आँगनमें स्थित रहै कि, कोई आवे तो उसे कुछ भागदे भोजन करै अतिथी जिसके घरसे भग्न आशाहोकर लौटजाता है ॥ १९ ॥ वह उसको अपने पाप देकर उसका पुण्य लेकर चलाजाता है माता पिता गुरु भ्राता दास आश्रित ॥ २० ॥ अभ्यागत अतिथि अग्नि यह पोष्यवर्ग कहेगये हैं यह जानकर जो मूढ गृहाश्रम नहीं करता ॥ २१ ॥ उसको धर्मसे यह लोक और परलोक नहीं है धनवान्को जो फल सोमयागसे प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ दरिद्री उसको पंचयज्ञ द्वारा विनाही परिश्रम प्राप्त करता है. हे मुनिश्रेष्ठ ! अब प्राणाग्निहोत्रको कहूंगा ॥

गोभ्यश्वनमइत्येवपूजांकृत्वागवेऽर्पयेत् ॥ गोग्रासेनतुगोमातासुरभिःसंप्रसीदति ॥ १८ ॥ ततोगोदोहनंकालंतिष्ठेच्चैवगृहांगणे ॥ अतिथि र्यत्रभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ १९ ॥ सतस्मैदुष्कृतंदत्त्वापुण्यमादायगच्छति ॥ मातापितागुरुर्भ्राताप्रजादासःसमाश्रितः ॥ २० ॥ अभ्यागतोतिथिश्चाग्निरेतेपोष्याउदाहृताः ॥ एवंज्ञात्वातुयोमोहान्नकरोतिगृहाश्रमम् ॥ २१ ॥ तस्यनायंतुनपरोलोकोभवतिधर्मतः ॥ यत्फलंसोमयागे नप्राप्नोतिधनवान्द्विजः ॥ २२ ॥ सम्यक्पंचमहायज्ञैर्दरिद्रस्तेनचाप्नुयात् ॥ अथप्राणाग्निहोत्रंतुवक्ष्यामिमुनिपुंगव ॥ २३ ॥ यज्ज्ञात्वामुच्यतेजंतुर्जन्म मृत्युजरादिभिः ॥ परिज्ञानेनमुच्यंतेनराःपातककिल्बिषैः ॥२४॥ विधिनाभुज्यतेयेनमुच्येतसऋणत्रयात् ॥ कुलान्युद्धरतेविप्रोनरकानेकविंशतिम् ॥ ॥ २५ ॥ सर्वयज्ञफलप्राप्तिःसर्वलोकेषुगच्छति ॥ हृत्पुंडरीकमरणिर्मनोमंथानसंज्ञकम् ॥२६॥ वायुरज्ज्वामथेदग्निंचक्षुरध्वर्युरेवच॥तर्जनीमध्यमांगुष्ठैः प्राणस्यैवाहुतिंक्षिपेत् ॥ २७ ॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरपानस्याहुतिंक्षिपेत् ॥ कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्व्यानस्यतदनंतरम्॥२८॥कनिष्ठातर्जन्यंगुष्ठैरुदानस्याहुतिंक्षिपेत् ॥ सर्वांगुलैर्गृहीत्वान्नंसमानस्याहुतिंक्षिपेत् ॥२९॥ स्वाहांतान्प्रणवाद्यांश्चनाममंत्रांश्चवैपठेत् ॥ मुखेचाहवनीयस्तुहृदयेगार्हपत्यकः ॥३०॥

॥ २३ ॥ जिसको जानकर यह प्राणी जन्म मृत्यु जरा आदिसे छूटजाता है इसके ज्ञानसे मनुष्योंके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥ जो विधिपूर्वक भोजन करता है वह तीनों ऋणसे छूट जाता है और वह ब्राह्मण (२१) कुलको उद्धार करता है ॥ २५ ॥ सब यज्ञोंके फलकी प्राप्ति सब लोकोंकी प्रीप्ति होती है हृदयकमलको अरणी मन मथानी॥ २६ ॥ वायुकी रज्जुकरके अग्निको मथै चक्षुको अध्वर्यु करै तर्जनी मध्यमा अंगुष्ठसे प्राणकी आहुती दे ॥ २७ ॥ मध्यमा अनामिका अंगुष्ठसे अपानकी आहुतीदे कनिष्ठिका अनामिका अंगुष्ठसे व्यानकी आहुती दे ॥ २८ ॥ कनिष्ठिका तर्जनी अंगुष्ठसे उदानकी आहुती दे सब अंगुलियोंसे अन्नको ग्रहण करकै समानकी आहुती दे ॥ २९ ॥ सबके अन्तमें स्वाहा लगाकर 'ओं प्राणायस्वाहा' इसप्रकार नाममंत्रोंसे पढै मुखमें आहवनीय हृदयमें गार्हपत्य ॥ ३० ॥

नाभिमें दक्षिणाग्नि अधस्थानमें आवसथ्य कहैं वाक् होता प्राणउद्गाता चक्षु अध्वर्यु ॥ ३१ ॥ मन ब्रह्मा श्रोत्र आग्नीध्र अहंकार पशु प्रणव पय है ॥ ३२ ॥ बुद्धि पत्नि है जिसके आधीन यह गृहाश्रमी है हृदय वेदी रोम दर्भ है स्रुक् स्रुव दोनों हाथ हैं प्राण मंत्रोंकाऋषि सुवर्णवर्ण क्षुधाग्निक ऋषि है आदित्य देवता गायत्री छन्द है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह उच्चारण कर "प्राणायस्वाहा" कहे "इदमादित्य देवायनमः" यह भी कहे ॥ ३५ ॥ अपान मंत्रका धवलाकार गोक्षीर श्रद्धा अग्नि ऋषि सोम देवता है ॥ ३६ ॥ उष्णिक् छन्द है यह कह "अपानाय स्वाहा सोमाय इदं च नमम" यह इसमें ऊह करै ॥ ३७ ॥ व्यान मंत्रका अम्बुजवर्ण हुताशन ऋषि है अग्नि देवता अनुष्टुप्

नाभौचदक्षिणाग्निःस्यादधःसभ्यावसथ्यकौ ॥ वाग्घोताप्राणउद्गाताचक्षुरध्वर्युरेवच ॥३१॥ मनोब्रह्माभवेच्छ्रोत्रमाग्नीध्रस्थानएवच ॥ अहंकारःपशुश्चा त्रप्रणवःपयईरितम् ॥३२॥ बुद्धिश्चपत्नीसंप्रोक्तायदधीनोगृहाश्रमी ॥ उरोवेदिस्तुरोमाणिदर्भाःस्युःस्रुक्स्रुवौकरौ ॥ ३३ ॥ प्राणमंत्रस्यचऋषीरुक्मवर्णः क्षुधाग्निकः ॥ देवतादित्यएवात्रगायत्रीच्छंदउच्यते ॥३४॥ प्राणायचतथास्वाहामंत्रांतेकीर्तयेदपि ॥ इदमादित्यदेवायनममेतिवदेदपि ॥३५॥ अपानमंत्रस्यतथागोक्षीरधवलाकृतिः ॥ श्रद्धाग्निऋषिरेवात्रसोमोवैदेवतास्मृता ॥३६॥ उष्णिक्छंदस्तथाऽपानायस्वाहेत्यपिकीर्तयेत् ॥ सोमायेदंचनममेत्यत्रोहः परिकीर्तितः ॥३७॥ व्यानमंत्रस्यचाख्यातोंबुजवर्णहुताशनः ॥ ऋषिरुक्तोदेवताग्निरनुष्टुप्छंदईरितम् ॥ ३८ ॥ व्यानायचतथास्वाहाऽग्नयेदंनममेत्यपि ॥ उदानमंत्रस्यतथाशक्रगोपसवर्णकः ॥३९॥ ऋषिरग्निःसमाख्यातोवायुर्वैदेवतास्मृता ॥ बृहतीच्छंदआख्यातमुदानायचपूर्ववत् ॥ ४० ॥ वायवेचेदंनममएवं चैवोच्चरेद्द्विजः ॥ समानवायुमंत्रस्यविद्युद्वर्णोविरूपकः ॥४१॥ ऋषिरग्निःसमाख्यातःपर्जन्योदेवतामता ॥ पंक्तिश्छंदःसमाख्यातंसमानायचपूर्ववत् ॥ ४२ ॥ पर्जन्यायेदमित्युक्त्वाषष्ठींचैवाहुतिंक्षिपेत् ॥ वैश्वानरोमहानग्निर्ऋषिर्वैपरिकीर्तितः ॥ ४३ ॥ गायत्रीच्छंदआख्यातंदेवस्त्वात्माभवेदपि ॥ स्वाहांतोमंत्र आख्यातःपरमात्मनउच्चरेत् ॥ ४४ ॥

छन्द है ॥ ३८ ॥ "व्यानायस्वाहा अग्नय इदं नमम" कहै उदान मंत्रका शक्र गोप सवर्ण ॥ ३९ ॥ अग्नि ऋषि कहा है वायु देवता बृहती छन्द है "उदानाय स्वाहा ॥ ४० ॥ वायवेचेदं नमम" कहे समान वायु मंत्रका विद्युद्वर्ण विरूपक ॥ ४१ ॥ अग्नि ऋषि है. पर्जन्य देवता पंक्ति छन्द है "समानायस्वाहा ॥ ४२ ॥ पर्यन्यायेदं नमम" कहकर छठी आहुती दे वैश्वानर महान् अग्निमें ऋषि कहा है ॥ ४३ ॥ गायत्री छन्द आत्मा देवता है "ओं ब्रह्मणे स्वाहा" इसप्रकार कहकर "इदं नमम" कहै ॥ ४४ ॥

यह प्राणाग्निहोत्र है यह जानकर विधि करनेसे ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ यह प्राणाग्निहोत्रविद्या संक्षेपसे कही है ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ नारायण बोले "अमृतापिधानम्" यह कहकर अर्थात् हे अमृतरूपी जल! तुम हमारे भक्ष अन्नके आच्छादकरूप हो, यह कह भोजनान्तमें एक गंडूष जलपान करे फिर पात्रोंसे उच्छिष्ट भागियोंको दे ॥ १ ॥ जो कोई हमारे कुलमें बंधु आदि तथा दासादि अन्नके कांक्षी हैं वे सब मेरे दिये अन्नसे तृप्तिको प्राप्त हों ॥ २ ॥ जो दुःखदायक अपुण्यस्थान है उसमें पद्मों अरबों वर्षों रहनेवाले अर्थियोंको दिया हुआ यह उदक प्राप्त हो इससे उनकी अक्षय तृप्ति हो यह मंत्र पढकर जल दे ॥ ३ ॥ पवित्रग्रंथिको छोडकर मंडलभूमिमें निक्षेप करे जो उस कुशग्रंथिके

इदंनममचेत्येवंजातंप्राणाग्निहोत्रकम् ॥ एतज्ज्ञात्वाविधिंकृत्वाब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ४५ ॥ प्राणाग्निहोत्रविद्येयंसंक्षेपात्कथिताहिते ॥ ॥ इतिश्री देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधेद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ नारायणउवाच ॥ अमृतापिधानमित्येवमुच्चार्यसाधकोत्तमः ॥उच्छिष्टभाग्भ्यः पात्रान्नंदद्यादंतेविचक्षणः ॥ १ ॥ येकेचास्मत्कुलेजातादासादास्योन्नकांक्षिणः ॥ तेसर्वेतृप्तिमायांतुमयादत्तेनभूतले ॥ २ ॥ रौरवेऽपुण्यनिलयेपद्मार्बुदनिवासिनाम् ॥ अर्थिनामुदकंदत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ३ ॥ पवित्रग्रंथिमुत्सृज्यमंडलेभुविनिक्षिपेत् ॥ पात्रेतुनिक्षिपेद्यस्तुसविप्रःपंक्तिदूषकः ॥ ४ ॥ उच्छिष्टस्तेनसंस्पृष्टःशुनाशूद्रेणचद्विजः ॥ उपोष्यरजनीमेकांपंचगव्येनशुध्यति ॥ ५ ॥ अनुच्छिष्टेनसंस्पृष्टैःस्नानमेवविधीयते ॥ एकाहुतिप्रदाने नकोटियज्ञफलंलभेत् ॥ ६ ॥ पंचभिःपंचकोटीनांतदनंतफलंस्मृतम् ॥ प्राणाग्निहोत्रवेत्रेयोह्यन्नदानंकरोतिच ॥ ७॥ दातुश्चैवतुयत्पुण्यंभोक्तुश्चैवतुयत्फलम् ॥ प्राप्नुतस्तौतदेवद्वावुभौतौस्वर्गगामिनौ॥८॥सपवित्रकरोभुंक्तेयस्तुविप्रोविधानतः ॥ ग्रासेग्रासेफलंतस्यपंचगव्यसमंभवेत् ॥ ९ ॥

पात्रमें डालता है वह ब्राह्मण पंक्तिदूषक है ॥ ४ ॥ जो उच्छिष्ट होकर सुना और शूद्रको स्पर्श किया हो वा उच्छिष्टको छुआ हो तो एक रात व्रत रहकर पंचगव्यसे शुद्धि होती है ॥ ५ ॥ जो स्वयं उच्छिष्ट अनुच्छिष्टसे स्पर्श होजाय तो स्नान करना चाहिये और एक आहुति देनेसे कोटि यज्ञका फल होता है ॥ ६ ॥ पांच आहुतिसे पांच कोटि यज्ञका फल कहा है तथा अनन्त होता है जो प्राणाग्नि होत्र करनेवालेको अन्नदान करता है ॥ ७ ॥ दाता भोक्ताको जो फल है उससे वह दोनोंही स्वर्गगामी होते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण विधानसे पवित्र हाथकर खाता है उसको प्रत्येक ग्रासमें पंचगव्यके समान फल होता है ॥ ९ ॥

पूजाकालमें जो जप तर्पण तीनों कालकर्ता है होम ब्राह्मणभोजन मार्जनादि करता है उसको पंचांग पुरश्चरण कहते हैं॥ १०॥ अधःशयन करताहुआ धर्मात्मा इन्द्रिय और क्रोधजय किये लघु और मिष्टभोजी विनीत शान्त चित्त ॥ ११ ॥ नित्यही तीन सवनमें स्नान करनेवाला नित्य शुभ भाषण करनेवाला हो, स्त्री शूद्र पतित व्रात्य नास्तिक उच्छिष्टोंसे भाषण करता है ॥ १२ ॥ तथा चाण्डाल इनसे हे मुनिसत्तम ! भाषण न करे. जप होम अर्चनादिमें प्रवृत्त पुरुषको प्रणाम करे उससे भाषण न करे॥ १३॥ मैथुनका आलाप और उसकी गोष्ठीभी त्यागन करे कर्म मन वचनसे यह सब अवस्थाओंमें त्यागदे ॥ १४ ॥ सर्वत्र मैथुनके त्यागसेही ब्रह्मचारी होता है, राजा और गृहस्थ दोनोंको ब्रह्मचर्य कहा है ॥ १५ ॥ ऋतुस्नाता होनेपर जो विधिपूर्वक स्त्री गमन है और संस्कार की हुई भार्यामें प्रयत्नसे ऋतु देखकर ॥ १६ ॥ रात्रिमें जो

पूजाकालत्रयेनित्यंजपस्तर्पणमेवच ॥ होमोब्राह्मणभुक्तिश्चपुरश्चरणमुच्यते ॥ १०॥ अधःशयानोधर्मात्माजितक्रोधोजितेंद्रियः ॥ लघुमिष्टहिताशीचविनीतःशांतचेतसः ॥ ११॥ नित्यंत्रिषवणस्नायीनित्यंसशुभभाषणः॥ स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम्॥ १२॥ चांडालभाषणंचैवनकुर्यान्मुनिसत्तम॥नत्वानैवचभाषेतजपहोमार्चनादिषु॥ १३॥ मैथुनस्यतथालापंतद्गोष्ठीमपिवर्जयेत् ॥ कर्मणामनसावाचासर्वावस्थासुसर्वदा॥ १४॥ सर्वत्रमैथुनत्यागोब्रह्मचर्यंप्रचक्षते॥राज्ञश्चैवगृहस्थस्यब्रह्मचर्यमुदाहृतम्॥ १५॥ ऋतुस्नातेषुदारेषुसंगतिर्याविधानतः॥संस्कृतायांसवर्णायामृतुंदृष्ट्वाप्रयत्नतः॥ १६॥ रात्रौतुगमनंकार्यंब्रह्मचर्यंहरेन्नतत् ॥ ऋणत्रयमसंशोध्यत्वनुत्पाद्यसुतानपि ॥ १७ ॥ तथायज्ञाननिष्ट्वाचमोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ अजागलस्ययज्जन्मतज्जन्मश्रुतिचोदितम् ॥ १८ ॥ अतःकार्यंतुविप्रेंद्रऋणत्रयविशोधनम् ॥ तेदेवानामृषीणांचपितृणामृणिनस्तथा ॥ १९ ॥ ऋषिभ्योब्रह्मचर्येणपितृभ्यस्तुतिलोदकैः ॥ मुच्येद्यज्ञेनदेवेभ्यःस्वाश्रमंधर्ममाचरेत् ॥ २० ॥ क्षीराहारीफलाशीवाशाकाशीवाहविष्यभुक् ॥ भिक्षाशीवाजपेद्विद्वान्कृच्छ्रचांद्रायणादिकृत् ॥ २१ ॥

गमन करता है वह ब्रह्मचर्य दूरकरनेवाला नहीं है विना देव ऋषि पितृ ऋणके शोधे संतान उत्पन्न किये विना ॥ १७ ॥ और यज्ञोंके किये विना मोक्षकी इच्छा करनेवाला अधोगमन करता है. श्रुतिने उसका जन्म अजागलस्तनकी समान निरर्थक कहा है ॥ १८॥ इसकारण ब्राह्मणको तीनों ऋणका शोधन करना चाहिये, देवता ऋषि और पितरोंके ऋणी हुए पुरुष ॥ १९ ॥ ब्रह्मचर्यसे ऋषियोंके, तिलोदकसे पितरोंके और यज्ञकरनेसे देवताओंके ऋणसे छूटते हैं, इसकारण अपने आश्रमका धर्म आचरण करे ॥ २० ॥ क्षीर आहारी फलाहारी शाकाहारी हविष्यभोजी वा भिक्षाशी कृच्छ्रचान्द्रायण किये हुए जप करे ॥ २१ ॥

लवण, खार, अम्लपदार्थ, गृंजन, कांस्यपात्रमें भोजन, ताम्बूल भक्षण, दोवार भोजन अशुद्ध वस्त्र धारण प्रमाद ॥ २२ ॥ श्रुति स्मृतिसे विरोध और रात्रिमें जप यह सब वर्जित हैं द्यूत स्त्री और अपवादमें वृथा समय न गमावे ॥ २३ ॥ स्तोत्रपाठ तथा शास्त्र आगमके अवलोकनसे देवपूजा वितावे भूमिशय्या, ब्रह्मचर्य मौनचर्या ॥२४॥ नित्य तीनों सवनमें स्नान शूद्रकर्मसे वर्जना नित्यपूजा नित्यदान आनंद स्तुति कीर्तन ॥२५॥ नैमित्तिक अर्चन गुरुदेवतामें विश्वास यह बारह धर्म जप निष्ठके कहे हैं जिससे सिद्धि होती है॥ २६॥ नित्य सूर्यका उपस्थानकर सन्मुखगायत्री जपै, देवताकी प्रतिमा वा अग्निमें अर्चन करे ॥ २७ ॥ स्नान पूजा जप

लवणंक्षारमम्लंचगृंजनंकांस्यभोजनम् ॥ तांबूलंचद्विर्भुक्तंचदुष्टवासःप्रमत्तनम् ॥ २२ ॥ श्रुतिस्मृतिविरोधंचजपंरात्रौविवर्जयेत् ॥ वृथानकालं गमयेत्द्यूतस्त्रीस्वापवादतः ॥ २३ ॥ गमयेद्देवतापूजास्तोत्रागमविलोकनैः ॥ भूशय्याब्रह्मचारित्वंमौनचर्यातथैवच ॥ २४ ॥ नित्यंत्रिषवणस्नानं शूद्रकर्मविवर्जनम् ॥ नित्यपूजानित्यदानमानंदस्तुतिकीर्तनम् ॥२५॥नैमित्तिकार्चनंचैवविश्वासोगुरुदेवयोः ॥ जपनिष्ठस्यधर्मायेद्वादशैतेसुसिद्धिदाः ॥ ॥ २६ ॥ नित्यंसूर्यमुपस्थायतस्यचाभिमुखोजपेत् ॥ देवताप्रतिमादौवावह्नौवाऽभ्यर्च्यतन्मुखः ॥ २७ ॥ स्नानपूजाजपध्यानहोमतर्पणतत्परः ॥ निष्कामोदेवतायांचसर्वकर्मनिवेदकः ॥ २८ ॥ एवमादीञ्श्चनियमान्पुरश्चरणकृच्चरेत् ॥ तस्माद्द्विजःप्रसन्नात्माजपहोमपरायणः ॥ २९ ॥ तपस्यध्ययनेयुक्तोभवेद्भूतानुकंपकः ॥ तपसास्वर्गमाप्नोतितपसाविंदतेमहत् ॥३०॥तपोयुक्तस्यासिद्ध्यंतिकर्माणिनियतात्मनः ॥ विद्वेषणंसंहरणंमारणंरोगनाशनम् ॥ ॥३१॥ येनयेनाथऋषिणायदर्थंदेवतास्तुताः॥ससकामःसमृद्ध्येततेषांतेषांतथातथा ॥३२॥ तानिकर्माणिवक्ष्यामिविधानानिचकर्मणाम्॥ पुरश्चरणमादौचकर्मणांसिद्धिकारकम् ॥ ३३ ॥ स्वाध्यायाभ्यसनस्यादौप्राजापत्यंचरेद्द्विजः ॥ केशश्मश्रुलोमनखान्वापयित्वाऽततःशुचिः ॥ ३४ ॥

ध्यान होममें तथा तर्पणमें तत्पर निष्कामहो देवतामें सब कर्म अर्पण करदे ॥२८॥ इसप्रकारसे नियमोंसे पुरश्चरण करै और प्रसन्न मन हो द्विज जप होममें परायण रहे ॥ २९ ॥ तप और अध्ययनमें युक्त प्राणियोंपर दया करनेवाला रहै तपसे ही स्वर्ग और तपसेही महत्व प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ जितेन्द्रिय तपस्वीके सबकर्म सिद्ध होते हैं विद्वेषण, संहरण, मारण, रोगनाशन॥ ३१॥ जिस २ निमित्त ऋषियोंने देवताओंकी स्तुति की है उनके वह वह काम सिद्ध होते हैं ॥ ३२ ॥ वह कर्म और उन कर्मोंके विधान कहता हूं पहले पुरश्चरण कर्मोंकी सिद्धि करने वाला है ॥ ३३ ॥ पहले स्वाध्यायके अभ्यासके आदिमें ब्राह्मण प्राजापत्य व्रत करै, बाल, डाढी, मूछ,

लोम, नख इनको वपन कराय स्नानकर पवित्रहो ॥ ३४ ॥ दिनरात वाणीको रोके पवित्र रहै सत्यवादी पवित्रहो व्याहृतियोंका जप करै ॥ ३५ ॥ पहले ओंकारपूर्वक सावित्रीको जपकरै फिर पवित्र पापनाशी 'आपोहिष्ठा' सूक्तका जपकर ॥ ३६ ॥ पुनन्ती, स्वस्तिमती, पावमानी ऋचाओंका पाठ करै, कर्मोंके आदि अन्तमें इन सबका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सहस्रसौ अथवा दश गायत्री जपै ओंकारतीनों व्याहृतिपूर्वक (१००००) दशसहस्र गायत्री जपै ॥ ३८ ॥ जलसे आचार्य ऋषि छन्द देवताओंका तर्पण कर, अनार्य भाषाका भाषण न करै, शूद्र तथा गर्हितोंसे भाषण न करै ॥ ३९ ॥ उदकी (रजस्वला) स्त्री, पतित अन्त्यज इनसे भाषण न करै, ब्राह्मण आचार्य गुरुसे निन्दा वा द्वेष न करै ॥ ४० ॥ माता पिताका द्वेष वा उनका तिरस्कार कभी न करै और सब कृच्छ्रोंमें भी यही विधि करै ॥ ४१ ॥

तिष्ठेदहनिरात्रौतुशुचिरासीतवाग्यतः॥सत्यवादीपवित्राणिजपेद्व्याहृतयस्तथा॥३५॥ॐकाराद्यास्तुताजप्त्वासावित्रींचतदित्यृचम् ॥ आपोहिष्ठेतिसूक्तंच पवित्रंपापनाशनम्॥३६॥पुनंत्यःस्वस्तिमत्यश्चपावमान्यस्तथैवच॥ सर्वत्रैतत्प्रयोक्तव्यमादावंतेचकर्मणाम् ॥३७॥ आसहस्राद्दाशताद्वाप्यादशादथवाजपेत् ॥ ॐकारंव्याहृतीस्तिस्रःसावित्रीमथवाऽयुतम् ॥ ३८ ॥ तर्पयित्वाद्भिराचार्यानृषींश्छंदांसिदेवताः ॥ अनार्येणनभाषेतशूद्रेणापिनगर्हितैः ॥ ३९ ॥ नापिचोदक्ययावध्यापातितैर्नांत्यजैर्नृभिः ॥ नदेवब्राह्मणद्विष्टैर्नाचार्यगुरुनिंदकैः ॥ ४० ॥ नमातृपितृविद्विष्टैर्नावमन्येतकंचन ॥ कृच्छ्राणामेषसर्वेषांविधिरुक्तोनुपूर्वशः ॥ ४१ ॥ प्राजापत्यस्यकृच्छ्रस्यतथासांतपनस्यच ॥ पराकस्यचकृच्छ्रस्यविधिश्चांद्रायणस्यच ॥४२॥ पंचभिःपातकैःसर्वैर्दुष्कृतैश्च प्रमुच्यते ॥ तप्तकृच्छ्रेणसर्वाणिपापानिदहतिक्षणात् ॥४३॥ त्रिभिश्चांद्रायणैःपूतोब्रह्मलोकंसमश्नुते ॥ अष्टभिर्देवताःसाक्षात्पश्येतवरदास्तदा ॥४४॥ छंदांसिदशभिर्ज्ञात्वासर्वान्कामान्समश्नुते ॥ त्र्यहंप्रातस्त्र्यहंसायंत्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ ४५ ॥ त्र्यहंपरंचनाश्नीयात्प्राजापत्यंचरेद्द्विजः ॥ गोमूत्रंगोमयं क्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम् ॥ ४६ ॥ एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रंसांतपनंस्मृतम् ॥ एकैकंग्रासमश्नीयादहानित्रीणिपूर्ववत् ॥ ४७ ॥

प्राजापत्य कृच्छ्र संतापन पराक् कृच्छ्रकी विधि चान्द्रायणकी विधि करनेसे॥ ४२॥ ब्रह्महत्यादि पांच महापातक और सब पापोंसे मुक्त होता है, तप्तकृच्छ्र व्रतसे क्षणमें सब पाप दूर होते हैं ॥ ४३ ॥ तीन चान्द्रायणसे पवित्रहो ब्रह्मलोकमें गमन करताहै, आठ करनेसे वरदायक देवताओंका दर्शन कर सकता है ॥ ४४ ॥ दश चान्द्रायणोंसे छन्दोंको जानकर सब कामनाओंको प्राप्त होता है. तीन दिन प्रभात तीन दिन संध्यासमय तीन दिन अयाचित भोजन ॥ ४५ ॥ तीन दिन निराहार रहना. इसप्रकार बारहदिन करनेसे प्राजापत्य व्रत होता है. गोमूत्र गोवर दूध दही घी कुशाका जल यह पहलेदिन सेवन कर ॥ ४६ ॥ परदिन एकरातका उपवास करै यह कृच्छ्र सांत

पन है और पूर्ववत् तीन दिन एक २ ग्रास खाय ॥ ४७ ॥ फिर तीन दिन उपवास करै यह कृच्छ्र व्रत है यही तिगुना करनेसे महासांतपन होता है. तीनदिन गोमूत्र ३ दिन गोबर ३ दिन दही ३ दिन क्षीर ३ दिन घी पीनेसे महासांतपन व्रत होता है यह सब पाप दूर करता है ॥ ४८॥ जल क्षीर घृत इनको प्रति तीन दिन गरमकर पिये तथा वायु आहार तीनदिन करै एकवार स्नान और सावधान रहै यह तप्तकृच्छ्रव्रत होता है ॥ ४९ ॥ जो प्राजापत्य विधिसे नियत होकर जितेन्द्रियहो जलमात्र पान कर रहै बारह दिन भोजन न करै ॥ ५० ॥ यह पराक् नामक कृच्छ्र सब पापका दूर करनेवाला है. कृष्णपक्षमें एक एक ग्रास घटावै शुक्लपक्षमें एक २ बढावै ॥ ५१ ॥ अमावास्याको भोजन न करै यह चान्द्रायणकी विधि है. तीनों सवनमें स्नान करै यह चान्द्रायणहै॥५२॥ आह्निक कर्म समाप्त कर चार पिण्ड प्रभात और

त्र्यहंचोपवसेदित्थमतिकृच्छ्रंचरेद्द्विजः ॥ एवमेवत्रिभिर्युक्तंमहासांतपनंस्मृतम् ॥ ४८ ॥ तप्तकृच्छ्रंचरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रतित्र्यहंपिबे दुष्णान्सकृत्स्नायीसमाहितः ॥ ४९ ॥ नियतस्तुपिबेदापःप्राजापत्यविधिःस्मृतः ॥ यतात्मनोऽप्रमत्तस्यद्वादशाहमभोजनम् ॥ ५० ॥ पराको नामकृच्छ्रोयंसर्वपापप्रणोदनः ॥ एकैकंतुह्रसेत्पिंडंकृष्णेशुक्लेचवर्धयेत् ॥ ५१ ॥ अमावास्यांनभुंजीतएवंचांद्रायणेविधिः ॥ उपस्पृश्यत्रिषवणमेतच्चां द्रायणंस्मृतम् ॥ ५२ ॥ चतुरःप्रातरश्नीयाद्विप्रःपिंडान्कृताह्निकः ॥ चतुरोस्तमितेसूर्येशिशुचांद्रायणंस्मृतम् ॥ ५३ ॥ अष्टावष्टौसमश्नीयात्पिंडान्म ध्यंदिनेस्थिते ॥ नियतात्माहविष्यस्ययतिचांद्रायणंव्रतम् ॥५४॥ एतद्रुद्रास्तथादित्यावसवश्चाचरंतिहि ॥ सर्वेकुशलिनोदेवामरुतश्चभुवासह ॥ ५५ ॥ एकैकंसप्तरात्रेणपुनातिविधिवत्कृतम् ॥ त्वगसृक्पिशितास्थीनिमेदोमज्जावसास्तथा ॥ ५६ ॥ एकैकंसप्तरात्रेणशुद्ध्यत्येवनसंशयः ॥ एभिर्व्रतैर्वि पूतात्माकर्मकुर्वीतनित्यशः ॥ ५७ ॥ एवंशुद्धस्यकर्माणिसिद्ध्यंत्येवनसंशयः ॥ शुद्धात्माकर्मकुर्वीतसत्यवादीजितेंद्रियः ॥ ५८ ॥

चारपिण्ड संध्याको भोजन करै इसका नाम शिशुचान्द्रायणहै॥५३॥जो मध्य दिनमें आठ आठ समान ग्रास भोजन करै नियतात्मा होकर हविष्य ग्रास भोजन करै यह यतिचान्द्रायण है ॥ ५४ ॥ इसको रुद्र आदित्य और वसुभी करते हैं इसीसे सबदेवता निरापद हुए थे और मरुतभी इसीको करके प्रसन्न हुए थे ॥ ५५ ॥ यह एक एक विधिपूर्वक किया हुआ सातरातमेंही क्रमसे त्वचा, रुधिर, मांस, अस्थि, मेद, मज्जा, वसा, एक २ धातुको पवित्र करता है॥ ५६ ॥ निःसन्देह यह सात रातमें एक२शुद्ध होजाते हैं, इन व्रतोंसे पवित्र हो नित्यकर्म करै॥ ५७॥इसप्रकार शुद्धहुएके कर्म अवश्य सिद्ध होते हैं. सत्यवादी जितेन्द्रिय शुद्धात्मा होकर कर्मकरै ॥५८॥

तो वह निःसन्देह अपनी इष्ट कामनाओंको प्राप्त होता है, सब कर्मोंसे रहित हो तीनरात उपवास करै ॥ ५९ ॥ अथवा तीनरात व्रत करके कर्म समाप्त करै. इस प्रकार विधान करनेसे पुरश्चरणका फल मिलता है ॥ ६० ॥ गायत्रीका पुरश्चरण सब कामना देनेवालाहै. हे देवर्षे ! यह महापापनाशक व्रत तुमसे कहा ॥ ६१ ॥ मंत्रीको पहले देह शोधनके निमित्त व्रत करना चाहिये फिर पुरश्चरण करनेसे सब फलका भागी होता है॥ ६२ ॥ यह आपसे गुह्य पुरश्चरणका विधान कहा यह प्रत्येकसे न कहना श्रद्धावानसे कहना कारण कि, यह श्रुतिका सार है ॥ ६३ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ नारदजी बोले हे नारायण महाभाग ! संक्षेपसे गायत्रीके शान्ति आदि प्रयोगोंको कहिये आप करुणा सागर हो ॥ १ ॥ नारायण बोले हे नारद ! आपने बड़ी गुप्त बात

इष्टान्कामांस्ततःसर्वान्संप्राप्नोतिनसंशयः ॥ त्रिरात्रमेवोपवसेद्रहितःसर्वकर्मणा ॥ ५९ ॥ त्रीणिनक्तानिवाकुर्यात्ततःकर्मसमारभेत् ॥ एवंविधानं कथितंपुरश्चर्याफलप्रदम् ॥ ६० ॥ गायत्र्याश्चपुरश्चर्यासर्वकामप्रदायिनी ॥ कथितातवदेवर्षेमहापापविनाशिनी ॥ ६१ ॥ आदौकुर्याद्व्रतंमंत्रीदेहशोधनकारकम् ॥ पुरश्चर्याततःकुर्यात्समस्तफलभाग्भवेत् ॥ ६२ ॥ इतितेकथितंगुह्यंपुरश्चर्याविधानकम् ॥ एतत्परस्मैनोवाच्यंश्रुतिसारंयतःस्मृतम् ॥ ६३ ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ नारायणमहाभागगायत्र्यास्तुसमासतः ॥ शांत्यादिकान्प्रयोगांस्तुवदस्वकरुणानिधे ॥ १ ॥ नारायणउवाच ॥ अतिगुह्यमिदंपृष्टंत्वयाब्रह्मतनूद्भव ॥ नकस्यापिचवक्तव्यंदुष्टायपिशुनायच ॥ २ ॥ अथशांतिःपयोक्ताभिःसमिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः ॥ शमीसमिद्भिःशाम्यंतिभूतरोगग्रहादयः ॥ ३ ॥ आर्द्राभिःक्षीरवृक्षस्यसमिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः ॥ जुहुयाच्छकलैर्वापिभूतरोगादिशांतये ॥ ४ ॥ जलेनतर्पयेत्सूर्यंपाणिभ्यांशांतिमाप्नुयात् ॥ जानुदघ्नेजलेजप्त्वासर्वान्दोषाञ्छमंनयेत् ॥ ५ ॥ कंठदघ्नेजलेजप्त्वामुच्येत्प्राणांतिकाद्भयात् ॥ सर्वेभ्यःशांतिकर्मभ्योनिमज्ज्याप्सुजपःस्मृतः ॥ ६ ॥

पूँछी है, यह दुष्ट और चुगलोंसे कभी न कहनी चाहिये ॥ २ ॥ शान्तिके निमित्त ब्राह्मण पयमें भिजोकर सहस्र समिधाओंसे जो शमीवृक्षकी हों हवन करै तो भूत रोग ग्रहादि शान्त होते हैं ॥ ३ ॥ भूतरोगादिकी शान्तिमें अश्वत्थ उदुंबर पिलखन न्यग्रोधादि वृक्षकी गीली समिधा वा क्षीरवृक्षके खंडोंसे हवन करै ॥ ४ ॥ हवनमें सर्वत्र गायत्री पढै यह अनुष्ठान (४९) दिनपर्यन्त करै फिर 'सूर्यं तर्पयामिनमः' इसमंत्रसेसूर्यको तर्पण कर हाथोंसे जलदे तो शांतिकी प्राप्ति होती है. और जंघापर्यन्त जलमें जपनेसे सब दोष शान्त होते हैं ॥ ५ ॥ कंठपर्यन्त जलमें जपै तो प्राणान्तका भय छूटता है सब शांति कर्मोंमें जलमें स्थित हो जप करना चाहिये ॥ ६ ॥

अब प्रयोगान्तर कहते हैं, सोना–चांदी, तांबा वा क्षीरीवृक्ष वा मृत्तिकाके आच्छिद्र पात्रमें पंचगव्य स्थापन कर ॥ ७ ॥ प्रज्वलित अग्निमें क्षीरि वृक्षके काष्ठोंकी समिधाके सहित पंचगव्यका हवन करै ॥ ८ ॥ प्रत्येक आहुतीमें पंचगव्यका स्पर्श करताहुआ पीछे पात्रमें स्थित पंचगव्यको गायत्री मंत्रसे सहस्र जपकर अभिमंत्रणकर गायत्री मंत्रसे प्रोक्षण करै ॥९॥ और बलिदान करकै परदेवताका ध्यान करै इससे अभिचारसे प्रगट हुई कृत्या नष्ट होती है ॥१०॥ जो इसप्रकार आचरण करते हैं, वह देवता भूत पिशाच गृह ग्राम पुर राज्य सबको वशी करता है और सबसे छूट जाता है॥ ११ ॥ वक्ष्यमाण शूलके चतुरस्र मण्डलके लिखने और उसके भूमिमें गाडनेसे पूर्वोक्त कृमि आदि उपद्रव होजाते हैं, चतुरस्रमण्डलमें अष्टगंधसे शूलको लिखकर ॥ १२ ॥ गायत्रीसे सहस्रवार अभिमंत्रित कर सब शांतिके लिये उसे भूमिमें गाडदे

सौवर्णेराजतेवापिपात्रेताम्रमयेऽपिवा ॥ क्षीरवृक्षमयेवापिनिर्व्रणेमृन्मयेऽपिवा ॥७॥ सहस्रंपंचगव्येनहुत्वासुज्वलितेनले ॥ क्षीरवृक्षमयैःकाष्ठैःशेषंसंपादयेच्छनैः ॥ ८ ॥ प्रत्याहुतिस्पृशञ्जप्त्वासहस्रंपात्रसंस्थितम् ॥ तेनतंप्रोक्षयेद्देशंकुशैर्मंत्रमनुस्मरन् ॥९॥ बलिंकिरंस्ततस्तास्मिन्ध्यायेत्तुपरदेवताम् ॥ अभिचारसमुत्पन्नाकृत्यापापंचनश्यति ॥ १० ॥ देवभूतपिशाचाद्यायद्येवंकुरुतेवशे ॥ गृहंग्रामंपुरंराष्ट्रंसर्वंतेभ्योविमुच्यते ॥ ११ ॥ निखनेमुच्यतेतेभ्योलिखनेमध्यतोऽपिच ॥ मंडलेशूलमालिख्यपूर्वोक्तेचक्रमेऽपिवा ॥ १२ ॥ अभिमंत्र्यसहस्रंतन्निखनेत्सर्वशांतये ॥ सौवर्णराजतंवापिकुंभंताम्रमयंचवा ॥ १३ ॥ मृन्मयंवानवंदिव्यंसूत्रवेष्टितमव्रणम् ॥ स्थंडिलेसैकतेस्थाप्यपूरयेन्मंत्रविज्जलैः ॥१४॥ दिग्भ्यआहृत्यतीर्थानिचतसृभ्योद्विजोत्तमैः ॥ एलाचंदनकर्पूरजातीपाटलमल्लिकाः ॥ १५ ॥ बिल्वपत्रंतथाक्रांतांदेवींव्रीहियवांस्तिलान् ॥ सर्षपान्क्षीरवृक्षाणांप्रवालानिचनिक्षिपेत् ॥ १६ ॥ सर्वाण्यभिविधायैवंकुशकूर्चसमन्वितम् ॥ स्नातःसमाहितोविप्रःसहस्रंमंत्रयेद्बुधः ॥ १७ ॥ दिक्षुसौरानधीयीरन्मंत्रान्विप्रास्त्रयीविदः ॥ प्रोक्षयेत्पाययेदेनंनीरंतेनाभिषिंचयेत् ॥ १८ ॥ भूतरोगाभिचारेभ्यःसनिर्मुक्तःसुखीभवेत् ॥ अभिषेकेणमुच्येतमृत्योरास्यगतोनरः ॥ १९ ॥

सोना चांदी वा तांबेका वडा ॥१३॥ वा मृत्तिकाका नया सावत घट लेकर उसे दिव्य सूत्रसे वेष्टित कर स्थंडिल वा रेतेके समीप रख उसको मंत्रका ज्ञाता जलसे पूर्ण करै ॥ १४ ॥ चारों ओर दिशाओंके तीर्थोंके जल ब्राह्मणोंद्वारा मँगाय इलायची, चन्दन, कपूर, जाती, पाटल, मल्लिका ॥१५॥ बेलपत्र, विष्णुकान्त, सहदेई, व्रीहि, जौ, यव, तिल, सरसों, क्षीरवृक्ष, पीपल, गूलर, पिलखन, न्यग्रोधादिकोंके फलोंको भी घटमें डालदे ॥ १६ ॥ यह सब इसप्रकार लेकर उसमें कुशकूर्चि 'सताईस कुशाओंकी ग्रंथि ' डालकर फिर विप्र स्नान करने उपरान्त उसको सहस्र गायत्री मंत्रसे अभिमंत्रण करले ॥ १७ ॥ तीनों वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सब ओरसे सौरमंत्रोंको पढते रहैं इस जलको प्रोक्षणकर भूतादि रोगग्रस्तको पिलावै और उसका अभिषेक करै ॥ १८ ॥ तो वह भूतरोगादि अभिचारसे मुक्त होकर सुखी होता है. इस

अभिषेकसे मृत्युके मुखमें प्राप्त हुआ भी प्राणी छूटता है ॥ १९ ॥ इसको विद्वान् राजा दीर्घजीवनकी इच्छासे अवश्य करै. हे मुने ! इस अभिषेकमें ऋत्विजोंको सौ गायें देनी चाहिये ॥ २० ॥ अथवा जिस प्रकार वे संतुष्ट होजायँ इसप्रकार दक्षिणादे. यदि अभिचारका महाभय हो तो हे ब्राह्मण ! शनिवारके दिन अश्वत्थके नीचे बैठ कर सौबार गायत्रीमंत्र जपै ॥ २१ ॥ वह भूतरोगादिके उपचार और महाभयसे छूट जाता है, जो ब्राह्मण पर्वपर्वमें अर्थात् पोरी पोरीसे काटी हुई गुडूची (गिलोय) को दूधके सहित हवन करता है ॥ २२ ॥ तो यह मृत्युंजय होम सब व्याधि नाशक है ज्वरशांतिके निमित्त आमके पत्ते और दूधका हवन करै ॥ २३ ॥ दूध दही घी इन तीन मधुके हवनसे राजयक्ष्मा दूर होती है. वचको दूधमें भिजो हवन करनेसे क्षयरोग दूर होता है ॥ २४ ॥ पायस अन्न होमपूर्वक सूर्यको निवेदन कर

अवश्यंकारयेद्विद्वान्राजादीर्घजिजीविषुः ॥ गावोदेयाश्चऋत्विग्भ्यअभिषेकेशतंमुने ॥ २० ॥ दक्षिणायेनवातुष्टिर्यथाशक्त्याऽथवाभवेत् ॥ जपेदश्वत्थमालभ्यमंदवारेशतंद्विजः ॥ २१ ॥ भूतरोगाभिचारेभ्योमुच्यतेमहतोभयात् ॥ गुडूच्याःपर्वविच्छिन्नाःपयोक्ताजुहुयाद्विजः ॥ २२ ॥ एवंमृत्युंजयोहोमःसर्वव्याधिविनाशनः ॥आम्रस्यजुहुयात्पत्रैःपयोक्तैर्ज्वरशांतये ॥ २३ ॥ वचाभिःपयसाक्ताभिःक्षयंहुत्वाविनाशयेत् ॥ मधुत्रितयहोमेनराजयक्ष्माविनश्यति ॥ २४ ॥ निवेद्यभास्करायान्नंपायसंहोमपूर्वकम् ॥ राजयक्ष्माभिभूतंचप्राशयेच्छांतिमाप्नुयात् ॥ २५ ॥ लताःपर्वसुविच्छिद्यसोमस्यजुहुयाद्विजः ॥ सोमेसूर्येणसंयुक्तेपयोक्ताःक्षयशांतये ॥२६॥ कुसुमैःशंखवृक्षस्यहुत्वाकुष्ठंविनाशयेत् ॥ अपस्मारविनाशःस्यादपामार्गस्यतंडुलैः ॥२७॥ क्षीरवृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपिविनश्यति ॥ औदुंबरसमिद्धोमादतिमेहःक्षयंव्रजेत् ॥ २८ ॥ प्रमेहंशमयेद्धुत्वामधुनेक्षुरसेनवा ॥ मधुत्रितयहोमेननयेच्छांतिंमसूरिकाम् ॥ २९ ॥ कपिलासर्पिषाहुत्वानयेच्छांतिंमसूरिकाम् ॥ उदुंबरवटाश्वत्थैर्गोगजाश्वामयंहरेत् ॥ ३० ॥

पश्चात् उसे प्राशन कर राजयक्ष्मा दूर होती है ॥ २५ ॥ अथवा क्षयशान्तिके निमित्त सोमलताकी पोरी छेदन कर अमावास्याको पयके सहित हवन करै ॥ २६ ॥ शंखवृक्षों कौंडिल्लाके फूलोंसे हवन करनेसे कुष्ठ और चिरचिटेके बीजोंसे हवन करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ २७ ॥ क्षीरी वृक्षकी समिधाओंके होमसे उन्माद नष्ट होता है उदुम्बर (गूलरकी) समिधाओंके होमसे अतिमेह (प्रमेह) भेद नष्ट होता है ॥ २८ ॥ मधु और गन्नेके रसका हवन करै तो प्रमेह, दूध दही घीके होमसे मसूरिका पाद रोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥ कपिलाके घृतसे हवन करनेसे मसूरिका शान्त होती है उदुम्बर वट अश्वत्थसे गौ गज अश्वका रोग दूर होता है ॥ ३० ॥

पिपीलिका, वल्मीक, मुहाल, इनका घरमें विशेष उपद्रव हो तो सौ सौ शमीकी समिधाओंसे घी सहित हवन करे ॥ ३१ ॥ तो शांति होती है शेष अन्नकी वलि दे मेघगर्जन, भूकम्प, आदिमें वनके वेतकी एक लक्ष आहुती दे ॥ ३२ ॥ इसप्रकार सात दिन हवन करनेसे राज्य सुखी होता है, सौवार मट्टीके ढेलेको जपकर जिस दिशामें फेंक दे ॥ ३३ ॥ उसको वहां अग्नि और पवनका भय नष्ट होता है कारागारमें मनसेही इसको जपनेसे बँधुआ बंधनसे छूट जाता है कारण कि, वहां सामग्रीका अभाव है इससे मनसेही जपै ॥ ३४ ॥ भूतरोग विषादिमें कुशसे स्पर्श कर जपै तो व्याधि जाय और अभिमंत्रित जलपानसे भूतादि रोग

पिपीलिमधुवल्मीकेगृहेजातेशतंशतम् ॥ शमीसमिद्भिरन्नेनसर्पिषाजुहुयाद्द्विजः ॥३१॥ तदुत्थंशांतिमायातिशेषैस्तत्रबलिंहरेत् ॥ अभ्रस्तनितभूकंपाल क्ष्यादौवनवेतसः ॥ ३२ ॥ सप्ताहंजुहुयादेवंराष्ट्रेराज्यंसुखीभवेत् ॥ यांदिशंशतजप्तेनलोष्टेनाभिप्रताडयेत् ॥ ३३ ॥ ततोऽग्निमारुतारिभ्योभयंतस्यवि नश्यति ॥ मनसैवजपेदेनांबद्धोमुच्येतबंधनात् ॥ ३४ ॥ भूतरोगविषादिभ्यःस्पृशञ्जप्त्वाविमोचयेत् ॥ भूतादिभ्योविमुच्येतजलंपीत्वाभिमंत्रितम् ॥३५॥ अभिमंत्र्यशतंभस्मन्यसेद्भूतादिशांतये ॥ शिरसाधारयेद्भस्ममंत्रयित्वातादित्यृचा ॥३६ ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तःसुखीजीवेच्छतंसमाः ॥ अशक्तःकारये च्छांतिविप्रंदत्त्वातुदक्षिणाम् ॥ ३७ ॥ अथपुष्टिंश्रियंलक्ष्मींपुष्पैर्हुत्वाप्नुयाद्द्विजः ॥ श्रीकामोजुहुयात्पद्मैरक्तैःश्रियमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ हुत्वाश्रियमवाप्नो तिजातीपुष्पैर्नवैःशुभैः ॥ शालितंडुलहोमेनश्रियमाप्नोतिपुष्कलाम् ॥ ३९ ॥ समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्यहुत्वाश्रियमवाप्नुयात् ॥ बिल्वस्यशकलैर्हुत्वापत्रैः पुष्पैःफलैरपि ॥ ४० ॥ श्रियमाप्नोतिपरमांमूलस्यशकलैरपि ॥ समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्यपायसेनचसर्पिषा ॥ ४१ ॥

नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥ भूतादिकी शांतिके निमित्त १०० वार अभिमंत्रित कर भस्म धारण करै सावित्रीसे अभिमंत्रित करकै शिरपर भस्म धारण करै ॥ ३६ ॥ वह सब व्याधिसे मुक्त हो सौ वर्ष जीता है स्वयं समर्थ नहो तो दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंसे शांति करावै ॥ ३७ ॥ पुष्टि श्री लक्ष्मी फूलोंके हवनसे प्राप्त होती है. श्रीकामनावाला लालकमलोंसे हवन करे ॥ ३८ ॥ वा जातीके नये पत्तोंसे हवन करे वा शालितंडुलके हवनसे भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ अथवा बेलवृक्षकी समिधा वा उसके खण्डपत्र पुष्प फलोंसे हवन करनेसे॥ ४० ॥ वा मूलके खण्डोंसे हवन करनेसे महालक्ष्मीकी प्राप्ति होती है बेलकी समिधा दूध और घीके साथ॥ ४१ ॥

सौ सौ वार सप्ताहतक हवन करनेसे शांतिकी प्राप्ति होती है पय दधि घृतके साथ लाजाहोम करनेसे कन्याकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥ इसी विधानसे कन्या मनोवांछित वरको प्राप्त होती है सप्ताहभर प्रतिदिन सौ लाल कमलोंका हवन करे तौ सुवर्णकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ सूर्यबिंबमें जलका तर्पण करनेसे जलमें गुप्त हुए सुवर्णकी प्राप्ति होती है, अन्नके हवनसे अन्न और व्रीहिके हवनसे व्रीहिपति होता है ॥ ४४ ॥ बछडेके गोबरके चूर्णको हवन करनेसे पशुकी और प्रियंगु घी दूधके हवन करनेसे प्रजाकी प्राप्ति होती है ॥ ४५ ॥ होमपूर्वक पायसान्न सूर्यको निवेदन कर फिर ऋतुस्नाता स्त्रीको

शतंशतंचसप्ताहंहुत्वाश्रियमवाप्नुयात् ॥ लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्होमेकन्यामवाप्नुयात् ॥४२॥ अनेनविधिनाकन्यावरमाप्नोतिवांछितम् ॥ रक्तोत्पलशतंहुत्वा सप्ताहंहेमचाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ सूर्यबिंबेजलंहुत्वाजलस्थंहेमचाप्नुयात् ॥ अन्नंहुत्वाप्नुयादन्नंव्रीहीन्व्रीहिपतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥ करीषचूर्णैर्वत्सस्यहुत्वापशुम वाप्नुयात् ॥ प्रियंगुपायसाज्यैश्चभवेद्धोमादिभिःप्रजा ॥ ४५ ॥ निवेद्यभास्करायान्नंपायसंहोमपूर्वकम् ॥ भोजयेत्तदृतुस्नातांपुत्रंपरमवाप्नुयात् ॥ ४६॥ सप्ररोहाभिरार्द्राभिरायुर्हुत्वासमाप्नुयात् ॥ समिद्भिःक्षीरवृक्षस्यहुत्वाऽऽयुषमवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ सप्ररोहाभिरार्द्राभिरक्ताभिर्मधुरत्रयैः ॥ व्रीहीणांचशतंहु त्वाहेमचायुरवाप्नुयात् ॥ ४८ ॥ सुवर्णकुड्मलंहुत्वाशतमायुरवाप्नुयात् ॥ दूर्वाभिःपयसावापिमधुनासर्पिषापिवा ॥ ४९ ॥ शतंशतंचसप्ताहमपमृत्युंव्य पोहति ॥ शमीसमिद्भिरन्नेनपयसावाचसर्पिषा ॥ ५० ॥ शतंशतंचसप्ताहमपमृत्युंव्यपोहति ॥ न्यग्रोधसमिधोहुत्वापायसंहोमयेत्ततः ॥ ५१ ॥

भोजन करानेसे परम पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ पलाशसमिधाके गीले प्ररोह हवन करनेसे वा क्षीरवृक्षकी समिधाओंके हवनसे आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ दूध दही घी इनके साथ क्षीरवृक्षके लाल गीले अंकुरोंका हवन तथा सौ व्रीहियोंका हवन करनेसे सुवर्ण और आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥ सौ सुवर्ण कमलोंके हवनसे वा दूर्वा, दूध, मधु, घी इन एक एकके हवनसे आयु मिलती है ॥ ४९ ॥ प्रतिदिन सौ सौ वार सप्ताह भर इसी हवनसे अकाल मृत्यु दूर होती है जो मनुष्य दूधके आहारसे सातदिन मंत्र जपै तो विजयी होता है ॥ ५० ॥ जो न्यग्रोधकी सौ सौ समिधा पायसके साथ सप्ताहभर हवन करे तो अपमृत्यु दूर होती है ॥ ५१ ॥

यह प्रतिदिन सौ सौ आहुति देनेसे एक सप्ताहमें अपमृत्यु दूर करता है जो मनुष्य क्षीरकाआहार कर एक सप्ताहतक इसको जपै वह विजयी होता है ॥ ५२ ॥ और विना भोजन किये मौन हो तीन रात जपै तो यमके भयसे छूट जाता है और जो जलमें निमग्न होकर जपै तो शीघ्रही मृत्युभय छूट जाता है ॥ ५३ ॥ बिल्वके निकट एक महीने जपै तो राज्य मिलता है बिल्वके मूल फल पल्लव हवन करनेसे राज्य मिलता है ॥ ५४ ॥ एक महीनेतक सौ पद्म प्रतिदिन हवन करनेसे अकटक राज्य मिलता है शालियुक्त यवागूका हवन करनेसे ग्रामकी प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥ अश्वत्थकी समिधाओंका हवन कर युद्धमें जय प्राप्त होती है आककी समिधाओंसे हवन

शतंशतं चसप्ताहमपमृत्युंव्यपोहति ॥ क्षीराहारोजपेन्मृत्योःसप्ताहाद्विजयीभवेत् ॥५२॥ अनश्नन्वाग्यतोजप्त्वात्रिरात्रंमुच्यतेयमात् ॥ निमज्ज्याप्सुजपेद्वे वसद्योमृत्योर्विमुच्यते ॥५३॥ जपेद्बिल्वंसमाश्रित्यमासंराज्यमवाप्नुयात् ॥ बिल्वंहुत्वाप्नुयाद्राज्यंसमूलफलपल्लवम् ॥५४॥ हुत्वापद्मशतंमासंराज्यमाप्नो त्यकंटकम् ॥ यवागूंग्राममाप्नोतिहुत्वाशालिसमन्वितम् ॥ ५५ ॥ अश्वत्थसमिधोहुत्वायुद्धादौजयमाप्नुयात् ॥ अर्कस्यसमिधोहुत्वासर्वत्रविजयीभवे त् ॥ ५६ ॥ संयुक्तैःपयसापत्रैःपुष्पैर्वेतसस्यच ॥ पायसेनशतंहुत्वासप्ताहंवृष्टिमाप्नुयात् ॥५७॥ नाभिदघ्नेजलेजप्त्वासप्ताहंवृष्टिमाप्नुयात् ॥ जलेभस्म शतंहुत्वामहावृष्टिंनिवारयेत् ॥ ५८ ॥ पालाशीभिरवाप्नोतिसमिद्भिर्ब्रह्मवर्चसम् ॥ पलाशकुसुमैर्हुत्वासर्वमिष्टमवाप्नुयात् ॥ ५९ ॥ पयोहुत्वाप्नुयान्मेधा माज्यंबुद्धिमवाप्नुयात् ॥ अभिमंत्र्यपिबेद्ब्राह्मींरसंमेधामवाप्नुयात् ॥ ६० ॥ पुष्पहोमेभवेद्वासस्तंतुभिस्ताद्विधंपटम् ॥ लवणंमधुसंमिश्रंहुत्वेष्टंवशमानये त् ॥ ६१ ॥ नयेदिष्टंवशंहुत्वालक्ष्मीपुष्पैर्मधुप्लुतैः ॥ नित्यमंजलिनात्मानमभिषिंचेज्जलेस्थितः ॥ ६२ ॥

करनेसे सर्वत्र विजयी होता है ॥ ५६ ॥ वेतके पत्र पुष्प दूधके साथमें सौवार प्रतिदिन हवन करै तो सातदिनमें वर्षा होती है ॥ ५७ ॥ वा नाभिपर्यन्त जलमें सात दिन जपनेसे वर्षा होती है जलमें सौवार भस्मका हवन करनेसे महावृष्टि निवृत्त होती है ॥ ५८ ॥ ढाककी समिधाओंके हवनसे ब्रह्मतेज और ढाकके फुलोंसे सब इष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥ दूधके हवनसे मेधा, घृतसे बुद्धि, अभिमंत्रणकर ब्रह्मीका रसपीनेसे मेधा प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ पुष्पके हवनसे वास [सद्गंध] तंतु ओंसे उसी प्रकारका पटलाभ होता है और मधु मिले लवणसे हवन करनेसे इष्ट वशमें होता है ॥ ६१ ॥ बेलके फूलोंको मधु मिलाय होमें तो अभीष्ट वशीभूत होता

है, जो जलमें स्थित हो नित्य अंजलिसे अपने आपको सिंचन करता है ॥ ६२ ॥ वह मति आरोग्य आयुष्य अग्रता और स्वस्थताको प्राप्त होता है. जो ब्राह्मण दूसरेके उद्देशसे करै वहभी पुष्टिको प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ और जो श्रेष्ठ विधिसे प्रतिदिन एक सहस्र महीनेभरतक पवित्र स्थानमें आयुकी कामनासे जपै तो उसको आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ६४ ॥ आयु आरोग्यकी कामनासे ब्राह्मण दोमहीने जपेतो आयु आरोग्य होती है, लक्ष्मी तीन महीने जपकरनेसे मिलती है ॥ ६५ ॥ चारमहीने जपसे आयु लक्ष्मी पुत्र स्त्री यश प्राप्त होताहै. पांच महीने जपसे पुत्र दाराआयु आरोग्य श्री विद्या प्राप्त होती है ॥ ६६ ॥ इसीप्रकार उत्तरोत्तर जप करनेसे अधिकतर कामनाओंकी प्राप्ति होती है, एक चरणसे ऊर्ध्व भुजाकर निराश्रय ॥ ६७ ॥ तीन महीने जपकरनेसे सब कामनाओंको प्राप्त होता है, इसप्रकार सौसे सहस्रतक

मतिमारोग्यमायुष्यमग्र्यंस्वास्थ्यमवाप्नुयात् ॥ कुर्याद्विप्रोन्यमुद्दिश्यसोपिपुष्टिमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ अथचारुविधिर्मासंसहस्रंप्रत्यहंजपेत् ॥ आयुष्कामःशुचौदेशेप्राप्नुयादायुरुत्तमम् ॥ ६४ ॥ आयुरारोग्यकामस्तुजपेन्मासद्वयंद्विजः ॥ भवेदायुष्यमारोग्यंश्रियैमासत्रयंजपेत् ॥ ६५ ॥ आयुःश्रीपुत्रदाराद्याश्चतुर्भिश्चयशोजपात् ॥ पुत्रदारायुरारोग्यंश्रियंविद्यांचपंचभिः ॥ ६६ ॥ एवमेवोत्तरान्कामान्मासैरेवोत्तरैर्व्रजेत् ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुःस्थित्वानिराश्रयः ॥ ६७ ॥ मासंशतत्रयंविप्रःसर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ एवंशतोत्तरंजप्त्वासहस्रंसर्वमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ रुद्ध्वाप्राणमपानंचजपेन्मासंशतत्रयम् ॥ यदिच्छेत्तदवाप्नोतिसहस्रात्परमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥ एकपादोजपेदूर्ध्वबाहूरुध्वानिलंवशः ॥ मासंशतमवाप्नोतियदिच्छेदितिकौशिकः ॥ ७० ॥ एवंशतत्रयंजप्त्वासहस्रंसर्वमाप्नुयात् ॥ निमज्ज्याप्सुजपेन्मासंशतमिष्टमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ एवंशतत्रयंजप्त्वासहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ एकपादोजपेदूर्ध्वबाहूरुद्धानिराश्रयः ॥ ७२ ॥ नक्तमश्नन्हविष्यान्नंवत्सराहषितामियात् ॥ गीरमोघाभवेदेवंजप्त्वासंवत्सरद्वयम् ॥ ७३ ॥

जप करनेसे सब मनोरथ मिलते हैं ॥ ६८ ॥ जो प्राण अपानको रोंककर प्रतिदिन तीनसौ एकमहीनेतक जपता है वह यथेच्छ फल पाता है और सहस्र हवनसे परम उत्कृष्टताको प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ एक चरणसे स्थित हो ऊपरको भुजा उठाये प्राण रोंककर सौवार महीनेभरतक जप करनेसे यथेच्छ फल पाता है ॥ ७० ॥ इसप्रकार तीन शत वा सहस्र जपसे सब कामना प्राप्त होती हैं. जलमें स्थित हो मासपर्यन्त सौवार जपनेसे इष्टको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ इसप्रकार प्राणका पान रोंककर प्रतिदिन तीनशत गायत्री जपनेसे सब कुछ प्राप्त होता है विश्वामित्रने कहा है एक चरणसे स्थित ऊपरको भुजा उठाये निराश्रय हो प्राण रोंक ॥ ७२ ॥ केवल रात्रिमें हविष्य अन्न खाता हुआ वर्षदिनमें ऋषिताको प्राप्त होता है दोवर्ष इसप्रकार जपनेसे अमोघ वाणी होजाती है जो कहै सो होजाय ॥ ७३ ॥

इसीप्रकार तीनवर्ष जपनेसे त्रिकालदर्शी होजाता है चारवर्ष जपनेसे भगवान् सूर्यका आगमन होता है ॥ ७४ ॥ पांचवर्ष जपनेसे अणिमादि सिद्धि और छःवर्ष जपनेसे काम रूपत्व मिलता है ॥ ७५ ॥ सातवर्षमें जपनेसे अमरत्व नौसे मनुत्व और दशवर्ष जपनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥ ग्यारह वर्ष जपनेसे प्राजापत्य और इसीप्रकार बारह वर्षतक जपै तो ब्रह्मत्व प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ इसीके द्वारा नारदादिने तपकरके लोकोंको जीता है. कोई शाक, कोई मूल, कोई फल, कोई पय ॥ ७८ ॥ कोई घी, कोई सोम, कोई चरु, कोई भिक्षावृत्तिसे दिनमें एकबार ॥ ७९ ॥ हविष्य अन्नखाते हुए परम तपकरते हैं. रहस्य पापोंकी

त्रिवत्सरंजपेदेवंभवेत्रैकालदर्शनम् ॥ आयातिभगवान्देवश्चतुःसंवत्सरंजपेत् ॥ ७४ ॥ पंचभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणोभवेत् ॥ एवंषड्वत्सरंजप्त्वाकामरूपित्वमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥ सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् ॥ मनुत्वंनवभिःसिद्धमिंद्रत्वंदशभिर्भवेत् ॥७६॥ एकादशभिराप्नोतिप्राजापत्यंतुवत्सरैः ॥ ब्रह्मत्वंप्राप्नुयादेवंजप्त्वाद्वादशवत्सरान् ॥ ७७ ॥ एतेनैवजितालोकास्तपसानारदादिभिः ॥ शाकमन्येपरेमूलंफलमन्येपयःपरे ॥ ७८ ॥ घृतमन्येपरेसोममपरेचरुवृत्तयः ॥ ऋषयःपक्षमश्नंतिकेचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि॥७९॥हविष्यमपरेऽश्नंतःकुर्वंत्येवपरंतपः॥अथशुद्ध्यैरहस्यानांत्रिसहस्रंजपेद्द्विजः ॥८०॥ मासंशुद्धोभवेत्स्तेयात्सुवर्णस्यद्विजोत्तमः ॥ जपेन्मासंत्रिसाहस्रंसुरापःशुद्धिमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ मासंजपेत्रिसाहस्रंशुचिःस्याद्गुरुतल्पगः ॥ त्रिसहस्रंजपेन्मासंकुटींकृत्वावनेवसन् ॥ ८२ ॥ ब्रह्महामुच्यतेपापादितिकौशिकभाषितम् ॥ द्वादशाहंनिमज्याप्सुसहस्रंप्रत्यहंजपेत् ॥ ८३ ॥ मुच्येरन्नंहसःसर्वेमहापातकिनोद्विजाः ॥ त्रिसाहस्रंजपेन्मासंप्राणानायम्यवाग्यतः॥८४॥महापातकयुक्तोवामुच्यतेमहतोभयात्॥प्राणायामसहस्रेणब्रह्महापिविशुध्यति ॥८५॥

शुद्धिके निमित्त तीन सहस्र जपकरै ॥ ८० ॥ सुवर्णकी चोरीसे एक महीना जपकरशुद्ध होजाता है. महीनेमें तीन सहस्र जपनेसे सुरापी शुद्ध होता है ॥ ८१ ॥ एक महीनेसे तीन सहस्र जपवाला गुरुतल्पगमनके पापसे मुक्त होता है. जो कुटीबनाया वनमें रहकर महीनेभरतक तीन सहस्र जपकरै ॥ ८२ ॥ तो ब्रह्महत्याके पापसे छूटता है यह कौशिक विश्वामित्रने कहा है जो जलमें निमग्न हो बारह दिनमें बारह सहस्र जप करै ॥ ८३ ॥ उसके सब पाप और महापातक नष्ट होजाते हैं, जो प्राणायामकर वाणी रोक महीनेमें तीन सहस्र जपकरै ॥ ८४ ॥ वह महापातक तथा महाभयसे छूट जाता है, सहस्र प्राणायामसे ब्रह्महत्याराभी शुद्ध होजाता है ॥८५॥

जो सावधान हो प्राण अपानको छःवार ऊपरको कर अभ्यास करता है तो यह प्राणायाम सब पापका नाशक हो जाताहै ॥ ८६ ॥ जो महीनेतक सहस्रवार अभ्यास करै वह राजा शुद्ध होजाताहै गोहत्या लगनेमें वारह दिनतक तीन सहस्र जपकरै ॥ ८७ ॥ अगम्यागमनकरने, चोरी अभक्ष्य भक्षणमें दशसहस्र गायत्री जप ब्राह्मणको शुद्ध करताहै ॥ ८८ ॥ सौ प्राणयाम करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है सब पापोंकी संकरताकी शुद्धिमें ॥ ८९ ॥ वनमें निवास कर सहस्र नित्य जप कर महीना व्यतीत करै, तीन सहस्र गायत्रीजप उपवासकी समान है ॥ ९० ॥ चौवीस सहस्र जप कृच्छ्र व्रतकी समान है चौंसठ सहस्र जप चान्द्रायण व्रतके समान है ॥ ९१ ॥ दोनों संध्याओंमें प्राणायामकर सौ

षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वंप्राणापानौसमाहितः ॥ प्राणायामोभवेदेषसर्वपापप्रणाशनः ॥ ८६ ॥ सहस्रमभ्यसन्मासंक्षितिपःशुचितामियात् ॥ द्वादशाहंत्रिसाहस्रंजपेद्धिगोवधेद्विजः ॥ ८७ ॥ अगम्यागमनस्तेयहननाभक्ष्यभक्षणे ॥ दशसाहस्रमभ्यस्तागायत्रीशोधयेद्विजम् ॥८८॥ प्राणायामश तंकृत्वामुच्यतेसर्वकिल्बिषात् ॥ सर्वेषामेवपापानांसंकरेसतिशुद्धये ॥ ८९ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासंनित्यजापीवनेवसन् ॥ उपवाससमंजप्यंत्रिसहस्रं तदित्यृचम् ॥ ९० ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रमभ्यस्ताकृच्छ्रसंज्ञिता ॥ चतुःषष्टिसहस्राणिचांद्रायणसमानितु ॥ ९१ ॥ शतकृत्वोभ्यसेन्नित्यंप्राणाना यम्यसंध्ययोः ॥ तदित्यृचमवाप्नोतिसर्वपापक्षयंपरम् ॥ ९२ ॥ निमज्याप्सुजपेन्नित्यंशतकृत्वस्तदित्यृचम् ॥ ध्यायन्देवींसूर्यरूपांसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ॥ ९३ ॥ इतितेसम्यगाख्याताःशांतिशुद्ध्यादिकल्पनाः ॥ रहस्यातिरहस्याश्चगोपनीयास्त्वयासदा ॥ ९४ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तःसदाचारस्यसंग्रहः ॥ विधिनाचरणादस्यमायादुर्गाप्रसीदति॥९५॥नैमित्तिकंचनित्यंचकाम्यंकर्मयथाविधि ॥ आचरेन्मनुजःसोयंभुक्तिमुक्तिफलाप्तिभाक् ॥ ९६ ॥

सौ वार अभ्यास करै तो सब पाप क्षय होजाते हैं ॥ ९२ ॥ जो जलमें निमज्जन कर सौवार गायत्री जप कर सूर्यरूपा देवीका ध्यान करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ९३ ॥ यह आपसे शान्ति शुद्धि आदिकी कल्पना भलीप्रकारसे कही, यह रहस्यसे भी रहस्य है इसको आप सदा गुप्त रखना ॥ ९४ ॥ यह संक्षेपसे सदाचारकी कल्पना कही इसके विधिपूर्वक आचरणसे माया दुर्गा प्रसन्न होती है ॥ ९५ ॥ नैमित्तिक और नित्य यथाविधि काम्य कर्म आचरण करनेसे मनुष्य भुक्ति मुक्तिके

फलको प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ आचारही प्रथम धर्म है धर्मकी अधिष्ठात्री भगवतीहै, इसप्रकार सब शास्त्रोंमें आचारका बडा फल कहा है ॥ ९७ ॥ आचारवान् सदा पवित्र और आचारवान् सदा सुखी है आचारवान् सदा धन्य है, हे नारद यह सत्य २ है ॥ ९८ ॥ यह सदाचारका विधान देवीकी प्रसन्नता करनेवाला है जो मनुष्य इसको सुने वह महासम्पत्ति तथा सुखका भागी होता है ॥ ९९ ॥ सदाचारसेही इस लोक और परलोकका सुख सिद्ध होता है सो यह आपसे वर्णन किया

आचारःप्रथमोधर्मोधर्मस्यप्रभुरीश्वरी ॥ इत्युक्तंसर्वशास्त्रेषुसदाचारफलंमहत् ॥ ९७ ॥ आचारवान्सदापूतःसदैवाचारवान्सुखी ॥ आचारवान्सदाधन्यः सत्यंसत्यंचनारद ॥ ९८ ॥ देवीप्रसादजनकंसदाचारविधानकम् ॥ यदपिशृणुयान्मर्त्योमहासंपत्तिसौख्यभाक् ॥ ९९ ॥ सदाचारेणसिध्येच्चऐहिकामुष्मिकंसुखम् ॥ तदेवतेमयाप्रोक्तंकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे सदाचारनिरूपणंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ एकादशःस्कंधःसमाप्तः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥

सार्धैरामाब्धिनेत्रेंदु (१२४३) पद्यैर्व्यासकृतैःशुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्यैकादशः । स्कंधईरितः ॥ १ ॥

अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १०० ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पं० ज्वालाप्रसादशर्मकृत भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

एक सहस्र दो सौ तेतालीस श्लोकोंमें एकादशस्कन्ध पूर्ण हुआ ।

दोहा—शिवाभवानी मायके, चरणकमल मन लाय । भाषा रुद्रस्कंधकी, बहुविधि लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, पावहिं मोद महान । श्रीदेवी तिनके करहिं, नित नूतन कल्यान ॥ २ ॥
वसतराम गंगानिकट, नगरमुरादाबाद । गुण गावत जगदम्बके, जनज्वालाप्रसाद ॥ ३ ॥
गायत्री समद्विजनको, नहिं कोउ और उपास । तासे गायत्री जपहु, दोनों लोक विकास ॥ ४ ॥
गायत्रीही भगवती, देवीरूप लखाय । कही भागवत मध्यमें, ऋषि द्वैपायन गाय ॥ ५ ॥

॥ शुभमस्तु ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कितम् ।
सं० १९५८, शके १८२३.

॥इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते एकादशस्कन्धः समाप्तः॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते द्वादशस्कन्धः प्रारभ्यते ॥

१३७

दोहा—श्रीजगदम्बा शारदा, कीजे आय सहाय ॥ एहि द्वादशस्कन्धकी, भाषा देहु बनाय ॥ १ ॥

नारदजी बोले हे प्रभो! आपने सदाचार विधि और उसका सब पाप दूर करने वाला बडा माहात्म्य वर्णन किया ॥ १ ॥ आपके मुखकमलसे निर्गत देवीकथामृत श्रवण किया और जो आपने चान्द्रायणादि व्रत कहे ॥ २ ॥ वह दुःसाध्यसे हैं कारण कि, कर्ताके साध्यरूप है साधारणोंके उपयोगी नहीं परन्तु इस समय जो शरीर धारियोंको सुखरूप हों ॥ ३ ॥ जो देवीकी प्रसन्नता करनेवाला सुखदायक अनुष्ठान हो हे सुरेश्वर! कृपा करके हमसे वही वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ सदाचारकी विधिमें जो गायत्रीकी सिद्धि कहीहै उसमें मुख्य पुण्यरूप क्या है और कौन अधिक पुण्यदायक है ॥ ५ ॥ जो गायत्रीके वर्ण हैं उतनेही आपने तत्व कथन किये हैं

श्रीगणेशायनमः ॥ नारदउवाच ॥ सदाचारविधिर्देवभवतावर्णितःप्रभो ॥ तस्याप्यतुलमाहात्म्यंसर्वपापविनाशनम् ॥ १ ॥ श्रुतंभवन्मुखांभोजच्युतं देवीकथामृतम् ॥ व्रतानियानिचोक्तानिचांद्रायणमुखानिते ॥ २ ॥ दुःखसाध्यानिजानीमःकर्त्रसाध्यानितानिच ॥ तदस्मात्सांप्रतंयत्तुसुखसाध्यंशरीरिणाम् ॥ ३ ॥ देवीप्रसादजनकंसुखानुष्ठानसिद्धिदम् ॥ तत्कर्मवदमेस्वामिन्कृपापूर्वंसुरेश्वर ॥४॥ सदाचारविधौयश्चगायत्रीविधिरीरितः ॥ तस्मिन्मुख्यतमंकिंस्यात्किंवापुण्याधिकप्रदम् ॥५॥ येगायत्रीगतावर्णास्तत्त्वसंख्यास्त्वयेरिताः ॥ तेषांकेऋषयःप्रोक्ताःकानिच्छंदांसिवैमुने ॥६॥ तेषांकादेवताःप्रोक्ताःसर्वंकथयमेप्रभो ॥ महत्कौतूहलंमेचमानसेपरिवर्तते ॥ ७ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ कुर्यादन्यन्नवाकुर्यादनुष्ठानादिकंतथा ॥ गायत्रीमात्रनिष्ठस्तुकृतकृत्योभवेद्द्विजः ॥ ८ ॥ संध्यासुचार्घ्यदानंचगायत्रीजपमेवच ॥ सहस्रत्रितयंकुर्वन्सुरैःपूज्योभवेन्मुने ॥९॥ न्यासान्करोतुवामावागायत्रीमेवचाभ्यसेत् ॥ ध्यात्वानिर्व्याजयावृत्त्यासच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ १० ॥ यदक्षरैकसंसिद्धेःस्पर्धतेब्राह्मणोत्तमः ॥ हरिशंकरकंजोत्थसूर्यचंद्रहुताशनैः ॥ ११ ॥

उनके कौन ऋषि और कौन छन्द हैं ॥६॥ हे प्रभो! उनके कौन देवता हैं यह सब बात आप हमसे कहो हमारे मनमें इसका बड़ा कौतूहल होरहा है ॥ ७ ॥ श्रीनारायण बोले और अनुष्ठान करै वा न करै केवल गायत्रीमात्रकी निष्ठा करनेसे ही ब्राह्मण कृतकृत्य होजाता है ॥ ८ ॥ तीनों सन्ध्याओंमें अर्घ्यदान गायत्रीका जप तीन सहस्र करनेसे हे मुने! वह देवताओंसे पूजित होता है ॥ ९ ॥ न्यासकरै वा न करै निर्व्याज भक्तिसे सच्चिदानंदरूपिणी भगवतीका ध्यान करके गायत्रीका अभ्यास करै ॥ १० ॥ जिस गायत्रीके एक अक्षरकी सिद्धि जो ब्राह्मण करलेता है उसकी स्पर्धा हरि, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र और अग्नि करते हैं ॥ ११ ॥

हे ब्रह्मन्! अब गायत्रीके वर्णोंके ऋष्यादि छन्द देवता क्रमसे कहते हैं सुनो॥ १२॥ वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महा तेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महान् शौनक ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश ॥ १४ ॥ अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, मांडूक, दुर्वासा, नारद, कश्यप ॥ १५ ॥ हे मुने! यह क्रमसे (२४) वर्णोंके चौवीस ऋषि हैं. अब छन्द कहते हैं. गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति ॥ १६ ॥ त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शकरी, अतिशकरी, धृति, अतिधृति॥ १७॥ विराट् प्रस्तारपंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, संकृति, अक्षर पंक्तिः ॥ १८॥ भूः, भुवः, स्वः और ज्योतिष्मती यह क्रमसे ॥

अथातःश्रूयतांब्रह्मन्वर्णऋष्यादिकांस्तथा ॥ छंदांसिदेवतास्तद्वत्क्रमात्तत्त्वानिचैवहि ॥ १२ ॥ वामदेवोत्रिर्वसिष्ठःशुक्रःकण्वःपराशरः ॥ विश्वामित्रो महातेजाःकपिलःशौनकोमहान् ॥१३॥ याज्ञवल्क्योभरद्वाजोजमदग्निस्तपोनिधिः ॥ गौतमोमुद्गलश्चैववेदव्यासश्चलोमशः ॥१४॥ अगस्त्यःकौशिको वत्सःपुलस्त्योमांडुकस्तथा ॥ दुर्वासास्तपसांश्रेष्ठोनारदःकश्यपस्तथा ॥ १५ ॥ इत्येतेऋषयःप्रोक्तावर्णानांक्रमशोमुने ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्चबृहती पंक्तिरेवच ॥ १६ ॥ त्रिष्टुभंजगतीचैवतथाऽतिजगतीमता ॥ शक्कर्यतिशक्करीचधृतिश्चातिधृतिस्तथा ॥ १७ ॥ विराट्प्रस्तारपंक्तिश्चकृतिःप्रकृतिराकृतिः ॥ विकृतिःसंकृतिश्चैवाक्षरपंक्तिस्तथैवच ॥ १८ ॥ भूर्भुवःस्वरितिच्छंदस्तथाज्योतिष्मतीस्मृतम् ॥ इत्येतानिचछंदांसिकीर्तितानिमहामुने ॥ १९॥ देवतानिशृणुप्राज्ञतेषामेवानुपूर्वशः ॥ आग्नेयंप्रथमंप्रोक्तंप्राजापत्यंद्वितीयकम् ॥ २० ॥ तृतीयंचतथासौम्यमीशानंचचतुर्थकम् ॥ सावित्रंपंचमंप्रोक्तंषष्ठमादित्यदैवतम् ॥ २१ ॥ बार्हस्पत्यंसप्तमंतुमैत्रावरुणमष्टमम् ॥ नवमंभगदैवत्यंदशमंचार्यमेश्वरम् ॥ २२ ॥ गणेशमेकादशकंत्वाष्ट्रंद्वादशकंस्मृतम् ॥ पौष्णंत्रयोदशंप्रोक्तमैंद्राग्नंचचतुर्दशम्॥२३॥वायव्यंपंचदशकंवामदेव्यंचषोडशम् ॥ मैत्रावरुणिदेवत्यंप्रोक्तंसप्तदशाक्षरम् ॥२४॥ अष्टादशंवैश्वदेवमूनविंशंतुमातृकम् ॥ वैष्णवंविंशतितमंवसुदैवतमीरितम् ॥ २५ ॥

(२४) छन्द कहे गये हैं ॥ १९ ॥ हे मुनीश्वर ! अब क्रमसे इनके देवता सुनो प्रथमके अग्नि, दूसरेके प्रजापति ॥ २० ॥ तीसरेके चन्द्रमा, चौथेके ईशान, पाँचवेंके सविता, छठेके आदित्य ॥ २१ ॥ सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके मित्रावरुण, नौवेंके भग, दशवेंके अर्यमा॥ २२॥ ग्यारहवेंके गणेश बारहवेंके त्वष्टा, तेरहवेंके पूषा, चौदहवेंके इन्द्र और अग्नि ॥ २३ ॥ पन्द्रहवेंके वायु, सोलहवेंके वामदेव, सत्रहवेंके मैत्रावरुण ॥ २४ ॥ अठारहवेंके विश्वेदेवा, उन्नीसवेंके मातायें, वीसवेंके विष्ण,

इक्कीसवेंके वसु ॥ २५ ॥ बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके कुबेर, चौवीसवेंके अश्विनीकुमार ॥ २६ ॥ यह चौवीस वर्णोंके देवता कहे जो परमश्रेष्ठ और महापापके शोधक हैं ॥२७॥ हे मुने ! जिनके श्रवणसे सांग जाप्यका फल होता है गायत्री ब्रह्मकल्पमें भिन्न देवता कहे हैं वह भी क्रमसे लिखते हैं अग्नि, वायु, सूर्य, कुबेर, यम, वरुण, बृहस्पति, पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, प्रोष्ठ, मित्रावरुण, त्वष्टा, वासव, मरुत्, सोम, अंगिरा, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, पूषा, रुद्र, विद्युत् ब्रह्म, अदिति, यह क्रमसे देवताहैं ॥२८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां गायत्रीविचारोनाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद! अब वर्णोंकी शक्तियोंको क्रमसे सुनो वामदेवी

एकविंशतिसंख्याकंद्वाविंशंरुद्रदैवतम् ॥ त्रयोविंशंचकौबेरमाश्विनंतत्त्वसंख्यकम् ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिवर्णानांदेवतानांचसंग्रहः ॥ कथितः परमश्रेष्ठोमहापापैकशोधनः ॥ २७ ॥ यदाकर्णनमात्रेणसांगंजाप्यफलंमुने ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधेगायत्रीविचारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ वर्णानांशक्तयःकाश्चताःशृणुष्वमहामुने ॥ वामदेवीप्रियासत्याविश्वाभद्र विलासिनी ॥ १ ॥ प्रभावतीजयाशांताकांतादुर्गासरस्वती ॥ विद्रुमाचविशालेशाव्यापिनीविमलातथा ॥ २ ॥ तमोपहारिणीसूक्ष्मावि श्वयोनिर्जयावशा ॥ पद्मालयापराशोभाभद्राचत्रिपदास्मृता ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिवर्णानांशक्तयःसमुदाहृताः ॥ अतःपरंवर्णवर्णान्व्याहरामियथात थम् ॥ ४ ॥ चंपकातसीपुष्पसन्निभंविद्रुमंतथा ॥ स्फटिकाकारकंचैवपद्मपुष्पसमप्रभम् ॥५॥ तरुणादित्यसंकाशंशंखकुंदेंदुसन्निभम् ॥ प्रवालपद्मप त्राभंपद्मरागसमप्रभम् ॥ ६ ॥ इंद्रनीलमणिप्रख्यंमौक्तिकंकुंकुमप्रभम् ॥ अंजनाभंचरक्तंचवैडूर्यंक्षौद्रसन्निभम् ॥ ७ ॥ हारिद्रंकुंददुग्धाभंरविकांतिसम प्रभम् ॥ शुकपुच्छनिभंतद्वच्छतपत्रनिभंतथा ॥८॥ केतकीपुष्पसंकाशंमल्लिकाकुसुमप्रभम् ॥ करवीरश्चइत्येतेक्रमेणपरिकीर्तिताः ॥९॥ वर्णाःप्रोक्ता श्चवर्णानांमहापापविशोधनाः ॥ पृथिव्यापस्तथातेजोवायुराकाशएवच ॥ १० ॥

प्रिया सत्या, विश्वा, भद्रा, विलासिनी॥ १ ॥ प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विश्वालेशा, व्यापिनी, विमला॥ २॥ तमोपहारिणी सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जाया, वशा, पद्मालया, परा, शोभा, भद्रा, त्रिपदा ॥ ३ ॥ यह क्रमसे चौवीस अक्षरोंकी शक्ति हैं, अब चौवीस वर्णोंके रंग कहते हैं॥ ४ ॥ चम्पक अलसीके फूलकी समान मूँगेका रंग नवीन पल्लव वनस्फटिकके समान, पद्मरागमणिके समान ॥ ५ ॥ तरुण सूर्यके समान, शंख, कुंद, इन्द्र, प्रवाल, पद्मपत्रकी समान, पद्मरागकी समान ॥ ॥ ६ ॥ इन्द्रनीलमणिके समान, मोती, कुंकुम, अंजन समान, लाल वैडूर्यकी समान, शहदकी समान ॥ ७ ॥ हलदी, कुंद, दूध, सूर्यकान्ति, शुकपुच्छ, शतपत्रकी समान ॥८॥ केतकीपुष्प, केतकीपुष्पकी समान, मल्लिका (चमेली) और कनेरकी समान चौवीसोंके क्रमसे रंग जानने ॥ ९ ॥ यह वर्णोंके रंग महापापके शुद्धकरने

वाले हैं. पृथ्वी, अप (जल,) तेज, वायु, आकाश ॥ १० ॥ गंध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, उपस्थ, गुद, चरण, हाथ, वाणी ॥ ११ ॥ प्राण, (नासा) जिह्वा, चक्षु, त्वचा, श्रोत्र, प्राण, अपान, व्यान, समान ॥ १२ ॥ यह क्रमसे सब वर्णोंके तत्त्व हैं. अब क्रमसे वर्णोंकी मुद्रा कहते हैं ॥ १३ ॥ सम्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, एकमुख, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख ॥ १४ ॥ षण्मुख, अधोमुख, व्यापक, अंजली, शकट, यमपाशक, ग्रथित, सन्मुख, उन्मुख ॥ १५ ॥ विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाकान्त, महाकान्त, मुद्गर, पल्लव ॥ १६ ॥ त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अंबुज (कमल) यह महामुद्रा गायत्रीके चतुर्थ चरणरूप कही हैं ॥ १७ ॥ हेमहामुने !

गंधोरसश्चरूपंचशब्दःस्पर्शस्तथैवच ॥ उपस्थंपायुपादंचपाणीवागपिचक्रमात् ॥ ११ ॥ प्राणंजिह्वाचचक्षुश्चत्वक्श्रोत्रंचततःपरम् ॥ प्राणोपानस्तथाव्यानःसमानश्चततःपरम् ॥ १२ ॥ तत्त्वान्येतानिवर्णानांक्रमशःकीर्तितानितु ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिवर्णमुद्राःक्रमेणतु ॥ १३ ॥ सुमुखंसंपुटंचैववितितंविस्तृतंतथा ॥ द्विमुखंत्रिमुखंचैवचतुःपंचमुखंतथा ॥ १४ ॥ षण्मुखाधोमुखंचैवव्यापकांजलिकंतथा ॥ शकटंयमपाशंचग्रथितंसंमुखोन्मुखम् ॥ १५ ॥ विलंबंमुष्टिकंचैवमत्स्यंकूर्मंवराहकम् ॥ सिंहाक्रांतंमहाक्रांतंमुद्गरंपल्लवंतथा ॥ १६ ॥ त्रिशूलयोनीसुरभिश्चाक्षमालाचलिंगकम् ॥ अंबुजंचमहामुद्रास्तुर्यरूपाःप्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥ इत्येताःकीर्तितामुद्रावर्णानांतेमहामुने ॥ महापापक्षयकराःकीर्तिदाःकांतिदामुने ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ स्वामिन्सर्वजगन्नाथसंशयोस्तिममप्रभो ॥ चतुःषष्टिकलाभिज्ञपातकाद्योगविद्वर ॥ १ ॥ मुच्येतकेनपुण्येनब्रह्मरूपःकथंभवेत् ॥ देहश्चदेवतारूपोमंत्ररूपोविशेषतः ॥ २ ॥ कर्मतच्छ्रोतुमिच्छामिन्यासंचविधिपूर्वकम् ॥ ऋषिश्छंदोधिदैवंचध्यानंचविधिवत्प्रभो ॥ ३ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ अस्त्येकंपरमंगुह्यंगायत्रीकवचंतथा ॥ पठनाद्धारणान्मर्त्यःसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ४ ॥

यह वर्णोंकी मुद्रा कही यह महा पापनाशिनी कीर्ति और कान्ति देती हैं ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारदजी बोले, हे स्वामिन् ! हे सब जगत्के प्रभो हे चौंसठ कलाके ज्ञाता, योगजानने वालोंमें श्रेष्ठ ! यह मुझको सन्देह है कि, पातकोंसे ॥ १ ॥ किस पुण्यसे छूटकर ब्रह्म हुआ जाता है देह देवतारूप और विशेषकर मंत्ररूप है ॥ २ ॥ उस कर्म और विधिपूर्वक न्यासके जाननेकी इच्छा करता हूं, हे प्रभो ! ऋषि, छन्द, देवता और विधिपूर्वक ध्यान कहो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले, एक परमगुह्य गायत्रीकवच है जिसके पढ़ने और धारण करनेसे मनुष्य सबपापोंसे छूट जाता है ॥ ४ ॥

और सब कामनाओंको प्राप्तहो देवीरूपहो जाता है, इस गायत्री कवचके ब्रह्मा विष्णु महेश्वर॥५॥ऋषि हैं,हेनारद ! ऋक्,यजु,साम,अथर्व छन्द हैं,ब्रह्मरूपा देवता और गायत्री परमा कला है ॥ ६ ॥ तत् पदवीज, भर्गशक्ति धियः कीलक और मोक्षमें इसका विनियोग है॥७॥ प्रथमके चार अक्षरोंसे हृदय, तीनसे शिर, चारसे शिखा, तीनसे कवच ॥ ८ ॥ फिर चारसे नेत्र और चार अक्षरोंसे अस्त्र क्रिया करे, इस प्रकार २४ अक्षर हुए, अब साधकको सब अभीष्ट देनेवाला ध्यान कहते हैं ॥९॥ मोती, मूँगे सुवर्ण, नीलमणि, उज्ज्वल छायायुक्त प्रत्येक मुखमें तीन २ नेत्र ऐसे पांच मुखयुक्तरत्नके मुकुटमें चन्द्रमा धारण किये २४ तत्त्ववर्णस्वरूपिणी

सर्वान्कामानवाप्नोतिदेवीरूपश्चजायते ॥गायत्रीकवचस्यास्यब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ५ ॥ ऋषयोऋग्यजुःसामाथर्वश्छंदांसिनारद ॥ ब्रह्मरूपादेवतोक्तागायत्रीपरमाकला॥ ६ ॥ तद्बीजंभर्गइत्येषाशक्तिरुक्तामनीषिभिः ॥ कीलकंचधियःप्रोक्तंमोक्षार्थेविनियोजनम् ॥ ७ ॥ चतुर्भिर्हृदयंप्रोक्तंत्रिभिर्वर्णैः शिरःस्मृतम् ॥ चतुर्भिःस्याच्छिखापश्चात्त्रिभिस्तुकवचंस्मृतम् ॥ ८ ॥ चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टंचतुर्भिःस्यात्तदस्त्रकम् ॥ अथध्यानंप्रवक्ष्यामिसाधकाभीष्टदायकम् ॥ ९ ॥ मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिंदुनिबद्धरत्नमुकुटांतत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ॥ गायत्रींवरदाभयांकुशकशाःशुभ्रंकपालंगुणंशंखंचक्रमथारविंदयुगलंहस्तैर्वहंतींभजे ॥ १० ॥ गायत्रीपूर्वतःपातुसावित्रीपातुदक्षिणे ॥ ब्रह्मसंध्यातुमेपश्चादुत्तरायांसरस्वती ॥ ११ ॥ पार्वतीमेदिशंरक्षेत्पावकीजलशायिनी॥ यातुधानीदिशंरक्षेद्यातुधानभयंकरी ॥ १२ ॥ पावमानींदिशंरक्षेत्पवमानविलासिनी ॥ दिशंरौद्रींचमेपातुरुद्राणीरुद्ररूपिणी ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वंब्रह्माणिमेरक्षेदधस्ताद्वैष्णवीतथा ॥ एवंदशदिशोरक्षेत्सर्वांगंभुवनेश्वरी ॥ १४ ॥

वरदायिनी ऊर्ध्व हाथोंमें दो कमल, उससे नीचेके करोंमें चक्र, शंख उससे नीचे केमें रज्जु,कपाल उससे नीचेकेमें पाश,अंकुश, उससे नीचेके हाथोंमें अभयवर धारण किये गायत्री देवीको भजन करता हूं ॥ १० ॥ पूर्वसे गायत्री, दक्षिणसे सावित्री, पीछेसे ब्रह्माद्वारा आराधना की हुई संध्या, उत्तरसे सरस्वती रक्षाकरे॥११॥ पार्वती अग्निकोणमें, यातुधानभयंकरी नैर्ऋत्य कोणमें रक्षा करे ॥ १२ ॥ पवमानविलासिनी वायव्यमें, रुद्ररूपिणी रुद्राणी ईशान कोणमें ॥ १३ ॥ ऊर्ध्व दिशामें ब्रह्माणी,

नीचे वैष्णवी, इसप्रकारसे सब अंग और दशों दिशामें भुवनेश्वरी रक्षा करे ॥ १४ ॥ तत् पदचरणोंकी, सवितुः जंघाओंकी, वरेण्यम् कमरकी, भर्ग नाभिकी ॥ १५ ॥ देवस्य हृदयकी, धीमहि गालोंकी, धियः पदनेत्रोंकी, यः ललाटकी ॥ १६ ॥ नः पदशिरकी, प्रचोदयात् शिखाकी, फिर तत् शिरकी, सकार भालकी ॥ १७ ॥ विकार नेत्रोंकी, तुकार कपोलोंकी, वकार नासिकाकी, रेकार मुखकी ॥ १८ ॥ णिकार ऊपरके होठकी, यकार नीचेके होठकी, भकार मुखमध्यकी गोकार दाढीकी ॥ १९ ॥ देकार कंठदेशकी, वकार कंधोंकी, स्यकार दहने हाथकी, धीकार वाम हाथकी ॥ २० ॥ मकार हृदयकी, हिकार पेटकी, धिकार नाभिकी, योकार कटिकी ॥ २१ ॥

तत्पदंपातुमेपादौजंघेमेसवितुःपदम् ॥ वरेण्यंकटिदेशेतुनाभिंभर्गस्तथैवच ॥ १५ ॥ देवस्यमेतद्धृदयंधीमहीतिचगल्लयोः ॥ धियःपदंचमेनेत्रेयःपदंमेललाटकम् ॥ १६ ॥ नःपातुमेपदंमूर्ध्निशिखायांमेप्रचोदयात् ॥ तत्पदंपातुमूर्धानंसकारःपातुभालकम् ॥ १७ ॥ चक्षुषीतुविकारार्णोतुकारस्तुकपोलयोः ॥ नासापुटंवकारार्णोरेकारस्तुमुखेतथा ॥ १८ ॥ णिकारऊर्ध्वमोष्ठंतुयकारस्त्वधरोष्ठकम् ॥ आस्यमध्येभकारार्णोगोंकारश्चुबुकेतथा ॥ १९ ॥ देकारःकंठदेशेतुवकारःस्कंधदेशकम् ॥ स्यकारोदक्षिणंहस्तंधीकारोवामहस्तकम् ॥ २० ॥ मकारोहृदयंरक्षेद्धिकारउदरेतथा ॥ धिकारोनाभिदेशेतुयोकारस्तुकटिंतथा ॥ २१ ॥ गुह्यंरक्षतुयोकारऊरूद्वौनःपदाक्षरम् ॥ प्रकारोजानुनीरक्षेच्चोकारोजंघदेशकम् ॥ २२ ॥ दकारंगुल्फदेशेतुयाकारःपदयुग्मकम् ॥ तकारव्यंजनंचैवसर्वांगेमेसदाऽवतु ॥ २३ ॥ इदंतुकवचंदिव्यंबाधाशतविनाशनम् ॥ चतुःषष्टिकलाविद्यादायकंमोक्षकारकम् ॥ २४ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यःपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापिगोसहस्रफलंलभेत् ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधेगायत्रीमंत्रकवचंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

योकार गुह्यस्थानकी, नः दोनों ऊरुओंकी प्र जानुकी, चो जंघाकी ॥ २२ ॥ दकार गुल्फोंकी, या दोनों चरणोंकी, त् व्यंजन मेरे सर्वांगकी रक्षा करे ॥ २३ ॥ यह दिव्यकवच सैकडों बाधा दूर करता है चौसठ कलायुक्त विद्या और मोक्षदायक है ॥ २४ ॥ इसके धारणसे सब पापोंसे छूटकर परब्रह्मको प्राप्त होता है इसके पठन श्रवणसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

नारदजी बोले हे भगवन्! देवदेवेश भूतभव्य जगत्के प्रभु! मैं ने दिव्य गायत्री मंत्रका विग्रह और कवच सुना॥ १॥ अब गायत्री हृदयके सुननेकी इच्छा है जिसके धारणसे गायत्रीजपका समस्त पुण्य प्राप्त होता है ॥ २॥ श्रीनारायण बोले हे नारद! अथर्वमें देवीका हृदय लिखा है वह रहस्यकाभी रहस्य तुमसे कहता हूं ॥ ३ ॥ वह विराट् रूप महादेवी गायत्री वेदमाता है उसका ध्यानकर अंगोंमें इन देवताओंका ध्यान करे ॥ ४ ॥ जब विराट्रूपमें पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकतासे अपने देहको गायत्रीरूप देखे तो अपने देहमें गायत्रीकी भावना करे जिससे तन्मय होजाय ॥ ५ ॥ वेदवित् कहते हैं अदेव देवकी पूजा न करे अभेद होनेके निमित्त अपने

नारदउवाच ॥ भगवन्देवदेवेशभूतभव्यजगत्प्रभो ॥ कवचंचश्रुतंदिव्यंगायत्रीमंत्रविग्रहम् ॥ १ ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामिगायत्रीहृदयंपरम् ॥ यद्धारणाद्भवेत्पुण्यंगायत्रीजपतोऽखिलम् ॥२॥ श्रीनारायणउवाच॥देव्याश्चहृदयंप्रोक्तंनारदाथर्वणेस्फुटम् ॥ तदेवाहंप्रवक्ष्यामिरहस्यातिरहस्यकम्॥३॥विराड्रूपां महादेवींगायत्रींवेदमातरम् ॥ध्यात्वातस्यास्त्वथांगेषुध्यायेदेताश्चदेवताः ॥४॥ पिंडब्रह्मांडयोरैक्याद्भावयेत्स्वतनौतथा ॥ देवीरूपेनिजेदेहेतन्मयत्वाय साधकः॥५॥नादेवोभ्यर्चयेद्देवमितिवेदविदोविदुः॥ ततोऽभेदायकायेस्वेभावयेद्देवताइमाः॥६॥अथतत्संप्रवक्ष्यामितन्मयत्वमथोभवेत्॥गायत्रीहृदयस्याऽस्याऽप्यहमेवऋषिःस्मृतः॥७॥गायत्रीच्छंदउद्दिष्टंदेवतापरमेश्वरी॥पूर्वोक्तेनप्रकारेणकुर्यादंगानिषट्क्रमात् ॥ आसनेविजनेदेशेध्यायेदेकाग्रमानसः॥८॥ अथार्थन्यासः॥द्यौर्मूर्ध्निदैवतम् ॥ दंतपंक्तावश्विनौ ॥ उभेसंध्येचोष्ठौ ॥ मुखमग्निः ॥ जिह्वासरस्वती ॥ ग्रीवायांतुबृहस्पतिः ॥ स्तनयोर्वसवोऽष्टौ ॥ बाह्वोर्मरुतः ॥ हृदयेपर्जन्यः ॥ आकाशमुदरम् ॥ नाभावंतरिक्षम् ॥ कट्योरिंद्राग्नी ॥ जघनेविज्ञानघनःप्रजापतिःकैलासमलयेऊरू ॥ विश्वेदेवाजान्वोः ॥ जंघायांकौशिकः ॥ गुह्यमयने ॥ ऊरूपितरः ॥

शरीरमें इन देवताओंकी भावना करे ॥ ६ ॥ जिससे तन्मय होजाय वह मैं तुमसे कहता हूं इस गायत्री हृदयका मैं नारायण ऋषि हूँ ॥ ७ ॥ गायत्री छन्द परमेश्वरी देवता है, पूर्वोक्त प्रकारसे षडङ्ग न्यास करे, विजन स्थानमें आसन लगाय एकाग्रमनसे ध्यान करे ॥ ८ ॥ अब अर्थन्यास कहते हैं द्यौः मस्तकमें, दन्तपंक्तिमें अश्विनीकुमार, दोनों सन्ध्या ओष्टोंमें, मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें बृहस्पति, स्तनोंमें आठोंवसु, दोनों भुजाओंमें मरुत्, हृदयमें पर्जन्य, उदरमें आकाश, नाभिमें अन्तरिक्ष, कटिमें इन्द्राग्नी, जंघामें विज्ञानघन प्रजापति,ऊरुओंमें कैलास और मलयाचल, जानुओंमें विश्वेदेव,जङ्घामें कौशिक,इन्द्र गुह्यमें, दोनों अयन ऊरुओंमें, पितर चर

णोमें, पृथ्वी अंगुलियोंमें, वनस्पति रोमोंमें, ऋषि नखोंमें, मुहूर्त्त अस्थियोंमें, ग्रह रुधिर मांसमें, छहों ऋतु निमेषमें, संवत्सर अहोरात्रमें आदित्य, चन्द्रमा, ऐसी श्रेष्ठ दिव्य सहस्र नेत्रवाली गायत्रीको मैं शरण होताहूं, ॐतत्सवितुर्वरेण्यायश्रेष्ठ तेजके निमित्त नमस्कारहै। ॐ उस पूर्वदिशामें उदय होनेवालेके निमित्त प्रणाम है । प्रभातके आदित्यके निमित्त प्रणाम है । प्रभात कालके सूर्यकी प्रतिष्ठाको प्रणाम है । प्रभातमें स्मरण किये सविता रात्रिके पापको दूर करते हैं। संध्यामें स्मरणकिये हुए दिनके पापको दूर करते हैं। सायं प्रातः स्मरणकरनेसे मनुष्य पापरहित होता है । वह पुरुष मानो सवतीर्थोंमें स्नान करचुका वह सब देवताओंसे जाना जाता है । अवाच्य वचन कहनेके दोषोंसे पवित्र होजाता है अभक्ष्य भक्षण करनेसे पवित्र होता है, अभोज्य भोजनसे पवित्र होता है अचोष्य वस्तु चूसनेसे पवित्र होता है । असाध्य साधनसे पवित्र होता, सैकडों

पादौपृथिवी ॥ वनस्पतयोंगुलीषु ॥ ऋषयोरोमाणि ॥ नखानिमुहूर्तानि ॥ अस्थिषुग्रहाः ॥ असृङ्मांसमृतवः ॥ संवत्सरावैनिमिषाः ॥ अहोरात्रावादित्यश्चंद्रमाः ॥ प्रवरांदिव्यांगायत्रींसहस्रनेत्रांशरणमहंप्रपद्ये ॥ ॐतत्सवितुर्वरेण्यायनमः ॥ ॐतत्पूर्वाजयायनमः ॥ तत्प्रातरादित्यायनमः ॥ तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायैनमः ॥ प्रातरधीयानोरात्रिकृतंपापंनाशयति ॥ सायमधीयानोदिवसकृतंपापंनाशयति ॥ सायंप्रातरधीयानोअपापोभवति ॥ सर्वतीर्थेषुस्नातोभवति ॥ सर्वैर्देवैर्ज्ञातोभवति ॥ अवाच्यवचनात्पूतोभवति ॥ अभक्ष्यभक्षणात्पूतोभवति ॥ अभोज्यभोजनात्पूतोभवति ॥ अचोष्यचोषणात्पूतोभवति ॥ असाध्यसाधनात्पूतोभवति॥ दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतोभवति॥ सर्वप्रतिग्रहात्पूतोभवति ॥ पंक्तिदूषणात्पूतोभवति ॥ अनृतवचनात्पूतोभवति ॥ अथाऽब्रह्मचारीब्रह्मचारीभवति ॥ अनेनहृदयेनाधीतेनक्रतुसहस्रेणेष्टंभवति॥ षष्टिशतसहस्रगायत्र्याजप्यानिफलानिभवंति ॥ अष्टौब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयेत् ॥ तस्यसिद्धिर्भवति ॥ यइदंनित्यमधीयानोब्राह्मणःप्रातःशुचिःसर्वपापैःप्रमुच्यतइति ॥ ब्रह्मलोके महीयते ॥ इत्याहभगवान्श्रीनारायणः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे गायत्रीहृदयंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सहस्र नष्ट दान लेनेसे पवित्र होता, सब प्रतिग्रहोंसे पवित्र होता, पंक्ति दूषणोंसे पवित्र होता अमृतवचन कहनेके पापसे छूटता अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी होता इस गायत्रीहृदयके पाठसे सहस्रयज्ञका फल मिलता है (६००००) साठ सहस्र गायत्रीजपका फल होता है आठ ब्राह्मणोंको भलीप्रकार ग्रहण करावै तो उसको सिद्धि होती है जो ब्राह्मण पवित्र होकर प्रातःकालमें इसको नित्य अध्ययन करता है वह सब पापसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें गमन करता है ऐसा भगवान् नारायणने कहा है ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥

नारदजी बोले हे भक्तोंपर दयाकरनेवाले सर्वज्ञ ! आपने पापनाशक गायत्रीका हृदय कथन किया अब गायत्रीका स्तोत्र कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले हे आदि शक्ति जगत्की माता ! भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाली सर्वत्र व्यापक अनन्त श्री दोनों संध्यारूप ! आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ आपही संध्या गायत्री सरस्वती सावित्री ब्राह्मी वैष्णवी रौद्री रक्त श्वेत श्याम हो ॥ ३ ॥ प्रभातमें बाला, मध्याह्नमें युवा, सायमें वृद्धा होतीहो. इसप्रकार मुनिजन सदा तुम्हारी चिन्तना करते हैं॥ ४॥ हंसपर गरुडपर वृषभपर चढी ऋग्वेदकी पढनेवाली जो तपस्वियोंको भूमिपर दीखती है ॥ ५ ॥ और यजुर्वेदका पाठ करती हुई अन्तरिक्षमें विराजमान् होती है वहसब

नारदउवाच॥भक्तानुकंपिन्सर्वज्ञहृदयंपापनाशनम्॥गायत्र्याःकथितंतस्माद्गायत्र्याःस्तोत्रमीरय ॥१॥ श्रीनारायणउवाच ॥ आदिशक्तेजगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि ॥ सर्वत्रव्यापिकेऽनंतेश्रीसंध्येतेनमोऽस्तुते॥२॥त्वमेवसंध्यागायत्रीसावित्रीचसरस्वती ॥ ब्राह्मीचवैष्णवीरौद्रीरक्ताश्वेतासितेतरा॥३॥प्रातर्बालाचमध्याह्नेयौवनस्थाभवेत्पुनः ॥ वृद्धासायंभगवतीचिंत्यतेमुनिभिःसदा॥४॥हंसस्थागरुडारूढातथावृषभवाहिनी॥ऋग्वेदाध्यायिनीभूमौदृश्यतेयातपस्विभिः॥५॥यजुर्वेदंपठंतीचअंतरिक्षेविराजते ॥ सासामगापिसर्वेषुभ्राम्यमाणातथाभुवि॥६॥रुद्रलोकंगतात्वंहिविष्णुलोकनिवासिनी॥त्वमेवब्रह्मणोलोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी ॥७॥सप्तर्षिप्रीतिजननीमायाबहुवरप्रदा ॥शिवयोःकरनेत्रोत्थाह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा॥८॥आनंदजननीदुर्गादशधापरिपठ्यते॥वरेण्यावरदाचैववरिष्ठावरवर्णिनी ॥ ९ ॥ गरिष्ठाचवराहाचवरारोहाचसप्तमी ॥ नीलगंगातथासंध्यासर्वदाभोगमोक्षदा ॥ १० ॥ भागीरथीमर्त्यलोकेपातालेभोगवत्यपि ॥ त्रिलोकवाहिनीदेवीस्थानत्रयनिवासिनी॥११॥ भूर्लोकस्थात्वमेवासिधरित्रीशोकधारिणी ॥ भुवोलोकेवायुशक्तिःस्वर्लोकेतेजसांनिधिः॥१२॥

में सामगाती भूमिमें भ्रमण करती है ॥ ६ ॥ तुमही रुद्रलोकमें प्राप्त होकर विष्णु लोकमें निवास करती हो तुमही ब्रह्मलोकमेंहो मनुष्योंपर अनुग्रह करती हो॥ ७ ॥ सप्तऋषियोंको प्रसन्न करनेवाली बहुत वर देनेवाली माया शिव और शक्ति हाथ नेत्रसे उत्पन्न उन्हीके अश्रु और पसीनेसे उद्भव ॥ ८ ॥ आनन्दकी प्रगट करनेवाली दुर्गा दश प्रकार पढी जाती है वरेण्या वरदा वरिष्ठा वरवर्णिनी ॥ ९ ॥ गरीष्ठा, वराहा, वरारोहा, नीलगंगा, संध्या, सदा भोग मोक्ष देनेवाली ॥ १० ॥ मर्त्यलोकमें भागीरथीरूप, पातालमें भोगवती, स्वर्गमें सीता इसप्रकार त्रिलोकवाहिनी देवी तीनों स्थानमें निवास करती है ॥ ११ ॥ भूलोकमें शोकधारिणी

भूमि तुमही हो भुवर्लोकमें वायुशक्तिरूप और स्वर्लोकमें तेजोंकी निधि तुमहो ॥ १२ ॥ महर्लोकमें महासिद्धिरूप जनलोकमें जननी तपोलोकमें तपस्विनी और सत्यलोकमें सत्यवाक् तुमही हो ॥ १३ ॥ विष्णुलोकमें कमला ब्रह्मलोक देनेवाली गायत्री और रुद्रलोकमें गौरी शिवके अर्धांगनिवास करनेवाली तुमहीहो ॥ १४ ॥ अहं महान् प्रकृति रूपसे तुमही गाई जाती हो, साम्यावस्थात्मिका शवल ब्रह्मरूपिणी तुमही हो ॥ १५ ॥ तिससे परे परा परमाशक्ति तुमही गाई जाती हो. इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति, तीनशक्ति देनेवाली तुमही हो ॥ १६ ॥ गंगा यमुना विपाशा सरस्वती सरयू देविका सिन्धु नर्मदा ऐरावती ॥ १७ ॥ गोदावरी शतद्रु कावेरी देवलोकगामिनी कौशिकी चन्द्रभागा वितस्ता सरस्वती ॥ १८ ॥ गंडकी तपनी करतोया गोमती वेत्रवती तुमहो, इडा

महर्लोकेमहासिद्धिर्जनलोकेजनेत्यपि ॥ तपस्विनीतपोलोकेसत्यलोकेतुसत्यवाक् ॥ १३ ॥ कमलाविष्णुलोकेचगायत्रीब्रह्मलोकदा ॥ रुद्रलोकेस्थितागौरीहरार्धांगनिवासिनी ॥ १४ ॥ अहमोमहतश्चैवप्रकृतिस्त्वंहिगीयसे ॥ साम्यावस्थात्मिकात्वंहिशबलब्रह्मरूपिणी ॥ १५ ॥ ततःपरापराशक्तिःपरमात्वंहिगीयसे ॥ इच्छाशक्तिःक्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा ॥ १६ ॥ गंगाचयमुनाचैवविपाशाचसरस्वती ॥ सरयूर्देविकासिंधुर्नर्मदेरावतीतथा ॥ १७ ॥ गोदावरीशतद्रूश्चकावेरीदेवलोकगा ॥ कौशिकीचंद्रभागाचवितस्ताचसरस्वती ॥१८॥ गंडकीतापिनीतोयागोमतीवेत्रवत्यपि ॥ इडाचपिंगलाचैवसुषुम्नाचतृतीयका ॥ १९ ॥ गांधारीहिस्तजिह्वाचपूषापूषातथैवच ॥ अलंबुसाकुहूश्चैवशंखिनीप्राणवाहिनी ॥ २० ॥ नाडीचत्वंशरीरस्थागीयसेप्राक्तनैर्बुधैः ॥ हृत्पद्मस्थाप्राणशक्तिःकंठस्थास्वप्ननायिका ॥ २१ ॥ तालुस्थात्वंसदाधाराबिंदुस्थाबिंदुमालिनी ॥ मूलेतुकुंडलीशक्तिर्व्यापिनीकेशमूलगा ॥ २२ ॥ शिखामध्यासनात्वंहिशिखाग्रेतुमनोन्मनी ॥ किमन्यद्बहुनोक्तेनयत्किंचिज्जगतीत्रये ॥ २३ ॥ तत्सर्वंत्वंमहादेविश्रियेसंध्येनमोस्तुते ॥ इतीतंकीर्तितंस्तोत्रंसंध्यायांबहुपुण्यदम् ॥२४॥ महापापप्रशमनंमहासिद्धिविधायकम् ॥ यइदंकीर्तयेत्स्तोत्रंसंध्याकालेसमाहितः ॥ २५ ॥

पिंगला तीसरी सुषुम्ना ॥ १९ ॥ गांधारी हस्तजिह्वा पूषा अपूषा अलंबुसा कुहू शंखिनी प्राणवाहिनी ॥ २० ॥ यह शरीरमें स्थित नाडीस्वरूप तुमही हो ऐसा पुरातन आचार्य कहते हैं हृदयकमलमें स्थित प्राणशक्ति कंठमें स्थित स्वप्ननायका ॥ २१ ॥ तालुमें सदाधारा, भौंहके मध्यमें बिन्दुमालिनी, मूलाधारमें कुंडलिनी शक्ति केशमूलमें व्यापिनी ॥ २२ ॥ शिखाके मध्य अर्थात् ज्ञानकलामें आसन करनेवाली, शिखोंके अग्रमें मनोन्मनी तुमही हो, बहुत कहनेसे क्या है त्रिलोकीमें जो कुछ है ॥ २३ ॥ हे महादेवी ! वह सब तुमही हो, श्री और संध्यारूप तुमको प्रणाम है, संध्याके समय यह स्तोत्र पढनेसे महापुण्य होता है ॥ २४ ॥ यह महापापका शान्तकरने और

महासिद्धिका देनेवाला है, जो सावधान हो संध्याकालमें यह स्तोत्र पढते हैं ॥ २५ ॥ अपुत्रको पुत्रकी प्राप्ति धनार्थिको धन मिलता है, सब तीर्थ तप दान यज्ञ योगका फल मिलता है ॥ २६ ॥ वह चिरकाल भोग भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है तपस्वियोंका किया स्तोत्र जो स्नानकालमें पढते हैं ॥ २७ ॥ और जहां कहीं जलमें स्नान करै उनको संध्याके मज्जनका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं. हेनारद! यह सत्य है ॥ २८ ॥ जो भक्तिसे सुनै वह सब पापोंसे छूटजाता है हेनारद ! मैं ने यह स्तोत्र तुमसे कहा संध्याके उद्देशसे अमृतके समान है ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां गायत्रीस्तोत्रं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! सब धर्मोंके जाननेवाले सब शास्त्रमें पण्डित आपके मुखसे श्रुति स्मृति पुराणोंका रहस्य सुना ॥ १ ॥ अब जिससे सब पापहारिणी

अपुत्रःप्राप्नुयात्पुत्रंधनार्थीधनमाप्नुयात् ॥ सर्वतीर्थतपोदानयज्ञयोगफलंलभेत् ॥२६॥भोगान्भुक्त्वाचिरंकालमंतेमोक्षमवाप्नुयात् ॥ तपस्विभिःकृतंस्तोत्रंस्नानकालेतुयःपठेत् ॥२७॥ यत्रकुत्रजलेमग्नःसंध्यामज्जनजंफलम् ॥ लभतेनात्रसंदेहःसत्यंसत्यंचनारद ॥ २८ ॥ शृणुयाद्योपितद्भक्त्यासतुपापात्प्रमुच्यते ॥ पीयूषसदृशंवाक्यंसंध्योक्तंनारदेरितम् ॥२९॥ इतिश्रीदेवीभागवतेम०द्वादशस्कंधेगायत्रीस्तोत्रंनामपंचमोऽध्यायः ॥५॥ ॥ नारदउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञसर्वशास्त्रविशारद ॥श्रुतिस्मृतिपुराणानांरहस्यंत्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥ सर्वपापहरंदेवयेनविद्याप्रवर्तते ॥ केनवाब्रह्मविज्ञानंकिंनुवामोक्षसाधनम् ॥२॥ब्राह्मणानांगतिःकेनकेनवामृत्युनाशनम् ॥ ऐहिकामुष्मिकफलंकेनवापद्मलोचन ॥३॥ वक्तुमर्हस्यशेषेणसर्वंनिखिलमादितः ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञसम्यक्पृष्टंत्वयाऽनघ ॥४॥ शृणुवक्ष्यामियत्नेनगायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥ नाम्नांशुभानांदिव्यानांसर्वपापविनाशनम् ॥५॥ सृष्ट्यादौयद्भगवतापूर्वंप्रोक्तंब्रवीमिते ॥ अष्टोत्तरसहस्रस्यऋषिर्ब्रह्माप्रकीर्तितः ॥६॥ छंदोनुष्टुप्तथादेवीगायत्रीदेवतास्मृता ॥ हलोबीजानितस्यैवस्वराःशक्तयईरिताः ॥ ७ ॥ अंगन्यासकरन्यासावुच्येतेमातृकाक्षरैः ॥ अथध्यानंप्रवक्ष्यामिसाधकानांहितायवै ॥८॥ रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तांत्रिनेत्रोज्ज्वलांरक्तांरक्तनवस्रजंमणिगणैर्युक्तांकुमारीमिमाम् ॥ गायत्रींकमलासनांकरतलव्यानद्धकुंडांबुजांपद्माक्षींचवरस्रजंचदधतींहंसाधिरूढांभजे ॥ ९ ॥

विद्याकी प्रवृत्ति होती है किससे ब्रह्मविज्ञान और मोक्षका साधन होता है ॥ २ ॥ किससे ब्राह्मणोंकी गति और किससे मृत्युका साधन होता है हे पद्मलोचन किसके द्वारा दोनों लोकका साधन प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ वह आदिसे आप सब वर्णन कीजिये श्रीनारायण बोले हे महाभाग ! धन्य हो तुमने भलीबात पूँछी ॥ ॥ ४ ॥ सुनो मैं यत्नसे गायत्रीके एक सहस्र आठ नामोंको वर्णन करता हूं जो शुभ दिव्य और सम्पूर्ण पापोंके नाशक है ॥ ५ ॥ जो सृष्टिकी आदिमें पूर्वमें भगवान्ने कहे सो मैं आपसे सब कहता हूं, इन १००८ नामोंके ब्रह्मा ऋषि ॥६॥ अनुष्टुप्छन्द, गायत्रीदेवी, हलअक्षर वीज और स्वर शक्तियें हैं ॥७॥ मातृकाअक्षरोंसे अंगन्यास करन्यास होता है अब साधकोंके हितके निमित्त ध्यान कहता हूं ॥ ८ ॥ लाल श्वेत हिरण्य नील धवल वर्णके मणिगणोंसे युक्त तीनों नेत्रोंसे उज्ज्वल

अरुण वर्ण लाल फूलोंकी नवीन माला पहरे कुमारी कमलासनपर आरूढ कण्डिका और कमल धारण किये कमललोचिनी इष्ट अक्षमाला पहरे हंसारूढ गायत्रीको भजताहूं ॥ ९ ॥ अकारादि ३५ नाम कहते हैं अचिन्त्यलक्षणवाली अव्यक्ता (अस्पष्टनामरूपवाली) अर्धमातृमहेश्वरी अमृतसागरके मध्यमें स्थित अजिता, अपराजिता ॥ १० ॥ अणिमादि गुणोंकी आधार अर्कमंडलमें स्थित अजरा अजा, अपरा अधर्मा (जातिआदि धर्मसे रहित) अक्षसूत्रकी धारण करनेवाली अधरा [निकृष्टरूपा] ॥ ११ ॥ अकारसे आदि लेकर क्षकार पर्यन्त, अरिषड्वर्गकी भेदकरनेवाली, अंजनाद्रिकी समान कान्तिवाली अंजनाद्रिपर निवास करनेवाली ॥ १२ ॥ अदिति (देवमाता) अजपा (गायत्री) अविद्या अरविन्दलोचनी अन्तर बाहरमें स्थित अविद्या जीव उपाधिकी ध्वंस करनेवाली अन्तरात्मिका ॥ १३ ॥ अजा, अजमुखा (ब्रह्ममुखमें निवासकरनेवाली) अवासा अरविन्दलोचनी अर्धमात्रा, अर्थदानज्ञा (चारों पुरुषार्थके दानकी ज्ञाता) अरिमण्डलकी

अचिंत्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी ॥ अमृतार्णवमध्यस्थाप्यजिताचापराजिता ॥ १० ॥ अणिमादिगुणाधाराप्यर्कमंडलसंस्थिता ॥ अजराऽजाऽपराऽधर्माक्षसूत्रधराऽधरा ॥ ११ ॥ अकारादिक्षकारांताप्यरिषड्वर्गभेदिनी ॥ अंजनाद्रिप्रतीकाशाप्यंजनाद्रिनिवासिनी ॥ १२ ॥ अदितिश्चाजपा विद्याप्यरविंदनिभेक्षणा ॥ अंतर्बहिःस्थिताविद्याध्वंसिनीचांतरात्मिका ॥ १३ ॥ अजाचाजमुखावासाप्यरविंदनिभानना ॥ अर्धमात्रार्थदानज्ञाप्यरिमंडलमर्दिनी ॥ १४ ॥ असुरघ्नीह्यमावास्याप्यलक्ष्मीघ्न्यंत्यजार्चिता ॥ आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना ॥ १५ ॥ आदित्यपदवीचाराप्यादित्यपरिसेविता ॥ आचार्यावर्तनाचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी ॥ १६ ॥ आग्नेयीचामरीचाद्याचाराध्याचासनस्थिता ॥ आधारनिलयाधाराचाकाशांतनिवासिनी ॥ १७ ॥ आद्याक्षरसमायुक्ताचांतराकाशरूपिणी ॥ आदित्यमंडलगताचांतरध्वांतनाशिनी ॥ १८ ॥ इंदिराचेष्टदाचेष्टाचेंदीवरनिभेक्षणा ॥ इरावतीचेंद्रपदाचेंद्राणीचेंदुरूपिणी ॥ १९ ॥

मर्दन करनेवाली ॥ १४ ॥ असुरोंकी नाशक अमावास्या अलक्ष्मीनाशक अन्त्यजार्चिता (मातंगीरूपसे पूजित) [आकारादि २२ नाम] आदिलक्ष्मी आदिशक्ति आकृति आयतानना (विस्तृतमुखवाली) ॥ १५ ॥ आदित्यमार्गमें विचरण करनेवाली अदितिपुत्रोंसे सेवित आचार्या (स्वयं व्याख्यात्री) आवर्तना (जगत्की आवर्तन करनेवाली) आचारा (दक्षिणाचारादि आचारवाली) आदिमूर्ति ब्रह्ममें निवास करनेवाली ॥ १६ ॥ आग्नेयीदिशारूप आमरी अमरावतीरूपवाली आद्या आराध्या आसनमें स्थित आधारनिलया मूलाधारमें निवासवाली आधारा (सबकी आधारा कुंडलिनीरूप) आकाशान्तनिवासिनी (अहंकार तत्वमें स्थित) आद्याक्षरसे युक्त अन्तराकाश अर्थात् दहराकाशरूपवाली आदित्यमण्डलमें प्राप्त, अन्तरध्वान्त अविद्या अंधकारकी नाशिनी ॥ १७ ॥ १८ ॥ [इकारादि १५ नाम] इन्दिरा इष्टदा,

इष्टा, इन्दीवर कमलकी समान नेत्रवाली, इरावती (भूवाक् सुराम्बुमती) इन्द्रपदा, इन्द्राणी इन्दुरूपिणी ॥ १९ ॥ इक्षु पौंड्रक इक्षु धनुषसे युक्त इषुसंधान करनेवाली, इन्द्रनीलमणिके समान आकारवाली इडा पिंगलारूपवाली ॥ २० ॥ इन्द्राक्षी (शताक्षी) ईकारादि दो नाम, ईश्वरी देवी, ईहात्रयवर्जिता (तीनों इच्छाओंसे रहित) [उकारादि आठनाम] उमा, उषा, उडुनिभा, (नक्षत्रसमान) उर्वारुकफल ककटी फलकी समान मुखवाली ॥ २१ ॥ उडुप्रभा, उडुमती, उडुपा (पोतरूपिणी) उडुमध्यगामिनी, (ऊकारादि ५ नाम,) ऊर्ध्वा, ऊर्ध्वकेशी, ऊर्ध्व और अधो ऊंच नीच गतिकी भेदनकरनेवाली ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वबाहुप्रिया, ऊर्मिमाला वा ग्रन्थदायिनी समुद्रवत् कवितारूप ग्रंथकी देनेवाली ऋकारादि १३ नाम ऋत (सत्य) ऋषि (वेदरूप) ऋतुमती ऋषिदेवताओंसे नमस्कृत ॥ २३ ॥ ऋग्वेदा, ऋणहर्त्री ऋषिमण्डलमें विचरण करनेवाली, ऋद्धि ऋजुमार्गमें स्थित ऋजुधर्मवाली, ऋतुदायिनी ॥ २४ ॥ ऋग्वेदनिलया ऋज्वी, [लृकारादि लॄकारादि अप्रसिद्ध होनेसे नहीं कहे,

इक्षुकोदंडसंयुक्ताचेषुसंधानकारिणी ॥ इंद्रनीलसमाकाराचेडापिंगलरूपिणी ॥ २० ॥ इंद्राक्षीचेश्वरीदेवीचेहात्रयविवर्जिता ॥ उमाचोषाह्युडुनिभाउर्वारुकफलानना ॥ २१ ॥ उडुप्रभाचोडुमतीह्युडुपाह्युडुमध्यगा ॥ ऊर्ध्वचाप्यूर्ध्वकेशीचाप्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वबाहुप्रियाचोर्मिमालावाग्ग्रंथदायिनी ॥ ऋतंचर्षिर्ऋतुमतीऋषिदेवनमस्कृता ॥ २३ ॥ ऋग्वेदाऋणहर्त्रीचऋषिमंडलचारिणी ॥ ऋद्धिदाऋजुमार्गस्थाऋजुधर्माऋतुप्रदा ॥ २४ ॥ ऋग्वेदनिलयाऋज्वीलुप्तधर्मप्रवर्तिनी ॥ लूतारिवरसंभूतालूतादिविषहारिणी ॥ २५ ॥ एकाक्षराचैकमात्राचैकाचैकैकनिष्ठिता ॥ ऐंद्रीह्यैरावतारूढाचैहिकामुष्मिकप्रदा ॥ २६ ॥ ओंकाराह्योषधीचौताचौतप्रोतनिवासिनी ॥ और्वाह्यौषधसंपन्नाऔपासनफलप्रदा ॥ २७ ॥ अंडमध्यस्थितादेवीचाःकारमनुरूपिणी ॥ कात्यायनीकालरात्रिःकामाक्षिकामसुंदरी ॥ २८ ॥ कमलाकामिनीकांताकामदाकालकंठिनी ॥ करिकुंभस्तनभराकरवीरसुवासिनी॥२९॥

लृकारादिके यहां लकारके जानने] लुप्तधर्मोंको प्रवृत्त करनेवाली लूतारिवरसंभूता, लूता [मकरी] आदिके विषकी हरनेवाली ॥ २५ ॥ [एकारादि ४ नाम] एकाक्षरा, एकमात्रा, एका, एकैकनिष्ठिता [ऐकारादि ३ नाम] ऐन्द्री ऐरावतपर आरूढ, ऐहिक इस लोक और परलोकमें फल देनेवाली [ओकारादि ४ नाम] ओंकारा, ओषधी ओता ओतप्रोता [सूतकी समान सबके अभ्यन्तरमें व्याप्त] [औकारादि ३ नाम] और्वा भूमिमें होनेवाली, औषधसम्पन्ना औपासन उपासना वालोंको फल देनेवाली ॥ २६ ॥ २७ ॥ [अं आदि एक नाम] अंडमध्यमें स्थित देवी [अः कारादि नाम] अःकार विसर्ग रूप मंत्रके रूपवाली [ककारादि ९६ नाम] कात्यायनी, कालरात्रि, कामाक्षी, कामसुन्दरी ॥ २८ ॥ कमला, कामिनी, कान्ता, कामदा, कालकंठिनी, करिकुंभस्तनभरा, करवीरसे पूजित हो वहां निवास करनेवाली ॥ २९ ॥

कल्याणी, कुंडलवती, कुरुक्षेत्रनिवासिनी, कुरुविन्द रत्नके दलकी समान आकारवाली, कुंडली, कुमुदालया ॥ ३० ॥ कालजिह्वा, करालमुखी, कालिका, कालरूपिणी, कमनीयगुणवाली, कान्तिः, कलाधारा, कुमुद्वती ॥ ३१ ॥ कौशिकी, कमलाकारा, कामचारकी ध्वंसकरनेवाली, कौमारी, करुणापांगी, ककुवन्ता (दिशाओंकी अवसानरूप) करिप्रिया ॥ ३२ ॥ केशरीरूप केशवसे स्तुतिको प्राप्त, कदम्बपुष्पकी इच्छावाली, कालिन्दी, कालिका, कांची, कलशोद्भव अगस्त्यसे स्तुतिको प्राप्त होनेवाली ॥ ३३ ॥ काममाता, ऋतुमती, कामरूपा, रूपावती, कुमारी, कुंडनिलया (अग्निहोत्रमें स्थित) किराती, कीरवाहना ॥ ३४ ॥ कैकेयी, कोकिलाकी समान शब्द करनेवाली, केतकीरूपा, कुसुमप्रिया, कमंडलुधरा, काली, कर्मकी निर्मूल न करनेवाली ॥ ३५ ॥ कलहंसगति, कक्षा, कृतकौतु

कल्याणीकुंडलवतीकुरुक्षेत्रनिवासिनी ॥ कुरुविंददलाकाराकुंडलीकुमुदालया ॥३०॥ कालजिह्वाकरालास्याकालिकाकालरूपिणी ॥ कमनीयगुणाकांतिःकलाधाराकुमुद्वती ॥ ३१ ॥ कौशिकीकमलाकाराकामचारप्रभंजिनी ॥ कौमारीकरुणापांगीककुबंताकरिप्रिया ॥३२॥ केसरीकेशवनुताकदंबकुसुमप्रिया ॥ कालिंदीकालिकाकांचीकलशोद्भवसंस्तुता ॥ ३३ ॥ काममाताक्रतुमतिकामरूपाकृपावती ॥ कुमारीकुंडनिलयाकिरातीकीरवाहना ॥३४॥ कैकेयीकोकिलालापाकेतकीकुसुमप्रिया ॥ कमंडलुधराकालीकर्मनिर्मूलकारिणी ॥३५॥ कलहंसगतिःकक्षाकृतकौतुकमंगला ॥ कस्तूरीतिलकाकम्राकरींद्रगमनाकुहूः ॥ ३६ ॥ कर्पूरलेपनाकृष्णाकपिलाकुहराश्रया ॥ कूटस्थाकुधराकम्राकुक्षिस्थाखिलविष्टपा ॥ ३७ ॥ खड्गखेटकराखर्वाखेचरीखगवाहना ॥ खट्वांगधारिणीख्याताखगराजोपरिस्थिता ॥ ३८ ॥ खलघ्नीखंडितजराखंडाख्यानप्रदायिनी ॥ खंडेंदुतिलकागंगागणेशगुहपूजिता ॥ ३९ ॥ गायत्रीगोमतीगीतागांधारीगानलोलुपा ॥ गौतमीगामिनीगाधागंधर्वाप्सरसेविता ॥ ४० ॥ गोविंदचरणाक्रांतागुणत्रयविभाविता ॥ गंधर्वीगह्वरीगोत्रागिरीशागहनागमी ॥ ४१ ॥ गुहावासागुणवतीगुरुपापप्रणाशिनी ॥ गुर्वीगुणवतीगुह्यागोप्तव्यागुणदायिनी ॥ ४२ ॥

कमंगला, कस्तुरीतिलका, कम्रा, सुन्दरी, करीन्द्रसमान गमनवाली कुहू ॥ ३६ ॥ कर्पूरलेपना, कृष्णा, कपिला, कुहराश्रया, कूटस्था, कुधरा (पर्वतधारिणी) कम्रा, कुक्षिस्थाखिलविष्टपा ॥ ३७ ॥ [खकारादि ११ नाम] खड्गखेटकरा, खर्वा, खेचरी, खगवाहना, खट्वांगधारिणी, ख्याता, खगराजपर स्थित ॥ ३८ ॥ खलनाशिनी, खंडितजरा, खंडाख्यानकी देनेवाली, खण्डेन्दुतिलका [गकारादि ३६ नाम] गंगा, गणेशगुहपूजिता ॥ ३९ ॥ गायत्री, गोमती, गीता, गान्धारी, गानलोलुपा, गौतमीगामिनी, गांधा, (प्रतिष्ठारूपिणी) गन्धर्वाप्सरोंसे सेवित ॥ ४० ॥ गोविन्दचरणाक्रान्ता, गुणत्रयविभाविता, गंधर्वी, गह्वरी, गोत्रा, (पृथ्वी) गिरीशा, गहना, गमी (पर्यालोचन करनेवाली) ॥ ४१ ॥ गुहावासा, गुणवती, गुरुपापप्रणाशिनी, गुर्वी, गुणवती, गुह्या,

गोतव्या, गुणदायिनी ॥ ४२ ॥ गिरिजा, गुह्यमातंगी, गरुडध्वजकी प्रिया, गर्वापहारिणी, गोदा, गोकुलस्था, गदाधरा ॥ ४३ ॥ गोकर्णस्थानमें आसक्त गुह्य मण्डलमें निवास करनेवाली [घकारादि १४ नाम] घर्मदा, घनदा, घंटा, घोर दानव मर्दिनी ॥ ४४ ॥ घृणि (सूर्य) मंत्रमयी, घोषा, घनसंतापदायिनी घंटारवप्रिया घ्राणा घृणिसंतुष्टिकारिणी ॥ ४५ ॥ घनारिमंडला, घूर्णा, घृताची, घनवेगिनी, [ङकार अप्रसिद्ध हैं ज्ञकारका नाम एक है] ज्ञानधातुमयी (चिद्धातुमय) [चकारादि ४९ नाम] चर्चा (भाषणादि) चर्चिता, चारुहासिनी ॥ ४६ ॥ चटुला, चंडिका, चित्रा, चित्रमाल्यसे विभूषित, चतुर्भुजा, चारुदंता, चातुरी, चरितप्रदा॥ ॥ ४७ ॥ चूलिका, चित्रवस्त्रान्ता, चन्द्रमारूप कानोंमें कुंडलधारणकरनेवाली चन्द्रहासा, चारुदात्री, चकोरी, चन्द्रहासिनी ॥ ४८ ॥ चंद्रिका, चन्द्रधात्री, चौरी

गिरिजागुह्यमातंगीगरुडध्वजवल्लभा ॥ गर्वापहारिणीगोदागोकुलस्थागदाधरा ॥ ४३ ॥ गोकर्णनिलयासक्तागुह्यमंडलवर्तिनी ॥ घर्मदाघनदाघंटाघोरदानवमर्दिनी ॥ ४४ ॥ घृणिमंत्रमयीघोषाघनसंपातदायिनी ॥ घंटारवप्रियाघ्राणाघृणिसंतुष्टिकारिणी ॥ ४५ ॥ घनारिमंडलाघूर्णाघृताचीघनवेगिनी ॥ ज्ञानधातुमयीचर्चाचर्चिताचारुहासिनी ॥ ४६ ॥ चटुलाचंडिकाचित्राचित्रमाल्यविभूषिता ॥ चतुर्भुजाचारुदंताचातुरीचरितप्रदा ॥ ४७ ॥ चूलिकाचित्रवस्त्रांताचंद्रमःकर्णकुंडला ॥ चंद्रहासाचारुदात्रीचकोरीचंद्रहासिनी ॥ ४८ ॥ चंद्रिकाचंद्रधात्रीचचौरीचौराचचंडिका ॥ चंचद्वाग्वादिनीचंद्रचूडाचोरविनाशिनी ॥ ४९ ॥ चारुचंदनलिप्तांगीचंचच्चामरवीजिता ॥ चारुमध्याचारुगतिश्चंदिलाचंद्ररूपिणी ॥ ५० ॥ चारुहोमप्रियाचार्वाचरिताचक्रबाहुका ॥ चंद्रमंडलमध्यस्थाचंद्रमंडलदर्पणा ॥५१॥ चक्रवाकस्तनीचेष्टाचित्राचारुविलासिनी ॥ चित्स्वरूपाचंद्रवतीचंद्रमाश्चंदनप्रिया ॥५२॥ चोदयित्रीचिरप्रज्ञाचातकाचारुहेतुकी ॥ छत्रयाताछत्रधराछायाछंदःपरिच्छदा ॥ ५३ ॥ छायादेवीछिद्रनखाछन्नेंद्रियविसर्पिणी ॥ छंदोनुष्टुप्प्रतिष्ठांताछिद्रोपद्रवभेदिनी ॥ ५४ ॥

चौरा (औषधी विशेषरूपा) चंडिका, चंचद्वाग्वादिनी, चन्द्रचूडा, चोरविनाशिनी ॥ ४९ ॥ चारुचंदनलिप्तांगी (सुन्दर चन्दनसे लिप्त अंगवाली) चंचत् चलायमान चामरोंसे वीजित, चारुमध्यभागवाली, चारुगति, चंदिला (कर्णाटक देशमें प्रसिद्ध देवता) चन्द्ररूपिणी ॥५०॥ चारुहोमप्रिया, चार्वा, चरिता, चक्रबाहुका चन्द्रमंडलके मध्यमें स्थित चन्द्रमण्डल दर्पणवाली ॥ ५१ ॥ चक्रवाकके समान स्तनवाली, चेष्टा, चित्रा, चारुविलासिनी, चित्स्वरूपा, चन्द्रवती, चन्द्रमा, चन्दनप्रिया ॥ ५२ ॥ चोदयित्री (प्रेरणा करनेवाली) चिरप्रज्ञा, चारुहेतुकी (जगत् निर्माणमें सुन्दरहेतुवाली) (छकारादि१४ नाम) छत्रयाता छत्रधरा, छाया, छन्दःपरिच्छदा ॥ ५३ ॥ छायादेवी (स्वामिनी) छिद्रनखा (रन्ध्रयुक्त नखोंवाली , छन्नेन्द्रियविसर्पिणी (इन्द्रियजित् योगियोंके निकट जानेवाली) छन्दोनुष्टुप् प्रति

ठान्ता (अनुष्टुप् छन्दवाले मंत्रसे जानने योग्य) छिद्रोपद्रवभेदिनी (कपटके उपद्रव नाशनेवाली) ॥५४॥ छेदा, छत्रेश्वरी, छिन्ना, छूरिका, छेदनप्रिया [जकारादि४० नाम] जननी, जन्मरहिता, जातवेदा, जगन्मयी, जाह्नवी, जटिला, जेत्री, जरामरणसे वर्जित, जम्बूद्वीपवती, ज्वाला, जयन्ती, जलशालिनी ॥५५॥५६ ॥ जितेन्द्रिया जितक्रोधा, जितामित्रा, जगत्प्रिया, जातरूपमयी, जिह्वा, जानकी, जगती, जरा ॥ ५७ ॥ जनित्री, जह्नुतनया, जगत्त्रयहितैषिणी, ज्वालामुखी, जपवती, ज्वरघ्नी, जितविष्टपा ॥५८॥ जिताक्रान्तमयी, (जयसे आक्रान्त पुरुषमयी) ज्वाला,जाग्रती, ज्वरदेवता, ज्वलंती, जलदा, ज्येष्ठा, ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी (ज्याघोषसे, दिशाओंके मुख फोडनेवाली) ॥ ५९ ॥ जंभिनी, जृंभणा, जंभा, ज्वलितमाणिक्यके कुंडलवाली [झकारादि ४ नाम] झिंझिका, झणनिर्घोषा, झंझामारुतवेगिनी (सवृष्टि

छेदाछत्रेश्वरीछिन्नाछुरिकाछेदनप्रिया ॥ जननीजन्मरहिताजातवेदाजगन्मयी ॥ ५५ ॥ जाह्नवीजटिलाजेत्रीजरामरणवर्जिता ॥ जंबूद्वीपवतीज्वालाजयंतीजलशालिनी ॥ ५६ ॥ जितेंद्रियाजितक्रोधाजितामित्राजगत्प्रिया ॥ जातरूपमयीजिह्वाजानकीजगतीजरा ॥ ५७ ॥ जनित्रीजह्नुतनयाजगत्त्रयहितैषिणी ॥ ज्वालामुखीजपवतीज्वरघ्नीजितविष्टपा ॥ ५८ ॥ जिताक्रांतमयीज्वालाजाग्रतीज्वरदेवता ॥ ज्वलंतीजलदाज्येष्ठाज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी ॥ ॥ ५९ ॥ जंभिनीजृंभणाजृंभाज्वलन्माणिक्यकुंडला ॥ झिंझिकाझणनिर्घोषाझंझामारुतवेगिनी ॥ ६० ॥ झल्लरीवाद्यकुशलाञरूपाञभुजास्मृता ॥ टंकबाणसमायुक्ताटंकिनीटंकभेदिनी ॥ ६१ ॥ टंकीगणकृताघोषाटंकनीयमहोरसा ॥ टंकारकारिणीदेवीठठशब्दनिनादिनी ॥ ६२ ॥ डामरीडाकिनीडिंभाडुंडुमारैकनिर्जिता ॥ डामरीतंत्रमार्गस्थाडमड्डमरुनादिनी ॥ ६३ ॥ डिंडीरवसहाडिंभलसत्क्रीडापरायणा ॥ ढुंढिविघ्नेशजननीढक्काहस्ताढिल्लिव्रजा ॥ ६४ ॥

पवनके वेगवाली) ॥६०॥ झल्लरी, बाजेमें कुशल [ञकारादि २ नाम] ञरूपा (बलीवर्दरूपा) ञभुजास्मृता (श्यामलांगिका वा बलीवर्दकी समान भुजावाली) [टकारादि ६ नाम] टंकबाणसे युक्त, टंकिनी, टंकभेदिनी ॥६१ ॥ टंकीगण रुद्रवत् घोष करनेवाली, टंकनीयमहोरसा (वर्णनयोग) महाउरस्थलवाली, टंकारकारिणी देवी [ठकारादि एकनाम] ठठशब्दसे नाद करनेवाली ॥ ६२॥ [डकारादि आठ नाम] डामरी, डाकिनी, डिंभा [बालक रूप] डुंडुमारैकनिर्जिता, डामरी तंत्रमार्गस्था [डामरी तंत्रके मार्गमें स्थित] डमड्डमरुनादिनी ॥ ६३ ॥ डिंडीनामक बाजेके शब्दको सहन करनेवाली, डिंभलसत् क्रीडापरायण [ढकारादि ३ नाम]

ढुंढि विघ्नेशकी माता, ढक्का बाजा हाथमें धारण करनेवाली, ढिलिव्रजा (ढिलिनामक शिवगणके समुदायवाली) ॥ ६४ ॥ णकारादि नाम अप्रसिद्ध हैं उसके स्थानमें पांच नकारादि कहते हैं नित्यज्ञानवाली, निरुपमा, निर्गुणा, नर्मदा नदीरूप [तकारादि ६२ नाम] त्रिगुणा, त्रिपदा. तंत्री वीणारूप, तुलसी, तरुणा, तरु ॥ ६५ ॥ त्रिविक्रमपदाक्रान्ता, तुरीया पदमें गमन करनेवाली, तरुण आदित्यके समान प्रकाशवा, तामसी, तुहिनातुरा ॥ ६६ ॥ त्रिकालज्ञानसे सम्पन्न, त्रिवली, त्रिलोचना, त्रिशक्ति, त्रिपुरा, तुंगा, तुरंगवदना ॥ ६७ ॥ तिमिंगलगिला, तीव्रा, त्रिस्रोता, तामसादिनी तंत्र मंत्रकी विशेषरूपसे ज्ञाता, तनुमध्या, त्रिविष्टपा ॥ ६८ ॥ त्रिसंध्यारूप त्रिस्तनी, तोषासंस्था (संतोषमें स्थित) तालप्रतापिनी, ताटंकिनी तुषाराभा (तुषारकी समान कान्तिवाली) तुहिनाचलवासिनी ॥ ६९ ॥ तंतुजालसे युक्त, तारहारावलिप्रिया,

नित्यज्ञानानिरुपमानिर्गुणानर्मदानदी ॥ त्रिगुणात्रिपदातंत्रीतुलसीतरुणातरुः ॥ ६५ ॥ त्रिविक्रमपदाक्रांतातुरीयपदगामिनी ॥ तरुणादित्यसंकाशातामसीतुहिनातुरा ॥ ६६ ॥ त्रिकालज्ञानसंपन्नात्रिवलीचत्रिलोचना ॥ त्रिशक्तिस्त्रिपुरातुंगातुरंगवदनातथा ॥ ६७ ॥ तिमिंगिलगिलातीव्रात्रिस्रोतातामसादिनी ॥ तंत्रमंत्रविशेषज्ञातनुमध्यात्रिविष्टपा ॥ ६८ ॥ त्रिसंध्यात्रिस्तनीतोषासंस्थातालप्रतापिनी ॥ ताटंकिनीतुषाराभातुहिनाचलवासिनी ॥ ६९ ॥ तंतुजालसमायुक्तातारहारावलिप्रिया ॥ तिलहोमप्रियातीर्थातमालकुसुमाकृतिः ॥ ७० ॥ तारकात्रियुतातन्वीत्रिशंकुपरिवारिता ॥ तलोदरीतिलाभूषाताटंकप्रियवादिनी ॥ ७१ ॥ त्रिजटातित्तिरीतृष्णात्रिविधातरुणाकृतिः ॥ तप्तकांचनसंकाशातप्तकांचनभूषणा ॥ ७२ ॥ त्रैयंबकात्रिवर्गाचत्रिकालज्ञानदायिनी ॥ तर्पणातृप्तिदातृप्तातामसीतुंबुरुस्तुता ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यस्थात्रिगुणाकारात्रिभंगीतनुवल्लरिः ॥ थात्कारीथारवाथांतादोहिनीदीनवत्सला ॥ ७४ ॥ दानवांतकरीदुर्गादुर्गासुरनिबर्हिणी ॥ देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदीदुंदुभिस्वना ॥ ७५ ॥ देवयानीदुरावासादारिद्र्योद्भेदिनीदिवा ॥ दामोदरप्रियादीप्तादिग्वासादिग्विमोहिनी ॥ ७६ ॥ दंडकारण्यनिलयादंडिनीदेवपूजिता ॥ देववंद्यादिविषदाद्वेषिणीदानवाकृतिः ॥ ७७ ॥

तिलहोमप्रिया, तीर्था, तमालकुसुमके समान आकृतीवाली ॥ ७० ॥ तारका, त्रियुता(तीन गुण वा तीनवेदसे युक्त) तन्वी, त्रिशंकुसे परिवारित, तलोदरी, तिलाभूषा, ताटंकप्रियवादिनी ॥ ७१ ॥ त्रिजटा, तित्तरी, तृष्णा, त्रिविधा, तरुणाकृति, तप्तकांचनके समान तप्तकांचनके भूषणोंवाली ॥ ७२ ॥ त्रैयम्बका, त्रिवर्गा, त्रिकालका ज्ञान देनेवाली, तर्पणा, तृप्तिदा, तृप्ता, तामसी, तुम्बुरुस्तुता ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यस्था, त्रिगुणाकारा, त्रिभंगी, तनुवल्लरि [थकारादि३ नाम] थात्कारी(शब्दकारी) थारवा (भयसे रक्षा करनेवाली) थान्ता (मंगलकी पर्यवसानभूमि) [दकारादि२७ नाम] दोहिनी, दीनवत्सला, ॥ ७४ ॥ दानवान्तकरी, दुर्गा, दुर्गासुरनिबर्हिणी(भयंकर असुरकी मारनेवाली) देवरीति, दिवारात्रि, द्रौपदी, दुंदुभिस्वना ॥ ७५ ॥ देवयानी, दुरावासा, दरिद्रयभेदिनी, दिवा, दामोदरकी प्रिया, दीप्ता, दिग्वासा, दिग्विमोहिनी ॥ ७६ ॥ दण्डकारण्यमें निवासवाली

दण्डिनी, देवपूजिता, देवताओंसे नमस्कृत, दिविषदा, द्वेषिणी, दानवाकृति ॥ ७७ ॥ दीनानाथस्तुता, दीक्षास्वरूप, देवतादिस्वरूपिणी [धकारादि २० नाम] धात्री, धनुर्धरा, धेनु, धारिणी, धर्मचारिणी ॥ ७८ ॥ धुरंधुरा, धराधारा, धनदा, धान्यदोहिनी, धर्मशीला, धनाध्यक्षा, धनुर्वेदविशारदा ॥ ७९ ॥ धृति, धन्या, धृतपदा, धर्मराजप्रिया, ध्रुवा (निश्चल) धूमावती, धूमकेशी, धर्मशास्त्रकी प्रकाशकरनेवाली ॥ ८० ॥ [नकारादि ५५ नाम] नंदा (आनंददायिनी) नंदप्रिया, नन्दा, निद्रा, नृनुता (मनुष्योंसे नमस्कृत) नन्दनात्मिका, नर्मदा, नलिनी, नीला, नीलकंठसमाश्रया ॥ ८१ ॥ नारायणप्रिया, नित्या, निर्मला, निर्गुणा, निधि, निराधारा, निरुपमा, नित्यशुद्धा, निरंजना ॥ ८२ ॥ नादबिन्दुकी कलासे परे, नादबिन्दुकलामय, नृसिंहवेषवाली नगधरा, नृपनागविभू

दीनानाथस्तुतादीक्षादैवतादिस्वरूपिणी ॥ धात्रीधनुर्धराधेनुर्धारिणीधर्मचारिणी॥७८॥धुरंधराधराधाराधनदाधान्यदोहिनी ॥ धर्मशीलाधनाध्यक्षाधनुर्वेदविशारदा ॥ ७९ ॥ धृतिर्धन्याधृतपदाधर्मराजप्रियाध्रुवा ॥ धूमावतीधूमकेशीधर्मशास्त्रप्रकाशिनी ॥८०॥ नंदानंदप्रियानिद्रानृनुतानंदनात्मिका॥नर्मदानलिनीनीलानीलकंठसमाश्रया ॥ ८१ ॥ नारायणप्रियानित्यानिर्मलानिर्गुणानिधिः॥ निराधारानिरुपमानित्यशुद्धानिरंजना ॥ ८२ ॥ नादबिंदुकलातीतानादबिंदुकलात्मिका ॥ नृसिंहिनीनगधरानृपनागविभूषिता ॥ ८३ ॥ नरकक्लेशशमनीनारायणपदोद्भवा ॥ निरवद्यानिराकारानारदप्रियकारिणी ॥ ८४ ॥ नानाज्योतिःसमाख्यातानिधिदानिर्मलात्मिका ॥ नवसूत्रधरानीतिर्निरुपद्रवकारिणी ॥ ८५ ॥ नंदजानवरत्नाढ्यानैमिषारण्यवासिनी ॥ नवनीतप्रियानारीनीलजीमूतनिःस्वना ॥८६॥ निमेषिणीनदीरूपानीलग्रीवानिशीश्वरी ॥ नामावलिर्निशुंभघ्नीनागलोकनिवासिनी ॥ ८७ ॥ नवजांबूनदप्रख्यानागलोकाधिदेवता ॥ नूपुराक्रांतचरणानरचित्तप्रमोदिनी॥८८॥निमग्नारक्तनयनानिर्घातसमनिःस्वना॥नंदनोद्याननिलयानिर्व्यूहोपरिचारिणी॥८९॥

षिता ॥ ८३ ॥ नरकका क्लेश शान्त करनेवाली, नारायणपदोद्भवा, निरवद्या, निराकारा, नारदप्रियकारिणी ॥ ८४ ॥ नाना ज्योतिसे कहीगई, निधि देनेवाली, निर्मलात्मिका, नवसूत्रधरा, नीति, निरुपद्रवकारिणी ॥८५॥ नन्दके यहां होनेवाली, नवरत्नाढ्या, नैमिषारण्यवासिनी, नवनीतप्रिया, नारी,नीलमेघके समान शब्दवाली ॥ ८६ ॥ निमेषिणी, नदीरूपा, नीलग्रीवा, निशीश्वरी, नामावली, निशुंभकी मारनेवाली, नागलोकमें निवास करनेवाली ॥ ८७ ॥ नवीन सुवर्णके समान कांतिवाली, नागलोककी अधिदेवता, नूपुराकान्तचरणा, नरचित्तप्रमोदिनी ॥ ८८ ॥ निमग्ना, रक्तनयना, निर्घातसमनिस्वना (वज्रवत् शब्दवाली) नंदनवनमें स्थानवाली, निर्व्यू

होपरिचारिणी ॥ ८९ ॥ [पकारादि १२५ नाम] पार्वती, परमोदारा, परब्रह्मात्मिका, परा, पंचकोशसे निर्मुक्त, पांच पातकोंकी नाशक ॥ ९० ॥ परचित्तके विधान की ज्ञाता, पंचिका (श्रीविद्यामें दक्षिणा मूर्तिके सहित पूजित पंचिका देवतारूप) पंचरूपिणी, पूर्णिमा, परमा, प्रीति, परतेजः प्रकाशिनी ॥ ९१ ॥ पुराणी, पौरुषी (पुरुषार्थरूपा) पुण्डरीक (कमल) के समान नेत्रवाली, पातालतलनिर्मग्ना, प्रीता, प्रीतिकी बढानेवाली ॥ ९२ ॥ पावनी (पवित्रकरनेवाली) पादसहिता (किरण युक्त) पेशला (श्रेष्ठ) पवनभोजिनी, प्रजापतिरूप, परिशान्ता, पर्वतस्तनमण्डला ॥ ९३ ॥ पद्मप्रिया, पद्ममें स्थित, पद्माक्षी, पद्मसंभवा, पद्मपत्रा, पद्मपदा, पद्मिनी,

पार्वतीपरमोदारापरब्रह्मात्मिकापरा ॥ पंचकोशविनिर्मुक्तापंचपातकनाशिनी ॥ ९० ॥ परचित्तविधानज्ञापंचिकापंचरूपिणी ॥ पूर्णिमापरमाप्रीतिःपरतेजःप्रकाशिनी ॥ ९१ ॥ पुराणीपौरुषीपुण्यापुंडरीकनिभेक्षणा ॥ पातालतलनिर्मग्नाप्रीताप्रीतिविवर्धिनी ॥ ९२ ॥ पावनीपादसहितापेशलापवनाशिनी ॥ प्रजापतिःपरिश्रांतापर्वतस्तनमंडला ॥ ९३ ॥ पद्मप्रियापद्मसंस्थापद्माक्षीपद्मसंभवा ॥ पद्मपत्रापद्मपदापद्मिनीप्रियभाषिणी ॥ ९४ ॥ पशुपाशविनिर्मुक्तापुरंध्रीपुरवासिनी ॥ पुष्कलापुरुषापर्वापारिजातसुमप्रिया ॥ ९५ ॥ पतिव्रतापवित्रांगीपुष्पहासपरायणा ॥ प्रज्ञावतीसुतापौत्रीपुत्रपूज्यापयस्विनी ॥ ९६ ॥ पट्टिपाशधरापंक्तिःपितृलोकप्रदायिनी ॥ पुराणीपुण्यशीलाचप्रणतार्तिविनाशिनी ॥ ९७ ॥ प्रद्युम्नजननीपुष्टापितामहपरिग्रहा ॥ पुंडरीकपुरावासापुंडरीकसमानना ॥९८॥ पृथुजंघापृथुभुजापृथुपादापृथूदरी ॥ प्रवालशोभापिंगाक्षीपीतवासाः प्रचापला ॥ ९९ ॥ प्रसवापुष्टिदापुण्याप्रतिष्ठाप्रणवागतिः ॥ पंचवर्णापंचवाणीपंचिकापंजरस्थिता ॥ १०० ॥

प्रियभाषिणी ॥ ९४ ॥ पशुपाशसे निर्मुक्त, पुरन्ध्री, पुरवासिनी, पुष्कला, पुरुषा, पर्वा, पारिजातकुसुमप्रिया ॥ ९५ ॥ पतिव्रता, पवित्रांगी, पुष्पहासपरायणा, प्रज्ञावतीसुता, पौत्री, पुत्रपूज्या, पयस्विनी ॥ ९६ ॥ पट्टिपाशधरा, पंक्ति, पितृलोककी देनेवाली, पुराणी, पुण्यशीला, प्रणत पुरुषोंके दुःखनाश करनेवाली ॥ ॥ ९७ ॥ प्रद्युम्नजननी, पुष्टा, पितामहपरिग्रहा, पुंडरीकपुर (चिदम्बरक्षेत्र) में वास करनेवाली, पुण्डरीकके समान मुखवाली ॥ ९८ ॥ पृथुजंघा, पृथुभुजा, पृथुपादा, पृथूदरी, प्रवालशोभा, पिंगाक्षी, पीतवासा, प्रचापला ॥ ९९ ॥ प्रसवा, पुष्टिदा, पुण्या, प्रतिष्ठा, प्रणवागति [स्तुति करनेवाले देवताओंको शरण देनेवाली] पंचवर्णा

(विस्तृत वर्ण) पांचिकादेवता, पंजरस्थिता ॥ १०० ॥ परमाया, परज्योति, परप्रीति, परागति, पराकाष्ठा, परेशानी, पाविनी, पावकद्युति (अग्निके समान कान्ति) ॥ ॥ १ ॥ पुण्यभद्रा, परिच्छेद्या, पुष्पहासा, पृथूदरा, पीतांगवाली, पीतवस्त्रवाली, पीत शय्यावाली, पिशाचिनी ॥ २ ॥ पीतक्रिया, पिशाचघ्नी, पाटलाक्षी, पटुक्रिया, पंचभक्षप्रियाचारा (पंचमकारभक्षी वामियोंके आचारसे प्रसन्न) पूतनाप्राणघातिनी ॥ ३ ॥ पुन्नागवनके मध्यमें स्थित, पुण्यतीर्थनिषेवित, पंचांगी, पराशक्ति, परमआह्लादको करनेवाली ॥ ४ ॥ पुष्पकाण्डस्थिता, पूषा, पोषिताखिलविष्टपा, (सबदेवताओंकी रक्षक) पानप्रिया, पंचशिखा, पन्नगोंपर शयन करनेवाली ॥ ५ ॥ पंचमात्रात्मिका, पृथ्वी, पथिका, पृथुदोहिनी, पुराणन्यायमीमांसारूप, पाटलीपुष्प गंधवाली ॥ ६ ॥ पुण्यप्रजा,

परमायापरज्योतिःपरप्रीतिःपरागतिः॥ पराकाष्ठापरेशानीपाविनीपावकद्युतिः ॥१०१॥ पुण्यभद्रापरिच्छेद्यापुष्पहासापृथूदरी ॥ पीतांगीपीतवसनापीतशय्यापिशाचिनी ॥२॥ पीतक्रियापिशाचघ्नीपाटलाक्षीपटुक्रिया ॥ पंचभक्षप्रियाचारापूतनाप्राणघातिनी ॥ ३ ॥ पुन्नागवनमध्यस्थापुण्यतीर्थनिषेविता ॥ पंचांगीचपराशक्तिःपरमाह्लादकारिणी ॥ ४ ॥ पुष्पकांडस्थितापूषापोषिताखिलविष्टपा ॥ पानप्रियापंचशिखापन्नगोपरिशायिनी ॥ ५ ॥ पंचमात्रात्मिकापृथ्वीपथिकापृथुदोहिनी ॥ पुराणन्यायमीमांसापाटलीपुष्पगंधिनी ॥ ६ ॥ पुण्यप्रजापारदात्रीपरमार्गैकगोचरा ॥ प्रवालशोभापूर्णाशाप्रणवापल्लवोदरी ॥ ७ ॥ फलिनीफलदाफल्गुःफूत्कारीफलकाकृतिः ॥ फणींद्रभोगशयनाफणिमंडलमंडिता ॥ ८ ॥ बालबालाबहुमताबालातपनिभांशुका ॥ बलभद्रप्रियावंद्यावडवाबुद्धिसंस्तुता ॥ ९ ॥ बंदीदेवीबिलवतीबडिशघ्नीबलिप्रिया ॥ बांधवीबोधिताबुद्धिर्बंधूककुसुमप्रिया ॥ ११० ॥ बालभानुप्रभाकाराब्राह्मीब्राह्मणदेवता ॥ बृहस्पतिस्तुतावृंदावृंदावनविहारिणी ॥ ११ ॥ बालाकिनीबिलाहाराबिलवासाबहूदका ॥ बहुनेत्राबहुपदाबहुकर्णावतंसिका ॥ १२ ॥

पारदात्री, परमार्गैकगोचरा, प्रवालवत् शोभावाली, पूर्णाशा, प्रणवरूपिणी, पल्लवोदरी ॥ ७ ॥ [फकारादि ७ नाम] फलिनी, फलदा, फल्गु, फूत्कारी, फलकाकृति, फणीन्द्रभोगपर शयन करनेवाली, फणिमंडलसे मंडित ॥ ८ ॥ (बकारादि ५० नाम) बालबाला, (बालकसेभी बालक) बहुमता, बालसूर्यके समान वस्त्रवाली, बलभद्रप्रिया, वन्दनयोग्य, वडवा, बुद्धिसे स्तुतिको प्राप्त ॥९॥ बंदीदेवी, बिलवती (छिद्रकर्मकी देखनेवाली) बडिशघ्नी (कपटनाशिनी) बलिप्रिया, बांधवी, बोधिता, बुद्धि, बंधूककुसुमप्रिया ॥ ११० ॥ बालसूर्यके प्रभाकी समान आकारवाली, ब्राह्मी, ब्राह्मणोंकी देवता, बृहस्पतिसे स्तुतिको प्राप्त, वृन्दादेवरूप, वृंदावनमें विहारकरनेवाली ॥ ११ ॥ बालाकिनी (बलाकाओंके समूहवाली) बिलाहारा (छिद्रनाशिनी) बिलवासा (गुहामें शयनकरनेवाली) बहूदका, बहुनेत्रा,

बहुपदा, बहुतकर्णोंके भूषणवाली ॥ १२ ॥ बहुतबाहुओंसे युक्त, बीजरूपिणी, बहुरूपिणी, बिन्दुनादकी कलासे परे बिन्दुनादस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणा (गोधाके चर्मका अंगुली त्राण बाँधे) बद्रिकाश्रमनिवासिनी, वृन्दारकारूप बृहत्स्कंधवाली, बृहती, बाणपातिनी ॥ १४ ॥ वृन्दाध्यक्षा, बहुतोंसे स्तुतिकी हुई, विनता, बहुविक्रमा, बद्धपद्मासनासीना, बिल्वपत्रके तलमें स्थित ॥ १५ ॥ बोधिद्रुम निजावासा, बडिस्था (बलिमें स्थित) बिन्दुदर्पणा (अव्यक्तात्मक दर्शन वाली), बाला, बाणासनवती (धनुषधारिणी) वडवानलवेगिनी ॥ १६ ॥ ब्रह्माण्डके बाहर भीतर व्याप्त, ब्रह्मकंकणसूत्रिणी, ब्रह्मविद्या देनेवाली (भकारादि ४०नाम) भवानी, भीषणवती, भाविनी, भयहारिणी ॥ १७ ॥ भद्रकाली, भुजंगाक्षी, भारती, भारताशया, भैरवी, भीषणाकारा, भूतिदा, भूतिमालिनी ॥ १८ ॥ भामिनी, भोगनिरता, भद्रदा (कल्याणदायिनी)

बहुबाहुयुताबीजरूपिणीबहुरूपिणी ॥ बिंदुनादकलातीताबिंदुनादस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणाबदर्याश्रमवासिनी ॥ वृंदारकाबृहत्स्कंधा बृहतीबाणपातिनी ॥ १४ ॥ वृंदाध्यक्षाबहुनुताबनिताबहुविक्रमा ॥ बद्धपद्मासनासीनाबिल्वपत्रतलस्थिता ॥ १५ ॥ बोधिद्रुमनिजावासाबडिस्थाबिंदुदर्पणा ॥ बालाबाणासनवतीवडवानलवेगिनी ॥ १६ ॥ ब्रह्मांडबहिरंतःस्थाब्रह्मकंकणसूत्रिणी ॥ भवानीभीषणवतीभाविनीभयहारिणी ॥ १७ ॥ भद्रकालीभुजंगाक्षीभारतीभारताशया ॥ भैरवीभीषणाकाराभूतिदाभूतिमालिनी ॥ १८ ॥ भामिनीभोगनिरताभद्रदाभूरिविक्रमा ॥ भूतवासाभृगुलता भार्गवीभूसुरार्चिता ॥ १९ ॥ भागीरथीभोगवतीभवनस्थाभिषग्वरा ॥ भामिनीभोगिनीभाषाभवानीभूरिदक्षिणा ॥ १२० ॥ भर्गात्मिकाभीमवतीभवबंधविमोचिनी ॥ भजनीयाभूतधात्रीरंजिताभुवनेश्वरी ॥ २१ ॥ भुजंगवलयाभीमाभेरुंडाभागधेयिनी ॥ मातामायामधुमतीमधुजिह्वामधुप्रिया ॥ ॥ २२ ॥ महादेवीमहाभागामालिनीमीनलोचना ॥ मायातीतामधुमतीमधुमांसामधुद्रवा ॥ २३ ॥ मानवीमधुसंभूतामिथिलापुरवासिनी ॥ मधुकैटभसंहर्त्रीमेदिनीमेघमालिनी ॥ २४ ॥ मंदोदरीमहामायामैथिलीमसृणप्रिया ॥ महालक्ष्मीर्महाकालीमहाकन्यामहेश्वरी ॥ २५ ॥

भूरिविक्रमा, भूतवासा, भृगुलता, भार्गवी, भूसुरोंसे पूजित ॥ १९ ॥ भागीरथी, भोगवती, भवनस्था, भिषग्वरा, भामिनी, भोगिनी, भाषा, भवानी, भूरिदक्षिणा ॥ १२० ॥ भर्गात्मिका, भीमवती, भवबंधविमोचनी, भजनीया, भूतधात्री, रंजिता, भुवनेश्वरी ॥ २१ ॥ भुजंगोंके वलयवाली, भीमा, भेरुण्डा, भागधेयिनी, [मकारादि ५४ नाम] माता, माया, मधुमती, मधुजिह्वा, मधुप्रिया ॥ २२ ॥ महादेवी, महाभागा, मालिनी, मीनलोचना, मायातीता, मधुमती, मधुमांसा, मधुद्रवा ॥ २३ ॥ मानवी, मधुसंभूता, मिथिलापुरवासिनी, मधुकैटभकी संहार करनेवाली, मेदिनी, मेघमालिनी ॥ २४ ॥ मंदोदरी, महामाया, मैथिली, मसृणप्रिया, महालक्ष्मी,

महाकाली, महाकन्या, महेश्वरी ॥ २५ ॥ माहेन्द्री, मेरुतनया, मन्दारकुसुमार्चिता, मंजुमंजीरचरणा, मोक्षदा, मंजुभाषिणी ॥ २६ ॥ मधुरद्राविणी, मुद्रा, मलया, मलयान्विता, मेधा, मरकतश्यामा, मागधी, मेनकात्मजा ॥ २७ ॥ महामारी, महावीरा, महाश्यामा, मनुस्तुता, मातृका, मिहिराभासा, मुकुन्दपदविक्रमा॥२८॥ मूलाधारमें स्थित, मुग्धा, मणिपुरनिवासिनी, मृगाक्षी, महिषारूढा, महिषासुरकी मर्दन करनेवाली ॥ २९ ॥ (यकारादि २० नाम) योगासना, योगगम्या, योगा, यौवनकाश्रया, यौवनी, युद्धमध्यस्था, यमुना, युगधारिणी ॥ १३० ॥ यक्षिणी, योगयुक्ता, यक्षराजप्रसूतिनी, यात्रा, यानविधानकी ज्ञाता, यदुवंशसमुद्भवा,

माहेंद्रीमेरुतनयामंदारकुसुमार्चिता ॥ मंजुमंजीरचरणामोक्षदामंजुभाषिणी॥२६॥मधुरद्राविणीमुद्रामलयामलयान्विता ॥ मेधामरकतश्यामामागधीमेनकात्मजा ॥२७॥ महामारीमहावीरामहाश्यामामनुस्तुता॥ मातृकामिहिराभासामुकुंदपदविक्रमा ॥२८॥ मूलाधारस्थितामुग्धामणिपूरकवासिनी ॥ मृगाक्षीमहिषारूढामहिषासुरमर्दिनी ॥ २९ ॥ योगासनायोगगम्यायोगायौवनकाश्रया ॥ यौवनीयुद्धमध्यस्थायमुनायुगधारिणी ॥१३०॥ यक्षिणीयोगयुक्ताचयक्षराजप्रसूतिनी ॥ यात्रायानविधानज्ञायदुवंशसमुद्भवा ॥ ३१ ॥ यकारादिहकारांतायाजुषीयज्ञरूपिणी ॥ यामिनीयोगनिरतायातुधानभयंकरी ॥ ३२ ॥ रुक्मिणीरमणीरामारेवतीरेणुकारतिः ॥ रौद्रीरौद्रप्रियाकारारामशमातारतिप्रिया ॥ ३३ ॥ रोहिणीराज्यदारेवारमाराजीवलोचना ॥ राकेशीरूपसंपन्नारत्नसिंहासनस्थिता ॥ ३४ ॥ रक्तमाल्यांबरधरारक्तगंधानुलेपना ॥ राजहंससमारूढारंभारक्तबलिप्रिया ॥ ॥ ३५ ॥ रमणीययुगाधाराराजिताखिलभूतला ॥ रुरुचर्मपरीधानारथिनीरत्नमालिका ॥ ३६ ॥ रोगेशीरोगशमनीराविणीरोमहर्षिणी ॥ रामचंद्रपदाक्रांतारावणच्छेदकारिणी ॥ ३७ ॥ रत्नवस्त्रपरिच्छन्नारथस्थारुक्मभूषणा॥ लज्जाधिदेवतालोलाललितालिंगधारिणी ॥ ३८॥

॥ ३१ ॥ यकारसे हकारपर्यन्त, याजुषी, यज्ञरूपिणी, यामिनी, योगनिरता यातुधानोंको भय देनेवाली ॥ ३२ ॥ [रकारादि ३७ नाम] रुक्मिणी, रमणी रामा, रेवती, रेणुका, रति, रौद्री, रौद्रप्रियाकारा, राममाता, रतिप्रिया ॥ ३३ ॥ रोहिणी, राज्यदा, रेवा, रमा, राजीवलोचना, राकेशी, रूपसंपन्ना, रत्नसिंहासनपर स्थित ॥ ३४ ॥ रक्तमाल्याम्बरधरा, रक्तगंधका अनुलेपन लगाये, राजहंसपर चढी, रंभा, रक्तबलिप्रिया ॥ ३५ ॥ रमणीययुगाधारा, राजिताखिलभूतला, रुरु का चर्म ओढनेवाली, रथिनी, रथमालिका ॥ ३६ ॥ रोगेशी, रोगशमनी, राविणी, रोमहर्षिणी, रामचन्द्रपदाक्रान्ता, रावणको नष्ट करनेवाली॥ ३७ ॥ रत्न और वस्त्रोंसे परिच्छिन्न,

रथमें स्थित रुक्मभूषणवाली, [लकारादि १३ नाम] लज्जाधिदेवता, लोला, ललिता, लिंगधारिणी ॥ ३८ ॥ लक्ष्मी, लोला, लुप्तविषा, लोकिनी, लोकविश्रुता, लज्जा, लम्बोदरीदेवी, ललना, लोकधारिणी ॥ ३९ ॥ [वकारादि ३७ नाम] वरदा, वंदिता, विद्या, वैष्णवी, विमलाकृति, वाराही, विरजावर्षा, वर लक्ष्मी, विलासिनी ॥ १४० ॥ विनता, व्योममध्यस्था, वारिजासनसंस्थिता, वारुणीवेणुसंभूता, वीतिहोत्रा, विरूपिणी ॥ ४१ ॥ वायुमण्डलमध्यस्था, विष्णुरूपा, विधिक्रिया, विष्णुपत्नी, विष्णुमती, विशालाक्षी, वसुन्धरा ॥ ४२ ॥ वामदेवप्रिया, वेला, वज्रिणी, वसुदोहिनी वेदाक्षरसे युक्त अंगवाली, वाजपेयक: फलदेनेवाली ॥ ४३ ॥ वासवी वामजननी वैकुंठस्थानवाली, वरा, व्यासप्रिया, वर्मधरा, वाल्मीकिसे परिसेवित ॥ ४४ ॥ [शकारादि २९ नाम] शाकंभरी, शिवा, शान्ता, शारदा,

लक्ष्मीर्लोलालुप्तविषालोकिनीलोकविश्रुता ॥ लज्जालंबोदरीदेवीललनालोकधारिणी ॥ ३९ ॥ वरदावंदिताविद्यावैष्णवीविमलाकृतिः ॥ वाराहीविरजावर्षावर लक्ष्मीर्विलासिनी ॥ ४० ॥ विनताव्योममध्यस्थावारिजासनसंस्थिता ॥ वारुणीवेणुसंभूतावीतिहोत्राविरूपिणी ॥ ४१ ॥ वायुमंडलमध्यस्थाविष्णुरूपा विधिप्रिया ॥ विष्णुपत्नीविष्णुमतीविशालाक्षीवसुंधरा ॥ ४२ ॥ वामदेवप्रियावेलावज्रिणीवसुदोहिनी ॥ वेदाक्षरपरीतांगीवाजपेयफलप्रदा ॥ ४३ ॥ वासवीवामजननीवैकुंठनिलयावरा ॥ व्यासप्रियावर्मधरावाल्मीकिपरिसेविता ॥ ४४ ॥ शाकंभरीशिवाशांताशारदाशरणागतिः ॥ शातोदरीशुभाचाराशुंभासुरविमर्दिनी ॥ ४५ ॥ शोभावतीशिवाकाराशंकरार्धशरीरिणी ॥ शोणाशुभाशयाशुभ्राशिरःसंधानकारिणी ॥ ४६ ॥ शरावतीशरानंदाशरज्ज्योत्स्नाशुभानना ॥ शरभाशूलिनीशुद्धाशवरीशुकवाहना ॥ ४७ ॥ श्रीमतीश्रीधरानंदाश्रवणानंददायिनी ॥ शर्वाणीशर्वरीवंद्याषड्भाषाषड्‌तुप्रिया ॥ ॥ ४८ ॥ षडाधारस्थितादेवीषण्मुखप्रियकारिणी ॥ षडंगरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता ॥ ४९ ॥ सरस्वतीसदाधारासर्वमंगलकारिणी ॥ सामगानप्रिया सूक्ष्मासावित्रीसामसंभवा ॥ ५० ॥ सर्वावासासदानंदासुस्तनीसागरांबरा ॥ सर्वैश्वर्यप्रियासिद्धिःसाधुबंधुपराक्रमा ॥ ५१ ॥

शरणागति, शातोदरी, शुभाचारा, शुंभासुरविमर्दिनी ॥ ४५ ॥ शोभावती, शिवाकारा शंकरार्धशरीरिणी, शोणा, शुभाशया, शुभ्रा, शिरःसंधानकारिणी ॥ ४६ ॥ शरावती, शरानंदा, शरज्ज्योत्स्ना, शुभानना, शरभा, शूलिनी, शुद्धा, शवरी, शुकवाहना ॥ ४७ ॥ श्रीमती, श्रीधरानंदा, श्रवणानंददायिनी, शर्वाणी, शर्वरी वंद्या, [षकारादि ५ नाम] षड्भाषा, षड्‌तुप्रिया, षडाधारस्थिता देवी (मूलाधारमें आदिमें स्थित देवियोंकी स्वामिनी) षण्मुखप्रियकारिणी, षडंगरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता (षडंगरूप देवता ओंसे नमस्कृत) तथा असुरोंसे नमस्कृत ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ [सकारादि २७ नाम] सरस्वती सदाधारा, सर्वमंगलकारिणी, सामगानप्रिया, सूक्ष्मा, सावित्री, सामसंभवा, ॥ १५० ॥ सर्ववासा, सदानंदा, सुस्तनी, सागराम्बरा, सर्वैश्वर्यप्रिया, सिद्धि, साधुबंधुपरा (पद) क्रमा अपने भक्तोंके जो बांधव तिनमें विचरनेवाली अर्थात् अपने भक्तोंके

सक्तोमें दयावती ॥ ५१ ॥ सप्तर्षिमंडलमें प्राप्त, सोममण्डलवासिनी, सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा, समानाधिकवर्जिता ॥ ५२ ॥ सर्वोत्तुंगा, संगहीना, सद्गुणा, सकलेष्टदा, सरघा (मधुमक्षिकारूप) सूर्यतनया, सुकेशी सोमसंहति ॥ ५३ ॥ [हकारादि चारनाम] हिरण्यवर्णा, हरिणी, ह्रींकारी, हंसवाहिनी, [क्षकारादि तीन नाम] क्षौमवस्त्रपरीतांगी क्षीराब्धितनया, क्षमा ॥ ५४ ॥ [गायत्रीआदिआठनाम मातृका क्रम रहित हैं] गायत्री, सावित्री, पार्वती, सरस्वती, वेदगर्भा, वरारोहा श्रीगायत्री पराम्बिका ॥ ५५ ॥ हेनारद! यह गायत्रीके सहस्रनाम पुण्यकारी पापनाशक महासम्पत्तिदायक हैं ॥ ५६ ॥ यह नाम गायत्रीके संतुष्ट करनेवाले हैं ब्राह्मणोंके सहित अष्टमीको पढने चाहिये ॥ ५७ ॥

सप्तर्षिमंडलगतासोममंडलवासिनी ॥ सर्वज्ञासांद्रकरुणासमानाधिकवर्जिता ॥ ५२ ॥ सर्वोत्तुंगासंगहीनासद्गुणासकलेष्टदा ॥ सरघासूर्यतनयासुकेशी सोमसंहतिः ॥ ५३ ॥ हिरण्यवर्णाहरिणीह्रींकारीहंसवाहिनी ॥ क्षौमवस्त्रपरीतांगीक्षीराब्धितनयाक्षमा ॥ ५४ ॥ गायत्रीचैवसावित्रीपार्वतीचसरस्वती ॥ वेदगर्भावरारोहाश्रीगायत्रीपरांबिका ॥ ५५ ॥ इतिसाहस्रकंनाम्नांगायत्र्याश्चैवनारद ॥ पुण्यदंसर्वपापघ्नंमहासंपत्तिदायकम् ॥ ५६ ॥ एवंनामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणिहि ॥ अष्टम्यांचविशेषेणपठितव्यंद्विजैःसह ॥ ५७ ॥ जपंकृत्वाहोमपूजाध्यानंकृत्वाविशेषतः ॥ यस्मैकस्मैनदातव्यंगाय त्र्यास्तुविशेषतः ॥ ५८ ॥ सुभक्तायसुशिष्यायवक्तव्यंभूसुरायवै ॥ भ्रष्टेभ्यःसाधकेभ्यश्चबांधवेभ्योनदर्शयेत् ॥ ५९ ॥ यद्गृहेलिखितंशास्त्रंभयंतस्यन कस्यचित् ॥ चंचलापिस्थिराभूत्वाकमलातत्रतिष्ठति ॥ ६० ॥ इदंरहस्यंपरमंगुह्याद्गुह्यतरंमहत् ॥ पुण्यप्रदंमनुष्याणांदरिद्राणांनिधिप्रदम् ॥ ६१ ॥ मोक्षप्रदंमुमुक्षूणांकामिनांसर्वकामदम् ॥ रोगाद्वैमुच्यतेरोगीबद्धोमुच्येतबंधनात् ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानंसुवर्णस्तेयिनोनराः ॥ गुरुतल्पगतोवा पिपातकान्मुच्यतेसकृत् ॥ ६३ ॥

जप होम पूजा और विशेषरूप ध्यान करकै आराधन करै, यह गायत्री जिसकिसीको न देनी चाहिये ॥ ५८ ॥ सुभक्त सुशिष्य ब्राह्मणके निमित्त कहनी चाहिये भ्रष्टसाधक तथा बांधवोंको न दिखावै ॥ ५९ ॥ जिसके घरमें यह शास्त्र लिखा है उसको कुछ भय नहीं होता, चंचला लक्ष्मी उस स्थानमें स्थित होकर रहती है ॥ ६० ॥ यह परम रहस्य गुह्यसे भी गुह्य है यह मनुष्योंको पुण्य और दरिद्रियोंको निधि देनेवाला है ॥ ६१ ॥ मुमुक्षुओंको मोक्ष और कामियोंको सब कामना देने वाला है, रोगी रोगसे बँधाहुआ बंधनसे मुक्त होजाता है ॥ ६२ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्यारे सुरापीनेवाले सुवर्णके चोर गुरुदारगामी हैं वह भी इसका जपकरकै पातकोंसे छूटजाते हैं ॥ ६३ ॥

असत्य प्रतिग्रह और विशेषकर अभक्ष्यभक्षण करनेसे तथा पाखण्ड और असत्यके पापसे पढतेही छूटता है ॥ ६४ ॥ हे नारद! यह निर्मल रहस्य आपसे कहा यह मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्यका देनेवाला है सत्य२कहता हूं इसमें सन्देह नहीं॥ १६५॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः॥६॥ श्रीनारदजीबोले मैंने गायत्री सहस्रनाम महापुण्यफल देनेवाला सुना जो स्तोत्र महाउन्नति करनेवाला, महाभाग्य करनेवाला है ॥ १ ॥ अब दीक्षालक्षण सुननेकी इच्छा करताहूं जिसके विना देवीमंत्रमें अधिकार सिद्ध नहीं होता ॥ २ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्रियोंको सामान्य विधि और विस्तारसे कहो ॥ ३ ॥ श्रीनारायणबोले

असत्प्रतिग्रहाच्चैवाऽभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः ॥ पाखंडानृतमुख्येभ्यःपठनादेवमुच्यते ॥ ६४ ॥ इदंरहस्यममलंमयोक्तंपद्मजोद्भव ॥ ब्रह्मसायुज्यदंनॄणां सत्यंसत्यंनसंशयः ॥ १६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे गायत्रीसहस्रनामस्तोत्रकथनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ छ ॥ श्रीनारदउवाच ॥ श्रुतंसहस्रनामाख्यंश्रीगायत्र्याःफलप्रदम् ॥ स्तोत्रंमहोन्नतिकरंमहाभाग्यकरंपरम् ॥ १ ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामिदीक्षालक्षणमुत्तमम् ॥ विनायेननसिध्येतदेवीमंत्रेधिकारिता ॥ २ ॥ ब्राह्मणानांक्षत्रियाणांविशांस्त्रीणांतथैवच ॥ सामान्यविधिनासर्वंविस्तरेणवदप्रभो ॥ ॥ ३ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ शृणुदीक्षांप्रवक्ष्यामिशिष्याणांभावितात्मनाम् ॥ देवाग्निगुरुपूजादावधिकारोययाभवेत् ॥ ४ ॥ दिव्यंज्ञानंहियादद्यात्कुर्यात्पापक्षयंतुया ॥ सैवदीक्षेतिसंप्रोक्तावेदतंत्रविशारदैः ॥५॥ अवश्यंसातुकर्तव्यायतोबहुफलामता॥ गुरुशिष्यावुभावत्राप्यतिशुद्धावपेक्षितौ ॥ ॥ ६ ॥ गुरुस्तुविधिवत्प्रातःकृत्यंसर्वंविधायच ॥ स्नानसंध्यादिकंसर्वंयथाविधिविधायच ॥ ७ ॥ कमण्डलुकरोमौनीगृहंयायात्सरित्तटात् ॥ यागमंडपमासाद्यविशेत्तत्रासनेवरे ॥८॥ आचम्यप्राणानायम्यगंधपुष्पविमिश्रितम् ॥ सप्तवारास्त्रमंत्रेणजप्तंवारिसुसाधयेत् ॥ ९ ॥ वारिणातेनमतिमानस्त्रमंत्रंसमुच्चरन् ॥ प्रोक्षयेद्द्वारमखिलंततःपूजांसमाचरेत् ॥ १० ॥

भावितात्मा शिष्योंको दीक्षाविधान कहता हूं जिससे देव अग्नि गुरु पूजाकी विधिमें जिसप्रकार अधिकारहो ॥ ४ ॥ जो दिव्य ज्ञानदे तथा पापक्षय करै विदत विशारदोंने उसीका नाम दीक्षा कहाहै ॥ ५ ॥ यह अवश्य करनी चाहिये जिससे वह फल अधिक देनेवाली है इसमें गुरुशिष्योंकी शुद्धि अधिक अपेक्षित है ॥ ६ ॥ गुरु विधिपूर्वक सब प्रातःकृत्य करके संध्यास्नानादि सब यथाविधि विधान कर ॥ ७ ॥ कमंडलु हाथमें लिये मौनी हो सरित्के किनारेसे घर आजाय फिर यागमण्डपमें प्राप्तहो वर आसनमें स्थित हो ॥ ८ ॥ आचमन कर प्राणायामपूर्वक गंध पुष्पसे युक्त सातवार फट् अस्त्रमंत्रसे जलको साधन करै ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् उस जलसे

अस्त्रमंत्रको उच्चारण करता हुआ मण्डपके द्वारेको प्रोक्षण कर फिर पूजा आरंभ करे ॥ १० ॥ द्वारके ऊर्ध्व फलक प्रथम प्रान्तमें गणनाथ मध्यमें लक्ष्मी और दूसरेमें सरस्वतीकी मंत्रपूर्वक धूप दीपसे पूजा करे ॥ ११ ॥ दक्षिणद्वारकी शाखामें गंगा और विघ्नेशकी पूजा करे द्वारकी वाम शाखामें क्षेत्रपाल और यमुनाकी पूजा करे ॥ १२ ॥ देहलीमें अस्त्रदेवताकी फट् मंत्रसे पूजा करे सब प्रकारसे यह चिन्ता करे यह दृश्य सब देवीमय है सब जगह पूजे ॥ १३ ॥ इस मंत्रके जपसे दिव्य विघ्नोंको दूर करे अस्त्रमंत्रके जपसे अन्तरिक्ष और पादाघातसे भूमिके विघ्नोंको दूरकरे ॥ १४ ॥ बाँईशाखाको स्पर्शकरता हुआ पीछे दक्षिण चरणके चौखटके उसपार प्रवेशकर मंडपमें जाय सामान्य अर्घ्यदे कुंभस्थापन करे ॥ १५ ॥ उस अर्घ्यदानके पश्चात् नैर्ऋत्यदिशामें पूजाकरै वास्तोष्पति और ब्रह्मा

ऊर्ध्वोदुंबरकेदेवंगणनाथंतथाश्रियम् ॥ सरस्वतींनाममंत्रैःपूजयेद्गंधपुष्पकैः ॥ ११ ॥ द्वारदक्षिणशाखायांगंगांविघ्नेशमर्चयेत् ॥ द्वारस्यवामशाखायां क्षेत्रपालंचसूर्यजाम् ॥ १२ ॥ देहल्यांपूजयेदस्त्रदेवतामस्त्रमंत्रतः ॥ सर्वदेवीमयंदृश्यमितिसंचिंत्यसर्वतः ॥ १३ ॥ दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नान स्त्रमंत्रजपेनतु ॥ अंतरिक्षगतान्विघ्नान्पादघातैस्तुभूमिगान् ॥ १४ ॥ वामशाखांस्पृशन्पश्चात्प्रविशेद्दक्षिणांघ्रिणा ॥ प्रविश्यकुंभंसंस्थाप्यसामान्या र्घ्यंविधायच ॥ १५ ॥ तेनचाऽर्घ्यजलेनापिनैर्ऋत्यांदिशिपूजयेत् ॥ वास्तुनाथंपद्मयोनिंगंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १६ ॥ ततःकुर्यात्पंचगव्यंतेनचाऽर्घ्यो दकेनच ॥ तोरणस्तंभपर्यंतंप्रोक्षयेन्मंडपंगुरुः ॥ १७ ॥ सर्वदेवीमयंचेदंभावयेन्मनसाकिल ॥ मूलमंत्रंजपन्भक्त्याप्रोक्षणंस्याच्छराणुना ॥ १८ ॥ शर मंत्रंसमुच्चार्यताडयेन्मंडपक्षमाम् ॥ हुंमंत्रंतुसमुच्चार्यकुर्यादभ्युक्षणंततः ॥१९॥ धूपयेदंतरंधूपैर्विकिरान्विकिरेत्ततः ॥ मार्जयेत्तांस्तुमार्जन्याकुशनिर्मित यापुनः ॥ २० ॥ ईशानदिशितत्पुंजंकृत्वासंस्थापयेन्मुने ॥ पुण्याहवाचनंकृत्वादीनानाथांश्चतोषयेत् ॥ २१ ॥ विशेन्मृद्वासनेपश्चान्नमस्कृत्यगुरुंनिज म् ॥ प्राङ्मुखोविधिवद्ध्यात्वादेयमंत्रस्यदेवताम् ॥ २२ ॥ भूतशुद्ध्यादिकंकृत्वापूर्वोक्तेनैववर्त्मना ॥ ऋष्यादिन्यासकंकुर्याद्देयमंत्रस्यवैमुने ॥ २३ ॥

इनकी गंध पुष्प अक्षतादिसे पूजाकरै ॥ १६ ॥ फिर उस अर्घ्यजलसे पंचगव्य करे तोरणस्तंभपर्यन्त गुरु मंडपको प्रोक्षण करै ॥ १७ ॥ और मनसे भावना करै कि, यह सब देवीमय है, भक्तिसे मूलमंत्रका जप और अस्त्रमंत्रसे प्रोक्षण करै ॥ १८ ॥ शरमंत्र (फट्) का उच्चारण करकै मण्डपकी भूमिको ताडन करै हुं मंत्रका उच्चारण कर अभ्युक्षण (सेक) करै ॥ १९ ॥ अन्तर धूपोंसे धूपित करै विकरोंको विकरित करै. जलचन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वांकुर अक्षत यह विकिर सब विघ्नोंके नाशक हैं कुशके पुञ्जोंसे मार्जनी बनाय मार्जन करै ॥ २० ॥ हे मुने ! उस पुञ्जको ईशान दिशामें करकै मार्जन करै और पुण्याहवाचन करकै दीन और अनाथोंको सन्तुष्ट करै ॥ २१ ॥ फिर अपने गुरुको प्रणामकर मृदु आसनपर बैठे विधिपूर्वक पूर्व मुखकर ध्यानकर मंत्रके देवताका ध्यानकर ॥ २२ ॥ पूर्वोक्तप्रकारसे भूतशुद्धि आदि करकै ऋषि

आदिका न्यास करके मंत्र देना चाहिये ॥ २३ ॥ मंत्रके ऋषिको शिरमें मुखको छन्दमें देवताको हृदयमें बीजको गुह्यमें शक्तिको ॥ २४ ॥ चरणोंमें न्यास करकै पीछे तीन ताली बजाय, फिर तीन चुटकी बजाकर दिग्बंधकरै ॥ २५ ॥ फिर प्राणायामकर मूलमंत्रका उच्चारण करते हुए देहमें मातृकान्यास करै उसका प्रकार कहते हैं ॥ २६ ॥ ओं अंनमः कहकर शिरमें न्यास करै ओं आंनमः ओं इंनमः आदिसे हे मुने ! सब स्थानोंमें न्यास करै ॥ २७ ॥ जो शिष्यको मंत्र दियाजाय उसका षडंगन्यास करै अंगुली और हृदयादि क्रमसे न्यास करै ॥ २८ ॥ जैसे हृदयायनमः शिरसेस्वाहा शिखायैवषट् कवचायहुम् नेत्रत्रयायवौषट् अस्त्रायफट् इस रीतिसे करै इसप्रकार करके ॥ २९ ॥ फिर मूलमंत्रसे यथायोग्य वर्णन्यास करै उन सबस्थानोंमें करै यही न्यासकी विधि है ॥ ३० ॥ फिर अपने शरीरमें आस

न्यसेन्मुनिंतुशिरसिमुखेछंदःसमीरितम् ॥ देवतांहृदयांभोजेगुह्येबीजंतुपादयोः॥२४॥शक्तिंविन्यस्यपश्चात्तुतालत्रयरवात्ततः ॥ दिग्बंधंकारयेत्पश्चाच्छोटिकाभिस्त्रिभिर्नरः ॥ २५ ॥ प्राणायामंततःकृत्वामूलमंत्रमनुस्मरन् ॥ मातृकांविन्यसेद्देहेतत्प्रकारस्तथोच्यते ॥ २६ ॥ ॐ अंनमइति प्रोच्यन्यसेच्छिरसिमंत्रवित् ॥ एवमेवतुसर्वेषुन्यसेत्स्थानेषुवैमुने ॥ २७ ॥ मूलमंत्रषडंगंचन्यसेदंगेषुसत्तमः ॥ अंगुष्ठादिष्वंगुलीषुहृदयादिषुचक्रमात् ॥ २८ ॥ नमःस्वाहावषड्युक्तैर्हुंवौषट्फट्पदान्वितैः ॥ प्रणवादियुतैर्मंत्रैःषड्भिरेवंषडंगकम् ॥ २९ ॥ वर्णन्यासादिकंपश्चान्मूलमंत्रस्ययोजयेत् ॥ स्थानेषुतत्तत्कल्पोक्तेष्वितिन्यासविधिःस्मृतः ॥ ३० ॥ ततोनिजेशरीरेऽस्मिंश्चिंतयेदासनंशुभम्॥दक्षांसेचन्यसेद्धर्मंवामांसेज्ञानमेवच ॥३१॥ वामोरौचापिवैराग्यंदक्षोरावथविन्यसेत् ॥ ऐश्वर्यंमुखदेशेतुमुनेध्यायेदधर्मकम् ॥ ३२ ॥ वामपार्श्वेनाभिदेशेदक्षपार्श्वेतथापुनः ॥ नञादींश्चापिज्ञानादीन्पूर्वोक्तानेवविन्यसेत् ॥ ३३ ॥ पादाधर्मादयःप्रोक्ताःपीठस्यमुनिसत्तम ॥ अधर्माद्यास्तुगात्राणिस्मृतानिमुनिपुंगवैः ॥ ३४ ॥ मध्येऽनंतंहृदिस्थानेन्यसेन्मृद्वासनेस्थले ॥ प्रपंचपद्मंविमलंतस्मिन्सूर्येंदुपावकान् ॥ ३५ ॥ न्यसेत्कलायुतान्मंत्रीसंक्षेपात्तावदाम्यहम् ॥ सूर्यस्यद्वादशकलास्ताइंदोःषोडशस्मृताः ॥ ३६ ॥

नकी कल्पना कर दहिनी ओर धर्म बायेंमें ज्ञानका न्यास करै ॥ ३१ ॥ बाईं ऊरुमें वैराग्य, दहिनीमें ऐश्वर्य, मुखमें अधर्मका न्यास करै ॥ ३२ ॥ यथा वाम पार्श्वमें अधर्मायनमः नाभिमें अवैराग्यायनमः दक्षिणपार्श्वमें अज्ञानायनमः अनैश्वर्य्यायनमः यह पढै ॥ ३३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पीठके धर्मादि पाद हैं और अधर्मादि अंग मुनियोंने स्मरण किये हैं ॥ ३४ ॥ पीठ (पलंग) पर अनन्तका न्यास करै अनन्तमें प्रपंचकमलका ध्यान करै कमलमें सूर्य चन्द्र और अग्निका ध्यान करना चाहिये ॥ ३५ ॥ सबको कलासहित न्यास करै उनकी कला संक्षेपसे कहते हैं सूर्य की बारह और चन्द्रमाकी सोलह कला हैं ॥ ३६ ॥

अग्निकी दश कला हैं इनसे युक्त स्मरण करै इसके उपरान्त सत्वादि गुणोंका न्यास करै॥ ३७॥ आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा इनका न्यास पूर्वादि दिशाओंमें करै, इसप्रकार पीठ (आसन) की कल्पना है॥ ३८॥ अमुकासनायनमः इससे साधक आसनकी पूजाकरै फिर पराम्बिकाका ध्यानकरै ॥ ३९॥ जो मंत्र देना है उस देवताकी कल्पकी विधिसे मानसी पूजा करके॥ ४०॥ विद्वान् कल्पमें कही आनन्ददायक मुद्रा दिखावै जिनको दिखानेसे देवी बहुत प्रसन्न होती है॥ ४१॥ नारायण बोले फिर अपने वामभागमें षट्कोण करै फिर गोलाकार बनावै उस पर चौकोन चन्दनसे बनावै ॥ ४२॥ उसके मध्यमें त्रिकोण लिखकर शंखमुद्रा दिखावै, फिर छहों कोनोंमें देने वाले

दशवह्नेःकलाःप्रोक्तास्ताभिर्युक्तांस्तुतान्स्मरेत् ॥ सत्त्वंरजस्तमश्चैवन्यसेत्तेषामथोपरि ॥ ३७ ॥ आत्मानमंतरात्मानंपरमात्मानमेवच ॥ ज्ञानात्मानंन्यसेद्विद्वानित्थंपीठस्यकल्पना ॥३८॥ अमुकासनायनमइतिमंत्रेणसाधकः ॥ आसनंपूजयित्वातुतस्मिन्ध्यायेत्परांबिकाम् ॥३९॥ कल्पोक्तविधिनामंत्रीदेयमंत्रस्यदेवताम् ॥ मानसैरुपचारैश्चपूजयेत्तांयथाविधि ॥ ४० ॥ मुद्राःप्रदर्शयेद्विद्वान्कल्पोक्तामोदकारिकाः ॥ याभिर्विरचिताभिस्तुमोदोदेव्यास्तुजायते ॥ ४१ ॥ नारायणउवाच ॥ ततःस्ववामभागाग्रेषट्कोणोपरिवर्तुलम् ॥ चतुरस्रयुतंसम्यङ्मध्येमंडलमालिखेत् ॥ ४२ ॥ मध्येत्रिकोणंसंलिख्यशंखमुद्रांप्रदर्शयेत् ॥ षडंगानिचषट्कोणेष्वर्चयेत्कुसुमादिभिः ॥ ४३ ॥ अग्न्यादिषुतुकोणेषुषडंगार्चनमाचरेत् ॥ आधारपात्रमोदायशंखस्यमुनिसत्तम ॥४४॥ अस्त्रमंत्रेणसंप्रोक्ष्यस्थापयेत्तत्रमंडले ॥ मंवह्निमंडलायोक्त्वाततोदशकलात्मने॥४५॥ अमुकदेव्याअर्घ्यपात्रस्थानायनमइत्यपि ॥ मंत्रोयमुक्तःशंखस्याप्याधारस्थापनेबुधैः ॥४६॥ आधारेपूर्वमारभ्यप्रदक्षिणक्रमेणतु ॥ दशवह्निकलाःपूज्यावह्निमंडलसंस्थिताः ॥ ४७ ॥ ततोवैमूलमंत्रेणप्रोक्षितंशंखमुत्तमम् ॥ स्थापयेत्तत्रचाधारेमूलमंत्रमनुस्मरन्॥४८॥ अंसूर्यमंडलायोक्त्वाद्वादशांतेकलात्मने ॥ अमुकदेव्यर्घ्यपात्रायनमइत्युच्चरेत्ततः ॥ ४९ ॥

मंत्रके षडंगोंकी फूलोंसे पूजाकरै॥ ४३॥ यह अग्नि आदिकोणमें षडंग पूजा करै फिर शंखके नीचेके आधारपात्रको लेकर हेमुनिराज!॥ ४४॥ फट् इस अस्त्र मंत्रसे उसको प्रोक्षण कर उस मंडलमें स्थापनकरै मं वह्निमंडलाय दशकलात्मने दुर्गा देव्यर्घ्यपात्र स्थापनायनमः॥ ४५॥ ४६॥ यह शंखके आधारपात्रके स्थापनकामंत्र है आधारमें पूर्वा दिदिशाके क्रमसे अग्निकी दशकलाओंकी पूजा करै ॥ ४७॥ फिर मूलमंत्रसे शंखको प्रोक्षण कर मूलमंत्रको स्मरण करते हुए उस आधारमें स्थापन करै॥ ४८॥ अं सूर्य मंडलाय

द्वादशकलात्मने दुर्गादेव्यर्घपात्रायनमः यह मंत्र उच्चारण करै ॥ ४९ ॥ फिर 'शं शंखाय नमः' यह मंत्र पढकर शंखपर जल छिडकै उसमें बारह कलाका पूजन करै ॥ ५० ॥ सूर्यकी जो तापिनी आदि बारह कला हैं उनको यथाक्रमसे पूजै उलटी मातृका और मूलमंत्र पढकै ॥ ५१ ॥ जलसे शंखको पूर्ण कर उसमें सोम कलाका न्यास करै ओं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने दुर्गादेव्यर्थार्घ्यामृताय हृदायनमः इस मंत्रसे कुशमुद्रासे जलकी पूजा करै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसमें तीर्थोंका आवाहन कर आठवार देय मंत्रको जपकर जलमें षडंग न्यास कर हृदा इस मंत्रसे जलकी पूजा करै ॥ ५४ ॥ आठवार मंत्र जपकर मत्स्यमुद्रासे उसको आच्छादन करै फिर उसके दक्षिणभागमें शंखकी प्रोक्षणी धर दे ॥ ५५ ॥ फिर शंखसे कुछ जल लेकर उससे सब ओर प्रोक्षण करै, फिर पूजाद्रव्य

शंशंखायपदंप्रोच्यनमइत्येतदुच्चरेत् ॥ प्रोक्षयेत्तेनतंशंखंतस्मिन्द्वादशपूजयेत् ॥ ५० ॥ सूर्यस्यद्वादशकलास्तापिन्याद्यायथाक्रमम् ॥ विलोममातृकांप्रोच्यमूलमंत्रंविलोमकम् ॥ ५१ ॥ जलैरापूरयेच्छंखंतत्रचेंदोःकलांन्यसेत् ॥ उंसोममंडलायोक्त्वांतिषोडशकलात्मने ॥ ५२ ॥ अमुकार्घ्यामृतायेतिहृन्मंत्रांतोमनुःस्मृतः ॥ पूजयेन्मनुनातेनजलंतुसृणिमुद्रया ॥ ५३ ॥ तीर्थान्यावाह्यतत्रैवाप्यष्टकृत्वोजपेन्मनुम् ॥ षडंगानिजलेन्यस्यहृदासंपूजयेदपः॥५४॥अष्टकृत्वोजपेन्मूलंछादयेन्मत्स्यमुद्रया॥ ततोदक्षिणदिग्भागेशंखस्यप्रोक्षणींन्यसेत् ॥५५॥ शंखांबुकिंचिन्निक्षिप्यप्रोक्षयेत्तेनसर्वतः॥ पूजाद्रव्यंनिजात्मानंविशुद्धंभावयेत्ततः ॥ ५६ ॥ नारायणउवाच ॥ ततःस्वपुरतोवेद्यांसर्वतोभद्रमंडलम् ॥ संलिख्यकर्णिकामध्यंपूरयेच्छालितंडुलैः ॥ ॥५७॥ आस्तीर्यदर्भांस्तत्रैवन्यसेत्कूर्चंसलक्षणम् ॥ आधारशक्तिमारभ्यपीठमन्वंतमर्चयेत् ॥५८॥ निर्व्रणंकुंभमादायाप्यस्त्राद्भिःक्षालितांतरम् ॥ तंतुनावेष्टयेतंतुत्रिगुणेनारुणेनच ॥ ५९ ॥ नवरत्नोदरंकूर्चयुतंगंधादिपूजितम् ॥ स्थापयेत्तत्रपीठेतुतारमंत्रेणदेशिकः ॥ ६० ॥ ऐक्यंकुंभस्यपीठस्यभावयेत्पूरयेत्ततः ॥ मातृकांप्रतिलोमेनजपंस्तीर्थोदकैर्मुने ॥ ६१ ॥

और अपनेको विशुद्ध भावना करै ॥ ५६ ॥ नारायण बोले फिर अपने आगे वेदीमें सर्वतोभद्रमण्डल लिखकर जडहनके चावलसे उसकी कर्णिकाको पूरित करै ॥ ५७ ॥ वहां कुशाओंको फैलाकर २७ कुशोंका कूर्च बनाय स्थापित करै आधारशक्तिसे आरंभकर मन्त्रान्ततक पीठकी पूजा करै ॥ ५८ ॥ फिर छिद्ररहित सुन्दर कलश स्थापनकर फट् मंत्र पढकर जलसे पोंछे फिर तीन भागके लालडोरेसे उसे लपेटे ॥ ५९ ॥ नवरत्न कूर्च गन्धादि उसमें डालै डालनेके समय ॐकार मंत्र पढै और उसपर स्थापन करै ॥ ६० ॥ कुंभको पीठपर धर उसकी एकत्वभावना करै और क्षकारसे ले अकारपर्यन्त उलटे अक्षर पढकर कुंभको पीठपर धर ॥ ६१ ॥

तीर्थजलसे पूरित करै और मूलमंत्र जपै अश्वत्थ पनस आमके कोमल नवीन पत्तोंसे ॥ ६२ ॥ घटका मुख ढकदे उसपर चषक फल और अक्षत रखकर बुद्धिमान् दो वस्त्रोंसे वेष्टन करै ॥ ६३ ॥ प्राणप्रतिष्ठाके मंत्रोंसे उसमें प्राणप्रतिष्ठा करै आवाहनादिमुद्रा दिखाकर देवताको प्रसन्न करै ॥ ६४ ॥ और कल्पोक्तप्रकारसे उस परमेशानीका ध्यान करै देवीके आगे स्वागत कुशल प्रश्न करै ॥६५॥ पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, अभ्यंग, स्नान यह देवीके निवेदन करै ॥ ६६ ॥ फिर लाल अलसीके निर्मल वस्त्र प्रदान करै जो अनेक मणियोंसे युक्त हों परन्तु अकल्पोंकी कल्पना नकरै॥६७॥ मातृका वर्णोंसे संपुटित हुए मंत्रसे भलीभाँति पूजा करै, फिर देवीके

मूलमंत्रंचसंजप्यपूरयेद्देवताधिया ॥ अश्वत्थपनसाम्राणांकोमलैर्नवपल्लवैः ॥ ६२ ॥ छादयेत्कुंभवदनंचषकंसफलाक्षतम् ॥ संस्थापये तमतिमान्वस्त्रयुग्मेनवेष्टयेत् ॥ ६३ ॥ प्राणस्थापनमंत्रेणप्राणस्थापनमाचरेत् ॥ आवाहनादिमुद्राभिर्मोदयेद्देवतांपराम् ॥ ६४ ॥ ध्यायेत्तांपरमेशानीं कल्पोक्तेनप्रकारतः ॥ स्वागतंकुशलप्रश्नंदेव्याअग्रेसमुच्चरेत् ॥६५॥ पाद्यंदद्यात्ततोप्यर्घ्यंततश्चाचमनीयकम् ॥ मधुपर्कंचसाभ्यंगंदेव्यैस्नानंनिवेदयेत् ॥ ॥ ६६ ॥ वाससीचततोदद्याद्रक्तेक्षौमेसुनिर्मले ॥ नानामणिगणाकीर्णानाकल्पान्कल्पयेत्ततः ॥ ६७ ॥ मनुनापुटितैर्वर्णैर्मातृकायाविधानतः ॥ देव्या अंगेषुविन्यस्यचंदनाद्यैःसमर्चयेत् ॥६८॥ गंधःकालागरुभवःकर्पूरेणसमन्वितः ॥ काश्मीरंचंदनंचापिकस्तूरीसहितंमुने ॥ ६९ ॥ कुंदपुष्पादिपुष्पाणि परदेव्यैसमर्पयेत् ॥ धूपोऽगरुपुरुत्रातोशीरचंदनशर्कराः ॥७०॥ मधुमिश्राःस्मृतादेव्याःप्रियाधूपात्मनासदा ॥ दीपाननेकान्दत्त्वाथनैवेद्यंदर्शयेत्सुधीः॥ ॥ ७१ ॥ प्रतिद्रव्यंजलंदद्यात्प्रोक्षणीस्थंनचान्यथा ॥ ततःकुर्यादंगपूजांकल्पोक्तावरणानिच ॥७२॥ सांगांदेवीमथाभ्यर्च्यवैश्वदेवंततश्चरेत् ॥ दक्षिणेस्थं डिलंकृत्वातत्राधायहुताशनम् ॥ ७३ ॥ मूर्तिस्थांदेवतांतत्राऽऽवाह्यसंपूज्यचक्रमात् ॥ तारव्याहृतिभिर्हुत्वामूलमंत्रेणवैततः ॥ ७४ ॥

अंगमें चन्दनादि लगावे ॥ ६८ ॥ काले अगर और कपूरकी गंध केशर चन्दन कस्तूरीके सहित हे मुने ! ॥ ६९ ॥ फिर कुन्दादिके फूल देवीको निवेदन करै अगर कपूर उशीर चंदन शर्करा इसकी धूप ॥ ७० ॥ मधु डालकर दे यह धूप देवीको बहुतप्रिय है फिर अनेक दीपक देकर बुद्धिमान् नैवेद्य दे ॥ ७१ ॥ प्रतिद्रव्यके पीछे प्रोक्षणीपात्रको स्थापन करै फिर कल्पके कहे आवरणोंके अनुसार अंगपूजा करै ॥ ७२ ॥ भलीप्रकार सांग देवीका अर्चन कर वैश्वदेव करै. वह इसप्रकार है कि दक्षिण ओर चौंतरा बनाकर उसमें अग्नि स्थापन करै ॥ ७३ ॥ उसमें मूर्त्तिमें स्थितदेवताका आवाहन कर क्रमसे पूजन करै फिर ॐकार सहित व्याहृतियोंसे मूल

१ ह्रीं मं ह्रीं ह्रीं मां ह्रीम् इत्यादि मंत्र हैं.

मंत्र पढकर आहुती दे ॥ ७४ ॥ पायस (खीर) और घृतकी २५ आहुती दे. हे मुने ! फिर अन्य साकल्यसे व्याहृतियोंसे आहुती दे ॥ ७५ ॥ फिर गंधादिसे पूजाकर देवीको आसनपर बैठावै फिर अग्निको विसर्जन कर सब ओरसे बलि बखेरदे ॥ ७६ ॥ देवताके पार्षदोंको गंधपुष्पादि संयुक्त पंच उपचारसे पूजन कर ताम्बूल छत्र चामर देकर ॥ ७७ ॥ देवीके आगे सहस्र वार मंत्र जपै फिर ईशानी देवीको जप समर्पण कर ईशानकोणमें ॥ ७८ ॥ कर्करीको रख उसपर दुर्गाको आवाहन कर पूजे और रक्ष रक्ष इसप्रकार उच्चारण कर नालसे छोडे जलसे ॥ ७९ ॥ फट् मंत्र पढकर सब भूमि सींचदे फिर वहां कर्करीको स्थापन कर अस्त्रदेवताकी पूजा करे ॥ ८० ॥ पीछे गुरु शिष्यके साथ मौन हो भोजन करे उस रात्रिको यत्नपूर्वक उसी वेदीमें शयन करे ॥ ८१ ॥ नारायण बोले हे मुने ! अब स्थंडिल और कुंडके

पंचविंशतिवारंतुपायसेनससर्पिषा ॥ हुनेत्पश्चाद्व्याहृतिभिःपुनश्चजुहुयान्मुने ॥ ७५ ॥ गंधाद्यैरर्चयित्वाचदेवींपीठेतुयोजयेत् ॥ वह्निंविसृज्यहविषाप रितोविकिरेद्बलिम् ॥ ७६ ॥ देवतायाःपार्षदेभ्योगंधपुष्पादिसंयुतम् ॥ पंचोपचारान्दत्त्वाथतांबूलंछत्रचामरे ॥ ७७ ॥ दद्याद्देव्यैततोमंत्रंसहस्रावृत्तितो जपेत् ॥ जपंसमर्प्यैशान्यांविकिरेद्दिशिसंस्थिते ॥ ७८ ॥ कर्करींस्थापयेत्तस्यांदुर्गामावाह्यपूजयेत् ॥ रक्षरक्षेतिचोच्चार्य्यनालमुक्तेनवारिणा ॥ ७९ ॥ अस्त्रमंत्रंजपन्देशंसेचयेत्तुप्रदक्षिणम् ॥ कर्करींस्थापयेत्स्थानेपूजयेच्चास्त्रदेवताम् ॥ ८० ॥ पश्चाद्गुरुस्तुशिष्येणसहभुंजीतवाग्यतः ॥ तस्यांरात्रौतुतद्वे द्यांनिद्रांकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ८१ ॥ नारायणउवाच ॥ ततःकुंडस्यसंस्कारंस्थंडिलस्यचवामुने ॥ प्रवक्ष्यामिसमासेनयथाविधिविधानतः ॥ ८२ ॥ मूलमंत्रंसमुच्चार्यवीक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥ प्रोक्षयेत्ताडनंकुर्यात्तेनैवकवचेनतु ॥ ८३ ॥ अभ्युक्षणंसमुद्दिष्टंतिस्रस्तिस्रस्ततःपरम् ॥ प्रागग्राउदगग्राश्चलिखे ल्लेखाःसमंततः ॥ ८४ ॥ प्रणवेनसमभ्युक्ष्यपीठंदेव्याःसमर्चयेत् ॥ आधारशक्तिमारभ्यपीठमंत्रावसानकम् ॥ ८५ ॥ तस्मिन्पीठेसमावाह्यशिवौ परमकारणौ ॥ गंधाद्यैरुपचारैश्चपूजयेत्तौसमाहितः ॥ ८६ ॥ देवींध्यायेदृतुस्नातांसंसक्तांशंकरेणतु ॥ कामातुरांतयोःक्रीडांकिंचित्कालंविभावयेत् ॥ ८७ ॥

संस्कार कहते हैं, वह संक्षेपसे यथान्याय विधानसे कहताहूं ॥ ८२ ॥ मूलमंत्र उच्चारणकर कुंड देखै फट् मंत्रसे प्रोक्षण करै और उसी (हुं) कवचसे ताडन करै ॥ ८३ ॥ फिर तीन २ वार जलसे सींचकर पूर्व पश्चिमभागमें तीन तीन रेखा लिखै ॥ ८४ ॥ फिर प्रणवसे प्रोक्षण कर देवीके सिंहासनकी पूजा करै आधारशक्तिसे आरंभ कर पीठमंत्रपर्यन्त पूजे अर्थात् आधारशक्त्ये नमः अमुकदेवीपीठाय नमः कहकर पूजा करै ॥ ८५ ॥ उस पीठपर शिव पार्वतीका आवाहन कर गंधादि उपचारोंसे सावधान हो पूजन करै ॥ ८६ ॥ स्नानकिये शंकरसहित देवीका ध्यान करै कि, ऋतुस्नाता होकर शंकरमें सकाम मन लगाये हैं, इसप्रकार कुछ काल उनकी

क्रीडाको ध्यान करै ॥ ८७ ॥ फिर पात्रमें अग्नि लाकर सन्मुख धरै क्रव्याद अंशको छोडकर पूर्वोक्त सब वीक्षणादि करै ॥ ८८ ॥ अच्छीप्रकार संस्कार कर रंबीजका उच्चारण कर सातवार प्रणवका उच्चारण कर उसमें चैतन्यतासंयुक्त करै ॥ ८९ ॥ फिर गुरु धेनुमुद्रा दिखावै फट् मंत्रसे रक्षा करकै हुं मंत्रसे अवगुंठित करै ॥ ९० ॥ इसप्रकार गंधादिसे पूजा कर अग्निकुंडपर तीनवार घुमाय कुंडके निकट ओंकार जपता हुआ जाँघोंसे महीतलको स्पर्श करताहुआ ॥ ९१ ॥ शिवका वीर्य प्रकृतिमें गिरता है ऐसा समझके योनिरूप कुंडमें अग्नि निक्षेप करै फिर शिवा और शिवको आचमन करावै ॥ ९२ ॥ हन् २ दह २ पच २ सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा यह

अथवह्निंसमादायपात्रेणपुरतोन्यसेत् ॥ क्रव्यादांशंपरित्यज्यपूर्वोक्तैर्वीक्षणादिभिः ॥ ८८ ॥ संस्कृत्यवह्निंरंबीजमुच्चार्यतदनंतरम् ॥ चैतन्यंयोजयेत्त स्मिन्प्रणवेनाभिमंत्रयेत् ॥ ८९ ॥ सप्तवारंततोधेनुमुद्रांसंदर्शयेद्गुरुः ॥ शरेणरक्षितंकृत्वातनुत्रेणावगुंठयेत् ॥ ९० ॥ अर्चितंत्रिःपरिभ्राम्यप्रादक्षिण्ये नसत्तमः ॥ कुंडोपरिजपंस्तारंजानुस्पृष्टमहीतलः ॥ ९१ ॥ शिवबीजधियादेव्यायोनौवह्निंविनिक्षिपेत् ॥ आचामयेत्ततोदेवंदेवींचजगदंबिकाम् ॥ ॥ ९२ ॥ चिंतिपगलहनदहपचयुग्मंततःपरम् ॥ सर्वज्ञाज्ञापयस्वाहामंत्रोयंवह्निदीपने ॥ ९३ ॥ अग्निंप्रज्वलितंवंदेजातवेदंहुताशनम् ॥ सुवर्णवर्ण ममलंसमिद्धंविश्वतोमुखम् ॥ ९४ ॥ मंत्रेणानेनतंवह्निंस्तुवीतपरमादरात् ॥ ततोन्यसेद्वह्निमंत्रंषडंगंदेशिकोत्तमः ॥ ९५ ॥ सहस्रार्चिःस्वस्तिपूर्णउ त्तिष्ठपुरुषःस्मृतः ॥ धूमव्यापीसप्तजिह्वोधनुर्धरइतिक्रमात् ॥ ९६ ॥ जातियुक्ताःषडंगाःस्युःपूर्वस्थानेषुविन्यसेत् ॥ ध्यायेद्वह्निंहेमवर्णंत्रिनेत्रंपद्मसं स्थितम् ॥ ९७ ॥ इष्टशक्तिस्वस्तिकाभीधारकंमंगलंपरम् ॥ परिषिंचेत्ततःकुंडंमेखलोपरिमंत्रवित् ॥ ९८ ॥

अग्निदीपनका मंत्र है ॥ ९३ ॥ जातवेद हुताशन प्रदीप्त अग्निको प्रणाम करता हूं जो सुवर्णके समान निर्मल सबओर प्रदीप्त है ॥ ९४ ॥ इस मंत्रसे परम आदरसे अग्निकी स्तुति करै फिर अग्निमंत्रसे षडंगन्यास करै ॥ ९५ ॥ अंग यह है सहस्रार्चिःस्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठ पुरुष धूमव्यापी सप्तजिह्व धनुर्धर यह क्रमसे अंग हैं ॥ ९६ ॥ यह जातियुक्त षडंग हैं इनका पूर्वोक्त प्रकारसे न्यास करै अर्थात् जातियुक्ताय नमःस्वाहा वषट् हुं वौषट् फट् यह पद लगावै ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा इत्यादि मंत्र जानना ॥ ९७ ॥ वरमुद्रा, शक्ति, स्वस्तिक, अभयमुद्रा धारक परममंगल है फिर मंत्रका ज्ञाता कुंडमेखलापर सिंचन करै ॥ ९८ ॥

फिर परिधीमें कुशा बिछावै फिर त्रिकोण षट्कोण अष्टपत्र ॥ ९९ ॥ इसप्रकार अग्नियंत्र जानेतिसके मध्यमें नीचेलिखे मंत्रसे अग्निकी पूजाकरै ॥ १०० ॥ वैश्वानर ततोजातवेदः पश्चात् इह आवह लोहिताक्षपद सबकार्योंको साधन करो ॥ १ ॥ यह वह्निजायान्त मंत्र है इससे अग्निकी पूजाकरै छहों कोनोंके मध्यमें हिरण्या, गगना ॥ २ ॥ रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा अतिरिक्तका इसप्रकारसे अग्निकी सात जिह्वाओंका पूजन करके केसरोंमें अंगोंका पूजन करै ॥ ३ ॥ दलोंके मध्यमें स्वस्तिक धारिणी शक्तिका पूजन करै जातवेदा सप्तजिह्व, हव्यवाहन ॥ ४ ॥ अश्वोदरजसंज्ञ वैश्वानर कौमारतेजा विश्वमुख देवमुख ॥ ५ ॥ "ॐअग्नयेजातवेदसेनमः"

दर्भैःपरिस्तरेत्पश्चात्परिधीन्विन्यसेदथ ॥ त्रिकोणवृत्तषट्कोणंसाष्टपत्रंसभूपुरम् ॥ ९९ ॥ यंत्रंविभावयेद्वह्नेःपूर्ववासंलिखेदथ ॥ तन्मध्येपूजयेद्वह्निंमंत्रेणानेनवैमुने ॥ १०० ॥ वैश्वानरततोजातवेदःपश्चादिहावह ॥ लोहिताक्षपदंप्रोक्त्वासर्वकर्माणिसाधय ॥ १ ॥ वह्निजायांतकोमंत्रस्तेनवह्निंतुपूजयेत् ॥ मध्येषट्स्वपिकोणेषुहिरण्यागगनातथा ॥ २ ॥ रक्ताकृष्णासुप्रभाचबहुरूपातिरिक्तिका ॥ पूजयेत्सप्तजिह्वास्ताःकेसरेष्वंगपूजनम् ॥ ३ ॥ दलेषुपूजयेन्मूर्तीःशक्तिस्वस्तिकधारिणीः ॥ जातवेदाःसप्तजिह्वोहव्यवाहनएवच ॥ ४ ॥ अश्वोदरजसंज्ञोन्यःपुनर्वैश्वानराह्वयः ॥ कौमारतेजाःस्याद्विश्वमुखोदेवमुखःस्मृतः ॥ ५ ॥ ताराग्नयेपदाद्याःस्युर्नत्यंतावह्निमूर्तयः ॥ लोकपालांश्चतुर्दिक्षुवज्राद्यायुधसंयुतान् ॥ ६ ॥ नारायणउवाच ॥ ततःस्रुक्स्रुवसंस्कारावाज्यसंस्कारएवच ॥ कृत्वाहोमंततःकुर्यात्स्रुवेणादायवैघृतत् ॥ ७ ॥ दक्षिणाद्घृतभागात्तुवह्नेर्दक्षिणलोचने ॥ जुहुयादग्नयेस्वाहेत्येवंवैवामतोऽन्यतः ॥ ८ ॥ सोमायस्वाहेतिमध्यात्तुघृतमादायसत्तम ॥ अग्नीषोमाभ्यांस्वाहेतिमध्यनेत्रेहुनेत्ततः ॥ ९ ॥ पुनर्दक्षिणभागात्तुघृतमादायवैमुखे ॥ अग्नयेस्विष्टकृतेस्वाहेत्यनेनैवहुनेत्ततः ॥ ११० ॥ सताराभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयादथसाधकः ॥ जुहुयादग्निमंत्रेणत्रिवारंतुततःपरम् ॥ ११ ॥ ततस्तुप्रणवेनैवाऽप्यष्टावष्टौघृताहुतीः ॥ गर्भाधानादिसंस्कारकृतेतुजुहुयान्मुने ॥ १२ ॥

इसप्रकार इनके मंत्र जानै और सब ओर वज्रादि आयुध लिये लोकपालोंकी पूजा करै ॥ ६ ॥ नारायण बोले फिर स्रुक् आज्यसंस्कार कर होम करै जिस स्रुवसे घृतलेकर होम करै ॥ ७ ॥ और घृतके दक्षिणभागमें अग्निके दक्षिण नेत्रमें हुनै ॐअग्नयेस्वाहा इसमंत्रसे होम करै ॥ ८ ॥ सोमायस्वाहा इससे मध्यभाग घृतसे अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इससे मध्य नेत्रमें हुनै ॥ ९ ॥ फिर दक्षिणभागसे घृतलेकर अग्निके मुखमें अग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा इससे होम करै ॥ ११० ॥ फिर ॐभूर्भुवः स्वाहा इत्यादिसे आहुती करै फिर तीनवार पूर्वोक्त अग्निमंत्रसे आहुती दे ॥ ११ ॥ फिर प्रणवमंत्रसे आठ घीकी आहुती दे. हे मुने ! इसप्रकार गर्भाधानादि

संस्कार करनेके अर्थ हुवै ॥ १२ ॥ वे ये हैं गर्भाधान, पुंसवन सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण, ॥ अन्नप्राशन, चूडाकरण व्रतबंध ॥ १३ ॥ १४ ॥ गोदान विवाह यह श्रुतिकथित कर्म है फिर शिव पार्वतीका पूजनकर विसर्जन करै ॥ १५ ॥ और अग्निके उद्देशसे साधक पांच समिधा हवन करै फिर एक एक आ वर्णकी आहुती दे ॥ १६ ॥ फिर स्रुवसे चारवार घृत लेकर अपने आसनमें स्थित हुआ आहुती दे ॥ १७ ॥ फिर अग्निके वौषट् मंत्रपूर्वक महागणेशके मंत्रसे दशआहुती दे ॐ ॐ स्वाहा, १ ॐश्रींस्वाहा २ ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा ॐ श्रीं ह्रीं क्लींस्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गंस्वाहा ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौंगंगणपतेस्वाहा ७ वरवरद ८ सर्वजनंमेवशं ९ आनयस्वाहा यह दश आहुती हैं ॥ १८ ॥ फिर अग्निमें पीठकी पूजाकर सुनानेवाले मंत्रके

गर्भाधानंपुंसवनंसीमंतोन्नयनंततः ॥ जातकर्मनामकर्माप्युपनिष्क्रमणंतथा ॥ १३ ॥ अन्नाशनंतथाचूडाव्रतबंधस्तथैवच ॥ माहानाम्न्यंव्रतंपश्चात्तथौपनिषदंव्रतम् ॥ १४ ॥ गोदानोद्वाहकौप्रोक्ताःसंस्काराःश्रुतिचोदिताः ॥ ततःशिवंपार्वतींचपूजयित्वाविसर्जयेत् ॥ १५ ॥ जुहुयात्पंचसमिधोवह्निमुद्दिश्यसाधकः ॥ पश्चादावरणानांचाप्येकैकामाहुतिंहुनेत् ॥ १६ ॥ घृतंस्रुचिसमादायचतुर्वारंस्रुवेणच ॥ पिधायतांतुतेनैवमुनेतिष्ठन्निजासने ॥ १७ ॥ वौषडंतेनमनुनावह्नेस्तुजुहुयात्ततः ॥ महागणेशमंत्रेणजुहुयादाहुतीर्दश ॥ १८ ॥ वह्नौपीठंसमभ्यर्च्यदेयमंत्रस्यदेवताम् ॥ वह्नौध्यात्वातुतद्वक्रेपंचविंशतिसंख्यया ॥ १९ ॥ मूलमंत्रेणजुहुयाद्वक्रैकीकरणायच ॥ वह्निदेवतयोरैक्यंभावयन्नात्मनासह ॥ १२० ॥ एकीभूतंभावयेत्तुततस्तुसाधकोत्तमः ॥ षडंगदेवतानांचजुहुयादाहुतीःपृथक् ॥ २१ ॥ एकादशैवजुहुयादाहुतीर्मुनिसत्तम ॥ एतेननाडीसंधानंवह्निदेवतयोर्मुने ॥ २२ ॥ एकैकक्रमयोगेनाप्यावृत्तीनांतथैवच ॥ एकैकक्रमयोगेनघृतेनजुहुयान्मुने ॥ २३ ॥ ततःकल्पोक्तद्रव्यैस्तुजुहुयादथवातिलैः ॥ देवतामूलमंत्रेणगजांतकसहस्रकम् ॥ ॥ २४ ॥ एवंहुत्वाततोदेवींसंतुष्टांभावयेन्मुने ॥ तथैवाऽऽवृतिदेवीश्चवह्न्याद्यादेवताअपि ॥ २५ ॥

देवताका ध्यान अग्निमुखमें करै और २५ मूल मंत्रसे आहुती दे ॥ १९ ॥ अग्नि और देवताका एक मुख करनेके निमित्त अपने साथ भावना करै ॥ १२० ॥ इसप्रकार जो भावना करता है वह उत्तम साधक है षडंग देवताओंकी पृथक् आहुती दे ॥ २१ ॥ हेमुनिसत्तम ! इसप्रकार ग्यारह आहुती दे. हे मुने ! इससे अग्नि और अभीष्ट देवताकी एकता होजाती है ॥ २२ ॥ फिर एक देवताके एक अग्निके उद्देशसे आहुती दे. हे मुने ! इसप्रकार क्रमसे आहुती दे ॥ २३ ॥ फिर कल्पमें कहे शेष साकल्य वा तिलसे आहुतीदे देवीके अष्टोत्तर सहस्रनामसे हवन करै ॥ २४ ॥ इस प्रकार आहुतीसे देवी आवृत्तिदेवी और अग्नि आदि देवताओंको संतुष्ट समझै ॥ २५ ॥

फिर जब शिष्य स्नान संध्या कर चुके तब दोवस्त्र धारण किये सुवर्णके आभूषण पहरे हो ॥ २६ ॥ उस शुद्धचित्त कमंडलु हाथमें लियेको गुरु कुंडके निकट प्राप्त करै तब शिष्य गुरु और सभासदोंको प्रणाम कर ॥ २७ ॥ तथा कुलदेवताको प्रणाम कर विष्टरपर बैठे तब गुरु उस शिष्यको कृपादृष्टिसे देखैं ॥ २८ ॥ और उसके चैतन्यको अपने देहमें संगत हुआ भावना करै फिर शिष्य के शरीरमें आगेलिखे अध्याका शोधन करै ॥ २९ ॥ होमसे उसकी शुद्धिहोती है सोकरकै कृपादृष्टिसे अवलोकनकरै जिससे यह शुद्धात्मा होकर देवादिके अनुग्रह योग्य होता है ॥ १३० ॥ नारायण बोले शिष्यके शरीरमें क्रमसे छः मार्ग ध्यान करै. चरणोंमें कलाध्वा, लिंगमें तत्वाध्वा ॥ ३१ ॥ नाभिमें भुवनाध्वा, हृदयमें वर्णाध्वा, मस्तकमें पदाध्वा, मूर्धामें मंत्राध्वा ॥ ३२ ॥ शिष्यको कूर्चसे स्पर्शकर मंत्र पढै

ततःशिष्यंचसुस्नातंकृतसंध्यादिकक्रियम् ॥ वस्त्रद्वययुतंस्वर्णाभरणेनसमन्वितम् ॥ २६ ॥ कमंडलुकरंशुद्धंकुंडस्यांतिकमानयेत् ॥ नमस्कृत्यततः शिष्योगुरूनथसभासदः ॥२७॥ कुलदेवंनमस्कृत्यविशेत्तत्राऽथविष्टरे ॥ गुरुस्ततस्तुतंशिष्यंकृपादृष्ट्याविलोकयेत् ॥ २८ ॥ तच्चैतन्यंनिजेदेहेभावयेत्सं गतंत्विति॥ततःशिष्यतनुस्थानामध्वनांपरिशोधनम्॥२९॥ कुर्यात्तुहोमतोविद्वान्दिव्यदृष्ट्यवलोकनात्॥येनजायेतशुद्धात्मायोग्योदेवाद्यनुग्रहे॥ १३०॥ नारायणउवाच ॥ तनौध्यायेत्तुशिष्यस्यषडध्वनःक्रमेणतु ॥ पादयोस्तुकलाध्वानमंधौतत्त्वाध्वकंपुनः ॥३१॥ नाभौतुभुवनाध्वानंवर्णाध्वानंतथाहृदि ॥ पदाध्वानंतथाभालेमंत्राध्वानंतुमूर्धनि ॥३२॥ शिष्यंस्पृशंस्तुकूर्चेनतिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ शोधयाम्यमुमध्वानंस्वाहेतिमनुमुच्चरन् ॥३३॥ ताराद्यंजुहुया दष्टवारंप्रत्यध्वमेवहि ॥ षडध्वनस्ततस्तांस्तुलीनान्ब्रह्मणिभावयेत् ॥३४॥ पुनरुत्पादयेत्तस्मात्सृष्टिमार्गेणवैगुरुः॥आत्मस्थितंतच्चैतन्यंपुनःशिष्येतुयोज येत् ॥ ३५ ॥ पूर्णाहुतिंततोहुत्वादेवतांकलशेनयेत् ॥ पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वावह्निरंगाहुतीस्तथा ॥३६॥ एकैकशोगुरुर्दत्वाविसृजेद्वह्निमात्मनि ॥ ततःशिष्य स्यनेत्रेतुबध्नीयाद्वाससागुरुः ॥३७॥ नेत्रमंत्रेणतंशिष्यंकुंडतोमंडलंनयेत् ॥ पुष्पांजलिंमुख्यदेव्यांकारयेच्छिष्यहस्ततः ॥३८॥नेत्रबंधंनिराकृत्यवेशयेत्कु शविष्टरे॥भूतशुद्धिंशिष्यदेहेकुर्यात्प्रोक्तेनवर्त्मना॥३९॥मंत्रोदितांस्तथान्यासान्कृत्वाशिष्यतनौततः॥मंडलेवेशयेच्छिष्यमन्यस्मिन्कुंभसंस्थितान् १४०॥

और विचारे कि, इसके अध्वा शुद्ध हों तिल आज्यसे आहुती दे "अस्य शिष्यस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण करै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार आठ वार पढै फिर प्रत्येक अध्वाका नाम लेकर छहों अध्वा ब्रह्ममें लीन भावित करै॥ ३४ ॥ फिर सृष्टिमार्गसे उत्पादन करै और आत्मस्थित चैतन्य फिर शिष्यमें योजित करै ॥ ॥ ३५ ॥ फिर पूर्णाहुती कर देवताको कलशमें विसर्जन करै फिर व्याहृति होम आङ्गंग हवन करै॥ ३६ ॥ एक एकको आहुती देकर गुरु अपनेमें सबको विसर्जन करै फिर गुरु वस्त्रसे शिष्यके नेत्र बाँधै॥ ३७॥ बाँधनेके समय वौषट् पढकर कुंडके निकटसे कलशके समीप शिष्यको लेजाय और शिष्यके हाथसेमुख्य देवीके आगे पुष्पांजलि करावै॥ ३८॥ फिर शिष्यके नेत्र खोलकर कुशके विष्टरपर बैठावै पूर्वप्रकारसे शिष्यके देहमें भूतशुद्धि करै ॥ ३९ ॥ फिर शिष्यके शरीरमें मंत्रोदित न्यास करकै फिर दूसरे मंडल

पर शिष्यको बैठावै जहां घट स्थापित हैं ॥ १४० ॥ मातृका पढ २ कर कुंभके पल्लव शिष्यके शिरपर धरै कलशके जलसे स्नान करावै ॥ ४१ ॥ फिर वर्द्धनी जलसे सींचै, फिर शिष्य उठकर दोवस्त्र धारण करै ॥ ४२ ॥ और अपनी देहमें भस्म लगाकर गुरुके निकट जाय तब गुरु अपने हृदयसे निकली शिवा भगवतीको ॥ ४३ ॥ शिष्यके हृदयमें प्रवेश हुई भावना करै और गन्धादिसे पूजे देवता तथा शिष्यकी एकता जानकर ॥ ४४ ॥ अपना दक्षिण हाथ शिष्यके मस्तकपर धर कर उसके दहिने कानमें मंत्र सुनावै इसप्रकार अपना हाथ उसके शिरपर रखता हुआ महादेवीका महामंत्र पढे ॥ ४५ ॥ हे मुने ! शिष्यभी एकसौ आठ मंत्र जपता हुआ उन देवतात्मक गुरुको भूमिमें दंडवत प्रणाम करै ॥ ४६ ॥ और उनको सर्वस्व समर्पण करके जीवनपर्यन्त अनन्यबुद्धि रक्खै ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर ब्राह्म

पल्लवाञ्छिष्यशिरसिविन्यसेन्मातृकांजपेत् ॥ कलशस्थजलैःशिष्यंस्नापयेद्देवतात्मकैः ॥ ४१ ॥ वर्धनीजलसेकंचकुर्याद्रक्षार्थमंजसा ॥ ततःशिष्यःसमु त्थायवाससीपरिधायच ॥४२॥ कृतभस्मावलेपश्चसंविशेद्गुरुसन्निधौ ॥ ततोगुरुःस्वकीयात्तुहृदयान्निर्गतांशिवाम् ॥ ४३ ॥ प्रविष्टांशिष्यहृदयेभावयेत्क रुणानिधिः ॥ पूजयेद्गंधपुष्पाद्यैरैक्यंवैभावयंस्तयोः ॥४४॥ततस्त्रिशोदक्षकर्णेशिष्यस्योपदिशेद्गुरुः ॥ महामंत्रंमहादेव्याःस्वहस्तंशिरसिन्यसन् ॥४५॥ अष्टोत्तरशतंमंत्रंशिष्योपिप्रजपेन्मुने ॥ दंडवत्प्रणमेद्भूमौतंगुरुंदेवतात्मकम् ॥४६॥ सर्वस्वमर्पयेत्तस्मैयावज्जीवमनन्यधीः ॥ ऋत्विग्भ्योदक्षिणांदत्वाब्रा ह्मणांश्चापिभोजयेत् ॥४७॥ सुवासिनीःकुमारीश्चबटुकांश्चैवसर्वशः ॥ दीनानाथान्दरिद्रांश्चवित्तशाठ्यविवर्जितः ॥४८ ॥ कृतार्थतांस्वस्यबुद्ध्वानित्यमा राधयेन्मनुम् ॥ इतितेकथितःसम्यग्दीक्षाविधिरनुत्तमः ॥४९॥ विमृश्यैतदशेषेणभजदेवीपदांबुजम् ॥ नान्यस्तुपरमोधर्मोब्राह्मणस्याऽत्रविद्यते ॥१५०॥ वैदिकःस्वस्वगृह्योक्तक्रमेणोपदिशेन्मनुम् ॥ तांत्रिकस्तंत्ररीत्यातुस्थितिरेषासनातनी ॥५१॥ तत्तदुक्तप्रयोगांस्तेतेतकुर्युर्नचान्यथा ॥ नारायणउवाच ॥ इतिसर्वमयाख्यातंयत्पृष्टंनारदत्वया ॥ ५२ ॥ अतःपरंपरांबायाभजनित्यंपदांबुजम् ॥ नित्यमाराध्यतच्चाहंनिर्वृतिंपरमांगतः ॥ ५३ ॥

णोंको भोजन करावै ॥ ४७ ॥ सुवासिनी कुमारी बटुक भैरव दीन अनाथ दरिद्रियोंको वित्तकी शठता न करके दे ॥४८॥ और अपनेको कृतार्थ मानकर सदा मंत्र जपै यह आपसे उत्तम प्रकारसे दीक्षाविधि कही ॥ ४९ ॥ इसको भलीप्रकार विचार देवीके चरणकमलोंका ध्यान करो ब्राह्मणके निमित्त और कोई परमधर्म नहीं है ॥ १५० ॥ हे नारद ! जो वैदिक अपने गृह्योक्तक्रमसे वेदका उपदेश करै तांत्रिक तंत्ररीतिसे करै यह सनातनी श्रुति है ॥ ५१ ॥ वे अपने २ किये प्रयोगोंको अन्यथा न करै. नारायण बोले हे नारद ! जो तुमने पूँछा सो कहा ॥ ५२ ॥ अब पराम्बाके नित्यचरणोंका भजन करो और परमशान्तिको प्राप्त होकर नित्य आराधना करो ॥ ५३ ॥

व्यास बोले हे राजन्! इसप्रकार नारदसे सब कुछ कथन कर समाधिमें हो नेत्र मीच नारायण देवीका ध्यान करने लगे ॥ ५४ ॥ इसप्रकार भगवान् नारायण मुनिजनोंमें श्रेष्ठ परमप्रसन्न हुए और नारदजी भी परमनारायण गुरुको प्रणामकर देवीदर्शनकी इच्छासे तप करने चले गये ॥ १५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ जन्मेजय बोले हे भगवन्! सब धर्मोंके ज्ञाता सब शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ आपने सब द्विजातियोंको शक्तिकी उपासना कही है ॥ १ ॥ जब कि, तीनों कालमें गायत्रीकीही परमउपासना है फिर इसको त्याग ब्राह्मण और देवता क्यों ग्रहण करते हैं, अपनेही देवताको स्मरण करना चाहिये "यो वैस्वां देवतामतियजते प्रस्वायै देवतायै च्यवतेनपरां प्राप्नोति पापीयान् भवति" इति श्रुतेः [तथाच गोपथब्राह्मणे गायत्र्यु पनिषदि] यह ब्रह्मही प्रतिष्ठाका आयतन है इसको जो धारण करता है उसकी सत्यमें प्रतिष्ठा है उसीसे गायत्री है जो जपनेसे पुण्य कीर्ति आदि देती है सामविधान

व्यासउवाच ॥ इतिराजन्नारदायप्रोक्त्वासर्वमनुत्तमम् ॥ समाधिमीलिताक्षस्तुदध्यौदेवीपदांबुजम् ॥ ५४ ॥ नारायणस्तुभगवान्मुनिवर्यशिखामणिः ॥ नारदोपिततोनत्वागुरुंनारायणंपरम् ॥ जगामसद्यस्तपसेदेवीदर्शनलालसः ॥ १५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेद्वादशस्कंधेसप्तमोऽध्यायः ॥७॥ जनमेजयउवाच॥भगवन्सर्वधर्मज्ञसर्वशास्त्रवतांवर ॥ द्विजातीनांतुसर्वेषांशक्त्युपास्तिःश्रुतीरिता ॥ १ ॥ संध्याकालत्रयेऽन्यस्मिन्कालेनित्यतयाविभो ॥ तांविहायद्विजाःकस्माद्गृह्णीयुश्चान्यदेवताः ॥ २ ॥ दृश्यंतेवैष्णवाःकेचिद्गाणपत्यास्तथापरे ॥ कापालिकाश्चीनमार्गरतावल्कलधारिणः ॥ ३ ॥ दिगंबरास्तथाबौद्धाश्चार्वाकाएवमादयः ॥ दृश्यंतेबहवोलोकेवेदश्रद्धाविवर्जिताः ॥ ४ ॥

ब्राह्मणमें इसप्रकार अंग लिखे हैं "शिर ब्रह्मा, द्यौ ललाट, चन्द्रादित्य नेत्र, मुख अग्नि, जिह्वा, सरस्वती, त्वष्टा, ग्रीवा, वसुरुद्र बाहू, ऊरु वायु, पृष्ठ इन्द्र, विष्णु नाभि, प्रजा पति जघन, उरु मरुत, वेद पाद, स्मित बिजली, उच्छ्वास वायु, अस्थी पर्वत, समुद्र वस्त्र, नक्षत्र अलंकार हैं" जो इसप्रकार जानता है उसका न्यूनाधिक सब पूर्ण होता है. बृह दारण्यकमें कहा है "साहैषा गयांस्तत्रे प्राणावैगयास्तत्प्राणांस्तत्रे तयद्गणायां स्तत्रे तस्माद्गायत्रीनामेति" इसीप्रकार अनेक श्रुति हैं, यदि कहो गायत्रीका सविता देवता है सविताका अर्थ यहां तदन्तर्गत जगत्कर्ता परमात्माही विवक्षित है, संध्यामें सूर्यमें ब्रह्मकीही उपासना है, यह सबकी शक्ति है इसकारण यही ध्येय है इसको छोडकर ॥ २ ॥ कोई वैष्णव कोई गाणपत्य कोई चीनदेशीय मार्गमें रत हैं, कोई वल्कल धारी हैं. कोई बहुतसे वेदशास्त्रसे वर्जित दिगम्बर बौद्ध चार्वाकादि दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥ ४

हे ब्रह्मन्! इसमें क्या कारणहै सो आप कहिये जो बुद्धिमान् पंडित अनेक तर्कोंमें चतुर हैं ॥ ५ ॥ यहभी वेद श्रद्धासे रहित हैं. बुद्धिसे कोई अपना कल्याण छोडनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ६ ॥ हे वेदविदाम्बर! इसमें कारण क्या है सो कहिये और आपने पहले मणिद्वीपकी महिमा कही थी ॥ ७ ॥ वह कैसाहै? जहां देवीका परमस्थान है मुझ भक्त श्रद्धावालेसे आप यह भी कहिये ॥ ८ ॥ प्रसन्न हुए गुरु गुह्य बात भी कहते हैं. भगवान् बादरायण यह जन्मेजयके वचन सुन ॥ ९ ॥ हेमुनीश्वरो क्रमसे सब कहने लगे जिसको सुनकर द्विजातियोंकी वेदमें श्रद्धा होती है ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! आपने समयोचित भली बात पूँछी तुम बुद्धिमान्

किमत्रकारणंब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ बुद्धिमंतःपंडिताश्चनानातर्कविचक्षणाः ॥ ५ ॥ अपिसंत्येववेदेषुश्रद्धयातुविवर्जिताः ॥ नहिकश्चि त्स्वकल्याणंबुद्ध्याहातुमिहेच्छति ॥ ६ ॥ किमत्रकारणंतस्माद्वदवेदविदांवर ॥ मणिद्वीपस्यमहिमावर्णितोभवतापुरा ॥ ७ ॥ कीदृक्तदस्तियद्दे व्याःपरंस्थानंमहत्तरम् ॥ तच्चापिवदभक्तायश्रद्दधानायमेऽनघ ॥८॥ प्रसन्नास्तुवदंत्येवगुरवोगुह्यमप्युत ॥ सूतउवाच ॥ इतिराज्ञोवचःश्रुत्वाभगवान्बा दरायणः ॥ ९ ॥ निजगादततःसर्वंक्रमेणैवमुनीश्वराः ॥ यच्छ्रुत्वातुद्विजातीनांवेदश्रद्धाविवर्धते ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ सम्यक्पृष्टंत्वयाराजन्समयेसम योचितम् ॥ बुद्धिमानासिवेदेषुश्रद्धावांश्चैवलक्ष्यसे ॥ ११ ॥ पूर्वंमदोद्धतादैत्यादेवैर्युद्धंतुचक्रिरे ॥ शतवर्षंमहाराजमहाविस्मयकारकम् ॥१२॥ नानाश स्त्रप्रहरणंनानामायाविचित्रितम् ॥ जगत्क्षयकरंनूनंतेषांयुद्धमभून्नृप ॥ १३ ॥ पराशक्तिकृपावेशाद्देवैर्दैत्याजितायुधि ॥ भुवंस्वर्गंपरित्यज्यगताःपाताल वेश्मनि ॥१४॥ ततःप्रहर्षितादेवाःस्वपराक्रमवर्णनम् ॥ चक्रुःपरस्परंमोहात्साभिमानाःसमंततः ॥१५॥ जयोऽस्माकंकुतोनस्यादस्माकंमहिमायतः ॥ सर्वोत्तरःकुत्रदैत्याःपामरानिष्पराक्रमाः ॥ १६ ॥ सृष्टिस्थितिक्षयकरावयंसर्वेयशस्विनः ॥ अस्मदग्रेपामराणांदैत्यानांचैवकाकथा ॥ १७ ॥

वेदमें श्रद्धावाले हो ॥ ११ ॥ पहले मदोद्धत हुए दैत्य देवताओंसे युद्ध करते हुए हे महाराज! सौ वर्षतक महाविस्मयकारक युद्ध हुआ ॥ १२ ॥ जो अनेक शस्त्रोंके प्रहार और अनेक मायासे विचित्र अर्थात् उनका जगत्क्षयकारी युद्ध हुआ ॥ १३ ॥ उस समय पराशक्तिकी कृपासे देवताओंने दैत्योंको जीता और वह भूलोंकको छोडकर पातालमें चले गये ॥ १४ ॥ तब देवता प्रसन्न होकर अपना अपना पराक्रम वर्णन करने लगे और अभिमानसे बोले ॥ १५ ॥ जब कि, हमने अपने पराक्रमकी महिमा दिखाई तब जय क्यों न होती सबसे बडे भी दैत्य क्यों नहीं तथापि वे दैत्य पामर और निष्पराक्रम हैं ॥ १६ ॥ हम तो सब यशस्वी सृष्टिकी

---

१ तवल्कार उपनिषदमें यह कथा देखो।

स्थिति और लय करनेवाले हैं. हमारे आगे पामर दैत्योंकी क्या कथा है ॥ १७ ॥ वह सब पराशक्तिके प्रभावको न जानकर मोहको प्राप्त होगये उनके ऊपर अनुग्रह करनेको उसी समय जगदम्बा ॥ १८ ॥ कृपाकर यक्षरूपसे प्रगट हुई जो कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान् चन्द्रमा करोड़की समान शीतल ॥ १९ ॥ कोटि विद्युत्‌की समान कान्तिमान् हाथ पैर आदिसे रहित वह अदृष्टपूर्व परम सुन्दर तेज देखकर सब कोई विस्मयपूर्वक बोले यह क्या यह क्या यह कोई दैत्योंकी माया वा चेष्टा वा किसी अन्यकी माया है॥ २० ॥ २१ ॥ यह किसीने देवताओंको विस्मयकारक निर्माण की है तब सब देवता मिलकर विचार करनेलगे ॥ २२ ॥ कि, यक्षके समीप जाकर पूँछना चाहिये कि, तुम कौन हो फिर उसका बलाबल जानकर प्रतिक्रिया करनी चाहिये ॥ २३ ॥ तब अग्निको बुलाकर कहा हे अग्नि ! जाओ तुम

पराशक्तिप्रभावंतेनज्ञात्वामोहमागताः ॥ तेषामनुग्रहंकर्तुंतदैवजगदंबिका ॥ १८ ॥ प्रादुरासीत्कृपापूर्णायक्षरूपेणभूमिप ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशंचंद्रकोटिसुशीतलम् ॥ १९ ॥ विद्युत्कोटिसमानाभंहस्तपादादिवर्जितम् ॥ अदृष्टपूर्वंतद्दृष्ट्वातेजःपरमसुंदरम् ॥ २० ॥ सविस्मयास्तदाप्रोचुःकिमिदंकिमिदंत्विति ॥ दैत्यानांचेष्टितंकिंवामायाकाऽपिमहीयसी ॥ २१ ॥ केनचिन्निर्मितावाऽथदेवानांस्मयकारिणी॥संभूयतेतदासर्वेविचारंचक्रुरुत्तमम् ॥ २२ ॥ यक्षस्यनिकटेगत्वाप्रष्टव्यंकस्त्वमित्यपि ॥ बलाबलंततोज्ञात्वाकर्तव्यातुप्रतिक्रिया ॥ २३ ॥ ततोवह्निंसमाहूयप्रोवाचेंद्रःसुराधिपः॥ गच्छवह्नेत्वमस्माकंयतोसिमुखमुत्तमम् ॥ २४ ॥ ततोगत्वातुजानीहिकिमिदंयक्षमित्यपि ॥ सहस्राक्षवचःश्रुत्वास्वपराक्रमगर्भितम् ॥ २५ ॥ वेगात्सनिर्गतोवह्निर्ययौयक्षस्यसंनिधौ ॥ तदाप्रोवाचयक्षस्तंत्वंकोऽसीतिहुताशनम् ॥ २६ ॥ वीर्यंचत्वयिकिंयत्तद्वदसर्वंममाग्रतः ॥ अग्निरस्मितथाजातवेदाअस्मीतिसोऽब्रवीत् ॥ २७ ॥ सर्वस्यदहनेशक्तिर्मयिविश्वस्यतिष्ठति ॥ तदायक्षःपरंतेजस्तदग्रेनिदधौतृणम् ॥ २८ ॥ दहेनंयदितेशक्तिर्विश्वस्यदहनेऽस्तिहि ॥ तदासर्वबलेनैवाऽकरोद्यत्नंहुताशनः ॥ २९ ॥ नशशाकतृणंदग्धुंलज्जितोऽगात्सुरान्प्रति ॥ पृष्टेदेवैस्तुवृत्तांतेसर्वंप्रोवाचहव्यभुक् ॥ ३० ॥ वृथाऽभिमानोह्यस्माकंसर्वेशत्वादिकेसुराः॥ ततस्तुवृत्रहावायुंसमाहूयेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ त्वयिप्रोतंजगत्सर्वंत्वच्चेष्टाभिस्तुचेष्टितम् ॥ त्वंप्राणरूपःसर्वेषांसर्वशक्तिविधारकः ॥ ३२ ॥

हमारा मुखस्वरूप हो ॥ २४ ॥ जाकर इस यक्षको जानो कि यह कौन है? इन्द्रके वचन सुन अपने पराक्रमसे गर्भित ॥ २५ ॥ अग्नि बड़े वेगसे उठकर यक्षके समीप गया तब यक्षने हुताशनसे कहा तुम कौन हो ॥ २६ ॥ कितना तुममें बल है वह सब मुझसे कहो उसने कहा मैं अग्नि जातवेदा हूं ॥ २७ ॥ मुझमें सब विश्वके दहन करनेकी सामर्थ्य है, तब परमतेजस्वी यक्षने अग्निके आगे तृण रखकर ॥ २८ ॥ कहा यदि विश्वदहनकी तुममें शक्ति है तो इसको जलाओ, तब हुताशनने अपने पूर्ण बलसे यत्न किया पर जला न सका ॥ २९ ॥ तब लज्जित हो देवताओंके समीप गया और देवताओंको पूँछने पर अग्निने सब वृत्तान्त कहा ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! सर्वेश्वर होनेका हमको वृथा अभिमान है तब इन्द्रने वायुको बुलाकर यह कहा ॥ ३१ ॥ यह सब जगत् तुममें प्रात है और

तुम्हारी चेष्टाओंसे चेष्टित है तुम सबके प्राणरूप और सबकी शक्तिधारण करनेवाले हो ॥ ३२ ॥ तुम्ही जाकर देखो यह यक्ष कौन है ? इस यक्षके जाननेमें और कोई समर्थ नहीं है ॥ ३३ ॥ वह गुणगौरवसे गुंफित इन्द्रके वचन सुन अभिमानपूर्वक यक्षके समीप गया ॥ ३४ ॥ यक्ष वायुको देख कोमल वाणीसे बोला तुम कौनहो क्या तुम्हारी शक्ति है सो हमसे कहो ॥ ३५ ॥ यक्षके वचन सुन गर्वसे मरुत् देवताने कहा मैं वायु मातरिश्वा हूं ॥ ३६ ॥ मुझमें सबके चालन और ग्रहणका पराक्रम है मेरी चेष्टासे सब जगत् व्यापारवाला होताहै ॥ ३७ ॥ वायुकी वाणी सुनकर यक्षने कहा यह तुम्हारे आगे तृण रखता हूं इसको परिचालन करो ॥ ३८ ॥ नहीं तो गर्व छोड़ लज्जितहो इन्द्रके स्थानमें जाओ. सर्वशक्तियुक्त वायु यक्षके वचन सुन ॥ ३९ ॥ पूर्ण उद्योग करकै भी उसे अपने स्थानसे चलायमान न करसका तब गर्व

त्वमेवगत्वाजानीहिकिमिदंयक्षमित्यपि ॥ नाऽन्यःकोऽपिसमर्थोऽस्तिज्ञातुंयक्षंपरंमहः ॥ ३३ ॥ सहस्राक्षवचःश्रुत्वागुणगौरवगुंफितम् ॥ साभिमानोजगामाऽऽशुयत्रयक्षंविराजते ॥ ३४ ॥ यक्षंदृष्ट्वाततोवायुंप्रोवाचमृदुभाषया ॥ कोसित्वंत्वयिकाशक्तिर्वदसर्वंममाग्रतः ॥ ३५ ॥ ततोयक्षवचःश्रुत्वागर्वेणमरुदब्रवीत् ॥ मातरिश्वाऽहमस्मीतिवायुरस्मीतिचाब्रवीत् ॥३६॥ वीर्यंतुमयिसर्वस्यचालनेग्रहणेऽस्तिहि ॥ मच्चेष्टयाजगत्सर्वंसर्वंव्यापारवद्भवेत् ॥३७॥ इतिश्रुत्वावायुवाणींनिजगादपरंमहः ॥ तृणमेतत्त्वदाऽग्रेयत्तच्चालययथेप्सितम् ॥ ३८ ॥ नोचेद्गर्वंविहायैनंलज्जितोगच्छवासवम् ॥ श्रुत्वायक्षवचोवायुः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥ ३९ ॥ उद्योगमकरोत्तच्चस्वस्थानान्नचचालह ॥ लज्जितोऽगाद्देवपार्श्वेहित्वागर्वंसचानिलः ॥ ४० ॥ वृत्तांतमवदत्सर्वंगर्वनिर्वापकारणम् ॥ नैतज्ज्ञातुंसमर्थाःस्मभिथ्यागर्वाभिमानिनः ॥ ४१ ॥ अलौकिकंभातियक्षंतेजःपरमदारुणम् ॥ ततःसर्वेसुरगणाःसहस्राक्षंसमूचिरे ॥ ४२ ॥ देवराडसियस्मात्त्वंयक्षंजानीहितत्त्वतः ॥ ततइंद्रोमहागर्वात्तद्यक्षंसमुपाद्रवत् ॥ ४३ ॥ प्राद्रवच्चपरंतेजोयक्षरूपंपरात्परम् ॥ अंतर्धानंततःप्रापतद्यक्षंवासवाग्रतः ॥४४॥ अतीवलज्जितोजातोवासवोदेवराडपि ॥ यक्षसंभाषणाभावाल्लघुत्वंप्रापचेतसि ॥ ४५ ॥ अतःपरंनगंतव्यंमयातुसुरसंसदि ॥ किंमयातत्रवक्तव्यंस्वलघुत्वंसुरान्प्रति ॥ ४६ ॥ देहत्यागोवरस्तस्मान्मानोहिमहतांधनम् ॥ मानेनष्टेजीवितंतुमृतितुल्यंनसंशयः ॥ ४७ ॥

त्याग लज्जितहो इन्द्रके समीप गया ॥ ४० ॥ और अपने गर्व दूरकरनेका सब कारण कहा कि, हम मिथ्यागर्ववाले इसके जाननेको समर्थ नहीं है ॥ ४१ ॥ यक्षका परम अलौकिक तेज विदित होता है तब सबदेवता सहस्राक्षसे बोले ॥ ४२ ॥ आप देवराजहो तत्वसे इसको जानो तब इन्द्र महागर्वसे चले ॥ ४३ ॥ तब वह यक्षरूप परात्परका तेज इन्द्रके आगेसे अन्तर्धान होगया ॥ ४४ ॥ तब इन्द्र अतिशय लज्जितहुआ यक्षका संभाषणतकभी नहुआ इससे मनमें लघुता हुई ॥ ४५ ॥ और कहा अब मैं देवसभामें नजाऊंगा, देवताओंके सन्मुख मैं अपना लघुत्व कैसे कहूंगा ॥ ४६ ॥ इससे देहत्यागना उत्तम है कारण कि, मानही महान् पुरुषोंका धन है मानके

नष्ट होनेपर जीवन मृत्युकी तुल्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ इसप्रकार इन्द्र वहां विचार गर्व त्यागकर जिसके यह चरित्र हैं उसीकी शरण हुआ ॥ ४८ ॥ उसी समय आकाशसे वाणी हुई हे सहस्राक्ष ! तुम मायाबीजका जप करनेसे सुखी होगे ॥ ४९ ॥ तब इन्द्र परात्पर मायाबीजका जप करनेलगे, लाख वर्षतक निराहारहो ध्यानमें नेत्र मूँदे रहा ॥ ५० ॥ फिर अकस्मात् चैत्रशुक्ल नवमी मध्याह्न समय उसी स्थलमें फिर वहतेज प्रगट हुआ ॥ ५१ ॥ एक नव यौवना कुमारी तेजोमण्डलके मध्यमें प्रकाशित जपाकुसुमकी समान कान्तिवाली प्रभातकालीन कोटि सूर्यके समान प्रकाशित ॥ ५२ ॥ भालचन्द्र मुकुटमें धारे वस्त्रान्तरितस्तन लक्षणसे लक्षित चारभुजाओंमें वर पाश अभयरूप अंकुश लिये ॥ ५३ ॥ वह कोमल अंगवाली रमणीयमूर्ति शिवा भक्तोंको कल्पवृक्ष

इतिनिश्चित्यतत्रैवगर्वंहित्वासुरेश्वरः ॥ चरित्रमीदृशंयस्यतमेवशरणंगतः ॥ ४८ ॥ तस्मिन्नेवक्षणेजाताव्योमवाणीनभस्तले ॥ मायाबीजं सहस्राक्षजपतेनसुखीभव ॥ ४९ ॥ ततोजजापपरमंमायाबीजंपरात्परम् ॥ लक्षवर्षंनिराहारोध्यानमीलितलोचनः ॥ ५० ॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यांमध्यगेरवौ ॥ तदेवाऽऽविरभूत्तेजस्तस्मिन्नेवस्थलेपुनः ॥ ५१ ॥ तेजोमंडलमध्येतुकुमारींनवयौवनाम् ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभां बालकोटिरविप्रभाम् ॥ ५२ ॥ बालशीतांशुमुकुटांवस्त्रांतर्व्यंजितस्तनीम् ॥ चतुर्भिर्वरहस्तैस्तुवरपाशांकुशाभयान् ॥ ५३ ॥ दधानांरमणीयांगींकोमलांगलतांशिवाम् ॥ भक्तकल्पद्रुमामंबांनानाभूषणभूषिताम् ॥ ५४ ॥ त्रिनेत्रांमल्लिकामालाकवरीजूटशोभिताम् ॥ चतुर्दिक्षुचतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुताम् ॥५५॥ दंतच्छटाभिरभितःपद्मरागीकृतक्षमाम् ॥ प्रसन्नस्मेरवदनांकोटिकंदर्पसुन्दराम् ॥५६॥ रक्तांबरपरिधानांरक्तचंदनचर्चिताम् ॥ उमाभिधानांपुरतोदेवींहैमवतींशिवाम् ॥५७॥ निर्व्याजकरुणामूर्तिंसर्वकारणकारणाम् ॥ ददर्शवासवस्तत्रप्रेमसद्गदितांतरः ॥५८॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयनोरोमांचिततनुस्ततः ॥ दंडवत्प्रणनामाथपादयोर्जगदीशितुः ॥ ५९ ॥ तुष्टावविविधैःस्तोत्रैर्भक्तिसन्नतकंधरः ॥ उवाचपरमप्रीतःकिमिदंयक्षमित्यपि ॥ ६० ॥

अनेक भूषणोंसे भूषित ॥ ५४ ॥ तीन नेत्रवाली जूडेमें चमेलीकी माला गुंथीहुई चारोंओर मूर्त्तिमान् चारों वेदोंसे स्तुतिको प्राप्त ॥ ५५ ॥ सब ओर दांतोंकी कान्तिसे भूमिको पद्मराग मणिके समान करती हुई प्रसन्न हँसीका मुख, करोंडो कामकी समान सुंदर ॥ ५६ ॥ लाल वस्त्रोंको धारे लालचन्दनसे चर्चित है. भगवती उमानाम्नी देवी सन्मुख स्थित हुई ॥ ५७ ॥ विनाही कारण करुणाकी मूर्त्ति सब कारणोंकी कारण दिखाई दीं देखतेही इन्द्र प्रेमसे गद्गद होगया ॥ ५८ ॥ प्रेमाश्रुसे नेत्र पूर्ण होकर रोमांचित शरीर होगया और श्रीभुवनेश्वरीके चरणोंमें दंडकी समान पतित हुआ ॥ ५९ ॥ और भक्तिसे प्रसन्नमुख होकर अनेक स्तुतिकी और नम्रहो

पूँछा यह यक्ष कौन है॥६०॥और कहांसे प्रादुर्भाव हुआ सो सब कहिये. यह वचन सुन करुणामयी बोली॥६१॥ वह सब कारणका कारण ब्रह्मरूप मेराही है जो माया का अधिष्ठान सर्वसाक्षी निरामय है ॥ ६२ ॥ सब वेद जिसके पदका वर्णन करते सब तप जिसके गुण कहते, जिसकी प्राप्तिके निमित्त ब्रह्मचर्य कियाजाता है संग्रहसे वह पद तुमसे कहती हूं ॥६३॥ जो एकाक्षर ॐ है वही ह्रीं है, हे सुरोत्तम! मुख्य तासे मेरे मंत्रके दोबीज हैं॥६४॥यह दोनोंभागसेही मैं सबजगत् प्रगट करतीहूं उसीका एकभाग सच्चिदानंद नामकहै ॥ ६५ ॥ प्रकृतिसंज्ञक माया दूसरा भाग है वह माया पराशक्ति और वह ईश्वरी शक्ति मैं हूं ॥ ६६ ॥ चन्द्रमासे चाँदनीकी समान यह सब मुझसे अभिन्न है. हे सुरोत्तम! यह मेरी माया साम्यावस्थावाली है ॥६७॥ प्रलयमें सब जगत् मुझसे अभिन्न रहता है फिरभी प्राणियोंके कर्मके परिपाक वशसे ॥

प्रादुर्भूतंचकस्मात्तद्वदसर्वंसुशोभने ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाप्रोवाचकरुणार्णवा॥६१॥ रूपंमदीयंब्रह्मैतत्सर्वकारणकारणम्॥मायाधिष्ठानभूतंतुसर्वसाक्षिनिरामयम्॥६२॥सर्वेवेदायत्पदमामनंतितपांसिसर्वाणिचयद्वदंति॥यदिच्छंतोब्रह्मचर्यंचरंतितत्तेपदंसंग्रहेणब्रवीमि ॥६३॥ ओमित्येकाक्षरंब्रह्मतदेवाहुश्चह्रीं मयम्॥द्वेबीजेममंत्रौस्तोमुख्यत्वेनसुरोत्तम ॥ ६४ ॥ भागद्वयवतीयस्मात्सृजामिसकलंजगत् ॥ तत्रैकभागःसंप्रोक्तःसच्चिदानंदनामकः ॥ ६५ ॥ मायाप्रकृतिसंज्ञस्तुद्वितीयोभागईरितः ॥ साचमायापराशक्तिःशक्तिमत्यहमीश्वरी ॥६६॥ चंद्रस्यचंद्रिकेवेयंममाभिन्नत्वमागता ॥ साम्यावस्थात्मिका चैषामायाममसुरोत्तम ॥ ६७ ॥ प्रलयेसर्वजगतोमदभिन्नैववतिष्ठति ॥ प्राणिकर्मपरीपाकवशतःपुनरेवहि ॥ ६८ ॥ रूपंतदेवमव्यक्तंव्यक्तीभावमुपैतिच ॥ अंतर्मुखातुयाऽवस्थासामायेत्यभिधीयते ॥ ६९ ॥ बहिर्मुखातुयामायातमःशब्देनसोच्यते ॥ बहिर्मुखात्तमोरूपाज्जायतेसत्त्वसंभवः ॥ ७० ॥ रजोगुणस्तदेवस्यात्सर्गादौसुरसत्तम ॥ गुणत्रयात्मकाःप्रोक्ताब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ७१ ॥ रजोगुणाधिकोब्रह्माविष्णुःसत्त्वाधिकोभवेत् ॥ तमोगुणाधिको रुद्रःसर्वकारणरूपधृक् ॥ ७२ ॥ स्थूलदेहोभवेद्ब्रह्मालिंगदेहोहरिःस्मृतः ॥ रुद्रस्तुकारणोदेहस्तुरीयात्वहमेवहि ॥ ७३ ॥ साम्यावस्थातुयाप्रोक्तासर्वान्तर्यामिरूपिणी ॥ अतऊर्ध्वंपरंब्रह्ममद्रूपंरूपवर्जितम् ॥ ७४ ॥

॥ ६८ ॥ वह अव्यक्तरूप प्रगट होते हैं और जो अन्तर्मुखा अवस्था है उसेही माया कहते हैं ॥ ६९ ॥ और बहिर्मुख माया तम शब्दसे व्यवहार की जाती है बहिर्मुख तमोरूपसे सत्वगुणका संभव है ॥ ७० ॥ हे राजन्! उससे रजोगुण होता है, उससें ब्रह्मा विष्णु महेश्वरी त्रिगुणात्मक देवता होते हैं ॥ ७१ ॥ रजोगुण अधिक होनेसे ब्रह्मा, सत्वगुणकी अधिकतासे विष्णु तमोगुणकी अधिकताही सर्व कारणरूप रुद्र है ॥ ७२ ॥ स्थूल देहका अर्थ ब्रह्मा, लिंग देह हरि, कारणदेह रुद्र, और तुरीयारूप मैं हू ॥ ७३ ॥ जो तीनों गुणोंकी साम्यावस्था अन्तर्मुख है वही माया तुरीयारूप उपाधिवाली है वही अन्तर्यामीरूपिणी है इससे आगे

परब्रह्म मेरा रूप रूपवर्जित है ॥ ७४ ॥ निर्गुण सगुण यह मेरे दो रूप हैं मायाहीन निर्गुण और मायायुक्त सगुण है ॥ ७५ ॥ सो मैं सब जगत् सृजन कर उसके अन्तरमें प्रवेश कर कर्मानुसार निरन्तर जीवकी प्रेरणा करती हूं ॥ ७६ ॥ सृष्टि स्थिति और तिरोधानमें मैंही प्रेरणा करतीहूं. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन कारणात्माओंको मैंही प्रगट करती हूं ॥ ७७ ॥ मेरे भयसे वायु चलता सूर्य उदय होता. इसी प्रकार इन्द्र, अग्नि, अपना २ कार्य करते हैं. मैं सर्वोत्तमा हूं ॥ ७८ ॥ मेरीही कृपासे तुम सर्वथा जय पातेहो काष्ठकी पुतली समान मैं तुम सबको नचातीहूं ॥ ७९ ॥ कभी देवता और कभी दैत्योंकी विजय होती, सर्व स्वतंत्र और स्वेच्छासे कर्मानुसारही अपना कर्म करते हैं ॥ ८० ॥ सो मुझ सर्वात्मिकाको तुम अपने गर्वसे भूलकर अहंकारयुक्त हो दुरंत मोहसे व्याप्त हुए ॥ ८१ ॥ अनु

निर्गुणंसगुणंचेतिद्विधामद्रूपमुच्यते ॥ निर्गुणंमाययाहीनंसगुणंमाययायुतम् ॥ ७५ ॥ साऽहंसर्वंजगत्सृष्ट्वातदंतःसंप्रविश्यच ॥ प्रेरयाम्यनिशंजीवंयथाकर्मयथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥ सृष्टिस्थितितिरोधानेप्रेरयाम्यहमेवहि ॥ ब्रह्माणंचतथाविष्णुंरुद्रंवैकारणात्मकम् ॥ ७७ ॥ मद्भयाद्वातिपवनोभीत्यासूर्यश्चगच्छति ॥ इंद्राग्निमृत्यवस्तद्वत्साऽहंसर्वोत्तमास्मृता ॥ ७८ ॥ मत्प्रसादाद्भवद्भिस्तुजयोलब्धोऽस्तिसर्वथा ॥ युष्मानहंनर्तयामिकाष्ठपुत्तलिकोपमान् ॥ ७९ ॥ कदाचिद्देवविजयंदैत्यानांविजयंक्वचित् ॥ स्वतंत्रास्वेच्छयासर्वंकुर्वंकर्मानुरोधतः ॥ ८० ॥ तांमांसर्वात्मिकांयूयंविस्मृत्यनिजगर्वतः ॥ अहंकारावृतात्मानोमोहमाताद्दुरंतकम् ॥ ८१ ॥ अनुग्रहंततःकर्तुंयुष्मद्देहादनुत्तमम् ॥ निःसृतंसहसातेजोमदीयंयक्षमित्यपि ॥ ८२ ॥ अतःपरंसर्वभावैर्हित्वागर्वंतुदेहजम् ॥ मामेवशरणंयातसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ८३ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्युक्त्वाचमहादेवीमूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ अंतर्धानंगतासद्योभक्त्यादेवैरभिष्टुता ॥ ८४ ॥ ततःसर्वेस्वगर्वंतुविहायपदपंकजम् ॥ सम्यगाराधयामासुर्भगवत्याःपरात्परम् ॥ ८५ ॥ त्रिसंध्यंसर्वदासर्वेगायत्रीजपतत्पराः ॥ यज्ञभागादिभिःसर्वेदेवींनित्यंसिषेविरे ॥ ८६ ॥ एवंसत्ययुगेसर्वेगायत्रीजपतत्पराः ॥ तारहृल्लेखयोश्चापिजपेनिष्णातमानसाः ॥ ८७ ॥ नविष्णूपासनानित्यावेदेनोक्तातुकुत्राचित् ॥ नविष्णुदीक्षानित्याऽस्तिशिवस्यापितथैवच ॥ ८८ ॥ गायत्र्युपासनानित्यासर्ववेदैःसमीरिता ॥ ययाविनात्वधःपातोब्राह्मणस्यास्तिसर्वथा ॥ ८९ ॥

ग्रह करनेके निमित्त तुम्हारे सबके देहसे मेरा यक्षरूप तेज निर्गत होगयाथा ॥ ८२ ॥ अब सब भावसे अपने देहका गर्वत्यागकर सच्चिदानंदरूपिणी मेरी शरण हो ॥ ८३ ॥ व्यासजी बोले महाप्रकृति ईश्वरी मूलरूप भगवती यह कह भक्तिपूर्वक देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो अन्तर्धान हुई ॥ ८४ ॥ तब सब देवता गर्वत्याग भगवतीके परात्पर चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ॥ ८५ ॥ तीनों कालमें सब गायत्रीजपमें तत्पर हुए और यज्ञभागादिसे सब नित्यदेवीकी सेवा करने लगे ॥ ८६ ॥ इसप्रकार सतयुगमें सब गायत्रीजपमें तत्पर थे प्रणव और हृल्लेखा मंत्रोंके जपमेंही मन लगाये थे ॥ ८७ ॥ वेदमें जैसे "अहरहस्संध्यामुपासीत" यह संध्या करनेमें गायत्रीजपके नित्य विधिवाक्य हैं ऐसे विष्णु उपासना विष्णुदीक्षा, वा शिव उपासनाके नित्य विधिवाक्य नहीं देखे जाते ॥ ८८ ॥ सर्व वेद सिद्धान्त गायत्री

उपासनाही नित्य है, जिसके विना सर्वथा ब्राह्मणका अधःपतन होजाता है ॥ ८९ ॥ ब्राह्मण गायत्रीसेही कृतकृत्य है इसको और अपेक्षा नहीं है गायत्रीमें निष्णात होकरभी ब्राह्मण मुक्तिका अधिकारी होता है ॥ ९० ॥ चाहे वह और कार्यकरै वा नकरै यह स्वयं मनुने कहा है [कुर्यादन्यन्नवाकुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते मनु०] जो ब्राह्मण अपनी परम इष्टगायत्रीको तो किंचित् जप नहीं करता केवल विष्णुकी उपासना ॥ ९१ ॥ वा शिवोपासनामेंही रत है वह मोक्ष को नहीं प्राप्त होता आवागमनरूप दुःखमेंही जाता है. हे राजन् ! इससे आदियुगमें सब गायत्री जपमें तत्पर थे और इसीसे सब देवता गायत्री देवीके चरण कमलमें प्रीति करते थे ॥ ९२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

तावताकृतकृत्यत्वंनान्यापेक्षाद्विजस्यहि ॥ गायत्रीमात्रनिष्णातोद्विजोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ ९० ॥ कुर्यादन्यन्नवाकुर्यादितिप्राहमनुःस्वयम् ॥ विहायतांतु गायत्रींविष्णूपास्तिपरायणः ॥ ९१ ॥ शिवोपास्तिरतोविप्रोनरकंयातिसर्वथा ॥ तस्मादाद्ययुगेराजन्गायत्रीजपतत्पराः ॥ देवीपदांबुजरताआसन्सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ ९२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ कदाचिदथकालेतुदशपंचसमाविभो ॥ प्राणिनांकर्मवशतोनववर्षशतक्रतुः ॥ १ ॥ अनावृष्ट्याऽतिदुर्भिक्षमभवत्क्षयकारकम् ॥ गृहेगृहेशवानांतुसंख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ २ ॥ केचिदश्वान्वराहान्वाभक्षयंतिक्षुधार्दिताः ॥ शवानिचमनुष्याणांभक्षयंत्यपरेजनाः ॥ ३ ॥ बालकंबालजननीस्त्रियंपुरुषएवच ॥ भक्षितुंचलिताःसर्वेक्षुधयापीडितानराः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाबहवस्तत्रविचारंचक्रुरुत्तमम् ॥ तपोधनोगौतमोऽस्तिसनःखेदंहरिष्यति ॥ ५ ॥ सर्वैर्मिलित्वागंतव्यंगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ गायत्रीजपसंसक्तगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ ६ ॥ सुभिक्षंश्रूयतेतत्रप्राणिनोबहवोगताः ॥ एवंविमृश्यभूदेवाःसाग्निहोत्राःकुटुंबिनः ॥ ७ ॥ सगोधनाःसदासाश्चगौतमस्याऽऽश्रमं ययुः ॥ पूर्वदेशाद्ययुःकेचित्केचिद्दक्षिणदेशतः ॥ ८ ॥ पाश्चात्त्याऔत्तराहाश्चनानादिग्भ्यःसमाययुः ॥ दृष्ट्वासमाजंविप्राणांप्रणनामसगौतमः ॥ ९ ॥

व्यासजी बोले हे विभो ! एक समय प्राणियोंके कर्मवशसे पन्द्रह वर्षतक मेघ नहीं वर्षा था ॥ १ ॥ अनावृष्टिके कारण क्षयकारक घोर दुर्भिक्ष हुआ घर घरमें शवोंकी संख्या न रही ॥ २ ॥ कोई क्षुधासे व्याकुल हो अश्व वराह तथा कोई निकृष्ट मृतक मनुष्योंके शरीर भक्षण करने लगे ॥ ३ ॥ बालकको माता, स्त्रीको पुरुष यह सबही क्षुधासे व्याकुल हो खानेकी इच्छा करने लगे ॥ ४ ॥ उस समय बहुतसे ब्राह्मण यह विचार करने लगे कि, तपस्वी गौतमजी हमारे खेदको दूर करैंगे ॥ ५ ॥ सब मिलकर हम गौतमके आश्रममें चलैं वह गौतम गायत्रीजपमें लगे हुए हैं ॥ ६ ॥ वहां सुभिक्ष सुना जाता है और बहुतसे प्राणी वहां गयेभी हैं, ऐसा विचार कर भूदेव अग्निहोत्री कुटुम्बी ॥ ७ ॥ गौ और दासोंको साथले गौतमके आश्रममें गये कोई पूर्व कोई दक्षिण देशसे आये ॥ ८ ॥ कोई पश्चिम कोई उत्तर

इसप्रकार अनेक दिशाओंसे आये ब्राह्मणोंके समाजको आया देख गौतमने प्रणाम किया ॥ ९ ॥ आसनादि उपचारोंसे सबको पूजन किया और कुशलप्रश्न तथा आगमन कारण पूँछा ॥ १० ॥ उन सबनेभी अपना २ वृत्तान्त कहा उन ब्राह्मणोंको दुःखी देख मुनिने अभय दिया ॥ ११ ॥ कि, यह आपहीका स्थान है मैं तुम्हारा सर्वथा दासहूं हे ब्राह्मणो ! मुझसेवकके होते आपको क्या चिन्ता है ॥ १२ ॥ मैं इस समय धन्यहूं जो तुम सब तपोधनोंका दर्शन पाय जिनके दर्शनसे दुष्कृतभी सुकृत होजाते हैं ॥ १३ ॥ वे सब चरणरजसे मेरे घरको पवित्र करैंगे जब तुम्हारा अनुग्रह हुआ तो मुझसे अधिक और कौन धन्य है ॥ १४ ॥ आप सबको संध्याजपमें परायण हो सुखपूर्वक निवास करना चाहिये व्यासजी बोले मुनिराज गौतम इसप्रकार सबको सावधान करके ॥ १५ ॥ भक्तिसे नम्रकंधर हो गायत्रीकी प्रार्थना करने लगे. हे देवि !

आसनाद्युपचारैश्चपूजयामासवाडवान् ॥ चकारकुशलप्रश्नंततश्चागमकारणम् ॥ १० ॥ तेसर्वेस्वस्ववृत्तांतंकथयामासुरुत्स्मयाः ॥ दृष्ट्वातान्दुःखितान्विप्रानभयंदत्तवान्मुनिः ॥ ११ ॥ युष्माकमेतत्सदनंभवद्दासोऽस्मिसर्वथा ॥ कार्चिताभवतांविप्रामयिदासेविराजति ॥ १२ ॥ धन्योऽहमस्मिन्समयेयूयंसर्वेतपोधनाः ॥ येषांदर्शनमात्रेणदुष्कृतंसुकृतायते ॥ १३ ॥ तेसर्वेपादरजसापावयंतिगृहंमम ॥ कोमदन्योभवेद्धन्योभवतांसमनुग्रहात् ॥ १४ ॥ स्थेयंसर्वैःसुखेनैवसंध्याजपपरायणैः ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसर्वान्समाश्वास्यगौतमोमुनिराट्ततः ॥ १५ ॥ गायत्रींप्रार्थयामासभक्तिसन्नतकंधरः ॥ नमोदेविमहाविद्येवेदमातःपरात्परे ॥ १६ ॥ व्याहृत्यादिमहामंत्ररूपेप्रणवरूपिणि ॥ साम्यावस्थात्मिकेमातर्नमोह्रींकाररूपिणि ॥ १७ ॥ स्वाहास्वधास्वरूपेत्वांनमामिसकलार्थदाम् ॥ भक्तकल्पलतांदेवीमवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ १८ ॥ तुर्यातीतस्वरूपांचसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ सर्ववेदांतसंवेद्यांसूर्यमंडलवासिनीम् ॥ १९ ॥ प्रातर्बालांरक्तवर्णांमध्याह्नेयुवतींपराम ॥ सायाह्नेकृष्णवर्णांतांवृद्धांनित्यंनमाम्यहम् ॥ २० ॥ सर्वभूतारणेदेविक्षमस्वपरमेश्वरि ॥ इतिस्तुताजगन्माताप्रत्यक्षंदर्शनंददौ ॥ २१ ॥

महाविद्ये, वेद माता परात्परे तुमको प्रणाम है ॥ १६ ॥ व्याहृति आदि महामंत्रके रूपवाली प्रणवरूपिणी साम्यावस्थामें स्थित, माता, ह्रींकाररूपिणीको प्रणाम है ॥ १७ ॥ स्वाहा स्वधास्वरूप सब अर्थकी देनेवाली तुमको प्रणाम है. हे देवी ! तुम भक्तोंको कल्पवृक्ष और तीनों अवस्थाकी साक्षी हो ॥ १८ ॥ तुरीयातीतस्वरूप सच्चिदानंद रूपिणी सब वेदान्तसे जानने योग्य सूर्यमंडलमें निवास करनेवाली ॥ १९ ॥ प्रभातमें रक्तवर्ण बालस्वरूप मध्याह्नमें युवती संध्यामें कृष्णवर्ण वृद्धारूपको नित्य प्रणाम करता हूं ॥ २० ॥ सब प्राणियोंकी तारनेवाली परमेश्वरी देवी मेरे अपराध क्षमाकरना इसप्रकार स्तुतिको प्राप्त हो जगन्माताने प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ २१ ॥

और गौतमजीको एक पूर्णपात्र दिया जिसमें सब संतुष्ट होजाँय और मुनिसे देवीने कहा तुम जिस २ वस्तुकी इच्छा करोगे ॥ २२ ॥ उस उसकी पूर्ति इस मेरे पात्रद्वारा होगी ऐसा कह परमकला गायत्री देवी अन्तर्धान हुई ॥ २३ ॥ उस पात्रसे पर्वतके समान अन्नोंके ढेर निर्गत होने लगे. हे राजन् ! अनेक प्रकारके षड्रस और विविध तृण प्रगट हुए ॥ २४ ॥ दिव्य भूषण, क्षौम वस्त्र, यज्ञोंके समारंभ अनेक पात्र प्रगटे ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जो कुछ भी उन मुनिराजको इष्ट होता, वह सबही उस गायत्रीके पूर्णपात्रसे निर्गत होता ॥ २६ ॥ तब मुनिराज गौतम सब मुनियोंको बुलाकर धनधान्य भूषणादि प्रसन्नतासे देते हुए ॥ २७ ॥ बहुत क्या उस पूर्णपात्रसे गोमहिषी आदि पशुभी निर्गत हुए यज्ञके संभार स्रुक् स्रुव प्रभृति निर्गत हुए ॥ २८ ॥ तब वे सब मिलकर मुनिके कथनानुसार यज्ञ करने लगे. वह

पूर्णपात्रंददौतस्मैयेनस्यात्सर्वपोषणम् ॥ उवाचमुनिमंबासायंयंकामंत्वमिच्छसि ॥ २२ ॥ तस्यपूर्तिकरंपात्रंमयादत्तंभविष्यति ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधेदेवीगायत्रीपरमाकला ॥ २३ ॥ अन्नानांराशयस्तस्मान्निर्गताःपर्वतोपमाः ॥ षड्रसाविविधाराजंस्तृणानिविविधानिच ॥ २४ ॥ भूषणानिचदिव्यानिक्षौमाणिवसनानिच ॥ यज्ञानांचसमारंभाःपात्राणिविविधानिच ॥ २५ ॥ यद्यदिष्टमभूद्राजन्मुनेस्तस्यमहात्मनः ॥ तत्तद्वैनिर्गतंतस्माद्गायत्रीपूर्णपात्रतः ॥ २६ ॥ अथाऽहूयमुनीन्सर्वान्मुनिराड्गौतमस्तदा ॥ धनंधान्यंभूषणानिवसनानिददौमुदा ॥ २७ ॥ गोमहिष्यादिपशवोनिर्गताःपूर्णपात्रतः ॥ निर्गतान्यज्ञसंभारान्स्रुक्स्रुवप्रभृतीन्ददौ ॥ २८ ॥ तेसर्वेमिलितायज्ञांश्चक्रिरेमुनिवाक्यतः ॥ स्थानंतदेवभूयिष्ठमभवत्स्वर्गसन्निभम् ॥ २९ ॥ यत्किंचित्त्रिपुलोकेषुसुंदरंवस्तुदृश्यते ॥ तत्सर्वंतत्रनिष्पन्नंगायत्रीदत्तपात्रतः ॥३०॥ देवांगनासमादाराःशोभंतेभूषणादिभिः ॥ मुनयोदेवसदृशावस्त्रचंदनभूषणैः ॥३१॥ नित्योत्सवःप्रववृतेमुनेराश्रममंडले ॥ नरोगादिभयंकिंचिन्नचदैत्यभयंक्वचित् ॥३२॥ समुनेराश्रमोजातःसमंताच्छतयोजनः ॥ अन्येचप्राणिनोयेऽपितेऽपितत्रसमागताः ॥ ३३ ॥ तांश्चसर्वान्पुपोषाऽयंदत्त्वाऽभयमथात्मवान् ॥ नानाविधैर्महायज्ञैर्विधिवत्कल्पितैःसुराः ॥३४॥

स्थान देवयज्ञके कारण स्वर्गकी समान होगया ॥ २९ ॥ त्रिलोकीमें जो कुछ सुन्दर वस्तु दीखती हैं उस गायत्रीके दिये पात्रसे वह सबही निष्पन्न हुई ॥ ३० ॥ स्त्रीजन भूषण धारण कर देवताओंकी स्त्रियोंकी समान शोभित हुई. मुनिजन वस्त्र चंदन भूषण धारण करनेसे देवताओंके समान शोभित हुये ॥ ३१ ॥ इसप्रकार मुनिजनोंके आश्रममण्डलमें नित्य उत्सव प्रवृत्त हुआ रोग दैत्यादि किसीका कुछ भय न रहा ॥ ३२ ॥ वह मुनिका आश्रम सौ योजनतक घिरगया दूसरे प्राणी भी सब उस स्थानमें आगये ॥ ३३ ॥ यह विचारवान् उन सबको अभय देकर पालन करने लगे अनेक प्रकारके महायज्ञोंकी कल्पनासे देवता ॥ ३४ ॥

परमसंतोषको प्राप्त हो मुनिका यश कथन करने लगे उस समय अपनी सभामें स्वयं इन्द्रने यह श्लोक कहा था ॥ ३५ ॥ अहो इस समय यह गौतम हमको कल्पवृक्ष स्वरूप होरहा है प्रतिष्ठित हो हमारे मनोरथ पूर्ण करता है नहीं तो इस दुर्लभ समयमें हविषा कहां प्राप्त होसकती है ? जब कि, जीवनकी आशा भी दुर्लभ होरही है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार गौतमजीने बारह वर्ष गर्वरहित हो पुत्रके समान सबका पालन किया ॥ ३७ ॥ वहां मुनिश्रेष्ठने गायत्रीका परम स्थान बनाया जहां सब मुनिश्रेष्ठ जगदम्बाका पूजन करतेथे ॥ ३८ ॥ तीनों काल परमभक्तिसे पुरश्चरणादि करते थे अब भी वहां देवी प्रभातकालमें बाल स्वरूप ॥ ३९ ॥ मध्याह्नमें युवती और सायंकालमें वृद्धास्वरूप दिखाई देती है एक समय वहां नारदजीका आगमन हुआ॥ ४० ॥जो अपनी महती नामक वीणाको

संतोषंपरमंप्रापुर्मुनेश्चैवजगुर्यशः ॥ सभायांवृत्रहाभूयोजगौश्लोकंमहायशाः ॥ ३५ ॥ अहोअयंनःकिलकल्पपादपोमनोरथान्पूरयतिप्रतिष्ठितः ॥ नोचेद कांडक्कहविर्विपावासुदुर्लभायत्रतुजीवनाशा ॥ ३६ ॥ इत्थंद्वादशवर्षाणिपुपोषमुनिपुंगवान् ॥ पुत्रवन्मुनिराड्गर्वगंधनपरिवर्जितः ॥ ३७ ॥ गायत्र्याःपर मंस्थानंचकारमुनिसत्तमः ॥ यत्रसर्वैर्मुनिवरैःपूज्यतेजगदंबिका ॥ ३८ ॥ त्रिकालंपरयाभक्त्यापुरश्चरणकर्मभिः ॥ अद्यापितत्रदेवीसाप्रातर्बालातुदृश्य ते ॥ ३९ ॥ मध्याह्नेयुवतीवृद्धासायंकालेतुदृश्यते ॥ तत्रैकदासमायातोनारदोमुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ रणयन्महतींगायन्गायत्र्याःपरमान्गुणान् ॥ निष सादसभामध्येमुनीनांभावितात्मनाम् ॥४१॥ गौतमादिभिरत्युच्चैःपूजितःशांतमानसः ॥ कथाश्चकारविविधायशसोगौतमस्यच ॥ ४२ ॥ ब्रह्मर्षेदेवसद सिदेवराट्तवयद्यशः ॥ जगौबहुविधंस्वच्छंमुनिपोषणजंपरम् ॥४३॥ श्रुत्वाशचीपतेर्वाणींत्वांद्रष्टुमहमागतः ॥ धन्योऽसित्वंमुनिश्रेष्ठजगदंबाप्रसादतः ॥ ॥४४॥ इत्युक्त्वामुनिवर्यंतंगायत्रीसदनंययौ ॥ ददर्शजगदंबांतांप्रेमोत्फुल्लविलोचनः ॥ ४५ ॥ तुष्टावविधिवद्देवींजगामत्रिदिवंपुनः ॥ अथतत्रस्थितायेतेब्राह्मणामुनिपोषिताः ॥ ४६ ॥

बजाते उसमें गायत्रीके परम गुण गाते थे उस समय वह उन ज्ञानी मुनियोंकी सभामें स्थित हुए॥ ४१ ॥ और गौतमादिने भी उच्च पूजा की. शान्त मन नारदजीने अनेक प्रकार गौतमका यश कहा ॥ ४२ ॥ हे ब्रह्मर्षि ! राजा इन्द्रने भी अपनी सभामें यह तुम्हारा ऋषिपोषणरूप निर्मल यश बहुत प्रकारसे वर्णन किया है ॥ ४३ ॥ इन्द्रकी वह वाणी सुन मैं तुमको देखनेको आया हूं. हे मुनि ! तुम गायत्रीके प्रसादसे धन्य हो ॥ ४४ ॥ मुनिश्रेष्ठसे यह वचन कह नारदजी गायत्रीके स्थानमें गये और प्रेमसे उत्फुल्ल लोचन हो जगदम्बाका दर्श किया ॥ ४५ ॥ और विधिपूर्वक देवीकी स्तुति कर स्वर्गको गये उस स्थानमें जो ब्राह्मण मुनिसे पोषण हुए स्थित थे ॥ ४६ ॥

वह मुनिका उत्कर्ष सुनकर असूयासे बडे खेदको प्राप्त हुए और विचारा कि, अब वह करना चाहिये जिससे इनका यश न हो ॥ ४७ ॥ समयपर कार्यसाधन करैंगे यह सबने निश्चय किया फिर कुछ समयमें भूमिपर वर्षा हुई ॥४८ ॥ हे राजन् ! सब देशोंमें सुभिक्ष हुआ सुभिक्षकी बात सुन सब ब्रह्मचारी मिलकर ॥ ४९ ॥ गौतमके शाप देनेका उद्योग करने लगे. हे राजन् ! यह बडे खेदकी बात है उनके माता पिताको धन्य है जिनकी ऐसी उत्पत्ति ऐसी है ॥५०॥ हे राजन् ! कालकी महिमा कौन कह सकता है उन मुनियोंने एक बडी वृद्धा मरणको प्राप्त गौ मायासे निर्माणकी ॥५१॥ वह मुनिके होम समय शालामें गई ज्योंही हुं हुं शब्दसे ऋषिने उसको निवारण किया कि उसी समय उसने प्राण त्याग दिया ॥ ५२ ॥ तब ब्राह्मण कोसने लगे अहो इस दुष्टने गौ मारडाली तब मुनिराज होम समाप्त करके

उत्कर्षंतुमुनेःश्रुत्वाऽसूययाखेदमागताः ॥ यथाऽस्यनयशोभूयात्कर्तव्यंसर्वथैवहि ॥ ४७ ॥ कालेसमागतेपश्चादितिसर्वैस्तुनिश्चितम् ॥ ततः कालेनकियताप्यभूद्वृष्टिर्धरातले ॥ ४८ ॥ सुभिक्षमभवत्सर्वदेशेषुनृपसत्तम ॥ श्रुत्वावार्तांसुभिक्षस्यमिलिताःसर्वबाडवाः ॥ ४९ ॥ गौतमं शप्तुमुद्योगंहाहाराजन्प्रचाक्रिरे ॥ धन्यौतेषांचपितरौययोरुत्पत्तिरीदृशी ॥ ५० ॥ कालस्यमहिमाराजन्वक्तुंकेनहिशक्यते ॥ गौर्निर्मितामाययैकामुमूर्षुर्जरतीनृप ॥ ५१ ॥ जगामसाचशालायांहोमकालेमुनेस्तदा ॥ हुंहुंशब्दैर्वारितासाप्राणांस्तत्याजतत्क्षणे ॥५२॥ गौर्हताऽनेनदुष्टेनेत्येवंतेचुक्रुशुर्द्विजाः॥ होमंसमाप्यसुनिराड्विस्मयंपरमंगतः ॥५३॥ समाधिमीलिताक्षःसंश्चितयामासकारणम् ॥ कृतंसर्वंद्विजैरेतदितिज्ञात्वातदैवसः ॥५४॥ दधारकोपंपरमंप्रलयेरुद्रकोपवत् ॥ शशापचऋषीन्सर्वान्कोपसंरक्तलोचनः ॥५५॥ वेदमातरिगायत्र्यांतद्ध्यानेतन्मनोर्जपे॥भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वथाब्राह्मणाधमाः॥५६॥ वेदेवेदोक्तयज्ञेषुतद्वार्तासुतथैवच ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥५७॥ शिवेशिवस्यमंत्रेचशिवशास्त्रेतथैवच ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ५८ ॥ मूलप्रकृत्यःश्रीदेव्यांतद्ध्यानेतत्कथासुच ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ५९ ॥ देवीमंत्रेतथादेव्याःस्थानेऽनुष्ठानकर्मणि ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६० ॥ देव्युत्सवदिदृक्षायांदेवीनामानुकीर्तने ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६१ ॥

परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥५३ ॥ और समाधिमें हो नेत्रमूँद इसका कारण देखने लगे, तब यह सब इन ब्राह्मणोंका कर्तव्य है यह सब जाना ॥ ५४ ॥ तथापि प्रलयमें रुद्रकोपकी समान अपने कोपको धारण कर लाल नेत्रकर सब ऋषियोंको शाप दिया ॥ ५५ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो वेदमाता गायत्री सर्वस्वरूप है तुम उसके ध्यान और जपसे उन्मुख होंगे गायत्री त्यागी होनेसेही ब्राह्मणोंमें अधम होंगे ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! वेद यज्ञ और उसकी वार्तासे तुम सदाही विमुख होंगे ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! शिव शिवमंत्र और शिव शास्त्रसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ५८ ॥ मूलप्रकृति श्रीदेवी उसका ध्यान और कथा इससे विमुख होकर तुम ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ५९ ॥ देवीके मंत्र स्थान और अनुष्ठानसे विमुख होकर ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ६० ॥ हे अधमो ! देवीके उत्सव देखने

देवीके नामकीर्तनसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणाधमो! देवीभक्तकी निकटता उसका अर्चन इसमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६२ ॥ शिवका उत्सव देखनेकी इच्छा, शिवभक्तका पूजन इनसे तुम सदा विमुख होकर ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ६३ ॥ हे निकृष्टो! रुद्राक्ष बिल्वपत्र भस्म इससे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६४ ॥ हे श्रुति स्मृतिके सदाचार ज्ञानमार्ग इससे तुम सदा विमुख ब्राह्मणाधम होंगे॥ ६५॥ अद्वैतज्ञानकी निष्ठा शांति दांतिकी निष्ठाके साधनमें तुम सदा विमुख अधम होंगे ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो! नित्यकर्मके अनुष्ठान, अग्निहोत्रके साधनमें तुम विमुख होंगे ॥ ६७॥ हे ब्राह्मणाधमो! वेदपाठ स्वाध्याय प्रवचनमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६८॥

देवीभक्तस्यसान्निध्येदेवीभक्तार्चनेतथा॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः॥६२॥ शिवोत्सवदिदृक्षायांशिवभक्तस्यपूजने॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६३ ॥ रुद्राक्षेबिल्वपत्रेचतथाशुद्धेचभस्मनि ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६४ ॥ श्रौतस्मार्तसदाचारेज्ञानमार्गेतथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६५ ॥ अद्वैतज्ञाननिष्ठायांशांतिदांत्यादिसाधने ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६६ ॥ नित्यकर्माद्यनुष्ठानेप्यग्निहोत्रादिसाधने ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६७ ॥ स्वाध्यायाध्ययनेचैवतथाप्रवचनेऽपिच ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६८ ॥ गोदानादिषुदानेषुपितृश्राद्धेषुचैवहि ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ६९ ॥ कृच्छ्रचांद्रायणेचैवप्रायश्चित्तेतथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखायूयंसर्वदाब्राह्मणाधमाः ॥ ७० ॥ श्रीदेवीभिन्नदेवेषुश्रद्धाभक्तिसमन्विताः ॥ शंखचक्राद्यंकिताश्चभवतब्राह्मणाधमाः ॥ ७१ ॥ कापालिकमतासक्ताबौद्धशास्त्ररताःसदा ॥ पाखंडाचारनिरताभवतब्राह्मणाधमाः ॥ ७२ ॥ पितृमातृसुतभ्रातृकन्याविक्रयिणस्तथा ॥ भार्याविक्रयिणस्तद्वद्भवतब्राह्मणाधमाः॥७३॥ वेदविक्रयिणस्तद्वत्तीर्थविक्रयिणस्तथा॥ धर्मविक्रयिणस्तद्वद्भवतब्राह्मणाधमाः॥७४॥ पांचरात्रेकामशास्त्रेतथाकापालिकेमते ॥ बौद्धेश्रद्धायुतायूयंभवतब्राह्मणाधमाः ॥ ७५ ॥ मातृकन्यागामिनश्चभगिनीगामिनस्तथा ॥ परस्त्रीलंपटाःसर्वेभवतब्राह्मणाधमाः ॥ ७६ ॥

गोदानादि दान और पितृश्राद्धमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६९ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! कृच्छ्रचान्द्रायण और प्रायश्चित्तसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो! तुम श्रीगायत्री देवीको छोडकर दूसरे देवताओंमें श्रद्धा भक्ति करकै शंख चक्रादिसे अंकित हो ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ७१ ॥ कापालिक मतमें आसक्त, बौद्धशास्त्रमें रत, पाखण्डाचारमें निरत हो ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ७२ ॥ हे ब्राह्मणाधमो! तुम पितामाता सुत भ्राता कन्या भार्याके बेचनेवाले होंगे ॥ ७३ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! तुम वेद तीर्थ और धर्मके बेंचनेवाले होंगे ॥ ७४ ॥ पंचरात्र, काम शास्त्र, कापालिकमत और बौद्धोंमें श्रद्धावाले होंगे ॥ ७५ ॥ तुम सब माता कन्या भगिनीगामी

परस्त्रीलम्पट होनेसे स्त्रीलम्पट होंगे ॥ ७६ ॥ तुम्हारे वंशके स्त्री वा पुरुष मेरे शापसे दग्धहो तुम्हारीही समान होंगे ॥ ७७ ॥ मेरे बहुत कहनेसे क्या है वह मूल प्रकृति ईश्वरी परमा गायत्री तुमपर क्रुद्ध रहेगी ॥ ७८ ॥ अंधकूपादि कुंडोंमें तुम्हारी स्थिति होगी, व्यासजी बोले इसप्रकार गौतमजी वाग्दंड देकर जलस्पर्शकर ॥ ७९ ॥ परमउत्सुक हो गायत्रीके दर्शनोंको गये महादेवीको प्रणाम किया वह भी परात्परादेवी ॥ ८० ॥ ब्राह्मणोंके कर्तव्यको देख बडी विस्मित हुई अबतक उनका मुख स्मययुक्त दीखता है ॥ ८१ ॥ फिर हँसती हुई मुखकमलसे मुनि श्रेष्ठसे कहने लगी सर्पको दिया दूध विषके निमित्तही होता है ॥ ८२ ॥ हे महाभाग!

युष्माकंवंशजाताश्चस्त्रियश्चपुरुषास्तथा॥मदत्तशापदग्धास्तेभविष्यंतिभवत्समाः॥७७॥किंमयाबहुनोक्तेनमूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ गायत्रीपरमाभूयाद्युष्मासुखलुकोपिता ॥ ७८ ॥ अंधकूपादिकुंडेषुयुष्माकंस्यात्सदास्थितिः ॥ व्यासउवाच ॥ वाग्दंडमीदृशंकृत्वाप्युपस्पृश्यजलंततः ॥ ७९ ॥ जगामदर्शनार्थंचगायत्र्याःपरमोत्सुकः ॥ प्रणनाममहादेवींसाऽपिदेवीपरात्परा ॥ ८० ॥ ब्राह्मणानांकृतिंदृष्ट्वास्मयंचित्तेचकारह॥ अद्यापितस्यावदनंस्मययुक्तंचदृश्यते ॥ ८१ ॥ उवाचमुनिवर्यंतंस्मयमानमुखांबुजा ॥ भुजंगायार्पितंदुग्धंविषायैवोपजायते ॥ ८२ ॥ शांतिंकुरुमहाभागकर्मणोगतिरीदृशी ॥ इति देवींप्रणम्याथततोऽगात्स्वाश्रमंप्रति ॥ ८३ ॥ ततोविप्रैःशापदग्धैर्विस्मृतावेदराशयः ॥ गायत्रीविस्मृतासर्वैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ८४ ॥ तेसर्वेऽथ मिलित्वातुपश्चात्तापयुतास्तथा ॥ प्रणेमुर्मुनिवर्यंतंदंडवत्पतिताभुवि ॥ ८५ ॥ नोचुःकिंचनवाक्यंतुलज्जयाऽधोमुखाःस्थिताः ॥ प्रसीदेतिप्रसीदेतिप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥ ८६॥ प्रार्थयामासुरभितःपरिवार्यमुनीश्वरम् ॥ करुणापूर्णहृदयोमुनिस्तान्समुवाचह ॥८७॥ कृष्णावतारपर्यंतंकुंभीपाकेभवेत्स्थिति ॥ नमेवाक्यंमृषाभूयादितिजानीथसर्वथा ॥ ८८ ॥

शांतिकरो कर्मकी ऐसीही गति है इसप्रकार देवीको प्रणाम कर गौतम अपने आश्रममें आये ॥८३॥ तब शापदग्ध होनेके कारण ब्राह्मण वेद भूलगये तथा गायत्री भी विस्मृत हुई यह बडी अद्भुत बात हुई ॥८४॥ वे सब मिलकर पश्चात्ताप करने लगे और दंडवत् पतितहो मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करने लगे ॥८५॥ और लज्जासे नीचेको मुखकर कुछ न बोले प्रसन्नहो२ ऐसा बार २ कहने लगे ॥८६॥ इसप्रकार मुनिको घेर सब ओरसे प्रार्थना करनेलगे तब करुणासे पूर्णहृदय हो मुनिने उनसे कहा ॥ ॥ ८७ ॥ कि कृष्णावतारपर्यन्त तुम्हारी कुंभीपाकमें स्थितिहोगी मेरा वाक्य असत्य नहीं होता यह तुम सर्वथा सत्य जानो ॥ ८८ ॥

फिर कलियुगमें तुम्हारा जन्म होगा मेरा कहा यह सब होगा इसमें अन्यथा नहीं ॥८९॥ मेरे शाप दूरकरनेकी यदि तुम्हारी इच्छाहो तो सबको गायत्रीके चरणकमल सेवन करने चाहिये॥९०॥व्यासजी बोले मुनिश्रेष्ठ! गौतम इसप्रकार सबको विदाकर प्रारब्ध है. यह जानकर चित्तमें शान्त हुए॥९१॥ हे राजन्!इसकारण कृष्णके परम धाममें जानेसे कलियुगके प्रारंभमें वे कुंभीपाकसे निकले "और देवताकी पूजा क्यों करते हैं, यह उसका उत्तर हुआ" ॥९२॥ वह पहले शापसे दग्ध हुए पृथ्वीपर जन्मे वही तीनों कालकी संध्यासे विहीन गायत्रीकी भक्तिसे वर्जित हुए ॥ ९३ ॥ वेदभक्तिसे हीन पाखण्डमतगामीथे अग्निहोत्रादि सत्कर्म स्वाहा स्वधासे वर्जित हुए॥ ९४॥ मूलप्रकृति अव्यक्तको वह नहीं जान्ते कोई तप्तमुद्रासे अंकित कोई कामाचारमें तत्पर हुए ॥ ९५ ॥ कापालिक कौलिक बौद्ध जैन इन मतोंमें पंडित होकरभी वह

ततःपरंकलियुगेभुविजन्मभवेद्धिवाम् ॥ मदुक्तंसर्वमेतत्तुभवेदेवनचान्यथा ॥ ८९ ॥ मच्छापस्यविमोक्षार्थंयुष्माकंस्याद्यदीषणा ॥ तर्हिसेव्यंसदासर्वैर्गायत्रीपदपंकजम् ॥ ९० ॥ व्यासउवाच ॥ इतिसर्वान्विसृज्याथगौतमोमुनिसत्तमः ॥ प्रारब्धमितिमत्वातुचित्तेशांतिंजगामह ॥ ९१ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्गतेकृष्णेतुधामनि ॥ कलौयुगेप्रवृत्तेतुकुंभीपाकात्तुनिर्गताः ॥ ९२ ॥ भुविजाताब्राह्मणाश्चशापदग्धाःपुरातुये ॥ संध्यात्रयविहीनाश्चगायत्रीभक्तिवर्जिताः ॥ ९३ ॥ वेदभक्तिविहीनाश्चपाखंडमतगामिनः ॥ अग्निहोत्रादिसत्कर्मस्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥९४॥ मूलप्रकृतिमव्यक्तांनैवजानंतिकर्हिचित् ॥ तप्तमुद्रांकिताःकेचित्कामाचाररताःपरे ॥ ९५ ॥ कापालिकाःकौलिकाश्चबौद्धाजैनास्तथापरे ॥ पंडिताअपितेसर्वेदुराचारप्रवर्तकाः ॥ ९६ ॥ लंपटाःपरदारेषुदुराचारपरायणाः ॥ कुंभीपाकंपुनःसर्वेयास्यंतिनिजकर्मभिः ॥ ९७ ॥ तस्मात्सर्वात्मनाराजन्संसेव्यापरमेश्वरी ॥ नविष्णूपासनानित्यानशिवोपासनातथा ॥ ९८ ॥ नित्याचोपासनाशक्त्यार्याविनातुपतत्यधः ॥ सर्वमुक्तंसमासेनयत्पृष्टंतत्त्वयाऽनघ ॥ ९९ ॥ अतःपरंमणिद्वीपवर्णनंशृणुसुंदरम् ॥ यत्परंस्थानमाद्यायाभुवनेश्याभवारणेः ॥१००॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणे अष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांद्वादशस्कंधेनवमोऽध्यायः ॥९॥ छ॥
॥ व्यासउवाच ॥ ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागेसर्वलोकोऽस्तियःश्रुतः ॥ मणिद्वीपःसएवास्तियत्रदेवीविराजते ॥ १ ॥

दुराचारमें प्रवृत्त हुए ॥ ९६ ॥ पराईस्त्रियोंमें लंपट दुराचारमें परायण हुए यह सब अपने कर्मोंसे फिर कुंभीपाकमें जाँयगे ॥ ९७ ॥ हे राजन्! इसकारण सर्वात्मासे परमेश्वरीका सेवस करना चाहिये शिव विष्णुकी उपासना नित्य नहीं है ॥ ९८ ॥ गायत्रीरूप शक्तिकी उपासनाही नित्य है जिसके विना यह प्राणी अधःस्थानमें पतित होता है ये पापरहित जो तुमने पूँछा वह मैं ने सब संक्षेपसे कहा ॥ ९९ ॥ अब इसके उपरान्त सुन्दर मणिद्वीपका वर्णन सुनो जो संसारकी आदिकारण भुवनेशीका परमस्थान है ॥ १०० ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ब्रह्मलोकसे ऊर्ध्वभागमें जो सर्वलोक श्रुत है वही मणिद्वीप है जहां देवी विराजमान है, सुबालोपनिषदमें लिखा है, "सर्वलोका आत्मनि ब्रह्मणि मणय इवोताश्च प्रोताश्चेति" ॥ १ ॥

यह सबसे अधिक है, इसीकारण इसको सर्वलोक कहते हैं, पहले श्रीभगवतीने मनकी इच्छासेही इसको कल्पित किया है ॥ २ ॥ मूलभूत प्रकृतिने सबकी आदिमें अपने निवासके निमित्त कैलाससे अधिक वैकुंठसे उत्तम ॥ ३ ॥ तथा गोलोकसे भी उत्तम किया है इससे अधिक त्रिलोकीमें कोई सुन्दर लोक नहीं है ॥ ४ ॥ यह तीनों जगत्का छत्रभूत संसारका संतापनाश करने वाला है. हे सत्तम ! यह ब्रह्माण्डोंका छायाकारक है ॥ ५ ॥ बहुत योजनोंके विस्तारमें तथा उतनाही गंभीर है मणिद्वीपके चारों ओर सुधासागर है ॥ ६ ॥ जिसमें वायुद्वारा अनेक तरंगें उठती हैं, रत्नोंकी सुन्दर वालुका झष शंखोंसे व्याप्त है ॥ ७ ॥ वीचियोंके संघर्षणसे अनेक लहरीकणोंसे शीतल अनेक ध्वजा और जहाजोंसे युक्त है ॥ ८ ॥ सब ओरसे विराजमान्, तीरमें रत्न समान कांति

सर्वस्मादधिकोयस्मात्सर्वलोकस्ततःस्मृतः ॥ पुरापरांबयैवायंकल्पितोमनसेच्छया ॥ २ ॥ सर्वादौनिजवासार्थंप्रकृत्यामूलभूतया ॥ कैलासादधिकोलो कोवैकुंठादपिचोत्तमः ॥ ३ ॥ गोलोकादपिसर्वस्मात्सर्वलोकोऽधिकःस्मृतः ॥ नैतत्समंत्रिलोक्यांतुसुंदरंविद्यतेक्वचित् ॥४॥ छत्रीभूतंत्रिजगतोभवसंताप नाशकम् ॥ छायाभूतंतदेवास्तिब्रह्मांडानांतुसत्तम ॥५॥ बहुयोजनविस्तीर्णोगंभीरस्तावदेवहि ॥ मणिद्वीपस्यपरितोवर्ततेतुसुधोदधिः ॥ ६ ॥ मरुत्संघट्ट नोत्कीर्णतरंगशतसंकुलः ॥ रत्नाच्छवालुकायुक्तोझषशंखसमाकुलः ॥७॥ वीचिसंघर्षसंजातलहरीकणशीतलः ॥ नानाध्वजसमायुक्तोनानापोतगतागतैः ॥८॥ विराजमानःपरितस्तीररत्नद्रुमोमहान् ॥ तदुत्तरमयोधातुनिर्मितोगगनेततः ॥ ९ ॥ सप्तयोजनविस्तीर्णःप्राकारोवर्ततेमहान् ॥ नानाशस्त्रप्रहरणानानायुद्ध विशारदाः ॥ १० ॥ रक्षकानिवसंत्यत्रमोदमानाःसमंततः ॥ चतुर्द्वारसमायुक्तोद्वारपालशतान्वितः ॥ ११ ॥ नानागणैःपरिवृतोदेवीभक्तियुतैर्नृप ॥ दर्श नार्थंसमायांतियेदेवाजगदीशितुः ॥१२॥ तेषांगणावसंत्यत्रवाहनानिचतत्रहि ॥ विमानशतसंघर्षघंटास्वनसमाकुलः ॥ १३ ॥ हयहेषाखुराघातबधिरी कृतदिङ्मुखः ॥ गणैःकिलकिलारावैर्वेत्रहस्तैश्चताडिताः ॥१४॥ सेवकादेवसघानांभ्राजंतेतत्रभूमिप ॥ तस्मिन्कोलाहलेराजन्नशब्दःकेनचित्क्वचित् ॥१५॥

वाले वृक्ष हैं इसके उपरान्त अयधातु (लोहा) का निर्मित अतिऊंचा ॥ ९ ॥ सातयोजनका विस्तारवाला महान् परकोटा है जिसमें अनेक शस्त्रोंके प्रहारवाले अनेकों युद्धमें चतुर ॥ १० ॥ प्रसन्नचित्तसे रक्षक निवास करते हैं चार जिसके द्वार और सैकडों द्वारपालोंसे युक्त ॥ ११ ॥ तथा देवीके परमभक्त अनेक गणोंसे व्याप्त हैं जो देवता जगदीश्वरीके दर्शनको आते हैं ॥ १२ ॥ उनके गण और वाहन सब वहीं निवास करते हैं. सैकडों विमानोंसे व्याप्त घंटोंके शब्दोंसे समाकीर्ण ॥ १३ ॥ घोडोंकी हिनहिनाहट तथा खुराघातसे जहाँ की दिशायें बधिरीभूत हो रही हैं किल किल शब्दवाले वेत्रधारी गणोंसे शब्द निवारणार्थ ताडित ॥ १४ ॥ देवताओंके सेवक

जहां विराजमान् होते हैं. हे राजन् ! उस कोलाहलमें कौन किसका शब्द ॥ १५ ॥ उस महाध्वनिमें सुन सकता है. पदपदमें मीठे जलके सरोवर हैं ॥ ॥ १६ ॥ हे राजन् ! रत्नवृक्षोंकी अनेक वाटिका विद्यमान हैं उसके उत्तरमें महासार कांसीका बना हुआ मण्डल है ॥ १७ ॥ यह प्राकारभी गगनका स्पर्श करने वाला महान् है और लोहप्राकारसे तेजमें यह ऊंचे शिखरवाला सौगुणाअधिक है ॥ १८ ॥ गोपुरद्वारोंके सहित बहुत वृक्षोंसे समन्वित है जगत्में जितनी वृक्षोंकी जाति हैं यह वहां सब हैं ॥ १९ ॥ जिनमें फल फूल सदा लगे रहते नवपल्लव और परम गंधसे युक्त हैं ॥ २० ॥ पनस, बकुल, लोध, कर्णिकार शिंशपा, देवदारु, कचनार आम

कस्यचिच्छ्रूयतेऽत्यंतंनानाध्वनिसमाकुले ॥ पदेपदेमिष्टवारिपरिपूर्णसरांसिच ॥ १६ ॥ वाटिकाविविधाराजन्रत्नद्रुमविराजिताः ॥ तदुत्तरेम हासारधातुनिर्मितमंडलः ॥ १७ ॥ सालोपरोमहानस्तिगगनस्पर्शियच्छिरः ॥ तेजसास्याच्छतगुणः पूर्वसालादयंपरः ॥ १८ ॥ गोपुरद्वारसहितोबहुवृक्ष समन्वितः ॥ यावृक्षजातयःसंतिसर्वास्तास्तत्रसंतिच ॥ १९ ॥ निरंतरंपुष्पयुताःसदाफलसमन्विताः ॥ नवपल्लवसंयुक्ताःपरसौरभसंकुलाः ॥ २० ॥ प नसाबकुलालोध्राःकर्णिकाराश्चशिंशपाः ॥ देवदारुकांचनाराआम्राश्चैवसुमेरवः ॥ २१ ॥ लिकुचाहिंगुलाश्चैलालवंगाःकट्फलास्तथा ॥ पाटलामुचुकुं दाश्चफलिन्योजघनेफलाः ॥ २२ ॥ तालास्तमालाःसालाश्चकंकोलानागभद्रकाः ॥ पुन्नागाःपीलवःसाल्वकावैकर्पूरशाखिनः ॥ २३ ॥ अश्वकर्णाहस्ति कर्णास्तालपर्णाश्चदाडिमाः ॥ गणिकावंधुजीवाश्चजंबीराश्चकुरंडकाः ॥ २४ ॥ चांपेयावंधुजीवाश्चतथावैकनकद्रुमाः ॥ कालागुरुद्रुमाश्चैवतथाचंदनपा दपाः ॥ २५ ॥ खर्जूरायूथिकास्तालपर्ण्यश्चैवतथेक्षवः ॥ क्षीरवृक्षाश्चखदिराश्चिंचाभल्लातकास्तथा ॥ २६ ॥ रुचकाःकुटजावृक्षाबिल्ववृक्षास्तथैवच ॥ तुलसीनांवनान्येवंमल्लिकानांतथैवच ॥ २७ ॥

सुमेरव ॥ २१ ॥ लिकुचा, हिंगुल, एला, लवंग, कट्फल, पाटल, मुचकुन्द, फलिनी जघनेफला ॥ २२ ॥ ताल, तमाल, साल कंकोल नागभद्रक, पुन्नाग, पीलव, शाल्व, कर्पूरके वृक्ष ॥ २३ ॥ अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण तालपर्ण, दाडिमी, गणिका, बंधुजीवक, जंभीरी, कुरंटक ॥ २४ ॥ चंपेय, बंधुजीव, कनकद्रुम, कालागरवृक्ष, चंदन वृक्ष, ॥ २५ ॥ खजूर, यूथिका, तालपर्णी, ईख, क्षीरवृक्ष, खैर, चिंचा, भल्लातक (भिलावा) ॥ २६ ॥ रुचक, कुटज, बेलोंके वृक्ष, तुलसी और चमेलियोंके वन हैं ॥ २७ ॥

इसप्रकार वृक्षोंके वन उपवनोंसे व्याप्त, अनेक बावडियोंसे सम्पन्न है ॥ २८ ॥ कोकिलके शब्द और भौंरोंकी गुंजारसे व्याप्त है जो सब वृक्ष गोंदस्रावी और सुन्दर छायावाले हैं ॥ २९ ॥ वे वृक्ष अनेक ऋतुओंमें होनेवाले अनेक पक्षियोंसे सेवित अनेक रस बहानेवाली नदियोंके तटपर शोभित हैं ॥ ३० ॥ कबूतर तोतोंके समूह और मैनाओंके पक्षोंकी पवन तथा हंसोंके पंखोंकी वायुसे जहाँके वृक्ष बहुत चलायमान रहते हैं ॥ ३१ ॥ सुगंधग्राही पवनसे वह वन पूरित होरहा है. इधर उधर हरिणियोंके यूथ धावमान होरहे हैं ॥ ३२ ॥ मोरोंके समूह नृत्य करते मोरोंकी वाणी सब ओरसे होरही. इसप्रकार सुखदायक वाणीसे वह मधुस्रावी वन व्याप्त होरहा है ॥ ३३ ॥ कांसीके प्राकारके आगे ताम्रका परकोटा है जो चौकोन और सात योजन ऊंचा है ॥ ३४ ॥ इन दोनों परकोटोंके मध्यमें कल्पवृक्षोंके बगीचे हैं.

इत्यादितरुजातीनांवनान्युपवनानिच ॥ नानावापीशतैर्युक्तान्येवंसंतिधराधिप ॥ २८ ॥ कोकिलारावसंयुक्तागुंजद्भ्रमरभूषिताः ॥ निर्यासस्राविणःसर्वेस्नि ग्धच्छायास्तरूत्तमाः ॥२९॥ नानाऋतुभवावृक्षानानापक्षिसमाकुलाः ॥ नानारसस्राविणीभिर्नदीभिरतिशोभिताः ॥३०॥ पारावतशुकव्रातसारिकापक्ष मारुतैः ॥ हंसपक्षसमुद्भूतवातव्रातैश्चलद्रुमम् ॥३१॥ सुगंधग्राहिपवनपूरितंतद्वनोत्तमम् ॥ सहितंहरिणीयूथैर्धावमानैरितस्ततः ॥३२॥ नृत्यद्बर्हिकदंब स्यकेकारावैःसुखप्रदैः ॥ नादितंतद्वनंदिव्यंमधुस्राविसमंततः ॥ ३३ ॥ कांस्यसालादुत्तरेतुताम्रसालःप्रकीर्तितः ॥ चतुरस्रसमाकारउन्नत्यासप्तयोजनः ॥ ॥३४॥ द्वयोस्तुसालयोर्मध्येसंप्रोक्ताकल्पवाटिका ॥ येषांतरूणांपुष्पाणिकांचनाभानिभूमिप ॥ ३५ ॥ पत्राणिकांचनाभानिरत्नबीजफलानिच ॥ दश योजनगंधोहिप्रसर्पतिसमंततः ॥३६॥ तद्वनंरक्षितंराजन्वसंतेनर्तुनानिशम् ॥ पुष्पसिंहासनासीनःपुष्पच्छत्रविराजितः ॥ ३७ ॥ पुष्पभूषाभूषितश्चपुष्पा सवविघूर्णितः ॥ मधुश्रीर्माधवश्रीश्चद्वेभार्येतस्यसंमते ॥ ३८ ॥ क्रीडतःस्मेरवदनेसुमस्तबककंदुकैः ॥ अतीवरम्यंविपिनंमधुस्राविसमंततः ॥ ३९ ॥ दशयोजनपर्यंतंकुसुमामोदवायुना ॥ पूरितंदिव्यगंधर्वैःसांगनैर्गानलोलुपैः ॥ ४० ॥ शोभितंतद्वनंदिव्यंमत्तकोकिलनादितम् ॥ वसंतलक्ष्मीसंयुक्तंका मिकामप्रवर्धनम् ॥ ४१ ॥

हे राजन् ! जिन वृक्षोंके पुष्प सुवर्णके समान कांतिवाले हैं ॥ ३५ ॥ पत्र सुवर्णके समान बीजफल रत्नोंके समान हैं उनकी गंध सब ओरसे दशयोजन पर्यन्त जाती है ॥ ३६ ॥ वसन्तऋतु दिनरात उसकी रक्षा करता है. हे राजन् ! वह वसन्त पुष्पोंके सिंहासनपर आसीन, फूलोंके छत्रसे विराजित ॥ ३७ ॥ पुष्पोंके भूषणोंसे भूषित पुष्पोंके आसवसे मदको प्राप्त मधुश्री माधवश्री दो भार्या ॥ ३८ ॥ स्मितमुखियोंके साथ कुसुमके गुच्छोंकी गेंदसे खेलता हुआ रहता है वह मधुस्रावी वन बहुतही मनोहर है ॥ ३९ ॥ दशयोजनतक वायुद्वारा इसकी गंध जाती है और गंधके लोलुप अंगना साथ लिये गन्धर्वोंसे वह वनपूरित रहता है ॥ ४० ॥ वह दिव्य वन मत्तवाले

कोकिलाओंके नादसे शोभित है,यह वसन्त लक्ष्मीसे संयुक्त कामियोंके कामका बढानेवाला है॥ ४१ ॥ ताम्र परकोटेके आगे सीसेका परकोटा है जो सातयोजन पर्यन्त ऊंचा है॥ ४२ ॥ हेराजन् ! इनदोनों परकोटोंके मध्यमें सन्तानक वृक्षोंकी वाटिका है जिसके फूलोंकी दशयोजनपर्यन्त गंध जाती है।। ४३ ।।हिरण्यकी समान कान्तिमान् जहांके फूल नित्य खिले रहतेहैं जिनके मधुर फल अमृतद्रवकी समानहै॥ ४४ ॥ हेराजन्! उस वाटिकाका ग्रीष्मऋतु नायक है शुक्रश्री,शुचिश्री,यह दोभार्या इसको प्रियहैं ॥ ४५ ॥ जहाँ सन्तापसेव्याकुल हुए लोक वृक्षोंके नीचे स्थित होते हैं,अनेक सिद्ध और देवता निवास करते हैं॥ ४६ ॥ चन्दनको अधिकतर अंगमें लगाये पुष्पमाला धारे ताल पंखा हाथमें लिये जहां विलासिनियोंके समूह विचरते हैं॥ ४७ ॥हेराजन् ! शीतल जलसेवियोंसे वह प्राकार शोभित है,शीशेके परकोटेके आगे पीतलका सुन्दर ॥ ४८ ॥

ताम्रसालादुत्तरत्रसीससालःप्रकीर्तितः ॥ समुच्छ्रायःस्मृतोप्यस्यसप्तयोजनसंख्यया ॥ ४२ ॥ संतानवाटिकामध्येसालयोस्तुद्वयोर्नृप ॥ दशयोजनगंधस्तुप्रसूनानांसमंततः ॥ ४३ ॥ हिरण्याभानिकुसुमान्युत्फुल्लानिनिरंतरम् ॥ अमृतद्रवसंयुक्तफलानिमधुराणिच ॥ ४४ ॥ ग्रीष्मर्तुर्नायकस्तस्यावाटिकायानृपोत्तम ॥ शुक्रश्रीश्चशुचिश्रीश्चद्वेभार्येतस्यसंमते ॥ ४५ ॥ संतापत्रस्तलोकास्तुवृक्षमूलेषुसंस्थिताः ॥ नानासिद्धैःपरिवृतोनानादेवैःसमन्वितः ॥ ४६ ॥ विलासिनीनांवृंदैस्तुचंदनद्रवपंकिलैः ॥ पुष्पमालाभूषितैस्तुतालवृंतकरांबुजैः ॥४७॥ प्राकारःशोभितोराजच्छितलांबुनिषेविभिः ॥ सीससालादुत्तरत्राप्यारकूटमयःशुभः ॥ ४८ ॥ प्राकारोवर्ततेराजन्मुनियोजनदैर्घ्यवान् ॥ हरिचंदनवृक्षाणांवाटीमध्येतयोःस्मृता ॥ ४९ ॥ सालयोरधिनाथस्तुवर्षर्तुर्मेघवाहनः ॥ विद्युत्पिंगलनेत्रश्चजीमूतकवचःस्मृतः ॥ ५० ॥ वज्रनिर्घोषमुखरश्चेंद्रधन्वासमंततः ॥ सहस्रशोवारिधारामुंचन्नास्तेगणावृतः ॥ ५१ ॥ नभःश्रीश्चनभस्यश्रीःस्वरस्यारस्यमालिनी ॥ अंबादुलानिरत्निश्चाभ्रमंतीमेघयंतिका ॥ ५२ ॥ वर्षयंतीचिबुणिकावारिधाराचसंमताः ॥ वर्षर्तोर्द्वादशप्रोक्ताःशक्तयोमदविह्वलाः ॥ ५३ ॥ नवपल्लववृक्षाश्चनवीनलतिकान्विताः ॥ हरितानितृणान्येववेष्टितायैर्धराऽखिला ॥ ५४ ॥ नदीनदप्रवाहाश्चप्रवहंतिचवेगतः ॥ सरांसिकलुषांबूनिरागिचित्तसमानिच ॥ ५५ ॥

परकोटा सात योजन लम्बा विद्यमान है इन दोनोंके बीचमें हरिचंदन वृक्षकी वाटिकाहै ॥ ४९ ॥ इनका अधिपति मेघवाहन वर्षाऋतु है जिसके बिजलीकी समान पिंगल नेत्र और मेघोंका कवच है ॥ ५० ॥ वज्रके शब्दकी समान शब्दायमान इन्द्र धनुष धारे सहस्रों वारिधारा त्यागन करते गणोंसे युक्त शोभायमान है ॥ ५१ ॥ नभश्री (श्रावण) नभस्यश्री (आर्द्रौ) स्वरस्या, रस्यमालिनी अम्बादुलानिरत्नि भ्रमंती मेघयंतिका ॥ ५२ ॥ वर्षयन्ती, चिबुणिका वारिधारा मदविह्वला यह वर्षाऋतुकी बारह शक्तियें कहीहैं ॥ ५३ ॥ नयेपत्तेवाले वृक्ष और नवीन लतायें तथा हरित तृणोंसे वहांकी धरा वेष्टितहै ॥ ५४ ॥ नदी नदोंका प्रवाह वेगसे चलायमान होता है सरोवरोंमें कलुष हुए

जल रागियोंके चित्तकी समान है ॥ ५५ ॥ वहां देवीके कर्म करनेवाले देवता सिद्धनिवास करते हैं. वापी कूप सरोवर जिन्होंने देवीके अर्पण किये हैं ॥ ५६ ॥ वह गण यहां अंगनाओंके सहित निवास करते हैं, पीतलके आगे सातयोजनका बड़ा दीर्घ ॥ ५७ ॥ पंचलोहात्मक परकोटा है जिसके मध्यमें मंदारवाटिका है, जो अनेक पुष्पलताओंसे आकीर्ण अनेक पल्लवोंसे शोभित हैं ॥ ५८ ॥ जिसका अनामय अधिष्ठाता शरदृतु है. इषलक्ष्मी, ऊर्जलक्ष्मी दो उसकी भार्या हैं ॥ ५९ ॥ वहाँ अंगना और कुटुम्बके सहित अनेक सिद्ध निवास करते हैं पंचलोहात्मकसे आगे सात योजन दीर्घ ॥ ६० ॥ महाशृंगोंसे दीप्यमान रौप्य परकोटा है जहां पारिजात वृक्षोंमें गुच्छे लटक रहे हैं ॥ ६१ ॥ उसके फूलोंकी गंध दशयोजनतक फैलकर देवीके कर्मकारी भक्तोंको प्रसन्न करती है ॥ ६२ ॥ उसका अधिपति महाउज्ज्वल

वसंतिदेवाःसिद्धाश्चयेदेवीकर्मकारिणः॥वापीकूपतडागाश्चयैर्देव्यर्थंसमर्पिताः ॥५६॥ तेगणानिवसंत्यत्रसविलासाश्चसांगनाः॥आरकूटमयादग्रेसप्तयोजन दैर्घ्यवान् ॥५७॥ पंचलोहात्मकःसालोमध्येमंदारवाटिका ॥ नानापुष्पलताकीर्णानानापल्लवशोभिता ॥५८॥ अधिष्ठाताऽत्रसंप्रोक्तःशरदृतुरनामयः ॥ इषलक्ष्मीरूर्जलक्ष्मीर्द्वेभार्येतस्यसंमते ॥ ५९ ॥ नानासिद्धावसंत्यत्रसांगनाःसपरिच्छदाः ॥ पंचलोहमयादग्रेसप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥ ६० ॥ दीप्यमानो महाशृंगैर्वर्ततेरौप्यसालकः ॥ पारिजाताटवीमध्येप्रसूनस्तबकान्विता ॥ ६१ ॥ दशयोजनगंधीनिकुसुमानिसमंततः ॥ मोदयंतिगणान्सर्वान्येदेवीकर्म कारिणः ॥ ६२ ॥ तत्राधिनाथःसंप्रोक्तोहेमंततुर्महोज्ज्वलः ॥ सगणःसायुधःसर्वान्रागिणोरंजयन्नृप ॥ ६३ ॥ सहश्रीश्चसहस्यश्रीर्द्वेभार्येतस्यसंमते ॥ वसंतितत्रसिद्धाश्चयेदेवीव्रतकारिणः ॥ ६४ ॥ रौप्यसालमयादग्रेसप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥ सौवर्णसालःसंप्रोक्तस्तप्तहाटककल्पितः ॥६५॥ मध्येकदंबवाटी तुपुष्पपल्लवशोभिता ॥ कदंबमदिराधाराःप्रवर्ततेसहस्रशः ॥ ६६ ॥ याभिर्निपीतपीताभिर्निजानंदोनुभूयते ॥ तत्राधिनाथःसंप्रोक्तःशैशिरर्तुर्महोदयः ॥ ॥६७॥ तपःश्रीश्चतपस्यश्रीर्द्वेभार्येतस्यसंमते ॥ मोदमानःसहैताभ्यांवर्ततेशिशिराकृतिः ॥६८॥ नानाविलाससंयुक्तोनानागणसमावृतः ॥ निवसंतिमहा सिद्धायेदेवीदानकारिणः ॥ ६९ ॥ नानाभोगसमुत्पन्नमहानंदसमन्विताः ॥ सांगनाःपरिवारैस्तुसंवशःपरिवारिताः ॥ ७० ॥

हेमन्त ऋतु है जो अपने गण और आयुधोंसे सब रागियोंको प्रसन्न करता है ॥ ६३ ॥ सहश्री, सहस्यश्री, यह उसकी दो भार्या हैं देवीव्रतकरनेवाले सिद्ध वहां निवास करते हैं ॥ ६४ ॥ चांदीके परकोटेके आगे सात योजनका दीर्घ सुवर्णका परकोटा है जो तपाये सुवर्णसे बना है ॥ ६५ ॥ उसके मध्यमें पुष्प पल्लव से शोभित कदंबवाटिका है जिनसे कदम्बके मदकी धारा सहस्रों प्रवृत्त होती हैं ॥ ६६ ॥ जिनके यथेष्टपानसे निजानंदकी प्राप्ति होती है उसका अधिपति शिशिर ऋतु कहा है ॥ ६७ ॥ तपश्री, तपस्यश्री यह दो उसकी भार्या हैं यह शिशिर आकृति उनके संग प्रसन्न हुआ निवास करता है ॥६८ ॥ अनेक विलाससे संयुक्त अनेक गणोंके सहित वहां देवीके उद्देशसे दानकरनेवाले सिद्ध निवास करते हैं ॥ ६९ ॥ वे अनेक भोगोंसे संयुक्त महानंदसे सम्पन्न स्त्री और परिवारके सहित

निवास करते हैं ॥ ७० ॥ सुवर्णके परकोटेके आगे सात योजनके विस्तारमें पुष्परागमणियोंका परकोटा है जो कुंकुम २ की समान अरुण वर्ण है ॥७१॥ वहांकी सब भूमि वन उपवन पुष्परागके हैं रत्नोंके वृक्ष और पुष्परागमणिकेही थांवले हैं ॥ ७२ ॥ जिस रत्नका परकोटा उसीके वृक्ष हैं वनभूं पक्षिगण सब रत्नोंहीके समान हैं ॥ ७३ ॥ मंडप मण्डपके स्तंभ सरोवर कमल जो कुछ उस प्राकारमें है वह सब उसीके समान है ॥७४॥ हे प्रभो! यह रत्न परकोटेकी परिभाषा कही है. हे राजन्! दूसरे परकोटोंसे यह तेजमें लाख गुणा है ॥ ७५ ॥ वहां प्रतिब्रह्माण्डवर्ती दिक्पाल निवास करते हैं अर्थात् प्रतिब्रह्माण्डवर्ती इन्द्रादि दिक्पालोंके व्यष्टि भूत जो नायक हैं समष्टिभूत जो इन्द्रादिक जो श्री भुवनेश्वरीयंत्र भूपुरमें पूजे जाते हैं वे वहां निवास करते हैं जो वरायुध लिये शोभित होते हैं ॥ ७६ ॥ उसकी

स्वर्णसालमयादग्रेमुनियोजनदैर्घ्यवान् ॥ पुष्परागमयःसालःकुंकुमारुणविग्रहः ॥ ७१ ॥ पुष्परागमयीभूमिर्वनान्युपवनानिच ॥ रत्नवृक्षालवालाश्चपुष्परागमयाःस्मृताः ॥ ७२ ॥ प्राकारोयस्यरत्नस्यतद्रत्नरचिताद्रुमाः ॥ वनभूःपक्षिणश्चैवरत्नवर्णजलानिच ॥ ७३ ॥ मंडपामंडपस्तंभाःसरांसिकमलानिच ॥ प्राकारेतत्रयद्यत्स्यात्तत्सर्वंतत्सम‌ंभवेत् ॥ ७४ ॥ परिभाषेयमुद्दिष्टारत्नसालादिषुप्रभो ॥ तेजसास्याल्लक्षगुणःपूर्वसालात्परोनृप ॥ ७५ ॥ दिक्पालानिवसंत्यत्रप्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥ दिक्पालानांसमष्ट्यात्मरूपाःस्फूर्जद्वरायुधाः ॥७६॥ पूर्वाशायांसमुत्तुंगशृंगापूरमरावती ॥ नानोपवनसंयुक्तामहेंद्रस्तत्रराजते ॥ ७७ ॥ स्वर्गशोभाचयास्वर्गेयावतीस्यात्ततोऽधिका ॥ समष्टिशतनेत्रस्यसहस्रगुणतःस्मृता ॥७८॥ ऐरावतसमारूढोवज्रहस्तःप्रतापवान् ॥देवसेनापरिवृतोराजतेऽत्रशतक्रतुः ॥ ७९ ॥ देवांगनागणयुताशचीतत्रविराजते ॥ वह्निकोणेवह्निपुरीवह्निपूःसदृशीनृप ॥ ८० ॥ स्वाहास्वधासमायुक्तोवह्निस्तत्रविराजते ॥ निजवाहनभूषाढ्योनिजदेवगणैर्वृतः ॥ ८१ ॥ याम्याशायांयमपुरीतत्रदंडधरोमहान् ॥ स्वभटैर्वेष्टितोराजञ्चित्रगुप्तपुरोगमैः ॥ ८२ ॥

पूर्वदिशामें ऊंचे शिखरवाली अमरावती शोभित होती है जो अनेक उपवनोंसे युक्त है वहां महेन्द्र विराजते हैं ॥७७॥ स्वर्गकी शोभा जो स्वर्गमें है यह उससे अधिक है, समष्टि शतनेत्रसे सहस्रगुणा अधिक शोभित है ॥ ७८ ॥ वह ऐरावतपर चढा वज्र हाथमें लिये महाप्रतापी देवताओंकी सेनासे युक्त इन्द्र विराजमान होता है ॥ ॥ ७९ ॥ देवांगनाओंके सहित वहां इन्द्राणी विराजमान् होती है और अग्निकोणमें अग्निपुरीकी समान अग्निपुरी है ॥ ८० ॥ स्वाहा स्वधाके साथ वहां अग्नि विराजमान है अपने वाहन भूषणोंसे युक्त तथा अपने देवताओंसे शोभित है ॥ ८१ ॥ दक्षिण दिशामें यमपुरी है उसमें दंडधारी महान् अपने चित्रगुप्त आदि

भटोंसे वेष्टित ॥ ८२ ॥ अपनी शक्तिसहित प्रकाशमान सूर्यपुत्र शोभा पाते हैं. नैर्ऋत्य दिशामें राक्षसोंकी पुरी राक्षसोंसे वेष्टित है ॥ ८३ ॥ जहां निर्ऋति खड्गलिये अपनी शक्तिसहित शोभा पाताहै वरुणदिशामें पाशधारी प्रतापी वरुण राजाहै॥८४॥ जो महामच्छपर चढे वारुणीमदसे विह्वल हुए अपनी शक्ति और जलजीवोंसे युक्त ॥८५॥ अपनी भार्योंसे प्रसन्न हुए वरुण लोकमें निवास करते हैं वायुकोणमें वायुलोकहै जहाँ वायु विराजते हैं ॥ ८६ ॥ वह वायुसाधनमें सिद्ध हुए योगियोंसे परिवारित ध्वजा हाथमें लिये विशाललोचन मृगवाहनपर स्थित हैं ॥ ८७ ॥ मरुद्गणोंसे व्याप्त अपनी शक्तिसे समन्वित है. हेराजन् ! उत्तरदिशामें महान् यक्षलोक है ॥८८॥ वहां वृद्धि ऋद्धि आदि शक्तियोंके सहित यक्षराज निवास करते हैं वहां तुन्दिलधननायक नौओं ऋद्धियोंसे सम्पन्न है ॥ ८९ ॥ मणिभद्र पूर्णभद्र मणिमान् मणि

निजशक्तियुतोभास्वत्तनयोस्तियमोमहान् ॥ नैर्ऋत्यांदिशिराक्षस्यांराक्षसैःपरिवारितः ॥८३॥ खड्गधारीस्फुरन्नास्तेनिर्ऋतिर्निजशक्तियुक् ॥ वारुण्यांवरुणोराजापाशधारीप्रतापवान् ॥ ८४ ॥ महाझषसमारूढोवारुणीमधुविह्वलः ॥ निजशक्तिसमायुक्तोनिजयादोगणान्वितः ॥ ८५ ॥ समास्तेवारुणेलोके वरुणानीरताकुलः ॥ वायुकोणेवायुलोकोवायुस्तत्राधितिष्ठति ॥ ८६ ॥ वायुसाधनसंसिद्धयोगिभिःपरिवारितः ॥ ध्वजहस्तोविशालाक्षोमृगवाहनसंस्थितः ॥ ८७ ॥ मरुद्गणैःपरिवृतोनिजशक्तिसमन्वितः ॥ उत्तरस्यांदिशिमहान्यक्षलोकोस्तिभूमिप ॥ ८८ ॥ यक्षाधिराजस्तत्राऽऽस्तेवृद्धिऋद्ध्यादिशक्तिभिः ॥ नवभिर्निधिभिर्युक्तस्तुंदिलोधननायकः ॥८९॥ मणिभद्रःपूर्णभद्रोमणिमान्मणिकंधरः ॥ मणिभूषोमणिस्रग्वीमणिकार्मुकधारकः ॥ ९० ॥ इत्यादियक्षसेनानीसहितोनिजशक्तियुक् ॥ ईशानकोणेसंप्रोक्तोरुद्रलोकोमहत्तरः ॥ ९१ ॥ अनर्घ्यरत्नखचितोयत्ररुद्रोऽधिदैवतम् ॥ मन्युमान्दीप्तनयनोबद्धपृष्ठमहेषुधिः ॥९२॥ स्फूर्जद्धनुर्वामहस्तोऽधिज्यधन्वभिरावृतः ॥ स्वसमानैरसंख्यातरुद्रैःशूलवरायुधैः ॥ ९३ ॥ विकृतास्यैःकरालास्यैर्वमद्वह्निभिरास्यतः ॥ दशहस्तैःशतकरैःसहस्रभुजसंयुतैः ॥ ९४ ॥ दशपादैर्दशग्रीवैस्त्रिनेत्रैरुग्रमूर्तिभिः ॥ अंतरिक्षचरायेचयेचभूमिचराःस्मृताः ॥ ९५ ॥ रुद्राध्यायेस्मृतारुद्रास्तैःसर्वैश्चसमावृतः ॥ रुद्राणीकोटिसहितोभद्रकाल्यादिमातृभिः ॥ ९६ ॥

कंधर मणिभूषण, मणिमालाधारी मणिकार्मुकधारी ॥ ९० ॥ इत्यादि बडी यक्ष सेना और अपनी शक्ति सहित विराजमान है. ईशानकोणमें महान् रुद्रलोक है ॥ ९१ ॥ जो बडे मोलके रत्नोंसे रचित रुद्रदेवतायुक्त है वह मृत्युमान दीप्तनेत्र पुष्ट तरकसबांधे ॥ ९२ ॥ बाँयें हाथमें स्फुरायमान धनुष ज्यारोपण किये अपनी समान असंख्यात रुद्रोंसे संयुक्त जो शूल हाथमें लिये हैं ॥९३॥ विकृतमुख कराल मुख कोई मुखसे अग्नि वमन करते, किन्हींके दश किन्हींके सौ किन्हींके सहस्र हाथ ॥ ९४ ॥ दशपाद, दशशिर तीननेत्र उग्रमूर्तिवाले कोई अन्तरिक्ष और कोई भूमिमें विचरनेवाले ॥ ९५ ॥ जो रुद्राध्यायमें स्मरणकिये रुद्र हैं उन सबसे संयुक्त

कोटिरुद्राणी और भद्रकाली आदि माताओंसे संयुक्त ॥ ९६ ॥ अनेक शक्ति और डामरादि गणोंसे संयुक्त हे राजन्! वीरभद्रादिके सहित वहां रुद्र विराजते हैं ॥९७॥ मुंडमालाधारी नागोंका कंकण पहरे नागको गलेमें डाले व्याघ्रचर्मका परिधान वस्त्र और ओढनेको गजचर्म ॥ ९८ ॥ चिताभस्मको अंगमें लपेटे प्रथमादि गणोंसे सम्पन्न शब्दायमान डमरुओंसे दिशाओंको शब्दायमान करते ॥ ९९ ॥ अट्टहास और स्फोटशब्दोंसे आकाशको त्रासितकरनेवाले भूत संमूहोंसे युक्त भूतावास महेश्वर ॥ १०० ॥ ईशान दिशाके अधिपति होनेसे ईशान नामवालेही हैं ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ छ ॥ व्यासजीबोले पुष्परागमय परकोटेके आगे कुंकुमकी समान लालवर्ण पद्मराग मणियोंका परकोटा है वैसीही वहांकी भूमि है ॥ १ ॥ वह दशयोजन दीर्घ गोपुर

नानाशक्तिसमाविष्टडामर्यादिगणावृतः॥वीरभद्रादिसहितोरुद्रोराजन्विराजते ॥९७॥ मुंडमालाधरोनागवलयोनागकंधरः॥ व्याघ्रचर्मपरीधानोगजचर्मो त्तरीयकः ॥९८॥ चिताभस्मांगलिप्तांगःप्रमथादिगणावृतः ॥ निनदड्डमरुध्वानैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥९९॥ अट्टहासास्फोटशब्दैःसंत्रासितनभस्तलः॥ भूतसंघसमाविष्टोभूतावासोमहेश्वरः॥१००॥ ईशानदिक्पतिःसोऽयंनाम्नाचेशानएवच ॥ इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेद्वादशस्कंधेदशमोऽध्यायः॥१०॥ व्यासउवाच ॥ पुष्परागमयादग्रेकुंकुमारुणविग्रहः ॥ पद्मरागमयःसालोमध्येभूश्चैवताद्दशी ॥ १ ॥ दशयोजनवान्दैर्घ्येगोपुरद्वारसंयुतः ॥ तन्मणिस्तं भसंयुक्तामंडपाःशतशोनृप ॥२॥ मध्येभुविसमासीनाश्चतुःषष्टिमिताःकलाः ॥ नानायुधधरावीरारत्नभूषणभूषिताः ॥ ३ ॥ प्रत्येकलोकस्तासांतुतत्तल्लो कस्यनायकाः ॥ समंतात्पद्मरागस्यपरिवार्यस्थितताःसदा॥४॥स्वस्वलोकजनैर्जुष्टाःस्वस्ववाहनहेतिभिः ॥ तासांनामानिवक्ष्यामिशृणुत्वंजनमेजय॥५॥ पिंगलाक्षीविशालाक्षीसमृद्धिर्वृद्धिरेवच ॥ श्रद्धास्वाहास्वधाभिख्यामायासंज्ञावसुंधरा ॥ ६ ॥ त्रिलोकधात्रीसावित्रीगायत्रीत्रिदशेश्वरी ॥ सुरूपाबहुरूपा चस्कंदमाताऽच्युतप्रिया ॥ ७ ॥ विमलाचामलातद्वदरुणीपुनरारुणी ॥ प्रकृतिर्विकृतिःसृष्टिःस्थितिःसंहृतिरेवच ॥ ८ ॥

द्वारसे संयुक्त है. हेराजन्! उसी मणिके स्तम्भवाले सैकडों स्तंभ वहां हैं ॥ २ ॥ मध्य भूमिमें अनेक आयुध लिये परम वीरा सुन्दरभूषण पहर चौंसठ कला निवास करती हैं ॥ ३ ॥ उनके प्रत्येक लोकोंमें उन उनके नायक निवास करते हैं,वह चारों ओरसे पद्मरागको घेरे हुए स्थित हैं ॥ ४ ॥ अपने २ लोकके जन अपने वाहन और अस्त्रोंसे सम्पन्न है. हे जन्मेजय ! तुम सुनो मैं उनके नाम कहताहूं ॥ ५ ॥ पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुंधरा ॥ ६ ॥ लोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कंदमाता, अच्युतप्रिया ॥ ७ ॥ विमला, अमला, अरुणी, पुनरारुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति संहृति ॥ ८ ॥

संध्या, माता, सती, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना ॥ ९ ॥ त्रिमुखी, सप्तमुखी, अन्या, सुरासुर विमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी ॥ १० ॥ रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, ॥ ११ ॥ अग्रेभुवनपाला, मदनातुरा,अनंगा, अनंगमथना, अनंगमेखला ॥ १२ ॥ अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी शक्ति, अक्षोभ्या ॥ १३ ॥ सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा, वागीशी, यह ६४ शक्ति हैं ॥ १४ ॥ इनके यह सबका प्रकाशमान उज्वल जिह्वा है अनेक मुखसे अग्नि निर्गत होती है हम सब जल पीजांय, अग्निका संहार करजांय ॥ १५॥ पवनको स्तंभित करदें, सब जगत्‌को भक्षण

संध्यामातासतीहंसीमर्दिकावज्रिकापरा ॥ देवमाताभगवतीदेवकीकमलासना ॥९॥ त्रिमुखीसप्तमुख्यन्यासुरासुरविमर्दिनी ॥ लंबोष्ठीचोर्ध्वकेशीचबहुशीर्षावृकोदरी ॥१०॥ रथरेखाह्वयापश्चाच्छशिरेखातथापरा॥ गगनवेगापवनवेगाचैवततःपरम् ॥ ११ ॥ अग्रेभुवनपालास्यात्तत्पश्चान्मदनातुरा ॥ अनंगानंगमथनातथैवानंगमेखला ॥ १२ ॥ अनंगकुसुमापश्चाद्विश्वरूपासुरादिका ॥ क्षयंकरीभवेच्छक्तिरक्षोभ्याचततःपरम् ॥ १३ ॥ सत्यवादिन्यथप्रोक्ताबहुरूपाशुचिव्रता ॥ उदाराख्याचवागीशीचतुःषष्टिमिताःस्मृताः ॥१४॥ ज्वलज्जिह्वाननाःसर्वावमंत्योवह्निमुल्बणम् ॥ जलंपिबामःसकलंसंहरामोविभावसुम् ॥ १५ ॥ पवनंस्तंभयामोद्यभक्षयामोऽखिलंजगत् ॥ इतिवाचंसंगिरंतेक्रोधसंरक्तलोचनाः ॥ १६ ॥ चापबाणधराःसर्वायुद्धायैवोत्सुकाःसदा ॥ दंष्ट्राकटकटारावैर्बधिरीकृतादिङ्मुखाः ॥ १७ ॥ पिंगोर्ध्वकेश्यःसंप्रोक्ताश्चापबाणधराःसदा ॥ शताक्षौहिणिकासेनाप्येकैकस्याःप्रकीर्तिता ॥१८॥ एकैकशक्तेःसामर्थ्यंलक्षब्रह्मांडनाशने ॥ शताक्षौहिणिकासेनातादृशीनृपसत्तम ॥ १९ ॥ किंनकुर्याज्जगत्यस्मिन्नशक्यंवक्तुमेवतत् ॥ सर्वापियुद्धसामग्रीतस्मिन्सालेस्थितामुने ॥ २० ॥ रथानांगणनानास्तिहयानांकरिणांतथा ॥ शस्त्राणांगणनातद्वद्गणानांगणनातथा ॥ २१ ॥ पद्मरागमयादग्रेगोमेदमणिनिर्मितः ॥ दशयोजनदैर्घ्येणप्राकारोवर्ततेमहान् ॥ २२ ॥

करजांय, क्रोधसे लालनेत्र किये सब कोई यह वचन कहती हैं ॥ १६ ॥ सब चापबाण धारण किये सदा युद्धको उत्सुक रहती हैं उनकी डाढोंके कटकट शब्दसे दिशा शब्दायमान होती हैं ॥ १७ ॥ पीले और ऊर्ध्वकेशवाली धनुष बाण धारे एक एकके निकट सौ सौ अक्षौहिणी सेना है ॥ १८ ॥ एक २ शक्तिमें लाख ब्रह्माण्ड नाश करनेकी सामर्थ्य है. हे राजन्! वैसीही सौ अक्षौहिणीवाली सेना है ॥ १९ ॥ यह इच्छा करनेसे इस जगत्‌में क्या नहीं करसकती सो कौन कह सकता है? हे मुने! उस प्राकारमें सब युद्धकी सामग्री स्थित है॥२०॥ रथ हाथी घोडे शस्त्र और गणोंकी गणना कौन कर सकता है ॥ २१ ॥ पद्मराग परकोटेके

आगे गोमेदका परकोटा दशयोजनमें महान् वर्तमान है ॥ २२ ॥ प्रकाशमान् जपके फूलकेसमान कान्तिमान् है मध्यकी भूमिभी वसीहीहै वहांके वासी और भवन गोमेदसेही कल्पित है ॥ २३ ॥ पक्षी, श्रेष्ठस्तंभ, बावडी, सरोवर, यह कुंकुमकी समान रक्तवर्ण गोमेदसेही कल्पित हैं ॥ २४ ॥ उसके मध्य महादेवीकी बत्तीसशक्ति हैं जो अनेक शस्त्रोंके प्रहारवाली गोमेदजटित भूषण पहरे हैं॥ २५ ॥ यह प्रत्येक लोकनिवासिनी चारों ओरसे घेरे हैं अर्थात् एक २ शक्तिकी दश अक्षौहिणी सेना है, उनसे युक्त एक २ लोक है इसप्रकार ३२ लोक उस परकोटेमें चिन्तामणि घरको चारों ओरसे घेरकर स्थितहैं. हे राजन् ! गोमेदके परकोटेमें पिशाच मुखा ॥ २६ ॥ उस शक्तिलोकनिवासियों द्वारा वे चक्रधारिणी पूजित होती हैं क्रोधसे लालनेत्र किये छेदन भेदन करो दहनकरो ॥ २७ ॥ इसप्रकार वचनको

भास्वज्जपाप्रसूनाभोमध्यभूस्तस्यतादृशी॥गोमेदकल्पितान्येवतद्वासिसदनानिच॥२३॥पक्षिणःस्तंभवर्याश्चवृक्षावाप्यःसरांसिच॥गोमेदकल्पिताएवकुंकुमारुणविग्रहाः॥२४॥तन्मध्यस्थामहादेव्योद्वात्रिंशच्छक्तयःस्मृताः॥नानाशस्त्रप्रहरणागोमेदमणिभूषिताः॥२५॥प्रत्येकलोकवासिन्यःपरिवार्यसमंततः॥गोमेदसालेसन्नद्धापिशाचवदनानृप॥२६॥स्वलोकवासिभिर्नित्यंपूजिताश्चक्रबाहवः॥ क्रोधरक्तेक्षणाभिंधिपचच्छिंधिदहेतिच ॥२७॥ वदंतिसततंवाचंयुद्धोत्सुकहृदंतराः॥एकैकस्यामहाशक्तेर्दशाक्षौहिणिकामता॥२८॥सेनातत्राप्येकशक्तिर्लक्षब्रह्मांडनाशिनी॥ तादृशीनांमहासेनावर्णनीयाकथंनृप॥२९॥ रथानांनैवगणनावाहनानांतथैवच ॥ सर्वयुद्धसमारंभस्तत्रदेव्याविराजते ॥ ३० ॥ तासांनामानिवक्ष्यामिपापनाशकराणिच ॥ विद्याह्रीपुष्टयःप्रज्ञासिनीवालीकुहूस्तथा ॥ ३१ ॥ रुद्रावीर्याप्रभानंदापोषिणीऋद्धिदाशुभा ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकालीकपर्दिनी ॥ ३२॥ विकृतिर्दंडिमुंडिन्यौसेंदुखंडाशिखंडिनी ॥ निशुंभशुंभमथिनीमहिषासुरमर्दिनी ॥ ३३ ॥ इंद्राणीचैवरुद्राणीशंकरार्धशरीरिणी॥ नारीनारायणीचैवत्रिशूलिन्यपिपालिनी ॥ ३४ ॥

युद्धमें उत्कट हो उच्चारण करती हैं, एक २ महाशक्तिके पास दश दश अक्षौहिणी सेना है ॥ २८ ॥ उनमें एक एक शक्ति लाख २ ब्रह्माण्ड नाश करसकती हैं, फिर उस महासेनाके वर्णनकीतो कथाही क्या है ॥ २९ ॥ रथ वाहनकी गणनाही नहीं है वहां देवीके सब युद्धका आरंभ विराजमान है ॥ ३० ॥ पापनाशक उनके नाम कहता हूं सुनो-विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू ॥ ३१ ॥ रुद्रवीर्या, प्रभा, नंदा, पोषिणी, ऋद्धिदा, शुभा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, ॥ ३२ ॥ विकृति, दंडि, मुंडिनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुंभशुंभमथिनी, महिषासुरमर्दिनी ॥ ३३ ॥ इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्धशरीरिणी, नारी, नारायणी,

त्रिशूलिनी, पालिनी ॥ ३४ ॥ अम्बिका, ह्रादिनी यह शक्तियें हैं,जो यह देवी क्रोध करे तो ब्रह्माण्डनाश करदें ॥ ३५ ॥ इनको कभी कहीं पराजय नहीं है. गोमेदपर कोटेके आगे हीरेका प्राकार है ॥ ३६ ॥ यह दशयोजन ऊंचा गोपुरद्वार सम्पन्न है, इसमें शृंखलाबद्ध किवाँड लगे हैं नवीन वृक्षोंसे कान्तिमान् है ॥ ३७ ॥ इसपर कोटेके मध्यकी भूमि हीरेमय है घर गली बडे मार्ग ॥ ३८ ॥ वृक्ष, वेल, तरु और पक्षीभी वैसेही रंगके हैं दीर्घिकासमूह बावडी तालाब कूप है ॥ ३९ ॥ वहां श्रीभुवनेश्वरीकी दासी निवास करती हैं. एक परिचारिकाकी लाख २ दासी सेवा करती हैं ॥ ४० ॥ कोई तालका पंखा कोई प्याला हाथमें लिये कोई बडे गर्वसे ताम्बूलपात्र हाथमें लिये हैं ॥ ४१ ॥ कोई छत्र चामरधारे कोई अनेक वस्त्र और पुष्प कमल धारे हैं ॥ ४२ ॥ कोई अनेक दर्पण लिये कोई कुंकुम

अंबिकाह्रादिनीपश्चादित्येवंशक्तयःस्मृताः ॥ यद्येताःकुपितादेव्यस्तदाब्रह्मांडनाशनम् ॥ ३५ ॥ पराजयोनचैतासांकदाचित्क्वचिदस्तिहि ॥ गोमेदकमयादग्रेसद्वज्रमणिनिर्मितः ॥ ३६ ॥ दशयोजनतुंगोऽसौगोपुरद्वारसंयुतः ॥ कपाटशृंखलाबद्धोनववृक्षसमुज्ज्वलः ॥ ३७ ॥ सालस्तन्मध्यभूम्यादिसर्वंहीरमयंस्मृतम् ॥ गृहाणिवीथयोरथ्यामहामार्गांगणानिच ॥ ३८ ॥ वृक्षालवालतरवःसारंगाअपितादृशाः ॥ दीर्घिकाश्रेणयोवाप्यस्तडागाःकूपसंयुताः ॥ ॥ ३९ ॥ तत्रश्रीभुवनेश्वर्यावसंतिपरिचारिकाः ॥ एकैकालक्षदासीभिःसेवितामदगर्विता ॥ ४० ॥ तालवृंतधराःकाश्चिच्चषकाढ्यकरांबुजाः ॥ काश्चित्तांबूलपात्राणिधारयंत्योऽतिगर्विताः ॥ ४१ ॥ काश्चित्तच्छत्रधारिण्यश्चामराणांविधारिकाः ॥ नानावस्त्रधराःकाश्चित्काश्चित्पुष्पकरांबुजाः ॥ ४२ ॥ नानादर्शकराःकाश्चित्काश्चित्कुंकुमलेपनम् ॥ धारयंत्यःकज्जलंचसिंदूरचषकंपराः ॥ ४३ ॥ काश्चिच्चित्रकनिर्मात्र्यःपादसंवाहनेरताः ॥ काश्चित्तुभूषाकारिण्योनानाभूषाधराःपराः ॥ ४४ ॥ पुष्पभूषणनिर्मात्र्यःपुष्पशृंगारकारिकाः ॥ नानाविलासचतुराबह्व्यएवंविधाःपराः ॥ ४५ ॥ निबद्धपरिधानीयायुवत्यःसकलाअपि ॥ देवीकृपालेशवशात्तुच्छीकृतजगत्त्रयाः ॥ ४६ ॥ एतादूत्यःस्मृतादेव्यःशृंगारमदगर्विताः ॥ तासांनामानिवक्ष्यामिशृणुमेनृपसत्तम ॥ ॥ ४७ ॥ अनंगरूपाप्रथमाप्यनंगमदनापरा ॥ तृतीयातुततःप्रोक्तासुंदरीमदनातुरा ॥ ४८ ॥ ततोभुवनवेगास्यात्तथाभुवनपालिका ॥ स्यात्सर्वशिशिरानंगवेदनानंगमेखला ॥ ४९ ॥ विद्युद्दामसमानांग्यःक्वणत्कांचीगुणान्विताः ॥ रणन्मंजीरचरणाबहिरंतरितस्ततः ॥ ५० ॥

लेपन लगाये कोई कज्जल सिन्दूर और पानपात्र लिये हैं ॥ ४३ ॥ कोई चित्र बनानेमें तत्पर कोई पादसंवाहनमें रत कोई गहने बनानेवाली कोई अनेक भूषण धारे ॥ ४४ ॥ कोई पुष्पोंके भूषणबनानेवाली कोई फूलोंका शृंगार करनेवाली इसप्रकार अनेक विलासोंमें चतुर अनेक हैं ॥ ४५ ॥ सब कमरकसे सबही युवती हैं, देवीकी कृपादृष्टिके कारण तीनों लोकको तुच्छ मानती हैं ॥ ४६ ॥ जो शृंगार मदसे गर्वित देवीकी दूती हैं, हे राजन्! मैंउनके नाम कहता हूं सुनो ॥ ४७ ॥ अनंगरूपा, अनंगमदना, सुन्दरी, मदनातुरा ॥ ४८ ॥ भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनंगवेदना, अनंगमेखला ॥ ४९ ॥ यह बिजलीकी समान अंगवाली शब्दायमान् मेखलावाली चरणोंके

मंजीरकी ध्वनिवाली बाहर भीतर इधर उधर चलती हुई ॥ ५० ॥ बिजलीकी समान सब इधर उधर धावमान होती शोभा पाती हैं यह वेत्रधारिणी सब कार्योंमें कुशल हैं ॥ ५१ ॥ प्राकारकी आठों दिशाओंमें प्राकारके बाहर अनेक वाहन और शस्त्रसहित इनके महल विराजते हैं ॥ ५२ ॥ वज्रके परकोटेके आगे वैडूर्य मणिका परकोटा है यह दशयोजन ऊंचा गोपुर और द्वारसे भूषित है ॥ ५३ ॥ वहांकी सब भूमि और घर वैडूर्यमय हैं गली छोटी बडी और महामार्ग सब वैडूर्यके निर्मित हैं ॥ ५४ ॥ बावडी कूप सरोवर नदियोंके किनारे तथा बालुका वैडूर्य मणिकी बनी है ॥ ५५ ॥ उसकी आठों दिशाओंमें सब ओर ब्राह्मी आदिका

धावमानास्तुशोभंतेसर्वाविद्युल्लतोपमाः ॥ कुशलाःसर्वकार्येषुवेत्रहस्ताःसमंततः ॥ ५१ ॥ अष्टदिक्षुतथैतासांप्राकाराद्बहिरेवच ॥ सदनानिविराजंतेनाना वाहनहेतिभिः ॥ ५२ ॥ वज्रसालादग्रभागेसालोवैडूर्यनिर्मितः ॥ दशयोजनतुंगोऽसौगोपुरद्वारभूषितः ॥ ५३ ॥ वैडूर्यभूमिःसर्वापिगृहाणिविविधानिच ॥ वीथ्योरथ्यामहामार्गाःसर्वेवैडूर्यनिर्मिताः ॥ ५४ ॥ वापीकूपतडागाश्चस्रवंतीनांतटानिच ॥ वालुकाचैवसर्वाऽपिवैडूर्यमणिनिर्मिता ॥५५॥ तत्राष्टदिक्षुपरि तोब्राह्म्यादीनांचमंडलम् ॥ निजैर्गणैःपरिवृतंभ्राजतेनृपसत्तम ॥५६॥ प्रतिब्रह्मांडमातॄणांताःसमष्टयईरिताः ॥ ब्राह्मीमाहेश्वरीचैवकौमारीवैष्णवीतथा॥ ॥ ५७ ॥ वाराहीचतथेंद्राणीचामुंडाःसप्तमातरः ॥ अष्टमीतुमहालक्ष्मीर्नाम्नाप्रोक्तास्तुमातरः ॥५८॥ ब्रह्मरुद्रादिदेवानांसमाकारास्तुताःस्मृताः॥जगत्क ल्याणकारिण्यःस्वस्वसेनासमावृताः ॥५९॥ तत्सालस्यचतुर्द्वार्षुवाहनानिमहेशितुः ॥ सज्जानिनृपतेसंतिसालंकाराणिनित्यशः ॥६०॥ दंतिनःकोटिशो वाहाःकोटिशःशिबिकास्तथा ॥ हंसाःसिंहाश्चगरुडामयूरावृषभास्तथा ॥ ६१ ॥ तैर्युक्ताःस्यंदनास्तद्वत्कोटिशोनृपनंदन ॥ पार्ष्णिग्राहसमायुक्ताध्वजै राकाशचुंबिनः ॥ ६२ ॥

मंडल है. हे राजन्! यह अपने गणोंके सहित शोभित होती हैं ॥ ५६ ॥ यह प्रत्येकब्रह्माण्डकी माताओंकी समष्टिरूप हैं. ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ॥ ५७ ॥ वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, यह सात मातायें हैं आठवीं महालक्ष्मी नामक माता है ॥५८॥ यह ब्रह्मा रुद्रादि देवताओंके समान आकारवाली हैं यह जगत्‌की कल्याण कारिणी अपनी २ सेनाके सहित हैं ॥ ५९ ॥ हे राजन्! इस परकोटेके चारों द्वारमें भवानीके अलंकार धारण किये वाहन सदा शोभा पाते हैं ॥ ६० ॥ कोटिशः हाथी घोडे पालकी हंस सिंह गरुड मयूर वृषभ ॥ ६१ ॥ हे राजन्! इनके सहित कोटिशः रथ पार्ष्णिग्राहसे युक्तहैं जिनकी ध्वजायें आकाशचुम्बन करती हैं ॥६२॥

अनेक चिह्नोंसे युक्त कोटिशः विमान अनेकबाजे और महाध्वजासे सम्पन्न हैं ॥ ६३ ॥ वैडूर्यप्राकारसे आगे दशयोजन ऊंचा इन्द्रनीलमणिका परकोटा है ॥ ६४ ॥ उसके मध्यकी पृथ्वी छोटी बडी गली महामार्ग बावडी कूप सरोवर सब इसीमणिकेबने हैं ॥ ६५ ॥ उसमें कईयोजनके विस्तारमें एक कमल है जिसकी सोलह कली सुदर्शन चक्रके समान प्रकाशित हैं ॥ ६६ ॥ वहां सोलह शक्तियोंके अनेक प्रकारके स्थान हैं, वह सब सामग्रीसे युक्त वहां निवास करती हैं ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! उनके नाम कहता हूं सुनो कराली, विकराली, उमा, सरस्वती ॥ ६८ ॥ श्री दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा; मति, कांति, आर्या यह सोलह शक्ति

कोटिशस्तुविमानानिनानाचिह्नान्वितानिच ॥ नानावादित्रयुक्तानिमहाध्वजयुतानिच ॥ ६३ ॥ वैडूर्यमणिसालस्याप्यग्रेसालःपरःस्मृतः ॥ दशयोजनतुंगोऽसाविंद्रनीलाश्मनिर्मितः ॥ ६४ ॥ तन्मध्यभूस्तथावीथ्योमहामार्गागृहाणिच ॥ वापीकूपतडागाश्चसर्वेतन्मणिनिर्मिताः ॥ ६५ ॥ तत्रपद्मंतु संप्रोक्तंबहुयोजनविस्तृतम् ॥ षोडशारंदीप्यमानंसुदर्शनमिवापरम् ॥६६॥तत्रषोडशशक्तीनांस्थानानिविविधानिच॥सर्वोपस्करयुक्तानिसमृद्धानिवसंति हि ॥६७॥तासांनामानिवक्ष्यामिशृणुमेनृपसत्तम ॥ करालीविकरालीचतथोमाचसरस्वती ॥६८॥ श्रीदुर्गोषातथालक्ष्मीःश्रुतिश्चैवस्मृतिर्धृतिः॥श्रद्धामेधामतिःकांतिरार्याषोडशशक्तयः॥६९॥नीलजीमूतसंकाशाःकरवालकरांबुजाः॥ समाःखेटकधारिण्योयुद्धोपक्रांतमानसाः ॥७०॥ सेनान्यःसकलाएताः श्रीदेव्याजगदीशितुः॥प्रतिब्रह्मांडसंस्थानांशक्तीनांनायिकाःस्मृताः॥७१॥ब्रह्मांडक्षोभकारिण्योदेवीशक्त्युपबृंहिताः ॥ नानारथसमारूढानानाशक्तिभिरन्विताः ॥ ७२ ॥ एतत्पराक्रमंवक्तुंसहस्रास्योऽपिनक्षमः ॥ इंद्रनीलमहासालादग्रेतुबहुविस्तृतः ॥ ७३ ॥ मुक्ताप्राकारउदितोदशयोजनदैर्घ्यवान् ॥ मध्यभूःपूर्ववत्प्रोक्तातन्मध्येऽष्टदलांबुजम् ॥ ७४ ॥

हैं ॥ ६९ ॥ यह नीलमेघके समान वर्णवाली हाथमें तलवार लिये, समा खेटक धारिणी युद्धमें मन लगाये ॥ ७० ॥ श्रीजगदीश्वरी देवीकी यह सब सेनानायका हैं यह प्रति ब्रह्माण्डमें स्थित शक्तियोंकी अधीश्वरी हैं ॥ ७१ ॥ यह ब्रह्माण्डकाक्षुभित करनेवाली देवीकी शक्तिसे सम्पन्न हैं अनेक रथोंमें आरूढ अनेक शक्तियोंसे युक्त हैं ॥७२॥ इनका पराक्रम कहनेको शेषभी समर्थ नहीं है इन्द्रनील प्राकारके आगे बडे विस्तारमें ॥ ७३ ॥ दशयोजन दीर्घमोतियोंका परकोटा है मध्यकी भूमि

भी मोतियोंकी है उसके आगे बडा आठदलका कमल है ॥ ७४ ॥ जो मुक्तामणिके समूहोंसे आकीर्ण बहुत केशरवाला है वहां देवीके समान आकारवाली देवीकेसे आयुध धारे ॥ ७५ ॥ जगत्‌की वार्ताको प्रबोध करनेवाली आठ मैत्रकर्त्री हैं वह देवीके समान भोगवाली उसकी चेष्टाओंकी ज्ञाता पंडिता है ॥ ॥ ७६ ॥ सब कार्यमें कुशल स्वामिकार्यमें परायण है वे देवीका अभिप्रायजाननेवाली चतुर अति सुन्दरी हैं ॥ ७७ ॥ प्रतिब्रह्माण्डवर्ती अनेक शक्तियोंसे युक्त हैं, वह अपनी ज्ञानशक्तिसे प्राणियोंके समाचारको जानती हैं ॥ ७८ ॥ हेराजन् ! सुनो मैं उनके नाम कहता हूं-अनंगकुसुमा,अनंगकुसुमातुरा ॥ ७९ ॥ अनंगमदना,

मुक्तामणिगणाकीर्णविस्तृतंतुसकेसरम् ॥ तत्रदेवीसमाकारादेव्यायुधधराःसदा ॥ ७५ ॥ संप्रोक्ताअष्टमंत्रिण्योजगद्वार्ताप्रबोधकाः ॥ देवीसमानभोगास्ताइंगितज्ञास्तुपंडिताः ॥ ७६ ॥ कुशलाःसर्वकार्येषुस्वामिकार्यपरायणाः ॥ देव्यभिप्रायबोध्यस्ताश्चतुराअतिसुंदराः ॥ ७७ ॥ नानाशक्तिसमायुक्ताःप्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥ प्राणिनांताःसमाचारंज्ञानशक्त्याविदंतिच ॥ ७८ ॥ तासांनामानिवक्ष्यामिमत्तःशृणुनृपोत्तम ॥ अनंगकुसुमाप्रोक्ताप्यनंगकुसुमातुरा ॥ ७९ ॥ अनंगमदनातद्वदनंगमदनातुरा ॥ भुवनपालागगनवेगाचैवततःपरम् ॥ ८० ॥ शशिरेखाचगगनरेखाचैवततःपरम् ॥ पाशांकुशवराभीतिधराअरुणविग्रहाः ॥ ८१ ॥ विश्वसंबंधिनींवार्तांबोधयंतिप्रतिक्षणम् ॥ मुक्तासालादग्रभागेमहामारकतोपरः ॥ ८२ ॥ सालोत्तमःसमुद्दिष्टोदशयोजनदैर्घ्यवान् ॥ नानासौभाग्यसंयुक्तोनानाभोगसमन्वितः ॥८३॥ मध्यभूस्तादृशीप्रोक्तासदनानितथैवच ॥ षट्कोणमत्रविस्तीर्णकोणस्थादेवताःशृणु ॥ ८४ ॥ पूर्वकोणेचतुर्वक्त्रोगायत्रीसहितोविधिः ॥ कुंडिकाक्षगुणाभीतिदंडायुधधरःपरः ॥ ८५ ॥ तदायुधधरादेवीगायत्रीपरदेवता ॥ वेदाःसर्वेमूर्तिमंतःशास्त्राणिविविधानिच ॥ ८६ ॥

अनंगमदनातुरा, भुवनपाला, गगनवेगा ॥ ८० ॥ शशिरेखा, गगनरेखा, यह सब पाश अंकुश वर अभयधारे अरुणशरीर हैं ॥ ८१ ॥ प्रतिक्षण संसार संबंधिनी वार्ताको बोधन करती हैं मुक्ताप्राकारके आगे महामरकत मणिका परकोटा है ॥ ८२ ॥ वह परमोत्तम दशयोजन दीर्घ है अनेक सौभाग्य और भोगसे युक्त है ॥ ८३ ॥ मध्यकी भूमि और घरभी महामरकतमणिके हैं इसमें षट्कोणकी विस्तीर्ण रचना है उसके कोणमें स्थित देवता सुनो ॥ ८४ ॥ पूर्वकोणमें गायत्रीके सहित चतुर्मुख ब्रह्महै जो कमंडलु अक्षमाला अक्षसूत्र अभय और दंड आयुध धारे हैं ॥८५॥ वही आयुध धारे परदेवता गायत्री है मूर्तिमान् सबवेद अनेक शास्त्र ॥ ८६ ॥

स्मृति और पुराण सब मूर्तिमान् हैं, जो ब्रह्मविग्रह, ब्रह्मावतार गायत्रीविग्रह ॥ ८७ ॥ व्याहृतियोंके विग्रह हैं, वे सदा वहां निवास करते हैं नैर्ऋत्यकोणमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, हाथमें लिये ॥ ८८ ॥ सावित्री और उसी प्रकार महाविष्णु वर्तते हैं. जो विष्णुके मत्स्य कूर्मादि विग्रह हैं ॥ ८९ ॥ और जो सावित्रीके विग्रह हैं वे सब वहां निवास करते हैं. वायुकोणमें परशु अक्षमाला अभयवरसे युक्त ॥ ९० ॥ महारुद्र वर्तते हैं वैसेही उनके साथ सरस्वती है जो दक्षिणामूर्ति आदि रुद्रके विग्रह हैं ॥ ९१ ॥ तथा जो गौरीभेद हैं वे सब वहां निवास करते हैं चौंसठ आगम तथा जो दूसरे आगम हैं ॥ ९२ ॥ वे सब

स्मृतयश्चपुराणानिमूर्तिमंतिवसंतिहि ॥ येब्रह्मविग्रहाःसंतिगायत्रीविग्रहाश्चये ॥८७॥ व्याहृतीनांविग्रहाश्चतेनित्यंतत्रसंतिहि ॥ रक्षःकोणेशंखचक्रगदांबुजकरांबुजा ॥८८॥ सावित्रीवर्ततेतत्रमहाविष्णुश्चतादृशः ॥ येविष्णुविग्रहाःसंतिमत्स्यकूर्मादयोऽखिलाः ॥८९॥ सावित्रीविग्रहायेचतेसर्वेतत्रसंतिहि॥ वायुकोणेपरश्वक्षमालाभयवरान्वितः॥ ९० ॥ महारुद्रोवर्ततेऽत्रसरस्वत्यपितादृशी ॥ येयेतुरुद्रभेदाःस्युर्दक्षिणास्यादयोनृप ॥ ९१ ॥ गौरीभेदाश्चये सर्वेतेतत्रनिवसंतिहि ॥ चतुःषष्ट्यागमायेचयेचान्येप्यागमाःस्मृताः ॥ ९२ ॥ तेसर्वेमूर्तिमंतश्चतत्रैवनिवसंतिहि ॥ अग्निकोणेरत्नकुंभंतथामणिकरंडकम् ॥ ९३ ॥ दधानोनिजहस्ताभ्यांकुबेरोधनदायकः ॥ नानावीथीसमायुक्तोमहालक्ष्मीसमन्वितः ॥ ९४ ॥ देव्यानिधिपतिस्त्वास्तेस्वगुणैःपरिवेष्टितः ॥ वारुणेतुमहाकोणेमदनोरतिसंयुतः ॥९५॥ पाशांकुशधनुर्बाणधरोनित्यंविराजते ॥ शृंगारामूर्तिमंतस्तुतत्रसन्निहिताःसदा ॥ ९६ ॥ ईशानकोणेविघ्नेशोनित्यंपुष्टिसमन्वितः॥ पाशांकुशधरोवीरोविघ्नहर्ताविराजते ॥ ९७ ॥ विभूतयोगणेशस्ययायाःसंतिनृपोत्तम ॥ ताःसर्वानिवसंत्यत्रमहैश्वर्यसमन्विताः ॥९८॥ प्रतिब्रह्मांडसंस्थानांब्रह्मादीनांसमष्टयः ॥ एतेब्रह्मादयःप्रोक्ताःसेवंतेजगदीश्वरीम् ॥ ९९ ॥

मूर्तिमान् होकर वहां निवास करते हैं. अग्निकोणमें रत्नकुंड तथा मणिकरंडक ॥ ९३ ॥ अपने हाथमें धारण किये धननायक कुबेर अनेक वीथी और महालक्ष्मीके सहित ॥ ९४ ॥ अपने गुणोंसे युक्त देवीका निधिपति स्थित है. पश्चिमके महाकोणमें कामदेव रतिके सहित ॥ ९५ ॥ पाश अंकुश धनुर्बाण लिये नित्य विराजमान् होता है सब शृंगार मूर्तिमान् होकर वहां स्थित हैं ॥ ९६ ॥ ईशान कोणमें विघ्नेश नित्य पुष्टिसहित पाश अंकुश धारे वीरवेष विघ्नहर्ता विराजमान् होते हैं ॥ ९७॥ हे राजन् ! जो जो गणेशकी विभूति हैं वह महाऐश्वर्यसहित वहां निवास करती हैं ॥ ९८ ॥ प्रतिब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मादिकी समष्टि हैं वे सब

ब्रह्मादिक परमेश्वरीका सेवन करते हैं ॥ ९९ ॥ महामरकतमणिके परकोटेके आगे शतयोजनका दीर्घ कुंकुमकी समान रक्तवर्ण मूँगोंका परकोटा है ॥ १०० ॥ उसके मध्यकी भूमि तथा स्थान भी मूँगोंकेहैं उसके मध्यमें पाँच भूतोंकी पांच स्वामिनी हैं ॥ १ ॥ हल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका, महोच्छुष्मा यह पांच भूतोंकी समान कांतिवाली हैं ॥ २ ॥ पाश अंकुश वर अभय धारण किये मितभूषण पहरे देवीके समान वेष धारे नवयौवनसे गर्वित वहां निवास करती हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! प्रवालपरकोटेके आगे बहुत योजनके विस्तारमें नवरत्नका परकोटा है ॥ ४ ॥ वहां पूर्वआम्नाय पश्चिमआम्नाय दक्षिणआम्नाय उत्तर ऊर्ध्व आम्नाय देवियोंके बहुत स्थान हैं वहांके तडाग सरोवरभी नवरत्नोंकेही हैं ॥ ५ ॥ श्रीदेवीके अवतार पाशांकुशेश्वरी भुवनेश्वरी भैरवी, कपालभुवनेश्वरी, अंकुशभुवनेश्वरी प्रसादभुवनेश्वरी क्रोधभुवनेश्वरी, त्रिपुटा, अश्वारूढा, नित्य

महामारकतस्याग्रेशतयोजनदैर्घ्यवान् ॥ प्रवालसालोस्त्यपरःकुंकुमारुणविग्रहः ॥ १०० ॥ मध्यभूस्तादृशीप्रोक्तासदनानिचपूर्ववत् ॥ तन्मध्येपंचभूतानांस्वामिन्यःपंचसंतिच ॥ १ ॥ हृल्लेखागगनारक्ताचतुर्थीतुकरालिका ॥ महोच्छुष्मापंचमीचपंचभूतसमप्रभाः ॥ २ ॥ पाशांकुशवराभीतिधारिण्योमितभूषणाः ॥ देवीसमानवेषाढ्यानवयौवनगर्विताः ॥३॥ प्रवालसालादग्रेतुनवरत्नविनिर्मितः ॥ बहुयोजनविस्तीर्णोमहासालोऽस्तिभूमिप ॥४॥ तत्रचाम्नायदेवीनांसदनानिबहून्यपि ॥ नवरत्नमयान्येवतडागाश्चसरांसिच ॥ ५ ॥ श्रीदेव्यायेऽवताराःस्युस्तेतत्रनिवसंतिहि ॥ महाविद्यामहाभेदाःसंतितत्रैवभूमिप ॥६॥ निजावरणदेवीभिर्निजभूषणवाहनैः ॥ सर्वदेव्योविराजंतेकोटिसूर्यसमप्रभाः ॥ ७ ॥ सप्तकोटिमहामंत्रदेवताःसंतितत्रहि ॥ नवरत्नमयादग्रेचिंतामणिगृहंमहत् ॥८॥ तत्रत्यंवस्तुमात्रंतुचिंतामणिविनिर्मितम् ॥ सूर्योद्गारोपलैस्तद्वच्चंद्रोद्गारोपलैस्तथा ॥९॥ विद्युत्प्रभोपलैःस्तंभाःकल्पितास्तुसहस्रशः ॥ येषांप्रभाभिरंतस्थंवस्तुकिंचिन्नदृश्यते ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

व्यासउवाच ॥ तदेवदेवीसदनंमध्यभागेविराजते ॥ सहस्रस्तंभसंयुक्ताश्चत्वारस्तेषुमंडपाः ॥ १ ॥

क्लिन्ना, अन्नपूर्णा त्वरिता आदि वहां निवास करते हैं ॥ ६ ॥ कान्ती तारा षोडशी भैरवी मातंगी आदि दशों महाविद्या वहां निवास करती हैं. अपने आवरणकी देवियों द्वारा अपने भूषण वाहनोंके सहित कोटिसूर्यकी कान्तिवाली सब देवी विराजमान होती हैं ॥ ७ ॥ वहीं सात कोटि महा मंत्रोंके देवता निवास करते हैं नवरत्नमय स्थानोंसे आगे चिन्तामणीर्निर्मित बडा घर है ॥ ८ ॥ वहांकी सम्पूर्ण वस्तु चिन्तामणिकी बनी हुई हैं सूर्यके समान कान्ति फैलानेवाले चन्द्रसमान कान्ति फैलानेवाले ॥ ९ ॥ तथा विद्युत्समान कान्तिप्रकाश करनेवाले रत्नोंके वहां सहस्रों स्तंभ हैं जिनकी कान्तिसे वहांकी कोई वस्तु दिखाई नहीं देती ॥ ११० ॥ ॥ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ छ ॥ व्यासजी बोले यही मध्यभागमें देवीका स्थान विराजमान है जो सहस्र स्तंभ

संयुक्त है उसमें चार मंडप हैं ॥ १ ॥ एक शृंगारमंडप, दूसरा मुक्तिमंडप, तीसरा ज्ञानमंडप ॥ २ ॥ चौथा एकान्तमंडप है यह अनेक वितानोंसे संयुक्त और अनेक धूपोंसे धूपित है ॥ ३ ॥ यह मंडप कोटिसूर्यके समान कांतिमान है उन मंडपोंके सब ओर केसरकी वाटी ॥ ४ ॥ मल्लिका कुंद यह तीन वाटी लगी हैं जहां असंख्यात गंधमृगमदसे पूरित तथा मदस्रवन करते विचरते हैं ॥ ५ ॥ आगे उनके महापद्मोंकी अटवी, रत्नसोपाननिर्मित विराजमान हैं जो सुधारससे पूर्ण हैं जिनपर मधुके लोभसे भौंरे गुंजारते हैं ॥ ६ ॥ हंस कारंडवोंसे युक्त किनारे सुगंधसे पूर्ण हैं, उन वाटिकाओंकी गंधसे मणिद्वीप सुवासित रहता है ॥ ७ ॥ शृंगारमंडपमें देवियें सुन्दर स्वरसे गानकरती हैं उस मंडपके मध्य देवी सिंहासनपर स्थित है पूर्वोक्त देवता सभासद हैं ॥ ८ ॥ मुक्तिमंडपमें स्थितहो सब ब्रह्माण्डके भक्तोंको मुक्त करती है तीसरेमंडपमें

शृंगारमंडपश्चैकोमुक्तिमंडपएवच ॥ ज्ञानमंडपसंज्ञस्तुतृतीयःपरिकीर्तितः ॥ २ ॥ एकांतमंडपश्चैवचतुर्थःपरिकीर्तितः ॥ नानावितानसंयुक्तानानाधूपैस्तुधूपिताः ॥ ३ ॥ कोटिसूर्यसमाःकांत्याभ्राजंतेमंडपाःशुभाः ॥ तन्मंडपानांपरितःकाश्मीरवनिकास्मृता ॥ ४ ॥ मल्लिकाकुंदवनिकायत्रपुष्कलकाःस्थिताः ॥ असंख्यातामृगमदैःपूरितास्तत्स्रवानृप ॥ ५ ॥ महापद्माटवीतद्वद्रत्नसोपाननिर्मिता ॥ सुधारसेनसंपूर्णागुंजन्मत्तमधुव्रता ॥ ६ ॥ हंसकारंडवाकीर्णगंधपूरितदिक्तटा ॥ वनिकानांसुगंधैस्तुमणिद्वीपंसुवासितम् ॥ ७ ॥ शृंगारमंडपेदेव्योगायंतिविविधैःस्वरैः ॥ सभासदोदेववशामध्येश्रीजगदंबिका ॥ ८ ॥ मुक्तिमंडपमध्येतुमोचयत्यनिशंशिवा ॥ ज्ञानोपदेशंकुरुतेतृतीयेनृपमंडपे ॥ ९ ॥ चतुर्थमंडपेचैवजगद्रक्षाविचिंतनम् ॥ मंत्रिणीसहितानित्यंकरोतिजगदंबिका ॥ १० ॥ चिंतामणिगृहेराजञ्छक्तितत्त्वात्मकैःपरैः ॥ सोपानैर्दशभिर्युक्तोमंचकोप्यधिराजते ॥ ११ ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चईश्वरश्चसदाशिवः ॥ एतेमंचखुराःप्रोक्ताःफलकस्तुसदाशिवः ॥ १२ ॥ तस्योपरिमहादेवोभुवनेशोविराजते ॥ यादेवीनिजलीलार्थंद्विधाभूताबभूवह ॥ १३ ॥

भक्तोंके अपने भक्तोंको ज्ञान उपदेश करती है जो निजब्रह्मरूप विषयक ज्ञान है ॥ ९ ॥ चौथेमंडपमें स्थितहो मंत्रिणियोंके सहित जगत् रक्षाका विचार करती है ॥ १० ॥ हे राजन् ! चिन्तामणिमन्दिरमें शक्तितत्वात्मक दशसोपानोंसे युक्त एक सिंहासन है, निवृत्ति आदि पांच कला, बिन्दुकला, नादशक्ति, सदापूर्वा शिवप्रकृति इनही मूल प्रकृति भुवनेश्वरीके दशतत्वोंसे दशसोपानयुक्त मंच निर्मित है ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, यह चार इस मंचके पायेस्वरूप हैं और सदाशिव फलकस्थानी हैं ॥ १२ ॥ इसके ऊपर भुवनेश महादेव विराजते हैं जो भुवनेश्वरी अपनी लीलाके निमित्त द्विधाभूत होती है, उसका दक्षिणभाग यह भुवनेश्वर है

एकही साम्यावस्थामें स्थित मायाशवलब्रह्मरूपिणी भगवती भुवनेश्वरी भुवनेश्वररूपसे प्रादुर्भूत हुई है ॥ १३ ॥ सृष्टिकी आदिमें होकर यह महेश्वर उसका अर्धांग है कन्दर्पदर्पके नाशनेमें उद्यत कोटि कन्दर्पके समान सुन्दर ॥ १४ ॥ पंचमुख तीननेत्र मणिभूषणोंसे भूषित हरिण अभय परशु वर अपनी भुजाओंमें धारणकिये ॥ १५॥ षोडश वर्षकी अवस्थावाले वह सर्वेश्वरदेव हैं कोटि सूर्यके समान कान्तिमान् कोटिचन्द्रके समान शीतल ॥ १६॥ शुद्ध स्फटिक मणिके समान कान्तिमान् तीननेत्र शीतल द्युति जिनके बाईं ओर श्रीभुवनेश्वरी स्थित हैं ॥ १७ ॥ नवरत्न समूहोंसे व्याप्त कांचीमेखलासे विराजित तपे सुवर्णसे बने और जडे वैदूर्य अंगदकी भूषणवाली ॥ १८ ॥ सुवर्णका दीप्यमान श्रीचक्र तदाकारके जो ताटंक कर्णभूषणोंसे जिनका मुख सुन्दर होरहा है और ललाटकी कांतिके ऐश्वर्यसे जिसने अर्धचन्द्रको जय करलिया ॥ १९॥

सृष्ट्यादौतुसएवायंतदर्धांगोमहेश्वरः ॥ कंदर्पदर्पनाशोद्यत्कोटिकंदर्पसुंदरः ॥ १४ ॥ पंचवक्त्रस्त्रिनेत्रश्चमणिभूषणभूषितः ॥ हरिणाभीतिपरशून्वरंचनिज बाहुभिः ॥ १५ ॥ दधानःषोडशाब्दोऽसौदेवःसर्वेश्वरोमहान् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चंद्रकोटिसुशीतलः ॥ १६ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशस्त्रिनेत्रःशीतलद्यु तिः ॥ वामांकेसन्निषण्णाऽस्यदेवीश्रीभुवनेश्वरी ॥ १७ ॥ नवरत्नगणाकीर्णकांचीदामविराजिता ॥ तप्तकांचनसन्नद्धवैदूर्यांगदभूषणा ॥ १८ ॥ कनच्छ्री चक्रताटंकविटंकवदनांबुजा ॥ ललाटकांतिविभवविजितार्धसुधाकरा ॥१९॥ बिंबकांतितिरस्कारिरदच्छदविराजिता ॥ लसत्कुंकुमकस्तूरीतिलकोद्भा सितानना ॥२०॥ दिव्यचूडामणिस्फारचंचच्चंद्रकसूर्यका ॥ उद्यत्कविसमस्वच्छनासाभरणभासुरा ॥२१॥चिंताकलंबितस्वच्छमुक्तागुच्छविराजिता॥ पटीरपंककर्पूरकुंकुमालंकृतस्तनी ॥ २२ ॥ विचित्रविविधाकल्पाकंबुसंकाशकंधरा ॥ दाडिमीफलबीजाभदंतपंक्तिविराजिता ॥ २३ ॥ अनर्घ्यरत्नघटि तमुकुटांचितमस्तका ॥ मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखांबुजा ॥ २४ ॥

बिम्बकांतिको तिरस्कार करनेवाले जो ओष्ठपुट तिससे विराजमान श्रेष्ठ कुंकुम कस्तूरीके तिलकसे प्रकाशमान् मुखवाली ॥ २० ॥ दिव्य चूडामणि शिरोभूषणमें चन्द्र सूर्यनामक भूषणोंसे सम्पन्न उदित शुक्रके समान नासाभूषणसे संयुक्त ॥ २१ ॥ चिन्तानामक कंठभूषणमें लम्बायमान स्वच्छ मोतियोंके गुच्छेसे विराजित पटीरपंक कर्पूर और कुंकुमसे अलंकृत स्तनवाली ॥ २२ ॥ विचित्र अनेक प्रकारके कल्पवाली, शंखके समान गर्दन दाडिमीफलके बीजकी समान, कान्तिमान् दांतोंकी पंक्तिसे विराजित ॥ २३ ॥ बडे रत्नोंके मूल्यसे बने मुकुटसे जिनका मस्तक शोभित है मत्तभ्रमरमालासे जिनके मुखकी अलकावली शोभित होरही है ॥ २४ ॥

श्यामतासे निर्मुक्त शरच्चन्द्रके कान्तिकी समान मुखवाली गंगाके आवर्तकी समान गंभीर नाभिसे शोभित ॥ २५ ॥ माणिक्य जड़ी अँगूठीसे शोभायमान, कमलदलकी समान आकारवाले तीन नेत्रोंसे सुन्दर ॥ २६ ॥ शाणपर धरे महाराग पद्मरागमणिके समान उज्ज्वल कांतिवाली रत्नोंकी किंकिणी और रत्नोंके कंकणसे शोभित ॥ २७ ॥ मणि मोतियोंकी मालामें विद्यमान अमूल्य पदक पंक्तिसे शोभित और रत्नांगुलियों अर्थात् मुद्रिकाके रत्नोंकी निकली कान्तिसे जिनके कर शोभित होरहे हैं ॥ ॥ २८ ॥ कंचुकीमें गुम्फित् अनेक रत्नोंकी विस्तृत कांतिसे शोभित, मल्लिकाकी सुगन्धिवाला जो धम्मिल्ल (केशपाश) उसमें स्थित मल्लिका मालापर भ्रमण करते हुए भ्रमरसमूहसे युक्त ॥ २९ ॥ गोल निविड़ 'सघन' ऊंचे कुचभारसे आलसको प्राप्त शिवा भवानी वर, पाश, अंकुश, अभयसे जिनकी चारों भुजा शोभायमान हैं ॥

कलंककाइर्श्यनिर्मुक्तशरच्चंद्रनिभानना ॥ जाह्नवीसलिलावर्तशोभिनाभिविभूषिता ॥२५॥ माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकांगुलिभूषिता ॥ पुंडरीकदलाकारनयनत्रयसुंदरी ॥ २६ ॥ कल्पिताच्छमहारागपद्मरागोज्ज्वलप्रभा ॥ रत्नकिंकिणिकायुक्तरत्नकंकणशोभिता ॥ २७॥ मणिमुक्तासरापारलसत्पदकसंततिः ॥ रत्नांगुलिप्रविततप्रभाजाललसत्करा ॥२८॥ कंचुकीगुंफितापारनानारत्नततिद्युतिः ॥ मल्लिकामोदिधम्मिल्लमल्लिकालिसरावृता ॥ २९ ॥ सुवृत्तनिविडोत्तुंगकुचभारालसाशिवा ॥ वरपाशांकुशाभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ ३० ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्यासुकुमारांगवल्लरी ॥ सौंदर्यधारासर्वस्वानिर्व्याजकरुणामयी ॥ ३१ ॥ निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी ॥ कोटिकोटिरवींदूनांकांतियाबिभ्रतीपरा ॥ ३२ ॥ नानासखीभिर्दासीभिस्तथादेवांगनादिभिः ॥ सर्वाभिर्देवताभिस्तुसमंतात्परिवेष्टिता ॥३३॥ इच्छाशक्त्याज्ञानशक्त्याक्रियाशक्त्यासमन्विता ॥ लज्जातुष्टिस्तथापुष्टिःकीर्तिःकांतिःक्षमादया ॥ ३४ ॥ बुद्धिर्मेधास्मृतिर्लक्ष्मीर्मूर्तिमत्योंगनाःस्मृताः ॥ जयाचविजयाचैवाप्यजिताचापराजिता ॥ ३५ ॥ नित्याविलासिनीदोग्ध्रीत्वघोरामंगलानवा ॥ पीठशक्तयएतास्तुसेवंतेयांपरांबिकाम् ॥ ३६ ॥

॥ ३० ॥ सब शृंगार वेषसे सम्पन्न सुकुमार अंगवाली, सौन्दर्य धाराकी सर्वस्वरूप विना हेतुकेही करुणावाली ॥ ३१ ॥ अपने संलापकी माधुरीनादसे वीणाको लज्जित करनेवाले कोटि २ चन्द्र सूर्यके कांतिको धारण करनेवाली ॥ ३२ ॥ अनेक सखी दासी देवांगना तथा सब देवताओंसे चारों ओर वेष्टित ॥ ३३ ॥ इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे युक्त लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, कीर्ति, कांति, क्षमा, दया ॥ ३४ ॥ बुद्धि, मेधा, स्मृति, लक्ष्मी यह सब मूर्तिमान् अंगनायें स्थित हैं. जया, विजया, अजिता पराजिता ॥ ३५ ॥ नित्या, विलासिनी दोग्ध्री अघोरा मंगला नवा यह पीठशक्तियें हैं जो परा अम्बिकाका सेवनकरती हैं ॥ ३६ ॥ जिसके पार्श्वभागमें

शंख और पद्मक निधियें विद्यमान हैं जिनसे नवरत्न और कांचनस्रावी नदी वहन करती हैं ॥ ३७ ॥ तथा सातधातुकी बहानेवाली नदियें निधियोंसे निर्गत होती हैं. हे राजन् ! वह सब सुधासागर पर्यन्त बहती हैं ॥ ३८ ॥ वह महेशानी देवी उनके वामअंकमें विराजमान हैं इन्हींके संगसे महेशको सर्वेशत्व प्राप्त है इसमें अन्यथा नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस चिन्तामणिगृहका प्रमाण सुनो सहस्रयोजनके आयाम (विस्तारोंमें) है ॥ ४० ॥ उसके उत्तर महापरकोटे लम्बावमें उससे दूने हैं, यह अन्तरिक्षमें स्थित निराधारमें विराजमान हैं ॥ ४१ ॥ यह निरन्तर संकुचित और विकसित होसकता है यह कार्यवश सृष्टिकी आदिमें पटवत् फैलता

यस्यास्तुपार्श्वभागेस्तोनिधीतौशंखपद्मकौ ॥ नवरत्नवहानद्यस्तथावैकांचनस्रवाः ॥ ३७ ॥ सप्तधातुवहानद्योनिधिभ्यांतुविनिर्गताः ॥ सुधासिंध्वंतगामिन्यस्ताःसर्वानृपसत्तम ॥ ३८ ॥ सादेवीभुवनेशानीतद्वामांकेविराजते ॥ सर्वेशत्वंमहेशस्ययत्संगादेवनान्यथा ॥ ३९ ॥ चिंतामणिगृहस्याऽस्यप्रमाणंशृणुभूमिप ॥ सहस्रयोजनायाममंमहांतस्तत्प्रचक्षते ॥ ४० ॥ तदुत्तरेमहाशालाःपूर्वस्माद्द्विगुणाःस्मृताः ॥ अंतरिक्षगतंत्वेतन्निराधारंविराजते ॥ ४१ ॥ संकोचश्चविकासश्चजायतेऽस्यनिरंतरम् ॥ पटवत्कार्यवशतःप्रलयेसर्जनेतथा ॥४२॥ शालानांचैवसर्वेषांसर्वकांतिपरावधि ॥चिंतामणिगृहंप्रोक्तंयत्रदेवीमहोमयी ॥ ४३ ॥ येयेउपासकाःसंतिप्रतिब्रह्मांडवर्तिनः ॥ देवेषुनागलोकेषुमनुष्येष्वितरेषुच ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्यास्तेचसर्वेऽपिव्रजंत्यत्रैवभूमिप॥देवीक्षेत्रेत्यजंतिप्राणान्देव्यर्चनेरताः ॥४५॥ तेसर्वेयांतितत्रैवयत्रदेवीमहोत्सवा ॥ घृतकुल्यादुग्धकुल्यादधिकुल्यामधुस्रवाः ॥ ४६ ॥ स्यंदंतिसरितःसर्वास्तथामृतवहाःपराः ॥ द्राक्षारसवहाःकाश्चिजंबूरसवहाःपराः ॥ ४७ ॥ आम्रेक्षुरसवाहिन्योनद्यस्तास्तुसहस्रशः ॥ मनोरथफलावृक्षावाप्यःकूपास्तथैवच ॥ ४८ ॥

और प्रलयमें संकुचित होजाता है ॥ ४२ ॥ सब परकोटोंकी कान्तिकी यह चिन्तामणि मन्दिर परम अवधि है जहां महाप्रभावा देवी निवास करती है ॥ ४३ ॥ प्रतिब्रह्माण्डके रहनेवाले जो जो उपासक हैं देवलोक नागलोक तथा मनुष्यलोकमें हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! वह सब यही श्रीदेवीके निकट प्राप्त होते हैं जो देवीके पूजनमें तत्पर देवीके क्षेत्रमें प्राणत्यागन करते हैं ॥ ४५ ॥ वह सब वहीं जाते हैं जहां देवीका महोत्सव है वहाँ घृतकुल्या मधुकुल्या दधिकुल्या मधुकी बहानेवाली हैं ॥ ४६ ॥ सब नदी अमृतकी बहानेवाली हैं कोई द्राक्षारस कोई जम्बूरसबहानेवाली हैं ॥४७॥ आम ईखके रसवाली सहस्रों नदियां हैं, मनोरथ फलनेवाले

वृक्ष बावडी और कूप हैं ॥ ४८ ॥ जो यथेष्ट पान फलके देनेवाले हैं,जिनमें कुछ भूमी न्यूनता नहीं होती, रोग पलित और जरा नहीं होती ॥ ४९ ॥ चिन्ता मात्सर्य काम क्रोधादिक नहीं हैं, सहस्र सूर्यके समान कान्तिमान् वहांके पुरुष स्त्रीसहित सदा युवा रहते हैं ॥ ५० ॥ वह श्रीभुवनेश्वरीका नित्य भजनकरते हैं. कोई सालोक्य कोई सामीप्य मुक्तिको प्राप्तहुए ॥ ५१ ॥ कोई सारूप्य और कोई सार्ष्टि मुक्तिको प्राप्तहुए हैं प्रतिब्रह्माण्डवर्ती वहां जितने देवता हैं ॥ ५२ ॥ वहां उनकी समष्टि सब श्रीजगदीश्वरीकी सेवा करते हैं, वहां सातकरोड महामंत्र मूर्तिमान्होकर उपासना करते हैं ॥५३॥ और सब महाविद्या साम्यावस्थामें स्थित शिवा, कारणब्रह्मरूपा, मायासे शबल विग्रहवालीकी उपासना करते हैं॥५४॥ हे राजन् ! यह मैं ने आपसे मणिद्वीपका महाप्रभाव कहा चन्द्र सूर्य बिजली कोटियों अग्नि यह

यथेष्टपानफलदान्न्यूनंकिंचिदस्तिहि ॥ नरोगपलितंवापिजरावापिकदाचन ॥ ४९ ॥ नचिंतानचमात्सर्यंकामक्रोधादिकंतथा ॥ सर्वेयुवानः सस्त्रीकाःसहस्रादित्यवर्चसः ॥ ५० ॥ भजंतिसततंदेवींतत्रश्रीभुवनेश्वरीम् ॥ केचित्सलोकतापन्नाःकेचित्सामीप्यतांगताः ॥ ५१ ॥ सरूपतां गताःकेचित्सार्ष्टितांचपरेगताः ॥ यायास्तुदेवतास्तत्रप्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥ ५२ ॥ समष्टयःस्थितास्तास्तुसेवंतेजगदीश्वरीम् ॥ सप्तकोटिमहामंत्रा मूर्तिमंतउपासते ॥ ५३ ॥ महाविद्याश्चसकलाःसाम्यावस्थात्मिकांशिवाम् ॥ कारणब्रह्मरूपांतांमायाशबलविग्रहाम् ॥ ५४ ॥ इत्थंराजन्मयाप्रोक्तंम णिद्वीपंमहत्तरम् ॥ नसूर्यचंद्रौनोविद्युत्कोटयोऽग्निस्तथैवच ॥५५॥ एतस्यभासाकोट्यंशकोट्यंशेनापितेसमाः ॥ क्वचिद्विद्रुमसंकाशंक्वचिन्मरकतच्छ वि ॥ ५६ ॥ विद्युद्भानुसमच्छायंमध्यसूर्यसमंक्वचित् ॥ विद्युत्कोटिमहाधारासारकांतिततंक्वचित्॥५७॥क्वचित्सिंदूरनीलेंद्रमाणिक्यसदृशच्छवि ॥ ही रसारमहागर्भधगद्धगितदिक्तटम् ॥५८॥ कांत्यादावानलसमंतप्तकांचनसन्निभम् ॥ क्वचिच्चंद्रोपलोद्गारंसूर्योद्गारंचकुत्रचित् ॥ ५९ ॥ रत्नशृंगिसमायुक्तंर त्नप्राकारगोपुरम्॥रत्नपत्रैरत्नफलैर्वृक्षैश्चपरिमंडितम्॥६०॥नृत्यन्मयूरसंघैश्चकपोतरणितोज्ज्वलम्॥कोकिलाकाकलीलापैःशुकलापैश्चशोभितम् ॥६१॥

॥ ५५ ॥ इस कान्तिके कोटि अंशके कोटि अंशमें भी नहीं हैं कहीं मूँगेकी समान कहीं मरकतकीछवि॥ ५६ ॥ कहीं विद्युत्सूर्यके समान कहीं मध्याह्न सूर्यके समान कहीं कोटि विद्युत्की समान महाधारासारकान्ति ॥ ५७ ॥ कहीं सिन्दूरनील इन्द्र माणिक्यके समान छवि,कहीं हीरेकी समान कान्ति चारों ओर फैलतीहै और ॥ ५८ ॥ कहीं कांतिमें दावानलकी समान तपे किये सुवर्णकी समान कहीं चन्द्रकांत कहीं सूर्यकान्तमणि ॥५९॥ रत्न शिखरोंसे युक्त रत्नके प्राकार और गोमुखी सम्पन्न रत्नपत्र और रत्न फलवाले वृक्षोंसे मंडित ॥ ६० ॥ मयूरोंके समूहोंके नृत्य और कपोतोंके शब्दोंसे शब्दायमान कोकिला काकली और तोतोंके आलापसे शोभित ॥ ६१ ॥

मनोहर रमणीय जलके लक्षों सरोवर, उनके मध्यभागमें रत्नोंके कमल खिले हुए ॥ ६२ ॥ चारों ओर सौ योजन तक सुगन्धि व्याप्त होरही मंदमारुतसे जहांके वृक्ष चलायमान होरहे ॥ ६३ ॥ चिन्तामणिके समूहोंकी ज्योति आकाशमें फैल रही उनमें रत्नोंकी कांतियोंसे सब ओर प्रकाश हो रहा है ॥ ६४ ॥ वृक्षोंके समूहोंकी महा गंधसे युक्त पवनसे पूर्ण है राजन् ! सब स्थान धूपोंसे धूपित और मणिद्वीपोंसे समुज्वल हैं ॥ ६५ ॥ मणियोंके जालके छिद्रोंमें चंचल दिपोंकी कान्ति निकलकर गृह मध्यके दर्पणोंमें पडकर एक अपूर्व मोहजनक कान्तिधारण करती है ॥ ६६ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पूर्ण शृंगार सब सर्वज्ञता सम्पूर्ण तेज ॥ ६७ ॥ सब पराक्रम, सर्वोत्तम गुण और सम्पूर्ण दयाकी यहां संप्राप्ति है. हे राजन् ॥ ६८ ॥ राजाके आनंदसे प्रारंभकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जो आनंद हैं वे सब आनंद यहां है ॥ ६९ ॥

सुरम्यरमणीयांबुलक्षावधिसरोवृतम् ॥ तन्मध्यभागविलसद्विकचद्रत्नपंकजैः ॥ ६२ ॥ सुगंधिभिःसमंतात्तुवासितंशतयोजनम् ॥ मंदमारुतसंभिन्नचलद्द्रुमसमाकुलम् ॥ ६३ ॥ चिंतामणिसमूहानांज्योतिषावितताम्बरम् ॥ रत्नप्रभाभिरभितोधगद्धगितदिक्तटम् ॥ ६४ ॥ वृक्षव्रातमहागंधवातव्रातसुपूरितम् ॥ धूपधूपायितंराजन्मणिदीपायुतोज्ज्वलम् ॥ ६५ ॥ मणिजालकसच्छिद्रतरलोदरकांतिभिः ॥ दिङ्मोहजनकंचैतद्दर्पणोदरसंयुतम् ॥ ६६ ॥ ऐश्वर्यस्यसमग्रस्यशृंगारस्याखिलस्यच ॥ सर्वज्ञतायाःसर्वायास्तेजसश्चाखिलस्यच ॥ ६७ ॥ पराक्रमस्यसर्वस्यसर्वोत्तमगुणस्यच ॥ सकलायादयायाश्चसमाप्तिरिहभूपते ॥ ६८ ॥ राज्ञआनंदमारभ्यब्रह्मलोकांतभूमिषु ॥ आनंदायेस्थिताःसर्वेतेऽत्रैवांतर्भवंतिहि ॥ ६९ ॥ इतितेवर्णितंराजन्मणिद्वीपंमहत्तरम् ॥ महादेव्याःपरंस्थानंसर्वलोकोत्तमोत्तमम् ॥ ७० ॥ एतस्यस्मरणात्सद्यःसर्वपापंविनश्यति ॥ प्राणोत्क्रमणसंधौतुस्मृत्वातत्रैवगच्छति ॥ ७१ ॥ अध्यायपंचकंत्वेतत्पठेन्नित्यंसमाहितः ॥ भूतप्रेतपिशाचादिबाधातत्रभवेन्नहि ॥ ७२ ॥ नवीनगृहनिर्माणेवास्तुयागेतथैवच ॥ पठितव्यंप्रयत्नेनकल्याणंतेनजायते ॥ ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ इतितेकथितंभूपयद्यत्पृष्टंत्वयाऽनघ ॥ नारायणेनयत्प्रोक्तंनारदायमहात्मने ॥ १ ॥

हे राजन् ! यह आपसे मणिद्वीपका महत्व कहा यह महादेवीका परमस्थान सब लोकोंसे उत्तमोत्तम है ॥ ७० ॥ इसके स्मरणमात्रसे सब पाप नष्ट होते हैं प्राण प्रयाणके समय इसको स्मरण करनेसे प्राणी मणिद्वीपमेंही गमन करता है ॥ ७१ ॥ जो सावधान हो आठवें अध्यायसे बारह अध्यायतक पांच अध्याय नित्य सुनता है उसको भूत प्रेत पिशाचादिकी बाधा नहीं होती ॥ ७२ ॥ नवीन ग्रहके निर्माणमें वास्तुयोगमें प्रयत्नसे इसको पढै तो कल्याण मंगल होता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जो जो आपने पूँछा सो सब तुमसे कहा जो कुछ

नारायणने महात्मा नारदसे कहा था ॥ १ ॥ इस महादेवीके परम अद्भुत पुराणको श्रवण कर यह प्राणी कृतकृत्य और देवीका प्रिय होता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! अब अपने पिताके उद्धारके निमित्त अम्बायज्ञ कीजिये जिसके विनाकिये पिताकी सुगति न होनेके कारण तुम खिन्न हो रहे हो ॥ ३ ॥ आप सर्वोत्तम महादेवीके मंत्रको ग्रहण करो जो यथाविधि विधानसे जन्मकी सफलता देता है ॥ ४ ॥ सूतजी बोले मुनिश्रेष्ठके यह वचन सुन वह नृपश्रेष्ठ मुनिराजकी प्रार्थना कर उनसेही प्रणवसंज्ञक महादेवीके मंत्रको ॥ ५ ॥ दीक्षाविधिके विधानसे राजाने ग्रहण किया फिर नवरात्रके समागममें धौम्यादि महर्षियोंको बुलाय ॥ ६ ॥ वित्तशाठ्यसे वर्जित हो अम्बायज्ञ किया और यह उत्तम पुराण ब्राह्मणोंद्वारा पाठ कराया ॥ ७ ॥ श्रीदेवी अम्बिकाकी प्रीतिके निमित्त परम देवीभागवत सुनी अंसख्य

श्रुत्वैतत्तुमहादेव्याःपुराणंपरमाद्भुतम् ॥ कृतकृत्योभवेन्मर्त्योदेव्याःप्रियतमोहिसः ॥ २ ॥ कुरुचांबामखंराजन्स्वपित्रुद्धरणायवै ॥ खिन्नोऽसियेनराजेंद्रपितुर्ज्ञात्वातुदुर्गतिम् ॥ ३ ॥ गृहाणत्वंमहादेव्यामंत्रंसर्वोत्तमोत्तमम् ॥ यथाविधिविधानेनजन्मसाफल्यदायकम् ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वानृपशार्दूलःप्रार्थयित्वामुनीश्वरम् ॥ तस्माद्देवमहामंत्रंदेवीप्रणवसंज्ञकम् ॥ ५ ॥ दीक्षाविधिविधानेनजग्राहनृपसत्तमः ॥ ततआहूयधौम्यादीन्नवरात्रसमागमे ॥ ६ ॥ अंबायज्ञंचकाराशुवित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ब्राह्मणैःपाठयामासपुराणंत्वेतदुत्तमम् ॥ ७ ॥ श्रीदेव्यग्रेंऽबिकाप्रीत्यैदेवीभागवतंपरम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयामासाप्यसंख्यातान्सुवासिनीः ॥ ८ ॥ कुमारीर्बटुकादींश्चदीनानाथांस्तथैवच ॥ द्रव्यप्रदानैस्तान्सर्वान्संतोष्यवसुधाधिपः ॥ ९ ॥ समाप्ययज्ञंसंस्थानेसंस्थितोयावदेवहि ॥ तावदेवहिचाकाशान्नारदःसमवातरत् ॥ १० ॥ रणयन्महतींवीणांज्वलदग्निशिखोपमः ॥ ससंभ्रमःसमुत्थायदृष्ट्वातंनारदंमुनिम् ॥ ११ ॥ आसनाद्युपचारैश्चपूजयामासभूमिपः ॥ कृत्वातुकुशलप्रश्नंपप्रच्छागमकारणम् ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ कुतआगमनंसाधोब्रूहिकिंकरवाणिते ॥ सनाथोऽहंकृतार्थोऽहंत्वदागमनकारणात् ॥ १३ ॥

ब्राह्मण और सुवासिनियोंको भोजन कराया ॥ ८ ॥ कुमारी बटुक दीन अनाथ इन सबको भोजन और द्रव्यदानसे राजाने प्रसन्न किया ॥ ९ ॥ यज्ञ समाप्त करके ज्योंही यज्ञमंडपमें स्थित थे कि, तबतक आकाशसे नारदजी उतरे ॥ १० ॥ प्रज्वलित अग्निके समान कांतिवाले महतीनामक अपनी वीणाको बजाते आये नारदजीको देखतेही राजा संभ्रात हो उठ खडा हुआ ॥ ११ ॥ और आसनादि उपचारोंसे राजाने उनकी पूजा की और कुशलप्रश्नकर आगमनकारण पूँछा ॥ १२ ॥ राजा बोले हे महात्मन् ! आप कहांसे आये हो कहिये मैं आपका क्याप्रिय करूं आपके आगमनसे मैं सनाथ और कृतार्थ हुआ हूं ॥ १३ ॥

राजाके यह वचन सुन मुनिश्रेष्ठ बोले हे राजन् ! इस समय देवलोकमें मैंने बडा आश्चर्य देखा है ॥ १४ ॥ वह मैं विस्मित हो तुमसे निवेदन करनेको आया हूं अपने कर्मकी
विपरीततासे तुम्हारे पिताकी सद्गति नहीं हुई थी ॥ १५ ॥ जो इस समय वह दिव्यरूप होकर देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो सब ओर अप्सराओंसे वेष्टित हो ॥ १६ ॥
अच्छे विमानपर चढ मणिद्वीपको गये हैं यह इस देवीभागवतके सुननेकाही फल है ॥ १७ ॥ देवीयज्ञके कारण तुम्हारे पिताकी सद्गति हुई तुम धन्य और कृत
कृत्य हो तथा तुम्हारा जीवन सफल है ॥ १८ ॥ हे कुलभूषण ! आपने अपने पिताका दुःखसे उद्धार किया इस समय देवलोकमें तुम्हारी बडी कीर्त्ति हुई है ॥ १९ ॥

इतिराज्ञोवचः श्रुत्वप्रोवाचमुनिसत्तमः ॥ अद्याऽऽश्चर्यंमयादृष्टंदेवलोकेनृपोत्तम ॥ १४ ॥ तन्निवेदयितुंप्राप्तस्त्वत्सकाशेसविस्मितः ॥ तेपितादुर्ग
तिंप्राप्तोनिजकर्मविपर्ययात् ॥ १५ ॥ सएवायंदिव्यरूपवपुर्भूत्वाऽधुनैवहि ॥ देवदेवैःस्तुतःसम्यगप्सरोभिःसमंततः ॥ १६ ॥ विमानवरमारुह्यम
णिद्वीपंगतोऽभवत ॥ देवीभागवतस्यास्यश्रवणोत्थफलेनच ॥ १७ ॥ अंबामखफलेनापिपितातेसुगतिंगतः ॥ धन्योऽसिकृतकृत्योऽसिजी
वितंसफलंतव ॥ १८ ॥ नरकादुद्धृतस्तातस्त्वयातुकुलभूषण ॥ देवलोकेस्फीतकीर्तिस्तवाद्याविपुलाऽभवत् ॥ १९ ॥ सूतउवाच ॥ नारदोक्तंसमा
कर्ण्यप्रेमगद्गदितांतरः ॥ पपातपादांबुजयोर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥ २० ॥ तवानुग्रहतोदेवकृतार्थोऽहंमहामुने ॥ किंमयाप्रतिकर्तव्यंनमस्काराहृतेतव ॥
॥ २१ ॥ अनुग्राह्यःसदैवाहमेवमेवत्वयामुने ॥ इतिराज्ञोवचःश्रुत्वाप्याशीर्भिरभिनन्द्यच ॥ २२ ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णंभगवान्बादरायणः ॥ राजन्सर्वंप
रित्यज्यभजदेवीपदांबुजम् ॥ २३ ॥ देवीभागवतंचैवपठनित्यंसमाहितः ॥ अंबामखंसदाभक्त्याकुरुनित्यमतंद्रितः ॥ २४ ॥ अनायासेनतेनत्वंमोक्ष्यसे
भवबंधनात् ॥ सन्त्यन्यानिपुराणानिहरिरुद्रमुखानिच ॥ २५ ॥

सूतजी बोले राजा यह नारदजीके कहे वचन सुनकर प्रेमसे गद्गद हो अद्भुतकर्मा व्यासजीके चरणोंमें पडे ॥ २० ॥ और बोले हे देव ! मैं आपके अनुग्रहसे कृतार्थ हुआ हूं
नमस्कारके सिवाय और इसका प्रत्युपकार क्या कर सकता हूं ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसी प्रकार मेरे ऊपर सदा अनुग्रह रखना चाहिये यह राजाके वचन सुन
आशीर्वादसे राजाको प्रसन्नकर ॥ २२ ॥ भगवान् व्यासजी मनोहर वचन बोले हे राजन् ! और सब त्यागनकर देवीके चरणकमलका भजन करो ॥ २३ ॥ और
नित्य सावधान होकर देवीभागवतका पाठ करो और आलस्य त्याग भक्तिपूर्वक सदा अम्बामख किया करो ॥ २४ ॥ इससे अनायासही संसारबंधनसे छूट

...के ...त होकर

जाओगे और भी शिव विष्णु आदि पुराण हैं ॥ २५ ॥ पर इस देवीभागवतकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है यह पुराण और वेदोंका सार है ॥ २६ ॥ कारण कि, इसमें शवलब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृति प्रतिपादन की गई है फिर और पुराण ब्रह्मा विष्णु आदि एक २ गुणके कहनेवाले इस त्रिगुणकी साम्यावस्थावाले पुराणकी बराबरी कैसे कर सकते हैं ॥ २७ ॥ हे जन्मेजय! इसके पाठसे वेदपाठकी समान पुण्य होता है इसकारण उत्तम विद्वानोंको प्रयत्नसे इसे पढना चाहिये ॥ २८ ॥ इसप्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ राजासे विदाहुए और धौम्यादि निर्मल मुनिभी अपने स्थानोंको गये ॥ २९ ॥ और

देवीभागवतस्यास्य कलांनार्हतिषोडशीम् ॥ सारमेतत्पुराणानां वेदानांचैवसर्वशः ॥२६॥ मूलप्रकृतिरेवैषायत्रतुप्रतिपाद्यते ॥ समंतेनपुराणंस्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम ॥२७॥ पाठेवेदसमंपुण्यंयस्यस्याज्जनमेजय ॥ पठितव्यंप्रयत्नेनतदेवविबुधोत्तमैः ॥२८॥ इत्युक्त्वानृपवर्यंतंजगाममुनिराट्ततः ॥ जग्मुश्चैवयथास्थानंधौम्यादिमुनयोमलाः ॥ २९ ॥ देवीभागवतस्यैवप्रशंसांचकुरुत्तमाम् ॥ राजाशशासधरणींततःसंतुष्टमानसः ॥ ३० ॥ देवीभागवतंचैवपठञ्छृण्वन्निरंतरम् ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेद्वादशस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूतउवाच ॥ अर्धश्लोकात्मकंयत्तुदेवीवक्त्राब्जनिर्गतम् ॥ श्रीमद्भागवतंनामवेदसिद्धांतबोधकम् ॥१॥ उपदिष्टंविष्णवेयद्वटपत्रनिवासिने ॥ शतकोटिप्रविस्तीर्णंतत्कृतंब्रह्मणापुरा ॥२॥ तत्सारमेकतःकृत्वाव्यासेनशुकहेतवे ॥ अष्टादशसहस्रंतुद्वादशस्कंधसंयुतम् ॥ ३ ॥

देवीभागवतकी उत्तम प्रशंसा करनेलगे और राजा प्रसन्नमन होकर पृथ्वीका पालन करनेलगे ॥ ३० ॥ और निरन्तर भागवत पढते सुनते रहे ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूतजी बोले तीसरे स्कन्धमें वटपत्रमें शयन करते विष्णुसे जो देवीने 'सर्वंखल्विदमेवाहंनान्यदस्तिसनातनम्' अर्थात् यह सब मैंही हूं मेरेसिवाय कोई नित्य पदार्थनहीं यह आधाश्लोक देवीके मुखसे निर्गत हुआ वेदसिद्धान्तका जतानेवाला वेदसिद्धान्तका बोधक है ॥ १ ॥ जो वटपत्रनिवासी विष्णुको उपदेशकिया, पहले ब्रह्माने इसको सौकरोड श्लोकोंमे विस्तार किया था ॥ २ ॥ उसीका व्यासजीने शुकदेवके निमित्त

अठारह सहस्त्र बारहस्कन्धमें सार कहा है ॥ ३ ॥ देवीभागवतनाम पुराण जो पहले ब्रह्माने निर्माण किया अबभी देवलोकमें वह बे विस्तारयुक्त है ॥ ४ ॥ इसकी समान पुण्यदायक पवित्र तथा पापनाशक दूसरा पुराण नहीं है इसके पाठसे मनुष्य पदपदमेंअश्वमेधके फलको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ वस्त्र आभरणादिसे पौराणिककी पूजा करनी चाहिये, पुराणवक्ताको व्यासबुद्धिसे पूजे और नियमसे रहे ॥ ६ ॥ हे मुने ! अपने हाथसे वा लेखकके हाथसे लिखाकर भाद्रपद पौर्णमासीको देवी तिथिमें श्रीभागवतको देवीरूप जान, सुवर्णका सिंह बनवाय ॥ ७ ॥ पौराणिकको प्रदान करै इसपर दक्षिणामें कपिला गौ दे वह गौ दुधारी अलंकृत सवत्सा सुवर्ण पहरे हो ॥ ८ ॥ इसमें ३१० अध्याय होनेसे इतनेही ब्राह्मणोंको भोजन करावे इतनीही सुहागन कुमारी बटुकोंको भोजन करावै ॥ ९ ॥ देवीबुद्धिसे वसन आभरणादि

देवीभागवतंनामपुराणंप्रथितंपुरा ॥ अद्यापिदेवलोकेतद्बहुविस्तीर्णमस्तिहि ॥४॥ नानेनसदृशंपुण्यंपवित्रंपापनाशनम् ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्यफलमाप्नोति मानः ॥ ५ ॥ पौराणिकंपूजयित्वावस्त्राद्याभरणादिभिः ॥ व्यासबुद्ध्यातन्मुखाच्छ्रुत्वैतत्समुपोषितः ॥ ६ ॥ लिखित्वानिजहस्तेनलेखकेनाऽथवामु ने ॥ प्रौष्ठपद्यांपौर्णमस्यांहेमसिंहसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दद्यात्पौराणिकायाऽथदक्षिणांचपयस्विनीम् ॥ सालंकृतांसवत्सांचकपिलांहेममालिनीम् ॥ ॥ ८ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान्तत्त्यध्यायपरिसंमितान् ॥ सुवासिनीस्तावतीश्चकुमारीर्बटुकैःसह ॥ ९ ॥ देवीबुद्ध्यापूजयेत्तान्वसनाभरणादिभिः ॥ पायसान्नव रेणाऽपि स्रक्कुसुमादिभिः ॥ १० ॥ पुराणदानेनैतेनभूदानस्यफलंलभेत् ॥ इहलोकेसुखीभूत्वाप्यंतेदेवीपुरंव्रजेत् ॥ ११ ॥ नित्यंयःशृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतंप ॥ नतस्यदुर्लभंकिंचित्कदाचित्कचिदस्तिहि ॥१२॥ अपुत्रोलभतेपुत्रान्धनार्थीधनमाप्नुयात् ॥ विद्यार्थीप्राप्नुयाद्विद्यांकीर्तिमंडितभूतलः ॥ ॥ १३ ॥ वंध्यावाकाकवंध्यावामृतवंध्याचयांगना ॥ श्रवणादस्यतद्दोषान्निवर्तेतनसंशयः ॥ १४ ॥ यद्गेहेपुस्तकंचैतत्पूजितंयदितिष्ठति ॥ तद्गेहंनत्यजे न्नित्यंरमाचैव सरस्वती ॥१५॥

द्वारा उनको पूजन पायसादि मिष्ठ अन्न गंधमाला कुसुमादिसे पूजा करै ॥ १० ॥ उस पुराणदानसे भूमिदानका फल होता है इसलोकमें सुखी हो अन्तमें देवीलोकको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ जो नित्य भक्तिसे देवीभागवत सुन्ते हैं उसको कभी कहीं किसी समय कुछ दुर्लभ नहीं होता ॥ १२ ॥ अपुत्रवाला पुत्र प्राप्त करता धनार्थीको धन मिलता है विद्यार्थी विद्याको प्राप्त होकर अपनी कीर्तिसे भूमिको मंडित करता है ॥ १३ ॥ वंध्या काकवंध्या जिसके एकही वार संतान हुई हो मृतवन्ध्या (जिसकी सन्तान मर जाती हो) इसके श्रवणसे ही दोष निवृत्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ जिस घरमें यह पुस्तक पूजित होकर स्थित

रहती है उसघरको ो और सरस्वती त्यागन नहीं करती ॥ १५॥ वेताल डाकिनीआदि राक्षस उस घरको देखनेको समर्थ नहीं होते मनुष्यको ज युक्त दख सावधान हो इसका पाठ करे ॥ १६ ॥ दाहज्वर ग्लानिसहित नाशको प्राप्त होता है इसकी सौ आवृत्ति करनेसे क्षयरोग नाश होता है ॥ १७ ॥ सावधानहो संध्याके उपरान्त प्रतिसंध जो इसके एक एक अध्यायको भी पढता है वह मनुष्य ज्ञानवान् होकर मोक्षका अधिकारी होता है ॥ १८ ॥ कार्याकार्यमें नवमस्कंधके कहे अनुसार शकुनो देखै जिसका प्रकार मैं पहले कह चुकाहूं ॥ १९॥ शरत्कालकी नवरात्रमें इसको नित्यपाठ करै अम्बिका प्रसन्न होकर उसको इच्छित फल देती है ॥ २० ॥ वै शैव गाणपत्य सौर शाक्त वैदिक इनको अपने इष्टदेवकी शक्ति अर्थात् अपने इष्टदेव विष्णु शिव गणेश सूर्यकी शक्ति पार्वती राधा लक्ष्मी

नेक्षंतितवेतालडाकिनीराक्षसादयः ॥ ज्वरितंतुनरंस्पृष्ट्वापठेदेतत्समाहितः ॥ १६ ॥ मंडलान्नाशमाप्नोतिज्वरोदाहसमन्वितः ॥ शतावृत्त्या ऽस्यपठनात्क्षयरोगोविनश्यति ॥ १७ ॥ प्रतिसंध्यंपठेद्यस्तुसंध्यांकृत्वासमाहितः ॥ एकैकमस्यचाध्यायंसनरोज्ञानवान्भवेत् ॥ १८॥ शकुनां श्चैववीक्षेतकार्याकार्येषुचैवहि ॥ तत्प्रकारःपुरस्तात्तुकथितोऽस्तिमयामुने ॥ १९ ॥ नवरात्रेपठेन्नित्यंशारदीयेऽतिभक्तितः ॥ तस्यांबिकातुसं तुष्टाददातीच्छाधिकंफलम् ॥ २० ॥ वैष्णवैश्चैवशैवैश्वरमोमाप्रीतयेसदा ॥ सौरैश्चगाणपत्यैश्चस्वेष्टशक्तेश्चतुष्टये ॥ २१ ॥ पठितव्यंप्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये ॥ वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतयेनित्यशोमुने ॥ २२ ॥ पठितव्यंप्रयत्नेनविरोधोनात्रकस्यचित् ॥ उपासनातुसर्वेषांशक्तियुक्ता ऽस्तिसर्वदा ॥२३॥ तच्छक्तेरेवतोषार्थंपठितव्यंसदाद्विजैः ॥ स्त्रीशूद्रोनपठेदेतत्कदापिचविमोहितः ॥२४॥ शृणुयाद्द्विजवक्त्रात्तुनित्यमेवेतिचास्थितिः ॥ किंपुनर्बहुनोक्तेनसारंवक्ष्यामितत्त्वतः ॥ २५ ॥

सिद्धि बुद्धि इच्छारूपकी तुष्टिके निमित्त इस पुराणको पढना चाहिये ॥ २१ ॥ आषाढ आश्विन माघ चैत्रके शुक्लपक्षकी चारों नवरात्र में इसको पढना चाहिये, वैदिकोंको अपनी गायत्रीकी प्रीतिके निमित्त सदा पढना चाहिये ॥२२॥ इसको यत्नसे पढना चाहिये कारण कि, इसमें किसीका विरोध नहीं है जो कि सब देवता ओंकी उपासना शक्तिसहित है और शक्तिकी अधिष्ठात्री भगवती है ॥ २३ ॥ उस शक्तिके संतोषके निमित्त द्विजोंको सदा पढनी चाहिये, स्त्री शूद्र मोहको प्राप्त हुए स्वयं इसका पारायण नकरै ॥२४॥ उनको सदा ब्राह्मणोंके मुखसे इसको सुनना चाहिये ऐसी मर्यादा है बहुत कहनेसे क्या है तत्त्वसे इसका सार कहता हूं ॥ २५ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! यह पुराण वेदका सार परमपुण्यदायक है, इसका पाठ और श्रवण वेदपाठ और श्रवणकी समान पुण्यदायक है ॥ २६ ॥ गायत्रीसे प्रतिपाद्य सच्चिदानंदरूपिणी ह्रींमयी देवीको प्रणाम करता हूं वही हमारी बुद्धिको प्रेरणा करै "ह्रींब्रह्मेति श्रुतेः" ॥ २७ ॥ नैमिषारण्यवासी तपोधन इसप्रकार सूतजीके वचन सुन पौराणिकोंमें उत्तम सूतजीकी उच्च पूजा करते हुए ॥ २८ ॥ वे देवीके चरणकमलका पूजन करनेवाले सब प्रसन्न हुए और इस पुराणके प्रभावसे परम शान्तिको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ सूतजीको वारंवार प्रणाम कर श्रम देनेके अपराधको क्षमा कराते हुए और बोले हे तात ! इस संसारसागरके पार करनेको तुमही हमको नौकारूप हुए ॥ ३० ॥ इसप्रकारसे वह सूतजी सब निगमोंमें गुप्त इसपुराणको उन श्रेष्ठ ऋषियोंको सुनाकर मुनियोंसे प्रणामको प्राप्तहो उन्हें आशीर्वादसे बढाय, माता भगवतीके चरणकमलोंमें भृंगरूप अर्थात् देवीके अतिशय भक्त सूतजी वहांसे विदा होकर अन्यत्र चलेगये ॥ ३१ ॥

वेदसारमिदंपुण्यंपुराणंद्विजसत्तमाः ॥ वेदपाठसमंपाठेश्रवणेचतथैवहि ॥ २६ ॥ सच्चिदानंदरूपांतांगायत्रीप्रतिपादिताम् ॥ नमामिह्रींमयींदेवींधियो योनःप्रचोदयात् ॥ २७ ॥ इतिसूतवचःश्रुत्वानैमिषीयास्तपोधनाः ॥ पूजयामासुरत्युच्चैःसूतंपौराणिकोत्तमम् ॥ २८ ॥ प्रसन्नहृदयाःसर्वेदेवीपादांबुजार्चकाः ॥ निर्वृत्तिपरमांप्राप्ताःपुराणस्यप्रभावतः ॥ २९ ॥ नमश्चक्रुःपुनःसूतंक्षमाप्यचमुहुर्मुहुः ॥ संसारवारिधेस्तातप्लवोऽस्माकंत्वमेवहि ॥ ३० ॥ इतिसमुनिवराणामग्रतःश्रावयित्वासकलनिगमगुह्यंदौर्गमेतत्पुराणम् ॥ नतमथमुनिसंघंवर्धयित्वाशिषांवाचरणकमलभृंगोनिर्जगामाथसूतः ॥ ३१ ॥

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांद्वादशस्कंधेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ स्वस्ति ॐ ॥

रामषण्नंद (९६३) संख्यातैःपद्यैर्व्यासकृतैःशुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्यद्वादशस्कंधईरितः ॥ १ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां राजमान्य कान्यकुब्जकमलदिवाकर हरिभक्तिनिरत श्रीमिश्रसुखानन्दसूनु महोपदेशक भारतधर्ममहामण्डल पण्डित—ज्वालाप्रसादजीकृत भाषाटीकायां द्वादशस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ समाप्तोऽयंग्रन्थः ॥

दोहा–जगदम्बा श्रीशारदा, ब्रह्मरूपिणी मात । तिनके पगवंदन किये, कोटि विघ्न मिटजात ॥ १ ॥
चरणकमल सुन्दर अमल, प्रेमसहित मनलाय । देवीभागवत ग्रंथकी, भाषा लिखी बनाय ॥ २ ॥
वेद अर्थ गर्भित सकल, गायत्रीको ध्यान । इहिमें अतिविस्तारसे, कह्यो व्यास भगवान ॥ ३ ॥
पढ़हिं सुनहिं कर प्रेम जो, पावहिं मोद महान । अर्थ धर्म कामादि सुख, अन्त मिलहिं निर्वान ॥ ४ ॥
सब पदार्थ गूढार्थ अरु, भावतिलक सम्पन्न । वर्णी भाषा भागवत, सज्जन होहिं प्रसन्न ॥ ५ ॥
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज सुखदान । वसत बम्बई नगरमें, दिव्यगुणनकी खान ॥ ६ ॥
वेङ्कटेश्वर यंत्रपति, विदित सकल संसार । तिनहित की श्रीभागवत, भाषामें विस्तार ॥ ७ ॥
पुत्र पौत्रकी होय नित, वृद्धि समृद्धि विशाल । जगज्जननि परमेश्वरी, सन्तत रहहिं दयाल ॥ ८ ॥
मिश्रसुखानँद सूरि सुत, गंगगर्भसंजात । बुधज्वालाप्रसाद नित, भुवनेशी गुणगात ॥ ९ ॥
वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । भजन करत जगदम्बको, बुध ज्वालाप्रसाद ॥ १० ॥
संवत सागर बाणग्रह, चन्द्र अषाढ सुमास । कृष्णत्रयोदशि चन्द्र दिन, पूर्णतिलक सुखरास ॥ ११ ॥
नौसे त्रेसठ श्लोकमें, यह द्वादशस्कंध । गायत्री महिमा कही, और वैदिक प्रबन्ध ॥ १२ ॥
वृथा फिरत क्यों विषनमें, रे मतिमन्दगँवार । जगदम्बाके चरणगहि, अपनो जन्मसुधार ॥ १३ ॥
पक्षपात तज धर्मगहि, व्यासमुनिहिं शिरनाय । यथा शक्ति टीकाकरी, दर्पणवत दिखराय ॥ १४ ॥
तासौं दर्पण नाम यह, टीका सब सुखमूल । पढहिं सुनहिं तिनपर रहैं, सदा शिवा अनुकूल ॥ १५ ॥

॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कितम् ।
सं० १९५८, शके १८२३.

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते द्वादशस्कन्धः समाप्तः ॥